व-हिंदी या संस्कृत वर्णमाला का उन्तीसवाँ व्यंजन वर्ण, जो उकार का विकार और अंतस्थ अर्द्धव्यंजन माना जाता है। इसका उच्चारण स्थान दंत्योष्ठ है; अर्थात् दाँत और ओठ से इसका उच्चारण होता है। प्रयत्न ईषत्स्पृष्ट होता है, अर्थात् उच्चारण के समय दाँतों का ओठ से कुछ स्पर्श होता है। हिंदी में इस वर्ण का उच्चारण अधिकतर केवल ओठ से होता है, केवल संस्कृताभ्यासी लोग ही शुद्ध दंत्योष्ठ उच्चारण करते हैं।

वंक-वि० [सं०] कुछ झुका हुआ। टेढ़ा। वक्र।
संज्ञा पुं० [सं०] नदी का मोड़। वंकर।

वंकट-वि० [सं० वंक] (१) टेढ़ा। बाँका। (२) कुटिल। जो सीधा न हो। (३) विकट। दुर्गम। उ०—रही है घूँघट-पट की ओट। मनो कियो फिर मान मवासो, मन्मथ वंकट कोट।—सूर।

वंकनाल-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर की एक नाड़ी का नाम।

वंकनाली-संज्ञा स्त्री० [हिं० वंक + नाड़ी] साधुओं की बोलचाल में सुषुम्ना नामक नाड़ी, जो मध्य में मानी गई है। उ०—वंकनालि सदा रस पीवै, तब यह मनुवाँ कहीं न जाय। विगसै कँवल प्रेम जब उपजै ब्रह्म जीव को करै सहाय।—दादू।

वंकर-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ से नदी मुड़ी हो। नदी का मोड़।

वंकसेन-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त का पेड़।

वंका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चारजामे की अगली मैंड़ी।

वंकाटक-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

वंकाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] बंगाल की प्राचीन राजधानी का नाम जिसके कारण उस देश का बंगाल नाम पड़ा। (राजतरंगिणी)

वंकिम-वि० [सं०] ईषत् वक्र। कुछ टेढ़ा या झुका हुआ। बाँका।

वंकिल-संज्ञा पुं० [सं०] कंटक। काँटा।

वंक्रि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पशुओं की पसली की हड्डी। (२) कोठी। कड़ी। (३) प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा।

वंक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] मूत्राशय और जंघास्थल का संधि स्थान। वह स्थान जो पेडू और जाँघ के बीच में है और जहाँ 'बद्ध' नामक रोग की गाँठ निकला करती है।

वंक्षु-संज्ञा स्त्री० [सं०] आक्सस नदी जो हिंदूकुश पर्वत से निकलकर मध्य एशिया में बहती हुई आरल समुद्र में गिरती है।

विशेष—इस नदी का नाम वेदों में कई जगह आया है। पुराणों में यह केतुमाल वर्ष की एक नदी कही गई है। महाभारत में इसकी गणना पवित्र नदियों में की गई है रघुवंश की प्राचीन प्रतियों में भी रघु के दिग्विजय के अंतर्गत इस नदी का उल्लेख है और इसके किनारे हूणों की बस्ती कही गई है।

वंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मगध या बिहार के पूर्व पड़नेवाला प्रदेश। बंगाल।

विशेष—ऋग्वेद में सब से पूर्व पड़नेवाले जिस प्रदेश का उल्लेख है, वह "कीकट" (मगध) है। अथर्व संहिता में 'अंग' देश का भी नाम मिलता है। संहिताओं में 'वंग' नाम नहीं मिलता। ऐतरेय आरण्यक में ही सब से पहले वंग देश की चर्चा आई है, और वहाँ के निवासियों की दुर्बलता और दुराचार आदि का उल्लेख पाया जाता है। बात यह है कि संहिता काल में कीकट और वंग देश में अनार्यों का ही निवास था। आर्य्य लोग वहाँ तक न पहुँचे थे। बौधायन धर्मसूत्र में लिखा है कि वंग, कलिंग, पुंड्र आदि देशों में जानेवाले को लौटने पर पुनस्तोम यज्ञ करना चाहिए। मनुस्मृति में तीर्थ यात्रा के लिये जाने की आज्ञा है। इससे जान पड़ता है कि उस समय आर्य्य वहाँ बस गए थे। शतपथ ब्राह्मण के समय में मिथिला में विदेह वंश प्रतिष्ठित था। रामायण में प्राग्ज्योतिःपुर (रंगपुर से लेकर आसाम तक प्राग्ज्योतिष प्रदेश कहलाता था) की स्थापना का उल्लेख है।

महाभारत (आदि पर्व) में लिखा है कि क्षत्रिय राजा बलि को कोई संतति न हुई। तब उन्होंने अंधे दीर्घतम ऋषि द्वारा अपनी रानी के गर्भ से पाँच पुत्र उत्पन्न कराए जिनके नाम हुए—अंग, वंग, कलिंग, पुंड्र और सुह्म। इन्हीं के नाम पर देशों के नाम पड़े।

(२) राँगा नाम की धातु। (३) राँगे का भस्म। (४) कपास। (५) बैंगन। भंटा।

वंगज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंदूर। (२) पीतल।
वि०-(१) बंगाल में उत्पन्न होनेवाला। (२) बंगाली।

वंगजीवन-संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी।

वंगन-संज्ञा पुं० [सं०] बैंगन।

वंगमल-संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु। प्राचीनों की यह धारणा थी कि राँगा और सीसा दोनों एक ही धातु हैं और वे सीसे को राँगे का मल समझते थे।

वंगसेन-संज्ञा पुं० [सं०] लाल फूलवाला अगस्त।

वंगारि-संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

वंगाली-संज्ञा स्त्री० [हिं० बंगाल] भैरव राग की एक रागिनी।

विशेष—यह ओड़व जाति की है और इसमें ऋषभ तथा धैवत

स्वर नहीं लगते। कल्लिनाथ के मत से यह संपूर्ण जाति की है और इसमें दो बार मध्यम आता है।

वंगाष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] एक रसौषध जिसमें राँगा आदि आठ धातुएँ एक साथ मिलाकर फूँकी जाती हैं। यह प्रमेह रोग पर दिया जाता है।

विशेष—पारा, गंधक, लोहा, चाँदी, खपरिया, अभ्रक और ताँबा बराबर लेकर जितना सब हो, उतना राँगा लेकर सब को एक साथ मर्दन करके गजपुट द्वारा फूँकते हैं। जब भस्म हो जाता है, तब उसको वंगाष्टक कहते हैं। वंगाष्टक की मात्रा दो रत्ती है; और मधु, हलदी के चूर्ण तथा आमले के रस में इसे खाते हैं।

वंगेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध रस।

विशेष—पारे का भस्म ८ तोला, वंग का भस्म ८ तोला, ताँबे का भस्म ३२ तोला और गंधक ३२ तोला लेकर मदार के दूध में मलकर फिर पिंडी बनाकर भूधर यंत्र द्वारा फूँकते हैं। जब भस्म हो जाता है, तब उसे वंगेश्वर कहते हैं। इसकी मात्रा २ रत्ती है। इसे दुग्धोदर रोग में घी के साथ देते हैं; और ऊपर से पुनर्नवा का रस और गोमूत्र या हल्दी का रस पिलाते हैं।

वंचक-वि० [सं०] (१) धूर्त। धोखेबाज़। ठग। (२) खल।
संज्ञा पुं० (१) गीदड़। (२) सेंधियार। (३) चोर। ठग।

वंचन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वंचित] धोखा देना या खाना। धूर्तता। ठगी।

वंचना-संज्ञा स्त्री० [सं०] धोखा। जाल। फ़रेब। छल।
क्रि० स० [सं० वंचन] धोखा देना। ठगना। उ०—दंभ विलोक्यो कलह जो, दिल्ली नगरी जाइ। वंचतु जग जैसे फिरतु मो पै बरनि न जाइ।—केशव।
† क्रि० स० [सं० वाचन] पढ़ना। बाँचना।

वंचित-वि० [सं०] (१) धोखे में आया हुआ। जो ठगा गया हो। (२) अलग किया हुआ। (३) विमुख। अलग। हीन। रहित। जैसे,—मैं इस कृपा से वंचित रखा गया हूँ।

वंजुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेंत। (२) तिनिश का पेड़। (३) अशोक का पेड़। (४) स्थलपद्म। (५) एक प्रकार के पक्षी का नाम।

वंजुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुधारी गाय। (२) एक नदी का नाम जो मत्स्यपुराणानुसार सह्याद्रि पर्वत से निकलती है।

वंजुलावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम जो दक्षिण के एक पर्वत से निकलती है।

वंट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाग। बाँट। (२) हँसिया आदि की मूठ। बेंठ। (३) जिसकी पूँछ न हो या कट गई हो। लँडूरा। बाँड़ा। (४) अविवाहित पुरुष।

वंटक-संज्ञा पुं० [सं०] भाग। बाँट।
वि० बाँटनेवाला। विभाजक।

वंटाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शूरों का युद्ध। (२) नौका। (३) खोदने का औज़ार। खनती।

वंठ-वि० [सं०] जिसका कोई अंग खंडित हो। हीनांग। जैसे— लूला, लँडूरा, खंजा आदि।
संज्ञा पुं० (१) अविवाहित पुरुष। (२) दास। (३) वामन। बौना। (४) कुंत। भाला।

वंठर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताड़ के वृक्ष का कोंपल। (२) बाँस के कल्ले का वह मोटा पत्ता जो उसे छिपाए रहता है। यह पत्ता गाँठ गाँठ पर होता है और बहुत कड़ा तथा भूरे रंग का होता है। (३) कुत्ते की पूँछ। (४) वह रस्सी जिससे बकरी, गाय आदि को गले से बाँधते हैं। (५) स्तन। थन। (६) मेघ। (७) कुत्ता।

वंटाल-संज्ञा पुं० दे० "वंटाल"।

वंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसकी लिंगेंद्रिय के अग्र भाग पर वह चमड़ा न हो, जो सुपारी को ढाँके रहता है। (२) ध्वजभंग नामक रोग।
पर्य्या०—दुश्चर्मा। द्विनग्नक। शिपिविष्ट।
वि० बाँड़ा। हीनांग।

वंडर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मक्खीचूस। सूम। कंजूस। (२) वह नपुंसक जो अंतःपुर का रक्षक हो। खोजा।

वंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुंश्चली स्त्री।

वंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्तुति और प्रणाम। पूजन।
विशेष—वंदन षोडशोपचार पूजन में है। यह समस्त पद के अंत में 'वंदन' शब्द से पूजित या पूज्य का अर्थ देता है। जैसे,—अगवंदन।
(२) शरीर पर बनाए हुए तिलक आदि चिह्न। (३) एक विष का नाम। (४) एक असुर का नाम। (५) एक ऋषि का नाम। (६) वंदाक। बाँदा।

वंदनमाल, वंदनमाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंदनवार।

वंदनवार-संज्ञा स्त्री० [सं० वंदनमाल] वह माला जो सजावट के लिये घरों के द्वार पर या मंडप के चारों ओर उत्सव के समय बाँधी जाती है। उ०—सेजहि सुधारैं एक, रोसनी उज्यारैं एक, बाँधती वंदनवारैं द्वारैं फूल बगारी को।—राम।
विशेष—इस माला में फूल पत्तियाँ गुही रहती हैं। यज्ञादि में आम के पल्लव गूँथे जाते हैं।

वंदना-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० वंदित, वंदनीय] (१) स्तुति। (२) प्रणाम। वंदन। (३) वह तिलक जो होम के भस्म से यज्ञ के अंत में लगाया जाता है।

वंदनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्तुति। (२) जीवातु नामक ओषधि। (३) गोरोचन। (४) तिलकादि चिह्न जो शरीर पर बनाए जाते हैं। (५) याचनाकर्म। (६) वरी।

वंदनीय-वि० [सं०] वंदना करने योग्य । आदर करने योग्य ।

वंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दूसरे पेड़ों के ऊपर उसी के रस से पलनेवाला एक प्रकार का पौधा । बंदाक । बाँदा ।

पर्य्या०—वृक्षादनी । वृक्षरुहा । वंदाका । जीवंतिका । शेखरी । सेव्या । वंदका । वंदक । नीलवल्ली । वंदाकी । परवाधिका । वशिनी । पुष्पिणी । वंद्या । परपुष्टा । पराश्रया । कामवृक्षा । केशरूपा । गंधमादनी । कामिनी । श्यामा । कामवृक्ष ।

विशेष—इसका स्वाद तिक्त होता है, और वैद्यक में यह कफ, पित्त तथा श्रम को दूर करनेवाला कहा गया है ।

वंदारु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्तोत्र । (२) बाँदा । बंदाक ।

वि० वंदनशील ।

वंदिग्राह-संज्ञा पुं० [सं०] डाकू ।

वंदित-वि० [सं०] पूज्य । आदरणीय ।

वंदी-संज्ञा पुं० दे० "बंदी" ।

वंदीक-संज्ञा पुं० [सं०] इन्द्र ।

वंदीगृह-संज्ञा पुं० [सं०] कैदखाना ।

वंदीजन-संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं आदि का यश वर्णन करनेवाली एक प्राचीन जाति ।

वंद्य-वि० [सं०] वंदना करने योग्य । वंदनीय । आदरणीय । पूजनीय ।

वंधु-संज्ञा पुं० दे० "बंधु" ।

वंधुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रथ या गाड़ी का आश्रय जिसमें दोनों हरसे और धुरा प्रधान हैं । (२) गाड़ी में का वह स्थान जहाँ सारथी या गाड़ीवान बैठकर उसे चलाता है ।

वंश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस । (२) बँडेर । (३) पीठ की हड्डी । (४) नाक के ऊपर की हड्डी । बाँसा । (५) बाँसुरी । (६) एक प्रकार की ईख । (७) खड्ग के बीच का वह भाग जो ऊँचा होता है, अर्थात् जहाँ पर वह अधिक चौड़ा होता है । (८) बारह हाथ का एक मान । (९) बाहु आदि की लम्बी हड्डियाँ । (१०) युद्ध की सामग्री । जैसे, रथ, ध्वजा इत्यादि । (११) विष्णु । (१२) वंशलोचन । (१३) कुल ।

यौ०—वंशज । वंशकृत् । वंशक्षय । वंशच्छेद इत्यादि ।

वंशऋषि-संज्ञा पुं० [सं०] वे ऋषि जिनके नाम वंश ब्राह्मण में आए हैं ।

वंशकंज-संज्ञा पुं० [सं०] काले अगर की लकड़ी । कृष्णागुरु ।

वंशक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगर नामक गंध द्रव्य । अगुरु । (२) एक प्रकार की मछली । (३) एक प्रकार का गन्ना या ईख ।

विशेष—वैद्यक में इसे शीतल, मधुर, स्निग्ध, पुष्टिकारक, सारक, वृष्य और कफनाशक लिखा है । इसके रस का स्वाद कुछ खारीपन लिए और भारी होता है । इसे 'कररुख' कहते हैं । (४) छोटी जाति का बाँस ।

वंशकपूर-संज्ञा पुं० [सं० वंशकर्पूर] वंसलोचन ।

वंशकफ-संज्ञा पुं० [सं०] सेमल आदि का घूआ जो आकाश में उड़ता फिरता है ।

वंशकर-संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिससे किसी वंश का आरंभ हुआ हो । मूलपुरुष ।

वंशकरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मार्कंडेयपुराणानुसार एक नदी जो महेंद्र पर्वत से निकलती है । वंशधरा ।

वंशकार-संज्ञा पुं० [सं०] गंधक ।

वंशक्षीरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंसलोचन ।

वंशघटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दिव्यावदान के अनुसार एक प्रकार का खेल ।

वंशज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस का चावल । (२) पुत्र । (३) कुल में उत्पन्न पुरुष । संतान । संतति । औलाद ।

वंशजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वंसलोचन । (२) कन्या ।

वंशतिलक-संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद का नाम ।

वंशधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुल में उत्पन्न । वंशज । संतति । संतान । (२) वंश की मर्य्यादा रखनेवाला ।

वंशधरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जो महेंद्र पर्वत से निकली है । यह नदी मध्य प्रदेश में है । इसे वंशकरा भी कहते हैं । इसका आधुनिक नाम वंसधारा है ।

वंशधान्य-संज्ञा पुं० [सं०] बाँस का चावल ।

वंशनर्त्ती-संज्ञा पुं० [सं० वंशनर्त्तिन्] भाँड़ ।

वंशनाश-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार एक योग जो शनि और राहु के सूर्य्य के साथ एक लग्न में, विशेषतः पंचम में, पड़ने पर होता है ।

वंशनेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] ईख के अँकुरवाले डंठल जिन्हें जमीन में गाड़ने से ईख का नया पौधा उत्पन्न होता है । आँखा ।

वंशपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] हरताल ।

वंशपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की ईख जो सफेद होती है । (२) एक प्रकार की मछली । (३) हरताल ।

वंशपत्रपतित-संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद का नाम ।

वंशपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की हींग । (२) एक घास जिसे बाँसा कहते हैं । इसकी पत्तियाँ बाँस की पत्तियों से मिलती हैं । वैद्यक में यह शीतल, मधुर, रुचिकारी तथा रक्त पित्त के दोषों को शांत करनेवाली कही गई है ।

पर्य्या०—वंशदला । जीरिका । जीर्णपत्रिका । वेणुपत्री । पिंगा । शिराटिका ।

वंशपीत-संज्ञा पुं० [सं०] गुग्गुल ।

वंशब्राह्मण-संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद के ब्राह्मणों में एक प्रधान ब्राह्मण, जिसमें सामवेदी ब्राह्मणों के वंशकार ऋषियों की नामावली है ।

वंशरोचना-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंसलोचन।

वंशलोचन-संज्ञा पुं० [सं०] वंसलोचन।

पर्या०—त्वक्क्षीरा। वंशलोचना। शुभ्राक्षीरी। वांशी। वंशजा। क्षीरिका। तुंगा। त्वक्क्षीरी। शुभ्रा। शुभा। वंशक्षीरी। त्वक्सारा। कर्मारी। श्वेता। वंशकर्पूर। रोचना। रोचनिका। पिंगा। वंशशर्करा। वेणुलवण। वैणवी।

वंशलोचना-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंसलोचन।

वंशशर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंसलोचन।

वंशशलाका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बीन, सितार आदि बाजों का डंडा।

वंशस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] बारह वर्णों का एक वर्णवृत्त जिसका व्यवहार संस्कृत काव्यों में अधिक मिलता है। इसमें जगण, तगण, जगण और रगण आते हैं। जैसे,—प्रथा सु वंशस्थ विलंघि धावती। नसाय तीनों कुल को लजावती। इसे 'वंशस्थविल' भी कहते हैं।

वंशहीन-वि० [सं०] (१) जिसके वंश में कोई न हो। निर्वंश। (२) अपुत्र।

वंशानुचरित-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन राजवंशों की कथा।

विशेष—यह पुराणों के लक्षणों में से एक है।

वंशावली-संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वंश में उत्पन्न पुरुषों की पूर्वोत्तर क्रम से सूची।

वंशिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगर की लकड़ी। (२) काला गन्ना। केतारा।

वंशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अगर की लकड़ी। (२) वंसी। मुरली। (३) पिप्पली।

वंशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुँह से फूँककर बजाया जानेवाला एक प्रकार का बाजा जो बाँस में सुर निकालने के लिये छेद करके बनाया जाता है। बाँसरी। मुरली।

विशेष—पुराने ग्रंथों में लिखा है कि वंशी बाँस ही की होनी चाहिए; पर खैर, लाल चंदन आदि की लकड़ी की अथवा सोने, चाँदी की भी हो सकती है। यह वास्तव में बाँस की एक पोली नली होती है, जिसके बजानेवाले छोर पर एक जीभ लगी होती है और दूसरी ओर नली के ऊपर एक पंक्ति में सुर निकलने के छेद होते हैं। मातंग ऋषि का मत है कि नली का छेद कनिष्ठ उँगली के मूल के बराबर होना चाहिए। जो छोर मुँह में रखकर फूँका जाता है, उसे 'फूत्काररंध्र' और सुर निकालनेवाले सात छेदों को 'ताररंध्र' कहते हैं। इस वंशी के अतिरिक्त मातंग के अनुसार चार प्रकार की मुरलियाँ और होती हैं, जिन्हें मदानंदा, नंदा, विजया और जया कहते हैं। मदानंदा में ताररंध्र फूत्काररंध्र से दस अंगुल पर, नंदा में ग्यारह अंगुल पर, विजया में बारह अंगुल पर और जया में चौदह अंगुल पर होते हैं। आज कल वह वंशी जो एक साथ दो बजाई जाती है, अलगोजा कहलाती है। प्राचीन काल के गोपों में इस बाजे का प्रचार बहुत था।

यौ०—वंशीधर।

(२) चार कर्ष का एक मान जो आठ तोले के बराबर होता है। (३) वंसलोचन।

वंशीधर-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण, जो वंशी बजाया करते थे

वंशीय-वि० [सं०] वंशोद्भव। कुल में उत्पन्न। जैसे,—चंद्रवंशीय।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग यौगिक शब्दों के अंत में हुआ करता है।

वंशीवट-संज्ञा पुं० [सं०] वृंदावन में वह बरगद का पेड़ जिसके नीचे श्रीकृष्ण वंशी बजाया करते थे।

वंशीवादन-संज्ञा पुं० [सं०] वंशी बजाना।

वंशोद्भव-वि० [सं०] वंशज। कुल में उत्पन्न।

वंशोद्भवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंसलोचन।

वंश्य-वि० [सं०] वंशी। वंशज।

संज्ञा पुं० (१) पीठ की रीढ़। (२) वह बड़ी लकड़ी जो छाजन के बीचोबीच रीढ़ के समान होती है। बँड़ेर।

व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) बाण। (३) वरुण। (४) बाहु। (५) मंत्रण। (६) कल्याण। (७) सांत्वन। (८) वसति। बस्ती। (९) वरुणालय। समुद्र। (१०) शार्दूल। (११) वस्त्र। (१२) कोई का कंद। सेरुकी। (१३) जल में उत्पन्न होनेवाले कंद। शालूक। (१४) वंदन। (१५) अश्व। (१६) खड्गधारी पुरुष। (१७) मूर्वा नामक लता। (१८) वृक्ष। (१९) कलश से उत्पन्न ध्वनि। (२०) मद्य। (२१) प्रचेता।

वि० बलवान्।

अव्य० [फ़ा०] और। जैसे,—राजा व रईस।

वक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बगला नाम का पक्षी। (२) अगस्त का पेड़ या फूल। (३) एक दैत्य का नाम जिसे श्रीकृष्ण ने बाल्यावस्था में मारा था। (४) एक राक्षस जिसे भीम ने मारा था। (५) कुबेर। (६) एक यक्ष का नाम। (७) एक जाति का नाम।

वककच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद जो नर्मदा के किनारे था।

विशेष—कथासरित्सागर में लिखा है कि उज्जयिनी के राजा सातवाहन सर्ववर्म्मा ने कलाप व्याकरण का अध्ययन करके अपने गुरु को यह राज्य गुरुदक्षिणा में दिया था।

वकचिंचिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की छोटी मछली।

वकजित्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण। (२) भीमसेन।

वकनख-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

वकपंचक—संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिक के शुक्ल पक्ष की एकादशी से लेकर पूर्णिमा तक की पाँच तिथियाँ।

वकयंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] आसव आदि भपके से उतारने के लिये एक यंत्र या बरतन, जिसके मुँह पर बगले की गरदन की तरह टेढ़ी नली लगी रहती है।

वकवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] धोखा देकर काम निकालने की घात में रहने की वृत्ति। कदाचार।

वकव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] बगले की तरह घात में रहनेवाला। कपटी मनुष्य।

वकालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) दूसरे के किसी काम का भार लेना। दूसरे के स्थानापन्न होकर काम करना। (२) दूसरे का सँदेसा जोर देकर कहना। दूतकर्म। (३) दूसरे के पक्ष का मंडन। दूसरे की ओर से उसके अनुकूल बातचीत करना। जैसे,—उन्हें जो कुछ कहना होगा आप कहेंगे, तुम क्यों उनकी ओर से वकालत करते हो। (४) अदालत या कचहरी में किसी मामले में वादी या प्रतिवादी की ओर से प्रश्नोत्तर या वादविवाद करने का काम। मुकदमे में किसी फ़रीक़ की तरफ से बहस करने का पेशा।

मुहा०—वकालत चलना या चमकना = वकालत के पेशे में कामयाबी होना। वकालत जमना = वकालत के पेशे में लाभ होने लगना।

यौ०—वकालतनामा।

वकालतन—क्रि० वि० [अ०] वकील के द्वारा। असालतन का उलटा।

वकालतनामा—संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] वह अधिकारपत्र जिसके द्वारा कोई किसी वकील को अपनी तरफ से मुकदमे में बहस करने के लिये मुकर्रर करता है।

वकासुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।

विशेष—इस नाम के दो राक्षस हुए हैं। एक को श्रीकृष्ण ने अपनी बाल्यावस्था में मारा था। यह पूतना नाम की राक्षसी का भाई और कंस का अनुचर था। दूसरे को भीमसेन ने उस समय मारा था, जब पाँचो पांडव लाक्षागृह से निकलकर वन में जाकर रहते थे।

वकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी का नाम।

वकील—संज्ञा पुं० [अ०] (१) दूसरे के काम को उसकी ओर से करने का भार लेनेवाला। (२) दूसरे का सँदेसा ले जाकर उस पर जोर देनेवाला। दूत। (३) राजदूत। एलची। उ०—सूरज कही नवाब के है आनंद सरीर। तब वकील विनती करी कृपा पाइ जदुवीर।—सूदन। (४) प्रतिनिधि। (५) दूसरे का पक्ष मंडन करनेवाला। दूसरे की ओर से उसके अनुकूल बात करनेवाला। (६) क़ानून के अनुसार वह आदमी जिसने वकालत की परीक्षा पास की हो और जिसे हाईकोर्ट की ओर से अधिकार मिला हो कि वह अदालतों में मुद्दई या मुद्दालैह की ओर से बहस करे।

वकुल—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त का पेड़ या फूल।

वकुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी नामक ओषधि।

वकुली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकोली नाम की ओषधि। (२) वकुल। मौलसिरी।

वक़ूअ—संज्ञा पुं० [अ०] घटित होना। प्रकट हो।

मुहा०—वक़ूअ में आना = प्रकट होना। घटित होना।

वक़ूफ़—संज्ञा पुं० [अ०] (१) जानकारी। ज्ञान। (२) बुद्धि। समझ।

यौ०—बेवक़ूफ़ = मूर्ख।

वक्त—संज्ञा पुं० [अ०] (१) समय। काल।

मुहा०—वक्त काटना = (१) किसी प्रकार समय बिताना। (२) जी बहलाना। वक्त की चीज = (१) किसी समय या ऋतु विशेष में मिलनेवाली चीज। (२) किसी विशेष समय में गाया जानेवाला गीत या राग। जैसे,—कोई वक्त की चीज़ गाइए। वक्त खोना = समय नष्ट करना।

(२) किसी बात के होने का समय। अवसर। मौका।

मुहा०—वक्त पर = अवसर आने पर। कोई विशेष परिस्थिति होने पर। जैसे,—इसे रख छोड़ो, वक्त पर काम आवेगी। वक्त ताकना = मौका देखना। इस बात की प्रतीक्षा में रहना कि कब उपयुक्त अवसर मिले और कोई बात करें। वक्त हाथ से देना = अवसर चूकना। मौका आने पर भी काम न करना।

(३) इतना समय कि कोई काम किया जा सके। अवकाश। फुरसत।

क्रि०प्र०—निकलना।—निकालना।—मिलना।

(४) मरने का नियत समय। मृत्युकाल।

क्रि० प्र०—आ जाना।—आ पहुँचना।

वक़्तन् फ़ौक़तन्—क्रि० वि० [अ०] (१) यदकदा। कभी कभी। (२) यथासमय।

वक्तव्य—वि० [सं०] (१) कहने योग्य। वाच्य। (२) कुछ कहने सुनने लायक। (३) हीन। तुच्छ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) कथन। वचन। (२) वह बात जो किसी विषय में कहनी हो।

वक्ता—वि० [सं० वक्तृ] (१) वाग्मी। बोलनेवाला। (२) भाषणपटु। वदान्य।

संज्ञा पुं० कथा कहनेवाला पुरुष। व्यास। उ०—सूत जहँ कथा भागवत की कहत हैं ऋषि अठासी सहस हुते श्रोता। राम को देखि सम्मान सब ही कियो सूत नहिं उठ्यो निज जानि वक्ता।—सूर।

वक्तृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वाग्मिता। वाक्पटुता। (२) व्याख्यान। (३) कथन। भाषण।

वक्तृत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वक्तृता। वाग्मिता। (२) व्याख्यान। (३) कथन।

वक्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुख। (२) तगर की जड़। (३) एक प्रकार का छंद जो अनुष्टुभ छंद के अनुरूप होता है। (४) काम का आरंभ।

यौ०—वक्त्रज।

वक्त्रताल-संज्ञा पुं० [सं०] वह ताल जो मुँह से उत्पन्न किया जाय। जैसे, वंसी को बजाने से या मुँह में वायु भरकर छोड़ने से।

वक्त्रतुंड-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

वक्त्रदल-संज्ञा पुं० [सं०] तालु।

वक्त्रबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] वाराही कंद।

वक्त्रवास-संज्ञा पुं० [सं०] नारंगी।

वक्त्रशल्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंजा। घुँघची।

वक्त्रासव-संज्ञा पुं० [सं०] लाला। थूक।

वक्फ-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह भूमि या संपत्ति जो धर्म्मार्थ दान कर दी गई हो। किसी धर्म्म के काम में लगी हुई जायदाद।

क्रि० प्र०—करना।

(२) किसी धर्म्म के काम में धन आदि देना। धर्म्मार्थ दान। (३) किसी के लिये कोई चीज या धन सम्पत्ति आदि छोड़ देना। (क०)

वक्फनामा-संज्ञा पुं० [अ० वक्फ़+फ़ा० नामा] वह पत्र जिसके अनुसार किसी के नाम कोई चीज़ वक्फ़ की जाय। दानपत्र।

वक्फ़ा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) अवकाश। अंतर। छुट्टी। मोहलत।

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।

(२) काम करने से विराम।

क्रि० प्र०—मिलना।

वक्र-वि० [सं०] (१) टेढ़ा। बाँका। ऋजु का उलटा। (२) झुका हुआ। तिरछा। (३) कुटिल। दाँव पेंच चलनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) नदी का मोड़। बाँका। (२) तगरपादुका। (३) शनैश्चर। (४) भौम। मंगल। (५) रुद्र। (६) पर्पट। (७) वह ग्रह जिससे तीस अंश के अंदर ही सूर्य्य हो। वक्रीग्रह। (८) एक राक्षस का नाम। (९) त्रिपुरासुर।

वक्रकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] बेर का वृक्ष।

वक्रगति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भौम। मंगल। (२) ग्रहलाघव के अनुसार वे ग्रह जो सूर्य्य से पाँचवें, छठे, सातवें और आठवें हों। इस प्रकार मंगल ३६ दिन, बुध २१ दिन, बृहस्पति १०० दिन, शुक्र १२ दिन और शनि १८० दिन वक्री होता है।

वक्रगल-संज्ञा पुं० [सं० वक्र+गला] एक प्रकार का बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता है।

वक्रगामी-वि० [सं० वक्रगामिन्] (१) टेढ़ी चाल चलनेवाला। (२) शठ। कुटिल।

वक्रगुल्फ-संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।

वक्रचंचु-संज्ञा पुं० [सं०] तोता। शुक पक्षी।

वक्रताल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा जो मुँह से बजाया जाता है। वक्रनाल।

वक्रतुंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुक पक्षी। तोता। (२) गणेश।

वक्रदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] शूकर। सूअर।

वक्रदृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) टेढ़ी दृष्टि। (२) क्रोध की दृष्टि। (३) मंद दृष्टि।

वक्रधर-संज्ञा पुं० [हिं० वक्र+धर] द्वितीया का टेढ़ा चंद्रमा धारण करनेवाले, शिव।

वक्रनक्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पिशुन। चुगलखोर। (२) शुक पक्षी। तोता।

वक्रनाल-संज्ञा पुं० [सं०] वक्रताल नाम का बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता है।

वक्रनासिक-संज्ञा पुं० [सं०] उल्लू।

वि० टेढ़ी नाकवाला।

वक्रपुच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

वक्रपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगस्त का पेड़। (२) पलाश।

वक्रय-संज्ञा पुं० [सं०] मूल्य। दाम।

वक्रशल्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कड़वा कद्दू या घीया। (२) लाल फूल की विषकांगली।

वक्रांग-वि० [सं०] जिसका अंग टेढ़ा हो।

संज्ञा पुं० (१) हंस। (२) सर्प। साँप।

वक्रित-वि० [सं०] जो टेढ़ा हो गया हो।

वक्रिम-वि० [सं०] टेढ़ा। कुटिल।

वक्री-वि० [सं० वक्रिन्] अपने मार्ग को छोड़कर पीछे लौटनेवाला।

विशेष—फलित ज्योतिष में जो ग्रह अपनी राशि से एक बारगी दूसरी राशि में चला जाता है, उसे अतिवक्री या महावक्री कहते हैं। यह वक्रता मंगल आदि पाँच ग्रहों में ही होती है। वि० दे० "वक्रगति"।

संज्ञा पुं० (१) वक्र ग्रह। (२) वह प्राणी जिसके अंग जन्म से टेढ़े हों। (३) बुद्धदेव, जिन्होंने टेढ़ी युक्तियों से वैदिक मत का विरोध किया था।

वक्रोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का काव्यालंकार जिसमें काकु या श्लेष से वाक्य का और का और अर्थ किया जाता है। (२) काकूक्ति। (३) वह उक्ति जिसमें चमत्कार हो। बढ़िया उक्ति।

विशेष—किसी किसी आचार्य (जैसे "वक्रोक्तिजीवितम्" के कर्त्ता) ने वाक्चातुर्य्य को ही काव्य की आत्मा कह दिया है, जिसका और आचार्यों ने खंडन किया है।

वक्रोष्ठिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी मंद हँसी जिसमें दाँत न खुलें, केवल ओंठ कुछ टेढ़े हो जायँ। मुसकान। स्मित।

वक्रस-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का मद्य।

वक्ष-संज्ञा पुं० [सं० वक्षस्] (१) पेट और गले के बीच में पड़नेवाला भाग जिसमें स्त्रियों के स्तन और पुरुषों के स्तन के से चिह्न होते हैं। छाती। उरस्थल। (२) बैल।

वक्षःस्थल-संज्ञा पुं० [सं०] उर। छाती।

वक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निशिखा।

वक्षु-संज्ञा पुं० दे० "वंक्षु"।

वक्षोग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

वक्षोज-संज्ञा पुं० [सं०] स्तन। कुच।

वक्षोरुह-संज्ञा पुं० [सं०] स्तन। कुच।

वक्ष्यमाण-वि० [सं०] (१) वाच्य। वक्तव्य। (२) जिसे कह रहे हों। जो कथन का प्रस्तुत विषय हो।

वगलामुखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दस महाविद्याओं में से एक जिनकी पूजा का महत्व तंत्रों में वर्णित है।

वग़ैरह-अव्य० [सं०] एक अव्यय जिसका अर्थ यह होता है कि "इसी प्रकार और भी समझिए"। इत्यादि। आदि। जैसे,—बैल, ऊँट, हाथी वग़ैरह बहुत से जानवर वहाँ आए थे।

विशेष—इसका प्रयोग वस्तुओं को गिनाने में उनके नामों के अंत में संक्षेप या लाघव के लिये होता है।

वघंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सारिका। मैना। (२) बत्ती। (३) एक शस्त्र का नाम।

वच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तोता। शुक पक्षी। (२) सूर्य्य। (३) कारण।

संज्ञा पुं० [सं० वच्, वचन] वचन। वाक्य।

वचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनुष्य के मुँह से निकला हुआ सार्थक शब्द। वाणी। वाक्य।

पर्य्या०—इरा। सरस्वती। ब्राह्मी। भाषा। गिरा। गीर्देवी। भारती। वाचा। वर्णमातृका। व्याहार। लपित।

(२) कही हुई बात। कथन। उक्ति।

यौ०—वचनबद्ध। वचनगुप्ति।

(३) व्याकरण में शब्द के रूप में वह विधान जिससे एकत्व या बहुत्व का बोध होता है। हिंदी में दो ही वचन होते हैं—एकवचन और बहुवचन। पर कुछ और प्राचीन भाषाओं के समान संस्कृत में एक तीसरा वचन द्विवचन भी होता है।

वचनकारी-वि० [सं०] आज्ञाकारी।

वचनगुप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन धर्म्म के अनुसार वाणी का ऐसा संयम जिससे वह अशुभ वृत्ति में प्रवृत्त न हो।

वचनलक्षिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह परकीया नायिका जिसकी बातचीत से उसका उपपति से प्रेम लक्षित या प्रकट होता हो। उ०—अंगन की छवि भूषन की रघुनाथ सराहि सबै सियरातें। आपनी प्रीति, यथा उनकी प्रगटी प्रगटे सुख के हियरा तें। काहे को आजु छिपावति हौ हमसों करि ये चतुराई की बातें। मैं निज कान सुनी जो कही वह कालिह हसी सों गोपाल की बातें।

वचनविदग्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नायिकाओं का एक भेद। वह परकीया नायिका जो अपने वचन की चतुराई से नायक की प्रीति का साधन करती हो। उ०—जब लौं घर को धनी आवै घरै तब लौं तो कहूँ चित दैबो करो। पदमाकर ये बछरा अपने बछरान के संग चरैबो करो। अरु औरन के घर तें हम सों तुम दूनी दुहावन लैबो करो। नित साँझ सकारे हमारी हहा! हरि गैयन को दुहि जैबो करो।—पद्माकर।

वचनीय-वि० [सं०] कथनीय।

संज्ञा पुं० निंदा। शिकायत।

वचर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुक्कुट। (२) शठ।

वचा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बच नाम की ओषधि। वि० दे० "बच"। (२) सारिका पक्षी। मैना।

वच्छस्थल-संज्ञा पुं० [सं० वक्षस्, प्रा० वच्छ] उर। छाती।

वज़न-संज्ञा पुं० [अ०] (१) भार। बोझ। (२) तौल। (३) मान। मर्य्यादा। गौरव।

क्रि० प्र०—रखना।

वज़नी-वि० [अ० वज़न+ई] (१) जिसका बहुत बोझ हो। भारी। (२) जिसका कुछ असर हो। मानने योग्य।

वजह-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) कारण। हेतु। (२) प्रकृति। (३) तरह।

वज़ा-संज्ञा स्त्री० [अ० वज़अ] (१) संघटन। बनावट। रचना। (२) चालढाल। सजधज। (३) रूप। आकृति। (४) दशा। अवस्था। (५) रीति। प्रणाली। (६) मुजरा। मिनहा। कटती।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

वज़ादार-वि० [अ० वज़ा+फ़ा० दार] जिसकी बनावट या गढ़न आदि बहुत अच्छी हो। तरहदार। दर्शनीय।

वज़ादारी-संज्ञा स्त्री० [अ०+फ़ा०] (१) कपड़े वग़ैरह पहनने का सुंदर ढंग। फ़ैशन। (२) सजावट का उत्तम ढंग। (३) किसी प्रकार की मर्य्यादा आदि का भली भाँति निर्वाह।

वज़ारत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मंत्री या अमात्य का पद। वज़ीरी। (२) मंत्री या अमात्य का कार्य्य। (३) अमात्य का कार्य्यालय।

वज़ीफ़ा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वृत्ति। (२) वह वृत्ति या आर्थिक सहायता जो विद्वानों, छात्रों, संन्यासियों, दीनों या बिगड़े हुए रईसों आदि को दी जाती है। (३) वह जप या पाठ जो नियमपूर्वक प्रति दिन किया जाता है। (मुसलमान)

क्रि० प्र०—पढ़ना।

वज़ीफ़ादार-वि० [अ० वज़ीफ़ा + फ़ा० दार] वज़ीफ़ा पानेवाला।

वज़ीर-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह जो बादशाह को रियासत के प्रबंध में सलाह या सहायता दे। मंत्री। अमात्य। दीवान। (२) शतरंज की एक गोटी, जो बादशाह से छोटी और शेष सब मोहरों से बड़ी होती है। यह गोटी आगे, पीछे, दाहिने, बाएँ और तिरछे जिधर चाहे, उधर और जितने घर चाहे, उतने घर चल सकती है।

वज़ीरी-संज्ञा स्त्री० [अ०] वजीर का काम या पद।

संज्ञा पुं० घोड़ों की एक जाति जो बलूचिस्तान में पाई जाती है। इस जाति के घोड़े बड़े परिश्रमी और दौड़ने में बहुत तेज होते हैं। इनके कंधे ऊँचे और पुट्ठे चौड़े होते हैं।

वज़ू-संज्ञा पुं० [अ० वुज़ू] नमाज़ पढ़ने के पूर्व शौच के लिये हाथ पाँव आदि धोना। (मुसलमानों का नियम है कि नमाज़ पढ़ने के पूर्व वे पहले तीन बार हाथ धोते, फिर तीन बार कुल्ली करके नथनों में पानी देते हैं। फिर मुँह धोकर कुहनियों तक हाथ धोते हैं, और सिर पर पानी लगे हाथ फेरते हैं। अंत में पाँव धोते हैं। इसी आचार का नाम वज़ू है)। उ०—का भो वज़ू व मज्जन कीन्हे का मसजिद सिर नायें। हृदया कपट निमाज गुजारे का भो मक्का जायें।—कबीर।

क्रि० प्र०—करना।

वजूद—संज्ञा पुं० [अ०] (१) सत्ता। अस्तित्व। (२) शरीर। देह। (३) सृष्टि। (४) प्रकट या घटित होना। अभिव्यक्ति।

मुहा०—वजूद पकड़ना = प्रकट होना। अस्तित्व में आना। वजूद में आना = उत्पन्न होना। प्रकट होना। वजूद में लाना = उत्पन्न करना।

वजूहात-संज्ञा स्त्री० [अ० वजूह का बहु० रूप] कारणों का समूह।

विशेष—यह बहुवचन शब्द है, और इसका प्रयोग भी सदा बहुवचन में ही होता है।

वज्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार भाले के फल के समान एक शस्त्र जो इंद्र का प्रधान शस्त्र कहा गया है।

विशेष—इसकी उत्पत्ति की कथा ब्राह्मण ग्रंथों और पुराणों में लिखी हुई है। ऋग्वेद में उल्लेख है कि दधीचि ऋषि की हड्डी से इंद्र ने राक्षसों का ध्वंस किया। ऐतरेय ब्राह्मण में इसका इस प्रकार विवरण है। दधीचि जब तक जीते थे, तब तक असुर उन्हें देखकर भाग जाते थे। पर जब वे मर गए, तब असुरों ने उत्पात मचाना आरंभ किया। इंद्र दधीचि ऋषि की खोज में पुष्कर गए। वहाँ पता चला कि दधीचि का देहावसान हो गया। इस पर इंद्र उनकी हड्डी ढूँढ़ने लगे। पुष्कर क्षेत्र में उनके सिर की हड्डी मिली। उसी का वज्र बनाकर इंद्र ने असुरों का संहार किया। भागवत में लिखा है कि इंद्र ने वृत्रासुर का वध करने के लिये दधीचि से वज्र बनवाया था। मत्स्यपुराण के अनुसार जब विश्वकर्मा ने सूर्य्य को भ्रमयंत्र (खराद) पर चढ़ाकर खरादा था, तब छिलकर जो तेज निकला था, उसी से विष्णु का चक्र, रुद्र का शूल और इंद्र का वज्र बना था। वामनपुराण में लिखा है कि इंद्र जब दिति के गर्भ में घुस गए थे, तब वहाँ उन्हें बालक के पास ही एक मांस पिंड मिला था। इंद्र ने जब उसे हाथ में लेकर दबाया, तब वह लंबा हो गया और उसमें सौ गाँठें दिखाई पड़ीं। वही पीछे कठिन होकर वज्र बन गया। इसी प्रकार और और पुराणों में भी भिन्न भिन्न कथाएँ हैं।

पर्य्या०—ह्लादिनी। कुलिश। भिदुर। पवि। शतकोटि। स्वरु। शंब। दंभोलि। अशनि। स्वरस्। जंभारि। शतार। शतधार। आपोत्र। अब्जज। गिरिकंटक। गो। अक्षोरथ। दंभ इत्यादि।

वैदिक निघंटु के अनुसार—विद्युत्। नेमि। हेति। नम। पवि। सृक्। वृक। वध। अर्क। कुत्स। कुलिश। तुज। तिग्म। मेनि। स्वधिति। सायक। परशु।

(२) विद्युत्। बिजली।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।

मुहा०—वज्र पड़े = दैव से भारी दंड मिले। सत्यानाश हो।(स्त्रियाँ)

(३) हीरा। (४) एक प्रकार का लोहा। फ़ौलाद।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में वज्रलौह के अनेक भेद कहे गए हैं। यथा—नीलपिंड, अरुणाभ, मोरक, नागकेसर, तित्तिरांग, स्वर्णवज्र, शैवालवज्र, शोणवज्र, रोहिणी, कांकोल, ग्रंथिवज्रक और मदन।

(५) भाला। बरछा। उ०—हरन रुक्मिनी होत है, दुहुँ ओर भइ भीर। अति अघात, कछु नाहिंन सूझत, वज्र चलहिं ज्यों नीर।—सूर। (६) ज्योतिष में २२ व्यतीपात योगों में से एक। (७) वास्तु विद्या के अनुसार वह स्तंभ (खंभा) जिसका मध्य भाग अष्टकोण हो। (८) विष्णु के चरण का एक चिह्न। (९) अभ्रक। (१०) कोकिलाक्ष वृक्ष। (११) श्वेत कुश। (१२) काँजी। (१३) वज्रपुष्प। (१४) धात्री। (१५) थूहर का पेड़। सेहुँड़। (१६) कृष्ण के एक प्रपौत्र जो अनिरुद्ध के पुत्र थे। (१७) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। (१८) बौद्ध मत में चक्राकार चिह्न। (१९) अकलबीर नाम का पौधा।

वि० (१) वज्र के समान कठिन। बहुत कड़ा या मजबूत।

अत्यंत दृढ़ और पुष्ट। जैसे,—यह मसाला जब सूखेगा, तब वज्र हो जायगा। (२) घोर। दारुण। भीषण। उ०—वज्र अगिनि बिरहिनि हिय जारा। सुलगि सुलगि दहि कै भइ छारा।—जायसी।

वज्रकंकट-संज्ञा पुं० [सं०] हनुमान का एक नाम।

वज्रकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्नुही वृक्ष। थूहर। सेंहुँड़। (२) कोकिलाक्ष वृक्ष।

वज्रकंटशाल्मली-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत पुराण के अनुसार अट्ठाईस नरकों में से एक नरक का नाम।

वज्रकंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंगली सूरन या जिमींकंद। (२) शकरकंद। कंदा। (३) ताल के वृक्ष का फूल।

वज्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वज्रक्षार। (२) फलित ज्योतिष के अनुसार सूर्य्य के आठ उपग्रहों में से एक, जो सूर्य्य से तेईसवाँ नक्षत्र होता है।

वज्रकपाली-संज्ञा पुं० [सं० वज्रकपालिन्] बौद्धों की महायान शाखा के अनुसार एक बुद्ध का नाम।

वज्रकारक-संज्ञा पुं० [सं०] नख नामक सुगंधित द्रव्य।

वज्रकालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध की माता मायादेवी का एक नाम।

वज्रकीट-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कीड़ा जो पत्थर या काठ को काटकर उसमें छेद कर देता है।

विशेष—कहते हैं कि गंडक नदी में इन कीटों के द्वारा काटी हुई शिला ही शालग्राम की बटिया बन जाती है।

वज्रकूट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पर्वत का नाम। (२) हिमालय की चोटी पर का एक प्राचीन नगर।

वज्रकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक राक्षस जो नरक का राजा था।

वज्रक्षार-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक रसायन योग जिसका व्यवहार गुल्म, शूल, अजीर्ण, शोथ तथा मंदाग्नि आदि उदर रोगों में होता है।

विशेष—साँभर, सेंधव, काच और सौवर्चल लवण तथा जवाखार और सज्जी सम भाग लेकर चूर्ण करते हैं; और उस चूर्ण को थूहर के दूध में भिगोकर तीन दिन तक छाया में सुखाते हैं। इसके उपरांत उस चूर्ण को आक (मदार) के पत्तों में लपेटकर एक घड़े में गजपुट द्वारा फूँकते हैं। जब यह भस्म हो जाता है, तब उसमें सोंठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, अजवायन, जीरा और चित्रक (चीता) का चूर्ण उतना ही मिलाकर खरल कर लेते हैं और दो टंक मात्रा में सेवन कराते हैं। इसका अनुपान उष्ण जल, गोमूत्र, घी या काँजी है।

वज्रगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों की महायान शाखा के अनुसार एक बोधिसत्व का नाम।

वज्रगोप-संज्ञा पुं० [सं०] बीरबहूटी नाम का कीड़ा। इंद्रगोप।

वज्रचर्मा-संज्ञा पुं० [सं० वज्रचर्मन्] गैंडा।

वज्रज्वाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरोचन दैत्य की पौत्री का नाम। (२) कुंभकर्ण की पत्नी।

वज्रडाकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] महायान शाखा के तांत्रिक बौद्धों की उपास्य डाकिनियों का एक वर्ग, जिसके अंतर्गत ये आठ डाकिनियाँ मानी जाती हैं—लास्या, माला, गीता, नृत्या, पुष्पा, धूपा, दीपा और गंधा। इनकी पूजा तिब्बत में होती है।

वज्रतुंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़। (२) गणेश। (३) गीध। (४) मशक। मच्छड़। (५) थूहर। सेंहुँड़।

वज्रदंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक अस्त्र का नाम जिसे इंद्र ने अर्जुन को प्रदान किया था।

वज्रदंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूहा। (२) सूअर।

वज्रदंती-संज्ञा स्त्री० [हिं० वज्र + दंत] एक प्रकार का पेड़ या पौधा।

विशेष—इसकी दतुवन अच्छी होती है और वैद्यक में इसकी जड़ वमनकारक कही गई है।

वज्रदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्रगोप नाम का कीड़ा। बीरबहूटी। (२) भागवत के अनुसार एक असुर का नाम।

वज्रद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] थूहर का वृक्ष। स्नुही। सेंहुँड़।

वज्रधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) बौद्धों की महायान शाखा के अनुसार आदि बुद्ध।

विशेष—तिब्बत के तांत्रिक बौद्ध मतानुसार ये प्रधान बुद्ध, प्रधान जिन, गुह्यपति तथा सब तथागतों के प्रधान मंत्री आदि, अनंत और वज्रसत्व हैं। अपदेवताओं ने इनसे हार मानकर प्रतिज्ञा की थी कि बौद्ध धर्म्म के विरुद्ध कभी प्रयत्न न करेंगे।

वज्रनख-संज्ञा पुं० [सं०] नृसिंह।

वज्रनाभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्कंद के एक अनुचर का नाम। (२) एक दानवराज। (३) राजा उक्थ के पुत्र का नाम।

वज्रपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) ब्राह्मण। (३) बौद्धशास्त्रानुसार एक प्रकार की देवयोनि। (४) एक बोधिसत्व। ध्यानी बोधिसत्व।

वज्रप्रभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक विद्याधर का नाम।

वज्रबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) रुद्र। (३) अग्नि।

वज्रभैरव-संज्ञा पुं० [सं०] महायान शाखा के बौद्धों के एक देवता, जिन्हें भूटान में 'यमांतक शिव' कहते हैं। इनके अनेक मुख और हाथ माने जाते हैं।

वज्रमणि-संज्ञा पुं० [सं०] हीरा।

वज्रमुष्टि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) एक राक्षस का नाम। (३) जंगली सूरन।

वज्रमूली-संज्ञा स्त्री० [सं०] मापपर्णी।
वज्रयोगिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्रानुसार एक देवी। इसे वरद-योगिनी भी कहते हैं।
वज्ररथ-संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रिय।
वज्रलेप-संज्ञा पुं० [सं०] एक मसाला या पलस्तर जिसका लेप करने से दीवार, मूर्त्ति आदि अत्यंत दृढ़ और मजबूत हो जाती हैं।
विशेष—यह दो तरह से बनता है। एक में तो तेंदू और कैथ के कच्चे फल, सेमल के फूल, सालकी (सलई) के बीज, धन्वन की छाल और बच को लेकर एक द्रोण पानी में उबालते हैं। जब जलकर आठवाँ भाग रह जाता है, तब उसे उतारकर उसमें गंधा बिरोजा, बोल, गूगल, भिलावाँ, कुंदुरु गोंद, राल, अलसी और बेल का गूदा घोटकर मिलाते हैं। दूसरा मसाला इस प्रकार है। लाख, कुंदुरु गोंद, बेल का गूदा, गँगेरन का फल, तेंदू का फल, महुए का फल, मजीठ, राल, बोल और आँवला इन सब को द्रोण भर पानी में उबालते हैं। जब अष्टमांश रह जाता है, तब काम में लाते हैं।
वज्रवारक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार जैमिनि, सुमंत, वैशंपायन, पुलस्य और पुलह नामक पाँच ऋषि, जिनका नाम लेने से वज्रपात का भय नहीं रहता।
वज्रवाराही-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बौद्धों की एक देवी का नाम।
पर्य्या०—मारीची। त्रिमुखी। वज्रकालिका। विकटा। गौरी। (२) बुद्ध की माता मायादेवी का एक नाम।
वज्रविष्कंभ-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम।
वज्रवीर-संज्ञा पुं० [सं०] महाकाल रुद्र का एक नाम।
वज्रवेग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राक्षस का नाम। (२) एक विद्याधर का नाम।
वज्रव्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सेना की रचना जो दुधारे खड्ग के आकार में स्थित की जाती थी।
वज्रशाखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मत के एक संप्रदाय का नाम जिसे वज्र स्वामी ने चलाया था।
वज्रशृंखला-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मतानुसार सोलह महाविद्याओं में से एक।
वज्रसंघात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भीमसेन। (२) पत्थर जोड़ने का एक मसाला जिसमें आठ भाग सीसा, दो भाग काँसा और एक भाग पीतल होता था। इससे पत्थर की जोड़ाई की जाती थी।
वज्रसंहत-संज्ञा पुं० [सं०] ललित विस्तर के अनुसार एक बुद्ध का नाम।
वज्रसत्व-संज्ञा पुं० [सं०] एक ध्यानी बुद्ध का नाम।
वज्रसमाधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध धर्म के अनुसार एक प्रकार की समाधि।
वज्रसार-संज्ञा पुं० [सं०] हीरा।
वज्रसूर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।
वज्रहस्त-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।
वज्रांग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्प। साँप। (२) हनुमान।
वज्रांगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गवेधुक। कौड़िल्ला। (२) हड़जोड़ नाम की लता जो चोट लगने पर लगाई जाती है।
वज्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्नुही। थूहर। (२) गुडुच। (३) दुर्गा।
वज्राचार्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] नैपाली बौद्धों के अनुसार तांत्रिक बौद्ध आचार्य्य जिसे तिब्बत में लामा कहते हैं। यह गृहस्थ होता है और अपने पुत्र कलत्र के साथ विहार में रह सकता है। नेपाल और तिब्बत में ऐसे आचार्य्यों का बड़ा मान है।
वज्राभिषवन-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का अनुष्ठान जिसमें तीन दिन तक जौ का सत्तू पीकर रहते थे।
वज्राभ्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अभ्रक जो काले रंग का होता है।
वज्रायुध-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।
वज्रावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक मेघ का नाम। उ०—सुनत मेघवर्तक साजि सैन लै आये। जलवर्त, वारिवर्त, पवनवर्त, वज्रावर्त, आगिवर्तक जलद संग लाये।—सूर।
वज्रासन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हठ योग के चौरासी आसनों में से एक जिसमें गुदा और लिंग के मध्य के स्थान को बाएँ पैर की एड़ी से दबाकर उसके ऊपर दाहिना पैर रखकर पालथी लगाकर बैठते हैं। (२) वह शिला जिस पर बैठकर बुद्धदेव ने बुद्धत्व लाभ किया था। यह गया जी में बोधिद्रुम के नीचे थी।
वज्री-संज्ञा पुं० [सं० वज्रिन्] (१) इंद्र। (२) एक प्रकार की ईंट।
संज्ञा स्त्री० (१) थूहर। स्नुही। (२) तिधारा। मरसेज।
वज्रेश्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बौद्धों की एक देवी। (२) एक तांत्रिक अनुष्ठान जिसे वज्रवाहनिका भी कहते हैं। इसमें वज्र बनाकर मंत्रों द्वारा अभिषेक करते हैं और उस पर सोने से मंत्र लिखते हैं। इसके उपरांत उस वज्र को किसी जितेंद्रिय पुरुष के हाथ में दे देते हैं और लाल बार मंत्र जप करके वज्रकुंड में हवन करते हैं। इस प्रयोग से शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है।
वज्रोली-संज्ञा स्त्री० [हिं० वज्र] हठ योग की एक मुद्रा का नाम।
वट-संज्ञा पुं० [सं०] बरगद का पेड़।
वटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ी टिकिया या गोला। बड़ा। (२)

वड़ा। पकौड़ा। (२) एक तौल जो आठ माशे की होती और सोना तौलने के काम में आती थी। इसे क्षुद्रम, द्रक्षण और कोक भी कहते थे। १० गुंजा = १ माशा, ४ माशा = १ शाण, २ शाण = १ वटक।

वटच्छद्–संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत बर्बरी। सफेद बनतुलसी।

वटपत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वृत्तमल्लिका नामक फूल का पौधा।

वटपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] पाखान-भेद। पथरफोड़।

वटर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोर। (२) बटेर नामक पक्षी। (३) पगड़ी। (४) बिस्तर। (५) मथानी।

वटसावित्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्रत का नाम जिसमें स्त्रियाँ वट का पूजन करती हैं।

वटारक–संज्ञा पुं० [सं०] रस्सी।

वटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] बटी। गोली।

वटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गोली या टिकिया। बटी।

वटु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बालक। (२) ब्रह्मचारी। माणवक।

वटुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बालक। (२) माणवक। ब्रह्मचारी। (३) एक भैरव। बटुकभैरव।

वटोदका–संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार एक नदी जो पवित्र मानी जाती है।

वठर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंबष्ठ नामक एक वर्णसंकर जाति। (२) शब्दकार।

वि० (१) मूर्ख। (२) शठ। (३) मंद।

वड़व–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० वड़वा] घोड़ा।

वड़भी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शाला या घर जो किसी प्रासाद के शिखर पर हो। गृहचूड़ा। धौरहर। धरहरा।

पर्य्या०—गोपानसी। चंद्रशाला। कूटागार।

वडिश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वंसी जिससे मछली फँसाई जाती है। कँटिया। (२) चिकित्सकों का एक अस्त्र जिससे बेधते या नश्तर लगाते हैं। (वैद्यक)

वणिक्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वाणिज्य के द्वारा अपनी जीविका का निर्वाह करता हो। रोजगार करनेवाला। (२) वैश्य। बनिया।

वतंस–संज्ञा पुं० दे० "अवतंस"।

वतन–संज्ञा पुं० [अ०] (१) वासस्थान। (२) जन्मभूमि।

वतीरा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) ढंग। रीति। प्रथा। (२) चाल ढाल। (३) लत। टेव।

वत्स–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाय का बच्चा। बछड़ा। (२) शिशु। बालक। बच्चा। (३) वत्सर। वर्ष। (४) कंस का एक अनुचर। वत्सासुर। (५) इंद्रजौ। (६) वक्ष। उर। छाती। (७) एक देश का नाम।

वत्सक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुष्पकसीस। (२) कुरज। (३) इंद्रजौ। (४) निर्गुंडी।

वत्सघोष–संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम जो नक्षत्रों के प्रथम वर्ग में है।

वत्सतर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० वत्सतरी] जवान बछड़ा जो जोता न गया हो। दोहान।

वत्सतरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह बछिया जो तीन वर्ष की हो। कलोर।

विशेष—वृषोत्सर्ग में चार वत्सतरी के साथ एक वृष दागकर छोड़ने का विधान है।

वत्सनाभ–संज्ञा पुं० [सं०] एक विष जिसे 'बछनाग' या 'बच्छनाग' भी कहते हैं। मीठा ज़हर।

विशेष—इसका पौधा हिमालय के कम ठंढे भागों में होता है। इसकी जड़ विशेषतः नैपाल से आती है। इसके पत्ते सँभालू के पत्तों के समान होते हैं। विष जड़ में होता है। यह विष शोधकर औषधों में दिया जाता है। शोधन के लिये जड़ के छोटे छोटे टुकड़े काटकर तीन दिन तक गोमूत्र में भिगोते हैं। फिर छाल अलग करके लाल सरसों के तेल में भिगोए हुए कपड़े में पोटली बाँधकर रखते हैं। उपयुक्त मात्रा और युक्ति के साथ सेवन करने से यह रसायन, योगवाही, वातनाशक और त्रिदोषघ्न कहा गया है। वैद्य लोग इसे ज्वर और लकवे में देते हैं। इसके प्रयोग में बड़ी सावधानी चाहिए; क्योंकि अधिक मात्रा में होने से यह विष प्राणनाशक होता है। इसके योग से मृत्युंजय रस, आनंदभैरव रस, पंचवक्त्र रस आदि कई प्रसिद्ध औषधें बनती हैं।

पर्य्या०—अमृत। विष। उग्र। महौषध। गरल। मारण। नाग। स्तोकक। प्राणहारक। स्थावर।

वत्सर–संज्ञा पुं० [सं०] उतना काल या समय जितने में पृथ्वी सूर्य्य की एक परिक्रमा पूरी करती है और सब ऋतुओं की एक आवृत्ति हो जाती है। काल का वह मान जो बारह महीनों या ३६५ दिनों का होता है। वर्ष। साल। बरस।

वत्सराज–संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम।

विशेष—इस नाम के अनेक राजा हो गए हैं। एक तो कौशांबी का प्रसिद्ध राजा था, जो गौतम बुद्ध का समसामयिक था। चौहान वंश में भी एक वत्सराज हुआ। लाट देश का एक चौलुक्यवंशी राजा इस नाम का हुआ है। महोबे के चंदेल राजाओं का एक मंत्री वत्सराज था, जो आल्हा गानेवालों में "बच्छराज" के नाम से प्रसिद्ध है।

वत्सल–वि० [सं०] [स्त्री० वत्सला] (१) पुत्र या संतान के प्रति पूर्ण स्नेह-युक्त। बच्चे के प्रेम से भरा हुआ। जैसे,—पुत्र-वत्सल पिता, पुत्र-वत्सला माता। (२) अपने से छोटों के प्रति अत्यंत स्नेहवान् या कृपालु। जैसे,—प्रजावत्सल राजा।

संज्ञा पुं० साहित्य में कुछ लोगों के द्वारा माना हुआ दसवाँ

वात्सल्य रस, जिसमें पिता या माता का अपनी संतति के प्रति रतिभाव या प्रेम प्रदर्शित होता है।
वत्साक्षी–संज्ञा स्त्री० [सं०] तरबूज। ककड़ी।
वत्सादनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गुडुच। गिलोय।
वत्सासुर–संज्ञा पुं० [सं०] कंस का अनुचर एक राक्षस जिसे कृष्ण ने बाल्यावस्था में मारा था।
वदंती–संज्ञा स्त्री० [सं०] कथा। बात।
वदक–संज्ञा पुं० [सं०] वक्ता। कहनेवाला।
वदतोव्याघात–संज्ञा पुं० [सं०] कथन का एक दोष जिसमें कोई एक बात कहकर फिर उसके विरुद्ध बात कही जाती है।
वदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुख। मुँह। (२) अगला भाग। (३) कथन। बात कहना।
वदान्य–वि० [सं०] (१) अतिशय दाता। उदार। (२) मधुरभाषी। अपनी बात से दूसरों को संतुष्ट करनेवाला।
वदाल–संज्ञा पुं० [सं०] पाठीन मत्स्य। पहिना मछली।
वदि–संज्ञा पुं० [सं० बवदिन] कृष्ण पक्ष। जैसे,—जेठ वदि ४।
वदुसाना%–क्रि० स० [सं० विदूषण] दोष देना। भला बुरा कहना। इलज़ाम लगाना। उ०—हम सब जानत हरि की घातें। तुम जो कहत हरि राज करत नहिं जानत हौ कछु का तें ? उग्रसेन बैठारि सिंघासन लोग कहत कुल नाते। तप तें राज, राज तें आगे तुम सब समुझत बातें। सूरश्याम यहि भाँति सयाने हमही को वदुसाते।—सूर।
वध–संज्ञा पुं० [सं०] घात। नाश। मारण। वि० दे० "बध"।
वधक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घातक। हिंसक। (२) व्याध। (३) मृत्यु। (४) दे० "बधक"।
वधजीवी–संज्ञा पुं० [सं० वधजीविन्] वह जो वध करके जीविका निर्वाह करता हो।
वधत्र–संज्ञा पुं० [सं०] अस्त्र। हथियार।
वधभूमि–संज्ञा स्त्री० दे० "बधभूमि"।
वधांगक–संज्ञा पुं० [सं०] कारागार। क़ैदखाना।
वधुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुत्र की स्त्री। बहू। (२) दुलहन। स्त्री।
वधू–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नव विवाहिता स्त्री। दुलहन। (२) पत्नी। भार्या। (३) पुत्र की बहू। पतोहू।
वधूटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नई ब्याही हुई स्त्री। दुलहिन। (२) भार्या। पत्नी। (३) पुत्र-वधू। पतोहू।
वधूत%–संज्ञा पुं० दे० "अवधूत"। उ०—श्रवन कुंडल गरल कंठ करुणाकंद सच्चिदानंद वंदे वधूतं।—तुलसी।
वध्य–वि० [सं०] मार डालने योग्य। वधार्ह।
वध्र–संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नाम की धातु।
वध्रि–संज्ञा पुं० [सं०] बधिया।
वध्रिका–संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जो बधिया हो। खोजा।
वध्र्यश्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आलता घोड़ा। (२) एक प्राचीन राजा का नाम।
वन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बन। जंगल। (२) वाटिका। (३) जल। (४) घर। आलय। (५) चमसा नामक यज्ञ-पात्र। (६) रश्मि। (७) शंकराचार्य्य के अनुयायी संन्यासियों की एक उपाधि। (८) फूलों का गुच्छा।
वनकणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वनपिप्पली।
वनकुंडल–संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी जाति का सूरन या जिमीकंद।
वनचंदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगुरु। अगर। (२) देवदारु।
वनचंद्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका।
वनचर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वन में भ्रमण करने या रहनेवाला। (२) जंगली मनुष्य या प्राणी। (३) शरभ नामक वनजंतु।
वनज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वन (जंगल या पानी) में उत्पन्न हो। (२) कमल। (३) मुस्तक। मोथा। (४) तुंबुरु का फल। (५) जंगली बिजौरा नीबू। (६) वनकुलथी।
वनजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुद्गपर्णी। (२) निर्गुंडी। (३) सफेद कंटकारि। (४) वनतुलसी। (५) अश्वगंधा। (६) वनकपासी।
वनजीर–संज्ञा पुं० [सं०] काली जीरी।
वनतिक्त–संज्ञा पुं० [सं०] हरीतकी। हड़।
वनतिक्तिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पाढ़ा। (२) पथरी नाम का साग।
वनद–संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।
वनदीप–संज्ञा पुं० [सं०] वनचंपक।
वनदेव–संज्ञा पुं० [सं०] वन का अधिष्ठाता देवता।
वनदेवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वन की अधिष्ठात्री देवी।
वनपिप्पली–संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी पीपल।
वनप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोकिल। (२) बहेड़े का वृक्ष। (३) कपूर कचरी। (४) साँभर हिरन।
वनमल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवती का पौधा या फूल।
वनमाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वन के फूलों की माला। (२) एक विशेष प्रकार की माला जो सब ऋतुओं में होनेवाले अनेक प्रकार के फूलों से बनती और घुटने तक लंबी होती थी। ऐसी माला श्रीकृष्ण धारण करते थे।
वनमाली–वि० [सं०] वनमाला धारण करनेवाला।
संज्ञा पुं० श्रीकृष्ण।
वनमुत–संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।
वनमूर्द्धजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जंगली बिजौरा नीबू। (२) काकड़ासिंगी।
वनराज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंह। (२) अश्मंतक वृक्ष।
वनराजि, वनराजी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वन की श्रेणी।

वन-समूह। वृक्ष-समूह। (२) वन के बीच गई हुई पगडंडी। (३) वसुदेव की एक दासी का नाम।

वनरुह-संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

वनलक्ष्मी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वन की शोभा। वनश्री। (२) कदली। केला।

वनवास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वन का निवास। जंगल में रहना। (२) बस्ती छोड़कर जंगल में रहने की व्यवस्था या विधान।

मुहा०—वनवास देना = जंगल में रहने की आज्ञा देना। बस्ती छोड़ने की आज्ञा देना। वनवास लेना = बस्ती छोड़कर जंगल में रहना अंगीकार करना।

वि० जंगल में रहनेवाला। वनवासी।

वनवासक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाल्मली कंद। (२) एक प्राचीन नगर जो कादंब राजाओं की राजधानी था।

वनवासी-वि० [सं० वनवासिन्] [स्त्री० वनवासिनी] वन में रहनेवाला। बस्ती छोड़कर जंगल में निवास करनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) ऋषभ नामक ओषधि। (२) वाराही कंद। (३) शाल्मली कंद। (४) मीलमहिष कंद। (५) द्रोणकाक। डोम कौआ। बड़ा काला कौआ। (६) दक्षिण में तुंगभद्रा की शाखा वरदा नदी के किनारे बसा हुआ एक प्राचीन नगर जो कादंब राजाओं का प्रधान नगर था।

वनविलासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखपुष्पी लता।

वनशूकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कपिकच्छु। केवाँच। (२) जंगली मादा सूअर।

वनशृंगाट-संज्ञा पुं० [सं०] गोखरू।

वनसंकट-संज्ञा पुं० [सं०] मसूर।

वनस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वन में रहनेवाला। (२) वानप्रस्थ। (३) मृग।

वनस्थली-संज्ञा स्त्री० [सं०] वन भूमि। अरण्य देश। जंगली जमीन।

वनस्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वत्थ। पीपल का पेड़।

वनस्पति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह वृक्ष जिसमें फूल न हों (अर्थात् न दिखाई पड़ें) केवल फल ही हों। जैसे,—गूलर, बड़, पीपल आदि वट वर्ग के वृक्ष। (मनु०) (२) वृक्ष मात्र। पेड़। पौधा। (३) वट वृक्ष। बरगद।

संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

वनस्पति शास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसके द्वारा यह जाना जाता हो कि पौधों और वृक्षों आदि के क्या क्या रूप और कौन कौन सी जातियाँ होती हैं, उनके भिन्न भिन्न अंगों की बनावट कैसी होती है और कलम आदि के द्वारा किस प्रकार के नए पौधे या वृक्ष उत्पन्न होते हैं। वनस्पति विज्ञान।

वनहास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कास। काँस। (२) कुंद का फूल।

वनांत-संज्ञा पुं० [सं०] वन प्रांत। जंगली भूमि या मैदान।

वनायु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम जहाँ का घोड़ा अच्छा होता था। (२) इस देश में रहनेवाली जाति। (३) पुरूरवा के एक पुत्र का नाम।

वनायुज-संज्ञा पुं० [सं०] वनायु देश का घोड़ा।

वनालक-संज्ञा पुं० [सं०] गेरू।

वनालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] हस्तिशुंडी लता। हाथी सूँडी।

वनाश्रय-संज्ञा पुं० [सं०] काला कौआ। डोम कौआ।

वनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुंजवन।

वनिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनुरक्ता स्त्री। प्रिया। प्रियतमा। (२) स्त्री। औरत। (३) छः वर्णों की एक वृत्ति जिसे 'तिलका' और 'डिल्ला' भी कहते हैं। इसमें दो सगण होते हैं। जैसे,—ससि भाल धरो। शिव भाल धरो।

वनितामुख-संज्ञा पुं० [सं०] मार्कंडेय पुराण के अनुसार मनुष्यों की एक जाति।

वनी-संज्ञा पुं० [सं० वनिन्] वानप्रस्थ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा वन। वनस्थली। उ०—अति चंचल जहँ चलदलै, विधवा वनी, न नारि।—केशव।

वनेकिंशुक-संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जो वैसे ही बिना माँगे मिले, जैसे वन में किंशुक बिना माँगे या प्रयास किए मिलता है।

वनेचर-संज्ञा पुं० [सं०] वन में फिरनेवाला मनुष्य। वनचर। जंगली आदमी।

वनेज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आम। (२) पर्पट। पापड़ा।

वनोत्सर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवमंदिर, वापी, कूप, उपवन आदि का उत्सर्ग जो शास्त्रविधि से किया जाता है। मंदिर, कूएँ आदि बनवाकर सर्वसाधारण के लिये दान करना। (२) ऐसे दान या उत्सर्ग की विधि।

वनौकस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसका घर वन में हो। वनवासी। (२) बंदर।

वनौषध-संज्ञा स्त्री० [सं०] वन की ओषधियाँ। जंगली जड़ी बूटी।

वन्य-वि० [सं०] (१) वन में उत्पन्न होनेवाला। वनोद्भव। (२) जंगली।

संज्ञा पुं० (१) वनसूरन। (२) क्षीर विदारी। (३) धाराही कंद। (४) शंख।

वन्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुद्गपर्णी। (२) गोपालककड़ी। (३) गुंजा। (४) भद्रमुस्ता। (५) अश्वगंध। असगंध।

वपन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वपनीय] (१) केशमुंडन। (२) बीज बोना।

वपनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ नाई क्षौर कार्य करते हैं। वह स्थान जहाँ हज्जाम बैठकर हजामत बनाते हैं। (२) वह स्थान जहाँ जुलाहे कपड़ा बुनते हैं।

वपनीय-वि० [सं०] बोने योग्य।

वपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चरबी। मेद। (२) वल्मीक। बाँबी।

वपु-संज्ञा पुं० [सं० वपुस्] (१) शरीर। देह। (२) रूप।

वपुष्टमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पद्मचारिणी लता। (२) हरिवंश के अनुसार काशीराज की एक कन्या, जो परीक्षित के पुत्र जन्मेजय से ब्याही थी।

विशेष—हरिवंश में लिखा है कि राजा जन्मेजय ने एक अश्वमेध यज्ञ किया। उनकी पत्नी वपुष्टमा साथ ही बैठी थी। इंद्र ने अश्व के शरीर में प्रविष्ट होकर उसके साथ सहवास किया। जब मारा हुआ अश्व जीवित दिखाई पड़ा, तब इंद्र की चाल का पता लगा। जन्मेजय ने क्रुद्ध होकर इंद्र को शाप दिया कि अब से अश्वमेध में तुम्हारा कोई पूजन न करेगा। उन्होंने ऋत्विक् ऋषियों को भी देश से निकाल दिया और वपुष्टमा का भी तिरस्कार किया। उसी समय गंधर्वराज विश्वावसु ने आकर राजा को समझाया कि इंद्र ने तुम्हारे अश्वमेध यज्ञों से डरकर रंभा अप्सरा को वपुष्टमा का शरीर धारण करा के भेजा है। ऋत्विजों को निकालने से तुम्हारा अश्वमेध का पुण्य क्षीण हो गया।

वप्ता-संज्ञा पुं० [सं० वप्तृ] (१) पिता। जनक। (२) कवि। (३) नापित। नाई। (४) बीज बोनेवाला।

वप्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिट्टी का ऊँचा धुस्स जो गढ़ या नगर की खाईं से निकली हुई मिट्टी के ढेर से चारों ओर उठाया जाता है और जिसके ऊपर प्राकार या दीवार होती है। चय। मृत्तिकास्तूप। (२) क्षेत्र। खेत। (३) रेणु। धूल। (४) ऊँचा किनारा। कगार। (नदी आदि का) (५) पहाड़ की चोटी। (६) टीला। भीटा। (७) सीसा नाम की धातु। (८) प्रजापति। (९) द्वापर युग के एक व्यास। (१०) चौदहवें मनु के एक पुत्र का नाम।

वप्रक-संज्ञा पुं० [सं०] वृत्त की परिधि। गोलाई का घेरा। चक्कर।

वप्रक्रिया-संज्ञा स्त्री० दे० "वप्रक्रीड़ा"।

वप्रक्रीड़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] टीले या ऊँचे उठे हुए मिट्टी के ढेर को हाथी, साँड़ आदि का दाँतों या सींगों से मारना, जो उनकी एक क्रीड़ा है।

वप्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मजीठ। (२) जैनों के इक्कीसवें जिन नेमिनाथ की माता का नाम।

वप्रि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्षेत्र। (२) समुद्र। (३) स्थान की दुर्गमता। दुर्गति।

वप्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] वल्मीक। बाँबी।

वफ़ा-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वादा पूरा करना। बात निबाहना।

यौ०—वफ़ादार। वफ़ादारी।

(२) निर्वाह। पूर्णता। उ०—अब कुछ ही करना सही इस खेत से न वफ़ा सही।—सूदन।

क्रि० प्र०—करना।

(३) मुरौवत। सुशीलता। उ०—ये लाये ते बेवफ़ा वफ़ा रहे ठहराइ। मीनें कीनें दूर ज्यौं तेही ते रह जाइ।—रसनिधि।

वफ़ादार-वि० [अ० वफ़ा+फ़ा० दार] [संज्ञा वफ़ादारी] (१) वचन या कर्त्तव्य का पालन करनेवाला। (२) अपने काम को ईमानदारी से करनेवाला। (३) सच्चा।

वफ़ात-संज्ञा स्त्री० [अ०] मरण। मृत्यु।

क्रि० प्र०—करना।—पाना।—होना।

वबा-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मरी। महामारी। फैलनेवाला भयंकर रोग। जैसे,—हैजा, प्लेग आदि। (२) छूत का रोग।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।—फैलना।

वबाल-संज्ञा पुं० [अ०] (१) बोझ। भार। (२) आपत्ति। कठिनाई। (३) घोर विपत्ति। आफत। (४) ईश्वरीय कोप। (५) पाप का फल।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—किसी का वबाल पड़ना = किसी को दुःख पहुँचाने का फल मिलना। दुखिया की आह पड़ना। जैसे,—इसका वबाल तेरे ऊपर पड़ेगा।

वभ्रु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का सर्प। (सुश्रुत) (२) एक यदुवंशीय योद्धा। वि० दे० "बभ्रु"।

वभ्रुवाहन-संज्ञा पुं० दे० "बभ्रुवाहन"।

वमन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कै करना। उलटी करना। छर्दन। (२) वमन किया हुआ पदार्थ। (३) आहुति। (४) पीड़ा।

वमनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

वमनीया-संज्ञा स्त्री० [सं०] मक्खी।

वमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक रोग जिसमें मनुष्य का जी मतलाता है, मुँह से पानी छूटता है और जो कुछ वह खाता पीता है, उसे मुँह के रास्ते निकालकर बाहर फेंक देता या कै कर देता है।

विशेष—यह वमन रोग पाँच प्रकार का माना गया है—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और आगंतुक। वातज में बगल और छाती में दर्द, मस्तक और नाभि में शूल तथा अंगों में सूई छेदने की सी पीड़ा होती है। वमन बड़े वेग से और बड़े शब्द के साथ अधिक मात्रा में निकलता है। पित्तज में मूर्च्छा, प्यास, मुँह सूखना, तालू और आँखों में जलन और आँखों के सामने अँधेरा छाना आदि लक्षण होते हैं और वमन कुछ हरा और तीता होता है। कफज में मुँह मीठा रहता है, कुछ कफ निकलता है, भोजन की अनिच्छा होती है, शरीर भारी जान पड़ता है और वमन

सफेद, गाढ़ा और मीठा होता है; तथा वमन के समय रोंगटे खड़े हो जाते हैं और बड़ी पीड़ा होती है। आगंतुक वमन कोई बुरी वस्तु खा लेने या घृणित वस्तु देखने या सूँघने से एक बारगी हो जाता है।

(२) अग्नि।

वम्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] दीमक।

वम्रीकूट-संज्ञा पुं० [सं०] वल्मीक। बाँबी। बिमौट।

वयं ॐ-सर्व० [सं० व्र, पु० वय] हम। उ०—विकटतर वक्र छुर धार प्रमदा, तीव्र दर्प कंदर्प खर खड्गधारा। धीर गंभीर मन पीर कारक तत्र केवरा का वयं विगत सारा। —तुलसी।

वयःक्रम-संज्ञा पुं० [सं०] क्रमागत जीवन काल। अवस्था। उम्र।

वयःसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] बाल्यावस्था और यौवनावस्था के बीच की स्थिति। लड़कपन और जवानी के बीच का काल।

वय-संज्ञा स्त्री० [सं० वयस्] (१) बीता हुआ जीवन-काल। अवस्था। उम्र। (२) बल। (३) पक्षी।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) तंतुवाय। जुलाहा। (२) बया पक्षी।

संज्ञा स्त्री० जुलाहों के करघे में सूत का एक जाल। वि० दे० "बै" या "बय"।

वयन-संज्ञा पुं० [सं०] बुनने की क्रिया या भाव। बुनना।

वयस्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बीता हुआ जीवन काल। अवस्था। उम्र। (२) पक्षी।

वयस्क-वि० [सं०] [स्त्री० वयस्का] (१) उमर का। अवस्था-वाला।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग समस्त पद के अंत में होता है। जैसे अल्पवयस्क, समवयस्क इत्यादि।

(२) पूरी अवस्था को पहुँचा हुआ। जो अब बालक न हो। सयाना। बालिग़।

वयस्कृत्-वि० [सं०] आयुःप्रद। जीवन देनेवाला।

वयस्थ-वि० [सं०] [स्त्री० वयस्था] (१) प्राप्तवयस्क। (२) युवा। युवक। (३) समवयस्क।

संज्ञा पुं० समवयस्क पुरुष।

वयस्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आमलकी। आँवला। (२) हरीतकी। [illegible]। (३) गुडुच। (४) छोटी इलायची। (५) काकोली। (६) सेमल। (७) युवती।

वयस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] यौवन।

वयस्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समवयस्क। एक उमरवाले। हम-जोली। (२) मित्र।

वयस्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सखी। (२) ईंट।

वयोवृद्ध-वि० [सं०] जो अवस्था में बड़ा हो। बड़ा बूढ़ा।

वरंच-अव्य० [सं०] (१) ऐसा न होकर ऐसा। बल्कि। अपितु। (२) परंतु। लेकिन।

वरंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंसी [illegible] डोर। शिस्त। (२) समूह। (३) मुहाँसा। (४) घास का गट्ठर। (५) फीलखाने आदि में की वह दीवार जो दो लड़ाके हाथियों के बीच में लड़ाई बचाने के लिये बनाई जाती है।

वरंडक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिट्टी का भीटा। दूह। (२) दो लड़ाके हाथियों के बीच की दीवार। (३) हाथी की पीठ पर कसा जानेवाला हौदा।

वरंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कटारी। कत्ती। (२) बत्ती।

संज्ञा पुं० दे० "बरामदा"।

वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी देवता या बड़े से माँगा हुआ मनोरथ। वह बात जिसके लिये किसी देवी देवता या बड़े से प्रार्थना की जाय। जैसे,—उसने शिव से यह वर माँगा।

क्रि० प्र०—माँगना।

(२) किसी देवता या बड़े से प्राप्त किया हुआ फल या सिद्धि। वह बात जो किसी देवता या बड़े की प्रसन्नता से प्राप्त हुई हो। जैसे,—उसे यह वर था कि वह किसी के हाथ से न मरेगा।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

(३) जामाता। (४) पति या दूल्हा। (५) गुग्गुल। (६) कुंकुम। केसर। (७) दारचीनी। (८) वालक। (९) अद-रक। आर्द्रक। (१०) सुगंध तृण। (११) सेंधा नमक। (१२) पियाल या चिरौंजी का पेड़। (१३) बकुल। मौल-सिरी। (१४) हलदी। (१५) गौरा पक्षी।

वि० श्रेष्ठ। उत्तम।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः श्रेष्ठता सूचित करने के लिये संज्ञा या विशेषणों के आगे होता है। जैसे,—पंडित-वर, मित्रवर, वीरवर मित्रवर।

वरक संज्ञा पुं० [सं०] (१) साधारण वस्त्र। (२) नाव का आच्छादन। (३) वन मूँग। (४) काकुन। प्रियंगु। (५) जंगली बेर। झड़बेरी।

वरक़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पत्र। (२) पुस्तकों का पन्ना। पत्रा। (३) सोने, चाँदी आदि के पतले पत्तर, जो कूटकर बनाए जाते हैं और मिठाइयों पर लगाने और औषध में काम आते हैं।

वरक्रतु-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

वरकोष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] कोविदार। कचनार का पेड़।

वरचंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काला चंदन। (२) देवदारु।

वरज-वि० [सं०] श्रेष्ठ। बड़ा।

वरजीवी-संज्ञा पुं० [सं० वरजीविन्] (१) एक वर्णसंकर जाति जो स्मृतियों में गोप और तंतुवाय के संयोग से उत्पन्न कही गई है। (२) ब्राह्मण का औरस पुत्र जो शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न हो।

वरट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हंस। (२) कुंद का फूल। (३) भिड़। बर्रें।

वरटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंसी। (२) गँधिया कीड़ा। (३) बर्रें नाम का उड़नेवाला कीड़ा। भिड़।

वरटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंसी। (२) गँधिया कीड़ा।

वरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी को पसंद करके किसी कार्य्य के लिये नियुक्त करना। किसी को किसी काम के लिये चुनना या मुकर्रर करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) मंगल कार्य्य के विधान में होता आदि कार्य्य-कर्त्ताओं को नियत करके दान आदि से उनका सत्कार करना। (३) मंगल कार्य्य में नियत किए हुए होता आदि के सत्कारार्थ दी हुई वस्तु या दान। जैसे,—विवाह में ११ आदमियों को वरण मिला है।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

(४) कन्या के विवाह में वर को अंगीकार करने की रीति। (५) पूजा। अर्चना। सत्कार। (६) ढकने या लपेटने की वस्तु। आवरण। आच्छादन। वेष्ठन। (७) किसी स्थान के चारों ओर घेरी हुई दीवार। (८) ऊँट। (९) वरुण वृक्ष। (१०) पुल। सेतु।

वरणक-संज्ञा पुं० [सं०] आच्छादन। आवरण।

वरणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक छोटी नदी का नाम जो काशी के उत्तर में बहती है। यह नदी वाराणसी क्षेत्र की उत्तरीय सीमा है। वरुणा। (२) पंजाब देश की एक नदी का नाम जो सिंधु नद में दक्षिण ओर से अटक के विपरीत दिशा से आकर मिलती है। (३) अरहर।

वरणी-संज्ञा स्त्री० दे० "वरण" (३)।

वरणीय-वि० [सं०] (१) पूजनीय। पूज्य। (२) श्रेष्ठ। बड़ा।

वरतंतु-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

वरतिक्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुटज। कोरैया। (२) नीम। (३) पर्पट। पापड़ा। (४) रोहितक। रोहना का पेड़।

वरतिक्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा।

वरत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बरेत। बरेता। (२) हाथी खींचने का रस्सा। (३) चमड़े का तसमा।

वरत्वच-संज्ञा पुं० [सं०] नीम का पेड़।

वरद-वि० [सं०] [स्त्री० वरदा] वर देनेवाला। अभीष्टदाता।

वरदक्षिणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह धन जो वर को विवाह के समय कन्या के पिता से मिलता है। दहेज। दायजा।

वरदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कन्या। (२) अश्वगंध। (३) अड़हुल। हुरहुर। (४) वाराही कंद।

वरदा चतुर्थी-संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ महीने के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी। वरदा चौथ।

वरदाता-वि० [सं०] वर देनेवाला। वरद।

वरदान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी देवता या बड़े का प्रसन्न होकर कोई अभिलषित वस्तु या सिद्धि देना। उ०—(क) कश्यप अदिति महा तप कीन्हा। तिन्ह कहँ मैं पूरब वर दीन्हा।—तुलसी। (ख) देन कहेहु वरदान दुइ तेउ पावत संदेह।—तुलसी।

क्रि० प्र०—देना।

(२) किसी फल का लाभ जो किसी की प्रसन्नता से हो।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।

वरदानी-संज्ञा पुं० [सं०] वर प्रदान करनेवाला। मनोरथ पूर्ण करनेवाला। वरदायक।

वरदी-संज्ञा स्त्री० [अ०] वह परिधान जो किसी विशेष विभाग के कर्मचारियों के लिये नियत हो। वह पोशाक या पहनावा जो किसी खास महकमे के अफसरों और नौकरों के लिये मुकर्रर हो। जैसे,—पुलिस की वरदी, फौज की वरदी।

वरद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अगर जिसका वृक्ष बहुत बड़ा होता है।

वरन्-अव्य० [सं० वरम्] ऐसा नहीं। बल्कि।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अब उठता जा रहा है।

वरना*-संज्ञा पुं० [सं० वरण] ऊँट। उ०—वरना-मस कर मैं अवलोकत केश पास कृत बंद। अधर समुद्र सदल जो सहसा ध्वनि उपजत सुख-कंद।—सूर।

अव्य० [अ०] नहीं तो। यदि ऐसा न होगा तो। जैसे,—आप बैठिए; वरना मैं भी उठकर चला जाऊँगा।

वरप्रद-वि० [सं०] [स्त्री० वरप्रदा] (१) वर देनेवाला। (२) प्रसन्न।

वरप्रदान-संज्ञा पुं० [सं०] मनोरथ पूर्ण करना। कोई फल या सिद्धि देना। वर देना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

वरफल-संज्ञा पुं० [सं०] नारिकेल। नारियल।

वरम-संज्ञा पुं० दे० "वर्म"।

वरमेलहो-संज्ञा पुं० [पुर्त०] एक प्रकार का लाल चंदन जो मलाया द्वीप से आता है।

वरयात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विवाह के लिये वर का अपने इष्ट-मित्रों और संबंधियों के सहित धूमधाम के साथ कन्या के घर जाना। दूल्हे का बाजे गाजे के साथ दुलहिन के घर विवाह के लिये जाना। (२) वह भीड़ भाड़ जो दूल्हे के साथ चलती है। बरात।

वरयिता-संज्ञा पुं० [सं० वरयितृ] (१) वरण करनेवाला। (२) पति। भर्त्ता।

वररुचि-संज्ञा पुं० [सं०] एक अत्यंत प्रसिद्ध प्राचीन पंडित, वैयाकरण और कवि।

विशेष—अष्टाध्यायी वृत्ति, प्राकृतप्रकाश, लिंगानुशासन, राक्षसकाव्य आदि अनेक ग्रंथ इनके नाम से प्रसिद्ध हैं; पर सब इनके नहीं बनाए हैं। इनका प्राकृत का व्याकरण 'प्राकृत प्रकाश' बहुत प्राचीन और प्रामाणिक माना जाता है। ये कब हुए, इसका ठीक ठीक निश्चय विद्वानों को अभी नहीं हुआ है। कथासरित्सागर में ये पाणिनि के सहाध्यायी और प्रतिद्वंद्वी कहे गए हैं; पर यह कल्पना मात्र है। उसी ग्रंथ में वररुचि और कात्यायन एक ही गए हैं; पर यह भी ठीक नहीं है। इसी प्रकार ज्योतिर्विदाभरण का वह नवरत्न-वाला श्लोक भी, जिसमें वररुचि का नाम है, कपोल कल्पना मात्र है। 'प्राकृतप्रकाश' की भूमिका में कावेल साहब ने वररुचि को ईसा की पहली शताब्दी का ठहराया है; और कोई कोई इन्हें चंद्रगुप्त मौर्य्य से भी पहले ईसा से ४०० वर्ष पूर्व का मानते हैं।

वरला—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसी।

वरवराह—संज्ञा पुं० [सं०] घुँघराले बालोंवाला जंगली आदमी। बर्बर।

वरवर्णिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्तम स्त्री। (२) लाख। (३) हल्दी। (४) गोरोचन। (५) कँगनी। काकुन। (६) गौरी। (७) लक्ष्मी। (८) सरस्वती।

वरवाह्लीक—संज्ञा पुं० [सं०] कुंकुम। केसर।

वरशिख—संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर जिसे इंद्र ने सपरिवार मारा था।

वरहक—संज्ञा पुं० [सं०] एक जनपद का नाम।

वरही—संज्ञा पुं० [हिं० वर] सोने की एक लंबी पट्टी जो विवाह के समय वधू को पहनाई जाती है। टीका।

* संज्ञा पुं० दे० "वर्ही"।

संज्ञा स्त्री० दे० "बरही"।

वरांग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मस्तक। (२) गुदा। (३) योनि। (४) हस्ती। (५) विष्णु का एक नाम। (६) एक प्रकार का नक्षत्र वासर जो ३२४ दिनों का होता है। (७) दारचीनी। (८) पेड़ की टहनी का सिरा।

वरांगक—संज्ञा पुं० [सं०] दारचीनी।

वरांगना—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदर स्त्री।

वरांगी—संज्ञा पुं० [सं० वरांगिन्] (१) हाथी। (२) अमलबेत।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हल्दी। (२) नागदंती। (३) मजीठ।

वरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) त्रिफला। (२) रेणुका नामक गंध-द्रव्य। (३) गुरुच। (४) मेदा। (५) ब्राह्मी। (६) विडंग। (७) पाठा। (८) हल्दी। (९) बैंगन। (१०) अड़हुल। जपा। देवीफूल। (११) मद्य। (१२) सोमराजी। (१३) श्वेतापराजिता। (१४) शतमूली।

वराक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) युद्ध। (३) पापड़ा।

वि० (१) शोचनीय। (२) नीच।

वराजीवी—संज्ञा पुं० [सं० वराजीविन्] ज्योतिषी। गणक।

वराट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कौड़ी। (२) रस्सी। (३) पद्मबीज। कँवलगट्टे का बीज।

वराटक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कौड़ी। (२) रस्सी। (३) पद्म का बीज।

वराटकरजा—संज्ञा पुं० [सं० वराटकरजस्] नागकेसर का पेड़।

वराटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कौड़ी। (२) तुच्छ वस्तु। (३) नागकेसर।

वराण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) वरुण वृक्ष। बरना।

वरानना—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदर स्त्री।

वरान्न—संज्ञा पुं० [सं०] दला हुआ उत्तम अन्न।

वराम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] अम्लवेतस्। अमलबेद।

वराम्र—संज्ञा पुं० [सं०] करौंदा।

वरारक—संज्ञा पुं० [सं०] हीरा। हीरक।

वरारणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] माता।

वरारोह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) एक प्रकार का पक्षी।

वि० श्रेष्ठ सवारीवाला।

वरार्द्धक—संज्ञा पुं० [सं०] पूजा की एक सामग्री जिसमें चंदन, कुंकुम और जल सम भाग होता है।

वराल—संज्ञा पुं० [सं०] लवंग। लौंग।

वरालि—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

वरालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

वराशि—संज्ञा पुं० [सं०] मोटा कपड़ा।

वरासन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रेष्ठ आसन। ऊँचा आसन। (२) विवाह में वर के बैठने का आसन या पाटा। (३) जपा। देवीफूल। अड़हुल। (४) हिजड़ा। खोजा। (५) द्वारपाल।

वरासि—संज्ञा पुं० [सं०] मोटा कपड़ा।

वराह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शूकर। सूअर। (२) विष्णु। (३) मुस्ता। मोथा। (४) एक पर्वत का नाम। (५) एक मान। (६) सूँस। शिशुमार। (७) वाराहीकंद। (८) अठारह द्वीपों में से एक छोटा द्वीप।

वराहक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हीरा। (२) शिशमार। सूँस।

वराहकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वगंधा। असगंध।

वराहकांता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वाराही। (२) लज्जालु। लजालू।

वराहपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वगंधा। असगंध।

वराहमिहिर—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के एक प्रधान आचार्य जिनके बनाए बृहत्संहिता, पंचसिद्धांतिका और बृहज्जातक नामक ग्रंथ प्रचलित हैं।

विशेष—इनके समय के संबंध में अनेक प्रकार के प्रवाद कुछ

वचनों के आधार पर प्रचलित हैं। जैसे,—ज्योतिर्विदाभरण के एक श्लोक में कालिदास, धन्वंतरि आदि के साथ वराहमिहिर भी विक्रम की सभा के नौ रत्नों में गिनाए गए हैं। पर इन नौ नामों में से कई एक भिन्न भिन्न काल के सिद्ध हो चुके हैं। अतः यह श्लोक प्रमाण के योग्य नहीं। इसी प्रकार कुछ लोग ब्रह्मगुप्त के टीकाकार पृथुस्वामी के इस वचन का आश्रय लेते हैं—

नवाधिक पंचशतसंख्य शाके वराहमिहिराचार्यो दिवं गतः। और शक ५०९ में वराहमिहिर की मृत्यु मानते हैं। पर अपनी पंचसिद्धांतिका में रोमकसिद्धांत का अहर्गण स्थिर करते हुए वराहमिहिर ने शक संवत् ४२७ लिया है। ज्योतिषी लोग अपना समय लेकर ही अहर्गण स्थिर करते हैं। अतः इससे ईसा की पाँचवीं शताब्दी में वराहमिहिर का होना सिद्ध होता है। अपने बृहज्जातक के उपसंहाराध्याय में आचार्य ने अपना कुछ परिचय दिया है। उसके अनुसार ये अवंती (उज्जयिनी) के रहनेवाले थे। 'कापित्थ' स्थान में सूर्यदेव को प्रसन्न करके इन्होंने वर प्राप्त किया था। इनके पिता का नाम आदित्यदास था।

वराहमुक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का मोती।

विशेष—जैसे,—'गजमुक्ता' हाथी से उत्पन्न मानी जाती है, वैसे ही यह सूअर से उत्पन्न मानी जाती है।

वराहव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का व्यूह या सेना की रचना, जिसमें अग्र भाग पतला और बीच का भाग चौड़ा रखा जाता था।

वराहशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक विचित्र पवित्र शिला जो हिमालय के शिखर पर है।

वराहशैल—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

वराहसंहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वराहमिहिर रचित ज्योतिष की बृहत्संहिता नाम की प्रसिद्ध पुस्तक।

वराहदंती—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्रदंती।

वराहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिकच्छु। केवाँच। कौंच।

वराही—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूअरी। शूकरी। (२) भद्रमुस्ता। नागरमोथा। (३) वाराहीकंद। (४) असगंधा। (५) एक प्रकार का पक्षी जो गौरैया के बराबर और काले रंग का होता है। (६) दे० "वाराही"।

वरिष—संज्ञा पुं० [सं०] वर्ष।

वरिष्ठ—वि० [सं०] श्रेष्ठ। पूजनीय।

संज्ञा पुं० (१) तित्तिर पक्षी। तीतर। (२) चाक्षुष मनु के पुत्र का नाम। (३) धर्म सावर्णि मन्वंतर के सप्त ऋषियों में से एक। (४) ताम्र। ताँबा। (५) मिर्च। (६) उरुतमस् ऋषि का एक नाम।

वरिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हलदी। (२) हुरहुर नाम का पौधा।

वरिहिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) उशीर। खस। (२) सुगंधवाला।

वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शतावरी। सतावर। (२) सूर्य की पत्नी।

वरीयान्—वि० [सं०] (१) श्रेष्ठ। बड़ा। (२) अति युवा।

संज्ञा पुं० (१) फलित ज्योतिष में विष्कंभ आदि सत्ताईस योगों में से अठारहवाँ योग, जिसमें जन्म लेनेवाला मनुष्य दयालु, दाता, सुंदर, सत्कर्म करनेवाला और मधुर स्वभाव का होता है। (२) पुलह ऋषि के एक पुत्र का नाम।

वरीषु—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

वरुण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वैदिक देवता जो जल का अधिपति, दस्युओं का नाशक और देवताओं का रक्षक कहा गया है। पुराणों में वरुण की गिनती दिक्पालों में है और यह पश्चिम दिशा का अधिपति माना गया है। वरुण का अस्त्र पाश है।

विशेष—बहुत प्राचीन वैदिक काल में वरुण प्रधान देवता थे, पर क्रमशः उनकी प्रधानता कम होती गई और इंद्र को प्रधानता प्राप्त हुई। वरुण अदिति के आठ पुत्रों में कहे गए हैं। निरुक्तकार इन्हें द्वादश आदित्यों में बतलाते हैं। ऋग्वेद में वरुण के अनेक मंत्र हैं, जिनमें से कुछ के संबंध में ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःशेफ की प्रसिद्ध गाथा है। इसके अनुसार हरिश्चंद्र वैधस नामक एक राजा ने पुत्र-प्राप्ति के लिये वरुण की उपासना की। वरुण ने पुत्र दिया, पर यह वचन लेकर कि उसी पुत्र से तुम मेरा यज्ञ करना। पुत्र का नाम रोहित हुआ। जब वह कुछ बड़ा हुआ और उसे यह पता चला कि मुझे वरुण के यज्ञ में बलिपशु बनना पड़ेगा, तब वह जंगल में भाग गया। वहाँ उसे इंद्र घर लौटने को बराबर मना करते रहे। अंत में राजा ने अजीगर्त नामक एक ऋषि को सौ गौएँ देकर उनके पुत्र शुनःशेफ को बलि के लिये मोल लिया। जब शुनःशेफ यूप में बाँधा गया, तब वह अपने छुटकारे के लिये प्रजापति, अग्नि, सविता आदि कई देवताओं की स्तुति करने लगा। अंत में वरुण की स्तुति करने से उसका उद्धार हुआ। ऋग्वेद में वरुण के कुछ मंत्र वे ही हैं, जिन्हें पढ़कर शुनःशेफ ने स्तुति की थी।

पुराणों में वरुण कश्यप के पुत्र कहे गए हैं। भागवत में लिखा है कि चर्षणी नाम्नी पत्नी से वरुण को भृगु और वाल्मीकि नामक दो पुत्र हुए थे। वरुण अब तक जल के देवता माने जाते हैं और जलाशयोत्सर्ग में इनका पूजन होता है। साहित्य में ये करुण रस के अधिष्ठाता माने गए हैं।

पर्य्या०—प्रचेतस। पाशी। यादसांपति। अंपति। यादःपति।

अपांपति। जंबूक। मेघनाद। परंजय। वारिलोम। कुंडली। (२) वरुना का पेड़। (३) जल। पानी। (४) सूर्य्य। (५) एक ऋषि का नाम। (६) एक ग्रह का नाम जिसे अँगरेज़ी में "नेप्चून" कहते हैं। (आधुनिक)

वरुणग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ों का एक रोग जो अचानक हो जाता है। इस रोग में घोड़े का तालू, जीभ, आँख और लिंगेंद्रिय आदि अंग काले रंग के हो जाते हैं। उसका शरीर भारी हो जाता है और पसीना छूटता है। यह रोग भयानक होता है और बहुत यत्न करने से घोड़े के प्राण बचते हैं।

वरुणघृत-संज्ञा पुं० [सं०] घृत में बनी हुई एक औषध जो अश्मरी (पथरी) रोग में दी जाती है।

विशेष—इसमें वरना नामक पेड़ की छाल को जल और घी में जलाकर क्वाथ बनाया जाता है।

वरुणदैवत-संज्ञा पुं० [सं०] शतभिषा नक्षत्र।

वरुणपाश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण का अस्त्र पाश या फंदा। (२) नाक नामक जल-जंतु। नाक।

वरुणप्रघास-संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत या कृत्य जो आषाढ़ या श्रावण की पूर्णिमा के दिन किया जाता है। इसमें लोग जौ का सत्तू खाकर रहते हैं। इस व्रत का फल यह कहा गया है कि व्रत करनेवाला जल में डूबता नहीं और उसे मगर, घड़ियाल आदि जलजंतु नहीं पकड़ते।

वरुणप्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर जो कुरुक्षेत्र के पश्चिम में था।

वरुणमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रों का एक मंडल जिसमें रेवती, पूर्वाषाढ़ा, आर्द्रा, आश्लेषा, मूल, उत्तराभाद्रपदा और शतभिषा हैं।

वरुणात्मजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वारुणी। सुरा। मदिरा। शराब।

वरुणादिगण-संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ों और पौधों का एक वर्ग जिसके अंतर्गत वरुन, नीलझिंटी, सहिंजन, जयती, मेढ़ासींगी, पूतिका, नाटकरंज, अग्निमंथ (अगेंथू), चीता, शतमूली, बेल, अजश्रृंगी, डाभ, बृहती और कंटकारी (भटकटैया) है। (सुश्रुत)

वरुणानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वरुण की स्त्री।

वरुणालय-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

वरुथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तनुत्राण। बकतर। (२) ढाल। (३) लोहे की चद्दर या सीकड़ों का बना हुआ आवरण या झूल जो शत्रु के आघात से रथ को रक्षित करने के लिये उसके ऊपर डाली जाती थी। (४) सैन्य। सेना। फ़ौज। (५) एक प्राचीन ग्राम। (रामायण)

वरुथिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेना।

वरुथी-संज्ञा पुं० [सं० वरुथिन्] [स्त्री० वरुथिनी] हाथी की काठी।

वरेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा। (२) इंद्र। (३) बंगाल का एक भाग।

वरेण्य-वि० [सं०] (१) प्रधान। मुख्य। (२) वरणीय। पूजनीय।

संज्ञा पुं० (१) भृगु के एक पुत्र का नाम। (२) महादेव। (३) कुंकुम। केसर।

वरोट-संज्ञा पुं० [सं०] मरुवा। मरुवक।

वरोरु-वि० [सं०] (१) श्रेष्ठ जंघोंवाला। (२) सुंदरी।

वर्कंट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी का बंधन जो लकड़ी का बना हुआ और काँटेदार होता है। (२) काँटा। कील (३) अगरी। अर्गल।

वर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जवान बकरी। पठिया।

वर्कर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जवान पशु। (२) बकरा। (३) भेड़ का बच्चा। मेमना। (४) आमोद प्रमोद। परिहास।

वर्कराट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कटाक्ष। (२) मध्याह्न के सूर्य्य की प्रभा। (३) स्त्री के कुच के किनारे लगा हुआ नखक्षत।

वर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ही प्रकार की अनेक वस्तुओं का समूह। जाति। कोटि। गण। श्रेणी। (२) आकार प्रकार में कुछ भिन्न, पर कोई एक सामान्य धर्म रखनेवाले पदार्थों का समूह। जैसे,—अंतरिक्ष वर्ग, शूद्र वर्ग, ब्राह्मण वर्ग। (३) शब्द शास्त्र में एक स्थान से उच्चरित होनेवाले स्पर्श व्यंजन वर्णों का समूह। जैसे,—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग इत्यादि।

विशेष—ज्योतिष में स्वर, अंतस्थ और ऊष्म वर्ण भी (जैसे,—अ, य, श) क्रमशः अवर्ग, यवर्ग और शवर्ग के अंतर्गत रखे गए हैं। इस प्रकार ज्योतिष के व्यवहार के लिये सब वर्णों के विभाग 'वर्ग' के अंतर्गत किए गए हैं और अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग तथा शवर्ग के स्वामी क्रमशः सूर्य, मंगल, शुक्र, बुध, बृहस्पति, शनि और चंद्रमा कहे गए हैं।

(४) ग्रंथ का विभाग। परिच्छेद। प्रकरण। अध्याय। (५) दो समान अंकों या राशियों का घात या गुणनफल। जैसे—३ का ९, ५ का २५ (३ × ३ = ९। ५ × ५ = २५)। (६) वह चौखूँटा क्षेत्र जिसकी लम्बाई चौड़ाई बराबर और चारो कोण समकोण हों। (रेखा गणित)

वर्गचर-संज्ञा पुं० [सं०] पढ़ना या पढ़िना मछली। पाठीन।

वर्गण-संज्ञा पुं० [सं०] गुणन। घात।

वर्गपद-संज्ञा पुं० [सं०] वह अंक जिसके घात से कोई वर्गांक बना हो। वर्गमूल।

वर्गफल-संज्ञा पुं० [सं०] वह गुणनफल जो दो समान राशियों के घात से प्राप्त हो। वह अंक जो किसी अंक को उसी अंक के साथ गुणा करने से आवे। जैसे,—५ का वर्गफल २५ होता है।

वर्गमूल-संज्ञा पुं० [सं०] किसी वर्गांक का वह अंक जिसे यदि उसी से गुणन करें, तो गुणन वही वर्गांक हो। जैसे,—४ वर्गांक का वर्गमूल २ और २५ का ५ होगा।

वर्गलाना-क्रि० स० [फ़ा० 'वरग़लानीदन' से] (१) कोई काम करने के लिये उभारना। कुछ करने के लिये उत्तेजित करना। उकसाना। (२) बहकाना। फुसलाना।

वर्गोत्तम-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में राशियों के वे श्रेष्ठ अंश जिनमें स्थित ग्रह शुभ होते हैं।

विशेष—चर राशि (मेष, कर्कट, तुला, मकर) का प्रथम अंश, स्थिर राशि (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुंभ) का पंचम अंश और द्व्यात्मक राशि (मिथुन, कन्या, धनु, मीन) का नवम अंश वर्गोत्तम कहा जाता है। इसके अतिरिक्त राशियों का नवांश भी वर्गोत्तम कहा जाता है।

वर्चस्-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वर्चस्वान्, वर्चस्वी] (१) रूप। (२) तेज। कांति। दीप्ति। (३) अन्न। (४) विष्ठा।

वर्चस्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीप्ति। तेज। (२) विष्ठा।

वर्चस्य-वि० [सं०] तेजवर्द्धक।

वर्चस्वान्-वि० [सं० वर्चस्वत्] [स्त्री० वर्चस्वती] तेजवान्। दीप्तियुक्त। समुज्वल।

वर्चस्वी-वि० [सं० वर्चस्विन्] [स्त्री० वर्चस्विनी] तेजस्वी। दीप्तियुक्त।

संज्ञा पुं० चंद्रमा।

वर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वर्जनीय, वर्ज्य, वर्जित] (१) त्याग। छोड़ना। (२) ग्रहण या आचरण का निषेध। मनाही। मुमानियत। (३) हिंसा। मारण।

वर्जनीय-वि० [सं०] (१) छोड़ने योग्य। न ग्रहण करने योग्य। त्याज्य। (२) निषेध के योग्य। निषिद्ध। मना।

वर्जयिता-वि० [सं०] वर्जन करनेवाला। त्यागनेवाला।

वर्जित-वि० [सं०] (१) त्यागा हुआ। छोड़ा हुआ। त्यक्त। (२) जो ग्रहण के अयोग्य ठहराया गया हो। निषिद्ध। जैसे,—कलि में नियोग वर्जित है।

वर्ज्य-वि० [सं०] (१) छोड़ने योग्य। त्याज्य। वर्जनीय। (२) जिसका निषेध किया गया हो। जो मना हो।

वर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पदार्थों के लाल, पीले आदि भेदों का नाम। रंग। वि० दे० रंग। (२) जन-समुदाय के चार विभाग—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—जो प्राचीन आर्य्यों ने किए थे। जाति।

विशेष—इस शब्द का प्राचीन प्रयोग ऋगवेद में है। वहाँ यह जनता के दो वर्गों—आर्य्यों और दस्युओं—को सूचित करने के लिये हुआ है। यह विभाग पहले रंग के आधार पर था; क्योंकि आर्य्य गोरे थे और दस्यु या अनार्य्य काले। पर पीछे यह विभाग व्यवसाय के आधार पर हुआ और चार वर्ण माने गए। पुरुषसूक्त में चारो वर्णों की उत्पत्ति का आलंकारिक रूप से इस प्रकार वर्णन है कि ब्राह्मण ईश्वर के मुख से, क्षत्रिय बाहु से, वैश्य जंघे से और शूद्र पैर से उत्पन्न हुए। इस व्यवस्था के अनुसार "वर्ण" शब्द की व्युत्पत्ति 'वृ' धातु से बताई जाती है, जिसका अर्थ है 'चुनना'। अतः 'वर्ण' शब्द का अर्थ हुआ व्यवसाय। स्मृतियों में भिन्न भिन्न वर्णों के धर्म निरूपित हैं। जैसे,—ब्राह्मण का धर्म—अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह; क्षत्रिय का धर्म—प्रजारक्षा, दान, यज्ञानुष्ठान और अध्ययन; वैश्य का धर्म—पशुपालन, कृषि, दान, यज्ञ और अध्ययन। शूद्र का धर्म—तीनों वर्णों की सेवा। व्यवसाय-भेद और सब देशों में भी चला आ रहा है, पर भारतीय आर्य्यों की लोकव्यवस्था में यह व्यवसायों के विचार से जाति-गत या जन्मना माना गया है। इसी 'वर्ण' और 'आश्रम' की व्यवस्था को भारतीय आर्य्य अपना विशेष लक्षण मानते थे और अपने धर्म को 'वर्णाश्रम धर्म' कहते थे।

(३) भेद। प्रकार। किस्म। (४) अकारादि शब्दों के चिह्न या संकेत। अक्षर। (५) गुण। (६) यश। कीर्त्ति। (७) स्तुति। बड़ाई। (८) स्वर्ण। सोना। (९) मृदंग का एक ताल जो चार प्रकार का होता है—पाट, विधिपाट, कूटपाट और खंडपाट। (१०) रूप। (११) अंगराग। विलेपन। (१२) कुंकुम। केसर। (१३) चित्र। तसवीर।

वर्णकंट-संज्ञा पुं० [सं०] तूतिया।

वर्णक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरताल। (२) अनुलेपन। उबटन। (३) चंदन। (४) घिसी हुई हल्दी आदि जो देवताओं को चढ़ाई जाती है। (५) मंडल। (६) चरण। (७) रंग। (८) अभिनेताओं के परिधान या परिच्छद। (९) चित्रकार।

वर्णखंडमेरु-संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल या छंदः शास्त्र में वह क्रिया जिससे बिना मेरु बनाए मेरु का काम निकल जाता है; अर्थात् यह ज्ञात हो जाता है कि इतने वर्णों के कितने वृत्त हो सकते हैं और प्रत्येक वृत्त में कितने गुरु और कितने लघु होंगे।

विशेष—जितने वर्णों का खंडमेरु बनाना हो, उतने से एक कोष्ठ अधिक बाईं से दाहिनी ओर को बनावे। फिर उन्हीं कोष्ठों के नीचे पहला स्थान छोड़कर दूसरे स्थान से आरंभ करके ऊपर से एक कोष्ठ कम बनावे। इसी प्रकार उसी स्थान से नीचे एक कोष्ठ कम बराबर बनाता जाता जाय, जब तक एक कोष्ठ न आ जाय। इन कोष्ठों को इस प्रकार भरे। कोष्ठों की पहली पंक्ति में बाईं ओर से सब में एक एक का अंक लिखे। दूसरी पंक्ति के पहले कोष्ठ से आरंभ करके क्रमशः २, ३, ४, ५, ६ आदि अंत तक लिख जाय। इसके अनंतर कोष्ठों की प्रथम पंक्ति के तीसरे अंक

से उत्तरोत्तर नीचे की ओर वक्रगति से अंकों को जोड़कर अगले खानों में रखता जाय। अंतिम कोठों में जो अंक होंगे, वे लघु गुरु के हिसाब से वृत्तों के भेद सूचित करेंगे। उदाहरणार्थ आठ वर्णों का खंडमेरु बनाना हो, तो इस प्रकार करे—

१	१	१	१	१	१	१	१	१
	२	३	४	५	६	७	८	
	३	६	१०	१५	२१	२८		
	४	१०	२०	३५	५६			
	५	१५	३५	७०				
	६	२१	५६					
	७	२८						
	८							

वर्ण वृत्तों में एक भेद ऐसा होगा जिसमें सब गुरु होंगे; और एक ऐसा होगा, जिसमें सब लघु होंगे। अतः सर्व गुरु से आरंभ करके एक एक गुरु घटाते जायँ, तो भेदों की संख्या इस प्रकार होगी—१ भेद ऐसा होगा, जिसमें सब (८) गुरु होंगे। ८ भेद ऐसे होंगे जिनमें १ लघु और ७ गुरु होंगे। ८ भेद ऐसे होंगे जिनमें २ लघु और ६ गुरु होंगे। ५६ भेद ऐसे होंगे, जिनमें ३ लघु और ५ गुरु होंगे। ७० भेद ऐसे होंगे जिनमें ४ लघु और ४ गुरु होंगे। ५६ भेद ऐसे होंगे, जिनमें ५ लघु और ३ गुरु होंगे। २८ भेद ऐसे होंगे जिनमें ६ लघु और २ गुरु होंगे। ८ भेद ऐसे होंगे जिनमें ७ लघु और १ गुरु होगा। एक भेद ऐसा होगा, जिसमें सब लघु होंगे।

वर्णज्येष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] सब वर्णों में बड़ा, ब्राह्मण।

वर्णतूलि, वर्णतूलिका, वर्णतूली-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कूँची जिससे चित्रकार चित्र बनाते हैं। कलम।

वर्णदूत-संज्ञा पुं० [सं०] लिपि।

वर्णदूषक-संज्ञा पुं० [सं०] अपने संसर्ग से दूसरे को जातिभ्रष्ट करनेवाला। पंक्तिदूषक। पतित मनुष्य।

वर्णन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वर्णनीय, वर्ण्य, वर्णित] (१) चित्रण। रँगना। (२) किसी बात को सविस्तर कहना। कथन। बयान। उ०—सो चौबीस रूप निज कहियत वर्णन करत विचार।—सूर। (३) स्तवन। प्रशंसा। गुणकथन। तारीफ़।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

वर्णनष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल या छंदः शास्त्र में एक क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि प्रस्तार के अनुसार इतने वर्णों के वृत्तों के अमुक संख्यक भेद का रूप लघु गुरु के हिसाब से कैसा होगा।

विशेष—जितने वर्ण के प्रस्तार के किसी भेद का रूप निकालना हो, उतने लघु के चिह्न लिखकर उनके सिरे पर क्रमशः वर्णोद्दिष्ट अंक (१ से आरंभ करके क्रमशः दूने दूने अंक) लिखे। फिर अंतिम अंक का दूना करके उसमें से पूछी हुई संख्या घटावे। जो अंक शेष रहे, वह जिन जिन उद्दिष्टों के योग से बना हो, उनके नीचे की लघु मात्राओं के चिह्नों को गुरु कर दे। जो रूप सिद्ध होगा, वही उत्तर होगा। जैसे,—किसी ने पूछा कि चार वर्णों के प्रस्तार में तेरहवें भेद का रूप क्या होगा? इसके लिये हमने यह क्रिया की—

१	२	४	८
।	।	।	।

अंतिम अंक ८ का दूना १६ हुआ। उसमें से १३ घटाया, तो ३ रहा। अब हमने देखा कि ३ संख्या ऊपर दिए हुए उद्दिष्टांकों में से १ और २ जोड़ने से आ जाती है। अतः उनके नीचे गुरु बनाया तो यह रूप ऽ ऽ । । सिद्ध हुआ।

वर्णना-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुण कथन।

वर्णनाश-संज्ञा पुं० [सं०] निरुक्तकार के अनुसार शब्द में किसी वर्ण का नष्ट हो जाना। जैसे—'पृषोदर' शब्द में 'पृषतोदर' शब्द के 'त' का नाश पाया जाता है।

वर्णपताका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंगल या छंदः शास्त्र में एक क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि वर्णवृत्तों के भेदों में से कौन सा (पहला, दूसरा या तीसरा आदि) ऐसा है, जिसमें इतने लघु और इतने गुरु होंगे।

वर्णपाताल-संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल या छंदः शास्त्र में एक क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि अमुक संख्या के वर्णों के कुल कितने वृत्त हो सकते हैं और उन वृत्तों में से कितने लघ्वादि और कितने लघ्वंत, कितने गुर्वादि और कितने गुर्वंत तथा कितने सर्वगुरु और कितने सर्वलघु होंगे।

विशेष—जितने वर्णों का पाताल बनाना हो, उतनी ही खड़ी रेखाएँ और उन्हें काटती हुई पाँच आड़ी रेखाएँ खींचे। इस प्रकार कोठे बन जाने पर कोठों की पहली पंक्ति में क्रम से १, २, ३, ४ आदि अंक भरे। दूसरी पंक्ति में २, ४, ८, १६ आदि वर्णसूची के अंक लिखे। तीसरी पंक्ति में सूची के अंकों के आधे लिखे, और चौथी पंक्ति में पहली और तीसरी पंक्ति

के अंकों का गुणनफल लिखे। उदाहरण के लिये ९ वर्णों का पाताल इस प्रकार होगा—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	वर्ण संख्या।
२	४	८	१६	३२	६४	१२८	२५६	५१२	सर्व संख्या।
१	२	४	८	१६	३२	६४	१२८	२५६	लघ्वादि, लघ्वंत, गुर्वादि, गुर्वंत।
१	४	१२	३२	८०	१९२	४४८	१०२४	२३०४	सर्व गुरु, सर्व लघु।

इस पाताल से विदित हुआ कि ९ वर्णों के ५१२ वृत्त हो सकते हैं। इन वृत्तों में २५६ ऐसे वृत्त होंगे, जिनके आदि में लघु होंगे; २५६ ऐसे होंगे, जिनके अंत में लघु होंगे; फिर २५६ ऐसे होंगे जिनके आदि में गुरु होंगे; और २५६ ऐसे होंगे, जिनके अंत में गुरु होंगे। सब वृत्तों में कुल मिलाकर २३०४ गुरु और २३०४ लघु होंगे।

वर्णपुर-संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध राग का एक भेद।

वर्णप्रत्यय-संज्ञा पुं० [सं०] छंदः शास्त्र या पिंगल में वे क्रियाएँ जिनके द्वारा यह जाना जाता है कि अमुक संख्या के वर्णवृत्तों के कितने भेद हो सकते हैं, उनके स्वरूप क्या होंगे, इत्यादि।

विशेष—जिस प्रकार मात्रिक छंदों में ९ प्रत्यय होते हैं, उसी प्रकार वर्णवृत्तों में भी ९ प्रत्यय होते हैं—प्रस्तार, सूची, पाताल, उद्दिष्ट, नष्ट, मेरु, खंडमेरु, पताका और मर्कटी।

वर्णप्रस्तार-संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल या छंदः शास्त्र में वह क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि इतने वर्णों के वृत्तों के इतने भेद हो सकते हैं और उन भेदों के स्वरूप इस प्रकार होंगे।

विशेष—जितने वर्णों का प्रस्तार बढ़ाना हो, उतने वर्णों का पहला भेद (सर्व गुरु) लिखे। फिर गुरु के नीचे लघु लिख कर शेष ज्यों का त्यों लिखे। फिर सब से बाईं ओर के गुरु के नीचे लघु लिखकर आगे ज्यों का त्यों लिखे; और बाईं ओर जितनी न्यूनता रहे, उतनी गुरु से भरे। यह क्रिया अंत तक अर्थात् सर्वलघु भेद के आने तक करे। उदाहरण के लिये तीन वर्णों का प्रस्तार इस प्रकार होगा—

रूप	भेद
ऽ ऽ ऽ	पहला
। ऽ ऽ	दूसरा
ऽ । ऽ	तीसरा
। । ऽ	चौथा
ऽ ऽ ।	पाँचवाँ
। ऽ ।	छठा
ऽ । ।	सातवाँ
। । ।	आठवाँ

इस प्रस्तार से प्रकट हुआ कि तीन वर्णों के आठ ही भेद हो सकते हैं; अर्थात् आठ ही प्रकार के वृत्त बन सकते हैं, अधिक नहीं।

वर्णमर्कटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंगल या छंदः शास्त्र में एक क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि इतने वर्णों के इतने वृत्त हो सकते हैं, जिनमें इतने गुर्वादि, गुर्वंत और इतने लघ्वादि लघ्वंत होंगे; तथा सब वृत्तों में मिलाकर इतने वर्ण, इतने गुरु लघु, इतनी कलाएँ और इतने पिंड (=दो कल) होंगे।

विशेष—जितने वर्ण हों, उतने खाने बाएँ से दाहिने बनावे। फिर उन खानों के नीचे उतने ही खानों की छः पंक्तियाँ और बनावे। कोठों की पहली पंक्ति में १, २, ३ आदि अंक लिखे; दूसरी में वर्ण सूची के अंक (२, ४, ८, १६ आदि) लिखे; तीसरी पंक्ति में दूसरी पंक्ति के अंकों के आधे अंक भरे; चौथी में पहली और दूसरी पंक्ति के अंकों के गुणनफल लिखे; पाँचवीं में चौथी पंक्ति के आधे अंक भरे, छठी पंक्ति में चौथी और पाँचवीं पंक्ति के अंकों का योग लिखे; और सातवीं पंक्ति में छठी पंक्ति के आधे अंक भरे। उदाहरण के लिये छः वर्णों की मर्कटी इस प्रकार होगी—

१	२	३	४	५	६	वर्ण संख्या
२	४	८	१६	३२	६४	वृत्तों की संख्या
१	२	४	८	१६	३२	गुर्वादि, गुर्वंत, लघ्वादि, लघ्वंत
२	८	२४	६४	१६०	३८४	सर्व वर्ण
१	४	१२	३२	८०	१९२	गुरु लघु
३	१२	३६	९६	२४०	५७६	सर्व कला
१$\frac{१}{२}$	६	१८	४८	१२०	२८८	पिंड

इस मर्कटी से प्रकट हुआ कि ६ वर्णों के ६४ वृत्त हो सकते हैं। ३२ वृत्त ऐसे होंगे जिनके आदि में गुरु, ३२ ऐसे जिनके अंत में गुरु, ३२ ऐसे जिनके आदि में लघु और ३२ ही ऐसे जिनके अंत से लघु होंगे। सब वृत्तों को मिलाकर ३८४ वर्ण होंगे; इत्यादि, इत्यादि।

वर्णमाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षरों के रूपों की यथा श्रेणी लिखित सूची। किसी भाषा में आनेवाले सब हरफ़ जो ठीक सिलसिले से रक्खे हों। जैसे देवनागरी में—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ।
क ख ग घ ङ।
च छ ज झ ञ।
ट ठ ड ढ ण।
त थ द ध न।
प फ ब भ म।
य र ल व।
श ष स ह।
अं अः।

वर्णवती संज्ञा स्त्री० [सं०] हल्दी।

वर्णविकार-संज्ञा पुं० [सं०] निरुक्त के अनुसार शब्दों में एक वर्ण का बिगड़कर दूसरा वर्ण हो जाना। जैसे 'हल्दी' शब्द में 'हरिद्रा' के 'र' का 'ल' हो गया है। "द्वादश" के 'द' का "बारह" शब्द में 'र' हो गया है।

वर्णविचार-संज्ञा पुं० [सं०] आधुनिक व्याकरण का वह अंश जिसमें वर्णों के आकार, उच्चारण और संधि आदि के नियमों का वर्णन हो। प्राचीन वेदांग में यह विषय 'शिक्षा' कहलाता था और व्याकरण से बिल्कुल स्वतंत्र माना जाता था।

वर्णविपर्यय-संज्ञा पुं० [सं०] निरुक्त के अनुसार शब्दों में वर्णों का उलट फेर हो जाना। जैसे 'हिंस' शब्द से बने 'सिंह' शब्द में हुआ है।

वर्णविलासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] हल्दी।

वर्णवृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह पद्य जिसके चरणों में वर्णों की संख्या और लघु गुरु के क्रमों में समानता हो।

वर्णश्रेष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण।

वर्णसंकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह व्यक्ति या जाति जो दो भिन्न भिन्न जातियों के स्त्री पुरुष के संयोग से उत्पन्न हो।

विशेष—स्मृतियों में ऐसी बहुत सी जातियाँ गिनाई गई हैं। इस विषय में एक दूसरे के मत भी नहीं मिलते। वर्णसंकर दो प्रकार के कहे गए हैं—अनुलोमज और प्रतिलोमज। अनुलोमज का पिता माता से श्रेष्ठ वर्ण का होता है और प्रतिलोमज की माता पिता से श्रेष्ठ वर्ण की होती है। प्रतिलोमज संकर प्राचीन काल में निषिद्ध माने जाते थे। अनुलोम विवाह का प्रचार प्राचीन काल में था, पर पीछे बंद हो गया। धर्मशास्त्रों में यद्यपि वर्णसंकरता के ये कारण गिनाए गए हैं—(१) व्यभिचार, (२) अवेद्यावेदन और (३) स्वकर्मत्याग; पर लोक में अंतिम बात पर ध्यान नहीं दिया जाता।

(२) वह व्यक्ति जो ऐसे स्त्री पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ हो, जो धर्मानुसार विवाहित न हों। व्यभिचार से उत्पन्न मनुष्य। दोगला।

वर्णसमाम्नाय-संज्ञा पुं० [सं०] वर्णमाला।

वर्णसूची-संज्ञा स्त्री० [सं०] छंदः शास्त्र या पिंगल में एक क्रिया जिसके द्वारा वर्णवृत्तों की संख्या की शुद्धता, उनके भेदों में आदि अंत लघु और आदि अंत गुरु की संख्या जानी जाती है।

विशेष—जितने वर्णों की सूची देखनी हो, उतने वर्णों की संख्या तक क्रम से २, ४, ८ इत्यादि अर्थात् उत्तरोत्तर दूने अंक लिखे। इस क्रिया के अंत में जो संख्या आवेगी, वह वृत्त-भेद की संख्या होगी। अंत के अंक से बाईं ओर जो अंक होगा, उतने आदि लघु और अंतलघु तथा आदिगुरु और अंत-गुरु होंगे। फिर उससे भी बाईं ओर अर्थात् अंत से तीसरे कोष्ठ में जो अंक होगा, उतने ही आद्यंत लघु और आद्यंत गुरु वृत्त होंगे। उदाहरणार्थ ४ वर्णों की सूची यह है—

२	४	८	१६
	आद्यंत लघु आद्यंत गुरु	आदि लघु अंत लघु आदि गुरु अंत लघु	सब वृत्त

वर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अरहर।

वर्णाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार ब्राह्मणादि वर्णों के अधिपति ग्रह। (ब्राह्मण के अधिपति बृहस्पति और शुक्र, क्षत्रिय के भौम और रवि, वैश्य के चंद्र, शूद्र के बुध और अंत्यज के शनि माने जाते हैं।)

वर्णार्ह-संज्ञा पुं० [सं०] मूँग।

वर्णि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ण। सोना। (२) वलि।

वर्णिक-संज्ञा पुं० [सं०] लेखक।

वर्णिक वृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त या छंद जिसके प्रत्येक चरण के वर्णों की संख्या और लघु गुरु के स्थान समान हों।

वर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कठिनी। खड़िया। (२) मसि। स्याही। (३) सोने का पानी। (४) चंद्रमा। (५) विलेपन।

वर्णित-वि० [सं०] (१) कथित। कहा हुआ। (२) जिसका वर्णन हो चुका हो। बयान किया हुआ।

वर्णी-संज्ञा पुं० [सं० वर्णिन्] (१) लेखक। (२) चित्रकार। (३) ब्रह्मचारी।

वर्णू-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक नदी का नाम। बन्नू। आदिया। (२) बन्नू नामक देश।

वर्णोद्दिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] छंदः शास्त्र में एक क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि अमुक संख्यक वर्णवृत्त का कोई रूप कौन सा भेद है।

विशेष—जो भेद दिया गया हो, उसमें लघु गुरु के ऊपर क्रम से दूने अंक अर्थात् १, २, ४, ८ इत्यादि लिखे। फिर लघु के ऊपर जितने अंक हों, उन्हें जोड़कर उसमें १ और जोड़ दे। जैसे,—किसी ने पूछा कि चार वर्ण के वृत्तों में ।।ऽऽ कौन सा भेद है, तो यह क्रिया की—

१ २ ४ ८
। । ऽ ऽ

अब लघु वर्णों के ऊपर के अंक (१ + २) जोड़ने से ३ हुए। उसमें एक जोड़ने से ४ हुए। इससे विदित हो गया कि यह चौथा भेद है।

वर्ण्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुंकुम। (२) वनतुलसी। बबई। (३) प्रस्तुत विषय। (४) उपमेय।

वि० (१) वर्णन के योग्य। (२) जो वर्णन का विषय हो।

वर्तक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बटुवा। (२) नर बटेर। (३) घोड़े का खुर।

वर्तका, वर्तकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बटेर।

वर्तन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वर्तित] (१) बरताव। व्यवहार। (२) व्यवसाय। जीवनोपाय। वृत्ति। रोज़ी। (३) फेरना। घुमाना। बटना। (४) परिवर्तन। फेर फार। (५) स्थिति। ठहराव। (६) स्थापन। रखना। (७) सिल बट्टे से पीसना। पेषण। बटना। (८) वर्तमान। (९) चरखे की वह लकड़ी जिसमें तकला लगा रहता है। (१०) बटलोई। बटुवा। (११) पात्र। बरतन। (१२) घाव में सलाई डालकर हिलाना डुलाना, जिससे घाव या नासूर की गहराई और फैलाव आदि का पता लगता है। शल्यकंपन कर्म। (१३) विष्णु। (१४) कोआ।

वर्तना-क्रि० अ०, क्रि० स० दे० 'बरतना'।

वर्तनि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूर्व दिशा। पूर्व देश। (२) बाट। रास्ता। (३) शुद्ध राग का एक भेद।

वर्तनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बटने की क्रिया। पेषण। पिसाई। (२) बाट। रास्ता।

वर्तमान-वि० [सं०] (१) चलता हुआ। जो जारी हो। जो चल रहा हो। (२) उपस्थित। मौजूद। विद्यमान। (३) साक्षात्। (४) आधुनिक। हाल का।

संज्ञा पुं० (१) व्याकरण में क्रिया के तीन कालों में से एक, जिससे सूचित होता है कि क्रिया अभी चली चलती है, समाप्त नहीं हुई है।

विशेष—वर्तमान के कई भेद होते हैं। "वह आता है" इस क्रिया में क्रिया में आरंभ और चला चलना पाया जाता है, समाप्ति नहीं; इससे यह सामान्य वर्तमान है। कभी कभी वर्तमान के प्रयोग द्वारा 'नित्य प्रवृत्ति' भी पाई जाती है। जैसे,—"भारत के उत्तर में हिमालय है"। कभी कभी "वृत्ताविरतता" भी पाई जाती है। जैसे,—"इस मैदान में लड़के खेलते हैं"। इस वाक्य से यह सूचित होता है कि चाहे कहने के समय लड़के न खेलते रहे हों, पर उसके पूर्व कई बार खेल चुके हैं और आगे भी बराबर खेलेंगे। इसी प्रकार "वह मांस नहीं खाता" इस वाक्य में "प्रवृत्तोपरतता" पाई जाती है; अर्थात् वह जन्म से ही मांस नहीं खाता। इसी प्रकार और भी भेद हैं।

(२) वृत्तांत। समाचार। (३) चलता व्यवहार। उ०—तुम पाँच सात पीढ़ियों के वर्तमान को सनातन व्यवहार मानते हो।—सत्यार्थ प्रकाश।

वर्त्तरुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक नदी का नाम। (२) कौवे का घोंसला। (३) द्वारपाल।

वर्त्तलोह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लोहा।

विशेष—वैद्यक में शोधे हुए वर्त्तलोह को कफ, दाह और पित्त का नाशक और उसके स्वाद को कटु, मधुर और तिक्त लिखा है। यह वही लोहा है, जिसके बिदरी बरतन बनते हैं।

पर्य्या०—वर्त्ततीक्ष्ण। वर्त्तक। लोहसंकर। नीलक। नीलज। नीललोह।

वर्त्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बत्ती। (२) अंजन। (३) वह बत्ती जो वैद्य घाव में देता है। (४) औषध बनाना। (५) अनुलेपन। उबटन। (६) गोली। बटी।

वर्त्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] बटेर।

वर्त्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बटेर। (२) अजशृंगी। (३) बत्ती। (४) शलाका। सलाई।

वर्त्तिकाबिंदु-संज्ञा पुं० [सं०] हीरे का एक दोष। (इस प्रकार के हीरे को धारण करने से भय उत्पन्न होता है।—रत्न परीक्षा।)

वर्त्तित-वि० [सं०] (१) संपादित। निष्पादित। किया हुआ। (२) चलाया हुआ। जारी किया हुआ। (३) दुरुस्त किया हुआ।

वर्त्तिर-संज्ञा पुं० [सं०] बटेर।

वर्त्ती वि० [सं० वर्तिन्] [स्त्री० वर्तिनी] (१) वर्त्तनशील। बरतनेवाला। (२) स्थित रहनेवाला। जैसे,—समीपवर्त्ती।

संज्ञा स्त्री० (१) बत्ती। (२) शलाका। सलाई।

वर्त्तुल-वि० [सं०] गोल। वृत्ताकार।

संज्ञा पुं० (१) गृंजन। गाजर। (२) मटर। (३) गुंडतृण। (४) सुहागा।

वर्त्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार्ग। पथ। (२) गाड़ी के पहिए का मार्ग। लीक। (३) किनारा। औंठ। धारी। (४) आँख की पलक। (५) आधार। आश्रय।

वर्त्मकर्दम-संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग जिसमें पित्त और रक्त के प्रकोप से आँखों में कीचड़ भरा रहता है।

वर्त्मबंध-संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग जिसमें पलक में सूजन हो आती है, खुजली तथा पीड़ा होती है और आँख नहीं खुलती।

वर्त्ममाक्षिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ण माक्षिका। सोना माखी।

वर्त्मरोग-संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग जिसमें पलकों में विकार उत्पन्न हो जाता है और आँखों को खोलने से बड़ी पीड़ा होती है। वैद्यक में इस रोग के २१ भेद माने गए हैं—उत्संगिनी, कुंभिका, पोथकी, वर्त्मशर्करा, वर्त्मार्श, शुष्कार्श, अंजन-दूषिका, बहुलवर्त्म, वर्त्मबंधक, क्लिष्टवर्त्म, वर्त्मकर्दम, श्याव-वर्त्म, प्रक्लिन्नवर्त्म, अक्लिन्नवर्त्म, वातहतवर्त्म, वर्त्मार्बुद, निमेष, शोणितार्श, लगण, विषवर्त्म और कुंचन।

वर्त्मशर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख का एक रोग जिसमें पलकों में छोटी छोटी फुंसियों के सहित एक बड़ी और कड़ी फुंसी हो जाती है।

वर्त्मरुजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] आँखों का एक रोग। वर्त्मरोग।

वर्त्मार्बुद-संज्ञा पुं० [सं०] आँखों का एक रोग जिसमें पलक के अंदर एक गाँठ उत्पन्न हो जाती है। यह टेढ़ी और लाल रंग की होती है और इसमें पीड़ा नहीं होती।

वर्त्मावरोध-संज्ञा पुं० [सं०] वर्त्मरोग।

वर्द्धी-संज्ञा स्त्री० [सं० वर्ती = बत्ती] मूँज की बत्ती जो गज के ढीले होने पर बरते में लगाई जाती है।

संज्ञा स्त्री० दे० "वरदी"।

वर्द्ध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीसा धातु। (२) भारंगी। (३) काटना। तराशना। (४) पूर्ति। पूरण।

वर्द्धक-वि० [सं०] (१) बढ़ानेवाला। पूरक। (२) काटनेवाला। छीलनेवाला।

वर्द्धकी संज्ञा पुं० [सं० वर्द्धकि, वर्द्धकिन्] बढ़ई। लकड़ी का काम करनेवाला।

वर्द्धन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वर्द्धित] (१) बढ़ाना। (२) वृद्धि। बढ़ती। उन्नति। (३) छेदना। काटना। छीलना। तराशना।

वर्द्धमान-वि० [सं०] (१) बढ़ता हुआ। जो बढ़ता जा रहा हो। (२) बढ़नेवाला। वर्द्धनशील।

संज्ञा पुं० (१) एक वर्ण वृत्त जिसके चारो चरणों में वर्णों की संख्या भिन्न होती है; अर्थात् १४, १३, १८ और १५।

विशेष—इसके चारो चरणों में वर्णों की संख्या इस प्रकार होती है—प्रथम चरण—मगण, सगण, जगण, भगण, गुरु, गुरु; द्वितीय चरण—सगण, भगण, जगण, रगण, गुरु; तृतीय चरण—नगण, भगण, सगण, मगण, नगण, सगण; और चतुर्थ चरण—सगण, नगण, नगण, जगण, यगण। यथा—गोविंद पद में जु मित्त चित्त लगैहौ। निहचै यहि भवसिंधु पार जैहौ। असत सकल जग मोह मदहिं सब तज रे। तन मन धन सन भजिए हरि को रे।

(२) मिट्टी का प्याला। सकोरा। (३) जैनियों के २४ वें जिन महावीर का नाम। (४) बंगाल का एक ज़िला और नगर।

वर्द्धयिता-संज्ञा पुं० [सं० वर्द्धयितृ] [स्त्री० वर्द्धयित्री] बढ़ानेवाला।

वर्द्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम जो सतपुरा के पर्वतों से निकलकर गोदावरी में गिरती है। मध्य प्रदेश की अमरावती नगरी इसी नदी के किनारे बसी है।

वर्द्धापन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कर्ण वेध। नाड़ी छेदन। कन-छेदन। (२) महाराष्ट्र देश में अभ्यंगादि क्रिया जो किसी पुरुष की जन्मतिथि को की जाती है।

वर्द्धित-वि० [सं०] (१) बढ़ा हुआ। (२) पूर्ण। (३) छिन्न। कटा हुआ।

वर्द्धीणस-संज्ञा पुं० [सं०] वह सफेद रंग का बकरा जिसके कान नदी में पानी पीते समय पानी में छू जायँ।

वर्द्ध्र-संज्ञा पुं० [सं०] चमड़ा। खाल।

वर्द्धिका, वर्द्धी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चमड़े की रस्सी। पट्टी। (२) एक प्रकार का आभूषण जिसे पट्टी कहते हैं।

वर्ध्म-संज्ञा पुं० [सं० वर्ध्मन्] (१) वह फोड़ा जो जाँघ के मूल में संधिस्थान में निकल आता है। यह फोड़ा कठिन होता है। इसके रोगी को ज्वर आता है, शूल होता है, और वह सुस्त पड़ा रहता है। बद। (२) अंत्रवृद्धि रोग। आँत उतरने का रोग।

वर्म-संज्ञा पुं० [सं० वर्मन्] (१) कवच। बकतर। (२) घर। (३) पित्त पापड़ा। पर्पटक।

वर्मक-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक जनपद का नाम जिसे अब 'बरमा' कहते हैं।

वर्मकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] पित्तपापड़ा। पर्पटक।

वर्मकषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सातला। सप्तला।

वर्महर-वि० [सं०] वर्मधर। कवचधारी।

वर्मा-संज्ञा पुं० [सं० वर्मन्] क्षत्रियों आदि की उपाधि जो उनके नाम के अंत में लगाई जाती है।

वर्मि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

वर्मित-वि० [सं०] कवचधारी। कृतसन्नाह।

वर्य्य-वि० [सं०] (१) प्रधान। (२) श्रेष्ठ।

विशेष—इसका प्रयोग विशेषतः समस्त पदों में होता है। जैसे,—विद्वद्वर्य्य।

संज्ञा पुं० कामदेव।

वर्य्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कन्या। (२) पतिंवरा वधू। (३) अरहर।

वर्व्वट-संज्ञा पुं० [सं०] लोबिया । बोड़ा । बजरबट्टू ।

वर्व्वणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली मक्खी ।

वर्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देश का नाम । (२) इस देश का असभ्य निवासी जिसके बाल घुँघराले कहे गए हैं ।

विशेष—यद्यपि वर्वर देश का उल्लेख महाभारत (भीष्म पर्व) तथा वामन, मार्कण्डेय आदि पुराणों में है, पर यह जनपद कहाँ था, इसका ठीक ठीक पता नहीं । कहीं कहीं वर्वरों के बाल घुँघराले कहे गए हैं । पुराने यूनानी और रोमन भौगोलिकों ने सिंधु नद के मुहाने के आसपास के प्रदेश को बर्बर (Barbarlon) देश कहा है । कुछ भारतीय ग्रंथकारों ने महाराष्ट्र देश के एक विशेष भाग को वर्वर कहा है । वर्वर नाम की एक प्राकृत भाषा का उल्लेख भी 'प्राकृतचन्द्रिका' में है । इसमें संदेह नहीं कि इस जनपद के निवासी असभ्य समझे जाते थे और घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे । पीछे से दूर दूर तक की सभ्य जातियों में यह शब्द 'म्लेच्छ' और 'जंगली' का वाचक हुआ । प्राचीन यूनानी अपनी जाति के लोगों के अतिरिक्त औरों को 'वर्वर' कहा करते थे । रोमनों में भी ऐसा ही था ।

(३) पामर । नीच । (४) घुँघराले बाल । (५) काली वन तुलसी । (६) हिंगुल । ईंगुर । (७) पीला चंदन ।

वर्व्वरक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चंदन । इसका गुण शीतल, कफ, वायु, पित्त, कोढ़, खाज और व्रण तथा रक्त दोष का नाशक और स्वाद कड़ुवा माना गया है ।

पर्या०—वर्व्वरोत्थ । शीत । पित्तारि ।

वर्व्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वन तुलसी ।

वर्व्वरीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भारंगी । (२) वन तुलसी । (३) महाकाल ।

वर्व्वूर-संज्ञा पुं० [सं०] बबूल ।

वर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृष्टि । जलवर्षण । (२) काल का एक मान जिसमें दो अयन और बारह महीने होते हैं । उतना समय जितने में सब ऋतुओं की एक आवृत्ति हो जाती है । संवत्सर । साल ।

विशेष—वर्ष चार प्रकार के होते हैं—सौर, चांद्र, सावन और नाक्षत्र । सौर वर्ष ३६५ दिन, ५ घंटे, ४८ मिनट और ४६ सेकंड का होता है । यह उतना समय है, जितने में पृथ्वी सूर्य्य की एक परिक्रमा पूरी कर लेती है । पृथ्वी के इसी भ्रमण के कारण सूर्य्य का सत्ताईस नक्षत्रों और बारह राशियों गमन दिखाई पड़ता है । लोग कहते हैं कि अब सूर्य्य अमुक नक्षत्र या राशि में है । घूमते समय पृथ्वी की धुरी सीधी न रहकर कुछ टेढ़ी रहती है और उसके मार्ग की कक्षा गोल न होकर अंडाकार होती है । इसी से सूर्य्य कुछ महीनों तक भूमध्यरेखा के उत्तर और कुछ महीनों तक दक्षिण में उदय होता दिखाई पड़ता है । ये दोनों 'उत्तर अयन' और 'दक्षिण अयन' कहलाते हैं । वर्ष में केवल दो दिन सूर्य्य भूमध्य या विषुवत् रेखा पर उदय होता है । इन दोनों को सायन कहते हैं । एक सायन तुला राशि में और दूसरा मेष में होता है । सूर्य्य कर्क राशि में आकर दक्षिण की ओर बढ़ने लगता है और धनु राशि में पहुँचने तक भूमध्यरेखा के दक्षिण ही रहता है । मकर राशि से फिर उत्तर की ओर बढ़ने लगता है और कर्क राशि में पहुँचने तक उत्तर ही रहता है । प्राचीन भारतीय आर्य्यों में राशियों का व्यवहार न था, इससे सौर वर्ष दो अयनों का ही माना जाता था । ग्रहों का उदय राशियों में न माना जाकर २७ नक्षत्रों में माना जाता था । इससे कभी कभी बड़ी अव्यवस्था होती थी । चांद्र वर्ष ३५४ दिन, ८ घंटे, ४८ मिनट और ३६ सेकंड का होता है । इतने काल में चंद्रमा पृथ्वी की बारह परिक्रमाएँ कर लेता है । इस प्रकार सौर वर्ष और चांद्र वर्ष में प्रति वर्ष १० दिन, २१ घंटे का अंतर पड़ता है । हिन्दू पंचांग में यह अंतर प्रति तीसरे वर्ष १३ महीने का वर्ष मानकर दूर किया जाता है । उस बढ़े हुए महीने को 'अधिमास' या 'मलमास' कहते हैं । सावन वर्ष पूरे ३६० दिनों का होता है और उसके महीने तीस तीस दिन के होते हैं । वैदिक काल में सावन मास ही अधिक चलता था और प्रत्येक मास की तिथि की गणना चंद्रमा के ही हिसाब से होती थी । शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमा तक १५ दिन का शुक्ल पक्ष और कृष्ण प्रतिपदा से अमावास्या तक १५ दिन का कृष्ण पक्ष होता था । नाक्षत्र वर्ष ३२४ दिन का और उसका प्रत्येक महीना २७-२७ दिन का होता है । इन चार प्रकार के वर्षों के अतिरिक्त प्राचीन काल में और कई प्रकार के वर्षों का प्रचार था । जैसे,—सप्तर्षि वर्ष ।

(३) पुराण में माने हुए सात द्वीपों का एक विभाग । (४) किसी द्वीप का प्रधान भाग जैसे,—भारतवर्ष । (५) मेघ । बादल ।

वर्षकर-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ ।

वर्षकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] झिल्ली । झींगुर ।

वर्षकाम-वि० [सं०] वृष्टि की कामना रखनेवाला । वृष्टि चाहनेवाला ।

वर्षकामेष्टि-संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ जो वर्षा के लिये किया जाता था ।

वर्षकाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीरा ।

वर्षकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] लाल रंग की पुनर्नवा । लाल गदहपूरना ।

वर्षकोष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दैवज्ञ । ज्योतिषी । (२) माष । उड़द ।

वर्षगाँठ-संज्ञा स्त्री० [हिं० वर्ष + गाँठ] वह कृत्य जो किसी पुरुष के जन्म दिन पर किया जाता है। वि० दे० "बरस गाँठ।
वर्षघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पवन। (२) ग्रहों का वह योग जिससे वर्षा नष्ट हो जाती है।
वर्षण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वर्षित] वृष्टि। बरसना।
वर्षधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल (२) अंतःपुर रक्षक। नपुंसक। खोजा।
वर्षधर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] अंतःपुर-रक्षक। नपुंसक। खोजा।
वर्षप, वर्षपति-संज्ञा पुं० [सं०] वर्ष के अधिपति ग्रह।
विशेष—फलित ज्योतिष में वर्ष प्रवेश होने पर कोई न कोई ग्रह उस वर्ष का अधिपति या राजा माना जाता है। इसी अधिपति के विचार से यह बताया जाता है कि वर्ष शुभ होगा या अशुभ।
वर्षपाकी-संज्ञा पुं० [सं० वर्षपाकिन] आम्रातक। आमड़ा।
वर्षफल-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में जातक के अनुसार वह कुंडली जिससे किसी के वर्ष भर के ग्रहों के शुभाशुभ फलों का विवरण जाना जाता है।
क्रि० प्र०—निकालना।—बनाना।
वर्षांश-संज्ञा पुं० [सं०] महीना।
वर्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह ऋतु जिसमें पानी बरसता है।
विशेष—छः ऋतुओं के हिसाब से सावन और भादों में दो महीने वर्षा ऋतु के माने जाते हैं। पर साधारण व्यवहार में जाड़ा, गरमी और बरसात के हिसाब से वर्षा काल आषाढ़ से कुआर तक चार महीने का लिया जाता है, जिसे चातुर्मास या 'चौमासा' कहते हैं।
पर्य्या०—प्रावृट्। पावस। घनागम। घनाकर।
(२) पानी बरसने की क्रिया या भाव। वृष्टि।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
मुहा०—(किसी वस्तु की) वर्षा होना=(१) बहुत अधिक परिमाण में ऊपर से गिरना। जैसे,—फूलों की वर्षा होना। (२) बहुत अधिक संख्या में मिलना। जैसे,—यहाँ रुपयों की वर्षा होती है।
वर्षाकाल-संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु। बरसात।
वर्षागम-संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु का आगमन। वर्षारंभ।
वर्षाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार वह ग्रह जो संवत्सर के वर्ष का अधिपति हो। वि०दे० "वर्षपति"।
वर्षाप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] चातक। पपीहा।
वर्षाबीज-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।
वर्षाभू-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भेक। दादुर। मेढक। (२) इंद्रगोप। ग्वालिन नाम का कीड़ा। (३) लाल रंग की पुनर्नवा। (४) कीड़े मकोड़े।
वि० वर्षा में उत्पन्न होनेवाला।
वर्षामद-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।
वर्षायस-वि० [सं०] नब्बे बरस से ऊपर की अवस्था का। अति वृद्ध।
वर्षार्चि-संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह।
वर्षाल-संज्ञा पुं० [सं०] फतिंगा। पतंग।
वर्षाहिक-संज्ञा पुं० [सं०] बरसाती साँप जिसमें विष नहीं होता।
वर्षेश-संज्ञा पुं० [सं०] वर्षाधिप। वि० दे० "वर्षपति"।
वर्ष्मा-संज्ञा पुं० [सं० वर्ष्मन्] (१) शरीर। (२) प्रमाण। (३) इयत्ता। (४) जल-रोधक। बाँध।
वर्ह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर का पंख। (२) गठिवन। ग्रंथिपर्णी। (३) पत्र। पत्ता।
वर्हण-संज्ञा पुं० [सं०] पत्र। पत्ता।
वर्हा-संज्ञा पुं० [सं० वर्हस्] (१) अग्नि। (२) दीप्ति। (३) यश। (४) कुश। (५) चित्रक। चीते का पेड़। (६) एक राजा का नाम।
वर्हिषद्-संज्ञा पुं० [सं०] एक पितर का नाम।
वर्ही-संज्ञा पुं० [सं० वर्हिन्] (१) मयूर। मोर। (२) कश्यप के एक पुत्र का नाम। (३) तगर।
वर्लंब-संज्ञा पुं० [सं०] अवलंब। सहारा।
वल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। (२) एक असुर का नाम। यह देवताओं की गौएँ चुराकर एक गुहा में जा छिपा था। इंद्र उस गुहा को छेदकर उसमें से गौओं को छुड़ा लाए थे। फिर वल ने बैल का रूप धारण किया और वह बृहस्पति के हाथ से मारा गया।
वलक-संज्ञा पुं० [सं०] मार्कंडेय पुराणानुसार तामस मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम।
वलद्विप-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।
वलन-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्रानुसार ग्रह, नक्षत्रादि का सायनांश से हटकर चलना। विचलन।
वलनांश-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार अयनांश से किसी ग्रह के वलन अर्थात् हटकर चलने या वक्रगति की दूरी का अंश।
वलभी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह मंडप जो घर के ऊपर शिखर पर बना हो। रावटी। (२) घर की चोटी। (३) छानी। (४) एक पुरानी नगरी जो काठियावाड़ में थी और जिसके खँडहर अब तक मिलते हैं।
विशेष—यहाँ एक प्रसिद्ध राजवंश का राज्य था, जिसके संस्थापक सेनापति भट्टार्क थे।
वलय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंडल। (२) कंकण। (३) चूड़ी। (४) वेष्टन। (५) अठारह प्रकार के गलगंड रोगों में से एक। इसमें कफ के कारण गले के अंदर उस नली में जिसमें से होकर अन्न जल पेट में जाता है, एक गाँठ उत्पन्न हो जाती

है। यह गाँठ ऊँची और बड़ी होती है और अन्न जल के जाने का मार्ग रोक देती है। वैद्य लोग इसे असाध्य मानते हैं। (६) दंड व्यूह का एक भेद।

वलयित-वि० [सं०] वेष्टित। परिवृत्त। घेरा हुआ।

वलवला-संज्ञा पुं० [अ०] उमंग। आवेश।

वलसूदन-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

वलहंता-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

वलाका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बगला।

वलाट-संज्ञा पुं० [सं०] मूँग।

वलाहक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) पर्वत। (३) एक दैत्य का नाम। (४) साँपों की एक जाति जो दर्वीकर के अंतर्गत मानी जाती है। (५) मुस्तक। मोथा। (६) श्रीकृष्ण के रथ के एक घोड़े का नाम। (७) एक नद का नाम। (८) कुश द्वीप के एक पर्वत का नाम।

वलि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रेखा। लकीर। (२) चंदन आदि से बनाई हुई रेखा। (३) सिकुड़न के कारण पड़ी हुई लकीर। झुर्री। (४) पेट के दोनों ओर पेटी के सिकुड़ने से पड़ी हुई रेखा। बल। जैसे,—त्रिवली। (५) देवता को चढ़ाने की वस्तु। (६) राजकर। (७) एक दैत्य जो प्रह्लाद का पौत्र था और जिसे विष्णु ने वामन अवतार लेकर छला था।

विशेष—दे० "बलि"।

(८) श्रेणी। पंक्ति। (९) बवासीर का मस्सा। (१०) छाजन की ओलती। (११) गंधक। (१२) एक प्रकार का बाजा।

वलिक-संज्ञा पुं० [सं०] घर की छत या छाजन की ढाल का अंत जहाँ से पानी गिरता है। ओलती।

वलित-वि० [सं०] (१) बल खाया हुआ। लचका हुआ। (२) झुकाया हुआ। मोड़ा हुआ। (३) परिवृत। आवेष्टित। घेरा हुआ। (४) जिसमें झुर्रियाँ पड़ी हों। जो जगह जगह से झुकड़ा हो। (५) लिपटा हुआ। लगा हुआ। उ०—उरज मलय शैल शील सम सुनि देखि अलक वलित व्याल आशा कर आए हैं।—केशव। (६) आच्छादित। ढका हुआ। उ०—कंटक-कलित तृन वलित वि ध जल।—केशव। (७) युक्त। सहित। उ०—श्री रघुवर के इष्ट अश्रुवलित सीता नयन।—केशव।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग 'कलित' आदि के समान काव्य की भाषा में बहुत अधिक होता है।

संज्ञा पुं० (१) काली मिर्च। (२) नृत्य में हाथ मोड़ने की एक मुद्रा।

वलिमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बानर। (२) गरम दूध में मट्ठा मिलने से उत्पन्न छठा विकार।

वली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) झुर्री। शिकन। (२) अवली। श्रेणी। (३) रेखा। लकीर। (४) चंदन आदि से बनाई हुई लकीर। (५) पेट के दोनों ओर पेटी के सुकड़ने से पड़ी हुई लकीर। जैसे,—त्रिवली।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) मालिक। स्वामी। (२) शासक। हाकिम। अधिपति।

यौ०—वलीअहद।

(३) साधु। फ़क़ीर।

यौ०—वली लंगर = साधु होने का झूठा दावा रखनेवाला। धर्मध्वजी साधु।

वलीअहद-संज्ञा पुं० [अ०] युवराज। टीका। टिकैत।

वलीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर की छत या छाजन की ओलती। (२) सरकंडा। शर।

वलूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पद्ममूल। भिस्सा। भसींड। कमल की जड़। (२) एक प्रकार का पक्षी।

वल्क-संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ों के धड़ और कांड पर का आवरण। वल्कल। छाल।

यौ०—वल्कतरु। वल्कद्रुम।

वल्कतरु-संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी का वृक्ष।

वल्कद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का वृक्ष।

वल्कल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्ष की छाल। पेड़ों के धड़ और कांड पर का आवरण।

पर्य्या०—त्वक्। वल्क। चोच। चोलक। शल्क।

(२) वृक्ष की छाल का वस्त्र, जिसे अरण्यवासी मुनि और तपस्वी पहना करते थे। (३) ऋग्वेद की बाष्कल नामक शाखा।

वल्कला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद रंग का प्रकार का एक पत्थर जिसका गुण शीतल और शांतिकारक माना जाता है। शिलावल्का। (२) तेजबल।

वल्कली-वि० [सं० वल्कलिन्] वल्कल या पेड़ की छाल पहननेवाला। वल्कलधारी।

वल्कलोध्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की लोध। पठानी लोध।

वल्किल-संज्ञा पुं० [सं०] कंटक। काँटा।

वल्गन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़े का कूदते या उछलते हुए चलना। दुलकी। (२) बहुत सी इधर उधर की बातें कहना। बहुत बकना।

वल्गा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लगाम। बाग।

वल्गु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छाग। बकरा। (२) बौद्धों के बोधिद्रुम के चार अधिष्ठाता देवताओं में से एक।

वि० सुंदर। खूबसूरत।

वल्गुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंदन। (२) विपिन। वन। (३) पण। बाज़ी। (४) सौदा।

वि० रुचिर। सुंदर।

वल्गुजंघ-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

वल्गुज–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० वल्गुजा] छाग। बकरा।

वल्गुपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वनमूँग।

वल्गुपोदिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लहसुआ नाम का साग। (२) एक प्रकार की लता।

वल्गुल–संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल। गीदड़।

वल्गुला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बकुची। (२) चमगादड़।

वल्गुलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कत्थई रंग का पतंग जाति का कीड़ा जिसे "तैलपायी" भी कहते हैं। चपड़ा। (२) मंजूषा। झाबा। पिटारा।

वल्गुली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चमगादड़। गादुर। (२) मंजूषा। झाबा। पिटारा।

वल्द–संज्ञा पुं० [अ०] औरस बेटा। पुत्र।

विशेष—किसी मनुष्य के कुल के परिचय के लिये उसके नाम के आगे इस शब्द का व्यवहार करके उसके पिता का नाम रखा जाता है। जैसे,—"गोकुल वल्द बलदेव" अर्थात् 'गोकुल, बेटा बलदेव का'। दस्तावेजों और सरकारी कागज़ों आदि में, जिनकी भाषा उर्दू होती है, इस शब्द का प्रयोग अधिक होता है।

वल्दियत–संज्ञा स्त्री० [अ०] पिता के नाम का परिचय। बाप के नाम का पता। जैसे,—अपनी वल्दियत और सकूनत लिखाओ।

वल्मीक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीमकों का लगाया हुआ मिट्टी का ढेर। बाँबी। बिमौट। (२) वाल्मीकि मुनि। (३) वह मेघ जिस पर सूर्य्य की किरणें पड़ती हों। (४) एक प्रकार का रोग जिसमें त्रिदोष के कारण गले, कंधे, काँख, हाथ, पैर और संधि-स्थानों (जोड़ों) में सूजन हो जाती है, जो क्रमशः गाँठ की तरह कड़ी हो जाती है। इसमें सूई चुभने की सी पीड़ा होती है और पकने पर अनेक छेद हो जाते हैं। यदि आरंभ में ही इसकी चिकित्सा न की जाय, तो यह रोग असाध्य हो जाता है।

वल्मीकशीर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] स्रोतांजन। लाल सुरमा।

वल्ल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक मान जो तीन गुंजा या रत्ती के बराबर तौल में होता है। (वैद्यक में दो गुंजा का एक 'वल्ल' है।) माना गया है। राजनिघंटु डेढ़ घुँघची का ही वल्ल मानता (२) खलियान में भूसा मिले हुए अनाज के दाने को ऊपर से गिराना, जिसमें हवा के जोर से भूसा अलग हो जाय। बरसाना। ओसाना। (३) निषेध। (४) आवरण। (५) सलई का पेड़। (६) चौरा।

वल्लक–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र में रहनेवाला एक प्रकार का जंतु।

वल्लकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वीणा। (२) सलई का वृक्ष।

वल्लभ–वि० [सं०] अत्यंत प्रिय। प्रियतम। प्यारा।

संज्ञा पुं० (१) अत्यंत प्यारा व्यक्ति। प्रिय मित्र। नायक। (२) पति। स्वामी। जैसे,—राधावल्लभ। (३) अध्यक्ष। मालिक। (४) सुंदर लक्षणों से युक्त घोड़ा। (५) एक प्रकार की सेम। (६) वैष्णव-संप्रदाय के प्रवर्त्तक एक प्रसिद्ध आचार्य्य जिनका संप्रदाय वल्लभ संप्रदाय कहलाता है।

विशेष—इनके माता-पिता का पता नहीं। लक्ष्मण भट्ट नामक एक दक्षिणी ब्राह्मण ने चुनारगढ़ के पास एक बालक पड़ा पाया; और उसे अपने घर लाकर पुत्र के समान पाला। फिर वही बालक प्रसिद्ध वल्लभाचार्य्य हुआ। जब तक लक्ष्मण भट्ट जीते रहे, तब तक वल्लभ उन्हीं के पास अध्ययन करते थे। उनके मरने पर ये विष्णुस्वामी के मंदिर में जाकर शिष्य हुए और काशी में आकर संन्यास लिया। संन्यास छोड़कर ये फिर गृहस्थ हो गए थे। इनके कई पुत्र हुए, जो गद्दियों के मालिक गोस्वामी हुए। इन्होंने राधाकृष्ण की बड़ी आडंबरपूर्ण उपासना चलाई और अपना वेदांत संबंधी एक स्वतंत्र सिद्धांत भी स्थापित किया, जो विशुद्धाद्वैत वाद के नाम से प्रसिद्ध है। इस कारण ये वेदांत के चार मुख्य आचार्य्यों में माने जाते हैं। इनका जन्म सन् १४७९ ई० और मृत्यु सन् १५३१ ई० में हुई। सूरदास आदि अष्टछाप के कवि इन्हीं के शिष्य थे।

वल्लभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रिय स्त्री। प्रिय पत्नी। प्यारी जोरू।

वि० स्त्री० प्यारी। प्रिय।

वल्लभाचार्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णव मत के एक प्रसिद्ध आचार्य। वि० दे० "वल्लभ" (६)।

वल्लभी–संज्ञा पुं० दे० "वलभी"।

वल्लरि, वल्लरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वल्ली। लता। (२) मंजरी। (३) मेथी। (४) वच। (५) एक प्रकार का बाजा।

वल्लव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोप। (२) सूतकार। सुआर। रसोइया।

वल्लाह–अव्य० [अ०] ईश्वर की शपथ। सचमुच।

वल्लिकंटकारिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निदमनी। शोला।

वल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लता। (२) बेला। (३) पोई नाम की लता जिसकी पत्तियों का साग बनाकर खाया जाता है।

वल्लिज–संज्ञा पुं० [सं०] मरिच। मिर्च।

वल्लिदूर्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेत दूर्वा। सफेद दूब।

वल्लिशूरण–संज्ञा पुं० [सं०] अत्यम्लपर्णी लता। रामचना। रपट्टुआ।

वल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लता। (२) केवटी मोथा। (३) अग्निदमनी। शोला। (४) काली अपराजिता।

वल्लीज–संज्ञा पुं० [सं०] मिर्च।

वल्लीवृक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] साल वृक्ष।

वल्लुर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुंज। (२) मंजरी। (३) क्षेत्र। (४) निर्जल स्थान। सूखी जगह।

वल्लूर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धूप में सुखाया हुआ मांस। (२) शूकर का मांस। (३) ऊपर। ऊसर। (४) जंगल। (५) वीरान। उजाड़।

वल्वग–संज्ञा पुं० [सं०] आँवला।

वल्वज–संज्ञा पुं० [सं०] ओखली।

वल्वजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तृण या घास।

पर्य्या०—रज्जुपत्री। तृणेक्षु। इक्षुरा। मौंजीपत्री।

विशेष—वैद्यक में यह शीतल, मधुर तथा पित्त, दाह और तृषा को दूर करनेवाली कही गई है।

वल्वल–संज्ञा पुं० [सं०] एक दैत्य जिसे बलराम जी ने मारा था। इल्वल। उ०—राम दिन कइक ता ठौर औरहु रहे, आइ वल्वल तहाँ दियो दिखाई। रुधिर अरु मांस की लाग्यो वर्षा करन, अपि सकल देखि कै गये डराई।—सूर।

वव–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार ग्यारह करणों में एक करण जिसमें जन्म लेनेवाले मनुष्य का बलवान्, धीर, कृती और विचक्षण होना माना जाता है।

वशंवद–वि० [सं०] (१) वशीभूत। वशवर्त्ती। (२) आज्ञाकारी। दास।

वश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इच्छा। चाह। (२) एक व्यक्ति पर दूसरे का ऐसा प्रभाव कि दूसरा उसके साथ जो चाहे कर सके, या उससे जो चाहे करा सके। क़ाबू। इख्तियार। अधिकार। जैसे,—(क) इस समय वह तुम्हारे वश में है; जो चाहो, करा लो। (ख) मैं उसके वश में हूँ; जैसा वह कहेगा, वैसा करूँगा। (ग) उस पर मेरा कोई वश नहीं है।

मुहा०—(किसी का किसी के) वश में होना = (१) अधिकार में होना। काबू में होना। कब्जे में होना। अधीन होना। (२) कहे में होना। आज्ञानुवर्ती होना। दबाव मानना। **किसी पर वश होना** = किसी पर अधिकार होना। किसी पर ऐसा प्रभाव होना कि उसे इच्छानुकूल चलाया जा सके। जैसे,—उस लड़के पर हमारा कोई वश नहीं है। **वश का** = जिस पर अधिकार हो। जो इच्छानुसार चलाया जा सके। अधीन। जैसे,—अब वह सयाना हुआ; हमारे वश का नहीं है।

(३) किसी वस्तु या बात को अपने अनुकूल घटित करने की सामर्थ्य। शक्ति की पहुँच। काबू। जैसे,—(क) जो अपने वश की बात नहीं, उसके लिये शोक क्या? (ख) हार जीत अपने वश की बात नहीं।

मुहा०—वश का = इच्छा के अधीन। वश चलना = शक्ति काम करना। कुछ करने की सामर्थ्य होना। काबू चलना। जैसे,—यदि मेरा वश चलता, तो मैं उसे निकाल देता।

(४) अधीन करने का भाव। अधिकार। कब्जा। प्रभुत्व। उ०—हरि कछु ऐसो टोना जानत। सब के मन अपने वश आनत।—सूर। (५) जन्म। (६) वेश्याओं के रहने का स्थान। चकला।

वशवर्त्ती–वि० [सं० वशवर्तिन्] जो दूसरे के वश में रहे। जो दूसरे के आज्ञानुसार चलता हो। अधीन। ताबे।

वशा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वंध्या स्त्री। बाँझ। (२) स्त्री। पत्नी। (३) गाय। (४) हथिनी। (५) वंध्या गाय। ठाँठ। (६) पति की बहन। ननद।

वशाकु–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया।

वशाढ्यक–संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार। सूँस।

वशानुग–संज्ञा पुं० [सं०] आज्ञाकारी। अधीन। दास।
वि० वशीभूत।

वशिक–वि० [सं०] शून्य।

वशिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] अगर। अगर की लकड़ी।

वशिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अधीनता। ताबेदारी। (२) मोहने की क्रिया या भाव। मोहन।

वशित्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वशता। (२) योग के अणिमादि आठ प्रकार के ऐश्वर्यों में से एक। कहते हैं कि इस सिद्धि से साधक सब को अपने वश में कर लेता है।

वशिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी का पेड़।

वशिमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] योग की आठ सिद्धियों में से एक। वशित्व।

वशिर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र लवण। समुद्री नमक। (२) एक प्रकार का पूरा। (३) एक प्रकार की लाल मिर्च। मिर्चा।

वशिष्ठ–संज्ञा पुं० दे० "वसिष्ठ"।

वशी–वि० [सं० वशिन्] [स्त्री० वशिनी] (१) अपने को वश में रखनेवाला। (२) वश में किया हुआ। काबू में लाया हुआ। अधीन।

वशीकरण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वशीकृत] (१) वश में लाने की क्रिया। (२) मणि, मंत्र या औषध आदि के द्वारा किसी को अपने वश में करने का प्रयोग। अधीन करना।

विशेष—तंत्र में चार प्रकार के प्रयोग कहे जाते हैं—मारण, मोहन, वशीकरण और उच्चाटन। अथर्व वेद में मंत्र सिद्ध करके मणि और औषध द्वारा वश में करने का उल्लेख है।

वशीकार–संज्ञा पुं० [सं०] वश में करना।

वशीकृत–वि० [सं०] (१) किसी प्रकार वश में किया हुआ। (२) मंत्र द्वारा वश में किया हुआ। मंत्रमुग्ध। (३) मोहित। मुग्ध।

वशीभूत–वि० [सं०] (१) वश में आया हुआ। अधीन। ताबे। (२) दूसरे की इच्छा के अधीन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

वश्य-वि० [सं०] (१) वश में आनेवाला । तावे होनेवाला । (२) किसी की इच्छा के अधीन । दूसरे की आज्ञा या कहने में रहनेवाला ।
संज्ञा पुं० (१) दास । सेवक । (२) मातहत । (३) आग्निध्र का पाँचवाँ पुत्र । (मार्कंडेय पुराण)

वश्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वश में होने की अवस्था या भाव । अधीनता ।

वश्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लगाम । (२) नीलापराजिता । (३) गोरोचन ।

वषट्-अव्य० [सं०] एक शब्द जिसका उच्चारण अग्नि में आहुति देते समय यज्ञों में होता है । अंगन्यास और करन्यास में शिखा और मध्यमा के साथ इसका व्यवहार होता है ।

वषट्कार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के उद्देश्य से किया हुआ यज्ञ । होम । होत्र । (२) वेदोक्त तैंतीस देवताओं में से एक ।

वषट्कृत-वि० [सं०] देवताओं के निमित्त अग्नि में डाला हुआ । होम किया हुआ । हुत ।

वषट्कृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] होम ।

वष्कयणी, वष्कयिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बकेना गाय ।

वसंत-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वासंत, वासंतक, वासंतिक, वसंती] (१) वर्ष की छः ऋतुओं में से प्रधान और प्रथम ऋतु जिसके अंतर्गत चैत और वैसाख के महीने माने गए हैं । नई पत्ती लगने और बहुत से फूल फूलने की सुंदर ऋतु । बहार का मौसिम ।

विशेष—प्राचीन वैदिक काल में यह ऋतु चैत और वैसाख में ही पड़ती थी, पर क्रमशः अयन खिसकने से आज कल प्रकृति में कुछ अंतर दिखाई पड़ता है । इसी से पीछे के कुछ ग्रंथों में फागुन और चैत के महीने वसंत ऋतु कहे गए हैं । पर काव्य आदि में परंपरानुसार अब तक चैत और वैसाख ही इस ऋतु के महीने माने जाते हैं । वसंत ऋतु के ये लक्षण कहे गए हैं—पेड़ों में फूल लगना और नई पत्तियाँ आना, शीतल मंद और सुगंधयुक्त वायु चलना, सायंकाल अत्यंत मनोरम होना, और स्त्री पुरुषों का उमंग से भरना । इस ऋतु में प्राचीन काल में वसंतोत्सव और मदन-पूजा होती थी । आज कल होली का उत्सव उसी की परंपरा है । पुराणों में इस ऋतु का अधिष्ठाता देवता कामदेव का सहचर कहा गया है ।

(२) अतीसार रोग । (३) शीतला रोग । विस्फोटक । चेचक । (४) मसूरिका रोग । (५) छः रागों में दूसरा राग । (संगीत)

विशेष—इस राग की उत्पत्ति पंचवक्त्र शिव के पाँचवें मुख से कही गई है । इसकी छः रागिनियाँ ये हैं—देशी, देवगिरी, वैराटी, तोड़िका, ललिता और हिंदोला । कल्लिनाथ के अनुसार छः रागिनियाँ ये हैं—अंधूली, गमकी, पटमंजरी, गौड़केरी, धामकली और देवसाखा । संगीतदामोदर का मत है कि श्रीपंचमी से हरि-शयनी एकादशी तक वसंत राग गा सकते हैं । पर संगीतदर्पण के अनुसार इसे वसंत ऋतु में ही गाना चाहिए । इसका सरगम इस प्रकार है—सा, रि, ग, म, प, ध, नि, सा । कुछ लोग इस राग को हिंडोल राग का पुत्र मानते हैं ।

(६) एक ताल का नाम । (संगीत) (७) फूलों का गुच्छा ।

वसंतक-संज्ञा पुं० [सं०] श्योनाक । सोनापाठी । टेंटू । अरलू ।

वसंतघोषी-संज्ञा पुं० [सं० वसंतघोषिन्] कोकिल ।

वसंतजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वासंती लता । (२) सफेद जुही । (३) वसंतोत्सव ।

वसंततिलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार के फूल का नाम । (२) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में तगण, भगण, जगण, जगण और दो गुरु, इस प्रकार कुल चौदह वर्ण होते हैं । उ०—लाखी ललाम मृदुता अवलोकनीया ।

वसंततिलका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त । दे० "वसंततिलक" ।

वसंतद्रुत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आम का वृक्ष । (२) कोयल । (३) पंचम राग । (४) चैत्र मास ।

वसंतदूती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कोकिला । (२) पाढ़ोली वृक्ष । पाँडरि । पाडर । (३) माधवी लता ।

वसंतपंचमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ महीने की शुक्ल पंचमी । इस दिन वसंत और रति सहित कामदेव की पूजा करने का विधान है और वसंत राग के सुनने का महात्म्य है । इसे श्रीपंचमी भी कहते हैं । इस दिन एकाहार व्रत भी किया जाता है ।

वसंतबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

वसंतभैरवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी का नाम ।

वसंतमहोत्सव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक उत्सव जो प्राचीन काल में वसंत पंचमी के दूसरे दिन कामदेव और वसंत की पूजा के उपलक्ष्य में मनाया जाता था । (२) होलिकोत्सव ।

वसंतमारू-संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं ।

वसंतयात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वसंतोत्सव ।

वसंतवाक-संज्ञा पुं० [सं०] चौदह तालों में से एक । (संगीत दामोदर)

वसंतव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल ।

वसंतसख, वसंतसखा-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

वसंता-संज्ञा पुं० [हिं० वसंत] हरे रंग की एक सुंदर चिड़िया जिसका कंठ और सिर लाल होता है ।

वसंतार्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] विभीतक वृक्ष। बहेड़ा।

वसंती-संज्ञा पुं० [हिं० वसंत] एक रंग जो हलका पीला होता है। सरसों के फूल के रंग का। बसंती।

वि० वसंती रंग का।

विशेष—वसंतोत्सव में इस रंग के कपड़े पहने जाते हैं।

वसंतोत्सव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक उत्सव जो प्राचीन काल में वसंत पंचमी के दूसरे दिन होता था। इसे 'मदनोत्सव' भी कहते थे। इसमें उद्यानों में जाकर लोग वसंत और कामदेव का पूजन करते थे। होली का उत्सव इसी की परंपरा है। (२) होली का उत्सव।

वसअत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) विस्तार। फैलाव। (२) (३) समाई। अँटने की जगह। (४) चौड़ाई। (५) सामर्थ्य। शक्ति। जैसे,—सब काम अपनी वसअत देखकर करना चाहिए।

वसति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वास। रहना। (२) घर। (३) बस्ती। आबादी। (४) जैन साधुओं का मठ। (५) रात। रात्रि।

वसती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वास। रहना। (२) रात। (३) घर।

वसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वस्त्र। (२) ढकने की वस्तु। आवरण। छादन। (३) निवास। (४) स्त्रियों की कमर का एक आभूषण। (५) तेजपत्ता।

वसना-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों की कमर का एक आभूषण।

वसनार्णवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] भूमि। पृथिवी।

वसमा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) नील का पत्ता। (२) खिज़ाब। (३) उबटन। (४) एक प्रकार का छपा कपड़ा जो चाँदी के वर्क लगाकर छापा जाता है।

वसवास-संज्ञा पुं० [अ०] [वि० वसवासी] (१) भ्रम। दुबधा। संदेह। (२) भुलावा। बहकावा। प्रलोभन या मोह। उ०—सरगहु ते बोड निकसे नारद के वसवास।—जायसी।

वसवासी-वि० [अ० वसवास] (१) विश्वास न करनेवाला। संशयात्मा। शक्की। (२) भुलावे में डालनेवाला। बहकानेवाला।

वसह-संज्ञा पुं० [सं० वृषभ, प्रा० वसह] बैल। दि० दे० "वसह"।

वसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेद। (२) चरबी।

वसाकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के धूमकेतु जो पश्चिम में उदय होते हैं और जिनकी पूँछ का विस्तार उत्तर की ओर होता है। ये देखने में स्निग्ध जान पड़ते हैं और इनके उदय से सुभिक्ष होता है।

वसाढ्य, वसाढ्यक-संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार। सूँस।

वसातनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीला गीदम।

वसाति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वसाति नामक जनपद का अधिवासी। (२) इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम। (३) जन्मेजय के एक पुत्र का नाम।

संज्ञा स्त्री० उत्तर के एक जनपद का नाम।

वसापायी-संज्ञा पुं० [सं० वसापायिन्] कुत्ता।

वसापावन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के वैदिक देवता। पशुभाजा।

वसाप्रमेह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मेह रोग जिसमें मूत्र के साथ चरबी मिलकर निकलती है।

विशेष—आधुनिक डाक्टरी चिकित्सा में यह बहुमूत्र का भेद है, जिसमें मूत्र के साथ शरीर का सत निकलता है और रोगी बहुत क्षीण हो जाता है।

वसामूर-संज्ञा पुं० [सं०] एक जनपद का नाम।

वसामेह-संज्ञा पुं० [सं०] वसाप्रमेह।

वसार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इच्छा। (२) वश। (३) अभिप्राय।

वसारोह-संज्ञा पुं० [सं०] कुकुरमुत्ता। खुमी।

वसिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र लवण। (२) गज पिप्पली। (३) लाल रंग का अपामार्ग। लाल चिचड़ा। (४) जलनीम।

वसिष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रचीन ऋषि जिनका उल्लेख वेदों से लेकर रामायण, महाभारत, पुराणों आदि तक में है।

विशेष—वेदों में ये मित्र और वरुण के पुत्र कहे गए हैं। यज्ञस्थल में एक बार उर्वशी को देखकर मित्र और वरुण का वीर्यपात हो गया। वह वीर्य्य एक यज्ञकुंभ में रखा गया। कुंभ से वसिष्ठ और अगस्त्य का जन्म हुआ। 'बृहद्देवता' में लिखा है कि कुंभ के जल में मत्स्य, स्थल में वसिष्ठ और कुंभ में अगस्त्य उत्पन्न हुए थे। ऋग्वेद के अनुसार ये वसिष्ठ गांधार और काबुल की ओर राज्य करनेवाले त्रित्सु वंश के राजा दिवोदास के पौत्र और पिजवन के पुत्र सुदास के पुरोहित थे। सुदास ने इनको बहुत कुछ दान दिया था। एक बार सुदास ने यज्ञ करने के लिये विश्वामित्र को बुलाया इस पर वसिष्ठ बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने अपने अन्य यजमानों "भरतों" के द्वारा विश्वामित्र को बहुत तंग किया। विश्वामित्र तो चले आए; पर सुदास के पुत्रों ने वसिष्ठ के सौ पुत्रों का नाश कर दिया। फिर वसिष्ठ ने "एक-साम" इत्यादि ५० मंत्रों द्वारा यज्ञ करके सौदासों को पराभूत किया।

पुराणों में वसिष्ठ ब्रह्मा के मानस-पुत्र कहे गए हैं। राजा निमि और वसिष्ठ के बीच एक बार झगड़ा हुआ। वसिष्ठ ने निमि को और निमि ने वसिष्ठ को शाप दिया। निमि तप करके शरीर रहित होकर अमर हुए और उनका वंश विदेह कहलाया। वसिष्ठ ने शरीर त्याग कर मित्रावरुण के वीर्य्य से जन्म ग्रहण किया। कामधेनु के लिये वसिष्ठ और विश्वामित्र (जो पहले राजा

थे) से बहुत दिनों तक झगड़ा होता रहा। विश्वामित्र के सौ पुत्रों को वसिष्ठ ने केवल हुंकार से जला दिया था। विश्वामित्र अंत में हारकर ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के लिये तप करने लगे। पुराणों में वसिष्ठ की अनेक पत्नियों के नाम मिलते हैं, जिनमें से अरुंधती कर्दम की कन्या थी; और वसिष्ठ को सब से प्रिय थी। इनकी एक और स्त्री अक्षमाला नीच जाति की थी। किसी और पत्नी से इन्हें शक्ति नामक एक पुत्र हुआ था जो गोत्रकार ऋषि हुआ। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों के द्रष्टा वसिष्ठ हैं। सप्तम मंडल के द्रष्टा ये ही माने जाते हैं।

(२) सप्तर्षि मंडल का एक तारा जिसके पास का छोटा तारा अरुंधती कहलाता है।

वसिष्ठनिह-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वसिष्ठ पुराण-संज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण जिसका उल्लेख देवी भागवत में है। कुछ लोग कहते हैं कि लिंग पुराण ही वसिष्ठ पुराण है।

वसिष्ठप्राची-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक जनपद का नाम।

वसिष्ठशफ-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वसिष्ठसंसर्प-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का संन्यासी।

वसिष्ठसंहिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक स्मृति का नाम।

वसिष्ठसिद्धांत-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक सिद्धांत ग्रंथ।

वसिष्ठाहुश-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वसिष्ठालुपद-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वसिष्ठापवाह-संज्ञा पुं० [सं०] सरस्वती नदी के किनारे का एक प्राचीन स्थान।

विशेष—कथा है कि जब वसिष्ठ और विश्वामित्र के बीच घोर युद्ध हुआ था, तब सरस्वती नदी ने वसिष्ठ को विश्वामित्र से बचाने के लिये इसी स्थान पर छिपा लिया था।

वसीक़ा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) मुसलमानी धर्मशास्त्र के अनुसार वह धन जो विधर्मी या काफ़िर से नक़द रुपए के जुर्माने के तौर पर लिया जाय। (२) वह धन जो इस उद्देश्य से सरकारी खज़ाने में जमा किया जाय कि उसका सूद जमा करनेवाले के संबंधियों को मिला करे अथवा किसी धर्म-कार्य्य, मकान की मरम्मत आदि में लगाया जाय। (३) ऐसे धन से आया हुआ सूद। वृत्ति। (४) वक्फ़ का इकरारनामा।

वसीयत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वह अंतिम आदेश जो विदेश जानेवाला या मरणासन्न पुरुष इस उद्देश्य से करता है कि मेरी अनुपस्थिति में अमुक काम इस प्रकार किया जाय। (२) अपनी संपत्ति के विभाग और प्रबंध आदि के संबंध में की हुई वह व्यवस्था, जो मरने के समय कोई मनुष्य लिख जाता है। विल।

वसीयतनामा-संज्ञा पुं० [अ० वसीयत + फा० नामा] वह लेख जिसके द्वारा कोई मनुष्य यह व्यवस्था करता है कि मेरी संपत्ति का विभाग और प्रबंध मेरे मरने के पीछे किस प्रकार हो। विल।

वसीला-संज्ञा पुं० [अ०] (१) संबंध। (२) आश्रय। सहायता। (३) किसी कार्य्य की सिद्धि का मार्ग। ज़रिया। द्वार। जैसे,—(क) किस वसीले से वह यहाँ आया? (ख) नौकरी के लिये जाता हूँ; कोई वसीला निकल ही आवेगा।

मुहा०—वसीला पैदा करना = (१) किसी कार्य्य की सिद्धि का मार्ग निकालना। सहारा पैदा करना। (२) आमदनी आदि का रास्ता निकालना। वसीला रखना = (१) संबंध रखना। (२) आसरा रखना।

वसुंधरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी। (२) अफलक की कन्या जो सांब से ब्याही थी।

वसु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का एक गण जिसके अंतर्गत आठ देवता हैं।

विशेष – वेदों में वसु शब्द का प्रयोग अग्नि, मरुद्गण, इंद्र, उषा, अश्वी, रुद्र और वायु के लिये मिलता है। वसु को आदित्य भी कहा है। बृहदारण्यक में इस गण में पृथिवी, वायु, अंतरिक्ष, आदित्य, द्यौ, अग्नि, चंद्रमा और नक्षत्र माने गए हैं। महाभारत के अनुसार आठ वसु ये हैं—धर, ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास। श्रीमद्भागवत में ये नाम हैं—द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वास्तु और विभावसु। अग्नि पुराण में आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास वसु कहे गए हैं। भागवत के अनुसार दक्ष प्रजापति की कन्या 'वसु' ने, जो धर्म को ब्याही थी, वसुओं को उत्पन्न किया।

देवी भागवत में कथा है कि एक बार वसुओं ने वसिष्ठ की नंदिनी गाय चुरा ली थी, जिससे वसिष्ठ ने शाप दिया था कि तुम लोग मनुष्य योनि में जन्म लोगे। उसी शाप के अनुसार वसुओं का जन्म शांतनु की पत्नी गंगा के गर्भ से हुआ, जिनमें सात को तो गंगा जनमते ही गंगा में फेंक आई, पर अंतिम भीष्म बचा लिए गए। इसी से भीष्म वसु के अवतार माने जाते हैं।

(२) शब्दों द्वारा संख्या सूचित करने की रीति के अनुसार आठ की संख्या। (३) रत्न। (४) धन। (५) वक वृक्ष। अगस्त का पेड़। (६) अग्नि। (७) रश्मि। किरन। (८) जल। (९) सुवर्ण। सोना। (१०) योक्त्र। जोत। (११) कुबेर। (१२) पीली मूँग। (१३) वृक्ष। पेड़। (१४) शिव। (१५) सूर्य्य। (१६) विष्णु। (१७) मौलसिरी।

वकुल। (१८) साधु पुरुष। सज्जन। (१९) सरोवर। तालाब। (२०) राजा नृग के एक पुत्र का नाम। (२१) छप्पय के हो सकनेवाले भेदों में से ६९ वाँ भेद।

संज्ञा स्त्री० (१) दीप्ति। आभा। (२) वृद्धौषध। (३) दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो धर्म को ब्याही थी और जिससे द्रोण आदि आठ वसुओं का जन्म हुआ था।

वि० (१) जो सब में वास करता हो। (२) जिसमें सब का वास हो।

वसुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँभर नमक। (२) पांशु लवण। रेह। (३) वस्तुक शाक। बथुआ। (४) काला अगर। कृष्णागुरु। (५) क्षार लवण। (६) मदार का वृक्ष। (७) बनहुला वृक्ष। वही मौलसिरी।

वसुकर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] एक मंत्रद्रष्टा ऋषि।

वसुकृत्त–संज्ञा पुं० [सं०] एक मंत्रद्रष्टा ऋषि।

वसुकोश–संज्ञा पुं० [सं०] तालीशपत्र।

वसुक्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक मंत्रद्रष्टा ऋषि का नाम। इस नाम के दो ऋषि हुए हैं। एक इंद्र के गोत्र में उत्पन्न हुए थे; दूसरे वसिष्ठ के गोत्र के थे।

वसुचरण–संज्ञा पुं० [सं०] ठगण के चौथे भेद का नाम जिसके आदि में गुरु और फिर दो लघु होते हैं। (पिंगल)

वसुचारक–संज्ञा पुं० [सं०] सोना।

वसुच्छिद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] महामेदा।

वसुद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुबेर। (२) विष्णु।

वसुदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्कंद माताओं में से एक। (२) पृथ्वी। (३) माली राक्षस की पत्नी जो नर्मदा नाम की गंधर्वी की पुत्री थी। इसके अनल, निल, हर और संपाति नामक चार पुत्र थे, जो विभीषण के अमात्य थे।

वसुदान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विदेहराज के एक पुत्र का नाम। (२) बृहद्रथ के एक पुत्र का नाम।

वसुदामा–संज्ञा पुं० [सं० वसुदामन्] बृहद्रथ के एक पुत्र का नाम।

संज्ञा स्त्री० [सं०] स्कंद माताओं में से एक का नाम।

वसुदेव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) यदुवंशियों के शूर कुल के एक राजा जो श्रीकृष्ण के पिता थे।

विशेष—इनके पिता का नाम देवमीढ़ और माता का मारिषा था। इनके जन्म के समय स्वर्ग में दुंदुभि का शब्द सुनाई पड़ा था, इससे ये 'आनकदुंदुभी' कहलाते थे। ये अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनकी बारह स्त्रियाँ थीं—पौरवी, रोहिणी, मदिरा, धरा, वैशाखी, भद्रा, सुनाम्नी, सहदेवा, शांतिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता और देवकी। इन पत्नियों के अतिरिक्त इनके सुतनु और वड़वा नाम की दो परिचारिकाएँ भी थीं। रोहिणी के गर्भ से बलराम और देवकी के गर्भ से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। वसुदेव की बहन कुंती थीं, जिनसे पांडव उत्पन्न हुए थे।

(२) एक राजा जो पहले वसुभूति का अमात्य था और पीछे उसे मारकर आप राजा हुआ। (३) धनिष्ठा नक्षत्र।

वसुदेवत–संज्ञा पुं० [सं०] धनिष्ठा नक्षत्र।

वसुदेव्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] धनिष्ठा नक्षत्र।

वसुदैवत–संज्ञा पुं० [सं०] धनिष्ठा नक्षत्र।

वसुद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] उदुंबर। गूलर।

वसुधर्मा–संज्ञा पुं० [सं० वसुधर्मन्] महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम।

वसुधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

वि० वसु अर्थात् धन देनेवाला। धनदाता।

वसुधाधर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पर्वत। (२) विष्णु।

वसुधाधिप–संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

वसुधान–संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी।

वसुधार–संज्ञा पुं० [सं०] मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक पर्वत का नाम।

वसुधारा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जैनों की एक देवी का नाम।

पर्य्या०—तारा। नीलसरस्वती। महाश्री। स्वाहा। श्री। जया। अनंता। शिवा। भद्रा। शंखिनी। महातारा। त्रिलोचना। तारिणी।

(२) कुबेर की पुरी, अलका। (३) एक तीर्थ का नाम। (४) नांदीमुख श्राद्ध का अंग एक कृत्य, जिसमें राजा वसु के लिये घी की सात धारें दी जाती हैं। पहले दीवार में चंदन से सात चिह्न बनाए जाते हैं। फिर वेद मंत्र पढ़ते हुए धारें दी जाती हैं। (५) एक नदी का नाम।

वसुधार्मिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्फटिक। बिल्लौर। (२) संगमर्म।

वसुनीत–संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

वसुनीथ–संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

वसुप्रद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) स्कंद के एक अनुचर का नाम। (३) कुबेर।

वसुबंधु–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन बौद्ध आचार्य्य जो महायान शाखा के अनुयायी थे। इन्होंने अनेक ग्रंथ रचे थे, जिनमें से कुछ के अनुवाद चीनी भाषा में भी वर्त्तमान हैं।

वसुभ–संज्ञा पुं० [सं०] धनिष्ठा नक्षत्र।

वसुमती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी। (२) छः वर्णों का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में तगण और सगण होते हैं। उ०—तासों परिहरो। जो है हित खरो। हारी जडुमती। धारी वसुमती।

वसुमना–संज्ञा पुं० [सं० वसुमनस्] पुराणानुसार एक मंत्रद्रष्टा ऋषि का नाम।

वसुमान-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जो उत्तर दिशा में है।

वसुमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक बौद्ध आचार्य्य जो महायान शाखा के अंतर्गत वैभाषिक संप्रदाय के थे। ये काश्मीर के पश्चिम अश्मापरांत देश के निवासी कहे गए हैं।

वसुरक्षित-संज्ञा पुं० [सं०] एक बौद्ध आचार्य्य का नाम।

वसुरात-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

वसुरुच्-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के देवता।

वसुरुचि-संज्ञा पुं० [सं०] एक गंधर्व का नाम।

वसुरूप-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

वसुरेता-संज्ञा पुं० [सं० वसुरेतस्] (१) अग्नि। (२) शिव।

वसुरोधी-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

वसुल-संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

वसुवन-संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार ईशान कोण में स्थित एक देश।

वसुवाह-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

वसुविद्-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

वसुश्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्कंद की अनुचरी एक मातृका का नाम।

वसुश्रुत-संज्ञा पुं० [सं०] अत्रिगोत्री एक ऋषि का नाम।

वसुश्रेष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी।

वसुसारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुबेर की पुरी, अलका।

वसुस्थली-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुबेर की पुरी, अलका।

वसुहंस-संज्ञा पुं० [सं०] वसुदेव के पुत्र एक यादव का नाम। उ०—रथ्यो वीर वसुहंस हंस-दुति हंस-वरन पट। जादव-कुल-अवतंस शत्रु विध्वंसकरन झट।—गोपाल।

वसुहोम-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार अंग देश के एक राजा का नाम।

वसूक-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त का पेड़।

वसूज-संज्ञा पुं० [सं०] अत्रिगोत्री एक ऋषि जो ऋग्वेद के एक सूक्त के द्रष्टा थे।

वसूल-वि० [अ०] (१) पास पहुँचा हुआ। मिला हुआ। प्राप्त। जैसे,—खत का वसूल होना। (२) जो चुका लिया गया हो। जो हाथ में आ गया हो। प्राप्त। लब्ध। जैसे,—लगान वसूल करना। रुपया वसूल करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—वसूल पाना = दूसरे से जो पाना हो, वह मिल जाना।

संज्ञा पुं० दे० "उसूल"।

वसूली-संज्ञा स्त्री० [अ० वसूल] (१) चुकता कराने की क्रिया। दूसरे से रुपया पैसा या वस्तु लेने का काम। प्राप्ति। जैसे,—इन्हें रुपया देते तो हो, पर वसूली में बड़ी दिक्कत होगी। (२) बाकी निकला या चाहता हुआ रुपया लेने का काम। जैसे,—उस गाँव में वसूली शुरू हो गई।

वस्त-संज्ञा पुं० [सं०] बकरा।

संज्ञा स्त्री० दे० "वस्तु"।

वस्तक-संज्ञा पुं० [सं०] कृत्रिम लवण। बनाया हुआ नमक।

वस्तकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] शाल वृक्ष। साखू का पेड़।

वस्तमोदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।

वस्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाभि के नीचे का भाग। पेड़ू। (२) मूत्राशय। (३) पिचकारी।

वस्तिकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] लिंगेंद्रिय, गुदेंद्रिय आदि मार्गों में पिचकारी देने की क्रिया।

वस्तिकुंडलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग जिसमें मूत्राशय में गाँठ सी पड़ जाती है, उसमें पीड़ा तथा जलन होती है और पेशाब कठिनता से उतरता है। गाँठ को दबाने से कभी तो बूँद बूँद करके पेशाब गिरता है, और कभी धार भी निकल पड़ती है। यह रोग असाध्य कहा जाता है। अधिक परिश्रम करने, दौड़कर चलने या चोट लगने से इस रोग की उत्पत्ति कही गई है।

वस्तिवात-संज्ञा पुं० [सं०] एक मूत्र रोग जिसमें वायु बिगड़कर वस्ति (पेड़ू) में मूत्र को रोक देता है।

वस्तिशोधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मदन वृक्ष। मैनफल का पेड़। (२) मदनफल। मैनफल।

वस्तु-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० वास्तव, वास्तविक] (१) वह जिसका अस्तित्व हो। वह जिसकी सत्ता हो। वह जो सचमुच हो। जैसे,—हर कोई वस्तु नहीं। (२) सत्य। (३) वह जिसका नामरूप हो। गोचर पदार्थ। चीज़। जैसे,—घर में बहुत सी वस्तुएँ इधर उधर पड़ी हैं। (४) इतिवृत्त। वृत्तान्त। (५) नाटक का कथन या आख्यान। कथावस्तु।

विशेष—नाटकीय कथावस्तु दो प्रकार की कही गई है—आधिकारिक जिसमें नायक का चरित्र हो, और प्रासंगिक जिसमें नायक के अतिरिक्त और किसी का चरित्र बीच में आ गया हो। वि० दे० "नाटक"।

वस्तुकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बथुआ नाम का साग।

वस्तुज्ञान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु की पहचान। (२) मूल तथ्य का बोध। सत्य की जानकारी। तत्वज्ञान।

वस्तुतः-अव्य० [सं०] यथार्थतः। सचमुच। असल में।

वस्तुनिर्देश-संज्ञा पुं० [सं०] मंगलाचरण का एक भेद जिसमें कथा का कुछ आभास दे दिया जाता है।

वस्तुबल-संज्ञा पुं० [सं०] वस्तु का गुण।

वस्तुवाद-संज्ञा पुं० [सं०] वह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें जगत् जैसा दृश्य है, उसी रूप में उसकी सत्ता मानी जाती है। जैसे,—न्याय और वैशेषिक। यह सिद्धांत अद्वैतवाद का विरोधी है, जिसमें नामरूपात्मक जगत् की सत्ता नहीं मानी जाती।

वस्त्य-संज्ञा पुं० [सं०] बसने की जगह, घर ।
वस्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] कपड़ा ।
वस्त्रकुट्टिम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छाता । (२) खेमा । डेरा ।
वस्त्रग्रंथि-संज्ञा स्त्री० [सं०] नीवी । नाड़ा । इज़ारबंद ।
वस्त्रघर्घरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बाजा ।
वस्त्रप-संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ स्थान जिसका नाम पुराणों में "वस्त्रापथ क्षेत्र" मिलता है । यह आज कल का गिरनार है, जो गुजरात में है ।
वस्त्रपूत-वि० [सं०] कपड़े से छाना हुआ ।
वस्त्रबंध-संज्ञा पुं० [सं०] नीवी ।
वस्त्रभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] रक्तांजन ।
वस्त्रभूषणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मजीठ ।
वस्त्ररंजन-संज्ञा पुं० [सं०] कुसुंभ का वृक्ष ।
वस्त्ररंजनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मजीठ ।
वस्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेतन । (२) मूल्य । (३) वसन । (४) द्रव्य । चीज (५) धन । (६) त्वक् । वल्कल । छाल ।
वस्नक-संज्ञा पुं० [सं०] कटिभूषण । करधनी ।
वस्फ़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) प्रशंसा । स्तुति । (२) गुण । सिफ़त । (३) विशेषता ।
वस्वौकसारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रपुरी । (२) कुबेरपुरी । (३) गंगा । (४) इंद्र नामक नदी ।
वहंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु । (२) बालक ।
वह-सर्व० [सं० सः] (१) एक शब्द जिसके द्वारा दूसरे मनुष्य से बातचीत करते समय किसी तीसरे मनुष्य का संकेत किया जाता है । कर्तृकारक प्रथम पुरुष सर्वनाम । जैसे,—तुम जाओ; वह आता होगा । (२) एक निर्देशकारक शब्द जिससे दूर की या परोक्ष वस्तुओं का संकेत करते हैं । जैसे,—यह और वह दोनों एक ही हैं ।
विशेष—इस अर्थ में यह शब्द संज्ञा के पहले विशेषण की तरह भी आता है । जैसे,—यह आदमी और वह आदमी ।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैल का कंधा । (२) घोड़ा । (३) वायु । (४) मार्ग । पथ । (५) नद ।
वि० बोझ उठाकर ले जानेवाला । वाहक । (समास में)
वहत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैल । (२) पंथ । मार्ग ।
वहतांत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] छागलाक्षी क्षुप ।
विशेष—वैद्यक में यह पौधा कटु तथा कास रोग नाशक और शुक्र वर्द्धक कहा गया है ।
पर्य्या०—वृषगंधा । मेषांत्री । वृषपत्रिका ।
वहति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु । (२) सचिव ।
वहती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाय । (२) नदी ।
वहन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वहनीय, वहमान, वहित] (१) बेड़ा । तरेंदा । (२) खींचकर अथवा सिर या कंधे पर लादकर एक जगह से दूसरी जगह ले जाना । जैसे,—भार वहन करना । रथ वहन करना । (३) कंधे या सिर पर लेना । (४) ऊपर लेना । उठाना । (५) खंभे के नौ भागों में से सब से नीचे का भाग । (वास्तु विद्या)
वहनीय-वि० [सं०] (१) उठा या खींचकर ले जाने योग्य । (२) ऊपर लेने योग्य ।
वहम-संज्ञा पुं० [अ०] (१) बिना संकल्प के चित्त का किसी बात पर जाना । मिथ्या धारणा । झूठा ख़याल । (२) भ्रम । (३) व्यर्थ की शंका । मिथ्या संदेह । फ़जूल शक । जैसे,—वहम की तो कोई दवा ही नहीं ।
वहमी-वि० [अ० वहम] वृथा संदेह द्वारा उत्पन्न । भ्रम-जन्य । (२) झूठे ख़याल में पड़ा रहनेवाला । (३) वहम करनेवाला । जो व्यर्थ संदेह में पड़े । किसी बात के संबंध में जो व्यर्थ भला बुरा सोचे । संशयात्मा ।
वहल-संज्ञा पुं० [सं०] नौका । नाव ।
वि० दृढ़ । मजबूत ।
वहलगंध-संज्ञा पुं० [सं०] शंबर चंदन ।
वहलचक्षु-संज्ञा पुं० [सं० वहलचक्षुस्] मेढ़ासींगी । मेषशृंगी ।
वहलत्वच्-संज्ञा पुं० [सं०] लोध ।
वहला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शतपुष्पा । (२) बड़ी इलायची । (३) दीपक राग की एक रागिनी का नाम ।
वहशत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) जंगलीपन । असभ्यता । बर्बरता । (२) उजड्डपन । (३) पागलपन । बावलापन । (४) चित्त की चंचलता । अधीरता । (५) विकलता । घबराहट । (६) चहल-पहल या रौनक न होना । सन्नाटापन । उदासी । (७) डरावनापन ।
मुहा०—वहशत उछलना = (१) सनक होना । खब्त होना । (२) धुन होना । वहशत बरसना = (१) उदासी छाना । करुणा या दुःख का भाव प्रकट होना । रौनक न रहना । (२) जंगलीपन प्रकट होना ।
वहशी-वि० [अ०] (१) जंगल में रहनेवाला । जंगली । (२) जो पालतू न हो । जो आदमियों में रहना न जानता हो । (३) असभ्य । (४) भड़कनेवाला ।
वहाँ-अव्य० [हिं० वह] उस जगह । उस स्थान पर ।
विशेष—जैसे,—"यहाँ" का प्रयोग पास के स्थान के लिये होता है, वैसे ही इस शब्द का प्रयोग दूर के स्थान के लिये होता है ।
वहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी ।
वहाबी-संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों का एक संप्रदाय जो अब्दुल वहाब नजदी का चलाया हुआ है ।
विशेष—अब्दुलवहाब अरब के नज्द नामक स्थान में उत्पन्न हुआ था । यह मुहम्मद साहब के सर्वोच्च पद को अस्वीकार

करता था। इस मत के अनुयायी किसी व्यक्ति या स्थान विशेष की प्रतिष्ठा नहीं करते। अब्दुलवहाब ने अनेक मसजिदों और पवित्र स्थानों को गिराया और मुहम्मद साहब की क़ब्र को भी खोदकर फेंक देना चाहा था। इस मत के अनुयायी अरब और फ़ारस में अधिक हैं।

वहिः-अव्य० [सं०] जो अंदर न हो। बाहर।

विशेष—हिंदी में इस शब्द का प्रयोग अकेले नहीं होता, समस्त रूप में होता है। जैसे,—वहिर्गत। वहिष्कार। वहिरंग इत्यादि।

वहित्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] नौका। नाव।

वहिरंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर का बाहरी भाग। देह का बाहरी हिस्सा। (२) ऊपर या बाहर का हिस्सा। बाहरी भाग। अंतरंग का उलटा। (३) वह जो किसी वस्तु के भीतरी तत्व को न जानना चाहता हो। (४) आगंतुक पुरुष। कहीं बाहर से आया हुआ आदमी। (५) वह मनुष्य जो अपने दल या मंडली का न हो। बाहरी आदमी। (६) पूजा में वह कृत्य जो आदि में किया जाय।

वि० (१) ऊपर ऊपर का। बाहर का। जो अंतरंग न हो। बाहरी। (२) जो सार रूप न हो। जो भीतरी तत्व न हो। (३) अनावश्यक। फालतू।

वहिरिंद्रिय-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कर्मेंद्रिय। (२) बाह्यकरण मात्र। कर्मेंद्रिय और ज्ञानेंद्रिय।

वहिर्गत-वि० [सं०] जो बाहर गया हो। निकला हुआ। बाहर का।

वहिर्देश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाहर का स्थान। (२) विदेश। (३) अज्ञात स्थान। (४) द्वार। दरवाज़ा।

वहिर्द्वार-संज्ञा पुं० [सं०] बाहरी फाटक। सदर फाटक। तोरण।

वहिर्ध्वजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

वहिर्भूत-वि० [सं०] वहिर्गत।

वहिर्मुख-वि० [सं०] विमुख।

वहिर्योग-संज्ञा पुं० [सं०] हठयोग।

वहिर्लंब-संज्ञा पुं० [सं०] रेखा-गणित में वह लंब जो किसी क्षेत्र के बाहर बढ़ाए हुए आधार पर गिराया जाता है।

वहिर्लापिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कोई ऐसा टेढ़ा वाक्य या प्रश्न जिसका उत्तर बतलाने के लिये श्रोता से कहा जाय। पहेली।

विशेष—पहेलियाँ दो प्रकार की होती हैं। जिनके उत्तर का शब्द पहेली के वाक्य के अंदर ही रहता है, उसे अंतर्लापिका कहते हैं। और जिनके उत्तर का पूरा शब्द पहेली के अंदर नहीं होता, वे वहिर्लापिका कहलाती हैं। जैसे,—"मारो काह सज्जन को? कौन शंभु-वाहन है? का को सुख होत है? काकी माल शिव धारो है?। कहा गज बंधन? दर्याले दग का के अति? कौन हरपुत्र? सीपसुत को सुप्यारो है। शोभा को सुनाम का है, कृष्ण नल धारो कहा? सिंधु से मिलत कौन? काह अनियारो है?। उत्तर के वर्णन में आदि अंत छाँड़ि दीजै, मध्य लीजै सो हिये मनोरथ हमारो है।"

इन प्रश्नों के उत्तर क्रमशः ये होंगे—(१) सयाने। (२) बरद। (३) सुकृती। (४) कपाल। (५) साँकल। (६) हरिणी। (७) गनेश। (८) मुक्ता। (९) पानिप। (१०) पहाड़। (११) सरिता। (१२) नयन। इन शब्दों के मध्याक्षर लेने से यह उत्तर वाक्य निकलता है।—"यार! कृपा करि नेक निहारिय"।

वहिश्चर-संज्ञा पुं० [सं०] केकड़ा।

वहिष्करण-संज्ञा पुं० [सं०] बाहर की इंद्रियाँ। पाँच ज्ञानेंद्रियाँ और पाँच कर्मेंद्रियाँ। बाह्येंद्रिय। (मन या अन्तःकरण को भीतर की इंद्रिय कहते हैं।)

वहिष्कृत-वि० [सं०] (१) निकाला हुआ। बाहर किया हुआ। (२) अलग किया हुआ। त्यागा हुआ। त्यक्त।

वहिष्ठ-वि० [सं०] अधिक भार उठानेवाला।

वहिष्प्राण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीवन। (२) श्वास वायु। (३) अर्थ।

वहीं-अव्य० [हिं० वहाँ+ही] उसी स्थान पर। उसी जगह।

विशेष—जब वहाँ शब्द पर ज़ोर होता है, तब "ही" लगने के कारण उसका यह रूप हो जाता है।

वही-सर्व० [हिं० वह+ही] (१) उस तृतीय व्यक्ति की ओर निश्चित रूप से संकेत करनेवाला सर्वनाम, जिसके संबंध में कुछ कहा जा चुका हो। पूर्वोक्त व्यक्ति। जैसे,—(क) यह वही आदमी है जो कल आया था। (२) निर्दिष्ट व्यक्ति। अन्य नहीं। जैसे,—जो पहले वहाँ पहुँचेगा, वही इनाम पावेगा।

वहीरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रक्तवाहिनी नाड़ियों का एक वर्ग। शिरा। (२) स्नायु। (३) मांसपेशी। पुट्ठा।

वहूदक-संज्ञा पुं० [सं०] चार प्रकार के संन्यासियों में से एक।

विशेष—सूत-संहिता के अनुसार कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस ये चार प्रकार के संन्यासी कहे गए हैं। बहूदकों के लिये यह नियम है कि वे एक घर से पूरी भिक्षा न ग्रहण करें, सात घरों से लें। उन्हें अपने साथ में गाय की पूँछ के रोमों से बँधा हुआ त्रिदंड, शिक्य, जलपूर्ण पात्र, कौपीन, कमंडलु, कंथा, पादुका, छत्र, रुद्राक्ष की माला, योगपट्ट, खनित्र और कृपाण रखना चाहिए। मरने पर बहूदक संन्यासी जल में डुबाए जाते हैं।

वहि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) कृष्ण के एक पुत्र का नाम, जो मित्रविंदा से उत्पन्न हुआ था। (३) तुर्वसु के पुत्र का नाम। (४) कुक्कुर वंशी एक यादव का नाम। (५)

चित्रक। चीता। (६) भिलावाँ। (७) तीन की संख्या। (८) राम की सेना के सेनापति एक बंदर का नाम।

वह्निकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विद्युत्। बिजली। (२) जठराग्नि। (३) चकमक। पथरी।

वह्निकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] धौ का फूल।

वह्निकुमार-संज्ञा पुं० [सं०] भुवनपति देवगण में से एक।

वह्निगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] बाँस।

वह्निचक्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कलिहारी या कलियारी नाम का विष।

वह्निज्वाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] धव का पेड़।

वह्निदीपक-संज्ञा पुं० [सं०] कुसुंभ का वृक्ष।

वह्निदीपिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।

वह्निनाम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चित्रक। चीते का पेड़। (२) भिलावाँ।

वह्निनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

वह्निपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] धव का वृक्ष।

वह्निबीज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ण। सोना।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के कृष्णजन्म खंड में स्वर्ण की उत्पत्ति की कथा यह है। स्वर्ग की सभा में एक बार सब देवता बैठे हुए थे और रंभा नाच रही थी। रंभा को देखकर अग्नि देव काम पीड़ित हुए और उनका वीर्य्य गिरा, जिसे उन्होंने लज्जावश कपड़े से ढाँक लिया। कुछ दिनों पीछे वह वीर्य्य दमकती हुई धातु होकर वस्त्र भेदकर नीचे गिरा, जिससे सुवर्ण की उत्पत्ति हुई।

(२) तंत्र में "रं" बीज।

वह्निभूतिक-संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी।

वह्निभोग-संज्ञा पुं० [सं०] घी।

वह्निमंथ-संज्ञा पुं० [सं०] गनियारी का पेड़। अग्निमंथ वृक्ष। अँगेथू का पेड़।

वह्निमंथन-संज्ञा पुं० [सं०] गनियारी का पेड़।

वह्निमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

वह्निमुख-संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

विशेष—यज्ञ की अग्नि में डाला हुआ भाग देवताओं को पहुँचता है; इसी से वे वह्निमुख कहलाते हैं।

वह्निरेता-संज्ञा पुं० [सं० वह्निरेतस्] शिव।

वह्निलोह-संज्ञा पुं० [सं०] ताम्र। ताँबा।

वह्निलोहक-संज्ञा पुं० [सं०] काँसा।

वह्निवक्त्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कलिहारी या कलियारी नाम का विष।

वह्निशिखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कलिहारी या कलियारी नाम का विष। (२) धव का पेड़। (३) कुंकुम नाम का क्षुप। प्रियंगु। (४) गज पिप्पली। गजपीपल।

वह्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वाहन। यान। (२) शकट। गाड़ी।

वह्याक-संज्ञा पुं० [सं०] उठाकर ले जानेवाला। वाहक।

वाँ-अव्य० [हिं० वहाँ का संक्षिप्त रूप] उस जगह। उस स्थान पर।

वांछनीय-वि० [सं०] (१) चाहने योग्य। (२) जिसकी इच्छा हो।

वांछा-संज्ञा स्त्री० [सं० वाञ्छा] [वि० वांछित, वांछनीय] इच्छा। अभिलाषा। चाह।

विशेष—सिद्धांतमुक्तावली के अनुसार वांछा नामक आत्मवृत्ति दो प्रकार की होती है। एक उपाय-विषयिणी, दूसरी फल-विषयिणी। फल का अर्थ है—सुख की प्राप्ति और दुःख का न होना। जिस वांछा का कारण फलज्ञान हो, अर्थात् जो वांछा इस रूप में हो कि अमुक सुख मुझे मिले, वह फलविषयिणी है। जो वांछा किसी ऐसे उपाय के संबंध में हो, जिससे इष्ट साधन हो, वह उपाय-विषयिणी है।

वांछित-वि० [सं०] अभिलषित। इच्छित। चाहा हुआ। जिसकी इच्छा हो।

वांत-संज्ञा पुं० [सं०] वमन। उलटी। कै।

वांताद-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

वांताशी-वि० [सं०] वमन खानेवाला।

संज्ञा पुं० (१) कुत्ता। (२) वह ब्राह्मण जो भोजन के लिये अपने कुल या गोत्र की प्रशंसा करे।

वांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वमन। वांत। कै।

वांतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

वांतिकृत-संज्ञा पुं० [सं०] मदनफल वृक्ष। मैनफल का पेड़।

वांतिदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

वांतिशोधनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीरक। जीरा।

वाःकिटि-संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार। सूँस।

वाःपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] लवंग। लौंग।

वा-अव्य० [सं०] विकल्प या संदेहवाचक शब्द। या। अथवा।

🕸️ सर्व० [हिं० वह] ब्रज भाषा में प्रथम पुरुष का वह एकवचन रूप जो कारक चिह्न लगने के पहले उसे होता है। जैसे,—वाने, वाकों, वासों इत्यादि। उ०—दई देह वाके परस वाहि दृगन ही देखि।—बिहारी।

वाइ🕸️-सर्व० दे० "वाहि"। उ०—नैन कमल ज्यौं लगत है कमल लगत है वाइ। कमल काल सजन दियो दोनों एक सुभाइ।—रसनिधि।

वाइदा-संज्ञा पुं० [अ०] दे० "वादा"।

वाइस चान्सलर-संज्ञा पुं० [अं०] विश्वविद्यालय का वह ऊँचा अधिकारी जो चान्सलर के सहायतार्थ हो और उसकी अनुपस्थिति में उसके सारे कामों को उसी की भाँति कर सकता हो।

वाइसराय-संज्ञा पुं० [अं०] हिंदुस्तान का वह सर्वप्रधान शासक

अधिकारी जो सम्राट् के प्रतिनिधि स्वरूप वहाँ रहता है। बड़ा लाट।

वाक्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वाणी। वाक्य। (२) सरस्वती। (३) बोलने की इंद्रिय।

वाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बगलों का समूह। (२) वाक्य। (३) वेद का एक भाग। (४) खेत की वह कूत जो बिना खेत नापे की जाती है।
वि० बक संबंधी। बगलों का।

वाक़ई-वि० [अ०] ठीक। यथार्थ। सच। वास्तव। जैसे,—जो कुछ कहता हूँ, वह वाक़ई कहता हूँ।
अव्य० सचमुच। यथार्थ में। वास्तव में। जैसे,—क्या आप वाक़ई वहाँ गए थे?

वाक़या-संज्ञा पुं० [अ०] (१) कोई बात जो घटित हो। व्यापार-संयोग। घटना। (२) वृत्तांत। समाचार।
यौ०—वाक़या नवीस = मुसलमानी साम्राज्य में वह कर्मचारी जिसका कार्य्य इतिहास के रूप में घटनाओं को लिखना होता था।

वाक़ा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) होनेवाला। घटनेवाला।
मुहा०—वाक़ा होना = घटना के रूप में उपस्थित होना। घटित होना।
(२) स्थित। खड़ा। प्रतिष्ठित। जैसे,—यह मकान दरिया के किनारे वाक़ा है।

वाकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक देवी का नाम।

वाक़िफ़-वि० [अ०] (१) जानकार। ज्ञाता। जैसे,—मैं इस बात से वाक़िफ़ न था। (२) बात को समझने बूझनेवाला। बातों की जानकारी रखनेवाला। अनुभवी। जैसे,—किसी वाक़िफ़ आदमी को इंतज़ाम के लिये भेजना चाहिए।

वाक़िफ़कार-वि० [अ० वाक़िफ़ + फ़ा० कार] काम को समझने बूझनेवाला। जो अनाड़ी न हो। कार्य्याभिज्ञ।

वाकुची-संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची।

वाकोवाक-संज्ञा पुं० [सं०] कथोपकथन। बातचीत।

वाकोवाक्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) परस्पर कथोपकथन। बातचीत। (२) परस्पर तर्क। (३) तर्क विद्या।
विशेष—छांदोग्योपनिषद् में नारद ने सनत्कुमारों से अपनी जिन जिन विद्याओं के ज्ञाता होने की बात कही थी, उनमें "वाक्योवाक्य" विद्या भी थी।

वाक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] चरक के अनुसार एक प्रकार का पक्षी।

वाक्चपल-वि० [सं०] (१) बहुत बातें करनेवाला। बातें करने में तेज़। मुँहज़ोर। (२) मदमदिया।

वाक्छल-संज्ञा पुं० [सं०] न्यायशास्त्र के अनुसार छल के तीन भेदों में से एक।
विशेष—जब वक्ता के साधारण रूप से कहे हुए कथन में दूसरे पक्ष द्वारा अभिप्रेत अर्थ से अन्य अर्थ की कल्पना उसे केवल चक्कर में डालने के लिये की जाती है, तब वाक्छल कहा जाता है। जैसे,—वक्ता ने कहा,—"यह बालक नव कंबल है।" अर्थात् नए कंबलवाला है। इसका प्रतिवादी यदि यह अर्थ लगावे कि इस बालक के पास संख्या में नौ कंबल हैं, और कहे—"नौ कंबल कहाँ हैं, एक ही तो है।" तो यह वाक्छल होगा।

वाक्पटु-वि० [सं०] बात करने में चतुर। वाकुशल।

वाक्पति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहस्पति। (२) विष्णु। (३) अनवद्य वचन। पटु वाक्य। निर्दोष बात।

वाक्पतिराज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक कवि जो राजा यशोवर्म्मा के आश्रित थे। इन्होंने प्राकृत में गौड़वहो (गौड़वध) नामक काव्य की रचना की है। ये भवभूति के सम सामयिक थे। (२) मालवा का एक परमार राजा जो सीयक का पुत्र था। (इस नाम का एक और राजा हुआ है।)

वाक्पारुष्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वचन की कठोरता। बात का कटुभाषण। मुँहज़ोरी। (२) धर्मशास्त्रानुसार किसी की जाति, कुल इत्यादि के दोषों को इस प्रकार ऊँचे स्वर से कहना कि उससे उद्वेग उत्पन्न हो।

वाक्फ़ियत-संज्ञा स्त्री० [अ०] जानकारी। परिज्ञान।

वाक्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह पद समूह जिससे श्रोता को वक्ता के अभिप्राय का बोध हो। वाक्य में कम से कम कर्त्ता, जो संज्ञा या सर्वनाम होता है, और क्रिया का होना आवश्यक है।
विशेष—नैयायिकों और अलंकारियों के अनुसार वाक्य में (१) आकांक्षा, (२) योग्यता और (३) आसत्ति होनी चाहिए। "आकांक्षा" का अभिप्राय यह है कि शब्द यों ही रखे हुए न हों; वे मिलकर किसी एक तात्पर्य का बोध कराते हों। जैसे,—कोई कहे—"मनुष्य चारपाई पुस्तक" तो यह वाक्य न होगा। जब वह कहेगा—"मनुष्य चारपाई पर पुस्तक पढ़ता है।" तब वाक्य होगा। "योग्यता" का तात्पर्य यह है कि पदों के समूह से निकला हुआ अर्थ असंगत या असंभव न हो। जैसे,—कोई कहे—"पानी में हाथ जल गया" तो यह वाक्य न होगा। "आसत्ति" का मतलब है सामीप्य या निकटता। अर्थात् तात्पर्य बोध करानेवाले पदों के बीच देश या काल का व्यवधान न हो। जैसे,—कोई यह न कह कर कि "कुत्ता मारा, पानी पिया" यह कहे—"कुत्ता पिया मारा पानी" तो इसमें आसत्ति न होने से वाक्य न बनेगा; क्योंकि "कुत्ता" और "मारा" के बीच "पिया" शब्द का व्यवधान पड़ता है। इसी प्रकार यदि कोई "पानी" सबेरे कहे और "पिया" शाम को कहे, तो इसमें काल संबंधी व्यवधान होगा।

वाक्यकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक की बात दूसरे से कहनेवाला। दूत। (२) बातें बनानेवाला।

वाक्यभेद-संज्ञा पुं० [सं०] मीमांसा के एक ही वाक्य का एक ही काल में परस्पर विरुद्ध अर्थ करना।

वाक्यैकवाक्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] मीमांसा के अनुसार एक वाक्य को दूसरे वाक्य से मिलाकर उसके सुसंगत अर्थ का बोध कराना।

वाक्संयम-संज्ञा पुं० [सं०] वाणी का संयम। अन्यथा बात न कहना। व्यर्थ बातें न करना।

वाक्सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वाणी की सिद्धि; अर्थात् इस प्रकार की सिद्धि या शक्ति कि जो बात मुँह से निकले, वह ठीक घटे।

वागर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वारक। (२) शाण। सान। (३) निर्णय। (४) वृक। भेड़िया। (५) पंडित। (६) मुमुक्षु। (७) निर्भय। निडर।

वागा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वल्गा। लगाम।

वागारु-संज्ञा पुं० [सं०] आशा देकर निराश करनेवाला। आसरे में रखकर पीछे धोखा देनेवाला। विश्वासघाती।

वागाशनि-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

वागीश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहस्पति। (२) ब्रह्मा। (३) वाग्मी। कवि।

वि० अच्छा बोलनेवाला। वक्ता।

वागीशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

वागीश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहस्पति। (२) ब्रह्मा। (३) मंजुघोष बोधिसत्व। (४) कवि।

वि० अच्छा बोलनेवाला। सद्वक्ता।

वागीश्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

वागुंजार-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली। (सुश्रुत)

वागुजी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची नाम की ओषधि।

वागुण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमरख। (२) बैंगन। भंटा।

वागुरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मृगों के फँसाने का जाल।

वागुरिक-संज्ञा पुं० [सं०] हिरन फँसानेवाला शिकारी। मृगव्याध।

वागुलि संज्ञा पुं० [सं०] डिब्बा। पानदान।

वागुलिक-संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं का वह सेवक जिसका काम उनको पान खिलाना होता है। खवास।

वागुद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि जो गुड़ चुराता है, वह दूसरे जन्म में वागुद पक्षी होता है।

वागुलि-संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं का वह खवास जो उनको पान खिलाता है।

वाग्जाल-संज्ञा पुं० [सं०] बातों की लपेट। बातों का आडम्बर या भरमार।

वाग्दंड-संज्ञा पुं० [सं०] भला बुरा कहने का दंड। मौखिक दंड। डाँट डपट। फिटकार।

वाग्दत्त-वि० [सं०] मुँह से दिया हुआ। वचनों द्वारा प्रदान किया हुआ। जिसे दूसरे को देने के लिये कह चुके हों।

वाग्दत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जिसके विवाह की बात किसी के साथ ठहराई जा चुकी हो, केवल विवाह संस्कार होने को बाकी हो।

विशेष—पूर्व काल में प्रथा थी कि कन्या का पिता जामाता के पास जाकर कहता था कि मैं अपनी कन्या तुम्हें दूँगा। आजकल इस प्रकार तो नहीं कहा जाता; पर बरच्छा या फलदान का टीका चढ़ाया जाता है।

वाग्दल-संज्ञा पुं० [सं०] ओष्ठाधर। ओठ।

वाग्दान-संज्ञा पुं० [सं०] कन्या के पिता का किसी से जाकर यह कहना कि मैं अपनी कन्या तुम्हें ब्याहूँगा।

विशेष—प्राचीन काल में कन्या का पिता जिसे उत्तम वर समझता था, उसके पास जाकर कहता था—"मैं अपनी कन्या तुम्हें दूँगा"। यही कथन वाग्दान कहलाता था।

वाग्दुष्ट-वि० [सं०] (१) परुषभाषी। कटुभाषी। (२) जिसे किसी ने शाप दिया हो। जिसे किसी ने कोसा हो। अभिशप्त।

वाग्देवता-संज्ञा पुं० [सं०] वाणी। सरस्वती।

वाग्देवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती। वाणी।

वाग्देवत्यचरु-संज्ञा पुं० [सं०] वह चरु जो सरस्वती के उद्देश्य से पकाया गया हो।

वाग्दोष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बोलने की त्रुटि। जैसे,—वर्णों का ठीक उच्चारण न करना इत्यादि। (२) व्याकरण संबंधी त्रुटियाँ या दोष। (३) निंदा या गाली।

वाग्भट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अष्टांगहृदय संहिता नामक वैद्यक के ग्रंथ के रचयिता जिनके पिता का नाम सिंहगुप्त था। (२) पदार्थचंद्रिका, भावप्रकाश, रसरत्न-समुच्चय, शास्त्रदर्पण आदि के रचयिता। (३) वैद्यक निघंटु के रचयिता। (४) एक जैन पंडित जिनके पिता का नाम नेमिकुमार था। इनके रचे अलंकारतिलक, वाग्भटालंकार, और छंदानुशासन प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

वाग्मी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वाचाल। अच्छा वक्ता। (२) पंडित। (३) बृहस्पति। (४) एक पुरुवंशी राजा।

वाग्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) परिमित-भाषी (२) निर्वेद।

वाग्यमन-संज्ञा पुं० [सं०] वाणी का संयम। बोलने में संयम।

वाग्वज्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कठोर वाक्य। (२) शाप।

वाग्वादिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

वाग्विदग्ध-वि० [सं०] (१) पंडित। (२) बातचीत करने में चतुर।

वाग्विलास-संज्ञा पुं० [सं०] आनंदपूर्वक परस्पर संभाषण। आनंदपूर्वक बात-चीत करना।

वाग्वैदग्ध्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बात करने की चतुरता। (२) सुंदर अलंकार और चमत्कारपूर्ण उक्तियों की निपुणता।

विशेष—काव्य में वाग्वैदग्ध्य की प्रधानता मानते हुए भी काव्य की आत्मा रस ही कहा गया है। अग्नि पुराण में स्पष्ट लिखा है—"वाग्वैदग्ध्य प्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्"।

वाग्मती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जो नैपाल में है और आजकल "बागमती" कहलाती है।

विशेष—वराह पुराण (गोकर्ण माहात्म्य) में इस नदी को अत्यंत पवित्र,गंगा से भी पवित्र, कहा है और इसमें स्नान करने तथा इसके किनारे मरने से विष्णुलोक की प्राप्ति बतलाई है।

वाङ्मय-वि० [सं०] (१) वाक्यात्मक। वचन-संबंधी। (२) वचन द्वारा किया हुआ। जैसे,—वाङ्मय पाप।

विशेष—वचनों द्वारा किए हुए पाप चार प्रकार के कहे गए हैं—पारुष्य, अनृत, पैशुन्य और असंबद्ध प्रलाप।

(३) जो पठन-पाठन का विषय हो।

संज्ञा पुं० गद्य-पद्यात्मक वाक्य आदि जो पठन-पाठन का विषय हों। साहित्य।

वाङ्मयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

वाङ्मुख-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गद्य काव्य। उपन्यास।

वाचंयम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुनि। (२) मौन व्रत धारण करनेवाला पुरुष। मौनी।

वाच्-संज्ञा स्त्री० [सं०] वाचा। वाणी। वाक्य।

वाच-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मछली।

वॉच-संज्ञा स्त्री० [सं०] जेब में रखने की या कलाई पर बाँधने की छोटी घड़ी।

वाचक-वि० [सं०] बतानेवाला। कहनेवाला। द्योतक। सूचक। बोधक। जैसे,—उपमावाचक शब्द। लिंगवाचक प्रत्यय।

संज्ञा पुं० वह जिससे किसी वस्तु का अर्थ बोध हो। नाम। संज्ञा। संकेत।

वाचकधर्मलुप्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह उपमा जिसमें वाचक शब्द और सामान्य धर्म का लोप हो। उ०—ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सब सुतवधू देवसरि-वारी।—तुलसी।

वाचकलुप्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का उपमालंकार जिसमें उपमावाचक शब्द का लोप होता है। जैसे,—नील सरोरुह स्याम, तरुण अरुण बारिज नयन।—तुलसी।

वाचकोपमानधर्मलुप्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह उपमा जिसमें वाचक शब्द, उपमान और धर्म तीनों लुप्त हों, केवल उपमेय भर हो। जैसे,—जेहि बर बाजि राम असवारा। तेहि सारदौ न बरनै पारा।—तुलसी।

वाचकोपमानलुप्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमालंकार का एक भेद जिसमें वाचक और उपमान का लोप होता है। यथा,—तेरे ये कटु बचन हैं सुनत हियो हरखात।

वाचकोपमेयलुप्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमालंकार का एक भेद जिसमें वाचक और उपमेय का लोप होता है। जैसे,—अटा उदय होतै भयो छबिधर पूरन चंद।

वाचक्नवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गार्गी। वाचक्नवी। (वचक्नु ऋषि की अपत्य।)

वाचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पढ़ना या उच्चारण करना। पठन। बाँचना। (२) कहना। बताना। (३) प्रतिपादन।

वाचनक-संज्ञा पुं० [सं०] पहेली।

वाचयिता-वि० [सं० वाचयितृ] वाचक। बाँचनेवाला।

वाचस्पति-संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।

वाचस्पति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहस्पति। (२) शब्दप्रतिपालक।

वाचा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वाणी। (२) वाक्य। वचन। शब्द।

वाचाट-वि० [सं०] (१) वाचाल। (२) बकी। बकवादी।

वाचापत्र-संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञापत्र।

वाचाबंधन-वि० [सं० वाचाबद्ध] वाचाबद्ध। प्रतिज्ञाबद्ध। उ०—वाचाबंध कंस करि छाँड्यो तब वसुदेव पतीजे हो। याके गर्भ अवतरे जे सुत सावधान ह्वै लीजे हो।—सूर।

वाचाबंधन-संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञाबद्ध होना।

वाचाबद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] वादे में बँधा हुआ। वचन देने के कारण विवश। प्रतिज्ञाबद्ध।

वाचाल-वि० [सं०] (१) बोलने में तेज़। वाक्पटु। (२) बकवादी। व्यर्थ बकनेवाला।

वाचालता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहु-भाषिता। बहुत बोलनेवाला। (२) बातचीत में निपुणता।

वाचिक-वि० [सं०] (१) वाणी संबंधी। (२) वाणी से किया हुआ। (३) संकेत से कहा हुआ।

संज्ञा पुं० अभिनय का एक भेद जिसमें केवल वाक्य विन्यास द्वारा अभिनय का कार्य्य संपन्न होता है।

वाची-वि० [सं० वाचिन्] (१) वाक्ययुक्त। (२) प्रकट करनेवाला। बोध करानेवाला। सूचक।

विशेष—यह शब्द समास में समस्त पद के अंत में आने से वाचक और विधायक का अर्थ देता है। जैसे,—पुरुषवाची = पुरुषवाचक।

वाच्य-वि० [सं०] (१) कहने योग्य। जो कथन में आवे। (२) शब्द संकेत द्वारा जिसका बोध हो। अभिधा द्वारा जिसका बोध हो। अभिधेय।

विशेष—जिस शब्द द्वारा बोध होता है, उसे "वाचक" कहते

हैं; और जिस वस्तु या अर्थ का बोध होता है, उसे "वाच्य" कहते हैं।

(३) जिसे लोग भला बुरा कहें। कुत्सित। हीन।

संज्ञा पुं० (१) अभिधेयार्थ। (२) प्रतिपादन। वि० दे० "वाच्यार्थ"।

वाच्यार्थ–संज्ञा पुं० [सं०] वह अभिप्राय जो शब्दों के नियत अर्थ द्वारा ही प्रकट हो। संकेत रूप से स्थिर शब्दों का नियत अर्थ। मूल शब्दार्थ।

विशेष—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना ये तीन शक्तियाँ शब्द की मानी जाती हैं। इनमें से प्रथम के सिवा और सब का आधार "अभिधा" है, जो शब्द-संकेत में नियत अर्थ का बोध कराती है। जैसे,—'कुत्ता' और 'इमली' कहने से पशु विशेष और वृक्ष विशेष का बोध होता है। इस प्रकार का मूल अर्थ वाच्यार्थ कहलाता है। वि० दे० "शब्दशक्ति"।

वाच्यावाच्य–संज्ञा पुं० [सं०] भली बुरी या कहने न कहने योग्य बात। जैसे,—उसे वाच्यावाच्य का विचार नहीं है।

वाज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घृत। घी। (२) यज्ञ। (३) अन्न। (४) जल। (५) संग्राम। (६) बल। (७) बाण में का पंख जो पीछे लगा रहता है। (८) पलक। (९) वेग। (१०) मुनि। (११) शब्द। आवाज़।

वाज़–संज्ञा पुं० [अ०] (१) उपदेश। शिक्षा। (२) धार्मिक व्याख्यान। (३) धार्मिक उपदेश। कथा।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।

वाजदावर्या–संज्ञा पुं० [सं० वाजदावर्यस्] एक साम का नाम।

वाजपति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) अन्नपति।

वाजपेई*–संज्ञा पुं० दे० "वाजपेयी"।

वाजपेय–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध यज्ञ, जो सात श्रौत यज्ञों में पाँचवाँ है।

वाजपेयी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पुरुष जिसने वाजपेय यज्ञ किया हो। (२) ब्राह्मणों की एक उपाधि जो कान्यकुब्जों में होती है। (३) अत्यंत कुलीन पुरुष। जैसे,—वे कौन बड़े भारी वाजपेयी हैं। उ०—ब्याध अपराध की साध राखी कौन, पिंगलै कौन मति भक्ति भेई। कौन धौं सोम-जाजी अजामिल अधम कौन गजराज धौं वाजपेई?—तुलसी।

वाजप्य–संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रकार ऋषि। इनके गोत्र के लोग वाजप्यायन कहलाते हैं।

वाजबी–वि० दे० "वाजिबी"।

वाजभर्मीय–संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वाजभृत्–संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वाजवत–संज्ञा पुं० [सं०] [अपत्य वाजवतायनि] एक गोत्रकार ऋषि, जिनके गोत्र के लोग "वाजवतायनि" कहलाते हैं।

वाजश्रव–संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

वाजश्रवस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वाजश्रवा ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष। (२) एक ऋषि जिनके पुत्र का नाम "नचिकेता" था और जो अपने पिता के क्रुद्ध होने पर यमराज के यहाँ चला गया था। वहाँ उसने उनसे ज्ञान प्राप्त किया था।

वाजश्रवा–संज्ञा पुं० [सं० वाजश्रवस्] (१) अग्नि। (२) एक गोत्रकार ऋषि का नाम।

वाजस–संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वाजसनि–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

वाजसनेय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) यजुर्वेद की एक शाखा का नाम जिसे याज्ञवल्क्य ने अपने गुरु वैशंपायन पर क्रुद्ध होकर उनकी पढ़ाई हुई विद्या उगलने पर सूर्य्य के तप से प्राप्त की थी। मत्स्य पुराण के अनुसार वैशंपायन के शाप से वाजसनेय शाखा नष्ट हो गई। पर आजकल शुक्ल यजुर्वेद की जो संहिता मिलती है, वह वाजसनेय संहिता कहलाती है। (२) याज्ञवल्क्य ऋषि।

वाजसाम–संज्ञा पुं० [सं० वाजसामन्] एक साम का नाम।

वाजसाश्रास–संज्ञा पुं० [सं०] वेण राजा का नाम।

वाजिगंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वगंधा। असगंध।

वाजिदंत–संज्ञा पुं० [सं०] वासक। अडूसा।

वाजिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घोड़ी। (२) अश्वगंधा। असगंध।

वाजिब–वि० [अ०] उचित। ठीक। मुनासिब।

वाजिबी–वि० [अ०] उचित। ठीक। मुनासिब।

मुहा०—वाजिबी बात = ठीक बात। सच्ची बात। वाजिबी खर्च = आवश्यक खर्च।

वाजिबुल् अदा–वि० [अ०] (रकम या धन) जिसके देने का समय आ गया हो। (वह रकम) जिसका दे देना उचित हो, या जिसे देने का समय पूरा हो गया हो।

संज्ञा पुं० ऐसा धन या रकम।

वाजिबुल् अर्ज़–संज्ञा पुं० [अ०] वह बातें जो कानूनी बन्दोबस्त के समय ज़मींदारों और काश्तकारों के बीच गाँव के रिवाज आदि के संबंध में लिखी जाती हैं।

वाजिबुल् वसूल–वि० [अ०] (धन) जिसके वसूल करने का वक्त आ गया हो।

संज्ञा पुं० ऐसा धन या रकम।

वाजिभ–संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनी नक्षत्र।

वाजिमेध–संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध।

वाजिराज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) उच्चैःश्रवा।

वाजिशत्रु–संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमार। कनेर का पेड़।

वाजिशिरा–संज्ञा पुं० [सं० वाजिशिरस्] (१) भगवान के एक अवतार का नाम। (२) एक दानव का नाम।

वाजी–संज्ञा पुं० [सं० वाजिन्] (१) घोड़ा। (२) वासक। अडूसा। (३) फटे हुए दूध का पानी। वैद्यक में इसे रुचिकर तथा

तृष्णा, दाह, रक्तपित्त और ज्वर का नाशक लिखा है। (२) हवि।

वाजीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] वह आयुर्वेदिक प्रयोग जिससे मनुष्य में वीर्य्य और पुंसत्व की वृद्धि हो।

विशेष—जिस प्रयोग से मनुष्य अश्व के समान रतिशक्तिवाला हो, उसे वाजीकरण कहते हैं। मनुष्य में जब वीर्य्य की अल्पता होती है, तब वाजीकरण औषधों का व्यवहार किया जाता है। साधारणतः घी, दूध, मांस आदि पदार्थ वीर्य्यवर्द्धक होते हैं। पर आयुर्वेद में वाजीकरण पर एक अलग प्रकरण रहता है, जिसमें अनेक प्रकार की काष्ठौषधों और रसौषधों की व्यवस्था रहती है।

वाट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार्ग। रास्ता। (२) वास्तु। इमारत। (३) मंडप।

वाटधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक जनपद जो काश्मीर के नैऋत्य कोण में कहा गया है। नकुल के दिग्विजय में इसे पश्चिम में और मत्स्य पुराण में उत्तर दिशा में लिखा है। (२) ब्राह्मणी माता और वर्ण ब्राह्मण या कर्महीन ब्राह्मण से उत्पन्न एक संकर जाति। (स्मृति)

वाटर-संज्ञा पुं० [अं०] पानी।

यौ०—वाटरप्रूफ। वाटरवर्क्स। वाटरशूट। सोडावाटर आदि।

वाटरप्रूफ-वि० [अं०] जिस पर पानी का प्रभाव न पड़े। जो पानी में न भीग सके। जैसे,—वाटरप्रूफ कपड़ा।

वाटर वर्क्स-संज्ञा पुं० [अं०] (१) नगर में पानी पहुँचाने का विभाग। पानी पहुँचाने की कल का कार्यालय। (२) पानी पहुँचाने की कल। जलकल।

वाटरशूट-संज्ञा स्त्री० [अं०] पानी में कूदकर तैरने की क्रीड़ा। जलक्रीड़ा।

वाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वास्तु। इमारत। (२) बाग। बगीचा। (३) हिंगुपत्री।

वाटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वास्तु। इमारत। घर।

वाटुक-संज्ञा पुं० [सं०] भुना हुआ जौ। बहुरी।

वाट्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बला। बरियारा। खिरैंटी। (२) भुना हुआ जौ।

वाट्यपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंदन। (२) कुंकुम।

वाट्यमंड-संज्ञा पुं० [सं०] बिना भूसी या छिलके के भुने हुए और दले हुए जौ का माँड़।

विशेष—एक भाग दले हुए जौ को चौगुने पानी में पकाने से वाट्यमंड बनता है। वैद्यक में यह हल्का, रुचिकर, दीपन हृद्य तथा पित्त, श्लेष्मा, वायु और अनाहनाशक कहा गया है।

वाट्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] बरियारा। बीजबंद।

वाट्याल, वाट्यालक-संज्ञा पुं० [सं०] बरियारा। बीजबंद।

वाट्यालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा बरियारा।

वाड़व-संज्ञा पुं० [सं०] दे० "बाड़व"।

वाड़वाग्नि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) समुद्र के अंदर की आग। (२) समुद्री आग। वह आग जो समुद्र में दिखाई देती है।

वाढ़म-अव्य० [सं०] अलम्। बस। काफी है। बहुत हो चुका।

वाण-संज्ञा पुं० [सं०] धारदार फल लगा हुआ छड़ी के आकार का छोटा अस्त्र जो धनुष की डोरी पर खींचकर छोड़ा जाता है। तीर।

विशेष—वृहत् शार्ङ्गधर में धनुष और बाण बनाने के संबंध में बहुत से नियम दिए गए हैं। उसमें लिखा है कि बाण या तीर का फल शुद्ध लोह का होना चाहिए। फल कई आकार के बनाए जाते थे; जैसे,—आरामुख, क्षुरप्र, गोपुच्छ, अर्द्धचंद्र, सूचीमुख, भल्ल, वत्सदंत, द्विभल्ल, कर्णिक और काकतुंड। ये सब भिन्न भिन्न कामों के लिये होते थे। जैसे,—आरामुख बाण वर्म (बकतर) भेदने के लिये, अर्द्धचंद्र सिर काटने के लिये, आरामुख और सूची ढाल छेदने के लिये, क्षुरप्र धनुष काटने के लिये, भल्ल हृदय भेदने के लिये, द्विभल्ल धनुष की डोरी काटने के लिये आदि। फल पर अच्छी जिला होनी चाहिए। पीपल, सेंधा नमक और कुट को गोमूत्र में पीसकर फल पर लेप करे; फिर फल को अग्नि में तपाकर तेल में बुझावे, तो अच्छी जिला होगी। धार कैसा होना चाहिए, इसके संबंध में भी बहुत सी बातें हैं। बाण ठीक सीधा जाय, रास्ते में इधर उधर न हो; इसके लिये उसके पिछले भाग में कुछ दूर तक कौवे, हंस, बगले, गीध और मयूर आदि किसी पक्षी के पर लगाने चाहिएँ।

वाणावली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बाणों की अवली। तीरों की कतार। (२) तीरों की लगातार वर्षा। (३) एक साथ बने हुए पाँच श्लोक। श्लोकों का पंचक।

वाणिज्य-संज्ञा पुं० दे० "वाणिज्य"।

वाणिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नर्तकी। (२) मत्त स्त्री। (३) एक वर्ण वृत्त का नाम, जिसके प्रत्येक चरण में १६ वर्ण अर्थात् क्रमानुसार नगण, जगण, भगण, फिर जगण और अंत में रगण और गुरु होता है।

वाणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरस्वती। (२) मुँह से निकले हुए सार्थक शब्द। वचन। जैसे,—ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय।—कबीर।

मुहा०—वाणी फुरना = मुँह से शब्द निकला।

(३) वाक्शक्ति। उ०—इतनी कहत गरुड़ पर चढ़िकै तुरतहि मधुवन आये। कंबु कपोल परसि बालक के वाणी प्रगट कराये।—सूर। (४) वागिंद्रिय। जीभ। रसना। उ०—नैन निरखि चकित ह्वै गये। मन बाणी दोऊ थकि रये।—सूर। (५) स्वर।

वातंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रकार ऋषि का नाम, जिनके गोत्रवाले वातंड्य कहलाते हैं।

वातंड्य-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० वातंड्यायिनी] वातंड ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

वात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। हवा। (२) वैद्यक के अनुसार शरीर के अंदर की वह वायु जिसके कुपित होने से अनेक प्रकार के रोग होते हैं। शरीर में इसका स्थान पक्वाशय माना गया है। कहते हैं कि शरीर की सब धातुओं और मल आदि का परिचालन इसी से होता है; और श्वास प्रश्वास, चेष्टा, वेग आदि इंद्रियों के कार्य्यों का भी यही मूल है।

वातकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वात रोग जिसमें पाँव की गाँठों में वायु के घुसने के कारण जोड़ों में बड़ी पीड़ा होती है। यह रोग ऊँचे नीचे पैर पड़ने या अधिक परिश्रम करने से हो जाता है।

वातक-संज्ञा पुं० [सं०] अशनपर्णी।

वातकुंडलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का मूत्ररोग जिसमें वायु कुंडलाकार होकर पेड़ू में घूमता रहता है, रोगी को पेशाब करने में पीड़ा होती है, और बूँद बूँद करके पेशाब उतरता है।

विशेष—मूत्रकृच्छ्र का रोगी यदि कुपथ्य करके रूखी वस्तुएँ खाता है, तो यह उपद्रव होता है।

वातकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] धूल। गर्द।

वातकेलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुंदर आलाप। (२) उपपति के दाँतों का क्षत।

वातगंड-संज्ञा पुं० [सं०] वातज गलगंड रोग जिसमें गले की नसें काली या लाल और कड़ी हो जाती हैं और बहुत दिन में पकती हैं।

वातगुल्म-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गुल्म रोग जो वात के प्रकोप से होता है।

विशेष—वैद्यक के अनुसार अधिक भोजन करने, रूखा अन्न खाने, बलवान् से लड़ने, मल मूत्र रोकने या अधिक विरेचनादि लेने से यह रोग होता है। इसमें गोला सा बँध जाता है, जो इधर से उधर रेंगता सा जान पड़ता है। कभी कभी बड़ी पीड़ा होती है। यह पीड़ा प्रायः भोजन पचने के पीछे खाली पेट होने पर होती है और भोजन करने पर घट जाती है।

वातघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शालपर्णी। (२) अश्वगंधा। असगंध।

वातचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष में एक योग।

विशेष—आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन सूर्य्यास्त के समय यह योग आता है। उस समय वायु की दिशा द्वारा वर्ष के फलाफल का विचार किया जाता है।

(२) चक्रवात। बवंडर।

वातचटक-संज्ञा पुं० [सं०] तित्तिर। तीतर पक्षी।

वातज-वि० [सं०] वायु द्वारा उत्पन्न। वातकृत।

वातज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ज्वर।

विशेष—इसमें गला, होंठ और मुँह सूखते हैं, नींद नहीं आती, हिचकी आती है, शरीर रूखा हो जाता है, सिर और देह में पीड़ा होती है, मुँह फीका लगता है और मल रुक जाता है। यह ज्वर कभी घट और कभी बढ़ जाता है।

वाततूल-संज्ञा पुं० [सं०] महीन तागा जो कभी कभी आकाश में इधर उधर उड़ता दिखाई पड़ता है।

विशेष—यह एक प्रकार की बहुत छोटी मकड़ियों का जाल होता है जिसके सहारे वह एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जाया करती हैं। इसी को बुढ़िया का तागा कहते हैं।

पर्य्या०—वृद्धसूत्रक। इंद्रतूल। मायाहास। वंशकफ। मरुध्वज।

वातध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ।

वातनाड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का नासूर जिसमें वायु के प्रकोप से दाँत की जड़ में नासूर हो जाता है। इस में से रक्त सहित पीब निकला करता है और चुभने की सी पीड़ा होती है।

वातपट-संज्ञा पुं० [सं०] पताका। ध्वजा।

वातपत्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दिशा।

वातपर्य्यय-संज्ञा पुं० [सं०] एक चक्षु रोग जिसमें कभी भौं में और कभी आँखें धँसने से बड़ी पीड़ा होती है।

वातपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हनुमान। (२) भीम।

वातपोथ-संज्ञा पुं० [सं०] पलाश।

वातप्रकृति-वि० [सं०] जिसकी प्रकृति वायु-प्रधान हो।

वात प्रकोप-संज्ञा पुं० [सं०] वायु का बढ़ जाना। वायु की अधिकता। इसमें अनेक प्रकार के रोग होते हैं।

वातप्रमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिरन। (२) नकुल। नेवला। (३) घोड़ा।

वातप्रशमिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] आलूबुखारा।

वातमज-संज्ञा पुं० [सं०] जिधर की हवा हो, उधर मुख करके दौड़नेवाला मृग। वातमृग।

वातमृग-संज्ञा पुं० [सं०] जिधर की हवा हो, उधर मुख करके दौड़नेवाला मृग।

वातरंग-संज्ञा पुं० [सं०] चलदल वृक्ष। पीपल।

वातरक्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें कुपथ्य और अयुक्ताहार विहार से रक्त वायु से दूषित हो जाता है। इसमें पैर के तलवे से घुटने तक छोटी छोटी फुंसियाँ हो जाती हैं, जठराग्नि मंद पड़ जाती है और शरीर दुर्बल होता जाता है।

वातरथ-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ।

वातरायण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) निष्प्रयोजन पुरुष। निकम्मा आदमी। (२) कांड। (३) करपत्र। छोटा। (४) कुट। (५) सीधा पेड़। (६) उन्मत्त पुरुष।

वातरुष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्रधनुष। (२) उत्कोच। घूस। रिश्वत।

वातरोहिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें जीभ पर चारों ओर काँटे के समान मांस उभर आता है और उसका गला रुक सा जाता है। इसमें रोगी को बड़ा कष्ट होता है।

वातर्षि-संज्ञा पुं० [सं०] काठ और लोहे का बना हुआ पात्र।

वातल-संज्ञा पुं० [सं०] चना।

वि० वायुकारक। वायुवर्द्धक।

वातवैरी-संज्ञा पुं० [सं०] बादाम।

वातव्याधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] गठिया।

वातशत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

वातशीर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] वस्ति। पिचकारी।

वातसार-संज्ञा पुं० [सं०] बिल्व। बेल।

वातसारथि-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

वातस्कंध-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश का वह भाग जहाँ वायु चलती रहती है।

वातस्वन-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

वातांड-संज्ञा पुं० [सं०] अंडकोश का एक रोग, जिसमें एक अंड चलता रहता है।

वाताट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य का घोड़ा। (२) हिरन।

वातात्मज-संज्ञा पुं० [सं०] हनुमान।

वाताद-संज्ञा पुं० [सं०] बादाम।

वातापि-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम।

विशेष—आतापि और वातापि दो भाई थे। दोनों मिलकर ऋषियों को बहुत सताया करते थे। वातापि तो मेढ़ बन जाता था और उसका भाई आतापि उसे मारकर ब्राह्मणों को भोजन कराया करता था। जब ब्राह्मण लोग खा चुकते, तब वह वातापि का नाम लेकर पुकारता था और वह उनका पेट फाड़कर निकल आता था। इस प्रकार उन दोनों ने बहुत से ब्राह्मणों को मार डाला। एक दिन अगस्त्य ऋषि उन दोनों के घर आए। आतापि ने वातापि को मारकर अगस्त्य को खिलाया और फिर नाम लेकर पुकारने लगा। अगस्त्य जी ने डकार लेकर कहा कि वह तो मेरे पेट में कभी का पच गया; अब कहाँ आता है।

वाताप्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। (२) सोम।

वाताम-संज्ञा पुं० [सं०] बादाम।

वातामोदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी।

वातायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गवाक्ष। झरोखा। मोखा। खिड़की। (२) घोड़ा। (३) एक मंत्रद्रष्टा ऋषि का नाम। (४) रामायण के अनुसार एक जनपद का नाम।

वातायु-संज्ञा पुं० [सं०] हिरन।

वातारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एरंड। रेंड़। (२) शतमूली। (३) सिंहारू। निर्गुंडी। (४) अजवायन। (५) थूहर। सेंहुड़। (६) वायविडंग। (७) सूरन। जिमींकंद। (८) भिलावाँ। (९) सतावर। (१०) तिलक वृक्ष। (११) नील का पौधा।

वाताष्ठीला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उदर रोग जिसमें नाभि के नीचे वायु की गाँठ सी पड़ जाती है, जो इधर उधर रेंगती सी जान पड़ती है। यह कभी कभी मूत्र का अवरोध भी करती है।

वाति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) सूर्य्य। (३) चंद्रमा।

वातिगम-संज्ञा पुं० [सं०] भंटा। बैंगन।

वातीक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छोटा पक्षी।

वातुल-वि० [सं०] (१) वायुप्रधान। (२) वायु के कोप से जिसकी बुद्धि ठिकाने न हो।

संज्ञा पुं० बावला। उन्मत्त।

वातोदर-संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें हाथ, पाँव, नाभि, कोख, पसली, पेट, कमर और पीठ में पीड़ा होती है; सूखी खाँसी आती है; शरीर भारी रहता है; अंगों में ऐंठन होती है; और मल का अवरोध हो जाता है। पेट में कभी कभी गुड़गुड़ाहट भी होती है और पेट फूला रहता है। पेट ठोंकने से ऐसा शब्द निकलता है, जैसे हवा भरी हुई मशक ठोंकने से।

वातोर्मी-संज्ञा पुं० [सं०] ग्यारह अक्षरों का एक वर्ण वृत्त जिसमें मगण, भगण, तगण और अंत में दो गुरु होते हैं। जैसे,—*मो भाँती मो गहि धीरा धरो जू। नीके कौरो सह युद्धै करो जू। पाओगे अर्जुन या रीति मुक्ती। वातोर्मी सो सहुसौ आत्मयुक्ती।*

वातोलंबण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात ज्वर। इसमें रोगी को श्वास, खाँसी, भ्रम और मूर्च्छा होती है और वह प्रलाप करता है। उसकी पसलियों में पीड़ा होती है, वह जँभाई अधिक लेता है और उसके मुँह का स्वाद कसैला रहता है।

वात्स-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक गोत्रकार ऋषि का नाम। (२) एक साम का नाम।

वात्सरिक-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी।

वात्सल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रेम। स्नेह। (२) वह स्नेह जो पिता या माता के हृदय में संतति के प्रति होता है। माता-पिता का प्रेम।

विशेष—साहित्य में जिस प्रकार नायक नायिका के रति भाव

के वर्णन द्वारा शृंगार रस माना जाता है, उसी प्रकार कुछ लोग माता-पिता के रति भाव के विभाव, अनुभाव और संचारी सहित वर्णन को वात्सल्य रस मानते हैं। पर यह सर्वसम्मत नहीं है। अधिकांश लोग दांपत्य रति के अतिरिक्त और प्रकार के रति भाव को "भाव" ही मानते हैं।

वात्स्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। (२) एक गोत्र जिसमें और्व, च्यवन, भार्गव, जामदग्न्य और आप्नुवान नामक पाँच प्रवर होते हैं।

वात्स्यायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। (२) न्यायशास्त्र के प्रसिद्ध भाष्यकार। (३) काम सूत्र-प्रणेता एक प्रसिद्ध ऋषि।

वाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह बात-चीत जो किसी तत्व के निर्णय के लिये हो। तर्क। शास्त्रार्थ। दलील।

विशेष—"वाद" न्याय के सोलह पदार्थों में दसवाँ पदार्थ माना गया है। जब किसी बात के संबंध में एक कहता है कि वह इस प्रकार है और दूसरा कहता है कि नहीं, इस प्रकार है, और दोनों अपने अपने पक्ष की युक्तियों को सामने रखते हुए कथोपकथन में प्रवृत्त होते हैं, तब वह कथोपकथन "वाद" कहलाता है। यह वाद शास्त्रीय नियमों के अनुसार होता है; और उसमें दोनों अपने अपने कथन को प्रमाणों द्वारा पुष्ट करते हुए दूसरे के प्रमाणों का खंडन करते हैं। यदि कोई निग्रह स्थान में आ जाता है, तो उसका पक्ष गिरा हुआ माना जाता है और वाद समाप्त हो जाता है।

(२) किसी पक्ष के तत्वज्ञों द्वारा निश्चित सिद्धांत। उसूल। जैसे,—अद्वैतवाद, आरंभवाद, परिणामवाद। (३) बहस। झगड़ा।

वादक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाजा बजानेवाला। (२) वक्ता। (३) वाद करनेवाला। तर्क या शास्त्रार्थ करनेवाला।

वादचंचु-संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्रार्थ करने में पटु। वाद करने में दक्ष।

वाददंड-संज्ञा पुं० [सं०] सारंगी आदि बाजों के बजाने की कमानी।

वादन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाजा बजाना। (२) बाजा।

वादनक-संज्ञा पुं० [सं०] बाजा।

वादप्रतिवाद-संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्रीय विषयों में होनेवाला कथोपकथन। बहस।

वादर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपास के सूत का कपड़ा। (२) कपास का पेड़। (३) बेर का पेड़।

वादरंग-संज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थ का वृक्ष।

वादरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपास।

वादरायण-संज्ञा पुं० [सं०] व्यासदेव। वेदव्यास।

वादरायणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यास के पुत्र शुकदेव। (२) व्यासदेव।

वादरि-संज्ञा पुं० [सं०] वादरायण के पिता। इनका मत वेदांत दर्शन में प्रायः उद्धृत मिलता है।

वादरिक-संज्ञा पुं० [सं०] बेर बीननेवाला।

वादल-संज्ञा पुं० [सं०] मधुयष्टिका। जेठी मधु। मुलेठी।

वादविवाद-संज्ञा पुं० [सं०] शाब्दिक झगड़ा। बहस।

वादसाधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपकार करना। (२) तर्क करना।

वादा-संज्ञा पुं० [अ० वाद:] (१) नियत समय या घड़ी।

मुहा०—वादा आना = (१) घड़ी का पहुँचना। नियत समय का प्राप्त होना। (२) काल आना। मृत्यु का समय आना। वादा पूरा होना = जीवन काल समाप्त होना।

(२) इस बात का विश्वास दिलाना कि मैं अमुक काम करूँगा। वचन। प्रतिज्ञा। इक़रार।

मुहा०—वादा पूरा करना = वचन के अनुसार काम करना। प्रतिज्ञा पूरी करना। वादा टालना = जिस समय कोई काम करने का वचन दिया हो, उस समय न करना। प्रतिज्ञा भंग करना। वादाख़िलाफ़ी करना = बात पूरी न करना। कथन के विरुद्ध कार्य करना। वादा रखाना = वचन लेना। प्रतिज्ञा कराना। उ०—सौंह करि कहत हौं, पहो प्यारे रघुनाथ! आवति रखाए वादो उनहीं के घर सों।—रघुनाथ।

वादानुवाद-संज्ञा पुं० [सं०] तर्क वितर्क। शास्त्रार्थ। बहस।

वादाल-संज्ञा पुं० [सं०] सहस्रदंष्ट्रा नामक मछली।

वादि-संज्ञा पुं० [सं०] विद्वान्।

अव्य० दे० "वादि"।

वादिक-संज्ञा पुं० [सं०] तार्किक।

वादित-वि० [सं०] बजाया हुआ। नादित।

वादित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वाद्य। बाजा।

वादिराज-संज्ञा पुं० [सं०] मंजुघोष।

वादींद्र-संज्ञा पुं० [सं०] मंजुघोष।

वादी-संज्ञा पुं० [सं० वादिन्] (१) वक्ता। बोलनेवाला। (२) किसी बात का पहले पहल प्रस्ताव करनेवाला, जिसका प्रतिवादी की ओर से खंडन होता है। (३) व्यवहार में किसी के प्रति कोई अभियोग चलानेवाला। मुक़दमा लानेवाला। फ़रियादी। मुद्दई।

वादुलि-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

वाद्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बजाना। (२) बाजा।

वाद्यक-संज्ञा पुं० [सं०] बाजा बजानेवाला।

वाद्यभांड-संज्ञा पुं० [सं०] मुरज आदि बाजे।

वाधू-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाव का डाँड़। (२) नौका। नाव।

वाधूल-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रकार ऋषि का नाम। इस गोत्र के लोग वाधौल कहलाते हैं।

वाध्र्यश्व-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

वान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कट। गोनरी। चटाई। (२) पानी में लानेवाला वायु का झोंका। (३) गति। (४) सुरंग। (५) सौरभ। सुगंध। (६) सूखा फल। (७) बाना।

संज्ञा पुं० दे० "बाण"।

वानदंड-संज्ञा पुं० [सं०] वह लकड़ी जिसमें बाना लपेटकर बुना जाता है।

वानप्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महुए का पेड़। मधूक वृक्ष। (२) पलाश। (३) प्राचीन भारतीय आर्यों के अनुसार मनुष्य जीवन के चार विभागों या आश्रमों में से तीसरा विभाग या आश्रम।

विशेष—यह आश्रम गार्हस्थ्य के पीछे और संन्यास के पहले पड़ता है। शास्त्र के अनुसार पचास वर्ष के ऊपर हो जाने पर और गार्हस्थ्य आश्रम से चित्त हट जाने पर मनुष्य इस आश्रम का अधिकारी होता है। इस आश्रम में प्रवेश करने वाले को नगर, गाँव या बस्ती से अलग वन में रहना, जंगली फल खाना, और वहीं से पंचमहा यज्ञादि करना चाहिए। शय्या, वाहन, वस्त्र, पलंग आदि सब त्याग देना चाहिए। स्त्री को चाहे पुत्र के पास छोड़े, चाहे अपने साथ वन में ले जाय। जब इस आश्रम में रहकर मनुष्य पूर्ण वैराग्य संपन्न हो जाय, तब उसे संन्यास लेना चाहिए।

वानर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंदर। (२) दोहे का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में १० गुरु और २८ लघु होते हैं। यथा—जड़ चेतनगुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार। संत हंस गुण गहहिं पै परिहरि वारि विकार।

वानरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केवाँच। कपिकच्छु। (२) बंदर की मादा।

वानल-संज्ञा पुं० [सं०] काली वन-तुलसी।

वानवासिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोलह मात्राओं के छंदों या चौपाई का एक भेद जिसमें नवीं और बारहवीं मात्राएँ लघु पड़ती हैं। जैसे,—"सीय लखन जेहि विधि सुख लहहीं"।

वानस्पत्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वृक्ष जिसमें पहले फूल लगकर पीछे फल लगते हैं। जैसे,—आम, जामुन आदि। (२) वनस्पति का समूह।

वाना-संज्ञा स्त्री० [सं०] बटेर पक्षी।

वानायुज-संज्ञा पुं० [सं०] वनायुज देश का घोड़ा।

वानीय-संज्ञा पुं० [सं०] कैवर्त मुस्तक। केवटीमोथा। कुट। गोन।

वानीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेंत। (२) पाकड़ का पेड़। पकड़।

वानीरक-संज्ञा पुं० [सं०] मूँज।

वानेय-संज्ञा पुं० [सं०] गोन नाम का तृण जो पानी में होता है। कैवर्त मुस्तक।

वाप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बोना। वपन। (२) मुंडन। (३) क्षेत्र। खेत।

वापक-संज्ञा पुं० [सं०] बीज बोनेवाला।

वापन-संज्ञा पुं० [सं०] बीज बोना।

वापस-वि० [फ़ा०] लौटा हुआ। फिरा हुआ।

मुहा०—वापस आना = किसी स्थान पर जाकर वहाँ से फिर आ जाना। लौट आना। वापस करना = (१) किसी आए हुए मनुष्य को फिर वहीं भेजना, जहाँ से वह आया हो। लौटाना। (२) किसी वस्तु को मोल लेकर फिर दूकानदार को दे देना और उससे दाम ले लेना। जैसे,—यह छाता अच्छा नहीं है; वापस कर दो। (३) दे० "वापस लेना"। (४) किसी से ली हुई वस्तु को उसे फिर दे देना। वापस जाना = फिर वहीं जाना, जहाँ से आया हो। लौट जाना। वापस होना = (१) लौट जाना। (२) किसी मोल ली हुई वस्तु का फिर दूकानदार को उससे दाम लेकर दे दिया जाना। फेरा जाना। जैसे,—अब यह छाता वापस नहीं हो सकता। (३) दी हुई वस्तु का फिर मिल जाना या ली हुई वस्तु का फिर दे दिया जाना।

वापसी-वि० [फ़ा० वापस] लौटा हुआ या फेरा हुआ। जैसे,—वापसी डाक।

संज्ञा स्त्री० (१) लौटने की क्रिया या भाव। प्रत्यावर्त्तन। जैसे,—वापसी के समय लेते जाना। (२) किसी दी हुई वस्तु को फिर लेने या ली हुई वस्तु को फिर देने का काम या भाव।

वापिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बड़ा चौड़ा कूआँ या जलाशय। वापी। बावली।

वापित-वि० [सं०] (१) बोया हुआ। (२) मुंडित। मूँड़ा हुआ।

वापी-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा जलाशय। बावली।

वाप्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुट। (२) बोआरी धान। (३) बावली का पानी।

वाम-वि० [सं०] (१) बायाँ। दक्षिण या दाहिने का उलटा। (२) प्रतिकूल। विरुद्ध। खिलाफ़। अहित में तत्पर। उ०—विधि वाम की करनी कठिन जेइ मातु कीन्ही बावरी।—तुलसी। (३) टेढ़ा। कुटिल। (४) खोटा। दुष्ट। नीच। (५) जो अच्छा न हो। बुरा।

संज्ञा पुं० (१) कामदेव। (२) एक रुद्र का नाम। वामदेव। (३) वरुण। (४) कुच। स्तन। (५) धन। (६) मनुचीक के एक पुत्र का नाम। (७) कृष्ण के एक पुत्र का नाम। (८) चंद्रमा के रथ के एक घोड़े का नाम। (९) २४ अक्षरों का एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में सात जगण और

एक यगण होता है। इसे मंजरी, मकरंद और माधवी भी कहते हैं। यह एक प्रकार का सवैया ही है। जैसे,—सु लोक यथामति वेद पढ़ैं सह आगम औ दस आठ सयाने।

संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "वामा"। उ॰—नवल त्रिभंग कदम तर ठाढ़ो, मोहत सब ब्रज वाम। (गीत)

वामक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) अंगभंगी का एक भेद। (२) बौद्ध ग्रंथों के अनुसार एक चक्रवर्ती।

वामकक्ष-संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक गोत्रकार ऋषि का नाम जिनके गोत्र के लोग वामकक्षायन कहे जाते थे।

वामदेव-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) शिव। महादेव। (२) गौतम गोत्रीय एक वैदिक ऋषि जो ऋग्वेद के चौथे मंडल के अधिकांश सूक्तों के द्रष्टा थे। (३) दशरथ के एक मंत्री का नाम।

वामदेवी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) दुर्गा। (२) सावित्री।

वामदेव्य-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) एक साम का नाम। (२) एक ऋषि का नाम। (३) पुराणानुसार शाल्मलि द्वीप के एक पर्व्वत का नाम।

वामन-वि॰ [सं॰] (१) बौना। छोटे डील का। (२) ह्रस्व। खर्व।

संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) विष्णु। (२) शिव। (३) एक दिग्गज का नाम। (४) एक प्रकार का घोड़ा जो डील डौल में छोटा होता है। (५) हनु के एक पुत्र का नाम। (६) एक नाग का नाम। (७) गरुड़ वंशी एक पक्षी का नाम। (८) क्रौंच द्वीप के एक पर्वत का नाम। (९) विष्णु भगवान का पाँचवाँ अवतार जो बलि को छलने के लिये अदिति के गर्भ से हुआ था। (१०) अठारह पुराणों में से एक।

वामनक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] क्रौंच द्वीप का एक पर्वत।

वामनद्वादशी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक पर्व तिथि जो भादों शुक्ल १२ को पड़ती है। इस दिन व्रत करके विष्णु भगवान के वामनावतार की पूजा की जाती है।

वामना-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक अप्सरा का नाम।

वामनिका-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) स्कंद की अनुचरी एक माता या मातृका का नाम। (२) बौनी स्त्री।

वाम मार्ग-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वेद-विहित दक्षिण मार्ग के प्रतिकूल तांत्रिक मत जिसमें, मद्य, मांस, व्यभिचार आदि निषिद्ध बातों का विधान रहता है।

वामरथ-संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक गोत्रकार ऋषि का नाम जिनके गोत्रवाले वामरथ्य कहलाते थे।

वामलूर-संज्ञा पुं॰ [सं॰] दीमक का भीटा। वल्मीक। बाँबी।

वामलोचना-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सुंदरी स्त्री।

वामा-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) स्त्री। (२) दुर्गा। (३) दस अक्षरों के एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में तगण, यगण और भगण तथा अंत में एक गुरु होता है। यथा—तू यों भगवामा तें सरला। टेढ़े धनु ते ज्यों तीर चला। ये हैं दुख नाना की जननी। ऐसी हम गाथा ते भकनी।

वामाक्षी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) सुंदर स्त्री। (२) दीर्घ ईकार।

वामाचार-संज्ञा पुं॰ [सं॰] तांत्रिक मत का एक भेद जिसमें पंच मकार अर्थात् मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन द्वारा उपास्य देव की पूजा की जाती है। इस मतवाले स्वमतावलंबी को वीर, साधक आदि और विरोधी को कंटक कहते हैं।

वामापीड़न-संज्ञा पुं॰ [सं॰] पीलू का पेड़।

वामावर्त-वि॰ [सं॰] (१) दक्षिणावर्त का उलटा। (वह फेरी) जो किसी वस्तु (देव-प्रतिमा आदि) की बाईं ओर से आरंभ की जाय। जैसे,—वामावर्त्त परिक्रमा। (२) (वह चक्कर) जो बाईं ओर से चला हो। (३) जिसमें बाईं ओर का घुमाव या भँवरी हो। जैसे,—वामावर्त्त शंख।

विशेष—शंख दो प्रकार के होते हैं—एक वामावर्त्त, दूसरा दक्षिणावर्त। दक्षिणावर्त शंख अत्यन्त शुभ और दुष्प्राप्य कहा जाता है।

वामिका-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] चंडिका।

वामिनी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक प्रकार का योनि रोग जिसमें गर्भाशय से छः सात दिन तक रज का स्राव होता रहता है। इसमें कभी पीड़ा होती है, कभी नहीं होती।

वामी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) शृगाली। गीदड़ी। (२) घोड़ी। (३) गदही।

वामोरु-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सुंदर उरुवाली स्त्री। सुंदरी स्त्री।

वाम्री-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक स्त्री जो गोत्रकार थी। इसके गोत्रवाले वाम्रेय कहलाते थे।

वाम्य-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वामदेव ऋषि के घोड़े का नाम।

वाम्र-संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक साम का नाम।

वाय-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) बुनना। (२) तागा।

वायक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) बुननेवाला। (२) तंतुवाय। जुलाहा।

वायदंड-संज्ञा पुं॰ [सं॰] जुलाहों की ढरकी।

वायन-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह मिठाई या पकवान जो देव-पूजा या विवाहादि के लिये बनाया जाय।

विशेष—दे॰ "बायन"।

वायनरज्जु-संज्ञा पुं॰ [सं॰] जुलाहों के करघे की वै।

वायव्य-वि॰ [सं॰] (१) वायु संबंधी। (२) वायुघटित। वायु से बना हुआ। (३) जिसका देवता वायु हो।

संज्ञा पुं॰ (१) वह कोण या दिशा जिसका अधिपति वायु है। उत्तर पश्चिम का कोना। पश्चिमोत्तर दिशा। (२) वायु पुराण। (३) एक अस्त्र का नाम।

वायस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगुरु। अगर का पेड़ । (२) कौआ।
वायसतंतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हनु के दोनों जोड़। (२) काकतुंडी। कौआठोंठी।
वायसांतक-संज्ञा पुं० [सं०] उल्लू। उल्लू।
वायसाह्निनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महाज्योतिष्मती लता। (२) कौआठोंठी।
वायसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी मकोय जिसमें गुच्छों में गोल मिर्च के समान लाल फल लगते हैं। काकमाची। (२) महाज्योतिष्मती। (३) काकतुंडी। कौआठोंठी। (४) सफेद घुँघुची। (५) काकजंघा। मासी। (६) महाकरंज। बड़ा कंजा।
वायसेक्षु-संज्ञा पुं० [सं०] काँस नाम का तृण।
वायसोलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकोली। मालकंगनी। (२) महाज्योतिष्मती लता।
वायु-संज्ञा स्त्री० [सं०] हवा। वात।
विशेष—वैशेषिक दर्शन वायु को द्रव्यों में मानता है और उसे रूपरहित, स्पर्शवान् तथा नित्य कहता है। न्याय दर्शन में वायु पंचभूतों में है और इसका गुण स्पर्श कहा गया है। वायु से ही स्पर्शेंद्रिय की उत्पत्ति मानी गई है। वैशेषिक दर्शन स्पर्श के अतिरिक्त संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व और वेग भी वायु के गुण मानता है। सांख्य में वायु की उत्पत्ति स्पर्श तन्मात्रा से मानी गई है। उपनिषदों के अनुसार वेदांत भी वायु की उत्पत्ति आकाश से मानते हैं।
वायुकोण-संज्ञा पुं० [सं०] पश्चिमोत्तर दिशा।
वायुगुल्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वातचक्र। बगोला। बवंडर। (२) पेट का एक रोग जिसमें उसके अंदर वायु का एक गोला सा बँध जाता है, जो घटता बढ़ता और सारे पेट में फिरता रहता है। कभी कभी यह पीड़ा भी उत्पन्न करता है। वायगोला।
विशेष—इसमें प्रायः मल मूत्र का अवरोध भी हो जाता है और गला सूखा रहता है। हृदय, बगल और पसली में कभी कभी बड़ा दर्द होता है। खाली पेट में इसका ज़ोर अधिक रहता है और भरे पेट में कम। कड़ुवे, कसैले पदार्थों के खाने से यह रोग बढ़ता है।
वायुदारु-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।
वायुपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हनुमान। (२) भीम।
वायुफल-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।
वायुभक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप।
वायुमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश, जिसमें वायु प्रवाहित होती है।
वायुमरुल्लिपि-संज्ञा स्त्री० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार एक लिपि का नाम।
वायुरोषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] रात।
वायुलोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक लोक का नाम। (२) आकाश।
वायुवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] धूम्र। धूआँ।
वायुसख-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।
वायुहन्-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जो मंकण ऋषि के पुत्र थे। कथा है कि मंकण ऋषि एक बार सरस्वती में स्नान कर रहे थे। वहाँ उनको एक नग्न स्त्री स्नान करती हुई दिखाई दी। उसे देखकर उनका वीर्य्य स्खलित हो गया। उसे उन्होंने एक घड़े में रखा, वह सात भागों में विभक्त हो गया और उनसे वायुवेग, वायुबल, वायुहन्, वायुमंडल, वायुज्वाल, वायु-रेता और वायुचक्र नामक सात पुत्र उत्पन्न हुए।
वारंक-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी।
वारंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तलवार की मूठ। (२) अँकुड़े के आकार का एक अस्त्र जिससे चिकित्सक अस्थिविनष्ट शल्य निकालते थे। (सुश्रुत)
वारंट-संज्ञा पुं० [अं०] अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी कर्मचारी को वह काम करने का अधिकार प्राप्त हो जाय, जिसे वह अन्यथा करने में असमर्थ हो। यह कई प्रकार का होता है, जैसे,—वारंट गिरफ्तारी, वारंट तलाशी, वारंट रिहाई, इत्यादि।
वारंट गिरफ़्तारी-संज्ञा पुं० [अं० वारंट + फ़ा० गिरफ़्तारी] अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी कर्मचारी को यह अधिकार दिया जाय कि वह किसी पुरुष को पकड़कर अदालत में हाज़िर करे।
वारंट तलाशी-संज्ञा पुं० [अं० वारंट + फ़ा० तलाशी] अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी कर्मचारी को यह अधिकार दिया जाय कि वह किसी स्थान में जाकर वहाँ की तलाशी ले।
वारंट रिहाई-संज्ञा पुं० [अं० वारंट + फ़ा० रिहाई] अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी सरकारी कर्मचारी को यह आज्ञा और अधिकार मिले कि वह किसी पुरुष को, जो जेल, हवालात या गिरफ़्तारी में हो, छोड़ दे; या किसी माल या जायदाद को, जो कुर्क हो या किसी की सपुर्दगी में हो, मालिक को लौटा दे।
वारंवार-अव्य० दे० 'बारंबार'।
वार्-संज्ञा पुं० [सं०] जल। पानी।
वार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वार। दरवाजा। (२) अवरोध। रोक। रुकावट। (३) ढाँकनेवाली वस्तु। आवरण। (४)

एक यगण होता है। इसे मंजरी, मकरंद और माधवी भी कहते हैं। यह एक प्रकार का सवैया ही है। जैसे,—श्लोक यथामति वेद पढ़ें सह आगम औ दस आठ सयाने।

संज्ञा स्त्री० दे० "वामा"। उ०—नवल त्रिभंग कदम तर ठाढ़ो, मोहत सब ब्रज वाम। (गीत)

वामक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंगभंगी का एक भेद। (२) बौद्ध ग्रंथों के अनुसार एक चक्रवर्ती।

वामकक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रकार ऋषि का नाम जिनके गोत्र के लोग वामकक्षायन कहे जाते थे।

वामदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) गौतम गोत्रीय एक वैदिक ऋषि जो ऋग्वेद के चौथे मंडल के अधिकांश सूक्तों के द्रष्टा थे। (३) दशरथ के एक मंत्री का नाम।

वामदेवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) सावित्री।

वामदेव्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साम का नाम। (२) एक ऋषि का नाम। (३) पुराणानुसार शाल्मलि द्वीप के एक पर्वत का नाम।

वामन-वि० [सं०] (१) बौना। छोटे डील का। (२) ह्रस्व। खर्व।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) शिव। (३) एक दिग्गज का नाम। (४) एक प्रकार का घोड़ा जो डील डौल में छोटा होता है। (५) हनु के एक पुत्र का नाम। (६) एक नाग का नाम। (७) गरुड़ वंशी एक पक्षी का नाम। (८) क्रौंच द्वीप के एक पर्वत का नाम। (९) विष्णु भगवान का पाँचवाँ अवतार जो बलि को छलने के लिये अदिति के गर्भ से हुआ था। (१०) अठारह पुराणों में से एक।

वामनक-संज्ञा पुं० [सं०] क्रौंच द्वीप का एक पर्वत।

वामनद्वादशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पर्व तिथि जो भाद्र शुक्ल १२ को पड़ती है। इस दिन व्रत करके विष्णु भगवान के वामनावतार की पूजा की जाती है।

वामना-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

वामनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्कंद की अनुचरी एक माता या मातृका का नाम। (२) बौनी स्त्री।

वाम मार्ग-संज्ञा पुं० [सं०] वेद-विहित दक्षिण मार्ग के प्रतिकूल तांत्रिक मत जिसमें, मद्य, मांस, व्यभिचार आदि निषिद्ध बातों का विधान रहता है।

वामरथ-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रकार ऋषि का नाम जिनके गोत्रवाले वामरथ्य कहलाते थे।

वामलूर-संज्ञा पुं० [सं०] दीमक का भीटा। वल्मीक। बाँबी।

वामलोचना-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदरी स्त्री।

वामा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्री। (२) दुर्गा। (३) दस अक्षरों के एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में तगण, यगण और भगण तथा अंत में एक गुरु होता है। यथा—तू यों भगवामा तें सरला। टेढ़े धनु ते ज्यों तीर चला। ये हैं दुख नाना की जननी। ऐसी हम गाथा से भकनी।

वामाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुंदर स्त्री। (२) दीर्घ ई-कार।

वामाचार-संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिक मत का एक भेद जिसमें पंच मकार अर्थात् मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन द्वारा उपास्य देव की पूजा की जाती है। इस मतवाले स्वमतावलंबी को वीर, साधक आदि और विरोधी को कंटक कहते हैं।

वामापीड़न-संज्ञा पुं० [सं०] पीलू का पेड़।

वामावर्त-वि० [सं०] (१) दक्षिणावर्त का उलटा। (वह फेरी) जो किसी वस्तु (देव-प्रतिमा आदि) की बाईं ओर से आरंभ की जाय। जैसे,—वामावर्त्त परिक्रमा। (२) (वह चक्कर) जो बाईं ओर से चला हो। (३) जिसमें बाईं ओर का घुमाव या भँवरी हो। जैसे,—वामावर्त्त शंख।

विशेष—शंख दो प्रकार के होते हैं—एक वामावर्त्त, दूसरा दक्षिणावर्त। दक्षिणावर्त शंख अत्यन्त शुभ और दुष्प्राप्य कहा जाता है।

वामिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चंडिका।

वामिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का योनि रोग जिसमें गर्भाशय से छः सात दिन तक रज का स्राव होता रहता है। इसमें कभी पीड़ा होती है, कभी नहीं होती।

वामी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शृगाली। गीदड़ी। (२) घोड़ी। (३) गदही।

वामोरु-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदर उरुवाली स्त्री। सुंदरी स्त्री।

वाम्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक स्त्री जो गोत्रकार थी। इसके गोत्रवाले वाम्नेय कहलाते थे।

वाम्य-संज्ञा पुं० [सं०] वामदेव ऋषि के घोड़े का नाम।

वाम्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वाय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुनना। (२) साधन।

वायक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुननेवाला। (२) तंतुवाय। जुलाहा।

वायदंड-संज्ञा पुं० [सं०] जुलाहों की ढरकी।

वायन-संज्ञा पुं० [सं०] वह मिठाई या पकवान जो देव-पूजा या विवाहादि के लिये बनाया जाय।

विशेष—दे० "बायन"।

वायनरज्जु-संज्ञा पुं० [सं०] जुलाहों के करघे की वै।

वायव्य-वि० [सं०] (१) वायु संबंधी। (२) वायुघटित। वायु से बना हुआ। (३) जिसका देवता वायु हो।

संज्ञा पुं० (१) वह कोण या दिशा जिसका अधिपति वायु है। उत्तर पश्चिम का कोना। पश्चिमोत्तर दिशा। (२) वायु पुराण। (३) एक अस्त्र का नाम।

वायस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगुरु। अगर का पेड़। (२) कौआ।

वायसतंतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हनु के दोनों जोड़। (२) काकतुंडी। कौआठोंठी।

वायसांतक-संज्ञा पुं० [सं०] उल्लूक। उल्लू।

वायसाह्निनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महाज्योतिष्मती लता। (२) कौआठोंठी।

वायसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी मकोय जिसमें गुच्छों में गोल मिर्च के समान लाल फल लगते हैं। काकमाची। (२) महाज्योतिष्मती। (३) काकतुंडी। कौआठोंठी। (४) सफेद घुँघुची। (५) काकजंघा। मासी। (६) महाकरंज। बड़ा कंजा।

वायसेत्तु-संज्ञा पुं० [सं०] काँस नाम का तृण।

वायसोलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकोली। मालकंगनी। (२) महाज्योतिष्मती लता।

वायु-संज्ञा स्त्री० [सं०] हवा। वात।

विशेष—वैशेषिक दर्शन वायु को द्रव्यों में मानता है और उसे रूपरहित, स्पर्शवान् तथा नित्य कहता है। न्याय दर्शन में वायु पंचभूतों में है और इसका गुण स्पर्श कहा गया है। वायु से ही स्पर्शेंद्रिय की उत्पत्ति मानी गई है। वैशेषिक दर्शन स्पर्श के अतिरिक्त संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व और वेग भी वायु के गुण मानता है। सांख्य में वायु की उत्पत्ति स्पर्श तन्मात्रा से मानी गई है। उपनिषदों के अनुसार वेदांत भी वायु की उत्पत्ति आकाश से मानते हैं।

वायुकोण-संज्ञा पुं० [सं०] पश्चिमोत्तर दिशा।

वायुगुल्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वातचक्र। बगोला। बवंडर। (२) पेट का एक रोग जिसमें उसके अंदर वायु का एक गोला सा बँध जाता है, जो घटता बढ़ता और सारे पेट में फिरता रहता है। कभी कभी यह पीड़ा भी उत्पन्न करता है। वायगोला।

विशेष—इसमें प्रायः मल मूत्र का अवरोध भी हो जाता है और गला सूखा रहता है। हृदय, बगल और पसली में कभी कभी बड़ा दर्द होता है। खाली पेट में इसका ज़ोर अधिक रहता है और भरे पेट में कम। कड़ुवे, कसैले पदार्थों के खाने से यह रोग बढ़ता है।

वायुदारु-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

वायुपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हनुमान। (२) भीम।

वायुफल-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

वायुभक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप।

वायुमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश, जिसमें वायु प्रवाहित होती है।

वायुमरुल्लिपि-संज्ञा स्त्री० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार एक लिपि का नाम।

वायुरोषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] रात।

वायुलोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक लोक का नाम। (२) आकाश।

वायुवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] धूम्र। धूआँ।

वायुसख-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

वायुहन्-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जो मंकण ऋषि के पुत्र थे। कथा है कि मंकण ऋषि एक बार सरस्वती में स्नान कर रहे थे। वहाँ उनको एक नग्न स्त्री स्नान करती हुई दिखाई दी। उसे देखकर उनका वीर्य्य स्खलित हो गया। उसे उन्होंने एक घड़े में रखा, वह सात भागों में विभक्त हो गया और उनसे वायुवेग, वायुबल, वायुहन्, वायुमंडल, वायुजाल, वायु-रेता और वायुचक्र नामक सात पुत्र उत्पन्न हुए।

वारंक-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी।

वारंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तलवार की मूठ। (२) अँकुड़े के आकार का एक अस्त्र जिससे चिकित्सक अस्थिविनष्ट शल्य निकालते थे। (सुश्रुत)

वारंट-संज्ञा पुं० [अं०] अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी कर्मचारी को वह काम करने का अधिकार प्राप्त हो जाय, जिसे वह अन्यथा करने में असमर्थ हो। यह कई प्रकार का होता है, जैसे,—वारंट गिरफ्तारी, वारंट तलाशी, वारंट रिहाई, इत्यादि।

वारंट गिरफ़्तारी-संज्ञा पुं० [अं० वारंट + फ़ा० गिरफ़्तारी] अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी कर्मचारी को यह अधिकार दिया जाय कि वह किसी पुरुष को पकड़कर अदालत में हाज़िर करे।

वारंट तलाशी-संज्ञा पुं० [अं० वारंट + फ़ा० तलाशी] अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी कर्मचारी को यह अधिकार दिया जाय कि वह किसी स्थान में जाकर वहाँ की तलाशी ले।

वारंट रिहाई-संज्ञा पुं० [अं० वारंट + फ़ा० रिहाई] अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी सरकारी कर्मचारी को यह आज्ञा और अधिकार मिले कि वह किसी पुरुष को, जो जेल, हवालात या गिरफ़्तारी में हो, छोड़ दे; या किसी माल या जायदाद को, जो कुर्क हो या किसी की सपुर्दगी में हो, मालिक को लौटा दे।

वारंवार-अव्य० दे० 'वारंवार'।

वार्-संज्ञा पुं० [सं०] जल। पानी।

वार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वार। दरवाज़ा। (२) अवरोध। रोक। रुकावट। (३) ढाँकनेवाली वस्तु। आवरण। (४)

कोई नियत काल। अवसर। दफा। मरतबा। जैसे,—बारंबार। (५) क्षण। (६) सप्ताह का दिन। जैसे,—आज कौन वार है? (७) कुज वृक्ष। (८) पानपात्र। मद्य का प्याला। (९) बाण। तीर। (१०) नदी या समुद्र का किनारा। (११) शिव का एक नाम। (१२) दाँव। बारी। जैसे,—अपना अपना वार है।

मुहा०—वार मिलना = फुरसत मिलना।

संज्ञा पुं० [सं० वार = रोक, बारी] चोट। आघात। आक्रमण। हमला।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—वार खाली जाना = (१) प्रहार का ठीक स्थान पर न पड़ना। चलाया हुआ वार न लगना। (२) युक्ति सफल न होना। चली हुई चाल या तदबीर का कुछ नतीजा न होना।

वारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) निषेध करनेवाला। प्रतिबंधक। (२) घोड़े का कदम। (३) घोड़ा। (४) वह स्थान जहाँ पीड़ा हो। कष्ट-स्थान। (५) बाधा का स्थान। (६) एक सुगंधित तृण।

वारकन्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

वारकी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रतिवादी। शत्रु। (२) समुद्र। (३) पत्ते खाकर रहनेवाला तपस्वी। पर्णाशी यती।

वारकीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साला। (२) द्वारपाल। (३) वाडवाग्नि। (४) जूँ। (५) कंघी। (६) लड़ाई का घोड़ा। शिप्राश।

वारण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी बात को न करने का संकेत या आज्ञा। निषेध। मनाही।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) रोक। रुकावट। बाधा। (३) कवच। बकतर। (४) हाथी। (५) अंकुश। (६) हरताल। (७) काला सीसम। (८) पारिभद्र। (९) सफेद कौरैया का फूल। (१०) छप्पय छंद का एक भेद जिसमें ४१ गुरु, ७० लघु, कुल १११ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं; अथवा ४१ गुरु, ६६ लघु, कुल १०७ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं।

वारणकणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली।

वारणकृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कृच्छ्र व्रत जिसमें एक महीने तक पानी में जौ का सत्तू घोलकर पीना पड़ता है।

वारणबुसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कदली। केला।

वारणावत-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक जनपद या नगर जो गंगा के किनारे था।

विशेष—यहीं पर दुर्योधन ने पांडवों को जलाने के लिये लाक्षागृह बनवाया था। कुछ लोग इसे करनाल के आस-पास मानते हैं और कुछ लोग इलाहाबाद ज़िले के हँडिया नामक स्थान के पास।

वारणीय-वि० [सं०] निषेध योग्य। प्रतिषेध्य।

वारतिय*-संज्ञा स्त्री० [सं० वारस्त्री] वेश्या। उ०—ताके रहीं वारतिय दोई। रूपवती रंभा छवि छोई।—रघुराज।

वारद*-संज्ञा पुं० [सं० वारिद] बादल। उ०—सोहति धोती सेत में कनक बरन तन बाल। सारद-वारद बीजुरी-भा रद कीजत लाल।—बिहारी।

वारदात-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) कोई भीषण या शोचनीय कांड। दुर्घटना। (२) मारपीट। मारकाट। दंगा फसाद।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(३) घटना संबंधी समाचार। हाल। (क्व०)

वारधान-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक जनपद का नाम। इसे वाटधान भी कहते हैं।

वारन*-संज्ञा स्त्री० [हिं० वारना] निछावर। बलि। उ०—नित हित सों वारत रहै रूप भूप नँदलाल। छवि पनिवारन मैं मनो दृग पर वारन हाल।—रसनिधि।

संज्ञा पुं० [सं० वंदन] बंदनवार। वंदनमाला। उ०—घर घर धुजा पताका बानी। तोरन वारन वासर ठानी।—सूर।

वारना-क्रि० स० [हिं० उतारना] निछावर करना। उत्सर्ग करना। उ०—(क) चितै रही मुख इंदु मनोहर या छवि पर वारति तन को। कहि ललिता मेरे नरवर को बीच मिली मुरलीधर को।—सूर। (ख) कौसिला की कोखि पर तोषि तन वारिए री राम दसरथ की बलाय लीजै आलि री।—तुलसी। (ग) तो पर वारौं उरबसी सुन राधिका सुजान। तू मोहन के उर बसी ह्वै उरबसी समान।—बिहारी।

संज्ञा पुं० निछावर। उत्सर्ग। उ०—अति कोमल कर-चरन-सरोरुह, अधर दसन नासा सोहै री। लटकन सीस कंठ मनि भ्राजत ······ कोटि वारने है।—सूर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—वारने जाना = निछावर होना। बलि जाना। उ०—बाल बिभूषन, बसन मनोहर अंगनि बिरचि बनैहौं। सोभा निरखि निछावरि करि उर लाइ वारने जैहौं।—तुलसी।

वारनारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या।

वारपार-संज्ञा पुं० [सं० अवर + पार] (१) (नदी आदि का) यह किनारा और वह किनारा। पूरा विस्तार। जैसे,—नदी इतनी बड़ी है कि वारपार नहीं सूझता। (२) यह छोर और वह छोर। अंत। उ०—वार पार नहिं सूझहि लाखन उमरा मीर।—जायसी।

अव्य० (१) इस किनारे से उस किनारे तक। जैसे,—वार पार जाने में एक घंटा लगेगा।

मुहा०—वार पार करना = पूरा विस्तार ते करना। वार पार होना = पूरा विस्तार ते होना।

(२) एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व तक। एक बगल से दूसरी

बगल तक। पूरी चौड़ाई या मोटाई तक। जैसे,—बरछी वारपार हो गई।

मुहा०—वार पार करना = इस ओर से उस ओर तक धँसाना। पूरी मोटाई भेदकर दूसरी ओर निकालना।

वारफेर-संज्ञा स्त्री० [हिं० वार+फेर] (१) निछावर। बलि। (२) वह रुपया पैसा जो दूल्हा या दुलहिन के सिर पर से घुमाकर डोमनियों आदि को दिया जाता है। उ०—बोली कर जोरि मेरो जोर न चलत कछू चाहो सोई होहु यह वारि फेरि डारिये।—प्रियादास।

वारमुखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। उ०—कहै तुम कौन वारमुखी नहीं ओर संग भरवा सुगहै मौन सुनि परी वेरी है।—प्रियादास।

वारला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंसी। (२) केला।

वारलीक-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वजा तृण। बनकस।

वारवधू-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

वारवाणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वंशी बजानेवाला। (२) उत्तम गायक। (३) धर्माध्यक्ष। न्यायाधीश। जज। (४) ज्योतिषी।

वारवाणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या।

वारवासि, वारवास्य-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक जनपद का नाम जो भारत की पश्चिमी सीमा के आगे था।

वारस्त्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] बाजार में बैठनेवाली स्त्री। वेश्या। रंडी।

वारांगना-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

वारांनिधि-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। उ०—जयति वैराग्य-विज्ञान-वारांनिधे, नमत नर्मद पाप-ताप-हर्त्ता।—तुलसी।

वारा-संज्ञा पुं० [सं० वारण = रक्षा, बचाव] (१) खर्च की बचत। किफ़ायत। (२) लाभ। फ़ायदा।

क्रि० प्र०—पड़ना।—बैठना।

संज्ञा पुं० [हिं० वार = वह किनारा] इधर का किनारा। वार।

यौ०—वारा न्यारा।

वि० किफ़ायत। सस्ता।

वि० [हिं० वारना] [स्त्री० वारी] जो निछावर हुआ हो। जिसने किसी पर अपने को उत्सर्ग किया हो।

मुहा०—वारा होना = निछावर होना। कुरबान होना। (प्यार का वाक्य) उ०—हौं वारी तेरे इंदुवदन पर अति छवि अलकानि सोई।—सूर। वारा जाना = दे० "वारा होना"। उ०—बनवारी वारी गई बनवारी पै आज।—रसनिधि।

वाराणसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी नगरी का प्राचीन नाम।

विशेष—कुछ लोग यह नाम वरणा और असी नदियों के कारण मानते हैं। पर इस प्रकार यह शब्द सिद्ध नहीं होता। लोग इसकी ठीक व्युत्पत्ति 'वार'+'अनस्' (जल) अर्थात् "पवित्र जलवाली पुरी" बतलाते हैं। "उत्तम रथोंवाली पुरी" भी कुछ विद्वान् अर्थ करते हैं।

वारा न्यारा-संज्ञा पुं० [हिं० वार + न्यारा] (१) इस पक्ष या उस पक्ष में निर्णय। किसी ओर निश्चय। फ़ैसला। (२) झंझट या झगड़े का निबटेरा। चले आते हुए मामले का खातमा। जैसे,—उस मामले का अभी तक कुछ वारा न्यारा नहीं हुआ।

वारालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

वारावस्कंदी-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

वाराह-संज्ञा पुं० [सं०][स्त्री० वाराही] (१) दे० "वराह"। (२) काली मैनी का वृक्ष। (३) पानी के किनारे होनेवाला बेंत। अंबुवेतस्।

वाराहपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वगंधा। असगंध।

वाराहांगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दंती का पेड़।

वाराही-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ब्रह्माणी आदि आठ मातृकाओं में से एक मातृका का नाम। (२) एक योगिनी का नाम। (३) वाराही कंद। (४) कँगनी। (५) श्यामा पक्षी। (६) सफ़ेद भूकुम्हड़ा। बिलाई कंद। विदारी कंद।

वाराहीकंद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महाकंद जो गेंठी कहलाता है। कहते हैं कि यह अनूप देश में होता है। इसके कंद के ऊपर सूअर के बालों के समान रोएँ होते हैं। इसका आकार प्रायः गुड़ की भेली के समान होता है और इसके पत्ते कँटीले, बड़े बड़े तथा अनीदार होते हैं। वैद्यक में यह चरपरा, कड़ुवा, बलकारक, पित्तजनक, रसायन, शुक्रजनक, वीर्यवर्धक, अग्निदीपक, मधुर, गरम, स्वर को शुद्ध करनेवाला, आयुवर्द्धक तथा कोढ़, प्रमेह, त्रिदोष, कफ, वात, कृमि और मूत्रकृच्छ्र का नाशक माना है।

पर्य्या०—वाराही। चर्मकारालुक। विष्वक्सेनप्रिया। गृष्टि। वदरा। कृष्णा। वनमालिनी। गृष्टि। विश्वमूला। शूकरी। क्रोड़कन्या। कौमारी। त्रिनेत्रा। ब्रह्मपुत्री। क्रोड़ी। कन्या। माधवेष्टा। शूकरकंद। वनवासी। कुष्ठनाशन। वन्य। अमृत। महावीर्य्य। शंबरकंद। वराहकंद। वीर। माहीकंद। महौषध। सुकंदक। सुच्छिद। व्याधिहंता। मागधी।

वारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। पानी। (२) तरल पदार्थ। (३) ह्रीबेर। (४) सुगंधबाला।

संज्ञा स्त्री० (१) वाणी। सरस्वती। (२) हाथी के बाँधने की जंजीर आदि। (३) हाथी के बाँधने का स्थान। (४) छोटा कलसा या गगरा।

वारिकफ-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

वारिकुब्ज, वारिकुब्जक-संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा।

वारिकोल-संज्ञा पुं० [सं०] कच्छप। कछुआ।

वारिचर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी में रहनेवाले जंतु। (२) मत्स्य। मछली। (३) शंख।

वारिज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। (२) द्रोणीलवण। (३) मछली। (४) शंख। (५) घोंघा। (६) कौड़ी। (७) उत्तम सुवर्ण। खरा सोना।

वारिजात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। (२) शंख। (३) दे० "वारिज"।

वारित-वि० [सं०] जो रोका गया हो। जो मना किया गया हो। निवारित।

वारितर-संज्ञा पुं० [सं०] उशीर। खस।

वारिद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) भद्रमुस्तक। नागरमोथा।

वारिधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) भद्रमुस्तक। नागरमोथा।

वारिधि-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

वारिनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण। (२) समुद्र। (३) बादल। मेघ।

वारिनिधि-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

वारिपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जलकुंभी। (२) पानी की काई।

वारिपृश्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जलकुंभी।

वारिमुच्-संज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ।

वारियंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] फ़ौआरा। जलयंत्र।

वारियाँ-संज्ञा स्त्री० [हिं० वारी] निछावर। बलि।

क्रि० प्र०—जाना।

मुहा०—वारियाँ जाऊँ = तुम पर निछावर हूँ। (स्त्रियों का प्यार का वाक्य जो वे बात चीत में लाया करती हैं।)

वारिरुह-संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

वारिलोमा-संज्ञा पुं० [सं० वारिलोमन्] वरुण।

वारिवंद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद।

विशेष—यह कूचविहार के उत्तर में बताया जाता है।

वारिवट-संज्ञा पुं० [सं०] करौंदा।

वारिवर्त्त क-संज्ञा पुं० [सं० वारि + आवर्त्त] एक मेघ का नाम। उ०—सुनत मेघवर्तक साजि सैन लै आए। जलवर्त, वारिवर्त, पवनवर्त, वज्रवर्त, आगिवर्तक जलद संग लाए। —सूर।

वारिवास-संज्ञा पुं० [सं०] मद्य बनानेवाला। कलवार। कलार।

वारिवाह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। (२) मुस्तक। मोथा।

वारिश-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

वारिशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष का एक ग्रंथ जो गर्ग मुनि का रचा हुआ कहा जाता है। इससे यह निकाला जाता है कि स्थान में कैसी वृष्टि होगी, और कब कब होगी।

वारिस-संज्ञा पुं० [अ०] (१) दायाद। दायभागी पुरुष। (२) वह पुरुष जो किसी के मरने के पीछे उसकी संपत्ति आदि का स्वामी और उसके ऋण आदि का देनदार हो। उत्तराधिकारी।

वारिसार-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत पुराण के अनुसार चंद्रगुप्त के एक पुत्र का नाम।

वारींद्र-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

वारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हाथी के बाँधने की जंजीर या अँदुआ। गजबंधन। (२) कलसी। छोटा गगरा।

वि० दे० "वारा"।

वारीट-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

वारी फेरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० वारना + फेरना] किसी प्रिय व्यक्ति के ऊपर कुछ द्रव्य, या और कोई वस्तु घुमाकर इसलिये छोड़ना या उत्सर्ग करना, जिसमें उसकी सब बाधाएँ दूर हो जायँ। निछावर। (स्त्रियों का एक टोटका) उ०—सुजन पर जननी वारी फेरी वारी। क्यों तोन्यो कोमल कर-कमलन संभु-सरासन भारी?—तुलसी।

क्रि० प्र०—डालना।

वारीश-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

वारुंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँपों का राजा। (२) नाव में से पानी निकालने का बरतन। ससला। (३) कान की मैल। खूँट। (४) आँख का कीचड़।

वारु-संज्ञा पुं० [सं०] विजय हस्ति, जिस पर विजयपताका चलती है।

वारुठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंतशय्या। मरण खाट। (२) वह टिकठी जिस पर मुरदे को लेटाकर ले जाते हैं। अरथी।

वारुण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। (२) शतभिषा नक्षत्र। (३) भारतवर्ष के एक खंड का नाम। इसे आज कल 'बरनारक' कहते हैं। (४) एक अस्त्र का नाम। (५) हरताल। (६) एक उपपुराण का नाम। (७) वरुण या बरुना नाम का पेड़।

वारुणक-संज्ञा पुं० [सं०] एक जनपद का नाम।

वारुणकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] कूआँ, पोखरा, बावली आदि जलाशय बनवाने का काम।

वारुणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगस्त्य मुनि। (२) वसिष्ठ। (३) भृगु। (४) विनता के एक पुत्र का नाम। (५) एक जनपद का नाम। (६) दँतैला हाथी। (७) वारुण वृक्ष। बरुना का पेड़।

वारुणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मदिरा। शराब।

विशेष—कई प्रकार की मदिरा का नाम वारुणी है। जैसे,—पुनर्नवा (गदहपूरना) को पीसकर बनाई हुई, ताड़ या

खजूर के रस से बनी हुई, साठी धान के चावल और दूध पीसकर बनाई हुई।
(२) वरुण की स्त्री। वरुणानी। (३) उपनिषद् विद्या जिसका उपदेश वरुण ने किया था। (४) पश्चिम दिशा। (५) शतभिषा नक्षत्र। (६) एक नदी का नाम। (७) भुईआँवला। (८) गाँडर दूब। (९) घोड़े की एक चाल। (१०) इन्द्रवारुणी लता। इंद्रायन की बेल। (११) हथनी। (१२) एक पर्व जो उस समय माना जाता है, जब चैत महीने की कृष्ण त्रयोदशी को शतभिषा नक्षत्र पड़ता है। इस दिन लोग गंगा स्नान, दान आदि करते हैं। (१३) वृंदावन के एक कदंब का रस जो वरुण की कृपा से बलराम जी के लिये निकला था। (१४) कदंब के पके हुए फलों से बनाया हुआ मद्य।

वारुह-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

वारेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] गौड़ देश के एक प्राचीन जनपद का नाम जो आज कल के राजशाही ज़िले में था।

वार्कजंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साम का नाम। (२) वृकजंभ ऋषि का गोत्रज।

वार्कार्य्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक यज्ञ कर्म।

वार्क्ष-वि० [सं०] वृक्ष संबंधी या वृक्ष का बना हुआ।
संज्ञा पुं० वृक्ष की छाल का बना हुआ वस्त्र।

वार्क्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रचेतागण की स्त्री मारिषा का नाम।
विशेष—इसका जन्म कुंडु मुनि और प्रम्लोचा अप्सरा से हुआ था। कुंडु मुनि गोमती के तट पर तप कर रहे थे। उनको तपोभ्रष्ट करने के लिये इंद्र ने प्रम्लोचा को भेजा था। वह मुनि के आश्रम में बहुत काल तक रही। जब मुनि को उसके छल का ज्ञान हुआ, तब वे अपने को धिक्कारने लगे। प्रम्लोचा शाप के भय से भागी। उसके शरीर से पसीना निकला, जो एक वृक्ष के ऊपर पड़ा। उसी से मारिषा उत्पन्न हुई। मारिषा को राजा ने प्रचेतागण को प्रदान किया, जिससे दक्ष प्रजापति का जन्म हुआ।

वार्च-संज्ञा पुं० [सं०] हंस।

वार्ड-संज्ञा पुं० [अं०] (१) रक्षा। हिफ़ाज़त। (२) किसी विशिष्ट कार्य के लिये घेरकर बनाया हुआ स्थान। (३) नगर में उनके महल्लों आदि का समूह, जो किसी विशिष्ट कार्य के लिये अलग नियत किया गया हो। (४) अस्पताल या जेल आदि के अंदर के अलग अलग विभाग।

वार्डर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह जो रक्षा करता हो। रक्षक। (२) जेल आदि के अंदर का पहरेदार।

वार्णक-संज्ञा पुं० [सं०] लेखक।

वार्णिक-संज्ञा पुं० [सं०] लेखक।

वार्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आरोग्य। निरामय। (२) किसी वृत्ति या व्यवसाय में लगा हुआ। काम-काजी।

वार्त्तक-संज्ञा पुं० [सं०] बटेर पक्षी।

वार्त्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जनश्रुति। अफ़वाह। (२) संवाद। वृत्तांत। हाल। (३) विषय। मामला। प्रसंग। बात। (४) कथोपकथन। बातचीत।
यौ०—वार्त्तालाप।
(५) वैश्य वृत्ति जिसके अंतर्गत कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा और कुसीद है। (६) दुर्गा। (७) अन्य के द्वारा क्रय विक्रय होना।

वार्त्ताक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैंगन। भंटा। (२) बटेर पक्षी।

वार्त्ताकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बैंगन। भंटा।

वार्त्ताकु-संज्ञा पुं० [सं०] बैंगन। भंटा।

वार्त्तायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गूढ़ पुरुष। प्रणिधि। चर। (२) दूत। एलची।

वार्त्तालाप-संज्ञा पुं० [सं०] बात चीत। कथोपकथन।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

वार्त्तावह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पनसारी। (२) समाचार ले आनेवाला। दूत। (३) नीति शास्त्र का वह भाग, जो आय व्यय से संबंध रखता है। वार्त्ता।

वार्त्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी ग्रन्थ के उक्त, अनुक्त और दुरुक्त अर्थों को स्पष्ट करनेवाला वाक्य या ग्रंथ। जैसे,—पाणिनि की अष्टाध्यायी पर कात्यायन का वार्त्तिक, न्यायसूत्र के वात्स्यायन भाष्य पर उद्योतकर का न्याय-वार्त्तिक।
विशेष—वृत्ति और भाष्य केवल मूल ग्रंथ के आशय को स्पष्ट करते हैं, उसके बाहर कुछ नहीं कहते। पर वार्त्तिककार को पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। वह नई बातें भी कह सकता है।
(२) वृत्ति या आचार शास्त्र का अध्ययन करनेवाला। (३) दूत। चर।

वार्त्रघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अर्जुन। (२) जयंत।

वार्त्रतुर-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वार्द-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

वार्दर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दक्षिणावर्त्त शंख। (२) जल। (३) घोड़े के गले पर की दाहिनी ओर की भौंरी। (४) आम की गुठली। (५) रेशम। (६) जल। (७) काकचिंचा।

वार्द्धक-संज्ञा पुं० [सं०] बुढ़ापा।

वार्द्धक्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुढ़ापा। (२) वृद्धि। बढ़ती।

वार्द्धि-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

वार्द्धुषि-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक ब्याज लेनेवाला।

वार्द्धुषिक-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक सूद लेनेवाला। सूदखोर।

वार्द्धुष्य-संज्ञा पुं० [सं०] अन्न को अधिक ब्याज पर देने का व्यवसाय। विसार।

वार्ध्रीणस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गैंडा। (२) वह बधिया बकरा जिसका रंग सफ़ेद हो और जिसके कान इतने लंबे हों कि पानी पीते समय पानी से छू जायँ। (३) एक प्रकार का पक्षी जिसका सिर लाल, गला नीला और शेष शरीर काला कहा गया है। प्राचीन काल में इस पक्षी का बलिदान विष्णु के उद्देश्य से होता था।

वार्भट-संज्ञा पुं० [सं०] घड़ियाल।

वार्मुच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बादल। (२) मुस्तक। मोथा।

वार्य्य-वि० [सं०] (१) जो रोका जा सके। जिसका निवारण हो सके। वारणीय। (२) जिसे वारण करना हो। जिसे रोकना हो।

वार्य्योका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

वार्राशि-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

वार्वट-संज्ञा पुं० [सं०] नौका। नाव। बेड़ा।

वार्वणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नीले रंग की मक्खी।

वार्षक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार पृथ्वी के दस भागों में से एक भाग का नाम जिसे सुघुम्न ने विभक्त किया था।

वार्षगण्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के वैदिक आचार्य्य।

वार्षाहर-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वार्षिक-वि० [सं०] (१) वर्ष संबंधी। (२) जो प्रति वर्ष होता हो। सालाना। (३) वर्षा काल में होनेवाला।

वार्षिकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बेले का फूल।

वार्षिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] ओला। करका। पत्थर।

वार्ष्णि-संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णचंद्र।

वार्ष्णेय-संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णचंद्र।

वार्हद्रथ-संज्ञा पुं० [सं०] बृहद्रथ का पुत्र, जरासंध।

वालंटियर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह मनुष्य जो बिना किसी पुरस्कार या वेतन के किसी कार्य्य में अपनी इच्छा से योग दे। स्वयंसेवक। स्वेच्छासेवक। (२) वह सिपाही जो बिना वेतन के अपनी इच्छा से फ़ौज में सिपाही या अफ़सर का काम करे। वलमटेर।

वालक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बालछड़। (२) कंकण। कंगन।

वालदैन-संज्ञा पुं० [अ०] माता पिता। माँ बाप।

वालव-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में एक करण का नाम।

वाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवज्रा और उपेंद्रवज्रा के मेल से बने हुए उपजाति नामक सोलह प्रकार के छंदों में से एक, जिसके पहले तीन चरणों में दो तगण, एक जगण और दो गुरु होते हैं; तथा चौथे चरण में और सब वही रहता है, केवल प्रथम वर्ण लघु होता है। जैसे,—राखौ सदा संभु हिये अखंडा। बाधौ सबै दूर तनै जु दंडा। धारो विभूती तन अक्षमंडा। नसैं सबैई भय ओघ चंडा।

वालाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जिसके फूलों के दल आँख के आकार के लगते हैं।

वालाग्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन मान जो आठ रज का माना जाता था।

वालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दे० "बालिका"। (२) बालुका। बालू। (३) कान का एक गहना। बाला। बाली। (४) इलायची।

वालिखिल्य-संज्ञा पुं० दे० "बालखिल्य"।

वालिद-संज्ञा पुं० [अ०] पिता। बाप।

वालिदा-संज्ञा स्त्री० [अ०] माता। माँ।

वाली-संज्ञा पुं० [सं० वालिन्] बंदरों का एक राजा जो सुग्रीव का बड़ा भाई और अंगद का पिता था।

विशेष—पुराणों में इसकी उत्पत्ति इंद्र के वीर्य्य से कही गई है। वि० दे० "बालि"।

वालु-संज्ञा पुं० [सं०] एक गंध द्रव्य।

वालुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक गंध द्रव्य। (२) पनियालू।

वालुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बालू। रेत। (२) शाखा। (३) हाथ पैर। (४) ककड़ी। (५) कपूर।

वालुकाप्रभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नरक का नाम।

वालुकायंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] औषध सिद्ध करने का एक प्रकार का यंत्र।

वालुकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी।

वालूक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विष।

वालेय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गदहा। (२) पुत्र। (३) एक प्रकार का करंज। अंगारवल्लरी।

वाल्क-संज्ञा पुं० [सं०] क्षौमादि वस्त्र।

वाल्कल-वि० [सं०] वल्कल का। छाल का।

वाल्कली-संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरा। गौड़ी मद्य।

वाल्मीकि-संज्ञा पुं० [सं०] एक मुनि जो रामायण के रचयिता और आदि कवि कहे जाते हैं। इनका जन्म भृगु वंश में हुआ था। ये प्रचेता के वंशज थे और तमसा नदी के किनारे, जिसे अब टौंस कहते हैं, रहते थे। ये एक बार अपने शिष्यों सहित नदी तट पर स्नान करने गए। वहाँ शिष्यों को घाट पर स्नान संध्या करने के लिये छोड़कर नदी के किनारे टहल रहे थे कि इसी बीच में एक निषाद ने एक क्रौंच को मारा। क्रौंच रक्त में लथपथ भूमि पर गिर पड़ा और क्रौंची चिल्लाने लगी। यह घटना देखकर मुनि के मुँह से यह वाक्य निकल गया—मा निषाद प्रतिष्ठात्वमगमच्छाश्वती समा, यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काममोहिता। यह वाक्य विशुद्ध वर्ण-युक्त सुंदर अनुष्टुभ था। यह छंद मुनि को इतना रुचिकर हुआ कि उन्होंने समस्त रामायण महाकाव्य इसी छंद में रच डाला।

वाल्मीकीय-वि० स्त्री० [सं०] (१) वाल्मीकि संबंधी। वाल्मीकि की। (२) वाल्मीकि की बनाई हुई।

वावदूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा बोलनेवाला। वक्ता। वाग्मी। (२) बहुत बकनेवाला। बकवादी।

वावैला-संज्ञा पुं० [अ०] (१) विलाप। रोना पीटना। (२) शोरगुल। हल्ला। चिल्लाहट।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

वाश्र-संज्ञा पुं० [सं०] अडूसा। वासक।

वि० (१) बहुत रोनेवाला। रोना। (२) निवेदित।

संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वाशक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिल्लानेवाला। निनादकारी। (२) रोनेवाला। (३) अडूसा।

वाशन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षियों का बोलना। (२) मक्खियों का भिनभिनाना।

वि० (१) चिल्लानेवाला। शब्द करनेवाला। (२) चहचहाने-वाला। (३) भिनभिनानेवाला।

वाशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वासक। अडूसा।

वाशि-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

वाशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] अडूसा।

वाशित-संज्ञा पुं० [सं०] पशु पक्षी आदि का शब्द।

वि० दे० "वासित"।

वाशिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्री। (२) हथिनी।

वाशिष्ठ-संज्ञा पुं० (१) एक उपपुराण का नाम। (२) एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

वि० [सं०] वशिष्ठ संबंधी। वशिष्ठ का

वाशिष्ठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोमती नदी।

वाश्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंदिर। (२) चौराहा।

वाष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोहा। (२) आँसू। (३) भाप। भाफ। (४) कंटकारि। भटकटैया।

वाष्पक-संज्ञा पुं० [सं०] मरसा नाम का साग।

वाष्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंगुपत्री।

वासंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊँट। (२) कोकिल। (३) मलय वायु। (४) मूँग। (५) मैनफल।

वासंतक-वि० [सं०] (१) वसंत संबंधी। (२) वसंत ऋतु में बोया हुआ।

वासंतिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाँड़। विदूषक। (२) नाचने-वाला। नर्तक।

वि० वसंत संबंधी।

वासंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माधवी लता। (२) जूही। (३) गनियारी नामक फूल। (४) मदनोत्सव। (५) दुर्गा। (६) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में चौदह वर्ण होते हैं, जिनमें ६, ७, ८ और ९ वाँ वर्ण लघु और शेष गुरु होते हैं। (म, त, न म, ग ग)

वास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अवस्थान। रहना। निवास।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—कारावास। तीर्थवास। कल्पवास। कैलाशवास। वैकुंठवास।

(२) गृह। घर। मकान। (३) वासक। अडूसा। (४) सुगंध। बू।

वासक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अडूसा। (२) गान का एक अंग।

विशेष—शंकर के मत से मनोहर, कंदर्प, चारु और नंदन नामक इसके चार भेद हैं। कोई कोई विनोद, वरद, मंद और कुमुद को इसके भेद मानते हैं।

(३) वासर। दिन। (४) मालव राग का एक भेद।

वासकसज्जा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नायिका भेद के अनुसार वह नायिका जो नायक से मिलने की तैयारी किए हुए घर आदि सजाकर और आप भी सजकर बैठी हो।

वासका-संज्ञा स्त्री० [सं०] अडूसा।

वासकेट-संज्ञा पुं० स्त्री० [अं० वेस्टकोट] एक प्रकार की छोटी बंडी या कमर तक की कुरती जिससे केवल पीठ, छाती और पेट ढकता है।

विशेष—इसमें आस्तीन नहीं होती। आगे और पीछे के कपड़ों में भेद होता है। इसे कसने के लिये पीछे बकसुए-दार दो बंद होते हैं।

वासत-संज्ञा पुं० [सं०] गर्दभ। गदहा।

वासतेय-वि० [सं०] बस्ती के योग्य। रहने लायक।

वासतेयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] रात।

वासन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वासित] (१) सुगंधित करना। वासना। धूपन। (२) वस्त्र। (३) वास। (४) ज्ञान।

वासना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रत्याशा। (२) ज्ञान। (३) किसी पूर्व स्थिति के जमे प्रभाव से उत्पन्न मानसिक दशा। भावना। संस्कार। स्मृतिहेतु। (४) न्याय के अनुसार देहात्म बुद्धिजन्य मिथ्या संस्कार। (५) इच्छा। कामना। (६) दुर्गा। (७) अर्क की पत्नी।

क्रि० स० दे० "बासना"।

वासर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिन। दिवस। (२) वह घर जिसमें विवाह हो जाने पर स्त्री पुरुष पहली रात को सोते हैं।

वासरमणि-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

वासरसंग-संज्ञा पुं० [सं०] प्रातःकाल।

वासव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) धनिष्ठा नक्षत्र।

वासवि-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के पुत्र, अर्जुन।

वासवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास की माता सत्यवती। मत्स्यगंधा।

वासवेय-संज्ञा पुं० [सं०] वासवी के पुत्र, वेदव्यास।

वासस्-संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र। कपड़ा।

वासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वासक। अड़ूसा। (२) मासंती। माधवी लता।

वासि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कुठार। बसूला।

वासित-वि० [सं०] (१) सुगंधित किया हुआ। महकाया हुआ। (२) वस्त्राच्छादित। कपड़े से ढका हुआ। (३) जो ताजा न हो। बासी।

वासिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्री। (२) हथिनी। (३) चंद्रशेखर के मत से आर्या छंद का एक भेद जिसमें ९ गुरु और ३९ लघु वर्ण होते हैं।

वासिल-वि० [अ०] (१) पहुँचाया हुआ। प्राप्त। (२) मिला हुआ। जो वसूल हुआ हो।

यौ०—वासिल बाकी = वसूल और बाकी रकम। उ०—वासिल बाकी स्याहा मुजमिल सब अधरम की बाकी। चित्रगुप्त होत मुस्तौफ़ी शरण गहौं मैं काकी।—सूर।

वासिलात संज्ञा पुं० [अ०] वह धन जो वसूल हुआ हो। वसूल हुए धन का योग। (इसका प्रयोग बहु० में होता है।)

वासिष्ठ-वि० [सं०] वशिष्ठ संबंधी।

संज्ञा पुं० रक्त। रुधिर।

वासी-संज्ञा पुं० [सं० वासिन्] रहनेवाला। बसनेवाला। अधिवासी। जैसे,—ग्रामवासी। नगरवासी।

संज्ञा स्त्री० [सं०] बसूला जिससे बढ़ई लकड़ी छीलते हैं। तक्षणी।

वासु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) परमात्मा। (३) पुनर्वसु नक्षत्र।

वासुकी-संज्ञा पुं० [सं०] आठ नागों में से दूसरा नागराज।

वासुदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वसुदेव के पुत्र, श्रीकृष्णचंद्र। (२) पीपल का पेड़। अश्वत्थ। (बोलचाल)

वासुदेवक-संज्ञा पुं० [सं०] वासुदेव या श्रीकृष्ण का उपासक।

वासुभद्र-संज्ञा पुं० [सं०] वासुदेव। श्रीकृष्णचंद्र।

वासुमंद-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वासुरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्री। (२) हथिनी। (३) रात्रि। रात। (४) भूमि। जमीन।

वासू-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटकों की परिभाषा में स्त्रियों के लिये संबोधन का शब्द।

वास्त-संज्ञा पुं० [सं०] बकरा।

वास्तव-वि० [सं०] प्रकृत। यथार्थ। सत्य।

यौ०—वास्तव में = सचमुच। सत्यतः। असल में। दर-असल। वाक़ई।

संज्ञा पुं० परमार्थ भूत। असल तत्व।

वास्तविक-वि० [सं०] (१) परमार्थ। सत्य। प्राकृत। (२) यथार्थ। ठीक।

वास्तव्य-वि० [सं०] (१) रहने योग्य। बसने योग्य। (२) बसनेवाला। अधिवासी।

संज्ञा पुं० बस्ती। आबादी।

वास्ता-संज्ञा पुं० [अ०] (१) संबंध। लगाव।

मुहा०—वास्ता पड़ना = व्यवहार का अवसर आना। काम पड़ना। जैसे,—तुमको उससे वास्ता नहीं पड़ा है; नहीं तो जानते। वास्ता पैदा करना = ढब लगाना। संबंध जोड़ना। वास्ता रखना = लगाव रखना। संबंध रखना।

(२) मित्रता। (३) स्त्री और पुरुष का अनुचित संबंध।

वास्तु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुभ निवास योग्य स्थान। वह स्थान जिस पर घर उठाया जाय। डीह।

विशेष—घर बनाने के पहले वास्तु या डीह के शुभाशुभ का विचार किया जाता है। बृहत्संहिता में वास्तुगृह के उत्तम, मध्यम आदि क्रम से पाँच भेद कहे गए हैं।

(२) घर। गृह। मकान। (३) इमारत।

वास्तुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बथुआ नाम का साग। (२) पुनर्नवा। गदहपूरना।

वास्तुकालिंग-संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज। कलींदा।

वास्तुप, वास्तुपति-संज्ञा पुं० [सं०] वास्तु का अधिष्ठाता देवता। उस स्थान का देवता जिसमें घर बना हो। वास्तुपुरुष।

वास्तुपूजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वास्तु पुरुष की पूजा जो नवीन घर में गृहप्रवेश के आरंभ में की जाती है।

वास्तुयाग-संज्ञा पुं० [सं०] वह याग जो नवीन गृह में प्रवेश करने के समय किया जाता है।

वास्तुविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विद्या जिससे वास्तु या इमारत के संबंध की सारी बातों का परिज्ञान होता है। भवन-निर्माण की कला।

वास्तुशांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वे शांति आदि कर्म जो नवीन गृह में प्रवेश करते समय किए जाते हैं।

वास्तुशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वास्तुविषयक शास्त्र। वि० दे० "वास्तु विद्या"।

वास्तूक-संज्ञा पुं० [सं०] बथुआ।

वास्ते-अव्य० [अ०] (१) लिये। निमित्त। जैसे,—तुम्हारे वास्ते आम लाया हूँ। (२) हेतु। सबब। जैसे,—तुम किस वास्ते वहाँ जाते हो ?

वास्तोष्पति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) देवता मात्र। (३) वास्तुपति।

वास्य-वि० [सं०] जल में रहनेवाला। जलस्थ।

वास्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरमी। ऊष्मा। (२) लोहा। (३) भाप।

वास्पेय-संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर।

वाह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वाहन। सवारी। (२) लादकर या खींचकर ले चलनेवाला। (३) घोड़ा। (४) बैल। (५) भैंसा। (६) वायु। (७) प्राचीन काल का एक तौल या मान जो चार गोणी का होता था।

अव्य० [फा०] (१) प्रशंसासूचक शब्द। धन्य। जैसे,—वाह! यह तुम्हारा ही काम था।

विशेष—कभी कभी अत्यंत हर्ष प्रकट करने के लिये यह शब्द दो बार भी आता है। जैसे,—वाह वाह, आ गए।

(२) आश्चर्यसूचक शब्द। जैसे,—वाह! मियाँ काले, क्या खूब रंग निकाले। (३) घृणाद्योतक शब्द। जैसे,—वाह तुम्हारा यह मुँह! (४) आनंदसूचक शब्द।

वाहक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लादकर या खींचकर वस्तुओं को ले चलनेवाला। बोझ ढोने या खींचनेवाला। जैसे,—भारवाहक। (२) सारथी।

वाहन-संज्ञा पुं० [सं०] सवारी।

वाहरिपु-संज्ञा पुं० [सं०] महिष। भैंसा।

वाहवाही-संज्ञा स्त्री० [फा०] लोगों की प्रशंसा। स्तुति। साधुवाद।

मुहा०—वाहवाही लेना या लूटना = लोगों की प्रशंसा का पात्र बनना। जैसे,—दूसरे का माल बाँटकर उसने खूब वाहवाही लूटी।

वाहिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाड़ी। छकड़ा। (२) बड़ा।

वाहित-वि० [सं०] (१) प्रवाहित। (२) चलाया हुआ। चालित। (३) वंचित।

वाहिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेना। (२) सेना का एक भेद जिसमें ८१ हाथी, ८१ रथ, २४३ घोड़े और ४०५ पैदल होते थे। एक वाहिनी में तीन गण होते थे।

वाहिनीपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वाहिनी नामक सेना विभाग का अधिपति। (२) सेनापति।

वाहियात-वि० [अ० वाही + फा० यात] (१) व्यर्थ। फजूल। जैसे,—तुम तो यों ही वाहियात बका करते हो। (२) बुरा। खराब। जैसे,—वाहियात आदमियों का साथ मत किया करो।

वाही-वि० [अ०] (१) सुस्त। ढीला। (२) निकम्मा। (३) बुद्धिहीन। मूर्ख। उ०—पीठि परो ईठि सो बसीठि बिनु बीठ मन मीठ न सँभारै वाही मोहि मढ़ि रहो है।—देव। (४) आवारा। (५) बेठिकाने का। (६) बेहूदा।

वाहीतबाही-वि० [अ० वाही + तबाही] (१) बेहूदा। आवारा।

क्रि० प्र०—फिरना।

(२) अंडबंड। बेसिर पैर का।

क्रि० प्र०—बकना।

संज्ञा स्त्री० अंडबंड बातें। गाली गलौज।

वाहु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हाथ के ऊपर का भाग जो कुहनी और कंधे के बीच में होता है। भुजदंड। (२) गणित शास्त्र में त्रिकोणादि क्षेत्रों के किनारे की (पार्श्व) रेखा। भुजा।

वाहुमूल-संज्ञा पुं० [सं०] काँख।

वाहुल-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिक का महीना।

वाहुल्य-संज्ञा पुं० [सं०] आधिक्य। अधिकता।

वाहुवार-संज्ञा पुं० [सं०] बहेड़े का वृक्ष।

वाह्य-संज्ञा पुं० [सं०] यान। रथ। सवारी।

क्रि० वि० (१) बाहर। (२) अलग। जैसे,—लोकबाह्य।

वाह्यांतर-वि० [सं०] भीतर और बाहर का। जैसे,—वाह्यांतर शुद्धि।

क्रि० वि० भीतर और बाहर।

वाह्येंद्रिय-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँचों ज्ञानेंद्रियाँ जिनका काम वाह्य विषयों का ग्रहण करना है। आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा।

वाह्लीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक जनपद जो भारत की उत्तर-पश्चिम सीमा पर था। गांधार के पास का एक प्रदेश।

विशेष—साधारणतः आजकल के 'बलख' (जो अफगानिस्तान के उत्तरी भाग में है) के आस पास का प्रदेश ही, जिसे प्राचीन पारसी 'बख्तर' और यूनानी 'बैक्ट्रिया' कहते थे, वाह्लीक माना जाता है; पर पाश्चात्य पुरातत्त्वविद् इसे आजकल के हिंदुस्तान के बाहर नहीं मानना चाहते।

(२) वाह्लीक देश का घोड़ा। (३) कुंकुम। केसर। (४) हींग। (५) एक गंधर्व का नाम।

विंगेरु-संज्ञा पुं० [?] अग्नि। आग।

विंजामर-संज्ञा पुं० [सं०] आँख का वह भाग जो सफेद होता है।

विंझाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रेणी। पंक्ति। कतार।

विंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अवंती के एक राजा का नाम। (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (३) दिन का एक विशेष भाग। (४) प्राप्ति। लाभ।

संज्ञा पुं० दे० "वृंद"। उ०—कलिंदजा के सुरंग मूल स्तान के विंद बितान तने हैं।—दास।

संज्ञा पुं० दे० "बिंदु"।

विंदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राप्त करनेवाला। पानेवाला। (२) जाननेवाला। ज्ञाता। वेत्ता। उ०—(क) परम साधु परमारथ बिंदक। संभु उपासक नहिं हरि निंदक।—तुलसी। (ख) मय कि परहिं परमातम बिंदक। सुखी कि होहिं कबहुँ पर निंदक।—तुलसी।

विंदु-संज्ञा पुं० [सं० बिन्दु] (१) जलकण। बूँद। (२) बुँदकी। बिंदी। (३) रंग की बिंदी जो हाथी के मस्तक पर शोभा के लिये बनाई जाती है। (४) अनुस्वार। (५) शून्य। (६) दाँत का लगाया हुआ क्षत। दंत क्षत। (७) दो भौंहों के बीच की बिंदी। (८) एक बूँद परिमाण। (९) रेखागणित के अनुसार वह जिसका स्थान नियत हो, पर विभाग न हो सके। (१०) छोटा टुकड़ा। कण। कनी।

उ०—कनक विंदु दुइ चारि के देखे। राखे सीस सीय सम ऐसे।—तुलसी। (११) रत्नों का एक दोष या धब्बा जो चार प्रकार का कहा गया है—आवर्त्त (गोल), वर्त्ति (लंबा) आरक्त (लाल) और यव (जौ के आकार का)। (१२) मूँज या सरकंडे का पूँआ।

वि० (१) ज्ञाता। वेत्ता। जानकार। (२) दाता। (३) जानने योग्य।

विंदुचित्रक-संज्ञा पुं० [सं०] वह मृग जिसके शरीर पर गोल गोल सफ़ेद बुंदकियाँ होती हैं। सफ़ेद चित्तियों वा हिरन।

विंदुजाल-संज्ञा पुं० [सं०] सफ़ेद विंदियों का समूह जो हाथी के मस्तक और सूँड़ पर बनाया जाता है।

विंदुजालक-संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों का पद्मक नामक रोग।

विंदुतंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चौपड़ आदि की बिसात। अक्ष। सारिफलक। (२) तुरंगक।

विंदुतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] काशी के प्रसिद्ध पंचनद तीर्थ का नामांतर जहाँ विंदु माधव का मंदिर है। पंचगंगा।

विंदुत्रिवेणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गाने में स्वर साधन की एक प्रणाली जिसमें तीन बार एक स्वर का उच्चारण करके एक बार उसके बाद के स्वर का उच्चारण करते हैं। फिर तीन बार उस दूसरे स्वर का उच्चारण करके एक बार तीसरे स्वर का उच्चारण करते हैं; और अंत में तीन बार सातवें स्वर का उच्चारण करके एक बार उसके अगले सप्तक के पहले स्वर का उच्चारण करते हैं। यथा—आरोही—सा सा सा रे, रे रे रे ग, ग ग ग म, म म म प, प प प ध, ध ध ध नि, नि नि नि सा। अवरोही—सा सा सा नि, नि नि नि ध, ध ध ध प, प प प म, म म म ग, ग ग ग रे, रे रे रे सा।

विंदुपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र।

विंदुमति, विंदुमती-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा शशिविंदु की कन्या का नाम।

विंदुमाधव-संज्ञा पुं० [सं०] काशी की एक प्रसिद्ध विष्णुमूर्ति का नाम। इसके विषय में काशी खंड में लिखा है कि एक बार भगवान विष्णु शिवजी की सम्मति पाकर काशी आए और वहाँ से राजा दिवोदास को बाहर निकाल दिया। उस समय अग्निविंदु नामक ऋषि ने विष्णु की स्तुति की और भगवान ने प्रसन्न होकर उससे वर माँगने के लिये कहा। ऋषि ने कहा कि मोक्षाभिलाषियों के हितार्थ पंचनद तीर्थ पर आप अवस्थान करें और हमारे नाम से प्रसिद्ध होकर सब को मुक्ति प्रदान करें। विष्णु भगवान ने "एवमस्तु" कहकर कहा कि आज से हम तुम्हारा आधा नाम अपने नाम के आगे जोड़कर विंदुमाधव नाम से प्रख्यात होकर पंचनद तीर्थ (पंचगंगा) पर वास करेंगे। पंचनद तीर्थ भी विंदु तीर्थ कहलावेगा।

विंदुर-संज्ञा पुं० [सं० विंदु+र (प्रत्य०)] किसी पदार्थ पर दूसरे रंग के लगे हुए छोटे छोटे चिह्न। बुंदकी। उ०—सिंदुर विंदुर भालके चिह्न चुनी जरि केसर कुंदन कीजै।—सुंदरीस०।

विंदुराजि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप। राजमन।

विंदुल-संज्ञा पुं० [सं०] अगिया नामक कीड़ा जिसके छूने से शरीर में फफोले निकल आते हैं।

विंदुसर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक सरोवर का नाम जिसके उत्तर कैलास पर्वत है। कहते हैं कि भगीरथ ने गंगा के लिये इसी सर के किनारे तप किया था। गंगा जी इसी स्थान से निकली हैं। देवताओं ने यहाँ अनेक यज्ञ किए थे और भगवती गंगा के जितने विंदु पृथ्वी पर उतरते समय गिरे, वे इसी स्थान पर गिरे थे। इस से यह सर बन गया और विंदुसर कहलाने लगा। (२) उड़ीसा में भुवनेश्वर क्षेत्र के एक प्राचीन सरोवर का नाम।

विंदुसार-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रगुप्त के एक पुत्र का नाम। यह चंद्रगुप्त के बाद मगध का राजा हुआ था। सम्राट् अशोक इसी का पुत्र था।

विंध-संज्ञा पुं० [सं० विंध्य] विंध्याचल। विंध्य पर्वत। उ०—कुसमउ देखि सनेह सँभारा। बढ़त विंध जिमि घटज निवारा।—तुलसी।

विंधपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बेलसोंठ। बिल्वशलाटु।

विंधपत्री-संज्ञा स्त्री० दे० "विंधपत्र"।

विंध्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध पर्वत या पर्वत-श्रेणी का नाम जो भारतवर्ष के मध्य में पूर्व से पश्चिम को फैला हुआ है। आर्यावर्त देश की दक्षिण सीमा पर यह पर्वत है। विंध्य पर्वत के दक्षिण का प्रदेश दक्षिणापथ या दक्षिण कहलाता है। इससे दो प्रधान नदियाँ नर्मदा और ताप्ती दक्षिण और पश्चिम दिशा में बहकर अरब की खाड़ी में गिरती हैं। इस पर्वत के पत्थर प्रायः बलुए और परतदार होते हैं। इसकी अनेक शाखा-प्रशाखाएँ सतपुरा आदि नाम से विख्यात हैं। पुराणानुसार यह सात कुल पर्वतों में है और मनु के अनुसार मध्य देश की दक्षिणी सीमा है। महाभारत में कथा है कि विंध्य ने सूर्य्य से कहा कि मेरु के समान तुम हमारी प्रदक्षिणा किया करो। जब सूर्य्य ने न माना, तब विंध्य ऊपर बढ़ने लगा और यह आशंका हुई कि वह सूर्य्य का मार्ग ही रोक देगा। देवताओं ने अगस्त्य से प्रार्थना की। अगस्त्य उसके पास गए और उसने साष्टांग दंडवत की। मुनि ने कहा कि जब तक मैं न लौटूँ, तब तक इसी तरह पड़े रहना। इतना कहकर अगस्त्य जी चले गए और फिर वापस नहीं आए। कहते हैं कि इसी लिये यह पर्वत अब तक ज्यों का त्यों लेटा पड़ा है; और इसी लिये इसका इतना अधिक विस्तार है।

विंध्यकूट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विंध्य पर्वत। (२) अगस्त्य मुनि का एक नाम।

विंध्यचूलक, विंध्यचूलिक-संज्ञा पुं० [सं०] विंध्य पर्वत के दक्षिण का प्रदेश। महाभारत के अनुसार यहाँ एक प्राचीन जंगली जाति बसती थी।

विंध्यवासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवी की एक प्रसिद्ध मूर्ति जो मिर्जापुर ज़िले में विंध्य के एक टीले पर अवस्थित है। पुराणों में इस मूर्ति के संबंध में अनेक आख्यान हैं। वामन पुराण का मत है कि इंद्र ने भगवती दुर्गा को विंध्य पर्वत पर ले जाकर स्थापित किया था। किसी किसी का मत है कि सती के देह परित्याग करने पर जब शिव जी उनके शव को अपनी पीठ पर लादकर फिरने लगे, तब विष्णु धनुष बाण लेकर उनके पीछे पीछे चले; और जहाँ जहाँ अवकाश पाया, शव को काट काटकर गिराते गए। उसी समय एक अंग यहाँ भी गिरा था, जिससे यह सिद्धपीठ हो गया। यह मूर्ति बहुत प्राचीन है; क्योंकि प्राकृत के गौड़वहो (गौड़वध) काव्य में वाक्पतिराज ने, जो आठवीं शताब्दी में था, इसका वर्णन किया है। राजतरंगिणी में विंध्यवासिनी को भ्रमरवासिनी नाम से लिखा है। जिस स्थान पर यह मूर्ति है, वह स्थान विंध्याचल कहलाता है।

विंध्यवासी-संज्ञा पुं० [सं०] व्याडि मुनि का एक नाम।

विंध्यशक्ति-संज्ञा पुं० [सं०] एक यवन राजा का नाम।

विंध्यस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] व्याडि मुनि का एक नाम।

विंध्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

संज्ञा पुं० दे० "विंध्य"।

विंध्याचल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विंध्य पर्वत। (२) विंध्य पर्वत की एक शाखा पर बसी हुई एक छोटी सी बस्ती जिसमें विंध्यवासिनी देवी का मंदिर है। यह मिरज़ापुर से थोड़ी दूर पर है।

विंध्यावली-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा बलि की स्त्री का नाम।

विंश-वि० [सं०] क्रम में बीस के स्थान पर पड़नेवाला। बीसवाँ।

विंशत-वि० [सं०] बीस। (कुछ समस्त शब्दों में)

विंशति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बीस की संख्या। (२) इसका सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—२०।

वि० जो गिनती में बीस हो।

विंशतिप-संज्ञा पुं० [सं०] बीस गाँवों का अधिपति।

विंशतिबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] रावण का एक नाम। विंशद्बाहु।

विंशतीश-संज्ञा पुं० [सं०] बीस गाँवों का अधिपति।

विंशतीशी-संज्ञा पुं० [सं० विंशतीशिन्] बीस गाँवों का अधिपति। विंशतीश।

विंशोत्तरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के शुभाशुभ फल जानने की एक रीति, जिसमें मनुष्य की आयु १२० वर्ष मानकर उसके विभाग करके नक्षत्रों और ग्रहों के अनुसार शुभाशुभ फल की कल्पना की जाती है। यथा—

ग्रह	काल	नक्षत्र
सूर्य	६ वर्ष	कृत्तिका, उत्तर फाल्गुनी और उत्तराषाढ़।
चंद्र	१० "	रोहिणी, हस्त और श्रवण।
मंगल	७ "	मृगशिरा, चित्रा और धनिष्ठा।
राहु	१८ "	आर्द्रा, स्वाती और शतभिषा।
बृहस्पति	१६ "	पुनर्वसु, विशाखा और पूर्व भाद्र।
शनि	१९ "	पुष्य, अनुराधा और उत्तर भाद्र।
बुध	१७ "	अश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवती।
केतु	७ "	मघा, मूल और अश्विनी।
शुक्र	२० "	पूर्वफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा और भरणी।
कुल	१२० वर्ष	

विऽकुंधिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेढ़कों की बोली। (२) टर्र टर्र की आवाज़। कर्कश ध्वनि। टर्राहट।

वि-उप० [सं०] एक उपसर्ग जो शब्द के पहले लगकर इस प्रकार अर्थ देता है—(१) विशेष; जैसे,—विकराल, विहीन। (२) वैरूप्य; जैसे,—विविध। (३) निषेध या वैपरीत्य। जैसे,—विक्रय, विकच्छ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) अन्न। (२) आकाश। (३) चक्षु। आँख।

संज्ञा स्त्री० पक्षी।

विकंकट-संज्ञा पुं० [सं०] गोक्षुर। गोखरू।

विकंकत-संज्ञा पुं० [सं०] एक जंगली वृक्ष का नाम जिसे कंटाई, किंकिणी और बंज कहते हैं। इसके पत्ते छोटे छोटे और डालियों में काँटे होते हैं। इसके फल बेर के आकार के तथा पकने पर मीठे होते हैं; पर अधपकी अवस्था में खटमीठे होते हैं। वैद्यक में यह लघु, दीपन और पाचक तथा कमल और प्लीहा का नाशक लिखा है। यज्ञों के लिये स्रुवा इसी की लकड़ी के बनाने का विधान है।

पर्य्या०—ग्रंथिल। स्रुवावृक्ष। स्वादुकंटक। कंटकी। व्याघ्रपाद। कंटकारी। वृतिकंट। सुदारु। मधुपर्णी। बहुफल। गोपघंटी। दंतकाष्ठ। यज्ञपादप। हिमक। विंडार। पृथुबीज। रावण। पादरोहण। सुधावृक्ष इत्यादि।

विकंकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिबला।

विकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जवासा। (२) विकंकट।

विकंपन-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।

विक-संज्ञा पुं० [सं०] सद्यः प्रसूता गाय का दूध। तुरन्त की ब्याई गौ का दूध। पेउस। पीयूष।

विकच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार के धूमकेतु जिनकी

संख्या ६५ है। ये बृहस्पति के पुत्र माने जाते हैं। इनमें शिखा नहीं होती। इनका वर्ण सफेद होता है और ये प्रायः दक्षिण दिशा में उदय होते हैं। इनके उदय का फल अशुभ माना जाता है। (बृहत्संहिता) (२) ध्वजा। (३) क्षपणक।
वि० (१) विकसित। खिला हुआ। (२) जिसमें बाल न हो। बिना बाल का। केशहीन।

विकच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] (नदी) जिसके दोनों ओर तराई या कछार न हो। जिसके किनारे पर दलदल या गीली ज़मीन न हो।

विकट-वि० [सं०] (१) विशाल। (२) विकराल। भयंकर। भीषण। (३) वक्र। टेढ़ा। उ०—(क) भृकुटी विकट निकट नैनन के राजत अति वर नारि। मनहुँ मदन जग जीति जेर करि राख्यो धनुष उतारि।—सूर। (ख) विकट भृकुटि कच घूँघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे।—तुलसी। (४) कठिन। मुश्किल। उ०—(क) नित प्रति सबै उरहने के मिस आवति हैं उठि प्रात। अनसमुझे अपराध लगावति विकट बनावति बात। सूर। (ख) नट कृत कपट विकट खगराया। नट सेवकहिं न व्यापहि माया। —तुलसी। (५) दुर्गम। जैसे, विकट मार्ग। (६) दुस्साध्य। (७) बिना चटाई का।
संज्ञा पुं० (१) विस्फोटक। (२) सोम लता। (३) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

विकटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध देव की माता माया देवी का एक नाम।

विकटानन-संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

विकथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विशिष्ट कथा। (२) कुत्सित कथा। (जैन)

विकद्रु संज्ञा पुं० [सं०] यादवों के एक भेद का नाम।

विकनिध।हिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

विकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोग। व्याधि। (२) तलवार के ३२ हाथों में से एक का नाम।

विकरार ॐ-वि० [सं० विकराल] विकराल। भयंकर। डरावना। उ०—(क) नाक कान बिनु भइ विकरारा। जनु स्रव सैल गेरु कै धारा।—तुलसी। (ख) कियो युद्ध अति ही विकरार। लागी चलन रुधिर की धार।—सूर।
वि० [अ० फ़ा० बेक़रार] विकल। बेचैन। व्याकुल। उ०—खनहिं चेत खन होइ विकरारा। भा चंदन बंदन सब छारा।—जायसी।

विकराल-वि० [सं०] भीषण। भयानक। डरावना।

विकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कर्ण के एक पुत्र का नाम। (२) दुर्योधन के एक भाई का नाम जो कुरुक्षेत्र की लड़ाई में मारा गया था। (३) एक साम का नाम। (४) एक प्रकार का बाण।

विकर्णक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की गँठिवन। (२) शिव का व्याधि नामक गण।

विकर्णिक-संज्ञा पुं० [सं०] सारस्वत प्रदेश।

विकर्णी संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की ईंट जिसका व्यवहार यज्ञ की वेदी बनाने में होता था। (२) एक साम का नाम।

विकर्त्तन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) मंदार। आक।

विकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] निषिद्ध कर्म। विरुद्धाचार।
वि० कर्मभ्रष्ट। दुराचारी।

विकर्मस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्रानुसार वह पुरुष जो वेद-विरुद्ध कर्म करता हो। वेद के विरुद्ध आचार करनेवाला व्यक्ति।

विकर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] बाण। तीर।

विकर्षण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकर्षण। खींचना। (२) विभाग। हिस्सा। (३) एक शास्त्र का नाम जिसमें आकर्षण करने की विद्या का वर्णन है। उ०—सत्य अस्त्र मायास्त्र महाबल घोर तेज तनुकारी। पुनि पर तेज विकर्षण लीजै सौम्य अस्त्र भयहारी।

विकल-वि० [सं०] (१) विह्वल। व्याकुल। बेचैन। (२) कलाहीन। (३) खंडित। अपूर्ण। जैसे,—विकलांग। (४) घटा हुआ। ह्रासप्राप्त। (५) अस्वाभाविक। अनैसर्गिक। (६) असमर्थ।
संज्ञा पुं० दे० "विकला"।

विकलांग-वि० [सं०] जिसका कोई अंग टूटा या खराब हो। न्यूनांग। अंगहीन। जैसे,—लूला, लँगड़ा, काना, अंधा आदि।

विकला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कला का साठवाँ अंश। (२) वह स्त्री जिसका रजोदर्शन होना बंद हो गया हो। (३) बुध ग्रह की गति का नाम। (४) समय का एक अत्यंत छोटा भाग।

विकलाना ॐ-क्रि० अ० [सं० विकल + आना (प्रत्य०)] व्याकुल होना। घबराना। बेचैन होना। उ०—(क) निठुर बचन सुनि स्याम के युवती विकलानी। मनों महानिधि पाइकै खाये पछितानी।—सूर। (ख) एक एक है ढूँढहीं तरुनी विकलाहीं। सूर प्रभु कहुँ नाहिं मिले ढूँढ़ति द्रुमपाहीं। —सूर।

विकलास-संज्ञा पुं० [सं० विकलास्य] एक प्रकार का प्राचीन बाजा, जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था।

विकलित-वि० [सं०] (१) व्याकुल। बेचैन। (२) दुःखी। पीड़ित।

विकलेंद्रिय-वि० [सं०] (१) जिसकी इंद्रियाँ वश में न हों।

(२) जिसकी कोई इंद्रिय खराब हो, अथवा बिल्कुल न हो। न्यूनेंद्रिय। जैसे,—लूला, लँगड़ा, काना, खंजा इत्यादि।

विकल्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भ्रांति। भ्रम। धोखा। (२) एक बात मन में बैठाकर फिर उसके विरुद्ध सोच विचार। संकल्प का उलटा। (३) विपरीत कल्पना। विरुद्ध कल्पना। (४) विशेष रूप से कल्पना करना या निर्धारित करना। जैसे,—दंड विकल्प। (५) विविध कल्पना। नाना भाँति से कल्पना करना। (६) कई प्रकार की विधियों का मिलना।

विशेष—मीमांसा में विकल्प दो प्रकार का माना गया है—एक व्यवस्थायुक्त, दूसरा इच्छानुयायी। जिसमें दो प्रकार की विधियाँ मिलती हों, उसे व्यवस्थायुक्त कहते हैं। यथा "दर्श पौर्णमास याग में यव द्वारा होम करे, व्रीहि द्वारा होम करे" इसमें दो प्रकार की विधियाँ हैं। इसमें यदि कर्त्ता यव से होम करे या व्रीहि से, तो यह इच्छानुयायी विकल्प होगा। इच्छा विकल्प में आठ दोष होते हैं—प्रमाणत्व परित्याग, अप्रामाण्य कल्पना, अप्रामाण्योज्जीवन और प्रामाण्य हानि। ये चारों उक्त दोनों में लगाने से आठ हो जाते हैं।

(७) योग शास्त्रानुसार पंच विधि चित्तवृत्तियों में एक, जो ऐसे शब्द-ज्ञान की शक्ति है जिसका वाच्य वस्तु नहीं होती। इसमें मनुष्य इस बात की खोज नहीं करता कि अमुक शब्द का वाच्य कोई पदार्थ है या नहीं, अथवा हो सकता है या नहीं। परंपरा से उसके वाच्य के संबंध में जैसा लोग मानते आते हैं, वैसा ही यह भी मान बैठता है। जैसे,—पारस पत्थर न मिला और न किसी ने देखा है। पर पारस पत्थर शब्द से लोग यही समझते हैं कि कोई ऐसा पत्थर है, जिसके स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है। इस प्रकार के शब्दों के वाच्य के संबंध में जो वृत्ति चित्त में उत्पन्न होती है, उसे विकल्प कहते हैं। (८) अवांतर कल्प। (९) एक काव्यालंकार जिसमें दो विरुद्ध बातों को लेकर कहा जाता है कि या तो यही होगा या यही। जैसे,—कै लखिहौं मुख मोहन को कै पलास-प्रसून की आगि जरौंगी। (१०) वैचित्र्य। विलक्षणता। (११) समाधि का एक भेद जिसे सविकल्प कहते हैं। (१२) व्याकरण में एक ही विषय के कई नियमों में से किसी एक का इच्छानुसार ग्रहण।

विकल्पसंप्राप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वातादि दोषों की मिश्रित अवस्था में प्रत्येक के अंशांश की कल्पना करना। (वैद्यक)

विकल्पसम-संज्ञा पुं० [सं०] न्यायदर्शन में २४ जातियों में से एक जिसमें वादी के दिए हुए दृष्टांत में अन्य धर्म की योजना करते हुए साध्य में भी उसी धर्म का आरोप करके अथवा दृष्टांत को असिद्ध ठहराकर वादी की युक्ति का मिथ्या खंडन किया जाता है। जैसे,—वादी—"शब्द अनित्य है; क्योंकि वह उत्पत्ति धर्मवाला है, घट के समान"। प्रतिवादी—"अनित्य और मूर्त्त है; क्योंकि वह उत्पत्ति धर्मवाला है, घट के समान जो अनित्य और मूर्त्त है।" यहाँ प्रतिवादी का अभिप्राय यह है कि या तो शब्द को मूर्त्त मानो अथवा उसका नित्य होना स्वीकार करो।

विकल्पित-वि० [सं०] (१) जिसके संबंध में निश्चय न हो। संदिग्ध। (२) जिसका कोई नियम न हो। अनियमित।

विकल्मष-वि० [सं०] जिसमें पाप न हो। निष्पाप। पाप-रहित।

विकश्वर-वि० दे० "विकस्वर"।

विकषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मजीठ।

विकस-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

विकसन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विकसित] प्रस्फुटन। फूटना। खिलना।

विकसना-क्रि० अ० दे० "बिकसना"।

विकस्वर-वि० [सं०] विकासशील। खिलनेवाला।

संज्ञा पुं० एक काव्यालंकार जिसमें पहले कोई विशेष बात कहकर उसकी पुष्टि सामान्य बात से की जाती है। उ०—मधुप मोह मोहन तज्यो यह स्यामन की रीति। करौ आपने काज लौं तुम्हैं भाति सौं प्रीति।

विकस्वरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल रंग की पुनर्नवा। लाल गदहपूरना।

विकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु का रूप, रंग आदि बदल जाना। (२) निरुक्त के चार प्रधान नियमों में एक जिसके अनुसार एक वर्ण के स्थान में दूसरा वर्ण हो जाता है। (३) दोष की प्राप्ति। बिगड़ना। खराबी। (४) दोष। बुराई। अवगुण। (५) मन की वृत्ति या अवस्था। मनोवेग या प्रवृत्ति। वासना। उ०—सकल प्रकार विकार बिहाई। मन क्रम वचन करेहु सेवकाई।—तुलसी। (६) वेदांत और सांख्य दर्शन के अनुसार किसी पदार्थ के रूप आदि का बदल जाना। परिणाम। जैसे,—कंकण सोने का विकार है; क्योंकि वह सोने से ही रूपांतरित होकर बना है। (७) उपद्रव। हानि।

विकारी-वि० [सं० विकारिन्] (१) जिसमें विकार हो। विकार युक्त। (२) क्रोधादि मनोविकारों से युक्त। दुष्ट वासनावाला। उ०—रे रे अंध बीसहूँ लोचन पर-तिय हरन विकारी। सूने भवन गवन तैं कीनो शेष रेख नहिं टारी।—सूर। (३) जिसमें विकार या परिवर्तन हुआ हो। परिवर्तित। उ०—तो हूँ क्रोध न कियो विकारि। महादेव फिरे निहारि।—सूर।

संज्ञा पुं० [सं०] साठ संवत्सरों में से एक संवत्सर का नाम।

विकाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अतिकाल। देर। (२) ऐसा समय

जब देव कार्य या पितृकार्य्य करने का समय बीत गया हो। सायंकाल का समय।

पर्य्या०—सायं। दिनांत। सायाह्न। विकालक।

विकालत-संज्ञा स्त्री० दे० "वकालत"।

विकालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] घड़ियाल का कटोरा। जलघड़ी।

विकाश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रकाश। (२) प्रसार। फैलाव। विस्तार। वृद्धि। (३) आकाश। (४) विषम गति। (५) प्रस्फुटन। खिलना। (६) एक काव्यालंकार जिसमें किसी वस्तु का बिना निज का आधार छोड़े अत्यंत विकसित होना वर्णन किया जाता है। (७) किसी वस्तु की वृद्धि के लिये उसके रूप आदि में उत्तरोत्तर परिवर्त्तन होना।

वि० निर्जन। एकांत।

विकास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रसार। फैलाव। (२) खिलना। प्रस्फुटित होना। (३) किसी पदार्थ का उत्पन्न होकर अन्त या आरंभ से भिन्न भिन्न रूप धारण करते हुए उत्तरोत्तर बढ़ना। क्रमशः उन्नत होना। जैसे,—सृष्टि का विकास, मानव सभ्यता का विकास, बीज से पेड़ों का विकास, गर्भादि से शरीर का विकास। (४) एक प्रसिद्ध पाश्चात्य सिद्धांत जिसके आचार्य्य डार्विन नामक प्रसिद्ध प्राणि-विज्ञानवेत्ता हैं। इस सिद्धांत में यह माना जाता है कि आधुनिक समस्त सृष्टि और उसमें पाए जानेवाले जीव-जन्तु तथा वृक्ष आदि एकही मूल तत्व से उत्तरोत्तर निकलते गए हैं। यह सिद्धांत इस बात का विरोधी है कि सारी सृष्टि जैसी है, वैसी ही एक बारगी उत्पन्न हो गई थी।

संज्ञा स्त्री० [सं० वि+काश] एक प्रकार की घास जो नीच भूमि में होती है। इसकी पत्तियाँ दूब की भाँति पर कुछ बड़ी होती हैं। चौपाए इसे बड़े चाव से खाते हैं।

विकासना॥-क्रि० स० [सं० विकास] (१) प्रकट करना। निकालना। उ०—(क) जनु अमृत होइ बचन विकासा।

संज्ञा पुं० स्वर के उच्चारण में होनेवाला एक प्रकार का दोष।

विकीर्णरोम-संज्ञा पुं० [सं० विकीर्णरोमन्] एक प्रकार का सुगंधित पौधा।

विकुंज-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक जाति का नाम।

विकुंठ॥-संज्ञा पुं० [सं० वैकुंठ] वैकुंठ। उ०—(क) हरिरस माते मगन रहइ। निरमल भगति प्रेमरस पीवइ आन न दूजा भाव धरइ। सहजइ सदा राम रसराते, मुक्ति विकुंठइ कहा करइ।—दादू। (ख) नारायण सुंदर भुज चारी। बसहिं विकुंठहि सदा सुरारी।—रघुराज।

वि० [सं०] जो कुंठित न हो। तेज धारवाला। कुंद या भुथरा का उलटा।

विकुंभांड-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दानव का नाम।

विकुक्षि-संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के राजा कुक्षि के पुत्र का नाम।

वि० जिसका पेट फूला या आगे को निकला हुआ हो। तोंद-वाला।

विकुस्त-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

विकूणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] नासिका। नाक।

विकृत-वि० [सं०] (१) जिसमें किसी प्रकार का विकार आ गया हो। बिगड़ा हुआ। (२) जो भद्दा या कुरूप हो गया हो। उ०—पुरुष के शुक्र और स्त्री के आर्तव में कैसा दोष हो जाने से संतान नहीं होती अथवा विकृत संतान होती है।—जगन्नाथ शर्म्मा। (३) असाधारण। अस्वाभाविक। (४) अपूर्ण। अधूरा। (५) विद्रोही। अराजक। (६) रोगी। बीमार।

संज्ञा पुं० (१) दूसरे प्रजापति का नाम। (२) पुराणानुसार परिवर्त्त राक्षस के पुत्र का नाम। (३) साठ संवत्सरों में से चौबीसवाँ संवत्सर।

है। विकार। परिणाम। (५) परिवर्तन। (६) मन में होनेवाला क्षोभ। (७) विद्रोही होने का भाव। शत्रुता। (८) मूल धातु से बिगड़कर बना हुआ शब्द का रूप। (९) उत्पत्ति। विकास। (१०) माया का एक नाम। (११) २३ वर्णों के वृत्तों की संज्ञा।

विकृष्ट-वि० [सं०] खींचा हुआ। आकृष्ट।

विकेट डोर-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का छोटा चक्करदार दरवाजा या जाने का रास्ता, जो प्रायः कमर तक ऊँचा और ऊपर से बिलकुल खुला हुआ होता है। यह बागों आदि के बड़े दरवाज़ों के पास ही इसलिये लगाया जाता है कि आदमी तो आ जा सकें, पर पशु आदि न आ सकें। इसके रूप प्रायः इस प्रकार के होते हैं—(१) ⊂, (२)[×], (३) [◇]

विकेश-वि० [सं०] [स्त्री० विकेशी] (१) जिसके बाल खुले हों। (२) गंजा।

संज्ञा पुं० (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम। (२) पुच्छल तारा। (३) एक प्रकार के प्रेत।

विकेशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मही (पृथ्वी) रूप शिव की पत्नी का नाम। (२) एक प्रकार की राक्षसी या पूतना।

विकोक-संज्ञा पुं० [सं०] वृकासुर के पुत्र और कोक के छोटे भाई का नाम।

विकोष-वि० [सं०] (१) कोष या म्यान से निकली हुई (तलवार)। (२) जिसके ऊपर किसी प्रकार का आवरण या आच्छादन न हो।

विक्टोरिया-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की घोड़ा गाड़ी जो देखने में प्रायः फिटन से मिलती जुलती, पर उससे कुछ छोटी और हलकी होती है और जिसे प्रायः एक ही घोड़ा खींचता है।

संज्ञा पुं० एक छोटे ग्रह का नाम जिसका पता हिण्ड नामक एक युरोपियन ने सन् १८५० में लगाया था।

विक्रम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम। उ०—कढि तह प्रगट प्रताप महान त्रिविक्रम रहीं। पृथ देस महँ परम रास बर विक्रम रहीं।—गोपाल। (२) बल, शौर्य्य या शक्ति की अधिकता। ताकत का ज्यादा होना। बहादुरी। पराक्रम। उ०—(क) कासी भूपति चलेउ प्रकासी विक्रम रासी।—गोपाल। (ख) बर भोगी भूपन को घरें पंचानन विक्रम अधिक।—गोपाल। (ग) विपुल बल मूल शार्दूल विक्रम जलद नाद मर्दन महावीर भारी।—तुलसी। (३) ताकत। बल। (४) गति। (५) प्रकार। ढंग। (६) साठ संवत्सरों में से चौदहवाँ संवत्सर। (७) वेद पाठ की वह प्रणाली जिसमें क्रम का अभाव हो। (८) दे० "विक्रमादित्य"।

वि० श्रेष्ठ। उत्तम। उ०—सुवा सुफल लै आएउँ तेहि गुन ते मुख रात। कया पीत सो तासों सवरौं विक्रम बात।—जायसी।

विक्रमक-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय के एक गण का नाम।

विक्रमण-संज्ञा पुं० [सं०] चलना। कदम रखना।

विक्रमाजीत-संज्ञा पुं० दे० "विक्रमादित्य"।

विक्रमादित्य-संज्ञा पुं० [सं०] उज्जयिनी के एक प्रसिद्ध प्रतापी राजा का नाम जिनके संबंध में अनेक प्रकार के प्रवाद प्रचलित हैं। ये बहुत बड़े विद्याप्रेमी, कवि, उदार, गुणग्राहक और दानी कहे जाते हैं। यह भी कहा जाता है कि इनकी सभा में नौ बहुत बड़े बड़े और प्रसिद्ध पंडित रहा करते थे, जो "नवरत्न" कहलाते थे और जिनके नाम इस प्रकार हैं—कालिदास, वररुचि, अमरसिंह, धन्वंतरि, क्षपणक, वेतालभट्ट, घटकर्पर, शंकु और वराहमिहिर। परंतु ऐतिहासिक दृष्टि से इन नौ विद्वानों का एक ही समय में होना सिद्ध नहीं होता, जिससे "नवरत्न" को लोग कल्पित ही समझते हैं। आजकल जो विक्रमी संवत् प्रचलित है, उसके संबंध में भी लोगों की यही धारणा है कि इन्हीं राजा विक्रमादित्य का चलाया हुआ है, पर इस बात का भी कोई ऐतिहासिक प्रमाण अभी तक नहीं मिला है कि विक्रमी संवत् के आरंभ होने के समय मालव देश में या उसके आस पास विक्रमादित्य नाम का कोई राजा रहता था। विक्रमी संवत् किस राजा विक्रमादित्य का चलाया हुआ है, इसका अभी तक कोई ठीक ठीक पता नहीं चला है। कुछ विद्वानों का मत है कि विक्रम संवत् का विक्रमादित्य नाम के किसी राजा के साथ कोई संबंध नहीं है और न वह किसी एक व्यक्ति का चलाया हुआ है। उनका मत है कि ईसवी सन् से ५८ वर्ष पूर्व शक नहपाण को गौतमीपुत्र ने युद्ध में बुरी तरह परास्त करके उसे मार डाला था। इस युद्ध में उसने अपना जो विक्रम (वीरता) दिखलाया था, उसी की स्मृति के रूप में मालवों के गण ने उसी तिथि से कृत-युग का आरंभ माना; और इस प्रकार इस विक्रम संवत् का प्रचार हुआ। तात्पर्य्य यह है कि संवत्वाला "विक्रम" शब्द किसी विक्रमादित्य नामक संवत् चलानेवाले राजा का सूचक नहीं है, बल्कि यह पीछे के किसी राजा के विक्रम या वीरता का बोधक है। स्कंद पुराण में लिखा है कि कलियुग के तीन हजार वर्ष बीत जाने पर विक्रमादित्य नाम का एक बहुत प्रतापी राजा हुआ था। मोटे हिसाब से यह समय ईसवी सन् से प्रायः सौ वर्ष पूर्व पड़ता है; पर यह राजा कौन था, इसका निश्चय नहीं होता। यह भी प्रसिद्ध है कि इस राजा ने शकों को एक घोर युद्ध में पराजित किया था और उसी विजय के उपलक्ष में अपना संवत्

भी चलाया था। शकों को पराजित करने के कारण ही इसकी एक उपाधि "शकारि" भी हो गई थी। बौद्धों और जैनियों के धर्मग्रंथों तथा चीनी और अरबी आदि यात्रियों के यात्रा विवरण में भी विक्रमादित्य के संबंध में कुछ फुटकर बातें पाई जाती हैं। पर न तो यही ज्ञात है कि इन्होंने कब से कब तक राज्य किया और न इनके जीवन की और बातों का ही कोई क्रमबद्ध इतिहास मिला है। इतिहास से यह भी पता चलता है कि गुप्त वंशीय प्रथम चन्द्रगुप्त ने उत्तर भारत में शकों को परास्त करके "विक्रमादित्य" की उपाधि धारण की थी; परंतु ये संवत् चलानेवाले विक्रमादित्य के बहुत बाद के हैं। इसके अतिरिक्त इसी गुप्त वंश के समुद्रगुप्त के पुत्र द्वितीय चंद्रगुप्त ने भी "विक्रमादित्य" की उपाधि धारण की थी। ईसवी सातवीं शताब्दी के आरंभ में काश्मीर में भी विक्रमादित्य नाम का एक राजा हुआ था जिसके पिता का नाम रणादित्य था। इसी प्रकार चालुक्य वंश में भी इस नाम के कई राजा हो गए हैं। पीछे से तो मानों यह प्रथा सी चल पड़ी थी कि जहाँ कोई राजा कुछ अधिक बढ़ निकलता था, तहाँ वह अपने नाम के साथ "विक्रमादित्य" की उपाधि लगा लिया करता था। यहाँ तक कि अकबर की बाल्यावस्था में जब हेमूँ ढूसर ने दिल्ली पर अधिकार किया, तब वह भी "विक्रमादित्य" बन बैठा था।

विक्रमाब्द–संज्ञा पुं० [सं०] विक्रमादित्य के नाम से चला हुआ संवत्। विक्रम संवत्।

विक्रमार्क–संज्ञा पुं० दे० "विक्रमादित्य"।

विक्रमी–संज्ञा पुं० [सं० विक्रमिन्] (१) वह जिसमें बहुत अधिक बल हो। विक्रमवाला। पराक्रमी। उ०—अति विक्रमी मोरध्वजनंदन। नाम ताम्रध्वज दुष्ट निकंदन।—रघुराज। (२) विष्णु। (३) शेर।

वि० विक्रम का। विक्रम संबंधी। जैसे,—विक्रमी संवत्।

विक्रय–संज्ञा पुं० [सं०] मूल्य लेकर कोई पदार्थ देना। बेचना। बिक्री। उ०—इस दलील के आधार पर क्रय-विक्रय के मामूली व्यापार में दस्तंदाज़ी करना—अर्थात् किसी चीज के बेचने या मोल लेने की मनाई कर देना—और भी अनुचित बातें होंगी।—स्वाधीनता।

यौ०—क्रय-विक्रय।

विक्रयक–संज्ञा पुं० [सं०] बेचनेवाला। विक्रेता।

विक्रयण–संज्ञा पुं० [सं०] बेचने की क्रिया। विक्रय। बिक्री।

विक्रयपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसमें यह लिखा हो कि अमुक पदार्थ अमुक व्यक्ति के नाम इतने मूल्य पर बेचा गया। बैनामा।

विक्रयिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विक्रय करता या बेचता हो। बेचनेवाला। विक्रेता।

विक्रयी–संज्ञा पुं० [सं० विक्रयिन्] विक्रय करनेवाला। बेचनेवाला। विक्रेता।

विक्रांत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैक्रांत मणि। (२) शूर। वीर। बहादुर। (३) शेर। (४) पुराणानुसार हिरण्याक्ष के एक पुत्र का नाम। (५) व्याकरण में एक प्रकार की संधि जिसमें विसर्ग अविकृत ही रहता है। (६) एक प्रजापति का नाम। (७) पुराणानुसार कुवलयाश्व के पुत्र का नाम जिसका जन्म मदालसा के गर्भ से हुआ था। (८) चलने का ढंग। (९) साहस। हिम्मत। (१०) एक प्रकार का मादक पेय पदार्थ।

वि० (१) जिसकी कांति नष्ट हो गई हो। (२) तेजस्वी। प्रतापी।

विक्रांता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अग्निमंथ वृक्ष। अरणी। (२) जयंती। (३) मूसाकानी। (४) अड़हुल। गुड़हर। (५) अपराजिता। (६) लाल लजालू। छुई मुई। (७) हंसपदी नाम की लता।

विक्रांति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गति। (२) घोड़े की सरपट चाल। (३) विक्रम। बल। (४) वीरता। शूरता। बहादुरी।

विक्रायक–संज्ञा पुं० [सं०] बेचनेवाला। विक्रेता।

विक्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विकार। खराबी। (२) किसी क्रिया के विरुद्ध होनेवाली क्रिया।

विक्रियोपमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का उपमालंकार जिसमें किसी विशिष्ट क्रिया या उपाय का अवलंबन कहा जाता है।

विक्री–संज्ञा स्त्री० [सं० विक्रय] (१) बेचने की क्रिया या भाव। विक्रय। बिक्री। (२) वह धन जो बेचने पर मिले।

विक्रीत–वि० [सं०] जो बेच दिया गया हो। बेचा हुआ।

विक्रुष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] निष्ठुर। निर्दय। निठुर।

विक्रेता–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो मूल्य लेकर देता हो। बेचनेवाला। बिक्री करनेवाला।

विक्रेय–वि० [सं०] जो विक्रय होने को हो। बिकनेवाला।

विक्लव–वि० [सं०] विह्वल। बेचैन।

विक्लिन्न–वि० [सं०] जो पुराना होने के कारण सड़ या गल गया हो।

विक्षत–वि० [सं०] (१) जिसमें क्षत लगा हो। जिसमें खराश पड़ी हो। घायल। ज़ख्मी।

विक्षय–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग जो अधिक मद्य-पान करने से होता है।

विक्षिप्त–वि० [सं०] (१) फेंका या छितराया हुआ। (२) जिसका त्याग किया गया हो। त्यक्त। (३) जिसका दिमाग़ ठिकाने न हो। पागल। उ०—(क) उसकी नींद भी उड़

जाती होगी और जो रात-दिन जागता होगा, तो विक्षिप्त या अति रोगी होगा।—दयानंद। (ख) तुमहिं कह्यो श्रुति शासन माहीं। जहँ विक्षिप्त भूप ह्वै जाहीं।—रघुराज। (४) घबराया हुआ। पागलों का सा। विकल। व्याकुल।

विक्षिप्तक-संज्ञा पुं० [सं०] वह मृत शरीर जो जलाया या गाड़ा न गया हो, बल्कि योंही कहीं फेंक दिया गया हो।

विक्षिप्तता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विक्षिप्त या पागल होने का भाव। पागलपन। उ०—यहाँ तक कि कुछ काल के पश्चात् स्वयं उसे ही अपनी विक्षिप्तता को देखकर विस्मित होना पड़ता है।—निबंधमालादर्श।

विक्षीर-संज्ञा पुं० [सं०] आक। मदार।

विक्षीरणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुद्धी। दुग्धिका।

विक्षुब्ध-वि० [सं०] जिसके मन में क्षोभ उत्पन्न हुआ हो। जिसका मन चंचल हो गया हो। क्षुब्ध।

विक्षुभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छाया का नाम।

विक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊपर की ओर अथवा इधर उधर फेंकना। डालना। (२) इधर उधर हिलाना। झटका देना। (३) (धनुष की डोरी) खींचना। चिल्ला चढ़ाना। (४) मन को इधर उधर भटकाना। इंद्रियों को वश में न रखना। संयम का उलटा। उ०—ईर्ष्या, द्वेष, काम, अभिमान, विक्षेप आदि दोषों से अलग होके सत्य आदि गुणों को धारण करे।—दयानंद। (५) प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जो फेंककर चलाया जाता था। (६) सेना का पड़ाव। छावनी। (७) एक प्रकार का रोग। (८) बाधा। विघ्न। खलल। जैसे,—इस काम में कई विक्षेप पड़े हैं। उ०—समाधि की प्राप्ति होने पर भी उसमें चित्त स्थिर न होना ये सब चित्त की समाधि होने में विक्षेप अर्थात् उपासना-योग के शत्रु हैं।—दयानंद।

विक्षेपण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊपर अथवा इधर उधर फेंकने की क्रिया। (२) हिलाने या झटका देने की क्रिया। (३) धनुष की डोरी खींचने की क्रिया। (४) विघ्न। बाधा। खलल।

विक्षेपलिपि-संज्ञा स्त्री० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार एक प्रकार की प्राचीन लिपि या लेख-प्रणाली।

विक्षोभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मन की चंचलता या उद्विग्नता। क्षोभ। (२) हाथी की छाती का एक भाग या पार्श्व।

विक्षोभण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक दानव का नाम। (२) मन में बहुत अधिक क्षोभ उत्पन्न होना या करना।

विक्षोभी-वि० [सं० विक्षोभिन्] [स्त्री० विक्षोभिणी] जो क्षोभ उत्पन्न करे। क्षोभकारी।

विख-वि० [सं०] जिसकी नाक न हो। बिना नाकवाला।
‡ संज्ञा पुं० दे० "विष"।

विखहा-संज्ञा पुं० [सं० विषहा] गरुड़।

विखादितक-संज्ञा पुं० [सं०] वह मृत शरीर जिसे पशुओं ने खा डाला हो।

विखानक‡-संज्ञा पुं० [सं० विषाण] सींग।

विखानस-संज्ञा पुं० दे० "वैखानस"।

विखायँध-संज्ञा स्त्री० [हिं० विख = जहर + आयँध (गंध) (प्रत्य०)] कड़वी या जहर की सी गंध। विसायँध। उ०—जो अरुवाय भरे अरगजा। तौहु विसायँध ओहि नहिं तजा।—जायसी।

विखुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राक्षस। (२) चोर।

विख्यात-वि० [सं०] जिसे सब लोग जानते हों। प्रसिद्ध। मशहूर। उ०—(क) यक्ष प्रबल बाढ़े ध्रुव मंडल तिन मान्यो निज भ्रात। तिनके काज अंश हरि प्रगटे ध्रुव जगत विख्यात।—सूर। (ख) मन तें यदि रथ जात केतु फहरात वात वस। छवि छजात सुरतात बहुत विख्यात जगत जस।—गोपाल।

विख्याति-संज्ञा स्त्री० [सं०] विख्यात होने का भाव। प्रसिद्धि। शोहरत। उ०—राम नाम सुमिरत सुजस भाजन भयेउ कुजाति। कुतरु कुसरु सुर राज मग लहत भुवन विख्याति।—तुलसी।

विख्यापन-संज्ञा पुं० [सं०] प्रसिद्ध करना। मशहूर करना।

विगंध-वि० [सं०] (१) जिसमें किसी प्रकार की गंध न हो। (२) बदबूदार। उ०—कंटक कलित त्रिनवलित विगंध जल तिनके तलपन लता को ललचात जू।—केशव।

विगंधक-संज्ञा पुं० [सं०] इंगुदी वृक्ष।

विगंधिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हपुषा। हाऊबेर। (२) अजगंधा। तिलवन।

विगणन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिसाब लगाना। लेखा करना। (२) ऋण से मुक्त होना। कर्ज चुकाना।

विगत-वि० [सं०] (१) जो गत हो गया हो। जो बीत चुका हो।

विशेष—जब यह शब्द यौगिक अवस्था में किसी संज्ञा के पहले आता है, तब इसका अर्थ होता है—"जिसका नष्ट हो गया हो।" जैसे,—विगत-ज्वर = जिसका ज्वर उतर गया हो। विगत नयन = जिसकी आँखें नष्ट हो गई हों। उ०—विगत त्रास प्रमुदित मन माहीं। निरखि राम छवि दृग न अघाहीं।—रामाश्वमेध।

(२) गत से पहले का। अंतिम या बीते हुए से पहले का। जैसे,—विगत सप्ताह = गत सप्ताह से पहले का सप्ताह। (३) जो कहीं इधर उधर चला गया हो। (४) जिसकी प्रभा या कांति नष्ट हो गई हो। जिसकी चमक आदि जाती रही हो। निष्प्रभ। (५) रहित। विहीन। उ०—

(क) विगत मानसम सीतल मन पर गुन नहिं दोस कहौंगो।—तुलसी। (ख) मुदित जनक निरखि अंबुज मुख विगत नयन मन पीर।—सूर।

विगता–वि० स्त्री० [सं०] (१) जो विवाह करने के योग्य न रह गई हो। (२) जो पर पुरुष से प्रेम करती हो।

विगति–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्दशा। दुर्गति। खराबी।

विगतोद्भव–संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

विगम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रस्थान। चला जाना। (२) समाप्ति। अंत। खातमा। (३) नाश। (४) मोक्ष।

विगर्हण–संज्ञा पुं० [सं०] भर्त्सना करना। डाँटना। डपटना। धिक्कार। फटकार।

विगर्हणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] भर्त्सना। डाँट। फटकार।

विगर्हित–वि० [सं०] (१) जिसे भर्त्सना की गई हो। जिसे डाँट या फटकार बतलाई गई हो। (२) बुरा। खराब। निंदनीय। (३) निषिद्ध।

विगर्ह्य–वि० [सं०] जो भर्त्सना करने योग्य हो। डाँट डपटने या निंदा करने के योग्य।

विगलित–वि० [सं०] (१) जो गिर गया हो। (२) जो बह गया हो। जो चूकर या टपककर निकल गया हो। (३) ढीला पड़ा हुआ। छूटा हुआ। शिथिल। (४) बिगड़ा हुआ। उ०—मनुपति तह विगलित सुदल, तहँ कुरूपता वास। बसी अवधि यक भवन में, पाप न बस्यो विनास।—रामस्वयंवर।

विगाथा–संज्ञा स्त्री० [सं०] आर्या छंद का एक भेद जिसके विषम पदों में १२, दूसरे में १५ और चौथे में १८ मात्राएँ होती हैं और अंत का वर्ण गुरु होता है। विषम गणों में जगण नहीं होता, पहले दल का छठा गण (२७ ही मात्रा के कारण) एक लघु का मान लिया जाता है। इसे 'विग्गाहा' और 'उद्गीति' भी कहते हैं।

विगुण–वि० [सं०] जिसमें कोई गुण न हो। गुण रहित। निर्गुण। वि० दे० "निर्गुण"। उ०—हरि रूप मनं समनं विगुणं। हृदयस्थ लखौ सब त्यागि भ्रमं।—स्वामी रामकृष्ण।

विग्गाहा–संज्ञा स्त्री० [सं० विगाथा] विगाथा नामक छंद जो आर्या का एक भेद है।

विग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूर या अलग करना। (२) विभाग। (३) यौगिक शब्दों अथवा समस्त पदों के किसी एक अथवा प्रत्येक शब्द को अलग करना। (व्याकरण) (४) कलह। लड़ाई। झगड़ा। (५) युद्ध। समर। (६) नीति के छः गुणों में से एक। विपक्षियों में फूट या कलह उत्पन्न करना। (७) आकृति। शकल। (८) शरीर। (९) मूर्ति। (१०) सजावट। शृंगार। (११) सांख्य के अनुसार कोई तत्व। (१२) शिव का एक नाम। (१३) स्कंद के एक अनुचर का नाम।

विग्रहण–संज्ञा पुं० [सं०] रूप धारण करना। शक्ल में आना।

विग्रही–संज्ञा पुं० [सं० विग्रहिन्] (१) लड़ाई झगड़ा करनेवाला। (२) युद्ध करनेवाला। (३) युद्ध विभाग [redacted] मंत्री या सचिव।

विग्राह्य–वि० [सं०] जो इस योग्य हो कि उसके साथ लड़ाई की जा सके। जिसके साथ युद्ध हो सके।

विघटन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संयोजक अंगों को अलग अलग करना। (२) तोड़ना फोड़ना। उ०—प्रगटी धनु-विघटन परिपाटी।—तुलसी। (३) नष्ट करना।

विघटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] समय का एक छोटा मान। घड़ी का २३वाँ भाग।

विघटित–वि० [सं०] (१) जिसके संयोजक अंग अलग अलग किए गए हों। (२) जो तोड़ फोड़ डाला गया हो। (३) नष्ट।

विघट्टन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खोलना। (२) पटकना। (३) रगड़ना। (४) दे० "विघटन"।

विघट्टित–वि० [सं०] (१) खुला हुआ। (२) तोड़ा फोड़ा हुआ।

विघन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आघात करना। चोट पहुँचाना। (२) एक प्रकार का बहुत बड़ा हथौड़ा। घन। (३) इंद्र।
*संज्ञा पुं० दे० "विघ्न"।

विघर्षण–संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह रगड़ने या घिसने की क्रिया।

विघस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आहार। भोजन। खाना। (२) वह अन्न जो देवता, पितर, गुरु या अतिथि आदि के खाने पर बच रहे।

विघात–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आघात। प्रहार। चोट। (२) टुकड़े टुकड़े करना। तोड़ना फोड़ना। (३) नाश। (४) बाधा। विघ्न। (५) सफल न होना। विफलता।

विघातक–संज्ञा पुं० [सं०] विघ्न डालनेवाला। बाधक।

विघातन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विघात करने की क्रिया। (२) मार डालना। हत्या करना।

विघाती–संज्ञा पुं० [सं० विघातिन्] [स्त्री० विघातिनी] (१) विघात करनेवाला। (२) बाधा डालनेवाला। (३) हत्या करनेवाला। घातक।

विघूणिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] नासिका। नाक।

विघूर्णन–संज्ञा पुं० [सं०] चारों ओर घुमाना। चक्कर देना।

विघ्न–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी काम के बीच में पड़नेवाली अड़चन। रुकावट। बाधा। व्याघात। अंतराय। खलल।
क्रि० प्र०—करना।—डालना।—दूर करना।—पड़ना।—होना।
विशेष—जब इस शब्द के साथ नायक, नाशक अथवा इनके

पर्य्यायवाची शब्दों का योग होता है, तब इसका अर्थ "गणेश" होता है।

(२) पाकफल।

विघ्नक-वि० [सं०] विघ्न करनेवाला। बाधा डालनेवाला।

विघ्नकारी-संज्ञा पुं० [सं० विघ्नकारिन्] वह जो विघ्न डालता हो। बाधा उपस्थित करनेवाला।

विघ्नजित्-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

विघ्ननायक-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

विघ्ननाशक-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

विघ्नपति, विघ्नराज-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

विघ्नविनायक-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

विघ्नेश-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

विघ्नेशकांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद दूब।

विघट्टित-वि० [सं०] घबराया हुआ।

विचकिल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मल्लिका या चमेली। मदनक।

विचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दानव का नाम।

विचक्षण-वि० [सं०] (१) प्रकाशमान्। चमकता हुआ। (२) जो स्पष्ट दिखाई दे। (३) जो किसी विषय का अच्छा ज्ञाता हो। निपुण। पारदर्शी। (४) पंडित। विद्वान्। (५) बहुत बड़ा चतुर या बुद्धिमान्। उ०—(क) परम साधु सब बात विचक्षण। बसे ताहि महँ सकल सुलक्षण।—रघुराज। (ख) अंतरवेद विचक्षन नारि निरंतर अंतर की गति जानै।—देव।

विचक्षणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदंती।

विचच्छन-संज्ञा पुं० [सं० विचक्षण] बहुत बड़ा बुद्धिमान् या चतुर। उ०—(क) रन परम विचच्छन गरम तर धरम सुरच्छन करम कर।—गोपाल। (ख) दच्छ रथी अत्यच्छ प्रबल प्रत्यच्छ विचच्छन। करे कच्छ निज सैनु रच्छ करि पर दल भच्छन।—गोपाल। (ग) है कपूर मनिमय रही मिलि तन दुति मुकुतालि। छिन छिन खरी विचच्छनी लखति छाय तिन आलि।—बिहारी।

विचय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एकत्र करना। इकट्ठा करना। जमा करना। (२) जाँच पड़ताल करना। परीक्षा करना।

विचयन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इकट्ठा करना। एकत्र करना। (२) जाँचना। परीक्षा करना।

विचरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चलना। (२) घूमना फिरना। पर्य्यटन करना। उ०—आर्य्य संतान उस दिन अपने प्राचीन वेष में विचरण करती थी।—बालमुकुंद गुप्त।

विचरन*-संज्ञा पुं० दे० "विचरण"। उ०—(क) पूछ पूरी सोमा विचरन नाचँ दोउ चीकर की चरनन रचना ऊपर है।—गोपाल। (ख) भये कबीर प्रगट मथुरा में। विचरन लगे सकल बसुधा में।—कबीर।

विचरना-क्रि० अ० [सं० विचरण] चलना फिरना। उ०—(क) जग महँ विचरि विचरि सब ठौरा। हरि विमुखन किय हरि की ओरा।—रघुराज। (ख) भोग समग्री जुरी अपार। विचरन लागे सुख संसार।—सूर। (ग) रामचरण धरि हृदय मुदित मन विचरत फिरत निशंक।—सूर।

विचरनि*†-संज्ञा स्त्री० [सं० विचरण] चलने फिरने या विचरण करने की क्रिया या भाव।

विचर्चिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें दाने निकलते और खुजली होती है। दरौंची। (२) छोटी फुंसी।

विचल-वि० [सं०] जो बराबर हिलता रहता हो। (२) जो स्थिर न हो। अस्थिर। (३) डिगा हुआ। स्थान से हटा हुआ। (४) प्रतिज्ञा या संकल्प से हटा हुआ।

मुहा०—चल-विचल होना = मन का किसी एक बात पर न ठहरना। चित्त का चंचल होना।

विचलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विचल होने की क्रिया या भाव। चंचलता। अस्थिरता। (२) घबराहट।

विचलना*†-क्रि० अ० [सं० विचलन] (१) अपने स्थान से हट जाना या चल पड़ना। (विशेषतः घबराहट या गड़बड़ी आदि के समय) उ०—(क) औ जोवन मैमंत बिधौंसा। विचला बिरह शिरह है नासा।—जायसी। (ख) दल विचलत लखिकै भट सगरे। धरि धरि धनुष गदादिक अगरे।—गोपाल। (ग) जो सीता सतते विचलै तौ श्रीपति काहि सँभारै। मोसे मुग्ध महापापी को कौन क्रोध करि तारे।—सूर। (२) विचलित होना। अधीर होना। घबराना। उ०—(क) जँहि भजत विनाइक इकरदन चलत समर विचलत प्रबल।—गोपाल। (ख) चलत भये रन हेत तये विचलत लखिकै पर।—गोपाल। (३) प्रतिज्ञा या संकल्प पर दृढ़ न रहना। बात पर जमा न रहना।

विचलाना*†-क्रि० स० [सं० विचलन] (१) इधर उधर हटाना या चलाना। विचलित करना। उ०—एहि विधान भरि जोर सकल यदु दल विचलायो।—गोपाल। (२) ऐसा काम करना जिससे कोई घबरा जाय या स्थिर न रह सके।

विचलित-वि० [सं०] (१) जो विचल हो गया हो। अस्थिर। चंचल। जैसे,—किसी चीज को देखकर मन विचलित होना। उ०—(क) उसकी बुद्धि ऐसी तीक्ष्ण थी कि कोई कैसा ही दुर्घट काम हो, परंतु वह कभी विचलित न होता।—कादंबरी। (ख) तेहि ते अब यह रूप दुरावहु। विचलित सकल लोक सुख पावहु।—शं० दि०। (२) प्रतिज्ञा या संकल्प से हटा हुआ। जो दृढ़ न रहा हो। डिगा हुआ।

विचार–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) वह जो कुछ मन से सोचा जाय अथवा सोचकर निश्चित किया जाय। किसी विषय पर कुछ सोचने या सोचकर निश्चय करने की क्रिया। (२) वह बात जो मन में उत्पन्न हो। मन में उठनेवाली कोई बात। भावना। खयाल। जैसे,—अभी मेरे मन में विचार आया है कि चलकर उससे बातें करूँ। (३) राजा या न्यायाधीश आदि का वह कार्य्य, जिसमें वादी और प्रतिवादी के अभियोग और उत्तर आदि सुने जाते हैं; यह निश्चित किया जाता है कि किस पक्ष का कथन ठीक है; और तब कुछ निर्णय किया जाता है। मुकदमे की सुनवाई और फैसला। जैसे,—राजकर्म्मचारी दोनों को पकड़कर उनका विचार कराने के लिये उन्हें राजद्वार पर ले गया।

यौ॰—विचारकर्त्ता। विचारस्थल। विचारसभा।

(४) विचरना। घूमना। (५) घुमाना। फिराना।

विचारक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] [स्त्री॰ विचारिका] (१) वह जो विचार करता हो। विचार करनेवाला। उ॰—इन बातों पर ध्यान करके विचारक पुरुष जानते हैं कि ऐसा वृत्तांत केवल कवीश्वर का कल्पित मात्र है।—मत परीक्षा। (२) फैसला करनेवाला। न्यायकर्त्ता। उ॰—तब तक विरोधी विचारकों का होना बहुत ही ज़रूरी है।—स्वाधीनता। (३) नेता। पथ-प्रदर्शक। (४) गुप्तचर। जासूस।

विचारकर्त्ता–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) वह जो किसी प्रकार का विचार करता हो। सोचने विचारनेवाला। (२) वह जो अभियोग आदि सुनकर उनका निर्णय करता हो। न्यायाधीश।

विचारज्ञ–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) वह जो विचार करना जानता हो। (२) वह जो अभियोग आदि का निर्णय या निपटारा करता हो।

विचारण–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) विचार करने की क्रिया या भाव। (२) घूमना फिरना। (३) घुमाना। फिराना।

विचारणा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) विचार करने की क्रिया या भाव। उ॰—क्योंकि केवल अपनी बुद्धि, या अपने ज्ञान या अपनी विचारणा पर आदमी का विश्वास जितना कम होता है, उतना ही संसार की प्रमाद-हीनता या निर्भ्रमता पर उसका विश्वास अधिक होता है।—स्वाधीनता। (२) घूमने फिरने या घुमाने फिराने की क्रिया या भाव।

विचारणीय–वि॰ [सं॰] (१) जो विचार करने के योग्य हो। जिस पर कुछ विचार करने की आवश्यकता हो। उ॰—अब यह अवश्यमेव विचारणीय है कि यदि ऐसा ही है तो बिना कारण किसी को दूषित करना और व्यर्थ उस पर दोषारोपण कर लोगों में उसकी योग्यता कम करने के लिये यत्न करना मूर्खता एवं अधमता है।—निबंध-मालादर्श। (२) जो सिद्ध न हो। जिसे प्रमाणित करने की आवश्यकता हो। चिंत्य। संदिग्ध।

विचारना–क्रि॰ अ॰ [सं॰ विचार+ना (प्रत्य॰)] (१) विचार करना। सोचना। समझना। गौर करना। उ॰—(क) कृष्णदेव द्वारावति अहैं। मन में बहुत विचारत रहैं।—सबल (ख) फिर मैंने यह बात विचारी कि लिखने में तो कुछ अधिक अनर्थ नहीं होता।—श्रद्धाराम। (ग) आज्ञुही मजादवी धरा करी विचारि कै।—गोपाल। (घ) रच्यो विरंचि विचार तहँ, नृपमणि मधुकर साहि।—केशव। (२) पूछना। (३) ढूँढ़ना। पता लगाना। उ॰—तुलसी तेहि अवसर लावनता दस चारि नव तीनि पचीस सबै। मति भारति पंगु भई जो निहारि विचारि फिरी उपमान पवै।—तुलसी।

विचारपति–संज्ञा पुं॰ [सं॰ विचार+पति] वह जो किसी बड़े न्यायालय में बैठकर मुकदमों आदि के फैसले करता हो। विचारक। न्यायाधीश।

विचारवान्–संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह जिसमें सोचने समझने या विचारने की अच्छी शक्ति हो। विचारशील।

विचारशक्ति–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह शक्ति जिसकी सहायता से विचार किया जाय। सोचने या भला बुरा पहचानने की शक्ति। उ॰—मनुष्य जानता तो है कि मैं जीता हूँ और सोच विचार भी करता हूँ, परंतु प्राण और विचारशक्ति किससे बनाई गई।—गोलविनोद।

विचारशास्त्र–संज्ञा पुं॰ [सं॰] मीमांसा शास्त्र।

विचारशील–संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह जिसमें किसी विषय को सोचने या विचारने की अच्छी शक्ति हो। विचारवान्। उ॰—(क) जिसका सत्य विचारशील ज्ञान और अनंत ऐश्वर्य है, इससे उस परमात्मा का नाम ईश्वर है।—सत्यार्थप्रकाश। (ख) विद्वान् बुद्धिमान और विचारशील पुरुषों के चरण जिस भूमि पर पड़ते हैं, वह तीर्थ बन जाती है।—शिवशंभु का चिट्ठा।

विचारशीलता–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] विचारशील होने का भाव या धर्म। बुद्धिमत्ता। अक्लमंदी। उ॰—आत्मकर्त्तव्य का मामूली अर्थ विचारशीलता या बुद्धिमानी है।—स्वाधीनता।

विचारस्थल–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) वह स्थान जहाँ किसी विषय पर विचार होता हो। (२) न्यायालय। अदालत।

विचाराध्यक्ष–संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह जो न्याय-विभाग का प्रधान हो। प्रधान विचारक। प्रधान न्यायाधीश।

विचारालय–संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह स्थान जहाँ अभियोगों आदि का विचार होता हो। न्यायालय। कचहरी। उ॰—बड़े बड़े आचार्य नीतिज्ञ धर्मशास्त्री लोग विचारालय में बैठे विचार कर रहे हैं।—कादंबरी।

विचारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्राचीन काल की वह दासी जो घर में लगे हुए फूल पौधों की देख-भाल तथा इसी प्रकार के और काम करती थी। (२) वह स्त्री जो अभियोगों आदि का विचार करती हो।

विचारित-वि० [सं०] (१) जिस पर विचार किया जा चुका हो। जो सोचा समझा जा चुका हो। (२) जो अभी विचाराधीन हो। जिस पर विचार होने को हो।

विचारी-संज्ञा पुं० [सं० विचारिन्] (१) वह जिस पर चलने के लिये बहुत बड़े बड़े मार्ग बने हों (जैसे, पृथ्वी)। (२) जो इधर उधर चलता हो। विचरण करनेवाला। (३) वह जो विचार करता हो। विचार करनेवाला। (४) कबंध के एक पुत्र का नाम।

विचारु-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

विचार्य्य-वि० [सं०] जो विचार करने के योग्य हो। जिस पर विचार करने की आवश्यकता हो। विचारणीय।

विचालन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हटाना या चलाना। (२) नष्ट करना।

विचिंतन-संज्ञा पुं० [सं०] चिंता करना। सोचना।

विचिंतनीय-वि० [सं०] जो चिंता करने या सोचने योग्य हो।

विचिंता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोच-विचार।

विचिंत्य-वि० [सं०] (१) जो चिंतन करने या सोचने के योग्य हो। (२) जिसमें किसी प्रकार का संदेह हो। संदिग्ध।

विचि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वीची। तरंग। लहर।

विचिकित्सा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संदेह। अनिश्चय। शक। (२) वह संदेह जो किसी विषय में कुछ निश्चय करने के पहले उत्पन्न हो और जिसे दूर करके कुछ निश्चय किया जाय।

विचित-वि० [सं०] जिसका अन्वेषण किया जाय।

विचिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विचार। सोचना। (२) अनुसंधान।

विचित्त-वि० [सं०] (१) अचेत। बेहोश। (२) जिसका चित्त ठिकाने न हो। जो अपना कर्त्तव्य न समझ सकता हो।

विचित्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बेहोशी। (२) वह अवस्था जिसमें मनुष्य का चित्त ठिकाने न रहे।

विचित्र-वि० [सं०] (१) जिसमें कई प्रकार के रंग हों। कई तरह के रंगों या वर्णोंवाला। (२) जिसमें किसी प्रकार की विलक्षणता हो। जिसमें किसी प्रकार की असाधारणता हो। विलक्षण। जैसे,— (क) ऐसा विचित्र पक्षी मैंने पहले नहीं देखा था। (ख) तुम भी बड़े विचित्र आदमी हो। (३) जिसके द्वारा मन में किसी प्रकार का आश्चर्य उत्पन्न हो। विस्मित या चकित करनेवाला। (४) सुंदर। खूबसूरत।

संज्ञा पुं० (१) पुराणानुसार रौच्य मनु के एक पुत्र का नाम। (२) साहित्य में एक प्रकार का अर्थालंकार जो उस समय होता है, जब किसी फल की सिद्धी के लिये किसी प्रकार का उलटा प्रयत्न करने का उल्लेख किया जाता है। उ०—(क) करिबैको उज्वल सुधा सों अभिराम देखो, मन ब्रजवाम रँगती हैं स्याम रंग में। (ख) राम कहेउ रिस तजहु मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा। —तुलसी। (ग) जीवन हित प्रानहिं तजत नवैं उँचाई हेत। सुख कारण दुख संग्रहैं बहुधा पुरुष सचेत। (घ) क्यों नहिं गंगा को सुमिरि दरस परस सुख लेत। जाके तट में मरत नर अमर होने के हेत।

विचित्रक-संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का वृक्ष।

वि० दे० "विचित्र"।

विचित्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रंग बिरंगे होने का भाव। (२) विलक्षण या अद्भुत होने का भाव।

विचित्रदेह-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

विचित्रवीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रवंशी राजा शांतनु के पुत्र का नाम जिनकी कथा महाभारत में है। जब राजा शांतनु ने अपने पुत्र भीष्म के आजन्म ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा करने पर सत्यवती के साथ विवाह कर लिया था, तब उसी सत्यवती के गर्भ से उन्हें चित्रांगद और विचित्रवीर्य्य नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। चित्रांगद तो छोटी अवस्था में ही एक गंधर्व द्वारा मारा गया था; पर विचित्रवीर्य्य ने बड़े होने पर राज्याधिकार पाया था। इसने काशिराज की अंबिका और अंबालिका नाम की दो कन्याओं के साथ विवाह किया था। परंतु थोड़े ही दिनों बाद निःसंतान अवस्था में ही इसकी मृत्यु हो गई। सत्यवती को विवाह से पहले ही पराशर से गर्भ रह चुका था और उससे द्वैपायन का जन्म हुआ था। विचित्रवीर्य्य के निस्संतान मर जाने पर सत्यवती ने अपने उसी पहले पुत्र द्वैपायन को बुलाया और उसे विचित्रवीर्य्य की विधवा स्त्रियों के साथ नियोग करने को कहा। तदनुसार द्वैपायन ने धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर नाम के तीन पुत्र उत्पन्न किए थे।

विचित्रशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार के विचित्र पदार्थों का संग्रह हो। अजायबघर।

विचित्रांग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर। (२) बाघ।

विचित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जिसे कुछ लोग भैरव राग की पाँच स्त्रियों में से एक और कुछ लोग त्रिवण, बरारी, गौरी और जयंती के मेल से बनी हुई संकर जाति की मानते हैं।

विचित्रित-वि० [सं०] जो कई तरह के रंगों आदि से बना हो। अनेक प्रकार के रंगों से चित्रित। रंग-बिरंगा।

विचिलक–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का जहरीला कीड़ा।

विची–संज्ञा स्त्री० [सं०] वीची। तरंग। लहर।

विचेतन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसे चेतना न हो। संज्ञा-हीन। अचेतन। बेहोश। (२) वह जिसे भले बुरे का ज्ञान न हो। विवेकहीन।

विचेता–संज्ञा पुं० [सं० विचेतस्] (१) जिसका चित्त ठिकाने न हो। घबराया हुआ। (२) बेहोश। (३) जिसे किसी विषय का विशेष ज्ञान हो। (४) दुष्ट। पाजी। (५) मूर्ख। बेवकूफ।

विचेष्ट–वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार की चेष्टा न हो। जो हिलता डोलता न हो।

विचेष्टन–संज्ञा पुं० [सं०] पीड़ा आदि से बुरी चेष्टा करना। इधर उधर लोटना। तड़पना।

विचेष्टा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी या खराब चेष्टा करना। मुँह बनाना या हाथ पैर पटकना।

विच्छंदक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देव-मंदिर। देवालय। (२) प्रासाद। महल।

विच्छत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] सुसनी का साग।

विच्छदक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देव-मंदिर। देवालय। (२) प्रासाद। महल।

विच्छर्दन–संज्ञा पुं० [सं०] कै। वमन।

विच्छर्दिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वमन। कै।

विच्छर्दित–वि० [सं०] (१) जो वमन किया गया हो। कै किया हुआ। (२) जिसकी उपेक्षा की गई हो। जो तुच्छ समझा गया हो।

विच्छल–संज्ञा पुं० [सं०] बेंत की लता।

विच्छाय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षियों की छाया। (२) मणि। (३) वह जिसकी छाया न पड़ती हो।

विशेष—प्रायः ऐसा माना जाता है कि देवताओं, दानवों, भूतों और प्रेतों आदि की छाया नहीं पड़ती।

वि० कांतिहीन। श्रीहीन।

विच्छित्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काटकर अलग या टुकड़े करना। (२) विच्छेद। अलगाव। (३) कमी। त्रुटि। (४) वेषभूषा आदि में होनेवाली लापरवाही या बेढंगापन। (५) रंगों आदि से शरीर को चित्रित करना। (६) कविता में, यति। (७) एक प्रकार का हार। (८) साहित्य में एक हाव जिसमें स्त्री थोड़े शृंगार से पुरुष को मोहित करने की चेष्टा करती है। उ०—बेंदी भाल, तमोल मुख, सीस सिलसिले बार। दृग आँजे, राजे खरी, साजे सहज सिंगार।

विच्छिन्न–वि० [सं०] (१) जो काट या छेदकर अलग कर दिया गया हो। जिसका अपने मूल अंग के साथ कोई संबंध न रह गया हो। विभक्त। (२) जुदा। अलग। उ०—बंग-निवासी इससे विच्छिन्न नहीं हुए वरंच और युक्त हो गये। —शिवशंभु का चिट्ठा। (३) जिसका विच्छेद हुआ हो। (४) जिसका अंत हो गया हो। (५) कुटिल।

विच्छेद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) काट या छेदकर अलग करने की क्रिया। (२) क्रम का बीच से टूट जाना। सिलसिला न रह जाना। (३) किसी प्रकार अलग या टुकड़े टुकड़े करना। सब में से कुछ अलग करना। (४) नाश। उ०—जैसे इस समय बद्ध मुक्त जीव हैं, वैसे ही सर्वदा रहते हैं; अत्यंत विच्छेद बंध मुक्ति का कभी नहीं होता, किंतु बंध और मुक्ति सदा नहीं रहती।—दयानंद। (५) विरह। वियोग। (६) पुस्तक का प्रकरण या अध्याय। परिच्छेद। (७) बीच में पड़नेवाला खाली स्थान। अवकाश। (८) कविता में यति।

विच्छेदक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो विच्छेद करता हो। (२) वह जो काट या छेदकर अलग करता हो। (३) विभाग करनेवाला। विभाजक।

विच्छेदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) काट या छेदकर अलग करने की क्रिया। अलग करना। (२) नष्ट करना। बरबाद करना।

विच्छेदनीय–वि० [सं०] (१) जो काट या छेदकर अलग करने के योग्य हो। (२) जो विच्छेद करने के योग्य हो।

विच्छेदी–संज्ञा पुं० [सं० विच्छेदिन्] वह जो विच्छेद करता हो। विच्छेदन करनेवाला।

विच्छेद्य–वि० [सं०] जो विच्छेद करने के योग्य हो। जो काटने या विभाग करने के योग्य हो।

विच्युत–वि० [सं०] (१) जो कटकर अथवा और किसी प्रकार इधर उधर गिर पड़ा हो। (२) जो जीवित अंग में से काटकर निकाला गया हो। (वैद्यक) (३) जो अपने स्थान से गिर या हट गया हो। च्युत।

विच्युति संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी पदार्थ का अपने स्थान से हट या गिर जाना। च्युत होना। (२) गर्भ का गिर जाना। गर्भ-पात।

विछलना‡–क्रि० अ० [हिं० फिसलना] (१) फिसलना। (२) विचलित होना। उ०—उछल्यो उदधिराज बिछल्यो महन-राज ध्यान की धमारि भूरि भूली भूतराज की।—रघुराज।

विछेद‡–संज्ञा पुं० [सं० विच्छेद] प्रिय से अलग या दूर होना। वियोग। बिछोह। उ०—सूरश्याम के परम भावती पलक न होत बिछेद।—सूर।

विछोई‡–संज्ञा पुं० [हिं० बिछोह + ई (प्रत्य०)] वह जिसका अपने प्रिय से विच्छेद हो गया हो। वियोगी। उ०—हिय पियारा मीत बिछोई। साथ न लाग आप गा सोई।—जायसी।

विछोह‡–संज्ञा पुं० [सं० विच्छेद] प्रिय से अलग या दूर होना।

वियोग। उ०—जस-बिछोह जल मीन दुहेला। जल हुति काढ़ि अँगन महँ मेला।—जायसी।

विजंघ-वि० [सं०] (१) जिसकी जाँघें कट गई हों या न हों। (२) (गाड़ी) जिसमें धुरी और पहिए आदि न हों।

विजई‡†-संज्ञा पुं० दे० "विजयी"।

विजन-वि० [सं०] जिसमें अथवा जहाँ आदमी न हो। जन-रहित। एकांत। निराला। उ०—तहाँ सचिव सब लेहि सुधारी। भूपहि विजन भवन महँ डारी।—रघुराज।
संज्ञा पुं० [सं० व्यजन] हवा करने का पंखा। बीजन। उ०—(क) मुरछल चँवर विजन बहु करते। मृदु कहि राह परिस्रम हरते।—गोपाल। (ख) कोऊ विजन डोलावन लागे। कोउ सींचे जल अति अनुरागे।—रघुराज।

विजनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विजन होने का भाव। एकांत का भाव।

विजनन-संज्ञा पुं० [सं०] जनन करने की क्रिया। प्रसव।

विजना‡†-संज्ञा पुं० [सं० विजन] पंखा। उ०—इत एक सखी बतराय रही विजना इत एक डुलाय रही—संगीत शाकुंतल।

विजन्मा-संज्ञा पुं० [सं० विजन्मन्] (१) किसी स्त्री का उसके उपपति या यार से उत्पन्न पुत्र। जारज। दोगला। (२) मनु के अनुसार एक वर्णसंकर जाति। (३) वह जो जाति च्युत कर दिया गया हो।

विजन्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो प्रसव करने को हो। गर्भवती। गर्भिणी।

विजयंत-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम।

विजयंतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक योगिनी का नाम।

विजयंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक अप्सरा का नाम। (२) माही बूटी।

विजय-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) युद्ध या विवाद आदि में होनेवाली जीत। विपक्षी या शत्रु को दबाकर अपना प्रभुत्व या पक्ष स्थापित करना। जय। जीत। पराजय का उलटा। (२) एक प्रकार का छंद जो केशव के अनुसार सवैया का मत्तगयंद नामक भेद है। (३) भोजन करना। खाना। (पूरब)

विजयक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विजय करता हो। सदा जीतनेवाला।

विजयकुंजर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा की सवारी का हाथी। (२) लड़ाई के मैदान में जानेवाला हाथी।

विजयकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] वह ध्वजा जो शत्रु पर विजय प्राप्त करके फहराई जाती है। विजय-पताका।

विजयच्छंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाँच सौ मोतियों का हार। (२) एक प्रकार का कल्पित हार जो दो हाथ लंबा और ५०४ लड़ियों का माना जाता है। कहते हैं कि ऐसा हार केवल देवता लोग पहनते हैं।

विजयडिंडिम-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बड़ा ढोल जो युद्ध के समय बजाया जाता था।

विजयतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।

विजयदंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सैनिकों का वह समूह अथवा सेना का वह विभाग जो सदा विजयी रहता हो। (२) सेना का एक विशिष्ट विभाग जिस पर विजय विशेष रूप से निर्भर करती है।

विजयदशमी-संज्ञा स्त्री० दे० "विजयादशमी"।

विजयनंदन-संज्ञा पुं० [सं०] इक्ष्वाकु वंश के राजा जय का एक नाम।

विजयपताका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेना में की वह पताका जो जीत के समय फहराई जाती है। (२) विजय का सूचक कोई चिह्न।

विजयपर्पटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की औषध जो पारे, जयंती के पत्तों, रेंड़ की जड़ और अदरक आदि के योग से बनाई और संग्रहणी रोग में दी जाती है।

विजयपूर्णिमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] विजयादशमी के उपरांत पड़नेवाली पूर्णिमा। आश्विन की पूर्णिमा।
विशेष—इस तिथि को बंगाल में लक्ष्मी का पूजन होता और उत्सव मनाया जाता है।

विजयभैरव-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस। इसमें हड़ का छिलका, चीता, इलायची, तज, सँभालू, पीपल, लोहसार आदि के योग से गंधक और पारे की कज्जली तैयार की जाती है। यह सब प्रकार के रोगों और दुर्बलता को दूर करनेवाला माना जाता है।

विजयभैरव तैल-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो मालकंगनी, अजवायन, काले जीरे, मेथी और तिल को कोल्हू में पेरकर निकाला जाता है और जो सब प्रकार के वायु रोगों का नाशक माना जाता है।

विजयमर्दल-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का ढोल। डंका।

विजय यात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह यात्रा जो किसी पर किसी प्रकार की विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाए।

विजय रस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे, गंधक और सीसे के योग से बनता और प्रायः अजीर्ण रोग में दिया जाता है।

विजयलक्ष्मी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विजय की अधिष्ठात्री देवी, जिसकी कृपा पर विजय निर्भर मानी जाती है।

विजयशील-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बराबर विजय करता हो। सदा जीतनेवाला।

विजयश्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] विजय की अधिष्ठात्री देवी जिसकी कृपा पर विजय निर्भर मानी जाती है।

विजयसार–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसकी लकड़ी औजार बनाने और इमारत के काम में आती है। वि० दे० "विजैसार"।

विजया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुराणानुसार पार्वती की एक सखी का नाम जो गोतम की कन्या थी। (२) दुर्गा। (३) यम की भार्या का नाम। (४) हरीतकी। हर्रे। (५) वच। (६) जयंती। (७) मजीठ। (८) एक प्रकार का शमी। (९) अग्निमंथ। (१०) भाँग। सिद्धि। भंग। उ०—(क) संसार के सब दुःखों और समस्त चिंताओं को जो शिवशंभु शर्मा दो चुल्लू बूटी पीकर भुला देता था, आज उसका उस प्यारी विजया पर भी मन नहीं है।—शिवशंभु का चिट्ठा। (ख) हम तो यह जानते हैं कि यदि किसी मंत्र, यंत्र से सर्पादि के डंक का कष्ट या कोई ज्वर, शूल आदि विकार दूर हो जाता हो, तो वह मंत्र संखिया, धतूरा, विजयादि के विषों पर पढ़ा हुआ भी अवश्य फल करे।—*श्रद्धाराम*। (११) एक योगिनी का नाम। (१२) वर्त्तमान अवसर्पिणी के दूसरे अर्हत की माता का नाम। (१३) दक्ष की एक कन्या का नाम। (१४) श्रीकृष्ण की माला का नाम। (१५) इंद्र की पताका पर की एक कुमारी का नाम। (१६) प्राचीन काल का एक प्रकार का बड़ा खेमा। (१७) काश्मीर के एक पवित्र क्षेत्र का नाम। (१८) दस मात्राओं का एक मात्रिक छंद जिसमें अक्षरों का कोई नियम नहीं होता और जिसके अंत में रगण रखना कर्ण मधुर होता है। (१९) एक वर्णिक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में आठ वर्ण होते हैं। इसके अंत में लघु और गुरु अथवा नगण भी होता है। उ०—परन यद्यु धारिए। प्राण प्रति पारिए। लगन ना बिसारिए। सुविजया सम्हारिए। (२०) दे० "विजयादशमी"।

विजया एकादशी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी। (२) फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी।

विजया दशमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी जो हिंदुओं का और विशेषतः क्षत्रियों का एक बहुत बड़ा त्योहार है। प्राचीन काल में राजा लोग इसी दिन अपने शत्रुओं पर आक्रमण करने अथवा दिग्विजय आदि करने के लिये निकला करते थे। इस दिन देवी, घोड़े, हाथी और खड्ग आदि का पूजन तथा राजा के दर्शन करने का विधान है। इस दिन किसी नए कार्य का आरंभ करना बहुत ही शुभ समझा जाता है।

विजयानंद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संगीत में ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक। (२) वैद्यक में एक प्रकार की औषध जो पारे और हरताल के योग से बनाई जाती और कुष्ट रोग में दी जाती है।

विजयार्ध–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

विजया वटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की वटिका या गोली जो पारे और गंधक के योग से बनाई जाती है और जिसका व्यवहार संग्रहणी रोग में होता है।

विजया सप्तमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार किसी मास के शुक्ल पक्ष की वह सप्तमी जो रविवार को पड़े। ऐसी तिथि को पुराणानुसार रामचंद्र जी का पूजन और दान करने का विधान है।

विजयी–संज्ञा पुं० [सं० विजयिन्] [स्त्री० विजयिनी] (१) वह जिसने विजय प्राप्त की हो। विजय करनेवाला। जीतनेवाला। उ०—(क) सीजर भी उसी धर्म के प्रभाव से ऐसी विजयी सेना संग होने पर भी काँप उठता है।—तोताराम। (ख) ऐरावत-विजयी द्विरद मत्त उसके सब। मेघों से टक्कर मार खेलते हैं अब।—द्विवेदी। (ग) पांडव विजयी यह कथा, राजा सुन दे कान। विजय होय सब जगत में, शत्रु होय क्षय जान।—सबल। (२) अर्जुन।

विजयेश–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम, जो विजय के देवता माने जाते हैं।

विजयोत्सव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह उत्सव जो आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी को होता है। विजया दशमी को होनेवाला उत्सव। (२) वह उत्सव जो किसी प्रकार की विजय प्राप्त करने पर होता है।

विजर–वि० [सं०] (१) जिसे जरा या बुढ़ापा न आता हो। (२) नवीन। नया।

विजरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्रह्मलोक की एक नदी का नाम।

विजल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल या वर्षा का अभाव। अनावृष्टि। सूखा। (२) जल का न होना। पानी का अभाव।

विजला–संज्ञा स्त्री० [सं०] चंचु या चेंच नाम का साग।

विजल्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सच, झूठ और तरह तरह की ऊट पटाँग बातें करना। व्यर्थ की बहुत सी बकवाद। (२) किसी सज्जन या भले आदमी के संबंध में द्वेषपूर्ण झूठी बातें कहना।

विजाग*–संज्ञा पुं० [सं० वियोग] विमोह। वियोग। उ०—सूरज जरत हिमंचल ताका। विरह विजाग सौंह रथ हाँका।—जायसी।

विजागी*–संज्ञा पुं० [हिं० वियोगी] जिसका अपने प्रिय से बिछोह हुआ हो। वियोगी। उ०—तेहि के जरत जो उठे बिजागी। तीनों लोक जरहिं तेहि लागी।—जायसी।

विजात–वि० [सं०] वर्णसंकर। दोगला। हरामजादा।

संज्ञा पुं० सखी छंद का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में ५-५-४ के विश्राम से १४ मात्राएँ और अंत में सगण या यगण होता है। इसकी पहली और आठवीं मात्राएँ लघु रहती हैं। इसके अंत में जगण, तगण या रगण नहीं होना चाहिए।

बिजाता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जारज लड़की। दोगली। (२) वह स्त्री जिसे हाल में संतान हुई हो। जच्चा।

बिजाति-वि० [सं०] भिन्न या दूसरी जाति का।

बिजातीय-वि० [सं०] जो दूसरी जाति का हो। एक अथवा अपनी जाति से भिन्न जाति का। उ०—(क) हम विजातीय कार्य्यकर्त्ताओं की बनाई हुई वस्तुओं को काम में लाते हैं। (ख) ब्रह्म से पृथक् कोई सजातीय विजातीय और स्वगत अवयवों के भेद न होने से एक ब्रह्म ही सिद्ध होता है।—दयानन्द।

बिजानु-संज्ञा पुं० [सं०] तलवार चलाने के ३२ हाथों में से एक हाथ या प्रकार। उ०—लिमि सव्य जानु विजानु संकोचित सुभाहित चित्रको।—रघुराज।

बिजार-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मटिया भूमि जिसमें धान और कभी कभी चना भी बोया जाता है।

बिजारत-संज्ञा स्त्री० [अ०] वजीर का पद, धर्म्म या भाव। मंत्रित्व। उ०— वज़ीर की तनख्वाह १ लाख रुपए की और विजारत के दस्तूर समेत २ लाख रुपए की सालाना है।—देवीप्रसाद।

बिजिगीषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह इच्छा जिसके अनुसार मनुष्य यह चाहता है कि मुझे कोई यह न कह सके कि मैं अपना पेट पालने में असमर्थ हूँ। (२) विजय प्राप्त करने की इच्छा। (३) व्यवहार। (४) उत्कर्ष। उन्नति।

बिजिगीषु-वि० [सं०] विजय की इच्छा करनेवाला।

बिजिगीषुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विजिगीषु होने का भाव या धर्म्म।

बिज़िट-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) भेंट। मुलाकात। (२) डाक्टर आदि का रोगी के देखने के लिये आना। (३) वह धन जो डाक्टर आदि को आने के उपलक्ष में दिया जाय। डाक्टर की फीस।

बिज़िटर्स बुक-संज्ञा स्त्री० [अं०] किसी सार्वजनिक संस्था की वह पुस्तक जिसमें वहाँ के आने जानेवाले अपना नाम और कभी कभी उस संस्था के संबंध में अपनी सम्मति भी लिखते हैं।

बिज़िटिंग कार्ड-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का बढ़िया छोटा कार्ड जिस पर लोग अपना नाम, पद और पता छपवा लेते हैं; और जब किसी से मिलने जाते हैं, तब उसे अपने आगमन की सूचना देने के लिये पहले यह कार्ड उसके पास भेज देते हैं।

बिजित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिस पर विजय प्राप्त की गई हो। वह जो जीत लिया गया हो। (२) वह प्रदेश जिस पर विजय प्राप्त की गई हो। जीता हुआ देश। (३) कोई प्रांत या प्रदेश। (४) फलित ज्योतिष में वह ग्रह जो युद्ध में किसी दूसरे ग्रह से बल में कम होता है।

बिजितात्मा-संज्ञा पुं० [सं० विजितात्मन्] शिव का एक नाम।

बिजितारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राक्षस का नाम। (२) वह जिसने अपने शत्रु को जीत लिया हो।

बिजिताश्व-संज्ञा पुं० [सं०] राजा पृथु के एक पुत्र का नाम।

बिजिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विजय। जीत। (२) प्राप्ति।

बिजित्वर-वि० [सं०] जीतनेवाला। विजेता।

बिजित्वरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

बिजिल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऐसा भोजन जिसमें अधिक रस न हो। (२) एक प्रकार का दही।

बिजीप-वि० [सं०] जिसे अन्न प्राप्त करने की इच्छा हो।

बिजुल-संज्ञा पुं० [सं०] शाल्मलि कंद।

बिजुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक देवी का नाम।
संज्ञा स्त्री० दे० "बिजली"।

बिजृंभण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ का मुँह खोलना। (२) जँभाई लेना। उबासी लेना। (३) धनुष की डोरी खींचना। (४) (भौं) सिकोड़ना।

बिजृंभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] उबासी। जँभाई।

बिजेतव्य-वि० [सं०] जो विजित करने के योग्य हो। जो जीतने के योग्य हो।

बिजेता-संज्ञा पुं० [सं० विजेतृ] जिसने विजय पाई हो। जीतनेवाला। विजय करनेवाला।

बिजेय-वि० [सं०] जिस पर विजय प्राप्त की जाने को हो। जीता जाने के योग्य।

बिजै®†-संज्ञा स्त्री० दे० "विजय"। उ०—हारि जात नर करि उपाय। कपट न तिनको यह कँपाय। सोइ अकंपन पद कहाय। त्रैलोक्य बिजै जो रहा पाय।—देव स्वामी।

बिजैसार-संज्ञा पुं० [सं० विजयसार] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो साल का एक भेद माना जाता है। यह पूर्वी भारत तथा बरमा में बहुत अधिकता से पाया जाता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और खेती के औजार बनाने तथा इमारत आदि के काम में आती है।

बिजैसाल-संज्ञा पुं० दे० "बिजैसार"।

बिजोर†-संज्ञा पुं० दे० "बिजौरा"।
वि० [हिं० बि+जोर=बल] निर्बल। कमजोर। उ०—जीव को सुख दुख सबु सँग होई। जोर बिजोर तन के सँग सोई।—सूर।

बिजोरा-संज्ञा पुं० [सं० बिजोरा] एक वृक्ष का नाम जिसके प्रत्येक

चरण में दो रगण होते हैं। इसे "जोहा" "विमोहा" और "विज्जोहा" भी कहते हैं।

विज्ञत्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक विशेष प्रकार का बाण या तीर।

विज्जु†-संज्ञा स्त्री० [सं० विद्युत्] विद्युत्। बिजली। उ०—ससि विज्जु मनहुँ दोउ दिसि बसत उदगन को बसतर धरे।—गोपाल।

विज्जुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्वचा। छिलका। (२) दारचीनी।

विज्जुलता†-संज्ञा स्त्री० [सं० विद्युल्लता] विद्युत्। बिजली। उ०—कर लीने मनि रस्मि रस्सि रहि फैलि अथोरी। विज्जुलता बदि मनहुँ रची विसुकरमा डोरी।—गोपालचंद्र।

विज्जुलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका या पहाड़ी नाम की लता।

विज्जोहा-संज्ञा पुं० दे० "विजोहा"।

विज्ञ-वि० [सं०] (१) जो जानता हो। जानकार। (२) बुद्धिमान्। समझदार। (३) विद्वान्। पंडित।

विज्ञता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विज्ञ होने का भाव। जानकारी। (२) बुद्धिमत्ता। (३) पांडित्य। विद्वत्ता।

विज्ञत्व-संज्ञा पुं० दे० "विज्ञता"।

विज्ञप्त-वि० [सं०] जो बतलाया या सूचित किया गया हो। जतलाया हुआ।

विज्ञप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जतलाने या सूचित करने की क्रिया। (२) विज्ञापन। इश्तहार।

विज्ञप्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रार्थना। निवेदन।

विज्ञबुद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

विज्ञात-वि० [सं०] (१) जाना या समझा हुआ। (२) प्रसिद्ध। मशहूर।

विज्ञातव्य-वि० [सं०] जो जानने या समझने के योग्य हो।

विज्ञाता-संज्ञा पुं० [सं० विज्ञातृ] वह जो जानता या समझता हो।

विज्ञाति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ज्ञान। समझ। (२) जानकारी। (३) एक प्रकार की देवयोनि जिसे गय भी कहते हैं। (४) एक कल्प का नाम।

विज्ञान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्ञान। जानकारी। (२) किसी विशिष्ट विषय के तत्वों या सिद्धांतों आदि का विशेष रूप से प्राप्त किया हुआ ज्ञान जो ठीक क्रम से एकत्र या संगृहीत हो। किसी विषय की जानी हुई बातों का ठीक तरह से किया हुआ संग्रह जो एक अलग शास्त्र के रूप में हो। शास्त्र। जैसे,—पदार्थ विज्ञान, राजनीति विज्ञान, शरीर विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, समाज विज्ञान आदि। (३) किसी विषय का अनुभव-जन्य, पूरा और अच्छा ज्ञान। कार्य कुशलता। (४) कर्म। (५) माया या अविद्या नाम की वृत्ति। (६) बौद्धों के अनुसार आत्मा के स्वरूप का ज्ञान। आत्मा का अनुभव। (७) ब्रह्म। (८) आत्मा। (९) आकाश। (१०) निश्चयात्मिका बुद्धि। (११) मोक्ष।

विज्ञानकोश-संज्ञा पुं० [सं०] वेदांत के अनुसार ज्ञानेंद्रियाँ और बुद्धि। विज्ञानमय कोश। वि० दे० "कोष"।

विज्ञानता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विज्ञान का भाव या धर्म।

विज्ञानपति-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो परम ज्ञानी हो।

विज्ञानपाद-संज्ञा पुं० [सं०] वेदव्यास का एक नाम।

विज्ञानमय कोष-संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञानेंद्रियों और बुद्धि का समूह। वि० दे० "कोष"।

विज्ञानमातृक-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध का एक नाम।

विज्ञानवाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वाद या सिद्धांत जिसमें ब्रह्म और आत्मा की एकता प्रतिपादित हो। (२) वह वाद या सिद्धांत जिसमें केवल आधुनिक विज्ञान की बातें ही प्रतिपादित या मान्य की गई हों।

विज्ञानवादी-संज्ञा पुं० [सं० विज्ञानवादिन्] (१) वह जो योग के मार्ग का अनुसरण करता हो। योगी। (२) वह जो आधुनिक विज्ञान-शास्त्र का पक्षपाती हो। विज्ञान के मत का समर्थन करनेवाला।

विज्ञानिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जिसे ज्ञान हो। (२) विज्ञ। पंडित। (३) दे० "वैज्ञानिक"।

विज्ञानिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विज्ञानी का भाव या धर्म।

विज्ञानी-संज्ञा पुं० [सं० विज्ञानिन्] (१) वह जिसे किसी विषय का अच्छा ज्ञान हो। (२) वह जो किसी विज्ञान का अच्छा वेत्ता हो। वैज्ञानिक। (३) वह जिसे आत्मा तथा ईश्वर आदि के स्वरूप के संबंध में विशेष ज्ञान हो।

विज्ञानीय-वि० [सं०] विज्ञान-संबंधी। वैज्ञानिक।

विज्ञापक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विज्ञापन करता हो। समझाने, बतलाने या जतलानेवाला।

विज्ञापन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विज्ञापनीय] (१) किसी बात को बतलाने या जतलाने की क्रिया। जानकारी कराना। सूचना देना। (२) वह पत्र या सूचना आदि जिसके द्वारा कोई बात लोगों को बतलाई जाय। इश्तहार।

विज्ञापना-संज्ञा स्त्री० [सं०] विज्ञप्त करना। जतलाना। बतलाना।

विज्ञापनीय-वि० [सं०] जो बतलाने या जतलाने के योग्य हो। सूचित करने के योग्य।

विज्ञापित-वि० [सं०] (१) जो बतलाया जा चुका हो। जिसकी सूचना दी जा चुकी हो। (२) जिसका इश्तहार दिया जा चुका हो।

विज्ञापी-वि० [सं० विज्ञापिन्] जतलाने या बतलानेवाला। सूचना देनेवाला।

विज्ञाप्ति-संज्ञा स्त्री० दे० "विज्ञप्ति"।

विज्ञाप्य-वि० [सं०] बतलाने योग्य । सूचित करने योग्य ।

विज्ञेय-वि० [सं०] जो जानने या समझने के योग्य हो ।

विज्वर-वि० [सं०] (१) जिसका ज्वर उतर गया हो । जिसका बुखार छूट गया हो । (२) जिसे सब प्रकार की चिंताओं से छुटकारा मिल गया हो । निश्चिंत । बेफिक्र । (३) जो सब प्रकार के क्लेशों आदि से मुक्त हो । जिसे किसी प्रकार का शोक या संताप न हो ।

विटंक-वि० [सं०] सुंदर । मनोहर ।

संज्ञा पुं० (१) सब से ऊँचा सिरा या स्थान । (२) कबूतर का दरबा । काबुक । (३) बड़ी ककड़ी ।

विट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसमें काम-वासना बहुत अधिक हो । कामुक । लंपट । (२) वह जो किसी वेश्या का यार हो या जिसने किसी वेश्या को रख लिया हो । (३) धूर्त । चालाक । (४) साहित्य में एक प्रकार का नायक । साहित्य-दर्पण के अनुसार जो व्यक्ति विषय-भोग में अपनी सारी संपत्ति नष्ट कर चुका हो, भारी धूर्त हो, फल या परिणाम का एक ही अंग देखता हो, वेष-भूषा और बातें बनाने में बहुत चतुर हो, वह विट कहलाता है । (५) एक पर्वत का नाम । (६) एक प्रकार का खैर जिसे दुर्गंध खैर भी कहते हैं । (७) नारंगी का वृक्ष । (८) चूहा । (९) साँचर नमक ।

विटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल की एक जाति का नाम । (२) पुराणानुसार एक प्राचीन देश जो नर्मदा नदी के तट पर था । (३) फोड़ा ।

विटकारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पक्षी ।

विटक्रिमि-संज्ञा पुं० [सं०] चुना या चुनचुना नाम का कीड़ा जो बच्चों की गुदा में उत्पन्न होता है ।

विटप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्ष या लता की नई शाखा । कोंपल । (२) छतनार पेड़ । झाड़ी । (३) वृक्ष । पेड़ । (४) आधिपत्य-पत्र ।

विटपक-संज्ञा पुं० [सं०] दूत । पाजी ।

विटपी-संज्ञा पुं० [सं० विटपिन्] (१) जिसमें नई शाखाएँ या कोंपलें निकली हों । (२) वृक्ष । पेड़ । (३) अंजीर का पेड़ । (४) वट वृक्ष । बड़ का पेड़ ।

विटपीमृग-संज्ञा पुं० [सं०] शाखामृग । बंदर ।

विटप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] मोगरा नामक फूल या उसका पौधा ।

विटभूत-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक असुर का नाम ।

विटमाक्षिक-संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी नाम का खनिज द्रव्य ।

विटलवण-संज्ञा पुं० [सं०] साँचर नमक ।

विटवल्लभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटली वृक्ष ।

विटि-संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल चंदन ।

विट्-संज्ञा पुं० [सं०] साँचर नमक ।

विट्क-संज्ञा पुं० [सं०] विष । जहर ।

विट्घात-संज्ञा पुं० [सं०] मूत्राघात नामक रोग ।

विट्चर-संज्ञा पुं० [सं०] गाँवों में रहनेवाला सूअर ।

विट्ठल-संज्ञा पुं० [?] दक्षिण भारत की विष्णु की एक मूर्ति का नाम ।

विट्पति-संज्ञा पुं० [सं०] जामाता । दामाद ।

विट्प्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार या सूँस नामक जल-जंतु ।

विट्शूल-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का शूल रोग ।

विट्संग-संज्ञा पुं० [सं०] मलरोध । कब्जियत ।

विट्सारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पक्षी ।

विठल-संज्ञा पुं० दे० "विट्ठल" ।

विडंग-संज्ञा पुं० [सं०] वायविडंग ।

विडंबक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठीक ठीक अनुकरण करनेवाला । पूरी पूरी नकल करनेवाला । (२) अनुकरण करके चिढ़ाने या अपमान करनेवाला । (३) निंदा या परिहास करनेवाला ।

विडंबन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी के रंग ढंग या चाल ढाल आदि का ठीक ठीक अनुकरण करना । पूरी पूरी नकल करना । (२) चिढ़ाने या अपमानित करने के लिये नकल करना । भँड़ैती करना । (३) निंदा या उपहास करना ।

विडंबना-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० विडंबनीय, विडंबित] (१) अनुकरण करना । नकल उतारना । (२) किसी को चिढ़ाने या बनाने के लिये उसकी नकल उतारना । (३) हँसी उड़ाना । मजाक करना । (४) डाँटना डपटना । फट-कारना ।

विडंबनीय-वि० [सं०] (१) जो अनुकरण करने के योग्य हो । नकल उतारने लायक । (२) चिढ़ाने या उपहास करने के योग्य ।

विडंबी-संज्ञा पुं० [सं० विडंबिन्] वह जो किसी प्रकार की विडंबना करता हो । विडंबना करनेवाला ।

विड्-संज्ञा पुं० [सं०] विट लवण ।

विड्गंध-संज्ञा पुं० [सं०] विट लवण । साँचर नमक ।

विडरना*|-क्रि० अ० [सं० तलव, हिं० डारना या सं० विरदन] (१) इधर उधर होना । तितर बितर होना । उ०—(क) विडरत विडुकि जानि रथ ते मृग जनु ससंकि शशि लंगर सारे ।—सूर । (ख) जानत नहीं कौन गुण यहि तन जाते सब विडरे ।—सूर । (२) भागना । दौड़ना । उ०—हाँके मृगन ताल की ओरी । भजें विडरि बालक चहुँ ओरी ।—छत्रप्रकाश ।

विडराना*|-क्रि० स० दे० "विडारना" ।

विड़ारक-संज्ञा पुं० [सं० ?] बिडाल । बिल्ली ।

विड़ारना-क्रि० स० [हिं० बिडरना का स० रूप] (१) तितर बितर करना। इधर उधर करना। छितराना। उ०—हारे लै बिडारे जोइ पति पै पुकारे कही वजमारे मति आवो हरि गाइये।—नाभादास। (२) नष्ट करना। उ०—विष्वक्सेन रूप हरि लैंगे कीन्हो शिव को हेत। असुर मारि सब तुरत बिडारे दीन्हें रुद्र निकेत।—सूर। (३) भगाना। दौड़ाना।

विड़ाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आँख का पिंड। (२) आँख की एक प्रकार की दवा जो जेठी मधु, गेरू, दारु हल्दी और रसांजन आदि से बनती है और जिसका आँख के चारों ओर लेप किया जाता है। (३) आँख के चारों ओर किया जानेवाला कोई लेप। (४) बिल्ली। (५) गंध मार्जार। मुश्क बिलाव। (६) हरताल।

विड़ालक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरताल। (२) बिल्ली।

विड़ालपद-संज्ञा पुं० [सं०] दो तोले का परिमाण।

विड़ालाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम जो महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में गया था।

विड़ाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विदारी कंद। (२) बिल्ली।

विड़ीन-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षियों की उड़ान का एक प्रकार।

विड़ौजा-संज्ञा पुं० [सं० विडौजस्] इंद्र का एक नाम।

विड्गंध-संज्ञा पुं० [सं०] विड लवण।

विड्ग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] कोष्ठबद्धता। कब्ज़ियत। मलरोध।

विड्घात-संज्ञा पुं० [सं०] मलमूत्र का अवरोध। पेशाब और पाखाना रुकना।

विड्ज-संज्ञा पुं० [सं०] विष्ठा आदि से उत्पन्न होनेवाले कीड़े मकोड़े।

विड्बंध-संज्ञा पुं० [सं०] मल का अवरोध। कब्ज़ियत।

विड्भंग-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत दस्त होना। पेट चलना।

विड्भेद-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत दस्त होना। पेट चलना।

विड्भेदी-संज्ञा पुं० [सं० विड्भेदिन] वह ओषधि या द्रव्य जो विरेचक हो। दस्तावर चीज या दवा।

विड्भोजी-संज्ञा पुं० [सं० विड्भोजिन्] वह जो विष्ठा खाता हो।

विड्लवण-संज्ञा पुं० [सं०] विट लवण। साँचर नमक।

विड्वराह-संज्ञा पुं० [सं०] गाँवों में रहनेवाला सूअर।

विड्विघात-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मूत्रघात रोग।

वितंड-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

वितंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दूसरे के पक्ष को दबाते हुए अपने मत की स्थापना करना। (२) व्यर्थ का झगड़ा या कहा-सुनी। (३) कपूर। (४) दर्वी। (५) शिलारस।

वितंत॰-संज्ञा पुं० [सं० वि + तंत] वह बाजा जिसमें तार न लगे हों। बिना तार का बाजा। उ०—तंत वितंत सुभ घन बाजहिं शब्द होय झनकारा।—जायसी।

वितंस-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षियों अथवा छोटे छोटे पशुओं आदि को फँसाने का जाल।

वित॰-वि० [सं० विद्] (१) जाननेवाला। ज्ञाता। उ०—सब शास्त्र बिसारद अस्त्र वित बिदित बली मनि जगत जित।—गोपाल। (२) चतुर। निपुण। उ०—रन जु आन रद वित नृप कस्यो करद मगध महराज को।—गोपाल।

वितघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी अरणी।

वितत-वि० [सं०] विस्तृत। फैला हुआ।

संज्ञा पुं० [सं०] वीणा अथवा उससे मिलता जुलता हुआ और कोई बाजा।

वितताना॰†-क्रि० अ० [सं० व्यथा] व्याकुल होना। बेचैन होना। उ०—देखे आइ तहाँ हरि नाहीं, चितवति जहाँ तहाँ बितताती।—सूर।

विततिि-संज्ञा स्त्री० [सं०] विस्तार। फैलाव।

वितथ-वि० [सं०] [संज्ञा वितथता] (१) मिथ्या। झूठ। (२) व्यर्थ। निरर्थक। बेफायदा।

वितथता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वितथ का भाव। मिथ्यात्व।

वितथ्य-वि० [सं०] मिथ्या। असत्य। झूठ।

वितद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] पंजाब की वितस्ता या झेलम नदी का एक नाम।

वितनु-वि० [सं०] जो बहुत ही सूक्ष्म हो।

वितपन्न॰-संज्ञा पुं० [सं० व्युत्पन्न] वह जो किसी काम में कुशल हो। व्युत्पन्न। दक्ष। प्रवीण। उ०—(क) सूरज प्रभु वितपन्न कोक गुन तातें हरि हरि ध्यावत।—सूर। (ख) संगहि रहति सदा पिय प्यारी क्रीड़त करति उपाधा। कोककला वितपन्न भई हौ कान्हरूप तनु आधा।—सूर। वि० घबराया हुआ। व्याकुल। उ०—उनहिं मिले वितपन्न भई अब पै दिन गए भुलाइ।—सूर।

वितमस्क-वि० [सं०] (१) जिसमें अंधकार न हो। (२) जिसमें तमोगुण न हो।

वितरक-संज्ञा पुं० [सं० वितरण] वितरण करनेवाला। बाँटनेवाला। उ०—जुनु धुनि पूरत तातें नूपुर वितरक अर्थ सुरायन मैं।—देव स्वामी।

वितरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दान करना। अर्पण करना। देना। (२) बाँटना।

वितरन॰-संज्ञा पुं० [सं० वितरण] (१) बाँटनेवाला। वितरण करनेवाला। तरन तरन दुति भवतरन वितरन सुख हित रनकरन।—गोपाल। (२) दे० "वितरण"। उ०—कछु दिन प्रभु तहँ कियो निवासा। वितरन वैष्णव वृंद हुलासा।—रघुराज।

वितरना॰-क्रि० स० [सं० वितरण] वितरण करना। बाँटना। उ०—(क) ये अहुरे अति रहैं उदारा। वितरहिं सब को द्रव्य

अपारा।—रघुराज। (ख) सुवरण तनु तिनके किये, सुवरण वितरि अपार।—रघुराज।

वितरिक्त॰-अव्य॰ [सं॰ व्यतिरिक्त] अतिरिक्त। सिवा। उ॰—हरि वितरिक्त जाहि शिर नावै। मूरति तुरत फूटि सो जावै—रघुराज।

वितरित-वि॰ [सं॰] जो वितरण किया गया हो। बाँटा हुआ।

वितरेक॰-क्रि॰ वि॰ [सं॰ व्यतिरिक्त] छोड़कर। सिवा। उ॰—वितरेक तोहि निर्दय महाखल आनु कहु को सहि सकै।—तुलसी।

वितर्क-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) एक तर्क के उपरांत होनेवाला दूसरा तर्क। (२) संदेह। शक। (३) अनुमान। (४) एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमें किसी प्रकार के संदेह या वितर्क का उल्लेख होता है और कुछ निर्णय नहीं होता।

वितर्क्य-वि॰ [सं॰] (१) जिसमें किसी प्रकार के वितर्क या संदेह का स्थान हो। (२) जो देखने में बहुत विलक्षण हो।

वितर्दि, वितर्दिका-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वेदी। मंच।

वितल-संज्ञा पुं॰ [सं॰] पुराणानुसार सात पातालों में से तीसरा पाताल। देवी भागवत के अनुसार यही दूसरा पाताल है। कहते हैं कि इस पाताल में शिव जी "हाटकेश्वर" नाम से अपने पार्षदों के साथ रहते हैं। इनके वीर्य्य से हाटकी नाम की नदी बहती है जिसे हुताशन पीते हैं। उन्हीं हुताशन के मुँह से जब फुफकार निकलता है, तब उससे हाटक नामक सोना निकलता है।

वितलिन-संज्ञा पुं॰ [सं॰ वितलिन्] वितल लोक को धारण करनेवाले, बलदेव। उ॰—वलिनं सुतलिनं देव हलिनं वितलिनं तलिनं स्वयं।—गर्गसंहिता।

वितस्ता-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पंजाब की झेलम नामक नदी का प्राचीन नाम।

वितस्तावय-संज्ञा पुं॰ [सं॰] महाभारत के अनुसार तक्षक नाग का निवास-स्थान।

वितस्तात्रि-संज्ञा पुं॰ [सं॰] राजतरंगिणी के अनुसार एक पर्वत का नाम।

वितस्ति-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) उतना परिमाण जितना हाथ के अँगूठे और उँगली को पूरा पूरा फैलाने से होता है। बालिश्त। बित्ता। (२) बारह अंगुल का परिमाण।

वितान-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) यज्ञ। (२) विस्तार। फैलाव। (३) बड़ा चँदोआ या खेमा। (४) समूह। संघ। जमाव। (५) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का बंधन जो सिर पर के आघात या घाव आदि पर बाँधा जाता है। (६) अवसर। अवकाश। (७) पूजा। अफ़सोस। (८) शून्य। ख़ाली स्थान। (९) अग्निहोत्र आदि कर्म। (१०) एक प्रकार का छंद। (११) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक सगण, एक भगण और दो गुरु होते हैं। उ॰—शुभ गंगा जल तेरो। सुखदाता जन केरो। नसिके भौ-दुख नाना। जस को तान विताना।—जगन्नाथ।

वि॰ (१) मंद। धीमा। (२) शून्य। ख़ाली।

वितानक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] धनिया।

संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) बड़ा चँदोआ या खेमा। (२) समूह। जमावड़ा। (३) धन संपत्ति।

वितानना॰†-क्रि॰ स॰ [सं॰ वितान] (१) शामियाना आदि तानना। (२) कोई चीज़ तानना। उ॰—मनी हीन छीन फनी, मीन वारि सों विहीन है कै मलीन मति दीनता वितानई।—रसकुसुमाकर।

वितानमूल-संज्ञा पुं॰ [सं॰] खस। उशीर।

वितानमूलक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] उशीर। गाडर। खस।

वितामस-संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्रकाश। उजाला।

वि॰ जिसमें तमोगुण न हो।

वितार-संज्ञा पुं॰ [सं॰] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार का केतु या पुच्छल तारा।

वितारक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] विधारा नामक जड़ी।

वितिक्रम॰-संज्ञा पुं॰ [सं॰ व्यतिक्रम] क्रम का भंग होना। व्यतिक्रम। गड़बड़ी। उ॰—प्रीति परीक्षा तिहुन की बैर वितिक्रम जानि।—तुलसी।

वितिहोत्र-संज्ञा पुं॰ [सं॰ वीतिहोत्र] अग्नि। (डिं॰)

वितीत॰†-वि॰ दे॰ "व्यतीत"। उ॰—आम मंजरी संग सनेह सों कछु दिन करत वितीत।—संगीत शाकुंतल।

वितीपात-संज्ञा पुं॰ दे॰ "व्यतीपात"।

वितीपाती †-संज्ञा पुं॰ [सं॰ व्यतीपात + ई॰ (प्रत्य॰)] वह जो बहुत अधिक उपद्रव करता हो। पाजी। शरारती। (लड़का)

वितीर्ण-संज्ञा पुं॰ दे॰ "वितरण"।

वि॰ दे॰ "उत्तीर्ण"।

वितुंड-संज्ञा पुं॰ [सं॰ वि + तुंड] हाथी। उ॰—(क) जारो पुंड के वितुंड चित्र सुंड झुंड झुंड मुंड धरे कुंड सुंड कुंडल करे करे।—गोपाल। (ख) तहँ वशिष्ठ आदिक मुनिराई। चढ़े वितुंडन आनँद छाई।—रघुराज।

वितु॰†-संज्ञा पुं॰ [सं॰ वित्त] धन-संपत्ति। उ॰—दै चितु के हित लै सब छवि वितु विधि निज हाथ सँवारे।—तुलसी।

वितुन्नक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] नीला थोथा। तूतिया।

वितुन्न-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वैदिक साहित्य के अनुसार एक प्रकार की भूतयोनि।

वितुन्न-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) सिरियारी या सुसना नामक साग। (२) सेवार।

वितुन्नक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनिया। (२) तूतिया। (३) कैवर्तमुस्तक। (४) भुइँ आँवला।
वितुन्नका-संज्ञा स्त्री० [सं०] भुइँ आँवला।
वितुन्नमूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] भुइँ आँवला।
वितुन्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] भुइँ आँवला।
वितुष्ट-वि० [सं०] जो संतुष्ट न हो। असंतुष्ट।
वितृण-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ तृण या घास आदि न होती हो।
वितृप्त-वि० [सं०] जो तृप्त या संतुष्ट न हुआ हो।
वितृप्तता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वितृप्त या असंतुष्ट होने का भाव।
वितृष-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे किसी प्रकार की तृष्णा न रह गई हो। तृष्णा से रहित।
वितृष्ण-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे किसी प्रकार की तृष्णा न हो। निस्पृह। उदासीन।
वितृष्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] तृष्णा का अभाव। तृष्णा का न होना।
वित्त-संज्ञा पुं० [सं०] धन। संपत्ति।
वि० (१) सोचा या विचारा हुआ। (२) जाना या समझा हुआ। (३) मिला या पाया हुआ। (४) विख्यात। प्रसिद्ध। मशहूर।
वित्तकोश-संज्ञा पुं० [सं०] रुपए पैसे आदि रखने की थैली।
वित्तगोप्त-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर के भंडारी का नाम।
वित्तदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।
वित्तनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर का एक नाम।
वित्तप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो धन की रक्षा करता हो। भंडारी। (२) कुबेर का एक नाम।
वित्तपति-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर का एक नाम। उ०—छज्यो वित्तपित्त चित महँ, कहि धनि अनुज हमार।—रघुराज।
वित्तपाल-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर का एक नाम।
वित्तपुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुबेर की पुरी, अलका।
वित्तहीन-संज्ञा पुं० [सं०] धनहीन। दरिद्र। गरीब। उ०—सब परिवार मेरो याही लागे राजाजू, हौं दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं।—तुलसी।
वित्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विचार। (२) लाभ। प्राप्ति। (३) ज्ञान। (४) संभावना।
वित्तेश, वित्तेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।
वित्रप-वि० [सं०] निर्लज्ज। बेहया। बेशरम।
वित्रास-संज्ञा पुं० [सं०] भय। डर।
वित्व-संज्ञा पुं० [सं०] वेत्ता होने का भाव।
वित्संन-संज्ञा पुं० [सं०] बैल।
विथकना*†-क्रि० अ० [हिं० थकना] (१) थकना। शिथिल होना। उ०—सुनि किंनर गंधर्व सराहत विथके हैं विबुध विमान।—तुलसी। (२) मोहित या चकित होकर चुप हो जाना। उ०—तुलसी सुनि ग्रामवधू विथकीं पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै।—तुलसी।
विथकित*-वि० [हिं० विथकना] (१) थका हुआ। शिथिल। उ०—तुलसी भइ मति विथकित करि अनुमान। राम लषन के रूप न देषेउ आन।—तुलसी। (२) जो आश्चर्य या मोह आदि के कारण कुछ न बोल सकता हो। उ०—गोपीजन विथकित ह्वै चितवत सब ठाढ़ी।—सूर।
विथराना*-क्रि० स० [सं० वितरण] (१) फैलाना। (२) इधर उधर करना।
विथा*†-संज्ञा स्त्री० [सं० व्यथा] (१) व्यथा। पीड़ा। तकलीफ। उ०—(क) तनकहु विथा नहीं मन मान्यो। पर उपकार न तनु प्रिय जान्यो।—रघुराज। (ख) भँवर जानि पै कमल पिरीती। जेहिं महँ विथा प्रेम कै बीती।—जायसी। (ग) बूटी जड़ी मनी बहु विधि की। लीनी विथा निवारन सिधि की।—गोपाल। (२) रोग। बीमारी। उ०—फेन सजै मुख तें, पटकै कर, जौ न कियौ जू विथा निरवारन।—रसकुसुमाकर।
विथारना*-क्रि० स० [सं० वितरण] फैलाना। छितराना। उ०—श्री रघुवीर के बाहु विलास तें धर्म रच्यो त्रैलोक्य विथार्‍यो।—हृदयराम।
विथित*-वि० [सं० व्यथित] जिसे किसी प्रकार की व्यथा हो। दुःखी।
विथुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोर। (२) राक्षस। (३) क्षय। नाश।
वि० (१) अल्प। थोड़ा। कम। (२) व्यथित। दुःखित।
विथुरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका स्वामी से वियोग हुआ हो। विरहिणी।
विथ्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोमी।
विदंता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की कौड़ी।
विद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिल पुष्पी। तिलक। (२) जानकार। जाननेवाला। (३) पंडित। विद्वान्।
विदग्ध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रसिक पुरुष। रसज्ञ। नागर। (२) पंडित। विद्वान्। (३) चतुर। चालाक। होशियार। (४) रूसा नामक घास।
वि० जला हुआ।
विदग्धता-संज्ञा स्त्री० [सं०] पांडित्य। विद्वत्ता।
विदग्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह परकीया नायिका जो होशियारी के साथ पर-पुरुष को अपनी ओर अनुरक्त करे। यह दो प्रकार की मानी गई है—वचन विदग्धा और क्रिया विदग्धा। जो स्त्री अपनी बात चीत के कौशल से पर पुरुष पर अपनी काम-वासना प्रकट करती है, वह वचन विदग्धा कहलाती है; और जो किसी प्रकार के क्रिया कलाप

से अपना भाव प्रकट करती है, उसे क्रिया विदग्धा कहते हैं।

विदग्धाजीर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अजीर्ण रोग जो पित्त के प्रकोप से उत्पन्न होता है और जिसमें रोगी को भ्रम, तृष्णा, मूर्च्छा, दाह और पेट में दर्द होता है।

विदग्धाम्लदृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] आँखों का एक प्रकार का रोग जो बहुत अधिक खटाई खाने से होता है और जिसमें आँखें पीली पड़ जाती हैं।

विदथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) योगी। (२) यज्ञ। (३) वैदिक काल के एक राजा का नाम।

विदथी-संज्ञा पुं० [सं० विदथिन्] एक वैदिक ऋषि का नाम।

विदमान-अव्य० [सं० विद्यमान] जो विद्यमान हो। सामने। सम्मुख। (क) उ०—कोन्यो मयन काम नहिं छाँड़ियो सुरपति के विदमान।—सूर। (ख) ताको मथन कियो इहि रघुपति तो देखत विदमान।—सूर।

विदर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंकारी। विषसारक। (२) विदारण करना। फाड़ना।

विदरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विदारण करना। फाड़ना। (२) विद्रधि नामक रोग।

विदरना-क्रि० अ० [सं० विदरण] विदीर्ण होना। फटना। उ०—(क) विदरत नाहिं वज्र की छाती हरि वियोग क्यों सहिए।—सूर।

क्रि० स० विदीर्ण करना। फाड़ना। उ०—महेश यहाँ तुमको विदर्‌यो जू। अरा सम पत्रनि ▪ विदर्‌यो जू।—गुमान।

विदर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आधुनिक बरार प्रदेश का प्राचीन नाम। (२) भागवत के अनुसार एक राजा का नाम। कहते हैं कि इसी राजा के नाम पर विदर्भ देश का नाम पड़ा था। (३) पुराणानुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम। (४) दाँतों में चोट लगने के कारण मसूढ़ा फूलना या दाँतों का हिलना।

विदर्भजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अगस्त्य ऋषि की स्त्री लोपामुद्रा का एक नाम। (२) दमयंती का एक नाम जो विदर्भ के राजा भीष्म की कन्या थी। (३) रुक्मिणी का एक नाम।

विदर्भराज-संज्ञा पुं० [सं०] दमयंती के पिता राजा भीष्म जो विदर्भ के राजा थे।

विदर्भि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

विदर्व्य-संज्ञा पुं० [सं०] बिना फनवाला साँप।

विदल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल रंग का सोना। (२) सोना। स्वर्ण। (३) अनार का दाना। (४) बाँस का बना हुआ दौरा या और कोई पात्र। (५) चना। (६) पीठी।

वि० विकसित। खिला हुआ। (२) जिसमें दल न हों। बिना दल का।

विदलन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मलने दलने या दबाने आदि की क्रिया (२) टुकड़े टुकड़े या इधर उधर करना। फाड़ना।

विदलना-क्रि० स० [सं० विदलन] दलित करना। नष्ट करना। उ०—तीरन केहरि केहरि के विदले अरि कुंजर छैल छवासे।—तुलसी।

विदलान्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पकाई हुई दाल। (२) वह अन्न जिसमें दो दल हों। जैसे,—चना, उड़द, मूँग, अरहर, मसूर आदि।

विदलित-वि० [सं०] (१) जिसका अच्छी तरह दलन किया गया हो। (२) रौंदा हुआ। मला हुआ। (३) टुकड़े टुकड़े किया हुआ। (४) फाड़ा हुआ।

विदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्धि। ज्ञान। अक्ल।

संज्ञा स्त्री० [सं० विदाय, मि० अ० विदाअ] (१) प्रस्थान। रवाना होना। (२) कहीं से चलने की आज्ञा या अनुमति।

क्रि० प्र०—करना।—माँगना।—होना।

विदाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० विदा+ई (प्रत्य०)] (१) विदा होने की क्रिया या भाव। रुख़सती। प्रस्थान। (२) विदा होने की आज्ञा या अनुमति। (३) वह धन आदि जो विदा होने के समय किसी को दिया जाय।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

विदाय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विसर्जन। (२) प्रस्थान। (३) जाने की आज्ञा या अनुमति। विदा।

क्रि० प्र०—माँगना।—लेना।

(४) दान।

विदायी-संज्ञा पुं० [सं० विदायिन्] (१) वह जो ठीक तरह से चलाता या रखता हो। नियामक। (२) दान करनेवाला।

संज्ञा स्त्री० दे० "विदाई"।

विदार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) युद्ध। समर। (२) दे० "विदारण"।

विदारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वृक्ष या पर्वत आदि जो जल के बीच में हो। (२) छोटी नदियों के तल में बनाया हुआ गड्ढा, जिसमें नदी के सूखने पर भी पानी बचा रहता है। (३) नौसादर।

वि० विदारण करनेवाला। फाड़ डालनेवाला।

विदारण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बीच में से अलग करके दो या अधिक टुकड़े करना। फाड़ना। (२) मार डालना। हत्या करना। (३) युद्ध। समर। लड़ाई। (४) कनेर। (५) लपरिया। (६) नौसादर।

विदारना-क्रि० स० [हिं० विदरना] (१) फाड़ना। उ०—(क) प्रभु उद्गान विधु मिलन को चले तम विदारि करिवाट।—तुलसी। (ख) निज जाँघन पर ताहि पछार्‌यो। नखन साथ तब उदर विदार्‌यो।—केशव।

विदारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वृहत्संहिता के अनुसार एक

प्रकार की डाकिनी जो घर के बाहर अग्नि कोण में रहती है। (२) गंभारी वृक्ष। (३) विदारीकंद। (४) शालपर्णी। (५) कड़वी तूँबी।

विदारिगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शालपर्णी।

विदारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंभारी।

विदारित-वि० [सं०] विदीर्ण किया हुआ। फाड़ा हुआ।

विदारी-वि० [सं० विदारिन्] फाड़नेवाला। विदारण करनेवाला।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शालपर्णी। (२) भुइँ कुम्हड़ा। (३) भावप्रकाश के अनुसार अठारह प्रकार के कंठ रोगों में से एक प्रकार का कंठ रोग जो पित्त के प्रकुपित होने से होता है। इस में गले और मुँह पर लाली आ जाती है, जलन होती है और बदबूदार मांस के टुकड़े कट कटकर गिरने लगते हैं। कहते हैं कि जिस करवट कोई अधिक सोता है, उसी ओर यह रोग होता है। (४) एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें बगल में फुंसी निकलती है। (५) कान का का एक रोग। (६) वाराहीकंद। (७) क्षीर काकोली। (८) वाग्भट्ट के अनुसार मेढ़ासींगी, सफेद पुनर्नवा, देवदारु, अनंतमूल, बृहती आदि ओषधियों का एक गण।

विदारीकंद-संज्ञा पुं० [सं०] भुइँ कुम्हड़ा।

विदारीगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शालपर्णी। (२) सुश्रुत के अनुसार शालपर्णी, भुइँ कुम्हड़ा, गोखरू, शतमूली, अनंतमूल, जीवंती, मुगवन, कटियारी, पुनर्नवा आदि ओषधियों का एक गण। इस गण की सब ओषधियाँ वायु तथा पित्त की नाशक, और शोथ, गुल्म, ऊर्द्ध्वश्वास तथा खाँसी आदि रोगों में हितकर मानी जाती हैं।

विदारु-संज्ञा पुं० [सं०] गिरगिट।

विदाह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पित्त के प्रकोप के कारण होनेवाली जलन। (२) हाथ पैर में किसी कारण से होनेवाली जलन।

विदाहक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो विदाह उत्पन्न करता हो। (२) दे० "विदाह।"

विदाही-संज्ञा पुं० [सं० विदाहिन्] वह पदार्थ जिससे जलन पैदा हो। दाह उत्पन्न करनेवाला। उ०—विदाही, अर्थात् जो चीज़ खाने से छाती में जलन होती है; और जितने प्रकार के रूखे अन्न हैं, जैसे बाजरा आदि इनको न खाय।

विदित-संज्ञा पुं० [सं०] जाना हुआ। अवगत। ज्ञात।

संज्ञा पुं० कवि।

विदिथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पंडित। विद्वान्। (२) योगी।

विदिशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वर्त्तमान भेलसा नामक नगर का प्राचीन नाम। (२) पुराणानुसार पारियात्र पर्वत से निकली हुई एक नदी का नाम। (३) दे० "विदिश्"।

विदिश्-संज्ञा स्त्री० [सं०] दो दिशाओं के बीच का कोना। जैसे,—अग्नि या ईशान आदि।

विदीपक-संज्ञा पुं० [सं०] दीपक। दीआ।

विदीर्ण-वि० [सं०] (१) बीच से फाड़ा या विदारण किया हुआ। (२) टूटा हुआ। (३) मार डाला हुआ। निहत।

विदु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी के मस्तक के बीच का भाग। (२) घोड़े के कान के नीचे का भाग।

विदुत्तम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सब बातें जानता हो। (२) विष्णु का एक नाम।

विदुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो जानता हो। जानकार। वेत्ता। ज्ञाता। (२) पंडित। ज्ञानी। (३) कौरवों के सुप्रसिद्ध मंत्री जो राजनीति, धर्म्मनीति और अर्थनीति में बहुत निपुण थे और जो धर्म्म के अवतार माने जाते हैं। महाभारत में कथा है कि जब सत्यवती ने अपनी पुत्रवधू अंबिका को दूसरी बार कृष्णद्वैपायन के साथ नियोग करने की आज्ञा दी, तब उसने कृष्णद्वैपायन की आकृति आदि से भयभीत होकर एक सुन्दरी दासी को अपने कपड़े आदि पहनाकर उनके पास भेज दिया, जिससे विदुर का जन्म हुआ। ये बहुत बड़े पंडित, बुद्धिमान्, शांत और दूरदर्शी थे, और पांडवों के बहुत बड़े पक्षपाती थे। पहले ये राजा पांडु के मंत्री थे; और इसी लिये पीछे से अनेक अवसरों पर इन्होंने पांडवों की भारी भारी विपत्तियों से रक्षा की थी। जतुगृह के जलने के समय भी इन्हीं के परामर्श से पांडवों की जान बची थी। ये धृतराष्ट्र के छोटे भाई और मंत्री भी थे। जिस समय दुर्योधन के बहुत कहने पर धृतराष्ट्र ने इनसे जूए के संबंध में सम्मति माँगी थी, उस समय इन्होंने उन्हें बहुत रोका और समझाया था। पांडवों के वन जाने पर ये दुर्योधन के पास रहते थे। महाभारत का युद्ध आरंभ होने से पहले इन्होंने धृतराष्ट्र को रात भर अनेक प्रकार के अच्छे अच्छे उपदेश देकर युद्ध रुकवाना चाहा था; पर इसमें भी इन्हें सफलता नहीं हुई। युद्ध में इन्होंने पांडवों का पक्ष ग्रहण किया था। महाभारत के युद्ध के उपरान्त जब पांडवों का राज्य हुआ, तब भी ये बहुत दिनों तक मंत्री के पद पर थे; पर पीछे से वन में चले गए। वहाँ राजा युधिष्ठिर से एक बार इनकी भेंट हुई थी। वहीं बहुत दिनों तक घोर तपस्या करने के उपरांत इनका परलोक वास हुआ था। नीति की प्रसिद्ध पुस्तक "विदुरनीति" इन्हीं की रचित मानी जाती है।

विदुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेंत। (२) जल बेंत। (३) बोल या गंधरस नामक गंधद्रव्य। (४) अमलबेत।

विदुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का थूहर जिसे सातला कहते हैं। (२) चिट खदिर।

विदुष-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विदुषी] विद्वान। पंडित। उ०—(क) निज निज वेद की सप्रेम जोग छेम मई मुदित असीस विप्र विदुष दिदई है।—तुलसी। (ख) विदुष जनन विराट प्रभु दीसे अति मन में सुख पायो।—सूर।

विदुषी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्या पढ़ी हुई स्त्री। विद्वान् स्त्री। उ०—(क) जैसे लड़के ब्रह्मचर्य्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवति, विदुषी, अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं।—दयानंद। (ख) जहाँ पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करनेवाली हों, वहाँ भेज दें।—दयानंद।

विदूर-वि० [सं०] जो बहुत दूर हो।

संज्ञा पुं० (१) बहुत दूर का प्रदेश। (२) एक देश का नाम। (३) एक पर्वत का नाम। कहते हैं कि वैदूर्य्य मणि इसी पर्वत में मिलती है। (४) दे० "वैदूर्य्य"। (मणि)

विदूरज-संज्ञा पुं० [सं०] विदूर पर्वत से उत्पन्न, वैदूर्य्य मणि।

विदूरत्व-संज्ञा पुं० [सं०] विदूर होने का भाव। बहुत अधिक दूर होना।

विदूरथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुरुक्षेत्र का एक नाम। (२) पुराणानुसार एक राजा का नाम।

विदूरभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] विदूर नामक देश। कहते हैं कि वैदूर्य्य मणि इसी देश में होती है।

विदूरविगत-संज्ञा पुं० [सं०] अन्त्यज।

विदूषक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो बहुत अधिक विषयी हो। कामुक। (२) वह जो तरह तरह की नकलें आदि करके, वेष भूषा बनाकर अथवा बातचीत करके दूसरों को हँसाता हो। मसखरा।

विशेष—प्राचीन काल में राजाओं और बड़े आदमियों के मनोविनोद के लिये उनके दरबार में इस प्रकार के मसखरे रहा करते थे, जो अनेक प्रकार के कौतुक करके, बेवकूफ बनकर अथवा बातें बनाकर लोगों को हँसाया करते थे। प्राचीन नाटकों आदि में भी इन्हें यथेष्ट स्थान मिला है, क्योंकि इनसे सामाजिकों का मनोरंजन होता है। साहित्यदर्पण के अनुसार विदूषक प्रायः अपने कौशल से दो आदमियों में झगड़ा भी कराता है, और अपना पेट भरना या स्वार्थ सिद्ध करना खूब जानता है। यह शृंगार रस में सहायक होता है और मानिनी नायिका को मनाने में बहुत कुशल होता है।

(३) चार प्रकार के नायकों में से एक प्रकार का नायक जो अपने कौतुक और परिहास आदि के कारण काम केलि में सहायक होता है। (४) वह जो दूसरों की निंदा करता हो। खल। (५) भाँड़। उ०—नाचहिं कहुँ विदूष करि जाला। कूदहिं काँस बजावहिं ताला।—सबल।

विदूषण-संज्ञा पुं० [सं०] किसी पर विशेष रूप से दोष लगाने की क्रिया। ऐब लगाना।

विदूषना-क्रि० स० [सं० विदूषण] (१) सताना। दुःख देना। उ०—सुनु सठ काल ग्रसित यह देही। जनि तेहि लागि विदूषहि केही।—तुलसी। (२) दोष लगाना। दोषी ठहराना।

क्रि० अ० दुःखी होना। पीड़ा का अनुभव करना। उ०—तापन सौं तपती विर में विन काल वृथा मन माँहि विदूषती।—मन्नालाल।

विदृश-वि० [सं०] जिसे दिखाई न पड़े। अन्धा।

विदेघ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम। (२) दे० "विदेह"।

विदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राक्षस। (२) यक्ष।

विदेश-संज्ञा पुं० [सं०] अपने देश को छोड़कर दूसरा देश। परदेश।

विदेह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो शरीर से रहित हो। (२) वह जिसकी उत्पत्ति माता पिता से न हो। जैसे,—देवता आदि। (३) राजा जनक का एक नाम। वि० दे० "जनक"। (४) राजा निमि का एक नाम। वि० दे० "निमि"। (५) प्राचीन मिथिला का एक नाम। (६) इस देश के निवासी।

विदेहक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

विदेहकूट-संज्ञा पुं० [सं०] जैन पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

विदेहकैवल्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह निर्वाण या मोक्ष जो जीवन्मुक्त को मरने पर प्राप्त होता है।

विदेहत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विदेह होने का भाव। (२) शरीर का नाश। मृत्यु। मौत।

विदेहपुर-संज्ञा पुं० [सं०] राजा जनक की राजधानी, जनकपुर। उ०—विदित विदेहपुरनाथ भृगुनाथ गति समय सयानी कीन्ही जैसी आइ गौं परी।—तुलसी।

विदेहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मिथिला नगरी और प्रदेश का एक नाम।

विदोष-वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार का दोष न हो। दोषरहित। बे ऐब।

विद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो जानता हो। जानकार। (२) पंडित। विद्वान्। (३) बुध ग्रह। (४) तिल का पौधा।

विद्ध-वि० [सं०] (१) बीच में से छेद किया हुआ। (२) फेंका हुआ। (३) जिसमें बाधा पड़ी हो। (४) समान। तुल्य। बराबर। (५) जिसको चोट लगी हो। (६) टेढ़ा। (७) मिला हुआ। आबद्ध।

विद्रक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का यंत्र जिससे मिट्टी खोदी जाती थी।

विद्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिससे शरीर में बहुत छोटी छोटी फुंसियाँ निकलती हैं।

विद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] आघात करना। मारना।

विद्यमान-वि० [सं०] वर्तमान। उपस्थित। मौजूद।

विद्यमानता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्यमान होने का भाव। उपस्थिति। मौजूदगी।

विद्यमानत्व-संज्ञा पुं० [सं०] विद्यमान होने का भाव। उपस्थिति। मौजूदगी।

विद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह ज्ञान जो शिक्षा आदि के द्वारा उपार्जित या प्राप्त किया जाता है। वह जानकारी जो सीखकर हासिल की जाती है। किसी विषय का विशिष्ट ज्ञान। इल्म। जैसे,—(क) विद्या पढ़कर मनुष्य पंडित होता है। (ख) आजकल पाठशालाओं में अनेक प्रकार की विद्याएँ पढ़ाई जाती हैं।

विशेष—हमारे यहाँ विद्या दो प्रकार की मानी गई है—परा और अपरा। जिस विद्या के द्वारा ब्रह्मज्ञान होता है, वह परा विद्या और इसके अतिरिक्त जो अन्य लौकिक या पदार्थ विद्याएँ हैं, वे सब अपरा विद्या कहलाती हैं।

(२) वह ज्ञान जिसके द्वारा मोक्ष की प्राप्ति या परमपुरुषार्थ की सिद्धि होती है। (३) वे शास्त्र आदि जिनके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है। हमारे यहाँ इनकी संख्या १८ बतलाई गई है। यथा—चारों वेद, छओ अंग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र। (४) दुर्गा। (५) देवी का मंत्र। (६) गनियारी। (७) सीता की एक सखी का नाम। (८) आर्य्या छंद का पाँचवाँ भेद जिसमें चन्द्रशेखर के मत से २३ गुरु और ११ लघु मात्राएँ होती हैं।

विद्यागुरु-संज्ञा पुं० [सं०] वह गुरु जिससे विद्या पढ़ी हो। पढ़ानेवाला गुरु। शिक्षक।

विद्यागृह-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ विद्या पढ़ाई जाती हो। विद्यालय। पाठशाला।

विद्यातीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

विद्यात्व-संज्ञा पुं० [सं०] विद्या का भाव।

विद्यादल-संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का पेड़।

विद्यादाता-संज्ञा पुं० [सं० विद्यादातृ] विद्या पढ़ानेवाला गुरु, जो शास्त्रों के अनुसार पिता माना जाता है।

विद्यादान-संज्ञा पुं० [सं०] विद्या पढ़ाना। शिक्षा देना।

विद्यादेवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरस्वती। (२) जैनियों की सोलह जिन देवियों में से एक देवी का नाम।

विद्याधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विद्या रूपी धन। (२) वह धन जो अपनी विद्या द्वारा उपार्जित किया जाय। ऐसे धन में किसी का हिस्सा नहीं लग सकता।

विद्याधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की देवयोनि जिसके अंतर्गत खेचर, गंधर्व, किन्नर आदि माने जाते हैं। (२) सोलह प्रकार के रतिबंधों में से एक प्रकार का रतिबंध। (३) वैद्यक में एक प्रकार का यंत्र जिसमें एक थाली में पारा रखकर उस पर दूसरी थाली रखकर मिट्टी से बीच का जोड़ बंद कर देते हैं, और ऊपर की थाली में पानी भरकर दोनों मिली हुई थालियाँ पाँच पहर तक आग पर रखते हैं। इसके उपरान्त ठंढे होने पर पारा निकाल लेते हैं।

विद्याधर रस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे, गंधक, ताँबे, सोंठ, पीपल, मिर्च, धतूरे आदि की सहायता से बनाया जाता है और ज्वर में बहुत उपयोगी माना जाता है।

विद्याधरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्याधर नामक देवता की स्त्री। उ०—विद्याधरी किन्नरी नागा त्यों वानरी अपारा।—रघुराज।

विद्याधरेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] जाम्बुवान् का एक नाम।

विद्याधरेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक शिवलिंग का नाम।

विद्याधार-संज्ञा पुं० [सं०] पंडित। विद्वान्।

विद्याधारी-संज्ञा पुं० [सं० विद्याधारिन्] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में चार मगण होते हैं। उ०—मैं चारों बंधू गाऊँ भक्ती को पाऊँ। रे लाभै सारे यामें अन्ते न मो जाऊँ। जाने भेदा याको सत्संगा को धारी। सोही साँचो भक्ता साँचो विद्याधारी।—जगन्नाथ।

विद्याधिदेवता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्या की अधिष्ठात्री देवी, सरस्वती।

विद्याधिप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विद्या पढ़ानेवाला। गुरु। शिक्षक। (२) विद्वान्। पंडित।

विद्याधिराज-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बहुत बड़ा पंडित हो।

विद्याध्र-संज्ञा पुं० [सं०] विद्याधर नाम की देव-योनि।

विद्यामणि-संज्ञा पुं० दे० "विद्याधन"।

विद्यामय-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो पूर्ण पंडित हो।

विद्यारंभ-संज्ञा पुं० [सं०] वह संस्कार जिसमें विद्या की पढ़ाई आरंभ होती है।

विद्याराज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु की एक मूर्ति का नाम।

विद्याराशि-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

विद्यार्थी-संज्ञा पुं० [सं० विद्यार्थिन्] वह जो विद्या पढ़ता हो। पढ़नेवाला छात्र। शिष्य।

विद्यालय-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ विद्या पढ़ाई जाती हो। पाठशाला।

विद्याविद्–संज्ञा पुं० [सं०] विद्वान् । पंडित ।
विद्याव्रत–संज्ञा पुं० [सं०] वह व्रत जो गुरु के घर रहकर विद्या पढ़ने के उद्देश्य से धारण किया जाता है ।
विद्याव्रतस्नातक–संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार वह स्नातक जो गुरु के पास रहकर वेद और विद्या व्रत दोनों समाप्त करके अपने घर लौटे ।
विद्यास्नातक–संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार वह स्नातक जो गुरु के घर रहकर वेदाध्ययन समाप्त करके घर लौटा हो ।
विद्युज्जिह्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामायण के अनुसार रावण के पक्ष के एक राक्षस का नाम जो शूर्पणखा का पति था । (२) एक यक्ष का नाम ।
विद्युज्जिह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम ।
विद्युज्ज्वाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] कलिकारी या कलियारी नामक वृक्ष ।
विद्युता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विद्युत् । बिजली । (२) महाभारत के अनुसार एक अप्सरा का नाम ।
विद्युताक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम ।
विद्युत्–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संध्या । (२) बिजली । (३) बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार की उल्का । (४) एक प्रकार की वीणा ।
संज्ञा पुं० एक प्राचीन ऋषि का नाम ।
वि० (१) जिसमें बहुत अधिक दीप्ति हो । बहुत चमकीला । (२) जिसमें किसी प्रकार की दीप्ति या प्रभा न होना ।
विद्युत्केश–संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार हेति नामक राक्षस का पुत्र जो काल की कन्या भया के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । इसी विद्युत्केश और पौलोमी से राक्षसों के वंश की वृद्धि हुई थी ।
विद्युत्त्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विद्युत् का भाव या धर्म । बिजलीपन ।
विद्युत्पताक–संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय के समय के सात मेघों में से एक मेघ का नाम ।
विद्युत्पर्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है ।
विद्युत्पात–संज्ञा पुं० [सं०] बिजली का गिरना । वज्रपात ।
विद्युत्प्रभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक ऋषि का नाम । (२) एक दैत्य का नाम ।
विद्युत्प्रभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दैत्यों के राजा बालि की पोती का नाम । (२) अप्सराओं का एक गण ।
विद्युत्प्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] काँसा नामक धातु या उसका कोई बरतन, जिसकी ओर बिजली अच्छी खिंचती है ।
विद्युत्य–वि० [सं०] विद्युत् या बिजली से उत्पन्न ।
विद्युत्वत्–संज्ञा पुं० [सं०] मेघ । बादल ।
विद्युद्दाम–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दैत्य का नाम ।
विद्युद्गौरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्ति की एक मूर्ति का नाम ।
विद्युद्ध्वज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक असुर का नाम । (२) दे० "विद्युत्पताक" ।
विद्युन्मापक–संज्ञा पुं० [सं० विद्युत्+मापक] एक विशेष प्रकार का यंत्र जिससे यह जाना जाता है कि विद्युत् का बल कितना और प्रवाह किस ओर है ।
विद्युन्माल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामायण के अनुसार एक बंदर का नाम । (२) दे० "विद्युन्माला" ।
विद्युन्माला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बिजली का समूह या सिलसिला । (२) एक यक्षिणी का नाम । (३) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में आठ आठ गुरु वर्ण अथवा दो मगण और दो गुरु वर्ण होते हैं और चार वर्णों पर यति होती है । उ०—मैं माँगों गोपी सों दाना । भागी योंकी नाहीं काना । कारी सारी ताही माला । भासी मोही विद्युन्माला ।—जगन्नाथ ।
विद्युन्माली–संज्ञा पुं० [सं० विद्युन्मालिन्] (१) पुराणानुसार एक राक्षस का नाम जिसने शिव की भक्ति करके सोने का एक विमान प्राप्त किया था और जो उसी विमान पर चढ़कर सूर्य्य के पीछे पीछे घूमा करता था । इससे रात के समय भी उस विमान में अन्धकार नहीं होने पाता था । इससे घबराकर सूर्य्य ने अपने तेज से वह विमान गलाकर ज़मीन पर गिरा दिया था । रामायण में कहा है कि धर्म्म के पुत्र सुषेण के साथ इसका युद्ध हुआ था । उ०—विद्युन्माली रजनिचर, हन्यो सुषेणहिं बान । मारि सुषेणहुँ अंग इक, तोन्यो शाकर यान ।—रघुराज । (२) महाभारत के अनुसार एक असुर का नाम । (३) एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक मगण, एक मगण और अंत में दो गुरु होते हैं ।
विद्युन्मुख–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के उपग्रह ।
विद्युल्लता–संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत् । बिजली ।
विद्युल्लेखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो मगण होते हैं । इसे शेषराज भी कहते हैं । उ०—मैं माटी ना खाई । झूठे ग्वाला माई । तू चाखो ना देखा । जोती विद्युल्लेखा ।—जगन्नाथ । (२) विद्युत् । बिजली ।
विद्येश–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम ।
विद्योत्–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विद्युत् । बिजली । (२) प्रभा । दीप्ति । चमक । (३) एक अप्सरा का नाम ।
विद्र–संज्ञा पुं० [सं०] छिद्र । छेद ।
विद्रुध–वि० [सं०] (१) मोटा ताज़ा । (२) दृढ़ । मज़बूत । पक्का । (३) जो किसी काम के लिये अच्छी तरह तैयार हो ।

संज्ञा पुं० दे० "विद्रधि"।
विद्रधि-संज्ञा पुं० स्त्री० [सं०] पेट के अंदर का एक प्रकार का फोड़ा जो बहुत घातक होता है।
विद्रधिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का छोटा फोड़ा जो प्रमेह रोग के बहुत दिनों तक रहने के कारण होता है।
विद्रधिघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] शोभांजन। सहिजन।
विद्रव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भागना। (२) बुद्धि। प्रज्ञा। (३) नाश। (४) भय। डर। (५) युद्ध। लड़ाई। (६) बहना। (७) पिघलना। (८) निंदा। शिकायत।
विद्राव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहना। क्षरण। (२) पिघलना। (३) गलना।
विद्रावण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भागना। (२) पिघलना। (३) गलना। (४) उड़ना। (५) फाड़ना। (६) वह जो नष्ट करता हो। (७) एक दानव का नाम।
विद्राविणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कौवा ठोंठी।
विद्रावी-संज्ञा पुं० [सं० विद्राविन्] (१) भागनेवाला। (२) गलनेवाला। (३) फाड़नेवाला।
विद्रुत-वि० [सं०] (१) भागा हुआ। (२) गला हुआ। (३) पिघला हुआ।
विद्रुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भागना। (२) गलना। (३) पिघलना। (४) नष्ट होना।
विद्रुधि-संज्ञा पुं० दे० "विद्रधि"।
विद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रवाल। मूँगा। (२) मुक्ताफल नामक वृक्ष। (३) वृक्ष का नया पत्ता। कोंपल।
विद्रुमफल-संज्ञा पुं० [सं०] कुंदुरु नामक सुगंधित गोंद।
विद्रुमलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नलिका या नली नामक गंध द्रव्य। (२) मूँगा।
विद्रोह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी के प्रति होनेवाला वह द्वेष या आचरण जिससे उसको हानि पहुँचे। (२) राज्य में होनेवाला भारी उपद्रव जो राज्य को हानि पहुँचाने या नष्ट करने के उद्देश्य से हो। बलवा। बगावत।
विद्रोही-संज्ञा पुं० [सं० विद्रोहिन] (१) वह जो किसी के प्रति विद्रोह या द्वेष करता हो। (२) राज्य का अनिष्ट करनेवाला। बागी।
विद्वत्-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।
विद्वत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत अधिक विद्वान् होने का भाव। पांडित्य।
विद्वत्त्व-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक विद्वान् होने का भाव। विद्वत्ता। पांडित्य।
विद्वान्-संज्ञा पुं० [सं० विद्वस्] (१) वह जो आत्मा का स्वरूप जानता हो। (२) वह जिसने बहुत अधिक विद्या पढ़ी हो। पंडित। (३) वह जो सब कुछ जानता हो। सर्वज्ञ।
विद्विष-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विद्वेष या शत्रुता करता हो। शत्रु। दुश्मन।
विद्विष्ट-वि० [सं०] जिसके साथ विद्वेष या शत्रुता की जाय। द्वेष का पात्र या भाजन।
विद्विष्टता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्विष्ट होने का भाव।
विद्विष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्वेष। शत्रुता। दुश्मनी।
विद्वेष-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रुता। दुश्मनी। वैर। द्वेष।
विद्वेषक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विद्वेष करता हो। शत्रु। दुश्मन। वैरी।
विद्वेषण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शत्रुता। दुश्मनी। वैर। (२) तंत्र के अनुसार एक प्रकार की क्रिया जिसके द्वारा दो व्यक्तियों में द्वेष या शत्रुता उत्पन्न की जाती है। (३) वह जो द्वेष करता हो। शत्रु। वैरी। (४) सज्जनता का अभाव। दुष्टता।
विद्वेषिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दुःसह नामक यक्ष की आठवीं और अंतिम कन्या जो निर्माष्टि के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। कहते हैं कि यही लोगों में द्वेष उत्पन्न करती है। इसे शांत करने के लिये दूध, शहद और घी में मिले हुए तिलों से होम आदि करने का विधान है।
विद्वेषी-संज्ञा पुं० [सं० विद्वेषिन्] वह जो विद्वेष करता हो। द्वेषी। शत्रु। वैरी।
विद्वेष्टा-संज्ञा पुं० [सं० विद्वेष्टृ] वह जो विद्वेष करता हो। शत्रु। वैरी।
विद्वेष्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जिसके साथ विद्वेष किया जाय। द्वेष का पात्र या भाजन। (२) कंकोल।
विधंस*-संज्ञा पुं० [सं० विध्वंस] विध्वंस। नाश। उ०—माया कंस विधंसमुरारी। दारिद मारिद प्रबलप्रचारी।—रघुराज। वि० विध्वस्त। नष्ट। विनष्ट।
विधंसना*-क्रि० स० [सं० विध्वंसन्] नष्ट करना। बरबाद करना। उ० चाँद सुरज सौं होइ बियाहू। बारि विधंसब, वेधब राहू।—जायसी।
विध*-संज्ञा पुं० [सं० विधि] विधि। ब्रह्मा। उ०—नैन की कोर ते नेह कियो विध दीठ की छाँह से दीठ सँवारो।—हृदय। संज्ञा स्त्री० दे० "विध"।
विधात्री-संज्ञा स्त्री० [सं० विधात्री] ब्रह्मा की शक्ति, महासरस्वती।
विधन-वि० [सं०] जिसके पास धन न हो। निर्धन। गरीब।
विधनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विधन होने का भाव। निर्धनता। गरीबी।
विधना-क्रि० स० [सं० विधि] प्राप्त करना। अपने साथ लगाना। ऊपर लेना। उ०—(क) छए फँदाइ विहंग मानो मदन

व्याध विधए।—सूर। (ख) थाके सूर पथिक मग मानो मदन व्याधि विधये री।—सूर।

संज्ञा स्त्री० [सं० विधि] वह जो कुछ होने को हो। भवितव्यता। होनी।

संज्ञा पुं० विधि। ब्रह्मा। उ०—विधना ऐसी रैन कर भोर कभी ना होय।

विधमन—संज्ञा पुं० [सं०] धौंकनी या नल आदि के द्वारा हवा पहुँचाकर आग सुलगाना। धौंकना।

विधर†—क्रि० वि० दे० "उधर"। उ०—जैसे रथ के घोड़े चरण के आश्रय जिधर ले जाते हैं, विधर जाता है।—यमुनाशंकर।

विधरण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पकड़ना। रोकना। (२) दे० "विधृत"।

विधर्म्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपने धर्म्म को छोड़कर और किसी का धर्म्म। पराया धर्म्म। (२) अपने धर्म्म को छोड़ कर दूसरे का धर्म्म ग्रहण करना, जो पाँच प्रकार के अधर्म्मों में से एक कहा गया है।

वि० (१) जिसकी धर्म्मशास्त्र में निंदा की गई हो। (२) जिसमें गुण न हो। गुणहीन।

विधर्मिक—वि० [सं०] (१) जो धर्म्मविरुद्ध आचरण करता हो। (२) जो दूसरे धर्म्म का अनुयायी हो।

विधर्मी—संज्ञा पुं० [सं० विधर्म्मिन्] (१) वह जो अपने धर्म्म के विपरीत आचरण करता हो। धर्म्म-भ्रष्ट। (२) वह जो किसी दूसरे धर्म्म का अनुयायी हो।

विधवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति मर गया हो। पतिहीन स्त्री। राँड़। बेवा। उ०—(१) सुत बधू विधवा सों बोलि कै सुनायो लेहु धनपति गेह श्री गुपाल भरतार है।—नाभा। (२) ब्राह्मण विधवा नारि सुर गुरु अंश सुजावहीं। कहँ न वचन विचारि, परे सोई निरधास मँह।—विश्राम।

विशेष—स्मृतियों में विधवा स्त्रियों के लिये ब्रह्मचर्य्य तथा कठिन नियमों का पालन विधेय है। जैसे,—तांबूल और मद्यमांस आदि का त्याग। द्विजातियों में विधवा के लिये पुनर्विवाह का नियम नहीं है। केवल पराशर-संहिता में यह कहा गया है कि स्वामी के लापता होने, मरने, अथवा संन्यासी, क्लीव या पतित होने पर स्त्री दूसरा पति कर सकती है। पर और स्मृतियों के साथ अविरोध सिद्ध करने के लिये पंडित लोग "अन्य पति" शब्द का अर्थ "दूसरा पालनकर्त्ता" किया करते हैं।

विधवापन—संज्ञा पुं० [सं० विधवा + हिं० पन (प्रत्य०)] विधवा होने की अवस्था। वह अवस्था जिसमें पति के मरने के कारण स्त्री पतिहीन हो जाती है। रँड़ापा। वैधव्य। उ०—लिख्यो न विधि मिलिबे तिहि मोंही। प्राण जई विधवापन तोही।—रघुराज।

विधवाश्रम—संज्ञा पुं० [सं० विधवा + आश्रम] विधवाओं के रहने का स्थान। वह स्थान जहाँ विधवाओं के पालन पोषण तथा शिक्षा आदि का प्रबंध किया जाता है। उ०—इन बालिकाओं के लिये अध्यापक कर्वे ने पूना में "अनाथ विधवाश्रम" खोला है।—सरस्वती।

विधस—संज्ञा पुं० [सं०] मोम।

विधँसना⊛†—क्रि० स० [सं० विध्वंसन] (१) नष्ट करना। बरबाद करना। उ०—(क) औ जोबन मैमंत विधँसा। बिचला बिरह बिरह लै नासा।—जायसी। (ख) भएउ जूझ जस रावन रामा। सेज विधँस, बिरह संग्रामा।—जायसी। (२) अस्त व्यस्त करना। इधर उधर करना। गड़बड़ कर देना।

विधातव्य—वि० [सं०] (१) विधान के योग्य। विधेय। (२) करने योग्य। कर्त्तव्य।

विधाता—संज्ञा पुं० [सं० विधातृ] [स्त्री० विधात्री] (१) विधान करनेवाला। रचनेवाला। बनानेवाला। (२) उत्पन्न करनेवाला। तैयार करनेवाला। उ०—विद्या-वारिधि बुद्धि-विधाता।—तुलसी। (३) व्यवस्था करनेवाला। प्रबंध करनेवाला। इंतज़ाम करनेवाला। ठीक तरह से लगानेवाला। उ०—ए गोसाईं! तू ऐस विधाता। जावत जीव सबन्ह भुकदाता।—जायसी। (४) सृष्टि बनानेवाला। जगत् की रचना करनेवाला। सृष्टिकर्त्ता। ब्रह्मा या ईश्वर। उ०—कुछ संदेह नहीं कि विधाता ने मुझे अत्यंत सुकुमारी बनाया है।—सीताराम।

विधातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] विधान करनेवाली। विधायिका।

विधात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विधान करनेवाली। रचनेवाली। बनानेवाली। (२) व्यवस्था करनेवाली। प्रबंध करनेवाली। (३) पिप्पली। पीपल।

विधान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी कार्य्य का आयोजन। काम का होना या चलना। विन्यास। संपादन-क्रम। अनुष्ठान। जैसे,—जो कुछ करना है, उसी का विधान अब होना चाहिए।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) व्यवस्था। प्रबंध। इंतज़ाम। बंदोबस्त। जैसे,—पहले ही से ऐसा विधान करो कि कार्य्य आरंभ करने में देर न हो। (३) कार्य्य करने की रीति। विधि। प्रणाली। पद्धति। जैसे,—शास्त्रों में ऐसा विधान है। उ०—शुभ चित्र विविध विधान।—केशव। (४) रचना। निर्माण। (५) ढंग। तरकीब। उपाय। युक्ति। जैसे,—कोई ऐसा विधान निकालो कि कार्य्य निर्विघ्न हो जाय। (६) उतना धारा

जितना हाथी एक बार मुँह में डालता है। हाथी का ग्रास। (७) हानि पहुँचाने का दाँवपेच। शत्रुता का आचरण। (८) प्रेरण। भेजना। (९) अनुमति देने का कार्य्य। आज्ञा करना। (१०) धन संपत्ति। (११) पूजा। अर्चन। (१२) नाटक में वह स्थल जहाँ किसी वाक्य द्वारा एक साथ सुख और दुःख प्रकट किया जाता है। जैसे,—"बाल्यकाल ही में तुम्हारा ऐसा उत्साह देख मुझे हर्ष और विषाद दोनों होते हैं।"

विधानक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विधान। विधि। (२) विधानवेत्ता। विधि या रीति जाननेवाला।

विधानसप्तमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ला सप्तमी।

विधानसप्तमी व्रत-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य्य का एक व्रत जो माघ शुक्ला सप्तमी को आरंभ करके साल भर तक (पौष तक) किया जाता है। इसमें सूर्य्य का पूजन होता है।

विधानिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वृद्दसी।

विधानी-संज्ञा पुं० [सं० विधान+ई (प्रत्य०)] (१) विधान का जाननेवाला। (२) विधिपूर्वक कार्य्य करनेवाला।

विधायक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विधायिका] (१) विधान करनेवाला। कार्य्य करनेवाला। (२) बनानेवाला। रचनेवाला। उ०—हे विरंचि तैं विश्वविधायक।—रघुराज। (३) व्यवस्था करनेवाला। प्रबंध करनेवाला। प्रस्तुत करनेवाला। उ०—मंगल मूरति सिद्धि विधायक।—शंकरदिग्विजय।

विधारा-संज्ञा पुं० [सं० वृद्ध+दारु] एक प्रकार की लता जो दक्षिण भारत में बहुतायत से होती है। इसका झाड़ बहुत बड़ा और इसकी शाखाएँ बहुत घनी होती हैं। इसकी डालियों पर गुलाब के से काँटे होते हैं। पत्ते तीन अंगुल लंबे अण्डाकार और नोकदार होते हैं। डालियों के सिरे पर चमकदार पीले फूलों का गुच्छा होता है। वैद्यक में इसे गरम, मधुर, मेधाजनक, अग्नि-प्रदीपक, धातुवर्धक और बुद्धिदायक माना है। उपदंश, प्रमेह, क्षय, वातरक्त आदि में इसे ओषधि की भाँति व्यवहार में लाते हैं।

पर्य्या०—जीर्णदारु। वृद्धदारु। वृद्धदारुक। गर्भवृद्धि।

विधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कोई कार्य्य करने की रीति। कार्य्यक्रम। प्रणाली। ढंग। नियम। क़ायदा। जैसे,—पूजा की विधि, यज्ञ की विधि। (२) व्यवस्था। संगति। योजना। करीना। मेल या सिलसिला।

मुहा०—विधि बैठना=(१) परस्पर अनुकूलता होना। मेल बैठना। मेल खाना। व्यवहार निभना। जैसे,—हमारी उनकी विधि नहीं बैठेगी। (२) सब बातों का ठीक होना। इच्छानुकूल व्यवस्था होना। जैसे,—फिर क्या है, तुम्हारी विधि बैठ गई।

(३) किसी शास्त्र या ग्रंथ में लिखी हुई व्यवस्था। शास्त्रोक्त विधान।

मुहा०—कुंडली की विधि मिलना=कुंडली में लिखी बात का पूरा होना। फलित ज्योतिष द्वारा बताई हुई बात का ठीक घटना।

(४) किसी शास्त्र या धर्म-ग्रंथ में किया हुआ कर्त्तव्य-निर्देश। कर्म के अनुष्ठान की आज्ञा या अनुमति। शास्त्र में इस प्रकार का कथन कि मनुष्य यह काम करे।

विशेष—किसी काम को करने की आज्ञा को "विधि" और न करने की आज्ञा को 'निषेध' कहते हैं। पूर्वमीमांसा में नियोग का नाम विधि है। अर्थात् जो वाक्य किसी इष्ट फल की प्राप्ति का उपाय बताकर उसे करने की प्रवृत्ति उत्पन्न करे, वही विधि है। जैसे,—"स्वर्ग चाहनेवाला यज्ञ करे।" विधि दो प्रकार कही गई है—प्रधान-विधि और अंग-विधि। फल देनेवाली संपूर्ण क्रिया के आदेश करनेवाले वाक्य को "प्रधान विधि" कहते हैं। जैसे,—"जिसे पुत्र की कामना हो, वह पुत्रेष्टि यज्ञ करे"। प्रधान क्रिया के अंतर्गत होनेवाली छोटी छोटी क्रियाओं के निर्देश को 'अंग-विधि' कहते हैं। जैसे,—"चावल से यज्ञ करे" "दधि का हवन करे" इत्यादि।

यौ०—विधि निषेध। उ०—विधि निषेधमय कलिमल-हरनी।—तुलसी।

(५) व्याकरण में क्रिया का वह रूप जिसके द्वारा किसी को कोई काम करने का आदेश किया जाता है। जैसे,—यह काम करो या काम करना चाहिए। (६) साहित्य में एक अर्थालंकार जिसमें किसी सिद्ध विषय का फिर से विधान किया जाता है। जैसे,—वर्षा काल के ही मेघ मेघ हैं। (७) आचार-व्यवहार। चालढाल।

यौ०—गतिविधि=चेष्टा और कार्रवाई। जैसे,—उसकी गतिविधि पर ध्यान रखना।

(८) भाँति। प्रकार। क़िस्म। तरह। उ०—एहि विधि राम सबहि समुझावा।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं०] सृष्टि का विधान करनेवाला। ब्रह्मा। उ०—विधि करतब सब उलटे अहहीं।—तुलसी।

विधिज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विधि को जाननेवाला। शास्त्रोक्त विधान को जाननेवाला। (२) रीति जाननेवाला।

विधिदर्शी-संज्ञा पुं० [सं० विधिदर्शिन्] यज्ञ में यह देखने के लिये नियुक्त पुरुष कि होता, आचार्य्य आदि ठीक ठीक विधि के अनुकूल कर्म कर रहे हैं या नहीं।

विधिना ‡-संज्ञा पुं० [सं० विधि+ना (प्रत्य०)] विधि। ब्रह्मा।

विधिपाट-संज्ञा पुं० [सं०] मृदंग के चार वर्णों में से एक वर्ण। चारो वर्ण ये हैं—पाट, विधिपाट, कूटपाट और खंडपाट।

विधिपुत्र-संज्ञा पुं० [सं० विधि+पुत्र] ब्रह्मा के पुत्र, नारद।

विधिपुर-संज्ञा पुं० [सं० विधि + पुर] ब्रह्मा का लोक, ब्रह्म-लोक। उ०—स्वर्ग लोक महँ बचन न देखी। विधिपुर गयो त्राण निज लेखी।—रघुराज।

विधिबोधित-वि० [सं०] शास्त्र विधि द्वारा बताया हुआ। शास्त्रसम्मत।

विधियज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ जिसके करने की विधि हो। जैसे,—दर्शपौर्णमास।

विधिरानी-संज्ञा स्त्री० [सं० विधि + हिं० रानी (हिं०)] ब्रह्मा की पत्नी, सरस्वती। उ०—बंदौं वाणी बीन कर विधि-रानी विख्यात।—रघुराज।

विधिलोक-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मलोक। सत्यलोक।

विधिवत्-क्रि० वि० [सं०] (१) विधिपूर्वक। विधि से। पद्धति के अनुसार। कायदे के मुताबिक़। (२) जैसा चाहिए। उचित रूप से। यथा योग्य।

विधिवधू-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्रह्मा की पत्नी, सरस्वती।

विधिवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा की सवारी, हंस।

विधिसेध-संज्ञा पुं० [सं०] विधि और निषेध।

विधुंतुद-संज्ञा पुं० [सं० विधु + तुद] चंद्रमा को दुःख देनेवाला, राहु। उ०—ज्ञानराकेस-ग्रासन विधुंतुद दलन काम-करि मत्त हरि दूषणारी।—तुलसी।

विधु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) वायु। (३) कपूर। (४) ब्रह्मा। (५) विष्णु। (६) एक राक्षस का नाम। (७) आयुध। (८) जल-स्नान। (९) पाप क्षालन। पाप छुड़ाना।

विधुकांत-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत का एक ताल।

विधुदार-संज्ञा पुं० [सं० विधु + दारा] चंद्रमा की स्त्री। रोहिणी। उ०—तारा किधौं विधुदार किधौं धनसार सी पावक है परिरंभी।—मन्नालाल।

विधुपंजर-संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग। खाँड़ा।

विधुप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की स्त्री, रोहिणी। (२) कुमुदिनी।

विधुबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] कुमुद का फूल। उ०—विधुबंधुर मुख मा यही वारिज नैन प्रभाति।—रामसहाय।

विधुबैनी-संज्ञा स्त्री० [सं० विधु + वदन, प्रा० बयन] चंद्रमुखी। सुंदरी स्त्री। उ०—संग लिए विधुबैनी बधू रति हू जेहि रंचक रूप दियो है।—तुलसी।

विधुर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विधुरा] (१) दुःखी। (२) घबराया हुआ। डरा हुआ। (४) विकल। व्याकुल। जैसे,—विरह-विधुर। (५) असमर्थ। अशक्त। (६) परित्यक्त। (७) विमूढ़।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) कष्ट। दुःख। (२) वियोग। जुदाई। (३) अलग होने की क्रिया या भाव। (४) कैवल्य। मोक्ष। (५) शत्रु।

विधुरा-वि० स्त्री० [सं०] (१) कातर। व्याकुल। पीड़ित। (२) कानों के पीछे की एक स्नायु-ग्रंथि जिसके पीड़ित या खराब होने से प्राणी बहरा हो जाता है।

विधुवदनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा के समान मुखवाली स्त्री। सुंदरी स्त्री। उ०—विधुवदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बरनारी।—तुलसी।

विधून-वि० [सं०] (१) कंपित। काँपता हुआ। (२) हिलता हुआ। डोलता हुआ। (३) त्यागा हुआ। छोड़ाहुआ। त्यक्त। (४) दूर किया हुआ। हटाया हुआ। (५) निकाला हुआ। बाहर किया हुआ।

विधूनन-पुं० पुं० [सं०] कंपन। काँपना।

विधूम-वि० [सं०] धूम रहित। बिना धूएँ का। उ०—जारि बारि कै विधूम वारिधि बुताइ लूम।—तुलसी।

विधूम्र-वि० [सं०] धूमिल या मटमैले रंग का। धूसर वर्ण।

विधूयन-संज्ञा पुं० [सं०] कंपन। काँपना।

विधेय-वि० [सं०] (१) विधान के योग्य। जिसका विधान या अनुष्ठान उचित हो। जिसका करना उचित हो। कर्त्तव्य। (२) जिसका विधान हो या होनेवाला हो। जो किया जाय या किया जानेवाला हो। (३) जो नियम या विधि द्वारा जाना जाय। जिसके करने का नियम या विधि हो। (४) वचन या आज्ञा के वशीभूत। अधीन। (५) वह (शब्द या वाक्य) जिसके द्वारा किसी के संबंध में कुछ कहा जाय। जैसे,—"गोपाल सज्जन है" इस वाक्य में "सज्जन है" विधेय है, क्योंकि वह गोपाल के संबंध में कुछ विधान करता है, अर्थात् उसकी कोई विशेषता बताता है।

विशेष—न्याय और व्याकरण में वाक्य के दो मुख्य भाग माने जाते हैं—उद्देश्य और विधेय। जिसके संबंध में कुछ कहा जाता है (अर्थात् कर्त्ता), वह "उद्देश्य" कहलाता है; और जो कुछ कहा जाता है, वह "विधेय" कहलाता है।

विधेयता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विधान की योग्यता या औचित्य। (२) अधीनता।

विधेयत्व-संज्ञा पुं० [सं०] विधेयता।

विधेयाविमर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में एक वाक्य-दोष जो विधेय अंश को अप्रधान स्थान प्राप्त होने पर होता है। जो बात प्रधानतः कहनी है, उसका वाक्य-रचना के बीच दबा रहना।

विशेष—प्रत्येक वाक्य में विधेय की प्रधानता के साथ निर्देश होना चाहिए। ऐसा न होना दोष है। "विधेय" शब्द के समास के बीच पड़ जाने से या विशेषण रूप से आ जाने पर प्रायः यह दोष होता है। जैसे,—किसी वीर ने खिन्न होकर कहा—"मेरी इन व्यर्थ फूली हुई बाँहों से क्या"। इस वाक्य में कहनेवाले का अभिप्राय यों

यह है कि मेरी आँखें व्यर्थ फूली हैं; पर "फूली हैं" के विशेषण रूप में आ जाने से विधेय की प्रधानता नहीं स्पष्ट होती। दूसरा उदाहरण—"मुझ रामानुज के सामने राक्षस क्या ठहरेंगे?" यहाँ कहना चाहिए था कि—मैं राम का अनुज हूँ" तब राम के संबंध से लक्ष्मण की विशेषता प्रकट होती।

विध्य-वि० [सं०] (१) विंधने योग्य। छिदने योग्य। (२) जिसे बेधना हो। जो छेदा जानेवाला हो।

विध्याभास-संज्ञा पुं० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें घोर अनिष्ट की संभावना दिखाते हुए अनिच्छापूर्वक किसी बात की अनुमति दी जाती है। जैसे,—विदेश जाते हुए नायक के प्रति नायिका का यह कथन "जाते हो तो जाओ! जहाँ जाते हो, मैं भी वहाँ जन्म लेकर पहुँचूँगी"।

विध्वंस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनाश। नाश। बरबादी। (२) घृणा। (३) अनादर। (४) वैर। (५) वैमनस्य।

विध्वंसक-संज्ञा पुं० [सं०] नाश करनेवाला।

विध्वंसन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विध्वंसित, विध्वस्त] नाश करना। बरबाद करना।

विध्वंसित-वि० [सं०] नष्ट किया हुआ। बरबाद किया हुआ।

विध्वंसी-संज्ञा पुं० [सं० विध्वंसिन्] [स्त्री० विध्वंसिनी] नाशकारी। नाश करनेवाला। बरबाद करनेवाला।

विध्वस्त-वि० [सं०] नष्ट किया हुआ। बरबाद किया हुआ।

विन†-सर्व० [हिं० वा = उन] प्रथम पुरुष बहुवचन सर्वनाम का वह रूप जो उसे कारक चिह्न लगने के पहले प्राप्त होता है। जैसे,—विन ने, विनको इत्यादि।

अव्य० दे० "बिना"।

विनत-वि० [सं०] (१) नीचे की ओर प्रवृत्त। झुका हुआ। (२) टेढ़ा पड़ा हुआ। वक्र। (३) संकुचित। सिकुड़ा हुआ। (४) विनीत। नम्र। (५) शिष्ट। शिक्षित।

संज्ञा पुं० (१) सुग्रीव की सेना का एक बंदर। (२) शिव। महादेव।

विनतक-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

विनतड़ी*†-संज्ञा स्त्री० दे० "विनति"। उ०—स्वामी तुमों ही संग न मेल्हीं वीनतड़ी कहेस।—दादू।

विनता-वि० स्त्री० [सं०] कुबड़ी या खंज। (स्त्री)

संज्ञा स्त्री० (१) दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो कश्यप की स्त्री और गरुड़ की माता थी। (२) एक प्रकार का भयानक फोड़ा जो प्रमेह या बहुमूत्र के रोगियों को होता है।

विशेष—जिस स्थान पर यह फोड़ा होता है, वह स्थान मुरदा हो जाने के कारण नीला पड़ जाता है। सुश्रुत आदि प्राचीन ग्रंथों में प्रमेह के अंतर्गत इसकी चिकित्सा लिखी है। यह प्रायः घातक होता है। इसमें अंग बहुत तेज़ी के साथ सड़ता चला जाता है। यदि बढ़ने के पहले ही वह स्थान काटकर अलग कर दिया जाय, तो रोगी बच सकता है। (३) एक राक्षसी जो व्याधि लाती है। (महाभारत) (४) एक राक्षसी जिसे रावण ने सीता को समझाने के लिये नियुक्त किया था।

विनतासूनु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अरुण। (२) गरुड़।

विनति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) झुकाव। (२) नम्रता। विनय। शिष्टता। सुशीलता। (३) अनुनय। प्रार्थना। विनती। (४) निवारण। रोक। (५) दमन। शासन। दंड। (६) विनियोग।

विनती-संज्ञा स्त्री० दे० "विनति"।

विनद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़। बिल्वाक वृक्ष।

विनमन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विनत] (१) नम्र करना। झुकाना। (२) लचाना।

विनम्र-वि० [सं०] (१) झुका हुआ। (२) विनीत। सुशील।

संज्ञा पुं० तगर का फूल।

विनय-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) व्यवहार में दीनता या अधीनता का भाव। नम्रता। प्रणति। आजिज़ी। (२) शिक्षा। (३) प्रार्थना। विनती। अनुनय। (४) शासन। तंबीह। (स्मृति) (५) नीति। उ०—नमत सबै करि विनय, विनय मत सबै बखानत।—गोपाल।

संज्ञा पुं० (१) वणिक्। बनिया। (२) बक्ता। बनियारा। (३) जितेंद्रिय। संयमी।

विनयधर-संज्ञा पुं० [सं०] पुरोहित।

विनय-पिटक-संज्ञा पुं० [सं०] आदि बौद्ध शास्त्रों में से एक।

विशेष—आदि बौद्ध शास्त्र जो पाली भाषा में हैं, तीन भागों में विभक्त हैं—विनय-पिटक, सूत्र-पिटक और अभिधर्म-पिटक। ये तीनों "त्रिपिटक" नाम से प्रसिद्ध हैं। बुद्धदेव ने अपनी शिष्यमंडली को भिक्षुधर्म के जो उपदेश दिए थे, वही विनय-पिटक में संगृहीत हैं। इसके संकलन के संबंध में यह कथा है कि बुद्धभगवान् तथा सारिपुत्र, मौद्गलायन आदि प्रधान प्रधान शिष्यों के निर्वाण लाभ करने पर बौद्ध शास्त्र के लुप्त होने का भय हुआ। इससे महाकश्यप ने अजातशत्रु के राजत्व काल में राजगृह के पास वैभार पर्वत की सप्तपर्णी नाम की गुफा में पाँच सौ स्थविरों को आमंत्रित करके एक बड़ी सभा की, जिसमें उपालि ने बुद्ध द्वारा उपदिष्ट "विनय" का प्रकाश किया। इसके पीछे एक बार फिर गड़बड़ उपस्थित होने पर वैशाली के बलिकाराम में सभा हुई जिसमें "विनय" का फिर संग्रह हुआ। इस प्रकार कई संकलनों के उपरांत अशोक के समय में 'विनय' पूर्ण रूप से संकलित हुआ।

विनयवान्-वि० [सं० विनयवत्] [स्त्री० विनयवती] जिसमें नम्रता हो। शिष्ट।

विनयशील-वि० [सं०] विनययुक्त । नम्र । सुशील । शिष्ट ।

विनया-संज्ञा स्त्री० [सं०] वाट्यालक । बरियारा ।

विनयी-वि० [सं० विनयिन्] विनययुक्त । नम्र ।

विनवन-क्रि० अ० , क्रि० स० दे० "विनवना" ।

विनशन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विनष्ट, विनश्वर] नष्ट होना । नाश । बरबादी ।

विनशना-क्रि० अ० दे० "विनसना" ।

विनशाना-क्रि० स० दे० "विनसाना" ।

विनश्वर-वि० [सं०] सब दिन या बहुत दिन न रहनेवाला । नष्ट होनेवाला । ध्वंसशील । अचिरस्थायी । अनित्य । जैसे,—शरीर विनश्वर है ।

विनश्वरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] अनित्यता । अचिरस्थायित्व ।

विनष्ट-वि० [सं०] (१) नाश को प्राप्त । जो बरबाद हो गया हो । जो न रह गया हो । जिसका अस्तित्व मिट गया हो । ध्वस्त । (२) मृत । मरा हुआ । (३) जो विकृत या खराब हो गया हो । जो व्यवहार के योग्य न रह गया हो । जो निकम्मा हो गया हो । बिगड़ा हुआ । (४) जिसका आचरण बिगड़ गया हो । भ्रष्ट । पतित ।

क्रि० प्र०—करना । -होना ।

विनष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाश । (२) लोप । (३) पतन ।

विनस-वि० [सं०] जिसे नासिका न हो । बिना नाक का । नकटा ।

विनसना⊛-क्रि० अ० [सं० विनशन] नष्ट होना । न रहना । लुप्त होना । उ०—उपजै बिनसै ज्ञान जिमि पाइ सुसंग कुसंग ।—तुलसी ।

विनसाना⊛-क्रि० स० [हिं० विनसना का स० रूप] (१) नष्ट करना । (२) बिगाड़ना ।

क्रि० अ० दे० "विनसना" ।

विना-अव्य० [सं०] (१) अभाव में । न रहने की अवस्था में । बगैर । जैसे,—तुम्हारे बिना यह काम न बनेगा । (२) छोड़कर । अतिरिक्त । सिवा । जैसे,—तुम्हारे बिना और कौन यह काम कर सकता है ?

विनाड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक घड़ी का साठवाँ भाग । पल ।

विनती ⊛‡-संज्ञा स्त्री० [सं० विनती] विनती । विनय । उ०—ए गोसाईं, सुनु मोरि विनती ।—जायसी ।

विनाथ-वि० [सं०] जिसका कोई रक्षक न हो । अनाथ । उ०—नाथ नाथ विनाथ नाथ अनाथ नाथ सुसिद्ध ।—केशव ।

विनाम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) झुकाव । टेढ़ापन । (२) किसी पीड़ा द्वारा शरीर का झुक जाना । (भावप्रकाश)

विनायक-संज्ञा पुं० [सं०] गणों के नायक, गणेश । (२) गरुड़ । (३) विघ्न । बाधा । उ०—लसत विनायक-केतु विनायक नसत निरखि रथ ।—गोपाल । (४) गुरु । (५) देवी का एक स्थान । (६) बुद्धदेव ।

विनायक-केतु-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ध्वज । श्रीकृष्ण । उ०—लसत विनायक-केतु विनायक नसत निरखि रथ ।—गोपाल ।

विनायक चतुर्थी संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ महीने की शुक्ला चतुर्थी । माघ सुदी चौथ । गणेशचतुर्थी ।

विशेष—इस दिन गणेश का पूजन और व्रत होता है ।

विनाश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अभाव हो जाना । अस्तित्व का न रह जाना । न रहना । नाश । मिटना । ध्वंस । बरबादी । (२) लोप । अदर्शन । (३) बिगड़ जाने का भाव । खराब हो जाना । निकम्मा हो जाना । चौपट होना । खराबी । (४) बुरी दशा । तबाही । (५) हानि । नुकसान ।

विनाशक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनाश करने वाला । क्षय करनेवाला । (२) बिगाड़नेवाला । खराब करनेवाला । घातक ।

विनाशन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विनाशी, विनाश्य] (१) नष्ट करना । ध्वस्त करना । बरबाद करना । (२) संहार करना । वध करना । उ०—दससीस विनाशन बीस भुजा—तुलसी । (३) खराब करना । बिगाड़ना । (४) एक असुर जो काल का पुत्र था ।

विनाशित-वि० [सं०] (१) नष्ट किया हुआ । ध्वस्त किया हुआ । (२) मारा हुआ । (३) बिगाड़ा हुआ । खराब किया हुआ ।

विनाशी-वि० [सं० विनाशिन्] [स्त्री० विनाशिनी] (१) नष्ट करनेवाला । ध्वस्त करनेवाला । बरबाद करनेवाला । (२) वध करनेवाला । मारनेवाला । (३) बिगाड़नेवाला । खराब करनेवाला ।

विनाश्य-वि० [सं०] विनाश योग्य ।

विनास⊛‡-संज्ञा पुं० दे० "विनाश" ।

विनास-वि० [सं०] बिना नाक का । नकटा ।

⊛संज्ञा पुं० दे० "विनाशक" ।

विनासन⊛-संज्ञा पुं० दे० "विनाशन" ।

विनासना⊛-क्रि० स० [सं० विनाशन] (१) नष्ट करना । ध्वस्त करना । बरबाद करना । न रहने देना । (२) संहार करना । वध करना । (३) खराब करना । बिगाड़ना ।

क्रि० अ० नष्ट होना । बरबाद होना ।

विनिंदक-संज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत निंदा करनेवाला ।

विनिंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिशय निंदा । बहुत बुराई ।

विनिंदित-वि० [सं०] जिसकी बहुत निंदा हुई हो । लांछित ।

विनिःसृत-वि० [सं०] निकला हुआ । जो बाहर हुआ हो ।

विनिगमक-वि० [सं०] दो पक्षों में से किसी एक पक्ष को सिद्ध करनेवाला ।

विनिगमना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दो परस्पर विरुद्ध पक्षों में से किसी एक पक्ष का युक्ति और प्रमाण द्वारा निश्चय । दो बातों में से किसी एक बात के ठीक होने का निर्णय जो विचार और तर्क द्वारा हो । (वैशेषिक) (२) सिद्धांत । नतीजा ।

विनिग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नियम । बंधेज । प्रतिबंध । (२) अपनी किसी वृत्ति को दबाकर अधीन करना । संयम । (३) अवरोध । रुकावट । (४) व्याघात । बाधा ।

विनिघ्न-वि० [सं०] (१) नष्ट । बरबाद । (२) गुणित । गुणा किया हुआ ।

विनिद्र-संज्ञा पुं० [सं०] अस्त्र का एक संहार जिससे अस्त्र द्वारा निद्रित या मूर्च्छित व्यक्ति की नींद या बेहोशी दूर होती है । वि० जिसकी नींद खुल गई हो ।

विनिपात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनाश । ध्वंस । बरबादी । (२) बध । हत्या । (३) अवमान । अनादर । नज़र से गिरना ।

विनिपातक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनाशकारी । (२) संहार-कर्त्ता । (३) अपमान करनेवाला ।

विनिमय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वस्तु लेकर बदले में दूसरी वस्तु देने का व्यवहार । अदल बदल । परिवर्त्तन । परिदान । (२) गिरवी । बंधक ।

विनियुक्त-वि० [सं०] (१) । किसी काम में लगाया हुआ । नियोजित । (२) अर्पित । (३) प्रेरित ।

विनियोग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी फल के उद्देश्य से किसी वस्तु का उपयोग । किसी विषय में लगाना । प्रयोग । (२) किसी वैदिक कृत्य में मंत्र का प्रयोग । (३) प्रेषण । भेजना । (४) प्रवेश । घुसना ।

विनियोजित-वि० [सं०] (१) प्रयुक्त । नियुक्त । लगाया हुआ । (२) अर्पित । (३) प्रेरित ।

विनिर्गत-वि० [सं०] (१) निकला हुआ । जो बाहर हुआ हो । बहिर्गत । (२) गया हुआ । जो चला गया हो । निष्क्रांत । (३) बीता हुआ । अतीत ।

विनिर्गम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाहर होना । निकलना । (२) प्रस्थान । चला जाना ।

विनिर्भोग-संज्ञा पुं० [सं०] एक कल्प का नाम ।

विनिर्माण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० *विनिर्मित*] विशेष रूप से निर्माण । अच्छी तरह बनना ।

विनिर्मित-वि० [सं०] विशेष रूप से निर्मित या बना हुआ । जैसे,—प्रस्तर विनिर्मित भवन ।

विनिर्मुक्त-वि० [सं०] (१) बाहर निकला हुआ । बहिर्गत । (२) जो खुला हो या ढँका न हो । अनाच्छन्न । (३) छूटा हुआ । बंधन से रहित । ।

विनिर्मोक-वि० [सं०] निर्मोक रहित । बिना पहनावे का । वस्त्र रहित । परिधान शून्य ।

विनिवर्त्तन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० *विनिवर्तित, विनिवर्ती*] लौटना ।

विनिवेश-संज्ञा पुं० [सं०] प्रवेश । घुसना ।

विनिवेशन-वि० [सं०] [वि० *विनिवेशित, विनिवेशी*] (१) प्रवेश । घुसना । (२) अधिष्ठान । स्थिति । वास । रहायश ।

विनिवेशित-वि० [सं०] (१) प्रविष्ट । घुसा हुआ । (२) ठहरा या टिका हुआ । अधिष्ठित । स्थापित । (३) बसा हुआ ।

विनिवेशी-वि० [सं० विनिवेशिन्] [स्त्री० विनिवेशिनी] (१) प्रवेश करनेवाला । घुसनेवाला । (२) रहनेवाला । बसनेवाला ।

विनिहत-वि० [सं०] (१) चोट खाया हुआ । आहत । (२) विनष्ट । ध्वस्त । बरबाद । (३) मरा हुआ । मृत । (४) लुप्त ।

विनीत-वि० [सं०] (१) जिसमें उत्तम शिक्षा का संस्कार और शिष्टता हो । विनययुक्त । सुशील । (२) व्यवहार में अधीनता प्रकट करनेवाला । शिष्ट । नम्र । (३) जितेंद्रिय । (४) संयमी । (५) ग्रहण किया हुआ । (६) सिखाया हुआ । (७) दूर किया हुआ । हटाया हुआ । (८) ले गया हुआ । (९) जिसको तंबीह की गई हो । दंडित । शासित । (१०) नीति-पूर्वक व्यवहार करनेवाला । धार्मिक । (११) साफ़ सुथरा । (कपड़ा आदि)

संज्ञा पुं० (१) वणिक् । बनिया । साहु । (२) निकाला हुआ घोड़ा । (३) पुलस्त्य के एक पुत्र का नाम । (४) दमनक । दौने का पौधा ।

विनीतता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विनीत होने का भाव । नम्रता ।

विनीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विनय । सुशीलता । (२) सद्व्यवहार । (३) सम्मान ।

विनु‡-अव्य० दे० "बिना" ।

विनुक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रशंसा । (२) एक एकाह कृत्य का नाम । (आश्वलायन श्रौत सूत्र)

विनूठा‡-वि० [हिं० अनूठा] अनूठा । सुंदर । बढ़िया ।

विनोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक अलंकार जिसमें किसी वस्तु की हीनता या श्रेष्ठता वर्णन की जाती है । उ०—(क) जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसइ नाथ पुरुष बिनु नारी ।—तुलसी । (ख) कैसे नीके लगत ये बिनु सँकोच के बैन ।—बिहारी ।

विनोद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कौतूहल । तमाशा । मनोरंजक व्यापार । (२) क्रीड़ा । खेल कूद । लीला । (३) प्रमोद । हँसी दिल्लगी । परिहास । (४) कामशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का आलिंगन । (५) एक प्रकार का प्रासाद । प्रमोद-गृह । (६) हर्ष । आनंद । प्रसन्नता ।

विनोदन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विनोदित, विनोदी] (१) ऐसे व्यापार करना जिनका उद्देश्य केवल मनोरंजन हो । आमोद प्रमोद करना । क्रीड़ा करना । खेल कूद करना । (२) हँसी दिल्लगी या हास विलास करना । (३) आनंद करना ।

विनोदित-वि० [सं०] (१) हर्षित । प्रसन्न । (२) कुतूहलयुक्त ।

विनोदी-वि० [सं० विनोदिन्] [स्त्री० विनोदिनी] (१) कुतूहल करनेवाला। आमोद प्रमोद करनेवाला। क्रीड़ा करनेवाला। (२) खेल कूद करनेवाला। चुहलबाज़। (३) जिसका स्वभाव आमोद प्रमोद करने का हो। आनंदी। (४) क्रीड़ाशील। खेलकूद या हँसी ठट्ठे में रहनेवाला। उ०—स्याम विनोदी रे मधुबनिया।—सूर।

विन्यस्त-वि० [सं०] (१) रखा हुआ। स्थापित। (२) यथा स्थान बैठाया हुआ। जड़ा हुआ। (३) करीने से लगा हुआ। (४) डाला हुआ। क्षिप्त।

विन्याक-संज्ञा पुं० [सं०] धरियारा नाम का पौधा।

विन्यास-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विन्यस्त] (१) स्थापन। रखना। धरना। (२) यथा स्थान स्थापन। ठीक जगह पर करीने से रखना या बैठाना। सजाना। रचना। (३) जड़ना। (४) किसी स्थान पर डालना।

विपंची-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का बाजा जिसमें तार लगे रहते हैं। एक प्रकार की वीणा। उ०—(क) नवल वसंत सुनि सुनिये विपंची नाद पंचम सुरनि ठानी ओठनि अमेठिये।—देव। (ख) तंत्री वीणा वल्लकी अरु विपंची आहि।—नंददास। (२) केलि। क्रीड़ा। खेल।

विपक्व-वि० [सं०] (१) खूब पका हुआ। (२) पूर्ण अवस्था को प्राप्त। (३) जो पका न हो। कच्चा।

विपक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरुद्ध पक्ष। किसी बात के विरुद्ध दूसरी स्थिति। (२) शत्रु या विरोधी का पार्श्व। (३) विरोध करनेवाला दल। शत्रु पक्ष। विरोधी। प्रतिद्वंद्वी। दूसरा फरीक़। जैसे,—विपक्ष में जाना। (४) प्रतिवादी या शत्रु। विरुद्ध दल का मनुष्य। (५) किसी बात के विरुद्ध की स्थापना। विरोध। खंडन। जैसे,—इसके विपक्ष में तुम्हें क्या कहना है? (६) व्याकरण में किसी नियम के कुछ विरुद्ध व्यवस्था। बाधक नियम। अपवाद। (७) न्याय या तर्क शास्त्र में वह पक्ष जिसमें साध्य का अभाव हो।

वि० (१) विरुद्ध। खिलाफ़। प्रतिकूल। (२) उलटा। विपरीत। (३) जिसके पक्ष में कोई न हो। जिसका कोई तरफदार न हो। (४) बिना पर या डैने का। पक्षहीन।

विपक्षता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरुद्ध पक्ष का अवलंबन। (२) विपक्ष होने की क्रिया या भाव। खिलाफ़ होना।

विपक्षी-संज्ञा पुं० [सं० विपक्षिन्] (१) विरुद्ध पक्ष का। दूसरी तरफ का। (२) शत्रु। प्रतिद्वंद्वी। प्रतिवादी। फ़रीक़ सानी। (३) बिना पक्ष का। बिना पंख या डैने का। उ०—गिरिहै विपक्ष बनाइ।—गुमान।

विपत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कष्ट, दुःख या शोक की प्राप्ति। भारी रंज या तकलीफ का आ पड़ना। आफ़त। (२) क्लेश या शोक की स्थिति। रंज या तकलीफ़ की हालत। संकट की अवस्था। बुरे दिन। जैसे,—विपत्ति में कोई साथी नहीं होता।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।

मुहा०—विपत्ति उठाना = संकट या कष्ट सहना। रंज या तकलीफ बरदाश्त करना। विपत्ति काटना = संकट या कष्ट के दिन बिताना। रंज या तकलीफ में रहना। विपत्ति झेलना = कष्ट या शोक सहना। (किसी पर) विपत्ति डालना = (किसी को) शोक या दुःख पहुँचाना। किसी को रंज या तकलीफ में डालना। (किसी पर) विपत्ति ढहना = सहसा कोई दुःख या शोक उपस्थित होना। एक बारगी आफ़त आना। विपत्ति में डालना = संकट या दुःख की अवस्था में करना। विपत्ति में पड़ना = शोक, दुःख या संकट की दशा को प्राप्त होना। विपत्ति भुगतना या भोगना = शोक, दुःख या संकट सहना।

(३) कठिनाई। झंझट। बखेड़ा।

मुहा०—विपत्ति मोल लेना = व्यर्थ अपने ऊपर झंझट लेना। बखेड़े में पड़ना। विपत्ति सिर पर लेना = व्यर्थ झंझट में पड़ना। दिक़्क़त में पड़ना।

विपथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुमार्ग। बुरा रास्ता। (२) अगल का रास्ता। (३) बुरी चाल। मंद आचरण। (४) एक प्रकार का रथ।

विपद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] विपत्ति। आफ़त। संकट।

विपदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] विपत्ति। आफ़त। दुःख, शोक या संकट।

विपन्न-वि० [सं०] (१) जिस पर विपत्ति पड़ी हो। विपत्ति में पड़ा हुआ। मुसीबत का मारा। (२) दुःखी। आर्त। (३) कठिनाई या झंझट में पड़ा हुआ। (४) भूला हुआ। भ्रम में पड़ा हुआ। (५) मृत।

विपरीत-वि० [सं०] (१) जो मेल में या अनुरूप न हो। जो विपर्यय के रूप में हो। उलटा। विरुद्ध। खिलाफ़। (२) किसी की इच्छा या हित के विरुद्ध। प्रतिकूल। जैसे,—विपरीत आचरण। (३) अनिष्ट साधन में तत्पर। रुष्ट। जैसे,—दैव या विधि का विपरीत होना। (४) हितसाधन के अनुपयुक्त। दुःखद। जैसे,—विपरीत समय। उ०—आइ विपरीत समय सब ही विपरीत है।

संज्ञा पुं० (१) केशव के अनुसार एक अर्थालंकार जिसमें कार्य्य की सिद्धि में स्वयं साधक का बाधक होना दिखाया जाता है। उ०—रावो जू सों कहा कहौं दूतिन की भाँति सीख सौंपिनी सहित विष रहित फणिन की। क्यों न परै बीच, बीच आँगियौ न सहि सकै, बीच परी अंगना अनेक आँगननि की। (यहाँ दूती को साधक होना चाहिए था, पर वह बाधक हुई।) (२) सोलह प्रकार के रति बंधों में से दसवाँ रतिबंध।

विपरीतता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विपरीत होने का भाव ।

विपरीता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुश्चरित्रा स्त्री ।

विपरीतार्थ-वि० [सं०] जिसका अर्थ उलटा हो ।

विपरीति-संज्ञा स्त्री० दे० "विपरीत" ।

विपरीतोपमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] केशव के अनुसार एक अलंकार जिसमें किसी भाग्यवान व्यक्ति की हीनता वर्णन की जाय और वह अति हीन दशा में दिखाया जाय । यथा—देखिय मंडित दंडन सों, भुजदंड दोऊ असि दंड विहीनो । राजनि श्री रघुनाथ के राज कुमंडल छाँड़ि कमंडल लीनो ।——केशव ।

विपर्णक-वि० [सं०] पर्ण रहित । बिना पत्तों [redacted] ।
संज्ञा पुं० पलाश का पेड़ । ढेसू ।

विपर्य्यय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वस्तु का दूसरी के स्थान पर और दूसरी का पहली के स्थान पर होना । उलट पलट । इधर का उधर । जैसे,—वर्ण-विपर्य्यय । (२) ऐसा परिवर्तन जिसमें दो वस्तुओं की स्थिति पूर्व स्थित से विरुद्ध हो जाय । जैसी चाहिए, उससे विरुद्ध स्थिति । और का और । व्यतिक्रम । (३) मिथ्या ज्ञान । और का और समझना ।

विशेष—योग-दर्शन के अनुसार 'विपर्य्यय' चित्त की पाँच प्रकार की वृत्तियों (प्रमाण, विकल्प आदि) में से एक है । जैसे, रस्सी को साँप, या सीप को चाँदी समझना । यथार्थ ज्ञान द्वारा इसका निराकरण होता है । इस 'विपर्य्यय' या विपरीत ज्ञान के पाँच अवयव कहे गए हैं—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश । इन्हीं को सांख्य में क्रमशः तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अंधतामिस्र कहते हैं ।

(४) भ्रम । भूल । ग़लती । समझ का फेर । (५) गड़बड़ी । अव्यवस्था । (६) नाश ।

विपर्य्यस्त-वि० [सं०] (१) जिसका विपर्य्यय हुआ हो । जो उलट पलट गया हो । जो इधर का उधर हो गया हो । (२) अस्त व्यस्त । गड़बड़ । चौपट ।

विपर्य्यास-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विपर्य्यस्त] (१) विपर्य्यय । उलट पलट । इधर का उधर । व्यतिक्रम । (२) पूर्व से विरुद्ध स्थिति । एक वस्तु का दूसरी के स्थान पर होना । (३) जैसी चाहिए, उससे विरुद्ध स्थिति । और का और । (४) मिथ्या ज्ञान । और का और समझना ।

विशेष—न्याय में भ्रमात्मक बुद्धि का नाम विपर्य्यास है । जैसे,—रस्सी को साँप समझना ।

विपल-संज्ञा पुं० [सं०] समय का एक अत्यंत छोटा विभाग जो एक पल का साठवाँ भाग होता है ।

विपवन-वि० [सं०] [स्त्री० विपवनी, विपव्य] विशेष रूप से पवित्र करनेवाला ।
संज्ञा पुं० विशुद्ध पवन । साफ़ हवा ।

विपशी-संज्ञा पुं० [सं० विपशिन्] एक बुद्ध का नाम ।

विपश्यन-संज्ञा पुं० [सं०] प्रकृत ज्ञान । यथार्थ बोध । (बौद्ध)

विपश्चित्-वि० [सं०] पंडित । बुद्धिमान् । सूक्ष्मदर्शी । उ०—तेहि कारण शिव गंग तेहि गहैं विपश्चित लोक । यहि में मज्जन किये ते मिटैं महा अघ शोक ।—शंकर दिग्विजय ।

विपश्यी-संज्ञा पुं० [सं० विपश्यिन्] एक बुद्ध का नाम ।

विपस्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेधा । बुद्धि । (२) ज्ञान । समझ ।

विपांडुरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] महामेदा ।

विपाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) परिपक्व होना । पचन । पकना । (२) पूर्ण दशा को पहुँचना । तैयारी पर आना । चरम उत्कर्ष । (३) फल । परिणाम । (४) कर्म का फल ।

विशेष—योग दर्शन में यह विपाक तीन प्रकार का कहा गया है—जाति (जन्म), आयु और भोग ।

(५) खाए हुए भोजन का पेट में पचना । खाद्य द्रव्य की पेट के अंदर रस-रूप में परिणति । (६) दुर्गति । दुर्दशा । (७) स्वाद । ज़ायका ।

विपाट-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाण ।

विपाटन-संज्ञा पुं० [सं०] उखाड़ना । तोड़ना ।

विपाठ-संज्ञा पुं० [सं०] बाण । तीर ।

विपात-संज्ञा पुं० [सं०] पातन । नाश ।

विपातक-संज्ञा पुं० [सं०] नाश करनेवाला । नाशक ।

विपातन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गलाना । (२) नाश करना ।

विपादन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विपादित] वध । हत्या ।

विपादिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुष्ट रोग का एक भेद । अपरस ।

विशेष—यह पैर में होता [redacted] । इसमें उँगलियों के पास से ऊपर तक चमड़े में दरारें पड़ जाती हैं और बड़ी खुजली होती है । पीड़ा के कारण पैर नहीं रखा जाता ।

(२) प्रहेलिका । पहेली ।

विपादित-वि० [सं०] विनाशित । नष्ट किया हुआ ।

विपापा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम । (महाभारत)

विपाल-वि० [सं०] (पशु) जिसका कोई पालनेवाला या मालिक न हो । (स्मृति)

विपाशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्यास नदी जो पंजाब में है । वि० दे० "विपासा" ।

विपासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पंजाब की एक नदी । ब्यास ।

विशेष—ऋग्वेद में इस नदी का उल्लेख शतुद्री (सतलज) के साथ है ।

विपिन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वन । जंगल । (२) उपवन । वाटिका ।
वि० भयानक । डरावना ।

विपिनचर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बन में रहनेवाला। बनचर। (२) जंगली आदमी। (३) पशु पक्षी आदि।

विपिनतिलका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्ण वृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में नगण, सगण, नगण और दो रगण (न, स, न, र, र अर्थात् ।।।, ।।ऽ, ।।।, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ) होते हैं।

विपिनपति–संज्ञा पुं० [सं०] बन का राजा, सिंह। उ०—जिमि भेरी दृढ़ है विपिन-पति, सिंधि दुर्जय मन में धरत। तिमि लख्यो प्रवीन उताल गति सुर सिंगार करि समर रत। —गोपाल।

विपिनविहारी–संज्ञा पुं० [सं० विपिन+विहारी] (१) बन में विहार करनेवाला। बनचारी। (२) कृष्ण का एक नाम। उ०—दरसन पाइ थकित भई सारी। कहत भये सब विपिनविहारी।—विश्राम।

विपुंसक–वि० [सं०] पुंसत्व रहित। पुरुषत्व से हीन।

विपुंसी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसकी, चेष्टा, स्वभाव या आकृति पुरुषों की सी हो।

विपुत्र–वि० [सं०] [स्त्री० विपुत्रा] पुत्र-रहित। पुत्र-हीन।

विपुल–वि० [सं०] [स्त्री० विपुला] (१) विस्तार, संख्या या परिमाण में बहुत अधिक। (२) वृहत्। बड़ा। अगाध। बहुत गहरा।

संज्ञा पुं० (१) सुमेरु पर्वत का पश्चिमी भाग। (२) मगध देश की प्राचीन राजधानी राजगृह के पास की एक पहाड़ी। (३) हिमालय। (४) एक देवी-पीठ। देवी का एक प्रधान स्थान जहाँ की देवी का नाम विपुला है। (५) रोहिणी से उत्पन्न वसुदेव के एक पुत्र का नाम। उ०—विपुल विपुल-बल कह्यो रचत रन में पुल सर को।—गोपाल।

विपुलक–वि० [सं०] (१) बहुत चौड़ा। (२) जिसे रोमांच न हो। पुलक-रहित।

विपुलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] आधिक्य। बहुतायत। बड़ाई।

विपुलपार्श्व–संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

विपुलमति–वि० [सं०] बहुत बुद्धिवाला। बहुत बुद्धिमान्।

संज्ञा पुं० एक बोधिसत्व का नाम।

विपुलस्कंध–संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन का एक नाम।

विपुला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी। वसुन्धरा। (२) एक प्रकार का छंद, जिसके प्रत्येक चरण में भगण, रगण और दो लघु होते हैं। (३) आर्य्या छंद के तीन भेदों में एक भेद जिसके प्रथम चरण में १८, दूसरे में १२, तीसरे में १३ और चौथे में १३ मात्राएँ होती हैं। (४) विपुल नामक पर्वत की अधिष्ठात्री देवी। (५) एक प्रसिद्ध सती जो 'बहुला' के नाम से प्रसिद्ध है।

विपुलाईछ–संज्ञा स्त्री० [सं० विपुल+आई (हिं० प्रत्य०)] विपुलता। अधिकता। ज्यादती।

विपुलास्रवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] घृतकुमारी। घी कुवार। ग्वारपाठा।

विपुष्पित–वि० [सं०] हर्षित। प्रफुल्ल।

विपूय–संज्ञा पुं० [सं०] मुंजतृण। मूँज।

विपोहनाछ–क्रि० स० [सं० वि०+प्रोत] (१) पोतना। लीपना। (२) नाश करना। मिटाना। उ०—ज्योति जगै जमुना सी लगै जग लाल विलोचन पाप विपोहै।—केशव। (३) दे० "पोहना"।

विप्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्राह्मण

विशेष—जो यजन याजन आदि कर्म पूर्ण रीति से करता हो, वह विप्र है। विशेष दे० "ब्राह्मण"।

(२) पुरोहित। यज्ञ करानेवाला। (३) वेद मंत्रों को जाननेवाला। कर्मनिष्ठ। (४) शिरीष वृक्ष। सरिस का पेड़। (५) अश्वत्थ। पीपल का पेड़। (६) पापर का पौधा जो औषध के काम में आता है। रेणुक।

वि० मेधावी। बुद्धिमान्।

विप्रकर्षण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विप्रकृष्ट] (१) दूर खींच ले जाना। दूर हटाना। (२) किसी कर्म या कृत्य का अंत।

विप्रकार–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विप्रकृत] (१) तिरस्कार। अनादर। (२) अपकार।

अव्य० विविध प्रकार से।

विप्रकाष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] नरमा या कपास का पौधा।

विप्रकीर्ण–वि० [सं०] (१) बिखरा हुआ। छितराया हुआ। इधर उधर पड़ा हुआ। (२) अस्त व्यस्त। अव्यवस्थित। गड़बड़।

विप्रकृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] विप्रकार। अपकार।

विप्रकृष्ट–वि० [सं०] (१) खींचकर दूर किया हुआ। (२) जो दूरी पर हो। दूरस्थ।

विप्रचरण–संज्ञा पुं० [सं०] [सं० विप्र+चरण] भृगु मुनि की लात का चिह्न जो विष्णु के हृदय पर माना जाता है। उ०—(क) उर बन माल पदिक अति शोभित, विप्रचरन चित कहँ करषै।—तुलसी। (ख) उर मनि-हार पदिक की सोभा। विप्रचरन देखत मन लोभा।—तुलसी।

विप्रचित्–संज्ञा पुं० दे० "विप्रचित्ति"।

विप्रचित्ति–संज्ञा पुं० [सं०] एक दानव जिसकी पत्नी सिंहिका के गर्भ से राहु की उत्पत्ति हुई थी।

विप्रता–संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मणत्व।

विप्रतारक–संज्ञा पुं० [सं०] बहुत धोखा देनेवाला।

विप्रतिपत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरोध। मेल न बैठना। जैसे,—मनुष्यों के स्वार्थ की विप्रतिपत्ति। (मिताक्षरा) (२) ऐसा कथन जिसके अंदर दो ऐसी बातें हों जो एक साथ न हो सकती हों। परस्पर विरुद्ध वाक्य। (न्याय)

विशेष—जैसे, कोई कहे कि "यहाँ अग्नि है और नहीं है" तो उसका यह कथन विप्रतिपत्ति का उदाहरण होगा।

(३) किसी बात का बिलकुल उलटा निरूपण। किसी बात से ऐसा नतीजा निकालना जो ठीक न हो। विपरीत प्रतिपत्ति। असिद्धि। (४) प्रसिद्धि का अभाव। अख्याति। (५) कुख्याति। बदनामी। (६) किसी कृत्य या पूजन की वह विकृति जो प्रतिनिधि द्रव्य का नाम लेने से होती है।

विशेष—किसी कृत्य या पूजन में जो द्रव्य विहित है, उसके अभाव में यदि कोई दूसरा द्रव्य प्रतिनिधि रूप में रखा जाय, तो समर्पण वाक्य में प्रतिनिधि द्रव्य का नाम न लेकर जिसके अभाव में वह द्रव्य रखा गया हो, उसी का नाम कहना चाहिए। प्रतिनिधि द्रव्य का नाम लेने से पूजा विकृत हो जाती है।

विप्रतिपद्यमान-वि० [सं०] पाप करनेवाला। पापात्मा।

विप्रतिपन्न-वि० [सं०] (१) विप्रतिपत्ति युक्त। संदेह युक्त। (२) अस्वीकृत। (३) जो साबित न हुआ हो। असिद्ध।

विप्रतिषिद्ध-वि० [सं०] (१) जिसका निषेध किया गया हो। जो मना हो। निषिद्ध। (स्मृति) (२) विरुद्ध। खिलाफ। उलटा। (३) निवारित। वर्जित।

विप्रतिषेध-संज्ञा पुं० [सं०] दो बातों का परस्पर विरोध। मेल न बैठना।

विप्रतिसार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनुताप। पछतावा। (२) रोष। क्रोध।

विप्रत्व-संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मणत्व।

विप्रथित-वि० [सं०] विख्यात। मशहूर।

विप्रदुष्ट-वि० [सं०] (१) पापरत। (२) कामी। (३) भ्रष्ट। नष्ट।

विप्रधुक्-वि० [सं०] लाभकारी। हितकर।

विप्रपद-संज्ञा पुं० [सं०] भृगु मुनि की लात का चिह्न जो विष्णु के वक्षःस्थल पर माना जाता है। विप्रचरण।

विप्रपात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विशेष रूप से पतन। बिलकुल गिर जाना। (२) ऊँचा ढालवाँ टीला। (३) खाई।

विप्रप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] पलाश वृक्ष।

विप्रबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह ब्राह्मण जो अपने कर्म से च्युत हो। नीच ब्राह्मण। (२) गोपायन गोत्रीय एक मंत्रद्रष्टा ऋषि।

विप्रबुद्ध-वि० [सं०] (१) जागा हुआ। (२) ज्ञान प्राप्त।

विप्रमनस्-वि० [सं०] जिसका जी न लगता हो। अन्यमनस्क। अनमना।

विप्रमाथी-वि० [सं० विप्रमाथिन्] [स्त्री० विप्रमाथिनी] (१) खूब मथन करनेवाला। (२) ध्वस्त या नष्ट करनेवाला। (३) आकुल या क्षुब्ध करनेवाला।

विप्रयाण-संज्ञा पुं० [सं०] भागना। पलायन।

विप्रयुक्त-वि० [सं०] (१) जो मिला न हो। विश्लिष्ट। विभिन्न। अलग। (२) बिछुड़ा हुआ। (मित्र या प्रिय से) (३) जिसका विभाग हुआ हो।

विप्रयोग-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विप्रयुक्त] (१) वियोग। विरह। जुदाई। विप्रलंभ। (२) विसंवाद। बुरा समाचार। (३) विच्छेद। अलग होना।

विप्रराम-संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम। उ०—बैरिन में विप्रराम, प्रीति माहिं जदुराम, बूँदी नाथ राजाराम सील माहिं राम है।—मतिराम।

विप्रलंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अभिलषित वस्तु की अप्राप्ति। चाही हुई वस्तु का न मिलना। (२) प्रिय का न मिलना। वियोग। जुदाई। विरह। अमिलन।

विशेष—साहित्य में शृंगार रस दो प्रकार का कहा गया है—संभोग शृंगार और विप्रलंभ शृंगार। इन्हीं को संयोग और वियोग भी कहते हैं। विप्रलंभ शृंगार में नायक नायिका के विरह-जन्य संताप आदि का वर्णन होता है।

(३) अलग होना। विच्छेद। (४) छल से किसी को किसी लाभ से वंचित करना। धोखा। छल। धूर्तता। वंचना। (५) विरुद्ध कर्म। बुरा काम।

विप्रलंभक-संज्ञा पुं० [सं०] धूर्त या धोखेबाज़ आदमी। वंचक।

विप्रलंभी संज्ञा पुं० [सं० विप्रलंभिन्] धोखेबाज़। धूर्त।

विप्रलब्ध-वि० [सं०] (१) जिसे चाही हुई वस्तु न प्राप्त हुई हो। रहित। वंचित। (२) जिसे प्रिय का समागम न प्राप्त हुआ हो। वियोग-दशा-प्राप्त। (३) जो छल द्वारा किसी लाभ से वंचित किया गया हो। प्रतारित।

विप्रलब्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जो संकेत स्थान में प्रिय को न पाकर निराश या दुःखी हो।

विप्रलाप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सारहीन वाक्य। व्यर्थ बकवाद। (२) विवाद। झगड़ा। (३) बुरा वचन।

विप्रलीन-वि० [सं०] बिखरा हुआ। छितराया हुआ। इधर उधर पड़ा हुआ।

विप्रलुंपक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ा लालची। अति लोभी। (२) अपने लाभ के लिये लोगों को सतानेवाला। उत्पीड़क। (३) अधिक कर लेनेवाला।

विप्रलुप्त-वि० [सं०] (१) जो लूटा गया हो। अपहृत। (२) जो गायब किया गया हो। जो उड़ा लिया गया हो। (३) जिसके कार्य्य में विघ्न पहुँचाया गया हो।

विप्रलोक-संज्ञा पुं० [सं०] चिड़िया पकड़नेवाला। व्याध। शिकारी।

विप्रलोप-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विप्रलुप्त] (१) बिल्कुल लोप । (२) नाश ।

विप्रवाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरे वचन । (२) व्यर्थ बकवाद । (३) कलह । विवाद । झगड़ा ।

विप्रवास-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विप्रवसित] (१) विदेश में वास । परदेस में रहना । (२) संन्यास आश्रम में एक अपराध जो अपने कपड़े दूसरे को देने से होता है ।

विप्रव्रजनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो दो पुरुषों से संबंध रखे ।

विप्रश्न-संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रश्न जिसका उत्तर फलित ज्योतिष द्वारा दिया जाय ।

विप्रश्निक-संज्ञा पुं० [सं०] दैवज्ञ । ज्योतिषी ।

विप्रष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] एक यादव का नाम जो बलराम जी का छोटा भाई लगता था ।

विप्रसारण-संज्ञा पुं० [सं०] विस्तार करना । फैलाना ।

विप्रहरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्याग । (२) मुक्ति ।

विप्रिय-वि० [सं०] (१) अप्रिय । (२) कटु । (३) अतिशय प्रिय । (४) वियोग ।
संज्ञा पुं० अपराध । कसूर ।

विप्रुट्-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पानी की छोटी बूँद या छींटा । (२) थूक का वह छींटा जो वेद पाठ करने में उड़ता है ।
विशेष—मनुस्मृति के अनुसार ऐसा छींटा अपवित्र नहीं है ।

विप्रुष-संज्ञा पुं० [सं०] पानी की छोटी बूँद या छींटा ।

विप्रुड्‌होम-संज्ञा पुं० [सं० विप्रुष्+होम] एक प्रकार का पूजन जो यज्ञ के अवसर पर सोम की प्राप्ति के लिये किया जाता था ।

विप्रोषित-वि० [सं०] (१) प्रवास में गया हुआ । (२) अनुपस्थित ।

विप्रोषितभर्तृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति या प्रेमी परदेस गया हो ।

विप्लव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उपद्रव । हंगामा । अशांति और हलचल । (२) राज्य के भीतर जनता में अशांति और उद्दत आचरण । बलवा । (३) दूसरे राष्ट्र द्वारा उपस्थित अशांति । परचक्र-भय । (४) उथल पुथल । अव्यवस्था । (५) आफ़त । विपत्ति । (६) विनाश । (७) शत्रु को डराने के लिये मचाया हुआ शोर गुल । डाँट डपट या धमकी । (८) नाव का डूबना । (९) जल की बाढ़ । बढ़िया । (१०) वेदों के अपूर्ण ज्ञान द्वारा उनका अनादर । (११) घोड़े की बहुत तेज़ चाल ।

विप्लाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी की बाढ़ । बढ़िया । (२) घोड़े की बहुत तेज़ चाल ।

विप्लावक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विप्लवकारी । उपद्रव मचानेवाला । (२) राज्य में उपद्रव खड़ा करनेवाला । बलवाई । (३) जल की बाढ़ लानेवाला ।

विप्लावी-संज्ञा पुं० [सं० विप्लाविन्] [स्त्री० विप्लाविनी] (१) उपद्रव करनेवाला । (२) जल की बाढ़ लानेवाला ।

विप्लुत-वि० [सं०] (१) छितराया हुआ । बिखरा हुआ । (२) घबराया हुआ । आकुल । (३) क्षुब्ध । व्यग्र । दुखी । (४) भ्रष्ट । पतित । (५) नियम, प्रतिज्ञा आदि से च्युत । (६) व्यसन के कारण किसी वस्तु के अभाव में व्याकुल । व्यसनार्त ।

विप्लुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों की एक व्याधि जिसमें उनकी योनि में नित्य पीड़ा रहती है ।

विप्लुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] विप्लव । हलचल । उपद्रव ।

विप्लुष्-संज्ञा पुं० दे० "विप्रुट्" ।

विप्सा-संज्ञा स्त्री० दे० "वीप्सा" ।

विफल-वि० [सं०] (१) जिसमें फल न लगता या लगा हो । फल-रहित । उ०—मुरली सुनत अचल चले । द्रवित ह्वै जल झरत पाहन विफल वृक्ष फले ।—सूर । (२) जिसका कुछ परिणाम न हो । जिसका कुछ नतीजा न हो । जिससे कुछ सिद्धि न प्राप्त हो । निष्फल । व्यर्थ । बेफ़ायदा । जैसे,—कोई प्रयत्न विफल होना; विफल-मनोरथ होना । (३) जिसके प्रयत्न का कुछ परिणाम न हुआ हो । अकृतकार्य्य । नाकामयाब । (४) हताश । निराश । (५) अंडकोश-रहित ।

विफलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्य्य की सिद्धि न होना । असफलता ।

विफला-वि० स्त्री० [सं०] (१) बिना फल की । जिसमें फल न लगें । (२) जिसका कुछ परिणाम न निकले । (३) जो प्रयत्न में कृतकार्य्य न हुई हो ।
संज्ञा स्त्री० केतकी ।

विबंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विशेष रूप से बंधन । खूब जकड़ना । (२) आनाह रोग (अफरा) का एक भेद जिसमें खाए हुए पदार्थ का बिना पचा रस मल रूप में पेट में रुका रहता है और दस्त नहीं होता ।

विबंधन-संज्ञा पुं० [सं०] पीठ, छाती, पेट आदि के घाव या फोड़े को कपड़े से विशेष रूप से बाँधने की युक्ति या क्रिया । (सुश्रुत)

विबंधवर्त्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़ों का एक रोग जिसमें उनका पेशाब बंद हो जाता है तथा पेट और नाड़ियों में जकड़ने की सी पीड़ा होती है ।

विबंधु-वि० [सं० वि+बन्धु] (१) बंधु रहित । जिसके भाई बंधु न हों । (२) पितृहीन । अनाथ ।

विबल-वि० [सं०] (१) बल रहित । (२) दुर्बल । अशक्त । (३) विशेष बलवान् ।

विबाध-वि० [सं०] बाधा रहित ।

विबुद्ध-वि० [सं० वि+बुध] (१) जाग्रत। जगा हुआ। (२) विकसित। खिला हुआ। (३) ज्ञान-प्राप्त। सचेत।

विबुध-संज्ञा पुं० [सं० वि+बुध] (१) पंडित। बुद्धिमान्। (२) देवता। (३) चंद्रमा। (४) एक राजा का नाम। (५) शिव। महादेव।

विबुधतटिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं की नदी, आकाश-गंगा।

विबुधतरु-संज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष।

विबुधधेनु-संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु।

विबुधपति-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का राजा, इन्द्र।

विबुधप्रिया-संज्ञा पुं० [सं०] देवी। भगवती।

विबुधविलासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवांगना। देवता की स्त्री। (२) अप्सरा। स्वर्ग की वेश्या। उ०—सकल सुआसिनी गुरु जन पुरजन पाहुने लोग। विबुधविलासिनि सुर मुनि जाचक जो जेहि जोग।—तुलसी।

विबुधवेलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] कल्पलता। उ०—कृपा सुधा सींची विबुध बेलि ज्यों फिरि सुख फरनि फरी।—तुलसी।

विबुधवैद्य-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के वैद्य, अश्विनीकुमार।

विबुधवन-संज्ञा पुं० [सं० विबुध+वन] इन्द्र का उद्यान। नंदन कानन।

विबुधाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के राजा, इन्द्र।

विबुधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पंडित। आचार्य्य। (२) देवता।

विबुधापगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं की नदी, आकाश-गंगा।

विबुधावास-संज्ञा पुं० [सं० विबुध+आवास] (१) देवताओं का निवास स्थान, स्वर्ग। (२) देवमंदिर।

विबोध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जागरण। जागना। उ०—चिंता मोह सुपन विबोध स्मृति अमर्ष गर्व उतसुक ताहु अवहित्थ जानिये।—पद्माकर।

विशेष—साहित्य के रस विधान में विबोध संचारी या व्यभिचारी भावों में से एक है।

(२) सम्यक् बोध। अच्छा ज्ञान। (३) सचेत होना। सावधान होना। (४) होश में आना। (५) विकास। प्रफुल्लता।

विबोधन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विबोधित] (१) जगाना। प्रबोधन। (२) ज्ञान कराना। आँख खोलना। (३) समझाना बुझाना। ढारस देना।

विबोधित-वि० [सं०] (१) जगाया हुआ। (२) ज्ञापित। जताया हुआ। बतलाया हुआ। (३) खिलाया या प्रफुल्लित किया हुआ। विकासित।

विभंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विन्यास। गठन या रचना। (२) टूटना। (३) विभाग। (४) क्रम या परंपरा का टूटना। (५) भ्रूभंग। भौं की चेष्टा। (६) मुख का भाव या चेष्टा।

विभंज-वि० [सं० वि०+भज्] (१) टूटना। फूटना। (२) नाश। ध्वंस।

विभक्त-वि० [सं० वि+भज्] (१) बँटा हुआ। विभाजित। (२) अलग किया हुआ। पृथक् किया हुआ। (३) जो अपने पिता की सम्पत्ति से अपना भाग पा चुका हो और अलग हो। संज्ञा पुं० कार्त्तिकेय।

विभक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विभक्त होने की क्रिया या भाव। विभाग। बाँट। (२) अलग होने की क्रिया या भाव। अलगाव। पार्थक्य। (३) शब्द के आगे लगा हुआ वह प्रत्यय या चिह्न जिससे यह पता लगता है कि उस शब्द का क्रिया-पद से क्या संबंध है। (व्याकरण)

विशेष—संस्कृत व्याकरण में जिसे 'विभक्ति' कहते हैं, वह वास्तव में शब्द का रूपांतरित अंग होता है। जैसे,—रामेण, रामाय इत्यादि। आज कल की प्रचलित खड़ी बोली में इस प्रकार की विभक्तियाँ प्रायः नहीं हैं, केवल कर्म और सम्प्रदान कारक के सर्वनामों में विकल्प से आती हैं। जैसे,—मुझे, तुझे, इन्हें इत्यादि। संस्कृत में विभक्तियों के रूप शब्द के अंत्य अक्षर के अनुसार भिन्न भिन्न होते हैं। पर यह भेद खड़ी बोली के कारकों में नहीं पाया जाता, जिनमें शुद्ध विभक्तियों का व्यवहार नहीं होता, कारक-चिह्नों का व्यवहार होता है।

विभग्न-वि० [सं० वि+भग्न] (१) टूटा फूटा हुआ। (२) झुका हुआ।

विभव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धन। संपत्ति। (२) ऐश्वर्य्य। शक्ति। उ०—भव भव, विभव, पराभव-कारिनि।—तुलसी। (३) औदार्य्य। (४) बहुतायत। आधिक्य। (५) मोक्ष। जन्म मरण से छुटकारा। (६) साठ संवत्सरों में से छत्तीसवाँ संवत्सर।

विभववान्-संज्ञा पुं० [सं० विभववत्] [स्त्री० विभववती] (१) विभव-वाला। धनी। दौलतमन्द। (२) शक्तिशाली।

विभवशाली-वि० [सं०] (१) विभववाला। (२) प्रतापवाला। ऐश्वर्य्यवाला।

विभांडक-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि जो ऋष्यशृंग के पिता थे।

विभांडिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] आहुल्य वृक्ष।

विभांडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नीलापराजिता। विष्णुक्रांता लता।

विभाँति-संज्ञा स्त्री० [सं० वि० + हिं० भाँति] प्रकार। भेद। किस्म।
वि० अनेक प्रकार का।
अव्य० अनेक प्रकार से।

विभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रभा। कान्ति। चमक। (२) किरण। रश्मि। (३) शोभा। सुन्दरता।

मनोरंजन पुस्तकमाला

अब तक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

(१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल।
(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक वेणीप्रसाद।
(४, ५, ६) आदर्श हिंदू, तीन भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्म्मा।
(७) राणा जंगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा।
(९) जीवन के आनंद—लेखक गणपति जानकीराम दुबे।
(१०) भौतिक विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद बी० एस-सी०।
(११) लालचीन—लेखक ब्रजनंदनसहाय।
(१२) कबीर-वचनावली—संग्रहकर्त्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय।
(१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी० ए०।
(१४) बुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(१६) सिक्खों का उत्थान और पतन—लेखक नंदकुमारदेव शर्म्मा।
(१७) वीरमणि—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०।
(१८) नेपोलियन बोनापार्ट—लेखक राधामोहन गोकुलजी।
(१९) शासनपद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार।
(२०, २१) हिंदुस्तान दो खंड—लेखक दयाचंद्र गोयलीय बी० ए०।
(२२) महाराज सुरदान—लेखक वेणीप्रसाद।
(२३) ज्योतिर्विनोद—लेखक संपूर्णानंद बी० एस-सी०
(२४) आत्मशिक्षण—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०।
(२५) सुंदरसार—संग्रहकर्त्ता पुरोहित हरिनारायण शर्म्मा बी० ए०।
(२६, २७) जर्मनी का विकास, दो भाग—लेखक सूर्यकुमार वर्म्मा।
(२८) कृषिकौमुदी—लेखक दुर्गाप्रसादसिंह एल० ए-जी०
(२९) कर्त्तव्यशास्त्र—लेखक गुलाबराय एम० ए०।
(३०, ३१) मुसलमानी राज्य का इतिहास, दो भाग—लेखक मन्नन द्विवेदी बी० ए०।
(३२) महाराज रणजीतसिंह—लेखक वेणीप्रसाद।
(३३, ३४) विश्वप्रपंच, दो भाग—लेखक रामचंद्र शुक्ल।
(३५) अहिल्याबाई—लेखक गोविंदराम केशवराम जोशी।
(३६) रामचंद्रिका—संकलनकर्त्ता लाला भगवानदीन।
(३७) ऐतिहासिक कहानियाँ—लेखक द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी।
(३८, ३९) हिंदी निबंधमाला, दो भाग—संग्रहकर्त्ता श्यामसुन्दरदास बी० ए०।
(४०) सूरसुधा—संपादक गणेशविहारी मिश्र, श्यामविहारी मिश्र, शुकदेवविहारी मिश्र।
(४१) कर्त्तव्य—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(४२) संक्षिप्त रामस्वयंवर—संपादक ब्रजरत्नदास।
(४३) शिशु-पालन—लेखक मुकुन्दस्वरूप वर्म्मा।
(४४) शाही दृश्य—लेखक मक्खनलाल गुप्त गर्ग।
(४५) पुरुषार्थ—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(४६) तर्कशास्त्र, पहला भाग—लेखक गुलाबराय एम० ए०।

माला की प्रत्येक पुस्तक या उसके किसी भाग का मूल्य १।) है; पर स्थायी ग्राहकों को सब पुस्तकें बारह बारह आने में दी जाती हैं।

एक कार्ड भेजकर उत्तमोत्तम पुस्तकों का बड़ा और नया सूचीपत्र मँगवाइए।

मिलने का पता—प्रकाशन मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा,
बनारस सिटी।

नई पुस्तकें

मुहणोत नैणसी की ख्यात (पहला भाग)

राजपूताने, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, मालवे और बुन्देलखंड के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करनेवालों के लिये यह सुप्रसिद्ध ख्यात बहुत महत्व की है। इसमें गुहिलोत, चौहान, सोलंकी, प्रतिहार और परमार वंश का बहुत ही विस्तृत तथा प्रामाणिक इतिहास और उनकी वंशावलियाँ दी गई हैं। साथ में अनेक उपयोगी टिप्पणियाँ आदि भी दी गई हैं। ऐतिहासिक अनुसंधान करनेवालों के लिये बड़े काम की चीज है। मूल्य ३॥)

अकबरी दरबार (पहला भाग)

उर्दू, फारसी आदि के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय शम्सुल् उलमा मौलाना मुहम्मद हुसेन साहब आजाद कृत दरबारे अकबरी नामक ग्रंथ का अनुवाद। इसमें बादशाह अकबर की पूरी जीवनी दी गई है और बतलाया गया है कि उसने कैसे कैसे युद्ध किए, अपने राज्य की किस प्रकार व्यवस्था की, उसके समय में देश की राजनीतिक, सामाजिक और साम्पत्ति अवस्था कैसी थी, आदि आदि। पृष्ठ-संख्या चार सौ से ऊपर, मूल्य २॥)

अशोक की धर्म-लिपियाँ (पहला भाग)

इस पुस्तक में सम्राट् अशोक के प्रधान शिलालेखों की प्रतिलिपि, संस्कृत तथा हिंदी अनुवाद और स्थान स्थान पर अनेक बहुमूल्य टिप्पणियाँ दी गई हैं। अशोक की धर्मलिपियों का ऐसा अच्छा दूसरा संस्करण अभी कहीं नहीं निकला। प्रत्येक इतिहास-प्रेमी और विद्यानुरागी को इसकी एक प्रति अवश्य रखनी चाहिए। मूल्य ३)

बाँकीदास ग्रंथावली (पहला भाग)

डिंगल भाषा के महाकवि कविराजा बाँकीदास कृत सूर छतीसी, सीह छतीसी, वीर-विनोद, धवल पचीसी, दातार बावनी, नीति-मंजरी और सुपह छतीसी ये सात ग्रंथ अभी तक मिले हैं, जो इस पहले खंड में एक साथ ही छाप दिए गए हैं। आरंभ में बाँकीदास जी की जीवनी दे दी गई है और प्रत्येक पृष्ठ में कठिन शब्दों के अर्थ तथा उनके उपयोगी विवरण आदि पादटिप्पणियों में देकर पुस्तक सर्वसाधारण के लिये बहुत ही सुगम कर दी गई है। १०० पृष्ठों से ऊपर की जिल्द बँधी पुस्तक का मूल्य केवल ॥)

वीसलदेव रासो

यह ग्रंथ सं० १२७२ का लिखा हुआ है और इसकी भाषा प्राचीनतम हिन्दी है। इसमें वीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) के जीवन की मुख्य घटनाओं और युद्धों आदि का बहुत उत्कृष्ट वर्णन है। १७ वीं शताब्दी की हस्तलिखित प्रति से इसका पाठ शुद्ध किया गया है और कठिन शब्दों के अर्थ तथा टिप्पणियाँ दी गई हैं। प्राचीन भाषा काव्य-प्रेमियों के लिये अपूर्व रत्न है। १७५ पृष्ठों की जिल्ददार पुस्तक का मूल्य ॥।)

जायसी ग्रंथावली

सभा ने जायसी कृत पद्मावत और अखरावट का बहुत सुन्दर और शुद्ध संस्करण प्रकाशित किया है और प्रति पृष्ठ में कठिन शब्दों के अर्थ तथा दूसरे आवश्यक विवरण दे दिए हैं, जिससे यह काव्य साधारण विद्यार्थियों तक के समझने योग्य हो गया है। पुस्तक का पाठ बहुत परिश्रम से शुद्ध किया गया है। आरंभ में इसके सम्पादक और सिद्धहस्त समालोचक पं० रामचन्द्र शुक्ल ने प्रायः ढाई सौ पृष्ठों की इसकी मार्मिक आलोचना कर दी है, जिसके कारण सोने में सुगंध भी आ गई है। बड़े आकार के प्रायः ७०० पृष्ठों की जिल्द बँधी पुस्तक का मूल्य केवल ३)

प्रकाशन मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, बनारस सिटी।

मुद्रक—गणपति कृष्ण गुर्जर, श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस सिटी।

विभाकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रकाशवाला। (२) सूर्य्य। (३) आक का पौधा। मदार। (४) चित्रक। चीते का पेड़। (५) अग्नि। (६) राजा।

विभाग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँटने की क्रिया या भाव। किसी वस्तु के कई भाग या हिस्से करना। बँटवारा। तक़सीम। जैसे,—संपत्ति का विभाग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) कई खंडों या वर्गों में विभक्त वस्तु का एक एक खंड या वर्ग। भाग। अंश। हिस्सा। बखरा। (३) पैतृक संपत्ति का कोई अंश जो किसी को नियमानुसार दिया जाय। हिस्सा। बखरा। (४) प्रकरण। अध्याय। जैसे,—ग्रंथ का विभाग। (५) कार्य्य क्षेत्र। मुहकमा। जैसे,—शिक्षा विभाग।

विभागशः-क्रि० वि० [सं०] विभाग के अनुसार।

विभागात्मक नक्षत्र-संज्ञा पुं० [सं०] रोहिणी, आर्द्रा, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा और श्रवण आदि आठ प्रकाशमय नक्षत्र।

विभागी-संज्ञा पुं० [विभागिन्] [स्त्री० विभागिनी] (१) विभाग करनेवाला। (२) विभाग या हिस्सा पानेवाला। हिस्सेदार।

विभाजक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विभाग करनेवाला। बाँटनेवाला। (२) गणित में वह संख्या जिससे किसी दूसरी संख्या को भाग दें। भाजक।

विभाजन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विभाजनीय, विभाजित, विभाज्य] (१) विभाग करने की क्रिया या भाव। बाँटने का काम। (२) पात्र। बरतन।

विभाजित-वि० [सं०] जिसका विभाग किया गया हो। जो बाँटा गया हो। जिसके खंड या हिस्से किए गए हों।

विभाज्य-वि० [सं०] (१) विभाग करने योग्य। (२) जिसका विभाग करना हो। जिसे बाँटना हो।

विभात-संज्ञा पुं० [सं०] सवेरा। प्रभात।

विभाति-संज्ञा पुं० [सं० विभा] शोभा। सुंदरता। उ०—और बनिता की ओर भूलेहूँ न देखौं मन तुम जो कहत आये सोइ धीरी तानी में। ताको अब करिबो निबाह सो देखाऊँ तुम्हैं रघुनाथ देखौ देह आपनी विभाती में।—रघुनाथ।

विभाना-क्रि० अ० [सं० विभा+ना (प्रत्य०)] (१) चमकना। झलकना। (२) शोभा पाना। शोभित होना। उ०—मनु शुभ्र कमल के मधि कढ़ी सतगुन छता विभाति है।—गोपाल।

विभारना-क्रि० अ० [हिं० विभाना] चमकना। झलकना। उ०—स्याम घन पट भरन बिभारैं। रवि सम तेज सुलच्छन धारैं।—पद्माकर।

विभाव-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में वह वस्तु जो रति आदि भावों को आश्रय में उत्पन्न करनेवाली या उद्दीप्त करनेवाली हो। रस-विधान में भाव का उद्बोधक।

विशेष—विभाव दो कहे गए हैं—आलंबन और उद्दीपन। आलंबन वह है जिसके प्रति आश्रय या पात्र के हृदय में कोई भाव स्थित हो। जैसे नायक के लिये नायिका और नायिका के लिये नायक। उद्दीपन वह है जिससे आलंबन के प्रति स्थित भाव उद्दीप्त या उत्तेजित हो। रस-भेद से आलंबन और उद्दीपन भिन्न भिन्न होंगे। जैसे, शृंगार में आलंबन होंगे नायक नायिका; हास में कोई बेढंगी आकृति या वाणी आदिवाला व्यक्ति; करुण में विनष्ट बंधु आदि या कोई पीड़ित अथवा शोचनीय व्यक्ति इत्यादि, इत्यादि। इसी प्रकार उद्दीपन भी रस भेद से भिन्न होंगे। जैसे, शृंगार में चाँदनी, फूल आदि; रौद्र में आलंबन की दुष्ट चेष्टा इत्यादि।

विभावन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विभावनीय] (१) विशेष रूप से चिंतन। (२) साहित्य के रस-विधान में वह मानसिक व्यापार जिसके कारण पात्र में प्रदर्शित भाव का श्रोता या पाठक भी साधारणीकरण द्वारा भागी होता है।

विभावना-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में एक अर्थालंकार जिसमें कारण के बिना कार्य्य की उत्पत्ति, या अपूर्ण कारण से कार्य्य की उत्पत्ति, या प्रतिबंध होते हुए भी कार्य्य की सिद्धि, या जो जिस कार्य्य का कारण नहीं हुआ करता, उससे उस कार्य्य की उत्पत्ति, अथवा विरुद्ध कारण से किसी कार्य्य की उत्पत्ति या कार्य्य से कारण की उत्पत्ति दिखाई जाती है। उ०—(क) सुनत श्रवण श्रुति नैन बिनु, रसना बिनु रस लेत। (ख) रामकुमार सरोज से हाथन सों गहि शंभु शरासन तोड़यो। (ग) तव बेनी नागिनि रहे, बाँधी गुनन बनाय। तऊ बाम ब्रजचंद को बदाबदी डसि जाय। (घ) कारे घन उमड़ि अँगारे बरसत हैं। (ङ) अलिपार सपत सुधाकर बिलोकिए। (च) और नदी नदन सें कोकनद होत, तेरो कर कोकनद नदी नद प्रगटत है।

विभावनीय-वि० [सं०] भावना या चिंतन करने योग्य।

विभावरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात्रि। रात। (२) वह रात जिसमें तारे चमकते हों। (३) हरिद्रा। हल्दी। (४) कुटनी। कुटनी। दूती। (५) टेढ़ी स्त्री। चाल की औरत। (६) मुखरा स्त्री। बहुत बक बक करनेवाली स्त्री। (७) मेदा वृक्ष (८) प्रचेतस की नगरी का नाम।

विभावरीश-संज्ञा पुं० [सं०] निशापति। चंद्रमा।

विभावसु-वि० [सं०] जिसमें प्रकाश की अधिकता हो। अधिक प्रकाशवाला।

संज्ञा पुं० (१) वसुओं के एक पुत्र। (२) सूर्य्य। (३) आक का पौधा। अर्क। मदार (४) अग्नि। (५) चित्रक वृक्ष।

चीता। (६) चंद्रमा। (७) एक प्रकार का हार। (८) एक दानव जो नरकासुर का पुत्र था। (९) एक ऋषि का नाम। (महाभारत) (१०) एक गंधर्व जिसने गायत्री से वह सोम छीना था, जो वह देवताओं के लिये ले जा रही थी।

विभावित-वि० [सं०] (१) चिंतन किया हुआ। सोचा या विचारा हुआ। (२) कल्पित। (३) निश्चित। (४) स्वीकृत। मंजूर किया हुआ।

विभाषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] संस्कृत व्याकरण में वह स्थल जहाँ ऐसे वचन मिलते हैं कि "ऐसा न होगा" तथा "ऐसा हो भी सकता है"।

विभास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमक। तेज। (२) एक राग जो सबेरे के समय गाया जाता है। इसे कुछ लोग भैरव राग का ही भेद मानते हैं। (३) तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार सप्तर्षियों में से एक। (४) एक देव योनि। (मार्कंडेय पुराण)

विभासक-वि० [सं०] [स्त्री० विभासिका] (१) चमकनेवाला। प्रकाशयुक्त। (२) चमकानेवाला। झलकानेवाला। (३) प्रकाशित करनेवाला। प्रकट या व्यक्त करनेवाला। ज़ाहिर करनेवाला।

विभासना*-क्रि० अ० [सं० विभास + ना (हिं० प्रत्य०)] चमकना। झलकना।

विभासिका-वि० स्त्री० [सं०] चमकनेवाली।

विभासित-वि० [सं०] (१) प्रकाशित। दीप्त। चमकता हुआ। (२) प्रकट। ज़ाहिर।

विभिन्न-वि० [सं०] (१) छिदा हुआ। कटा हुआ। काटकर अलग किया हुआ। (२) बिल्कुल अलग। पृथक्। जुदा। (३) अनेक प्रकार का। कई तरह का। (४) और का और किया हुआ। उलटा। (५) हताश। निराश।

विभिन्नता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विभिन्न होने का भाव। भेद। पार्थक्य। अलगाव। फ़र्क़।

विभीत-वि० [सं०] डरा हुआ।
संज्ञा पुं० विभीतक। बहेड़ा।

विभीतक-संज्ञा पुं० [सं०] बहेड़े का वृक्ष।

विभीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) डर। भय। (२) शंका। संदेह। उ०—नहिं तोरिहैं राम शिव को धनु यह विभीति परिहरहु।—रघुराज।

विभीषक-संज्ञा पुं० [सं०] डरानेवाला। भयानक।

विभीषण-वि० [सं०] बहुत डरावना। बहुत भयानक।
संज्ञा पुं० (१) एक राक्षस जो रावण का भाई था और रावण के मारे जाने पर राम द्वारा लंका का राजा बनाया गया था।
विशेष—यह विश्रवा मुनि द्वारा कैकसी राक्षसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था और सुमाली नामक राक्षस का दौहित्र (नाती) था। एक दिन सुमाली ने कुबेर को पुष्पक विमान पर चढ़कर जाते देखा। उसे यह इच्छा हुई कि मेरे भी ऐसा ही दौहित्र होता। उसने अपनी परम रूपवती कन्या कैकसी को विश्रवा मुनि के पास भेजा। जिस समय वह गई, उस समय मुनि ध्यान में मग्न थे। वे उसका अभिप्राय समझकर बोले—"तू बड़े विकट समय में आई। इससे इस बार तुझे एक विकट आकृति का पुत्र उत्पन्न होगा"। कैकसी के बहुत विनय करने पर ऋषि ने फिर आशीर्वाद दिया—"अच्छा जा! तेरा अंतिम पुत्र मेरे ही वंश का सा और परम धार्मिक होगा।" वही अंतिम पुत्र विभीषण हुआ। अपने बड़े भाइयों रावण और कुंभकर्ण के साथ विभीषण ने भी घोर तप किया। जब ब्रह्मा वर देने आए, तब विभीषण ने यही वर माँगा—"मेरी मति धर्म में सदा स्थिर रहे"। ब्रह्मा ने वर दिया—"तुम बड़े धार्मिक और अमर होंगे"। वर-प्राप्ति के उपरांत विभीषण भी रावण के साथ लंका में ही आकर रहने लगा। रावण ने जब सीताहरण किया, तब वह राम की ओर हो गया था।
(२) नल तृण। नरसल का पौधा।

विभीषणा-वि० स्त्री० [सं०] डरावनी। भयानक।
संज्ञा स्त्री० एक मुहूर्त का नाम।

विभीषिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भय-प्रदर्शन। डर दिखाना। (२) भयंकर बात। भयानक कांड या दृश्य।

विभु-वि० [सं०] (१) जो सर्वत्र वर्त्तमान हो। जो सब मूर्त्त पदार्थों में रम रहा हो। जिससे कोई स्थान ख़ाली न हो। सर्वगत। सर्वव्यापक। जैसे,—दिक्, काल और आत्मा।
विशेष—जीव की जाग्रत आदि चारों अवस्थाओं के चार विभु माने गए हैं। जाग्रत का विभु विश्व, स्वप्न का तैजस, सुषुप्ति का प्राज्ञ और तुरीय का ब्रह्म कहा गया है।
(२) जो सब जगह जा सकता हो। सर्वत्र गमनशील। जैसे, मन। (३) अत्यंत विस्तृत। बहुत बड़ा। महान्। (४) सब काल में रहनेवाला। सर्वकाल व्यापी। नित्य। (५) दृढ़। अचल। चिरस्थायी। (६) शक्तिमान्। ऐश्वर्य्ययुक्त।
संज्ञा पुं० (१) ब्रह्म। (२) आत्मा। जीवात्मा। (३) प्रभु। स्वामी। (४) ईश्वर। (५) शंकर। शिव। (६) विष्णु। (७) भृत्य।

विभुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विभु होने का भाव। सर्वव्यापकता। (२) ऐश्वर्य्य। शक्ति। (३) प्रभुता। ईश्वरता। (४) अधिकार।

विभूति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहुतायत। वृद्धि। बढ़ती।

(२) विभव। ऐश्वर्य। (३) संपत्ति। धन। (४) दिव्य या अलौकिक शक्ति जिसके अंतर्गत अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व ये आठ सिद्धियाँ हैं।

विशेष—योगदर्शन के विभूतिपाद में इसका वर्णन है कि किन किन साधनाओं से कौन कौन सी विभूतियाँ प्राप्त होती हैं।

(५) शिव के अंग में चढ़ाने की राख या भस्म।

विशेष—देवी भागवत, शिवपुराण आदि में भस्म या विभूति धारण करने का माहात्म्य विस्तार से वर्णित है।

(६) भगवान् विष्णु का वह ऐश्वर्य जो नित्य और स्थायी माना जाता है। (७) लक्ष्मी। (८) विविध सृष्टि। (९) एक दिव्यास्त्र जो विश्वामित्र ने राम को दिया था। (१०) प्रभुत्व। बड़ाई। (११) सृष्टि।

विभूतिमान-वि० [सं०] [स्त्री० विभूतिमती] (१) शक्ति-संपन्न। ऐश्वर्यशाली। (२) संपत्तिशाली। धनवान्।

विभूमा-वि० [सं० विभूमन्] ऐश्वर्यवान्। शक्तिशाली।
संज्ञा पुं० श्रीकृष्ण।

विभूरसि-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि की एक मूर्ति।

विभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विभूष्य, विभूषित] (१) अलंकृत करने की क्रिया। गहने आदि से सजाने का काम। (२) भूषण। अलंकार। ज़ेवर। गहना।

विशेष—किसी शब्द के आगे लगकर यह शब्द श्रेष्ठतावाचक हो जाता है। जैसे—रघुवंश-विभूषण।

(३) मंजुश्री का एक नाम। (बौद्ध)

विभूषणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गहनों आदि की सजावट। भूषा। (२) शोभा।

विभूषनाॐ-क्रि० स० [सं० विभूषण] (१) अलंकृत करना। गहने आदि से सजाना। (२) सुशोभित करना। मंडित करना। (३) अपने आगमन द्वारा सुशोभित करना। उ०—कहा रीति रावरी जो रंक को विभूषौ गेह, तुम सो प्रवीन गुरु सेवा तत्पर कौं।—रूलह।

विभूषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गहनों आदि की खूब सजावट। (२) भूषण। अलंकार। गहना। (३) शोभा।

विभूषित-वि० [सं०] (१) गहनों आदि से सजाया हुआ। अलंकृत। (२) (अच्छी वस्तु, गुण आदि से) युक्त। सहित। जैसे,—ये सब गुणों से विभूषित हैं। (३) शोभित।

विभूष्णु-वि० [सं०] विभूति-युक्त।
संज्ञा पुं० शिव।

विभूष्य-वि० [सं०] (१) विभूषित करने योग्य। सजाने योग्य। (२) जिसे गहनों आदि से सजाना हो।

विभेंटनॐ-संज्ञा पुं० [सं० वि० + भेंट] आलिंगन करना। गले मिलना। भेंटना। उ०—एरे वाम नैन मेरे परी भुज वाम भाजरौरे फरकन तें जो वालम बिहारिहौं। करिहौं गुलाब उपकार गुन मानिनी के देखन विभेंटन में आगे विस्तारिहौं।—पद्माकर।

विभेद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विभिन्नता। फ़रक़। अंतर। (२) अनेक भेद। कई प्रकार। (३) छेदकर घुसना। धँसना। (४) काटना, तोड़ना या छेदना। (५) कटाव। छेद। दरार। (६) दो या कई खंडों में करना। विभाग। (७) एक-रूपता से अनेक रूपता की प्राप्ति। विकास। (८) मिश्रण।

विभेदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भेदन करनेवाला। काटने या छेदनेवाला। (२) घुसनेवाला। धँसनेवाला। (३) दो वस्तुओं में भेद प्रकट करनेवाला। फ़र्क़ दिखाने या डालनेवाला। एक से दूसरे में विशेषता प्रकट करनेवाला।
संज्ञा पुं० विभीतक। बहेड़ा।

विभेदकारी-वि० [सं० विभेदकारिन्] [स्त्री० विभेदकारिणी] (१) छेदने या काटनेवाला। (२) भेद या फ़र्क़ करनेवाला। (३) दो व्यक्तियों में विरोध उत्पन्न करनेवाला। फूट डालनेवाला।

विभेदन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विभेदनीय, विभेद्य] (१) छेदना, काटना या तोड़ना। (२) छेदकर घुसना। धँसना। (३) काटकर दो या कई खंडों में करना। (४) पृथक् पृथक् करना। अलग अलग करना। (५) भेद या फ़र्क़ डालना या दिखाना।

विभेदनाॐ-क्रि० स० [सं० विभेदन] (१) भेदन करना। छेदना। काटना। (२) घुसना। प्रवेश करना। उ०—लोक विभेदति वासना वायु परी मनु वीरय में गनिये जू।—केशव। (३) भेद या फ़र्क़ डालना।

विभेदिनी-वि० स्त्री० [सं० विभेदिन्] (१) छेदन या भेदन करनेवाली। (२) छेदकर घुसनेवाली। (३) भेद या फ़र्क़ करनेवाली।

विभेदी-वि० [सं० विभेदिन्] [स्त्री० विभेदिनी] (१) छेदन करनेवाला। काटनेवाला। (२) छेदकर घुसनेवाला। धँसनेवाला। (३) भेद या फ़र्क़ करनेवाला।

विभो-संज्ञा पुं० [सं० 'विभु' का संबोधन रूप] हे विभु!

विभौॐ-संज्ञा पुं० दे० "विभव"।

विभ्रंश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनाश। ध्वंस। (२) पतन। अवनति। (३) ऊँचा कगार। (४) पहाड़ की चोटी पर का चौरस मैदान।

विभ्रंशित-वि० [सं०] (१) विनष्ट। ध्वस्त। (२) पतित।

विभ्रम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भ्रमण। चक्कर। फेरा। (२) भ्रम। भ्रांति। धोखा। भूल। (३) संदेह। संशय। (४) चकपकाहट। घबराहट। अस्थिरता। (५) स्त्रियों का एक हाव जिसमें वे भ्रम से उलटे पलटे भूषण वस्त्र पहन लेती हैं,

तथा रद रहकर मतवाले की तरह कभी क्रोध, कभी हर्ष आदि भाव प्रकट करती है। (६) शोभा।

विभ्रमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुढ़ाई। बुढ़ापा। वार्द्धक्य।

विभ्रांत-वि० [सं०] (१) घूमता हुआ। चक्कर खाता हुआ। (२) भ्रम में पड़ा हुआ। विभ्रमयुक्त।

विभ्रांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) फेरा। चक्कर। (२) भ्रम। संदेह। (३) हड़बड़ी। घबराहट।

विभ्राट्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आपत्ति। विपत्ति। संकट। (२) उपद्रव। बखेड़ा। उ०—तिलक विभ्राट् के समय गोखले विलायत में थे।—सरस्वती।

वि० प्रकाशमान्। दीप्तिमान्।

विमंडन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विमंडित] (१) गहने आदि से सजाना। (२) शृंगार करना। सँवारना। (३) अलंकार। भूषण। गहना।

विमंडित-वि० [सं०] (१) अलंकृत। सजा हुआ। (२) सुशोभित। (३) सहित। युक्त। (अच्छी वस्तु से) उ०—देखि विमण्डित दण्डिन सों भुजदण्ड दुवौ असि दण्ड विहीनो।—केशव।

विमंथन-संज्ञा पुं० [सं०] खूब मथना।

विमत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरुद्ध मत। विपरीत सिद्धान्त। उ०—उमत, विमत, न पुरान मत एक पथ नेति नेति नेति नित निगम करत।—तुलसी। (२) खिलाफ़ राय। प्रतिकूल सम्मति।

वि० विरुद्ध मतवाला।

विमति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरुद्ध मति। खिलाफ़ राय। प्रतिकूल विचार। (२) उचित के विपरीत विचार। कुमति। दुर्बुद्धि। बुरा विचार। (३) असम्मति। अस्वीकृति।

विमत्सर-संज्ञा पुं० [सं०] अधिक अहंकार। उ०—तजि काम क्रोध विमत्सराखस लोभ मोह निवारि कै। छल मल कुसंगति त्यागि मद दुरवासना सनमानि कै।—विश्राम।

वि० मत्सर-रहित। अहंकार-शून्य।

विमद-वि० [सं०] (१) मद-रहित। उन्माद हीन। जो मतवाला न हो। (२) (वह हाथी) जिसे मद न बहता हो।

विमन-वि० [सं० विमनस्] अनमना। उदास। रंजीदा। खिन्न। उ०—विमन बैठि मुनि सुरसरि तीरा। तहँ आयो नारद मुनि धीरा। क्यों उदास पूछ्यौ अस व्यासै। वर्ण्यो व्यास सकल निज भासै।—रघुराज।

विमनस्क-वि० [सं०] (१) जिसका मन उचटा हो। जिसका मन न लगता हो। अनमना। (२) उदास। खिन्न। रंजीदा।

विमर्दक-वि० [सं०] (१) खूब मर्दन करनेवाला। मसल डालनेवाला। (२) चूर चूर करनेवाला। पीस डालनेवाला। (३) नष्ट भ्रष्ट करनेवाला। ध्वस्त करनेवाला।

विमर्दन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विमर्दनीय, विमर्दित] (१) खूब मर्दन करना। अच्छी तरह मलना दलना। (२) कुचलना। पीस डालना। (३) ध्वस्त करना। नष्ट करना। बरबाद करना। (४) मार डालना। (५) पीड़ित करना। (६) अभिमव। प्रस्फुटन। स्फुरण। जैसे, बीज फूटकर अंकुर का प्रकट होना। (सांख्य)

विमर्दनीय-वि० [सं०] मर्दन करने योग्य।

विमर्दित-वि० [सं०] (१) मला दला हुआ। (२) कुचला हुआ। (३) नष्ट किया हुआ। बरबाद किया हुआ। (४) पीड़ित। (५) अपमानित।

विमर्दी-वि० [सं० विमर्दिन्] [स्त्री० विमर्दिनी] (१) खूब मर्दन करनेवाला। (२) कुचलनेवाला। पीसनेवाला। (३) नष्ट करनेवाला। (४) वध करनेवाला। मारनेवाला।

विमर्श-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी तथ्य का अनुसंधान। किसी बात का विवेचन या विचार। (२) आलोचना। समीक्षा। (३) परखने की क्रिया। परीक्षा। (४) परामर्श। सलाह। (५) असंतोष। अधीरता।

विमर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विमृष्ट, विमर्शी] (१) विवेचन करना। तर्क वितर्क करना। (२) आलोचना करना।

विमर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विवेचन। विचार। (२) आलोचना। समीक्षा। (३) नाटक का एक अंग जिसके अंतर्गत अपवाद, संफेट, व्यवसाय, द्रव, द्युति, शक्ति, प्रसंग, खेद, प्रतिषेध, विरोध, प्ररोचना, आदान और छादन का वर्णन होता है।

विशेष—दोष-कथन को अपवाद, क्रोध से भरी बात चीत को संफेट, कार्य्य के हेतु के उद्भव को व्यवसाय, शोक आदि के वेग में गुरु जनों के आदर आदि का ध्यान न रखने को द्रव, भयप्रदर्शन द्वारा उद्वेग उत्पन्न करने को द्युति, विरोध की शांति को शक्ति, अत्यंत गुण कीर्त्तन या दोष-दर्शन को प्रसंग, शरीर या मन की थकावट को खेद, अभिलषित विषय में रुकावट को प्रतिषेध, कार्य्यध्वंस को विरोध, प्रस्तावना के समय नट, नटी, नाटक या नाटककार आदि की प्रशंसा को प्ररोचना, संहार विषय के प्रदर्शित होने को आदान, तथा कार्योद्धार के लिये अपमान आदि सह लेने को छादन कहते हैं।

विमल-वि० [सं०] [स्त्री० विमला] (१) निर्मल। मल रहित। स्वच्छ। साफ़। (२) बिना दोष का। निर्दोष। शुद्ध। (३) रमणीय। सुंदर। मनोहर।

संज्ञा पुं० (१) एक उपधातु जिसके शोधन आदि की विधि रसेंद्रसार में लिखी है। (२) चाँदी। (३) गत उत्सर्पिणी के ५ वें और वर्तमान अवसर्पिणी के १३ वें अर्हत् या तीर्थंकर। (जैन) (४) सुद्युम्न का पुत्र। (५) पद्मकाठ। (६) सोंचर नमक।

विमलक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नग या बहुमूल्य पत्थर।

विमलकीर्ति-संज्ञा पुं० [सं०] महायान पंथ के एक बौद्ध आचार्य्य जिन्होंने कई सूत्रों की रचना की है, जो उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हैं।

विमलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निर्मलता। स्वच्छता। सफ़ाई। (२) पवित्रता। (३) शुद्धता। निर्दोषता। (४) रमणीयता। मनोहरता।

विमल दान-संज्ञा पुं० [सं०] वह दान जो नित्य, नैमित्तिक और काम्य के अतिरिक्त हो और केवल ईश्वर के प्रीत्यर्थ दिया जाय। (गरुड़ पुराण)

विमलध्वनि-संज्ञा पुं० [सं०] छः चरणों का एक छंद जो एक दोहे और समान सवैया से मिलकर बनता है।

विमला-वि० स्त्री० [सं०] निर्मल। स्वच्छ।
संज्ञा स्त्री० (१) सातला का पेड़। कोषी। सातला। चर्मकषा। (२) एक प्रकार की भूमि। (३) एक देवी का नाम जो कालिका पुराण में वासुदेव की नायिका कही गई हैं। (४) सरस्वती।

विमलात्मा-वि० [सं० विमलात्मन्] शुद्ध हृदयवाला। शुद्ध मनवाला।
संज्ञा पुं० चंद्रमा।

विमलाशोक-संज्ञा पुं० [सं०] संन्यासियों का एक भेद।

विमलीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विमल करने की क्रिया। शुद्ध करने की क्रिया। (२) मन में विचार कर ज्योति मंत्र से तीनों मलों का नाश करना। (सर्वदर्शनसंग्रह)

विमलोदका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

विमांस-संज्ञा पुं० [सं०] अशुद्ध, अपवित्र या न खाने योग्य मांस। (जैसे, कुत्ते आदि का)

विमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० विमातृ] अपनी माता के अतिरिक्त पिता की दूसरी विवाहिता स्त्री। सौतेली माँ।

विमातृज-संज्ञा पुं० [सं०] विमाता का पुत्र। सौतेला भाई।

विमान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश मार्ग से गमन करनेवाला रथ जो देवताओं आदि के पास होता है। वायुयान। उड़नखटोला। (२) मरे हुए वृद्ध मनुष्य की अरथी जो सजधज के साथ निकाली जाती है। (३) रथ। गाड़ी। (४) अश्व। घोड़ा। (५) सात खंड का मकान। सात मंज़िल का घर। (६) असम्मान। अनादर। (७) परिमाण। (८) प्राचीन वास्तु विद्या के अनुसार वह देव मंदिर जो ऊपर की ओर गावदुम या पतला होता हुआ चला जाय।
विशेष—'मानसार' नामक प्राचीन ग्रंथ के अनुसार विमान गोल, चौपहला और अठपहला होता है। गोल को बेसर, चौपहले को नागर और अठपहले को द्राविड़ कहते हैं।

विमानना-संज्ञा स्त्री० [सं०] अपमान। अवमानना। तिरस्कार।

विमार्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा रास्ता। (२) कदाचार। बुरी चाल। (३) झाड़ू। कूचा।

विमित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह चौकोर शाला या इमारत जो चार खंभों पर टिकी हो। (२) बड़ा कमरा या इमारत।
वि० जिसकी सीमा या हद हो। परिमित।

विमिश्र-वि० [सं०] (१) मिला हुआ। मिश्रित। (२) जिसमें कई प्रकार की वस्तुओं का मेल हो। मिला जुला।

विमिश्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मृगशिरा, आर्द्रा, मघा, और अश्लेषा नक्षत्र में बुध की गति का नाम जो ३० दिनों तक रहती है।

विमिश्रित-वि० [सं०] (१) मिलाया हुआ। (२) मिला जुला।

विमुक्त-वि० [सं०] (१) अच्छी तरह मुक्त। छूटा हुआ। जो बंधन से अलग हुआ हो। (२) जिसे किसी प्रकार का प्रतिबंध या रुकावट न रह गई हो। (३) स्वतंत्र। स्वच्छंद। आज़ाद। (४) (हानि, दंड आदि से) बचा हुआ। (५) अलग किया हुआ। बरी। (६) पकड़ से छूटकर चला हुआ। फेंका हुआ। छोड़ा हुआ। जैसे,—विमुक्त बाण।

विमुक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छुटकारा। रिहाई। (२) मुक्ति। मोक्ष।

विमुख-वि० [सं०] (१) मुख रहित। जिसके मुँह न हो। (२) जिसने किसी बात से मुँह फेर लिया हो। जो किसी कार्य्य या विषय में दत्तचित्त न हो। जो किसी काम से हटा या अलग हो। अतत्पर। विरत। निवृत्त। जैसे,—कर्त्तव्य से विमुख होना। (३) जो अनुरक्त न हो। जिसे परवाह न हो। जिसने मन न लगाया हो। उदासीन। जैसे,—हरिपद विमुख। (४) जो किसी के हित के प्रतिकूल हो। जिसकी स्थिति या आचरण अनुकूल न हो। विरुद्ध। ख़िलाफ़। अप्रसन्न। जैसे,—जब ईश्वर ही विमुख है, तब क्या हो सकता है! (५) जिसकी चाह या माँग पूरी न हुई हो। अप्राप्त मनोरथ। निराश। जैसे,—उनके यहाँ से कोई याचक विमुख नहीं गया। उ०—जो देहैं सो भोजन पैहैं। विमुख कोउ इतसें नहिं जैहैं।—रघुराज।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

विमुखता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी बात से दूर रहना। अतत्परता। विरति। (२) विपरीतता। विरोध। अप्रसन्नता।

विमुग्ध-वि० [सं०] (१) मोहित। आसक्त। (२) भ्रम में पड़ा हुआ। भूला हुआ। भ्रांत। (३) घबराया हुआ। डरा हुआ। (४) उन्मत्त। मतवाला। (५) पागल। बावला। (६) बेसुध।

विमुग्धक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोहनेवाला। (२) एक प्रकार का छोटा अभिनय या नकल। (नाट्य-शास्त्र)

विमुग्धकारी–संज्ञा पुं० [सं० विमुग्धकारिन्] [स्त्री० विमुग्धकारिणी] (१) मोहनेवाला। मोहित करनेवाला। (२) भ्रम में डालनेवाला।

विमुद–वि० [सं०] आनंद-रहित। उदास। खिन्न। उ०—करति केलि पिय हिय लगी, कोक कलनि अवरेति। विमुद कुमुद लौं ह्वै रही चंदु मंद दुति देखि।—पद्माकर।
संज्ञा पुं० एक बड़ी संख्या का नाम।

विमूढ़–वि० [सं०] [स्त्री० विमूढ़ा] (१) विशेष रूप से मुग्ध। अत्यंत मोहित। (२) मोह प्राप्त। भ्रम में पड़ा हुआ। चकराया हुआ। (३) बेसुध। अचेत। (४) ज्ञान-रहित। जिसे समझ न पड़ता हो। जैसे,—किंकर्त्तव्य विमूढ़। (५) बहुत मूर्ख। जड़ बुद्धि। नादान। नासमझ।
संज्ञा पुं० एक प्रकार की संगीत-कला।

विमूढ़गर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] वह गर्भ जिसमें बच्चा मरा या बेहोश हो और प्रसव में बड़ी कठिनता हो।

विमूल–वि० [सं०] (१) मूल-रहित। बिना जड़ का। (२) मूल से रहित। उच्छिन्न। निर्मूल। (३) बरबाद। नष्ट।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

विमूलन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जड़ से उखाड़ना। उन्मूलन। (२) विनाश। ध्वंस।

विमृश्य–वि० [सं०] (१) विवेचन के योग्य। आलोचना या समीक्षा के योग्य। (२) जिस पर विवेचना या विचार करना हो। जिसकी समीक्षा करनी हो।

विमृष्ट–वि० [सं०] (१) जिस पर तर्क वितर्क या सम्यक् विचार हुआ हो। (२) जिसकी पूरी आलोचना या समीक्षा हुई हो। (३) परिच्छन्न।

विमोक–वि० [सं०] (१) मल-रहित। राग-रहित। दुर्वासना रहित। (जैन) (१) ऊपरी आवरण रहित। (२) साफ़। स्पष्ट।
संज्ञा पुं० मुक्ति। छुटकारा। रिहाई।

विमोक्ता–संज्ञा पुं० [सं० विमोक्तृ] मुक्त करनेवाला। छुड़ानेवाला।

विमोक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंधन या गाँठ आदि का खुलना। (२) छुटकारा। मुक्ति। रिहाई। (३) जन्म मरण के बंधन से छूटना। आवागमन से छुट्टी पाना। मुक्ति। निर्वाण। (४) सूर्य्य या चंद्रमा का ग्रहण से छूटना। ग्रहण का हटना। उग्रह। (५) किसी वस्तु का पकड़ से इस प्रकार छूटना कि वह दूर जा पड़े। प्रक्षेपण। (६) मेरु पर्वत का एक नाम।

विमोक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंधन आदि खोलना। (२) मुक्त करना। रिहा करना। (३) हाथ से छोड़ना जिसमें कोई वस्तु दूर जा पड़े। प्रक्षेपण।

विमोघ–वि० [सं०] व्यर्थ न होनेवाला। न चूकनेवाला। खाली न जानेवाला। अमोघ।

विमोचक–वि० [सं०] (१) मुक्त करनेवाला। छुड़ानेवाला। (२) बंधन खोलनेवाला। (३) गिरानेवाला। छोड़नेवाला। डालनेवाला।

विमोचन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विमोचनीय, विमोचित, विमोच्य] (१) बंधन, गाँठ आदि खोलना। (२) बंधन से छुड़ाना। मुक्त करना। रिहा करना। (३) गाड़ी से बैल आदि को खोलना। (४) निकालना। बाहर करना। जैसे,—अश्रु विमोचन। (५) इस प्रकार अलग करना कि कोई वस्तु दूर जा पड़े। छोड़ना। फेंकना। जैसे,—धनुष से बाण। (६) गिराना। डालना।

विमोचना✽–क्रि० स० [सं० विमोचन] (१) बंधन आदि खोलना। (२) छुटकारा देना। रिहा करना। मुक्त करना। छोड़ना। (३) गिराना। टपकाना। (४) निकालना। बाहर करना। उ०—जब तें परदेस सिधारे पिया अँसुआ अँखियानि विमोचति सी।—बेनीप्रवीन।

विमोचनीय–वि० [सं०] छोड़ने योग्य। मुक्त करने योग्य।

विमोचित–वि० [सं०] (१) खुला हुआ। जो बँधा न हो। (२) जो छोड़ दिया गया हो। मुक्त किया हुआ।

विमोच्य–वि० [सं०] (१) छोड़ने योग्य। मुक्त करने योग्य। (२) जिसे छोड़ना, खोलना या मुक्त करना हो।

विमोह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोह। अज्ञान। भ्रम। भ्रांति। उ०—मनु बसुदेव विमोह कंस से। मोचक माधव दुविद ध्वंस से।—रघुराज। (२) बेसुध होना। अचेत होना। बेहोशी। (३) बहुत लुभाना या मोहित होना। आसक्ति। (४) एक नरक का नाम।

विमोहक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोहनेवाला। मन खींचनेवाला। लुभावना। (२) मन में लोभ उत्पन्न करनेवाला। ललचानेवाला। (३) ज्ञान या सुध हरनेवाला। (४) एक राग जो हिंडोल राग का पुत्र माना जाता है।

विमोहन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विमोहित, विमोही] (१) मोहित करना। मन लुभाना। मुग्ध करना। (२) दूसरे का मन वश में करना। (३) सुध बुध भुलाना। ऐसा प्रभाव डालना कि चित्त ठिकाने न रहे। (४) कामदेव के पाँच बाणों में से एक। (५) एक नरक का नाम।

विमोहनशील–वि० [सं० विमोहन+शील] (१) भ्रमकारी। धोखा देनेवाला। चक्कर में डालनेवाला। भ्रांत करनेवाला। उ०—गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज विमोहनशीला।—तुलसी। (२) मोहित करनेवाला। लुभानेवाला।

विमोहना✽–क्रि० अ० [सं० विमोहन] (१) मोहित होना। लुभा जाना। आसक्त होना। उ०—एक नयन कवि मुहमद गुनी।

सोइ विमोहा जो कवि सुनी।—जायसी। (२) बेसुध होना। तन मन की सुध न रहना। (३) भ्रांत होना। धोखा खाना।

क्रि० स० (१) मोहित करना। लुभाना। (२) ऐसा प्रभाव डालना कि तन मन की सुध न रहे। बेसुध करना। (३) भ्रांति में करना। धोखे में डालना।

विमोहा-संज्ञा स्त्री० [?] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में दो रगण (ऽ।ऽ) होते हैं। इसे 'जोहा' 'विजोहा' और 'विज्जोहा' भी कहते हैं। वि० दे० "विजोहा"।

विमोहित-वि० [सं०] (१) लुभाया हुआ। मुग्ध। उ०—भ्रम अस बहुत विमोहित भये। धुन धुन सीस जीव दै गये। (२) तन मन की सुध भूला हुआ। (३) मूर्च्छित। उ०—यह सुनना न पड़े सोई अच्छा है और यही कहते कहते वह विमोहित हो गई।—कादंबरी।

विमोही-वि० [सं० विमोहिन्] [स्त्री० विमोहिनी] (१) मोहित करनेवाला। जी लुभानेवाला। मन आकर्षित करनेवाला। (२) सुध बुध भुलानेवाला। ऐसा प्रभाव डालनेवाला कि तन मन की सुध न रहे। (३) मूर्च्छित या बेहोश करनेवाला। (४) भ्रम में डालनेवाला। भ्रांत करनेवाला। (५) जिसे मोह या दया न हो। जिसे ममता या स्नेह न हो। निष्ठुर। कठोर-हृदय। उ०—जिउ गँवाइ सो गएउ विमोही। भा बिनु जिउ, जिउ दीन्हेसि ओही।—जायसी।

विमौट-संज्ञा पुं० [सं० वल्मीक प्रा० वम्मी + औट (प्रत्य०)] दीमकों का उठाया हुआ मिट्टी का ढूह। बाँबी। उ०—गोहर हैं तुम प्राव जमना। बसे विमौट एक कहुँ मन माँ।—रघुराज।

वियंग ॐ-संज्ञा पुं० [हिं० विय + अंग] दो अंगवाले, महादेव। उ०—करहि वियंगा आलिंगन। तेहि चन्द्रहिं कबहूँ सालिंगन।—शंकरदिग्विजय।

वियॐ-वि० [सं० द्वि, द्वितीय, प्रा० बिय] (१) दो। जोड़ा (२) दूसरा। उ०—कहत सबै कवि कमल से, मो मत नैन पखान। नतरु कत इनि विय लगत उपजत विरह कृशान।—विहारी।

वियन्मणि-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

वियत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश। (२) वायुमण्डल।

वि० गमनशील।

वियत्पताका-संज्ञा स्त्री० [सं० वियत + पताका] विद्युत्। बिजली।

वियति-संज्ञा पुं० [सं०] नहुष राजा के एक पुत्र का नाम। (भागवत)

वियद्‌गंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा।

वियम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संयम। इंद्रियदमन। (२) दुःख। क्लेश। यातना।

वियात-वि० [सं०] (१) रास्ते से भटका हुआ। पथ-भ्रष्ट। (२) गया बीता। (३) निर्लज्ज। बेहया।

वियाम-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रिय निग्रह। संयम।

वियुत वि० [सं०] (१) वियुक्त। अलग। (२) रहित। हीन।

वियुक्त-वि० [सं०] (१) जो संयुक्त न हो। जिसकी जुदाई हो गई हो। बिछुड़ा हुआ। वियोग प्राप्त। (२) जुदा। अलग। पृथक्। (३) रहित। हीन।

वियो ॐ-वि० [सं० द्वितीय, प्रा० बीय] दूसरा। अन्य। उ०—ज्ञान स्मारत पक्ष को नाहिन कोउ खण्डन वियो।—नाभादास।

वियोग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संयोग का अभाव। मिलाप का न होना। विच्छेद। (२) पृथक् होने का भाव। अलगाव। (३) दो प्रेमियों का एक दूसरे से अलग होना। विरह। जुदाई।

विशेष—साहित्य में शृंगार रस दो प्रकार का माना गया है—संयोग शृंगार (या संभोग शृंगार) और वियोग शृंगार (या विप्रलंभ शृंगार)। वियोग की दशा तीन प्रकार की होती है—पूर्वराग, मान और प्रवास।

(४) गणित में राशि का व्यवकलन।

वियोगांत-वि० [सं०] (नाटक या उपन्यास आदि) जिसकी कथा का अंत दुःख-पूर्ण हो।

विशेष—आधुनिक नाटक दो प्रकार के माने जाते हैं—सुखांत और दुःखांत। इन्हीं को कुछ लोग संयोगांत और वियोगांत भी कहते हैं। भारतवर्ष में संयोगांत या सुखांत नाटक लिखने की ही चाल पाई जाती है; दुःखांत का निषेध ही मिलता है। पर पूर्वकाल में दुःखांत नाटक भी लिखे जाते थे, इसका आभास कालिदास के पूर्ववर्ती महाकवि भास के नाटकों से मिलता है।

वियोगिन-संज्ञा स्त्री० दे० "वियोगिनी"।

वियोगिनी-वि० स्त्री० [सं०] जो अपने पति या प्रिय से वियुक्त हो। जो अपने प्यारे से बिछुड़ी हुई हो। जिसका पति या नायक पास में न हो और जो उसके न रहने से दुःखी हो।

वियोगी-वि० [सं० वियोगिन्] [स्त्री० वियोगिनी] जो प्रिया से वियुक्त हो। जो प्रियतमा से बिछुड़ा हुआ हो। विरही।

संज्ञा पुं० (१) वियोगी पुरुष। (२) चक्रवाक। चकवा।

वियोजक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अलग करनेवाला। दो मिली हुई वस्तुओं को पृथक् करनेवाला। (२) गणित में वह संख्या जिसे किसी दूसरी बड़ी संख्या में से घटाना हो।

वियोजन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वियोजनीय, वियोजित, वियोज्य] (१) मिली हुई वस्तुओं को अलग करना। जुदा करना। पृथक् करना। (२) गणित में एक संख्या में से उससे कुछ छोटी दूसरी संख्या निकालने या घटाने की क्रिया। बाकी।

वियोजित-वि० [सं०] (१) पृथक् किया हुआ। अलग किया हुआ। (२) रहित। शून्य।

वियोज्य-वि० [सं०] (१) वियोजन के योग्य। पृथक् करने योग्य। (२) जिसे अलग करना हो। जिसे जुदा करना हो।
संज्ञा पुं० वह संख्या जिसमें से कोई संख्या घटानी हो। (गणित)

विरंग-वि० [सं०] (१) बुरे रंग का। बदरंग। विवर्ण। फीका। उ०—कैधौं करी कोकिल कुरंग बार कोर कोर कुदि कुदि केहरि कलंक लंक हहली। जरि जरि जम्बूनद विद्रुम विरंग होत, अंग फारि दाड़िम त्वचा भुजंग बदली। (२) अनेक रंगों का। कई वर्णों का।
यौ०—रंग विरंग, रंग विरंगा।

विरंग काबुली-संज्ञा पुं० [फा०] वायविडंग। भाभीरंग।

विरंच-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

विरंचि-संज्ञा पुं० [सं०] सृष्टि रचनेवाला, ब्रह्मा। विधाता। उ०—संचि विरंचि निकाई मनोहर लाजति मूरतिवन्त बनाई। तापर तो वह भाग बड़े मतिराम लसै पति प्रीति सुहाई।—*मतिराम*।

विरंचिसुत-संज्ञा पुं० [सं० विरंचि+सुत] ब्रह्मा के पुत्र, नारद। उ०—सुनि विरंचि-सुति अति हरषाए। कहत सुनहु जो चहत सुहाए।—*गोपाल*।

विरंज फूल-संज्ञा पुं० [हिं० विरंज+फूल] एक प्रकार का धान या जड़हन।

विरक्त-वि० [सं०] (१) जो अनुरक्त न हो। जिसका जी हटा हो। जिसे चाह न हो। विमुख। जैसे,—ऐसी बातों से वे सदा विरक्त रहते हैं। (२) जो कुछ प्रयोजन न रखता हो। उदासीन। (३) अप्रसन्न। खिन्न। जैसे,—उनकी बातें सुनकर वे और भी विरक्त हो गए।
संज्ञा पुं० ऐसे बाजे जो केवल ताल देने के काम में आते हैं।

विरक्तता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनुराग का अभाव। विरक्त होने का भाव। (२) उदासीनता।

विरक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनुराग का अभाव। चाह का न होना। जी का हटा रहना। विराग। विमुखता। (२) उदासीनता। (३) अप्रसन्नता। खिन्नता।

विरचन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विरचनीय, विरचित] प्रणयन। निर्माण। बनाना।

विरचना-क्रि० स० [सं० विरचन] (१) रचना। बनाना। निर्माण करना। (२) अलंकृत करना। सजाना।
क्रि० अ० [सं० वि+रंजन] विरक्त होना। जी का हटना। उचटना। उ०—विरचि मन फेरि राच्यो आइ।—*सूर*।

विरचयिता-संज्ञा पुं० [सं०] रचनेवाला। बनानेवाला।

विरचित-वि० [सं०] (१) बनाया हुआ। निर्मित। (२) रचा हुआ। लिखित। जैसे,—कालिदास विरचित शकुंतला नाटक।

विरज-वि० [सं० विरजस्] (१) रजोगुण रहित। सुख-वासना आदि से मुक्त। (२) जिस पर धूल या गर्द न हो। निर्मल। स्वच्छ। साफ़। (३) निर्दोष। बेऐब। (४) (स्त्री) जिसका रजोधर्म बंद हो गया हो।
संज्ञा पुं० (१) विष्णु। (२) शिव। (३) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

विरजप्रभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

विरजमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ जो उड़ीसा में जाजपुर के पास माना गया है। यहाँ देवी की महाजया नामक मूर्ति है। (प्रभासखंड)

विरजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कपित्थानी का पौधा जिसकी पत्तियाँ कैथ की पत्तियों के समान होती हैं। (२) श्रीकृष्ण की एक प्रेमिका सखी जिसने राधा के भय से नदी का रूप धारण कर लिया था।
विशेष—इसकी कथा ब्रह्मवैवर्त पुराण के श्रीकृष्ण जन्मखंड में दी हुई है। गोलोक में एक बार कृष्ण जी राधा को न देखकर विरजा नाम की एक गोपी के पास चले गए। खबर पाते ही राधा दौड़ी। श्रीकृष्ण तो अंतर्धान हो गए; और विरजा बेचारी डर के मारे नदी हो गई। जब कृष्ण इसके विरह में बहुत व्याकुल हुए, तब इसने फिर अपना पूर्व रूप धारण कर लिया।

विरजाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक पर्वत जो मेरु के उत्तर ओर है।

विरजाक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] उड़ीसा में एक तीर्थ स्थान जो जाजपुर के पास माना जाता है।

विरट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंधा। (२) अगुरु। अगर वृक्ष।

विरण-संज्ञा पुं० [सं०] वरिन नाम की घास।

विरत-वि० [सं०] (१) जो अनुरक्त न हो। जिसे चाह न हो। जिसका मन हटा हो। विमुख। जैसे,—स्त्री या भोग विलास से विरत होना। (२) जो लगा हुआ न हो। जो लीन या तत्पर न हो। जिसने अपना हाथ हटा लिया हो। निवृत्त। जैसे,—किसी कार्य्य से विरत होना। (३) जिसने सांसारिक विषयों से अपना मन हटा लिया हो। विरक्त। वैरागी। (४) विशेष रूप से रत। बहुत लीन। बिल्कुल लगा हुआ। उ०—कहुँ गनक गनत, जोगी जपत जंत्र मंत्र मन विरत नित।—*गुमान*।

विरति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनुराग का अभाव। चाह का न होना। (२) जी का उचटना। उदासीनता। (३) सांसारिक विषयों से जी का हटना। वैराग्य। उ०—जोग तें विरति, विरति तें ज्ञाना।—*तुलसी*।

विरथ–वि० [सं०] (१) बिना रथ का। जिसके पास रथ या सवारी न हो। उ०—रावण रथी, विरथ रघुबीरा।—तुलसी। (२) रथ से गिरा हुआ। (३) पैदल।

विरथीकरण–संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध में रथ नष्ट करके शत्रु को रथहीन करना।

विरद–संज्ञा पुं० [सं० विरुद] (१) बड़ा नाम। लंबा चौड़ा या सुंदर नाम। (२) ख्याति। प्रसिद्धि। उ०—बड़े न हूजै गुनन बिनु विरद बड़ाई पाय। कहत धतूरा को कनक गहनो गढ्यो न जाय।—बिहारी। (३) यश। कीर्ति।

विशेष—दे० "विरुद"।

वि० [सं०] बिना दाँत का।

विरदावली–संज्ञा स्त्री० [सं० विरुदावली] यश की कथा। कीर्ति की गाथा। प्रशंसा के गीत।

विरदैत*–वि० [हिं० विरद+ऐत (प्रत्य०)] बड़े विरदवाला। कीर्ति या यशवाला। बड़े नामवाला।

विरमण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विराम करना। रुकना। ठहरना। थमना। (२) रम जाना। मन लगाना। (३) संभोग। विलास। (४) विरत होना। निवृत्त होना। त्याग। जैसे,—अदत्तदान-विरमण। (जैन)

विरमना*†–क्रि० अ० [सं० विरमण] (१) रम जाना। मन लगाना। अनुरक्त हो जाना। (२) विराम करना। ठहरना। रुकना। (३) मोहित होकर रुक जाना। उ०—सूरदास कित विरमि रहे प्रभु आवत नाहिं चले।—सूर। (४) वेग आदि का थमना या कम होना। उ०—विरमैं नहिं ताप जताए बिन, जगजीवन की भई रीति यही। करें आदिर कौन सों काज लगी जो अकाज न आज फिरै उमही।

क्रि० अ० दे० "विलंबना"।

विरमाना*†–क्रि० स० [हिं० विरमना का स० रूप] (१) दूसरे का मन लगाना। अनुरक्त करना। (२) मोहित करके रोक लेना। फँसाना। उ०—उत कुबजा विरमायो श्यामहि, इत यह दशा भई।—सूर। (३) फँसा रखना। मशगूल रखना। उ०—देति न लेति कछू हँसिके यही बेर लौं बातन ही विरमावति। (४) भुलावे में रखना। भ्रम में डाले रहना।

क्रि० स० दे० "विलंबाना"।

विरल–वि० [सं०] (१) जो घना न हो। जिसके बीच बीच में अवकाश हो। जिसके बीच बीच में खाली जगह हो। 'सघन' का उलटा। जैसे,—आगे चलकर यह वन विरल होता गया है। (२) जो पास पास न हों। जो दूर दूर पर हों। (३) जो अधिकता से न मिले। जो केवल कहीं कहीं पाया जाय। दुर्लभ। जैसे,—ऐसे लोग संसार में बहुत विरल हैं। (४) जो गाढ़ा न हो। पतला। (५) शून्य। निर्जन। (६) अल्प। थोड़ा।

विरलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का झीना या महीन वस्त्र।

विरलीकरण–संज्ञा पुं० [सं०] सघन को विरल करना।

विरव–संज्ञा पुं० [सं०] अनेक प्रकार के शब्द।

वि० शब्द-रहित। नीरव।

विरस–वि० [सं०] (१) रसहीन। फीका। नीरस। बिना स्वाद का। उ०—जल पय सरिस बिकाय, देखहु प्रीति की रीति यह। विरस तुरत ह्वै जाय, कपट खटाई परत ही। (२) जो अच्छा न लगे। विरक्ति-जनक। जी हटानेवाला। अप्रिय। अरुचिकर। (३) (काव्य) जो रसहीन हो गया हो। जिसमें रस का निर्वाह न हो सका हो।

संज्ञा पुं० काव्य में रस-भंग।

विशेष—केशव ने इसे 'अनरस' के पाँच भेदों में एक माना है।

विरसता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीरसता। फीकापन। (२) रसभंग। मज़ा किरकिरा होना।

विरह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु से रहित होने का भाव। किसी वस्तु का अभाव। किसी वस्तु के बिना स्थिति। (२) किसी प्रिय व्यक्ति का पास से अलग होना। विच्छेद। वियोग। जुदाई। (३) वियोग का दुःख। जुदाई का रंज।

वि० रहित। शून्य। बग़ैर। बिना।

विरहा–संज्ञा पुं० [हिं० विरह] एक प्रकार का गीत जिसे अहीर और गड़रिए गाते हैं। वि० दे० "विरहा"।

विरहिणी–वि० स्त्री० [सं०] जिसे प्रिय या पति का वियोग हो। जो पति या नायक से अलग होने के कारण दुखी हो।

विरहित–वि० [सं०] रहित। शून्य। बिना। उ०—आश्रम-बरन-धरम-विरहित जग लोक-वेद मरजाद गई है।—तुलसी।

विरही–वि० [सं० विरहिन्] [स्त्री० विरहिणी] जिससे प्रिया का वियोग हो। जो प्रियतमा से अलग होने के कारण दुखी हो। उ०—विरही कहँ लौं आपु सँभारै?—सूर।

विरहोत्कंठिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] नायिका भेद के अनुसार प्रिय के न आने से दुखी वह नायिका जिसके मन में पूरा विश्वास हो कि पति या नायक आवेगा; पर फिर भी किसी कारणवश वह न आवे।

विराग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनुराग का अभाव। चाह का न होना। लगन न होना। (२) किसी वस्तु से न विशेष प्रेम होना न द्वेष। उदासीन भाव। (३) सांसारिक सुखों की चाह न रहना। विषय-भोग आदि से निवृत्ति। वैराग्य। (४) एक में मिले हुए दो राग। (एक राग में जब दूसरा राग मिल जाता है, तब उसे विराग कहते हैं।)

विरागी–वि० [सं० विरागिन्] [स्त्री० विरागिनी] (१) जिसे रा

न हो। जिसे चाह न हो। जिसने मन न लगाया हो। उदासीन। विमुख। (२) जिसने सांसारिक विषयों से मन हटा लिया हो। संसारत्यागी। विरक्त।

विराजन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विराजमान, विराजित] (१) शोभित होना। (२) वर्त्तमान होना। रहना।

विराजना-क्रि० अ० [सं० विराजन] (१) शोभित होना। प्रकाशित होना। सोहना। फबना। (२) वर्त्तमान होना। मौजूद रहना। उपस्थित रहना। होना। रहना। (३) बैठना। जैसे,—आइए, विराजिए।

विराजमान-वि० [सं०] (१) प्रकाशमान। चमकता हुआ। चमक दमकवाला। (२) विद्यमान। उपस्थित। मौजूद। जैसे,—पंडित जी यहाँ पहले ही से विराजमान हैं। (३) बैठा हुआ। उपविष्ट।

विराजित-वि० [सं०] (१) सुशोभित। (२) प्रकाशित। (३) उपस्थित। विद्यमान।

विराट्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्म का वह स्थूल स्वरूप जिसके अंदर अखिल विश्व है अर्थात् संपूर्ण विश्व जिसका शरीर है। विश्व-शरीरमय अनंत पुरुष।

विशेष—इस भावना का निरूपण ऋग्वेद में इस प्रकार है—"उस पुरुष के सहस्रों मस्तक, सहस्रों आँखें और सहस्रों चरण हैं। वह पृथ्वी में सर्वत्र व्याप्त रहने पर भी दस अंगुल ऊपर अवस्थित है। पुरुष ही सब कुछ है—जो हुआ है और जो होगा। उसकी इतनी बड़ी महिमा है, पर वह इससे कहीं बड़ा है। संपूर्ण विश्व और भूत एक पाद है, आकाश का अमर अंश त्रिपाद है। उससे विराट् उत्पन्न हुए और विराट् से अधिपुरुष। उन्होंने आविर्भूत होकर संपूर्ण पृथ्वी को आगे पीछे घेर लिया।" भगवद्गीता के अनुसार भगवान ने जो अपना विराट् स्वरूप दिखाया था, उसमें समस्त लोक, पर्वत, समुद्र, नद, नदी, देवता इत्यादि दिखाई पड़े थे। बलि को छलने के लिये भगवान् ने जो त्रिविक्रम रूप धारण किया था, उसे भी विराट् कहते हैं। पुराणों में विराट् को ब्रह्मा का प्रथम पुत्र कहा है। ब्रह्मा दो भागोंमें विभक्त हुए—स्त्री और पुरुष। स्त्री-अंश से विराट् की उत्पत्ति हुई जिसने स्वायंभुव मनु को उत्पन्न किया। स्वायंभुव मनु से प्रजापतियों की उत्पत्ति हुई।

(२) क्षत्रिय। (३) कांति। दीप्ति।

वि० बहुत बड़ा। बहुत भारी। जैसे,—विराट् सभा, विराट् आयोजन।

विराट् स्वराज-संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ। एक प्रकार का एकाह। (श्रौत सूत्र)

विराट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मत्स्य देश जहाँ के राजा के यहाँ पाँचो पांडव अज्ञातवास के समय छिपे थे।

विशेष—मनुस्मृति में मत्स्य देश का उल्लेख कुरुक्षेत्र और पांचाल के साथ है; इससे अनुमान होता था कि वह थानेसर के आसपास होगा। पर अब यह बात एक प्रकार से निश्चित हो गई है कि अलवर और जयपुर के बीच का प्रदेश ही महाभारत के समय मत्स्य देश कहलाता था। उक्त प्रदेश के अंतर्गत 'बैराट' और 'माचड़ी' दो स्थान अब तक 'विराट' और 'मत्स्य' का स्मरण दिलाते हैं।

(२) मत्स्य देश का राजा जिसके यहाँ अज्ञातवास के समय पांडव नौकर रहते थे। (३) महाभारत का एक पर्व। (४) संगीत में एक ताल का नाम।

विराटक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का निम्न कोटि का हीरा या नग जो विराट देश में निकलता था। राजपट्ट। राजावर्त्त।

विराटज-संज्ञा पुं० दे० "विराटक"।

विराणी-संज्ञा पुं० [सं० विराणिन्] हस्ति। हाथी।

विरातक-संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन वृक्ष।

विराध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीड़ा। क्लेश। तकलीफ। (२) पीड़ित करनेवाला। सतानेवाला। (३) एक राक्षस जिसे दंडकारण्य में लक्ष्मण ने मारा था।

विशेष—इसके पिता का नाम सुपर्यन्य और माता का नाम शतह्रदा था। यह राक्षस पूर्व जन्म में तुंबुरु नामक गंधर्व था जो वैश्रवण या कुबेर के शाप से राक्षस-योनि में उत्पन्न हुआ था। इसके बहुत प्रार्थना करने पर वैश्रवण ने कहा था—"अच्छा, जाओ। जब दशरथ के यहाँ भगवान् अवतार लेंगे, तब तुम्हारा शाप छूटेगा"। (अग्निपुराण)

रामायण में लिखा है कि दंडकारण्य में विराध सीता को लेकर भागने लगा। राम ने बहुत बाण चलाए, पर वह युद्ध में न मारा गया और राम तथा लक्ष्मण दोनों को उठाकर ले चला। रास्ते में फिर युद्ध होने लगा और दोनों भाइयों ने मिलकर उसकी भुजाएँ काट डालीं। पर वह तबभी मरता नहीं था। अंत में लक्ष्मण ने एक बड़ा सा गड्ढा खोदा और उसका शरीर उसमें डाल दिया गया। मरने के पहले इसे अपने पूर्व शरीर और शाप का स्मरण हो आया था।

विराधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपकार करना। हानि करना। (२) पीड़ित करना। सताना। तंग करना।

विराम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी क्रिया या व्यापार का कुछ देर के लिये बंद होना। रुकना या थमना। ठहराव। ठहरना। (२) चलने की थकावट दूर करनेके लिये रास्ते में ठहरना। चलना रोकना। सुस्ताना। दम मारना। विश्राम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(३) वाक्य के अंतर्गत वह स्थान जहाँ बोलते समय

ठहरना पड़ता हो। (४) छंद के चरण में वह स्थान जहाँ पढ़ते समय कुछ ठहरना पड़े। यति।

विरामब्रह्म–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ब्रह्म ताल के चार भेदों में से एक भेद।

विराल–संज्ञा पुं० [सं०] बिड़ाल। बिल्ली।

विराव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शब्द। बोली। कलरव। उ०—कान परी कोकिला की काकली कलित जो कलापिन की कूक कल कोमल विराव की।—देव
(२) हल्ला गुल्ला। शोर गुल।
वि० शब्द रहित।

विराविणी–वि० स्त्री० [सं०] (१) बोलनेवाली। शब्द करनेवाली। (२) रोने चिल्लानेवाली।
संज्ञा स्त्री० झाड़ू।

विरावी–वि० [सं० विराविन्] [स्त्री० विराविणी] (१) शब्द करनेवाला। बोलनेवाला। (२) रोने चिल्लानेवाला।

विरास॰–संज्ञा पुं० दे० "विलास"।

विरासी ॰–वि० दे० "विलासी"। उ०—जो लगि कालिंदि होसि विरासी। पुनि सुरसरि होइ समुद परासी।—जायसी।

विरिंच–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु। (३) शिव।

विरिंचन–संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

विरिक्त–वि० [सं०] (१) जिसे विरेचन दिया गया हो। (२) जिसका पेट छूटा हो। जिसे दस्त आ रहे हों।

विरुआ–वि० दे० "बेरुआ" या "बेरुख"।

विरुज–वि० [सं०] रोग रहित। नीरोग। स्वस्थ।

विरुझना॰–क्रि० अ० दे० "उलझना"।

विरुत–वि० [सं०] रव-युक्त। अव्यक्त शब्द-युक्त। कूजित। गूँजता हुआ।

विरुद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुण, प्रताप आदि का वर्णन। राजाओं की स्तुति या प्रशंसा जो सुन्दर भाषा में की गई हो। यशकीर्तन। प्रशस्ति। (२) यश या प्रशंसासूचक पदवी जो राजा लोग प्राचीन काल में धारण करते थे। जैसे, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य। (इसमें चंद्रगुप्त तो नाम है और 'विक्रमादित्य' विरुद है।) (३) यश। कीर्ति।

विरुदावली–संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी के गुण, प्रताप, पराक्रम आदि का सविस्तर कथन। यश-वर्णन। प्रशंसा।

विरुद्ध–वि० [सं०] (१) जो हित के अनुकूल न हो। विरोध-युक्त। प्रतिकूल। खिलाफ़। जैसे,—आज कल वह हमारे विरुद्ध है। (२) अप्रसन्न। वाम। (३) जो मेल में न हो। जो एक दम भिन्न या उलटा हो। विपरीत। जैसे,—यह बात उस बात से सर्वथा विरुद्ध है। (४) जो उचित से सर्वथा भिन्न हो। जो न्याय या नीति के अनुकूल न हो। विपरीत। अनुचित। जैसे,—विरुद्ध आचरण।
क्रि० वि० प्रतिकूल स्थिति में। खिलाफ़। जैसे,—आजकल वह हमारे विरुद्ध चल रहा है।

विरुद्धकर्मा–संज्ञा पुं० [सं० विरुद्धकर्मन्] (१) विरुद्ध कर्म करनेवाला। विपरीत आचरण का मनुष्य। बुरे चाल चलन का आदमी। (२) केशव के अनुसार श्लेष अलंकार का एक भेद जिसमें एक ही क्रिया के कई परस्पर विरुद्ध फल दिखाए जाते हैं। उ०—वारुणी को राग होत सूरज कांत अस्त, बढ़ो द्विजराज को जु होत यह कैसो है ? इस पद का साधारण अर्थ तो यह है कि पश्चिम दिशा के लाल होते ही सूर्य्य तो अस्त होता है और चन्द्रमा उदय, यह कैसी बात है ! पर श्लेष से इसका अर्थ होता है कि वारुणी (शराब) की चाह होते ही शूरवीर का तो पराभव होता है, पर वारुणी (उपनिषद् की एक विद्या) की चाह होते ही ब्राह्मण की उन्नति होती है।

विरुद्धता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरुद्ध होने का भाव। (२) प्रतिकूलता। विपरीतता। उलटापन।

विरुद्धमति-कारिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक काव्य-दोष जो ऐसे पद या वाक्य के प्रयोग से होता है जिससे वाच्य के संबंध में विरुद्ध या अनुचित बुद्धि हो सकती है। जैसे, "भवानीश" शब्द के प्रयोग से। 'भवानी' शब्द का अर्थ ही है 'शिव' की पत्नी। उसमें ईश लगाने से सहसा यह ध्यान हो सकता है कि "शिव की पत्नी" का कोई और भी पति है।

विरुद्धरूपक–संज्ञा पुं० [सं०] केशव के अनुसार रूपक अलंकार का एक भेद जिसमें कही हुई बात बिल्कुल 'अनमिल' अर्थात् असंगत या असंबद्ध सी जान पड़ती है, पर विचार करने पर अर्थात् रूपक के दोनों पक्षों (उपमेय, उपमान) का ध्यान करने पर अर्थ संगत ठहरता है। इसमें उपमेय का कथन नहीं होता, इससे यह "रूपकातिशयोक्ति" ही है।

विरुद्ध हेत्वाभास–संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में वह हेत्वाभास जहाँ साध्य के साधक होने के स्थान पर साध्य के अभाव का साधक हेतु हो। जैसे,—यह द्रव्य वह्निमान् है; क्योंकि वह महा ह्रद है। यहाँ महा ह्रद होना वह्नि के होने का हेतु नहीं है, वरन् वह्नि के अभाव का हेतु है।

विरुद्धार्थ दीपक–संज्ञा पुं० [सं०] काव्यादर्श के अनुसार दीपक अलंकार का एक भेद जिसमें एक ही बात से दो परस्पर विरुद्ध क्रियाओं का एक साथ होना दिखाया जाता है। जैसे,—जलकण मिली वायु ग्रीष्म-ताप को घटाती और विरह-ताप को बढ़ाती है।

विरूढ़–वि० [सं०] (१) आरूढ़। चढ़ा हुआ। (२) अंकुरित।

जमा हुआ। बीज से फूटा हुआ। (३) जात। उत्पन्न। पैदा। (४) खूब जमा हुआ। खूब बैठा हुआ। खूब गड़ा या धँसा हुआ।

विरूढ़क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम। (२) एक शाक्य वंशीय राजा का नाम। (३) एक लोकपाल का नाम।

विरूथिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख कृष्ण एकादशी।

विरूप-वि० [सं०] [स्त्री० विरूपा] (१) कई रंग रूप का। कई शकलों का। तरह तरह का। (२) कुरूप। बदसूरत। भद्दा। (३) बदला हुआ। परिवर्तित। (४) शोभाहीन। शोभा रहित। (५) जो अनुरूप न हो। विरुद्ध। उलटा। (६) दूसरी तरह का। बिलकुल भिन्न।

संज्ञा पुं० पिपरामूल।

विरूपता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरूप होने का भाव। (२) कुरूपता। बदसूरती। (३) भद्दापन। बेढंगापन।

विरूप-परिणाम संज्ञा पुं० [सं०] एकरूपता से अनेकरूपता अर्थात् निर्विशेषता से विशेषता की ओर परिवर्त्तन। एक मूल प्रकृति से अनेक विकृतियों की ओर गति।

विशेष—सांख्य में परिणाम दो प्रकार के कहे गए हैं—स्वरूप परिणाम और विरूप परिणाम। विरूप-परिणाम द्वारा प्रकृति से नाना रूप पदार्थों का विकास होता है; और स्वरूप-परिणाम द्वारा फिर नाना पदार्थ क्रमशः अपने रूप खोते हुए प्रकृति में लीन होते हैं। एक परिणाम सृष्टि की ओर अग्रसर होता है और दूसरा लय की ओर।

विरूपा-वि० स्त्री० [सं०] कुरूप। बदसूरत। उ०—शूर्पणखे जो विरूपा करी तुम तातें दियो हमहूँ दुख भारी।—केशव।

संज्ञा स्त्री० (१) दुरालभा। (२) अतिविषा। (३) यम की पत्नी का नाम।

विरूपाक्ष-वि० [सं०] जिसके नेत्र बेढंगे या डरावने हों।

संज्ञा पुं० (१) शिव। शंकर। (२) शिव के एक गण का नाम। (३) रावण का एक सेनानायक जिसे हनुमान ने प्रमोद वन उजाड़ने के समय मारा था। (४) एक राक्षस का नाम जिसे सुग्रीव ने राम-रावण युद्ध में मारा था। (५) रावण का एक मंत्री। (६) एक दिग्गज का नाम। (७) एक नाग का नाम।

विरूपिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुरूप स्त्री। बदसूरत औरत।

विरूपी-वि० [सं० विरूपिन्] [स्त्री० विरूपिणी] (१) बदसूरत। कुरूप। (२) डरावनी सूरत का।

संज्ञा पुं० गिरगिट।

विरेक-संज्ञा पुं० [सं०] दस्तावर दवा। जुलाब। विरेचन।

विरेचक-वि० [सं०] दस्त लानेवाला। मलभेदक। दस्तावर।

विरेचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मलभेदक औषध। दस्त लानेवाली दवा। जुलाब। जैसे,—रेंड़ी का तेल। (२) दस्त लाना। मल भेद करने की क्रिया।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में विरेचन की विधि विशेष विस्तार से लिखी है; क्योंकि कुपित मल ही सब रोगों का कारण कहा गया है। पूरी विधि के साथ विरेचन का विधान स्नेह, स्वेदन और वमन के उपरांत किया गया है। शरद और वसंत में विरेचन विधेय ठहराया गया है। बालक, वृद्ध, क्षतग्रस्त, रोग से अत्यंत क्षीण, भयार्त्त, श्रांत, पिपासार्त्त और मतवाले को विरेचन नहीं कराना चाहिए।

विरेच्य-वि० [सं०] विरेचन के योग्य। जो दस्तावर दवा देने के योग्य हो।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में नीचे लिखे रोगियों को विरेचन के योग्य कहा है—गुल्म, बवासीर, विस्फोटक (चेचक), कमल रोग, जीर्ण ज्वर, उदर रोग, विष, पेट की पीड़ा, योनि और शुक्रगत रोग, डीका, कुष्ठ, मेह, श्लीपद (फीलपाव), उन्माद, कास, श्वास, विसर्प इत्यादि से पीड़ित रोगियों को विरेचन देना चाहिए।

विरोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमक। दीप्ति। (२) रश्मि। किरन। (३) छिद्र। छेद। (४) चंद्रमा। (५) विष्णु।

विरोचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमकना। प्रकाशित होना। (२) दीप्तियुक्त। प्रकाशमान। (३) सूर्य की किरण। (४) सूर्य। (५) चंद्र। (६) अग्नि। (७) मदार का पौधा। आक। (८) विष्णु। (९) रोहित वृक्ष। (१०) श्योनाक वृक्ष। (११) पूतिकरंज। (१२) प्रह्लाद के पुत्र और बलि के पिता।

विरोचनसुत-संज्ञा पुं० [सं०] राजा बलि।

विरोध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेल में न होना। किसी दूसरी वस्तु के साथ अत्यंत भिन्नता। विपरीत भाव। अनैक्य। जैसे,—इन दोनों भावों का परस्पर विरोध है। (२) मेल का न होना। वैर। शत्रुता। बिगाड़। अनबन। जैसे,—इन दोनों का विरोध बहुत पुराना है।

यौ०—वैर विरोध।

(३) दो बातों का एक साथ न हो सकना। विप्रतिपत्ति। व्याघात। असद्भाव। जैसे,—आपके कथन में पूर्वापर विरोध है। (४) उलटी स्थिति। सर्वथा दूसरे प्रकार की स्थिति। (५) नाश। (६) नाटक का एक अंग जिसमें किसी बात का वर्णन करते समय विपत्ति का आभास दिखाया जाता है। (७) एक अर्थालंकार जिसमें जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य में से किसी एक का दूसरी जाति, गुण, क्रिया या द्रव्य में से किसी एक के साथ विरोध होता है। जैसे,—"तुम्हारे वियोग में वह कामिनी को मलयानिल दावानल हो रहा है।" यहाँ जाति के साथ जाति का विरोध है। इसी प्रकार यह

कहना गुण का द्रव्य के साथ जाति-विरोध होगा—"तुम्हारे बिना चंद्रमा विष की ज्वाला से पूर्ण हो गया"।

विरोधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरोध करनेवाला। (२) नाटक में वे विषय जिन का वर्णन निषिद्ध हो।

विरोधन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विरोधी, विरोधित, विरोध्य] (१) विरोध करना। वैर करना। (२) नाश। बरबादी। (३) नाटक में विमर्श का एक अंग जो उस समय होता है, जब किसी कारणवश कार्य्यध्वंस का उपक्रम (सामान) होता है। जैसे,—कुरुक्षेत्र के युद्ध के अंत होने के निकट जब दुर्योधन बच रहा था, तब भीम का यह प्रतिज्ञा करना कि "यदि दुर्योधन को न मारूँगा, तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा"। सब बात बन जाने पर भी भीम का यह कहना युधिष्ठिर आदि के मन में यह विचार लाया कि यदि दुर्योधन न मारा गया, तो हम सब लोग भी भीम के बिना कैसे रहेंगे!

विरोधना-क्रि० स० [सं० विरोधन] विरोध करना। अपने विरुद्ध करना। वैर करना। शत्रुता या झगड़ा करना। उ०—साईं ये न विरोधिए गुरु, पंडित, कवि, यार।—गिरधर।

विरोधाचरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हित के प्रतिकूल आचरण। खिलाफ़ कार्रवाई। (२) शत्रुता का व्यवहार।

विरोधाभास-संज्ञा पुं० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य का विरोध दिखाई पड़ता है। वि० दे० "विरोध"।

विरोधित-वि० [सं०] जिसका विरोध किया गया हो।

विरोधिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरोध। शत्रुता। वैर। (२) नक्षत्रों की प्रतिकूल दृष्टि। (फलित ज्योतिष)

विरोधिनी-वि० स्त्री० [सं०] (१) विरोध करनेवाली। वैरिन। (२) विरोध करानेवाली। दो आदमियों में झगड़ा लगानेवाली।

विरोधी-वि० [सं० विरोधिन्] [स्त्री० विरोधिनी] (१) विरोध करनेवाला। हित के प्रतिकूल चलनेवाला। कार्य्य सिद्धि में बाधा डालनेवाला। (२) प्रतिद्वन्द्वी। विपक्षी। शत्रु। वैरी। दुश्मन।

संज्ञा पुं० साठ संवत्सरों में से पचीसवाँ संवत्सर।

विरोधी श्लेष-संज्ञा पुं० [सं०] केशव के अनुसार श्लेष अलंकार का एक भेद जिसमें श्लिष्ट शब्दों द्वारा दो पदार्थों में भेद, विरोध या न्यूनाधिकता दिखाई जाती है। उ०—कृष्ण हरे हरये हरैं संपति, शंभु विपत्ति यहै अधिकाई। जातक काम अकामन के हित, घातक काम सकाम सहाई। इसमें यह दिखाया गया है कि हर (शिव) दासों पर हरि की अपेक्षा अधिक कृपा करते हैं। कृष्ण धीरे धीरे संपत्ति हरते हैं और शिव विपत्ति। हरि काम को उत्पन्न करनेवाले हैं और निष्काम लोगों के हितू हैं; शिव काम के घातक हैं, पर कामना रखनेवालों के सहायक हैं। यहाँ 'काम' शब्द के 'कामदेव' और 'कामना' दो अर्थ हैं।

विरोधोपमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा अलंकार का एक भेद जिसमें किसी वस्तु की उपमा एक साथ दो विरोधी पदार्थों से दी जाती है। जैसे,—"तुम्हारा मुख चंद्रमा और कमल के समान है"। यहाँ कमल और चंद्रमा इन दोनों उपमानों में विरोध है।

विरोध्य-वि० [सं०] (१) विरोध के योग्य। (२) जिसका विरोध करना हो।

विरोपण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विरोपणीय, विरोपित, विरोप्य] (१) लेपन। लेप करना। (२) लीपना। पोतना। तह चढ़ाना। लेव चढ़ाना। (३) ज़मीन में पौधा लगाना। रोपना।

विरोम-वि० [सं०] रोम रहित। बिना रोएँ का।

विरोहण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विरोहणीय, विरोहित] एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर लगाना।

विरोही-वि० [सं० विरोहिन्] [स्त्री० विरोहिणी] रोपनेवाला। पौधा लगानेवाला।

विरौनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] बाजरा, मडुवा, कोदों वगैरह की एक प्रकार की जोताई जो उनके पौधे कुछ ऊँचे होने पर भी जाती है।

विर्तं‡-संज्ञा स्त्री० दे० "वृत्ति"।

विलंघन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कूद या लाँघकर पार करने की क्रिया। (२) उपवास करना। लंघन करना। (३) किसी वस्तु के भोग से अपने आप को रोक रखना। वंचित रहना।

विलंघनीय-वि० [सं०] (१) पार करने योग्य। लाँघने योग्य। (२) नीचा दिखाने योग्य। परास्त करने योग्य।

विलंघित-वि० [सं०] (१) जो परास्त हुआ हो। जिसने नीचा देखा हो। (२) जो विफल हुआ हो।

विलंघ्य-वि० [सं०] (१) पार करने योग्य। (नदी आदि) (२) परास्त होने योग्य। वश में आने योग्य। (३) करने योग्य। सहज।

विलंब-वि० [सं० विलम्ब] आवश्यकता, अनुमान आदि से अधिक समय (जो किसी बात में लगे)। बहुत काल। अतिकाल। देर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

विलंबन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विलंबनीय, विलंबी, विलंबित] (१) देर करना। विलंब करना। (२) लटकना। टँगना। (३) सहारा पकड़ना। टेकना।

जमा हुआ। बीज से फूटा हुआ। (३) जात। उत्पन्न। पैदा। (४) खूब जमा हुआ। खूब बैठा हुआ। खूब गड़ा या धँसा हुआ।

विरूढ़क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम। (२) एक शाक्य वंशीय राजा का नाम। (३) एक लोकपाल का नाम।

विरुक्मिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख कृष्ण एकादशी।

विरूप-वि० [सं०] [स्त्री० विरूपा] (१) कई रंग रूप का। कई शकलों का। तरह तरह का। (२) कुरूप। बदसूरत। भद्दा। (३) बदला हुआ। परिवर्तित। (४) शोभाहीन। शोभा रहित। (५) जो अनुरूप न हो। विरुद्ध। उलटा। (६) दूसरी तरह का। बिलकुल भिन्न।

संज्ञा पुं० पिपरामूल।

विरूपता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरूप होने का भाव। (२) कुरूपता। बदसूरती। (३) भद्दापन। बेढंगापन।

विरूप-परिणाम संज्ञा पुं० [सं०] एकरूपता से अनेकरूपता अर्थात् निर्विशेषता से विशेषता की ओर परिवर्त्तन। एक मूल प्रकृति से अनेक विकृतियों की ओर गति।

विशेष—सांख्य में परिणाम दो प्रकार के कहे गए हैं—स्वरूप परिणाम और विरूप परिणाम। विरूप-परिणाम द्वारा प्रकृति से नाना रूप पदार्थों का विकास होता है, और स्वरूप-परिणाम द्वारा फिर नाना पदार्थ क्रमशः अपने रूप खोते हुए प्रकृति में लीन होते हैं। एक परिणाम सृष्टि की ओर अग्रसर होता है और दूसरा लय की ओर।

विरूपा-वि० स्त्री० [सं०] कुरूप। बदसूरत। उ०—सूर्पनखि जो विरूपा करी तुम तातें दियो हमहूँ दुख भारी।—केशव।

संज्ञा स्त्री० (१) दुरालभा। (२) अतिविषा। (३) यम की पत्नी का नाम।

विरूपाक्ष-वि० [सं०] जिसके नेत्र बेढंगे या डरावने हों।

संज्ञा पुं० (१) शिव। शंकर। (२) शिव के एक गण का नाम। (३) रावण का एक सेनानायक जिसे हनुमान ने प्रमोद वन उजाड़ने के समय मारा था। (४) एक राक्षस का नाम जिसे सुग्रीव ने राम-रावण युद्ध में मारा था। (५) रावण का एक मंत्री। (६) एक दिग्गज का नाम। (७) एक नाग का नाम।

विरूपिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुरूप स्त्री। बदसूरत औरत।

विरूपी-वि० [सं० विरूपिन्] [स्त्री० विरूपिणी] (१) बदसूरत। कुरूप। (२) डरावनी सूरत का।

संज्ञा पुं० गिरगिट।

विरेक-संज्ञा पुं० [सं०] दस्तावर दवा। जुलाब। विरेचन।

विरेचक-वि० [सं०] दस्त लानेवाला। मलभेदक। दस्तावर।

विरेचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मलभेदक औषध। दस्त लानेवाली दवा। जुलाब। जैसे,—रेंड़ी का तेल। (२) दस्त लाना। मल भेद करने की क्रिया।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में विरेचन की विधि विशेष विस्तार से लिखी है; क्योंकि कुपित मल ही सब रोगों का कारण कहा गया है। पूरी विधि के साथ विरेचन का विधान स्नेह, स्वेदन और वमन के उपरांत किया गया है। शरद और वसंत में विरेचन विधेय ठहराया गया है। बालक, वृद्ध, क्षतग्रस्त, रोग से अत्यंत क्षीण, भयार्त्त, श्रांत, पिपासार्त्त और मतवाले को विरेचन नहीं कराना चाहिए।

विरेच्य-वि० [सं०] विरेचन के योग्य। जो दस्तावर दवा देने के योग्य हो।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में नीचे लिखे रोगियों को विरेचन के योग्य कहा है—गुल्म, बवासीर, विस्फोटक (चेचक), कमल रोग, जीर्ण ज्वर, उदर रोग, विष, पेट की पीड़ा, योनि और शुक्रगत रोग, प्लीहा, कुष्ठ, मेह, श्लीपद (फीलपाव), उन्माद, कास, श्वास, विसर्प इत्यादि से पीड़ित रोगियों को विरेचन देना चाहिए।

विरोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमक। दीप्ति। (२) रश्मि। किरन। (३) छिद्र। छेद। (४) चंद्रमा। (५) विष्णु।

विरोचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमकना। प्रकाशित होना। (२) दीप्तियुक्त। प्रकाशमान। (३) सूर्य्य की किरण। (४) सूर्य्य। (५) चंद्र। (६) अग्नि। (७) मदार का पौधा। आक। (८) विष्णु। (९) रोहित वृक्ष। (१०) स्योनाक वृक्ष। (११) पूतकरंज। (१२) प्रह्लाद के पुत्र और बलि के पिता।

विरोचनसुत-संज्ञा पुं० [सं०] राजा बलि।

विरोध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेल में न होना। किसी दूसरी वस्तु के साथ अत्यंत भिन्नता। विपरीत भाव। अनैक्य। जैसे,—इन दोनों भावों का परस्पर विरोध है। (२) मेल का न होना। वैर। शत्रुता। बिगाड़। अनबन। जैसे,—इन दोनों का विरोध बहुत पुराना है।

यौ०—वैर विरोध।

(३) दो बातों का एक साथ न हो सकना। विप्रतिपत्ति। व्याघात। असद्भाव। जैसे,—आपके कथन में पूर्वापर विरोध है। (४) उलटी स्थिति। सर्वथा दूसरे प्रकार की स्थिति। (५) नाश। (६) नाटक का एक अंग जिसमें किसी बात का वर्णन करते समय विपत्ति का आभास दिखाया जाता है। (७) एक अर्थालंकार जिसमें जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य में से किसी एक का दूसरी जाति, गुण, क्रिया या द्रव्य में से किसी एक के साथ विरोध होता है। जैसे,—"तुम्हारे वियोग में उस कामिनी को मलयानिल दावानल हो रहा है।" यहाँ जाति के साथ जाति का विरोध है। इसी प्रकार यह

कहना गुण का द्रव्य के साथ जाति-विरोध होगा—"तुम्हारे बिना चंद्रमा विष की ज्वाला से पूर्ण हो गया"।

विरोधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरोध करनेवाला। (२) नाटक में वे विषय जिन का वर्णन निषिद्ध हो।

विरोधन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विरोधी, विरोधित, विरोध्य] (१) विरोध करना। वैर करना। (२) नाश। बरबादी। (३) नाटक में विमर्श का एक अंग जो उस समय होता है, जब किसी कारणवश कार्य्यध्वंस का उपक्रम (सामान) होता है। जैसे,—कुरुक्षेत्र के युद्ध के अंत होने के निकट जब दुर्योधन बच रहा था, तब भीम का यह प्रतिज्ञा करना कि "यदि दुर्योधन को न मारूँगा, तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा"। सब बात बन जाने पर भी भीम का यह कहना युधिष्ठिर आदि के मन में यह विचार लाया कि यदि दुर्योधन न मारा गया, तो हम सब लोग भी भीम के बिना कैसे रहेंगे!

विरोधना‡-क्रि० स० [सं० विरोधन] विरोध करना। अपने विरुद्ध करना। वैर करना। शत्रुता या झगड़ा करना। उ०—साईं ये न विरोधिए गुरु, पंडित, कवि, यार।—गिरधर।

विरोधाचरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हित के प्रतिकूल आचरण। खिलाफ़ कारवाई। (२) शत्रुता का व्यवहार।

विरोधाभास-संज्ञा पुं० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य का विरोध दिखाई पड़ता है। वि० दे० "विरोध"।

विरोधित-वि० [सं०] जिसका विरोध किया गया हो।

विरोधिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरोध। शत्रुता। वैर। (२) नक्षत्रों की प्रतिकूल दृष्टि। (फलित ज्योतिष)

विरोधिनी-वि० स्त्री० [सं०] (१) विरोध करनेवाली। बैरिन। (२) विरोध करानेवाली। दो आदमियों में झगड़ा लगानेवाली।

विरोधी-वि० [सं० विरोधिन्] [स्त्री० विरोधिनी] (१) विरोध करनेवाला। हित के प्रतिकूल चलनेवाला। कार्य्य सिद्धि में बाधा डालनेवाला। (२) प्रतिद्वन्द्वी। विपक्षी। शत्रु। बैरी। दुश्मन।

संज्ञा पुं० साठ संवत्सरों में से पचीसवाँ संवत्सर।

विरोधी श्लेष-संज्ञा पुं० [सं०] केशव के अनुसार श्लेष अलंकार का एक भेद जिसमें श्लिष्ट शब्दों द्वारा दो पदार्थों में भेद, विरोध या न्यूनाधिकता दिखाई जाती है। उ०—कृष्ण हरे हरये हरें संपति, शंभु विपत्ति यहै अधिकाई। जातक काम अकामन के हित, घातक काम सकाम सहाई। इसमें यह दिखाया गया है कि हर (शिव) दासों पर हरि की अपेक्षा अधिक कृपा करते हैं। कृष्ण धीरे धीरे संपत्ति हरते हैं और शिव विपत्ति। हरि काम को उत्पन्न करनेवाले हैं और निष्काम लोगों के हित् हैं; शिव काम के घातक हैं, पर कामना रखनेवालों के सहायक हैं। यहाँ 'काम' शब्द के 'कामदेव' और 'कामना' दो अर्थ हैं।

विरोधोपमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा अलंकार का एक भेद जिसमें किसी वस्तु की उपमा एक साथ दो विरोधी पदार्थों से दी जाती है। जैसे,—"तुम्हारा मुख चंद्रमा और कमल के समान है"। यहाँ कमल और चंद्रमा इन दोनों उपमानों में विरोध है।

विरोध्य-वि० [सं०] (१) विरोध के योग्य। (२) जिसका विरोध करना हो।

विरोपण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विरोपणीय, विरोपित, विरोप्य] (१) लेपन। लेस करना। (२) लीपना। पोतना। तह चढ़ाना। लेव चढ़ाना। (३) ज़मीन में पौधा लगाना। रोपना।

विरोम-वि० [सं०] रोम रहित। बिना रोएँ का।

विरोहण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विरोहणीय, विरोहित] एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर लगाना।

विरोही-वि० [सं० विरोहिन्] [स्त्री० विरोहिणी] रोपनेवाला। पौधा लगानेवाला।

विरौनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] बाजरा, मडुवा, कोदों वगैरह की एक प्रकार की जोताई जो उनके पौधे कुछ ऊँचे होने पर भी जाती है।

विर्त्त‡-संज्ञा स्त्री० दे० "वृत्ति"।

विलंघन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कूद या लाँघकर पार करने की क्रिया। (२) उपवास करना। लंघन करना। (३) किसी वस्तु के भोग से अपने आप को रोक रखना। वंचित रहना।

विलंघनीय-वि० [सं०] (१) पार करने योग्य। लाँघने योग्य। (२) नीचा दिखाने योग्य। परास्त करने योग्य।

विलंघित-वि० [सं०] (१) जो परास्त हुआ हो। जिसने नीचा देखा हो। (२) जो विफल हुआ हो।

विलंघ्य-वि० [सं०] (१) पार करने योग्य। (नदी आदि) (२) परास्त होने योग्य। वश में लाने योग्य। (३) करने योग्य। सहज।

विलंब-वि० [सं० विलम्ब] आवश्यकता, अनुमान आदि से अधिक समय (जो किसी बात में लगे)। बहुत काल। अतिकाल। देर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

विलंबन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विलंबनीय, विलंबी, विलंबित] (१) देर करना। विलंब करना। (२) लटकना। टँगना। (३) सहारा पकड़ना। टेकना।

जमा हुआ। बीज से फूटा हुआ। (३) जात। उत्पन्न। पैदा। (४) खूब जमा हुआ। खूब बैठा हुआ। खूब गड़ा या धँसा हुआ।

विरूढ़क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम। (२) एक शाक्य वंशीय राजा का नाम। (३) एक लोकपाल का नाम।

विरुपिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख कृष्ण एकादशी।

विरूप-वि० [सं०] [स्त्री० विरूपा] (१) कई रंग रूप का। कई शकलों का। तरह तरह का। (२) कुरूप। बदसूरत। भद्दा। (३) बदला हुआ। परिवर्तित। (४) शोभाहीन। शोभा रहित। (५) जो अनुरूप न हो। विरुद्ध। उलटा। (६) दूसरी तरह का। बिलकुल भिन्न।

संज्ञा पुं० पिपरामूल।

विरूपता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरूप होने का भाव। (२) कुरूपता। बदसूरती। (३) भद्दापन। बेढंगापन।

विरूप-परिणाम संज्ञा पुं० [सं०] एकरूपता से अनेकरूपता अर्थात् निर्विशेषता से विशेषता की ओर परिवर्त्तन। एक मूल प्रकृति से अनेक विकृतियों की ओर गति।

विशेष—सांख्य में परिणाम दो प्रकार के कहे गए हैं—स्वरूप परिणाम और विरूप परिणाम। विरूप-परिणाम द्वारा प्रकृति से नाना रूप पदार्थों का विकास होता है और स्वरूप-परिणाम द्वारा फिर नाना पदार्थ क्रमशः अपने रूप खोते हुए प्रकृति में लीन होते हैं। एक परिणाम सृष्टि की ओर अग्रसर होता है और दूसरा लय की ओर।

विरूपा-वि० स्त्री० [सं०] कुरूप। बदसूरत। उ०—शूर्पणखी जो विरूपा करी तुम तातें दियो हमहूँ दुख भारी।—केशव।

संज्ञा स्त्री० (१) दुरालभा। (२) अतिविषा। (३) यम की पत्नी का नाम।

विरूपाक्ष-वि० [सं०] जिसके नेत्र बेढंगे या डरावने हों।

संज्ञा पुं० (१) शिव। शंकर। (२) शिव के एक गण का नाम। (३) रावण का एक सेनानायक जिसे हनुमान ने प्रमोद वन उजाड़ने के समय मारा था। (४) एक राक्षस का नाम जिसे सुग्रीव ने राम-रावण युद्ध में मारा था। (५) रावण का एक मंत्री। (६) एक दिग्गज का नाम। (७) एक नाग का नाम।

विरूपिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुरूप स्त्री। बदसूरत औरत।

विरूपी-वि० [सं० विरूपिन्] [स्त्री० विरूपिणी] (१) बदसूरत। कुरूप। (२) डरावनी सूरत का।

संज्ञा पुं० गिरगिट।

विरेक-संज्ञा पुं० [सं०] दस्तावर दवा। जुलाब। विरेचन।

विरेचक-वि० [सं०] दस्त लानेवाला। मलभेदक। दस्तावर।

विरेचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मलभेदक औषध। दस्त लानेवाली दवा। जुलाब। जैसे,—रेंड़ी का तेल। (२) दस्त लाना। मल भेद करने की क्रिया।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में विरेचन की विधि विशेष विस्तार से लिखी है; क्योंकि कुपित मल ही सब रोगों का कारण कहा गया है। पूरी विधि के साथ विरेचन का विधान स्नेह, स्वेदन और वमन के उपरांत किया गया है। शरद और वसंत में विरेचन विधेय ठहराया गया है। बालक, वृद्ध, क्षतग्रस्त, रोग से अत्यंत क्षीण, भयार्त्त, श्रांत, पिपासार्त्त और मतवाले को विरेचन नहीं कराना चाहिए।

विरेच्य-वि० [सं०] विरेचन के योग्य। जो दस्तावर दवा देने के योग्य हो।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में नीचे लिखे रोगियों को विरेचन के योग्य कहा है—गुल्म, बवासीर, विस्फोटक (चेचक), कमल रोग, जीर्ण ज्वर, उदर रोग, विष, पेट की पीड़ा, योनि और शुक्रगत रोग, प्लीहा, कुष्ठ, मेह, श्लीपद (फीलपाव), उन्माद, कास, श्वास, विसर्प इत्यादि से पीड़ित रोगियों को विरेचन देना चाहिए।

विरोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमक। दीप्ति। (२) रश्मि। किरन। (३) छिद्र। छेद। (४) चंद्रमा। (५) विष्णु।

विरोचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमकना। प्रकाशित होना। (२) दीप्तियुक्त। प्रकाशमान। (३) सूर्य की किरण। (४) सूर्य्य। (५) चंद्र। (६) अग्नि। (७) मदार का पौधा। आक। (८) विष्णु। (९) रोहित वृक्ष। (१०) श्योनाक वृक्ष। (११) पूतकरंज। (१२) प्रह्लाद के पुत्र और बलि के पिता।

विरोचनसुत-संज्ञा पुं० [सं०] राजा बलि।

विरोध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेल में न होना। किसी दूसरी वस्तु के साथ अत्यंत भिन्नता। विपरीत भाव। अनैक्य। जैसे,—इन दोनों भावों का परस्पर विरोध है। (२) मेल का न होना। वैर। शत्रुता। बिगाड़। अनबन। जैसे,—इन दोनों का विरोध बहुत पुराना है।

यौ०—वैर विरोध।

(३) दो बातों का एक साथ न हो सकना। विप्रतिपत्ति। व्याघात। असद्भाव। जैसे,—आपके कथन में पूर्वापर विरोध है। (४) उलटी स्थिति। सर्वथा दूसरे प्रकार की स्थिति। (५) नाश। (६) नाटक का एक अंग जिसमें किसी बात का वर्णन करते समय विपत्ति का आभास दिखाया जाता है। (७) एक अर्थालंकार जिसमें जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य में से किसी एक का दूसरी जाति, गुण, क्रिया या द्रव्य में से किसी एक के साथ विरोध होता है। जैसे,—"तुम्हारे वियोग में उस कामिनी को मलयानिल दावानल हो रहा है।" यहाँ जाति के साथ जाति का विरोध है। इसी प्रकार यह

कहना गुण का द्रव्य के साथ जाति-विरोध होगा—"तुम्हारे बिना चंद्रमा विष की ज्वाला से पूर्ण हो गया"।

विरोधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरोध करनेवाला। (२) नाटक में वे विषय जिन का वर्णन निषिद्ध हो।

विरोधन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विरोधी, विरोधित, विरोध्य] (१) विरोध करना। वैर करना। (२) नाश। बरबादी। (३) नाटक में विमर्ष का एक अंग जो उस समय होता है, जब किसी कारणवश कार्य्यध्वंस का उपक्रम (सामान) होता है। जैसे,—कुरुक्षेत्र के युद्ध के अंत होने के निकट जब दुर्योधन बच रहा था, तब भीम का यह प्रतिज्ञा करना कि "यदि दुर्योधन को न मारूँगा, तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा"। सब बात बन जाने पर भी भीम का यह कहना युधिष्ठिर आदि के मन में यह विचार लाया कि यदि दुर्योधन न मारा गया, तो हम सब लोग भी भीम के बिना कैसे रहेंगे!

विरोधना‡-क्रि० स० [सं० विरोधन] विरोध करना। अपने विरुद्ध करना। वैर करना। शत्रुता या झगड़ा करना। उ०—साईं ये न विरोधिए गुरु, पंडित, कवि, यार।—गिरधर।

विरोधाचरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हित के प्रतिकूल आचरण। खिलाफ़ कारंवाई। (२) शत्रुता का व्यवहार।

विरोधाभास-संज्ञा पुं० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य का विरोध दिखाई पड़ता है। वि० दे० "विरोध"।

विरोधित-वि० [सं०] जिसका विरोध किया गया हो।

विरोधिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरोध। शत्रुता। वैर। (२) नक्षत्रों की प्रतिकूल दृष्टि। (फलित ज्योतिष)

विरोधिनी-वि० स्त्री० [सं०] (१) विरोध करनेवाली। वैरिन। (२) विरोध करानेवाली। दो आदमियों में झगड़ा लगानेवाली।

विरोधी-वि० [सं० विरोधिन्] [स्त्री० विरोधिनी] (१) विरोध करनेवाला। हित के प्रतिकूल चलनेवाला। कार्य्य सिद्धि में बाधा डालनेवाला। (२) प्रतिद्वन्द्वी। विपक्षी। शत्रु। वैरी। दुश्मन।

संज्ञा पुं० साठ संवत्सरों में से पचीसवाँ संवत्सर।

विरोधी श्लेष-संज्ञा पुं० [सं०] केशव के अनुसार श्लेष अलंकार का एक भेद जिसमें श्लिष्ट शब्दों द्वारा दो पदार्थों में भेद, विरोध या न्यूनाधिकता दिखाई जाती है। उ०—कृष्ण हरे हरये हरें संपति, शंभु विपत्ति यहै अधिकाई। जातक काम अकामन के हित, घातक काम सकाम सदाई। इसमें यह दिखाया गया है कि हर (शिव) दासों पर हरि की अपेक्षा अधिक कृपा करते हैं। कृष्ण धीरे धीरे संपत्ति हरते हैं और शिव विपत्ति। हरि काम को उत्पन्न करनेवाले हैं और निष्काम लोगों के हित हैं; शिव काम के घातक हैं, पर कामना रखनेवालों के सहायक हैं। यहाँ 'काम' शब्द के 'कामदेव' और 'कामना' दो अर्थ हैं।

विरोधोपमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा अलंकार का एक भेद जिसमें किसी वस्तु की उपमा एक साथ दो विरोधी पदार्थों से दी जाती है। जैसे,—"तुम्हारा मुख चंद्रमा और कमल के समान है"। यहाँ कमल और चंद्रमा इन दोनों उपमानों में विरोध है।

विरोध्य-वि० [सं०] (१) विरोध के योग्य। (२) जिसका विरोध करना हो।

विरोपण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विरोपणीय, विरोपित, विरोप्य] (१) लेपन। लेस करना। (२) लीपना। पोतना। तह चढ़ाना। लेव चढ़ाना। (३) ज़मीन में पौधा लगाना। रोपना।

विरोम-वि० [सं०] रोम रहित। बिना रोएँ का।

विरोहण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विरोहणीय, विरोहित] एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर लगाना।

विरोही-वि० [सं० विरोहिन्] [स्त्री० विरोहिणी] रोपनेवाला। पौधा लगानेवाला।

विरौनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] बाजरा, मडुआ, कोदों वगैरह की एक प्रकार की जोताई जो उनके पौधे कुछ ऊँचे होने पर भी जाती है।

विर्त्ति‡-संज्ञा स्त्री० दे० "वृत्ति"।

विलंघन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कूद या लाँघकर पार करने की क्रिया। (२) उपवास करना। लंघन करना। (३) किसी वस्तु के भोग से अपने आप को रोक रखना। वंचित रहना।

विलंघनीय-वि० [सं०] (१) पार करने योग्य। लाँघने योग्य। (२) नीचा दिखाने योग्य। परास्त करने योग्य।

विलंघित-वि० [सं०] (१) जो परास्त हुआ हो। जिसने नीचा देखा हो। (२) जो विफल हुआ हो।

विलंघ्य-वि० [सं०] (१) पार करने योग्य। (नदी आदि) (२) परास्त होने योग्य। वश में आने योग्य। (३) करने योग्य। सहज।

विलंब-वि० [सं० विलम्ब] आवश्यकता, अनुमान आदि से अधिक समय (जो किसी बात में लगे)। बहुत काल। अतिकाल। देर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

विलंबन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विलंबनीय, विलंबी, विलंबित] (१) देर करना। विलंब करना। (२) लटकना। टँगना। (३) सहारा पकड़ना। टेकना।

जमा हुआ। बीज से फूटा हुआ। (३) जात। उत्पन्न। पैदा। (४) खूब जमा हुआ। खूब बैठा हुआ। खूब गड़ा या धँसा हुआ।

विरूढ़क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम। (२) एक शाक्य वंशीय राजा का नाम। (३) एक लोकपाल का नाम।

विरुगिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख कृष्ण एकादशी।

विरूप-वि० [सं०] [स्त्री० विरूपा] (१) कई रंग रूप का। कई शकलों का। तरह तरह का। (२) कुरूप। बदसूरत। भद्दा। (३) बदला हुआ। परिवर्तित। (४) शोभाहीन। शोभा रहित। (५) जो अनुरूप न हो। विरुद्ध। उलटा। (६) दूसरी तरह का। बिलकुल भिन्न।

संज्ञा पुं० पिपरामूल।

विरूपता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरूप होने का भाव। (२) कुरूपता। बदसूरती। (३) भद्दापन। बेढंगापन।

विरूप-परिणाम संज्ञा पुं० [सं०] एकरूपता से अनेकरूपता अर्थात् निर्विशेषता से विशेषता की ओर परिवर्त्तन। एक मूल प्रकृति से अनेक विकृतियों की ओर गति।

विशेष—सांख्य में परिणाम दो प्रकार के कहे गए हैं—स्वरूप परिणाम और विरूप परिणाम। विरूप-परिणाम द्वारा प्रकृति से नाना रूप पदार्थों का विकास होता है; और स्वरूप-परिणाम द्वारा फिर नाना पदार्थ क्रमशः अपने रूप खोते हुए प्रकृति में लीन होते हैं। एक परिणाम सृष्टि की ओर अग्रसर होता है और दूसरा लय की ओर।

विरूपा-वि० स्त्री० [सं०] कुरूप। बदसूरत। उ०—शूर्पणखा जो विरूपा करी तुम तातें दियो हमहूँ दुख भारी।—केशव।

संज्ञा स्त्री० (१) दुरालभा। (२) अतिविषा। (३) यम की पत्नी का नाम।

विरूपाक्ष-वि० [सं०] जिसके नेत्र बेढंगे या डरावने हों।

संज्ञा पुं० (१) शिव। शंकर। (२) शिव के एक गण का नाम। (३) रावण का एक सेनानायक जिसे हनुमान ने प्रमोद वन उजाड़ने के समय मारा था। (४) एक राक्षस का नाम जिसे सुग्रीव ने राम-रावण युद्ध में मारा था। (५) रावण का एक मंत्री। (६) एक दिग्गज का नाम। (७) एक नाग का नाम।

विरूपिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुरूप स्त्री। बदसूरत औरत।

विरूपी-वि० [सं० विरूपिन्] [स्त्री० विरूपिणी] (१) बदसूरत। कुरूप। (२) डरावनी सूरत का।

संज्ञा पुं० गिरगिट।

विरेक-संज्ञा पुं० [सं०] दस्तावर दवा। जुलाब। विरेचन।

विरेचक-वि० [सं०] दस्त लानेवाला। मलभेदक। दस्तावर।

विरेचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मलभेदक औषध। दस्त लानेवाली दवा। जुलाब। जैसे,—रेंड़ी का तेल। (२) दस्त लाना। मल भेद करने की क्रिया।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में विरेचन की विधि विशेष विस्तार से लिखी है; क्योंकि कुपित मल ही सब रोगों का कारण कहा गया है। पूरी विधि के साथ विरेचन का विधान स्नेह, स्वेदन और वमन के उपरांत किया गया है। शरद और वसंत में विरेचन विधेय ठहराया गया है। बालक, वृद्ध, क्षतग्रस्त, रोग से अत्यंत क्षीण, भयार्त्त, श्रांत, पिपासार्त और मतवाले को विरेचन नहीं कराना चाहिए।

विरेच्य-वि० [सं०] विरेचन के योग्य। जो दस्तावर दवा देने के योग्य हो।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में नीचे लिखे रोगियों को विरेचन के योग्य कहा है—गुल्म, बवासीर, विस्फोटक (चेचक), कमल रोग, जीर्ण ज्वर, उदर रोग, विष, पेट की पीड़ा, योनि और शुक्रगत रोग, प्लीहा, कुष्ठ, मेह, श्लीपद (फीलपाव), उन्माद, कास, श्वास, विसर्प इत्यादि से पीड़ित रोगियों को विरेचन देना चाहिए।

विरोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमक। दीप्ति। (२) रश्मि। किरन। (३) छिद्र। छेद। (४) चंद्रमा। (५) विष्णु।

विरोचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमकना। प्रकाशित होना। (२) दीप्तियुक्त। प्रकाशमान। (३) सूर्य्य की किरण। (४) सूर्य्य। (५) चंद्र। (६) अग्नि। (७) मदार का पौधा। आक। (८) विष्णु। (९) रोहित वृक्ष। (१०) श्योनाक वृक्ष। (११) पूत-करंज। (१२) प्रह्लाद के पुत्र और बलि के पिता।

विरोचनसुत-संज्ञा पुं० [सं०] राजा बलि।

विरोध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेल में न होना। किसी दूसरी वस्तु के साथ अत्यंत भिन्नता। विपरीत भाव। अनैक्य। जैसे,—इन दोनों भावों का परस्पर विरोध है। (२) मेल का न होना। वैर। शत्रुता। बिगाड़। अनबन। जैसे,—उन दोनों का विरोध बहुत पुराना है।

यौ०—वैर विरोध।

(३) दो बातों का एक साथ न हो सकना। विप्रतिपत्ति। व्याघात। असद्भाव। जैसे,—आपके कथन में पूर्वापर विरोध है। (४) उलटी स्थिति। सर्वथा दूसरे प्रकार की स्थिति। (५) नाश। (६) नाटक का एक अंग जिसमें किसी बात का वर्णन करते समय विपत्ति का आभास दिखाया जाता है। (७) एक अर्थालंकार जिसमें जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य में से किसी एक का दूसरी जाति, गुण, क्रिया या द्रव्य में से किसी एक के साथ विरोध होता है। जैसे,—"तुम्हारे वियोग में उस कामिनी को मलयानिल दावानल हो रहा है।" यहाँ जाति के साथ जाति का विरोध है। इसी प्रकार यह

कहना गुण का द्रव्य के साथ जाति-विरोध होगा—"तुम्हारे बिना चंद्रमा विष की ज्वाला से पूर्ण हो गया"।

विरोधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरोध करनेवाला। (२) नाटक में वे विषय जिन का वर्णन निषिद्ध हो।

विरोधन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विरोधी, विरोधित, विरोध्य] (१) विरोध करना। वैर करना। (२) नाश। बरबादी। (३) नाटक में विमर्ष का एक अंग जो उस समय होता है, जब किसी कारणवश कार्य्यध्वंस का उपक्रम (सामान) होता है। जैसे,—कुरुक्षेत्र के युद्ध के अंत होने के निकट जब दुर्योधन बच रहा था, तब भीम का यह प्रतिज्ञा करना कि "यदि दुर्योधन को न मारूँगा, तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा"। सब बात बन जाने पर भी भीम का यह कहना युधिष्ठिर आदि के मन में यह विचार लाया कि यदि दुर्योधन न मारा गया, तो हम सब लोग भी भीम के बिना कैसे रहेंगे!

विरोधना॰-क्रि० स० [सं० विरोधन] विरोध करना। अपने विरुद्ध करना। वैर करना। शत्रुता या झगड़ा करना। उ०—साईं ये न विरोधिए गुरु, पंडित, कवि, यार।—गिरधर।

विरोधाचरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हित के प्रतिकूल आचरण। खिलाफ़ कार्रवाई। (२) शत्रुता का व्यवहार।

विरोधाभास-संज्ञा पुं० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य का विरोध दिखाई पड़ता है। वि० दे० "विरोध"।

विरोधित-वि० [सं०] जिसका विरोध किया गया हो।

विरोधिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरोध। शत्रुता। वैर। (२) नक्षत्रों की प्रतिकूल दृष्टि। (फलित ज्योतिष)

विरोधिनी-वि० स्त्री० [सं०] (१) विरोध करनेवाली। वैरिन। (२) विरोध करानेवाली। दो आदमियों में झगड़ा लगानेवाली।

विरोधी-वि० [सं० विरोधिन्] [स्त्री० विरोधिनी] (१) विरोध करनेवाला। हित के प्रतिकूल चलनेवाला। कार्य्य सिद्धि में बाधा डालनेवाला। (२) प्रतिद्वन्द्वी। विपक्षी। शत्रु। वैरी। दुश्मन।

संज्ञा पुं० साठ संवत्सरों में से पचीसवाँ संवत्सर।

विरोधी श्लेष-संज्ञा पुं० [सं०] केशव के अनुसार श्लेष अलंकार का एक भेद जिसमें श्लिष्ट शब्दों द्वारा दो पदार्थों में भेद, विरोध या न्यूनाधिकता दिखाई जाती है। उ०—कृष्ण हरे हरये हरें संपति, शंभु विपत्ति वहै अधिकाई। जातक काम अकामन के हित, घातक काम सकाम सहाई। इसमें यह दिखाया गया है कि हर (शिव) दासों पर हरि की अपेक्षा अधिक कृपा करते हैं। कृष्ण धीरे धीरे संपत्ति हरते हैं और शिव विपत्ति। हरि काम को उत्पन्न करनेवाले हैं और निष्काम लोगों के हितू हैं; शिव काम के घातक हैं, पर कामना रखनेवालों के सहायक हैं। यहाँ 'काम' शब्द के 'कामदेव' और 'कामना' दो अर्थ हैं।

विरोधोपमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा अलंकार का एक भेद जिसमें किसी वस्तु की उपमा एक साथ दो विरोधी पदार्थों से दी जाती है। जैसे,—"तुम्हारा मुख चंद्रमा और कमल के समान है"। यहाँ कमल और चंद्रमा इन दोनों उपमानों में विरोध है।

विरोध्य-वि० [सं०] (१) विरोध के योग्य। (२) जिसका विरोध करना हो।

विरोपण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विरोपणीय, विरोपित, विरोप्य] (१) लेपन। लेप करना। (२) लीपना। पोतना। तह चढ़ाना। लेव चढ़ाना। (३) ज़मीन में पौधा लगाना। रोपना।

विरोम-वि० [सं०] रोम रहित। बिना रोएँ का।

विरोहण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विरोहणीय, विरोहित] एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर लगाना।

विरोही-वि० [सं० विरोहिन्] [स्त्री० विरोहिणी] रोपनेवाला। पौधा लगानेवाला।

विरौनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] बाजरा, मडुवा, कोदों वगैरह की एक प्रकार की जोताई जो उनके पौधे कुछ ऊँचे होने पर भी जाती है।

विर्त्ति॰-संज्ञा स्त्री० दे० "वृत्ति"।

विलंघन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कूद या लाँघकर पार करने की क्रिया। (२) उपवास करना। लंघन करना। (३) किसी वस्तु के भोग से अपने आप को रोक रखना। वंचित रहना।

विलंघनीय-वि० [सं०] (१) पार करने योग्य। लाँघने योग्य। (२) नीचा दिखाने योग्य। परास्त करने योग्य।

विलंघित-वि० [सं०] (१) जो परास्त हुआ हो। जिसने नीचा देखा हो। (२) जो विफल हुआ हो।

विलंघ्य-वि० [सं०] (१) पार करने योग्य। (नदी आदि) (२) परास्त होने योग्य। वश में आने योग्य। (३) करने योग्य। सहज।

विलंब-वि० [सं० विलम्ब] आवश्यकता, अनुमान आदि से अधिक समय (जो किसी बात में लगे)। बहुत काल। अतिकाल। देर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

विलंबन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विलंबनीय, विलंबी, विलंबित] (१) देर करना। विलंब करना। (२) लटकना। टँगना। (३) सहारा पकड़ना। टेकना।

विलंघना-क्रि० अ० [सं० विलंबन] (१) देर करना । विलंब करना । आवश्यकता से अधिक समय लगाना । (२) रम जाना । मन लगने के कारण बस जाना । उ०—भँवर कँवल रस बेधिया, अमत न मरमै जाइ । तहाँ वास विलंबिया, मगन भया रस खाइ ।—दादू । (३) लटकना । (४) सहारा लेना ।

विलंबिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रोग जो विदग्धाजीर्ण द्वारा उत्पन्न होता है ।

विशेष—इस रोग में खाया हुआ अन्न कफ और वायु से दूषित होकर पेट में दुःख देता है । न तो वमन होता है न मल निकलता है ।

विलंबित-वि० [सं०] (१) लटकता हुआ । झूलता हुआ । उ०—राजत रोमक की तन राजिव है रस विच नदी सुख देनी । आगे भई प्रतिविम्बित पाइ विलम्बित जो मृगनैनी कि बेनी ।—द्विज । (२) जिसमें विलंब या देर हुई हो ।

संज्ञा पुं० सुस्त चलनेवाला जानवर । जैसे,—हाथी, गैंडा, भैंस इत्यादि ।

विलंबी-वि० [सं० विलंबिन्] [स्त्री० विलंबिनी] लटकता हुआ । झूलता हुआ ।

संज्ञा पुं० साठ संवत्सरों में से बत्तीसवाँ संवत्सर ।

विलंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उदारता । (२) दान । (३) उपहार । भेंट ।

विलक्ष-वि० [सं०] (१) अचंभे में पड़ा हुआ । आश्चर्यचकित । (२) लज्जित । (३) घबराया हुआ । व्यस्त ।

विलक्षण-वि० [सं०] (१) साधारण से भिन्न । असाधारण । अपूर्व । अद्भुत । (२) अनोखा । अनूठा ।

विलक्षणता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विलक्षण होने का भाव । अपूर्वता । अद्भुतता । अनोखापन ।

विलखना-क्रि० अ० [सं० विकल] दुखी होना । वि० दे० 'बिलखना' ।

॥-क्रि० अ० [सं० लक्ष] ताड़ना । पता पाना । लक्ष करना ।

विलखाना-क्रि० स० [हिं० विलखना का स०] विलखाना का सकर्मक रूप । विकल करना । वि० दे० 'बिलखना' ।

विलग-वि० [हिं० वि (उप०)+लगना] अलग । पृथक् ।

संज्ञा पुं० अंतर । भेद । फरक ।

विलगाना-क्रि० अ० [हिं० विलग+ना (प्रत्य०)] (१) अलग होना । पृथक् होना । (२) पृथक् पृथक् दिखाई पड़ना । विभक्त या अलग दिखाई देना ।

क्रि० स० पृथक् करना । अलग करना । वि० दे० "बिलगाना" ।

विलच्छन-वि० दे० "विलक्षण" ।

विलपना॥-क्रि० अ० [सं० विलाप] विलाप करना । रोना ।

विलपाना॥-क्रि० स० [हिं० विलपना का स०] दूसरे को विलाप करने में प्रवृत्त करना । रुलाना ।

विलब्ध-वि० [सं०] (१) दिया हुआ । पाया हुआ । (२) अलग किया हुआ ।

विलम॥-संज्ञा पुं० [सं० विलंब] देर । अबेर । विलंब ।

विलमना॥-क्रि० अ० दे० "बिलमना" ।

विलय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विलीन होने की क्रिया या भाव । लोप । अस्त । (२) मृत्यु । मौत । (३) नाश । (४) प्रलय ।

विलयन-संज्ञा पुं० [सं०] लय को प्राप्त होना । विलीन होना ।

विलसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमकने की क्रिया । (२) क्रीड़ा । प्रमोद ।

विलसना॥-क्रि० अ० [सं० विलस] (१) शोभा पाना । (२) विलास करना । क्रीड़ा करना । (३) आनंद मनाना । वि० दे० "बिलसना" ।

विलसाना॥-क्रि० स० दे० "बिलसाना" ।

विलहबंदी-संज्ञा स्त्री० [?] जिले के बन्दोबस्त का वह संक्षिप्त ब्योरा जिसमें प्रत्येक महाल का नाम, काश्तकारों के नाम और उनके लगान आदि का ब्योरा लिखा होता है । वितरबन्दी ।

विलाता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया ।

विलाना-क्रि० अ० दे० "बिलाना"

विलाप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिलख बिलख कर या विकल होकर रोने की क्रिया । रोकर दुःख प्रकट करने की क्रिया । क्रन्दन । रुदन ।

विलापना॥-क्रि० अ० [सं० विलापन] शोक करना । विलाप करना । क्रि० स० [सं० रोपना] वृक्ष रोपना या लगाना ।

विलायत-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पराया देश । दूसरों का देश । (२) दूरस्थ देश । दूर का देश । विशेषतः आजकल की बोलचाल में युरोप या अमेरिका का कोई देश । जैसे,—आप दो बार विलायत हो आए हैं ।

विलायती-वि० [अ०] (१) विलायत का । विदेशी । (२) दूसरे देश में बना हुआ । (३) अन्य देश का रहनेवाला । परदेशी ।

विलायती अनन्नास-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती+अनन्नास] रामबाँस । रामबान । वि० दे० "रामबाँस" ।

विलायती कद्दू-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती+कद्दू] एक विशेष प्रकार का कद्दू, जो तरकारी के काम में आता है ।

विलायती कासनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० विलायती+कासनी] एक प्रकार की कासनी जिसकी पत्तियाँ दवा के काम में आती हैं ।

विलायती कीकर-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + कीकर] पहाड़ी कीकर जो हिमालय में पाँच हजार फुट की ऊँचाई तक होता है। यह बाढ़ लगाने के काम आता है। यह जाड़े के दिनों में खूब फूलता है और इसके फूलों से बहुत अच्छी महक निकलती है। युरोप में इन फूलों से कई प्रकार के इत्र आदि बनाए जाते हैं। इसे परसी बबूल भी कहते हैं।

विलायती छछूँदर-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + छछूँदर] एक प्रकार का छछूँदर जो इंगलैण्ड के पश्चिमी ओर के प्रदेशों में बहुत पाया जाता है। यह पृथ्वी के नीचे सुरंग में रहता है और प्रायः दूध पीता है। इसे अंधकार अधिक प्रिय होता है। इस के अगले पैर चौड़े और पट्टेदार तरीके होते हैं। इसकी आँखें छोटी, थुथना लंबा और नोकदार, बाल सघन और कोमल होते हैं। इसकी श्रवण शक्ति बहुत तेज होती है।

विलायती नील-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + नील] एक विशेष प्रकार का नीला रंग जो चीन से आता है।

विलायती पटुआ-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + पटुआ] लाल पटुआ। लाल सन।

विलायती पात-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + पटुआ] रामबाँस। कृष्ण केतकी।

विलायती प्याज-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + प्याज] एक प्रकार का प्याज जिसमें गाँठ नहीं होती, सिर्फ गूदेदार जड़ होती है।

विलायती बैंगन-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + बैंगन] एक प्रकार का बैंगन या भंटा जो इस देश में युरोप से आया है। यह क्षुप जाति की वनस्पति है जो प्रति वर्ष बोई जाती है। इसका क्षुप दो ढाई हाथ ऊँचा होता है। इसकी डालियाँ भूमि की ओर झुकी अथवा भूमि पर पसरी रहती हैं। पत्ते आलू के पत्तों के से होते हैं। डंडियों के बीच बीच से सींके निकलते हैं जिन पर गुच्छे में फूल आते हैं। ये फूल साधारण बैंगन के फूलों के सदृश, पर उनसे छोटे होते हैं। इनका रंग पीला होता है। फल प्रायः दो से चार इंच तक के गोलाकार और कुछ चिपटे (नारंगी के समान) होते हैं। कच्चे रहने पर उनका रंग हरा और पकने पर लाल चमकीला हो जाता है। इसकी तरकारी, चटनी आदि बनती है। स्वाद में यह कुछ खट्टापन लिए होता है। रासायनिक विश्लेषण से पता लगता है कि इसमें २३ सैकड़े लोहे का अंश होता है। अतः यह रक्त-वर्धक है। अंग्रेज लोग इसका अधिक व्यवहार करते हैं। इसे टमेटो कहते हैं।

विलायती लहसुन-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + लहसुन] एक प्रकार का लहसुन जो मसाले के काम में आता है।

विलायती सिरिस-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + सिरिस] एक प्रकार का सिरिस जो विदेश से यहाँ आया है, पर अब यहाँ भी होने लगा है। यह नीलगिरि पर्वत पर बहुतायत से होता है। पंजाब में भी यह पाया जाता है। इसकी छाल प्रायः चमड़ा सिझाने के काम में आती है।

विलायती सेम-संज्ञा स्त्री० [हिं० विलायती + सेम] एक प्रकार की सेम जिसकी फलियाँ साधारण सेम से कुछ बड़ी होती हैं।

विलायन-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक अस्त्र। कहते हैं कि जब इस अस्त्र का उपयोग किया जाता था, तब शत्रु की सेना विश्राम करने लगती थी।

विलावली-संज्ञा स्त्री० [हिं० बिलावल] एक रागिनी जो हिंडोल राग की स्त्री मानी जाती है। (संगीत)

विलास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रसन्न या प्रफुल्लित करनेवाली क्रिया। (२) सुख-भोग। आनन्दमय क्रीड़ा। मनोरंजन। मनोविनोद। (३) आनंद। हर्ष। (४) संयोग के समय में अनेक हाव भाव अथवा प्रेमसूचक क्रियाएँ जिनसे स्त्रियाँ पुरुषों को अपनी ओर अनुरक्त करती हैं। हाव भाव। नाज नखरा। (५) किसी अंग की मनोहर चेष्टा। जैसे भ्रूविलास, करविलास। उ०—भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बाम दिस सीता सोई।—तुलसी। (६) किसी चीज़ का हिलना डोलना। जैसे,—चपला का विलास। (७) आराम तलबी। अतिशय सुख भोग।

विलासक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विलासिका] इधर उधर फिरनेवाला। भ्रमणशील।

विलासिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रूपक जिसमें एक ही अंक होता है। इसका विषय संक्षिप्त और साधारण होता है।

वि० स्त्री० आनन्द देनेवाली।

विलासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुन्दरी युवा स्त्री। कामिनी। (२) वेश्या। गणिका। (३) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ज, र, ज, ग, ग, (।ऽ। ऽ।ऽ ।ऽ। ऽ ऽ) होते हैं।

विलासी-संज्ञा पुं० [सं० विलासिन्] [स्त्री० विलासिनी] (१) सुख भोग में अनुरक्त पुरुष। कामी। (२) जिसे आमोद प्रमोद पसंद हो। क्रीड़ाशील। हँसोड़। कौतुकशील। (३) ऐश आराम पसंद। आराम तलब। (४) वरुण वृक्ष। वरुन।

विलास्य-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे।

विलिखित-वि० [सं०] (१) खरोंचा हुआ। (२) लिखा हुआ। (३) खुदा हुआ।

विलिगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का सर्प।

विलिप्त-वि० [सं०] पुता हुआ। लिपा हुआ।

विलंबना-क्रि० अ० [सं० विलंबन] (१) देर करना। विलंब करना। आवश्यकता से अधिक समय लगाना। (२) रम जाना। मन लगने के कारण बस जाना। उ०—भँवर कँवल रस बेधिया, अमत न भरमें जाइ। तहाँ वास बिलंबिया, मगन भया रस खाइ।—दादू। (३) लटकना। (४) सहारा लेना।

विलंबिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रोग जो विदग्धाजीर्ण द्वारा उत्पन्न होता है।

विशेष—इस रोग में खाया हुआ अन्न कफ और वायु से दूषित होकर पेट में दुःख देता है। न तो वमन होता है न मल निकलता है।

विलंबित-वि० [सं०] (१) लटकता हुआ। झूलता हुआ। उ०—राजत रोमक की तन राजिव है रस बिच नदी सुख देनी। आगे भई प्रतिबिम्बित पाइ विलम्बित जो मृगनैनी कि बेनी।—द्विज। (२) जिसमें विलंब या देर हुई हो।

संज्ञा पुं० सुस्त चलनेवाला जानवर। जैसे,—हाथी, गैंडा, भैंस इत्यादि।

विलंबी-वि० [सं० विलंबिन्] [स्त्री० विलंबिनी] लटकता हुआ। झूलता हुआ।

संज्ञा पुं० साठ संवत्सरों में से बत्तीसवाँ संवत्सर।

विलंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उदारता। (२) दान। (३) उपहार। भेंट।

विलक्ष-वि० [सं०] (१) अचंभे में पड़ा हुआ। आश्चर्यचकित। (२) लज्जित। (३) घबराया हुआ। व्यस्त।

विलक्षण-वि० [सं०] (१) साधारण से भिन्न। असाधारण। अपूर्व। अद्भुत। (२) अनोखा। अनूठा।

विलक्षणता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विलक्षण होने का भाव। अपूर्वता। अद्भुतता। अनोखापन।

विलखना-क्रि० अ० [सं० विकल] दुखी होना। वि० दे० 'बिलखना'।

⊛-क्रि० अ० [सं० लक्ष] ताड़ना। पता पाना। लक्ष करना।

विलखाना-क्रि० स० [हिं० विलखना का स०] बिलखाना का सकर्मक रूप। विकल करना। वि० दे० 'बिलखना'।

विलग-वि० [हिं० वि (उप०)+लगना] अलग। पृथक्।

संज्ञा पुं० अंतर। भेद। फरक।

विलगाना-क्रि० अ० [हिं० विलग+ना (प्रत्य०)] (१) अलग होना। पृथक् होना। (२) पृथक् पृथक् दिखाई पड़ना। भिन्न या अलग दिखाई देना।

क्रि० स० पृथक् करना। अलग करना। वि० दे० "बिलगाना"।

विलच्छन-वि० दे० "विलक्षण"।

विलपना⊛-क्रि० अ० [सं० विलाप] विलाप करना। रोना।

विलपाना⊛-क्रि० स० [हिं० विलपना का स०] दूसरे को विलाप करने में प्रवृत्त करना। रुलाना।

विलब्ध-वि० [सं०] (१) दिया हुआ। पाया हुआ। (२) अलग किया हुआ।

विलम⊛-संज्ञा पुं० [सं० विलंब] देर। अबेर। विलंब।

विलमना⊛-क्रि० अ० दे० "बिलमना"।

विलय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विलीन होने की क्रिया या भाव। लोप। अस्त। (२) मृत्यु। मौत। (३) नाश। (४) प्रलय।

विलयन-संज्ञा पुं० [सं०] लय को प्राप्त होना। विलीन होना।

विलसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमकने की क्रिया। (२) क्रीड़ा। प्रमोद।

विलसना⊛-क्रि० अ० [सं० विलस] (१) शोभा पाना। (२) विलास करना। क्रीड़ा करना। (३) आनंद मनाना। वि० दे० "बिलसना"।

विलसाना⊛-क्रि० स० दे० "बिलसाना"।

विलहबंदी-संज्ञा स्त्री० [?] जिले के बन्दोबस्त का वह संक्षिप्त ब्योरा जिसमें प्रत्येक महाल का नाम, काश्तकारों के नाम और उनके लगान आदि का ब्योरा लिखा होता है। बितरबन्दी।

विलाता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया।

विलाना-क्रि० अ० दे० "बिलाना"

विलाप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिलख बिलख कर या विकल होकर रोने की क्रिया। रोकर दुःख प्रकट करने की क्रिया। क्रन्दन। रुदन।

विलापना⊛-क्रि० अ० [सं० विलापन] शोक करना। विलाप करना।

क्रि० स० [सं० रोपना] वृक्ष रोपना या लगाना।

विलायत-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पराया देश। दूसरों का देश। (२) दूरस्थ देश। दूर का देश। विशेषतः आजकल की बोलचाल में युरोप या अमेरिका का कोई देश। जैसे,—आप दो बार विलायत हो आए हैं।

विलायती-वि० [अ०] (१) विलायत का। विदेशी। (२) दूसरे देश में बना हुआ। (३) अन्य देश का रहनेवाला। परदेशी।

विलायती अनन्नास-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती+अनन्नास] रामबाँस। रामबान। वि० दे० "रामबाँस"।

विलायती कद्दू-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती+कद्दू]। एक विशेष प्रकार का कद्दू, जो तरकारी के काम में आता है।

विलायती कासनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० विलायती+कासनी] एक प्रकार की कासनी जिसकी पत्तियाँ दवा के काम में आती हैं।

बिलायती कीकर-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + कीकर] पहाड़ी कीकर जो हिमालय में पाँच हजार फुट की ऊँचाई तक होता है। यह बाढ़ लगाने के काम आता है। यह जाड़े के दिनों में खूब फूलता है और इसके फूलों से बहुत अच्छी महक निकलती है। युरोप में इन फूलों से कई प्रकार के इत्र आदि बनाए जाते हैं। इसे परसी बबूल भी कहते हैं।

बिलायती छछूँदर-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + छछूँदर] एक प्रकार का छछूँदर जो इंगलैण्ड के पश्चिमी ओर के प्रदेशों में बहुत पाया जाता है। यह पृथ्वी के नीचे सुरंग में रहता है और प्रायः दूध पीता है। इसे अंधकार अधिक प्रिय होता है। इस के अगले पैर चौड़े और पट्टेदार तिरछे होते हैं। इसकी आँखें छोटी, थुथना लंबा और नोकदार, बाल सघन और कोमल होते हैं। इसकी श्रवण शक्ति बहुत तेज़ होती है।

बिलायती नील-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + नील] एक विशेष प्रकार का नीला रंग जो चीन से आता है।

बिलायती पटुआ-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + पटुआ] लाल पटुआ। लाल सन।

बिलायती पात-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + पटुआ] रामबाँस। कृष्ण केतकी।

बिलायती प्याज-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + प्याज] एक प्रकार का प्याज जिसमें गाँठ नहीं होती, सिर्फ गूदेदार जड़ होती है।

बिलायती बैंगन-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + बैंगन] एक प्रकार का बैंगन या भंटा जो इस देश में युरोप से आया है। यह क्षुप जाति की वनस्पति है जो प्रति वर्ष बोई जाती है। इसका क्षुप दो ढाई हाथ ऊँचा होता है। इसकी डालियाँ भूमि की ओर झुकी अथवा भूमि पर पसरी रहती हैं। पत्ते आलू के पत्तों के से होते हैं। डंडियों के बीच बीच से सींके निकलते हैं जिन पर गुच्छे में फूल आते हैं। ये फूल साधारण बैंगन के फूलों के सदृश, पर उनसे छोटे होते हैं। इनका रंग पीला होता है। फल प्रायः दो से चार इंच तक के गोलाकार और कुछ चिपटे (नारंगी के समान) होते हैं। कच्चे रहने पर उनका रंग हरा और पकने पर लाल चमकीला हो जाता है। इसकी तरकारी, चटनी आदि बनती है। स्वाद में यह कुछ खट्टापन लिए होता है। रासायनिक विश्लेषण से पता लगता है कि इसमें २१ सैकड़े लोहे का अंश होता है। अतः यह रक्त-वर्धक है। अंग्रेज लोग इसका अधिक व्यवहार करते हैं। इसे टुमेटो कहते हैं।

बिलायती लहसुन-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + लहसुन] एक प्रकार का लहसुन जो मसाले के काम में आता है।

बिलायती सिरिस-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + सिरिस] एक प्रकार का सिरिस जो विदेश से यहाँ आया है, पर अब यहाँ भी होने लगा है। यह नीलगिरि पर्वत पर बहुतायत से होता है। पंजाब में भी यह पाया जाता है। इसकी छाल प्रायः चमड़ा सिझाने के काम में आती है।

बिलायती सेम-संज्ञा स्त्री० [हिं० विलायती + सेम] एक प्रकार की सेम जिसकी फलियाँ साधारण सेम से कुछ बड़ी होती हैं।

बिलायन-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक अस्त्र। कहते हैं कि जब इस अस्त्र का उपयोग किया जाता था, तब शत्रु की सेना विश्राम करने लगती थी।

बिलावली-संज्ञा स्त्री० [हिं० बिलावल] एक रागिनी जो हिंडोल राग की स्त्री मानी जाती है। (संगीत)

बिलास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रसन्न या प्रफुल्लित करनेवाली क्रिया। (२) सुख-भोग। आनन्दमय क्रीड़ा। मनोरंजन। मनोविनोद। (३) आनंद। हर्ष। (४) संयोग के समय में अनेक हाव भाव अथवा प्रेमसूचक क्रियाएँ जिनसे स्त्रियाँ पुरुषों को अपनी ओर अनुरक्त करती हैं। हाव भाव। नाज नखरा। (५) किसी अंग की मनोहर चेष्टा। जैसे भ्रविलास, करविलास। उ०—भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बाम दिस सीता सोई।—तुलसी। (६) किसी चीज़ का हिलना डोलना। जैसे,—चपला का विलास। (७) आराम तलबी। अतिशय सुख भोग।

बिलासक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विलासिका] इधर उधर फिरनेवाला। भ्रमणशील।

बिलासिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रूपक जिसमें एक ही अंक होता है। इसका विषय संक्षिप्त और साधारण होता है।

वि० स्त्री० आनन्द देनेवाली।

बिलासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुन्दरी युवा स्त्री। कामिनी। (२) वेश्या। गणिका। (३) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ज, र, ज, ग, ग, (।ऽ। ऽ।ऽ ।ऽ। ऽ ऽ) होते हैं।

बिलासी-संज्ञा पुं० [सं० विलासिन्] [स्त्री० विलासिनी] (१) सुख भोग में अनुरक्त पुरुष। कामी। (२) जिसे आमोद प्रमोद पसंद हो। क्रीड़ाशील। हँसोड़। कौतुकशील। (३) ऐश आराम पसंद। आराम तलब। (४) चलता फिरता। चलन।

बिलास्य-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे।

बिलिखित-वि० [सं०] (१) खरोंचा हुआ। (२) लिखा हुआ (३) खुदा हुआ।

बिलिगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का सर्प।

बिलिप्त-वि० [सं०] पुता हुआ। लिपा हुआ।

विलंबना-क्रि० अ० [सं० विलंबन] (१) देर करना। विलंब करना। आवश्यकता से अधिक समय लगाना। (२) रम जाना। मन लगने के कारण बस जाना। उ०—भँवर कँवल रस बेधिया, अमत न भरमै जाइ। तहाँ बास बिलंबिया, मगन भया रस खाइ।—दादू। (३) लटकना। (४) सहारा लेना।

विलंबिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रोग जो विदग्धाजीर्ण द्वारा उत्पन्न होता है।

विशेष—इस रोग में खाया हुआ अन्न कफ और वायु से दूषित होकर पेट में दुःख देता है। न तो वमन होता है न मल निकलता है।

विलंबित-वि० [सं०] (१) लटकता हुआ। झूलता हुआ। उ०—राजत रोमक की तन राजिव है रस बिच नदी सुख देनी। आगे भई प्रतिबिम्बित पाइ बिलम्बित जो मृगनैनी कि बेनी।—द्विज। (२) जिसमें विलंब या देर हुई हो।

संज्ञा पुं० सुस्त चलनेवाला जानवर। जैसे,—हाथी, गैंडा, भैंस इत्यादि।

विलंबी-वि० [सं० विलंबिन्] [स्त्री० विलंबिनी] लटकता हुआ। झूलता हुआ।

संज्ञा पुं० साठ संवत्सरों में से बत्तीसवाँ संवत्सर।

विलंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उदारता। (२) दान। (३) उपहार। भेंट।

विलक्ष-वि० [सं०] (१) अचंभे में पड़ा हुआ। आश्चर्यचकित। (२) लज्जित। (३) घबराया हुआ। व्यस्त।

विलक्षण-वि० [सं०] (१) साधारण से भिन्न। असाधारण। अपूर्व। अद्भुत। (२) अनोखा। अनूठा।

विलक्षणता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विलक्षण होने का भाव। अपूर्वता। अद्भुतता। अनोखापन।

विलखना-क्रि० अ० [सं० विकल] दुखी होना। क्रि० दे० 'बिलखना'।

*-क्रि० अ० [सं० लक्ष] ताड़ना। पता पाना। लक्ष करना।

विलखाना-क्रि० स० [हिं० बिलखना का स०] विलखाना का सकर्मक रूप। विकल करना। क्रि० दे० 'बिलखना'।

विलग-वि० [हिं० वि (उप०)+लगना] अलग। पृथक्।

संज्ञा पुं० अंतर। भेद। फरक।

विलगाना-क्रि० अ० [हिं० विलग+ना (प्रत्य०)] (१) अलग होना। पृथक् होना। (२) पृथक् पृथक् दिखाई पड़ना। विभक्त या अलग दिखाई देना।

क्रि० स० पृथक् करना। अलग करना। क्रि० दे० "बिलगाना"।

विलच्छन-वि० दे० "विलक्षण"।

विलपना*-क्रि० अ० [सं० विलाप] विलाप करना। रोना।

विलपाना*-क्रि० स० [हिं० विलपना का स०] दूसरे को विलाप करने में प्रवृत्त करना। रुलाना।

विलब्ध-वि० [सं०] (१) दिया हुआ। पाया हुआ। (२) अलग किया हुआ।

विलम*-संज्ञा पुं० [सं० विलंब] देर। अबेर। विलंब।

विलमना*-क्रि० अ० दे० "बिलमना"।

विलय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विलीन होने की क्रिया या भाव। लोप। अस्त। (२) मृत्यु। मौत। (३) नाश। (४) प्रलय।

विलयन-संज्ञा पुं० [सं०] लय को प्राप्त होना। विलीन होना।

विलसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमकने की क्रिया। (२) क्रीड़ा। प्रमोद।

विलसना*-क्रि० अ० [सं० विलास] (१) शोभा पाना। (२) विलास करना। क्रीड़ा करना। (३) आनंद मनाना। क्रि० दे० "बिलसना"।

विलसाना*-क्रि० स० दे० "बिलसाना"।

विलहबंदी-संज्ञा स्त्री० [?] जिले के बन्दोबस्त का वह संक्षिप्त ब्योरा जिसमें प्रत्येक महाल का नाम, काश्तकारों के नाम और उनके लगान आदि का ब्योरा लिखा होता है। वितरबन्दी।

विलाता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया।

विलाना-क्रि० अ० दे० "बिलाना"

विलाप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिलख बिलख कर या विकल होकर रोने की क्रिया। रोकर दुःख प्रकट करने की क्रिया। क्रन्दन। रुदन।

विलापना*-क्रि० अ० [सं० विलापन] शोक करना। विलाप करना।

क्रि० स० [सं० रोपना] वृक्ष रोपना या लगाना।

विलायत-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पराया देश। दूसरों का देश। (२) दूरस्थ देश। दूर का देश। विशेषतः आजकल की बोलचाल में युरोप या अमेरिका का कोई देश। जैसे,—आप दो बार विलायत हो आए हैं।

विलायती-वि० [अ०] (१) विलायत का। विदेशी। (२) दूसरे देश में बना हुआ। (३) अन्य देश का रहनेवाला। परदेशी।

विलायती अनन्नास-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती+अनन्नास] रामबाँस। रामबान। क्रि० दे० "रामबाँस"।

विलायती कद्दू-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती+कद्दू]। एक विशेष प्रकार का कद्दू, जो तरकारी के काम में आता है।

विलायती कासनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० विलायती+कासनी] एक प्रकार की कासनी जिसकी पत्तियाँ दवा के काम में आती हैं।

विलायती कीकर–संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + कीकर] पहाड़ी कीकर जो हिमालय में पाँच हजार फुट की ऊँचाई तक होता है । यह बाढ़ लगाने के काम आता है । यह जाड़े के दिनों में खूब फूलता है और इसके फूलों से बहुत अच्छी महक निकलती है । युरोप में इन फूलों से कई प्रकार के इत्र आदि बनाए जाते हैं । इसे परसी बबूल भी कहते हैं ।

विलायती छछूँदर–संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + छछूँदर] एक प्रकार का छछूँदर जो इंगलैण्ड के पश्चिमी ओर के प्रदेशों में बहुत पाया जाता है । यह पृथ्वी के नीचे सुरंग में रहता है और प्रायः दूध पीता है । इसे अंधकार अधिक प्रिय होता है । इस के अगले पैर चौड़े और पट्टेदार तरीके होते हैं । इसकी आँखें छोटी, थुथना लंबा और नोकदार, बाल सघन और कोमल होते हैं । इसकी श्रवण शक्ति बहुत तेज होती है ।

विलायती नील–संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + नील] एक विशेष प्रकार का नीला रंग जो चीन से आता है ।

विलायती पटुआ–संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + पटुआ] लाल पटुआ । लाल सन ।

विलायती पात–संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + पटुआ] रामबाँस । कृष्ण केतकी ।

विलायती प्याज–संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + प्याज] एक प्रकार का प्याज जिसमें गाँठ नहीं होती, सिर्फ गूदेदार जड़ होती है ।

विलायती बैंगन–संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + बैंगन] एक प्रकार का बैंगन या भंटा जो इस देश में युरोप से आया है । यह क्षुप जाति की वनस्पति है जो प्रति वर्ष बोई जाती है । इसका क्षुप दो ढाई हाथ ऊँचा होता है । इसकी डालियाँ भूमि की ओर झुकी अथवा भूमि पर पसरी रहती हैं । पत्ते आलू के पत्तों के से होते हैं । डंडियों के बीच बीच से सींके निकलते हैं जिन पर गुच्छे में फूल आते हैं । ये फूल साधारण बैंगन के फूलों के सदृश, पर उनसे छोटे होते हैं । इनका रंग पीला होता है । फल प्रायः दो से चार इंच तक के गोलाकार और कुछ चिपटे (नारंगी के समान) होते हैं । कच्चे रहने पर उनका रंग हरा और पकने पर लाल चमकीला हो जाता है । इसकी तरकारी, चटनी आदि बनती है । स्वाद में यह कुछ खट्टापन लिए होता है । रासायनिक विश्लेषण से पता लगता है कि इसमें २१ सैकड़े लोहे का अंश होता है । अतः यह रक्त-वर्धक है । अंग्रेज लोग इसका अधिक व्यवहार करते हैं । इसे टुमेटो कहते हैं ।

विलायती लहसुन–संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + लहसुन] एक प्रकार का लहसुन जो मसाले के काम में आता है ।

विलायती सिरिस–संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + सिरिस] एक प्रकार का सिरिस जो विदेश से यहाँ आया है, पर अब यहाँ भी होने लगा है । यह नीलगिरि पर्वत पर बहुतायत से होता है । पंजाब में भी यह पाया जाता है । इसकी छाल प्रायः चमड़ा सिझाने के काम में आती है ।

विलायती सेम–संज्ञा स्त्री० [हिं० विलायती + सेम] एक प्रकार की सेम जिसकी फलियाँ साधारण सेम से कुछ बड़ी होती हैं ।

विलायन–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक अस्त्र । कहते हैं कि जब इस अस्त्र का उपयोग किया जाता था, तब शत्रु की सेना विश्राम करने लगती थी ।

विलावली–संज्ञा स्त्री० [हिं० बिलावल] एक रागिनी जो हिंडोल राग की स्त्री मानी जाती है । (संगीत)

विलास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रसन्न या प्रफुल्लित करनेवाली क्रिया । (२) सुख-भोग । आनन्दमय क्रीड़ा । मनोरंजन । मनोविनोद । (३) आनंद । हर्ष । (४) संयोग के समय में अनेक हाव भाव अथवा प्रेमसूचक क्रियाएँ जिनसे स्त्रियाँ पुरुषों को अपनी ओर अनुरक्त करती हैं । हाव भाव । नाज नखरा । (५) किसी अंग की मनोहर चेष्टा । जैसे भ्रूविलास, करविलास । उ०—भृकुटि विलास जासु जग होई । राम बाम दिस सीता सोई ।—तुलसी । (६) किसी चीज़ का हिलना डोलना । जैसे,—चपला का विलास । (७) आराम तलबी । अतिशय सुख भोग ।

विलासक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विलासिका] इधर उधर फिरनेवाला । भ्रमणशील ।

विलासिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रूपक जिसमें एक ही अंक होता है । इसका विषय संक्षिप्त और साधारण होता है ।

वि० स्त्री० आनन्द देनेवाली ।

विलासिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुन्दरी युवा स्त्री । कामिनी । (२) वेश्या । गणिका । (३) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ज, र, ज, ग, ग, (।ऽ। ऽ।ऽ ।ऽ। ऽ ऽ) होते हैं ।

विलासी–संज्ञा पुं० [सं० विलासिन्] [स्त्री० विलासिनी] (१) सुख भोग में अनुरक्त पुरुष । कामी । (२) जिसे आमोद प्रमोद पसंद हो । क्रीड़ाशील । हँसोड़ । कौतुकशील । (३) ऐश आराम पसंद । आराम तलब । (४) चन्द्रमा । (५) ... अग्नि ।

विलास्य–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे ।

विलिखित–वि० [सं०] (१) खरोचा हुआ । (२) लिखा हुआ (३) खुदा हुआ ।

विलिंगी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का साँप ।

विलित–वि० [सं०] छुपा हुआ । छिपा हुआ ।

विक्षिप्त-वि० [सं०] (१) टूटा हुआ। उखड़ा हुआ। (२) जो ठीक अवस्था में न हो। अस्तव्यस्त।

विलीक*-वि० पुं० [सं० व्यलीक] अनुचित। नामुनासिब।

विलीन-वि० [सं०] (१) जो अदृश्य हो गया हो। लुप्त। (२) जो मिल गया हो। जैसे, पानी में नमक विलीन हो गया। (३) छिपा हुआ। (४) नष्ट। क्षयप्राप्त।

विलुप्त-वि० [सं०] (१) जिसका लोप हो गया हो। नष्ट। (२) जो अदृश्य हो गया हो। जो दिखाई न पड़ता हो।

विलुप्तायोनि-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का योनि रोग। इस रोग में योनी में सदा पीड़ा होती रहती है।

विलुम्पक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाश करनेवाला।

विलून-वि० [सं०] कटा हुआ। अलग किया हुआ।

विलेप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर आदि पर चुपड़कर लगाने की चीज़। लेप। (२) पलस्तर। गारा।

विलेपन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लेप करने या लगाने की क्रिया। अच्छी तरह लीपना। लगाना। (२) लगाने या लेप करने का पदार्थ। जैसे,—चन्दन, केसर आदि।

विलेशय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिल या दरार में रहनेवाले जीव। जैसे साँप, बिच्छू, गोह आदि। (२) सर्प। साँप। उ०—आशीविष विषधर फणी मणी विलेशय व्याल।—नंददास।

विलोकना-क्रि० स० [सं० विलोकन] (१) देखना। (२) अवलोकन करना। वि० दे० "विलोकना"।

विलोकनि-संज्ञा स्त्री० दे० "विलोकनि"।

विलोचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नेत्र। नयन। आँख। (२) पुराणानुसार एक नरक का नाम जिसमें मनुष्य अन्धा हो जाता है और न देखने के कारण अनेक यातनाएँ भोगता है। (३) लोचन-रहित करने की क्रिया। आँखें फोड़ने की क्रिया। नेत्र-रहित कर देने की क्रिया।

विलोटक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली। वेला मच्छली।

विलोड़ना-क्रि० स० दे० "विलोड़ना"।

विलोना-क्रि० स० दे० "विलोना"।

विलोप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु को लेकर भाग जाने की क्रिया। (२) रुकावट। (३) विघ्न। बाधा। (४) आघात। (५) नाश। लोप। (६) हानि। नुकसान।

विलोपक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाश करनेवाला। (२) दूर करनेवाला। (३) लेकर भागनेवाला।

विलोपन-संज्ञा पुं० [सं०] विलोप करने की क्रिया।

विलोपना-क्रि० स० [सं० विलोपन] (१) लोप करना। नाश करना। (२) लेकर भागना। (३) विघ्न डालना। बाधा उपस्थित करना।

विलोपी-संज्ञा पुं० [सं० विलोपिन्] [स्त्री० विलोपिनी] विलोप करनेवाला। नाश करनेवाला।

विलोप्य-वि० [सं०] विलोप करने या होने योग्य।

विलोभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रलोभन। (२) मोह। माया। भ्रम।

वि० जिसके मन में किसी प्रकार का लालच न हो। लोभ-रहित।

विलोभन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोभ दिखाने की क्रिया। (२) मोहित या आकर्षित करने का व्यापार (३) कोई बुरा कार्य्य करने के लिये किसी को लोभ दिखाने का काम। ललचाना।

विलोम-वि० [सं०] (१) विपरीत। उलटा। प्रतिकूल। उ०—तुम सन कही वचन कटु बानी। अपने हाथ मीचु वहि माँगी। कहेसि विलोम-वचन तजि शाना। यहि कर काल आय नियराना।—सबल। (२) संगीत में ऊँचे स्वर से नीचे स्वर की ओर आना। स्वर का अवरोह। उतार। (३) ऊँचे की ओर से नीचे की ओर आना।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्प। (२) वरुण। (३) कुत्ता। (४) रहट।

विलोमक-वि० [सं०] विपरीत। प्रतिकूल।

विलोम क्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रिया जो अंत से आदि की ओर की जाय। उलटी ओर से होनेवाली क्रिया।

विलोमजिह्व-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हाथी।

विलोम वर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] वर्ण सङ्कर जाति। दोगली जाति।

विलोमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] आँवला। आमलकी।

विलोल-वि० [सं०] (१) चंचल। (२) सुन्दर। उ०—(क) चपल विलोल डोल वह लागी। थिर न रहे चंचल बैरागी।—जायसी। (ख) चहुटी चिबुक चाँपि चूँवि विलोल लोयन कीं, रस में विरस कलो वचन मलीनो है। गहि भरि लीनो कछु उत्तर न आल दीनों हाल से हवाल राइ अंक भरि लीनो है।—सूदन।

विल्व-संज्ञा पुं० [सं०] बेल वृक्ष। बेल का पेड़।

विल्व तेल-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल। इसे बनाने के लिये बेल की जड़ का रस, सोंठ, मिर्च, पीपल, पीपलामूल, अपामार्ग का क्षार और जवाखार को कूटकर गोमूत्र के साथ तेल में डालकर मन्द आँच पर पकाते हैं। रस जलने और तेल मात्र रहने पर उतार लेते हैं। कहते हैं कि इससे कान से बधिरता, कर्ण-स्रावादि रोग अच्छे हो जाते हैं।

विल्वपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बेल का पत्ता, जो शिव पर चढ़ाने के काम में आता है। बेलपत्र।

बिल्वमंगल-संज्ञा पुं० [सं०] भक्त और महाकवि सूरदास का अन्धे होने से पूर्व का नाम।

बिलवेश-संज्ञा पुं० [सं०] आधुनिक भिलसा नगरी का प्राचीन नाम जो ग्वालियर के दक्षिण में बेतवा नदी के दाहिने किनारे पर बसी है। इसका पुराना नाम भद्रावत भी कहा जाता है।

विबंधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोकनेवाला। (२) कोष्ट-बद्धता। कब्जियत। कब्ज।

विबंधन-संज्ञा पुं० [सं०] रोक। बंधन। रुकावट।

विव-वि० [सं० द्वि] (१) दो। (२) द्वितीय। दूसरा। वि० दे० "विवि"।

विवक्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत बोलनेवाला। वाचाल। (२) स्पष्ट बोलनेवाला। (३) वक्ता। वाग्मी।

विवक्ता-संज्ञा पुं० [सं० विवक्तृ] (१) कहनेवाला। (२) किसी बात को प्रकट करनेवाला। (३) दुरुस्त करने या सुधारनेवाला। संशोधन करनेवाला।

विवक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कोई बात कहने की इच्छा। बोलने की इच्छा। (२) अर्थ। तात्पर्य। आशय। (३) अनिश्चय। शक। संदेह।

विवक्षित-वि० [सं०] जिसकी आवश्यकता या इच्छा हो। ईप्सित। अपेक्षित।

विवदना॰-क्रि० अ० [सं० विवाद + हिं० ना] किसी वस्तु या विषय पर जबानी झगड़ा करना। शास्त्रार्थ करना। विवाद करना। जबानी झगड़ना। उ०—इमि विवदहि शारद यति रामा। सुनि विस्मित सब विबुध समाजा।—रां० द्वि०।

विवध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह लकड़ी जो बैलों के कन्धों पर उस समय रक्खी जाती है, जब उन्हें कोई वस्तु खींचकर ले जानी होती है। जुआठा। (२) भूसे या अनाज की राशि। (३) चौड़ी सड़क। राजमार्ग।

विवर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छिद्र। बिल। (२) गड्ढा। दरार। गर्त। (३) गुफा। कन्दरा।

विवरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु को स्पष्ट रूप से समझाने की क्रिया। विवेचन। व्याख्या। (२) सविस्तर वर्णन। वृत्तान्त। बयान। हाल। (३) भाष्य। टीका।

विवरना-क्रि० अ० दे० "बिवरना"।

विवर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्याग करने की क्रिया। परित्याग। (२) अनादर। उपेक्षा।

विवर्जित-वि० [सं०] (१) मना किया हुआ। वर्जित। निषिद्ध। (२) उपेक्षित। अनादरित। (३) वंचित। रहित।

विवर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में एक भाव का नाम जिसमें भय, मोह, क्रोध, लज्जा आदि के कारण नायक या नायिका के मुख का रंग बदल जाता है। खराब रंगवाला।
वि० [सं०] (१) नीच। कमीना। (२) नीच जाति का। (३) नीच पेशा या व्यवसाय करनेवाला। (४) कुजाति। (५) जिसका रंग खराब हो गया हो। (६) रंग बदलनेवाला। (७) बदरंग। बुरे रंग का। (८) जिसके चेहरे का रंग उतरा हुआ हो। कांतिहीन।

विवर्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुदाय। समूह। (२) नाच। नृत्य। (३) रूपान्तर। (४) आकाश। (५) भ्रांति। भ्रम।

विवर्त कल्प-संज्ञा पुं० [सं०] वह कल्प जिसमें लोक क्रमशः उन्नति से अवनति को प्राप्त होता है।

विवर्तन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) परिभ्रमण। घूमना फिरना। (२) नाच। नृत्य।

विवर्तवाद-संज्ञा पुं० [सं०] वेदान्त में एक सिद्धान्त जिसके अनुसार ब्रह्म को सृष्टि का मुख्य उत्पत्ति स्थान और संसार को माया मानते हैं। परिणामवाद।

विवर्तस्थायी कल्प-संज्ञा पुं० [सं०] वह समय जब लोक अवनति की पराकाष्ठा को पहुँचकर शून्य दशा में रहता है। कल्पान्त। प्रलय।

विवर्तित-वि० [सं०] (१) परिवर्तित। बदला हुआ। (२) भ्रमित। घूमा हुआ। (३) उखड़ा हुआ। सरका हुआ। (४) अंग जिसमें मोच आ गई हो। जैसे हाथ पैर का विवर्तित होना।

विवर्तितदृ-संज्ञा पुं० [सं०] आँख घुमानेवाला, मुर्गा। अरुण-शिखा।

विवर्द्धन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बढ़ाने या वृद्धि करने की क्रिया। (२) वृद्धि। बढ़ती। उन्नति।

विवर्द्धित-वि० [सं०] (१) बढ़ा हुआ। वृद्धि-प्राप्त। (२) उन्नति-प्राप्त। उन्नत।

विवश-वि० [सं०] (१) जिसका कुछ वश न चले। लाचार। बेबस। मजबूर। (२) पराधीन। परवश। (३) जो काबू में न आवे। स्वाधीन। (४) जिसमें कोई शक्ति या बल न हो। अशक्त।

विवस-वि० दे० "विवश"।

विवस्त्र-वि० [सं०] जिसके शरीर पर वस्त्र न हो। वस्त्र-रहित। नग्न। नंगा।

विवस्वती-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य्यनगरी।

विवस्वत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) अर्क वृक्ष। (३) सूर्य्य का सारथी, अरुण। (४) पंद्रहवें प्रजापति का नाम।

विवाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जो शास्त्रार्थ में दोनों पक्षों के तर्क को देखकर न्याय करे। न्यायधीश। (२) मध्यस्थ।

विवाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी बात या वस्तु पर जबानी झगड़ा। वाक् युद्ध। (२) झगड़ा। कलह।
मुहा०—विवाद उठाना = किसी बात पर मतभेद प्रकट करना और उसके उत्तर की आशा करना। झगड़ा उठाना।
(३) मतभेद। (४) मुकदमेबाजी। अदालत की लड़ाई।

विवादक-संज्ञा पुं० [सं०] विवाद करनेवाला। झगड़ालू।

विवादास्पद-वि० [सं०] जिस पर विवाद या झगड़ा हो। विवाद योग्य। विवादयुक्त। जैसे—अभी इस विषय में कुछ निश्चय नहीं हुआ है; यह विवादास्पद है।

विवादी-संज्ञा पुं० [सं० विवादिन्] (१) विवाद करनेवाला। कहा सुनी या झगड़ा करनेवाला। (२) मुकदमा लड़नेवालों में से कोई एक पक्ष। मुद्दई और मुद्दालेह। (३) संगीत में वह स्वर जिसका किसी राग में बहुत कम व्यवहार हो।

विवाधिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जो कंधे पर चीज़ें ढोकर ले जाय। (२) घूमकर चीजें बेचनेवाला। फेरीवाला।

विवास्य-वि० [सं०] निकाल देने योग्य।

विवाह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रथा जिसके अनुसार स्त्री और पुरुष आपस में दाम्पत्य सूत्र में बँधते हैं। कहीं यह प्रथा सामाजिक होती है, कहीं धार्मिक और कहीं कानून के अनुसार होती है। यह हिन्दुओं के सोलह संस्कारों में से एक संस्कार है। शादी। ब्याह।

विशेष—मनुष्य जाति जब आदिम असभ्यावस्था में थी, उस समय उसमें विवाह या पति-संवरण की प्रथा न थी। केवल काम वेग के कारण स्त्री पुरुषों का समागम हुआ करता था। यह प्रथा अब भी कुछ असभ्य जातियों में प्रचलित है। महाभारत में लिखा है—'प्राचीन काल में स्त्रियाँ नंगी रहती थीं। वे स्वतंत्र और विहारिणी होती थीं और बिना ब्याह किए ही अनेक पुरुषों से समागम करती थीं'। उनका यह कृत्य उस समय अधर्म नहीं समझा जाता था। सभ्यता बढ़ने पर लोगों को घर बसाने और एक ऐसे व्यक्ति को अपने यहाँ रखने की आवश्यकता हुई जो उसका प्रबन्ध कर सके। इसके लिये स्त्रियाँ उपयुक्त समझी गईं। अतः लोगों ने उनको फुसलाकर अथवा बलात् अपने यहाँ रखना आरंभ किया। उन दिनों स्त्री एक पुरुष के अधिकार में तब तक रहती थी, जब तक कोई दूसरा उससे बली पुरुष उसे बल-पूर्वक छीन न ले जाता था। अतः अब ऐसा नियम बनाने की आवश्यकता हुई कि एक दूसरे की स्त्री को हरण न कर सके। पर स्त्री-स्वतंत्रता में बाधा नहीं थी। जब आर्यों की सभ्यता बढ़ी और उनमें वर्णधर्म स्थापित हो चला, तब लोग संयुक्त स्त्री को अपने यहाँ रखने की अपेक्षा असंयुक्त या कन्या को अच्छा समझते थे। कन्या के लिये कभी कभी युद्ध भी हुआ करते थे। धीरे धीरे सभ्यता बढ़ती गई और लोगों में स्त्री पुत्र की ममता अधिक होती गई। पर स्त्रियों की स्वतंत्रता बनी रही। वे एक पुरुष के अधिकार में रहकर भी अन्य की कामना करती थीं। उस समय यह व्यभिचार नहीं समझा जाता था। महाभारत से पता चलता है कि इस प्रथा को उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु ने उठा दिया। उन्होंने यह मर्य्यादा बाँधी कि पति के रहते हुए कोई स्त्री उसकी आज्ञा के विरुद्ध अन्य पुरुष से संभोग न करे। पर उस समय भी पति की अयोग्यता की अवस्था में उसके रहते स्त्रियाँ दूसरा पति कर लेती थीं। महर्षि दीर्घतमा ने यह प्रथा निकाली कि 'यावत् जीवन स्त्रियाँ पति के अधीन रहें। पति के जीवन काल में तथा उसके मरने पर भी वे कभी पर पुरुष का आश्रय न लें। और यदि आश्रय लें, तो पतित समझी जायँ।' धीरे धीरे स्त्रियों की स्वतंत्रता जाती रही और वे उपभोग की सामग्री समझी जाने लगीं। यहाँ तक कि लोग उन्हें पति के मरने पर उसके शव के साथ अन्य आमोद प्रमोद की वस्तुओं की भाँति जलाने लगे जिसमें मरे हुए व्यक्ति को वे स्वर्ग में मिलें। इसी प्रथा ने पीछे सती की प्रथा का रूप धारण किया। पीछे से आर्य जाति व्यसनी हो गई। एक पुरुष अनेक स्त्रियाँ रखने लगा; यहाँ तक कि तपस्वी भी इससे नहीं बचे थे। याज्ञवल्क्य के दो स्त्रियाँ (मैत्रेयी और गार्गी) थीं। आर्य्य लोग अनार्य्य स्त्रियों को भी नहीं छोड़ते थे। इस कारण यह नियम बनाना पड़ा कि यज्ञ-दीक्षा के समय रामा अर्थात् शूद्रा से गमन न करें। पीछे से राजा वेणु ने अपने वंश की रक्षा के लिये जबर्दस्ती 'नियोग' की प्रथा चलाई। मनुजी ने उसकी निन्दा की है। वे लिखते हैं—'राजर्षि वेणु के समय में विद्वान् द्विजों ने मनुष्यों के लिये इस पशु-धर्म (नियोग) का उपदेश किया था। राजर्षि प्रवर वेणु समस्त भूमण्डल का राजा था। उसी कामी ने वर्णों का घाल-मेल किया।" उस समय तक विवाह दो प्रकार के होते थे। एक तो छीन झपटकर, लड़ भिड़कर या योंही कन्या को फुसलाकर अपने यहाँ ले आते थे। दूसरे यज्ञों के समय यजमान अपनी कन्याएँ पुरोहितों को चाहे दक्षिणा रूप में या धर्म समझकर दे देते थे। धीरे धीरे जब विवाह की यह प्रथा अनुचित मालूम हुई, तब विवाह का अधिकार पिता के हाथ में दिया गया और पिता योग्य वरों को एक समाज में बुलाकर कन्याओं को उनमें से एक को चुनने का अधिकार देता था। यही आगे चलकर स्वयंवर हुआ। कभी कभी स्वयंवर के मौके पर भी क्षत्रिय लोग लड़कियाँ उठा ले जाते थे। विवाह के समय प्रायः वर की २५ वर्ष और कन्या की १६ वर्ष की अवस्था होती थी; अतः विधवा होने की कम संभावना रहती थी। धीरे धीरे 'नियोग' की प्रथा मिट गई। विधवा का विवाह भी बुरा समझा जाने लगा। सभ्यता के बढ़ने पर पुरुष लोग स्त्रियों पर कड़ी दृष्टि रखने लगे और उनकी स्वतंत्रता जाती रही। स्त्रियों की स्वतंत्रता हो जाने पर पुरुषों में बहु-विवाह की प्रथा चल पड़ी। पीछे युद्ध के समय में एक बार स्त्रियों की

स्वतंत्रता फिर बढ़ी। पर बौद्ध मत का लोप होने पर वह फिर जाती रही। मुसलमानों के आने पर स्त्रियों की रक्षा करने के लिये हिंदुओं ने उनका जल्दी विवाह करना आरंभ किया; क्योंकि उस समय मुसलमान लोग विवाहित स्त्रियों पर बलात्कार करना धर्म-विरुद्ध समझते थे। इसी से बाल विवाह की प्रथा चली। विवाह आठ प्रकार के माने गए हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच। पर आज कल केवल ब्राह्म विवाह प्रचलित है।

पर्य्या०—दारकर्म। परिणय। पाणिग्रहण।

विवाहना-क्रि० स० दे० "ब्याहना"।

विवाहित-वि० पुं० [सं०] [स्त्री० विवाहिता] जिसका विवाह हो गया हो। ब्याहा हुआ।

विवाहिता-वि० स्त्री० [सं०] जिसका पाणिग्रहण हो चुका हो। ब्याही हुई।

विवाही-वि० स्त्री० [सं० विवाहिता] जिसका विवाह हो चुका हो। उ०—और सहेली सबै बिवाही। मो कहँ देव कतहुँ बर नाहीं।—जायसी।

विवाह्य-वि० [सं०] पाणिग्रहण करने योग्य। ब्याह करने योग्य। ब्याहने लायक।

विविक्ष-वि० [सं० द्वि] (१) दो। (२) दूसरा। उ०—श्रीफल कंज कली से विराजत कै विवि झीनी बसे छिन गंग के। कै गिरि हेम के संपुट साने के राजत संभु मनो रस रंग के।—द्विज।

विविक्त-वि० [सं०] (१) पृथक् किया हुआ। (२) बिलगा हुआ। (३) पवित्र। (४) विजन। निर्जन। (५) त्यक्त।

संज्ञा पुं० [स्त्री० विविक्ता] संन्यासी। त्यागी।

विविक्तचरित-वि० [सं०] जिसका आचरण बहुत अच्छा और पवित्र हो। शुद्ध चरित्रवाला।

विविक्तनाम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार हिरण्यरेता के सात पुत्रों में से एक पुत्र। (२) इसके द्वारा शासित वर्ष का नाम।

विविचार-वि० [सं०] (१) विचार रहित। विवेक रहित। उ०—हौं अपने विविचार विचार अचार बिचार अपार बहाऊँ। धीरज धूरि मिले कहि केशव धर्म के धामनि धूरि जमाऊँ।—केशव। (२) आचार रहित।

विविचारी-संज्ञा पुं० [सं० विविचारिन्] [स्त्री० विविचारिणी] (१) अविवेकी। मूर्ख। बेवकूफ। (२) दुराचारी। दुश्चरित्र। बदचलन।

विविध-वि० [सं०] बहुत प्रकार का। अनेक तरह का। भाँति भाँति का। जैसे,—विविध विषयों से विभूषित मासिक पत्रिका। उ०—प्रति रति मति मति एक करि, विविध विवेक विलास। रसिकन को रसिक प्रिया, कीन्ही केशवदास।—केशव।

विविर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खोह। गुफा। उ०—विविर जाय सुख पाय, पायो महाप्रसाद मुनि। तहँ के तीर्थ निकाय जाय जाय सादर कियो। (२) बिल। (३) दरार।

विवीत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जो चारों ओर से घिरा हो। बाड़ा। (२) पशुओं के चरने का स्थान जो चारों ओर से घिरा हो।

विबुध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवता। (२) पंडित। ज्ञानी।

विबुधपुर-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का देश, स्वर्ग।

विबुधप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में र, स, ज, ज, भ और र गण होते हैं। इसे 'चंचरी' 'चंचली' और 'चर्चरी' भी कहते हैं।

विबुधवन-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का प्रमोद वन, नंदन कानन।

विबुधवैद्य-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के चिकित्सक, अश्विनी-कुमार।

विबुधेश-संज्ञा पुं० [सं० विबुध + ईश] देवताओं का राजा, इन्द्र।

विवृत-वि० [सं०] (१) विस्तृत। फैला हुआ। (२) खुला हुआ।

संज्ञा पुं० ऊष्म स्वरों के उच्चारण करने का एक प्रयत्न।

विवृता-संज्ञा स्त्री० [सं०] योनि का एक रोग जिसमें गूलर के फल के सदृश मंडलाकार फुंसियाँ होती हैं और योनि में बहुत जलन होती है।

विवृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चक्र के समान घूमने की क्रिया। परिभ्रमण। (२) टीका। भाष्य।

विवृतोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अलंकार जिसमें श्लेष से छिपाया हुआ अर्थ कवि स्वयं अपने शब्दों द्वारा प्रकट कर देता है।

विवेक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भली बुरी वस्तु का ज्ञान। सत् असत् का ज्ञान। (२) मन की वह शक्ति जिससे भले बुरे का ज्ञान होता है। अच्छे और बुरे को पहचानने की शक्ति। (३) समझ। विचार। बुद्धि। (४) सत्य ज्ञान। (५) प्रकृति और पुरुष की विभिन्नता का ज्ञान। (६) पानी रखने का एक प्रकार का बरतन।

विवेकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विवेक का भाव। ज्ञान। (२) सत् और असत् का विचार।

विवेकवान्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसे सत् और असत् का ज्ञान हो। अच्छे बुरे को पहचाननेवाला। (२) बुद्धिमान्। अक्लमंद।

विवेकी-संज्ञा पुं० [सं० विवेकिन्] (१) वह जिसे विवेक हो। भले बुरे

का ज्ञान रखनेवाला। (२) विचारवान। बुद्धिमान्। समझदार। (३) ज्ञानी। (४) न्यायशील। (५) वह जो अभियोगों आदि का न्याय करता हो। न्यायाधीश।

विवेचक-संज्ञा पुं० [सं०] विवेचना करनेवाला। विवेकी।

विवेचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु की भली भाँति परीक्षा करना। जाँचना। (२) यह देखना कि कौन सी बात ठीक है और कौन नहीं। निर्णय। (३) व्याख्या। तर्क वितर्क। (४) अनुसंधान। (५) परीक्षा। (६) सत् असत् का विचार। (७) मीमांसा।

विवेचना-संज्ञा स्त्री० "विवेचन"।

विवेचनीय-वि० [सं०] विवेचन करने योग्य। विचार करने लायक।

विवेचित-वि० [सं०] (१) जिसकी विवेचना की गई हो। निर्णय किया हुआ। (२) तै किया हुआ। निश्चित।

विब्बोक-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य शास्त्र के अनुसार एक हाव जिसमें स्त्रियाँ संयोग के समय प्रिय का अनादर करती हैं।

विशंक-वि० [सं०] जिसे किसी प्रकार की शंका या भय न हो। निःशंक। निर्भय। निडर।

विशंकट-वि० [सं०] (१) बहुत बड़ा या विस्तृत। विशाल। (२) भयानक। डरावना।

विशंकनीय-वि० [सं०] जिससे किसी प्रकार की शंका हो। डरने योग्य।

विशंका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आशंका। भय। डर। (२) आशंका का अभाव।

विशंकी-वि० [सं० विशंकिन्] जिसे किसी प्रकार की आशंका या भय हो।

विशंक्य-वि० [सं०] आशंका या भय करने के योग्य।

विश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल की डंठी। मृणाल। (२) चाँदी। (३) मनुष्य। आदमी।

संज्ञा स्त्री० कन्या। लड़की।

विशद-वि० [सं०] (१) स्वच्छ। विमल। (२) साफ। स्पष्ट। (३) जो दिखाई पड़ता हो। व्यक्त। (४) सफेद। (५) प्रसन्न। खुश। (६) सुंदर। मनोहर। खूबसूरत। (७) अनुकूल।

संज्ञा पुं० (१) सफेद रंग। (२) भागवत के अनुसार जयद्रथ के एक पुत्र का नाम। (३) कसीस। (४) बृहती। बड़ी कटाई। बनभंटा।

विशय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संशय। संदेह। शक। (२) आश्रय। सहारा।

विशयी-संज्ञा पुं० [सं० विशयिन्] वह जिसे किसी प्रकार की शंका या संदेह हो।

विशर-संज्ञा पुं० [सं०] मार डालना। वध।

विशरण-संज्ञा पुं० [सं०] मार डालना। हत्या करना। वध करना।

विशरद-संज्ञा पुं० दे० "विशारद"।

विशर्द्धन-संज्ञा पुं० [सं०] वायुत्याग। पादना।

विशल्यकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्विषी।

विशल्यकृत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पलासी लता। (२) आस्फोता या हरपरवाली नामक लता।

विशल्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुड़ुच। (२) अग्निशिखा नामक वृक्ष। (३) दंती वृक्ष। (४) नागदंती। (५) एक प्रकार की तुलसी जिसे रामदंती भी कहते हैं। (६) एक नदी का नाम। (७) लक्ष्मण की स्त्री का नाम। (८) निशोथ। (९) पाटला। (१०) खेसारी।

विशस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार डालना। हत्या करना। वध। (२) खड्ग।

विशसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार डालना। हत्या करना। (२) भागवत के अनुसार एक नरक का नाम। (३) खड्ग।

विशस्त-वि० [सं०] (१) जो मार डाला गया हो। (२) काटा हुआ। (३) जिसे किसी प्रकार का भय न हो।

विशस्ता-संज्ञा पुं० [सं० विशस्तृ] (१) मार डालनेवाला। हत्या करनेवाला। (२) चांडाल।

विशस्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] मार डालना। हत्या।

विशस्पति-संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

विशांपति-संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

विशाकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भद्रचूड़। लंकासीज। (२) दंती। (३) हाथी सुंडी। (४) पाडर या पाटला का वृक्ष।

विशाख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्तिकेय। (२) धनुष चलाने के समय एक पैर आगे और एक उससे कुछ पीछे रखना। (३) माँगनेवाला। याचक। (४) पुनर्नवा। गदहपूरना। (५) सुश्रुत के अनुसार वह अपस्मार रोग जो स्कंद नामक ग्रह के प्रकोप से हो। (६) पुराणानुसार एक देवता का नाम जिनका जन्म कार्तिकेय के वज्र चलाने से हुआ था। (७) कार्तिकेय के छोटे भाई का नाम। (८) शिव।

वि० जिसमें शाखाएँ आदि न हों।

विशाखग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] बेल का पेड़।

विशाखज-संज्ञा पुं० [सं०] नारंगी का पेड़।

विशाखपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बालकों को होनेवाला एक प्रकार का रोग। (वैद्यक)

विशाखयूप-संज्ञा पुं० [सं०] नृसिंह पुराण के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम। कुछ लोग इसे मदरास प्रांत का आधुनिक विशाखपत्तन मानते हैं।

विशाखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों में से सोलहवाँ नक्षत्र जो मिश्र गण के अंतर्गत है और जिसे राधा भी कहते हैं। इसमें चार तारे हैं और इसका आकार तोरण का सा है। यह नक्षत्र दो भागों में बँटा हुआ है, इसलिये इसके दो देवता इंद्र और अग्नि हैं। (२) एक प्राचीन जनपद जो कौशांबी के पास था। (३) सफेद गदहपूरना। (४) काली अपराजिता।

विशाखिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुनर्नवा। गदहपूरना। (२) नीली अपराजिता। (३) करेला।

विशाप-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

विशाय-संज्ञा पुं० [सं०] पहरेदारों का पारी पारी से सोना।

विशायक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की लता जिसे विशाकर भी कहते हैं।

विशारद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो किसी विषय का अच्छा पंडित या विद्वान् हो। (२) वह जो किसी काम में बहुत कुशल हो। दक्ष। (३) वह जिसे अपनी शक्ति पर भरोसा हो। (४) बकुल वृक्ष। मौलसिरी।

वि० (१) प्रसिद्ध। मशहूर। (२) श्रेष्ठ। उत्तम। (३) अभिमानी। घमंडी।

विशारदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केवाँच। कौंछ। (२) धमासा। दुरालभा।

विशाल-वि० [सं०] (१) जो बहुत बड़ा और विस्तृत हो। लंबा चौड़ा। (२) जो देखने में सुंदर और भव्य हो। (३) प्रसिद्ध। मशहूर।

संज्ञा स्त्री० (१) एक प्रकार का मृग। (२) चिड़िया। पक्षी। (३) पेड़। वृक्ष। (४) रामायण के अनुसार राजा इक्ष्वाकु के पुत्र का नाम जिसने विशाला नाम की नगरी स्थापित की थी। (५) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

विशालक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कैथ। कपित्थ। (२) गरुड़। (३) एक यक्ष का नाम।

विशालता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विशाल होने का भाव।

विशालत्वक्-संज्ञा पुं० [सं०] छतिवन।

विशालदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता।

विशालनेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

विशालपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीताल नामक वृक्ष। हिंताल। (२) मानकंद। मानकच्चू।

विशालफलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्पावी। बरसेमा।

विशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रवारुणी नामक लता। इंद्रायन। (२) महेंद्रवारुणी। (३) पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम। (४) दक्ष की एक कन्या का नाम। (५) पोई का साग। (६) एकांगी। मुरामांसी। (७) ककवा नामक घास।

विशालाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेव। शिव। (२) विष्णु। (३) गरुड़। (४) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

वि० जिसकी आँखें बड़ी और सुंदर हों।

विशालाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जिसकी आँखें बड़ी और सुंदर हों। (२) पार्वती। (३) देवी का एक रूप या मूर्ति। (४) चौंसठ योगिनियों में से एक योगिनी का नाम। (५) नागदंती। हाथीशुंडी।

विशाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अजमोदा। (२) पलाशी लता।

विशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बालू। रेत।

विशिख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामसर या भद्रमुंज नामक घास। (२) बाण। (३) वह स्थान जिसमें रोगी रहता हो।

विशिरस्क-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार मेरु पर्वत के पास के एक पर्वत का नाम।

विशिष्ट-वि० [सं०] (१) मिला हुआ। युक्त। (२) जिसमें किसी प्रकार की विशेषता हो। विशेषता-युक्त। जैसे,—कुछ विशिष्ट कर्म ऐसे होते हैं, जिनके लिये मनुष्य को प्रायश्चित्त तक करना होता है। (३) विलक्षण। अद्भुत। (४) जो बहुत अधिक शिष्ट हो। (५) यशस्वी। कीर्तिशाली। (६) प्रसिद्ध। मशहूर।

संज्ञा पुं० सीसा नामक धातु।

विशिष्टचरित्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

विशिष्टता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विशिष्ट का भाव या धर्म। (२) विशेषता।

विशिष्टपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] ग्रंथिपर्णी। गठिवन।

विशिष्टाद्वैत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध दार्शनिक सिद्धांत जिसके अनुसार यह माना जाता है कि जीवात्मा और जगत् दोनों ब्रह्म से भिन्न होने पर भी वास्तव में भिन्न नहीं हैं। इस सिद्धांत में यद्यपि ब्रह्म, जीवात्मा और जगत् तीनों मूलतः एक ही माने जाते हैं, पर फिर भी तीनों कार्य्य रूप में एक दूसरे से भिन्न और कुछ विशिष्ट गुणों से युक्त माने जाते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार जीव और ब्रह्म का वही संबंध है, जो किरण और सूर्य्य का है; अर्थात् किरण जिस प्रकार सूर्य्य से निकली हुई है, उसी प्रकार जीव भी ब्रह्म से निकला हुआ है, और जिस प्रकार किरण से सूर्य्य बहुत बड़ा है, उसी प्रकार जीव से ब्रह्म भी बहुत बड़ा है। इसमें ब्रह्म को एक भी माना जाता है और अनेक भी। वास्तव में द्वैत और अद्वैत दोनों वादों के मध्य का यह मार्ग है, अर्थात् इसमें उन दोनों वादों में सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की गई है। यह वाद रामानुजाचार्य्य का चलाया हुआ है और भेदाभेदवाद या द्वैताद्वैतवाद भी कहलाता है।

विशिष्टी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंकराचार्य की माता का नाम।

विशीर्ण–वि० [सं०] (१) सूखा हुआ । (२) दुबला पतला । (३) बहुत पुराना । जीर्ण ।

विशीर्णपर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] नीम का पेड़ ।

विशील–वि० [सं०] (१) जिसका शील या चरित्र अच्छा न हो । (२) दुष्ट । पाजी ।

विशुंडि–संज्ञा पुं० [सं०] कश्यप के एक पुत्र का नाम ।

विशुद्ध–वि० [सं०] (१) जो बिलकुल शुद्ध हो । जिसमें किसी प्रकार की मिलावट आदि न हो । (२) सत्य । सच्चा ।

संज्ञा पुं० तंत्र के अनुसार शरीर के अंदर के छः चक्रों में से पाँचवाँ चक्र जो गले में माना जाता है । कहते हैं कि इस में सोलह दल होते हैं और शिव तथा आकाश इसमें निवास करते हैं ।

विशुद्धचरित्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम ।

वि० जिसका चरित्र बहुत शुद्ध हो ।

विशुद्धचारी–संज्ञा पुं० [सं० विशुद्धचारिन्] वह जिसका चरित्र बहुत शुद्ध हो ।

विशुद्धता–संज्ञा स्त्री० [सं०] विशुद्ध होने का भाव या धर्म । पवित्रता ।

विशुद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] विशुद्ध होने की क्रिया या भाव । शुद्धता । पवित्रता ।

विशूचिका–संज्ञा स्त्री० दे० "विसूचिका" ।

विश्रृंखल–वि० [सं०] (१) जिसमें शृंखला न हो या न रह गई हो । शृंखला-रहित । (२) जो किसी प्रकार दबाया या रोका न जा सके ।

विश्रृंग–वि० [सं०] जिसे शृंग न हों । शृंग-रहित ।

विशेष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भेद । अंतर । फरक । (२) प्रकार । तरह । ढंग । (३) नियम । कायदा । (४) विचित्रता । (५) व्यक्ति । (६) सार । निचोड़ । (७) तारतम्य । मुनासिबत । (८) वह जो साधारण के अतिरिक्त और उससे अधिक हो । अधिकता । ज्यादती । (९) अवयव । अंग । (१०) वस्तु । पदार्थ । चीज । (११) तिल का पौधा । (१२) साहित्य में एक प्रकार का अलंकार जिसके तीन भेद कहे गए हैं । पहला वह भेद है जिसमें बिना किसी आधार के ही आधेय का वर्णन होता है । जैसे,—बिनु वारिद बिजुरी बिना वारि लसत जुग मीन । बिधु ऊपर तम सोम यह निरखी रीति नवीन । दूसरा भेद वह है जिसमें थोड़ा सा ही काम करने पर बहुत बड़ा काम या लाभ हो । जैसे,—पाइ चुके फल चारिहू करत गंगजल पान । तीसरा भेद वह है जिसमें एक चीज का अनेक स्थानों में होना वर्णित होता है । जैसे,—घर बाहर अब ऊरधो सब ठौं राम लखाय । (१३) वैशेषिक दर्शन के अनुसार सात प्रकार के पदार्थों में से एक प्रकार का पदार्थ ।

विशेष–कणाद ने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये सात पदार्थ माने हैं । "विशेष" वे गुण हैं जिनके कारण कोई एक पदार्थ शेष दूसरे पदार्थों से भिन्न समझा जाता है । दो वस्तुओं में रूप, रस और गंध आदि में जो अंतर होता है, वह इसी "विशेष" गुण के कारण होता है । रूप, रस, गंध, स्पर्श, स्नेह, द्रवत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार और शब्द ये वैशेषिक गुण या विशेष गुण कहलाते हैं । कणाद के दर्शन में इन्हीं विशेष पदार्थों या गुणों आदि का विवेचन है; इसी लिये वह "वैशेषिक दर्शन" कहलाता है ।

विशेषक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) माथे पर लगाया जानेवाला तिलक । टीका । (२) तिलक वृक्ष । तिलपुष्पी । (३) चित्रक । (४) साहित्य में एक प्रकार का पद्य जिसमें तीन श्लोकों या पदों में एक ही क्रिया रहती है; इसलिये उन तीनों श्लोकों या पदों का एक साथ ही अन्वय होता है ।

वि० विशेषता उत्पन्न करनेवाला । विशेष रूप देनेवाला ।

विशेषज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे किसी विषय का विशेष ज्ञान हो । वह जो किसी बात का खास तौर पर जानकार हो । किसी विषय का पारदर्शी ।

विशेषण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो किसी प्रकार की विशेषता उत्पन्न करता या बतलाता हो । (२) व्याकरण में वह विकारी शब्द जिससे किसी संज्ञा की कोई विशेषता सूचित होती है, अथवा उसकी व्याप्ति मर्य्यादित होती है । जैसे,— "वीर मराठे" या "चपल बालक" में "वीर" और "चपल" शब्द विशेषण हैं । जब विशेषण किसी संज्ञा के साथ लगता है, तब उसे विशेष्य-विशेषण कहते हैं; और जब वह क्रिया के साथ लगता है, तब उसे विधेय विशेषण कहते हैं । जैसे,— "हमें तो संसार सूना देख पड़ता है" । यहाँ "सूना" विधेय विशेषण है । साधारणतः विशेषण तीन प्रकार के होते हैं— (१) सार्वनामिक विशेषण; जैसे,— "वह आदमी चला गया" में "वह" सार्वनामिक विशेषण है । (२) गुणवाचक विशेषण; जैसे,—नया, पुराना, सुडौल, सूखा, खराब आदि । और (३) संख्यावाचक विशेषण; जैसे,—आधा, एक, चार, दसवाँ ।

विशेषता–संज्ञा स्त्री० [सं०] विशेष का भाव या धर्म । खसूसियत । खासपन । जैसे,—आपकी बातों में यह विशेषता है कि तुरंत प्रभाव डालती हैं ।

विशेषमति–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम ।

विशेषित–वि० [सं०] (१) जो खास तौर पर अलग किया गया हो । जो "विशेष" किया या बनाया गया हो । (२) जिसमें विशेषण लगा हो ।

विशेषी-वि० [सं० विशेषिन्] जिसमें कोई विशेष बात हो। विशेषतायुक्त।

विशेषोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] काव्य में एक प्रकार का अलंकार जिसमें पूर्ण कारण के रहते [redacted] भी कार्य्य के न होने का वर्णन रहता है। जैसे,—(क) मलि इन लोयन की कछू उपजी बड़ी बलाय। नीरे भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाय। (ख) तमकि ताकि तकि शिव धनु धरहीं। उठत न कोटि भाँति बल करहीं—तुलसी।

विशेष्य-संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में वह संज्ञा जिसके साथ कोई विशेषण लगा होता है। वह संज्ञा जिसकी विशेषता विशेषण लगाकर सूचित की जाय। जैसे,—मोटा आदमी या काला कुत्ता में "आदमी" और "कुत्ता" विशेष्य हैं।

विशेष्यासिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह हेत्वाभास जिसके द्वारा स्वरूप की असिद्धि हो।

विशोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अशोक वृक्ष। (२) युधिष्ठिर के एक अनुचर का नाम। (३) पुराणानुसार ब्रह्मा के एक मानसपुत्र का नाम।

वि० जिसे शोक न हो। शोक रहित।

विशोकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शोक रहित होने का भाव या धर्म।

विशोक षष्ठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र शुक्ला षष्ठी।

विशेष—कहते हैं कि इस दिन व्रत करने से मनुष्य को शोक नहीं होता।

विशोका-संज्ञा स्त्री० [सं०] योग दर्शन के अनुसार वह चित्त-वृत्ति जो संप्रज्ञात समाधि से पहले होती है। इसे ज्योतिष्मती भी कहते हैं।

विशोध-वि० [सं०] विशुद्ध करने योग्य। साफ करने लायक।

विशोधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह साफ करना। (२) विष्णु।

विशोधनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ब्रह्मा की पुरी का नाम। (२) नागदंती। (३) नीली नामक पौधा। (४) पान। तांबूल।

विशोधिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागदंती। (२) नीली। (३) जमालगोटा।

विशोधिनीबीज-संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।

विशोधी-वि० [सं० विशोधिन्] बिलकुल शुद्ध करनेवाला। विशुद्धि करनेवाला।

विशोष-संज्ञा पुं० [सं०] नीरसता। शुष्कता। रूखापन।

विशोषण-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह सोखना।

विशोषी-संज्ञा पुं० [सं० विशोषिन्] अच्छी तरह सोखनेवाला।

विश्-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह जिसने जन्म लिया हो। प्रजा। (२) कन्या। लड़की।

विश्पति-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विश्पत्नी] (१) राजा। (२) वैश्यों का प्रधान, मुखिया या पंच।

विश्यापर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

विश्रंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्वास। एतबार। (२) प्रेमी और प्रेमिका में रति के समय होनेवाला झगड़ा। (३) प्रेम। मुहब्बत। (४) हत्या। मार डालना। (५) स्वच्छंदतापूर्वक घूमना फिरना।

विश्रब्ध-वि० [सं०] (१) जो उद्धत न हो। शांत। (२) जिसका विश्वास किया जाय। विश्वसनीय। (३) जिसे किसी प्रकार का भय न हो। निर्भय। निडर।

विश्रब्धनवोढ़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में नवोढ़ा नायिका का एक भेद। वह नवोढ़ा नायिका जिसका अपने पति पर कुछ कुछ अनुराग और कुछ कुछ विश्वास होने लगा हो। उ०—जाहि न चाह कहूँ रति की सुकछू पति को पतियान लगी है। त्यों पदमाकर आनन में रुचि कानन भौंह कमान लगी है। देति छिया न छुवै छतियाँ बतियान में तो मुसक्यान लगी है। प्रीतमै पान खवाइबे को परजंक के पास लौं जान लगी है।—पद्माकर।

विश्रम-संज्ञा पुं० दे० "विश्राम"।

विश्रवण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

विश्रवा-संज्ञा पुं० [सं० विश्रवस्] एक प्राचीन ऋषि जो पुलस्त्य मुनि के पुत्र थे और उनकी पत्नी हविर्भू के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। कुबेर इन्हीं के पुत्र थे और इन्हीं की पत्नी इलविला के गर्भ से जनमे थे।

विश्रांत-वि० [सं०] जिसने विश्राम कर लिया हो। जो थकावट उतार चुका हो।

विश्रांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विश्राम। आराम। (२) पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम। कहते हैं कि जनार्दन ने यहीं आकर विश्राम किया था।

विश्राम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अधिक समय तक कोई काम या परिश्रम करने के कारण थक जाने पर रुकना या ठहरना। श्रम मिटाना। थकावट दूर करना। आराम करना। उ०—किय विश्राम न मगु महिपाला।—तुलसी। (२) ठहरने का स्थान। उ०—प्यारी की ठोढ़ी को बिंदु दिनेस किधौं बिसराम गोविंद के जी को। (३) आराम। चैन। सुख। उ०—कोउ विश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिन। चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिय।—तुलसी।

विश्राव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत अधिक प्रसिद्धि। शोहरत। (२) ध्वनि। (३) झरना, बहना या रसना। क्षरण।

विश्रि-संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु। मौत।

विश्री-वि० [सं०] (१) जिसकी श्री नष्ट हो गई हो। शोभाहीन। (२) भद्दा। कुरूप।

विश्रुत-वि० [सं०] (१) जो जाना या सुना हुआ हो। (२) प्रसिद्ध। विख्यात। मशहूर।

विश्रुतात्मा-संज्ञा पुं० [सं० विश्रुतात्मन्] विष्णु।

विश्रुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रसिद्धि। शोहरत। (२) बहना, बहना या रसना।

विश्लिष्ट-वि० [सं०] (१) जो अलग हो गया हो। जो मिला हुआ न हो। जिसका विश्लेषण हो चुका हो। (२) विकसित। खिला हुआ। (३) जो प्रकट हो। प्रकाशित। (४) जो खुला हुआ हो। मुक्त। (५) थका हुआ। शिथिल।

विश्लिष्टसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वैद्यक के अनुसार हड्डी टूटने का एक प्रकार। (२) शरीर के अंगों की किसी संधि का चोट आदि के कारण टूटना।

विश्लेष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अलग होना। पृथक् होना। (२) वियोग। विछोह। (३) शिथिलता। थकावट। (४) किसी की ओर से मन हट जाना। (५) विकास।

विश्लेषण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ के संयोजक द्रव्यों का अलग अलग करना। (२) वायु के प्रकोप से फोड़े या घाव में होनेवाली एक प्रकार की वेदना।

विश्वंतर-संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् बुद्ध का एक नाम।

विश्वंभर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सारे विश्व का पालन या भरण करनेवाला, परमेश्वर। (२) विष्णु। (३) एक उपनिषद् का नाम।

विश्वंभरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

विश्वंभरेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार हिमालय के एक शिव लिंग का नाम।

विश्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चौदहो भुवनों का समूह। समस्त ब्रह्मांड। वि० दे० "ब्रह्मांड"। (२) संसार। जगत्। दुनिया। (३) सोंठ। (४) बोल नामक गंध द्रव्य। (५) देवताओं का एक गण जिसमें ये दस देवता हैं—वसु, सत्य, क्रतु, दक्ष, काल, काम, धृति, कुरु, पुरूरवा और माद्रवा। ये धर्म के पुत्र और दक्ष की कन्या विश्वा के गर्भ से उत्पन्न माने जाते हैं। (६) जीवात्मा। (७) विष्णु। (८) शिव। (९) शरीर। देह।

वि० (१) समस्त। सब। (२) बहुत। अधिक।

विशेष—इन अर्थों में इस शब्द का व्यवहार यौगिक शब्द बनाने के लिये उनके आरंभ में होता है।

विश्वक-वि० [सं०] समस्त। पूरा।

विश्वकद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिकारी कुत्ता। (२) खल। दुष्ट। पाजी। (३) शब्द। आवाज।

विश्वकर्ता-संज्ञा पुं० [सं० विश्वकर्तृ] संसार को उत्पन्न करनेवाला, परमेश्वर।

विश्वकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सब प्रकार के कार्य्य करने में चतुर हो।

विश्वकर्मजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य्य की पत्नी संज्ञा का एक नाम।

विश्वकर्म्मा-संज्ञा पुं० [सं० विश्वकर्मन्] (१) समस्त संसार की रचना करनेवाला, ईश्वर। (२) ब्रह्मा। (३) सूर्य्य। (४) एक प्रसिद्ध आचार्य्य अथवा देवता जो सब प्रकार के शिल्पशास्त्र के आविष्कर्त्ता और सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता माने जाते हैं। पुराणानुसार ये आठ वसुओं में से प्रभास नामक वसु के पुत्र थे और देवताओं के लिये विमान तथा प्रासाद आदि बनाया करते थे। आग्नेयास्त्र इन्हीं का बनाया हुआ माना जाता है। महाभारत में ये सर्वश्रेष्ठ शिल्पी और अमर कहे गए हैं। रामायण के अनुसार इन्होंने राक्षसों के लिये लंका बनाई थी। वेदों में ये सर्वदर्शी, सर्वनियंता और विधाता कहे गए हैं। वेदों में कहीं कहीं "विश्वकर्म्मा" शब्द इंद्र, सूर्य्य, प्रजापति, विष्णु आदि के अर्थ में भी आया है। महाभारत के अनुसार इनकी माता का नाम लावण्यमयी था; और सूर्य्य की पत्नी संज्ञा इन्हीं की कन्या थी। कहते हैं कि जब सूर्य्य के प्रखर ताप को संज्ञा न सह सकी, तब इन्होंने उसका आठवाँ अंश काट लिया और उससे सुदर्शन चक्र, त्रिशूल आदि बनाकर देवताओं में बाँटे। सृष्टि की रचना करने के कारण ये प्रजापति और त्वष्टा भी कहे जाते हैं। भाद्रपद की संक्रांति को इनकी पूजा हुआ करती है। कारु। तक्षक। देववर्द्धन। (५) शिव का एक नाम। (६) चरक के अनुसार शरीर में की चेतना नामक धातु। (७) बढ़ई। (८) मेमार। राज। (९) लोहार।

विश्वकर्म्मेश-संज्ञा पुं० [सं०] एक शिवलिंग का नाम।

विश्वकाय-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

विश्वकाया-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

विश्वकारक-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

विश्वकारु-संज्ञा पुं० दे० "विश्वकर्म्मा"।

विश्वकार्य-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य की सात प्रधान ज्योतियों का समूह।

विश्वकूट-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार हिमालय की एक चोटी का नाम।

विश्वकृत्-संज्ञा पुं० दे० "विश्वकर्म्मा"।

विश्वकृष्टि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सब लोगों को अपने सगे संबंधी के समान समझता हो।

विश्वकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनिरुद्ध का एक नाम। (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

विश्वकोश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह कोश या भांडार जिसमें संसार भर के सब पदार्थ आदि संगृहीत हों। (२) वह ग्रंथ जिसमें संसार भर के सब प्रकार के विषयों आदि का विस्तृत विवेचन या वर्णन हो।

विश्वकोष-संज्ञा पुं० दे० "विश्वकोश"।

विश्वक्सेन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) पुराणानुसार

तेरहवें मनु का नाम। (२) कालिका पुराण के अनुसार एक चतुर्भुज देवता जो शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए रहते हैं और जो विष्णु का निर्माल्य धारण करनेवाले माने जाते हैं।
विश्वकद्रोना-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियंगु नामक वृक्ष। कँगनी।
विश्वक्षय-संज्ञा पुं० [सं०] विश्व या ब्रह्मांड का नाश। प्रलय।
विश्वगंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बरार प्रदेश की एक छोटी नदी का नाम।
विश्वगंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बोल नामक गंध द्रव्य। (२) प्याज।
विश्वगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।
विश्वगंधि-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार पृथु के पुत्र का नाम।
विश्वग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) भागवत के अनुसार मरीचि के पुत्र का नाम जिसका जन्म पूर्णिमा के गर्भ से हुआ था।
विश्वगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) शिव। (३) पुराणानुसार रैवत के एक पुत्र का नाम।
विश्वगुरु-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
विश्वगोप्ता-संज्ञा पुं० [सं० विश्वगोप्तृ] (१) विष्णु। (२) इंद्र। (३) वह जो समस्त विश्व का पालन करता हो।
विश्वग्रंथि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंसपदी लता। (२) लाल लजालू।
विश्वग्वात-संज्ञा पुं० दे० "विश्वग्वायु"।
विश्वग्वायु-संज्ञा पुं० स्त्री० [सं०] वह वायु जो सब जगह समान रूप से चलती हो। ऐसी वायु अनेक प्रकार के रोग और उत्पात उत्पन्न करनेवाली मानी जाती है।
विश्वचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार बारह प्रकार के महादानों में से एक प्रकार का महादान। इसमें एक हजार पल का सोने का एक चक्र या पहिया बनवाया जाता है जिसमें सोलह आरे होते हैं; और तब यह चक्र कुछ विशिष्ट विधानों के अनुसार दान किया जाता है।
विश्वचक्रात्मा-संज्ञा पुं० [सं० विश्वचक्रात्मन्] विष्णु।
विश्वचक्षु-संज्ञा पुं० [सं० विश्वचक्षुस्] ईश्वर।
विश्वजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोंठ।
विश्वजित्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का यज्ञ। (२) वरुण का पाश। (३) महाभारत के अनुसार एक प्रकार की अग्नि। (४) एक दानव का नाम। (५) सत्यजित् के पुत्र का नाम। (६) वह जिसने सारे विश्व पर विजय प्राप्त की हो।
विश्वग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।
विश्वज्योतिष-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम।
विश्वतनु-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
विश्वतुलसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बबुई तुलसी। वन-तुलसी।
विश्वतृप्त-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
विश्वतोया-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा नदी।
विश्वदासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सातों जिह्वाओं का एक नाम।
विश्वदेव-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार के देवता जिनकी पूजा नांदीमुख श्राद्ध में होती है।
विश्वदेवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागबला। गँगेरन। (२) लाल दंडोत्पल।
विश्वदेव, विश्वदैवत-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तराषाढ़ा नक्षत्र, जिसके देवता विश्वदेव माने जाते हैं।
विश्वधर-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
विश्वधाम-संज्ञा पुं० [सं० विश्वधामन्] (१) ईश्वर। (२ स्वदेश।
विश्वधार-संज्ञा पुं० [सं०] शाकद्वीप के राजा मेधातिथि के एक पुत्र का नाम।
विश्वधारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।
विश्वधारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।
विश्वधेनु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।
विश्वनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) काशी के एक प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग।
विश्वनाभ-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
विश्वनाभि-संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु का चक्र।
विश्वपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) श्रीकृष्ण।
विश्वपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भुइँ आँवला।
विश्वपा-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।
विश्वपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।
विश्वपाल-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।
विश्वपावन-संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी।
विश्वपूजिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी।
विश्वप्रकाशक-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।
विश्वप्रबोध-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
विश्वप्स-संज्ञा पुं० [सं० विश्वप्सन्] (१) अग्नि। (२) चंद्रमा। (३) सूर्य। (४) देवता। (५) विश्वकर्मा।
विश्वप्सा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि।
विश्वबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।
विश्वबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) महादेव।
विश्वबीज-संज्ञा पुं० [सं०] विश्व की मूल प्रकृति या माया।
विश्वबोध-संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् बुद्ध का एक नाम।
विश्वभद्र-संज्ञा पुं० दे० "सर्वतोभद्र"।
विश्वभर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० विश्वभर्तृ] ईश्वर।
विश्वभव-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म जिससे सारे विश्व की सृष्टि हुई है।

विश्वभाव, विश्वभावन-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।

विश्वभुज्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) इंद्र।

विश्वभुजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक देवी का नाम।

विश्वभेषज-संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ।

विश्वमया-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक जिह्वा का नाम।

विश्वमहेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

विश्वमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० विश्वमातृ] समस्त विश्व की माता, दुर्गा।

विश्वमुखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती का एक नाम।

विश्वमूर्त्ति-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

विश्वमोहन-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

विश्वयोनि-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

विश्वरथ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार राजा गाधि के एक पुत्र का नाम।

विश्वरद-संज्ञा पुं० [सं०] मग या भोजक ब्राह्मणों का एक धार्मिक ग्रंथ जिसे वे अपना वेद मानते थे और जो भारतीय आर्य्यों के वेदों का विरोधी था।

विश्वरुचि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्रकार की देवयोनि। (२) एक दानव का नाम।
संज्ञा स्त्री० अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक जिह्वा का नाम।

विश्वरूप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) शिव। (३) पुराणानुसार त्वष्टा के एक पुत्र का नाम। (४) भगवान् श्रीकृष्ण का वह स्वरूप जो उन्होंने गीता का उपदेश करते समय अर्जुन को दिखलाया था।

विशेष—श्रीकृष्ण ने उस अवसर पर अर्जुन को यह दिखलाया या समझाया था कि इस समस्त विश्व या ब्रह्मांड में सूर्य्य, चंद्रमा, तारे, ग्रह आदि जो कुछ हैं, वे सब मेरा ही स्वरूप हैं।

(५) पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।

विश्वरूपक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काला अगर। (२) सिरमी।

विश्वरूपी-संज्ञा पुं० [सं० विश्वरूपिन्] विष्णु।

विश्वरोचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाड़ी या नारीच नामक साग। (२) कचूर या पेचुक नामक साग।

विश्वलोचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य और चंद्रमा।

विश्वलोप-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

विश्ववर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] भुइँ आँवला।

विश्ववार-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में सोम का एक संस्कार।

विश्ववारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्रि गोत्र की एक स्त्री जो ऋग्वेद के पाँचवें मंडल की कुछ ऋचाओं की ऋषि मानी जाती है।

विश्ववास-संज्ञा पुं० [सं०] संसार। जगत्। दुनिया।

विश्वविद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो विश्व की सब बातें जानता हो। बहुत बड़ा पंडित। (२) ईश्वर।

विश्वविद्यालय-संज्ञा पुं० [सं०] वह संस्था जिसमें सभी प्रकार की विद्याओं की उच्च कोटि की शिक्षा दी जाती हो, परीक्षाएँ ली जाती हों और जो लोगों को विद्या संबंधी उपाधियाँ आदि प्रदान करती हो। यूनिवर्सिटी।

विश्ववृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

विश्वव्यापी-संज्ञा पुं० [सं० विश्वव्यापिन्] ईश्वर।
वि० जो सारे विश्व में व्याप्त हो।

विश्वश्रवा-संज्ञा पुं० [सं० विश्वश्रवस्] एक मुनि जो कुबेर और रावण आदि के पिता थे।

विश्वसंभव-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।

विश्वसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ ऋषि मुनि विश्राम करते हों। (२) विश्वास। एतबार।

विश्वसनीय-वि० [सं०] विश्वास करने के योग्य। जिसका एतबार किया जा सके। जैसे,—(क) हमें यह समाचार विश्वसनीय सूत्र से मिला है। (ख) आपकी सब बातें बहुत विश्वसनीय हैं।

विश्वसहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक जिह्वा का नाम।

विश्वसाक्षी-संज्ञा पुं० [सं० विश्वसाक्षिन्] ईश्वर।

विश्वसाम-संज्ञा पुं० [सं० विश्वसामन्] एक वैदिक ऋषि का नाम जो आत्रेय गोत्र के थे और जो अनेक वैदिक मंत्रों के द्रष्टा थे।

विश्वसारक-संज्ञा पुं० [सं०] कंकारी वृक्ष।

विश्वसित-वि० [सं०] विश्वास करने के योग्य। विश्वसनीय। विश्वस्त।

विश्वसृज्-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।

विश्वस्त-वि० [सं०] जिसका विश्वास किया जाय। विश्वसनीय।

विश्वस्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विधवा।

विश्वस्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावर।

विश्वहर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० विश्वहर्तृ] शिव।

विश्वहेतु-संज्ञा पुं० [सं०] विश्व को उत्पन्न करनेवाले, विष्णु।

विश्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दक्ष की एक कन्या जो धर्म को ब्याही थी और जिससे वसु, सत्य, क्रतु आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए थे। (२) एक मान जो २० पल का होता है। (३) अतिविषा। अतीस। (४) शतावर। (५) पीपल। (६) सोंठ। (७) शंखिनी। चोरपुष्पी।

विश्वात्मा-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।

विश्वाची-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वैदिक अप्सरा का नाम। (२) एक प्रकार का रोग जिसमें वायु के कारण कंधे से

उँगलियों तक सारा हाथ न तो फैलाया जा सकता है और न सिकोड़ा जा सकता है।

विश्वातीत-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर

विश्वात्मा-संज्ञा पुं० [सं० विश्वात्मन्] (१) विष्णु। (२) शिव। (३) ब्रह्मा।

विश्वाद्-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

विश्वादि-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का कषाय जो सोंठ, पाठा, क्षेत्रपर्पटी, मोथा, लाल चंदन आदि से बनाया जाता है और जो ज्वर की प्यास, कै तथा दाह आदि को कम करनेवाला माना जाता है।

विश्वाधार-संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

विश्वाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

विश्वानर-संज्ञा पुं० दे० "वैश्वानर"।

विश्वाभू-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

विश्वामित्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध महर्षि जो गाधिज, गाधेय और कौशिक भी कहे जाते हैं।

विशेष—विश्वामित्र कान्यकुब्ज के पुरुवंशी महाराज गाधि के पुत्र थे, परंतु क्षत्रिय कुल में जन्म लेने पर भी अपने तपोबल से महर्षियों में परिगणित हुए। ऋग्वेद के अनेक मंत्र ऐसे हैं जिनके द्रष्टा विश्वामित्र अथवा उनके वंशज माने जाते हैं। इनका विश्वामित्र नाम ब्राह्मणत्व प्राप्त करने पर पड़ा था; नहीं तो इनका पहला क्षत्रिय-दशा का नाम विश्वरथ था। ऋग्वेद में अनेक मंत्र ऐसे मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि ये यज्ञों में पुरोहित का कार्य करते थे, और वृत्ति के संबंध में इनमें तथा वशिष्ठ में बहुत समय तक बराबर झगड़े बखेड़े होते रहते थे। पुराणों में लिखा है कि राजा गाधि को सत्यवती नाम की एक सुंदरी कन्या उत्पन्न हुई थी। यह कन्या उन्होंने ऋचीक ऋषि को दे दी थी। ऋचीक ने एक बार दो अलग अलग चरु तैयार करके अपनी स्त्री सत्यवती को दिए थे और कहा था कि इसमें से यह एक चरु तो तुम खा लेना जिससे तुम्हें ब्राह्मणों के गुण से संपन्न एक पुत्र होगा; और यह दूसरा चरु अपनी माता को दे देना जिससे उन्हें क्षत्रियों के गुणवाला एक बहुत तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होगा। इसी बीच में राजा गाधि अपनी स्त्री सहित वहाँ आए। सत्यवती ने ये दोनों चरु अपनी माता के सामने रख दिए और उनका गुण बतला दिया। माता ने समझा कि ऋचीक ने अपनी स्त्री के लिये बढ़िया चरु तैयार किया होगा; इसलिये उसने उसका चरु तो आप खा लिया और अपना उसे खिला दिया। इससे उसके गर्भ से तो विश्वामित्र का जन्म हुआ, जिसमें क्षत्रिय होने पर भी ब्राह्मणों के से गुण थे; और सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि का जन्म हुआ जो ब्राह्मण होने पर भी क्षत्रियों के गुणों से संपन्न थे। विश्वामित्र को शुनःशेफ, देवरात, देवश्रवा, हिरण्याक्ष, गालव, जय, अष्टक, कच्छप, नारायण, नर आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनके कारण इनके कौशिक वंश की बहुत अधिक वृद्धि हुई थी। कहते हैं कि एक बार जब विश्वामित्र ने बहुत बड़ा तप किया था, तब इंद्र तथा समस्त देवताओं ने भयभीत होकर मेनका नामक अप्सरा को उसका तप भंग करने के लिये भेजा था। इसी मेनका से विश्वामित्र को शकुंतला नामक कन्या उत्पन्न हुई थी जो दुष्यंत को ब्याही गई थी। यह भी प्रसिद्ध है कि इक्ष्वाकु वंश के राजा त्रिशंकु ने एक बार सशरीर स्वर्ग जाने की कामना से एक यज्ञ करना चाहा था। परंतु उनके पुरोहित वशिष्ठ ने कहा कि ऐसा होना असंभव है। इस पर त्रिशंकु ने विश्वामित्र की शरण ली और विश्वामित्र ने उन्हें सशरीर स्वर्ग पहुँचा दिया। यह भी कहा जाता है कि विश्वामित्र बहुत बड़े क्रोधी थे और प्रायः लोगों को शाप दे दिया करते थे। राजा हरिश्चंद्र के सत्य की सुप्रसिद्ध परीक्षा लेनेवाले भी यही माने जाते हैं। पुराणों में इनके संबंध में इसी प्रकार की और भी अनेक कथाएँ प्रचलित हैं।

विश्वामित्रप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] नारियल का पेड़।

विश्वामित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नदी का नाम।

विश्वायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो विश्व की सब बातें जानता हो। सर्वज्ञ। (२) ब्रह्मा।

विश्वाराज्-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।

विश्वावसु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक गंधर्व का नाम। (२) विष्णु। (३) एक संवत्सर का नाम।

संज्ञा स्त्री० रात।

विश्वास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह धारणा जो मन में किसी व्यक्ति के प्रति उसका सद्भाव, हितैषिता, सत्यता, दृढ़ता आदि अथवा किसी सिद्धांत आदि की सत्यता अथवा उत्तमता का ज्ञान होने के कारण होती है। किसी के गुणों आदि का निश्चय होने पर उसके प्रति उत्पन्न होनेवाला मन का भाव। एतबार। यकीन। जैसे,—(क) मैं तो सदा ईश्वर पर विश्वास रखता हूँ। (ख) उन्हें आपका पूरा पूरा विश्वास है। (ग) आप विश्वास रखें, ऐसा कभी न होगा।

क्रि० प्र०—करना।—मानना।—रखना।—होना।

मुहा०—विश्वास जमाना = किसी के मन में विश्वास उत्पन्न करना या दृढ़ करना। विश्वास दिलाना = किसी के मन में विश्वास उत्पन्न करना।

(२) मन की वह धारणा जो विषय या सिद्धांत आदि की सत्यता का पूरा पूरा प्रमाण न मिलने पर भी, उसकी

सत्यता के संबंध में होती है। जैसे,—(क) बहुत से अशिक्षित भूत प्रेत पर विश्वास रखते हैं। (ख) और धर्मों की अपेक्षा बौद्ध धर्म पर उनका कुछ अधिक विश्वास है। (३) केवल अनुमान के आधार पर होनेवाला मन का दृढ़ निश्चय। जैसे,—मेरा तो यही विश्वास है कि वह अवश्य आवेगा।

विश्वासकारक–वि० [सं०] (१) विश्वास करनेवाला। यकीन करनेवाला। (२) मन में विश्वास उत्पन्न करनेवाला। जिससे विश्वास उत्पन्न हो।

विश्वासघात–संज्ञा पुं० [सं०] किसी के विश्वास के विरुद्ध की हुई क्रिया। अपने पर विश्वास करनेवाले के साथ ऐसा कार्य करना जो उसके विश्वास के बिल्कुल विपरीत हो।

विश्वासघातक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी के मन में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करके भी उसका अपकार करे। विश्वास करने पर भी धोखा देनेवाला। धोखेबाज।

विश्वासन–संज्ञा पुं० [सं०] विश्वास। एतबार। यकीन।

विश्वासपात्र–संज्ञा पुं० [सं०] जिस पर भरोसा किया जाय। विश्वास करने के योग्य। विश्वसनीय।

विश्वासस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका विश्वास किया जाय। विश्वास-भाजन।

विश्वासिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका विश्वास किया जाय। विश्वसनीय।

विश्वासी–संज्ञा पुं० [सं० विश्वासिन्] (१) वह जो किसी पर विश्वास करता हो। विश्वास करनेवाला। (२) वह जिसका विश्वास किया जाय।

विश्वास्य–वि० [सं०] (१) विश्वास करने योग्य। विश्वसनीय। (२) जिसका विश्वास किया जाय। विश्वास-भाजन।

विश्वाहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोंठ।

विश्वेदेव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) देवताओं का एक गण जिसमें इंद्र, अग्नि आदि नौ देवता माने जाते हैं। वैदिक युग में लोग इन्हें मनुष्यों के रक्षक, शुभ कर्मों के फल देनेवाले और विश्व के अधिपति मानते थे। अग्नि पुराण में ये दस कहे गए हैं और इनके नाम इस प्रकार बतलाए गए हैं—क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काम, काल, ध्वनि रोचक, माद्रव और पुरूरवा। (३) पुराणानुसार एक असुर का नाम।

विश्वेभोजा–संज्ञा पुं० [सं० विश्वेभोजस्] इंद्र।

विश्वेवेदा–संज्ञा पुं० [सं० विश्वेवेदस्] अग्नि।

विश्वेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) विष्णु। (३) उत्तराषाढ़ा नक्षत्र जिसके अधिपति विश्व नामक देवता माने जाते हैं।

विश्वेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) शिव की एक मूर्त्ति का नाम।

विश्वैकसार–संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर के एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

विश्वौषध–संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ।

विषंड–संज्ञा पुं० [सं०] कमल की नाल। मृणाल।

विष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पदार्थ जो किसी प्राणी के शरीर में किसी प्रकार पहुँचने पर उसके प्राण ले लेता हो अथवा उसका स्वास्थ्य नष्ट करता हो। गरल। जहर।

विशेष–वैद्यक में स्थावर और जंगम ये दो प्रकार के विष माने गए हैं। स्थावर विष वृक्षों, पौधों और खानों आदि में से निकला हुआ माना जाता है; और जंगम विष वह कहलाता है जो अनेक प्रकार के जीवों के शरीर, नख, दाँत या डंक आदि में होता है। कुछ विष कृत्रिम भी होते हैं और रासायनिक क्रियाओं से बनाए जाते हैं। चिकित्सा में अनेक विषों का प्रयोग, बहुत थोड़ी मात्रा में, अनेक रोगों को दूर करने और दुर्बल रोगी के शरीर में बल लाने के लिये किया जाता है।

मुहा०–के लिये दे० "जहर"।

(२) वह जो किसी की सुख-शांति आदि में बाधक हो।

मुहा०—विष की गाँठ = वह जो अनेक प्रकार के उपद्रव और अपकार आदि करता हो। खराबी पैदा करनेवाला। जैसे,—यही तो विष की गाँठ हैं; सब झगड़ा इन्हीं का खड़ा किया हुआ है।

(३) जल। (४) पद्मकेसर। (५) कमल की नाल। (६) बोल नामक गंध द्रव्य। (७) बछनाग। (८) अतीस। (९) कलिहारी।

विषकंद–संज्ञा पुं० [सं०] इंगुदी।

विषकंटक–संज्ञा पुं० [सं०] दुरालभा।

विषकंटका–संज्ञा स्त्री० [सं०] बंध्या ककोंड़ी। बाँझ ककोड़ी।

विषकंटकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँझ ककोड़ी।

विषकंठ–संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

विषकंठिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] बगला।

विषकंद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नैपा कंद। (२) हिंगोट। इंगुदी।

विषकन्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या या स्त्री जिसके शरीर में इस आशय से कुछ विष प्रविष्ट कर दिए गए हों कि जो उसके साथ संभोग करे, वह मर जाय।

विशेष—प्राचीन काल में राजाओं के यहाँ बाल्यावस्था से ही कुछ कन्याओं के शरीर में अनेक प्रकार से विष प्रविष्ट करा दिए जाते थे, जिनके कारण उनके शरीर में ऐसा प्रभाव आ जाता था कि जो उनके साथ विषय करता था, वह मर जाता था। जब राजा को अपने किसी शत्रु को गुप्त

रूप से मारना अभीष्ट होता था, तब वह इस प्रकार की विषकन्या उसके पास भेज देता था, जिसके साथ संभोग करके वह शत्रु मर जाता था।

विषगंधक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण जिसमें भीनी भीनी गंध होती है।

विषगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] काली अपराजिता।

विषगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] वह पर्वत जिस पर उत्पन्न होनेवाले वृक्ष और पौधे आदि जहरीले होते हों।

विषघ्न-वि० [सं०] विष का नाश करनेवाला।

विषघ्ना-संज्ञा पुं० [सं०] गुडुच।

विषघातक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिससे विष का प्रभाव दूर होता हो।

विषघाती-संज्ञा पुं० [सं० विषघातिन्] (१) वह जिससे विष का प्रभाव नष्ट होता हो। (२) सिरिस का पेड़।

विषघ्न-वि० [सं०] विष का प्रभाव दूर करनेवाला। विषनाशक। संज्ञा पुं० (१) सिरिस का वृक्ष। (२) भिलावाँ। (३) चंपा का वृक्ष। (४) भूकदंब। (५) गंध-तुलसी।

विषघ्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिविषा। अतीस।

विषघ्निका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद अपामार्ग या चिचड़ा।

विषघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिलमोचिका या हिलंच नामक साग। (२) वन तुलसी। बबुई तुलसी। (३) इंद्रवारुणी। (४) भुइँ आँवला। (५) लाल पुनर्नवा। गदहपूरना। (६) हलदी। (७) महाकरंज। (८) वृश्चिकाली नाम की लता। (९) देवदाली या पीतघोषा नाम की लता। (१०) ककोड़ा। (११) सफेद अपामार्ग। (१२) रास्ना।

विषचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] चकोर पक्षी।

विषजिह्व-संज्ञा पुं० [सं०] देवताड़ नामक वृक्ष।

विषज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक के अनुसार वह ज्वर जो विष के कारण उत्पन्न हुआ हो। ऐसे ज्वर में दाह होती है, दस्त आते हैं, भोजन की ओर रुचि नहीं होती, प्यास बहुत लगती है और रोगी मूर्च्छित हो जाता है। (२) भैंसा।

विषधि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

विषण्ण-वि० [सं०] जिसका चित्त दुःखी हो। जिसे विषाद, शोक या रंज हो।

विषण्णता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विषण्ण या दुःखी होने का भाव। (२) मूर्खता। बेवकूफी।

विषण्णांग-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

विषतंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार वह प्रक्रिया जिसके द्वारा साँप आदि का विष दूर किया जाता है।

विषतरु-संज्ञा पुं० [सं०] कुचला।

विषता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विष का भाव या धर्म। जहरीलापन।

विषतिंदु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुचला। (२) करील।

विषतैल-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो कडुए तेल में गोमूत्र, हलदी, दारु हलदी, बच, लालचंदन, मजीठ आदि डालकर बनाया जाता है और जिसका व्यवहार कुष्ट आदि रोग दूर करने के लिये होता है।

विषदंत-संज्ञा पुं० [सं०] बिल्ली।

विषदंतक-संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

विषदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] बिल्ली।

विषदंष्ट्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साँप का वह दाँत जिसमें जहर होता है। (२) सर्प कंकालिका नाम की लता। (३) नागदमनी।

विषद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हीरा कसीस। (२) सफेद रंग। (३) अतिविषा। अतीस। (४) बादल। वि० निर्मल। स्वच्छ। साफ।

विषदमूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] माकंदी नामक पौधा जिसके पत्तों का साग होता है।

विषदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिविषा। अतीस।

विषदाता-संज्ञा पुं० [सं० विषदातृ] वह जो किसी को मार डालने या बेहोश करने के अभिप्राय से जहर दे।

विषदुष्ट-वि० [सं०] जो जहर मिलाकर खराब कर दिया गया हो।

विषदूषण-वि० [सं०] विष दूर करनेवाला।

विषद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] कुचला।

विषधर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विषधरी] साँप।

विषधात्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] जरत्कारु ऋषि की स्त्री मनसा देवी का एक नाम।

विषध्वंसी-संज्ञा पुं० [सं० विषध्वंसिन्] नागर मोथा।

विषनाशन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिरिस का पेड़। (२) मानकंद। वि० जो विष को दूर करता हो। विषनाशक।

विषनाशिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सर्प कंकाली नाम की लता। (२) बाँझ ककोटी। (३) गंधनाकुली।

विषपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी जहरीले बीज का छिलका। (२) कोई जहरीला पत्ता।

विषपन्नग-संज्ञा पुं० [सं०] जहरीला साँप।

विषपुच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विषपुच्छी] बिच्छू।

विषपुट-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

विषपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीला पद्म। (२) अलसी का फूल। (३) मैनफल का पेड़।

विषपुष्पक-संज्ञा पुं० [सं०] मदन नामक वृक्ष। मैनफल।

विषप्रशमनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँझ ककोड़ी।

विषप्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक पर्वत का नाम।

विषमंद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी दंती।

सत्यता के संबंध में होती है। जैसे,—(क) बहुत से अशिक्षित भूत प्रेत पर विश्वास रखते हैं। (ख) और धर्मों की अपेक्षा बौद्ध धर्म पर उनका कुछ अधिक विश्वास है। (३) केवल अनुमान के आधार पर होनेवाला मन का दृढ़ निश्चय। जैसे,—मेरा तो यही विश्वास है कि वह अवश्य आवेगा।

विश्वासकारक–वि० [सं०] (१) विश्वास करनेवाला। यकीन करनेवाला। (२) मन में विश्वास उत्पन्न करनेवाला। जिससे विश्वास उत्पन्न हो।

विश्वासघात–संज्ञा पुं० [सं०] किसी के विश्वास के विरुद्ध की हुई क्रिया। अपने पर विश्वास करनेवाले के साथ ऐसा कार्य करना जो उसके विश्वास के बिल्कुल विपरीत हो।

विश्वासघातक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी के मन में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करके भी उसका अपकार करे। विश्वास करने पर भी धोखा देनेवाला। धोखेबाज।

विश्वासन–संज्ञा पुं० [सं०] विश्वास। एतबार। यकीन।

विश्वासपात्र–संज्ञा पुं० [सं०] जिस पर भरोसा किया जाय। विश्वास करने के योग्य। विश्वसनीय।

विश्वासस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका विश्वास किया जाय। विश्वास-भाजन।

विश्वासिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका विश्वास किया जाय। विश्वसनीय।

विश्वासी–संज्ञा पुं० [सं० विश्वासिन्] (१) वह जो किसी पर विश्वास करता हो। विश्वास करनेवाला। (२) वह जिसका विश्वास किया जाय।

विश्वास्य–वि० [सं०] (१) विश्वास करने योग्य। विश्वसनीय। (२) जिसका विश्वास किया जाय। विश्वास-भाजन।

विश्वाहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोंठ।

विश्वेदेव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) देवताओं का एक गण जिसमें इंद्र, अग्नि आदि नौ देवता माने जाते हैं। वैदिक युग में लोग इन्हें मनुष्यों के रक्षक, शुभ कर्मों के फल देनेवाले और विश्व के अधिपति मानते थे। अग्नि पुराण में ये दस कहे गए हैं और इनके नाम इस प्रकार बतलाए गए हैं—क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काम, काल, ध्वनि रोचक, आद्रव और पुरूरवा। (३) पुराणानुसार एक असुर का नाम।

विश्वेभोज–संज्ञा पुं० [सं० विश्वेभोजस्] इंद्र।

विश्वेवेद–संज्ञा पुं० [सं० विश्वेवेदस्] अग्नि।

विश्वेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) विष्णु। (३) उत्तराषाढ़ा नक्षत्र जिसके अधिपति विश्व नामक देवता माने जाते हैं।

विश्वेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) शिव की एक मूर्ति का नाम।

विश्वैकसार–संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर के एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

विश्वौषध–संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ।

विषंड–संज्ञा पुं० [सं०] कमल की नाल। मृणाल।

विष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पदार्थ जो किसी प्राणी के शरीर में किसी प्रकार पहुँचने पर उसके प्राण ले लेता हो अथवा उसका स्वास्थ्य नष्ट करता हो। गरल। जहर।

विशेष–वैद्यक में स्थावर और जंगम ये दो प्रकार के विष माने गए हैं। स्थावर विष वृक्षों, पौधों और खानों आदि में से निकला हुआ माना जाता है; और जंगम विष वह कहलाता है जो अनेक प्रकार के जीवों के शरीर, नख, दाँत या डंक आदि में होता है। कुछ विष कृत्रिम भी होते हैं और रासायनिक क्रियाओं से बनाए जाते हैं। चिकित्सा में अनेक विषों का प्रयोग, बहुत थोड़ी मात्रा में, अनेक रोगों को दूर करने और दुर्बल रोगी के शरीर में बल लाने के लिये किया जाता है।

मुहा०–के लिये दे० "जहर"।

(२) वह जो किसी की सुख-शांति आदि में बाधक हो।

मुहा०—विष की गाँठ = वह जो अनेक प्रकार के उपद्रव और अपकार आदि करता हो। खराबी पैदा करनेवाला। जैसे,—यही तो विष की गाँठ हैं; सब झगड़ा इन्हीं का खड़ा किया हुआ है।

(३) जल। (४) पद्मकेसर। (५) कमल की नाल। (६) बोल नामक गंध द्रव्य। (७) बछनाग। (८) अतीस। (९) कलिहारी।

विषकंट–संज्ञा पुं० [सं०] इंगुदी।

विषकंटक–संज्ञा पुं० [सं०] दुरालभा।

विषकंटका–संज्ञा स्त्री० [सं०] बंध्या ककोंड़ी। बाँझ ककोड़ी।

विषकंटकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँझ ककोड़ी।

विषकंठ–संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

विषकंठिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] बगला।

विषकंद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भैंसा कंद। (२) हिंगोट। इंगुदी।

विषकन्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या या स्त्री जिसके शरीर में इस आशय से कुछ विष प्रविष्ट कर दिए गए हों कि जो उसके साथ संभोग करे, वह मर जाय।

विशेष—प्राचीन काल में राजाओं के यहाँ बाल्यावस्था से ही कुछ कन्याओं के शरीर में अनेक प्रकार से विष प्रविष्ट करा दिए जाते थे, जिनके कारण उनके शरीर में ऐसा प्रभाव आ जाता था कि जो उनके साथ विषय करता था, वह मर जाता था। जब राजा को अपने किसी शत्रु को गुप्त

रूप से मारना अभीष्ट होता था, तब वह इस प्रकार की विषकन्या उसके पास भेज देता था, जिसके साथ संभोग करके वह शत्रु मर जाता था।

विषगंधक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण जिसमें भीनी भीनी गंध होती है।

विषगंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] काली अपराजिता।

विषगिरि–संज्ञा पुं० [सं०] वह पर्वत जिस पर उत्पन्न होनेवाले वृक्ष और पौधे आदि जहरीले होते हों।

विषघ–वि० [सं०] विष का नाश करनेवाला।

विषघा–संज्ञा पुं० [सं०] गुड़ुच।

विषघातक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिससे विष का प्रभाव दूर होता हो।

विषघाती–संज्ञा पुं० [सं० विषघातिन्] (१) वह जिससे विष का प्रभाव नष्ट होता हो। (२) सिरिस का पेड़।

विषघ्न–वि० [सं०] विष का प्रभाव दूर करनेवाला। विषनाशक।
संज्ञा पुं० (१) सिरिस का वृक्ष। (२) भिलावाँ। (३) चंपा का वृक्ष। (४) भूकदंब। (५) गंध-तुलसी।

विषघ्ना–संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिविषा। अतीस।

विषघ्निका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद अपामार्ग या चिचड़ा।

विषघ्नी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिलमोचिका या हिलंच नामक साग। (२) वन तुलसी। बबुई तुलसी। (३) इंद्रवारुणी। (४) भुइँ आँवला। (५) लाल पुनर्नवा। गदहपूरना। (६) हलदी। (७) महाकरंज। (८) वृश्चिकाली नाम की लता। (९) देवदाली या पीतघोषा नाम की लता। (१०) ककोड़ा। (११) सफेद अपामार्ग। (१२) रास्ना।

विषचक्र–संज्ञा पुं० [सं०] चकोर पक्षी।

विषजिह्व–संज्ञा पुं० [सं०] देवताड़ नामक वृक्ष।

विषज्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक के अनुसार वह ज्वर जो विष के कारण उत्पन्न हुआ हो। ऐसे ज्वर में दाह होती है, दस्त आते हैं, भोजन की ओर रुचि नहीं होती, प्यास बहुत लगती है और रोगी मूर्च्छित हो जाता है। (२) भैंसा।

विषण्णि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

विषण्ण–वि० [सं०] जिसका चित्त दुःखी हो। जिसे विषाद, शोक या रंज हो।

विषण्णता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विषण्ण या दुःखी होने का भाव। (२) मूर्खता। बेवकूफी।

विषण्णांग–संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

विषतंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार वह प्रक्रिया जिसके द्वारा साँप आदि का विष दूर किया जाता है।

विषतरु–संज्ञा पुं० [सं०] कुचला।

विषता–संज्ञा स्त्री० [सं०] विष का भाव या धर्म। जहरीलापन।

विषतिंदु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुचला। (२) कुचीला।

विषतैल–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो कड़ुए तेल में गोमूत्र, हलदी, दारु हलदी, बच, लालचंदन, मजीठ आदि डालकर बनाया जाता है और जिसका व्यवहार कुष्ट आदि रोग दूर करने के लिये होता है।

विषध्वंस–संज्ञा पुं० [सं०] बिल्ली।

विषध्वंतक–संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

विषदंश–संज्ञा पुं० [सं०] बिल्ली।

विषदंष्ट्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साँप का वह दाँत जिसमें जहर होता है। (२) सर्प कंकालिका नाम की लता। (३) नागदमनी।

विषद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हीरा कसीस। (२) सफेद रंग। (३) अतिविषा। अतीस। (४) बादल।
वि० निर्मल। स्वच्छ। साफ।

विषदमूला–संज्ञा स्त्री० [सं०] मार्कंडी नामक पौधा जिसके पत्तों का साग होता है।

विषदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिविषा। अतीस।

विषदाता–संज्ञा पुं० [सं० विषदातृ] वह जो किसी को मार डालने या बेहोश करने के अभिप्राय से जहर दे।

विषदुष्ट–वि० [सं०] जो जहर मिलाकर खराब कर दिया गया हो।

विषदूषण–वि० [सं०] विष दूर करनेवाला।

विषद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] कुचला।

विषधर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विषधरी] साँप।

विषधात्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] जरत्कारु ऋषि की स्त्री मनसा देवी का एक नाम।

विषध्वंसी–संज्ञा पुं० [सं० विषध्वंसिन्] नागर मोथा।

विषनाशन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिरिस का पेड़। (२) मानकंद।
वि० जो विष को [illegible] करता हो। विषनाशक।

विषनाशिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सर्प कंकाली नाम की लता। (२) बाँझ ककोड़ी। (३) गंधनाकुली।

विषपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी जहरीले बीज का छिलका। (२) कोई जहरीला पत्ता।

विषपन्नग–संज्ञा पुं० [सं०] जहरीला साँप।

विषपुच्छ–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विषपुच्छी] बिच्छू।

विषपुट–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

विषपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीला पद्म। (२) अलसी का फूल। (३) मैनफल का पेड़।

विषपुष्पक–संज्ञा पुं० [सं०] मदन नामक वृक्ष। मैनफल।

विषप्रशमनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँझ ककोड़ी।

विषप्रस्थ–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक पर्वत का नाम।

विषभद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी दंती।

विषापह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोखा नामक वृक्ष। (२) वह जिससे विष का नाश हो।

विषापहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रवारुणी। इंद्रायन। (२) निर्विषी। (३) नागदमन। (४) अर्कपत्रा। इसरौल। (५) सर्पकंकाली। (६) सर्पदंष्ट्रा। इरवंद। (७) त्रिपर्णी नामक कंद।

विषायका-संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्विषी।

विषायुध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप। (२) वह अस्त्र जो ज़हर में बुझाया गया हो।

विषार-संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

विषाराति-संज्ञा पुं० [सं०] काला धतूरा।

विषारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाचंचु या चेंच नामक साग। (२) घीकरंज।

वि० जिससे विष का नाश होता हो।

विषाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसका मांस वायु और कफ को बढ़ानेवाला माना जाता है।

विषास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप। (२) ज़हर में बुझाया हुआ अस्त्र।

विषास्य-संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

विषास्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] भिलावाँ।

विषी-संज्ञा पुं० [सं० विषिन्] (१) विषपूर्ण वस्तु। ज़हरीली चीज़। (२) विषधर सर्प। ज़हरीला साँप।

वि० [हिं० विष] विषयुक्त। ज़हरीला।

विषुण-संज्ञा पुं० दे० "विषव"।

विषुदुह-संज्ञा पुं० [सं०] बाण। तीर।

विषुप-संज्ञा पुं० दे० "विषुव"।

विषुव-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार वह समय जब कि सूर्य्य विषुव रेखा पर पहुँचता है और दिन तथा रात दोनों बराबर होते हैं। ऐसा समय वर्ष में दो बार आता है। एक तो सौर चैत्र मास की नवीं तिथि या अंग्रेज़ी २१ मार्च को; और दूसरा सौर आश्विन की नवीं तिथि या अंग्रेज़ी २२ सितंबर को।

विशेष—दे० "विषव रेखा"।

विषुवरेखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष के कार्य्य के लिये कल्पित एक रेखा जो पृथ्वी तल पर उसके ठीक मध्य भाग में बेड़े बल में या पूर्व पश्चिम पृथ्वी के चारों ओर मानी जाती है। यह रेखा दोनों मेरुओं के ठीक मध्य में और दोनों से समान अंतर पर है। आकाश में इस रेखा से उत्तर की ओर मेष से कन्या तक की पहली छः राशियाँ और दक्षिण की ओर तुला से मीन तक की छः राशियाँ हैं। इसे निरक्ष वृत्त भी कहते हैं।

विषूचक-संज्ञा पुं० [सं०] विसूचिका नामक रोग।

विषूचिका-संज्ञा स्त्री० दे० "विसूचिका"।

विषोषधी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदंती।

विष्कंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो गति को रोकता हो। (२) बाधा। विघ्न।

विष्कंधाजीर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अजीर्ण रोग जिसमें रोगी के शरीर में शूल के समान पीड़ा होती है, उसका पेट फूल जाता है और वह मल या अपान वायु का त्याग नहीं कर सकता।

विष्कंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फलित ज्योतिष के अनुसार सत्ताइस योगों में से पहला योग जो आरंभ के पाँच दंडों को छोड़कर शुभ कार्य्य के लिये बहुत अच्छा समझा जाता है। कहते हैं कि इस योग में जन्म लेनेवाला मनुष्य सब बातों में स्वाधीन और भाई बंधु आदि से सदा सुखी रहता है। (२) विस्तार। (३) बाधा। विघ्न। (४) साहित्य-दर्पण के अनुसार नाटक का एक प्रकार का अंक जो प्रायः गर्भांक के समीप होता है। जो कथा पहले हो चुकी हो अथवा जो अभी होनेवाली हो, उसकी इसमें मध्यम पात्रों द्वारा सूचना दी जाती है। यह दो प्रकार का होता है—शुद्ध और संकीर्ण। जब एक या अनेक मध्यम पात्र इसका प्रयोग करते हैं, तब यह शुद्ध कहलाता है। और जब मध्यम तथा नीच पात्रों द्वारा इसका प्रयोग होता है, तब इसे संकीर्ण कहते हैं। शुद्ध विष्कंभक में मध्यम पात्रों का वार्त्तालाप संस्कृत भाषा में और संकीर्ण विष्कंभक में मध्यम तथा नीच पात्रों का वार्त्तालाप प्राकृत भाषा में होता है। शुद्ध का उदाहरण मालती माधव के पाँचवें अंक में कुंडला कृत प्रयोग और संकीर्ण का रामाभिनंद में क्षपणक और कापालिक कृत प्रयोग है। (५) योगियों का एक प्रकार का बंध। (६) वाराह पुराण के अनुसार एक पर्वत का नाम। (७) वृक्ष। पेड़। (८) अर्गल। ब्योंड़ा।

विष्कंभक-संज्ञा पुं० दे० "विष्कंभ"।

विष्कंभी-संज्ञा पुं० [सं० विष्कंभिन्] (१) शिव जी का एक नाम। (२) अर्गल। ब्योंड़ा।

विष्क-संज्ञा पुं० [सं०] वह हाथी जिसकी अवस्था बीस वर्ष की हो गई हो।

विष्कर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। चिड़िया। (२) अर्गल। ब्योंड़ा। (३) एक दानव का नाम।

विष्कल-संज्ञा पुं० [सं०] सूअर।

विष्कलन-संज्ञा पुं० [सं०] भोजन। आहार।

विष्किर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। चिड़िया। (२) वे पक्षी जो अन्न को इधर उधर छितराकर नखों से कुरेदकर खाते हैं। जैसे, कबूतर, मुरगा, तीतर, बटेर आदि। (३)

दर्वीकर नामक जाति के साँपों के अंतर्गत एक प्रकार का साँप।

विष्कुंभ-संज्ञा पुं० दे० "विष्कंभ"।

विष्टप-संज्ञा पुं० [सं०] भुवन। लोक।

विष्टप्-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग लोक।

विष्टंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाधा। रुकावट। (२) एक प्रकार का रोग जिसमें मल रुकने के कारण रोगी का पेट फूल जाता है। अनाह। विबंध। (३) आक्रमण। चढ़ाई।

विष्टंभन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोकने या संकुचित करने की क्रिया। (२) वह जो रोकता या संकुचित करता हो।

विष्टंभी-संज्ञा [सं० विष्टंभिन्] वह पदार्थ जिससे पेट का मल रुके। (वैद्यक)

विष्टर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आक। मदार। (२) वृक्ष। पेड़। (३) पीठ। (४) कुशा का बना हुआ आसन।

विष्टरश्रवा-संज्ञा पुं० [सं० विष्टरश्रवस्] विष्णु। नारायण।

विष्टरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंडासिनी नामक घास।

विष्टराश्व-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार पृथु के एक पुत्र का नाम।

विष्टरुहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली केतकी।

विष्टारपंक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसके प्रथम और चतुर्थ चरणों में १२ वर्ण होते हैं।

विष्टारबृहती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक छंद का नाम जिसके पहले और चौथे चरणों में ८ और दूसरे तथा तीसरे चरणों में १० वर्ण होते हैं।

विष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह काम जो बिना कुछ पुरस्कार दिए कराया जाय। बेगार। (२) वेतन। तनख्वाह। (३) काम। (४) वर्षा। (५) फलित ज्योतिष के ग्यारह करणों में से सातवाँ करण जिसे विष्टिभद्रा भी कहते हैं।

विष्टिकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल के राज्य का वह बड़ा सैनिक कर्मचारी जिसे अपनी सेना रखने के लिये राज्य की ओर से जागीर मिला करती थी। (२) अत्याचारी।

विष्टिभद्रा-संज्ञा स्त्री० दे० "विष्टि"। (५)

विष्टिमत-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार का मत।

विष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मल। मैला। गुह। पाखाना।

विष्ठाभुक्-संज्ञा पुं० [सं०] सूअर।

विष्ठाभुजी-संज्ञा पुं० [सं०] सूअर।

विष्ठारुहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली केतकी।

विष्टेष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हल्दी।

विष्णु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंदुओं के एक प्रधान और बहुत बड़े देवता जो सृष्टि का भरण पोषण और पालन करनेवाले तथा ब्रह्म का एक विशेष रूप माने जाते हैं।

विशेष—भारतवर्ष में विष्णु को देवता रूप में बहुत दिनों से मानते चले आते हैं और इनकी उपासना बहुत अधिकता से होती आई है। ऋग्वेद में यद्यपि विष्णु गौण देवता माने गए हैं, पर ब्राह्मण ग्रंथों में इनका महत्व बहुत अधिक है। ऋग्वेद में विष्णु विशाल शरीरवाले और युवक माने गए हैं और कहा गया है कि ये त्रि-वि-क्रम अर्थात् तीन कदमों अथवा डगों में सारे विश्व को अतिक्रमण करनेवाले हैं। पुराणों के वामन अवतार का यही बीज रूप है। कुछ लोगों ने इन तीनों डगों या कदमों का अर्थ सूर्य का दैनिक उदय, मध्य और अस्त माना है; और कुछ लोग इसका अर्थ भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक लेते हैं। इसके अतिरिक्त ये नियमित रूप, बहुत दूर तक और जल्दी जल्दी चलनेवाले माने गए हैं। यह भी कहा गया है कि ये इंद्र के मित्र थे और वृत्र के साथ युद्ध करने में इन्होंने इंद्र को सहायता दी थी। विष्णु और इन्द्र दोनों मिलकर वातावर्ण, अंतरिक्ष, सूर्य, उषा और अग्नि के उत्पादक माने गए हैं; और विष्णु इस पृथ्वी, स्वर्ग और सब जीवों के मुख्य आधार कहे गए हैं। ऋग्वेद और शतपथ ब्राह्मण में कुछ ऐसी कथाएँ भी हैं जो पौराणिक काल के वराह, मत्स्य तथा कूर्म अवतार का भी मूल या आरंभिक रूप मानी जा सकती हैं। वैदिक काल में विष्णु धन, वीर्य और बल देनेवाले तथा सब लोगों का अभीष्ट सिद्ध करनेवाले माने जाते थे। पुराणों के अनुसार विष्णु समय समय पर पृथ्वी का भार हलका करने के लिये, संसार में शांति और सुख की स्थापना करने के लिये और दुष्टों तथा पापियों का नाश करने के लिये अवतार धारण किया करते हैं। विष्णु के कुल चौबीस अवतार कहे गए हैं जिनमें से दस मुख्य माने गए हैं (दे० "अवतार")। भिन्न भिन्न पुराणों में विष्णु के संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ और उनकी उपासना आदि का बहुत अधिक माहात्म्य मिलता है। विष्णु के उपासक वैष्णव कहलाते हैं। इनकी स्त्री का नाम श्री या लक्ष्मी कहा गया है; और ये युवक, श्याम वर्ण और चतुर्भुज माने गए हैं। ये चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए रहते हैं। इनके शंख का नाम पांचजन्य, चक्र का नाम सुदर्शन और गदा का नाम कौमोदकी है। इनकी तलवार का नाम नंदक और धनुष का नाम शार्ङ्ग है। इनका वाहन वैनतेय नामक गरुड़ माना जाता है। पुराणों में इनके एक हजार नाम कहे गए हैं; और इन नामों का जप बहुत शुभ फल देनेवाला माना जाता है। नारायण, कृष्ण, वैकुंठ, दामोदर, केशव, माधव, गोविंद, पीतांबर, जनार्दन, चक्रपाणि, श्रीपति, मधुसूदन, हरि आदि इनके प्रसिद्ध नाम हैं।

(२) अग्नि। (३) वसुदेवता। (४) बारह आदित्यों में से

जलन होती है और प्यास बहुत लगती है; छाती और सिर में पीड़ा होती है; भ्रम, मूर्छा और कंप होता है; जँभाई आती है; निर्बलता बहुत होती है; मूत्र बंद हो जाता है; नाड़ी मंद पड़ जाती है; आँखें बैठ जाती हैं; शरीर का रंग पीला पड़ जाता है और आवाज़ बदल जाती है। साथ ही वायु आदि के प्रकोप के कारण सारे शरीर में सुइयाँ चुभने की सी पीड़ा होती है; इसी से इसे विसूचिका कहते हैं। कुछ लोग इसे "हैज़ा" भी मानते हैं, पर अधिकांश डाक्टर आदि इसे हैज़े से भिन्न समझते हैं। उनका मत है कि यह विसूचिका रोग अजीर्ण के कारण होता है; और हैज़ा एक प्रकार के विषाक्त जीवाणुओं के शरीर में प्रवेश करने से होता है।

विसूची-संज्ञा स्त्री० [सं०] विसूचिका नामक रोग।

विसूरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुःख। रंज। शोक। (२) चिंता। फिक्र। (३) विरक्ति। वैराग्य।

विसृष्ट-वि० [सं०] (१) जिसकी सृष्टि या रचना विशेष प्रकार से हुई हो। विशेष रूप से बनाया हुआ। (२) फेंका हुआ। (३) त्यागा हुआ। छोड़ा हुआ। (४) भेजा हुआ।

संज्ञा पुं० विसर्ग जो इस प्रकार लिखा जाता है—ः।

विसौंटा-†संज्ञा पुं० [सं० वासक] अडूसा।

विस्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना। (२) एक प्रकार का परिमाण जो एक कर्ष के बराबर होता है। (३) ८० रत्ती सोना।

विस्तंज-संज्ञा पुं० [सं०] कुंदुरु।

विस्तर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "विस्तार"। (२) प्रेम। (३) समूह। (४) आसन। (५) संख्या। (६) आधार। (७) शिव का एक नाम।

वि० बहुत। अधिक। विशेष।

विस्तरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत या अधिक होने का भाव।

विस्तार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लंबे या चौड़े होने का भाव। फैले होने का भाव। फैलाव। जैसे—(क) इस मकान का विस्तार कम है। (ख) तुम बातों का बहुत अधिक विस्तार करते हो। (२) पेड़ की शाखा। (३) गुच्छा। (४) शिव का एक नाम। (५) विष्णु का एक नाम।

विस्तारता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विस्तार का भाव। फैलाव।

विस्तारी-संज्ञा पुं० [सं० विस्तारिन्] (१) वह जिसका विस्तार अधिक हो। (२) बरगद। बड़।

विस्तीर्ण-वि० [सं०] (१) जो दूर तक फैला हुआ हो। विस्तृत। (२) विशाल। बहुत बड़ा। (३) विपुल। बहुत अधिक।

विस्तीर्णकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

विस्तीर्णता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विस्तीर्ण होने का भाव। विस्तार। फैलाव।

विस्तीर्णपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] मानकंद।

विस्तीर्णभेद-संज्ञा पुं० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार एक बुद्ध का नाम।

विस्तृत-वि० [सं०] (१) जो अधिक दूर तक फैला हुआ हो। लंबा चौड़ा। विस्तारवाला। जैसे,—यहाँ आप लोगों के लिये बहुत विस्तृत स्थान है। (२) यथेष्ट विवरणवाला। जिसके सब अंग या सब बातें बतलाई गई हों। जैसे,—इस ग्रंथ में नाटक के स्वरूप का बहुत विस्तृत वर्णन है। (३) बहुत बड़ा या लंबा चौड़ा। विशाल।

विस्तृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) फैलाव। विस्तार। (२) व्याप्ति। (३) लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई या गहराई। (४) वृत्त का व्यास।

विस्फार-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विस्फारित] (१) धनुष की टंकार। कमान का शब्द। (२) धनुष की डोरी। (३) विस्तार। फैलाव। (४) स्फूर्ति। तेज़ी। (५) विकास। (६) काँपना। बार बार हिलना।

विस्फारक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात ज्वर जो बहुत ही भयंकर होता है और जिसमें रोगी को खाँसी, मूर्च्छा, मोह और कंप आदि होता है।

विस्फुरणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तेंदुआ या तिंदुक नामक वृक्ष।

विस्फूर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] किसी पदार्थ का फैलना या बढ़ना। विकास।

विस्फूर्जनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तेंदुआ या तिंदुक नामक वृक्ष।

विस्फुलिंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का विष। (२) आग की चिनगारी।

विस्फोट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ का गरमी आदि के कारण उबल या फूट पड़ना। जैसे,—ज्वालामुखी पर्वत का विस्फोट। (२) कोई ज़हरीला और बहुत ख़राब फोड़ा।

विस्फोटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फोड़ा, विशेषतः ज़हरीला फोड़ा। (२) वह पदार्थ जो गरमी या आघात के कारण भभक उठे। भभकनेवाला पदार्थ। (३) शीतला का रोग। चेचक।

विस्फोटन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ का उबाल आदि के कारण फूट बहना। (२) ज़ोर का शब्द।

विस्मय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आश्चर्य। ताज्जुब। (२) साहित्य में अद्भुत रस का एक स्थायी भाव जो अनेक प्रकार के अलौकिक या विलक्षण पदार्थों के वर्णन के कारण मन में उत्पन्न होता है। (३) अभिमान। गर्व। शेख़ी। (४) संदेह। शक।

वि० जिसका गर्व नष्ट या चूर्ण हो गया हो।

विस्मरण-संज्ञा पुं० [सं०] स्मरण न रहना। भूल जाना।

विस्मापन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधर्वनगर। (२) कामदेव का एक नाम।

वि० जिसे देखकर विस्मय हो। आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला।

विस्मारक-वि० [सं०] भुला देनेवाला। विस्मरण करानेवाला।

विसारण-संज्ञा पुं० [सं०] लीन हो जाना। लय हो जाना। नष्ट हो जाना।
विस्मित-वि० [सं०] जिसे विस्मय या आश्चर्य हुआ हो। चकित।
विस्मृत-वि० [सं०] जो स्मरण न हो। जो याद न हो। भूला हुआ।
विस्मृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] भूल जाना। विस्मरण।
विस्रंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्वास। यकीन। एतबार। (२) केलि के समय स्त्री और पुरुष में होनेवाला झगड़ा। (३) वध। हत्या।
विस्रंसिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का उपकरण जिससे यज्ञ में आहुती दी जाती थी।
विस्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चर्बी मुर्दी। (२) मांस के जलने की गंध। चिरायँध।
विस्रगंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्याज। (२) गोदंती हरताल।
विस्रगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोदंती हरताल। (२) प्याज। (३) हाऊ बेर। हबुषा।
विस्रगंधि-संज्ञा पुं० [सं०] गोदंती हरताल।
विस्रवण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहना। (२) जाना। स्मरण। रसना।
विस्रसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वृद्धावस्था। बुढ़ापा।
विस्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हाऊ बेर। हबुषा। (२) चर्बी।
विस्राम-संज्ञा पुं० दे० "विश्राम"।
विस्राव-संज्ञा पुं० [सं०] भात का माँड़। पीच।
विहंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। चिड़िया। उ०—सुनी परेवा जगत में तू ही एक विहंग।—बिहारी। (२) सोना मक्खी। (३) बाण। तीर। (४) मेघ। बादल। (५) चंद्रमा। (६) सूर्य। (७) एक नाग का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।
विहंगम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। चिड़िया। (२) सूर्य।
विहंगमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य की एक प्रकार की किरण। (२) ग्यारहवें मन्वन्तर के देवताओं का एक गण। (३) बहँगी में की वह लकड़ी जिसके दोनों सिरों पर बोझ लटकाया जाता है।
विहंगराज-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।
विहंगिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बहँगी जिस पर कहार बोझ ढोते हैं।
विहग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। चिड़िया। उ०—पाहन पशु बिटप विहग अपने कर लीन्हें। महाराज दशरथ के रंक राव कीन्हें।—तुलसी। (२) बाण। तीर। (३) सूर्य। (४) चंद्रमा। (५) ग्रह।
विहर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वियोग। बिछोह। (२) दे० "विहार"।
विहरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विहार करने की क्रिया। चलना फिरना। घूमना। (२) वियोग। बिछोह। (३) फैलना।
विहव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ। (२) युद्ध। लड़ाई।
विहसित-संज्ञा पुं० [सं०] वह हास्य जो न बहुत उच्च हो, न बहुत मधुर। मध्यम हास्य।
विहस्त-संज्ञा पुं० [सं०] पंडित। विद्वान्।
वि० (१) घबराया हुआ। व्याकुल। (२) जिसका हाथ टूटा हुआ हो।
विहायस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश। (२) दान। (३) पक्षी। चिड़िया।
विहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मन बहलाव के लिये धीरे धीरे चलना। टहलना। घूमना। फिरना। (२) रति-क्रीड़ा। संभोग। (३) रति-क्रीड़ा करने का स्थान। (४) बौद्ध श्रमणों के रहने का मठ। संघाराम।
विहारी-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विहारिणी] (१) वह जो विहार करता हो। विहार करनेवाला। (२) श्रीकृष्ण का एक नाम।
विहित-वि० [सं०] (१) जिसका विधान किया गया हो। जैसे,—यह कार्य शास्त्रविहित है। (२) किया हुआ। (३) दिया हुआ।
विहिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] कोई काम करने की आज्ञा। विधान।
विहीन-वि० [सं०] (१) रहित। बगैर। बिना। (२) त्यागा हुआ। छोड़ा हुआ।
विहीनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विहीन होने का भाव या धर्म।
विहीनर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।
विहुंडन-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम।
विहृत-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में स्त्रियों के दस प्रकार के स्वाभाविक अलंकारों में से एक प्रकार का अलंकार।
विहृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ज़बरदस्ती या बलपूर्वक कुछ ले लेना या कोई काम करना। (२) विहार। क्रीड़ा। (३) खोलने की क्रिया।
विह्वल-वि० [सं०] भय या इसी प्रकार के और किसी मनोवेग के कारण जिसका चित्त ठिकाने न हो। घबराया हुआ। व्याकुल।
विह्वलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विह्वल होने की क्रिया या भाव। व्याकुलता। घबराहट।
विह्वली-संज्ञा पुं० [सं० विह्वलिन्] वह जो विह्वल हो गया हो। वह जो बहुत घबरा गया हो।
वीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) पक्षी। चिड़िया। (३) मन।
वीकाश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एकांत स्थान। (२) प्रकाश। रोशनी।
वीक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि।
वीक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वीक्षणीय] देखने की क्रिया। निरीक्षण।

वीक्षणीय-वि० [सं०] जो देखने योग्य हो। दर्शनीय।
वीक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देखने की क्रिया। वीक्षण। दर्शन।
वीक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विस्मय। आश्चर्य। (२) वह जो कुछ देखा जाय। दृश्य। (३) वह जो नाचता हो। नाचनेवाला। नर्तक। (४) घोड़ा।
वि० देखने योग्य। दर्शनीय।
वीचि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लहर। तरंग। (२) बीच की खाली जगह। अवकाश। (३) सुख। (४) दीप्ति। चमक।
वीचितरंग न्याय-संज्ञा पुं० दे० "न्याय"।
वीचिमाली-संज्ञा पुं० [सं० वीचिमालिन्] समुद्र।
वींची-संज्ञा स्त्री० [सं०] तरंग। लहर।
वीचीकाक-संज्ञा पुं० [सं०] जलकौआ।
वीज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मूल कारण। (२) शुक्र। वीर्य्य। (३) तेज। (४) अन्न आदि का बीज। बीआ। (५) अंकुर। (६) फल। (७) आधार। (८) निधि। खजाना। (९) तत्व। (१०) मूल। (११) मज्जा। (१२) तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार के मंत्र जो बड़े बड़े मंत्रों के मूल तत्व के रूप में माने जाते हैं। प्रत्येक देवी या देवता के लिये ये मंत्र अलग अलग होते हैं। जैसे,—ह्रीं, श्रीं, क्लीं आदि। (१३) बीज गणित।
वीजक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विजयसार या पियासाल नामक वृक्ष। (२) बिजौरा नीबू। (३) सफेद सहिंजन। (४) बीज। बीआ। (५) दे० "बीजक"।
वीजकट-संज्ञा पुं० [सं०] उड़द की दाल जो बहुत पुष्टिकारक मानी जाती है।
वीजकर्कटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी।
वीजकसार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विजयसार के बीज। (२) बिजौरा नीबू का सार या सत्त।
वीजका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मुनक्का।
वीजकाह्व-संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू का पेड़।
वीजकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] वह औषध जिसके खाने से वीर्य्य बढ़ता हो। वीर्य्य बढ़ानेवाली दवा।
वीजकोश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमलगट्टा। (२) सिंघाड़ा। (३) फल, जिसमें बीज रहते हैं।
वीजकोशक-संज्ञा पुं० [सं०] अंडकोश।
वीजगणित-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गणित जिसमें अज्ञात राशियों को जानने के लिये उनके स्थान पर अक्षर आदि रखकर कुछ सांकेतिक चिह्नों आदि की सहायता से गणना की जाती है। यह साधारण अंकगणित की अपेक्षा जटिल होता है, पर इसके द्वारा अज्ञात राशियों का पता लगाने में बहुत सहायता मिलती है।
वीजगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] परवल।
वीजगुप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेम।
वीजद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] विजयसार या असन नामक वृक्ष।
वीजधान्य-संज्ञा पुं० [सं०] धनियाँ।
वीजन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पंखा झलना। हवा करना। (२) पंखा। (३) चँवर। (४) चकोर। (५) लोध का पेड़।
वीजपादप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पियासाल। विजयसार। (२) भिलावाँ।
वीजपुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] किसी वंश का आदि या मूल पुरुष जिससे वह वंश चला हो।
वीजपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मरुआ। (२) मैनफल। (३) ज्वार।
वीजपूर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिजौरा नीबू। (२) चकोतरा। (३) गलगल।
वीजपूर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिजौरा नीबू। (२) चकोतरा।
वीजपेशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] अंडकोश।
वीजफलक-संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू।
वीजमातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कमलगट्टा।
वीजमार्गी-संज्ञा पुं० [सं० वीजमार्गिन्] एक प्रकार के वैष्णव जो पश्चिम भारत में पाए जाते हैं। ये लोग निर्गुण उपासक होते हैं और देवी देवताओं का पूजन नहीं करते।
वीजरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] उड़द की दाल।
वीजरेचक-संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।
वीजरेचन-संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।
वीजवर-संज्ञा पुं० [सं०] उड़द। माष।
वीजवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।
वीजवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] विजयसार। पियासाल। (२) भिलावाँ।
वीजसार-संज्ञा पुं० [सं०] वायविडंग।
वीजसू-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।
वीजस्नेह-संज्ञा पुं० [सं०] पलाश। ढाक।
वीजांकुर न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का न्याय। वि० दे० "न्याय"।
वीजाढ्य-संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।
वीजाम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] वृक्षाम्ल। महादा।
वीजाविक-संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।
वीजी-संज्ञा पुं० [सं० वीजिन्] (१) वह जिसमें बीज हों। (२) पिता। (३) चौलाई का साग।
वीजोदक-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश से गिरनेवाला ओला। बिनौरी।
वीज्य-वि० [सं०] (१) जो बोने के योग्य हो। (२) जो अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ हो। कुलीन।
वीटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का खेल जो बालक लकड़ी के एक छोटे डंडे से खेला करते थे। कुछ

लोगों का यह भी मत है कि यह खेलने के लिये बना हुआ धातु का एक गोला होता था।

वीटि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पान का बीज।

वीटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] लगाया हुआ पान का बीड़ा।

वीटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पान का बीड़ा।

वीणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रसिद्ध बाजा जिसका प्रचार अब तक भारत के पुराने ढंग के गवैयों में है। इसमें बीच में एक लंबा पोला दंड होता है, जिसके दोनों सिरों पर दो बड़े बड़े तूँबे लगे होते हैं; और एक तूँबे से दूसरे तूँबे तक, बीच के दंड पर से होते हुए, लोहे के तीन और पीतल के चार तार लगे रहते हैं। लोहे के तार पक्के और पीतल के कच्चे कहलाते हैं। इन सातों तारों को कसने या ढीला करने के लिये सात खूँटियाँ रहती हैं। इन्हीं तारों को झनकार कर स्वर उत्पन्न किए जाते हैं। बीन।

विशेष—प्राचीन भारत के तत जाति के बाजों में वीणा सब से पुरानी और अच्छी मानी जाती है। कहते हैं कि अनेक देवताओं के हाथ में यही वीणा रहती है। भिन्न भिन्न देवताओं आदि के हाथ में रहनेवाली वीणाओं के नाम अलग अलग हैं। जैसे,—महादेव के हाथ की वीणा लंबी, सरस्वती के हाथ की कच्छपी, नारद के हाथ की महती और तुंबुरु के हाथ की कलावती कहलाती है। इसके अतिरिक्त वीणा के और भी कई भेद हैं। जैसे,—त्रितंत्री, किन्नरी, विपंची, रंजनी, शारदी, रुद्र और महेश्वर आदि। इन सब की आकृति आदि में भी थोड़ा बहुत अंतर रहता है।

पर्य्या०—वल्लकी। परिवादिनी। ध्वनिमाला। घंगमंडी। घोषवती। कंठकूणिका।

(२) विद्युत्। बिजली।

वीणादंड-संज्ञा पुं० [सं०] वीणा में का लंबा दंड या तुंबी का बना हुआ वह अंश जो मध्य में होता है। इसे प्रवाल भी कहते हैं।

वीणापाणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

वीणाप्रसेव-संज्ञा पुं० [सं०] वह गिलाफ जो वीणा पर उसकी रक्षा के लिये चढ़ाया जाता है।

वीणाभिद्-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की वीणा।

वीणावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरस्वती। (२) एक अप्सरा का नाम।

वीणावरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मक्खी।

वीणावाद-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वीणा बजाता हो। बीनकार।

वीणास्य-संज्ञा पुं० [सं०] नारद।

वीणाहस्त-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

वीतंस-संज्ञा पुं० [सं०] वह जाल, फंदा या इसी प्रकार की और सामग्री जिससे पशु और पक्षी आदि फँसाए जाते हैं।

वीत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वे हाथी, घोड़े और सैनिक आदि जो युद्ध करने के योग्य न रह गए हों। (२) अंकुश के द्वारा मारना। अंकुश का प्रहार करना। (३) सांख्य के अनुसार अनुमान के दो प्रकारों में से एक।

विशेष—सांख्य में अनुमान के तीन भेद कहे गए हैं—पूर्ववत् या केवलान्वयी, शेषवत् या व्यतिरेकी और सामान्यतोदृष्ट या अन्वयव्यतिरेकी। इनमें से पूर्ववत् और सामान्यतोदृष्ट अनुमान को वीत कहलाते हैं और शेषवत् को अवीत कहते हैं। वि० दे० "अनुमान"।

वि० (१) जिसका परित्याग कर दिया गया हो। जो छोड़ दिया गया हो। (२) जो छूट गया हो। मुक्त। (३) जो बीत गया हो। जो समाप्त हो चुका हो। (४) जो निवृत्त हो चुका हो। जो (किसी बात से) रहित हो। जैसे,—वीतराग। (५) सुंदर।

वीतदंभ-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने दंभ या अहंकार का परित्याग कर दिया हो। जिसका अभिमान नष्ट हो गया हो।

वीतभय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसका भय छूट गया हो। (२) विष्णु।

वीतभीत-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम।

वीतमल-वि० [सं०] (१) जो कोई पाप न करे। पाप-रहित। (२) जिसमें किसी प्रकार का कलंक या मल आदि न हो। विमल।

वीतराग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने राग या आसक्ति आदि का परित्याग कर दिया हो। वह जो निस्पृह हो गया हो। (२) बुद्ध का एक नाम। (३) जैनों के प्रधान देवता का एक नाम।

वीतशोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने शोक आदि का परित्याग कर दिया हो। (२) अशोक नामक वृक्ष।

वीतसूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञोपवीत। जनेऊ।

वीतहव्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध वैदिक ऋषि जो अंगिरा के वंश में थे। (२) शुनक के पुत्र का नाम।

वि० यज्ञ में आहुति देनेवाला। जो आहुति या हव्य देता हो।

वीतहोत्र-संज्ञा पुं० दे० "वीतिहोत्र"।

वीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गति। चाल। (२) दीप्ति। चमक। आभा। (३) गर्भ धारण करने की क्रिया। (४) खाने या पीने की क्रिया। (५) यज्ञ। (६) घोड़ा।

वीतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जेठीमधु। मुलेठी। (२) वीटिका।

वीतिहोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) सूर्य। (३) पुराणानुसार राजा प्रियव्रत के एक पुत्र का नाम। (४) हैहय वंश के एक राजा का नाम। (५) वह जो यज्ञ करता हो।

वीती-संज्ञा पुं० [सं० वीतिन्] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वीथिका-संज्ञा स्त्री० दे० "वीथी"।

वीक्षणीय-वि० [सं०] जो देखने योग्य हो। दर्शनीय।
वीक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देखने की क्रिया। वीक्षण। दर्शन।
वीक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विस्मय। आश्चर्य। (२) वह जो कुछ देखा जाय। दृश्य। (३) वह जो नाचता हो। नाचनेवाला। नर्तक। (४) घोड़ा।
वि० देखने योग्य। दर्शनीय।
वीचि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लहर। तरंग। (२) बीच की खाली जगह। अवकाश। (३) सुख। (४) दीप्ति। चमक।
वीचितरंग न्याय-संज्ञा पुं० दे० "न्याय"।
वीचिमाली-संज्ञा पुं० [सं० वीचिमालिन्] समुद्र।
वीची-संज्ञा स्त्री० [सं०] तरंग। लहर।
वीचीकाक-संज्ञा पुं० [सं०] जलकौआ।
बीज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मूल कारण। (२) शुक्र। वीर्य्य। (३) तेज। (४) अन्न आदि का बीज। बीआ। (५) अंकुर। (६) फल। (७) आधार। (८) निधि। खजाना। (९) तत्व। (१०) मूल। (११) मज्जा। (१२) तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार के मंत्र जो बड़े बड़े मंत्रों के मूल तत्व के रूप में माने जाते हैं। प्रत्येक देवी या देवता के लिये ये मंत्र अलग अलग होते हैं। जैसे,—ह्रीं, श्रीं, क्लीं आदि। (१३) बीज गणित।
बीजक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विजयसार या पियासाल नामक वृक्ष। (२) बिजौरा नीबू। (३) सफेद सहिंजन। (४) बीज। बीआ। (५) दे० "बीजक"।
बीजकर-संज्ञा पुं० [सं०] उड़द की दाल जो बहुत पुष्टिकारक मानी जाती है।
बीजकर्कटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी।
बीजकसार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विजयसार के बीज। (२) बिजौरा नीबू का सार या सत्त।
बीजका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मुनक्का।
बीजकाह्व-संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू का पेड़।
बीजकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] वह औषध जिसके खाने से वीर्य्य बढ़ता हो। वीर्य्य बढ़ानेवाली दवा।
बीजकोश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमलगट्टा। (२) सिंघाड़ा। (३) फल, जिसमें बीज रहते हैं।
बीजकोशक-संज्ञा पुं० [सं०] अंडकोश।
बीजगणित-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गणित जिसमें अज्ञात राशियों को जानने के लिये उनके स्थान पर अक्षर आदि रखकर कुछ सांकेतिक चिह्नों आदि की सहायता से गणना की जाती है। यह साधारण अंकगणित की अपेक्षा जटिल होता है, पर इसके द्वारा अज्ञात राशियों का पता लगाने में बहुत सहायता मिलती है।
बीजगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] परवल।
बीजगुप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेम।
बीजद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] विजयसार या असन नामक वृक्ष।
बीजधान्य-संज्ञा पुं० [सं०] धनियाँ।
बीजन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पंखा झलना। हवा करना। (२) पंखा। (३) चँवर। (४) चकोर। (५) लोध का पेड़।
बीजपादप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पियासाल। विजयसार। (२) भिलावाँ।
बीजपुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] किसी वंश का आदि या मूल पुरुष जिससे वह वंश चला हो।
बीजपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मरुआ। (२) मैनफल। (३) ज्वार।
बीजपूर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिजौरा नीबू। (२) चकोतरा। (३) गलगल।
बीजपूर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिजौरा नीबू। (२) चकोतरा।
बीजपेशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] अंडकोश।
बीजफलक-संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू।
बीजमातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कमलगट्टा।
बीजमार्गी-संज्ञा पुं० [सं० बीजमार्गिन्] एक प्रकार के वैष्णव जो पश्चिम भारत में पाए जाते हैं। ये लोग निर्गुण उपासक होते हैं और देवी देवताओं का पूजन नहीं करते।
बीजरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] उड़द की दाल।
बीजरेचक-संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।
बीजरेचन-संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।
बीजवर-संज्ञा पुं० [सं०] उड़द। माष।
बीजवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।
बीजवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] विजयसार। पियासाल। (२) भिलावाँ।
बीजसार-संज्ञा पुं० [सं०] वायविडंग।
बीजसू-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।
बीजस्नेह-संज्ञा पुं० [सं०] पलास। ढाक।
बीजांकुर न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का न्याय। वि० दे० "न्याय"।
बीजाढ्य-संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।
बीजाम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] वृक्षाम्ल। महादा।
बीजाश्विक-संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।
बीजी-संज्ञा पुं० [सं० बीजिन्] (१) वह जिसमें बीज हों। (२) पिता। (३) चौलाई का साग।
बीजोदक-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश से गिरनेवाला ओला। बिनौरी।
बीज्य-वि० [सं०] (१) जो बोने के योग्य हो। (२) जो अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ हो। कुलीन।
बीटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का खेल जो बालक लकड़ी के एक छोटे डंडे से खेला करते थे। कुछ

लोगों का यह भी मत है कि यह खेलने के लिये बना हुआ धातु का एक गोला होता था।

बीटि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पान का बीज।

बीटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] लगाया हुआ पान का बीड़ा।

बीटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पान का बीड़ा।

बीणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रसिद्ध बाजा जिसका प्रचार अब तक भारत के पुराने ढंग के गवैयों में है। इसमें बीच में एक लंबा पोला दंड होता है, जिसके दोनों सिरों पर दो बड़े बड़े तूँबे लगे होते हैं; और एक तूँबे से दूसरे तूँबे तक, बीच के दंड पर से होते हुए, लोहे के तीन और पीतल के चार तार लगे रहते हैं। लोहे के तार पक्के और पीतल के कच्चे कहलाते हैं। इन सातों तारों को कसने या ढीला करने के लिये सात खूँटियाँ रहती हैं। इन्हीं तारों को झनकार कर स्वर उत्पन्न किए जाते हैं। बीन।

विशेष—प्राचीन भारत के तत जाति के बाजों में वीणा सब से पुरानी और अच्छी मानी जाती है। कहते हैं कि अनेक देवताओं के हाथ में यही वीणा रहती है। भिन्न भिन्न देवताओं आदि के हाथ में रहनेवाली वीणाओं के नाम अलग अलग हैं। जैसे,—महादेव के हाथ की वीणा लंबी, सरस्वती के हाथ की कच्छपी, नारद के हाथ की महती और तुंबुरु के हाथ की कलावती कहलाती है। इसके अतिरिक्त वीणा के और भी कई भेद हैं। जैसे,—त्रितंत्री, किन्नरी, विपंची, रंजनी, शारदी, रुद्र और नारेश्वर आदि। इन सब की आकृति आदि में भी थोड़ा बहुत अंतर रहता है।

पर्य्या०—वल्लकी। परिवादिनी। ध्वनिमाला। घंगमली। घोषवती। कंठकूणिका।

(२) विद्युत्। बिजली।

बीणादंड-संज्ञा पुं० [सं०] वीणा में का लंबा दंड या तुंबी का बना हुआ वह अंश जो मध्य में होता है। इसे प्रवाल भी कहते हैं।

बीणापाणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

बीणाप्रसेव-संज्ञा पुं० [सं०] वह गिलाफ जो वीणा पर उसकी रक्षा के लिये चढ़ाया जाता है।

बीणाबिंदु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की वीणा।

बीणावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरस्वती। (२) एक अप्सरा का नाम।

बीणावरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मक्खी।

बीणावाद-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वीणा बजाता हो। बीनकार।

बीणास्य-संज्ञा पुं० [सं०] नारद।

बीणाहस्त-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

बीतंस-संज्ञा पुं० [सं०] वह जाल, फंदा या इसी प्रकार की और सामग्री जिससे पशु और पक्षी आदि फँसाए जाते हैं।

बीत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वे हाथी, घोड़े और सैनिक आदि जो युद्ध करने के योग्य न रह गए हों। (२) अंकुश के द्वारा मारना। अंकुश का प्रहार करना। (३) सांख्य के अनुसार अनुमान के दो प्रकारों में से एक।

विशेष—सांख्य में अनुमान के तीन भेद कहे गए हैं—पूर्ववत् या केवलान्वयी, शेषवत् या व्यतिरेकी और, सामान्यतोदृष्ट या अन्वयव्यतिरेकी। इनमें से पूर्ववत् और सामान्यतोदृष्ट अनुमान तो बीत कहलाते हैं और शेषवत् को अबीत कहते हैं। वि० दे० "अनुमान"।

वि० (१) जिसका परित्याग कर दिया गया हो। जो छोड़ दिया गया हो। (२) जो छूट गया हो। मुक्त। (३) जो बीत गया हो। जो समाप्त हो चुका हो। (४) जो निवृत्त हो चुका हो। जो (किसी बात से) रहित हो। जैसे,—वीतराग। (५) सुंदर।

बीतदंभ-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने दंभ या अहंकार का परित्याग कर दिया हो। जिसका अभिमान नष्ट हो गया हो।

बीतभय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसका भय छूट गया हो। (२) विष्णु।

बीतभीत-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम।

बीतमल-वि० [सं०] (१) जो कोई पाप न करे। पापरहित। (२) जिसमें किसी प्रकार का कलंक या मल आदि न हो। विमल।

बीतराग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने राग या आसक्ति आदि का परित्याग कर दिया हो। वह जो निस्पृह हो गया हो। (२) बुद्ध का एक नाम। (३) जैनों के प्रधान देवता का एक नाम।

बीतशोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने शोक आदि का परित्याग कर दिया हो। (२) अशोक नामक वृक्ष।

बीतसूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञोपवीत। जनेऊ।

बीतहव्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध वैदिक ऋषि जो अंगिरा के वंश में थे। (२) सुनक के पुत्र का नाम।

वि० यज्ञ में आहुति देनेवाला। जो आहुति या हव्य देता हो।

बीतहोत्र-संज्ञा पुं० दे० "वीतिहोत्र"।

बीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गति। चाल। (२) दीप्ति। चमक। आभा। (३) गर्भ धारण करने की क्रिया। (४) खाने या पीने की क्रिया। (५) यज्ञ। (६) घोड़ा।

बीतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जेठीमधु। मुलेठी। (२) नीलिका।

बीतिहोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) सूर्य। (३) पुराणानुसार राजा प्रियव्रत के एक पुत्र का नाम। (४) हैहय वंश के एक राजा का नाम। (५) वह जो यज्ञ करता हो।

बीती-संज्ञा पुं० [सं० वीतिन्] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

बीथिका-संज्ञा स्त्री० दे० "वीथी"।

वीथी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दृश्य काव्य या रूपक के २७ भेदों में से एक भेद जो एक ही अंक का होता है और जिसमें एक ही नायक होता है। इसमें आकाशभाषित और शृंगाररस की अधिकता रहती है। प्राचीन काल में ऐसे रूपक अलग भी खेले जाते थे और दूसरे नाटकों के साथ भी। इसके नीचे लिखे १३ अंग माने गए हैं—(१) उद्घातक (२) अवलगित (३) प्रपंच (४) त्रिगत (५) छलन (६) वाक्केली (७) अधिबल (८) गंड (९) अवस्यंदित (१०) नालिका (११) असत्प्रलाप (१२) व्याहार और (१३) मृदव। धनंजय ने अपने दशरूपक में वीथी के उक्त तेरह अंगों का उल्लेख करके कहा है कि सूत्रधार इन वीथ्यंगों के द्वारा अर्थ और पात्र का प्रस्ताव करके प्रस्तावना के अंत में चला जाय और तब वस्तु-प्रपंचन आरंभ हो। साहित्यदर्पण के अनुसार वीथी के अंग ही प्रहसन के भी अंग हो सकते हैं। अंतर केवल यही है कि वीथी में तो इनका होना आवश्यक है, पर प्रहसन में ऐच्छिक होता है। अतः कहा जा सकता है कि वीथी और प्रहसन दोनों प्रस्तावना के ऐसे अंगों को कहते थे जिनमें हास्य रस की अधिकता होती थी और जिनके द्वारा सामाजिकों या दर्शकों के मन में अभिनय के प्रति रुचि या उत्कंठा उत्पन्न की जाती थी। (२) मार्ग। रास्ता। सड़क। (३) वह आकाश मार्ग जिससे होकर सूर्य चलता है। रवि-मार्ग। (४) आकाश में नक्षत्रों के रहने के स्थानों के कुछ विशिष्ट भाग जो वीथी या सड़क के रूप में माने गए हैं। जैसे,—नागवीथी, गजवीथी, ऐरावती वीथी, गोवीथी, मृगवीथी आदि।

विशेष—आकाश में उत्तर, मध्य और दक्षिण में क्रमशः ऐरावत, जरद्गव और वैश्वानर नामक तीन स्थान माने गए हैं, और इनमें से प्रत्येक स्थान में तीन तीन वीथियाँ हैं। इस प्रकार कुल नौ वीथियों में सत्ताईस नक्षत्र समान भागों में विभक्त हैं; अर्थात् प्रत्येक वीथी में तीन तीन नक्षत्रों का अवस्थान माना गया है।

वीथ्यंग-संज्ञा पुं० [सं०] रूपक में वीथी के अंग जो १३ माने गए हैं। वि० दे० "वीथी" (१)।

वीध्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश। (२) अग्नि। (३) वायु।

वीनाह-संज्ञा पुं० [सं०] वह जँगला या ढकना आदि जो कूएँ के ऊपर लगाया जाता है।

वीपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली।

वीरंकरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम, जिसे वीरकरा भी कहते हैं।

वीरंधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर। (२) जंगली पशुओं के साथ होनेवाला युद्ध। (३) एक प्राचीन नदी का नाम।

वीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो साहसी और बलवान् हो। शूर। बहादुर। (२) योद्धा। सैनिक। सिपाही। (३) वह जो किसी विकट परिस्थिति में भी आगे बढ़कर उत्तमता-पूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन करे। (४) वह जो किसी काम में और लोगों से बहुत बढ़कर हो। जैसे,—दानवीर। कर्मवीर। (५) पुत्र। लड़का। (६) पति। खसम। (७) भाई। (स्त्री०) (८) महाभारत के अनुसार दनायु नामक दैत्य के पुत्र का नाम। (९) विष्णु। (१०) जिन। (११) साहित्य में शृंगार आदि नौ रसों में से एक रस जिसमें उत्साह और वीरता आदि की परिपुष्टि होती है। इसका वर्ण गौर और देवता इंद्र माने गए हैं। उत्साह इसका स्थायी भाव है और धृति, मति, गर्व, स्मृति, तर्क और रोमांच आदि इसके संचारी भाव हैं। भयानक, शांत और शृंगार रस का यह रस विरोधी है। (१२) तांत्रिकों के अनुसार साधना के तीन भावों में से एक भाव। कहते हैं कि दिन के पहले दस दंड में पशु भाव से, बीच के दस दंड में वीर भाव से और अंतिम दस दंड में दिव्य भाव से साधना करनी चाहिए। कुछ लोगों का यह भी मत है कि पहले १६ वर्ष की आयु तक पशु भाव से, फिर ५० वर्ष की आयु तक वीर भाव से और इसके उपरांत दिव्य भाव से साधना करनी चाहिए। (१३) तांत्रिकों के अनुसार वह साधक जो इस प्रकार वीर भाव से साधना करता है। दिन रात मद्य पीना, पागलों की सी चेष्टा रखना, शरीर में भस्म लगाए रहना और अपने इष्ट देव को मनुष्य, बकरी, भेड़े या भैंसे आदि का बलिदान चढ़ाना इनका मुख्य कर्त्तव्य होता है। (१४) वह जो किसी काम में बहुत चतुर हो। होशियार। (१५) कर्मठ। कर्मशील। (१६) यज्ञ की अग्नि। (१७) सींगिया नामक विष। (१८) काली मीर्च। (१९) पुष्करमूल। (२०) काँजी। (२१) खस। उशीर। (२२) आलूबुखारा। (२३) पीली कटसरैया। (२४) चौलाई का साग। (२५) वाराहीकंद। गेंठी। (२६) लताकरंज। (२७) कनेर। (२८) अर्जुन नामक वृक्ष। (२९) काकोली। (३०) सिंदूर। (३१) शालिपर्णी। सरिवन। (३२) लोहा। (३३) नरसल। नरकट। (३४) सिआवाँ। (३५) कुश। (३६) ऋषभक नामक ओषधि। (३७) तोरई।

वीरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद कनेर। (२) वह जो किसी निंदित देश का निवासी हो। (३) पुराणानुसार चाक्षुष मन्वंतर के एक मनु का नाम।

वीरकरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम जिसे वीरंकरा भी कहते हैं।

वीरकर्मा-संज्ञा पुं० [सं० वीरकर्मन्] वह जो वीरों की भाँति काम करता हो। वीरोचित कार्य करनेवाला।

वीरकाम-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे पुत्र की कामना हो। पुत्र की इच्छा रखनेवाला।

वीरकुक्षि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो वीर पुत्र प्रसव करती हो।

वीरकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार पांचाल के एक राजकुमार का नाम।

वीरकेशरी-संज्ञा पुं० [सं० वीरकेशरिन्] वह जो वीरों में सिंह के समान अथवा बहुत श्रेष्ठ हो।

वीरकेसरी-संज्ञा पुं० दे० "वीरकेशरी"।

वीरगति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह उत्तम गति जो वीरों को रणक्षेत्र में मरने से प्राप्त होती है। (कहते हैं कि युद्ध-क्षेत्र में वीरतापूर्वक लड़कर मरनेवाले लोग सीधे स्वर्ग जाते हैं।) (२) स्वर्ग।

वीरचक्रेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

वीरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुश, दर्भ, काँस और दूब आदि की जाति के तृण। (२) उशीर। खस। (३) पुराणानुसार एक प्रजापति का नाम जिनकी कन्या असिक्नी का विवाह दक्ष से हुआ था। इस कन्या के गर्भ से पाँच हजार वीरपुत्र उत्पन्न हुए थे जिनसे सृष्टि बढ़ी थी। (४) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वीरणक-संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

वीरतर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शर। तीर। बाण। (२) उशीर। खस।

वीरतरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अर्जुन वृक्ष। (२) ताड़मखाना। (३) भिलावाँ। (४) शर नामक तृण। (५) पियासाल नामक वृक्ष।

वीरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वीर होने का भाव। शूरता। बहादुरी।

वीरद्युम्न-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राजकुमार का नाम।

वीरधन्वा-संज्ञा पुं० [सं० वीरधन्वन्] कामदेव का एक नाम।

वीरनायक-संज्ञा पुं० [सं०] उशीर। खस।

वीरपट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक विशेष प्रकार का पहनावा जो युद्ध के समय पहना जाता था।

वीरपत्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वैदिक काल की एक नदी का नाम। (२) वह जो किसी वीर की पत्नी हो।

वीरपुत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भाँग। भंग। (२) एक प्रकार का महाकंद जिसे धारणी भी कहते हैं।

वीरपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] सुरपर्ण। माचीपत्री।

वीरपान-संज्ञा पुं० [सं०] वह पान जो वीर लोग युद्ध का श्रम मिटाने के लिये करते हैं।

वीरपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महाबला। सहदेई। (२) सिंदूर-पुष्पी। कटकन।

वीरप्रमोक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

वीरप्रसू-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो वीर संतान उत्पन्न करती हो।

वीरबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (३) रावण के एक पुत्र का नाम।

वीरभद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा। (२) उशीर। खस। (३) शिव के एक प्रसिद्ध गण का नाम जो उनके पुत्र और अवतार माने जाते हैं। कहते हैं कि दक्ष का यज्ञ नष्ट करने के लिये शिवजी ने अपने मुँह से इनकी सृष्टि की थी। वीरभद्र ने बहुत से रुद्रों की सृष्टि करके दक्ष का यज्ञ नष्ट किया था।

वीरभद्रक-संज्ञा पुं० [सं०] खस। उशीर।

वीरभद्र रस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो सन्निपात के लिये बहुत उपकारी माना जाता है।

वीरभुक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] आधुनिक वीरभूम का प्राचीन नाम।

वीरमणि-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार देवपुर के एक प्राचीन राजा का नाम जिसके पुत्र रुक्मांगद ने रामचंद्रजी के यज्ञ का घोड़ा पकड़ लिया था। इस पर शत्रुघ्न और हनुमान आदि ने इससे युद्ध किया था। कहते हैं कि इस युद्ध में महादेवजी भी वीरमणि की ओर से लड़े थे और उन्होंने शत्रुघ्न को अपने पाश में बाँध लिया था। तब रामचंद्र ने आकर उन्हें और अपना घोड़ा छुड़ाया था।

वीरमत्स्य-संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार एक प्राचीन जाति का नाम।

वीरमर्दन-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दानव का नाम।

वीरमर्दल-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का ढोल जो युद्ध के समय बजाया जाता था।

वीरमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० वीरमातृ] वह स्त्री जो वीर पुत्र प्रसव करती हो। वीरजननी। वीरप्रसू।

वीरमार्ग-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

वीरमुद्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छल्ला जो प्राचीन काल में पैर की बीचवाली उँगली में पहना जाता था।

वीररज-संज्ञा पुं० [सं० वीररजस्] सिंदूर।

वीरराघव-संज्ञा पुं० [सं०] रामचंद्र का एक नाम।

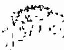
वीररेणु-संज्ञा पुं० [सं०] भीमसेन का एक नाम।

वीरललित-संज्ञा पुं० [सं०] वीरों का सा, पर साथ ही कोमल स्वभाव।

वीरलोक-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

वीरवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] मांसरोहिणी नाम की लता।

वीरवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदाली नाम की लता।



वीरवह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो घोड़ों द्वारा खींचा जाय। (२) रथ।

वीरविलावक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शूद्रों से धन आदि लेकर हवन करता हो।

वीरवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भिलावाँ। (२) अर्जुन नामक वृक्ष। (३) महाशालि। देवधान्य। (४) विल्वांतर या वेलंतर नामक वृक्ष। (५) सावाँ नामक धान्य। (६) शाल वृक्ष।

वीरवेतस-संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेंत।

वीरव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो अपने संकल्प पर सदा दृढ़ रहता हो। धीरतापूर्वक अपने संकल्प का पालन करनेवाला। (२) वह ब्रह्मचारी जो बहुत ही निष्ठा तथा आचारपूर्वक रहता हो। (३) पुराणानुसार मधु के एक पुत्र का नाम जो सुमना के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

वीरशय-संज्ञा पुं० [सं०] वीरों के सोने का स्थान, रण-भूमि। युद्ध-क्षेत्र। लड़ाई का मैदान।

वीरशयन-संज्ञा पुं० [सं०] वीरों के सोने का स्थान, रणभूमि।

वीरशय्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] रणभूमि।

वीरशाक-संज्ञा पुं० [सं०] बथुआ नामक साग।

वीरशैव-संज्ञा पुं० [सं०] शैवों का एक भेद।

वीरसू-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो वीर पुत्र प्रसव करती हो। वीर-जननी।

वीरसेन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा नल के पिता का नाम। (२) आरूक या आड़ू नाम की जड़ी जो हिमालय में होती है। (३) आलूबुखारा।

वीरस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] वह पशु जिसका यज्ञ में बलिदान हो।

वीरस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साधकों का एक प्रकार का आसन जिसे वीरासन कहते हैं। (२) स्वर्ग, जहाँ वीर लोग मरने पर जाते हैं।

वीरहा-संज्ञा पुं० [सं० वीरहन्] (१) विष्णु। (२) वह अग्निहोत्री ब्राह्मण जिसकी अग्निहोत्रवाली अग्नि आलस्य आदि के कारण बुझ गई हो।

वि० वीरों को मारनेवाला।

वीरहोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन प्रदेश का नाम जो विंध्य पर्वत पर था।

वीरांतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वीरों का अंत या नाश करता हो। (२) अर्जुन नामक वृक्ष।

वीरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुरामांसी। मुरा। (२) क्षीर-काकोली। (३) भुइँ आँवला। (४) एलुवा। (५) केला। (६) विदारी कंद। (७) काकोली। (८) शतावर। (९) घी कुआँर। (१०) ब्राह्मी। (११) अतीस। अतिविषा। (१२) मदिरा। शराब। (१३) शीशम का पेड़। (१४) गंभारी नामक वृक्ष। (१५) पृश्निपर्णी। पिठवन। (१६) खिरेंटी। (१७) कुटकी। (१८) जटामाँसी। बालछड़। (१९) आँवला। (२०) वह स्त्री जिसके पति और पुत्र हों। (२१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नदी का नाम।

वीराचारी-संज्ञा पुं० [सं० वीराचारिन्] एक प्रकार के वाममार्गी या शाक्त जो अपने इष्ट देवताओं की वीर भाव से उपासना करते हैं। ये लोग मद्य को शक्ति और मांस को शिव स्वरूप मानते हैं, और इन दोनों के भक्तों को भैरव समझते हैं। ये लोग चक्र में बैठकर पूजन करते हैं और बीच बीच में किसी स्त्री को काली मानकर उस पर मद्य, मांस आदि चढ़ाते हैं। ये लोग प्रायः शव या मृत शरीर लाकर उस की पूजा करते और उसी के द्वारा अनेक प्रकार के साधन और पूजन करते हैं।

वीराद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन नामक वृक्ष।

वीरान-वि० [फा०] (१) उजड़ा हुआ। जिसमें आबादी न रह गई हो। जैसे,—यह बस्ती बिलकुल वीरान हो गई है। (२) जिसकी शोभा नष्ट हो गई हो। श्रीहीन।

वीराना-संज्ञा पुं० [फा०] वह स्थान जहाँ किसी प्रकार की आबादी न हो। उजाड़ जंगल।

वीरानी-संज्ञा स्त्री० [फा०] वीरान या उजाड़ होने का भाव।

वीराम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेत।

वीरारुक-संज्ञा पुं० [सं०] आरूक या आड़ू नाम की जड़ी जो हिमालय में होती है।

वीराशंसन-संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्धभूमि जो बहुत ही भीषण और भयानक जान पड़ती हो।

वीराष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

वीरासन-संज्ञा पुं० [सं०] बैठने का एक प्रकार का आसन या मुद्रा जिसका व्यवहार प्रायः पूजन और तांत्रिकों आदि के साधन में होता है। इसमें बाएँ पैर और टखने पर दाहिनी जाँघ रखकर बैठते हैं।

वीरिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वीरण प्रजापति की कन्या असिक्नी जो दक्ष को ब्याही थी। (२) वह स्त्री जिसे पुत्र हो। पुत्रवती। (३) एक प्राचीन नदी का नाम।

वीरुध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्ष और वनस्पति आदि। (२) ओषधि। (३) विस्तृता या गुल्मिनी नाम की लता।

वीरुधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दवा के रूप में काम में आनेवाली वनस्पति। ओषधि।

वीरेश-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

वीरेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

वीरोपजीविक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अग्निहोत्र के द्वारा अपनी जीविका का निर्वाह करता हो।

वीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर के सात धातुओं में से एक धातु जिसका निर्माण सब के अंत में होता है और जिसके कारण

शरीर में बल और कांति आती है। इसे परम धातु भी कहते हैं। यह स्त्री-प्रसंग के समय अथवा रोग आदि के कारण यों ही मूत्रेंद्रिय से निकलता है। कुछ लोगों का मत है कि वीर्य्य दो प्रकार का है—शीत और उष्ण। और कुछ लोगों का मत है कि यह आठ प्रकार का होता है—उष्ण, शीत, स्निग्ध, रूक्ष, विशद, पिच्छिल, मृदु और तीव्र। वि० दे० "शुक्र"।

पर्य्या०—शुक्र। तेज। रेत। बीज। इंद्रिय।

(२) दे० "रज"। (३) वैद्यक के अनुसार किसी पदार्थ का वह सार भाग जिसके कारण उस पदार्थ में शक्ति रहती है। किसी वस्तु का मूल तत्व। (४) पराक्रम। बल। शक्ति। सामर्थ्य। (५) अन्न आदि का बीज। बीआ।

वीर्य्यकृत-संज्ञा पुं० [सं०] बलवान्। ताकतवर।

वीर्य्यकृत्-वि० [सं०] जो बल या वीर्य उत्पन्न करता हो। बलकारक।

वीर्य्यज-संज्ञा पुं० [सं०] लड़का। बेटा। पुत्र।

वीर्य्यतम-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बहुत बड़ा बलवान हो।

वीर्य्यधर-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार कुश द्वीप में रहनेवाले एक प्रकार के क्षत्रिय।

वीर्य्यवत्-वि० [सं०] (१) बलवान्। मजबूत। (२) मांसल। हृष्ट पुष्ट।

वीर्य्यशुल्क-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० वीर्यशुल्का] वह प्रतिज्ञा या प्रण जो वीर्य्य संबंधी हो। जैसे,—यह प्रतिज्ञा करना कि जो पुरुष (या स्त्री) अमुक कार्य करेगा, उसके साथ इस स्त्री (या पुरुष) का विवाह होगा।

वीर्य्यसह-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यवंशी राजा सौदास के पुत्र कल्मापपाद का एक नाम।

वीर्य्यहारी-संज्ञा पुं० [सं० वीर्य्यहारिन्] एक यक्ष का नाम जो दुस्सह नामक यक्ष की कन्या के गर्भ से किसी चोर के वीर्य्य से उत्पन्न हुआ था। कहते हैं कि जो लोग कदाचारी होते हैं, या बिना हाथ पैर धोए रसोई घर में जाते हैं, उनके घर में यह यक्ष अपने और दो भाइयों के साथ रहता है।

वीर्य्यांतराय-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार वह पाप कर्म जिसका उदय होने से जीव हृष्ट पुष्टांग होते हुए भी शक्तिविहीन हो जाता है और कुछ पराक्रम नहीं कर सकता।

वीर्य्या-संज्ञा स्त्री० दे० "वीर्य्य"।

वीहार-संज्ञा पुं० दे० "विहार"।

वृंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्तन का अगला भाग। (२) बौंड़ी। ढेंढी।

वृंताक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैंगन। (२) पोई का साग।

वृंताकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वनभंटा। (२) बैंगन।

वृंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। झुंड। (२) सौ करोड़ की संख्या। (३) एक मुहूर्त का नाम। उ०—माघ शुक्ल भूत दिन जानो। वृंद मुहूरत में पहिचानो।—विश्राम।

वृंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तुलसी। (२) राधिका के सोलह नामों में से एक नाम।

वृंदाक-संज्ञा पुं० [सं०] परगाछा नाम का पेड़।

वृंदारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवता। (२) श्रेष्ठ व्यक्ति।

वृंदारण्य-संज्ञा पुं० [सं०] वृंदावन।

वृंदावन-संज्ञा पुं० [सं०] मथुरा जिले का एक प्रसिद्ध प्राचीन तीर्थ जो भगवान् श्रीकृष्णचंद्र का क्रीड़ा-क्षेत्र माना जाता है। कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने अपनी अधिकांश बाल लीलाएँ यहीं की थीं। पुराणों में वृंदावन के संबंध में अनेक प्रकार की विलक्षण कथाएँ आदि पाई जाती हैं। महमूद गजनवी ने वृंदावन और उसके आस पास के अनेक स्थानों को बिलकुल नष्ट भ्रष्ट कर डाला था, और बहुत दिनों तक यह उसी दशा में पड़ा रहा। पर पीछे से चैतन्य महाप्रभु ने यमुना के किनारे वर्त्तमान वृंदावन नामक नगर की स्थापना की थी। इस नगर में इस समय हजारों बड़े बड़े मंदिर हैं और दूर दूर से यात्री लोग यहाँ दर्शनों के लिये आते हैं।

वृंदावनेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण का एक नाम।

वृंदावनेश्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] राधिका का एक नाम।

वृंहण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पदार्थ जो पुष्टिकारक हो। बलवर्धक द्रव्य। (२) भावप्रकाश के अनुसार एक प्रकार का धूम्र-पान। (३) असगंध। (४) मुनक्का। (५) भुईं-कुम्हड़ा। (६) चरक के अनुसार सूअर के मांस में पकाया हुआ जौ का सत्तू।

वृंहणवस्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] भावप्रकाश के अनुसार एक प्रकार की वस्ति जिसे निरूह या निरूढ़ भी कहते हैं। वि० दे० "निरूढ़वस्ति"।

वृक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ते की जाति का एक मांसाहारी पशु। भेड़िया। (२) शृगाल। गीदड़। (३) कौआ। (४) क्षत्रिय। (५) चोर। (६) वज्र। (७) अगस्त का पेड़। (८) गंधाबिरोजा।

वृककर्म्मा-संज्ञा पुं० [सं० वृककर्म्मन्] एक असुर का नाम।

वृकखंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वृकगर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम।

वृकग्राह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वृकजंभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वृकदंत-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक राक्षस का नाम। इसी की कन्या सालंकटंकी कुंभकर्ण को ब्याही थी।

वृकदंस-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

हुआ। (५) जो उत्पन्न हुआ हो। जात। (६) निष्पन्न। सिद्ध। (७) ढका हुआ। आच्छादित।

वृत्तक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह गद्य जिसमें कोमल तथा मधुर अक्षरों और छोटे छोटे समासों का व्यवहार किया गया हो। (२) छंद।

वृत्तकर्कटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] खरबूजा।

वृत्तकोशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदाली नाम की लता।

वृत्तकोष-संज्ञा पुं० [सं०] पीली देवदाली।

वृत्तखंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वृत्त या गोलाई का कोई अंश। (२) मेहराब।

वृत्तगंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गद्य जिसमें अनुप्रासों और समासों की अधिकता हो। वह गद्य जिसमें पद्य का आनंद आता हो।

वृत्तगुंड-संज्ञा पुं० [सं०] दीर्घनाल या गोंदला नाम की घास।

वृत्तचेष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वभाव। प्रकृति। मिजाज। (२) आचरण। चाल चलन।

वृत्ततंडुल-संज्ञा पुं० [सं०] यवनाल। जवनाल।

वृत्तपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] पुत्रदात्री नाम की लता।

वृत्तपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पाठा। पाढ़ा। (२) बड़ी शण-पुष्पी।

वृत्तपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिरिस का पेड़। (२) कदम या कदंब का पेड़। (३) जलबेत। (४) भुईं कदंब। (५) सदा-गुलाब। सेवती। (६) मोतिया। (७) मल्लिका।

वृत्तपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागदमनी। (२) सदा गुलाब। सेवती।

वृत्तफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोई गोलाकार फल। (२) काली मिर्च। (३) अनार। (४) बेर। (५) कैथ। कपित्थ। (६) लाल अपामार्ग। लाल चिचड़ा। (७) करंज का पेड़। (८) तरबूज। (९) खरबूजा।

वृत्तफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बैंगन। भंटा। (२) कड़वी ककड़ी। (३) आँवला।

वृत्तबंध-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वृत्त या छंद के रूप में बाँधा गया हो।

वृत्तभोजन-संज्ञा पुं० [सं०] गंडीर या गिंडनी नाम का साग।

वृत्तमल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद आक। (२) त्रिपुर-मल्लिका।

वृत्तवत्-वि० [सं०] जिसका आचरण उत्तम हो। सदाचारी।

वृत्तबीज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भिंडी। तरोई। (२) लोबिया। राजमाष।

वृत्तबीजका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अरहर नामक दाल। (२) पांडुफली। पांडुरफली।

वृत्तबीजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अरहर नाम का अन्न।

वृत्तशाली-संज्ञा पुं० [सं० वृत्तशालिन्] वह जिसका आचरण उत्तम हो। सदाचारी।

वृत्तश्लाघी-संज्ञा पुं० [सं० वृत्तश्लाघिन्] (१) वह जिसे अपने काम का अभिमान या श्लाघा हो। (२) क्षत्रिय।

वृत्तस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसका चरित्र शुद्ध हो। सदाचारी। (२) वह जो दूसरों का उपकार करता हो। परोपकारी।

वृत्तांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी बीती हुई बात या घटी हुई घटना का विवरण। समाचार। हाल। जैसे,—(क) इस घटना का सारा वृत्तांत समाचारपत्रों में छप गया है। (ख) अब आप कुछ अपना वृत्तांत सुनाइए। (२) प्रक्रिया। (३) संपूर्णता। समस्तता। (४) प्रस्ताव। (५) आख्यान। (६) अवसर। मौका। (७) भाव।

वृत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) झिंझरीट नाम का क्षुप। (२) रेणुका। रेणु-बीज। (३) प्रियंगु। (४) मांसरोहिणी। (५) सफेद सेम। (६) नाग-दमनी। (७) महुआ।

वृत्तानुवर्त्ती-संज्ञा पुं० [सं० वृत्तानुवर्त्तिन्] वह जिसका आचरण शुद्ध हो। सदाचारी।

वृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह कार्य्य जिसके द्वारा जीविका का निर्वाह होता हो। जीविका। रोजी।

क्रि० प्र०—करना।—लगना।—होना।

(२) वह धन जो किसी दीन, विधवा या छात्र आदि को बराबर, कुछ निश्चित समय पर, उसके सहायतार्थ दिया जाय। उपजीविका।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

(३) सूत्रों आदि का वह विवरण या व्याख्या जो उनका अर्थ स्पष्ट करने के लिये की जाती है।

विशेष—हमारे यहाँ सूत्रों आदि की व्याख्या के वृत्ति, भाष्य, वार्तिक, टीका और टिप्पणी ये पाँच भेद किए गए हैं। इनमें से वृत्ति उस व्याख्या को कहते हैं, जो कुछ संक्षिप्त होती है और जिसकी रचना गंभीर होती है।

(४) विवरण। वृत्तांत। हाल। (५) नाटकों में विषय के विचार से वर्णन करने की शैली जो चार प्रकार की कही गई है और जो भिन्न भिन्न रसों के लिये उपयुक्त मानी गई है। जैसे,—कौशिकी वृत्ति, शृंगार रस के लिये; सात्वती वृत्ति वीर रस के लिये; आरभटी वृत्ति रौद्र और बीभत्स रस के लिये; और भारती वृत्ति शेष अन्य रसों के लिये। जहाँ अच्छी वेशभूषावाली नायिका, बहुत सी स्त्रियों और नृत्य-गीत तथा भोग-विलास आदि का वर्णन हो, उसे कौशिकी; जहाँ वीरता, ज्ञानशक्ति, दया, सरलता आदि का वर्णन हो, उसे सात्वती; जहाँ माया, इंद्रजाल, संग्राम, क्रोध आदि का वर्णन हो, उसे आरभटी; और जहाँ संस्कृत-बहुल कथोप-

कथन हो, उसे भारती वृत्ति कहते हैं। इन चारों वृत्तियों के भी कई अवांतर भेद माने गए हैं। (६) व्यवहार। (७) वह जो किसी दूसरे पर आश्रित या अवलंबित हो। आधेय। (८) योग के अनुसार चित्त की अवस्था जो पाँच प्रकार की मानी गई है—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। (९) व्यापार। कार्य्य। (१०) स्वभाव। प्रकृति। (११) कर्तव्य। (१२) संहार करने का एक प्रकार का अस्त्र। उ०—सारथि माली वृत्ति नाम पुनि अतिमाली भो।—पद्माकर।

वृत्तिकार-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने किसी सूत्र ग्रंथ पर वृत्ति लिखी हो।

वृत्तिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वृत्ति का भाव या धर्म।

वृत्तिदशना-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार स्कंद की एक स्त्री का नाम।

वृत्तिस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो अपनी वृत्ति पर स्थित हो। (२) गिरगिट।

वृत्तेर्वारु-संज्ञा पुं० [सं०] खरबूजे की बेल।

वृत्य-वि० [सं०] जो नियुक्त करने के योग्य हो। मुकर्रर करने के काबिल।

वृत्यनुप्रास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाँच प्रकार के अनुप्रासों में से एक प्रकार का अनुप्रास जो काव्य में एक शब्दालंकार माना जाता है। इसमें एक या कई व्यंजन वर्ण एक ही या भिन्न भिन्न रूपों में बार बार आते हैं। उ०—अति कारी कारी घटा, कारी बारी रैन। (२) इसमें र और व ये दो व्यंजन कई बार आतएव हैं, अतः यह वृत्यनुप्रास हुआ।

वृत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अँधेरा। (२) मेघ। बादल। (३) शत्रु। दुश्मन। (४) पुराणानुसार त्वष्टा के पुत्र एक दानव या असुर का नाम जिसे इंद्र ने मारा था। इसी को मारने के लिये दधीचि ऋषि की हड्डियों का वज्र बनाया गया था। कहते हैं कि एक बार इंद्र ने विश्वरूप पुरोहित को मार डाला था। उसके पिता त्वष्टा ऋषि ने इसका बदला चुकाने के लिये यज्ञ करके इसे उत्पन्न किया। जब इसने इंद्र पर आक्रमण किया, तब इंद्र देवताओं सहित इंद्रपुरी से भाग गए। पर अंत में विष्णु की सम्मति से इंद्र ने दधीचि ऋषि से उनकी हड्डियाँ माँगीं और उन्हीं हड्डियों का वज्र बनाकर इससे लड़ना आरंभ किया। तब इंद्र ने इसके दोनों हाथ काट डाले, तब यह इंद्र को उनके हाथी ऐरावत सहित निगल गया। तब इन्द्र इसका पेट फाड़कर बाहर निकले और इसका सिर काट डाला। देवी भागवत में इसकी कथा विस्तार के साथ दी गई है। वेदों में भी वृत्र असुर का उल्लेख है; पर वहाँ जो कुछ वर्णन मिलता है, उससे आलंकारिक रूप में मेघ और अंधकार आदि के संबंध में ही "वृत्र" शब्द आया हुआ जान पड़ता है। वृत्रासुर। (५) एक पर्वत का नाम।

वृत्रखाद-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम, जिन्होंने वृत्र नामक असुर को मारा था।

वृत्रघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृत्र नामक असुर को मारनेवाले, इंद्र। (२) वैदिक काल के एक देश का नाम जो गंगा के तट पर था।

वृत्रघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार पारिपात्र नामक कुल-पर्वत से निकली हुई एक नदी का नाम।

वृत्रतूर्य-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। लड़ाई।

वृत्रत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृत्र का भाव या धर्म। (२) शत्रुता। दुश्मनी।

वृत्रनाशन-संज्ञा पुं० [सं०] वृत्र नामक असुर को मारनेवाले, इंद्र।

वृत्रभोजन-संज्ञा पुं० [सं०] गंडीर या गुँदरी नामक साग।

वृत्रवैरी-संज्ञा पुं० [सं० वृत्रवैरिन्] वृत्र को मारनेवाले, इंद्र।

वृत्रशंकु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पत्थर का खंभा। (वैदिक)

वृत्रशत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

वृत्रहा-संज्ञा पुं० [सं०] वृत्रासुर को मारनेवाले, इंद्र।

वृत्रारि-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

वृत्रासुर-संज्ञा पुं० दे० "वृत्र" (४)।

वृथा-वि० [सं०] बिना मतलब का। निष्प्रयोजन। व्यर्थ। फजूल।

क्रि० वि० बिना मतलब के। बेफ़ायदा।

वृथात्व-संज्ञा पुं० [सं०] वृथा होने का भाव या धर्म।

वृथामांस-संज्ञा पुं० [सं०] वह मांस जो किसी देवी या देवता को चढ़ाया गया हो। ऐसा मांस खाने का निषेध है।

वृद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनुष्य की तीन अवस्थाओं में से एक अवस्था जो युवावस्था के उपरांत और सब के अंत में आती है। यह अवस्था प्रायः ६० वर्ष के उपरांत आती है। इसमें मनुष्य दुर्बल और क्षीण हो जाता है, उसके सब अंग शिथिल हो जाते हैं, शरीर की धातुएँ तथा इंद्रियाँ आदि भी बराबर क्षीण होती जाती हैं, और इसके अंत में मृत्यु आ जाती है। बुढ़ापा। जरा। (२) वह जो इस अवस्था में पहुँच गया हो। बुड्ढा। (३) पंडित। विद्वान्। (४) शैलज नामक गंधद्रव्य। (५) वृद्धावस्था।

वृद्धकंट-संज्ञा पुं० [सं०] इंगुदी का पेड़।

वृद्धकाक-संज्ञा पुं० [सं०] द्रोण काक। पहाड़ी कौवा।

वृद्धकावेरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

वृद्धकृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कृच्छ्र रोग।

वृद्धकेशव-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सूर्य की एक मूर्ति का नाम।

वृद्धगंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिमालय की एक छोटी नदी का नाम।

वृद्धगोनस-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का साँप।
वृद्धता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वृद्ध का भाव या धर्म। बुढ़ापा। (२) पांडित्य।
वृद्धतिक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा। पाढ़ा।
वृद्धत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृद्ध होने का भाव या धर्म। बुढ़ापा। (२) पांडित्य।
वृद्धदार-संज्ञा पुं० दे० "वृद्धदारक"।
वृद्धदारक-संज्ञा पुं० [सं०] विधारा नामक क्षुप।
वृद्धद्युम्न-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।
वृद्धधूप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिरिस का पेड़। (२) सरल का वृक्ष।
वृद्धधूमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] खिसोड़ा।
वृद्धनाभि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी तोंद आगे को निकली हो। तोंदल।
वृद्धपराशर-संज्ञा पुं० [सं०] एक धर्मशास्त्र कार का नाम।
वृद्धप्रपितामह-संज्ञा पुं० [सं०] दादा का दादा। परदादा का पिता।
वृद्धबला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ककही या कंघी नामक पेड़। (२) महाबला।
वृद्धबृहस्पति-संज्ञा पुं० [सं०] एक धर्मशास्त्र-कार का नाम।
वृद्धबौधायन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन धर्मशास्त्र कार का नाम।
वृद्धमनु-संज्ञा पुं० [सं०] एक धर्मशास्त्र कार का नाम।
वृद्धयाज्ञवल्क्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक धर्मशास्त्र-कार का नाम।
वृद्धयुवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुटनी। (२) धात्री। दाई।
वृद्धराज-संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेत।
वृद्धवशिष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक धर्मशास्त्र कार का नाम।
वृद्धवासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गीदड़।
वृद्धवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।
वृद्धविभीतक-संज्ञा पुं० [सं०] अमड़ा।
वृद्धविष्णु-संज्ञा पुं० [सं०] एक धर्मशास्त्र-कार का नाम।
वृद्धशाकल्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।
वृद्धश्रवा-संज्ञा पुं० [सं० वृद्धश्रवस्] इंद्र।
वृद्धश्रावक-संज्ञा पुं० [सं०] कापालिक।
वृद्धसूचक-संज्ञा पुं० [सं०] कपास।
वृद्धहारीत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन धर्मशास्त्र-कार का नाम।
वृद्धांगुलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] अँगूठा।
वृद्धांत-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सम्मान या प्रतिष्ठा करने योग्य हो। आदरणीय।
वृद्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जो अवस्था में वृद्ध हो गई हो। बुड्ढी। (२) अँगूठा। (३) महाश्रावणिका।
वृद्धाचल-संज्ञा पुं० [सं०] मदरास प्रांत के एक तीर्थ का नाम।
वृद्धात्रि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वृद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बढ़ने या अधिक होने की क्रिया या भाव। बढ़ती। ज्यादती। अधिकता। जैसे,—धन धान्य की वृद्धि, संतान की वृद्धि, यश की वृद्धि। (२) ब्याज। सूद। (३) वह अशौच जो घर में सन्तान उत्पन्न होने पर होता है। (४) अभ्युदय। समृद्धि। (५) एक प्रसिद्ध लता जो अष्टवर्ग के अंतर्गत मानी गई है। कहते हैं कि यह कोशयामल देश के कोशल पर्वत पर पाई जाती है। इसके कंद पर सफेद रोएँ और कहीं कहीं छेद होते हैं। इसका फल कपास की गाँठ के समान होता है, जो लता में दाहिनी ओर निकलता है। आजकल यह ओषधि नहीं मिलती। वैद्यक में यह मधुर, शीतल, वीर्यवर्द्धक, गर्भ धारण करानेवाली और रक्त-पित्त, खाँसी तथा क्षय रोग को नष्ट करनेवाली मानी गई है।

पर्य्या०—योग्या। ऋद्धि। सिद्धि। लक्ष्मी। पुष्टिदा। वृद्धिदात्री। मंगल्या। श्री। सम्पद्। जनेष्टा। भूति। सुख। जीवभद्रा।

(६) राजनीति में कृषि, वाणिज्य, दुर्ग, सेतु, कुंजरबंधन, कन्याकर, बलादान और सैन्यसन्निवेश इन आठों वर्गों का उपचय। वर्द्धन। स्फाति। (७) फलित ज्योतिष में विष्कंभ आदि २७ योगों के अंतर्गत ग्यारहवाँ योग। कहते हैं कि इस योग में जन्म लेनेवाला व्यक्ति विनयी, धन का अच्छा उपयोग करनेवाला और माल खरीदने तथा बेचने में बहुत चतुर होता है।

वृद्धिकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] नांदीमुख श्राद्ध। वृद्धि श्राद्ध।
वृद्धिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ऋद्धि नाम की ओषधि। (२) सफेद अपराजिता। (३) अर्कपुष्पी।
वृद्धिजीवक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वृद्धि या ब्याज से अपना निर्वाह करता हो। सूद से अपना निर्वाह करनेवाला।
वृद्धिद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीवक नामक क्षुप। (२) शूकरकंद। वि० वृद्धि देनेवाला।
वृद्धिपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का शस्त्र जो सात अंगुल का होता था और जिसका व्यवहार चीर फाड़ में छेदने आदि के लिये होता था। इसका आकार प्रायः छुरे के समान होता था।
वृद्धियोग-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के सत्ताइस योगों में में से एक योग।
वृद्धिश्राद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] नांदीमुख नाम का श्राद्ध। वि० दे० "नांदीमुख"।
वृधसानु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुरुष। आदमी। (२) कृति। काम।
वृधु-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक सूत्रकार जिससे भरद्वाज मुनि को बहुत सी गौएँ मिली थीं।

वृश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अड़ूसा। (२) चूहा।

[illegible] संज्ञा पुं० दे० "[illegible]"।

वृशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ओषधि।

वृश्चन-संज्ञा पुं० [सं०] वृश्चिक। बिच्छू।

वृश्चि-संज्ञा पुं० [सं०] लाल गदहपूरना।

वृश्चिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिच्छू नामक प्रसिद्ध कीड़ा जिसके डंक में बहुत तेज़ ज़हर होता है। वि० दे० "बिच्छू"। (२) गोबर में उत्पन्न होनेवाला कीड़ा। शूककीट। (३) पुनर्नवा। गदहपूरना। (४) मदन वृक्ष। मैनफल। (५) वृश्चिकाली या बिच्छू नाम की लता। (६) ज्योतिष में मेष आदि बारह राशियों में से आठवीं राशि जिस के सब तारों से प्रायः बिच्छू का सा आकार बनता है। विशाखा नक्षत्र के अंतिम पाद से आरंभ होकर अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्रों के स्थिति-काल तक यह राशि मानी जाती है। भारतीय फलित ज्योतिष के अनुसार यह राशि शीर्षोदय, श्वेतवर्ण, कफ प्रकृति, जलचर, उत्तर दिशा की अधिपति और अनेक पुत्रों तथा स्त्रियों से युक्त मानी गई है। कहते हैं कि इस राशि में जन्म लेनेवाला मनुष्य धन जन से युक्त, भाग्यवान, खल, राजसेवा करनेवाला, सदा दूसरों के धन की अभिलाषा करनेवाला, उत्साही और वीर होता है।

पर्य्या०—सौम्य। कौर्प्य। कुम। सम। स्थिर। पुष्कर। सरीसृपजाति। भाम्य।

(७) फलित ज्योतिष के अनुसार मेष आदि बारह लग्नों में से आठवाँ लग्न जो वृश्चिक राशि के उदय के समय माना जाता है। कहते हैं कि जो बालक इस लग्न में जन्म लेता है, वह बहुत मोटा ताज़ा, खर्चीला, कुटिल, माता-पिता के लिये अनिष्टकर, गंभीर और स्थिर प्रकृतिवाला, उग्र स्वभाव का, विश्वासी, हँसमुख, साहसी, गुरु और मित्रों से शत्रुता रखनेवाला, राजसेवा करनेवाला, दुःखी, दाता, नीचप्रकृति और पित्त-रोगी होता है। (८) अगहन मास जिसमें प्रायः सूर्योदय के समय वृश्चिक राशि का उदय होता है।

वृश्चिकपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पोई नाम का साग।

वृश्चिकप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] पोई नाम का साग।

वृश्चिकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूसाकानी। आखुकर्णी।

वृश्चिकविषापहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मकुलकंद। (२) रास्ना।

वृश्चिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बिछुआ या बिच्छू नाम [illegible] घास। (२) पिठवन। (३) सफेद पुनर्नवा।

वृश्चिकाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] बिच्छू नाम की लता जो प्रायः सारे भारत में पाई जाती और बारहो मास हरी रहती है। इसके पत्ते ५-६ अंगुल लंबे, नुकीले और अंडाकार होते हैं और तने [illegible] तथा डंठलों पर एक प्रकार के रोएँ होते हैं जिनके शरीर में लगने से बहुत तेज जलन होती है। इसकी जड़ का प्रयोग ओषधि रूप में होता है। वैद्यक [illegible] यह कड़वी, चरपरी, बल तथा रुचि बढ़ानेवाली, तथा खाँसी, श्वास और ज्वर को दूर करनेवाली मानी गई है।

वृश्चिकेश-संज्ञा पुं० [सं०] वृश्चिक राशि के अधिष्ठाता देवता।

वृश्चिपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पूतिका। पोई।

वृश्चिपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वृश्चिकाली। (२) मेढ़ासिंगी।

वृश्चिपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वृश्चिकाली। (२) मेढ़ासिंगी।

वृश्ची-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुनर्नवा। गदहपूरना।

वृश्चीर-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद गदहपूरना।

वृश्चीव-संज्ञा पुं० [सं०] गदहपूरना। पुनर्नवा।

वृष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौ का नर। साँड़। (२) कामशास्त्र के अनुसार चार प्रकार के पुरुषों में से एक प्रकार का पुरुष जो शंखिनी जाति की स्त्री के लिये उपयुक्त समझा जाता है। कहते हैं कि ऐसा पुरुष अनेक गुणों [illegible] युक्त, अनेक प्रकार के रतिबंधों का ज्ञाता, सुंदर और सत्यवादी होता है। (३) धर्म्म जिसके चार पैर माने जाते हैं और जो इसी कारण साँड़ के रूप में माना जाता है। (४) पुराणानुसार ग्यारहवें मन्वंतर के इंद्र का नाम। (५) चूहा। (६) अड़ूसा। (७) श्रीकृष्ण का एक नाम। (८) शत्रु। दुश्मन। वैरी। (९) काम। (१०) ऋषभ नामक ओषधि। (११) पति। स्वामी। (१२) गेहूँ। (१३) घमासा। (१४) नदी में होनेवाला भिलावाँ। (१५) ज्योतिष में मेष आदि बारह राशियों में से दूसरी राशि जिसमें कृत्तिका नक्षत्र के तीन पाद, पूरा रोहिणी नक्षत्र और मृगशिरा नक्षत्र के पहले दो पाद हैं। यह राशि श्वेत वर्ण, वात प्रकृति, वैश्य, चार पैरोंवाली और दक्षिण दिशा की स्वामिनी मानी जाती है। कहते हैं कि जो व्यक्ति इस राशि में जन्म लेता है, वह सुंदर, दाता, क्षमाशील, स्त्रैण और निर्भय होता है तथा आरंभिक अवस्था में धन, बंधु, संतति आदि से रहित और अंतिम अवस्था में इन सब बातों से सुखी रहता [illegible]। (१६) फलित ज्योतिष में मेष आदि बारह लग्नों में से दूसरा लग्न। कहते हैं कि इस लग्न में जन्म लेनेवाले मनुष्य के ओंठ और नाक मोटी तथा ललाट बहुत चौड़ा होता है, वह वात-श्लेष्म प्रकृति का, भाग्यवान्, खर्चीला, माता-पिता को कष्ट देनेवाला और बुरे कामों की ओर प्रवृत्ति रखनेवाला होता है। ऐसे मनुष्य को पुत्र कम और कन्याएँ अधिक होती हैं। इसकी मृत्यु किसी पशु या बलवान् व्यक्ति के द्वारा अथवा जल, शूल, पर्य्यटन आदि के कारण अथवा भूखों रहने से होती है।

वृषक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँड़। (२) महाभारत के अनुसार गांधार के एक राजकुमार का नाम। (३) एक प्रकार का साग। (४) अड़ूसा। (५) ऋषभक नामक ओषधि। (६)

धमासा । दुरालभा । (७) मिलावाँ । (८) गेहूँ । (९) चूहा ।

वृषकर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुदर्शन नाम की लता । (२) एक प्रकार का विधारा ।

वृषका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम ।

संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

वृषकेतु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव या महादेव, जिनकी ध्वजा पर बैल का चिह्न माना जाता है । (२) कर्ण के एक पुत्र का नाम । (३) लाल गदहपूरना ।

वृषक्रतु–संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा करनेवाले, इंद्र ।

वृषखादि–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सोम पान करता हो ।

वृषगंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ककही या कंघी नाम का पौधा । (२) एक प्रकार का विधारा ।

वृषगंधिका–संज्ञा स्त्री० दे० "वृषगंधा" ।

वृषगण–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक ऋषियों का एक गण या समूह ।

वृषचक्र–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक प्रकार का चक्र जिसमें एक बैल बनाकर उसके भिन्न भिन्न अंगों में नक्षत्र आदि रखते हैं और तब उसके द्वारा खेती संबंधी शुभाशुभ फल आदि निकालते हैं ।

वृषण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र । (२) कर्ण । (३) विष्णु । (४) साँड़ । (५) घोड़ा । (६) वृक्ष । (७) पीड़ा का ज्ञान या उससे होनेवाली बेहोशी । (८) अंडकोष । पोता ।

वृषणकच्छु–संज्ञा स्त्री० [सं०] अंडकोश के आस पास होनेवाली वह फुंसियाँ आदि जो मैल और पसीने आदि के कारण हो जाती हैं और जिनमें खुजली होती है ।

वृषणाश्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध वैदिक राजा का नाम । (२) इंद्र के घोड़े का नाम ।

वृषदंशक–संज्ञा पुं० [सं०] बिल्ली ।

वृषदर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार कश्मीर के एक राज-कुमार का नाम । (२) पुराणानुसार शिवि के एक पुत्र का नाम । (३) श्रीकृष्ण का एक नाम ।

वृषदेवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वायुपुराण के अनुसार वसुदेव की एक स्त्री का नाम ।

वृषद्वीप–संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक द्वीप का नाम ।

वृषध्वज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । महादेव । (२) गणेश । (३) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम । (४) वह व्यक्ति जो बहुत पुण्यशील हो । पुण्यात्मा ।

वृषध्वजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम ।

वृषध्वांक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोथा ।

वृषध्वांक्षी–संज्ञा स्त्री० दे० "वृषध्वांक्षा" ।

वृषनामा–संज्ञा पुं० [सं० वृषनामन्] अड़ूसा ।

वृषनाशन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विड़ंग । बायबिड़ंग । (२) पुराणानुसार श्रीकृष्ण का एक नाम ।

वृषपति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । महादेव । (२) नपुंसक । हिजड़ा । षंढ ।

वृषपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] बस्तांत्री या छागलांत्री नाम की ओषधि जो विधारा का एक भेद है ।

वृषपर्णिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] भारंगी । ब्राह्मणयष्टिका ।

वृषपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूसाकानी । आखुकर्णी । (२) उदुंबरपर्णी । दंती । (३) सुदर्शना नाम की लता ।

वृषपर्वा–संज्ञा पुं० [सं० वृषपर्वन्] (१) शिव । महादेव । (२) महाभारत के अनुसार एक दैत्य का नाम । (३) विष्णु का एक नाम । (४) कसेरू । (५) एक प्रकार का तृण । (६) भँगरा ।

वृषप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

वृषभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैल या साँड़ । (२) साहित्य में वैदर्भी रीति का एक भेद । (३) कान का छेद । (४) ऋषभ नाम की ओषधि । (५) कामशास्त्र के अनुसार चार प्रकार के पुरुषों में श्रेष्ठ पुरुष जो शंखिनी जाति की स्त्री के लिये उपयुक्त कहा गया है । (६) सूर्य्य की वीथियों में से एक वीथी का नाम । (७) एक प्राचीन तीर्थ का नाम । (८) श्रीकृष्ण के एक सखा का नाम । (९) एक यूथपति बंदर का नाम जो राम-रावण युद्ध में लड़ा था ।

वृषभकेतु–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम ।

वृषभगति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । महादेव । (२) वह सवारी जो बैल के द्वारा खींची जाती हो ।

वृषभतीर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।

वृषभत्व–संज्ञा पुं० [सं०] वृषभ होने का भाव या धर्म । वृषभता ।

वृषभधुजः–संज्ञा पुं० दे० "वृषभध्वज" ।

वृषभध्वज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । महादेव । (२) एक प्राचीन पर्वत का नाम ।

वृषभध्वजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी दंती । बँगड़ेरा ।

वृषभपल्लव–संज्ञा पुं० [सं०] अड़ूसा ।

वृषभवीथि–संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य्य की वीथियों में से एक वीथी का नाम ।

वृषभांक–संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

वृषभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन नदी का नाम ।

वृषभाक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

वृषभाक्षी–संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवारुणी लता । इनारू ।

वृषभानः–संज्ञा पुं० दे० "वृषभानु" ।

वृषभानु-संज्ञा पुं० [सं०] श्री राधिकाजी के पिता का नाम जो पुराणानुसार नारायण के अंश से उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम सुरभानु और माता का नाम पद्मावती था। ये गोकुल के बड़े सरदार थे और पहले रावल ग्राम में रहते थे, जहाँ राधिका का जन्म हुआ था। पर अंत में कंस के उपद्रव के कारण वहाँ से बरसाने में आ बसे थे।

विशेष—इस शब्द के साथ "कन्या" या उसका पर्याय-वाची शब्द लगाने से उसका "राधिका" अर्थ होता है। जैसे,—वृषभानुसुता, वृषभानुनंदिनी।

वृषभानुनंदिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] राधिका।

वृषभानुसुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वृषभानु की कन्या, श्रीराधिका।

वृषभासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की पुरी अमरावती का एक नाम।

वृषभेक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

वृषमूल-संज्ञा पुं० [सं०] अड़ूसे की जड़।

वृषय-संज्ञा पुं० [सं०] आश्रय।

वृषरवि-संज्ञा पुं० दे० "वृषभानु"।

वृषरुत-संज्ञा पुं० [सं० वृषरुत्] शिव। महादेव।

वृषल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शूद्र। (२) वह जिसे धर्म्म आदि का कुछ भी ध्यान न हो। पाप और दुष्कर्म्म करनेवाला। (३) घोड़ा। (४) सम्राट् चंद्रगुप्त का एक नाम। (५) गाजर। (६) शलगम।

वृषलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वृषल होने का धर्म्म या भाव। वृषलपन।

वृषलांछन-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

वृषली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्मृतियों आदि के अनुसार वह कन्या जो रजस्वला तो हो गई हो, पर जिसका अभी विवाह न हुआ हो। कहते हैं कि ऐसी कन्या का पिता बड़ा पातकी होता है और उसे उस कन्या की भ्रूणहत्या करने का पाप लगता है। (२) वह स्त्री जो अपने पति को छोड़कर पर-पुरुष से प्रेम करती हो। (३) शूद्र जाति की स्त्री। वृषल की स्त्री। (४) वह स्त्री जो पाप या दुष्कर्म करती हो। (५) नीच जाति की स्त्री। (६) वह स्त्री जो मासिक धर्म से हो। रजस्वला स्त्री। (७) वह स्त्री जो मरी हुई संतान उत्पन्न करती हो।

वृषलीपति-संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिसने ऐसी कन्या के साथ विवाह किया हो जो विवाह से पहले ही रजस्वला हो चुकी हो। वृषली का पति। (कहते हैं कि ऐसे पुरुष को श्राद्ध आदि करने का अधिकार नहीं होता।)

वृषलोचन-संज्ञा पुं० [सं०] चूहा। मूसा।

वृषवत्-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

वृषवासी-संज्ञा पुं० [सं० वृषवासिन्] कैलास देश के वृष पर्वत पर बसनेवाले, शिवजी। उ०—इनके घर ऐहौ अवतारा। वृषवासी हर हृदय विचारा।—शंकर दि०।

वृषवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

वृषवीभत्स-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की कौंछ या केवाँच।

वृषवृष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

वृषशत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

वृषशिप्र-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक असुर का नाम।

वृषशील-संज्ञा पुं० दे० "वृषल"।

वृषशुष्म-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम जो जातुकर्ण के पोते थे।

वृषषंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रवर-कार ऋषि का नाम।

वृषसव-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने यज्ञ करने के लिये मंगल-स्नान किया हो।

वृषसार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद बड़। (२) देवकुंभी। बड़ा गूमा।

वृषसाह्वया-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

वृषसृक्की-संज्ञा पुं० [सं० वृषसृक्किन्] भीमरोल या भृंगरोल नाम का कीड़ा।

वृषसेन-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार कर्ण के एक पुत्र का नाम।

वृषस्कंध-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

वृषांक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) साधु। धर्मात्मा। (३) जल में होनेवाला भिलावाँ। (४) नपुंसक। हिजड़ा। (५) मोर।

वृषांकज-संज्ञा पुं० [सं०] डमरू।

वृषांचन-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

वृषांड-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक असुर का नाम।

वृषांतक-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

वृषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूसाकानी। आखुकर्णी। (२) केवाँच। कौंछ। (३) उदुंबरपर्णी। दंती। (४) बड़ी दंती। (५) असगंध। (६) मालकंगनी। (७) गौ।

वृषाकपायी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जीवंती। डोडी। (२) शतावर। (३) लक्ष्मी। (४) गौरी। (५) इंद्र की पत्नी, शची।

वृषाकपि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) विष्णु। (३) अग्नि। (४) इंद्र। (५) सूर्य।

वृषाकर-संज्ञा पुं० [सं०] उड़द। माष।

वृषाकृति-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

वृषाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

वृषाणक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) शिव के एक अनुचर का नाम।

वेद के एक अंश का नाम। (४) भागवत के अनुसार शतधन्वा के एक पुत्र नाम। (५) देवरात के एक पुत्र का नाम। (६) एक प्रकार का मंत्र।

वि० [स्त्री० बृहद्रथा] जिसके पास बहुत से रथ हों।

बृहद्रथा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम।

बृहद्राय–संज्ञा पुं० [सं०] उल्लू पक्षी।

बृहद्वर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी।

बृहद्वल्क, बृहद्वल्कल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पठानी लोध। (२) सप्तपर्ण। सतिवन।

बृहद्वल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] करेला।

बृहद्वान–संज्ञा पुं० [सं०] देवधान्य। पुनेरा।

बृहद्वारुणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] महेंद्रवारुणी। इनारू।

बृहन्नल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाहु। बाँह। (२) अर्जुन।

बृहन्नला–संज्ञा स्त्री० [सं०] अर्जुन का उस समय का नाम जब वे वनवास के उपरांत अज्ञातवास के समय राजा विराट के यहाँ स्त्री के वेष में रहकर उसकी कन्या को नाच गाना सिखलाते थे।

बृहन्नाल–संज्ञा पुं० [सं०] नरसल। नरकट।

बृहन्निंब–संज्ञा पुं० [सं०] महानिंब। बकायन।

बृहन्मरिच–संज्ञा पुं० [सं०] गोल मिर्च।

बृहल्लोणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलफा नामक साग।

बृहस्पति–संज्ञा पुं० दे० "बृहस्पति"।

बृही–संज्ञा पुं० [सं०] साठी धान्य।

बेंकटगिरि–संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत के एक पर्वत का नाम।

बेंकटाचल–संज्ञा पुं० दे० "बेंकटगिरि"।

वेकट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की मछली। भाकुर। (२) युवक। जवान। (३) विदूषक। मसखरा। (४) जौहरी।

वेक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह ढूँढ़ना या देखना।

वेग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रवाह। बहाव। (२) शरीर में से मल मूत्र आदि निकलने की प्रवृत्ति। (३) किसी ओर प्रवृत्त होने का जोर। तेजी। (४) शीघ्रता। जल्दी। (५) आनंद। प्रसन्नता। खुशी। (६) कोई काम करने की दृढ़ प्रतिज्ञा या पक्का निश्चय। (७) उद्योग। उद्यम। (८) प्रवृत्ति। झुकाव। (९) वृद्धि। बढ़ती। (१०) महा ज्योतिष्मती। (११) लाल इनारू। (१२) शुक्र। वीर्य्य। (१३) न्याय के अनुसार चौबीस गुणों में से एक गुण जो आकाश, जल, तेज, वायु और मन में पाया जाता है। संसार में जो कुछ गति देखी जाती है, वह इसी गुण के कारण होती है और उक्त पाँचों में से किसी न किसी के द्वारा होती है।

वेगगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वेगपूर्वक चलनेवाली, नदी।

वेगदर्शी–संज्ञा पुं० [सं० वेगदर्शिन्] रामायण के अनुसार एक बंदर का नाम।

वेगधारण–संज्ञा पुं० [सं०] मल, मूत्र या शरीर के इसी प्रकार के और किसी वेग को रोकना जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है।

वेगनाशन–संज्ञा पुं० [सं०] श्लेष्मा। कफ। (कहते हैं कि शरीर से निकलनेवाला मल आदि इसी के कारण रुका रहता है; इसी लिये इसका यह नाम पड़ा है।)

वेगनिरोध–संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के मल-मूत्र आदि वेगों को रोकना। वेगधारण।

वेगरोध–संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के मल-मूत्र आदि वेगों को रोकना। वेगधारण।

वेगवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण भारत की एक नदी का नाम।

वेगवान्–वि० [सं०] वेगपूर्वक चलनेवाला। तेज चलनेवाला।

संज्ञा पुं० विष्णु।

वेगवाहिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंगा। (२) पुराणानुसार एक प्राचीन नदी का नाम।

वेगविघात–संज्ञा पुं० [सं०] शरीर से निकलते हुए मल-मूत्र आदि वेगों को सहसा रोक लेना जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक समझा जाता है।

वेगसर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेज चलनेवाला घोड़ा। (२) खच्चर।

वेगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी मालकँगनी। महाज्योतिष्मती।

वेगित–वि० [सं०] जिसमें वेग हो। वेग-युक्त।

वेगिहिरण–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकारी मृग।

वेगी–संज्ञा पुं० [सं० वेगिन्] (१) वह जिसमें बहुत अधिक वेग हो। (२) बाज नाम का पक्षी।

वेञ्जली–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमराजी।

वेट्–संज्ञा पुं० [सं०] स्वाहा।

विशेष—वैदिक काल में यज्ञों आदि में स्वाहा के स्थान में वेट् शब्द का व्यवहार होता था।

वेट्चंदन–संज्ञा पुं० [सं०] मलयागिरि चंदन।

वेढमिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह रोटी या कचौड़ी जिसमें उड़द की पीठी भरी हो। बेढ़ई।

वेण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनु के अनुसार एक प्राचीन वर्णसंकर जाति जिसकी उत्पत्ति वैदेहक माता और अंबष्ठ पिता से मानी गई है। (२) सूर्य्यवंशी राजा पृथु के पिता का नाम।

वेणयोनि–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता।

वेणवी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके पास वेणु हो। (२) शिव का एक नाम।

वेणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रामायण के अनुसार एक प्राचीन

नदी का नाम जिसे पर्णाशा भी कहते हैं। (२) उशीर। खस।

वेखि-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदाली। बंदाल।

वेणिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम। (२) इस देश का निवासी।

वेणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों के बालों की गूथी हुई चोटी। वेणी।

वेणिवेधनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

वेणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्रियों के बालों की गूथी हुई चोटी। (२) जल का प्रवाह। पानी का बहाव। (३) भीड़-भाड़। (४) देवदाली। (५) एक प्राचीन नदी का नाम। (६) भेद। (७) देवताड़।

वेणीन-संज्ञा पुं० [सं०] खस। उशीर।

वेणीफल-संज्ञा पुं० [सं०] देवदाली का फल।

वेणीमूल-संज्ञा पुं० [सं०] खस। उशीर।

वेणीमूलक-संज्ञा पुं० [सं०] उशीर। खस।

वेणीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीम का पेड़। (२) रीठा।

वेणीस्कंध-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।

वेणु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस। (२) बाँस की बनी हुई बंसी। (३) दे० "वेण"।

वेणुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह लकड़ी या छड़ी जिससे गौओं, बैलों आदि को हाँकते हैं। (२) अंकुश। आँकुस। (३) छोटी बंसी। बाँसुरी। (४) इलायची।

वेणुकर्कर-संज्ञा पुं० [सं०] कनेर का पेड़।

वेणुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बाँसुरी। बंसी। (२) एक प्रकार का वृक्ष जिसका फल बहुत जहरीला होता है। (३) हाथी को चलाने का प्राचीन काल का एक प्रकार का दंड जिसमें बाँस का दस्ता लगा होता था।

वेणुकार-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बाँस से बाँसुरी बनाता हो। बंसी बनानेवाला।

वेणुकीय-वि० [सं०] वेणु संबंधी। वेणु का।

वेणुगध-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ओषधि।

वेणुजंघ-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन मुनि का नाम।

वेणुज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह चीज जो बाँस से उत्पन्न हुई हो। (२) बाँस के फूल में होनेवाले दाने, जो चावल कहलाते हैं और जो पीसकर ज्वार आदि के आटे के साथ खाए जाते हैं। बाँस का चावल। (३) गोल मिर्च।

वेणुजमुक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँस में होनेवाला एक प्रकार का गोल दाना जो प्रायः मोती कहलाता है।

वेणुदत्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वेणुदारि-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राजकुमार का नाम।

वेणुन-संज्ञा पुं० [सं०] मिर्च।

वेणुनिःसृत-संज्ञा पुं० [सं०] ईख। ऊख।

वेणुनिर्लेखन-संज्ञा पुं० [सं०] बाँस की छाल।

वेणुप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम जो वेणुप भी कहलाता था। (२) इस देश का निवासी।

वेणुपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का साँप।

वेणुपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशपत्री। हिंगुपर्णी।

वेणुपुर-संज्ञा पुं० [सं०] आधुनिक बेलगाँव का प्राचीन नाम।

वेणुबीज-संज्ञा पुं० [सं०] बाँस के फूल में होनेवाले छोटे दाने जो ज्वार आदि के आटे के साथ पीसकर खाए जाते हैं। बाँस का चावल।

वेणुमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार कुशद्वीप के एक वर्ष का नाम।

वेणुमती-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार पश्चिमोत्तर देश की एक नदी का नाम।

वेणुमय-वि० [सं०] बाँस का बना हुआ।

वेणुमान-संज्ञा पुं० [सं० वेणुमत्] (१) पुराणानुसार एक वंश का नाम। (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

वेणुमुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक प्रकार की मुद्रा।

वेणुयव-संज्ञा पुं० [सं०] बाँस के फूलों में होनेवाले दाने जो ज्वार आदि के साथ पीसकर खाए जाते हैं। बाँस का चावल। वैद्यक में यह रूक्ष, शीतल, कषाय और कफ, पित्त, मेद, क्रिमि तथा विष आदि का नाशक तथा बल और वीर्य्यवर्धक कहा गया है।

वेणुवंश-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक राजा का नाम।

वेणुवन-संज्ञा पुं० [सं०] राजगृह के पास का एक उपवन। राजा बिंबिसार ने गौतम बुद्ध को बुलाकर यहीं ठहराया था।

वेणुवाद-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बंसी बजाता हो। बाँसुरी बजानेवाला।

वेणुवीणाधरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।

वेणुहोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] धृष्टकेतु के एक पुत्र का नाम।

वेण्य-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार विंध्य पर्वत से निकली हुई एक नदी का नाम।

वेण्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार पारियात्र पर्वत की एक नदी का नाम।

वेण्यातट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम जो वेण या वेण्या नदी के तट पर था। (२) इस देश का निवासी।

वेत–संज्ञा पुं० दे० "बेंत"।

वेतन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह धन जो किसी को कोई काम करने के बदले में दिया जाय। पारिश्रमिक। उजरत। (२) वह धन जो बराबर कुछ निश्चित समय तक, प्रायः एक मास तक, काम करने पर मिले। तनखाह। दर-माहा। महीना।

क्रि० प्र०—देना—पाना।—मिलना।

(३) चाँदी।

वेतनभोगी–संज्ञा पुं० [सं० वेतनभोगिन्] वह जो वेतन लेकर काम करता हो। तनखाह पर काम करनेवाला।

वेतस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेंत। (२) जल-बेंत। (३) बड़वानल।

वेतसक–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।

वेतसपत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार प्राचीन काल का एक प्रकार का शस्त्र जो प्रायः एक अंगुल मोटा और चार अंगुल लंबा होता था। इसका व्यवहार चीरफाड़ में होता था।

वेतसाम्ल–संज्ञा पुं० [सं०] अम्लवेत।

वेतसिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

वेतसी–संज्ञा स्त्री० दे० "वेतस"।

वेतसु–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक असुर का नाम।

वेता–संज्ञा स्त्री० दे० "वेतन"।

वेताल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वारपाल। संतरी। (२) शिव के एक गणाधिप। (३) पुराणों के अनुसार भूतों की एक प्रकार की योनि। इस योनि के भूत साधारण भूतों के प्रधान माने जाते हैं। ये प्रायः श्मशानों आदि में रहते हैं। बैताल। (४) वह शव जिस पर भूतों ने अधिकार कर कर लिया हो। (५) छप्पय के छठे भेद का नाम जिसमें ६५ गुरु और २२ लघु कुल ८७ वर्ण या १५२ मात्राएँ, अथवा ६५ गुरु और १८ लघु कुल ८३ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं।

वेतालग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का भूतग्रह। कहते हैं कि जिस पर इस ग्रह का आक्रमण होता है, उसमें बहुत से दोष आ जाते हैं। वह प्रायः काँपता रहता है, सच बोलता है और फूल, माला तथा सुगंधि आदि बहुत पसंद करता है।

वेत्ता–वि० [सं०] जाननेवाला। ज्ञाता। जानकार। जैसे,—तत्ववेत्ता, शास्त्रवेत्ता।

वेत्र–संज्ञा पुं० [सं०] बेंत।

वेत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] रामसर। सरपत।

वेत्रकार–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बेंत के सामान बनाता हो।

वेत्रकीय–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान या देश जहाँ बेंत की अधिकता हो।

वेत्रकूट–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार हिमालय की एक चोटी का नाम।

वेत्रगंगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] हिमालय से निकली हुई एक नदी का नाम।

वेत्रधर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वारपाल। संतरी। (२) छड़ैत। छड़बरदार।

वेत्रमूला–संज्ञा स्त्री० [सं०] वचलिका। शंखिनी।

वेत्रवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] बेतवा नदी जो मालवे से निकलकर कालपी के पास यमुना में मिलती है।

वेत्रहा–संज्ञा पुं० [सं० वेत्रहन्] इंद्र।

वेत्रावती–संज्ञा स्त्री० दे० "वेत्रवती"।

वेत्रासन–संज्ञा पुं० [सं०] बेंत का बना हुआ किसी प्रकार का आसन।

वेत्रासुर–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रसिद्ध असुर का नाम जो प्राग्ज्योतिषपुर का राजा था। इसने पहले समस्त संसार को जीतकर फिर इंद्र, अग्नि और यम पर विजय प्राप्त की थी। अंत में इंद्र ने इसे मार डाला था। कहते हैं कि यह सिंधुद्वीप नामक राजा का पुत्र था और वेत्रवती नदी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

वेत्रिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार प्राचीन काल के एक जनपद का नाम। (२) इस जनपद का निवासी। (३) द्वारपाल। संतरी।

वेत्री–संज्ञा पुं० [सं० वेत्रिन्] (१) द्वारपाल। संतरी। (२) चोबदार। असा-बरदार।

वेदंड–संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

वेद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी विषय का, विशेषतः धार्मिक या आध्यात्मिक विषय का, सच्चा और वास्तविक ज्ञान। (२) वृत्त। (३) वित्त। (४) यज्ञांग। (५) भारतीय आर्यों के सर्वप्रधान और सार्वमान्य धार्मिक ग्रंथ जिनकी संख्या चार है और जो ब्रह्मा के चारों मुखों से निकले हुए माने जाते हैं। आम्नाय। श्रुति।

विशेष—आरंभ में वेद केवल तीन ही थे—ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद (दे०)। इनमें से ऋग्वेद पद्य में है और यजुर्वेद गद्य में; और सामवेद में गाने योग्य गीत या साम हैं। इसी लिये प्राचीन साहित्य में "वेदत्रयी" शब्द का ही अधिक प्रयोग देखने में आता है; यहाँ तक कि मनु ने भी अपने धर्मशास्त्र में अनेक स्थानों पर "वेदत्रयी" शब्द का ही व्यवहार किया है। चौथा अथर्ववेद पीछे से वेदों में सम्मिलित हुआ था और तब से वेद चार माने जाने लगे। इस चौथे या अंतिम वेद में शांति तथा पौष्टिक अभिचार,

प्रायश्चित्त, तंत्र, मंत्र आदि विषय हैं। वेदों के तीन मुख्य भाग हैं जो संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक या उपनिषद् कहलाते हैं। संहिता शब्द का अर्थ संग्रह है; और वेदों के संहिता भाग में स्तोत्र, प्रार्थना, मंत्र-प्रयोग, आशीर्वादात्मक सूक्त, यज्ञ-विधि से संबंध रखनेवाले मंत्र और अरिष्ट आदि की शांति के लिये प्रार्थनाएँ आदि सम्मिलित हैं। वेदों का यही अंश मंत्र भाग भी कहलाता है। ब्राह्मण भाग में एक प्रकार से बड़े बड़े गद्य ग्रंथ आते हैं जिनमें अनेक देवताओं की कथाएँ, यज्ञ संबंधी विचार और भिन्न भिन्न ऋतुओं में होनेवाले धार्मिक कृत्यों के व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक महत्व का निरूपण है। इनमें कथाओं आदि का जो अंश है, वह अर्थवाद कहलाता है; और धार्मिक कृत्यों की विधियोंवाले अंश को विधि कहते हैं। वनों में रहनेवाले यति, संन्यासी आदि परमेश्वर, जगत् और मनुष्य इन तीनों के संबंध में जो विचार किया करते थे, वे उपनिषदों और आरण्यकों में संगृहीत हैं। इन्हीं में भारतवर्ष का प्राचीनतम तत्वज्ञान भरा हुआ है। यह मानों वेदों का अंतिम भाग है, और इसी लिये वेदांत कहलाता है। वेदों का प्रचार बहुत प्राचीन काल से और बहुत विस्तृत प्रदेश में रहा है; इसलिये काल-भेद, देश-भेद और व्यक्ति-भेद आदि के कारण वेदों के मंत्रों के उच्चारण आदि में अनेक पाठभेद हो गए हैं। साथ ही पाठ में कहीं कहीं कुछ न्यूनता और अधिकता भी हो गई है। इस पाठ-भेद के कारण संहिताओं को जो रूप प्राप्त हुए हैं, वे शाखा कहलाते हैं; और इस प्रकार प्रत्येक वेद की कई कई शाखाएँ हो गई हैं। चारों वेदों से निकली हुई चार विद्याएँ कही गई हैं; और जिन ग्रंथों में इन चारों विद्याओं का वर्णन है, वे उपवेद कहलाते हैं। प्रत्येक वेद का एक स्वतंत्र उपवेद माना जाता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छंद ये छः वेदों के अंग या वेदांग कहलाते हैं।

वेदों का स्थान संसार के प्राचीनतम इतिहास में बहुत उच्च है। इनमें भारतीय आर्यों की आरंभिक आध्यात्मिक, सामाजिक और नैतिक सभ्यता का बहुत अच्छा दिग्दर्शन है। भारतीय आर्य्य या हिंदू लोग इन्हें अपौरुषेय और ईश्वर-कृत मानते हैं। लोगों का विश्वास है कि ब्रह्मा ने अपने चारों मुखों से वेद कहे हैं; और जिन जिन ऋषियों ने जो मंत्र सुनकर संगृहीत किए हैं, वे ऋषि उन मंत्रों के द्रष्टा हैं। प्रायः सभी संप्रदायों के लोग वेदों को परम प्रामाण्य मानते हैं। स्मृतियों और पुराणों आदि में वेद देवताओं आदि के मार्गदर्शक, नित्य, अपौरुषेय और अप्रमेय कहे गए हैं। ब्राह्मणों और उपनिषदों में तो यहाँ तक कहा गया है कि वेद सृष्टि से भी पहले के हैं और उनका निर्माण प्रजापति ने किया है। कहा जाता है कि वेदों का वर्त्तमान रूप में संग्रह और संकलन महर्षि व्यास ने किया है; और इसी लिये वे वेद-व्यास कहे जाते हैं। विष्णु और वायुपुराण में कहा है कि स्वयं विष्णु ने वेद-व्यास का रूप धारण करके वेद के चार भाग किए और क्रमशः पैल, वैशंपायन, जैमिनि और सुमंत इन चार ऋषियों को दिए। वेदांती लोग वेदों को ब्रह्म से निकला हुआ मानते हैं; और जैमिनि तथा कपिल इन्हें स्वतःसिद्ध कहते हैं। वेदों के रचनाकाल के संबंध में विद्वानों में बहुत अधिक मतभेद है। मैक्समूलर आदि कई पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि वेदों की रचना ईसा से प्रायः हजार डेढ़ हजार बरस पहले उस समय हुई थी, जिस समय आर्य्य लोग आकर पंजाब में बसे थे। परंतु लोकमान्य तिलक ने ज्योतिष संबंधी तथा अन्य कई आधारों पर वेदों का समय ईसा से लगभग ४५०० वर्ष पूर्व स्थिर किया है। बुहलर आदि विद्वानों का मत है कि आर्य्य सभ्यता ईसा से प्रायः चार हजार वर्ष के पहले की है और वैदिक साहित्य की रचना ईसा से प्रायः तीन हजार वर्ष पहले हुई है; और अधिकांश लोग यही मत मानते हैं।

वेदक–वि० [सं०] ज्ञान करानेवाला। परिचय करानेवाला।

वेदकर्त्ता–संज्ञा पुं० [सं० वेदकर्तृ] (१) वह जिसने वेदों की रचना की। वेदों का रचयिता। (२) सूर्य्य। (३) शिव। (४) विष्णु। (५) वर पक्ष के बड़े बूढ़े लोग जो विवाह हो चुकने के उपरांत वेदी पर बैठे हुए वर और वधू को आशीर्वाद देने के लिये जाते हैं।

वेदकार–संज्ञा पुं० [सं०] वेदों का रचयिता।

वेदकुंभ–संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक आचार्य्य का नाम।

वेदकौलेयक–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

वेदगंगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण भारत की एक नदी का नाम जो कोल्हापुर राज्य से निकलकर कृष्णा नदी में मिलती है।

वेदगर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) ब्राह्मण।

वेदगर्भा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरस्वती नदी। (२) रेवा नदी।

वेदगर्भापुरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

वेदगाथ–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वेदगुप्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण का एक नाम। (२) भागवत के अनुसार पराशर के एक पुत्र का नाम।

वेदगुह्य–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

वेदजननी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सावित्री जो वेद की माता मानी जाती है।

वेदज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वेदों का ज्ञाता हो। वेद

जाननेवाला। (२) वह जो ब्रह्म ज्ञान प्राप्त कर चुका हो। ब्रह्मज्ञानी।

वेदतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

वेदत्व-संज्ञा पुं० [सं०] वेद का भाव या धर्म्म।

वेददर्श-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन मुनि का नाम।

वेददर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो देखने में वेदों का स्वरूप जान पड़े।

वेददर्शी-संज्ञा पुं० [सं० वेददर्शिन्] वह जो वेदों का ज्ञाता हो।

वेददान-संज्ञा पुं० [सं०] वेद पढ़ाना।

वेददीप-संज्ञा पुं० [सं०] महीधर का किया हुआ शुक्ल यजुर्वेद का भाष्य।

वेदन-संज्ञा पुं० दे० "वेदना"।

वेदना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुःख या कष्ट आदि का होनेवाला अनुभव। पीड़ा। व्यथा। तकलीफ। (२) बौद्धों के अनुसार पाँच स्कंधों में से एक स्कंध। (३) चिकित्सा। इलाज। (४) चमड़ा।

वेदनिंदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वेदों की निंदा करता हो। वेदों की बुराई करनेवाला। (२) नास्तिक। (३) भगवान बुद्ध का एक नाम। (४) बौद्ध धर्म्म का अनुयायी।

वेदनीय-वि० [सं०] (१) जानने योग्य। (२) कष्ट-दायक। जो वेदना उत्पन्न करे।

वेदपारग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वेदों का ज्ञाता हो। (२) वह जो वैदिक कर्म्मों का ज्ञाता हो।

वेदफल-संज्ञा पुं० [सं०] वह फल जो वैदिक कर्म्म करने से प्राप्त होता है।

वेदबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण का एक नाम। (२) पुलस्त्य का एक नाम।

वेदबीज-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

वेदभू-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार देवताओं के एक गण का नाम।

वेदभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वेदमंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेदों में आए हुए मंत्र। (२) पुराणानुसार एक जनपद का नाम। (३) इस जनपद का निवासी।

वेदमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० वेदमातृ] (१) गायत्री। सावित्री। (२) दुर्गा। (३) सरस्वती।

वेदमातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सावित्री।

वेदमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक आचार्य्य का नाम।

वेदमुंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम।

वेदमूर्त्ति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वेदों का बहुत बड़ा ज्ञाता हो। (२) सूर्य्य।

वेदयज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] वेद पढ़ना। वेद-पाठ।

वेदरहस्य-संज्ञा पुं० [सं०] उपनिषद्।

वेदवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजा कुशध्वज की कन्या का नाम। कहते हैं कि यही दूसरे जन्म में सीता हुई थी। (२) पुराणानुसार पारिपात्र पर्वत की एक नदी का नाम। (३) अप्सरा। (४) दक्षिण भारत की एक नदी का नाम।

वेदवदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) व्याकरण।

वेदवाक्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेद में का कोई वाक्य। (२) ऐसी बात जो पूर्ण रूप से प्रामाणिक हो और जिसका खंडन न हो सकता हो।

वेदवादी-संज्ञा पुं० [सं० वेदवादिन्] वह जो वेदों का अच्छा ज्ञाता हो।

वेदवास-संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण।

वेदवाह-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वेदों का ज्ञाता हो।

वेदवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

वेदविद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वेदों का ज्ञाता हो। वेदज्ञ। (२) विष्णु का एक नाम।

वेदवृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन आचार्य्य का नाम।

वेदवैनाशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

वेदव्यास-संज्ञा पुं० दे० "व्यास" (१)।

वेदव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वेदों का अध्ययन करता हो।

वेदशिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भागवत के अनुसार कृशाश्व के एक पुत्र का नाम। (२) पुराणानुसार एक प्रकार का अस्त्र। संज्ञा पुं० [सं० वेदशिरस्] पुराणानुसार मार्कंडेय के एक पुत्र का नाम जो मूर्द्धन्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। कहते हैं कि भार्गव लोगों का मूल पुरुष यही था।

वेदशीर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

वेदश्रवा-संज्ञा पुं० [सं० वेदश्रवस्] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वेदश्री-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वेदश्रुत-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार वसिष्ठ के एक पुत्र का नाम।

वेदश्रुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

वेदसार-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

वेदसिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

वेदस्पर्श-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन वैदिक आचार्य्य का नाम।

वेदस्मृता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

वेदस्मृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेदस्मृता नदी का एक नाम।

वेदांग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेदों के अंग या शास्त्र जो छः हैं और जिनके नाम इस प्रकार हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छंद । इनमें से व्याकरण को लोग वेदों का मुख, शिक्षा को नाक, निरुक्त को कान, ज्योतिष को आँख, कल्प को हाथ और छंद को पैर मानते हैं । (२) सूर्य्य का एक नाम । (३) बारह आदित्यों में से एक आदित्य ।

वेदांत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उपनिषद् और आरण्यक आदि वेद के अंतिम भाग जिनमें आत्मा, परमात्मा, जगत् आदि के संबंध में निरूपण है । ब्रह्म-विद्या । अध्यात्म । ज्ञानकांड । (२) छः दर्शनों में से प्रधान दर्शन जिसमें चैतन्य या ब्रह्म ही एक मात्र पारमार्थिक सत्ता स्वीकार किया गया है; जड़ जगत् और जीव कोई अतिरिक्त या अन्य पदार्थ नहीं माने गए हैं । उत्तर मीमांसा । अद्वैतवाद

विशेष—यद्यपि इस सिद्धांत का आभास वेद के मंत्र भाग में कहीं कहीं पाया जाता है, पर इसका आधार उपनिषद् ही हैं जिनमें जीव, जगत् और ब्रह्म आदि का निरूपण है । उपनिषदों में जिस प्रकार 'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्वमसि' आदि जीवात्मा और परमात्मा की एकता प्रतिपादित करनेवाले महावाक्य हैं, उसी प्रकार पंचमहाभूतों में से पृथ्वी, जल और अग्नि ब्रह्म के मूर्त्त रूप तथा वायु और आकाश अमूर्त्त रूप कहे गए हैं । इस प्रकार उनमें जीवात्मा और जड़ जगत् दोनों का समावेश ब्रह्म के भीतर मिलता है जो अद्वैतवाद का आधार है। आगे चलकर उपनिषद् की इस ब्रह्म विद्या का दार्शनिक ढंग से निरूपण महर्षि बादरायण के 'ब्रह्मसूत्रों' में हुआ है, जिन पर कई भाष्य भिन्न भिन्न आचार्यों ने अपने अपने मत के अनुसार रचे । तीन भाष्य मुख्य हैं—शंकराचार्य्य का (शारीरक), रामानुज स्वामी का और वल्लभाचार्य्य का । इनमें से शंकर का भाष्य ही सब से प्रसिद्ध और चिन्तन-पद्धति में बहुत आगे बढ़ा हुआ है । अतः 'वेदांत' शब्द से साधारणतः शंकर का अद्वैतवाद ही समझा जाता है । शेष दो भाष्य साम्प्रदायिक माने जाते हैं ।

जगत्, जीव और ब्रह्म या परमात्मा इन तीनों वस्तुओं के स्वरूप तथा इनके पारस्परिक संबंध का निर्णय ही वेदांत शास्त्र का विषय है । न्याय और वैशेषिक ने ईश्वर, जीव और जगत् (या जगत् के मूल-द्रव्य परमाणु) ये तीन तत्व मानकर ईश्वर को जगत् का कर्त्ता ठहराया है, जो सर्वसाधारण की स्थूल भावना के अनुकूल है । वैशेषिक के अनुसार जगत् का मूल रूप परमाणु हैं जो नित्य हैं और जिनके ईश्वर-प्रेरित संयोग से सृष्टि होती है । इसके आगे बढ़कर सांख्य ने दो ही नित्य तत्व स्थिर किए— पुरुष (आत्मा) और प्रकृति; अर्थात् एक ओर असंख्य चेतन जीवात्माएँ और दूसरी ओर जड़ जगत् का अव्यक्त मूल । ईश्वर या परमात्मा का समावेश सांख्य-पद्धति में नहीं है । सृष्टि के विकास की सूक्ष्म तात्विक विवेचना सांख्य ने ही की है । किस प्रकार एक अव्यक्त प्रकृति से क्रमशः आपसे आप जगत् का विकास हुआ, इसका पूरा ब्योरा उसमें बताया गया है; और जगत् का कोई कर्त्ता है, नैयायिकों के इस सिद्धांत का खण्डन किया गया है । पुरुष या आत्मा केवल द्रष्टा है, कर्त्ता नहीं । इसी प्रकार प्रकृति जड़ और क्रियामयी है । एक लँगड़ा है, दूसरी अंधी । असंख्य पुरुषों के संयोग या सान्निध्य से ही प्रकृति सृष्टि-क्रिया में तत्पर हुआ करती है ।

वेदांत ने और आगे बढ़कर प्रकृति तथा असंख्य पुरुषों का एक ही परम तत्व ब्रह्म में अविभक्त रूप से समावेश करके जड़ चेतन के द्वैत के स्थान पर अद्वैत की स्थापना की । वेदांत ने सांख्यों के अनेक पुरुषों का खंडन किया और चेतन तत्व को एक और अविच्छिन्न सिद्ध करते हुए बताया कि प्रकृति या माया की 'अहंकार' गुण-रूपी उपाधि से ही एक के स्थान पर अनेक पुरुषों या आत्माओं की प्रतीति होती है । यह अनेकता माया-जन्य है । सांख्यों ने पुरुष और प्रकृति के संयोग से जो सृष्टि की उत्पत्ति कही है, वह भी असंगत है; क्योंकि यह संयोग या तो सत्य हो सकता है अथवा मिथ्या । यदि सत्य है, तो नित्य है; अतः कभी टूट नहीं सकता । इस दशा में आत्मा कभी मुक्त हो ही नहीं सकती । इसी प्रकार की युक्तियों से पुरुष और प्रकृति के द्वैत को न मानकर वेदांत ने उन्हें एक ही परम तत्व ब्रह्म की विभूतियाँ बताया । वेदांत के अनुसार ब्रह्म जगत् का निमित्त और उपादान दोनों है ।

नामरूपात्मक जगत् के मूल में आधारभूत होकर रहनेवाले इस नित्य और निर्विकार तत्व ब्रह्म का स्वरूप कैसा हो सकता है, इसका भी निरूपण वेदांत ने किया है । जगत् में जो नाना दृश्य दिखाई पड़ते हैं, वे सब परिणामी और अनित्य हैं । वे बदलते रहते हैं, पर उनका ज्ञान करनेवाला आत्मा या द्रष्टा सदा वही रहता है । यदि ऐसा न होता तो भूत काल में अनुभव की हुई बात का वर्तमान काल में अनुभूत विषय के साथ जो संबंध जोड़ा जाता है, वह असंभव होता (पंचदशी) । इसी से ब्रह्म का स्वरूप भी ऐसा ही होना चाहिए, अर्थात् ब्रह्म चित्स्वरूप या आत्मस्वरूप है । नाना ज्ञेय पदार्थ भी ज्ञाता के ही सगुण, सोपाधि या मायात्मक रूप हैं, यह निश्चित करके ज्ञाता और ज्ञेय का द्वैत वेदांत ने हटा दिया है । ब्रह्मस्वरूप का विवेचन वेदांत के पिछले ग्रंथों में ब्योरे के साथ हुआ है ।

जगत् और सृष्टि के संबंध में वेदांतियों ने नैयायिकों के 'आरंभवाद' (ईश्वर सृष्टि उत्पन्न करता है) और सांख्यों के 'परिणामवाद' (सृष्टि का विकास उत्तरोत्तर विकार या परिणाम द्वारा अव्यक्त प्रकृति से आपसे आप होता है) के स्थान पर 'विवर्तवाद' की स्थापना की है जिसके अनुसार जगत् ब्रह्म का विवर्त या कल्पित रूप है। रस्सी को यदि हम सर्प समझें तो रस्सी सत्य वस्तु है और सर्प उसका विवर्त या भ्रांतिजन्य प्रतीति है। इसी प्रकार ब्रह्म तो नित्य और वास्तविक सत्ता है और नामरूपात्मक जगत् उसका विवर्त है। यह विवर्त अध्यास द्वारा होता है। जो नामरूपात्मक दृश्य हम देखते हैं, वह न तो ब्रह्म का वास्तव स्वरूप ही है, न कार्य्य या परिणाम ही, क्योंकि ब्रह्म निर्विकार और अपरिणामी है। अध्यास के संबंध में कहा जा सकता है कि सर्प कोई अलग पदार्थ है, तब तो उसका आरोप होता है। अतः इस विषय को और स्पष्ट करने के लिये 'दृष्टि-सृष्टि-वाद' उपस्थित किया जाता है जिसके अनुसार माया या नामरूप मन की वृत्ति है। इनकी सृष्टि मन ही करता है और मन ही देखता है। ये नामरूप उसी प्रकार मन या वृत्तियों के बाहर की कोई वस्तु नहीं हैं, जिस प्रकार जड़ चित् के बाहर की कोई वस्तु नहीं है। इन वृत्तियों का शमन ही मोक्ष है।

इन दोनों वादों में कुछ त्रुटि देखकर कुछ वेदांती 'अवच्छेदवाद' का आश्रय लेते हैं। वे कहते हैं कि ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् की जो प्रतीति होती है, वह एकरस या अनवच्छिन्न सत्ता के भीतर माया द्वारा अवच्छेद या परिमिति के आरोप के कारण होती है। कुछ अन्य वेदांती इन तीनों वादों के स्थान पर 'बिंब-प्रतिबिंब-वाद' उपस्थित करते हैं और कहते हैं कि ब्रह्म प्रकृति या माया के बीच अनेक प्रकार से प्रतिबिंबित होता है जिससे नामरूपात्मक दृश्यों की प्रतीति होती है। अंतिम वाद 'अजातवाद' है जिसे 'प्रौढ़िवाद' भी कहते हैं। यह सब प्रकार की उत्पत्ति को— चाहे वह विवर्त्त के रूप में कही जाय चाहे दृष्टिसृष्टि या अवच्छेद या प्रतिबिंब के रूप में—अस्वीकार करता है और कहता है कि जो जैसा है, वह वैसा ही है और सब ब्रह्म है। ब्रह्म अनिर्वचनीय है, उसका वर्णन शब्दों द्वारा हो ही नहीं सकता; क्योंकि हमारे पास जो भाषा है, वह द्वैत ही की है; अर्थात् जो कुछ हम कहते हैं, वह भेद के आधार पर ही।

यद्यपि ब्रह्म का वास्तविक या पारमार्थिक रूप अव्यक्त, निर्गुण और निर्विशेष है, पर व्यक्त और सगुण रूप भी उसके बाहर नहीं है। पंचदशी में इन सगुण रूपों का विभेद प्रतिबिंब-वाद के शब्दों में इस प्रकार समझाया गया है। रजोगुण की प्रवृत्ति से प्रकृति दो रूपों में विभक्त होती है— सत्त्व-प्रधान और तमःप्रधान। सत्त्वप्रधान के भी दो रूप हो जाते हैं—शुद्ध सत्त्व (जिसमें सत्वगुण पूर्ण हो) और अशुद्ध सत्त्व (जिसमें सत्त्व अंशतः हो)। प्रकृति के इन्हीं भेदों में प्रतिबिंबित होने के कारण ब्रह्म को 'जीव' कहते हैं।

वेदांत या अद्वैतवाद से साधारणतः शंकराचार्य्य प्रतिपादित अद्वैतवाद लिया जाता है जिसमें ब्रह्म स्वगत, सजातीय और विजातीय तीनों भेदों से परे कहा गया है। पर जैसा ऊपर कहा जा चुका है, बादरायण के ब्रह्मसूत्र पर रामानुजाचार्य और वल्लभाचार्य के भाष्य भी हैं। रामानुज के अद्वैतवाद को 'विशिष्टाद्वैत' कहते हैं; क्योंकि उसमें ब्रह्म को चित् और अचित् इन दो पक्षों से युक्त या विशिष्ट कहा है। ब्रह्म के इसी सूक्ष्म चित् और सूक्ष्म अचित् से स्थूल चित् (जीव) और स्थूल अचित् (जड़) उत्पन्न हुए। अतः रामानुज के अनुसार ब्रह्म केवल निमित्त कारण है; उपादान हैं जड़ (स्थूल अचित्) और जीव (स्थूल चित्)। इस मत के अनुसार जीव को ब्रह्म का अंश कह सकते हैं, पर शंकर मत से नहीं; क्योंकि उसमें ब्रह्म सब प्रकार के भेदों से परे कहा गया है।

वल्लभाचार्य्य जी का अद्वैत 'शुद्धाद्वैत' कहलाता है; क्योंकि उसमें रामानुज-कृत दो पक्षों की विशिष्टता हटाकर अद्वैतवाद शुद्ध किया गया है। इस मत के अनुसार सत्, चित् और आनन्दस्वरूप ब्रह्म अपने इच्छानुसार इन तीनों स्वरूपों का आविर्भाव करता रहता है। जड़ जगत् भी ब्रह्म ही है, पर अपने चित् और आनन्द स्वरूपों का पूर्ण तिरोभाव किए हुए तथा सत् स्वरूप का कुछ अंशतः आविर्भाव किए हुए है। चेतन जगत् भी ब्रह्म ही है जिसमें सत्, चित् और आनन्द इन तीनों स्वरूपों का कुछ आविर्भाव और कुछ तिरोभाव रहता है। माया ब्रह्म ही की शक्ति है जो उसी की इच्छा से विभक्त होती है; अतः मायात्मक जगत् मिथ्या नहीं है। जीव अपने शुद्ध ब्रह्मस्वरूप को तभी प्राप्त करता है जब आविर्भाव और तिरोभाव दोनों मिट जाते हैं; और यह बात केवल ईश्वर के अनुग्रह से ही, जिसे 'पुष्टि' कहते हैं, हो सकती है।

रामानुज और वल्लभाचार्य केवल दार्शनिक ही न थे, भक्तिमार्गी भी थे।

वेदांतसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] महर्षि बादरायण कृत सूत्र जो वेदांत शास्त्र के मूल माने जाते हैं। वि० दे० "वेदांत"।

वेदांती—संज्ञा पुं० [सं० वेदांतिन्] वह जो वेदांत का अच्छा ज्ञाता हो। वेदांत का पूरा पंडित। ब्रह्मवादी।

वेदाग्रणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

वेदात्मा—संज्ञा पुं० [सं० वेदात्मन्] (१) विष्णु। (२) सूर्य्य।

वेदादि—संज्ञा पुं० [सं०] प्रणव या ओंकार का मंत्र।

वेदादिवीज-संज्ञा पुं० [सं०] प्रणव या ओंकार का मंत्र।
वेदाधिदेव-संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण।
वेदाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] चारों वेदों के अधिपति ग्रह जो इस प्रकार हैं—ऋग्वेद के अधिपति बृहस्पति, यजुर्वेद के शुक्र, सामवेद के मंगल और अथर्ववेद के बुध।
वेदाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण का एक नाम।
वेदार-संज्ञा पुं० [सं०] गिरगिट।
वेदाश्व-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।
वेदि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यज्ञ कार्य्य के लिये साफ करके तैयार की हुई भूमि। वेदी। (२) किसी शुभ कार्य्य के लिये बनाकर तैयार की हुई भूमि। (३) उँगली की एक प्रकार की मुद्रा। (४) अंगूठा। (५) वह अँगूठी जिस पर किसी का नाम अंकित हो।
वेदिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी शुभ कार्य्य के लिये साफ करके तैयार की हुई भूमि। वेदी। (२) जैन पुराणों के अनुसार एक नदी का नाम।
वेदिजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रौपदी का एक नाम।
वेदित-वि० [सं०] (१) जो कुछ बतलाया या सूचित किया गया हो। निवेदित। (२) जो देखा गया हो।
वेदितव्य-वि० [सं०] जो जानने के योग्य हो। ज्ञातव्य।
वेदित्व-संज्ञा पुं० [सं०] विदित होने का भाव। ज्ञान।
वेदिष्ठ-वि० [सं०] जो सब बातें जानता हो। सर्वज्ञ।
वेदी-संज्ञा पुं० [सं० वेदिन्] [स्त्री० वेदिनी] (१) पंडित। विद्वान्। (२) ज्ञाता। जानकार। (३) वह जो विचार करता हो। (४) ब्रह्मा।
संज्ञा स्त्री० (१) किसी शुभ कार्य्य के लिये, विशेषतः धार्मिक कार्य के लिये तैयार की हुई ऊँची भूमि। जैसे,—विवाह की वेदी, यज्ञ की वेदी। (२) सरस्वती।
वेदीतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।
वेदीश-संज्ञा पुं० [सं०] वेदों के स्वामी, ब्रह्मा।
वेदुक-वि० [सं०] (१) जाननेवाला। ज्ञाता। (२) प्राप्त करनेवाला। पानेवाला। (३) जो कुछ मिला हो। प्राप्त।
वेदेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] वेदों के स्वामी, ब्रह्मा।
वेदोदय-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।
वेदोपकरण-संज्ञा पुं० [सं०] वेदांग।
वेदोपनिषद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।
वेधव्य-वि० [सं०] जो वेधने या छेदने के योग्य हो। वेधा जाने के योग्य। वेध्य।
वेद्य-वि० [सं०] (१) जो जानने या समझने के योग्य हो। (२) जो कहने के योग्य हो। (३) जो स्तुति करने के योग्य हो। (४) जो प्राप्त करने के योग्य हो।
वेद्यत्व-संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान। जानकारी।
वेध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी नुकीली चीज से छेदने की क्रिया। वेधना। विद्ध करना। (२) मंत्रों आदि की सहायता से ग्रहों, नक्षत्रों और तारों आदि को देखना।
यौ०—वेधशाला।
(३) ज्योतिष के ग्रहों का किसी ऐसे स्थान में पहुँचना जहाँ से उनका किसी दूसरे ग्रह से सामना होता हो। जैसे,—युतवेध, पताकी वेध। (४) गहरापन। गंभीरता।
संज्ञा पुं० [सं० वेधस्] (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु। (३) शिव। महादेव। (४) सूर्य्य। (५) पंडित। विद्वान्। (६) सफेद मदार। (७) दक्ष आदि प्रजापति।
वेधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेध करनेवाला। (२) वह जो मणियों आदि को वेधकर अपनी जीविका चलाता हो। (३) धनियाँ। (४) कपूर। (५) अम्लवेंत।
वेधनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह औजार जिससे मणियों आदि में छेद करते हों।
वेधनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह औजार जिससे मणियों आदि में छेद करते हों। वेधनिका। (२) हाथी का अंकुश।
वेधमुख्य-संज्ञा पुं० [सं०] कचूर।
वेधमुख्यक-संज्ञा पुं० [सं०] हलदी का पौधा।
वेधमुख्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी।
वेधशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ ग्रहों और नक्षत्रों आदि का वेध करने के यंत्र आदि रखे हों। वह स्थान जहाँ नक्षत्रों और तारों आदि को देखने और उनकी दूरी, गति आदि जानने के यंत्र हों।
वेधस-संज्ञा पुं० [सं०] हथेली के अँगूठे की जड़ के पास का स्थान जिसे ब्रह्मतीर्थ भी कहते हैं। (आचमन के लिये इसी गड्ढे में जल लेने का विधान है।)
वेधसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।
वेधा-संज्ञा पुं० [सं० वेधस्] (१) ब्रह्मा। उ०—सहस अब्द बीते तब वेधा। वरं सुहि मारेउ अति मेधा।—गिरधर। (२) विष्णु। (३) शिव। (४) सूर्य। (५) पंडित। (६) सफेद मदार। (७) दक्ष आदि प्रजापति। (८) एक यादव का नाम जो अनंद या अनंत का पुत्र था।
वेधालय-संज्ञा पुं० दे० "वेधशाला"।
वेधित-वि० [सं०] जो वेधा गया हो। जिसमें छेद किया गया हो। विधा हुआ।
वेधिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जोंक। (२) मेथी।
वि० वेधनेवाली। छेदनेवाली।

वेधी–संज्ञा पुं० [सं० वेधिन्] [स्त्री० वेधिनी] (१) वह जो वेध करता हो । वेध करनेवाला । (२) अम्लवेत ।
वेध्य–वि० [सं०] (१) जिसे वेध किया जाय । (२) जो वेध करने के योग्य हो ।
वेन्ना–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पवित्र नदी । (महाभारत)
वेन्य–संज्ञा पुं० दे० "वेन" ।
वि० सुंदर । खूबसूरत ।
वेपथु–संज्ञा पुं० [सं०] काँपने की क्रिया । कँपकँपी । कंप ।
वेपन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) काँपना । कंप । (२) वात रोग ।
वेमक–संज्ञा पुं० [सं०] एक स्वर्गीय ऋषि ।
वेर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर । देह । बदन । (२) कुंकुम । केसर ।
वेरक–संज्ञा पुं० [सं०] कपूर ।
वेरट–संज्ञा पुं० [सं०] बेर नामक फल ।
वि० (१) मिलाया हुआ । मिश्रित । (२) नीच ।
वेल–संज्ञा पुं० [सं०] उपवन । बाग ।
वेलज–संज्ञा पुं० [सं०] हींग ।
वेला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काल । समय । वक्त । (२) समय का एक विभाग जो दिन और रात का चौबीसवाँ भाग होता है । कुछ लोग दिनमान के आठवें भाग को भी वेला मानते हैं । (३) मर्य्यादा । (४) समुद्र का किनारा । (५) समुद्र की लहर । (६) वाक् । वाणी । (७) मसूड़ा । (८) भोजन । खाना । (९) रोग । बीमारी ।
वेलाकूल–संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रलिप्त देश का एक नाम ।
वेलाज्वर–संज्ञा पुं० [सं०] मरने के समय आनेवाला ज्वर ।
वेलाधिप–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में दिनमान के आठवें भाग या वेला के अधिपति देवता ।
विशेष—रवि, शुक्र, बुध, चंद्र, शनि, बृहस्पति और मंगल ये क्रमशः वेलाधिप होते हैं । जिस दिन जो वार होता है, उस दिन की पहली वेला का वेलाधिप उसी वार का ग्रह होता है; और फिर पीछे की वेलाओं के अधिपति उक्त क्रम से शेष ग्रह होते हैं । जैसे,—रविवार की पहली वेला के वेलाधिप रवि, दूसरी के शुक्र, तीसरी के बुध, चौथी के चंद्र आदि होंगे । इसी प्रकार बुधवार की पहली वेला के वेलाधिप बुध, दूसरी के चंद्र, तीसरी के शनि, चौथी के बृहस्पति आदि होंगे ।
वेलायनि–संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि ।
वेलावलि–संज्ञा स्त्री० दे० "बिलावल" ।
वेलावित्त–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक प्रकार के राजकर्मचारी । (राजतरंगिणी)
वेलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ताम्रलिप्त का एक नाम । (२) नदी तट के आस पास का प्रदेश ।
वेल्ल–संज्ञा पुं० [सं०] विडंग ।
वेल्लगिरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियंगु ।
वेल्लज–संज्ञा पुं० [सं०] मिर्च ।
वेल्लन–संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ों का जमीन पर लोटना ।
वेल्लनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वल्ली दूब । माला दूब ।
वेल्लभव–संज्ञा पुं० [सं०] मिर्च ।
वेल्लरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काला विधारा । (२) माला दूब ।
वेल्लहल–संज्ञा पुं० [सं०] लंपट । दुराचारी । बदचलन ।
वेल्लि–संज्ञा स्त्री० [सं०] लता । बेल ।
वेल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] पोई का साग । उपोदिका ।
वेल्लिकाख्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बेल का पेड़ । (२) बेल के फल का गूदा ।
वेल्लितक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप ।
वेल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं० वेल्लि] बेल । लता ।
वेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपड़े लत्ते और गहने आदि पहन कर अपने आपको सजाना । (२) किसी के कपड़े लत्ते आदि पहनने का ढंग ।
मुहा०—किसी का वेश धारण करना = किसी के ढंग के कपड़े लत्ते पहनना । किसी के रूप रंग और पहनावे आदि की नकल करना । जैसे,—(भाटों आदि का) राजा का वेश धारण करना ।
(३) पहनने के वस्त्र । पोशाक । जैसे,—अब आप अपना वेश उतारिए ।
यौ०—वेशभूषा = पहनने के कपड़े आदि । पोशाक ।
(४) कपड़े का बना हुआ घर । खेमा । तंबू । (५) घर । मकान । (६) वेश्या का घर । (७) दे० "प्रवेश" ।
वेशकुल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुलटा स्त्री । दुश्चरित्रा स्त्री । (२) वेश्या । रंडी ।
वेशता–संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश का भाव या धर्म । वेशत्व ।
वेशत्व–संज्ञा पुं० [सं०] वेश का भाव या धर्म । वेशता ।
वेशधर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने किसी दूसरे का वेश धारण किया हो । वह जो भेस बदले हुए हो । छद्मवेशी । (२) जैनों का एक संप्रदाय ।
वेशधारी–संज्ञा पुं० [सं० वेशधारिन्] (१) वह जिसने वेश धारण किया हो । वेश धारण करनेवाला । (२) वह जो तपस्वी न हो, पर तपस्वियों का सा वेश धारण करता हो । (३) पुराणानुसार एक संकर जाति ।
वेशन–संज्ञा पुं० [सं०] प्रवेश करना ।
वेशनद–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक नदी का नाम ।
वेशयुवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या । रंडी ।
वेशवधू–संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या । रंडी ।

वेशवनिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।
वेशवार—संज्ञा पुं० [सं०] नमक, मिर्च, धनिया आदि मसाले।
वेशवास—संज्ञा पुं० [सं०] वेश्या का घर। रंडी का मकान।
वेशस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।
वेशिक—संज्ञा पुं० [सं०] शिल्पविद्या। हाथ की कारीगरी।
वेशी—संज्ञा पुं० [सं० वेशिन्] वह जो वेश धारण किए हो। वेश धारण करनेवाला।
वेशीजाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्रदात्री नाम की लता।
वेश्म—संज्ञा पुं० [सं०] घर। मकान।
वेश्मकलिंग—संज्ञा पुं० [सं०] चटक पक्षी। गौरैया।
वेश्मकूल—संज्ञा पुं० [सं०] चिचिंडा। चिचड़ा।
वेश्मनकुल—संज्ञा पुं० [सं०] छछूँदर।
वेश्मभू—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जो मकान बनाने के लिये उपयुक्त हो; अथवा जिस पर मकान बनाया जाय।
वेश्मवास—संज्ञा पुं० [सं०] रहने का घर। मकान।
वेश्मस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।
वेश्मांत—संज्ञा पुं० [सं०] घर के अंदर का वह भाग जिसमें स्त्रियाँ रहती हैं। अंतःपुर। जनानखाना।
वेश्य—संज्ञा पुं० [सं०] वेश्या के रहने का मकान। रंडी का घर।
वेश्यांगना—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा स्त्री। बदचलन औरत।
वेश्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो नाचती गाती और धन लेकर लोगों के साथ संभोग करती हो। गाने और कसब कमानेवाली औरत। रंडी।
पर्य्या०—वारस्त्री। गणिका। रूपाजीवा। क्षुद्रा। भुक्ता। वारविलासिनी। कजिका। कुंभा। कामरेखा। पण्यांगना। वारवधू। भोग्या। सार्वविधिका।
वेश्याचार्य्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वेश्याओं के साथ रहता और उन्हें परपुरुषों से मिलाता हो। रंडियों का दलाल। भड़ुआ।
वेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] गदहा।
वेष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "वेश"। (२) रंगमंच में पीछे का वह स्थान जहाँ नट लोग वेश रचना करते हैं। नेपथ्य। (३) वेश्या का घर। रंडी का मकान। (४) कर्म। (५) कार्य-परिचालन। काम चलाना।
वेषकार—संज्ञा पुं० [सं०] किसी चीज को लपेटने का कपड़ा। वेष्टन। वेठन।
वेषण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कासमर्द नाम का क्षुप। कसौंदी। (२) परिचर्या। सेवा।
वेषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनियाँ।
वेषधारी—संज्ञा पुं० दे० "वेशधारी"।
वेषवार—संज्ञा पुं० [सं०] नमक, मिर्च, धनियाँ आदि मसाले।
वेषश्री—वि० [सं०] (वेदमंत्र) जिसमें सुंदर और ललित वाक्य हों।
वेषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमेली।
वेषी—संज्ञा पुं० दे० "वेशी"।
वेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्ष का किसी प्रकार का निर्य्यास। (२) गोंद। (३) धूप का पेड़। धूपसरल। (४) श्रीवेष्ट। गंधा बिरोजा। (५) सुश्रुत के अनुसार मुँह में होनेवाला एक प्रकार का रोग। (६) दे० "वेष्टन"।
वेष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधाबिरोजा। श्रीवेष्ट। (२) गोंद। (३) वृक्ष का किसी प्रकार का निर्य्यास। (४) सफेद कुम्हड़ा। पेठा। (५) कुम्हड़ा। (६) छाल। वल्कल। (७) उष्णीष। पगड़ी। (८) प्राचीर। परकोटा। चहारदीवारी। वि० चारों ओर से ढकने या आवृत करनेवाला। वेष्टन करनेवाला।
वेष्टकापथ—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन शिव-स्थान का नाम।
वेष्टन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह कपड़ा आदि जिससे कोई चीज लपेटी जाय। वेठन। (२) घेरने या लपेटने की क्रिया या भाव। (३) मुकुट। (४) उष्णीष। पगड़ी। गुग्गुल। (५) गुग्गुल। (६) कान का छेद।
वेष्टनक—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री-प्रसंग करने का एक प्रकार। एक तरह का रतिबंध।
वेष्टनवेष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रतिबंध।
वेष्टवंश—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाँस जिसे वेउर बाँस कहते हैं। रंध्रवंश।
वेष्टव्य—वि० [सं०] वेष्टन करने योग्य। वेठन आदि से लपेटने लायक।
वेष्टसार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीवेष्ट। गंधाबिरोजा। (२) धूप का पेड़। सरलकाष्ठ। धूपसरल।
वेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हर्रे। हरीतकी।
वेष्टित—वि० [सं०] (१) नदी या परकोटे आदि से चारो ओर से घिरा हुआ। (२) कपड़े आदि से लपेटा हुआ। (३) रुका हुआ। रुद्ध।
वेसन—संज्ञा पुं० [सं०] मटर, चने आदि की दाल पीसकर तैयार किया हुआ आटा। बेसन।
वेसर—संज्ञा पुं० [सं०] गदहा।
वेसवार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीसा हुआ जीरा, मिर्च, लौंग आदि मसाला। (२) एक प्रकार का पकाया हुआ मांस।
विशेष—पहले हड्डियाँ आदि अलग करके खाली मांस पीस लेते हैं, और तब गुड़, घी, पीपल, मिर्च आदि मिलाकर उसे पकाते हैं। यही पका हुआ मांस वेसवार कहलाता है।

वैंकि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम।

वैंद्यी–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक जाति का नाम। इस जाति के लोग बहुत युद्ध-प्रिय होते थे।

वैंध्य–वि० [सं०] (१) विंध्य प्रांत का। (२) विंध्य पर्वत का।

वैकंकत–संज्ञा पुं० दे० "विकंकत"।

वि० जो विकंकत की लकड़ी आदि से बना हो। विकंकत का।

वैकक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह हार या माला जो एक ओर कंधे पर और दूसरी ओर हाथ के नीचे रहे। जनेऊ की तरह पहना जानेवाला हार या माला। (२) इस प्रकार माला पहनने का ढंग।

वैकटिक–संज्ञा पुं० [सं०] रत्न-परीक्षक। जौहरी।

वि० विकट संबंधी। संबंधी विकट का।

वैकट्य–संज्ञा पुं० [सं०] विकट होने का भाव या धर्म। विकटता।

वैकतिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो रत्नों की परीक्षा करता हो। रत्न-परीक्षक। जौहरी।

वैकथिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अपने संबंध में बहुत बढ़ा कर बातें कहा करता हो। शेखीबाज। सीटनेवाला।

वैकरंज–संज्ञा पुं० [सं०] संकर जाति का एक प्रकार का साँप। ऐसा साँप जो फनवाले और बिना फनवाले साँपों के योग से उत्पन्न हुआ हो।

वैकर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वात्स्य मुनि का एक नाम। (२) एक प्राचीन जनपद का नाम जिसका उल्लेख वेदों में है।

वैकर्णायन–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वैकर्ण या वात्स्य मुनि के वंश में उत्पन्न हुआ हो।

वैकर्त्तन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य के एक पुत्र का नाम। (२) कर्ण का एक नाम। (३) सुग्रीव के एक पूर्वज का नाम। (४) वह जो सूर्य्य वंशी हो।

वि० सूर्य संबंधी। सूर्य का।

वैकर्म–संज्ञा पुं० [सं०] विकर्म्म या अपकर्म्म का भाव। दुष्कार्य।

वैकल्प–संज्ञा पुं० [सं०] विकल्प का भाव।

वैकल्पिक–वि० [सं०] (१) जो किसी एक पक्ष में हो। एकांगी। (२) जिसमें किसी प्रकार का संदेह हो। संदिग्ध। (३) जो अपने इच्छानुसार ग्रहण किया जा सके। जो चुना जा सके।

वैकल्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विकल होने का भाव। विकलता। घबराहट। (२) कातरता। (३) टेढ़ापन। (४) अंगहीन होने का भाव। (५) न्यूनता। कमी। (६) अभाव। न होना।

वि० अधूरा। अपूर्ण।

वैकायन–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

वैकारिक–वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार का विकार हुआ हो। बिगड़ा हुआ। विकृत।

संज्ञा पुं० विकार। बिगाड़।

वैकार्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] विकार का भाव या धर्म।

वि० जिसमें विकार हो सकता या होता हो। विकार के योग्य।

वैकालिक–वि० [सं०] जो अपने उपयुक्त समय पर न होकर असमय में उत्पन्न हो।

वैकुंठ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम। (२) पुराणानुसार विष्णु का धाम या स्थान। वह स्थान जहाँ भगवान् या विष्णु रहते हैं। पुराणानुसार यह धाम सत्यलोक से भी ऊपर है। यह धाम सब से श्रेष्ठ माना गया है और कहा गया है कि जिन्हें विष्णु मोक्ष देते हैं, वे इसी धाम में निवास करते हैं। यहाँ रहनेवाले न तो बुड्ढे होते हैं और न मरते हैं। (३) वैकुंठ में रहनेवाले देवता। (४) स्वर्ग। (क०) (५) इंद्र। (६) सफेद पत्तोंवाली तुलसी।

वैकुंठत्व–संज्ञा पुं० [०] वैकुण्ठ का भाव या धर्म।

वैकुंठीय–वि० [सं०] वैकुंठ संबंधी। वैकुण्ठ का।

वैकृत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विकार। खराबी। (२) बीभत्स रस। (३) बीभत्स रस का आलंबन। जैसे,— खून, गोश्त, हड्डी आदि।

वि० (१) जो विकार से उत्पन्न हुआ हो। (२) जो सहज में ठीक न हो सके। दुःसाध्य।

वैकृत ज्वर–संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो ऋतु के अनुसार स्वाभाविक न हो, बल्कि किसी और ऋतु के अनुकूल हो।

विशेष—साधारणतः वर्षा ऋतु में वायु, शरद् ऋतु में पित्त और वसंत ऋतु में कफ कुपित होता है। यदि वर्षा ऋतु में वायु के प्रकोप से ज्वर हो, तो वह वैकृत ज्वर कहा जायगा।

वैकृतिक–वि० [सं०] नैमित्तिक।

वैकृत्य–संज्ञा पुं० [सं०] बीभत्स रस।

वैक्रमीय–वि० [सं०] विक्रम का। विक्रम संबंधी। जैसे,—वैक्रमीय संवत्।

वैक्रांत–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मणि जिसे चुन्नी कहते हैं।

वैक्रिय–वि० [सं०] जो विकने को हो। बेचा जाने योग्य। बिक्री का।

वैखरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कंठ से उत्पन्न होनेवाले स्वर का एक विशिष्ट प्रकार। ऐसा स्वर उच्च और गंभीर होता है

और बहुत स्पष्ट सुनाई पड़ता है। (२) वाक्-शक्ति। (३) वाग्देवी।
वैखानस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वानप्रस्थ आश्रम में हो। (२) प्राचीन काल के एक प्रकार के ब्रह्मचारी या तपस्वी जो प्रायः वन में रहा करते थे।
वैखानसि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि का नाम।
वैखानसीय-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।
वैगंधिक-संज्ञा पुं० [सं०] गंधक।
वैगलेय-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार भूतों का एक गण।
वैगुण्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुणहीन होने का भाव। विगुणता। (२) अपराध। दोष। (३) नीचता। वाहियातपन।
वैग्रहिक-संज्ञा पुं० [सं०] विग्रह या शरीर संबंधी। शरीर का।
वैघात्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो घात करने के योग्य हो। मार डालने लायक।
वैचक्षण्य-संज्ञा पुं० [सं०] विचक्षण या निपुण होने का भाव। विचक्षणता। निपुणता। होशियारी।
वैचित्त्य-संज्ञा पुं० [सं०] चित्त की भ्रांति। भ्रम। अन्यमनस्कता।
वैचित्र-संज्ञा पुं० [सं०] विचित्रता। विलक्षणता।
वैचित्र्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विचित्र होने का भाव। विचित्रता। विलक्षणता। (२) विभिन्नता। भेद। फर्क। (३) सुंदरता। खूबसूरती।
वैचित्र्यवीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] विचित्रवीर्य्य की संतान, धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर आदि।
वैच्युत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।
वैच्युति-संज्ञा स्त्री० [सं०] विच्युत होने का कार्य्य या भाव। पतन। गिरना।
वैजनन-संज्ञा पुं० [सं०] वह मास जिसमें किसी स्त्री को संतान उत्पन्न हो। प्रसव-मास।
वैजन्य-संज्ञा पुं० [सं०] विजन होने का भाव। विजनता। एकांत।
वैजयंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र की पुरी का नाम। (२) इंद्र। (३) घर। (४) अग्निमंथ नामक वृक्ष। अरणी।
वैजयंतिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो पताका या झंडा उठाता हो। झंडा उठानेवाला।
वैजयंतिका-संज्ञा स्त्री० दे० "वैजयंती"।
वैजयंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पताका। झंडी। (२) जयंती नामक वृक्ष। (३) एक प्रकार की माला जो पाँच रंगों की और घुटनों तक लटकती हुई होती थी। कहते हैं कि यह माला श्रीकृष्ण जी पहना करते थे।
वैजयिक-वि० [सं०] विजय संबंधी। विजय का।
वैजयी-संज्ञा पुं० दे० "विजयी"।

वैजवन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि जो एक वैदिक शाखा के प्रवर्त्तक थे। पैजवन। वैजन।
वैजात्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विजातीय होने का भाव। (२) विलक्षणता। अद्भुतता। (३) बद-चलनी। लंपटता।
वैजिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आत्मा। (२) हेतु। कारण।
वि० (१) बीज संबंधी। बीज का। (२) वीर्य्य संबंधी। वीर्य्य का।
वैज्ञानिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो विज्ञान का अच्छा ज्ञाता हो। विज्ञान जाननेवाला। (२) निपुण। दक्ष। होशियार।
वि० विज्ञान संबंधी। विज्ञान का। जैसे,—वैज्ञानिक विवेचन, वैज्ञानिक खोज।
वैडालव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] पाप और कुकर्म करते हुए भी ऊपर से साधु बने रहना।
वैडालव्रती-संज्ञा पुं० [सं० वैडालव्रतिन्] वह तपस्वी या साधु जो वास्तव में पापी और कुकर्मी हो। दुष्ट और नीच धर्मध्वजी।
वैडूर्य-संज्ञा पुं० दे० "वैदूर्य्य"।
वैण-वि० [सं०] वेणु संबंधी। बाँस का।
वैणव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस का फल। (२) बाँस का वह डंडा जो यज्ञोपवीत के समय धारण किया जाता है। (३) वंशी। वेणु।
वि० वेणु संबंधी। बाँस का।
वैणविक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वेणु बजाता हो। वंशी बजानेवाला।
वैणवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशलोचन।
संज्ञा पुं० [सं० वैणविन्] (१) वह जो वेणु बजाता हो। (२) शिव का एक नाम।
वैणिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वीणा बजाता हो। बीनकार।
वैणुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वेणु बजाने में चतुर हो। वंशी बजानेवाला। (२) हाथी का अंकुश।
वैणुकीय-वि० [सं०] वेणु संबंधी। वेणु का।
वैणेय-संज्ञा पुं० [सं०] वेद की एक शाखा का नाम।
वैण्य-संज्ञा पुं० [सं०] राजा वेणु के पुत्र पृथु का एक नाम।
वैतंडिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बहुत अधिक वितंडा करता हो। व्यर्थ का झगड़ा या बहस करनेवाला।
वैतंडी-संज्ञा पुं० [सं० वैतंडिन्] पुराणानुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम।
वैतंसिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो मांस बेचता हो। मांसिक। बूचड़। कसाई।
वैतथ्य-संज्ञा पुं० [सं०] विफल होने का भाव। विफलता।
वैतनिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वेतन लेकर काम करता हो। तनखाह लेकर काम करनेवाला। नौकर। भृत्य।

वैतरणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध पौराणिक नदी जो यम के द्वार पर मानी जाती है। कहते हैं कि यह नदी बहुत तेज बहती है, इसका जल बहुत ही गरम और बदबूदार है, और उसमें हड्डियाँ, लहू तथा बाल आदि भरे हुए हैं। यह भी माना जाता है कि प्राणी को मरने पर पहले यह नदी पार करनी पड़ती है, जिसमें उसे बहुत कष्ट होता है। परंतु यदि उसने अपनी जीवितावस्था में गोदान किया हो, तो वह उसी गौ की सहायता से सहज में पार उतर जाता है। पुराणों में लिखा है कि जब सती के वियोग में महादेवजी रोने लगे, तब उनके आँसुओं का प्रवाह देखकर देवता लोग बहुत डरे और उन्होंने शनि से प्रार्थना की कि तुम इस प्रवाह को ग्रहण करके सोख लो। शनि ने उस धारा को ग्रहण करना चाहा, पर उसे सफलता नहीं हुई। अंत में उसी धारा से यह वैतरणी नदी बनी। इसका विस्तार दो योजन माना गया है। पापियों को यह नदी पार करने में बहुत कष्ट होता है। (२) उड़ीसा की एक नदी का नाम जो बहुत पवित्र मानी जाती है।

वैतस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुरुष की मूत्रेंद्रिय। लिंग। (२) अम्लवेत।

वैतसेन-संज्ञा पुं० [सं०] राजा पुरूरवा का एक नाम जो वीतसेना के पुत्र थे।

वैताढ्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

वैतानिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह हवन या यज्ञ आदि जो श्रौत विधानों के अनुसार हो। (२) वह अग्नि जिससे अग्निहोत्र आदि कृत्य किए जायँ।

वैताल-संज्ञा पुं० [सं०] स्तुति-पाठक। वैतालिक।

वि० वेताल संबंधी। वेताल का।

वैतालकि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन आचार्य्य का नाम जो ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवर्त्तक थे।

वैताल रस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो गंधक, मिर्च और हरताल आदि के योग से बनता है और जो सान्निपातिक ज्वर तथा मूर्च्छा आदि में उपयोगी माना जाता है।

वैतालिक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का वह स्तुतिपाठक जो प्रातःकाल राजाओं को उनकी स्तुति करके जगाया करता था। स्तुति-पाठक।

वैताली-संज्ञा पुं० [सं० वैतालिन्] कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

वैतालीय-संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसके पहले तथा तीसरे चरणों में चौदह और दूसरे तथा चौथे चरणों में सोलह मात्राएँ होती हैं।

वि० वेताल संबंधी। वेताल का।

वैतृष्ण्य-संज्ञा पुं० [सं०] तृष्णा से रहित होने का भाव।

वैदंभ-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

वैद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जो विद नाम ऋषि के पुत्र थे।

वि० विद्वान् या पंडित संबंधी।

संज्ञा पुं० दे० "वैद्य"।

वैदक-संज्ञा पुं० दे० "वैद्यक"।

वैदग्ध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विदग्ध या पूर्ण पंडित होने का भाव। पांडित्य। विद्वत्ता। (२) कार्य्यकुशलता। पटुता। (३) चतुरता। चालाकी। (४) रसिकता। (५) शोभा। (६) हाव भाव।

वैदग्ध्य-संज्ञा पुं० [सं०] विदग्ध या पूर्ण पंडित होने का भाव। पांडित्य। विद्वत्ता।

वैदत-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी विषय का अच्छा ज्ञाता हो। जानकार।

वैदनृत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

वैदर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विदर्भ देश का राजा या शासक। (२) दमयंती के पिता भीमसेन का एक नाम। (३) रुक्मिणी के पिता भीष्मक का एक नाम। (४) वह जो बातचीत करने में बहुत चतुर हो। (५) बातचीत करने की चतुराई। वाक्-चातुरी। (६) एक रोग जिसमें मसूड़े फूल जाते हैं और उनमें पीड़ा होती है।

वि० (१) जो विदर्भ देश में उत्पन्न हुआ हो। (२) विदर्भ देश का।

वैदर्भक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विदर्भ देश का निवासी हो।

वैदर्भी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काव्य की एक रीति। वह रीति या शैली जिसमें मधुर वर्णों के द्वारा मधुर रचना होती है। यह सब से अच्छी समझी जाती है। (२) अगस्त्य ऋषि की स्त्री का एक नाम। (३) दमयंती। (४) रुक्मिणी।

वैदल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिट्टी का वह पात्र जिसमें भिखमंगे भीख माँगते हैं। (२) एक प्रकार की पीढ़ी।

वैदारिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात ज्वर। इसमें वायु का प्रकोप कम, पित्त का मध्यम और कफ का अधिक होता है; रोगी की हड्डियों और कमर में पीड़ा होती है; उसे भ्रम, क्लांति, श्वास, खाँसी और हिचकी होती है और सारा शरीर सुन्न हो जाता है। ऐसा सन्निपात जल्दी अच्छा नहीं होता।

वैदिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वेदों में बतलाए हुए कर्मकांड का अनुष्ठान करता हो। वेद में कहे हुए कृत्य करनेवाला। (२) वह जो वेदों आदि का अच्छा ज्ञाता हो। वेदों का पंडित।

वि० (१) जो वेदों में कहा गया हो। (२) वेद संबंधी। वेद का। जैसे,—वैदिक काल।

वैदिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वनजामुन।

वैदिश-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विदिशा का निवासी हो।

वैदुल-संज्ञा पुं० [सं०] बेंत की जड़।

वैदुष-संज्ञा पुं० [सं०] विद्वान्। पंडित।

वैदुष्य-संज्ञा पुं० [सं०] विद्वत्ता। पांडित्य।

वैदूर्य-संज्ञा पुं० [सं०] धूमिल रंग का एक प्रकार का रत्न या बहुमूल्य पत्थर जिसे "लहसुनिया" कहते हैं। दे० "लहसुनिया"।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इस रत्न के अधिष्ठाता देवता केतु माने गए हैं, और कहा गया है कि जब केतु ग्रह खराब या बिगड़ा हुआ हो, तो यह रत्न धारण करना चाहिए। हमारे यहाँ इसकी गणना महारत्नों में है। सुतार, घन, अमृच्छ, कलिल और व्यंग ये पाँच इसके गुण और कर्कर, कर्कश, त्रास, कलंक और देह ये पाँच इसके दोष कहे गए हैं। कुछ लोगों का मत है कि यह रत्न विदूर पर्वत पर होता है, इसी से वैदूर्य कहलाता है। वैद्यक के अनुसार यह अम्ल, उष्ण, कफ तथा वायु का नाशक और गुल्म तथा शूल को शांत करनेवाला है।

पर्य्या०—केतुरत्न। अभ्ररोह। विदूरज। विदूरज। खराब्दांकुर।

वैदेशिक-वि० [सं०] विदेश संबंधी। विदेश का।

वैदेश्य-वि० दे० "वैदेशिक"।

वैदेह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा निमि के पुत्र का नाम। कहते हैं कि जब राजा निमि निःसंतान मर गए, तब धर्म का लोप हो जाने के भय से ऋषियों ने अरणी से मथकर इन्हें, राज्य करने के लिये, उत्पन्न किया था। (२) वणिक्। सौदागर। (३) प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति जिसका काम अंतःपुर में पहरा देना था। मनु के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति ब्राह्मणी माता और वैश्य पिता से है।

वैदेहक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वणिक्। व्यापारी। (२) वैदेह नामक वर्णसंकर जाति।

वैदेहिक-संज्ञा पुं० दे० "वैदेह" (२) और (३)।

वैदेही-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विदेह राजा जनक की कन्या, सीता। (२) वैदेह जाति की स्त्री। (३) रोचना। (४) पीपल। पिप्पली।

वैद्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पंडित। विद्वान्। (२) वह जो आयुर्वेद का ज्ञाता हो और उसके अनुसार रोगियों की चिकित्सा आदि करता हो। भिषक्। चिकित्सक। (३) वासक वृक्ष। (४) एक जाति जो प्रायः बंगाल में पाई जाती है। इस जाति के लोग अपने आप को "अंबष्ठ संतान" कहते हैं।

वि० वेद संबंधी। वेद का।

वैद्यक-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें रोगों के निदान और चिकित्सा आदि का विवेचन हो। चिकित्सा शास्त्र। आयुर्वेद। वि० दे० "आयुर्वेद"।

वैद्यनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] बंगाल का एक प्रसिद्ध तीर्थ जो संथाल परगने के अंतर्गत है। यहाँ इसी नाम का शिव का एक प्रसिद्ध मंदिर है।

वैद्यमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० वैद्यमातृ] वासक वृक्ष। अडूसा।

वैद्यराज-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अच्छा वैद्य हो। वैद्यों में श्रेष्ठ।

वैद्यसिंही-संज्ञा स्त्री० [सं०] वासक वृक्ष।

वैद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] काकोली।

वैद्याग्नि-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि-पुत्र का नाम।

वैद्युत-वि० [सं०] विद्युत् संबंधी। बिजली का।

संज्ञा पुं० (१) विद्युत् का देवता। (२) पुराणानुसार शाल्मलि द्वीप के एक वर्ष का नाम।

वैद्युतगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

वैद्रुम-वि० [सं०] विद्रुम संबंधी। मूँगे का।

वैध-वि० [सं०] जो विधि के अनुसार हो। कायदे या कानून के मुताबिक। ठीक। जैसे,—वैध आंदोलन। वैध हिंसा।

वैधर्म्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विधर्मी होने का भाव। (२) वह जो अपने धर्म के अतिरिक्त अन्यान्य धर्मों के सिद्धांतों का भी अच्छा ज्ञाता हो। (३) नास्तिकता।

वैधव-संज्ञा पुं० [सं०] विधु अर्थात् चंद्रमा के पुत्र, बुध।

वैधवेय-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विधवा के गर्भ से उत्पन्न हुआ हो। विधवा का पुत्र।

वैधव्य-संज्ञा पुं० [सं०] विधवा होने का भाव। रँडापा।

वैधस-संज्ञा पुं० [सं०] राजा हरिश्चंद्र का एक नाम जो राजा वेधस के पुत्र थे।

वैधातनिक-संज्ञा पुं० दे० "वैधात्र"।

वैधात्र-संज्ञा पुं० [सं०] सनत्कुमार, जो विधाता के पुत्र माने जाते हैं।

वैधात्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी नाम की जड़ी।

वैधुमाग्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नगरी का नाम जो शाल्व देश में थी।

वैधुर्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विधुर होने का भाव। कातरता या कातर होने का भाव। (२) भ्रम। संदेह। (३) कंपित होने का भाव।

वैधृत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो विधृति का पुत्र या संतान हो। (२) ग्यारहवें मन्वंतर के एक इंद्र का नाम।

वैतरणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध पौराणिक नदी जो यम के द्वार पर मानी जाती है। कहते हैं कि यह नदी बहुत तेज बहती है, इसका जल बहुत ही गरम और बदबूदार है, और उसमें हड्डियाँ, लहू तथा बाल आदि भरे हुए हैं। यह भी माना जाता है कि प्राणी को मरने पर पहले यह नदी पार करनी पड़ती है, जिसमें उसे बहुत कष्ट होता है। परंतु यदि उसने अपनी जीवितावस्था में गोदान किया हो, तो वह उसी गौ की सहायता से सहज में पार उतर जाता है। पुराणों मे लिखा है कि जब सती के वियोग में महादेवजी रोने लगे, तब उनके आँसुओं का प्रवाह देखकर देवता लोग बहुत डरे और उन्होंने शनि से प्रार्थना की कि तुम इस प्रवाह को ग्रहण करके सोख लो। शनि ने उस धारा को ग्रहण करना चाहा, पर उसे सफलता नहीं हुई। अंत में उसी धारा से यह वैतरणी नदी बनी। इसका विस्तार दो योजन माना गया है। पापियों को यह नदी पार करने में बहुत कष्ट होता है। (२) उड़ीसा की एक नदी का नाम जो बहुत पवित्र मानी जाती है।

वैतस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुरुष की मूत्रेंद्रिय। लिंग। (२) अम्लबेंत।

वैतसेन–संज्ञा पुं० [सं०] राजा पुरूरवा का एक नाम जो वीतसेना के पुत्र थे।

वैताढ्य–संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

वैतानिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह हवन या यज्ञ आदि जो श्रौत विधानों के अनुसार हो। (२) वह अग्नि जिससे अग्निहोत्र आदि कृत्य किए जायँ।

वैताल–संज्ञा पुं० [सं०] स्तुति-पाठक। वैतालिक।

वि० वेताल संबंधी। वेताल का।

वैतालकि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन आचार्य्य का नाम जो ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवर्त्तक थे।

वैताल रस–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो गंधक, मिर्च और हरताल आदि के योग से बनता है और जो सान्निपातिक ज्वर तथा मूर्च्छा आदि में उपयोगी माना जाता है।

वैतालिक–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का वह स्तुति-पाठक जो प्रातःकाल राजाओं को उनकी स्तुति करके जगाया करता था। स्तुति-पाठक।

वैताली–संज्ञा पुं० [सं० वैतालिन्] कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

वैतालीय–संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसके पहले तथा तीसरे चरणों में चौदह और दूसरे तथा चौथे चरणों में सोलह मात्राएँ होती हैं।

वि० वेताल संबंधी। वेताल का।

वैतृष्ण्य–संज्ञा पुं० [सं०] तृष्णा से रहित होने का भाव।

वैदंभ–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

वैद–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जो विद नाम ऋषि के पुत्र थे।

वि० विद्वान् या पंडित संबंधी।

संज्ञा पुं० दे० "वैद्य"।

वैदक–संज्ञा पुं० दे० "वैद्यक"।

वैदग्ध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विदग्ध या पूर्ण पंडित होने का भाव। पांडित्य। विद्वत्ता। (२) कार्यकुशलता। पटुता। (३) चतुरता। चालाकी। (४) रसिकता। (५) शोभा। (६) हाव भाव।

वैदग्ध्य–संज्ञा पुं० [सं०] विदग्ध या पूर्ण पंडित होने का भाव। पांडित्य। विद्वत्ता।

वैदत–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी विषय का अच्छा ज्ञाता हो। जानकार।

वैदन्वत–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

वैदर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विदर्भ देश का राजा या शासक। (२) दमयंती के पिता भीमसेन का एक नाम। (३) रुक्मिणी के पिता भीष्मक का एक नाम। (४) वह जो बातचीत करने में बहुत चतुर हो। (५) बातचीत करने की चतुराई। वाक्-चातुरी। (६) एक रोग जिसमें मसूड़े फूल जाते हैं और उनमें पीड़ा होती है।

वि० (१) जो विदर्भ देश में उत्पन्न हुआ हो। (२) विदर्भ देश का।

वैदर्भक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विदर्भ देश का निवासी हो।

वैदर्भी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काव्य की एक रीति। वह रीति या शैली जिसमें मधुर वर्णों के द्वारा मधुर रचना होती है। यह सब से अच्छी समझी जाती है। (२) अगस्त्य ऋषि की स्त्री का एक नाम। (३) दमयंती। (४) रुक्मिणी।

वैदल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिट्टी का वह पात्र जिसमें भिखमंगे भीख माँगते हैं। (२) एक प्रकार की पीठी।

वैदारिक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात ज्वर। इसमें वायु का प्रकोप कम, पित्त का मध्यम और कफ का अधिक होता है; रोगी की हड्डियों और कमर में पीड़ा होती है; उसे भ्रम, क्लांति, श्वास, खाँसी और हिचकी होती है और सारा शरीर सुन्न हो जाता है। ऐसा सन्निपात जल्दी अच्छा नहीं होता।

वैदिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वेदों में बतलाए हुए कर्मकांड का अनुष्ठान करता हो। वेद में कहे हुए कृत्य करनेवाला। (२) वह जो वेदों आदि का अच्छा ज्ञाता हो। वेदों का पंडित।

वि० (१) जो वेदों में कहा गया हो। (२) वेद संबंधी। वेद का। जैसे,—वैदिक काल।

वैदिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वनजामुन।

वैदिश-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विदिशा का निवासी हो।

वैदुल-संज्ञा पुं० [सं०] बेंत की जड़।

वैदुष-संज्ञा पुं० [सं०] विद्वान्। पंडित।

वैदुष्य-संज्ञा पुं० [सं०] विद्वत्ता। पांडित्य।

वैदूर्य-संज्ञा पुं० [सं०] धूमिल रंग का एक प्रकार का रत्न या बहुमूल्य पत्थर जिसे "लहसुनिया" कहते हैं। दे० "लहसुनिया"।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इस रत्न के अधिष्ठाता देवता केतु माने गए हैं; और कहा गया है कि जब केतु ग्रह खराब या बिगड़ा हुआ हो, तो यह रत्न धारण करना चाहिए। हमारे यहाँ इसकी गणना महारत्नों में है। सुतार, घन, अच्छ, कलिल और व्यंग ये पाँच इसके गुण और कर्कर, कर्कश, त्रास, कलंक और देह ये पाँच इसके दोष कहे गए हैं। कुछ लोगों का मत है कि यह रत्न विदूर पर्वत पर होता है, इसी से वैदूर्य कहलाता है। वैद्यक के अनुसार यह अम्ल, उष्ण, कफ तथा वायु का नाशक और गुल्म तथा शूल को शांत करनेवाला है।

पर्य्या०—केतुरत्न। अभ्ररोह। विदूरत्न। विदूरज। खराब्दांकुर।

वैदेशिक-वि० [सं०] विदेश संबंधी। विदेश का।

वैदेश्य-वि० दे० "वैदेशिक"।

वैदेह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा निमि के पुत्र का नाम। कहते हैं कि जब राजा निमि निःसंतान मर गए, तब धर्म का लोप हो जाने के भय से ऋषियों ने आणी से मथकर इन्हें, राज्य करने के लिये, उत्पन्न किया था। (२) वणिक्। सौदागर। (३) प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति जिसका काम अंतःपुर में पहरा देना था। मनु के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति ब्राह्मणी माता और वैश्य पिता से है।

वैदेहक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वणिक्। व्यापारी। (२) वैदेह नामक वर्णसंकर जाति।

वैदेहिक-संज्ञा पुं० दे० "वैदेह" (२) और (३)।

वैदेही-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विदेह राजा जनक की कन्या, सीता। (२) वैदेह जाति की स्त्री। (३) रोचना। (४) पीपल। पिप्पली।

वैद्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पंडित। विद्वान्। (२) वह जो आयुर्वेद का ज्ञाता हो और उसके अनुसार रोगियों की चिकित्सा आदि करता हो। भिषक्। चिकित्सक। (३) वासक वृक्ष। (४) एक जाति जो प्रायः बंगाल में पाई जाती है। इस जाति के लोग अपने आप को "अंबष्ठ संतान" कहते हैं।

वि० वेद संबंधी। वेद का।

वैद्यक-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें रोगों के निदान और चिकित्सा आदि का विवेचन हो। चिकित्सा शास्त्र। आयुर्वेद। वि० दे० "आयुर्वेद"।

वैद्यनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] बंगाल का एक प्रसिद्ध तीर्थ जो संथाल परगने के अंतर्गत है। यहाँ इसी नाम का शिव का एक प्रसिद्ध मंदिर है।

वैद्यमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० वैद्यमातृ] वासक वृक्ष। अडूसा।

वैद्यराज-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अच्छा वैद्य हो। वैद्यों में श्रेष्ठ।

वैद्यसिंही-संज्ञा स्त्री० [सं०] वासक वृक्ष।

वैद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] काकोली।

वैद्याग्नि-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि-पुत्र का नाम।

वैद्युत-वि० [सं०] विद्युत् संबंधी। बिजली का।

संज्ञा पुं० (१) विद्युत् का देवता। (२) पुराणानुसार शाल्मलि द्वीप के एक वर्ष का नाम।

वैद्युतगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

वैद्रुम-वि० [सं०] विद्रुम संबंधी। मूँगे का।

वैध-वि० [सं०] जो विधि के अनुसार हो। कायदे या कानून के मुताबिक। ठीक। जैसे,—वैध आंदोलन। वैध हिंसा।

वैधर्म्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विधर्मी होने का भाव। (२) वह जो अपने धर्म के अतिरिक्त अन्यान्य धर्मों के सिद्धांतों का भी अच्छा ज्ञाता हो। (३) नास्तिकता।

वैधव-संज्ञा पुं० [सं०] विधु अर्थात् चंद्रमा के पुत्र, बुध।

वैधवेय-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विधवा के गर्भ से उत्पन्न हुआ हो। विधवा का पुत्र।

वैधव्य-संज्ञा पुं० [सं०] विधवा होने का भाव। रँडापा।

वैधस-संज्ञा पुं० [सं०] राजा हरिश्चंद्र का एक नाम जो राजा वेधस के पुत्र थे।

वैधातनिक-संज्ञा पुं० दे० "वैधात्र"।

वैधात्र-संज्ञा पुं० [सं०] सनत्कुमार, जो विधाता के पुत्र माने जाते हैं।

वैधात्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी नाम की जड़ी।

वैधुमाग्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नगरी का नाम जो शाल्व देश में थी।

वैधुर्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विधुर होने का भाव। व्यग्रता या कातर होने का भाव। (२) भ्रम। संदेह। (३) कंपित होने का भाव।

वैधृत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो विधृति का पुत्र या संतान हो। (२) ग्यारहवें मन्वंतर के एक इंद्र का नाम।

वैधृतवाशिष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।
वैधृति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष में विष्कंभ आदि सत्ताईस योगों में से एक योग जो अशुभ माना जाता है। इस योग में यात्रा अथवा कोई शुभ कार्य्य करना वर्जित है। (२) भागवत के अनुसार एक देवता जो विधृति के पुत्र हैं।
वैधेय-वि० [सं०] (१) विधि संबंधी। विधि का। (२) संबंधी। (३) मूर्ख। बेवकूफ। ना समझ।
वैध्यत-संज्ञा पुं० [सं०] यम के एक प्रतिहार का नाम।
वैन-संज्ञा पुं० [सं०] राजा वेन के पुत्र पृथु का एक नाम।
वैनतक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का पात्र जिसमें घी रखा जाता था और जिसका व्यवहार यज्ञों में होता था।
वैनतेय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनता की संतान। (२) गरुड़। (३) अरुण।
वैनतेयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक शाखा का नाम।
वैनम्य-वि० [सं०] जिसका स्वभाव विनीत हो। नम्र।
वैनद-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम।
वैनभृत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन गोत्र प्रवर्त्तक ऋषि का नाम। (२) एक वैदिक शाखा का नाम।
वैनयिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनय। प्रार्थना। (२) वह जो शास्त्रों आदि का अध्ययन करता हो। (३) प्राचीन काल का एक प्रकार का रथ जिसका व्यवहार युद्ध में होता था।
वि० विनय संबंधी। विनय का।
वैनायक-वि० [सं०] विनायक या गणेश संबंधी।
संज्ञा पुं० भागवत के अनुसार भूतों का एक गण।
वैनायिक-वि० [सं०] विनायक संबंधी।
संज्ञा पुं० वह जो बौद्ध धर्म्म का अनुयायी हो। बौद्ध।
वैनाशिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फलित ज्योतिष में जन्म-नक्षत्र से तेईसवाँ नक्षत्र। (२) जन्म नक्षत्र से सातवाँ, दसवाँ और अठारहवाँ नक्षत्र। ये तीनों नक्षत्र अशुभ समझे जाते हैं और निधन-तारा कहलाते हैं। इन नक्षत्रों में यात्रा करना वर्जित है। (३) बौद्ध।
वि० (१) विनाश संबंधी। (२) परतंत्र। पराधीन।
वैनीतक-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी सवारी जिसे कई आदमी मिलकर उठाते हों। जैसे,—डोली, पालकी, तामजाम आदि।
वैनेय-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक शाखा का नाम।
वैन्य-संज्ञा पुं० [सं०] राजा वेन के पुत्र पृथु का एक नाम।
वैपरीत्य-संज्ञा पुं० [सं०] विपरीत होने का भाव। विपरीतता। प्रतिकूलता।
वैपश्चित-संज्ञा पुं० [सं०] तार्क्ष्य नामक ऋषि का एक नाम जो विपश्चित् ऋषि के वंशज थे।
वैपश्यत-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।
वैपादिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] विपादिका नामक रोग।
वैपार-संज्ञा पुं० दे० "व्यापार"।
वैपारी-संज्ञा पुं० दे० "व्यापारी"।
वैपित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वे भाई बहन आदि जिनकी माता तो एक ही हो, पर पिता अलग अलग हों।
वैपुल्य-संज्ञा पुं० [सं०] विपुल होने का भाव। विपुलता। अधिकता।
वैफल्य-संज्ञा पुं० [सं०] विफल होने का भाव। विफलता। नाकामयाबी।
वैबाध-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का सिकड़। (२) वह अश्वत्थ वृक्ष जो खैर के वृक्ष में से निकला हो।
वैबोधिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो रात के समय पहरा देता, घंटा बजाता और सोए हुए लोगों को जगाता हो।
वैभंडि-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि का नाम। जिन्हें विभांडि भी कहते हैं।
वैभव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धन-संपत्ति। दौलत। विभव। ऐश्वर्य। (२) महिमा। महत्त्व। बड़प्पन। (३) सामर्थ्य। शक्ति। ताकत।
वैभवशाली-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके पास बहुत अधिक धन-संपत्ति हो। विभववाला। मालदार।
वैभविक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो कोई काम करने की अच्छी सामर्थ्य रखता हो। समर्थ।
वैभांडिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि का नाम।
वैभार-संज्ञा पुं० [सं०] राजगृह के पास के एक पर्वत का नाम। इसे वैहार भी कहते थे।
वैभाषिक-वि० [सं०] (१) विभाषा संबंधी। (२) वैकल्पिक।
संज्ञा पुं० बौद्धों के एक संप्रदाय का नाम।
वैभूतिक-वि० [सं०] विभूति संबंधी। विभूति का।
वैभोज-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जाति का नाम। महाभारत के अनुसार द्रुह्यु के वंशज वैभोज कहलाते थे। ये लोग सवारी आदि का व्यवहार करना नहीं जानते थे और न इन लोगों में कोई राजा हुआ करता था।
वैभ्राज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का उद्यान या बाग। (२) पुराणानुसार मेरु के पश्चिम में सुपार्श्व पर्वत पर के एक जंगल का नाम। (३) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम। (४) एक लोक का नाम जो स्वर्ग में माना जाता है।
वैमनस्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विमन या अन्यमनस्क होने का भाव। (२) वैर। द्वेष। दुश्मनी।
वैमल्य-संज्ञा पुं० [सं०] विमल होने का भाव। विमलता।

वैमात्र-वि० [सं०] [स्त्री० वैमात्रा] विमाता से उत्पन्न । सौतेला । जैसे,—वैमात्र भाई ।

वैमात्रेय-वि० [सं०] [स्त्री० वैमात्रेयी] विमाता से उत्पन्न । सौतेला ।

वैमानिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो विमान पर चढ़कर अंतरिक्ष में विहार करता हो । (२) वह जो आकाश में विहार करता हो । आकाशचारी । (३) वह जो उड़ सकता हो ।

वैमित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

वैमुख्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विमुख होने का भाव । विमुखता । (२) विपरीतता । प्रतिकूलता । (३) अप्रसन्नता । नाराजगी । (४) भागना ।

वैमृध-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध करनेवाले, इंद्र ।

वैमृध्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो युद्ध विद्या में बहुत निपुण हो । युद्ध कुशल ।

वैमेय-संज्ञा पुं० [सं०] विनिमय । परिवर्त्तन । बदला ।

वैश्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम ।

वैयमक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जाति का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है ।

वैयर्थ्य-संज्ञा पुं० [सं०] व्यर्थ होने का भाव । व्यर्थता ।

वैयश्न-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम ।

वैयश्व-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम जो विश्वमनस् के पिता थे ।

वैयसन-वि० [सं०] व्यसन से उत्पन्न । व्यसन का ।

वैयाकरण-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो व्याकरण शास्त्र का अच्छा ज्ञाता हो । व्याकरण का पंडित ।

वि० व्याकरण संबंधी । व्याकरण का ।

वैयाख्य-संज्ञा स्त्री० दे० "व्याख्या" ।

वैयाघ्र-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का रथ जिस पर शेर या चीते की खाल मढ़ी होती थी । इसे द्वैप भी कहते थे ।

वि० व्याघ्र संबंधी । व्याघ्र का ।

वैयाघ्रपद्य-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम ।

वैयाघ्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आसन ।

वैयास-वि० [सं०] व्यास संबंधी । व्यास का ।

वैयासकि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो व्यास के गोत्र या वंश में उत्पन्न हो ।

वैयासिक-वि० [सं०] व्यास का बनाया हुआ (ग्रंथ आदि) ।

वैयास्क-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद ।

वैरंडेय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम ।

वैर-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रुता । दुश्मनी । द्वेष । विरोध ।

क्रि० प्र०—करना ।—मानना ।—रखना ।—होना ।

वैरकर, वैरकारक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी के साथ वैर करता हो । दुश्मनी करनेवाला ।

वैरक्त-संज्ञा पुं० [सं०] विरक्त होने का भाव । विरक्तता । वैराग्य ।

वैरत-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन जाति का नाम ।

वैरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैर का भाव । शत्रुता । दुश्मनी ।

वैरदेय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वैर या शत्रुता जो किसी के शत्रुता करने पर उत्पन्न हो । (२) वैदिक काल के एक असुर का नाम ।

वैरपुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके साथ वैर हो । शत्रु । दुश्मन ।

वैरल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरल होने का भाव । विरलता । (२) एकांत ।

वैरशुद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी के वैर का बदला चुकाना । दुश्मनी का बदला लेना ।

वैरस्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरस होने का भाव । विरसता । (२) इच्छा का न होना । अनिच्छा ।

वैराग-संज्ञा पुं० दे० "वैराग्य" ।

वैरागिक-वि० [सं०] जिसके कारण विराग उत्पन्न हो ।

वैरागी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके मन में विराग उत्पन्न हुआ हो । वह जिसका मन संसार की ओर से हट गया हो । विरक्त । (२) उदासीन वैष्णवों का एक संप्रदाय । इस संप्रदाय के लोग रामानुज के अनुयायी होते हैं और श्रीकृष्ण अथवा रामचंद्र की उपासना करते हैं । ये लोग प्रायः भिक्षा माँगकर अपना निर्वाह करते हैं और अखाड़े बनाकर रहते हैं । बंगाल के कुछ वैरागी विवाह करके गृहस्थों की भाँति भी रहते हैं ।

वैराग्य-संज्ञा पुं० [सं०] मन की वह वृत्ति जिसके अनुसार संसार की विषयवासना तुच्छ प्रतीत होती है और लोग संसार की झंझटें छोड़कर एकांत में रहते और ईश्वर का भजन करते हैं । विरक्ति ।

वैराज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विराट् पुरुष । परमात्मा । (२) एक मनु का नाम । (३) एक प्रकार का साम । (४) भागवत के अनुसार अजित के पिता का नाम । (५) सत्ताइसवें कल्प का नाम । (६) तपोलोक में रहनेवाले एक प्रकार के पितृ । कहते हैं कि ये कभी आग से नहीं जल सकते । (७) दे० "वैराज्य" ।

वैराजक-संज्ञा पुं० [सं०] उन्नीसवें कल्प का नाम ।

वैराज्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल की एक प्रकार की

शासन प्रणाली जिसमें एक ही देश में दो राजा मिलकर शासन करते थे। एक ही देश में दो राजाओं का शासन। (२) वह देश जहाँ इस प्रकार की शासन प्रणाली प्रचलित हो।

वैराट–वि० [सं०] (१) विराट संबंधी। विराट का। (२) विस्तृत। लंबा चौड़ा।
संज्ञा पुं० (१) इंद्रगोप नाम का कीड़ा। बीरबहूटी। (२) महाभारत का विराट पर्व।

वैराटक–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार शरीर में किसी स्थान पर होनेवाली वह गाँठ जो जहरीली हो।

वैराट्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों के अनुसार सोलह विद्या-देवियों में से एक विद्यादेवी का नाम।

वैरातंक–संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन या कोह नाम का वृक्ष।

वैराम–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जाति का नाम।

वैरिंचि–वि० [सं०] विरिंचि या ब्रह्मा संबंधी। ब्रह्मा का।

वैरिंच्य–संज्ञा पुं० [सं०] सनक आदि ऋषि जो ब्रह्मा के पुत्र माने जाते हैं।

वैरि–संज्ञा पुं० [सं०] वैरी। शत्रु। दुश्मन।

वैरिण–संज्ञा पुं० [सं०] वैरी। शत्रु। दुश्मन।

वैरिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] वैर का भाव। शत्रुता। दुश्मनी।

वैरिवीर–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दशरथ के एक पुत्र जिनका दूसरा नाम इलविल भी है।

वैरूप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन प्रवरकार ऋषि का नाम। (२) एक प्रकार का साम।

वैरूपाक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विरूपाक्ष के गोत्र या वंश में उत्पन्न हुआ हो।

वैरूप्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरूप का भाव या धर्म। विरूपता। (२) विकृत होने का भाव।

वैरेचन–वि० [सं०] विरेचन संबंधी। विरेचन का।

वैरोचन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुद्ध का एक नाम। (२) राजा बलि का एक नाम। (३) सूर्य के एक पुत्र का नाम। (४) अग्नि के एक पुत्र का नाम।

वैरोचनि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुद्ध का एक नाम। (२) राजा बलि का एक नाम। (३) सूर्य के एक पुत्र का नाम।

वैरोचि–संज्ञा पुं० [सं०] राजा बलि के पुत्र बाण दैत्य का एक नाम।

वैरोट्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों की सोलह विद्यादेवियों में से एक विद्यादेवी का नाम।

वैरोद्धार–संज्ञा पुं० [सं०] किसी के वैर का बदला चुकाना। वैर-शुद्धि।

वैल–संज्ञा पुं० [सं०] बेल नामक वृक्ष या उसका फल।

वैलक्षण्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विलक्षण होने का भाव। विलक्षणता। (२) विभिन्न या अलग होने का भाव। विभिन्नता।

वैलक्ष्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लज्जा। संकोच। शर्म। (२) विस्मय। आश्चर्य। ताज्जुब। (३) स्वभाव की विलक्षणता।

वैलस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान। मरघट।

वैल्व–संज्ञा पुं० [सं०] बिल्व या बेल नामक फल। श्रीफल।
वि० बिल्व या बेल नामक फल के संबंध का। बेल का।

वैवधिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो अनाज आदि बेचकर अपना निर्वाह करता हो। गल्ले का व्यापारी। (२) दूत। (३) बोझ ढोनेवाला। मजदूर।

वैवर्ण्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विवर्ण या मलिन होने का भाव। मलिनता। (२) सौंदर्य या लावण्य का अभाव। (३) स्त्रियों के आठ प्रकार के सात्विक भावों में से एक प्रकार का भाव।

वैवर्त्त–संज्ञा पुं० [सं०] किसी पदार्थ का चक्र या पहिए के समान घूमना।

वैवश्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विवश होने का भाव। विवशता। लाचारी। (२) दुर्बलता। कमजोरी।

वैवस्वत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य के एक पुत्र का नाम। (२) एक रुद्र का नाम। (३) शनैश्चर। (४) पुराणानुसार एक मनु का नाम। आजकल का मन्वंतर इन्हीं मनु का माना जाता है। इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करुषक, नरिष्यंत, पृषध्र, नाभाग और कवि ये दस इनके पुत्र माने गए हैं। (५) पुराणानुसार वर्तमान मन्वंतर का नाम। इस मन्वंतर के अवतार वामन, पुरंदर इंद्र, देवता आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण आदि और ऋषि कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि कहे गए हैं। (६) एक तीर्थ का नाम।

वैवस्वतद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] मोगरा चावल।

वैवस्वती–संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा जो वैवस्वत मनु की मानी गई है।

वैवाह–वि० [सं०] विवाह संबंधी। विवाह का।

वैवाहिक–संज्ञा पुं० [सं०] कन्या अथवा वर का श्वसुर। समधी।
वि० विवाह संबंधी। विवाह का।

वैवाह्य–वि० [सं०] (१) विवाह संबंधी। विवाह का। (२) जो विवाह के योग्य हो।
संज्ञा पुं० वह समारोह या उत्सव जो विवाह के अवसर पर हो।

वैवृत्त–संज्ञा पुं० [सं०] उदात्त आदि स्वरों का क्रम।

वैशंपायन–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध ऋषि का नाम जो वेद

व्यास के शिष्य थे। कहते हैं कि महर्षि व्यासदेव की आज्ञा से इन्हीं ने जनमेजय को महाभारत की कथा सुनाई थी।

वैशद्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विशद होने का भाव। विशदता। (२) निर्मल या स्वच्छ होने का भाव। निर्मलता।

वैशली–संज्ञा स्त्री० दे० "वैशाली"।

वैशाख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मथानी में का डंडा। मंथन दंड। (२) लाल गदहपूरना। (३) बारह महीनों में से एक महीना जो चांद्र गणना से दूसरा और सौर गणना के अनुसार पहला महीना होता है। इस मास की पूर्णिमा विशाखा नक्षत्र में पड़ती है, इसी लिये इसे वैशाख कहते हैं। चैत के बाद का और जेठ के पहले का महीना। (४) एक प्रकार का ग्रह जिसका प्रभाव घोड़ों पर पड़ता है और जिसके कारण उसका शरीर भारी हो जाता और वह काँपने लगता है।

वैशाखी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह पूर्णिमा जो विशाखा नक्षत्र से युक्त हो। वैशाख मास की पूर्णिमा। (२) लाल गदहपूरना। (३) पुराणानुसार वसुदेव की एक स्त्री का नाम।

वैशाय–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वैशारद–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी विषय का अच्छा ज्ञाता हो। विशारद। पंडित।

वैशारद्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विशारद या पंडित होने का भाव। (२) निर्मलता। स्वच्छता। सफाई।

वैशाल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वैशाली–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन बौद्ध काल की एक प्रसिद्ध नगरी जो विशाल नगरी या विशालपुरी भी कहलाती थी। कहते हैं कि राजा तृणबिंदु के पुत्र विशाल ने यह नगरी बसाई थी। जैन धर्म के प्रवर्त्तक महावीर का जन्म यहीं हुआ था और बुद्ध भगवान् कई बार यहाँ गए थे। किसी समय यह नगरी बहुत प्रसिद्ध थी और यहाँ बौद्धों की बहुत प्रधानता थी। यहाँ का लिच्छवी राजवंश इतिहासों में प्रसिद्ध है। यहाँ जैनियों का भी तीर्थ था। विद्वानों का मत है कि आधुनिक मुजफ्फरपुर जिले का बसाढ़ नामक गाँव प्राचीन वैशाली का ही अवशेष है।

वैशालीय–संज्ञा पुं० [सं०] जैन धर्म के प्रवर्त्तक महावीर का एक नाम।

वैशालेय–संज्ञा पुं० [सं०] तक्षक, जो विशाल के वंशज माने जाते हैं।

वैशिक–संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य के अनुसार तीन प्रकार के नायकों में से एक प्रकार का नायक। वह नायक जो वेश्याओं के साथ भोग-विलास करता हो। वेश्यागामी नायक।

वि० वेश संबंधी। वेश का।

वैशिक्य–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन जाति का नाम।

वैशिजाता–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्रदात्री नाम की लता।

वैशीपुत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वेश्या का पुत्र।

वैशेषिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छः दर्शनों में से एक जो महर्षि कणाद कृत है और जिसमें पदार्थों का विचार तथा द्रव्यों का निरूपण है। पदार्थ विद्या।

विशेष—महर्षि कणाद का एक नाम उलूक भी है, इससे इसे 'औलूक्य दर्शन' भी कहते हैं। यह दर्शन न्याय के ही अंतर्गत माना जाता है। सिद्धांत-पक्ष में 'न्याय' कहने से दोनों का बोध होता है; क्योंकि गौतम में प्रमाण-पक्ष प्रधान है और इसमें प्रमेय-पक्ष लिया गया है। ईश्वर, जगत्, जीव आदि के संबंध में दोनों के सिद्धांत एक ही हैं। यह दर्शन गौतम से पीछे का माना जाता है। गौतम ने मुख्यतः तर्क-पद्धति और प्रमाण-विषय का ही निरूपण किया है, पर कणाद उससे आगे बढ़कर द्रव्यों की परीक्षा में प्रवृत्त हुए हैं। नौ द्रव्यों की विशेषताएँ बताने के ही कारण इनके दर्शन का नाम वैशेषिक पड़ा। नौ द्रव्य ये हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन। इनमें से पृथ्वी, जल, तेज और वायु नित्य भी हैं और अनित्य भी; अर्थात् परमाणु-अवस्था में तो ये नित्य हैं और स्थूल अवस्था में अनित्य। आकाश, काल, दिक् और आत्मा नित्य और सर्वव्यापक हैं। मन नित्य तो है, पर व्यापक नहीं, क्योंकि वह अणु-रूप है। द्रव्यों की विशेषता इसी प्रकार कणाद ने बताई है।

गौतम ने सोलह पदार्थ माने थे, पर कणाद ने छः ही पदार्थ रखे—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय। अंधकार आदि को इन छः के अंतर्गत आता न समझकर पीछे से एक सातवाँ पदार्थ 'अभाव' भी बढ़ाया गया। द्रव्यों के उद्देश (परिगणन), लक्षण और परीक्षा के उपरांत कणाद ने गुण और कर्म को लिया है जो द्रव्यों में रहते हैं। संख्या, पृथक्त्व, बुद्धि, सुख, दुःख इत्यादि २४ गुण गिनाए गए हैं। उत्क्षेपण, अवक्षेपण आदि पाँच प्रकार की गतियाँ कर्म के अंतर्गत की गई हैं। अब रहा 'सामान्य'। वह द्रव्य, गुण और कर्म इन्हीं तीनों में सत्ता के रूप में पाया जाता है। पाँचवाँ पदार्थ 'विशेष' पृथ्वी, जल, तेज और वायु के परमाणुओं में तथा शेष पाँच द्रव्यों में पाया जाता है। 'विशेष' अनंत होते हैं। 'समवाय' जहाँ कहीं पाया जायगा, वही रहेगा; अतः वह एक ही है।

वैशेषिक का परमाणुवाद प्रसिद्ध है। द्रव्यखंड के टुकड़े करते करते जब ऐसा टुकड़ा रह जाता है जिसके और टुकड़े नहीं हो सकते, तब वह परमाणु कहलाता है। परमाणु नित्य और अक्षर हैं। इन्हीं की योजना से सब

पदार्थ बनते हैं और सृष्टि होती है। आकाश को छोड़ कर जितने प्रकार के भूत होते हैं, उतने ही प्रकार के परमाणु होते हैं; जैसे—पृथ्वी-परमाणु, जल-परमाणु, तेज-परमाणु और वायु-परमाणु। वैशेषिक में दो परमाणुओं के योग को द्व्यणुक कहते हैं। आगे चलकर यही द्व्यणुक अधिक संख्या में मिलते जाते हैं, जिससे नाना प्रकार के पदार्थ बनते हैं; जैसे, तीन द्व्यणुकों से त्रसरेणु, चार द्व्यणुकों से चतुरणुक इत्यादि। कारण-गुण पूर्वक ही कार्य्य के गुण होते हैं; अतः जिस गुण के परमाणु होंगे, उसी गुण के उनसे बने पदार्थ होंगे। पदार्थों में जो नाना भेद दिखाई पड़ते हैं, वे सन्निवेश-भेद से होते हैं। तेज के संयंग से वस्तुओं के गुण में बहुत कुछ फेरफार हो जाता है।

परमाणुओं के बीच अंतर की धारणा न होने के कारण वैशेषिकों को "पीलुपाक" नाम का विलक्षण मत ग्रहण करना पड़ा। इस मत के अनुसार घड़ा आग में पड़कर इस प्रकार लाल होता है कि अग्नि के तेज से घड़े के परमाणु अलग अलग हो जाते हैं और फिर लाल होकर मिल जाते हैं। घड़े का यह बनना और बिगड़ना इतने सूक्ष्म काल में होता है कि कोई देख नहीं सकता।

परमाणुओं का संयोग सृष्टि के आदि में कैसे होता है इस संबंध में कहा गया है कि ईश्वर की इच्छा या प्रेरणा से परमाणुओं में गति या क्षोभ उत्पन्न होता है और वे परस्पर मिलकर सृष्टि की योजना करने लगते हैं। ऊपर जो नौ द्रव्य कहे गए हैं, उनमें 'आत्मा' भी है। आत्मा दो प्रकार का कहा गया है—ईश्वर और जीव। ईश्वर की सत्ता और कर्तृत्व मानने के कारण ही न्याय और वैशेषिक भक्तों और पौराणिकों के आक्षेपों से बचे रहे हैं।

और दर्शनों के समान इस दर्शन पर भाष्य नहीं मिलते। प्रशस्तपाद का "पदार्थधर्म संग्रह" नामक ग्रंथ वैशेषिक सूत्रों का भाष्य कहा जाता है; पर वह वास्तव में भाष्य नहीं है, सूत्रों के आधार पर बना हुआ अलग ग्रंथ है।

(२) कणाद का अनुयायी। वैशेषिक दर्शन का माननेवाला।

वैशेष्य—संज्ञा पुं० [सं०] विशेष का भाव। विशेषता।

वैश्य—संज्ञा पुं० [सं०] भारतीय आर्यों के चार वर्णों में से तीसरा वर्ण जो "द्विजाति" के अंतर्गत और उसमें अंतिम है। इनका धर्म यजन, अध्ययन और पशुपालन तथा वृत्ति कृषि और वाणिज्य है। आज कल अधिकांश वैश्य प्रायः वाणिज्य-व्यवसाय करके ही जीविका निर्वाह करते हैं।

विशेष—"वैश्य" शब्द वैदिक "विश्" से निकला है। वैदिक काल में प्रजा मात्र को विश् कहते थे। पुर-जब बाद में वर्णव्यवस्था हुई, तब वाणिज्य-व्यवसाय और गोपालन आदि करनेवाले लोग वैश्य कहलाने लगे। आजकल इन वैश्यों में देश और वंश आदि के भेद से अनेक जातियाँ और उपजातियाँ पाई जाती हैं। जैसे,—अग्रवाल, ओसवाल, रस्तोगी, भाटिए आदि।

वैश्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैश्य का भाव या धर्म। वैश्यत्व।

वैश्यभद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों की वैश्या और भद्रा नाम की दो देवियाँ।

वैश्यसव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सव या यज्ञ।

वैश्यस्तोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

वैश्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वैश्य जाति की स्त्री। (२) हल्दी।

वैश्रंभक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार देवताओं के एक उद्यान या बाग का नाम।

वैश्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुबेर। (२) शिव। महादेव।

वैश्रवणालय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुबेर के रहने का स्थान। (२) वट वृक्ष। बड़ का पेड़। बरगद।

वैश्रवणोदय—संज्ञा पुं० [सं०] वट वृक्ष। बरगद का पेड़।

वैश्व—वि० [सं०] विश्वदेव संबंधी। विश्वदेव का।

संज्ञा पुं० उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का एक नाम।

वैश्वजनीन—वि० [सं०] विश्व भर के लोगों से संबंध रखनेवाला। समस्त संसार के लोगों का।

संज्ञा पुं० वह जो समस्त विश्व या संसार के लोगों का कल्याण करता हो।

वैश्वज्योतिष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

वैश्वदेव—संज्ञा पुं० [सं०] वह होम या यज्ञ आदि जो विश्वदेव के उद्देश्य से किया जाय। इसमें केवल पके हुए अन्न से विश्वदेव के उद्देश्य से आहुति दी जाती है और ब्राह्मणों को भोजन कराने की आवश्यकता नहीं होती।

वैश्वदेवत—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तराषाढ़ा नक्षत्र जिसके अधिष्ठाता विश्वदेव माने जाते हैं।

वैश्वदेविक—वि० [सं०] विश्वदेव संबंधी। विश्वदेव का।

वैश्वमनस—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

वैश्वयुग—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार बृहस्पति के शोभकृत, शुभकृत, क्रोधी, विश्वावसु और पराभव नामक पाँच संवत्सरों का युग या समूह। इनमें से पहले दो संवत्सर शुभ और शेष दो अशुभ माने जाते हैं।

वैश्वानर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) चित्रक या चीता नाम का वृक्ष। (३) पित्त। पित्ता। (४) परमात्मा। (५) चेतन।

वैश्वानर चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का चूर्ण जो सेंधा नमक, अजवायन और हर्रे आदि से बनाया जाता है।

यह आमवात, शूल और गुल्म आदि के लिये बहुत उपयोगी माना जाता है।

वैश्वानर मार्ग-संज्ञा पुं० [सं०] अग्निकोण या पूर्व और दक्षिण के बीच का कोना जो वैश्वानर का मार्ग माना जाता है।

वैश्वानर वटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की गोली जो पारे, गंधक, ताँबे, लोहे, शिलाजीत, सोंठ, पीपल, चित्रक तथा मिर्च आदि के योग से बनाई जाती है और जो पेट के रोगों में उपकारी मानी जाती है।

वैश्वानरविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

वैश्वासिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिस पर विश्वास किया जाय। एतबार करने के काबिल। विश्वस्त।

वैश्वी-संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तराषाढ़ा नक्षत्र।

वैषम-संज्ञा पुं० [सं०] विषम होने का भाव। विषमता।

वैषम्य-संज्ञा पुं० [सं०] विषम होने का भाव। विषमता।

वैषयिक-वि० [सं०] विषय संबंधी। विषय का।

संज्ञा पुं० वह जो सदा विषय वासना में रत रहता हो। विषयी। लंपट।

वैषुवत-संज्ञा पुं० [सं०] विषुव संक्रांति।

वैष्किर-संज्ञा पुं० [सं०] वह पशु या पक्षी जो चारों ओर घूम फिरकर आहार प्राप्त करता हो।

वैष्टंभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

वैष्टत-संज्ञा पुं० [सं०] होम की भस्म।

वैष्टु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग। (२) वायु। (३) विष्णु।

वैष्णव-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० वैष्णवी] (१) वह जो विष्णु की आराधना करता हो। विष्णु की उपासना करनेवाला। (२) हिंदुओं का एक प्रसिद्ध धार्मिक संप्रदाय। इस संप्रदाय के लोग प्रधानतः विष्णु की उपासना करते हैं और अपेक्षाकृत विशेष आचार विचार से रहते हैं।

विशेष—भारतवर्ष में विष्णु की उपासना बहुत प्राचीन काल से चली आती है। महाभारत के समय में यह धर्म पांचरात्र या नारायणीय धर्म कहलाता था। पीछे यही भागवत धर्म के नाम से प्रसिद्ध हुआ और इसमें वासुदेव या कृष्ण की उपासना प्रधान हुई। नारायणीय आख्यान में लिखा है कि पहले नारायण ने इस धर्म का उपदेश ब्रह्मा को किया था। ब्रह्मा ने नारद को, नारद ने व्यास को और व्यास ने शुकदेव को यह धर्म बतलाया था; और तब शुकदेव से सर्वसाधारण में प्रचलित हुआ था। शंकराचार्य ने इस मत को अवैदिक सिद्ध करना चाहा था, जिसका रामानुजाचार्य ने खंडन किया। बीच में इस धर्म का कुछ ह्रास हो गया था; पर चैतन्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य आदि आचार्यों ने इस धर्म का फिर से बहुत अधिक प्रचार किया, और इस समय यह भारत के मुख्य संप्रदायों में से एक है। यह धर्म भक्ति-प्रधान है और इसमें विष्णु ही उपास्य हैं। आज कल इस संप्रदाय की अनेक शाखाएँ और प्रशाखाएँ निकल आई हैं—चैतन्य, वल्लभ इत्यादि। अधिक संप्रदाय विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण के उपासक हैं। कुछ संप्रदायवाले माथे पर के तिलक के अतिरिक्त शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि चिह्न भी तप्त धातु से शरीर में अंकित कराते हैं।

(३) यज्ञ कुंड की भस्म। (४) विष्णु पुराण।

वि० विष्णु संबंधी। विष्णु का।

वैष्णवत्व-संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णव होने का भाव या धर्म। वैष्णवता।

वैष्णवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विष्णु की शक्ति। (२) दुर्गा। (३) गंगा। (४) अपराजिता या कोयल नाम की लता। (५) शतावर। (६) तुलसी। (७) पृथ्वी। (८) श्रवण नक्षत्र। (९) एक प्रकार का साम।

वैष्णव्य-वि० [सं०] विष्णु संबंधी। विष्णु का।

वैसर्गिक-वि० [सं०] जो विसर्जन करने या त्यागने योग्य हो। त्याज्य।

वैसर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विसर्जन करने या उत्सर्ग करने की क्रिया। (२) वह जो विसर्जित या उत्सर्ग किया जाय। (३) यज्ञ की बलि।

वैसर्प-संज्ञा पुं० [सं०] विसर्प नामक रोग।

वैसादृश्य-संज्ञा पुं० [सं०] असदृश या असमान होने का भाव। असमानता। विषमता।

वैसारिण-संज्ञा पुं० [सं०] मछली।

वैसृप-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दानव का नाम।

वैस्तारिक-वि० [सं०] विस्तार संबंधी। विस्तार का।

वैस्वर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर का विकृत होना। गला बैठना।

वैहंग-वि० [सं०] विहंग संबंधी। विहंग का।

वैहार-संज्ञा पुं० [सं० वैभार] एक पर्वत जो मगध में राजगृह के पास है। वैभार।

वैहार्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके साथ हँसी मजाक आदि का संबंध हो। जैसे,—साला, सरहज, साली आदि।

वैहासिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सब को हँसाता हो। विदूषक। भाँड़।

वोक्काण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम। (२) इस देश का निवासी।

वोट-संज्ञा पुं० [अं०] वह सम्मति जो किसी सार्वजनिक पद पर किसी को निर्वाचित करने या न करने, अथवा सर्वसाधारण से संबंध रखनेवाले किसी नियम या कानून आदि के निर्धारित होने या न होने आदि के विषय में प्रकट की जाती है। किसी सार्वजनिक कार्य्य आदि के होने अथवा न होने आदि के संबंध में दी हुई अलग अलग राय। छंद।

विशेष—आज कल प्रायः सभा समितियों में निर्वाचन के संबंध में या और किसी विषय में सभासदों अथवा उपस्थित लोगों की सम्मतियाँ ली जाती हैं। यह सम्मति या तो हाथ उठाकर या खड़े होकर या कागज आदि पर लिखकर प्रकट की जाती है। इसी सम्मति को वोट कहते हैं। आज-कल प्रायः म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों तथा काउन्सिलों आदि के चुनाव में कुछ विशिष्ट अधिकार प्राप्त लोगों से वोट लिया जाता है। भारतवर्ष में प्राचीन बौद्ध काल में और उसके पहले भी इससे मिलती जुलती सम्मति देने की प्रथा थी, जिसे छंदस् या छंद कहते थे।

क्रि० प्र०—देना।—माँगना।

वोटर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसे वोट या सम्मति देने का अधिकार प्राप्त हो। वोट या सम्मति देनेवाला।

यौ०—वोटर लिस्ट।

वोटर लिस्ट-संज्ञा स्त्री० [अं० वोट + लिस्ट] वह सूची जिसमें किसी विषय में वोट देने के अधिकारियों के नाम और पते आदि लिखे रहते हैं। वोट देनेवालों की सूची।

वोटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी। मजदूरनी। दाई।

वोड़-संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी।

वोड्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोह नामक जंतु। गोनस सर्प। (२) एक प्रकार की मछली।

वोढ़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वोढ़ ऋषि। (२) कदम का पेड़।

वोढ़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋषभक नाम की ओषधि।

वोढ़ू-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि जिनके नाम से तर्पण के समय जल दिया जाता है।

वोद-वि० [सं०] आर्द्र। गीला।

वोदार-संज्ञा पुं० [सं०] मुरदासिंगी। कंकुष्ठ।

वोदाल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे बोआरी कहते हैं।

वोरक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो लिखता हो। लेखक।

वोरट-संज्ञा पुं० [सं०] कुंद का फूल या पौधा।

वोरव-संज्ञा पुं० [सं०] बोरो धान।

वोल्लाह-संज्ञा पुं० [सं०] वह घोड़ा जिसकी दुम और अयाल के बाल पीले रंग के हों।

वोहित्थ-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी नाव। जहाज।

व्यंकुश-वि० दे० "निरंकुश"।

व्यंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेंढक। (२) भाव-प्रकाश के अनुसार एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें क्रोध या परिश्रम आदि के कारण वायु कुपित होने से मुँह पर छोटी छोटी काली फुंसियाँ या दाने निकल आते हैं। (३) वह जिसका कोई अंग टूटा हुआ या विकृत हो। विकलांग। (४) दे० "व्यंग्य"।

व्यंगक-संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत।

व्यंगता-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यंग का भाव।

व्यंगत्व-संज्ञा पुं० [सं०] किसी अंग का न होना या खंडित होना। खंज।

व्यंगार्थ-संज्ञा पुं० दे० "व्यंग्य"।

व्यंगुष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गुल्म।

व्यंग्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शब्द का वह अर्थ जो उसकी व्यंजना वृत्ति के द्वारा प्रकट हो। व्यंजना शक्ति के कारण प्रकट होनेवाला साधारण से कुछ विशिष्ट अर्थ। गूढ़ और छिपा हुआ अर्थ। वि० दे० "व्यंजना"। (२) वह लगती हुई बात जिसका कुछ गूढ़ अर्थ हो। ताना। बोली। चुटकी।

क्रि० प्र०—कहना।—छोड़ना—बोलना।—सुनाना।

व्यंजन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यक्त या प्रकट करने अथवा होने की क्रिया। (२) दे० "व्यंजना"। (३) चिह्न। निशान। (४) अवयव। अंग। (५) मूँछ। (६) दिन। (७) पेड़ू के नीचे का स्थान। उपस्थ। (८) तरकारी और साग आदि जो दाल, चावल, रोटी, आदि के साथ खाए जाते हैं। (९) साधारण बोलचाल में, पका हुआ भोजन। (१०) वर्णमाला में का वह वर्ण जो बिना स्वर की सहायता से न बोला जा सकता हो। हिंदी वर्णमाला में "क" से "ह" तक के सब वर्ण व्यंजन हैं।

व्यंजनहारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार की अमंगल-कारिणी शक्ति जो विवाहिता लड़कियों के बनाए हुए खाद्य पदार्थ उठा ले जाती है।

व्यंजना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रकट करने की क्रिया। (२) शब्द की तीन प्रकार की शक्तियों या वृत्तियों में से एक प्रकार की शक्ति या वृत्ति जिससे शब्द या शब्द-समूह के वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ से भिन्न किसी और ही अर्थ का बोध होता है। शब्द की वह शक्ति जिसके द्वारा साधारण अर्थ को छोड़कर कोई विशेष अर्थ प्रकट होता हो। जैसे,—यदि कोई कहे कि "तुम्हारे चेहरे पर पाजी-पन झलक रहा है" और इसके उत्तर में दूसरा व्यक्ति कहे कि "मुझे आज ही जान पड़ा कि मेरे चेहरे में दर्पण का गुण है" तो इससे यह अर्थ निकलेगा कि तुमने मेरे दर्पण रूपी चेहरे में अपना प्रतिबिंब देखकर उसमें पाजी-पन की झलक पाई है। शब्दों की जिस शक्ति से यह अभिप्राय निकला, वही व्यंजना शक्ति है। इसके शाब्दी और आर्थी दो भेद माने गए हैं और इन दोनों भेदों के भी कई उपभेद किए गए हैं।

व्यंतर-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार एक प्रकार के पिशाच और यक्ष आदि।

व्यंश-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार विप्रचित्ति के पुत्र का नाम जो सिंहिका के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

व्यंशक–संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत । पहाड़ ।

व्यंस–संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम ।

व्यंसक–संज्ञा पुं० [सं०] धूर्त । चालाक ।

व्यंसन–संज्ञा पुं० [सं०] ठगने या धोखा देने की क्रिया ।

व्यक्त–वि० [सं०] (१) दिखाई देता या झलकता हुआ । प्रकट । जाहिर । (२) साफ । स्पष्ट । (३) स्थूल । बड़ा । (४) दुष्ट । पाजी ।

संज्ञा पुं० (१) विष्णु । (२) मनुष्य । आदमी । (३) कृत्य । कार्य । काम । (४) सांख्य के अनुसार प्रधान, अहंकार, इंद्रियाँ, तन्मात्र, महाभूत आदि चौबीस तत्व जो पुरुष से उद्भूत माने गए हैं ।

विशेष—सांख्य के मत से प्रकृति अव्यक्त और पुरुष व्यक्त है ।

व्यक्तगंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीली अपराजिता । (२) सोनजुही । (३) पिप्पली । पीपल ।

व्यक्तगणित–संज्ञा पुं० दे० "अंकगणित" ।

व्यक्तता–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यक्त होने का भाव ।

व्यक्तदर्शी–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो देखी हुई बात कहे । चश्मदीद गवाह ।

व्यक्तभुज–संज्ञा पुं० [सं०] समय । वक्त ।

व्यक्त राशि–संज्ञा स्त्री० [सं०] अंकगणित में वह राशि या अंक जो व्यक्त किया या बतला दिया गया हो । ज्ञात राशि ।

व्यक्तरूप–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

व्यक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) व्यक्त होने की क्रिया या भाव । प्रकाशित या दृश्य होना । प्रकट होना । (२) मनुष्य या किसी और शरीरधारी का सारा शरीर, जिसकी पृथक् सत्ता मानी जाती है और जो किसी समूह या समाज का अंग समझा जाता है । समष्टि का उलटा । व्यष्टि । (३) मनुष्य । आदमी । जैसे,—कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो सदा दूसरों का अपकार ही किया करते हैं ।

विशेष—यद्यपि यह शब्द संस्कृत में स्त्री लिंग है, तथापि हिंदी में "मनुष्य" या "आदमी" के अर्थ में यह प्रायः पुंलिंग ही बोला और लिखा जाता है ।

(४) भूत मात्र । (५) वस्तु । पदार्थ । चीज । (६) प्रकाश ।

व्यक्तीकृत–वि० [सं०] जो व्यक्त किया गया हो । प्रकट किया हुआ ।

व्यक्तीभूत–वि० [सं०] जो व्यक्त किया गया हो । प्रकट किया हुआ ।

व्यग्र–वि० [सं०] (१) घबराया हुआ । व्याकुल । (२) डरा हुआ । भयभीत । (३) काम में फँसा हुआ । (४) उद्यमी । उद्योगी । (५) आसक्त । (६) आग्रही ।

संज्ञा पुं० विष्णु ।

व्यग्रता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) व्यग्र होने का भाव । (२) व्याकुलता । घबराहट ।

व्यजन–संज्ञा पुं० [सं०] हवा करने का पंखा ।

व्यज्य–वि० [सं०] जिसका बोध शब्द की व्यंजना शक्ति के द्वारा हो ।

संज्ञा पुं० दे० "व्यंग्य" ।

व्यडंबक–संज्ञा पुं० [सं०] रेंड़ का पेड़ । एरंड ।

व्यड्–संज्ञा पुं० दे० "व्याड़ि" ।

व्यति–संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ा ।

व्यतिकर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यसन । (२) विनाश । बरबादी । (३) मिश्रण । मिलावट । (४) व्याप्ति । (५) संबंध । लगाव । लगाव । (६) समूह । झुंड ।

व्यतिक्रम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्रम में होनेवाला विपर्यय । सिलसिले में होनेवाला उलट-फेर । (२) बाधा । विघ्न ।

व्यतिक्रमण–संज्ञा पुं० [सं०] क्रम में विपर्यय करना । सिलसिले में उलट फेर करना ।

व्यतिक्रांत–वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार का विपर्यय हुआ हो ।

व्यतिक्रांति–संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रम में होनेवाला विपर्यय । व्यतिक्रम ।

व्यतिचार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाप कर्म करना । पाप का आचरण करना । (२) दोष । ऐब ।

व्यतिपात–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत बड़ा उत्पात । भारी उपद्रव या खराबी । (२) दे० "व्यतीपात" ।

व्यतिरिक्त–वि० [सं०] (१) भिन्न । अलग । (२) बढ़ा हुआ ।

क्रि० वि० अतिरिक्त । सिवा । अलावा ।

व्यतिरिक्तता–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यतिरिक्त होने का भाव या धर्म । विभिन्नता ।

व्यतिरेक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अभाव । (२) भेद । अंतर । भिन्नता । (३) वृद्धि । बढ़ती । (४) अतिक्रम । (५) एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमें उपमान की अपेक्षा उपमेय में कुछ और भी विशेषता या अधिकता का वर्णन होता है । उ०—(क) कहत सबै बेंदी दिए अंक दस गुनो होत । तिय लिलार बेंदी दिए अगनित बढ़त उदोत । (ख) निज परिताप द्रवहिं नवनीता । पर दुख द्रवहिं सु संत पुनीता ।

व्यतिरेकी–संज्ञा पुं० [सं० व्यतिरेकिन्] (१) वह जो किसी को अतिक्रमण करके जाता हो । (२) वह जो पदार्थों में विभिन्नता उत्पन्न करता हो ।

व्यतिषंग–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० व्यतिषक्त] (१) मिलाना । (२) विनिमय । बदला ।

व्यतिषक्त–वि० [सं०] (१) मिला हुआ । (२) आसक्त ।

विशेष—आज कल प्रायः सभा समितियों में निर्वाचन के संबंध में या और किसी विषय में सभासदों अथवा उपस्थित लोगों की सम्मतियाँ ली जाती हैं। यह सम्मति या तो हाथ उठाकर या खड़े होकर या कागज आदि पर लिखकर प्रकट की जाती है। इसी सम्मति को वोट कहते हैं। आज-कल प्रायः म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों तथा काउन्सिलों आदि के चुनाव में कुछ विशिष्ट अधिकार प्राप्त लोगों से वोट लिया जाता है। भारतवर्ष में प्राचीन बौद्ध काल में और उसके पहले भी इससे मिलती जुलती सम्मति देने की प्रथा थी, जिसे छंदस् या छंद कहते थे।

क्रि० प्र०—देना।—माँगना।

वोटर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसे वोट या सम्मति देने का अधिकार प्राप्त हो। वोट या सम्मति देनेवाला।

यौ०—वोटर लिस्ट।

वोटर लिस्ट-संज्ञा स्त्री० [अं० वोटर+लिस्ट] वह सूची जिसमें किसी विषय में वोट देने के अधिकारियों के नाम और पते आदि लिखे रहते हैं। वोट देनेवालों की सूची।

वोटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी। मजदूरनी। दाई।

वोड़-संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी।

वोडू-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोह नामक जंतु। गोनस सर्प। (२) एक प्रकार की मछली।

वोढ़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वोढू ऋषि। (२) कदम का पेड़।

वोढ़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋषभक नाम की ओषधि।

वोढू-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि जिनके नाम से तर्पण के समय जल दिया जाता है।

वोद-वि० [सं०] आर्द्र। गीला।

वोदार-संज्ञा पुं० [सं०] मुरदासिंगी। कंकुष्ठ।

वोदाल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे बोआरी कहते हैं।

वोरक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो लिखता हो। लेखक।

वोरट-संज्ञा पुं० [सं०] कुंद का फूल या पौधा।

वोरव-संज्ञा पुं० [सं०] बोरो धान।

वोल्लाह-संज्ञा पुं० [सं०] वह घोड़ा जिसकी दुम और अयाल के बाल पीले रंग के हों।

वोहित्थ-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी नाव। जहाज।

व्यंकुश-वि० दे० "निरंकुश"।

व्यंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेंढक। (२) भाव-प्रकाश के अनुसार एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें क्रोध या परिश्रम आदि के कारण वायु कुपित होने से मुँह पर छोटी छोटी काली फुंसियाँ या दाने निकल आते हैं। (३) वह जिसका कोई अंग टूटा हुआ या विकृत हो। विकलांग। (४) दे० "व्यंग्य"।

व्यंगक-संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत।

व्यंगता-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यंग का भाव।

व्यंगत्व-संज्ञा पुं० [सं०] किसी अंग का न होना या खंडित होना। खंज।

व्यंगार्थ-संज्ञा पुं० दे० "व्यंग्य"।

व्यंगुष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गुल्म।

व्यंग्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शब्द का वह अर्थ जो उसकी व्यंजना वृत्ति के द्वारा प्रकट हो। व्यंजना शक्ति के द्वारा प्रकट होनेवाला साधारण से कुछ विशिष्ट अर्थ। गूढ़ और छिपा हुआ अर्थ। वि० दे० "व्यंजना"। (२) वह लगती हुई बात जिसका कुछ गूढ़ अर्थ हो। ताना। बोली। चुटकी।

क्रि० प्र०—कहना।—छोड़ना।—बोलना।—सुनाना।

व्यंजन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यक्त या प्रकट करने अथवा होने की क्रिया। (२) दे० "व्यंजना"। (३) चिह्न। निशान। (४) अवयव। अंग। (५) मूँछ। (६) दिन। (७) पेड़ू के नीचे का स्थान। उपस्थ। (८) तरकारी और साग आदि जो दाल, चावल, रोटी, आदि के साथ खाए जाते हैं। (९) साधारण बोलचाल में, पका हुआ भोजन। (१०) वर्णमाला में का वह वर्ण जो बिना स्वर की सहायता से न बोला जा सकता हो। हिंदी वर्णमाला में "क" से "ह" तक के सब वर्ण व्यंजन हैं।

व्यंजनहारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार की अमंगल-कारिणी शक्ति जो विवाहिता लड़कियों के बनाए हुए खाद्य पदार्थ उठा ले जाती है।

व्यंजना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रकट करने की क्रिया। (२) शब्द की तीन प्रकार की शक्तियों या वृत्तियों में से एक प्रकार की शक्ति या वृत्ति जिससे शब्द या शब्द-समूह के वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ से भिन्न किसी और ही अर्थ का बोध होता है। शब्द की वह शक्ति जिसके द्वारा साधारण अर्थ को छोड़कर कोई विशेष अर्थ प्रकट होता हो। जैसे,—यदि कोई कहे कि "तुम्हारे चेहरे पर पाजी-पन झलक रहा है" और इसके उत्तर में दूसरा व्यक्ति कहे कि "मुझे आज ही जान पड़ा कि मेरे चेहरे में दर्पण का गुण है" तो इससे यह अर्थ निकलेगा कि तुमने मेरे दर्पण रूपी चेहरे में अपना प्रतिबिंब देखकर उसमें पाजी-पन की झलक पाई है। शब्दों की जिस शक्ति से यह अभिप्राय निकला, वही व्यंजना शक्ति है। इसके शाब्दी और आर्थी दो भेद माने गए हैं और इन दोनों भेदों के भी कई उपभेद किए गए हैं।

व्यंतर-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार एक प्रकार के पिशाच और यक्ष आदि।

व्यंश-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार विप्रचित्ति के पुत्र का नाम जो सिंहिका के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

व्यंशक–संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत । पहाड़ ।
व्यंस–संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम ।
व्यंसक–संज्ञा पुं० [सं०] धूर्त । चालाक ।
व्यंसन–संज्ञा पुं० [सं०] ठगने या धोखा देने की क्रिया ।
व्यक्त–वि० [सं०] (१) दिखाई देता या झलकता हुआ । प्रकट । जाहिर । (२) साफ । स्पष्ट । (३) स्थूल । मद्दा । (४) दुष्ट । पाजी ।
संज्ञा पुं० (१) विष्णु । (२) मनुष्य । आदमी । (३) कार्य । कार्य । काम । (४) सांख्य के अनुसार प्रधान, अहंकार, इंद्रियाँ, तन्मात्र, महाभूत आदि चौबीस तत्व जो पुरुष से उद्भूत माने गए हैं ।
विशेष—सांख्य के मत से प्रकृति अव्यक्त और पुरुष व्यक्त है ।
व्यक्तगंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीली अपराजिता । (२) सोनजुही । (३) पिप्पली । पीपल ।
व्यक्तगणित–संज्ञा पुं० दे० "अंकगणित" ।
व्यक्तता–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यक्त होने का भाव ।
व्यक्तदृष्टार्थ–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो देखी हुई बात कहे । चश्मदीद गवाह ।
व्यक्तभुज–संज्ञा पुं० [सं०] समय । वक्त ।
व्यक्त राशि–संज्ञा स्त्री० [सं०] अंकगणित में वह राशि या अंक जो व्यक्त किया या बतला दिया गया हो । ज्ञात राशि ।
व्यक्तरूप–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।
व्यक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) व्यक्त होने की क्रिया या भाव । प्रकाशित या उदय होना । प्रकट होना । (२) मनुष्य या किसी और शरीरधारी का सारा शरीर, जिसकी पृथक् सत्ता मानी जाती है और जो किसी समूह या समाज का अंग समझा जाता है । समष्टि का उलटा । व्यष्टि । (३) मनुष्य । आदमी । जैसे,—कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो सदा दूसरों का अपकार ही किया करते हैं ।
विशेष—यद्यपि यह शब्द संस्कृत में स्त्री लिंग है, तथापि हिंदी में "मनुष्य" या "आदमी" के अर्थ में यह प्रायः पुंलिंग ही बोला और लिखा जाता है ।
(४) भूत मात्र । (५) वस्तु । पदार्थ । चीज । (६) प्रकाश ।
व्यक्तीकृत–वि० [सं०] जो व्यक्त किया गया हो । प्रकट किया हुआ ।
व्यक्तीभूत–वि० [सं०] जो व्यक्त किया गया हो । प्रकट किया हुआ ।
व्यग्र–वि० [सं०] (१) घबराया हुआ । व्याकुल । (२) डरा हुआ । भयभीत । (३) काम में फँसा हुआ । (४) उद्यमी । उद्योगी । (५) आसक्त । (६) आग्रही ।
संज्ञा पुं० विष्णु ।
व्यग्रता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) व्यग्र होने का भाव । (२) व्याकुलता । घबराहट ।
व्यजन–संज्ञा पुं० [सं०] हवा करने का पंखा ।
व्यंग्य–वि० [सं०] जिसका बोध शब्द की व्यंजना शक्ति के द्वारा हो ।
संज्ञा पुं० दे० "व्यंग्य" ।
व्यडंबक–संज्ञा पुं० [सं०] रेंड़ का पेड़ । एरंड ।
व्यड्ड–संज्ञा पुं० दे० "व्याडि" ।
व्यति–संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ा ।
व्यतिकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यसन । (२) विनाश । बरबादी । (३) मिश्रण । मिलावट । (४) व्याप्ति । (५) संबंध । लगाव । तअल्लुक । (६) समूह । झुंड ।
व्यतिक्रम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्रम में होनेवाला विपर्यय । सिलसिले में होनेवाला उलट-फेर । (२) बाधा । विघ्न ।
व्यतिक्रमण–संज्ञा पुं० [सं०] क्रम में विपर्यय करना । सिलसिले में उलट फेर करना ।
व्यतिक्रांत–वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार का विपर्यय हुआ हो ।
व्यतिक्रांति–संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रम में होनेवाला विपर्यय । व्यतिक्रम ।
व्यतिचार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाप कर्म करना । पाप का आचरण करना । (२) दोष । ऐब ।
व्यतिपात–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत बड़ा उत्पात । भारी उपद्रव या खराबी । (२) दे० "व्यतीपात" ।
व्यतिरिक्त–वि० [सं०] (१) भिन्न । अलग । (२) बढ़ा हुआ ।
क्रि० वि० अतिरिक्त । सिवा । अलावा ।
व्यतिरिक्तता–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यतिरिक्त होने का भाव या धर्म । विभिन्नता ।
व्यतिरेक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अभाव । (२) भेद । अंतर । भिन्नता । (३) वृद्धि । बढ़ती । (४) अतिक्रम । (५) एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमें उपमान की अपेक्षा उपमेय में कुछ और भी विशेषता या अधिकता का वर्णन होता है । उ०—(क) कहत सबै बेंदी दिए अंक दस गुनो होत । तिय लिलार बेंदी दिए अगनित बढ़त उदोत । (ख) निज परिताप द्रवहिं नवनीता । पर दुख द्रवहिं सु संत पुनीता ।
व्यतिरेकी–संज्ञा पुं० [सं० व्यतिरेकिन्] (१) वह जो किसी को अतिक्रमण करके जाता हो । (२) वह जो पदार्थों में विभिन्नता उत्पन्न करता हो ।
व्यतिषंग–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० व्यतिषक्त] (१) मिलना । (२) विनिमय । बदला ।
व्यतिषक्त–वि० [सं०] (१) मिला हुआ । (२) आसक्त ।

व्यतिहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनिमय। परिवर्त्तन। बदला। (२) गाली गलौज। (३) मारपीट।

व्यतीकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यसन। (२) विनाश। बरबादी। (३) मिश्रण।

व्यतीत-वि० [सं०] बीता हुआ। गत। जैसे,—बहुत दिन व्यतीत हो गए, वहाँ से कोई उत्तर नहीं आया।

व्यतीपात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत बड़ा उत्पात। भारी उपद्रव। जैसे,—भूकंप, उल्कापात आदि। (२) अपमान। बेइज्जती। (३) ज्योतिष में विष्कंभ आदि सत्ताईस योगों में से सत्रहवाँ योग जिसमें यात्रा अथवा किसी प्रकार का शुभ काम करने का निषेध है। (४) एक प्रकार का योग जो अमावास्या के दिन रविवार या श्रवण, धनिष्ठा, आर्द्रा, अश्लेषा अथवा मृगशिरा नक्षत्र होने पर होता है। इस योग में गंगा स्नान का बहुत माहात्म्य है।

व्यतीहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनिमय। परिवर्त्तन। बदला। (२) आपस में गाली गलौज, मार पीट या इसी प्रकार का और कोई काम करना।

व्यत्यय-संज्ञा पुं० दे० "व्यतिक्रम"।

व्यत्यास-संज्ञा पुं० दे० "व्यतिक्रम"।

व्यथक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो व्यथा उत्पन्न करता हो। पीड़ा देनेवाला।

व्यथन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यथा। पीड़ा। तकलीफ। (२) वह जो व्यथा उत्पन्न करता हो। पीड़ा देनेवाला।

व्यथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पीड़ा। वेदना। तकलीफ। (२) दुःख। क्लेश। (३) भय। डर।

व्यथित-वि० [सं०] (१) जिसे किसी प्रकार की व्यथा या तकलीफ हो। (२) दुःखित। रंजीदा। (३) जिसे किसी प्रकार का शोक प्राप्त हुआ हो। (४) भीत। डरा हुआ।

व्यथ्य-वि० [सं०] (१) व्यथा देने योग्य। (२) भय उत्पन्न करनेवाला। भयानक।

व्यधन-संज्ञा पुं० [सं०] बेधने की क्रिया। विद्ध करना। बींधना।

व्यधिक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] निंदा। शिकायत।

व्यपदेश-संज्ञा पुं० [सं०] निंदा। शिकायत।

व्यपनय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनाश। बरबादी। (२) छोड़ देना। त्याग।

व्यपनयन-संज्ञा पुं० [सं०] छोड़ देना। त्याग।

व्यपरोपण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० व्यपरोपित] (१) झुकाना। (२) काटना। (३) जड़ से काटना। (४) दूर करना। हटाना।

व्यपवर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अलग होना। (२) छोड़ना। त्याग।

व्यपवर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० व्यपवर्जित] (१) छोड़ना। त्याग। (२) निवारण। (३) देना। दान।

व्यपेक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आकांक्षा। इच्छा। चाह। (२) अनुरोध। आग्रह।

व्यपोह-संज्ञा पुं० [सं०] विनाश। बरबादी।

व्यभिचार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा या दूषित आचार। कदाचार। बदचलनी। (२) स्त्री का पर-पुरुष से अथवा पुरुष का पर-स्त्री से अनुचित संबंध। छिनाला।

व्यभिचारिता-संज्ञा स्त्री० दे० "व्यभिचार"।

व्यभिचारी-संज्ञा पुं० [सं० व्यभिचारिन्] [स्त्री० व्यभिचारिणी] (१) वह जो अपने मार्ग से गिर गया हो। मार्ग-भ्रष्ट। (२) वह जिसका चाल चलन अच्छा न हो। बदचलन। (३) वह जो पर-स्त्रियों से संबंध रखता हो। पर-स्त्री-गामी। (४) दे० "संचारी" (भाव)।

व्यभिहास-संज्ञा पुं० [सं०] उपहास। ठट्ठा। मजाक।

व्यय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ का विशेषतः धन आदि का इस प्रकार काम में आना कि वह समाप्त हो जाय। किसी चीज का किसी काम में लगाना। खर्च। सरफा। खपत। जैसे,—(क) उनका व्यय १००) मासिक है। (ख) व्यर्थ अपनी शक्ति व्यय मत करो। (२) नाश। बरबादी। (३) दान। (४) छोड़ देना। परित्याग। (५) बृहस्पति के चार के एक वर्ष या संवत्सर का नाम। (६) महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।

व्ययक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो व्यय करता हो। व्यय करनेवाला।

व्ययशील-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बहुत अधिक खर्च करता हो। खर्चीले स्वभाव का। शाह-खर्च।

व्ययित-वि० [सं०] खर्च किया हुआ। व्यय किया हुआ।

व्ययी-संज्ञा पुं० [सं० व्ययिन्] वह जो बहुत व्यय करता हो। खूब खर्च करनेवाला। शाह-खर्च।

व्यर्थ-वि० [सं०] (१) जिसका कोई अर्थ या प्रयोजन न हो। बिना मतलब का। निरर्थक। (२) जिसका कोई अर्थ या मतलब न हो। बिना माने का। अर्थ-रहित। (३) जिसमें किसी प्रकार का लाभ न हो।

क्रि० वि० बिना किसी मतलब के। फजूल। योंही। जैसे,—वह दिन भर व्यर्थ घूमा करता है।

व्यर्थता-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यर्थ होने का भाव।

व्यलीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह अपराध जो काम के आवेग के कारण किया जाय। (२) अपराध। कसूर। (३) डाँट डपट। फटकार। (४) दुःख। कष्ट। तकलीफ। (५) पीठमर्द। विट। (६) विलक्षणता। अद्भुतता।

वि० (१) जो अच्छा न लगे। अप्रिय। (२) दुःख देनेवाला।

कष्टदायक। (३) बिना जान पहचान का। अपरिचित। (४) विलक्षण। अद्भुत। अजीब।

व्यवकलन–संज्ञा पुं० [सं०] एक अंक या रकम में से दूसरा अंक या रकम घटाना। बाकी निकालना।

व्यवकीर्ण–वि० [सं०] अलग किया हुआ। निकाला हुआ। जुदा किया हुआ।

व्यवच्छिन्न–वि० [सं०] (१) अलग। जुदा। (२) विभाग करके अलग किया हुआ। विभक्त। (३) निर्द्धारण किया हुआ। निश्चित।

व्यवच्छेद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पृथकता। पार्थक्य। अलगाव। (२) विभाग। खंड। हिस्सा। (३) विराम। ठहरना। (४) निवृत्ति। छुटकारा।

व्यवच्छेदक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो व्यवच्छेद या अलग करता हो।

व्यवदान–संज्ञा पुं० [सं०] किसी पदार्थ को शुद्ध और साफ करने की क्रिया। संस्कार। सफाई।

व्यवधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यवधान। परदा।

व्यवधान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह चीज जो बीच में पड़कर आड़ करती हो। परदा। (२) भेद। विभाग। खंड। (३) विच्छेद। अलग होना। (४) खतम होना। समाप्ति।

व्यवधायक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो आड़ में आता हो। छिपनेवाला। गायब होनेवाला। (२) वह जो किसी को ढकता या छिपाता हो। आड़ करने या छिपानेवाला।

व्यवधारण–संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह अवधारण या निश्चय करना।

व्यवधि–संज्ञा पुं० [सं०] व्यवधान। परदा। आड़। ओट।

व्यवशाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोड़ देना। (२) त्याग। (३) पीछे की ओर गिरना या हटना।

व्यवसर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ के विभाग करने की क्रिया। बाँट। (२) मुक्ति। छुटकारा।

व्यवसाय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह कार्य्य जिसके द्वारा किसी की जीविका का निर्वाह होता हो। जीविका। जैसे,—दूसरों की सेवा करना ही उसका व्यवसाय है। (२) रोजगार। व्यापार। जैसे,—आजकल कपड़े का व्यवसाय कुछ मंदा है। (३) कोई कार्य्य आरंभ करना। (४) निश्चय। (५) प्रयत्न। उद्योग। कोशिश। (६) उद्यम। काम धंधा। (७) इच्छा। विचार। कल्पना। (८) अभिप्राय। मतलब। (९) विष्णु का एक नाम। (१०) शिव का एक नाम।

व्यवसायी–संज्ञा पुं० [सं० व्यवसायिन्] (१) वह जो किसी प्रकार का व्यवसाय करता हो। व्यवसाय करनेवाला। (२) रोजगार करनेवाला। रोज़गारी। (३) वह जो किसी कार्य्य का अनुष्ठान करता हो।

व्यवसित–वि० [सं०] (१) जिसका अनुष्ठान किया गया हो। व्यवसाय किया हुआ। (२) जो कोई काम करने के लिये तैयार हो। उद्यत। तत्पर। (३) जो निश्चय किया जा चुका हो। निश्चित।

व्यवसिति–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यवसाय। रोज़गार।

व्यवस्था–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी कार्य्य का वह विधान जो शास्त्रों आदि के द्वारा निश्चित या निर्धारित हुआ हो।

मुहा०—व्यवस्था देना = पंडितों आदि का यह बतलाना कि अमुक विषय में शास्त्रों का क्या मत अथवा आज्ञा है। किसी विषय में शास्त्रों का विधान बतलाना।

(२) चीज़ों को अलग अलग सजाकर या ठिकाने से रखना। (३) प्रबन्ध। इंतजाम। जैसे,—विवाह की सब व्यवस्था अपने ही हाथ में है। (४) स्थिर होने का भाव। स्थिरता। स्थिति।

व्यवस्थाता–संज्ञा पुं० [सं० व्यवस्थातृ] (१) वह जो व्यवस्था करता हो। व्यवस्था या इंतजाम करनेवाला। (२) वह जो यह बतलाता हो कि अमुक विषय में शास्त्रों की क्या आज्ञा है। शास्त्रीय व्यवस्था देनेवाला।

व्यवस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उपस्थित या अस्थिर होना। व्यवस्थिति। (२) व्यवस्था। इंतजाम। प्रबंध। (३) विष्णु का एक नाम।

व्यवस्थानप्रज्ञप्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक बहुत बड़ी संख्या का नाम।

व्यवस्थापक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो यह बतलाता हो कि अमुक विषय में शास्त्रों का क्या मत है। व्यवस्था देनेवाला। (२) वह जो किसी कार्य्य आदि को नियमपूर्वक चलाता हो। (३) वह जो व्यवस्था या इंतजाम करता हो। प्रबंधकर्त्ता। इंतजामकार।

व्यवस्थापत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसमें किसी विषय की शास्त्रीय व्यवस्था या यह विधान लिखा हो कि अमुक विषय में शास्त्र की क्या आज्ञा या मत है।

व्यवस्थापन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी विषय में शास्त्रीय व्यवस्था देना या बतलाना। यह बतलाना कि अमुक विषय में शास्त्रों की क्या आज्ञा अथवा मत है। (२) किसी विषय में कुछ निश्चय, निर्धारण या निरूपण करना।

व्यवस्थापनीय–वि० [सं०] व्यवस्थापन करने के योग्य।

व्यवस्थापित–वि० [सं०] (१) जिसके संबंध में कुछ निश्चय या निरूपण किया गया हो। व्यवस्था किया हुआ। (२) जो नियमपूर्वक लगाया, रखा या किया गया हो। (३) जो नियम के अनुसार हो। नियमित।

व्यवस्थाप्य–वि० [सं०] जो व्यवस्थापन करने के योग्य हो।

व्यवस्थित–वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार की व्यवस्था या

नियम हो। जो ठीक नियम के अनुसार हो। कायदे का। जैसे,—ये सभी काम व्यवस्थित रूप से किया करते हैं।

व्यवस्थिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उपस्थित या स्थिर होना। व्यवस्थान। (२) व्यवस्था। इंतजाम।

व्यवहरण-संज्ञा पुं० [सं०] अभियोगों आदि का नियमानुसार विचार। मुकदमे की सुनाई या पेशी। व्यवहार।

व्यवहर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० व्यवहर्तृ] वह जो व्यवहार शास्त्र के अनुसार किसी अभियोग आदि का विचार करता हो। न्यायकर्त्ता।

व्यवहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्रिया। कार्य्य। काम। (२) आपस में एक दूसरे के साथ बरतना। बरताव। जैसे,—हमारा उनका इस तरह का व्यवहार नहीं है। (३) व्यापार। रोजगार। (४) लेनदेन का काम। महाजनी। (५) झगड़ा। विवाद। (६) न्याय। (७) शर्त। पण। (८) स्थिति। (९) दो पक्षों में होनेवाला वह झगड़ा जिसका फैसला अदालत से हो। मुकदमा।

व्यवहारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसकी जीविका व्यवहार से चलती हो। वह जो न्याय या वकालत आदि करता हो। (२) वह जो वयस्क हो गया हो। बालिग।

व्यवहारजीवी-संज्ञा पुं० [सं० व्यवहारजीविन्] वह जो व्यवहार या वकालत आदि के द्वारा अपनी जीविका चलाता हो।

व्यवहारज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो व्यवहार शास्त्र का ज्ञाता हो। व्यवहार जाननेवाला। (२) वह जो पूर्ण वयस्क हो गया हो। बालिग।

व्यवहारत्व-संज्ञा पुं० [सं०] व्यवहार का भाव या धर्म।

व्यवहारदर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] किसी अभियोग में न्याय और अन्याय अथवा सत्य और मिथ्या का निर्णय करना।

व्यवहारपाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यवहार के पूर्वपक्ष, उत्तर, क्रिया पाद और निर्णय इन चारों का समूह। (२) इन चारों में से कोई एक जो व्यवहार का एक पाद या अंश माना जाता है।

व्यवहार मातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वे क्रियाएँ जिनका व्यवहार में उपयोग होता है। व्यवहार शास्त्र के अनुसार होनेवाली कार्रवाइयाँ। जैसे,—मुकदमा दायर होना, पेश होना, गवाहों का बुलाया जाना, उनकी गवाही होना, जिरह और बहस होना, फैसला होना आदि। मिताक्षरा के अनुसार ऐसी क्रियाएँ संख्या में तीस हैं।

व्यवहार मूल-संज्ञा पुं० [सं०] अकरकरा। अकरकाहा।

व्यवहार विधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शास्त्र जिसमें व्यवहार संबंधी बातों का उल्लेख हो। वह शास्त्र जिसमें व्यवहार या मुकदमों आदि का विधान हो। धर्म्मशास्त्र।

व्यवहार शास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें यह बतलाया गया हो कि वादी और प्रतिवादी के विवाद का किस प्रकार निर्णय करना चाहिए, अभियोग किस प्रकार सुनना चाहिए और किस अपराध के लिये कितना दंड देना चाहिए। धर्म्मशास्त्र।

व्यवहारसिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यवहार शास्त्र के अनुसार अभियोगों का निर्णय करना।

व्यवहारस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] व्यवहार का विषय या पद।

व्यवहारासन-संज्ञा पुं० [सं०] वह आसन जिस पर अभियोगों का विचार करते समय विचार करनेवाला बैठता है। विचारासन। न्यायासन।

व्यवहारास्पद-संज्ञा पुं० [सं०] वह निवेदन जो वादी अपने अभियोग के संबंध में राजा अथवा न्यायकर्त्ता के सम्मुख करता हो। नालिश। फरियाद।

व्यवहारिक-वि० [सं०] (१) जो व्यवहार के लिये उपयुक्त या ठीक हो। व्यवहार-योग्य। (२) इंगुदी। हिंगोट।

व्यवहारिक जीव-संज्ञा पुं० [सं०] वेदांत के अनुसार विज्ञानमय कोष जो ज्ञानेंद्रिय के साथ बुद्धि के संयुक्त होने से होता है।

व्यवहारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संसार में रहकर उसके सब व्यवहार या कार्य्य करना। (२) इंगुदी का पेड़। (३) झाड़ू।

व्यवहारी-संज्ञा पुं० [सं० व्यवहारिन्] व्यवहार करनेवाला।

व्यवहार्य्य-वि० [सं०] जो व्यवहार करने के योग्य हो। काम में लाने लायक।

व्यवहित-वि० [सं०] जिसके आगे किसी प्रकार का व्यवधान या परदा पड़ गया हो। आड़ या ओट में गया हुआ। छिपा हुआ।

व्यवहृत-वि० [सं०] (१) जिसका आचरण या अनुष्ठान किया गया हो। (२) जिसका व्यवहार शास्त्र के अनुसार विचार किया गया हो। (३) जो काम में लाया गया हो।

व्यवहृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह लाभ जो व्यापार में होता है। रोजगार में होनेवाला नफा। (२) वाणिज्य। व्यापार। रोजगार। (३) कुशलता। होशियारी।

व्यवाय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेज। (२) स्त्री-प्रसंग। संभोग। मैथुन। (३) शुद्धि। (४) परिणाम। फल। नतीजा। (५) आड़। ओट। परदा। (६) विघ्न। बाधा। खलल।

व्यवाय शोष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का राजयक्ष्मा या तपेदिक जो बहुत अधिक स्त्री-प्रसंग करने से होता है।

व्यवायी-संज्ञा पुं० [सं० व्यवायिन्] (१) वह जिसे स्त्री-प्रसंग की बहुत अधिक कामना रहती हो। कामुक। (२) वह जो बीच में किसी प्रकार का व्यवधान या परदा करता हो। आड़ या रोक करनेवाला। (३) वह औषधि जो

शरीर में पहुँचकर पहले सब नाड़ियों में फैल जाय और सब पचे। जैसे,—भाँग या अफीम।

व्यश्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम जो ऋग्वेद के कई मंत्रों के द्रष्टा थे। (२) एक प्राचीन राजा का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

व्यष्टका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा।

व्यष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] समूह या समाज में से अलग किया हुआ प्रत्येक व्यक्ति या पदार्थ। वह जिसका विचार अकेले हो, औरों के साथ न हो। समष्टि का एक विशिष्ट और पृथक् अंश। समष्टि का उलटा।

व्यसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विपत्ति। आफत। (२) दुःख। कष्ट। तकलीफ। (३) पतन। गिरना। (४) विनाश। नष्ट होना। (५) कोई बुरी या अमंगल बात। (६) वह प्रयत्न जिसका कोई फल न हो। व्यर्थ का उद्योग। (७) विषय-वासना के प्रति होनेवाला अनुराग। विषयों के प्रति आसक्ति। (८) दुर्भाग्य। बदकिस्मती। (९) अयोग्य या असमर्थ होने का भाव। (१०) वह दोष जो काम या क्रोध आदि विकारों से उत्पन्न हुआ हो। जैसे,—शिकार, जूआ, स्त्री-प्रसंग, नृत्य आदि देखना और गीत आदि सुनना।

विशेष—मनु ने व्यसनों की संख्या १८ बतलाई है और उनमें से १० व्यसन कामज तथा ८ क्रोधज कहे हैं। मनु की यह भी आज्ञा है कि राजा को इन सब प्रकार के व्यसनों से बचना चाहिए।

(११) किसी प्रकार का शौक। किसी विषय के प्रति विशेष रुचि या प्रवृत्ति। जैसे,—उन्हें केवल लिखने पढ़ने का व्यसन है।

व्यसनार्त्त-वि० [सं०] जिसे किसी प्रकार की दैवी या मानुषी पीड़ा पहुँची हो।

व्यसनिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यसनी होने का भाव या धर्म्म। व्यसनित्व।

व्यसनी-संज्ञा पुं० [सं० व्यसनिन्] (१) वह जिसे किसी प्रकार का व्यसन या शौक हो। (२) वेश्यागामी। रंडीबाज।

व्यस्त-वि० [सं०] (१) घबराया हुआ। व्याकुल। (२) काम में लगा या फँसा हुआ। (३) फैला या छाया हुआ। व्याप्त। (४) फेंका हुआ। (५) इधर उधर, आगे पीछे या ऊपर नीचे किया हुआ। (६) हर एक। अलग अलग। पृथक्।

व्यस्तक-वि० [सं०] जिस में हड्डी न हो। बिना हड्डी का।

व्यस्तपद-संज्ञा पुं० [सं०] व्यवहार शास्त्र में मोहलित होने पर ऋण न चुकाना, बल्कि कुछ उज्र करना।

व्यह्न-संज्ञा पुं० [सं०] कल का बीता हुआ दिन।

व्याकरण-संज्ञा पुं० [सं०] वह विद्या या शास्त्र जिस में किसी भाषा के शब्दों के शुद्ध रूपों और वाक्यों के प्रयोग के नियमों आदि का निरूपण होता है। भाषा का शुद्ध प्रयोग और नियम आदि बतलानेवाला शास्त्र।

विशेष—व्याकरण में वर्णों, शब्दों और वाक्यों का विचार होता है; इसी लिये इसके वर्ण-विचार, शब्द-साधन और वाक्य-विन्यास ये तीन मुख्य विभाग होते हैं। व्याकरण के नियम प्रायः लिखी हुई और प्रचलित भाषा के आधार पर निश्चित किए जाते हैं; क्योंकि बोलने में लोग प्रायः प्रयोगों की शुद्धता पर उतना अधिक ध्यान नहीं रखते। व्याकरण में शब्दों के अलग अलग भेद कर लिए जाते हैं; जैसे,—संज्ञा, क्रिया, विशेषण, सर्वनाम आदि; और तब इस बात का विचार किया जाता है कि इन शब्द-भेदों का ठीक ठीक और शुद्ध प्रयोग क्या है। हमारे यहाँ व्याकरण की गणना वेदांग में की गई है।

व्याकर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० व्याकर्तृ] सृष्टि की रचना करनेवाला, परमेश्वर।

व्याकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ का बिगड़ा या बदला हुआ आकार। (२) व्याख्या।

व्याकीर्ण-वि० [सं०] जो चारों ओर अच्छी तरह फैलाया गया हो।

व्याकुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो भय या दुःख के कारण इतना घबरा गया हो कि कुछ समझ न सके। बहुत घबराया हुआ। विकल। (२) जिसे किसी बात की बहुत अधिक उत्कंठा या कामना हो। (३) कातर।

व्याकुलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) व्याकुल होने का भाव। विकलता। घबराहट। (२) कातरता।

व्याकूति-संज्ञा स्त्री० [सं०] छल। धोखा। फरेब।

व्याकृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रकाश में लाने का काम। (२) व्याख्या करने का काम। व्याख्यान। (३) रूप में परिवर्तन करने का काम।

व्याकोश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विकास। (२) स्फुटित होना। खिलना।

व्याक्रोश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी का तिरस्कार करते हुए कटाक्ष करना। (२) चिल्लाना। चिल्लाहट।

व्याक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विलंब। देर। (२) आकुल होने का भाव। घबराहट।

व्याख्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह वाक्य आदि जो किसी जटिल पद या वाक्य आदि का अर्थ स्पष्ट करता हो। किसी बात को समझाने के लिये किया हुआ उसका विस्तृत और स्पष्ट अर्थ। टीका। व्याख्यान।

विशेष—शास्त्रों या सूत्रों आदि की जो व्याख्या होती है, उसके वृत्ति, भाष्य, वार्तिक, टीका, टिप्पणी आदि अनेक भेद माने गए हैं।

(२) वह ग्रंथ जिसमें इस प्रकार अर्थ-विस्तार किया गया हो। (३) कहना। वर्णन।

व्याख्यागम्य-संज्ञा पुं० [सं०] वादी के अभियोग का ठीक ठीक उत्तर न देकर इधर उधर की बातें कहना। (व्यवहार)

वि० जो व्याख्या अथवा टीका आदि की सहायता से समझा जा सके।

व्याख्यात-वि० [सं०] जिसकी व्याख्या की गई हो।

व्याख्यातव्य-वि० [सं०] जो व्याख्या करने के योग्य हो।

व्याख्याता-संज्ञा पुं० [सं० व्याख्यातृ] (१) वह जो किसी विषय की व्याख्या करता हो। व्याख्या करनेवाला। (२) वह जो व्याख्यान देता हो। भाषण करनेवाला।

व्याख्यान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी विषय की व्याख्या या टीका करने अथवा विवरण बतलाने का काम। (२) बोलकर कोई विषय समझाने का काम। भाषण। (३) वह जो कुछ व्याख्या रूप में या समझाने के लिये कहा जाय। भाषण। वक्तृता।

व्याख्यानशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ किसी प्रकार का व्याख्यान आदि होता हो।

व्याख्या स्वर-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्वर जो न बहुत ऊँचा हो और न बहुत नीचा। मध्यम स्वर।

व्याख्येय-वि० [सं०] जो व्याख्या करने के योग्य हो। वर्णन करने या समझाने लायक।

व्याघट्टन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह रगड़ने का काम। संघर्षण। रगड़। (२) मथना। बिलोना।

व्याघात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विघ्न। खलल। बाधा।

क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

(२) आघात। प्रहार। मार। (३) ज्योतिष के विष्कंभ आदि सत्ताइस योगों में से तेरहवाँ योग जिसमें किसी प्रकार का शुभ कार्य्य करना वर्जित है। पर कुछ लोगों का मत है कि इसके पहले छः दंडों को छोड़कर शेष समय में शुभ काम किए जा सकते हैं। कहते हैं कि इस योग में जो बालक जन्म ग्रहण करता है, वह साधुओं के काम में विघ्न करनेवाला, कठोर, झूठा और निर्दय होता है। (४) काव्य में एक प्रकार का अलंकार जिसमें एक ही उपाय के द्वारा अथवा एक ही साधन के द्वारा दो विरोधी कार्य्यों के होने का वर्णन होता है। उ०—(क) लाखों काटत जगत के बंधन दीन दयाल। ता चितवनि सों तियन के मन बाँधे गोपाल। (ख) नाम प्रभाव जान शिव नीके। कालकूट फल दीन अमी के। (ग) रण ते हूवे को अमर भागत कादर कूर। यदि चाह चित करि नहीं त्रिपुरत सौंचे सूर। (घ) मिलत एक दारुन दुख देहीं। बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।

व्याघ्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाघ या शेर नामक प्रसिद्ध हिंस्र जंतु। वि० दे० "शेर"। (२) लाल रेंड़। (३) करंज।

व्याघ्रकंद-संज्ञा पुं० [सं०] लाल रेंड़।

व्याघ्रखड्डा-संज्ञा पुं० [सं०] बाघ या शेर का नाखून जो प्रायः बालकों के गले में उन्हें नजर लगने से बचाने के लिये पहनाया जाता है।

व्याघ्रग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणनुसार एक प्राचीन देश का नाम। (२) इस देस का निवासी।

व्याघ्रघंटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] किंकिणी या गोविंदी नाम की लता जो कोंकण प्रदेश में अधिकता से होती है। वैद्यक के अनुसार यह पित्तवर्धक, उष्ण, रुचिकर और विष तथा कफ की नाशक मानी गई है।

व्याघ्रघंटी-संज्ञा स्त्री० दे० "व्याघ्रघंटा"।

व्याघ्रचर्म-संज्ञा पुं० [सं०] बाघ या शेर की खाल जिस पर प्रायः लोग बैठते हैं, या जो शोभा के लिये कमरों आदि में लटकाई जाती है।

व्याघ्रतरु-संज्ञा पुं० [सं०] लाल रेंड़।

व्याघ्रतल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल रेंड़। (२) नखी या व्याघ्रनख नामक गंध द्रव्य।

व्याघ्रतला-संज्ञा स्त्री० [सं०] नख या व्याघ्रनख नामक गंध द्रव्य। बघनहा।

व्याघ्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याघ्र का भाव या धर्म।

व्याघ्रदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गुल्म।

व्याघ्रदल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नख या व्याघ्रनख नामक गंध द्रव्य। बघनहा। (२) लाल रेंड़।

व्याघ्रदला-संज्ञा स्त्री० दे० "व्याघ्रदल"।

व्याघ्रनख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाघ या शेर का नाखून जो प्रायः बच्चों के गले में उन्हें नजर से बचाने के लिये पहनाया जाता है। (२) नख या बघनहा नामक प्रसिद्ध गंध द्रव्य। वि० दे० "नख"। (३) थूहर। (४) एक प्रकार का कंद।

व्याघ्रनखक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्याघ्रनख। (२) नाखून के द्वारा लगी हुई चोट। नखक्षत।

व्याघ्रनखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नख या बघनहा नामक गंध द्रव्य। वि० दे० "नख"।

व्याघ्रनायक-संज्ञा पुं० [सं०] गीदड़।

व्याघ्रपद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़। (बृहत्सं०)

व्याघ्रपद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का गुल्म। (२) वशिष्ठ गोत्र के एक प्राचीन ऋषि का नाम जो ऋग्वेद के कई मंत्रों के द्रष्टा थे।

व्याघ्रपाद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विकंकत या कंटाई नामक वृक्ष। (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

व्याघ्रपादपी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विकंटक। गंगेरुवा।

व्याघ्रपाद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विकंकत या कंटाई नामक वृक्ष। (२) विकंटक। गर्जाहुल। (३) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

व्याघ्रपुच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] रेंड़।

व्याघ्रपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] नख या बघनहा नामक गंध द्रव्य।

व्याघ्रपुदिप-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

व्याघ्रभट-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।

व्याघ्रमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिल्ली। (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम। (३) बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम। (४) इस देश का निवासी।

व्याघ्ररूपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बंध्या ककोंटी। वन-ककोड़ा।

व्याघ्रलोम-संज्ञा पुं० [सं० व्याघ्रलोमन्] ऊपरी ओंठ पर के बाल। मूँछ।

व्याघ्रवक्त्रा-संज्ञा पुं० [सं० व्याघ्रवक्त्र] (१) बिल्ली। (२) शिव का एक नाम।

व्याघ्रसेवक-संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल। गीदड़।

व्याघ्रहस्त-संज्ञा पुं० [सं०] लाल रेंड़।

व्याघ्राक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्त्तिकेय के एक अनुचर का का नाम। (२) पुराणानुसार एक राक्षस का नाम।

व्याघ्राजिन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

व्याघ्राट-संज्ञा पुं० [सं०] भवा नामक पक्षी। भगिन चिड़िया। वि० दे० "भवा"।

व्याघ्रादनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ।

व्याघ्रायुध-संज्ञा पुं० [सं०] नख नामक गंधद्रव्य।

व्याघ्रास्य-संज्ञा पुं० [सं०] बिल्ली।

व्याघ्रिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों की एक देवी का नाम।

व्याघ्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कंटकारी। छोटी कँटाई। (२) एक प्रकार की कौड़ी। (३) नखी नामक गंधद्रव्य।

व्याघ्रीयुग-संज्ञा पुं० [सं०] बृहती या वनभंटा और कंटकारी, इन दोनों का समूह।

व्याज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मन में कोई और बात रखकर ऊपर से कुछ और करना या कहना। कपट। छल। फरेब। धोखा।
यौ०—व्याजनिंदा। व्याजस्तुति। व्याजोक्ति।
(२) बाधा। विघ्न। खलल। (३) विलंब। देर।
संज्ञा पुं० दे० "ब्याज"।

व्याजनिंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह निंदा जो व्याज अर्थात् छल या कपट से की जाय। ऐसी निंदा जो ऊपर से देखने में स्पष्ट निंदा न जान पड़े। (२) एक प्रकार का शब्दालंकार जिसमें इस प्रकार निंदा की जाती है।

व्याजस्तुति-संज्ञा स्त्री० सं० वह स्तुति जो व्याज अथवा किसी बहाने से की जाय और ऊपर से देखने में स्तुति न जान पड़े। (२) एक प्रकार का शब्दालंकार जिसमें इस प्रकार स्तुति की जाती है। इस में जो स्तुति की जाती है, वह ऊपर से देखने में निंदा सी जान पड़ती है।

व्याजोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह कथन जिसमें किसी प्रकार का छल हो। कपट भरी बात। (२) एक प्रकार का अलंकार जिसमें किसी स्पष्ट या प्रकट बात को छिपाने के लिये किसी प्रकार का बहाना किया जाता है। छेकापह्नुति से इसमें यह अंतर है कि छेकापह्नुति में निषेधपूर्वक बात छिपाई जाती है और इसमें बिना निषेध किए ही छिपाई जाती है। उ०—(क) भूप प्रतापभानु अवनीसा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा। (ख) बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किसोर देखि किन लेहू।

व्याडंब-संज्ञा पुं० [सं०] लाल रेंड़।

व्याड़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप। (२) बाघ। शेर। (३) इंद्र का एक नाम।
वि० धूर्त। वंचक।

व्याड़ायुध-संज्ञा पुं० [सं०] नख नामक गंध द्रव्य।

व्याड़ि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन का नाम जिन्होंने एक व्याकरण बनाया था।

व्यात्युक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जल क्रीड़ा।

व्यादान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फैलाव। विस्तार। (२) उद्घाटन। खोलना।

व्यादिश-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

व्याध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो जंगली पशुओं आदि को मारकर अपना निर्वाह करता हो। शिकारी। (२) प्राचीन काल की एक जाति जो जंगली पशुओं को मारकर अपना निर्वाह करती थी। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के अनुसार इसकी उत्पत्ति सर्वस्वी माता और क्षत्रिय पिता से है। (३) प्राचीन काल की शबर नामक नीच जाति।
वि० दुष्ट। पाजी। लुच्चा।

व्याधभीत-संज्ञा पुं० [सं०] मृग। हिरन।

व्याधाम-संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

व्याधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रोग। बीमारी। (२) आफत। झंझट। (३) कुट या कुट नाम की ओषधि। (४) साहित्य में एक संचारी भाव। विरह या काम आदि के कारण शरीर में किसी प्रकार का रोग होना।

व्याधिखड्ग-संज्ञा पुं० [सं०] नख नामक गंध द्रव्य।

व्याधिघात-संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास।

व्याधिघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिस से किसी प्रकार की व्याधि का नाश होता हो। (२) अमलतास।

व्याधिजित्-संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास।

व्याधित-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे किसी प्रकार की व्याधि हुई हो। रोगी। बीमार।

व्याधिनाशन–संज्ञा पुं० [सं०] चोब-चीनी ।
व्याधिरिपु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अमलतास । (२) एक प्रकार का अमलतास जिसे कर्णिकार कहते हैं ।
व्याधिविपरीत–संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी औषध जो व्याधि के विपरीत गुण करनेवाली हो । जैसे,—दस्त लाने के समय कब्जियत करनेवाली दवा ।
व्याधिस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] शरीर । बदन । जिस्म ।
व्याधिहंता-संज्ञा पुं० [सं० व्याधिहंतृ] वाराही कंद । शूकर कंद । गेंठी ।
वि० जिससे रोग का नाश हो । रोगनाशक ।
व्याधिहर–वि० [सं०] व्याधि को दूर करनेवाला । जिससे रोग नष्ट होता हो ।
व्याधी–संज्ञा स्त्री० दे० "व्याधि" ।
व्याध्य–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम ।
वि० व्याधि संबंधी । व्याधि का ।
व्यान–संज्ञा पुं० [सं०] शरीर में रहनेवाली पाँच वायुओं में से एक वायु जो सारे शरीर में संचार करनेवाली मानी जाती है । कहते हैं कि इसी के द्वारा शरीर की सब क्रियाएँ होती हैं, सारे शरीर में रस पहुँचता है, पसीना बहता और खून चलता है, आदमी उठता, बैठता और चलता फिरता है और आँखें खोलता तथा बंद करता है । भावप्रकाश के मत से जब यह वायु कुपित होती है, तब प्रायः सारे शरीर में एक न एक रोग हो जाता है ।
व्यानदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शक्ति जो व्यान वायु प्रदान करती है ।
व्यापक–वि० [सं०] (१) जो बहुत दूर तक व्याप्त हो । चारो ओर फैला हुआ । जैसे,—यह एक सर्वव्यापक सिद्धांत है । (२) जो ऊपर या चारो ओर से घेरे हुए हो । घेरने या ढकनेवाला । आच्छादक ।
व्यापकन्यास–संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार का अंगन्यास । इसमें किसी देवता का मूल मंत्र पढ़ते हुए सिर से पैर तक न्यास करते हैं ।
व्यापत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु । मौत ।
व्यापद्–संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु । मौत ।
व्यापन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) फैलाव । विस्तार । (२) दूर तक फैलना । विस्तृत होना । (३) चारो ओर से या ऊपर से घेरना या ढकना । आच्छादन करना ।
व्यापना–क्रि० अ० [सं० व्यापन] किसी चीज के अंदर फैलना । व्याप्त होना । जैसे,—(क) तुम्हें भी इस समय मोह व्यापता है । (ख) ईश्वर घट घट में व्यापता है । (ग) उस के सारे शरीर में विष व्याप गया है ।
संयो० क्रि०—जाना ।—रहना ।
व्यापनीय–वि० [सं०] व्यापन करने के योग्य ।
व्यापन्न–वि० [सं०] (१) जो किसी प्रकार की विपत्ति में पड़ा हुआ हो । आफत में फँसा हुआ । (२) मरा हुआ । मृत ।
व्यापाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मन में दूसरे के अपकार की भावना करना । किसी की बुराई सोचना । (२) मार डालना । (३) नष्ट करना । बरबाद करना ।
व्यापादक–वि० पुं० [सं०] (१) वह जो दूसरों की बुराई करने की इच्छा रखता हो । (२) वह जो हत्या या विनाश करता हो ।
व्यापादन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी को कष्ट पहुँचाने का उपाय सोचना । (२) मार डालना । वध । हत्या । (३) नष्ट करना । बरबाद करना ।
व्यापादनीय–वि० [सं०] मार डालने या नष्ट करने योग्य ।
व्यापार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कर्म । कार्य । काम । जैसे,—(क) संसार में दिन रात अनेक प्रकार के व्यापार होते रहते हैं । (ख) सोचना मस्तिष्क का व्यापार है । (२) न्याय के अनुसार विषय के साथ होनेवाला इंद्रियों का संयोग । (३) पदार्थों अथवा धन के बदले में पदार्थ लेना और देना । क्रय विक्रय का कार्य्य । रोजगार । व्यवसाय । जैसे,—(क) आजकल कपड़े का व्यापार बहुत चमक रहा है । (ख) वे रूई, सोने, चाँदी आदि कई चीजों का व्यापार करते हैं । (४) सहायता । मदद ।
व्यापारण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आज्ञा देना । (२) किसी काम में । नियुक्त करना
व्यापारी–संज्ञा पुं० [सं० व्यापारिन्] (१) वह जो किसी प्रकार का व्यापार करता हो । (२) व्यवसाय या रोजगार करनेवाला । व्यवसायी । रोजगारी ।
वि० [सं० व्यापार+ई (प्रत्य०)] (१) वह जो किसी प्रकार का व्यापार करता हो । (२) व्यवसाय या रोजगार करनेवाला । व्यवसायी । रोजगारी ।
वि० [सं० व्यापार+ई (प्रत्य०)] व्यापार संबंधी । व्यापार का । जैसे,—व्यापारी बोलचाल, व्यापारी भाव ।
व्याप्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) व्याप्त होने की क्रिया या भाव । चारो ओर या सब जगह फैला हुआ होना । (२) न्याय के अनुसार किसी एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ का पूर्ण रूप से मिला या फैला हुआ होना । एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में अथवा उसके साथ सदा पाया जाना । जैसे,—आग में धूएँ की या तिल में तेल की व्याप्ति है ।
यौ०—व्याप्ति ज्ञान ।
(३) आठ प्रकार के ऐश्वर्य्यों में से एक प्रकार का ऐश्वर्य । शेष सात ऐश्वर्य्यों के नाम ये हैं—अणिमा, लघिमा,

प्राकाम्य, महिमा, ईशित्व, वशित्व और कामावसायिता।

व्याप्ति ज्ञान–संज्ञा पुं० [सं०] न्याय के अनुसार वह ज्ञान जो साध्य को देखकर साधनवान् के अस्तित्व के संबंध में अथवा साधनवान् को देखकर साध्य के अस्तित्व के संबंध में होता है। जैसे,— धूएँ को देखकर यह समझना कि यहाँ आग भी होगी।

व्याप्तित्व–संज्ञा पुं० [सं०] व्याप्ति का भाव या धर्म्म।

व्याप्य–वि० [सं०] व्याप्त करने के योग्य। व्यापनीय।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके द्वारा कोई काम हो। साधन। हेतु। (२) कुट या कुष्ठ नामक ओषधि। (३) दे० "व्याप्ति"।

व्याम–संज्ञा पुं० [सं०] लंबाई की एक नाप।

विशेष—दोनों हाथों को जहाँ तक हो सके, दोनों बगल में फैलाने पर एक हाथ की उँगलियों के सिरे से दूसरे हाथ हाथ की उँगलियों के सिरे तक जितनी दूरी होती है, वह व्याम कहलाती है।

व्यामिश्र–संज्ञा पुं० [सं०] दो प्रकार के पदार्थों या कार्य्यों को एक में मिलाने की क्रिया।

व्यामोह–संज्ञा पुं० [सं०] मोह। अज्ञान।

व्यायाम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शारीरिक श्रम जो केवल शरीर का बल बढ़ाने के उद्देश्य से किया जाता है। कसरत। जोर। जैसे,—डंड, बैठकी करना या मुगदर, डंबल आदि हिलाना। (२) पौरुष। (३) परिश्रम। मेहनत। (४) व्यापार। काम।

व्यायामिक–वि० [सं०] व्यायाम का। व्यायाम संबंधी।

व्यायामी–संज्ञा पुं० [सं० व्यायामिन्] (१) वह जो व्यायाम करता हो। कसरत करनेवाला। कसरती। (२) वह जो बहुत परिश्रम करता हो। परिश्रमी। मेहनती।

व्यायोग–संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में दस प्रकार के रूपकों में से एक प्रकार का रूपक या दृश्य काव्य। इसकी कथावस्तु किसी ऐसे ग्रंथ से ली जानी चाहिए, जिससे सब लोग भली भाँति परिचित हों। इसके पात्रों में स्त्रियाँ कम और पुरुष अधिक होते हैं। इसमें गर्भ, विमर्ष और संधि नहीं होती। इसमें एक ही अंक रहता है और कौशिकी वृत्ति का व्यवहार होता है। इसका नायक कोई प्रसिद्ध राजर्षि, दिव्य और धीरोद्धत होना चाहिए। इसमें शृंगार, हास्य और शांत के सिवा और सब रसों का वर्णन होता है।

व्यारोष–संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध। गुस्सा।

व्यालंब–संज्ञा पुं० [सं०] लाल रेंड़।

व्याल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप। (२) दुष्ट या पाजी हाथी। (३) बाघ। शेर। (४) वह बाघ जो शिकार करने के लिये सधाया गया हो। (५) राजा। (६) विष्णु का एक नाम। (७) दंडक छंद का एक भेद। (८) कोई हिंसक जंतु।

वि० (१) दूसरों का अपकार करनेवाला। (२) दुष्ट। पाजी।

व्यालक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुष्ट या पाजी हाथी। (२) हिंसक जंतु।

व्यालकरज–संज्ञा पुं० [सं०] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य।

व्यालखड्ग–संज्ञा पुं० [सं०] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य।

व्यालगंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नाकुली नामक कंद।

व्यालग्राह–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो साँपों को पकड़ता हो। सँपेरा।

व्यालग्राही–संज्ञा पुं० [सं० व्यालग्राहिन्] वह जो साँप पकड़ने का काम करता हो। सँपेरा।

व्यालग्रीव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम। (२) इस देश का निवासी।

व्यालजिह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कँगही या कंघी नामक पौधा। महासमंगा।

व्यालता–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याल का भाव या धर्म्म। व्यालत्व। व्यालपन।

व्यालत्व–संज्ञा पुं० [सं०] व्याल का भाव या धर्म्म। व्यालता। व्यालपन।

व्यालदंष्ट्र–संज्ञा पुं० [सं०] गोखरू का पौधा।

व्यालनख–संज्ञा पुं० [सं०] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य।

व्यालपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] खेतपापड़ा।

व्यालपत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] खेतपापड़ा।

व्यालपाणिज–संज्ञा पुं० [सं०] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य।

व्यालप्रहरण–संज्ञा पुं० [सं०] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य।

व्यालबल–संज्ञा पुं० [सं०] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य।

व्यालमृग–संज्ञा पुं० [सं०] बाघ। शेर।

व्यालायुध–संज्ञा पुं० [सं०] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य।

व्यालि–संज्ञा पुं० [सं०] व्याडि नामक एक प्राचीन ऋषि जिन्होंने एक व्याकरण बनाया था।

व्यालिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो साँपों को पकड़कर अपनी जीविका चलाता हो। सँपेरा।

व्यालीढ़–संज्ञा पुं० [सं०] साँप के काटने का एक प्रकार। साँप का वह काटना जिसमें केवल एक या दो दाँत लगे हों और घाव में से खून न बहा हो।

व्यालुस–संज्ञा पुं० [सं०] साँप के काटने का एक प्रकार। साँप का वह काटना जिसमें दो दाँत भरपूर बैठे हों और घाव में से खून भी निकला हो।

ब्यालू–संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० वेला] रात के समय का भोजन। रात का खाना।

ब्यावर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] विभाग करना। हिस्सा लगाना। विभक्त करना। बाँटना।

ब्यावर्त्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चकवँड़। चक्रमर्द। (२) आगे की ओर निकली हुई नाभि। नाभिकंटक।

ब्यावर्त्तक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो ब्यावर्त्तन करता हो। पीछे की ओर लौटानेवाला।

ब्यावर्त्तन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जो पराङ्मुख किया गया हो। (२) पीछे की ओर लौटाया या मोड़ा हुआ।

ब्यावहारिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यवहार। (२) वह जो व्यवहार शास्त्र के अनुसार अभियोगों का विचार करता हो। (३) राजा का वह अमात्य या मंत्री जिसके अधिकार में भीतरी और बाहरी सब तरह के काम हों।

वि० (१) व्यवहार संबंधी। व्यवहार या बरताव का। (२) व्यवहार शास्त्र संबंधी। व्यवहार शास्त्र का।

ब्यावृत्त–वि० [सं०] (१) छूटा हुआ। निवृत्त। (२) मना किया हुआ। निषिद्ध। (३) टूटा हुआ। खंडित। (४) अलग किया हुआ। विभक्त। (५) जो मन में पसंद किया गया हो। मनोनीत। (६) चारों ओर से घेरा हुआ। (७) ऊपर से ढका हुआ। आच्छादित। (८) जिसकी प्रशंसा या स्तुति की गई हो।

ब्यावृत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खंडन। (२) आवृत्ति। (३) मन से चुनने या पसंद करने का काम। (४) चारों ओर से फेरना। (५) स्तुति। प्रशंसा। तारीफ। (६) मनाही। निषेध। (७) बाधा। अड़चन। (८) निराकरण। निर्णय। मीमांसा। (९) वियोग।

ब्यासंग–संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक आसक्ति या मनोयोग।

ब्यास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पराशर के पुत्र कृष्ण द्वैपायन जिन्होंने वेदों का संग्रह, विभाग और संपादन किया था। कहा जाता है कि अठारहों पुराणों, महाभारत, भागवत और वेदांत आदि की रचना भी इन्हींने की थी।

विशेष—इनके जन्म आदि की कथा महाभारत में बहुत विस्तार के साथ दी है। उसमें कहा गया है कि एक बार मत्स्यगंधा सत्यवती नाव खे रही थी। उसी समय पराशर मुनि वहाँ आ पहुँचे और उसे देखकर आसक्त हो गए। ये उससे बोले कि तुम मेरी कामना पूरी करो। सत्यवती ने कहा—महाराज, नदी के दोनों ओर ऋषि मुनि आदि बैठे हुए हैं और हम लोगों को देख रहे हैं। मैं कैसे आपकी कामना पूरी करूँ। इस पर पराशर मुनि ने अपने तप के बल से कुहरा खड़ा कर दिया जिससे चारों ओर अँधेरा छा गया। उस समय सत्यवती ने फिर कहा—महाराज, मैं अभी कुमारी हूँ; और आपकी कामना पूरी करने से मेरा कौमार नष्ट हो जायगा। उस दशा में मैं किस प्रकार अपने घर में रह सकूँगी? पराशर ने उत्तर दिया—नहीं, इससे तुम्हारा कौमार नष्ट नहीं होगा। तुम मुझसे वर माँगो। सत्यवती ने कहा कि मेरे शरीर से मछली की जो गंध आती है, वह न आवे। पराशर ने कहा कि ऐसा ही होगा। उसी समय से उसके शरीर से सुगंध निकलने लगी और तब से उसका नाम गंधवती या योजनगंधा पड़ा। इसके उपरांत पराशर मुनि ने उसके साथ संभोग किया जिससे उसे गर्भ रह गया; और उस गर्भ से इन्हीं व्यासदेव की उत्पत्ति हुई। इनका जन्म नदी के बीच के एक टापू में हुआ था और इनका रंग बिलकुल काला था; इसलिये इनका नाम कृष्ण द्वैपायन पड़ा। इन्होंने बचपन से ही तपस्या आरंभ की और बड़े होने पर वेदों का संग्रह तथा विभाग किया; इसलिये ये वेदव्यास कहलाए। पीछे से जब शांतनु के साथ सत्यवती का विवाह हुआ, तब अपने पुत्र विचित्रवीर्य्य के मरने पर सत्यवती ने इन्हें बुलाकर विचित्रवीर्य्य की विधवा पत्नियों (अंबिका और अंबालिका) के साथ नियोग करने की आज्ञा दी, जिससे धृतराष्ट्र और पांडु का जन्म हुआ। विदुर भी इन्हीं के वीर्य्य से उत्पन्न हुए थे। ये पाराशर्य्य, कानीन, बादरायण, सत्यभारत, सत्यव्रत और सत्यरत भी कहलाते हैं।

(२) पुराणानुसार वे अट्ठाईस महर्षि जिन्होंने भिन्न भिन्न कल्पों में जन्म ग्रहण करके वेदों का संग्रह और विभाग किया था। ये सब ब्रह्मा और विष्णु के अवतार माने जाते हैं; और इनके नाम इस प्रकार हैं—स्वयंभुव, प्रजापति या मनु, उशना, बृहस्पति, सविता, मृत्यु या यम, इंद्र, वसिष्ठ, सारस्वत, त्रिधाम, त्रयम या त्रिवृष, सुतेजा या भारद्वाज, अंतरिक्ष या धर्म्म, वप्रवन् या सुचक्षु, त्र्यारुणि, धनंजय, कृतंजय, ऋतंजय, भरद्वाज, गौतम, उत्तम या हर्य्यात्म, वाचश्रवा या नारायण (इन्हें वेन भी कहते हैं), सोममुख्यायन या तृणबिंदु, ऋक्ष या वाल्मीकि, शक्ति, पराशर, जातूकर्ण और कृष्ण द्वैपायन। (३) वह ब्राह्मण जो रामायण, महाभारत या पुराणों आदि की कथाएँ लोगों को सुनाता हो। कथावाचक। (४) वह रेखा जो किसी बिलकुल गोल रेखा या वृत्त के किसी एक स्थान से बिलकुल सीधी चलकर दूसरे सिरे तक पहुँची हो। (५) विस्तार। फैलाव।

ब्यासकूट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत में आए हुए वेदव्यास के कूट श्लोक। (२) वे कूट श्लोक जो सीताहरण

होने पर रामचंद्रजी ने माल्यवान् पर्वत पर कहे थे और जिनसे उन्हें कुछ शांति मिली थी।

व्यासक्त-वि० [सं०] जो बहुत अधिक आसक्त हुआ हो। जिसका मन बेतरह आ गया हो।

व्यासगीता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

व्यासता-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास का भाव या धर्म्म। व्यासत्व।

व्यासतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।

व्यासत्व-संज्ञा पुं० [सं०] व्यास का भाव या धर्म्म।

व्यासमूर्त्ति-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

व्यासवन-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन वन का नाम।

व्याससूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वेदांत सूत्र।

व्यासस्थली-संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन पवित्र तीर्थ का नाम।

व्यासारण्य-संज्ञा पुं० [सं०] व्यासवन नामक प्राचीन वन।

व्यासार्द्ध-संज्ञा पुं० [सं०] व्यास का आधा भाग। किसी वृत्त के केंद्र से उसके किसी छोर तक की रेखा।

व्यासासन-संज्ञा पुं० [सं०] वह आसन जिस पर कथा कहनेवाले व्यास बैठकर कथा कहते हैं।

व्यासिद्ध-वि० [सं०] (१) मना किया हुआ। निषिद्ध। (२) रुका हुआ। अवरुद्ध।

व्यासीय-वि० [सं०] व्यास संबंधी। व्यास का।

व्याहत-वि० [सं०] (१) मना किया हुआ। निवारित। निषिद्ध। (२) व्यर्थ।

व्याहति-संज्ञा स्त्री० [सं०] बाधा डालना। खलल पहुँचाना।

व्याहरण-संज्ञा पुं० [सं०] कथन। उक्ति।

व्याहार-संज्ञा पुं० [सं०] वाक्य। जुमला।

व्याहृत-वि० [सं०] कहा हुआ। कथित।

व्याहृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कथन। उक्ति। (२) भूः, भुवः स्वः इन तीनों का मंत्र। (कहते हैं कि जहाँ और कोई मंत्र न हो, वहाँ इसी व्याहृति मंत्र से काम लेना चाहिए।)

व्युच्छित्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] विनाश। बरबादी।

व्युच्छेत्ता-संज्ञा पुं० [सं० व्युच्छेतृ] विनाश करनेवाला। बरबाद करनेवाला।

व्युत्क्रम-संज्ञा पुं० [सं०] क्रम में उलट फेर होना। व्यतिक्रम। गड़बड़ी।

व्युत्क्रांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] पहेली।

व्युत्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वतंत्र या स्वाधीन होकर काम करना। (२) किसी के विरुद्ध आचरण करना। खिलाफ चलना। (३) रुकावट डालना। रोकना। (४) समाधि। (५) एक प्रकार का नृत्य। (६) योग के अनुसार चित्त की क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त ये तीनों अवस्थाएँ या चित्त-भूमियाँ जिनमें योग का साधन नहीं हो सकता। इन भूमियों में चित्त बहुत चंचल रहता है।

व्युत्पत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी पदार्थ आदि की विशिष्ट उत्पत्ति। किसी चीज का मूल उद्गम या उत्पत्ति स्थान। (२) शब्द का मूल रूप। वह शब्द जिससे कोई दूसरा शब्द निकला हो। (३) किसी विज्ञान या शास्त्र आदि का अच्छा ज्ञान। जैसे,—दर्शन शास्त्र में उनकी अच्छी व्युत्पत्ति है।

व्युत्पन्न-वि० [सं०] (१) जिसका संस्कार हो चुका हो। संस्कृत। (२) जिसका किसी विज्ञान या शास्त्र में अच्छा प्रवेश हो। जो किसी शास्त्र आदि का अच्छा ज्ञाता हो।

व्युत्पादक-वि० [सं०] व्युत्पत्ति करनेवाला। उत्पन्न करनेवाला।

व्युत्पादन-संज्ञा पुं० [सं०] व्युत्पत्ति।

व्युपदेश-संज्ञा पुं० [सं०] ठगने या धोखा देने का काम। ठगी।

व्युपरम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शांति। (२) छुटकारा। निवृत्ति। (३) स्थिति।

व्युपशम-संज्ञा पुं० [सं०] अशांति।

व्युष-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य्य के उदय होने का समय। प्रातःकाल। सवेरा।

व्युषिताश्व-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम।

व्युष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रभात। तड़का। (२) दिन। (३) फल।
वि० जला या झुलसा हुआ।

व्युष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) फल। (२) समृद्धि। (३) स्तुति। प्रशंसा। (४) प्रकाश। उजाला। (५) प्रभात। तड़का। (६) दाह। जलन। (७) इच्छा। कामना। ख्वाहिश।

व्यूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम। (२) इस देश का निवासी।

व्यूढ़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो व्यूह बनाकर खड़ा हो। (२) वह जिसका विवाह हो चुका हो। विवाहित।
वि० (१) स्थूल। मोटा। (२) उत्तम। बढ़िया। (३) तुल्य। समान। (४) दृढ़। मजबूत।

व्यूढ़ि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विन्यास। सजावट। (२) स्थूलता। मोटाई।

व्यूत-वि० [सं०] बुना हुआ।

व्यूति-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपड़े आदि बुनने की क्रिया। बुनाई।

व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। जमघट। (२) निर्माण। रचना। (३) तर्क। (४) शरीर। बदन। (५) सेना। फौज। (६) परिणाम। नतीजा। (७) युद्ध के समय की जानेवाली सेना की स्थापना। लड़ाई के समय की अलग

वह जो यज्ञ आदि करता हो। यजमान। (३) ब्रह्मचारी। (४) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

व्रतेयु-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार रौद्राश्व के एक पुत्र का नाम।

व्रतेश-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

व्रतोपह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

व्रत्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने कोई व्रत धारण किया हो। (२) ब्रह्मचारी।

व्रश्चन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना, चाँदी आदि काटने की छेनी। (२) वह बुरादा जो लकड़ी आदि चीरने पर गिरता है। (३) कुल्हाड़ी। (४) छेदने या काटने की क्रिया।

व्राचड़-संज्ञा स्त्री० [अप०] (१) अपभ्रंश भाषा का एक भेद जिसका व्यवहार आठवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक सिंध प्रांत में था। (२) पैशाचिका भाषा का एक भेद।

व्राज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ता। (२) दल। समूह। (३) जाना। गमन।

व्राजपति-संज्ञा पुं० [सं०] दल या समूह का नायक।

व्रात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। दल। (२) मनुष्य। आदमी। (३) वह परिश्रम जो जीविका के लिये किया जाय।

व्रातजीवन-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शारीरिक परिश्रम करके अपना निर्वाह करता हो।

व्रात्य-वि० [सं०] व्रत संबंधी। व्रत का।

संज्ञा पुं० (१) वह जिसके दस संस्कार न हुए हों। (२) वह जिसका उपनयन या यज्ञोपवीत संस्कार न हुआ हो। ऐसा मनुष्य पतित और अनार्य्य समझा जाता है और उसे वैदिक कृत्य आदि करने का अधिकार नहीं होता। शास्त्रों में ऐसे व्यक्ति के लिये प्रायश्चित्त का विधान किया गया है।

विशेष—प्राचीन वैदिक काल में "व्रात्य" शब्द प्रायः परब्रह्म का वाचक माना जाता था, और अथर्ववेद में "व्रात्य" की बहुत अधिक महिमा कही गई है। उसमें वह वैदिक कार्य्यों का अधिकारी, देवप्रिय, ब्राह्मणों और क्षत्रियों का पूज्य, यहाँ तक कि स्वयं देवाधिदेव कहा गया है। परंतु परवर्ती काल में यह शब्द पतित और निकृष्ट का वाचक हो गया।

(३) वह पुरुष जो असवर्ण माता-पिता से उत्पन्न हो। दोगला। वर्ण-संकर।

व्रात्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्रात्य का भाव या धर्म्म। व्रात्यत्व।

व्रात्यत्व-संज्ञा पुं० [सं०] व्रात्य का भाव या धर्म्म। व्रात्यता।

व्रात्ययाजक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो व्रात्यों को यज्ञ कराता हो।

व्रात्यस्तोम-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का यज्ञ जो व्रात्य या संस्कार-हीन लोग किया करते थे।

व्रीड़-संज्ञा पुं० [सं०] लज्जा। शरम।

व्रीड़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लज्जा। शरम।

व्रीहि-संज्ञा पुं० [सं०] धान। चावल।

व्रीहिकांचन-संज्ञा पुं० [सं०] मसूर।

व्रीहितुंदिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवधान्य।

व्रीहिद्रोण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गुल्म।

व्रीहिपर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शालिपर्णी।

व्रीहिभेद-संज्ञा पुं० [सं०] चेना धान।

व्रीहिमुख-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार प्राचीन काल का एक प्रकार का शस्त्र जिसका व्यवहार शल्य चिकित्सा में होता था

व्रीहिराजक-संज्ञा पुं० [सं०] चेना धान।

व्रीहिश्रेष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] शालि धान्य।

व्रीही-संज्ञा पुं० [सं० व्रीहिन्] वह खेत जिसमें धान बोया हो।

संज्ञा पुं० दे० "व्रीहि"।

व्रीह्यागार-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ पर बहुत सा धान रखा जाता हो। धान का गोदाम।

व्रीह्यपूप-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का पूआ जो चावल को पीसकर बनाया जाता था।

——व समाप्त——

श

श—हिंदी वर्णमाला में व्यंजन का तीसवाँ वर्ण। इसका उच्चारण प्रधानतया तालु की सहायता से होता है इससे इसे तालव्य श कहते हैं। यह महाप्राण है और इसके उच्चारण में एक प्रकार का घर्षण होता है; इसलिये इसे ऊष्म भी कहते हैं। आभ्यंतर प्रयत्न के विचार से यह ईषत् स्पृष्ट है; और इसमें बाह्य प्रयत्न श्वास और घोष होता है।

शं-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कल्याण। मंगल। (२) सुख। (३) शांति। (४) राग का अभाव। बाह्य वस्तुओं से वैराग्य। (५) शाक।

वि० शुभ।

शंक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैल जो छकड़ा खींचता है। (२) भय। डर। आशंका।

शंकना*-क्रि० अ० [सं० शंका] शंका करना। भय करना। डरना। उ०—(क) साँसति शंकि चली, डरपेहु ते किंकर, ते करनी मुख मोरे।—तुलसी। (ख)—शंकयो शंभु शीकजा समेत देत मेरो शीक हाकपद देत ही, सुशंक्यो सुरपाल है। भक्तमाल।

शंकनीय-वि० [सं०] शंका करने योग्य। भय के योग्य।

शंकर-वि० [सं०] (१) मंगल करनेवाला। (२) शुभ। (३) लाभदायक।

संज्ञा पुं० (१) शिव का एक नाम जो कल्याण करनेवाले माने जाते हैं। महादेव। शंभु।

यौ०—शंकर की लकड़ी = कहारों की परिभाषा में ऊख। (जब कहार पालकी लेकर चलते हैं और रास्ते में उन्हें ऊख पड़ी हुई मिलती है, तब आगेवाला कहार पीछेवाले कहार को सचेत करने के लिये इस पद का प्रयोग करता है।)

(२) दे० "शंकराचार्य्य"। (३) भीमसेनी कपूर। (४) कबूतर। (५) एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १६ और १० के विश्राम से २६ मात्राएँ होती हैं और अंत में गुरु लघु होता है। (६) एक राग जो मेघ राग का आठवाँ पुत्र कहा गया है। कहते हैं कि इसका रंग गोरा है; श्वेत वस्त्र धारण किए हुए है; तीक्ष्ण त्रिशूल इसके हाथ में है; पान खाए और अरगजा लगाए स्त्री के साथ विहार करता है। शास्त्रों में यह संपूर्ण जाति का कहा गया है। रात्रि का प्रथम पहर इसके गाने का समय है; और यों रात्रि में किसी समय गाया जा सकता है।

संज्ञा पुं० दे० "संकर" उ०—शंकर वरण पशु पक्षी में ही पाइयत अलकही पातत अरु अंग निधारही।—गुमान।

शंकर का फूल-संज्ञा पुं० [सं० शंकर + फूल] शंखोदरी। गुलपरी।

शंकरचूर-संज्ञा स० [सं०] एक प्रकार का सर्प। कहते हैं कि इसकी उत्पत्ति पातराज और दूधराज सर्प के जोड़े से होती है। यह कभी कभी ९, १० हाथ लंबा होता है। इसके जहर के दाँत बड़े होते हैं, इसी से इसका काटना सांघातिक होता है। यह बहुत कम देखने में आता है और बंग देश में केवल सुंदर बन में होता है। यह बहुत भयंकर होता है और इसका पकड़ना बड़ा कठिन है।

शंकरजटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रुद्रजटा। जटाधारी। (२) सागूदाना। साबूदाना। (३) एक प्रकार की विटपन।

शंकर ताल-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार का ताल। इसमें ११ मात्राएँ होती हैं, जिसमें ९ आघात और २ खाली होते हैं। इसके मृदंग के बोल इस प्रकार हैं—धा धिन ता देन लूगा केटे ताग धाधिन ता, देत लूगा तेटे केटे नाग देत तेटे कता गदि घेने। धा।

शंकरतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

शंकरप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीतर पक्षी। (२) धतूरा। (३) गूमा। द्रोणपुष्पी। गोम।

शंकरमत्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लोहा जिसे शंकर लोह भी कहते हैं।

शंकरवाणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंकर का वाक्य अर्थात् ब्रह्म वाक्य जिसका सत्य होना परम निश्चित माना जाता है। सदा ठीक घटनेवाली बात।

शंकरशुक्र-संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

शंकर शैल-संज्ञा पुं० [सं०] महादेवजी का पर्वत, कैलास। उ०—शंकरशैल शिला तल मध्य किधौं शुक की अवली फिरि आई।—केशव।

शंकरस्वामी-संज्ञा पुं० दे० "शंकराचार्य्य"।

शंकरा-संज्ञा पुं० [सं० शंकर] (१) एक प्रकार का राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह दीपक राग का पुत्र माना जाता है। वि० दे० "शंकर" (७) और "शंकराभरण"। (२) शमी। सफेद कीकर। (३) मजीठ। (४) शिवा। भवानी। पार्वती।

वि० स्त्री० कल्याण करनेवाली। मंगल करनेवाली।

शंकराचारी-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीशंकराचार्य्य द्वारा संस्थापित शैव-धर्म का अनुयायी।

शंकराचार्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] अद्वैत मत के प्रवर्त्तक एक प्रसिद्ध शैव आचार्य्य जिनका जन्म सन् ७८८ ई० में केरल देश

में कालपी अथवा कायल नामक ग्राम हुआ में हुआ था; और जो ३२ वर्ष की अल्प आयु में सन् ८२० ई० में केदारनाथ के समीप स्वर्गवासी हुए थे। इनके पिता का नाम शिवगुरु और माता का नाम सुभद्रा था। बहुत दिनों तक सपत्नीक शिव की आराधना करने के अनंतर शिवगुरु ने पुत्र रत्न पाया था, अतः उसका नाम शंकर रखा। जब ये तीन ही वर्ष के थे, तब इनके पिता का देहांत हो गया था। ये बड़े ही मेधावी तथा प्रतिभाशाली थे। छः वर्ष की अवस्था में ही ये एक प्रकाण्ड पंडित हो गए थे और आठ वर्ष की अवस्था में इन्होंने संन्यास ग्रहण किया था। इनके संन्यास ग्रहण करने के समय की कथा बड़ी विचित्र है। कहते हैं कि माता अपने एक मात्र पुत्र को संन्यासी बनने की आज्ञा नहीं देती थी। एक दिन जब शंकर अपनी माता के साथ किसी आत्मीय के यहाँ से लौट रहे थे, तब नदी पार करने के लिये वे उसमें घुसे। गले भर पानी में पहुँचकर इन्होंने माता को संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा न देने पर डूब मरने की धमकी दी। इससे भयभीत होकर माता ने तुरंत इन्हें संन्यासी होने की आज्ञा प्रदान की और इन्होंने गोविंद स्वामी से संन्यास ग्रहण किया। इन्होंने ब्रह्मसूत्रों की बड़ी ही विशद और रोचक व्याख्या की है। पहले ये कुछ दिनों तक काशी में रहे थे; और तब इन्होंने विजिलबिंदु के ताल वन में मंडन मिश्र को सपत्नीक शास्त्रार्थ में परास्त किया। इन्होंने समस्त भारतवर्ष में भ्रमण करके बौद्ध धर्म्म को मिथ्या प्रमाणित करके वैदिक धर्म्म को पुनरुज्जीवित किया था। उपनिषदों और वेदांत सूत्र पर लिखी हुई इनकी टीकाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने भारतवर्ष में चार मठों की स्थापना की थी जो अभी तक बहुत प्रसिद्ध और पवित्र माने जाते हैं, और जिनके प्रबंधक तथा गद्दी के अधिकारी शंकराचार्य्य कहे जाते हैं। ये चारों स्थान निम्नलिखित हैं—(१) बद्रिकाश्रम, (२) करवीरपीठ, (३) द्वारिका पीठ और (४) शारदा पीठ। इन्होंने अनेक विधर्मियों को भी अपने धर्म्म में दीक्षित किया था। ये शंकर के अवतार माने जाते हैं।

शंकरादि–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद आक। सफेद मदार।

शंकराभरण–संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक प्रकार का राग जो नटनारायण राग का पुत्र माना जाता है। इसके गाने का समय प्रभात है; और किसी किसी के मत से सायंकाल में १६ दंड से २० दंड तक भी गाया जा सकता है।

शंकरालय–संज्ञा पुं० [सं०] कैलास।

शंकरावास–संज्ञा पुं० [सं०] कैलास।

शंकरावास कपूर–संज्ञा पुं० [सं०] भीमसेनी कपूर। बरास।

शंकराह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी का वृक्ष।

शंकरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिव की पत्नी पार्वती। (२) मंजिष्ठा। मजीठ। (३) शमी का वृक्ष। (४) एक रागिनी जो मालकोश राग की सहचरी मानी जाती है।

वि० कल्याण करनेवाली। मंगल करनेवाली।

शंकर्षण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम। (२) रोहिणी के पुत्र का नाम।

शंकुच–संज्ञा स्त्री० [सं०] सकुची मछली।

शंका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मन में होनेवाला अनिष्ट का भय। डर। खौफ। खटक। उ०—(क) देइ ग्रान शंकासन काहू। वक चंद्रमहि ग्रसै न राहू।—तुलसी। (ख) शंका दै दशानन को हंका दै सुबंका वीर, डंका दै विजय को कपि कूद पर्‍यो लंका में।—पद्माकर। (२) किसी विषय की सत्यता या असत्यता के संबंध में होनेवाला संदेह। आशंका। संशय। शक। उ०—(क) नृप विलोकि शंका उपजाया। सजल नयन मुख वचन न आवा।—सबल। (ख) तुम्हहिं वरण चाहत हौं आवहि। पै हिडंब शंका मन आवहि।—सबल। (३) साहित्य के अनुसार एक संचारी भाव। अपने किसी अनुचित व्यवहार अथवा किसी और कारण से होनेवाली इष्ट-हानि की चिंता।

शंका अतिचार–संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार एक प्रकार का पाप या अतिचार जो जिन-वचन में शंका करने से होता है।

शंकित–वि० [सं०] [स्त्री० शंकिता] (१) डरा हुआ। भयभीत। (२) जिसे संदेह हुआ हो। (३) अनिश्चित। संदेहयुक्त। उ०—दशन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ, शेष संकुचित, शंकित पिनाकी।—तुलसी।

संज्ञा पुं० भटेउर या चोरक नाम का गंध द्रव्य।

शंकितवर्णक–संज्ञा पुं० [सं०] चोर।

शंकु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोई नुकीली वस्तु। (२) मेख। कील। (३) खूँटी। (४) भाला। बरछा। (५) गाँसी। फल। (६) लीलावती के अनुसार दस लक्ष कोटि की एक संख्या। शंख। (७) एक प्रकार की मछली। (८) कामदेव। (९) शिव। (१०) राक्षस। (११) विष। (१२) हंस। (१३) वल्मीक। बाँबी। (१४) कलुष। पाप। (१५) प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा। (१६) बारह अंगुल की एक नाप। (१७) बारह अंगुल की एक खूँटी जिसका व्यवहार प्राचीन काल में सूर्य्य या दीए की छाया आदि मापने में होता था। (१८) वृक्षों में की रस खींचने की शक्ति। (१९) गावदुम खंभा जिसके ऊपर का हिस्सा नुकीला और नीचे का मोटा हो। (२०

पुराणानुसार उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के नवरत्न पंडितों में से एक। (२१) उग्रसेन का एक पुत्र। (२२) दाँव। (२३) पत्तों की नसें। (२४) नखी नामक गंध द्रव्य। (२५) लिंग। (२६) शिव के अनुचर एक गंधर्व का नाम।

शंकुकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके कान शंकु के समान लंबे और नुकीले हों। (२) गदहा। (३) एक नाग का नाम।

शंकुकर्णी-संज्ञा पुं० [सं० शंकुकर्णिन्] शिव। महादेव।

शंकुचि-संज्ञा स्त्री० [सं०] सकुची मछली।

शंकुच्छाया-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की बारह अंगुल की एक नुकीली खूँटी जिसका ऊपरी भाग नुकीला होता था। इसकी छाया से समय का परिमाण मालूम किया जाता था।

शंकुतरु-संज्ञा पुं० [सं०] साल का वृक्ष।

शंकुद्वार-संज्ञा पुं० [सं०] गुजरात के समीप के एक छोटे टापू का नाम। यहाँ शंकु नारायण की मूर्ति है।

शंकुनारायण-संज्ञा पुं० [सं०] नारायण की वह मूर्ति जो शंकुद्वार टापू में है।

शंकुफणी-संज्ञा पुं० [सं० शंकुफणिन्] जल में रहनेवाले जंतु। जलचर।

शंकुफलिका, शंकुफली-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद कीकर।

शंकुमती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक छंद जिसके पहले पाद में पाँच और शेष तीनों में छः छः या इससे कुछ न्यूनाधिक वर्ण होते हैं।

शंकुमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मगर। (२) चूहा।

शंकुमुखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

शंकुर-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दानव का नाम।
वि० भयंकर। भीषण।

शंकुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुपारी काटने का सरौता।

शंकुवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] साल का वृक्ष।

शंकुशिर-संज्ञा पुं० [सं० शंकुशिरस्] भागवत के अनुसार एक असुर का नाम।

शंकोच, शंकोचि-संज्ञा पुं० [सं०] सकुची मछली।

शंकोशिक-वि० [सं०] नैमित्तिक। (सांख्य)

शंख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का बड़ा घोंघा जो समुद्र में पाया जाता है। इसे एक प्रकार का जल जंतु, जिसे शंख कहते हैं, अपने रहने के लिये तैयार करता है। लोग इस जंतु को मारकर उसका यह कलेवर बजाने के उपयोग में लाते हैं। यह बहुत पवित्र समझा जाता है और देवता आदि के सामने तथा लड़ाई के समय मुँह से फूँककर बजाया जाता है। पुराणों के अनुसार विष्णु भगवान के चारों हाथों में से एक हाथ में शंख भी रहता है। इसके दो भेद होते हैं। एक दक्षिणावर्त्त और दूसरा वामावर्त्त। इनमें से दक्षिणावर्त्त बहुत कम मिलता है। वैद्यक के अनुसार यह नेत्रों को हितकारी, पित्त, कफ, रुधिर-विकार, विष-विकार, वायगोला, शूल, श्वास, अजीर्ण, संग्रहणी और मुँहासे को नष्ट करनेवाला माना गया है। दक्षिणावर्त्त में इससे भी अधिक गुण होते हैं। कहते हैं कि जिसके घर में यह रहता है, उसके धन की अधिक वृद्धि होती है। वामावर्त्त ही अधिक मिलता है और यही औषध के काम आता है। जो शंख उज्ज्वल और चमकदार होता है, वह उत्तम समझा जाता है। इसको विधिपूर्वक शुद्ध कर भस्म बनाकर काम में लाते हैं। यह भस्म सब प्रकार के ज्वर, सब प्रकार की खाँसी, श्वास, अतिसार आदि रोगों में उचित अनुपान से अत्यंत लाभकारी है। यह स्तंभक और वाजीकरण भी है। इसकी मात्रा चार रत्ती से डेढ़ माशे तक है।

मुहा०—शंख बजना = विजय प्राप्त होना। शंख बजाना = किसी की बुराई या हानि देखकर आनंद मनाना।

यौ०—शंख का मोती = एक प्रकार का कल्पित मोती। कहते हैं कि यह समुद्र के अंतर्गत दुर्गम स्थानों में शंख के अंदर उत्पन्न होता है।

पर्या०—कंबु। कंबोज। पावनध्वनि। अंतःकुटिल। सुनाद। महानाद। मुखर। बहुनाद। दीर्घनाद। हरिप्रिय।

(२) दस खर्व की एक संख्या। एक लाख करोड़। (३) कनपटी। (४) हाथी का गंडस्थल, अथवा दाँतों के बीच का भाग। (५) चरण चिह्न। (६) एक दैत्य का नाम जो देवताओं को जीतकर वेदों को चुरा ले गया था और जिसके हाथों से वेदों का उद्धार करने के लिये भगवान् को मत्स्यावतार धारण करना पड़ा था। शंखासुर। (७) नखी नाम का सुगंधित द्रव्य। (८) एक निधि। उ०—शंख रायँ नीलाउप नवई निद्धि मुकुंद।—विश्राम। (९) राजा विराट् का पुत्र। उ०—उत्तर शंख नृपति सुत धीरा। औरो सजे अमित रणधीरा।—सबल। (१०) एक राजमंत्री का नाम। उ०—सुरति सुधन्वा जू सों दोष के कारन मरे शंख औ लिखित विप्र भयो मैलो मन है।—नाभा। (११) कुबेर की निधि के देवता। (१२) चंपक पुरी के राजा हंसध्वज का उपरोहित और लिखित का भाई। उ०—शंख लिखित उपरोहित दोई। रहे सदाँ जानत सब कोई।—सबल। (१३) धारा नगर के राजा गंधर्वसेन का बड़ा लड़का और राजा विक्रमादित्य का बड़ा भाई जिसे मारकर विक्रम ने गद्दी प्राप्त की थी। (१४) छप्पय के ७१ भेदों में से एक भेद। इसमें १५२ मात्राएँ या १४९ वर्ण होते हैं, जिनमें से ३ गुरु और शेष १४६ लघु होते हैं। (१५) दंडक वृत्त के अंतर्गत प्रचित का एक भेद। इसमें दो नगण और चौदह रगण

होते हैं। (१६) कपाल। लिलार। (१७) पवन के चलने से होनेवाला शब्द।

शंखकंद–संज्ञा पुं० [सं०] शंखालु। सलि।

शंखक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें बहुत गरमी होती है और त्रिदोष बिगड़ने से कनपटी में दाह सहित लाल रंग की फिल्ली निकल आती है, जिससे सिर और गला अकड़ जाता है। कहते हैं कि यह असाध्य रोग है और तीन दिन के अंदर इसका इलाज संभव है, इसके बाद नहीं। (२) हवा के चलने का शब्द। (३) हीरा कसीस। (४) मस्तक। माथा। (५) नौ निधियों में से एक निधि। (६) कंकण। वलय।

शंखकार–संज्ञा पुं० [सं० [पुराणानुसार एक वर्ण संकर जाति जिसकी उत्पत्ति शूद्रा माता और विश्वकर्मा पिता से मानी गई है। इस जाति के लोग शंख की चीजें बनाने का काम करते हैं।

शंखकुसुमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शंखपुष्पी। (२) सफेद अपराजिता। सफेद कोयल।

शंखकूट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक नाग का नाम। (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

शंखक्षीर–संज्ञा पुं० [सं०] शंख का दूध अर्थात् कोई असंभव और अनहोनी बात।

शंखचरी, शंखचर्चा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंदन का तिलक (ललाट पर का)। (२) भाल। मस्तक। ललाट।

शंखचूड़–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राक्षस का नाम जिसे कंस ने कृष्ण को मारने के लिये भेजा था और जो स्वयं कृष्ण द्वारा मारा गया था। कहते हैं कि यह सुदामा नामक गोप था जो राधा के शाप से असुर हो गया था। इसका विवाह तुलसी से हुआ था। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में लिखा है कि इसका संहार महादेव जी ने अपने शूल से किया था। (२) कुबेर के दूत और सखा का नाम। (३) एक यक्ष का नाम। (४) पुराणानुसार द्वारिका निवासी एक गृहस्थ का नाम जिसके पुत्र उत्पन्न होकर अदृश्य हो जाते थे। (५) एक नाग का नाम। (६) एक तीर्थस्थान।

शंखज–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा मोती जो शंख से निकलता है।

शंखजीरा–संज्ञा पुं० [सं०] संग जराहत।

विशेष—जान पड़ता है कि यह शब्द फ़ारसी "संग जराहत" का बनाया हुआ संस्कृत रूप है।

शंखण–संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार प्रबुद्ध के लड़के का नाम।

शंखतीर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

शंखदारक–संज्ञा पुं० दे० "शंखकार"।

शंखद्राव–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का अर्क जिसमें शंख भी गल जाता है। आध सेर हीरा कसीस, सेर भर लाहौरी फिटकरी, सेर भर सेंधा नमक और सेर भर शोरा चूर्ण करके ढेंकली यंत्र से रस निकाल लिया जाता है, जो शंखद्राव कहलाता है। कहते हैं कि इसके सेवन से शूल, गुल्म, अर्श, प्लीहा, उदर रोग, अजीर्ण और वात रोग सब दूर होते हैं। इसे काँच या चीनी की शीशी में रखना चाहिए; अन्यथा पात्र गल जायगा। इसके सेवन के समय मुँह में घी लगा देना चाहिए, नहीं तो जिह्वा और दाँतों को हानि पहुँचेगी।

वि० कोई ऐसा तीक्ष्ण रस या क्षार जिसमें डालने से शंख गल जाय।

शंखद्रावक–संज्ञा पुं० दे० "शंखद्राव"।

शंखद्रावी–संज्ञा पुं० [सं० शंखद्राविन्] अमलबेत।

शंखद्वीप–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक द्वीप का नाम।

शंखधर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शंख को धारण करनेवाले, अर्थात् विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। उ०—गिरिधर ब्रजधर धरनीधर पीतांबर धर मुकुटधर गोपधर उरगधर सारंगधर चक्रधर रस धरैं अधर सुधाधर।—सूर।

शंखधरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर का साग। हिलमोचिका।

शंखधवला–संज्ञा स्त्री० [सं०] जूही। यूथिका।

शंखन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अयोध्या के राजा कल्माषपाद के एक पुत्र का नाम। (२) वज्रनाभ के पुत्र का नाम।

शंखनख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोंघा। छोटा शंख। (२) व्याघ्रनख। नखी नाम का गंध द्रव्य।

शंखनखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घोंघा। (२) नखी नामक गंध द्रव्य।

शंखनाभि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का शंख। (२) एक प्रकार का गंध द्रव्य।

शंखनाली–संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखाहुली। शंखपुष्पी।

शंखनारी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसमें छः वर्ण होते हैं। यह दो यगण का वृत्त है। इसे सोमराजी वृत्त भी कहते हैं।

शंखनी–संज्ञा स्त्री० दे० "शंखिनी"।

शंखपलीता–संज्ञा पुं० [सं० शंख + हिं० पलीता] एक प्रकार का रेशेदार खनिज पदार्थ जो ज्वाला-मुखी पर्वतों से निकलता है। इसका रंग सफ़ेद या हरा होता है और इसमें रेशम की सी चमक होती है। इसका विशेष गुण यह है कि यह जल्दी जलता नहीं; इसी लिये गैस के भट्ठे बनाने में इसका बहुत उपयोग होता है। आग से न जलनेवाले कपड़े तैयार करने में भी यह काम में लाया जाता है। गरमी और बिजली का प्रवेश इसमें बहुत कम होता है, इसी से यह बिजली के तार आदि लपेटने में भी काम

आता है। इंजिनों के जोड़ इसी से भरे या बंद किए जाते हैं। यह कारसिका, स्काटलैंड, कनाडा, इटली आदि देशों में अधिक मिलता है।

शंखपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ में शंख धारण करनेवाले, विष्णु।

शंखपाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शकर पारा नाम की मिठाई। वि० दे० "शकरपारा"। (२) एक प्रकार का साँप। (३) एक नाग का नाम। (४) कर्दम के पुत्र का नाम।

शंखपाषाण-संज्ञा पुं० [सं०] संखिया।

शंखपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० दे० "शंखपुष्पी"।

शंखपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफ़ेद अपराजिता। श्वेतापराजिता। सफ़ेद कोयल। (२) जूही। यूथिका। (३) शंखाहुली। शंखाह्वा।

शंखप्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का कलंक।

शंखभस्म-संज्ञा पुं० [सं०] चूना।

शंखभृत-संज्ञा पुं० [सं०] शंख धारण करनेवाले, विष्णु।

शंखमालिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखाहुली। शंखपुष्पी।

शंखमुक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखज नाम का बड़ा मोती।

शंखमुख-संज्ञा पुं० [सं०] कुम्भीर। घड़ियाल

शंखमूलक-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूली।

शंखयूथिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जूही। यूथिका।

शंखरी-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शंख की चूड़ी बनाने का व्यवसाय करता हो।

शंखलिखित-वि० [सं०] निर्दोष। दोष रहित। बे-ऐब।
संज्ञा पुं० (१) न्यायशील राजा। (२) शंख और लिखित नाम के दो ऋषि जिन्होंने एक स्मृति बनाई थी।
संज्ञा स्त्री० शंख और लिखित ऋषियों द्वारा लिखी हुई स्मृति। उ०—सचिव सुधन्वै चह्यो जराया। शंख लिखित फल आशुइ पावा।—रघुनाथ।

शंखवटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की वटी या गोली जिसके प्रस्तुत करने की प्रणाली यह है। नीबू के रस में बुझाई हुई शंख की भस्म टके भर और जवाखार, सेंकी हींग, पाँचों नमक, सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, शुद्ध सिंगी मुहरा, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक की कजली ये सब दस दस टंक एक में मिलाकर सब को चूर्ण करके नीबू के रस में खरल करके चने के बराबर गोलियाँ बनाते हैं। कहते हैं कि लौंग के जल के साथ एक गोली सेवन करने से संग्रहणी, शूल और वायुगोला आदि रोग दूर होते हैं।

शंखवटी रस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की वटी या गोली जो शूल रोग को तत्काल दूर करनेवाली मानी जाती है। इसके प्रस्तुत करने की विधि यह है। बड़े शंख को तपा तपाकर ग्यारह बार नीबू के रस में बुझाते हैं, और इस शंख के चूर्ण में टके भर इमली का खार, ५ टंक साँभर नमक, टके भर सेंधा नमक, टके भर साँभर नमक, टके भर कच नोन, टके भर विड़ नोन, ६ माशे सोंठ, ६ माशे काली मिर्च, ६ माशे पिप्पली, टके भर सेंकी हींग, टके भर शुद्ध गंधक, टके भर शुद्ध पारा, १ टंक शुद्ध सिंगी मुहरा, इन सब को मिलाकर जल के साथ घोंटकर छोटे बेर के बराबर गोलियाँ बना लेते हैं।

शंखवात-संज्ञा पुं० [सं०] सिर की पीड़ा। वि० दे० "शंखक" (१)।

शंखविष-संज्ञा पुं० [सं०] संखिया।

शंखवेलान्याय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का न्याय जिसमें किसी एक कार्य्य के होने से किसी दूसरी बात का वैसे ही ज्ञान होता है, जैसे शंख बजने से समय का ज्ञान होता है।

शंखशुक्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सीप।

शंखसंकाश-संज्ञा पुं० [सं०] संखालु। सफ़ेद शकरकंद।

शंखस-संज्ञा पुं० [सं०] शंख की चूड़ी या कड़ा।

शंखाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] गुहनखी या बघनखा नामक गंध द्रव्य।

शंखाल, शंखालु-संज्ञा पुं० [सं०] शंखालुक। शंखकंद। सफ़ेद शकरकंद।

शंखालुक-संज्ञा पुं० [सं०] शंखालु। सफ़ेद शकरकंद।

शंखावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का भगंदर रोग जिसे शंबुकावर्त्त भी कहते हैं। वि० दे० "शंबुकावर्त्त"।

शंखासुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक दैत्य जो ब्रह्मा के पास से वेद चुराकर समुद्र के गर्भ में जा छिपा था। इसी को मारने के लिये विष्णु ने मत्स्यावतार धारण किया था। उ०—बहुरो किलाल पैठ मार्यो जिन शंखासुर ताते वेद अनेक विधाता को दिखाए हैं।—हनुमन्नाटक। (२) मुर दैत्य का पिता। उ०—शंखासुर सुत पितु बध जान्यो। तब बन जाइ तहाँ तप ठान्यो।—रघुनाथ।

शंखास्थि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिर की हड्डी। (२) पीठ की हड्डी।

शंखाहुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संखाहुली। शंखपुष्पी। वि० दे० "कौड़ियाला"। (२) सफ़ेद अपराजिता या कोयल।

शंखाहोली-संज्ञा स्त्री० [सं० शंखाहुली] शंखपुष्पी। कौड़ियाला। कौड़ेना।

शंखिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखाहुली। चोरपुष्पी।

शंखिन-संज्ञा पुं० [सं०] सिरस। सिरीष वृक्ष।

शंखिनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रंथिपर्णी। गठिवन।

शंखिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की वनौषधि जिसकी लता और फल शिवलिंगी के समान होते हैं। अंतर केवल यही है कि शिवलिंगी के फल पर सफ़ेद धब्बे होते हैं जो

होते हैं। (१६) कपाल। लिलार। (१७) पवन के चलने से होनेवाला शब्द।

शंखकंद-संज्ञा पुं० [सं०] शंखालु। सौंठ।

शंखक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें बहुत गरमी होती है और त्रिदोष बिगड़ने से कनपटी में दाह सहित लाल रंग की गिल्टी निकल आती है, जिससे सिर और गला जकड़ जाता है। कहते हैं कि यह असाध्य रोग है और तीन दिन के अंदर इसका इलाज संभव है, इसके बाद नहीं। (२) हवा के चलने का शब्द। (३) हीरा कसीस। (४) मस्तक। माथा। (५) नौ निधियों में से एक निधि। (६) कंकण। वलय।

शंखकार-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक वर्ण संकर जाति जिसकी उत्पत्ति शूद्रा माता और विश्वकर्मा पिता से मानी गई है। इस जाति के लोग शंख की चीजें बनाने का काम करते हैं।

शंखकुसुमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शंखपुष्पी। (२) सफेद अपराजिता। सफेद कोयल।

शंखकूट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक नाग का नाम। (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

शंखक्षीर-संज्ञा पुं० [सं०] शंख का दूध अर्थात् कोई असंभव और अनहोनी बात।

शंखचरी, शंखचर्ची-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंदन का तिलक (ललाट पर का)। (२) भाल। मस्तक। ललाट।

शंखचूड़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राक्षस का नाम जिसे कंस ने कृष्ण को मारने के लिये भेजा था और जो स्वयं कृष्ण द्वारा मारा गया था। कहते हैं कि यह सुदामा नामक गोप था जो राधा के शाप से असुर हो गया था। इसका विवाह तुलसी से हुआ था। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में लिखा है कि इसका संहार महादेव जी ने अपने शूल से किया था। (२) कुबेर के दूत और सखा का नाम। (३) एक यक्ष का नाम। (४) पुराणानुसार द्वारिका निवासी एक गृहस्थ का नाम जिसके पुत्र उत्पन्न होकर अदृश्य हो जाते थे। (५) एक नाग का नाम। (६) एक तीर्थस्थान।

शंखज-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा मोती जो शंख से निकलता है।

शंखजीरा-संज्ञा पुं० [सं०] संग जराहत।

विशेष—जान पड़ता है कि यह शब्द फ़ारसी "संग जराहत" का बनाया हुआ संस्कृत रूप है।

शंखण-संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार सुदर्शन के लड़के का नाम।

शंखतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

शंखदारक-संज्ञा पुं० दे० "शंखकार"।

शंखद्राव-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का अर्क जिसमें शंख भी गल जाता है। आध सेर हीरा कसीस, सेर भर लाहौरी फिटकरी, सेर भर सेंधा नमक और सेर भर शोरा चूर्ण करके डेकची यंत्र से रस निकाल लिया जाता है, जो शंखद्राव कहलाता है। कहते हैं कि इसके सेवन से शूल, गुल्म, अर्श, प्लीहा, उदर रोग, अजीर्ण और वात रोग सब दूर होते हैं। इसे काँच या चीनी की शीशी में रखना चाहिए; अन्यथा पात्र गल जायगा। इसके सेवन के समय मुँह में घी लगा देना चाहिए, नहीं तो जिह्वा और दाँतों को हानि पहुँचेगी।

वि० कोई ऐसा तीक्ष्ण रस या क्षार जिसमें डालने से शंख गल जाय।

शंखद्रावक-संज्ञा पुं० दे० "शंखद्राव"।

शंखद्रावी-संज्ञा पुं० [सं० शंखद्राविन्] अमलबेत।

शंखद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक द्वीप का नाम।

शंखधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शंख को धारण करनेवाले, अर्थात् विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। उ०—गिरिधर ब्रजधर धरणीधर पीताम्बर धर मुकुटधर गोपधर उरगधर सारंगधर चक्रधर रस धरैं अधर सुधाधर।—सूर।

शंखधरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर का साग। हिलमोचिका।

शंखधवला-संज्ञा स्त्री० [सं०] जूही। यूथिका।

शंखन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अयोध्या के राजा कल्माषपाद के एक पुत्र का नाम। (२) वज्रनाभ के पुत्र का नाम।

शंखनख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोंघा। छोटा शंख। (२) व्याघ्रनख। नखी नाम का गंध द्रव्य।

शंखनखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घोंघा। (२) नखी नामक गंध द्रव्य।

शंखनाभि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का शंख। (२) एक प्रकार का गंध द्रव्य।

शंखनाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखाहुली। शंखपुष्पी।

शंखनारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसमें छः वर्ण होते हैं। यह दो यगण का वृत्त है। इसे सोमराजी वृत्त भी कहते हैं।

शंखनी-संज्ञा स्त्री० दे० "शंखिनी"।

शंखपलीता-संज्ञा पुं० [सं० शंख + हिं० पलीता] एक प्रकार का रेशेदार खनिज पदार्थ जो ज्वाला-मुखी पर्वतों से निकलता है। इसका रंग सफेद या हरा होता है और इसमें रेशम की सी चमक होती है। इसका विशेष गुण यह है कि यह जल्दी जलता नहीं; इसी लिये गैस के मेंटल बनाने में इसका बहुत उपयोग होता है। आग से न जलनेवाले कपड़े तैयार करने में भी यह काम में लाया जाता है। गरमी और बिजली का प्रवेश इसमें बहुत कम होता है; इसी से यह बिजली के तार आदि लपेटने में भी काम

आता है। इंजिनों के जोड़ इसी से भरे या बंद किए जाते हैं। यह कारसिका, स्काटलैंड, कनाडा, इटली आदि देशों में अधिक मिलता है।

शंखपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ में शंख धारण करनेवाले, विष्णु।

शंखपाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शकर पारा नाम की मिठाई। वि० दे० "शकरपारा"। (२) एक प्रकार का साँप। (३) एक नाग का नाम। (४) कर्दम के पुत्र का नाम।

शंखपाषाण-संज्ञा पुं० [सं०] संखिया।

शंखपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० दे० "शंखपुष्पी"।

शंखपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफ़ेद अपराजिता। श्वेताप-राजिता। सफ़ेद कोयल। (२) जूही। यूथिका। (३) शंखाहुली। शंखाहा।

शंखप्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का कलंक।

शंखभस्म-संज्ञा पुं० [सं०] चूना।

शंखभृत-संज्ञा पुं० [सं०] शंख धारण करनेवाले, विष्णु।

शंखमालिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखाहुली। शंखपुष्पी।

शंखमुक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखज नाम का बड़ा मोती।

शंखमुख-संज्ञा पुं० [सं०] कुम्भीर। घड़ियाल

शंखमूलक-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूली।

शंखयूथिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जूही। यूथिका।

शंखरी-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शंख की चूड़ी बनाने का व्यव-साय करता हो।

शंखलिखित-वि० [सं०] निर्दोष। दोष रहित। बे-ऐब। संज्ञा पुं० (१) न्यायशील राजा। (२) शंख और लिखित नाम के दो ऋषि जिन्होंने एक स्मृति बनाई थी। संज्ञा स्त्री० शंख और लिखित ऋषियों द्वारा लिखी हुई स्मृति। उ०—सचिव सुधन्वै चढ़ो जराया। शंख लिखित फल आयुह पाया।—रघुनाथ।

शंखवटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की वटी या गोली जिसके प्रस्तुत करने की प्रणाली यह है। नीबू के रस में बुझाई हुई शंख की भस्म टके भर और जवाखार, सेंकी हींग, पाँचों नमक, सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, शुद्ध सिंगी मुहरा, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक की कजली ये सब दस दस टंक एक में मिलाकर सब को चूर्ण करके नीबू के रस में खरल करके चने के बराबर गोलियाँ बनाते हैं। कहते हैं कि लौंग के जल के साथ एक गोली सेवन करने से संग्रहणी, शूल और वायुगोला आदि रोग दूर होते हैं।

शंखवटी रस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की वटी या गोली जो शूल रोग को तत्काल दूर करनेवाली मानी जाती है। इसके प्रस्तुत करने की विधि यह है। बड़े शंख को तपा तपाकर ग्यारह बार नीबू के रस में बुझाते हैं, और इस शंख के चूर्ण में टके भर इमली का खार, ५ टंक साँचर नमक, टके भर सेंधा नमक, टके भर साँभर नमक, टके भर कच नोन, टके भर विड़ नोन, ६ माशे सोंठ, ६ माशे काली मिर्च, ६ माशे पिप्पली, टके भर सेंकी हींग, टके भर शुद्ध गंधक, टके भर शुद्ध पारा, १ टंक शुद्ध सिंगी मुहरा, इन सब को मिलाकर जल के साथ घोंटकर छोटे बेर के बराबर गोलियाँ बना लेते हैं।

शंखवात-संज्ञा पुं० [सं०] सिर की पीड़ा। वि० दे० "शंखक" (१)।

शंखविष-संज्ञा पुं० [सं०] संखिया।

शंखवेलान्याय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का न्याय जिसमें किसी एक कार्य्य के होने से किसी दूसरी बात का वैसे ही ज्ञान होता है, जैसे शंख बजने से समय का ज्ञान होता है।

शंखशुक्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सीप।

शंखसंकाश-संज्ञा पुं० [सं०] संखालु। सफ़ेद शकरकंद।

शंखस-संज्ञा पुं० [सं०] शंख की चूड़ी या कड़ा।

शंखाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] बृहनखी या नागनखा नामक गंध द्रव्य।

शंखालु, शंखालु-संज्ञा पुं० [सं०] शंखालुक। शंखकंद। सफ़ेद शकरकंद।

शंखालुक-संज्ञा पुं० [सं०] शंखालु। सफ़ेद शकरकंद।

शंखावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का भगंदर रोग जिसे शंबुकावर्त्त भी कहते हैं। वि० दे० "शंबुकावर्त्त"।

शंखासुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक दैत्य जो ब्रह्मा के पास से वेद चुराकर समुद्र के गर्भ में जा छिपा था। इसी को मारने के लिये विष्णु ने मत्स्यावतार धारण किया था। उ०—बहुरो किन्नाल बैठ मान्यो जिन शंखासुर ताते वेद अनेक विधाता को दिखाए हैं।—हनुमन्नाटक। (२) मुर दैत्य का पिता। उ०—शंखासुर सुत पितु बध जान्यो। तब बन आइ यहाँ तप ठान्यो।—रघुनाथ।

शंखास्थि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिर की हड्डी। (२) पीठ की हड्डी।

शंखाहुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संखाहुली। शंखपुष्पी। वि० दे० "कौड़ियाला"। (२) सफेद अपराजिता या कोयल।

शंखाहोली-संज्ञा स्त्री० [सं० शंखाहुली] शंखपुष्पी। कौड़ियाला। कौड़ेना।

शंखिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखाहुली। चोरपुष्पी।

शंखिन-संज्ञा पुं० [सं०] सिरस। सिरीष वृक्ष।

शंखिनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रंथिपर्णी। गठिवन।

शंखिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की वनौषधि जिसकी लता और फल शिवलिंगी के समान होते हैं। अंतर केवल यही है कि शिवलिंगी के फल पर सफेद छींटे होते हैं जो

शंखिनी के फल पर नहीं होते। इसके बीज शंख के समान होते हैं जिनका तेल निकलता है। वैद्यक में यह चरपरी, स्निग्ध, कड़वी, भारी, तीक्ष्ण, गरम, अग्निदीपक, बलकारक, रुचिकारी और विषविकार, आम-दोष, क्षय, रुधिर विकार तथा उदर-दोष आदि को शान्त करनेवाली मानी जाती है।

पर्य्या०—यवतिक्ता। महातिक्ता। भद्रतिक्ता। सूक्ष्मपुष्पी। दृढ़पादा। विसर्पिणी। माकुली। नेत्रमीला। अक्षपीड़ा। माहेश्वरी। तिक्ता। यावी।

(२) पद्मिनी आदि स्त्रियों के चार भेदों में से एक भेद। उ०—कोइ शंखिनि युत रोष दया बिन वेगि प्रचारै।—विश्राम।

विशेष—कहते हैं कि ऐसी स्त्री कोपशील, कोविद, सलोम शरीरवाली, बड़ी बड़ी और सजल आँखोंवाली, देखने में सुंदर, लज्जा और शंका रहित, अधीर, रतिप्रिय, क्षार गंध-युक्त और अरुण नखवाली होती है। यह वृषभ जाति के पुरुष के लिये उपयुक्त होती है।

(३) गुदा द्वार की नस। (४) मुँह की नाड़ी। उ०—मुख स्थान शंखिनी केरा। ये नाड़िन के नाम निबेरा।—विश्राम। (५) एक देवी का नाम। (६) सीप। (७) एक शक्ति जिसकी पूजा बौद्ध लोग करते हैं। (८) एक तीर्थस्थान का नाम। (९) एक प्रकार की अप्सरा। (१०) शंखाहुली।

शंखिनी डंकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का उन्माद जिसके लक्षण इस प्रकार कहे गए हैं—सर्वांग में पीड़ा होना, नेत्र बहुत दुखना, मूर्छा होना, शरीर काँपना, रोना, हँसना, बकना, भोजन में अरुचि, गला बैठना, शरीर के बल तथा भूख का नाश, ज्वर चढ़ना और सिर में चक्कर आना।

शंखिनीवास-संज्ञा पुं० [सं०] शाखोट वृक्ष। सहोरा।

शंखिया-संज्ञा पुं० दे० "संखिया"।

शंखी-संज्ञा पुं० [सं० शंखिन्] (१) विष्णु। (२) समुद्र। (३) एक प्रकार का साँप।

शंखोद्भिमल-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन।

शंखोद्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] मध्यम आकार का एक प्रकार का वृक्ष जो बागों में शोभा के लिये लगाते हैं। इसके पत्ते चकवँड़ के पत्तों के समान होते हैं। पीले और लाल फूलों के भेद से यह वृक्ष दो प्रकार का होता है। इसकी कलियाँ उँगली के समान मोटी, चिपटी तथा चार पाँच अंगुल लंबी होती हैं और इसमें ७, ८ दाने होते हैं। इसके फूल गुच्छों में लगते है जो बारहों महीने रहते हैं; परंतु और महीनों की अपेक्षा आषाढ़ में अधिक फूल लगते हैं। फूलों में गंध नहीं होती। इसकी लकड़ी मजबूत होती है। इसके वृक्ष बीज और कलम दोनों से ही लगते हैं। कई प्रकार के रोगों में इसका क्वाथ भी दिया जाता है। वैद्यक के अनुसार यह गरम, कफ, वात, शूल, आमवात और नेत्र रोग को दूर करनेवाली है। गुलतुरी। गुलतुरी। सिद्धेश्वर।

शंग जराहत-संज्ञा पुं० दे० "संग जराहत"।

शंगर-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत ऊँचा वृक्ष जो मद्रास और सुंदर वन में अधिकता से होता है। इसकी लकड़ी लाल और मज़बूत होती है और मकान तथा गाड़ी आदि बनाने के काम में आती है। इसके पत्तों से रंग भी निकाला जाता है।

शंजरफ-संज्ञा पुं० दे० "शिंगरफ"।

शंठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अविवाहित। (२) नपुंसक। हीजड़ा। (३) मूर्ख। बेवकूफ। उ०—मुग्ध मूढ़ जड़ मूक नर अज्ञ अबुध बद शंठ।—नंददास।

शंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नपुंसक। हीजड़ा। (२) वह पुरुष जिसे संतान न होती हो। वंध्या पुरुष। (३) साँड़। (४) उन्मत्त। पागल। (५) कमलिनी। पद्मिनी।

शंडता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंड का भाव या धर्म। नपुंसकता। हीजड़ापन।

शंडा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फटा हुआ खट्टा दूध अथवा दही। (२) शुक्राचार्य्य का पुत्र जो असुरों का पुरोहित था। (३) एक यक्ष का नाम।

शंडा की मद्य-संज्ञा स्त्री० [सं० शंडा + मद्य] अर्कप्रकाश के अनुसार एक प्रकार की शराब जो राई, मूली और सरसों के पत्तों का रस चावलों की पीठी में मिलाकर अर्क निकालने से तैयार होती है।

शंडामर्क-संज्ञा पुं० [सं०] शंड और मर्क नाम के दो दैत्य जिनका नाम साथ ही साथ लिया जाता है। उ०—शंडामर्क से कहियो जाय।—दादूवाणी।

शंडिल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्रकार ऋषि जिनके गोत्र के लोग शांडिल्य कहलाते हैं।

शंतनु-संज्ञा पुं० दे० "शांतनु"। उ०—(क) पाणी शंतनु की कथा, पुनि ययाति कर भोग।—रघुनाथ। (ख) विष्णु सुता सत्य सुत नाहीं। तासु पुत्र शंतनु नृप आहीं।—सबल।

शंतनु-सुत-संज्ञा पुं० [सं० शांतनु + सुत] गंगा के गर्भ से उत्पन्न शांतनु के पुत्र, भीष्मपितामह। वि० दे० "भीष्म"।

शंपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बिजली। (२) कमर।

शंपाक, शंपात-संज्ञा पुं० [सं०] आरग्वध वृक्ष। अमलतास।

शंब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र का वज्र। (२) लोहे की जंजीर जो कमर के चारों तरफ पहनी जाय। (३) प्राचीन काल

की नापने की एक माप। (४) नियमित रूप से हल जोतने की क्रिया।

शंबर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक दैत्य जो दिवोदास का बड़ा शत्रु था। दिवोदास की रक्षा के लिये इंद्र ने इसे पहाड़ पर से नीचे गिराकर मार डाला था। (२) रामायण और महाभारत में इसे कामदेव का शत्रु कहा है। (३) प्राचीन काल का एक प्रकार का शस्त्र। (४) युद्ध। समर। लड़ाई। (५) एक प्रकार का मृग। (६) मछली। (७) एक पर्वत का नाम। (८) जल। पानी। (९) चीता नामक पेड़। चित्रक। (१०) लोध वृक्ष। (११) अर्जुन वृक्ष। (१२) साल वृक्ष। (१३) सांबर हिरन। (१४) मुदक ऊर्मी।

वि० (१) अति उत्तम। बहुत बढ़िया। (२) भाग्यवान्। (३) सुखी।

शंबरकंद-संज्ञा पुं० [सं०] वाराही कंद। शूकर कंद।

शंबर चंदन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चंदन जिसे कैरात, बहलगंध और गंधकाष्ठ भी कहते हैं।

शंबरमाया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रजाल। जादू। (२) शक्ति।

शंबरसूदन-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

शंबरारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शंबर का शत्रु, अर्थात् कामदेव। मदन। उ०—शंबर ज्यों शंबरारि हुत देह को दहै।—केशव। (२) प्रद्युम्न जो कामदेव के अवतार कहे जाते हैं। उ०—मुरछि मुरछि गिरायो भूमि पर शंबरारि ललकारि।—गर्गसंहिता।

शंबराहार-संज्ञा पुं० [सं०] हरमेरी। मूवरी।

शंबरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूसाकानी। आखुपर्णी लता। (२) बड़ी दंती। बगरेंडा। (३) माया।

शंबरीगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वनतुलसी। बर्बरी।

शंबरोद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] सफ़ेद लोध।

शंबल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यात्रा के समय रास्ते के लिये भोजन-सामग्री। संबल। पाथेय। (२) तट। किनारा। (३) कुल। (४) ईर्ष्या। द्वेष। (५) दे० "शंबर"।

शंबसादन-संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकीय रामायण के अनुसार एक दैत्य जिसे केसरी वानर ने मारा था।

शंबा-संज्ञा पुं० [अ०] शनिवार। शनैश्चरवार।

शंबु-संज्ञा पुं० [सं०] सीपी। घोंघा।

शंबुक, शंबुका-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोंघा। (२) छोटा शंख।

शंबुकपुष्पी-संज्ञा स्त्री० दे० "शंखपुष्पी"।

शंबुकावर्त्त-वि० [सं०] घोंघे की भँवरी के सदृश घूमा हुआ।

संज्ञा पुं० पाँच प्रकार के भगंदरों में से एक प्रकार का भगंदर जिसके फोड़ने से अनेक प्रकार की पीड़ा होती है। इसका कई प्रकार का वर्ण होता है और इसमें सदैव पीब बहा करता है, फोड़ा गौ के थन के आकार का हो जाता है और उसका छिद्र घोंघे के घेरे के समान घूमता हुआ होता है।

शंबूका-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक तपस्वी शूद्र, जिसकी तपस्या के कारण त्रेतायुग में रामराज्य में एक ब्राह्मण का पुत्र अकालमृत्यु को प्राप्त हुआ था; अतः इसे राम ने मारकर मृत ब्राह्मण-पुत्र को पुनरुज्जीवित किया था। (२) घोंघा। (३) शंख। (४) एक दैत्य का नाम। (५) हाथी के सूँड़ का अगला भाग।

संज्ञा स्त्री० [सं०] सीपी।

शंभु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) ग्यारह रुद्रों में से एक। वि० दे० "महादेव" और "रुद्र"। (३) रामायण के अनुसार एक दैत्य का नाम। (४) एक वृत्त का नाम, जिसके प्रत्येक चरण में १९ वर्ण होते हैं; और उनका क्रम इस प्रकार होता है—स, त, य, भ, म, म, ग (IIS, SSI, ISS, SII, SSS, SSS, S)। (५) ब्रह्मा। (६) विष्णु। (७) सफ़ेद आक। (८) पारा।

संज्ञा पुं० दे० "स्वायंभुव"। उ०—कह शौनक शंभू मनु पाछे। कौन्ह राज्य केहि कहिये आछे।—रघुनाथ।

शंभुकांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शंभु की स्त्री, पार्वती। (२) दुर्गा।

शंभुगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] शंभु का पर्वत, कैलास।

शंभुतेज-संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

शंभुबीज-संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

शंभुभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव जी का भूषण, चंद्रमा।

शंभु मनु-संज्ञा पुं० [सं०] स्वायंभुव मन्वंतर जो सब से पहला मन्वंतर है। वि० दे० "स्वायंभुव" और "मनु"।

शंभुलोक-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव जी का लोक, कैलास।

शंस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रतिज्ञा। इकरार। (२) शपथ। कसम। (३) जादू। (४) प्रशंसा। तारीफ़। (५) इच्छा। ख्वाहिश। (६) चापलूसी। चाटुता। (७) घोषणा। (८) वक्तृता।

शंस्य-वि० [सं०] (१) प्रशंसा के योग्य। (२) इच्छित। चाहा हुआ।

संज्ञा स्त्री० अग्नि।

श-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) कल्याण। मंगल। (३) शस्त्र। हथियार।

शअबान-संज्ञा पुं० [अ०] अरबी आठवाँ महीना जिसकी चौदहवीं तारीख़ को मुसलमानों का शबबरात नामक त्योहार होता है। यह रजब के बाद आता है।

शऊर-संज्ञा पुं० [अ०] किसी चीज़ की पहचान या जानकारी। (२) काम करने की योग्यता। ढंग। (३) बुद्धि। अक़्ल।

क्रि० प्र०—आना।—सीखना।

मुहा०—शऊर पकड़ना = ढंग सीखना। चाल सीखना। बुद्धिमान् होना।

शऊरदार-संज्ञा पुं० [अ० शऊर + फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसमें शऊर हो। काम करने की योग्यता रखनेवाला। हुनरमंद। समझदार।

शक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन जाति। पुराणों में इस जाति की उत्पत्ति सूर्यवंशी राजा नरिष्यंत से कही गई है। राजा सगर ने राजा नरिष्यंत को राज्यच्युत तथा देश से निर्वासित किया था। वर्णाश्रम आदि के नियमों का पालन न करने के कारण तथा ब्राह्मणों से अलग रहने के कारण वे म्लेच्छ हो गए थे। उन्हीं के वंशज शक कहलाए। आधुनिक विद्वानों का मत है कि मध्य एशिया पहले शकद्वीप के नाम से प्रसिद्ध था। यूनानी इस देश को सीरिया कहते थे। उसी मध्य एशिया के रहनेवाले शक कहे जाते हैं। एक समय यह जाति बड़ी प्रताप-शालिनी हो गई थी। ईसा से दो सौ वर्ष पहले इसने मथुरा और महाराष्ट्र पर अपना अधिकार कर लिया था। ये लोग अपने को देवपुत्र कहते थे। इन्होंने १९० वर्ष तक भारत पर राज्य किया था। इनमें कनिष्क और हविष्क आदि बड़े बड़े प्रतापशाली राजा हुए हैं। (२) वह राजा या शासक जिसके नाम से कोई संवत् चले। (३) राजा शालिवाहन का चलाया हुआ संवत् जो ईसा के ७८ वर्ष पश्चात् आरंभ हुआ था। (४) शालिवाहन के अनुयायी अथवा उनके वंशज। (५) संवत्। (६) तातार देश। (७) जल। (८) मल। (९) एक प्रकार का पशु। (१०) संदेह। आशंका। (११) भय। त्रास। डर।

संज्ञा पुं० [अ०] शंका। संदेह। द्विविधा।

क्रि० प्र०—करना।—डालना। निकालना।—पड़ना।—मिटना।—मिटाना।

शककारक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने कोई नया संवत् (शक) चलाया हो। संवत् का प्रवर्त्तक।

शकट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छकड़ा। बैलगाड़ी। (२) भार। बोझ। (३) शकटासुर नामक दैत्य जिसे कृष्ण ने मारा था। (४) तिनिश वृक्ष। (५) धव का वृक्ष। धौ। (६) शरीर। देह। (७) दो हज़ार पल की तौल। (८) रोहिणी नक्षत्र, जिसकी आकृति शकट या छकड़े के समान है।

शकट कर्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाड़ी या और कोई सवारी हाँकने का काम। (२) गाड़ी आदि सवारियों की सामग्री बनाने और बेचने का काम।

शकटधूम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोबर या उपले आदि का धुआँ। (२) एक नक्षत्र का नाम।

शकट व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] शकट के आकार का सेना का विन्यास। सेना को इस प्रकार रखना, कि उसके आगे का भाग पतला और पीछे का मोटा हो, और वह देखने में शकट के आकार का जान पड़े।

शकटहा-संज्ञा पुं० [सं०] शकटासुर नामक दैत्य के मारनेवाले, श्रीकृष्ण।

शकटाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] गाड़ी का धुरा।

शकटाख्य, शकटाख्यक-संज्ञा पुं० [सं०] धौ या धव का वृक्ष।

शकटार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा महानंद का प्रधान मंत्री, जिसने अपने अपमान का बदला चुकाने के लिये चाणक्य से मिलकर षड्यंत्र रचा था और इस प्रकार नंद वंश का नाश किया था। (२) एक प्रकार की शिकारी चिड़िया।

शकटारि-संज्ञा पुं० [सं०] शकट दैत्य के शत्रु, श्रीकृष्ण।

शकटाल-संज्ञा पुं० दे० "शकटार"।

शकटासुर-संज्ञा पुं० [सं०] एक दैत्य जिसे कंस ने कृष्ण को मारने के लिये भेजा था और जो स्वयं ही कृष्ण द्वारा मारा गया था।

शकटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी बैलगाड़ी। (२) बच्चों के खेलने की गाड़ी।

शकटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी गाड़ी।

शकठ-संज्ञा पुं० [सं० शकट] मचान। उ०—कृष्णचंद्र के समय में भी वृंदावन वन गिना जाता था, और गोप लोग उसमें शकठों पर रहते थे।—शिवप्रसाद।

शकर-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मि० सं० शर्करा] कच्ची चीनी। शक्कर। खाँड़।

यौ०—शकर सफ़ेद। शकरसुर्ख। शकरगुड़।

शकरकंद-संज्ञा पुं० [हिं० शकर + सं० कंद] एक प्रकार का प्रसिद्ध कंद जिसकी खेती प्रायः सारे भारत में होती है। यह साधारणतः सूखी ज़मीन में बोया जाता है। इसका कंद दो प्रकार का होता है—एक लाल और दूसरा सफ़ेद। लाल शकरकंद रताल या रतालू कहलाता है और सफ़ेद को शकरकंद या कंदा कहते हैं। यह भूनकर या उबालकर खाया जाता है। प्रायः हिंदू लोग व्रत के दिन फलाहार रूप में इसका व्यवहार करते हैं। यह कंद बहुत मीठा होता है और इसमें से एक प्रकार की चीनी निकलती है। अनेक पाश्चात्य देशों में इससे चीनी निकाली भी जाती है, और इसी लिये इसकी बहुत अधिक खेती होती है। वनस्पति शास्त्र के आधुनिक विद्वानों का अनुमान है कि यह मूलतः अमेरिका का कंद है, और वहीं से सारे संसार में फैला है।

शकरखोरा-संज्ञा पुं० [फ़ा० शकर + खोर = खानेवाला] एक प्रकार का छोटा सुंदर पक्षी जिसकी लंबाई प्रायः एक बालिश्त से भी कम होती है और जो भारत, फ़ारस तथा चीन में पाया जाता है। इसका रंग नीला और चोंच काली

मनोरंजन पुस्तकमाला

अब तक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

(१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल।
(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक वेणीप्रसाद।
[illegible] तीन भाग—लेखक मेहता [illegible] शर्मा।
(७) राणा जंगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा।
(९) जीवन के आनंद—लेखक गणपति जानकीराम दुबे।
(१०) भौतिक विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद बी० एस-सी०।
(११) लालचीन—लेखक ब्रजनंदनसहाय।
(१२) कबीर वचनावली—संग्रहकर्त्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय।
(१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी० ए०।
(१४) बुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(१६) सिक्खों का उत्थान और पतन—लेखक नंदकुमारदेव शर्म्मा।
(१७) वीरमणि—लेखक श्यामबिहारी मिश्र एम० ए० और शुकदेवबिहारी मिश्र बी० ए०।
(१८) नेपोलियन बोनापार्ट—लेखक राधामोहन गोकुलजी।
(१९) शासनपद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार।
(२०, २१) हिंदुस्तान दो खंड—लेखक दयाचंद्र [illegible] बी० ए०।
(२२) महर्षि सुकरात—लेखक वेणीप्रसाद।
(२३) ज्योतिर्विनोद—लेखक संपूर्णानंद बी० एस-सी०।
(२४) आत्मशिक्षण—लेखक श्यामबिहारी मिश्र एम० ए० और शुकदेवबिहारी मिश्र बी० ए०।
[illegible]
(२६, २७) जर्मनी का विकास, दो भाग—लेखक सूर्यकुमार वर्म्मा।
(२८) कृषिकौमुदी—लेखक दुर्गाप्रसादसिंह एल० ए-जी०
(२९) कर्त्तव्यशास्त्र—लेखक गुलाबराय एम० ए०।
(३०,३१) मुसलमानी राज्य का इतिहास, दो भाग—लेखक मन्नन द्विवेदी बी० ए०।
[illegible]
(३५) अहिल्याबाई—लेखक गोविंदराम केशवराम जोशी।
(३६) रामचंद्रिका—संकलनकर्त्ता लाला भगवानदीन।
(३७) ऐतिहासिक कहानियाँ—लेखक द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी।
(३८,३९) हिंदी निबंधमाला, दो भाग—संग्रहकर्त्ता श्यामसुन्दरदास बी० ए०।
(४०) सूरसुधा—संपादक गणेशबिहारी मिश्र, श्यामबिहारी मिश्र, शुकदेवबिहारी मिश्र।
(४१) कर्त्तव्य—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(४२) संक्षिप्त रामस्वयंवर—संपादक ब्रजरत्नदास।
(४३) शिशु-पालन—लेखक मुकुन्दस्वरूप वर्म्मा।

माला की प्रत्येक पुस्तक या उसके किसी भाग का मूल्य १) है, पर स्थायी ग्राहकों को सब पुस्तकें बारह बारह आने में दी जाती हैं।

एक कार्ड भेजकर उत्तमोत्तम पुस्तकों का बड़ा और नया सूचीपत्र मँगवाइए।

मिलने का पता—प्रकाशन मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा,
बनारस सिटी।

मुद्रक—गणपति कृष्ण गुर्जर, श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस सिटी।

हिंदी-शब्दसागर

अर्थात्

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

संपादक

श्यामसुन्दरदास बी० ए०

सहायक संपादक

रामचंद्र शुक्ल रामचंद्र वर्म्मा

भगवानदीन

प्रकाशक

काशी–नागरी–प्रचारिणी सभा

१९२७

मूल्य १) डाकव्यय अतिरिक्त

संकेताक्षरों का विवरण

अं० = अंगरेजी भाषा
अ० = अरबी भाषा
अनु० = अनुकरण शब्द
अने० = अनेकार्थनाममाला
अप० = अपभ्रंश
अयोध्या=अयोध्यासिंह उपाध्याय
अर्द्धमा० = अर्द्ध मागधी
अल्पा० = अल्पार्थक प्रयोग
अव्य० = अव्यय
आनंदघन = कवि आनंदघन
इब० = इबरानी भाषा
उ० = उदाहरण
उत्तरचरित = उत्तररामचरित
उप० = उपसर्ग
उभ० = उभयलिंग
कठ० उप० = कठवल्ली उपनिषद्
कबीर = कबीरदास
केशव = केशवदास
कोंक० = कोंकण देश की भाषा
क्रि० = क्रिया
क्रि० अ० = क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र० = क्रियाप्रयोग
क्रि० वि० = क्रियाविशेषण
क्रि० स० = क्रिया सकर्मक
क्व० = क्वचित् अर्थात् इसका प्रयोग बहुत कम देखने में आया है।
खानखाना=अब्दुर्रहीम खानखाना
गि० दा० या गि० दास = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर = गिरिधरराय (कुंडलियावाले)
गुज० = गुजराती भाषा
गुमान = गुमान मिश्र
गोपाल = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
चरण = चरणचंद्रिका
चिंतामणि = कवि चिंतामणि त्रिपाठी
छीत = छीतस्वामी
जायसी = मलिक मुहम्मद जायसी
जावा० = जावा द्वीप की भाषा
ज्यो० = ज्योतिष
डिं० = डिंगल भाषा
तु० = तुरकी भाषा
तुलसी = तुलसीदास
तोष = कवि तोष
दादू = दादूदयाल
दीनदयालु = दीनदयाल गिरि
दूलह = कवि दूलह
दे० = देखो
देव = देव कवि (मैनपुरीवाले)
देश० = देशज
द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी
नागरी = नागरीदास
नाभा = नाभादास
निश्चल = निश्चलदास
पं० = पंजाबी भाषा
पद्माकर = पद्माकर भट्ट
पर्या० = पर्याय
पा० = पाली भाषा
पुं० = पुंलिंग
पु० हिं० = पुरानी हिन्दी
पुर्त० = पुर्तगाली भाषा
पू० हिं० = पूर्वी हिंदी
प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र
प्रत्य० = प्रत्यय
प्रा० = प्राकृत भाषा
प्रिया = प्रियादास
प्रे० = प्रेरणार्थक
प्रे० सा० = प्रेमसागर
फ्रां० = फरासीसी भाषा
फा० = फारसी भाषा
बँग० = बँगला भाषा
बरमी० = बरमी भाषा
बहु० = बहुवचन
बिहारी = कवि बिहारीलाल
बुं० खं० = बुंदेलखंडी बोली
बेनी = कवि बेनी प्रवीन
भाव० = भाववाचक
भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी
मतिराम = कवि मतिराम त्रिपाठी
मल्य० = मलायलम भाषा
मलूक = मलूकदास
मि० = मिलाओ
मुहा० = मुहाविरे
यू० = यूनानी भाषा
यौ० = यौगिक तथा दो या अधिक शब्दों के पद
रघु० दा० = रघुनाथदास
रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन
रघुराज = महाराज रघुराजसिंह रीवाँनरेश
रसखान = सैयद इब्राहीम
रसनिधि = राजा पृथ्वीसिंह
रहीम = अब्दुर्रहीम खानखानाँ
लक्ष्मणसिंह = राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू = लल्लूलाल
लश० = लशकरी भाषा अर्थात् हिंदुस्तानी जहाजियों की बोली
लाल = लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)
लै० = लैटिन भाषा
वि० = विशेषण
विश्राम = विश्रामसागर
व्यंग्यार्थ = व्यंग्यार्थकौमुदी
व्या० = व्याकरण
व्यास = अंबिकादत्त व्यास
शं० दि० = शंकर दिग्विजय
शृं० सत० = शृंगार सतसई
सं० = संस्कृत
संयो० = संयोजक अव्यय
संयो० क्रि० = संयोज्य क्रिया
स० = सकर्मक
सबल = सबलसिंह चौहान
सभा वि० = सभाविलास
सर्व० = सर्वनाम
सुधाकर = सुधाकर द्विवेदी
सूदन = सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर = सूरदास
स्त्रि० = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री० = स्त्रीलिंग
स्पे० = स्पेनी भाषा
हिं० = हिंदी भाषा
हनुमान = हनुमन्नाटक
हरिदास = स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र = भारतेंदु हरिश्चंद्र

होती है और यह पेड़ों में लटकता हुआ घोंसला बनाता है। यह प्रायः खेतों में रहता और खेती को हानि पहुँचानेवाले कीड़े मकोड़े आदि खाता है। यह सफेद रंग के दो या तीन अंडे एक साथ देता है, पर इसके अंडा देने का कोई निश्चित समय नहीं है।

शकरपारा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक प्रकार का फल जो नीबू से कुछ बड़ा होता है। इसका वृक्ष नीबू के वृक्ष के समान होता है, पर पत्ते नीबू से कुछ बड़े होते हैं। फूल लाल रंग के होते हैं। फल सुगंधित और खट्टा मीठा होता है। (२) एक प्रकार का प्रसिद्ध पकवान जो बरफी की तरह चौकोर कटा हुआ होता है। यह मीठा भी बनता है और नमकीन भी। इसके बनाने के लिये पहले मैदे में मोयन डालकर उसे दूध या पानी से गूँधते हैं और तब उसे मोटी रोटी की तरह बेलकर छुरी आदि से छोटे छोटे चौकोर टुकड़ों में काटकर घी में तल लेते हैं। यदि नमकीन बनाना होता है तो मैदा गूँधते समय ही उसमें नमक, अजवायन आदि डाल देते हैं; और यदि मीठा बनाना होता है, तो कटी हुई टुकड़ियों को तलने के बाद चीनी के शीरे में पाग लेते हैं। (३) रूईदार कपड़े पर की एक प्रकार की सिलाई जो शकरपारे के आकार की चौकोर होती है।

शकरपाला-संज्ञा पुं० दे० "शकरपारा"।

शकरपीटन-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार की कँटीली झाड़ी जो हिमालय पर्वत की पथरीली और सूखी ज़मीन में कुमायूँ और उसके पश्चिम ओर पाई जाती है। यह थूहड़ का ही भेद है; पर साधारण सेंहुड़ या थूहड़ के वृक्ष से कुछ भिन्न होता है।

शकरबादाम-संज्ञा पुं० [फ़ा० शकर + बादाम] खूबानी या जर्दआलू नामक फल जो पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत में होता है।

शकरी-संज्ञा पुं० [फ़ा० शकर] फालसा नामक फल।

शकल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्वच। चमड़ा। (२) छाल। छिलका। (३) दालचीनी। (४) आँवला। (५) कमल की नाल। कमल-दंड। (६) सौंठ। शकर। (७) खंड। टुकड़ा। (८) मनु के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम।

संज्ञा स्त्री० [अ० शक्ल] (१) मुख की बनावट। आकृति। चेहरा। रूप। जैसे,—शकल न सूरत, गये [redacted] मूरत।

मुहा०—शकल बिगाड़ना = मारते मारते चेहरे का रूप बिगाड़ना। खूब मारना।

यौ०—सूरत शकल = चेहरे की बनावट। आकृति।

(२) मुख का भाव। चेष्टा। (३) किसी चीज़ की बनावट। गढ़न। ढाँचा।

मुहा०—शकल बनाना = कोई चीज़ बनाकर उसका स्वरूप तैयार करना।

(४) किसी चीज़ का बनाया हुआ आकार। आकृति। स्वरूप। (५) उपाय। तरकीब। ढब। जैसे,—अब इस मुकदमे से पीछा छुड़ाने की कोई शकल निकालनी चाहिए।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।

(६) मूर्त्ति।

शकली-संज्ञा स्त्री० [सं०] सकुची मछली।

शकव-संज्ञा पुं० [सं०] राजहंस।

शकांतक-संज्ञा पुं० [सं०] शक जाति का अंत करनेवाला, विक्रमादित्य।

शकाकुल-संज्ञा पुं० [अ०] शतावर [redacted] जाति की एक प्रकार की वनस्पति जो प्रायः मिस्र देश में अधिकता से होती है और भारत के भी कुछ स्थानों विशेषतः काश्मीर और अफ़गानिस्तान में पाई जाती है। यह प्रायः नम ज़मीन में वृक्षों के नीचे उगती है। यह बारहो मास रहती है। इसके डंठल डेढ़ दो हाथ ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते प्रायः तीन अंगुल चौड़े और एक बालिश्त लंबे होते हैं। इसके पौधे की प्रत्येक गाँठ पर पत्ते होते हैं। इसमें नीले या लाल रंग के छोटे छोटे फूल गुच्छों में और काले रंग के फल लगते हैं। इसकी जड़ कंद के रूप में होती है और बाज़ार में प्रायः शकाकुल मिश्री के नाम से मिलती है। यह जड़ कामोद्दीपक तथा स्नायुओं के लिये पुष्टकारक मानी जाती है और विविध प्रकार की पौष्टिक औषधों में डाली जाती है। कंवार में इसके बीज औषधि के काम में आते हैं। इसकी राख का क्षार (नमक) अर्श रोग में लाभदायक समझा जाता है। यह जड़ प्रायः काबुल [redacted] आती है और वही सब से अच्छी भी होती है। दुधली। दुधली। गसंदरली।

शकाब्द-संज्ञा पुं० [सं०] राजा शालिवाहन का चलाया हुआ संवत्। शक संवत्। (ईसवी संवत् में से ७८,७९ घटाने से शकाब्द निकल आता है।)

शकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शक वंशीय व्यक्ति। शक वंश का। (२) संस्कृत नाटकों की परिभाषा में राजा का वह साला जो नीच जाति का हो।

विशेष—नाटक में इस पात्र को बेवकूफ़, चंचल, घमंडी, नीच तथा कठोर हृदयवाला दिखलाया जाता है। जैसे,—मृच्छकटिक में संस्थानक।

शकारि-संज्ञा पुं० [सं०] शक जाति का शत्रु, विक्रमादित्य।

शकील-वि० [फ़ा० (शक्ल से)] अच्छी शक्लवाला। खूबसूरत। सुन्दर।

शकुंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। चिड़िया। (२) एक प्रकार का कीड़ा। (३) विश्वामित्र के लड़के का नाम।

शकुंतक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

शकुंतला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजा दुष्यंत की स्त्री जो

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध राजा भरत की माता और मेनका अप्सरा की कन्या थी।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि शकुंतला का जन्म विश्वामित्र के वीर्य्य से मेनका अप्सरा के गर्भ से हुआ था जो इसे वन में छोड़कर चली गई थी। वन में शकुंतों (पक्षियों) आदि ने हिंसक पशुओं से इसकी रक्षा की थी; इसी से इसका नाम शकुंतला पड़ा। वन में से इसे कण्व ऋषि उठा लाए थे और अपने आश्रम में रखकर कन्या के समान पालते थे। एक बार राजा दुष्यंत अपने साथ कुछ सैनिकों को लेकर शिकार खेलने निकले और घूमते फिरते कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँचे। ऋषि उस समय वहाँ उपस्थित नहीं थे; इससे युवती शकुंतला ने ही राजा दुष्यंत का आतिथ्य-सत्कार किया था। उसी अवसर पर दोनों में पहले प्रेम और फिर गंधर्व-विवाह हो गया। कुछ दिनों के बाद राजा दुष्यंत वहाँ से अपने राज्य को चले गए। कण्व मुनि जब लौटकर अपने आश्रम में आए, तब वे यह जानकर बहुत प्रसन्न हुए कि शकुंतला का विवाह दुष्यंत से हो गया। शकुंतला उस समय गर्भवती हो चुकी थी; अतः समय पाकर उसके गर्भ से बहुत ही बलवान् और तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम भरत रखा गया। कहते हैं कि इस देश का भारतवर्ष नाम इसी के कारण पड़ा। कुछ दिनों बाद शकुंतला अपने पुत्र को लेकर राजा दुष्यंत के दरबार में पहुँची। परंतु शकुंतला को बीच में दुर्वासा ऋषि का शाप मिल चुका था; इससे राजा ने इसे बिलकुल न पहचाना और स्पष्ट कह दिया कि न तो मैं तुम्हें जानता हूँ और न तुम्हें अपने यहाँ आश्रय दे सकता हूँ। परंतु उसी अवसर एक आकाश वाणी हुई जिससे राजा को विदित हुआ कि यह मेरी ही पत्नी है और यह पुत्र भी मेरा ही है। उसी समय उन्हें कण्व मुनि के आश्रम की भी सब बातें स्मरण हो आईं और उन्होंने शकुंतला को अपनी प्रधान रानी बनाकर अपने यहाँ रख लिया।

(२) महाकवि कालिदास का लिखा हुआ एक प्रसिद्ध नाटक जिसमें राजा दुष्यंत और शकुंतला के प्रेम, विवाह, प्रत्याख्यान और ग्रहण आदि का वर्णन है।

शकुंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी चिड़िया। (२) टिड्डी। प्रजा।

शकुंद—संज्ञा पुं० [सं०] सफ़ेद कनेर।

शकुची—संज्ञा स्त्री० दे० "सकुची"।

शकुन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी काम के समय दिखाई देनेवाले लक्षण जो उस काम के संबंध में शुभ या अशुभ माने जाते हैं। वे चिह्न आदि जो किसी काम के संबंध में शुभ या अशुभ माने जाते हैं।

विशेष—प्रायः लोग कुछ घटनाओं को देखकर उनका शुभ या अशुभ फल होना मानते हैं; और उन घटनाओं को शकुन कहते हैं। जैसे,—कहीं जाते समय रास्ते में बिल्ली का रास्ता काट जाना अशुभ शकुन समझा जाता है और जलपूर्ण कलश या मृतक आदि का मिलना शुभ शकुन माना जाता है। इसी प्रकार अंगों का फड़कना, विशिष्ट पशुओं या पक्षियों आदि का बोलना या कुछ विशिष्ट वस्तुओं का दिखलाई पड़ना भी शकुन समझा जाता है। हमारे यहाँ इस विषय का एक अलग शास्त्र ही बन गया है; और उसके अनुसार दही, घी, दूध, चंदन, शीशा, शंख, मछली, देवमूर्त्ति, फल, फूल, पान, सोना, चाँदी, रत्न, वेश्या आदि का दिखाई पड़ना शुभ और साँप, चमड़ा, नमक, खाली बरतन आदि दिखाई पड़ना अशुभ माना जाता है। प्रायः लोग अशुभ शकुन देखकर काम रोक या टाल देते हैं। साधारणतः बोल चाल में लोग शकुन से प्रायः शुभ शकुन का ही अभिप्राय लेते हैं; अशुभ शकुन को अपशकुन कहते हैं।

मुहा०—शकुन विचारना या देखना = कोई कार्य्य करने से पहले किसी उपाय से लक्षण आदि देखकर यह निश्चय करना कि यह काम होगा या नहीं; अथवा काम अभी करना चाहिए या नहीं।

(२) शुभ मुहूर्त्त या उसमें होनेवाला कार्य्य। (३) पक्षी। चिड़िया। (४) गिद्ध नामक शिकारी पक्षी। (५) मंगल अवसरों पर गाए जानेवाले गीत।

शकुनज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शकुनों का शुभाशुभ फल जानता हो।

शकुनज्ञा—संज्ञा पुं० [सं० शकुन + ज्ञा] गिरगिट। गृहगोधा।

शकुनद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] शकुन शास्त्र के अनुसार एक साथ ही शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के शकुन होना जो यात्रा आदि के लिये बहुत शुभ माना जाता है।

शकुनशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें शकुनों के शुभ और अशुभ फलों का विवेचन हो। शकुन बतलानेवाला शास्त्र।

शकुनाहृत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चावल जिसे दाऊदखानी कहते हैं। (२) एक प्रकार की मछली। (३) एक प्रकार का बाल रोग। शकुनी ग्रह। दे० "शकुनी" (४)।

शकुनाहृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चिड़ियों द्वारा लाई हुई वस्तु। (२) एक प्रकार का चावल।

शकुनि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। चिड़िया। (२) गिद्ध पक्षी। (३) एक नाग का नाम। (४) एक दैत्य जो हिरण्याक्ष का

पुत्र और वृक का पिता था। (५) पुराणानुसार दुःसह के आठ पुत्रों में से एक जो निर्माष्टि के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। (६) पुराणानुसार विकुक्षि के पाँच पुत्रों में से एक। (७) गांधारी का भाई और कौरवों का मामा जो सुबलराज का पुत्र था और इसी लिये सौबल कहलाता था। यह बहुत ही दुष्ट और पापाचारी था। दुर्योधन ने इसे अपना मंत्री बना रखा था और इसके परामर्श से उसने पांडवों के साथ अनेक कपटपूर्ण व्यवहार किए थे और उन्हें अनेक कष्ट पहुँचाए थे। कौरव कुल के नाश का मुख्य कारण यही शकुनि था। यह अपने पुत्र सहित सहदेव के हाथ से मारा गया था। (८) बड़ा भारी दुष्ट और पाजी आदमी। (९) फलित ज्योतिष के अनुसार बव आदि ग्यारह करणों में से आठवाँ करण। कहते हैं कि जो बालक इस करण में जन्म लेता है, वह बड़ा भारी धूर्त, ठग, क्रूर, कृतघ्न, क्रोधी और लंपट होता है।

शकुनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार स्कंद की अनुचरी एक मातृका का नाम।

शकुनिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार स्कंद के एक अनुचर का नाम।

शकुनिवाद—संज्ञा पुं० [सं०] उषा काल के समय चिड़ियों का चहचहाना।

शकुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्यामा पक्षी। (२) गौरैया पक्षी की मादा। (३) पुराणानुसार एक पूतना का नाम जो बहुत क्रूर और भयंकर कही गई है। (४) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का बालग्रह। कहते हैं कि जिस बालक पर इसका आक्रमण होता है, उसके अंग शिथिल पड़ जाते हैं, शरीर में जलन होती है, फोड़े फुंसियाँ आदि निकल आती हैं, शरीर से पक्षियों की सी गंध आने लगती है और वह रह रहकर चौंक उठता है।

संज्ञा पुं० [सं० शकुन+ई (प्रत्य०)] वह जो शकुनों का शुभ और अशुभ फल जानता हो। शकुनज्ञ।

शकुनी मातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बालकों की एक प्रकार की व्याधि जो उनके जन्म से छठे दिन, छठे मास या छठे वर्ष होती है और जिसमें उन्हें ज्वर तथा कंप होता है, दृष्टि ऊर्ध्व हो जाती है और हर दम बहुत कष्ट बना रहता है।

शकुनीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षियों का स्वामी, अर्थात् गरुड़।

शकुल, शकुलगंड—संज्ञा पुं० [सं०] सौरी मछली।

शकुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी। कटुकी।

शकुलाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद दूब। श्वेत दूर्वा। (२) गाँडर दूब। गंडदूर्वा।

शकुलाक्षा—संज्ञा स्त्री० दे० "शकुलाक्ष"।

शकुलाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँडर दूब।

शकुलादनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुटकी। कटुकी। (२) जलपिप्पली। जलपीपल। (३) जल चौलाई। कंचट शाक। (४) कायफल। कटफल। (५) गजपीपल। गजपिप्पली। (६) गाँडर दूब। गंडदूर्वा। (७) जटामासी। बालछड़। (८) केंचुआ। गंडूपद।

शकुलार्भक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली। गड़ुई मछली।

शकुलाह्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल।

शकुली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सकुची मछली। (२) पुराणानुसार एक नदी का नाम।

शकृत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्ठा। गुह। (२) गोबर।

शकृत्करि—संज्ञा पुं० [सं०] गाय का बच्चा। बछड़ा।

शकृद्देश—संज्ञा पुं० [सं०] मलद्वार। गुदा।

शकृद्द्वार—संज्ञा पुं० [सं०] मलद्वार। गुदा।

शक्कर—संज्ञा स्त्री० [सं० शर्करा मि० फा० शकर = चीनी] (१) चीनी। (२) कच्ची चीनी। खाँड़।

संज्ञा पुं० बैल। वृष।

शक्करि—संज्ञा पुं० [सं०] बैल। वृष।

शक्करी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वर्ण वृत्त के अंतर्गत चौदह अक्षरों वाले छंदों की संज्ञा जिनके नाम इस प्रकार हैं—वसंततिलका, असंबाधा, अपराजिता, प्रहरणकलिका, वासंती, मंजरी, कुटिल, इंदुवदना, चक्र, नांदीमुख, शाली और अनंद। इनमें से वसंततिलका सब से अधिक प्रसिद्ध है। (२) मेखला। (३) एक प्राचीन नदी का नाम।

शक्की—वि० [अ० शक+ई (प्रत्य०)] जिसे हर बात में संदेह होता हो। सदा शक करनेवाला।

शक्त—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसमें शक्ति हो। शक्तिसंपन्न। समर्थ। ताकतवर। (२) वह जो प्रिय बातें कहता हो। मिष्टभाषी।

शक्तघ—संज्ञा पुं० [सं०] भुने हुए अनाज का आटा। सत्तू।

शक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह शारीरिक गुण या धर्म जिसके द्वारा अंगों का संचालन तथा दूसरे काम होते हैं। बल। पराक्रम। ताकत। जोर। जैसे,—(क) उसमें दो मन बोझ उठाने की शक्ति है। (ख) अब तो उनमें उठने बैठने की भी शक्ति नहीं रह गई। (ग) दुर्बलों पर शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

क्रि० प्र०—देखना।—रखना।—लगना।—लगाना।

(२) किसी प्रकार का बल या ताकत जिससे कोई काम हो। जैसे,—मानसिक शक्ति, स्मरण शक्ति, सैनिक शक्ति, शब्द शक्ति। (३) किसी पदार्थ के संयोजक अंगों या द्रव्यों आदि का प्रकट होनेवाला बल। दूसरे पदार्थों पर प्रभाव डालनेवाला बल। जैसे,—(क) इस औषध में ऐसी शक्ति है कि मृत्यु को भी कुछ देर के लिये रोक देती है। (ख) इस इंजन में बीस घोड़ों की शक्ति है। (ग) पानी के बहाव

में बड़ी बड़ी चट्टानों तक को तोड़ने की शक्ति होती है। (४) वश। अधिकार। जैसे,—उसकी रक्षा करना मेरी शक्ति के बाहर है। (५) राज्य के वे साधन जिनसे शत्रुओं पर विजय प्राप्त की जाती है।

विशेष—हमारे यहाँ राजाओं की तीन प्रकार की शक्ति कही गई है—प्रभुशक्ति, मंत्रशक्ति और उत्साह शक्ति। कोश और दंड आदि के संबंध की शक्ति प्रभुशक्ति, संधि-विग्रह आदि के संबंध की शक्ति मंत्र शक्ति और पराक्रम प्रकट करने तथा विजय प्राप्त करने की शक्ति उत्साह शक्ति कहलाती है।

(६) बड़ा और पराक्रमी राज्य जिसमें यथेष्ट धन और सेना आदि हो। जैसे,—इस समय युरोप में इंगलैंड, फ्रान्स, जर्मनी और रूस आदि कई बड़ी बड़ी शक्तियाँ हैं। (७) न्याय के अनुसार वह संबंध जो किसी पदार्थ और उसका बोध करानेवाले शब्द में होता है। (८) ईश्वर की वह कल्पित माया जो उसकी आज्ञा से सब काम करनेवाली और सृष्टि की रचना करनेवाली मानी जाती है। प्रकृति। माया। (९) किसी देवता का पराक्रम या बल जो कुछ विशिष्ट कार्यों का साधक माना जाता है। जैसे,—रौद्री शक्ति, वैष्णवी शक्ति।

विशेष—हमारे यहाँ पुराणों में भिन्न भिन्न देवताओं की अनेक शक्तियों की कल्पना की गई है और ये शक्तियाँ बहुधा देवी के रूप में और मूर्तिमती मानी गई हैं। जैसे,—विष्णु की कीर्ति, कांति, तुष्टि, पुष्टि, शांति, प्रीति आदि शक्तियाँ; रुद्र की गुणोदरी, गोमुखी, दीर्घजिह्वा, ज्वालामुखी, लंबोदरी, खेचरी, मंजरी आदि शक्तियाँ; देवी की इंद्राणी, वैष्णवी, ब्रह्माणी, कौमारी, नारसिंही, वाराही, माहेश्वरी और सर्वमंगला आदि शक्तियाँ।

(१०) तंत्र के अनुसार किसी पीठ की अधिष्ठात्री देवी जिसकी उपासना करनेवाले शाक्त कहे जाते हैं। ऐसी शक्ति समस्त सृष्टि की रचना करनेवाली और सब तरह की सामर्थ्य रखनेवाली मानी जाती है। (११) दुर्गा। भगवती। (१२) गौरी। (१३) लक्ष्मी। (१४) तांत्रिकों की परिभाषा में वह नटी, कापालिकी, वेश्या, धोबिन, नाइन, ब्राह्मणी, शूद्रा, ग्वालिन या मालिन जो युवती, रूपवती और सौभाग्यवती हो। ऐसी स्त्रियों का विधिपूर्वक पूजन सिद्धिप्रद और मोक्षदायक माना जाता है। (१५) स्त्री की मूत्रेंद्रिय। भग। (तांत्रिक) (१६) एक प्रकार का शस्त्र। साँग। (१७) तलवार।

संज्ञा पुं० एक प्राचीन ऋषि का नाम जो पराशर के पिता थे।

शक्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] गंधक।

शक्तिग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) कार्त्तिकेय। (३) शब्द का अर्थ बतलानेवाली शक्ति या वृत्ति का ज्ञान। (४) वह जो भाला या बरछी चलाता हो। भालाबरदार।

वि० शक्ति को ग्रहण करनेवाला।

शक्तिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्ति का भाव या धर्म। शक्तित्व।

शक्तिधर-संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद। कार्त्तिकेय। उ०—शक्ति शक्तिधर पावहि पाली।—गर्गसंहिता।

शक्तिध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय। स्कंद।

शक्तिपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] छतिवन। सतिवन। सप्तपर्ण वृक्ष।

शक्तिपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय। स्कंद।

शक्तिपूजक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो शक्ति की उपासना करता हो। शाक्त। (२) तांत्रिक। वाममार्गी।

शक्तिपूजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्ति का शाक्त द्वारा होनेवाला पूजन।

शक्तिपूर्व-संज्ञा पुं० [सं०] पराशर का एक नाम।

शक्तिबोध-संज्ञा पुं० [सं०] शब्द शक्ति का ज्ञान। शब्द के अर्थ का बोध।

शक्तिभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय। स्कंद।

शक्तिमत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्तिमान् होने का भाव या धर्म।

शक्तिमत्व-संज्ञा पुं० दे० "शक्तिमत्ता"।

शक्तिमान्-वि० [सं० शक्तिमत्] [स्त्री० शक्तिमती] बलवान। बलिष्ठ। ताकतवर।

शक्तिवन-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक वन का नाम जो तीर्थ कहा गया है।

शक्तिवादी-संज्ञा पुं० [सं० शक्तिवादिन्] वह जो शक्ति की उपासना करता हो। शाक्त।

शक्तिवीर-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शक्ति की उपासना करता हो। वाममार्गी।

शक्तिवैकल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शक्ति का नाश। कमज़ोरी। (२) असमर्थता।

शक्तिशोधन-संज्ञा पुं० [सं०] शाक्तों का एक संस्कार जिसमें वे किसी स्त्री को शक्ति की प्रतिनिधि बनाने से पहले कुछ विशिष्ट क्रियाएँ करके उसे शुद्ध करते हैं।

शक्तिष्ठ-वि० [सं०] जिसमें शक्ति हो। शक्तिशाली। ताकतवर। बलवान्।

शक्तिसंपन्न-वि० [सं०] शक्ति से युक्त। बलवान्। ताकतवर। मजबूत।

शक्तिहीन-वि० [सं०] (१) जिसमें शक्ति का अभाव हो। निर्बल। बलहीन। असमर्थ। नाताकत। (२) हीजड़ा। नामर्द। नपुंसक।

शक्ती-संज्ञा पुं० [सं० शक्ति] एक प्रकार के मात्रिक छंद का नाम। इसके प्रत्येक चरण में १८ मात्राएँ होती हैं और इसकी रचना ३+३+४+३+५ होती है। अंत में सगण, रगण

या नगण में से कोई एक और आदि में एक लघु होना चाहिए। इसकी १, ५, ११ और १६ वीं मात्रा लघु रहती है। यह छंद भुजंगी और चंद्रिका वृत्त की चाल पर होता है। अंतर यह है कि वे गण-बद्ध होते हैं और यह स्वतंत्र है। यह छंद फ़ारसी के 'करीमा बबख़्शाय बर हाल मा। कि हस्तम् असीरे कमंदे हवा' की बहर से मिलता है। उ०—शिवा शंभु के पाँव पंकज गहौं। विनायक सहायक सदा दिन चहौं।—काव्यप्रभाकर।

संज्ञा पुं० [सं० शक्तिन्] शक्तिवाला। शक्तिशाली। बलवान्।

शक्तु–संज्ञा पुं० [सं०] भुने हुए जौ, चने आदि का आटा। सत्तू।

शक्तुक–संज्ञा पुं० [सं०] भाव प्रकाश के अनुसार एक प्रकार का बहुत तीव्र और उग्र विष जो मसौढ़ के समान होता है। पीसने से यह सहज ही में पिसकर सत्तू के समान हो हो जाता है।

शक्तुफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी वृक्ष। सफ़ेद कीकर। छिकुर का पेड़।

शक्तुफलिका, शक्तुफली–संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी का वृक्ष।

शक्ति–संज्ञा पुं० [सं०] वशिष्ठ मुनि के सब से बड़े लड़के का नाम। महाभारत में लिखा है कि एक बार रास्ते में राजा कल्मापपाद से इनकी कहा सुनी हो गई, जिस पर राजा ने इन्हें एक कोड़ा जमा दिया। इस पर इन्होंने राजा को शाप दिया कि तुम राक्षस हो जाओ। तदनुसार राजा राक्षस हो गया और पहले उसने इन्हीं को भक्षण कर लिया।

शक्य–वि० [सं०] (१) किया जाने योग्य। जो किया जा सके। संभव। क्रियात्मक। (२) जिसमें शक्ति हो।

संज्ञा पुं० शब्द शक्ति के द्वारा प्रकट होनेवाला अर्थ। जैसे,—'अग्नि' पद में अंगार रूप की शक्ति है, अतः अग्नि पद का अंगार शक्य अथवा वाच्य है। (व्याकरण)

शक्यता–संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्य होने का भाव या धर्म। क्रियात्मकता।

शक्यप्राप्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय दर्शन के अनुसार प्रमाता के वे प्रमाण जिनसे प्रमेय सिद्ध होता है।

शक्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दैत्यों का नाश करनेवाले, इन्द्र। उ०—भरत शोक बरन्यो नहिं जाई। समधु शक्र द्विज हमा पाई।—लवकुशचरित्र। (२) कुटज वृक्ष। कोरैया। (३) अर्जुन वृक्ष। कोह वृक्ष। (४) इंद्रजौ। कुटज बीज। (५) टगण के चौथे भेद अर्थात् (ऽ।ऽ) की संज्ञा, जिसमें छः मात्राएँ होती हैं। जैसे,—लोकपती। (६) ज्येष्ठा नक्षत्र, जिसके अधिष्ठाता देवता इंद्र हैं।

वि० समर्थ। योग्य।

शक्रकार्मुक–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र-धनुष।

शक्रकुमारिका–संज्ञा स्त्री० दे० "शक्रमातृका"।

शक्रकेतु–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रध्वज।

शक्रक्रीड़ाचल–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के क्रीड़ा करने का पर्वत अर्थात् सुमेरु पर्वत।

शक्रगोप–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रगोप नामक कीड़ा। बीर बहूटी।

शक्रचाप–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

शक्रज, शक्रजात–संज्ञा पुं० [सं०] कौआ। काक पक्षी।

शक्रजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवारुणी लता। इंद्रायण। इनारुन।

शक्रजानु–संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार एक वानर का नाम।

शक्रजाल–संज्ञा पुं० दे० "इंद्रजाल"।

शक्रजित्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने इंद्र पर विजय प्राप्त की हो। (२) इंद्र को जीतनेवाले मेघनाद का एक नाम।

शक्रतरु–संज्ञा पुं० [सं०] भाँग का पेड़।

शक्रत्व–संज्ञा पुं० [सं०] शक्र का भाव या धर्म।

शक्रदारु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवदारु। (२) साल् का पेड़। साल।

शक्रदिश–संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्व दिशा जिसके स्वामी इंद्र माने जाते हैं।

शक्रदेव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) हरिवंश के अनुसार शृगाल के एक पुत्र का नाम।

शक्रदैवत–संज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठा नक्षत्र जिसके स्वामी इंद्र माने जाते हैं।

शक्रद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवदारु। (२) मौलसिरी। बकुल वृक्ष।

शक्रधनु, शक्रधनुष–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र-धनुष।

शक्रध्वज–संज्ञा पुं० दे० "इंद्रध्वज"।

शक्रनंदन–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का पुत्र अर्थात् अर्जुन।

शक्रनेमी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवदार का वृक्ष। (२) मेढ़ासिंगी। मेषशृंगी। (३) कुड़ा। कोरैया। कुटज वृक्ष।

शक्रपर्याय, शक्रपादप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुड़ा। कुटज वृक्ष। (२) देवदार का पेड़।

शक्रपुर–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के रहने की पुरी, अमरावती।

शक्रपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रजौ। कुटज बीज।

शक्रपुष्पा–संज्ञा स्त्री० दे० "शक्रपुष्पिका"।

शक्रपुष्पिका, शक्रपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अग्निशिखा नाम का वृक्ष। (२) कलिहारी। लांगली। (३) नाग दमनी। नागदौन।

शक्रप्रस्थ–संज्ञा पुं० [सं०] एक नगर जिसे पांडवों ने खांडव-वन जलाकर बसाया था। इंद्रप्रस्थ। उ०—उठे सुनत हरि उद्धव बानी। भे पुनि शक्रप्रस्थ प्रस्थानी।—सबल।

शक्रबीज–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रजौ।

शक्रभवन-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।
शक्रभिद्-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र को दबानेवाला, मेघनाद। इंद्रजित्।
शक्रभूभवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवारुणी नाम की लता। इनारुन। इंद्रायण।
शक्रभूरुह-संज्ञा पुं० [सं०] कुटज वृक्ष। कुड़ा। कौरैया।
शक्रमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० शक्रमातृ] इंद्र की माता अर्थात् भार्गी।
शक्रमातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रध्वज। (२) भार्गी।
शक्रमूर्द्धा-संज्ञा पुं० [सं० शक्रमूर्द्धन्] वल्मीक। बाँबी।
शक्रयव-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रजौ। कुटज बीज।
शक्रलोक-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रलोक। स्वर्ग।
शक्रवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवारुणी नाम की लता। इनारुन। इंद्रायण।
शक्रवापी-संज्ञा पुं० [सं० शक्रवापिन्] महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।
शक्रवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का वाहन अर्थात् मेघ। बादल।
शक्रवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] कुटज। कौरैया।
शक्रशरासन-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र-धनुष।
शक्रशाखी-संज्ञा पुं० [सं० शक्रशाखिन्] कुड़ा। कुटज वृक्ष।
शक्रशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ-भूमि में वह स्थान जहाँ इंद्र के उद्देश्य से बलि दी जाती हो।
शक्रशिर-संज्ञा पुं० [सं० शक्रशिरस्] बाँबी। वल्मीक।
शक्रसारथी-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का सारथी अर्थात् मातलि।
शक्रसुत-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का पुत्र बालि, जिसे राम ने मारा था।
शक्रसुधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुँदरू। गुंदबरोसा।
शक्रसृष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हरीतकी। हर्रे।
शक्राख्य-संज्ञा पुं० [सं०] उल्लू। पेचक पक्षी।
शक्राग्नि-संज्ञा पुं० [सं०] विशाखा नक्षत्र जिसके स्वामी इंद्र और अग्नि माने जाते हैं।
शक्राणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्र की पत्नी, शची। इंद्राणी। (२) निर्गुंडी। शेफालिका। सेनुआर।
शक्रात्मज-संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन।
शक्रादन-संज्ञा पुं० [सं०] भाँग। भंग।
शक्रानिल-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में प्रभव आदि साठ संवत्सरों के बारह युगों में से दसवें युग के अधिपति। इनके युग में ये पाँच संवत्सर होते हैं,—परिधावी, प्रमादी, आनंद, राक्षस और अनल।
शक्रावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।
शक्राशन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाँग। विजया। भंग। (२) कुड़ा। कुटज। कौरैया। (३) इंद्रजौ। कुटज बीज।
शक्रासन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र का आसन। (२) सिंहासन।
शक्राह्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्रजौ। कुटज बीज। (२) कुटज वृक्ष।
शक्राह्वा-संज्ञा स्त्री० दे० "शक्राह्व"।
शक्रि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) वज्र। (३) हाथी। (४) पर्वत। पहाड़।
शक्रेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] बीर बहूटी या इंद्रगोप नाम का कीड़ा।
शक्रोत्थान-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रध्वज नाम का उत्सव। वि० दे० "इंद्रध्वज"।
शक्रोत्सव-संज्ञा पुं० दे० "शक्रोत्थान"।
शक्ल-संज्ञा स्त्री० दे० "शकल"।
शक्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैल। (२) आकाश।
शक्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उँगली। (२) एक प्राचीन नदी का नाम। (३) मेखला। (४) गौ। गाय। (५) शक्वरी नामक छंद। वि० दे० "शक्वरी"।
शक्का-संज्ञा पुं० [सं० शक्वन्] हाथी। गज।
शखस-संज्ञा पुं० दे० "शख्स"।
शख्स-संज्ञा पुं० [अ०] व्यक्ति। जन। मनुष्य। आदमी।
शख्सियत-संज्ञा स्त्री० [अ०] शख्स का भाव या धर्म। व्यक्तिता। व्यक्तित्व।
शख्सी-वि० [अ०] शख्स का। मनुष्य का। व्यक्तिगत।
शगल-संज्ञा पुं० [अ०] (१) व्यापार। काम-धंधा। जैसे,—कहिए, आजकल क्या शगल है? (२) वह काम जो यों ही समय बिताने या मन बहलाने के लिये किया जाय। मनोविनोद।
शगुन-संज्ञा पुं० [सं० शकुन] (१) किसी काम के समय होनेवाले लक्षणों का शुभाशुभ विचार। शकुन। वि० दे० "शकुन"।

मुहा०—शगुन लेना या विचारना = कोई काम करने से पहले कुछ विशिष्ट क्रियाओं द्वारा यह जानना कि वह काम होगा कि नहीं।

(२) किसी काम के आरंभ में होनेवाले शुभ लक्षण। (३) एक प्रकार की रसम जो विवाह की बात चीत पक्की होने पर होती है। इसमें कन्या पक्ष के लोग वर पक्ष के लोगों के यहाँ कुछ मिठाई और नगद आदि भेजते हैं। तिलक। टीका।

क्रि० प्र०—देना।—भेजना।—लेना।

(४) नजराना। भेंट। (क्व०) (५) बहली में वह स्थान जहाँ बैल हाँकनेवाला बैठता है।

शगुनियाँ-संज्ञा पुं० [हिं० शगुन + इयाँ (प्रत्य०)] वह जो ज्योतिष या रमल आदि के द्वारा शुभाशुभ शगुनों आदि का विचार करता हो। साधारण कोटि का ज्योतिषी। रम्माल।
शगून-संज्ञा पुं० दे० "शगुन"।
शगूनियाँ-संज्ञा पुं० दे० "शगुनियाँ"।
शगूफा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) बिना खिला हुआ फूल। कली। (२) पुष्प। फूल। (३) कोई नई और विलक्षण घटना।
मुहा०—शगूफा खिलना = कोई नई और विलक्षण घटना होना। शगूफा खिलाना = कोई ऐसी नई और विलक्षण बात कर बैठना जिससे सब लोग चकित हो जायँ।
विशेष—इस मुहावरे का प्रयोग प्रायः ऐसी बातों के संबंध में ही होता है जिनसे कोई लड़ाई झगड़ा या झंझट आदि पैदा हो।
शचि, शची-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्र की पत्नी, इंद्राणी जो दानवराज पुलोमा की कन्या थी।
पर्य्या०—सची। ऐंद्री। पुलोमजा। माहेंद्री। जयवाहिनी। (२) शतावर। शतावरी। शतमूली। (३) स्पृक्का। असबरग। (४) वक्तृत्व शक्ति। वाग्मिता। (५) प्रज्ञा। बुद्धि। श्रद्धा।
शचीतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।
शचीपति-संज्ञा पुं० [सं०] शची के पति, इंद्र।
शचीपती-संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनीकुमार।
शचीबल-संज्ञा पुं० [सं०] नाटक में वह पात्र जो इंद्र के समान वेश भूषा धारण करता हो।
शचीश-संज्ञा पुं० [सं०] शची के पति, इंद्र।
शजर-संज्ञा पुं० [अ०] दरख्त। वृक्ष। पेड़।
शजरा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह कागज जिसमें किसी की वंशपरंपरा लिखी हो। वंशवृक्ष। पुश्तनामा। कुर्सीनामा। वंशावली। (२) वृक्ष। पौधा। (३) पटवारी का तैयार किया हुआ खेतों का नकशा।
शट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खटाई। अम्ल रस। (२) एक प्राचीन देश का नाम।
शटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जटा।
शटि, शटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कचूर। कर्चूर। (२) गंध पलाशी। कपूर कचरी। (३) अमिया हल्दी। आम्र हरिद्रा। (४) सुगंधवाला। नेत्रवाला।
शट्टक-संज्ञा पुं० [सं०] घी और पानी में सना हुआ चावल का आटा जिसका व्यवहार वैद्यक में होता है।
शठ-वि० [सं०] (१) धूर्त। चालाक। धोखेबाज। (२) पाजी। लुच्चा। बदमाश।
संज्ञा पुं० (१) तगर का फूल। (२) केसर। कुंकुम। जाफरान। (३) लोहा। (४) इस्पात। फौलाद। (५) धतूरे का वृक्ष। (६) चीता। चित्रक। चितउर। (७) ताल वृक्ष। (८) अमला का वृक्ष। (९) साहित्य में पाँच प्रकार के पतियों या नायकों में से एक प्रकार का पति या नायक। वह नायक जो छलपूर्वक अपना अपराध छिपाने में चतुर हो, और किसी दूसरी स्त्री के साथ प्रेम करते हुए भी अपनी स्त्री से प्रेम प्रदर्शित करने का बहाना करता हो। उ०—साहित काम मधुरे मधुर, बैननि कहै बनाय। उर अंतर घट कपटमय, सो शठ नायक आय। (१०) बेवकूफ। जड़ बुद्धि। (११) आलसी। (१२) वह जो दो आदमियों के बीच में पड़कर उनके झगड़े का निपटारा करता हो। मध्यस्थ।
शठता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शठ का भाव या धर्म्म। धूर्तता। (२) बदमाशी। पाजीपन।
शठत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शठ का भाव या धर्म्म। शठता।
शठांगा, शठाम्बा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मणी लता। अंबष्ठा। पाढ़ा।
शठिका, शठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कचूर। (२) गंध पलाशी। कपूर कचरी। (३) वन अदरक। पेऊ।
शठीकपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कंद गिलोय। कंद गुडूची।
शठोदरक-वि० [सं०] धोखेबाज। धूर्त।
शण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सन नामक पौधा। वि० दे० "सन"। (२) भंग। विजया। (३) शणपुष्पी। वनसनई।
शणई-संज्ञा स्त्री० दे० "सन"।
शणकंद-संज्ञा पुं० [सं०] चर्म्मकषा नाम का सुगंधि द्रव्य।
शणकंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का थूहड़ जिसे सातला कहते हैं।
शणक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।
शणघंटा, शणघंटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शणपुष्पी नाम की लता। वि० दे० "शणपुष्पी"।
शणचूर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] सनई का वह बचा हुआ भाग जो उसे कूटकर सन निकाल लेने के बाद रह जाता है।
शणपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की वनस्पति जो साधारणतः बनसनई कहलाती है। यह छोटी और बड़ी दो प्रकार की होती है। छोटी शणपुष्पी प्रायः सब प्रांतों में पाई जाती है। इसका क्षुप, पत्ते, फूल इत्यादि सन के ही समान होते हैं, किंतु क्षुप सन से छोटा होता है। फूल पीले, फलियाँ मटर के समान गोल और लंबी होती हैं। यह कड़वी, वमनकारक और पारे को बाँधनेवाली कही गई है। इसके फल सूख जाने पर अंदर के बीजों के कारण झन झन शब्द करते हैं; इसी से इसे झुनझुनियाँ कहते हैं। बड़ी शणपुष्पी प्रायः वाटिकाओं में लगाते हैं। इसका क्षुप, पत्ते आदि छोटी शणपुष्पी से बड़े होते हैं। फूल सफेद रंग

के होते हैं। यह कसैली, गरम और पारे को बाँधनेवाली कही गई है और मोहन, स्तंभन आदि में व्यवहार की जाती है। (२) अरहर।

शणशिफा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सनई या सन की जड़। शणमूल।

शणसमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वनसनई। शणपुष्पी।

शणसूत्र–संज्ञा पुं० [सं०] कुश आदि की बनी हुई पवित्री जो श्राद्ध, तर्पण आदि कृत्यों के समय कनिष्ठिका की बगलवाली उँगली में पहनी जाती है। पवित्रक।

शणाल–संज्ञा पुं० दे० "शणालुक"।

शणालुक–संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास का वृक्ष।

शणिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] शणपुष्पी। वन सनई।

शणीर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोन नदी के मध्य का उपजाऊ स्थल। (२) सर्यू नदी की शाखाओं से घिरा हुआ छपरे के समीप का एक द्वीप। दर्दरी तट।

शत–वि० [सं०] दस का दस गुना। सौ।

संज्ञा पुं० सौ की संख्या। दस की दस गुनी संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—१००।

शतक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शतिका] (१) सौ का समूह। (२) एक ही तरह की सौ चीजों का संग्रह। जैसे,—नीति शतक, रहिमन शतक। (३) वह जिसमें सौ भाग या अवयव हों। (४) सौ वर्षों का समूह। शताब्दी। (५) विष्णु का एक नाम।

शतकपालेश–संज्ञा पुं० [सं०] शिव की एक मूर्त्ति का नाम।

शतकर्म्मा–संज्ञा पुं० [सं० शतकर्म्मन्] शनि ग्रह।

शतकिरण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की समाधि।

शतकीर्त्ति–संज्ञा पुं० [सं०] जैन पुराणानुसार एक भावी अर्हत् का नाम।

शतकुंत, शतकुंद–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कनेर। करवीर।

शतकुंभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन पर्वत का नाम। (२) सफेद कनेर। शतकुंत। (३) सुवर्ण। सोना।

शतकुंभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम। (महाभारत)

शतकुलीरक–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का कीड़ा।

शतकुसुमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] शतपुष्पा। सौंफ।

शतकेसर–संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार एक वर्ष पर्वत का नाम।

शतकोटि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौ करोड़ की संख्या। अर्बुद। (२) इंद्र का वज्र। (३) हीरा। हीरक।

शतकौंभ, शतकौंभक–संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ण। सोना।

शतक्रतु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) वह जिसने सौ यज्ञ किए हों।

शतक्रतुद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] काली कुड़ा। कृष्ण कुटज।

शतक्रतुयव–संज्ञा पुं० [सं०] कुटज बीज। इंद्रजौ।

शतखंड–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना। स्वर्ण। (२) सोने की बनी हुई कोई चीज।

शतगु–वि० [सं०] सौ गौओं का स्वामी। सौ गायों का रखनेवाला। (मनु)

शतगुण–वि० [सं०] सौ गुना।

शतग्रंथि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद दूब। दूर्वा। (२) नीली दूब।

शतग्रीव–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की भूतयोनि।

शतघ्नी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का शस्त्र जो किसी बड़े पत्थर या लकड़ी के कुंदे में बहुत से कील-काँटे ठोंककर बनाया जाता था और जिसका व्यवहार युद्ध के समय शत्रुओं पर फेंकने में होता था। (२) वृश्चिकाली। बिछाती। (३) एक प्रकार की घास। (४) करंज या कंजे का पेड़। (५) भावप्रकाश के अनुसार गले में होनेवाला एक प्रकार का रोग जिसमें त्रिदोष के कारण गले में बत्ती के समान लंबी और मोटी तथा कंठ को रोकनेवाली, मांस के अंकुरों से भरी हुई और बहुत पीड़ा देनेवाली सूजन हो जाती है। यह रोग प्राणनाशक कहा गया है।

शतच्छद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कठफोड़वा या काठठोंका नामक पक्षी। (२) सौ पत्तोंवाला कमल। शतदल पद्म।

शतजटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सतावर। शतमूली।

शतजित्–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम। (२) भागवत के अनुसार विराज के एक पुत्र का नाम। (३) एक यक्ष का नाम।

शतजिह्व–संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

शततारा–संज्ञा स्त्री० [सं०] शतभिषा नाम का नक्षत्र जिसमें सौ तारे हैं।

शतदंतिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] नखी नाम गंधद्रव्य। हाथी शुंडी। नागदंती।

शतदल–संज्ञा पुं० [सं०] पद्म।

शतदला–संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवती। शतपत्री।

शतद्रु–संज्ञा स्त्री० [सं०] पंजाब की सतलज नाम की नदी जो हिमालय पर्वत के रावणह्रद से निकलकर पंजाब के दक्षिण-पश्चिमी भाग में बहती हुई ब्यास या विपाशा से मिलकर मुल्तान के दक्षिण ओर सिंधु में मिलती है।

शतधन्वा–संज्ञा पुं० [सं० शतधन्वन्] (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम। (२) एक योद्धा जिसे कृष्ण ने सत्राजित के मारने के अपराध में मारा था।

शतधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दूब।

शतधामा–संज्ञा पुं० [सं० शतधामन्] विष्णु का एक नाम।

शतधार–संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

शतधारवन–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

शतधृति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) ब्रह्मा। (३) स्वर्ग।

शतनेत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावर।

शतपति–संज्ञा पुं० [सं०] सौ मनुष्यों का मालिक या सरदार।

शतपत्र–वि० [सं०] (१) सौ दलों या पत्तोंवाला। (२) सौ पंखोंवाला।

संज्ञा पुं० (१) कमल। (२) सेवती। शतपत्री। (३) मोर नामक पक्षी। (४) कठफोड़वा नामक पक्षी। (५) सारस पक्षी। (६) मैना। सारिका। (७) बृहस्पति।

शतपत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कठफोड़वा नाम का पक्षी। (२) एक प्रकार का विषैला कीड़ा। (३) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

शतपत्र-निवास–संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

शतपत्रभेद न्याय–संज्ञा पुं० दे० "न्याय" (४–१७)।

शतपत्र-योनि–संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

शतपत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दूब।

शतपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का गुलाब।

शतपत्री-केसर–संज्ञा पुं० [सं०] गुलाब का जीरा। गुलाब-केसर।

शतपथ–वि० [सं०] (१) असंख्य मार्गोंवाला। (२) बहुत सी शाखाओंवाला।

शतपथ ब्राह्मण–संज्ञा पुं० [सं०] यजुर्वेद का एक ब्राह्मण। इसके कर्त्ता महर्षि याज्ञवल्क्य माने जाते हैं। इसकी माध्यंदिन और काण्व शाखाएँ मिलती हैं। इनमें से पहली की विशेष प्रतिष्ठा है। एक प्रणाली के अनुसार इसमें ६८ प्रपाठक हैं, और दूसरी के अनुसार यह १४ कांडों और १०० अध्यायों में विभक्त है। चारों ब्राह्मणों में से यह अधिक क्रमपूर्ण और रोचक है। इसमें अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यंत कर्मकांड का बड़ा ही विशद और सुंदर वर्णन है।

शतपथिक–वि० [सं०] (१) बहुत से मतों का अनुयायी। (२) शतपथ ब्राह्मण का जानने या पढ़नेवाला।

शतपद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कनखजूरा। गोजर। (२) च्यूँटी।

शतपद चक्र–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में सौ कोष्ठोंवाला एक प्रकार का चक्र। इसकी सहायता से नक्षत्रों का ज्ञान सुगमतापूर्वक हो जाता है।

शतपदी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कनखजूरा। गोजर। (२) सतावर। शतमूली। (३) सरसे की जाति का एक पौधा जिसके ऊपर कलगी के आकार के लाल फूल लगते हैं। जटाधर। (४) नीली कोयल नाम की लता।

शतपद्म–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कमल।

शतपरिवार–संज्ञा पुं० [सं०] समाधि का एक भेद।

शतपर्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बाँस। चंदा। (२) पौंढ़ा। गन्ना। केतारा। (३) दूर्वा घास। दूब (४) बच। (५) कुटकी। (६) सुगंधि द्रव्य। (७) भार्गव की पत्नी का नाम। (८) कलंबी। करेमू का साग।

शतपर्विका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दूब। (२) बच। (३) यव। जौ।

शतपाद–संज्ञा पुं० दे० "शतपद"।

शतपादिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकोली नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (२) कनखजूरा। गोजर।

शतपुत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सतपुतिया तरोई। (२) सतावर। शतावरी।

शतपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] साठी धान्य।

शतपुष्पा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोआ नाम का साग। (२) सौंफ। (३) गवेधुक।

शतपुष्पाह्ल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौंफ का साग। (२) शताह्वा।

शतपुष्पिका–संज्ञा स्त्री० दे० "शतपुष्पा"।

शतपोद, शतपोदक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का वातजन्य भगंदर। इसमें गुदा के समीप फोड़ा उत्पन्न होता है जिसके पकने पर बहुत से छेद हो जाते हैं और उनमें से मल, मूत्र तथा वीर्य्य निकलता है। (२) एक प्रकार का रोग जिसमें वात और रक्त के कुपित होने से लिंग पर अनेक छेद हो जाते हैं।

शतपोरक, शतपोर–संज्ञा पुं० [सं०] पौंढ़ा। गन्ना।

शतप्रसूता–संज्ञा स्त्री० दे० "शतपुष्पा"।

शतप्रास–संज्ञा पुं० [सं०] कनेर का वृक्ष। करवीर वृक्ष।

शतफल–संज्ञा पुं० [सं०] बाँस।

शतबला–संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नदी का नाम।

शतबलाक–संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक आचार्य्य का नाम।

शतबलि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मछली। (२) रामायण के अनुसार एक बंदर का नाम।

शतबाहु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का कीड़ा। (२) भागवत के अनुसार एक असुर का नाम। (३) बौद्धों के अनुसार मार के पुत्र का नाम।

शतभिष–संज्ञा पुं० दे० "शतभिषा"।

शतभिषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्विनी आदि सत्ताइस नक्षत्रों में से चौबीसवाँ नक्षत्र। यह सौ तारों का समूह है और इसकी आकृति मंडलाकार है। इसके अधिष्ठाता देवता वरुण कहे गए हैं, और यह ऊर्ध्व-मुख माना गया है। कहते हैं कि जो बालक इस नक्षत्र में जन्म लेता है, वह

साहसी, निष्ठुर, चतुर और अपने वैरी का नाश करनेवाला होता है।

शतभीरु-संज्ञा पुं० [सं०] मल्लिका। चमेली।

शतमख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। शतक्रतु। (२) उल्लू। कौशिक।

शतमन्यु-वि० [सं०] (१) क्रोधी। गुस्सावर। (२) उत्साही।
संज्ञा पुं० (१) इंद्र। (२) उल्लू।

शतमयूख-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शतमल्ल-संज्ञा पुं० [सं०] संखिया नामक विष।

शतमान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुवर्ण की कोई वस्तु जो तौल में सौ मान की हो। (२) सोना या चाँदी तौलने के लिये सौ मान की तौल या बाट। (३) चाँदी का पल। (४) आढ़क नाम की प्राचीन काल की तौल जो प्रायः पौने चार सेर की होती थी। (५) रूपा-माखी या तार-माक्षिक नाम की उपधातु।

शतमार्ज-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अस्त्र आदि बनाता या उन्हें ठीक करता हो।

शतमूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बड़ी सतावर। (२) बच। (३) नीली दूब।

शतमूलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आखुकर्णी नाम की लता। (२) बड़ी दंती। बँगरेवा।

शतमूली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शतावरी नाम की ओषधि। (२) तालमूली। मूसली। (३) बच।

शतयष्टिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह हार जिसमें सौ लड़ हों।

शतयातु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन वैदिक ऋषि का नाम।

शतरंज-संज्ञा पुं० [फ़ा० मि० सं० चतुरंग] एक प्रकार का प्रसिद्ध खेल जो चौंसठ खानों की बिसात पर खेला जाता है। यह खेल दो आदमी खेलते हैं जिनमें से प्रत्येक के पास १६-१६ मुहरे होते हैं। इन सोलह मुहरों में एक बादशाह, एक वज़ीर, दो ऊँट, दो घोड़े, दो हाथी या किश्तियाँ तथा आठ प्यादे होते हैं। इनमें से प्रत्येक मुहरे की कुछ विशिष्ट चाल होती है, अर्थात् उसके चलने के कुछ विशिष्ट नियम होते हैं। उन्हीं नियमों के अनुसार विपक्षी के मुहरे मारे जाते हैं। जब बादशाह किसी ऐसे घर में पहुँच जाता है, जहाँ से उसके चलने की जगह नहीं रहती, तब बाजी मात समझी जाती है। इसकी बिसात में आठ आठ खानों की आठ पंक्तियाँ होती हैं। वि० दे० "चतुरंग"।

शतरंजबाज-संज्ञा पुं० [फ़ा० शतरंज+फ़ा० बाज] शतरंज का खिलाड़ी। शातिर।

शतरंजबाज़ी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० शतरंज+फ़ा० बाज़ी] (१) शतरंज खेलने का व्यसन। (२) शतरंज खेलने का काम या भाव।

शतरंजी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) वह दरी जो कई प्रकार के रंग बिरंगे सूतों से बनी हो। (२) शतरंज खेलने की बिसात। (३) वह रोटी जो कई प्रकार के अनाजों को मिलाकर बनाई गई हो। मिस्सी रोटी। (४) वह जो शतरंज का अच्छा खिलाड़ी हो।

शतरथ-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

शतरात्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो सौ रातों में समाप्त होता था।

शतरुद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुद्र का एक रूप जिसके सौ मुँह माने जाते हैं। (२) शैव दर्शन के अनुसार एक शक्ति जो आत्मा की उत्पादक कही गई है।

शतरुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिमालय की एक नदी का नाम।

शतरुद्रिय, शतरुद्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यज्ञ की हवि। (२) यजुर्वेद का एक अंश जिसमें रुद्र के स्तोत्र हैं।

शतरूप-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शतरूपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्रह्मा की मानसी कन्या तथा पत्नी का नाम। इसी के गर्भ से स्वायंभुव मनु की उत्पत्ति हुई थी। पर विष्णु पुराण में लिखा है कि शतरूपा स्वायंभुव मनु की स्त्री थी, न कि माता।

शतर्ची-संज्ञा पुं० [सं० शतर्चिन्] ऋग्वेद के प्रथम मंडल के मंत्रद्रष्टा ऋषियों की उपाधि।

शतलोचन-वि० [सं०] सौ नेत्रोंवाला।
संज्ञा पुं० (१) स्कंद के एक गण या अनुचर का नाम। (२) पुराणानुसार एक असुर का नाम।

शतवनि-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

शतवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीली दूब। (२) काकोली नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

शतवादन-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत से बाजों का एक साथ बजना।

शतवार-संज्ञा पुं० [सं०] एक कवच का नाम जो अथर्व वेद में है।

शतवार्षिक-वि० [सं०] प्रति सौ वर्ष पर होनेवाला।

शतवार्षिकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी न बरसना। अनावृष्टि।

शतवाही-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो मैके से बहुत सा धन साथ लेकर ससुराल आई हो।

शतवीर-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

शतवीर्य्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफ़ेद दूब। (२) शतावर। शतमूली। (३) मुनक्का। कपिल द्राक्षा। (४) सफ़ेद मूसली। (५) किशमिश।

शतवृषभ-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में एक मुहूर्त्त का नाम।

शतवेधिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चूका या चुक्रिका नामक साग।

शतवेधी-संज्ञा पुं० [सं० शतवेधिन्] (१) अमलबेंत। (२) चूका या चुक्रिका नामक साग।

शतशलाका–संज्ञा स्त्री० [सं०] छत्र।

शतशीर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम। (२) रामायण के अनुसार एक प्रकार का अभिमंत्रित अस्त्र।

शतशीर्षा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वासुकी देवी का एक नाम।

शतशृंग संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जो महाभद्र के उत्तर में अवस्थित बतलाया गया है। अनुमान है कि यह वर्त्तमान मैसूर राज्य के एक पर्वत का प्राचीन नाम है।

शतसंख्य–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णुपुराण के अनुसार दसवें मन्वंतर के एक देवता का नाम।

शतसहस्त्रक–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

शतसुता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सतावर। शतमूली।

शतह्रद–संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक असुर का नाम।

शतह्रदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विद्युत्। बिजली। (२) वज्र। (३) दक्ष की एक कन्या का नाम जो बाहुपुत्र की स्त्री थी। (४) विराध राक्षस की माता का नाम।

शतांग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रथ। (२) तिनिश। तिरिछ वृक्ष। वि० सौ अंगों या अवयवोंवाला।

शतांगुल–संज्ञा पुं० [सं०] ताल या ताड़ का वृक्ष।

शतांश–संज्ञा पुं० [सं०] सौ भागों में से एक भाग। १००वाँ हिस्सा।

शता–संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावर।

शताकरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक किन्नरी का नाम।

शताकारा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक गंधर्व स्त्री का नाम।

शताक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक दानव का नाम।

शताक्षी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात्रि। रात। (२) शतपुष्पा नामक वनस्पति। सौंफ। (३) पार्वती। (४) दुर्गा।

शतानंद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु। (३) विष्णु का रथ। (४) कृष्ण। (५) गौतम मुनि। (६) राजा जनक के एक पुरोहित का नाम। उ०—शतानंद तब वंदि प्रभु बैठे गुरु पहँ जाय।—तुलसी।

शतानंदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम। (२) पुराणानुसार एक नदी का नाम।

शतानक–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ मुरदे जलाए जाते हों। मसान। श्मशान। मरघट।

शतानन–संज्ञा पुं० [सं०] बेल। श्रीफल।

शतानना–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

शतानीक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृद्ध पुरुष। बुड्ढा आदमी। (२) एक मुनि जो व्यास का शिष्य था। (३) श्वसुर। ससुर। (४) पुराणानुसार चौथे युग में चंद्रवंश का द्वितीय राजा। इसका पिता जन्मेजय और पुत्र सहस्रानीक था। (५) भागवत के अनुसार सुदास राजा का पुत्र। (६) महाभारत के अनुसार नकुल के एक पुत्र का नाम जो द्रौपदी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। (७) एक असुर का नाम।

शताब्द–वि० [सं०] सौ वर्षवाला।

संज्ञा पुं० सौ वर्ष। शताब्दी। सदी।

शताब्दी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सौ वर्षों का समय। (२) किसी संवत् में सैकड़े के अनुसार एक से सौ वर्ष तक का समय। जैसे,—ईसवी पाँचवीं शताब्दी अर्थात् ई० सन् ४०१ से ५०० तक का समय।

शतामघ–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम।

शतायुध–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सौ अस्त्र धारण करता हो। सौ अस्त्रोंवाला।

शतायुधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक किन्नरी का नाम।

शतायु–संज्ञा पुं० [सं० शतायुस्] (१) वह जिसकी आयु सौ वर्षों की हो। (२) महाभारत के अनुसार पुरूरवा के एक पुत्र का नाम। (३) विष्णु पुराण के अनुसार उशना के एक पुत्र का नाम।

शतार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वज्र। (२) सुदर्शन चक्र।

शतारु–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कोढ़। इस रोग में लाल पर लाल, काली और दाहयुक्त फुंसियाँ हो जाती हैं।

शतारुषी–संज्ञा स्त्री० दे० "शतारु"।

शतावधान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह मनुष्य जो एक साथ बहुत सी बातें सुनकर उन्हें सिलसिलेवार याद रख सकता हो और बहुत से काम एक साथ कर सकता हो। श्रुतिधर।

विशेष—कुछ मेधावी लोग ऐसे होते हैं जो एक साथ बहुत से काम करने का अभ्यास करते हैं। जैसे,—एक आदमी रह रहकर कुछ संख्या या अंकों का नाम लेता है। दूसरा आदमी रह रहकर घड़ियाल बजाता है। तीसरा आदमी किसी ऐसी भाषा के वाक्य के शब्द बोलता है जिससे शतावधान करनेवाला मनुष्य अपरिचित होता है। एक आदमी पूर्ति के लिये कोई समस्या देता है। एक ओर शतरंज का खेल होता रहता है। शतावधान का यह कर्त्तव्य होता है कि वह संख्याओं और अपरिचित भाषा के वाक्य के शब्द याद रखे, समस्या की पूर्ति करे और शतरंज खेलता चले और इसी प्रकार और जितने काम होते हों, उन सब में सम्मिलित रहे; और अंत में सब का ठीक ठीक उत्तर दे और सब काम ठीक ठीक पूरे उतारे। (२) शतावधान का काम।

शतावधानी-संज्ञा पुं० दे० "शतावधान"।
संज्ञा स्त्री० [सं० शतावधान] शतावधान का काम।
शतावर-संज्ञा पुं० [सं० शतावरी] सतावर नाम की ओषधि। सफ़ेद मूसली।
शतावरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शतमूली। सतावर। सफ़ेद मूसली। (२) कचूर। शटी। (३) इंद्र की भार्य्या, इंद्राणी।
शतावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) महादेव। (३) हरिवंश के अनुसार एक पवित्र वन का नाम।
शतावर्त्ती-संज्ञा पुं० [सं० शतावर्तिन्] विष्णु।
शताश्रि-संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।
शताह्वया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सौंफ। (२) सोआ। मधूरिका। (३) सतावर।
शताह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सौंफ। (२) सतावर। (३) अजमोदा। (४) एक प्राचीन नदी का नाम। (५) एक तीर्थ का नाम।
शतिक-वि० [सं०] सौ संबंधी। सौ का।
शती-संज्ञा स्त्री० [सं० शतिन्] सौ का समूह। सैकड़ा। जैसे,—दुर्गा सप्तशती।
शतेर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शत्रु। (२) घाव। ज़ख्म। (३) हिंसा।
शतोदर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव का एक नाम। (२) शिव के एक गण का नाम। (३) रामायण के अनुसार एक अस्त्र का नाम।
शतोदरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।
शतौदना-संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ में होनेवाला एक प्रकार का कृत्य।
शत्रि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गज। हाथी। (२) बल। ताकत। (३) एक राजर्षि का नाम।
शत्रुंजय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काठियावाड़ प्रांत का एक प्रसिद्ध पर्वत जो विमलाद्रि भी कहलाता है। यह जैनियों का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। (२) रामायण के अनुसार एक नाग का नाम। (३) परमेश्वर।
वि० शत्रु को जीतनेवाला।
शत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके साथ भारी विरोध या वैमनस्य हो। रिपु। अरि। दुश्मन। (२) एक असुर का नाम। (३) नाग-दमन या मारछोबा नाम की वनस्पति।
शत्रुकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] पुंगीफल। सुपारी।
शत्रुकंटका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुपारी।
शत्रुघाती-संज्ञा पुं० [सं० शत्रुघातिन्] राजा दशरथ के पुत्र शत्रुघ्न का एक पुत्र।
वि० शत्रु का नाश करनेवाला।
शत्रुघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राम के एक भाई जो सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इनका भरत के साथ वैसा ही प्रेम था जैसा लक्ष्मण का राम के साथ था। (२) श्वफल्क का एक पुत्र। (३) देवश्रवा के एक पुत्र का नाम।
वि० शत्रु को मारनेवाला। अरि को नष्ट करनेवाला।
शत्रुघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] हथियार।
शत्रुजित्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) ऋतुध्वज या कुवलयाश्व के पिता का नाम।
वि० शत्रु को जीतनेवाला।
शत्रुतपन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) एक दैत्य का नाम। कहते हैं कि यह रोग फैलाता है।
शत्रुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शत्रु का भाव या धर्म्म। दुश्मनी। वैर भाव।
क्रि० प्र०—करना।—दिखलाना।—रखना।—होना।
शत्रुताई*-संज्ञा स्त्री० दे० "शत्रुता"।
शत्रुत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु का भाव या धर्म्म। शत्रुता। दुश्मनी।
शत्रुदमन-वि० [सं०] दुश्मनों को वश में करनेवाला।
संज्ञा पुं० दशरथ के पुत्र शत्रुघ्न का एक नाम।
शत्रुद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेंत।
शत्रुभंग-संज्ञा पुं० [सं०] मूँज नामक तृण।
शत्रुभूमिज-संज्ञा पुं० [सं०] आँखों में लगाने का सुरमा।
शत्रुमर्द्दन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शत्रुघ्न का एक नाम। (२) कुवलयाश्व के पुत्र का नाम।
वि० शत्रुओं का नाश करनेवाला।
शत्रुविनाशन-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।
शत्रुहंता-वि० [सं० शत्रुहंतृ] शत्रु का नाश करनेवाला।
शत्रुहा-संज्ञा पुं० [सं० शत्रुहन्] दशरथ के पुत्र शत्रुघ्न का एक नाम।
वि० शत्रु का नाश करनेवाला।
शत्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि। रात।
शद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फल मूलादि। (२) कर। लगान। (३) तरकारी।
शदक-संज्ञा पुं० [सं०] वह अनाज जिसकी भूसी न निकाली गई हो।
शदीद-वि० [अ०] बहुत ज्यादह। जोर का। भारी। सख़्त। जैसे,—उसको चोट शदीद है।
शद्देवा-संज्ञा स्त्री० दे० "सहदेवा"।
शद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) हाथी।
संज्ञा स्त्री० (१) खंड। टुकड़ा। (२) बिजली। दामिनी। तड़ित।

शद्रु-वि० [सं०] गिरानेवाला। पतन करनेवाला।
संज्ञा पुं० विष्णु।

शद्रुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

शन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शांति। (२) चुप्पी। खामोशी।
संज्ञा पुं० दे० "सन" (पौधा)।

शनक-संज्ञा पुं० [सं०] शंबर के एक पुत्र का नाम।

शनकाघलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपीपल।

शनपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कडुकी नाम की ओषधि।

शनपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बन-सनई।

शनहुली-संज्ञा स्त्री० दे० "शनपुष्पी"।

शनि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौर जगत के नौ ग्रहों में से सातवाँ ग्रह। सूर्य्य से इसका अंतर ८८३०००००० मील अथवा पृथ्वी के अंतर से ९½ गुना है। इसका व्यास ७५८०० मील का है। सूर्य्य की परिक्रमा में इसको २९ वर्ष और १६७ दिन अर्थात् कुल १०७५९ दिन लगते हैं। बृहस्पति को छोड़कर यह सब से बड़ा ग्रह है। पृथ्वी से इसका व्यास ९ गुना, विस्तार ६९७ गुना और मान ९१ गुना है। इसके साथ नौ उपग्रह या चंद्रमा हैं। बृहस्पति से छोटा होने पर भी यह सब ग्रहों से अधिक चमकदार है, जिससे इसका आकार सब से बड़ा प्रतीत होता है। यह १०८ दिन में एक बार अपनी धुरी पर घूमता है। यह ग्रह विचित्र आकार का है। इसके बाहर चारो ओर एक बहुत बड़ा वलय है; और उस बाह्य वलय से इसके पिंड की दूरी ५९०० मील है। इसके बाह्य वलय की चौड़ाई ११२०० मील है। इस वलय का व्यास १७२८०० मील और मोटाई सौ मील से कुछ कम है।

फलित ज्योतिष के अनुसार यह ग्रह काले रंग का, शूद्र वर्ण और सूर्य्यमुख है तथा इसका वाहन गृध्र है। यह सौराष्ट्र देश का स्वामी, नपुंसक और तमोगुण-युक्त है; और कषाय रस का अधिपति है। मकर और कुंभराशि तथा नील-कांत मणि का भी अधिपति है। यह चतुर्भुज है और इसके हाथों में बाण, शूल, धनुष और वर है। इसके अधिपति देवता यम और प्रत्यधिदेवता प्रजापति हैं। इसका परिमाण चार अंगुल है। पद्मपुराण के अनुसार सूर्य्य की स्त्री छाया के गर्भ से इसकी उत्पत्ति हुई थी। अपनी स्त्री के शाप से इसकी दृष्टि क्रूर हो गई और पार्वती के शाप के कारण यह लंग हो गया। इसे कश्यप मुनि की संतान मानते हैं। फलित ज्योतिष के अनुसार शनि का फल इस प्रकार लिखा है—पाप ग्रह और अशुभ फल का देनेवाला है; परंतु राशि और स्थान विशेष में शुभ फल भी प्रदान करता है। शनि और मंगल दोनों ग्रह स्थान विशेष पर एक साथ होने से राजयोग-कारक होते हैं। यह भी माना जाता है कि लोगों पर जो भारी विपत्तियाँ आती हैं, वे प्रायः इसी की कुदृष्टि के कारण होती हैं। इसका फल साढ़े सात दिन, साढ़े सात मास या साढ़े सात वर्ष तक रहता है।

पर्य्या०—सौरि। शनिश्चर। नीलवासा। मंद। छायात्मज। पातंगि। ग्रहनायक। छायासुत। भास्करी। नीलांबर। आर। क्रोड़। वक्र। कोल। ससांशु। पंगु। काल। सूर्य्य-पुत्र। असित।

(२) दुर्भाग्य। अभाग्य। बदकिस्मती। (३) दे० "शनिवार"।

शनिचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में मनुष्य के शरीर के आकार का एक प्रकार का चक्र जिसमें शनिभोग्य नक्षत्र से आरंभ करके चक्र रूपी मनुष्य के भिन्न भिन्न अंगों में २७ नक्षत्रों की स्थापना करके शुभाशुभ फल जाने जाते हैं।

शनिज-संज्ञा पुं० [सं०] काली मिर्च।

शनि प्रदोष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रदोष (पर्व) जो शनिवार के दिन किसी मास के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी पड़ने पर होता है। इस दिन व्रत रखा और शिव का पूजन किया जाता है।

शनिप्रसू-संज्ञा स्त्री० [सं०] शनि की माता छाया जो सूर्य्य की पत्नी कही गई है।

शनिप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] नीलमणि। नीलम।

शनिशृह-संज्ञा स्त्री० [सं०] भैंस। महिषी।

शनिवार-संज्ञा पुं० [सं०] वह वार जो रविवार से पहले और शुक्रवार के बाद पड़ता है।

शनिश्चर-संज्ञा पुं० दे० "शनि"।

शनैः-अव्य० [सं०] धीरे। आहिस्ता। हौले।
यौ०—शनैः शनैः = धीरे धीरे। आहिस्ते आहिस्ते।
संज्ञा पुं० दे० "शनिवार"।

शनैःप्रमेह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह रोग। इस प्रमेह [redacted] रोगी को धीरे धीरे, थमकर और बहुत पतली धार में थोड़ा थोड़ा पेशाब आता है।

शनैर्मेह-संज्ञा पुं० दे० "शनैःप्रमेह"।

शनैर्मेही-संज्ञा पुं० [सं०] वह रोगी जिसे शनैःप्रमेह का रोग हो।

शनैश्चर-संज्ञा पुं० दे० "शनि"।

शपथ-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह कथन जिसके अनुसार कहने-वाला इस बात की प्रतिज्ञा करता है कि यदि मेरा कथन असत्य हो, मैं ने अमुक काम किया हो, मैं अमुक काम करूँ या न करूँ इत्यादि, तो मुझ पर अमुक देवता का शाप पड़े अथवा मैं अमुक पाप का भागी होऊँ आदि। कसम। दिव्य। सौगंद।
क्रि० प्र०—खाना।—देना।—लेना।
मुहा०—दे० "कसम" के मुहा०।
(२) दिव्य। वि० दे० "दिव्य" (२१)। (३) प्रतिज्ञा या

दृढ़तापूर्वक कोई काम करने या न करने आदि के संबंध में कथन। कौल। वचन।

शपन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शपथ। कसम। (२) गाली। कुवाच्य।

शप्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बल्वक अथवा उलप नामक तृण। (२) वह व्यक्ति जिसे शाप दिया गया हो।

शफ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्ष की जड़। (२) पशुओं का खुर। (३) नखी नामक गंध द्रव्य।

शफ़क़–संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रातःकाल या सायंकाल के समय आकाश में दिखाई पड़नेवाली ललाई; विशेषतः संध्या के समय दिखाई पड़नेवाली लालिमा जो बहुत ही मनोहर होती है।

मुहा०—शफ़क़ फूलना = प्रातःकाल या संध्या के समय आकाश में लालिमा फैलना।

शफ़क़त–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) कृपा। दया। मेहरबानी। (२) प्यार। मुहब्बत। प्रेम।

क्रि० प्र०—दिखलाना।—रखना।

शफ़गोल–संज्ञा स्त्री० दे० "इसबगोल"।

शफ़तालू–संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का बड़ा आड़ू जिसे सतालुक या सताळू भी कहते हैं। वि० दे० "सताळू"।

शफर–संज्ञा स्त्री० [सं०] पोठी या पोठिया नाम की मछली।

शफराधिप–संज्ञा पुं० [सं०] हिलसा मछली।

शफरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की छोटी मछली।

शफरुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संदूक। बक्स। (२) पात्र। बरतन।

शफ़ा–संज्ञा स्त्री० [अ०] शरीर का स्वस्थ होना। नीरोगता। आरोग्यता। तंदुरुस्ती।

क्रि० प्र०—(किसी को) शफ़ा देना = (किसी का) रोग दूर करना। अच्छा करना। आराम देना। नीरोग करना।

शफ़ाख़ाना–संज्ञा पुं० [अ० शफ़ा + फ़ा० ख़ाना] वह स्थान जहाँ रोगियों की चिकित्सा होती हो। चिकित्सालय। अस्पताल।

शफोरु–वि० [सं०] जिसकी जाँघ गाय के खुर के समान हो। संज्ञा स्त्री० गाय के खुर के समान जंघावाली स्त्री।

शब–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रात। रात्रि। रजनी। निशा।

शबनम–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) ओस। तुषार। (२) एक प्रकार का सफेद रंग का बहुत ही बारीक कपड़ा।

शबनमी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चारपाई के ऊपर का वह ढाँचा जिस पर रात के समय ओस से बचने के लिये मसहरी टाँगी जाती है। मसहरी। छपरखट।

शबबरात–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] मुसलमानों के आठवें मास की चौदहवीं अथवा पंद्रहवीं रात। इस रात को मुसलमानों के विश्वास के अनुसार फरिश्ते परमात्मा की आज्ञा से भोजन बाँटते और आयु का हिसाब लगाते हैं। इस दिन मुसलमान अपने मृत पूर्वजों के उद्देश्य से प्रार्थना करते, हलुआ पूरी बाँटते, रोशनी करते और आतिशबाजी छोड़ते हैं।

शबर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दक्षिण में रहनेवाली एक जंगली या पहाड़ी जाति। (२) जंगली। वहशी। (३) शूद्र तथा भील से उत्पन्न संतान। (४) लोध नामक वृक्ष। (५) शिव। वि० (१) चितकबरा। (२) रंग बिरंगा।

शबरक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शबरिका] जंगली। वहशी।

शबरचंदन–संज्ञा पुं० [सं० शबर + हिं० चंदन] एक प्रकार का चंदन जो लाल और सफेद दोनों मिले हुए रंगों का होता है। वैद्यक के अनुसार यह शीतल तथा कड़वा, और वात, पित्त, कफ, विस्फोटक, खुजली, कुष्ट, मोहादि को नष्ट करनेवाला माना जाता है।

शबरजंबु–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर का नाम।

शबरलोध–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद लोध।

शबल–वि० [सं०] (१) चितकबरा। (२) रंग बिरंगा। चित्र विचित्र।

संज्ञा पुं० (१) एक नाग का नाम। (२) बौद्धों का एक प्रकार का धार्मिक कृत्य। (३) अगिया घास। गंध तृण। (४) चित्रक। चितउर वृक्ष।

शबलक–वि० [सं०] (१) चितकबरा। (२) रंगबिरंगा। चित्र विचित्र।

शबलचेतन–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी प्रकार की पीड़ा या कष्ट आदि के कारण बहुत घबराया हुआ हो। वह जो संतप्त या व्यथित होने के कारण अन्यमनस्क हो।

शबलत्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शबल का भाव या धर्म। (२) रंग बिरंगा पन। (३) मिलावट।

शबला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चितकबरी गौ। (२) कामधेनु।

शबलाक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शबलाश्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम। (२) दक्ष के एक पुत्र का नाम।

शबलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पक्षी।

शबलित–वि० [सं०] चितकबरा। रंग बिरंगा।

शबली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कामधेनु। (२) चितकबरी गाय।

शबाब–संज्ञा पुं० [अ०] (१) यौवन काल। जवानी। (२) किसी वस्तु की वह मध्य की अवस्था जिसमें वह बहुत अच्छा या सुंदर जान पड़े। (३) बहुत अधिक सौंदर्य।

क्रि० प्र०—आना।—उतरना।—चढ़ना।—जाना।

शबाहत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) समानता। अनुरूपता। (२) सूरत। शक्ल। आकृति।

शबीह-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वह चित्र जो किसी व्यक्ति की सूरत शक्ल के ठीक अनुरूप बना हो।

क्रि० प्र०—खींचना।—बनाना।

(२) समानता। अनुरूपता।

शबोरोज़-अव्य० [फ़ा० शब=रात+रोज़=दिन] रात दिन। हर समय। हर दम।

शब्द-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु में होनेवाला वह कंप जो किसी पदार्थ पर आघात पड़ने के कारण अथवा स्वयं वायु पर आघात पड़ने के कारण उत्पन्न होकर कान या श्रवणेंद्रिय तक पहुँचता और उसमें एक विशेष प्रकार का क्षोभ उत्पन्न करता है। ध्वनि। आवाज़।

विशेष—प्रायः सभी पदार्थों से, उन पर आघात आदि करके या उनमें जल्दी जल्दी गति उत्पन्न करके, शब्द उत्पन्न किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, मृदंग, ढोल, घंटा, कुरसी, किवाड़, कलम, थाली, जूता, हथौड़ी आदि। जब किसी पदार्थ पर दूसरा कोई पदार्थ आकर गिरता है अथवा किसी पदार्थ में बार बार गति उत्पन्न की जाती है, तब वायु में एक प्रकार की ठेस लगती है जो सब ओर कुछ दूर तक जाती है; और जहाँ कान या श्रवणेंद्रिय होती है, वहाँ वह उसे ग्रहण करके मस्तिष्क को उसकी सूचना देती है। वायु तो शब्द का वहन करती ही है, पर इसके अतिरिक्त और अनेक प्रकार की गैसें, जल तथा अनेक लचीले ठोस पदार्थ भी शब्द वहन करते हैं। पर इनमें से मुख्य वाहक वायु ही है। तो भी वायु की अपेक्षा जल में शब्द बहुत अधिक दूर तक जाता है। जिस स्थान में वायु बिलकुल नहीं होती, वहाँ शब्द का वहन भी किसी प्रकार नहीं हो सकता। वायु की अपेक्षा जल में शब्द की गति और भी अधिक होती है। शब्द हलका या धीमा भी होता है; और भारी या तेज भी। यदि वायु में कंप बहुत अधिक होता है, तो शब्द भी तेज या ऊँचा होता है। यदि वायु या शब्द के वाहक दूसरे साधन का घनत्व कम हो, तो भी शब्द हलका या धीमा हो जाता है। इसके अतिरिक्त दूरी भी शब्द को हलका या धीमा कर देती है। प्रकाश की भाँति शब्द का भी परावर्त्तन होता है। अर्थात् शब्द एक स्थान से उत्पन्न होकर किसी ओर जाता है, और मार्ग में अवरोध पाकर फिर पीछे की ओर लौट आता है। पहाड़ के नीचे या गुंबदों आदि में बोलने के समय शब्द की जो गूँज या प्रतिध्वनि होती है, वह इसी परावर्तन के कारण होती है। यदि वातावरण का तापमान ३२° हो तो शब्द की गति प्रति सेकंड ११२५ फुट या प्रति मिनट प्रायः १२ मील होती है। यदि प्रायः एक ही तरह के बहुत से शब्द लगातार रह रहकर हों, तो उनसे "शोर" पैदा होता है। शब्द के दो मुख्य भेद होते हैं—वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक। ध्वन्यात्मक शब्द वह है जो कंठ और तालु आदि की सहायता से उत्पन्न होता है। इसके भी दो भेद हैं—व्यक्त और अव्यक्त। जो शब्द सुनने में स्पष्ट हो और जिसका कोई अर्थ हो वह व्यक्त कहलाता है। [दे० "शब्द" (२)।] और जो शब्द स्पष्ट सुनाई न दे और जिसका कोई अर्थ न हो, वह अव्यक्त कहलाता है। जैसे,—हा, कैं, खों। वर्णात्मक शब्द के अतिरिक्त और जितने प्रकार के शब्द होते हैं, वे ध्वन्यात्मक कहलाते हैं। जैसे, मृदंग या घंटे आदि से अथवा ज़ोर से हवा चलने के कारण उत्पन्न होनेवाला शब्द। मीमांसाकार ने शब्द को नित्य और सांख्यकार ने उसे आकाश का गुण माना है। वि० दे० "ध्वनि"

पर्य्या०—निनाद। रव। निर्घोष। नाद। घोष। निनद। ध्वान। स्वान। निर्ह्राद। आरव। राव।

(२) वह स्वतंत्र, व्यक्त और सार्थक ध्वनि जो एक या अधिक वर्णों के संयोग से, कंठ और तालु आदि के द्वारा, उत्पन्न हो और जिससे सुननेवाले को किसी पदार्थ, कार्य्य या भाव आदि का बोध हो। लफ़्ज़। जैसे,—मैं, क्या, सोना, घोड़ा, मोटाई, काला आदि। (३) अमृतोपनिषद् के अनुसार "ओ३म्" जो परमात्मा का मुख्य नाम है। (४) किसी साधु या महात्मा के बनाए हुए पद या गीत आदि। जैसे,—गुरु नानक के शब्द, कबीर के शब्द।

शब्दग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कान, जिससे शब्द का ग्रहण होता है। (२) एक प्रकार का काल्पनिक बाण।

वि० शब्द को ग्रहण करनेवाला।

शब्द-चातुर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] शब्दों के प्रयोग करने की चतुरता। बोल चाल की प्रवीणता। वाग्मिता।

शब्दचालि-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का नृत्य।

शब्दचित्र-संज्ञा पुं० [सं०] अनुप्रास नामक अलंकार।

शब्दत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शब्द का भाव या धर्म्म। शब्दता।

शब्दनृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य।

शब्दपति-संज्ञा पुं० [सं०] नाम मात्र का नेता। वह नेता जिसके अनुयायी न हों।

शब्द-प्रमाण-संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रमाण जो किसी के केवल शब्दों या कथन के ही आधार पर हो। आप्त या विश्वास-पात्र पुरुष की बात जो प्रमाण स्वरूप मानी जाती हो। वि० दे० "प्रमाण"।

शब्दप्राश-संज्ञा पुं० [सं०] शब्द के अर्थों का अनुसंधान। शब्दार्थ की जिज्ञासा।

शब्दविरोध-संज्ञा पुं० [सं०] वह विरोध जो वास्तविक या भाव में न हो, बल्कि केवल शब्दों से जान पड़ता हो।

शब्दबोध-संज्ञा पुं० [सं०] शाब्दिक साक्षी द्वारा प्राप्त ज्ञान। वह ज्ञान जो जबानी गवाही से प्राप्त हो।

शब्दब्रह्म-संज्ञा पुं० [सं०] वेद जो अपौरुषेय और ईश्वर का कहा हुआ माना जाता है।

शब्दभेदी-संज्ञा पुं० दे० "शब्दवेधी"।

संज्ञा स्त्री० [सं०] गुदा। मलद्वार।

शब्दमहेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। (कहते हैं कि पाणिनि को व्याकरण का आदेश शिव ने ही किया था; इसी से उनका यह नाम पड़ा।)

शब्दमाल-संज्ञा पुं० [सं०] पोला बाँस।

शब्दयोनि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जड़। मूल। (२) शब्द की उत्पत्ति। (३) वह शब्द जो अपने मूल अथवा प्रारंभिक रूप में हो।

शब्दरोचन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास।

शब्दविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याकरण। शब्दशास्त्र।

शब्दवेधी-संज्ञा पुं० [सं० शब्दवेधिन्] (१) वह मनुष्य जो आँखों से बिना देखे हुए केवल शब्द से दिशा का ज्ञान करके किसी व्यक्ति या वस्तु को बाण से मारता हो।

विशेष—हमारे यहाँ प्राचीन काल में ऐसे धनुर्धर हुआ करते थे जो आँखों पर पट्टी बाँधकर किसी व्यक्ति का शब्द सुनकर या लक्ष्य पर की हुई टंकार सुनकर ही यह समझ लेते थे कि यह व्यक्ति अथवा वस्तु अमुक ओर है; और तब ठीक उसी पर बाण चलाते थे।

(२) अर्जुन। (३) दशरथ।

शब्दशक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] शब्द की वह शक्ति जिसके द्वारा उसका कोई विशेष भाव प्रदर्शित होता है।

विशेष—जब शब्द किसी वाक्य या वाक्यांश का अंग होता है, तब उसका अर्थ या तो साधारण और या वाक्य के तात्पर्य्य के अनुसार और अपने साधारण अर्थ से कुछ भिन्न होता है। उसकी जिस शक्ति के अनुसार वह साधारण या उससे कुछ भिन्न अर्थ प्रकट होता है, वह शब्द शक्ति कहलाती है। यह शब्द शक्ति तीन प्रकार की मानी गई है—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। (दे० ये तीनों शब्द) इन तीनों से प्रकट होनेवाले अर्थ क्रमशः वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य तथा इन्हें प्रकट करनेवाले शब्द वाचक, लक्षक और व्यंजक कहलाते हैं।

शब्दशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें भाषा के भिन्न भिन्न अंगों और स्वरूपों का विवेचन तथा निरूपण किया जाय। व्याकरण।

शब्दश्लेष-संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्द जो दो या अधिक अर्थों में प्रयुक्त किया जाय।

शब्दसंभव-संज्ञा पुं० [सं०] वायु जो शब्द की उत्पत्ति का कारण है; अथवा जिससे शब्द का अस्तित्व संभव होता है।

शब्दसाधन-संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण का वह अंग जिसमें शब्दों की व्युत्पत्ति, भेद और रूपांतर आदि का विवेचन होता है। शब्दों के संज्ञा, क्रिया, विशेषण, क्रिया विशेषण, सर्वनाम आदि जो भेद होते हैं, वे भी इसी के अंतर्गत हैं।

शब्दसौंदर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] शब्दों के उच्चारण की सुगमता।

शब्दसौष्ठव-संज्ञा पुं० [सं०] किसी लेख या शैली आदि में प्रयुक्त किए हुए शब्दों की कोमलता या सुंदरता।

शब्दहीन-संज्ञा पुं० [सं०] शब्दों का वह रूप या प्रयोग जिसे आचार्यों ने न प्रयुक्त किया हो।

शब्दाक्षर-संज्ञा पुं० [सं०] ध्वनिपूर्वक उच्चरित 'ओ३म्' शब्द।

शब्दाख्येय-वि० [सं०] जोर से या चिल्लाकर कहा जानेवाला शब्द।

शब्दाडंबर-संज्ञा पुं० [सं०] बड़े बड़े शब्दों का ऐसा प्रयोग जिसमें भाव की बहुत ही न्यूनता हो। केवल शब्दों की सहायता से खड़ा किया जानेवाला आडंबर। शब्दजाल।

शब्दाढ्य-संज्ञा पुं० [सं०] काँसा नाम की धातु।

शब्दातिग-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

शब्दातीत-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शब्द से परे हो, अर्थात् ईश्वर।

शब्दाधिष्ठान-संज्ञा पुं० [सं०] कर्ण। कान।

शब्दाध्याहार-संज्ञा पुं० [सं०] वाक्य को पूरा करने के लिये उसमें अपनी ओर से और शब्द जोड़ना।

शब्दानुशासन-संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण।

शब्दालंकार-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में वह अलंकार जिसमें केवल शब्दों या वर्णों के विन्यास से भाषा में लालित्य उत्पन्न किया जाय। जैसे,—अनुप्रास आदि।

शब्देंद्रिय-संज्ञा स्त्री० [सं०] कान।

शम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शांति। (२) मोक्ष। (३) हस्त। हाथ। (४) उपचार। (५) अंतःकरण तथा अंतर इंद्रिय को वश में करना। (६) बाह्य इंद्रियों का निग्रह। (७) निवृत्ति। (८) साहित्य में शांत रस का स्थायी भाव। (९) क्षमा। (१०) तिरस्कार।

शमठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का तूत या शहतूत। (२) गंडीर नामक शाक।

शमता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शम का भाव या धर्म्म। शमत्व।

शमथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शांति। (२) मंत्री।

शमन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ के लिये होनेवाला पशुओं का बलिदान। (२) यम। (३) एक प्रकार का मृग। (४) हिंसा। (५) शांति। (६) दमन। जैसे,—रोग का शमन। (७) अन्न। (८) मटर। (९) वह ओषधि जो वातादि दोषों को वमन, विरेचनादि द्वारा दूर करे। जैसे गिलोय। (१०) तिरस्कार। (११) आघात। चोट। (१२) वैद्यक में एक

प्रकार का धूम्रपान जिसमें इलायची, तगर, कुड़ा, जटामासी, गंधतृण, दालचीनी, तेजपत्ता, नागकेसर, नखी, सरल, वाला, शिलारस आदि कई ओषधियों का चूर्ण नली या सटक आदि के द्वारा पीते हैं। इससे वात आदि दोषों का नाश होना माना जाता है। (१३) एक प्रकार का वस्ति कर्म जो मोथा और रसांजन आदि मिले हुए दूध से किया जाता है। (१४) रात्रि। रात।

शमनवस्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वस्ति कर्म्म जिसमें कुछ प्रियंगु, मुलेठी, नागरमोथा और रसौत को दूध में पीसकर मलद्वार से पिचकारी देते हैं।

शमनस्वसा-संज्ञा स्त्री० [सं० शमनस्वसृ] यम की भगिनी अर्थात् यमुना।

शमनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] रात। रात्रि।

शमनीय-वि० [सं०] शमन करने योग्य। दबाने या शांत करने योग्य।

शमनीषद्-संज्ञा पुं० [सं०] निशाचर। राक्षस।

शमल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्ठा। गुह। (२) पाप। गुनाह।

शमशम-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

शमशेर-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) वह हथियार जो शेर की पूँछ अथवा नख के समान हो; अर्थात् तलवार, खड्ग आदि। (२) तलवार।

शमांतक-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

शमा-संज्ञा स्त्री० [अ० शमअ़] (१) मोम। (२) मोम या चर्बी की बनी हुई बत्ती जो जलाने के काम में आती है। मोमबत्ती।

यौ०—शमादान।

शमादान-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह आधार जिसमें मोम की बत्ती लगाकर जलाते हैं। यह प्रायः धातु का बना हुआ और अनेक आकार प्रकार का होता है।

शमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिंबी धान्य (मूँग, मसूर, मोठ, उड़द, चना, अरहर, मटर, कुलथी, लोबिया इत्यादि)। (२) सफेद कीकर। वि० दे० "शमी"।

संज्ञा पुं० (१) भागवत के अनुसार उशीनर के एक पुत्र का नाम। (२) यश।

शमिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शमिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी वृक्ष।

शमिज-संज्ञा पुं० [सं०] लाल कुलथी।

शमिजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लाल कुलथी। (२) शिंबी धान्य।

शमित-वि० (१) जिसका शमन किया गया हो। (२) शांत। ठहरा हुआ।

शमिपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] पानी में होनेवाली लजालू नाम की लता।

शमिपत्रा-संज्ञा स्त्री० दे० "शमिपत्र"।

शमिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शमी वृक्ष। (२) बकुची। सोमराजी।

शमिरोह-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

शमिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमेली की जाति का एक प्रकार का पौधा।

शमी-संज्ञा स्त्री० [सं० शिवा ?] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो पंजाब, सिंध, राजपूताना, गुजरात और दक्षिण के प्रांतों में पाया जाता है। इसे बागों में भी लगाते हैं। इसका वृक्ष ३०-४० फुट तक ऊँचा होता है, परंतु सिंध में यह ६० फुट का भी होता है। इसकी शाखें पतली, खाकी रंग की, चित्तीदार और भूमि की ओर लटकती हुई होती हैं। इसकी जड़ कहीं कहीं ६० फुट तक भूमि के भीतर नीचे चली जाती है और चारों ओर बहुत दूर तक बढ़ती है, जिससे नए अंकुर निकलकर और पौधे उत्पन्न होते हैं। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है। इसके वृक्ष पर काँटे होते हैं। डालियों पर विषमवर्ती सींके रहते हैं। इन सींकों पर ७ से १२ जोड़े तक छोटे छोटे पत्ते रहते हैं। डालों के अंत में ३-४ इंच लंबे सींकों पर नन्हे नन्हे पीले तथा गुलाबी रंग के फूल आते हैं। फलियाँ ५ से १० इंच तक लंबी और चिपटी होती हैं। प्रत्येक फली में १०-१५ बीज रहते हैं जो अंडाकार और भूरे रंग के होते हैं। इसकी छाल और फलियाँ ओषधि के काम में आती हैं। लोग इसकी फलियों का साग और अचार बनाकर खाते हैं। दुर्भिक्ष के समय इसकी छाल के आटे की रोटी बनाकर भी खाई जाती है। इसका भस्म बुद्धि, केश तथा नखों का नाश करनेवाला होता है। अतिसार में इसका काढ़ा लाभदायक होता है। गठिया पर इसकी छाल पीसकर गरम करके लगाने से लाभ होता है। लोग विजया दशमी आदि कुछ विशिष्ट अवसरों पर इसका पूजन भी करते हैं। सफेद कीकर। छिकुर। छोंकर।

पर्य्या०—शक्तुफला। शिवा। केशहंत्री। शुभदा। पवित्रा। पापनाशिनी।

वि० [सं० शमिन्] शांत।

शमीक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध क्षमाशील ऋषि का नाम। कहते हैं कि परीक्षित ने इनके गले में एक बार मरा हुआ साँप डाल दिया, परंतु ये कुछ न बोले। इनके लड़के श्रृंगी ऋषि ने अपने पिता की दुर्दशा देखकर क्रुद्ध हो शाप दिया कि आज के सातवें दिन मेरे पिता के गले में सर्प डालनेवाले को तक्षक डसेगा। कहा जाता है कि इसी शाप के द्वारा तक्षक के काटने से राजा परीक्षित की मृत्यु हुई थी।

शमीगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्राह्मण। (२) अग्नि।

शरद्वसु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शरद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक द्वीप का नाम जो जलद्वीप भी कहलाता है।

शरधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम। (२) इस देश का निवासी।

शरधि-संज्ञा पुं० [सं०] तीर रखने का चोंगा। तूणीर। तरकश।

शरपंख-संज्ञा पुं० [सं०] जवासा। हिंगुआ। धमासा।

शरपट्टा-संज्ञा पुं० [सं० शर+हिं० पट्टा] एक प्रकार का शस्त्र। उ०—असिशर भिंडिपाल शरपट्टा।—गिरिधर।

शरपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा।

शरपुंख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नील की तरह का एक प्रकार का पौधा। सरफोंका। (२) बाण या तीर में लगा हुआ पंख। (३) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का यंत्र।

शरबत-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पीने की मीठी वस्तु। रस। (२) चीनी आदि में पका हुआ किसी ओषधि का अर्क जो दवा के काम में आता है। जैसे,—शरबत बनफशा, शरबत अनार। (४) पानी में घोली हुई शकर या खाँड़। (५) मुसलमानों की एक रस्म जो विवाह के पश्चात् शरबत पिला कर पूरी की जाती है और उसके बदले में वधू के पक्षवालों को कुछ धन दिया जाता है। (६) सगाई की रस्म। (मुसल०)

शरबत पिलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० शरबत+पिलाना] वह धन जो वर और कन्या पक्ष के लोग एक दूसरे को शरबत पिलाकर देते हैं। (मुसल०)

शरबती-संज्ञा पुं० [हिं० शरबत+ई (प्रत्य०)] (१) एक प्रकार का हलका पीला रंग जिसमें साधारण लाली भी होती है। यह प्रायः हरसिंगार के फूल और शहाब मिलाकर बनाया जाता है। (२) एक प्रकार का नगीना जो पीलापन लिए लाल रंग का होता है। (३) एक प्रकार का नीबू जिसे मीठा भी कहते हैं। ज्वर में लोग प्रायः इसका रस चूसते हैं। चकोतरा। मधुकर्कटी। (४) एक प्रकार का बढ़िया कपड़ा जो तनजेब से कुछ मोटा और अद्धी से कुछ पतला होता है। (५) एक प्रकार का फालसा जो बड़ा और मीठा होता है।

वि० रसीला। रसदार। रस भरा हुआ।

शरबती नीबू-संज्ञा पुं० [हिं० शरबत+नीबू] (१) चकोतरा। (२) गलगल। (३) जंबीरी नीबू। मीठा नीबू।

शरबान-संज्ञा पुं० [सं० शर+बान] भूतृण। अगिया घास।

शरबीज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरपत्ते के बीज। चारुक। (२) भद्रमुंज।

शरभंग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन महर्षि जो दक्षिण में रहते थे। बनवास के समय रामचंद्र इनके दर्शन करने गए थे।

शरभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राम की सेना का एक यूथपति बंदर। उ०—ऋषभ शरभ अरु नील गवाक्षहु गँधमादन हु पाँचो।—रघुराज। (२) टिड्डी। (३) हाथी का बच्चा। (४) विष्णु। (५) ऊँट। (६) एक प्रकार का पक्षी। (७) आठ पैरोंवाला एक कल्पित मृग। कहते हैं कि यह सिंह से भी अधिक बलवान् होता है। (८) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ४ नगण और १ सगण होता है। इसे 'शशिकला' और 'मणिगुण' भी कहते हैं। (९) दोहे का एक भेद जिसमें बीस गुरु और आठ लघु मात्राएँ होती हैं। (१०) शेर। सिंह। (११) दनुज के एक पुत्र का नाम। (१२) महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।

शरभता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शरभ का भाव या धर्म। शरभत्व।

शरभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुत्सित अवयवोंवाली और विवाह के अयोग्य कन्या। (२) लकड़ी का एक प्रकार का यंत्र।

शरभू-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय।

शरभेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक शिवलिंग का नाम।

शरम-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० शर्म] (१) लज्जा। हया। ग़ैरत।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—रखना।—होना।

मुहा०—शरम से गड़ना = मारे लज्जा के दबे या झुके जाना। बहुत लज्जित होना। शरम से पानी पानी होना = बहुत लज्जित होना।

(२) लिहाज। संकोच। (३) प्रतिष्ठा। इज्जत।

मुहा०—शरम रखना = इज्जत रखना। लाज रखना। शरम रहना = प्रतिष्ठा रहना। मान रहना।

शरमल्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शारिका पक्षी। मैना। (२) वह जो तीर चलाने में निपुण हो। धनुर्धारी।

शरमसार-वि० [फ़ा० शर्मसार] (१) जिसे शरम हो। लज्जावाला। (२) लज्जित। शर्मिंदा।

शरम हुजूरी-संज्ञा स्त्री० [अ० शर्म+फ़ा० हुजूर] ऐसी लज्जा या मुरव्वत जो वास्तविक न हो, केवल किसी के सामने आ जाने से उत्पन्न हो। मुँह देखे की लाज।

शरमसारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० शर्मसारी] लज्जा। शर्मिंदगी।

संज्ञा पुं० वह जो वास्तव में लज्जा या मुरव्वत न करता हो, केवल किसी के सामने आ जाने पर लज्जा या मुरव्वत करता हो। मुँह देखे की लज्जा करनेवाला।

शरमाऊ-वि० [हिं० शरम+आऊ (प्रत्य०)] जिसे बहुत लज्जा मालूम होती हो।

शरमाना-क्रि० अ० [अ० ...) ... लज्जित होना। ... तुम्हारे सामने ...

क्रि० स० शर्मिंदा ...

शरमालू-वि० दे० "शरमाऊ"।

शरमा शरमी-क्रि० वि० [फा० शर्म] लज्जा के कारण। शरमिंदा होकर। जैसे,—आप शरमा शरमी साथ हो लिए हैं।

शरमिंदगी-संज्ञा स्त्री० [फा०] शरमिंदा या लज्जित होने का भाव या धर्म। नदामत। लाज। झेंप।

मुहा०—शरमिंदगी उठाना = ऐसा काम करना जिसमें लज्जित होना पड़े।

शरमिंदा-वि० [फा०] जिसे शरम या लज्जा आई हो। लज्जित।

शरमीला-वि० [फा० शर्म + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० शरमीली] जिसे जल्दी शरम या लज्जा आवे। शरम करनेवाला। लज्जालु।

शरयू-संज्ञा स्त्री० दे० "सरयू"।

शरल-संज्ञा पुं० वि० दे० "सरल"।

शरलक-संज्ञा पुं० [सं०] जल। पानी।

शरलोमा-संज्ञा पुं० [सं० शरलोमन्] एक प्राचीन ऋषि जिन्होंने कई ऋषियों के साथ भारद्वाज जी से आयुर्वेद संहिता जानने के लिये प्रार्थना की थी।

शरवनोद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय।

शरवाणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] शर का अगला भाग। तीर का फल। संज्ञा पुं० (१) वह जो शर चलाकर जीविका निर्वाह करता हो। तीर चलानेवाला सिपाही। (२) पैदल सिपाही।

शरवारण-संज्ञा पुं० [सं०] ढाल जिससे तीरों की बौछार रोकी जाती है।

शरव्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिस पर शर का संधान किया जाय। वह जो तीर का निशाना बनाया जाय। लक्ष्य।

शरस्तंब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन स्थान का नाम। (२) एक प्राचीन प्रवरकार ऋषि का नाम।

शरह-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वह कथन या वर्णन जो किसी बात को स्पष्ट करने के लिये किया जाय। (२) टीका। भाष्य। व्याख्या। (३) दर। भाव। (४) दे० "शरह लगान"।

शरह लगान-संज्ञा स्त्री० [अ० शरह + हिं० लगान] भूकर की दर। जमीन की पड़ती। बिघौती।

शरा-संज्ञा स्त्री० दे० "शरअ"।

शराकत-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) शरीक या सम्मिलित होने का भाव। (२) साझा। हिस्सेदारी।

शराटि, शराड़ि-संज्ञा स्त्री० [सं०] टिटिहरी।

शराटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) टिटिहरी। (२) लज्जालुक। लजालू। लाजवंती।

शराधा-संज्ञा पुं० दे० "श्राद्ध"।

शरापा-संज्ञा पुं० दे० "शाप"।

शराफ़-संज्ञा पुं० दे० "सराफ़"।

शराफ़त-संज्ञा स्त्री० [अ०] शरीफ या सज्जन होने का भाव। भलमनसी। सज्जनता।

शराफ़ा-संज्ञा पुं० दे० "सराफा"।

शराफ़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "सराफी"।

शराब-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मदिरा। सुरा। वारुणी। मद्य। दारू। वि० दे० "मदिरा"।

क्रि० प्र०—खींचना।—ढालना।—पिलाना।—पीना।

(२) हकीमों की परिभाषा में, शरबत। जैसे,—शराब बनफशा।

शराबख़ाना-संज्ञा पुं० [अ० शराब + फा० खाना] शराब बनने तथा तथा बिकने की जगह। वह स्थान जहाँ शराब मिलती हो।

शराबख़ोरी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) शराब पीने का कृत्य। मदिरा पान। (२) शराब पीने की लत।

शराबख़्वार-संज्ञा पुं० [फा०] वह जो शराब पीता हो। मदिरा पीनेवाला। मद्यप। शराबी।

शराबी-संज्ञा पुं० [हिं० शराब + ई (प्रत्य०)] वह जो शराब पीता हो। शराब पीनेवाला। मद्यप।

शराबोर-वि० [फा०] जल आदि से बिलकुल भींगा हुआ। लथपथ। तरबतर। जैसे,—रंग से शराबोर, पानी से शराबोर।

शरारत-संज्ञा स्त्री० [अ०] शरीर या पाजी होने का भाव। पाजीपन। दुष्टता। बदमाशी। नटखटी।

शरारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राम की सेना का एक यूथपति बंदर। (२) दे० "शरारिमुख"।

शरारिमुख-संज्ञा पुं० [सं०] टिटिहरी नाम की छोटी चिड़िया जो जलाशयों के पास रहती है।

शरारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] टिटिहरी नाम की छोटी चिड़िया।

शरारोप-संज्ञा पुं० [सं०] धनुष जिस पर शर चढ़ाया जाता है। कमान।

शराली-संज्ञा स्त्री० [सं०] टिटिहरी नाम की छोटी चिड़िया।

शराव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिट्टी का एक प्रकार का पुरवा। कुल्हड़। (२) वैद्यक में एक प्रकार का परिमाण या तौल जो चौंसठ तोले या एक सेर की होती है। (वैद्यक में सेर चौंसठ तोले का ही माना जाता है।)

शरावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक नदी जो आज कल बाण गंगा कहलाती है। (२) एक प्राचीन नगरी जो लव की राजधानी थी।

शरावर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ढाल। (२) कवच। वर्म्म।

शरावरण-संज्ञा पुं० [सं०] ढाल जिससे तीर का वार रोकते हैं।

शरावाप-संज्ञा पुं० [सं०] धनुष। कमान।

शरद्वसु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शरद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक द्वीप का नाम जो जलद्वीप भी कहलाता है।

शरधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम। (२) इस देश का निवासी।

शरधि-संज्ञा पुं० [सं०] तीर रखने का चोंगा। तूणीर। तरकश।

शरपंख-संज्ञा पुं० [सं०] जवासा। हिंगुआ। धमासा।

शरपट्टा-संज्ञा पुं० [सं० शर + हिं० पट्टा] एक प्रकार का शस्त्र। उ०—असिदार भिंडिपाल शरपट्टा।—गिरिधर।

शरपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा।

शरपुंख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नील की तरह का एक प्रकार का पौधा। सरफोंका। (२) बाण या तीर में लगा हुआ पंख। (३) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का यंत्र।

शरबत-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पीने की मीठी वस्तु। रस। (२) चीनी आदि में पका हुआ किसी ओषधि का अर्क जो दवा के काम में आता है। जैसे,—शरबत बनफशा, शरबत अनार। (४) पानी में घोली हुई शकर या खाँड़। (५) मुसलमानों की एक रस्म जो विवाह के पश्चात् शरबत पिला कर पूरी की जाती है और उसके बदले में वधू के पक्षवालों को कुछ धन दिया जाता है। (६) सगाई की रस्म। (मुसल०)

शरबत पिलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० शरबत + पिलाना] वह धन जो वर और कन्या पक्ष के लोग एक दूसरे को शरबत पिलाकर देते हैं। (मुसल०)

शरबती-संज्ञा पुं० [हिं० शरबत + ई (प्रत्य०)] (१) एक प्रकार का हलका पीला रंग जिसमें साधारण लाली भी होती है। यह प्रायः हरसिंगार के फूल और शहाब मिलाकर बनाया जाता है। (२) एक प्रकार का नगीना जो पीलापन लिए लाल रंग का होता है। (३) एक प्रकार का नीबू जिसे मीठा भी कहते हैं। ज्वर में लोग प्रायः इसका रस चूसते हैं। चकोतरा। मधुकर्कटी। (४) एक प्रकार का बढ़िया कपड़ा जो तनजेब से कुछ मोटा और अद्धी से कुछ पतला होता है। (५) एक प्रकार का फालसा जो बड़ा और मीठा होता है।

वि० रसीला। रसदार। रस भरा हुआ।

शरबती नीबू-संज्ञा पुं० [हिं० शरबत + नीबू] (१) चकोतरा। (२) गलगल। (३) जंबीरी नीबू। मीठा नीबू।

शरबान-संज्ञा पुं० [सं० शर + बान] भूतृण। अगिया घास।

शरबीज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरपत्ते के बीज। चारक। (२) मद्रमुंज।

शरभंग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन महर्षि जो दक्षिण में रहते थे। वनवास के समय रामचंद्र इनके दर्शन करने गए थे।

शरभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राम की सेना का एक यूथपति बंदर। उ०—ऋषभ शरभ अरु नील गवाक्षहु गँधमादन हू पाँचो।—रघुराज। (२) टिड्डी। (३) हाथी का बच्चा। (४) विष्णु। (५) ऊँट। (६) एक प्रकार का पक्षी। (७) आठ पैरोंवाला एक कल्पित मृग। कहते हैं कि यह सिंह से भी अधिक बलवान् होता है। (८) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ४ नगण और १ सगण होता है। इसे 'शशिकला' और 'मणिगुण' भी कहते हैं। (९) दोहे का एक भेद जिसमें बीस गुरु और आठ लघु मात्राएँ होती हैं। (१०) शेर। सिंह। (११) दनुज के एक पुत्र का नाम। (१२) महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।

शरभता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शरभ का भाव या धर्म। शरभत्व।

शरभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) क्षुद्र अवयवोंवाली और विवाह के अयोग्य कन्या। (२) लकड़ी का एक प्रकार का यंत्र।

शरभू-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय।

शरभेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक शिवलिंग का नाम।

शरम-संज्ञा स्त्री० [फा० शर्म] (१) लज्जा। हया। ग़ैरत।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—रखना।—होना।

मुहा०—शरम से गड़ना = मारे लज्जा के दबे या झुके जाना। बहुत लज्जित होना। शरम से पानी पानी होना = बहुत लज्जित होना।

(२) लिहाज। संकोच। (३) प्रतिष्ठा। इज्जत।

मुहा०—शरम रखना = इज्जत रखना। लाज रखना। शरम रहना = प्रतिष्ठा रहना। आबरू रहना।

शरमल्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सारिका पक्षी। मैना। (२) वह जो तीर चलाने में निपुण हो। धनुर्धारी।

शरमसार-वि० [फा० शर्मसार] (१) जिसे शरम हो। लज्जावाला। (२) लज्जित। शरमिंदा।

शरम हुजूरी-संज्ञा स्त्री० [फा० शर्म + अ० हुजूर] ऐसी लज्जा या मुरव्वत जो वास्तविक न हो, केवल किसी के सामने आ जाने से उत्पन्न हो। मुँह देखे की शरम।

शरमसारी-संज्ञा स्त्री० [फा० शर्मसारी] लज्जा। शरमिंदगी।

संज्ञा पुं० वह जो वास्तव में लज्जा या मुरव्वत न करता हो, केवल किसी के सामने आ जाने पर लज्जा या मुरव्वत करता हो। मुँह देखे की लज्जा करनेवाला।

शरमाऊ-वि० [हिं० शरम + आऊ (प्रत्य०)] जिसे बहुत लज्जा मालूम होती हो। शरमीला।

शरमाना-क्रि० अ० [फा० शर्म + आना (प्रत्य०)] शर्मिंदा होना। लज्जित होना। लाज करना। हया करना। जैसे,—वे तुम्हारे सामने शरमाते हैं।

क्रि० स० शर्मिंदा करना। लज्जित करना। जैसे,—अब उन्हें ज्यादा मत शरमाओ।

शरीरपतन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर का धीरे धीरे क्षीण होना। (२) मृत्यु। मौत।

शरीरपाक-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का धीरे धीरे क्षीण होना।

शरीरपात-संज्ञा पुं० [सं०] देह का अंत या नाश। शरीरांत। देहावसान। मृत्यु। मौत।

शरीरभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो शरीर धारण किए हो। आत्मा। (२) विष्णु। (३) जीवात्मा।

शरीररक्षक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो राजा आदि के साथ उसके शरीर की रक्षा करने के लिये रहता हो। अंगरक्षक।

शरीरवा -संज्ञा पुं० [सं० शरीरवत्] शरीरवाला। देहधारी।

शरीरवृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] वे पदार्थ जो शरीर का सौंदर्य बढ़ाने के लिये आवश्यक हों।

शरीरवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवन निर्वाह करने की वृत्ति। जीविका।

शरीर शास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें शरीर के सब अवयवों, नसों, नाड़ियों आदि का विवेचन होता है और जिससे यह जाना जाता है कि शरीर का कौन सा अंग कैसा है और क्या काम करता है। शरीर विज्ञान।

शरीरशोधन-संज्ञा पुं० [सं०] वह औषध जो कुपित मल, पित्त तथा कफ को हटाकर ऊर्ध्व अथवा अधोमार्ग से निकाल दे।

शरीर-संस्कार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्भाधान से लेकर अंत्येष्टि तक के मनुष्य के वेद-विहित सोलह संस्कार। (२) शरीर की शोभा तथा मार्जन।

शरीरस्थ-वि० [सं०] (१) शरीर में रहनेवाला। (२) जीवित। जीता हुआ।

शरीरांत-संज्ञा पुं० [सं०] देह का अंत अथवा नाश। मृत्यु। देहांत। मौत।

शरीरार्पण-संज्ञा पुं० [सं०] किसी कार्य्य के निमित्त अपने शरीर को इस प्रकार लगा देना मानो उस पर अपना कोई स्वत्व ही न हो। उ०—कियो शरीरार्पण पर काजा। संतन सेवन कियो दराजा।—रघुराज।

शरीरावरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खाल। चमड़ा। (२) वर्म। ढाल। (३) शरीर को ढकने की कोई चीज़।

शरीरास्थि-संज्ञा पुं० [सं० शरीर + अस्थि] कंकाल। पिंजर।

शरीरी-संज्ञा पुं० [सं० शरीरिन्] (१) वह जो शरीर धारण किए हो। शरीरवाला। शरीरवान्। (२) आत्मा। जीव। (३) प्राणी। जीवधारी।

शरीष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।

शरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्रोध। गुस्सा। (२) वज्र। (३) बाण। तीर। (४) आयुध। शस्त्र। हथियार। (५) हिंसा। हत्या। मार डालना। (६) वह जो हिंसा करता हो। हिंसक। (७) महाभारत के अनुसार एक गंधर्व का नाम।
वि० (१) बहुत पतला। (२) जिसका अगला भाग बहुत ही छोटा या नुकीला हो।

शरेज-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय।

शरेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] आम। आम्र।
वि० दे० "श्रेष्ठ"।

शर्कर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंकड़। (२) बालू का कण। (३) जल में उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का प्राणी। (४) पुराणानुसार एक देश का नाम। (५) इस देश का निवासी। (६) दे० "शर्करा"।

शर्करक-संज्ञा पुं० [सं०] मीठा नीबू। शरबती नीबू।

शर्करकंद-संज्ञा पुं० दे० "शकरकंद"।

शर्करजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] चीनी।

शर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शक्कर। चीनी। खाँड़। (२) बालू का कण। (३) पथरी नामक रोग। (४) कंकड़। (५) ठीकरा। (६) पुराणानुसार एक देश का नाम जो कूर्म्मचक्र के पुच्छ भाग में है। (७) एक प्रकार का रोग। इसमें त्रिदोष के कारण मांस, शिरा और स्नायु में गाँठ उत्पन्न होती है। गाँठ के फूटने से शहद, घी और चर्बी के समान पीब निकलता है; और वायु के बढ़ने से अनेक गाँठें उत्पन्न होती हैं।

शर्कराक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] चरक के अनुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शर्कराचल-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार चीनी का वह पहाड़ जो दान करने के लिये लगाया जाता है।

शर्कराधेनु-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार चीनी की वह गौ जो दान करने के लिये बनाई जाती है।

शर्कराप्रभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार एक नरक का नाम।

शर्कराप्रमेह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह जिसमें मूत्र का रंग मिस्री का सा हो जाता है और उसके साथ शरीर की शर्करा निकलती है।

शर्करार्बुद-संज्ञा पुं० दे० "शर्करा" (७)।

शर्करावत्-संज्ञा पुं० [सं०] शरबत (७)।

शर्करासप्तमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ला सप्तमी। पुराणानुसार इस दिन सूर्य्यदेव का पूजन किया जाता है और उनके आगे घड़े में चीनी भरकर रखी जाती है।

शर्करासव-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मद्य या शराब जो चीनी से तैयार की जाती है। चरक के अनुसार यह स्वादिष्ट सुगंधित, पाचक और वायु रोग नाशक है।

शर्करासुरभि-संज्ञा पुं० दे० "शर्करासव"।

शराविका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह फुंसी जो ऊपर से ऊँची और बीच में गहरी हो। (२) एक प्रकार का कोढ़।

शरासन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष। कमान। चाप। (२) महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

शरास्य-संज्ञा पुं० [सं०] धनुष। कमान।

शरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का प्रासाद।

शरिष्ठ*-वि० दे० "श्रेष्ठ"। उ०—कन्या कहउ सुनौ मतिमंता। जो शरिष्ठ सोई मम कंता।—सबल।

शरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एरका या मोथा नाम का तृण।

शरीअत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मुसलमानों के अनुसार वह पथ जो परमात्मा ने अपने भक्तों के लिये निश्चित किया हो। (२) धर्म-शास्त्र। (मुसल०)

शरीक-वि० [अ०] शामिल। सम्मिलित। मिला हुआ।

संज्ञा पुं० (१) वह जो किसी बात में साथ रहता हो। साथी। (२) साझी। हिस्सेदार। पट्टीदार। (३) सहायक। मददगार। (४) रिश्तेदार। संबंधी। (पश्चिम)

शरीफ़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) ऊँचे घराने का व्यक्ति। कुलीन मनुष्य। (२) सभ्य पुरुष। भला मानुस। भला आदमी। (३) मक्के के प्रधान अधिकारी की उपाधि।

वि० पाक। पवित्र। जैसे,—मिज़ाज शरीफ़। कुरान शरीफ़।

संज्ञा पुं० [अं० शेरिफ] कलकत्ते, बंबई और मद्रास में सरकार की ओर से नियुक्त किए जानेवाले एक प्रकार के अवैतनिक अधिकारी जिनके सपुर्द शांति-रक्षा तथा इसी प्रकार के और कुछ काम होते हैं। प्रायः नगर के बड़े बड़े रईस और प्रतिष्ठित व्यक्ति कुछ निश्चित समय के लिये "शरीफ" बनाए जाते हैं। युरोप और अमेरिका आदि में भी इस प्रकार के अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं जिन्हें कुछ शासन संबंधी कार्य्य भी सौंपे जाते हैं। इनके अधिकार प्रायः मजिस्ट्रेटों से कुछ मिलते जुलते होते हैं।

शरीफा-संज्ञा पुं० [सं० श्रीफल या सीताफल] (१) मझोले आकार का एक प्रकार का प्रसिद्ध वृक्ष जो प्रायः सारे भारतवर्ष में फल के लिये लगाया जाता है और मध्य तथा पश्चिमी भारत के जंगली देशों में बहुत अधिकता से पाया जाता है। कहते हैं कि यह वृक्ष वेस्ट इंडीज़ से यहाँ आया है। इस वृक्ष की छाल पतली और खाकी रंग की, और लकड़ी कुछ मटमैलापन लिए सफ़ेद रंग की होती है। इसके पत्ते अमरूद के फल के सदृश, अंडाकार तथा अनीदार होते हैं। इसमें एक प्रकार के त्रिदल फूल लगते हैं जो नीचे की ओर झुके हुए होते हैं। ये फूल तरकारी बनाने के काम में आते हैं। यह वृक्ष गरमी के दिनों में फूलता है और कार्तिक अगहन में इसमें अमरूद के आकार के खाकी रंग के गोल फल लगते हैं। यह वृक्ष बीजों से उगता है और बहुत जल्दी बढ़कर फूलने फलने लगता है। इसके पौधे जब कुछ बड़े हो जाते हैं, तब उखाड़कर दूसरे स्थान पर रोपे जाते हैं। इसकी छाल, जड़ और पत्तियों का व्यवहार औषधों में होता है। इसकी छाल बहुत दस्तावर होती है। इसके बीज में से एक प्रकार का तेल भी निकलता है और इसमें तीन तरह के गोंद भी लगते हैं। (२) इस वृक्ष का फल जो अमरूद के सदृश गोल और खाकी रंग का होता है। इसके तल पर आँख के आकार के बड़े बड़े दाने होते हैं जिनके अंदर सफ़ेद गूदे में लिपटे हुए काले चमकीले बीज होते हैं। इसका गूदा बहुत मीठा होता है; और इसी के लिये यह फल खाया जाता है। अकाल के दिनों में गरीब लोग प्रायः जंगली शरीफे के फल खाकर निर्वाह करते हैं। वैद्यक में इसे मधुर, हृदय के लिये हितकारी, बलवर्द्धक, वातकारक, शक्तिवर्द्धक, तृप्तिकारक, मांसवर्द्धक और दाह, पित्त, रक्त-पित्त, प्यास, वमन, रुधिर-विकार आदि के लिये लाभदायक माना है। श्रीफल। सीताफल। रामसीता।

शरीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनुष्य या पशु आदि के समस्त अंगों की समष्टि। सिर से पैर तक के सब अंगों का समूह। देह। तन। बदन। जिस्म।

विशेष—"शरीर" शब्द से प्रायः आत्मा से भिन्न और सब अंगों या अवयवों का ही भाव ग्रहण किया जाता है। पर हमारे यहाँ शास्त्रों में शरीर के दो भेद किए गए हैं—सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर। बुद्धि, अहंकार, मन, पाँचों ज्ञानेंद्रियों, पाँचों कर्मेंद्रियों और पंच तन्मात्र के समूह को सूक्ष्म या लिंग शरीर कहते हैं। और हाथ, पैर, मुँह, सिर, पेट, पीठ आदि अंगों का समूह स्थूल शरीर कहलाता है। इसी स्थूल शरीर में सूक्ष्म या लिंग शरीर का वास होता है। कहते हैं कि जब जीव मर जाता है, तब उसका सूक्ष्म शरीर या लिंग शरीर उसके स्थूल शरीर में से निकलकर परलोक को जाता है।

पर्य्या०—कलेवर। गात्र। विग्रह। काय। मूर्ति। तनु। क्षेत्र। पिंड। स्कंध। पंजर। करण। बंध। पुद्गल।

वि० [अ०] [संज्ञा शरारत] पाजी। दुष्ट। नटखट।

शरीरकर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० शरीरकर्तृ] शरीर को बनानेवाला, परमेश्वर। सृष्टिकर्त्ता।

शरीरज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोग। बीमारी। (२) कामदेव। (३) पुत्र। लड़का। बेटा।

वि० शरीर से उत्पन्न।

शरीरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर का भाव या धर्म।

शरीरत्याग-संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु। मौत।

शरीरत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का भाव या धर्म। शरीरता।

शरीरपतन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर का धीरे धीरे क्षीण होना। (२) मृत्यु। मौत।

शरीरपाक-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का धीरे धीरे क्षीण होना।

शरीरपात-संज्ञा पुं० [सं०] देह का अंत या नाश। शरीरांत। देहावसान। मृत्यु। मौत।

शरीरभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो शरीर धारण किए हो। शरीरी। (२) विष्णु। (३) जीवात्मा।

शरीररक्षक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो राजा आदि के साथ उसके शरीर की रक्षा करने के लिये रहता हो। अंगरक्षक।

शरीरवा -संज्ञा पुं० [सं० शरीरवत्] शरीरवाला। देहधारी।

शरीरवृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] वे पदार्थ जो शरीर का सौंदर्य बढ़ाने के लिये आवश्यक हों।

शरीरवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवन निर्वाह करने की वृत्ति। जीविका।

शरीर शास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें शरीर के सब अवयवों, नसों, नाड़ियों आदि का विवेचन होता है और जिससे यह जाना जाता है कि शरीर का कौन सा अंग कैसा है और क्या काम करता है। शरीर विज्ञान।

शरीरशोधन-संज्ञा पुं० [सं०] वह औषध जो कुपित मल, पित्त तथा कफ को हटाकर ऊर्द्ध्व अथवा अधोमार्ग से निकाल दे।

शरीर-संस्कार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्भाधान से लेकर अंत्येष्टि तक के मनुष्य के वेद-विहित सोलह संस्कार। (२) शरीर की शोभा तथा मार्जन।

शरीरस्थ-वि० [सं०] (१) शरीर में रहनेवाला। (२) जीवित। जीता हुआ।

शरीरांत-संज्ञा पुं० [सं०] देह का अंत अथवा नाश। मृत्यु। देहांत। मौत।

शरीरार्पण-संज्ञा पुं० [सं०] किसी कार्य के निमित्त अपने शरीर को इस प्रकार लगा देना मानो उस पर अपना कोई स्वत्व ही न हो। उ०—कियो शरीरार्पण पर काजा। संतन सेवन कियो दराजा।—रघुराज।

शरीरावरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खाल। चमड़ा। (२) वर्म। ढाल। (३) शरीर को ढकने की कोई चीज़।

शरीरास्थि-संज्ञा पुं० [सं० शरीर + अस्थि] कंकाल। पिंजर।

शरीरी-संज्ञा पुं० [सं० शरीरिन्] (१) वह जो शरीर धारण किए हो। शरीरवाला। शरीरवान्। (२) आत्मा। जीव। (३) प्राणी। जीवधारी।

शरीष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।

शरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्रोध। गुस्सा। (२) वज्र। (३) बाण। तीर। (४) आयुध। शस्त्र। हथियार। (५) हिंसा। हत्या। मार डालना। (६) वह जो हिंसा करता हो। हिंसक। (७) महाभारत के अनुसार एक गंधर्व का नाम।

वि० (१) बहुत पतला। (२) जिसका अगला भाग बहुत ही छोटा या नुकीला हो।

शरेज-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय।

शरेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] आम। आम्र।

*वि० दे० "श्रेष्ठ"।

शर्कर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंकड़। (२) बालू का कण। (३) जल में उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का प्राणी। (४) पुराणानुसार एक देश का नाम। (५) इस देश का निवासी। (६) दे० "शर्करा"।

शर्करक-संज्ञा पुं० [सं०] मीठा नीबू। शरबती नीबू।

शर्करकंद-संज्ञा पुं० दे० "शकरकंद"।

शर्करजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] चीनी।

शर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शक्कर। चीनी। खाँड़। (२) बालू का कण। (३) पथरी नामक रोग। (४) कंकड़। (५) ठीकरा। (६) पुराणानुसार एक देश का नाम जो कूर्मचक्र के पुच्छ भाग में है। (७) एक प्रकार का रोग। इसमें त्रिदोष के कारण मांस, शिरा और स्नायु में गाँठ उत्पन्न होती है। गाँठ के फूटने से शहद, घी और चर्बी के समान पीब निकलता है; और वायु के बढ़ने से अनेक गाँठें उत्पन्न होती हैं।

शर्कराक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] चरक के अनुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शर्कराचल-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार चीनी का वह पहाड़ जो दान करने के लिये लगाया जाता है।

शर्कराधेनु-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार चीनी की वह गौ जो दान करने के लिये बनाई जाती है।

शर्कराप्रभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार एक नरक का नाम।

शर्कराप्रमेह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह जिसमें मूत्र का रंग मिस्री का सा हो जाता है और उसके साथ शरीर की शर्करा निकलती है।

शर्करार्बुद-संज्ञा पुं० दे० "शर्करा" (७)।

शर्करावत्-संज्ञा पुं० [सं०] शरवन (७)।

शर्करासप्तमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ला सप्तमी। पुराणानुसार इस दिन सुवर्णाश्व का पूजन किया जाता है और उनके आगे घड़े में चीनी भरकर रखी जाती है।

शर्करासव-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मद्य या शराब जो चीनी से तैयार की जाती है। चरक के अनुसार यह स्वादिष्ट सुगंधित, पाचक और वायु रोग नाशक है।

शर्करासुरभि-संज्ञा पुं० दे० "शर्करासव"।

शर्करी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वर्ण वृत्त के अंतर्गत चौदह अक्षरों की एक वृत्ति । इसके कुल १६३८४ भेद होते हैं, जिनमें से १३ मुख्य हैं। (२) नदी। दरिया। (३) मेखला। (४) लिखने की कलम। लेखनी।

शर्करीय-वि० [सं०] शर्करा संबंधी। चीनी का।

शर्करोदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चीनी घोला हुआ पानी। शरबत। (२) वह शरबत जिसमें इलायची, लौंग, कपूर और गोलमिर्च मिली हो। वैद्यक में इसे बलवर्द्धक, रुचिकारक, वायु, पित्त तथा रक्त-दोष नाशक और वमन, मूर्च्छा, दाह और तृष्णा आदि को शमन करनेवाला माना है।

शर्कोटि-संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

शर्ट-संज्ञा स्त्री० [अं०] कमीज नाम का पहनने का कपड़ा।

शर्णचापिलि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

शर्त्त-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) दो व्यक्तियों या दलों में होनेवाली ऐसी प्रतिज्ञा कि अमुक बात होने या न होने पर हम तुमको इतना धन देंगे, अथवा तुमसे इतना धन लेंगे। बाजी जिसमें हार जीत के अनुसार कुछ लेन-देन भी हो। बाजी। दाँव। बदान।

क्रि० प्र०—जीतना।—बदना।—बाँधना।—रहना।—लगना।—लगाना।—हारना।

(२) किसी कार्य्य की सिद्धि के लिये आवश्यक या अपेक्षित होनेवाली बात या कार्य्य जिसके न होने से उस काम में बाधा उपस्थित हो। जैसे,—मैं चलने के लिये तैयार हूँ; पर शर्त्त यह है कि आप भी मेरे साथ चलें। (ख) हम इस शर्त्त पर रुपया देंगे कि आप उसके ज़िम्मेदार हों। (ग) उन्होंने कई ऐसी शर्त्तें लगाई हैं कि जिनके कारण काम होना बहुत कठिन है।

क्रि० प्र०—रखना।—लगाना।

शर्तिया-क्रि० वि० [अ०] शर्त्त बदकर। बहुत ही निश्चय या दृढ़तापूर्वक। जैसे,—मैं शर्त्तिया कहता हूँ कि आप का काम जरूर हो जायगा।

वि० बिलकुल ठीक। निश्चित। जैसे,—यह तो इस बीमारी की शर्त्तिया दवा है।

शर्त्ती-क्रि० वि० दे० "शर्त्तिया"।

शर्दि-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक प्राचीन नगर का नाम।

शर्द्ध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेज। (२) अपान वायु का त्याग करना। पादना।

शर्द्धन-संज्ञा पुं० [सं०] अधोवायु। पाद।

शर्बत-संज्ञा पुं० दे० "शरबत"।

शर्बती-संज्ञा पुं० दे० "शरबती"।

शर्म-संज्ञा स्त्री० दे० "शरम"।

शर्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुख। आनंद। (२) वह जो सुखी हो। (३) गृह। घर।

शर्मद-वि० [सं०] [स्त्री० शर्मदा] आनंद देनेवाला। सुखदायक। उ०—कृष्णचन्द्र को प्रिय अधिकारी। शर्मद धर्म धुरधारी।—कबीर। (ख) तीर शर्मदा नर्मदा करत भयो नृप बास।

संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम।

शर्मन्-संज्ञा पुं० दे० "शर्म्मा"।

शर्म्मर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वस्त्र।

शर्म्मरा, शर्म्मरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहल्दी।

शर्म्मा-संज्ञा पुं० [सं० शर्म्मन्] ब्राह्मणों की उपाधि। जैसे,—महादेव शर्म्मा।

विशेष—विधान है कि ब्राह्मण को अपने नाम के साथ अंत में "शर्म्मा" शब्द का व्यवहार करना चाहिये।

शर्म्मारुय-संज्ञा पुं० [सं०] मसूर।

शर्म्माना-क्रि० अ० स० दे० "शरमाना"।

शर्मिंदगी-संज्ञा स्त्री० दे० "शरमिंदगी"।

शर्मिंदा-वि० दे० "शरमिंदा"।

शर्मिष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दैत्यों के राजा वृषपर्वा की कन्या का नाम जो शुक्राचार्य्य की कन्या देवयानी की सखी थी। वि० दे० "देवयानी"।

शर्मीला-वि० दे० "शरमीला"।

शर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) योद्धा। (२) बाण। (३) उँगली।

शर्य्यण-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक जनपद का नाम जो कुरुक्षेत्र के अंतर्गत था।

शर्य्यणावत्-संज्ञा पुं० [सं०] शर्य्यण नामक जनपद के पास का एक प्राचीन सरोवर जो तीर्थ माना जाता था।

शर्य्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि। रात।

शर्य्यात-संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य। आदमी।

शर्याति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राजा का नाम जिसकी कन्या "सुकन्या" महर्षि च्यवन को ब्याही गई थी। (२) भागवत के अनुसार वैवस्वत मनु के एक पुत्र का नाम।

शर्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। शंकर। महादेव। (२) विष्णु।

शर्वक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शर्वपत्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पार्वती। (२) लक्ष्मी।

शर्वपर्वत-संज्ञा पुं० [सं०] कैलास।

शर्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंधकार। अँधेरा। (२) कामदेव। (३) संध्या।

शर्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात। रात्रि। निशा। (२) साँझ। संध्या। शाम। (३) हल्दी। हरिद्रा। (४) स्त्री। औरत।

संज्ञा पुं० [सं० शर्व्वरिन्] बृहस्पति के साठ संवत्सरों में से

चौंतीसवाँ संवत्सर। कहते हैं कि इस संवत्सर में दुर्भिक्ष का भय होता है।

शर्वरीक-वि० [सं०] नुकसान करनेवाला। हानिकारक।

शर्वरीकर-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

शर्वरीदीपक-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शर्वरीपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) शिव। महादेव।

शर्वरीश-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शर्वाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] रुद्राक्ष। शिवाक्ष।

शर्वाचल-संज्ञा पुं० [सं०] कैलास।

शर्वाणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती।

शर्शरीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंसक। (२) खल। दुष्ट। पापी। (३) घोड़ा। (४) अग्नि।

शलंकट-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शलंकु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शलंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोकपाल। (२) एक प्रकार का नमक।

शलंदा-संज्ञा पुं० [देश०] पाताल गारुड़ी। जल जमुनी। छिरेंटा। छिरहटा।

शल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंस के एक मल्ल का नाम। उ०—और मल्ल मोर शल तोशल बहुत गए सब भाज।—सूर। (२) ब्रह्मा। (३) ऊँट। (४) एक प्रकार का वृक्ष। (५) शल्यराज का एक नाम। वि० दे० "शल्यराज"। (६) भाला। (७) साही का काँटा। (८) भृंगी। (९) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (१०) भागवत के अनुसार कंस के एक अमात्य का नाम। (११) वासुकी के वंश के एक नाग का नाम।

शलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकड़ी। (२) ताल। ताड़ वृक्ष। (३) साही का काँटा।

शलकर-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।

शलगम-संज्ञा पुं० दे० "शलजम"।

शलजम-संज्ञा पुं० [फ़ा०] गाजर की तरह का एक प्रकार का कंद जो प्रायः सारे भारत में जाड़े के दिनों में होता है। यह कंद गाजर से कुछ बड़ा और प्रायः गोल होता है और तरकारी, अचार और मुरब्बे आदि बनाने के काम में आता है। युरोप में इससे चीनी भी निकाली जाती है। शलगम।

शलभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) टीड़ी। टिड्डी। शरभ। (२) एक असुर का नाम। (३) पतंगा। फतिंगा। (४) छप्पय के ३१ वें भेद का नाम। इसमें ४० गुरु और ७२ लघु, कुल ११२ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं।

शलभता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शलभ का भाव या धर्म।

शलभत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शलभ का भाव या धर्म। शलभता।

शलल-संज्ञा पुं० [सं०] साही का काँटा।

शलाकधूर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शलाकाओं आदि की सहायता से पक्षियों को पकड़ता हो। चिड़ीमार। बहेलिया।

शलाका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लोहे या लकड़ी आदि की लंबी सलाई। सलाख। सीख। (२) वह सलाई जिससे घाव की गहराई आदि मापी जाती है। (३) बाण। शर। तीर। (४) अस्थि। हड्डी। (५) मदन वृक्ष। मैनफल। (६) तिनका। तृण। (७) शारिका पक्षी। मैना। (८) सलई। शल्लकी वृक्ष। (९) सुरमा लगाने की सलाई। (१०) जूआ खेलने का पासा (११) वच। वचा। (१२) रामायण के अनुसार एक प्राचीन नगरी का नाम। (१३) नली की हड्डी।

शलाकापुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के तिरसठ देवपुरुषों में से एक देवपुरुष।

शलाख-संज्ञा स्त्री० दे० "सलाख"।

शलाट-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार दो हजार पल का परिमाण। शकट।

शलाटु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कच्चा फल। (२) बेल। बिल्व।

शलातुर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम जो पाणिनि का निवास-स्थान था।

शलाथल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शलामोलि-संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।

शलालु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सुगंधि द्रव्य।

शली-संज्ञा स्त्री० [सं०] साही नामक जंतु जिसके सारे शरीर पर काँटे होते हैं।

शलीता-संज्ञा पुं० दे० "सलीता"।

शलूका-संज्ञा पुं० [फ़ा०] आधी बाँह की एक प्रकार की कुरती जो प्रायः स्त्रियाँ पहना करती हैं।

शल्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) टुकड़ा। खंड। (२) छिलका। वल्कल। (३) मछली के ऊपर का छिलका।

शल्कल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मछली का छिलका। (२) वृक्ष की छाल।

शल्कली-संज्ञा पुं० [सं० शल्कलिन्] मछली। मत्स्य। मीन।

शल्प-संज्ञा पुं० [अ०] (१) बाढ़। (२) बौछार। भरमार। (३) धड़ाका। कड़ाका।

शल्यदा, शल्यपर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

शल्मलि, शल्मली-संज्ञा पुं० [सं०] शाल्मली वृक्ष। सेमल।

शल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मद्र देश के एक राजा का नाम जो द्रौपदी के स्वयंवर के समय भीमसेन के साथ मल्ल-युद्ध में हार गए थे। कुरुक्षेत्र के युद्ध में इन्होंने दुर्योधन का पक्ष ग्रहण किया था। युद्ध के १६वें और १७वें दिन महावीर कर्ण के ये सारथी हुए थे। कर्ण की मृत्यु के अनंतर १८वें दिन ये सेनापति बनाए गए थे और अर्जुन द्वारा मारे गए

शर्करी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वर्ण वृत्त के अंतर्गत चौदह अक्षरों की एक वृत्ति । इसके कुल १६३८४ भेद होते हैं, जिनमें से १३ मुख्य हैं । (२) नदी । दरिया । (३) मेखला । (४) लिखने की कलम । लेखनी ।

शर्करीय–वि० [सं०] शर्करा संबंधी । चीनी का ।

शर्करोदक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चीनी घोला हुआ पानी । शरबत । (२) वह शरबत जिसमें इलायची, लौंग, कपूर और गोलमिर्च मिली हो । वैद्यक में इसे बलवर्द्धक, रुचिकारक, वायु, पित्त तथा रक्त-दोष नाशक और वमन, मूर्च्छा, दाह और तृष्णा आदि को शमन करनेवाला माना है ।

शर्कोटि–संज्ञा पुं० [सं०] साँप ।

शर्ट–संज्ञा स्त्री० [अं०] कमीज नाम का पहनने का कपड़ा ।

शर्णचापिलि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम ।

शर्त्त–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) दो व्यक्तियों या दलों में होनेवाली ऐसी प्रतिज्ञा कि अमुक बात होने या न होने पर हम तुमको इतना धन देंगे, अथवा तुमसे इतना धन लेंगे । बाजी जिसमें हार जीत के अनुसार कुछ लेन-देन भी हो । बाजी । दाँव । बदान ।

क्रि० प्र०—जीतना ।—बदना ।—बाँधना ।—रहना ।—लगना ।—लगाना ।—हारना ।

(२) किसी कार्य्य की सिद्धि के लिये आवश्यक या अपेक्षित होनेवाली बात या कार्य्य जिसके न होने से उस काम में बाधा उपस्थित हो । जैसे,—मैं चलने के लिये तैयार हूँ; पर शर्त्त यह है कि आप भी मेरे साथ चलें । (ख) हम इस शर्त्त पर रुपया देंगे कि आप उसके ज़िम्मेदार हों । (ग) उन्होंने कई ऐसी शर्त्तें लगाई हैं कि जिनके कारण काम होना बहुत कठिन है ।

क्रि० प्र०—रखना ।—लगाना ।

शर्तिया–क्रि० वि० [अ०] शर्त्त बदकर । बहुत ही निश्चय या दृढ़तापूर्वक । जैसे,—मैं शर्तिया कहता हूँ कि आप का काम जरूर हो जायगा ।

वि० बिलकुल ठीक । निश्चित । जैसे,—यह तो इस बीमारी की शर्तिया दवा है ।

शर्त्ती–क्रि० वि० दे० "शर्तिया" ।

शर्दि–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक प्राचीन नगर का नाम ।

शर्द्ध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेज । (२) अपान वायु का त्याग करना । पादना ।

शर्द्धन–संज्ञा पुं० [सं०] अधोवायु । पाद ।

शर्बत–संज्ञा पुं० दे० "शरबत" ।

शर्बती–संज्ञा पुं० दे० "शरबती" ।

शर्म–संज्ञा स्त्री० दे० "शरम" ।

शर्म्म–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुख । आनंद । (२) वह जो सुखी हो । (३) गृह । घर ।

शर्मद–वि० [सं०] [स्त्री० शर्मदा] आनंद देनेवाला । सुखदायक । उ०—कृष्णचन्द्र को प्रिय अधिकारी । शर्मद धरा धर्म धुरधारी ।—कबीर । (ख) तीर शर्मदा नर्मदा करत भयो नृप वास ।

संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम ।

शर्म्मन्–संज्ञा पुं० दे० "शर्म्मा" ।

शर्म्मर–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वस्त्र ।

शर्म्मरा, शर्म्मरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहल्दी ।

शर्म्मा–संज्ञा पुं० [सं० शर्म्मन्] ब्राह्मणों की उपाधि । जैसे,—ब्रह्मदेव शर्म्मा ।

विशेष—विधान है कि ब्राह्मण को अपने नाम के साथ अंत में "शर्म्मा" शब्द का व्यवहार करना चाहिये ।

शर्म्माख्य–संज्ञा पुं० [सं०] मसूर ।

शर्म्माना–क्रि० अ० स० दे० "शरमाना" ।

शर्मिंदगी–संज्ञा स्त्री० दे० "शरमिंदगी" ।

शर्मिंदा–वि० दे० "शरमिंदा" ।

शर्मिष्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दैत्यों के राजा वृषपर्वा की कन्या का नाम जो शुक्राचार्य्य की कन्या देवयानी की सखी थी । वि० दे० "देवयानी" ।

शर्मीला–वि० दे० "शरमीला" ।

शर्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) योद्धा । (२) बाण । (३) उँगली ।

शर्य्यण–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक जनपद का नाम जो कुरुक्षेत्र के अंतर्गत था ।

शर्य्यणावत्–संज्ञा पुं० [सं०] शर्य्यण नामक जनपद के पास का एक प्राचीन सरोवर जो तीर्थ माना जाता था ।

शर्य्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि । रात ।

शर्य्यात–संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य । आदमी ।

शर्याति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राजा का नाम जिसकी कन्या "सुकन्या" महर्षि च्यवन को ब्याही गई थी । (२) भागवत के अनुसार वैवस्वत मनु के एक पुत्र का नाम ।

शर्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । शंकर । महादेव । (२) विष्णु ।

शर्वक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

शर्वपत्नी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पार्वती । (२) लक्ष्मी ।

शर्वपर्वत–संज्ञा पुं० [सं०] कैलास ।

शर्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंधकार । अँधेरा । (२) कामदेव । (३) संध्या ।

शर्वरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात । रात्रि । निशा । (२) साँझ । संध्या । शाम । (३) हल्दी । हरिद्रा । (४) स्त्री । औरत ।

संज्ञा पुं० [सं० शर्व्वरिन्] बृहस्पति के साठ संवत्सरों में से

चौंतीसवाँ संवत्सर। कहते हैं कि इस संवत्सर में दुर्भिक्ष का भय होता है।

शर्वरीक-वि० [सं०] नुकसान करनेवाला। हानिकारक।

शर्वरीकर-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

शर्वरीदीपक-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शर्वरीपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) शिव। महादेव।

शर्वरीश-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शर्व्वाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] रुद्राक्ष। शिवाक्ष।

शर्व्वावास-संज्ञा पुं० [सं०] कैलास।

शर्व्वाणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती।

शर्शरीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंसक। (२) खल। दुष्ट। पापी। (३) घोड़ा। (४) अग्नि।

शलंकट-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शलंकु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शलंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोकपाल। (२) एक प्रकार का नमक।

शलंदा-संज्ञा पुं० [देश०] पाताल गारुड़ी। जल जमुनी। छिरेंटा। छिरहटा।

शल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंस के एक मल्ल का नाम। उ०—और मल्ल और शल तो शल बहुत गए सब भाज।—सूर। (२) ब्रह्मा। (३) ऊँट। (४) एक प्रकार का वृक्ष। (५) शल्यराज का एक नाम। वि० दे० "शल्यराज"। (६) भाला। (७) साही का काँटा। (८) भृंगी। (९) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (१०) भागवत के अनुसार कंस के एक अमात्य का नाम। (११) वासुकी के वंश के एक नाग का नाम।

शलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकड़ी। (२) ताल। ताड़ वृक्ष। (३) साही का काँटा।

शलकर-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।

शलगम-संज्ञा पुं० दे० "शलजम"।

शलजम-संज्ञा पुं० [फ़ा०] गाजर की तरह का एक प्रकार का कंद जो प्रायः सारे भारत में जाड़े के दिनों में होता है। यह कंद गाजर से कुछ बड़ा और प्रायः गोल होता है और तरकारी, अचार और मुरब्बे आदि बनाने के काम में आता है। युरोप में इससे चीनी भी निकाली जाती है। शलगम।

शलभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) टीड़ी। टिड्डी। शरभ। (२) एक असुर का नाम। (३) पतंगा। फतिंगा। (४) छप्पय के ३१ वें भेद का नाम। इसमें ४० गुरु और ७२ लघु, कुल ११२ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं।

शलभता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शलभ का भाव या धर्म।

शलभत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शलभ का भाव या धर्म। शलभता।

शलल-संज्ञा पुं० [सं०] साही का काँटा।

शलाकधूर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शलाकाओं आदि की सहायता से पक्षियों को पकड़ता हो। चिड़ीमार। बहेलिया।

शलाका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लोहे या लकड़ी आदि की लंबी सलाई। सलाख। सीख। (२) वह सलाई जिससे घाव की गहराई आदि मापी जाती है। (३) बाण। शर। तीर। (४) अस्थि। हड्डी। (५) मदन वृक्ष। मैनफल। (६) तिनका। तृण। (७) शारिका पक्षी। मैना। (८) सलई। शल्लकी वृक्ष। (९) सुरमा लगाने की सलाई। (१०) जूआ खेलने का पासा (११) छप्र। छाता। (१२) रामायण के अनुसार एक प्राचीन नगरी का नाम। (१३) नली की हड्डी।

शलाकापुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के तिरसठ देवपुरुषों में से एक देवपुरुष।

शलाख-संज्ञा स्त्री० दे० "सलाख"।

शलाट-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार दो हज़ार पल का परिमाण। शकट।

शलाटु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कच्चा फल। (२) बेल। बिल्व।

शलातुर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम जो पाणिनि का निवास-स्थान था।

शलाथल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शलाभोलि-संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।

शलालु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सुगंधि द्रव्य।

शली-संज्ञा स्त्री० [सं०] साही नामक जंतु जिसके सारे शरीर पर काँटे होते हैं।

शलीता-संज्ञा पुं० दे० "सलीता"।

शलूका-संज्ञा पुं० [फ़ा०] आधी बाँह की एक प्रकार की कुरती जो प्रायः स्त्रियाँ पहना करती हैं।

शल्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) टुकड़ा। खंड। (२) छिलका। वल्कल। (३) मछली के ऊपर का छिलका।

शल्कल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मछली का छिलका। (२) वृक्ष की छाल।

शल्कली-संज्ञा पुं० [सं० शल्कलिन्] मछली। मत्स्य। मीन।

शल्प-संज्ञा पुं० [लश०] (१) बाढ़। (२) बौछार। भरमार। (३) धड़ाका। कड़ाका।

शल्पदा, शल्पपर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

शल्मलि, शल्मली-संज्ञा पुं० [सं०] शाल्मली वृक्ष। सेमल।

शल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मद्र देश के एक राजा का नाम जो द्रौपदी के स्वयंवर के समय भीमसेन के साथ मल्ल-युद्ध में हार गए थे। कुरुक्षेत्र के युद्ध में इन्होंने दुर्योधन का पक्ष ग्रहण किया था। युद्ध के १६वें और १७वें दिन महावीर कर्ण के ये सारथी हुए थे। कर्ण की मृत्यु के अनंतर १८वें दिन ये सेनापति बनाए गए थे और अर्जुन द्वारा मारे गए

थे। ये पांडु की दूसरी स्त्री माद्री के भाई थे। (२) एक प्रकार का बाण। (३) अस्त्र-चिकित्सा। (४) छप्पय के ५६वें भेद का नाम। इसमें १५ गुरु और १२२ लघु, कुल १३७ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। (५) हड्डी। अस्थि। (६) अंजन लगाने की सलाई। शलाका। (७) मैनफल। मदन वृक्ष। (८) सफ़ेद खैर। (९) शिलिंद मछली। (१०) लोध। लोध्र वृक्ष। (११) बेल। बिल्व वृक्ष। (१२) साही नामक जंतु। (१३) साँग नामक अस्त्र। (१४) दुर्वाक्य। (१५) पाप। (१६) जमीन में गड़ी हुई जानवरों आदि की हड्डियाँ जो मकान बनाने के समय निकालकर फेंकी जाती हैं। (१७) वे पदार्थ जिनसे शरीर में किसी प्रकार की पीड़ा या रोग आदि उत्पन्न होता है। सुश्रुत के अनुसार ये शल्य दो प्रकार के होते हैं—शारीर और आगंतु। यदि वात पित्त आदि के दोष से रोएँ, नाखून, शरीर के धातु, अन्न, मल आदि कुपित होकर पीड़ा या रोग उत्पन्न करें, तो उसे शारीर शल्य कहते हैं। और इनके अतिरिक्त जो और बाहरी पदार्थ (लोहा, लकड़ी, सींग आदि) शरीर में पीड़ा या रोग उत्पन्न करें, तो उन्हें आगंतु शल्य कहते हैं।

शल्यकंठ—संज्ञा पुं० [सं०] साही नामक जंतु।

शल्यक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) साही नामक जंतु। (२) मैनफल। मदन वृक्ष। (३) सफेद खैर। (४) लाल खैर। (५) एक प्रकार की मछली। (६) लोध वृक्ष। (७) बेल। बिल्व।

शल्यकर्त्तन—संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।

शल्यकर्त्ता—संज्ञा पुं० [सं० शल्यकर्तृ] वह जो शस्त्र चिकित्सा करता हो। चीर फाड़ का इलाज करनेवाला।

शल्यकी—संज्ञा स्त्री० [सं० शल्लकी] साही नामक जंतु। उ०—रोम रोम वेध्यो तनु बाणन। भयो शल्यकी सरिस दशानन। —रघुराज।

शल्यक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] चीर-फाड़ का इलाज। शस्त्र-चिकित्सा।

शल्यज नाड़ी व्रण—संज्ञा पुं० [सं०] नाड़ी में होनेवाला एक प्रकार का व्रण या घाव। जब किसी घाव में काँटा या कंकड़ आदि पड़कर किसी नाड़ी में पहुँच जाता और वहीं रह जाता है, तब जो व्रण होता है, वह शल्यज नाड़ी व्रण कहलाता है। इसमें घाव में से गरम खून के साथ मवाद निकलता है।

शल्यज मूत्र कृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मूत्र-कृच्छ्र। वि० दे० "मूत्रकृच्छ्र"।

शल्यतंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार आठ प्रकार के तंत्रों में से एक तंत्र। वह तंत्र जिसमें चीर-फाड़ के यंत्रों, शस्त्रों, क्षारों और अग्नि कर्म आदि के प्रयोगों का वर्णन होता है।

शल्यदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेदा नाम की ओषधि।

शल्यपर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेदा नाम की ओषधि।

शल्यलोम—संज्ञा पुं० [सं० शल्यलोमन्] साही नामक जंतु का काँटा।

शल्यशालक—संज्ञा पुं० [सं०] फोड़ों आदि की चीर फाड़ का काम।

शल्यशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा शास्त्र का वह अंग जिसमें शरीर में गड़े हुए काँटों आदि के निकालने का विधान रहता है।

शल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेदा नाम की ओषधि। (२) नाग-वल्ली नाम की लता। (३) विकंकत वृक्ष।

शल्यारि—संज्ञा पुं० [सं०] शल्य को मारनेवाले, युधिष्ठिर।

शल्योद्धार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर में लगे हुए बाण या काँटे आदि निकालने की क्रिया। (२) वास्तुविद्या के अनुसार नया मकान बनवाने के समय जमीन को साफ करना और उसमें की हड्डियाँ आदि निकलवाकर फेंकवाना।

शल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमड़ा। (२) वृक्ष की छाल। (३) मेंढक।

वि० [अ०] (अंग) जो दुर्बलता या थकावट आदि के कारण बिलकुल सुस्त या सुन्न हो गया हो।

शल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोध्र वृक्ष। सलई। (२) साही नामक जंतु। (३) चमड़ा।

शल्लकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साही नामक जंतु। (२) सलई का वृक्ष।

शल्लकीद्रव—संज्ञा पुं० [सं०] शिलारस। सिल्हक।

शल्लकीरस—संज्ञा पुं० [सं०] शिलारस। सिल्हक।

शल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाव। नौका।

शल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साही नामक जंतु। (२) शल्लकी का वृक्ष। सलई।

शल्व—संज्ञा पुं० दे० "शाल्व"। उ०—निराकरन जब भीष्म किय, तब अंबिका उदास। लौटि गई अपने भवन, शल्व भूप के पास।—रघुराज।

शव—संज्ञा पुं० [सं०] मृत शरीर। प्राणरहित देह। लाश। मुर्दा।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल मनुष्य के मृत शरीर के ही लिये होता है।

(२) जल। पानी।

शवकाम्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुक्कुर। कुत्ता।

शवकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण का एक नाम।

शवदाह—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य के मृत शरीर को जलाने की क्रिया या भाव।

शवधान—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रदेश का नाम जिसे शरधान भी कहते हैं।

शवभस्म-संज्ञा पुं० [सं०] चिता का भस्म। मरघट की राख।
उ०—शवभस्म विभूषित भूरि गण।—रघुनाथ।

शवमंदिर-संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान। मरघट।

शवयान-संज्ञा पुं० [सं०] अरथी जिस पर शव ले जाते हैं। टिकठी।

शवर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शवरी] (१) एक पहाड़ी जंगली जाति। इस जाति के लोग मोरपंख से अपने आपको सजाते हैं। ये लोग अब तक मध्य प्रदेश और हजारीबाग आदि जिलों में रहते और "सौर" कहलाते हैं। (२) शिव। (३) जल।

शवरथ-संज्ञा पुं० [सं०] शवयान। अरथी। टिकठी।

शवरलोध्र-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद लोध।

शवरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शवर जाति की श्रमणा नाम की एक तपस्विनी। सीता जी को ढूँढ़ते हुए रामचंद्र इस तपस्वी के आश्रम में पहुँचे थे। इसने राम की अभ्यर्थना की थी और उन्हीं की अनुमति से उनके सामने ही चिता में प्रविष्ट होकर यह स्वर्ग को सिधारी थी। (२) शवर जाति की स्त्री।

शवल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चीता। चित्रक। (२) जल। पानी।
वि० चितकबरा। चित्तल। चीतल।

शवला-संज्ञा स्त्री० [सं०] चितकबरी गाय।

शवलित-वि० [सं०] मिश्रित। मिला हुआ।

शवली-संज्ञा स्त्री० [सं०] चितकबरी गाय।

शवशयन-संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान। मरघट।

शवसाधन-संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का साधन जो श्मशान में किसी व्यक्ति के शव या मृत शरीर पर बैठकर अथवा उसे सामने रखकर किया जाता है। कहते हैं कि इस प्रकार के साधन से साधक को सिद्धि और अनंत पद प्राप्त होता है।

शवसान-संज्ञा पुं० [सं०] पथिक। यात्री।

शवान्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह अन्न जो बिलकुल खराब हो गया हो और किसी काम का न रह गया हो। (२) मनुष्य के शव या मृत शरीर का मांस।

शव्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह कृत्य या उत्सव जो शव को अंत्येष्टि क्रिया के लिये ले जाने के समय होता है।

शव्वाल-संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों का दसवाँ महीना।

शश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खरहा। खरगोश। (२) चंद्रमा का लांछन या कलंक। (३) लोध्र वृक्ष। लोध। (४) काम शास्त्र के अनुसार मनुष्य के चार भेदों में से एक भेद। जो मनुष्य मृदु वचन बोलता हो, सुशील, कोमलांग, सत्यवादी और सकल गुण निधान हो, वह शश जाति का माना जाता है। (५) बोल नामक गंधद्रव्य। गंधरस।

शशक-संज्ञा पुं० [सं०] खरगोश। खरहा।

शशगानी-संज्ञा पुं० [फ़ा० शश = छः + गानी ?] चाँदी का एक प्रकार का सिक्का जो फीरोज़ शाह के राज्य में प्रचलित था। यह लगभग दुअन्नी के बराबर होता था।

शशघातक, शशघाती-संज्ञा पुं० [सं०] बाज या श्येन नामक पक्षी। हरगोला।

शशधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर। कर्पूर।

शशबिंदु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) चित्ररथ के एक पुत्र का नाम।

शशभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

शशमाही-वि० [फ़ा०] हर छः महीने पर होनेवाला। छः माही। अर्द्ध वार्षिक।

शशमुंड-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस।

शशमौलि-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

शशयान-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

शशलक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शशलांछन-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शशशिंबिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती। डोडी।

शशशृंग-संज्ञा पुं० [सं०] कोई असंभव और अनहोनी बात। वैसा ही असंभव कार्य्य जैसा खरगोश को सींग होना होता है। आकाश कुसुम की सी असंभव बात।

शशस्थली-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा और यमुना के मध्य का प्रदेश। दोआब।

शशांक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

शशांकज-संज्ञा पुं० [सं०] बुध जो चन्द्रमा का पुत्र माना जाता है।

शशांकमुकुट-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

शशांकशेखर-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

शशांकसुत-संज्ञा पुं० [सं०] बुध ग्रह जो शशांक या चंद्रमा का पुत्र माना जाता है।

शशांकार्द्ध-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

शशांकोपल-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रकांत मणि।

शशांडुलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] कड़वी ककड़ी।

शशा-संज्ञा पुं० दे० "शश"।

शशाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाज। श्येन पक्षी। (२) भागवत के अनुसार इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम।

शशादन-संज्ञा पुं० [सं०] बाज नाम का पक्षी।

शशि-संज्ञा पुं० [सं० शशिन्] (१) चंद्रमा। इंदु। (२) छप्पय के ५२ वें भेद का नाम। इसमें १७ गुरु और ११८ लघु,

कुल १२५ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। (३) रगण के दूसरे भेद (ऽ।ऽ) की संज्ञा। (४) मोती। (५) छः की संख्या। उ०—एहि भाँति कीन्ह्यों युद्ध शिव शशि मास सब हहर्‍यो हियो।—रघुनाथ।

शशिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम। (२) इस जनपद में रहनेवाली जाति।

शशिकर-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा की रश्मि या किरण।

शशिकला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की कला। (२) एक प्रकार का वृत्त। इसके प्रत्येक चरण में चार नगण और एक सगण होता है। इसको 'मणिगुण' और 'शरभ' भी कहते हैं।

शशिकांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रकांत मणि। (२) कुमुद। कोई। बघोला।

शशिकुल-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रवंश। उ०—शशिकुल छत्र शिरोमणि आहीं।—गर्ग संहिता।

शशिकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

शशिखंड-संज्ञा पु० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) चंद्रमा की कला। (३) एक विद्याधर का नाम।

शशिखंडिक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक देश का नाम।

शशिगुह्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] मुलेठी।

शशिज-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का पुत्र, बुध ग्रह। उ०—प्रथम शुक्र दूजे रवि शशिजहु राहु चतुर्थ गवाई।—रघुराज।

शशितिथि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णिमा। पूर्णमासी।

शशिदेव-संज्ञा पुं० [सं०] मृगशिरा नक्षत्र जिसके अधिष्ठाता देवता चंद्रमा माने जाते हैं।

शशिधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) एक प्राचीन नगर का नाम। उ०—शशिधर नगर जाहु प्रिय कारी।—शां० दि०।

शशिध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक असुर का नाम।

शशिपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] परवल। पटोल।

शशिपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बुध ग्रह जो चंद्रमा का पुत्र माना है।

शशिपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] कमल। पद्म।

शशिपोषक-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का पोषण करनेवाला, शुक्ल पक्ष।

शशिप्रभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसकी प्रभा चंद्रमा के समान हो। (२) कुमुद। कोई। (३) मुक्ता। मोती।

शशिप्रभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योत्सना। चाँदनी।

शशिप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुमुद। कोई। (२) मुक्ता। मोती।

शशिप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्ताइसो नक्षत्र जो चंद्रमा की पत्नियाँ माने जाते हैं।

शशिभागा-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा मुचकुंद की कन्या का नाम। उ०—सुनत कहेउ पति से शशिभागा।—रघुनाथ।

शशिभाल-संज्ञा पुं० [सं०] मस्तक पर चंद्रमा धारण करनेवाले, शिव। महादेव। उ०—जय सज्जन रिपु काल, जयति पाल शशिभाल प्रभ।—रघुराज।

शशिभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

शशिभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

शशिमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का घेरा या मंडल। चंद्रमंडल। उ०—सब नक्षत्र को राजा कीन्हों शशिमंडल में छाप।—सूर।

शशिमणि-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रकांत मणि।

शशिमुख-वि० [सं०] [स्त्री० शशिमुखी] (वह व्यक्ति) जिसका मुख चंद्रमा के सदृश सुंदर हो। अति सुंदर। उ०—राग सुनि भक्तन को भयो अनुराग बस शशिमुख लालजू को जाइके सुनाइये।—नाभादास।

शशिमौलि-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

शशिरस-संज्ञा पुं० [सं०] अमृत।

शशिरेखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा की एक कला।

शशिलेखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की कला। (२) बकुची। सोमराजी। (३) गिलोय। गुरुच।

शशिवदना-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण (।।।) और एक यगण (।ऽऽ) होता है। इसे चौवंसा, चंडरसा और पादांकुलक भी कहते हैं। उ०—पिक द्विज देरे। कुपित विरोधे। मदन-निराते। मदन-निताते।—गुमान।

वि० स्त्री० चंद्रमा के समान सुंदर मुखवाली। शशिमुखी।

शशिवाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुनर्नवा। गदहपूरना।

शशिशाला-संज्ञा स्त्री० [फा० शीशा + सं० आलय] वह घर जो बहुत से शीशों का बना हुआ हो या जिसमें बहुत से शीशे लगे हुए हों। शीशमहल। उ०—(क) अति उतंग सुंदर शशिशाला लसत नरातिय घोर।—रघुराज। (ख) पूरित सत्य प्रमोद मही सब शशि भूपति शशिशाला।—रघुराज। (ग) शशिशाला अंतःपुर शाला शाला सभा सदन के।—रघुराज।

शशिशेखर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। उ०—शिला एक बिच लसत चिह्न तहँ पद शशिशेखर।—हृदयराम। (२) एक बुद्ध का नाम।

शशिशोषक-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा को क्षीण करनेवाला, कृष्ण पक्ष।

शशिसुत-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का पुत्र, बुध ग्रह।

शशिहीरा–संज्ञा पुं० [सं० शशि+हिं० हीरा] चंद्रकांत मणि। उ०—शशिहीरा की एक बात। कलीन कीलतब लजावौं गात।—रघुराजसिंह।

शशी–संज्ञा पुं० दे० "शशि"।

शशीकर–संज्ञा पुं० [सं० शशिकर] चंद्रमा की किरण।

शशीश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) कार्त्तिकेय।

शश्वत–वि० दे० "शाश्वत"।

शष्कुल–संज्ञा पुं० [सं०] करंज।

शष्कुली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पूरी पकवान आदि। (२) कान का छेद। (३) सौरी मछली।

शष्प–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नई घास। (२) नीली दूब।

शसन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ के लिये पशुओं की हत्या करना। (२) वह स्थान जहाँ पशुओं का बलिदान होता हो।

शसा*–संज्ञा पुं० [सं० शश] खरगोश। खरहा।

शसि*–संज्ञा पुं० दे० "शशि"।

शसी*–संज्ञा पुं० दे० "शशि"।

शस्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर। बदन। जिस्म। (२) कल्याण। मंगल। भलाई।

वि० (१) जिसकी प्रशंसा की गई हो। अच्छा। उत्तम। श्रेष्ठ। (२) प्रशस्त। (३) जो मार डाला गया हो। निहत। (४) कल्याणयुक्त। मंगलयुक्त।

संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह हड्डी या धातु का छल्ला जो तीर चलाने के समय अँगूठे में पहना जाता है। (२) वह जिस पर तीर या गोली आदि चलाई जाती है। लक्ष्य। निशाना।

मुहा०—शस्त बाँधना या लगाना = निशाना बेधने के लिये सीध या ताक लगाना।

(३) जमीन की पैमाइश करनेवालों की दूरबीन के आकार का वह यंत्र जिसकी सहायता से जमीन की सीध देखी जाती है। (४) मछली पकड़ने का काँटा।

शस्तक–संज्ञा पुं० [सं०] हाथ में पहनने का चमड़े का दस्ताना। अंगुलित्राण।

शस्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्तुति। प्रशंसा। तारीफ।

शस्त्रक–संज्ञा पुं० [सं०] लोहा।

शस्त्रकर्म–संज्ञा पुं० [सं० शस्त्रकर्मन्] घाव या फोड़े में नश्तर लगाना। फोड़ों आदि की चीर-फाड़ का काम।

शस्त्रकेतु–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का केतु जो पूर्व में उदय होता है। कहते हैं कि इसके उदय होने पर महामारी फैलती है।

शस्त्रकोशतरु–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा सैनफल।

शस्त्रक्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] फोड़ों आदि की चीर-फाड़। नश्तर लगाने की क्रिया।

शस्त्रगृह–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार के शस्त्र आदि रहते हों। शस्त्र-शाला। हथियार-घर। सिलहखाना।

शस्त्रचूर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] मंडूर।

शस्त्रजीवी–संज्ञा पुं० [सं० शस्त्रजीविन्] योद्धा। सैनिक। सिपाही।

शस्त्रदेवता–संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध का अधिष्ठाता देवता।

शस्त्रधर–संज्ञा पुं० [सं०] योद्धा। सैनिक। सिपाही।

शस्त्रधारी–वि० [सं० शस्त्रधारिन्] [स्त्री० शस्त्रधारिणी] शस्त्र धारण करनेवाला। हथियारबंद।

संज्ञा पुं० (१) योद्धा। सिपाही। सैनिक। (२) एक प्रकार का जंतु जिसे सिलहपोश भी कहते हैं। (३) एक प्राचीन देश का नाम।

शस्त्रभृत्–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शस्त्र धारण करता हो। शस्त्रधारी।

शस्त्रवार्त्त–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम।

शस्त्रविद्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हथियार चलाने की विद्या। (२) यजुर्वेद का उपवेद, धनुर्वेद, जिसमें सब प्रकार के अस्त्र चलाने की विधियों और लड़ाई के संपूर्ण भेदों का वर्णन दिया गया है।

शस्त्रवृत्ति–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शस्त्र आदि चलाकर अपना निर्वाह करता हो। योद्धा। सैनिक। सिपाही।

शस्त्रशाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ बहुत से शस्त्र आदि रखे हों। शस्त्रगृह। शस्त्रागार। सिलहखाना।

शस्त्रशास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शास्त्र जिसमें हथियार चलाने आदि का निरूपण हो। (२) धनुर्वेद।

शस्त्रहत–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी हत्या शस्त्र के द्वारा हुई हो।

शस्त्रहत चतुर्दशी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गौण आश्विन कृष्ण चतुर्दशी और गौण कार्त्तिक कृष्ण चतुर्दशी। इन दोनों चतुर्दशियों को उन लोगों का श्राद्ध किया जाता है, जिनकी हत्या शस्त्रों द्वारा होती है।

शस्त्रांगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] खट्टी लोनी या अमलोनी जिसका साग होता है। चांगेरी।

शस्त्राख्य–संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार का केतु।

शस्त्रागार–संज्ञा पुं० [सं०] शस्त्रों के रखने का स्थान। शस्त्रशाला। शस्त्रालय। सिलहखाना।

शस्त्रायस–संज्ञा पुं० [सं०] वह लोहा जिससे शस्त्र बनाए जाते हैं।

शस्त्री–संज्ञा पुं० [सं० शस्त्रिन्] (१) वह जो शस्त्र आदि चलाना जानता हो। (२) वह जिसके पास शस्त्र हो।

संज्ञा स्त्री० [सं० शस्त्र] छुरी। चाकू।

शस्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नई घास। कोमल तृण। (२) वृक्षों

का फल। (३) खेती। फसल। (४) प्रतिमा की हानि या नाश। (५) धान्य। अन्न। (६) सद्गुण।

वि० (१) उत्तम। श्रेष्ठ। अच्छा। (२) प्रशंसा के योग्य। तारीफ़ के लायक।

शस्यक-संज्ञा पुं० [०] एक प्रकार का रत्न।

शस्यघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चोरहुली। चोरपुष्पी।

शस्यध्वंसी-संज्ञा पुं० [सं० शस्यध्वंसिन्] तूत। तूर्ण वृक्ष।

वि० जिससे शस्य का नाश हो।

शस्यसंवर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाल वृक्ष। (२) अश्वकर्ण वृक्ष।

शस्यारु-संज्ञा पुं० [सं०] छोटी शमी।

शहंशाह-संज्ञा पुं० [फ़ा०] बादशाहों का बादशाह। महाराजाधिराज। शाहंशाह।

शहंशाही-वि० [फ़ा०] शाहों का सा। शाही। राजसी।

संज्ञा स्त्री० (१) शाहंशाह का भाव या धर्म्म। (२) शाहंशाह का पद। (३) लेने देने में खरापन। (बाज़ारू)

क्रि० प्र०—दिखलाना।—रखना।

शह-संज्ञा पुं० [फ़ा० शाह का संक्षिप्त रूप] (१) बहुत बड़ा राजा। बादशाह। (२) वर। दूल्हा।

यौ०—शहबाला।

वि० बड़ा चढ़ा। श्रेष्ठतर।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल यौगिक शब्द बनाने के समय उसके आरंभ में होता है। जैसे,—शहज़ोर, शहबाज़, शहसवार।

संज्ञा स्त्री० (१) शतरंज के खेल में कोई मुहरा किसी ऐसे स्थान पर रखना जहाँ से बादशाह उसकी घात में पड़ता हो। किश्त। उ०—राजा पील देइ शह माँगा। शह दै चाहि मरै रथ खागा।—जायसी।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।—बचाना।—लगाना।

(२) गुप्त रूप से किसी के भड़काने या उभारने की क्रिया या भाव। जैसे,—वे तुम्हारी शह पाकर ही तो इतना उछलते हैं।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

(३) गुड्डी, पतंग या कनकौवे आदि को धीरे धीरे, डोर ढीली करते हुए, आगे बढ़ाने की क्रिया या भाव।

क्रि० प्र०—देना।

शहचाल-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० शह + हिं० चाल] शतरंज में बादशाह की वह चाल जो और मोहरों के मारे जाने पर चली जाती है।

शहज़ादा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० शहज़ादी] (१) राजपुत्र। राजकुमार। (२) राज्य का उत्तराधिकारी। युवराज।

शहज़ोर-वि० [फ़ा०] बली। बलवान। ताक़तवर।

शहज़ोरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) बल। ताकत। (२) ज़बरदस्ती।

शहत-संज्ञा पुं० दे० "शहद"।

शहतीर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] लकड़ी का चीरा हुआ बहुत बड़ा और लंबा लट्ठा जो प्रायः इमारत के काम में आता है।

शहतूत-संज्ञा पुं० [फ़ा०] तूत नाम का पेड़ और उसका फल।

वि० दे० "तूत"।

शहद-संज्ञा पुं० [अ०] शीरे की तरह का एक बहुत प्रसिद्ध मीठा, गाढ़ा तरल पदार्थ जो कई प्रकार के कीड़े और विशेषतः मधुमक्खियाँ अनेक प्रकार के फूलों के मकरंद से संग्रह करके अपने छत्तों में रखती हैं। जब यह अपने शुद्ध रूप में रहता है, तब इसका रंग सफ़ेदी लिए कुछ लाल या पीला होता है। यह पानी में सहज में घुल जाता है। यह बहुत बलवर्द्धक माना जाता है और प्रायः औषधों के साथ, दूध में मिलाकर अथवा यों ही खाया जाता है। इसमें फल आदि भी रक्षित रखे जाते हैं; अथवा उनका मुरब्बा डाला जाता है। कभी कभी ऐसा शहद भी मिलता है जो मादक या विष होता है। वैद्यक में यह शीतवीर्य्य, लघु, रूक्ष, धारक, आँखों के लिये हितकारी, अग्निदीपक, स्वास्थ्यवर्द्धक, वर्णप्रसादक, चित्त को प्रसन्न करनेवाला, मेधा और वीर्य्य बढ़ानेवाला, रुचिकारक और कोढ़, बवासीर, खाँसी, कफ, प्रमेह, प्यास, कै, हिचकी, अतीसार, मलरोध और दाह को दूर करनेवाला माना गया है। मधु।

मुहा०—शहद लगाकर चाटना = किसी निरर्थक पदार्थ को योंही लिए रहना और उसका कुछ भी उपयोग न कर सकना। (व्यंग्य) जैसे,—उसका दिवाला हो गया; अब आप अपना तमस्सुक शहद लगाकर चाटिए। शहद लगाकर अलग होना = उपद्रव का सूत्रपात करके अलग होना। आग लगाकर दूर होना।

शहनगी-संज्ञा पुं० [अ० शहनः] (१) शस्य रक्षक का कार्य। (२) वह धन जो चौकीदार को देने के लिये असामियों से वसूल किया जाता है। चौकीदारी।

शहना-संज्ञा पुं० [अ० शहनः] (१) खेत की चौकसी करनेवाला। शस्य-रक्षक। (२) वह व्यक्ति जो ज़मींदार की ओर से असामियों को बिना पोत दिए, खेत की उपज उठाने से रोकने और उसकी रक्षा के लिये नियुक्त किया जाता है। (३) कोतवाल। नगर-रक्षक।

शहनाई-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) बाँसुरी या अलगोजे के आकार का, पर उससे कुछ बड़ा, मुँह से फूँककर बजाया जानेवाला एक प्रकार का बाजा जो प्रायः रोशनचौकी के साथ बजाया जाता है। नफ़ीरी। (२) दे० "रोशनचौकी"।

शहबाला-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह छोटा बालक जो विवाह के समय दूल्हे के साथ पालकी पर अथवा उसके पीछे घोड़े

पर बैठकर जाता है। यह प्रायः वर का छोटा भाई या उसका कोई निकट संबंधी हुआ करता है।

शहबुलबुल-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार की बुलबुल। इसका सारा शरीर लाल होता है, केवल कंठ काला होता है; और सिर पर सुनहले रंग की चोटी होती है।

शहमात-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] शतरंज के खेल में एक प्रकार की मात। इसमें बादशाह को केवल शह या किश्त देकर इस प्रकार मात किया जाता है कि बादशाह के चलने के लिये और कोई घर ही नहीं रह जाता। उ०—राजा चहै बुर्द भा, शाह चहै शहमात।—जायसी।

शहर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] मनुष्यों की वह बड़ी बस्ती जो कस्बे से बहुत बड़ी हो, जहाँ हर पेशे के लोग रहते हों और जिसमें अधिकतर पक्के मकान हों। उ०—रघुराज गरीब नेवाज दोऊ अवलोकन काज चले शहरै।—रघुराज।

शहरपनाह-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] नगर के चारों ओर बनी हुई पक्की दीवार। वह दीवार जो किसी नगर के चारों ओर रक्षा के लिये बनाई जाय। शहर की चार-दीवारी। प्राचीर। नगर-कोट। उ०—गमनत बरात सुहात एहि विधि निकट शहर-पनाह के।—रघुराज।

शहरी-वि० [फ़ा०] (१) शहर से संबंध रखनेवाला। शहर का। (२) शहर का रहनेवाला। नगर निवासी। नागरिक।

शहवत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) कामातुरता। काम का उद्रेक।

क्रि० प्र०—उठना।—होना।

(२) भोग-विलास। विषय। मैथुन।

शहसवार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो घोड़े पर अच्छी तरह सवारी कर सकता हो। अच्छा सवार। सवारी में चतुर।

शहादत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) गवाही। साक्ष्य।

क्रि० प्र०—गुजरना।—देना।—मिलना।—लेना।

(२) सबूत। प्रमाण। (३) धर्म के लिये लड़ाई आदि में मारा जाना। शहीद होना। (मुसल०)

शहाना-संज्ञा पुं० [देश० या फ़ा० शाह ?] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह राग फरोदस्त और कान्हड़ा को मिलाकर बनाया गया है और इसका व्यवहार प्रायः उत्सवों तथा धर्म संबंधी कार्य्यों में होता है। शास्त्र के अनुसार यह मालकोस राग की रागिनी है। इसके गाने का समय ११ दंड से १५ दंड तक है।

वि० [फ़ा०] (१) शाहों या बादशाहों का सा। राजाओं के योग्य। शाही। राजसी। (२) बहुत बढ़िया। उत्तम।

संज्ञा पुं० वह जोड़ा जो विवाह के समय दूल्हे को पहनाया जाता है।

शहाना कान्हड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० शहाना + कान्हड़ा] संपूर्ण जाति का एक प्रकार का कान्हड़ा राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

शहाब-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का गहरा लाल रंग जो कुसुम के खूब अच्छे और गहरे लाल रंग में आम या इमली की छाल मिलाकर बनाया जाता है।

शहाबा-संज्ञा पुं० दे० "अगिया बैताल" (२)।

शहाबी-वि० [हिं० शहाब + ई (प्रत्य०)] शहाब के रंग का। गहरा लाल।

शहिजदा*-संज्ञा पुं० [स्त्री० शहिजादी] दे० "शाहजादा"। उ०—(क) पठयो कबरू नाम जेहि, शहिजादा को शाह।—रघुराज। (ख) रही शाह की एक शहिजादी। लखि सो मूरत छबि मरजादी।—रघुराज।

शहीद-संज्ञा पुं० [अ०] वह व्यक्ति जो धर्म्म या इसी प्रकार के और किसी शुभ कार्य्य के लिये युद्ध आदि में मारा गया हो। न्यौछावर या बलिदान होनेवाला व्यक्ति।

शांकर-वि० [सं०] (१) शंकर संबंधी। (२) शंकराचार्य्य का। जैसे,—शांकर भाष्य, शांकर मत।

संज्ञा पुं० (१) साँड़। (२) शंकराचार्य्य का अनुयायी। (३) आर्द्रा नक्षत्र, जिसके देवता शिव जी माने गए हैं। (४) एक छंद का नाम। (५) सोम लता का एक भेद।

शांकरि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव के पुत्र, गणेश। (२) कार्त्तिकेय। (३) अग्नि। (४) एक मुनि का नाम। (५) शमी का पेड़।

शांकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिव द्वारा निर्धारित अक्षरों का क्रम। शिवसूत्र।

शांकिल-संज्ञा पुं० [सं०] चोरक नामक गंध द्रव्य।

शांकुची-संज्ञा स्त्री० [सं०] शकुची मछली।

शांख-संज्ञा पुं० [सं०] शंख की ध्वनि।

वि० शंख संबंधी। शंख का बना हुआ।

शांखायन-संज्ञा पुं० [सं०] एक गृह्य और श्रौत सूत्रकार ऋषि जिनका कौशीतकी ब्राह्मण भी है।

शांखारि-संज्ञा पुं० [सं०] शंख बेचनेवाली जाति।

शांखिक-वि० [सं०] [स्त्री० शांखिकी] (१) शंख संबंधी। (२) शंख का बना हुआ।

संज्ञा पुं० शंख बनाने और बेचनेवाला। शांखारि। (२) शंख बजानेवाला व्यक्ति।

शांख्य-वि० [सं०] (१) शंख-संबंधी। (२) शंख का बना हुआ।

शांगुष्ठा-संज्ञा स्त्री० दे० "सांगुष्ठा"।

शांची-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का शाक।

शांडदूर्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की दूब। गांड दूर्वा।

शांडाकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पशु।

शांडिक-संज्ञा पुं० [सं०] माँद में रहनेवाला साँडा नामक जंतु।

शांडिली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ब्राह्मणी जो अग्नि की माता मानकर पूजी जाती थी। (महाभारत)

शांडिल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेल। श्रीफल। (२) अग्नि। (३) एक मुनि जिनकी रची एक स्मृति है और जो भक्तिसूत्र के कर्त्ता माने जाते हैं। (४) शांडिल्य के कुल में उत्पन्न पुरुष। (५) सरयूपारी ब्राह्मणों के तीन प्रधान गोत्रों में से एक गोत्र।

शांत-वि० [सं०] (१) जिसमें वेग, क्षोभ या क्रिया न हो। ठहरा हुआ। रुका हुआ। बंद। जैसे,—अंधड़ शांत होना, उपद्रव शांत होना, झगड़ा शांत होना। (२) (कोई पीड़ा, रोग, मानसिक वेग आदि) जो जारी न हो। बंद। मिटा हुआ। जैसे,—क्रोध शांत होना, पीड़ा शांत होना, ताप शांत होना। (३) जिसमें क्रोध आदि का वेग न रह गया हो। जिसमें जोश न रह गया हो। स्थिर। जैसे,—जब हमने समझाया, तब ये शांत हुए। (४) जिसमें जीवन की चेष्टा न रह गई हो। मृत। मरा हुआ। (५) जो चंचल न हो। धीर। उग्रता या चंचलता-रहित। सौम्य। गंभीर। जैसे,—शांत प्रकृति, शांत आदमी। (६) मौन। चुप। खामोश। (७) जिसने मन और इंद्रियों के वेग को रोका हो। मनोविकार-रहित। रागादि-शून्य। जितेंद्रिय। (८) उत्साह या तत्परताहित। जिसमें कुछ करने की उमंग न रह गई हो। शिथिल। ढीला। (९) हारा हुआ। थका हुआ। श्रांत। (१०) जो जलता या उद्दीप्त न हो। जो दहकता न हो। बुझा हुआ। जैसे,—अग्नि शांत होना। (११) विघ्न बाधा रहित। स्थिर। (१२) जिसकी घबराहट दूर हो गई हो। जिसका जी ठिकाने हो गया हो। स्वस्थ चित्त। (१३) जिस पर असर न पड़ा हो। अप्रभावित।

संज्ञा पुं० (१) काव्य के नौ रसों में से एक रस जिसका स्थायी भाव "निर्वेद" (काम, क्रोधादि वेगों का शमन) है।

विशेष—इस रस में संसार की अनित्यता, दुःखपूर्णता, असारता आदि का ज्ञान अथवा परमात्मा का स्वरूप आलंबन होता है; तपोवन, ऋषि, आश्रम, रमणीय तीर्थादि, साधुओं का सत्संग आदि उद्दीपन, रोमांच आदि अनुभाव तथा निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, दया आदि संचारी भाव होते हैं। शांत को रस कहने में यह बाधा उपस्थित की जाती है कि यदि सब मनोविकारों का शमन ही शांत है, तो विभाव, अनुभाव और संचारी द्वारा उसकी निष्पत्ति कैसे हो सकती है ? इसका उत्तर यह दिया जाता है कि शांत दशा में जो सुखादि का अभाव कहा गया है, वह विषय-जन्य सुख का है। योगियों को एक अलौकिक प्रकार का आनंद होता है जिसमें संचारी आदि भावों की स्थिति हो सकती है। नाटक में आठ ही रस माने जाते हैं; शांत रस नहीं माना जाता। कारण यह कि नाटक में अभिनय क्रिया ही मुख्य है; अतः उसमें 'शांत' का समावेश (जिसमें क्रिया, मनोविकार आदि की शांति कही जाती है) नहीं हो सकता।

(२) इंद्रिय-निग्रही योगी। विरक्त पुरुष। (३) मनु का एक पुत्र।

शांतता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शांति। शमन। (२) खामोशी। नीरवता। (३) रागादि का अभाव। विराग। (४) हलचल का न होना। उपद्रव आदि का अभाव।

शांतनव-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शांतनवी] (१) राजा शांतनु के पुत्र, भीष्म। (२) मेधातिथि का पुत्र।

शांतनु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वापर युग के इक्कीसवें चंद्रवंशी राजा।

विशेष—ये प्रतीप के पुत्र और महाभारत युद्ध के प्रसिद्ध योद्धा भीष्मपितामह के पिता थे। शांतनु की स्त्री गंगादेवी के गर्भ से भीष्म (गांगेय) की उत्पत्ति हुई थी। दासराज नामक धीवर की कन्या सत्यवती के रूप पर मोहित होकर शांतनु ने उसे ब्याहने की इच्छा प्रकट की। दासराज ने सत्यवती के पुत्र को राज्य देने की प्रतिज्ञा लेकर कन्या ब्याह दी। उसके गर्भ से विचित्रवीर्य और चित्रांगद उत्पन्न हुए थे।

(२) ककड़ी।

शांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अयोध्या के राजा दशरथ की कन्या और महर्षि ऋष्यशृंग की पत्नी। दशरथ ने अपने मित्र अंग देश के राजा लोमपाद को अपनी कन्या शांता पोष्य-पुत्रिका के रूप में दी थी। (२) रेणुका। (३) दुर्गा। दूब। (४) शमी। छिकुर। (५) आँवला। (६) संगीत में एक श्रुति।

शांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वेग, क्षोभ या क्रिया का अभाव। किसी प्रकार की गति, हलचल या उपद्रव का न होना। स्थिरता। (२) नीरवता। स्तब्धता। सन्नाटा। (३) चित्त का ठिकाने होना। स्वस्थता। चैन। इतमीनान। आराम। (४) रोग आदि का दूर होना। मनोवेग, पीड़ा, शारीरिक उपद्रव या विकार आदि का न रह जाना। जैसे,—रोगशांति, तापशांति, क्रोध-शांति। (५) जीवन की चेष्टा का रुक जाना। मृत्यु। मरण। (६) चंचलता का अभाव। धीरता। गंभीरता। सौम्यता। (७) रागादि की निवृत्ति। वासनाओं से छुटकारा। तृष्णा का क्षय। विराग। (८) एक गोपी का नाम। (९) दुर्गा। (१०) अशुभ या अनिष्ट का निवारण। अमंगल दूर करने का उपचार। जैसे,—ग्रह शांति, पाप-शांति, मूल-शांति।

शांतिक-वि० [सं०] शांति संबंधी। शांति का।

संज्ञा पुं० शांतिकर्म।

शांतिकर-वि० [सं०] शांति करनेवाला।

शांतिकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] बुरे ग्रह, प्रेतबाधा, पाप आदि द्वारा होनेवाले अमंगल के निवारण का उपचार।

शांतिगृह-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ के अंत में पाप तथा अशुभ आदि की शांति के लिये स्नान करने का स्नानागार।

शांतिद-वि० [सं०] [स्त्री० शांतिदा] शांति देनेवाला।

संज्ञा पुं० विष्णु।

शांतिदाता-संज्ञा पुं० [सं० शांतिदातृ] [स्त्री० शांतिदात्री] शांति देनेवाला।

शांतिदायक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शांतिदायिका] शांति देनेवाला।

शांतिदायी-वि० [सं० शांतिदायिन्] [स्त्री० शांतिदायिनी] शांति देनेवाला।

शांतिनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के एक तीर्थंकर या अर्हत् का नाम।

शांतिपर्व-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत का बारहवाँ और सब से बड़ा पर्व जिसमें युद्ध के उपरांत युधिष्ठिर की चित्त-शांति के लिये कही हुई बहुत सी कथाएँ, उपदेश और ज्ञानचर्चा है।

शांतिपात्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र जिसमें ग्रह, पाप आदि की शांति के लिये जल रखा जाय।

शांतिप्रद-वि० [सं०] शांति देनेवाला।

शांतिमय-वि० [सं०] [स्त्री० शांतिमयी] शांति से पूर्ण। शांति से भरा हुआ।

शांतिवाचन-संज्ञा पुं० [सं०] ग्रह, प्रेतबाधा, पाप आदि से होनेवाला अमंगल को दूर करने के लिये मंत्रपाठ।

शांतिसद्म-संज्ञा पुं० दे० "शांतिगृह"।

शांरवति-संज्ञा स्त्री० [सं०] भारंगी। बभनेटी। ब्राह्मण यष्टिका।

शांब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राजा का नाम। (२) दे० "सांब"।

शांबर-वि० [सं०] (१) शंबर दैत्य संबंधी। (२) साँभर मृग का।

संज्ञा पुं० लोध्र वृक्ष। लोध।

शांबरशिल्प-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रजाल। जादू।

शांबरिक-संज्ञा पुं० [सं०] जादूगर। मायावी।

शांबरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माया। इंद्रजाल।

विशेष—कहते हैं कि शंबर दैत्य ने पहले पहल इसका प्रयोग किया था; इसी कारण इसका नाम शांबरी पड़ा।

(२) जादूगरनी। मायाविनी।

संज्ञा पुं० [सं० शांबरिन्] (१) एक प्रकार का चंदन। (२) लोध। (३) मूषाकानी नाम की लता।

शांबविक-संज्ञा पुं० [सं०] शंख का व्यवसाय करनेवाला।

शांबुक-संज्ञा पुं० [सं०] घोंघा।

शांबूक-संज्ञा पुं० [सं०] घोंघा।

शांभर-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजपूताने की एक झील जिसमें साँभर नमक होता है। साँभर झील।

संज्ञा पुं० साँभर नमक।

शांभव-वि० [सं०] शंभु संबंधी। शिव का।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवदारु वृक्ष। (२) कपूर। (३) शिव मल्लिका का पौधा। बसु। (४) गुग्गुल। गुग्गुल। (५) एक प्रकार का विष। (६) शिव का पुत्र। (७) शैव। शिवोपासक।

शांभवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीली दूब। (२) दुर्गा।

शाइस्तगी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) शिष्टता। सभ्यता। तहज़ीब। (२) भलमनसी। आदमीयत। मनुष्यत्व।

शाइस्ता-वि० [फ़ा० शाइस्तः] (१) शिष्ट। सभ्य। तहज़ीब-वाला। (२) विनीत। नम्र। (३) जो अच्छी चाल सीखा हो। अदब कायदा जाननेवाला। शिक्षित। जैसे,—शाइस्ता घोड़ा।

शाकंट-संज्ञा पुं० [सं०] बथुआ नाम का साग।

शाकंभरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) साँभर नामक नगर।

शाकंभरीय-वि० [सं०] साँभर झील से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० साँभर नमक।

शाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पत्ती, फूल, फल आदि जो पकाकर खाए जायँ। भाजी। तरकारी। साग।

विशेष—शाक छः प्रकार का कहा गया है—(१) पत्र शाक—चौलाई, बथुआ, मेथी आदि; (२) पुष्प शाक—केले का फूल, अगस्त का फूल आदि; (३) फल शाक—बैंगन, करेला आदि; (४) नाल शाक—करेमू आदि; (५) कंद शाक—जमींकंद, कच्चू आदि; (६) संस्वेदज शाक—ढिंगरी, भुईं फोड़, गोबर छत्ता आदि। ये शाक अनुक्रम से एक दूसरे से भारी होते हैं। सब प्रकार के पत्र शाक विष्टंभकारक, भारी, रूखे, मलकारक, अधोगत, वातकारी तथा शरीर, हड्डी, नेत्र, रुधिर, वीर्य्य, बुद्धि, स्मरण-शक्ति और गति-शक्ति का नाश करनेवाले तथा समय से पहले बालों को सफेद करनेवाले कहे गए हैं। परंतु जीवंती, बथुआ और चौलाई हानिकारक नहीं हैं।

(२) सागौन का पेड़। (३) शोतपत्र। भूर्ज वृक्ष। (४) सिरिस का पेड़। (५) पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक द्वीप। दे० वि० "शाकद्वीप"। (६) शक राजा शालिवाहन का संवत्। (७) शक्ति। बल। ताक़त।

वि० [सं०] (१) शक जाति संबंधी। (२) शक राजा का। जैसे,—शाक संवत्।

शाक़-वि० [अ०] (१) भारी। दूभर। कठिन।
मुहा०—शाक़ गुजरना = कष्टकर होना। खलना।
(२) दुःख देनेवाला। कड़ा। (काम)

शाक कलंबक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्याज। (२) लहसुन।

शाक चुक्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अमलोनी का साग। नोनिया। (२) इमली।

शाकट-वि० [सं०] शकट या गाड़ी संबंधी। गाड़ी का।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाड़ी का बैल या जानवर। (२) गाड़ी का बोझ। (३) लिसोड़ा। लभेरा। (४) धव वृक्ष। (५) खेत। जैसे,—शाक शाकट।

शाकटपोतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पोई या पोय का पौधा।

शाकटायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शकट का पुत्र। (२) एक बहुत प्राचीन वैयाकरण जिनका उल्लेख पाणिनि ने किया है। (३) एक दूसरे अर्वाचीन वैयाकरण जिनके व्याकरण का प्रचार जैनों में है।

शाकटिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाड़ीवाला। (२) गाड़ीवान।

शाकटीन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाड़ी का बोझ। (२) प्राचीन काल की एक तौल जो बीस तुला या दो सहस्र पल की होती थी।

शाकद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण वृक्ष। (२) सागौन का पेड़।

शाकद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक द्वीप।
विशेष—इसमें एक बहुत बड़ा शाक या सागौन का पेड़ माना गया है और यह चारो ओर क्षीर समुद्र से घिरा हुआ कहा गया है। कहते हैं कि इसमें ऋतुव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत और अनुव्रत बसते हैं।
(२) ईरान और तुर्किस्तान के बीच में पड़नेवाले उस प्रदेश का नाम जिसमें होकर वंक्षु नद या आक्सस नदी बहती है। इस प्रदेश में आर्य्य और शक जातियाँ बसती थीं।

शाकद्वीपीय-वि० [सं०] शाकद्वीप का रहनेवाला।
संज्ञा पुं० ब्राह्मणों का एक भेद। मग ब्राह्मण।
विशेष—इन ब्राह्मणों के जंबू द्वीप में आने की कथा हरिवंश में इस प्रकार मिलती है। एक बार कृष्ण के पुत्र सांब ने सूर्य्य का मंदिर बनवाया और सौर यज्ञ करना चाहा। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि सूर्य्य की उपासना-विधि के अच्छे जाननेवाले शाकद्वीप में मिलेंगे, तब उन्होंने वहाँ से कुछ ब्राह्मण बुलवाए। यह उस समय की बात है जब भारत और ईरान में एक ही आर्य्य सभ्यता प्रचलित थी और एक देश के ऋत्विज् दूसरे देश में जाकर बराबर यज्ञ कराया करते थे। फ़ारस में यज्ञ करनेवाले पुरोहित 'मग' कहलाते थे; इसी से इन शाकद्वीपीय ब्राह्मणों को 'मग ब्राह्मण' भी कहते थे।

शाकपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] सहिंजन। शोभांजन वृक्ष।

शाकबिल्व, शाकबिल्वक-संज्ञा पुं० [सं०] बैंगन। भंटा। भाँटा।

शाकभक्ष-वि० [सं०] माँस न खानेवाला। शाकाहारी।

शाकयोग्य-संज्ञा स्त्री० [सं०] धनिया। धान्याक।

शाकराज-संज्ञा पुं० [सं०] बथुआ। वास्तूक शाक।
विशेष—निर्दोष होने के कारण बथुआ शाकों का राजा कहा गया है।

शाकरी-संज्ञा स्त्री० दे० "शाकारी"।

शाकल-वि० [सं०] (१) शकल नाम द्रव्य से रँगा हुआ। (२) खंड या अंश संबंधी।
संज्ञा पुं० (१) खंड। टुकड़ा। चिप्पड़। (२) एक प्रकार का साँप। (३) ऋग्वेद की एक शाखा या संहिता। (४) लकड़ी का बना हुआ तावीज। (५) मद्र देश का एक नगर। (६) वाहीक (पंजाब) देश का एक ग्राम। (महाभाष्य) (७) *उक्त ग्राम या नगर का निवासी।* (८) हवन की सामग्री जिसमें जौ, तिल, घी, मधु आदि का मेल रहता है।

शाकल शाखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋग्वेद की वह शाखा या संहिता जो शाकल्य ऋषि के गोत्रजों में चली। (ऋग्वेद की यही शाखा आजकल मिलती और प्रचलित है।)

शाकली-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

शाकल्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत प्राचीन ऋषि जो ऋग्वेद की एक शाखा के प्रचारक थे और जिन्होंने पहले पहल उसका पदपाठ ठीक किया था।

शाकवर-संज्ञा पुं० [सं०] जीवशाक।

शाकवरा-संज्ञा पुं० [सं०] जीवंती या डोडी नामक लता।

शाकवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] लता करंज। सागर गोटा।

शाकवालेय-संज्ञा पुं० [सं०] बमनेटी। भारंगी। ब्राह्मण यष्टिका।

शाकविरूक-संज्ञा पुं० [सं०] बेल का पेड़।

शाकवीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बथुआ। वास्तूक शाक। (२) पुनर्नवा। गदहपूरना। (३) जीव शाक।

शाकशाल-संज्ञा पुं० [सं०] यवायन। महानिंब वृक्ष।

शाकश्रेष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] बथुआ। वास्तूक शाक।

शाकश्रेष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जीवंती। डोडी शाक। (२) डोडी। (३) भंटा। बैंगन। (४) पेठा। भतुआ। (५) तरबूज।

शाकांग-संज्ञा पुं० [सं०] गोल मिर्च। काली मिर्च।

शाका-संज्ञा स्त्री० [सं०] हरीतकी। हड़। हर्रे।

शाकाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] सागौन का पेड़।

शाकाम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादा। वृक्षाम्ल। (२) इमली।

शाकाम्ल-भेद-संज्ञा पुं० [सं०] चूक। चुक्र।

शाकारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शकों अथवा शकारों की भाषा, जो प्राकृत का एक भेद है।

शाकाष्टका-संज्ञा स्त्री० [सं०] फाल्गुन कृष्ण पक्ष की अष्टमी। (इस दिन पितरों के उद्देश्य से शाक दान किया जाता है।)

शाकाष्टमी-संज्ञा स्त्री० दे० "शाकाष्टका"।

शाकाहार-संज्ञा पुं० [सं०] अनाज अथवा फल फूल पत्ते आदि का भोजन। मांसाहार का उलटा

शाकाहारी-वि० [सं० शाकाहारिन्] [स्त्री० शाकाहारिणी] केवल अनाज या साग भाजी खानेवाला। (मांस न खानेवाला)

शाकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह भूमि जिसमें शाक बोया हुआ हो। साग की क्यारी। (२) एक पिशाची या देवी जो दुर्गा के गणों में समझी जाती है। डाइन। चुड़ैल।

शाकिर-वि० [अ०] (१) कृतज्ञता प्रकाशित करनेवाला। शुक्रगुजार। (२) संतोष रखनेवाला।

शाकी-वि० [सं०] (१) शिकायत करनेवाला। (२) नालिश करनेवाला। (३) चुगली खानेवाला।

शाकुंतलेय-संज्ञा पुं० [सं०] शकुंतला का पुत्र, भरत।

शाकुंतिक-संज्ञा पुं० [सं०] चिड़ीमार। बहेलिया।

शाकुन-वि० [सं०] (१) पक्षी संबंधी। चिड़ियों का। (२) शुभाशुभ लक्षण संबंधी। सगुनवाला।

संज्ञा पुं० (१) चिड़िया पकड़नेवाला। बहेलिया। (२) यात्रा आदि में कुछ विशेष पक्षियों जंतुओं या और पदार्थों के मिलने से शुभाशुभ का निर्णय। शकुन। सगुन।

शाकुनि-संज्ञा पुं० [सं०] बहेलिया।

शाकुनी-संज्ञा पुं० [सं० शाकुनिन्] (१) मछवाहा। मछली पकड़नेवाला। (२) एक प्रकार का प्रेत। (३) सगुन विचारनेवाला।

शाकुनेय-वि० [सं०] पक्षी-संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का छोटा उल्लू। (२) बकासुर नामक दैत्य। (३) एक मुनि का नाम।

शाकुलिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मछवाहा। (२) मछलियों का समूह।

शाकेक्षु-संज्ञा पुं० [सं०] ईख का एक भेद।

शाकेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जिसके नाम से संवत् चले। जैसे,—युधिष्ठिर, विक्रमादित्य शालिवाहन।

शाकोल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की लता।

शाक्कर-संज्ञा पुं० दे० "शाक्कर"।

शाक्त-वि० [सं०] शक्ति-संबंधी।

संज्ञा पुं० शक्ति का उपासक। तंत्र पद्धति से देवी की पूजा करनेवाला।

विशेष—इनके पूजन का विधान वैदिक से भिन्न होता है। ये ईश्वर की शक्ति का शिव की पत्नी दुर्गा के रूप में उपासना करते हैं। यह उपासना-पद्धति दो प्रकार की है—दक्षिणाचार और वामाचार। वामाचारियों या वाममार्गियों की पूजा में मद्य, मांस, स्त्री आदि का व्यवहार होता है। स्त्रियों की जननेंद्रिय को शक्ति का प्रतीक मानकर ये लोग उसकी विशेष रीति से पूजा करते हैं।

शाक्तागम-संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र शास्त्र।

शाक्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शक्ति का उपासक। शाक्त। (२) भाला बाँधनेवाला।

शाक्तीक-वि० [सं०] शक्ति या भाला-संबंधी।

संज्ञा पुं० भाला चलानेवाला।

शाक्तेय, शाक्तय-संज्ञा पुं० [सं०] शक्ति का उपासक।

शाक्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन क्षत्रिय जाति जो नैपाल की तराई में बसती थी और जिसमें गौतम बुद्ध उत्पन्न हुए थे।

विशेष—बौद्ध ग्रंथों में शाक्य इक्ष्वाकु-वंशी कहे गए हैं। जिस स्थान में वे रहते थे, उसमें 'शाक' या सागौन के पेड़ अधिक थे; इसी से उसका 'शाक्य' नाम पड़ा। विद्वानों का अनुमान है कि लिच्छवियों के समान शाक्य भी व्रात्य क्षत्रिय थे।

शाक्यमुनि, शाक्यसिंह-संज्ञा पुं० [सं०] गौतम बुद्ध।

शाक्र-संज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठा नक्षत्र जिसके अधिपति इंद्र हैं।

शाक्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) इंद्राणी। शक्रपत्नी।

शाक्कर-वि० [सं०] शक्तिशाली। पराक्रमी। बलवान्।

संज्ञा पुं० (१) इंद्र। (२) इंद्र का वज्र। (३) साँड़। बैल। (४) प्राचीन काल की एक रीति या संस्कार।

शाख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कृत्तिका का पुत्र, कार्त्तिकेय। (२) भाग। (३) करंज।

शाख़-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) टहनी। डाल। डाली।

मुहा०—शाख लगाना = (१) कलम लगाना। टहनी लगाना। (२) सिंगी लगाना। (३) पद बढ़ाना। सम्मान करना। शाख लगाना = घमंड होना। इतराना। शाख निकालना = दोष देना। कलंक लगाना। नुक्ता चीनी करना। झगड़ा खड़ा करना। शाख निकलना = ऐब निकलना। झगड़ा निकलना। बखेड़ा निकलना।

(२) सींग। (३) लगा हुआ टुकड़ा। खंड। फाँक। (४) नदी आदि की बड़ी धारा में से निकली हुई छोटी धारा।

शाख़दार-वि० [फ़ा०] (१) जिसमें बहुत सी शाखाएँ हों। टहनीदार। (२) सींगवाला। सींगदार।

शाखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पेड़ के धड़ से चारो ओर निकली हुई लकड़ी या छड़। टहनी। डाल। (२) शरीर का अवयव। हाथ और पैर। (३) उँगली। (४) चौखट। (५) पर

का पाख। (६) किसी मूल वस्तु से निकले हुए उसके भेद। प्रकार। (७) विभाग। हिस्सा। (८) अंग। अवयव। (९) किसी शास्त्र या विद्या के अंतर्गत उसका कोई भेद। (१०) वेद की संहिताओं के पाठ और क्रमभेद जो कई ऋषियों ने अपने गोत्र या शिष्य परंपरा में चलाए।

विशेष—शौनक ने अपने 'चरणव्यूह' में वेदों की जो शाखाएँ गिनाई हैं, उसके अनुसार ऋग्वेद की पाँच शाखाएँ हैं—शाकल्य, वाष्कल, अश्वलायन, शांखायन और मांडूक्य। वायुपुराण में यजुर्वेद की ८६ शाखाएँ कही गई हैं जिनमें ४३ के नाम चरणव्यूह में आए हैं। इन ४३ में माध्यंदिन और कण्व को लेकर १७ शाखाएँ वाजसनेयी के अंतर्गत हैं। सामवेद की सहस्र शाखाएँ कही जाती हैं जिनमें १५ गिनाई गई हैं। इसी प्रकार अथर्ववेद की भी बहुत सी शाखाओं में से पिप्पलादा, शौनकीया आदि केवल नौ गिनाई गई हैं।

शाखाकंट–संज्ञा पुं० [सं०] थूहर। स्नुही वृक्ष।

शाखा चंक्रमण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक डाल पर से दूसरी डाल पर कूद जाना। (२) एक विषय अधूरा छोड़कर दूसरा विषय हाथ में लेना। एक विषय पर स्थिर न रहना। (३) कोई विषय पूरा अध्ययन न करके थोड़ा यह, थोड़ा वह पढ़ना।

शाखाचंद्र न्याय–संज्ञा पुं० [सं०] एक न्याय या कहावत जो ऐसी बात के संबंध में कही जाती है जो केवल देखने में जान पड़ती है, वास्तव में नहीं होती। (चंद्रमा कभी कभी देखने में ऐसा जान पड़ता है मानो पेड़ की डाल पर है।)

शाखादंड–संज्ञा पुं० दे० "शाखारंड"।

शाखाद–संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ों की डाल या टहनी खानेवाले पशु। जैसे,—गौ, बकरी, हाथी।

शाखापित्त–संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें हाथ और पैर में जलन और सूजन होती है।

शाखापुर–संज्ञा पुं० [सं०] किसी नगर के आस पास फैली हुई बस्ती।

शाखाप्रकृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] अपने राज्य के कुछ दूर पर के आठ प्रकार के राजा जिनका विचार किसी राजा को युद्ध के समय रखना चाहिए। (मनु०)

शाखामृग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वानर। बंदर। (२) गिलहरी।

शाखाम्ल–संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेंत।

शाखाम्ला–संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

शाखारंड–संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो अपनी शाखा को छोड़कर दूसरी शाखा का अध्ययन करे। शाखादंड।

शाखाल–संज्ञा पुं० [सं०] जलबेंत।

शाखावात–संज्ञा पुं० [सं०] हाथ पैर में होनेवाला वात रोग।

शाखाशिफा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह डाल जो नीचे की ओर बढ़कर जड़ पकड़ ले और एक अलग पेड़ के धड़ के रूप में हो जाय। जैसे,—बट की जटा या बरोह।

शाखिमूल–संज्ञा पुं० [सं०] रंधि वृक्ष।

शाखी–वि० [सं० शाखिन्] शाखाओं से युक्त। शाखावाला। संज्ञा पुं० (१) पेड़। वृक्ष। (२) वेद। (३) वेद की किसी शाखा का अनुयायी। (४) पीलू का पेड़। (५) तुर्किस्तान का निवासी।

शाखोच्चार–संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के समय वंशावली का कथन।

शाखोट–संज्ञा पुं० [सं०] सिहोर का पेड़। पीत वृक्ष। वैद्यक में यह कड़ुआ, गरम, पित्तकारक और वातहारी माना गया है।

शागिर्द–संज्ञा पुं० [फा०] (१) किसी से विद्या प्राप्त करने का संबंध रखनेवाला। शिष्य। चेला।

मुहा०—शागिर्द करना = किसी को कुछ सिखाने का काम अपने ऊपर लेना। चेला बनाना।

शागिर्दपेशा–संज्ञा पुं० [फा०] (१) मातहत। (२) अहलकार। कर्मचारी। (३) खिदमतगार। सेवक। (४) बड़ी कोठी के पास नौकरों के लिये अलग बने हुए घर।

शागिर्दी–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त किसी गुरु के अधीन रहने का भाव। शिष्यता। (२) सेवा। टहल।

शाचि–संज्ञा पुं० [सं०] कूटकर भूसी निकाला हुआ जौ।

शाट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपड़े का टुकड़ा। (२) वह कपड़ा जो कमर में लपेटकर पहना जा सके। धोती। परदनी। (३) एक प्रकार की कुरती। (४) ढीला ढाला पहनावा।

शाटक–संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र। पट।

शाटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साड़ी। धोती। (२) कचूर।

शाटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] साड़ी। धोती।

शाट्यायन–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शाट्यायनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

शाठ्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शठता। दुष्टता। बदमाशी। (२) कपट। दंभ। छल।

शाड्वल–संज्ञा पुं० दे० "शाद्वल"।

शाण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हथियारों की धार तेज करने का पत्थर। सान। (२) कसौटी। कषपट्टिका। (३) चार माशे की एक तौल।

वि० [सं०] (१) सन के पौधे से संबंध रखनेवाला। (२) सन का बना हुआ।

संज्ञा पुं० सन के रेशे का बना हुआ कपड़ा। अँगरा।

शाणवास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सन का बुना हुआ वस्त्र पहने। (२) एक अर्हत् का नाम।

शाणि–संज्ञा पुं० [सं०] पटुआ।

शाणित–वि० [सं०] (१) सान रखा हुआ। तीखा या तेज़ किया हुआ। (२) कसौटी पर कसा हुआ।

शाणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सन के रेशों से बुना हुआ कपड़ा। भँगरा। (२) फटा हुआ वस्त्र। चीथड़ा। (३) वह छोटा कपड़ा जो यज्ञोपवीत के समय ब्रह्मचारी को पहनने के लिये दिया जाता है। (४) सान। (५) कसौटी। (६) छोटा खेमा या पर्दा।

शात–वि० [सं०] (१) सान रखा हुआ। तेज़ किया हुआ। (२) दुबला पतला। क्षीण।
संज्ञा पुं० धतूरा।

शातकुंभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कचनार का वृक्ष। (२) धतूरा। (३) कनेर का वृक्ष। (४) सोना। स्वर्ण।

शातकौंभ–संज्ञा पुं० [सं०] सोना। सुवर्ण।

शातक्रतव–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

शातन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० शातनीय, शातित] (१) सान पर धार तेज़ करना। चोखा करना। (२) कटवाना। (पेड़ आदि) (३) नष्ट कराना। (४) काटना। तराशना। छीलना। (५) सतह बराबर करना। रंदना।

शातपत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रिका। चाँदनी।

शातभीरु–संज्ञा पुं० [सं०] मदनवल्ली। मदन माली।

शातला–संज्ञा स्त्री० दे० "सातला"।

शातवाहन–संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम। वि० दे० "शालिवाहन"।

शातातप–संज्ञा पुं० [सं०] एक स्मृतिकार का नाम।

शातिर–वि० [अ०] (१) चालाक। चतुर। उस्ताद। काइयाँ। (२) निपुण। दक्ष।
संज्ञा पुं० (१) दूत। (२) शतरंज का खिलाड़ी।

शातोदर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शातोदरी] (१) पतली कमरवाला। (२) क्षीण। पतला।

शात्रव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शत्रुत्व। शत्रुता। (२) शत्रु। (३) शत्रुओं का समूह।

शाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पतन। गिरना। पड़ना। (२) घास। दूब। (३) कीचड़।
वि० [फ़ा०] (१) खुश। प्रसन्न। (२) परिपूर्ण। भरापूरा।

शादमान–वि० [फ़ा०] प्रसन्न। खुश।

शादमानी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] प्रसन्नता। खुशी।

शादा–संज्ञा स्त्री० [सं०] ईंट।

शादाब–वि० [फ़ा०] हरा भरा। सरसब्ज़। तरोताज़ा।

शादियाना–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) खुशी का बाजा। आनंद मंगल-सूचक वाद्य।
क्रि० प्र०—बजना।—बजाना।
(२) वह धन जो किसान ज़मींदार को ब्याह के अवसर पर देते हैं। (३) बधावा। बधाई।
क्रि० प्र०—देना।

शादी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) खुशी। प्रसन्नता। आनंद। (२) आनंदोत्सव।
यौ०—शादी ग़मी।
(३) विवाह। ब्याह।

शाद्वल–वि० [सं०] हरित तृण या दूर्वा से युक्त। हरी हरी घास से ढका हुआ। हराभरा।
संज्ञा पुं० (१) हरी घास। दूब। (२) साँड़। बैल।

शाद्वलाभ–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हरा कीड़ा।

शान–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) तड़क भड़क। ठाठ बाट। सजावट। जैसे,—कल बड़ी शान से सवारी निकली थी।
यौ०—शान शौकत।
(२) गर्वीली चेष्टा। ठसक। जैसे,—यह घोड़ा बड़ी शान से चलता है। (३) भव्यता। विशालता। चमत्कार। (४) शक्ति। करामात। विभूति। ऐश्वर्य्य। जैसे,—खुदा की शान। (५) प्रतिष्ठा। इज्ज़त। मानमर्य्यादा।
मुहा०—शान जाना = अप्रतिष्ठा होना। मान भंग होना। शान घटना = इज्ज़त में कमी होना। बड़प्पन में कमी होना। शान मारी जाना = दे० "शान जाना"। शान में बट्टा लगना = दे० "शान घटना"। किसी की शान में = किसी बड़े के संबंध में। किसी के प्रति या किसी के विषय में। जैसे,—उनकी शान में ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए।
संज्ञा पुं० [सं०] शाण। सान।

शानदार–वि० [अ० शान + फ़ा० दार] (१) भड़कीला। तड़क भड़कवाला। ठाठ बाट का। जो बड़ी सजावट और तैयारी के साथ हो। (२) भव्य। विशाल। चमत्कारपूर्ण। (३) ऐश्वर्य्ययुक्त। वैभवपूर्ण। (४) गर्वीली चेष्टा से युक्त। ठसकवाला।

शानपाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंदन घिसने का पत्थर। (२) पारियात्र-पर्वत।

शान शौकत–संज्ञा स्त्री० [अ०] तड़क भड़क। ठाठ बाट। तैयारी। सजावट।

शाना–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) कंघा। कंघी। (२) मोढ़ा। कंधा। स्कंध।

शानी–संज्ञा स्त्री० [सं०] इनारुन। इंद्रवारुणी।

शाप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अहितकामना-सूचक शब्द। 'तुम्हारा कुछ अनिष्ट हो' इस प्रकार का वचन। कोसना। बददुआ। जैसे,—ऋषि के शाप से वह राक्षस हो गया। (२) धिक्कार। फटकारना। भर्त्सना।
क्रि० प्र०—देना।

का पात्र। (६) किसी मूल वस्तु से निकले हुए उसके भेद। प्रकार। (७) विभाग। हिस्सा। (८) अंग। अवयव। (९) किसी शास्त्र या विद्या के अंतर्गत उसका कोई भेद। (१०) वेद की संहिताओं के पाठ और क्रमभेद जो कई ऋषियों ने अपने गोत्र या शिष्य परंपरा में चलाए।

विशेष—शौनक ने अपने 'चरणव्यूह' में वेदों की जो शाखाएँ गिनाई हैं, उसके अनुसार ऋग्वेद की पाँच शाखाएँ हैं—शाकल्य, वाष्कल, अश्वलायन, शांखायन और मांडूक्य। वायुपुराण में यजुर्वेद की ८६ शाखाएँ कही गई हैं जिनमें ४२ के नाम चरणव्यूह में आए हैं। इन ४२ में माध्यंदिन और कण्व को लेकर १७ शाखाएँ वाजसनेयी के अंतर्गत हैं। सामवेद की सहस्र शाखाएँ कही जाती हैं जिनमें १५ गिनाई गई हैं। इसी प्रकार अथर्ववेद की भी बहुत सी शाखाओं में से पिप्पलादा, शौनकीया आदि केवल नौ गिनाई गई हैं।

शाखाकंट-संज्ञा पुं० [सं०] थूहर। स्नुही वृक्ष।

शाखा चंक्रमण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक डाल पर से दूसरी डाल पर कूद जाना। (२) एक विषय अधूरा छोड़कर दूसरा विषय हाथ में लेना। एक विषय पर स्थिर न रहना। (३) कोई विषय पूरा अध्ययन न करके थोड़ा यह, थोड़ा वह पढ़ना।

शाखाचंद्र न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] एक न्याय या कहावत जो ऐसी बात के संबंध में कही जाती है जो केवल देखने में जान पड़ती है, वास्तव में नहीं होती। (चंद्रमा कभी कभी देखने में ऐसा जान पड़ता है मानो पेड़ की डाल पर है।)

शाखादंड-संज्ञा पुं० दे० "शाखारंड"।

शाखाद-संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ों की डाल या टहनी खानेवाले पशु। जैसे,—गौ, बकरी, हाथी।

शाखापित्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें हाथ और पैर में जलन और सूजन होती है।

शाखापुर-संज्ञा पुं० [सं०] किसी नगर के आस पास फैली हुई बस्ती।

शाखाप्रकृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] अपने राज्य के कुछ दूर पर के आठ प्रकार के राजा जिनका विचार किसी राजा को युद्ध के समय रखना चाहिए। (मनु०)

शाखामृग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वानर। बंदर। (२) गिलहरी।

शाखाम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] जलबेंत।

शाखाम्ला-संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

शाखारंड-संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो अपनी शाखा को छोड़कर दूसरी शाखा का अध्ययन करे। शाखादंड।

शाखाल-संज्ञा पुं० [सं०] जलबेंत।

शाखाघात-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ पैर में होनेवाला वात रोग।

शाखाशिफा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह डाल जो नीचे की ओर बढ़कर जड़ पकड़ ले और एक अलग पेड़ के धड़ के रूप में हो जाय। जैसे,—बट की जटा या बरोह।

शाखिमूल-संज्ञा पुं० [सं०] रंधि वृक्ष।

शाखी-वि० [सं० शाखिन्] शाखाओं से युक्त। शाखावाला।
संज्ञा पुं० (१) पेड़। वृक्ष। (२) वेद। (३) वेद की किसी शाखा का अनुयायी। (४) पीलू का पेड़। (५) तुर्किस्तान का निवासी।

शाखोच्चार-संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के समय वंशावली का कथन।

शाखोट-संज्ञा पुं० [सं०] सिहोर का पेड़। पीत वृक्ष। वैद्यक में यह कड़ुआ, गरम, पित्तकारक और वातहारी माना गया है।

शागिर्द-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) किसी से विद्या प्राप्त करने का संबंध रखनेवाला। शिष्य। चेला।

मुहा०—शागिर्द करना = किसी को कुछ सिखाने का काम अपने ऊपर लेना। चेला बनाना।

शागिर्दपेशा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) मातहत। (२) अहलकार। कर्मचारी। (३) खिदमतगार। सेवक। (४) बड़ी कोठी के पास नौकरों के लिये अलग बने हुए घर।

शागिर्दी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त किसी गुरु के अधीन रहने का भाव। शिष्यता। (२) सेवा। टहल।

शाचि-संज्ञा पुं० [सं०] कूटकर भूसी निकाला हुआ जौ।

शाट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपड़े का टुकड़ा। (२) वह कपड़ा जो कमर में लपेटकर पहना जा सके। धोती। परदनी। (३) एक प्रकार की कुरती। (४) ढीला ढाला पहनावा।

शाटक-संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र। पट।

शाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साड़ी। धोती। (२) कचूर।

शाटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] साड़ी। धोती।

शाट्यायन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शाट्यायनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

शाठ्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शठता। दुष्टता। बदमाशी। (२) कपट। दंभ। छल।

शाड्वल-संज्ञा पुं० दे० "शाद्वल"।

शाण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हथियारों की धार तेज करने का पत्थर। सान। (२) कसौटी। कषपट्टिका। (३) चार माशे की एक तौल।
वि० [सं०] (१) सन के पौधे से संबंध रखनेवाला। (२) सन का बना हुआ।
संज्ञा पुं० सन के रेशे का बना हुआ कपड़ा। भँगरा।

शाणवास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सन का बुना हुआ वस्त्र पहने। (२) एक अर्हत् का नाम।

शाणि-संज्ञा पुं० [सं०] पटुआ।

शाणित-वि० [सं०] (१) सान रखा हुआ। तीखा या तेज किया हुआ। (२) कसौटी पर कसा हुआ।

शाणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सन के रेशों से बुना हुआ कपड़ा। अँगरा। (२) फटा हुआ वस्त्र। चीथड़ा। (३) वह छोटा कपड़ा जो यज्ञोपवीत के समय ब्रह्मचारी को पहनने के लिये दिया जाता है। (४) सान। (५) कसौटी। (६) छोटा खेमा या पर्दा।

शात-वि० [सं०] (१) सान रखा हुआ। तेज़ किया हुआ। (२) दुबला पतला। क्षीण।
संज्ञा पुं० धतूरा।

शातकुंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कचनार का वृक्ष। (२) धतूरा। (३) कनेर का वृक्ष। (४) सोना। स्वर्ण।

शातकौंभ-संज्ञा पुं० [सं०] सोना। सुवर्ण।

शातक्रतव-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

शातन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० शातनीय, शातित] (१) सान पर धार तेज करना। चोखा करना। (२) कटवाना। (पेड़ आदि) (३) नष्ट कराना। (४) काटना। तराशना। छीलना। (५) सतह बराबर करना। रंदना।

शातपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रिका। चाँदनी।

शातभीरु-संज्ञा पुं० [सं०] मदवल्ली। मदन माली।

शातला-संज्ञा स्त्री० दे० "सातला"।

शातवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम। वि० दे० "शालिवाहन"।

शातातप-संज्ञा पुं० [सं०] एक स्मृतिकार का नाम।

शातिर-वि० [अ०] (१) चालाक। चतुर। उस्ताद। काइयाँ। (२) निपुण। दक्ष।
संज्ञा पुं० (१) दूत। (२) शतरंज का खिलाड़ी।

शातोदर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शातोदरी] (१) पतली कमरवाला। (२) क्षीण। पतला।

शात्रव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शत्रुत्व। शत्रुता। (२) शत्रु। (३) शत्रुओं का समूह।

शाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पतन। गिरना। पड़ना। (२) घास। दूब। (३) कीचड़।
वि० [फ़ा०] (१) खुश। प्रसन्न। (२) परिपूर्ण। भरापूरा।

शादमान-वि० [फ़ा०] प्रसन्न। खुश।

शादमानी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] प्रसन्नता। खुशी।

शादा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ईंट।

शादाब-वि० [फ़ा०] हरा भरा। सरसब्ज़। तरोताज़ा।

शादियाना-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) खुशी का बाजा। आनंद मंगल-सूचक वाद्य।
क्रि० प्र०—बजना।—बजाना।
(२) वह धन जो किसान ज़मींदार को ब्याह के अवसर पर देते हैं। (३) बधावा। बधाई।
क्रि० प्र०—देना।

शादी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) खुशी। प्रसन्नता। आनंद। (२) आनंदोत्सव।
यौ०—शादी ग़मी।
(३) विवाह। ब्याह।

शाद्वल-वि० [सं०] हरित तृण या दूर्वा से युक्त। हरी हरी घास से ढका हुआ। हराभरा।
संज्ञा पुं० (१) हरी घास। दूब। (२) साँड़। बैल।

शाद्वलाभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हरा कीड़ा।

शान-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) तड़क भड़क। ठाठ बाट। सजावट। जैसे,—कल बड़ी शान से सवारी निकली थी।
यौ०—शान शौकत।
(२) गर्वीली चेष्टा। ठसक। जैसे,—यह घोड़ा बड़ी शान से चलता है। (३) भव्यता। विशालता। चमत्कार। (४) शक्ति। करामात। विभूति। ऐश्वर्य। जैसे,—खुदा की शान। (५) प्रतिष्ठा। इज़्ज़त। मानमर्य्यादा।
मुहा०—शान जाना = अप्रतिष्ठा होना। मान भंग होना। शान घटना = इज्जत में कमी होना। बड़प्पन में कमी होना। शान मारी जाना = दे० "शान जाना"। शान में बट्टा लगना = दे० "शान घटना"। किसी की शान में = किसी बड़े के संबंध में। किसी के प्रति या किसी के विषय में। जैसे,—उनकी शान में ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए।
संज्ञा पुं० [सं०] शाण। सान।

शानदार-वि० [अ० शान + फ़ा० दार] (१) भड़कीला। तड़क भड़कवाला। ठाट बाट का। जो बड़ी सजावट और तैयारी के साथ हो। (२) भव्य। विशाल। चमत्कारपूर्ण। (३) ऐश्वर्य-युक्त। वैभवपूर्ण। (४) गर्वीली चेष्टा से युक्त। ठसकवाला।

शानपाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंदन घिसने का पत्थर। (२) पारियात्र-पर्वत।

शान शौकत-संज्ञा स्त्री० [अ०] तड़क भड़क। ठाट बाट। तैयारी। सजावट।

शाना-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) कंघा। कंघी। (२) मोढ़ा। कंधा। स्कंध।

शानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] इन्द्रायन। इंद्रवारुणी।

शाप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अहितकामना-सूचक शब्द। 'तुम्हारा कुछ अनिष्ट हो' इस प्रकार का वचन। कोसना। बददुआ। जैसे,—ऋषि के शाप से वह राक्षस हो गया। (२) धिक्कार। फटकारना। भर्त्सना।
क्रि० प्र०—देना।

का पाठ। (६) किसी मूल वस्तु से निकले हुए उसके भेद। प्रकार। (७) विभाग। हिस्सा। (८) अंग। अवयव। (९) किसी शास्त्र या विद्या के अंतर्गत उसका कोई भेद। (१०) वेद की संहिताओं के पाठ और क्रमभेद जो कई ऋषियों ने अपने गोत्र या शिष्य परंपरा में चलाए।

विशेष—शौनक ने अपने 'चरणव्यूह' में वेदों की जो शाखाएँ गिनाई हैं, उसके अनुसार ऋग्वेद की पाँच शाखाएँ हैं—शाकल्य, बाष्कल, अश्वलायन, शांखायन और मांडूक्य। वायुपुराण में यजुर्वेद की ८६ शाखाएँ कही गई हैं जिनमें ४२ के नाम चरणव्यूह में आए हैं। इन ४२ में माध्यंदिन और कण्व को लेकर १७ शाखाएँ वाजसनेयी के अंतर्गत हैं। सामवेद की सहस्र शाखाएँ कही जाती हैं जिनमें १५ गिनाई गई हैं। इसी प्रकार अथर्ववेद की भी बहुत सी शाखाओं में से पिप्पलादा, शौनकीया आदि केवल नौ गिनाई गई हैं।

शाखाकंट—संज्ञा पुं० [सं०] थूहर। स्नुही वृक्ष।

शाखा चंक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक डाल पर से दूसरी डाल पर कूद जाना। (२) एक विषय अधूरा छोड़कर दूसरा विषय हाथ में लेना। एक विषय पर स्थिर न रहना। (३) कोई विषय पूरा अध्ययन न करके थोड़ा यह, थोड़ा वह पढ़ना।

शाखाचंद्र न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] एक न्याय या कहावत जो ऐसी बात के संबंध में कही जाती है जो केवल देखने में जान पड़ती है, वास्तव में नहीं होती। (चंद्रमा कभी कभी देखने में ऐसा जान पड़ता है मानो पेड़ की डाल पर है।)

शाखादंड—संज्ञा पुं० दे० "शाखारंड"।

शाखाद—संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ों की डाल या टहनी खानेवाले पशु। जैसे,—गौ, बकरी, हाथी।

शाखापित्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें हाथ और पैर में जलन और सूजन होती है।

शाखापुर—संज्ञा पुं० [सं०] किसी नगर के आस पास फैली हुई बस्ती।

शाखाप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपने राज्य के कुछ दूर पर के आठ प्रकार के राजा जिनका विचार किसी राजा को युद्ध के समय रखना चाहिए। (मनु०)

शाखामृग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वानर। बंदर। (२) गिलहरी।

शाखाम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेंत।

शाखाम्ला—संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

शाखारंड—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो अपनी शाखा को छोड़कर दूसरी शाखा का अध्ययन करे। शाखादंड।

शाखाश्त—संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेंत।

शाखाघात—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ पैर में होनेवाला वात रोग।

शाखाशिफा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह डाल जो नीचे की ओर बढ़कर जड़ पकड़ ले और एक अलग पेड़ के धड़ के रूप में हो जाय। जैसे,—बट की जटा या बरोह।

शाखिमूल—संज्ञा पुं० [सं०] रीठे वृक्ष।

शाखी—वि० [सं० शाखिन्] शाखाओं से युक्त। शाखावाला।
संज्ञा पुं० (१) पेड़। वृक्ष। (२) वेद। (३) वेद की किसी शाखा का अनुयायी। (४) पीलू का पेड़। (५) तुर्किस्तान का निवासी।

शाखोच्चार—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के समय वंशावली का कथन।

शाखोट—संज्ञा पुं० [सं०] सिहोर का पेड़। पीत वृक्ष। वैद्यक में यह कड़ुआ, गरम, पित्तकारक और वातहारी माना गया है।

शागिर्द—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) किसी से विद्या प्राप्त करने का संबंध रखनेवाला। शिष्य। चेला।

मुहा०—शागिर्द करना = किसी को कुछ सिखाने का काम अपने ऊपर लेना। चेला बनाना।

शागिर्दपेशा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) मातहत। (२) अहलकार। कर्मचारी। (३) खिदमतगार। सेवक। (४) बड़ी कोठी के पास नौकरों के लिये अलग बने हुए घर।

शागिर्दी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त किसी गुरु के अधीन रहने का भाव। शिष्यता। (२) सेवा। टहल।

शाचि—संज्ञा पुं० [सं०] दलकर भूसी निकाला हुआ जौ।

शाट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपड़े का टुकड़ा। (२) वह कपड़ा जो कमर में लपेटकर पहना जा सके। धोती। परदनी। (३) एक प्रकार की कुरती। (४) ढीला ढाला पहनावा।

शाटक—संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र। पट।

शाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साड़ी। धोती। (२) कचूर।

शाटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] साड़ी। धोती।

शाट्यायन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शाट्यायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

शाठ्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शठता। दुष्टता। बदमाशी। (२) कपट। दंभ। छल।

शाड्वल—संज्ञा पुं० दे० "शाद्वल"।

शाण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हथियारों की धार तेज करने का पत्थर। सान। (२) कसौटी। कषपट्टिका। (३) चार माशे की एक तौल।
वि० [सं०] (१) सन के पौधे से संबंध रखनेवाला। (२) सन का बना हुआ।
संज्ञा पुं० सन के रेशे का बना हुआ कपड़ा। भँगरा।

शाणवास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सन का बुना हुआ वस्त्र पहने। (२) एक अर्हत् का नाम।

शाणि-संज्ञा पुं० [सं०] पटुआ।

शाणित-वि० [सं०] (१) सान रखा हुआ। तीखा या तेज किया हुआ। (२) कसौटी पर कसा हुआ।

शाणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सन के रेशों से बुना हुआ कपड़ा। भँगरा। (२) फटा हुआ वस्त्र। चीथड़ा। (३) वह छोटा कपड़ा जो यज्ञोपवीत के समय ब्रह्मचारी को पहनने के लिये दिया जाता है। (४) सान। (५) कसौटी। (६) छोटा खेमा या पर्दा।

शात-वि० [सं०] (१) सान रखा हुआ। तेज़ किया हुआ। (२) दुबला पतला। क्षीण।

संज्ञा पुं० धतूरा।

शातकुंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कचनार का वृक्ष। (२) धतूरा। (३) कनेर का वृक्ष। (४) सोना। स्वर्ण।

शातकौंभ-संज्ञा पुं० [सं०] सोना। सुवर्ण।

शातक्रतव-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

शातन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० शातनीय, शातित] (१) सान पर धार तेज करना। चोखा करना। (२) कटवाना। (पेड़ आदि) (३) नष्ट कराना। (४) काटना। तराशना। छीलना। (५) सतह बराबर करना। रंदना।

शातपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रिका। चाँदनी।

शातभीरु-संज्ञा पुं० [सं०] मद्दवल्ली। मदन माळी।

शातला-संज्ञा स्त्री० दे० "सातला"।

शातवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम। वि० दे० "शालिवाहन"।

शातातप-संज्ञा पुं० [सं०] एक स्मृतिकार का नाम।

शातिर-वि० [अ०] (१) चालाक। चतुर। उस्ताद। काइयाँ। (२) निपुण। दक्ष।

संज्ञा पुं० (१) दूत। (२) शतरंज का खिलाड़ी।

शातोदर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शातोदरी] (१) पतली कमरवाला। (२) क्षीण। पतला।

शात्रव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शत्रुत्व। शत्रुता। (२) शत्रु। (३) शत्रुओं का समूह।

शाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पतन। गिरना। पड़ना। (२) घास। दूब। (३) कीचड़।

वि० [फ़ा०] (१) खुश। प्रसन्न। (२) परिपूर्ण। भरापूरा।

शादमान-वि० [फ़ा०] प्रसन्न। खुश।

शादमानी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] प्रसन्नता। खुशी।

शादा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ईंट।

शादाब-वि० [फ़ा०] हरा भरा। सरसब्ज़। तरोताज़ा।

शादियाना-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) खुशी का बाजा। आनंद मंगल-सूचक बाद्य।

क्रि० प्र०—बजना।—बजाना।

(२) वह धन जो किसान ज़मींदार को ब्याह के अवसर पर देते हैं। (३) बधावा। बधाई।

क्रि० प्र०—देना।

शादी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) खुशी। प्रसन्नता। आनंद। (२) आनंदोत्सव।

यौ०—शादी ग़मी।

(३) विवाह। ब्याह।

शाद्वल-वि० [सं०] हरित तृण या दूर्वा से युक्त। हरी हरी घास से ढका हुआ। हराभरा।

संज्ञा पुं० (१) हरी घास। दूब। (२) साँड़। बैल।

शाद्वलाभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हरा कीड़ा।

शान-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) तड़क भड़क। ठाट बाट। सजावट। जैसे,—कल बड़ी शान से सवारी निकली थी।

यौ०—शान शौकत।

(२) गर्वीली चेष्टा। ठसक। जैसे,—यह घोड़ा बड़ी शान से चलता है। (३) भव्यता। विशालता। चमत्कार। (४) शक्ति। करामात। विभूति। ऐश्वर्य। जैसे,—खुदा की शान। (५) प्रतिष्ठा। इज़्ज़त। मानमर्यादा।

मुहा०—शान जाना = अप्रतिष्ठा होना। मान भंग होना। शान घटना = इज़्ज़त में कमी होना। बड़प्पन में कमी होना। शान मारी जाना = दे० "शान जाना"। शान में बट्टा लगना = दे० "शान घटना"। किसी की शान में = किसी बड़े के संबंध में। किसी के प्रति या किसी के विषय में। जैसे,—उनकी शान में ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए।

संज्ञा पुं० [सं०] शाण। सान।

शानदार-वि० [अ० शान + फ़ा० दार] (१) भड़कीला। तड़क भड़कवाला। ठाट बाट का। जो बड़ी सजावट और तैयारी के साथ हो। (२) भव्य। विशाल। चमत्कारपूर्ण। (३) ऐश्वर्ययुक्त। वैभवपूर्ण। (४) गर्वीली चेष्टा से युक्त। ठसकवाला।

शानपाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंदन घिसने का पत्थर। (२) पारियात्र-पर्वत।

शान शौकत-संज्ञा स्त्री० [अ०] तड़क भड़क। ठाट बाट। तैयारी। सजावट।

शाना-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) कंघा। कंघी। (२) मोढ़ा। कंधा। स्कंध।

शानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] इनारुन। इंद्रवारुणी।

शाप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अहितकामना-सूचक शब्द। 'तुम्हारा कुछ अनिष्ट हो' इस प्रकार का वचन। कोसना। बददुआ। जैसे,—ऋषि के शाप से वह राक्षस हो गया। (२) धिक्कार। फटकारना। भर्त्सना।

क्रि० प्र०—देना।

(२) ऐसी शपथ जिसके न पालन करने का कोई अनिष्ट परिणाम कहा जाय। बुरी कसम।

शापग्रस्त-वि० [सं०] जिसे शाप दिया गया हो। शापित।

शापज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ज्वर जो माता, पिता, गुरु आदि बड़ों के शाप के कारण कहा गया है।

शापठिक-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

शापमुक्त-वि० [सं०] जिसका शाप छूट गया हो। जिसके ऊपर से शाप का बुरा प्रभाव हट गया हो।

शापांबु-संज्ञा पुं० [सं०] वह जल जिसे हाथ में लेकर शाप दिया जाय।

शापास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह व्यक्ति जिसके पास अस्त्रों के स्थान पर शाप ही हो। (२) एक मुनि का नाम।

शापित-वि० [सं०] जिसे शाप दिया गया हो। शाप-ग्रस्त।

शापोत्सर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] शाप का उच्चारण। शाप छोड़ना। शाप देना।

शापोद्धार-संज्ञा पुं० [सं०] शाप या उसके प्रभाव से छुटकारा। शाप-मुक्ति।

शाफरिक-संज्ञा पुं० [सं०] मछुआ। धीवर।

शाफेय-संज्ञा पुं० [सं०] यजुर्वेद की एक शाखा।

शाबर-वि० [सं०] दुष्ट। कपटी।

संज्ञा पुं० (१) बुराई। हानि। दुःख। (२) लोध्र वृक्ष। लोध का पेड़। (३) ताँबा। (४) अंधकार। (५) एक प्रकार का चंदन।

शाबर भाष्य-संज्ञा पुं० [सं०] मीमांसा सूत्र पर प्रसिद्ध भाष्य या व्याख्या।

शाबरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जोंक।

शाबरी-संज्ञा पुं० [सं०] शबरों की भाषा। एक प्रकार की प्राकृत भाषा।

शाबल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कई रंगों का मेल। शबलता। कबरापन। चितकबरापन। (२) एक साथ भिन्न भिन्न कई वस्तुओं का मेल।

शाबस्त-संज्ञा पुं० [सं०] राजा युवनाश्व का एक पुत्र जिसने शावस्ती या श्रावस्ती नगरी बसाई थी। (भागवत)

शाबस्ती-संज्ञा स्त्री० दे० "श्रावस्ती"।

शाबाश-अव्य० [फ़ा०] एक प्रशंसा-सूचक शब्द। खुश रहो। वाह वाह। धन्य हो। क्या कहना।

शाबाशी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किसी कार्य्य के करने पर प्रशंसा। वाह वाही। साधुवाद।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

शाब्द-वि० [सं०] [स्त्री० शाब्दी] (१) शब्द संबंधी। शब्द का (२) शब्द विशेष पर निर्भर।

संज्ञा पुं० शब्दशास्त्री। वैयाकरण।

शाब्दबोध-संज्ञा पुं० [सं०] शब्दों के प्रयोग द्वारा अर्थ का ज्ञान। वाक्य के तात्पर्य्य का ज्ञान।

शाब्दिक-वि० [सं०] शब्द संबंधी। शब्द का।

संज्ञा पुं० (१) शब्द शास्त्र का जाननेवाला। (२) वैयाकरण।

शाब्दी-वि० स्त्री० [सं०] (१) शब्द संबंधिनी। (२) केवल शब्द विशेष पर निर्भर रहनेवाली। जैसे,—शाब्दी व्यंजना।

शाब्दीव्यंजना-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में व्यंजना के दो भेदों में से एक। वह व्यंजना जो शब्द विशेष के प्रयोग पर ही निर्भर हो; अर्थात् उसका पर्य्यायवाची शब्द रखने पर न रह जाय। आर्थी व्यंजना का उलटा।

शाम-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सूर्य्य अस्त होने का समय। रात्रि और दिवस के मिलने का समय। साँझ। संध्या।

मुहा०—शाम फूलना = संध्या समय पश्चिम की ललाई का प्रकट होना।

* वि० संज्ञा पुं० दे० "श्याम"।

वि० [सं०] शम संबंधी। शम का।

संज्ञा पुं० [सं० शामन्] साम गान।

संज्ञा स्त्री० [देश०] लोहे, पीतल आदि धातु का बना हुआ वह छल्ला जो हाथ में ली जानेवाली लकड़ियों या छड़ियों के निचले भाग में अथवा औजारों के दस्ते में लकड़ी को घिसने या छीजने से बचाने के लिये लगाया जाता है।

क्रि० प्र०—जड़ना।—लगाना।

संज्ञा पुं० एक प्रसिद्ध प्राचीन देश जो अरब के उत्तर में है। कहते हैं कि यह देश हजरत नूह के पुत्र शाम ने बसाया था। इसकी राजधानी का नाम दमिश्क है। आज-कल यह प्रदेश सीरिया कहलाता है।

शामकरण-संज्ञा पुं० [सं० श्यामकर्ण] वह घोड़ा जिसके कान श्याम रंग के हों।

शामत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) बदकिस्मती। दुर्भाग्य। (२) विपत्ति। आफत। (३) दुर्दशा। दुरवस्था।

क्रि० प्र०—आना।—में पड़ना या फँसना।

मुहा०—शामत का घेरा या मारा = जिसकी दुर्दशा का समय आया हुआ हो। जिसकी दुर्दशा होने को हो। शामत सवार होना या सिर पर खेलना = शामत आना। दुर्दशा का समय आना।

शामतज़दा-वि० [अ० शामत + फ़ा० ज़दा] कमबख्त। बदनसीब। अभागा।

शामती-वि० [अ० शामत + ई (प्रत्य०)] जिसकी शामत आई हो। जिसकी दुर्दशा होने को हो।

शामन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शमन। (२) शांति। (३) मारण। हत्या करना।

शामनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दक्षिण दिशा जिसके अधिपति

यम माने गए हैं। (२) शांति। स्तब्धता। (३) अंत। समाप्ति। (४) वध। हत्या।

शामा–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का पौधा, जिसकी पत्तियाँ और जड़ कोढ़ रोग के लिये लाभदायक मानी जाती हैं।
संज्ञा स्त्री० दे० "श्यामा"।

शामित्र–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यज्ञ में मांस पकाने के निमित्त प्रज्वलित की हुई अग्नि। (२) वह स्थान जहाँ ऐसी अग्नि प्रज्वलित की जाय। (३) यज्ञ। (४) यज्ञपात्र। (५) यज्ञ के लिये पशु की हिंसा।

शामियाना–संज्ञा पुं० [फ़ा० शाम ?] एक प्रकार का बड़ा तंबू। इसमें प्रायः ऊपर की ओर लंबा चौड़ा कपड़ा होता है जो बाँसों पर तना रहता है। इसके नीचे चारों ओर प्रायः खुला ही रहता है, पर कभी कभी इसके चारों ओर कनात भी खड़ी की जाती है।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।—गाड़ना।—तानना।—लगाना।

शामिल–वि० [फ़ा०] जो साथ में हो। मिला हुआ। सम्मिलित। जैसे,—(क) ये कागज मिसिल में शामिल कर दो। (ख) अब तो तुम भी उन्हीं लोगों में शामिल हो गए।
यौ०—शामिल हाल।

शामिल हाल–वि० [फ़ा० शामिल+हाल] जो दुःख सुख आदि सब अवस्थाओं में साथ रहे। साथी। शरीक।

शामिलात–संज्ञा स्त्री० [अ० शामिल] हिस्सेदारी। साझा। शराकत। वि० दे० "शामिल"।

शामी–संज्ञा स्त्री० [देश०] लोहे या पीतल का वह छल्ला जो लकड़ियों और छड़ियों आदि के नीचे के भाग में अथवा औजारों के दस्ते के सिरे पर उसकी रक्षा के लिये लगाया जाता है। साम।
क्रि० प्र०—जड़ना।—लगाना।
वि० [शाम (देश)] शाम देश का। शाम देश संबंधी। जैसे,—शामी कबाब।

शामी कबाब–संज्ञा पुं० [हिं० शामी+कबाब] एक प्रकार का कबाब जो मांस को मसाले के साथ भूनने के उपरांत पीसकर गोलियों या टिकियों के रूप में बनाया जाता है।

शामील–संज्ञा पुं० [सं०] भस्म। खाक। राख।

शामील–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्रक। माला।

शामुल्य–संज्ञा पुं० [सं०] गले में पहनने का कोई ऊनी कपड़ा।

शामूल–संज्ञा पुं० [सं०] ऊनी कपड़ा।

शामेय–संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम।

शाम्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शम का भाव। (२) बंधुत्व। भाईचारा। (३) शांति।

शाम्यमास–संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ की बलि।

शायक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाण। तीर। शर। (२) खड्ग। तलवार।

शायक़–वि० [अ०] (१) शौक करने या रखनेवाला। शौकीन। (२) ख़ाहिशमंद। इच्छुक। आकांक्षी।

शायद्–अव्य० [फ़ा०] कदाचित्। संभव है। जैसे,—शायद वह आज आवेगा।

शायर–संज्ञा पुं० [अ०] [स्त्री० शायरा] वह जो शेर आदि बनाता हो। काव्य करनेवाला। कवि।

शायरी–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) कविता करने का कार्य्य या भाव। (२) काव्य। कविता।

शाया–वि० [अ०] (१) प्रकट। ज़ाहिर। (२) प्रकाशित। छपा हुआ।

शायिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शय्या के द्वारा अपनी जीविका का निर्वाह करता हो।

शायित–वि० [सं०] [स्त्री० शायिता] (१) सुलाया या लेटाया हुआ। (२) गिरा हुआ। पतित।

शायिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] शयन। सोना।

शायी–वि० [सं० शायिन्] शयन करनेवाला। सोनेवाला।

शारंग–संज्ञा पुं० दे० "सारंग"।

शारंगक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी।

शारंगधनुष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शारंग नामक धनुष से सुशोभित, अर्थात् विष्णु। (२) कृष्ण।

शारंगपाणि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ में शारंग नामक धनुष धारण करनेवाले, विष्णु। (२) कृष्ण। (३) राम।

शारंगपानी–संज्ञा पुं० दे० "शारंगपाणि"।

शारंगभृत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शारंग नामक धनुष धारण करनेवाले, विष्णु। (२) कृष्ण।

शारंगवत–संज्ञा पुं० [सं०] कुरुवर्ष नामक देश।

शारंगष्टा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकजंघा। (२) मकोय। (३) गुंजा। घोंटली। करमनी।

शारंगाष्टा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मकोय। (२) कठकरंज। लता करंज।

शारंगी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सारंगी नामक बाजा। वि० दे० "सारंगी"।

शारंगेष्टा–संज्ञा स्त्री० दे० "शारंगाष्टा"।

शारंधर–संज्ञा पुं० [सं०] राजतरंगिणी के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।

शार–वि० [सं०] (१) चितकबरा। कई रंगों का। (२) पीला। (३) नीले पीले और हरे रंग का।
संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का पासा। (२) वायु। हवा। (३) हिंसा।

(३) ऐसी शपथ जिसके न पालन करने का कोई अनिष्ट परिणाम कहा जाय। बुरी कसम।

शापग्रस्त-वि० [सं०] जिसे शाप दिया गया हो। शापित।

शापज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ज्वर जो माता, पिता, गुरु आदि बड़ों के शाप के कारण कहा गया है।

शापटिक-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

शापमुक्त-वि० [सं०] जिसका शाप छूट गया हो। जिसके ऊपर से शाप का बुरा प्रभाव हट गया हो।

शापांबु-संज्ञा पुं० [सं०] वह जल जिसे हाथ में लेकर शाप दिया जाय।

शापास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह व्यक्ति जिसके पास अस्त्रों के स्थान पर शाप ही हो। (२) एक मुनि का नाम।

शापित-वि० [सं०] जिसे शाप दिया गया हो। शाप-ग्रस्त।

शापोत्सर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] शाप का उच्चारण। शाप छोड़ना। शाप देना।

शापोद्धार-संज्ञा पुं० [सं०] शाप या उसके प्रभाव से छुटकारा। शाप-मुक्ति।

शाफरिक-संज्ञा पुं० [सं०] मछुआ। धीवर।

शाफेय-संज्ञा पुं० [सं०] यजुर्वेद की एक शाखा।

शाबर-वि० [सं०] दुष्ट। कपटी।

संज्ञा पुं० (१) बुराई। हानि। दुःख। (२) लोध्र वृक्ष। लोध का पेड़। (३) ताँबा। (४) अंधकार। (५) एक प्रकार का चंदन।

शाबर भाष्य-संज्ञा पुं० [सं०] मीमांसा सूत्र पर प्रसिद्ध भाष्य या व्याख्या।

शाबरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जोंक।

शाबरी-संज्ञा पुं० [सं०] शबरों की भाषा। एक प्रकार की प्राकृत भाषा।

शाबल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कई रंगों का मेल। शबलता। कबरापन। चितकबरापन। (२) एक साथ भिन्न भिन्न कई वस्तुओं का मेल।

शाबस्त-संज्ञा पुं० [सं०] राजा युवनाश्व का एक पुत्र जिसने शावस्ती या श्रावस्ती नगरी बसाई थी। (भागवत)

शाबस्ती-संज्ञा स्त्री० दे० "श्रावस्ती"।

शाबाश-अव्य० [फ़ा०] एक प्रशंसा-सूचक शब्द। खुश रहो। वाह वाह। धन्य हो। क्या कहना।

शाबाशी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किसी कार्य्य के करने पर प्रशंसा। वाह वाही। साधुवाद।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

शाब्द-वि० [सं०] [स्त्री० शाब्दी] (१) शब्द संबंधी। शब्द का (२) शब्द विशेष पर निर्भर।

संज्ञा पुं० शब्दशास्त्री। वैयाकरण।

शाब्दबोध-संज्ञा पुं० [सं०] शब्दों के प्रयोग द्वारा अर्थ का ज्ञान। वाक्य के तात्पर्य्य का ज्ञान।

शाब्दिक-वि० [सं०] शब्द संबंधी। शब्द का।

संज्ञा पुं० (१) शब्द शास्त्र का जाननेवाला। (२) वैयाकरण।

शाब्दी-वि० स्त्री० [सं०] (१) शब्द संबंधिनी। (२) केवल शब्द विशेष पर निर्भर रहनेवाली। जैसे,—शाब्दी व्यंजना।

शाब्दीव्यंजना-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में व्यंजना के दो भेदों में से एक। वह व्यंजना जो शब्द विशेष के प्रयोग पर ही निर्भर हो; अर्थात् उसका पर्य्यायवाची शब्द रखने पर न रह जाय। आर्थी व्यंजना का उलटा।

शाम-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सूर्य्य अस्त होने का समय। रात्रि और दिवस के मिलने का समय। साँझ। संध्या।

मुहा०—शाम फूलना = संध्या समय पश्चिम की ललाई का प्रकट होना।

* वि० संज्ञा पुं० दे० "श्याम"।

वि० [सं०] शम संबंधी। शम का।

संज्ञा पुं० [सं० शामन्] साम गान।

संज्ञा स्त्री० [देश०] लोहे, पीतल आदि धातु का बना हुआ वह छल्ला जो हाथ में ली जानेवाली लकड़ियों या छड़ियों के निचले भाग में अथवा औजारों के दस्ते में लकड़ी को घिसने या छीजने से बचाने के लिये लगाया जाता है।

क्रि० प्र०—जड़ना।—लगाना।

संज्ञा पुं० एक प्रसिद्ध प्राचीन देश जो अरब के उत्तर में है। कहते हैं कि यह देश हजरत नूह के पुत्र शाम ने बसाया था। इसकी राजधानी का नाम दमिश्क है। आज-कल यह प्रदेश सीरिया कहलाता है।

शामकरण-संज्ञा पुं० [सं० श्यामकर्ण] वह घोड़ा जिसके कान श्याम रंग के हों।

शामत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) बदकिस्मती। दुर्भाग्य। (२) विपत्ति। आफत। (३) दुर्दशा। दुरवस्था।

क्रि० प्र०—आना।—में पड़ना या फँसना।

मुहा०—शामत का घेरा या मारा = जिसकी दुर्दशा का समय आया हुआ हो। जिसकी दुर्दशा होने को हो। शामत सवार होना या सिर पर खेलना = शामत आना। दुर्दशा का समय आना।

शामतज़दा-वि० [अ० शामत + फ़ा० ज़दा] कमबख़्त। बद-नसीब। अभागा।

शामती-वि० [अ० शामत + ई (प्रत्य०)] जिसकी शामत आई हो। जिसकी दुर्दशा होने को हो।

शामन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शमन। (२) शांति। (३) मारण। हत्या करना।

शामनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दक्षिण दिशा जिसके अधिपति

शार्कर मद्य-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का मद्य जो चीनी और घी से बनाया जाता था।

शार्करीधान-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक देश जो उत्तर दिशा में था।

शार्ङ्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष। कमान। (२) विष्णु के हाथ में रहनेवाला धनुष। (३) अदरक। आदी। (४) एक प्रकार का साम।

वि० शृंग संबंधी। शृंग का।

शार्ङ्गक-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी। चिड़िया।

शार्ङ्गधन्वा-संज्ञा पुं० [सं० शार्ङ्गधन्वन्] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। (३) वह जो धनुष धारण करता हो। कमनैत।

शार्ङ्गधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण।

शार्ङ्गपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। (३) वह जो धनुष धारण करता हो। कमनैत।

शार्ङ्गभृत-संज्ञा पुं० दे० "शार्ङ्गपाणि"।

शार्ङ्गवेदिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का स्थावर विष जो देखने में सोंठ के समान होता है।

शार्ङ्गा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकजंघा। (२) घुँघची।

शार्ङ्गष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महाकरंज। (२) कंजा करंज।

शार्ङ्गायुध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। (३) वह जो धनुष धारण करता हो। कमनैत।

शार्ङ्गी-संज्ञा स्त्री० [सं० शार्ङ्गिन्] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। (३) धनुर्धारी। कमनैत।

शार्दूल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चीता। व्याघ्र। बाघ। (२) राक्षस। (३) शरभ नामक जंतु। (४) एक प्रकार का पक्षी। (५) यजुर्वेद की एक शाखा। (६) दोहे का एक भेद जिसमें छः गुरु और छत्तीस लघु मात्राएँ होती हैं। (७) चित्रक या चीता नामक वृक्ष। (८) सिंह।

वि० सर्वश्रेष्ठ। सर्वोत्तम।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग केवल यौगिक शब्द बनाने में उनके अंत में होता है। जैसे,—नर शार्दूल।

शार्दूलकंद-संज्ञा पुं० [सं०] जंगली प्याज।

शार्दूलकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] त्रिशंकु के एक पुत्र का नाम।

शार्दूलज-संज्ञा पुं० [सं०] व्याघ्र-नख नामक गंध द्रव्य।

शार्दूलललित-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वर्ण वृत्त। इसका प्रत्येक पद अठारह अक्षरों का होता है; और उनका क्रम इस प्रकार है—म+स+ज+स+त+स। इसका दूसरा नाम 'शार्दूललसित' भी है।

शार्दूललसित-संज्ञा पुं० दे० "शार्दूलललित"।

शार्दूलवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार पचीस पूर्व जिनों में से एक जिन का नाम।

शार्दूलविक्रीडित-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वर्णवृत्त। इसका प्रत्येक चरण उन्नीस अक्षरों का होता है; और उनका क्रम इस प्रकार है—म+स+ज+स+त+त+एक गुरु।

शार्यात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैदिक काल के एक प्राचीन राजर्षि का नाम। (२) एक प्रकार का साम।

शार्व्वर-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक अंधकार।

शार्वरिक-वि० [सं०] रात्रि संबंधी। रात का।

शार्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात। (२) क्रोध।

संज्ञा पुं० [सं० शार्वरिन्] बृहस्पति के साठ संवत्सरों में से चौंतीसवाँ संवत्सर।

शालंकटांकट-संज्ञा पुं० [सं०] सुकेशी राक्षस का एक नाम जो वामन पुराण के अनुसार विद्युत्केशी का पुत्र था।

शालंकायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। (२) नंदी।

शालंकायनजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शालंकायन की पुत्री सत्यवती जो व्यास की माता थी।

शालंकायनि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम।

शालंकि-संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि ऋषि का एक नाम।

शालंकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुड़िया। (२) कठपुतली।

शाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का प्रसिद्ध वृक्ष जो हिमालय पर्वत पर सतलज से आसाम तक, मध्य भारत के पूर्व प्रांत में, पश्चिम बंगाल की पहाड़ियों पर और छोटा नागपुर के जंगलों में बहुत होता है। इसका वृक्ष बहुत बड़ा और विशाल होता है। छोटे वृक्षों की छाल प्रायः दो इंच मोटी, खुरदरी, काले रंग की और रेशेदार होती है। कच्ची लकड़ी सफेद रंग की और जल्दी बिगड़नेवाली होती है। सार भाग जब ताजा होता है, तब कुछ पीलापन लिए हुए भूरे रंग का होता है; परंतु सूखने पर काला हो जाता है। पत्ते चिकने, चमकीले, अंडाकार ६ से १० इंच तक लंबे और ४ से ६ इंच तक चौड़े होते हैं। डालियों के अंत में फूलों के गुच्छे लगते हैं। पुष्पदल लंबे और हलके पीले रंग के होते हैं; और किंचित् अंडाकार तथा अनीदार होते हैं। फल गोल और आध इंच लंबा होता है। वसंत में यह फूलता है और वर्षा के प्रारंभ में इसके फल पक जाते हैं। इसकी लकड़ी मकान आदि बनाने में अधिकता से काम आती है। इससे एक प्रकार का लाल रंग निकलता है। इसके बीजों का तेल निकालकर जलाने के काम में लाया जाता है। दुर्भिक्ष में फलों का आटा खाने के काम में आता है। यह दो प्रकार का होता है—एक बड़ा शाल और दूसरा पीतशाल या विजयसार। वैद्यक के अनुसार यह चरपरा, कड़वा, रूखा, स्निग्ध, गरम, कसैला, कांतिजनक तथा कफ, पित्त, घाव, पसीना, कृमि रोग, योनिरोग, प्रमेह, कुष्ठ, विस्फोटक आदि रोगों को दूर करनेवाला

संज्ञा स्त्री० कुश।

शारणिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शरण में आए हुए की रक्षा करता हो। रक्षक।

शारद-वि० [सं०] (१) शरद् काल संबंधी। शरद् काल का। (२) नवीन। नया। (३) लज्जावान्। शालीन।
संज्ञा पुं० (१) वर्ष। साल। (२) मेघ। बादल। (३) सफेद कमल। (४) मौलसिरी का वृक्ष। (५) कास तृण। (६) हरी मूँग। (७) एक प्रकार का रोग।

शारदांबा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

शारदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की वीणा। (२) ब्राह्मी। (३) अनंतमूल। शारिवा। (४) सरस्वती। (५) दुर्गा। (६) प्राचीन काल की एक प्रकार की लिपि।

शारदिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरद् ऋतु में होनेवाला ज्वर। (२) रोग। बीमारी। (३) श्राद्ध।

शारदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जल पीपल। (२) छतिवन। सप्तपर्ण। (३) आश्विन मास की पूर्णिमा। कोजागर पूर्णिमा।
वि० शरद् काल का। शरद् काल संबंधी।
संज्ञा पुं० [सं० शारदिन्] (१) अपराजिता। कोयल। (२) सफेद कमल। (३) अन्न या फल आदि।

शारदीय-वि० [सं०] शरद् काल का। शरद् ऋतु संबंधी।

शारदीय महापूजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शरत्काल में होनेवाली दुर्गा की पूजा। नवरात्रि की दुर्गा-पूजा।

शारद्य-वि० [सं०] शरद् काल का। शरद् ऋतु संबंधी।

शारि-संज्ञा पुं० [सं०] पासा आदि खेलने की गोट।
संज्ञा स्त्री० (१) मैना। (२) कपट। छल। धोखा। (३) एक प्रकार का गीत।

शारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मैना नाम की चिड़िया। (२) शतरंज या चौपड़ खेलने की क्रिया। (३) सारंगी आदि बजाने की कमानी। (४) वीणा या सारंगी आदि बजाने की क्रिया। (५) दुर्गा देवी का एक नाम।

शारिका कवच-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गा का एक कवच जो रुद्र यामल तंत्र में है।

शारित-वि० [सं०] रंगीन। चित्र विचित्र।

शारिपट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] शतरंज या चौसर आदि खेलने की बिसात।

शारिफल-संज्ञा पुं० दे० "शारिपट्ट"।

शारिवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनंतमूल। सालसा। दुरालभा। (२) जवासा। धमासा।

शारिशृंग-संज्ञा पुं० [सं०] जूआ खेलने का एक प्रकार का पासा या गोटी।

शारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुश नाम की घास। (२) एक प्रकार का पक्षी। (३) मूँज। कांडा।
संज्ञा पुं० (१) शतरंज की गोट। (२) गेंद।

शारीर-वि० [सं०] (१) शरीर संबंधी। शरीर का। (२) शरीर उत्पन्न।
संज्ञा पुं० (१) शरीर को होनेवाला दुःख जो आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीन प्रकार के होते हैं। (२) वृष। साँड़।

शारीरक-वि० [सं०] शरीर से उत्पन्न।

शारीरक भाष्य-संज्ञा पुं० [सं०] शंकराचार्य का किया हुआ ब्रह्मसूत्र का भाष्य।

शारीरक सूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वेदव्यास का बनाया हुआ वेदांत सूत्र।

शारीरतत्व-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें शरीर के तत्वों और रचना आदि का विवेचन होता है।

शारीर विधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शास्त्र जिसमें इस बात का विवेचन होता है कि जीव किस प्रकार उत्पन्न होते और बढ़ते हैं। (२) वह शास्त्र जिसमें जीवों के शरीर के भिन्न भिन्न अंगों और उनके कार्य्यों का विवेचन होता है।

शारीर व्रण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जो वात, पित्त, कफ और रक्त से उत्पन्न होता है, परंतु रक्त के संबंध से द्विदोषज और त्रिदोषज होने के कारण आठ प्रकार का हो जाता है—(१) वात व्रण, (२) पित्तव्रण। (३) कफ व्रण, (४) रक्त व्रण। (५) वात पित्तज व्रण। (६) वात कफज व्रण, (७) कफपित्तज व्रण और (८) सन्निपातज व्रण।

शारीर शास्त्र-संज्ञा पुं० दे० "शारीर विधान"।

शारीरिक-वि० [सं०] शरीर संबंधी। कालेवरिक। कायिक। दैहिक। जिस्मानी। जैसे,—शारीरिक कष्ट।

शारुक-वि० [सं०] (१) हत्या या नाश करनेवाला। (२) कष्ट देनेवाला।

शार्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चीनी। शर्करा। (२) एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

शार्कक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूध का फेन। दुग्ध फेन। (२) चीनी का ढेला। शर्करा पिंड। (३) गोश्त का टुकड़ा।

शार्कर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूध का फेन। (२) लोध वृक्ष। (३) कँकरीली और पथरीली जगह।
वि० (१) कँकरीला। पथरीला। (२) शक्कर या चीनी का बना हुआ।

शार्करक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जो कंकरों और पत्थरों से भरा हो। कंकरीली या पथरीली जगह। (२) वह स्थान जहाँ चीनी बहुत होती हो।
वि० कँकरीला। पथरीला।

शार्कर मद्य-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का मद्य जो चीनी और घी से बनाया जाता था।

शार्करीधान-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक देश जो उत्तर दिशा में था।

शार्ङ्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष। कमान। (२) विष्णु के हाथ में रहनेवाला धनुष। (३) अदरक। आर्द्री। (४) एक प्रकार का साम।

वि० *शृंग* संबंधी। *शृंग* का।

शार्ङ्गक-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी। चिड़िया।

शार्ङ्गधन्वा-संज्ञा पुं० [सं० शार्ङ्गधन्वन्] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। (३) वह जो धनुष धारण करता हो। कमनैत।

शार्ङ्गधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण।

शार्ङ्गपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। (३) वह जो धनुष धारण करता हो। कमनैत।

शार्ङ्गभृत-संज्ञा पुं० दे० "शार्ङ्गपाणि"।

शार्ङ्गवेदिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का स्थावर विष जो देखने में सोंठ के समान होता है।

शार्ङ्गेष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकजंघा। (२) घुँघची।

शार्ङ्गेष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महाकरंज। (२) लता करंज।

शार्ङ्गायुध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। (३) वह जो धनुष धारण करता हो। कमनैत।

शार्ङ्गी-संज्ञा स्त्री० [सं० शार्ङ्गिन्] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। (३) धनुर्धारी। कमनैत।

शार्दूल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चीता। व्याघ्र। बाघ। (२) राक्षस। (३) शरभ नामक जंतु। (४) एक प्रकार का पक्षी। (५) यजुर्वेद की एक शाखा। (६) दोहे का एक भेद जिसमें छः गुरु और छत्तीस लघु मात्राएँ होती हैं। (७) चित्रक या चीता नामक वृक्ष। (८) सिंह।

वि० सर्वश्रेष्ठ। सर्वोत्तम।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग केवल यौगिक शब्द बनाने में उनके अंत में होता है। जैसे,—नर शार्दूल।

शार्दूलकंद-संज्ञा पुं० [सं०] जंगली प्याज।

शार्दूलकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] त्रिशंकु के एक पुत्र का नाम।

शार्दूलज-संज्ञा पुं० [सं०] व्याघ्र-नख नामक गंध द्रव्य।

शार्दूलललित-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वर्ण वृत्त। इसका प्रत्येक पद अठारह अक्षरों का होता है; और उनका क्रम इस प्रकार है—म+स+ज+स+त+स। इसका दूसरा नाम 'शार्दूललसित' भी है।

शार्दूललसित-संज्ञा पुं० दे० "शार्दूलललित"।

शार्दूलवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार पचीस पूर्व जिनों में से एक जिन का नाम।

शार्दूलविक्रीड़ित-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वर्णवृत्त। इसका प्रत्येक चरण उन्नीस अक्षरों का होता है; और उनका क्रम इस प्रकार है—म+स+ज+स+त+त+एक गुरु।

शार्यात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैदिक काल के एक प्राचीन राजर्षि का नाम। (२) एक प्रकार का साम।

शार्वर-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक अंधकार।

शार्वरिक-वि० [सं०] रात्रि संबंधी। रात का।

शार्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात। (२) क्रोध।

संज्ञा पुं० [सं० शार्वरिन्] बृहस्पति के साठ संवत्सरों में से चौंतीसवाँ संवत्सर।

शालंकटंकट-संज्ञा पुं० [सं०] सुकेशी राक्षस का एक नाम जो वामन पुराण के अनुसार विद्युत्केशी का पुत्र था।

शालंकायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। (२) नंदी।

शालंकायनजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शालंकायन की पुत्री सत्यवती जो व्यास की माता थी।

शालंकायनि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम।

शालंकि-संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि ऋषि का एक नाम।

शालंकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुड़िया। (२) कठपुतली।

शाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का प्रसिद्ध वृक्ष जो हिमालय पर्वत पर सतलज से आसाम तक, मध्य भारत के पूर्व प्रांत में, पश्चिम बंगाल की पहाड़ियों पर और छोटा नागपुर के जंगलों में उत्पन्न होता है। इसका वृक्ष बहुत बड़ा और विशाल होता है। छोटे वृक्षों की छाल प्रायः दो इंच मोटी, खुरदरी, काले रंग की और रेशेदार होती है। कच्ची लकड़ी सफेद रंग की और जल्दी बिगड़नेवाली होती है। सार भाग जब ताजा होता है, तब कुछ पीलापन लिए हुए भूरे रंग का होता है; परंतु सूखने पर काला हो जाता है। पत्ते चिकने, चमकीले, अंडाकार ६ से १० इंच तक लंबे और ४ से ६ इंच तक चौड़े होते हैं। डालियों के अंत में फूलों के गुच्छे लगते हैं। पुष्पदल लंबे और हलके पीले रंग के आते हैं; और किंचित् अंडाकार तथा अनीदार होते हैं। फल गोल और आध इंच लंबा होता है। वसंत में यह फूलता है और वर्षा के प्रारंभ में इसके फल पक आते हैं। इसकी लकड़ी मकान आदि बनाने में अधिकता से काम आती है। इससे एक प्रकार का लाल रंग निकलता है। इसके बीजों का तेल निकालकर जलाने के काम में लाया जाता है। दुर्भिक्ष में फलों का आटा खाने के काम में आता है। यह दो प्रकार का होता है—एक बड़ा शाल और दूसरा पीतशाल या विजयसार। वैद्यक के अनुसार यह चरपरा, कड़वा, रूखा, स्निग्ध, गरम, कसैला, कांतिजनक तथा कफ, पित्त, घाव, पसीना, कृमि रोग, योनि-रोग, प्रमेह, कुष्ठ, विस्फोटक आदि रोगों को दूर करनेवाला

है। इसके पत्ते और गोंद प्रायः ओषधि के काम में आते हैं। साखू। सखुआ।

पर्य्या०—साल। अश्वकर्ण। शंकुवृक्ष। छत्रतरु। यक्षधूप आदि।

(२) एक प्रकार की मछली। (३) वृक्ष। पेड़। (४) एक नदी का नाम। (५) कुरु के एक पुत्र का नाम। (६) राजा शालिवाहन का एक नाम। (७) राल। धूना।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार की ऊनी या रेशमी चादर जिसके किनारे पर प्रायः बेल बूटे आदि बने होते हैं। दुशाला।

यौ०—शालबाफ़। शालदोज़।

शालक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहुआ। नाड़ीशाक। (२) मसखरा। दिल्लगीबाज़। भाँड़।

शालकटंकट-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राक्षस का नाम जिसे घटोत्कच ने मार डाला था।

शालकल्याणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का साग जो चरक के अनुसार भारी, रूखा, मधुर, शीतवीर्य्य और पुरीष-भेदक होता है।

शालग्राम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु की एक प्रकार की मूर्त्ति जो पत्थर की होती है और गंडकी नदी में पाई जाती है। यह मूर्त्ति प्रायः पत्थर की गोलियों या बटियों आदि के रूप में होती है और उस पर चक्र का चिह्न बना होता है, जिसे लोग साधारण बोल चाल में जनेऊ कहते हैं। जिस शिला पर यह चिह्न नहीं होता, वह पूजन के लिये उपयुक्त नहीं मानी जाती। लोग अन्य देव-मूर्त्तियों की भाँति इसकी भी पहले प्रतिष्ठा करते हैं और तब इसका पूजन करते हैं। अनेक पुराणों में इसकी पूजा का बहुत माहात्म्य मिलता है। (२) गंडकी नदी के किनारे का एक गाँव जिसके समीप शाल के वृक्ष बहुत अधिकता से हैं। इस गाँव के पास नदी में शालग्राम शिलाएँ भी पाई जाती हैं। वैष्णव लोग इस गाँव को बहुत पवित्र मानते हैं।

शालग्रामगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जहाँ शालग्राम की मूर्त्तियाँ मिलती हैं।

शालज-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे शाल भी कहते हैं।

शालदोज़-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो शाल के किनारे पर बेल बूटे आदि बनाता हो।

शालनिर्यास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राल। धूना। (२) शाल या सर्ज नाम का वृक्ष।

शालपत्रा-संज्ञा स्त्री० दे० "शालपर्णी"।

शालपर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुरा नामक गंध द्रव्य। (२) एकांगी नाम की ओषधि। वि० दे० "एकांगी" (२)।

शालपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरिवन नामक वृक्ष। वि० दे० "सरिवन"।

शालबाफ़-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह जो शाल या दुशाले आदि बुनता हो। शाल बुननेवाला। (२) एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो लाल रंग का होता है।

शालबाफ़ी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दुशाले बुनने का काम। शालबाफ़ का काम।

शालभंजिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कठपुतली। (२) वेश्या। रंडी।

शालभंजी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।

शालभ-संज्ञा पुं० [सं०] बिना सोचे विचारे उसी प्रकार आपत्ति में कूद पड़ना, जिस प्रकार पतंग आग या दीपक पर कूद पड़ता है।

वि० [सं०] पतिंगों के संबंध का। पतिंगों या टिड्डियों का। शलभ संबंधी।

शालमत्स्य-संज्ञा पुं० [सं०] शिलिंद नामक मछली।

शालमर्कट, शालमर्कटक-संज्ञा पुं० [सं०] अनार का वृक्ष। दाड़िम।

शालयुग्म-संज्ञा पुं० [सं०] दोनों प्रकार के शाल; अर्थात् सर्ज वृक्ष और विजयसार।

शालरस-संज्ञा पुं० [सं०] राल। धूना। करायल

शालव-संज्ञा पुं० [सं०] लोध्र। लोध।

शालवदन-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक असुर का नाम जो कालवदन और शृगाल-वदन भी कहलाता है।

शालवानक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णुपुराण के अनुसार एक देश का नाम। (२) इस देश का निवासी।

शालवाहन-संज्ञा पुं० दे० "शालिवाहन"।

शालवेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] राल। धूना।

शाल शाक-संज्ञा पुं० [सं०] पहुआ। नाड़ी शाक।

शालशृंग-संज्ञा पुं० [सं०] दीवार का ऊपरी भाग। दीवार की चोटी।

शालसार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हींग। हिंगु। (२) राल। धूना। करायल। (३) साखू नामक वृक्ष। शाल। (४) वृक्ष। द्रुम। पेड़।

शालांकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुतली। गुड़िया।

शालांचि-संज्ञा स्त्री० [सं०] शांति नामक साग।

शाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घर। गृह। मकान। (२) जगह। स्थान। जैसे,—पाठशाला। गौशाला। (३) शाखा। डाल। (४) इंद्रवज्रा और उपेंद्रवज्रा के योग से बननेवाले सोलह प्रकार के वृत्तों में से एक वृत्त। इसका तीसरा चरण उपेंद्रवज्रा का और शेष तीनों चरण इंद्रवज्रा के होते हैं।

शालाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) झाड़। संखार। (२) वह अग्नि जो झाड़ झंखाड़ जलाकर उत्पन्न की जाय।

शालाकी-संज्ञा पुं० [सं० शालाकिन्] (१) वह जो अस्त्र चिकित्सा करता हो। अस्त्र वैद्य। जर्राह। (२) नापित। नाऊ। हज्जाम। (३) भाला-बरदार।

शालाक्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आयुर्वेद के अंतर्गत आठ प्रकार के तंत्रों में से एक तंत्र जिसमें कान, आँख, नाक, जीभ, होंठ, मुँह आदि के रोगों और उनकी चिकित्सा का विवरण है। (२) वह चिकित्सक जो आँख, नाक, कान, मुँह आदि के रोगों की चिकित्सा करता हो।

शालाक्यशास्त्र-संज्ञा पुं० दे० "शालाक्य" (१)।

शालाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शालाजिर-संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी की तश्तरी या प्याली आदि।

शालातुरीय-संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि ऋषि का एक नाम।

शालात्व-संज्ञा पुं० [सं०] शाला का भाव या धर्म।

शालानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरिवन। शालपर्णी। विदारी।

शालामर्कटक-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी मूली। चाणक्य मूलक।

शालामुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चावल। (२) घर का सामना। घर का अगला भाग।

शालामृग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ता। (२) सियार। शृगाल। गीदड़।

शालार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी का नाखून। (२) सीढ़ी। सोपान। (३) पक्षियों के रहने का पिंजड़ा। (४) दीवार में लगी हुई खूँटी।

शालालुक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गंध द्रव्य। शालालु।

शालावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिवंश के अनुसार विश्वामित्र की कन्या का नाम।

शालावत्-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शालावृक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंदर। वानर। कपि। (२) कुत्ता। कुक्कुर। (३) लोमड़ी। (४) बिल्ली। बिड़ाल। (५) हरिन। मृग।

शालिंच-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साग जिसे शालंच या शालि साग भी कहते हैं। वैद्यक के अनुसार यह चरपरा, दीपन तथा प्लीहा, बवासीर और कफ पित्त का नाश करनेवाला माना गया है।

शालिंची-संज्ञा स्त्री० दे० "शालिंच"।

शालि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक के अनुसार पाँच प्रकार के धानों में से एक प्रकार का धान जो हेमंत ऋतु में होता है। जड़हन।

विशेष—वैद्यक में इसके रक्तशालि, कलम, पांडुक, शकुनाहृत, सुगंधक, कर्दमक, महाशालि, पुष्पक, पुष्पांडक, महिष-मस्तक, दीर्घशूक, कांचनक आदि अनेक भेद कहे गए हैं। यद्यपि वैद्यक के अनुसार भिन्न भिन्न देशों में उत्पन्न होनेवाले भिन्न भिन्न गुण कहे गए हैं, तथापि साधारणतः सभी शालि धान्यों के गुण इस प्रकार माने गए हैं—मधुर, कषायरस, स्निग्ध, बलकारक, स्वरप्रसादक, शुक्रवर्द्धक, कुछ कुछ वायु और कफवर्द्धक, शीतवीर्य, पित्तनाशक और मूत्रवर्द्धक।

पर्य्या०—मधुर। रुच्य। व्रीहिश्रेष्ठ। नृपप्रिय। धान्योत्तम। केदार। सुकुमारक।

(२) बासमती चावल। (३) काला जीरा। (४) गन्ना। पौंढ़ा। (५) गंध बिलाव। गंध मार्जार। (६) एक यक्ष का नाम।

शालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विदारी कंद। (२) मैना। सारिका। (३) शालपर्णी। (४) घर। मकान।

शालिगोप-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो खेतों की, विशेषतः धान के खेतों की, रखवाली करता हो।

शालिधान-संज्ञा पुं० [सं० शालिधान्य] बासमती चावल।

विशेष—यह धान जेठ मास में बोया जाता है और अगहन के अंत या पूस के आरंभ में पककर तय्यार हो जाता है। इसे अगहनी या हैमंतिक शालि धान्य भी कहते हैं। इसका पौधा मिट्टी तथा देश के अनुसार दो हाथ से लेकर तीन हाथ तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते साधारण धान के समान होते हैं, पर उनकी अपेक्षा कुछ कड़े और चिकने होते हैं। यह छोटा और बड़ा दो प्रकार का होता है। भेद इतना ही है कि छोटा पहले पकता है और बड़ा कुछ देर में। यह धान बिना कुटे हुए ही सफेद होता है और बहुत बारीक तथा सुंदर होता है। चावलों में यह सब से उत्तम माना जाता है।

शालिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ग्यारह अक्षरों का एक वृत्त। इसमें क्रम से एक मगण, दो तगण और अंत में दो गुरु होते हैं। (२) मसींद। पद्मकंद। (३) मेथी।

शालिपर्णिका-संज्ञा स्त्री० दे० "दूकोली" (३)।

शालिपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (२) पिठवन। पृश्नपर्णी। (३) वन हरदी। (४) शालपर्णी। सरिवन।

शालिपिंड-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।

शालिपिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक। बिल्लौर पत्थर।

शालिराट्-संज्ञा पुं० [सं०] हंसराज चावल।

शालिवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] शक जाति का एक प्रसिद्ध राजा जिसने "शक" नामक संवत् चलाया था। टाड राजस्थान में लिखा है कि यह गजनी के राजा 'गज' का पुत्र था। पिता के मारे जाने पर यह पंजाब चला आया और उसपर अपना अधिकार जमा लिया। इसने शालिवाहनपुर नामक

नगर भी बसाया था। इसकी राजधानी गोदावरी के किनारे प्रतिष्ठानपुर में थी। कहीं कहीं इसका नाम सातवाहन भी मिलता है। कथा-सरित्सागर में लिखा है कि इसे सात नामक गुह्यक उठाकर ले चला करता था; इसी से इसका नाम सातवाहन पड़ा।

शालिहोत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़ा। (२) घोड़ों और पशुओं आदि की चिकित्सा का शास्त्र। अश्व वैद्यक। (३) पुराणानुसार एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

शालिहोत्री–संज्ञा पुं० [सं० शालिहोत्र+ई (प्रत्य०)] वह जो पशुओं और विशेषतः घोड़ों आदि की चिकित्सा करता हो। अश्व वैद्य।

शाली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काला जीरा। (२) मेथी। (३) शालपर्णी। (४) दुरालभा।

शालीकि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन आचार्य्य का नाम।

शालीन–वि० [सं०] (१) जो धृष्ट या उद्दंड न हो। विनीत। नम्र। (२) जिसे लज्जा आती हो। सलज्ज। (३) सदृश। समान। तुल्य। (४) अच्छे आचार विचारवाला। (५) शाला संबंधी। शाला का। (६) संपत्ति-शाली। धनवान। अमीर। (७) जो व्यवहार में कुशल हो। दक्ष। चतुर।

शालीनता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शालीन होने का भाव या धर्म्म। (२) लज्जा। लाज। शरम। (३) नम्रता। (४) अधीनता।

शालीनत्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौंफ। शतपुष्पा। (२) सोवा नामक साग।

शालीय–वि० [सं०] (१) शाला या घर संबंधी। (२) शाल वृक्ष का।

संज्ञा पुं० एक वैदिक आचार्य्य का नाम।

शालु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भसींड़। कमलकंद। (२) भटेउर या चोरक नामक ओषधि। (३) कषाय द्रव्य। (४) मेंढक। भेक। (५) एक प्रकार का फल।

शालुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भसींड़। पद्मकंद। (२) जायफल।

शालूक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंडूक। मेंढक। (२) जायफल। जातीफल। (३) भसींड़। (४) एक प्रकार का रोग।

शालूकिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

शालूर–संज्ञा पुं० [सं०] भेक। मेंढक।

शालूरक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कीटाणु जो अँतड़ियों में पीड़ा उत्पन्न करता है।

शालेय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौंफ। मधुरिका। (२) शालि धान का खेत। (३) मूली।

वि० शाल संबंधी। शाल वृक्ष का।

शालेया–संज्ञा स्त्री० [सं०] मेथी। मिश्रेया।

शाल्मल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाल्मली वृक्ष। सेमल का पेड़। (२) मोचरस। (३) दे० "शाल्मलि"।

शाल्मलि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाल्मली वृक्ष। सेमल का पेड़। वि० दे० "सेमल"। (२) पुराणानुसार एक द्वीप का नाम जो क्रौंच द्वीप से दूना कहा गया है। यह भी कहा गया है कि इस द्वीप में शाल्मलि या सेमल के वृक्ष बहुत अधिकता से हैं और यह चारों ओर से ऊख के रस के समुद्र से घिरा हुआ है। इसमें श्वेत, लोहित, जीमूत, हरित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ नामक सात वर्ष हैं जिनमें कुमुद, उन्नत, बलाहक, द्रोण, कंक, महिष और ककुद नामक सात पर्वत तथा योनी, तोया, वितृष्णा, चंद्रा, शुक्ला, विमोचनी और निवृत्ति नाम की सात नदियाँ हैं। (३) पुराणानुसार एक नरक का नाम। कहते हैं कि इसमें जीवों को शाल्मलि वृक्ष के काँटे चुभाकर कष्ट पहुँचाया जाता है।

शाल्मलिक–संज्ञा पुं० [सं०] रोहितक वृक्ष। रोहिड़ा।

शाल्मलिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमल का वृक्ष। शाल्मलि।

शाल्मलिपत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] सतिवन। सप्तपर्ण वृक्ष।

शाल्मली–संज्ञा स्त्री० [सं०] शाल्मलि। सेमल।

संज्ञा पुं० [सं० शाल्मलिन्] गरुड़।

शाल्मलीकंद–संज्ञा पुं० [सं०] शाल्मलि की जड़, जो वैद्यक के अनुसार मधुर, शीतल, रोचक और पित्त, दाह तथा संताप-नाशक मानी जाती है।

शाल्मलीफल–संज्ञा पुं० [सं०] तेजबल या तेजफल नाम का वृक्ष।

शाल्मलीफलक–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार काठ की वह पट्टी जिस पर रगड़कर छुरे आदि की धार तेज की जाती है।

शाल्मली द्वीप–संज्ञा पुं० दे० "शाल्मलि" (२)।

शाल्मलीवेष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] सेमल का गोंद। मोचरस।

शाल्मलीस्थल–संज्ञा पुं० दे० "शाल्मलि" (२)।

शाल्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौभ राज्य के एक राजा का नाम। महाभारत में लिखा है कि काशिराज की कन्याओं के हरण के समय भीष्म के साथ इनका युद्ध हुआ था जिसमें ये हार गए थे। काशिराज की कन्या अंबा इन्हीं से विवाह करना चाहती थी; इसी लिये भीष्म ने अंबा को इनके पास भेज दिया था; पर इन्होंने अंबा को ग्रहण नहीं किया। ये शिशुपाल के बड़े मित्र थे। जब श्रीकृष्ण ने शिशुपाल को मार डाला, तब इन्होंने श्रीकृष्ण की हत्या करने के लिये द्वारका पर घेरा डाला था। उसी अवसर पर ये युद्ध में श्रीकृष्ण द्वारा मारे गए थे। (२) एक प्राचीन देश का नाम।

शाल्वकिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] रामायण के अनुसार एक प्राचीन नदी का नाम।

शाल्वगिरि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन पर्वत का नाम।

शाल्वण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह लेप जो फोड़े को पकाने के लिये उस पर चढ़ाया जाता है। पुलटिस। (२) भरता। चोखा।

शाल्वसेनी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम। (२) इस देश का निवासी।

शाल्विक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी जिसे सुदचूद भी कहते हैं।

शाव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बच्चा; विशेषतः पशुओं आदि का बच्चा। (२) मृतक। मुरदा। (३) भूरा रंग। (४) सूतक, जो किसी के मर जाने पर उसके संबंधियों को लगता है। (५) मरघट। श्मशान।

वि० शव संबंधी। शव का।

शावक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बच्चा; विशेषतः पशु या पक्षी का बच्चा। (२) झाऊ।

शावर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाप। गुनाह। (२) अपराध। कसूर। (३) लोध वृक्ष। (४) शावरस्वामी कृत भाष्य। (५) एक तंत्र ग्रंथ,जो शिव का बनाया हुआ माना जाता है।

वि० शबर संबंधी। शबर का।

शावरक–संज्ञा पुं० [सं०] पठानी लोध।

शावरचंदन–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चंदन।

शावरमेदाख–संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा।

शावरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कौंछ। केवाँच।

शाश्वत–वि० [सं०] जो सदा स्थायी रहे। कभी नष्ट न होनेवाला। नित्य।

संज्ञा पुं० (१) वेदव्यास। (२) शिव। (३) स्वर्ग। (४) अंतरिक्ष।

शाश्वतिक–वि० [सं०] स्थायी। नित्य। शाश्वत।

शाश्वती–संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

शाष्कुल–वि० [सं०] मांस या मछली खानेवाला। मांसाहारी। गोश्तखोर।

शास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनुशासन। (२) स्तुति। स्तव।

शासक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शासिका] (१) वह जो शासन करता हो। (२) वह जिसके हाथ में किसी नगर, प्रांत या देश आदि की राजकीय-व्यवस्था हो। हाकिम।

शासन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आज्ञा। आदेश। हुक्म। (२) किसी को अपने अधिकार या वश में रखना। (३) लिखित प्रतिज्ञा। पट्टा। टीका। (४) राजा की दान [illegible] हुई भूमि। मुआफ़ी। (५) वह परवाना या फरमान जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को कोई अधिकार दिया जाय। (६) शास्त्र। (७) इंद्रिय-निग्रह। (८) किसी के कार्य्यों आदि का नियंत्रण करना। (९) किसी नगर, प्रांत या देश आदि की राजकीय व्यवस्था करने का काम। हुकूमत। (१०) दंड। सजा।

शासनदेवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों की एक देवी का नाम।

शासनधर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शासक। (२) राजदूत। एलची।

शासनपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह ताम्रपत्र या शिला जिस पर कोई राजाज्ञा लिखी या खोदी हुई हो।

शासनग्राहक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो राजा की आज्ञा लोगों के पास पहुँचाता हो। (२) राजदूत। एलची।

शासनशिला–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शिला जिस पर कोई राजाज्ञा लिखी हो।

शासनहर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजदूत। (२) वह जो राजा की आज्ञा लोगों तक पहुँचाता हो।

शासनहारक–संज्ञा पुं० दे० "शासनहर"।

शासनहारी–संज्ञा पुं० [सं० शासनहारिन्] राजदूत। एलची।

शासनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो लोगों को धर्म का उपदेश करती हो।

शासनीय–वि० [सं०] (१) शासन करने के योग्य। (२) सुधारने के योग्य। (३) दंड देने के योग्य। सजा देने के लायक।

शासित–वि० [सं०] [स्त्री० शासिता] (१) जिसका शासन किया जाय। शासन किया हुआ। (२) जिसे दंड दिया जाय। दंडित।

संज्ञा पुं० (१) प्रजा। (२) निग्रह। संयम।

शासी–संज्ञा पुं० [सं० शासिन्] शासन करनेवाला। शासक। (इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्द बनाने में, उसके अंत में, किया जाता है।)

शास्ता–संज्ञा पुं० [सं० शास्तृ] (१) शासक। (२) राजा। (३) पिता। (४) उपाध्याय। गुरु।

शास्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शासन। (२) दंड। सजा।

शास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंदुओं के अनुसार ऋषियों और मुनियों आदि के बनाए हुए वे प्राचीन ग्रंथ जिनमें लोगों के हित के लिये अनेक प्रकार के कर्त्तव्य बतलाए गए हैं और अनुचित कृत्यों का निषेध किया गया है। वे धार्मिक ग्रंथ जो लोगों के हित और अनुशासन के लिये बनाए गए हैं।

विशेष—हमारे यहाँ वे ही ग्रंथ शास्त्र माने गए हैं जो वेदमूलक हैं। इनकी संख्या १८ कही गई है और नाम इस प्रकार दिए गए हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छंद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, आयुर्वेद, धनुर्वेद,

गांधर्ववेद और अर्थशास्त्र। इन अठारहो शास्त्रों को अठारह विद्याएँ भी कहते हैं। इस प्रकार हिंदुओं की प्रायः सभी धार्मिक पुस्तकें शास्त्र की कोटि में आ जाती हैं। साधारणतः शास्त्र में बतलाए हुए काम विधेय माने जाते हैं; और जो बातें शास्त्रों में वर्जित हैं, वे निषिद्ध और त्याज्य समझी जाती हैं।

(२) किसी विशिष्ट विषय या पदार्थ-समूह के संबंध का वह समस्त ज्ञान जो ठीक क्रम से संग्रह करके रखा गया हो। विज्ञान। जैसे,—प्राणि-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, विद्युत्-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र।

शास्त्रकार-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने शास्त्रों का प्रणयन या रचना की हो। शास्त्र बनानेवाला।

शास्त्रकृत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शास्त्र बनानेवाले; अर्थात् ऋषि, मुनि। (२) आचार्य्य।

शास्त्रचक्षु-संज्ञा पुं० [सं० शास्त्रचक्षुस्] (१) शास्त्र की आँख; अर्थात् व्याकरण। (२) वह जिसे शास्त्र रूपी नेत्र प्राप्त हों। ज्ञानी। पंडित।

शास्त्रचारण-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शास्त्रों का अच्छा ज्ञाता हो। शास्त्रदर्शी।

शास्त्रज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो शास्त्रों का अच्छा ज्ञाता हो। शास्त्रों का जानकार। शास्त्रवेत्ता।

शास्त्रतत्वज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] गणक। ज्योतिषी।

शास्त्रत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्र का भाव या धर्म।

शास्त्रदर्शी-संज्ञा पुं० [सं० शास्त्रदर्शिन्] वह जिसे शास्त्रों का अच्छा ज्ञान हो। शास्त्रज्ञ।

शास्त्रदृष्टि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शास्त्रों का ज्ञाता हो। शास्त्रज्ञ।

शास्त्रवक्ता-संज्ञा पुं० [सं० शास्त्रवक्तृ] वह जो लोगों को शास्त्रों का उपदेश देता हो।

शास्त्रविद्-वि० पुं० [सं०] शास्त्रों का जाननेवाला। शास्त्रदर्शी। शास्त्रज्ञ।

शास्त्रशिल्पी-संज्ञा पुं० [सं० शास्त्रशिल्पिन्] (१) काश्मीर देश। (२) भूमि। जमीन।

शास्त्रावर्त्त लिपि-संज्ञा स्त्री० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार प्राचीन काल की एक प्रकार की लिपि।

शास्त्री-वि० [सं० शास्त्रिन्] शास्त्र का जाननेवाला। शास्त्रज्ञ। शास्त्रविद्।

संज्ञा पुं० (१) वह जो शास्त्रों आदि का अच्छा ज्ञाता हो। शास्त्रज्ञ। (२) वह जो धर्म्म शास्त्र का ज्ञाता हो। (३) एक उपाधि जो कुछ विश्वविद्यालयों आदि में, इसी नाम की परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर प्राप्त होती है।

शास्त्रीय-वि० [सं०] शास्त्र संबंधी। शास्त्र का।

शास्त्रोक्त-वि० [सं०] जो शास्त्र में लिखे या कहे के अनुसार हो। शास्त्रों में कहा हुआ।

शास्य-वि० [सं०] (१) शासन करने के योग्य। (२) दंड देने के योग्य। दंडनीय। (३) सुधारने योग्य।

शाहंशाह-संज्ञा पुं० [फ़ा०] बादशाहों का बादशाह। बहुत बड़ा बादशाह। महाराजाधिराज।

शाहंशाही-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) शाहंशाह का कार्य्य या भाव। (२) व्यवहार का खरापन। (बोलचाल)

क्रि० प्र०—जताना।—दिखलाना।—बघारना।

शाह-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) बहुत बड़ा राजा या महाराज। बादशाह। वि० दे० "बादशाह"। (२) मुसलमान फ़कीरों की उपाधि।

वि० बड़ा। भारी। महान्। जैसे,—शाहराह।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल यौगिक शब्द बनाने में, उनके आदि में होता है।

शाहज़ादा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० शाहज़ादी] बादशाह का लड़का। महाराजकुमार।

शाहजादी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) बादशाह की कन्या। राजकुमारी। (२) कमल के फूल के अंदर का पीला जीरा।

शाहतरा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] पित्त पापड़ा।

शाहदरा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह आबादी जो किसी महल या किले के नीचे बसी हो।

शाहबलूत-संज्ञा पुं० दे० "बलूत"।

शाहबाज-संज्ञा पुं० [फ़ा०] सफेद रंग का एक प्रकार का शिकारी पक्षी।

शाहबाला-संज्ञा पुं० दे० "शहबाला"।

शाहराह-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बड़ी सड़क। बड़ा रास्ता। राजमार्ग।

शाहाना-वि० [फ़ा०] बादशाहों के योग्य। राजाओं का सा। राजसी।

संज्ञा पुं० (१) विवाह का जोड़ा जो दूल्हे को पहनाया जाता है। यह प्रायः लाल रंग का होता है। जामा। (२) दे० "शहाना" (राग)।

शाहिद-संज्ञा पुं० [अ०] वह मनुष्य जो आँखों देखी घटना का न्यायाधीश के समक्ष वर्णन करे। साक्षी। गवाह।

वि० सुंदर। मनोहर। खूबसूरत।

शाही-वि० [फ़ा०] शाहों या बादशाहों का। राजसी। जैसे,—शाही दरबार, शाही महल, शाही सवारी।

शाहीन-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) दे० "शाहबाज"। (२) वह सूई जो तराज़ू की डंडी के मध्य भाग में लगी होती है और जिसके बिलकुल सीधे रहने से तौल बराबर और ठीक मानी जाती है।

शिंगरफ़-संज्ञा पुं० [फ़ा० शंगर्फ़] ईंगुर । हिंगुल । वि० दे० "ईंगुर" ।
शिंगरफ़ी-वि० [फ़ा०] शिंगरफ़ के रंग का । लाल । सुर्ख़ ।
शिंघण, शिंघाण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोहमल । मंडूर । (२) नाक के अंदर का मैल जिससे छिनकी तर रहती है । (३) काँच का बरतन । (४) दाढ़ी । (५) फूला हुआ अंडकोश ।
शिंघाणक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शिंघाणिका] (१) नाक के अंदर का मैल । (२) कफ़ । बलगम ।
शिंघाणी-संज्ञा पुं० [सं० शिंघाणिन्] नाक ।
शिंघान-संज्ञा पुं० दे० "शिंघाण" ।
शिंघित-वि० [सं०] सूँघा हुआ । आघ्रात ।
शिंघिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाक ।
शिंजिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] करधनी ।
शिंजन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० शिंजित] धातुखंड का परस्पर बजना । झंकार करना । झनकारना ।
शिंजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) करधनी, नूपुर आदि आभूषणों की झनकार । धातुखंड के बजने का शब्द । झनझनाहट । (२) धनुष की डोरी ।
शिंजित-वि० [सं०] झंकार करता हुआ । बजता हुआ ।
शिंजिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धनुष की डोरी । चिल्ला । पतंचिका । (२) करधनी या नूपुर के घुँघरू ।
शिंडाकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह काँजी जो मूली के पत्तों के रस में राई और नमक डालकर अथवा सरसों के रस में चावल का चूर्ण डालकर बनाई जाय । वैद्यक के अनुसार यह रुचिकारी, कफकारक, पित्त करनेवाली और भारी होती है ।
शिंब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फली । छीमी । (२) चकवँड़ । चक्रमर्द ।
शिंबा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छीमी । फली । (२) सेम । (३) शिंबी धान्य ।
शिंबि-संज्ञा स्त्री० दे० "शिंबी" ।
शिंबिक-संज्ञा पुं० [सं०] मूँगफली ।
शिंबिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) फली । छीमी । (२) सेम ।
शिंबिजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] द्विदल अन्न । दाल ।
शिंबिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्यामा चिड़िया । कृष्ण चटक । (२) बड़ी सेम ।
शिंबिपर्णिका, शिंबिपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वनमूँग । मुद्गपर्णी ।
शिंबी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छीमी । फली । बौंड़ी । (२) सेम । (३) कौंछ । केवाँच । कपिकच्छु । (४) वनमूँग ।
शिंबी धान्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह अन्न जिसके दानों में दो दल हों । द्विदल अन्न । दाल । जैसे,—मूँग, मसूर, मोठ, उड़द, चना, अरहर, मटर, कुलथी, लोबिया आदि ।
शिंबीफल-संज्ञा पुं० [सं०] तरवड़ या आहुल्य नामक क्षुप ।
शिंशु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का फलदार वृक्ष ।
शिंशपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शीशम का पेड़ । (२) अशोक वृक्ष ।
शिंशुपाल-संज्ञा स्त्री० दे० "शिंशपा" ।
शिंशुमार-संज्ञा पुं० [सं०] सूँस नामक जल-जंतु ।
शि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । (२) सुख । सौभाग्य । (३) शांति । (४) धैर्य्य ।
शिकंजा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) दबाने, कसने या निचोड़ने का यंत्र । (२) पेंच कसने का यंत्र या औज़ार जिससे जिल्द-बंद किताबें दबाते और उसके पन्ने काटते हैं । (३) वह तागा जिससे जुलाहे घुमावदार बंद बनाते और पनिक बाँधते हैं । (जुलाहे) (४) प्राचीन काल का अपराधियों को कठोर दंड देने के लिये एक यंत्र जिसमें उनकी टाँगें कस दी जाती थीं । (५) पेरने का यंत्र । कोल्हू । (६) रुई दबाने की कल । पेंच ।
मुहा०—शिकंजे में खिंचवाना = घोर यंत्रणा दिलाना । साँसत कराना । शिकंजे में खींचना = बहुत कष्ट देना । घोर यंत्रणा पहुँचाना ।
शिकन-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सिकुड़ने से पड़ी हुई धारी । मुड़कर दबने से पड़ी हुई लकीर । सिकवट । बट्टी । वलि । बल ।
क्रि० प्र०—आना ।—डालना ।—निकालना ।—पड़ना ।
शिकम-संज्ञा पुं० [फ़ा०] पेट । उदर ।
शिकमी-वि० [फ़ा०] पेट संबंधी । निज का । अपना ।
शिकमी काश्तकार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह काश्तकार जिसे जोतने के लिये खेत दूसरे काश्तकार से मिला हो । (इसका हक़ ख़ास काश्तकार के हक़ से बहुत कम होता है ।)
शिकरा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का बाज़ पक्षी । उ०—कोई शिकरा बाज़ उड़ाता है, कोई हाथ में रक्खे तुरती है ।—नज़ीर ।
शिकवा-संज्ञा पुं० [अ०] शिकायत । उलाहना ।
शिकस्त-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) हार । पराजय । मात । (२) भंग । टूटना । (३) विफलता । असिद्धि ।
मुहा०—शिकस्त देना = पराजित करना । हराना । शिकस्त खाना = पराजित होना । हारना ।
शिकस्ता-वि० [फ़ा०] टूटा हुआ । भग्न ।
संज्ञा स्त्री० उर्दू या फ़ारसी की घसीट लिखावट ।
शिकायत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) बुराई करना । गिला । शिकवा । चुगली । (२) किसी भूल, त्रुटि, दोष आदि की बात जो मन में हो । जैसे,—उनसे अब मुझे कोई शिकायत नहीं है । (३) उपालंभ । उलाहना ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

(४) शारीरिक अस्वस्थता। रोग। बीमारी। जैसे,—उसे दस्त की शिकायत है।

मुहा०—शिकायत रफा करना = रोग दूर करना। माँदगी हटाना।

शिकार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) जंगली पशुओं को मारने का कार्य्य या क्रीड़ा। आखेट। मृगया। अहेर। जैसे,—शेर का शिकार, हिरन का शिकार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) वह जानवर जो मारा गया हो। (३) गोश्त। मांस। (४) आहार। भक्ष्य। जैसे,—बिल्ली का शिकार चूहा। (५) कोई ऐसा आदमी जिसके फँसने या वश में होने से बहुत लाभ हो। असामी। जैसे,—बहुत दिनों पर आज एक शिकार फँसा है; कुछ मिल ही जायगा।

मुहा०—शिकार आना = (१) मारने के लिये कोई जानवर मिलना। (२) किसी ऐसे आदमी का मिलना जिससे कुछ लाभ हो। शिकार करना = (१) कोई जानवर मारना। (२) किसी से खूब लाभ उठाना। लूटना। शिकार खेलना = शिकार करना। किसी का शिकार होना = (१) किसी के द्वारा या कारण मारा जाना। जैसे,—न जाने कितने आदमी प्लेग के शिकार हुए। (२) वश में आना। फँसना। (३) किसी पर मोहित होना।

शिकार गड़हा-संज्ञा पुं० [फ़ा० शिकार + हिं० गड्ढा] वह बड़ा गड्ढा जो शिकारी जानवरों को फँसाने के लिये खोदते हैं।

शिकारगाह-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] शिकार खेलने का स्थान।

शिकारबंद-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह तस्मा जो घोड़े की दुम के पास चारजामे के पीछे शिकार लटकाने या आवश्यक सामान बाँधने के लिये लगाया जाता है।

शिकारी-संज्ञा पुं० [फ़ा०] आखेट करनेवाला। शिकार करनेवाला। अहेरी।

वि० (१) शिकार करनेवाला। जंगली पशुओं को पकड़ने या मारनेवाला। जैसे,—शिकारी कुत्ता। (२) शिकार में काम आनेवाला। जैसे,—शिकारी कोट, शिकारी खेमा।

मुहा०—शिकारी ब्याह = गांधर्व विवाह जो क्षत्रियों में अब तक कहीं कहीं होता है।

शिकाल-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह घोड़ा जिसका अगला दाहिना पैर और पिछला बायाँ पैर सफेद हो। (यह दोषी माना जाता है।)

शिक्थ-संज्ञा पुं० [सं०] मोम। मैन। मधूच्छिष्ट।

शिक्य-संज्ञा पुं० दे० "शिक्या"।

शिक्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहँगी के दोनों छोरों पर बँधा हुआ रस्सी का जाल जिस पर बोझ रखते हैं। (२) छत में लटकता हुआ रस्सी का जालीदार संपुट जिस पर दूध, दही आदि का मटका रखते हैं। छींका। सीका। सिकहर। (३) तराजू की रस्सी।

शिक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्वों का एक नायक। रोहित।

शिक्षक-संज्ञा पुं० [सं०] शिक्षा देनेवाला। सिखानेवाला। गुरु। उस्ताद।

शिक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] पढ़ाने का काम। तालीम। शिक्षा।

शिक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी विद्या को सीखने या सिखाने की क्रिया। पढ़ने पढ़ाने की क्रिया। सीख। तालीम।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

(२) गुरु के निकट विद्या का अभ्यास। विद्या का ग्रहण। (३) दक्षता। निपुणता। (४) उपदेश। मंत्र। सलाह। (५) छः वेदांगों में से एक जिसमें वेदों के वर्ण, स्वर, मात्रा आदि का निरूपण रहता है। मंत्रों के ठीक उच्चारण का विषय।

विशेष—यह विषय कुछ तो ब्राह्मण भाग में आया है और कुछ प्रातिशाख्य सूत्रों में। ऋग्वेद की शिक्षा का ग्रंथ शौनक का "प्रातिशाख्य" सूत्र है। यजुर्वेद के प्रातिशाख्य के दो ग्रंथ मिलते हैं—एक तो आत्रेय, महर्षि और वररुचि संकलित 'त्रिभाष्यरत्न' जो तैत्तिरीय शाखा का है; और दूसरा कात्यायन जी का आठ अध्यायों का 'वाजसनेयी प्रातिशाख्य'।

(६) शासन। दबाव। (७) किसी अनुचित कार्य्य का बुरा परिणाम। सबक। दंड। जैसे,—अच्छी शिक्षा मिली; अब कभी ऐसा काम न करेंगे।

शिक्षाकर-संज्ञा पुं० [सं०] व्यास।

शिक्षाक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] काव्य में एक प्रकार का अलंकार जिसमें शिक्षा द्वारा गमन स्वरूप कार्य्य रोका जाता है। (केशव)

शिक्षागुरु-संज्ञा पुं० [सं०] विद्या पढ़ानेवाला गुरु।

शिक्षाग्राहक-संज्ञा पुं० [सं०] शिक्षा प्राप्त करनेवाला व्यक्ति। पढ़नेवाला। विद्यार्थी। छात्र।

शिक्षादंड-संज्ञा पुं० [सं०] वह दंड जो किसी चाल को छुड़ाने के लिये दिया जाय।

शिक्षापद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उपदेश। (२) बौद्धों के विनयपिटक का एक प्रकरण।

शिक्षा परिषद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वैदिक काल की शिक्षा संस्था या विद्यालय जो एक ऋषि या आचार्य्य के अधीन रहता था और उसी के नाम से प्रसिद्ध होता था। (२) शिक्षा या पढ़ाई का प्रबंध करनेवाली सभा या समिति।

शिक्षार्थी-संज्ञा पुं० [सं० शिक्षार्थिन्] शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति। विद्यार्थी। तालिब इल्म।

शिक्षालय-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ शिक्षा दी जाय। विद्यालय। पाठशाला।

शिक्षावल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] तैत्तिरीय उपनिषद् का पहला अध्याय।

शिक्षा विभाग-संज्ञा पुं० [सं० शिक्षा + विभाग] वह सरकारी विभाग जिसके द्वारा शिक्षा का प्रबंध होता है। सरिश्ता तालीम।

शिक्षाव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] जैन धर्म्म के अनुसार गार्हस्थ धर्म्म का एक प्रधान अंग जो चार प्रकार का होता है—(१) सामयिक, (२) देशावकाशिक, (३) पौष और (४) अतिथि संविभाग।

शिक्षाशक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति। मेधा।

शिक्षाहीन-वि० [सं०] जिसे शिक्षा न मिली हो। अशिक्षित। बेपढ़ा। गँवार।

शिक्षित-वि० पुं० [सं०] [स्त्री० शिक्षिता] (१) जिसने शिक्षा पाई हो। पढ़ा लिखा। (२) विद्वान्। पंडित।

शिक्षिताक्षर-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने विद्या पढ़ी हो। शिक्षित।

शिखंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर की पूँछ। मयूरपुच्छ। उ०—(क) कुटिल कच भुंव तिलक रेखा सीस शिखी शिखंड।—सूर। (ख) सिरनि शिखंड सुमन दल मंडल बाल सुभाय बनाए।—तुलसी। (२) चोटी। शिखा। चुटिया। उ०—सोनित बेश विचित्र भाँति दुति शिखि शिखंड हरनी।—सूर। (३) काकपक्ष। काकुल।

शिखंडक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काकपक्ष। काकुल। (२) मयूरपुच्छ।

शिखंडिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुक्कुट। मुर्गा। (२) एक प्रकार का मानिक (रत्न)।

शिखंडिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिखा। चोटी।

शिखंडिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मोरनी। मयूरी। (२) जूही। यूथिका। (३) गुंजा। करजनी। घोटली। (४) मुर्गी। (५) द्रुपदराज की एक कन्या जो पीछे पुरुष के रूप में होकर कुरुक्षेत्र के युद्ध में लड़ी थी। कहते हैं कि पूर्व जन्म में यह काशिराज की बड़ी कन्या अंबा थी जिसे भीष्म हर लाए थे। भीष्म से बदला लेने के लिये यह पुरुष रूप में हो गई और महाभारत के युद्ध में लड़ी थी। वि० दे० "शिखंडी"। (६) कश्यप की पुत्री दो अप्सराएँ जो ऋग्वेद के एक मंत्र की द्रष्टा मानी जाती हैं।

शिखंडी-संज्ञा पुं० [सं० शिखंडिन्] (१) पीली जूही। स्वर्ण यूथिका। (२) गुंजा। चिरमिटी। घुँघची। (३) मोर। मयूर पक्षी। (४) मुर्गा। (५) मोर की पूँछ। (६) बाण। (७) विष्णु। (८) कृष्ण। (९) शिव। (१०) शिखा। बालों की चोटी। उ०—शिखंडी सीस मुख मुरली बजावत बन्यो तिलक उर चंदन।—सूर। (११) द्रुपद का एक पुत्र जो पहले कन्या के रूप में उत्पन्न हुआ था, पर पीछे पुरुष के रूप में हो गया था। इसी को आगे करके महाभारत के युद्ध में अर्जुन ने युद्ध के दसवें दिन भीष्म का वध किया था। भीष्म की प्रतिज्ञा थी कि हम किसी स्त्री पर बाण न चलावेंगे। अश्वत्थामा के हाथ से इसका वध हुआ था। वि० दे० "शिखंडिनी"। (१२) राम के दल का एक बंदर। उ०—धुंधमाल गिरि पुनि गए मिले शिखंडी नाम।—विश्राम। (१३) बृहस्पति। (अनेका०)

शिखल-संज्ञा स्त्री० दे० "शिखा"। उ०—फूली फिरत रोहिणी मैया नख शिख कर सिंगार।—सूर।

शिखक-संज्ञा पुं० [सं०] लेखक। मुहर्रिर।

शिखर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब से ऊपर का भाग। सिरा। चोटी। (२) पहाड़ की चोटी। पर्वत-शृंग। (३) अग्र भाग। (४) मंदिर या मकान के ऊपर का निकला हुआ नुकीला सिरा। कँगूरा। कलश। (५) मंडप। गुंबद। (६) जैनियों का एक तीर्थ। (७) एक अस्त्र का नाम। (८) एक रत्न जो अनार के दाने के समान सफेद और लाल होता है। उ०—श्रीफल सकुचि रहे दुरि कानन शिखर कियो विहरान।—सूर। (९) कुंद की कली। (१०) लौंग। (११) काँख। बगल। (१२) पुलक। रोमांच। (१३) उँगलियों की एक मुद्रा जो तांत्रिक पूजन में बनाई जाती है।

शिखरणी-संज्ञा स्त्री० दे० "शिखरिणी"।

शिखरदशना-वि० स्त्री० [सं०] जिसके दाँत कुंद की कली के समान हों।

शिखरन-संज्ञा पुं० [सं० शिखरिणी] दही और चीनी का बनाया हुआ एक प्रकार का मीठा पेय पदार्थ या शरबत जिसमें केसर, कपूर तथा मेवे आदि डाले जाते हैं।

शिखरवासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिखर पर बसनेवाली, दुर्गा।

शिखरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूर्व्वा। मरोड़फली। मुर्रा। (२) एक गदा जो विश्वामित्र ने रामचंद्र को दी थी।

शिखराद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

शिखरिचरण-संज्ञा पुं० [सं०] चिचड़े की जड़। अपामार्ग मूल।

शिखरिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रसाल। (२) नारी-रत्न। स्त्रियों में श्रेष्ठ। (३) रोमावली। (४) मल्लिका। बेला। मोतिया। (५) नेवारी का पौधा। (६) किशमिश। लघुद्राक्षा। (७) मूर्वा। मरोड़फली। मुरहरी। (८) दही और चीनी का रस। शिखरन। (९) सत्रह अक्षरों की एक वर्ण वृत्ति जिसमें छठे और ग्यारहवें वर्ण पर यति होती है। उ०—शिला पै रोहू सों कुपित ललना तोहि लिखि कै।

शिखरी-संज्ञा पुं० [सं० शिखरिन्] (१) पर्वत। पहाड़। (२) पहाड़ी दुर्ग। (३) वृक्ष। पेड़। (४) अपामार्ग। चिचड़ा। (५) बंदाक। बाँदा। (६) कुंदुरु नामक गंध द्रव्य। (७) लोबान। (८) काकड़ासिंगी। (९) ज्वार। मक्का। (१०) एक प्रकार का मृग।

संज्ञा स्त्री० [सं० शिखरा] एक गदा जो विश्वामित्र ने रामचंद्र को दी थी। शिखरा। उ०—शिखरी कौमोदकी गदा युग श्रीपति भरी सदाई।—रघुराज।

शिखलोहित-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुकुरमुत्ता।

शिखांडक-संज्ञा पुं० [सं०] काकपक्ष।

शिखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुंडन के समय सिर के बीचो बीच छोड़ा हुआ बालों का गुच्छा जो फिर कटाया नहीं जाता और हिंदुओं का एक चिह्न है। चोटी। चुटैया।

यौ०—शिखासूत्र = चोटी और जनेऊ जो द्विजों के चिह्न हैं और जिनका त्याग केवल संन्यासियों के लिये विधेय है।

(२) मोर, मुर्गी आदि पक्षियों के सिर पर उठी हुई चोटी या पंखों का गुच्छा। चोटी। कलगी। (३) आग की लपट। ज्वाला। (४) दीपक की लौ। टेम। उ०—(क) केशौदास तामें दुरी दीप की शिखा सी दौरि दुरावति नीलवास दुति अँग अंग की।—केशव। (ख) दीप शिखा सम जुवति जन मन जनि होसि पतंग।—तुलसी। (५) प्रकाश की किरन। (६) नुकीला छोर या सिरा। नोक। (७) ऊपर को उठा हुआ भाग। चोटी। शिखर। (८) वस्त्र का अंचल। दामन। (९) पैर के पंजे का सिरा। (१०) स्तन का अग्र भाग। चूचक। (११) पेड़ की जड़। (१२) शाखा। डाली। (१३) अधिपति। नायक। (१४) श्रेष्ठ पुरुष। (१५) कलियारी विष। लांगली। (१६) मूर्वा। मरोड़फली। (१७) जटामासी। बालछड़। (१८) बच। (१९) शिफा। (२०) तुलसी। (२१) कामज्वर। (२२) एक वर्णवृत्त जिसके विषम पादों में २८ लघु मात्राएँ और अंत में एक गुरु होता है और सम पादों में ३० लघु मात्राएँ और अंत में एक गुरु होता है।

शिखाकंद-संज्ञा पुं० [सं०] शलजम। शलगम।

शिखातरु-संज्ञा पुं० [सं०] दीप-वृक्ष। दीवट। दीयट।

शिखाधर-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

शिखाधार-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

शिखापाश-संज्ञा पुं० [सं०] चोटी। चुंदी।

शिखापित्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें हाथ और पैर की उँगलियों में सूजन और जलन होती है।

शिखाबंधन-संज्ञा पुं० [सं०] सिर के बालों को मिलाकर बाँधने की क्रिया। चोटी बाँधना।

शिखाभरण-संज्ञा पुं० [सं०] सिर का आभूषण, मुकुट।

शिखामणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह रत्न जो सिर पर पहना जाय। (२) श्रेष्ठ व्यक्ति।

शिखामूल-संज्ञा पुं० [सं०] वह कंद जिसके ऊपर पत्तियों का गुच्छा हो।

शिखावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा। मरोड़फली।

शिखावर-संज्ञा पुं० [सं०] कटहल का वृक्ष। पनस।

शिखावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यक्ष। (महाभारत)

शिखावल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर। मयूर। (२) कटहल।

शिखावान्-वि० [सं० शिखावत्] [स्त्री० शिखावती] शिखावाला।

संज्ञा पुं० (१) अग्नि। (२) चित्रक वृक्ष। चीता। (३) केतु ग्रह। (४) मोर। मयूर।

शिखावृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] दीवट। दीयट।

शिखावृद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह ब्याज जो प्रति दिन बढ़ता जाय। सूद दर सूद।

शिखि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर। मयूर। उ०—चीर फारि करिहौं भगौंहैं शिखनि शिखि लवलेस।—सूर। (२) तामस मन्वंतर के इंद्र का नाम। (३) कामदेव। (४) अग्नि। (५) तीन की संख्या।

शिखिकंठ-वि० पुं० [सं०] मोर के कंठ के समान।

संज्ञा पुं० तूतिया। नीला थोथा।

शिखिकुंद-संज्ञा पुं० [सं०] कुंदुरु। बिरोजा।

शिखिग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीला थोथा। (२) एक प्रकार नीला पत्थर। कांत पाषाण।

शिखिध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धूम्र। धूआँ। (२) कार्तिकेय। (३) वह जिस पर अग्नि या मोर का चिह्न बना हो। (४) एक प्राचीन तीर्थ का नाम। (५) मयूरध्वज नामक राजा। उ०—नृपति शिखिध्वज योद्धा जीतिगो संसार।—केशव।

शिखिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मयूरी। मोरनी। (२) मुर्गी। (३) मुर्गकेश। जटाधारी का पौधा।

शिखिप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] जंगली बेर।

शिखिमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] वरुण वृक्ष। बरिया।

शिखिमोदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।

शिखियूप-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकारी नाम का मृग।

शिखिवर्द्धक-संज्ञा पुं० [सं०] गोल कद्दू। गोल घीया।

शिखिवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय।

शिखिशृंग-संज्ञा पुं० [सं०] चित्र मृग। चित्तीवाला हिरन।

शिखिहिंटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेई। महाबला।

शिखींद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेंदू का पेड़। तिंदुक। (२) आबनूस का पेड़।

शिखी-वि० [सं० शिखिन्] [स्त्री० शिखिनी] शिखावाला। चोटीवाला।

संज्ञा पुं० (१) मोर। मयूर। उ०—कुटिल कच भ्रू तिलक रेखा सीस शिखी सिखंड।—सूर। (२) मुर्गा। (३) एक प्रकार का सारस। (४) बैल। साँड़। (५) घोड़ा। (६) चित्रक। चीते का पेड़। (७) अग्नि। उ०—आखंडल और दंडधर, शिखी वरुण दिगपाल।—गुमान। (८) (अग्नि तीन प्रकार की होने के कारण) तीन की संख्या। (९) दीपक। (१०) पित्त। (११) पुच्छल तारा। केतु। (१२)

मेथी। (१३) पर्वत। (१४) वृक्ष। (१५) ब्राह्मण। (१६) सतावर (१७)। बाण। तीर। (१८) जटाधारी साधु। (१९) एक नाग का नाम। (२०) इंद्र। (२१) बगला। बक। (२२) अपामार्ग। ओंगा। चिचड़ा। (२३) एक प्रकार का विष।

शिगाफ़-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) चीरा। नश्तर। (२) दरार। दर्ज़। (३) कलम के बीच का चिराव। (४) छेद। सूराख़।

मुहा०—शिगाफ़ देना या लगाना = (१) कलम को चीरना। (२) चीरा लगाना। नश्तर लगना।

शिगूड़ी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक जंगली क्षुप या पौधा जो दवा के काम में आता है।

विशेष—यह चरपरी, गरम तथा वात और दृष्ट शूल का नाश करनेवाली तथा दूसरी ओषधियों के योग से रसायन और शरीर को दृढ़ करनेवाली कही गई है।

शिगूफ़ा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) बिना खिला हुआ फूल। कली। (२) फूल। पुष्प। (३) किसी अनोखी बात का होना। चुटकुला।

मुहा०—शिगूफ़ा खिलाना = बात खड़ी करना। तमाशे के लिये कोई मामला पैदा कर देना। शिगूफ़ा खिलना = कोई ऐसी बात या झगड़ा खड़ा होना जिससे मनोरंजन हो। शिगूफ़ा फूलना = लना। (१) अनोखी बात निकलना। (२) मामला खड़ा होना। शिगूफ़ा छोड़ना = (१) कोई नई या अनोखी बात कहना। (२) तमाशा देखने के लिये कोई मामला खड़ा कर देना।

शिग्रु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सहिंजन का वृक्ष। शोभांजन। (२) शाक। साग।

शिग्रुज-संज्ञा पुं० [सं०] सहिंजन का बीज।

शिच्-संज्ञा स्त्री० [सं०] [कर्ता० शिक्] (१) जूए की रस्सी। (२) बहँगी का छींका या जाल जिस पर बोझ रखा जाता है।

शित-वि० [सं०] (१) कृश। दुर्बल। (२) नुकीला। पतला। (३) चोखा। धारदार।

संज्ञा पुं० विश्वामित्र के गोत्र के एक ऋषि का नाम।

⊛ वि० दे० "सित"।

शितद्रु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शतद्रु। सतलज। (२) क्षीर मोरट। मोरट।

शितनिर्गुंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शेफालिका।

शितपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] मोथा।

शितवर, शितवार-संज्ञा पुं० [सं०] शिरियारी नामक साग।

शितशाक-संज्ञा पुं० [सं०] शालिंच शाक। शालि शाक।

शिताद्रिकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णुक्रांता लता। अपराजिता। कोयल।

शिताफल-संज्ञा पुं० [सं०] शरीफा। सीताफल।

शिताब-क्रि० वि० [फ़ा०] सत्वर। शीघ्र।

शिताबी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) शीघ्रता। जल्दी। (२) तेज़ी। हड़बड़ी।

शितावर-संज्ञा पुं० [सं० शतावर] (१) बकुची। सोमराजी। (२) शिरियारी। (३) सतावर।

शितावरी-संज्ञा स्त्री० दे० "शतावर"।

शिति-वि० [सं०] (१) सफ़ेद। शुक्ल। श्वेत। (२) काला। कृष्ण। नीला।

यौ०—शितिकंठ।

संज्ञा पुं० भोजपत्र।

शितिकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दात्यूह पक्षी। मुर्गाबी। जल-काक। (२) पपीहा। चातक। (३) मोर। मयूर। (४) नाग देवता। (५) शिव। महादेव।

शितिकुंभ-संज्ञा पुं० [सं०] कनेर का पेड़। करवीर वृक्ष।

शितिकेश-संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद के एक अनुचर का नाम।

शितिचंदन-संज्ञा पुं० [सं०] कस्तूरी।

शितिचार-संज्ञा पुं० [सं०] शिरियारी नामक साग।

शितिच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] हंस।

शितिपक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] हंस।

शितिपृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग जो एक यज्ञ में मैत्रावरुण बना था।

शितिमूलक-संज्ञा पुं० [सं०] खस। उशीर।

शितिरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] नीलमणि। नीलम।

शितिसार, शितिसारक-संज्ञा पुं० [सं०] तिंदुक वृक्ष। तेंदू।

शितीषु-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक देवता उशना के एक पुत्र का नाम।

शित्पुट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिल्ली की जाति का एक जानवर। (२) एक प्रकार का काला भौंरा।

शिथिल-वि० [सं०] (१) जो कसा या जकड़ा न हो। जो खूब बँधा न हो। ढीला। (२) सुस्त। मंद। धीमा। (३) जिसमें और शक्ति न रह गई हो। थका हुआ। हारा हुआ। श्रांत। उ०—देह शिथिल भई उठ्यो न जाई।—सूर। (४) जो कार्य्य में पूर्ण तत्पर न हो। जो पूरा मुस्तैद न हो। आलस्ययुक्त। जैसे,—कार्य्य में शिथिल पड़ना। (५) जो अपनी बात पर खूब जमा न हो। अदृढ़। (६) जिसका पालन कड़ाई के साथ न हो। जिसकी पूरी पाबंदी न हो। जैसे,—नियम शिथिल होना। (७) जो साफ़ सुनाई न दे। अस्पष्ट। (शब्द) (८) जो पूरे दबाव में न रखा गया हो। छोड़ा हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

शिथिलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कसे या जकड़े न रहने का भाव। ढीलापन। ढिलाई। (२) थकावट। थकान। श्रांति। (३) मुस्तैदी का न होना। अतत्परता। आलस्य।

संज्ञा स्त्री० [सं० शिखरा] एक गदा जो विश्वामित्र ने रामचंद्र को दी थी। शिखरा। उ०—शिखरी कौमोदकी गदा युग दीपति भरी सदाई।—रघुराज।

शिखलोहित-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुकुरमुत्ता।

शिखांडक-संज्ञा पुं० [सं०] काकपक्ष।

शिखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुंडन के समय सिर के बीचो बीच छोड़ा हुआ बालों का गुच्छा जो फिर कटाया नहीं जाता और हिंदुओं का एक चिह्न है। चोटी। चुटैया।

यौ०—शिखासूत्र = चोटी और जनेऊ जो द्विजों के चिह्न हैं और जिनका त्याग केवल संन्यासियों के लिये विधेय है।

(२) मोर, मुर्गा आदि पक्षियों के सिर पर उठी हुई चोटी या परों का गुच्छा। चोटी। कलगी। (३) आग की लपट। ज्वाला। (४) दीपक की लौ। टेम। उ०—(क) केशौदास तामें दुरी दीप की शिखा सी दौरि दुरावति नीलवास दुति अँग अंग की।—केशव। (ख) दीप शिखा सम जुवति जन मन जनि होसि पतंग।—तुलसी। (५) प्रकाश की किरन। (६) नुकीला छोर या सिरा। नोक। (७) ऊपर को उठा हुआ भाग। चोटी। शिखर। (८) वस्त्र का अंचल। दामन। (९) पैर के पंजे का सिरा। (१०) स्तन का अग्र भाग। चूचक। (११) पेड़ की जड़। (१२) शाखा। डाली। (१३) अधिपति। नायक। (१४) श्रेष्ठ पुरुष। (१५) कलियारी विष। लांगली। (१६) मूर्वा। मरोड़फली। (१७) जटामासी। बालछड़। (१८) वच। (१९) शिफा। (२०) तुलसी। (२१) कामज्वर। (२२) एक वर्णवृत्त जिसके विषम पादों में २८ लघु मात्राएँ और अंत में एक गुरु होता है और सम पादों में ३० लघु मात्राएँ और अंत में एक गुरु होता है।

शिखाकंद-संज्ञा पुं० [सं०] शलजम। शलगम।

शिखातरु-संज्ञा पुं० [सं०] दीप-वृक्ष। दीवट। दीयट।

शिखाधर-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

शिखाधार-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

शिखापाश-संज्ञा पुं० [सं०] चोटी। चुंदी।

शिखापित्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें हाथ और पैर की उँगलियों में सूजन और जलन होती है।

शिखाबंधन-संज्ञा पुं० [सं०] सिर के बालों को मिलाकर बाँधने की क्रिया। चोटी बाँधना।

शिखाभरण-संज्ञा पुं० [सं०] सिर का आभूषण, मुकुट।

शिखामणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह रत्न जो सिर पर पहना जाय। (२) श्रेष्ठ व्यक्ति।

शिखामूल-संज्ञा पुं० [सं०] वह कंद जिसके ऊपर पत्तियों का गुच्छा हो।

शिखायती-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा। मरोड़फली।

शिखावर-संज्ञा पुं० [सं०] कटहल का वृक्ष। पनस।

शिखावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यक्ष। (महाभारत)

शिखावल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर। मयूर। (२) कटहल।

शिखावान्-वि० [सं० शिखावत्] [स्त्री० शिखावती] शिखावाला।

संज्ञा पुं० (१) अग्नि। (२) चित्रक वृक्ष। चीता। (३) केतु ग्रह। (४) मोर। मयूर।

शिखावृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] दीवट। दीयट।

शिखावृद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह ब्याज जो प्रति दिन बढ़ता जाय। सूद दर सूद।

शिखि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर। मयूर। उ०—चीर चारि करिहौं सगौहैं शिखनि शिखि लवलेस।—सूर। (२) तामस मन्वंतर के इंद्र का नाम। (३) कामदेव। (४) अग्नि। (५) तीन की संख्या।

शिखिकंठ-वि० पुं० [सं०] मोर के कंठ के समान।

संज्ञा पुं० तूतिया। नीला थोथा।

शिखिकुंद-संज्ञा पुं० [सं०] कुंदुरु। बिरोजा।

शिखिग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीला थोथा। (२) एक प्रकार नीला पत्थर। कांत पाषाण।

शिखिध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धूम्र। धूआँ। (२) कार्त्तिकेय। (३) वह जिस पर अग्नि या मोर का चिह्न बना हो। (४) एक प्राचीन तीर्थ का नाम। (५) मयूरध्वज नामक राजा। उ०—नृपति शिखिध्वज षोड़शौ जीतिगो संसार।—केशव।

शिखिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मयूरी। मोरनी। (२) मुर्गी। (३) मुर्गकेश। जटाधारी का पौधा।

शिखिप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] जंगली बेर।

शिखिमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] वरुण वृक्ष। तविया।

शिखिमोदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।

शिखियूप-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकारी नाम का मृग।

शिखिवर्द्धक-संज्ञा पुं० [सं०] गोल कद्दू। गोल घीया।

शिखिवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय।

शिखिशृंग-संज्ञा पुं० [सं०] चित्र मृग। चित्तीवाला हिरन।

शिखिहिंटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेई। महाबला।

शिखींद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेंदू का पेड़। तिंदुक। (२) आबनूस का पेड़।

शिखी-वि० [सं० शिखिन्] [स्त्री० शिखिनी] शिखावाला। चोटीवाला।

संज्ञा पुं० (१) मोर। मयूर। उ०—कुटिल कच भ्रू तिलक रेखा सीस शिखी सिखंड।—सूर। (२) मुर्गा। (३) एक प्रकार का सारस। (४) बैल। साँड़। (५) घोड़ा। (६) चित्रक। चीते का पेड़। (७) अग्नि। उ०—आखंडल और दंडधर, शिखी वरुण दिगपाल।—गुमान। (८) (अग्नि तीन प्रकार की होने के कारण) तीन की संख्या। (९) दीपक। (१०) पित्त। (११) पुच्छल तारा। केतु। (१२)

मेथी। (१३) पर्वत। (१४) वृक्ष। (१५) ब्राह्मण। (१६) सतावर (१७)। बाण। तीर। (१८) जटाधारी साधु। (१९) एक नाग का नाम। (२०) इंद्र। (२१) बगला। बक। (२२) अपामार्ग। ओंगा। चिचड़ा। (२३) एक प्रकार का विष।

शिगाफ-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) चीरा। नश्तर। (२) दरार। दर्ज। (३) कलम के बीच का चिराव। (४) छेद। सूराख।

मुहा०—शिगाफ देना या लगाना = (१) कलम को चीरना। (२) चीरा लगाना। नश्तर लगाना।

शिगूड़ी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक जंगली क्षुप या पौधा जो दवा के काम में आता है।

विशेष—यह चरपरी, गरम तथा वात और पृष्ठ शूल का नाश करनेवाली तथा दूसरी ओषधियों के योग से रसायन और शरीर को दृढ़ करनेवाली कही गई है।

शिगूफा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) बिना खिला हुआ फूल। कली। (२) फूल। पुष्प। (३) किसी अनोखी बात का होना। चुटकुला।

मुहा०—शिगूफा खिलाना = बात खड़ी करना। तमाशे के लिये कोई मामला पैदा कर देना। शिगूफा खिलना = कोई ऐसी बात या झगड़ा खड़ा होना जिससे मनोरंजन हो। शिगूफा फूलना = लना। (१) अनोखी बात निकलना। (२) मामला खड़ा होना। शिगूफा छोड़ना = (१) कोई नई या अनोखी बात कहना। (२) तमाशा देखने के लिये कोई मामला खड़ा कर देना।

शिग्रु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सहिंजन का वृक्ष। शोभांजन। (२) शाक। साग।

शिग्रुज-संज्ञा पुं० [सं०] सहिंजन का बीज।

शिच्-संज्ञा स्त्री० [सं०] [कर्ता० शिक्] (१) जूए की रस्सी। (२) बहँगी का छीका या जाल जिस पर बोझ रखा जाता है।

शित-वि० [सं०] (१) कृश। दुर्बल। (२) सुडौल। पतला। (३) चोखा। धारदार।

संज्ञा पुं० विश्वामित्र के गोत्र के एक ऋषि का नाम।

* वि० दे० "सित"।

शितद्रु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शतद्रु। सतलज। (२) क्षीर मोरट। मोरट।

शितनिर्गुंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शेफालिका।

शितपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] मोथा।

शितवर, शितवार-संज्ञा पुं० [सं०] शिरियारी नामक साग।

शितशाक-संज्ञा पुं० [सं०] शालिंच शाक। शालि शाक।

शिताद्रिकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णुक्रांता लता। अपराजिता। कोयल।

शिताफल-संज्ञा पुं० [सं०] शरीफा। सीताफल।

शिताब-क्रि० वि० [फ़ा०] जल्द। शीघ्र।

शिताबी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) शीघ्रता। जल्दी। (२) तेज़ी। हड़बड़ी।

शितावर-संज्ञा पुं० [सं० शतावर] (१) बकुची। सोमराजी। (२) शिरियारी। (३) सतावर।

शितावरी-संज्ञा स्त्री० दे० "शतावर"।

शिति-वि० [सं०] (१) सफेद। शुक्ल। श्वेत। (२) काला। कृष्ण। नीला।

यौ०—शितिकंठ।

संज्ञा पुं० भोजपत्र।

शितिकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दात्यूह पक्षी। मुर्गाबी। जलकाक। (२) पपीहा। चातक। (३) मोर। मयूर। (४) नाग देवता। (५) शिव। महादेव।

शितिकुंभ-संज्ञा पुं० [सं०] कनेर का पेड़। करवीर वृक्ष।

शितिकेश-संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद के एक अनुचर का नाम।

शितिचंदन-संज्ञा पुं० [सं०] कस्तूरी।

शितिचार-संज्ञा पुं० [सं०] शिरियारी नामक साग।

शितिच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] हंस।

शितिपक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] हंस।

शितिपृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग जो एक यज्ञ में मैत्रावरुण बना था।

शितिमूलक-संज्ञा पुं० [सं०] खस। उशीर।

शितिरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] नीलमणि। नीलम।

शितिसार, शितिसारक-संज्ञा पुं० [सं०] तिंदुक वृक्ष। तेंदू।

शितीषु-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक देवता उशना के एक पुत्र का नाम।

शित्पुट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिल्ली की जाति का एक जानवर। (२) एक प्रकार का काला भौंरा।

शिथिल-वि० [सं०] (१) जो कसा या जकड़ा न हो। जो खूब बँधा न हो। ढीला। (२) सुस्त। मंद। धीमा। (३) जिसमें और शक्ति न रह गई हो। थका हुआ। हारा हुआ। श्रांत। उ०—देह शिथिल भई ज्यों न आई।—सूर। (४) जो कार्य्य में पूर्ण तत्पर न हो। जो पूरा मुस्तैद न हो। आलस्ययुक्त। जैसे,—कार्य्य में शिथिल पड़ना। (५) जो अपनी बात पर खूब जमा न हो। अदृढ़। (६) जिसका पालन कड़ाई के साथ न हो। जिसकी पूरी पाबंदी न हो। जैसे,—नियम शिथिल होना। (७) जो साफ़ सुनाई न दे। अस्पष्ट। (शब्द) (८) जो पूरे दबाव में न रखा गया हो। छोड़ा हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

शिथिलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कसे या जकड़े न रहने का भाव। ढीलापन। ढिलाई। (२) थकावट। थकान। श्रांति। (३) मुस्तैदी का न होना। अतत्परता। आलस्य।

(४) नियम-पालन की कड़ाई का न होना। (५) शक्ति की कमी। सामर्थ्य की त्रुटि। (६) वाक्यों में शब्दों का परस्पर गठा हुआ अर्थ-संबंध न होना। (७) तर्क में किसी अवयव का अभाव।

शिथिलाई✱†–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "शिथिलता"।

शिथिलाना✱–क्रि॰ अ॰ [सं॰ शिथिल + आना (प्रत्य॰)] (१) शिथिल होना। ढीला पड़ना। (२) थकना। श्रांत होना। उ॰—करत सिंगार परस्पर दोऊ अति आलस शिथिलाने।—सूर।

शिथिलित–वि॰ [सं॰] जो शिथिल हो गया हो। ढीला पड़ा हुआ।

शिथिलीकरण–संज्ञा पुं॰ [सं॰] [वि॰ शिथिलीकृत] शिथिल करना। ढीला करना।

शिथिलीभूत–वि॰ [सं॰] जो शिथिल हो गया हो। ढीला पड़ा हुआ।

शिद्दत–संज्ञा स्त्री॰ [अ॰] (१) तेज़ी। ज़ोर। उग्रता। प्रचंडता। (२) अधिकता। ज्यादती। जैसे,—शिद्दत की गरमी या बुखार।

शिना–संज्ञा पुं॰ [सं॰] भुईं आँवला।

शिनाख्त–संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] (१) यह निश्चय कि अमुक वस्तु या व्यक्ति यही है। पहचान। जैसे,—तुम अपने माल की शिनाख़्त कर लो। (२) स्वरूप या गुण का बोध। असल-नकल, अच्छा-बुरा जान लेने की बुद्धि। परख। तमीज़। जैसे,—तुम्हें आदमी की शिनाख़्त नहीं है।

शिनि–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) गर्ग ऋषि के पुत्र का नाम। (२) क्षत्रियों का एक भेद। (३) एक यादव वीर का नाम।

विशेष—इन्होंने वसुदेव के लिये देवकी का बलपूर्वक हरण किया था। इस कारण इन का सोमदत्त के साथ भयंकर युद्ध हुआ था। इनके पुत्र का नाम सत्यक और पौत्र का सात्यकि था जो पांडवों की ओर से महाभारत में लड़ा था।

शिनिबाहु–संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक नदी का नाम। (वायुपुराण)

शिपि–संज्ञा पुं॰ [सं॰] रश्मि। किरण।

संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] चमड़ा। खाल।

शिपिविष्ट–संज्ञा पुं॰ [सं॰] कुष्ठी। कोढ़ी।

शिपुरगट्टी–संज्ञा स्त्री॰ [ता॰] एक प्रकार का पौधा जिसकी डाल के रेशे सुतली बनाने के काम में आते हैं।

शिफर‡✱–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ सिपर] ढाल। उ॰—रातएँ शिफर सुसरस बनाई। बान वृष्टि तिन सबै बचाई।—हनुमन्नाटक।

शिफा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) एक वृक्ष की रेशेदार जड़ जिससे प्राचीन काल में कोड़े बनते थे। (२) कोड़े की फटकार। चाबुक की मार। (३) माता। (४) हरिद्रा। हलदी। (५) कमल की जड़। पद्मकंद। भसींड़। (६) लता। (७) नदी। (८) एक प्राचीन नदी का नाम। (९) मांसिका। जटामासी। (१०) शिखा। चोटी।

शिफाकंद–संज्ञा पुं॰ [सं॰] कमल की जड़। भसींड़।

शिफाक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] पद्ममूल। भसींड़।

शिफाधर–संज्ञा पुं॰ [सं॰] डाल। शाखा।

शिफारुह–संज्ञा पुं॰ [सं॰] बरगद का पेड़। वट वृक्ष।

शिमाल–संज्ञा स्त्री॰ [अ॰] [वि॰ शिमाली] उत्तर दिशा।

शिमृड़ी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] चंगोनी या चिंगोनी नाम का पौधा।

शिया–संज्ञा पुं॰ [अ॰ शीआ] (१) मददगार। सहायक। (२) अनुयायी। (३) मुसलमानों के दो प्रधान और परस्पर विरोधी संप्रदायों में से एक। हज़रत अली को पैगंबर का ठीक उत्तराधिकारी माननेवाला संप्रदाय।

विशेष—उमर, अबूबक आदि जो चार ख़लीफ़ा मुहम्मद साहब के पीछे हुए हैं, उन्हें इस संप्रदाय के लोग अनधिकारी मानते हैं तथा पैगंबर के बाद अली और उनके बेटों हसन और हुसेन को ही आदर का स्थान देते हैं। मुहर्रम के महीने में ये अब तक हसन हुसैन के वीरगति को प्राप्त होने के दिनों में शोक मनाते हैं।

शिरःकपाली–संज्ञा पुं॰ [सं॰] कापालिक संन्यासी।

शिरःखंड–संज्ञा पुं॰ [सं॰] माथे की हड्डी। कपालास्थि।

शिरःपीड़ा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सिर का दर्द। माथे की पीड़ा।

विशेष—आयुर्वेद में ११ प्रकार के और यूनानी में १९ प्रकार के शिरोरोग कहे गए हैं; परंतु कोई कोई ११ प्रकार के सिरदर्द बताते हैं। आयुर्वेद के अनुसार वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, क्षयज, कृमिज, सूर्य्यावर्त्त, अनंतवात, अर्द्धाव-भेदक और शंखक ये ११ प्रकार के शिरोरोग होते हैं।

शिरःफल–संज्ञा पुं॰ [सं॰] नारिकेल वृक्ष। नारियल।

शिरःशूल–संज्ञा पुं॰ [सं॰] सिर की पीड़ा।

शिर–संज्ञा पुं॰ [सं॰ शिरस्] (१) सिर। कपाल। मुंड। खोपड़ा। (२) मस्तक। माथा। (३) किसी वस्तु का सब से ऊँचा भाग या अंत। सिरा। चोटी। (४) शिखर। (५) सेना का अग्र भाग। (६) पद्य के चरण का आरंभ। टीका। (७) मुखिया। प्रधान। अगुआ। (८) पिप्पली मूल। पिपरा मूल। (९) शय्या। (१०) विस्तर। (११) अजगर।

शिरकत–संज्ञा स्त्री॰ [अ॰] (१) किसी वस्तु के अधिकार में भाग। सम्मिलित अधिकार। साझा। हिस्सा। (२) किसी कार्य्य में योग। किसी काम या व्यवसाय में शामिल होना। जैसे,—उनकी शिरकत से यह काम होगा।

शिरखिस्त–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ शीरख़िश्त] एक वृक्ष का गोंद जो औषध के काम में आता है और जिसे साधारणतः लोग ज्वार से बनी चीनी मानते हैं।

शिरगोला-संज्ञा पुं० [देश०] दुग्धपाषाण नामक वृक्ष ।

शिरज-संज्ञा पुं० [सं०] केश । बाल ।

शिरत्रान-संज्ञा पुं० दे० "शिरस्त्राण" । उ०—टूटत धुजा पताक छत्र रथ चाप चक्र शिरत्रान ।—सूर ।

शिरनेत-संज्ञा पुं० [देश०] (१) गढ़वाल या श्रीनगर के आस पास का प्रदेश । उ०—सुनि सिधाय शिरनेतन देशू । तहँ विवाह किया महानरेशू ।—कबीर । (२) क्षत्रियों की एक शाखा ।

शिरपेंच-संज्ञा पुं० दे० "सिरपेंच" ।

शिरफूल-संज्ञा पुं० [हिं० शिर+फूल] सिर में पहनने का स्त्रियों का आभूषण । सीसफूल । उ०—माँग फूल शिरफूल सब, वेनी फूल बनाव ।—केशव ।

शिरमौर-संज्ञा पुं० [सं० शिरस्+सं० मुकुट, प्रा० मउड़] (१) शिरोभूषण । मुकुट । (२) श्रेष्ठ व्यक्ति । मुख्य व्यक्ति । प्रधान । (३) अधिपति । नायक ।

शिरश्चंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

शिरसिज-संज्ञा पुं० [सं०] केश । बाल ।

शिरसिरुह-संज्ञा पुं० [सं०] केश । बाल ।

शिरस्त्राण-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध आदि के समय सिर के बचाव के लिये पहनी जानेवाली लोहे की टोपी । कूँड़ । खोद ।

शिरहन*†-संज्ञा पुं० [हिं० शिर+आधान] (१) उसीसा । तकिया । (२) सिरहाना । मुड़वारी । उ०—(क) शिरहन ओर चरण की सोवन लगी अवधि नहिं आनी ।—रघुराज । (ख) ताके हृदय गर्व नहिं थोरा । बैठेउ जाइ शिरहने ओरा ।—सबल ।

शिरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रक्त की छोटी नाड़ी । खून की छोटी नली । वि० दे० "नाड़ी" । (२) पानी का सोता या धारा । (३) जाल के समान गुथी हुई रेखाएँ । (४) पानी खींचने का डोल । (५) पृथ्वी के भीतर भीतर बहनेवाला पानी का सोता ।

विशेष—आठों दिशाओं के स्वामियों के नाम से आठ शिराएँ प्रसिद्ध हैं—जैसे,—आग्नेयी, ऐंद्री, वारुणी । बीच में सबसे बड़ी शिरा या महाशिरा है । इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी शिराएँ हैं ।

संज्ञा पुं० [देश०] भूरे रंग का एक पक्षी जिसका सिर किरमिज़ी रंग का तथा पूँछ सफेद होती है । इसकी लंबाई १२ अंगुल के लगभग होती है । यह कुमाऊँ, काश्मीर और अफगानिस्तान में होता है और भटकटैया के बीज खाता है ।

शिराकत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) साझा । हिस्सेदारी । (२) कार्य्य में योग ।

शिराकतनामा-संज्ञा पुं० [अ०+फ़ा०] वह काग़ज़ जिस पर साझे की शर्तें लिखी हों ।

शिराग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वात रोग जिसमें वायु रुधिर के साथ मिलकर गले की नसों को काला कर देती है ।

शिराज्ञ-संज्ञा स्त्री० [देश०] हिंदुओं की एक जाति जो चमड़े का काम बहुत अच्छा करती है ।

शिराजाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटी रक्त नाड़ियों का समूह । (२) आँख का एक रोग जिसमें लाल डोरे मोटे और कड़े पड़ जाते हैं ।

शिरापत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीपल का पेड़ । (२) एक प्रकार का खजूर । हिंताल । (३) कैथ का पेड़ । कपित्थ ।

शिरापिड़िका-संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख का एक रोग जिसमें पुतली के पास एक फुंसी निकल आती है ।

शिराप्रहर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नेत्र-रोग ।

शिराफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारियल । (२) अंजीर ।

शिरामूल-संज्ञा पुं० [सं०] नाभि ।

शिरालु-संज्ञा पुं० [सं०] रीछ । भालू ।

शिरालक-वि० [सं०] बहुत नसों या नाड़ियोंवाला ।

संज्ञा पुं० एक प्राचीन जाति का नाम ।

शिरालक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा जिसे हाड़ा भाँग कहते हैं ।

शिराला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का पौधा । (२) कमरख ।

शिराविका पीड़िका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह घातक फुंसी जो बहुमूत्र के रोगियों को निकलती है । प्रमेह पीड़िका ।

शिरावृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु ।

शिराहर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नसों का झनझनाना । (२) आँख का एक रोग जिसमें आँख ताँबे के समान लाल हो जाती है और दिखाई नहीं पड़ता ।

शिरि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खड्ग । तलवार । (२) शर । (३) शलभ । पतिंगा । (४) टिड्डी ।

शिरियारी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक जंगली बूटी या शाक जो औषध के काम में आता है । सुसना । सुनिषण्णक ।

विशेष—यह तर जगह में होता है । इसमें चँगेरी के समान एक साथ चार चार पत्ते होते हैं जो एक अंगुल चौड़े और नोकदार होते हैं । पत्तों के बीच में कली लगती है । फलों में दो चिपटे बीज होते हैं जो कुछ रोईं दार होते हैं । ये बीज सुजाक में दिए जाते हैं । शिरियारी पंजाब और सिंध में अधिक होती है । वैद्यक में यह कसैली, रूखी, शीतल, हलकी, स्वादिष्ट, शुक्रजनक, रुचिकारी, मेधाजनक और त्रिदोष-नाशक कही गई है । इसका साग भी लोग खाते हैं ।

शिरीष-संज्ञा पुं० [सं०] सिरस का पेड़ ।

शिरीषक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिरिस का पेड़ । (२) एक नाग का नाम ।

शिरीषपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफ़ेद कटभी का पौधा ।

शिरीषी-संज्ञा पुं० [सं० शिरीषिन्] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम ।

शिरुआरी-संज्ञा स्त्री० दे० "शिरियारी" ।

शिरोगुहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर के तीन घटों या कोठों में से एक जिसमें मस्तिष्क और सुषुम्ना नाड़ी का सिरा रहता है। सिर के भीतर का भाग ।

शिरोगृह-संज्ञा पुं० [सं०] अट्टालिका । कोठा ।

शिरोगेह-संज्ञा पुं० [सं०] अट्टालिका । कोठा ।

शिरोग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] सिर का एक वात रोग । समल वाई ।

शिरोज-संज्ञा पुं० [सं०] बाल । केश ।

शिरोदाम-संज्ञा पुं० [सं० शिरोदामन्] पगड़ी । साफ़ा ।

शिरोधरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रीवा । गरदन ।

शिरोधाम-संज्ञा पुं० [सं०] चारपाई का सिरहाना ।

शिरोधार्य्य-वि० [सं०] (१) सिर पर धरने योग्य । आदरपूर्वक मानने के योग्य । सादर अंगीकार करने योग्य ।

मुहा०—शिरोधार्य्य करना = (१) सिर पर धारण करना । सिर माथे चढ़ाना । (२) आदरपूर्वक स्वीकार करना । आदर के साथ मानना । जैसे,—आज्ञा शिरोधार्य्य करना ।

शिरोधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रीवा । गरदन ।

शिरोधिजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिरा । नस । नाड़ी ।

शिरोपाव-संज्ञा पुं० दे० "सिरोपाव" ।

शिरोभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिर पर पहनने का गहना । जैसे,—सीस फूल । (२) मुकुट । (३) शिरोमणि । श्रेष्ठ व्यक्ति ।

शिरोभ्यंग-संज्ञा पुं० [सं०] सिर में तेल लगाने की क्रिया ।

शिरोमणि-संज्ञा पुं० स्त्री० [सं०] (१) सिर पर का रत्न । चूड़ामणि । (२) श्रेष्ठ व्यक्ति । सब से उत्तम मनुष्य । सिरताज । मुखिया । प्रधान । (३) माला में सुमेरु ।

शिरोमर्म्मा-संज्ञा पुं० [सं० शिरोमर्मन्] जंगली सूअर । शूकर ।

शिरोमाली-संज्ञा पुं० [सं० शिरोमालिन्] मुंड की माला धारण करनेवाले, शिव । महादेव ।

शिरोमौलि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिर का रत्न । (२) श्रेष्ठ व्यक्ति ।

शिरोरक्षी-संज्ञा पुं० [सं० शिरोरक्षिन्] सदा राजा के साथ रहनेवाला रक्षक । बाडी गार्ड ।

शिरोरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] शिरोमणि ।

शिरोरुजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सप्तपर्ण वृक्ष । सतिवन ।

शिरोरुह-संज्ञा पुं० [सं०] सिर के ऊपर के बाल । केश ।

शिरोवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] मोर या मुरगे की चोटी । कलगी ।

शिरोवस्ति-संज्ञा पुं० [सं०] वातज सिर के दर्द का एक उपचार ।

विशेष—उर्द के सने हुए आटे से सिर पर आठ या सोलह अंगुल की बाड़ बाँधकर बीच में गरम तेल भर दे और चार घड़ी रखकर निकाल डाले । इससे वातज शिरोरोग, कर्णरोग, ग्रीवा रोग और दाढ़ के रोग ४, ५ दिन के सेवन से अच्छे हो जाते हैं ।

शिरोवृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] गोल मिर्च । काली मिर्च ।

शिरोवृत्तफल-संज्ञा पुं० [सं०] लाल लौंगा । रक्त अपामार्ग। लाल चिचड़ा ।

शिरोवेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] उष्णीष । पगड़ी । साफ़ा ।

शिरोहर्त्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिर की पीड़ा । सिर का दर्द।

शिरोहर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नेत्र रोग जो शिरोत्पात की चिकित्सा न करने से हो जाता है ।

शिरोहारी-संज्ञा पुं० [सं० शिरोहारिन्] (१) सिरों [illegible] माला पहननेवाले, शिव । महादेव ।

शिलंडी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो सिंध, बलोचिस्तान, दक्षिण, मलाबार और लंका आदि के रेतीले स्थानों में बहुतायत से पाई जाती है । भारत से बाहर यह अरब और उत्तरी तथा मध्य अमेरिका में भी होती है । यह घास जिस स्थान पर होती है, उस स्थान पर जमीन में चावल की तरह के एक प्रकार के दाने भी होते हैं, जो पौधों से बिलकुल स्वतंत्र और अलग होते हैं । ग़रीब लोग इन दानों को उबालकर अथवा इनका आटा बनाकर खाते हैं । बीड़ ।

शिलंधिर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम ।

शिलंब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जुलाहा । तंतुवाय । (२) बुद्धिमान् । समझदार ।

शिल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "उंछ" । (२) पारिपात्र के एक पुत्र का नाम ।

संज्ञा स्त्री० (१) दे० "शिला" । (२) दे० "सिल" ।

शिलक-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम ।

शिलगर्भज-संज्ञा पुं० [सं०] पाषाण-भेद । पखानभेद ।

शिलज-संज्ञा पुं० [सं०] शैलज । भूरि छरीला ।

शिलरति-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो उंछ वृत्ति के द्वारा जीविका निर्वाह करता हो । उंछशील ।

शिलवट-संज्ञा स्त्री० दे० "सिलवट" ।

शिलवाहा-संज्ञा स्त्री० दे० "शिलावहा" ।

शिलांजनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कालांजनी वृक्ष । काली कपास ।

शिलांत-संज्ञा पुं० [सं०] अश्मंतक वृक्ष ।

शिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पाषाण । पत्थर । (२) पत्थर का बड़ा चौड़ा टुकड़ा । चट्टान । सिल । (३) मनःशिला । मैनसिल । (४) कपूर । (५) शिलाजीत । (६) गेरू । (७) नील का पौधा । (८) हरीतकी । हर्रे । (९) गोरोचन । (१०) दूब । (११) पत्थर की कंकड़ी अथवा बटिया । (१२) भूमि

में पड़ा हुआ एक एक दाना बीनने का काम। उंछवृत्ति। उ०—बीन्यो शिला क्षुधा बस छीना।—रघुराज। (१२) दे० "शिरा"।

शिलाकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शल्लकी वृक्ष। सलई।

शिलाकुट्टक-संज्ञा पुं० [सं०] पत्थर तोड़ने की छेनी।

शिलाकुसुम-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

शिलाक्षार-संज्ञा पुं० [सं०] चूना।

शिलाचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] शालग्राम की मूर्त्ति।

शिलाचय-संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़।

शिलाज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छरीला। पत्थर का फूल। (२) लोहा। (३) शिलाजीत।

शिलाजतु-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

शिलाजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद रंग का पत्थर। संगमरमर।

शिलाजीत-संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० शिलाजतु] काले रंग की एक प्रसिद्ध ओषधि जिसे कुछ लोग मोमियाई भी कहते हैं।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार यह ग्रीष्म ऋतु में सूर्य्य की किरणों से तपी हुई शिलाओं का रस है। निघंटु के अनुसार यह दो प्रकार का होता है—एक पर्वतों से निकलता है; और दूसरा खारी जमीन में मिट्टी और पानी के योग से बनता है। रस रत्नाकर इसकी उत्पत्ति सोने, चाँदी, लोहे और ताँबे से मानता है। परंतु यह प्रायः पहाड़ों पर या लोहे की खानवाले गड्ढे में ही मिलता है। ग्रंथों के अनुसार यह छः प्रकार का होता है। रसरत्न के अनुसार यह दो प्रकार का होता है। एक वह जिसमें से गोमूत्र के समान गंध आती है। यह साधारणतः बहुत मिलता है। और दूसरा कपूर के समान सफेद होता है। इसमें से किसी प्रकार की गंध नहीं आती। इसका रंग कई प्रकार का होता है। विंध्याचल का शिलाजीत सब से उत्तम कहा जाता है। इसको रासायनिक रीति से शुद्ध करके ओषधि के काम में लाते हैं। यह बड़ा ही गुणकारी और शक्तिवर्धक होता है। अनुपान भेद के अनुसार नाना प्रकार के रोगों के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। वैद्यक के अनुसार यह कड़वा, चरपरा, गरम, रसायन, छेदन, योगवाही, कफ, मेद, पथरी, शर्करा, सूजाक, क्षय, श्वास, वातरक्त, बवासीर, पांडुरोग, मृगी, उन्माद, खाँसी इत्यादि रोगों का नाश करनेवाला माना गया है।

पुराणों के अनुसार देवासुर संग्राम के समय जब अमृत निकालने के लिये देवताओं और राक्षसों ने समुद्र को, मंदराचल पर्वत को मथानी बनाकर मथा, तब शेषनाग के श्वास और मथने की गरमी से पर्वत के भीतर की धातुएँ पिघल गईं और पसीने के रूप में बहने लगीं। उसी स्राव का नाम शिलाजीत, गिरिस्वेद या शिलामल हुआ। पीछे से देवताओं ने ब्रह्मा और इंद्र का पूजन कर मनुष्यों के कल्याणार्थ मंदराचल का वही पसीना अन्य पर्वतों को दे दिया।

पर्य्या०—अगज। अद्रिज। शीतपुष्पक। अश्मलाक्षा। अश्मक। गैरेय। अर्थ्य। गिरिज। अश्मज।

शिलाटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत बड़ा मकान। अट्टालिका। (२) मकान के सब से ऊपरी भाग में बना हुआ छोटा कमरा। चौबारा। (३) किसी इमारत के चारों ओर बना हुआ बड़ा घेरा। चहारदीवारी। परकोटा। (४) गड्ढा।

शिलाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] रक्त पुनर्नवा। लाल गदहपूरना।

शिलात्मज-संज्ञा पुं० [सं०] लोहा।

शिलात्मिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोना या चाँदी गलाने की घरिया।

शिलात्व-संज्ञा पुं० [सं०] शिला का भाव या धर्म्म।

शिलात्वच्-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिला या वल्का नाम की ओषधि।

शिलाद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शिलाद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शैलेय नामक गंध द्रव्य। छरीला। (२) शिलाजीत।

शिलादान-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणों के अनुसार वह दान जिसमें किसी ब्राह्मण को शालग्राम की मूर्त्ति दी जाती है।

शिलादित्य-संज्ञा पुं० दे० "हर्षवर्धन"।

शिलाद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] शैलेय नामक गंध द्रव्य। छरीला।

शिलाधातु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोनगेरू। (२) खरिया मिट्टी। (३) चीनी। शक्कर।

शिलानिर्यास-संज्ञा पुं० दे० "शिलाजीत"।

शिलानीड़-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

शिलापट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पत्थर की चट्टान। उ०—धरी हेरे ही काम यह शिलापट्ट विधि लाय।—सीताराम। (२) मसाला आदि पीसने की सिल।

शिलापुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बट्टा जिससे सिल पर कोई चीज पीसी जाती है।

शिलापुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छरीला। शैलेय। पत्थर का फूल। (२) दे० "शिलाजीत"।

शिलाप्रसून-संज्ञा पुं० [सं०] शैलज या छरीला नामक गंध द्रव्य।

शिलाबंध-संज्ञा पुं० [सं०] वह प्राचीर या परकोटा जो पत्थरों के टुकड़ों से बना हो।

शिलामय-संज्ञा पुं० [सं०] छरीला। शैलज।

शिलाभिष्यंद-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

शिलाभेद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाषाण भेदी वृक्ष। पखानभेद। (२) पत्थर तोड़ने की छेनी।

शिलामल-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

शिलायु-संज्ञा पुं० [सं०] गले में होनेवाला एक प्रकार का रोग। इसमें कफ और रक्त के कुपित होने से गले में आँवले की गुठली के समान गाँठ उत्पन्न होती है जिसमें बहुत पीड़ा होती है। इसके कारण खाया हुआ अन्न गले में अटकता है। इसको गिलायु भी कहते हैं।

शिलायूप-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

शिलारंभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वन केला। काष्ठ कदली।

शिलारस-संज्ञा पुं० [सं०] लोहबान की तरह का एक प्रकार का सुगंधित गोंद।

विशेष—कुछ लोग इसे खनिज भी मानते हैं; पर वास्तव में यह एक वृक्ष का गोंद अथवा जमा हुआ दूध है। इसका वृक्ष पूरबी बंगाल, आसाम, भूटान, पेगू, चीन, मलाया, मेरगुई, जावा और यूनान में पाया जाता है। इसका वृक्ष ६० से १०० फुट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते ४½ इंच तक लंबे, जड़ की ओर गोलाकार, अनीदार और किंचित् बारीक कँगूरेदार होते हैं। शाखाओं के अंत में घुंडीदार फूल होते हैं। फल गोलाकार होते हैं जिनमें बीजों की अधिकता होती है। वैद्यक के अनुसार यह कड़वा, चरपरा, स्वादिष्ट, स्निग्ध, गरम, सुगंधित, वर्ण को सुंदर करनेवाला और त्रिदोष आदि को शांत करनेवाला होता है।

शिलालेख-संज्ञा पुं० [सं०] पत्थर पर लिखा या खोदा हुआ कोई प्राचीन लेख। पुराने लेख जो पत्थरों पर लिखे हुए पाए जाते हैं और जिनमें किसी प्रकार का अनुशासन या दान आदि उल्लिखित होता है।

शिलावर्षी-संज्ञा पुं० [सं० शिलावर्षिन्] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

वि० पत्थर बरसानेवाला।

शिलावल्का-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ओषधि जिसे शिलजा और श्वेता भी कहते हैं।

शिलावह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन जनपद का नाम। (२) इस जनपद का निवासी।

शिलावहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम।

शिलावृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश से ओले या पत्थर गिरना।

शिलावेश्म-संज्ञा पुं० [सं० शिलावेश्मन्] (१) कंदरा। गुफा। (२) पत्थर का बना हुआ मकान।

शिलाव्याधि-संज्ञा पुं० दे० "शिलाजीत"।

शिलासन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शैलेय नामक गंध द्रव्य। (२) पत्थर का बना हुआ आसन। (३) शिलाजीत।

शिलासार-संज्ञा पुं० [सं०] लोहा।

शिलास्वेद-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

शिलाहरि-संज्ञा पुं० [सं०] शालिग्राम की मूर्ति। उ०—भृगु मुनि कहा शिलाहरि धोई। काहु पान कछु दोष न होई।—विश्राम।

शिलाहारी-संज्ञा पुं० [सं० शिलाहारिन्] वह जो शिल या उंछ वृत्ति से अपना निर्वाह करता हो। उंछशील।

शिलाह्व, शिलाह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

शिलिंद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है और वैद्यक के अनुसार श्लेष्मवर्द्धक, हृद्य और वात-पित्तनाशक माना जाता है।

शिलि-संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र। भूर्ज वृक्ष।

संज्ञा स्त्री० चौखट के नीचे की लकड़ी। डेहरी। देहली।

शिलिन-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

शिलींध्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) केले का फूल। (२) ओला। बनौरी। (३) शिलिंद नामक मछली। (४) भुईँछत्ता। कुकुरमुत्ता। (५) कठकेला।

शिलींध्रक-संज्ञा पुं० [सं०] कुकुरमुत्ता। खुमी।

शिलींध्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केंचुआ। गंडूपदी। (२) मिट्टी। (३) एक प्रकार की चिड़िया।

शिली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देहलीज। (२) केंचुआ। गंडूपदी। (३) भोजपत्र। (४) बाण। (५) भाला। (६) मंडूक। मेंढक।

शिलीपद-संज्ञा पुं० [सं०] फीलपाँव नामक रोग। श्लीपद।

शिलीमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भ्रमर। भौंरा। उ०—(क) कुँवरि प्रसित श्रीखंड अहि भ्रम चरण शिलीमुख लाम।—सूर। (ख) कुंचित अलक सिलीमुख मानो लै मकरंद निदान।—सूर। (२) बाण। तीर। उ०—न डगैं न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायक है।—तुलसी। (३) युद्ध। समर। लड़ाई। (४) मूर्ख। बेवकूफ।

शिलु-संज्ञा पुं० [सं०] लिसोड़ा। बहुवार वृक्ष।

शिलूष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन ऋषि जो नाट्यशास्त्र के आचार्य माने जाते हैं। (२) बेल का वृक्ष।

शिलेय-वि० [सं०] शिला संबंधी। शिला का।

संज्ञा पुं० शिलाजीत।

शिलोंछ-संज्ञा पुं० [सं०] फसल कट जाने पर खेत में गिरे पड़े दाने चुनकर जीवन-निर्वाह करने की वृत्ति। शिल और उंछ वृत्ति।

शिलोंछन-संज्ञा पुं० [सं०] शिल और उंछ वृत्ति।

शिलोच्चय-संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़।

शिलोत्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छरीला या शैलेय नामक गंध द्रव्य। (२) शिलाजीत।

शिलोद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शैलेय। छरीला। (२) पीला चंदन।

शिलोद्भिदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाषाण भेद। पत्थर फोड़।

शिलौका-संज्ञा पुं० [सं० शिलौकस्] (१) वह जो पर्वत पर होता हो। (२) गरुड़।

शिल्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ से कोई चीज बनाकर तैयार करने का काम। दस्तकारी। कारीगरी। हुनर। जैसे,—बरतन बनाना, कपड़े सीना, गहने गढ़ना आदि। (२) कला संबंधी व्यवसाय। जैसे,—अब इस नगर के कई शिल्प नष्ट हो गए हैं।

शिल्पकर-संज्ञा पुं० दे० "शिल्पकार"।

शिल्पकला-संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथ से चीजें बनाने की कला। कारीगरी। दस्तकारी। उ०—सो सों लहि आदर्श पढ़त कर शिल्पकला सब।—श्रीधर।

शिल्पकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो हाथ से अच्छी अच्छी चीजें बनाकर तैयार करता हो। शिल्पी। कारीगर। दस्तकार। (२) राज। मेमार।

शिल्पकारक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शिल्पकारिका] हाथ से अच्छी अच्छी चीजें बनानेवाला कारीगर। शिल्पकार।

शिल्पकारी-संज्ञा पुं० [सं० शिल्पकारिन्] वह जो शिल्प का कार्य्य करता हो। कारीगर।

शिल्पगृह-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ बहुत से शिल्पी मिलकर चीजें बनाते हों। कारखाना।

शिल्पगेह-संज्ञा पुं० दे० "शिल्पगृह"।

शिल्पजीवी-संज्ञा पुं० [सं० शिल्पजीविन्] वह जो शिल्प के द्वारा जीविका निर्वाह करता हो। कारीगर। दस्तकार।

शिल्पज्ञ-वि० पुं० [सं०] शिल्प जाननेवाला। कारीगरी का जाननेवाला।

शिल्पता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिल्प का भाव या धर्म्म। शिल्पत्व।

शिल्पत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शिल्प का भाव या धर्म्म। शिल्पता।

शिल्पप्रजापति-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वकर्म्मा का एक नाम। (विश्वकर्म्मा ही समस्त शिल्पों के आविष्कर्त्ता और शिल्पियों के मूल पुरुष माने जाते हैं।)

शिल्पलिपि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्थर या ताँबे आदि पर अक्षर खोदने की विद्या।

शिल्पविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हाथ से अच्छी अच्छी चीजें बनाने की विद्या। (२) गृहनिर्म्माण कला। मकान आदि बनाने की विद्या।

शिल्पशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ बहुत से शिल्पी मिलकर तरह तरह की चीजें बनाते हों। कारखाना। शिल्पगृह।

शिल्पशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शास्त्र जिसमें हाथ से चीजें बनाने का निरूपण हो। शिल्पविद्या। (२) गृह-निर्म्माण का शास्त्र। वास्तु शास्त्र।

शिल्पिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो शिल्प द्वारा निर्वाह करता हो। कारीगर। दस्तकार। (२) शिव का एक नाम। (३) नाटक का एक भेद। शिल्पक।

शिल्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तृण जो दक्षिण में अधिकता से होता और ओषधि रूप में काम आता है। वैद्यक में यह मधुर तथा शीतल कहा गया है और इसके बीज बल तथा वीर्य्य बढ़ानेवाले माने गए हैं।

शिल्पिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिल्पी का स्त्रीलिंग रूप। (२) एक प्रकार की घास।

शिल्पिशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिल्पगृह। कारखाना।

शिल्पी-संज्ञा पुं० [सं० शिल्पिन्] (१) शिल्पकार। कारीगर। (२) राज। थवई। (३) चितेरा। चित्रकार। (४) नखी नामक गंध द्रव्य।

शिल्ह-संज्ञा पुं० दे० "शिलारस"।

शिल्हक-संज्ञा पुं० दे० "शिलारस"।

शिवंकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंगल करनेवाले, शिव। (२) तलवार। (३) शिव का एक गण। (४) रोग फैलानेवाले एक असुर का नाम। (५) एक प्रकार का बाल ग्रह।

शिवंतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुल दाउदी।

शिवंसा†-संज्ञा पुं० [सं० शिव+अंश] शस्य का वह अंश जो शैव साधुओं के लिये अनाज काटने के समय पृथक कर दिया जाता है।

शिव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंगल। कल्याण। क्षेम। (२) जल। पानी। (३) सेंधा नमक। (४) शृगाल। सियार। गीदड़। (५) खूँटा। (६) पारा। (७) गुग्गुल। (८) पुंडरीक वृक्ष। (९) मोक्ष। (१०) काला धतूरा। (११) वेद। (१२) देव। (१३) कीलक ग्रह। शुभ ग्रह। (१४) रुद्र। काल। (१५) वसु। (१६) एक प्रकार का मृग। (१७) एक प्रकार की गुड़ की शराब। (१८) कुश द्वीप तथा जंबू द्वीप के एक वर्ष का नाम। (१९) लिंग। (२०) एक प्रकार का नृत्य। (२१) एक छंद का नाम। इसके प्रत्येक चरण में ५,६ के विश्राम से ११ मात्राएँ और अंत में सगण, रगण, नगण में से कोई एक होता है। इसकी तीसरी, छठी और नवीं मात्राएँ लघु रहती हैं। (२२) परमेश्वर। भगवान। (२३) विष्कंभ आदि सत्ताइस योगों के अंतर्गत एक योग। (२४) समुद्र लवण। (२५) सुहागा। (२६) आँवला। (२७) कदंब। कदम। (२८) फिटकरी। (२९) सिंदूर। (३०) मिर्च। (३१) तिल का फूल। (३२) चंदन। (३३) लोहा। (३४) बालू। (३५) नीलकंठ पक्षी। (३६) कौआ। (३७) मौलसिरी का पेड़। (३८) हिन्दुओं के एक प्रसिद्ध देवता जो सृष्टि का संहार करनेवाले और पौराणिक त्रिमूर्त्ति के अंतिम देवता कहे गए हैं। वैदिक काल में यही रुद्र के रूप में पूजे

जाते थे; पर पौराणिक काल में ये शंकर, महादेव और शिव आदि नामों से प्रसिद्ध हुए। पुराणानुसार इनका रूप इस प्रकार है—इनके सिर पर गंगा, माथे पर चंद्रमा तथा एक और तीसरा नेत्र, गले में साँप तथा नर-मुंड की माला, सारे शरीर में भस्म, व्याघ्र-चर्म ओढ़े हुए और बाएँ अंग में अपनी स्त्री पार्वती को लिए हुए। इनके पुत्र गणेश तथा कार्त्तिकेय; गण भूत और प्रेत; प्रधान अस्त्र त्रिशूल; और वाहन बैल है जो नंदी कहलाता है। इनके धनुष का नाम पिनाक है, जिसे धारण करने के कारण ये पिनाकी कहे जाते हैं। इनके पास पाशुपत नामक एक प्रसिद्ध अस्त्र था जो इन्होंने अर्जुन को, उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर, दे दिया था। पुराणों में इनके संबंध में बहुत सी कथाएँ हैं। ये कामदेव का दहन करनेवाले और दक्ष का यज्ञ नष्ट करनेवाले माने जाते हैं। कहते हैं कि समुद्र-मंथन के समय जो विष निकला था, वह इन्होंने पान किया था। वह विष इन्होंने अपने गले में ही रखा और नीचे पेट में नहीं उतारा; इसलिये इनका गला नीला हो गया और ये नीलकंठ कहलाने लगे। परशुराम ने अस्त्र-विद्या की शिक्षा इन्हीं से पाई थी। संगीत और नृत्य के भी ये प्रधान आचार्य और परम तपस्वी तथा योगी माने जाते हैं। इनके नाम से एक पुराण भी है जो शिव-पुराण कहलाता है। इनके उपासक "शैव" कहलाते हैं। इनका निवास-स्थान कैलास माना जाता है और लोक में इनके लिंग का पूजन होता है।

पर्य्या—शंभु। महादेव। ईश्वर। ईश। विश्वनाथ। गिरीश। मृत्युंजय। त्रिलोचन। हर। उमापति। भैरव। भूतनाथ। काशीनाथ। नंदीश्वर। रुद्र। महाकाल। वासुदेव। जटाधर। पशुपति।

वि० कल्याण करनेवाला। मंगल करनेवाला।

शिवक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काँटा। कील। (२) खूँटा।

शिवकर—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के चौबीस जिनों में से एक जिन का नाम।

शिवकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।

शिवकांची—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध नगर।

विशेष—कृष्णा और पोलर नदी के बीच में स्थित कारोमंडल के एक भाग की राजधानी कांची थी। इसके दो हिस्से हैं—एक विष्णुकांची और दूसरा शिवकांची। शिवकांची उत्तर की ओर है। दक्षिण भारत के शैवों का यह एक प्रधान तीर्थ और सप्तपुरियों में से एक है।

शिवकांता—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिव की पत्नी, दुर्गा।

शिवकारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

शिवकारी—वि० [सं० शिवकारिन्] मंगल करनेवाला। कल्याण करनेवाला।

शिवकिंकर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का गण या दूत।

शिवकीर्त्तन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो शिव का कीर्तन करता हो। शैव। (२) विष्णु। (३) शिव के द्वारपाल।

शिवकेसर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गुल्म।

शिवक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कैलास।

शिवगंग—संज्ञा पुं० [सं० शिव + गंगा] मैसूर राज्य के एक पर्वत का नाम।

शिवगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नदी या जलाशय जो शिव जी के मंदिर के समीप हो।

शिवगति—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार एक अर्हत् का नाम।

शिवगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत।

शिवगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] शंकराचार्य्य के पिता का नाम जो विद्याधिराज के पुत्र थे।

शिवधर्म्मज—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह।

शिवचतुर्दशी—संज्ञा स्त्री० दे० "शिवरात्रि"।

शिवजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिवलिंगी लता। पचगुरिया।

शिवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिव का भाव या धर्म्म। उ०—शिव शिवता इनहीं सों लही।—सूर। (२) मनुष्य के शिव में लीन होने की अवस्था। मोक्ष।

शिवतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] काशी नामक स्थान जो शिव का प्रधान तीर्थ माना जाता है।

शिवतेज—संज्ञा पुं० [सं० शिवतेजस्] पारा। पारद।

शिवदत्त—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का चक्र। सुदर्शन चक्र।

शिवदारु—संज्ञा पुं० [सं०] देवदार वृक्ष।

शिवदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईशान कोण जिसके स्वामी शिव माने गए हैं।

शिवदूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।

शिवदूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) आठ योगिनियों में से अंतिम योगिनी का नाम।

शिवदैव—संज्ञा पुं० [सं०] आर्द्रा नक्षत्र जिसके अधिष्ठाता देवता शिव माने जाते हैं।

शिवद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] बिल्व वृक्ष। बेल का पेड़।

शिवद्विष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी। केवड़ा।

विशेष—केतकी का फूल शिवजी पर चढ़ाने का निषेध है; इसी से इसका यह नाम पड़ा है।

शिवधातु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारद। पारा। (२) गोदंती नामक मणि।

शिवनंदन—संज्ञा पुं० [सं०] शिवजी के पुत्र गणेश जी। उ०

विघ्नहरण गणनाथ, शिवनंदन कंदन कुमति । सुव पद नाऊँ माथ, करहु पूर संतन सुयश ।—रघुराज ।

शिवनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

शिवनाभि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शिव-लिंग जो और सब शिव-लिंगों में श्रेष्ठ माना जाता है ।

शिवनारायणी-संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं का एक संप्रदाय ।

शिवनिर्माल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पदार्थ जो शिव जी को अर्पित किया गया हो । शिव पर चढ़ा हुआ नैवेद्य आदि। (पुराणों में ऐसी चीजों के ग्रहण करने का निषेध है।) (२) वह चीज जो किसी प्रकार ग्रहण न की जा सकती हो । परम त्याज्य वस्तु । जैसे,—हमारे लिये तुम्हारी यह संपत्ति शिवनिर्माल्य है ।

शिवनृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] गति भेद के अनुसार एक प्रकार का नृत्य ।

शिवपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल ।

शिवपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] पारा । पारद ।

शिवपुर-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों का स्वर्ग जहाँ वे जैनसिद्धांतानुसार मुक्ति का सुख भोगते हैं । मोक्ष शिला ।

शिवपुराण-संज्ञा पुं० [सं०] अठारह पुराणों में से एक पुराण जो शैवपुराण भी कहा जाता है । यह शिव-प्रोक्त माना जाता है और इसमें शिव का माहात्म्य वर्णित है । अन्य पुराणों के अनुसार इसमें बारह संहिताएँ और २४००० श्लोक हैं । पर आज कल जो शिव पुराण मिलता है, उसमें केवल चार संहिताएँ और ७००० श्लोक पाए जाते हैं । इसी लिये कुछ लोगों का मत है कि शिवपुराण और वायु पुराण दोनों एक ही हैं । विष्णु, पद्म, मार्कंडेय, कूर्म, वराह, लिंग, ब्रह्मवैवर्त्त, भागवत और स्कंद पुराण में तो शिवपुराण का नाम है; पर मत्स्य, नारद और देवी भागवत में शिवपुराण के स्थान पर वायुपुराण का नाम मिलता है । कहते हैं कि शैव धर्म्म का प्रकाश करने के लिये शिव जी ने यह पुराण रचा था । इसमें निम्न लिखित बारह संहिताएँ हैं—विद्येश्वर, रौद्र, विनायक, भौम, मातृका, रुद्रैकादश, कैलास, शतरुद्र, कोटिरुद्र, सहस्र कोटिरुद्र, वायवीय और धर्म संहिता । इसके रचयिता भगवान वेदव्यास जी कहे जाते हैं । पर आज कल जो शिव पुराण मिलता है, उसमें केवल ज्ञान, विद्येश्वर, कैलास, वायवीय और धर्म्म आदि संहिताएँ ही पाई जाती हैं । किसी किसी शिवपुराण में सनत्कुमार संहिता और गया माहात्म्य भी मिलता है ।

शिवपुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिव जी की पुरी, वाराणसी । काशी ।

शिवपुष्पक-संज्ञा पुं० [सं०] आक का वृक्ष । मदार ।

शिवप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुद्राक्ष । (२) अगस्त । वक वृक्ष । (३) धतूरा । (४) भाँग । (५) स्फटिक । बिल्लौर ।

शिवप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

शिवप्रीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] बेल का वृक्ष । बिल्व ।

शिवबीज-संज्ञा पुं० [सं०] पारा जो शिव जी का वीर्य्य माना जाता है ।

शिवब्रह्मी-संज्ञा स्त्री० [सं०] संखाहुली । शंखपुष्पी ।

शिवभक्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शिव का उपासक हो । शैव ।

शिवमल्लक-संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन वृक्ष ।

शिवमल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वसु नामक पुष्प वृक्ष । (२) मदार । आक । (३) अगस्त वृक्ष । (४) शिवलिंगी । (५) धीवल्ली नामक कँटीला पेड़ ।

शिवमल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पाशुपति । मौलसिरी । (२) मदार । आक । (३) वक नामक वृक्ष । (४) लिंगिनी नाम की लता ।

शिवमात्र-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक बहुत बड़ी संख्या का नाम ।

शिवराजी-संज्ञा पुं० [हिं० शिव + राज] एक प्रकार का बहुत बड़ा कबूतर ।

शिवरात्र-संज्ञा स्त्री० दे० "शिवरात्रि" ।

शिवरात्रि-संज्ञा स्त्री० [सं०] फाल्गुन बदी चतुर्दशी । शिव चतुर्दशी । (इस दिन लोग शिव जी का पूजन करते और उनके उद्देश्य से व्रत रखते हैं ।)

शिवरानी-संज्ञा स्त्री० [सं० शिव + हिं० रानी] शिवजी की पत्नी, पार्वती । उ०—शिवरानी यों रति मुसुकाई । तब तनु धर शंकर घर आई ।—लल्लू ।

शिवलिंग-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव का लिंग या पिंडी जिसका पूजन होता है ।

शिवलिंगी-संज्ञा स्त्री० [सं० लिंगिनी] एक प्रकार की प्रसिद्ध लता जो चौमासे में जंगलों और झाड़ियों में बहुत अधिकता से मिलती है । इसकी डंडियाँ बहुत पतली और पत्ते करेले के पत्तों के समान ३ से ५ इंच के घेरे में गोलाकार, गहरे, कटे किनारेवाले और ५-७ भागों में विभक्त रहते हैं । पत्र-दंड की जड़ में ५-६ फूलों के छोटे छोटे गुच्छे लगते हैं । ये फूल पीले होते हैं । इसका व्यवहार ओषधि के रूप में होता है । वैद्यक के अनुसार यह चरपरी, गरम, दुर्गंधयुक्त, पौष्टिक, शोधक, गर्भ धारण करानेवाली और कुष्ठ आदि का नाश करनेवाली होती है । इसके फलने पर इसका सर्वांग ओषधि के निमित्त संग्रह किया जाता है । त्रिगुरिया । पचगुरिया ।

पर्य्या०—लिंगिनी । ईश्वरलिंगी । चित्रफला । बहुपत्रा । शिववल्लिका ।

शिवलोक-संज्ञा पुं० [सं०] शिवजी का लोक, कैलास । उ०—

सोने मंदिर सँवारई और चँदन सब लीप। दिया जो मन सिवलोक महँ उपना सिंहलद्वीप।—जायसी।

शिववल्लभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) सेवती। शतपत्री।

शिववल्लिका-संज्ञा स्त्री० दे० "शिवलिंगी"।

शिववल्ली-संज्ञा स्त्री० दे० "शिवलिंगी"।

शिववाहन-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का वाहन, बैल। नंदी।

शिववीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] पारा जो शिवजी का वीर्य्य माना जाता है।

शिववृषभ-संज्ञा पुं० [सं०] शिवजी की सवारी का बैल। उ०—बिराजतो जो तू भ्रमहरन ताकी सिखर पै। दिपैगो ज्यों गोरे शिववृषभ खोदी कलित है।—लक्ष्मणसिंह।

शिवशंकरी-संज्ञा स्त्री० [सं० शिवशंकरा] देवी की एक मूर्त्ति का नाम।

शिवशेखर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बक वृक्ष। (२) धतूरा। (३) शिव का मस्तक। (४) सफेद मदार।

शिवशैल-संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत।

शिवसायुज्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शैवों के अनुसार वह मोक्ष जिसमें मनुष्य शिव में लीन हो जाता है। (२) मृत्यु। मौत।

शिवसुंदरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

शिवांक-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त का वृक्ष। बक वृक्ष।

शिवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) पार्वती। गिरिजा। उ०—जेहि रस शिव सनकादि मगन भए शंभु रहत दिन साधा। सो रस दिये सूर प्रभु तोको शिवा न लहति अराधा।—सूर। (३) मुक्ति। मोक्ष। (४) शृगाली। सियारिन। उ०—शिवा चण्डशाला में बोली। कहे भवन धरणी जब डोली।—सबल। (५) [redacted]। हर्रे। हरीतकी। (६) सोआ नामक साग। (७) शमी। सफेद कीकर। (८) आँवला। (९) हलदी। (१०) दूब। (११) गोरोचन। (१२) श्यामा नाम की लता। (१३) एक बुद्धिशक्ति का नाम। (१४) धौ। धव। (१५) अनंतमूल।

शिवाकु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

शिवाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] रुद्राक्ष।

शिवाख्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी दूब।

शिवाघृत-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तैयार किया हुआ घृत। इसके प्रस्तुत करने के लिये गीदड़ का मांस, बकरी का दूध, मुलेठी, मजीठ, कुड़ा, लाल चंदन, पद्मकाठ, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, विडंग, देवदारु, दशमूल, श्यामा लता काकोली, हलदी, दारुहलदी, अनंतमूल, इलायची आदि पदार्थों को घी में डालकर घृतपाक की विधि से पकाते हैं। यह घृत पागलपन के लिये बहुत उपकारी माना जाता है। इसके अतिरिक्त वात, अपस्मार, मेह आदि में भी इसका व्यवहार होता है।

शिवाची-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशपत्री।

शिवाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वंशपत्री नामक तृण। (२) सफेद पुनर्नवा। (३) लाल पुनर्नवा। गदहपूरना। (४) हिंगुपत्री। (५) कठूमर।

शिवात्मक-संज्ञा पुं० [सं०] सेंधा नमक।

शिवाधूत-संज्ञा स्त्री० दे० "शतद्रु"।

शिवानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) जयंती वृक्ष।

शिवापीड़-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त या बक नामक वृक्ष।

शिवाप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिवा के पति, शिव। (२) बकरा, जिसके बलिदान से दुर्गा का प्रसन्न होना माना जाता है।

शिवाफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी वृक्ष। सफेद कीकर।

शिवाबलि-संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार वह नैवेद्य जो रात के समय देवी के सामने रखा जाता है और जिसमें मांस की प्रधानता होती है।

शिवायतन-संज्ञा पुं० दे० "शिवालय"।

शिवाराति-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता, जो गीदड़ (शिवा) का शत्रु होता है।

शिवारुत-संज्ञा पुं० [सं०] गीदड़ के बोलने का शब्द, जिससे यात्रा आदि के समय शुभाशुभ शकुन का विचार किया जाता है।

शिवालय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह मंदिर जिसमें शिव जी की मूर्त्ति या लिंग स्थापित हो। शिव जी का मंदिर। (२) कोई देव-मंदिर। (क्व०) (३) लाल तुलसी। (४) श्मशान। मसान। मरघट।

शिवाला-संज्ञा पुं० [सं० शिवालय] (१) शिव जी का मंदिर। शिवालय। (२) देव-मंदिर। (क्व०) (३) कोयला जलाने की भट्ठी। (बाजारू)

शिवालु-संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल। सियार। गीदड़।

शिवास्मृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] जयंती वृक्ष।

शिवाह्लाद-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त या बक नामक वृक्ष।

शिवाह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारद। पारा। (२) बरगद। वट वृक्ष। (३) मदार। आक।

शिवाह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्रजटा। शंकरजटा।

शिवि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंसक पशु। शिकारी जानवर। (२) भोजपत्र। (३) राजा उशीनर के पुत्र तथा ययाति के दौहित्र एक राजा का नाम जो अपनी दयालुता और दानशीलता के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि एक बार देवताओं ने इनकी परीक्षा लेने का विचार किया।

अग्नि ने कबूतर का रूप धारण किया और इंद्र ने बाज पक्षी का। कबूतर उड़ता उड़ता राजा शिवि की गोद में आ छिपा और कहने लगा कि यह बाज मेरे प्राण लेना चाहता है। आप इससे मेरी रक्षा करें। इतने में बाज भी वहाँ आ पहुँचा और कहने लगा कि यह कबूतर मेरा भक्ष्य है; आप यह मुझे दे दीजिए। शिवि ने और कुछ भोजन देकर बाज को संतुष्ट करना चाहा; पर बाज किसी प्रकार नहीं मानता था। अंत में राजा ने अपनी जाँघ में से मांस काटकर और कबूतर के बराबर तौलकर बाज को देना चाहा। पर ज्यों ज्यों राजा अपने शरीर से मांस काटकर तराजू पर रखते जाते थे, त्यों त्यों कबूतर भारी होता जाता था। अंत में राजा विवश होकर स्वयं तराजू के पलड़े पर बैठ गए। इस पर बाज ने संतुष्ट होकर कबूतर को भी छोड़ दिया और राजा का मांस भी नहीं लिया। तब से ये बहुत दानी और धर्मात्मा प्रसिद्ध हैं। उ०—अब बरनौं शिवि भूप की कथा परम रमणीय। शरणागत पालन कियो दै निज तनु कमनीय।—रघुराज।

शिविका–संज्ञा स्त्री० [सं०] पालकी या डोली नाम की सवारी। उ०—देखि पुष्ट पकरयो तिनकाहीं। ल्याय लगायो शिविका माहीं।—रघुराज।

शिविपिष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

शिविर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) डेरा। खेमा। निवेश। (२) फौज के ठहरने की जगह। पड़ाव। छावनी। (३) क़िला। कोट। उ०—राम शिविर अंगरेज नृप तहँ आए जिहि बार। तब हौंहू हाजिर रह्यो आदर सहित उदार।—मतिराम। (४) चरक के अनुसार एक प्रकार का तृण धान्य।

शिविरगिरि–संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

शिवीरथ–संज्ञा पुं० [सं०] पालकी। शिविका।

शिवेश–संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल। गीदड़। सियार।

शिवेष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगस्त वृक्ष। (२) बेल। श्रीफल।

शिवेष्टा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दूब।

शिवोद्भव–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

शिवोपनिषद्–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

शिशन–संज्ञा पुं० (१) दे० "सेशन"। (२) दे० "शिश्न"।

शिशिर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋतु जो माघ और फाल्गुन मास में होती है। उ०—गोपी ग्वाल गाइ ग्वाल गो सुत वै मलिन बदन कृष गात। परम दीन जनु शिशिर हिमी हत अंबुज गन बिन पात।—सूर। (२) जाड़ा। शीत काल। (३) हिम। (४) विष्णु। (५) एक प्रकार का अस्त्र। (६) सूर्य का एक नाम। (७) लाल चंदन।

वि० शीतल। ठंढा। (इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग यौगिक शब्दों के बनाने में उनके आरंभ में होता है। जैसे,—शिशिरकर।)

शिशिरकर–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा, जिसकी किरणें शीतल होती हैं।

शिशिरगु–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शिशिरता–संज्ञा स्त्री० [सं०] शिशिर का भाव या धर्म्म।

शिशिरमयूख–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शिशिरांत–संज्ञा पुं० [सं०] शिशिर ऋतु के अंत में होनेवाली ऋतु, वसंत। उ०—शिशिरांत की लक्ष्मी का दिया हुआ कलियों का गुच्छा पलास में शोभायमान हुआ।—लक्ष्मण-सिंह।

शिशिरांशु–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शिशिराद्रि–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जो सुमेरु के पश्चिम ओर बतलाया गया है।

शिशु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटा बच्चा, विशेषतः आठ वर्ष तक की अवस्था का बच्चा। छोटा लड़का। उ०—माथे मुकुट सुभग पीतांबर उर सोभित भृगु रेखा हो। शंख चक्र भुज चारि बिराजत अति प्रताप शिशु भेषा हो।—सूर। (२) पशुओं आदि का बच्चा। (३) कार्त्तिकेय का एक नाम।

शिशुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिशुमार या सूँस नामक जलजंतु। (२) शिशु। बच्चा। बालक। (३) एक प्रकार का वृक्ष। (४) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का साँप।

शिशुकृच्छ्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चांद्रायण व्रत जिसे शिशु चांद्रायण या स्वल्प चांद्रायण भी कहते हैं।

शिशुगंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका। मोतिया।

शिशुचांद्रायण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चांद्रायण व्रत जिसे स्वल्प चांद्रायण या कृच्छ्र चांद्रायण भी कहते हैं। इस व्रत में प्रातःकाल चार ग्रास और सायंकाल चार ग्रास भोजन करके निर्वाह किया जाता है।

शिशुता–संज्ञा स्त्री० [सं०] शिशु का भाव या धर्म्म। बचपन। शिशुत्व।

शिशुताई–संज्ञा स्त्री० दे० "शिशुता"। उ०—पशुमति भाग सुहागिनी हरि को सुत जाने। मुख मुख जोरि बतावई शिशुताई ठाने।—सूर।

शिशुत्व–संज्ञा पुं० [सं०] शिशु का भाव या धर्म्म। शिशुता। शैशव।

शिशुनाग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राक्षस का नाम। (२) भागवत के अनुसार एक राजा का नाम। (३) दे० "शैशुनाग"।

शिशुनामा–संज्ञा पुं० [सं० शिशुनामन्] ऊँट।

शिशुपन–संज्ञा पुं० दे० "शिशुता"।

शिशुपाल–संज्ञा पुं० [सं०] चेदि देश का एक प्रसिद्ध राजा जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ०—देश देश के नृपति जुरे सब भीष्म नृपति के धाम। रुक्म कह्यो शिशुपालहिं देहौं नहीं कृष्ण सों काम।—सूर।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि दमघोष के घर एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसके तीन आँखें और चार हाथ थे और जो जनमते ही गधे की तरह रेंकने लगा था। इससे डर कर माता-पिता ने इसका त्याग करना चाहा था; पर इतने में आकाशवाणी हुई कि यह शिशु बहुत ही बलवान् और वीर होगा; तुम लोग इस शिशु का पालन करो। (इसी लिये इसका नाम शिशुपाल रखा गया था।) इसका नाश करनेवाला भी पृथ्वी पर उत्पन्न हो चुका है। आकाशवाणी सुनकर शिशुपाल की माता ने आकाश की ओर देखकर पूछा कि इसका नाश कौन करेगा? फिर आकाशवाणी हुई कि जिस आदमी की गोद में आते ही इसकी तीसरी आँख और अतिरिक्त दोनों बाँहें जाती रहेंगी, वही इसके प्राण लेगा। दमघोष ने बहुत से राजाओं आदि को बुलाकर उनकी गोद में अपना पुत्र दिया; पर उसकी तीसरी आँख और दोनों अतिरिक्त भुजाएँ ज्यों की त्यों बनी रहीं। अंत में जब श्रीकृष्ण ने उसे गोद में लिया, तब उसके दो हाथ भी गिर गए और तीसरा नेत्र भी अदृश्य हो गया। इसपर शिशुपाल की माता ने श्रीकृष्ण से कहा कि तुम इसके सब अपराध क्षमा करना। श्रीकृष्ण ने प्रतिज्ञा की कि मैं इसके सौ अपराध तक क्षमा करूँगा।

बड़ा होने पर शिशुपाल बहुत पराक्रमी हुआ और अकारण ही श्रीकृष्ण से बहुत अधिक द्वेष रखने लगा। जब युधिष्ठिर ने अपने राजसूय यज्ञ के समय लोगों से पूछा कि यज्ञ का अर्घ्य किसे दिया जाय, और भीष्म ने उत्तर दिया—"श्रीकृष्ण को" तब शिशुपाल बहुत बिगड़ा और सब राजाओं को संबोधन करके श्रीकृष्ण की निंदा करने और उन्हें कुवाच्य कहने लगा। श्रीकृष्ण उसके कुवाच्य गिनते जाते थे। जब तक उसने सौ गालियाँ दीं, तब तक तो श्रीकृष्ण बिलकुल चुप थे; क्योंकि वे उसकी माता के सामने उसके सौ अपराध क्षमा करने की प्रतिज्ञा कर चुके थे। पर जब वह इतने पर भी शांत न हुआ और उसने एक और कुवाच्य कहा, तब श्रीकृष्ण ने तुरंत उसका सिर काट डाला।

शिशुपालक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दमघोष का पुत्र शिशुपाल। (२) केलि कदंब। नीम।

शिशुपालवध–संज्ञा पुं० [सं०] महाकवि माघ कृत एक प्राचीन काव्य जिसमें श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल के मारे जाने की कथा वर्णित है।

शिशुपालहा–संज्ञा पुं० [सं० शिशुपालहन्] शिशुपाल को मारनेवाले, श्रीकृष्ण।

शिशुमार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूँस नामक जलजंतु। (२) मगर की आकृतिवाला, नक्षत्र मंडल। (३) दे० "शिशुमार चक्र"। उ०—(क) मेरो रूप चक्र शिशुमारा। जामें सकल बँध्यो संसारा।—रघुराज। (ख) बहुत काल में सुति करि, जब डोल्यो शिशुमार। तब संध्या मैं भानु हिय, अस्ताचल संचार।—रघुराज। (४) कृष्ण। (५) विष्णु।

शिशुमार चक्र–संज्ञा पुं० [सं०] सब ग्रहों सहित सूर्य। सौर जगत्। उ०—अवध अनंद निहारी गगन पथ रुके भानु गति भूली। रुक्यो चक्र शिशुमार मार तेहि राम जन्म सुख फूली।—रघुराज।

शिशुमारमुखी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

शिशुवाहक–संज्ञा पुं० [सं०] जंगली बकरा।

शिशुवाह्यक–संज्ञा पुं० [सं०] शिशुवाहक। जंगली बकरा।

शिशूल–संज्ञा पुं० दे० शिशु"।

शिश्न–संज्ञा पुं० [सं०] पुरुष की उपस्थेंद्रिय। लिंग।

शिषल-संज्ञा पुं० दे० "शिष्य"। उ०—रामानुज के शिष ह्वै भयऊ। यह यश त्रिभुवन महँ भरि गयऊ।—रघुराज।

संज्ञा स्त्री० [सं० शिक्षा] सीख। शिक्षा। सिखावन। उ०—कहेउ सुमन शिष धर्म कुमारा। कीन्ह सकल सिर अंगीकारा।—सबलसिंह।

संज्ञा स्त्री० [सं० शिखंड या शिखा] बाल जो मुंडन के समय सिर पर छोड़े जाते हैं। उ०—कटि पट पीत पिछौरी बाँधे काकपच्छ शिष शीश। शर क्रीड़ा दिन देखत आवत नारद सुर तैंतीस।—सूर।

शिषरील–संज्ञा पुं० [सं०] ओंगा। अपामार्ग। चिचड़ा।

वि० [सं० शिखर + ई (प्रत्य०)] शिखर से युक्त। शिखरवाला। उ०—कोपि शिषरी गदा सम लव हन्यो ताके गात मैं। मोहि कपिपति गिर्‍यो श्रीहत यथा कुसुमित प्रात मैं।—श्यामविहारी मिश्र।

शिषाल–संज्ञा स्त्री० दे० "शिखा"। उ०—स्तुति वेद शिषा प्रभु केरी। पुराणदश मन लेहु निवेरी।—रघुराज।

शिषिल–संज्ञा पुं० दे० "शिष्य"। उ०—(क) जहँ शिषि तहँ ते गुरु पर्यंता। प्रगटे पशिनि पत्र अनंता।—रघुराज। (ख) अरु विचारि शिषि करौं न तोहीं। बाट न रोकु जान दे मोहीं।—विश्राम।

शिषी-संज्ञा पुं० दे० "शिखी"। उ०—यह कौन आवत है सखी मल पंक अंकित अंग। शिर केश लुंचित नग्न हाथ शिषी शिखंड सुरंग।—केशव।

शिष्ट-वि० पुं० [सं०] (१) जो अच्छी तरह धर्म का आचरण करता हो। धर्मशील। (२) शांत। धीर। (३) अच्छे स्वभाव और आचरणवाला। सुशील। (४) बुद्धिमान्। (५) सभ्य। सज्जन। भला आदमी। (६) अच्छा। उत्तम। श्रेष्ठ। (७) आचार व्यवहार में निपुण। शालीन। (८) आज्ञाकारी। (९) प्रसिद्ध। मशहूर।

संज्ञा पुं० (१) मंत्री। वज़ीर। (२) सभ्य। सभासद।

शिष्टता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिष्ट होने का भाव या धर्म। (२) सभ्यता। सज्जनता। भद्रता। (३) उत्तमता। श्रेष्ठता। (४) अधीनता।

शिष्टत्व-संज्ञा पुं० दे० "शिष्टता"।

शिष्टसभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] राज-सभा। राज्य परिषद्।

शिष्ट समाज-संज्ञा पुं० [सं०] वह समाज जिसमें पढ़े लिखे तथा सदाचारी व्यक्ति हों। भले आदमियों का समाज। सभ्य समाज।

शिष्टाचार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सभ्य पुरुषों के योग्य आचरण। भले आदमियों का सा बरताव। साधु व्यवहार। (२) आदर। सम्मान। खातिरदारी। (३) विनय। नम्रता। (४) वह अच्छा बरताव जो केवल दिखलाने के लिये किया जाय। दिखावटी सभ्य व्यवहार। जैसे,—शिष्टाचार की बात छोड़कर अपने आने का अभिप्राय कहो। (५) आव भगत। जैसे,—शिष्टाचार के अनंतर उन्होंने वार्तालाप आरंभ किया।

शिष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आज्ञा। अनुशासन। हुकुम। (२) शासन। हुकूमत। (३) दंड। सज़ा। (४) सुधार। (५) सहायता। मदद।

शिष्ण-संज्ञा पुं० दे० "शिश्न"।

शिष्य-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शिष्या] (१) वह जो शिक्षा या उपदेश देने के योग्य हो। (२) वह जो विद्या पढ़ने के उद्देश्य से किसी गुरु या आचार्य आदि के पास रहता हो। विद्यार्थी। अन्तेवासी। चेला। उ०—तीर चलावत शिष्य सिखावत धर निशान देखरावत। कबहुँक सभे अश्व चढ़ि आपुन नाना भाँति नचावत।—सूर। (३) (शिक्षक या गुरु के संबंध से) वह जिसने किसी से शिक्षा प्राप्त की हो। शागिर्द। चेला (४) (गुरु के संबंध से) वह जिसने किसी धार्मिक आचार्य से दीक्षा या मंत्र आदि ग्रहण किया हो। मुरीद। चेला। (५) वह जो हाल में श्रावक बना हो। (जैन)

शिष्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिष्य होने का भाव या धर्म। शिष्यत्व।

शिष्यत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शिष्य होने का भाव या धर्म। शिष्यता।

शिष्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सात गुरु अक्षर होते हैं। इसका दूसरा नाम "शीर्षरूपक" भी है।

शिस्त-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) मछली पकड़ने का काँटा। (२) निशाना। लक्ष्य।

मुहा०—शिस्त बाँधना = ताक लगाना। निशाना बाँधना।

(३) दूरबीन की तरह का एक प्रकार का यंत्र जिससे ज़मीन नापने के समय सीध आदि देखी जाती है। (४) अँगूठा।

शिस्तबाज़-संज्ञा पुं० [फा०] (१) निशाना लगानेवाला। निशानेबाज़। (२) शिस्त लगाकर मछली पकड़नेवाला।

शिह्लक-संज्ञा पुं० [सं०] शिलारस नाम का गंध द्रव्य।

शी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शांति। (२) शयन। सोना। (३) भक्ति।

शीकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधा बिरोजा। (२) तुषार। ओस। शबनम। (३) हवा। वायु। (४) जल कण। पानी की बूँद। (५) शीत। जाड़ा। (६) वर्षा की छोटी छोटी बूँदें। फुहार। (७) धूप। (जलाने का)

शीघ्र-क्रि० वि० [सं०] बिना विलंब। बिना देर के। चटपट। तुरंत। जल्द।

संज्ञा पुं० (१) लामज्जक या लामज नामक तृण। (२) भागवत के अनुसार कुरुवंशीय अग्निवर्ण के पुत्र का नाम। (३) वायु। हवा। (४) वह अंतर जो पृथ्वी के दो भिन्न भिन्न स्थानों से ग्रहों के देखने में होता है। (५) चक्रांग।

शीघ्रकारी-वि० [सं० शीघ्रकारिन्] (१) जल्दी से काम करनेवाला। शीघ्र कार्य्य करनेवाला। (२) शीघ्र प्रभाव उत्पन्न करनेवाला। (३) तीव्र। कड़ा। (पीड़ा आदि के लिये)

संज्ञा पुं० एक प्रकार का सन्निपात ज्वर जिसमें मूर्च्छा, तंद्रा, प्यास, श्वास और पार्श्व में पीड़ा होती है। यह असाध्य और मृत्यु का पूर्व रूप माना जाता है।

शीघ्रकोपी-वि० [सं०] (१) जल्दी गुस्सा होनेवाला व्यक्ति। (२) चिड़चिड़ा।

शीघ्रग-वि० [सं०] शीघ्र चलनेवाला। द्रुतगामी।

संज्ञा पुं० (१) सूर्य्य। (२) वायु। (३) खरगोश। (४) अग्निवर्ण के पुत्र का नाम।

शीघ्रगामी-वि० [सं० शीघ्रगामिन्] शीघ्र चलनेवाला। जल्दी या तेज़ चलनेवाला।

शीघ्रचेतन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो किसी बात को बहुत शीघ्र समझे। जल्दी बात समझनेवाला। चतुर। (२) कुत्ता। कुक्कुर।

शीघ्रजन्मा-संज्ञा पुं० [सं० शीघ्रजन्मन्] कंट करंज।

शीघ्रजीर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] चौलाई का साग।

शीघ्रता–संज्ञा स्त्री० [सं०] शीघ्र का भाव या धर्म्म। जल्दी। तेजी। फुरती।

शीघ्रत्व–संज्ञा पुं० [सं०] शीघ्र का भाव या धर्म्म। जल्दी। तेजी। फुरती।

शीघ्रपतन–संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री-सहवास के समय वीर्य्य का शीघ्र स्खलित हो जाना। स्तंभन शक्ति का अभाव। (वैद्यक में इसकी गणना एक प्रकार के नपुंसकत्व में की जाती है।)

शीघ्रपाणि–संज्ञा पुं० [सं०] वायु।

शीघ्रपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य वृक्ष।

शीघ्रवेधी–संज्ञा पुं० [सं० शीघ्रवेधिन्] शीघ्रता से बाण चलानेवाला। लघुहस्त।

शीघ्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक नदी का नाम। (२) दंती वृक्ष। उदुंबरपर्णी।

शीघ्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) विष्णु। (३) बिल्लियों का लड़ना।

शीत–वि० [सं०] (१) ठंढा। सर्द। शीतल। (२) शिथिल। सुस्त।

संज्ञा पुं० (१) जाड़ा। सर्दी। ठंढ। (२) दालचीनी। (३) बेंत। (४) लिसोढ़ा। (५) नीम। (६) कपूर। (७) एक प्रकार का चंदन। (८) ओस। तुषार। (९) पित्त पापड़ा। (१०) शीत काल। जाड़े का मौसिम। अगहन, पूस और माघ के महीने। (११) जुकाम। सरदी। प्रतिश्याय। (१२) जल। पानी।

शीतक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शीत काल। जाड़े का मौसिम। (२) बिच्छू। (३) वन समई। (४) वह जो हर काम में बहुत देर लगाता हो। दीर्घसूत्री। (५) बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम। (६) एक प्रकार का चंदन। (७) आलसी। सुस्त। काहिल। (८) संतोषी पुरुष।

शीत कटिबंध–संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी के उत्तर और दक्षिण के भूमि खंड के वे कल्पित विभाग जो भूमध्य रेखा से २३½ अंश उत्तर के बाद और २३½ अंश दक्षिण के बाद माने गए हैं। इन विभागों में जाड़ा बहुत अधिक पड़ता है। ये दोनों विभाग उष्ण कटिबंध के उत्तर और दक्षिण में कर्क और मकर रेखा के बाद पड़ते हैं।

शीतकण–संज्ञा पुं० [सं०] जीरा।

शीतकर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठंढी किरणोंवाला, चंद्रमा। (२) कपूर।

वि० शीतल करनेवाला। ठंढा करनेवाला।

शीतकषाय–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में किसी काष्ठौषध आदि का वह कषाय या रस जो उसे छ्गुने ठंढे पानी में रात भर भिगो रखने से तैयार होता है।

शीतकाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हेमंत ऋतु। अगहन और पूस के महीने। (२) जाड़े का मौसिम। हेमंत और शिशिर।

शीतकिरण–संज्ञा पुं० [सं०] शीत किरणोंवाला, चंद्रमा।

शीतकुंभ–संज्ञा पुं० [सं०] कनेर। कनैल।

शीतकुंभिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुंभीरिका नाम की लता। जल-कुंभी। कुंभी।

शीतकुंभी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जल में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की लता जिसे शीतली जटा भी कहते हैं।

शीतकुचिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] बरियारा। बला। खिरेंटी।

शीतकृच्छ्र–संज्ञा पुं० [सं०] मिताक्षरा के अनुसार एक प्रकार का व्रत जिसमें तीन दिन तक ठंढा जल, तीन दिन तक ठंढा दूध और तीन दिन तक ठंढा घी पीकर और तीन दिन तक बिना कुछ खाए पीए रहना पड़ता है।

शीतक्षार–संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध सोहागा।

शीतगंध–संज्ञा पुं० [सं०] चंदन। संदल।

शीतगात्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात ज्वर जिसमें रोगी का शरीर बहुत ठंढा रहता है; उसे श्वास, खाँसी हिचकी, मोह, कंप, अंतर्दाह और कै होती है; उसके शरीर में बहुत पीड़ा रहती है; उसका स्वर बिलकुल बदल जाता जाता है और वह बकता झकता है।

शीतगु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

शीतचंपक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दर्पण। शीशा। आइना। (२) प्रदीप। दीआ।

शीतच्छाया–संज्ञा पुं० [सं०] वट वृक्ष या बरगद, जिसकी छाया बहुत शीतल होती है।

वि० शीतल छायावाला।

शीतज्वर–संज्ञा पुं० [सं०] जाड़ा देकर आनेवाला बुखार। जूड़ी। जड़ैया।

शीतता–संज्ञा स्त्री० [सं०] शीत का भाव या धर्म्म। शीतत्व। ठंढक।

शीतत्व–संज्ञा पुं० [सं०] शीत का भाव या धर्म्म। शीतता। ठंढापन।

शीतदंत–संज्ञा पुं० [सं०] ठंढी वायु या ठंढे जल का दाँतों से लगना या एक प्रकार की वेदना उत्पन्न करना जो वैद्यक के अनुसार दाँतों का एक रोग माना गया है।

शीतदंतिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदंती। हाथीशुंडी।

शीतदीधिति–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा जिसकी किरणें शीतल होती हैं।

शीतद्रोप्य–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद जीरा।

शीतदूर्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद दूब।

शीतद्युति–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शीतद्रु–संज्ञा पुं० दे० "मोरट"।

शीतपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफ़ेद लजालू। सफ़ेद लाजवंती।
शीतपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अर्कपुष्पी। अंधाहुली।
शीतपल्लवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा जामुन। भूमि जंबु।
शीतपाकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकोली नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (२) ककही। महासमंगा।
शीतपाकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकोली नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (२) गुंजा। चोंटली। घुँघची। (३) ककही। अतिबला।
शीतपित्त-संज्ञा पुं० [सं०] जुड़-पित्ती नामक रोग। इसमें वात की अधिकता से सारे शरीर की त्वचा में चकत्ते पड़ जाते हैं और उनमें सूई चुभने की सी पीड़ा होती है। इसमें वमन, ज्वर और दाह भी होता है।
शीतपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छरीला। शैलेय। (२) केवटी मोथा। (३) सिरिस। शिरीष वृक्ष।
शीतपुष्पक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आक। अर्क। मदार। (२) केवटी मोथा। (३) छरीला। शैलेय।
शीतपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिबला। ककही। महासमंगा।
शीतपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिबला। ककही। कंघी।
शीतपूतना-संज्ञा स्त्री० [सं०] भावप्रकाश के अनुसार एक प्रकार का बालग्रह या बालरोग। इस रोग में बालक काँपता और खाँसता है, उसकी आँखें दुखती हैं और शरीर दुबला पड़ जाता है, शरीर से दुर्गंध आती है और उसे वमन तथा अतिसार होता है।
शीतप्रभ-संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।
शीतप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] पित्त पापड़ा। पर्पटक।
शीतफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गूलर। (२) पीलू। (३) अखरोट। (४) आँवला। (५) लिसोड़ा।
शीतफला संज्ञा स्त्री० [सं०] ककही। महासमंगा।
शीतभानु-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।
शीतभीरु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मल्लिका। मोतिया। (२) दे० "निर्गुंडी"।
शीतभीरुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मल्लिका। (२) एक प्रकार का शालिधान्य। (३) काली निर्गुंडी।
शीतमंजरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शेफालिका। निर्गुंडी।
शीतमयूख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।
शीतमरीचि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।
शीतमूलक-संज्ञा पुं० [सं०] खस। उशीर।
शीतमेह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह रोग।
शीतमेही-संज्ञा पुं० [सं० शीतमेहिन्] वह जिसे शीतप्रमेह रोग हो।
शीतरम्य-संज्ञा पुं० [सं०] प्रदीप। दीपक।
शीतरश्मि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

शीतरस-संज्ञा पुं० [सं०] ईख के कच्चे रस की बनी हुई एक प्रकार की मदिरा।
शीतरुच-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।
शीतरूह-संज्ञा पुं० [सं०] सफ़ेद कमल।
शीतल-वि० [सं०] (१) ठंढा। सर्द। गरम का उलटा। (२) क्षोभ या उद्वेग-रहित। जिसमें आवेश का अभाव हो। शांत। (३) प्रसन्न। संतुष्ट। तृप्त।

संज्ञा पुं० (१) कसीस। (२) छरीला। शैलेय। पत्थरफूल। (३) चंदन। (४) मोती। मुक्ता। (५) उशीर। खस। (६) बन समई। (७) लिसोड़ा। (८) चंपा। (९) राल। (१०) पदुमकाठ। (११) पीतचंदन। (१२) भीमसेनी कपूर। (१३) शाल वृक्ष। (१४) बर्फ़। हिम। (१५) केशव। मदार। (१६) चंद्रमा। (१७) जैनों का एक प्रकार का मत।
शीतलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मरुआ। मरुवक। (२) कुमुद।
शीतलचीनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० शीतल+चीन देश] कबाब चीनी।
शीतलच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] चंपा। चंपक।
शीतलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ठंढापन। सर्दी। (२) अमृतवल्ली। (३) जड़ता।
शीतलताई*-संज्ञा स्त्री० दे० "शीतलता"।
शीतलप्रद-संज्ञा पुं० [सं०] चंदन।
शीतलवातक-संज्ञा पुं० [सं०] अपराजिता। कोयल लता। विष्णुक्रांता।
शीतला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विस्फोटक रोग। चेचक। (२) एक देवी जो विस्फोटक की अधिष्ठात्री मानी जाती हैं। (३) आराम शीतला। (४) नीली दूब। (५) अर्कपुष्पी।
शीतलाषष्ठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ल पक्ष की छठी तिथि।
शीतलाष्टमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र कृष्ण पक्ष की अष्टमी। इस दिन शीतला देवी की पूजा होती है।
शीतली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जल में होनेवाला एक पौधा। शीतली जटा। पानड़ी। (२) श्रीवल्ली। (३) चेचक। विस्फोटक।
शीतवर-संज्ञा पुं० [सं०] शिरियारी। सुसना।
शीतवरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ककही। कंघी। (पौधा)
शीतवल्क-संज्ञा पुं० [सं०] गूलर। उदुंबर।
शीतवल्लभ-संज्ञा पुं० [सं०] पित्तपापड़ा। शाहतरा।
शीतवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली दूब।
शीतवासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जुही। यूथिका।
शीतवीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पदुम काठ। (२) पाषाणभेद। पखानभेद। (३) पित्तपापड़ा। (४) पाकड़। पकड़ी। (५) नीली दूब। (६) वच। वचा।

वि० खाने में जिसका प्रभाव ठंढा हो। जिसकी तासीर सर्द हो।
शीतवीर्य्यक-संज्ञा पुं० [सं०] पाकर। प्लक्ष वृक्ष।
शीतवृता-संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर का पेड़।
शीतशिव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेंधा नमक। (२) छरीला। पथरफूल। (३) सोआ। (४) शमी का पेड़। सफेद कीकर। (५) कपूर।
शीतशिवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद कीकर। शमी। (२) सौंफ।
शीतशूक-संज्ञा पुं० [सं०] जौ। यव।
शीतसंवासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जूही। शीतवासा।
शीत सन्निपात-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें शरीर सुन्न और ठंढा हो जाता है। पक्षाघात। अर्द्धांग।
शीतसह-संज्ञा पुं० [सं०] पीलू। झल वृक्ष।
शीतसहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निर्गुंडी। शेफालिका। (२) नेवारी। वासंती का पौधा। (३) मोतिया बेला। मल्लिका का एक भेद। (४) चमेली। (५) झलक वृक्ष। पीलू।
शीतांग-संज्ञा पुं० [सं०] शीत सन्निपात।
शीतांगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसपदी लता।
शीतांबु-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुद्धी नाम की घास।
शीतांशु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कर्पूर। कपूर। (२) चंद्रमा।
शीता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरदी। ठंढ। (२) एक प्रकार की दूब। (३) शिल्पिका घास। (४) तबर की छाल। (५) अमलतास।
शीताद-संज्ञा पुं० [सं०] दाँत के मसूड़ों का एक रोग जिसमें मसूड़े जगह जगह पक जाते हैं और उनमें से दुर्गंध निकलने लगती है।
शीताद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत।
शीताद्य-संज्ञा पुं० [सं०] शीतज्वर। जूड़ी।
शीतपत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी। महासमंगा।
शीताभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपूर। (२) चंद्रमा।
शीतार्त्त-वि० [सं०] शीत से पीड़ित। शीतालु।
शीताल-संज्ञा पुं० [सं०] हिंताल वृक्ष।
शीताश्म-संज्ञा पुं० [सं० शीताश्मन्] चंद्रकांत मणि।
शीतीभाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शीतलता। (२) मनोविकारों के वेग का न रह जाना। शांति। शम। (३) मोक्ष। मुक्ति।
शीतोदक-संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।
शीत्कार-संज्ञा पुं० दे० "सीत्कार"।
शीधु-संज्ञा पुं० [सं०] पकी हुई ईख के रस से बनी हुई मदिरा। सीधु।
शीधुगंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मद्य गंध। (२) बकुल वृक्ष। मौलसिरी।
शीन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मूर्ख। (२) अजगर।
वि० जमा हुआ।
शीफालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुंडी। शेफालिका।
शीभर-संज्ञा पुं० [सं०] मेंह की झड़ी।
शीभ्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) वृष। बैल।
शीर-वि० [सं०] नुकीला। तेज़।
संज्ञा पुं० अजगर।
संज्ञा पुं० [फ़ा० मि० सं० क्षीर] क्षीर। दूध।
शीरख़िश्त-संज्ञा पुं० [फ़ा०] हकीमी में एक रेचक ओषधि।
विशेष—कहते हैं कि यह ओषधि खुरासान में पेड़ों और पत्थरों पर ओस की बूँदों की तरह जमी हुई मिलती है।
शीरख़ोरा-संज्ञा पुं० [फ़ा० शीरख़्वार] (१) दूध पीता बच्चा। (२) अनजान बालक।
शीरमाल-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार की खमीरी रोटी जिस पर पकाते समय दूध का छींटा दिया जाता है।
शीरा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) चीनी मिला हुआ पानी। शर्बत। (२) चीनी या गुड़ को पकाकर शहद के समान गाढ़ा किया हुआ रस। चाशनी।
शीराज़ा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह बुना हुआ रंगीन या सफेद फीता जो किताबों की सिलाई की छोर पर शोभा और मज़बूती के लिये लगाया जाता है। (२) प्रबंध। इंतज़ाम। (३) सिलसिला।
मुहा०—शीराज़ा खुलना या टूटना = (१) टाँका टूटना। सिलाई खुल जाना। (२) प्रबंध का बिगड़ जाना। इंतज़ाम खराब होना।
शीरि-संज्ञा स्त्री० [सं०] रक्तनाड़ी। शिरा।
शीरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशपत्री नामक तृण।
शीरीं-वि० [फ़ा०] (१) मीठा। मधुर। (२) प्रिय। प्यारा।
शीरी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुश। कुशा। हरिदर्भ। (२) मूँज। (३) कलिहारी। लांगली।
शीरीनी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) मिठास। मीठापन। (२) खाने की वस्तु जिसमें खूब चीनी या मीठा पड़ा हो। मिठाई। मिष्टान्न। (३) बताशा। सिरनी।
क्रि० प्र०—चढ़ाना।
शीर्ण-वि० [सं०] (१) छितराया हुआ। टूटा फूटा हुआ। खंड खंड। (२) गिरा हुआ। च्युत। (३) जीर्ण। फटा पुराना। (४) मुरझाया हुआ। सूखकर सिकुड़ा हुआ। (५) सुखा हुआ। (६) कृश। दुबला पतला।
संज्ञा पुं० एक गंध द्रव्य। स्थौणेयक। थुनेर।
शीर्णदल-संज्ञा पुं० [सं०] नीम।

शीर्णपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कर्णिकार। कनियारी। (२) पठानी लोध। (३) नीम।
शीर्णपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] निंब। नीम।
शीर्णपाद-संज्ञा पुं० [सं०] यमराज।
विशेष—पुराणों में कथा है कि माता के शाप से यमराज के पैर क्षीण हो गए थे।
शीर्णपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सौंफ। मधुरिका। (२) सोआ।
शीर्णपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सौंफ।
शीर्णमाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन। पृश्निपर्णी।
शीर्णरोमक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गठिवन।
शीर्णवृंत-संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज।
शीर्णांघ्रि-संज्ञा पुं० [सं०] यम। वि० दे० "शीर्णपाद"।
शीर्त्ति-संज्ञा पुं० [सं०] तोड़ने फोड़ने की क्रिया। खंडन।
शीर्य-वि० [सं०] (१) टूटने फूटने योग्य। भंगुर। नाशवान्।
संज्ञा पुं० एक प्रकार की दूब या घास जिसका प्रयोजन यज्ञों में पड़ता था।
शीर्वि-वि० [सं०] (१) अपकारक। (२) हिंसक। (३) बर्बर। जंगली।
शीर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिर। मुंड। कपाल। (२) माथा। (३) सब से ऊपर का भाग। सिरा। चोटी। (४) सामना। अग्र भाग। (५) कालागुरु। काला अगर। (६) एक पर्वत का नाम। (७) एक प्रकार की घास।
शीर्षक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिर। मुंड। (२) माथा। (३) चोटी। सिरा। (४) राहु ग्रह। (५) सिर में लपेटने की माला। (६) अगर। (७) नारियल। नारिकेल वृक्ष। (८) टोप। शिरस्त्राण। कूँड़। (९) व्यवहार या अभियोग का निर्णय। फैसला। (१०) वह शब्द या वाक्य जो विषय के परिचय के लिये किसी लेख या प्रबंध के ऊपर लिखा जाय।
शीर्षण्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) टोप। कूँड़। (२) सुलझे हुए साफ़ बाल। (३) चारपाई का सिरहाना।
शीर्षपट्टक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिर में लपेटने का कपड़ा। (२) पगड़ी। मुरेठा। साफ़ा।
शीर्षबिंदु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिर के ऊपर और ऊँचाई में सब से ऊपर का स्थान। (२) मोतिया बिंद।
शीर्षवर्त्तन-संज्ञा पुं० [सं०] अभियोग चलानेवाले का उस दशा में दंड सहने के लिये तैयार होना जब कि अभियुक्त ने दिव्य परीक्षा देकर अपने को निर्दोष प्रमाणित कर दिया हो। शिरोपरपादी।
शील-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चाल व्यवहार। आचरण। वृत्ति। चरित्र। (२) स्वभाव। प्रकृति। आदत। मिज़ाज। (३) अच्छा चाल-चलन। उत्तम आचरण। सद्वृत्ति।
विशेष—बौद्ध शास्त्रों में दस शील कहे गए हैं—हिंसा, स्तेय, व्यभिचार, मिथ्याभाषण, प्रमाद, अपराह्न भोजन, नृत्य गीतादि, मालागंधादि, उच्चासन-शय्या, और द्रव्यसंग्रह इन सब का त्याग। कहीं कहीं पंचशील ही कहे गए हैं। यह शील छः या दस पारमिताओं में से एक है और तीन प्रकार का कहा गया है—संभार, कुशलसंग्राह और सत्त्वार्थ क्रिया।
(४) उत्तम स्वभाव। अच्छी प्रकृति। अच्छा मिज़ाज। (५) दूसरे का जी न दुखे, यह भाव। कोमल हृदय। (६) संकोच का स्वभाव। मुरौवत।
मुहा०—शील तोड़ना = दूसरे के जी दुखने न दुखने का ध्यान न रखना। मुरौवत न रखना। आँखों में शील न होना = दे० "आँख" के मुहा०
(७) अजगर।
वि० प्रवृत्त। तत्पर। प्रवृत्तिवाला। स्वभावयुक्त। जैसे,—दानशील, पुण्यशील।
शीलवान्-वि० [सं० शीलवत्] [स्त्री० शीलवती] (१) अच्छे आचरण का। सात्त्विक वृत्ति का। (२) अच्छे या कोमल स्वभाव का। मुरौवतवाला। सुशील।
शीला-संज्ञा स्त्री० [सं०] कौंडिन्य मुनी की पत्नी का नाम।
शीवल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छरीला। शैलेय। पथरफूल। (२) सेवार।
शीवा-संज्ञा पुं० [सं०] अजगर।
शीश†-संज्ञा पुं० दे० "शीर्ष"।
शीशम-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का पेड़ जिसका तना भारी, सुंदर और मज़बूत होता है।
विशेष—यह पेड़ बहुत ऊँचा और सीधा जाता है। इसकी पत्तियाँ छोटी और गोल होती हैं। लकड़ी लाल रंग की होती है और मज़बूती तथा सुंदरता के लिये प्रसिद्ध है। इससे पलंग, कुरसी, मेज़ आदि सजावट के सामान बहुत बढ़िया बनते हैं।
शीशमहल-संज्ञा पुं० [फ़ा० शीश + अ० महल] (१) वह कमरा या कोठरी जिसकी दीवारों में सर्वत्र शीशे जड़े हों। (२) काँच का मकान।
मुहा०—शीश महल का कुत्ता = पागल कुत्तों की तरह बकने या उछलनेकूदनेवाला। (शीशे में अपना ही प्रतिबिंब देख देखकर कुत्ता घबराता और भूँकता है।)
शीशा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक मिश्र धातु, जो बालू या रेह या खारी मिट्टी को आग में गलाने से बनती है। यह पारदर्शक होती है तथा खरी होने के कारण थोड़े आघात से टूट जाती

है। काँच। (२) काँच का वह खंड जिसमें सामने की वस्तुओं का ठीक प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है और जिसका व्यवहार चेहरा देखने के लिये किया जाता है। दर्पण। आइना। (३) झाड़ फ़ानूस आदि काँच के बने सजावट के समान।

मुहा०—शीशा बाशा = बहुत नाजुक चीज़। शीशे में उतारना = (१) भूत छुड़ाना। प्रेत बाधा शांत करना। (२) वश करना। मोहित करना।

शीशी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० शीशा] शीशे का छोटा पात्र जो तेल, इत्र, दवा आदि रखने के काम में आता है। काँच की लंबी कुप्पी।

मुहा०—शीशी सुँघाना = क्लोरोफार्म सुँघाना। दवा सुँघाकर बेहोश करना। (शल्य चिकित्सा आदि के समय रोगी इस प्रकार क्लोरोफार्म सुँघाकर बेहोश किए जाते हैं।)

शुंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वट वृक्ष। (२) आँवला। (३) पाकड़। पकड़ी। (४) नव पल्लव। (५) फूल के नीचे का आधार या कटोरी। (६) एक क्षत्रिय वंश जो मौर्यों के पीछे मगध के सिंहासन पर बैठा था।

विशेष—इस वंश का स्थापक मौर्यों का सेनापति पुष्यमित्र था जिसने मौर्य वंश के अंतिम राजा बृहद्रथ को मार कर ईसा से १८५ वर्ष पूर्व उसके साम्राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया था।

शुंगी-संज्ञा पुं० [सं० शुंगिन्] (१) पाकड़ का पेड़। पाकर। (२) वट वृक्ष।

शुंठि, शुंठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोंठ।

शुंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी की सूँड़। (२) हाथी का मद जो उसकी कनपटी से बहता है।

शुंडक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का रणवाद्य। भेरी। (२) मद्य उतारने या बेचनेवाला।

शुंडरोह-संज्ञा पुं० [सं०] अगिया घास। भूतृण।

शुंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूँड़। (२) मद्यपान करने का स्थान। हौली। (३) शराब। (४) वेश्या। (५) कुटनी।

शुंडादंड-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी की सूँड़।

शुंडार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी की सूँड़। (२) साठ वर्ष का हाथी। (३) मद्य उतारने या बेचनेवाला।

शुंडाल-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

शुंडिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मद्य बिकने का स्थान। कलवरिया। (२) एक प्राचीन जाति का नाम जिसका व्यवसाय मद्य उतारना और बेचना था।

शुंडिमूषिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] छछूँदर।

शुंडी-संज्ञा पुं० [सं० शुंडिन्] (१) (सूँड़वाला) हाथी। (२) मद्य बनानेवाला। कलवार।

संज्ञा स्त्री० (१) हाथीसूँड़ी का पौधा। (२) गले का कौआ। घाँटी।

शुंभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर जिसे दुर्गा ने मारा था।

विशेष—यह प्रह्लाद का पौत्र और गवेष्ठी का पुत्र था। इसके भाई का नाम निशुंभ था।

शुंभघातिनी, शुंभमर्दिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

शुंभपुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुंभ राक्षस की पुरी। एकचक्रा पुरी। हरिगृह।

विशेष—विद्वानों का अनुमान है कि मध्य प्रदेश में गोंडवाना के अंतर्गत जबलपुर ही प्राचीन शुंभपुरी है।

शुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तोता। सुग्गा। (२) एक प्रकार की गठिवन। (३) सिरिस का पेड़। (४) सोना पाठा। (५) लोध का वृक्ष। (६) तालीशपत्र। (७) भरभंडा। सत्यानाशी। (८) रावण के एक दूत का नाम। (९) शुकदेव। (१०) वस्त्र। कपड़ा। (११) कपड़े का आँचल। (१२) पगड़ी। साफ़ा।

शुककर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा।

शुककीट-संज्ञा पुं० [सं०] हरे रंग का एक फतिंगा जो खेतों में दिखाई पड़ता है।

शुककूट-संज्ञा पुं० [सं०] दो खंभों के बीच में शोभा के लिये लटकाई हुई माला।

शुकच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तोते का पर। (२) ग्रंथिपर्ण। गठिवन। (३) तेजपत्ता।

शुकजिह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुआठोंठी नामक पौधा।

शुकतरु-संज्ञा पुं० [सं०] शिरीष वृक्ष।

शुकतुंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तोते की चोंच। (२) हाथ की एक मुद्रा जो तांत्रिक पूजन में बनाई जाती है।

शुकतुंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुकजिह्वा या सूआ ठोंठी नामक पौधा।

शुकदेव-संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णद्वैपायन व्यास के पुत्र जो पुराणों के भारी वक्ता और ज्ञानी थे।

विशेष—इन्होंने राजा परीक्षित को उनके मरने के पहले मोक्ष धर्म का उपदेश दिया था। कहा जाता है कि वही उपदेश भागवत पुराण है।

शुकद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] शिरीष वृक्ष।

शुक-नलिका-न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] तोता जिस प्रकार फँसाने की नली (नलनी) में लोभ के कारण फँस जाता है, वैसे ही फँसने की रीति।

विशेष—सूर, तुलसी आदि हिंदी के कवियों ने भी "नलनी के सुअटा" पद का व्यवहार किया है।

शुकनामा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुकजिह्वा या सूआ ठोंठी नामक पौधा।

शुकनाशन-संज्ञा पुं० [सं०] चकवँड़। चक्रमर्द।

शुकनास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपिकच्छु । केवाँच । कौंछ । (२) शुकजिह्वा । सुआ ठोंठी । (३) गंभारी । (४) नलिका । (५) दयोनाक वृक्ष । सोनर । (६) सोनापाठा । (७) अगस्त का पेड़ ।

शुकनासा-संज्ञा स्त्री० दे० "शुकनास" ।

शुकपुच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] गंधक ।

शुकपुच्छक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की गठिवन । थुनेर ।

शुकपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) थुनेर । (२) सिरिस का पेड़ । (३) गंधक । (४) अगस्त का पेड़ ।

शुकप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिरिस का पेड़ । (२) कमरख ।

शुकप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीम । (२) जामुन ।

शुकफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आक । मदार । (२) सेमर ।

शुकबर्ह-संज्ञा पुं० [सं०] गठिवन ।

शुकराज-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसके फल कड़ुए होते हैं ।

शुकराना-संज्ञा पुं० [अ० शुक्र] (१) शुक्रिया । कृतज्ञता । (२) वह धन जो कार्य्य हो जाने के पश्चात् धन्यवाद के रूप में किसी को दिया जाय । जैसे,—वकीलों का शुकराना, जमींदारों का शुकराना इत्यादि ।

शुकवल्लभ-संज्ञा पुं० [सं०] अनार । दाड़िम ।

शुकवाह-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव, जिसका वाहन शुक या तोता माना गया है ।

शुकशावक-संज्ञा पुं० [सं०] बकायन ।

शुकशिंबा, शुकशिंबि-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिकच्छु । किवाँच ।

शुकशीर्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) थुनेर । स्थौणेयक । (२) तालीस । (३) तेजपत्ता ।

शुकाख्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुकजिह्वा नामक पौधा ।

शुकादन-संज्ञा पुं० [सं०] अनार ।

शुकानना-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुकाख्या नामक पौधा ।

शुकायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुद्ध । (२) अर्हत ।

शुकाह्व, शुकाह्वय-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का मोथा ।

शुकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मादा तोता । सुग्गी । (२) कश्यप की पत्नी का नाम ।

शुकेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] शिरीष वृक्ष । सिरिस ।

शुकोदर-संज्ञा पुं० [सं०] तालीस वृक्ष ।

शुक्त-वि० [सं०] (१) सड़ा कर खट्टा किया हुआ । खमीर उठाया हुआ । (२) खट्टा । अम्ल । (३) कड़ा । कठोर । (४) अप्रिय । नापसंद । (५) निर्जन । सुनसान । उजाड़ । (६) श्लिष्ट । मिला हुआ ।

संज्ञा पुं० (१) अम्लता । खटाई । (२) वसिष्ठ के एक पुत्र का नाम । (३) सड़ा कर खट्टी की हुई कोई वस्तु । (४) काँजी । (५) सिरका । (६) चुक । (७) मांस । (८) कठोर वचन ।

शुक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चुक्रिका का पौधा । चूका । (२) काँजी ।

शुक्ताम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] चुक्रिका शाक । चुक का साग ।

शुक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सीप । सीपी । (२) ताल की सीपी । सुतुही । (३) शंख । (४) दो कर्ष या चार तोले की एक तौल । (५) बेर । (६) नखी नामक गंध द्रव्य । (७) अर्श । बवासीर । (८) आँख का एक रोग जिसमें सफेद ढेले के ऊपर मांस की एक बिंदी सी निकल आती है । (९) कपाल जो काली या कापालिकों के हाथ में रहता है । (१०) हड्डी । (११) घोड़े की गरदन की एक भौंरी ।

शुक्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का नेत्र रोग । (२) गंधक ।

शुक्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सीप । सीपी । (२) चुक्रिका शाक । चुक नाम का साग । (३) आँख का शुक्ति नामक रोग ।

शुक्तिज-संज्ञा पुं० [सं०] मुक्ता । मोती ।

शुक्तिपत्र, शुक्तिपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] छतिवन । सप्तपर्ण वृक्ष ।

शुक्तिबीज, शुक्तिमणि-संज्ञा पुं० [सं०] मोती ।

शुक्तिमती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक नदी का नाम । (२) चेदि की राजधानी ।

शुक्तिमान्-संज्ञा पुं० [सं० शुक्तिमत्] एक पर्वत जो आठ कुल-पर्वतों में से है ।

शुक्तिवधू-संज्ञा स्त्री० [सं०] सीप । सीपी ।

शुक्रपर्णी-संज्ञा पुं० [सं०] संभालू । सिंदुवार । मेउड़ी ।

शुक्र-वि० [सं०] (१) देदीप्यमान । चमकीला । (२) स्वच्छ । उज्ज्वल ।

संज्ञा पुं० (१) अग्नि । (२) एक बहुत चमकीला ग्रह या तारा जो पुराणानुसार दैत्यों का गुरु कहा गया है ।

विशेष—आधुनिक ज्योतिर्विज्ञान के अनुसार इसका व्यास ७०० मील है । यह पृथ्वी से सब से अधिक निकट है, एक करोड़ कोस से कुछ ही अधिक दूर है । सूर्य से इसकी दूरी तीन करोड़ पैंतीस लाख कोस है । इसका अक्ष भ्रमण काल २२५ दिनों का है; अर्थात् इसका एक दिन रात हमारे २२५ दिनों के बराबर होता है । बुध के समान यह ग्रह भी प्रधान युति के पीछे पश्चिम में निकलता है और पूर्व की ओर बढ़ता हुआ लघु युति के समय लुप्त हो जाता है । इसमें वायु और जल दोनों का होना अनुमान किया गया है । इसका पृष्ठ सदा घने बादलों से ढका रहता है । फलित ज्योतिष में इसका वर्ण जल के समान श्यामल कहा गया है और यह धान्य का स्वामी, जलभूमिचारी,

और स्निग्धरुचिवाला माना गया है। पुराणों में शुक्र दैत्यों के गुरु और भृगु के पुत्र कहे गए हैं। ऐसी कथा है कि दैत्यराज बलि जब वामन को पृथ्वी दान करने लगे, तब ये उन्हें रोकने के विचार से उस जलपात्र की टोंटी में जा बैठे जिसमें संकल्प करने का जल था। उस समय सींक से खोदने पर इनकी एक आँख फूट गई। इसी कारण काने आदमी को लोग हँसी में शुक्राचार्य्य कह दिया करते हैं। वि० दे० "शुक्राचार्य्य"।

पर्य्या०—दैत्यगुरु। काव्य। उशना। भार्गव। कवि। सित। भृगु। षोडशार्चि। श्वेताश्व।

(३) ज्येष्ठ मास। जेठ। (यह कुबेर का भंडारी कहा गया है।) (४) स्वच्छ और शुद्ध सोम। (५) चित्रक वृक्ष। चीता। (६) सार। रस। सत। (७) नर जीवों के शरीर की वह धातु जिसमें मादा के अंड को गर्भित करनेवाले घटक या अणु रहते हैं। वीर्य्य। मनी। (८) बल। सामर्थ्य। पौरुष। शक्ति। (९) सप्ताह का छठा दिन जो बृहस्पतिवार के बाद और शनिवार से पहले पड़ता है। (१०) आँख की पुतली का एक रोग। फूला। फूली। (११) एरंड वृक्ष। अंडी का पेड़। रेंड़। (१२) स्वर्ण। सोना। (१३) धन। दौलत। संपत्ति।

संज्ञा पुं० [अ०] धन्यवाद। कृतज्ञता प्रकाश। जैसे,—खुदा का शुक्र है।

शुक्रकर—संज्ञा पुं० [सं०] मज्जा, जिससे शुक्र या वीर्य्य का बनना कहा गया है।

शुक्रकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] मूत्रकृच्छ्र रोग। सुजाक।

शुक्रगुजार—वि० [अ० शुक्र + फ़ा० गुज़ार] एहसान माननेवाला। धन्यवाद देनेवाला। आभारी। कृतज्ञ।

शुक्रगुजारी—संज्ञा स्त्री० [अ० + फ़ा०] एहसान मंदी। किए हुए उपकार को मानना। कृतज्ञता।

शुक्रज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुत्र। बेटा। (२) देवताओं का एक भेद। (जैन)

शुक्राद—संज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ। गोधूम।

शुक्रदोष—संज्ञा पुं० [सं०] क्लीवत्व। नपुंसकता।

शुक्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कटसरैया। (२) सफेद अपराजिता।

शुक्रप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] धातुक्षीणता। धात का गिरना जो एक रोग है।

शुक्रभुज—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

शुक्रभू—संज्ञा पुं० [सं०] मज्जा।

शुक्रमाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बमनेटी। भारंगी।

शुक्रमेह—संज्ञा पुं० दे० "शुक्रप्रमेह"।

शुक्रल—वि० [सं०] (१) जिसमें शुक्र या वीर्य्य हो। (२) वीर्य्य उत्पन्न करनेवाला।

शुक्रला—संज्ञा स्त्री० [सं०] उटंगन के बीज। हयटा। ओकड़ा।

शुक्रवार—संज्ञा पुं० [सं०] सप्ताह का छठा दिन जो बृहस्पतिवार के बाद और शनिवार के पहले पड़ता है।

शुक्रशिष्य—संज्ञा पुं० [सं०] दैत्य। असुर।

शुक्रस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वजभंग या नपुंसकता का एक भेद जो बहुत दिनों तक ब्रह्मचर्य्य पालन करने से होता है।

शुक्रांग—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

शुक्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशलोचन।

शुक्राचार्य्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि जो दैत्यों के गुरु और महर्षि भृगु के पुत्र थे। इनकी कन्या का नाम देवयानी था और पुत्रों का नाम षंड तथा अमर्क था। देवगुरु बृहस्पति के पुत्र कच ने इनसे संजीवनी विद्या सीखी थी।

शुक्राश्मरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्मरी रोग का एक भेद। वह पथरी जो स्खलित होते समय वीर्य्य को रोकने से उत्पन्न होती है।

शुक्रिय—वि० [सं०] (१) शुक्र संबंधी। शुक्र का। (२) जिसमें शुद्ध रस हो।

शुक्रिया—संज्ञा पुं० [फ़ा०] धन्यवाद। कृतज्ञता-प्रकाश।

क्रि० प्र०—अदा करना।

शुक्ल—वि० [सं०] सफेद। उजला। धवल। श्वेत। स्वच्छ।

संज्ञा पुं० (१) ब्राह्मणों की एक पदवी। (२) शुक्ल पक्ष। (३) सफेद रेंड़ का वृक्ष। (४) आँखों का एक प्रकार का रोग जो उसके सफेद तल या डेले पर होता है। (५) कुंद नामक पुष्प वृक्ष। (६) सफेद लोध। (७) नवनीत। मक्खन। (८) चाँदी। रजत। (९) धव वृक्ष। धौ। (१०) योग। (११) विष्णु का एक नाम।

शुक्लकंठ, शुक्लकंठक—संज्ञा पुं० [सं०] मुर्गाबी। जल काक।

शुक्लकंद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भैंसाकंद। (२) शंखालू। (३) अतीस।

शुक्लकंदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद अतीस। (२) विदारी कंद।

शुक्लक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुक्ल पक्ष। (२) खिरनी का वृक्ष।

शुक्लकर्कट—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद रंग का केकड़ा।

शुक्लकुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] वह कोढ़ जिसमें शरीर पर सफेद सफेद चकत्ते पड़ जाते हैं।

शुक्लक्षीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काकोली।

शुक्लक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पवित्र स्थान। तीर्थ स्थान।

शुक्लता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शुक्ल का भाव या धर्म्म। (२) सफेदी। श्वेतता।

शुक्लतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम जिसे विष्णुतीर्थ भी कहते हैं।

शुक्लत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुक्ल का भाव या धर्म। शुद्धता। (२) सफेदी। श्वेतता।

शुक्लदुग्ध-संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा।

शुक्लधातु-संज्ञा पुं० [सं०] खरिया नाम की मिट्टी।

शुक्ल पक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] अमावास्या के उपरांत प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक का पक्ष, जिसमें चंद्रमा की कला प्रति दिन बढ़ती जाती है जिससे रात उजेली होती है। चांद्रमास में कृष्ण पक्ष से भिन्न दूसरा पक्ष।

शुक्लपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छत्रक वृक्ष। (२) कुंद नामक फूल का पौधा। (३) मरुआ। (४) सफेद साल मखाना। (५) सिंगार। (६) मैनफल।

शुक्लपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हाथीसुंडी नामक क्षुप। (२) शीतकुंभी। शीतकी लता। (३) कुंद।

शुक्लपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागदंती। (२) कुंद नामक फूल का पौधा।

शुक्लपृष्ठक-संज्ञा पुं० [सं०] मेंढकी। सँभालू। सिंधुआर।

शुक्लफल-संज्ञा पुं० [सं०] मदार। आक।

शुक्लफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शमी। छोंकुर। (२) मदार।

शुक्लफेन-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन।

शुक्लबल-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार एक जिन देव का नाम।

शुक्लमंजरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद निर्गुंडी।

शुक्लमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] आँखों का सफेद भाग जो पुतली से भिन्न होता है।

शुक्लमेह-संज्ञा पुं० [सं०] चरक के अनुसार एक प्रकार का प्रमेह रोग।

शुक्लवायस-संज्ञा पुं० [सं०] बक। बगुला।

शुक्लवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] धौ या धव का वृक्ष।

शुक्लशाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गिरिनिंब। (२) सफेद साल का वृक्ष।

शुक्लांग-संज्ञा पुं० [सं०] चोबचीनी।

शुक्लांगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुंडी। शेफालिका।

शुक्लांगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुंडी। शेफालिका।

शुक्ला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरस्वती। (२) शर्करा। शक्कर। चीनी। (३) काकोली। (४) विदारी। (५) शूकर कंद। (६) निर्गुंडी। शेफालिका।

शुक्लाद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी।

शुक्लापांग-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर पक्षी। मोर।

शुक्लाम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] चूका या चुक्रिका नामक साग।

शुक्लायन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शुक्लार्क-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद मदार।

शुक्लार्म-संज्ञा पुं० [सं० शुक्लार्म्मन्] आँखों का एक प्रकार का रोग। इसमें आँखों के सफेद भाग में एक प्रकार का सफेद मस्सा हो जाता है जो धीरे धीरे बढ़ता रहता है।

शुक्लाहिफेन-संज्ञा पुं० [सं०] पोस्ते का पेड़।

शुक्लोदन-संज्ञा पुं० [सं०] ललित विस्तर के अनुसार महाराज शुद्धोदन के भाई का नाम।

शुक्लोपला-संज्ञा स्त्री० [सं०] चीनी। शर्करा।

शुक्लौदन-संज्ञा पुं० [सं०] अरवा चावल। भुजिया का उलटा।

शुचि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। हवा। (२) तेज। (३) चित्र। तसवीर।

शुचा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शोक। दुःख। रंज। (२) दे० "शुचि"।

शुचि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। आग। (२) चित्रक या चीता नामक वृक्ष। (३) ग्रीष्म। गरमी। (४) ज्येष्ठ मास। (५) आषाढ़ मास। (६) चंद्रमा। (७) शुक्र। (८) ब्राह्मण। (९) भागवत के अनुसार अंधक के एक पुत्र का नाम। (१०) कार्त्तिकेय।

संज्ञा स्त्री० (१) पवित्रता। सफाई। स्वच्छता। शुद्धता। (२) पुराणानुसार कश्यप की पत्नी ताम्रा के गर्भ से उत्पन्न एक कन्या का नाम।

वि० (१) शुद्ध। पवित्र। (२) स्वच्छ। साफ। (३) निरपराध। निर्दोष। (४) जिसका अंतःकरण शुद्ध हो। स्वच्छ हृदयवाला।

शुचिकर्म्मा-वि० [सं० शुचिकर्म्मन्] पवित्र कार्य करनेवाला। सदाचारी। कर्मनिष्ठ। उ०—चलेउ सुमेरु नरेस छत्रधरमा सुचिकरमा। बिसुकरमा कृत सुरथ बैठि रथ कंचन बरमा। —गिरिधर।

शुचिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक अप्सरा का नाम।

शुचिपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] केवड़ा। केतकी।

शुचिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुचि का भाव या धर्म।

शुचिद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] पीपल। अश्वत्थ वृक्ष।

शुचिप्रणी-संज्ञा पुं० [सं०] आचमन।

शुचिमल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] नेवारी। नव मल्लिका।

शुचिरोचि-संज्ञा पुं० [सं० शुचिरोचिस्] चंद्रमा।

शुचिवाच्-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

शुचिवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन मंत्रकार ऋषि का नाम।

शुचिश्रवा-संज्ञा पुं० [सं० शुचिश्रवस्] विष्णु का एक नाम।

शुची-वि० [सं० शुचिन्] (१) शुद्ध। पवित्र। (२) स्वच्छ। साफ।

शुचीरता-संज्ञा स्त्री० पुं० [सं०] वीर्य्य।

शुचीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] वीर्य्य।

शुजा-वि० [अ०] बहादुर। शूरवीर। दिलेर।

शुजाअत-संज्ञा स्त्री० [अ०] बहादुरी। वीरता। शूरता।

शुटीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] शुक्र। वीर्य्य।

शुतुद्रि, शुतुद्रु-संज्ञा स्त्री० [सं०] शतद्रु नदी। सतलज।

शुतुरगाव-संज्ञा पुं० [फा०] जिराफा नामक जंतु। वि० दे० "जिराफा"।

शुतुरमुर्ग-संज्ञा पुं० [फा०] अमेरिका, अफ्रीका और अरब के रेगिस्तान में होनेवाला एक प्रकार का बहुत बड़ा पक्षी जो प्रायः तीन गज़ तक ऊँचा होता है। इसकी गरदन ऊँट की तरह बहुत लंबी होती है। यह उड़ तो नहीं सकता, पर रेगिस्तान में घोड़े से भी अधिक तेज़ दौड़ सकता है। यह घास और अनाज खाता है। कभी कभी कंकड़ पत्थर भी खा जाता है। इसके पर बहुत दाम पर बिकते हैं। यह एक बार में तीस से कम अंडे नहीं देता।

शुदनी-संज्ञा स्त्री० [फा०] वह बात जिसका होना पहले से ही किसी दैवी शक्ति से निश्चित हो। भावी। होनी। होनहार। नियति।

शुदी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुदी"।

शुद्ध-वि० [सं०] (१) जिसमें किसी प्रकार की मैल या खोट आदि न हो। पवित्र। साफ। स्वच्छ। (इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्द बनाने में शब्दों के आरंभ में होता है। जैसे,—शुद्धबुद्धि, शुद्धमति।) (२) सफेद। उज्वल। (३) जिसमें किसी प्रकार की अशुद्धि न हो। जो गलत न हो। ठीक। सही। (४) दोष-रहित। निर्दोष। बेऐब। (५) जिसमें किसी तरह की मिलावट न हो। खालिस।
संज्ञा पुं० (१) सेंधा नमक। (२) काली मिर्च। (३) चाँदी। रूपा। (४) गुंदा नाम की घास। (५) संगीत में राग के तीन भेदों में से एक भेद। वह राग जिसमें और किसी राग का मेल न हो। जैसे,—भैरव, मेघ। (६) शिव का एक नाम। (७) चौदहवें मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक।

शुद्धजंघ-संज्ञा पुं० [सं०] गर्दभ। गदहा।

शुद्धता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शुद्ध होने का भाव या धर्म। पवित्रता। (२) निर्दोषता।

शुद्धत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध होने का भाव या धर्म। शुद्धता। पवित्रता।

शुद्ध पक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] अमावस्या के उपरांत की प्रतिपदा से पूर्णिमा तक का पक्ष। शुक्ल पक्ष।

शुद्धपुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण भारत के एक पवित्र तीर्थ का नाम।

शुद्धमांस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार वह पकाया हुआ मांस जिसके साथ में हड्डी आदि न लगी हो।

शुद्धवल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गिलोय। गुडुच।

शुद्धांत-संज्ञा पुं० [सं०] अंतःपुर। रनिवास। जनानखाना।

शुद्धांतपालक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अंतःपुर के द्वार पर पहरा देता हो। गृहदौवारिक।

शुद्धांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] रानी। राज्ञी।

शुद्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रजव। कुटज बीज।

शुद्धात्मा-संज्ञा पुं० [सं० शुद्धात्मन्] शिव का एक नाम।

शुद्धापह्नुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का अलंकार जिसमें प्रकृति अर्थात् उपमेय को झूठ ठहराकर या उसका निषेध करके उपमान की सत्यता स्थापित की जाती है। अपह्नुति उ०—शुद्धापह्नुति झूँठ कहि, साँची बात दुराहि। नैन नहीं ये मीन युग, छवि सागर के माँहि।—भानु।

शुद्धाशुद्धीय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

शुद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शुद्ध होने का कार्य। (२) सफाई। स्वच्छता। (३) वैदिक धर्म के अनुसार वह कृत्य या संस्कार जो किसी अशुद्ध या अशुच व्यक्ति के शुद्ध होने के समय होता है। जैसे,—अशौच की समाप्ति पर शुद्ध होने के समय का कृत्य या किसी धर्म भ्रष्ट व्यक्ति के शुद्ध होकर पुनः अपने धर्म में आने के समय होनेवाला कृत्य या संस्कार। (४) दुर्गा का एक नाम।

शुद्धिकंद-संज्ञा पुं० [सं०] लहसुन।

शुद्धिपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसमें छपने के समय पुस्तक में रही हुई अशुद्धियाँ बतलाई गई हों। वह पत्र जिससे सूचित हो कि कहाँ क्या अशुद्धि है।

शुद्धोद-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। सागर।

शुद्धोदन संज्ञा पुं० [सं०] एक सुप्रसिद्ध शाक्य राजा जो भगवान् बुद्धदेव के पिता थे और जिनकी राजधानी कपिलवस्तु में थी।

विशेष—इस शब्द के साथ पुत्र या इसका वाचक कोई शब्द लगाने से "बुद्धदेव" अर्थ होता है।

शुद्धोदनि-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

शुनःशेफ-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक प्रसिद्ध ऋषि जो महर्षि ऋचीक के पुत्र थे। ये महाराज अंबरीष के यज्ञ में बलि के लिये लाए गए थे। विश्वामित्र ने दयावश इनको अग्नि की स्तुति बतला दी थी। अग्निदेव इनकी स्तुति से इतने प्रसन्न हुए थे कि जब ये यज्ञ कुंड में डाले गए, तब उसमें से अक्षत शरीर बाहर निकल आए। इसके उपरांत ये महर्षि विश्वामित्र के यहाँ उनके पुत्र तुल्य होकर रहने लगे। देवी भागवत आदि कुछ पुराणों में इनके संबंध में कई कथाएँ आई हैं।

शुनःसख-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जिनका उल्लेख महाभारत में है।

शुनःस्कर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शुन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ता। (२) वायु। (३) सुख। आराम।

शुनक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ता। कुक्कुर। श्वान। (२) महाभारत के अनुसार एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

शुनकचंचुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चेंच नाम का साग।

शुनकचिल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] बथुआ।

शुनहोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम। (२) भरद्वाज ऋषि के पुत्र का नाम जो ऋग्वेद के कई मंत्रों के द्रष्टा हैं।

शुनामुख-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय के उत्तर ओर के एक प्रदेश का प्राचीन नाम। अनुमान है कि वह नेपाल के उत्तर का प्रदेश है।

शुनाशीर, शुनासीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) वायु और सूर्य्य। (३) इंद्र और वायु।

शुनासीरी-संज्ञा पुं० [सं० शुनासीरिन्] इंद्र।

शुनासीरीय-वि० [सं०] (१) इंद्र संबंधी। इंद्र का। (२) वायु देवता के संबंध का। (३) सूर्य्य देवता के संबंध का।

शुनि-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शुनी] कुत्ता।

शुनोलांगूल-संज्ञा पुं० [सं०] देवी भागवत के अनुसार शुनःशेफ के छोटे भाई का नाम।

शुबहा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) संदेह। शक। (२) धोखा। वहम। भ्रम।

क्रि० प्र०—करना।—निकालना।—मिटना।—मिटाना।—होना।

शुभंकर-वि० [सं०] शुभ या मंगल करनेवाला। मंगल-कारक। शुभकारी।

शुभंकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कल्याण करनेवाली, पार्वती। (२) शमी वृक्ष।

शुभ-वि० [सं०] (१) अच्छा। भला। उत्तम। जैसे,—शुभ शकुन, शुभ समाचार, शुभ कार्य्य। (२) कल्याणकारी। मंगलप्रद।

संज्ञा पुं० (१) मंगल। कल्याण। भलाई। (२) विष्कंभादि सत्ताइस योगों के अंतर्गत एक योग। फलित ज्योतिष के अनुसार जो बालक इस योग में जन्म लेता है, वह सब लोगों का कल्याण करनेवाला, अच्छे कर्म करनेवाला, पंडितों का सत्संग करनेवाला और बुद्धिमान होता है। (३) पद्मक। पद्मकाठ। (४) चाँदी। (५) बकरा।

शुभकर-वि० [सं०] शुभ या मंगल करनेवाला।

शुभकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती।

शुभकूट-संज्ञा पुं० [सं०] सिंहल द्वीप या लंका का एक प्रसिद्ध पर्वत जिस पर चरण-चिह्न बने हुए हैं। ईसाई इन्हें हजरत आदम के चरण चिह्न और बौद्ध महात्मा बुद्ध के चरण-चिह्न मानते हैं।

शुभकृत्स्न-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध देवताओं का एक वर्ग।

शुभगंधक-संज्ञा पुं० [सं०] बोल नामक गंधद्रव्य। गंधबाला।

शुभग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार बृहस्पति और शुक्र ये दोनों ग्रह जो सौम्य और शुभ माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त बुध ग्रह भी, यदि पापयुक्त न हो तो, शुभ माना जाता है।

शुभचिंतक-वि० [सं०] शुभ या भला चाहनेवाला। भलाई की इच्छा रखनेवाला। कल्याण चाहनेवाला। हितैषी। खैरख्वाह।

शुभदंता-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार पुष्पदंत नामक हाथी की हथनी का नाम।

शुभद-संज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थ वृक्ष। पीपल का पेड़।

वि० शुभ-प्रद। शुभदायक।

शुभदर्शन-वि० [सं०] (१) जिसका मुँह देखने से कोई शुभ या मंगल बात हो। (२) सुंदर। खूबसूरत।

शुभदायी-वि० [सं० शुभदायिन्] शुभ या मंगल करनेवाला। शुभ-प्रद। शुभद।

शुभनामा-संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी, दशमी या पूर्णिमा तिथि।

शुभपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरिवन। शालपर्णी।

शुभप्रद-वि० [सं०] शुभ या मंगल करनेवाला। शुभद। मंगलकारी।

शुभवक्त्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।

शुभविमलगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

शुभव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जो कार्त्तिक शुक्ला पंचमी को किया जाता है।

शुभशैल-संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक कल्पित पर्वत का नाम।

शुभसूचनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम जिनकी पूजा का संकल्प किसी शुभ काम के होने की आशा से किया जाता है, और वह शुभ काम हो जाने पर जिनकी पूजा की जाती है। इनकी पूजा प्रायः स्त्रियाँ ही करती हैं।

शुभस्थली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मंगल भूमि। पवित्र स्थान। (२) यज्ञ भूमि।

शुभस्वधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

शुभांगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुबेर की पत्नी का नाम। (२) कामदेव की पत्नी, रति। (३) महाभारत के अनुसार राजा कुरु की पत्नी का नाम।

शुभांजन-संज्ञा पुं० दे० "शोभांजन"।

शुभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शोभा। कांति। (२) इच्छा। (३) वंशलोचन। (४) गोरोचन। (५) सफेद कीकर। (६) प्रियंगु। वनिता। (७) सफेद दूब। (८) बकरी। (९) आरारोट। (१०) उरहन की पत्ती। (११) सोआ।

(१२) सफेद बच। (१३) असबरग। (१४) पार्वती की एक सखी का नाम। (१५) देवताओं की सभा। (१६) पुराणानुसार एक नदी का नाम।

शुभाकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भुईं आँवला।

शुभाचल-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक कल्पित पर्वत का नाम।

शुभाचारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार पार्वती की एक सखी का नाम।

शुभ्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अबरक। (२) साँभर नमक। (३) चाँदी। रूपा। (४) हरीस। (५) पद्माख। (६) खस। उशीर। (७) चरबी। (८) रूपामक्खी। (९) सेंधा नमक। (१०) बंसलोचन। (११) फिटकिरी। (१२) चीनी। (१३) सफेद विधारा।

शुभ्रतरु-संज्ञा पुं० [सं०] सिरिस का वृक्ष।

शुभ्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुभ्र का भाव या धर्म्म। सफेदी। श्वेतता।

शुभ्रदंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार पुष्पदंत नामक दिग्गज की हथनी का नाम।

शुभ्रपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद पान।

शुभ्रपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] खस। उशीर।

शुभ्रभानु-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शुभ्ररश्मि-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शुभ्रवेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] शाल्मली। सेमल।

शुभ्रांशु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

शुभ्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बंसलोचन। (२) फिटकरी।

शुभ्रालु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भैंसाकंद। (२) शंखालु।

शुभ्रि-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

शुभ्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शहद से तैयार की हुई चीनी। मधुशर्करा।

शुरवा-संज्ञा पुं० दे० "शोरवा"।

शुरू-संज्ञा पुं० [अ० शुरूअ] (१) किसी कार्य्य की प्रथमावस्था का संपादन। आरंभ। प्रारंभ। जैसे,—अब तुम यह काम जल्दी शुरू कर डालो। (२) वह स्थान जहाँ से किसी वस्तु का आरंभ हो। उत्थान। जैसे,—शुरू से आखिर तक।

शुल्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह महसूल जो घाटों और रास्तों आदि पर राज्य की ओर से वसूल किया जाता है। (२) वह धन जो कन्या का विवाह करने के बदले में उसका पिता वर के पिता से लेता है।

विशेष—शास्त्र में इस प्रकार धन या शुल्क लेने का बहुत अधिक निषेध किया गया है।

(३) विवाह के समय दिया जानेवाला दहेज। दायजा। (४) बाजी। शर्त्त। (५) किराया। भाड़ा। (६) मूल्य। दाम। (७) वह धन जो किसी कार्य्य के बदले में लिया या दिया जाय। फीस। जैसे,—प्रवेश शुल्क।

शुल्कता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुल्क का भाव या धर्म्म।

शुल्कशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ पर घाट या मार्ग आदि का महसूल चुकाया जाता हो। (२) वह स्थान जहाँ किसी प्रकार का शुल्क चुकाया जाता हो। महसूल अदा करने की जगह।

शुल्कस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ आने जानेवालों को शुल्क देना पड़ता हो।

शुल्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रस्सी। (२) ताँबा।

शुल्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताँबा। (२) रज्जु। रस्सी। (३) यज्ञकर्म। (४) आचार।

शुल्वारि-संज्ञा पुं० [सं०] गंधक।

शुश्रू-संज्ञा स्त्री० [सं०] बालक की सेवा शुश्रूषा करनेवाली, माता। माँ। जननी।

शुश्रूषक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शुश्रूषा करता हो। सेवा करनेवाला। खिदमत करनेवाला। जैसे,—शिष्य, दास, अधीनस्थ कर्मचारी आदि।

शुश्रूषण-संज्ञा पुं० [सं०] शुश्रूषा करने का कार्य्य। सेवा करना। खिदमत-गुजारी।

शुश्रूषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० शुश्रूष्य] (१) सेवा। टहल। परिचर्य्या। (२) खुशामद। (३) कथन। (४) किसी से कुछ सुनने की इच्छा।

शुषिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लौंग। (२) अग्नि। (३) मूसा। चूहा। (४) छिद्र। गड्ढा। विवर। (५) आकाश। (६) वह बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता हो। जैसे,—वंशी, अलगोजा, शहनाई आदि।

शुषिरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नदी। दरिया। (२) धरणी। (३) नलिका या नली नाम का गंध द्रव्य।

शुषेण-संज्ञा पुं० दे० "सुषेण"।

शुष्क-वि० [सं०] (१) जिसमें किसी प्रकार की नमी या गीलापन न रह गया हो। जो किसी प्रकार सुखा लिया गया हो। आर्द्रता-रहित। सूखा। खुश्क। जैसे,—शुष्क काष्ठ। (२) जिसमें जल या और किसी तरल पदार्थ का व्यवहार न किया गया हो। (३) जिसमें, रस का अभाव हो। नीरस। रसहीन। (४) जिससे मनोरंजन न होता हो। जिसमें मन न लगता हो। जैसे,—शुष्क विषय। (५) जिसका कुछ परिणाम न निकलता हो। निरर्थक। व्यर्थ। जैसे,—शुष्क वाद-विवाद। (६) जिसमें सौहार्द आदि कोमल मनोवृत्तियाँ न हों। स्नेह आदि से रहित। निर्मोही। (७) जो बिलकुल पुराना और बेकाम हो गया हो। जीर्ण शीर्ण।

संज्ञा पुं० काला अगर।

शुष्कक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वितस्ता नदी के किनारे के एक पर्वत का नाम।

शुष्कगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार स्त्रियों का एक रोग जिसमें वायु के प्रकोप से स्त्रियों का गर्भ सूख जाता है।

शुष्कता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुष्क होने का भाव या धर्म्म। सूखापन।

शुष्करेवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुराणानुसार एक मातृका का नाम। (२) एक प्रकार का बालग्रह जिसके प्रकोप से बालकों के अंग सूखने या क्षीण होने लगते हैं।

शुष्कल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मांस। गोश्त। (२) वह जो मांस खाता हो। मांसभक्षी।

शुष्कली-संज्ञा स्त्री० [सं०] मांस। गोश्त।

शुष्कवृक्ष संज्ञा पुं० [सं०] धव का वृक्ष। धौ।

शुष्कव्रण-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों का योनिकंद नामक रोग। वि० दे० "योनिकंद"।

शुष्कांग-संज्ञा पुं० [सं०] धव का वृक्ष। धौ।

शुष्कांगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंस जाति का एक प्रकार का पक्षी। (२) गोह। गोधिका।

शुष्का-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों का योनिकंद नामक रोग।

शुष्काक्षिपाक-संज्ञा पुं० [सं०] आँखों का एक प्रकार का रोग। इसमें आँखों की पलकें कठोर और रूखी हो जाती हैं और उनके खोलने बंद करने में पीड़ा होती है; आँखों में जलन होती है और साफ देख नहीं पड़ता।

शुष्कार्द्र-संज्ञा पुं० [सं०] सूखा अदरक। सोंठ।

शुष्कार्श-संज्ञा पुं० [सं० शुष्कार्शस्] आँखों का एक प्रकार का रोग जिसमें आँख की पलकों के भीतर खरखरी और कठिन फुंसियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

शुष्काशुष्क-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन।

शुष्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) अग्नि। (३) बल। शक्ति। ताकत।

शुष्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेज। पराक्रम। (२) अग्नि। (३) सूर्य्य। (४) वायु। (५) पक्षी। चिड़िया।

शुष्मा-संज्ञा पुं० [सं० शुष्मन्] (१) अग्नि। (२) चीता। चित्रक। (३) तेज। पराक्रम।

शूंडल-संज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसके हीर की लकड़ी मजबूत, कड़ी और लाली लिए होती है और अच्छे दामों पर बिकती है। यह इमारतों और पुलों के बनाने के काम में आती है। इसकी छाल बहुत पतली होती है और उतारने से बारीक कागज के वरकों की तरह उतरती है। बंगाल के सुंदर वन में यह पेड़ बहुत होता है।

शूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अन्न की बाल या सींका जिसमें दाने लगते हैं। (२) यव। जौ। (३) एक प्रकार का कीड़ा। (४) एक प्रकार का तृण जिसे शूकड़ी कहते हैं और जो दुर्बल पशुओं के लिये बहुत बलकारक माना जाता है। (५) एक प्रकार का रोग जो लिंग-वर्द्धक औषधों के लेप के कारण होता है। इसमें लिंग पर कई प्रकार की फुंसियाँ और घाव आदि हो जाते हैं। यह रोग १८ प्रकार का माना गया है। यथा—सर्षपिका, अष्ठीलिका, ग्रथित, कुंभिका, अलजी, मृदित, सम्मूढपीड़का, अधिमंथ, पुष्करिका, स्पर्शहानि, उत्तमा, शतपोनक, त्वक्पाक, शोणितार्बुद, मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक।

शूकक-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का रस नामक धातु।

शूककीट-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोएँदार कीड़ा।

शूकज-संज्ञा पुं० [सं०] जवाखार। यवक्षार।

शूकतृण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जो दुर्बल पशुओं के लिये बहुत बलकारक मानी जाती है। इसे शूकड़ी या चोरहुली भी कहते हैं।

शूकदोष-संज्ञा पुं० [सं०] शूक नामक रोग। वि० दे० "शूक" (५)।

शूकधान्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह अन्न जिसके दाने बालों या सींकों में लगते हैं। जैसे,—गेहूँ, जौ आदि।

शूकपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह साँप जिसमें विष न होता हो। जैसे,—पानी का साँप या डेड़हा।

शूकपाक्य-संज्ञा पुं० [सं०] जवाखार। शूकज।

शूकपिंडि, शूकपिंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिकच्छु। किंवाछ। कौंछ।

शूकर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शूकरी] (१) सूअर। वाराह। उ०—भजन बिनु कूकर शूकर जैसो।—सूर। (२) विष्णु का तीसरा अवतार। वाराह अवतार। वि० दे० "वाराह"।

शूकरकंद-संज्ञा पुं० [सं०] वाराही कंद।

शूकरक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ जो नैमिषारण्य के पास है। कहते हैं कि भगवान् विष्णु ने वाराह अवतार धारण करने पर हिरण्यकेशी को यहीं मारा था। आज कल यह स्थान सोरों नाम से प्रसिद्ध है। उ०—मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सु सूकरखेत। समुझी नहिं तस बालपन तब अति रहेउँ अचेत।—तुलसी।

शूकरदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसे सूअरडाढ़ कहते हैं। यह रोग प्रायः बालकों को होता है। इसमें दाह सहित सूजन हो जाती है, जो पकती, पीड़ा करती और खुजलाती है; और इसके विकार से ज्वर उत्पन्न होता है।

शूकरपादिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कोलशिंबी। सेम की फली।

शूरत्व–संज्ञा पुं० [सं०] शूर होने का भाव या धर्म। शूरता। वीरता। बहादुरी।

शूरदेव–संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार भविष्य में होनेवाले चौबीस अर्हतों में से एक अर्हत का नाम।

शूरन–संज्ञा पुं० दे० "सूरन"।

शूरपुत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] अदिति का एक नाम।

शूरबल–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक देवपुत्र का नाम।

शूरभू–संज्ञा स्त्री० दे० "शूरभूमि"।

शूरभूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार उग्रसेन की एक कन्या का नाम। लिखा है कि वसुदेव के छोटे भाई श्यामक ने इसके साथ विवाह किया था; और उनके वीर्य्य से इसके गर्भ से हरिकेश और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे।

शूरमानी–संज्ञा पुं० [सं० शूरमानिन्] वह जिसे अपनी शूरता का बहुत अभिमान हो। अपनी बहादुरी पर बहुत भरोसा रखनेवाला।

शूरवारेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

शूरविद्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध आदि करने की विद्या।

शूरवीर–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अच्छा वीर और योद्धा हो। सूरमा।

शूरवीरता–संज्ञा स्त्री० [सं०] शौर्य्य। बहादुरी।

शूरश्लोक–संज्ञा पुं० [सं०] वीरों के वीरतापूर्ण कृत्यों की कहानी। वीरगाथा।

शूरसेन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मथुरा के एक प्रसिद्ध राजा जो कृष्ण के पितामह और वसुदेव के पिता थे। (२) मथुरा और उसके आस पास के प्रदेश का प्राचीन नाम जहाँ राजा शूरसेन का राज्य था।

शूरसेनप–संज्ञा पुं० [सं०] शूर वीरों की सेना का पालन करनेवाले, कार्त्तिकेय।

शूरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीरकाकोली नामक अष्ट वर्गीय ओषधि।

†संज्ञा पुं० [सं० शूर] सामंत। वीर। उ०—पैठि गुफा में सब जग देखै, बाहर कछू न सूझै। उलटा बान पारधिव लागे, सूरा होय सो बूझै।—कबीर।

संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्य] सूर्य्य। उ०—जहाँ चंद न सूरा, तारा नहिं जहाँ मोरनिया।—कबीर।

शूरिमृग–संज्ञा पुं० [सं०] वाराह आदि जंगली पशु।

शूर्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गेहूँ, चावल आदि अन्न पछोड़न के लिये बना हुआ बाँस या सींक का पात्र। सूप। (२) एक प्राचीन तौल जो २०४८ तोले या ३२ सेर की होती थी।

शूर्पक–संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर जो किसी किसी के मत से कामदेव का शत्रु और किसी किसी के मत से उसका पुत्र था।

शूर्पकर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी, जिसके कान सूप के समान होते हैं। (२) गणेश। (३) एक प्राचीन देश का नाम। (४) इस देश का निवासी। (५) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

शूर्पकाराति–संज्ञा पुं० [सं०] शूर्पक नामक राक्षस का शत्रु, कामदेव।

शूर्पकारि–संज्ञा पुं० [सं०] शूर्पक नामक राक्षस का शत्रु, कामदेव।

शूर्पणखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रसिद्ध राक्षसी जो रावण की बहिन थी। कहते हैं कि इसके नख सूप के समान थे। राम के वनवास के समय काम से पीड़ित होकर यह राम के पास उनके साथ विवाह करने की इच्छा से गई थी। वहाँ राम के इशारे से लक्ष्मण ने इसकी नाक और कान काट लिए थे। इसी का बदला लेने के लिये रावण सीता को ले गया था।

शूर्पणखी–संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पणखा"।

शूर्पणाय–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

शूर्पनखा–संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पणखा"।

शूर्पपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बन मूँग। बन उर्द।

शूर्पश्रुति–संज्ञा पुं० [सं०] हस्ती। हाथी।

शूर्पा–संज्ञा स्त्री० [?] बच्चों के खेलने का एक प्रकार का खिलौना।

शूर्पाद्रि–संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिणी भारत के एक पर्वत का नाम। इसे कुछ लोग सूर्य्याद्रि भी कहते हैं।

शूर्पारक–संज्ञा पुं० [सं०] बंबई प्रांत के थाना जिले के सोपारा नाम स्थान का प्राचीन नाम।

शूर्म–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शूर्मि] (१) लोहे की बनी हुई मूर्त्ति। (२) निहाई।

शूल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जो प्रायः बरछे के आकार का होता था। (२) सूली जिससे प्राचीन काल में लोगों को प्राण-दंड दिया जाता था। (३) दे० "त्रिशूल"। (४) कोई बड़ा, लंबा और नुकीला काँटा। (५) वायु के प्रकोप से होनेवाला एक प्रकार का बहुत तेज दर्द। यह दर्द प्रायः पेट, पसली, कलेजे या पेड़ू आदि में होता है। वैद्यक के अनुसार बहुत अधिक व्यायाम या मैथुन करने, घोड़े पर चढ़ने, रात के समय जागने, बहुत अधिक ठंढा जल पीने, रूखे द्रव्यों का सेवन करने, सूखा मांस खाने, विरुद्ध भोजन करने, शारीरिक वेगों को रोकने, बहुत अधिक शोक या उपवास करने अथवा बहुत अधिक हँसने के कारण वायु का प्रकोप होता है जिससे पेट में या उसके आस पास बहुत तीव्र पीड़ा होती है। इस पीड़ा में ऐसा अनुभव होता है कि कोई अंदर

से बहुत नुकीला काँटा या शूल गड़ा रहा है; इसी से इसे शूल कहते हैं। यह रोग आठ प्रकार का—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, आमज, वातश्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक और वातपैत्तिक—कहा गया है; और इसे शांत करने के लिये स्वेद, अभ्यंग, मर्दन और स्निग्ध तथा उष्ण द्रव्यों के सेवन का विधान है। (६) किसी नुकीली वस्तु के चुभने के समान होनेवाली पीड़ा। कोंच। टीस। (७) पीड़ा। क्लेश। दुःख। दर्द। उ०—(क) तुम रुक्मिमन निज पुरहि सिधारो। बिछुरन मेरे देहु लघु चंपू जियत न रैहैं शूल सुम्हारो।—सूर। (ख) मन सोसौं कोटिक बार कही। समुझ न चरण गहत गोविंद के उर अघ शूल सही।—सूर। (८) ज्योतिष में विष्कंभ आदि सत्ताइस योगों के अंत र्गत नवाँ योग। कहते हैं कि जो बालक इस योग में जन्म लेता है, वह डरपोक, दरिद्र, मूर्ख, विद्याहीन, शूल रोगी, दूसरों का अनिष्ट करनेवाला और अपने बंधु बांधव को शूल के समान खटकनेवाला होता है। इस योग में किसी प्रकार का शुभ काम करने का निषेध है। (९) छड़। सलाख। सींख। उ०—खाने को बहुधा शूल पर भुना हुआ मांस मिलता है, सो भी कुसमय।—लक्ष्मणसिंह। (१०) मृत्यु। मौत। (११) झंडा। पताका। (१२) पोस्ते की पत्तियों की वह तह जो अफीम की चकी जमाने के समय उसके चारों ओर और ऊपर नीचे लगाई जाती है। (बंगाल)

वि० काँटे की तरह नोकवाला। नुकीला।

शूलक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक ऋषि का नाम। (२) दुष्ट या पाजी घोड़ा।

शूलकार–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नीच जाति का नाम।

शूलगजकेसरी रस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक में एक प्रकार का रस जो शुद्ध गंधक, पारे, कंटकवेधी, ताँबे के पत्र आदि के योग से तैयार किया जाता है और शूल रोग के लिये गुणकारी माना जाता है। (२) वैद्यक में एक प्रकार की वटी या गोली। इसके लिये कौड़ियों की राख, शुद्ध सिंगी मुहरा, सेंधा नमक, काली मिर्च, पिप्पली इन सब का चूर्ण कर पान के रस में एक रत्ती के बराबर गोलियाँ बनाई जाती हैं। ये गोलियाँ शूल का नाश करती हैं।

शूलगध–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

शूलगिरि–संज्ञा पुं० [सं०] मदरास प्रांत के एक पर्वत का नाम।

शूलग्रंथि–संज्ञा स्त्री० [सं०] माला दूब।

शूलग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] हाथ में त्रिशूल धारण करनेवाले, शिव।

शूलग्राही–संज्ञा पुं० [सं० शूलग्राहिन्] शिव। महादेव।

शूलघातन–संज्ञा पुं० [सं०] मंडूर। लौहकिट्ट।

शूलघ्न–संज्ञा पुं० [सं०] तुंबुरु वृक्ष।

शूलघ्नी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जी मिट्टी। सर्जिखार।

शूलदावानल रस–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो दो तरह से बनता है—(१) शुद्ध पारा, शुद्ध सिंगी मुहरा, काली मिर्च, पिप्पली, सोंठ, भूनी हींग, पाँचो नमक, इमली का क्षार, जंभीरी का क्षार, शंख भस्म और नीबू के रस के योग से बनता है और शूल रोग को तत्काल दूर करता है। (२) शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, सिंगी मुहरा, पिप्पली, भूनी हींग, पाँचो नमक, इमली के क्षार और नीबू के रस में बुझे हुए शंख की राख तथा नीबू के रस से बनता है और शूल, अजीर्ण, उदर रोग और मंदाग्नि को दूर करता है।

शूलद्विष्–संज्ञा पुं० [सं०] हींग। हिंगु।

शूलधन्वा–संज्ञा पुं० [सं० शूलधन्वन्] शिव। महादेव।

शूलधर–संज्ञा पुं० [सं०] शिव। शंकर। उ०—गंगाधर हर शूलधर, ससिधर शंकर नाम। सर्वेश्वर भव शंभु शिव, रुद्र कामरिपु नाम।—नंद।

शूलधरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

शूलधारिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। शूलधरा।

शूलधारी–संज्ञा पुं० [सं० शूलधारिन्] त्रिशूल धारण करनेवाले, शिव। महादेव। उ०—संध्याबलि पूजन जब होइ शूलधारी को, दुंदुभी की ठौर दीजो गरज सुनाइ कै।—लक्ष्मणसिंह।

शूलना–क्रि० अ० [हिं० शूल+ना (प्रत्य०)] (१) शूल के समान गड़ना। (२) दुःख देना। पीड़ा देना। कष्ट देना। उ०—(क) सो सुधि यदुनंदन नहिं भूलत। सुमिरि सुमिरि अजहूँ उर शूलत।—सबल। (ख) कै कै पिय को नाम ठाँव हमरो नहिं छोड़ै। कठिन तुम्हारो बोल जाइ हिरदै में शूलै।—गिरधर।

शूलनाशन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौवर्चल लवण। (२) हींग। (३) पुष्कर मूल। (४) वैद्यक में शंख भस्म, करंजमूल, भूनी हींग, सोंठ, काली मिर्च, पीपल और सेंधा नमक के योग से बनाया हुआ एक प्रकार का चूर्ण जिसका व्यवहार प्रायः शूल रोग में किया जाता है।

शूलनाशिनी वटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की वटी या गोली। इसके लिये हड़ का छिलका, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, शुद्ध कुचला, शुद्ध गंधक, भूनी गंधक, भूनी हींग, सेंधा नमक जल से खरल करके चने के बराबर

शूरत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शूर होने का भाव या धर्म। शूरता। वीरता। बहादुरी।

शूरदेव-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार भविष्य में होनेवाले चौबीस अर्हतों में से एक अर्हत का नाम।

शूरन-संज्ञा पुं० दे० "सूरन"।

शूरपुत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अदिति का एक नाम।

शूरबल-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक देवपुत्र का नाम।

शूरभू-संज्ञा स्त्री० दे० "शूरभूमि"।

शूरभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार उग्रसेन की एक कन्या का नाम। लिखा है कि वसुदेव के छोटे भाई श्यामक ने इसके साथ विवाह किया था; और उनके वीर्य्य से इसके गर्भ से हरिकेश और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे।

शूरमानी-संज्ञा पुं० [सं० शूरमानिन्] वह जिसे अपनी शूरता का बहुत अभिमान हो। अपनी बहादुरी पर बहुत भरोसा रखनेवाला।

शूरवाणेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

शूरविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध आदि करने की विद्या।

शूरवीर-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अच्छा वीर और योद्धा हो। सरमा।

शूरवीरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शौर्य्य। बहादुरी।

शूरश्लोक-संज्ञा पुं० [सं०] वीरों के वीरतापूर्ण कृत्यों की कहानी। वीरगाथा।

शूरसेन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मथुरा के एक प्रसिद्ध राजा जो कृष्ण के पितामह और वसुदेव के पिता थे। (२) मथुरा और उसके आस पास के प्रदेश का प्राचीन नाम जहाँ राजा शूरसेन का राज्य था।

शूरसेनप-संज्ञा पुं० [सं०] शूर वीरों की सेना का पालन करनेवाले, कार्त्तिकेय।

शूरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीरकाकोली नामक अष्ट वर्गीय ओषधि।

छ† संज्ञा पुं० [सं० शूर] सामंत। वीर। उ०—पैठि गुफा में सब जग देखै, बाहर कछू न सूझै। उलटा बान पारधिव लागै, सूरा होय सो बूझै।—कबीर।

संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्य] सूर्य्य। उ०—जहाँ चंद न सूरा, तारा नहिं जहाँ भोरनिया।—कबीर।

शूरिमृग-संज्ञा पुं० [सं०] वाराह आदि जंगली पशु।

शूर्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गेहूँ, चावल आदि अन्न पछोड़ने के लिये बना हुआ बाँस या सींक का पात्र। सूप। (२) एक प्राचीन तौल जो २०४८ तोले या ३२ सेर की होती थी।

शूर्पक-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर जो किसी किसी के मत से कामदेव का शत्रु और किसी किसी के मत से उसका पुत्र था।

शूर्पकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी, जिसके कान सूप के समान होते हैं। (२) गणेश। (३) एक प्राचीन देश का नाम। (४) इस देश का निवासी। (५) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

शूर्पकाराति-संज्ञा पुं० [सं०] शूर्पक नामक राक्षस का शत्रु, कामदेव।

शूर्पकारि-संज्ञा पुं० [सं०] शूर्पक नामक राक्षस का शत्रु, कामदेव।

शूर्पणखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रसिद्ध राक्षसी जो रावण की बहिन थी। कहते हैं कि इसके नख सूप के समान थे। राम के बनवास के समय काम से पीड़ित होकर यह राम के पास उनके साथ विवाह करने की इच्छा से गई थी। वहाँ राम के इशारे से लक्ष्मण ने इसकी नाक और कान काट लिए थे। इसी का बदला लेने के लिये रावण सीता को हर ले गया था।

शूर्पणखी-संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पणखा"।

शूर्पणाय-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

शूर्पनखा-संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पणखा"।

शूर्पपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वन मूँग। वन वर्द।

शूर्पश्रुति-संज्ञा पुं० [सं०] हस्ती। हाथी।

शूर्पा-संज्ञा स्त्री० [?] बच्चों के खेलने का एक प्रकार का खिलौना।

शूर्पाद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिणी भारत के एक पर्वत का नाम। इसे कुछ लोग सूर्य्याद्रि भी कहते हैं।

शूर्पारक-संज्ञा पुं० [सं०] बंबई प्रांत के थाना जिले के सोपारा नाम स्थान का प्राचीन नाम।

शूर्म-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शूर्मि] (१) लोहे की बनी हुई मूर्त्ति। (२) निहाई।

शूल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जो प्रायः बरछे के आकार का होता था। (२) सूली जिससे प्राचीन काल में लोगों को प्राण-दंड दिया जाता था। (३) दे० "त्रिशूल"। (४) कोई बड़ा, लंबा और नुकीला काँटा। (५) वायु के प्रकोप से होनेवाला एक प्रकार का बहुत तेज दर्द। यह दर्द प्रायः पेट, पसली, कलेजे या पेड़ू आदि में होता है। वैद्यक के अनुसार बहुत अधिक व्यायाम या मैथुन करने, घोड़े पर चढ़ने, रात के समय जागने, बहुत अधिक ठंढा जल पीने, रूखे द्रव्यों का सेवन करने, सूखा मांस खाने, विरुद्ध भोजन करने, शारीरिक वेगों को रोकने, बहुत अधिक शोक या उपवास करने अथवा बहुत अधिक हँसने के कारण वायु का प्रकोप होता है जिससे पेट में या उसके आस पास बहुत तीव्र पीड़ा होती है। इस पीड़ा में ऐसा अनुभव होता है कि कोई अंदर

से बहुत नुकीला काँटा या शूल गड़ा रहता है; इसी से इसे शूल कहते हैं। यह रोग आठ प्रकार का—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, आमज, वातश्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक और वातपैत्तिक—कहा गया है; और इसे शांत करने के लिये स्वेद, अभ्यंग, मर्दन और स्निग्ध तथा उष्ण द्रव्यों के सेवन का विधान है। (६) किसी नुकीली वस्तु के चुभने के समान होनेवाली पीड़ा। कोंच। टीस। (७) पीड़ा। क्लेश। दुःख। दर्द। उ०—(क) तुम कछिमन निज पुरहि सिधारो। बिछुरन भेंट देहु लघु बंधू जियत न जैहै शूल तुम्हारो।—सूर। (ख) मन तोसों कोटिक बार कही। समुझ न चरण गहत गोविंद के उर अघ शूल सही।—सूर। (८) ज्योतिष में विष्कंभ आदि सत्ताइस योगों के अंतर्गत नवाँ योग। कहते हैं कि जो बालक इस योग में जन्म लेता है, वह डरपोक, दरिद्र, मूर्ख, विद्याहीन, शूल रोगी, दूसरों का अनिष्ट करनेवाला और अपने बंधु बांधव को शूल के समान खटकनेवाला होता है। इस योग में किसी प्रकार का शुभ काम करने का निषेध है। (९) छड़। सलाख। सींख। उ०—खाने को बहुधा शूल पर भुना हुआ मांस मिलता है, सो भी कुसमय।—लक्ष्मणसिंह। (१०) मृत्यु। मौत। (११) झंडा। पताका। (१२) पोस्ते की पत्तियों की वह तह जो अफीम की चक्की जमाने के समय उसके चारों ओर और ऊपर नीचे लगाई जाती है। (बंगाल)

वि० काँटे की तरह नोकवाला। नुकीला।

शूलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक ऋषि का नाम। (२) दुष्ट या पाजी घोड़ा।

शूलकार-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नीच जाति का नाम।

शूलगजकेसरी रस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक में एक प्रकार का रस जो शुद्ध गंधक, पारे, कंटकवेधी, ताँबे के पत्र आदि के योग से तैयार किया जाता है और शूल रोग के लिये गुणकारी माना जाता है। (२) वैद्यक में एक प्रकार की वटी या गोली। इसके लिये कौड़ियों की राख, शुद्ध सिंगी मुहरा, सेंधा नमक, काली मिर्च, पिप्पली इन सब का चूर्ण कर पान के रस में एक रत्ती के बराबर गोलियाँ बनाई जाती हैं। ये गोलियाँ शूल का नाश करती हैं।

शूलगाथ-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

शूलगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] मदरास प्रांत के एक पर्वत का नाम।

शूलगंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] आला वृक्ष।

शूलग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ में त्रिशूल धारण करनेवाले, शिव।

शूलग्राही-संज्ञा पुं० [सं० शूलग्राहिन्] शिव। महादेव।

शूलघातन-संज्ञा पुं० [सं०] मंडूर। लौहकिट्ट।

शूलघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] तुंबुरु वृक्ष।

शूलघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जी मिट्टी। सर्जिक्षार।

शूलदावानल रस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो दो तरह से बनता है—(१) शुद्ध पारा, शुद्ध सिंगी मुहरा, काली मिर्च, पिप्पली, सोंठ, भूनी हींग, पाँचो नमक, इमली का क्षार, जंभीरी का क्षार, शंख-भस्म और नीबू के रस के योग से बनता है और शूल रोग को तत्काल दूर करता है। (२) शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, सिंगी-मुहरा, पिप्पली, भूनी हींग, पाँचो नमक, इमली के क्षार और नीबू के रस में बुझे हुए शंख की राख तथा नीबू के रस से बनता है और शूल, अजीर्ण, उदर रोग और मंदाग्नि को दूर करता है।

शूलद्विट्-संज्ञा पुं० [सं०] हींग। हिंगु।

शूलधन्वा-संज्ञा पुं० [सं० शूलधन्वन्] शिव। महादेव।

शूलधर-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। शंकर। उ०—गंगाधर हर शूलधर, ससिधर शंकर नाम। सर्वेश्वर भव शंभु शिव, रुद्र कामरिपु नाम।—नंद।

शूलधरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

शूलधारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। शूलधरा।

शूलधारी-संज्ञा पुं० [सं० शूलधारिन्] त्रिशूल धारण करनेवाले, शिव। महादेव। उ०—संध्यावलि पूजन अब होइ शूल-धारी की, दुंदुभी की ठौर दीजो गरज सुनाइ कै।—लक्ष्मणसिंह।

शूलना॰-क्रि० अ० [हिं० शूल + ना (प्रत्य०)] (१) शूल के समान गड़ना। (२) दुःख देना। पीड़ा देना। कष्ट देना। उ०—(क) सो सुधि यदुनंदन नहिं भूलत। सुमिरि सुमिरि अजहूँ उर शूलत।—सबल। (ख) है कै विष को नाम ठौर हमरो नहिं छोड़ै। कठिन तुम्हारो बोल लाइ हिरदै में शूलै।—गिरधर।

शूलनाशन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौवर्चल लवण। (२) हींग। (३) पुष्कर मूल। (४) वैद्यक में शंख भस्म, करंजमूल, भूनी हींग, सोंठ, काली मिर्च, पीपल और सेंधा नमक के योग से बनाया हुआ एक प्रकार का चूर्ण जिसका व्यवहार प्रायः शूल रोग में किया जाता है।

शूलनाशिनी वटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की वटी या गोली। इसके लिये हड़ का छिलका, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, शुद्ध कुचला, शुद्ध गंधक, भूनी गंधक, भूनी हींग, सेंधा नमक जल से खरल करके चने के बराबर

शूरत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शूर होने का भाव या धर्म। शूरता। वीरता। बहादुरी।
शूरदेव-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार भविष्य में होनेवाले चौबीस अर्हतों में से एक अर्हत का नाम।
शूरन-संज्ञा पुं० दे० "सूरन"।
शूरपुत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अदिति का एक नाम।
शूरबल-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक देवपुत्र का नाम।
शूरभू-संज्ञा स्त्री० दे० "शूरभूमि"।
शूरभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार उग्रसेन की एक कन्या का नाम। लिखा है कि वसुदेव के छोटे भाई श्यामक ने इसके साथ विवाह किया था; और उनके वीर्य्य से इसके गर्भ से हरिकेश और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे।
शूरमानी-संज्ञा पुं० [सं० शूरमानिन्] वह जिसे अपनी वीरता का बहुत अभिमान हो। अपनी बहादुरी पर बहुत भरोसा रखनेवाला।
शूरवाणेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।
शूरविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध आदि करने की विद्या।
शूरवीर-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अच्छा वीर और योद्धा हो। सूरमा।
शूरवीरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शौर्य्य। बहादुरी।
शूरश्लोक-संज्ञा पुं० [सं०] वीरों के वीरतापूर्ण कार्यों की कहानी। वीरगाथा।
शूरसेन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मथुरा के एक प्रसिद्ध राजा जो कृष्ण के पितामह और वसुदेव के पिता थे। (२) मथुरा और उसके आस पास के प्रदेश का प्राचीन नाम जहाँ राजा शूरसेन का राज्य था।
शूरसेनप-संज्ञा पुं० [सं०] शूर वीरों की सेना का पालन करनेवाले, कार्त्तिकेय।
शूरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीरकाकोली नामक अष्ट वर्गीय ओषधि।
ॐ† संज्ञा पुं० [सं० शूर] सामंत। वीर। उ०—पैठि गुफा में सब जग देखै, बाहर कछू न सूझै। उलटा बान पारधिव लागे, सूरा होय सो बूझै।—कबीर।
संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्य] सूर्य्य। उ०—जहाँ चंद न सूरा, तारा नहिं जहाँ मोरनिया।—कबीर।
शूरिमृग-संज्ञा पुं० [सं०] वाराह आदि जंगली पशु।
शूर्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गेहूँ, चावल आदि अन्न पछोड़ने के लिये बना हुआ बाँस या सींक का पात्र। सूप। (२) एक प्राचीन तौल जो २०४८ तोले या ३२ सेर की होती थी।
शूर्पक-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर जो किसी किसी के मत से कामदेव का शत्रु और किसी किसी के मत से उसका पुत्र था।
शूर्पकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी, जिसके कान सूप के समान होते हैं। (२) गणेश। (३) एक प्राचीन देश का नाम। (४) इस देश का निवासी। (५) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।
शूर्पकाराति-संज्ञा पुं० [सं०] शूर्पक नामक राक्षस का शत्रु, कामदेव।
शूर्पकारि-संज्ञा पुं० [सं०] शूर्पक नामक राक्षस का शत्रु, कामदेव।
शूर्पणखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रसिद्ध राक्षसी जो रावण की बहिन थी। कहते हैं कि इसके नख सूप के समान थे। राम के वनवास के समय काम से पीड़ित होकर यह राम के पास उनके साथ विवाह करने की इच्छा से गई थी। वहाँ राम के इशारे से लक्ष्मण ने इसकी नाक और कान काट लिए थे। इसी का बदला लेने के लिये रावण सीता को हर ले गया था।
शूर्पणखी-संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पणखा"।
शूर्पणाय-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।
शूर्पनखा-संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पणखा"।
शूर्पपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वन मूँग। वन उर्द।
शूर्पश्रुति-संज्ञा पुं० [सं०] हस्ती। हाथी।
शूर्पा-संज्ञा स्त्री० [?] बच्चों के खेलने का एक प्रकार का खिलौना।
शूर्पाद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिणी भारत के एक पर्वत का नाम। इसे कुछ लोग सूर्य्याद्रि भी कहते हैं।
शूर्पारक-संज्ञा पुं० [सं०] बंबई प्रांत के थाना जिले के सोपारा नाम स्थान का प्राचीन नाम।
शूर्म-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शूर्मि] (१) लोहे की बनी हुई मूर्त्ति। (२) निहाई।
शूल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जो प्रायः बरछे के आकार का होता था। (२) सूली जिससे प्राचीन काल में लोगों को प्राण-दंड दिया जाता था। (३) दे० "त्रिशूल"। (४) कोई बड़ा, लंबा और नुकीला काँटा। (५) वायु के प्रकोप से होनेवाला एक प्रकार का बहुत तेज दर्द। यह दर्द प्रायः पेट, पसली, कलेजे या पेड़ू आदि में होता है। वैद्यक के अनुसार बहुत अधिक व्यायाम या मैथुन करने, घोड़े पर चढ़ने, रात के समय जागने, बहुत अधिक ठंढा जल पीने, रूखे द्रव्यों का सेवन करने, सूखा मांस खाने, विरुद्ध भोजन करने, शारीरिक वेगों को रोकने, बहुत अधिक शोक या उपवास करने अथवा बहुत अधिक हँसने के कारण वायु का प्रकोप होता है जिससे पेट में या उसके आस पास बहुत तीव्र पीड़ा होती है। इस पीड़ा में ऐसा अनुभव होता है कि कोई अंदर

से बहुत नुकीला काँटा या शूल गड़ा रहा है; इसी से इसे शूल कहते हैं। यह रोग आठ प्रकार का—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, आमज, वातश्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक और वातपैत्तिक—कहा गया है; और इसे शांत करने के लिये स्वेद, अभ्यंग, मर्दन और स्निग्ध तथा उष्ण द्रव्यों के सेवन का विधान है। (६) किसी नुकीली वस्तु के चुभने के समान होनेवाली पीड़ा। कोंच। टीस। (७) पीड़ा। क्लेश। दुःख। दर्द। उ०—(क) तुम लछिमन निज पुरहि सिधारो। बिछुरन भेट देहु लघु बंधू जियत न जैहै शूल तुम्हारो।—सूर। (ख) मन तोसों कोटिक बार कही। समुझ न चरण गहत गोविंद के उर अघ शूल सही।—सूर। (८) ज्योतिष में विष्कंभ आदि सत्ताइस योगों के अंतर्गत नवाँ योग। कहते हैं कि जो बालक इस योग में जन्म लेता है, वह क्रोधी, दरिद्र, मूर्ख, विद्याहीन, शूल रोगी, दूसरों का अनिष्ट करनेवाला और अपने बंधु बांधव को शूल के समान खटकनेवाला होता है। इस योग में किसी प्रकार का शुभ काम करने का निषेध है। (९) छड़। सलाख। सींख। उ०—खाने को बहुधा शूल पर भुना हुआ मांस मिलता है, सो भी कुसमय।—लक्ष्मणसिंह। (१०) मृत्यु। मौत। (११) झंडा। पताका। (१२) पोस्ते की पत्तियों की वह तह जो अफीम की चक्की जमाने के समय उसके चारों ओर और ऊपर नीचे लगाई जाती है। (बंगाल)

वि० काँटे की तरह नोकवाला। नुकीला।

शूलक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक ऋषि का नाम। (२) दुष्ट या पाजी घोड़ा।

शूलकार—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नीच जाति का नाम।

शूलगजकेसरी रस—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक में एक प्रकार का रस जो शुद्ध गंधक, पारे, कंटकवेधी, ताँबे के पत्र आदि के योग से तैयार किया जाता है और शूल रोग के लिये गुणकारी माना जाता है। (२) वैद्यक में एक प्रकार की वटी या गोली। इसके लिये कौड़ियों की राख, शुद्ध सिंगी मुहरा, सेंधा नमक, काली मिर्च, पिप्पली इन सब का चूर्ण कर पान के रस में एक रत्ती के बराबर गोलियाँ बनाई जाती हैं। ये गोलियाँ शूल का नाश करती हैं।

शूलगव—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

शूलगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] मदरास प्रांत के एक पर्वत का नाम।

शूलग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] माला दूब।

शूलग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ में त्रिशूल धारण करनेवाले, शिव।

शूलग्राही—संज्ञा पुं० [सं० शूलग्राहिन्] शिव। महादेव।

शूलघातन—संज्ञा पुं० [सं०] मंडूर। लौहकिट्ट।

शूलघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] तुंबुरु वृक्ष।

शूलघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जी मिट्टी। सर्जिखार।

शूलदावानल रस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो दो तरह से बनता है—(१) शुद्ध पारा, शुद्ध सिंगी मुहरा, काली मिर्च, पिप्पली, सोंठ, भूनी हींग, पाँचो नमक, इमली का खार, जंभीरी का खार, शंख-भस्म और नीबू के रस के योग से बनता है और शूल रोग को तत्काल दूर करता है। (२) शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, सिंगी-मुहरा, पिप्पली, भूनी हींग, पाँचो नमक, इमली के खार और नीबू के रस में बुझे हुए शंख की राख तथा नीबू के रस से बनता है और शूल, अजीर्ण, उदर रोग और मंदाग्नि को दूर करता है।

शूलद्विट्—संज्ञा पुं० [सं०] हींग। हिंगु।

शूलधन्वा—संज्ञा पुं० [सं० शूलधन्वन्] शिव। महादेव।

शूलधर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। शंकर। उ०—गंगाधर हर शूलधर, सशिधर शंकर नाम। सर्वेश्वर भव शंभु शिव, हर कामरिपु नाम।—नंद।

शूलधरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

शूलधारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। शूलधरा।

शूलधारी—संज्ञा पुं० [सं० शूलधारिन्] त्रिशूल धारण करनेवाले, शिव। महादेव। उ०—संध्यावलि पूजन जब होइ शूलधारी की, दुंदुभी की ठौर कीजो गरज सुनाइ कै।—लक्ष्मणसिंह।

शूलना—क्रि० अ० [हिं० शूल + ना (प्रत्य०)] (१) शूल के समान गड़ना। (२) दुःख देना। पीड़ा देना। कष्ट देना। उ०—(क) सो सुधि यदुनंदन नहिं भूलत। सुमिरि सुमिरि अजहूँ उर शूलत।—सबल। (ख) लै लै पिय को नाम ठाँव हमरो नहिं छोड़ै। कठिन तुम्हारो बोल लाइ हिरदै में शूलै।—गिरधर।

शूलनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौवर्चल लवण। (२) हींग। (३) पुष्कर मूल। (४) वैद्यक में शंख भस्म, करंजमूल, भूनी हींग, सोंठ, काली मिर्च, पीपल और सेंधा नमक के योग से बनाया हुआ एक प्रकार का चूर्ण जिसका व्यवहार प्रायः शूल रोग में किया जाता है।

शूलनाशिनी वटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की वटी या गोली। इसके लिये हड़ का छिलका, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, शुद्ध कुचला, शुद्ध गंधक, भूनी गंधक, भूनी हींग, सेंधा नमक जल से खरल करके चने के बराबर

गोलियाँ बनाई जाती हैं। कहते हैं कि प्रातःकाल इसे गरम जल के साथ सेवन करने से संग्रहणी, अतिसार, अजीर्ण, मंदाग्नि आदि दूर होती है।

शूलनाशी–संज्ञा पुं० [सं० शूलनाशिन्] हींग।

शूलनिर्मूलन–संज्ञा पुं० [सं०] दुःख का नाश करनेवाले, शिव। महादेव।

शूलपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे शूली भी कहते हैं।

शूलपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे शूली भी कहते हैं।

शूलपाणि–संज्ञा पुं० [सं०] हाथ में शूल धारण करनेवाले, शिव। महादेव।

शूलपानि–संज्ञा पुं० [सं० शूलपाणि] शिव। महादेव। उ०—दारिद-दमन, दुखदोष-दाह-दावानल, दुनी न दयालु दूजो दानि सूलपानि सों।—तुलसी।

शूलप्रोत–संज्ञा पुं० [सं०] नरक के एक भाग का नाम।

शूलमर्दन–संज्ञा पुं० [सं०] तालमखाना। कोकिलाक्ष।

शूलशत्रु–संज्ञा पुं० [सं०] रेंड़ का पेड़।

शूलशब्द–संज्ञा पुं० [सं०] पेट की गड़गड़ाहट के कारण होनेवाला शब्द।

शूलहंत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] शूल का नाश करनेवाली, अजवाइन। यवानी।

शूलहर–संज्ञा पुं० [सं०] पुष्कर-मूल।

शूलहस्त–संज्ञा पुं० [सं०] हाथ में शूल धारण करनेवाले, शिव। महादेव।

शूलहृत–संज्ञा पुं० [सं०] हिंगु। हींग।

शूलांक–संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

शूला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वेश्या। रंडी। (२) सूली जिसके द्वारा प्राचीन काल में लोगों को प्राण दंड दिया जाता था। (३) छड़। सीख। सलाख।

शूलाकृत–संज्ञा पुं० [सं०] लोहे की सीख में खोंस कर भूना हुआ मांस। सीख पर भूना हुआ मांस। कबाब आदि।

शूलारि–संज्ञा पुं० [सं०] हिंगोट। इंगुदी वृक्ष।

शूलि–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम। महादेव।
संज्ञा स्त्री० दे० "सूली"।

शूलिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खरगोश। खरहा। (२) सीख में गोद कर पकाया हुआ मांस। कबाब। (३) फाँसी देनेवाला। सूली देनेवाला। उ०—इन मघादि तीसरे मंडल के दैत्यगुरु यदि और किसी ग्रह से युक्त अथवा सौ पेड़ों के समूह, शबर, शूद्र, पुण्ड्र, पश्चिम की सीमा का अंत, शूलिक, वनवासी, द्रविड़, समुद्र के पुरुषों का नाश हो जाता है।—बृहत्संहिता।

शूलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सीख में गोदकर भूना हुआ मांस। कबाब।

शूलिकाप्रोत–संज्ञा पुं० दे० "शूलिका"।

शूलिन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भांडीर वृक्ष। (२) गूलर का पेड़। उदुंबर।

शूलिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा का एक नाम जो त्रिशूल धारण करनेवाली मानी जाती हैं। (२) पान। नागवल्ली। (३) पुत्रदात्री नाम की लता।

शूली–संज्ञा पुं० [सं० शूलिन्] (१) त्रिशूल धारण करनेवाले, शिव। महादेव। उ०—शृंगी शूली धूरजटी कुंडलीश त्रिपुरारि। वृषा कपर्दी मानहर मृत्युंजय कामारि।—सबल। (२) खरगोश। शशक। खरहा। (३) शूल रोग से पीड़ित व्यक्ति। वह जिसे शूल रोग हुआ हो। (४) एक नरक का नाम। उ०—तेरहों शूली नरक कहावै। शूली सम दुख तामे पावै। जो नर पाप करै अधिकाई। करि शिकार मृग मारै जाई। नाहक नर शूली धरि दीन्हों। जिन बन माहिं ठगाही कीन्हों। काहू को वाहन ते मारे। तेहि यम शूली नरक में डारे।—विश्राम।
संज्ञा स्त्री० दे० "सूली"। उ०—कौन पाप मैं ऐसो कियो। जाते मोकूँ शूली दियो।—सूर।
संज्ञा स्त्री० [सं० शूल] पीड़ा। शूल। उ०—सो सुधि भूप हिये मँह भूली। अजहूँ उठत जासु ते शूली।—सबल।
क्रि० प्र०—उठना।
संज्ञा स्त्री० [सं० शूलपत्री] एक प्रकार की घास जिसे पशु बड़े चाव से खाते हैं और जिसका व्यवहार औषध रूप में भी होता है। वैद्यक के अनुसार यह किंचित् उष्ण, गुरु, बलकारक, पित्त तथा दाह-नाशक और गौओं तथा भैंसों का दूध बढ़ानेवाली मानी जाती है।

शूलोत्था–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमराजी लता। बकुची।

शूल्य–संज्ञा पुं० [सं०] सीख में बेधकर पकाया हुआ मांस। कबाब।

शूल्यपाक–संज्ञा पुं० [सं०] कबाब।

शूल्यमांस–संज्ञा पुं० [सं०] कबाब।

शूल्यवाण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की भूतयोनि जिसका मान वैदिक काल में होता था।

शृंखल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का आभरण जो प्राचीन काल में पुरुष लोग कमर में पहनते थे। मेखला। (२) हाथी आदि के बाँधने की लोहे की जंजीर। साँकल। सिक्कड़। उ०—अंकुस घंट सुशृंखल जेऊ। चौदह सहस महा गज लेऊ।—पद्माकर। (३) हथकड़ी बेड़ी। (४) नियम।

शृंखलक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊँट। (२) दे० "शृंखल"

शृंखलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिलसिलेवार या क्रमबद्ध होने का भाव ।

शृंखला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) क्रम । सिलसिला । (२) जंजीर । साँकल । (३) कटि वस्त्र । मेखला । (४) चाँदी का एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ कमर में पहनती हैं । करधनी । तागड़ी । (५) श्रेणी । कतार । (६) एक प्रकार का अलंकार जिसमें कथित पदार्थों का वर्णन शृंखला के रूप में सिलसिलेवार किया जाता है ।

शृंखलाबद्ध-वि० [सं०] (१) जो क्रम से हो । सिलसिलेवार । (२) जो शृंखला से बँधा हुआ हो ।

शृंखलि-संज्ञा पुं० [सं०] कोकिलाक्ष । तालमखाना ।

शृंखलित-वि० [सं०] (१) क्रमबद्ध । श्रेणीबद्ध । सिलसिलेवार । (२) पिरोया हुआ ।

शृंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पर्वत का ऊपरी भाग । शिखर । चोटी । (२) गौ, भैंस, बकरी आदि के सिर के सींग । उ०—भक्ति बिन बैल बिराने ह्वैहो । पाँउ चारि सिर शृंग गुंग मुख तब कैसे गुण गैहो ।—सूर । (३) कँगूरा । उ०—जो कांचनीय रच शृंग मयूर माली । जाके उदार उर षण्मुख शक्तिशाली ।—केशव । (४) प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो मुँह से फूँक कर बजाया जाता है । सिंगी बाजा । उ०—कंस ताल करताल बजावत शृंग मधुर मुहचंग । मधुर खंजरी पटह प्रणव मिलि सुख पावत रसभंग ।—सूर । (५) कमल । पद्म । (६) जीवक नामक अष्टवर्गीय ओषधि । (७) सोंठ । (८) अदरक । आदी । (९) अगर । (१०) प्रभुत्व । प्रधानता । (११) काम की उत्तेजना । (१२) चिह्न । निशान । (१३) स्तन । छाती । (१४) एक प्राचीन ऋषि का नाम । वि० दे० "ऋष्यशृंग" । (१५) पानी का फौवारा ।

वि० तीक्ष्ण । तेज ।

शृंगकंद-संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा ।

शृंगक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीवक वृक्ष । (२) सिंगिया नामक विष ।

शृंगकूट-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम ।

शृंगगिरि-संज्ञा पुं० दे० "शृंगकूट" ।

शृंगग्राहिता न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] एक न्याय जिसका उपयोग उस समय होता है, जब किसी कठिन काम का एक अंश हो जाने पर शेष अंश का संपादन उसी प्रकार सहज हो जाता है, जिस प्रकार सींग मारनेवाले बैल का एक सींग पकड़ लेने पर दूसरा सींग भी पकड़ लेना सहज हो जाता है ।

शृंगज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगर । अगरु । (२) शर । तीर ।

शृंगनाम-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विष ।

शृंगनासी-संज्ञा स्त्री० [सं०] काकड़ासिंगी । कर्कटशृंगी ।

शृंगपुर-संज्ञा पुं० दे० "शृंगवेरपुर" ।

शृंगभेदी-संज्ञा पुं० [सं० शृंगभेदिन्] गुंद्रा नामक तृण ।

शृंगमूल-संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा ।

शृंगमोही-संज्ञा पुं० [सं० शृंगमोहिन्] चंपक वृक्ष । चंपा ।

शृंगरुह-संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा ।

शृंगला-संज्ञा स्त्री० [सं०] मेढ़ासिंगी ।

शृंगवत्-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार कुरुवर्ष की सीमा पर के एक पर्वत का नाम ।

शृंगवृष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

शृंगवेर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आदी । अदरक । (२) सोंठ । (३) महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम । (४) दे० "शृंगवेरपुर" ।

शृंगवेरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अदरक । आदी । (२) सोंठ ।

शृंगवेरपुर-संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार एक प्राचीन नगर का नाम जहाँ रामचंद्र के समय में निषाद राजा गुह की राजधानी थी । संभवतः प्रतापगढ़ ज़िले का सिंगरौर नामक गाँव ही प्राचीन शृंगवेरपुर है । उ०—(क) सो दिन शृंगवेरपुर आए । राम सखा ते समाचार सुनि वारि विलोचन छाए ।—तुलसी । (ख) छलि पुरवासिन को आए शृंगवेरपुर खबरि निषाद राति कोउ कही जाइकै ।—रघुराज ।

शृंगवेराभमूल-संज्ञा पुं० [सं०] गुंद्रा नामक तृण ।

शृंगवेरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोभी ।

शृंगसुख-संज्ञा पुं० [सं०] सिंगी या सिंघा नामक बाजा ।

शृंगाट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंघाड़ा । (२) गोखरू । (३) कँटाई । विकंकत । (४) कामरूप देश के एक पर्वत का नाम । (५) चौराहा । चौमुहानी ।

शृंगाटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का खाद्य-पदार्थ जो मांस से बनाया जाता था । (२) एक मर्मस्थान जो मस्तक में उस स्थान पर माना जाता है, जहाँ नाक, कान, आँख और जीभ से संबंध रखनेवाली चारों शिराएँ मिलती हैं । कहते हैं कि यह मर्मस्थान चार अंगुल का होता है और इसके चारों ओर से चारों शिराएँ निकलती हैं; इसी से इसे शृंगाटक कहते हैं । यह भी माना जाता है कि इस स्थान पर चोट लगने से तुरंत मृत्यु हो जाती है । (३) दे० "शृंगाट" ।

शृंगाटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती ।

शृंगार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साहित्य के अनुसार नौ रसों में से एक रस जो सब से अधिक प्रसिद्ध है और प्रधान माना जाता है । इसमें नायक नायिका के परस्पर मिलन के कारण होनेवाले सुख की परिपुष्टता दिखलाई जाती है । इसका स्थायी भाव रति है । आलंबन विभाव नायक और नायिका हैं । उद्दीपन विभाव सखा, सखी, वन, बाग आदि, विहार, चंद्र, चंदन, भ्रमर, झंकार, हाव भाव, मुसकान तथा

गोलियाँ बनाई जाती हैं। कहते हैं कि प्रातःकाल इसे गरम जल के साथ सेवन करने से संग्रहणी, अतिसार, अजीर्ण, मंदाग्नि आदि दूर होती है।

शूलनाशी-संज्ञा पुं० [सं० शूलनाशिन्] हींग।

शूलनिर्मूलन-संज्ञा पुं० [सं०] दुःख का नाश करनेवाले, शिव। महादेव।

शूलपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे शूली भी कहते हैं।

शूलपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे शूली भी कहते हैं।

शूलपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ में शूल धारण करनेवाले, शिव। महादेव।

शूलपानि-संज्ञा पुं० [सं० शूलपाणि] शिव। महादेव। उ०—दारिद-दमन, दुखदोष-दाह-दावानल, दुनी न दयालु दूजो दानि सूलपानि सो।—तुलसी।

शूलप्रोत-संज्ञा पुं० [सं०] नरक के एक भाग का नाम।

शूलमर्द्दन-संज्ञा पुं० [सं०] तालमखाना। कोकिलाक्ष।

शूलशत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] रेंड़ का पेड़।

शूलशब्द-संज्ञा पुं० [सं०] पेट की गड़गड़ाहट के कारण होनेवाला शब्द।

शूलहंत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] शूल का नाश करनेवाली, अजवाइन। यवानी।

शूलहर-संज्ञा पुं० [सं०] पुष्कर-मूल।

शूलहस्त-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ में शूल धारण करनेवाले, शिव। महादेव।

शूलहृत-संज्ञा पुं० [सं०] हिंगु। हींग।

शूलांक-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

शूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वेश्या। रंडी। (२) सूली जिसके द्वारा प्राचीन काल में लोगों को प्राण दंड दिया जाता था। (३) छड़। सीख। सलाख।

शूलाकृत-संज्ञा पुं० [सं०] लोहे की सीख में खोंस कर भूना हुआ मांस। सीख पर भूना हुआ मांस। कबाब आदि।

शूलारि-संज्ञा पुं० [सं०] हिंगोट। इंगुदी वृक्ष।

शूलि-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम। महादेव।
संज्ञा स्त्री० दे० "सूली"।

शूलिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खरगोश। खरहा। (२) सीख में गोद कर पकाया हुआ मांस। कबाब। (३) फाँसी देनेवाला। सूली देनेवाला। उ०—इन ग्रहादि तीसरे मंडल के दैत्य-गुरु यदि और किसी ग्रह से रुक जाँय तो पेड़ों के समूह, शबर, शूद्र, पुण्ड्र, पश्चिम की सीमा का अन्त, शूलिक, वनवासी, द्रविड़, समुद्र के पुरुषों का नाश हो जाता है।—बृहत्संहिता।

शूलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सीख में गोदकर भूना हुआ मांस। कबाब।

शूलिकाप्रोत-संज्ञा पुं० दे० "शूलिका"।

शूलिन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भांडीर वृक्ष। (२) गूलर का पेड़। उदुंबर।

शूलिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा का एक नाम जो त्रिशूल धारण करनेवाली मानी जाती हैं। (२) पान। नागवल्ली। (३) पुत्रदात्री नाम की लता।

शूली-संज्ञा पुं० [सं० शूलिन्] (१) त्रिशूल धारण करनेवाले, शिव। महादेव। उ०—श्रंगी शूली धूरजटी कुंडलीश त्रिपुरारि। वृषा कपर्दी मानहर मृत्युंजय कामारि।—सबल। (२) खरगोश। शशक। खरहा। (३) शूल रोग से पीड़ित व्यक्ति। वह जिसे शूल रोग हुआ हो। (४) एक नरक का नाम। उ०—तेरहों शूली नरक कहावै। शूली सम दुख तामे पावै। जो नर पाप करै अधिकाई। करि सिकार मृग मारि खाई। नाहक नर शूली धरि दीन्हों। जिन बन माहिं दगाही कीन्हों। काहू को बाभन से मारे। तेहि यम शूली नरक में डारे।—विश्राम।
संज्ञा स्त्री० दे० "सूली"। उ०—कौन पाप मैं ऐसो कियो। जाते मोकूँ शूली दियो।—सूर।
संज्ञा स्त्री० [सं० शूल] पीड़ा। शूल। उ०—सो सुधि भूप हिये मैंह भूली। अजहूँ उठत जासु से शूली।—सबल।
क्रि० प्र०—उठना।
संज्ञा स्त्री० [सं० शूलपत्री] एक प्रकार की घास जिसे पशु बड़े चाव से खाते हैं और जिसका व्यवहार औषध रूप में भी होता है। वैद्यक के अनुसार यह किंचित् उष्ण, गुरु, बलकारक, पित्त तथा दाह-नाशक और गौओं तथा भैंसों का दूध बढ़ानेवाली मानी जाती है।

शूलोदया-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमराजी लता। बकुची।

शूल्य-संज्ञा पुं० [सं०] सीख में बेधकर पकाया हुआ मांस। कबाब।

शूल्यपाक-संज्ञा पुं० [सं०] कबाब।

शूल्यमांस-संज्ञा पुं० [सं०] कबाब।

शूल्यवाण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की भूतयोनि जिसका मान वैदिक काल में होता था।

शृंखल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का आभरण जो प्राचीन काल में पुरुष लोग कमर में पहनते थे। मेखला। (२) हाथी आदि के बाँधने की लोहे की जंजीर। साँकल। सिकड़। उ०—अंकुस घंट सुश्रृंखल लेऊ। चौदह सहस महा गज लेऊ।—पद्माकर। (३) हथकड़ी बेड़ी। (४) नियम।

शृंखलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊँट। (२) दे० "शृंखल"।

शृंखलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिलसिलेवार या क्रमबद्ध होने का भाव।

शृंखला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) क्रम। सिलसिला। (२) जंजीर। साँकल। (३) कटि वस्त्र। मेखला। (४) चाँदी का एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ कमर में पहनती हैं। करधनी। तागड़ी। (५) श्रेणी। कतार। (६) एक प्रकार का अलंकार जिसमें कथित पदार्थों का वर्णन शृंखला के रूप में सिलसिलेवार किया जाता है।

शृंखलाबद्ध-वि० [सं०] (१) जो क्रम से हो। सिलसिलेवार। (२) जो शृंखला से बाँधा हुआ हो।

शृंखलि-संज्ञा पुं० [सं०] कोकिलाक्ष। ताल मखाना।

शृंखलित-वि० [सं०] (१) क्रमबद्ध। श्रेणीबद्ध। सिलसिलेवार। (२) पिरोया हुआ।

शृंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पर्वत का ऊपरी भाग। शिखर। चोटी। (२) गौ, भैंस, बकरी आदि के सिर के सींग। उ०—भक्ति बिन बैल बिराने ह्वैहो। पाँउ चारि सिर शृंग गुंग मुख तब कैसे गुण गैहो।—सूर। (३) कँगूरा। उ०—जो कांचनीय रच शृंग मयूर भाली। जाके उदार उर पन्नग शालिकाली।—केशव। (४) प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो मुँह से फूँक कर बजाया जाता है। सिंगी बाजा। उ०—कंस ताल करताल बजावत शृंग मधुर मुहचंग। मधुर खंजरी पटह प्रणव मिल सुख पावत रतभंग।—सूर। (५) कमल। पद्म। (६) जीवक नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (७) सोंठ। (८) अदरक। आदी। (९) अगर। (१०) प्रभुत्व। प्रधानता। (११) काम की उत्तेजना। (१२) चिह्न। निशान। (१३) स्तन। छाती। (१४) एक प्राचीन ऋषि का नाम। वि० दे० "ऋष्यशृंग"। (१५) पानी का फौवारा।

वि० तीक्ष्ण। तेज।

शृंगकंद-संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा।

शृंगक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीवक वृक्ष। (२) सिंगिया नामक विष।

शृंगकूट-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

शृंगगिरि-संज्ञा पुं० दे० "शृंगकूट"।

शृंगग्राहिका न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] एक न्याय जिसका उपयोग उस समय होता है, जब किसी कठिन काम का एक अंश हो जाने पर शेष अंश का संपादन उसी प्रकार सहज हो जाता है, जिस प्रकार सींग मारनेवाले बैल का एक सींग पकड़ लेने पर दूसरा सींग भी पकड़ लेना सहज हो जाता है।

शृंगज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगर। अगरु। (२) शर। तीर।

शृंगनाम-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विष।

शृंगनाम्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] काकड़ासिंगी। कर्कटशृंगी।

शृंगपुर-संज्ञा पुं० दे० "शृंगबेरपुर"।

शृंगभेदी-संज्ञा पुं० [सं० शृंगभेदिन्] गुंदा नामक तृण।

शृंगमूल-संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा।

शृंगमोही-संज्ञा पुं० [सं० शृंगमोहिन्] चंपक वृक्ष। चंपा।

शृंगरुह-संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा।

शृंगला-संज्ञा स्त्री० [सं०] मेढ़ासिंगी।

शृंगवत्-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार कुरुवर्ष की सीमा पर के एक पर्वत का नाम।

शृंगवृष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शृंगवेर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आदी। अदरक। (२) सोंठ। (३) महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम। (४) दे० "शृंगबेरपुर"।

शृंगवेरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अदरक। आदी। (२) सोंठ।

शृंगवेरपुर-संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार एक प्राचीन नगर का नाम जहाँ रामचंद्र के समय में निषाद राजा गुह की राजधानी थी। संभवतः प्रतापगढ़ ज़िले का सिंगरौर नामक गाँव ही प्राचीन शृंगबेरपुर है। उ०—(क) ता दिन शृंगबेरपुर आए। राम सखा से समाचार सुनि वारि विलोचन छाए।—तुलसी। (ख) तब पुरवासिन को आए शृंगबेरपुर सवरि निषाद राजै कोऊ कही जाइकै।—रघुराज।

शृंगवेराभमूल-संज्ञा पुं० [सं०] गुंदा नामक तृण।

शृंगवेरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोभी।

शृंगसुख-संज्ञा पुं० [सं०] सिंगी या सिंघा नामक बाजा।

शृंगाट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंघाड़ा। (२) गोखरू। (३) कँटाई। विकंकत। (४) कामरूप देश के एक पर्वत का नाम। (५) चौराहा। चौमुहानी।

शृंगाटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का खाद्य-पदार्थ जो मांस से बनाया जाता था। (२) एक मर्मस्थान जो मस्तक में उस स्थान पर माना जाता है, जहाँ नाक, कान, आँख और जीभ से संबंध रखनेवाली चारों शिराएँ मिलती हैं। कहते हैं कि यह मर्मस्थान चार अंगुल का होता है और इसके चारों ओर से चारों शिराएँ निकलती हैं; इसी से इसे शृंगाटक कहते हैं। यह भी माना जाता है कि इस स्थान पर चोट लगने से तुरंत मृत्यु हो जाती है। (३) दे० "शृंगाट"।

शृंगाटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती।

शृंगार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साहित्य के अनुसार नौ रसों में से एक रस जो सब से अधिक प्रसिद्ध है और प्रधान माना जाता है। इसमें नायक नायिका के परस्पर मिलन के कारण होनेवाले सुख की परिपुष्टता दिखलाई जाती है। इसका स्थायी भाव रति है। आलंबन विभाव नायक और नायिका हैं। उद्दीपन विभाव सखा, सखी, वन, बाग आदि, विहार, चंद्र, चंदन, भ्रमर, झंकार, हाव भाव, मुखस्थान तथा

विनोद आदि हैं। यही एक रस है जिसमें संचारी, विभाव, अनुभाव सब भेदों सहित होता है; और इसी कारण इसे रसराज कहते हैं। इसके देवता विष्णु अथवा कृष्ण माने गए हैं और इसका वर्ण श्याम कहा गया है। यह दो प्रकार का होता है—एक संयोग और दूसरा वियोग या विप्रलंभ। नायक नायिका के मिलने को संयोग और उनके विछोह को वियोग कहते हैं। उ०—जाको थायी भाव रत, सो शृंगार सुहोत। मिलि विभाव अनुभाव, पुनि संचारिन के गोत।—पद्माकर। (२) स्त्रियों का वस्त्राभूषण आदि से शरीर को सुशोभित और चित्ताकर्षक बनाना। सजावट।

विशेष—शृंगार १६ कहे गए हैं—अंग में उबटन लगाना, नहाना, स्वच्छ वस्त्र धारण करना, बाल सँवारना, काजल लगाना, सेंदुर से माँग भरना, महावर देना, भाल पर तिलक लगाना, चिबुक पर तिल बनाना, मेंहदी लगाना, अरगजा आदि सुगंधित वस्तुओं का प्रयोग करना, आभूषण पहनना, फूलों की माला धारण करना, पान खाना, मिस्सी लगाना। उ०—(क) अंग शुची मंजन वसन, माँग महावर केश। तिलक भाल तिल चिबुक में भूषण मेंहदी वेश। मिस्सी काजल अरगजा, बीरी और सुगंध। पुष्प कली युत होय कर, तब नव सस निबंध। (ख) संग सखी सोहैं बिधि बारा। कीन्हे तन षोडश शृंगारा।—रघुनाथ।

(३) किसी चीज को दूसरे सुंदर उपकरणों से सुसज्जित करना। सजावट। बनाव-चुनाव। उ०—(क) पुनि सुसिंगार-हाट भल देसा। किये सिंगार बैठि तँह बेसा।—जायसी। (ख) रूपवती बहु बार बधू करि भूषण वसन सिंगारा। मुनिहिं छोभाय उपाय अनेकनि आनहिं करि सत्कारा।—रघुराज। (४) भक्ति का एक भाव या प्रकार जिसमें भक्त अपने आप को पत्नी के रूप में और अपने इष्टदेव को पति के रूप में मानते हैं। उ०—शांत दास्य सख्य वात्सल्य और शृंगार चारु पाँचौ रस सार विस्तार नीके गाये हैं।—नाभादास। (५) वह जिससे किसी चीज की शोभा बढ़ती हो। उ०—यशुमति कोखि सराहि बलैया लेन लगी ब्रजनार। ऐसो सुत तेरे गृह प्रकट्यो या ब्रज को शृंगार।—सूर। (६) लौंग। (७) सेंदुर। (८) अदरक। (९) चूर्ण। चूरन। (१०) काला अगर। (११) सोना। (१२) रति। मैथुन।

शृंगारक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेंदुर। (२) लौंग। (३) अदरक। आदी। (४) काला अगर।

शृंगारजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० शृंगारजन्मन्] कामदेव या मदन का एक नाम।

शृंगारण—संज्ञा पुं० [सं०] किसी रूपवती स्त्री को देखकर उस पर अपनी काम-वासना प्रकट करने की क्रिया। प्रेम-प्रदर्शन। मुहब्बत जतलाना।

शृंगारना—क्रि० स० [हिं० शृंगार + ना (प्रत्य०)] आभूषण आदि से या और किसी प्रकार सँवारना। शृंगार करना। सजाना।

शृंगारभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेंदुर। सिंदूर। (२) हरताल।

शृंगारमंडल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रज का एक स्थान जहाँ पर श्रीकृष्ण ने राधिका का शृंगार किया था। (२) वह स्थान जहाँ प्रेमी और प्रेमिका मिलकर काम-क्रीड़ा करते हों। क्रीड़ास्थल।

शृंगारयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] मदन या कामदेव का एक नाम।

शृंगारवेश—संज्ञा पुं० [सं०] वह सुंदर वेश जिसे धारण करके प्रेमी अपनी प्रेमिका के पास जाता है।

शृंगारहाट—संज्ञा स्त्री० [सं० शृंगार + हिं० हाट] वह बाजार जहाँ वेश्याएँ रहती हों। चकला। उ०—पुनि शृंगारहाट भल बेसा। किये सिंगार बैठि तहँ बेसा।—जायसी।

शृंगारिक—वि० [सं०] शृंगार संबंधी। उ०—कलित लताओं को पहले के अपने सब शृंगारिक-भाव। हरिण-नारियों को नयनों की चंचलता का सहज स्वभाव।—महावीरप्रसाद।

शृंगारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शृंगार करनेवाली स्त्री। शृंगारप्रिय। (२) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक पाद में चार रगण (ऽ।ऽ) होते हैं। इसको 'स्रग्विणी' 'कामिनी' 'मोहन' 'लक्ष्मीधरा' और 'लक्ष्मीधर' भी कहते हैं।

शृंगारित—वि० [सं०] जिसका शृंगार किया गया हो। सजा हुआ। सँवारा हुआ।

शृंगारिया—संज्ञा पुं० [सं० शृंगार + इया (प्रत्य०)] (१) वह जो देवताओं आदि का शृंगार करता हो। (२) वह जो तरह तरह के भेस बनाता हो। बहुरूपिया।

शृंगारी—संज्ञा पुं० [सं० शृंगारिन्] (१) सुपारी। (२) मानिक। चुन्नी। (३) हाथी।

शृंगाटक—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंघाड़ा। शृंगाटक।

शृंगालिका, शृंगाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] विदारीकंद।

शृंगाह्व—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीवक नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (२) सिंघाड़ा।

शृंगाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जीवक नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (२) सिंघाड़ा।

शृंगि—संज्ञा पुं० [सं०] सिंगी मछली।

संज्ञा पुं० [सं० शृंगिन्] वह पशु जिसके सिर पर सींग हो। सींगोंवाला जानवर। उ०—नखी, नदी और शृंगि को धरत धाव निज पास। राजवंश औ नारि में करु न कबहुँ बिश्वास।—सीताराम।

शृंगिक–संज्ञा पुं० [सं०] सिंगिया विष ।

शृंगिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहुत प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो मुँह से फूँक कर बजाया जाता था। सिंगी। (२) अतीस। अतिविषा। (३) काकड़ासिंगी। (४) मेढ़ासिंगी। (५) पिप्पली। पीपल।

शृंगिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाय। गौ। (२) मल्लिका। मोतिया। (३) मालकंगनी। ज्योतिष्मती लता। (४) अतीस। अतिविषा।

शृंगी–संज्ञा पुं० [सं० शृंगिन्] (१) हाथी। हस्ती। (२) वृक्ष। पेड़। (३) पर्वत। पहाड़। (४) एक ऋषि जो शमीक के पुत्र थे। इन्हीं के शाप से अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को तक्षक ने डसा था। उ०—शृंगी ऋषि तब कियो विचार। प्रजा दुःख कर नृपत गुहार।—सूर। (५) बरगद। (६) पाकड़। (७) अमड़ा। (८) ऋषभक नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (९) सींगवाला पशु। जैसे,—गौ, बैल, बकरी आदि। (१०) जीवक नामक ओषधि। (११) सिंगिया नामक विष। (१२) सींग का बना हुआ एक प्रकार का बाजा, जिसे कनफटे बजाते हैं। उ०—शृंगी शब्द धंधारी करा। जरै सो ठाट जहाँ पग धरा।—जायसी। (१३) महादेव। शिव। उ०—शृंगी शूली धूरजटी, कुंडलीश त्रिपुरारि। वृषा कपर्दी मानहर, मृत्युंजय कामारि।—सबल (१४) एक प्राचीन देश का नाम। उ०—शृंगी सिंधु कच्छ के राई। आए सकल समेत सहाई।—सबल।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अतीस। (२) काकड़ासिंगी। (३) सिंगी मछली। (४) मजीठ। मंजिष्ठा। (५) आँवला। (६) पोई का साग। (७) ऋषभक नामक ओषधि। (८) पाकर। (९) वट। बड़। (१०) विष। जहर। (११) वह सोना जिससे गहने बनाए जाते हैं।

शृंगीक–संज्ञा पुं० [सं०] काकड़ा सिंगी।

शृंगीकनक–संज्ञा पुं० [सं०] वह सोना जिससे गहने बनाए जाते हैं।

शृंगीगिरि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन पर्वत का नाम जिस पर शृंगी ऋषि तप किया करते थे। उ०—पूरण काम ज्ञान गन राजा। शृंगी गिरि गवने यति राजा। जहँ शृंगी ऋषि वर तप करहीं। धर्म नयन सो देखि न परहीं।—राधाकृष्ण।

शृंगेरी–संज्ञा पुं० [सं०] शंकराचार्य्य के मतानुयायी संन्यासियों का एक प्रसिद्ध मठ जो दक्षिण भारत में है। इसके प्रधान मठीश्वर शंकराचार्य्य कहलाते हैं।

शृंगोन्नति–संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रहों और नक्षत्रों आदि की एक प्रकार की गति।

शृकाल–संज्ञा पुं० दे० "शृगाल"।

शृगल–संज्ञा पुं० दे० "शृगाल"। उ०—बहुतन कंक काक दाग खाना। अक्षत करत कटकटी नाना।—विश्राम०।

शृगाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गीदड़ नामक जंगली जंतु। सियार। जंबुक। वि० दे० "गीदड़"। उ०—व्याघ्र कुरंग शृगाल शशादी। कानन नर बानर चिघारी।—सबल। (२) एक दैत्य का नाम। (३) वासुदेव।

वि० (१) भीरु। डरपोक। (२) निष्ठुर। निर्दय। (३) खल। दुष्ट।

शृगाल कंटक–संज्ञा पुं० [सं०] भरभाँड़ या सत्यानासी नाम का कँटीला क्षुप।

शृगालकोलि–संज्ञा पुं० [सं०] उन्नाव। कर्कंधु।

शृगाल घंटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] तालमखाना। कोकिलाक्ष।

शृगाल जंबु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोहुँआ। गोमा ककड़ी। (२) कर्कंधु। उन्नाव। (३) तरबूज।

शृगालविन्ना–संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन। पृश्निपर्णी।

शृगालिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विदारी कंद। (२) पृश्निपर्णी। (३) सियारिन। गीदड़ी। (४) लोमड़ी।

शृगाली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तालमखाना। (२) विदारी कंद। (३) गीदड़ की मादा। गीदड़ी।

शृणि–संज्ञा स्त्री० [सं०] अंकुश। आँकुस।

शृत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्वाथ। काढ़ा। (२) औटा हुआ दूध।

शृतशीत–संज्ञा पुं० [सं०] औटाया हुआ पानी जो प्रायः ज्वर के रोगियों को दिया जाता है और वैद्यक के अनुसार रक्तविकार, वमन, ज्वर और सन्निपात आदि रोगों का नाशक माना जाता है।

शृधु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मलद्वार। गुदा। (२) बुद्धि।

शृधू–संज्ञा पुं० [सं०] गुदा। मलद्वार।

वि० कुत्सित। बुरा। खराब।

शृष्टि–संज्ञा पुं० [सं०] कंस के आठ भाइयों में से एक। उ०—शृष्टि सुनामा कंक सुहू राष्ट्रपाल न्यग्रोध। शंकु तुष्टि ए भ्रात-वर योधा पूरित क्रोध।—गोपाल।

शेख़–संज्ञा पुं० [अ०] [स्त्री० शेख़ानी] (१) पैग़ंबर मुहम्मद के वंशजों की उपाधि। (२) मुसलमानों के चार वर्गों में सब से पहला वर्ग। (३) मुसलमान उपदेशक। इसलाम धर्म का आचार्य्य। (४) पीर। बड़ा बूढ़ा।

शेखल–संज्ञा पुं० दे० "शेष"।

शेख़ चिल्ली–संज्ञा पुं० [अ० + हिं०] (१) एक कल्पित मूर्ख व्यक्ति जिसके संबंध में बहुत सी विलक्षण और हँसानेवाली कहानियाँ कही जाती हैं। (२) बैठे बैठे बड़े बड़े मंसूबे बाँधनेवाला। झूठमूठ बड़ी बड़ी बातें हाँकनेवाला। (३) मूर्ख मसखरा।

शेखर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शीर्ष। सिर। माथा। (२) सिर

का आभूषण। मुकुट। किरीट। (३) सिर पर धारण की जानेवाली माला। (४) सिरा। चोटी। शिखर। (पर्वत आदि का) (५) श्रेष्ठतावाचक शब्द। सब से श्रेष्ठ या उत्तम व्यक्ति या वस्तु। (६) टगण के पाँचवें भेद की संज्ञा (॥ऽ।) यथा, भजनाथ। (७) संगीत में ध्रुव या स्थायी पद का एक भेद।

शेखरापीड़ योजन-संज्ञा पुं० [सं०] चौंसठ कलाओं में से एक कला का नाम। सिर पर या केशों में फूलों से अनेक प्रकार की रचना करना।

शेखरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बंदा। बंदाक। (२) लौंग। (३) सहिंजन की जड़।

शेख सद्दो-संज्ञा पुं० [अ० शेख+देश० सद्दो] मुसलमान स्त्रियों के उपास्य एक पीर जो कभी कभी भूत की तरह उनके सिर पर आते हैं।

शेखावत-संज्ञा स्त्री० [अ० शेख] क्षत्रियों की एक जाति। कछवाहे राजपूतों की एक शाखा। उ०—शेखावत राजा रह्यो, रह्यो पुरोहित तास। करमैती दुहिता रही, ताही की इतिहास।—रघुराज।

विशेष—कहते हैं कि किसी मुसलमान शेख या फ़क़ीर की दुआ से इस वंश के प्रवर्त्तक उत्पन्न हुए थे जिनका नाम इसी कारण शेखा जी पड़ा। जयपुर राज्य के अंतर्गत शेखावाटी नामक स्थान में इस शाखा के राजपूत बसते हैं।

शेख़ी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) गर्व। अहंकार। घमंड। (२) शान। ऐंठ। अकड़। (३) अभिमान भरी बात। डींग।

मुहा०—शेखी बघारना, हाँकना या मारना = बढ़ बढ़ कर बातें करना। अभिमान से भरी बातें बोलना। डींग मारना। शेखी झड़ना या निकलना = गर्व चूर्ण होना। मान ध्वस्त होना। ऐसा दंड पाना या हानि सहना कि अभिमान दूर हो जाय।

शेख़ीबाज़-वि० [फ़ा० शेखी+फ़ा० बाज़] (१) अभिमानी। घमंडी। (२) डींग मारनेवाला व्यक्ति।

शेणघंटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दंती। उदुंबरपर्णी।

शेप-संज्ञा पुं० [सं०] पुरुष की इंद्रिय। लिंग। शिश्न।

शेपाल-संज्ञा पुं० [सं०] सेवार। शैवाल।

शेफ-संज्ञा पुं० [सं०] लिंग। शिश्न।

शेफालि, शेफालिका, शेफाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुंडी। नील सिंधुवार का पौधा।

शेयर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) हिस्सा। भाग। साँझा। बाँट। (२) किसी कार बार में लगी हुई पूँजी का अलग हिस्सा जो उसमें शामिल होनेवाला हर एक आदमी लगावे।

शेर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० शेरनी] (१) बिल्ली की जाति का सब से भयंकर प्रसिद्ध हिंसक पशु। बाघ। व्याघ्र। नाहर।

वि० दे० "बाघ"।

यौ०—शेर बबर, शेरबच्चा, शेरमर्द।

मुहा०—शेर का कान = भाँग छानने का कपड़ा। (भंगड़) (चिराग) शेर करना = बत्ती बढ़ा कर रोशनी तेज करना। शेर होना = निर्भय और धृष्ट होना। डर या दाब में न रहना। स्वेच्छाचारी और उद्दंड होना।

(२) अत्यंत वीर और साहसी पुरुष। बड़ा बहादुर आदमी। (लाक्षणिक)

संज्ञा पुं० [अ०] फ़ारसी, उर्दू आदि की कविता के दो चरण।

शेर गुलाबी-संज्ञा पुं० [फ़ा०] गहरा गुलाबी रंग।

शेर-दहाँ-वि० [फ़ा०] (१) जिसका मुँह शेर का सा हो। (२) जिसके छोरों पर शेर का मुँह बना हो।

संज्ञा पुं० (१) वह जिसकी घुंडी शेर के मुँह के आकार की बनी हो। (२) वह मकान जो आगे की ओर चौड़ा और पीछे की ओर पतला या सँकरा हो। (३) पुराने ढंग की एक प्रकार की बंदूक।

शेरपंजा-संज्ञा पुं० [फ़ा० शेर+हिं० पंजा] शेर के पंजे के आकार का एक अस्त्र। बघनहा।

शेरबच्चा-संज्ञा पुं० [फ़ा० + हिं०] (१) शेर का बच्चा। (२) वीर पुत्र। पराक्रमी पुरुष। बहादुर आदमी। (३) एक प्रकार की छोटी बंदूक।

शेरबबर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] सिंह। केसरी।

शेरमर्द-वि० [फ़ा०] बहादुर। वीर।

शेरमर्दी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बहादुरी। वीरता।

शेरवानी-संज्ञा स्त्री० [देश०] अंग्रेज़ी ढंग की काट का एक प्रकार का अंगा।

विशेष—यह घुटनों तक लंबा होता है। इसमें बालावर, कली और चौबगले काट कर नहीं लगाए जाते। आगे जिस ओर बटन लगाया जाता है, उसके नीचे का आधा भाग अधिक चौड़ा होता है जिसमें बंद या हुक लगा कर दूसरे भाग के नीचे करके बाँधते या बंद करते हैं। मुसलमानों में इसका रवाज अधिक है।

शेल-संज्ञा पुं० दे० "सेल"।

शेलक-संज्ञा पुं० [सं०] लिसोढ़ा। लभेरा। बहुवार वृक्ष।

शेलमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीफल। बिल्व वृक्ष। (२) एक प्रकार का फल।

शेलु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लिसोढ़ा। लभेरा। (२) बनमेथी नामक शाक।

शेलुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लिसोढ़ा। (२) मेथी। (३) लोध वृक्ष।

शेलुका-संज्ञा पुं० [सं०] बनमेथी।

शेलुष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लिसोढ़ा।

शेवंतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुलदाउदी।

शेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उन्नति। (२) ऊँचाई। (३) धन संपत्ति। (४) शिश्न। लिंग। (५) मछली। (६) सर्प। (७) अग्नि का एक नाम।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] हजामत बनाने का काम। क्षौर कर्म।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—होना।

शेवधि-संज्ञा पुं० [सं०] निधि। खज़ाना।

शेवल-संज्ञा पुं० [सं०] सेवार। शैवाल।

शेवलिनि-संज्ञा स्त्री० [सं०], (जिसमें सेवार हो) नदी।

शेवाल-संज्ञा पुं० [सं०] सेवार। सेवाल।

शेवाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश मांसी। जटा मासी का एक भेद।

शेष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो कुछ भाग निकल जाने पर रह गया हो। बची हुई वस्तु। बाक़ी। (२) वह शब्द जो किसी वाक्य का अर्थ करने के लिये ऊपर से लगाया जाय। अध्याहार। (३) बड़ी संख्या में से छोटी संख्या घटाने से बची हुई संख्या। बाक़ी। (४) समाप्ति। अंत। ख़ातमा। (५) परिणाम। फल। (६) स्मारक वस्तु। यादगार की चीज़। (७) मरण। नाश। (८) पुराणानुसार सहस्र फनों के सर्पराज जो पाताल में हैं और जिनके फनों पर पृथ्वी ठहरी है।

विशेष—ये 'अनंत' कहे गए हैं और विष्णु भगवान क्षीर सागर में इन्हीं के ऊपर शयन करते हैं। विष्णु पुराण में शेष, वासुकि और तक्षक तीनों कद्रु के पुत्र माने गए हैं। पाताल के राजा कहीं वासुकी कहे गए हैं और कहीं शेष। कुछ पुराणों के अनुसार गर्ग ऋषि ने ज्योतिष विद्या इन्हीं से पाई थी। लक्ष्मण और बलराम शेष के अवतार कहे गए हैं।

(९) लक्ष्मण। उ०—सोहत शेष सहित रामचंद्र कुश लव जीति कै समर सिंधु साँचेहु सुधार्यो है।—केशव। (१०) बलराम। (११) एक प्रजापति का नाम। (१२) दिग्गजों में से एक। (१३) अनंत। परमेश्वर। (१४) पिंगल में टगण के पाँचवें भेद का नाम। (१५) छप्पय छंद के पचीसवें भेद का नाम जिसमें ४६ गुरु, ६० लघु, कुल १०६ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। (१६) हाथी। (१७) जमाल गोटा।

वि० (१) जो कुछ भाग निकल जाने पर रह गया हो। बचा हुआ। बाक़ी। (२) अंत को पहुँचा हुआ। समाप्त। ख़तम। जैसे,—कार्य्य शेष होना। उ०—बातैं करत शेष निसि आई ऊधो गए असनान।—सूर। (३) अतिरिक्त। और। दूसरे।

शेषजाति-संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित में बचे हुए अंक को लेने की क्रिया।

शेषधर-संज्ञा पुं० [सं०] (शेष अर्थात् सर्प को धारण करनेवाले) शिवजी। उ०—शेषधर नाग सुत मद्य विष्णु इनको कलेवर तौ काल को कवर है —केशव

शेषनाग-संज्ञा पुं० [सं०] सर्पराज शेष। वि० दे० "शेष" (८)।

शेषर(ख)†-संज्ञा पुं० दे० "शेखर"।

शेषराज-संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्ण वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो मगण होते हैं। विद्युल्लेखा।

शेषरात्रि-संज्ञा स्त्री० [सं०] रात का पिछला पहर। रात्रि का अंतिम याम।

शेषवत्-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में अनुमान का एक भेद। कार्य्य को देखकर कारण का निश्चय। जैसे,—नदी की बाढ़ देखकर ऊपर हुई वर्षा का अनुमान।

शेषशायी-संज्ञा पुं० [सं० शेषशायिन्] शेष नाग पर शयन करनेवाले, विष्णु।

विशेष—पुराणों के अनुसार प्रलय काल में विष्णु भगवान तीनों लोकों को अपने पेट में धारण कर क्षीर सागर में शेषनाग की शय्या बनाकर उस पर शयन करते हैं। कुछ काल के उपरांत उनकी नाभि से एक कमल निकलता है जिस पर ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है और सृष्टि का क्रम फिर से चलता है।

शेषांश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बचा हुआ अंश। अवशिष्ट भाग। (२) अंतिम अंश। आख़िरी भाग।

शेषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता को चढ़ी हुई वस्तु जो दर्शकों या उपासकों को बाँटी जाय। प्रसाद।

शेषाचल-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक पर्वत। उ०—पुरि सुभीता शेषाचल जाहीं। बैठे आगे धरि पटकाहीं।—रघुराज।

शेषोक्त-वि० [सं०] अंत में कहा हुआ।

शैक्य-संज्ञा पुं० [सं०] छींका। सिकहर। छीका।

शैक्यायस-संज्ञा पुं० [सं०] इसपात लोहा।

शैक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] आचार्य्य के निकट रहकर शिक्षा प्राप्त करनेवाला शिष्य।

शैक्षिक-संज्ञा पुं० [सं०] शिक्षा विषय का जाननेवाला। "शिक्षा" का ज्ञाता।

शैख-संज्ञा पुं० [सं०] पतित ब्राह्मण की संतान। (स्मृति)

शैखरिक, शैखरेय-संज्ञा पुं० [सं०] ओंगा। अपामार्ग। चिचड़ा। लटजीरा।

शैग्रव-संज्ञा पुं० [सं०] सहिंजन के बीज। शिग्रुबीज।

शैघ्र, शैघ्र्य-संज्ञा पुं० [सं०] शीघ्रता। जल्दी।

वि० ज्योतिष के योग से संबंध रखनेवाला।

शैतान-संज्ञा पुं० [अ०] (१) ईश्वर के सन्मार्ग का विरोध करनेवाली शक्ति या देवता। तमोगुण-मय देवता जो मनुष्यों

को बहका कर धर्म मार्ग से भ्रष्ट करने के प्रयत्न में रहा करता है।

विशेष—यहूदी, ईसाई और इसलाम तीनों पैगंबरी मतों में दो परस्पर विरुद्ध शक्तियाँ मानी गई हैं—एक सत् दूसरी असत्। सत्स्वरूप ईश्वर के मंगल विधान में, असत् शक्ति सदा विघ्न डालने में तत्पर रहती है। आदि पैगम्बर मूसा ने तौरेत में लिखा है कि पहले आदम और हौवा ईश्वर की आज्ञा में रहकर बड़े आनंद से स्वर्ग के उद्यान में रहा करते थे। शैतान ने हौवा को बहका कर ज्ञान का वह फल खाने के लिये कहा जिसका ईश्वर ने निषेध किया था। इस अपराध पर आदम और हौवा स्वर्ग से निकाल दिए गए और इस पृथ्वी पर आए। इन्हीं से यह मनुष्य-सृष्टि चली। ऐसा लिखा है कि शैतान भी पहले ईश्वर या खुदा का एक फरिश्ता (पारिषद) था। जब ईश्वर ने आदम या मनुष्य उत्पन्न किया, तब वह ईर्ष्यावश ईश्वर से विद्रोही हो गया और उसकी सृष्टि में उत्पात करने लगा। ईश्वर ने उसे स्वर्ग से निकाल कर नरक में भेज दिया जहाँ का वह राजा हुआ। सत् और असत् इन दो नित्य शक्तियों की भावना यहूदियों के पैगम्बर मूसा को खाल्दियों (बाबुलवालों) और पारसीकों आदि प्राचीन सभ्य जातियों से मिली थी। जरतुश्त ने भी अवस्ता में अहुरमज़्द (सत् शक्ति) और अहमान (असत् शक्ति) दो शक्तियाँ कही हैं।

मुहा०—शैतान कान में फूँकना = शैतान का बहकाना। शैतान का धक्का = दुर्मति। बुरी प्रेरणा। शैतान का बच्चा = बहुत दुष्ट आदमी। शैतान की आँत = बहुत लंबी वस्तु। शैतान की खाला = बहुत दुष्ट या पाजी औरत। (गाली)

(२) दुष्ट देवयोनि। भूत। प्रेत।

मुहा०—शैतान चढ़ना या लगना = भूत प्रेत का आवेश होना। प्रेत का भाव पड़ना।

(३) बहुत ही दुष्ट या क्रूर मनुष्य। घोर अत्याचारी। (लाक्षणिक) (४) बहुत ही नटखट मनुष्य। बहुत शरारती आदमी। (लाक्षणिक) (५) क्रोध। तामस। गुस्सा। (६) झगड़ा। टंटा। फसाद। उपद्रव।

मुहा०—शैतान उठाना = झगड़ा खड़ा करना। उपद्रव मचाना।

शैतानी–संज्ञा स्त्री० [अ० शैतान] दुष्टता। शरारत। पाजीपन।

वि० (१) शैतान संबंधी। शैतान का। जैसे,—शैतानी गोल। (२) नटखटी से भरा। दुष्टतापूर्ण। जैसे,—शैतानी हरकत।

शैत्य–संज्ञा पुं० [सं०] शीत। ठंढक।

शैथिल्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिथिल होने का भाव। शिथिलता। ढिलाई। (२) तत्परता का अभाव। फुरती का न होना। सुस्ती।

शैनेय–संज्ञा पुं० [सं०] शिनि का पुत्र सात्यकि नामक वीर यादव जो कृष्ण का सारथी था।

शैन्य–संज्ञा पुं० [सं०] शिनि के वंशज जो क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गए थे।

शैरिक–संज्ञा पुं० [सं०] नीले फूल की कटसरैया।

शैल–वि० [सं०] (१) शिला संबंधी। पत्थर का। (२) पथरीला। चट्टानी। (३) कड़ा। कठोर।

संज्ञा पुं० (१) पर्वत। पहाड़। उ०—दीन्हों डारि शैल ते भू पर पुनि जल भीतर डारयो।—सूर। (२) चट्टान। (३) छरीला। शैलेय। (४) रसौत। रसवत। (५) शिलाजीत। (६) लिसोड़ा। बहुवार।

शैलकंपी–संज्ञा पुं० [सं० शैलकंपिन्] (१) स्कंद का एक अनुचर। (२) एक दानव।

शैलक–संज्ञा पुं० [सं०] छरीला। शैलेय।

शैलकटक–संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ की ढाल।

शैलकन्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती।

शैलकुमारी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती। उ०—पुनि चढ़ि नंदी चले पुरारी। पाणि जोरि तब शैलकुमारी।—रघुराज।

शैलगंगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गोवर्द्धन पर्वत की एक नदी जिसमें श्रीकृष्ण ने सब तीर्थों का आवाहन किया था। उ०—इन्हहिं आदि तीरथ सकल शैलगंग प्रति आँहि। जेहि दरसे परसे परम गति कहँ मानव जाँहि।—गोपाल।

शैलगंध–संज्ञा पुं० [सं०] बबर चंदन। बर्बर चंदन।

शैलगर्भाह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिंहली पीपल। (२) पखान भेद। पत्थरचूर।

शैलज–संज्ञा पुं० [सं०] पथर फूल। छरीला।

शैलजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) (पर्वत से उत्पन्न) पार्वती। दुर्गा। (२) सिंह पिप्पली। (३) गज पिप्पली। (४) पाषाण भेद।

शैलजात–संज्ञा पुं० [सं०] छरीला। पथरफूल।

शैलजाता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोल मिर्च। काली मिर्च। (२) गज पिप्पली।

शैलतटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पहाड़ की तराई। उ०—जब यह मेरे साथ टहलने शैलतटी में जाता था। अपनी अमृतमयी वाणी से प्रेम सुधा बरसाता था।—श्रीधर।

शैलधन्वा–संज्ञा पुं० [सं० शैलधन्वन्] महादेव। शिव।

शैलधर–संज्ञा पुं० [सं०] गिरिधर। श्रीकृष्ण।

शैलधातुक, शैलधातुज–संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजतु। शिलाजीत।

शैलनंदिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती।

शैलनिर्य्यास–संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजतु। शिलाजीत।

शैलपति–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पहाड़।

शैलपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बेल। बिल्व वृक्ष।

शैलपुत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पार्वती। (२) नौ दुर्गाओं में से एक दुर्गा का नाम। (३) गंगा नदी।

शैलपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजतु। शिलाजीत।

शैलबीज-संज्ञा पुं० [सं०] भिलावाँ। भेला।

शैलभेद-संज्ञा पुं० [सं०] पखान भेद।

शैलमल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटज। कोरैया।

शैलरंध्र-संज्ञा पुं० [सं०] गुफा।

शैलराज-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत।

शैलरोही-संज्ञा पुं० [सं०] मोगरा चावल।

शैलवल्कला-संज्ञा पुं० [सं०] पाषाण भेद। श्वेत पाषाण।

शैलशिविर-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। सागर।

विशेष—कहते हैं कि जब इंद्र ने पर्वतों पर चढ़ाई की थी, तब कुछ पर्वत समुद्र में जा छिपे थे। इसी से समुद्र का यह नाम पड़ा है।

शैलसंभव-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

शैलसंभूत-संज्ञा पुं० [सं०] गेरू।

शैलसुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती।

शैलाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] पत्थर फूल। छरीला।

शैलाट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहाड़ी आदमी। पर्वतिया। (२) किरात। (३) सिंह। (४) स्फटिक। बिल्लौर।

शैलादि-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के गण, नंदी।

शैलाभ-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वेदेवा में से एक।

शैलाली-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाली। नट।

शैलाह्व-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

शैलिक-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

शैलिन्ध्य-संज्ञा पुं० [सं०] सर्पछिन्नी।

शैली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चाल। ढब। ढंग। (२) परिपाटी। प्रणाली। तर्ज़। तरीका। (३) रीति। प्रथा। रस्म रवाज। (४) लिखने का ढंग। वाक्य रचना का प्रकार। उ०—शैली श्रेष्ठ कवीन की, गुरु को गुरु है जौन। ताको चरित बखानि कै, धरै होय मति तौन।—रघुराज। (५) कठोरता। कड़ाई। सख्ती।

शैलू-संज्ञा पुं० [देश०] लिसोढ़ा। लमेरा।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चटाई जिसका व्यवहार दक्षिण और गुजरात में होता है।

शैलूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुवार वृक्ष। लिसोढ़ा। लमेरा। (२) कमलकंद। भसींड़।

शैलूकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कमलकंद। भसींड़।

शैलूष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अभिनय करनेवाला। नाटक खेलनेवाला। नट। (२) गंधर्वों का स्वामी, रोहितण। (रामायण) (३) धूर्त। (४) बिल्व वृक्ष। बेल।

शैलूषभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

शैलूषिक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शैलूषिकी] नट वृत्ति से जीवन निर्वाह करनेवाली एक जाति। शिलाली। नट।

शैलेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय।

शैलेंद्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] भोज-पत्र।

शैलेय-वि० [सं०] (१) पत्थर का। पथरीला। (२) पहाड़ी। (३) पत्थर से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० (१) दे० "छरीला"। (२) शिलाजीत। (३) मूसली। तालपर्णी। (४) सेंधा नमक। (५) सिंह। (६) भ्रमर।

शैलेयक-संज्ञा पुं० दे० "शैलेय"।

शैलेयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती।

शैलेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

शैलोदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा की एक नदी। (वाल्मीकि रामा०; महाभारत।)

शैलोद्भवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाषाण भेद। क्षुद्र पाषाण।

शैल्य-वि० [सं०] (१) पत्थर का। (२) पथरीला। (३) कड़ा। कठोर।

शैव-वि० [सं०] शिव संबंधी। शिव का। जैसे,—शैव दर्शन।

संज्ञा पुं० (१) शिव का अनन्य उपासक। महादेव का भक्त।

विशेष—उपासना-भेद से आधुनिक हिंदू धर्म्म में तीन मुख्य संप्रदाय प्रचलित हैं—शैव, शाक्त और वैष्णव। शैव लोग परमेश्वर को शिव-रूप ही मानते हैं। उनके अनुसार शिव ही सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार तीनों करते हैं। पूजा के लिये शिव की प्रतिमा नहीं बनाई जाती; लिंग ही उनका प्रतीक माना जाता है। विशेष दे० "लिंग"। शैव लोग शरीर में भस्म लगाते, गले में रुद्राक्ष की माला पहनते और माथे पर त्रिपुंड (तीन आड़ी रेखाएँ) लगाते हैं। शैवों के अनेक भेद हैं जो अधिकतर दक्षिण में पाए जाते हैं। काश्मीर में भी शैव मत का विशेष रूप से प्रचार था। शंकराचार्य्य के अनुयायी अद्वैतवादी भी उपासना-क्षेत्र में शैव ही होते हैं। शिव की उपासना भारत तथा उसके निकटवर्त्ती देशों में बहुत प्राचीन काल से भी प्रचलित थी। नैपाल, तिब्बत आदि में बौद्ध धर्म के साथ उसमें मिली हुई शिव की उपासना बहुत दिनों से प्रचलित चली आती है। ईसा के पूर्व के सिक्कों में भी त्रिशूल, नंदी आदि पाए जाते हैं। ऐसे सिक्के खुरासान तक में पाए गए हैं। शकों और हूणों में भी शैव धर्म प्रचलित था।

(२) पाशुपत अस्त्र। (३) धतूरा। (४) वासक। अड़ूसा। (५) पाँचवें कृष्ण। वासुदेव। (जैन)

शैवपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बिल्व वृक्ष, जिसकी पत्तियाँ शिव पर चढ़ती हैं। बेल।

शैवपुराण–संज्ञा पुं० [सं०] शिव पुराण ।
शैवमल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] लिंगिनी लता । पँचगुरिया ।
शैवल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पद्माक । पद्मकाठ । पदुमाख । (२) सेवार । (३) एक पर्वत । (४) एक नाग का नाम । (बौद्ध
शैवलिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी ।
शैवाल–संज्ञा पुं० [सं०] सिवार । सेवार ।
शैवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पार्वती । (२) मानसा नाम की देवी । (३) कल्याण । मंगल ।
शैव्य–वि० [सं०] शिव या शिवी संबंधी ।
संज्ञा पुं० (१) पांडवों का एक सेनापति । (२) श्रीकृष्ण का एक घोड़ा ।
शैव्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] चंडकौशिक के अनुसार अयोध्या के सत्यव्रती राजा हरिश्चंद्र की रानी का नाम ।
शैशव–वि० [सं०] (१) शिशु संबंधी । बच्चों का । (२) बाल्यावस्था संबंधी ।
संज्ञा पुं० (१) अनजान बालक की अवस्था । बचपन । (२) बच्चों का सा व्यवहार । लड़कपन ।
शैशिर–वि० [सं०] (१) शिशिर संबंधी । (२) शिशिर में उत्पन्न ।
संज्ञा पुं० (१) ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवर्त्तक एक ऋषि का नाम । (२) कृष्ण चातक पक्षी । काले रंग का पपीहा ।
शैशिरीय (शाखा)–संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋग्वेद की साकल शाखाओं में से एक ।
शैशुनाग–संज्ञा पुं० [सं०] मगध के प्राचीन राजा शिशुनाग का वंशज ।
शैसीक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जाति का नाम ।
शोक–संज्ञा पुं० [सं०] इष्ट के नाश और अनिष्ट की प्राप्ति से उत्पन्न मनोविकार । किसी प्रिय व्यक्ति के अभाव या पीड़ा आदि से अथवा दुःखदायी घटना से उत्पन्न क्षोभ । रंज । ग़म ।
विशेष—साहित्य में 'शोक' नौ स्थायी भावों में से एक है और करुण रस का मूल है । पुराणों में 'शोक' मृत्यु का पुत्र कहा गया है ।
शोककारक–वि० [सं०] शोक उत्पन्न करनेवाला ।
शोकघ्न–संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष ।
शोकनाशक–संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष ।
शोकहर–संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद का नाम । इसके प्रत्येक पद में ८, ८, ८, ६ के विश्राम से (अंत गुरु सहित) तीस मात्राएँ होती हैं । प्रत्येक पद के दूसरे, चौथे और छठे चौकल में जगण न पड़े । इसको शुभंगी भी कहते हैं ।
शोकहारी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वन बर्बरी । अजगंधा ।
शोकाकुल–वि० [सं०] शोक से व्याकुल ।
शोकातुर–वि० [सं०] शोक से व्याकुल ।
शोकारि–संज्ञा पुं० [सं०] कदम । कदंब वृक्ष ।
शोकार्त्त–वि० [सं०] शोक से विकल ।
शोकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि । रात ।
शोकोपहत–वि० [सं०] शोक से विकल ।
शोख़–वि० [फ़ा०] (१) ढीठ । धृष्ट । प्रगल्भ । (२) शरीर । नटखट । (३) चंचल । चपल । (४) जो मंद या धूमिल न हो । गहरा और चमकदार । चटकीला । जैसे,—शोख़ रंग ।
शोख़ी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) धृष्टता । ढिठाई । (२) चंचलता । चपलता । (३) तेज़ी । चटकीलापन । जैसे,—रंग की शोख़ी ।
शोच–संज्ञा पुं० [सं० शोचन] (१) दुःख । रंज । अफ़सोस । (२) चिंता । फ़िक्र । खटका ।
शोचन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० शोचनीय, शोचितव्य, शोच्य] (१) शोक करना । रंज करना । (२) चिंता करना । (३) शोक । रंज ।
शोचनीय–वि० [सं०] (१) शोक करने योग्य । जिसकी दशा देखकर दुःख हो । (२) जिससे दुःख उत्पन्न हो । बहुत हीन या बुरा ।
शोचि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लौ । लपट । (२) दीप्ति । चमक । (३) वर्ण । रंग ।
शोचिष्केश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि । (२) सूर्य्य । (३) चित्रक वृक्ष । चीता ।
शौटीर्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] बल वीर्य्य । पराक्रम ।
शोठ–वि० [सं०] (१) मूर्ख । बेवकूफ़ । (२) नीच । खोटा । (३) आलसी ।
शोण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल रंग । (२) लाली । अरुणता । (३) अग्नि । आग । (४) सिंदूर । सेंदुर । (५) रक्त । रुधिर । खून । (६) पद्मराग मणि । मानिक । (७) रक्त पुनर्नवा । लाल गदहपूरना । (८) सोना पाठा । (९) लाल गन्ना । (१०) एक नद का नाम । वि० दे० "सोन" ।
शोणक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना पाठा । (२) लाल गदहपूरना । (३) लाल गन्ना ।
शोणगिरि–संज्ञा पुं० [सं०] एक पहाड़ी का नाम जिस पर मगध देश की पुरानी राजधानी 'राजगृह' थी ।
शोणझिंटिका, शोणझिंटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली कटसरैया ।
शोणपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] रक्त पुनर्नवा । लाल गदहपूरना ।
शोणपद्म–संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल ।
शोणपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] कचनार । कोविदार वृक्ष ।
शोणपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंदूरपुष्पी । सेंदुरिया ।
शोणभद्र–संज्ञा पुं० [सं०] सोन नदी ।
शोणरत्न–संज्ञा पुं० [सं०] मानिक । लाल ।

शोणसंभव-संज्ञा पुं० [सं०] पिप्पला मूल । पिप्पली मूल ।
शोणांबु-संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय काल के मेघों में से एक मेघ ।
शोणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोन नदी । (२) लाल कटसरैया।
शोणित-वि० [सं०] लाल । रक्त वर्ण का ।
संज्ञा पुं० (१) रक्त । रुधिर । खून । (२) पौधों का रस । (३) केसर । जाफरान । (४) ईंगुर । सिंगरफ । (५) ताम्र धातु । ताँबा । (६) तृणकेशर ।
शोणितचंदन-संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन ।
शोणितपुर-संज्ञा पुं० [सं०] बाणासुर की राजधानी ।
शोणितमेह-संज्ञा पुं० [सं०] लाल प्रमेह ।
शोणित-शर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शहद की चीनी ।
शोणितार्बुद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शूक रोग जिसमें लिंग पर फुंसियाँ निकलती हैं ।
शोणितार्श-संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पलक एक रोग जिसमें पलकों की कोर पर कोमल और लाल रंग का मांस का अंकुर उत्पन्न होता है ।
शोणितासृय-संज्ञा पुं० [सं०] केसर । कुंकुम ।
शोणितोपल-संज्ञा पुं० [सं०] मानिक । लाल ।
शोणोपल-संज्ञा पुं० [सं०] मानिक । लाल ।
शोथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी अंग का फूलना । सूजन । वरम । (२) अंग में सूजन होने का रोग । वरम ।
विशेष—जब दूषित रक्त, पित्त या कफ कुपित वायु से नसों में बद्ध हो जाता है, तब सूजन होती है । शोथ तीन प्रकार का कहा गया है-वातज, पित्तज और कफज । आमाशय में दोष होने से छाती के ऊपर, पक्वाशय में होने से छाती के नीचे और मलाशय में होने से कमर से पैर तक सारे शरीर में शोथ होता है । शरीर के मध्य भाग या सर्वांग का शोथ कष्टसाध्य कहा गया है । जो शोथ केवल अर्धांग में उत्पन्न होकर ऊपर की ओर बढ़ता हो, वह प्रायः घातक होता है । पर पांडु आदि रोगों में पैर से ऊपर की ओर बढ़नेवाला शोथ घातक नहीं होता। स्त्रियों की कुक्षि, उदर, गर्भस्थान या गले का शोथ असाध्य होता है । जो शोथ बहुत भारी और कड़ा हो और जिसमें श्वास, प्यास, दुर्बलता, अरुचि आदि उपद्रव भी उत्पन्न हों, वह भी असाध्य कहा गया है ।
शोथक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "शोथ" । (२) मुरदा संग ।
शोथघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गदहपूरना । पुनर्नवा । (२) शालपर्णी । सरिवन ।
शोथजित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भिलावाँ । भल्लातक । (२) पुनर्नवा ।
शोथलिह्म-संज्ञा पुं० [सं०] पुनर्नवा ।
शोथहृत्-संज्ञा पुं० [सं०] भिलावाँ ।
शोथारि-संज्ञा पुं० [सं०] पुनर्नवा । गदहपूरना ।

शोद्धव्य-वि० [सं०] जिसे शुद्ध करना हो । शोधने योग्य ।
शोध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुद्धि संस्कार । सफाई । (२) ठीक किया जाना । दुरुस्ती । (३) चुकता होना । अदा होना । बेबाक होना । जैसे,—ऋण का शोध होना । (४) जाँच । परीक्षा । (५) खोज । ढूँढ़ । तलाश । अनुसंधान । अन्वेषण ।
शोधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शोधनेवाला । उ०— संसार को बहुधा विरोध कुचित शोधक जानि । ताही भई वह शांति सों करुणा सखी सुख मानि ।—केशव । (२) सुधार करनेवाला । सुधारक । (३) ढूँढ़नेवाला । खोजनेवाला । (४) वह संख्या जिसे घटाने से ठीक वर्गमूल निकले । (गणित) ।
शोधन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० शोधित, शोधनीय, शोध्य, शोद्धव्य] (१) शुद्ध करना । साफ करना । (२) दुरुस्त करना । ठीक करना । सुधारना । (३) धातुओं का औषध रूप में व्यवहार करने के लिये संस्कार । जैसे,—पारद का शोधन । (४) छान बीन । जाँच । (५) खोजना । ढूँढ़ना । तलाश करना । अनुसंधान करना । (६) ऋण चुकाना । अदा करना । बेबाक करना। (७) किसी पाप से शुद्ध होने का संस्कार। प्रायश्चित्त। (८) चाल सुधारने के लिये दंड । सज़ा । (९) हटाकर साफ़ करना । सफाई के लिये दूर करना । साफ करना । (१०) दस्त लाकर कोठा साफ़ करना । विरेचन । (११) मुरदा संग । कंकुष्ठ । (१२) मल । विष्ठा । (१३) घटाना । निकालना । (गणित) (१४) नीबू । (१५) हीरा कसीस ।
शोधनक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के न्यायालय या धर्मसभा का स्थान साफ़ और ठीक करनेवाला कर्मचारी ।
शोधना-क्रि० स० [सं० शोधन] (१) शुद्ध करना । साफ़ करना । मैला आदि निकाल कर स्वच्छ करना । (२) दुरुस्त करना । ठीक करना । त्रुटि या दोष दूर करना । सुधारना । जैसे,— लेख शोधना । (३) औषध के लिये धातु का संस्कार करना। जैसे,—पारा शोधना । (४) ढूँढ़ना । खोजना । तलाश करना। उ०—ग्रहबल, लग्न, नक्षत्र शोधि कीनी वेद-ध्वनि ।—सूर ।
शोधनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मार्जनी । झाड़ू । बुहारी । (२) ताम्रपर्णी । (३) नील । (४) ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय औषधि ।
शोधनीबीज-संज्ञा पुं० [सं०] जमाल गोटे का बीज ।
शोधनीय-वि० [सं०] (१) शुद्ध करने योग्य । (२) चुकाने योग्य । (३) । ढूँढ़ने योग्य ।
शोधवाना-क्रि० स० [स० शोधना का प्रे०] (१) शोधने का काम कराना । शुद्ध कराना । दुरुस्त कराना । (२) ढूँढ़वाना । तलाश कराना ।
शोधैया-संज्ञा पुं० [हिं० शोधना + ऐया (प्रत्य०)] शोधनेवाला ।

सुधारक। उ०—मंगल सदा ही करैं राम युगलेश कहँ राम रसिकावली शोधैया औ योधैया को।—रघुराज।

शोफ-संज्ञा पुं० [सं०] सोथ। सूजन।

शोफघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शोथघ्नी। रक्त पुनर्नवा।

शोफनाशन-संज्ञा पुं० [सं०] शोथनाशन। नील का वृक्ष।

शोफहारी-संज्ञा पुं० [सं०] जंगली बर्बरी का पौधा।

शोफहृत-संज्ञा पुं० [सं०] भिलावाँ। भल्लातक वृक्ष।

शोफारि-संज्ञा पुं० [सं०] हाथीकंद। हस्तिकंद।

शोबदा-संज्ञा पुं० [अ०] जादू। इंद्रजाल। माया। नजरबंदी।

शोभ-वि० [सं०] शोभायुक्त। सुंदर। सजीला।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार के देवता। (२) एक प्रकार के नास्तिक।

* संज्ञा स्त्री० दे० "शोभा"।

शोभक-वि० [सं०] सुंदर। सजीला।

शोभन-वि० [सं०] (१) शोभायुक्त। सुंदर। सजीला। (२) सुहावना। रमणीय। (३) उत्तम। अच्छा। भला। श्रेष्ठ। (४) उचित। उपयुक्त। सुहाता हुआ। (५) शुभ। मंगलदायक।

संज्ञा पुं० (१) अग्नि का नाम। (२) शिव का नाम। (३) इष्टि योग। (४) ज्योतिष में विष्कंभक आदि सत्ताइस योगों में से पाँचवाँ योग। (५) ग्रह। (६) बृहस्पति का ग्यारहवाँ संवत्सर। (७) २४ मात्राओं का एक छंद जिसमें १४ और १० मात्रा पर यति होती है और अंत में जगण होता है। इसका दूसरा नाम 'सिंहिका' है। (८) मालकोस राग का पुत्र एक राग। (९) कमल। (१०) राँगा। (११) आभूषण। गहना। (१२) मंगल। कल्याण। शुभ। (१३) धर्म। पुण्य। (१४) दीप्ति। सौंदर्य। (१५) सिंदूर। सेंदुर। (१६) कुंकुम।

शोभनक-संज्ञा पुं० [सं०] सहिंजन या शोभांजन का वृक्ष।

शोभना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुंदरी स्त्री। (२) हलदी। हरिद्रा। (३) गोरोचन। (४) स्कंद की अनुचरी एक मातृका।

* क्रि० अ० [सं० शोभन] शोभित होना। सोहना।

शोभनिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नट या अभिनयकर्त्ता

शोभनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो मालकोस राग की स्त्री कही जाती है।

शोभनीया-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंडी।

शोभांजन-संज्ञा पुं० [सं०] सहिंजन का पेड़।

शोभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दीप्ति। कांति। चमक। (२) छवि। सुंदरता। छटा। सजीलापन। रुचिरता।

मुहा०—शोभा देना = अच्छा लगना। सुंदर लगना।

(३) सजावट। (४) उत्तम गुण। (५) वर्ण। रंग। (६) बीस अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसमें क्रम से यगण, मगण, दो नगण, दो तगण और दो गुरु होते हैं तथा ६, ७ और ७ पर यति होती है। (७) हलदी। हरिद्रा। (८) गोरोचन। (९) फारसी संगीत में मुकाम की स्त्रियाँ जो चौबीस होती हैं।

शोभानक-संज्ञा पुं० [सं०] शोभांजन वृक्ष। सहिंजन।

शोभान्वित-वि० [सं०] शोभा से युक्त। सुंदर। सजीला।

शोभायमान-वि० [सं०] सोहता हुआ। सुंदर।

शोभित-वि० [सं०] (१) शोभा से युक्त। सुंदर। सजीला। (२) अच्छा लगता हुआ। सजा हुआ। (३) विद्यमान। उपस्थित। विराजता हुआ। जैसे,—सिंहासन पर शोभित होना।

शोर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) जोर की आवाज। हल्ला। गुल गपाड़ा। कोलाहल। उ०—(क) जहाँ तहाँ शोर भारी भीर नर नारिन की सबही की छूटि गई लाज यहि भाइ कै।—केशव। (ख) घनन की घोर सुनि मोरनि के शोर सुनि सुनि केशव अलाप आली जन को।—केशव। (२) धूम। प्रसिद्धि। जैसे,—उसके बड़प्पन का शोर हो गया है। उ०—आप द्वारका शोर कियो उन हरि हस्तिनापुर जाने। प्रद्युम्न करे सत दश दो दिन रंच हार नहिं माने।—सूर।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।

यौ०—शोरगुल।

शोरबा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) किसी उबाली हुई वस्तु का पानी। झोल। जूस। रसा। (२) पके हुए मांस का पानी।

शोरा-संज्ञा पुं० [फ़ा० शोर] एक प्रकार का क्षार जो मिट्टी में से निकलता है।

विशेष—यह बहुत ठंढा होता है और इसी लिये पानी ठंढा करने के काम में आता है। बारूद में भी इसका योग रहता है और सुनार इससे गहने भी साफ़ करते हैं। खारी मिट्टी में क्यारियाँ बनाकर इसे जमाते हैं। साफ़ किए हुए बढ़िया शोरे को क़लमी शोरा कहते हैं।

मुहा०—शोरे की पुतली = बहुत गोरी स्त्री।

शोरा आलू-संज्ञा पुं० [हिं० शोरा + आलू] बन आलू।

शोरापुश्त-वि० [फ़ा०] लड़ाका। झगड़ालू। फसादी।

शोरिश-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) खलबली। हलचल। (२) बलवा। बगावत। उपद्रव। दंगा।

शोरी-संज्ञा पुं० [फ़ा० शोर] (१) फारसी संगीत में एक मुकाम का पुत्र। (२) एक पंजाबी प्रसिद्ध गवैया जिसने टप्पा नाम का गीत निकाला था।

शोला-संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत हलकी होती है।

विशेष—पानी पर तैरनेवाले जाल में इसकी लकड़ी लगाई

जाती है। ककड़ी का सफेद और फूल, खिलौने तथा विवाह के मुकुट बनाने के काम में आता है।

संज्ञा पुं० [अ०] आग की लपट। ज्वाला।

शोली–संज्ञा स्त्री० [सं०] वन हलदी। वन हरिद्रा।

शोलेप–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अस्त्र। (वाल्मीकि रा०)

शोशा–संज्ञा पुं० [फा०] (१) निकली हुई नोक। (२) अद्भुत या अनोखी बात। चुटकुला। (३) झगड़ा खड़ा करनेवाली बात। (४) लगती बात। व्यंग्य।

क्रि० प्र०—छोड़ना।

शोष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूखने का भाव। खुश्क होना। रस या गीलापन दूर होने का भाव। (२) सोखने का भाव। क्षय। (३) शरीर का घुलना या क्षीण होना। (४) एक रोग जिसमें शरीर सूखता या क्षीण होता जाता है। राजयक्ष्मा का भेद। क्षयी।

विशेष—वैद्यक में शोष रोग के छः कारण बताए गए हैं—अधिक शोक, जरावस्था, अधिक मार्ग चलना, अधिक व्यायाम, अधिक स्त्रीप्रसंग, और हृदय में चोट लगना। इस रोग में शरीर क्षीण होता जाता है, मंद ज्वर और खाँसी रहती है, पसली, छाती और कमर में पीड़ा रहती है तथा अतिसार भी हो जाता है।

(४) बच्चों का सुखंडी रोग। (५) सुखड़ी। सूखापन।

शोषक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शोषिका] (१) जल, रस या तरी खींचनेवाला। सोखनेवाला। (२) सुखानेवाला। खुश्क करनेवाला। (३) घुलानेवाला। क्षीण करनेवाला। (४) नाश करनेवाला। (५) दूर करनेवाला।

शोषकर्म–संज्ञा पुं० [सं०] बावली या तालाब आदि से पानी निकलवाना और उससे खेत सिंचवाना। (जैन)

शोषघ्न–संज्ञा पुं० [सं०] वन प्याज।

शोषण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० शोषी, शोषित, शोषणीय] (१) जल या रस खींचना। सोखना। (२) सुखाना। खुश्क करना। तरी या गीलापन दूर करना। (३) हरापन या ताजापन दूर करना। (४) घुलाना। क्षीण करना। क्षय करना। (५) नाश करना। दूर करना। न रहने देना। (६) कामदेव के एक बाण का नाम। (७) सोंठ। शुंठि। (८) श्योनाक वृक्ष। सोनापाठा। (९) पिप्पली। पीपल।

शोषणीय–वि० [सं०] सोखने योग्य।

शोषयितव्य–वि० [सं०] (१) जो सोखा जानेवाला हो। (२) जिसे सुखाना हो।

शोषसंभव–संज्ञा पुं० [सं०] पिपला मूल।

शोषहा–संज्ञा पुं० [सं०] (शोष रोग का नाश करनेवाला) ओंगा। अपामार्ग। चिचड़ा।

शोषापहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] मुलेठी।

शोषित–वि० [सं०] (१) सोखा हुआ। (२) सुखाया हुआ।

शोषी–संज्ञा पुं० [सं० शोषिन्] [स्त्री० शोषिणी] (१) सोखनेवाला। (२) सुखानेवाला।

शोहदा–संज्ञा पुं० [अ० मि० सं० + शुभद] (१) व्यभिचारी। लंपट। (२) गुंडा। बदमाश। लुच्चा। (३) छैल चिकनिया। बहुत बनाव सिंगार करनेवाला।

शोहदापन–संज्ञा पुं० [हिं० शोहदा + पन (प्रत्य०)] (१) गुंडापन। लुच्चापन। (२) छैलापन।

शोहरत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) नामवरी। ख्याति। प्रसिद्धि। (२) खूब फैली हुई खबर। धूम। जनरव। जैसे,—शहर में शोहरत तो ऐसी ही है।

शोहरा–संज्ञा पुं० [अ० शोहरत] (१) ख्याति। प्रसिद्धि। (२) धूम से फैली हुई खबर। जनरव। उ०—भने रघुराज दूत लावत अचर्ज मोंहि, तोरिबो पिनाकी को पिनाक सुने शोहरा।—रघुराज।

शौंग–संज्ञा पुं० [सं०] भरद्वाज ऋषि का एक नाम जो शुंग के अपत्य थे।

शौंगिपुत्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक आचार्य का नाम।

शौंगेय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़। (२) श्येन पक्षी। बाज।

शौंड–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुर्गा। कुक्कुट पक्षी। (२) घुमेरा। देवधान्य। (३) वह जो मद्य पीकर मतवाला हुआ हो। मस्त। मत्त।

शौंडता–संज्ञा स्त्री० [सं०] मत्तता। मद-मस्ती।

शौंडायन–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक योद्धा जाति का नाम।

शौंडिक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शौंडिकी] (१) प्राचीन काल की एक प्रसिद्ध जाति जिसका व्यवसाय मद्य बनाना और बेचना था। पराशर पद्धति में इस जाति की उत्पत्ति कैवर्त पिता और गांधिक माता से लिखी है; और मनु ने कहा है कि इस जाति के आदमी के घर भोजन नहीं करना चाहिए। (२) पिप्पली मूल।

शौंडिकप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] आम।

शौंडिकागार–संज्ञा पुं० [सं०] शराब की दुकान। शराब खाना। हौली। कलवरिया।

शौंडी–संज्ञा पुं० [सं० शौंडिन्] प्राचीन काल की शौंडिक नामक जाति।

संज्ञा स्त्री० [सं०] पीपल। पिप्पली। (२) चव्य। चविका। कटभी वृक्ष। (३) मिर्च।

शौंडीर–वि० [सं०] बहुत घमंड करनेवाला। अहंकारी। अभिमानी।

शौक़–संज्ञा पुं० [अ०] (१) किसी वस्तु की प्राप्ति या निरंतर भोग के लिये अथवा कोई कार्य्य करते रहने के लिये होने-

वाली तीव्र अभिलाषा या कामना। प्रबल लालसा। जैसे,—मोटर का शौक, सफर का शौक, खाने पीने का शौक, जूए का शौक, किताबों का शौक।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

मुहा०—शौक करना = किसी वस्तु या पदार्थ का भोग करना। जैसे,—तंबाकू आ गया, शौक कीजिए। शौक चर्राना या पैदा होना = मन में प्रबल कामना होना। (व्यंग्य) जैसे,—अब आपको भी घोड़े पर चढ़ने का शौक चर्राया है। शौक पूरा करना या मिटाना = किसी बात की प्रबल इच्छा की पूर्ति करना। जैसे,—आइए, आप भी शतरंज का शौक पूरा कर (मिटा) लीजिए। शौक फरमाना = दे० "शौक करना"। शौक से = प्रसन्नता-पूर्वक। आनंद से। जैसे,—हाँ हाँ, आप भी शौक से चलिए।

(२) आकांक्षा। लालसा। हौसिला। जैसे,—मुझे आज तक इस बात का शौक ही रहा कि लोग तुम्हारी तारीफ करते। (३) व्यसन। चसका। चाट। जैसे,—(क) आज कल उसे शराब का शौक हो गया है। (ख) आपको गंगा स्नान का शौक कब से हुआ?

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।—होना।

(४) प्रवृत्ति। झुकाव। जैसे,—जरा आपका शौक तो देखिए, पेड़ पर चढ़ने चले हैं।

शौक-संज्ञा पुं० [सं०] शुक-समूह। तोतों का झुंड।

शौकत-संज्ञा स्त्री० [अ०] ठाठ बाट। शान। वि० दे० "शान"।
यौ०—शान शौकत।

शौकर-संज्ञा पुं० दे० "शूकरक्षेत्र"।

शौकरव-संज्ञा पुं० दे० "शूकरक्षेत्र"।

शौकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वाराहीकंद। गेंठी।

शौकि-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम।

शौकिया-क्रि० वि० [अ०] शौक के कारण। शौक पूरा करने के लिये। प्रवृत्ति के वश होकर। जैसे,—(क) मुझे तंबाकू पीने की आदत तो नहीं है; पर हाँ कभी कभी शौकिया पी लिया करता हूँ। (ख) उन्हें कोई जरूरत तो न थी; सिर्फ शौकिया फारसी सीख ली थी।

वि० शौक से भरा हुआ। जैसे,—शौकिया सलाम।

शौक़ीन-संज्ञा पुं० [अ० शौक + ईन (प्रत्य०)] (१) वह जिसे किसी बात का बहुत शौक हो। शौक करनेवाला। चाव रखनेवाला। जैसे,—आप गाने बजाने के बड़े शौकीन हैं। (२) वह जो सदा छैला बना रहता हो। सदा बना ठना रहनेवाला। (३) रंडीबाज। ऐयाश। तमाशबीन।

शौकीनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० शौकीन + ई (प्रत्य०)] (१) शौकीन होने का भाव या काम।

क्रि० प्र०—करना।—छाँटना।—दिखाना।—बघारना।

(२) तमाशबीनी। रंडीबाजी। ऐयाशी।

शौकेय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शौक्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

शौक्तिक, शौक्तिकेय-संज्ञा पुं० [सं०] शुक्तिका या सीपी से उत्पन्न, मोती। मुक्ता।

शौक्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सीप।

शौक्तेय-संज्ञा पुं० [सं०] मोती जो शुक्ति या सीपी से उत्पन्न होता है।

शौक्र-वि० [सं०] शुक्र संबंधी। शुक्र का।

शौक्ल-वि० [सं०] शुक्ल संबंधी। शुक्ल का।
संज्ञा पुं० दे० "शौक"।

शौग्र-संज्ञा पुं० [सं०] सहिंजन का बीज।

शौच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुचि होने का भाव। शुद्धता। पवित्रता। पाकीजगी। (२) शास्त्रीय परिभाषा में, पवित्रता-पूर्वक धर्माचरण करना, अथवा शरीर और मन शुद्ध रखना, सत्य बोलना और निषिद्ध पदार्थों तथा कार्यों आदि का त्याग करना। सब प्रकार से शुद्धता-पूर्वक जीवन व्यतीत करना।

विशेष—मनु के अनुसार यह धर्म के दस लक्षणों में से पाँचवाँ लक्षण है; और योगशास्त्र के पाँच नियमों में से पहला नियम है। कुछ लोगों ने इसके बाह्य और आभ्यंतर ये दो भेद माने हैं। शरीर का बाह्य शौच मिट्टी और जल आदि से होता है; और अपने चित्त का भाव सब प्रकार से शुद्ध रखने से आभ्यंतर शौच होता है। जैनों के अनुसार संयम वृत्ति को निष्कलंक रखना शौच कहलाता है।

(३) वे कृत्य जो प्रातःकाल उठकर सब से पहले किए जाते हैं। जैसे,—पाखाने जाना, मुँह हाथ धोना, नहाना, संध्या वंदन करना आदि। (४) पाखाने जाना। जंगल जाना। टट्टी जाना। (५) दे० "अशौच"।

शौचविधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] मल-मूत्र आदि का त्याग करना। शौच आदि से निवृत्त होना। निपटना।

शौचाद्रेय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शौचिक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति जिसकी उत्पत्ति शौंडिक पिता और कैवर्त्त माता से कही गई है।

शौची-वि० [सं० शौचिन्] विशुद्ध। पवित्र।

शौचेय-संज्ञा पुं० [सं०] रजक। धोबी।

शौटीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वीर। बहादुर। (२) त्यागी। (३) अभिमानी।

शौटीरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शौटीर का भाव या धर्म।

(२) वीरता। बहादुरी। (३) त्याग। (४) अभिमान। अहंकार। गर्व।

शौटीर्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वीर्य्य। शुक्र। (२) गर्व। अभिमान। (३) वीरता। बहादुरी।

शौत–संज्ञा स्त्री० दे० "सौत"। उ०—मेरे आगे की यह गड़ी। अब मद्‌ शौत बदन पर चढ़ी।—लल्लूलाल।

शौद्धोदनि–संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव, जो शुद्धोदन के पुत्र थे।

शौद्र–संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य के वीर्य्य से शूद्रा से उत्पन्न पुत्र जो बारह प्रकार के पुत्रों में से एक प्रकार का पुत्र माना जाता है। ऐसा पुत्र अपने पिता के गोत्र का नहीं होता और न उसकी संपत्ति का अधिकारी ही हो सकता है।

शौधल–वि० [सं० शुद्ध] निर्मल। पवित्र। (क०) उ०—कटि काती पगपंसिका नाभि द्वारिका शौध। हृदमाया कंठ मधुपुरी काशि प्राण शिर शौध।—विश्राम।

शौधिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] रक्तकंगु। लाल कँगनी।

शौन–संज्ञा पुं० [सं०] वह मांस जो बिक्री के लिये रखा हो।

वि० श्वान संबंधी। कुत्ते का।

शौनक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन वैदिक आचार्य्य और ऋषि जो शुनक ऋषि के पुत्र थे। ये नैमिषारण्य में तपस्या करते थे और इन्होंने एक बार एक बहुत बड़ा यज्ञ किया था जो बारह वर्षों तक होता रहा था। इनके नाम से कई ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

शौनकायन–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शुनक के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो।

शौनकीपुत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक प्राचीन आचार्य्य का नाम।

शौनायन–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

शौनिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मांस बेचनेवाला। कसाई। (२) शिकार। आखेट। मृगया।

शौनिकशास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें शिकार खेलने, घोड़ों आदि पर चढ़ने और पशुओं आदि को लड़ाने की विद्या का वर्णन हो।

शौभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिकनी सुपारी। (२) देवता। (३) राजा हरिश्चंद्र की वह कल्पित नगरी जो आकाश में मानी जाती है।

शौभांजन–संज्ञा पुं० [सं०] सहिंजन नामक वृक्ष। शोभांजन। वि० दे० "सहिंजन"।

शौभायन–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक योद्धा जाति का नाम।

शौभिक–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रजाल का तमाशा करनेवाला। ऐंद्रजालिक। जादूगर।

शौभ्रायण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल के एक देश का नाम। (२) इस देश का निवासी।

शौरसेन–संज्ञा पुं० [सं०] आधुनिक ब्रज मंडल का प्राचीन नाम जहाँ पहले राजा शूरसेन का राज्य था।

वि० शूरसेन संबंधी। शूरसेन का।

शौरसेनिका–संज्ञा स्त्री० दे० "शौरसेनी"।

शौरसेनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्राचीन काल की एक प्रसिद्ध प्राकृत भाषा जो शौरसेन (वर्त्तमान ब्रज मंडल) प्रदेश में बोली जाती थी।

विशेष—यह मध्य देश की प्राकृत थी और शूरसेन देश में इसका प्रचार होने के कारण यह शौरसेनी कहलाई। मध्यदेश में ही साहित्यिक संस्कृत का अभ्युदय हुआ था और वहीं की बोलचाल की भाषा से साहित्य की शौरसेनी प्राकृत का जन्म हुआ। इस पर संस्कृत का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था और इसी लिये इसमें तथा संस्कृत में बहुत समानता है। यह अपेक्षाकृत अधिक पुरानी, विकसित और शिष्ट समाज की भाषा थी। वर्त्तमान हिंदी का जन्म शौरसेनी और अर्धमागधी प्राकृतों तथा शौरसेनी और अर्धमागधी अपभ्रंशों से हुआ है।

(२) प्राचीन काल की एक प्रसिद्ध अपभ्रंश भाषा जिसका प्रचार मध्य देश के लोगों और साहित्य में था। यह नागर भी कहलाती थी।

शौरि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) कृष्ण। (३) बलदेव। (४) वसुदेव। (५) शनैश्चर ग्रह।

शौरिप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] हीरा।

शौरिरत्न–संज्ञा पुं० [सं०] नीलम।

शौर्पारक–संज्ञा पुं० [सं०] काले रंग का एक प्रकार का हीरा जो प्राचीन काल में शूर्पारक प्रदेश में पाया जाता था।

शौर्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शूर का भाव। शूरता। पराक्रम। वीरता। बहादुरी। (२) शूर का धर्म्म। (३) नाटक में आरभटी नाम की वृत्ति। वि० दे० "आरभटी" (२)।

शौलायन–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम जो कौलायन भी कहलाते थे।

शौलिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल के एक देश का नाम जो शूलिक भी कहलाता था। (२) इस देश का निवासी।

शौलिकि–संज्ञा पुं० [सं०] योगशास्त्र के अनुसार धौति, नेति आदि छः प्रकार के कर्मों में से एक कर्म। इसमें दाहिने नथने से धीरे धीरे साँस खींचते हुए बाएँ नथने से छोड़ते हैं; और फिर बाएँ नथने से खींचते हुए दाहिने नथने से छोड़ते हैं। कहते हैं कि इस क्रिया के द्वारा कफ के दोष का शमन होता है।

शौल्क–वि० [सं०] शुल्क संबंधी। शुल्क का।

संज्ञा पुं० एक साम का नाम।

शौल्कायनि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जो वेददर्श के शिष्य थे और जिनका उल्लेख भागवत में आया है।

शौल्किक-संज्ञा पुं० [सं०] वह अधिकारी जो लोगों से शुल्क लेता हो। कर या महसूल आदि वसूल करनेवाला अफसर। शुल्काध्यक्ष।

शौल्किकेय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विष।

शौल्फ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौंफ। शतपुष्पा। (२) सुलफा नाम का साग।

शौविक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति का नाम। (२) ठठेरा। कसेरा।

शौवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ते का मांस। (२) कुत्तों का झुंड।

वि० श्वान संबंधी। कुत्ते का।

शौवस्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जो भविष्य में व्यवहार करने के विचार से संग्रह करके रखा गया हो।

शौहर-संज्ञा पुं० [फा०] स्त्री का पति। स्वामी। खाविंद। मालिक। वि० दे० "पति" (२)।

श्नाम-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

श्नुष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैदिक काल का 'समय' का एक परिमाण।

श्नौष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

श्मशान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ मुरदे जलाए जाते हों। शव दाह करने का स्थान। मसान। मरघट।

पर्य्या०—पितृवन। शतानक। रुद्राक्रीड़। दाहसर। अंतशय्या। पितृकानन।

श्मशान कालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार की काली जिनका पूजन मांस, मछली खाकर, मद्य पीकर और नंगे होकर श्मशान में किया जाता है।

श्मशाननिलय-संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान में रहनेवाले, महादेव। शिव।

श्मशानपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्मशान के स्वामी, शिव। (२) एक प्रकार के ऐंद्रजालिक।

श्मशानपाल-संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान का रक्षक, चांडाल।

श्मशानभैरवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तांत्रिकों के अनुसार वे देवियाँ जो श्मशान में रहती हैं। (२) दुर्गा का एक नाम।

श्मशानवासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] काली।

श्मशानवासी-संज्ञा पुं० [सं० श्मशानवासिन्] (१) महादेव। शिव। (२) चांडाल।

श्मशानवेताल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की भूतयोनि।

श्मशानवेश्म-संज्ञा पुं० [सं० श्मशानवेश्मन्]-महादेव। शिव।

श्मश्रु-संज्ञा पुं० [सं०] होठों, गालों और ठोढ़ी आदि पर होनेवाले बाल। मुँह पर के बाल। दाढ़ी मूछ।

श्मश्रुकर-संज्ञा पुं० [सं०] दाढ़ी की सफाई करनेवाला, हज्जाम। नापित।

श्मश्रुकर्म्म-संज्ञा पुं० [सं० श्मश्रुकर्म्मन्] दाढ़ी बनवाना। हजामत बनवाना। क्षौर कर्म्म।

श्मश्रुमुखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके गालों और ऊपरी होंठ पर दाढ़ी और मोछ के बाल हों। ऐसी स्त्री क्रूर, कुलक्षणी और पुंश्चली समझी जाती है।

श्मश्रुवर्द्धक-संज्ञा पुं० [सं०] हज्जाम।

श्मश्रुशेखर-संज्ञा पुं० [सं०] नारियल का वृक्ष।

श्यापर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक शाखा का नाम।

श्याम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण का एक नाम, जो उनके शरीर के श्याम वर्ण होने के कारण पड़ा था। उ०—एक बार हरि निज पुर छये। हलधर जी वृंदावन गये। यह देखत गोकुल सुख पाये। जान्यो राम श्याम दोउ आये।—सूर। (२) प्रयाग के अक्षयवट का नाम। (३) साँवाँ नामक धान्य। (हिं०) (४) एक राग जो श्रीराग का पुत्र माना जाता है। यह राग ठारवों आदि के समय गाया जाता है; और हास्य रस के लिये भी उपयुक्त होता है। इसके गाने का समय संध्या के समय १ दंड से ५ दंड तक है। इसे श्याम कल्याण भी कहते हैं। उ०—नित मलार जु मलार सुनाई। श्याम गूजरी पुनि भल गाई।—जायसी। (५) सेंधा नमक। (६) धतूरा। (७) विधारा। (८) मेघ। बादल। (९) दौना का क्षुप। दमनक। (१०) एक प्रकार का तृण। गंध तृण। (११) गोल मिर्च। छोटी या काली मिर्च। (१२) पीलू वृक्ष। (१३) कोयल। कोकिल। (१४) प्राचीन काल का एक देश जो कन्नौज के पश्चिम और था। (१५) स्याम नामक देश। वि० दे० "स्याम"।

वि० (१) काला और नीला मिला हुआ (रंग)। (२) काला। साँवला। उ०— (क) अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार। जियत मरत झुकि झुकि परत, जेहि चितवत एक बार। (ख) कीन्हेसि बरन स्वेत औ स्यामा।—जायसी।

श्यामकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर। मयूर। (२) नीलकंठ नामक पक्षी। (३) शिव का एक नाम।

श्यामकंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अतीस। अतिविषा।

श्यामक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँवाँ का चावल। (२) गंध तृण नामक तृण। रामकपूर। (३) स्याम नामक देश। (४) भागवत के अनुसार शूर के एक पुत्र और वसुदेव के भाई का नाम।

श्यामकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] वह घोड़ा जिसका सारा शरीर सफेद

और एक कान काला होता है । उ०—श्यामकर्ण हय चालत आवैं । चमर छत्र तापर छबि छावैं ।—सबलसिंह ।

श्यामकांडा, श्यामकांता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँडर दूब ।

श्याम ग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाडर । दूब ।

श्यामचटक—संज्ञा पुं० [सं०] श्यामा नामक पक्षी ।

श्यामचूड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण चटक या श्यामा नामक पक्षी ।

श्याम जीरा—संज्ञा पुं० [सं० श्याम+जीरक] (१) एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है और जिसका चावल बहुत दिनों तक रखा जा सकता है । (२) काला जीरा । कृष्ण जीरक ।

श्याम टीका—संज्ञा पुं० [सं० श्याम+हिं० टीका] वह काला टीका जो बच्चों को नजर से बचाने के लिये लगाया जाता है । डिठौना । उ०—पठवहिं मातु भूप दरबारे टीको श्याम लगाई ।—रघुराज ।

श्यामता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्याम का भाव या धर्म । (२) कालापन । साँवलापन । कृष्णता । (३) मलिनता । उदासी । जैसे,—यह बात सुनते ही उसके मुँह पर श्यामता छा गई । (४) एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर का रंग काला होने लगता है ।

श्याम तीतर—संज्ञा पुं० [सं० श्याम+हिं०तीतर] प्रायः डेढ़ बालिश्त लंबा एक प्रकार का पक्षी जो अकेला रहता है और पाला भी जा सकता है । यह काश्मीर, भूटान और दक्षिण हिमालय में पाया जाता है । ऋतु भेदानुसार यह स्थान परिवर्तन करता रहता है । इसकी चोंच लंबी होती है और यह बहुत तेज उड़ता है । इसका शब्द धीमा पर विचित्र होता है । इसका मांस स्वादिष्ट होता है; इसलिये इसका शिकार भी किया जाता है ।

श्यामपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तमाल वृक्ष ।

श्यामपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जामुन का वृक्ष ।

श्यामपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] सिरिस का पेड़ । शिरीष का वृक्ष ।

श्यामपर्णी—संज्ञा स्त्री० दे० "चाय" ।

श्याम पूरबी—संज्ञा पुं० [सं० श्याम+हिं० पूरबी] एक प्रकार का संकर राग । इसमें और सब तो शुद्ध स्वर लगते हैं, केवल मध्यम तीव्र लगता है ।

श्यामभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] मिर्च ।

श्याम मंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० श्याम+मंजरी] काले रंग की एक प्रकार की मिट्टी जिससे वैष्णव लोग माथे पर तिलक लगाते हैं । यह मिट्टी प्रायः जगन्नाथ जी के आसपास [redacted] भूमि में पाई जाती है ।

श्यामल—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल । अश्वत्थ वृक्ष । (२) सिरिस का पेड़ । सिरिष । (३) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का बहुत जहरीला बिच्छू ।

वि० जिसका वर्ण कृष्ण हो । काला । साँवला ।

श्यामलचूड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंजा । घुँघची ।

श्यामलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्यामल या काले रंग के होने का भाव । साँवलापन । कालापन ।

श्यामला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अश्वगंध । असगंध । (२) कटभी । (३) जामुन । (४) कस्तूरी । मृगमद । (५) पार्वती का एक नाम ।

श्यामलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली ।

श्यामली—संज्ञा स्त्री० दे० "श्यामला" ।

श्यामलेक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] काले रंग की ईख ।

श्यामवर्त्म—संज्ञा [सं०] एक प्रकार का नेत्र रोग जिसमें आँख की पलकें बाहर तथा भीतर से काली होकर फूल जाती हैं और उनमें पीड़ा होती है ।

श्याम-शबल—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार यम के अनुचर दो कुत्ते जो उनके द्वार पर पहरा देने का काम करते हैं । इन्हें संतुष्ट करने के लिये एक प्रकार का व्रत करने का भी विधान है ।

श्यामशर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ईख जो बहुत अच्छी और गुणवाली मानी जाती है ।

श्यामशालि—संज्ञा पुं० [सं०] काला शालिधान्य ।

श्यामसार—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण खदिर का वृक्ष ।

श्यामसुंदर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण का एक नाम । उ०—लिये उठाय श्यामसुंदर को यश नहिं कै मुख लीन्हों ।—सूर । (२) एक प्रकार का वृक्ष जो कद में बहुत ऊँचा होता है । इसकी छाल आरंभ में उज्वल होती है; परंतु ज्यों ज्यों यह पुराना होता जाता है, त्यों त्यों छाल काली होती जाती है । इसके हीर की लकड़ी चमकदार होती है । पहाड़ों पर यह चार हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है । इसकी लकड़ी प्रायः बढ़िया चीजों के बनाने में काम आती है । इससे खेती के औजार भी बनाए जाते हैं ।

श्यामांग—संज्ञा पुं० [सं०] बुध ग्रह, जिसका वर्ण दूर्वा-श्याम माना गया है ।

वि० जिसका शरीर कृष्ण वर्ण का हो । काले या साँवले रंगवाला ।

श्यामांगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली दूब ।

श्यामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राधा या राधिका का एक नाम, जो श्याम या श्रीकृष्ण के साथ उनका प्रेम होने के कारण पड़ा था । उ०—मदनमोहन भाव आन्यो गगन मेघ छिपाइ । श्याम श्यामा सुख लीला......।—सूर । (२) एक गोपी का नाम । उ०—श्यामा कामा चतुरा नवला प्रमुदा सुमदा नारि ।—सूर । (३) प्रायः सवा या डेढ़ बालिश्त लंबा एक प्रकार का पक्षी जिसका रंग काला और पैर पीले

होते हैं। यह पंजाब के अतिरिक्त सारे भारत में मिलता है। यह एक ही स्थान पर स्थिर रूप से रहता है और पहाड़ पर नहीं जाता। यह प्रायः घने जंगलों में रहता है। इसका स्वर बहुत ही मधुर और कोमल होता है। यह पत्ती और घास से घोंसला बनाता है और एक बार में चार अंडे देता है। (४) सोलह वर्ष की तरुणी। (५) काले रंग की गाय। (६) कबूतरी। मादा कबूतर। (७) काला अनंतमूल। श्यामा लता। (८) काली निसोथ। (९) प्रियंगु। वनिता। (१०) बकुची। सोम राजी। (११) नील। (१२) गुग्गुल। (१३) सोम लता। सोमवल्ली। (१४) भद्रमोथा। (१५) गुडुच। गिलोय। (१६) बंदा। बंदाक। (१७) कस्तूरी। मुश्क। (१८) वट पत्री। पाषाणभेदी। (१९) पीपल। पिप्पली। (२०) हल्दी। हरिद्रा। (२१) हरी दूब। (२२) तुलसी। सुरसा क्षुप। (२३) कमलगट्टा। (२४) विधारा। (२५) शिंशपा वृक्ष। शीशम। (२६) साँवाँ नामक अन्न। (२७) काली गदहपूरना। (२८) गोलोचन। गोरोचन। (२९) पुरका या गुंदा नामक घास। (३०) लता कस्तूरी। मुश्क दाना। (३१) मेढ़ा सिंगी। (३२) हरीतकी। हर्रे। (३३) कोयल नामक पक्षी। (३४) यमुना। (३५) रात। रात्रि। (३६) स्त्री। औरत। (३७) छाया। (३८) कालिका देवी का एक नाम।

वि० (१) तपाए हुए सोने के समान वर्णवाली। (२) श्याम रंगवाली। काली।

श्यामाक–संज्ञा पुं० [सं०] साँवाँ नामक अन्न।

श्यामाढकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] काले फूल की अरहर जो वैद्यक के अनुसार दीपन और पित्त तथा दाह की नाशक मानी जाती है।

श्यामायन–संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम जो गोत्र-प्रवर्तक ऋषि थे।

श्यामायनि–संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक आचार्य का नाम।

श्यामायनी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैशंपायन के शिष्यों का संप्रदाय। (२) वह जो इस संप्रदाय में हो।

श्यामा लता–संज्ञा स्त्री० [सं०] काला अनंतमूल। कृष्ण सारिवा।

श्यामाह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पिप्पली। पीपल।

श्यामिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काला रंग। कृष्ण वर्ण। (२) कालापन। श्यामता। (३) मलिनता। उदासी।

श्यामेक्षु–संज्ञा पुं० [सं०] काला ईख। कजली ईख।

श्याल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पत्नी का भाई। साला। उ०—बार बार सत्कार करि, कीन्हो स्याल निहाल।—रघुराज। (२) बहन का पति। बहनोई।

संज्ञा पुं० [सं० शृगाल] गीदड़। सियार। उ०—रोव वृषभ तुरंग अरु नाग। स्याल दिवस निशि बोलैं काग।—सूर।

श्यालक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० श्यालिका] पत्नी का भाई। साला।

श्यालकाँटा–संज्ञा पुं० [स्याल ? + हिं० काँटा] स्वर्णक्षीरी नामी। भरभाँड़।

श्यालकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी की बहन। साली।

श्याव–वि० [सं०] कृष्ण और पीत मिश्रित (वर्ण)। पीला मिला हुआ (रंग)। कपिश।

संज्ञा पुं० (१) काला और पीला मिला हुआ रंग। वर्ण। (२) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का विष। विष बहुत तेज नहीं होता।

श्यावक–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक प्राचीन राजर्षि

श्यावता–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्याव (वर्ण) का भाव। कपिशता।

श्यावर्तैल–संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।

श्यावदंत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाँतों का एक प्रकार जिसमें रक्त मिश्रित पित्त से दाँत जलकर काले, नीले हो जाते हैं। (२) वह जिसके दाँत स्वभावतः के हों।

श्यावनाय–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

श्यावरथ–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

श्याववर्त्म–संज्ञा पुं० [सं० श्याववर्त्मन्] आँखों का नामक रोग। वि० दे० "श्यामवर्त्म"।

श्यावाश्व–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

श्येत–वि० [सं०] श्वेत। सफेद। शुक्ल। (वर्ण)

संज्ञा पुं० सफेद रंग।

श्येतकोलक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

श्येन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिकरा या बाज नामक प्रसिद्ध जो प्रायः छोटे छोटे पक्षियों का शिकार किया करता

पर्य्या०—शशादन। कपोतारि। क्रूरवेगी। खगांतक। लंबकर्ण। नीलपिच्छ। रणप्रिय। रणपक्षी। भयंकर। स्थूल

(२) छंद के चौथे भेद का नाम। इसमें १९ गुरु और लघु मात्राएँ होती हैं। (३) पीला रंग।

श्येनकरण–संज्ञा पुं० [सं०] किसी काम को उतनी ही तेजी और दृढ़ता से करना जितनी तेजी और दृढ़ता से बाज अपने शिकार को पकड़ता है।

श्येनगामी–संज्ञा पुं० [सं० श्येनगामिन्] रामायण के एक राक्षस का नाम।

श्येनघंटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दंती वृक्ष। उदुंबर पर्णी। वि० "दंती"।

श्येनचित्–संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ आदि में अग्नि स्थापित करने की वह वेदी जिसका आकार श्येन या बाज पक्षी के होता है।

नई पुस्तकें

मुहणोत नैणसी की ख्यात (पहला भाग)

राजपूताने, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, मालवे और बुन्देलखंड के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करनेवालों के लिये यह सुप्रसिद्ध ख्यात बहुत महत्व की है। इसमें गुहिलोत, चौहान, सोलंकी, प्रतिहार और परमार वंश का बहुत ही विस्तृत तथा प्रामाणिक इतिहास और उनकी वंशावलियाँ दी गई हैं। साथ में अनेक उपयोगी टिप्पणियाँ आदि भी दी गई हैं। ऐतिहासिक अनुसंधान करनेवालों के लिये बड़े काम की चीज है। मूल्य ३॥)

अकबरी दरबार (पहला भाग)

उर्दू, फारसी आदि के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय शम्सुल् उलमा मौलाना मुहम्मद हुसैन साहब आजाद कृत दरबारे अकबरी नामक ग्रंथ का अनुवाद। इसमें बादशाह अकबर की पूरी जीवनी दी गई है और बतलाया गया है कि उसने कैसे कैसे युद्ध किए, अपने राज्य की किस प्रकार व्यवस्था की, उसके समय में देश की राजनीतिक, सामाजिक और साम्पत्तिक अवस्था कैसी थी, आदि आदि। पृष्ठ-संख्या चार सौ से ऊपर। मूल्य २॥)

अशोक की धर्म-लिपियाँ (पहला भाग)

इस पुस्तक में सम्राट् अशोक के प्रधान शिलालेखों की प्रतिलिपि, संस्कृत तथा हिंदी अनुवाद और स्थान स्थान पर अनेक बहुमूल्य टिप्पणियाँ दी गई हैं। अशोक की धर्म्मलिपियों का ऐसा अच्छा दूसरा संस्करण अभी कहीं नहीं निकला। प्रत्येक इतिहास-प्रेमी और विद्यानुरागी को इसकी एक प्रति अवश्य रखनी चाहिए। मूल्य ३)

बाँकीदास ग्रंथावली (पहला भाग)

डिंगल भाषा के महाकवि कविराजा बाँकीदास कृत सूर छत्तीसी, सोह छत्तीसी, वीर-विनोद, धवल-पचीसी, दातार बावनी, नीति-मंजरी और सुपह छत्तीसी ये सात ग्रंथ अभी तक मिले हैं, जो इस पहले खंड में एक साथ ही छाप दिए गए हैं। आरंभ में बाँकीदास जी की जीवनी दे दी गई है और प्रत्येक पृष्ठ में कठिन शब्दों के अर्थ तथा उनके उपयोगी विवरण आदि पादटिप्पणियों में देकर पुस्तक सर्वसाधारण के लिये बहुत ही सुगम कर दी गई है। १०० पृष्ठों से ऊपर की जिल्द बँधी पुस्तक का मूल्य केवल ॥)

वीसलदेव रासो

यह ग्रंथ सं० १२७२ का लिखा हुआ है और इसकी भाषा प्राचीनतम हिन्दी है। इसमें बीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) के जीवन की मुख्य घटनाओं और युद्धों आदि का बहुत उत्कृष्ट वर्णन है। १७ वीं शताब्दी की हस्तलिखित प्रति से इसका पाठ शुद्ध किया गया है और कठिन शब्दों के अर्थ तथा टिप्पणियाँ दी गई हैं। प्राचीन भाषा काव्य-प्रेमियों के लिये अपूर्व रत्न है। १७५ पृष्ठों की जिल्ददार पुस्तक का मूल्य ॥।)

जायसी ग्रंथावली

सभा ने जायसी कृत पद्मावत और अखरावट का बहुत सुन्दर और शुद्ध संस्करण प्रकाशित किया है और प्रति पृष्ठ में कठिन शब्दों के अर्थ तथा दूसरे आवश्यक विवरण दे दिए हैं, जिसमें यह काव्य साधारण विद्यार्थियों तक के समझने योग्य हो गया है। पुस्तक का पाठ बहुत परिश्रम से शुद्ध किया गया है। आरंभ में इसके सम्पादक और सिद्धहस्त समालोचक पं० रामचन्द्र शुक्ल ने प्रायः ढाई सौ पृष्ठों की इसकी मार्मिक आलोचना कर दी है, जिसके कारण सोने में सुगंध भी आ गई है। बड़े आकार के प्रायः ६०० पृष्ठों की जिल्द बँधी पुस्तक का मूल्य केवल ३)

प्रकाशन मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, बनारस सिटी।

मुद्रक—गणपति कृष्ण गुर्जर, श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस सिटी।

संख्या—३६

शब्द २६७१

हिंदी-शब्दसागर

अर्थात्

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

संपादक

श्यामसुन्दरदास बी० ए०

सहायक सम्पादक

रामचंद्र शुक्ल रामचंद्र वर्म्मा

भगवानदीन

प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा

१९२७

[मूल्य १)

डाक व्यय अतिरिक्त

संकेताक्षरों का विवरण

अं० = अंगरेजी भाषा
अ० = अरबी भाषा
अनु० = अनुकरण शब्द
अने० = अनेकार्थनाममाला
अप० = अपभ्रंश
अयोध्या=अयोध्यासिंह उपाध्याय
अर्द्धमा० = अर्द्ध मागधी
अल्पा० = अल्पार्थक प्रयोग
अव्य० = अव्यय
आनंदघन = कवि आनंदघन
इब० = इबरानी भाषा
उ० = उदाहरण
उत्तरचरित=उत्तररामचरित
उप० = उपसर्ग
उभ० = उभयलिंग
कठ० उप०=कठवल्ली उपनिषद्
कबीर = कबीरदास
केशव = केशवदास
कोंक०=कोंकण देश की भाषा
क्रि० = क्रिया
क्रि० अ० = क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र० = क्रियाप्रयोग
क्रि० वि०=क्रियाविशेषण
क्रि० स०=क्रिया सकर्मक
क्व०=क्वचित् अर्थात् इसका प्रयोग बहुत कम देखने में आया है।
खानखाना=अब्दुर्रहीम खानखाना
गि० दा० या गि० दास=गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर=गिरिधरराय (कुंडलियावाले)
गुज० = गुजराती भाषा
गुमान = गुमान मिश्र
गोपाल = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
चरण = चरणचंद्रिका
चिंतामणि=कवि चिंतामणि त्रिपाठी
छीत=छीतस्वामी
जायसी=मलिक मुहम्मद जायसी
जावा०=जावा द्वीप की भाषा
ज्यो०=ज्योतिष
डिं०=डिंगल भाषा
तु०=तुरकी भाषा
तुलसी=तुलसीदास
तोष=कवि तोष
दादू=दादूदयाल
दीनदयालु=दीनदयालु गिरि
दूलह=कवि दूलह
दे०=देखो
देव=देव कवि (मैनपुरीवाले)
देश० = देशज
द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी
नागरी = नागरीदास
नाभा = नाभादास
निश्चल = निश्चलदास
पं० = पंजाबी भाषा
पद्माकर = पद्माकर भट्ट
पर्या० = पर्याय
पा० = पाली भाषा
पुं० = पुंलिंग
पु० हिं० = पुरानी हिन्दी
पुर्त० = पुर्तगाली भाषा
पू० हिं० = पूर्वी हिंदी
प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र
प्रत्य० = प्रत्यय
प्रा० = प्राकृत भाषा
प्रिया = प्रियादास
प्रे० = प्रेरणार्थक
प्रे० सा० = प्रेमसागर
फ्रा० = फरासीसी भाषा
फा० = फारसी भाषा
बँग० = बँगला भाषा
बरमी० = बरमी भाषा
बहु० = बहुवचन
बिहारी = कवि बिहारीलाल
बुं० खं० = बुंदेलखंडी बोली
बेनी = कवि बेनी प्रवीन
भाव० = भाववाचक
भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी
मतिराम = कवि मतिराम त्रिपाठी
मला० = मलायलम भाषा
मलूक = मलूकदास
मि० = मिलाओ
मुहा० = मुहाविरे
यू० = यूनानी भाषा
यौ० = यौगिक तथा दो या अधिक शब्दों के पद
रघु० दा० = रघुनाथदास
रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन
रघुराज = महाराज रघुराजसिंह रीवाँनरेश
रसखान = सैयद इब्राहीम
रसनिधि = राजा पृथ्वीसिंह
रहीम = अब्दुर्रहीम खानखानाँ
लक्ष्मणसिंह = राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू = लल्लूलाल
लश० = लशकरी भाषा अर्थात् हिंदुस्तानी जहाजियों की बोली
लाल = लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)
लै० = लैटिन भाषा
वि० = विशेषण
विश्राम = विश्रामसागर
व्यंग्यार्थ = व्यंग्यार्थकौमुदी
व्या० = व्याकरण
व्यास = अंबिकादत्त व्यास
शं० दि० = शंकर दिग्विजय
शृं० सत० = शृंगार सतसई
सं० = संस्कृत
संयो० = संयोजक अव्यय
संयो० क्रि० = संयोज्य क्रिया
स० = सकर्मक
सबल = सबलसिंह चौहान
सभा वि० = सभाविलास
सर्व० = सर्वनाम
सुधाकर = सुधाकर द्विवेदी
सूदन = सूदनकवि (भरतपुरवाले)
सूर = सूरदास
स्त्रि० = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री० = स्त्रीलिंग
स्पे० = स्पेनी भाषा
हिं० = हिंदी भाषा
हनुमान = हनुमन्नाटक
हरिदास = स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र = भारतेंदु हरिश्चंद्र

---

* यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त होता है।
† यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्रांतिक है।
‡ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप ग्राम्य है।

श्येनजीवी–संज्ञा पुं० [सं० श्येनजीविन्] वह जो श्येन या बाज पकड़ और बेच कर जीविका निर्वाह करता हो। मनु ने ऐसे आदमी के साथ एक पंक्ति में बैठ कर खाने पीने का निषेध किया है।

श्येनाहृत–संज्ञा पुं० [सं०] सोम लता।

श्येनिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में ११ अक्षर होते हैं; और मात्रा के अनुसार उनका क्रम इस प्रकार होता है—र ज र ल ग (ऽ।ऽ, ।ऽ।, ऽ।ऽ, ।, ऽ)। इसका दूसरा नाम 'श्येनी' भी है।

संज्ञा स्त्री० बाज पक्षी की मादा।

श्येनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दे० "श्येनिका"। (२) मार्कंडेय पुराण के अनुसार कश्यप की एक कन्या का नाम, जो दक्ष की पुत्री ताम्रा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। कहते हैं कि बाज, तोते, कबूतर आदि पक्षी इसी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

श्यैनिक–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का याग, जो एक दिन में होता था।

श्यैनेय–संज्ञा पुं० [सं०] जटायु का एक नाम।

श्योनाक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोनापाढ़ा वृक्ष। (२) लोध। लोध।

श्योरा–संज्ञा पुं० [फा०] बड़ी मेख।

क्रि० प्र०—ठोंकना —मारना।

श्रंग–संज्ञा पुं० [सं०] गमन। जाना।

संज्ञा पुं० [सं० शृंग] शृंग। (डिं०)

श्रंथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संसार के बंधन से छुड़ानेवाले, विष्णु। (२) बंधन। (३) मोक्ष।

श्रंथित–वि० [सं०] (१) बँधा हुआ। (२) मुक्त। (३) प्रसन्न। हर्षित। खुश।

श्रंसन–संज्ञा पुं० [सं०] वह औषधि जो पेट में जमे हुए मल या गाँठ को बाहर निकालती हो। जैसे, अमलतास का गूदा।

श्रथन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार डालना। वध। हत्या। (२) अलग करना। बंधन से मुक्त करना। खोलना। (३) यत्न। कोशिश।

श्रद्धा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की मनोवृत्ति, जिसमें किसी बड़े या पूज्य व्यक्ति के प्रति भक्तिपूर्वक विश्वास के साथ उच्च और पूज्य भाव उत्पन्न होता है। बड़े के प्रति मन में होनेवाला आदर और पूज्य भाव। उ०—(क) महिमा वेद पुराण सबै बहु भाँति बखानत। यथा सहित सब केशव सहित श्रद्धा गुण गावत।—केशव। (ख) पूजत श्रद्धा भक्ति जु कोई। ताके वश्य जगत हम दोई।—सबलसिंह। (२) बौद्ध धर्म के अनुसार बुद्ध, धर्म्म और संघ में विश्वास। (३) वेदादिशास्त्रों और आप्त पुरुषों के वचनों पर विश्वास। भक्ति। आस्था। विश्वास। (४) शुद्धि। (५) चित्त की प्रसन्नता। (६) कर्दम मुनि की कन्या का नाम, जो उनकी पत्नी देवहूति के गर्भ से उत्पन्न हुई थी और जो अत्रि ऋषि की पत्नी थी।

श्रद्धातव्य–वि० [सं०] जिस पर श्रद्धा की जा सके। श्रद्धा करने के योग्य।

श्रद्धान–संज्ञा पुं० [सं०] श्रद्धा।

श्रद्धालु–वि० [सं०] (१) जिसके मन में श्रद्धा हो। श्रद्धा रखनेवाला। श्रद्धायुक्त। श्रद्धावान्। (२) (स्त्री) जिसके मन में, गर्भावस्था के कारण, अनेक प्रकार की अभिलाषाएँ हों। दोहदवती।

श्रद्धावान्–संज्ञा पुं० [सं० श्रद्धावत्] (१) वह जिसके मन में श्रद्धा हो। श्रद्धायुक्त। श्रद्धालु पुरुष। (२) जिसके मन में धर्म्म के प्रति निष्ठा हो। धर्म्मनिष्ठ।

श्रद्धास्पद–वि० [सं०] जिसके प्रति श्रद्धा की जा सके। श्रद्धा-पात्र। श्रद्धेय। पूजनीय।

श्रद्धी–संज्ञा पुं० [सं० श्रद्धिन्] जिसके मन में श्रद्धा हो। श्रद्धावान्।

श्रद्धेय–वि० [सं०] [संज्ञा श्रद्धेयत्व] जिस पर श्रद्धा की जाय। श्रद्धा करने के योग्य। श्रद्धा-पात्र। श्रद्धास्पद।

श्रपण–संज्ञा पुं० [सं०] गार्हपत्य अग्नि के द्वारा चरु पकाने की क्रिया।

श्रपित–वि० [सं०] पका हुआ। पक्व।

श्रपिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] काँजी। कांजिक।

श्रम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी कार्य्य के संपादन में होनेवाला शारीरिक अभ्यास। शरीर के द्वारा होनेवाला उद्यम। परिश्रम। मेहनत। मशक्कत। उ०—दूरि तीरथन श्रम करि जाहिं। यहाँ रहैं तहँ लख्यौ न ताहिं।—सूर।

क्रि० प्र०—उठाना।—करना।—पड़ना।—होना।

(२) थकावट। क्लांति।

मुहा०—श्रम पाना=परिश्रम करना। मेहनत करके थकना। उ०—आइ कहा उद्यम करि आए। कहै वृथा भ्रमि भ्रमि श्रम पाए।—सूर।

(३) साहित्य में संचारी भावों के अंतर्गत एक भाव। कोई कार्य्य करते करते संतुष्ट और शिथिल हो जाना। (४) क्लेश। दुःख। तकलीफ। (५) दौड़ धूप। परेशानी। (६) पसीना। स्वेद। (७) व्यायाम। कसरत। (८) शास्त्रों का अभ्यास। (९) चिकित्सा। इलाज। (१०) खेद। (११) तप। (१२) प्रयास। (१३) अभ्यास।

श्रमकण–संज्ञा पुं० [सं०] पसीने की बूँदें, जो परिश्रम करने पर शरीर से निकलती हैं। स्वेद-बिंदु। उ०—श्यामल तन श्रमकन राजत ज्यों नव घन सुधा सरोवर खोरे।—तुलसी।

श्रमघ्न–वि० [सं०] जिससे श्रम दूर हो। थकावट दूर करनेवाला।

श्रमजल–संज्ञा पुं० [सं०] पसीना। स्वेद। प्रस्वेद। उ०—(क) श्रमजल बिंदु इंदु आनन पर राजत अति सुकुमार। मानों

विविध भाव मिल विलसत मगन सिंधु रस सार ।—सूर । (ख) कुमकुम आड़ श्रवत श्रमजल मिलि मधु पीवत छवि छीट चली री ।—सूर ।

श्रमजित–वि० [सं० श्रम + सं० जित् या हिं० जीतना] जो मनमाना परिश्रम करने पर भी न थके । श्रम को जीत लेनेवाला । उ०—स्वामि भक्त श्रमजित सुधी, सेनापति सु अभीत । अनालसी जन प्रिय जसी, सुख संग्राम अजीत ।—केशव ।

श्रमजीवी–वि० [सं० श्रमजीविन्] शारीरिक परिश्रम करके जीविका निर्वाह करनेवाला । मेहनत करके पेट पालनेवाला ।

संज्ञा पुं० मज़दूर । कुली ।

श्रमण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बौद्ध मतावलंबी संन्यासी । (२) यति । मुनि । (३) वह जो नीच कर्म्म करके जीविका निर्वाह करता हो । नीच । घृणित । (४) श्रमजीवी । मजदूर ।

श्रमणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुदर्शना नामक ओषधि । (२) जटामांसी । बालछड़ । (३) मुंडी । घुंडी । श्रावणिका । (४) शबर जाति की एक स्त्री का नाम । (५) संन्यासिनी ।

श्रमबिंदु–संज्ञा पुं० [सं०] पसीने की बूँदें, जो परिश्रम करने पर करने पर शरीर से निकलती हैं । श्रमकण । स्वेद ।

श्रमभंजिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली लता, जो थकावट दूर करनेवाली मानी जाती है । पान । नागवल्ली ।

श्रमवारि–संज्ञा पुं० [सं०] परिश्रम के कारण शरीर से निकलनेवाला पसीना । श्रमकण ।

श्रमविभाग–संज्ञा पुं० [सं०] किसी कार्य्य के भिन्न भिन्न अंगों के संपादन के लिये, अलग अलग व्यक्तियों की नियुक्ति । परिश्रम या काम का विभाग । जैसे,—किसी का रूई औटना, किसी का सूत कातना, किसी का कपड़ा बुनना, किसी का अनाज पीसना, किसी का रोटी पकाना ।

श्रम-शीकर–संज्ञा पुं० [सं०] श्रम से होनेवाला पसीना । श्रमकण ।

श्रम-सहिष्णु–वि० [सं०] जो यथेष्ट श्रम कर सकता हो । मेहनती । परिश्रमी ।

श्रमसाध्य–वि० [सं०] जिसके संपादन में श्रम करना पड़े । जो सहज में या बिना परिश्रम न सध सके ।

श्रमसीकर–संज्ञा पुं० [सं०] पसीना । श्रमबिंदु । उ०—कुंडल मकर कपोलनि झलकत श्रमसीकर के दाग ।—सूर ।

श्रमित–वि० [सं० श्रम] जो श्रम से शिथिल हो गया हो । श्रांत । थका हुआ । उ०—चारों भ्रातन श्रमित जानि कै जननी तब पौढ़ाये । चापत चरण जननि अप अपनी कछुक मधुर स्वर गाये ।—सूर ।

श्रमी–संज्ञा पुं० [सं० श्रमिन्] (१) मेहनती । परिश्रमी । (२) श्रमजीवी ।

श्रयण–संज्ञा पुं० [सं०] आश्रय ।

श्रयंतिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी ।

श्रव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कान । (हिं०) (२) शब्द ।

श्रवण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह इंद्रिय जिससे शब्द का ज्ञान होता है । कान । कर्ण । श्रुति । (२) वह ज्ञान जो श्रवणेंद्रिय द्वारा होता है । (३) शास्त्रीय परिभाषा में शास्त्रों में लिखी हुई बातें सुनना और उनके अनुसार कार्य्य करना अथवा देवताओं आदि के चरित्र सुनना । उ०—श्रवण कीर्तन सुमिरन करै । पद सेवन अर्चन उर धरै ।—सूर । (४) नौ प्रकार की भक्तियों में से एक प्रकार की भक्ति । उ०—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पद रत, अरचन, बंदन, दास । सख्य और आत्मा-निवेदन प्रेम लक्षण जास ।—सूर । (५) वैश्य तपस्वी अंधक मुनि के पुत्र का नाम । (६) राजा मेघध्वज के पुत्र का नाम । उ०—ता संगति नव सुत नित जाए । श्रवणादिक मिलि हरि गुण गाये ।—सूर । (७) अश्विनी आदि सत्ताइस नक्षत्रों में से बाइसवाँ नक्षत्र, जिसका आकार शर या तीर का सा माना गया है । इसमें तीन तारे हैं, और इसके अधिपति देवता हरि कहे गए हैं । फलित ज्योतिष के अनुसार जो बालक इस नक्षत्र में जन्म लेता है, वह शास्त्रों से प्रेम रखनेवाला, बहुत से लोगों से मित्रता रखनेवाला, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनेवाला और अच्छी संतानवाला होता है ।

श्रवण द्वादशी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों मास के शुक्ल पक्ष की वह द्वादशी जो श्रवण नक्षत्र से युक्त हो । यह बहुत पुण्य तिथि मानी जाती है । इसे वामन-द्वादशी भी कहते हैं । कहते हैं कि वामनावतार इसी दिन हुआ था । उ०—अस कहि शुभ दिन शोधि ब्रह्म ऋषि तुरत सुमंत बोलायो । भादों मास श्रवण द्वादशि को सुदिवस सुखद सुनायो ।—रघुराज ।

श्रवणपथ–संज्ञा पुं० [सं०] श्रवणेंद्रिय । कान ।

श्रवणविद्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विद्या जो श्रवण इंद्रिय के संपर्क से मानसिक वृत्ति प्रदान करती है । जैसे, संगीत-शास्त्र ।

श्रवणशीर्षिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रावणी वृक्ष । गोरखमुंडी । बड़ी मुंडी ।

श्रवणहारी–संज्ञा पुं० [सं० श्रवणहारिन्] वह जो कानों को भला लगे । सुनने में अच्छा जान पड़नेवाला । कर्णमधुर ।

श्रवणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बड़ी मुंडी । (२) पुंडेरी । (३) अश्विनी आदि सत्ताइस नक्षत्रों के अंतर्गत बाईसवाँ नक्षत्र । वि० दे० "श्रवण" (७) ।

श्रवणाह्वया–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निर्विषी नामक तृण । (२) जल चौलाई ।

श्रवणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुंडेरी । (२) गोरखमुंडी । महामुंडी ।

श्रवणीय–वि० [सं०] सुनने लायक । श्रवण करने योग्य ।

श्रवन–संज्ञा पुं० [सं० श्रवण] श्रवण । कान । उ०—नयन बैन

औ स्रवन ये सबही तोर प्रसाद। सेवा मोर यही नित बोलौं आसिरबाद।—जायसी।

श्रवना॥–क्रि० स० [सं० स्राव] बहना। चूना। रसना। उ०—राति दिवस रस श्रवत सुधा मे कामधेनु दरसाई। लूट लूट दधि खात सखन सँग तैसो स्वाद न पाई।—सूर।
क्रि० स० गिराना। बहाना। उ०—खर भर लंक, सशंक, दशानन गर्भ श्रवहिं अरि नारि।—तुलसी।

श्रवित॥–वि० [सं० स्रुत] बहा हुआ। रसा या चूआ हुआ।

श्रविष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

श्रविष्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं०] धनिष्ठा नक्षत्र।

श्रविष्ठाज–संज्ञा पुं० [सं०] बुध ग्रह।

श्रविष्ठाभू–संज्ञा पुं० [सं०] बुध ग्रह।

श्रविष्ठारमण–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

श्रव्य–वि० [सं०] जो सुना जा सके। सुनने योग्य। जैसे,—संगीत।
यौ०—श्रव्य काव्य = वह काव्य जो केवल सुना जा सके। वह काव्य जो अभिनय आदि के रूप में देखा जा न सके। इसके तीन भेद हैं—(१) गद्य, (२) पद्य और (३) गद्य पद्य। वि० दे० "काव्य"।

श्रांत–वि० [सं०] (१) जितेंद्रिय। (२) शांत। (३) जो अधिक श्रम करने के कारण थक गया हो। परिश्रम से थका हुआ। (४) दुःखी। खिन्न। रंजीदा। (५) निवृत्त। (६) जो सुख भोगकर तृप्त हो चुका हो।

श्रांति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्रम। परिश्रम। मेहनत। (२) थकावट। उ०—संध्या पर्यंत मार्ग में चलनी रही; इससे अत्यंत श्रांति मालूम हुई।—प्रतापनारायण। (३) खेद। दुःख। (४) विश्राम। आराम।

श्राण–वि० [सं०] घी, दूध या जल में पका हुआ। सिद्ध। पक्व।

श्राणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] माँड़ की काँजी जिसका व्यवहार पथ्य रूप में होता है। यवागू। वि० दे० "यवागू"।

श्राद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह कार्य्य जो श्रद्धापूर्वक किया जाय। श्रद्धा से किया जानेवाला काम। (२) वह कृत्य जो शास्त्र के विधान के अनुसार पितरों के उद्देश्य से किया जाता है। जैसे,—पितरों के उद्देश्य से तर्पण और पिंडदान करना तथा ब्राह्मणों को भोजन कराना। कुछ लोगों के मत से श्राद्ध पाँच प्रकार का है—नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि और पार्वण। और कुछ लोग इन पाँच प्रकार के श्राद्धों के अतिरिक्त नीचे लिखे सात प्रकार के और भी (कुल बारह प्रकार के) श्राद्ध मानते हैं—सपिंडन, गोष्ठी, शुद्धयर्थ, कर्मांग, दैविक, यात्रार्थ और पुष्ट्यर्थ। उ०—कतहूँ श्राद्ध करत पितरन को तर्पण करि बहु भाँति। कहुँ विप्रन को देत दक्षिणा कहुँ भोजन की पाँति।—सूर। (३) आश्विन कृष्ण पक्ष जिसमें पितरों के उद्देश्य से विशेष रूप से पिंडदान किया और ब्राह्मण भोजन कराया जाता है। पितृ-पक्ष। (४) विश्वास। (५) प्रीति।

श्राद्धकर्त्ता–संज्ञा पुं० [सं० श्राद्धकर्तृ] श्राद्ध करनेवाला व्यक्ति। श्राद्धकारक।

श्राद्धत्व–संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध का भाव या धर्म्म।

श्राद्धदेव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्मराज। (२) यमराज। (३) श्राद्ध में निमंत्रित ब्राह्मण। (४) मार्कंडेय पुराण के अनुसार वैवस्वत मनु का एक नाम। (५) वह लोक जहाँ मरने पर पितर लोग जाते हैं। पितृलोक।

श्राद्धपक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] तर्पण, पिंडदान आदि के लिये निश्चित आश्विन मास का कृष्ण पक्ष। पितृ-पक्ष।

श्राद्धशाक–संज्ञा पुं० [सं०] नाड़ी शाक। काल शाक।

श्राद्धसूतक–संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध के उद्देश्य से बनाया हुआ भोजन। पितरों के उद्देश्य से ब्राह्मणों को खिलाने के लिये बनाया हुआ भोजन।

श्राद्धिक–वि० [सं०] श्राद्ध संबंधी। श्राद्ध का।
संज्ञा पुं० वह जो श्राद्ध के अवसर पर पितरों के उद्देश्य से भोजन कराता हो।

श्राद्धी–संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध में भोजन करनेवाला। श्राद्धिक।

श्राद्धीय–वि० [सं०] श्राद्ध संबंधी। श्राद्ध का।

श्राप–संज्ञा पुं० दे० "शाप"। उ०—राक्षसन मारि विश्वामित्र सो करायो यज्ञ तारी रिषि नारी सिला शाप सों भई रही।—रघुनाथ बंदीजन।

श्रापी–संज्ञा पुं० [सं० श्रापिन्] वह जो भोजन बनाता हो। रसोइया।

श्राम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मास। महीना। (२) मंडप। घर। (३) काल। समय।

श्राय–संज्ञा पुं० [सं०] आश्रय।

श्राव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रवण। कान। (२) गंधा बिरोजा। (३) दे० "स्रवण"।

श्रावक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० श्राविका] (१) बौद्ध धर्म्म को माननेवाला संन्यासी। (२) जैन धर्म्म को माननेवाला संन्यासी। (३) वह जो जैन धर्म्म का अनुयायी हो। (४) नास्तिक। उ०—यह नरक को कोउ जीव है जिनि याहि देखि डेराहि। निज जानिये यह श्रावका अति दूर ते तजि ताहि।—केशव। (५) दूर की आवाज। दूर का शब्द। (६) कौआ। काक। (७) छात्र। शिष्य।
वि० श्रवण करनेवाला। सुननेवाला।

श्रावग–संज्ञा पुं० दे० "श्रावक"। उ०—अजहूँ श्रावग ऐसो करैं। ताही की मारग अनुसरैं।—सूर।

श्रावगी–संज्ञा पुं० [सं० श्रावक] जैन धर्म्म को माननेवाला। जैनी।

श्रावण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चैत आदि महीनों में से एक महीने

का नाम जो पाँचवाँ महीना होता और वर्षा ऋतु में पड़ता है। असाढ़ के बाद और भादों के पहले का महीना। इस मास की पूर्णमासी श्रवण नक्षत्र से युक्त होती है, इसी लिये इसे श्रावण कहते हैं। सावन। (२) एक प्रकार का वर्ष। यदि श्रवण अथवा धनिष्ठा नक्षत्र में बृहस्पति उदय हो, तो उस दिन से एक वर्ष तक का समय श्रावण कहलाता है। कहते हैं कि इस वर्ष में धान्य खूब पकते हैं, सब लोग बहुत सुखी होते हैं, पर पाखंडी मनुष्य तथा उनके अनुयायी पीड़ित होते हैं। (३) श्रावण मास की पूर्णिमा। (४) शब्द, जिसका ग्रहण श्रवणेंद्रिय द्वारा होता है। आवाज। (५) पाखंड।

वि० श्रवण नक्षत्र संबंधी। श्रवण नक्षत्र का।

श्रावणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भुँइ कदंब। (२) सुदर्शना नामक वृक्ष।

श्रावणिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रावण मास। सावन। (२) एक प्रकार की अग्नि।

वि० श्रावण संबंधी। श्रावण का।

श्रावणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मुंडी।

श्रावणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्रवण नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा। सावन मास की पूर्णमासी। इस दिन ब्राह्मणों का प्रसिद्ध त्योहार 'रक्षा बंधन' या 'सलोनो' तथा कुछ और कृत्य या पूजन आदि होते हैं। इस दिन लोग यज्ञोपवीत का पूजन करते और नवीन यज्ञोपवीत भी धारण करते हैं। (२) मुंडी। घुंडी। (३) भुँइ कदंब। (४) वृद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (५) ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

श्रावनॐ-क्रि० स० [हिं० स्रवना] गिराना। बहाना। उ०—रुचि द्रुम प्रीति रीति नैनन जल सींचि ध्यान झर लागी। ताके प्रेम सुफल मुनि श्रावन स्याम सुरँग अनुरागी।—सूर।

श्रावस्त-संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार राजा श्राव के पुत्र का नाम, जिन्होंने श्रावस्ती नगरी बसाई थी।

श्रावस्ती-संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर कोशल में गंगा के तट पर बसी हुई एक बहुत प्राचीन नगरी, जो अब एक छोटे से गाँव के रूप में रह गई है और सहेत महेत कहलाती है। आजकल यह स्थान बलरामपुर राज्य के अंतर्गत है। यहाँ श्री रामचंद्र के पुत्र लव की राजधानी थी। जैनी इसे 'सावत्थी' कहते और अपने नवें तीर्थंकर सुबुद्धनाथ का कल्याणक बतलाते हैं। यह राजा प्रसेनजित की राजधानी भी कही जाती है। यहाँ एक बार कुछ दिनों तक भगवान् बुद्ध ने भी निवास किया था; इसलिये बौद्धों की दृष्टि में यह एक बहुत पुण्य-स्थल है। बुद्ध के समय में और उनसे पहले यह नगरी बहुत श्री-संपन्न थी।

श्रावा-संज्ञा स्त्री० [सं०] माँड। पसावन। पीच।

श्रावी-संज्ञा पुं० [सं० श्राविन्] सज्जी। स्वर्जिका क्षार।

श्राव्य-वि० [सं०] सुनने के योग्य। सुनने लायक। श्रोतव्य।

श्रिय-संज्ञा स्त्री० [सं० श्रिया] मंगल। कल्याण। उ०—एती जोति जो बाम्हन लोगा। तिनके बचन न संसय जोगा। इनकी बानि संग श्रिय रहहीं। ये नहिं कबहुँ मृषा कछु कहहीं॥—सीताराम।

संज्ञा स्त्री० [सं० श्री] शोभा। प्रभा। उ०—दुहुन बीच संकेत राधिका नंदकुँवर की। सो श्रिय को कहि सकै भेद पिय प्यारी घर की।—सूदन।

श्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु की पत्नी, लक्ष्मी।

श्रियावास-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके पास यथेष्ट लक्ष्मी हो। धनवान्। अमीर।

श्रियावासी-संज्ञा पुं० [सं० श्रियावासिन्] महादेव। शिव।

श्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विष्णु की पत्नी, लक्ष्मी। कमला। उ०—तजि बैकुंठ गरुड़ तजि श्री तजि निकट दास के आयो।—सूर। (२) सरस्वती। (३) धूप सरल वृक्ष। (४) लवंग। लौंग। (५) कमल। पद्म। (६) बेल। बिल्व वृक्ष। (७) ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (८) सफेद चंदन। संदल। (९) धर्म्म, अर्थ और काम। त्रिवर्ग। (१०) संपत्ति। धन। दौलत। (११) विभूति। ऐश्वर्य। (१२) उपकरण। (१३) अधिकार। (१४) कीर्ति। यश। (१५) प्रभा। शोभा। (१६) कांति। चमक। (१७) बुद्धि। (१८) सिद्धि। (१९) एक प्रकार का पद-चिह्न। उ०—स्वस्तिक अष्टकोण श्री केरा। हल मूसल पन्नग शर हेरा।—विश्राम। (२०) स्त्रियों का बेंदी नामक आभूषण। उ०—श्री जो रतन माँग बैठारा। जानहु गगन टूट निसि तारा।—जायसी। (२१) ऊर्ध्व पुंड्र के बीच की लंबी नोकदार लाल रंग की रेखा। (२२) आदर-सूचक शब्द जो नाम के आदि में रखा जाता है। संन्यासी, महात्माओं के नाम के आगे श्री १०८ लिखा जाता है। माता, पिता तथा गुरु के लिये श्री के साथ ६, स्वामी के लिये ५, शत्रु के लिये ४, मित्र के लिये ३, नौकर के लिये २ और शिष्य, सुत तथा स्त्री के लिये श्री के साथ १ लिखने की प्राचीन प्रणाली है।

संज्ञा पुं० (१) कुबेर। (हिं०) (२) ब्रह्मा। (३) विष्णु। (४) वैष्णवों का एक संप्रदाय। (५) एक वृत्त का नाम। यह एकाक्षरा वृत्ति है। इसके प्रत्येक पद में एक गुरु होता है। यथा—गो। श्री। धी। ह्री। (६) संपूर्ण जाति का एक राग, जो हनुमत् के मत से ६ रागों के अंतर्गत पाँचवाँ राग है। यह धैवत स्वर की संतान और पृथ्वी की नाभि से उत्पन्न माना गया है। इसकी ऋतु शरद और वार शुक्र है। कहते हैं कि इस राग को शुद्धतापूर्वक गाने से सूखा वृक्ष भी हरा हो जाता है। शास्त्र के अनुसार इस राग की रागिनियाँ

यह हैं—गौरी, पूरबी, मालवा, मुलतान और जयती। इसका सहचर मंगल-राग और सहचरी चंद्रावती रागिनी है। श्याम, कल्याण, मारू, एमन, मौनध्यान और गौड़ इसके पुत्र हैं। भीम पलाश्री, धनाश्री, मालश्री, बारवा, चित्रा-चकोरी इसकी पुत्र वधुएँ हैं। हनुमत् के अनुसार मारवा, पूरवी, श्याम, हेम, क्षेम, हंबिरिक, भूपाल, जेतरा, कल्याण, ध्यान-कल्याण इसके पुत्र हैं। इसकी स्त्रियाँ मालवी, त्रिवेणी, गौरी, गौरा और पूरबी हैं; तथा इसकी प्रियाएँ एमनि, टंकी, माली, गौरा, नागध्वनि और चेतकी हैं।

वि० (१) योग्य। (२) सुंदर। (३) श्रेष्ठ। (४) शुभ।

श्रीकंठ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। उ०—श्रीकंठ उर वासुकि लसत सर्वमंगला मार।—केशव। (२) हस्तिनापुर के उत्तर पश्चिम का कुरु जांगल देश।

श्रीकंठसखा—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर का एक नाम।

श्रीकंदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंध्या कर्कोटकी। खेखसा। बनपरवल।

श्रीकर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) लाल कमल। (३) नौ उपनंदों में से एक।

वि० शोभा बढ़ानेवाला। सौंदर्य्य बढ़ानेवाला।

श्रीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कलम। लेखनी। (२) कायस्थों की एक शाखा या उपजाति का नाम।

श्रीकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी। (बृहत्संहिता)

श्रीकांत—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मी के पति, विष्णु।

श्रीकारी—संज्ञा पुं० [सं० श्रीकारिन्] एक प्रकार का मृग। कुरंग।

पर्य्या०—महायव। मिलिपूप। यवन। जंघाल।

श्रीकीर्त्ति—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद। इसमें दो गुरु और दो लघु मात्राएँ होती हैं। (संगीत दामोदर)

श्रीकुंज—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम, जो सरस्वती नदी के तट पर था।

श्रीकुंड—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

श्रीकृष्ण—संज्ञा पुं० दे० "कृष्ण" (१)।

श्रीक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जगन्नाथ पुरी तथा उसके आसपास के प्रदेश का नाम, जो पुण्य क्षेत्र माना जाता है।

श्रीखंड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का चंदन जो हरि-चंदन भी कहलाता है। मलयागिरी चंदन। उ०—मुक्ता माल नंद नंदन उर अर्ध सुधा घट कांति। मनु श्रीखंड मेघ उज्वल अति देखि महाबल भाँति।—सूर। (२) दे० "सिखरन"। उ०—कलियाँ अरु कबाब बर स्वादू। तिमि श्रीखंड करन अहलादू।—रघुराज। (३) वैश्यों की एक जाति।

श्रीखंड शैल—संज्ञा पुं० [सं०] मलय पर्वत, जहाँ श्रीखंड (चंदन) होता है।

श्रीखंडा—संज्ञा पुं० दे० "श्रीखंड" (४)।

श्रीगंध—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद चंदन। संदल।

श्रीगदित—संज्ञा पुं० [सं०] उपरूपक के अठारह भेदों में से एक भेद। इसकी रचना प्रायः किसी पौराणिक घटना के आधार पर होती है। इसका दूसरा नाम श्रीरासिका भी है।

श्रीगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) खड्ग। तलवार।

श्रीगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] वैश्यों की एक जाति विशेष।

श्रीगेह—संज्ञा पुं० [सं०] कमल। पद्म।

श्रीगौड़—संज्ञा पुं० [?] वैश्यों की एक जाति विशेष।

श्रीग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ चिड़ियों के पानी पीने का प्रबंध हो।

श्रीघन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दही। दधि। (२) बुद्धदेव का एक नाम। (३) बौद्ध यति या संन्यासी।

श्रीचंदन—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद चंदन। संदल।

श्रीचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार का चक्र या यंत्र जिसका व्यवहार देवी के पूजन में, विशेषतः त्रिपुरा-सुंदरी देवी के पूजन में होता है।

श्रीचमरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का हिरन।

श्रीज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव। मदन। (२) सांब का एक नाम।

श्रीटंक—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार का राग, जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

श्रीणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात। रात्रि।

श्रीतरु—संज्ञा पुं० [सं०] सर्ज्ज वृक्ष। साल का पेड़। शाल।

श्रीतल—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णुपुराण के अनुसार एक नरक का नाम।

श्रीताल—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ या साल के वृक्ष से मिलता जुलता एक प्रकार का वृक्ष जिसे हिंताल भी कहते हैं। यह मलाया देश में उत्पन्न होता है। वैद्यक के अनुसार यह मधुर, कुछ कुछ खट्टा, कफ-कारक, किंचित् वायु को कुपित करनेवाला तथा पित्त का नाश करनेवाला माना गया है।

पर्य्या०—मृदुताल। लक्ष्मीताल। मृदुच्छद। विशालपत्र। मसीलेख्यदल। शिरालपत्रक।

श्रीतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

श्रीतेज—संज्ञा पुं० [सं० श्रीतेजस्] ललितविस्तर के अनुसार एक बुद्ध का नाम।

श्रीद—संज्ञा पुं० [सं०] धन देनेवाले, कुबेर।

वि० श्री बढ़ानेवाला। शोभा बढ़ानेवाला।

श्रीदयित—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

श्रीदाम—संज्ञा पुं० [सं० श्रीदामन्] श्रीकृष्ण के एक ग्वाल सखा का नाम, जिन्हें सुदामा भी कहते हैं। उ०—हँसि हँसि तारी

देत सखा सब भए श्रीदामा चोर । सूरदास हँसि कहति यशोदा जीत्यो है सुत मोर ।—सूर ।
श्रीदेवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वसुदेव की पत्नी सुदेवा का एक नाम ।
श्रीधन्वी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।
श्रीधर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम । उ०—धनि धनि नंद धन्य निशिवासर धनि यशुमति जिन श्रीधर जाए। —सूर । (२) जैनियों के चौबीस तीर्थंकरों में से सातवें तीर्थंकर का नाम ।
वि० तेजस्वी । तेजवान् ।
श्रीधाम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लक्ष्मी का निवास-स्थान । (२) पद्म ।
श्रीनंदन–संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।
श्रीनाथ–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम ।
श्रीनिकेत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लक्ष्मी का निवास-स्थान, बैकुंठ । उ०—श्रीनिकेत समेत सब सुख रूप प्रगट निधान । अधर सुधा पिआइ बिछुरे पठै दीनो ज्ञान ।—सूर । (२) गंधा बिरोजा । सरल-निर्यास । (३) लाल कमल । (४) स्वर्ण । सोना ।
श्रीनिकेतन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) लक्ष्मी का निवासस्थान, बैकुंठ । (३) गंधा बिरोजा । सरल निर्यास ।
श्रीनितंबा–संज्ञा स्त्री० [सं० श्रीनितम्बा] राधा का एक नाम ।
श्रीनिधि–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम ।
श्रीनिवास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम । (२) श्री या लक्ष्मी का निवासस्थान, बैकुंठ ।
श्रीनिवासक–संज्ञा पुं० [सं०] कटसरैया ।
श्रीपंचमी–संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ल पंचमी । वसंत पंचमी । उ०—दई दई कर सुरति गँवाई। सिरीपंचमी पूजै आई ।—जायसी ।
श्रीपत–संज्ञा पुं० [सं० श्रीपति] विष्णु । (डिं०)
श्रीपति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । नारायण । हरि । उ०—जाके सखा स्याम सुंदर से श्रीपति सकल सुखन के दाता । —सूर । (२) रामचंद्र । उ०—बार बार श्रीपति कहै केवट नहिं मानै ।—सूर । (३) कृष्ण । उ०—तौ हम कछु न बसाई पार्थ जो श्रीपति तोहि जितावैं ।—(४) कुबेर । (५) पृथ्वीपति । नृप । राजा ।
श्रीपथ–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी और चौड़ी सड़क । राजमार्ग । राजपथ ।
श्रीपदी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वार्षिकी पुष्प-वृक्ष । मल्लिका । बेला ।
श्रीपद्म–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण का एक नाम ।
श्रीपर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल । पद्म । (२) अग्निमंथ वृक्ष । अरनी । गनियारी ।
श्रीपर्णिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कटफल । कायफल । (२) गंभारी । (३) गनियारी। अरनी। (४) पृश्निपर्णी। पिठवन। (५) सेमल का पेड़ । शाल्मलि ।
श्रीपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कायफर । कायफल । (२) गंभारी । (३) गनियारी । अरनी । (४) पृश्निपर्णी । पिठवन । (५) सेमल का पेड़ । शाल्मलि ।
श्रीपाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो चरण पूजने योग्य हो । पूज्य । श्रेष्ठ । (२) धनवान् । संपन्न ।
श्रीपिष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] सरल वृक्ष का रस । गंधा बिरोजा ।
श्रीपुत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्व । घोड़ा । (२) कामदेव ।
श्रीपुर–संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का मणिद्वीप नामक स्थान, जो वाममार्गी शाक्तों का प्रधान स्थान है । यहीं ये लोग मुक्ति का सुख अनुभव करते हैं ।
श्रीपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लौंग । लवंग । (२) पद्मकाष्ठ । पद्माख । (३) पुंडेरी । (४) सफेद कमल ।
श्रीप्रद–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो श्री या सौभाग्य प्रदान करता हो ।
श्रीप्रदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] राधा का एक नाम ।
श्रीप्रसून–संज्ञा स्त्री० [सं०] लौंग । लवंग ।
श्रीप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] हरताल ।
श्रीफल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेल । (२) नारियल । उ०—(क) श्रीफल मधुर चिरौंजी आनी । सफरी चिरुआ अरु नव बानी ।—सूर । (ख) हिया थार कुच कनक कचूरा । जानहुँ दोउ श्रीफल जूरा ।—जायसी । (३) खिरनी । राजादनी वृक्ष । (४) आँवला । (५) कच्ची चिकनी सुपारी ।
श्रीफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीली । नील का पौधा । (२) करेली । क्षुद्र कारवेली । (३) आँवला ।
श्रीफलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) क्षुद्र कारवेली । करेली । (२) महानीली का पौधा ।
श्रीफली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आँवला । (२) नील । (३) बड़ी मालकँगनी । महा ज्योतिष्मती लता ।
श्रीबंधु–संज्ञा पुं० [सं०] अमृत ।
श्रीबीज–संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ । ताल-वृक्ष ।
श्रीभक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] मधुपर्क जो देवताओं के सामने रखा जाता या दान किया जाता है । वि० दे० "मधुपर्क" (१) ।
श्रीभद्र–संज्ञा पुं० [सं०] मुस्तक । मोथा ।
श्रीभद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] भद्रमोथा । भद्रमुस्तक ।
श्रीमान–संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम, जिनका जन्म सत्यभामा के गर्भ से हुआ था ।
श्रीभ्राता–संज्ञा पुं० [सं० श्रीभ्रातृ] अश्व, चंद्र, अमृत आदि चौदह रत्न जो समुद्र से उत्पन्न होने के कारण लक्ष्मी या श्री के भाई कहे जाते हैं ।
श्रीमंगल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।
श्रीमंजरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी । सुरसा ।

श्रीमंजु–संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

श्रीमंडप–संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

श्रीमंत–संज्ञा पुं० [सं० सीमंत] (१) एक प्रकार का शिरोभूषण। उ०—दीरघ सचिक्कन केश हो बिच श्रीमंत सँवारि।—सूर। (२) स्त्रियों के सिर के बीच की माँग।
वि० श्रीमान्। धनवान्। धनाढ्य। धनी।

श्रीमत्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिल पुष्प। (२) पीपल। अश्वत्थ वृक्ष। (३) विष्णु का एक नाम। (४) शिव का एक नाम। (५) कुबेर। (६) ऋषभक नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (७) हल्दी का पौधा।
वि० (१) जिसके पास बहुत अधिक धन हो। धनवान्। अमीर। (२) जिसमें श्री या शोभा हो। (३) सुंदर। खूबसूरत।

श्रीमती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) "श्रीमान्" का स्त्री लिंग वाचक शब्द। स्त्रियों के लिये आदरसूचक शब्द। जैसे,—श्रीमती सुभद्रा देवी। (२) लक्ष्मी। (३) राधा का एक नाम। (४) मुंडिका। मुंडी।

श्रीमत्कुंभ–संज्ञा पुं० [सं०] सोना।

श्रीमत्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) "श्रीमत्" या "श्रीमान्" होने का भाव या धर्म्म। (२) संपन्नता। अमीरी।

श्रीमय–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

श्रीमलापहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] तमाखू। तमाकू।

श्रीमस्तक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लहसुन। (२) लाल आलू।

श्रीमहिमा–संज्ञा पुं० [सं० श्रीमहिमन्] शिव। महादेव।

श्रीमान्–संज्ञा पुं० [सं० श्रीमत्] (१) आदरसूचक शब्द जो नाम के आदि में रखा जाता है। श्रीयुत। शोभायान्। उ०—जय जय जय श्रीमान महाप्रभु जय जय जगत अधार।—सूर। (२) लक्ष्मीवान्। धनवान्। अमीर। (३) सुंदर।
संज्ञा पुं० (१) तिल पुष्पी। (२) पीपल। अश्वत्थ वृक्ष। (३) हल्दी। हरिद्रा। (४) ऋषभक नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (५) विष्णु। (६) शिव। (७) कुबेर।

श्रीमाल–संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।
संज्ञा स्त्री० [सं० श्री + माला] गले में पहनने का एक आभूषण। कंठ श्री। उ०—चिबुक तर कंठ श्रीमाल मोतीन छवि कुच उचनि हेम गिरि अतिहि लाजै।—सूर।

श्रीमुख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शोभित या सुंदर मुख। उ०—आगम कल्प रमण तुव ह्वै है श्रीमुख कही बखान।—सूर। (२) बृहस्पति के साठ संवत्सरों में से सातवाँ संवत्सर। (३) विष्णु का मुख, वेद।

श्रीमूर्त्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु की मूर्त्ति।

श्रीयुक्त–वि० [सं०] (१) जिसमें श्री या शोभा हो। (२) एक आदरसूचक विशेषण, जो बड़े आदमियों के नाम के साथ लगाया जाता है। जैसे,—श्रीयुक्त केशवचंद्र सेन।

श्रीयुत–वि० दे० "श्रीयुक्त"।

श्रीरंग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। लक्ष्मीपति। उ०—काके होहिं जो नहिं गोकुल के सूरज प्रभु श्रीरंग।—सूर। (२) ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद।—संगीत दामोदर।

श्रीरंगपट्टन–संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण में मैसूर राज्य के अंतर्गत एक प्रसिद्ध तीर्थ का नाम। पहले मैसूर राज्य की यहीं राजधानी थी। यहाँ "श्रीरंग स्वामी" नाम की एक प्रसिद्ध विष्णुमूर्त्ति है, जिसके कारण इसका यह नाम पड़ा है।

श्रीरमण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक संकर राग जो शंकराभरण और मालश्री को मिलाकर बनाया गया है। (संगीत) (२) विष्णु।

श्रीरवन–संज्ञा संज्ञा [सं० श्रीरमण] लक्ष्मी में रमण करनेवाले, विष्णु।

श्रीरस–संज्ञा पुं० [सं०] गंधा बिरोजा। श्रीवेष्ट।

श्रीराग–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में छः रागों में से तीसरा राग, जो संपूर्ण जाति का है और पृथ्वी की नाभि से उत्पन्न माना गया है। हनुमत के मत से यह पाँचवाँ राग है और इसका स्वर ग्राम इस प्रकार है—सा रे ग म प ध नि सा अथवा नि ग म प ध नि सा रे। यह हेमंत ऋतु में तीसरे पहर या संध्या समय गाया जाता है। सोमेश्वर के मत से मालवी, त्रिवेणी, गौरी, केदारा, मधुमाधवी और पहाड़ी ये छः इसकी भार्याएँ या रागिनियाँ हैं; और संगीत दामोदर में गांधारी, देवगांधारी, मालवश्री, सारी और रामकीरी ये पाँच रागिनियाँ कही गई हैं। सिंधु, मालव, गौड़, गुणसार, कुंभ, गंभीर, विहाग और कल्याण ये आठ इसके पुत्र कहे गए हैं। उ०—पँचयें सिरीराग भल कियो। छठये दीपक उठा बर दियो।—जायसी।

श्रीरूपा–संज्ञा स्त्री० [सं०] राधा।

श्रीलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी मालकँगनी। ज्योतिष्मती लता।

श्रीवंत–वि० [सं० श्रीमत्] ऐश्वर्य्यवान। संपत्तिशाली।

श्रीवत्स–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) विष्णु के वक्षस्थल पर अंगुष्ठ प्रमाण श्वेत बालों का दक्षिणावर्त्त भौंरी का सा चिह्न, जो भृगु के चरण-प्रहार का चिह्न माना जाता है। उ०—घन के धातु चित्र तनु किए। श्रीवत्स चिह्न राजत अति हिए।—सूर। (३) जैनों के अनुसार अर्हतों का एक चिह्न।

श्रीवराह–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का वराह अवतार।

श्रीवर्द्धन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राग का नाम। (२) शिव का एक नाम।

श्रीवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की कँटीली लता या चढ़नेवाली झाड़ी, जिसका व्यवहार औषध में होता है।

विशेष—यह लता कुछ दिनों तक यों ही खड़ी रहती है, पीछे बढ़ने पर किसी वृक्ष आदि का आश्रय लेती है। इसके डंठल और टहनियाँ भूरे रंग की होती हैं तथा उन पर टेढ़े काँटे होते हैं। यह फागुन से फूलने लगती है और आषाढ़ तक फलती है। इसमें छोटी छोटी फलियाँ लगती हैं। वैद्यक में ये फलियाँ हलकी, रेचक और वमनकारक कही गई हैं। इस पौधे की फली, पत्ती और छाल तीनों औषधोपयोगी हैं।

पर्या०—शिववल्ली। कंटवल्ली। अम्ला। कटुफला। दुरारोहा।

श्रीवह-संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग का नाम।

श्रीवाटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पान। नागवल्ली भेद।

श्रीवारक-संज्ञा पुं० [सं०] सितावर शाक। सिरियारी।

श्रीवास, श्रीवासक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधाविरोजा। सरल-निर्यास। (२) तारपीन का तेल। (३) गूगल। (४) देवदारु। (५) शाल। धूप। करायल। (६) चंदन। संदल। (७) कमल। (८) विष्णु। (९) शिव।

श्रीवासच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धूप का पेड़। सरल वृक्ष। (२) चंदन। (३) पदुमाख। पद्मकाठ।

श्रीवाससार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधाविरोजा। (२) तारपीन का तेल।

श्रीवासा-संज्ञा पुं० [सं० श्रीवास] गंधाविरोजा। सरल द्रव।

श्रीवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्वत्थ वृक्ष। पीपल। (२) बिल्व वृक्ष।

श्रीवृक्षक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़े की छाती पर की एक भँवरी जो शुभ मानी जाती है। (२) एक मत का नाम।

श्रीवृद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] बोधिद्रुम पर की एक देवी। (ललित-विस्तर)

श्रीवेष्ट, श्रीवेष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरल द्रव। गंधाविरोजा। (२) तारपीन का तेल। सरल वृक्ष।

श्रीवैष्णव-संज्ञा पुं० [सं०] रामानुज का अनुयायी वैष्णव। वैष्णवों का एक संप्रदाय।

श्रीश-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

श्रीसंज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] लौंग। लवंग।

श्रीसंपदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

श्रीसंभूता-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में कर्म मास की छठी रात्रि।

श्रीसदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] रजनी। निशि। रात्रि। उ०—निसि श्रीसदा विभावरी, रात्रि त्रिजामा सोय।—अनेकार्थ।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द संस्कृत कोशों में नहीं मिलता।

श्रीसमाध-संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो श्री, शुद्ध, मालश्री, भीम पलाश्री और टंक को मिलाकर बनाया गया है।

श्रीसहोदर-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा। (चंद्रमा और लक्ष्मी दोनों समुद्र से उत्पन्न हैं।)

श्रीहट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] एक नगर का नाम। सिलहट।

श्रीहत-वि० [सं०] (१) शोभा-रहित। (२) निस्तेज। निष्प्रभ। प्रभाहीन। उ०—नमित सीस सोचहिं सलज्ज सब श्रीहत भए सरीर।—तुलसी।

श्रीहर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नैषध काव्य के रचयिता संस्कृत के प्रसिद्ध पंडित और कवि जो कान्यकुब्ज के गहरवार राजा के आश्रित थे। (२) रत्नावली, नागानंद और प्रियदर्शिका नाटकों के रचयिता जो संभवतः कान्यकुब्ज के प्रसिद्ध सम्राट् हर्षवर्द्धन थे।

श्रीहस्तिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हस्तिशुंडी। नागदंती। (२) सूर्यमुखी का पौधा।

श्रुग्घ्न-संज्ञा पुं० [सं०] विकंकत। कंटाई। कंज वृक्ष।

श्रुघ्निका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जीखार।

श्रुतंधर-संज्ञा पुं० [सं०] वास्तुविद्या में एक प्रकार का मंडप।

श्रुत-वि० [सं०] (१) सुना हुआ। जो श्रवण-गोचर हुआ हो। (२) जिसे परंपरा से सुनते आते हों। (३) ज्ञात। प्रसिद्ध। ख्यात।

श्रुतकीर्ति-वि० [सं०] जिसकी कीर्त्ति प्रसिद्ध हो।

संज्ञा पुं० अर्जुन के एक पुत्र का नाम।

संज्ञा स्त्री० राजा जनक के भाई कुशध्वज की कन्या, जो शत्रुघ्न को ब्याही थी।

श्रुतकेवली-संज्ञा पुं० [सं० श्रुतकेवलिन्] एक प्रकार के अर्हत् जो छः कहे गए हैं। (जैन)

श्रुतदेवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

श्रुतधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कान। (२) शाल्मलि द्वीप के ब्राह्मणों की संज्ञा। (पुराण)

श्रुतनिगदी-वि० [सं० श्रुतनिगदिन्] जो एक बार सुने हुए पद्य आदि को ज्यों का त्यों कह सके।

श्रुतपूर्व-वि० [सं०] जो पहले सुना गया हो। जाना बूझा।

श्रुतशील-वि० [सं०] विद्वान् और सदाचारी।

संज्ञा पुं० विद्या और सदाचार। (मनु०)

श्रुतान्वित-वि० [सं०] शास्त्रज्ञ। शास्त्रवेत्ता।

श्रुतायु-संज्ञा पुं० [सं०] राम के पुत्र कुश के वंशज एक वंशी राजा।

श्रुतायुध-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा, जिसके पिता वरुण ने एक ऐसी गदा प्रदान की थी कि जो युद्धकर्त्ता पर फेंकने उसका अवश्य नाश कर देती थी, पर युद्ध न करनेवाले ऊपर चलाने से वह लौटकर चलानेवाले ही के प्राण ले लेती।

श्रुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्रवण करने की क्रिया या भाव सुनना। (२) सुनने की इंद्रिय। श्रवण। कान। (३) जो सुना जाय। सुनी हुई बात। (४) शब्द। ध्वनि। आवाज़। (५) खबर। शुहरत। किंवदंती। (६) कथन बात। (७) वह पवित्र ज्ञान जो सृष्टि के आदि में ब्रह्मा

कुछ महर्षियों द्वारा सुना गया और जिसे परंपरा से ऋषि सुनते आए। वेद। निगम।

विशेष—'श्रुति' के अंतर्गत पहले मंत्र और ब्राह्मण-भाग ही लिये जाते थे, पर पीछे उपनिषद् भी मानी गई।

(८) चार की संख्या (वेद चार होने से)। (९) संगीत में किसी सप्तक के बाईस भागों में से एक भाग अथवा किसी स्वर का एक अंश। स्वर का आरंभ और अंत इसी से होता है। षड्ज में चार, ऋषभ में तीन, गांधार में दो, मध्यम में चार, पंचम में चार, धैवत में तीन और निषाद में दो श्रुतियाँ होती हैं। (१०) अनुप्रास का एक भेद। (११) त्रिभुज के समकोण के सामने की भुजा। (१२) नाम। अभिधान। (१३) विद्वत्ता। (१४) विद्या। (१५) अत्रि ऋषि की कन्या, जो कर्दम की पत्नी थीं।

श्रुतिकट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्प। साँप। (२) तप।

श्रुतिकटु–संज्ञा पुं० [सं०] काव्य-रचना में एक दोष। कठोर और कर्कश वर्णों का व्यवहार। दुःश्रवत्व।

विशेष—द्वित्व वर्ण, टवर्ग, मूर्द्धन्य वर्ण कठोर माने गए हैं। श्रुतिकटु नित्य दोष नहीं है, अनित्य दोष है क्योंकि यह सर्वत्र दोष नहीं होता, केवल शृंगार, करुण आदि कोमल रसों में कठोर वर्ण दोषाध्यायक होते हैं, वीर, रौद्र आदि में नहीं।

श्रुतिकीर्त्ति–संज्ञा स्त्री० दे० "श्रुतकीर्त्ति"।

श्रुतिजीविका–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्मृति। धर्मशास्त्र।

श्रुतिदुष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] श्रुतिकटु दोष। दुःश्रवत्व।

श्रुतिपथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रवण मार्ग। श्रवणेंद्रिय।

मुहा०—श्रुतिपथ में आना = सुनाई पड़ना।

(२) वेदविहित मार्ग। सन्मार्ग।

श्रुतिमाल–संज्ञा पुं० [सं०] (चार सिरवाले) ब्रह्मा।

श्रुतिमुख–संज्ञा पुं० [सं०] (चार मुखवाले) ब्रह्मा।

वि० वेद ही जिसका मुख है।

श्रुतिवर्जित–वि० [सं०] (१) बधिर। बहिरा। (२) वेद के अभ्यास से रहित।

श्रुतिविद्–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुश द्वीप की एक नदी।

श्रुतिवेध–संज्ञा पुं० [सं०] कनछेदन। कर्णवेध संस्कार।

श्रुतिस्फोटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कनफोड़ा। (२) कर्णस्फोटा लता।

श्रुतिहारी–वि० [सं० श्रुतिहारिन्] कानों को अच्छा लगनेवाला। सुनने में मधुर।

श्रुत्य–वि० [सं०] (१) सुना जाने योग्य। (२) प्रसिद्ध। (३) प्रशस्त।

श्रुत्यनुप्रास–संज्ञा पुं० [सं०] अनुप्रास के पाँच भेदों में से एक। वह अनुप्रास जिसमें एक ही स्थान से उच्चरित होनेवाले व्यंजन दो या अधिक बार आवें।

विशेष—कंठ, तालु, मूर्द्धा, दंत आदि उच्चारण के स्थान हैं। अतः भिन्न वर्ण होने पर भी यदि कई वर्ग एक ही उच्चारण-स्थान के हैं, तो वह अनुप्रास होगा।

श्रुव–संज्ञा पुं० दे० "स्रुव"।

श्रेणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कासमर्द। कसौंदा।

श्रेटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पहाड़ा। सेढ़ी।

श्रेणि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहुत सी वस्तुओं का ऐसा समूह जो उत्तरोत्तर रेखा के रूप में कुछ दूर तक चला गया हो। पंक्ति। पाँती। कतार (२) एक के उपरांत दूसरा ऐसा लगातार क्रम। शृंखला। परंपरा। सिलसिला।

यौ०—श्रेणीबद्ध।

(३) दल। समूह। (४) सेना। फौज। (५) समान व्यवसायिओं का दल। एक ही कारबार करनेवालों की मंडली। कंपनी। (६) पानी भरने का डोल। (७) सिकड़ी। जंजीर। (८) सीढ़ी। ज़ीना। (९) किसी वस्तु का अगला या ऊपरी भाग।

श्रेणिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगला दाँत। राजदंत। (२) मगध देश के राजा बिंबसार का एक नाम।

श्रेणिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) डेरा। खेमा। तंबू। (२) एक छंद का नाम। (३) एक तृण।

श्रेणी–संज्ञा स्त्री० दे० "श्रेणि"।

श्रेणीधर्म्म–संज्ञा पुं० [सं०] व्यवसायिओं की मंडली या पंचायत की रीति या नियम।

श्रेणीबद्ध–वि० [सं०] पंक्ति के रूप में स्थित। कतार बाँधे हुए।

श्रेय–वि० [सं० श्रेयस्] [स्त्री० श्रेयसी] (१) अधिक अच्छा। बेहतर। (२) श्रेष्ठ। उत्तम। बहुत अच्छा। प्रशस्त। (३) मंगलदायक। शुभ। कल्याणकारी। (४) यश देनेवाला। कीर्तिकर।

संज्ञा पुं० (१) अच्छापन। (२) भलाई। बेहतरी। कल्याण। मंगल। (३) धर्म। पुण्य। सदाचार। (४) एक साम का नाम। (५) ज्योतिष में दूसरा मुहूर्त्त। (६) वर्त्तमान अवसर्पिणी के ग्यारहवें अर्हत। (जैन)

श्रेयसी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हरीतकी। हर्रे। (२) पाठा। पाढ़ी। (३) गज पीपल। (४) रास्ना। (५) प्रियंगु।

श्रेयस्कर–वि० [सं०] कल्याण करनेवाला। शुभदायक।

श्रेयांसनाथ–संज्ञा पुं० [सं०] वर्त्तमान अवसर्पिणी के ग्यारहवें अर्हत् या तीर्थंकर। (जैन)

श्रेष्ठ–वि० [सं०] [स्त्री० श्रेष्ठा] (१) सर्वोत्तम। उत्कृष्ट। बहुत अच्छा। (२) मुख्य। प्रधान। प्रथम। (३) पूज्य। बड़ा। (४) वृद्ध। ज्येष्ठ। (५) कल्याण-भाजन।

संज्ञा पुं० (१) कुबेर । (२) विष्णु । (३) द्विज । ब्राह्मण ।

श्रेष्ठकाष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सागौन । सागवन का पेड़ । (२) घर में लगा प्रधान स्तंभ ।

श्रेष्ठता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्तमता । (२) प्रधानता । गुरुता । बड़ाई । बड़प्पन ।

श्रेष्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहुत उत्तम स्त्री । (२) स्थल कमल । (३) मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि । (४) त्रिफला ।

श्रेष्ठी–संज्ञा पुं० [सं०] व्यापारियों या वणिकों का मुखिया । प्रतिष्ठित व्यवसायी । महाजन । सेठ ।

श्रोण–वि० [सं०] पंगु । लंज ।

‡⊛ संज्ञा पुं० दे० "शोण" । उ०—श्रोण की सरिता तुरंत अनंत रूप सुनंत ।—केशव ।

श्रोणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काँजी । भात का माँड़ । (२) श्रवण नक्षत्र ।

श्रोणि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कटि । कमर । (२) नितंब । चूतड़ । (३) यज्ञ की वेदी का किनारा । (४) पथ । मार्ग ।

श्रोणिका–संज्ञा स्त्री० दे० "श्रोणि" ।

श्रोणित⊛‡–संज्ञा पुं० दे० "शोणित" ।

श्रोणिसूत्र–संज्ञा पुं० [सं०] करधनी । मेखला ।

श्रोणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कटि । कमर । (२) चूतड़ । नितंब । (३) मध्य भाग । कटि प्रदेश ।

श्रोतः आपत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध शास्त्र के अनुसार मुक्ति या निर्वाणसाधना की प्रथम अवस्था जिसमें बंधन ढीले होने लगते हैं ।

विशेष—बौद्ध-शास्त्र में पाँच प्रतिबंध माने गए हैं—आलस्य, हिंसा, काम, विचिकित्सा और मोह । श्रोतःआपन्न को ये पाँचों बंधन छोड़ते तो नहीं पर क्रमशः ढीले होते जाते हैं । इस अवस्था को प्राप्त साधक को केवल सात बार और जन्म लेना पड़ता है । इस अवस्था के उपरांत 'सकृदागामी' की अवस्था है जिसमें प्रथम तीन बंधन सर्वथा छूट जाते हैं और एक ही जन्म और लेना रह जाता है ।

श्रोतःआपन्न–वि० [सं०] बौद्ध-शास्त्र के अनुसार मुक्ति या निर्वाण की साधना में प्रथम अवस्था को प्राप्त जिसमें क्रमशः बंधन ढीले होने लगते हैं ।

श्रोत–संज्ञा पुं० [सं० श्रोतस्] श्रवणेंद्रिय । कान ।

श्रोतव्य–वि० [सं०] (१) सुनने योग्य । श्रवणीय । (२) जिसे सुनना हो ।

श्रोता–संज्ञा पुं० [सं० श्रोतृ] (१) सुननेवाला । श्रवणकर्त्ता । (२) कथा या उपदेश सुननेवाला ।

श्रोत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रवणेंद्रिय । कान । (२) वेदज्ञान ।

श्रोत्रकांता–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जो औषध के काम में आता है ।

श्रोत्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेद वेदांग में पारंगत । वेदज्ञ । (२) ब्राह्मणों का एक वर्त्तमान भेद ।

श्रोत्री–संज्ञा पुं० दे० "श्रोत्रिय" ।

श्रोन⊛–संज्ञा पुं० दे० "शोण" । उ०—लिए नृकपाल नृदेह कराल । करे नर मुंडनि की उर माल । पिये नर श्रोन मिल्यो मदिरा सों । कपालि कु देखिये भीम प्रभा सों ।—केशव ।

श्रोनित⊛–संज्ञा पुं० दे० "शोणित" । उ०—श्रोनित श्रवत लसै तनु कैसे । परम प्रफुलित किंसुक जैसे ।—मधुसूदनदास ।

श्रौत–वि० [सं०] (१) श्रवण संबंधी । (२) श्रुति संबंधी । (३) श्रुतिविहित । वेद-प्रतिपादित । जो वेद के अनुसार हो । (४) यज्ञ संबंधी । जैसे,—श्रौत-कर्म, श्रौत-सूत्र । (५) तीनों प्रकार की अग्नि ।

श्रौतश्रव–संज्ञा पुं० [सं०] शिशुपाल का एक नाम ।

श्रौतसूत्र–संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञादि के विधानवाले सूत्र । कल्प ग्रंथ का वह अंश जिसमें पौर्णमास्येष्टि से लेकर अश्वमेध पर्यंत यज्ञों का विधान है ।

विशेष—दो प्रकार के वैदिक सूत्रग्रंथ मिलते हैं—श्रौत-सूत्र और गृह्यसूत्र । श्रौत-सूत्रों में यज्ञों का विधान है । सूत्रकार कई हैं । जैसे,—आश्वलायन, आपस्तंब, कात्यायन, द्राह्यायण ।

श्रौतहोम–संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद का एक परिशिष्ट ।

श्रौत्रकर्म–संज्ञा पुं० [सं०] वेद-विहित योगादि कर्म । यज्ञ ।

श्रौत्रजन्म–संज्ञा पुं० [सं० श्रौत्रजन्मन्] द्विजों का उपनय-संस्कार जिसमें वे वेद के अधिकारी होकर द्वितीय जन्म प्राप्त करते हैं ।

श्रौन⊛–संज्ञा पुं० दे० "श्रवण" । उ०—पीतम श्रौन समीप सदा बजौ यौं कहिकै पहिले पहिरायो ।—मतिराम ।

श्लक्ष्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल । पद्म । (२) गंधाबिरोजा । सरल द्रव्य ।

श्लथ–वि० [सं०] (१) शिथिल । ढीला । (२) मंद । धीमा । (३) दुर्बल । अशक्त । (४) न बँधा हुआ । छूटा हुआ ।

श्लथबंधन–वि० [सं०] जिसके बंधन ढीले हो गए हों ।

श्लाघन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० श्लाघित, श्लाघी, श्लाघनीय, श्लाघ्य] अपनी प्रशंसा करना । डींग हाँकना ।

वि० अपनी प्रशंसा करनेवाला ।

श्लाघनीय–वि० [सं०] (१) प्रशंसा के योग्य । प्रशंसनीय । तारीफ़ के लायक । (२) उत्तम । श्रेष्ठ ।

श्लाघा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रशंसा । तारीफ़ । (२) स्तुति । बड़ाई । (३) खुशामद । चापलूसी । (४) इच्छा । चाह । उ०—अच्छा तो ज्ञात हुआ कि कदाचित् तुम्हारी श्लाघा है कि मैं तुमको इनसे भी नीचतर समझूँ ।—अयोध्यासिंह । (५) आज्ञा पालन ।

श्लाघित–वि० [सं०] (१) जिसकी तारीफ़ हुई हो । प्रशंसित । (२) अच्छा । उत्तम । श्रेष्ठ ।

श्लाघ्य–वि० [सं०] (१) सराहने योग्य । प्रशंसनीय । तारीफ़ के लायक । (२) श्रेष्ठ । अच्छा ।

श्लिष्टा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मिलना । जुड़ना । संयुक्त होना । (२) परिरंभण । आलिंगन ।

श्लिष्ट–वि० [सं०] (१) मिला हुआ । एक में जुड़ा हुआ । सटा हुआ । लगा हुआ । (२) अच्छी तरह जमा हुआ । चिपका हुआ । खूब बैठा हुआ । (वस्त्र आदि) (३) आलिंगित । भेंटा हुआ । (४) (साहित्य में) श्लेषयुक्त । जिसके दोहरे अर्थ हों ।

श्लिष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जोड़ । मिलान । लगाव । (२) आलिंगन । परिरंभण ।

संज्ञा पुं० ध्रुव के एक पुत्र का नाम ।

श्लीपद–संज्ञा पुं० [सं०] टाँग फूलने का रोग । फ़ीलपाव ।

विशेष—इस रोग के प्रथम पेड़ू, अंडकोष और जंघा की संधियों में पीड़ा-सहित और ज्वरयुक्त सूजन होकर पाँव में उतर आती है और पैर हाथी के पैर के समान मोटा हो जाता है । वैद्यक के अनुसार यह रोग हाथ, नाक, कान, आँख, लिंग और होंठ में भी होता है । यह चार प्रकार का होता है; अर्थात् वातज, पित्तज, श्लेष्मज और सन्निपातज । एक वर्ष के बाद यह रोग असाध्य हो जाता है ।

यह रोग तालाब आदि का पुराना जल पीने, शीत देश में अधिक निवास करने तथा जिन स्थानों में सदा पुराना पानी बना रहता है, वहाँ रहने से उत्पन्न होता है ।

श्लीपदापह–संज्ञा पुं० [सं०] पुत्रजीव वृक्ष ।

श्लीपदी–वि० [सं०] जिसे श्लीपद रोग हो गया हो ।

श्लील–वि० [सं०] (१) उत्तम । नफ़ीस । जो भद्दा न हो । (२) मंगल-दायक । शुभ ।

श्लेष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिलना । जुड़ना । एक में सटने या लगने का भाव । (२) संयोग । जोड़ । मिलान । (३) आलिंगन । परिरंभण । भेंटना । (४) साहित्य में एक अलंकार जिसमें एक शब्द के दो या अधिक अर्थ लिये जाते हैं । दो अर्थवाले शब्दों का प्रयोग ।

श्लेषक–वि० [सं०] मिलानेवाला । जोड़नेवाला ।

संज्ञा पुं० दे० "श्लेष" । उ०—केशव दशम प्रभाव में, श्लेषक कवित विलास । वर्णन के मिसु प्रगटहीं, बरषा शरद प्रकाश ।—केशव ।

श्लेषण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० श्लेषणीय, श्लेषित, श्लेषी, श्लिष्ट] (१) मिलाना । जोड़ना । एक में सटाना । संयुक्त करना । (२) परिरंभण । आलिंगन ।

श्लेषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] आलिंगन । भेंटना ।

श्लेषोपमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अलंकार जिसमें ऐसे श्लिष्ट शब्दों का प्रयोग होता है जिनके अर्थ उपमेय और उपमान दोनों में लग जाते हैं । उ०—सगुन, सरस, सब अंग सम-रंजित है सुनहु सुभाग ! बड़े भाग बाग पाइए । धातुरी की शाला मानि आतुर है, नंदलाल ! चंपे की माला बाला उर उरझाइए ।—केशव । यहाँ सगुन (गुणयुक्त, सूत्रयुक्त), सरस आदि शब्द बाला और चंपक माला दोनों में लग जाते हैं ।

श्लेष्म, श्लेष्मक–संज्ञा पुं० [सं०] श्लेष्मा ।

श्लेष्मघन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) केतकी । (२) चमेली या जूही ।

श्लेष्मघ्ना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) त्रिपुर मल्लिका । (२) मल्लिका । मोतिया का एक भेद । (३) केतकी । केवड़ा । (४) महाज्योतिष्मती लता । (५) तीन कड़वे मसाले । त्रिकटु ।

श्लेष्मघ्नी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० "श्लेष्मघ्ना" ।

श्लेष्मण–वि० [सं०] कफवाला । कफ प्रकृतिवाला ।

श्लेष्मणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा ।

श्लेष्मल–संज्ञा पुं० [सं०] लिसोड़ा । बहुवार वृक्ष ।

वि० कफयुक्त । श्लेष्मयुक्त ।

श्लेष्महा–संज्ञा पुं० [सं०] (श्लेष्मा को हरनेवाला) कायफल । कटफल ।

श्लेष्मांतक–संज्ञा पुं० [सं०] लिसोड़ा । लभेरा । बहुवार वृक्ष ।

श्लेष्मा–संज्ञा पुं० [सं० श्लेष्मन्] (१) वैद्यक के अनुसार शरीर की तीन धातुओं या विकारों में से एक । कफ । बलगम । (२) रस्सी । बंधन । बाँधने की रस्सी । (३) लिसोड़े का फल । लभेरा ।

श्लेष्मातक–संज्ञा पुं० [सं०] लिसोड़ा । लभेरा ।

श्लेष्मातक वन–संज्ञा पुं० [सं०] गोकर्णतीर्थ के पास का जंगल जिसमें शिव एक बारहसिंघे के रूप में छिपे थे । (पुराण)

श्लेष्मी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधा बिरोजा । (२) लोबान ।

श्लैष्मिक–वि० [सं०] श्लेष्म संबंधी । कफवाला ।

श्लोक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शब्द । ध्वनि । आवाज । (२) पुकार । आह्वान । (३) स्तुति । प्रशंसा । (४) नाम । कीर्त्ति । यश । जैसे,—पुण्यश्लोक । (५) संस्कृत का सबसे अधिक व्यवहृत छंद । अनुष्टुभ् छंद । (६) संस्कृत का कोई पद्य ।

श्वः–अव्य० [सं० श्वस्] आनेवाले दूसरे दिन । कल ।

श्वकंटक–संज्ञा पुं० [सं०] मात्य और शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न पुरुष । (स्मृति)

श्वक–संज्ञा पुं० [सं०] भेड़िया । वृक ।

श्वग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक बालग्रह या रोग । (२) बच्चों को कष्ट देनेवाला एक प्रेत ।

श्वचिह्नी–संज्ञा पुं० [सं०] कुकुरबँदा ।

श्वदंष्ट्रक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ते का दाँत । (२) गोखरू ।

श्वधूर्त–संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल । गीदड़ ।

श्वन्–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शुनी] कुत्ता । कुक्कुर ।

विशेष—समास में पूर्वपद केवल 'श्व' रह जाता है । जैसे,—श्वकर्ण, श्वपच ।

श्वपच–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० श्वपचा, श्वपची] (१) कुत्ते का मांस पकाकर खानेवाला। (२) एक प्रकार का चांडाल। डोम।
विशेष—भिन्न भिन्न स्मृतियों में इसकी उत्पत्ति भिन्न भिन्न कही गई है। जैसे,—कहीं चंडाल और ब्राह्मणी से, कहीं निष्क्य और किराती से, कहीं क्षत्रिय और उग्र जाति की स्त्री से, कहीं अंबष्ठ और ब्राह्मणी से इत्यादि।

श्वपाक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० श्वपाकी] श्वपच। चांडाल।

श्वपामन–संज्ञा पुं० [सं०] पपरी नाम का पौधा जिसकी कड़वी जड़ रेचक होती है और औषध के काम में आती है। काकच्छर्दि।

श्वपुच्छ–संज्ञा पुं० [सं०] वृश्चिक। बिच्छू।

श्वपुच्छा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पृश्निपर्णी। पिठवन।

श्वफल–संज्ञा पुं० [सं० बिजौरा नीबू। बीजपूर वृक्ष।

श्वफल्क–संज्ञा पुं० [सं०] यादव वृष्णि के पुत्र और अक्रूर के पिता।

श्वभीरु–संज्ञा पुं० [सं०] श्रृगाल। गीदड़।

श्वभ्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दरार। छेद। गड्ढा। (२) एक नरक। (३) वसुदेव के एक पुत्र का नाम।

श्वमुख–संज्ञा पुं० [सं०] एक जंगली जाति।

श्वय–संज्ञा पुं० [सं०] शोथ। सूजन।

श्वयथु–संज्ञा पुं० [सं०] शोथ। सूजन।

श्ववृत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] नीच सेवा की वृत्ति। निकृष्ट नौकरी द्वारा निर्वाह।

श्वशुर–संज्ञा पुं० [सं०] पति या पत्नी का पिता। ससुर।

श्वशुर्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] पति या पत्नी का भाई। देवर या साला।

श्वश्रु–संज्ञा स्त्री० [सं०] पति या पत्नी की माता। सास।

श्वसन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० श्वसनीय, श्वसित] (१) साँस लेना। दम लेना। (२) हाँफना। (३) फूँकना। मुँह से हवा छोड़ना। (४) फुत्कार करना। फुफकारना। (५) लंबी साँस खींचना। आह भरना। (६) वायु देवता। पवन। (७) एक वसु का नाम। (८) मैनफल। मदनफल।

श्वसनाशन–संज्ञा पुं० [सं०] (वायु भक्षण करनेवाला) सर्प। साँप।

श्वसनेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन वृक्ष।

श्वसनोत्सुक–संज्ञा पुं० [सं०] साँप। सर्प।

श्वसुन–संज्ञा पुं० [सं०] कुकुंदर। कुकरौंधा नामक पौधा।

श्वस्तन–वि० [सं०] आनेवाले दिन का। कल का।
संज्ञा पुं० कल का दिन। आनेवाला दूसरा दिन।

श्वस्तनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कल का दिन। आनेवाला दूसरा दिन।

श्वांस्थि–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रत्न या बहुमूल्य पत्थर जो काँसे, रूपे, ताम्र, कुमुद आदि के रंग का कहा गया है। (रत्नपरीक्षा)

श्वान–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० श्वानी] (१) कुत्ता। कुक्कुर।
उ०—गोकुल चले प्रेम आतुर ह्वै खुलि गए कपट कपाट। सोये श्वान, पहरुआ सोये, सबै मुक्त भई बाट।—सूर। (२) दोहे का इक्कीसवाँ भेद। इसमें २ गुरु और ४४ लघु होते हैं। (३) छप्पय का पंद्रहवाँ भेद। इसमें ५६ गुरु, ४० लघु कुल ९६ वर्ण १५२ मात्राएँ होती हैं।

श्वानचिल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] बथुआ नामक शाक।

श्वाननिद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी नींद जो थोड़े खटके से भी चट खुल जाय। हलकी नींद। झपकी।

श्वापति–संज्ञा स्त्री० [सं०] भारंगी। ब्रमनेटी। ब्राह्मण यष्टिका।

श्वापद–संज्ञा पुं० [सं०] हिंसक पशु। व्याघ्र आदि।

श्वाविध–संज्ञा पुं० [सं०] साही नामक जंतु। शल्य।

श्वास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नासिका के मार्ग से प्राणवायु के भीतर जाने और बाहर निकलने की क्रिया। प्राणियों का नाक से हवा खींचने और बाहर निकालने का व्यापार। साँस। दम।
क्रि० प्र०—लेना।—छोड़ना।—निकलना।—खींचना।—रोकना।
मुहा०—श्वास रहते = आयु रहते। जीते जी। श्वास खींचना या चढ़ाना = साँस रोके रहना। श्वास छूटना = मृत्यु होना।
(२) व्यंजनों के उच्चारण के प्रयत्न में मुँह से हवा छूटना। (३) जल्दी जल्दी साँस लेना। हाँफना। (४) एक रोग जिसमें साँस अधिक वेग से और जल्दी जल्दी चलता है। दम फूलने का रोग। दमा।
यौ०—श्वास कास।
विशेष—आयुर्वेद में श्वास रोग पाँच प्रकार का कहा गया है—महाश्वास, ऊर्द्ध्व श्वास, छिन्न श्वास, तमक श्वास और क्षुद्र श्वास। इनमें से प्रथम तीन असाध्य, चौथा कष्ट साध्य और पाँचवाँ साध्य कहा गया है।

श्वासकास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दमा और खाँसी। (२) दमे की खाँसी। दमा।

श्वासकुठार–संज्ञा पुं० [सं०] श्वास रोग में उपकारी एक रसौषध।
विशेष—इसे बनाने के लिये शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक की कज्जली, सिंगी मुहरा, चूना, सोहागा, मैनसिल, काली मिर्च, सोंठ और पिप्पली के चूर्ण को अदरक के रस की एक पुट देकर सिद्ध करते हैं।

श्वासधारण–संज्ञा पुं० [सं०] श्वास को रोक रखना। साँस रोकने की क्रिया। (कात्या० श्रौतसूत्र)

श्वासरोध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँस रोकना। साँस को बाहर निकलने से रोके रहना। (२) दम घुटना। साँस भीतर न समाना।

श्वासहेति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (दमे को हटानेवाली) निद्रा। नींद।

श्वासा-संज्ञा स्त्री० [सं० श्वास] (१) साँस। दम। जैसे,—जब तक श्वासा तब तक आशा। उ०—श्वासा तासु भये श्रुति चार। करि सो स्तुति या परकार।—सूर। (२) प्राण। प्राणवायु।

श्वासारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुष्कर मूल। (२) कुष्ठ नामक पौधा। कूट।

श्वासोच्छ्वास-संज्ञा पुं० [सं०] वेग से साँस खींचना और निकालना।

क्रि० प्र०—लेना।

श्वित्र-वि० [सं०] (१) सफेद। श्वेत। (२) सफेद कोढ़वाला।

संज्ञा पुं० श्वेत कुष्ट। सफेद कोढ़। सफेद दागवाला कोढ़।

विशेष—इस रोग में शरीर के चमड़े के ऊपर सफेद दाग पड़ जाते हैं। यह रुधिर, मांस और मेद में रहता है। अन्य प्रकार के कुष्ठों की तरह यह पकना, बहता और पीड़ा नहीं करता। जिसमें केश सफेद न हुए हों तथा जिसमें दाग परस्पर मिलकर एक न हो गए हों, वह साध्य है।

श्वित्रघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वृश्चिकाली। पीतपर्णी। बिछाली का पौधा।

श्वित्रारि-संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची। सोमराजी।

श्वित्री-वि० [सं० श्वित्रिन्] [स्त्री० श्वित्रिणी] श्वित्र रोगी। सफेद कोढ़वाला।

श्वेत-वि० [सं०] (१) जिसमें कोई रंग न मालूम हो। बिना रंग का। सफेद। धौला। चिट्टा।

विशेष—विज्ञान से सिद्ध है कि श्वेत रंग में सातों रंगों का अभाव नहीं है बल्कि उनका गूढ़ मेल है। सूर्य्य की किरनें देखने में सफेद जान पड़ती हैं, पर रश्मि-विश्लेषण क्रिया से सातों रंगों की किरनें अलग अलग हो जाती हैं।

(२) शुभ्र। उज्वल। साफ़। निर्मल। (३) निर्दोष। निष्कलंक। (४) जो साँवला न हो। गोरा।

संज्ञा पुं० (१) सफेद रंग। श्वेत वर्ण। (२) चाँदी। रजत। (३) कौड़ी। कपर्दक। (४) पुराणानुसार एक द्वीप। (५) आयुर्वेद में तीसरी त्वचा की संज्ञा। शरीर के चमड़े की तीसरी तह। (६) एक पर्वत। (७) स्कंद के एक अनुचर का नाम। (८) शोभांजन वृक्ष।—सहिंजन। (९) जीवक नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (१०) शंख। (११) शुक्र ग्रह। (१२) सफेद घोड़ा। (१३) सफेद बादल। (१४) एक केतु या पुच्छल तारा। (१५) सफेद जीरा। श्वेत जीरक। (१६) शिव का एक अवतार। (१७) वराह मूर्त्ति भेद। श्वेत वराह। (१८) हिरण्मय वर्ष और रम्यक वर्ष के बीच का एक पर्वत। (पुराण)

श्वेतकंद-संज्ञा पुं० [सं०] प्याज।

श्वेतकंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अति विषा। अतीस नामक ओषधि।

श्वेतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चाँदी। रजत। रौप्य। (२) कौड़ी। कपर्दक। (३) काँसा। (४) एक नाग का नाम।

श्वेतकपोत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चूहा। (२) एक प्रकार का साँप।

श्वेतकांडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद दूब। श्वेत दूर्वा।

श्वेत काक-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कौआ अर्थात् असंभव बात।

श्वेतकि-संज्ञा पुं० [सं०] एक धर्मपरायण राजा। (महाभारत)

श्वेतकुक्षि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

श्वेतकुष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद दागवाला कोढ़। श्वित्र।

श्वेतकृष्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद और काला। (२) यह पक्ष और वह पक्ष। एक बात और दूसरी बात। जैसे,—हम श्वेत कृष्ण कुछ न कहेंगे। (३) एक प्रकार का विषैला कीड़ा। (सुश्रुत)

श्वेतकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महर्षि उद्दालक के पुत्र का नाम। (२) बोधिसत्व की अवस्था में गौतम बुद्ध का नाम। (३) केतु ग्रह विशेष।

श्वेतकेश-संज्ञा पुं० [सं०] लाल फूल का सहिंजन पेड़।

श्वेतगज-संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत हाथी। उ०—अप्सरा पारजातक धनुष अरु गज श्वेत ■ पाँच सुरपतिहि दीने।—सूर।

श्वेतघंटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदंती।

श्वेतच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधपत्र। वन तुलसी। (२) हंस।

श्वेतजीरक-संज्ञा पुं० [सं०] सफ़ेद जीरा।

श्वेत टंकण-संज्ञा पुं० [सं०] सोहागा।

श्वेतता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेदी। उज्वलता। शुक्लता।

श्वेतद्युति-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

श्वेतद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वरुण वृक्ष।

श्वेतद्विप-संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत हाथी।

श्वेतद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार क्षीरसागर के पास एक अत्यंत उज्वल द्वीप जहाँ विष्णु भगवान् निवास करते हैं।

श्वेतधामा-संज्ञा पुं० [सं० श्वेतधामन्] (१) चंद्रमा। (२) कपूर। (३) समुद्रफेन। (४) अपामार्ग। चिचड़ा। (५) अपराजिता।

श्वेतनील-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

श्वेतपटल-संज्ञा पुं० [सं०] जस्ता नामक धातु।

श्वेतपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] हंस।

श्वेतपर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जलकुंभी। वारिपर्णी।

श्वेतपाद-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक गण का नाम।

श्वेतपिंगल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंह। (२) महादेव। शिव।

श्वेतपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] निर्गुंडी।

श्वेतपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाग पुष्पी। (२) तोरई।

(३) सन। (४) सँधुआर। संभालु। (५) नागदंती। (६) सफेद अपराजिता।

श्वेतपुष्पिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुत्रदात्री लता। (२) बड़ी सन पुष्पी।

श्वेतप्रदर–संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रदर रोग जिसमें स्त्रियों को सफेद रंग की धातु गिरती है।

श्वेतबर्बर–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चंदन।

श्वेतबुह्ना–संज्ञा स्त्री० [सं०] वनतिक्ता।

श्वेतभानु–संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा

श्वेतभुजंग–संज्ञा पु० [सं०] ब्रह्मा का एक अवतार।

श्वेतमंडल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप। (सुश्रुत)

श्वेतमरिच–संज्ञा पुं० [सं०] मुस्तक। मोथा।

श्वेतमयूख–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

श्वेतमरिच–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शोभांजन बीज। सहिंजन के बीज। (२) सफेद मिर्च।

श्वेतमाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) धूम्र। धुआँ।

श्वेतमूला–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की गदहपूरना। पुनर्नवा-भेद।

श्वेतयावरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (श्वेत बहनेवाली) एक नदी जिसका नाम ऋग्वेद में आया है।

श्वेतरंजन–संज्ञा पुं० [सं०] सीसा धातु।

श्वेतरथ–संज्ञा पुं० [सं०] शुक्र ग्रह।

श्वेतराजी–संज्ञा स्त्री० [सं०] चिचिंडा (जिसकी तरकारी होती है)।

श्वेतरावक–संज्ञा पुं० [सं०] निर्गुंडी।

श्वेतरोचिस्–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

श्वेतरोहित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़ का एक नाम। (२) एक प्रकार का पौधा।

श्वेतलोध्र–संज्ञा पुं० [सं०] पठानी लोध।

श्वेतवक्त्र–संज्ञा पु० [सं०] स्कंद के एक अनुचर का नाम।

श्वेतवचा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद बच। (२) अतिविषा। अतीस।

श्वेतवल्कल–संज्ञा पुं० [सं०] गूलर। उदुंबर वृक्ष।

श्वेतवह–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० श्वेतौही] इंद्र।

श्वेतवाजी–संज्ञा पु० [सं० श्वेतवाजिन्] (१) सफेद घोड़ा। (२) चंद्रमा। (३) अर्जुन।

श्वेतवाराह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वराह भगवान् की एक मूर्त्ति। (२) एक कल्प का नाम जो ब्रह्मा के मास का प्रथम दिन माना गया है। (३) एक तीर्थ।

श्वेतवाह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) (सफेद घोड़ेवाले) इंद्र। (२) अर्जुन।

श्वेतवाहन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) अर्जुन का एक नाम। (२) समुद्र का मकर। (३) शिव का एक रूप या मूर्त्ति।

श्वेतशुंग–संज्ञा पुं० [सं०] जौ। यव।

श्वेतसर्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण वृक्ष। (२) सफेद साँप।

श्वेतसर्षप–संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली सरसों।

श्वेतसार–संज्ञा पुं० [सं०] खैर। कत्था। खदिर।

श्वेतसिंही–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का शाक।

श्वेतसिद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद के एक अनुचर का नाम।

श्वेतसुरसा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद फूल की निर्गुंडी।

श्वेतहनु–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप। (सुश्रुत)

श्वेतहय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र का घोड़ा। उच्चैःश्रवा। (२) अर्जुन।

श्वेतहस्ती–संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत।

श्वेतांबर–संज्ञा पु० [सं०] (१) सफेद वस्त्र धारण करनेवाला। (२) जैनों के दो प्रधान संप्रदायों में से एक।

विशेष—ये लोग चँवरी रखते, बाल उखड़वाते, श्वेत वस्त्र पहनते, क्षमायुक्त रहते और भिक्षा माँगकर अपना निर्वाह करते हैं। ये स्त्रियों का भी अपवर्ग मानते हैं।

(३) शिव का एक रूप।

श्वेतांशु–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

श्वेता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक। (२) कौड़ी। (३) भोजपत्र का पेड़। (४) श्वेत पाटला। काठ पाटला। (५) श्वेत या शंख नामक हस्ती की माता। शंखिनी। (६) अतीस। अतिविषा। (७) अपराजिता लता। (८) सफेद भटकटैया। (९) श्वेत कंटकारी। भटकटैया। (१०) पाषाणभेद। पखान-भेद। (११) वंशलोचन। (१२) श्वेत पुनर्नवा। सफेद गदहपूरना। (१३) शिलावाक। (१४) फिटकरी। (१५) चीनी। शक्कर। (१६) मिस्री। (१७) सफेद बच। (१८) क्षुरपत्री। पर्वमूला।

विशेष—यह तृण बरसात में उगता है और जाड़े में नष्ट हो जाता है। यह एक या डेढ़ बालिश्त ऊँचा और छतनारा होता है। पत्तियाँ छोटी, फूल नीले या बैंगनी रंग के और बीज छोटे छोटे दानों की तरह के होते हैं। क्षुरपत्री मधुर, शीतल और स्त्री का दूध बढ़ानेवाली कही गई है।

(१९) स्कंद की अनुचरी एक मातृका। (२०) कश्यप की क्रोधवशा नाम्नी पत्नी से उत्पन्न एक कन्या जो दिग्गजों की माता है।

श्वेताद्–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सोमलता।

श्वेताम्लि–संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

श्वेतारण्य–संज्ञा पुं० [सं०] कावेरी नदी के किनारे का एक वन जो तीर्थ माना गया है।

श्वेतार्चि–संज्ञा पुं० [सं० श्वेतार्चिस्] चंद्रमा।

श्वेतालु–संज्ञा पुं० [सं०] महिष कंद। भैंसा कंद।

श्वेतावर–संज्ञा पुं० [सं०] सितावर शाक।

श्वेताश्वतर–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा। (२) उपनिषद् विशेष।

विशेष—कृष्ण यजुर्वेद की यह उपनिषद् छः अध्यायों की है। इसमें वेदांत के प्रायः सब सिद्धांतों के मूल पाए जाते हैं। भगवद्गीता के बहुत से प्रसंग इसमें लिये हुए जान पड़ते हैं। इसकी संस्कृत बड़ी ही सरल और स्पष्ट है। वेदांत के प्रसंगों के अतिरिक्त इसमें योग और सांख्य के सिद्धांतों के मूल भी मिलते हैं। वेदांत, सांख्य और योग तीनों शास्त्रों के कर्त्ताओं ने मानो इसी के मूल वाक्यों को लेकर ब्रह्म के स्वरूप तथा पुरुष प्रकृति भेद आदि का विस्तार किया है।

श्वेताह्वा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] श्वेत पाटला।

श्वेतिका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सौंफ।

श्वेतोदर–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) कुबेर। (२) एक प्रकार का साँप। (सुश्रुत) (३) एक पर्वत। (मार्क॰ पुराण)

श्वेतोही–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] इंद्राणी।

श्वैत्र–संज्ञा पुं॰ [सं॰] सफेद कोढ़।

ष

ष–संस्कृत या हिंदी वर्णमाला के व्यंजन वर्णों में ३१ वाँ वर्ण या अक्षर। इसका उच्चारण स्थान मूर्द्धा है, इससे यह मूर्द्धन्य वर्णों में कहा गया है। इसका प्रयोग केवल संस्कृत के शब्दों में होता है और उच्चारण दो प्रकार से होता है। कुछ लोग 'श' के समान इसका उच्चारण करते हैं और कुछ लोग 'ख' के समान। इसी से हिंदी की पुरानी लिखावट में इस अक्षर का व्यवहार कवर्गीय 'ख' के स्थान पर होता था। जैसे,—देषि, लषन इत्यादि।

संज्ञा पुं॰ (१) विद्वान् पुरुष। आचार्य्य। (२) कुच। चूचुक। (३) नाश। (४) शेष। बाकी। (५) प्राप्त ज्ञान का क्षय। (६) मुक्ति। मोक्ष। (७) स्वर्ग। (८) अंत। समाप्ति। अवधि। (९) गर्भ। (१०) धैर्य्य। सहिष्णुता।

वि॰ बहुत अच्छा। उत्तम। श्रेष्ठ।

षंजन–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) आलिंगन। (२) मिलना। समागम।

षंड–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) राशि। समूह। (२) झाड़ी। (३) साँड़। (४) हीजड़ा। नपुंसक। नामर्द। (५) कमलों का समूह। (६) शिव का एक नाम। (७) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

षंडत्व–संज्ञा पुं॰ [सं॰] नामर्दी। हीजड़ापन। पुंसत्व का अभाव।

षंडयोनि–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह स्त्री जिसे मासिक धर्म्म न होता हो और जिसके स्तन न हों अर्थात् जो पुरुष-समागम के अयोग्य हो।

षंडामर्क–संज्ञा पुं॰ [सं॰] शुक्राचार्य्य के पुत्र का नाम। उ०—कविसुत असुर षंड गुरु भामा। षंडामर्क रह्यो अस नामा।—रघुराज।

षंडाली–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) तेल नापने की एक छोटी धरिया जिसमें एक छटाँक वस्तु आ सकती हो। (२) दुश्चरित्रा स्त्री। व्यभिचारिणी। (३) ताल। तलैया।

षंडी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ षंड] वह स्त्री जिसे मासिक धर्म्म न होता हो, स्तन छोटे हों, और जो पुरुष-समागम के अयोग्य हो।

षंढ–संज्ञा पुं॰ दे॰ "षंड"।

षंढा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह स्त्री जिसकी चेष्टा पुरुषों की सी हो।

षट्–वि॰ [सं॰] गिनती में ६। छः।

संज्ञा पुं॰ (१) छः की संख्या। (२) षाडव जाति का एक राग जो दीपक का पुत्र माना गया है। इसके गाने का समय प्रातः १ दंड से ५ दंड तक है। इसमें सब कोमल स्वर लगते हैं। कोई कोई इसे आसावरी, ललित, टोड़ी और भैरवी आदि रागनियों से उत्पन्न संकर राग मानते हैं।

षट्क–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) ६ की संख्या। (२) छः वस्तुओं का समूह।

विशेष—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान के समूह को प्रायः षट्क कहते हैं।

वि॰ छः संबंधी। छः का। छः वाला।

षट्कर्ण–संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार की वीणा या सितार जिसमें छः कान होते हैं।

षट्कर्म–संज्ञा पुं॰ [सं॰ षट्कर्मन्] (१) ब्राह्मणों के छः कर्म–यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान देना और दान लेना। (२) स्मृतियों के अनुसार छः काम जिनके द्वारा आपत्काल में ब्राह्मण अपनी जीविका कर सकता है।—उंछ वृत्ति (कटे हुए खेतों में दाने बिनना), दान लेना, याचना करना, कृषि, वाणिज्य और गोरक्षा (अथवा किसी किसी के मत से सूद पर रुपया देना)। (३) तांत्रिकों के वध आदि छः कर्म।

षट्कर्म्मा–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) यजन याजन आदि नियत कर्म्मों को करनेवाला ब्राह्मण। कर्म्मनिष्ठ ब्राह्मण। (२) तांत्रिक।

षट्कला–संज्ञा पुं॰ [सं॰] संगीत में ब्रह्मताल के चार भेदों में से एक भेद।

षट्कसंपत्ति–संज्ञा पुं॰ [सं॰] छः प्रकार के कर्म—(१) शम (२) दम (३) उपरति (४) तितिक्षा (५) श्रद्धा और (६) समाधान।

षट्कोण–वि० [सं०] छः कोनोंवाला। छः कोना। छः पहला।
षट्कोष–संज्ञा पुं० [सं०] एक पुराने आचार्य का नाम।
षट्चक्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हठ योग में माने हुए कुंडलिनी के ऊपर पड़नेवाले छः चक्र। (२) किसी के विरुद्ध आयोजन। भीतरी चाल। षड्यंत्र।
क्रि० प्र०—चलाना।—खड़ा करना।—रचना।
षट्चरण–संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमर। भौंरा।
षट्तकतैल–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक तेल जिसमें तेल से छः गुना तक्र (मट्ठा) मिलाया जाता है।
षट्ताल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मृदंग का एक ताल जो आठ मात्राओं का होता है।
विशेष—इसमें पहले २ आघात, १ खाली, फिर ४ आघात और अंत में एक खाली होता है।
(२) एक प्रकार का ख्याल जो एक ताला ताल पर बजाया जाता है।
षट्तिला–संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ महीने के कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम। इसमें तिल के व्यवहार और दान का बहुत फल कहा गया है। उ०—अहिकर नाम षट्तिला भहई। करि मत नेम निकर अघ दहई।—विश्राम सागर।
षट्पद–वि० [सं०] [स्त्री० षट्पदी] छः पैरवाला।
संज्ञा पुं० (१) भ्रमर। भौंरा। (२) किलनी।
षट्पदप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। (२) नागकेसर का वृक्ष।
षट्पदातिथि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) (जहाँ भ्रमर अतिथि रूप में हो अर्थात्) आम का वृक्ष। (२) चंपक। चंपा।
षट्पदानंदवर्द्धन–संज्ञा पुं० [सं०] (भ्रमर के आनंद को बढ़ानेवाला) किंकिरात का वृक्ष।
षट्पदी–वि० स्त्री० [सं०] छः पैरवाली।
संज्ञा स्त्री० (१) भ्रमरी। भौंरी। (२) एक छंद जिसमें छः पद या चरण होते हैं। छप्पय।
षट्पितापुत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ताल का एक भेद जिसमें १२ मात्राएँ होती हैं। एक प्लुत, एक लघु, दो गुरु, एक लघु, एक प्लुत यह इसका प्रमाण है।
षट्प्रज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, लोकार्थ और तत्वार्थ का ज्ञाता। (२) उच्छृंखल। (३) कामुक।
षट्रस–संज्ञा पुं० [सं०] छः प्रकार के रस या स्वाद। वि० दे० "षड्रस"।
यौ०—षट्रस भोजन।
षट्राग–संज्ञा पुं० [सं० षट्+राग] (१) संगीत के ६ राग—भैरव, मलार, श्रीराग, हिंडोल, मालकोस और दीपक। (२) बखेड़ा। जंजाल। आडंबर। जैसे,—इसमें बड़ा षट्राग है, हमसे न होगा। (३) झंझट।
षट्रिपु–संज्ञा पुं० दे० "षड्रिपु"।
षट्शास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं के ६ दर्शन।
षट्शास्त्री–संज्ञा पुं० [सं०] छः दर्शनों का जाननेवाला।
षट्वांग–संज्ञा पुं० [सं०] खट्वांग नामक राजर्षि जिन्हें केवल दो घड़ी की साधना से मुक्ति प्राप्त हुई थी। उ०—एक षट्वांग राजऋषि भयऊ। असुर-विजय हित सो दिवि गयऊ।—रघुराज।
षडंग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेद के छः अंग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष। (२) शरीर के छः अवयव—दो पैर, दो हाथ, सिर और धड़।
वि० जिसके छः अंग या अवयव हों।
षडंगजित्–संज्ञा पुं० [सं०] (सब अंगों को वश में करनेवाले) विष्णु।
षडंघ्रि–संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमर। भौंरा।
षडक्षरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वैष्णवों के रामानुज संप्रदायवालों का मुख्य मंत्र।
षडक्षीण–संज्ञा पुं० [सं०] मछली जिसे छः आँखें कही जाती हैं।
षडग्नि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कर्मकांड के अनुसार छः प्रकार की अग्नि—गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि, सभ्याग्नि, आवसथ्य और औपासनाग्नि। इनमें से प्रथम तीन प्रधान हैं।
विशेष—कुछ लोगों ने अग्नि के ये ६ भेद किए हैं—धूमाग्नि, संज्ञाग्नि, दीपाग्नि, मध्यमाग्नि, स्वराग्नि और भयाग्नि।
षडभिज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध या बोधिसत्व।
षडानन–वि० [सं०] जिसे छः मुँह हों।
संज्ञा पुं० (१) कार्त्तिकेय। (२) संगीत में स्वर साधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार होती है—आरोही—सा रे ग म प ध, रे ग म प ध नि, ग म प ध नि सा। अवरोही—सा नि ध प म ग, नि ध प म ग रे, ध प म ग रे सा।
षडूषण–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में ये छः गरम मसाले—पीपल, पिपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और काली मिर्च।
षड्गुण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छः गुणों का समूह। (२) राजनीति की छः बातें—संधि, विग्रह, यान (चढ़ाई), आसन (विराम) द्वैधी भाव और संश्रय।
षड्ग्रंथ–संज्ञा पुं० [सं०] मीठी बच वि० दे० "बच"।
षड्ग्रंथा–संज्ञा स्त्री० [सं०] इरसा की जड़ जो काश्मीर और काबुल से आती है।
षड्ग्रंथिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] पीपलामूल। पिपरामूल।
षड्ज–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत के सात स्वरों में से चौथा स्वर।
विशेष—यह गदहे के स्वर से मिलता जुलता माना गया है। इसके उच्चारण-स्थान छः कहे गए हैं—नासा, कंठ, उर, तालु, जिह्वा और दंत; इसी से इसका नाम षड्ज पड़ा। मूल स्थान दंत और अंत स्थान कंठ है। देवता इसके अग्नि

हैं। वर्ण रक्त, आकृति मृगा की, ऋतु, हिमवार, रविवार, छंद अनुष्टुभ और संतति इसकी भैरव राग है।
षड्दर्शन–संज्ञा पुं० [सं०] न्याय, मीमांसा आदि हिन्दुओं के छः दर्शन।
षड्दर्शनी–संज्ञा पुं० [सं० षड्दर्शन+ई (प्रत्य०)] दर्शनों का जानेवाला। ज्ञानी। उ०—षड्दरशनी अभाव सर्वथा घट करि मानै।
षड्भुजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] खरबूजा।
षड्यंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी मनुष्य के विरुद्ध गुप्त रीति से की गई कार्रवाई। भीतरी चाल। (२) जाल। कपटपूर्ण आयोजन।
क्रि० प्र०—चलाना।—रचना।
षड्योनि–संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत। शिलाजतु। राँगा, सीसा, ताँबा, रूपा, सुवर्ण और लोहा इन छः धातुओं में से किसी एक की सुगंध शिलाजीत में अवश्य आती है, इसी से इसे षड्योनि कहते हैं। कारण यह है कि ऊपर कही हुई धातुओं में से किसी एक धातु का अंश जिसमें होगा उसी पर्वत से शिलाजीत की उत्पत्ति होगी।
षड्रस–संज्ञा पुं० [सं०] छः प्रकार के रस या स्वाद—मधुर, लवण, तिक्त, कटु, कषाय और अम्ल अर्थात् मीठा, नमकीन, तीता, कड़ुवा, कसैला और खट्टा।
यौ०—षड्रस भोजन = अनेक प्रकार के व्यंजन या खाद्य पदार्थ।
षड्रिपु–संज्ञा पुं० [सं०] काम क्रोध आदि मनुष्य के छः विकार।
षड्रेखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] खरबूजा।
षड्वक्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय। षडानन।
षड्वदन–संज्ञा पुं० [सं०] षडानन। कार्त्तिकेय।
षड्वर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] छः वस्तुओं का समूह या वर्ग। (१) क्षेत्र, होरा, द्रेष्काण, नवमांश द्वादशांश और त्रिंशांश षड्वर्ग कहलाते हैं। (ज्योतिष) (२) काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर का समूह।
षड्बिंदु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) गुबरीले की जाति का एक कीड़ा जिसकी पीठ पर छः गोल चिंदियाँ होती हैं। इसे पूरब में 'छउँदवा' कहते हैं।
षड्बिंदुतैल–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक तैल जिसकी छः बूँद नास लेने से सिर का दर्द दूर होता और आँख तथा दाँत को लाभ पहुँचता है।
विशेष—रेंड की जड़, तगर, सौंफ, सेंधा नमक, पुत्रजीवा, रास्ना, भलभँगरा, वायविडंग, मुलेठी, सोंठ इन सब का चौगुना जल, भँगरे का रस और चौगुना बकरी का दूध और आठ गुना तेल इन सबको कड़ाही में मंद मंद पकावे। जब रसादिक जलकर तेल मात्र रह जाय, तो छान ले।
षड्विंश–संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद का एक ब्राह्मण।

षड्विकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राणी के छः विकार या परिणाम अर्थात् (१) उत्पत्ति (२) शरीरवृद्धि (३) बालपन (४) प्रौढ़ता (५) वृद्धता और (६) मृत्यु। (२) काम क्रोध आदि छः विकार।
षण्मुख–वि० [सं०] छः मुँहवाला।
संज्ञा पुं० षडानन। कार्तिकेय।
षर्पपी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया।
षष्ट्यंशक–संज्ञा पुं० [सं०] एक यंत्र जिससे जहाज पर नक्षत्रों की स्थिति देखकर यह स्थिर करते हैं कि जहाज पृथ्वी के किस भाग में है।
षष्टि–वि० [सं०] जो गिनती में पचास से दस अधिक हो। साठ।
षष्टिक–वि० [सं०] (१) साठवाला। (२) जो साठ पर खरीदा जाय।
संज्ञा पुं० एक प्रकार का धान जो बहुत जल्दी तैयार होता है। साठी धान।
षष्ठ–वि० [सं०] जिसका स्थान पाँचवें के उपरांत हो। छठा।
षष्ठान्न–संज्ञा पुं० [सं०] वह भोजन जो तीन दिनों के बीच में केवल एक बार किया जाय। (व्रत की विधि के अनुसार)
षष्ठान्नकाल–संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जिसमें तीन दिन में केवल एक बार भोजन किया जाता है।
षष्ठिमत्त–संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।
षष्टिहायन–संज्ञा पुं० (१) हाथी। (२) साठी धान।
षष्ठी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी पक्ष का छठा दिन। शुक्ल या कृष्ण पक्ष की छठी तिथि। (२) षोडश मातृकाओं में से एक। (३) कात्यायनी। दुर्गा। (४) संबंध कारक। (व्याकरण) (५) बालक उत्पन्न होने से छठा दिन तथा उक्त दिन का उत्सव।
षांड–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम। षंड।
षांड्य–संज्ञा पुं० [सं०] हींजड़ापन। नपुंसकता।
षाड़व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राग की एक जाति जिसमें केवल छः स्वर (स, रे, ग, म, प और ध) लगते हैं। निषाद वर्जित है। जैसे,—दीपक और मेघ। षाड़व दो प्रकार का होता है—(१) शुद्ध षाड़व। (२) ग्राह्य षाड़व। (२) मिठाई। (३) हलवाई का काम। (४) मनोराग। मनोविकार।
षाड्गुण्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छः उत्तम गुणों का समूह। (२) नीति के छः अंग। वि० दे० "षड्गुण"। (३) किसी वस्तु को छः से गुणा करने से प्राप्त गुणनफल।
षाड्रसिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे छओ रसों का ज्ञान हो।
षाण्मातुर–संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय (जिनका पालन छः कृत्तिकाओं ने किया था)।
षाण्मासिक–वि० [सं०] छः महीने का। छः महीने में होनेवाला। छठे महीने में पड़नेवाला।

षट्कोण-वि० [सं०] छः कोनोंवाला । छः कोना । छः पहला ।
षट्कोप-संज्ञा पुं० [सं०] एक पुराने आचार्य्य का नाम ।
षट्चक्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हठ योग में माने हुए कुंडलिनी के ऊपर पड़नेवाले छः चक्र । (२) किसी के विरुद्ध आयोजन । भीतरी चाल । षड्यंत्र ।
क्रि० प्र०—चलाना ।—खड़ा करना ।—रचना ।
षट्चरण-संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमर । भौंरा ।
षट्तक्रतैल-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक तेल जिसमें तेल से छः गुना तक्र (मट्ठा) मिलाया जाता है ।
षट्ताल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मृदंग का एक ताल जो आठ मात्राओं का होता है ।
विशेष—इसमें पहले २ आघात, १ खाली, फिर ४ आघात और अंत में एक खाली होता है ।
(२) एक प्रकार का ख्याल जो एक ताला ताल पर बजाया जाता है ।
षट्तिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ महीने के कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम । इसमें तिल के व्यवहार और दान का बहुत फल कहा गया है । उ०—यहिकर नाम षट्तिला अहई । करि व्रत नेम निकर अघ दहई ।—विश्राम सागर ।
षट्पद-वि० [सं०] [स्त्री० षट्पदी] छः पैरवाला ।
संज्ञा पुं० (१) भ्रमर । भौंरा । (२) किलनी ।
षट्पदप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल । (२) नागकेशर का वृक्ष ।
षट्पदातिथि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) (जहाँ भ्रमर अतिथि रूप में हो अर्थात्) आम का वृक्ष । (२) चंपक । चंपा ।
षट्पदानंदवर्द्धन-संज्ञा पुं० [सं०] (भ्रमर के आनंद को बढ़ानेवाला) किंकिरात का वृक्ष ।
षट्पदी-वि० स्त्री० [सं०] छः पैरवाली ।
संज्ञा स्त्री० (१) भ्रमरी । भौंरी । (२) एक छंद जिसमें छः पद या चरण होते हैं । छप्पय ।
षट्पितापुत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ताल का एक भेद जिसमें १२ मात्राएँ होती हैं । एक प्लुत, एक लघु, दो गुरु, एक लघु, एक प्लुत यह इसका प्रमाण है ।
षट्प्रज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, लोकार्थ और तत्वार्थ का ज्ञाता । (२) उच्छृंखल । (३) कामुक ।
षट्रस-संज्ञा पुं० [सं०] छः प्रकार के रस या स्वाद । वि० दे० "षड्रस" ।
यौ०—षट्रस भोजन ।
षट्राग-संज्ञा पुं० [सं० षट्+राग] (१) संगीत के ६ राग—भैरव, मलार, श्रीराग, हिंडोल, मालकोस और दीपक । (२) बखेड़ा । जंजाल । आडंबर । जैसे,—इसमें बड़ा षट्राग है, हमसे न होगा । (३) झंझट ।
षट्रिपु-संज्ञा पुं० दे० "षड्रिपु" ।
षट्शास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं के ६ दर्शन ।
षट्शास्त्री-संज्ञा पुं० [सं०] छः दर्शनों का जाननेवाला ।
षट्वांग-संज्ञा पुं० [सं०] खट्वांग नामक राजर्षि जिन्हें केवल दो घड़ी की साधना से मुक्ति प्राप्त हुई थी । उ०—एक षट्वांग राजऋषि भयऊ । असुर-विजय हित सो दिवि गयऊ ।—रघुराज ।
षडंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेद के छः अंग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष । (२) शरीर के छः अवयव—दो पैर, दो हाथ, सिर और धड़ ।
वि० जिसके छः अंग या अवयव हों ।
षडंगजित्-संज्ञा पुं० [सं०] (सब अंगों को वश में करनेवाले) विष्णु ।
षडंघ्रि-संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमर । भौंरा ।
षडक्षरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैष्णवों के रामानुज संप्रदायवालों का मुख्य मंत्र ।
षडक्षीण-संज्ञा पुं० [सं०] मछली जिसे छः आँखें कही जाती हैं ।
षडग्नि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कर्मकांड के अनुसार छः प्रकार की अग्नि—गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि, सभ्याग्नि, आवसथ्य और औपासनाग्नि । इनमें से प्रथम तीन प्रधान हैं ।
विशेष—कुछ लोगों ने अग्नि के ये ६ भेद किए हैं—धूमाग्नि, मंदाग्नि, दीपाग्नि, मध्यमाग्नि, खराग्नि और भयाग्नि ।
षडभिज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध या बोधिसत्व ।
षडानन-वि० [सं०] जिसे छः मुँह हों ।
संज्ञा पुं० (१) कार्तिकेय । (२) संगीत में स्वर साधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार होती है—आरोही—सा रे ग म प ध, रे ग म प ध नि, ग म प ध नि सा । अवरोही—सा नि ध प म ग, नि ध प म ग रे, ध प म ग रे सा ।
षड्पण-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में ये छः गरम मसाले—पीपल, पिपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और काली मिर्च ।
षड्गुण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छः गुणों का समूह । (२) राजनीति की छः बातें—संधि, विग्रह, यान (चढ़ाई), आसन (विराम) द्वैधी भाव और संश्रय ।
षड्ग्रंथ-संज्ञा पुं० [सं०] मीठी बच वि० दे० "बच" ।
षड्ग्रंथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] इरसा की जड़ जो काश्मीर और काबुल से आती है ।
षड्ग्रंथिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीपलामूल । पिपरामूल ।
षड्ज-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत के सात स्वरों में से चौथा स्वर ।
विशेष—यह गदहे के स्वर से मिलता जुलता माना गया है । इसके उच्चारण-स्थान छः कहे गए हैं—नासा, कंठ, उर, तालु, जिह्वा और दंत; इसी से इसका नाम षड्ज पड़ा । मूल स्थान दंत और अंत स्थान कंठ है । देवता इसके अग्नि

है। वर्ण रक्त, आकृति भद्रा की, ऋतु, हिमवार, रविवार, छंद अनुष्टुभ और संतति इसकी भैरव राग है।

षड्दर्शन–संज्ञा पुं० [सं०] न्याय, मीमांसा आदि हिन्दुओं के छः दर्शन।

षड्दर्शनी–संज्ञा पुं० [सं० षड्दर्शन+ई (प्रत्य०)] दर्शनों का जाननेवाला। ज्ञानी। उ०—षड्दरशनी अभाव सर्वथा घट करि मानी।

षड्भुजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] खरबूजा।

षड्यंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी मनुष्य के विरुद्ध गुप्त रीति से की गई कार्रवाई। भीतरी चाल। (२) जाल। कपटपूर्ण आयोजन।

क्रि० प्र०—चलाना।—रचना।

षड्योनि–संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत। शिलाजतु। राँगा, सीसा, ताँबा, रूपा, सुवर्ण और लोहा इन छः धातुओं में से किसी एक की सुगंध शिलाजीत में अवश्य आती है, इसी से इसे षड्योनि कहते हैं। कारण यह है कि ऊपर कही हुई धातुओं में से किसी एक धातु का अंश जिसमें होगा उसी पर्वत से शिलाजीत की उत्पत्ति होगी।

षड्रस–संज्ञा पुं० [सं०] छः प्रकार के रस या स्वाद—मधुर, लवण, तिक्त, कटु, कषाय और अम्ल अर्थात् मीठा, नमकीन, तीता, कड़ुवा, कसैला और खट्टा।

यौ०—षड्रस भोजन = अनेक प्रकार के व्यंजन या खाद्य पदार्थ।

षड्रिपु–संज्ञा पुं० [सं०] काम क्रोध आदि मनुष्य के छः विकार।

षड्रेखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] खरबूजा।

षड्वक्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय। षडानन।

षड्वदन–संज्ञा पुं० [सं०] षडानन। कार्त्तिकेय।

षड्वर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] छः वस्तुओं का समूह या वर्ग। (१) क्षेत्र, होरा, द्रेष्काण, नवमांश द्वादशांश और त्रिंशांश षड्वर्ग कहलाते हैं। (ज्योतिष) (२) काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर का समूह।

षड्बिंदु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) गुबरीले की जाति का एक कीड़ा जिसकी पीठ पर छः गोल बिंदियाँ होती हैं। इसे पूरब में 'छछुँदवा' कहते हैं।

षड्बिंदुतैल–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक तैल जिसकी छः बूँद नास लेने से सिर का दर्द दूर होता और आँख तथा दाँत को लाभ पहुँचता है।

विशेष—रेंड़ की जड़, तगर, सौंफ, सेंधा नमक, पुत्रजीवा, रास्ना, जलभँगरा, बायबिडंग, मुलेठी, सोंठ इन सब का चौगुना जल, भँगरे का रस और चौगुना बकरी का दूध और आठ गुना तेल इन सबको कड़ाही में मंद मंद पकावे। जब रसादिक जलकर तेल मात्र रह जाय, तो छान ले।

षड्विंश–संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद का एक ब्राह्मण।

षड्विकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राणी के छः विकार या परिणाम अर्थात् (१) उत्पत्ति (२) शरीरवृद्धि (३) बालपन (४) प्रौढ़ता (५) वृद्धता और (६) मृत्यु। (२) काम क्रोध आदि छः विकार।

षण्मुख–वि० [सं०] छः मुँहवाला।

संज्ञा पुं० षडानन। कार्त्तिकेय।

षपंपी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

षष्टयंशक–संज्ञा पुं० [सं०] एक यंत्र जिससे जहाज पर नक्षत्रों की स्थिति देखकर यह स्थिर करते हैं कि जहाज पृथ्वी के किस भाग में है।

षष्टि–वि० [सं०] जो गिनती में पचास से दस अधिक हो। साठ।

षष्टिक–वि० [सं०] (१) साठवाला। (२) जो साठ पर खरीदा जाय।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का धान जो बहुत जल्दी तैयार होता है। साठी धान।

षष्ठ–वि० [सं०] जिसका स्थान पाँचवें के उपरांत हो। छठा।

षष्ठान्न–संज्ञा पुं० [सं०] वह भोजन जो तीन दिनों के बीच में केवल एक बार किया जाय। (व्रत की विधि के अनुसार)

षष्ठान्नकाल–संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जिसमें तीन दिन में केवल एक बार भोजन किया जाता है।

षष्ठिमत–संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

षष्ठिहायन–संज्ञा पुं० (१) हाथी। (२) साठी धान।

षष्ठी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी पक्ष का छठा दिन। शुक्ल या कृष्ण पक्ष की छठी तिथि। (२) षोड़श मातृकाओं में से एक। (३) कात्यायनी। दुर्गा। (४) संबंध कारक। (व्याकरण) (५) बालक उत्पन्न होने से छठा दिन तथा उक्त दिन का उत्सव।

षांड–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम। षंढ।

षांड्य–संज्ञा पुं० [सं०] हींजड़ापन। नपुंसकता।

षाड़व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राग की एक जाति जिसमें केवल छः स्वर (स, रे, ग, म, प और ध) लगते हैं. निषाद वर्जित है। जैसे,—दीपक और मेघ। षाड़व दो प्रकार का होता है—(१) शुद्ध षाड़व। (२) भाक्ष षाड़व। (२) मिठाई। (३) हलवाई का काम। (४) मनोराग। मनोविकार।

षाड्गुण्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छः उत्तम गुणों का समूह। (२) नीति के छः अंग। वि० दे० "षड्गुण"। (३) किसी वस्तु को छः से गुणा करने से प्राप्त गुणनफल।

षाड्रसिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे छओ रसों का ज्ञान हो।

षाण्मातुर–संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय (जिनका पालन छः कृत्तिकाओं ने किया था)।

षाण्मासिक–वि० [सं०] छः महीने का। छः महीने में होनेवाला। छठे महीने में पड़नेवाला।

संज्ञा पुं० मृतक संबंधी एक कृत्य जो किसी की मृत्यु के छः महीने पीछे किया जाता है। छमासी।

षाड्‌सर-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक बनावटी सप्तक जो मंद से भी नीचा होता है। यह सप्तक केवल बजाने के काम में आता है।

षिंग-संज्ञा पुं० [सं० षिङ्ग] (१) व्यभिचारी। षैण। कामुक। (२) शूर वीर।

षोड़त्-संज्ञा पुं० [सं०] छः दाँत का बैल। जवान बैल।

षोडश-वि० [सं०] सोलहवाँ।

वि० [सं० षोडशन्] जो गिनती में दस से छः अधिक हो। सोलह।

संज्ञा पुं० सोलह की संख्या।

षोडश कला-संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा के सोलह भाग जो क्रम से एक एक करके निकलते और क्षीण होते हैं। वि० दे० "कला"।

षोडश गण-संज्ञा पुं० [सं०] पाँच ज्ञानेंद्रिय, पाँच कर्मेंद्रिय, पाँच भूत और एक मन इन सब का समूह।

षोडशदान-संज्ञा पुं० [सं०] सोलह प्रकार के दान जो ये हैं—(१) भूमि (२) आसन (३) पानी (४) कपड़ा (५) दीपक (६) अन्न (७) पान (८) छत्र (९) सुगंधि (१०) फूलमाला (११) फल (१२) सेज (१३) खड़ाऊँ (१४) गाय (१५) सोना और (१६) चाँदी।

षोडश पूजन-संज्ञा पुं० [सं०] सोलहो सामग्री के साथ पूजन। वि० दे० "षोडशोपचार"।

षोडश मातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की देवियाँ जो सोलह हैं—(१) गौरी (२) पद्मा (३) शची (४) मेधा (५) सावित्री (६) विजया (७) जया (८) देवसेना (९) स्वधा (१०) स्वाहा (११) शांति (१२) पुष्टि (१३) धृति (१४) तुष्टि (१५) मातरः और (१६) आत्म देवता।

षोडश शृंगार-संज्ञा पुं० [सं०] पूर्ण शृंगार जिसके अंतर्गत सोलह बातें हैं। पूरा सिंगार। वि० दे० "शृंगार"।

षोडशांग चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक चूर्ण जो विषमज्वर में दिया जाता है।

विशेष—चिरायता, नीम की छाल, कुटकी, गिलोय, हड़ का छिलका, नागर मोथा, धनिया, अड़ूसा, त्रायमाणा, कटियाली, काकड़ासिंगी, सोंठ, पित्तपापड़ा, प्रियंगु पुष्प, पटोल, पीपल, कचूर सब समान लेकर पीस डाले और ११ टंक प्रति दिन ठंढे जल से आठ दिन तक सेवन करे।

षोडशांघ्रि-संज्ञा पुं० [सं०] केकड़ा।

षोडशांशु-संज्ञा पुं० [सं०] शुक्र ग्रह (जिसमें सोलह किरनें मानी गई हैं)।

षोडशावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] शंख।

षोडशाश्रि-संज्ञा पुं० [सं०] वह घर या मंदिर जो सोलह कोनों का हो। ऐसे घर में सदा अँधेरा रहता है। (बृहत्संहिता)

षोडशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन तौल जो मागधी मान से १६ माशे और व्यावहारिक मान से एक तोले के बराबर होती थी।

षोडशी-वि० स्त्री० [सं०] (१) सोलहवीं। (२) सोलह वर्ष की (लड़की या स्त्री)। जैसे,—षोडशी बाला।

संज्ञा स्त्री० (१) सोलह वर्ष की स्त्री। नव यौवना स्त्री। (२) दस महाविद्याओं में से एक। (३) एक यज्ञपात्र। (४) एक प्राचीन तौल। पल का एक भेद जो मागधी मान से ५ तोले और व्यावहारिक मान से ४ तोले के बराबर होता था। (५) इन सोलह पदार्थों का समूह—ईक्षण, प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, इंद्रिय, मन, अन्न, वीर्य्य, तप, मंत्र कर्म और नाम। (६) मृतक संबंधी एक कर्म जो मृत्यु के दसवें या ग्यारहवें दिन होता है।

यौ०—षोडशी सपिंडी।

षोडशोपचार-संज्ञा पुं० [सं०] पूजन के पूर्ण अंग जो सोलह माने गए हैं—(१) आवाहन (२) आसन (३) अर्घ्यपाद्य (४) आचमन (५) मधुपर्क (६) स्नान (७) वस्त्राभरण (८) यज्ञोपवीत (९) गंध (चंदन) (१०) पुष्प (११) धूप (१२) दीप (१३) नैवेद्य (१४) तांबूल (१५) परिक्रमा और (१६) वंदना।

षोडश संस्कार-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक रीति के अनुसार गर्भाधान से लेकर मृतक कर्म तक के १६ संस्कार जो द्विजातियों के लिये कहे गए हैं। वि० दे० "संस्कार"।

ष्ठीवन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ष्ठीवित, ष्ठ्युत] थूकना।

ष्ठ्युत-वि० [सं०] थूका हुआ।

स

स-हिंदी वर्णमाला का बत्तीसवाँ व्यंजन। इसका उच्चारण स्थान दंत है, इसलिये यह दंती स कहा जाता है।

सं-अव्य० [सं० सम्] (१) एक अव्यय जिसका व्यवहार शोभा, समानता, संगति, उत्कृष्टता, निरंतरता, औचित्य आदि सूचित करने के लिये शब्द के आरंभ में होता है। जैसे,—संभोग, संयोग, संताप, संतुष्ट आदि। कभी कभी इसे जोड़ने पर भी मूल शब्द का अर्थ ज्यों का त्यों बना रहता है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। (२) से।

सँहतना-क्रि० स० [सं० संचय] (१) लीपना। पोतना। चौका लगाना। (२) संचय करना। (३) यह देखना जितना और

जैसा चाहिए, उतना और वैसा है या नहीं। सहेजना।

सँउपनाॐ†–क्रि० स० दे० "सौंपना"।

संक–ॐ†–संज्ञा स्त्री० दे० "शंका"। उ०—जलधि पार मानस अगम रावण पालित लंक। सोच विकल कपि भालु सब दुहु दिस संकट संक।—तुलसी।

संकट–वि० [सं० सम+कृत, प्रा० संकट] (१) एकत्र किया हुआ। (२) घनीभूत। (३) तंग। (४) दुर्लंघ्य। (५) भयानक। कष्टप्रद। दुःखदायी। (६) संकीर्ण। सँकरा। तंग।

संज्ञा पुं० (१) विपत्ति। आफत। मुसीबत। उ०—लाउत गे जब तें तब तें विरहानल आलम से मन दाढ़े। पालत हे भजगावन ग्वाल हुतो जब आवत संकट गाढ़े।—दीनदयाल। (२) दुःख। कष्ट। तकलीफ। (३) भीड़। समूह। (४) वह तंग पहाड़ी रास्ता जो दो बड़े और ऊँचे पहाड़ों के बीच से होकर गया हो।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बगला।

संकट चौथ–संज्ञा स्त्री० [हिं० संकट+चौथ] माघ मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी। इस दिन संकट दूर करनेवाले गणेश देवता के उद्देश्य से व्रत आदि रखा जाता है।

संकटस्थ–वि० [सं०] (१) संकट में पड़ा हुआ। विपद्-ग्रस्त। (२) दुःखी।

संकटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध देवी जो संकट या विपत्ति का निवारण करनेवाली मानी जाती हैं। (२) ज्योतिष के अनुसार आठ योगिनियों में से एक योगिनी। बाकी सात योगिनियाँ ये हैं—मंगला, पिंगला, धन्या, भ्रमरी, भद्रिका, उल्का और सिद्धि।

संकटाक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] धौ का पेड़। धव।

संकतॐ–संज्ञा पुं० दे० "संकेत"।

संकनाॐ०†–क्रि० अ० [सं० शंका] (१) शंका करना। संदेह करना। (२) डरना। भयभीत होना। उ०—पाँइ परे पलिका पै परी जिय संकति सौतिन होनि न सौंही।—देव।

संकर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह धूल जो झाड़ू देने के कारण उड़ती है। (२) आग के जलने का शब्द। (३) दो पदार्थों का परस्पर मिश्रण। दो चीजों का आपस में मिलना। (४) न्याय के अनुसार किसी एक ही स्थान या पदार्थ में अत्यंताभाव और समानाधिकरण का एक ही में होना। जैसे,—मन में मूर्त्तत्व तो है, पर भूतत्व नहीं है; और आकाश में भूतत्व है, पर मूर्त्तत्व नहीं है। परंतु पृथ्वी में भूतत्व भी है और मूर्त्तत्व भी है। (५) वह जिसकी उत्पत्ति भिन्न वर्ण या जाति के पिता और माता से हुई हो। दोगला।

संज्ञा पुं० दे० "शंकर"।

संकरघरनीॐ–संज्ञा स्त्री० [सं० शंकर+गृहिणी] शंकर की पत्नी, पार्वती।

संकरता–संज्ञा स्त्री० [सं०] संकर होने का भाव या धर्म। सांकर्य। मिलावट। घाल मेल।

सँकरा†–वि० [सं० संकीर्ण] [स्त्री० सँकरी] जो अधिक चौड़ा या विस्तृत न हो। पतला और तंग। जैसे,—सँकरा रास्ता।

संज्ञा पुं० कष्ट। दुःख। विपत्ति।

मुहा०—सँकरे में पड़ना=दुःख में पड़ना। कष्ट में पड़ना।

ॐ†–संज्ञा स्त्री० [सं० शृंखला] शृंखला। साँकल। साँकड़। जंजीर। उ०—घूँघर वार अलकैं विष भरे। संकरे प्रेम चहैं गये परे।—जायसी।

संज्ञा पुं० दे० "संकराभरण"।

सँकराना–क्रि० स० [हिं० सँकरा+आना (प्रत्य०)] (१) संकुचित करना। तंग करना। (२) बंद करना।

संकराश्व–संज्ञा पुं० [सं०] खच्चर।

संकरित–वि० [सं०] जिसमें मिलावट हो। मिला हुआ।

संकरिया–संज्ञा पुं० [सं० संकर ?] एक प्रकार का हाथी जो कमरिया और मिरगी के बीच की श्रेणी का होता है। इसका मूल्य कमरिया से कम होता है।

संकरी–संज्ञा पुं० [सं० संकरिन्] वह जो भिन्न वर्ण या जाति के पिता और माता से उत्पन्न हो। संकर। दोगला।

संज्ञा स्त्री० दे० "शंकरी"।

संकरीकरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नौ प्रकार के पापों में से एक प्रकार का पाप जो गधे, घोड़े, ऊँट, मृग, हाथी, बकरी, भेड़, मीन, साँप या भैंसे का वध करने से होता है। इसके प्रायश्चित्त के लिये कृच्छ्र या अतिकृच्छ्र व्रत करने का विधान है। (२) दो पदार्थों को एक में मिलाने की क्रिया। वर्णसंकरता करना।

संकर्षण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खींचने की क्रिया। (२) हल से जोतने की क्रिया। (३) कृष्ण के भाई बलराम का एक नाम। (४) एकादश रुद्रों में से एक रुद्र का नाम। (५) वैष्णवों का एक संप्रदाय जिसके प्रवर्तक निम्बार्क जी थे।

संकल†–संज्ञा स्त्री० [सं० शृंखला] (१) दरवाजे में लगाने की सिकड़ी या जंजीर। (२) पशुओं को बाँधने का सिक्कड़। (३) सोने या चाँदी की जंजीर जो गले में पहनी जाती है। जंजीर।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत सी चीजों को एक स्थान पर एकत्र करना। संकलन। एकत्री करण। (२) योग। मिलाना। (३) गणित की एक क्रिया जिसे जोड़ कहते हैं। वि० दे० "संकलन"।

संकलन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संकलित] (१) एकत्र करने की क्रिया। संग्रह करना। जमा करना। (२) संग्रह। ढेर। (३) गणित की योग नाम की क्रिया। जोड़। (४) अनेक ग्रंथों से अच्छे अच्छे विषय चुनने की क्रिया। (५) वह ग्रंथ जिसमें ऐसे चुने हुए विषय हों।

संकलप–संज्ञा पुं० दे० "संकल्प"।

संकलपना ※†–क्रि० स० [सं० संकल्प+ना (प्रत्य०)] (१) किसी बात का दृढ़ निश्चय करना। उ०—जैसो पति तेरे लिये मैं संकलप्यो आप। तैसो तैं पायो सुता अपने पुन्य प्रताप।—लक्ष्मणसिंह। (२) किसी धार्मिक कार्य्य के निमित्त कुछ दान देना। संकल्प करना।

क्रि० अ० विचार करना। इच्छा करना। इरादा करना।

संकला–संज्ञा पुं० [सं० शाक] शाक द्वीप।

संकलित–वि० [सं०] (१) चुना हुआ। संगृहीत। (२) जोड़ लगाया हुआ। योजित। (३) इकट्ठा किया हुआ। एकत्र किया हुआ।

संकल्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्य्य करने की वह इच्छा जो मन में उत्पन्न हो। विचार। इरादा। (२) दान, पुण्य या और कोई देवकार्य्य आरंभ करने से पहले एक निश्चित मंत्र का उच्चारण करते हुए अपना दृढ़ निश्चय या विचार प्रकट करना। (३) वह मंत्र जिसका उच्चारण करके इस प्रकार का निश्चय या विचार प्रकट किया जाता है।

विशेष—इस मंत्र में प्रायः संवत्, मास, तिथि, वार, स्थान, दाता या कर्त्ता का नाम, उपलक्ष और दान या कृत्य आदि का उल्लेख होता है।

(४) दृढ़ निश्चय। पक्का विचार। जैसे,—मैंने तो अब यह संकल्प कर लिया है कि कभी उसके साथ कोई व्यवहार न रखूँगा।

संकल्पना–क्रि० स०, अ० दे० "संकलपना"।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संकल्प करने की क्रिया। (२) वासना। इच्छा। अभिलाषा।

संकल्पभव–संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

संकल्पयोनि–संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

संकल्पा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष की एक कन्या जो धर्म्म की भार्य्या थी।

सँकाना ※†–क्रि० अ० [सं० शंक] शंकित होना। भीत होना। डरना। उ०—मुँह मिठास दृग चीकने, भौंहैं सरल सुभाय। तऊ खरे आदर खरौ, छिन छिन हियौ सँकाय।—बिहारी।

संकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कूड़ा करकट या धूल जो झाड़ू देने से उड़े। (२) आग के जलने का शब्द।

‡ संज्ञा स्त्री० [सं० संकेत] इशारा। संकेत।

संकारना †–क्रि० स० [हिं० संकार+ना (प्रत्य०)] संकेत करना। इशारा करना।

संकाश–अव्य० [सं०] (१) समान। सदृश। मिलते जुलते। उ०—देव रिपु कर्मकट विकट सुभट उद्भट समर सैल संकास रिपु त्रासकारी। बद्ध पाथोधि सुर निकर मोचन सकुल दलन दस सीस भुज बीस भारी।—तुलसी। (२) समीप। निकट। पास।

संकिरन–‡ वि० [सं० संकुल] जो अधिक चौड़ा न हो। सँकरा। तंग।

संकीर्ण–वि० [सं०] (१) जो अधिक चौड़ा या विस्तृत न हो। संकुचित। तंग। सँकरा। (२) मिश्रित। मिला हुआ। (३) क्षुद्र। छोटा। (४) नीच। तुच्छ। (५) वर्ण संकर।

संज्ञा पुं० (१) वह राग या रागिनी जो दो अन्य रागों या रागिनियों को मिलाकर बने। इसके १६ भेद कहे गए हैं—चैत्र, मंगलक, नगनिका, चर्च्चा, अतिनाठ, उत्रवी, दोहा, बहुला, गुल्वला, गीता, गोवि, हेम्ना, कोपी, कारिका, त्रिपदिका और अधा। (२) संकट। विपत्ति।

संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में एक प्रकार का गद्य जिसमें कुछ वृत्तगंधि और कुछ अवृत्तिगंधि का मेल होता है।

संकीर्णता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संकीर्ण होने का भाव। (२) तंगी। सँकरापन। (३) नीचता। (४) क्षुद्रता। ओछापन।

संकीर्त्तन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भली भाँति किसी की कीर्त्ति का वर्णन करना। (२) किसी देवता की सम्यक् रूप से की हुई वंदना या भजन आदि।

संकील–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम।

संकुचन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संकुचित होने की क्रिया। सिकुड़ना। (२) बालकों का एक प्रकार का रोग जिसकी गणना बाल-ग्रह में होती है।

सँकुचना–क्रि० अ० दे० "सकुचना"।

सँकुचाना–क्रि० अ० दे० "सकुचाना"।

संकुचित–वि० [सं०] (१) संकोच युक्त। लज्जित। जैसे,—संकुचित दृष्टि। (२) सिकुड़ा हुआ। सिमटा हुआ। (३) तंग। सँकरा। संकीर्ण। (४) उदार का उलटा। अनुदार। क्षुद्र।

संकुल–वि० [सं०] (१) संकुलित। संकीर्ण। घना। (२) भरा हुआ। परिपूर्ण।

संज्ञा पुं० (१) युद्ध। समर। लड़ाई। (२) समूह। झुंड। (३) भीड़। (४) जनता। (५) परस्पर विरोधी वाक्य। (६) ऐसे वाक्य जिनमें परस्पर किसी प्रकार की संगति न हो। असंगत वाक्य।

संकुलित–वि० [सं०] (१) जो संकुलित हो। भरी हुई। (२) एकत्र। (३) घना।

संकुश–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे शंकु भी कहते हैं।

संकेत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपना भाव प्रकट करने के लिये किया हुआ कायिक परिचालन या चेष्टा। इशारा। इंगित।

(२) प्रेमी प्रेमिका के मिलने का पूर्व निर्दिष्ट स्थान। वह स्थान जहाँ प्रेमी और प्रेमिका मिलना निश्चित करें। सहेट। (३) कामवासना संबंधी इंगित। शृंगार चेष्टा। (४) चिह्न। निशान। (५) पते की बातें। उ०—सरस जानकी जानि कपि कहे सकल संकेत। दीन्हि मुद्रिका लीन्हि सिय प्रीति प्रतीति समेत।—तुलसी।

सँकेत†–वि० दे० "सँकरा"।

सँकेतना–क्रि० स० [सं० संकीर्ण] संकट में डालना। कष्ट में डालना। आपत्ति में डालना। उ०—भएउ चेत, चेतन चित चेता। नैन झरोखे जीव सँकेता।—जायसी।

सँकेलना†–क्रि० स० [सं० संकष्ट] खींच कर एकत्र करना। समेटना।

संकोच–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिकुड़ने की क्रिया। खिंचाव। तनाव। (२) लज्जा। शर्म। (३) भय। (४) आगा पीछा। पसो पेश। हिचकिचाहट। (५) कमी। (६) एक प्रकार की मछली। (७) केसर। कुमकुम। (८) एक अलंकार जिसमें 'विकास अलंकार' से विरुद्ध वर्णन होता है या किसी वस्तु का अतिशय संकोच वर्णन किया जाता है। (९) बहुत सी बातों को थोड़े में कहना।

संकोचन–संज्ञा पुं० [सं०] सिकुड़ने की क्रिया।

सँकोचना–क्रि० स० [सं० संकोच] संकुचित करना। संकोच करना। उ०—नींद न परति राति प्रेम पनु एक भाँति सोचत सँकोचत विरंचि हरि हर की।—तुलसी।

संकोचनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] लजालू नाम की लता।

संकोचपत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] वृक्षों का एक प्रकार का रोग जिसमें उनके पत्तों में ऊपर कुछ दाने से निकल आते हैं और पत्ते सिकुड़ जाते हैं।

संकोचपिशुन–संज्ञा पुं० [सं०] कुंकुम। केसर।

संकोचित–वि० [सं०] (१) संकोच युक्त। जिसमें संकोच हो। (२) जो विकसित या प्रफुल्लित न हो। अप्रफुल्लित। (३) लज्जित। शरमिंदा।

संज्ञा पुं० तलवार के बत्तीस हाथों में से एक हाथ। तलवार चलाने का एक ढंग या प्रकार।

संकोची–संज्ञा पुं० [सं० संकोचिन्] (१) संकोच करनेवाला। (२) सिकुड़नेवाला। (३) जिसे संकोच या लज्जा हो। शर्म करनेवाला।

संकोपना‡–क्रि० अ० [सं० संकोप+ना (प्रत्य०)] क्रोध करना। क्रुद्ध होना। गुस्सा करना।

संक्रंदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शक्र। इंद्र। सुरपति। उ०—संक्रंदन कृपाल सुरत्राता। पत्री भुक्ति मुक्ति के दाता।—गिरिधर। (२) पुराणानुसार भौत्य मनु के एक पुत्र का नाम। (३) दे० "क्रंदन"।

संक्रम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कष्ट या कठिनतापूर्वक बढ़ने की क्रिया। संप्रवेश। (२) पुल आदि बनाकर किसी स्थान में प्रवेश करना। (३) पुल। सेतु। (४) प्राप्ति। (५) संक्रमण। संक्रांति।

संक्रमण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गमन। चलना। (२) अतिक्रमण। (३) सूर्य्य का एक राशि से निकलकर दूसरी राशि में प्रवेश करना। (४) घूमना। फिरना। पर्य्यटन।

संक्रांत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दायभाग के अनुसार वह धन जो कई पीढ़ियों से चला आया हो। (२) सूर्य्य का एक राशि से दूसरी राशि में जाना। वि० दे० "संक्रांति"।

वि० (१) मिला हुआ। प्राप्त। (२) बीता हुआ। गत।

संक्रांति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक राशि से दूसरी राशि में गमन। (२) सूर्य्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करने का समय।

विशेष—प्रायः सूर्य्य एक राशि में ३० दिन तक रहता है। और जब वह एक राशि से निकलकर दूसरी राशि में जाता है, तब उसे संक्रांति कहते हैं। वास्तव में संक्रांति काल वही होता है, जब सूर्य्य दो राशियों की ठीक सीमा पर या बीच में होता है। यह संक्रांति काल बहुत थोड़ा होता है। पुराणानुसार यह काल बहुत पुनीत माना जाता है और इस समय लोग स्नान, दान, पूजन इत्यादि करते हैं। इस समय का किया हुआ शुभ कार्य्य बहुत पुण्यजनक माना जाता है। (३) वह दिन जिसमें सूर्य्य एक राशि से दूसरी राशि में जाता है।

संक्रांतिचक्र–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्यों के शुभ अशुभ जानने के हेतु बनाया हुआ मनुष्य के आकार का नक्षत्रों से अंकित एक प्रकार का चक्र जिससे यह जाना जाता है कि मनुष्य के लिये किस संक्रांति का फल शुभ और किसका अशुभ होगा।

संक्रामक–वि० [सं०] जो संसर्ग या छूत आदि के कारण एक से औरों में फैलता हो। जैसे,—चेचक, प्लेग, महामारी, क्षयी आदि रोग संक्रामक होते हैं।

संक्रामी–संज्ञा पुं० [सं० संक्रामिन्] वह जो लोगों में रोगों का संक्रमण कराता हो। रोग फैलानेवाला।

संक्रीड़–संज्ञा पुं० [सं०] (१) परिहास। हँसी ठट्ठा। (२) एक साम का नाम।

संक्रोनऽ†–संज्ञा स्त्री० [सं० संक्रमण] संक्रमण। संक्रांति। वि० दे० "संक्रांति"। उ०—नित निमि तरनि किसोर वय, पुन्य काल सम दोन। काहू पुन्यनि पाइयत, बैस संधि संक्रोन।—बिहारी।

संक्रोश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जोर से शब्द करना। चिल्लाना। (२) एक साम का नाम।

संक्षय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सम्यक् प्रकार से नाश। विनाश। ध्वंस। बरबादी। (२) प्रलय।

संक्षर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ दो नदियाँ आदि मिलती हों। संगम। (२) एक साम का नाम।

संक्षिप्त–वि० [सं०] (१) जो संक्षेप में कहा या लिखा गया हो। जो संक्षेप में किया गया हो। खुलासा। (२) थोड़ा। अल्प। (३) छोड़ा या फेंका हुआ।

संक्षिप्त लिपि–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लेखन प्रणाली जिसमें ध्वनियों के लिये ऐसे संक्षिप्त चिह्न या रेखाएँ नियत रहती हैं जिनके द्वारा लिखने से थोड़े काल और स्थान में बहुत सी बातें लिखी जा सकती हैं। व्याख्यान आदि के लिखने में यह अधिक सहायक होती है। व्यापारिक कार्य्यालयों में भी इसका प्रयोग होता है।

संक्षिप्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में बुध ग्रह की सात प्रकार की गतियों में से एक प्रकार की गति। बुध जिस समय पुष्य, पुनर्वसु, पूर्व फल्गुनी और उत्तर फल्गुनी नक्षत्र में होता है, उस समय उसकी गति संक्षिप्ता होती है। यह गति २२ दिन तक रहती है।

संक्षिप्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक में चार प्रकार की आरभटियों में से एक प्रकार की आरभटी। जहाँ क्रोध आदि उग्र भावों की निवृत्ति होती है (जैसे,—रामचंद्र जी की बातों से परशुराम के क्रोध की निवृत्ति होना) वहाँ यह वृत्ति मानी जाती है। वि० दे० "आरभटी"।

संक्षेप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) थोड़े में कोई बात कहना। (२) संकोचन। घटाना। कम करना। (३) समाहार। संग्रह। समास। (४) चुंबक।

संक्षेपण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कम करना। संक्षेप कराना। (२) काट छाँट करने की क्रिया।

संक्षेपतः–अव्य० [सं०] संक्षेप में। थोड़े में। सारांशतः।

संक्षेपतया–अव्य० [सं०] थोड़े में। संक्षेप में।

संक्षेपदोष–संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में एक प्रकार का दोष। जिस बात को जितने विस्तार से कहने या लिखने की आवश्यकता हो, उसे उतने विस्तार में न कह या लिखकर कम विस्तार से कहना या लिखना, जिससे प्रायः सुनने या पढ़नेवाले की समझ में ठीक ठीक अभिप्राय न आवे।

संक्षोभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंचलता। (२) कंपन। काँपना। (३) विप्लव। (४) उलट पुलट। (५) गर्व। घमंड। अभिमान। शेखी।

संख–संज्ञा पुं० दे० "शंख"।

संखनारी–संज्ञा स्त्री० [सं० शंखनारी] एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक पद में दो यगण (य,य) होते हैं। इसे सोमराजी वृत्त भी कहते हैं।

संखहुली–संज्ञा स्त्री० दे० "शंखपुष्पी"।

संखा–संज्ञा पुं० [सं० शंकु] चक्की के ऊपरी पाट में लगी हुई लकड़ी की खूँटी जिसमें एक और छोटी लकड़ी जड़ी रहती है। हथवड़। हथ्था।

संखार–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसका रंग अबलक होता है और जिसकी चोंच चिपटी होती है।

संखिया–संज्ञा पुं० [सं० शृंगिका या शृंग विष] (१) एक प्रकार की बहुत जहरीली प्रसिद्ध उपधातु या पत्थर जो कुमाऊँ, चित्राल स्वात, काशगर, उत्तरी बरमा और चीन आदि में पाया जाता है। प्रायः इसका रंग सफेद या मटमैला होता है और यह चिकना तथा चमकीला होता है। जिस समय यह खान से निकलता है, उस समय बहुत कड़ा होता है और बहुत कठिनता से गलता है। पाश्चात्य वैज्ञानिक हरताल और मैनसिल को भी इसी के अंतर्गत मानते हैं। भारतवासी प्रायः यही समझते हैं कि यह पत्थर पर बहुत जहरीले बिच्छू के डंक मारने से संखिया बनता है। (२) उक्त धातु का तैयार किया हुआ भस्म जो देशी भी होता है और विलायती भी। यह बाजारों में सफेद, पीले, लाल, काले आदि कई रंगों का मिलता है और प्रायः औषधों में काम आता है। कुछ लोग कृत्रिम रूप से भी संखिया बनाते हैं। यह बहुत विकट विष होता है और प्रायः हत्या आदि के लिये काम में आता है। वैद्यक के अनुसार यह वीर्य्य तथा बलवर्द्धक, कांतिजनक, लोहभेदक, दाहजनक, वमनकारक, रेचक, त्रिदोषघ्न तथा सब प्रकार के दोषों का नाश करनेवाला माना जाता है। वैद्यक के अतिरिक्त हिकमत और डाक्टरी में भी इसका व्यवहार होता है और उनमें भी इसे बहुत बलवर्द्धक माना गया है। सोमल। संखुल। सम्मुलखार।

पर्य्या०—आखुपाषाण। शंखविष। शृंगिक। गौरीपाषाण।

संख्य–संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। समर। लड़ाई।

संख्यक–वि० [सं०] जिसमें संख्या हो। संख्या वाला। जैसे,—बहु-संख्यक।

संख्यता–संज्ञा स्त्री० [सं०] संख्या का भाव या गुण। संख्यत्व।

संख्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वस्तुओं का वह परिमाण जो गिनकर जाना जाय। एक, दो, तीन, चार आदि की गिनती। तादाद। शुमार। (२) गणित में वह अंक जो किसी वस्तु का, गिनती में, परिमाण बतलावे। अदद। (३) वैद्यक में संप्राप्ति के पाँच भेदों में से एक भेद। अन्य चार भेद विकल्प, प्राधान्य, बल और काल हैं। (४) बुद्धि। (५) विचार।

संख्यान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संख्या। गिनती। (२) गिनने की क्रिया। शुमार। (३) ध्यान। (४) प्रकाश।

संख्यालिपि–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लेखन प्रणाली जिसमें वर्णों के स्थान पर संख्या-सूचक चिह्न या अंक लिखे जाते हैं।

संग–संज्ञा पुं० [सं० संग] (१) मिलने की क्रिया। मिलन। (२) संसर्ग। सहवास। सोहबत। जैसे,—बुरे आदमियों के संग में अच्छे आदमी भी बिगड़ जाते हैं।

क्रि० प्र०—करना।—छोड़ना।—टूटना।—रखना।

मुहा०—संग सोना = सहवास करना। समागम करना। उ०—संग सोई तो फिर लाज क्या! (कहा०)। (किसी के) संग लगना = साथ हो लेना। पीछे लगना। (किसी को) संग लेना = अपने साथ लेना या ले चलना। जैसे,—जब चलने लगना, तब हमें भी संग ले लेना।

(३) विषयों के प्रति होनेवाला अनुराग। (४) वासना। आसक्ति। (५) वह स्थान जहाँ दो नदियाँ मिलती हों। नदियों का संगम।

क्रि० वि० साथ। हमराह। सहित। जैसे,—(क) उनके संग चार आदमी आए हैं। (ख) मरने पर क्या कोई हमारे संग जायगा? (ग) हम भी तुम्हारे संग चलेंगे।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] पत्थर। पाषाण। जैसे,—संगमूसा, संगमरमर, संग असवद।

वि० पत्थर की तरह कठोर। बहुत कड़ा।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्द बनाने में उनके आरंभ में होता है। जैसे,—संगदिल = पाषाण हृदय। कठोर हृदय।

संग अंगूर–संज्ञा पुं० [संग ? हिं० अंगूर] एक प्रकार की वनस्पति जो हिमालय पर पाई जाती है। यह ओषधि के काम में आती है। इसे अंगूर शेफा, गिरी बूटी या मेवराज भी कहते हैं।

संग असवद–संज्ञा पुं० [फ़ा० संग + अ० असवद] काले रंग का एक बहुत प्रसिद्ध पत्थर जो काबे की एक दीवार में लगा हुआ है और जिसे हज करने के लिये जानेवाले मुसलमान बहुत पवित्र समझते तथा चूमते हैं। मुसलमानों का यह विश्वास है कि यह पत्थर स्वर्ग से लाया गया है; और इसे चूमने से पापों का नष्ट होना माना जाता है।

संग कूपी–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की वनस्पति जो ओषधि के काम में आती है।

संग खारा–संज्ञा पुं० [फ़ा० संग + खार] एक प्रकार का पत्थर जो कुछ नीलापन लिए भूरे रंग का और बहुत कड़ा होता है। चकमक पत्थर।

संग जराहत–संज्ञा पुं० [फ़ा० संग + अ० जराहत] एक प्रकार का सफेद चिकना पत्थर जो घाव भरने के लिये बहुत उपयोगी होता है। इसे पीसकर बारीक चूर्ण बनाते हैं जिसे "गच" कहते हैं और जो साँचा बनाने के काम में भी आता है। इसका गुण यह है कि पानी के साथ मिलने पर यह फूलता है और सूखने पर कड़ा हो जाता है। इसलिये इससे मूर्त्तियाँ आदि भी बनाते हैं। इसे कुलगार, कारसी, सफेद सुरमा या सिलखड़ी भी कहते हैं।

संगठन–संज्ञा पुं० [सं० सं० + हिं० गठना] (१) बिखरी हुई शक्तियों, लोगों, या अंगों आदि को इस प्रकार मिलाकर एक करना कि उनमें नवीन जीवन या बल आ जाय। किसी विशिष्ट उद्देश्य या कार्य्य सिद्धि के लिये बिखरे हुए अवयवों को मिलाकर एक और व्यवस्थित करना। एक में मिलाने और उपयोगी बनाने के लिये की हुई व्यवस्था।

विशेष—वास्तव में यह शब्द शुद्ध संस्कृत नहीं है, गलत गढ़ा हुआ है; पर आजकल यह बहुत प्रचलित हो रहा है। कुछ लोग इससे, संस्कृत व्याकरण के नियमों के अनुसार "संगठित" "संगठनात्मक" आदि शब्द भी बनाते हैं, जो अशुद्ध हैं। कुछ लोगों ने इसके स्थान पर "संघटन" शब्द का व्यवहार करना आरंभ किया है, जो शुद्ध संस्कृत है।

(२) वह संस्था या संघ आदि जो इस प्रकार की व्यवस्था से तैयार हो।

संगठित–वि० [हिं० संगठन] जो भली भाँति व्यवस्था करके एक में मिलाया हुआ हो। जो व्यवस्थित रूप में और काम करने के योग्य मिलाकर बनाया गया हो।

संगत–संज्ञा स्त्री० [सं० संगति] (१) संग रहने या होने का भाव। साथ रहना। सोहबत। संगति। (२) संग रहनेवाला। साथी। (३) वेश्याओं या भाँड़ों आदि के साथ रहकर सारंगी, तबला, मँजीरा आदि बजाने का काम।

क्रि० प्र०—बजाना।—में रहना।

मुहा०—संगत करना = गानेवाले के साथ साथ ठीक तरह से तबला, सारंगी सितार आदि बजाना।

(४) वह जो इस प्रकार किसी गाने या नाचनेवाले के साथ रहकर साज बजाता हो। (५) वह मठ जहाँ उदासी या निर्मले आदि साधु रहते हैं। (६) संबंध। सेसर्ग। (७) प्रसंग। मैथुन। (८) दे० "संगति"।

संगतरा–संज्ञा पुं० [पुर्त०] एक प्रकार की बड़ी और मीठी नारंगी। संतरा।

संगतराश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) पत्थर काटने या गढ़नेवाला मजदूर। पत्थर-कट। (२) एक औजार जो पत्थर काटने के काम में आता है।

संगति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मिलने की क्रिया। मेल। मिलाप। (२) संग। साथ। सोहबत। संगत। (३) प्रसंग। मैथुन। (४) संबंध। ताल्लुक। (५) ज्ञान। (६) किसी विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिये बार बार प्रश्न करने की क्रिया। (७) युक्ति। (८) पहले कही या लिखी हुई बात के साथ बाद में कही या लिखी हुई बात का मेल। आगे पीछे कहे जानेवाले वाक्यों आदि का मिलान।

क्रि० प्र०—बैठना।—मिलना।—लगना।—लगाना।

(९) दे० "संगत"।

संगतिया–संज्ञा पुं० [हिं० संगत+इया (प्रत्य०)] वह जो किसी गाने या नाचनेवाले के साथ रहकर सारंगी, तबला या और कोई साज बजाता हो। साजिंदा।

संगती–संज्ञा पुं० [हिं० संगत+ई (प्रत्य०)] (१) वह जो साथ में रहता हो। संग रहनेवाला। (२) दे० "संगतिया"।

संगथ–संज्ञा पुं० [सं०] संग्राम। युद्ध।

संगदिल–वि० [फा०] जिसका हृदय पत्थर की तरह कठोर हो। कठोर हृदय। निर्दय। दयाहीन।

संगदिली–संज्ञा स्त्री० [फा०] संगदिल होने का भाव। कठोर-हृदयता। निर्दयता।

संगपुश्त–संज्ञा पुं० [फा०] पत्थर की तरह कड़ी पीठवाला, कच्छप। कछुआ। कमठ।

संगबसरी–संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार की मिट्टी जिसमें लोहे का अंश अधिक होता है और जो इसी कारण दवा के काम में आती है। यह फारस में होती है और वहीं से आती है।

संगम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दो वस्तुओं के मिलने की क्रिया। मिलाप। सम्मेलन। संयोग। समागम। मेल। उ०—आपुहिं ते उठि जौ चलै तिय पिय के संकेत। निसि दिन तिमिर प्रकास कछु गनै न संगम हेत।—देव। (२) दो नदियों के मिलने का स्थान। जैसे,—गंगा यमुना का संगम प्रयाग में होता है। उ०—ज्योति जगी यमुनासी लगी जग लाल विलोचन पाप विपोहै। सूर सुता शुभ संगम तुंग तरंग तरंगिणि गंग सी सोहै।—केशव। (३) साथ। संग। सोहबत। उ०—पद्मावत सों कह्यो विहंगम। कंत लुभाय रहे जेहि संगम।—जायसी। (४) स्त्री और पुरुष का संयोग। मैथुन। प्रसंग। (५) ज्योतिष में ग्रहों का योग। कई ग्रहों आदि का एक स्थान पर मिलना या एकत्र होना।

संगमन–संज्ञा पुं० [सं०] संयोग। मेल।

संगमर–संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

संगमर्मर–संज्ञा पुं० [फा० संग+अ० मर्मर] एक प्रकार का बहुत चिकना, मुलायम और सफेद प्रसिद्ध पत्थर जो बहुत कीमती होता है। यह मूर्त्ति, मंदिर तथा महल इत्यादि बनाने में काम आता है। आगरे का ताज महल इसी पत्थर का बना है। भारत में यह जयपुर में अधिक पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अजमेर, किशनगढ़ और जोधपुर आदि में भी इसकी कुछ खानें हैं।

संगमूसा–संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का काला, चिकना, कीमती पत्थर जो मूर्त्ति आदि बनाने के काम में आता है।

संगयशब–संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का कीमती पत्थर जिसका रंग कुछ हरापन लिये हुए होता है। इसे धो या घिसकर पीने से दिल का धड़कना कम हो जाता है। इसकी तावीज बनाकर भी लोग पहनते हैं। हौलदिली।

संगर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) युद्ध। समर। संग्राम। (२) आपद्। विपत्ति। (३) अंगीकार। स्वीकार। (४) प्रतिज्ञा। (५) प्रश्न। सवाल। (६) नियम। (७) विष। जहर। (८) शमी वृक्ष का फल।

संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह धुस या दीवार जो ऐसे स्थान में बनाई जाती है जहाँ सेना ठहरती है। रक्षा करने के लिये सेना के चारों ओर बनाई हुई खाई, धुस या दीवार। (२) मोरचा।

संगरण–संज्ञा पुं० [सं०] किसी के पीछे चलना। पीछा करना।

सँगरा–संज्ञा पुं० [फा० संग ?] (१) कूओं के तख्ते पर बना हुआ वह छेद जिसमें पानी खींचने का पंप बैठाया हुआ होता है। (२) मोटे बाँस का वह छोटा टुकड़ा जिसकी सहायता से पेशराज लोग पत्थर उठाते हैं। सँगरा।

संगराम*–संज्ञा पुं० दे० "संग्राम"।

संगरासिख–संज्ञा पुं० [?] ताँबे की मैल जो खिजाब बनाने के काम में आती है।

संगरेजा–संज्ञा पुं० [फा०] पत्थर के छोटे छोटे टुकड़े। कंकड़। बजरी।

संगल–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रेशम जो अमृतसर से आता है। यह दो तरह का होता है—परदवानी और बशीरी। यह बारीक और मजबूत होता है; इसलिये गोटा, किनारी आदि बनाने के काम में बहुत आता है।

संगव–संज्ञा पुं० [हिं० संग + गौ] वह समय जब चरवाह बछड़ों को दूध पिलाकर और गौओं को दुहकर चराने के लिये ले जाता है।

संगसार–संज्ञा पुं० [फा०] प्राचीन काल का एक प्रकार का प्राण-दंड जो प्रायः अरब, फारस आदि देशों में प्रचलित था। इस दंड में अपराधी भूमि में आधा गाड़ दिया जाता था और लोग पत्थर मार मारकर उसकी हत्या कर डालते थे।

वि० नष्ट। चौपट। ध्वस्त।

संगसाल–संज्ञा पुं० [फा०] अफगानिस्तान की उत्तरी सीमा पर एक पहाड़ी में कटी हुई पत्थर की बहुत बड़ी मूर्त्ति का नाम।

विशेष—अफगानिस्तान की उत्तरीय सीमा पर तुर्किस्तान के मार्ग में समुद्र से आठ हजार फुट की ऊँचाई पर हिंदुकुश की घाटी में बहुत सी पुरानी इमारतों के चिह्न हैं। वहीं पहाड़ में बनी हुई दो बड़ी मूर्त्तियाँ भी हैं जिनमें से एक १८० और दूसरी ११७ फुट ऊँची है। वहाँवाले इन्हें संगसाल और शाहयम्मा कहते हैं।

संगसी–संज्ञा स्त्री० दे० "सँड़सी"।

संगसुरमा–संज्ञा पुं० [फा०] काले रंग की वह उपधातु जिसे

पीसकर आँखों में लगाने का सुरमा बनाया जाता है। वि० दे० "सुरमा"।

संग सुलेमानी–संज्ञा पुं० [फ़ा० संग+अ० सुलेमानी] एक प्रकार के रंगीन पत्थर के नग जिनकी मालाएँ आदि बनाकर मुसलमान फकीर पहना करते हैं।

संगाती–संज्ञा पुं० [हिं० संग+आती (प्रत्य०)] (१) वह जो संग रहता हो। साथी। संगी। (२) दोस्त। मित्र।

संगिनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० संगी का स्त्री० रूप] (१) साथ रहनेवाली स्त्री। सहचरी। (२) पत्नी। भार्य्या। जोरू।

संगी–संज्ञा पुं० [हिं० संग+ई (प्रत्य०)] (१) वह जो सदा संग रहता हो। साथी। (२) मित्र। बंधु।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कपड़ा जो विवाह आदि में वर का पाजामा तथा स्त्रियों के लहँगे इत्यादि के बनाने के काम में आता है।

वि० [फ़ा० संग=पत्थर] पत्थर का। संगीन। जैसे,—संगी मकान।

संगीत–संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य गीत और वाद्य का समाहार। वह कार्य्य जिसमें नाचना गाना और बजाना तीनों हों।

विशेष—संगीत का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन है; और भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न प्रकार से मनोरंजन के लिये गाना बजाना हुआ करता है। संभवतः भारतवर्ष में ही सब से पहले संगीत की ओर लोगों का ध्यान गया था। वैदिक काल में ही यहाँ के लोग मंत्रों का गान करते और उसके साथ साथ हस्तक्षेप आदि करते और बाजा बजाते थे। धीरे धीरे इस कला ने इतनी उन्नति की कि "सामवेद" की रचना हुई। इस प्रकार मानो सामवेद भारतीय संगीत का सब से प्राचीन और पूर्व रूप है। पीछे संगीत का बड़ा प्रचार हुआ। सुर, नर सभी इससे प्रेम करने लगे। रामायण और महाभारत के समय में इस देश में इसका बड़ा आदर था। नाचने, गाने और बजाने का अभ्यास सभी सभ्य लोग करते थे। संगीत-शास्त्र के प्रथम आचार्य 'भरत' माने जाते हैं। इनके पश्चात् कश्यप, मतंग, पार्हि, नारद, हनुमत् आदि ने संगीत-शास्त्र की आलोचना की। कहते हैं कि प्राचीन यूनान, अरब और फारसवालों ने भारतवासियों से ही संगीत-शास्त्र की शिक्षा ग्रहण की थी।

कुछ लोगों का मत है कि स्वर, राग, ताल, नृत्य, भाव, कौक और हस्त इन सातों के समाहार को संगीत कहते हैं; पर अधिकांश लोग गान, वाद्य और नृत्य को ही संगीत मानते हैं; और यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो शेष चारों का भी समावेश इन्हीं तीनों में हो जाता है। इनमें से गीत और वाद्य को श्राव्य संगीत तथा नृत्य को संगीत कहते हैं। संगीत के और भी दो भेद किए गए हैं—मार्ग और देशी। कहते हैं कि किसी समय महादेव के सामने भरत ने अपना संगीत-विद्या का परिचय दिया था। उस संगीत के पथ-प्रदर्शक ब्रह्मा थे और वह संगीत मुक्तिदाता था। वही संगीत-मार्ग कहलाता था। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न देशों में लोग अपने अपने ढंग पर जो गाते बजाते और नाचते हैं, उसे देशी कहते हैं। कुछ लोग केवल गाने और बजाने को ही और कुछ लोग केवल गाने को ही, भ्रम से, संगीत कहते हैं।

संगीतविद्या–संज्ञा स्त्री० दे० "संगीत-शास्त्र"।

संगीतशास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें गाने, बजाने, नाचने और हाव भाव आदि दिखलाने की कला का विवेचन हो।

संगीति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वार्त्तालाप। बातचीत। (२) दे० "संगीत"।

संगीन–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का अस्त्र जो लोहे का बना हुआ तिफला और नुकीला होता है। यह बंदूक के सिरे पर लगाया जाता है। इससे शत्रु को भोंककर मारते हैं।

वि० (१) पत्थर का बना हुआ। जैसे,—संगीन इमारत। (२) मोटा। जैसे,—संगीन कपड़ा। (३) टिकाऊ। पायदार। मजबूत। जैसे,—कलाबत्तू का काम संगीन होना है। (४) विकट। असाधारण। जैसे,—संगीन जुर्म। संगीन मामला। (५) पेचीदा।

संगुत–संज्ञा पुं० [सं० सङ्घ] एक बुद्ध का नाम।

संगूढ़–संज्ञा पुं० [सं० संगूढ़] रेखा या लकीर आदि खींचकर निशान की हुई राशि या ढेर।

विशेष—प्रायः लोग अन्न या और किसी प्रकार की राशि लगाकर उसे रेखाओं से घेर या अंकित कर देते हैं, जिसमें यदि कोई उस राशि में से कुछ चुरावे, तो पता लग जाय। इसी प्रकार अंकित की हुई राशि को संगूढ़ कहते हैं।

संगृहीत–वि० [सं०] संग्रह किया हुआ। एकत्र किया हुआ। जमा किया हुआ। संकलित।

संगृहीता–संज्ञा पुं० [सं० संगृहीतृ] वह जो संग्रह करता हो। एकत्र करनेवाला। जमा करनेवाला।

संगोतरा–संज्ञा पुं० [हिं० संगतरा] एक प्रकार की नारंगी। संगतरा। संतरा।

संगोपन–संज्ञा पुं० [सं०] छिपाने की क्रिया। पोशीदा रखना। छिपाना।

संगोपनीय–वि० [सं०] छिपाने के योग्य। पोशीदा रखने के लायक।

संग्रसन–संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक भोजन करना।

संग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एकत्र करने की क्रिया। जमा करना। संकलन। संचय। (२) वह ग्रंथ जिसमें अनेक विषयों की बातें एकत्र की गई हों। (३) भोजन, पान, औषध इत्यादि

खींचने की क्रिया। (४) मंत्र बल से अपने फेंके हुए अस्त्र को अपने पास लौटाने की क्रिया। (५) सोमयाग। (६) सूची। फेहरिस्त। (७) निग्रह। संयम। (८) रक्षा। हिफाजत। (९) कब्ज़। कोष्ठबद्धता। (१०) शिव का एक नाम। (११) पाणिग्रहण। विवाह। (१२) जमघट। जमाव। (१३) सभा। गोष्ठी। (१४) मैथुन। स्त्री-प्रसंग। (१५) ग्रहण करने की क्रिया। (१६) स्वीकार। मंजूरी।

संग्रहग्रहणी–संज्ञा स्त्री० दे० "संग्रहणी"।

संग्रहण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्त्री को हर ले जाने की क्रिया। (२) ग्रहण। (३) प्राप्ति। (४) नगों को जड़ने की क्रिया। (५) मैथुन। सहवास। (६) व्यभिचार।

संग्रहणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें भोजन किया हुआ पदार्थ पचता नहीं, बराबर पाखाने के रास्ते निकल जाता है। इसमें पेट में पीड़ा होती है और दस्त दुर्गंधयुक्त, कभी पतला कभी गाढ़ा, होता है। शरीर दुर्बल और निस्तेज हो जाता है। यह रोग चार प्रकार का होता है—वातज, कफज, पित्तज और सन्निपातज। रात की अपेक्षा दिन के समय यह रोग अधिक कष्ट देता है। यह रोग प्रायः अधिक दिनों तक रहता और कठिनता से अच्छा होता है। ग्रहणी।

संग्रहना*–क्रि० स० [सं० संग्रहण] संग्रह करना। संचय करना। जमा करना। उ०—संग्रहै सनेह बस अधम असाधु को। गिद्ध सेवरी को कहो करिहै सराध को।—तुलसी।

संग्रही–संज्ञा पुं० [सं० संग्रहिन्] (१) संग्रह करनेवाला। जो एकत्र या जमा करता हो। (२) महसूल या लगान आदि उगाहनेवाला कर्मचारी। कर एकत्र करनेवाला।

संग्रहीता–संज्ञा पुं० [सं० संग्रहीतृ] वह जो संग्रह करता हो। जमा करनेवाला। एकत्र करनेवाला।

संग्राम–संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। लड़ाई। समर।

संग्रामजित्–संज्ञा पुं० [सं०] भद्रा के उदर से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

संग्राम पटह–संज्ञा पुं० [सं०] रण में बजनेवाला एक प्रकार का बाजा। रण भेरी। रण डिमडिम।

संग्राम भूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ संग्राम होता हो। लड़ाई का मैदान। युद्ध-क्षेत्र।

संग्राह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दस्ता या मूठ पकड़ना। (२) हाथ की बँधी हुई मुट्ठी। मुक्का।

संग्राहक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो संग्रह करता हो। एकत्र या जमा करनेवाला। संग्रहकारी।

संग्राही–संज्ञा पुं० [सं० संग्राहिन्] (१) वह पदार्थ जो कफादि दोष, धातु, मल तथा तरल पदार्थों को खींचता हो। (२) वह पदार्थ जो मल के पेट से निकलने में बाधक होता है। कब्जियत करनेवाली चीज। (३) कुटज वृक्ष।

संग्राह्य–वि० [सं०] संग्रह करने योग्य। जमा करने लायक।

संघ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। समुदाय। दल। गण। (२) मनुष्यों का वह समुदाय जो किसी विशेष उद्देश से एकत्र हुआ हो। समिति। सभा। समाज। (३) प्राचीन भारत का एक प्रकार का प्रजातंत्र राज्य जिसमें शासनाधिकार प्रजा द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में होता था। (४) इसी संस्था के ढंग पर बना हुआ बौद्ध श्रमणों आदि का धार्मिक समाज जिसकी स्थापना महात्मा बुद्ध ने की थी। पीछे से यह बौद्ध धर्म के त्रिरत्नों में से एक रत्न माना जाता था। शेष दो त्रिरत्न बुद्ध और धर्म थे। (५) साधुओं आदि के रहने का मठ। संगत।

संघगुप्त–संज्ञा पुं० [सं०] वाग्भट के पिता का नाम।

संघचारी–संज्ञा पुं० [सं० संघचारिन्] (१) जो अधिकांश लोगों का साथ दे। बहुपक्ष का अनुसरण करनेवाला। बहुमत के अनुसार आचरण करनेवाला। (२) वे जो झुंड या समुदाय में चलते हों। जैसे,—वृक, मृग, हाथी इत्यादि। (३) मछली।

संघट–संज्ञा पुं० [सं० संघट्ट] (१) संघटन। मिलन। संयोग। (२) परस्पर संघर्ष। युद्ध। लड़ाई। झगड़ा।

संघटन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेल। संयोग। (२) संघर्ष। संघर्षण। (३) साहित्य में नायक नायिका का संयोग। मिलाप। (४) उपकरणों के द्वारा किसी पदार्थ का निर्माण। रचना। (५) बनावट। (६) दे० "संगठन"।

संघट्ट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रचना। बनावट। गढ़न। (२) संघर्ष।

संघट्ट चक्र–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में युद्ध-फल विचारने का नक्षत्रों का एक चक्र।

विशेष—इस चक्र के द्वारा यह जाना जाता है कि युद्ध में जीत होगी या हार। यदि युद्धार्थ प्रस्थान करनेवाले का जन्म नक्षत्र इस चक्र में शुभ होता है, तो वह युद्ध में विजय लाभ करता है; और यदि अशुभ होता है, तो पराजय। स्वरोदय में इस चक्र का विवरण इस प्रकार दिया है। एक त्रिकोण चक्र बनाकर उस चक्र में टेढ़ी रेखाएँ खींचकर उसमें अश्विनी आदि २७ नक्षत्र अंकित करने चाहिएँ। नौ नक्षत्रों का एक साथ वेध होता है। वेध क्रम इस प्रकार होता है। अश्विनी को रेवती के साथ, चित्रा नक्षत्र का श्लेषा और मूल के साथ, और ज्येष्ठा का मूल के साथ वेध होता है। यदि राजा का जन्म नक्षत्र इस चक्र वेध में न हो, या सौम्य ग्रह सहित वेध हो, तो उस समय युद्ध नहीं होगा। यदि क्रूर नक्षत्र के साथ वेध हो, तो उस समय भीषण युद्ध होगा। सौम्य, स्वामी, मित्रामित्र आदि ग्रहगणों से युक्त

तथा अतिचार प्रभृति गति द्वारा भी शुभाशुभ का निर्णय होता है।

संघट्टन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बनावट। रचना। गठन। (२) मिलन। संयोग। (३) घटना। (४) दे० "संघटन"।

संघट्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लता। वल्ली। बेल।

संघट्टित—वि० [सं०] (१) एकत्र किया हुआ। (२) गठित। निर्मित। बना हुआ। रचित। (३) चलाया हुआ। चालित। (४) अर्पित।

संघपति—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी संघ या समूह का प्रधान हो। दलपति। नायक।

संघपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धातकी। धव। धौ।

सँघराना‡—क्रि० स० [हिं० संग ?] दुखी या उदासीन गौ को, उसका दूध दूहने के लिये, परचाना और फुसलाना।

विशेष—जब बच्चा देने के उपरांत गौ उस बच्चे को नहीं चाटती या दूध नहीं पिलाती, तब उस बच्चे के शरीर पर जीरा आदि लगा देते हैं जिसकी लिज्जत के कारण वह उसे चाटने और दूध पिलाने लगती है। इसी प्रकार जब बच्चा मर जाता है और गौ दूध नहीं देती, तब कुछ लोग उसके बछड़े की खाल में भूसा भरकर उसे गौ के सामने खड़ा कर देते हैं, जिसे देखकर वह दूध दूहने देती है। गौ के साथ इसी प्रकार की क्रियाएँ करने को "सँघराना" कहते हैं।

संघर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक चीज का दूसरी चीज के साथ रगड़ खाना। संघर्षण। रगड़। घिस्सा। (२) दो विरोधी व्यक्तियों या दलों आदि में स्वार्थ के विरोध के कारण होनेवाली प्रतियोगिता या स्पर्धा। (३) वह अहंकार-सूचक वाक्य जो अपने प्रतिपक्षी के सामने अपना बड़प्पन जतलाने के लिये कहा जाय। (४) किसी चीज को घोटने या रगड़ने की क्रिया। रगड़ना। घिसना। (५) धीरे धीरे चलना। टहलना। (६) शर्त लगाना। बाजी लगाना।

संघर्षण—संज्ञा पुं० दे० "संघर्ष"।

संघर्षी—संज्ञा पुं० [सं० संघर्षिन्] (१) वह जो किसी प्रकार का संघर्ष करता हो। (२) वह जो किसी के साथ प्रतियोगिता करता हो। प्रतिस्पर्धा करनेवाला। (३) रगड़ने या घिसनेवाला।

संघवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] साथ कार्य्य करने के निमित्त एकत्र होने या सम्मिलित होने की क्रिया। सहयोग।

संघाट—संज्ञा पुं० [सं०] दल, समूह या संघ आदि में रहनेवाला। वह जो दल बाँधकर रहता हो।

संघाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्रियों का प्राचीन काल का एक प्रकार का पहनावा। (२) वह स्त्री जो प्रेमी प्रेमिका को मिलावे। दूती। कुट्टिनी। कुटनी। (३) युग्म। जोड़ा। (४) सिंघाड़ा। (५) कुंभी।

संघाटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध भिक्षुओं के पहनने का एक प्रकार का वस्त्र।

संघाणक—संज्ञा पुं० [सं०] श्लेष्मा। कफ।

संघात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जमाव। समूह। समष्टि। (२) आघात। चोट। (३) हत्या। वध। (४) इक्कीस नरकों में से एक नरक का नाम। (५) कफ। (६) नाटक में एक प्रकार की गति। (७) शरीर। उ०—सो कांचन गोचर सुखदाता। देखत चरण तजहु संघाता।—स्वामी रामकृष्ण। (८) निवास-स्थान। संवास। उ०—हो मुख राते सत्य के बाता। जहाँ सत्य तहँ धर्म संघाता।—जायसी।

वि० सघन। निबिड़। घना।

संघातक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घात करनेवाला। प्राण लेनेवाला। (२) वह जो बरबाद करता हो। नष्ट करनेवाला।

संघातचारी—संज्ञा पुं० [सं० संघातचारिन्] वह जो अपने वर्ग के और प्राणियों या लोगों के साथ मिलकर, या उनका संघ बनाकर रहता हो।

संघातपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शतपुष्पा। सोआ। (२) सौंफ। मिश्रेया।

संघातबलप्रवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का आधिभौतिक और आगंतुक रोग।

संघाती—संज्ञा पुं० [सं० संघ, हिं० संग + आती (प्रत्य०)] (१) साथी। सहचर। (२) मित्र।

संज्ञा पुं० [सं० संघात] संघातक। प्राणनाशक।

संघार⊛†—संज्ञा पुं० दे० "संहार"।

संघारना⊛—क्रि० स० [सं० संहार] (१) संहार करना। नाश करना। (२) मार डालना। हत्या करना। उ०—तहँ निषाद इक क्रौंच सँघार्‌यो। किय विलाप ताकी तिय भार्‌यो।—पद्माकर।

संघाराम—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध भिक्षुओं तथा श्रमणों आदि के रहने का मठ। विहार।

संघावघोष—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध मत के अनुसार एक प्रकार का पाप।

सँघेरना‡—क्रि० स० [हिं० सँघेरा या संग + घेरना] रस्सी से दो गौओं में से एक का दाहिना और दूसरी का बायाँ पैर एक में, इसलिये बाँधना कि जिसमें वे चरने के समय जंगल में बहुत दूर न निकल जायँ।

सँघेरा‡—संज्ञा पुं० [हिं० संग + घेरना] वह रस्सी जिससे दो गौओं का एक एक पैर इसलिये एक साथ बाँध दिया जाता है जिसमें वे जंगल में चरती चरती बहुत दूर न निकल जायँ।

संघेला†—संज्ञा पुं० [सं० संग] (१) साथी। सहचर। संगी। (२) मित्र। दोस्त।

संघोष—संज्ञा पुं० [सं०] जोर का शब्द। घोष।

संच ⊛†–संज्ञा पुं० [सं० संचय] (१) संग्रह करने की क्रिया। संचय। एकत्रीकरण। (२) रक्षा। देखभाल। उ०—जननि जनक ते अधिक गाधि सुत करिहैं संच तिहारो। कौशिक शासन सकल शीश धरि सिगरो काज सिधारो।—रघुराज। संज्ञा पुं० [सं०] लिखने की स्याही।

संचकर ⊛–संज्ञा पुं० [सं० संचय+कर] (१) संचय करनेवाला। (२) कृपण। कंजूस।

संचना ⊛†–क्रि० स० [सं० संचयन] (१) एकत्र करना। संग्रह करना। संचय करना। उ०—निरधन के धन अहैं स्याम अरु स्यामा दोऊ। सुकवि तिनहिं हम गह्यो और को संचहु कोऊ।—अंबिकादत्त। (२) रक्षा करना। देख भाल करना।

संचय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राशि। समूह। ढेर। (२) एकत्र या संग्रह करने की क्रिया। एकत्रीकरण। संकलन। जमा करना। (३) अधिकता। ज्यादती। बहुतायत।

संचयन–संज्ञा पुं० [सं०] संचय करने की क्रिया। एकत्र या संग्रह करने की क्रिया। जमा करना।

संचयिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो संचय करता हो। एकत्र करनेवाला। जमा करनेवाला।

संचयी–संज्ञा पुं० [सं० संचयिन्] (१) संचय करनेवाला। जमा करनेवाला। (२) कृपण। कंजूस।

संचर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गमन। चलना। (२) सेतु। पुल। (३) जल के निकलने का मार्ग। (४) मार्ग। पथ। रास्ता। (५) स्थान। जगह। (६) देह। शरीर। (७) साथी। सहायक।

संचरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संचार करने की क्रिया। चलना। गमन। (२) प्रसारण। फैलाना। (३) काँपना।

संचरना ⊛†–क्रि० प्र० [सं० संचरण] (१) घूमना। फिरना। चलना। उ०—ठावहिं ठाँव लीन्ह सब बाँटी। रहा न बीच जो सँचरै चाँटी।—जायसी। (२) फैलना। प्रसारित होना। उ०—सरद चाँदनी संचरत चहुँ दिसि आनि। बिधुहिं जोरि कर बिनवति कुल गुरु जानि।—तुलसी। (३) चल निकलना। व्यवहृत होना। प्रचलित होना।

संचल–संज्ञा पुं० [सं०] सौवर्चल लवण। साँचर नमक।

संचलन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिलना डोलना। (२) चलना फिरना। (३) काँपना।

संचलनाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं०] धमनी। रग। नस।

संचान–संज्ञा पुं० [सं०] श्येन नामक पक्षी। बाज़। शिकरा।

संचाय्य–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

संचार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गमन। चलना। (२) फैलने या विस्तृत होने की क्रिया। (३) कष्ट। विपत्ति। (४) मार्ग प्रदर्शन। रास्ता दिखलाने की क्रिया। (५) चलाने की क्रिया। (६) साँप की मणि। (७) देश। (८) ग्रहों या नक्षत्रों का एक राशि से दूसरी राशि में जाना।

विशेष—ज्योतिष के अनुसार संचार समय में चंद्र जिस रूप का होता है, उसी प्रकार का फल भी होता है। यदि चंद्र शुद्ध होता है, तो साथ में जिस ग्रह का शुभ भाव होता है, उस ग्रह के शुभ फल की वृद्धि होती है। यदि संचार काल में बिंदु शुद्ध नहीं होता, तो शुभ भाववाले शुभ ग्रह के शुभ फल में न्यूनता होती है। यदि कोई अशुभ ग्रह शुद्ध चंद्र के साथ होता है, तो अशुभ फल की कमी होती है। फलित ज्योतिष में संचार के संबंध में इसी प्रकार की और भी बहुत सी बातें दी हुई हैं।

(९) उत्तेजन। (१०) रति-मंदिर की अवधि।

संचारक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संचार करनेवाला। फैलानेवाला। (२) चलानेवाला। (३) दलपति। नायक। नेता।

संचारना ⊛†–क्रि० स० [सं० संचारण] (१) संचार का सकर्मक रूप। किसी वस्तु का संचार करना। (२) प्रचार करना। व्यवहार में प्रयुक्त करना। फैलाना।

संचारिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दूती। कुट्टनी। कुटनी। (२) नाक। नासिका। (३) युग्म। जोड़ा।

संचारिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंसपदी नाम की लता। (२) लाल लजालू।

संचारित–वि० [सं०] जिसका संचार किया गया हो। चलाया या फैलाया हुआ।

संचारी–संज्ञा पुं० [सं० संचारिन्] (१) धूप नामक गंध द्रव्य। (२) वायु। हवा। (३) साहित्य में वे भाव जो रस के उपयोगी होकर, जल की तरंगों की भाँति, उनमें संचरण करते हैं। ऐसे भाव मुख्य भाव की पुष्टि करते हैं और समय समय पर मुख्य भाव का रूप धारण कर लेते हैं। स्थायी भावों की भाँति ये रस-सिद्धि तक स्थिर नहीं रहते, बल्कि अत्यंत चंचलतापूर्वक सब रसों में संचरित होते रहते हैं। इन्हीं को व्यभिचारी भाव भी कहते हैं। साहित्य में नीचे लिखे ३३ संचारी भाव गिनाए गए हैं—निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, श्रम, मद, धृति, आलस्य, विषाद, मति, चिंता, मोह, स्वप्न, विबोध, स्मृति, आमर्ष, गर्व, उत्सुकता, अवहित्थ, दीनता, हर्ष, व्रीड़ा, उग्रता, निद्रा, व्याधि, मरण, अपस्मार, आवेग, त्रास, उन्माद, जड़ता, चपलता और वितर्क। (४) संगीत शास्त्र के अनुसार किसी गीत के चार चरणों में से तीसरा चरण। (५) आगन्तुक।

वि० संचरण करनेवाला। गतिशील।

संचाल–संज्ञा पुं० [सं० संचलन] (१) कंपन। काँपना। (२) चलन। चलना।

संचालक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो संचालन करता हो। चलाने या गति देनेवाला। परिचालक।

संचालन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चलाने की क्रिया। परिचालन। (२) काम जारी रखना या चलाना। प्रतिपादन। (३) नियंत्रण। (४) देख रेख।

संचाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंजा। घुँघची।

संचित-वि० [सं०] (१) संचय किया हुआ। जमा किया हुआ। एकत्र किया हुआ। (२) ढेर लगाया हुआ।

संचिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वनस्पति।

संचिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पर एक रखना। तही लगाना।

संचित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूषाकर्णी। मूसाकानी।

संचोदक-संज्ञा पुं० [सं०] ललित विस्तार के अनुसार एक देवपुत्र का नाम।

संछर्दन-संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण में एक प्रकार का मोक्ष। राहु यदि ग्राह्य मंडल में पूर्व भाग से ग्रसना आरंभ करके फिर पूर्व दिशा को ही चला जावे, तो उसको संछर्दन मोक्ष कहते हैं। फलित ज्योतिष के अनुसार इससे संसार का मंगल और धान्य की वृद्धि होती है।

संज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव का एक नाम। (२) ब्रह्मा का एक नाम।

संजन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँधने की क्रिया। (२) बंधन। (३) बिखरे हुए अंगों आदि को मिलाकर एक करना। संग्रहन।

संजनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैदिक काल का एक प्रकार का अस्त्र जिससे वध या हत्या की जाती थी।

संजम-संज्ञा पुं० दे० "संयम"

संजमनी-संज्ञा स्त्री० [सं० संयमनी] यमराज की नगरी। (डिं०)

संजमनीपति-संज्ञा पुं० [सं० यमनीपति] यमराज। यमदेव। (डिं०)

संजमी-संज्ञा पुं० [सं० संयमी] (१) नियम से रहनेवाला। संयमी। (२) यती। (३) जितेंद्रिय।

संजय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धृतराष्ट्र का मंत्री जो महाभारत के युद्ध के समय धृतराष्ट्र को उस युद्ध का विवरण सुनाता था। कहते हैं कि इसे दिव्य दृष्टि प्राप्त थी; अतः यह हस्तिनापुर में बैठा हुआ कुरुक्षेत्र में होनेवाली सारी घटनाएँ देखता था और उनका वर्णन अंधे धृतराष्ट्र को सुनाता था। (२) सुपार्श्व का पुत्र। (३) राजन्य के पुत्र का नाम। (४) ब्रह्मा। (५) शिव।

संजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बकरी।

संजात-वि० [सं०] (१) उत्पन्न। (२) प्राप्त।

संज्ञा पुं० पुराणानुसार एक जाति का नाम।

संजाफ-संज्ञा स्त्री० [फा० संजफ या संजाफ] (१) झालर। किनारा। कोर। (२) चौड़ी और आड़ी गोट जो प्रायः रजाइयों और लिहाफों आदि के किनारे किनारे लगाई जाती है। गोट। मगजी।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का घोड़ा जिसका रंग या तो आधा लाल, आधा सफेद होता है या आधा लाल, आधा हरा।

संजाफी-वि० [हिं० संजाफ] जिसमें संजाफ लगी हो। किनारेदार। झालरदार।

संज्ञा पुं० वह घोड़ा जिसका रंग संजाफी हो। आधा लाल आधा हरा घोड़ा।

संजाब-संज्ञा पुं० [फा० संजाफ] (१) एक प्रकार का घोड़ा। वि० दे० "संजाफ"। उ०—पच कल्यान सँजाब बखानी। महि सायर सब चुन चुन आनी।—जायसी। (२) एक प्रकार का चमड़ा।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] चूहे के आकार का एक जंतु जो प्रायः तुर्किस्तान में होता है। इसका मांस वक्षस्थल की पीड़ा, कास और व्रण के लिये उपकारक माना जाता है। इसकी खाल पर बहुत मुलायम रोएँ होते हैं, और उससे पोस्तीन बनाते हैं।

संजीदगी-संज्ञा स्त्री० [फा०] विचार या व्यवहार आदि की गंभीरता।

संजीदा-वि० [फा०] (१) जिसके व्यवहार या विचारों में गंभीरता हो। गंभीर। शांत। (२) समझदार। बुद्धिमान्।

संजीव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मरे हुए को फिर से जिलाना। पुनः जीवन देना। (२) वह जो मरे हुए को जिलावे। फिर से जीवन-दान करनेवाला। (३) बौद्धों के अनुसार एक नरक का नाम।

संजीवक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो मरे हुए को जीवन दान देता हो। मुरदे को जिलानेवाला।

संजीवकरणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की विद्या जिसके प्रभाव से मृत मनुष्य जीवित हो जाता है। महाभारत में लिखा है कि शुक्राचार्य्य यह विद्या जानते थे। (२) एक प्रकार की कल्पित ओषधि जिसके सेवन से मृत व्यक्ति जीवित होना माना जाता है।

संजीवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भली भाँति जीवन व्यतीत करने की क्रिया। (२) जीवन देनेवाला। जिलानेवाला। (३) मनु के अनुसार इक्कीस नरकों में से एक नरक का नाम।

संजीवनी-वि० स्त्री० [सं०] जीवन-प्रदायिनी। जीवन देनेवाली।

संज्ञा स्त्री० (१) एक प्रकार की कल्पित ओषधि। कहते हैं कि इसके सेवन से मरा हुआ मनुष्य जी उठता है। (२) वैद्यक के अनुसार एक औषध का नाम। इसके लिये पहले वायविडंग, सोंठ, पिप्पली, हड़ का छिलका, आँवला, बहेड़ा, बच, गिलोय, भिलावाँ, संशोधित सिंगी मोहरा इन सबके चूर्ण

को एक दिन गोमूत्र में खरल करके एक रत्ती की गोलियाँ बनाते हैं। कहते हैं कि इसकी एक गोली अदरक के रस के साथ खिलाने से अजीर्ण, दो गोलियाँ खिलाने से विसूचिका, तीन गोलियाँ खिलाने से सर्पविष और चार गोलियाँ खिलाने से सन्निपात नष्ट होता है।

संजीवनी विद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की कल्पित विद्या। कहते हैं कि इस विद्या के द्वारा मरे हुए व्यक्ति को जिलाया जा सकता है। महाभारत में लिखा है कि दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य यह विद्या जानते थे; और इसी के द्वारा वे उन दैत्यों को फिर से जिला देते थे जो देवताओं के साथ युद्ध करने में मारे जाते थे। देवताओं के कहने से बृहस्पति के पुत्र कच यह विद्या सीखने के लिये शुक्राचार्य के पास जाकर रहने लगे; और अनेक कठिनाइयाँ सहने के उपरांत अंत में उनसे यह विद्या सीखकर आए।

संजीवी—संज्ञा पुं० [सं० संजीविन्] वह जो मृतकों को जीवनदान देता हो। मुरदों को जिलानेवाला।

संजुक्त—वि० दे० "संयुक्त"।

संजुग॥—संज्ञा पुं० [सं० संयुग] संग्राम। युद्ध। लड़ाई।

संजुता—संज्ञा स्त्री० [सं० संयुता] एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में स, ज, ज, ग होते हैं। इसे "संयुत" या "संयुता" भी कहते हैं।

सँजोइ॥—क्रि० वि० [सं० संयोग] साथ में। संग में। उ०—घरी तीसरी दूसरे पहर गहर जनि होइ। भामिनि भोजन करत को अँचवति सखी सँजोइ।—देव।

सँजोइल॥—वि० [सं० सज्जित, हिं० सँजोना] (१) अच्छी तरह सजाया हुआ। सुसज्जित। उ०—सूर सँजोइल साजि सुबाजि, सुसेल धरे बगमेल चले हैं। भारी भुजा भरी, भारी सरीर, बली बिजयी सब भाँति भले हैं।—तुलसी। (२) एक स्थान पर जमा किया हुआ। एकत्र।

संजोग—संज्ञा पुं० दे० "संयोग"। उ०—जर सँजोग मोहि मेरवहु कलस जात हौं मानि। जा दिन हृच्छा पूजै बेगि चढ़ाऊँ आनि।—जायसी।

संजोगिनी॥—संज्ञा स्त्री० [सं० संयोगिनी] वह स्त्री जो अपने पति या प्रेमी के पास अथवा साथ हो। संयोगिनी। वियोगिनी का विपरीत।

संजोगी—संज्ञा पुं० [सं० संयोगिन्] (१) संयुक्त। मिले हुए। (२) भार्या सहित। प्रिया सहित। वि० दे० "संयोगी"। (३) दो जुड़े हुए पिंजड़े जो बहुधा तीतर पालनेवाले रखते हैं।

सँजोना—क्रि० स० [सं० सज्जा] सज्जित करना। अलंकृत करना। सजाना। उ०—(क) कुल हमरे में होइ बातें पाछे कौन जो। विधिवत कथ्य संजोइ निज हमें अर्पित करो।—लक्ष्मणसिंह। (ख) हे प्रियंवदा, तू जो पीरों पर पड़कर जैसे बने इसे मना रहा तब तक मैं अर्घ जल सँजोती हूँ।—लक्ष्मणसिंह।

सँजोवन—संज्ञा पुं० [हिं० सँजोना] सज्जित करने की क्रिया। सजाने का व्यापार।

सँजोवल॥—वि० [हिं० सँजोना] (१) सुसज्जित। (२) सेना सहित। उ०—होहि सँजोवल कुँवर जो भोगी। सब दर छेंकि धरहिं अब योगी।—जायसी। (३) सावधान। होशियार।

सँजोवा—संज्ञा पुं० [हिं० सँजोना] (१) सजावट। शृंगार। (२) जमाव। जमघट।

सँजोहा—संज्ञा पुं० [सं० संयोग] लकड़ी का वह चौखटा जो जुलाहे कपड़ा बुनते समय छत से लटका देते हैं और जिसमें नाल या कंघी लगी रहती है। ढरकी फेंकते समय इसे आगे बढ़ा देते हैं और उसके पश्चात् इसे खींचकर बाने को कसते हैं। इसे 'हत्था' भी कहते हैं।

संज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सब बातें अच्छी तरह जानता हो। वह जो सब विषयों का अच्छा जानकार हो। (२) पीतकाष्ठ। पीतकाठ।

संज्ञक—वि० [सं०] संज्ञावाला। जिसकी संज्ञा हो। (इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक बनाने में शब्द के अंत में होता है।)

संज्ञपन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार डालने की क्रिया। हत्या। (२) कोई बात लोगों पर प्रकट करने की क्रिया। विज्ञापन।

संज्ञप्ति—संज्ञा स्त्री० दे० "संज्ञपन"।

संज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चेतना। होश। (२) बुद्धि। अक्ल। (३) ज्ञान। (४) किसी पदार्थ आदि का बोधक शब्द। नाम। आख्या। (५) व्याकरण में वह विकारी शब्द जिससे किसी यथार्थ या कल्पित वस्तु का बोध होता है। जैसे,—मकान, नदी, घोड़ा, राम कृष्ण, खेल, नाटक आदि। (६) हाथ, आँख या सिर आदि हिलाकर कोई भाव प्रकट करना। संकेत। इशारा। (७) गायत्री। (८) सूर्य की पत्नी का नाम जो विश्वकर्मा की कन्या थी। मार्कंडेय पुराण के अनुसार यम और यमुना का जन्म इसी के गर्भ से हुआ था। वि० दे० "छाया" (७)।

संज्ञाकरण रस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार चेतना लानेवाली एक औषध का नाम।

विशेष—इस औषध में शुद्ध सिंगीमुहरा, सेंधा नमक, काली मिर्च, रुद्राक्ष, कटाली, कायफल, महुआ और समुद्र फल आदि पड़ते हैं। इनकी मात्रा बराबर होती है। कहते हैं कि इसके सेवन से मनुष्य का सन्निपात रोग दूर होता है।

संज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] संकेत। इशारा।

संज्ञापन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूसरों पर कोई बात प्रकट करना। विज्ञापन। (२) कथन।

संज्ञापुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पुत्री यमुना का एक नाम।

उ०—संझापुत्री स्फुरच्छाया चंद्रावलि मंडलेश्वरा। तापे कारनी नयनी चंद्रकांतिका स्फूता।—गिरिधरदास।

संझासुत–संज्ञा पुं० [सं०] शनि का एक नाम।

संज्ञाहीन–वि० [सं०] जिसे संज्ञा या चेतना न हो। चेतना-रहित। बेहोश। बेसुध।

संज्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत तीव्र ज्वर। बहुत तेज बुखार। (२) किसी प्रकार का बहुत अधिक ताप। बहुत तेज गरमी। (३) क्रोध आदि का बहुत अधिक आवेग।

संझला†–वि० [सं० संध्या, प्रा० संझा + ला (प्रत्य०)] संध्या संबंधी। संध्या का। उ०—पढ़ैनो दिन भरि पिछान औ सँझली वृत भरिगो।—सरस्वती।

सँझवाती–संज्ञा स्त्री० [सं० संध्या + बत्ती] (१) संध्या के समय जलाया जानेवाला दीपक। शाम का चिराग। उ०—चंद्रेस चकई मिलाने सर फूलें ऐसें चिररीन काल है सुदेह कहियत है। वार्ता सँझवाती घनसार और चंदन सो वारि लीजियत न अनंग चहियत है।—हदेवराम। (२) वह गीत जो संध्या समय गाया जाता है। प्रायः यह विवाह के अवसर पर होता है।

वि० संध्या संबंधी। संध्या का।

संझा†–संज्ञा स्त्री० [सं० संध्या] सूर्यास्त का समय। संध्या। शाम। उ०—संग के सकल अंग अचल उछाह अंग ओज बिन सूखत सरोज बन संझा सी।—देव।

सँझिया, सँझैया†–संज्ञा पुं० [सं० संध्या] वह भोजन जो संध्या समय किया जाता है। रात्रि का भोजन।

सँझोखेॐ–संज्ञा स्त्री० [सं० संध्या] संध्या का समय। शाम का वक्त। उ०—गोप अथाइनि ते उठे गोरज छाई गैल। चलि बलि अलि अभिसारिके भली सँझोखे सैल।—बिहारी।

सँठ–संज्ञा पुं० [सं० शांत] शांति। निस्तब्धता। खामोशी।

मुहा०—सँठ मारना = चुप्पी साधना। चुप रहना। कुछ न बोलना। न बोलना।

संज्ञा पुं० [सं० शठ] (१) शठ। धूर्त। (२) नीच। वाहियात।

संड–संज्ञा पुं० [सं० शंड] साँड़।

यौ०—संडमुसंड।

संड मुसंड–वि० [सं० शंड, हिं० संड + मुसंड अनु०] हट्टा कट्टा। मोटा ताजा। बहुत मोटा।

सँड़सा–संज्ञा पुं० [सं० संदंश] [स्त्री० अल्पा० सँड़सी] लोहे का एक औजार जो दो छड़ों से बनता है। इनके एक सिरे पर थोड़ा सा छोड़कर दोनों छड़ों को आपस में कील से जड़ देते हैं। प्रायः इसे लोहार गरम लोहा आदि पकड़ने के लिये रखते हैं। गहुआ। जँबूरा।

सँड़सी–संज्ञा स्त्री० [सं० संदंश] पतले छड़ों का एक प्रकार का सँड़सा जिसके दोनों छड़ों का अगला भाग अर्ध वृत्ताकार मुड़ा हुआ होता है। इससे पकड़कर प्रायः चूल्हे पर से गरम बटुली आदि गोल मुँहवाले बरतन उतारते हैं। जँबूरी।

संडा–वि० [सं० शंड] मोटा ताजा। हृष्ट पुष्ट।

संज्ञा पुं० मोटा और बलवान् मनुष्य।

यौ०—संडा मुसंडा।

संड़ाई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० साँड़] मशक की तरह बना हुआ भैंस आदि का वह हवा भरा हुआ चमड़ा जिसे नदी आदि पार करने के लिये नाव के स्थान पर काम में लाते हैं।

संडास–संज्ञा पुं० [?] (१) कूएँ की तरह का एक प्रकार का गहरा पाखाना। शौच-कूप।

विशेष—यह जमीन के नीचे खोदा हुआ एक प्रकार का गहरा गड्ढा होता है जिसका ऊपरी भाग ढँका रहता है। केवल एक छिद्र बना रहता है जिस पर बैठकर मल त्याग करते हैं। मल उसी में जमा होता जाता है। अधिक दुर्गंध होने पर उसमें खारी नमक आदि कुछ ऐसी चीजें छोड़ते हैं जिनमें मल गलकर मिट्टी हो जाता है। इसका प्रचार अधिकतर ऐसे नगरों में है, जिनमें नल नहीं होता और नित्य मल बाहर फेंकने में कठिनता होती है। पर जब से नल का प्रचार हुआ, तब से इस प्रकार के पाखाने बंद होने लगे हैं।

(२) इसी से मिलता जुलता वह पाखाना जिसका आकार ऊँचे खड़े नल का सा होता है और जिसका नीचे का भाग पृथ्वी तल पर होता है। इसमें मकान से बाहर की ओर एक खिड़की रहती है जिसमें से मेहतर आकर मल उठा ले जाता है।

संत–संज्ञा पुं० [सं० सत्] (१) साधु, संन्यासी, विरक्त या त्यागी पुरुष। महात्मा। उ०—या जग जीवन को है यहै फल जो छल छाँड़ि भजै रघुराई। सोधि के संत महंतनहूँ पद्माकर बात यहै ठहराई।—पद्माकर। (२) हरिभक्त। ईश्वर का भक्त। धार्मिक पुरुष। (३) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में २१ मात्राएँ होती हैं।

संतत–अव्य० [सं०] सदा। निरंतर। बराबर। लगातार।

ॐ† संज्ञा स्त्री० दे० "संतति"।

संतत ज्वर–संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो आठों पहर रहे। सदा बना रहनेवाला ज्वर।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यदि ऐसा ज्वर वायु की प्रबलता के कारण होता है तो लगातार सात दिनों तक, यदि पित्त की प्रबलता के कारण हो तो दस दिनों तक रहता है। इसकी गणना विषम ज्वर में की जाती है।

संतति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बाल बच्चे। संतान। औलाद। (२) प्रजा। रिआया। (३) गोत्र। (४) विस्तार। प्रसार। फैलाव। समूह। (५) दल। झुंड। (६) किसी बात का

लगातार होता रहना। (७) मार्कंडेयपुराण के अनुसार ऋतु की पत्नी का नाम जो दक्ष की कन्या थी।

संततिपथ–संज्ञा पुं० [सं०] योनि जिसके मार्ग से संतान उत्पन्न होती है। स्त्री की जननेंद्रिय। भग।

संततिहोम–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल का एक प्रकार का यज्ञ जो संतान की कामना से किया जाता था।

संततेयु–संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार रौद्राश्व के एक पुत्र का नाम।

संतनु–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार राधा के साथ रहनेवाले एक बालक का नाम।

संतपन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह तपने की क्रिया। (२) बहुत अधिक संताप या दुःख देना।

संतप्त–वि० [सं०] (१) बहुत अधिक तपा हुआ। जला हुआ। दग्ध। (२) जिसे बहुत अधिक संताप हो। दुःखी। पीड़ित। (३) विमनस। मलीन मन। (४) बहुत थका हुआ। श्रांत।

संतमस्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंधकार। तम। अँधेरा। (२) मोह।

संतरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह से तरने या पार होने की क्रिया। (२) तारनेवाला। तारक। (३) नष्ट करनेवाला। नाशक।

संतरा–संज्ञा पुं० [पुर्त्त० संगतरा] एक प्रकार का बड़ा और मीठा नीबू। बड़ी नारंगी। वि० दे० "संगतरा"।

संतरी–संज्ञा पुं० [अं० सेंटरी] (१) किसी स्थान पर पहरा देनेवाला सिपाही। पहरेदार। उ०—जब पहरा तिनके ह्वै गयो। द्वितिय संतरी आवत भयो।—रघुराज। (२) द्वार पर खड़ा होकर पहरा देनेवाला। द्वारपाल। दौवारिक।

संतर्जन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) डाँट डपट करना। डराना धमकाना। (२) कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

संतर्दन–संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार राजा धृष्टकेतु के एक पुत्र का नाम।

संतर्पण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो भली भाँति तृप्ति करता हो। (२) अच्छी तरह तृप्त करना। (३) एक प्रकार का चूर्ण जिसमें दाख, अनार, खजूर, केला, शक्कर, लाजा (लाई) का चूर्ण, मधु और घृत पड़ता है।

संतस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] संतों के रहने का स्थान। साधुओं का निवासस्थान। मठ।

संतान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बालबच्चे। लड़के बाले। संतति। औलाद। (२) कल्प वृक्ष। देवतरु। (३) वंश। कुल। (४) विस्तार। फैलाव। (५) वह प्रवाह जो अविच्छिन्न रूप से चलता हो। धारा। (६) प्रबंध। इंतजाम। (७) महाभारत के अनुसार प्राचीन काल के एक प्रकार के अस्त्र का नाम।

संतानक–वि० [सं०] जो दूर तक व्याप्त हो। फैला हुआ। विस्तृत।

संज्ञा पुं० (१) कल्प वृक्ष। देवतरु। (२) पुराणानुसार एक लोक जो ब्रह्मलोक से परे कहा गया है।

संतान गणपति–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार के गणपति का नाम।

संतानिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) क्षीर सागर। (२) चाकू का फल। (३) फेन। (४) साढ़ी। मलाई। (५) मर्कटजाल नाम की घास।

संताप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि या धूप आदि का ताप। जलन। आँच। (२) दुःख। कष्ट। व्यथा। ग्लानि। (३) मानसिक कष्ट। मनोव्यथा। (४) ज्वर। (५) शत्रु। दुश्मन। (६) दाह नाम का रोग। वि० दे० "दाह"।

संतापन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संताप देने की क्रिया। जलाना। (२) बहुत अधिक दुःख या कष्ट देना। (३) कामदेव के पाँच बाणों में से एक बाण का नाम। (४) पुराणानुसार एक प्रकार का अस्त्र जिसके प्रयोग से शत्रु को संताप होना माना जाता है।

वि० (१) ताप पहुँचानेवाला। जलानेवाला। (२) दुःख देनेवाला। कष्ट पहुँचानेवाला।

संतापना‡–क्रि० स० [सं० संतापन] संताप देना। दुःख देना। कष्ट पहुँचाना। सताना। उ०—जाको काम क्रोध नित व्यापै। अरु पुनि लोभ सदा संतापै। ताहि असाधु कहत कवि सोई। साधु भेष धरि साधु न होई।—सूर।

संतापित–वि० [सं०] जिसे बहुत संताप पहुँचाया गया हो। पीड़ित। संतप्त।

संतापी–संज्ञा पुं० [सं० संतापिन्] वह जो संतप्त करता हो। संताप देनेवाला। दुःखदायी।

संताप्य–वि० [सं०] (१) जलाने के योग्य। तपाने के योग्य। (२) कष्ट या दुःख देने के योग्य। तकलीफ देने के लायक।

संति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दान। (२) अवसान। अंत।

संती‡–अव्य० [सं० संति ?] बदले में। एवज में। स्थान में। उ०— उसने उसकी पसलियों में से एक पसली निकाली और उसकी संती मांस भर दिया।—दयानंद।

संतुषित–संज्ञा पुं० [सं०] ललित विस्तर के अनुसार एक देवपुत्र का नाम।

संतुष्ट–वि० [सं०] (१) जिसका संतोष हो गया हो। जिसकी तृप्ति हो गई हो। तृप्त। (२) जो मान गया हो। जो राजी हो गया हो। जैसे,—इन्हें किसी तरह समझा बुझाकर संतुष्ट कर लो; फिर सब काम हो जायगा।

संतोख–संज्ञा पुं० दे० "संतोष"।

संतोष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मन की वह वृत्ति या अवस्था

जिसमें मनुष्य अपनी वर्तमान दशा में ही पूर्ण सुख का अनुभव करता है; न तो किसी बात की कामना करता है और न किसी बात की शिकायत। हर हालत में प्रसन्न रहना। संतुष्टि। सब्र। कनाग्रत। उ०—गो-धन, गज-धन, बाजि-धन और रतन धन खान। जब आवत संतोष-धन सब धन धूरि समान।—तुलसी।

विशेष—हमारे यहाँ पातंजल दर्शन के अनुसार "संतोष" योग का एक अंग और उसके नियम के अंतर्गत है। इसकी उत्पत्ति सात्विक वृत्ति से मानी गई है; और कहा गया है कि इसके पैदा हो जाने पर मनुष्य को अनंत और अखंड सुख मिलता है। पुराणानुसार धर्मानुष्ठान से सदा प्रसन्न रहना और दुःख में भी आतुर न होना संतोष कहलाता है।

क्रि० प्र०—करना।—मानना।—रखना।—होना।

(२) मन की वह अवस्था जो किसी कामना या आवश्यकता की भली भाँति पूर्ति होने पर होती है। तृप्ति। शांति। इतमीनान। जैसे,—पहले मेरा संतोष करा दीजिए, तब मैं आपके साथ चलूँगा। (३) प्रसन्नता। सुख। हर्ष। आनंद। जैसे,—हमें यह जानकर बहुत संतोष हुआ कि अब आप किसी से बैमनस्य न करेंगे।

संतोषण—संज्ञा पुं० दे० "संतोष"।

संतोषणीय—वि० [सं०] संतोष करने के योग्य।

संतोषना⊛†—क्रि० स० [सं० संतोष + ना (प्रत्य०)] संतोष दिलाना। संतुष्ट करना। सर्वायत भरना। उ०—मेघनाद ब्रह्मा वर पायो। आहुति अगिनि जिवाइ संतोषी निकस्यो रथ बहु रतन बनायो। आयुध धरे समेत कवच सजि गाजि चढ्यो रण भूमिहि आयो। मनो मेघनायक ऋतु पावस बाण वृष्टि करि सैन खपायो।—सूर।

क्रि० प्र० संतुष्ट होना। प्रसन्न होना।

संतोषित—वि० [हिं० संतोष, सं० संतुष्ट] जिसका संतोष हो गया हो। संतुष्ट। उ०—नामदेव कह इतनहि लैहौं। इतने महँ संतोषित जैहौं।—रघुराज।

विशेष—यह रूप अशुद्ध है; शुद्ध रूप संतुष्ट है। पर 'संतोषित' शब्द का भी प्रयोग कहीं कहीं हिंदी कविता में पाया जाता है।

संतोषी—संज्ञा पुं० [सं० संतोषिन्] वह जो सदा संतोष रखता हो। जिसे बहुत लालसा न हो। सब्र करनेवाला। संतुष्ट रहनेवाला।

संतोष्य—वि० [सं०] संतोष करने के योग्य।

संत्प—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निदेव का एक नाम जो सब प्रकार के फल देनेवाले माने जाते हैं।

संत्री—संज्ञा पुं० दे० "संतरी"।

संथा—संज्ञा पुं० [सं० संहिता ?] एक बार में पढ़ाया हुआ अंश। पाठ। सबक। उ०—किसने कहा कि हम लोग धर्म के भँडेरिये हैं? हम लोग गाते बजाते नहीं थे, संथा घोखते थे।—दुर्गाप्रसाद मिश्र।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

संदंश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सँड़सी नाम का लोहे का औजार। (२) न्याय या तर्क के अनुसार अपने प्रतिपक्षी को दोनों ओर से उसी प्रकार जकड़ या बाँध देना जिस प्रकार सँड़सी से कोई बरतन पकड़ते हैं। (३) सुश्रुत के अनुसार सँड़सी के आकार का, प्राचीन काल का एक प्रकार का औजार जिसकी सहायता से शरीर में गड़ा हुआ काँटा आदि निकालते थे। कंकमुख।

संदंशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सँड़सी। (२) चिमटी। (३) कैंची।

संद†—संज्ञा पुं० [सं० संधि] दरार। छेद। बिल।

संज्ञा पुं० [सं० चंद्र] चंद्रमा। चंद्र। (डिं०)

संज्ञा पुं० [?] दयार। उ०—पौढ़ि लिए यशुमति पटुनंदहि। पीत झगुलिया की छबि छाजति बिज्जुलता सोहति मनो कंदहि। बाजपनि अग्रज अंबाते भाजयान सुत माला गंदहि। मनो सुरसह ते सुरगिरि कामा सौंते भावति ढुरि संदहि।—सूर।

संदर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रचना। बनावट। (२) प्रबंध। निबंध। लेख। (३) वह ग्रंथ जिसमें किसी और ग्रंथ के गूढ़ वाक्यों आदि का अर्थ या स्पष्टीकरण आदि हो। (४) कोई छोटी पुस्तक। (५) वह पुस्तक जिसमें अनेक प्रकार की बातों का संग्रह हो। (६) विस्तार। फैलाव।

संदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह देखने की क्रिया। अवलोकन। (२) परीक्षा। इम्तहान। जाँच। (३) ज्ञान। (४) आकृति। सूरत। शक्ल। (५) रामायण के अनुसार एक द्वीप का नाम।

संदल—संज्ञा पुं० [फ़ा०] श्रीखंड। चंदन। वि० दे० "चंदन"।

संदली—वि० [फ़ा० संदल] (१) संदल के रंग का। हलका पीला (रंग)। (२) संदल का। चंदन का। जैसे,—संदली कलमदान।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का हलका पीला रंग जो कपड़े को चंदन के बुरादे के साथ उबालने से आता है। इसमें कपड़े में सुगंधि भी आ जाती है। आजकल कई तरह की बुकनियों से भी यह रंग तैयार किया जाता है। (२) एक प्रकार का हाथी जिसे दाँत नहीं होते। (३) घोड़े की एक जाति।

संदान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक प्रकार की निहाई जिसका एक कोना नुकीला और दूसरा चौड़ा होता है। अहरन। घन। (२) रस्सी। डोरी। (३) बाँधने की सिकड़ी आदि। (४)

बाँधने की क्रिया। (५) हाथी का गंडस्थल जहाँ से उसका मद बहता है।

संदानिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गंध खैर। विट खदिर। बबुरी।

संदानिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गौओं के रहने का स्थान। गोशाला।

संदाव-संज्ञा पुं० [सं०] भागने की क्रिया। पलायन।

संदास-संज्ञा पुं० [?] सफेद डाभर धूप। मरहम। कहरुवा।

विशेष—इसका वृक्ष प्रायः पच्छिमी घाट में पाया जाता है। यह सदा हरा रहता है।

संदाह-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार मुख, तालू और होठों की जलन।

संदि-संज्ञा स्त्री० [सं० संधि] मेल। संधि। उ०—रूप सँवर संदि सों बहु आयुधो अनयास। पाइ पूरण रूप को रमि भूमि केशवदास।—केशव।

संदिग्ध-वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार का संदेह हो। संदेहपूर्ण। संशयजनक। मुश्तबह।

संज्ञा पुं० (१) उत्तराभास। मिथ्या उत्तर का एक लक्षण। (२) एक प्रकार का व्यंग्य जिसमें यह नहीं प्रकट होता कि वाचक या व्यंजक में व्यंग्य है।

संदिग्धत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संदिग्ध होने का भाव या धर्म। संदिग्धता। (२) अलंकार शास्त्रानुसार एक प्रकार का दोष जो उस समय माना जाता है जब कि किसी उक्ति का ठीक ठीक अर्थ प्रकट नहीं होता, अर्थके संबंध में कुछ संदेह बना रहता है।

संदिष्ट-वि० [सं०] कथित। कहा हुआ। बताया हुआ।

संज्ञा पुं० (१) वार्ता। बातचीत। (२) समाचार। खबर।

संदिष्टार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो एक का समाचार दूसरे तक पहुचाता हो। सँदेसा ले जानेवाला दूत। कासिद।

संदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शय्या। पलंग। खाट।

संदीपक-वि० [सं०] उद्दीपन करनेवाला। उद्दीपक।

संदीपन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उद्दीप्त करने की क्रिया। उद्दीपन। (२) कृष्ण के गुरु का नाम। (३) कामदेव के पाँच बाणों में से एक बाण का नाम।

वि० उद्दीपन करनेवाला। उत्तेजन करनेवाला।

संदीपनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में पंचम स्वर की चार श्रुतियों में से तीसरी श्रुति।

वि० संदीपन करनेवाली। उद्दीप्त करनेवाली।

संदीपित-वि० [सं० संदीप्त] (१) जिसका संदीपन किया गया हो। संदीप्त। उद्दीप्त। (२) जलाया हुआ। प्रज्वलित।

संदीप्य-संज्ञा पुं० [सं०] मयूरशिखा नामक वृक्ष।

वि० संदीपन करने के योग्य। संदीपनीय।

संदूक-संज्ञा पुं० [अ० संदूक] [अल्पा० संदूकचा] लकड़ी, लोहे, चमड़े आदि का बना हुआ चौकोर पिटारा जिसमें प्रायः कपड़े, गहने आदि चीज़ें रखते हैं। पेटी। बकस।

संदूकचा-संज्ञा पुं० [अ० संदूक+चः (प्रत्य०)] छोटा संदूक। छोटा बकस। छोटी पेटी।

संदूकड़ी-संज्ञा स्त्री० [अ० संदूक+ड़ी (प्रत्य०)] छोटा संदूक। छोटा बकस।

संदूख-संज्ञा पुं० दे० "संदूक"।

संदूर-संज्ञा पुं० दे० "सिंदूर"। उ०—नवल सिंगार बनाइत कीन्हा। सीस पसारहि संदुर दीन्हा।—जायसी।

संदेव-संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार देवक के एक पुत्र का नाम।

संदेवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वसुदेव की स्त्री और देवक की कन्या का नाम। इनका दूसरा नाम श्रीदेवा या सुदेवा भी है।

संदेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समाचार। हाल। खबर। संवाद। (२) एक प्रकार की बँगला मिठाई जो छेने और चीनी के योग से बनती है। (३) दे० "संदेसा"।

संदेशहर-संज्ञा पुं० [सं०] सँदेसा या समाचार ले जानेवाला। वार्त्तावह। दूत। कासिद।

संदेशा-संज्ञा पुं० दे० "संदेसा"।

संदेशी-संज्ञा पुं० [सं० संदेशिन्] संदेश लानेवाला। समाचारवाहक। वसीठ। दूत।

सँदेसा-संज्ञा पुं० [सं० संदेश] किसी के द्वारा जबानी कहलाया हुआ समाचार आदि। खबर। हाल।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।—पाना।—भेजना।—मिलना।

संदेह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह ज्ञान जो किसी पदार्थ को वास्तविकता के विषय में स्थिर न हो। किसी विषय में ठीक या निश्चित न होनेवाला मत या विश्वास। मन की वह अवस्था जिसमें यह निश्चय नहीं होता कि यह चीज ऐसी ही है या और किसी प्रकार की। अनिश्चयात्मक ज्ञान। संशय। शंका। शक।

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—मिटना।—मिटाना।—होना।

(२) एक प्रकार का अर्थालंकार। यह उस समय माना जाता है जब किसी चीज को देखकर संदेह बना रहता है, कुछ निश्चय नहीं होता। "भ्रांति" में और इसमें यह अंतर है कि भ्रांति में तो भ्रमवश किसी एक वस्तु का निश्चय हो भी जाता है, पर इसमें कुछ भी निश्चय नहीं होता। कविता में इस अलंकार के सूचक प्रायः धौं, किधौं आदि संदेह-वाचक शब्द आते हैं। उ०—(क) की तुम हरिदासन महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई। की तुम राम दीन अनुरागी। आए मोहि करन बड़भागी।—तुलसी। (ख)

सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है। कुछ आचार्यों ने इसके निश्चय गर्भ, निश्चयांत और शुद्ध ये तीन भेद भी माने हैं।

संदोल-संज्ञा पुं० [सं०] कान में पहनने का कर्णफूल नाम का गहना।

संदोह-संज्ञा पुं० [सं०] समूह। झुंड। उ०—जयति निर्भरानंद संदोह कपि केसरी सुअन भुवनैक भर्ता।—तुलसी।

संद्रभ-संज्ञा पुं० [सं०] गूँथने की क्रिया। गुंथन।

संद्राव-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध क्षेत्र से भागने की क्रिया। पलायन।

संधउ†-संज्ञा स्त्री० दे० "संधि"।

संधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्थिति। (२) प्रतिज्ञा। करार। (३) संधान। संधि। मिलन। (४) संध्या काल। साँझ। (५) अनुसंधान। तलाश।

संधाता-संज्ञा पुं० [सं० संधातृ] (१) शिव। (२) विष्णु।

संधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष पर बाण चढ़ाने की क्रिया। लक्ष्य करने का व्यापार। निशाना लगाना। (२) शराब बनाने का काम। (३) मदिरा। शराब। (४) संघट्टन। योजन। मिलाना। (५) अन्वेषण। खोज। (६) मुरदे को जिलाने की क्रिया। संजीवन। (७) सौराष्ट्र या काठियावाड़ का एक नाम। (८) संधि। (९) अच्छे स्वाद की चीज। (१०) काँजी।

संधानना†-क्रि० स० [सं० संधान+ना (प्रत्य०)] (१) धनुष चढ़ाना। धनुष पर बाण चढ़ाकर लक्ष्य करना। निशाना लगाना। (२) बाण छोड़ना। तीर चलाना। (३) किसी अस्त्र को प्रयोग करने के लिये ठीक करना।

संधाना-संज्ञा पुं० [सं० संधानिका] अचार। खटाई।

संधानिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का आम का अचार।

संधानिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गौओं के रहने का स्थान। गोशाला।

संधानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक में मिलने या मिश्रित होने की क्रिया। मिलन। (२) प्राप्ति। (३) बंधन। (४) अन्वेषण। तलाश। (५) पालन। (६) काँजी। (७) अचार। खटाई। (८) वह स्थान जहाँ खटाई की जाती है। (९) वह स्थान जहाँ मदिरा बनाई जाती है। (१०) दे० "संधान"।

संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दो चीजों का एक में मिलना। मेल। संयोग। (२) वह स्थान जहाँ दो चीजें एक में मिलती हों। मिलने की जगह। जोड़। (३) राजाओं या राज्यों आदि में होनेवाली वह प्रतिज्ञा जिसके अनुसार युद्ध बंद किया जाता है, मित्रता या व्यापार संबंध स्थापित किया जाता है, अथवा इसी प्रकार का और कोई काम होता है।

विशेष—पहले केवल दो योद्धा राज्यों में ही संधि हुआ करती थी; पर अब बिना युद्ध के ही मित्रता का बंधन दृढ़ करने, पारस्परिक व्यवसाय-वाणिज्य में सहायता देने और सुगमता उत्पन्न करने अथवा किसी दूसरे राज्य में राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति अथवा रक्षा के लिये भी संधि हुआ करती है। आजकल साधारणतः राज-प्रतिनिधि एक स्थान पर मिलकर संधि का मसौदा तैयार करते हैं; और तब वह मसौदा अपने अपने राज्य के प्रधान शासक अथवा राजा आदि के पास स्वीकृति के लिये भेजते हैं; और जब प्रधान शासक अथवा राजा उस पर स्वीकृति की छाप लगा देता है, तब वह संधि पूरी समझी जाती है और उसके अनुसार कार्य्य होता है। जिस पत्र पर संधि की शर्तें लिखी जाती हैं, उसे संधिपत्र कहते हैं। मनु भगवान् ने संधि को राजा के छः गुणों में से एक गुण बतलाया है। (शेष पाँच गुण ये हैं—विग्रह, दान, आसन, द्वैध और आश्रय।) हमारे यहाँ प्राचीन काल में किसी शत्रु राज्य पर आक्रमण करने के लिये भी दो राजा परस्पर मिलकर संधि किया करते थे। हितोपदेश में संधि सोलह प्रकार की कही गई है—कपाल, उपहार, संतान, संगत, उपन्यास, प्रतीकार, संयोग, पुरुषांतर, अदृष्टनर, आदिष्ट, आत्मादिष्ट, उपग्रह, परिक्रय, ततोच्छिन्न, परभूषण और स्कंधोपनेय। जब संधि करनेवालों में से कोई पक्ष उस संधि की शर्तों को तोड़ता या उनके विरुद्ध काम करता है, तो उसे संधि का भंग होना कहते हैं।

(४) सुलह। मित्रता। मैत्री। (५) शरीर में कोई वह स्थान जहाँ दो या अधिक हड्डियाँ आपस में मिलती हों। जोड़। गाँठ। जैसे,—कुहनी, घुटना, पोर आदि।

विशेष—वैद्यक के अनुसार ये संधियाँ दो प्रकार की हैं—चेष्टावान् और स्थिर। सुश्रुत के अनुसार सारे शरीर में सब मिलाकर २१० संधियाँ हैं।

(६) व्याकरण में वह विकार जो दो अक्षरों के पास पास आने के कारण उनके मेल से होता है।

विशेष—संधि हिंदी में नहीं होती, संस्कृत के जो सामासिक शब्द आते हैं, उन्हीं के निरूपण के लिये हिंदी में संधि की आवश्यकता होती है। संस्कृत में संधि तीन प्रकार की होती है—(१) स्वर-संधि (जैसे,—राम+अवतार=रामावतार); (२) व्यंजन-संधि (जैसे,—जगत्+नाथ=जगन्नाथ); और (३) विसर्ग-संधि (जैसे,—निः+अंतर=निरंतर)।

(७) नाटक में किसी प्रधान प्रयोजन के साधक कथांशों का किसी एक मध्यवर्ती प्रयोजन के साथ होनेवाला संबंध। ये संधियाँ पाँच प्रकार की कही गई हैं—मुख संधि, प्रतिमुख संधि, गर्भ संधि, अवमर्श या विमर्श संधि और निर्वहण संधि। (८) चोरी आदि करने के लिये दीवार में किया हुआ छेद। सेंध। (९) एक युग की समाप्ति और दूसरे युग के आरंभ के बीच का समय। युग-संधि। (१०)

किसी एक अवस्था के अंत और दूसरी अवस्था के आरंभ के बीच का समय। वयःसंधि। जैसे,—शैशव और बाल्य-अवस्था की संधि। (११) स्त्री की जननेंद्रिय। भग। (१२) संघट्टन। (१३) दो चीज़ों के बीच की खाली जगह। अवकाश। (१४) भेद। (१५) साधन।

संधिक–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार सन्निपात रोग का एक भेद। इस रोग में शरीर की संधियों में वायु के कारण अधिक पीड़ा होती है और कफ, संताप, शक्तिहीनता, निद्रा, नाश आदि उपद्रव होते हैं। इसका वेग एक सप्ताह तक रहता है।

संधिकुसुमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिसंधि नामक फूलदार पौधा।

संधिग–संज्ञा पुं० दे० "संधिक"।

संधिगुप्त–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ शत्रु की आनेवाली सेना पर छापा मारने के लिये सैनिक लोग छिपकर बैठते हैं।

संधिचौर–संज्ञा पुं० [सं०] सेंध लगाकर चोरी करनेवाला। सेंधिया चोर।

संधिच्छेद–संज्ञा पुं० [सं०] वह (पक्ष) जो संधि के नियमों का भंग करता हो। अहदनामे की शर्तें तोड़नेवाला।

संधिज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) (चुआकर तैयार किया हुआ) मद्य, आसव आदि। (२) वह फोड़ा जो शरीर की किसी संधि या गाँठ पर हो।

संधिजीवक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो स्त्रियों को पुरुषों से मिलाकर जीविका चलाता हो। कुटना। दलाल।

संधित–वि० [सं०] जिसमें संधि हो। संधियुक्त।
संज्ञा पुं० आसव। अर्क।

संधिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाभिन गौ। (२) वह गौ जो गाभिन होने पर भी दूध दे। (३) वह गौ जो बिना बछड़े के दूध दे। (४) वह गौ जो दिन रात में केवल एक बार दूध दे।

संधिप्रच्छादन–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में स्वर साधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार होती है। आरोही—सा रे ग, रे ग म, ग म प, म प ध, प ध नि, ध नि सा। अवरोही—सा नि ध, नि ध प, ध प म, प म ग, म ग रे, ग रे सा।

संधिबंध–संज्ञा पुं० [सं०] भुईं चंपा।

संधिबंधन–संज्ञा पुं० [सं०] शिरा। नाड़ी। नस।

संधिभंग–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार हाथ या पैर आदि के किसी जोड़ का टूटना।

संधिमग्न–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें अंग की संधियों में अत्यंत पीड़ा होती है।

संधिरंध्रका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरंग। सेंध।

संधिराग–संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर। सेंदुर।

संधिला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुरंग। सेंध। (२) नदी। (३) मदिरा। शराब।

संधिविद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें हाथ पैर के जोड़ों में सूजन और पीड़ा होती है।

संधिवेला–संज्ञा स्त्री० [सं०] संध्या का समय। सायंकाल। शाम।

संधिसितासित–संज्ञा पुं० [सं०] आँखों का एक प्रकार का रोग।

संधिहारक–संज्ञा पुं० [सं०] वह चोर जो सेंध लगाकर चोरी करता हो। सेंधिया चोर।

संधेय–वि० [सं०] जो संधि करने के योग्य हो। जिसके साथ संधि की जा सके।

संध्य–वि० [सं०] संधि संबंधी। संधि का।

संध्यर्क्ष–संज्ञा पुं० [सं०] वह नक्षत्र जिसमें दो राशियाँ हों। दो राशियों के बीच का नक्षत्र। जैसे,—कृत्तिका नक्षत्र, जिसके पहले पाद में मेष राशि और अंतिम तीनों पादों में वृष राशि है।

संध्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दिन और रात दोनों के मिलने का समय। संधिकाल।

विशेष—दिन और रात के मिलने के दो समय हैं—प्रातःकाल और सायंकाल। शास्त्रों में कहा है कि रात का अंतिम एक दंड और दिन का पहला एक दंड ये दोनों मिलकर प्रातः संध्या काल होते हैं; और दिन का अंतिम एक दंड और रात का पहला एक दंड ये दोनों मिलकर सायं संध्या काल होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लोग ठीक दोपहर के समय एक और संध्या मानते हैं, जिसे मध्याह्न संध्या कहते हैं।

(२) दिन का अंतिम भाग। सूर्य्यास्त के लगभग का समय। शाम। सायंकाल। (३) आर्यों की एक विशिष्ट उपासना जो प्रति दिन प्रातः काल, मध्याह्न और संध्या के समय होती है। इसमें स्नान और आचमन करके कुछ विशिष्ट मंत्रों का पाठ, अंगन्यास और गायत्री का जप किया जाता है। द्विजातियों के लिये यह उपासना अवश्य कर्त्तव्य कही गई है। (४) एक युग की समाप्ति और दूसरे युग की संधि का समय। दो युगों के मिलने का समय। युग संधि। (५) एक प्राचीन नदी का नाम। (६) सीमा। हद। (७) संधान। (८) एक प्रकार का फूल।

संध्यानाटी–संज्ञा पुं० [सं० संध्यानाटिन्] शिव। महादेव।

संध्यावधू–संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि। रात। निशि।

संध्याबल–संज्ञा पुं० [सं०] निशाचर। राक्षस। निश्चर।

संध्याराग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्याम कल्याण राग। संगीत शास्त्र के अनुसार इसका वर्ण काला माना गया है। (२) सिंदूर। सेंदुर।

संध्याराम–संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

संन्यास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भारतीय आर्य्यों के चार आश्रमों में से अंतिम आश्रम। वानप्रस्थ आश्रम के पश्चात् का आश्रम।

विशेष—प्राचीन भारतीय आर्य्यों ने जीवन के चार विभाग किए थे, जो आश्रम कहलाते हैं। (दे० "आश्रम") इनमें से अन्तिम आश्रम संन्यास कहलाता है। पचीस वर्ष तक वानप्रस्थ आश्रम में रहने के उपरान्त ७५ वें वर्ष के अंत में इस आश्रम में प्रवेश करने का विधान है। इस आश्रम में काम्य और नित्य आदि सब कर्म किए तो जाते हैं, पर बिलकुल निष्काम भाव से किए जाते हैं; किसी प्रकार के फल की आशा रखकर नहीं किए जाते। वि० दे० "संन्यासी"।
(२) भाव प्रकाश के अनुसार मूर्च्छा रोग का एक भेद जो बहुत ही भयानक कहा गया है। यह रोग प्रायः निर्बल मनुष्यों को हुआ करता है और इसमें रोगी के मर जाने की भी आशंका रहती है। साधारण मूर्च्छा से इसमें यह अंतर है कि मूर्च्छा में तो रोगी थोड़ी देर में आप से आप होश में आ जाता है, पर इसमें बिना औषध और चिकित्सा के होश नहीं होता। (३) अठमासी।

संन्यासी-संज्ञा पुं० [सं० संन्यासिन्] वह जो संन्यास आश्रम में हो। संन्यास आश्रम में रहने और उसके नियमों का पालन करनेवाला।
विशेष—संन्यासियों के लिये शास्त्रों में अनेक प्रकार के विधान हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—सन्यासी को सब प्रकार की तृष्णाओं का परित्याग करके घर बार छोड़कर जंगल में रहना चाहिए; सदा एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करना चाहिए, कहीं एक जगह जमकर न रहना चाहिए; गैरिक कौपीन पहनना चाहिए; दंड और कमंडलु अपने पास रखना चाहिए; सिर मुँड़ाए रहना चाहिए; शिखा और सूत्र का परित्याग कर देना चाहिए; भिक्षा के द्वारा जीवन निर्वाह करना चाहिए; एकांत स्थान में निवास करना चाहिए; सब पदार्थों और सब कार्यों में समदर्शी होना चाहिए; और सदुपदेश आदि के द्वारा लोगों का कल्याण करना चाहिए। आज कल संन्यासियों के गिरि, पुरी, भारती आदि अनेक भेद पाए जाते हैं। एक प्रकार के कौल या वाममार्गी संन्यासी भी होते हैं जो मद्य-मांस आदि का भी सेवन करते हैं। इनके अतिरिक्त नागे, दंगली, अघोरी, आकाशमुखी, मौनी आदि भी संन्यासियों के ही अंतर्गत माने जाते हैं।

संपत्-संज्ञा स्त्री० दे० "संपद्"

संपत्कुमार-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक रूप।

संपत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ऐश्वर्य्य। वैभव। (२) धन। दौलत। जायदाद। मिलकियत। (३) सफलता। पूर्णता। सिद्धि। (४) प्राप्ति। लाभ। (५) अधिकता। बहुतायत।

संपत्तोय-संज्ञा पुं० [सं०] पितरों को जल देने का एक भेद।

संपद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिद्धि। पूर्णता। (२) ऐश्वर्य्य। वैभव। गौरव। (३) सौभाग्य। अच्छे दिन। भले दिन। सुख की स्थिति।
यौ०—संपद् विपद्।
(४) प्राप्ति। लाभ। फायदा। (५) अधिकता। बहुतायत। (६) मोतियों का हार। (७) वृद्धि नाम की ओषधि।

संपदा-संज्ञा स्त्री० [सं० संपद्] (१) धन। दौलत। (२) ऐश्वर्य्य। वैभव।

संपदि-संज्ञा पुं० [सं० संपदिन] अशोक के एक पौत्र का नाम।

संपन्न-वि० [सं०] (१) पूरा किया हुआ। पूर्ण। सिद्ध। साधित। मुकम्मल। (२) सहित। युक्त। भरा पूरा। उ०—ससि-संपन्न सोह महि कैसी।—तुलसी। (३) जिसे कुछ कमी न हो। धन धान्य से पूर्ण। खुशहाल। (४) धनी। दौलतमंद।
संज्ञा पुं० सुस्वादु भोजन। व्यंजन।

संपन्नक्रम-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की समाधि। (बौद्ध)

संपराय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मृत्यु। मौत। (२) अनादि काल से स्थिति। (३) युद्ध। लड़ाई। झगड़ा। (४) आपत्ति। दुर्दिन। (५) भविष्य।

संपर्क-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संपृक्त] (१) मिश्रण। मिलावट। (२) मेल। मिलाप। संयोग। (३) लगाव। संसर्ग। वास्ता। (४) स्पर्श। सटना। (५) योग। जोड़। (गणित)

संपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत्। बिजली। उ०—चौंधते चकोर चहूँ ओर जानि चंद मुख जो न होती डरनि दसन-द्युति संपा की।—दूलह।

संपाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह पकना। (२) आरग्वध वृक्ष। अमलतास। (३) तर्क करनेवाला।
वि० (१) लंपट। (२) धूर्त। (३) अल्प। कम।

संपाट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी त्रिभुज की बढ़ी हुई भुजा पर लंब का गिरना। (२) तकला।

संपात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साथ गिरना या पड़ना। (२) संसर्ग। मेल। मिलान। (३) संगम। समागम। (४) संगम स्थान। मिलने की जगह। (५) वह स्थान जहाँ एक रेखा दूसरी पर पड़े या मिले। (६) उड़ान। उड़ान। टूट पड़ना। झपट। (७) युद्ध का एक भेद। (८) प्रवेश। पहुँच। पैठ। (९) घटित होना। होना। (१०) द्रव पदार्थ के नीचे बैठी हुई वस्तु। तलछट। (११) अवशिष्ट अंश। व्यवहार से बचा हुआ भाग।

*संपाति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक गीध जो गरुड़ का ज्येष्ठ पुत्र और जटायु का भाई था। (२) माली नाम राक्षस का उसकी वसुदा नामक भार्य्या से उत्पन्न चार पुत्रों में से एक पुत्र। यह विभीषण का मंत्री था। (३) राम की सेना का एक बंदर।

संपाती–वि० [सं० संपातिन्] [स्त्री० संपातिनी] एक साथ कूदने या झपटनेवाला।
संज्ञा पुं० दे० "संपाति"।

संपादक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संपन्न करनेवाला। कोई काम पूरा करनेवाला। काम अंजाम देनेवाला। (२) प्रस्तुत करनेवाला। तैयार करनेवाला। (३) प्रदान करनेवाला। लाभ करनेवाला। (४) किसी समाचारपत्र या पुस्तक को क्रम आदि लगाकर निकालनेवाला। एडिटर।

संपादकत्व–संज्ञा पुं० [सं०] संपादन करने का भाव या अवस्था।

संपादकीय–वि० [सं०] संपादक संबंधी। संपादक का।

संपादन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संपादनीय, संपादी, संपाद्य] (१) किसी काम को पूरा करना। अंजाम देना। (२) प्रस्तुत करना। प्रदान करना। (३) ठीक करना। दुरुस्त करना। तैयार करना। (४) किसी पुस्तक या संवादपत्र आदि को क्रम, पाठ आदि लगाकर प्रकाशित करना।

संपादयिता–संज्ञा पुं० [सं० संपादयितृ] [स्त्री० संपादयित्री] संपादन करनेवाला।

संपादित–वि० [सं०] (१) पूर्ण किया हुआ। अंजाम दिया हुआ। (२) तैयार। प्रस्तुत। (३) क्रम, पाठ आदि लगाकर ठीक किया हुआ। (पत्र, पुस्तक आदि)

संपादी–वि० [सं० संपादिन्] [स्त्री० संपादिनी] संपादन करनेवाला।

संपिन–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जिसका टोकरा बनता है। यह खसिया की पहाड़ियों में होता है।

संपीड़न–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खूब दबाना या निचोड़ना। खूब मलना। (२) खूब पीड़ा देना। (३) अतिशय पीड़ा। (४) शब्दोच्चारण का एक दोष।

संपुट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पात्र के आकार की वस्तु। कटोरे या दोने की तरह चीज जिसमें कुछ भरने के लिये खाली जगह हो। (२) खप्पर। ठीकरा। कपाल। (३) दोना। (४) ढकनदार पिटारी या डिबिया। डिब्बा। (५) अँजली। (६) फूल के दलों का ऐसा समूह जिसके बीच खाली जगह हो। कोश। (७) कपड़े और गीली मिट्टी से लपेटा हुआ वह बरतन जिसके भीतर कोई रस या ओषधि फूँकते हैं। (८) कटसरैया का फूल। कुरवक। (९) हिसाब में बाकी या उधार।

संपुटी–संज्ञा स्त्री० [सं० संपुट] छोटी कटोरी या तश्तरी जिसमें पूजन के लिये घिसा हुआ चंदन अक्षत आदि रखते हैं।

संपूर्ण–वि० [सं०] (१) खूब भरा हुआ। (२) सब। बिलकुल। समस्त। पूरा। (३) समाप्त। खतम।
यौ०—संपूर्णकाम = जिसकी सब कामना पूरी हुई हो।
(४) पूर्ण रूप से युक्त।
संज्ञा पुं० (१) वह राग जिसमें सातो स्वर लगते हों। (२) आकाश भूत।

संपूर्णतः–क्रि० वि० [सं०] पूरी तरह से। पूर्ण रूप से।

संपूर्णतया–क्रि० वि० [सं०] पूरी तरह से। भली भाँति। अच्छी तरह।

संपूर्णता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संपूर्ण होने का भाव। पूरापन। (२) समाप्ति।

संपूर्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्ति विशेष।

संपृक्त–वि० [सं०] (१) संसर्ग में आया हुआ। छूआ हुआ। (२) मिला हुआ। मिश्रित। (३) मेल में आया हुआ।

सँपेरा–संज्ञा पुं० [हिं० साँप + एरा (हिं० प्रत्य०)] [स्त्री० सँपेरिन] साँप पालनेवाला मदारी। साँप का तमाशा दिखानेवाला।

सँपोला–संज्ञा पुं० [हिं० साँप + ओला (अल्पा० प्रत्य०)] साँप का बच्चा।

सँपोलिया–संज्ञा पुं० [हिं० साँप + वाला] साँप पकड़नेवाला। सँपेरा।

संप्रक्षाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूर्ण विधि से स्नान करनेवाला। (२) एक प्रकार के यति या साधु। (३) प्रजापति के पैर धोए हुए जल से उत्पन्न एक ऋषि।

संप्रक्षालन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह धोना। खूब धोना। (२) पूर्ण स्नान। (३) जल-प्रलय।

संप्रक्षालनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जीविका या वृत्ति। (बौद्ध)

संप्रज्ञात–संज्ञा पुं० [सं०] योग में समाधि के दो प्रधान भेदों में से एक। वह समाधि जिसमें आत्मा विषयों के बोध से सर्वथा निवृत्त न होने के कारण अपने स्वरूप के बोध तक न पहुँची हो।
विशेष—ध्यान या समाधि की पूर्व दशा में चार प्रकार की समापत्तियाँ कही गई हैं जिनमें शब्द, अर्थ, विषय आदि में से किसी न किसी का बोध अवश्य बना रहता है। इन चारों में से किसी समापत्ति के रहने से समाधि संप्रज्ञात कहलाती है। संप्रज्ञात समाधि या समापत्ति के चार भेद हैं—सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार।

संप्रति–अव्य० [सं०] (१) इस समय। अभी। आजकल। (२) मुकाबले में। (३) ठीक तौर से।
संज्ञा पुं० (१) पूर्व अवसर्पिणी के २४ वें अर्हत का नाम। (जैन) (२) अशोक का पोता। कुनाल एक पुत्र।

संप्रतिपत्ति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहुँच। गुजर। (२) प्राप्ति। लाभ। (३) सम्यक् बोध। ठीक ठीक समझ में आना। (४) समझ। बुद्धि। (५) मतैक्य। एकमत होना। एक राय होना। (६) स्वीकृति। मंजूरी। (७) अभियुक्त का न्यायालय में सत्य बात स्वीकार करना। (स्मृति) (८) संपादन। सिद्धि। कार्य्य की पूर्णता।

संप्रतिपन्न–वि० [सं०] (१) पहुँचा हुआ। गया हुआ। उपस्थित। (२) स्वीकृत। मंजूर। (३) उपस्थित बुद्धि का। तेज समझवाला।

संप्रत्यय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वीकृति। मंजूरी। मानने की क्रिया या भाव। (२) दृढ़ विश्वास। पूरा यकीन। (३) ठीक ठीक समझ। सम्यक् बोध। (४) भावना। विचार।

संप्रदा–संज्ञा पुं० दे० "संप्रदाय"।

संप्रदातन–संज्ञा पुं० [सं०] इक्कीस नरकों में से एक।

संप्रदान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दान देने की क्रिया या भाव। (२) दीक्षा। मंत्रोपदेश। शिष्य को मंत्र देना। (३) भेंट। नज़र। (४) व्याकरण में एक कारक जिसमें शब्द 'देना' क्रिया का लक्ष्य होता है।

विशेष—हिंदी में इस कारक के चिह्न 'को' और "के लिये" हैं। जैसे,—राम को दो। उसके लिये लाया गया।

संप्रदाय–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० साम्प्रदायिक] (१) देनेवाला। दाता। (२) गुरु परंपरागत उपदेश। गुरुमंत्र। (३) कोई विशेष धर्मसंबंधी मत। (४) किसी मत के अनुयायियों की मंडली। फिरका। (५) मार्ग। पथ। (६) परिपाटी। रीति। चाल।

संप्रदायी–संज्ञा पुं० [सं० संप्रदायिन्] [स्त्री० संप्रदायिनी] (१) देनेवाला। (२) करनेवाला। सिद्ध करनेवाला। (३) किसी संप्रदाय से संबंध रखनेवाला। मत का माननेवाला। मतावलंबी।

संप्रयुक्त–वि० [सं०] (१) जोड़ा हुआ। एक साथ किया हुआ। (२) जोता हुआ। नधा हुआ। (३) संबद्ध। मिला हुआ। (४) भिड़ा हुआ। (५) व्यवहार में लाया हुआ। बर्ता हुआ।

संप्रयोग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जोड़ने की क्रिया या भाव। एक साथ करना। (२) मेल। मिलाप। संयोग। समागम। (३) रति। रमण। (४) धनादि का विनियोग। (५) नक्षत्र में चंद्रमा का योग। (६) इंद्रजाल। (७) वशीकरण प्रभृति कार्य्य।

संप्रयोगी–संज्ञा पुं० [सं० संप्रयोगिन्] [स्त्री० संप्रयोगिनी] (१) कामुक। लंपट। (२) इंद्रजालिक। इंद्रजाल दिखानेवाला।

संप्रयोजन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संप्रयोजनीय, संप्रयोज्य, संप्रयोजित, संप्रयुक्त, संप्रयोक्तव्य] अच्छी तरह जोड़ना या मिलाना।

संप्रवर्त्तक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चलानेवाला। (२) जारी करनेवाला।

संप्रवर्त्तन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संप्रवर्तित, संप्रवृत्त] (१) चलाना। गति देना। (२) घुमाना। (३) जारी करना। आरंभ करना।

संप्रवृत्त–वि० [सं०] (१) आगे गया हुआ। बढ़ा हुआ। अग्रसर। (२) उपस्थित। मौजूद। प्रस्तुत। (३) जारी किया हुआ। आरंभ किया हुआ।

संप्रवृत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आसक्ति। (२) अनुसरण करने की इच्छा। (३) उपस्थिति। मौजूदगी। (४) संघटन। मेल।

संप्राप्त–वि० [सं०] (१) पहुँचा हुआ। उपस्थित। (२) पाया हुआ। (३) घटित। जो हुआ हो।

संप्राप्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्राप्ति। लाभ। (२) पहुँचना। उपस्थिति। (३) घटित होना। होना। (४) रोग का सन्निकृष्ट कारण। यह पाँच प्रकार का होता है। (१) संख्या (२) विकल्प (३) प्राधान्य (४) बल और (५) काल।

संप्रेक्षक–संज्ञा पुं० [सं०] दर्शक। देखनेवाला।

संप्रेक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संप्रेक्षित, संप्रेक्ष्य] (१) अच्छी तरह देखना। (२) खूब देखभाल करना। जाँच करना। निरीक्षण करना।

संप्रेष–संज्ञा पुं० दे० "संप्रैष"

संप्रेषण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संप्रेषित, संप्रेष्य] (१) अच्छी तरह भेजना। (२) छुड़ाना। बरखास्त करना। काम से हटाना।

संप्रेषणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] मृतक का एक कृत्य जो द्वादशाह को होता है।

संप्रैष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञादि में ऋत्विजों को लगाना। नियुक्ति। (२) आमंत्रण। आह्वान।

संप्रोक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संप्रोक्षित, संप्रोक्ष्य] (१) खूब पानी छिड़कना। (२) खूब पानी छिड़क कर (मंदिर आदि) साफ करना। धोना।

संप्लव–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संप्लुत] (१) जल से तराबोर होना। जल की बाढ़। बढ़िया। (२) भारी समूह। घनी राशि। (३) हलचल। शोरगुल। हल्ला।

संप्लुत–वि० [सं०] जल से तराबोर। डूबा हुआ।

संफाल–संज्ञा पुं० [सं०] मेष। भेड़।

संफेट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्रोध से परस्पर भिड़ना। भिड़ंत। लड़ाई। (२) झगड़ा। कहासुनी। तकरार।

विशेष—नाट्यशास्त्र में विमर्श के तेरह भेदों में से एक संफेट भी है। जैसे,—राजसभा में शकुंतला और दुष्यंत की कहासुनी। आरभटी के चार भेदों में से भी एक संफेट है जिसमें दो पात्र परस्पर भिड़ते और एक दूसरे को दबाने का प्रयत्न करते हैं। जैसे,—मालती माधव नाटक में माधव और अघोरघंट की मुठभेड़।

संबंध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साथ बँधना, जुड़ना या मिलना। (२) लगाव। संपर्क। वास्ता।

विशेष—दर्शन में संबंध तीन प्रकार के कहे गए हैं—समवाय, संयोग और स्वरूप।

(३) एक कुल में होने के कारण अथवा विवाह, दत्तक आदि संस्कारों के कारण परस्पर लगाव। नाता। रिश्ता। (४) गहरी मित्रता। बहुत मेल जोल। (५) संयोग। मेल। (६) विवाह। सगाई। (७) ग्रंथ। पोथी। (८) एक प्रकार की ईति या उपद्रव। (९) किसी सिद्धांत का हवाला।

(१०) व्याकरण में एक कारक जिससे एक शब्द के साथ दूसरे शब्द का संबंध या लगाव सूचित होता है। जैसे,—राम का घोड़ा।

विशेष—बहुत से वैयाकरण 'संबंध' को शुद्ध कारक नहीं मानते। हिंदी में संबंध के चिह्न 'का' 'की' 'के' हैं।

संबंधातिशयोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिशयोक्ति अलंकार का एक भेद जिसमें असंबंध में संबंध दिखाया जाता है।

विशेष—दे० "अतिशयोक्ति"।

संबंधी-वि० [सं० संबंधिन्] [स्त्री० संबंधिनी] (१) संबंध रखनेवाला। लगाव रखनेवाला। (२) विषयक। सिलसिले या प्रसंग का।

संज्ञा पुं० (१) रिश्तेदार। (२) जिसके पुत्र या पुत्री से अपनी पुत्री या पुत्र का विवाह हुआ हो। समधी।

संबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आत्मीय। भाई बिरादर। (२) नातेदार। रिश्तेदार।

संब-संज्ञा पुं० दे० "शंब"।

संबत्-संज्ञा पुं० दे० "संवत्"।

संबद्ध-वि० [सं०] (१) बँधा हुआ। जुड़ा हुआ। लगा हुआ। (२) संबंध-युक्त। मिला हुआ। (३) बंद। (४) संयुक्त। सहित।

संबर-संज्ञा पुं० दे० "शंबर"।

संबरण-संज्ञा पुं० दे० "संवरण"।

संबल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाल्मली। सेमल का वृक्ष। (२) रास्ते का भोजन। सफ़र खर्च। (३) गेहूँ की फसल का एक रोग जो पूरब की हवा अधिक चलने से होता है। (४) संखिया। आखु पाषाण। सोमल क्षार। वि० दे० "शंबल"।

संबाद-संज्ञा पुं० दे० "संवाद"।

संबाध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाधा। अड़चन। कठिनता। (२) भीड़। संघर्ष। (३) भग। योनि। (४) कष्ट। पीड़ा। (५) नरक का पथ।

वि० (१) संकीर्ण। तंग। (२) जनपूर्ण। भीड़ से भरा। (३) भरा। पूर्ण। संकुल।

संबाधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दबानेवाला। सतानेवाला। तंग करनेवाला। (२) बाधा पहुँचानेवाला।

संबाधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दबाव। रेलपेल। (२) रोकना। बाधा देना। (३) रोक। फाटक। (४) योनि। भग। (५) शूलाग्र। (६) द्वारपाल।

संबी-संज्ञा स्त्री० [सं० शिंबी] फली।

संबुक-संज्ञा पुं० दे० "शंबुक", "शंबूक"।

संबुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जाग्रत। ज्ञानप्राप्त। (२) ज्ञानी। ज्ञानवान्। (३) पूर्ण रूप से जाना हुआ। ज्ञात। (४) बुद्ध। (५) जिन।

संबुद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पूर्ण ज्ञान। सम्यक् बोध। (२) बुद्धिमानी। होशियारी। (३) दूर से पुकार। आह्वान।

संबुल खताई-संज्ञा पुं० [फा०] तुर्किस्तान का एक पौधा जो औषध के काम में आता है और जिसकी पत्तियों की नसें मिठाई में पड़ती हैं।

संबेसर-संज्ञा पुं० [सं० सं० + हिं० बसेरा] निद्रा। नींद। (डिंगल)

संबोध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सम्यक् ज्ञान। पूरा बोध। (२) पूर्ण तत्त्वबोध। पूरी जानकारी। (३) धीरज। सांत्वना। ढारस।

संबोधन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संबोधित, संबोध्य] (१) जगाना। नींद से उठाना। (२) पुकारना। आह्वान करना। (३) व्याकरण में वह कारक जिससे शब्द का किसी को पुकारने या बुलाने के लिये प्रयोग सूचित होता है। जैसे,—हे राम! (४) जताना। ज्ञान कराना। विदित कराना। (५) नाटक में आकाश-भाषित। (६) समझाना बुझाना। समाधान करना।

संबोधना⊛-क्रि० स० [सं०] समझाना। प्रबोध देना। उ०—ज्यों ज्यों ऐसी बातन मंदोदरी सँबोधै त्यों त्यों देव दुख पावै कहैं कैसे समुझाइये। याकी बात मानै सिय दैके जाइ मिलै यह औरन बिसारि याकौ सौगुन बढ़ाइये।—हृदयराम।

संबोध्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसको संबोधन किया जाय। (२) जिसे समझाया या जताया जाय।

संबोधिया-संज्ञा पुं० [देश०] बैरागियों की एक जाति।

संभग्न-वि० [सं०] (१) बहुत टूटा हुआ। बिलकुल खंडित। (२) हारा हुआ। (३) विफल।

संज्ञा पुं० शिव का एक नाम।

संभर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भरण करनेवाला। पोषण करनेवाला। (२) साँभर झील।

संभरण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संभरणीय, संभृत] (१) पालन पोषण। (२) एकत्र करना। संचय। जुटाना। (३) योजना। विधान। (४) तैयारी। सामान। (५) एक प्रकार की ईंट जो यज्ञ की वेदी में लगती थी।

संभरणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमरस रखने का एक यज्ञपात्र।

सँभरना⊛†-वि० अ० दे० "सँभलना"।

संभल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कन्यार्थी पुरुष। किसी लड़की से विवाह की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति। (२) चेटक। दलाल। (३) एक स्थान जहाँ विष्णुयश नामक ब्राह्मण के घर विष्णु दसवाँ कल्कि अवतार होनेवाला है। इसे कुछ लोग मुरादाबाद ज़िले का संभल नाम का कसबा बतलाते हैं।

सँभलना-क्रि० अ० [हिं० सँभालना] (१) किसी बोझ आदि का ऊपर लदा रह सकना। पकड़ में रहना। थामा जा सकना।

जैसे,—यह बोझ तुमसे नहीं सँभलेगा। (२) किसी सहारे पर रुका रह सकना। आधार पर ठहरा रहना। जैसे,—इस खंभे पर यह पत्थर नहीं सँभलेगा। (३) होशियार होना। सचेत होना। सावधान होना। जैसे,—इन ठगों के बीच सँभल कर रहना। (४) चोट या हानि से बचाव करना। गिरने पड़ने से रुकना। जैसे,—वह गिरते गिरते सँभल गया। (५) बुरी दशा को फिर सुधार लेना। जैसे,—इस रोज़गार में इतना घाटा उठाओगे कि सँभलना कठिन होगा। (६) कार्य्य का भार उठाया जाना। निर्वाह संभव होना। जैसे,—हमसे इतना खर्च नहीं सँभलेगा। (७) स्वस्थता प्राप्त करना। आरोग्य लाभ करना। चंगा होना। जैसे,—बीमारी तो बहुत कड़ी पाई, पर अब सँभल रहे हैं।

सँभला—संज्ञा पुं० [हिं० सँभलना] एक बार बिगड़ कर फिर सुधरी हुई फसल।

संभली—संज्ञा स्त्री० [सं० शंभली] कुटनी। दूती।

संभव—संज्ञा पुं० [सं० सम्भव] (१) उत्पत्ति। जन्म। पैदाइश। जैसे,—कुमार-संभव। (२) एक साथ होना। मेल। संयोग। समागम। (३) सहवास। प्रसंग। (४) अँटना। आ सकना। समाई। (५) हेतु। कारण। (६) होना। घटित होना। (७) हो सकने के योग्य होना। मुमकिन होना। जैसे,—उसका सुधरना संभव नहीं। (८) परिमाण का एक होना। एक ही बात होना। जैसे, एक रुपया कहें या सोलह आने। (दर्शन) (९) उपयुक्तता। समीचीनता। मुनासिबत। (१०) वर्तमान अवसर्पिणी के तीसरे अर्हत्। (जैन) (११) एक लोक का नाम। (बौद्ध) (१२) नाश। ध्वंस। (१३) युक्ति। उपाय।

संभवतः—अव्य० [सं०] हो सकता है। मुमकिन है। गालिबन्।

संभवन—संज्ञा पुं० [सं० सम्भवन] [वि० संभवनीय, संभव्य, संभूत] (१) उत्पन्न होना। पैदा होना। (२) हो सकना। मुमकिन होना। (३) होना। घटित होना।

संभवनाॐ—क्रि० स० [सं० सम्भव + ना (प्रत्य०)] उत्पन्न करना। पैदा करना।

क्रि० अ० (१) उत्पन्न होना। पैदा होना। (२) संभव होना। हो सकना। उ०—धर्म्म स्थापन हेतु पुनि धारयो नर अवतार। ताको पुत्र कलत्र सों नहिं संभवत पियार।—सूर।

संभवनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] वर्त्तमान अवसर्पिणी के तीसरे तीर्थंकर। (जैन)

संभवनीय—वि० [सं०] जो हो सकता हो। मुमकिन।

संभव्य—संज्ञा पुं० [सं०] कपित्थ। कैथ।

वि० जो हो सकता हो। संभवनीय। मुमकिन।

संभार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) संचय। एकत्र करना। इकट्ठा करना। (२) तैयारी। सामान। साज। सामग्री। रसद वगैरह। (३) धन। संपत्ति। वित्त। (४) पूर्णता। अधिकता। (५) समूह। दल। राशि। ढेर। (६) पालन। पोषण।

सँभारॐ—संज्ञा पुं० [हिं० सँभालना सं० संभार] (१) देख रेख। ख़बरदारी। निगरानी। (२) पालन पोषण। उ०—करिय सँभार कोसलराइ।—तुलसी।

यौ०—सार सँभार = पालन पोषण और निरीक्षण का भार। उ०—सब कर सार सँभार गोसाईं।—तुलसी।

(३) वश में रखने का भाव। रोक। निरोध। उ०—रे नृप बालक कालबस बोलत तोहि न सँभार।—तुलसी। (४) तन बदन की सुध। होश हवास।

सँभारनाॐ—क्रि० स० [सं० संभार] (१) दे० "सँभालना"। (२) याद करना। स्मरण करना। मन में इकट्ठा करके लाना। उ०—बंदि पितर सब सुकृत सँभारे। जो कछु पुन्य प्रभाव हमारे। तौ सिव-धनुष मृनाल की नाईं। तोरहिं राम, गनेस गोसाईं।—तुलसी।

संभारी—वि० [सं० सम्भारिन्] [स्त्री० संभारिणी] भरा हुआ। पूर्ण।

सँभाल—संज्ञा स्त्री० [सं० सम्भार] (१) रक्षा। हिफ़ाज़त। (२) पोषण का भार। (३) देख रेख। निगरानी। (४) प्रबंध। इंतज़ाम। जैसे,—घर की सँभाल वही करता है। (५) तन बदन की सुध। होश हवास। चेत। आपा। जैसे,—वह इतना विकल हुआ कि शरीर की सँभाल न रही।

सँभालना—क्रि० स० [सं० सम्भार] (१) भार को ऊपर ठहराना। बोझ ऊपर रखे रहना। भार ऊपर ले सकना। जैसे,—इतना भारी बोझ कैसे सँभालोगे? (२) रोक या पकड़ में रखना। इस प्रकार थामे रहना कि छूटने या भागने न पावे। रोके रहना। काबू में रखना। जैसे,—सँभालो, नहीं तो छूटकर भाग जायगा। (३) किसी वस्तु को अपनी जगह से हटने, गिरने पड़ने, खिसकने आदि से रोकना। यथा स्थान रखना। च्युत न होने देना। थामना। जैसे,—टोपी सँभालना, धोती सँभालना। (४) गिरते पड़ने से रोकने के लिये सहारा देना। गिरने से बचाना। जैसे,—मैंने सँभाल लिया, नहीं तो वह गिर पड़ता। (५) रक्षा करना। हिफ़ाज़त करना। नष्ट होने या खो जाने से बचाना। जैसे,—इस पुस्तक को बहुत सँभाल कर रखना। (६) बुरी दशा को प्राप्त होने से बचाना। बिगड़ी दशा में सहायता करना। ख़राबी से बचाना। उद्धार करना। जैसे,—उसने बड़े बुरे दिनों में सँभाला है। (७) पालन पोषण करना। परवरिश करना। (८) देख रेख करना। निगरानी करना। (९) प्रबंध करना। इंतज़ाम करना। व्यवस्था करना। जैसे,—घर सँभालना। (१०) निर्वाह करना। किसी कार्य्य का भार अपने ऊपर लेना। चलाना।

जैसे,—उसका खर्च हम नहीं सँभाल सकते। (११) दशा बिगड़ने से बचाना। रोग, व्याधि, आपत्ति इत्यादि की रोक करना। जैसे,—बीमारी बढ़ जाने पर सँभालना कठिन होता है। (१२) कोई वस्तु ठीक ठीक है, इसका इतमीनान कर लेना। सहेजना। जैसे,—देखो १००) हैं, इन्हें सँभालो। (१३) किसी मनोवेग को रोकना। जोश थामना। जैसे,—उसकी कड़ी बातें सुनकर मैं अपने को सँभाल न सका।

संयो॰ क्रि॰—देना।—लेना।

सँभाला—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ सँभालना] जीवन की ज्योति का बुझने के पूर्व टिमटिमा उठना। मरने के पहले कुछ चेतनता सी आ जाना। चैतन्य याई होना। जैसे,—कल सँभाला लिया था, आज मर गया।

क्रि॰ प्र॰—लेना।

सँभालू—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ सिंधुवार] श्वेत सिंधुवार वृक्ष। मेवड़ी।

संभावन—संज्ञा पुं॰ [सं॰ सम्भावन] [वि॰ संभावनीय, संभावित संभावितव्य, संभाव्य] (१) कल्पना। भावना। अनुमान। (२) जुटाना। एकत्र करना। योग करना। (३) उपस्थित करना। संपादन। (४) आदर। सम्मान। पूजा। (५) पूज्यबुद्धि। प्रतिष्ठा का भाव। (६) योग्यता। पात्रता। अधिकार। क़ाबिलीयत। (७) ख्याति। प्रसिद्धि। नाम। (८) स्वीकार।

संभावना—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ सम्भावना] (१) कल्पना। भावना। अनुमान। फ़र्ज़। (२) पूजा। आदर। सत्कार। (३) किसी बात के हो सकने का भाव। हो सकना। मुमकिन होना। (४) योग्यता। पात्रता। क़ाबिलीयत। (५) ख्याति। प्रसिद्धि। नामवरी। (६) प्रतिष्ठा। मान। इज्जत। (७) एक अलंकार जिसमें किसी एक बात के होने पर दूसरी बात का होना निर्भर कहा जाता है। उ॰—(क) एहि विधि उपजै लच्छि जब होइ सीय समतूल। (ख) सहस जीभ जौ होय, तौ बरनै जस आप को।

संभावनीय—वि॰ [सं॰ सम्भावनीय] (१) जो हो सकता हो। मुमकिन। (२) कल्पना के योग्य। ध्यान में आने लायक़। (३) आदर के योग्य। सत्कार के योग्य।

संभावयितव्य—वि॰ दे॰ "संभावितव्य"।

संभावित—वि॰ [सं॰ सम्भावित] (१) कल्पित। विचारा हुआ। मन में माना हुआ। (२) जुटाया हुआ। उपस्थित किया हुआ। (३) पूजित। आदृत। (४) विख्यात। प्रसिद्ध। (५) योग्य। उपयुक्त। क़ाबिल। (६) संभव। मुमकिन।

संभावितव्य—वि॰ [सं॰ सम्भावितव्य] (१) कल्पना या अनुमान के योग्य। (२) सत्कार के योग्य। (३) जिसका सत्कार होनेवाला हो। (४) संभव। मुमकिन।

संभाव्य—वि॰ [सं॰ सम्भाव्य] (१) जो हो सकता हो। मुमकिन। (२) प्रशंसनीय। श्लाघ्य। (३) पूजा या सत्कार के योग्य; अथवा जिसका सत्कार होनेवाला हो। (४) कल्पना या अनुमान के योग्य। ध्यान में आने लायक़।

संभाष—संज्ञा पुं॰ [सं॰ सम्भाष] (१) कथन। संभाषण। बातचीत। (२) वादा। क़रार।

संभाषण—संज्ञा पुं॰ [सं॰ सम्भाषण] [वि॰ संभाषणीय, संभाषित, संभाष्य] कथोपकथन। बातचीत।

संभाषणीय—वि॰ [सं॰] जो बातचीत करने योग्य हो। जिससे भाषण करना उचित हो।

संभाषित—वि॰ [सं॰ सम्भाषित] (१) अच्छी तरह कहा हुआ। (२) जिससे बातचीत हुई हो।

संभाषी—वि॰ [सं॰ सम्भाषिन्] [स्त्री॰ संभाषिणी] कहनेवाला। बातचीत करनेवाला।

संभाष्य—वि॰ [सं॰ सम्भाष्य] भाषण करने योग्य। जिससे बातचीत करना उचित हो।

संभिन्न—वि॰ [सं॰] (१) भली भाँति अलग। (२) पूर्ण भग्न। बिलकुल टूटा हुआ। (३) संक्षोभित। चालित। (४) गठा हुआ। ठोस। (५) प्रस्फुटित। खिला हुआ।

संभिन्न प्रलाप—संज्ञा पुं॰ [सं॰] व्यर्थ की बातचीत (बौद्ध शास्त्र में एक पाप)।

संभु—संज्ञा पुं॰ दे॰ "शंभु"।

संभूत—वि॰ [सं॰ सम्भूत] (१) एक साथ उत्पन्न। (२) उत्पन्न। उद्भूत। जात। पैदा। (३) युक्त। सहित। (४) कुछ से कुछ हो गया हुआ। (५) उपयुक्त। योग्य।

संभूति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ सम्भूति] (१) उत्पत्ति। उद्भव। (२) बढ़ती। विभूति। बरकत। (३) योग की विभूति। करामात। (४) क्षमता। शक्ति। (५) उपयुक्तता। योग्यता। (६) दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो मरीचि की पत्नी थी।

संभूय—अव्य॰ [सं॰] एक में। एक साथ। साझे में।

संभूय समुत्थान—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) मिलकर किया हुआ व्यापार। साझे का कारबार। (२) वह विवाद या मुकदमा जो साझेदारों में हो।

संभृत—वि॰ [सं॰ सम्भृत] (१) एकत्र। इकट्ठा। जमा किया हुआ। बटोरा हुआ। (२) पूर्ण। भरा हुआ। लदा हुआ। (३) युक्त। सहित। (४) पाला पोसा हुआ। (५) समादृत। सम्मानित। जिसकी इज्जत की गई हो। (६) प्रस्तुत। तैयार। (७) निर्मित। बना हुआ।

संज्ञा पुं॰ उच्च स्वर। चीख।

संभृति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ सम्भृति] (१) एकत्र करने की क्रिया या भाव। (२) सामान। सामग्री। (३) समूह। भीड़। जमावड़ा। (४) राशि। ढेर। (५) अधिकता। बहुतात। (६) सम्यक भरण पोषण। खूब पालना पोसना।

संभृष्ट–वि० [सं० सम्भृष्ट] (१) खूब भुना या तला हुआ। (२) कुरकुरा। करारा।

संभेद–संज्ञा पुं० [सं० सम्भेद] (१) खूब छिदना या भिदना। (२) शिथिल होना। ढीला होकर खिसकना। (३) वियोग। जुदाई। अलग होना। (४) मिले हुए शत्रुओं में परस्पर विरोध उत्पन्न करना। भेदनीति। (५) किस्म। प्रकार। (६) भिदना। छूटना। मिलना। (७) नदियों का संगम।

संभेदन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संभेदनीय, संभेद्य, संभिन्न] (१) खूब छेदना या आर पार घुसना। धँसना। (२) जुटाना। मिलाना। भिड़ाना।

संभोग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु का भली भाँति उपयोग। सुखपूर्वक व्यवहार। (२) सुरत। रतिक्रीड़ा। मैथुन। (३) शृंगार रस के तीन भेदों में से एक। संयोग शृंगार। मिलाप की दशा। (४) हाथी के कुंभ या मस्तक का एक भाग।

संभोगी–वि० [सं० सम्भोगिन्] [स्त्री० संभोगिनी] संभोग करनेवाला। व्यवहार कर आनंद लेनेवाला।

संभोग्य–वि० [सं०] (१) जिसका व्यवहार होनेवाला हो। जो काम में लाया जानेवाला हो। (२) व्यवहार योग्य। बर्त्तने लायक।

संभोज–संज्ञा पुं० [सं०] भोजन। खाना।

संभोजक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भोजन करनेवाला। भक्षक। खानेवाला। (२) भोजन परसनेवाला।

संभोजन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संभोजनीय, संभोज्य, संभुक्त] (१) भोज। दावत। (२) खाने की वस्तु। खाना।

संभोजनीय–वि० [सं०] (१) जो खाया जानेवाला हो। (२) खाने योग्य। भक्षणीय।

संभोज्य–वि० [सं०] (१) जो खाया जानेवाला हो। (२) खाने योग्य। भक्षणीय।

संभ्रम–संज्ञा पुं० [सं० सम्भ्रम] (१) घूमना। चक्कर। फेरा। (२) उतावली। हड़बड़ी। आतुरता। (३) घबराहट। व्याकुलता। धकपकाहट। (४) हलचल। धूम। (५) सहम। सिटपिटाना। (६) उत्कंठा। गहरी चाह। शौक। हौसला। (७) पूज्य भाव। आदर। मान। गौरव। (८) भूल। चूक। गलती। (९) श्री। शोभा। छवि। सौंदर्य। (१०) शिव के एक प्रकार के गण।

संभ्रांत–वि० [सं० सम्भ्रान्त] (१) घुमाया हुआ। चक्कर दिया हुआ। (२) घबराया हुआ। उद्विग्न। धकपकाया हुआ। (३) स्फूर्तियुक्त। तेजस्वी। (४) सम्मानित। प्रतिष्ठित।

संभ्रांति–संज्ञा स्त्री० [सं० सम्भ्रान्ति] (१) घबराहट। उद्वेग। (२) आतुरता। हड़बड़ी। (३) धकापकाहट।

संभ्राजना*–क्रि० अ० [सं० संभ्राज] पूर्णतः सुशोभित होना। उ०—राम संभ्राज सेवा सहित सर्वदा, तुलसि मानस राम पुर विहारी।—तुलसी।

संमत–वि० दे० "सम्मत"।

संमति–संज्ञा स्त्री० दे० "सम्मति"।

संमान–संज्ञा पुं० दे० "सम्मान"।

संमित–वि० दे० "सम्मित"।

संमेलन–संज्ञा पुं० दे० "सम्मेलन"।

संयंता–संज्ञा पुं० [सं० संयंतृ] (१) संयम करनेवाला। रोकनेवाला। निग्रही। (२) शासक। अधिकारी। नेता।

संयंत्रित–वि० [सं०] (१) बँधा हुआ। जकड़ा हुआ। बद्ध। (२) बंद। (३) रोका हुआ। दबाया हुआ।

संय–संज्ञा पुं० [सं०] कंकाल। पंजर।

संयत्–वि० [सं०] (१) संबद्ध। लगा हुआ। (२) अखंडित। लगातार।

संज्ञा पुं० (१) नियत स्थान। बदी हुई जगह। (२) वादा। करार। (३) झगड़ा। लड़ाई। (४) एक प्रकार की ईंट जो यज्ञ की वेदी बनाने में काम आती थी।

संयत–वि० [सं०] (१) बद्ध। बँधा हुआ। जकड़ा हुआ। (२) पकड़ में रखा हुआ। दबाव में रखा हुआ। (३) रोका हुआ। दमन किया हुआ। काबू में लाया हुआ। वशीभूत। (४) बंद किया हुआ। क़ैद। (५) क्रमबद्ध। व्यवस्थित। नियमबद्ध। क़ायदे का पाबंद। (६) उद्यत। तैयार। सन्नद्ध। (७) जिसने इंद्रियों और मन को वश में किया हो। चित्तवृत्ति का निरोध करनेवाला। निग्रही। (८) हद के भीतर रखा हुआ। उचित सीमा के भीतर रोका हुआ। जैसे,—संयत आहार।

संज्ञा पुं० (१) शिव का एक नाम। (२) योगी।

संयतप्राण–वि० [सं०] जिसने प्राणवायु या श्वास को वश में किया हो। प्राणायाम करनेवाला।

संयतात्मा–वि० [सं० संयतात्मन्] जिसने मन को वश में किया हो। चित्तवृत्ति का निरोध करनेवाला।

संयति–संज्ञा स्त्री० [सं०] वश में रखना। निरोध। रोक।

संयद्वसु–वि० [सं०] बहुत धनवाला। धनवान।

संज्ञा पुं० सूर्य्य की सात किरणों में से एक।

संयम–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संयमी, संयमित, संयत] (१) रोक। दाब। वश में रखने की क्रिया या भाव। (२) इंद्रियनिग्रह। मन और इंद्रियों को वश में रखने की क्रिया। चित्तवृत्ति का निरोध। (३) हानिकारक या बुरी वस्तुओं से बचने की क्रिया। परहेज़। जैसे,—संयम से रहो तो जल्दी अच्छे हो जाओगे। (४) बाँधना। बंधन। जैसे,—केश संयम। (५) बंद करना। मूँदना। (५) योग में ध्यान, धारणा और

समाधि का साधन। (६) प्रयत्न। उद्योग। कोशिश। (७) धूम्राक्ष के एक पुत्र का नाम। (८) प्रलय।

संयमन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोक। (२) दमन। दबाव। निग्रह। (३) आत्मनिग्रह। मन को वश में रखना। (४) बंद रखना। क़ैद रखना। (५) बंधन में बाँधना। जकड़ना। कसना। (६) खींचना। तानना। (लगाम आदि) (७) यमपुर।

संयमनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] यमराज की नगरी। यमपुरी। (यह मेरु पर्वत पर मानी गई है।) उ०—इतनी बात के सुनते ही अर्जुन धनुष बाण ले यहाँ से उठा और चला चला संयमनी पुरी में धर्मराज के पास गया।—लल्लू।

संयमित-वि० [सं०] (१) रोक में रखा हुआ। क़ाबू में लाया हुआ। (२) दमन किया हुआ। (३) बँधा हुआ। कसा हुआ। (४) पकड़ में लाया हुआ। कसकर पकड़ा हुआ। (५) जो मन को रोके हो। इंद्रियनिग्रही।

संयमी-वि० [सं० संयमिन्] (१) रोक या दबाव में रखनेवाला। क़ाबू में रखनेवाला। (२) मन और इंद्रियों को वश में रखनेवाला। आत्मनिग्रही। योगी। (३) बुरी या हानिकारक वस्तुओं से बचनेवाला। परहेज़गार।

संज्ञा पुं० शासक। राजा।

संयात-वि० [सं०] (१) एक साथ गया हुआ। साथ साथ लगा हुआ। (२) पहुँचा हुआ। प्राप्त। दाख़िल।

संयाति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नहुष के एक पुत्र का नाम। (२) बहुगव या प्रचिन्वान् के पुत्र का नाम।

संयान-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संयात, संयायी] (१) सहगमन। साथ जाना। (२) यात्रा। सफ़र।

यौ०—उत्तम संयान = मुरदे को ले चलना।

(३) प्रस्थान। रवानगी। (४) गाड़ी। शकट।

संयाव-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पकवान या मिठाई। पिराक। गोझिया।

संयुक्त-वि० [सं०] (१) जुड़ा हुआ। लगा हुआ। (२) मिला हुआ। जैसे,—संयुक्त अक्षर। (३) संबद्ध। लगाव रखता हुआ। (४) सहित। साथ। (५) पूर्ण। लिए हुए। समन्वित।

संयुक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भगवतवल्ली। आवर्तकी लता। (२) एक छंद का नाम।

संयुग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेल। मिलाप। संयोग। समागम। (२) भिड़ना। भिड़ंत। (३) युद्ध। लड़ाई। उ०—रोप्यो रन रावन, बोलाए बीर बानइत जानत जे रीति सब संयुग समाज की। चली चतुरंग चमू, चपरि हने निसान, सेना सराहन जोग रातिचरराज की।—तुलसी।

संयुत-वि० [सं०] (१) जुड़ा हुआ। मिला हुआ। बँधा हुआ। (२) संबद्ध। एक साथ लगा हुआ। (३) सहित। साथ। (४) समन्वित।

संज्ञा पुं० एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में एक सगण, दो जगण और एक गुरु होता है।

संयोग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दो वस्तुओं का एक में या एक साथ होना। मेल। मिलान। मिलावट। मिश्रण। (२) समागम। मिलाप।

विशेष—यह शृंगार रस के दो भेदों में से एक है। इसी को संभोग शृंगार भी कहते हैं।

(३) लगाव। संबंध। (४) सहवास। स्त्री पुरुष का प्रसंग। (५) विवाह संबंध। (६) दो राजाओं की किसी बात के लिये संधि। (७) किसी विषय पर भिन्न व्यक्तियों का एक मत होना। मतैक्य। 'भेद' का उलटा। (८) दो या अधिक व्यंजनों का मेल। (९) जोड़। योग। मीज़ान। (१०) दो या कई बातों का इकट्ठा होना। इत्तफ़ाक़। जैसे,—(क) जब जैसा संयोग होता है, तब वैसा होता है। (ख) यह तो एक संयोग की बात है।

मुहा०—संयोग से = बिना पहले से निश्चित हुए। इत्तफ़ाक़ से। दैवसात्। जैसे,—यदि संयोग से वे आ जाते, तो झगड़ा हो जाता।

संयोगपृथक्त्व-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा पृथक् या अलगाव जो नित्य न हो। (न्याय)

संयोगमंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के समय पढ़ा जानेवाला वेदमंत्र।

संयोगविरुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] वे पदार्थ जो परस्पर मिलकर खाने योग्य नहीं रहते; और यदि खाए जायँ तो रोग उत्पन्न करते हैं। जैसे,—घी और मधु। मछली और दूध।

संयोगी-संज्ञा पुं० [सं० संयोगिन्] [स्त्री० संयोगिनी] (१) मेल का। मिला हुआ। (२) संयोग करनेवाला। मिलनेवाला। (३) वह पुरुष जो अपनी प्रिया के साथ हो। (४) ब्याहा हुआ। विवाहित।

संयोजक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिलानेवाला। जोड़नेवाला। (२) व्याकरण में वह शब्द जो दो शब्दों या वाक्यों के बीच केवल जोड़ने के लिये आता है।

संयोजन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संयोगी, संयोजनीय, संयोज्य, संयोजित] (१) जोड़ने या मिलाने की क्रिया। (२) सहवास। स्त्री पुरुष का प्रसंग। (३) संसार के बंधन में रखनेवाला। भवबंधन का कारण। (बौद्ध) (४) आयोजन। व्यवस्था। प्रबंध। इंतज़ाम।

संयोजना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आयोजन। व्यवस्था। इंतज़ाम। तैयारी। (२) मेल। मिलान। (३) सहवास। स्त्री पुरुष का

प्रसंग। (४) भवबंधन का कारण। जन्म मरण के चक्र में बद्ध रखनेवाली बातें। (बौद्ध)

विशेष—कामराग, रूपराग, अरूपराग, परिघ, मानस, दृष्टि, शीलव्रतपरामर्ष, विचिकित्सा; औद्धत्य और अविद्या इन सब की गणना संयोजना में होती है।

संयोजित–वि० [सं०] मिलाया हुआ। जोड़ा हुआ।

संयोज्य–वि० [सं०] (१) संयोजन के योग्य। मिलाने योग्य। (२) जो मिलाया या जोड़ा जानेवाला हो।

संयोधकंटक–संज्ञा पुं० [सं०] एक यक्ष का नाम।

सँयोना–क्रि० स० दे० "सँजोना"।

संरंभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ग्रहण करना। पकड़ना। (२) आतुरता। आवेग। क्षोभ। उद्विग्नता। (३) खलबली। बेकली। (४) उत्कंठा। लालसा। शौक़। उत्साह। (५) क्रोध। कोप। (६) शोक। (७) ऐंठ। ठसक। गर्व। (८) फोड़े या घाव का सूजना या लाल होना। (सुश्रुत) (९) घनत्व। अधिकता। अतिरेक। बहुतात। (१०) आरंभ। शुरू। (११) एक अस्त्र का नाम।

संरक्त–वि० [सं०] (१) अनुरक्त। आसक्त। प्रेममग्न। (२) सुंदर। मनोहर। (३) कुपित। क्रोध से लाल।

संरक्षक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० संरक्षिका] (१) रक्षा करनेवाला। रक्षक। (२) देख रेख और पालन पोषण करनेवाला। (३) सहायक। (४) आश्रय देनेवाला।

संरक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संरक्षी, संरक्षित, संरक्ष्य, संरक्षणीय] (१) हानि या नाश आदि से बचाने का काम। हिफ़ाज़त। (२) देखरेख। निगरानी। जैसे,—बालक उनके संरक्षण में है। (३) अधिकार। कब्ज़ा। (४) रोक। प्रतिबंध। (५) रख छोड़ना।

संरक्षणीय–वि० [सं०] (१) रक्षा करने योग्य। हिफ़ाज़त के लायक। (२) रख छोड़ने लायक।

संरक्षित–वि० [सं०] (१) भली भाँति रक्षित। हिफाज़त से रखा हुआ। (२) अच्छी तरह बचाया हुआ।

संरक्षितव्य–वि० [सं०] (१) जिसका संरक्षण करना हो। (२) जिसका संरक्षण उचित हो।

संरक्षी–वि० [सं० संरक्षिन्] [स्त्री० संरक्षिणी] (१) संरक्षण करनेवाला। (२) देख भाल करनेवाला।

संरक्ष्य–वि० [सं०] (१) जिसका संरक्षण करना हो। (२) जिसका संरक्षण उचित हो।

संरब्ध–वि० [सं०] (१) खूब मिला हुआ। खूब जुड़ा हुआ। आश्लिष्ट। (२) जो एक दूसरे को खूब पकड़े हुए हो। (३) हाथ में हाथ मिलाए हुए। (४) क्षुब्ध। उद्विग्न। (५) जोश में आया हुआ। उत्तेजित। (६) क्रोध से भरा हुआ। कोपपूर्ण। जैसे,—संरब्ध वचन। (७) क्रुद्ध। नाराज़। (८) सूजा हुआ। फूला हुआ।

संराधक–संज्ञा पुं० [सं०] ध्यान करनेवाला। आराधना करनेवाला। पूजा करनेवाला।

संराधन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संराधनीय, संराधित, संराध्य] (१) तुष्टीकरण। प्रसन्न करना। (२) पूजा करना। (३) ध्यान। (४) जयजयकार।

संराधनीय–वि० [सं०] पूजा के योग्य।

संराव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोलाहल। शोर। (२) हलचल। धूम।

संरुग्ण–वि० [सं०] खंडित। चूर चूर।

संरुद्ध–वि० [सं०] (१) अच्छी तरह रोका हुआ। (२) घेरा हुआ। (३) अच्छी तरह बंद। (४) आच्छादित। ढँका हुआ। (५) ठसाठस भरा हुआ। (६) मना किया हुआ। वर्जित।

संरूढ़–वि० [सं०] (१) अच्छी तरह चढ़ा हुआ। (२) खूब जमा हुआ। अच्छी तरह लगा हुआ। जिसने खूब जड़ पकड़ी हो। (३) अंकुरित। जमा हुआ। (४) अंगूर फेंकता हुआ। पूजता हुआ। सूखता या अच्छा होता हुआ। (घाव) (५) प्रकट। आविर्भूत। निकल पड़ा हुआ। (६) धृष्ट। प्रगल्भ। (७) प्रौढ़। दृढ़।

संरोचन–संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम। (रामायण)

संरोध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोक। छेंक। रुकावट। (२) गढ़ आदि को चारों ओर से घेरना। घेरा। (३) परिमिति। हदबंदी। (४) बंद करने या मूँदने की क्रिया। (५) अड़चन। बाधा। (६) हिंसा। नाश। (७) क्षेप। फेंकना।

संरोधन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संरोधनीय, संरोध्य, संरुद्ध] (१) रोकना। छेंकना। रुकावट डालना। (२) घेरना। (३) हद बाँधना। (४) बंद करना। मूँदना। (५) बाधा डालना। कार्य्य में हानि पहुँचाना। (६) बंदी करना। क़ैद करना।

संरोधनीय–वि० [सं०] रोकने, छेंकने या घेरने योग्य।

संरोध्य–वि० [सं०] (१) जो रोका, छेंका या घेरा जानेवाला हो। (२) जिसे रोकना या घेरना उचित हो।

संरोपण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संरोपणीय, संरोपित, संरोप्य] (१) पेड़ पौधा लगाना। जमाना। बैठाना। (२) घाव सुखाना। घाव अच्छा करना।

संरोपित–वि० [सं०] जमाया या लगाया हुआ।

संरोप्य–वि० [सं०] (१) जो जमाया या लगाया जानेवाला हो। (२) जिसे जमाना या लगाना उचित हो।

संरोषित–वि० [सं०] ऊपर लगाया हुआ। छोपा हुआ। लेप किया हुआ। पोता हुआ। (सुश्रुत)

संरोह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जमना। ऊपर उगना या बैठना। (२) घाव पर पपड़ी जमना। घाव सूखना। अंगूर फेंकना।

(३) अंकुरित होना। जमना। (४) प्रकट होना। आविर्भूत होना।

संरोहण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संरोहणीय, संरोहा] (१) जमना। ऊपर आना। (२) घाव पर पपड़ी जमना। घाव सूखना। (३) (पेड़ पौधा) जमाना। लगाना।

संलक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संलक्षणीय, संलक्षित, संलक्ष्य] रूप निश्चित करना। लखना। पहचानना। ताड़ना। तमीज़ करना।

संलक्षित–वि० [सं०] (१) लखा हुआ। पहचाना हुआ। ताड़ा हुआ। (२) रूप निश्चित किया हुआ। लक्षणों से जाना हुआ।

संलक्ष्य–वि० [सं०] जो लखा जाय। जो पहचाना जाय। जो देखने में आ सके।

संलक्ष्य क्रम व्यंग्य–संज्ञा पुं० [सं०] व्यंग्य के दो भेदों में से एक। वह व्यंजना जिसमें वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ की प्राप्ति का क्रम लक्षित हो। (साहित्य)

विशेष—इसके द्वारा वस्तु और अलंकार की व्यंजना होती है। जैसे,—"पेड़ का पत्ता नहीं हिलता" इसका व्यंग्यार्थ हुआ कि "हवा नहीं चलती"। इसमें वाच्यार्थ के उपरांत व्यंग्यार्थ की प्राप्ति लक्षित होती है। रस व्यंजना या भावव्यंजना में क्रम लक्षित नहीं होता, इसी से उसे असंलक्ष्य क्रम कहते हैं।

संलग्न–वि० [सं०] (१) बिल्कुल लगा हुआ। सटा हुआ। मिला हुआ। (२) भिड़ा हुआ। लड़ाई में गुथा हुआ। (३) संबद्ध। जुड़ा हुआ।

संलपन–संज्ञा पुं० [सं०] इधर उधर की बातचीत। प्रलाप। गपशप।

संलय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षियों का उतरना या नीचे बैठना। (२) लीन होने की क्रिया। प्रलय। (३) निद्रा। नींद।

संलयन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संलीन] (१) पक्षियों का नीचे उतरना या बैठना। (२) लय को प्राप्त होना। लीन होना। (३) नष्ट होना। व्यक्त न रहना।

संलाप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) परस्पर वार्तालाप। आपस की बातचीत। (२) नाटक में एक प्रकार का संवाद जिसमें क्षोभ या आवेग नहीं होता, पर धीरता होती है।

संलापक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाटक में एक प्रकार का संवाद। संलाप। (२) एक प्रकार का उपरूपक या छोटा अभिनय।

संलिप्त–वि० [सं०] (१) लीन। भली भाँति लिप्त। (२) खूब लगा हुआ।

संलीन–वि० [सं०] (१) खूब लीन। अच्छी तरह लगा हुआ। (२) आच्छादित। ढका हुआ। (३) संकुचित। सिकुड़ा हुआ।

संलेख–संज्ञा पुं० [सं०] पूर्ण संयम। (बौद्ध)

संलोड़न–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संलोड़ित] (१) (जल आदि को) खूब हिलाना या चलाना। क्षुब्ध करना। मथना। (२) खूब हिलाना डुलाना। झकझोरना। (३) उलट पुलट करना। उथल-पुथल करना।

संवत्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वर्ष। संवत्सर। साल। (२) वर्ष विशेष जो किसी संख्या द्वारा सूचित किया जाता है। चली आती हुई वर्ष गणना का कोई वर्ष। सन्। जैसे,—यह कौन संवत है? (३) महाराज विक्रमादित्य के काल से चली हुई मानी जानेवाली वर्ष-गणना।

संवत्सर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वर्ष। साल। (२) पाँच पाँच वर्ष के युगों का प्रथम वर्ष।

विशेष—प्रभवादि साठ संवत्सर १२ युगों में विभक्त हैं जिनमें से प्रत्येक युग पाँच पाँच वर्ष का होता है। प्रत्येक युग के प्रथम वर्ष का नाम संवत्सर है। इसका देवता अग्नि कहा गया है।

(३) शिव का एक नाम।

संवदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) परस्पर कथन। बातचीत। (२) संवाद। सँदेसा। पैगाम। (३) विचार। आलोचना। (४) जाँच।

संवदना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वश में करने की क्रिया। वशीकरण। (२) मंत्र, ओषधि आदि से किसी को वश में करने की क्रिया।

संवनन–संज्ञा पुं० दे० "संवदन"।

संवनना–संज्ञा स्त्री० दे० "संवदना"।

संवर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोक। परिहार। दूर करना। जैसे,—कालसंवर। (२) इंद्रिय निग्रह। मन को दबाना या वश में करना। (३) बौद्ध मतानुसार एक प्रकार का व्रत। (४) बाँध। बंद। (५) पुल। सेतु। (६) चुनना। पसंद करना। (७) कन्या का वर चुनना।

संवरण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवरणीय, संवृत] (१) हटाना। दूर रखना। रोकना। (२) बंद करना। ढाँकना। (३) आच्छादित करना। छोपना। (४) छिपाना। गोपन करना। (५) छिपाव। दुराव। (६) ढक्कन या परदा। (७) घेरा जिसके भीतर सब लोग न जा सकें। (८) बाँध। बंद। (९) सेतु। पुल। (१०) किसी चित्तवृत्ति को दबाने या रोकने की क्रिया। निग्रह। जैसे,—क्रोध संवरण करना। (११) गुदा के चमड़े की तीन परतों में से एक। (१२) कुरु के पिता का नाम। (१३) लेने के लिये पसंद करना। चुनना। (१४) कन्या का विवाह के लिये वर या पति चुनना।

संवरणीय–वि० [सं०] (१) निवारण करने योग्य। रोकने लायक। (२) संगोपनीय। (३) विवाह के योग्य। वरने योग्य।

सँवरना-क्रि० अ० [सं० संवर्णन] (१) बनना। दुरुस्त होना। (२) सजना। अलंकृत होना।

ॐ क्रि० स० [सं० स्मरण, हिं० सुमिरना] याद करना। स्मरण करना। उ०—सँवरौं आदि एक करतारू।—जायसी।

सँवरा‡-वि० दे० "साँवला"।

सँवरिया-वि० दे० "साँवला"। उ०—बिरिख सँवरिया दहिने बोला।—जायसी।

संवर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपनी ओर समेटना। अपने लिये बटोरना। (२) भक्षण। भोजन। चट कर जाना। (३) खपत। लग जाना। (४) एक वस्तु का दूसरी में समा जाना या लीन हो जाना। (५) गुणनफल।

संवर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवर्जनीय, संवर्जित, संवृक्त] (१) छीनना। खसोटना। ले लेना। हरण करना। (२) खा जाना। उड़ा जाना।

संवर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जुटना। भिड़ना। (शत्रु से) (२) लपेटने की क्रिया या भाव। लपेट। (३) फेरा। घुमाव। चक्कर। (४) प्रलय। कल्पांत। (५) एक कल्प का नाम। (६) लपेटी या बटोरी हुई वस्तु। (७) पिंडी। गोला। (८) बट्टी। टिकिया। (९) घना समूह। घनी राशि। (१०) प्रलय काल के सात मेघों में से एक। (११) इंद्र का अनुचर एक मेघ जिससे बहुत जल बरसता है।

विशेष—मेघों के द्रोण, आवर्त्त, पुष्कलावर्त्त आदि कई नाम कहे गए हैं। जिस प्रकार आवर्त्त बिना जल का माना गया है, उसी प्रकार संवर्त्त अत्यंत अधिक जलवाला कहा गया है।

(१२) मेघ। बादल। (१३) संवत्सर। वर्ष। (१४) एक दिव्यास्त्र। (१५) एक केतु का नाम। (१६) ग्रहों का एक योग। (१७) बिभीतक। बहेड़ा।

संवर्त्तक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लपेटनेवाला। (२) लय या नाश करनेवाला। (३) कृष्ण के भाई बलराम। (४) बलराम का अस्त्र लांगल हल। (५) बड़वानल। (६) बिभीतक वृक्ष। बहेड़ा। (७) प्रलय नामक मेघ। (८) प्रलय मेघ की अग्नि। (९) एक नाग। (१०) एक ऋषि।

संवर्त्तकल्प-संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय का एक भेद। (बौद्ध)

संवर्त्तकी-संज्ञा पुं० [सं० संवर्त्तकिन्] कृष्ण के भाई बलराम।

संवर्त्तकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] एक केतु का नाम।

विशेष—यह संध्या समय पश्चिम दिशा में उदय होता है और आकाश के तृतीयांश तक फैला रहता है। इसकी चोटी धूमिल रंग लिए ताम्र वर्ण की होती है। इसके उदय का फल राजाओं का नाश कहा गया है।

संवर्त्तन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवर्त्तनीय, संवर्त्तित, संवृत्त] (१) लपेटना। (२) फेरा या चक्कर देना। (३) किसी ओर फिरना। प्रवृत्त होना। (४) पहुँचना। प्राप्त होना। (५) हल नामक अस्त्र।

संवर्त्तनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सृष्टि का लय। प्रलय।

संवर्त्तनीय-वि० [सं०] लपेटने योग्य। फेरने योग्य।

संवर्त्ति-संज्ञा स्त्री० दे० "संवर्त्तिका"।

संवर्त्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लपेटी हुई वस्तु। (२) बत्ती। (३) कमल का बँधा पत्ता। (४) कोई बँधा हुआ पत्ता। (५) बलराम का अस्त्र, हल। लांगल।

संवर्त्तित-वि० [सं०] (१) लपेटा हुआ। (२) फेरा या घुमाया हुआ।

संवर्द्धक-संज्ञा पुं० [सं०] बढ़ानेवाला।

संवर्द्धन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवर्द्धनीय, संवर्द्धित, संवृद्ध] (१) वृद्धि को प्राप्त होना। बढ़ना। (२) पालना। पोसना। (३) बढ़ाना। उन्नत करना।

संवर्द्धनीय-वि० [सं०] (१) बढ़ने या बढ़ाने योग्य। (२) पालने पोसने योग्य।

संवर्द्धित-वि० [सं०] (१) बढ़ा हुआ। (२) बढ़ाया हुआ। (३) पाला पोसा हुआ।

संवल-संज्ञा पुं० दे० "संबल"।

संवलन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवलनीय, संवलित] (१) भिड़ना। जुटना। (शत्रु से) (२) मेल। मिलान। संयोग। (३) मिलावट। मिश्रण।

संवलित-वि० [सं०] (१) भिड़ा हुआ। जुटा हुआ। (शत्रु से) (२) मिला हुआ। (३) युक्त। सहित। (४) घिरा हुआ।

संवसथ-संज्ञा पुं० [सं०] बस्ती। गाँव या कस्बा।

संवह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वहन करनेवाला। ले जानेवाला। (२) एक वायु जो आकाश के सात मार्गों में से तीसरे मार्ग में रहती है। (३) अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक।

संवहन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वहन करना। ले जाना। ढोना। (२) दिखाना। प्रदर्शित करना।

संवाच्य-संज्ञा पुं० [सं०] बातचीत करने या कथा कहने का ढंग। (यह ६४ कलाओं में से एक है।)

संवाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंघाड़ा। शृंगाटक।

संवाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बातचीत। कथोपकथन। (२) खबर। हाल। समाचार। वृत्तांत। (३) प्रसंग। कथा। चर्चा। (४) नियति। नियुक्ति। (५) मामला। मुकदमा। व्यवहार। (६) सहमति। एक राय। (७) स्वीकार। रजामंदी।

संवादक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाषण करनेवाला। बातचीत करनेवाला। (२) सहमत होनेवाला। एक-राय होनेवाला। (३) स्वीकार करनेवाला। माननेवाला। राजी होनेवाला। (४) बजानेवाला।

संवादन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवादनीय, संवदित, संवादी, संवाद्य] (१) भाषण । बातचीत करना । (२) सहमत होना । एकमत होना । (३) राज़ी होना । मानना । (४) बजाना ।

संवादिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कीट । कीड़ा । (२) पिपीलिका । च्यूँटी ।

संवादित–वि० [सं०] (१) बोलने में प्रवृत्त किया हुआ । बातचीत में लगाया हुआ । (२) राज़ी किया हुआ । मनाया हुआ ।

संवादिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सादृश्य । समानता । (२) एक मेल का होना ।

संवादी–वि० [सं० संवादिन्] [स्त्री० संवादिनी] (१) संवाद करनेवाला । बातचीत करनेवाला । (२) सहमत होनेवाला । राज़ी होनेवाला । (३) अनुकूल होनेवाला । (४) बजानेवाला ।
संज्ञा पुं० संगीत में वह स्वर जो वादी के साथ सब स्वरों के साथ मिलता और सहायक होता है । जैसे,—पंचम से षड्ज तक जाने में बीच के तीन स्वर संवादी होंगे ।

संवार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आच्छादन । ढाँकना । छिपाना । (२) शब्दों के उच्चारण में कंठ का आकुंचन या दबाव । (३) उच्चारण के बाह्य प्रयत्नों में से एक जिसमें कंठ का आकुंचन होता है । 'विवार' का उलटा । (४) बाधा । अड़चन ।

संवारण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवारणीय, संवारित, संवार्य्य] (१) हटाना । दूर करना । निवारण करना । (२) रोकना । न आने देना । (३) निषेध करना । मना करना । (४) छिपाना । ढाँकना ।

संवारणीय–वि० [सं०] (१) हटाने या दूर करने योग्य । (२) रोकने योग्य । (३) छिपाने या ढाँकने योग्य ।

सँवारना–क्रि० स० [सं० संवर्णन] (१) सजाना । अलंकृत करना । (२) दुरुस्त करना । ठीक करना । (३) क्रम से रखना । ठीक ठीक लगाना । (४) कार्य्य सुचारु रूप से संपन्न करना । काम ठीक करना ।
मुहा०—बिगड़ी सँवारना = बिगड़ी बात बनाना ।

संवारित–वि० [सं०] (१) रोका हुआ । हटाया हुआ । (२) मना किया हुआ । (३) ढाँका हुआ ।

संवार्य्य–वि० [सं०] (१) हटाने योग्य । दूर करने योग्य । (२) मना करने योग्य । रोकने योग्य । (३) ढाँकने या छिपाने योग्य ।

संवास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साथ बसना या रहना । (२) परस्पर संबंध । (३) सहवास । प्रसंग । मैथुन । (४) वह खुला हुआ स्थान जहाँ लोग विनोद या मन बहलाव के निमित्त एकत्र हों । (५) सभा । समाज । (६) मकान । घर । रहने का स्थान । (७) सार्वजनिक स्थान ।

संवाह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ले जाना । ढोना । (२) पैर दबाना । (३) खुला उपवन जहाँ लोग एकत्र हों । (४) बाजार । मंडी । (५) पीड़न । सताना । ज़ुल्म ।

संवाहक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ले जानेवाला । पहुँचानेवाला । (२) ढोनेवाला । (३) बदन मलनेवाला । पैर दबानेवाला । पाँव पलोटनेवाला ।

संवाहन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवाहनीय, संवाहित, संवाही, संवाह्य] (१) उठाकर ले चलना । ढोना । (२) ले जाना । पहुँचाना । (३) चलाना । परिचालन । (४) शरीर की मालिश । हाथ पैर दबाना या मलना ।

संवाहित–वि० [सं०] (१) ले गया हुआ । ढोया हुआ । (२) पहुँचाया हुआ । (३) चलाया हुआ । परिचालित । (४) जिसका शरीर-मर्दन हुआ हो । जिसके हाथ पाँव दबाए गए हों ।

संवाही–वि० [सं० संवाहिन्] [स्त्री० संवाहिनी] (१) लेजानेवाला । पहुँचानेवाला । (२) ढोनेवाला । (३) चलानेवाला । (४) अंग मर्दन करनेवाला । हाथ पैर दबानेवाला ।

संवाह्य–वि० [सं०] (१) वहन करने योग्य । (२) मलने योग्य । दबाने योग्य ।

संविग्न–वि० [सं०] (१) क्षुब्ध । उद्विग्न । घबराया हुआ । (२) भीत । आतुर । डरा हुआ ।

संविज्ञ–वि० [सं०] अच्छी तरह जानकार ।

संविज्ञान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सम्यक् बोध । पूर्ण ज्ञान । (२) सहमति । एक मत । (३) स्वीकृति । मंजूरी ।

संवितिका फल–संज्ञा पुं० [सं०] सेब । सेवीफल ।

संवित्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रतिपत्ति । (२) अविवाद । ऐकमत्य । एक राय । (३) चेतना । संज्ञा । (४) अनुभव । (५) बुद्धि ।

संविद्–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चेतना । चैतन्य । ज्ञान शक्ति । (२) बोध । ज्ञान । समझ । (३) बुद्धि । महत्तत्व । (सांख्य) (४) संवेदन । अनुभूति । (५) योग की एक भूमि जिसकी प्राप्ति प्राणायाम से होती है । (६) समझौता । क़रार । वादा । (७) मिलने का स्थान जो पहले से ठहराया हो । (८) युक्ति । उपाय । तदबीर । (९) वृत्तांत । हाल । संवाद । (१०) बँधी हुई परंपरा । रीति । प्रथा । (११) नाम । (१२) तोषण । तुष्टि । (१३) भाँग । (१४) युद्ध । लड़ाई । (१५) युद्ध की ललकार । (१६) संकेत । इशारा । निशान । (१७) प्राप्ति । लाभ । (१८) संपत्ति । जायदाद ।

संविद्–वि० [सं०] चेतन । चेतनायुक्त ।
संज्ञा पुं० वादा । समझौता । इकरार ।

संविदामंजरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँजा ।

संविदित–वि० [सं०] (१) पूर्णतया ज्ञात । जाना बूझा । (२) ढूँढ़ा हुआ । खोजा हुआ । (३) तै पाया हुआ । सब की राय

से ठहराया हुआ। (४) वादा किया हुआ। जिसका करार हुआ हो। (५) समझाया बुझाया हुआ। उपदिष्ट।

संविद्वाद-संज्ञा पुं० [सं०] यूरोपीय दर्शन का एक सिद्धांत जिसमें वेदांत के समान चैतन्य के अतिरिक्त और किसी वस्तु की पारमार्थिक सत्ता नहीं स्वीकार की गई है। चैतन्य वाद।

संविधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रहन सहन। आचार व्यवहार। (२) व्यवस्था। आयोजन। प्रबंध। डौल।

संविधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यवस्था। आयोजन। प्रबंध। (२) विधि। रीति। दस्तूर। (३) रचना। सजना। (४) विचित्रता। अनूठापन।

संविधानक-संज्ञा पुं० [सं०] विचित्र क्रिया या व्यापार। अलौकिक घटना।

संविधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विधान। रीति। दस्तूर। (२) व्यवस्था। प्रबंध। डौल।

संविधेय-वि० [सं०] (१) जिसका डौल या प्रबंध करना हो। (२) जिसे करना हो। (३) जिसका प्रबंध उचित हो।

संविमक-वि० [सं०] (१) अच्छी तरह बँधा हुआ। (२) जिसके सब अंग ठीक हिसाब से हों। सुडौल। (३) प्रदत्त। दिया हुआ।

संविभजन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संविभजनीय] (१) बाँट। बँटाई। (२) साझा।

संविभाग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूर्णतया भाग करना। हिस्सा करना। बाँट। बँटाई। (२) प्रदान।

संविषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अतीस। अतिविषा।

संविष्ट-वि० [सं०] (१) आगत। प्राप्त। पहुँचा हुआ। (२) विश्राम करता हुआ। लेटा हुआ। सोया हुआ। (३) निविष्ट। बैठा हुआ।

संवीक्षण-संज्ञा पुं० [सं० संवीक्षणीय, संवीक्षित, संवीक्ष्य] (१) इधर उधर देखने की क्रिया। अवलोकन। (२) अन्वेषण। खोज। तलाश।

संवीत-वि० [सं०] (१) आवृत। ढका हुआ। छिपा हुआ। (२) कवच धारण किए हुए। (३) पहने हुए। (४) रुद्ध। रुका हुआ। (५) न दिखाई देता हुआ। नजर से गायब। अदृश्य। (६) अनदेखा किया हुआ। जिसे देख कर भी टाल गए हों।

संज्ञा पुं० (१) पहनावा। वस्त्र। आच्छादन। (२) सफेद कटमी।

संवीती-वि० [सं० संवीतिन्] जो यज्ञोपवीत पहने हो।

संवृक्त-वि० [सं०] (१) छीना हुआ। हरण किया हुआ। (२) उड़ाया हुआ। खरचा खाया हुआ।

संवृत-वि० [सं०] (१) आच्छादित। ढका हुआ। बंद किया हुआ। (२) घिरा हुआ। (३) लपेटा हुआ। (४) युक्त। सहित। पूर्ण। (५) गलित। (६) दबाया हुआ। दमन किया हुआ। (७) जो किनारे या अलग हो गया हो। (८) रुँधा हुआ। (गला) (९) धीमा किया हुआ।

संज्ञा पुं० (१) वरुण देवता। (२) गुप्त स्थान। (३) एक प्रकार का जलवेतस्। एक प्रकार का बेंत।

संवृतकोष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] कोष्ठबद्धता। कब्जियत।

संवृत मंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] गुप्त मंत्रणा। भेद की बातचीत।

संवृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] ढकने या छिपाने की क्रिया।

संवृत्त-वि० [सं०] (१) पहुँचा हुआ। समागत। प्राप्त। (२) घटित। जो हुआ हो। (३) जो पूरा हुआ हो। (कामना, इच्छा आदि।) (४) उत्पन्न। पैदा। (५) उपस्थित। मौजूद।

संज्ञा पुं० (१) वरुण देवता। (२) एक नाग का नाम।

संवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निष्पत्ति। सिद्धि। (२) एक देवी का नाम।

संवृद्ध-वि० [सं०] (१) बढ़ा हुआ। (२) उन्नत।

संवृद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बढ़ने की क्रिया या भाव। बढ़ती। अधिकता। (२) धन आदि की अधिकता। समृद्धि।

संवेग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूर्ण वेग या तेजी। (२) आवेग। घबराहट। उद्विग्नता। खलबली। (३) भय। सहम। (४) ज़ोर। अतिरेक।

संवेजन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवेजनीय, संवेजित, संविग्न] (१) उद्विग्न करना। घबराना। खलबली डालना। (२) सहमाना। डराना। (३) भड़काना। उत्तेजित करना।

यौ०—रोम-संवेजन = रोंगटे खड़े होना। पुलक होना। नेत्र संवेजन = आँख का पिचपिचा जाना।

संवेद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुख दुख आदि का ज्ञान पड़ना। अनुभव। वेदना। (२) ज्ञान। बोध।

संवेदन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवेदनीय, संवेदित, संवेद्य] (१) अनुभव करना। सुख दुःख आदि की प्रतीति करना। क्लेश, आनंद, शीत, ताप आदि को मन में मालूम करना। (२) जताना। प्रकट करना। बोध कराना। (३) नकछिकनी नाम की घास।

संवेदनीय-वि० [सं०] (१) अनुभव योग्य। प्रतीति योग्य। (२) जताने लायक। बोध कराने योग्य।

संवेदित-वि० [सं०] (१) अनुभव किया हुआ। प्रतीत किया हुआ। (२) जताया हुआ। बोध कराया हुआ। बताया हुआ।

संवेद्य-वि० [सं०] (१) अनुभव करने योग्य। प्रतीत करने योग्य। मन में मालूम करने लायक। (२) दूसरे को अनुभव कराने योग्य। जनाने योग्य। बताने लायक।

यौ०—स्वसंवेद्य = अपने ही अनुभव करने योग्य। जो दूसरे को बताया न जा सके, आप ही आप मालूम किया जा सके।

संवेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पास आना। पहुँचना। (२) प्रवेश। घुसना। (३) बैठना। आसन जमाना। (४) लेटना। सोना।

संवादन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवादनीय, संवादित, संवादी, संवाद्य] (१) भाषण। बातचीत करना। (२) सहमत होना। एक-मत होना। (३) राज़ी होना। मानना। (४) बजाना।

संवादिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कीट। कीड़ा। (२) पिपीलिका। च्यूँटी।

संवादित–वि० [सं०] (१) बोलने में प्रवृत्त किया हुआ। बातचीत में लगाया हुआ। (२) राज़ी किया हुआ। मनाया हुआ।

संवादिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सादृश्य। समानता। (२) एक मेल का होना।

संवादी–वि० [सं० संवादिन्] [स्त्री० संवादिनी] (१) संवाद करनेवाला। बातचीत करनेवाला। (२) सहमत होनेवाला। राज़ी होनेवाला। (३) अनुकूल होनेवाला। (४) बजानेवाला।
संज्ञा पुं० संगीत में वह स्वर जो वादी के साथ सब स्वरों के साथ मिलता और सहायक होता है। जैसे,—पंचम से षड्ज तक जाने में बीच के तीन स्वर संवादी होंगे।

संवार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आच्छादन। ढाँकना। छिपाना। (२) शब्दों के उच्चारण में कंठ का आकुंचन या दबाव। (३) उच्चारण के बाह्य प्रयत्नों में से एक जिसमें कंठ का आकुंचन होता है। 'विवार' का उलटा। (४) बाधा। अड़चन।

संवारण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवारणीय, संवारित, संवार्य्य] (१) हटाना। दूर करना। निवारण करना। (२) रोकना। न आने देना। (३) निषेध करना। मना करना। (४) छिपाना। ढाँकना।

संवारणीय–वि० [सं०] (१) हटाने या दूर करने योग्य। (२) रोकने योग्य। (३) छिपाने या ढाँकने योग्य।

सँवारना–क्रि० स० [सं० संवर्णन] (१) सजाना। अलंकृत करना। (२) दुरुस्त करना। ठीक करना। (३) क्रम से रखना। ठीक ठीक लगाना। (४) कार्य्य सुचारु रूप से संपन्न करना। काम ठीक करना।
मुहा०—बिगड़ी सँवारना = बिगड़ी बात बनाना।

संवारित–वि० [सं०] (१) रोका हुआ। हटाया हुआ। (२) मना किया हुआ। (३) ढाँका हुआ।

संवार्य्य–वि० [सं०] (१) हटाने योग्य। दूर करने योग्य। (२) मना करने योग्य। रोकने योग्य। (३) ढाँकने या छिपाने योग्य।

संवास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साथ बसना या रहना। (२) परस्पर संबंध। (३) सहवास। प्रसंग। मैथुन। (४) वह खुला हुआ स्थान जहाँ लोग विनोद या मन बहलाव के निमित्त एकत्र हों। (५) सभा। समाज। (६) मकान। घर। रहने का स्थान। (७) सार्वजनिक स्थान। (८) खुला उपवन जहाँ लोग एकत्र हों। (९) बाज़ार। मंडी। (१०) पीड़न। सताना। ज़ुल्म।

संवाह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ले जाना। ढोना। (२) पैर दबाना।

संवाहक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ले जानेवाला। पहुँचानेवाला। (२) ढोनेवाला। (३) मर्दन मलनेवाला। पैर दबानेवाला। पाँव पलोटनेवाला।

संवाहन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवाहनीय, संवाहित, संवाही, संवाह्य] (१) उठाकर ले चलना। ढोना। (२) ले जाना। पहुँचाना। (३) चलाना। परिचालन। (४) शरीर की मालिश। हाथ पैर दबाना या मलना।

संवाहित–वि० [सं०] (१) ले गया हुआ। ढोया हुआ। (२) पहुँचाया हुआ। (३) चलाया हुआ। परिचालित। (४) जिसका शरीर-मर्दन हुआ हो। जिसके हाथ पाँव दबाए गए हों।

संवाही–वि० [सं० संवाहिन्] [स्त्री० संवाहिनी] (१) ले जानेवाला। पहुँचानेवाला। (२) ढोनेवाला। (३) चलानेवाला। (४) अंग मर्दन करनेवाला। हाथ पैर दबानेवाला।

संवाह्य–वि० [सं०] (१) वहन करने योग्य। (२) मलने योग्य। दबाने योग्य।

संविग्न–वि० [सं०] (१) क्षुब्ध। उद्विग्न। घबराया हुआ। (२) भीत। आतुर। डरा हुआ।

संविज्ञ–वि० [सं०] अच्छी तरह जानकार।

संविज्ञान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सम्यक् बोध। पूर्ण ज्ञान। (२) सहमति। एक मत। (३) स्वीकृति। मंज़ूरी।

संवितिका फल–संज्ञा पुं० [सं०] सेब। सेवीफल।

संवित्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रतिपत्ति। (२) अविवाद। ऐकमत्य। एक राय। (३) चेतना। संज्ञा। (४) अनुभव। (५) बुद्धि।

संविद्–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चेतना। चैतन्य। ज्ञान शक्ति। (२) बोध। ज्ञान। समझ। (३) बुद्धि। महत्तत्व। (सांख्य) (४) संवेदन। अनुभूति। (५) योग की एक भूमि जिसकी प्राप्ति प्राणायाम से होती है। (६) समझौता। क़रार। वादा। (७) मिलने का स्थान जो पहले से ठहराया हो। (८) युक्ति। उपाय। तदबीर। (९) वृत्तांत। हाल। संवाद। (१०) बँधी हुई परंपरा। रीति। प्रथा। (११) नाम। (१२) तोषण। तुष्टि। (१३) भाँग। (१४) युद्ध। लड़ाई। (१५) युद्ध की ललकार। (१६) संकेत। इशारा। निशान। (१७) प्राप्ति। लाभ। (१८) संपत्ति। जायदाद।

संविद्–वि० [सं०] चेतन। चेतनायुक्त।
संज्ञा पुं० वादा। समझौता। इकरार।

संविदामंजरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँजा।

संविदित–वि० [सं०] (१) पूर्णतया ज्ञात। जाना बूझा। (२) ढूँढ़ा हुआ। खोजा हुआ। (३) सै पाया हुआ। सब की राय

से ठहराया हुआ । (४) वादा किया हुआ । जिसका करार हुआ हो । (५) समझाया बुझाया हुआ । उपदिष्ट ।

संविद्वाद–संज्ञा पुं० [सं०] यूरोपीय दर्शन का एक सिद्धांत जिसमें वेदांत के समान चैतन्य के अतिरिक्त और किसी वस्तु की पारमार्थिक सत्ता नहीं स्वीकार की गई है । चैतन्य वाद ।

संविधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रहन सहन । आचार व्यवहार । (२) व्यवस्था । आयोजन । प्रबंध । डौल ।

संविधान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यवस्था । आयोजन । प्रबंध । (२) विधि । रीति । दस्तूर । (३) रचना । सजना । (४) विचित्रता । अनूठापन ।

संविधानक–संज्ञा पुं० [सं०] विचित्र क्रिया या व्यापार । अलौकिक घटना ।

संविधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विधान । रीति । दस्तूर । (२) व्यवस्था । प्रबंध । डौल ।

संविधेय–वि० [सं०] (१) जिसका डौल या प्रबंध करना हो । (२) जिसे करना हो । (३) जिसका प्रबंध उचित हो ।

संविमक–वि० [सं०] (१) अच्छी तरह बँधा हुआ । (२) जिसके सब अंग ठीक हिसाब से हों । सुडौल । (३) प्रदत्त । दिया हुआ ।

संविभजन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संविभजनीय] (१) बाँट । बँटाई । (२) साझा ।

संविभाग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूर्णतया भाग करना । हिस्सा करना । बाँट । बँटाई । (२) प्रदान ।

संविषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] अतीस । अतिविषा ।

संविष्ट–वि० [सं०] (१) आगत । प्राप्त । पहुँचा हुआ । (२) विश्राम करता हुआ । लेटा हुआ । सोया हुआ । (३) निविष्ट । बैठा हुआ ।

संवीक्षण–संज्ञा पुं० [सं० संवीक्षणीय, संवीक्षित, संवीक्ष्य] (१) इधर उधर देखने की क्रिया । अवलोकन । (२) अन्वेषण । खोज । तलाश ।

संवीत–वि० [सं०] (१) आवृत । ढका हुआ । छिपा हुआ । (२) कवच धारण किए हुए । (३) पहने हुए । (४) रुद्ध । रुका हुआ । (५) न दिखाई देता हुआ । नजर से गायब । अदृश्य । (६) अनदेखा किया हुआ । जिसे देख कर भी टाल गए हों ।

संज्ञा पुं० (१) पहनावा । वस्त्र । आच्छादन । (२) सफेद कटभी ।

संवीती–वि० [सं० संवीतिन्] जो यज्ञोपवीत पहने हो ।

संवृक्त–वि० [सं०] (१) छीना हुआ । हरण किया हुआ । (२) उड़ाया हुआ । लपका लाया हुआ ।

संवृत–वि० [सं०] (१) आच्छादित । ढका हुआ । बंद किया हुआ । (२) घिरा हुआ । (३) लपेटा हुआ । (४) युक्त । सहित । पूर्ण । (५) रक्षित । (६) दबाया हुआ । दमन किया हुआ । (७) जो किनारे या अलग हो गया हो । (८) रुँधा हुआ । (गला) (९) धीमा किया हुआ ।

संज्ञा पुं० (१) वरुण देवता । (२) गुप्त स्थान । (३) एक प्रकार का जलवेतस् । एक प्रकार का बेंत ।

संवृतकोष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] कोष्ठबद्धता । कब्ज़ियत ।

संवृत मंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] गुप्त मंत्रणा । भेद की बातचीत ।

संवृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] ढकने या छिपाने की क्रिया ।

संवृत्त–वि० [सं०] (१) पहुँचा हुआ । समागत । प्राप्त । (२) घटित । जो हुआ हो । (३) जो पूरा हुआ हो । (कामना, इच्छा आदि ।) (४) उत्पन्न । पैदा । (५) उपस्थित । मौजूद ।

संज्ञा पुं० (१) वरुण देवता । (२) एक नाग का नाम ।

संवृत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निष्पत्ति । सिद्धि । (२) एक देवी का नाम ।

संवृद्ध–वि० [सं०] (१) बढ़ा हुआ । (२) उन्नत ।

संवृद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बढ़ने की क्रिया या भाव । बढ़ती । अधिकता । (२) धन आदि की अधिकता । समृद्धि ।

संवेग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूर्ण वेग या तेजी । (२) आवेग । घबराहट । उद्विग्नता । खलबली । (३) भय । सहम । (४) ज़ोर । अतिरेक ।

संवेजन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवेजनीय, संवेजित, संविग्न] (१) उद्विग्न करना । घबराना । खलबली डालना । (२) सहमाना । डराना । (३) भड़काना । उत्तेजित करना ।

यौ०—रोम-संवेजन = रोंगटे खड़े होना । पुलक होना । नेत्र संवेजन = पलकों का पिचकारी लगाना ।

संवेद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुख दुख आदि का ज्ञान पड़ना । अनुभव । वेदना । (२) ज्ञान । बोध ।

संवेदन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवेदनीय, संवेदित, संवेद्य] (१) अनुभव करना । सुख दुःख आदि की प्रतीति करना । क्लेश, आनंद, शांति, ताप आदि को मन में मालूम करना । (२) जताना । प्रकट करना । बोध कराना । (३) नकछिकनी नाम की घास ।

संवेदनीय–वि० [सं०] (१) अनुभव योग्य । प्रतीति योग्य । (२) जताने लायक़ । बोध कराने योग्य ।

संवेदित–वि० [सं०] (१) अनुभव किया हुआ । प्रतीत किया हुआ । (२) जताया हुआ । बोध कराया हुआ । बताया हुआ ।

संवेद्य–वि० [सं०] (१) अनुभव करने योग्य । प्रतीत करने योग्य । मन में मालूम करने लायक । (२) दूसरे को अनुभव कराने योग्य । जताने योग्य । बताने लायक ।

यौ०—स्वसंवेद्य = अपने ही अनुभव करने योग्य । जो दूसरे को बताया न जा सके, आप ही आप मालूम किया जा सके ।

संवेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पास आना । पहुँचना । (२) प्रवेश । घुसना । (३) बैठना । आसन जमाना । (४) लेटना । सोना ।

पड़ रहना। (५) कामशास्त्रानुसार एक प्रकार का रतिबंध। (६) काष्ठासन। पीढ़ा। पाटा। (७) अग्नि देवता, जो रति के अधिष्ठाता माने गए हैं।

संवेशक–संज्ञा पुं० [सं०] ठीक ठिकाने से रखनेवाला। नरतीब देनेवाला।

संवेशन–संज्ञा पुं० [सं०] [संवेशनीय, संवेशित, संवेश्य] (१) बैठना। (२) लेटना। पड़ रहना। सोना। (३) घुसना। प्रवेश करना। (४) रति। रमण। समागम।

संवेश्य–वि० [सं०] (१) लेटने योग्य। (२) घुसने योग्य।

संवेष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] लपेटने का कपड़ा इत्यादि। वेठन। आच्छादन।

संवेष्टन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवेष्टित, संवेष्टनीय] (१) लपेटना। ढाँकना। बंद करना। (२) घेरना।

संव्यवहार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह का व्यवहार। अच्छा सलूक। एक दूसरे के प्रति उत्तम आचरण। (२) मामला। प्रसंग। (३) संसर्ग। लगाव। (४) पूरा सेवन। व्यवहार। उपयोग। इस्तेमाल। (५) लेन देन करनेवाला। व्यवसायी। दूकानदार। (६) प्रचलित शब्द। आम फ़हम लफ़्ज़।

संव्यान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तरीय वस्त्र। चादर। दुपट्टा। (२) वस्त्र। आच्छादन। कपड़ा।

संव्याप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आच्छादन। वस्त्र। (२) ओढ़ना।

संशप्त–वि० [सं०] (१) जो शापग्रस्त हो। (२) जिसने किसी के साथ प्रतिज्ञा की या शपथ खाई हो। वाग्बद्ध।

संशप्तक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह योद्धा जिसने बिना सफल हुए लड़ाई आदि से न हटने की शपथ खाई हो। (२) वह जिसने यह शपथ खाई हो कि बिना मारे न लौटेंगे। (३) कुरुक्षेत्र के युद्ध में एक दल जिसने अर्जुन के वध की प्रतिज्ञा की थी, पर स्वयं मारा गया था।

संशब्द–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ललकार। (२) निर्वचन। कथन। (३) स्तुति। प्रशंसा।

संशम–संज्ञा पुं० [सं०] पूर्ण शांति। पूर्ण तुष्टि। कामना की पूर्ण निवृत्ति।

संशमन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शांत करना। निवृत्त करना। (२) नष्ट करना। न रहने देना। (३) वह औषध जो दोषों को बिना घटाए बढ़ाए शोधन करे।

संशमनवर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] वे ओषधियाँ जो संशमन करें। जैसे,—देवदारु, कुट, हल्दी आदि।

संशय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लेट रहना। पड़ रहना। (२) दो या कई बातों में से किसी एक का भी मन में न बैठना। अनिश्चयात्मक ज्ञान। अनिश्चय। संदेह। शक। शुबहा। दुबधा।

विशेष—यह न्याय के सोलह पदार्थों में से एक है।

(३) आशंका। खतरा। डर। जैसे,—प्राण का संशय में पड़ना। (४) संदेह नामक काव्यालंकार।

संशयसम–संज्ञा पुं० [सं०] न्याय दर्शन में २४ जातियों अर्थात् खंडन की असंगत युक्तियों में से एक। वादी के दृष्टांत को लेकर उसमें साध्य और असाध्य दोनों धर्मों का आरोप करके वादी के साध्य विषय को संदिग्ध सिद्ध करने का प्रयत्न।

विशेष—वादी कहता है—"शब्द अनित्य है, उत्पत्ति धर्मवाला होने से, घड़े के समान"। इस पर यदि प्रतिवादी कहे—"शब्द नित्य और अनित्य दोनों हुआ, मूर्त्त होने के कारण, घट और घटत्व के समान" तो उसका यह असंगत उत्तर 'संशयसम' होगा।

संशयच्छेद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संशय का दूर होना। (२) एक प्रकार का काव्यालंकार।

संशयात्मक–वि० [सं०] जिसमें संदेह हो। संदिग्ध। शुबहे का। अनिश्चित।

संशयात्मा–संज्ञा पुं० [सं० संशयात्मन्] जिसका मन किसी बात पर विश्वास न करे। विश्वासहीन। संदेहवादी।

संशयापन्न–संज्ञा पुं० [सं०] संशययुक्त। अनिश्चित।

संशयालु–वि० [सं०] विश्वास न करनेवाला। बात बात में संदेह करनेवाला।

संशयित–वि० [सं०] (१) संशययुक्त। दुबधा में पड़ा हुआ। (२) संदिग्ध। अनिश्चित।

संशयिता–संज्ञा पुं० [सं० संशयितृ] संशयकर्त्ता। संशय करनेवाला।

संशयी–वि० [सं० संशयिन्] (१) संशय करनेवाला। संदेह करनेवाला। (२) शक्की।

संशयोपमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का उपमा अलंकार जिसमें कई वस्तुओं के साथ समानता संशय के रूप में कही जाती है।

संशयोपेत–वि० [सं०] संशययुक्त। संदिग्ध। अनिश्चित।

संशरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दलित करना। चूर्ण करना। (२) भंग करना। तोड़ना। (३) युद्ध का आरंभ। दे० "संसरण"। (४) शरण में जाना। पनाह लेना।

संशरुक–वि० [सं०] (१) तोड़नेवाला। भंग करनेवाला। (२) दलन या मर्दन करनेवाला।

संशासन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा शासन। उत्तम राज्य-प्रबंध। (२) आदेश मंत्र।

संशित–वि० [सं०] (१) सान पर चढ़ाया हुआ। तेज़ किया हुआ। चोखा या तीखा किया हुआ। टेया हुआ। (२) उद्यत। उतारू। तत्पर। आमादा। (३) दक्ष। निपुण। पटु। (४) कर्कश। कटु। अप्रिय। कठोर। जैसे,—संशित वचन।

संशितव्रत–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो नियम व्रत के पालन में

-पक्का हो। कठोरता से नियम या व्रत आदि का पालन करनेवाला।

संशिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संशय। संदेह। शक। (२) खूब टेना या तेज करना। खूब सान पर चढ़ाना।

संशिष्ट-वि० [सं०] बचा हुआ। बाकी रहा हुआ।

संशीत-वि० [सं०] (१) जो ठंढा हुआ हो। (२) ठंढ से जमा हुआ।

संशुद्ध-वि० [सं०] (१) यथेष्ट शुद्ध। विशुद्ध। (२) साफ किया हुआ। शुद्ध किया हुआ। (३) चुकाया हुआ। चुकता किया हुआ। बेबाक। (ऋण आदि) (४) जाँचा हुआ। परीक्षित। (५) अपराध से मुक्त किया हुआ। जैसे,—संशुद्ध-घातक।

संशुद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पूरी सफाई। पूरी पवित्रता। (२) शरीर की सफाई।

संशुष्क-वि० [सं०] (१) बिल्कुल सूखा हुआ। शुष्क। (२) नीरस। (३) जो सहृदय न हो। अरसिक।

संशोधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शोधन करनेवाला। सुधारनेवाला। दुरुस्त या ठीक करनेवाला। (२) संस्कार करनेवाला। बुरी से अच्छी दशा में लानेवाला। (३) अदा करनेवाला। चुकानेवाला।

संशोधन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संशोधनीय, संशोधित, संशुद्ध, संशोध्य] (१) शुद्ध करना। साफ़ करना। (२) दुरुस्त करना। ठीक करना। सुधारना। त्रुटि या दोष दूर करना। कसर या ऐब निकालना। (३) चुकता करना। अदा करना। बेबाक़ करना। (ऋण आदि)

संशोधनीय-वि० [सं०] (१) साफ करने योग्य। (२) सुधारने या ठीक करने योग्य।

संशोधित-वि० [सं०] (१) खूब शुद्ध किया हुआ। (२) सुधारा हुआ। ठीक किया हुआ। दुरुस्त किया हुआ।

संशोधी-वि० [सं० संशोधिन्] [स्त्री० संशोधिनी] (१) सुधारनेवाला। दुरुस्त करनेवाला। (२) साफ़ करनेवाला।

संशोध्य-वि० [सं०] (१) साफ़ करने योग्य। (२) सुधारने या ठीक करने योग्य। (३) जिसका सुधार करना हो। (४) जिसे साफ़ करना हो।

संशोषण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संशोषणीय, संशोषित, संशोष्य] (१) बिल्कुल सोखना। जज्ब करना। (२) सुखाना।

संशोषणीय-वि० [सं०] सोखने योग्य।

संशोषित-वि० [सं०] सोखा हुआ।

संशोष्य-वि० [सं०] सोखने योग्य। जिसे सोखना या सुखाना हो।

संश्यान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) (शीत से) ठिठुरा हुआ। सिकुड़ा हुआ। (२) जमा हुआ।

संश्रय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संयोग। मेल। (२) संबंध। समागम। लगाव। संपर्क। (३) आश्रय। शरण। पनाह। (४) सहारा। अवलंब। (५) राजाओं का परस्पर रक्षा के लिये मेल। अभिसंधि।

विशेष—स्मृतियों में यह राजा के छः गुणों में कहा गया है और दो प्रकार का माना गया है—(१) शत्रु से पीड़ित हो कर दूसरे राजा की सहायता लेना; और (२) शत्रु से पहुँचनेवाली हानि की आशंका से किसी दूसरे बलवान् राजा का आश्रय लेना।

(६) पनाह की जगह। शरण-स्थान। (७) रहने या ठहरने की जगह। घर। (८) उद्देश्य। लक्ष्य। मतलब। (९) किसी वस्तु का अंश। हिस्सा।

संश्रयण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संश्रयणीय, संश्रयी, संश्रित] (१) सहारा लेना। अवलंब पकड़ना। (२) शरण लेना। पनाह लेना।

संश्रयणीय-वि० [सं०] (१) सहारा लेने योग्य। (२) शरण लेने योग्य।

संश्रयी-वि० [सं० संश्रयिन्] (१) सहारा लेनेवाला। (२) शरण लेनेवाला।

संज्ञा पुं० भृत्य। नौकर।

संश्रव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुनना। कान देना। (२) अंगीकार। स्वीकार। मानना। रज़ामंदी। (३) वादा। प्रतिज्ञा। क़रार।

वि० जो सुना जा सके। सुनाई पड़नेवाला।

संश्रवण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संश्रवणीय, संश्रुत] (१) सुनना। खूब कान देना। (२) अंगीकार करना। स्वीकार करना। (३) वादा करना। करार करना।

संश्रांत-वि० [सं०] बिल्कुल थका हुआ। शिथिल। पसमाँदा।

संश्राव-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संश्रावणीय, संश्राविन, संश्राव्य] (१) कान देना। सुनना। (२) अंगीकार। स्वीकार।

संश्रावक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुननेवाला। श्रोता। (२) चेला। शिष्य।

संश्रावित-वि० [सं०] (१) सुनाया हुआ। (२) ज़ोर से पढ़ कर सुनाया हुआ।

संश्राव्य-वि० [सं०] (१) सुनाने योग्य। (२) सुनाई पड़नेवाला।

संश्रित-वि० [सं०] (१) जुड़ा या मिला हुआ। संयुक्त। (२) लगा हुआ। सटा। अँटका हुआ। (३) टँगा हुआ। टिका या ठहरा हुआ। (४) आलिंगित। संश्लिष्ट। गले या छाती से लगाया हुआ। (५) भाग कर शरण में गया हुआ। जिसने जाकर पनाह ली हो। (६) जिसने आश्रय ग्रहण किया हो। जो निर्वाह के लिये किसी के पास गया हो।

पड़ रहना। (५) कामशास्त्रानुसार एक प्रकार का रतिबंध। (६) कामासंग। पीड़ा। पाटा। (७) अग्नि देवता, जो रति के अधिष्ठाता माने गए हैं।

संवेशक–संज्ञा पुं० [सं०] ठीक ठिकाने से रखनेवाला। नरतीब देनेवाला।

संवेशन–संज्ञा पुं० [सं०] [संवेशनीय, संवेशित, संवेश्य] (१) बैठना। (२) लेटना। पड़ रहना। सोना। (३) घुसना। प्रवेश करना। (४) रति। रमण। समागम।

संवेश्य–वि० [सं०] (१) लेटने योग्य। (२) घुसने योग्य।

संवेष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] लपेटने का कपड़ा इत्यादि। वेठन। आच्छादन।

संवेष्टन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवेष्टित, संवेष्टनीय] (१) लपेटना। ढाँकना। बंद करना। (२) घेरना।

संव्यवहार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह का व्यवहार। अच्छा सलूक। एक दूसरे के प्रति उत्तम आचरण। (२) मामला। प्रसंग। (३) संसर्ग। लगाव। (४) पूरा सेवन। व्यवहार। उपयोग। इस्तेमाल। (५) लेन देन करनेवाला। व्यवसायी। दूकानदार। (६) प्रचलित शब्द। आम फ़हम लफ़्ज़।

संव्यान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तरीय वस्त्र। चादर। दुपट्टा। (२) वस्त्र। आच्छादन। कपड़ा।

संव्याप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आच्छादन। वस्त्र। (२) ओढ़ना।

संशप्त–वि० [सं०] (१) जो शापग्रस्त हो। (२) जिसने किसी के साथ प्रतिज्ञा की या शपथ खाई हो। वाग्बद्ध।

संशप्तक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह योद्धा जिसने बिना सफल हुए लड़ाई आदि से न हटने की शपथ खाई हो। (२) वह जिसने यह शपथ खाई हो कि बिना मारे न लौटेंगे। (३) कुरुक्षेत्र के युद्ध में एक दल जिसने अर्जुन के वध की प्रतिज्ञा की थी, पर स्वयं मारा गया था।

संशब्द–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ललकार। (२) निर्वचन। कथन। (३) स्तुति। प्रशंसा।

संशम–संज्ञा पुं० [सं०] पूर्ण शांति। पूर्ण तुष्टि। कामना की पूर्ण निवृत्ति।

संशमन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शांत करना। निवृत्त करना। (२) नष्ट करना। न रहने देना। (३) वह औषध जो दोषों को बिना घटाए बढ़ाए शोधन करे।

संशमनवर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] वे ओषधियाँ जो संशमन करें। जैसे,—देवदारु, कुट, हल्दी आदि।

संशय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लेट रहना। पड़ रहना। (२) दो या कई बातों में से किसी एक का भी मन में न बैठना। अनिश्चयात्मक ज्ञान। अनिश्चय। संदेह। शक। शुबहा। दुबधा।

विशेष—यह न्याय के सोलह पदार्थों में से एक है।

(३) आशंका। खतरा। डर। जैसे,—प्राण का संशय आ पड़ना। (४) संदेह नामक काव्यालंकार।

संशयसम–संज्ञा पुं० [सं०] न्याय दर्शन में २४ जातियों अर्थात् खंडन की असंगत युक्तियों में से एक। वादी के दृष्टांत को लेकर उसमें साध्य और असाध्य दोनों धर्मों का आरोप करके वादी के साध्य विषय को संदिग्ध सिद्ध करने का प्रयत्न।

विशेष—वादी कहता है—"शब्द अनित्य है, उत्पत्ति धर्मवाला होने से, घड़े के समान"। इस पर यदि प्रतिवादी कहे—"शब्द नित्य और अनित्य दोनों हुआ, मूर्त्त होने के कारण, घट और घटत्व के समान" तो उसका यह असंगत उत्तर 'संशयसम' होगा।

संशयक्षेप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संशय का दूर होना। (२) एक प्रकार का काव्यालंकार।

संशयात्मक–वि० [सं०] जिसमें संदेह हो। संदिग्ध। शुबहे का। अनिश्चित।

संशयात्मा–संज्ञा पुं० [सं० संशयात्मन्] जिसका मन किसी बात पर विश्वास न करे। विश्वासहीन। संदेहवादी।

संशयापन्न–संज्ञा पुं० [सं०] संशययुक्त। अनिश्चित।

संशयालु–वि० [सं०] विश्वास न करनेवाला। बात बात में संदेह करनेवाला।

संशयित–वि० [सं०] (१) संशययुक्त। दुबधा में पड़ा हुआ। (२) संदिग्ध। अनिश्चित।

संशयिता–संज्ञा पुं० [सं० संशयितृ] संशयकर्त्ता। संशय करनेवाला।

संशयी–वि० [सं० संशयिन्] (१) संशय करनेवाला। संदेह करनेवाला। (२) शक्की।

संशयोपमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का उपमा अलंकार जिसमें कई वस्तुओं के साथ समानता संशय के रूप में कही जाती है।

संशयोपेत–वि० [सं०] संशययुक्त। संदिग्ध। अनिश्चित।

संशरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दलित करना। चूर्ण करना। (२) भंग करना। तोड़ना। (३) युद्ध का आरंभ। दे० "संसरण"। (४) शरण में जाना। पनाह लेना।

संशरुक–वि० [सं०] (१) तोड़नेवाला। भंग करनेवाला। (२) दलन या मर्दन करनेवाला।

संशासन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा शासन। उत्तम राज्य-प्रबंध। (२) आदेश मंत्र।

संशित–वि० [सं०] (१) सान पर चढ़ाया हुआ। तेज़ किया हुआ। चोखा या तीखा किया हुआ। टेया हुआ। (२) उद्यत। उतारू। तत्पर। आमादा। (३) दक्ष। निपुण। पटु। (४) कर्कश। कटु। अप्रिय। कठोर। जैसे,—संशित वचन।

संशितव्रत–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो नियम व्रत के पालन में

पक्का हो। कठोरता से नियम या व्रत आदि का पालन करनेवाला।

संशिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संशय। संदेह। शक। (२) खूब टेना या तेज करना। खूब सान पर चढ़ाना।

संशिष्ट-वि० [सं०] बचा हुआ। बाकी रहा हुआ।

संशीत-वि० [सं०] (१) जो ठंढा हुआ हो। (२) ठंढ से जमा हुआ।

संशुद्ध-वि० [सं०] (१) यथेष्ट शुद्ध। विशुद्ध। (२) साफ किया हुआ। शुद्ध किया हुआ। (३) चुकाया हुआ। चुकता किया हुआ। बेबाक। (ऋण आदि) (४) जाँचा हुआ। परीक्षित। (५) अपराध से मुक्त किया हुआ। जैसे,—संशुद्ध-पातक।

संशुद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पूरी सफाई। पूरी पवित्रता। (२) शरीर की सफाई।

संशुष्क-वि० [सं०] (१) बिल्कुल सूखा हुआ। शुष्क। (२) नीरस। (३) जो सहृदय न हो। अरसिक।

संशोधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शोधन करनेवाला। सुधारनेवाला। दुरुस्त या ठीक करनेवाला। (२) संस्कार करनेवाला। बुरी से अच्छी दशा में लानेवाला। (३) अदा करनेवाला। चुकानेवाला।

संशोधन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संशोधनीय, संशोधित, संशुद्ध, संशोध्य] (१) शुद्ध करना। साफ़ करना। (२) दुरुस्त करना। ठीक करना। सुधारना। त्रुटि या दोष दूर करना। कसर या ऐब निकालना। (३) चुकता करना। अदा करना। बेबाक करना। (ऋण आदि)

संशोधनीय-वि० [सं०] (१) साफ करने योग्य। (२) सुधारने या ठीक करने योग्य।

संशोधित-वि० [सं०] (१) खूब शुद्ध किया हुआ। (२) सुधारा हुआ। ठीक किया हुआ। दुरुस्त किया हुआ।

संशोधी-वि० [सं० संशोधिन्] [स्त्री० संशोधिनी] (१) सुधारनेवाला। दुरुस्त करनेवाला। (२) साफ़ करनेवाला।

संशोध्य-वि० [सं०] (१) साफ़ करने योग्य। (२) सुधारने या ठीक करने योग्य। (३) जिसका सुधार करना हो। (४) जिसे साफ़ करना हो।

संशोषण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संशोषणीय, संशोषित, संशोष्य] (१) बिल्कुल सोखना। जज्ब करना। (२) सुखाना।

संशोषणीय-वि० [सं०] सोखने योग्य।

संशोषित-वि० [सं०] सोखा हुआ।

संशोष्य-वि० [सं०] सोखने योग्य। जिसे सोखना या सुखाना हो।

संश्यान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) (शीत से) ठिठुरा हुआ। सिकुड़ा हुआ। (२) जमा हुआ।

संश्रय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संयोग। मेल। (२) संबंध। समागम। लगाव। संपर्क। (३) आश्रय। शरण। पनाह। (४) सहारा। अवलंब। (५) राजाओं का परस्पर रक्षा के लिये मेल। अभिसंधि।

विशेष—स्मृतियों में यह राजा के छः गुणों में कहा गया है और दो प्रकार का माना गया है—(१) शत्रु से पीड़ित हो कर दूसरे राजा की सहायता लेना; और (२) शत्रु से पहुँचनेवाली हानि की आशंका से किसी दूसरे बलवान् राजा का आश्रय लेना।

(६) पनाह की जगह। शरण-स्थान। (७) रहने या ठहरने की जगह। घर। (८) उद्देश्य। लक्ष्य। मतलब। (९) किसी वस्तु का अंग। हिस्सा।

संश्रयण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संश्रयणीय, संश्रयी संश्रित] (१) सहारा लेना। अवलंब पकड़ना। (२) शरण लेना। पनाह लेना।

संश्रयणीय-वि० [सं०] (१) सहारा लेने योग्य। (२) शरण लेने योग्य।

संश्रयी-वि० [सं० संश्रयिन्] (१) सहारा लेनेवाला। (२) शरण लेनेवाला।

संज्ञा पुं० भृत्य। नौकर।

संश्रव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुनना। कान देना। (२) अंगीकार। स्वीकार। मानना। रज़ामंदी। (३) वादा। प्रतिज्ञा। क़रार।

वि० जो सुना जा सके। सुनाई पड़नेवाला।

संश्रवण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संश्रवणीय, संश्रुत] (१) सुनना। खूब कान देना। (२) अंगीकार करना। स्वीकार करना। (३) वादा करना। करार करना।

संश्रांत-वि० [सं०] बिल्कुल थका हुआ। शिथिल। पसमाँदा।

संश्राव-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संश्रावणीय, संश्रावित, संश्राव्य] (१) कान देना। सुनना। (२) अंगीकार। स्वीकार।

संश्रावक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुननेवाला। श्रोता। (२) चेला। शिष्य।

संश्रावित-वि० [सं०] (१) सुनाया हुआ। (२) ज़ोर से पढ़ कर सुनाया हुआ।

संश्राव्य-वि० [सं०] (१) सुनाने योग्य। (२) सुनाई पड़नेवाला।

संश्रित-वि० [सं०] (१) जुड़ा या मिला हुआ। संयुक्त। (२) लगा हुआ। संलग्न। अँटका हुआ। (३) टँगा हुआ। टिका या ठहरा हुआ। (४) आलिंगित। संश्लिष्ट। गले या छाती से लगाया हुआ। (५) भाग कर शरण में गया हुआ। जिसने जाकर पनाह ली हो। (६) जिसने आश्रय-ग्रहण किया हो। जो निर्वाह के लिये किसी के पास गया हो।

(७) जिसने सेवा स्वीकार की हो। (८) जो किसी बात के लिये दूसरे पर निर्भर हो। आसरे या भरोसे पर रहनेवाला। पराधीन।
संज्ञा पुं० सेवक। भृत्य।
संश्रुत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खूब सुना हुआ। (२) खूब पढ़कर सुनाया हुआ। (३) स्वीकृत। माना हुआ। मंजूर।
संश्लिष्ट-वि० [सं०] (१) खूब मिला हुआ। जड़ा हुआ। सटा हुआ। (२) एक साथ किया हुआ। (३) सम्मिलित। मिश्रित। (४) एक में मिलाया हुआ। गड्डबड्ड। (५) आलिंगित। परिरंभित। भेंटा हुआ।
संज्ञा पुं० (१) राशि। ढेर। समूह। (२) एक प्रकार का चँदोवा या मंडप। (वास्तु)
संश्लेष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेल। मिलाप। संयोग। (२) मिलान। सटाव। (३) आलिंगन। परिरंभण। भेंटना।
संश्लेषण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संश्लेषणीय, संश्लेषित, संश्लिष्ट] (१) एक में मिलाना। जुड़ाना। सटाना। (२) लगाना। अँटकाना। टाँगना। (३) बाँधने या जोड़नेवाली वस्तु।
संश्लेषित-वि० [सं०] (१) मिलाया हुआ। जोड़ा हुआ। सटाया हुआ। (२) लगाया हुआ। अटकाया हुआ। (३) आलिंगन किया हुआ।
संश्लेषी-वि० [सं० संश्लेषिन्] [स्त्री० संश्लेषिणी] (१) मिलानेवाला। जोड़नेवाला। (२) आलिंगन करनेवाला। भेंटनेवाला।
संस‡-संज्ञा पुं० [सं० संशय] संशय। आशंका। उ०—करुणा करी छाँड़ि पशु दीनो जानि सुरन मन संस। सूरदास प्रभु असुर निकंदन दुष्टन के उर गंस।—सूर।
संसइ‡-संज्ञा पुं० दे० "संशय"।
संसक्त-वि० [सं०] (१) लगा हुआ। सटा हुआ। मिला हुआ। (२) भिड़ा हुआ। (शत्रु से) (३) संबद्ध। जुड़ा हुआ। (४) प्रवृत्त। लगा हुआ। मशगूल। लिप्त। लीन। (५) आसक्त। लुभाया हुआ। लुब्ध। प्रेम में फँसा हुआ। (६) विषय वासना में लीन। (७) युक्त। सहित। पूर्ण। (८) सघन। घना।
संसक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लगाव। मिलान। (२) जोड़। बंध। (३) संबंध। (४) आसक्ति। लगन। (५) लीनता। (६) प्रवृत्ति।
संसगर‡-वि० [सं० शस्य = अन्न, फसल + आगार] (१) उपजाऊ। जिसमें पैदावार अधिक हो। (२) लाभदायक। फायदेमंद।
संसद, संसत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समाज। सभा। मंडली। (२) राजसभा। दरबार। (३) धर्मसभा। न्यायसभा। न्यायालय। अदालत। (४) चौबीस दिनों का एक यज्ञ।
संसनाना-क्रि० अ० दे० "सनसनाना"।
संसय-संज्ञा पुं० दे० "संशय"।
संसरण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संसरणीय, संसरित संसृत] (१) चलना। सरकना। गमन करना। (२) सेना की अबाध यात्रा। (३) एक जन्म से दूसरे जन्म में जाने की परंपरा। भवचक्र। (४) संसार। जगत्। (५) राजपथ। सड़क। रास्ता। (६) नगर के तोरण के पास यात्रियों के लिये विश्राम स्थान। शहर के फाटक के पास मुसाफिरों के ठहरने का स्थान। धर्मशाला। सराय। (७) युद्ध का आरंभ। लड़ाई का छिड़ना।
संसर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संबंध। लगाव। संपर्क। (२) मेल। मिलाप। संयोग। (३) सहवास। समागम। संग। साथ। (४) स्त्री पुरुष का सहवास। (५) घालमेल। घपला। (६) वात, पित्तादि में से दो का एक साथ प्रकोप। (सुश्रुत) (७) जायदाद का एक में होना। इजमाल। (८) वह बिंदु जहाँ एक रेखा दूसरी को काटती हो। (शुल्वसूत्र) (९) रब्त जब्त। परिचय। घनिष्टता।
संसर्ग दोष-संज्ञा पुं० [सं०] वह बुराई जो किसी के साथ रहने से आवे। संगत का दोष।
संसर्ग विद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] लोगों से मिलने जुलने का हुनर। व्यवहार-कुशलता।
संसर्गाभाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संसर्ग का अभाव। संबंध का न होना। (२) न्याय में अभाव का एक भेद। किसी वस्तु के संबंध में दूसरी वस्तु का अभाव। जैसे,—घर में घड़ा नहीं है। वि० दे० "अभाव"।
संसर्गी-वि० [सं० संसर्गिन्] [स्त्री० संसर्गिणी] संसर्ग या लगाव रखनेवाला।
संज्ञा पुं० (१) मित्र। सहचर। (२) वह जो पैतृक संपत्ति का विभाग हो जाने पर भी अपने भाइयों या कुटुंबियों आदि के साथ रहता हो।
संज्ञा स्त्री० शुद्धि। सफ़ाई।
संसर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संसर्जनीय, संसर्जित, संसृष्ट] (१) संयोग होना। मिलना। (२) जुड़ना। संबद्ध होना। (३) अपनी ओर मिलाना। राज़ी करना। (४) हटाना। दूर करना। त्याग करना। छोड़ना।
संसर्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रेंगना। सरकना। (२) खिसकना। धीरे धीरे चलना। (३) वह अधिक मास जो क्षय मासवाले वर्ष में होता है।
संसर्पण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संसर्पणीय, संसर्पित, संसर्पी] (१) रेंगना। सरकना। (२) खिसकना। धीरे धीरे चलना। (३) चढ़ना। (४) सहसा आक्रमण। अचानक हमला।
संसर्पी-वि० [सं० संसर्पिन्] [स्त्री० संसर्पिणी] (१) रेंगनेवाला। सरकनेवाला। (२) फैलनेवाला। संचार करनेवाला। (३) पानी के ऊपर तैरनेवाला। उतरानेवाला। (सुश्रुत)

संसा⊛–संज्ञा पुं० दे० "संसय"। उ०—सत जोजन पर पटक्यो कंसा। भो अप्रान सम याहीं संसा।—गोपाल।
संज्ञा पुं० दे० "सँड़सा"।

संसाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जमावड़ा। गोष्ठी। (२) सभा। समाज। मंडली।

संसादन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संसादनीय, संसादित, संसाद्य] (१) जुटाना। एकत्र करना। (२) तरतीब से लगाना। क्रमबद्ध करना।

संसादित–वि० [सं०] (१) एकत्र किया हुआ। जुटाया हुआ। (२) तरतीब दिया हुआ। लगाया हुआ। सजाया हुआ।

संसाधक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूर्णतया साधन करनेवाला। संपन्न करनेवाला। अंजाम देनेवाला। (२) जीतनेवाला। वश में करनेवाला।

संसाधन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संसाधनीय, संसाधित, संसाध्य] (१) अच्छी तरह करना। पूरा करना। अंजाम देना। (२) तैयारी। आयोजन। (३) जीतना। दमन करना। वश में करना।

संसाधनीय–वि० [सं०] (१) साधन के योग्य। पूरा करने योग्य। (२) जीतने योग्य। वश में लाने योग्य।

संसाध्य–वि० [सं०] (१) पूरा करने योग्य। (२) जीतने योग्य। दमन करने योग्य। (३) जिसे करना हो। करने योग्य। (४) जिसे जीतना या वश में करना हो।

संसार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लगातार एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाता रहना। (२) बार बार जन्म लेने की परंपरा। आवागमन। भवचक्र। (३) जगत। दुनिया। विश्व। सृष्टि। (४) इहलोक। मर्त्यलोक। (५) माया जाल। माया का प्रपंच। जीवन का जंजाल। (६) गृहस्थी। (७) दुर्गंध खदिर। विट् खदिर।

संसारगुरु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संसार को उपदेश देनेवाला। जगद्गुरु। (२) कामदेव। स्मर।

संसारचक्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्म पर जन्म लेने की परंपरा। नाना योनियों में भ्रमण। (२) माया का जाल। दुनिया का चक्कर। प्रपंच। (३) जगत् की दशा का उलट फेर।

संसारण–संज्ञा पुं० [सं०] चलाना। सरकाना। गति देना।

संसार-तिलक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का उत्तम चावल। उ०—कौरहन, बड़हन, जड़हन, मिला। औ संसार-तिलक सँढ़विला।—जायसी।

संसारपथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संसार में आने का मार्ग। (२) स्त्रियों की जननेंद्रिय।

संसार-भावन–संज्ञा पुं० [सं०] संसार को दुःखमय जानना।

विशेष—यह ध्यान चार प्रकार का है—नरक गति, तिर्यग्गति, मनुष्य गति और देवगति।

संसारमार्ग–संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों की जननेंद्रिय।

संसारसारथि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संसार पथ को पार करनेवाला। (२) शिव का एक नाम।

संसारी–वि० [सं० संसारिन्] [स्त्री० संसारिणी] (१) संसार-संबंधी। लौकिक। जैसे,—संसारी बातें। (२) संसार में रहनेवाला। संसार की माया में फँसा हुआ। दुनिया के जंजाल में घिरा हुआ। जैसे,—संसारी जीवों के कल्याण के लिये यह कथा है। (३) लोकव्यवहार में कुशल। दुनियादार। (४) बार बार जन्म लेनेवाला। भवचक्र में बँधा हुआ। जैसे,—संसारी आत्मा।

संसिक्त–वि० [सं०] खूब सींचा हुआ। जिस पर खूब पानी छिड़का गया हो।

संसिद्ध–वि० [सं०] (१) पूर्णतया संपन्न। अच्छी तरह किया हुआ। (२) प्राप्त। लब्ध। (३) अच्छी तरह सीझा या पका हुआ। (भोजन) (४) जो नीरोग हो गया हो। चंगा। स्वस्थ। (५) तैयार। उद्यत। प्रस्तुत। (६) किसी बात में पक्का। कुशल। निपुण। (७) जिसका योग सिद्ध हो गया हो। मुक्त।

संसिद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सम्यक् पूर्ति। किसी कार्य का अच्छी तरह पूरा होना। (२) कृतकार्यता। सफलता। कामयाबी। (३) स्वस्थता। (४) पक्वता। सीझना। (५) पूर्णता। (६) मुक्ति। मोक्ष। (७) परिणाम। आखिरी नतीजा। (८) पक्की बात। निश्चित बात। न टलनेवाला वचन। (९) निसर्ग। प्रकृति। (१०) स्वभाव। आदत। (११) मदमस्त स्त्री। मदोन्मा।

संसी–संज्ञा स्त्री० दे० "सँड़सी"।

संसुप्त–वि० [सं०] खूब सोया हुआ।

संसूचक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० संसूचिका] (१) प्रकट करनेवाला। जतानेवाला। (२) भेद खोलनेवाला। (३) समझाने बुझानेवाला। कहने सुननेवाला। (४) डाँटने डपटनेवाला।

संसूचन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संसूचनीय, संसूचित, संसूच्य] (१) प्रकट करना। जताना। ज़ाहिर करना। (२) बात खोलना। (३) कहना सुनना। (४) डाँटना डपटना। भला बुरा कहना। भर्त्सना करना। फटकारना।

संसूचित–वि० [सं०] (१) प्रकट किया हुआ। जताया हुआ। ज़ाहिर किया हुआ। (२) डाँटा डपटा हुआ। जिसे कुछ कहा सुना गया हो।

संसूची–वि० [सं० संसूचिन्] [स्त्री० संसूचिनी] (१) प्रकट करनेवाला। (२) जतानेवाला। (३) भला बुरा कहनेवाला। फटकारनेवाला।

संसूच्य-वि० [सं०] (१) प्रकट करने योग्य। (२) जताने लायक़। (३) जिसे जताना या प्रकट करना हो। (४) भला बुरा कहने योग्य। जिसे भला बुरा कहना हो; या जिसके लिये भला बुरा कहना हो।

संसृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जन्म पर जन्म लेने की परंपरा। आवागमन। भवचक्र। (२) संसार। जगत्। उ०—देव पाय संताप घन घोर संसृति दीन भ्रमत जग जोनि नहिं कोपि त्राता।—तुलसी।

संसृष्ट—वि० [सं०] (१) एक साथ उत्पन्न या आविर्भूत। (२) एक में मिला जुला। संश्लिष्ट। मिश्रित। (३) संबद्ध। परस्पर लगा हुआ। (४) अंतर्भूत। अंतर्गत। शामिल। (५) जो जायदाद का बँटवारा हो जाने पर भी सम्मिलित हो गया हो। (भाई आदि) (६) हिला मिला हुआ। बहुत मेल किए हुए। बहुत परिचित। (७) संपन्न किया हुआ। अंजाम दिया हुआ। किया हुआ। बनाया हुआ। (८) वमनादि द्वारा शुद्ध किया हुआ। कोठा साफ़ किया हुआ। (९) जुटाया हुआ। इकट्ठा किया हुआ। संगृहीत।

संज्ञा पुं० (१) घनिष्टता। हेलमेल। (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

संसृष्टत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संसृष्ट होने का भाव। (२) जायदाद का बँटवारा हो जाने के पीछे फिर एक में होना या रहना। (स्मृति)

संसृष्टहोम-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि और सूर्य्य की एक ही में मिली हुई आहुति।

संसृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक साथ उत्पत्ति या आविर्भाव। (२) एक में मेल या मिलावट। मिश्रण। (३) परस्पर संबंध। लगाव। (४) हेलमेल। घनिष्टता। मेल मुलाक़ात। (५) बनाने की क्रिया या भाव। संयोजन। रचना। (६) एकत्र करना। इकट्ठा करना। जुटाना। संग्रह। (७) दो या अधिक काव्यालंकारों का ऐसा मेल जिसमें सब परस्पर निरपेक्ष हों; अर्थात् एक दूसरे के आश्रित, अंतर्भूत आदि न हों।

संसेक-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह पानी आदि का छिड़काव।

संसेवन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संसेवित, संसेवनीय, संसेव्य] (१) पूर्णतया सेवन। हाज़िरी में रहना। नौकरी बजाना। (२) खूब इस्तेमाल करना। व्यवहार करना। उपयोग में लाना। बरतना।

संस्करण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठीक करना। दुरुस्त करना। सजाना (२) शुद्ध करना। सुधार करना। (३) परिष्कृत करना। सुंदर या अच्छे रूप में लाना। (४) द्विजातियों के लिये विहित संस्कार करना। (५) पुस्तकों की एक बार की छपाई। आवृत्ति। (आधुनिक)

संस्कर्ता-संज्ञा पुं० [सं०] संस्कार करनेवाला।

संस्कार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठीक करना। दुरुस्ती। सुधार। (२) दोष या त्रुटि का निकाला जाना। शुद्धि। (३) सजाना। अच्छे या सुंदर रूप में लाना। (४) धो माँज कर साफ़ करना। परिष्कार। (५) बदन की सफ़ाई। शौच। (६) मनोवृत्ति या स्वभाव का शोधन। मानसिक शिक्षा। मन में अच्छी बातों का जमाना। (७) शिक्षा, उपदेश, संगत आदि का मन पर पड़ा हुआ प्रभाव। दिल पर जमा हुआ असर। जैसे,—जैसा लड़कपन का संस्कार होता है, वैसा ही मनुष्य का चरित्र होता है। (८) पूर्व जन्म की वासना। पिछले जन्म की बातों का असर जो आत्मा के साथ लगा रहता है। जैसे,—बिना पूर्व जन्म के संस्कार के विद्या नहीं आती। यह वैशेषिक के २४ गुणों में से एक है। (९) पवित्र करना। धर्म की दृष्टि से शुद्ध करना। (१०) वे कृत्य जो जन्म से लेकर मरण काल तक द्विजातियों के संबंध में आवश्यक होते हैं। वर्णधर्मानुसार किसी व्यक्ति के संबंध में होनेवाला विधान, रीति या रस्म।

विशेष—द्विजातियों के लिये षोडश या द्वादश संस्कार कहे गए हैं। मनु के अनुसार उनके नाम ये हैं—गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकर्म, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन, केशांत, समावर्त्तन और विवाह।

(१०) मृतक की क्रिया। (११) इंद्रियों के विषयों के ग्रहण से उत्पन्न मन पर जमा हुआ प्रभाव। (१२) मन द्वारा कल्पित या आरोपित विषय। भ्रांतिजन्य प्रतीति। प्रत्यय। (जैसी जगत् की, जो वास्तविक नहीं है।)

विशेष—पंच स्कंधों में चौथा स्कंध 'संस्कार' है जो भव-बंधन का कारण कहा गया है।

(१३) साफ़ करने या माँजने का झाँवाँ, पत्थर आदि। झँवाँ।

संस्कारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संस्कार करनेवाला। (२) शुद्ध करनेवाला।

संस्कारवर्जित-वि० [सं०] वह व्यक्ति जिसका संस्कार न हुआ हो। व्रात्य।

संस्कारहीन-वि० [सं०] जिसका संस्कार न हुआ हो। व्रात्य।

संस्कारी-वि० [सं० संस्कारिन्] (१) संस्कारवाला। (२) सोलह मात्राओं का एक छंद।

संस्कार्य्य-वि० [सं०] (१) संस्कार करने योग्य। (२) जिसकी सफाई या सुधार करना हो।

संस्कृत-वि० [सं०] (१) संस्कार किया हुआ। शुद्ध किया हुआ। (२) परिमार्जित। परिष्कृत। (३) धो माँज कर साफ़ किया हुआ। निखारा हुआ। (४) पकाया हुआ। सिझाया हुआ। (५) सुधारा हुआ। ठीक किया हुआ। दुरुस्त किया हुआ।

(६) अच्छे रूप में लाया हुआ। सँवारा हुआ। सजाया हुआ। आरास्ता। (७) जिसका उपनयन आदि संस्कार हुआ हो।

संज्ञा स्त्री० भारतीय आर्यों की प्राचीन साहित्यिक भाषा। पुराने आर्यों की लिखने पढ़ने की उच्च भाषा। देववाणी।

विशेष—विद्वानों की राय है कि वेदों (संहिताओं) की भाषा अत्यंत प्राचीन, पर बोल चाल की आर्य्य भाषा है। जब उस भाषा में परिवर्तन होने लगा और धीरे धीरे उसके समझनेवाले कम होने लगे, तब यास्क ने निघंटु आदि बनाकर उस मंत्र भाग की भाषा को विद्वानों में सुरक्षित रखा। पीछे जो आर्य्य भाषा प्रचलित होती गई, उस पर क्रमशः द्रविड़ आदि अनार्य्य भाषाओं का प्रभाव पड़ता गया। अतः इस प्रचलित या लौकिक आर्य्य भाषा को शुद्ध, व्यवस्थित और सुरक्षित रखने का ढंग, शकटायन, पाणिनि आदि वैयाकरणों ने प्रयत्न किया। पाणिनि आदि वैयाकरणों ने दूर दूर तक फैले हुए यथा संभव सब प्रयोगों और रूपों को इकट्ठा करके एक बड़ी प्रकांड भाषा का स्वरूप खड़ा किया। यही 'भाषा' या लौकिक संस्कृत कहलाई और रूप स्थिर हो जाने के कारण साहित्य की सर्वमान्य भाषा हुई और बराबर रही। लोगों की बोल चाल की भाषा में अंतर पड़ता रहा, पर यह संस्कृत ज्यों की त्यों रही और विद्वानों तथा शिष्टों द्वारा काम में लाई जाती रही। बोलचाल की भाषाएँ प्राकृत कहलाईं और यह संस्कार की हुई प्राचीन भाषा संस्कृत या देववाणी कहलाई।

संस्कृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शुद्धि। सफ़ाई। (२) संस्कार। सुधार। परिष्कार। (३) सजावट। आराइश। (४) रहन सहन आदि की रुचि। सभ्यता। शाइस्तगी। (५) २४ वर्णे के वृत्तों की संज्ञा।

संस्क्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] संस्कार। संस्कृति।

संस्खलन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संस्खलित] (१) च्युत होना। गिरना। (२) भूल करना। चूकना।

संस्खलित–वि० [सं०] (१) च्युत। गिरा हुआ। (२) भूला हुआ। चूका हुआ।

संज्ञा पुं० भूल। चूक।

संस्तंभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गति का सहसा रोध। एकबारगी रुकावट। (२) चेष्टा का अभाव। निश्चेष्टता। ठक हो जाना। हाथ पैर रुक जाना। (३) शरीर की गति का मारा जाना। लकवा। (४) दृढ़ता। धीरता। (५) हठ। टेक। ज़िद। (६) आधार। टेक। सहारा।

संस्तंभन–संज्ञा पुं० [सं० संस्तम्भन][वि० संस्तंभनीय, संस्तंभित, संस्तब्ध] (१) गति का सहसा रुकना या रोकना। एक बारगी ठहर जाना। (२) निश्चेष्ट करना या होना। ठक कर देना या हो जाना। (३) बंद करना। (४) सहारा देना। टेकना।

संस्तब्ध–वि० [सं०] (१) एकबारगी रुका या ठहरा हुआ। (२) निश्चेष्ट। ठक। भौचक्का। (३) सहारा दिया हुआ। जिसे टेक या सहारा दिया हो।

संस्तर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तह। पहल। (२) घास फूस से बनाया हुआ आच्छादन। (३) घास फूस फैला कर बनाया हुआ बिस्तर। तृण-शय्या। (४) बिस्तर। शय्या।

वि० छितराया हुआ।

संस्तरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिछाना। फैलाना। पसारना। (२) छितराना। बिखेरना। (३) तह चढ़ाना। परत फैलाना। (४) बिस्तर। शय्या।

संस्तव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रशंसा। स्तुति तारीफ़। (२) ज़िक्र। कथन। उल्लेख। (३) परिचय। जान पहचान।

संस्तवन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संस्तवनीय, संस्तुत] (१) स्तुति करना। प्रशंसा करना। (२) यश गाना। कीर्त्ति बखानना।

संस्तार–संज्ञा पुं० [सं०] तह। पहल। (२) बिस्तर। शैय्या। (३) एक यज्ञ का नाम।

संस्ताव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ में स्तुति करनेवाले ब्राह्मणों की अवस्थान भूमि। (२) स्तुति। प्रशंसा। (३) परिचय। जान पहचान।

संस्तीर्ण–वि० [सं०] (१) फैलाया हुआ। पसारा हुआ। बिछाया हुआ। (२) बिखेरा हुआ। फैलाया हुआ। छितराया हुआ।

संस्तुत–वि० [सं०] (१) जिसकी खूब स्तुति या प्रशंसा की गई हो। (२) परिचित। ज्ञात। (३) एक साथ गिना हुआ। गिनती में शामिल किया हुआ।

संस्तुति–संज्ञा स्त्री० [सं०] सम्यक् स्तुति। खूब प्रशंसा। गहरी तारीफ़।

संस्त्याय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संघात। समूह। (२) प्रसार। फैलाव। बिछाने या फैलाने की क्रिया। (४) निवासस्थान। (५) घर। मकान।

संस्थ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) निज देशवासी। स्वदेशवासी। अपने देश का। (२) चर। दूत।

संस्था–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठहरने की क्रिया या भाव। ठहराव। स्थिति। (२) व्यवस्था। बँधा नियम। विधि। मर्य्यादा। रूढ़ि। (३) प्रकट होने की क्रिया या भाव। अभिव्यक्ति। प्रकाश। (४) रूप। आकार। आकृति। (५) गुण। सिफ़त। (६) ठिकाने लगाना। (७) समाप्ति। अंत। खातमा। (८) जीवन का अंत। मृत्यु। (९) नाश। (१०) प्रलय। (११) यज्ञ का मुख्य अंग। (१२) वध। हिंसा। (१३) गुप्तचरों या भेदियों का वर्ग।

विशेष—इसके अंतर्गत पाँच प्रकार के दूत कहे गए हैं—वणिक्, भिक्षु, छात्र, लिंगी (संप्रदायी) और कृषक।

(१४) व्यवसाय। पेशा। (१५) जत्था। गरोह। (१६) समाज। मंडल। सभा। (१७) राजाज्ञा। फरमान। (१८) सादृश्य। समानता।

संस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठहरने की क्रिया या भाव। ठहराव। स्थिति। (२) खड़ा रहना। डटा रहना। जमा रहना। (३) सन्निवेश। बैठाना। स्थापन। विन्यास। (४) अस्तित्व। जीवन। (५) सम्यक् पालन। पूरा अनुसरण। पूरी पैरवी। (६) ठहरने या रहने की जगह। डेरा। घर। (७) बस्ती। जनपद। (८) सार्वजनिक स्थान। सर्वसाधारण के इकट्ठे होने की जगह। (९) रूप। आकृति। शकल। (१०) कांति। सौंदर्य। (११) प्रकृति। स्वभाव। (१२) रोग का लक्षण। (१३) अवस्था। दशा। हालत। (१४) समष्टि। योग। जोड़। (१५) ठिकाने लगाना। समाप्ति। अंत। खातमा। (१६) नाश। मृत्यु। (१७) रचना। बनावट। निर्माण। (१८) पड़ोस। सामीप्य। निकटता। (१९) चौमुहानी। चौरास्ता। चौराहा। (२०) आयोजन। प्रबंध। व्यवस्था। डौल। (२१) ढाँचा। चौखटा। (२२) साँचा। ढाँचा। डौल। खाका।

संस्थापक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० संस्थापिका] (१) खड़ा करनेवाला। स्थापित करनेवाला। उठानेवाला। (भवन आदि) (२) कोई नई बात चलानेवाला। जारी करनेवाला। प्रवर्त्तक। (४) कोई सभा, समाज या सर्वसाधारण के उपयोगी कार्य्य खोलनेवाला। (५) चित्र, खिलौने आदि बनानेवाला। (६) रूप या आकार देनेवाला।

संस्थापन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संस्थापनीय, संस्थापित, संस्थाप्य] (१) खड़ा करना। उठाना। निर्मित करना। (भवन आदि) (२) स्थित करना। जमाना। बैठाना। (३) कोई नई बात चलाना। नया काम जारी करना। नया काम खोलना। (४) रूप या आकार देना।

संस्थापनीय–वि० [सं०] संस्थापन के योग्य।

संस्थापित–वि० [सं०] (१) उठाया हुआ। खड़ा किया हुआ। निर्मित। (२) जमाया हुआ। बैठाया हुआ। स्थित किया हुआ। प्रतिष्ठित। (३) जारी किया हुआ। चलाया हुआ। (४) संचित। बटोरा हुआ। (५) ढेर लगाया हुआ।

संस्थाप्य–वि० [सं०] (१) संस्थापन के योग्य। (२) जिसका संस्थापन करना हो।

संस्थित–वि० [सं०] (१) खड़ा। उठाया हुआ। (२) ठहरा हुआ। टिका हुआ। (३) बैठा हुआ। जमा हुआ। दृढ़ता से अड़ा हुआ। (४) रूप में लाया हुआ। निर्मित। (५) ठिकाने लगाया हुआ। समाप्त। खतम। (७) मृत। मरा हुआ। (८) ढेर लगाया हुआ। बटोरा हुआ।

संस्थिति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खड़े होने की क्रिया या भाव। (२) ठहराव। जमाव। (३) बैठने की क्रिया या भाव। (४) एक अवस्था में रहने का भाव। (२) ज्यों का त्यों रहने का भाव। (५) दृढ़ता। धीरता। (६) अस्तित्व। हस्ती। (७) रूप। आकृति। सूरत। (८) व्यवस्था। तरतीब। (९) गुण। सिफ़त। (१०) प्रकृति। स्वभाव। (११) समाप्ति। खातमा। (विशेषतः यज्ञादि के लिये) (१२) मृत्यु। मरण। (१३) कोष्ठबद्धता। कब्ज़ियत। (१४) राशि। ढेर। अटाला।

संस्पर्द्धा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी के बराबर होने की प्रबल इच्छा। बराबरी की चाह। (२) ईर्ष्या। डाह।

संस्पर्द्धी–वि० [सं० संस्पर्द्धिन्] [स्त्री० संस्पर्द्धिनी] (१) बराबरी की इच्छा करनेवाला। (२) ईर्ष्यालु।

संस्पर्श–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह छू जाने का भाव। एक के अंग का दूसरे से लगना।

विशेष—धर्मशास्त्रों में कुछ लोगों का संस्पर्श होने पर द्विजातियों के लिये प्रायश्चित्त का विधान है। यह संस्पर्श दोष शरीर के छू जाने, आलाप, मिथुन, सहभोजन तथा एक शय्या पर बैठने या सोने से कहा गया है।

(२) घनिष्ट संबंध। गहरा लगाव। (३) मिलाप। मेल। (४) मिलावट। मिश्रण। (५) इंद्रियों का विषय-ग्रहण। (६) थोड़ा सा आविर्भाव। कुछ प्रभाव।

संस्पर्शन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संस्पर्शनीय, संस्पृष्ट] (१) छूना। अंग से अंग लगाना। (२) मिलना। सटना।

संस्पर्शा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जनी नामक गंध द्रव्य।

संस्पर्शी–वि० [सं० संस्पर्शिन्] स्पर्श करनेवाला। छूनेवाला।

संस्पृष्ट–वि० [सं०] (१) छूआ हुआ। (२) सटा हुआ। लगा हुआ। मिला हुआ। (३) जुड़ा हुआ। परस्पर संबद्ध। (४) पास ही पड़ता हुआ। जो निकट ही हो। (५) लेश मात्र प्रभावित। जिस पर बहुत कम असर पड़ा हो।

संस्फाल–संज्ञा पुं० [सं०] भेड़। मेष।

संस्फुट–वि० [सं०] (१) खूब फूटा या खुल पड़ा हुआ। (२) खूब खिला हुआ। विकसित।

संस्फेट–संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। लड़ाई।

संस्फोट–संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। लड़ाई।

संस्मरण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संस्मरणीय, संस्मृत] (१) पूर्ण स्मरण। खूब याद। (२) अच्छी तरह सुमिरना या नाम लेना। (३) संस्कार-जन्य ज्ञान।

संस्मरणीय–वि० [सं०] (१) पूर्ण स्मरण करने योग्य। (२) नाम जपने योग्य। (३) महत्व का। न भूलनेवाला। जिसकी याद बराबर बनी रहे। (४) जिसका स्मरण मात्र रह गया हो। अतीत।

संस्मारक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० संस्मारिका] स्मरण करानेवाला। याद दिलानेवाला।

संस्मारण–संज्ञा पुं० [सं०][वि० संस्मारित] (१) स्मरण कराना। याद दिलाना। (२) गिनती करना। गिनना। (चौपायों के विषय में)

संस्मारित–वि० [सं०] (१) याद दिलाया हुआ। स्मरण कराया हुआ। (२) ध्यान में लाया हुआ। याद किया हुआ।

संस्मृत–वि० [सं०] स्मरण किया हुआ। याद किया हुआ।

संस्मृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्ण स्मृति। पूरी याद।

संस्रव–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० संस्रवा] (१) एक साथ बहना। (२) पूरा बहाव। (३) बहती हुई वस्तु। (४) बहता हुआ जल। (५) एक प्रकार का पिंडदान। (६) किसी वस्तु का सोचा हुआ अंश। उमड़ा हुआ चिप्पड़। (७) चूना। गिरना। झरना। रसना।

संस्रवण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहना। प्रवाहित होना। (२) चूना। झरना। गिरना।

यौ०—गर्भसंस्रवण = गर्भपात।

संस्रष्टा–संज्ञा पुं० [सं० संस्रष्टृ] [स्त्री० संस्रष्ट्री] (१) आयोजन करनेवाला। (२) मिलाने जुलानेवाला। (३) रचनेवाला। बनानेवाला। (४) भिड़नेवाला। लड़ाई में जुटनेवाला।

संस्राव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहाव। प्रवाह। (२) मवाद का इकट्ठा होना। (सुश्रुत) (३) किसी द्रव पदार्थ के नीचे जमा हुआ पदार्थ। तलछट।

संस्रावण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संस्रावित, संस्राव्य] (१) बहाना। प्रवाहित करना। (२) बहना। प्रवाहित होना। (३) झरना। चूना। टपकना।

संस्रावित–वि० [सं०] (१) बहाया हुआ। (२) बहा हुआ। (३) झरा हुआ। (४) टपका हुआ।

संस्राव्य–वि० [सं०] (१) बहाने या टपकाने योग्य। (२) जिसे बहाना या टपकाना हो।

संस्वेद–संज्ञा पुं० [सं०] स्वेद। पसीना।

संस्वेदज–वि० [सं०] पसीने से उत्पन्न। (कृमि आदि)

संहंता–संज्ञा पुं० [सं० संहंतृ] [स्त्री० संहंत्री] वध करनेवाला। मारनेवाला।

संहत–वि० [सं०] (१) खूब मिला हुआ। जुड़ा या सटा हुआ। बिलकुल लगा हुआ। पूर्ण संबद्ध। (२) एक हुआ। एक में मिला हुआ। (३) संयुक्त। सहित। (४) जो मिलकर ठोस हो गया हो। मिलकर खूब बैठा हुआ। कड़ा। सख्त। (५) जो विरल या झीना न हो। गठा हुआ। घना। (६) दृढ़ांग। मज़बूत। (७) एकत्र। इकट्ठा। (८) मिश्रित। मिला हुआ। (९) चोट खाया हुआ। आहत। घायल।

संज्ञा पुं० नृत्य में एक प्रकार की मुद्रा।

संहतकुलीन–वि० [सं०] सम्मिलित परिवार का।

संहतजानु–संज्ञा पुं० [सं०] घुटने मिलाए हुए। जिसने दोनों घुटने सटाए हों। (बैठने की एक मुद्रा)

संहतपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोआ। शतपुष्पा।

संहतांग–वि० [सं०] दृढ़ांग। हृष्ट-पुष्ट। मज़बूत।

संहतांजलि–वि० [सं०] जो हाथ जोड़े हो। कर-बद्ध।

संहताश्व–संज्ञा पुं० [सं०] पवमान नामक अग्नि।

संहति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मिलाव। मेल। (२) जुटाव। बटोर। इकट्ठा होने का भाव। (३) राशि। ढेर। अटाला। (४) समूह। झुंड। (५) परस्पर मिल कर ठोस होने का भाव। निविड़ संयोग। गठन। ठोसपन। घनत्व। (६) संधि। जोड़। (७) परमाणुओं का परस्पर मेल।

संहतिपुष्पिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोआ। शतपुष्पा।

संहनन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संहत करना। एक में मिलाना। जोड़ना। (२) खूब मिलाकर घना या ठोस करना। (३) वध। मार डालना। (४) संयोग। मेल। मिलावट। (५) कड़ाई। दृढ़ता। (६) पुख्ता। मज़बूती। बलिष्ठता। (७) मेल। मुआफ़िक़त। सामंजस्य। अनुकूलता। (८) शरीर। देह। (९) कवच। बकतर। (१०) शरीर का मर्दन। मालिश।

संहरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साथ करना। बटोरना। एकत्र करना। संग्रह करना। (२) एक साथ बाँधना। गूँधना। (केशों का) (३) ज़बरदस्ती ले लेना। छीनना। (४) संहार करना। नाश करना। ध्वंस करना। (५) प्रलय।

संहर्त्ता–संज्ञा पुं० [सं० संहर्तृ] [स्त्री० संहर्त्री] (१) इकट्ठा करनेवाला। बटोरने या समेटनेवाला। (२) नाश करनेवाला। (३) वध करनेवाला। मारनेवाला।

संहर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उमंग से रोओं का खड़ा होना। पुलक। उमंग। (२) भय से रोंगटे खड़े होना। (३) चढ़ा ऊपरी। एक दूसरे से बढ़ने की चाह। स्पर्द्धा। लाग डाँट। होड़। (४) ईर्ष्या। डाह। (५) संघर्ष। रगड़। (६) मर्दन। शरीर की मालिश।

संहर्षण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संहर्षित, संहृष्ट] पुलकित होना। (२) स्पर्द्धा। लाग डाँट। चढ़ा ऊपरी।

वि० [स्त्री० संहर्षिणी] पुलकित करनेवाला। आनंद से प्रफुल्लित करनेवाला।

संहर्षा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पित्तपापड़ा। पर्पटक। दाहतरा।

संहर्षित–वि० [सं०] पुलकित।

संहर्षी–वि० [सं० संहर्षिन्] [स्त्री० संहर्षिणी] (१) पुलकित होनेवाला। (२) पुलकित करनेवाला। (३) स्पर्द्धा या ईर्ष्या करनेवाला।

संहात–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संघात। समूह। जमावड़ा। वि०

दे० "संघात"। (२) एक नरक का नाम। (३) शिव के एक गण का नाम।

संहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साथ करना। इकट्ठा करना। बटोरना। समेटना। (२) संग्रह। संचय। (३) संकोच। आकुंचन। सिकुड़ना। (४) समेट कर बाँधना। गूँथना। (केशों का) (५) छोड़े हुए बाण को फिर वापस लेना। (६) खुलासा। सार। संक्षेप-कथन। (७) नाश। ध्वंस। (८) समाप्ति। अंत। खातमा। (९) कल्पांत। प्रलय। (१०) एक नरक का नाम। (११) कौशल। निपुणता। (१२) व्यर्थ करने की क्रिया। निवारण। परिहार। रोक। जैसे,—किसी अस्त्र का संहार।

संहारक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० संहारिका] (१) संहार करनेवाला। संहर्ता। नाशक। (२) संग्रहकर्त्ता। एकत्र करनेवाला।

संहारकारी-वि० [सं० संहारकारिन्] [स्त्री० संहारकारिणी] संहार या नाश करनेवाला।

संहार काल-संज्ञा पुं० [सं०] विश्व के नाश का समय। प्रलय काल। उ०—बेटा बलिष्ट खर को मकराक्ष आयो। संहार काल जनु काल कराल धायो।—केशव।

संहारना॥-क्रि० स० [सं० संहरण] (१) मार डालना। उ०—(क) ओहि धनुष रावन संहारा। ओहि धनुष कंसासुर मारा।—जायसी। (२) नाश करना। ध्वंस करना। (ख) उहाँ तो खड्ग नरेंदहि मारों। इहाँ तो बिरह तुम्हार संहारों।—जायसी।

संहार भैरव-संज्ञा पुं० [सं०] भैरव के आठ रूपों या मूर्त्तियों में से एक। काल भैरव।

संहार मुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिक पूजन में अंगों की एक प्रकार की स्थिति, जिसे विसर्जन मुद्रा भी कहते हैं।

संहारिक-वि० [सं०] संहार करनेवाला।

संहार्य्य-वि० [सं०] (१) समेटने या बटोरने योग्य। संग्रह करने योग्य। इकट्ठा करने लायक। (२) एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर करने योग्य। हटाने लायक। ले जाने लायक। (३) जिसे ले जाना हो। (४) रोकने योग्य। निवारण या परिहार के योग्य। (५) जिसे रोकना हो। जिसका निवारण या परिहार करना हो।

संहित-वि० [सं०] (१) एक साथ किया हुआ। एकत्र किया हुआ। बटोरा हुआ। समेटा हुआ। (२) सम्मिलित। मिलाया हुआ। (३) जुड़ा हुआ। लगा हुआ। संबद्ध। (४) संयुक्त। सहित। अन्वित। पूर्ण। (५) मेल में आया हुआ। हेल मेलवाला। मेली।

संहितपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोआ नाम का साग। (२) धनिया।

संहिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेल। मिलावट। संयोग। (२) व्याकरण या शब्दशास्त्र के अनुसार दो अक्षरों का परस्पर मिलकर एक होना। संधि। (३) वह ग्रंथ जिसमें पद पाठ आदि का क्रम नियमानुसार चला आता हो। कोई ग्रंथ जिसका पाठ प्राचीन काल से गृहीत चला आता हो। जैसे,—मनु, अत्रि आदि की धर्म-संहिताएँ या स्मृतियाँ।

विशेष—स्मृति या धर्म-शास्त्र संबंधी १९ संहिताएँ कही जाती हैं जिनमें मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, कात्यायन, बृहस्पति, नारद, पराशर, व्यास, दक्ष, गौतम आदि प्रसिद्ध हैं। रामायण को भी कभी कभी संहिता कह देते हैं। वेदव्यास कृत एक "पुराण संहिता" का भी उल्लेख मिलता है। (दे० "पुराण") इसके अतिरिक्त और विषयों के ग्रंथ भी संहिता कहे जाते हैं। जैसे,—भृगुसंहिता (फलित ज्योतिष) गर्गसंहिता। (कृष्ण की कथा)

(४) वेदों का मंत्र भाग। मुख्य वेद। वि० दे० "वेद"।

संहृत-वि० [सं०] (१) एकत्र किया हुआ। समेटा हुआ। (२) संगृहीत। जुटाया हुआ। (३) नष्ट। ध्वस्त। (४) समाप्त। खतम। (५) निवारित। रोका हुआ।

संहृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बटोरने या समेटने की क्रिया। (२) संग्रह। जुटाव। (३) नाश। ध्वंस। (४) प्रलय। (५) अंत। समाप्ति। (६) रोक। परिहार। (७) संक्षेप। खुलासा। (८) हरण। छीनना। लूट खसोट।

संहृष्ट-वि० [सं०] (१) खड़ा। (रोम) (२) जिसके रोएँ उमंग से खड़े हों। पुलकित। प्रफुल्ल। (३) जिसके रोंगटे डर से खड़े हों। डरा हुआ। भीत।

संह्राद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊँचा स्वर। शोर। कोलाहल। चीख। (२) एक असुर जो हिरण्यकशिपु का पुत्र था।

संह्रादन-संज्ञा पुं० [सं०] चिल्लाना। कोलाहल करना। शोर मचना। चीखना।

स-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) शिव। महादेव। (३) साँप। (४) पक्षी। चिड़िया। (५) वायु। हवा। (६) जीवात्मा। (७) चंद्रमा। (८) भृगु। (९) दीप्ति। कांति। चमक। (१०) ज्ञान। (११) चिंता। (१२) गाड़ी का रास्ता। सड़क। (१३) संगीत में षड्ज स्वर का सूचक अक्षर। जैसे,—रे, ग, म, ध, नि, स। (१४) छंदःशास्त्र में "सगण" शब्द का सूचक अक्षर या संक्षिप्त रूप। वि० दे० "सगण"।

उप० एक उपसर्ग जिसका प्रयोग शब्दों के आरंभ में, कुछ विशिष्ट अर्थ उत्पन्न करने के लिये होता है। जैसे,—(क) बहुब्रीहि समास में "सह" के अर्थ में। जैसे,—सजीव = सह + जीव। सपरिवार = सह + परिवार। (ख) "स्व" या "एक ही" के अर्थ में। जैसे,—सगोत्र। (ग) "सु" के स्थान में। जैसे,—सपूत।

सइ–॥–अव्य० [सं० सह] से। साथ।

॥ अव्य० [प्रा० सुंतो] एक विभक्ति जो, कारण और अपादान कारक का चिह्न है।

सइअन †–संज्ञा पुं० दे० "सहिंजन"।

सइन †–संज्ञा स्त्री० [सं० संधि] नाड़ी का व्रण। नासूर।

सइना॥–संज्ञा स्त्री० दे० "सेना"।

सइयो॥†–संज्ञा स्त्री० [सं० सखी] सखी। सहेली।

सइल ‡–संज्ञा स्त्री० [सं० शल्य] लकड़ी की वह खूँटी या गुल्ली जो गाड़ी के कँधावर में लगाई जाती है। इसके लगाने से बैल की गरदन दो सैलों के बीच रहती में रहती रहती है और वह इधर उधर नहीं हो सकता। कभी कभी यह लोहे की भी होती है। समतूल। सैला। युला।

सइवर †–संज्ञा पुं० [सं० शैवल] सेवार। शैवाल।

सई–संज्ञा स्त्री० [अ० सही] मल्लाहों की परिभाषा में नाव खींचने की गून को कड़ा करना।

संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रयत्न। कोशिश।

सईकंटा–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पेड़।

सईस–संज्ञा स्त्री० दे० "सहल"।

सईस–संज्ञा पुं० दे० "साईस"।

सउँ ॥–अव्य० दे० "सौं"।

सउख ‡–संज्ञा पुं० दे० "शौक"।

सउजा †–संज्ञा पुं० [सं० शावक] आखेट करने योग्य जंतु। शिकार। साउज।

सउत †–संज्ञा स्त्री० दे० "सौत"।

सउतेला †–वि० दे० "सौतेला"।

सऊर–संज्ञा पुं० दे० "शऊर"।

सकंकूर–संज्ञा पुं० [अ० सकन्कूर] गोह की तरह का एक जंतु जिसका रंग लाल या पीला होता है। इसका मांस खारा और फीका होता है, पर बहुत बलवर्द्धक माना जाता है। इसे रेग की मछली या रेग माही भी कहते हैं।

सकंटक–संज्ञा पुं० [सं० सकण्टक] (१) करंज वृक्ष। कंजा। पूतिकरंज। दुर्गंध करंज। (२) सिवार। शैवाल। सेवार।

सक–संज्ञा पुं० दे० "शक"।

संज्ञा स्त्री० दे० "शक्ति" या "सकत"।

सकट–संज्ञा पुं० [सं० शकट] शकट। गाड़ी। छकड़ा। सग्गड़। उ०—कोटि भार सकटनि महँ भरि के। भए पठावत आनँद करि के।—गिरिधरदास।

संज्ञा पुं० [सं०] शाखोट वृक्ष। सिहोर।

सकटान्न–संज्ञा पुं० [सं०] जिसे किसी प्रकार का अशौच हो, उसका अन्न। अशौचान्न। अशुद्ध अन्न।

विशेष—शास्त्रों में इस प्रकार का अन्न खाने का निषेध है; और कहा गया है कि जो ऐसा अन्न खाता है, उसे भी अशौच हो जाता है।

सकटी–संज्ञा स्त्री० [सं० शकट] (१) गाड़ी। (२) छोटा सग्गड़। (डिं०)

सकड़ी–संज्ञा स्त्री० दे० "सिकरी"।

सकत †–संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] (१) बल। शक्ति। सामर्थ्य। ताकत। (२) वैभव। संपत्ति।

सकता–संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] (१) शक्ति। ताकत। बल। (२) सामर्थ्य। उ०—मिट्टी के बासन को इतनी सकता कहाँ जो अपने कुम्हार के करतब कुछ ताड़ सके। सच है जो बना हो सो अपने बनानेवाले को क्या सराहे।—इंशाअल्लाह खाँ।

संज्ञा पुं० [अ० सकतः] (१) एक प्रकार का मानसिक रोग जिसमें रोगी बेहोश हो जाता है। बेहोशी की बीमारी। (२) विराम। यति।

मुहा०—सकता पड़ना = छंद में यति भंग दोष होना।

सकती–संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] (१) शक्ति। बल। ताकत। (२) शक्ति नामक अस्त्र। वि० दे० "शक्ति"।

सकन–संज्ञा पुं० [देश०] लता कस्तूरी। मुश्कदाना।

सकना–क्रि० अ० [सं० शक् या शक्य] कोई काम करने में समर्थ होना। करने योग्य होना। जैसे,—खा सकना, चल सकना, बोल सकना, रोक सकना, कह सकना।

विशेष—इस क्रिया का व्यवहार सदा किसी दूसरी क्रिया के साथ संयोज्य क्रिया के रूप में ही होता है, अलग नहीं होता। परंतु बंगाल में कुछ लोग भूल से, या बँगला के प्रभाववश, कभी कभी अकेले भी इस क्रिया का व्यवहार कर बैठते हैं। जैसे,—हमसे नहीं सकेगा।

सकपकाना–क्रि० अ० [अनु० सक पक] (१) चकपकाना। आश्चर्ययुक्त होना। (२) हिचकना। आगा पीछा करना। (३) लज्जित होना। शरमाना। (४) प्रेम, लज्जा या शंका के कारण उद्भूत एक प्रकार की चेष्टा। उ०—प्रथम समागम में पूछो कवि रघुनाथ कहा कहौं रावरो सो पूतनी सकाई है। मिलिबे की चरचा सुनत ही सकपकाई स्वेद भरे तन परे मुरछिया पियराई है।—रघुनाथ।

सकरकंदी–संज्ञा स्त्री० दे० "शकरकंद"।

सकरकन–संज्ञा पुं० दे० "शकरकंद"।

सकरखंडी–संज्ञा स्त्री० [फा० शकर + खंड] लाल और बिना साफ की हुई चीनी। खाँड़। शक्कर।

सकरना–क्रि० अ० [सं० स्वीकरण] (१) सकारा जाना। स्वीकृत या अंगीकृत होना। मंजूर होना। जैसे,—हुंडी सकरना, दाम सकरना। (२) कबूला जाना। माना जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

सकरपाला–संज्ञा पुं० [फा० शकरपारः] (१) शकरपारा नाम की

मिठाई। वि० दे० "शकरपाला"। (२) एक प्रकार का काबुली नीबू। (३) कपड़े पर की एक प्रकार की सिलाई जो शकरपारे की आकृति की होती है। वि० दे० "शकरपारा"।

सकरा-वि० दे० "सँकरा"।

सकरिया-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० शकर] लाल शकरकंद। रताल्।

सकरुंड-संज्ञा पुं० [गुज०] सकुरुंड या साकुण्ड नाम का वृक्ष जिसकी पत्तियों आदि का व्यवहार ओषधि के रूप में होता है। वैद्यक के अनुसार यह कषाय, रुचिकर, दीपन और वातनाशक माना जाता है।

सकरुण-वि० [सं०] जिसे करुणा हो। दयाशील।

सकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सुनता या सुन सकता हो।

वि० कानवाला। जिसे कान हों।

सकर्णक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सकर्मक क्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याकरण में दो प्रकार की क्रियाओं में से एक। वह क्रिया जिसका कार्य्य उसके कर्म पर समाप्त हो। जैसे,—"खाना"। खाने का कार्य्य उस वस्तु पर समाप्त होता है, जो खाई जाती है; इसलिये यह सकर्मक क्रिया हुई। इसी प्रकार देना, लेना, मारना, उठाना आदि सकर्मक क्रियाएँ हैं।

सकल-वि० [सं०] सब। सर्व। समस्त। कुल।

संज्ञा पुं० (१) रोहित तृण। गंधतृण। रोहिस घास। (२) निर्गुण ब्रह्म और सगुण प्रकृति। (३) दर्शन शास्त्र के अनुसार तीन प्रकार के जीवों में से एक प्रकार के जीव। पशु।

विशेष—जीव तीन प्रकार के माने गए हैं—विज्ञानाकल, प्रलयाकल और सकल। सकल जीव मल, माया और कर्म से युक्त होता है। इसके भी दो भेद कहे गए हैं—पक्व कलुष और अपक्व कलुष।

सकलकल-वि० [सं०] सोलहो कलाओं से युक्त। (चंद्रमा)

सकलखोरा-संज्ञा पुं० दे० "शकरखोरा" (पक्षी)।

सकलजननी-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रकृति।

सकलप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सब को प्रिय हो। सब को अच्छा लगनेवाला। (२) चना। चणक।

सकलसत्त्वरण-संज्ञा पुं० [सं०] शाल निर्य्यास। धूना। राल।

सकलसिद्धि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे सब सिद्धियाँ प्राप्त हों।

सकलसिद्धिदा-संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक भैरवी का नाम।

सकलात-संज्ञा पुं० [?] (१) ओढ़ने की रजाई। दुलाई। उ०—(क) लायो शीत गात सुनो बात प्रभु काँपि उठे दई सकलात आनि प्रीति हिये भोई है। (ख) शीत लगत सकलात विदित पुरुषोत्तम दीनी। शौच गये हरि संग कृत्य सेवक की कीनी।—भक्तमाल। (२) भेंट। सौगात। उपहार। उ०—सौ गाढ़ी सकलात-सलौनी। पातसाह की जात पठौनी।—लाल कवि।

सकलाधार-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

सकली-संज्ञा स्त्री० [हिं०] मत्स्य। मछली।

सकलेंदु-संज्ञा पुं० [सं०] पूर्णिमा का चंद्रमा। पूरा चाँद।

सकलेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

सकवा†-संज्ञा पुं० [हिं० सखू] शाल। अश्वकर्ण।

सकस†-संज्ञा पुं० दे० "शख्स"।

सकसकाना†-क्रि० अ० [अनु०] बहुत डरना। डर के कारण काँपना। उ०—सकसकात तनु भीजि पसीना उलटि उलटि तन तोरि जँभाई।—सूर।

सकसाना*†-क्रि० अ० [अनु०] डर मानना। भयभीत होना। उ०—दस्तेयाज वारन के द्वार ठाढ़े रस्ते पर छिति के अधीस दस्तबस्त सकसात हैं।—चकछेदी।

सका†-संज्ञा पुं० [अ० सक़ा] (१) पानी भरनेवाला, भिश्ती। (२) वह जो घूम घूमकर लोगों को पानी पिलाता हो, विशेषतः मशक से (मुसलमानों को) पानी पिलानेवाला।

सकाकुल-संज्ञा पुं० [?] (१) एक प्रकार का कंद जिसे अंबरकंद कहते हैं। (२) एक प्रकार का शतावर। (३) शकाकुल मिस्री। सुधामूली।

सकाकुल मिस्री-संज्ञा स्त्री० [?] (१) सुधामूली। (२) अंबरकंद।

सकाकोल-संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार एक नरक का नाम।

सकाना*†-क्रि० अ० [सं० शंका] (१) शंका करना। संदेह करना। उ०—(क) जोरि कटक पुनि राजा घर कहँ कीन पयान। दिवसहिं भानु अलोप भा बासुक इंद्र सकान।—जायसी। (ख) देखि सैन ब्रज लोग सकात। यह आयो कीन्हें कछु घात।—सूर। (२) भय के कारण संकोच करना। हिचकिना। (३) दुःखी होना। रंज होना।

क्रि० स० "सकना" का प्रेरणार्थक रूप। (क्व० हास्य)

सकाम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह व्यक्ति जिसे कोई कामना या इच्छा हो। (२) वह व्यक्ति जिसकी कामना पूर्ण हुई हो। लब्धकाम। (३) कामवासना युक्त व्यक्ति। मैथुन की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति। कामी। (४) वह व्यक्ति जो कोई कार्य भविष्य में फल मिलने की इच्छा से करे। जो निःस्वार्थ होकर कोई कार्य्य न करे, बल्कि स्वार्थ के विचार से करे। (५) प्रेम करनेवाला।

सकामनिर्जरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों के अनुसार चित्त की वह वृत्ति जिसमें बहुत अधिक क्षति पोने पर भी शत्रु या पीड़ा देनेवाले को परम शांतिपूर्वक क्षमा कर दिया जाता है। यह वृत्ति उपशांत चित्तवाले साधुओं में होती है।

सकामा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो मैथुन की इच्छा रखती हो। काम-पीड़िता। कामवती।

सकामी-संज्ञा पुं० [सं० सकामिन्] (१) वह जिसे किसी प्रकार की कामना हो। कामनायुक्त। वासनायुक्त। (२) कामी। विषयी।

सकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) 'स' अक्षर। (२) 'स' वर्ण की सी ध्वनि। जैसे,—उसके मुँह से सकार भी न निकला।

सकारना-क्रि० स० [सं० स्वीकरण] (१) स्वीकार करना। मंजूर करना। (२) महाजनों का हुंडी की मिती पूरी होने के एक दिन पहले हुंडी देखकर उस पर हस्ताक्षर करना।

विशेष—जो लोग किसी महाजन की हुंडी पर रुपए देते हैं, वे मिती पूरी होने से एक दिन पहले अपनी हुंडी उस महाजन के पास उसे दिखलाने और उससे हस्ताक्षर कराने के लिये ले जाते हैं। इससे महाजन को दूसरे दिन के दातव्य धन की सूचना भी मिल जाती है और रुपए पानेवाले को यह निश्चय भी हो जाता है कि कल मुझे रुपए मिल जायँगे।

सकारा-संज्ञा पुं० [सं० स्वीकरण] महाजनी में वह धन जो हुंडी सकारने और उसका समय फिर से बढ़ाने के लिये लिया जाता है।

सकारे-क्रि० वि० [सं० सकाल] (१) प्रातःकाल। सवेरे। तड़के। उ०—(क) अवधेश के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे। अवलोकिहौं सोच विमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे धिक से।—तुलसी। (ख) गए मयूर तमचूर जो हारे। उन्हहिं पुकारे साँझ सकारे।—जायसी। (२) नियत समय पर। ठीक वक्त पर। (क०)

सकारो-क्रि० वि० दे० "सकारे"।

सकालत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सकील या गरिष्ठ होने का भाव। (२) गुरुता। भारीपन।

सकाश-अव्य० [सं०] पास। निकट। समीप।

सकिलना-क्रि० अ० [हिं० फिसलना या अनु०] (१) फिसलना। सरकना। (२) सिमटना। सिकुड़ना। उ०—उतरत बार सकिल गई भासा। भयो तहाँ ते रुधिर प्रकासा।—रघुराज। (३) हो सकना। पूरा होना। जैसे,—तुम से यह काम नहीं सकिल सकता।

सकीन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंतु।

सकील-वि० [अ०] (१) जो जल्दी हजम न हो। गरिष्ठ। गुरुपाक। (२) भारी। वजनी।

सकुच‡-संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० संकोच] संकोच। लाज। शर्म। उ०—(क) सुनु मैया तेरी सौं करौं याकी टेव लरन की, सकुच बेंचि सी खाई।—तुलसी। (ख) सकुच सुरत आरंभ ही, बिछुरी लाज लजाय। ढरकि ढार ढुरि ढिग भई, ढीठ ढिठाई आय।—बिहारी। (ग) हम सों उन सो कौन सगाई। हम अहीर अबला व्रजवासी वै जदुपति जदुराई। कहा भयो जु भए नँदनंदन अब इह पदवी पाई। सकुच न आवत घोष बसत की तजि व्रज गए पराई।—सूर।

सकुचना-क्रि० अ० [सं० संकोच, हिं० सकुच + ना (प्रत्य०)] (१) संकोच करना। लज्जा करना। शरमाना। उ०—(क) सकुची, डरी, सुरी मन वारी। गहु न बाँह रे जोगि भिखारी।—जायसी। (ख) सुनि पग-धुनि चितई इतै, न्हाति दिये ही पीठि। चकी, झुकी, सकुची, डरी, हँसी लजीली दीठि।—बिहारी। (२) (फूलों का) संपुटित होना। बंद होना। जैसे,—कमल संकुचित हो गए। उ०—(क) राम की तो ऐसी बात कंज पात गात जाके सामने मरीच माहि देख सकुचाइहै।—हृदयराम। (ख) गिरिधरदास कहै सकुची कुमोदिनी यों देखि पर-पुरुष लजात जैसे पतिता।—गिरधर।

सकुचाई‡-संज्ञा स्त्री० [सं० संकोच, हिं० सकुच + आई (प्रत्य०)] (१) संकुचित होने का भाव। (२) संकोच। शर्म। लज्जा। हया।

सकुची-संज्ञा स्त्री० [सं० शकुल मत्स्य] एक प्रकार की मछली जो साधारण मछलियों से भिन्न और प्रायः कछुए के आकार की होती है। इसके छोटे छोटे चार पैर होते हैं और एक लंबी पूँछ होती है। इसी पूँछ से यह शत्रु को मारती है। जहाँ पर इसकी चोट लगती है, वहाँ घाव हो जाता है और चमड़ा सड़ने लगता है। कहते हैं कि यह मछली ताड़ के वृक्ष पर चढ़ जाती है। पानी में और जमीन पर दोनों जगह यह रह सकती है।

सकुचीला-वि० [हिं० सकुच + ईला (प्रत्य०)] जिसे अधिक संकोच हो। संकोच करनेवाला। शरमीला।

सकुचीली-संज्ञा स्त्री० [हिं० सकुचीला] लाजवंती। लज्जावती लता।

सकुड़ना-क्रि० अ० दे० "सिकुड़ना"।

सकुन‡-संज्ञा पुं० [सं० शकुन] पक्षी। चिड़िया।

संज्ञा पुं० दे० "शकुन"।

सकुनी‡-संज्ञा स्त्री० [सं० शकुंत] पखेरू। चिड़िया। पक्षी।

सकुपना‡-क्रि० अ० दे० "सकोपना"।

सकुरुंड-संज्ञा पुं० [सं०] साकुरुंड वृक्ष।

सकुल-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छा कुल। उत्तम कुल। ऊँचा खानदान।

संज्ञा पुं० दे० "सकुची"।

सकुलज-वि० [सं०] एक ही कुल में उत्पन्न।

सकुला-संज्ञा पुं० [सं० कुल] बौद्ध भिक्षुओं का नेता या सरदार।

सकुलादनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मरेठी। महाराष्ट्री लता। (२) कुटकी।

सकुली-संज्ञा स्त्री० दे० "सकुची"।

सकुल्य–संज्ञा पुं० [सं०] एक ही कुल का। सगोत्र।

सकूतरा–संज्ञा पुं० एक द्वीप जो अरब सागर में अफ्रीका के पूर्वी तट के समीप है। यहाँ मोती और प्रवाल अधिक मिलते हैं।

सकूनत–संज्ञा स्त्री० [अ०] रहने का स्थान। निवास स्थान। पता। जैसे,—अदालत में गवाहों की वल्दियत और सकूनत भी लिखी जाती है।

सकृत्–अव्य० [सं०] (१) एक बार। एक मरतबा। (२) सदा। (३) साथ। सह।
संज्ञा पुं० (१) पशुओं का मल। विष्ठा। गुह। (२) कौआ। काक।

सकृत्फल–संज्ञा पुं० [सं०] वह चीज जो केवल एक ही बार फलती हो।

सकृत्प्रज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके एक ही बच्चा हो। (२) काक। कौआ।

सकृत्प्रजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वंध्यारोग। बाँझपन। (२) शेरनी। सिंहनी।

सकृत्फला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह जो एक ही बार फले। (२) कदली। केला।

सकृत्सू–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसने अभी बालक प्रसव किया हो।

सकृदागामी मार्ग–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध मतानुसार एक प्रकार का धार्मिक मार्ग जिसमें जीव केवल एक बार जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करता है।

सकृद्गर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] खच्चर। अश्वतर।

सकृद्ग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम। (२) इस देश का निवासी।

सकृद्वीर–संज्ञा पुं० [सं०] एकवीर या अकलवीर नामक वृक्ष।

सकृन्नंदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नदी का नाम।

सकेत‡–संज्ञा पुं० [सं० संकेत] (१) संकेत। इशारा। (२) प्रेमी और प्रेमिका के मिलने का निर्दिष्ट स्थान।
वि० [सं० संकीर्ण] तंग। संकुचित। संकीर्ण।
संज्ञा पुं० विपत्ति। दुःख। कष्ट। उ०—खिनहि उठै, खिन बाड़ै अस हिय कँवल सकेत। हीरामनहिं बुलावहिं, सखी! गहन जिउ लेत।—जायसी।

सकेतना‡–क्रि० अ० [हिं० सकेत] संकुचित होना। सिकुड़ना। उ०—कँवल सकेता कुमुदिनि फूली। चकवा बिछुरा चकई भूली।—जायसी।

सकेती–‡संज्ञा स्त्री० [हिं० सकेत] विपत्ति। कष्ट। आपत्ति।

सकेलंग–संज्ञा पुं० [अं० सक्लिंग] एक प्रकार का वृक्ष जो बहुत ऊँचा होता है। इसकी लकड़ी नरम और सफेद होती है जो इमारत और संदूक आदि बनाने के काम में आती है। यह अधिकतर हिमालय के पूर्वी भाग में पाया जाता है।

सकेलना‡–क्रि० स० [सं० सकल?] एकत्र करना। इकट्ठा करना। जमा करना। उ०—(क) अब हम जाना हो हरि बाजी को खेल। डंक बजाय देखाय तमाशा बहुरि सो लेन सकेल।—कबीर। (ख) कहुँ हरि कथा कहूँ हरि पूजा कहुँ संतन को डेरो। जो बनिता सुत यूथ सकेले हुँगे रयनि पनेरो।—सूर।

सकेला–संज्ञा स्त्री० [अ० सैकल] एक प्रकार की तलवार जो कड़े और नरम लोहे के मेल से बनाई जाती है।
संज्ञा पुं० एक प्रकार का लोहा।

सकोच–संज्ञा पुं० दे० "संकोच"।

सकोड़ना–क्रि० स० दे० "सिकोड़ना"।

सकोतरा–संज्ञा पुं० दे० "चकोतरा"।

सकोपना‡–क्रि० अ० [सं० कोप+ना (प्रत्य०)] कोप करना। क्रोध करना। गुस्सा करना। उ०—पुनि पुनि सुनि विपरीत सकोपा। और प्रकार कीन्ह व्यक्षेपा।—शंकर दिग्विजय।

सकोपित–वि० [सं० स+कुपित] कुपित। क्रुद्ध। नाराज।

सकोरा–संज्ञा पुं० [हिं० कसोरा] [स्त्री० सकोरी] मिट्टी की एक प्रकार की छोटी कटोरी। कसोरा।

सक्करी–संज्ञा स्त्री० [सं० शर्करी] एक प्रकार का छंद। वि० दे० "शर्करी"।

सक्का–संज्ञा पुं० [अ०] (१) भिश्ती। माशकी। उ०—उछरि सड़का से परत पुनि छक्का से सड़का से भजत नेकु चाबुक लड़का से। सका से सवारे देत जीवन समर सदा जुराम वाजी पर प्रान के उचक्का से।—गोपालचंद। (२) वह जो मशक में पानी भरकर लोगों को पिलाता फिरता हो।

सक्त–वि० [सं०] (१) दे० "आसक्त"। (२) मिला हुआ। सटा हुआ। संलग्न।

सक्तमूत्र–संज्ञा पुं० [सं०] चरक के अनुसार वह व्यक्ति जो थोड़ा थोड़ा करके पेशाब करे।

सक्ति–संज्ञा स्त्री० दे० "शक्ति"। उ०—पंक कर चर्म बर वर्म धर रुचिर कटि तून सर सक्ति सारंगधारी।—तुलसी।

सक्तु–संज्ञा पुं० [सं० शक्तु] भुने हुए अनाज को पीसकर तैयार किया हुआ आटा। सत्तू।

सक्तुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सत्तू। (२) एक प्रकार का विष जिसकी गाँठ में सत्तू के समान चूरा भरा रहता है।

सक्तुकार–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सत्तू बनाता और बेचता हो।

सक्तुपिंडी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्तू का बना हुआ लड्डू।

सक्तुफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी वृक्ष। सफ़ेद कीकर।

सक्तुफली–संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी वृक्ष। सफ़ेद कीकर।

सक्थि–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का मर्म्म (स्थान) जो शरीर के ग्यारह मर्म्म-स्थानों में माना गया है।

सक्थी-संज्ञा पुं० [सं० सक्थि] (१) हड्डी । अस्थि । हाड़ । (२) ऊरु । जंघा । जाँघ । (३) छकड़े या बैलगाड़ी का एक अंग या अंश ।

सक्र-संज्ञा पुं० [सं० शक्र] देवताओं का राजा, इंद्र । वि० दे० "शक्र" ।

सक्रधरा-संज्ञा पुं० [सं० शक्रधन] इंद्र का अस्त्र, वज्र । (डिं०)

सक्रतु-वि० [सं०] समान कर्म या प्रज्ञावाला ।

सक्रपति-संज्ञा पुं० [सं० शक्रपति] विष्णु । (डिं०)

सक्रसन-संज्ञा पुं० [सं० शक्रसन] कुटज वृक्ष ।

सक्र सरोवर-संज्ञा पुं० [सं० शक्रसरोवर] इंद्रकुंड नामक स्थान जो ब्रज में है ।

सक्रारि-संज्ञा पुं० [सं० शक्रारि] इंद्र का शत्रु, मेघनाद ।

सक्ष-वि० [सं०] (१) अतिक्रमण करने के योग्य । (२) हारा हुआ । पराजित ।

सक्षण-वि० [सं०] हारा हुआ । पराभूत ।

सक्षणि-वि० [सं०] सेवा करने के योग्य । सेव्य ।

सक्षम-वि० [सं०] (१) जिसमें क्षमता हो । क्षमताशाली । (२) काम करने के योग्य । समर्थ

सख-संज्ञा पुं० [सं० सखि] (१) सखा । मित्र । साथी । (२) एक प्रकार का वृक्ष ।

सखत†-वि० दे० "सख्त" ।

सखती†-संज्ञा स्त्री० दे० "सख्ती" ।

सखत्व-संज्ञा पुं० [सं०] सखा होने का भाव । सखापन । मित्रता । दोस्ती ।

सखर-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम ।

†वि० दे० "सखरा" ।

सखरन†-संज्ञा पुं० दे० "शिखरन" ।

सखरस-संज्ञा पुं० [सख ? + हिं० रस] मक्खन । नैनू

सखरा-संज्ञा पुं० [सं० सक्षार] (१) खारा । क्षारयुक्त । (२) निखरा का उलटा । वि० दे० "सखरी" ।

संज्ञा पुं० [हिं० निखरी] वह भोजन जो घी में न पकाया गया हो । कच्ची रसोई । वि० दे० "सखरी" ।

सखरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० निखरा या निखरी] कच्ची रसोई । कच्चा भोजन । जैसे,—दाल, भात, रोटी आदि जो हिंदू लोग चौके के बाहर या किसी अन्य जाति के आदमी के हाथ की नहीं खाते और जिसमें छूत मानते हैं । वि० दे० "निखरी" ।

संज्ञा स्त्री० [सं० शिखर] छोटा पहाड़ । पहाड़ी । (डिं०)

सखस†-संज्ञा पुं० दे० "शख्स" ।

सखसावन†-संज्ञा पुं० [फ़ा० शख्स ?] (१) पालकी । पीनस । (२) आराम कुरसी । (३) पलंग ।

सखा-संज्ञा पुं० [सं० सखिन्] (१) वह जो सदा साथ रहता हो । साथी । संगी । (२) मित्र । दोस्त । (३) सहयोगी । सहचर । (४) साहित्य में वह व्यक्ति जो 'नायक' का सहचर हो और जो सुख दुःख में उसके समान सुख दुःख को प्राप्त हो । ये चार प्रकार के होते हैं—पीठमर्द, विट, चेट और विदूषक ।

सखावत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सखी या दाता होने का भाव । दानशीलता । (२) उदारता । फ़ैयाज़ी ।

सखिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सखी होने का भाव । (२) बंधुता । मैत्री । दोस्ती ।

सखित्व-संज्ञा पुं० [सं०] बंधुता । मित्रता । दोस्ती ।

सखिपूर्व-संज्ञा पुं० [सं०] बंधुता । मित्रता ।

सखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहेली । सहचरी । संगिनी । (२) साहित्य ग्रंथों के अनुसार वह स्त्री जो नायिका के साथ रहती हो और जिससे वह अपनी कोई बात न छिपावे । सखी का चार प्रकार का कार्य्य होता है—मंडन, शिक्षा, उपालंभ और परिहास । (३) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में १४ मात्राएँ और अंत में १ मगण या १ यगण होता है । इसकी रचना में आदि से अंत तक दो दो कलें होती हैं—२ + २ + २ + २ + २ + २ और कभी कभी २ + ३ + ३ + २ + २ + २ भी होता है और विराम ८ और ६ पर होता है । विराम भेद के अनुसार कवियों ने इसके दो भेद किए हैं—(१) विजात और (२) मनोरम ।

वि० [अ० सख़ी] दाता । दानी । दानशील । जैसे,—सखी से सूम भला जो तुरत दे जवाब । (कहावत)

सखीभाव-संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णवों के अनुसार भक्ति का एक प्रकार जिसमें भक्त अपने आपको इष्ट देवता की पत्नी या सखी मानकर उपासना करते हैं ।

सखुआ-संज्ञा पुं० [सं० शाल] शाल वृक्ष । साखू । वि० दे० "शाल" ।

सखुन-संज्ञा पुं० [फ़ा० सख़ुन] (१) बातचीत । वार्तालाप । (२) कविता । काव्य । (३) कौल । वचन । जैसे,—मर्दों का सखुन एक होता है ।

मुहा०—सखुन देना = वचन हारना । वादा करना । सखुन डालना = (१) कोई बात पूछना । कुछ चाहना या माँगना । उ०—सखुन उन्हीं पर डाले जो हँस हँस रखें मान । (२) प्रश्न करना । पूछना । सवाल करना ।

(४) कथन । उक्ति ।

सखुनचीन-संज्ञा पुं० [फ़ा०] चुगुलखोर । चवाई । इधर उधर बात लगानेवाला ।

सखुनचीनी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सखुनचीन का भाव । चुगुलखोरी । चवाव ।

सखुन तकिया-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह शब्द या वाक्यांश जो कुछ लोगों की ज़बान पर ऐसा चढ़ जाता है कि बातचीत करने में प्रायः मुँह से निकला करता है । तकिया कलाम ।

विशेष—बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो बातचीत करने में बार बार "जो है सो" "क्या नाम" "समझ लीजिए कि" आदि कहा करते हैं। ऐसे ही शब्दों या वाक्यांशों को सखुन तकिया कहते हैं।

सखुनदाँ—संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह जो सखुन या काव्य अच्छी तरह समझता हो। काव्य का रसिक। (२) वह जो बातचीत का मर्म्म अच्छी तरह समझता हो।

सखुनदानी—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) बातचीत की समझदारी। (२) काव्य-मर्म्मज्ञता। काव्य-रसिकता।

सखुनपरवर—संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह जो अपनी कही हुई बात का सदा पालन करता हो। जबान या बात का धनी। (२) वह जो अपनी कही हुई अनुचित या गलत बात का भी बराबर समर्थन करता हो। हठी। जिद्दी।

सखुनशनास—संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह जो सखुन या काव्य भली भाँति समझता हो। काव्य का मर्म्मज्ञ। (२) वह जो बातचीत का मर्म्म बहुत अच्छी तरह समझता हो।

सखुनसंज—संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह जो बात समझता हो। (२) वह जो काव्य समझता हो।

सखुनसंजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सखुनसंज का भाव।

सखुनसाज़—संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह जो सखुन कहता हो। काव्य-रचना करनेवाला। कवि। शायर। (२) वह जो सदा झूठी बातें गढ़ता हो। अपने मन से झूठी बातें बनाकर कहनेवाला।

सखुनसाज़ी—संज्ञा पुं० [फा०] (१) सखुनसाज का भाव या काम। (२) कवि होने का भाव या काम। (३) झूठी बातें गढ़ने का गुण या भाव।

सखोल—संज्ञा पुं० [सं०] राजतरंगिणी के अनुसार एक प्राचीन नगर का नाम।

सख्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सखा का भाव। सखत्व। सखापन। (२) मित्रता। दोस्ती। (३) वैष्णव मतानुसार ईश्वर के प्रति वह भाव जिसमें ईश्वरावतार को भक्त अपना सखा मानता है। जैसे,—महात्मा सूरदास का श्रीकृष्ण के प्रति सख्य भाव था।

सख्यता—संज्ञा स्त्री० दे० "सख्य"।

सगंध—वि० [सं०] (१) जिसमें गंध हो। गंधयुक्त। महकदार। (२) जिसे अभिमान हो। अभिमानी।
संज्ञा पुं० जाति।

सगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का चावल। सुगंधशालि। बासमती चावल।
वि० दे० "सगा"।

सगंधी—वि० पुं० [सं० सगंधिन्] जिसमें गंध हो। महकदार।
वि० दे० "सगा"।

सग—संज्ञा पुं० [फा०] कुत्ता। कुक्कुर। श्वान।

सगज़ुबान—संज्ञा पुं० [फा०] वह घोड़ा जिसकी जीभ कुत्ते के समान पतली और लंबी हो। ऐसा घोड़ा प्रायः ऐबी समझा जाता है।

सगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० सगड़] छोटा सगड़।

सगण—संज्ञा पुं० [सं०] छंदःशास्त्र में एक गण जिसमें दो लघु और एक गुरु अक्षर होते हैं। इस गण का प्रयोग छंद के आदि में अशुभ है। इसका रूप ।।ऽ है।

सगत—संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] (१) शिव की भार्या, पार्वती। (डिं०) (२) शक्ति। ताकत। बल। सामर्थ्य।

सगती—संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] (१) पार्वती। (डिं०) (२) शक्ति। ताकत। बल।

सगदा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मादक द्रव्य जो अनाज से बनाया जाता है।

सगन—संज्ञा पुं० (१) दे० "सगण"। (२) दे० "शकुन"।

सगनौती—संज्ञा स्त्री० दे० "शकुनौती"।

सगपन—संज्ञा पुं० दे० "सगापन"।

सगपहता—संज्ञा पुं० दे० "सगपहती"।

सगपहती—संज्ञा स्त्री० [हिं० साग + पहिती = दाल] एक प्रकार की दाल जो साग मिलाकर बनाई जाती है।

विशेष—प्रायः लोग सगपहती बनाने के लिये उड़द की दाल में सोआ पालक या बथुए का साग मिलाते हैं। कभी कभी अरहर की दाल भी मिलाकर बनाई जाती है।

सगपिस्ताँ—संज्ञा पुं० [फा०] लिसोड़ा। बहुवार।

सगबु—संज्ञा पुं० [सं०] भमरली।

सगबग—वि० [अनु०] (१) सराबोर। लथपथ। उ० (क)—बरसावत बहु सुमन को सौरभ मद धारि। सगबग बिंदु मरंद सों, मंद की चलत बयारि।—अंबिकादत्त। (ख) पिय चूम्यो मुँह चूमि होत रोमांचन सगबग। (२) द्रवित। उ०—मुरली नलिका सों अमी नाथ रहे बगराय। सगबग होत पषान जिहिं सूखे तरु हरियाय। (३) परिपूर्ण। उ०—किस तूठ्यो रतिराज साज सब सजि सुख पागे। किहि सुहाग सगबगे भाग काके पुनि जागे।
क्रि० वि० तेजी से। जल्दी से। चटपट। उ०—उतरि पलँग ते न दियो है धरा पै पग तेऊ सगबग निसि दिन चली जाती हैं।—भूषण।

सगबगाना—क्रि० अ० [अनु० सग बग] (१) लथपथ होना। किसी वस्तु से भीगना या सराबोर होना। उ०—तन पुलकित किहिं हेतु कपोलन परि गई पीरी। रोम सेद सगबगे चाल हू भई अधीरी।—अंबिकादत्त। (२) सकपकाना। शंकित होना। भयभीत होना।

सगभत्ता—संज्ञा पुं० [हिं० साग + भात] एक प्रकार का भात जो साग मिलाकर बनाया जाता है। इसमें पकाते समय चावल में साग मिला देते हैं।

सगर-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ तगर] तगर का फूल या उसका पौधा।
संज्ञा पुं॰ [सं॰] अयोध्या के एक प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा जो बड़े धर्मात्मा तथा प्रजा-रंजक थे। इनका विवाह विदर्भ-राजकन्या केशिनी से हुआ था। इनकी दूसरी स्त्री का नाम सुमति था। इन स्त्रियों सहित सगर ने हिमालय पर कठोर तपस्या की। इससे संतुष्ट होकर महर्षि भृगु ने इन्हें वर दिया कि तुम्हारी पहली स्त्री से तुम्हारा वंश चलानेवाला पुत्र होगा; और दूसरी स्त्री से ६० हजार पुत्र होंगे। सगर की पहली स्त्री से असमंजस नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो बड़ा उद्धत था। उसे सगर ने अपने राज्य से निकाल दिया। इसके पुत्र का नाम अंशुमान था। सगर की दूसरी स्त्री से ६० हजार पुत्र हुए। एक बार सगर ने अश्वमेध यज्ञ करना चाहा। अश्वमेध का घोड़ा इंद्र ने चुरा लिया और उसे पाताल में जा छिपाया। सगर के पुत्र उसे ढूँढ़ते ढूँढ़ते पाताल में पहुँचे। वहाँ महर्षि कपिल के समीप अश्व को बँधा पाकर उन्होंने उनका अपमान किया। मुनि ने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप देकर भस्म कर डाला। सगर ने अपने पुत्रों के न आने पर अंशुमान को उन्हें ढूँढ़ने के लिये भेजा। अंशुमान ने पाताल में पहुँचकर मुनि को प्रसन्न किया और वहाँ से घोड़ा लेकर अयोध्या पहुँचा। अश्वमेध यज्ञ समाप्त करके सगर ने तीस सहस्र वर्ष राज्य किया। राजा भगीरथ इन्हीं के वंश के थे।

सगरा†-वि॰ [सं॰ सकल] [स्त्री॰ सगरी] सब। तमाम। सकल। कुल।
संज्ञा पुं॰ [सं॰ सागर] (१) तालाब। (२) झील।

सगरी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक प्राचीन नगरी का नाम।

सगर्भ-वि॰ [सं॰] एक ही गर्भ से उत्पन्न। सहोदर। सगा। (भाई, बहन आदि)

सगर्भा-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) वह स्त्री जिसे गर्भ हो। गर्भवती स्त्री। (२) सहोदरा। सगी बहन।

सगर्भ्य-वि॰ [सं॰] एक ही गर्भ से उत्पन्न। सहोदर।

सगल†-वि॰ दे॰ "सकल"।

सगलगी†-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ सगा+लगना] (१) किसी से बहुत सगापन दिखाने की क्रिया। बहुत आपसदारी दिखलाना।
क्रि॰ प्र॰—करना। दिखाना।
(२) खुशामद। चापलूसी। व्यर्थ की प्रशंसा।

सगला†-वि॰ [सं॰ सकल] सब। समस्त। कुल।

सगवती-संज्ञा स्त्री॰ [?] खाने का मांस। गोश्त। कलिया।

सगवा-संज्ञा पुं॰ [देश॰] सहिंजन। शोभांजन। मुनगा।

सगवारा†-संज्ञा पुं॰ [सं॰ स्वक, हिं॰ सगा] गाँव के आस पास की और उससे संबंध रखती हुई भूमि।

सगा-वि॰ [सं॰ स्वक] [स्त्री॰ सगी] (१) एक माता से उत्पन्न, सहोदर। जैसे,—सगा भाई। (२) जो संबंध में अपने ही कुल का हो। बहुत ही निकट के संबंध का। जैसे,—सगा चाचा, सगा भतीजा।

सगाई-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ सगा+आई (प्रत्य॰)] (१) यह निश्चय कि अमुक कन्या के साथ अमुक वर का विवाह होगा। विवाह संबंधी निश्चय। मँगनी। (२) स्त्री पुरुष का वह संबंध जो छोटी जातियों में विवाह ही के तुल्य माना जाता है। प्रायः ऐसा संबंध विधवा या पति-परित्यक्ता स्त्री के साथ होता है। उ॰—प्रश्न कहो जो तुम मन ऐसी आइ। तो तुम क्यों कीन्हीं न सगाइ।—सूर। (३) संबंध। नाता। रिश्ता। उ॰—(क) घोष ग्वाल पशुपाल अधम कुल ईश एक को कौन सगाई। सूरश्याम ब्रजवास बिसारे बाबा-नंद यशोदा माई।—सूर। (ख) मातु पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई। संग सुभामिनि भाइ भलो दिन द्वै जनु औधहुते पहुनाई।—तुलसी।

सगाना-संज्ञा पुं॰ [फा॰] ममोला। खंजन पक्षी।

सगापन-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ सगा+पन] सगा होने का भाव। संबंध की आत्मीयता।

सगाबी-संज्ञा स्त्री॰ [फा॰ सग+आबी] (१) एक प्रकार का नेवला। (२) ऊदबिलाव नामक जंतु जो पानी में रहता है।

सगारत-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ सगा+आरत (प्रत्य॰)] सगा होने का भाव। संबंध की आत्मीयता। सगापन।

सगुण-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) परमात्मा का वह रूप जो सत्व, रज और तम तीनों गुणों से युक्त है। साकार ब्रह्म। (२) वह संप्रदाय जिसमें ईश्वर का सगुण रूप मान कर अवतारों की पूजा होती है। मध्य काल से उत्तरीय भारत में भक्ति मार्ग के दो भिन्न संप्रदाय हो गये थे। एक ईश्वर के निर्गुण, निराकार रूप का ध्यान करता हुआ मोक्ष की प्राप्ति की आशा रखता था; और दूसरा ईश्वर का सगुण रूप राम, कृष्ण आदि अवतारों में मान कर उनकी पूजा कर मोक्ष की इच्छा रखता था। पहले मत के कबीर, नानक आदि मुख्य प्रचारक थे और दूसरे के तुलसी, सूर आदि।

सगुणता-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सगुण होने का भाव। सगुण-पन।

सगुणी-वि॰ दे॰ "सगुण"।

सगुन-संज्ञा पुं॰ (१) दे॰ "शकुन"। (२) दे॰ "सगुण"।

सगुनाना-क्रि॰ स॰ [सं॰ शकुन+आना (प्रत्य॰)] (१) शकुन बतलाना। उ॰—आजु कोउ नीकी बात सुनावै। कै मधुबन ते नंद लाड़िले कै व दूत कोउ आवै। भौंरा इक चहुँ दिसि ते उड़ि उड़ि कान लागि कछु गावै। उत्तम भाषा ऊँचे चढ़ि चढ़ि अंग अंग सगुनावै। सूरदास कोऊ ब्रज ऐसो जो व्रज-नाथ मिलावै।—सूर। (२) शकुन निकालना या देखना।

सगुनिया–संज्ञा पुं० [सं० शकुन, हिं० सगुन + इया (प्रत्य०)] वह मनुष्य जो लोगों को शकुन बतलाता हो। शकुन विचारने और बतलानेवाला। उ०—आगे सगुन सगुनिये ताका। दहिने माछ रूप के टाँका।—जायसी।

सगुनौती–संज्ञा स्त्री० [सं० शकुन, हिं० सगुन + औती (प्रत्य०)] प्रचलित विश्वास के अनुसार वह क्रिया जिससे भावी शुभाशुभ का निर्णय किया जाता है। शकुन विचारने की क्रिया। उ०—बैठी जननि करति सगुनौती। लछमन राम मिलैं अब मोकों दोउ अमोलक मोती। इतनी कहत सुकाग उहाँ ते हरी डाल उड़ि बैठ्यो। अंचल गाँठि दई दुख भाज्यो सुख जो आनि उर पैठ्यो।—सूर।

सगृह–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी स्त्री वर्त्तमान हो। घर गृहस्थीवाला। सपत्नीक।

सगोती–संज्ञा पुं० [सं० सगोत्र] (१) एक गोत्र के लोग। सगोत्र। (२) आपसदारी के या रिश्ते नाते के लोग। भाई बंधु।

सगोत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक गोत्र के लोग। सजातीय। (२) कुल। जाति।

सगोनीमर–संज्ञा पुं० [हिं० सागौन] सागौन। शाल वृक्ष।

सगौती–संज्ञा स्त्री० [देश०] खाने का मांस। गोश्त। कलिया।

सग्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] सहभोजन। एकत्र भोजन।

सग्म–संज्ञा पुं० [सं०] यजमान।

सघन–वि० [सं०] (१) घना। गझिन। अविरल। गुंजान। जैसे,—सघन जंगल। उ०—सघन कुंज छाया सुखद शीतल मंद समीर।—बिहारी। (२) ठोस। ठस।

सघनता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सघन होने का भाव। निबिड़ता। अविरलता। गुंजानी।

सच–वि० [सं० सत्य] जो यथार्थ हो। सत्य। वास्तविक। ठीक। दे० "सत्य"।

सचक्री–संज्ञा पुं० [सं० सचक्रिन्] वह जो रथ चलाता हो। सारथी।

सचन–संज्ञा पुं० [सं०] सेवा करने की क्रिया या भाव। सेवन।

सचना॥†–क्रि० स० [सं० संचयन] (१) संचय करना। एकत्र करना। जमा करना। बटोरना। उ०—दान करन है दुइ जग तरा। रावन सचा अगिन महँ जरा।—जायसी।
क्रि० अ०, स० दे० "सजना"। उ०—जो कछु सकल लोक की शोभा लै द्वारिका सची री।—सूर।

सचनावत्–संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर, जिसका भजन सब लोग करते हैं।

सचमुच–अव्य० [हिं० सच + मुच (अनु०)] (१) यथार्थतः ठीक ठीक। वास्तव में। वस्तुतः। (२) अवश्य। निश्चय। निस्संदेह।

सचर–संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत खिरंटी। सफेद कटसरैया।

सचरना॥–क्रि० अ० [सं० संचरण] (१) किसी बात का विख्यात होना। संचरित होना। फैलना। (२) किसी वस्तु या प्रथा का अधिक व्यवहार में आना। बहुत प्रचलित होना। (३) संचार करना। प्रवेश करना। उ०—कुटिल अलक भ्रुव चारु नैन मिलि सचरे श्रवण समीप सुभाँति। वक्र विलोकनि भेद भेदिआ जोइ कहत सोइ करत प्रतीति।—सूर।

सचराचर–संज्ञा पुं० [सं०] संसार की सब चर और अचर वस्तुएँ। स्थावर और जंगम सभी वस्तुएँ।

सचल–संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जिसमें गति की सामर्थ्य हो। सचर। चर। जंगम।
वि० चलायमान। चर। चलनेवाला।

सचल लवण–संज्ञा पुं० [सं०] सौवर्चल लवण। साँचर नमक।

सचा–संज्ञा पुं० दे० "सखा"।

सचाई–संज्ञा स्त्री० [सं० सत्य, प्रा० सच + आई (प्रत्य०)] (१) सच्चा होने का भाव। सत्यता। सच्चापन। (२) वास्तविकता। यथार्थता।

सचान–संज्ञा पुं० [सं० संचान = श्येन] श्येन पक्षी। बाज़।

सचारना॥†–क्रि० स० [सं० संचारण] सचरना का सकर्मक रूप। संचारित करना। फैलाना।

सचावट†–संज्ञा स्त्री० [हिं० सच + आवट (प्रत्य०)] सच्चापन। सचाई। सत्यता। (क्व०)

सचिक–वि० [सं०] चेतनायुक्त।

सचिंत–वि० [सं०] जिसे चिंता हो। फिक्रमंद।

सचिक्कण–वि० [सं०] अत्यंत चिकना। बहुत अधिक चिकना। जैसे,—सचिक्कण केश।

सचिक्कन–वि० [सं० सचिक्कण] अत्यंत चिकना। अत्यंत स्निग्ध। उ०—सहज सचिक्कन स्याम रुचि, सुचि सुगंध सुकुमार। गनत न मन पथ अपथ लखि बिथुरे सुथरे बार।—बिहारी।

सचित्–वि० [सं०] चित् युक्त। जिसे ज्ञान या चेतना हो।

सचित्त–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका ध्यान एक ही ओर लगा हो।

सचिल्लक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्लिन्नचक्षु। (२) जिसकी दृष्टि खराब हो।

सचिव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मित्र। दोस्त। (२) मंत्री। वजीर। (३) सहायक। मददगार। (४) धतूरे का वृक्ष।

सचिवता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सचिव होने का भाव या धर्म।

सचिवामय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पांडु रोग। पीलिया। (२) विसर्प रोग।

सची–संज्ञा स्त्री० [सं० शची] (१) इंद्र की स्त्री का नाम। इंद्राणी। दे० "शची"। (२) अगर। अगुरु।

सचीसुत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शची का पुत्र, जयंत। (२) श्रीचैतन्यदेव

सचु॥†–संज्ञा पुं० [?] (१) सुख। आनंद। उ०—(क)

मुक्ता माल थाल बग पंगति करत कुलाहल कूल। सारस हंस मध्य शुक सैना, वैजयंति सम तूल। पुरइनि कपिश निचोल विविध रँग विहँसत सचु उपजावै। सूर श्याम आनंद कंद की शोभा कहत न आवै।—सूर। (ख) अँखियन ऐसी धरनि धरी। नंद-नँदन देखे सचुपावैं या सों रहति डरी। —सूर। (२) प्रसन्नता। खुशी।

सचेत-वि० [सं० सचेतन] (१) चेतनायुक्त। वि० दे० "सचेतन"। (२) सज्ञान। समझदार। (३) सजग। सावधान। होशियार। जैसे,—जब वह आया करे, तब तुम सचेत रहा करो।

सचेतन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह प्राणी जिसे चेतना हो। विवेकयुक्त प्राणी। (२) वह वस्तु जो जड़ न हो। चेतन। वि० (१) चैतन्य। चेतनायुक्त। (२) सावधान। होशियार। (३) समझदार। चतुर।

सचेती-संज्ञा स्त्री० [हिं० सचेत+ई (प्रत्य०)] (१) सचेत होने का भाव। (२) सावधानी। होशियारी।

सचेष्ट-वि० [सं०] (१) जिसमें चेष्टा हो। (२) जो चेष्टा करे। संज्ञा पुं० [सं०] आम्र वृक्ष। आम का पेड़।

सचैयता‡-संज्ञा स्त्री० [हिं० सच+ऐयत (प्रत्य०)] सचाई। सत्यता। सचापन।

सचोर-संज्ञा पुं० [देश०] गुजराती ब्राह्मणों की एक जाति।

सच्चरित-वि० [सं०] जिसका चरित अच्छा हो। सच्चरित्र।

सच्चर्य्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तम आचरण। अच्छा चालचलन।

सच्चा-वि० [सं० सत्य] [स्त्री० सच्ची] (१) सच बोलनेवाला। जो कभी झूठ न बोलता हो। सत्यवादी। (२) जिसमें झूठ न हो। यथार्थ। ठीक। वास्तविक। जैसे,—सच्चा मामला। (३) असली। विशुद्ध। जैसे,—सच्चा सोना। सच्चा घी। (४) बिलकुल ठीक और पूरा। जितना या जैसा चाहिए, उतना या वैसा। जैसे,—(क) तुमने भी उस पर खूब सच्चा हाथ मारा। (ख) यह तसवीर बहुत सच्ची उतरी गई है।

सच्चाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सच्चा+आई (प्रत्य०)] सच्चा होने का भाव। सच्चापन। सत्यता।

सच्चापन-संज्ञा पुं० [हिं० सच्चा+पन (प्रत्य०)] सच्चा होने का भाव। सत्यता। सचाई।

सच्चार-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो संपत्ति की रक्षा करता हो।

सच्चारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हलदी। हरिद्रा।

सच्चाहट-संज्ञा स्त्री० [हिं० सच्चा+हट (प्रत्य०)] सच्चा होने का भाव। सच्चापन। सत्यता।

सच्चिक्कनक्ष-वि० दे० "सचिक्कण"।

सच्चित्-संज्ञा पुं० [सं०] सत् और चित् से युक्त, ब्रह्म।

सच्चिदानंद-संज्ञा पुं० [सं०] (सत्, चित् और आनंद से युक्त होने के कारण) परमात्मा का एक नाम। ईश्वर। परमेश्वर।

सच्चिन्मय-वि० [सं०] सत् और चैतन्य से युक्त। सत् और चैतन्य का स्वरूप।

सच्छंदक्ष-वि० दे० "स्वच्छंद"।

सच्छीक्ष-संज्ञा पुं० दे० "साक्षी"। संज्ञा स्त्री० दे० "साक्षी"।

सच्युति-संज्ञा स्त्री० [सं०] दल बल सहित चलना।

सज-संज्ञा स्त्री० [सं० सज्जा, हिं० सजावट] (१) सजने की क्रिया या भाव।

यौ०—सजधज।

(२) रूप। बनाव। डौल। शकल। (३) शोभा। सौंदर्य। सजावट। शृंगार।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत लंबा वृक्ष जिसके पत्ते शिशिर में झड़ जाते हैं। यह हिमालय, बंगाल और दक्षिण भारत में अधिकता से पाया जाता है। इसके हीर की लकड़ी बहुत कड़ी और मजबूत होती है। इसकी लकड़ी का रंग स्याही लिए हुए भूरा होता है। लकड़ी जहाज, नाव आदि बनाने में काम आती है। इसे कहीं कहीं असीन भी कहते हैं।

सजग-वि० [सं० जागरण] सावधान। सचेत। सतर्क। होशियार। उ०—(क) तब आपुइ बस होइहै जिमि बनिया कर भूत। तदपि सजग रहिए सदा रिपु सम जानि कपूत। (ख) जौ राजा अस सजग न होई। काकर राज कहाँ कर होई। —जायसी।

सजड़ा‡-संज्ञा पुं० दे० "सहिंजन"। (वृक्ष)

सजदार-वि० [हिं० सज+फा० दार (प्रत्य०)] जिसकी आकृति अच्छी हो। सुंदर।

सजधज-संज्ञा स्त्री० [हिं० सज+धज अनु०] बनाव सिंगार। सजावट। जैसे,—उनकी बरात बहुत सजधज से निकली थी।

सजन-संज्ञा पुं० [सं० सत्+जन=सज्जन] [स्त्री० सजनी] (१) भला आदमी। सज्जन। शरीफ। (२) पति। भर्त्ता। उ०—बहुत नारि सुभाग सुंदरि और घोष कुमारि। सजन प्रीतम नाउँ लै लै देहिं परस्पर गारि।—सूर। (३) प्रियतम। आशना। यार।

वि० [सं०] जन सहित। जिसमें लोग हों।

सजना-क्रि० अ० [सं० सज्जा] (१) भूषण वस्त्र आदि से अपने को सज्जित करना। अलंकृत करना। शृंगार करना। उ०—तीज परब सौतिन सजे, भूषन बसन सरीर। सबै मरगजे मुँह करी, वहै मरगजे चीर।—बिहारी। (२) शोभा देना। शोभित होना। भला जान पड़ना। जैसे,—यह गुलदस्ता भी यहाँ खूब सजता है।

क्रि० स० वस्तुओं को उचित स्थान में रखना जिसमें वे सुंदर जान पड़ें। सजाना। सुसज्जित करना। साजना। जैसे,—मकान सजना, थाली सजना।

संज्ञा पुं० दे० "सहिंजन"।

सजनीय—वि० [सं०] प्रसिद्ध। विख्यात। मशहूर।

सजधज—संज्ञा स्त्री० दे० "सजधज"।

सजल—वि० [सं०] (१) जल से युक्त या पूर्ण। जिसमें पानी हो। (२) अश्रुपूर्ण (नेत्र)। आँसुओं से पूर्ण (आँख)। उ०—लोचन सजल मकरंद भरे अरविंद खुली खुले मूँदपति मधुप किशोर की।—काव्य कलाधर।

सजला—वि० [हिं० मँझला का अनु०] [हिं० सजली] चार सहोदरों में से तीसरा। मँझले से छोटा, पर सब से छोटे से बड़ा।

संज्ञा स्त्री० [सं०] जल से भरी हुई। जलयुक्त।

सजवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० सजना + वाई (प्रत्य०)] (१) सजवाने की क्रिया। (२) सुसज्जित करवाने का भाव। (३) सजाने की मजदूरी। जैसे,—इस टोपी की सजवाई दो रुपए लगे हैं।

सजवाना—क्रि० स० [हिं० सजाना का प्रे० रूप] किसी के द्वारा किसी वस्तु को सुसज्जित कराना। सुसज्जित करवाना। जैसे,—आज कल महाराज अपनी कोठी सजवा रहे हैं।

सज़ा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) अपराध आदि के कारण होनेवाला दंड। (२) कारागार का दंड। जेल में रखने का दंड।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—भुगतना।—मिलना।—होना।

यौ०—सज़ा-याफ़्ता। सज़ायाब।

सजाइ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सज़ाना] सज़ा। दंड। उ०—पैहहि सजाय, नतु कहत बजाय तोहि, बावरी न होहि बानि जानि कपिनाह की। आन हनुमान की दोहाई बलवान की, सपथ महावीर की जो रहै पीर बाँह की।—तुलसी।

सजाई—संज्ञा स्त्री० [सं० सजाना + आई (प्रत्य०)] (१) सजाने की क्रिया। सजाने का काम। (२) सजाने का भाव। (३) सजाने की मजदूरी।

सजागर—वि० [सं०] (१) जागता हुआ। (२) सजग। होशियार।

सजाति—वि० [सं० सजातीय] एक जाति का। समान जाति का। जैसे,—(क) वे तो हमारे सजाति ही हैं। (ख) ये दोनों वृक्ष सजाति हैं।

सजातीय—वि० [सं०] एक जाति या गोत्र का।

सजात्य—वि० दे० "सजातीय"।

सजान—संज्ञा पुं० [सं० सज्ञान] (१) जानकार। जाननेवाला। (२) चतुर। होशियार।

संजाना—क्रि० स० [सं० सज्जा] (१) वस्तुओं को यथास्थान रखना। यथाक्रम रखना। तरतीब लगाना। (२) अलंकृत करना। सँवारना। शृंगार करना।

सजाय—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह जो अपनी स्त्री के सहित वर्तमान हो।

संज्ञा स्त्री० दे० "सज़ा"।

सज़ायाफ़्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० सज़ायाफ़्तः] वह जिसने दंड विधान के अनुसार दंड पाया हो। वह जो सजा भोग चुका हो। व जो कैदखाने हो आया हो।

सज़ायाब—वि० [फ़ा०] (१) जो दंड पाने के योग्य हो। दंडनीय। (२) जो कानून के अनुसार सजा पा चुका हो। जिसे कारागार का दंड मिल चुका हो।

सजार, सजारु—संज्ञा पुं० [सं० शल्यक] साहिल। शल्यक।

सजाव—संज्ञा पुं० [हिं० सजाना ?] एक प्रकार का दही।

विशेष—इसे बनाने के लिये दूध को पहले खूब गरम करते हैं और तब उसमें जामन छोड़ते हैं। इस प्रकार जमा हुआ दही बहुत उत्तम होता है; उसकी साढ़ी या मलाई बहुत मोटी और चिकनी होती है।

संज्ञा स्त्री० दे० "सजावट"।

सजावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० सजाना + आवट (प्रत्य०)] (१) सज्जित होने का भाव या धर्म। जैसे,—उनके मकान की सजावट भी देखने ही योग्य है। (२) शोभा। (३) तैयारी।

सजावन—संज्ञा पुं० [हिं० सजाना] (१) सजाने की क्रिया। अलंकृतकरण। मंडन। (२) तैयार करने की क्रिया। सुसज्जित करना। उ०—अब सो नाथ विलंब न कीजे। सैन सजावन शासन दीजे।—रघुराज।

सजावल—संज्ञा पुं० [तु० सज़ावुल] (१) सरकारी कर उगाहनेवाला कर्मचारी। तहसीलदार। (२) राज कर्मचारी। (३) सिपाही। जमादार।

सज़ावार—वि० [फ़ा०] जो दंड का भागी हो। जो सजा पाने के योग्य हो। दंडनीय।

सजिना—संज्ञा पुं० दे० "सहिंजन"।

सजीउ—वि० दे० "सजीव"।

सजीला—वि० [हिं० सजना + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० सजीली] (१) सजधज के साथ रहनेवाला। छैला। छबीला। जैसे,—वह बहुत अच्छा और सजीला जवान है। (२) सुंदर। सुडौल। मनोहर।

सजीव—वि० [सं०] (१) जीव युक्त। जिसमें प्राण हों। उ०—हस्ति सिंघली बाँधे बारा। जनु सजीव सब ठाढ़ पहारा।—जायसी। (२) फुरतीला। तेज। (३) ओजयुक्त। ओजस्वी। जैसे,—उनकी कविता बड़ी सजीव है।

संज्ञा पुं० प्राणी। जीवधारी।

सजीवता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सजीव होने का भाव। सजीव-पन।

सजीवन-संज्ञा पुं० [सं० संजीवन] संजीवनी नामक बूटी। वि० दे० "संजीवनी"।

सजीवन बूटी-संज्ञा स्त्री० [सं० संजीवनी + हिं० बूटी] रुदंती। रुद्रवंती। वि० दे० "संजीवनी"।

सजीवनमूर, सजीवनमूल॰-संज्ञा पुं० [सं० संजीवनी] संजीवनी बूटी। वि० दे० "संजीवनी"।

सजीवनी मंत्र-संज्ञा पुं० [सं० संजीवन + मंत्र] (१) वह कल्पित मंत्र जिसके संबंध में लोगों का विश्वास है कि मरे हुए मनुष्य या प्राणी को जिलाने की शक्ति रखता है। (२) वह मंत्र जिससे किसी कार्य्य में सुभीता हो। उपकारी मंत्रणा।

सजुग॰-वि० [हिं० सजग] सजग। सचेत। होशियार। उ०—लोभी चोर धूत ठग छोरा रहहिं यह सुँघ। जो यह हाट सजुग भा गँठ ताकर पै बाँध।—जायसी।

सजुता-संज्ञा स्त्री० [सं० संयुता] एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में एक सगण, दो जगण और एक गुरु होता है। (स ज ज ग) वि० दे० "संयुत"।

सजूरी-संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की मिठाई। उ०—(क) कमल नयन कातु करो पियारी। घेवर मालपुवा मुति-लाडू सघर सजूरी सरस सवारी। लुचुई लपसी सोंध जलेबी सोइ जेंवहु जो लगै पियारी।—सूर। (ख) माधुरि अति सरस सजूरी। सद्य परसि धरी घृत पूरी।—सूर।

सजोना-क्रि० स० [हिं० सजाना] (१) सज्जित करना। शृंगार करना। (२) सामान इकट्ठा करना। किसी कार्य्य के निमित्त आवश्यक वस्तुएँ एकत्र करना। सामान करना। सरंजाम करना।

सजोष-वि० [सं०] (वे) जिनमें समान प्रीति हो।

सजोषण-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत दिनों से चली आई हुई समान प्रीति।

सज्ज॰-संज्ञा पुं० "साज"।

सज्जक-संज्ञा पुं० [सं०] सज्जा। सजावट।

सज्जण-संज्ञा पुं० [सं० सज्ज] (१) फौज की तैयारी। (हिं०) (२) दे० "सज्जन"।

सज्जता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जा का भाव। सजावट।

सज्जन-संज्ञा पुं० [सं० सत् + जन] (१) भला आदमी। सत्पुरुष। शरीफ। (२) अच्छे कुल का मनुष्य। (३) प्रिय मनुष्य। प्रियतम। (४) चौकीदार। संतरी। (५) घाट। (६) सजाने की क्रिया या भाव। सज्जा।

सज्जनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जन होने का भाव। सत्पुरुषता। भलमंसाहत। भलमंसी। सौजन्य। साधुता।

सज्जनताई॰-संज्ञा स्त्री० दे० "सज्जनता"।

सज्जना-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह हाथी जिस पर नायक या सरदार चढ़ता हो।

सज्जा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सजाने की क्रिया या भाव। सजावट। (२) वेषभूषा।

संज्ञा स्त्री० [सं० शय्या] (१) सोने की चारपाई। शय्या। (२) चारपाई, तोशक, चादर आदि वे सामान जो किसी के मरने पर उसके उद्देश्य से महापात्र को दिए जाते हैं। वि० दे० "शय्यादान"।

वि० [सं० सव्य] दाहिना। (पश्चिम)

सज्जादा-संज्ञा पुं० [अ० सज्जादह] (१) बिछाने का वह कपड़ा जिस पर मुसलमान नमाज पढ़ते हैं। मुसल्ला। जानमाज़। (२) आसन। (३) फकीरों या पीरों आदि की गद्दी।

सज्जादानशीन-संज्ञा पुं० [अ० सज्जादह + फ़ा० नशीन] (१) वह जो गद्दी और तकिया लगाकर बैठता हो। (२) मुसलमान पीर या बड़ा फकीर।

सज्जित-वि० [सं०] (१) जिसकी खूब सजावट हुई हो। सजा हुआ। सुशोभित। अलंकृत। आरास्ता। (२) आवश्यक वस्तुओं से युक्त। तैयार। जैसे,—युद्ध के निमित्त सज्जित सैन्य।

सज्जी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वर्जि, सर्जिका] एक प्रकार का प्रसिद्ध क्षार जो सफेदी लिए हुए भूरे रंग का होता है।

विशेष—सज्जी दो प्रकार की होती है। एक वह जो मालावार की ओर बनाई जाती है। इसमें बड़ी बड़ी खाइयाँ खोदकर उनमें वृक्षों की शाखाएँ और पत्ते आदि भर कर आग लगा देते हैं। जब वे जल कर जम जाते हैं, तब उनकी राख को खारी कहते हैं। इसी खारी से भूमि में सज्जी बनाते हैं। दूसरे प्रकार की सज्जी खारवाली ज़मीन में होती है। खार के कारण भूमि फूल जाती है; और उसी फूली हुई मिट्टी को सज्जी कहते हैं। वैद्यक के अनुसार सज्जी गरम, तीक्ष्ण और वायुगोला, शूल, वात, कफ, कृमि रोग आदि को शान्त करने-वाली मानी जाती है।

सज्जीखार-संज्ञा पुं० दे० "सज्जी"।

सज्जी बूटी-संज्ञा स्त्री० [सं० संजीवनी] क्षुप जाति की एक वनस्पति जो प्रति वर्ष उत्पन्न होती है। यह ६ से १८ इंच तक ऊँची होती है। इसकी शाखाएँ कोमल और पत्ते बहुत छोटे और तिकोने होते हैं। पुष्प छोटे और एक से तीन तक साथ लगते हैं। बीज-कोष ½ इंच तक के घेरे में गोलाकार होता है। इसका रंग प्रायः चमकीला गुलाबी होता है। इसमें बहुत ही छोटे छोटे बीज होते हैं। प्रायः इसी के डंठलों और पत्तियों से सज्जीखार तैयार होता है। यह क्षुप तीन प्रकार का पाया जाता है।

सज्जुई†—संज्ञा स्त्री० "सजाव"।

सज्जुता—संज्ञा स्त्री० [सं० संयुता] संयुता नामक छंद। वि० दे० "संयुता"।

सज्जुष्ट—वि० [सं०] आनंददायक। सुखकारी।

सज्जै†—सर्व० [सं० सर्व] सब। बिलकुल। संपूर्ण।
अव्य० तमाम। सर्वतः। संपूर्णतः।

सज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसे ज्ञान हो। ज्ञानवाला मनुष्य। (२) बुद्धिमान या चतुर पुरुष। सयाना। (३) उस अवस्था को पहुँचा हुआ पुरुष जिसमें वह विवेक-युक्त हो जाता है। प्रौढ़। बालिग।
वि० (१) ज्ञान-युक्त। (२) चतुर। बुद्धिमान। (३) सचेत। सावधान। होशियार।

सज्या†—संज्ञा स्त्री० दे० "शय्या"।

सझ—संज्ञा स्त्री० [सं० सज्जा] (१) सजावट। (२) तैयारी। (डिं०)

सझण—संज्ञा पुं० [सं० सज्जा] सेना को सज्जित करने की क्रिया। फौज तैयार करना। (डिं०)

सझनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा पक्षी जिसकी पीठ काली, छाती सफेद और चोंच लंबी होती है।

सझिदार†—संज्ञा पुं० [हिं० साँझीदार] [स्त्री० सझिदारिन] हिस्सेदार। साँझीदार। शरीक।

सझिदारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० सझिदार + ई (प्रत्य०)] साझेदार होने का भाव। साझा। शिरकत।

सट—संज्ञा पुं० [सं०] जटा।

सटई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] अनाज रखने का एक प्रकार का पात्र।

सटक—संज्ञा स्त्री० [अनु० सट से] (१) सटकने की क्रिया। धीरे से चंपत होने या खिसकने का व्यापार। (२) तंबाकू पीने का लंबा लचीला नैचा जो भीतर छल्लेदार तार देकर बनाया जाता है। यह रबर की नली की भाँति लचीला और लपेटने योग्य होता है। अधिक लंबे बाँस की निगाली रखने में अड़चन होती है; अतः लोग सटक का व्यवहार करते हैं। (३) पतली लचनेवाली छड़ी। उ०—चिलक चिकनई चटक सों लफति सटक लौं आय। नारि सलोनी साँवरी नागिन लौं डसि जाय।—बिहारी।

सटकना—क्रि० अ० [अनु० सट से] धीरे से खिसक जाना। रफू चक्कर होना। चल देना। चंपत होना। उ०—असुर यह घात तकि गयो रण तें सटकि विपति ज्वर दियो तब शिव पठाई।—सूर।
क्रि० स० बालों में से अनाज निकालने के लिये उसे कूटने की क्रिया। कूटना। पीटना।

सटकाना—क्रि० स० [अनु० सट से] (१) किसी को छड़ी, कोड़े आदि से मारना जिसमें "सट" शब्द हो। जैसे,—दो कोड़े सटकाऊँगा, ठीक हो जाओगे। (२) सट सट या सट सट शब्द करते हुए हुक्का पीना। जैसे,—क्या बैठे सटका रहे हो।

सटकार—संज्ञा स्त्री० [अनु० सट] (१) सटकाने की क्रिया या भाव। (२) फटकारने या झटकारने की क्रिया। (३) गौ आदि को हाँकने की क्रिया। हटकार। उ०—सारथी पाव रख दये सटकार हय द्वारकापुरी जब निकट आई।—सूर।

सटकारना—क्रि० स० [अनु० सट से] (१) पतली लचीली छड़ी या कोड़े आदि से किसी को सट से मारना। सट सट मारना। (२) झटकारना। फटकारना।

सटकारा—वि० [अनु०] चिकना और लंबा। (बाल) उ०—छुटे छुटावैं जगत तें सटकारे सुकुमार। मन बाँधत बेनी बँधे नील छबीले बार।

सटकारी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] लचनेवाली पतली छड़ी। साँटी।

सटक्का—संज्ञा पुं० [अनु० सट से] (१) दे० "सटका"। (२) दौड़। झपट। जैसे,—एक सटक्के में तो तुम घर पहुँच जाओगे।
मुहा०—सटक्का मारना = एक साँस में दौड़कर या बहुत जल्दी जल्दी जाना।

सटना—क्रि० अ० [सं० स + स्था] (१) दो चीजों का इस प्रकार एक में मिलना जिसमें दोनों के पार्श्व एक दूसरे से लग जायँ। जैसे,—दीवार से अलमारी सटना। (२) चिपकना। जैसे,—दफ्ती पर कागज सटना। (३) संभोग होना। (बजारू) (४) लाठी या डंडे आदि से मार पीट होना। लाठी सोंटा चलना। मार पीट होना। (बदमाश) (५) साथ होना। मिलना।
संयो० क्रि०—जाना।

सटपट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) सिटपिटाने की क्रिया। चकपकाहट। उ०—अरी खरी सट पट परी, बिधु आगे मग हेरि। संग लगे मधुपन लई भागन गली अँधेरि।—बिहारी। (२) शील। संकोच। (३) संकट। दुविधा। असमंजस।
क्रि० प्र०—में पड़ना।—में डालना।

सटपटाना—क्रि० अ० [अनु०] (१) सटपट की ध्वनि होना। (२) दे० "सिटपिटाना। उ०—छुटै न लाज न लालची प्यौ लखि नैहर गेह। सटपटात लोचन खरें, भरे सकोच सनेह।—बिहारी।
क्रि० स० सटपट शब्द उत्पन्न करना।

सटर पटर—वि० [अनु०] (१) छोटा मोटा। तुच्छ। जैसे,—सटर पटर काम करने से न चलेगा। (२) बहुत साधारण। बिलकुल मामूली।
संज्ञा स्त्री० (१) उलझन का काम। बखेड़े का काम। (२) व्यर्थ का या तुच्छ काम। जैसे,—इसी सटर पटर में दिन बीत जाता है।
क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

सट सट–क्रि० वि० [अनु०] (१) सट शब्द के साथ। सटासट। (२) शीघ्र। बहुत जल्दी। तुरंत। जैसे,—वह सब काम सट सट निपटा डालता है।

सटांक–संज्ञा पुं० [सं०] सिंह। शेर।

सटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिखा। (२) जटा। (३) घोड़े या शेर के कंधे पर के बाल। अयाल। केसर।

सटाक–संज्ञा पुं० [अनु०] सट शब्द।

सटाकी–संज्ञा स्त्री० [अनु०] चमड़े की वह रस्सी या पट्टी जो पैना के सिरे पर बाँधी जाती है।

विशेष—पैना बाँस का एक पतला छोटा डंडा होता है जिससे हल जोतनेवाला या गाड़ी हाँकनेवाला बैल हाँकता है। इस पैना को कोड़े का आकार देने के लिये इसमें चमड़े की पतली पतली पट्टियाँ बाँधते हैं। इन्हीं पट्टियों को सटाकी कहते हैं। सटाकी और डंडा दोनों मिलकर 'पैना' होता है।

सटान–संज्ञा स्त्री० [हिं० सटना + आन (प्रत्य०)] (१) सटने की क्रिया या भाव। मिलान। (२) दो वस्तुओं के सटने या मिलने का स्थान। जोड़।

सटाना–क्रि० स० [सं० स + स्था या स + निष्ट] (१) दो चीजों को एक में संयुक्त करना। दो चीजों के पार्श्वों को आपस में मिलाना। मिलाना। जोड़ना। (२) लाठी डंडे आदि से लड़ाई करना। मार पीट करना। (बदमाश) (३) स्त्री और पुरुष का संयोग कराना। संभोग कराना। (बाजारू)

सटाव–वि० [देश०] (१) दलालों की परिभाषा में, कम। न्यून। (२) हलका। घटिया। खराब।

सटाल–संज्ञा पुं० [सं०] सिंह। केसरी। शेर बबर।

सटि–संज्ञा स्त्री० [सं०] कचूर। शटी।

सटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वन आदी। जंगली कचूर।

सटिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० सटना] (१) सोने या चाँदी की एक प्रकार की चूड़ी। (२) चाँदी की एक प्रकार की कलम जिससे स्त्रियाँ माँग में सिंदूर देती हैं। (३) दे० "साटी"।

सटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वन आदी। जंगली कचूर।

सटीक–वि० [सं०] जिसमें मूल के साथ टीका भी हो। टीका सहित। व्याख्या सहित। जैसे,—सटीक रामायण।

वि० [हिं० ठीक या सं० सर्टीक] बिलकुल ठीक। जैसा चाहिए, ठीक वैसा ही। जैसे,—यह तसवीर बन तो रही है; सटीक उतर जाय, तो बात है।

संयो० क्रि०—पड़ना।—बैठना।

सटोला–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

सट्ट–संज्ञा पुं० [सं०] दरवाजे के चौखटे में दोनों ओर की लकड़ियाँ। बाजू।

संज्ञा पुं० दे० "सट्टा"।

सट्टक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राकृत भाषा में प्रणीत छोटा रूपक। जैसे,—राजशेखर कृत कर्पूरमंजरी है। (२) जीरा मिला हुआ मट्ठा।

सट्टा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) वह इकरारनामा जो काश्तकारों में खेत के साझे आदि के संबंध में होता है। बटाई। (२) वह इकरारनामा जो दो पक्षों में कोई निश्चित काम करने या कुछ शर्तें पूरी करने के लिये होता है। इकरारनामा। जैसे,—बाजेवालों को पेशगी रुपया दे दिया, पर उनसे सट्टा नहीं लिखाया।

संज्ञा पुं० [हिं० हाट या सट्टी] वह स्थान जहाँ लोग वस्तुएँ खरीदने बेचने के लिये एकत्र होते हैं। हाट। बाजार।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का पक्षी। (२) बाजा।

सट्टा बट्टा–संज्ञा पुं० [हिं० सटना + अनु० बट्टा] (१) मेल मिलाप। हेल मेल। (२) उद्देश्य सिद्धि के लिये की हुई धूर्ततापूर्ण युक्ति। चालबाजी।

मुहा०—सट्टा बट्टा लड़ाना = अपना कार्य्य सिद्ध करने के लिये किसी प्रकार की युक्ति करना।

सट्टी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हाट या हट्टी] वह बाजार जिसमें एक ही मेल की बहुत सी चीजें लोग दूर दूर से लाकर बेचते हों। हाट। जैसे,—तरकारी की सट्टी, पान की सट्टी।

मुहा०—सट्टी मचाना = ऐसा शोर करना जैसा सट्टी में होता है। बहुत से लोगों का मिलकर जोर जोर से बोलना। जैसे,—पंडित जी के दरजे में तो लड़कों ने सट्टी मचा रखी है। सट्टी लगाना = बहुत सी चीजें इधर उधर फैला देना। जैसे,—तुमने यहाँ किताबों की सट्टी लगा रखी है।

सट्टा–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का पक्षी। (२) प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा।

सठ–संज्ञा पुं० दे० "शठ"।

सठई–संज्ञा स्त्री० [हिं० सठ + ई (प्रत्य०)] शठ होने का भाव। शठता। वि० दे० "शठता"।

सठता–संज्ञा स्त्री० [सं० शठ, हिं० सठ + ता (प्रत्य०)] (१) शठ होने का भाव। शठ का धर्म। शठता। (२) मूर्खता। बेवकूफी। उ०—स्वामी राम न कहि सके भरत लखन सिय प्रीति। सो सुनि समुझि तुलसि कहत हठ सठता की रीति।—तुलसी।

सठियाना–क्रि० अ० [हिं० साठ + इयाना (प्रत्य०)] (१) साठ वर्ष की अवस्था को प्राप्त होना। साठ बरस का होना। जैसे,—साठा सो पाठा। (कहा०) (२) वृद्धावस्था को प्राप्त होना। बुड्ढा होना। (३) वृद्धावस्था के कारण बुद्धि तथा विवेक शक्ति का कम हो जाना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग व्यक्ति और बुद्धि दोनों के लिये होता है। जैसे,—(क) उनकी बात छोड़ दो; वे तो सठिया गए हैं। (ख) तुम्हारी तो अक्ल सठिया गई है।

संयो० क्रि०—जाना।

सठुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० सीठी या सांठी] गेहूँ या जौ आदि के डंठलों का वह गँठीला अंश जिसका भूसा नहीं होता और जो ओसाकर अलग कर दिया जाता है। गठुरी। खूँटा। खूँटी।

सठेरा—संज्ञा पुं० [हिं० सांठा] सन का वह डंठल जो सन निकल जाने पर बच रहता है। संठा। सरई। सलई।

सठोरा—संज्ञा पुं० दे० "सोंठौरा"।

सठ्ठो—संज्ञा पुं० [हिं०] ऊँट। क्रमेलक।

सड़क—संज्ञा स्त्री० [अ० शरक] (१) आने जाने का चौड़ा रास्ता। राजमार्ग। राजपथ। (२) रास्ता। मार्ग।

सडका—संज्ञा पुं० दे० "सटका"।

सड़न—संज्ञा स्त्री० [हिं० सड़ना] सड़ने की क्रिया या भाव। गलन।

सड़ना—क्रि० अ० [सं० सरण] (१) किसी पदार्थ में ऐसा विकार होना जिससे उसके संयोजक तत्व या अंग बिलकुल अलग अलग हो जायँ, उसमें से दुर्गंध आने लगे और वह काम के योग्य न रह जाय। जैसे,—उँगली सड़ना, फल सड़ना। (२) किसी पदार्थ में खमीर उठना या आना।

संयो० क्रि०—जाना।

(३) दुर्दशा में पड़ा रहना। बहुत बुरी हालत में रहना। जैसे,—देशी रियासतों में लोग बरसों तक जेलखाने में यों ही सड़ते हैं।

सड़सठ—संज्ञा पुं० [हिं० सड़, (सात का रूप) + साठ] साठ और सात की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—६७।
वि० जो गिनती में साठ से सात अधिक हो।

सड़सठवाँ—वि० [हिं० सड़सठ + वाँ (प्रत्य०)] गिनती में सड़सठ के स्थान पर पड़नेवाला।

सड़सी—संज्ञा स्त्री० दे० "सँड़सी"।

सड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० सड़ना] वह औषध जो गौओं को बच्चा होने के समय पिलाते हैं। प्रायः यह औषध सड़ाकर बनाते हैं, इसी से इसे सड़ा कहते हैं।

सड़ाइंद—संज्ञा स्त्री० दे० "सड़ायँध"।

सड़ाक—संज्ञा पुं० स्त्री० [अनु० सड़ से] (१) कोड़े आदि की फटकार की आवाज जो प्रायः सड़ के समान होती है। (२) शीघ्रता। जल्दी। जैसे,—सड़ाक से चले आओ और चले जाओ।

सड़ान—संज्ञा स्त्री० [हिं० सड़ना] सड़ने का व्यापार या क्रिया। सड़ना।

सड़ाना—क्रि० स० [हिं० सड़ना का स० रूप] सड़ना का सकर्मक रूप। किसी वस्तु को सड़ने में प्रवृत्त करना। किसी पदार्थ में ऐसा विकार उत्पन्न करना कि उसके अवयव गलने लगें और उसमें से दुर्गंध आने लगे। जैसे,—(क) सब आम तुमने रखे रखे सड़ा डाले। (ख) महुए को सड़ाकर शराब बनाई जाती है।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

सड़ायँध—संज्ञा स्त्री० [हिं० सड़ना + गंध] सड़ी हुई चीज की गंध।

सड़ाव—संज्ञा पुं० [हिं० सड़ना + आव (प्रत्य०)] सड़ने की क्रिया या भाव। सड़ना।

सड़ासड़—अव्य० [अनु० सड़ से] सड़ शब्द के साथ। जिसमें सड़ शब्द हो। जैसे,—चोर पर सड़ासड़ कोड़े पड़ने लगे।

सड़ियल—वि० [हिं० सड़ना + इयल (प्रत्य०)] (१) सड़ा हुआ। गला हुआ। (२) निकम्मा। रद्दी। खराब। (३) नीच। तुच्छ। जैसे,—सड़ियल आदमी। सड़ियल इक्का। सड़ियल तसवीर।

सढ़—संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

सण—संज्ञा पुं० दे० "सन"।

सणगार—संज्ञा पुं० [सं० शृंगार] शृंगार। सजावट। (डिं०)

सणसूत्र—संज्ञा पुं० दे० "शणसूत्र"।

सत्—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म।
वि० (१) सत्य। (२) साधु। सज्जन। (३) धीर। (४) नित्य। स्थायी। (५) विद्वान्। पंडित। (६) मान्य। पूज्य। (७) प्रशस्त। (८) शुद्ध। पवित्र। (९) श्रेष्ठ। उत्तम। अच्छा। भला।

सत—वि० दे० "सत्"।
संज्ञा पुं० [सं० सत्] सत्यतापूर्ण धर्म्म।

मुहा०—सत पर चढ़ना = पति के मृत शरीर के साथ सती होना। सत पर रहना = पतिव्रता रहना। सती रहना।

वि० दे० "शत"।

संज्ञा पुं० [सं० सत्व] (१) किसी पदार्थ का मूल तत्व। सार भाग। जैसे,—मुलेठी का सत। (२) जीवनी शक्ति। ताकत। जैसे,—चार दिन के बुखार में शरीर का सारा सत निकल गया।

वि० (१) "सात" (संख्या) का संक्षिप्त रूप जिसका व्यवहार यौगिक शब्द बनाने में होता है। जैसे,—सतमंजिला।

सतकार—संज्ञा पुं० दे० "सत्कार"।

सतकारना—क्रि० स० [सं० सत्कार + ना (प्रत्य०)] सत्कार करना। आदर करना। सम्मान करना। इज्जत करना। उ०—(क) गुरु को जेठो बंधु विचारयो। करि प्रणाम अतिशय सत्कारयो। (ख) राजा कियो ताहि परनामा। सादर सतकारयो मति-धामा।—रघुराज।

सतकोन—वि० [हिं० सात + कोना] जिसमें सात कोने हों। सात कोनोंवाला।

सतगँठया—संज्ञा स्त्री० [हिं० सात + गाँठ] एक प्रकार की वनस्पति जिसकी तरकारी बनाई जाती है।

सतगुरु–संज्ञा पुं० [हिं० सत = सच्चा + गुरु] (१) अच्छा गुरु। (२) परमात्मा। परमेश्वर।

सतजीत–संज्ञा पुं० दे० "सत्यजित्"।

सतजुग–संज्ञा पुं० दे० "सत्ययुग"।

सतत–अव्य० [सं०] निरंतर। सदा। सर्वदा। हमेशा। बराबर।

सततग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सदा चलता रहता हो। (२) वायु। हवा।

सततगति–संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

सतत ज्वर–संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो दिन में दो बार आवे; या कभी दिन में एक बार और फिर रात को भी एक बार आवे। द्विकालिक विषम ज्वर।

सततसमिताभियुक्त–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

सतति–वि० स्त्री० [सं०] जो सदा चला करे।

सतत्व–संज्ञा पुं० [सं०] स्वभाव। प्रकृति।

सतदंत–संज्ञा पुं० [हिं० सात + दाँत] वह पशु जिसके सात दाँत हो गए हों।

विशेष—प्रायः पशुओं को पूरे दाँत निकल आने के पूर्व उनके दाँतों की संख्या के अनुसार पुकारते हैं। जैसे,—दुदंता, चौदंता, सतदंता आदि शब्द क्रमशः दो, चार और सात दाँतोंवाले बछड़ों के लिये प्रयुक्त होते हैं।

सतदल–संज्ञा पुं० [सं० शतदल] (१) कमल। (२) सौ दलोंवाला कमल।

सतधृत–संज्ञा पुं० [सं० शतधृत] ब्रह्मा। (हिं०)

यौ०—सतधृत-सुत = नारद मुनि।

सतनजा–संज्ञा पुं० [हिं० सात + अनाज] सात भिन्न प्रकार के अन्नों का मेल। वह मिश्रण जिसमें सात भिन्न भिन्न प्रकार के अनाज हों।

सतनी|–संज्ञा स्त्री० [सं० सप्तपर्णी] (१) सप्तपर्ण वृक्ष। सतिवन। छतिवन। (२) एक प्रकार का बहुत ऊँचा वृक्ष जिसकी छाल का रंग कालापन लिए होता है। इसकी लकड़ी संदूक आदि बनाने के काम में आती है। यह बंगाल, दक्षिण भारत और हिमालय में अधिकता से पाया जाता है।

सतनु–वि० [सं०] जिसे तन हो। शरीरवाला।

सतपतिया–संज्ञा स्त्री० दे० "सतपुतिया"।

[सतपती]–संज्ञा स्त्री० [हिं० सात + पति] (१) वह स्त्री जिसने सात पति किए हों। (२) पुंश्चली। छिनाल।

सतपदी–संज्ञा स्त्री० दे० "सप्तपदी"।

सतपरवा|–संज्ञा पुं० [सं० शतपर्वा] (१) शतपर्वा। बाँस। (२) ऊख। गन्ना।

सतपाता|–संज्ञा पुं० [सं० शतपत्र] शतपत्र। कमल।

सतपुतिया–संज्ञा स्त्री० [सं० सप्तपुत्रिका] एक प्रकार की तरोई जो प्रायः सब प्रांतों में होती है। इसके बोने का समय वर्षा ऋतु है। इसकी लता भूमि पर फैलती है या मँडे पर चढ़ाई जाती है। इसके फल साधारण तरोई से कुछ छोटे होते हैं और पाँच, सात या कभी कभी इससे भी अधिक संख्या में एक साथ गुच्छों में लगते हैं।

सतपुरिया–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की जंगली मधुमक्खी।

सतफेरा–संज्ञा पुं० [हिं० सात + फेरा] विवाह के समय होनेवाला सप्तपदी नामक कर्म। वि० दे० "सप्तपदी"। उ०—फिरहिं दोउ सतफेर घुमे के। सातहिं फेर गाँठ सो एके।—जायसी।

सतबरवा–संज्ञा पुं० [सं० शतपर्व = बाँस] एक प्रकार का वृक्ष जो नैपाल में होता है और जिससे नैपाली कागज बनाया जाता है।

सतभइया|–संज्ञा स्त्री० [हिं० सात + भाई] एक प्रकार की मैना (पक्षी) जिसे पँगिया मैना भी कहते हैं।

विशेष—इसकी लंबाई प्रायः एक बालिश्त होती है। इसका रंग पीलापन लिए भूरा होता है। इसके पैर और पंजा पीला होता है। ऋतु भेदानुसार यह रंग बदलती है। यह झुंड में रहती है और छोटे, घने वृक्षों या झाड़ियों में घोंसला बनाती है। यह एक बार में प्रायः तीन अंडे देती है। यह बहुत शोर करती है। कहते हैं कि कोयल प्रायः अपने अंडे इसी के घोंसले में रखती है।

सतभाव–संज्ञा पुं० [सं० सद्भाव] (१) सद्भाव। अच्छा भाव। (२) सीधापन। (३) सचापन। सचाई।

सतभौंरी–संज्ञा स्त्री० [सं० सप्तभ्रमण] हिंदुओं में विवाह के समय की एक रीति। इसमें वर और वधू को अग्नि की सात बार प्रदक्षिणा करनी पड़ती है। इसे भौंरी पड़ना भी कहते हैं।

सतमख–संज्ञा पुं० [सं० शतमख] (जिसने १०० यज्ञ किए हों) इंद्र। (डिं०)

सतमसा–संज्ञा स्त्री० [सं०] मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक नदी का नाम।

सतमासा–संज्ञा पुं० [हिं० सात + मास] (१) सात मास पर उत्पन्न शिशु। वह बच्चा जो गर्भ से सातवें महीने उत्पन्न हुआ हो। (ऐसा बच्चा प्रायः बहुत रोगी और दुबला होता है और जल्दी जीता नहीं।) (२) वह रसम जो शिशु के गर्भ में आने पर सातवें महीने की जाती है।

सतमूली–संज्ञा स्त्री० [सं० शतमूली] सतावर। शतावरी।

सतयुग–संज्ञा पुं० दे० "सत्ययुग"।

सतरंग–वि० दे० "सतरंगा"।

सतरंगा–वि० [हिं० सात + रंग] जिसमें सात रंग हों। सात रंगोंवाला। जैसे,—सतरंगा साफा। सतरंगी साड़ी।

सतरंज–संज्ञा स्त्री० दे० "शतरंज"। उ०—सतरंज को सो राज

काठ को सब समाज महाराज बाजी रची प्रथमन हनि।—तुलसी।

सतरंजी-संज्ञा स्त्री० दे० "शतरंजी"।

सतर-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) लकीर। रेखा।

क्रि० प्र०—खींचना।

(२) पंक्ति। अवली। कतार।

वि० (१) टेढ़ा। वक्र। उ०—रमन कह्यौ हँसी रमनि सौं रति बिपरीत बिलास। चितई करि लोचन सतर सगरब सलज सहास।—बिहारी।

(२) कुपित। क्रुद्ध। उ०—सुनहु श्याम तुमहूँ सरि नाहीं ऐसे गये बिलाइ। हम सौं सतर होत सूरज प्रभु कमल देहु अब जाइ।—सूर।

संज्ञा स्त्री० पुं० [अ०] (१) मनुष्य का वह अंग जो ढका रखा जाता है और जिसके न ढके रहने पर उसे लज्जा आती है। गुप्त इंद्री।

मुहा०—बेसतर करना = (१) नंगा करना। (२) बेइज्जत करना।

(२) ओट। आड़। परदा।

सतरकी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सत्रह] वह क्रिया जो किसी की मृत्यु के पश्चात् सत्रहवें दिन की जाती है। सत्रहीं।

सतरह-वि० दे० "सत्तरह"।

सतराना-क्रि० प्र० [हिं० सतर या सं० संतर्जन] (१) क्रोध करना। कोप करना। उ०—हम ही पर सतरात कन्हाई।—सूर।

(२) कुढ़ना। चिढ़ना। बिगड़ना। उ०—(क) जु ज्यौं उझकि झाँपति बदन, झुकति बिहँसि सतराइ। तु त्यौं गुलाल मुठी झुठी झझकावतु पिय जाइ।—बिहारी। (ख) चंद दुति मंद भई, फंद में फँसी हौं आय, द्वंद नंद ठानैगी रे, जोरे जुग पानि दै। सासु सतरैहै, जेठ-पतिनी रिसैहै, बंक बचन सुनैहै, छाँड़ि गर की भुजानि दै।—देव। (ग) लेहु अब, लेहु, तब कोउ न सिखायो मान्यो, सोई सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए।—तुलसी।

क्रि० प्र०—जाना।

सतराहट†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सतराना + हट (प्रत्य०)] कोप। गुस्सा। नाराज़गी।

सतरी-संज्ञा स्त्री० [सं० सर्पदंष्ट्रा] सर्पदंष्ट्रा नामक ओषधि।

सतरौहाँ†-वि० [हिं० सतराना] [स्त्री० सतरौहीं] (१) कुपित। क्रोधयुक्त। (२) कोपसूचक। रिसाया हुआ सा। उ०—सकुचि न रहिए स्याम सुनि ये सतरौहैं बैन। देत रचौहैं चित कहे नेह नचौहैं नैन।—बिहारी।

सतर्क-वि० [सं०] (१) तर्कयुक्त। युक्ति से पुष्ट। दलील के साथ। (२) सावधान। होशियार। सचेत। खबरदार।

सतर्कता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सतर्क होने का भाव। सावधानी। होशियारी।

सतर्ष-वि० [सं०] तृषित। प्यासा।

सतलज-संज्ञा स्त्री० [सं० शतद्रु] पंजाब की पाँच नदियों में से एक। शतद्रु नदी।

सतलड़ा-वि० [हिं० सात + लड़] [स्त्री० सतलड़ी] जिसमें सात लड़ हों। जैसे,—सतलड़ा हार।

सतलड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सात + लड़ी] गले में पहनने की सात लड़ियों की माला या हार।

सतवंती-वि० स्त्री० [हिं० सत्य + वंती (प्रत्य०)] सतवाली। सती। पतिव्रता।

सतवर्ग-संज्ञा पुं० दे० "सद्वर्ग"।

सतसंग-संज्ञा पुं० दे० "सत्संग"।

सतसंगति-संज्ञा स्त्री० दे० "सत्संग"।

सतसंगी-वि० दे० "सत्संगी"।

सतसई-संज्ञा स्त्री० [सं० सप्तशती] (१) वह ग्रंथ जिसमें सात सौ पद्य हों। सात सौ पद्यों का समूह या संग्रह। सप्तशती।

विशेष—हिंदी साहित्य में 'सतसई' शब्द से प्रायः सात सौ दोहे ही समझे जाते हैं। जैसे,—बिहारी की सतसई।

सतसठ‡-वि० दे० "सड़सठ"।

सतसल-संज्ञा पुं० [देश०] शीशम का पेड़।

सतह-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) किसी वस्तु का ऊपरी भाग। बाहर या ऊपर का फैलाव। तल। जैसे,—मेज की सतह। समुद्र की सतह।

मुहा०—सतह चौरस या बराबर करना = समतल करना। उभार और गहराई अथवा खुरदुरापन निकालना।

(२) रेखा गणित अनुसार वह विस्तार जिसमें लंबाई और चौड़ाई हो, पर मोटाई न हो।

सतहत्तर-वि० [सं० सप्तसप्तति, पा० सत्तसत्तति, प्रा० सत्तहत्तरि] सत्तर और सात। जो गिनती में तीन कम अस्सी हो।

संज्ञा पुं० सत्तर से सात अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७७।

सतहत्तरवाँ-वि० [हिं० सतहत्तर + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सतहत्तर पर हो। जो क्रम में सतहत्तर के स्थान पर पड़ता हो।

सतांग-संज्ञा पुं० [सं० शतांग] रथ। यान। उ०—कोउ तुरंग चढ़ि कोउ मतंग चढ़ि कोउ सतांग चढ़ि आये। अति उछाह नरनाह भरे सब संपति विपुल लुटाये।—रघुराज।

सतानंद-संज्ञा पुं० [सं०] गौतम ऋषि के पुत्र, जो राजा जनक के पुरोहित थे।

सताना-क्रि० स० [सं० संतापन, प्रा० संतावन] (१) संताप देना। कष्ट पहुँचाना। दुःख देना। पीड़ित करना। उ०—(क) कह्यौ सुरन्ह तुम ऋषिहि सतायो। तातें कर रहि गयो उचायो।—सूर। (ख) गइ कालिंदी विरह-सताई। चलि

परांग अरहुल बिच आई।—जायसी। (२) तंग करना। हैरान करना। (३) किसी के पीछे पड़ना।

सतारुक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कुष्ट या कोढ़ जिसमें शरीर पर लाल और काली फुंसियाँ निकलती हैं।

सतारू-संज्ञा पुं० दे० "सतारुक"।

सतालू-संज्ञा पुं० [सं० सप्तालुक मि० फा० शफ्तालू] एक पेड़ जिसके गोल फल खाए जाते हैं। शफ़तालू। आड़ू।

विशेष—यह पेड़ मझोले कद का होता है और भारत के ठंढे प्रदेशों में पाया जाता है। पत्ते लंबे, नुकीले और कुछ श्यामता लिए गहरे रंग के होते हैं। पतझड़ के पीछे नए पत्ते निकलने के पहले इसमें लाल रंग के फूल लगते हैं। फल गूलर की तरह गोल और पकने पर हरे और लाल रंग के होते हैं जिनके ऊपर बहुत महीन सफेद रोइँयाँ होती हैं। ये खाने में बड़े मीठे होते हैं। बीज कड़े छिलके के और बादाम की तरह के होते हैं। इसकी लकड़ी मज़बूत और ललाई लिए होती है तथा उसमें से एक प्रकार की हलकी सुगंध निकलती है।

सतावना-क्रि० स० दे० "सताना"।

सतावर-संज्ञा स्त्री० [सं० शतावरी] एक झाड़दार बेल जिसकी जड़ और बीज औषध के काम में आते हैं। शतमूली। नारायणी।

विशेष—यह बेल भारत के प्रायः सब प्रांतों में होती है। इसकी टहनियों पर छोटे छोटे महीन काँटे होते हैं। पत्तियाँ सोए की पत्तियों की सी होती हैं और उनमें एक प्रकार की क्षारयुक्त गंध होती है। फूल सफेद होते और गुच्छों में लगते हैं। फल जंगली बेर के समान होते हैं और पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं। प्रत्येक फल में एक या दो बीज होते हैं। इसकी जड़ बहुत पुष्टिकारक और वीर्य्यवर्द्धक मानी जाती है। स्त्रियों का दूध बढ़ाने के लिये भी यह दी जाती है। वैद्यक में इसका गुण शीतल, मधुर, अग्निदीपक, बलकारक और वीर्य्यवर्द्धक माना गया है। ग्रहणी और अतिसार में भी इसका लाभ देते हैं।

सतासी-वि० [सं० सप्ताशीति, प्रा० सत्तासी] अस्सी और सात। जो गिनती में अस्सी से सात अधिक हो।

संज्ञा पुं० सात ऊपर अस्सी की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८७।

सतासीवाँ-वि० [हिं० सतासी + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान अस्सी से सात अधिक की संख्या पर हो। जो क्रम में सतासी पर पड़ता हो।

सतिल-संज्ञा पुं० दे० "सत्व" या "सत्"।

सतिवन-संज्ञा पुं० [सं० सप्तपर्ण, प्रा० सत्तवन्न] एक सदाबहार बड़ा पेड़ जिसकी छाल आदि दवा के काम में आती है। सप्तपर्णी। छतिवन।

विशेष—इसका पेड़ ४०–५० हाथ ऊँचा होता है और भारत के प्रायः सब तर स्थानों में पाया जाता है। भारतवर्ष के बाहर, आस्ट्रेलिया और अमेरिका के कुछ स्थानों में भी यह मिलता है। यह बहुत जल्दी बढ़ता है। पत्ते सेमर के पत्तों के समान और एक सींके में सात सात लगते हैं। इसकी लकड़ी मुलायम और सफेद होती है और सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। फूल हरापन लिए सफेद होता है। फूलों के झड़ जाने पर हाथ भर के लगभग लंबी पतली रोइँदार फलियाँ लगती हैं। यह बसंत ऋतु में फूलता और बैशाख जेठ में फलता है। फूलों में एक प्रकार की मदायन गंध होती है; इसी से कवियों ने कहीं कहीं इस गंध की उपमा गजमद से दी है। आयुर्वेद के अनुसार इसकी छाल त्रिदोषनाशक, अग्निदीपक, ज्वरघ्न और बलकारक होती है। ज्वर दूर करने में इसकी छाल का काढ़ा कुनैन के समान ही होता है। ज्वर के पीछे की कमजोरी भी इससे दूर होती है।

सती-वि० स्त्री० [सं०] अपने पति को छोड़ और किसी पुरुष का ध्यान मन में न लानेवाली। साध्वी। पतिव्रता।

संज्ञा स्त्री० (१) दक्ष प्रजापति की कन्या जो भव या शिव को ब्याही थी। (२) पतिव्रता स्त्री। (३) वह स्त्री जो अपने पति के शव के साथ चिता में जले। सहगामिनी स्त्री।

मुहा०—सती होना = (१) मरे हुए पति के शरीर के साथ चिता में जल मरना। सहगमन करना। (२) किसी के पीछे मर मिटना।

(४) मादा। स्त्री पशु। (५) गंधयुक्त मृत्तिका। सोंधी मिट्टी। (६) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक गुरु होता है। (७) विश्वामित्र की स्त्री का नाम। (८) अंगिरा की स्त्री का नाम।

सतीचौरा-संज्ञा पुं० [सं० सती + हिं० चौरा] वह वेदी या छोटा चबूतरा जो किसी स्त्री के सती होने के स्थान पर उसके स्मारक में बनाया जाता है।

सतीत्व-संज्ञा पुं० [सं०] सती होने का भाव। पातिव्रत्य।

मुहा०—सतीत्व बिगाड़ना या नष्ट करना = किसी स्त्री से बलात्कार करना।

सतीत्वहरण-संज्ञा पुं० [सं०] पर स्त्री के साथ बलात्कार। सतीत्व बिगाड़ना।

सतीव्रतोन्माद-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों का वह उन्माद रोग जिसका प्रकोप किसी सतीचौरे को अपवित्र आदि करने के कारण होना माना जाता है।

सतीन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का मटर। (२) अपराजिता।

सतीपन-संज्ञा पुं० [सं० सती + पन (हिं० प्रत्य०)] सती रहने का भाव। पातिव्रत्य। सतीत्व।

सतीर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] एक ही आचार्य्य से पढ़नेवाला। सहपाठी ब्रह्मचारी।

सतील–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस। वंश। तृणराज। (२) अपराजिता। (३) वायु।

सतीला–संज्ञा स्त्री० [सं०] अपराजिता। विष्णुकांता। कोयल लता।

सतुआ†–संज्ञा पुं० [सं० सक्तुक, प्रा० सत्तुअ] भुने यवादि चूर्ण। भुने हुए जौ और चने का चूर्ण जो पानी डालकर खाया जाता है। सत्तू।

सतुआन–संज्ञा स्त्री० [हिं० सतुआ] सतुआ संक्रांति।

सतुआ संक्रांति–संज्ञा स्त्री० [हिं० सतुआ+संक्रांति] मेष की संक्रांति जो प्रायः वैशाख में पड़ती है। इस दिन लोग सत्तू दान करते और खाते हैं।

सतुआ सोंठ–संज्ञा स्त्री० [हिं० सतुआ+सोंठ] सोंठ की एक जाति।

सतून–संज्ञा पुं० [फा० मि० सं० स्थूण] स्तंभ। खंभा।

सतूना–संज्ञा पुं० [फ़ा० सतून=खंभा] बाज़ की एक झपट जिसमें वह पहले शिकार के ठीक ऊपर उड़ जाता है; और फिर एक बारगी नीचे की ओर उस पर टूट पड़ता है। उ०—काग आपनी चतुराई तब तक लेहु चलाइ। जब लगि सिर पर देइ नहिं लगर सतूना आइ।—रसनिधि।

सतेर–संज्ञा पुं० [सं०] भूसी। भुस। तुष।

सतेरक–संज्ञा पुं० [सं०] ऋतु। मौसिम।

सतेरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मधुमक्खी।

सतोखना‡–क्रि० स० [सं० संतोषण] (१) संतुष्ट करना। प्रसन्न करना। (२) संतोष दिलाना। समझाना। ढारस देना।

सतोगुण–संज्ञा पुं० दे० "सत्व गुण"।

सतोगुणी–संज्ञा पुं० [हिं० सतोगुण+ई (प्रत्य०)] सत्वगुणवाला। उत्तम प्रकृति का। सात्विक।

सतोद्र–संज्ञा पुं० दे० "शतोदर"।

सतौला–संज्ञा पुं० [हिं० सात+औला (प्रत्य०)] प्रसूता स्त्री का वह विधिपूर्वक स्नान जो प्रसव के सातवें दिन होता है।

सतौसर–संज्ञा पुं० [सं० सप्तसक] सात लड़ का। सतलड़ा।

सत्कदंब–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कदंब।

सत्करण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० सत्करणीय, सत्कृत] (१) सत्कार करना। आदर करना। (२) मृतक की अन्तिम क्रिया करना। क्रिया कर्म करना।

सत्करणीय–वि० [सं०] सत्कार करने के योग्य। आदरणीय। पूज्य।

सत्कर्तव्य–वि० [सं०] (१) सत्कार के योग्य। (२) जिसका सत्कार करना हो।

सत्कर्ता–संज्ञा पुं० [सं० सत्कर्तृ] [स्त्री० सत्कर्त्री] (१) अच्छा काम करनेवाला। सत्कर्म करनेवाला। (२) आदर सत्कार करनेवाला।

सत्कर्म–संज्ञा पुं० [सं० सत्कर्मन्] (१) अच्छा कर्म। अच्छा काम। (२) धर्म या उपकार का काम। पुण्य। (३) अच्छा संस्कार।

सत्कांड–संज्ञा पुं० [सं०] चील।

सत्काय दृष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु के उपरांत आत्मा, लिंग, शरीर आदि के बने रहने का मिथ्या सिद्धांत। (बौद्ध)

सत्कार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आए हुए के प्रति उत्तम व्यवहार। आदर। सम्मान। खातिरदारी। (२) आतिथ्य। मेहमानदारी। (३) पर्व। उत्सव।

सत्कार्य्य–वि० [सं०] (१) सत्कार करने योग्य। (२) जिसका सत्कार करना हो। (३) जिस (मृतक) का क्रिया कर्म करना हो।

संज्ञा पुं० उत्तम कार्य्य। अच्छा काम।

सत्कार्य्यवाद–संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य का यह दार्शनिक सिद्धांत कि बिना कारण के कार्य्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती, अर्थात् इस जगत् की उत्पत्ति शून्य से नहीं है, किसी मूल सत्ता से है। किसी कारण में कार्य्य की सत्ता का सिद्धांत। यह सिद्धांत बौद्धों के शून्यवाद का विरोधी है।

सत्किष्कु–संज्ञा पुं० [सं०] लंबाई की एक प्राचीन नाप जो सवा गज के लगभग होती थी।

सत्कीर्त्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तम कीर्त्ति। यश। नेकनामी।

सत्कुल–संज्ञा पुं० [सं०] उत्तम कुल। अच्छा या बड़ा खानदान।

वि० अच्छे कुल का। खानदानी।

सत्कृत–वि० [सं०] (१) अच्छी तरह किया हुआ। (२) जिसका आदर सत्कार किया गया हो। आहत। (३) अलंकृत। सजाया हुआ। बनाया हुआ।

संज्ञा पुं० (१) सत्कार। आदर। (२) सत्कर्म। अच्छा काम। पुण्य।

सत्क्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सत्कर्म। पुण्य। धर्म का काम। (२) सत्कार। आदर। अच्छा व्यवहार। खातिरदारी। (३) आयोजन। तैयारी।

सत्त–संज्ञा पुं० [सं० सत्त्व] (१) किसी पदार्थ का सार भाग। असली जुज़। रस। जैसे,—गेहूँ का सत्त। (२) तत्व। काम की वस्तु। जैसे,—अब तो उसमें कुछ भी सत्त बाकी नहीं रह गया।

‡संज्ञा पुं० [सं० सत्य] (१) सत्य। सच बात। (२) सतीत्व। पातिव्रत्य।

सत्तर–वि० [सं० सप्तति, प्रा० सत्तरि] साठ और दस। जो गिनती में साठ से दस अधिक हो।

संज्ञा पुं० साठ से दस अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७०।

सत्तरवाँ–वि० [हिं० सत्तर+वाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० सत्तरवीं] जो क्रम में सत्तर के स्थान पर हो।

सत्तरह–वि० [सं० सप्तदश, प्रा० सत्तरह] दस और सात। जो गिनती में दस से सात अधिक हो।

संज्ञा पुं० (१) दस से सात अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१७। (२) पाँसे के खेल में एक दाँव जिसमें दो छक्के और एक पंजा तीनों एक साथ पड़ते हैं। उ०—डारि पासा साधु-संगति फेरि रसना सारि। दाँव अब के परयो पूरो कुमति पिछली हारि। राखि सत्रह सुनि अठारह चोर पाँचो मारि।—सूर।

सत्तरहवाँ–वि० [हिं० सत्तरह+वाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० सत्तरहवीं] जो क्रम में सत्तरह के स्थान पर पड़े।

सत्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) होने का भाव। अस्तित्व। हस्ती। होना। भाव। (२) शक्ति। दम। (३) अधिकार। प्रभुत्व। हुकूमत। (मराठी से गृहीत)

मुहा०—सत्ता चलाना=अधिकार जताना। हुकूमत करना। उ०—जो लोग असभ्य हैं, जंगली हैं, उन पर सत्ता चलाने (हुकूमत करने) में अनिबंध शासन अच्छा होता है।—महावीरप्रसाद द्विवेदी।

संज्ञा पुं० [हिं० सात] ताश या गंजीफे का वह पत्ता जिसमें सात बूटियाँ हों।

सत्ताईस–वि० [सं० सप्तविंशति, प्रा० सत्ताईसा] सात और बीस। जो गिनती में बीस से सात अधिक हो।

संज्ञा पुं० बीस से सात अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—२७।

सत्ताईसवाँ–वि० [हिं० सत्ताईस+वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में सत्ताईस के स्थान पर पड़ता हो।

सत्ताधारी–संज्ञा पुं० [सं० सत्ताधारिन्] अधिकारी। अफसर। हाकिम।

सत्तानबे–वि० [सं० सप्तनवति, प्रा० सत्तानवइ] नब्बे और सात। जो गिनती में सौ से तीन कम हो।

संज्ञा पुं० सौ से तीन कम की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—९७।

सत्तानबेवाँ–वि० [हिं० सत्तानबे+वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में सत्तानबे के स्थान पर पड़ता हो।

सत्तावन–वि० [सं० सप्तपंचाशत, प्रा० सत्तावण्ण] पचास और सात। जो गिनती में तीन कम साठ हो।

संज्ञा पुं० तीन कम साठ की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—५७।

सत्तावनवाँ–वि० [हिं० सत्तावन+वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में सत्तावन के स्थान पर पड़ा हो।

सत्ताशास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] पाश्चात्य दर्शन की वह शाखा जिसमें मूल या पारमार्थिक सत्ता का विवेचन हो।

सत्तासामान्यत्व–संज्ञा पुं० [सं०] अनेक रूपों के भीतर एक सामान्य द्रव्य का अस्तित्व। जैसे,—कुंडल, कंकण आदि अनेक गहनों में 'सोना' नामक द्रव्य सामान्य रूप से पाया जाता है।

विशेष—इस तथ्य का उपयोग वेदांती या दार्शनिक अनेक नाम रूपात्मक जगत् की तह में किसी एक अनिर्वचनीय और अव्यक्त सत्ता का प्रतिपादन करने में करते हैं।

सत्तासी–वि० [सं० सप्ताशीति, प्रा० सत्तासी] अस्सी और सात। जो गिनती में तीन कम नब्बे हो।

संज्ञा पुं० तीन कम नब्बे की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८७।

सत्तासीवाँ–वि० [हिं० सत्तासी+वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में तीन कम नब्बे के स्थान पर पड़े।

सत्तू–संज्ञा पुं० [सं० सक्तुक, प्रा० सत्तुअ] भुने हुए जौ और चने या और किसी अन्न का चूर्ण या आटा जो पानी घोलकर खाया जाता है।

मुहा०—सत्तू बाँधकर पीछे पड़ना=(१) पूरी तैयारी के साथ किसी को तंग करने में लगना। सब काम धंधा छोड़कर किसी के विरुद्ध प्रयत्न करना। (२) पूरी तैयारी के साथ किसी काम में लगना। सब काम धाम छोड़कर प्रवृत्त होना।

सत्पथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम मार्ग। (२) सदाचार। अच्छी चाल। (३) उत्तम संप्रदाय या सिद्धांत। अच्छा पंथ।

सत्पशु–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के बलि योग्य अच्छा पशु।

सत्पात्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दान आदि देने के योग्य उत्तम व्यक्ति। (२) श्रेष्ठ और सदाचारी। योग्य मनुष्य। (३) कन्या देने के योग्य उत्तम पुरुष। अच्छा वर।

सत्पुरुष–संज्ञा पुं० [सं०] भला आदमी। सदाचारी पुरुष।

सत्प्रतिपक्ष–वि० [सं०] जिसका उचित खंडन हो सके। जिसके विपक्ष में बहुत कुछ कहा जा सके।

सत्फल–संज्ञा पुं० [सं०] दाड़िम। अनार।

सत्यंकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वचन को सत्य करना। वादा पूरा करना। (२) वादा पूरा करने की जमानत के तौर पर कुछ पेशगी देना।

सत्य–वि० [सं०] (१) जो बात जैसी है, उसके संबंध में वैसा ही (कथन)। यथार्थ। ठीक। वास्तविक। सही। यथातथ्य। जैसे,—सत्य बात, सत्य वचन। (२) मसल।

संज्ञा पुं० (१) वास्तविक बात। ठीक बात। यथार्थ तत्व। जैसे,—सत्य को कोई छिपा नहीं सकता।

विशेष—बौद्ध धर्म्म में चार 'आर्य्य सत्य' कहे गए हैं—दुःख सत्य (संसार दुःख रूप है, यह सत्य बात), दुःख समुदय (दुःख के कारण), दुःख निरोध (दुःख रोका जाता है) और मार्ग (निर्वाण का मार्ग)। बौद्ध दार्शनिक दो प्रकार का सत्य मानते हैं—संवृति सत्य (जो बहुमत से माना गया हो) और परमार्थ सत्य (जो स्वतः सत्य हो)।

(२) उचित पक्ष। न्याय्य पक्ष। धर्म्म की बात। ईमान की बात। जैसे,—हम सत्य पर दृढ़ रहेंगे। (३) पारमार्थिक सत्ता। वह वस्तु जो सदा ज्यों की त्यों रहे, जिसमें किसी प्रकार का विकार या परिवर्त्तन न हो। (वेदांत) जैसे,—ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है। (४) ऊपर के सात लोकों में से सब से ऊपर का लोक जहाँ ब्रह्मा अवस्थान करते हैं। (५) नवें कल्प का नाम। (६) अश्वत्थ वृक्ष। पीपल का पेड़। (७) विष्णु का एक नाम। (८) रामचंद्र का एक नाम। (९) नांदीमुख श्राद्ध के अधिष्ठाता देवता। (१०) विश्वेदेवा में से एक। (११) शपथ। कसम। (१२) प्रतिज्ञा। कौल। (१३) चार युगों में से पहला युग। कृतयुग। (१४) एक दिव्यास्त्र।

सत्यकाम–वि० [सं०] सत्य का प्रेमी।

सत्यकीर्त्ति–संज्ञा पुं० [सं०] एक अस्त्र जो मंत्रबल से चलाया जाता था।

सत्यकेतु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक बुद्ध का नाम। (२) केकय देश के एक राजा का नाम। (३) अक्रूर के पुत्र का नाम।

सत्यजित्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वसुदेव का एक भतीजा। (२) एक दानव। (३) एक यक्ष। (४) तीसरे मन्वंतर के इंद्र का नाम।

सत्यतः–अव्य० [सं०] ठीक ठीक। वास्तव में। सचमुच।

सत्यता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सत्य होने का भाव। वास्तविकता। सचाई। (२) नित्यता।

सत्यधन–वि० [सं०] जिसका सर्वस्व सत्य हो। जिसे सत्य सब से प्रिय हो।

सत्यनारायण–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु भगवान का एक नाम जिसके संबंध एक कथा रची गई है। इस कथा का आज कल बहुत अधिक है।

विशेष—ऐसा पता लगता है कि अकबर के समय में में अकबर के नए मत 'दीन इलाही' के प्रचार के लिये पहले यह कथा किसी पंडित से लिखाई गई थी और रूप कुछ दूसरा ही ... और ... संवाद उसमें न ... पर शाह था नाम था। पीछे पंडित ... करके पौराणिक हिंदू-धर्म के अनुकूल कर लिया और यह उसी परिवर्तित रूप में प्रचलित हुई। बंग भाषा में भी "सत्यपीर" की कथा के नाम से यह कथा पाई गई है।

सत्यपर–वि० [सं०] सत्य में प्रवृत्त। ईमानदार।

सत्यपुरुष–संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर। परमात्मा।

सत्यप्रतिज्ञ–वि० [सं०] प्रतिज्ञा को सत्य करनेवाला। वचन का सच्चा।

सत्यफल–संज्ञा पुं० [सं०] बिल्व। श्रीफल। बेल।

सत्यभामा–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रीकृष्ण की आठ पट रानियों में से एक जो सत्राजित की कन्या थी। इन्हीं के लिये कृष्ण पारिजात लाने गए थे और इंद्र से लड़े थे।

सत्ययुग–संज्ञा पुं० [सं०] पौराणिक काल गणना के अनुसार चार युगों में से पहला युग। कृत युग।

विशेष—यह युग सब से उत्तम माना जाता है। इस युग में पुण्य और सत्यता की अधिकता रहती है। यह १७२८००० वर्ष का कहा गया है। इसका आरंभ वैशाख शुक्ल तृतीया से माना गया है।

सत्ययुगाद्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ल तृतीया जिस दिन से सत्ययुग का आरंभ माना गया है।

सत्ययुगी–वि० [सं० सत्ययुग] (१) सत्ययुग का। सत्ययुग संबंधी। (२) बहुत प्राचीन। (३) बहुत सीधा और सज्जन। सच्चरित्र। धर्मात्मा। कलियुगी का उलटा।

सत्य लोक–संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर के सात लोकों में से सब से ऊपर का लोक जहाँ ब्रह्मा रहते हैं।

सत्य वचन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सच कहना। यथार्थ कथन। (२) प्रतिज्ञा। कौल। वादा।

सत्यवती–वि० स्त्री० [सं०] (१) सच बोलनेवाली। (२) सत्य या धर्म का पालन करनेवाली।

संज्ञा स्त्री० (१) मत्स्यगंधा नामक धीवर-कन्या जिसके गर्भ से कुमारी अवस्था में ही पराशर के संयोग से कृष्ण द्वैपायन या व्यास की उत्पत्ति हुई थी। (२) शमी वृक्ष। (३) गाधि की पुत्री और ऋचीक की पत्नी जिसके कौशिकी नदी हो जाने की कथा प्रसिद्ध है।

सत्यवति-सुत–संज्ञा पुं० [सं०] सत्यवती के पुत्र वेदव्यास।

... पुं० ... विश्वेदेवा में से एक।

... (१) सत्य वचन। (२) वादा। करार। प्र... प्रकार का मंत्रास्त्र। (४) काक।

... सत्यवादी] (१) सत्य बोलना। ... पर रहना। ... का एक नाम।

सत्यवादी–वि० [सं० सत्यवादिन्] [स्त्री० सत्यवादिनी] (१) सत्य कहनेवाला। सच बोलनेवाला। (२) प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाला। वचन को पूरा करनेवाला। (३) धर्म पर दृढ़ रहनेवाला। धर्म कभी न छोड़नेवाला। जैसे,—राजा हरिश्चंद्र बड़े सत्यवादी थे।

सत्यवान्–वि० [सं० सत्यवत्] [स्त्री० सत्यवती] (१) सच बोलनेवाला। (२) प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाला।

संज्ञा पुं० शाल्व देश के राजा द्युमत्सेन के पुत्र का नाम जिसकी पत्नी सावित्री के पातिव्रत्य के अलौकिक प्रभाव की कथा पुराणों में प्रसिद्ध है।

विशेष—इनके पिता अंधे हो गए थे और गद्दी से उतार दिए गए थे। वे उदास होकर पुत्र और पत्नी सहित वन में रहते थे। मद्र देश के राजा घूमते घूमते उस वन में आए और उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह सत्यवान् के साथ कर दिया। पर सत्यवान् अल्पायु थे, इस से वे शीघ्र मर गए। सावित्री ने अपने पातिव्रत्य के बल से अपने पति को जिला दिया।

सत्यव्रत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सत्य बोलने की प्रतिज्ञा या नियम। (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

वि० जिसने सत्य बोलने की प्रतिज्ञा की हो। सत्य का नियम पालन करनेवाला।

सत्यशील–वि० [सं०] [स्त्री० सत्यशीला] सत्य का पालन करनेवाला। सच्चा।

सत्यसंकल्प–वि० [सं०] जो विचारे हुए कार्य्य को पूरा करे। दृढ़ संकल्प।

सत्यसंध–वि० [सं०] [स्त्री० सत्यसंधा] सत्य प्रतिज्ञ। वचन को पूरा करनेवाला। उ०—सत्यसंध दृढ़व्रत रघुराई।—तुलसी।

संज्ञा पुं० (१) रामचंद्र का एक नाम। (२) भरत का एक नाम। (३) जनमेजय का एक नाम। (४) स्कंद का एक अनुचर। (५) धृतराष्ट्र का एक पुत्र।

सत्यसंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रौपदी का एक नाम।

सत्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सचाई। सत्यता। (२) दुर्गा का एक नाम। (३) सीता का एक नाम। (४) व्यास की माता सरस्वती।

सत्यानास–संज्ञा पुं० [सं० सत्ता+नाश] सर्वनाश। मटियामेट। ध्वंस। बरबादी।

सत्यानासी–वि० [हिं० सत्यानास+ई (प्रत्य०)] [स्त्री० सत्यानासिन] (१) सत्यानास करनेवाला। चौपट करनेवाला। (२) अभागा। बदकिस्मत।

संज्ञा स्त्री० एक कँटीला पौधा जो प्रायः खँडहरों और उजाड़ स्थानों पर जमता है। घमोई। भड़भाँड़। स्वर्णक्षीरी। पीतपुष्पा।

विशेष—इसके बीच में गोभी के पौधे की तरह एक कांड ऊपर को गया होता है और चारो ओर नीलापन लिए हरे कटावदार पत्ते निकलते हैं जिन पर चारो ओर विषैले काँटे होते हैं। इस पौधे को काटने या दबाने से एक प्रकार का पीला दूध या रस निकलता है। फूल पीला, कटोरे के आकार का और देखने में सुंदर, पर गंधहीन होता है। फूल झड़ जाने पर गुच्छों में फल या बीजकोश लगते हैं जिनमें राई के से काले काले बीज भरे रहते हैं। इन बीजों से एक प्रकार का बहुत तीक्ष्ण तेल निकलता है जो खुजली पर लगाया जाता है। वैद्यक में सत्यानासी कड़वी, दस्तावर, शीतल तथा कृमि रोग, खुजली और विष को दूर करनेवाली मानी गई है।

सत्यानृत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) झूठ सच का मेल। (२) वाणिज्य। व्यापार। दूकानदारी।

सत्यापन–संज्ञा पुं० [सं०] असलियत की जाँच। सत्य होने का निश्चय।

सत्यापना–संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी सौदे या इकरार का पूरा होना।

सत्याषाढ़ी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा का नाम।

सत्योत्कर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सत्य बात का स्वीकार। अपराध आदि का स्वीकार। इकबाल। (स्मृति)

सत्योपपावन–संज्ञा पुं० [सं०] शरदंडा नदी के पश्चिम तट पर स्थित एक पवित्र फलप्रद वृक्ष। (पुराण)

सत्रंग–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा।

सत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ। (२) एक सोमयाग जो १३ या १०० दिनों में पूरा होता था। (३) परिवेषण। गोपन। (४) वह स्थान जहाँ मनुष्य छिप सकता हो। (५) कोठरी। घर। मकान। (६) धोखा। भ्रांति। (७) धन। (८) तालाब। (९) जंगल। (१०) वह स्थान जहाँ असहायों को भोजन बाँटा जाता है। क्षेत्र। सदावर्त्त। जैसे,—अन्न सत्र।

सत्रह–वि० दे० "सत्तरह"।

सत्राजित–संज्ञा पुं० [सं०] एक यादव जिसकी कन्या सत्यभामा श्रीकृष्ण को ब्याही थी।

विशेष—इसने सूर्य्य की तपस्या करके दिव्य स्यमंतक मणि प्राप्त की थी। उसके खो जाने पर इसने श्रीकृष्ण को चोरी लगाई। जब श्रीकृष्ण ने वह मणि ढूँढ़कर ला दी, तब सत्राजित बहुत लज्जित हुआ और उसने श्रीकृष्ण को अपनी कन्या सत्यभामा ब्याह दी।

सत्राजिती–संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्राजित की कन्या सत्यभामा का एक नाम।

सत्रि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत यज्ञ करनेवाला । (२) हाथी । (३) मेघ । बादल ।

सत्री–संज्ञा पुं० [सं० सत्रिन्] (१) यज्ञ करनेवाला । (२) किसी दूसरे राजा के राज्य में अपने राजा या राज्य की ओर से रहनेवाला राजदूत । एलची ।

सत्रु‡–संज्ञा पुं० दे० "शत्रु" ।

सत्रुघन, सत्रुहन‡–संज्ञा पुं० दे० "शत्रुघ्न" ।

सत्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सत्ता । होने का भाव । अस्तित्व । हस्ती । (२) सार । तत्व । मूल वस्तु । असलियत । (३) अंतः प्रकृति । खासियत । विशेषता । (४) चित्त की प्रवृत्ति । (५) आत्म तत्व । चैतन्य । चित्तत्व । (६) प्राण । जीव तत्व । (७) सांख्य के अनुसार प्रकृति के तीन गुणों में से एक जो सब में उत्तम है और जिसके लक्षण ज्ञान, शांति, शुद्धता आदि हैं ।

विशेष—इस गुण के कारण अच्छे कर्म्म में प्रवृत्ति, विवेक आदि का होना माना गया है ।

(८) प्राणी । जीवधारी । (९) गर्भ । हमल । (१०) भूत । प्रेत । (११) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । (१२) दृढ़ता । धीरता । साहस । शक्ति । दम ।

सत्वक–संज्ञा पुं० [सं०] मृत मनुष्य की जीवात्मा । प्रेत ।

सत्वगुण–संज्ञा पुं० [सं०] अच्छे कर्मों की ओर प्रवृत्त करनेवाला गुण । साधु और विवेकशील प्रकृति । वि० दे० "सत्व" ।

सत्वगुणी–वि० [सं० सत्वगुणिन्] साधु और विवेकी । उत्तम प्रकृति का ।

सत्वधाम–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम ।

सत्वप्रधान–वि० [सं०] जिसकी प्रकृति में सत्वगुण की अधिकता या प्रधानता हो ।

सत्वभारत–संज्ञा पुं० [सं०] व्यास का एक नाम ।

सत्वर–अव्य० [सं०] शीघ्र । जल्द । तुरंत । झटपट ।

सत्वलक्षणा–वि० स्त्री० [सं०] जिसमें गर्भ के लक्षण हों । गर्भवती । हामिला ।

सत्ववती–वि० [सं०] (१) गर्भवती । (२) सत्वगुणवाली ।

संज्ञा स्त्री० एक तांत्रिक देवी । (बौद्ध)

सत्ववान्–वि० [सं० सत्ववत्] [स्त्री० सत्ववती] (१) प्राण-युक्त । (२) दृढ़तायुक्त । दृढ़ । (३) धीर । साहसी ।

सत्वशाली–वि० [सं० सत्वशालिन्] [स्त्री० सत्वशालिनी] दृढ़तायुक्त । साहसी । धीर । दमवाला ।

सत्वशील–वि० [सं०] सात्विक प्रकृति का । अच्छी प्रकृति का । सदाचारी । धर्मात्मा ।

सत्वस्थ–वि० [सं०] (१) अपनी प्रकृति में स्थित । (२) दृढ़ । अविचलित । धीर । (३) सशक्त । (४) प्राणयुक्त ।

सत्वोद्रेक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम प्रकृति की अधिकता या उमंग । (२) साहस । उमंग । उत्साह ।

सत्संग–संज्ञा पुं० [सं०] साधुओं या सज्जनों के साथ उठना बैठना । अच्छा साथ । भली संगत । अच्छी सोहबत ।

सत्संगति–संज्ञा स्त्री० दे० "सत्संग" । उ०—सत्संगति-महिमा नहिं गोई ।—तुलसी ।

सत्संगी–वि० [सं० सत्संगिन्] [स्त्री० सत्संगिनी] (१) सत्संग करनेवाला । अच्छी सोहबत में रहनेवाला । (२) मेल जोल रखनेवाला । लोगों के साथ बात चीत आदि का व्यवहार रखनेवाला । जैसे,—वे बड़े सत्संगी आदमी हैं ।

सत्समागम–संज्ञा पुं० [सं०] भले आदमियों का संसर्ग ।

सत्सार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चित्रकार । चितेरा । (२) कवि । (३) एक प्रकार का पौधा ।

सथर‡–संज्ञा स्त्री० [सं० स्थल] पृथ्वी । भूमि ।

सथरी†–संज्ञा स्त्री० दे० "साथरी" ।

सथिया–संज्ञा पुं० [सं० स्वस्तिक, प्रा० सत्थिम] (१) एक प्रकार का मंगल-सूचक या सिद्धिदायक चिह्न जो कलश, दीवार आदि पर बनाते हैं और जो समकोण पर काटती हुई दो रेखाओं के रूप में होता है । स्वस्तिक चिह्न ।—卐 । उ०—द्वार बुहारत अष्ट सिद्धि, कौरेन सथिया चीतत नवनिधि ।—सूर । (२) देवता आदि के पदतल का एक चिह्न । (३) फोड़े आदि की चीरफाड़ करनेवाला । जर्राह ।

सदंजन–संज्ञा पुं० [सं०] पीतल से निकलनेवाला एक प्रकार का अंजन ।

सदंशक–संज्ञा पुं० [सं०] केंकड़ा ।

सद–अव्य० [सं० सद्यः] तत्क्षण । तुरंत । तत्काल ।

वि० (१) ताजा । (२) नया । नवीन । हाल का ।

संज्ञा स्त्री० [सं० सत्व] प्रकृति । आदत । टेव । उ०—सदन सदन के फिरन की सद न छुटै हरि राय । रुचै तितै बिहरत फिरौ, कत बिहरत उर आय ।—बिहारी ।

संज्ञा पुं० [सं० सदस्] (१) सभा । समिति । मंडली । (२) एक छोटा मंडप जो यज्ञशाला में प्राचीन वंश के पूर्व बनाया जाता था ।

[अ० सदा=आवाज] गड़रियों का एक प्रकार का गीत । (पंजाब)

सदक–संज्ञा पुं० [सं०] भूसी सहित अनाज ।

संज्ञा पुं० दे० "सिदक" ।

सदका–संज्ञा पुं० [अ० सद्कः] (१) वह वस्तु जो ईश्वर के नाम पर दी जाय । दान । (२) वह वस्तु जो किसी के सिर पर से उतार कर रास्ते में रखी जाय । उतारन । उतारा ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—करना ।

(३) निछावर।

मुहा०—सदके जाऊँ = बलि जाऊँ। (मुसल०)

सदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रहने का स्थान। घर। मकान। (२) विराम। स्थिरता। (३) शैथिल्य। थकावट। (४) एक प्रसिद्ध कसाई का नाम जो बड़ा भगवद्भक्त हो गया है।

सदना–क्रि० अ० [सं० सदन = गिरना] (१) छेद में से रसना। चूना। (२) नाव के छेदों में से पानी आना।

सदपर्ग–संज्ञा पुं० [फा०] हजारा गेंदा।

सदमा–संज्ञा पुं० [अ० सद्मः] (१) आघात। धक्का। चोट। (२) मानसिक आघात। रंज। दुःख।

क्रि० प्र०—पहुँचना।—लगना।—उठाना।

(३) बड़ी हानि। भारी नुकसान।

क्रि० प्र०—उठाना।

सदय–वि० [सं०] दयायुक्त। दयालु।

सदर–वि० [अ०] खास। प्रधान। मुख्य। जैसे,—सदर अमीन। सदर दरवाज़ा।

संज्ञा पुं० वह स्थान जहाँ कोई बड़ी कचहरी हो या बड़ा हाकिम रहता हो। केंद्रस्थल।

वि० [सं०] भय युक्त। डरा हुआ।

सदर आला–संज्ञा पुं० [अ०] अदालत का वह हाकिम जो जज के नीचे हो। छोटा जज।

सदर दरवाज़ा–संज्ञा पुं० [अ० + फा०] खास दरवाजा। सामने का द्वार। फाटक।

सदरनशीन–संज्ञा पुं० [अ० + फा०] किसी सभा का सभापति। मीर मजलिस।

सदर बाजार–संज्ञा पुं० [अ० + फा०] (१) बड़ा बाजार। खास बाजार। (२) छावनी का बाजार।

सदर बोर्ड–संज्ञा पुं० [अ० सदर + अं० बोर्ड] माल की सब से बड़ी अदालत।

सदरी–संज्ञा स्त्री० [अ०] बिना आस्तीन की एक प्रकार की कुरती या बंडी जो और कपड़ों के ऊपर पहनी जाती है। सीनाबंद।

विशेष—इसका चलन अरब में बहुत अधिक है। मुसलमानी मत के साथ इसका प्रचार अफ़गानिस्तान, तुर्किस्तान और हिंदुस्तान में भी हुआ।

सदर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) असल बात। मुख्य विषय। साध्य विषय। (२) धनाढ्य पुरुष।

सदर्थनाꣳ–क्रि० स० [सं० सदर्थ या समर्थन] समर्थन करना। पुष्टि करना। तसदीक़ करना।

सदश–वि० [सं०] जिसमें पाड़ या किनारा हो। किनारेदार। हाशियेदार।

सदस्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रहने का स्थान। मकान। घर। (२) सभा। समाज। मंडली। (३) यज्ञशाला में एक छोटा मंडप जो प्राचीन वंश के पूर्व बनाया जाता था।

सदसत्–वि० [सं०] (१) सच और झूठ। (२) किसी वस्तु के होने और न होने का भाव। (३) बुरा और भला। अच्छा और खराब।

सदसद्विवेक–संज्ञा पुं० [सं०] अच्छे और बुरे की पहचान। भले बुरे का ज्ञान।

सदसि–संज्ञा पुं० दे० "सदस्"।

सदस्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ करनेवाला। याजक। (२) किसी सभा या समाज में सम्मिलित व्यक्ति। सभासद। मेंबर।

सदहा–संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ करनेवाला। याजक। (२) सभासद। किसी सभा या समाज में सम्मिलित व्यक्ति। मेंबर।

वि० [फ़ा०] सैकड़ों।

संज्ञा पुं० [देश०] अनाज लादने की बड़ी बैल गाड़ी।

सदा–अव्य० [सं०] नित्य। हमेशा। सर्वदा। (२) निरंतर। लगातार। बराबर।

संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) गूँज। प्रतिध्वनि। (२) ध्वनि। आवाज़। शब्द। (३) पुकार।

मुहा०—सदा देना या लगाना = फ़कीर का भीख पाने के लिये पुकारना।

सदाकत–संज्ञा स्त्री० [अ०] सचाई। सत्यता।

सदाकुसुम–संज्ञा पुं० [सं०] धव। धातकी।

सदागति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। पवन। (२) वात। (आयुर्वेद) (३) सूर्य्य। (४) विष्णु। ब्रह्म।

सदागतिशत्रु–संज्ञा पुं० [सं०] एरंड। अंडी का पेड़।

सदागम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सज्जन का आगमन। (२) सत् शास्त्र। अच्छा सिद्धांत।

सदाचरण–संज्ञा पुं० [सं०] अच्छा चाल चलन। सात्विक व्यवहार।

सदाचार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा आचरण। सात्विक व्यवहार। सद्वृत्ति। (२) शिष्ट व्यवहार। भलमनसाहत। (३) रीति। रवाज।

सदाचारी–संज्ञा पुं० [सं० सदाचारिन्] [स्त्री० सदाचारिणी] (१) अच्छे आचरणवाला पुरुष। अच्छे चाल चलन का आदमी। सद्वृत्तिशील। (२) धर्मात्मा। पुण्यात्मा।

सदातन–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सदादान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह हाथी जिसे सदा मद बहता हो। (२) ऐरावत। (३) गणेश।

सदानंद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सदा आनंद में रहे। (२) शिव। (३) परमेश्वर। (४) विष्णु।

सदानर्त्त–वि० [सं०] जो बराबर नाचता हो।

सत्रि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत यज्ञ करनेवाला। (२) हाथी। (३) मेघ। बादल।

सत्री–संज्ञा पुं० [सं० सत्रिन्] (१) यज्ञ करनेवाला। (२) किसी दूसरे राजा के राज्य में अपने राजा या राज्य की ओर से रहनेवाला राजदूत। एलची।

सत्रु॥–संज्ञा पुं० दे० "शत्रु"।

सत्रुघन, सत्रुहन॥†–संज्ञा पुं० दे० "शत्रुघ्न"।

सत्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सत्ता। होने का भाव। अस्तित्व। हस्ती। (२) सार। तत्व। मूल वस्तु। असलियत। (३) अंतः प्रकृति। खासियत। विशेषता। (४) चित्त की प्रवृत्ति। (५) आत्म तत्व। चैतन्य। चित्तत्त्व। (६) प्राण। जीव तत्व। (७) सांख्य के अनुसार प्रकृति के तीन गुणों में से एक जो सब में उत्तम है और जिसके लक्षण ज्ञान, शांति, शुद्धता आदि हैं।

विशेष—इस गुण के कारण अच्छे कर्म्म में प्रवृत्ति, विवेक आदि का होना माना गया है।

(८) प्राणी। जीवधारी। (९) गर्भ। हमल। (१०) भूत। प्रेत। (११) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (१२) दृढ़ता। धीरता। साहस। शक्ति। दम।

सत्वक–संज्ञा पुं० [सं०] मृत मनुष्य की जीवात्मा। प्रेत।

सत्वगुण–संज्ञा पुं० [सं०] अच्छे कर्म्मों की ओर प्रवृत्त करनेवाला गुण। साधु और विवेकशील प्रकृति। वि० दे० "सत्व"।

सत्वगुणी–वि० [सं० सत्वगुणिन्] साधु और विवेकी। उत्तम प्रकृति का।

सत्वधाम–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

सत्वप्रधान–वि० [सं०] जिसकी प्रकृति में सत्वगुण की अधिकता या प्रधानता हो।

सत्वभारत–संज्ञा पुं० [सं०] व्यास का एक नाम।

सत्वर–अव्य० [सं०] शीघ्र। जल्द। तुरंत। झटपट।

सत्वलक्षणा–वि० स्त्री० [सं०] जिसमें गर्भ के लक्षण हों। गर्भवती। हामिला।

सत्ववती–वि० [सं०] (१) गर्भवती। (२) सत्वगुणवाली।
संज्ञा स्त्री० एक तांत्रिक देवी। (बौद्ध)

सत्ववान्–वि० [सं० सत्ववत्] [स्त्री० सत्ववती] (१) प्राण-युक्त। (२) दृढ़तायुक्त। दृढ़। (३) धीर। साहसी।

सत्वशाली–वि० [सं० सत्वशालिन्] [स्त्री० सत्वशालिनी] दृढ़तायुक्त। साहसी। धीर। दमवाला।

सत्वशील–वि० [सं०] सात्विक प्रकृति का। अच्छी प्रकृति का। सदाचारी। धर्मात्मा।

सत्वस्थ–वि० [सं०] (१) अपनी प्रकृति [illegible] स्थित। (२) दृढ़। अविचलित। धीर। (३) सशक्त। (४) प्राणयुक्त।

सत्वोद्रेक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम प्रकृति की अधिकता या उमंग। (२) साहस। उमंग। उत्साह।

सत्संग–संज्ञा पुं० [सं०] साधुओं या सज्जनों के साथ उठना बैठना। अच्छा साथ। भली संगत। अच्छी सोहबत।

सत्संगति–संज्ञा स्त्री० दे० "सत्संग"। उ०—सत्संगति-महिमा नहिं गोई।—तुलसी।

सत्संगी–वि० [सं० सत्संगिन्] [स्त्री० सत्संगिनी] (१) सत्संग करनेवाला। अच्छी सोहबत में रहनेवाला। (२) मेल जोल रखनेवाला। लोगों के साथ बात चीत आदि [illegible] व्यवहार रखनेवाला। जैसे,—वे बड़े सत्संगी आदमी हैं।

सत्समागम–संज्ञा पुं० [सं०] भले आदमियों का संसर्ग।

सत्सार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चित्रकार। चितेरा। (२) कवि। (३) एक प्रकार का पौधा।

सथर॥–संज्ञा स्त्री० [सं० स्थल] पृथ्वी। भूमि।

सथरी†–संज्ञा स्त्री० दे० "साथरी"।

सथिया–संज्ञा पुं० [सं० स्वस्तिक, प्रा० सत्थिअ] (१) एक प्रकार का मंगल-सूचक या सिद्धिदायक चिह्न जो कलश, दीवार आदि पर बनाते हैं और जो समकोण पर काटती हुई दो रेखाओं के रूप में होता है। स्वस्तिक चिह्न। 卐 उ०—द्वार बुहारत अष्ट सिद्धि, कौरेन सथिया चीतत नवनिधि।—सूर। (२) देवता आदि के पदतल का एक चिह्न। (३) फोड़े आदि की चीरफाड़ करनेवाला। जर्राह।

सदंजन–संज्ञा पुं० [सं०] पीतल से निकलनेवाला एक प्रकार का अंजन।

सदंशक–संज्ञा पुं० [सं०] केकड़ा।

सद–अव्य० [सं० सद्यः] तत्क्षण। तुरंत। तत्काल।
वि० (१) ताजा। (२) नया। नवीन। हाल का।
संज्ञा स्त्री० [सं० सत्व] प्रकृति। आदत। टेव। उ०—सदन सदन के फिरन की सद न छुटै हरि राय। रुचै तितै बिहरत फिरौ, कत बिहरत उर आय।—बिहारी।
संज्ञा पुं० [सं० सदस्] (१) सभा। समिति। मंडली। (२) एक छोटा मंडप जो यज्ञशाला में प्राचीन वंश के पूर्व बनाया जाता था।
[अ० सदा = आवाज] गड़रियों का एक प्रकार का गीत। (पंजाब)

सदक–संज्ञा पुं० [सं०] भूसी सहित अनाज।
संज्ञा पुं० दे० "सिदक"।

सदका–संज्ञा पुं० [अ० सद्कः] (१) वह वस्तु जो ईश्वर के नाम पर दी जाय। दान। (२) वह वस्तु जो किसी के सिर पर से उतार कर रास्ते में रखी जाय। उतारन। उतारा।
क्रि० प्र०—उतारना।—करना।

(३) निछावर।

मुहा०—सदके जाऊँ = बलि जाऊँ। (मुसल०)

सदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रहने का स्थान। घर। मकान। (२) विराम। स्थिरता। (३) शैथिल्य। थकावट। (४) एक प्रसिद्ध कसाई का नाम जो बड़ा भगवद्भक्त हो गया है।

सदना-क्रि० अ० [सं० सदन = गिराना] (१) छेद में से रसना। चूना। (२) नाव के छेदों में से पानी आना।

सदबर्ग-संज्ञा पुं० [फा०] हजारा गेंदा।

सदमा-संज्ञा पुं० [अ० सद्मः] (१) आघात। धक्का। चोट। (२) मानसिक आघात। रंज। दुःख।

क्रि० प्र०—पहुँचना।—लगना।—उठाना।

(३) बड़ी हानि। भारी नुकसान।

क्रि० प्र०—उठाना।

सदय-वि० [सं०] दयायुक्त। दयालु।

सदर-वि० [अ०] खास। प्रधान। मुख्य। जैसे,—सदर अमीन। सदर दरवाज़ा।

संज्ञा पुं० वह स्थान जहाँ कोई बड़ी कचहरी हो या बड़ा हाकिम रहता हो। केंद्रस्थल।

वि० [सं०] भय युक्त। डरा हुआ।

सदर आला-संज्ञा पुं० [अ०] अदालत का वह हाकिम जो जज के नीचे हो। छोटा जज।

सदर दरवाज़ा-संज्ञा पुं० [अ० + फा०] खास दरवाजा। सामने का द्वार। फाटक।

सदरनशीन-संज्ञा पुं० [अ० + फा०] किसी सभा का सभापति। मीर मजलिस।

सदर बाजार-संज्ञा पुं० [अ० + फा०] (१) बड़ा बाजार। खास बाजार। (२) छावनी का बाजार।

सदर बोर्ड-संज्ञा पुं० [अ० सदर + अं० बोर्ड] माल की सब से बड़ी अदालत।

सदरी-संज्ञा स्त्री० [अ०] बिना आस्तीन की एक प्रकार की कुरती या बंडी जो और कपड़ों के ऊपर पहनी जाती है। सीनाबंद।

विशेष—इसका चलन अरब में बहुत अधिक है। मुसलमानी मत के साथ इसका प्रचार अफ़ग़ानिस्तान, तुर्किस्तान और हिंदुस्तान में भी हुआ।

सदर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) असल बात। मुख्य विषय। साध्य विषय। (२) धनाढ्य पुरुष।

सदर्थना‡-क्रि० स० [सं० सदर्थ या समर्थन] समर्थन करना। पुष्टि करना। तसदीक़ करना।

सदश-वि० [सं०] जिसमें पाड़ या किनारा हो। किनारेदार। हाशियेदार।

सदस्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रहने का स्थान। मकान। घर। (२) सभा। समाज। मंडली। (३) यज्ञशाला में एक छोटा मंडप जो प्राचीन वेदी के पूर्व बनाया जाता था।

सदसत्-वि० [सं०] (१) सच और झूठ। (२) किसी वस्तु के होने और न होने का भाव। (३) बुरा और भला। अच्छा और खराब।

सदसद्विवेक-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छे और बुरे की पहचान। भले बुरे का ज्ञान।

सदसि-संज्ञा पुं० दे० "सदस्"।

सदस्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ करनेवाला। याजक। (२) किसी सभा या समाज में सम्मिलित व्यक्ति। सभासद। मेंबर।

सदह्रा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ करनेवाला। याजक। (२) सभासद। किसी सभा या समाज में सम्मिलित व्यक्ति। मेंबर।

वि० [फा०] सैकड़ों।

संज्ञा पुं० [देश०] अनाज लादने की बड़ी बैल गाड़ी।

सदा-अव्य० [सं०] नित्य। हमेशा। सर्वदा। (२) निरंतर। लगातार। बराबर।

संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) गूँज। प्रतिध्वनि। (२) ध्वनि। आवाज़। शब्द। (३) पुकार।

मुहा०—सदा देना या लगाना = फ़कीर का भीख पाने के लिये पुकारना।

सदाकत-संज्ञा स्त्री० [अ०] सचाई। सत्यता।

सदाकुसुम-संज्ञा पुं० [सं०] धव। धातकी।

सदागति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। पवन। (२) वात। (आयुर्वेद) (३) सूर्य्य। (४) विभु। ब्रह्म।

सदागतिशत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] एरंड। अंडी का पेड़।

सदागम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सज्जन का आगमन। (२) सत् शास्त्र। अच्छा सिद्धांत।

सदाचरण-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छा चाल चलन। सात्विक व्यवहार।

सदाचार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा आचरण। सात्विक व्यवहार। सद्वृत्ति। (२) शिष्ट व्यवहार। भलमनसाहत। (३) रीति। रवाज।

सदाचारी-संज्ञा पुं० [सं० सदाचारिन्] [स्त्री० सदाचारिणी] (१) अच्छे आचरणवाला पुरुष। अच्छे चाल चलन का आदमी। सद्वृत्तिशील। (२) धर्मात्मा। पुण्यात्मा।

सदातन-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सदादान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह हाथी जिसे सदा मद बहता हो। (२) ऐरावत। (३) गणेश।

सदानंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सदा आनंद में रहे। (२) शिव। (३) परमेश्वर। (४) विष्णु।

सदानर्त्त-वि० [सं०] जो बराबर नाचता हो।

संज्ञा पुं० ममोला। खंजन।

सदानीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] करतोया नदी।

सदानोपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एलानी। एलापर्णी।

सदापुर—संज्ञा पुं० [सं०] केवटी मोथा। कैवर्त्त मुस्तक।

सदापुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारिकेल। नारियल। (२) आक। सफ़ेद मदार। (३) कुंद का फूल।

सदापुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आक। (२) लाल आक। (३) कपास। (४) मल्लिका। एक प्रकार की चमेली।

सदाप्रसून—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोहितक वृक्ष। (२) आक। मदार। (३) कुंद का पौधा।

सदाफर†—वि० दे० "सदाफल"।

सदाफल—वि० [सं०] जो सब दिन फले। सदा फलता रहनेवाला।
संज्ञा पुं० (१) गूलर। ऊमर। (२) श्रीफल। बेल। (३) नारियल। (४) कटहल। (५) एक प्रकार का नीबू। उ०—फरे सदाफर अउर जँभीरी।—जायसी।

सदाफला, सदाफली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जपा पुष्प। गुड़हर। देवीफूल। (२) एक प्रकार का बैंगन।

सदाबरत—संज्ञा पुं० दे० "सदावर्त"।

सदावर्त—संज्ञा पुं० [सं० सदाव्रत] (१) नित्य भूखों और दीनों को भोजन बाँटने की क्रिया या नियम। रोज़ की ख़ैरात।
क्रि० प्र०—चलना।—बँटना।
(२) वह अन्न या भोजन जो नियम से नित्य ग़रीबों को बाँटा जाय। ख़ैरात।
क्रि० प्र०—बँटना।—बाँटना।
(३) नित्य होनेवाला दान।

सदावर्ती—संज्ञा पुं० [हिं० सदावर्त] (१) सदावर्त बाँटनेवाला। भूखों को नित्य अन्न बाँटनेवाला। (२) बड़ा दानी। बहुत उदार।

सदाबहार—वि० [हिं० सदा + फा० बहार = फूल पत्ती का समय] (१) जो सदा फूले। (२) जो सदा हरा रहे। जिसका पतझड़ न हो। जिसमें बराबर नए पत्ते निकलते और पुराने झड़ते रहें।
विशेष—वृक्ष दो प्रकार के होते हैं। एक तो पतझड़वाले, अर्थात् जिनकी सब पत्तियाँ शिशिर ऋतु में झड़ जाती और वसंत में सब पत्तियाँ नई निकलती हैं। दूसरे सदाबहार अर्थात् वे जिनके पत्ते झड़ने की नियत ऋतु नहीं होती और जिनमें सदा हरी पत्तियाँ रहती हैं।
संज्ञा पुं० एक प्रकार के फूल का नाम।

सदाभद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गँभारी का पेड़।

सदामंडलपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद गदहपूरना। श्वेत पुनर्नवा।

सदामत्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के क्षय।

सदामांसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मांस रोहिणी।

सदायोगी—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सदारुह—संज्ञा पुं० [सं०] बेल। बिल्व वृक्ष।

सदाशय—वि० [सं०] जिसका भाव उदार और श्रेष्ठ हो। उच्च विचार का। अच्छी नीयत का। सज्जन। भलामानस।

सदाशिव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सदा कल्याणकारी। सदा कृपालु। (२) सदा शुभ और मंगल। (३) महादेव का एक नाम।

सदासुहागिन—वि० स्त्री० [हिं० सदा + सुहागिन] जो सदा सौभाग्यवती रहे। जो कभी पतिहीन न हो।
संज्ञा स्त्री० (१) वेश्या। रंडी। (विनोद) (२) सिंदूरपुष्पी

सदिया—संज्ञा स्त्री० [फा० सादः = कोरा] लाल पक्षी का एक भेद जिसका शरीर भूरे रंग का होता है। बिना चित्ती की मुनियाँ।

सदी—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) सौ वर्षों का समूह। शताब्दी। (२) किसी विशेष सौ वर्ष के बीच का काल। जैसे, १९ वीं सदी। (३) सैकड़ा। जैसे,—५) फ़ी सदी सूद।

सदुपदेश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा उपदेश। उत्तम शिक्षा। (२) अच्छी सलाह।

सद्दक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मिठाई। (सुश्रुत)

सदृश—वि० [सं०] (१) जो देखने में एक ही सा हो। एक रूप रंग का। समान। अनुरूप। (२) तुल्य। बराबर। (३) उपयुक्त। मुनासिब। योग्य।

सदृशता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुरूपता। समानता। तुल्यता।

सदेह—क्रि० वि० [सं०] इसी शरीर से। बिना शरीर त्याग किए। जैसे, त्रिशंकु सदेह स्वर्ग जाना चाहते थे।

सदैव—अव्य० [सं०] सदा ही। सर्वदा। हमेशा।

सदोष—वि० [सं०] (१) दोषयुक्त। जिसमें दोष हो। (२) अपराधी। दोषी।

सद्गति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्तम गति। अच्छी अवस्था। भली हालत। (२) मरण के उपरांत उत्तम लोक की प्राप्ति। (३) अच्छा चाल चलन।

सद्गुण—संज्ञा पुं० [सं०] अच्छा गुण। अच्छी सिफ़त। उ०—जिमि सद्गुण सज्जन पहँ आवा।—तुलसी।

सद्गुणी—संज्ञा पुं० [सं० सद्गुणिन्] अच्छे गुणवाला।

सद्गुरु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा गुरु। उत्तम शिक्षक या आचार्य्य। (२) वह धर्म शिक्षक या मंत्रदाता जिसके उपदेश से संसार के बंधनों से छुटकारा और ईश्वर की प्राप्ति हो।

सद्ग्रंथ—संज्ञा पुं० [सं० सत् + ग्रंथ] अच्छा ग्रंथ। सन्मार्ग बताने-

वाली पुस्तक। उ०—जिमि पाखंड-विवाद तें लुप्त होहिं सद्ग्रंथ।—तुलसी।

सद्दा†-संज्ञा पुं० [सं० शब्द, प्रा० सद्द] (१) शब्द। ध्वनि। अव्य० [सं० सद्य] तुरंत। फौरन। तत्काल।

सद्भाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा भाव। प्रेम और हित का भाव। शुभचिंतना की वृत्ति। (२) मेलजोल। मैत्री। (३) निष्कपट भाव। सच्चा भाव। अच्छी नीयत। (४) होने का भाव। अस्तित्व। हस्ती।

सद्म-संज्ञा पुं० [सं० सद्मन्] (१) घर। मकान। रहने का स्थान। (२) बैठनेवाला। (३) दर्शक। (४) संग्राम। युद्ध। (५) पृथ्वी और आकाश।

सद्मिनी-संज्ञा स्त्री० [सं० सद्म] (१) हवेली। बड़ा मकान। (२) प्रासाद। महल।

सद्य-अव्य० [सं०] (१) आज ही। (२) इसी समय। अभी। (३) तुरंत। शीघ्र। झट। तत्काल।

संज्ञा पुं० शिव का एक नाम। सद्योजात।

सद्यः-अव्य० दे० "सद्य"।

सद्यःपाक-वि० [सं०] जिसका फल तुरंत मिले। जिसके परिणाम में विलंब न हो।

संज्ञा पुं० रात के चौथे पहर का स्वप्न (जो लोगों के विश्वास के अनुसार ठीक घटा करता है)।

सद्यःप्रसूत-वि० [सं०] तुरत का उत्पन्न।

सद्यःप्रसूता-वि० स्त्री० [सं०] जिसे अभी बच्चा हुआ हो।

सद्यःशोथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिकच्छु। केवाँच। (केवाँच छू जाने से तुरंत खुजली और सूजन होती है।)

सद्योजात-वि० [सं०] [स्त्री० सद्योजाता] तुरंत का उत्पन्न।

संज्ञा पुं० (१) शिव का एक स्वरूप या मूर्ति। (२) तुरंत का उत्पन्न बछड़ा।

सद्वती-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुलस्त्य की कन्या और अग्नि की स्त्री।

सद्वृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] अच्छा चालचलन। उत्तम व्यवहार।

सधना-क्रि० अ० [हिं० साधना] (१) सिद्ध होना। पूरा होना। सरना। काम होना। जैसे,—काम सधना। (२) काम चलना। मतलब निकलना। (३) अभ्यस्त होना। हाथ बैठना। मँजना। मश्क होना। जैसे,—अभी हाथ सधा नहीं है, इसी से देर लगती है। (४) प्रयोजन-सिद्धि के अनुकूल होना। गौं पर चढ़ना। जैसे,—बिना कुछ रुपया दिए वह आदमी नहीं सधेगा। (५) लक्ष्य ठीक होना। निशाना ठीक होना। (६) घोड़े आदि का शिक्षित होना। निकलना। (७) ठीक नपना। नापा जाना। जैसे,—अँगरखा सधना।

सधर-संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर का ओंठ।

सधर्म-वि० [सं०] (१) समान गुण या क्रियावाला। एक ही प्रकार का। (२) तुल्य। समान।

सधवा-संज्ञा स्त्री० [हिं० विधवा] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। जो विधवा न हो। सुहागिन। सौभाग्यवती।

सधाना-क्रि० स० [हिं० सधना का प्रे०] साधने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को साधने में प्रवृत्त करना।

सधावर-संज्ञा पुं० [हिं० सधवा] वह उपहार जो गर्भवती स्त्री को गर्भ के सातवें महीने दिया जाता है।

सधूमवर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक जिह्वा।

सधोर†-संज्ञा पुं० दे० "सधावर"।

सध्रीची-संज्ञा स्त्री० [सं० सध्रीचीन=समान उद्देश्यवाला] सखी। (डिं०)

सनंका†-संज्ञा पुं० [अनु० सन् सन्] सन्नाटा। स्तब्धता। नीरवता।

सनंदन-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों में से एक मानसपुत्र।

विशेष—ये कपिल के भी पूर्व सांख्य मत के प्रवर्त्तक कहे गए हैं।

यौ०—सनक सनंदन।

सन्-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वर्ष। साल। संवत्सर। (२) कोई विशेष वर्ष। संवत्। जैसे,—सन् ईसवी, सन् हिजरी।

सन-संज्ञा पुं० [सं० शण] बोया जानेवाला एक प्रसिद्ध पौधा जिसकी छाल के रेशे से मजबूत रस्सियाँ आदि बनती हैं।

विशेष—यह तीन साढ़े तीन हाथ ऊँचा होता है और इसका कांड सीधी छड़ी की तरह दूर तक ऊपर जाता है। फूल पीले रंग के होते हैं। कुआरी फसल के साथ यह खेतों में बोया जाता है और भादों कुआर में तैयार हो जाता है। रेशेदार छिलका अलग करने के लिये इसके डंठल पानी में डालकर सड़ाए जाते हैं।

छ† प्रत्य० [सं० संग] अवधी में करण-कारक का चिह्न से। साथ।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] वेग से निकल जाने का शब्द। जैसे,—तीर सन से निकल गया।

संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों में से एक मानसपुत्र।

वि० [अनु० सुन सन] (१) सन्नाटे में आया हुआ। स्तब्ध। ठक। (२) मौन। चुप।

मुहा०—जी सन होना=चित्त स्तब्ध होना। घबरा जाना।

सनई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सन] छोटी जाति का सन।

सनक-संज्ञा स्त्री० [सं० शंक=शंका] (१) किसी बात की धुन। मन की झोंक। वेग के साथ मन की प्रवृत्ति।

मुहा०—सनक चढ़ना या सवार होना=धुन होना।

(२) उन्माद की सी वृत्ति। खब्त। जुनून।

संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों में से एक।

विशेष—ये परम ज्ञानी और विष्णु के सभासद माने गए हैं। शेष के नाम हैं—सन, सनत्कुमार और सनंदन।
यौ०—सनकसनंदन।

सनकना–क्रि० अ० [हिं० सनक] पागल हो जाना। पगलाना। झक्की हो जाना।
क्रि० अ० [अनु० सनसन] वेग से हवा में जाना या फेंका जाना। जैसे,—तीर सनकना, गोले सनकना।

सनकाना–क्रि० स० [हिं० सनकना का प्रेर०] किसी को सनकने में प्रवृत्त करना।

सनकारना⊛†–क्रि० स० [हिं० सैन + करना] (१) संकेत करना। इशारा करना। (२) इशारे से बुलाना। (३) किसी काम के लिये इशारा करना। उ०—तुलसी सभीत-पाल सुमिरे कृपालु राम समय सुकरुना सराहि सनकार दी।—तुलसी।
संयो० क्रि०—देना।

सनकियाना–क्रि० स० [सं० संकेतन, हिं० सैन] इशारा करना। संकेत करना।
क्रि० अ० दे० "सनकना"।
क्रि० स० दे० "सनकाना"।

सनकुरंगी–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा पेड़।
विशेष—इस के हीर की लकड़ी बहुत मजबूत और स्याही लिए लाल होती है। इसकी कुर्सियाँ आदि बनती हैं। यह वृक्ष तिनेवली और ट्रावनकोर में अधिक पाया जाता है।

सनत्–संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

सनत्कुमार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों में से एक। वैधात्र।
विशेष—ये सब से पहले प्रजापति कहे गए हैं।
(२) बारह सार्वभौमों या चक्रवर्तियों में से एक। (जैन)

सनत्सुजात–संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा के सात मानस पुत्रों में से एक मानसपुत्र।

सनघा–संज्ञा पुं० [हिं० सन] वह वृक्ष जिस पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। जैसे,—शहतूत, बेर।

सनद–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) तकिया गाह। (२) भरोसा करने की वस्तु। (३) प्रमाण। सबूत। दलील। (४) प्रमाणपत्र। सर्टिफिकेट।

सनदयाफ़्ता–वि० [अ० सनद + फ़ा० याफ़्तः] (१) जिसे किसी बात की सनद मिली हो। प्रमाणपत्र-प्राप्त। (२) किसी परीक्षा में उत्तीर्ण।

सनना–क्रि० अ० [सं० संभम् = मिल कर मिलना] (१) जल के योग से किसी चूर्ण के कणों का एक में मिलना या लगना। गीला होकर लेई के रूप में मिलना। जैसे,—आटा सनना। (२) गीली वस्तु के साथ मिलना। आप्लावित होना। ओत प्रोत होना। जैसे,—कपड़ा कीचड़ में सन गया। (३) लिप्त होना। पगना। एक में मिलना। लीन होना। उ०—बोलत बैन सनेह सने।—सूर।
संयो० क्रि०—जाना।

सननी–संज्ञा स्त्री० [हिं० सनना] पानी में भिगाया हुआ भूसा या सूखा चारा जो चौपायों को दिया जाता है। सानी।

सनम–संज्ञा पुं० [अ०] प्रिय। प्रियतम। प्यारा।

सनमान–संज्ञा पुं० दे० "सम्मान"।

सनमानना–⊛ क्रि० स० [सं० सम्मान + ना (प्रत्य०)] खातिर करना। आदर करना। सत्कार करना। उ०—नृप मुनि आगे आइ पूजि सनमानेउ।—तुलसी।

सनमुख–⊛ अव्य० दे० "सम्मुख"।

सनसनाना–क्रि० अ० [अनु० सन सन] (१) हवा में झोंके से निकलने या जाने का शब्द होना। (२) खौलते हुए पानी का शब्द होना। (३) हवा बहने का शब्द होना।

सनसनाहट–संज्ञा पुं० [हिं० सनसनाना] (१) हवा बहने का शब्द। (२) हवा में किसी वस्तु के वेग से निकलने का शब्द। (३) खौलते हुए पानी का शब्द। (४) सनसनी।

सनसनी–संज्ञा स्त्री० [अनु० सन सन] (१) संवेदन सूत्रों में एक प्रकार का स्पंदन। झनझनाहट। झुनझुनी। जैसे,—दवा पीते ही शरीर में सनसनी सी मालूम हुई। (२) अत्यंत भय, आश्चर्य आदि के कारण उत्पन्न स्तब्धता। ठक रह जाने का भाव। (३) उद्वेग। घबराहट। खलबली। क्षोभ।
क्रि० प्र०—फैलना।
(४) सन्नाटा। नीरवता।

सनहकी–संज्ञा स्त्री० [अ० सहनक] मिट्टी का एक बरतन जो बहुधा मुसल्मान काम में लाते हैं।

सनहाना–संज्ञा पुं० [देश०] वह नाँद या बड़ा बरतन जिसमें भरे हुए खटाई मिले जल में धोने के पूर्व बरतन फूलने के लिये डाले जाते हैं।

सना–संज्ञा स्त्री० दे० "सनाय"।

सनाढ्य–संज्ञा पुं० [सं० सन = दक्षिणा + आढ्य = संपन्न] ब्राह्मणों की एक शाखा जो गौड़ों के अंतर्गत कही जाती है।

सनातन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल। अत्यंत पुराना समय। अनादि काल। जैसे,—यह बात सनातन से चली आती है। (२) प्राचीन परंपरा बहुत दिनों से चला आता हुआ क्रम। (३) ब्रह्मा। (४) विष्णु। (५) वह जिसे सब श्राद्धों में भोजन कराना कर्तव्य हो। (६) ब्रह्मा के एक मानसपुत्र।
वि० (१) अत्यंत प्राचीन। बहुत पुराना। जिसके आदि का पता न हो। अनादि काल का। (२) जो बहुत दिनों से चला आता हो। परंपरागत। जैसे,—सनातन रीति, सनातन धर्म। (३) नित्य। सदा रहनेवाला। शाश्वत।

सनातन धर्म–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन धर्म। (२) परंपरागत धर्म। (३) वर्त्तमान हिंदू धर्म का वह स्वरूप जो परंपरा से चला आता हुआ माना जाता है और जिसमें पुराण,

तंत्र, बहुदेवोपासना, प्रतिमापूजन, तीर्थ माहात्म्य आदि सब समान रूप से माननीय हैं। साधारण जनता के बीच प्रचलित हिंदू धर्म।

सनातन पुरुष-संज्ञा [सं०] विष्णु भगवान्। उ०—पुरुष सनातन की बधू क्यों न चंचला होय।—रहीम।

सनातनी-संज्ञा पुं० [सं० सनातन+ई (प्रत्य०)] (१) जो बहुत दिनों से चला आता हो। जिसकी परंपरा बहुत पुरानी हो। (२) सनातन धर्म का अनुयायी।

सनाथ-वि० [सं०] [स्त्री० सनाथा] जिसकी रक्षा करनेवाला कोई स्वामी हो। जिसके ऊपर कोई मददगार या सरपरस्त हो। उ०—हौं सनाथ ह्वैहौं सही जौ लघुतहि न मितैहौ।—तुलसी।

मुहा०—सनाथ करना = शरण में लेना। आश्रय देना। सहायक होना।

सनाभि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सहोदर भाई। (२) एक ही पूर्वज से उत्पन्न पुरुष। सपिंड।

सनाभ्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक ही कुल का पुरुष। सात पीढ़ियों के भीतर एक ही वंश का मनुष्य। सपिंड।

सनाय-संज्ञा स्त्री० [अ० सना] एक पौधा जिसकी पत्तियाँ दस्तावर होती हैं। स्वर्णपत्री। सोनामुखी।

विशेष—इस पौधे की अधिकतर जातियाँ अरब, मिस्र, यूनान, इटली आदि पश्चिम के देशों में होती हैं। केवल एक जाति का पौधा भारतवर्ष के सिंध, पंजाब, मदरास आदि प्रांतों में थोड़ा बहुत होता है। इसकी पत्तियाँ इमली की तरह एक सींके के दोनों ओर लगती हैं। एक सींके में ५ से ८ जोड़े तक पत्तियाँ लगती हैं जो देखने में पीलापन लिए हरे रंग की होती हैं। इसमें चिपटी लंबी फलियाँ लगती हैं जो सिरे पर गोल होती हैं। इसकी पत्तियों का जुलाब हकीम और वैद्य दोनों साधारणतः दिया करते हैं। फलियों में भी रेचन गुण होता है, पर पत्तियों से कम। वैद्यक में सनाय रेचक तथा मंदाग्नि, विषम ज्वर, अजीर्ण, प्लीहा, यकृत, पांडु रोग आदि को दूर करनेवाली कही गई है।

सनासन-संज्ञा पुं० दे० "सनसन"।

सनाह-संज्ञा पुं० [सं० सन्नाह] कवच। बकतर। उ०—उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ तहँ गाल बजावन लागे।—तुलसी।

सनि॥-संज्ञा पुं० दे० "शनि"।

सनीचर-संज्ञा पुं० दे० "शनैश्चर"।

सनीचरी-संज्ञा पुं० [हिं० सनीचर] शनि की दशा, जिसमें दुःख, व्याधि आदि की अधिकता होती है।

मुहा०—मीन की सनीचरी = मीन राशि पर शनि की स्थिति जो दशा जिसका फल राजा और प्रजा दोनों का नाश माना जाता है। उ०—एक तौ कराल कलिकाल सूल मूल ता में कोढ़ में की खाज सी सनीचरी है मीन की।—तुलसी।

सनोड़-अव्य० [सं०] (१) पड़ोस में। बगल में। (२) समीप। निकट।

-वि० (१) पड़ोसी। बगल का। (२) पास का। समीप का।

सनेह॥†-संज्ञा पुं० दे० "स्नेह"।

सनेहिया॥†-संज्ञा पुं० दे० "सनेही"।

सनेही-वि० [सं० स्नेही, स्नेहिन्] स्नेह या प्रेम करनेवाला। प्रेमी।

संज्ञा पुं० चाहनेवाला। प्रियतम। प्यारा।

सनै सनै॥-अव्य० दे० "शनैः शनैः"।

सनोबर-संज्ञा पुं० [अ०] चीड़ का पेड़।

सन्न-संज्ञा पुं० [सं०] चिरौंजी का पेड़। पियाल वृक्ष।

वि० [सं० शून्य, हिं० सुन्न] (१) संज्ञा शून्य। संवेदन-रहित। बिना चेतना का सा। स्तब्ध। जड़। जैसे,—यह भीषण संवाद सुनते ही वह सन्न रह गया। (२) भौचक। ठक। स्तंभित। (३) एक बारगी खामोश। सहसा मौन। एक दम चुप। (४) डर से चुप। भय से नीरव। जैसे,—उसके डाँटते ही वह सन्न हो गया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—सन्न मारना = सन्नाटा खींचना। एक बारगी चुप हो जाना।

सन्नत-वि० [सं०] (१) झुका हुआ। (२) नीचे गया हुआ।

संज्ञा पुं० राम की सेना का एक बंदर।

सन्नति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) झुकाव। (२) नम्रता। विनय। (३) किसी ओर प्रवृत्ति। मन का झुकाव। (४) कृपा दृष्टि। मेहरबानी। (५) दक्ष की पुत्री और क्रतु की स्त्री का नाम। (६) ध्वनि। आवाज़।

सन्नद्ध-वि० [सं०] (१) बँधा हुआ। कसा या जकड़ा हुआ। (२) कवच आदि बाँध कर तैयार। (३) तैयार। आमादः। उद्यत। (४) लगा हुआ। जुड़ा हुआ। मिला हुआ। (५) पास का। समीप का।

सन्नय-संज्ञा पुं० [सं०] समूह। झुंड।

सन्नाटा-संज्ञा पुं० [सं० शून्य, हिं० सुन्न+आटा (प्रत्य०)] (१) चारों ओर किसी प्रकार का शब्द न सुनाई पड़ने की अवस्था। निःशब्दता। नीरवता। निस्तब्धता। जैसे,—मेला उठ जाने पर वहाँ सन्नाटा हो गया।

क्रि० प्र०—करना।—छाना।—फैलना।—होना।

(२) किसी प्राणी के न होने का भाव। निर्जनता। निरालापन। एकांतता। जैसे,—वहाँ सन्नाटे में पुकारने से भी कोई न सुनेगा। (३) अत्यंत भय या आश्चर्य के कारण उत्पन्न मौन और निश्चेष्टता। ठक रह जाने का भाव। स्तब्धता।

मुहा०—सन्नाटे में आना = ठक रह जाना। स्तंभित हो जाना। कुछ कहते सुनते न बनना।

(४) सहसा मौन। एक दम खामोशी। चुप्पी।

मुहा०—सन्नाटा खींचना या मारना = एक बारगी चुप हो जाना। एक दम मौन हो जाना।

(५) चहल पहल का अभाव। विनोद या मनोरंजन का न होना। उदासी।

मुहा०—सन्नाटा बीतना = उदासी में समय कटना।

(६) काम धंधे से गुलज़ार न रहना। जैसे,—अब तो कारखाने में सन्नाटा रहता है।

वि० (१) जहाँ किसी प्रकार का शब्द आदि न सुनाई पड़ता हो। नीरव। स्तब्ध। (२) निर्जन। निराला। जैसे,—सन्नाटा मैदान।

संज्ञा पुं० [अनु० सन सन] (१) हवा के जोर से चलने की आवाज। वायु के बहने का शब्द। जैसे,—आज तो बड़े सन्नाटे की हवा है।

मुहा०—सन्नाटे का = सन सन शब्द के साथ बहता हुआ।

(२) हवा चीरते हुए तेजी से निकल जाने का शब्द। वेग से वायु में गमन करने का शब्द।

मुहा०—सन्नाटे के साथ या सन्नाटे से = वेग से। झोंके से। बड़ी तेजी से। जैसे,—तीर सन्नाटे से निकल गया।

सन्नादन–संज्ञा पुं० [सं०] राम की सेना का एक यूथप बंदर।

सन्नाह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कवच। बकतर। (२) उद्योग। प्रयत्न।

सन्नाह्य–संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध के योग्य एक विशेष प्रकार का हाथी।

सन्निकट–अव्य० [सं०] समीप। पास। निकट।

सन्निकर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० सन्निकृष्ट] (१) संबंध। लगाव। (२) नाता। रिश्ता। (३) सामीप्य। समीपता। (४) इंद्रियों का विषयों के साथ संबंध। (न्याय)

विशेष—यही ज्ञान का कारण है और लौकिक तथा अलौकिक दो प्रकार का कहा गया है।

(५) पात्र। आधार। आश्रय।

सन्निकाश–वि० [सं०] उसी रूप रंग का। सदृश। समान।

सन्निध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सामीप्य। (२) आमने सामने की स्थिति।

सन्निधान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आमने सामने की स्थिति। निकटता। समीपता। (३) रखना। धरना। (४) स्थापित करना। (५) किसी वस्तु के रखने का स्थान। (६) वह स्थान जहाँ धन एकत्र किया जाय। निधि।

सन्निधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) समीपता। निकटता। (२) आमने सामने की स्थिति। (३) पड़ोस।

सन्निपात–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साथ गिरना या पड़ना। (२) जुटना। भिड़ना। टकराना। (३) संयोग। मेल। मिश्रण। (४) इकट्ठा होना। एक साथ जुटना। (५) कफ, वात और पित्त तीनों का एक साथ बिगड़ना। त्रिदोष। सरसाम।

विशेष—यह वास्तव में कोई अलग रोग नहीं है, बल्कि एक विशेष अवस्था है जो ज्वर या और किसी व्याधि के बिगड़ने पर होती है। यह कई प्रकार का होता है। सब से साधारण रूप यह है जिसमें रोगी का चित्त भ्रांत हो जाता है, वह अंडबंड बकने लगता है तथा उछलता कूदता है। आयुर्वेद में १३ प्रकार के सन्निपात कहे गए हैं—संधिग, अंतक, रुग्दाह, चित्तभ्रम, शीतांग, तंद्रिक, कंठकुब्ज, कर्णक, भुग्न-नेत्र, रक्तष्ठीव, प्रलाप, जिह्वक और अभिन्यास।

(६) एक साथ कई बातों का घटना या ठीक उतरना। (७) समाहार। समूह।

सन्निबंध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक में बाँधना। जकड़ना। (२) लगाव। संबंध। (३) प्रभाव। तासीर। (४) फल। परिणाम।

सन्निबद्ध–वि० [सं०] (१) एक में बँधा हुआ। जकड़ा हुआ। (२) लगा हुआ। अड़ा हुआ। फँसा हुआ। (३) सहारे पर टिका हुआ। आश्रित।

सन्निभ–वि० [सं०] सदृश। समान। मिलता जुलता।

सन्निभृत–वि० [सं०] (१) अच्छी तरह छिपाया हुआ। गुप्त। (२) समझ बूझकर बोलनेवाला।

सन्निमग्न–वि० [सं०] (१) खूब डूबा हुआ। (२) सोया हुआ।

सन्निरुद्ध–वि० [सं०] (१) रोका हुआ। ठहराया हुआ। अड़ाया हुआ। (२) दबाया हुआ। दमन किया हुआ। (३) ठसाठस भरा हुआ। कसा हुआ।

सन्निरोध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोक। रुकावट। बाधा। (२) दमन। निवारण। (३) तंगी। संकोच। (४) तंग रास्ता। सँकरी गली।

सन्निविष्ट–वि० [सं०] (१) एक साथ बैठा हुआ। जमा हुआ। (२) रखा हुआ। धरा हुआ। (३) स्थापित। प्रतिष्ठित। (४) लगा हुआ। जड़ा हुआ। (५) अँटा हुआ। आया हुआ। समाया हुआ। (६) पास का। समीप का। लगा हुआ।

सन्निवेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साथ बैठना। (२) जमना। स्थित होना। बैठना। (३) रखना। धरना। ठहराना। (४) लगाना। जड़ना। बैठाना। (५) अँटना। भीतर आना। समाना। (६) स्थिति। आधार। रखने की जगह। (७) आसन। बैठकी। (८) रहने की जगह। निवास। घर। (९) पुर या ग्राम के लोगों के एकत्र होने का स्थान। अथाई। चौपाल। (१०) एकत्र होना। जुटना। (११)

समूह । समाज । (१२) योजना । व्यवस्था । (१३) रचना । (१४) शकल । गठन । बनावट । आकृति । (१५) स्तंभ, मूर्ति आदि की स्थापना ।

सन्निवेशन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० सन्निवेशित, सन्निवेशी, सन्निवेश्य, सन्निविष्ट] (१) एक साथ बैठना । (२) बैठना । जमना । (३) रखना । धरना । (४) बैठाना । लगाना । जड़ना । (५) टिकाना ठहराना । अड़ाना । (६) स्थापित करना । प्रतिष्ठित करना । खड़ा करना । जैसे,—प्रतिमा या स्तंभ का सन्निवेशन । (७) विधान । व्यवस्था ।

सन्निवेशित-वि० [सं०] (१) बैठाया हुआ । जमाया हुआ । (२) ठहराया हुआ । रखा हुआ । (३) स्थापित । प्रतिष्ठित । (४) अँटाया हुआ । भीतर डाला हुआ ।

सन्निहित-वि० [सं०] (१) एक साथ या पास रखा हुआ । (२) समीपस्थ । निकटस्थ । (३) रखा हुआ । धरा हुआ । (४) ठहराया हुआ । टिकाया हुआ । अड़ाया हुआ । (५) जो कुछ करने पर हो । उद्यत । तैयार ।

सन्नोदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पशु आदि को चलाना । हाँकना । (२) प्रेरित करना । उभारना । उसकाना ।

सन्मान-संज्ञा पुं० दे० "सम्मान" ।

सन्मानना-क्रि० स० दे० "सनमानना" ।

सन्मुख-अव्य० दे० "सम्मुख" ।

सन्यसन-संज्ञा पुं० [सं० संन्यसन] [वि० संन्यस्त] (१) फेंकना । छोड़ना । अलग करना । हटाना । दूर करना । (२) सांसारिक विषयों का त्याग । दुनिया का जंजाल छोड़ना । (३) रखना । धरना । (४) बैठाना । जमाना । स्थापित करना । (५) खड़ा करना ।

सन्यस्त-वि० [सं० संन्यस्त] (१) फेंका हुआ । छोड़ा हुआ । हटाया हुआ । अलग किया हुआ । (२) रखा हुआ । धरा हुआ । (३) बैठाया हुआ । जमाया हुआ । (४) खड़ा किया हुआ ।

सन्यास-संज्ञा पुं० [सं० संन्यास] (१) छोड़ना । दूर करना । त्याग । (२) सांसारिक प्रपंचों के त्याग की वृत्ति । दुनिया के जंजाल से अलग होने की अवस्था । वैराग्य । (३) चतुर्थ आश्रम । यति धर्म ।

विशेष—यह प्राचीन भारतीय आर्यों या हिंदुओं के जीवन की चार अवस्थाओं में से अंतिम है जो पुत्र आदि के सयाने हो जाने पर ग्रहण की जाती थी । इसमें मनुष्य गृहस्थी छोड़कर जंगल या एकांत स्थान में ब्रह्मचिंतन या परलोक-साधन में प्रवृत्त रहते थे और भिक्षा द्वारा निर्वाह करते थे । इसमें किसी आचार्य से दीक्षा लेकर सिर मुँड़ाते और दंड ग्रहण करते थे । सन्यास दो प्रकार का कहा गया है—एक सक्रम अर्थात् जो ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य और वानप्रस्थ आश्रम के उपरांत ग्रहण किया जाय; दूसरा अक्रम जो बीच में ही वैराग्य उत्पन्न होने पर धारण किया जाय । बहुत दिनों तक 'संन्यास' कलिवर्ज्य माना जाता था; पर शंकराचार्य ने बौद्ध भिक्षुओं और जैन यतियों को अपने अपने धर्म का प्रचार बढ़ाते देख कलिकाल में फिर सन्यास चलाया और गिरि, पुरी, भारती आदि दस प्रकार के सन्यासियों की प्रतिष्ठा की जो दशनामी कहे जाते हैं ।

क्रि० प्र०—ग्रहण करना ।—लेना ।

(४) सहसा शरीर त्याग । एक बारगी मरण । (५) एक दम थक जाना । चरम शैथिल्य । (६) धरोहर । थाती । (७) वादा । इकरार । (८) बाज़ी । होड़ । (९) जटामासी ।

सन्यासी-संज्ञा पुं० [सं० संन्यासिन्] [स्त्री० सन्यासिनी, संन्यासिन] (१) वह पुरुष जिसने सन्यास धारण किया हो । चतुर्थ आश्रमी । (२) विरागी । त्यागी । यति ।

सपई-संज्ञा स्त्री० [हिं० साँप] (१) एक प्रकार का लंबा कीड़ा जो मनुष्यों और पशुओं की आँतों में उत्पन्न होता है । पेट का केचुआ । (२) बेला नामक फूल ।

सपक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] अनुकूल पक्ष । मुवाफ़िक राय ।

वि० (१) जो अपने पक्ष में हो । तरफ़दार । (२) समर्थक । पोषक ।

संज्ञा पुं० (१) तरफदार । मित्र । सहायक । (२) न्याय में वह बात या दृष्टांत जिसमें साध्य अवश्य हो । जैसे,—जहाँ धूआँ होता है, वहाँ आग रहती है । जैसे,—रसोईघर का दृष्टांत सपक्ष है ।

सपक्षी-वि० दे० "सपक्ष" ।

सपटा-संज्ञा पुं० [देश०] (१) सफेद कचनार । (२) एक प्रकार का टाट ।

सपट्टी-संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वार के चौखट की दोनों खड़ी लकड़ियाँ । बाजू ।

सपड़ना‡-क्रि० अ० दे० "सपरना" ।

सपड़ाना‡-क्रि० स० दे० "सपराना" ।

सपत्न-संज्ञा पुं० [सं०] वैरी । शत्रु । विरोधी ।

सपत्नजित्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शत्रु को जीतनेवाला । (२) सुदत्ता के गर्भ से उत्पन्न कृष्ण के एक पुत्र का नाम ।

सपत्नता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैर । शत्रुता ।

सपत्नारि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ठोस बाँस जिसके डंडे या छड़ियाँ बनती हैं ।

सपत्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ही पति की दूसरी स्त्री । जो अपने ही पति की दूसरी स्त्री हो । सौत । सौतिन ।

सपत्नीक-वि० [सं०] स्त्री के सहित । जोरू के साथ । जैसे,—आप सपत्नीक तीर्थ करने जायँगे ।

सपथ-संज्ञा पुं० दे० "शपथ" ।

सपदि-अव्य० [सं०] उसी समय । तुरंत । शीघ्र । जल्द ।

सपन–|संज्ञा पुं० दे० "सपना"।

सपना-संज्ञा पुं० [सं० स्वप्न] (१) वह दृश्य जो निद्रा की दशा में दिखाई पड़े। नींद में अनुभव होनेवाली बात। (२) निद्रा की दशा में दृश्य देखना।

मुहा०—सपना होना = देखने को भी न मिलना। दुर्लभ हो जाना।

सपरदाई-संज्ञा पुं० [सं० संप्रदायी] गानेवाली तवायफ़ के साथ (तबला, सारंगी आदि) बजानेवाला। भँड़ुवा। समाजी। साजिन्दा।

सपरना-क्रि० अ० [सं० संपादन, प्रा० संपाडन] (१) किसी काम का पूरा होना। समाप्त होना। निपटना। (२) काम का किया जा सकना। हो सकना। जैसे,—यह काम हमसे नहीं सपरेगा।

मुहा०—सपर जाना = मर जाना।

(३) तैयारी करना। तैयार होना।

सपराना-क्रि० स० [हिं० सपरना] (१) काम पूरा करना। निपटाना। खतम करना। (२) पूरा कर सकना। कर सकना।

सपरिकर-वि० [सं०] अनुचर वर्ग के साथ। ठाठ बाट के साथ।

सपरिच्छद-वि० [सं०] तैयारी के साथ। ठाठ बाट के साथ। जुलूस के साथ।

सपर्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] पूजा। आराधना। उपासना।

सपाट-वि० [सं० स + पट्ट, हिं० पाट = पीढ़ा] (१) बराबर। हमवार। समतल। (२) जिसकी सतह पर कोई उभरी या जमी हुई वस्तु न हो। चिकना।

सपाटा-संज्ञा पुं० [सं० सर्पण = सरकना] (१) चलने, दौड़ने या उड़ने का वेग। झोंक। तेज़ी। जैसे,—सपाटे के साथ दौड़ना। (२) शीघ्र गति। दौड़। झपट। झपटा।

क्रि० प्र०—भरना।—मारना।—लगाना।

यौ०—सैर सपाटा = घूमना फिरना।

सपाद-वि० [सं०] (१) चरण सहित। (२) चतुर्थांश और अधिक के साथ। जिसमें एक का चौथाई और मिला हो। जैसे, सवा दो, सवा तीन, सवा चार।

यौ०—सपाद लक्ष = सवा लाख। एक लाख पचीस हजार।

सपिंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक ही कुल का पुरुष जो एक ही पितरों को पिंडदान करता हो। एक ही खानदान का।

विशेष—छः पीढ़ी ऊपर और छः पीढ़ी नीचे तक के लोग सपिंड की गणना में आते हैं। इनके अतिरिक्त माता, नाना और पड़नाना आदि, कन्या, कन्या का पुत्र और पौत्र आदि तथा पिता माता के भाई बहिन आदि बहुत से आते हैं।

सपिंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मृतक के निमित्त वह कर्म जिसमें वह और पितरों या परिवार के मृत प्राणियों के साथ पिंडदान द्वारा मिलाया जाता है।

सपीतक-संज्ञा पुं० [सं०] घीया तुरई। नेनुवा।

सपीतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] लंबी घीया या कद्दू।

सपुलक-वि० [सं०] पुलक या हर्ष के साथ।

सपूत-संज्ञा पुं० [सं० सत्पुत्र, प्रा० सपुत्त, सउत्त] वह पुत्र जो अपने कर्तव्य का पालन करे। अच्छा पुत्र। उ०—सूर सुजान सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई।—तुलसी।

सपूती-संज्ञा स्त्री० [हिं० सपूत + ई० (प्रत्य०)] (१) सपूत होने का भाव। लायकी। (२) योग्य पुत्र उत्पन्न करनेवाली माता।

सपेत, सपेद|‡-वि० [फ़ा० सफ़ेद, मि० सं० श्वेत] सफ़ेद।

सपेती|‡-संज्ञा स्त्री० दे० "सफ़ेदी"।

सपेरा-संज्ञा पुं० दे० "सँपेरा"।

सपेला-संज्ञा पुं० [हिं० साँप + एला (प्रत्य०)] साँप का छोटा बच्चा।

सपोला-संज्ञा पुं० [हिं० साँप + ओला (प्रत्य०)] साँप का छोटा बच्चा।

सप्त-वि० [सं०] गिनती में सात।

सप्तऋषि-संज्ञा पुं० दे० "सप्तर्षि"।

सप्तक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सात वस्तुओं का समूह। (२) संगीत में सात स्वरों का समूह।

सप्तकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों का कमरबंद।

सप्तकृत-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वेदेवा में से एक।

सप्तगुण-वि० [सं०] सात बार और। सतगुना।

सप्तग्रही-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ही राशि में सात ग्रहों का एकत्र होना।

सप्तचत्वारिंश-वि० [सं०] सैंतालीसवाँ।

सप्तचत्वारिंशत्-वि० [सं०] सैंतालीस।

सप्तच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] सप्तपर्ण वृक्ष। छतिवन।

सप्तजिह्व-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि, जिसकी सात जिह्वाएँ मानी गई हैं।

सप्तति-वि० [सं०] सत्तर।

सप्ततितम-वि० [सं०] सत्तरवाँ।

सप्तत्रिंश-वि० [सं०] सैंतीसवाँ।

सप्तत्रिंशत्-वि० [सं०] सैंतीस।

सप्तदश-वि० [सं०] सत्तरहवाँ।

वि० [सं० सप्तदशन्] सत्तरह।

सप्तदशम-वि० [सं०] सत्तरहवाँ।

सप्तद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार पृथ्वी के सात बड़े और मुख्य विभाग।

विशेष—सात द्वीप ये हैं—जम्बू द्वीप, कुश द्वीप, प्लक्ष द्वीप, शाल्मलि द्वीप, क्रौंच द्वीप, शाक द्वीप और पुष्कर द्वीप।

सप्तधातु-संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद के अनुसार शरीर के सात

संयोजक द्रव्य अर्थात् रक्त, पित, मांस, वसा, मज्जा, अस्थि और शुक्र।

वि० सात धातुओं से बना हुआ। जैसे,—शरीर।

संज्ञा पुं० चंद्रमा के घोड़ों में से एक।

सप्तधान्य-संज्ञा पुं० [सं०] जौ, धान, उरद आदि सात अन्नों का मेल जो पूजा में काम आता है।

सप्तनाड़िका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंघाड़ा।

सप्तनाड़ी चक्र-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में सात टेढ़ी रेखाओं का एक चक्र जिसमें सब नक्षत्रों के नाम भरे रहते हैं और जिसके द्वारा वर्षा का आगम बताया जाता है।

सप्तनामा-संज्ञा स्त्री० [सं०] आदित्यभक्ता। हुलहुल नाम का पौधा।

सप्तपंचाश-वि० [सं०] सत्तावनवाँ।

सप्तपंचाशत्-वि० [सं०] सत्तावन।

सप्तपत्र-वि० [सं०] (१) जिसमें सात पत्ते या दल हों। (२) जिसके वाहन सात घोड़े हों।

संज्ञा पुं० (१) मोतिया। मोगरा बेला। (२) सप्तपर्ण वृक्ष। छतिवन। (३) सूर्य।

सप्तपदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विवाह की एक रीति जिसमें वर और वधू अग्नि के चारों ओर सात परिक्रमाएँ करते हैं और जिससे विवाह पक्का हो जाता है। भाँवर। भँवरी। (२) किसी बात को अग्नि की साक्षी देकर पक्का करना।

सप्तपदी पूजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] विवाह के अवसर पर होनेवाला एक पूजन।

विशेष—इसमें एक लोढ़ा वर और वधू के आगे रखकर वर को उसे पूजने को कहा जाता है, पर वह उसे पैर से हटा देता है।

सप्तपदाक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सप।

सप्तपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छतिवन का पेड़। (२) एक प्रकार की मिठाई।

सप्तपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] लज्जालु। लजावंती लता।

सप्तपलाश-संज्ञा पुं० दे० "सप्तपर्ण"।

सप्तपाताल-संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी के नीचे के सात लोक जिनके नाम ये हैं—अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल।

सप्तपुत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] तुरई की तरह की सतपुतिया नाम की तरकारी।

सप्तपुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सात पवित्र नगर या तीर्थ जो मोक्षदायक कहे गए हैं।

विशेष—अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, कांची, अवंतिका (उज्जयिनी) और द्वारका ये सात पवित्र पुरियाँ हैं।

सप्तप्रकृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] राज्य के सात अंग जो ये हैं—राजा, मंत्री, सामंत, देश, कोश, गढ़ और सेना।

सप्तबाह्य-संज्ञा पुं० [सं०] वाह्लीक देश। बलख।

सप्तभंगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन न्याय या तर्क के सात अवयव जिन पर स्याद्वाद की प्रतिष्ठा है।

विशेष—ये सातो अवयव या सूत्र स्यात् शब्द से आरंभ होते हैं। यथा—स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिचनास्ति, स्याद्वक्तव्य, स्यादस्तिचावक्तव्य, स्यान्नास्तिचावक्तव्य, स्यादस्तिचनास्तिचावक्तव्य।

सप्तभद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिरिस। शिरीष वृक्ष। (२) देवारी। नवमल्लिका। (३) गुंजा। घिरमटी।

सप्तभुवन-संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर के सात लोक। दे० "लोक"।

सप्तभूम-संज्ञा पुं० [सं०] मकान के सात खंड या मरातिब।

वि० सात खंडों का। सतमंजिला।

सप्तम-वि० [सं०] [स्त्री० सप्तमी] सातवाँ।

सप्तमातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सात माताएँ या शक्तियाँ जिनका पूजन विवाह आदि शुभ अवसरों के पहले होता है।

विशेष—इनके नाम ये हैं—ब्राह्मी या ब्राह्मणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ऐंद्री या इंद्राणी और चामुंडा।

सप्तमी-वि० स्त्री० [सं०] सातवीं।

संज्ञा स्त्री० (१) किसी पक्ष की सातवीं तिथि। किसी पक्ष का सातवाँ दिन। (२) अधिकरण कारक की विभक्ति का नाम। (व्याकरण)

सप्तमुष्टिक-संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर की एक औषधि जो कई द्रव्यों के योग से बनती है।

सप्तमृत्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शांति पूजन में काम आनेवाली सात स्थानों की मिट्टी।

विशेष—राजद्वार की, गजशाला की तथा इसी प्रकार और स्थानों की मट्टी मँगाई जाती है।

सप्तरक्त-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के सात अवयव जिनका रंग लाल होता है। यथा—हथेली, तलवा, जीभ, आँख या पलक का निचला भाग, तालु और ओठ।

सप्तराव-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

सप्तराशिक-संज्ञा पुं० [सं०] गणित की एक क्रिया जिसमें सात राशियाँ होती हैं।

सप्तरुचि-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि का एक नाम।

सप्तर्षि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सात ऋषियों का समूह या मंडल।

विशेष—शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सात ऋषियों के नाम ये हैं—गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, यमदग्नि, वसिष्ठ, कश्यप और अत्रि। महाभारत के अनुसार—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य और वसिष्ठ।

(२) उत्तर दिशा में स्थित सात तारों का समूह जो ध्रुव के चारों ओर फिरता दिखाई पड़ता है।

सप्तर्पिंज–संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।

सप्तला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सातला। (२) नवमल्लिका। चमेली। (३) रीठा। (४) गुंजा। घुँघची। चिरमटी।

सप्तवादी–संज्ञा पुं० [सं० सप्तवादिन्] सप्तभंगी न्याय का अनुयायी। जैन।

सप्तविंश–वि० [सं०] सत्ताईसवाँ।

सप्तविंशति–वि० [सं०] सत्ताइस।

संज्ञा स्त्री० सत्ताइस की संख्या या अंक।

सप्तविंशतिम–वि० [सं०] सत्ताइसवाँ।

सप्तशत–वि० [सं०] सात सौ।

सप्तशती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सात सौ का समूह। (२) सात सौ पद्यों का समूह। सतसई। जैसे,—दुर्गा सप्तशती, आर्य्या सप्तशती।

संज्ञा पुं० बंगाल में ब्राह्मणों की एक जाति।

सप्तशिरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली।

सप्तशीर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

सप्तषष्ठ–वि० [सं०] सड़सठवाँ।

सप्तषष्ठि–वि० [सं०] सड़सठ।

सप्तसप्तत–वि० [सं०] सतहत्तरवाँ।

सप्तसप्तति–वि० [सं०] सतहत्तर।

सप्तसप्ति–वि० [सं०] जिसके रथ में सात घोड़े हों।

संज्ञा पुं० सूर्य्य।

सप्तसागर दान–संज्ञा पुं० [सं०] एक दान जिसमें सात पात्रों में घी, दूध, मधु, दही आदि रखकर ब्राह्मण को देते हैं।

सप्तसिरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] तांबूल। पान।

सप्तस्पर्शा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम। (रामायण)

सप्त स्वर–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत के सात स्वर–स, ऋ, ग, म, प, ध, नि।

सप्तांशु–संज्ञा पुं० [सं०] शनि ग्रह।

सप्तार्चि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) शनि। (३) चित्रक वृक्ष। चीता।

सप्तालु–संज्ञा पुं० [सं०] सतालू। शफतालू।

सप्ताशीति–वि० [सं०] सत्तासी।

सप्ताश्व–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य (जिनके रथ में सात घोड़े हैं।)

सप्ताह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सात दिनों का काल। हफ्ता। (२) कोई यज्ञ या पुण्य कर्म जो सात दिनों में समाप्त हो। (३) भागवत की कथा जो सात ही दिनों में सब पढ़ी या सुनी जाय। (इसका बहुत शुभ फल माना जाता है।)

क्रि० प्र०—बाँचना।—सुनना।

सप्पम–संज्ञा पुं० [देश०] बक्कम का पेड़।

सप्रमाण–वि० [सं०] (१) प्रमाण सहित। सबूत के साथ। (२) प्रामाणिक। ठीक।

सफ–संज्ञा पुं० दे० "शफ"।

सफ़–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) पंक्ति। कतार।

क्रि० प्र०—बाँधना।

(२) लंबी चटाई। सीतल पाटी। (३) बिछावन। फर्श। बिस्तर।

सफगोल–संज्ञा पुं० दे० "इसबगोल"।

सफतालू–संज्ञा पुं० [सं० सप्तालु, फ़ा० शफ़तालू] एक पेड़ जिसके गोल फल खाए जाते हैं। सतालू। आड़ू।

विशेष—यह हिंदुस्तान में ठंढी जगहों में होता है। पेड़ मझोले आकार का और लकड़ी लाल मज़बूत और सुगंधित होती है। पत्ते लंबे नोकदार तथा कालापन लिये गहरे हरे रंग के होते हैं। पतझड़ के पीछे पत्तियाँ निकलने के पहले ही इसमें फूल लग जाते हैं जो गुलाबी रंग के होते हैं। फल पकने पर कुछ लाल और कुछ हरे होते हैं और उनके ऊपर महीन महीन रोइयाँ सी होती हैं। बीजों में बादाम की तरह का कड़ा छिलका होता है।

सफ़र–संज्ञा पुं० [अ०] (१) प्रस्थान। यात्रा। रास्ते में चलना। (२) रास्ते में चलने का समय या दशा। जैसे,—सफ़र में बहुत सामान नहीं रखना चाहिए।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सफरदाई–संज्ञा पुं० दे० "सपरदाई"।

सफर मैना–संज्ञा स्त्री० [अं० सैपर माइनर] सेना के वे सिपाही जो सुरंग लगाने तथा खाई आदि खोदने को आगे चलते हैं।

सफ़रा–संज्ञा पुं० [अ०] पित्त।

सफ़री–वि० [अ० सफ़र] सफ़र में का। सफर में काम आनेवाला। यात्रा के समय का। जैसे,—सफ़री बिस्तर।

संज्ञा पुं० (१) राह खर्च। रास्ते का सामान। (२) अमरूद।

उ०—श्रीफल मधुर चिरौंजी आनि। सफरी चिरुआ अरु नव पानी।—सूर।

सफरी–संज्ञा स्त्री० [सं० शफरी] एक प्रकार की मछली। सौरी मछली।

सफरोल–संज्ञा पुं० [?] कपूर के लाल तेल से तैयार होनेवाली एक दवा या मसाला।

सफल–वि० [सं०] (१) जिसमें फल लगा हो। फल से युक्त। (२) जिसका कुछ परिणाम हो। जो व्यर्थ न जाय। सार्थक। जैसे,—तुम्हारा परिश्रम सफल हो गया। (३) पूरा होना। जैसे,—मनोरथ सफल होना। (४) कृतकार्य्य। कामयाब। जिसका प्रयोजन सिद्ध हुआ हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) अंडकोश युक्त। जो बधिया न हो।

सफलक–वि० [सं०] जिसके पास ढाल हो।

सफलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफल होने का भाव । कामयाबी । सिद्धि । (२) पूर्णता ।

सफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] पौष मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी जो विशेष रूप से व्रत का दिन है ।

सफलीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफल करना । (२) सिद्ध करना । पूर्ण करना ।

सफलीभूत-वि० [सं०] जो सफल हुआ हो । जो सिद्ध या पूरा हुआ हो ।

सफ़हा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) रुख । तल । (२) वरक़ । पृष्ठ । पन्ना ।

सफ़ा-वि० [अ०] (१) साफ़ । स्वच्छ । निर्मल । (२) पाक । पवित्र । उ०—कोई सफा न देखा दिल का ।—काष्ठजिह्वा । (३) जो खुरदुरा न हो । चिकना । बराबर ।

सफ़ाई-संज्ञा स्त्री० [अ० सफ़ा + ई (प्रत्य०)] (१) साफ होने का भाव । स्वच्छता । निर्मलता । (२) मैल, कूड़ा करकट आदि हटाने की क्रिया । जैसे,—मकान की सफाई । (३) अर्थ या अभिप्राय प्रकट होने का गुण । (४) स्पष्टता । चित्त से दुर्भाव आदि का निकलना । मन में मैल न रहना । जैसे,—सामने बात चीत कर लो; दिलों की सफाई हो जाय । (५) कपट या कुटिलता का अभाव । दुराव का न होना । जैसे,—आज उन्होंने बड़ी सफाई से बात की । (६) दोषारोप का हटना । इलजाम का दूर होना । निर्दोषिता । जैसे,—उसने अपनी सफाई के लिये बहुत कुछ कहा ।

मुहा०—सफाई देना = निर्दोषिता प्रमाणित करना । कसूरवार न होने का सबूत देना ।

(७) ऋण का परिशोध । कर्ज़ या हिसाब का चुकता होना । बेबाकी । (८) मामले का निपटेरा । निर्णय ।

सफ़ाचट-वि० [हिं० सफ़ा] (१) एक दम स्वच्छ । बिलकुल साफ़ । (२) जिस पर कुछ जमा या लगा न रह गया हो । जो बिल्कुल चिकना हो । जैसे,—मैदान सफाचट होना । खोपड़ी सफाचट होना । (३) जो जमा या लगा न रहने दिया जाय । जो निकाल, उखाड़ या दूर कर दिया जाय । जैसे,—बाल सफाचट होना ।

सफ़ीना-संज्ञा पुं० [अ० सफ़ीनः, अं० स्पीना] (१) बही । किताब । नोट बुक । (२) अदालती परवाना । इत्तलानामा । समन ।

सफ़ीर-संज्ञा स्त्री० [?] (१) चिड़ियों की आवाज़ । (२) वह सीटी जो पक्षियों को बुलाने के लिये दी जाती है ।

संज्ञा पुं० [अ० सफ़ीर] एलची । राजदूत ।

सफ़ील-संज्ञा स्त्री० [अ० फ़सील] पक्की चहार दीवारी । शहरपनाह । परकोटा ।

सफ़ूफ़-संज्ञा पुं० [अ०] चूर्ण । बुकनी । फंकी ।

सफ़ेद-वि० [फ़ा० सुफ़ेद, सं० श्वेत] (१) जो चूने के रंग का हो । जिस पर कोई रंग न हो । धौला । श्वेत । चिट्टा । जैसे,—सफेद घोड़ा । (२) जिस पर कुछ लिखा या चिह्न न हो । कोरा । सादा । जैसे,—सफेद कागज ।

मुहा०—किसी का रंग सफेद पड़ जाना = विवर्णता होना । भय आदि से चेहरे का रंग फीका पड़ जाना । स्याह सफेद = भला बुरा । इष्ट अनिष्ट । जैसे,—स्याह सफेद सब उसी के हाथ है ।

सफ़ेद धावी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सफ़ेद + धव] एक प्रकार का बड़ा पेड़ । चकड़ी ।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय पर पाया जाता है । इसकी लकड़ी की कंघियाँ बनाई जाती हैं । इसके फूलों में सुगंध होती है । इसके पत्ते खाद के काम में आते हैं ।

सफ़ेद पलका-संज्ञा पुं० [फ़ा० सुफ़ेद + हिं० फलक] वह कबूतर जिसके पर कुछ सफ़ेद और कुछ काले हों ।

सफ़ेदपोश-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) साफ़ कपड़े पहननेवाला । (२) शिक्षित और कुलीन । भलामानस । शिष्ट ।

सफ़ेदा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सुफ़ेदा] (१) जस्ते का चूर्ण या भस्म जो दवा तथा लोहे लकड़ी आदि पर रँगाई के काम में आता है । (२) सफेद चमड़ा जो जूते आदि बनाने के काम में आता है । (३) आम का एक भेद जो लखनऊ के आसपास होता है । (४) खरबूज़े का एक भेद । (५) पंजाब और काश्मीर में होनेवाला एक बहुत ऊँचा और खंभे की तरह सीधा जानेवाला पेड़ जिसकी छाल का रंग सफेद होता है । इसकी लकड़ी सजावट के सामान बनाने के काम में आती है ।

सफ़ेदार-संज्ञा पुं० [देश०] सीसम का पेड़ ।

सफ़ेदी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सुफ़ेदी] (१) सफेद होने का भाव । श्वेतता । धवलता ।

मुहा०—सफेदी आना = बाल सफेद होना । बुढ़ापा आना ।

(२) दीवार आदि पर सफेद रंग या चूने की पोताई । चूनाकारी ।

क्रि० प्र०—करना ।—फेरना ।

(३) सूर्य्य निकलने के पहले का उज्वल प्रकाश जो पूर्व दिशा में दिखाई पड़ता है ।

सफ़्फ़ाल-संज्ञा पुं० दे० "सफनाल" ।

सब-वि० [सं० सर्व, प्रा० सब्व] (१) जितने हों, वे कुल । समस्त । जैसे,—(क) इतना सुनते ही सब लोग वहाँ से चले गए । (ख) सब किताबें अलमारी में रख दो ।

मुहा०—सब मिलाकर = जितना हो, उतना । सब । कुल ।

(२) पूरा । सारा । समस्त ।

वि० [अं०] छोटा । गौण । अप्रधान ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दों

के आरंभ में होता है। जैसे,—सब इंसपेक्टर, सब ओवर-सियर, सब आफ़िस।

सबक़–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) उतना अंश जितना एक बार में पढ़ाया जाय। पाठ।

क्रि० प्र०—देना।—पढ़ना।—पढ़ाना।—लेना।

(२) शिक्षा। नसीहत।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

सबक़त–संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी विषय में औरों की अपेक्षा आगे बढ़ जाना। विशेषता प्राप्त करना।

क्रि० प्र०—करना।—ले जाना।

सबज–वि० दे० "सब्ज़"।

सबब–संज्ञा पुं० [अ०] (१) कारण। वजह। हेतु। जैसे,—उनके नाराज़ होने का मुझे तो कोई सबब नहीं मालूम। (२) द्वार। साधन। जैसे,—बिना किसी सबब के वहाँ तक पहुँचना कठिन है।

सबर–संज्ञा पुं० दे० "सब्र"।

सबल–वि० [सं०] (१) जिसमें बहुत बल हो। बलवान्। बलशाली। ताकतवर। जैसे—जो सबल होगा, वह निर्बलों पर शासन करेगा। (२) जिसके साथ सेना हो। फौजवाला।

सबा–संज्ञा स्त्री० [अ०] वह हवा जो प्रभात और प्रातःकाल के समय पूर्व की ओर से चलती है।

सबील–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) रास्ता। मार्ग। सड़क। (२) उपाय। तरकीब। यत्न। जैसे,—वहाँ पहुँचने की कोई सबील निकालनी चाहिए। (३) वह स्थान जहाँ पर पथिकों आदि को धर्म्मार्थ जल या शरबत पिलाया जाता है।

क्रि० प्र०—पिलाना।—रखना।—लगाना।

सबू–संज्ञा पुं० [फ़ा० सुबू] मिट्टी का घड़ा। मटका। गगरी।

सबूरा–संज्ञा पुं० [अ० सुब] काठ या चमड़े आदि का बना हुआ एक प्रकार का लंबा खंड जिससे विधवा या पतिहीना स्त्रियाँ अपनी काम-वासना तृप्त करती हैं। (मुसल० स्त्रि०)

सब्ज़–वि० [फ़ा०] (१) कच्चा और ताज़ा (फल फूल आदि)।

मुहा०—सब्ज़ बाग दिखलाना = अपना काम निकालने या फँसाने के लिये बड़ी बड़ी आशाएँ दिलाना।

(२) हरा। हरित। (रंग) (३) शुभ। ...

सब्ज़-कदम = भाग्यशाली। ... में सात घोड़े हैं।)

...ताह ... [सं०] (१) सात दिनों का काल। हफ़्ता। (२) कोई यज्ञ या पुण्य कर्म जो सात दिनों में समाप्त हो। (३) भागवत की कथा जो सात ही दिनों में सब पढ़ी या सुनी जाय। (इसका बहुत शुभ फल माना जाता है।)

क्रि० प्र०—बाँचना।—सुनना।

सप्पम–संज्ञा पुं० [देश०] बक्कम का पेड़।

(२) भंग। भाँग। विजया। (३) पन्ना नामक ... स्त्रियों का कान में पहनने का एक प्रकार का ग... घोड़े का एक रंग जिसमें सफ़ेदी के साथ कुछ ... मिला होता है। (४) वह घोड़ा जो इस रंग का...

सब्ज़ी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) हरी घास और वनस्... हरियाली। (२) हरी तरकारी। (३) भंग। भाँग...

सब्र–संज्ञा पुं० [अ०] संतोष। धैर्य्य।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—रखना।

मुहा०—किसी का सब्र पड़ना = किसी के धैर्यपूर्व... हुए कष्ट का प्रतिफल होना। जैसे,—तुमने उस... मकान ले लिया; तुम पर उसका सब्र पड़ा... तुम्हारा लड़का मर गया। सब्र कर बैठना या ... हानि या अनिष्ट होने पर चुप चाप उसे सह लेना। सब्र ... किसी का शाप लेना। ऐसा काम करना जिसमें किसी ...

सब्रह्मचारी–संज्ञा पुं० [सं० सब्रह्मचारिन्] परस्पर ... जिन्होंने एक साथ ही एक गुरु के यहाँ ... क... की हो।

सभर्तृका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति ... सधवा।

सभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ बहुत ... कर बैठे हों। परिषद्। गोष्ठी। समिति। मजलि... विद्वानों की सभा में बैठा करो। (२) वह स्था... एक विषय पर विचार करने के लिये बहुत ... हों। (३) वह संस्था या समूह जो किसी वि... करने अथवा कोई कार्य्य सिद्ध करने के लिये ... हो। (४) सामाजिक। सभा... घर। मकान। ... सफ़री विस्तर। ... रास्ते का सामान। (२) अमरू... काल की एक ... आदि। सफ़री. विह... और राज...

सभाकार... (३) कुआँ। गह... (४) प्राचीन ... की मछली। ...

...स–संज्ञा... एक ... समूह। ठु... ...विचार होनेवा...

सफल–वि... (२) संस्था जिसमें कुछ लोग एकत्र होकर साम... जैसे ... लौकिक विषयों पर विचार करते थे। ...

... जि... ...संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सभा करता हो। ...

क्रि० ...संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ किसी सभा ... का अधिवेशन होता हो। बहुत से लोगों के ... की जगह। ... या संबंधियों आदि ... कुशल मंगल ...

सफल करनेवाला। ...

बनकर उसका कार्य्य चलाता हो। सभा का मुखिया। मीर मजलिस।

सभापरिषद्–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहुत से लोगों का एकत्र होकर साहित्य या राजनीति आदि से संबंध रखनेवाले किसी विषय पर विचार करना। (२) वह स्थान जहाँ इस प्रकार के कार्य के लिये लोग एकत्र होते हैं। सभागृह। सभाभवन।

सभायी–संज्ञा पुं० [सं० सभाविन्] वह जो द्यूत-ग्रह का प्रधान हो। जूएखाने का मालिक।

सभासद्–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी सभा में सम्मिलित हो और उसमें उपस्थित होनेवाले विषयों पर सम्मति देने का अधिकार रखता हो। सदस्य। सामाजिक। पार्षद।

सभास्तार–संज्ञा पुं० [सं०] सभासद। सदस्य।

सभिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो लोगों को जूआ खेलाता हो। जूएखाने का मालिक।

सभीक–संज्ञा पुं० दे० "सभिक"।

सभेद्–संज्ञा पुं० [सं०] सभा का सदस्य। सभासद। सभ्य।

सभोचित–संज्ञा पुं० [सं०] पंडित। विद्वान्।

सभ्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो किसी सभा में सम्मिलित हो और उसके विचारणीय विषयों पर सम्मति दे सकता हो। सभासद। सदस्य। (२) वह जिसका व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन श्रेष्ठ हो। वह जिसका आचार-व्यवहार और रहन सहन उत्तम हो। जिसमें तहजीब हो। भला आदमी।

[illegible] संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सभ्य होने का भाव। (२) सदस्यता। (२) व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की वह अवस्था जिसमें लोगों का आचार व्यवहार बहुत सुधर कर अच्छा हो चुका हो। सुशिक्षित और सज्जन होने की अवस्था। (४) भलमनसाहत। शराफत। जैसे,—जरा [illegible] सभ्यता का व्यवहार करना सीखो।

[illegible] स्त्री० [सं०] (१) मजीठ। (२) लाजवंती। लजा- (३) वाराहक्रांता। गेंठी। (४) पाला।

[illegible] संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों की एक देवी।

[illegible] ० [सं०] (१) उचित। ठीक। वाजिब। (२) जिसे [illegible] का अभ्यास हो। अभ्यस्त।

[illegible] [सं०] वे फल जिनकी तरकारी बनती हो। [illegible] के काम आनेवाले फल। जैसे,—पपीता, [illegible]

[illegible] ०] सीमा। प्रांत। किनारा। सिरा। [illegible] सब। कुल।

[illegible] संज्ञा पुं० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार एक [illegible] का नाम।

[illegible]–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक देवपुत्र का नाम।

समंतदर्शी–वि० [सं० समन्तदर्शिन्] जिसे सब कुछ दिखाई देता हो। सर्वदर्शी।

संज्ञा पुं० गौतम बुद्ध का एक नाम।

समंतदुग्धा–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्नुही। थूहर।

समंतनेत्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

समंतपंचक–संज्ञा पुं० [सं०] कुरुक्षेत्र का एक नाम। (कहते हैं कि एक बार परशुराम ने समस्त क्षत्रियों को मारकर उनके लहू से यहाँ पाँच तालाब बनाए थे; और उन्हीं में लहू से उन्होंने अपने पिता का तर्पण किया था। तभी से इस स्थान का नाम समंतपंचक पड़ा।)

समंतप्रभ–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

समंतप्रभास–संज्ञा पुं० [सं०] गौतम बुद्ध का एक नाम।

समंतप्रसादिक–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

समंतभद्र–संज्ञा पुं० [सं०] गौतम बुद्ध का एक नाम।

समंतभुज–संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

समंतर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम। (२) इस देश के निवासी।

समंतरश्मि–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

समंतालोक–संज्ञा पुं० [सं०] ध्यान करने का एक प्रकार।

समंतावलोकित–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

सम–वि० [सं०] (१) समान। तुल्य। बराबर। (२) सब। कुल। तमाम। (३) जिसका तल ऊबड़ खाबड़ न हो। चौरस। (४) (संख्या) जिसे दो से भाग देने पर शेष कुछ न बचे। जूस।

संज्ञा पुं० (१) वह राशि जो सम संख्या पर पड़े। दूसरी, चौथी, छठी आदि राशियाँ। वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन ये छः राशियाँ। (२) गणित में वह सीधी रेखा जो उस अंक के ऊपर दी जाती है जिसका वर्ग मूल निकालना होता है। (३) संगीत में वह स्थान जहाँ गाने बजानेवालों का सिर या हाथ आप से आप हिल जाता है। यह स्थान ताल के अनुसार निश्चित होता है। जैसे तिताले में दूसरे ताल पर और चौताल में पहले ताल पर सम होता है। इसी प्रकार भिन्न भिन्न तालों में भिन्न भिन्न स्थानों पर सम होता है। वाद्यों का आरंभ और गीतों तथा वाद्यों का अंत इसी सम पर होता है। परंतु गाने बजाने के बीच बीच में भी सम बराबर आता रहता है। (४) साहित्य में एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमें योग्य वस्तुओं के संयोग या संबंध का वर्णन होता है। यह विषमालंकार का बिलकुल उलटा है। उ०—(क) जस दूलह तस बनी बराता। कौतुक विविध होहिं मग जाता। (ख) चिरजीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभीर। को घटिये, वृषभानुजा वे हलधर के बीर।

संज्ञा पुं० [अ०] विष। जहर। उ०—सम खायँगे पर तेरी कसम हम न खायँगे।

समकक्ष-वि० [सं०] बराबरी का। समान। तुल्य। जैसे,—दर्शन-शास्त्र में वे तुम्हारे समकक्ष हैं।

समकन्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जो विवाह के योग्य हो गई हो। ब्याहने लायक लड़की।

समकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव का एक नाम। (२) गौतम बुद्ध का एक नाम। (३) ज्यामिति में किसी चतुर्भुज के आमने सामनेवाले कोणों के ऊपर की रेखाएँ।

समकालीन-वि० [सं०] जो (दो या कई) एक ही समय में हों। एक ही समय में होनेवाले। जैसे,—तुलसीदासजी जहाँगीर के समकालीन थे।

समकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] कफ। श्लेष्मा।

समकोण-वि० [सं०] (त्रिभुज या चतुर्भुज) जिसके आमने सामने के दो कोण समान हों।

समकोल-संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

समकोश-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम।

समक्काथ-संज्ञा पुं० [सं०] वह क्वाथ या काढ़ा जिसका पानी आदि जल कर आठवाँ भाग रह जाय।

समक्ष-अव्य० [सं०] आँखों के सामने। सामने। जैसे,—अब वह कभी आपके समक्ष न आवेगा।

समगंधक-संज्ञा पुं० [सं०] नकली धूप।

समगंधिक-संज्ञा पुं० [सं०] उशीर। खस।

समग्र-वि० [सं०] समस्त। कुल। पूरा। सब। जैसे,—उसे समग्र लघुकौमुदी कंठ है।

समचतुर्भुज-संज्ञा पुं० [सं०] वह चतुर्भुज जिसके चारो भुज समान हों।

समचित्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके चित्त की अवस्था सब जगह समान रहती हो। वह जिसका चित्त कहीं दुःखी या क्षुब्ध न होता हो। समचेता।

समचेता-संज्ञा पुं० [सं० समचेतस्] वह जिसके चित्त की वृत्ति सब जगह समान रहती हो। समचित्त।

समज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वन। जंगल। (२) पशुओं का झुंड।

समज्ञा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कीर्त्ति। यश।

समतट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र के किनारे पर का देश। (२) एक प्राचीन प्रदेश का नाम जो आधुनिक बंगाल के पूर्व में था।

समतल-वि० [सं०] जिसका तल सम हो, ऊबड़ खाबड़ न हो। जिसकी सतह बराबर हो। हमवार। जैसे,—इस पहाड़ के ऊपर बहुत दूर तक समतल भूमि चली गई है।

समता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सम या समान होने का भाव। बराबरी। तुल्यता। जैसे,—इस तरह के कामों में कोई आपकी समता नहीं कर सकता।

समत्रय-संज्ञा पुं० [सं०] हर्रे, नागरमोथा और गुड़ इन तीनों के समान भागों का समूह।

समत्रिभुज-संज्ञा पुं० [सं०] वह त्रिभुज जिसके तीनों भुज समान हों।

समत्व-संज्ञा पुं० [सं०] सम या समान होने का भाव। समता। तुल्यता। बराबरी।

समद्न-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। लड़ाई।

समदर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सब मनुष्यों, स्थानों और पदार्थों को समान दृष्टि से देखता हो। सब को एक सा देखनेवाला। समदर्शी।

समदर्शी-संज्ञा पुं० [सं० समदर्शिन्] वह जो सब मनुष्यों, स्थानों और पदार्थों आदि को समान दृष्टि से देखता हो। जो देखने में किसी प्रकार का भेद-भाव न रखता हो। सब को एक सा देखनेवाला।

समदृश्-संज्ञा पुं० दे० "समदर्शी"।

समदृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह दृष्टि जो सब अवस्थाओं में और सब पदार्थों को देखने के समय समान रहे। समदर्शी की दृष्टि।

समद्वादशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह क्षेत्र आदि जिसके बारह समान भुज हों। बारह बराबर भुजोंवाला क्षेत्र।

समद्विद्विभुज-संज्ञा पुं० [सं०] वह चतुर्भुज जिसका प्रत्येक भुज अपने सामनेवाले भुज के समान हो। वह चतुर्भुज जिसके आमने सामने के भुज बराबर हों।

समधिक-वि० [सं०] अधिक। ज्यादा। बहुत।

समनंतर-वि० [सं०] ठीक बगलवाला। बिलकुल सटा हुआ। बराबरी का।

समनगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बिजली। विद्युत्। (२) सूर्य्य की किरण।

समनीक-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। लड़ाई।

समन्यु-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

समन्वय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संयोग। मिलन। मिलाप। (२) विरोध का अभाव। विरोध का न होना। (३) कार्य्य कारण का प्रवाह या निर्वाह।

समन्वित-वि० [सं०] (१) मिला हुआ। संयुक्त। (२) जिसमें कोई रुकावट न हो।

समपद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष चलानेवालों का एक प्रकार का खड़े होने का ढंग जिसमें वे अपने दोनों पैर बराबर रखते हैं। (२) काम शास्त्र के अनुसार एक प्रकार का रति-बंध या आसन।

समपाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "समपद"। (२) वह छंद या कविता जिसके चारों चरण समान या बराबर हों।

समबुद्धि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी बुद्धि सुख और दुःख, हानि और लाभ सब में समान रहती हो।

समभिहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बार बार होने का भाव। (२) अधिकता। ज्यादती।

सममति-संज्ञा पुं० दे० "समबुद्धि"।

समयज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो समय का ज्ञान रखता हो। समय के अनुसार चलनेवाला। (२) विष्णु का एक नाम।

समयाचार-संज्ञा पुं० [सं०] धर्म्म।

समयाध्युषित-संज्ञा पुं० [सं०] वह समय जब कि न सूर्य्य ही दिखाई देता हो और न नक्षत्र ही दृष्टिगोचर होते हों। ठीक संध्या का समय।

समयानंद-संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के एक भैरव का नाम जिनका पूजन काली-पूजा के समय होता है।

समर-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। संग्राम। लड़ाई। उ०—सरबस खाइ भोग करि नाना। समर-भूमि भा दुरलभ प्राना।—तुलसी।

समरक्षिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध क्षेत्र। लड़ाई का मैदान।

समरज्जु-संज्ञा स्त्री० [सं०] बीज गणित में वह रेखा जिससे दूरी या गहराई जानी जाती है।

समरत-संज्ञा पुं० [सं०] काम शास्त्र के अनुसार एक प्रकार का रतिबंध या आसन।

समरपोत-संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई का जहाज। सैनिक जहाज।

समरभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध-क्षेत्र। लड़ाई का मैदान। उ०—सरबस खाइ भोग करि नाना। समरभूमि भा दुर्लभ प्राना।—तुलसी।

समरवसुधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लड़ाई का मैदान। युद्ध-क्षेत्र।

समरमूर्द्धा-संज्ञा पुं० [सं० समरमूर्द्धन्] लड़नेवाली सेना का अगला भाग।

समरशायी-संज्ञा पुं० [सं० समरशायिन्] वह जो युद्ध में मारा गया हो। वीरगति को प्राप्त।

समरांगण-संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई का मैदान। युद्ध-क्षेत्र।

समरोद्देश-संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई का मैदान। युद्ध-क्षेत्र।

समर्घ-वि० [सं०] कम दाम का। सस्ता। महर्घ या महँगा का उलटा।

समर्चन-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह अर्च्चन या पूजन करने का काम।

समर्थ-वि० [सं०] (१) जिसमें कोई काम करने की सामर्थ्य हो। कोई काम करने की योग्यता या ताकत रखनेवाले। उपयुक्त। योग्य। जैसे,—आप सब कुछ करने में समर्थ हैं। (२) लंबा चौड़ा। प्रशस्त। (३) जो अभिलषित हो। अभीष्ट। (४) युक्ति के अनुकूल। ठीक।

संज्ञा पुं० हित। भलाई।

समर्थक-वि० [सं०] जो समर्थन करता हो। समर्थन करनेवाला।

संज्ञा पुं० चंदन की लकड़ी।

समर्थता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) समर्थ होने का भाव या धर्म्म। सामर्थ्य। शक्ति। ताकत।

समर्थन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यह निश्चय करना कि अमुक बात उचित है या अनुचित। वाजिब और गैर-वाजिब का फैसला करना। (२) यह कहना कि अमुक बात ठीक है। किसी विषय में सहमत होना। किसी के मत का पोषण करना। जैसे,—मैं आपके इस कथन का समर्थन करता हूँ। (३) विवेचन। मीमांसा। (४) निषेध। वर्जन। मनाही। (५) संभावना। (६) उत्साह। (७) सामर्थ्य। शक्ति। ताकत। (८) विवाद की समाप्ति या अंत करना।

समर्थना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी ऐसे काम के लिये प्रयत्न करना जो असंभव हो। न होने योग्य काम के लिये प्रयत्न। (२) दे० "समर्थन"।

समर्थनीय-वि० [सं०] समर्थन करने के योग्य। जिसका समर्थन किया जा सके।

समर्थित-वि० [सं०] (१) जिसका समर्थन किया गया हो। समर्थन किया हुआ। (२) जिसकी विवेचना हो चुकी हो। जिस पर अच्छी तरह विचार हो चुका हो। (३) जो निश्चित हो चुका हो। स्थिर किया हुआ। (४) जो हो सकता हो। जो संभव हो। संभावित।

समर्थ्य-वि० [सं०] जिसका समर्थन किया जा सके। समर्थन करने के योग्य।

समर्द्धक-संज्ञा पुं० [सं०] वरदान देनेवाले, देवता आदि।

समर्पक-वि० [सं०] जो समर्पण करता हो। समर्पण करनेवाला।

समर्पण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी को कोई चीज आदरपूर्वक भेंट करना। प्रतिष्ठापूर्वक देना। जैसे,—वे यह पुस्तक किसी राजा या रईस को समर्पण करना चाहते हैं। (२) दान। देना। जैसे,—आत्म-समर्पण करना। (३) स्थापित करना। स्थापना।

समर्पित-वि० [सं०] (१) जो समर्पण किया गया हो। समर्पण किया हुआ। (२) जिसकी स्थापना की गई हो। स्थापित।

समर्प्य-वि० [सं०] जो समर्पण किया जा सके। समर्पण करने के योग्य।

समर्याद-वि० [सं०] (१) निकट। पास। करीब। (२) जिसका चाल चलन अच्छा हो। अच्छे चरित्रवाला।

समल-संज्ञा पुं० [सं०] मल। विष्ठा। पुरीष। गू।

वि० मलीन। मैला। गंदा।

समवकार–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नाटक जिसकी कथा-वस्तु का आधार किसी प्रसिद्ध देवता या असुर आदि के जीवन की कोई घटना होती है। यह वीर रस-प्रधान होता है और इसमें प्रायः देवताओं और असुरों के युद्ध का वर्णन होता है। इसमें तीन अंक होते हैं और विमर्ष संधि के अतिरिक्त शेष चारों संधियाँ रहती हैं। इसमें विंदु या प्रवेशक नहीं होता।

समवतार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उतरने की जगह। उतार। (२) उतरने की क्रिया। अवतरण।

समवर्त्ती–संज्ञा पुं० [सं० समवर्त्तिन्] यम का एक नाम।
वि० (१) जो समान रूप से स्थित हो। (२) जो पास में स्थित हो।

समवलंब–संज्ञा पुं० [सं०] वह चतुर्भुज जिसकी दोनों लंबी रेखाएँ समान हों।

समवसरण–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ किसी प्रकार का धार्मिक उपदेश होता हो।

समवस्कंद–संज्ञा पुं० [सं०] किले का प्राकार।

समवाय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। झुंड। (२) न्यायशास्त्र के अनुसार तीन प्रकार के संबंधों में से एक प्रकार का संबंध। वह संबंध जो अवयवी के साथ अवयव का, गुणी के साथ गुण का अथवा जाति के साथ व्यक्ति का होता है। इस प्रकार का संबंध एक प्रकार का धर्म्म या गुण माना गया है। ऐसा संबंध नष्ट नहीं होता; इसी से इसको नित्य संबंध भी कहते हैं। वि० दे० "संबंध"।

समवायत्व–संज्ञा पुं० [सं०] समवाय का भाव या धर्म्म। समवायता।

समवायी–वि० [सं० समवायिन्] जिसमें समवाय या नित्य संबंध हो।

समवृत्त–संज्ञा पुं० [सं०] वह छंद जिसके चारों चरण समान हों।

समवेत–वि० [सं०] (१) एक में मिला या इकट्ठा किया हुआ। एकत्र। (२) जमा किया हुआ। संचित। (३) किसी के साथ एक श्रेणी में आया हुआ। (४) जो किसी के साथ नित्य संबंध के द्वारा संबद्ध हो। नित्य संबंध से बँधा हुआ।
संज्ञा पुं० संबंध। लगाव। ताल्लुक।

समशंकु–संज्ञा पुं० [सं०] वह समय जब कि सूर्य ठीक सिर पर आते हों। ठीक दोपहर का समय। मध्याह्न।

समशीतोष्ण कटिबंध–संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी के वे भाग जो उष्ण कटिबंध के उत्तर में कर्क रेखा से उत्तर वृत्त तक और दक्षिण में मकर रेखा से दक्षिण वृत्त तक पड़ते हैं। इन भूभागों में न तो बहुत अधिक सरदी पड़ती है और न बहुत अधिक गरमी; दोनों प्रायः समान भाव में रहती हैं।

समष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] सब का समूह। कुल एक साथ। व्यष्टि का उलटा। जैसे,—आप सब लोगों की अलग अलग बात जाने दें; समष्टि का विचार करें।

समष्ठिल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोकुआ नाम का कँटीला पौधा जो प्रायः पश्चिम में नदियों के किनारे होता है। वैद्यक में कटु, उष्ण, रुचिकर, दीपन और कफ तथा वात का नाशक माना है। (२) गंडीर या गिडनी नाम का साग।

समष्ठिला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) समष्ठिल। कोकुआ। (२) जमींकंद। सूरन। (३) गिडनी या गंडीर नाम का साग।

समष्ठीला–संज्ञा स्त्री० दे० "समष्ठिला"।

समस्त–वि० [सं०] (१) सब। कुल। समग्र। जैसे,—(क) उन्हें समस्त रामायण कंठ है। (ख) इस समय समस्त देश में एक नए प्रकार की जाग्रति हो रही है। (२) एक में मिलाया हुआ। संयुक्त। (३) जो समास द्वारा मिलाया गया हो। समासयुक्त। (४) जो थोड़े में किया गया हो। जो संक्षेप में हो। संक्षिप्त।

समस्थली–संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा और यमुना के बीच का देश। अंतर्वेद।

समस्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संघटन। (२) मिलाने की क्रिया। मिश्रण। (३) किसी श्लोक या छंद आदि का वह अंतिम पद या टुकड़ा जो पूरा श्लोक या छंद बनाने के लिये तैयार करके दूसरों को दिया जाता है और जिसके आधार पर पूरा श्लोक या छंद बनाया जाता है।
क्रि० प्र०—देना।—पूर्त्ति करना।
(४) कठिन अवसर या प्रसंग। जैसे,—इस समय तो उनके सामने कन्या के विवाह की एक बड़ी समस्या उपस्थित है।

समस्यापूर्त्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी समस्या के आधार पर कोई छंद या श्लोक आदि बनाना।

समाँ–संज्ञा पुं० [सं० समय] समय। वक्त।
मुहा०—समाँ बँधना=(संगीत आदि कार्यों का) इतनी उत्तमता से होना कि सब लोग स्तब्ध हो जायँ।

समांजन–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार आँखों में लगाने का एक प्रकार का अंजन जो कई ओषधियों के योग से बनता है।

समांतक–संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

समा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्ष। साल।
संज्ञा पुं० दे० "समाँ"।

समाकुल–वि० [सं०] जिसकी अक्ल ठिकाने न हो। बहुत अधिक घबराया हुआ।

समाख्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यश। कीर्ति। (२) संज्ञा। नाम।

आवश्यक सूचना

काशी नागरीप्रचारिणी सभा की प्रबन्ध समिति ने यह निश्चय किया है कि १ वैशाख संवत् १९८४ (१४ अप्रैल १९२७) से उसके समस्त ग्रंथों के छापने, प्रकाशित करने तथा बेचने आदि का एक मात्र भार प्रयाग के इंडियन प्रेस लिमिटेड को दिया जाय। उक्त प्रेस ने भी यह भार ग्रहण करना स्वीकार किया है तथा इसका प्रबन्ध अपने प्रेस की काशीस्थ शाखा में किया है। अतएव उक्त तारीख से जिस किसी को सभा की किसी पुस्तक की आवश्यकता हो, वे इस पते पर पत्र लिखें—

मैनेजर, बुकडिपो,

इंडियन प्रेस लिमिटेड, बनारस कैण्ट।

सभा से केवल शब्दसागर की सब संख्याएँ और खंड तथा नागरीप्रचारिणी पत्रिका के प्रचलित वर्ष की संख्याएँ ही प्राप्त हो सकेंगी। नागरीप्रचारिणी पत्रिका के सब पुराने खंडों के लिये भी उक्त प्रेस को ही लिखना होगा। शब्दसागर की संख्याएँ और खंड उक्त प्रेस से भी मिल सकेंगे।

नागरीप्रचारिणी सभा के जिन सभासदों को २१ वें नियम के अनुसार ¾ मूल्य पर पुस्तकें मिल सकती हैं, वे यदि इस अधिकार का उपयोग करना चाहें तो उन्हें मंत्री नागरीप्रचारिणी सभा, बनारस सिटी को एक पत्र लिखना चाहिए। साथ ही यह भी सूचित करना चाहिए कि वे कौन कौन सी पुस्तकें लेना चाहते हैं। प्रेस से सभा की अनुमति के बिना कम मूल्य पर पुस्तकें न प्राप्त हो सकेंगी। ऐसे पत्र सभा द्वारा उक्त प्रेस के पास कारवाई के लिये भेजे जायँगे।

आशा है, भविष्य में सभा के सदासद तथा पुस्तक-विक्रेता आदि ऊपर दिए हुए विधानों को ध्यान में रख कर कार्य करेंगे जिसमें किसी को व्यर्थ कष्ट न उठाना पड़े।

पुस्तक-प्रकाशन के संबंध का सब पत्र-व्यवहार सभा से ही यथावत् होता रहेगा। जो लोग सभा द्वारा अपनी पुस्तकें प्रकाशित करना चाहें, उन्हें सीधे सभा से ही पत्र-व्यवहार करना चाहिए।

रामचन्द्र शर्मा,

सभा,

सिटी।

संख्या—३७

शब्द २६८६

हिंदी-शब्दसागर

अर्थात्

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

सहायक संपादक

रामचंद्र शुक्ल रामचंद्र वर्म्मा

भगवानदीन

प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा

मूल्य १)

१९२७

डाक व्यय अतिरिक्त

संकेताक्षरों का विवरण

अं० = अँगरेजी भाषा
अ० = अरबी भाषा
अनु० = अनुकरण शब्द
अने० = अनेकार्थनाममाला
अप० = अपभ्रंश
अयोध्या=अयोध्यासिंह उपाध्याय
अर्द्धमा० = अर्द्ध मागधी
अल्पा० = अल्पार्थक प्रयोग
अव्य० = अव्यय
आनंदघन = कवि आनंदघन
इब० = इबरानी भाषा
उ० = उदाहरण
उत्तरचरित=उत्तररामचरित
उप० = उपसर्ग
उभ० = उभयलिंग
कठ० उप०=कठवल्ली उपनिषद्
कबीर = कबीरदास
केशव = केशवदास
कोंक०=कोंकण देश की भाषा
क्रि० = क्रिया
क्रि० अ० = क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र० = क्रियाप्रयोग
क्रि० वि०=क्रियाविशेषण
क्रि० स०=क्रिया सकर्मक
क्व०=क्वचित् अर्थात् इसका प्रयोग बहुत कम देखने में आया है।
खानखाना=अब्दुर्रहीम खानखाना
गि० दा० या गि० दास=गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर=गिरिधरराय (कुंडलियावाले)
गुज० = गुजराती भाषा

गुमान = गुमान मिश्र
गोपाल = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद)
चरण = चरणचंद्रिका
चिंतामणि = कवि चिंतामणि त्रिपाठी
छीत = छीतस्वामी
जायसी = मलिक मुहम्मद जायसी
जावा० = जावा द्वीप की भाषा
ज्यो० = ज्योतिष
डिं० = डिंगल भाषा
तु० = तुरकी भाषा
तुलसी = तुलसीदास
तोष = कवि तोष
दादू = दादूदयाल
दीनदयालु = दीनदयालु गिरि
दूलह = कवि दूलह
दे० = देखो
देव = देव कवि (मैनपुरीवाले)
देश० = देशज
द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी
नागरी = नागरीदास
नाभा = नाभादास
निश्चल = निश्चलदास
पं० = पंजाबी भाषा
पद्माकर = पद्माकर भट्ट
पर्या० = पर्याय
पा० = पाली भाषा
पुं० = पुंलिंग
पु० हिं० = पुरानी हिन्दी
पुर्त० = पुर्तगाली भाषा
पू० हिं० = पूर्वी हिंदी

प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र
प्रत्य० = प्रत्यय
प्रा० = प्राकृत भाषा
प्रिया० = प्रियादास
प्रे० = प्रेरणार्थक
प्रे० सा० = प्रेमसागर
फ० = फरांसीसी भाषा
फा० = फारसी भाषा
बँग० = बँगला भाषा
बरमी = बरमी भाषा
बहु० = बहुवचन
बिहारी = कवि बिहारीलाल
बु० खं० = बुंदेलखंडी बोली
बेनी = कवि बेनी प्रवीन
भाव० = भाववाचक
भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी
मतिराम = कवि मतिराम त्रिपाठी
मला० = मलायलम भाषा
मलूक = मलूकदास
मि० = मिलाओ
मुहा० = मुहाविरे
यू० = यूनानी भाषा
यौ० = यौगिक तथा दो या अधिक शब्दों के पद
रघु० दा० = रघुनाथदास
रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन
रघुराज = महाराज रघुराजसिंह रीवाँनरेश
रसखान = सैयद इब्राहीम
रसनिधि = राजा पृथ्वीसिंह
रहीम = अब्दुर्रहीम खानखाना
लक्ष्मणसिंह = राजा लक्ष्मणसिंह

लल्लू = लल्लूलाल
लश० = लशकरी भाषा हिंदुस्तानी जहाजियों की बोली
लाल = लाल कवि (वाले)
लै० = लैटिन भाषा
वि० = विशेषण
विश्राम = विश्रामसागर
व्यंग्यार्थ = व्यंग्यार्थकौमुदी
व्या० = व्याकरण
व्यास = अंबिकादत्त व्यास
शं० दि० = शंकर दिग्विजय
शृं० सत० = शृंगार सतसई
सं० = संस्कृत
संयो० = संयोजक अव्यय
संयो० क्रि० = संयोज्य
स० = सकर्मक
सबल = सबलसिंह चौहान
सभा वि० = सभाविलास
सर्व० = सर्वनाम
सुधाकर = सुधाकर द्विवेदी
सूदन = सूदनकवि (
सूर = सूरदास
स्त्रि० = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री० = स्त्रीलिंग
स्पे० = स्पेनी भाषा
हिं० = हिंदी भाषा
हनुमान = हनुमन्नाटक
हरिदास = स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र = भारतेंदु हरिश्चंद्र

⊛ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त होता है।
† यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्रांतिक है।
‡ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप ग्राम्य है।

समागत-वि० [सं०] जिसका आगमन हुआ हो। आया हुआ। जैसे,—उन्होंने समस्त समागत सज्जनों की यथेष्ट अभ्यर्थना की।

समागम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आगमन। आना। जैसे—इस बार यहाँ बहुत से विद्वानों का समागम होगा। (२) मिलना। मिलन। भेंट। जैसे—इसी बहाने आज सब लोगों का समागम हो गया। (३) स्त्री के साथ संभोग करना। मैथुन।

समाघात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) युद्ध। लड़ाई। (२) जान से मार डालना। हत्या। वध।

समाचार-संज्ञा पुं० [सं०] संवाद। खबर। हाल। जैसे,—कहिए, क्या नया समाचार है।

यौ०—समाचारपत्र।

समाचारपत्र-संज्ञा पुं० [सं० समाचार + पत्र] वह पत्र जिसमें सब देशों के अनेक प्रकार के समाचार रहते हों। खबर का कागज। अखबार।

समाज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। संघ। गरोह। दल। (२) सभा। (३) हाथी। (४) एक ही स्थान पर रहनेवाले अथवा एक ही प्रकार का व्यवसाय आदि करनेवाले वे लोग जो मिलकर अपना एक अलग समूह बनाते हैं। समुदाय। जैसे,—शिक्षित समाज, ब्राह्मण समाज। (५) वह संस्था जो बहुत से लोगों ने एक साथ मिलकर किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्थापित की हो। सभा। जैसे,—संगीत समाज, साहित्य समाज।

समाज्ञा-संज्ञा स्त्री० [सं०] यश। कीर्ति। बड़ाई।

समाता-संज्ञा स्त्री० [सं० समातृ] (१) वह जो माता के समान हो। (२) माता की विपत्नी। विमाता। सौतेली माँ।

समादर-संज्ञा पुं० [सं०] आदर। सम्मान। खातिर।

समादरणीय-वि० [सं०] समादर करने के योग्य। आदर सत्कार करने के लायक।

समादान-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों का सौगताह्निक नामक नित्यकर्म। संज्ञा पुं० दे० "शमादान"।

समादृत-वि० [सं०] जिसका अच्छी तरह आदर हुआ हो। सम्मानित।

समादेय-वि० [सं०] (१) आदर या प्रतिष्ठा करने के योग्य। (२) स्वागत या अभ्यर्थना करने योग्य।

समादेश-संज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा। हुक्म।

समाधा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) निराकरण। निपटारा। (२) विरोध दूर करना। (३) सिद्धांत। (४) दे० "समाधान"।

समाधान-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० समाधानीय] (१) चित्त को सब ओर से हटाकर ब्रह्म की ओर लगाना। मन को एकाग्र करके ब्रह्म में लगाना। समाधि। प्रणिधान। (२) किसी के शंका या प्रश्न करने पर दिया जानेवाला वह उत्तर जिससे जिज्ञासु या प्रश्नकर्त्ता का संतोष हो जाय। किसी के मन का संदेह दूर करनेवाली बात। (३) इस प्रकार कोई बात कहकर किसी को संतुष्ट करने की क्रिया। (४) किसी प्रकार का विरोध दूर करना। (५) निष्पत्ति। निराकरण। (६) नियम। (७) तपस्या। (८) अनुसंधान। अन्वेषण। (९) ध्यान। (१०) मत की पुष्टि। समर्थन। (११) नाटक की मुखसंधि के उपक्षेप, परिकर आदि १२ अंगों में से एक अंग। बीज को ऐसे रूप में पुनः प्रदर्शित करना जिससे नायक अथवा नायिका का अभिमत प्रतीत हो।

समाधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) समर्थन। (२) नियम। (३) ग्रहण करना। अंगीकार। (४) ध्यान। (५) आरोप। (६) प्रतिज्ञा। (७) प्रतिशोध। बदला। (८) विवाद का अंत करना। झगड़ा मिटाना। (९) कोई असंभव या असाध्य कार्य्य करने के लिये उद्योग करना। (१०) चुप रहना। मौन। (११) निद्रा। नींद। (१२) योग। (१३) योग का चरम फल, जो योग के आठ अंगों में से अंतिम अंग है और जिसकी प्राप्ति सब के अंत में होती है। इस अवस्था में मनुष्य सब प्रकार के क्लेशों से मुक्त हो जाता है, चित्त की सब वृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, बाह्य जगत् से उसका कोई संबंध नहीं रहता, उसे अनेक प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं और अंत में कैवल्य की प्राप्ति होती है। योग दर्शन में इस समाधि के चार भेद बतलाए हैं—संप्रज्ञात समाधि, सवितर्क समाधि, सविचार समाधि और सानंद समाधि। समाधि की अवस्था में लोग प्रायः पद्मासन लगाकर और आँखें बंद करके बैठते हैं। उनके शरीर में किसी प्रकार की गति नहीं होती, और ब्रह्म में उनका अवस्थान हो जाता है। वि० दे० "योग" (१६)।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

(१४) किसी मृत व्यक्ति की अस्थियाँ या शव जमीन में गाड़ना।

क्रि० प्र०—देना।

(१५) वह स्थान जहाँ इस प्रकार शव या अस्थियाँ आदि गाड़ी गई हों। छतरी। (१६) काव्य का एक गुण जिसके द्वारा दो घटनाओं का दैव संयोग से एक ही समय में होना प्रकट होता है और जिसमें एक ही क्रिया का दोनों कर्त्ताओं के साथ अन्वय होता है। (१७) एक प्रकार का अर्थालंकार जो उस समय माना जाता है जब किसी आकस्मिक कारण से कोई कार्य्य बहुत ही सुगमतापूर्वक हो जाता है। उ०—(क) हरि-प्रेरित तेहि अवसर चले पवन उनचास। (ख) मीत गमन अवरोध हित सोचन करत उपाय। तब ही आकस्मात तें उठी घटा घहराय। (ग) रामचंद्र सोचत रहे रावण वधन उपाय। सूपनखा ताही समय करी ठठोली आय।

समाधिक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ योगियों आदि के मृत शरीर गाड़े जाते हों। (२) साधारण मुरदे गाड़ने की जगह। कब्रिस्तान।

समाधिगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

समाधित-वि० [सं०] जिसने समाधि लगाई हो। समाधि अवस्था को प्राप्त।

समाधित्व-संज्ञा पुं० [सं०] समाधि का भाव या धर्म्म।

समाधिदशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह दशा जब योगी समाधि में स्थित होता है और परमात्मा में प्रेममग्न होकर निमग्न और तन्मय होता है और अपने आप को भूलकर चारों ओर ब्रह्म ही ब्रह्म देखता है।

समाधिसमानता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों के अनुसार ध्यान का एक भेद।

समाधिस्थ-वि० [सं०] जो समाधि में स्थित हो। जो समाधि लगाए हुए हो।

समाधिस्थल संज्ञा पुं० दे० "समाधि-क्षेत्र"।

समाधेय-वि० [सं०] समाधान करने के योग्य। जिसका समाधान हो सके।

समान-वि० [सं०] जो रूप, गुण, मान, मूल्य, महत्व आदि में एक से हों। जिनमें परस्पर कोई अंतर न हो। सम। बराबर। तुल्य। जैसे,—वे दोनों समान विद्वान हैं; उनमें कोई अंतर नहीं है।

मुहा०—एक समान = एक सा। एक जैसा।

यौ०—समान वर्ण = ऐसे वर्ण जिनका उच्चारण एक ही स्थान से होता हो। जैसे,—क, ख, ग, घ समान वर्ण हैं।

संज्ञा पुं० (१) सत्। (२) शरीर के अंतर्गत पाँच वायुओं में से एक वायु जिसका स्थान नाभि माना गया है।

समानकर्म्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वे जो एक ही तरह का काम करते हों। एक ही तरह का व्यवसाय या कार्य्य करनेवाले। हम-पेशा।

समानकालीन-संज्ञा पुं० [सं०] वे जो एक ही समय में उत्पन्न हुए या अवस्थित रहे हों। समकालीन।

समानगोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वे जो एक ही गोत्र में उत्पन्न हुए हों। सगोत्र।

समानजन्म-संज्ञा पुं० [सं० समानजन्मन्] वे जो प्रायः एक साथ ही, अथवा एक ही समय में उत्पन्न हुए हों। जो अवस्था या उम्र में बराबर हों। समवयस्क।

समानतंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वे जो एक ही काम करते हों। समानकर्म्म। हम-पेशा। (२) वे जो वेद की किसी एक ही शाखा का अध्ययन करते हों और उसी के अनुसार यज्ञ आदि कर्म्म करते हों।

समानता-संज्ञा स्त्री० [सं०] समान होने का भाव। तुल्यता। बराबरी। जैसे,—इन दोनों में बहुत कुछ समानता देखने में आती है।

समानत्व-संज्ञा पुं० [सं०] समान होने का भाव। तुल्यता। बराबरी।

समाननाम-संज्ञा पुं० [सं० समाननामन्] वे जिनके नाम एक से ही हों। एक ही नामवाले। नामरासी।

समानयन-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह अथवा आदरपूर्वक ले आने की क्रिया।

समानयोनि-संज्ञा पुं० [सं०] वे जो एक ही योनि या स्थान से उत्पन्न हुए हों।

समानर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] वे जो एक ही ऋषि के गोत्र या वंश में उत्पन्न हुए हों।

समानस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ दिन और रात दोनों बराबर होते हों।

समानाधिकरण-संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में वह शब्द या वाक्यांश जो वाक्य में किसी समानार्थी शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिये आता है। जैसे,—लोगों से लड़ते फिरना, यही आपका काम है। इसमें "यही" शब्द "लड़ते फिरना" का समानाधिकरण है।

समानार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] वे शब्द आदि जिनका अर्थ एक ही हो। पर्य्याय।

समानोदक-संज्ञा पुं० [सं०] जिनकी ग्यारहवीं से चौदहवीं पीढ़ी तक के पूर्वज एक हों।

समानोदर्य-संज्ञा पुं० [सं०] वे जिनका जन्म एक ही माता के गर्भ से हुआ हो। सहोदर।

समापक-संज्ञा पुं० [सं०] समाप्त करनेवाला। खतम करनेवाला। पूरा करनेवाला।

समापत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ही समय में और एक ही स्थान पर उपस्थित होना। मिलना।

समापन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समाप्त करने की क्रिया। खतम करना। पूरा करना। (२) मार डालना। हत्या करना। वध। (३) समाधान।

समापनीय-वि० [सं०] (१) समाप्त करने योग्य। खतम करने के लायक। (२) मार डालने के योग्य।

समापन्न-संज्ञा पुं० [सं०] मार डालना। हत्या करना। वध।

वि० (१) खतम किया हुआ। समाप्त किया हुआ। (२) मिला हुआ। प्राप्त। (३) क्लिष्ट। कठिन।

समापिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याकरण में दो प्रकार की क्रियाओं में से एक प्रकार की क्रिया जिससे किसी कार्य्य का समाप्त हो जाना सूचित होता है। जैसे,—वह परसों यहाँ से चला गया। इस वाक्य में "चला गया" समापिका क्रिया है।

समापित–वि० [सं०] समाप्त किया हुआ। खतम या पूरा किया हुआ।

समापी–संज्ञा पुं० [सं० समापिन्] वह जो समाप्त करता हो। खतम करनेवाला।

समाप्त–वि० [सं०] जिसका अंत हो गया हो। जो खतम या पूरा हो गया हो। जैसे,—(क) जब आप अपनी सब बातें समाप्त कर लीजिएगा, तब मैं भी कुछ कहूँगा। (ख) आपका यह ग्रंथ कब तक समाप्त होगा ?

क्रि० प्र०—करना।—होना।

समाप्तलंभ–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक बहुत बड़ी संख्या का नाम।

समाप्ताल–संज्ञा पुं० [सं०] पति। स्वामी। मालिक। खाविंद।

समाप्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी कार्य्य या बात आदि का अंत होना। उस अवस्था को पहुँचना जब कि उस संबंध में और कुछ भी करने को बाकी न रहे। खतम या पूरा होना। (२) प्राप्त होने या मिलने का भाव। प्राप्ति।

समाप्तिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो समाप्त करता हो। खतम या पूरा करनेवाला। (२) वह जो वेदों का अध्ययन समाप्त कर चुका हो।

समाप्य–वि० [सं०] समाप्त करने के योग्य। खतम या पूरा करने के लायक।

समाप्लव–संज्ञा पुं० [सं०] स्नान करने की क्रिया। नहाना।

समाम्नाय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शास्त्र। (२) समूह। समष्टि।

समाम्नायिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे शास्त्रों का अच्छा ज्ञान हो। शास्त्रवेत्ता।

वि० शास्त्र संबंधी। शास्त्र का।

समायोग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संयोग। (२) बहुत से लोगों का एक साथ एकत्र होना।

समारंभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह आरंभ होना। (२) समारोह। (क्व०)

समारंभण–संज्ञा पुं० [सं०] गले लगाना। आलिंगन।

समारभ्य–वि० [सं०] समारंभ करने के योग्य।

समाराधन–संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह आराधना या उपासना करना।

समारोप–संज्ञा पुं० दे० "आरोप"।

समारोपण–संज्ञा पुं० दे० "आरोपण"।

समारोह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आडंबर। तड़क भड़क। धूम-धाम। (२) कोई ऐसा कार्य्य या उत्सव जिसमें बहुत धूम-धाम हो। (३) दे० "आरोह"।

समार्थ–संज्ञा पुं० [सं०] समान अर्थवाला शब्द। पर्याय।

समार्थक–संज्ञा पुं० [सं०] समान अर्थवाला शब्द। पर्याय।

समालंब–संज्ञा पुं० [सं०] रोहिष तृण। रूसा नामक घास।

समालंबी–संज्ञा पुं० [सं० समालंबिन्] भू-तृण।

समालंभ, समालंभन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर पर केसर आदि का लेप करना। (२) मार डालना। हत्या करना। वध।

समालाप–संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह बात चीत करना।

समालोकन–संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह देखना।

समालोकी–संज्ञा पुं० [सं० समालोकिन्] वह जो किसी चीज को अच्छी तरह देखता हो।

समालोचक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी चीज के गुण और दोष देखकर बतलाता हो। समालोचना करनेवाला।

समालोचन–संज्ञा पुं० दे० "समालोचना"।

समालोचना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अच्छी तरह देखने की क्रिया। खूब देखना भालना। (२) किसी पदार्थ के दोषों और गुणों को अच्छी तरह देखना। यह देखना कि किसी चीज में कौन सी बातें अच्छी और कौन सी बातें खराब हैं; विशेषतः किसी पुस्तक के गुण और दोष आदि देखना। (३) वह कथन, लेख या निबंध आदि जिसमें इस प्रकार गुणों और दोषों की विवेचना हो। आलोचना।

समालोची–संज्ञा पुं० [सं० समालोचिन्] वह जो किसी चीज के गुण और दोष देखता हो। समालोचना करनेवाला।

समावर्त्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वापस आना। लौटना। (२) दे० "समावर्त्तन"।

समावर्त्तन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० समावर्त्तनीय] (१) वापस आना। लौटना। (२) प्राचीन वैदिक काल का एक प्रकार का संस्कार। यह संस्कार उस समय होता था, जब बालक या ब्रह्मचारी नियत समय तक गुरुकुल में रहकर और वेदों तथा अन्यान्य विद्याओं का अच्छी तरह अध्ययन करने के उपरांत स्नातक बनकर घर लौटता था। इस संस्कार के समय कुछ हवन आदि होते थे।

समावर्त्तनीय–वि० [सं०] (१) लौटने योग्य। वापस होने के लायक। (२) जो समावर्त्तन नामक संस्कार करने के योग्य हो गया हो।

समावाय–संज्ञा पुं० दे० "समवाय"।

समाविद्ध–वि० [सं०] जिसका संयोग या संघटन हुआ हो।

समाविष्ट–वि० [सं०] (१) जिसका समावेश हुआ हो। समाया हुआ। (२) जिसका चित्त किसी एक ओर लगा हो। एकाग्र-चित्त।

समावृत–वि० [सं०] अच्छी तरह ढका या छाया हुआ।

समावृत्त–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विद्या-अध्ययन करके, समावर्त्तन संस्कार के उपरांत, घर लौट आया हो। जिसका समावर्त्तन संस्कार हो चुका हो।

समावृत्ति–संज्ञा स्त्री० दे० "समावर्त्तन"।

समावेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साथ या एक जगह रहना। (२) एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ के अंतर्गत होना। जैसे,—इस एक ही आपत्ति में आपकी सब आपत्तियों का समावेश हो जाता है। (३) चित्त को किसी एक ओर लगाना। मनोनिवेश।

समावेशित-वि० दे० "समाविष्ट"।

समाश्रय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आश्रय। सहारा। (२) सहायता। मदद।

समाश्रित-वि० [सं०] जिसने किसी स्थान पर अच्छी तरह आश्रय ग्रहण किया हो।

समासंग-संज्ञा पुं० [सं०] मिलन। मिलाप। मेल।

समास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संक्षेप। (२) समर्थन। (३) संग्रह। (४) पदार्थों का एक में मिलना। सम्मिलन। (५) व्याकरण में दो या अधिक शब्दों का संयोग। शब्दों का कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार आपस में मिलकर एक होना। जैसे,—"प्रेमसागर" शब्द प्रेम और सागर का, "पराधीन" शब्द पर और अधीन का, "लंबोदर" शब्द लंब और उदर का सामासिक रूप है।

विशेष—शब्दों का वह पारस्परिक संयोग संधि के नियमों के अनुसार होता है। हिंदी में चार प्रकार के समास होते हैं। (१) अव्ययीभाव जिसमें पहला शब्द प्रधान होता है और जिसका प्रयोग क्रियाविशेषण के समान होता है। जैसे,—यथाशक्ति, यावज्जीवन, प्रतिदिन आदि। (२) तत्पुरुष जिसमें पहला शब्द संज्ञा या विशेषण होता है और दूसरे शब्द की प्रधानता रहती है। जैसे,—ग्रंथकर्त्ता, निशाचर, राजपुत्र आदि। (३) समानाधिकरण तत्पुरुष या कर्मधारय जिसमें दोनों शब्द या तो विशेष्य और विशेषण के समान या उपमान और उपमेय के समान रहते हैं और जिनका विग्रह होने पर परवर्त्ती एक ही विभक्ति से काम चलता है। जैसे,—छुटभैया, अधमरा, नवरात्र, चौमासा आदि। (४) द्वंद्व, जिसमें दोनों शब्द या उनका समाहार प्रधान होता है। जैसे,—हरि-हर, गाय-बैल, दाल-भात, चिट्ठी-पत्री, अन्न-जल आदि।

समासपर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर का नाम जो भोज राज्य में था।

समासोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमें समान कार्य्य, समान लिंग और समान विशेषण आदि के द्वारा किसी प्रस्तुत वर्णन से अप्रस्तुत का ज्ञान होता है। जैसे,—कुमुदिनिहू प्रफुलित भई, साँझ कलानिधि जोय। यहाँ प्रस्तुत "कुमुदिनी" से नायिका का और "कलानिधि" से नायक का ज्ञान होता है।

समाहरण-संज्ञा पुं० दे० "समाहार"।

समाहर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० समाहर्त्तृ] (१) समाहार करनेवाला। (२) वह जो किसी चीज का संक्षेप करता हो। (३) मिलनेवाला।

समाहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत सी चीजों को एक जगह इकट्ठा करना। संग्रह। (२) समूह। राशि। ढेर। (३) मिलना। मिलाप।

समाहारद्वंद्व-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का द्वंद्व समास। वह द्वंद्व समास जिससे उसके पदों के अर्थ के सिवा कुछ और अर्थ भी सूचित होता हो। जैसे,—सेठ-साहूकार, हाथ-पाँव, दाल-रोटी आदि। इनमें से प्रत्येक से उनके पदों के अर्थ के सिवा उसी प्रकार के कुछ और व्यक्तियों या पदार्थों का भी बोध होता है।

समाह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोजिया या वनगोभी नाम की घास। गोजिह्वा।

समाह्वान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आह्वान। बुलाना। (२) जूआ खेलने के लिये किसी को बुलाना या ललकारना।

समित्-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। समर। लड़ाई।

समिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत महीन पीसा हुआ आटा। मैदा।

समितिंजय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने युद्ध में विजय प्राप्त की हो। (२) वह जिसने किसी सभा आदि में विजय प्राप्त की हो। (३) यम। (४) विष्णु।

समिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सभा। समाज। (२) प्राचीन वैदिक काल की एक प्रकार की संस्था जिसमें राजनीतिक विषयों पर विचार हुआ करता था। (३) किसी विशिष्ट कार्य्य के लिये नियुक्त की हुई कुछ आदमियों की सभा। (४) युद्ध। समर। लड़ाई। (५) समानता। साम्य। (६) सन्निपात नामक रोग।

समिथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) आहुति। (३) युद्ध। समर। लड़ाई।

समिद्ध-वि० [सं०] जलता हुआ। प्रज्वलित। प्रदीप्त।

समिद्धन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जलाने की लकड़ी। ईंधन। (२) जलाने की क्रिया। सुलगाना। (३) उत्तेजना देना। उद्दीपन।

समिध्-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आग जलाने की लकड़ी। ईंधन। (२) यज्ञ-कुंड में जलाने की लकड़ी।

समिध-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

समिर-संज्ञा पुं० दे० "समीर"।

समिष्-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

समीक-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। समर। लड़ाई।

समीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समान करने की क्रिया। तुल्य या बराबर करना। (२) गणित में एक विशेष प्रकार की

क्रिया जिससे किसी व्यक्त या ज्ञात राशि की सहायता से किसी अव्यक्त या अज्ञात राशि का पता लगाया जाता है।

समीकार–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो छोटी बड़ी, ऊँची नीची या अच्छी बुरी चीजों को समान करता हो। बराबर करनेवाला।

समीकृत–वि० [सं०] समान किया हुआ। बराबर किया हुआ।

समीकृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] समान या तुल्य करने की क्रिया। समीकरण।

समीक्रिया–संज्ञा स्त्री० दे० "समीकरण"।

समीक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह देखने की क्रिया। (२) दर्शन। (३) अन्वेषण। जाँच पड़ताल। (४) विवेचन। (५) सांख्य शास्त्र जिसके द्वारा प्रकृति और पुरुष का ठीक ठीक स्वरूप दिखाई देता है।

समीक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दर्शन। देखना। (२) अनुसंधान। अन्वेषण। जाँच पड़ताल। (३) आलोचना।

समीक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० समीक्षित, समीक्ष्य] (१) अच्छी तरह देखने की क्रिया। (२) आलोचन। समालोचन। समालोचना। (३) बुद्धि। (४) यत्न। कोशिश। (५) मीमांसा शास्त्र। (६) सांख्य में बतलाए हुए पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार आदि तत्व।

समीक्ष्य–वि० [सं०] समीक्षा करने के योग्य। भली भाँति देखने के योग्य।

समीक्ष्यवादी–संज्ञा पुं० [सं० समीक्ष्यवादिन्] वह जो किसी विषय को अच्छी तरह जाँच या समझकर कोई बात कहता हो।

समीच–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। सागर।

समीचक–संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन। संभोग। प्रसंग।

समीची–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्तव। गुणगान। वंदना।

समीचीन–वि० [सं०] (१) यथार्थ। ठीक। (२) उचित। वाजिब। (३) न्यायसंगत।

समीचीनता–संज्ञा स्त्री० [सं०] समीचीन होने का भाव या धर्म।

समीनिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गौ जो प्रति वर्ष बच्चा देती हो। हर साल ब्यानेवाली गाय।

समीप–वि० [सं०] दूर का उलटा। पास। निकट। नज़दीक।

समीपता–संज्ञा स्त्री० [सं०] समीप का भाव या धर्म।

समीपवर्त्ती–वि० [सं० समीपवर्त्तिन्] समीप का। पास का। नजदीक का।

समीपस्थ–वि० [सं०] जो समीप में हो। पास का।

समीय–वि० [सं०] सम संबंधी। सम का।

समीर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। हवा। (२) शमी वृक्ष।

समीरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। हवा। (२) गंधतुलसी। मरुआ। (३) रास्ता चलनेवाला। पथिक। बटोही। (४) प्रेरणा।

समीहन–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

समीहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उद्योग। प्रयत्न। चेष्टा। कोशिश। (२) इच्छा। ख्वाहिश। (३) अनुसंधान। तलाश। जाँच पड़ताल।

समुंद्र–संज्ञा पुं० दे० "समुद्र"।

समुंदरफूल–संज्ञा पुं० [हिं० समुंदर + फूल] एक प्रकार का विधारा जो वैद्यक के अनुसार मधुर, कसैला, शीतल और कफ, पित्त तथा रुधिर-विकार को दूर करनेवाला और गर्भिणी स्त्री की पीड़ा हरनेवाला होता है।

समुंदरसोख–संज्ञा पुं० [हिं० समुंदर + सोखना] एक प्रकार का क्षुप जो प्रायः सारे भारत में थोड़ा बहुत पाया जाता है। इसके पत्ते तीन चार अंगुल लंबे, अंडाकार और नुकीले होते हैं। डालियों के अंत में छोटे छोटे सफेद फूलों के गुच्छे लगते हैं, जिनमें बहुत छोटे छोटे बीज होते हैं। वैद्यक में यह वातकारक, मलशोधक, पित्तकारक तथा कफकारक कहा गया है।

समुख–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अच्छी तरह बातें करना जानता हो। वाग्मी।

समुचित–वि० [सं०] (१) यथेष्ट। उचित। योग्य। ठीक। वाजिब। (२) जैसा चाहिए, वैसा। उपयुक्त। जैसे,—आपने उनकी बातों का समुचित उत्तर दिया।

समुच्चय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत सी चीजों का एक में मिलना। समाहार। मिलन। (२) समूह। राशि। ढेर। (३) साहित्य में एक प्रकार का अलंकार जिसके दो भेद माने गए हैं। एक तो वह जहाँ आश्चर्य, हर्ष, विषाद आदि बहुत से भावों के एक साथ उदित होने का वर्णन हो। जैसे,—हे हरि तुम बिनु राधिका सेज परी अकुलाति। तरफराति, तमकति, तचति, सुसकति, सूखी जाति। दूसरा वह जहाँ किसी एक ही कार्य्य के लिये बहुत से कारणों का वर्णन हो। जैसे,—गंगा गीता गायत्री गनपति गरुड़ गोपाल। प्रातकाल जे नर भजैं ते न परैं भव जाल।

समुच्चित–वि० [सं०] (१) ढेर लगाया हुआ। राशि के रूप में रखा हुआ। (२) एकत्र किया हुआ। जमा किया हुआ। संगृहीत।

समुच्छित्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] नाश। बरबादी।

समुच्छेद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जड़ से उखाड़ना। उन्मूलन। (२) ध्वंस। नाश। बरबादी।

समुच्छेदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जड़ से उखाड़ना। (२) नष्ट करना। बरबाद करना।

समुज्ज्वल–वि० [सं०] खूब उज्ज्वल। चमकता हुआ।

समुझना–क्रि०–संज्ञा स्त्री० दे० "समझ"।

समुद्रयान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्रयात्रा। (२) समुद्र पर चलने की सवारी। जैसे,—जहाज, स्टीमर आदि।
समुद्ररसना-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।
समुद्रलवण-संज्ञा पुं० [सं०] करकच नाम का लवण जो समुद्र के जल से तैयार किया जाता है। वैद्यक के अनुसार यह लघु, हृद्य, पित्तवर्धक, विदाही, दीपन, रुचिकारक और कफ तथा वात का नाशक माना जाता है।
समुद्रवसना-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।
समुद्रवह्नि-संज्ञा पुं० [सं०] वड़वानल।
समुद्रवास-संज्ञा पुं० [सं० समुद्रवासस्] अग्नि।
समुद्रवासी-संज्ञा पुं० [सं० समुद्रवासिन्] (१) वह जो समुद्र में रहता हो। (२) वह जो समुद्र के तट पर रहता हो।
समुद्रसार-संज्ञा पुं० [सं०] मोती।
समुद्रसुभगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।
समुद्रस्थली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम जो समुद्र के तट पर था।
समुद्रांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र का किनारा। (२) जायफल।
समुद्रांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुरालभा। (२) कार्पासी। (३) पृक्का। (४) जवासा।
समुद्रांवरा-संज्ञा स्त्री० [सं० समुद्राम्बरा] पृथ्वी।
समुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी।
समुद्राभिसारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कल्पित देवबाला जो समुद्र देव की सहचरी मानी जाती है।
समुद्रायणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।
समुद्राह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुंभीर नामक जल-जंतु। (२) सेतुबंध। (३) एक प्रकार की मछली जिसे तिमिंगिल कहते हैं।
समुद्रार्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।
समुद्रावरणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।
समुद्रिय-वि० [सं०] (१) समुद्र संबंधी। समुद्र का। (२) समुद्र से उत्पन्न। समुद्रजात।
समुद्रीय-वि० [सं०] समुद्र संबंधी। समुद्र का।
समुद्रोन्मादन-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम।
समुद्वह-वि० [सं०] (१) श्रेष्ठ। उत्तम। बढ़िया। (२) वहन करनेवाला। ढोनेवाला।
समुद्वाह-संज्ञा पुं० [सं०] विवाह। शादी। पाणिग्रहण।
समुन्नत-वि० [सं०] (१) जिसकी यथेष्ट उन्नति हुई हो। खूब बढ़ा चढ़ा। (२) बहुत ऊँचा।
संज्ञा पुं० वास्तु विद्या के अनुसार एक प्रकार का स्तंभ या खंभा।
समुन्नति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यथेष्ट उन्नति। काफी तरक्की। (२) महत्व। बड़ाई। (३) उच्चता।
समुन्नद-संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार एक राक्षस का नाम।
समुन्नद्ध-वि० [सं०] (१) जो अपने आपको बड़ा पंडित समझता हो। (२) अभिमानी। घमंडी। (३) उत्पन्न। उद्भूत। जात।
संज्ञा पुं० प्रभु। स्वामी। मालिक।
समुन्नयन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊपर की ओर उठाने या ले जाने की क्रिया। (२) प्राप्ति। लाभ।
समुपवेशन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह बैठने की क्रिया। (२) अभ्यर्थना।
समुपहव-संज्ञा पुं० [सं०] होम आदि के द्वारा देवताओं का आमंत्रण करना।
समुल्लास-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० समुल्लसित] (१) उल्लास। आनंद। प्रसन्नता। खुशी। (१) ग्रंथ आदि का प्रकरण या परिच्छेद।
समूढ़-वि० [सं०] (१) ढेर लगाया हुआ। (२) एकत्र किया हुआ। संचित। संगृहीत। (३) पकड़ा हुआ। (४) भोगा हुआ। भुक्त। (५) जिसका विवाह हो चुका हो। विवाहित। (६) जो अभी उत्पन्न हुआ हो। सद्यः जात। (७) संगत। ठीक।
समूर, समूरु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृग। शंबर या साबर नामक हिरन।
समूल-वि० [सं०] (१) जिसमें मूल या जड़ हो। (२) जिसका कोई हेतु हो। कारण सहित।
क्रि० वि० जड़ से। मूल सहित। जैसे,—किसी का कार्य्य समूल नष्ट कर देना।
समूह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ही तरह की बहुत सी चीजों का ढेर। राशि। (२) समुदाय। झुंड। गरोह।
समूहगंध-संज्ञा पुं० [सं०] मोतिया नामक फूल। गंधराज।
समूहनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] झाड़ू। बुहारी।
समूह्य-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ की अग्नि।
वि० तर्क करने के योग्य। ऊहा करने के योग्य।
समृद्ध-वि० [सं०] (१) जिसके पास बहुत अधिक संपत्ति हो। संपन्न। धनवान। (२) उत्पन्न। जात।
संज्ञा पुं० महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।
समृद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहुत अधिक संपन्नता। ऐश्वर्य। अमीरी। (२) कृतकार्य्यता। सफलता। (३) प्रभाव।
समृद्धी-संज्ञा पुं० [सं० समृद्धिन्] वह जो बराबर अपनी समृद्धि बढ़ाता रहता हो।
संज्ञा स्त्री० दे० "समृद्धि"।

समेटना–क्रि० स० [हिं० सिमटना] (१) बिखरी हुई चीज़ों को इकट्ठा करना। (२) अपने ऊपर लेना। जैसे,—किसी का सब समेटना।

समेड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।

समेत–वि० [सं०] संयुक्त। मिला हुआ।

अव्य० सहित। साथ।

संज्ञा पुं० पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

समेध–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार मेरु के अंतर्गत एक पर्वत का नाम।

समोह–संज्ञा पुं० [सं०] समर। युद्ध। लड़ाई।

सम्मंत्रय्य–वि० [सं०] (१) मंत्रणा करने योग्य। (२) भली भाँति मनन करने योग्य।

सम्मत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राय। सम्मति। सलाह। (२) अनुमति।

वि० जिसकी राय मिलती हो। सहमत। अनुमत।

सम्मति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सलाह। राय। (२) अनुमति। आदेश। अनुज्ञा। (३) मत। अभिप्राय। (४) सम्मान। प्रतिष्ठा। (५) इच्छा। वासना। (६) आत्मबोध। आत्मज्ञान।

सम्मद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हर्ष। आमोद। आह्लाद। (२) एक प्रकार की मछली। विष्णुपुराण में लिखा है कि यह मछली अधिक जल में रहती है और बहुत बड़ी होती है। इसके बहुत बच्चे होते हैं।

वि० सुखी। आनंदित। हर्षयुक्त। प्रसन्न।

सम्मर्द–संज्ञा पुं० [सं०] (१) युद्ध। लड़ाई। (२) समूह। भीड़। (३) परस्पर का विवाद। लड़ाई झगड़ा।

सम्मर्दन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भली भाँति मर्दन करने का व्यापार। (२) वासुदेव के पुत्रों में एक पुत्र। (३) वह जो भली भाँति मर्दन करता हो। अच्छी तरह मर्दन करनेवाला।

सम्मर्दी–संज्ञा पुं० [सं० सम्मर्दिन्] भली भाँति मर्दन करनेवाला।

सम्मर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] मर्ष। सहन।

सम्महा–संज्ञा पुं० [हिं०] अग्नि। आग। पावक।

सम्मातृ–वि० [सं०] जिसकी माता पतिव्रता हो। सती मातावाला।

सम्माद–संज्ञा पुं० [सं०] उन्माद। पागलपन।

सम्मान–संज्ञा पुं० [सं०] समादर। इज़्ज़त। मान। गौरव। प्रतिष्ठा।

वि० (१) मान सहित। (२) जिसका मान पूरा हो। ठीक मानवाला।

सम्मानना–संज्ञा स्त्री० दे० "सम्मान"।

* क्रि० स० सम्मान करना। आदर करना।

सम्मानित–वि० [सं०] जिसका सम्मान हुआ हो। प्रतिष्ठित। इज़्ज़तदार।

सम्मार्ग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा मार्ग। सन्मार्ग। श्रेष्ठ पद प्राप्त कराने का रास्ता। (२) वह मार्ग जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सम्मार्ज्जक–संज्ञा पुं० [सं०] बुहारन। झाड़ू। कूचा।

सम्मार्जनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] झाड़ू। बुहारी। कूचा।

सम्मित–वि० [सं०] समान। सदृश। अनुरूप। मिलता जुलता।

सम्मिति–संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊँची और बड़ी कामना। उच्चाकांक्षा।

सम्मिलन–संज्ञा पुं० [सं०] मिलन। मिलाप। मेल।

सम्मिलित–वि० [सं०] मिला हुआ। मिश्रित। युक्त।

सम्मिश्र–वि० [सं०] मिला हुआ। संयुक्त।

सम्मिश्रण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिलाने की क्रिया। (२) मेल। मिलावट।

सम्मुख–अव्य० [सं०] सामने। समक्ष। आगे। जैसे,—बड़ों के सम्मुख इस प्रकार की बातें नहीं कहनी चाहिएँ।

सम्मुखी–संज्ञा पुं० [सं० सम्मुखिन्] (१) वह जो सामने हो। (२) वह जिसमें मुख देखा जाय। दर्पण। मुकुर। आइना।

सम्मुखीन–वि० [सं०] जो सम्मुख हो। सामने का।

सम्मूढ़–वि० [सं०] (१) मोह-युक्त। मुग्ध। (२) निर्बोध। अज्ञान। (३) टूटा हुआ। भग्न। (४) ढेर लगाया हुआ। राशिकृत।

सम्मूढ़पीड़िका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का शुक्र रोग जिसमें लिंग टेढ़ा हो जाता है और उस पर फुंसियाँ निकल आती हैं। कहते हैं कि वायु के कुपित होने से इसकी उत्पत्ति होती है।

सम्मूर्छन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भली भाँति व्याप्त होने की क्रिया। अभिव्याप्ति। (२) मोह। मूर्च्छा। बेहोशी। (३) वृद्धि। बढ़ती। (४) विस्तार।

सम्मृष्ट–वि० [सं०] जिसका संशोधन भली भाँति हुआ हो। अच्छी तरह साफ किया हुआ।

सम्मेलन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनुष्यों का किसी निमित्त एकत्र हुआ समाज। सभा। समाज। (२) जमावड़ा। जमघट। (३) मेल। मिलाप। संगम।

सम्मोद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रीति। प्रेम। (२) हर्ष। प्रसन्नता। आनंद।

सम्मोह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोह। प्रेम। (२) भ्रम। संदेह। (३) मूर्च्छा। बेहोशी। (४) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण और एक गुरु होता है।

सम्मोहक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो मोह लेता हो। मोहक। लुभावना। (२) एक प्रकार का सन्निपात ज्वर, जिसमें वायु अति प्रबल होती है। इसके कारण शरीर में वेदना, कंप, निद्रानाश आदि होता है।

सम्मोहन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोहित करने की क्रिया। मुग्ध करना। (२) वह जिससे मोह उत्पन्न होता हो। मोह-

कारक। (३) प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जिससे शत्रु को मोहित कर लेते थे। (४) कामदेव के पाँच बाणों में एक बाण का नाम।

सम्यक्–संज्ञा पुं० [सं०] समुदाय। समूह।

वि० पूरा। सब।

क्रि० वि० (१) सब प्रकार से। (२) अच्छी तरह। भली भाँति।

सम्यक्चारित्र–संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार धर्म्मत्रय में से एक धर्म्म। बहुत ही धर्म्म तथा शुद्धता-पूर्वक आचरण करना।

सम्यक्ज्ञान–संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के धर्म्मत्रय में से एक। न्याय प्रमाण द्वारा प्रतिष्ठित सात या नौ तत्त्वों का ठीक और पूरा ज्ञान।

सम्यक्दर्शन–संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार धर्म्मत्रय में से एक। रत्नत्रय, सातो तत्त्वों और आत्मा आदि में पूरी पूरी श्रद्धा होना।

सम्यक्दर्शी–संज्ञा पुं० [सं० सम्यक्दर्शिन्] वह जिसे सम्यक्दर्शन प्राप्त हो।

सम्यक्संबुद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसे सब बातों का पूरा और ठीक ज्ञान प्राप्त हो गया हो। (२) बुद्ध का एक नाम।

सम्यक्संबोध–संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

सम्यक्समाधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक प्रकार की समाधि।

सम्राज्ञी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सम्राट् की पत्नी। (२) साम्राज्य की अधीश्वरी।

सम्राट्–संज्ञा पुं० [सं० सम्राज्] वह बहुत बड़ा राजा जिसके अधीन बहुत से राजा महाराज आदि हों। महाराजाधिराज। शाहंशाह।

सयन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंधन। (२) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

सयोनि–वि० [सं०] (१) जो एक ही योनि से उत्पन्न हुए हों। (२) एक ही जाति या वर्ग आदि के।

संज्ञा पुं० इंद्र का एक नाम।

सयोनिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सयोनि होने का भाव या धर्म्म।

सर–संज्ञा पुं० [सं० सरस्] बड़ा जलाशय। ताल। तालाब।

संज्ञा पुं० दे० "शर"।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) सिर। (२) सिरा। चोटी। उच्च स्थान।

यौ०—सरअंजाम। सरपरस्त। सरपंच। सरदार। सरहद।

मुहा०—सर करना = बंदूक छोड़ना। फायर करना।

वि० दमन किया हुआ। जीता हुआ। पराजित। अभिभूत।

मुहा०—सर करना = (१) जीतना। वश में लाना। दबाना। (२) खेल में हराना।

संज्ञा पुं० [अं०] एक बड़ी उपाधि जो अँगरेजी सरकार देती है।

सरअंजाम–संज्ञा पुं० [फ़ा०] सामान। सामग्री। असबाब।

सरई–संज्ञा स्त्री० दे० "सरहरी"।

सरकंडा–संज्ञा पुं० [सं० शरकांड] सरपत की जाति का एक पौधा जिसमें गाँठवाली छड़ें होती हैं।

सरक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरकने की क्रिया। खिसकना। चलना। (२) मद्य पात्र। शराब का प्याला। (३) गुड़ की बनी शराब। (४) मद्यपान। शराब पीना। (५) यात्रियों का दल। कारवाँ।

सरकना–क्रि० अ० [सं० सरक, सरण] (१) जमीन से लगे हुए किसी ओर धीरे से बढ़ना। किसी तरफ हटना। खिसकना। जैसे,—थोड़ा पीछे सरको। (२) नियत काल से और आगे जाना। टलना। जैसे,—विवाह सरकना। (३) काम चलना। निर्वाह होना। जैसे,—काम सरकना।

संयो० क्रि०—जाना।

सरकश–वि० [फ़ा०] (१) उद्धत। उद्दंड। अक्खड़। (२) शासन न माननेवाला। विरोध में सिर उठानेवाला। (३) शरारती।

सरकशी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) उद्दंडता। औद्धत्य। (२) नट-खटी। शरारत।

सरकार–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] [वि० सरकारी] (१) प्रधान। अधिपति। मालिक। प्रभु। (२) राज्य। राज्य-संस्था। शासन-सत्ता। गवर्नमेंट। (३) राज्य। रियासत। जैसे,—निज़ाम सरकार।

सरकारी–वि० [फ़ा०] (१) सरकार का। मालिक का। (२) राज्य का। राजकीय। जैसे,—सरकारी इंतज़ाम, सरकारी काग़ज़।

यौ०—सरकारी काग़ज़ = (१) राज्य के दफ्तर का काग़ज़। (२) प्रामिसरी नोट। जैसे,—उसके पास डेढ़ लाख रुपयों के सरकारी काग़ज़ हैं।

सरख़त–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह कागज या दस्तावेज़ जिस पर मकान आदि किराए पर दिए जाने की शर्तें होती हैं। (२) दिए और चुकाए हुए ऋण आदि का ब्योरा।

सरगना–क्रि० अ० [देश०] डींग मारना। शेखी बघारना। बढ़ बढ़ कर बातें करना।

सरग़ना–संज्ञा पुं० [फ़ा०] सरदार। अगुवा। जैसे,—चोरों का सरगना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः बुरे अर्थ में ही होता है।

सरगम–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ सा, रे, ग, म] संगीत में सात स्वरों के चढ़ाव उतार का क्रम। स्वरग्राम।
सरगर्दानी–संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] परेशानी। हैरानी। दिक्कत।
सरगर्म–वि॰ [फ़ा॰] (१) जोशीला। आवेशपूर्ण। (२) उमंग से भरा हुआ। उत्साही।
सरगर्मी–संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] (१) जोश। आवेश। (२) उमंग। उत्साह।
सरघा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] मधुमक्खी।
सरजा–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ सरजाह = उच्च पदवाला; अ॰ शर्ज़ः = सिंह] (१) श्रेष्ठ व्यक्ति। सरदार। (२) सिंह। उ॰—सरजा सिवा जी जंग जीतन चलत है।—भूषण।
सरजीवन–वि॰ [सं॰ संजीवन] (१) संजीवन। जिलानेवाला। (२) हरा भरा। उपजाऊ।
सरज़ोर–वि॰ [फ़ा॰] (१) ज़बरदस्त। (२) उद्दंड। दुर्दमनीय। सरकश।
सरज़ोरी–संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] (१) ज़बरदस्ती। (२) उद्दंडता।
सरट–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) छिपकली। (२) गिरगिट।
सरण–संज्ञा पुं॰ [सं॰] धीरे धीरे हटना या चलना। आगे बढ़ना। सरकना। खिसकना।
सरणी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] मार्ग। रास्ता। (२) पगडंडी। डुर्री। (३) लकीर। (४) बत्ती।
सरता बरता–संज्ञा पुं॰ [सं॰ वर्तन, हिं॰ बरतना + अनु॰ सरतना] बाँट। बँटाई।
मुहा॰—सरता बरता करना = आपस में काम चला लेना।
सरद–वि॰ दे॰ "सर्द"।
सरदई–वि॰ [फ़ा॰ सरदः] सरदे के रंग का। हरापन लिए पीला।
सर दर–क्रि॰ वि॰ [फ़ा॰ सर + दर = भाव] (१) एक सिरे से। (२) सब एक साथ मिला कर। औसत में।
सरदल–संज्ञा पुं॰ [देश॰] दरवाजे का बाजू या साह।
क्रि॰ वि॰ दे॰ "सर दर"।
सरदा–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ सर्दः] एक प्रकार का बहुत बढ़िया खरबूजा जो काबुल से आता है।
सरदार–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] (१) किसी मंडली का नायक। अगुवा। श्रेष्ठ व्यक्ति। (२) किसी प्रदेश का शासक। (३) अमीर। रईस। (४) वेश्याओं की परिभाषा में वह व्यक्ति जिसका किसी वेश्या के साथ संबंध हो।
सरदारी–संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] सरदार का पद या भाव।
सरनॐ†–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "शरण"।
सरना–क्रि॰ अ॰ [सं॰ सरण = चलना, सरकना] (१) चलना। सरकना। खिसकना। (२) हिलना। डोलना। (३) काम चलना। पूरा पड़ना। जैसे,—इतने से काम नहीं सरेगा। (४) संपादित होना। किया जाना। निबटना। जैसे,—काम सरना। (५) निर्वाह होना। गुज़ारा होना। निभना।
सरनाम–वि॰ [फ़ा॰] जिसका नाम हो। प्रसिद्ध। मशहूर। विख्यात।
सरनामा–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] (१) किसी लेख या विषय का निर्देश जो ऊपर लिखा रहता है। शीर्षक। (२) पत्र का आरंभ या संबोधन। (३) पत्र आदि पर लिखा जानेवाला पता।
सरपंच–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ सर + हिं॰ पंच] पंचों में बड़ा व्यक्ति। पंचायत का सभापति।
सरपट–क्रि॰ वि॰ [सं॰ सर्पण] घोड़े की बहुत तेज़ दौड़ जिसमें वह दोनों अगले पैर साथ साथ आगे फेंकता है।
क्रि॰ प्र॰—छोड़ना।—डालना।—दौड़ना।—फेंकना।
सरपत–संज्ञा पुं॰ [सं॰ शरपत्र] कुश की तरह की एक घास जिसमें टहनियाँ नहीं होतीं, बहुत पतली (आधे जौ भर) और हाथ दो हाथ लंबी पत्तियाँ ही मध्य भाग से निकलकर चारो ओर घनी फैली रहती हैं। इसके बीच से पतली छड़ निकलती है जिसमें फूल लगते हैं। यह घास छप्पर आदि छाने के काम में आती है।
सरपरस्त–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] (१) रक्षा करनेवाला श्रेष्ठ पुरुष। (२) अभिभावक। संरक्षक।
सरपरस्ती–संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] (१) संरक्षा। (२) अभिभावकता।
सरपेच–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] (१) पगड़ी के ऊपर लगाने का एक जड़ाऊ गहना। (२) दो ढाई अंगुल चौड़ा गोटा।
सरपोश–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] थाल या तश्तरी ढकने का कपड़ा।
सरफ़राज़–वि॰ [फ़ा॰] (१) उच्च पदस्थ। बड़ाई को पहुँचा हुआ। महत्वप्राप्त। (२) धन्य। कृतार्थ।
मुहा॰—सरफ़राज़ करना = वेश्या के साथ प्रथम समागम करना। (बाज़ारी)
सरफोका–संज्ञा पुं॰ दे॰ "सरफोंका"।
सरबंधी–ॐ संज्ञा पुं॰ [सं॰ शरबंध] तीरंदाज़। धनुर्धर।
सरब–ॐ†वि॰ दे॰ "सर्व"।
सरबराह–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] (१) प्रबंधकर्त्ता। इंतज़ाम करनेवाला। कारिंदा। (२) राज-मजदूरों आदि का सरदार।
सरबराहकार–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ सरबराह + कार] किसी कार्य का प्रबंध करनेवाला। कारिंदा।
सरबराही–संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] (१) प्रबंध। इंतज़ाम। (२) माल असबाब की निगरानी। (३) सरबराह का पद या कार्य।
सरबस–ॐ†संज्ञा पुं॰ दे॰ "सर्वस्व"।
सरमा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) देवताओं की एक कुतिया।
विशेष—ऋग्वेद में यह इंद्र की कुतिया यमराज के चार आँखवाले कुत्तों की माता कही गई है। पणि लोग जब इंद्र की या आर्यों की गौएँ चुरा ले गए थे, तब यह उन्हें खोजकर लाई थी।

लाई थी। महाभारत में इसका उल्लेख देवशुनी के नाम से हुआ है। सरमा देवशुनी ऋग्वेद के एक मंत्र की द्रष्टा भी है। (२) कुतिया। (३) कश्यप की एक स्त्री का नाम। (अग्नि पु०)

सरया–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा धान जिसका चावल लाल होता है और जो कुआर में तैयार हो जाता है। सारो।

सरयू–संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर भारत की एक प्रसिद्ध नदी जिसके किनारे पर प्राचीन अयोध्या नगरी बसी थी। सरस्वती, सिंधु और गंगा आदि नदियों के साथ ऋग्वेद में इसका भी नाम आया है।

सरर–संज्ञा पुं० [हिं० सरकंडा] बाँस या सरकंडे की पतली छड़ी जो ताना ठीक करने के लिये जुलाहे लगाते हैं। सथिया। सतगारा।

सरराना†–क्रि० प्र० [अनु० सरसर] हवा बहने या हवा में किसी वस्तु के वेग से चलने का शब्द होना। उ०—थररान फूर लागे। तररान सूर आगे। चररान चाल उड्डी। सररान तीर छुट्टी।—सूदन।

सरल–वि० [सं०] [स्त्री० सरला] (१) जो सीधा चला गया हो। (२) जो टेढ़ा न हो। सीधा। (३) जो कुटिल न हो। जो चालबाज़ न हो। निष्कपट। सीधा सादा। भोलाभाला। (४) जिसका करना कठिन न हो। सहज। आसान। (५) ईमानदार। सच्चा। (६) असली।

संज्ञा पुं० (१) चीड़ का पेड़ जिससे गंधा बिरोज़ा निकलता है। (२) एक चिड़िया। (३) अग्नि। (४) एक बुद्ध का नाम। (५) सरल का गोंद। गंधा बिरोज़ा।

सरलकद्रु–संज्ञा पुं० [सं०] चिरौंजी। पियाल वृक्ष।

सरलकाष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] चीड़ की लकड़ी।

सरलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) टेढ़ा न होने का भाव। सीधापन। (२) निष्कपटता। सिधाई। (३) सुगमता। आसानी। (४) सादगी। सादापन। भोलापन। (५) सत्यता। सच्चाई।

सरलतृण–संज्ञा पुं० [सं०] भूतृण। गंधतृण।

सरलद्रव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधा बिरोज़ा। (२) तारपीन का तेल। श्रीवेष्ट।

सरल-निर्यास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधा बिरोज़ा। (२) तारपीन का तेल। श्रीवेष्ट।

सरलपुंठी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पहिना मछली।

सरलरका–संज्ञा स्त्री० [सं०] विकंकत। कँटाई।

सरलरस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधा बिरोज़ा। (२) तारपीन का तेल।

सरलस्यंद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधा बिरोज़ा। (२) तारपीन का तेल।

सरलांग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधा बिरोज़ा। (२) तारपीन का तेल।

सरला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चीड़ का पेड़। (२) काली तुलसी। कृष्ण तुलसी। (३) मल्लिका। मोतिया। (४) सफ़ेद निसोथ।

सरलित–वि० [सं०] सीधा या सहज किया हुआ।

सरवन–संज्ञा पुं० [सं० श्रमण] अंधक मुनि के पुत्र जो अपने पिता को एक बहँगी में बैठाकर ढोया करते थे।

विशेष—इनकी कथा रामायण के अयोध्या कांड में उस समय आई है जब दशरथ राम के वन जाने के शोक में प्राणत्याग कर रहे थे। दशरथ ने कौशल्या से अंधक मुनि के शाप की कथा इस प्रकार कही थी। एक बार दशरथ ने जंगली हाथी के धोखे में सरयू नदी के किनारे जल लेते हुए एक तापस-कुमार पर बाण चला दिया। जब वे पास गए, तब तापस-कुमार ने बतलाया कि मैं अपने अंधे माता पिता को एक जगह रख उनके लिये पानी लेने आया था। जब तापस-कुमार मर गया, तब राजा दशरथ शोक करते हुए अंधक मुनि के पास गए और सब वृत्तांत कह सुनाया। मुनि ने शाप दिया कि जिस प्रकार मैं पुत्र के शोक से प्राणत्याग कर रहा हूँ, उसी प्रकार तुम भी प्राणत्याग करोगे। ठीक यही कथा बौद्धों के शाम जातक में भी है। केवल दशरथ का नाम नहीं है, और ऊपर से इतना और जोड़ा गया है कि अंधे मुनि ने जब बुद्ध भगवान् और धर्म की दुहाई दी, तब एक देवी ने प्रकट होकर तापस-कुमार को जिला दिया। सरवन की पितृभक्ति के गीत गानेवाले भिक्षुकों का एक संप्रदाय अब भी अवध तथा उसके आस पास के प्रदेशों में पाया जाता है। जान पड़ता है कि यह संप्रदाय पहले बौद्ध भिक्षुओं का ही एक दल था, जैसा कि "सरवन" या श्रमण नाम से स्पष्ट प्रतीत होता है। वाल्मीकि रामायण में केवल तापस-कुमार कहा गया है, कोई नाम नहीं आया है।

†—संज्ञा पुं० दे० "श्रवण"।

सरवर–संज्ञा पुं० दे० "सरोवर"।

संज्ञा पुं० [फा०] सरदार। अधिपति।

सरवरि†–संज्ञा स्त्री० [सं० सदृश, प्रा० सरिस + कर] बराबरी। तुलना। समता। उ०—(क) शशि जो होइ नहिं सरवरि छाजै। होइ सो अमावस दिनमन लाजै।—जायसी। (ख) हमहिं तुमहिं सरवरि कस नाथा।—तुलसी।

सरवा†–संज्ञा पुं० दे० "साला"।

सरवाक–संज्ञा पुं० [सं० शरावक = प्याला] (१) संपुट। प्याला। (२) दीया। कसोरा। उ०—राम की रजाय तें रसायनी समीर सुनु उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो। जातुधान पुट

तुट पुटपाक लंक जात रूप रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो।—तुलसी।

सरविस–संज्ञा स्त्री० [अं० सर्विस] (१) नौकरी। (२) खिदमत। सेवा।

सरवे–संज्ञा पुं० [अं० सर्वे] (१) जमीन की पैमाइश। (२) वह सरकारी विभाग जो जमीन की पैमाइश किया करता है।

सरसंग्रत–संज्ञा पुं० [सं०] तिधारा थूहर। पत्रगुप्त वृक्ष।

सरस्–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० सरसी] सरोवर। तालाब।

सरस–वि० [सं०] (१) रसयुक्त। रसीला। (२) गीला। भीगा। सजल। (३) जो सूखा या मुरझाया न हो। हरा। ताजा। (४) सुंदर। मनोहर। (५) मधुर। मीठा। (६) जिसमें भाव जगाने की शक्ति हो। भावपूर्ण। जैसे,—सरस काव्य। उ०—निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका।—तुलसी। (७) छप्पय छंद के ३५ वें भेद का नाम जिसमें ३६ गुरु, ८० लघु, कुल ११६ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। (८) रसिक। सहृदय। भावुक।

सरसई⊛–संज्ञा स्त्री० [सं० सरस्वती, प्रा० सरसई] सरस्वती नदी या देवी। उ०—सरसइ ब्रह्म-विचार-प्रचारा।—तुलसी।

⊛संज्ञा स्त्री० [सं० सरस] (१) सरसता। रसपूर्णता। (२) हरापन। ताजापन। उ०—निय निज हिय जु लगी चलत पिय नख रेख खरौंट। सूखन देति न सरसई खोंटि खोंटि खत खोंट।—बिहारी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सरसों] फल के छोटे अंकुर या दाने जो पहले दिखाई पड़ते हैं। जैसे,—आम की सरसई।

सरसठ–वि० संज्ञा पुं० दे० "सड़सठ"।

सरसठवाँ–वि० दे० "सड़सठवाँ"।

सरसना–क्रि० अ० [सं० सरस+ना (प्रत्य०)] (१) हरा होना। पनपना। (२) वृद्धि को प्राप्त होना। बढ़ना। उ०—सुफल होत मन कामना मिटत विघन के द्वंद। गुन सरसत बरसत हरष सुमिरत लाल मुकुंद। (३) शोभित होना। सोहाना। उ०—वाको बिलोकिये जो मुख इंदु लगी यह इंदु कहूँ लव लेस में। बेनी प्रवीन महा सरसै छवि जो परसै कहूँ स्यामल केस में।—बेनी। (४) रसपूर्ण होना। (५) भाव की उमंग से भरना।

सरसब्ज़–वि० [फ़ा०] (१) हरा भरा। जो सूखा या मुरझाया न हो। लहलहाता। (२) जहाँ हरियाली हो। जो घास और पेड़ पौधों से हरा हो। जैसे,—सरसब्ज़ मैदान।

सर सर–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) जमीन पर रेंगने का शब्द। (२) वायु के चलने से उत्पन्न ध्वनि। जैसे,—हवा सर सर चल रही है।

सरसराना–क्रि० अ० [अनु० सर सर] (१) सर सर की ध्वनि होना। (२) वायु का सर सर की ध्वनि करते हुए बहना। वायु का तेजी से चलना। सनसनाना। उ०—सरसराती हुई हवा केले के पत्तों को हिलाती है।—रत्नावली। (३) साँप या किसी कीड़े का रेंगना।

सरसराहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० सरसर+आहट (प्रत्य०)] (१) साँप आदि के रेंगने से उत्पन्न ध्वनि। (२) शरीर पर रेंगने का सा अनुभव। खुजली। सुरसुराहट। (३) वायु बहने का शब्द।

सरसरी–वि० [फ़ा० सरसरी] (१) जम कर या अच्छी तरह नहीं। जल्दी में। जैसे,—सरसरी नज़र से देखना। (२) चलते ढंग पर। काम चलाने भर को। स्थूल रूप से। मोटे तौर पर। जैसे,—अभी सरसरी तौर से कर जाओ।

सरसा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद निसोथ। शुक्ल त्रिवृता।

सरसाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० सरस+आई (प्रत्य०)] (१) सरसता। (२) शोभा। सुंदरता। (३) अधिकता।

सरसाना–क्रि० स० [हिं० सरसना] (१) रसपूर्ण करना। (२) हरा भरा करना।

⊛ क्रि० अ० दे० "सरसना"।

⊛–क्रि० अ० शोभित होना। शोभा देना। सजना। उ०—(क) लै आपु निज अंक में शोभा कही न जाई। जिमि जलनिधि की गोद में शशि शिशु शुभ सरसाई।—गोपाल। (ख) सुंदर सूधी सुगोल रची विधि कोमलता अति ही सरसात है।—हरिऔध।

सरसाम–संज्ञा पुं० [फ़ा०] सन्निपात। त्रिदोष। थाई।

सरसार†–वि० [फ़ा० सरशार] (१) डूबा हुआ। मग्न। (२) गड़ाप। चूर। मदमस्त। (नशे में)

सरसिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिंगुपत्री। (२) छोटा ताल। (३) बावली।

सरसिज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो ताल में होता हो। (२) कमल।

सरसिजयोनि–संज्ञा पुं० [सं०] कमल से उत्पन्न, ब्रह्मा।

सरसिरुह–संज्ञा पुं० [सं०] (सर में उत्पन्न) कमल।

सरसी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटा ताल। छोटा सरोवर। तलैया। (२) पुष्करणी। बावली। उ०—कठुला कंठ बघनहा नीके। नयन सरोज मयन सरसी के।—सूर। (३) एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में न, ज, भ, ज, ज, ज, र होते हैं।

सरसीक–संज्ञा पुं० [सं०] सारस पक्षी।

सरसीरुह–संज्ञा पुं० [सं०] (सर में उत्पन्न होनेवाला) कमल।

सरसुत गोरंटी–संज्ञा स्त्री० [देश०] सफेद कटसरैया। श्वेत झिंटी।

सरसेटना–क्रि० स० [अनु०] खरी खोटी सुनाना। फटकारना। भला बुरा कहना।

सरसों-संज्ञा स्त्री० [सं० सर्षप] एक धान्य या पौधा जिसके गोल गोल छोटे बीजों से तेल निकलता है। एक तेलहन।

विशेष—भारत के प्रायः सभी प्रांतों में इसकी खेती तेल के लिये होती है। इसका डंठल दो तीन हाथ ऊँचा होता है। पत्ते हरे और कटे किनारेवाले होते हैं। ये चिकने होते और डंठी से सटे रहते हैं। फूल चमकीले पीले रंग के होते हैं। फलियाँ दो तीन अंगुल लंबी पतली और गोल होती हैं जिनमें महीन बीज के दाने भरे होते हैं। कार्त्तिक में गेहूँ के साथ तथा अलग भी इसे बोते हैं। माघ तक यह तैयार हो जाता है। सरसों दो प्रकार की होती है—लाल और पीली या सफेद। इसे लोग मसाले के काम में भी लाते हैं। इसका तेल, जो कड़ुआ तेल कहलाता है, नित्य के व्यवहार में आता है। इसके पत्तों का साग बनता है।

सरस्वती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्राचीन नदी जो पंजाब में बहती थी और जिसकी क्षीण धारा कुरुक्षेत्र के पास अब भी है। (२) विद्या या वाणी की देवी। वाग्देवी। भारती। शारदा।

विशेष—वेदों में इस नदी का उल्लेख बहुत है और इसके तट का देश बहुत पवित्र माना गया है। पर वहाँ यह नदी अनिश्चित सी है। बहुत से स्थलों में तो सिंधु नदी के लिये ही इसका प्रयोग जान पड़ता है। कुरुक्षेत्र के पास से होकर बहनेवाली मध्यदेशवाली सरस्वती के लिये इस शब्द का प्रयोग थोड़ी ही जगहों में हुआ है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि पारसियों के अवस्ता ग्रंथ में अफगानिस्तान की जिस "हरख्वैती" नदी का उल्लेख है, वास्तव में वही मूल सरस्वती है। पीछे पंजाब की नदी को यह नाम दिया गया। ऋग्वेद में इस नदी के समुद्र में गिरने का उल्लेख है। पर पीछे की कथाओं में इसकी धारा लुप्त होकर भीतर भीतर प्रयाग में जाकर गंगा से मिलती हुई कही गई है। वेदों में सरस्वती नदियों की माता कही गई है और उसकी सात बहिनें बताई गई हैं। एक स्थान पर यह स्वर्ण मार्ग से बहती हुई और वृत्रासुर का नाश करनेवाली कही गई है। वेद मंत्रों में जहाँ देवता रूप में इसका आह्वान है, वहाँ पूषा, इंद्र और मरुत् आदि के साथ इसका संबंध है। कुछ मंत्रों में यह इडा और भारती के साथ तीन यज्ञ-देवियों में रखी गई है। वाजसनेयी संहिता में कथा है कि सरस्वती ने वाचा देवी के द्वारा इंद्र को शक्ति प्रदान की थी। आगे चलकर ब्राह्मण ग्रंथों में सरस्वती वाग्देवी ही मान ली गई है। पुराणों में सरस्वती देवी ब्रह्मा की पुत्री और स्त्री दोनों कही गई है और उसका वाहन हंस बताया गया है। महाभारत में एक स्थान पर सरस्वती को दक्ष-प्रजापति की कन्या लिखा है। लक्ष्मी और सरस्वती देवी का वैर भी प्रसिद्ध है।

(३) विद्या। इल्म। (४) एक रागिनी जो शंकराभरण और नट नारायण के योग से उत्पन्न मानी जाती है। (५) ब्राह्मी बूटी। (६) मालकँगनी। ज्योतिष्मती लता। (७) सोम लता। (८) एक छंद का नाम। (९) गाय।

सरस्वती कंठाभरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक। (२) भोज कृत अलंकार का एक ग्रंथ। (३) एक पाठशाला जिसे धार के परमारवंशी राजा भोज ने स्थापित किया था।

सरस्वती-पूजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती का उत्सव जो कहीं वसंतपंचमी को और कहीं आश्विन में होता है।

सरहंग-संज्ञा पुं० [फा०] (१) सेना का अफसर। नायक। कप्तान। (२) मल्ल। पहलवान। (३) जबरदस्त। बलवान। (४) पैदल सिपाही। (५) चोबदार। (६) कोतवाल।

सरहंगी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) सिपहगिरी। सेना की नौकरी। (२) वीरता। (३) पहलवानी।

सरह-संज्ञा पुं० [सं० शलभ, प्रा० सरह] (१) पतंग। फतिंगा। (२) टिड्डी। उ०—कटक सरह अस छूट।—जायसी।

सरहज-संज्ञा स्त्री० [सं० श्यालजाया] साले की स्त्री। पत्नी के भाई की स्त्री।

सरहटी-संज्ञा स्त्री० [सं० सर्पाक्षी] सर्पाक्षी नाम का पौधा। नकुलकंद।

विशेष—यह पौधा दक्षिण के पहाड़ों, आसाम, बरमा और लंका आदि में बहुत होता है। इसके पत्ते समवर्ती, २ से ५ इंच तक लंबे तथा १ से १॥ इंच तक चौड़े, अंडाकार, अनीदार और नुकीले होते हैं। टहनियों के अंत में छोटे छोटे सफेद रंग के फूल आते हैं। बीज बारीक तथा तिकोने होते हैं। सरहटी स्वाद में कुछ खट्टी और कड़वी होती है। कहते हैं कि जब साँप और नेवले में युद्ध होता है, तब नेवला अपना विष उतारने के लिये इसे खाता है। इसी से हिंदुस्तान और सिंहल आदि में इसकी जड़ साँप का विष उतारने की दवा समझी जाती है। इसकी छाल, पत्ती और जड़ का काढ़ा पुष्ट होता है और पेट के दर्द में भी दिया जाता है।

सरहत†-संज्ञा पुं० [देश०] खलिहान में फैला हुआ अनाज बुहारने का झाड़ू।

सरहतना†-क्रि० स० [देश०] अनाज को साफ करने के लिये फटकना। पछोड़ना।

सरहद-संज्ञा स्त्री० [फा० सर+अ० हद] (१) सीमा। (२) किसी भूमि की चौहद्दी निर्धारित करनेवाली रेखा या चिह्न। (३) सीमा पर की भूमि। सीमांत। सिवान।

सरहदी-वि० [फा० सरहद+ई (प्रत्य०)] सरहद संबंधी। सीमा संबंधी। जैसे,—सरहदी झगड़े।

सरहना संज्ञा स्त्री० [देश०] मछली के ऊपर का छिल्का । चूईं ।

सरहट—संज्ञा पुं० [सं० शर] भद्रमुंज । रामशर । सरपत ।

सरहरा—वि० [सं० सरल+घट] सीधा ऊपर को गया हुआ । जिसमें इधर उधर शाखाएँ न निकली हों । (पेड़)

वि० [सं० सरण] जिस पर हाथ पैर रखने से न जमे । फिसलाव वाला । चिकना ।

सरहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० शर] (१) मूँज या सरपत की जाति का एक पौधा जिसकी छड़ पतली, चिकनी और बिना गाँठ की होती है । (२) गंधनी । सर्पाक्षी ।

सरहिंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० सर+हिंद] पंजाब का एक स्थान ।

सरांगा—संज्ञा स्त्री० [सं० शलाका] लोहे की एक मोटी छड़ जिस पर पीटकर लोहार बरतन बनाते हैं ।

सरा#—संज्ञा स्त्री० [सं० शर] चिता । उ०—चंदन अगर मलयगिर काढ़ा । घर घर कीन्ह सरा रचि ठाढ़ा ।—जायसी ।

संज्ञा स्त्री० दे० "सराय" ।

सराई†—संज्ञा स्त्री० [सं० शलाका] (१) शलाका । सलाई । (२) सरकंडे की पतली छड़ी ।

संज्ञा स्त्री० [सं० शराव=प्याला] मिट्टी का प्याला या दीया । सकोरा ।

सराग†—संज्ञा पुं० [सं० शलाक] (१) लोहे की सीख । पतला सीखचा । नुकीली छड़ । (२) वह लकड़ी जो कुलावे के बीच में लगाई जाती है और जिसके ऊपर कुलाबा घूमता है ।

सराजाम†—संज्ञा पुं० [फ़ा० सरअंजाम] सामग्री । असबाब । सामान ।

सराध#†—संज्ञा पुं० दे० "श्राद्ध" ।

सराना#†—क्रि० स० [हिं० सारना का प्रे०] पूर्ण कराना । संपादित कराना । (काम) कराना । उ०—मैं ही उनकी बूझ चलायो । भवन बिपिन सँग ही सँग डोलि ऐसेहि भेद लखायो । पुरुष भँवर दिन चारि आपुनो अपनो चाउ सरायो ।—सूर ।

सराप—संज्ञा पुं० दे० "शाप" ।

सरापना#†—क्रि० स० [सं० शाप, हिं० सराप+ना (प्रत्य०)] (१) शाप देना । बद्दुआ देना । अनिष्ट मनाना । कोसना । (२) बुरा भला कहना । गाली देना ।

सराफ़—संज्ञा पुं० [अ० सर्राफ़] (१) रुपए पैसे या चाँदी सोने का लेन देन करनेवाला महाजन । (२) सोने चाँदी का व्यापारी । (३) सोने चाँदी के बरतन, जेवर आदि का लेन देन करनेवाला । (४) बदले के लिये रुपए पैसे रखकर बैठनेवाला दूकानदार ।

सराफ़ा—संज्ञा पुं० [अ० सर्राफ़ः] (१) सराफ़ी का काम । रुपए पैसे या सोने चाँदी के लेन देन का काम । (२) वह स्थान जहाँ सराफ़ों की दूकानें अधिक हों । सराफ़ों का बाजार । जैसे,—अभी सराफ़ा नहीं खुला होगा । (३) कोठी । बंक ।

क्रि० प्र०—खोलना ।

सराफ़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० सराफ़+ई (प्रत्य०)] (१) सराफ़ का काम । चाँदी सोने या रुपए पैसे के लेन देन का रोजगार । (२) वह वर्णमाला जिसमें अधिकतर महाजन लोग लिखते हैं । महाजनी । मुंडा । (३) नोट, रुपए आदि भुनाने का बट्टा जो भुनानेवाले को देना पड़ता है ।

सराब—संज्ञा पुं० [अ०] (१) मृगतृष्णा । (२) धोखा देनेवाली वस्तु । (३) धोखा ।

‡ संज्ञा पुं० दे० "शराब" ।

सराबोर—वि० [सं० स्राव+हिं० बोर] बिल्कुल भीगा हुआ । तरबतर । नहाया हुआ । आप्लावित ।

सराय—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) रहने का स्थान । घर । मकान । (२) यात्रियों के ठहरने का स्थान । मुसाफिरखाना ।

मुहा०—सराय का कुत्ता=अपने मतलब का यार । स्वार्थी । मतलबी । सराय की भठियारी=लड़ाकी और निर्लज्ज स्त्री ।

संज्ञा पुं० [देश०] गुल्लर नाम का पहाड़ी पेड़ ।

विशेष—यह वृक्ष बहुत ऊँचा होता है और हिमालय पर अधिक होता है । इसके हीर की लकड़ी सुगंधित और हलकी होती है और मकान आदि बनाने के काम में आती है ।

सराव#†—संज्ञा पुं० [सं० शराव] (१) मद्यपात्र । प्याला (शराब पीने का) । (२) कसोरा । कटोरा । (३) दीया । उ०—हरि जू की आरती बनी । अति विचित्र रचना रचि राखी परति न गिरा गनी । कच्छप अध आसन अनूप अति डाँड़ी शेष फनी । मही सराव सप्त सागर घृत बाती शैल घनी ।—सूर । (४) एक तौल जो ६४ तोले की होती थी ।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की पहाड़ी बकरी ।

सरावग—संज्ञा पुं० [सं० श्रावक] जैन । सरावगी । उ०—ईस सीस बिलसत बिमल तुलसी तरल तरंग । स्वान सरावग के कहे लघुता लहै न गंग ।—तुलसी ।

सरावगी—संज्ञा पुं० [सं० श्रावक] श्रावक धर्मावलंबी । जैन धर्म माननेवाला । जैन ।

विशेष—प्रायः इस मत के अनुयायी आजकल वैश्य ही अधिक पाए जाते हैं ।

सरावन†—संज्ञा पुं० [सं० सरण, हिं० सरना] जुते हुए खेत की मिट्टी बराबर करने का पाटा । हेंगा ।

सरावसंपुट—संज्ञा पुं० [सं० शराव+संपुट] रसौषध फूँकने के लिये मिट्टी के दो कसोरों का मुँह मिलाकर बनाया हुआ एक बरतन ।

सराविका—संज्ञा स्त्री० दे० "शराविका" ।

सरासन#—संज्ञा पुं० दे० "शरासन" ।

सरासर—अव्य० [फ़ा०] (१) एक सिरे से दूसरे सिरे तक । यहाँ से वहाँ तक । (२) बिल्कुल । पूर्णतया । जैसे,—तुम सरासर झूठ कहते हो । (३) साक्षात् । प्रत्यक्ष ।

सरासरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) आसानी। फुरती। (२) शीघ्रता। जल्दी। (३) मोटा अंदाज। स्थूल अनुमान। (४) बकाया लगान का दावा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

क्रि० वि० (१) जल्दी में। हड़बड़ी में। जमकर नहीं। इतमीनान से नहीं। (२) मोटे तौर पर। स्थूल रूप से।

सराह॰–संज्ञा स्त्री० [सं० श्लाघा] बड़ाई। प्रशंसा। तारीफ। श्लाघा।

सराहना–क्रि० स० [सं० श्लाघन] (१) तारीफ करना। बड़ाई करना। प्रशंसा करना। उ०—(क) ऊँचे चितै सराहियत गिरह कबूतर लेत। दृग झलकित मुकलित बदन तन पुलकित हित हेत।—बिहारी। (ख) जे फल देखी सोइय फीका। ताकर काह सराहे नीका।—जायसी। (ग) सबै सराहत सीय लुनाई।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० प्रशंसा। तारीफ। उ०—श्रीमुख जासु सराहना कीन्ही श्रीहरिचंद।—प्रतापनारायण।

सराहनीय॰–वि० [हिं० सराहना+ईय (प्रत्य०)] (१) प्रशंसा के योग्य। तारीफ़ के लायक। श्लाघनीय। (२) अच्छा। बढ़िया। उम्दा।

सरि–संज्ञा स्त्री० [सं०] झरना। निर्झर।

॰ संज्ञा स्त्री० [सं० सरित्] नदी।

॰ संज्ञा स्त्री० [सं० सदृश, प्रा० सरिस] बराबरी। समता। उ०—दाड़िम सरि जो न कै सका फाटेउ हिया दरकि।—जायसी।

वि० सदृश। समान। बराबर।

सरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हींगपत्री। हिंगुपत्री। (२) मोतियों की लड़ी। (३) मुक्ता। मोती। (४) रत्न। (५) छोटा ताल या सरोवर। (६) एक तीर्थ।

सरिगम–संज्ञा पुं० दे० "सरगम"।

सरित्–संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

सरिता–संज्ञा स्त्री० [सं० सरित्=बहा हुआ] (१) धारा। (२) नदी। दरिया।

सरित्कफ–संज्ञा पुं० [सं०] नदी का फेन।

सरित्पति–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

सरित्सुत–संज्ञा पुं० [सं०] (गंगा के पुत्र) भीष्म।

सरिदिही–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सर=सरदार+देह=गाँव] वह नजर या भेंट जो जमींदार या उसका कारिंदा किसानों से हर फसल पर लेता है।

सरिद्वरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (उत्तम नदी) गंगा।

सरिया|–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) ऊँची भूमि। (२) पैसा या और कोई छोटा सिक्का। (सोनार)

संज्ञा पुं० [सं० शर] (१) सरकंडे की छड़ जो सुनहले या रुपहले तार बनाने में काम आती है। सरई। (२) पतली छड़।

सरियाना|–क्रि० स० [?] (१) तरतीब से लगा कर इकट्ठा करना। बिखरी हुई चीजें ढंग से समेटना। जैसे,—लकड़ी सरियाना, कागज सरियाना। (२) मारना। लगाना। (बाजारू)

सरिल–संज्ञा पुं० [सं०] सलिल। जल।

सरिवन–संज्ञा पुं० [सं० शालपर्णी] शालपर्णी नाम का पौधा। त्रिपर्णी। अंशुमती।

विशेष—यह क्षुप जाति की वनौषधि है और भारत के प्रायः सभी प्रांतों में होती है। इसकी ऊँचाई तीन चार फुट होती है। यह जंगली झाड़ियों में पाई जाती है। इसका कांड सीधा और पतला होता है। पत्ते बेल के पत्तों की भाँति एक सींके में तीन तीन होते हैं। ग्रीष्म ऋतु को छोड़ प्रायः सभी ऋतुओं में इसके फल फूल देखे जाते हैं। फूल छोटे और आसमानी रंग के होते हैं। फलियाँ चिपटी, पतली और प्रायः आध इंच लंबी होती हैं। सरिवन औषध के काम में आती है।

सरिवरि॰|–संज्ञा स्त्री० [हिं० सरि+सं० प्रति, प्रा० पडि, वडि] बराबरी। समता। उ०—तुम्हहिं हमहिं सरिवरि कस नाथा।—तुलसी।

सरिश्ता–संज्ञा पुं० [फ़ा० सरिश्तः] (१) अदालत। कचहरी। (२) शासन या कार्यालय का विभाग। महकमा। दफ्तर। आफिस।

सरिश्तेदार–संज्ञा पुं० [फ़ा० सरिश्तःदार] (१) किसी विभाग का प्रधान कर्मचारी। (२) अदालतों में देशी भाषाओं में मुकदमों की मिसलें रखनेवाला कर्मचारी।

सरिश्तेदारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) सरिश्तेदार होने का भाव। (२) सरिश्तेदार का काम या पद।

सरिस॰–वि० [सं० सदृश, प्रा० सरिस] सदृश। समान। तुल्य। उ०—(क) जल पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति क रीति यह।—तुलसी। (ख) उठिकै निज मस्तक भयो चाहत असुर महान। बात वेग ते फल सरिस महि मँह गिरे विमान।—गिरधरदास।

सरीक|–वि० दे० "शरीक"।

सरीकत|–संज्ञा स्त्री० दे० "शिराकत"।

सरीकता॰–संज्ञा स्त्री० [अ० शरीक+सं० ता (प्रत्य०)] साझा। हिस्सा। शिरकत। उ०—निपट निदरि बोले बचन कुठारपानि मानी त्रास औनिपन मानो मौनता गही। रोपे मारे लखन अकन अनखोंहीं बातें तुलसी बिनीत बानी बिहँसि ऐसी कही। सुजस तिहारे भरे भुअन भृगु तिलक प्रबल

प्रताप आपु कही सो सबै कही। टूट्यो सो न जुरैगो सरासन महेस जू को रावरी पिनाक में सरीकता कहा रही ?—तुलसी।

सरीका—वि० दे० "सरीखा"।

सरीखा—वि० [सं० सदृश, प्रा० सरिस] सदृश। समान। तुल्य।

सरीफा—संज्ञा पुं० [सं० श्रीफल] एक छोटा पेड़ जिसके फल खाए जाते हैं।

विशेष—इसकी छाल पतली खाकी रंग की होती है और पत्ते अमरूद के पत्तों के से होते हैं। फूल तीन दलवाले, चौड़े और कुछ अनीदार होते हैं। फल गोलाई लिए हरे रंग का होता है और उस पर उभरे हुए दाने होते हैं जो देखने में बड़े सुंदर लगते हैं। बीज-कोशों का गूदा बहुत मीठा होता है। इस फल में बीज अधिक होते हैं। सरीफा गरमी के दिनों में फूलता है और कातिक अगहन तक फल पकते हैं। विंध्य पर्वत पर बहुत से स्थानों में यह आप से आप उगता है। वहाँ इसके जंगल के जंगल खड़े हैं। जंगली सरीफे के फल छोटे और गूदा बहुत कम होता है।

सरीर‡—संज्ञा पुं० दे० "शरीर"।

सरीसृप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रेंगनेवाला जंतु। जैसे,—साँप, कनखजूरा आदि। (२) सर्प। साँप। (३) विष्णु का एक नाम।

सरुच्—वि० [सं०] शोभायुक्त। कांतिमान्।

सरुज—वि० [सं०] रोगी। रोग-युक्त। रुग्ण।

सरुष—वि० [सं०] क्रोध-युक्त। कुपित।

सरूप—वि० [सं०] (१) रूप-युक्त। आकारवाला। (२) एक ही रूप का। सदृश। समान। (३) रूपवान्। सुंदर।

‡ संज्ञा पुं० दे० "स्वरूप"।

सरूपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूत की स्त्री जो असंख्य रुद्रों की माता कही गई है।

सरूर—संज्ञा पुं० [फा० सुरूर] (१) आनंद। खुशी। प्रसन्नता। (२) हलका नशा। नशे की तरंग। मादकता।

सरेख—‡वि० [सं० श्रेष्ठ] [स्त्री० सरेखी] अवस्था में बड़ा और समझदार। श्रेष्ठ। चतुर। चालाक। सयाना। उ०—(क) रतन सेन बोला सुआ सरेखा। अगुवा सोई पंथ जेहि देखा।—जायसी। (ख) हँसि हँसि पूछै सखी सरेखी। जनहु कुमुद चंदन मुख देखी।—जायसी।

सरेखा—संज्ञा पुं० दे० "रेखा"।

सरेखना—क्रि० स० दे० "सहेजना"।

सरेदस्त—क्रि० वि० [फा०] (१) इस समय। अभी। (२) फिलहाल। अभी के लिये। इस समय के लिये।

सरे बाज़ार—क्रि० वि० [फा०] (१) बाज़ार में। जनता के सामने। (२) खुले आम। सब के सामने।

सरेरा, सरेला—संज्ञा पुं० [देश०] (१) पाल में लगी हुई रस्सी जिसे ढीला करने से पाल की हवा निकल जाती है। (२) मछली की बंसी की डोरी। शिस्त।

सरेस—संज्ञा पुं० [फा० सरेश] एक लसदार वस्तु जो ऊँट, गाय, भैंस आदि के चमड़े या मछली के पोटे को पकाकर निकालते हैं। सहरेस। सरेश।

विशेष—यह कागज, कपड़े, चमड़े आदि को आपस में जोड़ने या चिपकाने के काम में आता है। जिल्दबंदी में इसका व्यवहार बहुत होता है।

वि० चिपकनेवाला। लसीला।

सरेसमाही—संज्ञा पुं० [फा० सरेश-माही] सफेद या काले रंग का गोंद के समान एक द्रव्य।

विशेष—यह एक प्रकार की मछली के पेट से निकलता है जिसकी नाक लंबी होती है और जिसे नदी का सूअर कहते हैं। यह दुर्गंधयुक्त और स्वाद में कड़ुआ होता है।

सरोट‡—संज्ञा पुं० [सं० शाट+वर्त्त, हिं० सिलवट] कपड़ों में पड़ी हुई सिलवट। शिकन। बली। उ०—नट न सीस साबित भई लुटी सुखन की मोट। चुप करिये चारी करति सारी परी सरोट।—बिहारी।

सरो—संज्ञा पुं० [फा० सर्व] एक सीधा पेड़ जो बगीचों में शोभा के लिये लगाया जाता है। बनझाऊ।

विशेष—इस पेड़ का स्थान काश्मीर, अफगानिस्तान और फारस आदि एशिया के पश्चिमी प्रदेश हैं। फारसी की शायरी में इसका उल्लेख बहुत अधिक है। ये शायर नायिका के सीधे डील डौल की उपमा प्रायः इसी से दिया करते हैं। यह पेड़ बिलकुल सीधा ऊपर को जाता है। इसकी टहनियाँ पतली पतली होती हैं और पत्तियों से भरी होने के कारण दिखाई नहीं देतीं। पत्तियाँ टेढ़ी रेखाओं के जाल के रूप में बहुत घनी और सुंदर होती हैं। यह पेड़ झाऊ की जाति का है, और उसी के से फल भी इसमें लगते हैं।

सरोई—संज्ञा पुं० [हिं० सरो ?] एक प्रकार बड़ा पेड़।

विशेष—यह वृक्ष बहुत ऊँचा होता है। इसकी लकड़ी ललाई लिए सफेद होती है और चारपाइयाँ आदि बनाने के काम में आती है। इसकी छाल से रंग भी निकाला जाता है।

सरोकार—संज्ञा पुं० [फा०] (१) परस्पर व्यवहार का संबंध। (२) लगाव। वास्ता। प्रयोजन। मतलब।

सरोज—संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

सरोजमुखी—वि० स्त्री० [सं०] कमल के समान मुखवाली। सुंदरी।

सरोजिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कमलों से भरा हुआ ताल। कमलपूर्ण सरसी। (२) कमलों का समूह। कमलवन। (३) कमल का फूल।

सरोजी-वि० [सं० सरोजिन्] [स्त्री० सरोजिनी] (१) कमलवाला। (२) जहाँ कमल हों।
संज्ञा पुं० (१) (कमल से उत्पन्न) ब्रह्मा। (२) बुद्ध का एक नाम।

सरोत्सव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बकुला। बक पक्षी। (२) सारस।

सरोद-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) बीन की तरह का एक प्रकार का बाजा।
विशेष—इसमें ताँत और लोहे के तार लगे रहते हैं और इसके आगे का हिस्सा चमड़े से मढ़ा रहता है।
(२) नाचने गाने की क्रिया। गान और नृत्य।

सरोधा-संज्ञा पुं० [सं० स्वरोदय] श्वास का दाहिने या बाएँ नथने से निकलना देखकर भविष्य की बातें कहने की विद्या।

सरोबिंदु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वैदिक गीत।

सरोरुह-संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

सरोला-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मिठाई।
विशेष—यह पोस्ते, छुहारे, बादाम आदि मेवों के साथ मैदे को घी और चीनी में पकाकर बनाई जाती है।

सरोवर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तालाब। पोखरा (२) झील। ताल।

सरोष-वि० [सं०] क्रोधयुक्त। कुपित।

सरोसामान-संज्ञा पुं० [फ़ा० सर+व+सामान] सामग्री। उपकरण। असबाब।

सरोही-संज्ञा स्त्री० दे० "सिरोही"।

सरौ-संज्ञा पुं० [सं० शराव] (१) कटोरी। प्याली। (२) ढक्कन। ढकना।
संज्ञा पुं० दे० "सरो"।

सरौता-संज्ञा पुं० [सं० सार=लोहा+पत्र; प्रा० सारवत्त] [स्त्री० अल्पा० सरौती] सुपारी काटने का औज़ार।
विशेष—यह लोहे के दो खंडों का होता है। ऊपर का खंड गँड़ासी की भाँति धारदार होता है और नीचे का मोटा, जिस पर सुपारी रखते हैं। दोनों खंडों के सिरे टीली कील से जुड़े रहते हैं, जिससे वे ऊपर नीचे घूम सकते हैं। इन्हीं दोनों खंडों के बीच में रखकर और ऊपर से दबाकर सुपारी काटी जाती है।

सरौती-संज्ञा स्त्री० [हिं० सरौता] छोटा सरौता।
संज्ञा स्त्री० [सं० शरपत्र] एक प्रकार की ईख जिसकी छड़ पतली होती है।
विशेष—इस ऊख की गाँठें काली होती हैं और सब तना सफेद होता है।

सर्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मन। चित्त। (२) वायु। (३) एक प्रजापति का नाम।

सर्कस—संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह स्थान जहाँ जानवरों का खेल दिखाया जाता है। (२) वह मंडली जो पशुओं तथा नटों को साथ रखती है और खेलकूद के तमाशे दिखाती है।

सर्का-संज्ञा पुं० [अ० सर्क़ः] (१) चोरी। (२) दूसरे के भाव या लेख को चुरा लेने की क्रिया। साहित्यिक चोरी।

सर्कार-संज्ञा स्त्री० दे० "सरकार"।

सर्कारी-वि० दे० "सरकारी"।

सर्क्युलर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) गश्ती चिट्ठी। (२) सरकारी आज्ञापत्र जो सब दफ्तरों में घुमाया जाता है। (३) वह पत्र जिसमें किसी विषय की आवश्यक सूचनाएँ रहती हैं।

सर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गमन। गति। चलना या बढ़ना। (२) संसार। सृष्टि। जगत् की उत्पत्ति। (३) बहाव। झोंक। प्रवाह। (४) छोड़ना। चलाना। फेंकना। (५) छोड़ा हुआ अस्त्र। (६) मूल। उद्गम। उत्पत्ति स्थान। (७) प्राणी। जीव। (८) संतति। संतान। औलाद। (९) स्वभाव। प्रकृति। (१०) प्रवृत्ति। झुकाव। रुझान। (११) प्रयत्न। चेष्टा। (१२) संकल्प। (१३) किसी ग्रंथ (विशेषतः काव्य) का अध्याय। प्रकरण। परिच्छेद। (१४) मोह। मूर्च्छा। (१५) शिव का एक नाम।

सर्गपताली-संज्ञा पुं० [सं० स्वर्ग+पाताल+ई (प्रत्य०)] (१) जिसकी आँखें ऐंची हों। ऐंचा ताना। (२) वह बैल जिसका एक सींग ऊपर की ओर उठा हो और दूसरा नीचे की ओर झुका हो।

सर्गपुट-संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध राग का एक भेद।

सर्गबंध-वि० [सं०] जो कई अध्यायों में विभक्त हो। जैसे,—सर्गबंध काव्य।

सर्गुन‡-वि० दे० "सगुण"।

सर्जंट-संज्ञा पुं० [अं० सार्जेन्ट] (१) हवलदार। जमादार। (२) नाज़िर। (३) प्रथम श्रेणी का वकील।

सर्ज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ी जाति का शाल वृक्ष। अजकर्ण वृक्ष। (२) राल। धूना। करायल। (३) शलकी वृक्ष। सलई का पेड़। (४) विजयसाल का पेड़। असन वृक्ष।
संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार का बढ़िया मोटा ऊनी कपड़ा जो प्रायः कोट आदि बनाने के काम में आता है।

सर्जक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ा शाल वृक्ष। (२) विजयसाल। (३) सलई का पेड़। (४) मट्ठा छोड़ने पर गरम दूध का फटाव।

सर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० सर्जनीय, सर्जित] (१) छोड़ना। त्याग करना। फेंकना। (२) निकालना। (३) सृष्टि का उत्पन्न होना। सृष्टि। (४) सेना का पिछला भाग। (५) साल का गोंद।
संज्ञा पुं० [अं०] अस्त्र चिकित्सा करनेवाला। चीर फाड़ करनेवाला डाक्टर। जर्राह।

सर्जनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुदा की वलियों में से बीचवाली वली जो मल, पवनादि निकालती है।

सर्जमणि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोचरस। सेमल का गोंद। (२) राल। धूना। करायल।

सर्जरी–संज्ञा स्त्री० [अं०] चीर फाड़ करके चिकित्सा करने की क्रिया या विद्या।

सर्जि–संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जी।

सर्जिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जी खार।

सर्जिक्षार–संज्ञा पुं० [सं०] सज्जी खार।

सर्जु–संज्ञा पुं० [सं०] वणिक। व्यापारी।
संज्ञा स्त्री० विद्युत्। बिजली।

सर्जू–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वणिक। व्यापारी। (२) गले का हार।
संज्ञा स्त्री० दे० "सरयू"।

सर्जूर–संज्ञा पुं० [सं०] दिन।

सर्टिफ़िकेट–संज्ञा पुं० [अं०] (१) परीक्षा में उत्तीर्ण होने का प्रमाणपत्र। सनद। (२) चाल चलन, स्वास्थ्य, योग्यता आदि का प्रमाणपत्र।

सर्त–संज्ञा स्त्री० दे० "शर्त"।

सर्ता–संज्ञा पुं० [सं० सर्त्] घोड़ा।

सर्द–वि० [फ़ा०] (१) ठंढा। शीतल। (२) सुस्त। काहिल। ढीला। (३) मंद। धीमा।
मुहा०—सर्द होना=(१) ठंढा पड़ना। शीतल होना। (२) मरकर समाप्त हो जाना। (३) मंद हो जाना। धीमा हो जाना। (४) उत्साह-रहित होना। चुप हो जाना। दब जाना।
(४) नपुंसक। नामर्द। (५) बेस्वाद। बेमज़ा।

सर्दबाई–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सर्द+हिं० बाई] हाथी की एक बीमारी जिसमें उसके पैर जकड़ जाते हैं।

सर्दमिज़ाज–वि० [फ़ा०+अ०] (१) मुर्दा दिल। जिसमें उत्साह न हो। (२) जिसमें शील न हो। बेमुरौवत। रूखा।

सर्दा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] बढ़िया जाति का लंबोतरा खरबूज़ा जो काबुल से आता है।

सर्दार–संज्ञा पुं० दे० "सरदार"।

सर्दाबा–संज्ञा पुं० [फ़ा० सर्दाबः] क़ब्र। समाधि।

सर्दी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) सर्द होने का भाव। ठंढ। शीतलता। (२) जाड़ा। शीत।
मुहा०—सर्दी पड़ना=जाड़ा होना। सर्दी खाना=ठंढ सहना। शीत सहना।
(३) ज़ुकाम। नज़ला।
क्रि० प्र०—होना।

सर्प–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सर्पिणी] (१) रेंगना। (२) साँप। (३) ज्योतिष में एक प्रकार का बुरा योग। (४) नागकेसर। (५) ग्यारह रुद्रों में से एक। (६) एक म्लेच्छ जाति।

सर्पकंकालिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सर्प लता।

सर्पकाल–संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़। उ०—सर्पकाल कालीगृह आए। खगपति मलि चलात सो खाए।—गोपाल।

सर्पगंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंध नाकुली। (२) नकुल कंद। नाकुली। (३) नागदवन नामक जड़ी।

सर्पगति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सर्प की गति। (२) कुटिल गति। कपट की चाल।

सर्पगृह–संज्ञा पुं० [सं०] साँप का घर। बाँबी।

सर्पघातिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सरहँटी। सर्पाक्षी।

सर्पच्छत्र–संज्ञा पुं० [सं०] छत्राक। खुमी। कुकुरमुत्ता।

सर्पछिद्र–संज्ञा पुं० [सं०] साँप का बिल। बाँबी।

सर्पण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० सर्पित, सर्पणीय] (१) रेंगना। धीरे धीरे चलना। (२) छोड़े हुए तीर का भूमि से लगा हुआ जाना।

सर्पतनु–संज्ञा पुं० [सं०] बृहती का एक भेद।

सर्पतृण–संज्ञा पुं० [सं०] नकुलकंद।

सर्पदंडा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंहली पीपल।

सर्पदंडी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोरखी। गोरख इमली। (२) गँगेरन। नागबला।

सर्पदंता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंहली पीपल।

सर्पदंती–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदंती। हाथी सुंडी।

सर्पदंष्ट्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप का दाँत। (२) जमालगोटा।

सर्पदंष्ट्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दंती। उदुंबर पर्णी।

सर्पदंष्ट्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वृश्चिकाली। (२) दंती। उदुंबरपर्णी। (३) बिछुआ। वृश्चिका।

सर्पद्विष–संज्ञा पुं० [सं०] मोर। मयूर।

सर्पनेत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सर्पाक्षी। (२) गंधनाकुली।

सर्पपति–संज्ञा पुं० [सं०] शेषनाग।

सर्पपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागदंती। (२) बाँझ खेखसा।

सर्पप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] चंदन।

सर्पफणज–संज्ञा पुं० [सं०] सर्पमणि।

सर्पफेन–संज्ञा पुं० [सं०] अफीम। अहिफेन।

सर्पबंध–संज्ञा पुं० [सं०] कुटिल या पेचीली चाल।

सर्पबेलि–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली। पान।

सर्पभक्षक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नकुलकंद। नाकुली कंद। (२) मोर। मयूर पक्षी।

सर्पभुक्, सर्पभुज्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नकुल कंद। (२) मोर। मयूर। (३) सारस पक्षी।

सर्पमाता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सरहँटी। सर्पाक्षी।

सर्पयज्ञ, सर्पयाग–संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ जो नागों के संहार के लिये जनमेजय ने किया था।

सर्पराज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्पों के राजा, शेषनाग। (२) वासुकि।

सर्पलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली । पान ।

सर्पवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली । पान ।

सर्पविद्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] साँप को पकड़ने या वश में करने की विद्या ।

सर्पव्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] सेना का एक प्रकार का व्यूह जिसकी रचना सर्प के आकार की होती थी ।

सर्पशीर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की ईंट जो यज्ञ की वेदी बनाने के काम में आती थी । (२) तांत्रिक पूजा में हाथ और पंजे की एक मुद्रा ।

सर्पसत्र–संज्ञा पुं० [सं०] सर्पयज्ञ ।

सर्पसत्री–संज्ञा पुं० [सं० सर्पसत्रिन्] राजा जनमेजय का एक नाम, जिन्होंने सर्पयज्ञ किया था ।

सर्पसुगंधा, सर्पसुगंधिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधनाकुली । सर्पगंधा ।

सर्पसहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सरहँटी । सर्पाक्षी ।

सर्पहा–संज्ञा पुं० [सं० सर्पहन्] सर्प को मारनेवाला, नेवला । संज्ञा स्त्री० [सं०] सरहँटी । सर्पाक्षी । शंखिनी ।

सर्पांगी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरहँटी । (२) सिंहली पीपल । (३) नकुल कंद ।

सर्पा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साँपिन । सर्पिणी । (२) फणिलता ।

सर्पाक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुद्राक्ष । शिवाक्ष । (२) सर्पाक्षी । सरहँटी ।

सर्पाक्षी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरहँटी । (२) गंध नाकुली । (३) सर्पिणी । (४) श्वेत अपराजिता । (५) शंखिनी ।

सर्पाख्य–संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर ।

सर्पादनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंध नाकुली । गंध रास्ना । रास्ना । (२) नकुल कंद ।

सर्पारि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्पों का शत्रु, गरुड़ । (२) नेवला । (३) मयूर ।

सर्पावास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्पों के रहने का स्थान । (२) चंदन । मलयज । संदल ।

सर्पाशन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मयूर । मोर । (२) गरुड़ ।

सर्पास्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप के समान मुखवाला । (२) खर नामक राक्षस का एक सेनापति जिसे राम ने युद्ध में मारा था ।

सर्पि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घृत । घी । (२) एक वैदिक ऋषि का नाम ।

सर्पिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटा साँप । (२) एक नदी का नाम ।

सर्पिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साँपिन । मादा साँप । (२) भुजगी लता ।

विशेष—यह सर्प के आकार की होती है और इसमें विष का नाश करने और स्तनों को बढ़ाने का गुण होता है ।

सर्पित–संज्ञा पुं० [सं०] साँप के काटने का क्षत । सर्पदंश ।

सर्पिष्क–संज्ञा पुं० दे० "सर्पिस्" ।

सर्पिस्–संज्ञा पुं० [सं०] घृत । घी ।

सर्पी–वि० [सं० सर्पिन्] [स्त्री० सर्पिणी] रेंगनेवाला । धीरे धीरे चलनेवाला ।

*संज्ञा पुं० दे० 'सर्पि' या 'सर्पिस्' ।

सर्पेष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] चंदन ।

सर्पोन्माद–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उन्माद जिसमें मनुष्य सर्प की भाँति लोटता, जीभ निकालता और क्रोध करता है । इसमें गुड़, दूध आदि खाने की अधिक इच्छा होती है ।

सर्फ़–संज्ञा पुं० [अ०] व्यय किया हुआ । लगा हुआ । खर्च किया हुआ । जैसे,—इस काम में सौ रुपए सर्फ़ हो गए ।

सर्फ़ा–संज्ञा पुं० [अ० सर्फ़ः] खर्च । व्यय ।

सर्बस–वि० दे० "सर्वस्व" ।

सर्म–संज्ञा पुं० दे० "शर्म" । उ०—देहि अवलंब न बिलंब अंभोज-कर चक्रधर तेज बल सर्म रासी ।—तुलसी ।

सर्रा–संज्ञा पुं० [अनु० सर सर] लोहे या लकड़ी की छड़ जिस पर गराड़ी घूमती है । धुरी । धुरा ।

सर्राफ़–संज्ञा पुं० [अ०] (१) सोने चाँदी या रुपए पैसे का व्यापार करनेवाला । (२) बदले के लिये पैसे, रुपए आदि लेकर बैठनेवाला ।

मुहा०—सर्राफ़ के से टके = वह सौदा जिसमें किसी प्रकार की हानि न हो ।

(३) धनी । दौलतमंद । (४) पारखी । परखनेवाला ।

सर्राफ नालुआ–संज्ञा पुं० [अ० सर्राफ + ?] विवाह आदि शुभ अवसरों पर कोठीवालों या महाजनों का नौकरों को मिठाई, रुपया पैसा आदि बाँटना ।

सर्राफ़ा–संज्ञा पुं० दे० "सराफ़ा" ।

सर्राफ़ी–संज्ञा स्त्री० दे० "सराफ़ी" ।

सर्व–वि० [सं०] सारा । सब । समस्त । तमाम । कुल । संज्ञा पुं० (१) शिव का एक नाम । (२) विष्णु का एक नाम । (३) पारा । पारद । (४) रसौत । (५) शिलाजतु । सिलाजीत ।

सर्वकर्त्ता–संज्ञा पुं० [सं० सर्वकर्तृ] ब्रह्मा ।

सर्वकाम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब इच्छाएँ रखनेवाला । (२) सब इच्छाएँ पूरी करनेवाला । (३) शिव का एक नाम । (४) एक बुद्ध या अर्हत् का नाम ।

सर्वकामद–वि० [सं०] [स्त्री० सर्वकामदा] सब कामनाएँ पूरी करनेवाला ।

सर्वकाल–क्रि० वि० [सं०] हर समय । सब दिन । सदा ।

सर्वकेसर–संज्ञा पुं० [सं०] बकुल वृक्ष या पुष्प । मौलसिरी ।

सर्वक्षार–संज्ञा पुं० [सं०] मोरवा। मुष्कक वृक्ष।
सर्वगंध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दालचीनी। गुड़त्वक्। (२) एला। इलायची। (३) तेजपात। (४) नागकेसर। नाग-पुष्प। (५) शीतल चीनी। (६) लौंग। लवंग। (७) अगर। अगरु। (८) शिलारस। (९) केसर।
सर्वग–वि० [सं०] [स्त्री० सर्वगा] जिसकी गति सब जगह हो। जो सब जगह जा सके। सर्वव्यापक।
संज्ञा पुं० (१) पानी। जल। (२) जीव। आत्मा। (३) ब्रह्म। (४) शिव का एक नाम।
सर्वगण–संज्ञा पुं० [सं०] खारी मिट्टी। रेह।
सर्वगत–वि० [सं०] जो सब में हो। सर्वव्यापक।
सर्वगति–वि० [सं०] जिसकी शरण सब लोग लें। जिसमें सब आश्रय लें।
सर्वगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियंगु वृक्ष।
सर्वगामी–वि० दे० "सर्वग"।
सर्वग्रंथि, सर्वग्रंथिक–संज्ञा पुं० [सं०] पीपलामूल।
सर्वग्रहापहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदमनी। नागदौन।
सर्वग्रास–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्र या सूर्य का वह ग्रहण जिसमें उनका मंडल पूर्ण रूप से छिप जाता है। पूर्ण ग्रहण। खग्रास ग्रहण।
सर्वचक्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों की एक तांत्रिक देवी।
सर्वचारी–वि० [सं० सर्वचारिन्] [स्त्री० सर्वचारिणी] सब में रमनेवाला। व्यापक।
संज्ञा पुं० शिव का एक नाम।
सर्वजनप्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि।
सर्वजनीन–वि० [सं०] सब लोगों से संबंध रखनेवाला। सब का। सार्वजनिक।
सर्वजया–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सबजय नाम का पौधा जो बगीचों में फूलों के लिये लगाया जाता है। देवकली। (२) मार्गशीर्ष महीने में होनेवाला स्त्रियों का एक प्राचीन पर्व।
सर्वजित्–वि० [सं०] (१) सब को जीतनेवाला। (२) सब से बढ़ा चढ़ा। उत्तम।
संज्ञा पुं० (१) साठ संवत्सरों में से इक्कीसवाँ संवत्सर। (२) मृत्यु। काल। (३) एक प्रकार का एकाह यज्ञ।
सर्वजीवी–वि० [सं० सर्वजीविन्] जिसके पिता, पितामह और प्रपितामह तीनों जीते हों।
सर्वज्ञ–वि० [सं०] [स्त्री० सर्वज्ञा] सब कुछ जाननेवाला। जिसे कुछ अज्ञात न हो।
संज्ञा पुं० (१) ईश्वर। (२) देवता। (३) बुद्ध या अर्हत्। (४) शिव।
सर्वज्ञता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सर्वज्ञ होने का भाव।
सर्वज्ञत्व–संज्ञा पुं० [सं०] सर्वज्ञ होने का भाव। सर्वज्ञता।
सर्वज्ञा–वि० स्त्री० [सं०] सब कुछ जाननेवाली।
संज्ञा स्त्री० (१) दुर्गा देवी। (२) एक योगिनी।
सर्वज्ञानी–संज्ञा पुं० [सं०] सब कुछ जाननेवाला। सर्वज्ञ।
सर्वज्यानि–संज्ञा स्त्री० [सं०] सब वस्तुओं की हानि। सर्वनाश।
सर्वतंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] सब प्रकार के शास्त्र-सिद्धांत।
वि० जिसे सब शास्त्र मानते हों। सर्वशास्त्र-सम्मत। जैसे,–सर्व-तंत्र सिद्धांत।
सर्वतः–अव्य० [सं०] (१) सब ओर। चारों तरफ। (२) सब प्रकार से। हर तरह से। (३) पूरी तरह से। पूर्ण रूप से।
सर्वतःशुभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कँगनी नाम का अनाज। काकुन।
सर्वतापन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) (सबको तपानेवाला) सूर्य। (२) कामदेव।
सर्वतिक्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भंटाकी। बरहंटा। (२) मकोय। काकमाची।
सर्वतोभद्र–वि० [सं०] (१) सब ओर से मंगल। सर्वांश में शुभ या उत्तम। (२) जिसके सिर, दाढ़ी, मूँछ आदि सब के बाल मुँड़े हों।
संज्ञा पुं० (१) वह चौखूँटा मंदिर जिसके चारों ओर दरवाज़े हों। (२) युद्ध में एक प्रकार का व्यूह। (३) एक प्रकार का चौखूँटा मांगलिक चिह्न जो पूजा के वस्त्र पर बनाया जाता है। (४) एक प्रकार का चित्रकाव्य। (५) एक प्रकार की पहेली जिसमें शब्द के खंडाक्षरों के भी अलग अलग अर्थ लिए जाते हैं। (६) विष्णु का रथ। (७) बाँस। (८) एक गंध-द्रव्य। (९) वह मकान जिसके चारों ओर परिक्रमा का स्थान हो। (१०) हठ योग में बैठने का एक आसन या मुद्रा। (११) नीम का पेड़।
सर्वतोभद्रकच्छेद–संज्ञा पुं० [सं०] भगंदर की चिकित्सा के लिये अस्त्र से लगाया हुआ चौकोर चीरा। (सुश्रुत)
सर्वतोभद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काश्मरी वृक्ष। गंभारी। (२) अभिनय करनेवाली। नटी।
सर्वतोभद्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] गंभारी। काश्मरी वृक्ष। गम्हार वृक्ष।
सर्वतोभाव–अव्य० [सं०] सर्व प्रकार से। संपूर्ण रूप से। अच्छी तरह। भली भाँति।
सर्वतोमुख–वि० [सं०] (१) जिसका मुँह चारों ओर हो। (२) जो सब दिशाओं में प्रवृत्त हो। (३) पूर्ण। व्यापक।
संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार की व्यूह-रचना। (२) जल। पानी। (३) आत्मा। जीव। (४) ब्रह्मा (जिनके चार मुँह हैं)। (५) शिव। (६) अग्नि। (७) स्वर्ग। (८) आकाश।
सर्वतोवृत्त–वि० [सं०] सर्वव्यापक।
सर्वत्र–अव्य० [सं०] सब कहीं। सब जगह। हर जगह।
सर्वत्रग–वि० [सं०] सर्वगामी। सर्वव्यापक।

संज्ञा पुं० (१) वायु। (२) मनु के एक पुत्र का नाम। (३) भीमसेन के एक पुत्र का नाम।
सर्वत्रगामी-संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।
सर्वथा-अव्य० [सं०] (१) सब प्रकार से। सब तरह से। (२) बिलकुल। सब।
सर्वद-वि० [सं०] सब कुछ देनेवाला।
संज्ञा पुं० शिव का एक नाम।
सर्वदर्शी-संज्ञा पुं० [सं० सर्वदर्शिन्] [स्त्री० सर्वदर्शिणी] सब कुछ देखनेवाला।
सर्वदा-अव्य० [सं०] सब काल में। हमेशा। सदा।
सर्वद्वारिक-वि० [सं०] जिसकी विजय-यात्रा के लिये सब दिशाएँ खुली हों। दिग्विजयी।
सर्वधातुक-संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा। ताम्र।
सर्वधारी-संज्ञा पुं० [सं० सर्वधारिन्] (१) साठ संवत्सरों में से बाईसवाँ संवत्सर। (२) शिव का एक नाम।
सर्वनाभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अस्त्र।
सर्वनाम-संज्ञा पुं० [सं० सर्वनामन्] व्याकरण में वह शब्द जो संज्ञा के स्थान में प्रयुक्त होता है। जैसे,—मैं, तू, वह।
सर्वनाश-संज्ञा पुं० [सं०] सत्यानाश। विध्वंस। पूरी बरबादी।
सर्वनाशी-संज्ञा पुं० [सं०] सर्वनाश करनेवाला। विध्वंसकारी। चौपट करनेवाला।
सर्वनिधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब का नाश या वध। (२) एक प्रकार का एकाह यज्ञ।
सर्वनियंता-संज्ञा पुं० [सं० सर्वनियन्तृ] सब को अपने नियम के अनुसार ले चलनेवाला। सब को वश में करनेवाला।
सर्वपा-वि० [सं०] सब कुछ पीनेवाला।
संज्ञा स्त्री० दैत्यराज बलि की स्त्री का नाम।
सर्वपाचक-संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा। टंकण क्षार।
सर्वपृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।
सर्वप्रिय-वि० [सं०] सब को प्यारा। जिसे सब चाहें। जो सब को अच्छा लगे।
सर्वबल-संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत बड़ी संख्या। (बौद्ध)
सर्वबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध करने की एक विधि।
सर्वभक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बकरी। छागी।
सर्वभक्षी-संज्ञा पुं० [सं० सर्वभक्षिन्] [स्त्री० सर्वभक्षिणी] सब कुछ खानेवाला।
संज्ञा पुं० अग्नि।
सर्वभवोद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।
सर्वभाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संपूर्ण सत्ता। सारा अस्तित्व। (२) संपूर्ण आत्मा। (३) पूर्ण तुष्टि। मन का पूरा भरना।
सर्वभावन-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।
सर्वभूत-संज्ञा पुं० [सं०] सब प्राणी या सृष्टि। चराचर।
वि० जो सब कुछ हो या सब में हो। सर्वस्वरूप।
सर्वभूतहित-संज्ञा पुं० [सं०] सब प्राणियों की भलाई।
सर्वभूमिक-संज्ञा पुं० [सं०] दारचीनी। गुडत्वक्।
सर्वभोगी-वि० [सं० सर्वभोगिन्] [स्त्री० सर्वभोगिनी] (१) सब का आनंद लेनेवाला। (२) सब कुछ खानेवाला।
सर्वमंगला-वि० [सं०] सब प्रकार का मंगल करनेवाली।
संज्ञा स्त्री० (१) दुर्गा। (२) लक्ष्मी।
सर्वमूल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कौड़ी। कपर्दक। (२) कोई छोटा सिक्का।
सर्वमूषक-संज्ञा पुं० [सं०] (सब को मूसने या ले जानेवाला) काल।
सर्वमेध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सार्वजनिक सत्र। (२) एक प्रकार सोम याग जो दस दिनों तक होता था।
सर्वयोगी-संज्ञा पुं० [सं० सर्वयोगिन्] शिव का एक नाम।
सर्वरत्नक-संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार नौ निधियों में से एक।
सर्वरस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राल। धूना। करायल। (२) लवण। नमक। (३) एक प्रकार का बाजा। (४) सब विद्याओं में निपुण व्यक्ति।
सर्वरसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लावा का माँड़। धान की खीलों का माँड़।
सर्वरसोत्तम-संज्ञा पुं० [सं०] नमक। लवण।
सर्वरीॐ-संज्ञा स्त्री० दे० "शर्वरी"।
सर्वरूप-वि० [सं०] जो सब रूपों का हो। सर्वस्वरूप।
संज्ञा पुं० एक प्रकार की समाधि।
सर्वला-संज्ञा स्त्री० [सं०] लोहे का डंडा।
सर्वलिंगी-वि० [सं० सर्वलिंगिन्] [स्त्री० सर्वलिंगिनी] सब प्रकार के ऊपरी आडंबर रखनेवाला। पाखंडी।
संज्ञा पुं० नास्तिक।
सर्वलोकेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) ब्रह्मा। (३) विष्णु। (४) कृष्ण।
सर्वलोचना-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जो औषध के काम में आता है।
सर्वलोह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताँबा। ताम्र। (२) बाण। तीर।
सर्ववर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गँभारी का पेड़।
सर्ववल्लभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा स्त्री।
सर्ववादी-संज्ञा पुं० [सं० सर्ववादिन्] शिव का एक नाम।
सर्ववास-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।
सर्वविग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।
सर्वविद्-वि० [सं०] सर्वज्ञ।
संज्ञा पुं० (१) ईश्वर। (२) ओंकार।
सर्ववीर-वि० [सं०] जिसके बहुत से पुत्र हों।

सर्ववेद्–वि० [सं०] सब वेदों का जाननेवाला।

सर्ववेदस्–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अपनी सारी संपत्ति यज्ञ में दान कर दे।

सर्ववेदस–संज्ञा पुं० [सं०] सारी संपत्ति। सारा माल मता।

सर्ववैनाशिक–संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा आदि सब को नाशवान् माननेवाला। क्षणिकावादी। बौद्ध।

सर्वव्यापक–संज्ञा पुं० दे० "सर्वव्यापी"।

सर्वव्यापी–वि० [सं० सर्वव्यापिन्] [स्त्री० सर्वव्यापिनी] सब में रहनेवाला। सब पदार्थों में रमणशील।

संज्ञा पुं० (१) ईश्वर। (२) शिव।

सर्वशः–अव्य० [सं०] (१) पूरा पूरा। (२) समूचा। पूर्ण रूप से।

सर्वशक्तिमान्–वि० [सं० सर्वशक्तिमत्] [स्त्री० सर्वशक्तिमती] सब कुछ करने की सामर्थ्य रखनेवाला।

संज्ञा पुं० ईश्वर।

सर्वशून्यवादी–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध।

सर्वशूर–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

सर्वश्रेष्ठ–वि० [सं०] सब में बड़ा। सब से उत्तम।

सर्वश्वेता–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का विषैला कीड़ा। सर्पविक। (सुश्रुत)

सर्वसंगत–संज्ञा पुं० [सं०] साठी धान। षष्टिक धान्य।

सर्वसंस्थान–वि० [सं०] सब रूपों में रहनेवाला। सर्वरूप।

सर्वसंहार–संज्ञा पुं० [सं०] काल।

सर्वस–पुं० दे० "सर्वस्व"।

सर्वसर–संज्ञा पुं० [सं०] मुँह का एक रोग जिसमें छाले से पड़ जाते हैं तथा खुजली तथा पीड़ा होती है।

विशेष—यह तीन प्रकार का होता है—वातज, पित्तज और कफज। वातज में मुख में सुई चुभने की सी पीड़ा होती है। पित्तज में पीले या लाल रंग के दाहयुक्त छाले पड़ते हैं। कफज में पीड़ा रहित खुजली होती है।

सर्वसह–संज्ञा पुं० [सं०] गूगल। गुग्गुल।

सर्वसाक्षी–संज्ञा पुं० [सं० सर्वसाक्षिन्] (१) ईश्वर। परमात्मा। (२) अग्नि। (३) वायु।

सर्वसाधन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना। स्वर्ण। (२) धन। (३) शिव का एक नाम।

सर्वसाधारण–संज्ञा पुं० [सं०] साधारण लोग। जनता। आम लोग।

वि० जो सब में पाया जाता हो। आम। सामान्य।

सर्वसामान्य–वि० [सं०] जो सब में एक सा पाया जाय। मामूली।

सर्वसारंग–संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग का नाम।

सर्वसिद्धा–संज्ञा स्त्री० [सं०] चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी ये तीन तिथियाँ।

सर्वसिद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सब कार्यों और कामनाओं का पूरा होना। (२) पूर्ण तर्क। (३) विल्व वृक्ष। श्रीफल। बेल।

सर्वस्तोम–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का एकाह यज्ञ।

सर्वस्व–संज्ञा पुं० [सं०] जो कुछ अपना हो वह सब। किसी की सारी संपत्ति। सब कुछ। कुल माल मता।

सर्वस्वार–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का एकाह यज्ञ।

सर्वस्वी–संज्ञा पुं० [सं० सर्वस्विन्] [स्त्री० सर्वस्विनी] नापित पिता और गोप माता से उत्पन्न एक संकर जाति। (ब्रह्मवैवर्त्त पुराण)

सर्वहर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब कुछ हर लेनेवाला। (२) वह जो किसी की सारी संपत्ति का उत्तराधिकारी हो। (३) महादेव। शंकर। (४) यमराज। (५) काल।

सर्वहारी–वि० [सं० सर्वहारिन्] [स्त्री० सर्वहारिणी] सब कुछ हरण करनेवाला।

सर्वहित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाक्य मुनि। गौतम बुद्ध। (२) मरिच। मिर्च।

सर्वांग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संपूर्ण शरीर। सारा बदन। जैसे,—सर्वांग में तैल मर्दन। (२) सब अवयव या अंश। (३) सब वेदांग।

सर्वांगरूप–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

सर्वांत्य–संज्ञा पुं० [सं०] वह पद्य जिसके चारों चरणों के अंत्याक्षर एक से हों।

सर्वाक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] रुद्राक्ष। शिवाक्ष।

सर्वाक्षी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुग्धिका। दुधिया घास। दुद्धी।

सर्वाख्य–संज्ञा पुं० [सं०] पारद। पारा।

सर्वाणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। पार्वती।

सर्वातिथि–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सब का आतिथ्य करे। वह जो सब आए गए लोगों का सत्कार करे।

सर्वात्मा–संज्ञा पुं० [सं० सर्वात्मन्] (१) सब की आत्मा। सारे विश्व की आत्मा। संपूर्ण विश्व में व्याप्त चेतन सत्ता। ब्रह्म। (२) शिव का एक नाम। (३) जिन। अर्हत्।

सर्वाधिकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब कुछ करने का अधिकार। पूर्ण प्रभुत्व। पूरा इख्तियार। (२) सब प्रकार का अधिकार।

सर्वाधिकारी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूरा अधिकार रखनेवाला। वह जिसके हाथ में पूरा इख्तियार हो। (२) हाकिम।

सर्वाभिसंधक–संज्ञा पुं० [सं०] सब को धोखा देनेवाला। (मनु०)

सर्वाभिसार–संज्ञा पुं० [सं०] चढ़ाई के लिये संपूर्ण सेना की तैयारी या सजाव।

सर्वामात्य–संज्ञा पुं० [सं०] किसी परिवार या गृहस्थी में रहनेवाले घर के प्राणी, नौकर चाकर आदि सब लोग। (स्मृति)

सर्वायनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद निसोथ।

सर्वार्थसाधन–संज्ञा पुं० [सं०] सब प्रयोजन सिद्ध होना। सारे मतलब पूरे होना।

सर्वार्थसिद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] सिद्धार्थ। शाक्य मुनि गौतम बुद्ध।

सर्वावसर–संज्ञा पुं० [सं०] आधी रात।

सर्वावसु–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य की एक किरण का नाम।

सर्वाशय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब का शरण या आधार स्थान। (२) शिव का एक नाम।

सर्वाशी–वि० [सं० सर्वाशिन्] [स्त्री० सर्वाशिनी] सब कुछ खानेवाला। सर्वभक्षी। (स्मृति)

सर्वास्तिवाद–संज्ञा पुं० [सं०] यह दार्शनिक सिद्धांत कि सब वस्तुओं की वास्तव सत्ता है, वे असत् नहीं हैं।

विशेष—यह बौद्ध मत की वैभाषिक शाखा के चार भिन्न भिन्न मतों में से एक है जिसके प्रवर्त्तक गौतम बुद्ध के पुत्र राहुल माने जाते हैं।

सर्वास्तिवादी–वि० [सं० सर्वास्तिवादिन्] सर्वास्तिवाद मत को माननेवाला। बौद्ध।

सर्वास्त्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों की सोलह विद्या-देवियों में से एक।

सर्वे–संज्ञा पुं० [अं०] (१) भूमि की नाप जोख। पैमाइश। (२) वह सरकारी विभाग जो भूमि को नापकर उसका नकशा बनाता है।

सर्वेश, सर्वेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब का स्वामी। सब का मालिक। (२) ईश्वर। (३) चक्रवर्त्ती राजा। (४) शिव। (५) एक प्रकार की ओषधि।

सर्वौघ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्वांगपूर्ण सेना। (२) एक प्रकार का मधु या शहद।

सर्वौषधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] आयुर्वेद में ओषधियों का एक वर्ग जिसके अंतर्गत दस जड़ी बूटियाँ हैं।

सर्शप–संज्ञा पुं० दे० "सर्षप"।

सर्षप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरसों। (२) सरसों भर का मान या तौल। (३) एक प्रकार का विष।

सर्षपकंद–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ विष होती है।

सर्षपक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

सर्षपकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक विषैला कीड़ा।

सर्षप तैल–संज्ञा पुं० [सं०] सरसों का तेल।

सर्षपनाल–संज्ञा पुं० [सं०] सरसों का साग।

सर्षपा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद सरसों।

सर्षपारुण–संज्ञा पुं० [सं०] पारस्कर गृह्य सूत्र के अनुसार असुरों का एक गण।

सर्षपिक–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का बहुत जहरीला कीड़ा जिसके काटने से आदमी मर जाता है।

सर्षपिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का लिंग रोग।

विशेष—इस रोग में लिंग पर सरसों के समान छोटे छोटे दाने निकल आते हैं। यह रोग प्रायः दुष्ट मैथुन से होता है।

(२) मसूरिका रोग का एक भेद। (३) सर्षपिक नाम का जहरीला कीड़ा। वि० दे० "सर्षपिक"।

सर्षपी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लाविका। (२) सफेद सरसों। (३) ममोला। खंजन पक्षी। (४) एक प्रकार के छोटे दाने जो शरीर पर निकल आते हैं।

सर्सों–संज्ञा स्त्री० दे० "सरसों"।

सर्हद–संज्ञा स्त्री० दे० "सरहद"।

सलंबा नोन–संज्ञा पुं० [सलंबा ? + हिं० नोन] कचिया नोन। काच लवण।

सल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। पानी। (२) सरल वृक्ष। (३) एक प्रकार का कीड़ा जो प्रायः घास में रहता है। इसे बीर भी कहते हैं।

सलई–संज्ञा स्त्री० [सं० शल्लकी] (१) शल्लकी वृक्ष। चीड़। वि० दे० "चीड़"। (२) चीड़ का गोंद। कुंदुर।

सलक–संज्ञा पुं० [अ०] चुकन्दर। कन्दशाक।

सलखपात–संज्ञा पुं० [?] कछुआ। कच्छप।

सलगम–संज्ञा पुं० दे० "शलजम"।

सलगा†–संज्ञा स्त्री० [सं० शल्लकी] शल्लकी। सलई। चीड़।

सलज–संज्ञा पुं० [सं० सल = जल] पहाड़ी बरफ का पानी।

सलजम–संज्ञा पुं० दे० "शलजम"।

सलज्ज–वि० [सं०] जिसे लज्जा हो। शर्म और हयावाला। लज्जाशील।

सलडुक–संज्ञा पुं० [सं०] चौलाई का साग।

सलतनत–संज्ञा स्त्री० [अ० सल्तनत] (१) राज्य। बादशाहत। (२) साम्राज्य। (३) इंतजाम। प्रबंध।

मुहा०—सलतनत बैठना = प्रबंध ठीक होना। इंतजाम बैठना।

(४) सुभीता। आराम। जैसे,—पहले जरा सलतनत से बैठ लो, तब बातें होंगी।

सलना–क्रि० अ० [सं० शल्य] (१) साला जाना। छिदना। भिदना। (२) किसी छेद में किसी चीज का डाला या पहनाया जाना।

संज्ञा पुं० लकड़ी छेदने का बरमा।

संज्ञा पुं० [सं०] मोती।

सलपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] दाल चीनी। गुड़त्वक्।

सलब–वि० [अ० सल्ब] नष्ट। बरबाद। जैसे,—साल ही भर में उन्होंने बाप दादा की सारी कमाई सलब कर दी।

सलमह्-संज्ञा पुं० [फा०] बथुआ नाम का साग।

सलमा-संज्ञा पुं० [अ० सलम ?] सोने या चाँदी का बना हुआ चमकदार गोल लपेटा हुआ तार जो टोपी, साड़ी आदि में बेल बूटे बनाने के काम में आता है। बादला।

सलवट-संज्ञा स्त्री० दे० "सिलवट"।

सलवन-संज्ञा पुं० [सं० शालिपर्णी] सरिवन।

सलवात-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) बरकत। (२) रहमत। मेहरबानी। (३) गाली। दुर्वचन। कुवाच्य।

क्रि० प्र०—सुनाना।

सलसलबोल-संज्ञा पुं० [अ०] बहुमूत्र रोग या मधुप्रमेह नामक रोग।

सलसलाना-क्रि० अ० [अनु०] (१) धीरे धीरे खुजली होना। सरसराहट होना। (२) गुदगुदी होना। (३) कीड़ों का पेट के बल चलना। सरसराना। रेंगना।

क्रि० स० (१) खुजलाना। (२) गुदगुदाना। (३) शीघ्रता से कोई कार्य्य करना।

सलसलाहट-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) सलसल शब्द। (२) खुजली। खारिश। (३) गुदगुदी। कुलकुली।

सलसी-संज्ञा स्त्री० [देश०] झाऊफूल की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो बूक भी कहलाता है। वि० दे० "बूक"।

सलहज-संज्ञा स्त्री० [हिं० साला] साले की स्त्री। सरहज।

सलाई-संज्ञा स्त्री० [सं० शलाका] (१) धातु की बनी हुई कोई पतली छोटी छड़। जैसे,—सुरमा लगाने की सलाई। घाव में दवा भरने की सलाई। मोजा या गुलूबंद बुनने की सलाई।

मुहा०—सलाई फेरना = (१) आँखों में सुरमा या औषध लगाना। (२) सलाई गरम करके अंधा करने के लिये आँखों में लगाना। आँखें फोड़ना।

(२) दियासलाई।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सालना] (१) सालने की क्रिया या भाव। (२) सालने की मजदूरी।

संज्ञा स्त्री० [सं० शल्लकी] (१) सलई। शलकी। (२) चीड़ की लकड़ी।

सलाकना†-क्रि० स० [सं० शलाका + ना (प्रत्य०)] सलाई या इसी तरह की और किसी चीज से किसी दूसरी चीज पर लकीर खींचना। सलाई की सहायता से चिह्न करना।

सलाख-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सलाख, मि० सं० शलाका] (१) धातु की बनी हुई छड़। शलाका। सलाई। (२) लकीर। खत।

सलाजीत-संज्ञा स्त्री० दे० "शिलाजीत"।

सलाद-संज्ञा पुं० [अं० सैलड] (१) गाजर, मूली, राई, प्याज आदि के पत्तों का अँगरेजी ढंग से मिरचे आदि में डाला हुआ अचार। (२) एक विशिष्ट जाति के कन्द के पत्ते जो प्रायः कच्चे खाए जाते हैं और बहुत पाचक होते हैं। इसके कई भेद होते हैं।

सलाम-संज्ञा पुं० [अ०] प्रणाम करने की क्रिया। प्रणाम। बंदगी। आदाब।

मुहा०—दूर से सलाम करना = किसी बुरी वस्तु के पास न जाना। किसी बुरे आदमी से दूर रहना। जैसे,—उनको तो हम दूर ही से सलाम करते हैं। सलाम है = हम दूर रहना चाहते हैं। बाज आए। जैसे,—अगर उनका यही रंग ढंग है, तो फिर हमारा तो यहीं से उनको सलाम है। सलाम लेना = सलाम का जवाब देना। सलाम कबूल करना। सलाम देना = (१) सलाम करना। (२) सलाम कहलाना। सलाम करके चलना = किसी से नाराज होकर चलना। अप्रसन्न होकर विदा होना। सलाम फेरना = (१) नमाज खतम करना। (२) किसी से अप्रसन्न होकर उसका प्रणाम न स्वीकार करना।

यौ०—सलाम अलैक या सलाम अलैकम = सलाम। अभिवादन।

सलाम कराई-संज्ञा स्त्री० [अ० सलाम + हिं० कराई] (१) सलाम करने की क्रिया या भाव। (२) वह धन जो कन्या पक्षवाले मिलनी के समय वर पक्ष के लोगों को देते हैं। (मुसल०)

सलामत-वि० [अ०] (१) सब प्रकार की आपत्तियों से बचा हुआ। रक्षित। जैसे,—घर तक सलामत पहुँचें, तब समझना।

यौ०—सही सलामत।

(२) जीवित और स्वस्थ। तंदुरुस्त और जिंदा। जैसे,—आप सलामत रहें; हमें बहुतेरा मिला करेगा। (३) कायम। बरकरार। जैसे,—सिर सलामत रहे, टोपियाँ बहुत मिलेंगी।

क्रि० वि० कुशलपूर्वक। खैरियत से।

संज्ञा स्त्री० सालिम या पूरा होने का भाव। अखंडित और संपूर्ण होने का भाव।

सलामती-संज्ञा स्त्री० [अ० सलामत + ई (प्रत्य०)] (१) तंदुरुस्ती। स्वस्थता। (२) कुशल। क्षेम। जैसे,—हम तो हमेशा आपकी सलामती चाहते हैं।

मुहा०—सलामती से = ईश्वर की कृपा से। परमात्मा के अनुग्रह से।

विशेष—इस मुहा० का प्रयोग प्रायः स्त्रियाँ और विशेषतः मुसलमान स्त्रियाँ, कोई बात कहते समय, शुभ भावना से करती हैं। जैसे,—सलामती से उनके दो दो लड़के हैं।

(३) एक प्रकार का मोटा कपड़ा। (४) जीवन। जिंदगी।

सलामी-संज्ञा स्त्री० [अ० सलाम + ई (प्रत्य०)] (१) प्रणाम करने की क्रिया। सलाम करना। जैसे,—दूल्हे की सलामी में १०) मिले थे। (२) अस्त्रों से प्रणाम करने की क्रिया। सैनिकों की प्रणाम करने की प्रणाली। सिपाहियाना सलाम। जैसे,—सिपाहियों की सलामी, तोपखाने की सलामी।

(३) तोपों या बन्दूकों की बाढ़ जो किसी बड़े अधिकारी या माननीय व्यक्ति के आने पर दागी जाती है।

मुहा०—सलामी उतारना = किसी के स्वागतार्थ बन्दूकों या तोपों की बाढ़ दागना।

क्रि० प्र०—दगना।—दागना।—होना।

सलाह-संज्ञा स्त्री० [अ०] सम्मति। परामर्श। राय। मशवरा।

क्रि० प्र०—पूछना।—देना।—बताना।—लेना।

मुहा०—सलाह ठहरना = राय पक्की होना। सम्मति निश्चित होना। जैसे,—सब लोगों की सलाह ठहरी है कि कल बाग चलें।

सलाहकार-संज्ञा पुं० [अ० सलाह + फा० कार (प्रत्य०)] वह जो परामर्श देता हो। राय देनेवाला।

सलिल-संज्ञा पुं० [सं०] जल। पानी।

सलिलकुंतल-संज्ञा पुं० [सं०] शैवल। सिवार।

सलिलक्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेत का तर्पण। जलांजलि। उदक क्रिया। वि० दे० "उदकक्रिया"।

सलिलचर-वि० [सं०] जल में विचरण करनेवाला। जलचर।

सलिलज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। पद्म। (२) वह जो जल से उत्पन्न हो। जलजात।

सलिलजन्मा-संज्ञा पुं० [सं० सलिलजन्मन्] (१) कमल। पद्म। (२) वह जो जल से उत्पन्न हो। जलजात।

सलिलद-वि० [सं०] सलिल देनेवाला। जल देनेवाला। जो जल दे।

संज्ञा पुं० मेघ। बादल।

सलिलधर-संज्ञा पुं० [सं०] मोथा। मुस्तक।

सलिलनिधि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जलनिधि। समुद्र। (२) सरसी छंद का एक नाम।

सलिलपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल के स्वामी, वरुण। (२) समुद्र। सागर।

सलिलप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] सूअर। शूकर।

सलिलमुच्-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

सलिलयोनि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) वह वस्तु जो जल में उत्पन्न होती हो।

सलिलराज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल का स्वामी, वरुण। (२) समुद्र। सागर।

सलिलस्थलचर-वि० [सं०] जो जल और स्थल दोनों में विचरण करता हो। जैसे,—हंस, साँप आदि।

सलिलांजलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] मृतक के उद्देश्य से दी जानेवाली जलांजलि।

सलिलाकर-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। सागर।

सलिलाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] जल के अधिष्ठाता देवता, वरुण।

सलिलार्णव-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। सागर।

सलिलालय-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

सलिलाशन-वि० [सं०] केवल जल पीकर रहनेवाला।

सलिलाशय-संज्ञा पुं० [सं०] जलाशय। तालाब।

सलिलाहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो केवल जल पीकर रहता हो। (२) केवल जल पीकर रहने की क्रिया।

सलिलेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] जल के अधिष्ठाता देवता, वरुण।

सलिलेंधन-संज्ञा पुं० [सं०] बाड़वानल।

सलिलेचर-संज्ञा पुं० [सं०] जल में रहनेवाला जीव। जलचर।

सलिलेश-संज्ञा पुं० [सं०] जल के अधिष्ठाता देवता, वरुण।

सलिलेशय-वि० [सं०] जल में सोनेवाला। जलशायी।

सलिलोद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। (२) जल में उत्पन्न होनेवाली कोई चीज। जैसे,—शंख, घोंघा आदि।

सलिलोपजीवी-वि० [सं० सलिलोपजीविन्] केवल जल पर निर्भर रहनेवाला। जलोपजीवी।

सलिलौका-संज्ञा पुं० [सं० सलिलौकस्] जोंक। जलौका।

सलिलौदन-संज्ञा पुं० [सं०] पकाया हुआ अन्न।

सलीका-संज्ञा पुं० [अ०] (१) काम करने का ठीक ठीक या अच्छा ढंग। शऊर। तमीज़। (२) हुनर। लियाकत। (३) चाल चलन। बरताव। (४) तहज़ीब। सभ्यता।

क्रि० प्र०—आना।—सिखाना।—सीखना।—होना।

सलीकामंद-वि० [अ० सलीका + फा० मंद (प्रत्य०)] (१) जिसे सलीका हो। शऊरदार। तमीज़दार। (२) हुनरमंद। (३) सभ्य।

सलीता-संज्ञा पुं० [?] तज। त्वक्पत्र।

सलीता-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत मोटा कपड़ा जो प्रायः मारकीन या गजी की तरह का होता है।

सलीपर-संज्ञा पुं० [अं० स्लिपर] (१) एक प्रकार का हलका जूता जिसके पहनने पर पंजा ढँका रहता है और एड़ी खुली रहती है। आराम पाई। सलपट जूती। (२) वह लकड़ी का तख्ता जो रेल की पटरियों के नीचे बिछाया रहता है। वि० दे० "स्लीपर"। (३) हाल जो पहिए पर चढ़ाई जाती है।

सलीमी-संज्ञा स्त्री० [अ० सलीम] एक प्रकार का कपड़ा।

सलीलगजगामी-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध का एक नाम।

सलीस-वि० [अ०] (१) सहज। सुगम। आसान। (२) जिसका तल बराबर हो। समतल। हमवार। (३) मुहावरेदार और चलती हुई (भाषा)।

सलूक-संज्ञा पुं० [अ०] (१) तौर। तरीका। ढंग। (क्व०) (२) बरताव। व्यवहार। आचरण। जैसे,—अपने साथियों के साथ उनका सलूक अच्छा नहीं होता। (३) मिलाप। मेल। सद्भाव। जैसे,—उनके घर में सब लोग सलूक से रहते हैं। (४) भलाई। नेकी। उपकार। जैसे,—जहाँ तक हो, गरीबों के साथ कुछ न कुछ सलूक करते रहना चाहिए।

सलूग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शार्ङ्गधर संहिता के अनुसार एक प्रकार के बहुत छोटे कीड़े। (२) जूँ। लीख।

सलूना-संज्ञा पुं० [हिं० स+लून=नमक] पकी हुई तरकारी या भाजी। (पश्चिम)

वि० दे० "सलोना"।

सलूनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० स+लोन=नमक] चूका शाक। चुक्रिका।

सलेक-संज्ञा पुं० [सं०] तैत्तिरीय संहिता के अनुसार एक आदित्य का नाम।

सलैया†-संज्ञा स्त्री० [सं० शल्लकी] शल्लकी। सलई।

सलोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नगर। शहर। (२) वह जो नगर में रहता हो। नागरिक।

सलोतर-संज्ञा पुं० [सं० शालिहोत्र] पशुओं विशेषतः घोड़ों की चिकित्सा का विधान।

सलोतरी-संज्ञा पुं० [सं० शालिहोत्री] पशुओं विशेषतः घोड़ों की चिकित्सा करनेवाला। शालिहोत्री।

सलोना-वि० [हिं० स+लोन=नमक] [स्त्री० सलोनी] (१) जिसमें नमक पड़ा हो। नमक मिला हुआ। नमकीन। (२) जिसमें नमक या सौंदर्य्य हो। रसीला। सुंदर। जैसे,—तोरे नैनों श्याम सलोने, जादू भरी कि कटारी। (गीत)

सलोनापन-संज्ञा पुं० [हिं० सलोना+पन (प्रत्य०)] सलोना होने का भाव।

सलोनो-संज्ञा पुं० [सं० श्रावणी ?] हिंदुओं का एक त्योहार जो श्रावण मास में पूर्णिमा के दिन पड़ता है। इस दिन लोग राखी बाँधते और बँधवाते हैं। रक्षा बंधन। राखी पूनो।

सल्ल-संज्ञा पुं० [सं० सरल] सरल वृक्ष। सरलद्रुम।

सल्लकी-संज्ञा स्त्री० [सं० शल्लकी] (१) शाल्लकी वृक्ष। सलई। (२) कुंदुरु। शल्लकी निर्य्यास।

सल्लखणतीर्थ†-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

सल्लम-संज्ञा पुं० स्त्री० [देश०] एक प्रकार का मोटा कपड़ा। गजी। गाढ़ा।

सल्लाह-संज्ञा स्त्री० दे० "सलाह"।

सल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं० शल्लकी] शल्लकी। सलई।

सल्लू†-वि० [देश०] मूर्ख। बेवकूफ।

संज्ञा पुं० [हिं० सलना] चमड़े की डोरी।

सल्व-संज्ञा पुं० दे० "शल्व"।

सवंशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष।

सव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। पानी। (२) पुष्परस। पुष्पमधु। (३) यज्ञ। (४) सूर्य। (५) संतान। औलाद। (६) चंद्रमा।

वि० अज्ञ। अनाड़ी।

ॐ संज्ञा पुं० दे० "शव"।

सवगात-संज्ञा स्त्री० दे० "सौगात"।

सवजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्वरी। अजगन्धा।

सवत-संज्ञा स्त्री० दे० "सौत"।

सवत्स-वि० [सं०] बच्चे के सहित। जिसके साथ बच्चा हो। जैसे,—दान में सवत्स गौ दी जाती है।

सवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रसव। बच्चा जनना। (२) श्योनाक वृक्ष। सोनापाठा। (३) यज्ञस्नान। (४) सोमपान। (५) यज्ञ। (६) चंद्रमा। (७) पुराणानुसार भृगु के एक पुत्र का नाम। (८) वशिष्ठ के एक पुत्र का नाम। (९) रोहित मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम। (१०) स्वायंभुव मनु के एक पुत्र का नाम। (११) अग्नि का एक नाम।

सवनकर्म-संज्ञा पुं० [सं० सवनकर्मन्] यज्ञकार्य।

सवनमुख-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ का आरंभ।

सवनिक-वि० [सं०] सवन संबंधी। सवन का।

सवयस्क-वि० [सं०] समान अवस्थावाले। बराबर की उम्रवाले।

सवया-संज्ञा स्त्री० [सं०] सखी। सहचरी। सहेली।

सवर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। (२) शिव का एक नाम।

सवररोध्र-संज्ञा पुं० [सं०] पठानी लोध। सफेद लोध।

सवर्ण-वि० [सं०] (१) समान। सदृश। (२) समान वर्ण का। समान जाति का।

सवर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पत्नी छाया का एक नाम।

सवहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ। त्रिवृत।

सवाँग-संज्ञा पुं० दे० "स्वाँग"।

सवा-संज्ञा स्त्री० [सं० स+पाद] चौथाई सहित। संपूर्ण और एक का चतुर्थांश। चतुर्थांश सहित। जैसे,—सवा चार; अर्थात् चार और एक का चतुर्थांश=$४\frac{१}{४}$।

सवाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सवा+ई (प्रत्य०)] (१) ऋण का एक प्रकार जिससे मूल धन का चतुर्थांश ब्याज में देना पड़ता है। (२) जयपुर के महाराजाओं की एक उपाधि। (३) मूत्र यंत्र संबंधी एक प्रकार का रोग।

वि० एक और चौथाई। सवा।

सवागी-संज्ञा पुं० [- ?] सुहागा। टंकण क्षार।

सवाद-संज्ञा पुं० दे० "स्वाद"।

सवादिकॐ†-वि० [हिं० सवाद+इक (प्रत्य०)] खाने में जिसका स्वाद अच्छा हो। स्वाद देनेवाला। स्वादिष्ट।

सवाब-संज्ञा पुं० [अ०] (१) शुभ कृत्य का फल जो स्वर्ग में मिलेगा। पुण्य।

मुहा०—सवाब कमाना=ऐसा काम करना जिससे पुण्य हो। पुण्य-कार्य्य करना।

(२) भलाई। नेकी।

सवार-संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह जो घोड़े पर चढ़ा हो। अश्वारोही। (२) अश्वारोही सैनिक। रिसाले का सिपाही। (३) वह जो किसी चीज पर चढ़ा हो।

वि० किसी चीज पर चढ़ा या बैठा हुआ। जैसे,—वे गाड़ी पर सवार होकर घूमने निकलते हैं।

सवारना–क्रि० स० दे० "सँवारना"।

सवारी–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) किसी चीज पर विशेषतः चलने के लिये चढ़ने की क्रिया। (२) वह चीज जिस पर यात्रा आदि के लिये चढ़ते हों। सवार होने की वस्तु। चढ़ने की चीज। जैसे,—घोड़ा, हाथी, मोटर, रेल आदि।

मुहा०—सवारी लेना = सवारी के काम में लाना। सवार होना।

(३) वह व्यक्ति जो सवार हो। जैसे,—एक्केवाले चार आने की सवारी माँगते हैं। (४) जलूस। जैसे,—राजा साहब की सवारी बहुत धूम से निकली थी। (५) कुश्ती में अपने विपक्षी को जमीन पर गिराकर उसकी पीठ पर बैठना और उसी दशा में उसे चित करने का प्रयत्न करना।

क्रि० प्र०—कसना।

(६) संभोग या प्रसंग के लिये स्त्री पर चढ़ने की क्रिया। (बाजारू)

क्रि० प्र०—कसना।—गाँठना।

सवाल–संज्ञा पुं० [अ०] (१) पूछने की क्रिया। (२) वह जो कुछ पूछा जाय। प्रश्न। (३) दरखास्त। माँग। याचना।

मुहा०—(किसी पर) सवाल देना = (किसी पर) नालिश करना। फरियाद करना।

(४) विनती। निवेदन। प्रार्थना। (५) भिक्षा की याचना। (६) गणित का प्रश्न जो उत्तर निकालने के लिये दिया जाता है।

क्रि० प्र०—करना।—निकालना।—देना।

सवाल जवाब–संज्ञा पुं० [अ०] (१) बहस। वादविवाद। जैसे,—सब बातों में सवाल जवाब मत किया करो; जो कहा जाय, वह किया करो। (२) तकरार। हुज्जत। झगड़ा।

सविकल्प–वि० [सं०] (१) विकल्प सहित। संदेह युक्त। संदिग्ध। (२) जो किसी विषय के दोनों पक्षों या मतों आदि को, कुछ निर्णय न कर सकने के कारण, मानता हो।

संज्ञा पुं० (१) दो प्रकार की समाधियों में से एक प्रकार की समाधि। वह समाधि जो किसी आलंबन की सहायता से होती है। (२) वेदांत के अनुसार ज्ञाता और ज्ञेय के भेद का ज्ञान।

सविचार–संज्ञा पुं० [सं०] चार प्रकार की सविकल्प समाधियों में से एक प्रकार की समाधि।

सविप्रलंभ–संज्ञा पुं० [सं०] नाट्यशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का परिहास या मजाक।

सवितर्क–संज्ञा पुं० [सं०] चार प्रकार की सविकल्प समाधियों में से एक प्रकार की समाधि।

सविता–संज्ञा पुं० [सं० सवितृ] (१) सूर्य। दिवाकर। (२) बारह की संख्या। (३) आक। अर्क। मदार।

सवितातनय–संज्ञा पुं० [सं० सवितृतनय] सूर्य के पुत्र हिरण्यपाणि।

सवितादैवत–संज्ञा पुं० [सं० सवितृदैवत] हस्त नक्षत्र जिसके अधिष्ठाता देवता सूर्य माने जाते हैं।

सवितापुत्र–संज्ञा पुं० [सं० सवितृपुत्र] सूर्य के पुत्र, हिरण्यपाणि।

सविताफल–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार मेरु के उत्तर के एक पर्वत का नाम।

सवितासुत–संज्ञा पुं० [सं० सवितृसुत] सूर्य के पुत्र, शनैश्चर।

सवित्र–संज्ञा पुं० [सं०] प्रसव करना। लड़का जनना।

सवित्रिय–वि० [सं०] सूर्य संबंधी। सविता या सूर्य का।

सवित्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रसव करानेवाली, धाई। धात्री। दाई। (२) प्रसव करनेवाली, माता। माँ। (३) गौ।

सविद्य–वि० [सं०] विद्वान्। पंडित।

सविध–वि० [सं०] निकट। पास। समीप।

सविभाल–संज्ञा पुं० [सं०] नखी या हट्टविलासिनी नामक गंध द्रव्य।

सविभास–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का एक नाम।

सविलास–वि० [सं०] भोग विलास करनेवाला। विलासी।

सवीर्या संज्ञा स्त्री० [सं०] सतावर। शतावरी।

सवेरा–संज्ञा पुं० [हिं० स + सं० वेला] (१) सूर्य निकलने के लगभग का समय। प्रातःकाल। सुबह। (२) निश्चित समय के पूर्व का समय। (क०)

सवेश–वि० [सं०] निकट। समीप।

सवेशीय–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

सवैया–संज्ञा पुं० [हिं० सवा + ऐया (प्रत्य०)] (१) तौलने का एक बाट जो सवा सेर का होता है। (२) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में सात भगण और एक गुरु होता है। इसे मालिनी, और दिया भी कहते हैं।

विशेष—इस अर्थ में कुछ लोग इसे स्त्रीलिंग भी बोलते हैं।

(३) वह पहाड़ा जिसमें एक, दो, तीन आदि संख्याओं का सवाया रहता है। (४) दे० "सवाई"।

सव्य–वि० [सं०] (१) वाम। बायाँ। (२) दक्षिण। दाहिना।

विशेष—सव्य शब्द का वाम और दक्षिण दोनों अर्थ होता है। पर साधारणतः यह वाम के ही अर्थ में प्रयुक्त होता है।

(३) प्रतिकूल। विरुद्ध। खिलाफ।

संज्ञा पुं० (१) यज्ञोपवीत। (२) चंद्र या सूर्य ग्रहण के दस प्रकार के ग्रासों में एक प्रकार का ग्रास। (३) अंगिरा के पुत्र का नाम जो ऋग्वेद के कई मंत्रों के द्रष्टा थे। कहते हैं कि

अंगिरा के तपस्या करने पर इंद्र ने उनके घर पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया था, जिनका नाम सव्य पड़ा। (४) विष्णु।

सव्यचारी-संज्ञा पुं० [सं० सव्यचारिन्] (१) अर्जुन का एक नाम। वि० दे० "सव्यसाची"। (२) अर्जुन वृक्ष। कौह वृक्ष।

सव्यसाची-संज्ञा स्त्री० [सं० सव्यसाचिन] अर्जुन।

विशेष—कहते हैं कि अर्जुन दाहिने हाथ से भी तीर चला सकते थे और बाएँ हाथ से भी; इसी लिये उनका यह नाम पड़ा।

सव्येष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] सारथी।

सव्रणशुक्र-संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग जिसमें आँख की पुतली पर सूई से किए हुए छोटे छेद के समान गहरी फूली पड़ती है और आँखों से गरम आँसू निकलते हैं।

सशंक-वि० [सं०] (१) जिसे शंका हो। शंका युक्त। शंकित। (२) भयभीत। डरा हुआ। (३) भयकारी। भयानक। (४) शंका उत्पन्न करनेवाला। भ्रामक।

सशंकना⊛-क्रि० अ० [सं० सशंक+ना (प्रत्य०)] (१) शंका युक्त होना। शंकित होना। (२) भयभीत होना। डरना।

सशल्य-संज्ञा पुं० [सं०] रीछ। भालू।

सशल्यव्रण-संज्ञा पुं० [सं०] व्रण रोग का एक भेद।

विशेष—काँटे आदि के चुभ जाने से यह व्रण उत्पन्न होता है। इसमें विद्धस्थान में सूजन होती है और वह पक जाता है।

सशल्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदंती। हाथी शुंडी।

सशवी-संज्ञा पुं० [?] काला जीरा। कृष्ण जीरक।

सशाक-संज्ञा पुं० [सं०] अदरक। आर्द्रा।

सशोथपाक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नेत्र रोग। इस रोग में आँखों में से आँसू निकलते हैं और उनमें खुजली तथा शोथ होता है। आँखें लाल भी हो जाती हैं।

सस⊛-संज्ञा पुं० [सं० शशि] चंद्रमा। शशि।

ससक†-संज्ञा पुं० [सं० शशक] खरहा। खरगोश।

ससत्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भवती स्त्री। गर्भिणी।

ससरना†-क्रि० अ० [सं० सरण] सरकना। खिसकना।

ससा†-संज्ञा पुं० [सं० शशा] (१) खरगोश। शशक। (२) खीरा।

ससि⊛-संज्ञा पुं० [सं० शशि] शशि। चंद्रमा।

ससिब-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा शाल। सर्ज वृक्ष।

ससिधर⊛-संज्ञा पुं० [सं० शशिधर] शशि। चंद्रमा।

ससी⊛-संज्ञा पुं० [सं० शशि] शशि। चंद्रमा।

ससुर-संज्ञा पुं० [सं० श्वशुर] जिसके पुत्री या पुत्र से ब्याह हुआ हो। पति या पत्नी का पिता। श्वशुर। वि० दे० "श्वशुर"।

ससुराल-संज्ञा स्त्री० [सं० श्वशुरालय] (१) श्वशुर का घर। पति या पत्नी के पिता का घर। (२) जेल खाना। बंदी गृह। (बदमाश)

सस्ता-वि० [सं० स्वस्थ] [स्त्री० सस्ती] (१) जो महँगा न हो। जिसका मूल्य साधारण से कुछ कम हो। थोड़े मूल्य का। जैसे,—उन्हें यह मकान बहुत सस्ता मिल गया। (२) जिसका भाव बहुत उतर गया हो। जैसे,—आजकल सोना सस्ता हो गया है।

यौ०—सस्ता समय = ऐसा समय जब कि सब चीजें सस्ती हों।

मुहा०—सस्ता लगाना = कम दाम पर बेचना। दाम या भाव कम कर देना। सस्ते छूटना = जिस काम में अधिक व्यय, परिश्रम या कष्ट आदि होने को हो, वह काम थोड़े व्यय, परिश्रम या कष्ट में हो जाना।

(३) जो सहज में प्राप्त हो सके। जिसका विशेष आदर न हो। (४) घटिया। साधारण। मामूली। (क्व०)

सस्ताना†-क्रि० अ० [हिं० सस्ता+ना (प्रत्य०)] किसी वस्तु का कम दाम पर बिकना। सस्ता हो जाना।

क्रि० स० किसी चीज का भाव सस्ता करना। सस्ते दामों पर बेचना।

सस्ती-संज्ञा स्त्री० [हिं० सस्ता+ई (प्रत्य०)] (१) सस्ता होने का भाव। सस्तापन। अल्पमूल्यता। महँगी का अभाव। (२) वह समय जब कि सब चीजें सस्ते दाम पर मिला करती हों। जैसे,—सस्ती में यही कपड़ा तीन आने गज मिला करता था।

सस्त्रीक-वि० [सं०] जिसके साथ स्त्री हो। स्त्री या पत्नी के सहित। जैसे,—वे सस्त्रीक यहाँ आनेवाले हैं।

सस्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धान्य। (२) शस्त्र। (३) गुण। (४) वृक्षों का फल। (५) दे० "शस्य"।

विशेष—"सस्य" के यौगिक आदि शब्दों के लिये दे० "शस्य" के यौगिक शब्द।

सस्यक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार की मणि। (२) तलवार। (३) शालि। (४) साधु।

सस्यमारी-संज्ञा पुं० [सं० सस्यमारिन्] मूसा। चूहा।

वि० शस्य या अनाज का नाश करनेवाला।

सस्यसंवत्सर-संज्ञा पुं० [सं०] शाल। साल्।

सस्यसंवर-संज्ञा पुं० [सं० सस्यसम्वर] (१) सलई। शल्लकी। (२) शाल का वृक्ष।

सस्यसंवरण-संज्ञा पुं० [सं० सस्यसम्वरण] शाल या अश्वकर्ण वृक्ष। साखू।

सस्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] अरनी। गणिकारिका। गनियारी।

सहंडुक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मांस का रसा या शोरबा।

विशेष—बकरे आदि पशुओं के मांस भरे अंगों के टुकड़ों को धोकर घी में हींग आदि का तड़का देकर धीमी आँच में

भून ले। अनंतर उसे छानकर पानी, नमक, मसाला आदि डाले और पक जाने पर उतार ले। भावप्रकाश में यह शोरबा शुक्रवर्द्धक, मलकारक, रुचिकर, अग्निप्रदीपक, त्रिदोष शांति के लिये श्रेष्ठ और धातुपोषक बताया गया है।

सह–अव्य० [सं०] सहित। समेत।

वि० [सं०] (१) विद्यमान। उपस्थित। मौजूद। (२) सहिष्णु। सहनशील। (३) समर्थ। योग्य।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) सादृश्य। समानता। बराबरी। (२) सामर्थ्य। बल। शक्ति। (३) अगहन का महीना। (४) महादेव का एक नाम। (५) रेह का नोन। पांशु लवण।

संज्ञा स्त्री० समृद्धि।

सहकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुगंधि युक्त पदार्थ। (२) आम का पेड़। (३) कलमी आम। (४) सहायक। मददगार। (५) साथ मिलकर काम करना। सहयोग।

सहकारता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सहायता। मदद।

सहकारभंजिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की क्रीड़ा या अभिनय।

सहकारिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहकारी होने का भाव। सहायक होने का भाव। (२) सहायता। मदद।

सहकारी–संज्ञा पुं० [सं० सहकारिन्] [स्त्री० सहकारिणी] (१) साथ काम करनेवाला। साथी। सहयोगी। (२) सहायक। मददगार। सहायता करनेवाला।

सहगमन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साथ जाने की क्रिया। (२) पति के शव के साथ पत्नी के सती होने का व्यापार। सती होने की क्रिया।

सहगामिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जो पति के शव के साथ सती हो जाय। पति की मृत्यु पर उसके साथ जल मरनेवाली स्त्री। (२) स्त्री। पत्नी। सहचरी। साथिन।

सहगामी–संज्ञा पुं० [सं० सहगामिन्] [स्त्री० सहगामिनी] (१) साथ चलनेवाला। साथी। (२) अनुकरण करनेवाला। अनुयायी।

सहगौन–संज्ञा पुं० दे० "सहगमन"।

सहचर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सहचरी] (१) वह जो साथ चलता हो। साथ चलनेवाला। साथी। हमराही। (२) सेवक। दास। भृत्य। नौकर। (३) दोस्त। सखा। मित्र। (४) कटसरैया।

सहचरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली कटसरैया।

सहचराद्य तैल–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल।

विशेष—*यह तैल बनाने के लिये नीले फूलवाली कटसरैया,* धमासा, कत्था, जामुन की छाल, आम की छाल, मुलेठी, कमलगट्टा सब एक एक टके भर लेते हैं और उनका चूर्ण बनाकर १६ सेर जल में डालकर औटाते हैं। जब चौथाई रह जाता है, तब उसे तेल या बकरी के दूध में पकाते हैं। कहते हैं कि इसके सेवन से दाँत मजबूत हो जाते हैं।

सहचरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहचर का स्त्री० रूप। (२) पत्नी। भार्य्या। जोरू। (३) सखी। सहेली।

सहचार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सदा साथ रहता हो। सहचर। संगी। साथी। (२) साथ। संग। सोहबत।

सहचार उपाधि लक्षणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसमें जड़ सहचारी के कहने से चेतन सहचारी का बोध होता है। जैसे,—"गद्दी को नमस्कार करो" यहाँ गद्दी शब्द से गद्दी पर बैठनेवाले का बोध होता है।

सहचारिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साथ में रहनेवाली। सहचरी। सखी (२) पत्नी। स्त्री। जोरू।

सहचारिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सहचारी होने का भाव।

सहचारित्व–संज्ञा पुं० [सं०] सहचारी होने का भाव।

सहचारी–संज्ञा पुं० [सं० सहचारिन्] [स्त्री० सहचारिणी] (१) संगी। सहचर। साथी। (२) सेवक। नौकर।

सहज–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सहजा] (१) सहोदर भाई। सगा भाई। एक माँ का जाया भाई। (२) निसर्ग। स्वभाव। (३) ज्योतिष में जन्म लग्न से तृतीय स्थान। भाइयों और बहनों आदि का विचार इसी स्थान को देखकर किया जाता है।

वि० (१) स्वाभाविक। स्वभावोत्पन्न। प्राकृतिक। जैसे,—काटना तो साँपों का सहज स्वभाव है। (२) साधारण। (३) सरल। सुगम। आसान। जैसे,—जब तुम से इतना सहज काम भी नहीं हो सकता, तब तुम और क्या करोगे। (४) साथ उत्पन्न होनेवाला।

सहजकृति–संज्ञा पुं० [सं०] सोना। स्वर्ण।

सहजक्लैब्य–संज्ञा पुं० [सं०] नपुंसकता रोग का एक भेद। वह नपुंसकता जो जन्म से ही हो।

सहजता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहज होने का भाव। (२) सरलता। स्वाभाविकता।

सहजन–संज्ञा पुं० दे० "सहिजन"।

सहजन्मा–वि० [सं० सहजन्मन्] (१) एक गर्भ से एक साथ ही होनेवाली दो संतानें। यमज। यमल। जोड़ा। (२) एक ही गर्भ से उत्पन्न। सहोदर। सगा (भाई आदि)।

सहजन्य–संज्ञा पुं० [सं०] एक यक्ष का नाम।

सहजन्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

सहज पंथ–संज्ञा पुं० [हिं० सहज+पंथ] गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय का एक निम्न वर्ग। इस संप्रदाय के प्रवर्त्तकों के मतानुसार *भजन साधन के लिये पहले एक एक नवयौवन संपन्न सुंदर* परकीया रमणी की आवश्यकता होती है। बाद रसिक भक्त या गुरु से सम्यक् रूप से उपदेश लेकर उस नायिका के प्रति तन मन अर्पण कर साधन भजन करने से अविलंब ब्रजनंदन

रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण की प्राप्ति होती है। सहजियों का कहना है कि इस प्रकार की लीला महाप्रभु सर्वसाधारण को न दिखाकर गुप्त रूप से राय रामानंद और स्वरूप दामोदर आदि कई मार्मिक भक्तों को बता गए हैं।

सहजा मित्र-संज्ञा पुं० [सं०] स्वाभाविक मित्र। शास्त्र में भानजा, मौसेरा भाई और फुफेरा भाई सहजमित्र और वैमात्रेय तथा चचेरे भाई सहज शत्रु बताए गए हैं। भानजे आदि से संपत्ति का कोई संबंध नहीं होता, इसी से ये सहज मित्र हैं। परंतु चचेरे भाई संपत्ति के लिये झगड़ा कर सकते हैं, इससे वे सहज शत्रु कहे गए हैं।

सहज शत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्रों के अनुसार वैमात्रेय या चचेरा भाई जो संपत्ति के लिये झगड़ा कर सकता है। वि० दे० "सहज मित्र"।

सहजात-वि० [सं०] (१) सहोदर। (२) यमज।

सहजाधिनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार जन्म कुंडली के तीसरे या सहज स्थान का अधिपति ग्रह।

सहजानि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी। स्त्री। जोरू।

सहजारि-संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्रों के अनुसार वैमात्रेय या चचेरा भाई जो समय पड़ने पर संपत्ति आदि के लिये झगड़ा कर सकता है। सहज शत्रु।

सहजार्श-संज्ञा पुं० [सं०] वह अर्श या बवासीर जिसके मस्से कठोर, पीले रंग के और अंदर की ओर मुँहवाले हों।

सहजिया-संज्ञा पुं० [हिं० सहज पंथ] वह जो सहज पंथ का अनुयायी हो। सहज पंथ को माननेवाला। वि० दे० "सहजपंथ"।

सहजीवी-वि० [सं० सहजीविन्] एक साथ जीवन धारण करनेवाले। साथ रहनेवाले।

सहजेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म कुंडली के तीसरे या सहज स्थान के अधिपति ग्रह।

सहत-संज्ञा पुं० दे० "शहद"।

सहत महत-संज्ञा पुं० दे० "श्रावस्ति"।

सहतरा-संज्ञा पुं० [फा० शाहतरह] पित्त पापड़ा। पर्पटक।

सहताना‡-क्रि० अ० [हिं० सुसताना] श्रम मिटाना। थकावट दूर करना। विश्राम करना। आराम करना। सुसताना।

उ०—सहतात कहाँ नर वे जग में जिन मौत के कारज सीस धरे।—लक्ष्मणसिंह।

सहतूत-संज्ञा पुं० दे० "शहतूत"।

सहत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) "सह" का भाव। (२) एक होने का भाव। एकता। (३) मेल जोल।

सहदइया-संज्ञा स्त्री० दे० "सहदेई"।

सहदान-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत से देवताओं के उद्देश्य से एक साथ ही या एक में किया जानेवाला दान।

सहदानी‡-संज्ञा स्त्री० [सं० संज्ञान] निशानी। पहचान। चिह्न।

उ०—सारँगपाणि मूँदि मृगनैनी मणि मुख माँह समानी। चरण चापि महि प्रगट करी पिय दोष शीश सहदानी।—सूर

सहदेई-संज्ञा स्त्री० [सं० सहदेवा] क्षुप जाति की एक वनौषधि जो पहाड़ी भूमि में अधिक उपजती है। यह तीन चार फुट ऊँची होती है। इसके पत्ते बथुए के पत्तों के समान होते हैं। वर्षा ऋतु में यह उगती है। बढ़ने के साथ साथ इसके पत्ते छोटे होते जाते हैं। पत्तों की जड़ में फूलों की कलियाँ निकलती हैं। ये फूल बरियारे के फूलों की भाँति पीले रंग के होते हैं। इसके पौधे चार प्रकार के पाए जाते हैं।

सहदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा पांडु के पाँच पुत्रों में से सब से छोटे पुत्र। कहते हैं कि माद्री के गर्भ और अश्विनीकुमारों के औरस से इनका जन्म हुआ था। द्रौपदी के गर्भ से इन्हें श्रुतसेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ये बड़े विद्वान् थे। वि० दे० "पांडु"। (२) जरासंध का पुत्र। महाभारत के युद्ध में इसने पांडवों के विपक्षियों का साथ दिया था। यह अभिमन्यु के हाथ से मारा गया था। (३) हरिवंश के अनुसार हर्यश्व के एक पुत्र का नाम।

सहदेवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहदेई। पीतपुष्पी। वि० दे० "सहदेई"। (२) बरियारा। बला। (३) दंडोत्पल। (४) अनंतमूल। शारिवा। (५) सरहँटी। सर्पाक्षी। (६) प्रियंगु। (७) नील। (८) सोनवल्ली नामक वनस्पति जो भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रांतों में पाई जाती है। यह क्षुप जाति की वनस्पति है। इसकी ऊँचाई दो फुट तक होती है। इसकी डंडी के नीचे के भाग में पत्ते नहीं होते। पत्ते दो से चार इंच तक चौड़े, गोल और सिरे पर कुछ तिकोने होते हैं। इनकी डंडियाँ १–२ इंच लंबी होती हैं। फूल छोटे छोटे होते हैं। यह औषध के काम में आती है। (९) भागवत के अनुसार देवक की कन्या और वसुदेव की पत्नी का नाम।

सहदेवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहदेई। पीतपुष्पी। वि० दे० "सहदेई"। (२) सर्पाक्षी। सरहँटी। (३) महानीली। (४) प्रियंगु।

सहदेवीगण-संज्ञा पुं० [सं०] सहदेई, बला, शतमूली, शतावर, कुमारी, गुडुच, सिंही और व्याघ्री आदि ओषधियों का समूह जिनसे देवप्रतिमाओं को स्नान कराया जाता है।

सहधर्मचरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। पत्नी। जोरू।

सहधर्मचारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। पत्नी। भार्य्या।

सहन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सहने की क्रिया। बरदाश्त करना। (२) क्षमा। शांति। तितिक्षा। (३) दे० "सहनशील"।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) मकान के बीच में या सामने का

खुला छोड़ा हुआ भाग। आँगन। चौक। (२) एक प्रकार का बढ़िया रेशमी कपड़ा। (३) एक प्रकार का मोटा, साफ़, चिकना सूती कपड़ा जो मगहर में अच्छा बनता है। गाढ़ा।

सहनक–संज्ञा पुं० [अ०] (१) एक प्रकार की छिछली रकाबी जिसका व्यवहार प्रायः मुसलमान लोग करते हैं। तबक। (२) बीबी फातिमा की निमाज या फातिहा। (मुसल०)

सहनभंडार–संज्ञा पुं० [सहन? सं० भंडार] (१) कोष। खजाना। निधि। (२) धन राशि। दौलत। उ०—खानि दिये बसन मनि भूषण राजा सहन भँडार। मागध सूत भाट नट जाचक जहँ जहँ करहिं कवार।—तुलसी।

सहनशील–वि० [सं०] (१) जिसका स्वभाव सहन करने का हो। जो सरलता से सह लेता हो। बरदाश्त करनेवाला। सहिष्णु। (२) संतोषी। सब्र करनेवाला।

सहनशीलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहनशील होने का भाव। (२) संतोष। सब्र।

सहना–क्रि० स० [सं० सहन] (१) बरदाश्त करना। झेलना। भोगना। जैसे,—(क) अपने पाप के कारण ही तुम इतना दुःख सहते हो। (ख) अब तो यह कष्ट नहीं सहा जाता। (ग) तुम क्यों उसके लिये बदनामी सहते हो? (२) परिणाम भोगना। अपने ऊपर लेना। फल भोगना। जैसे,—इस काम में जो घाटा होगा, वह सब तुम्हें सहना पड़ेगा। (३) बोझ बरदाश्त करना। भार वहन करना। जैसे,—भला यह लकड़ी इतना बोझ कहाँ से सहेगी।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

सहनाई–संज्ञा स्त्री० दे० "शहनाई"।

सहनायन†–संज्ञा स्त्री० [फा० शहनाई+आयन (प्रत्य०)] शहनाई बजानेवाली स्त्री। उ०—नटनी डोमिन ढारिन सहनायन परकार। निरतत नाद विनोद सो बिहसत खेलत नार।—जायसी।

सहनीय–वि० [सं०] सहन करने के योग्य। जो सहा जा सके। सह्य।

सहपति–संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा का एक नाम।

सहपाठी–संज्ञा पुं० [सं० सहपाठिन्] वह जो साथ में पढ़ा हो। वह जिसने साथ में विद्या का अध्ययन किया हो। सहाध्यायी।

सहपिंड–संज्ञा पुं० [सं०] सपिंड नाम की क्रिया। वि० दे० "सपिंडी"।

सहभावी–संज्ञा पुं० [सं० सहभाविन्] (१) वह जो सहायता करता हो। सहायक। मददगार। (२) सहोदर। (३) वह जो साथ रहता हो। सखा। सहचर।

सहभू–वि० [सं०] एक साथ उत्पन्न। सहज।

सहभोजन–संज्ञा पुं० [सं०] एक साथ बैठकर भोजन करना। साथ खाना।

सहभोजी–संज्ञा पुं० [सं० सहभोजिन्] वे जो एक साथ बैठकर खाते हों। साथ भोजन करनेवाले।

सहम–संज्ञा पुं० [फा०] (१) डर। भय। खौफ।

मुहा०—सहम पड़ना = डर होना। भय होना।

(२) संकोच। लिहाज। मुलाहजा।

सहमत–वि० [सं०] जिसका मत दूसरे के साथ मिलता हो। एक मत का। जैसे,—मैं इस विषय में आप से सहमत हूँ कि यह बड़ा भारी शठ है।

सहमना–क्रि० अ० [फा० सहम+ना (प्रत्य०)] भय खाना। भयभीत होना। डरना। उ०—सहमी सभा सकल जनक-भए बिकल राम लखि कौशिक असीस आज्ञा दई है।—तुलसी।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

सहमरण–संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री का पति के साथ मरने का व्यापार। सती होने की क्रिया।

सहमान–संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर का एक नाम।

सहमाना–क्रि० स० [हिं० सहमना का सक०] किसी को सहमने में प्रवृत्त करना। भयभीत करना। डराना।

संयो० क्रि० - देना।

सहमृता–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो अपने मृत पति के शव के साथ जल मरे। सहमरण करनेवाली स्त्री। सती।

सहयोग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साथ मिलकर काम करने का भाव। सहयोगी होने का भाव। (२) साथ। संग। (३) मदद। सहायता। (४) आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में सरकार के साथ मिलकर काम करने, उसकी काउन्सिलों आदि में सम्मिलित होने और उसके पद आदि ग्रहण करने का सिद्धांत।

सहयोगी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सहायक। मददगार। (२) वह जो किसी के साथ मिलकर कोई काम करता हो। सहयोग करनेवाला। साथ काम करनेवाला। (३) हम उमर। समवयस्क। (४) वह जो किसी के साथ एक ही समय में वर्तमान हो। समकालीन। (५) आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में सब कामों में सरकार के साथ मिले रहने, उसकी काउन्सिलों आदि में सम्मिलित होने और उसके पद तथा उपाधियाँ आदि ग्रहण करनेवाला व्यक्ति।

सहर–संज्ञा पुं० [अ०] प्रातः काल। सवेरा।

संज्ञा पुं० [अ० सेह] जादू। टोना।

संज्ञा पुं० दे० "शहर"।

संज्ञा पुं० दे० "सिहोर" (वृक्ष)।

†क्रि० वि० [हिं० सहाना = सहना या सहलाना = सुसताना]

धीरे। मंद गति से। रुक रुक कर। जैसे,—तुम तो सब काम सहर सहर कर करते हो।

सहरगही–संज्ञा स्त्री० [अ० सहर+फा० गह] वह भोजन जो किसी दिन निर्जल व्रत करने के पहले बहुत तड़के या कुछ रात रहे ही किया जाता है। सहरी।

विशेष—इस प्रकार का भोजन प्रायः मुसलमान लोग रमजान के दिनों में रोजा रखने पर करते हैं। ये प्रायः ३ बजे रात को उठकर कुछ भोजन कर लेते हैं; और तब दिन भर निर्जल और निराहार रहते हैं। हिंदुओं में स्त्रियाँ प्रायः हरतालिका तीज का व्रत रखने से पहले भी इसी प्रकार बहुत तड़के उठकर भोजन कर लिया करती हैं।

क्रि० प्र०—खाना।

सहरना–क्रि० अ० दे० "सिहरना"।

सहरसा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वन मूँग। जंगली मूँग। मुद्गपर्णी।

सहरा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) जंगल। वन। अरण्य। (२) सियाहगोश नामक जंतु।

सहराना✽†–क्रि० स० [हिं० सहलाना] धीरे धीरे हाथ फेरना। सहलाना। मलना। उ०—साथ बछानि कोऊगाइ निभावत बाधिन पै सुरभी सुत चोंपै। त्योंरनि को सहरावत साँप महारनि है बैठहि प्रतिपोंपै।—गुमान।

✽† क्रि० अ० [हिं० सिहरना] डर से काँपना।

सहरि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) वृष। साँड़।

सहरिया–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का गेहूँ।

सहरी–संज्ञा स्त्री० [सं० शफरी] सफरी मछली। शफरी। उ०—पात भरी सहरी सकल सुत बारे बारे केवट की जाति कछु बेद न पढ़ाइहौं। सब परिवार मेरो याही लागि राजा जू हौं दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [अ०] व्रत के दिन बहुत तड़के किया जानेवाला भोजन। सहरगही। वि० दे० "सहरगही"।

सहरूप–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा के एक घोड़े का नाम।

सहल–वि० [अ० मि० सं० सरल] जो कठिन न हो। सरल। सहज। आसान। उ०—टहल सहल जन, महल महल जागत चारिउ जुग जाम सों। देखत दोष न खीझत रीझत सुनि सेवक गुनग्राम सो।—तुलसी।

सहलगी‡–संज्ञा पुं० [हिं० साथ+लगना] वह जो साथ हो ले। रास्ते का साथी। हमराही।

सहलाना–क्रि० स० [हिं० सहर=धीरे या अनु०] (१) धीरे धीरे किसी वस्तु पर हाथ फेरना। सहराना। सुहराना। जैसे,—तलवा सहलाना, पैर सहलाना। उ०—वारी फेरी होके तलवे सहलाने लगी।—इंशाअल्ला खाँ। (२) मलना। (३) गुदगुदाना।

संयो० क्रि०—देना।

क्रि० अ०—गुदगुदी होना। खुजलाना। जैसे,—बड़ी देर से पैर का तलुआ सहला रहा है।

सहलोकधातु–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक लोक का नाम।

सहवन–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का तेलहन जिससे तेल निकाला जाता है।

सहवसु–संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम जिसका उल्लेख ऋग्वेद में है।

सहवाद–संज्ञा पुं० [सं०] आपस में होनेवाला तर्क वितर्क। वाद विवाद। बहस।

सहवास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साथ रहने का व्यापार। संग। साथ। (२) मैथुन। रति। संभोग।

सहवासी–संज्ञा पुं० [सं० सहवासिन्] साथ रहनेवाला। संगी। साथी। मित्र। दोस्त।

सहव्रता–संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी। भार्य्या। जोरू।

सहसंभव–वि० [सं०] जो एक साथ उत्पन्न हुए हों। सहज।

सहस–वि० दे० "सहस्र"।

सहसकिरन–संज्ञा पुं० [सं० सहस्रकिरण] सूर्य्य। मरीचिमाली। उ०—सहसकिरनि रूप मन भूला। जहँ जहँ दृष्टि कमल जनु फूला।—जायसी।

सहसगो✽–संज्ञा पुं० [सं० सहस्रगु] सूर्य्य। सहस्रांशु।

सहसजीभ–संज्ञा पुं० [सं० सहस्रजिह्व] शेषनाग।

सहसदल–संज्ञा पुं० [सं० सहस्रदल] कमल। शतपत्र।

सहसनयन–संज्ञा पुं० [सं० सहस्रनयन] सहस्र आँखोंवाला, इंद्र।

सहसफण–संज्ञा पुं० [सं० सहस्रफण] हजार फनोंवाला, शेषनाग।

सहसबदन–संज्ञा पुं० [सं० सहस्रवदन] हजार मुखोंवाला, शेषनाग।

सहसबाहु–संज्ञा पुं० दे० "सहस्रबाहु"।

सहसमुख–संज्ञा पुं० [सं० सहस्रमुख] शेषनाग।

सहसवदन–संज्ञा पुं० [सं० सहस्रवदन] शेषनाग।

सहससीस–संज्ञा पुं० [सं० सहस्रशीर्ष] शेषनाग।

सहसा–अव्य० [सं०] एक दम से। एकाएक। अचानक। अकस्मात्। जैसे,—सहसा आँधी आई और चारों ओर अंधकार छा गया।

सहसाखि✽–संज्ञा पुं० [सं० सहस्राक्ष] सहस्र आँखोंवाला, इंद्र।

सहसाखी✽–संज्ञा पुं० [सं० सहस्राक्ष] इंद्र। सहस्राक्ष।

सहसादृष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] दत्तक पुत्र। गोद लिया हुआ लड़का।

सहसान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मयूर। मोर पक्षी। (२) यज्ञ।

सहसानन✽–संज्ञा पुं० [सं० सहस्रानन] सहस्र मुखोंवाला, शेषनाग।

सहस्य–संज्ञा पुं० [सं०] पूस का महीना। पौष मास।

सहस्र–संज्ञा पुं० [सं०] दस सौ की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—१०००।

वि० जो गिनती में दस सौ हो। पाँच सौ का दूना।

सहस्रकर–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

सहस्रकांडा–संज्ञा स्त्री० [सं० सहस्र काण्डा] सफेद दूब। श्वेत दूर्वा।

सहस्रकिरण–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य। सहस्ररश्मि।

सहस्रगु–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

सहस्रचक्षु–संज्ञा पुं० [सं० सहस्रचक्षुस्] हजार आँखोंवाला, इंद्र।

सहस्रचरण–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सहस्रचित्त–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सहस्रजित्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मृगमद। कस्तूरी। (२) कृष्ण की पटरानी जांबवती के दस पुत्रों में से एक। (३) विष्णु का एक नाम।

सहस्रणी–संज्ञा पुं० [सं०] हजार रथियों की रक्षा करनेवाले, भीष्म।

सहस्रदंष्ट्र–संज्ञा पुं० [सं०] पाठीन मछली।

सहस्रद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत बड़ा दानी। हजारों गौएँ आदि दान करनेवाला। (२) बोआरी मछली। पाठीन। पहिना।

सहस्रदक्षिण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसमें हजार गौएँ या हजार मोहरें दान दी जाती हैं।

सहस्रदल–संज्ञा पुं० [सं०] पद्म। कमल।

सहस्रदृश्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) इंद्र।

सहस्रधारा–संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं आदि को स्नान कराने का एक प्रकार का पात्र जिसमें हजार छेद होते हैं। इन्हीं छेदों में से जल निकलकर देवता पर पड़ता है।

सहस्रधी–वि० [सं०] बहुत बड़ा बुद्धिमान्। खूब समझदार।

सहस्रधौत–वि० [सं०] हजार बार धोया हुआ (घृत आदि जो ओषधि के काम में आता है।)

सहस्रनयन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) इंद्र।

सहस्रनाम–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्तोत्र जिसमें किसी देवता के हजार नाम हों। जैसे,—विष्णु सहस्रनाम, शिव सहस्रनाम आदि।

सहस्रनामा–संज्ञा पुं० [सं० सहस्रनामन्] (१) विष्णु। (२) शिव। (३) अमलबेंत।

सहस्रनेत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) विष्णु।

सहस्रपति–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो हजार गाँवों का स्वामी और शासक हो।

सहस्रपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] कमलपत्र।

सहस्रपर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शर। तीर। (२) एक प्रकार का वृक्ष।

सहस्रपर्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद दूब। श्वेत दूर्वा।

सहस्रपाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) शिव। (३) एक ऋषि का नाम जिनका उल्लेख महाभारत में है।

सहस्रपाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) विष्णु। (३) सारस। कारण्डव पक्षी।

सहस्रबाहु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) कार्त्तवीर्यार्जुन, जिसके विषय में पुराणों में कई कथाएँ हैं। यह क्षत्रिय राजा कृतवीर्य्य का पुत्र था। इसका दूसरा नाम हैहय था। इसकी राजधानी माहिष्मती में थी। एक बार यह नर्मदा में स्त्रियों सहित जलक्रीड़ा कर रहा था। उस समय इसने अपनी सहस्र भुजाओं से नदी की धारा रोक दी जिसके कारण समीप में शिवपूजा करते हुए रावण की पूजा में विघ्न पड़ा। उसने क्रुद्ध होकर इससे युद्ध किया, पर परास्त हुआ। एक बार यह अपनी सेना सहित जमदग्नि मुनि के आश्रम के निकट ठहरा था। मुनि के पास कपिला कामधेनु थी। उन्होंने कार्त्तिकेय का अच्छी तरह से आदर किया। राजा ने लालच में आकर मुनि से कामधेनु छीन ली। जमदग्नि ने राजा को रोका और वे मारे गए। कार्त्तिकेय गौ लेकर चला, पर वह स्वर्ग चली गई। परशुराम उस समय आश्रम में नहीं थे। लौटने पर जब उन्होंने अपने पिता के मारे जाने का हाल सुना, तो उन्होंने कार्त्तिकेय को मार डालने की प्रतिज्ञा की और अंत में उन्हें मार भी डाला। (३) राजा बलि के सब से बड़े पुत्र का नाम।

सहस्रभागवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] देवी की एक मूर्त्ति का नाम।

सहस्रभित्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अमलबेंत। (२) कस्तूरी। मृगमद।

सहस्रभुज–संज्ञा पुं० दे० "सहस्रबाहु"।

सहस्रभुजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] देवी का वह रूप जो उन्होंने महिषासुर को मारने के लिये धारण किया था। उस समय उनकी हजार भुजाएँ हो गई थीं; इसी से उनका यह नाम पड़ा था।

सहस्रमूर्त्ति–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सहस्रमूर्द्धा–संज्ञा पुं० [सं० सहस्रमूर्द्धन्] (१) विष्णु। (२) शिव।

सहस्रमूलिका, सहस्रमूली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कांडपत्री। (२) बड़ी दंती। (३) मूसाकानी। (४) बड़ी शतावर। (५) बनमूँग। मुद्गपर्णी।

सहस्रमौलि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) अनंतदेव का एक नाम।

सहस्ररश्मि–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

सहस्रलोचन–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

सहस्रवाच्–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।
सहस्रवीर्य–वि० [सं०] बहुत बड़ा बलवान्। बहुत ताकतवर।
सहस्रवीर्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दूब। (२) बड़ी शतावर।
सहस्रवेध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूक नामक खटाई। (२) काँजी। (३) हींग।
सहस्रवेधिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी।
सहस्रवेधी–संज्ञा पुं० [सं० सहस्रवेधिन्] (१) हींग। (२) अम्लबेंत। (३) कस्तूरी।
सहस्रशाख–संज्ञा पुं० [सं०] पेड़, जिसकी हजार शाखाएँ हैं।
सहस्रशिखर–संज्ञा पुं० [सं०] विंध्य पर्वत का एक नाम।
सहस्रशीर्ष–संज्ञा पुं० [सं० सहस्रशीर्षन्] विष्णु।
सहस्रश्रवण–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
सहस्रश्रुति–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार जंबू द्वीप के एक वर्ष-पर्वत का नाम।
सहस्रसाव–संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध यज्ञ।
सहस्रसाध्य–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अयन।
सहस्रस्तुति–संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार एक नदी का नाम।
सहस्रस्रोत–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक वर्ष-पर्वत का नाम।
सहस्रहयाश्व–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का रथ।
सहस्रांगी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मोरशिखा। मयूरशिखा। (२) मधुपीलु वृक्ष। पीलू।
सहस्रांशु–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।
सहस्रांशुज–संज्ञा पुं० [सं०] शनि ग्रह।
सहस्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माषिका। अंबष्टा। मोइया। (२) मोरशिखा। मयूरशिखा।
सहस्राक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सहस्र आँखोंवाला, इंद्र। (२) विष्णु। (३) देवीभागवत के अनुसार एक पीठस्थान। इस स्थान की देवी उत्पलाक्षी कही गई हैं।
सहस्रात्मा–संज्ञा पुं० [सं० सहस्रात्मन्] ब्रह्मा।
सहस्राधिपति–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी राजा की ओर से एक हजार गाँवों का शासन करने के लिये नियुक्त हो।
सहस्रानन–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
सहस्रानीक–संज्ञा पुं० [सं०] राजा शतानीक के पुत्र का नाम।
सहस्रायुतीय–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।
सहस्रार–संज्ञा पुं० [सं०] हजार दलोंवाला एक प्रकार का कल्पित कमल। कहते हैं कि यह कमल मनुष्य के मस्तक में उलटा लगा रहता है; और इसी में सृष्टि, स्थिति तथा लयवाला परविंदु रहता है।
सहस्रारज–संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के एक देवता का नाम।
सहस्रार्चिस्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) सूर्य्य।
सहस्रावर्त्तक–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।
सहस्रावर्त्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] देवी की एक मूर्त्ति का नाम।
सहस्री–संज्ञा पुं० [सं० सहस्रिन्] वह वीर या नायक जिसके पास हजार योद्धा, घोड़े या हाथी आदि हों।
सहा–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घीकुआर। ग्वारपाठा। (२) वनमूँग। (३) दंडोत्पल। (४) सफेद कटसरैय्या। (५) ककही या कंघी नाम का वृक्ष। (६) सरिवन। (७) रासना। (८) सत्यानाशी। (९) सेवती। (१०) हेमंत ऋतु। (११) अगहन मास। (१२) सपर्न। (१३) देवताड़ वृक्ष। (१४) मेंहदी। नखरंजक।
सहाइ*–संज्ञा पुं० [सं० सहाय] सहायक। मददगार। संज्ञा स्त्री० सहायता। मदद।
सहाई*–संज्ञा पुं० [सं० सहाय] सहायक। मददगार। संज्ञा स्त्री० सहायता। मदद।
सहाउ–संज्ञा पुं० दे० "सहाय"।
सहाचर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीली कटसरैया। पीली झिंटी। (२) दे० "सहचर"।
सहाद्रय–संज्ञा पुं० [सं०] वन मूँग। जंगली मूँग।
सहाध्यायी–संज्ञा पुं० [सं० सहाध्यायिन्] वह जो साथ पढ़ा हो। सहपाठी।
सहाना–संज्ञा पुं० [सं० शोभन] एक प्रकार का राग। वि० दे० "सुहाना"।
सहानी–वि० [फा० शाहाना] एक प्रकार का रंग जो पीलापन लिए हुए लाल रंग का होता है। जैसे,—सहानी चूड़ियाँ। वि० दे० "शहानी"।
सहानुगमन–संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री का अपने मृत पति के शव के साथ जल मरना। सती होना। सहगमन।
सहानुभूति–संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी को दुःखी देखकर स्वयं दुःखी होना। दूसरे के कष्ट से दुःखी होना। हमदर्दी।
क्रि० प्र०—करना।—दिखाना।—रखना।
सहाब–संज्ञा पुं० दे० "शहाब"।
सहाय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सहायता। मदद। सहारा। (२) आश्रय। भरोसा। (३) सहायक। मददगार। (४) एक प्रकार की वनस्पति। (५) एक प्रकार का हंस।
सहायक–वि० [सं०] (१) सहायता करनेवाला। मददगार। (२) (वह छोटी नदी) जो किसी बड़ी नदी में मिलती हो। जैसे,—यमुना भी गंगा की सहायक नदियों में से एक है। (३) किसी की अधीनता में रहकर काम में उसकी सहायता करनेवाला। जैसे,—सहायक संपादक।
सहायता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी के कार्य्य-संपादन में शारीरिक या और किसी प्रकार योग देना। ऐसा प्रयत्न

करना जिसमें किसी का काम कुछ आगे बढ़े। मदद। सहाय्य। जैसे,—मकान बनाने में सहायता देना, किताब लिखने में सहायता देना। (२) वह धन जो किसी का कार्य्य आगे बढ़ाने के लिये दिया जाय। मदद। जैसे,—उन्हें लड़की के ब्याह में कई जगहों से सौ सौ रुपए की सहायता मिली।

क्रि॰ प्र॰—करना।—पाना।—देना।—मिलना।—होना।

सहायी-संज्ञा पुं॰ [सं॰ सहाय+ई (प्रत्य॰)] (१) सहायक। मददगार। सहायता करनेवाला। (२) सहायता। मदद। सहाय।

सहार-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) आम का पेड़। आम्र वृक्ष। सहकार। (२) महाप्रलय।

संज्ञा पुं॰ [हिं॰ सहना] (१) बर्दाश्त। सहनशीलता। (२) सहन करने की क्रिया।

सहारना-क्रि॰ स॰ [सं॰ सहन या हिं॰ सहारा] (१) सहन करना। बर्दाश्त करना। सहना। उ॰—कठिन बचन सुनि श्रवन जानकी सकी न बचन सहार। तृण अंतर दै दृष्टि तिरीछी दई नैन जलधार।—सूर। (२) अपने ऊपर भार लेना। सँभालना। (३) गवारा करना।

सहारा-संज्ञा पुं॰ [सं॰ सहाय] (१) मदद। सहायता।

क्रि॰ प्र॰—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

(२) जिस पर बोझ डाला जा सके। आश्रय। आसरा। (३) भरोसा। (४) इतमीनान।

मुहा॰—सहारा पाना=मदद पाना। सहारा देना=(१) मदद देना। (२) टेक देना। (३) आसरा देना। (४) रोकना। सहारा ढूँढ़ना=आसरा ताकना। वसीला ढूँढ़ना।

सहालग-संज्ञा पुं॰ [सं॰ साहित्य=संबंध] (१) वह वर्ष जो हिंदू ज्योतिषियों के कथनानुसार शुभ माना जाता है। (२) वे मास या दिन जिनमें विवाह के मुहूर्त्त हों। ब्याह शादी के दिन।

सहावल-संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ शाकूल] लोहे या पत्थर का वह लटकन जिसे तागे से लटकाकर दीवार की सिधाई नापी जाती है। शाकूल। लटकन। समसाल। वि॰ दे॰ "साहुल"।

सहिंजन-संज्ञा पुं॰ दे॰ "सहिजन"।

सहिजन-संज्ञा पुं॰ [सं॰ शोभांजन] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो भारत के प्रायः सभी प्रांतों में उत्पन्न होता है, पर अवध में अधिक देखा जाता है। इसकी छाल मोटी होती है, पर लकड़ी अधिक कड़ी नहीं होती। पत्ते गुलतुर्रा के पत्तों की तरह होते हैं। कार्त्तिक मास से वसंत ऋतु के आरंभ तक इसमें फूल रहते हैं। इसके फूल एक इंच के घेरे में गोलाकार सफ़ेद रंग के होते हैं और बहुत से एक साथ गुच्छे में लगते हैं। इसके फल दस इंच से बीस इंच तक लंबी फलियों के आकार के होते हैं जिनकी मोटाई एक अंगुल से अधिक नहीं होती। ये फल तरकारी के काम में आते हैं। इसके बीज सफ़ेद रंग के और तिकोने होते हैं। बीजों से उत्पन्न होने के अतिरिक्त यह डाल लगा देने से भी लग जाता है और शीघ्र फलने लगता है। यह ओषधि के काम में भी लाया जाता है। कहीं कहीं नीले रंग के फूलोंवाला सहिजन भी पाया जाता है। शोभांजन। मुनगा।

सहिजानी‡-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ संज्ञान] निशानी। चिह्न। पहचान।

सहित-अव्य॰ [सं॰] साथ। समेत। संग। युक्त। जैसे,—सीता और लक्ष्मण सहित रामजी वन गए थे।

सहितत्व-संज्ञा पुं॰ [सं॰] सहित का भाव या धर्म्म।

सहितव्य-वि॰ [सं॰] सहन करने के योग्य। जो सहा जा सके।

सहिदान‡-संज्ञा पुं॰ [सं॰ संज्ञान] चिह्न। पहचान। निशान।

सहिदानी‡-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ संज्ञान] चिह्न। पहचान। निशान। उ॰—(क) सुनो अनुज इह बन इतननि मिलि जानकि प्रिया हरी। कछु इक अंगनि की सहिदानी मेरी दृष्टि परी। कटि केहरि कोकिल बाणी अरु शशि मुख प्रभा धरी। मृग मूसी नैनन की शोभा जाति न गुप्त करी।—सूर। (ख) जारि वारि कै विधूम वारिधि बुताई लूम नाइ माथो पगनि भो ठाढ़ो कर जोरि कै। मातु कृपा कीजै सहिदानी दीजै सुनि सिय दीन्ही है असीस चारु चूड़ामनि छोरि कै।—तुलसी।

सहियाला‡-संज्ञा पुं॰ दे॰ "शहयाला"।

सहिरिया‡-संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] वसंत की वह फसल जो बिना सींचे होती है, सींची नहीं जाती।

सहिष्ठ-वि॰ [सं॰] बलवान्। ताकतवर।

सहिष्णु-वि॰ [सं॰] जो कष्ट या पीड़ा आदि सहन कर सके। सहनशील। बरदाश्त करनेवाला।

सहिष्णुता-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सहिष्णु होने का भाव। सहनशीलता।

सही-वि॰ [फ़ा॰ सहीह] (१) सत्य। सच। (२) प्रामाणिक। ठीक। यथार्थ। (३) जो गलत न हो। शुद्ध। ठीक।

मुहा॰—सही पड़ना=ठीक उतरना। सच होना। प्रमाणित होना। सही भरना=तसलीम करना। मान लेना। उ॰—बानी विधि गौरि हर सेसहूँ गनेस कही सही भरी लोमस भुसुंडि बहु बारिषो।—तुलसी।

(४) हस्ताक्षर। दस्तखत।

क्रि॰ प्र॰—करना।—लेना।

सही सलामत-वि॰ (१) स्वस्थ। आरोग्य। भला चंगा। तंदुरुस्त। (२) जिसमें कोई दोष या न्यूनता न आई हो।

सहुरि-संज्ञा पुं॰ [सं॰] सूर्य्य।

संज्ञा स्त्री॰ पृथ्वी।

सहूलियत–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) आसानी। सुगमता। जैसे,—अगर आप आ जायँगे, तो मुझे अपने काम में और सहूलियत हो जायगी। (२) अदब। कायदा। शऊर। जैसे,—अब तुम बड़े हुए, कुछ सहूलियत सीखो।

सहृदय–वि० [सं०] (१) जो दूसरे के दुःख सुख आदि समझने की योग्यता रखता हो। समवेदना युक्त पुरुष। (२) दयालु। दयावान। (३) रसिक। (४) सज्जन। भला आदमी। (५) सुस्वभाव। अच्छे मिजाजवाला। (६) प्रसन्नचित्त। खुशदिल।

सहृदयता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहृदय होने का भाव। (२) सौजन्य। (३) रसिकता। (४) दयालुता।

सहेजा†–संज्ञा पुं० [देश०] वह दही जो दूध को जमाने के लिये उसमें छोड़ा जाता है। जामन।

सहेजना–क्रि० स० [अ० सही ?] (१) भली भाँति जाँचना। अच्छी तरह से देखना कि ठीक या पूरा है या नहीं। सँभालना। जैसे,—रुपए सहेजना। कपड़े सहेजना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(२) अच्छी तरह कह सुनकर सपुर्द करना।

क्रि० प्र०—देना।

सहेजवाना–क्रि० स० [हिं० सहेजना का प्रेर०] सहेजने का काम दूसरे से कराना।

सहेट†–संज्ञा पुं० [सं० संकेत] वह निर्दिष्ट स्थान जहाँ प्रेमी प्रेमिका मिलते हैं। अभिसार का पूर्व निर्दिष्ट स्थान। मिलने की जगह।

सहेतुक–वि० [सं०] जिसका कोई हेतु हो। जिसका कुछ उद्देश्य या मतलब हो। जैसे,—यहाँ यह पद सहेतुक आया है, निरर्थक नहीं है।

सहेरवा†–संज्ञा पुं० [देश०] हरसिंगार या पारिजात का वृक्ष।

सहेल†–संज्ञा पुं० [देश०] वह सहायता जो असामी या काश्तकार अपने ज़मींदार को उसके खुदकाश्त खेत को काश्त करने के बदले में देता है। यह सहायता प्रायः बेगारी और बीज आदि के रूप में होती है।

सहेलवाल–संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

सहेली–संज्ञा स्त्री० [सं० सह + हिं० एली (प्रत्य०)] (१) साथ में रहनेवाली स्त्री। संगिनी। (२) अनुचरी। परिचारिका। दासी।

सहैया†–संज्ञा पुं० [हिं० सहाय] सहायता करनेवाला।

वि० [सं० सहन] सहनेवाला। सहन करनेवाला।

सहोक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का काव्यालंकार जिसमें 'सह' 'संग' 'साथ' आदि शब्दों का व्यवहार होता है और अनेक कार्य साथ ही होते हुए दिखाए जाते हैं। प्रायः इस अलंकार में क्रिया एक ही होती है। उ०—बल प्रताप वीरता बड़ाई। नाक, पिनाकी संग सिधाई।—तुलसी।

सहोजा–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) इंद्र।

सहोटज–संज्ञा पुं० [सं०] ऋषियों आदि के रहने की पर्णकुटी।

सहोढ़–संज्ञा पुं० [सं०] बारह प्रकार के पुत्रों में से एक प्रकार का पुत्र। गर्भ की अवस्था में ब्याही हुई कन्या का पुत्र। जिसकी माता विवाह के पूर्व ही से गर्भवती रही हो।

सहोदर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सहोदरा] एक ही उदर से उत्पन्न संतान। एक माता के पुत्र।

वि० सगा। अपना। खास। (क्व०)

सहोर–संज्ञा पुं० [सं० शाखोट] एक प्रकार का वृक्ष जो प्रायः जंगली प्रदेशों में होता और विशेषतः शुष्क भूमि में अधिक उत्पन्न होता है। इसका वृक्ष अत्यंत गठीला और झाड़दार होता है। प्रायः यह सदा हरा भरा रहता है। पतझड़ में भी इसके पत्ते नहीं गिरते। इसकी छाल मोटी होती है और रंग भूरा खाकी होता है। इसकी लकड़ी सफेद और साधारणतः मजबूत होती है। इसके पत्ते हरे, छोटे और खुरदुरे होते हैं। फाल्गुन मास तक इसका वृक्ष फूलता फलता है और वैशाख से आषाढ़ तक फल पकते हैं। फूल आध इंच लंबे, गोल और सफेद या पीलापन लिए होते हैं। इसके गोल फल गूदेदार होते और बीज गोलाकार होते हैं। इसकी टहनियों को काटकर लोग दातुन बनाते हैं। चिकित्साशास्त्र के अनुसार यह रक्तपित्त, बवासीर, वात, कफ और अतिसार का नाशक है। सिहोर।

पर्या०—शाखोट। भूतावास। पीतफलक। पिशाचद्रु।

सहोवरा–संज्ञा पुं० [सं० सहोदर] सगा भाई। एक माता के पुत्र।

सह्य–संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण देश में स्थित एक पर्वत। वि० दे० "सह्याद्रि"।

वि० (१) सहने योग्य। सहने लायक। बर्दाश्त करने लायक। (२) आरोग्य। (३) प्रिय। प्यारा।

संज्ञा पुं० साम्य। समानता। बराबरी।

सह्याद्रि–संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध पर्वत जो बंबई प्रांत में है।

विशेष—पश्चिमीय घाट का वह भाग जो मलयाचल पर्वत के उत्तर नीलगिरी तक है, सह्याद्रि कहलाता है। पूने से बंबई आनेवाली रेल इसी को पार करती हुई गई है। शिवाजी प्रायः अपने शत्रुओं से बचने के लिये इसी पर्वत माला में रहा करते थे।

साँई–संज्ञा पुं० [सं० स्वामी] (१) स्वामी। मालिक। (२) ईश्वर। परमात्मा। परमेश्वर। उ०—गुर गौरीस साँई सीतापति हित हनुमानहिं जाइ कै। मिलिहौं मोहिं कहाँ की वे अब अभिमत अवधि अघाइ कै।—तुलसी। (३)

पति। शौहर। भर्ता। उ०—(क) चल्यो धाय कमठी धड़ाय फुरकाय आँख बाँईं जग साँईं बात कहू न तनक को।—हृदयराम। (ख) पूस मास सुनि सखिन पै साँईं चलत सवार। गहि कर बीन प्रबीन तिय राग्यो राग मलार।—बिहारी। (४) मुसलमान फकीरों की एक उपाधि।

साँकड़—संज्ञा पुं० [सं० शृंखल] (१) शृंखला। जंजीर। सीकड़। (२) सिकड़ी जो दरवाजे में लगाई जाती है। (३) चाँदी का बना हुआ एक प्रकार का गहना जो पैर में पहना जाता है। साँकड़ा।

साँकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० शृंखला] एक प्रकार का आभूषण जो पैर में पहना जाता है। यह मोटी चपटी सिकड़ी की भाँति होता है। प्रायः मारवाड़ी स्त्रियाँ इसे पहनती हैं।

साँकर*—संज्ञा स्त्री० [सं० शृंखल] शृंखला। जंजीर। सीकड़। उ०—कीड़ा आँसू बूँद, करि साँकर बरुनी सजल। कीने बदन नमूद, दृग मलंग डारे रहैं।—बिहारी।
वि० [सं० संकीर्ण] (१) संकीर्ण। तंग। सँकरा। (२) दुःखमय। कष्टमय। उ०—सिंहल दीप जो नाहिं निबाहू। यही ठाव साँकर सब काहू।—जायसी।

साँकरा—वि० दे० "सँकरा"।
संज्ञा पुं० दे० "साँकड़ा"।

साँकाहुली—संज्ञा स्त्री० दे० "शंखाहुली"।

सांख्य—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं के छः दर्शनों में से एक दर्शन जिसके कर्त्ता महर्षि कपिल हैं। इस दर्शन में सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम दिया है। इसमें प्रकृति को ही जगत् का मूल माना है और कहा गया है कि सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों के योग से सृष्टि का और उसके सब पदार्थों आदि का विकास हुआ है। इसमें ईश्वर की सत्ता नहीं मानी गई है; और आत्मा को ही पुरुष कहा गया है। इसके अनुसार आत्मा अकर्त्ता, साक्षी और प्रकृति से भिन्न है। आत्मा या पुरुष अनुभवात्मक कहा गया है; क्योंकि इसमें प्रकृति भी नहीं है और विकृति भी नहीं है। इसमें सृष्टि के मुख्य चार विधान माने गए हैं—प्रकृति, विकृति, विकृति-प्रकृति और अनुभव। इसमें आकाश आदि पाँचों भूत और ग्यारह इंद्रियाँ प्रकृति हैं। विकृति या विकार सोलह प्रकार के माने गये हैं। इसमें सृष्टि को प्रकृति का परिणाम कहा गया है; इसलिये इसका मत परिणामवाद भी कहलाता है। वि० दे० "दर्शन"।

सांख्यायन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन आचार्य्य जिन्होंने ऋग्वेद के सांख्याय ब्राह्मण की रचना की थी। इनके कुछ श्रौत्र सूत्र भी हैं। सांख्यायन कामसूत्र इन्हीं का बनाया हुआ है।

साँग—संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] (१) एक प्रकार की बरछी जो भाले के आकार की होती है; पर इसकी लंबाई कम होती है और यह फेंककर मारी जाती है। शक्ति। (२) एक प्रकार का औजार जो कुँआ खोदते समय पानी फोड़ने के काम में आता है। (३) भारी बोझ उठाने का डंडा।

सांग—वि० [सं० साङ्ग] सब अंगों सहित। संपूर्ण।
यौ०—सांगोपांग।

सांगम—संज्ञा पुं० दे० "संगम"।

साँगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का रंग जो कपड़े रँगने के काम में आता है। यह जंगार से निकलता है।

साँगी—संज्ञा स्त्री० [सं० शंकु] (१) बरछी। साँग। (२) बैलगाड़ी में गाड़ीवान के बैठने का स्थान। जुआ। (३) जाली जो एके या गाड़ी के नीचे लगी रहती है और जिसमें मामूली चीजें रखी जाती हैं।

सांगुष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं० साङ्गुष्ठा] (१) गुंजा। (२) करंजनी।

सांगोपांग—अव्य० [सं० साङ्गोपाङ्ग] अंगों और उपांगों सहित। संपूर्ण। समस्त। पूर्ण। जैसे,—(क) विवाह के कृत्य सांगोपांग होने चाहिएँ। (ख) यज्ञ सांगोपांग पूरा हो गया।

सांग्राम—संज्ञा पुं० दे० "संग्राम"।

सांघाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जो प्रेमी और प्रेमिका का संयोग कराती हो। कुटनी। दूती। (२) स्त्री-प्रसंग। मैथुन। (३) एक प्रकार का वृक्ष।

सांघात—संज्ञा पुं० [सं०] समूह। दल।

साँच*—वि० पुं० [सं० सत्य] [स्त्री० साँची] सत्य। यथार्थ। ठीक। जैसे,—साँच को आँच नहीं। (कहा०)

साँचला—वि० [हिं० साँच + ला (प्रत्य०)] [स्त्री० साँचली] जो सच बोलता हो। सच्चा। सत्यवादी।

साँचा—संज्ञा पुं० [सं० स्थाता] (१) वह उपकरण जिसमें कोई तरल पदार्थ डालकर अथवा गीली चीज़ रखकर किसी विशिष्ट आकार प्रकार की कोई चीज़ बनाई जाती है। फरमा। जैसे,—ईंटों का साँचा, टाइप का साँचा।
विशेष—जब कोई चीज़ किसी विशिष्ट आकार प्रकार की बनानी होती है, तब पहले एक ऐसा उपकरण बना लेते हैं जिसके अंदर वह आकार बना होता है। तब उसी में वह चीज़ ढाल या भर दी जाती है, जिससे अभीष्ट पदार्थ बनाना होता है। जब वह चीज़ जम जाती है, तब उसी उपकरण के भीतरी आकार की हो जाती है। जैसे,—ईंटें बनाने के लिये पहले उनका एक साँचा तैयार किया जाता है; और तब उसी साँचे में सुरखी, चूना आदि भरकर ईंटें बनाते हैं।
मुहा०—साँचे में ढला होना = अंग प्रत्यंग से बहुत ही सुंदर

होना। रूप और आकार आदि में बहुत सुंदर होना। साँचे में ढालना = बहुत सुंदर बनाना।

(२) वह छोटी आकृति जो कोई बड़ी आकृति बनाने से पहले नमूने के तौर पर तैयार की जाती है और जिसे देखकर वही बड़ी आकृति बनाई जाती है।

विशेष—प्रायः कारीगर जब कोई बड़ी मूर्ति आदि बनाने लगते हैं, तब वे उसके आकार की मिट्टी, चूने, प्लैस्टर आफ़ पेरिस आदि की एक आकृति बना लेते हैं; और तब उसी के अनुसार पत्थर या धातु की आकृति बनाते हैं।

(३) कपड़े पर बेल बूटा छापने का ठप्पा जो लकड़ी का बनता है। छापा। (४) एक हाथ लंबी एक लकड़ी जिस पर सड़क बनाने के लिये सहा बनाते हैं। (५) जुलाहों की वे दो लकड़ियाँ जिनके बीच में कूँच के साल को दबाकर कसते हैं।

साँचिया—संज्ञा पुं० [हिं० साँचा + इया (प्रत्य०)] (१) किसी चीज़ का साँचा बनानेवाला। (२) धातु गलाकर साँचे में ढालनेवाला।

साँची—संज्ञा पुं० [साँची नगर ?] एक प्रकार का पान जो खाने में ठंढा होता है। वि० दे० "पान"।

संज्ञा पुं० [?] पुस्तकों की छपाई का वह प्रकार जिसमें पंक्तियाँ सीधे बल में न होकर बेड़े बल में होती हैं। इसमें पुस्तकें चौड़ाई के बल में नहीं बल्कि लंबाई के बल में लिखी या छापी जाती हैं। प्राचीन काल के जो लिखे हुए ग्रंथ मिलते हैं, वे अधिकांश ऐसे ही होते हैं। इनमें पृष्ठ लंबा अधिक और चौड़ा कम रहता है; और पंक्तियाँ लंबाई के बल में होती हैं। प्रायः ऐसी पुस्तकें बिना सिली हुई ही होती हैं; और उनके पन्ने बिलकुल एक दूसरे से अलग अलग होते हैं।

साँझ—संज्ञा स्त्री० [सं० संध्या] संध्या। शाम। सायंकाल।

साँझला—संज्ञा पुं० [सं० संध्या, हिं० साँझ + ला (प्रत्य०)] उतनी भूमि जितनी एक हल से दिन भर में जोती जा सकती है। दिन भर में जुत जानेवाली भूमि।

साँझा—संज्ञा पुं० [सं० सार्द्ध] व्यापार, व्यवसाय आदि में होनेवाला हिस्सा। पत्ती। वि० दे० "साझा"।

साँझी—संज्ञा स्त्री० [?] देव-मंदिरों आदि में देवताओं के सामने ज़मीन पर की हुई फूल-पत्तों आदि की सजावट जो प्रायः सावन के महीने में होती है।

साँट—संज्ञा स्त्री० [सट से अनु०] (१) छड़ी। साँटी। पतली कमची। (२) कोड़ा। (३) शरीर पर का वह लंबा गहरा दाग जो कोड़े या बेंत आदि का आघात पड़ने से होता है।

क्रि० प्र०—उभड़ना।—पड़ना।

संज्ञा स्त्री० [?] लाल गदहपूरना।

साँटा—संज्ञा पुं० [हिं० साँट = छड़ी] (१) करघे के आगे लगा हुआ वह डंडा जिसे ऊपर नीचे करने से ताने के तार ऊपर नीचे होते हैं। (२) कोड़ा। (३) पुँड। (४) ईख। गन्ना।

साँटी—संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टिका या सट से अनु०] (१) पतली छोटी छड़ी। (२) बाँस की पतली कमची। शाखा।

क्रि० प्र०—सटकारना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सटना] (१) मेल मिलाप। उ०—निकस्यो मान गुमान सहित वह मैं यह होत न जानो। नैननि साँटि करी मिली नैननि उनही सों रुचि मानो।—सूर। (२) बदला। प्रतिकार। प्रतिहिंसा।

साँठ—संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का कड़ा जिसे प्रायः राजपूताने के किसान पैर में पहनते हैं। (२) दे० "साँकड़ा"। (३) ईख। गन्ना। (४) सरकंडा। (५) वह लंबा डंडा जिससे अन्न पीटकर दाने निकालते हैं।

साँठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँठ ?] पूँजी। धन।

संज्ञा स्त्री० [देश०] पुनर्नवा। गदहपूरना।

संज्ञा पुं० दे० "साठी" (धान)।

साँड़—संज्ञा पुं० [सं० षंड] (१) वह बैल (या घोड़ा) जिसे लोग केवल जोड़ा खिलाने के लिये पालते हैं। ऐसा जानवर बधिया नहीं किया जाता और न उससे कोई काम लिया जाता है। (२) वह बैल जो मृतक की स्मृति में हिंदू लोग दागकर छोड़ देते हैं। वृषोत्सर्ग में छोड़ा हुआ वृषभ।

मुहा०—साँड़ की तरह घूमना = आज़ाद और बेफ़िक्र घूमना। साँड़ की तरह डकरना = बहुत ज़ोर से चिल्लाना।

वि० (१) मज़बूत। बलिष्ठ। (२) आवारा। बदचलन।

साँड़नी—संज्ञा स्त्री० [हिं० साँड़ ?] ऊँटनी या मादा ऊँट जिसकी चाल बहुत तेज़ होती है। वि० दे० "ऊँट"।

साँड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० साँड़] छिपकली की जाति का पर आकार में उससे कुछ बड़ा एक प्रकार का जंगली जानवर। इसकी चरबी निकाली जाती है जो दवा के काम में आती है।

साँड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० साँड़ ?] (१) तेज़ चलनेवाला ऊँट। (२) साँड़नी पर सवारी करनेवाला।

साँड़ियो—संज्ञा पुं० [हिं०] ऊँट। क्रमेलक।

सांत—वि० दे० "शांत"।

वि० [सं० सांत] जिसका अंत हो। अंतयुक्त। जैसे,—संसार का प्रत्येक पदार्थ सांत है।

सांतपनकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमें व्रत करनेवाला प्रथम दिवस भोजन त्यागकर गोमूत्र, गोमय, दूध, दही और घी को कुश के जल में मिलाकर पीता है और दूसरे दिन उपवास करता है।

सांतानिक—वि० [सं०] संतान संबंधी। संतान का। औलाद का।

सांतापिक—वि० [सं०] संताप देनेवाला। कष्ट देनेवाला।

सांत्वन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी दुःखी को सहानुभूतिपूर्वक शांति देने की क्रिया। आश्वासन। ढारस। (२) स्नेहपूर्वक कुशल मंगल पूछना और बात चीत करना। (३) प्रणय। प्रेम। (४) संधि। मिलन।

सांत्वना–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुःखी व्यक्ति को उसका दुःख हलका करने के लिये समझाने बुझाने और शांति देने की क्रिया। शांति देने का काम। ढारस। आश्वासन। (२) चित्त की शांति। सुख। (३) प्रणय। प्रेम।

सांत्ववाद–संज्ञा पुं० [सं०] वह वचन जो किसी को सांत्वना देने के लिये कहा जाय। सांत्वना का वचन।

साँथड़ा–संज्ञा पुं० [?] बादिया का वह हिस्सा जो पेंच बनाने के लिये घुमाया जाता है। (लुहार)

साँथरी–संज्ञा स्त्री० [सं० संस्तर] (१) चटाई। (२) बिछौना। डासन।

साँथा–संज्ञा पुं० [देश०] लोहे का एक औज़ार जो चमड़ा कूटने के काम में आता है।

साँथी–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) वह लकड़ी जो ताने के तारों को ठीक रखने के लिये करघे के ऊपर लगी रहती है। (२) ताने के सूतों के ऊपर नीचे होने की क्रिया।

साँद, साँदा–संज्ञा पुं० [देश०] वह लकड़ी आदि जो पशुओं के गले में इसलिये बाँध दी जाती है, जिसमें वे भागने न पावें। डंगर। ढेका।

सांदीपनि–संज्ञा पुं० [सं० सान्दीपनि] सांदीपन के गोत्र के एक प्रसिद्ध मुनि जो बहुत बड़े धनुर्धर थे और जिन्होंने श्रीकृष्ण तथा बलराम को धनुर्वेद की शिक्षा दी थी। विष्णुपुराण, हरिवंश, भागवत आदि में इनके संबंध में कई कथाएँ मिलती हैं।

सांदृष्टिक–वि० [सं०] एक ही दृष्टि में होनेवाला। देखते ही होनेवाला। तात्कालिक।

सांदृष्टिक न्याय–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का न्याय जिसका प्रयोग उस समय किया जाता है, जब कोई चीज़ देखकर उसी तरह की, पहले देखी हुई, कोई दूसरी चीज़ याद आ जाती है।

सांद्र–संज्ञा पुं० [सं०] वन। जंगल।

वि० (१) घना। गहरा। घोर। (२) मृदु। कोमल। (३) स्निग्ध। चिकना। (४) सुंदर। खूबसूरत।

सांद्रता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सांद्र होने का भाव।

सांद्रपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] विभीतक। बहेड़ा।

सांद्रप्रसाद–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कफज प्रमेह जिसमें कुछ मूत्र तो गाढ़ा और कुछ पतला निकलता है। यदि ऐसे रोगी का मूत्र किसी बरतन में रख दिया जाय, तो उसका गाढ़ा अंश नीचे बैठ जाता है और पतला अंश ऊपर रह जाता है।

सांद्रमणि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सांद्रमेह–संज्ञा पुं० दे० "सांद्रप्रसाद"।

साँध–संज्ञा पुं० [सं० संधान] वह वस्तु जिस पर निशाना लगाया जाय। लक्ष्य। निशाना।

सांध–वि० [सं०] संधि संबंधी। संधि का।

संज्ञा पुं० एक प्राचीन ऋषि का नाम।

साँधना–क्रि० स० [सं० संधान] निशाना साधना। लक्ष्य करना। संधान करना। उ०—(क) भागिन बान दुइ आनी साँधे। जग बेधे जो होहिं न बाँधे।—जायसी। (ख) जनु घुघुची वह तिलकर मूहाँ। विरह बान साँधो सामूहाँ।—जायसी।

क्रि० स० [सं० साधन] पूरा करना। साधना। उ०—सीस काटि के पैरी बाँधा। पावा दाँव बैर जस साँधा।—जायसी।

क्रि० स० [सं० संधि] (१) एक में मिलाना। मिश्रित करना। उ०—बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महँ बिप्रमासु खल साँधा।—तुलसी। (२) रस्सियों आदि में जोड़ लगाना। (लश०)

साँधा संज्ञा पुं० [सं० संधि] दो रस्सियों आदि में दी हुई गाँठ। (लश०)

मुहा०—साँधा मारना = दो रस्सियों आदि में गाँठ लगाकर उन्हें जोड़ना। (लश०)

सांधिक संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो मद्य बनाता या बेचता हो। शौंडिक। (२) वह जो संधि करता हो। संधि करनेवाला।

सांधिविग्रहिक–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का राज्यों का वह अधिकारी जिसे संधि और विग्रह करने का अधिकार हुआ करता था।

सांध्य–वि० [सं०] संध्या संबंधी। संध्या का।

सांध्यकुसुमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वे वृक्ष, पौधे और बेलें आदि जो संध्या के समय फूलती हों।

साँप–संज्ञा पुं० [सं० सर्प, प्रा० सप्प] [स्त्री० साँपिन] (१) एक प्रसिद्ध रेंगनेवाला लंबा कीड़ा जिसके हाथ पैर नहीं होते और जो पेट के बल ज़मीन पर रेंगता है। केवल थोड़े से बहुत ठंढे देशों को छोड़कर शेष प्रायः समस्त संसार में यह पाया जाता है। इसकी सैकड़ों जातियाँ होती हैं जो आकार और रंग आदि में एक दूसरी से बहुत अधिक भिन्न होती हैं। साँप आकार में दो ढाई इंच से २५-३० फुट तक लंबे होते हैं और मोटे सूत से लेकर प्रायः एक फुट तक मोटे होते हैं। बहुत बड़ी जातियों के साँप "अजगर" कहलाते हैं। कुछ साँपों के सिर पर फन होता है। ऐसे साँप "नाग" कहलाते हैं। साँप पीले, हरे, लाल, काले,

भूरे आदि अनेक रंगों के होते हैं। साँपों की अधिकांश जातियाँ बहुत डरपोक और सीधी होती हैं; पर कुछ जातियाँ ज़हरीली और बहुत ही घातक होती हैं। भारत के गेहुअन, धामिन, नाग और काले साँप बहुत अधिक ज़हरीले होते हैं; और उनके काटने पर आदमी प्रायः नहीं बचता। इनके मुँह में साधारण दाँतों के अतिरिक्त एक बहुत बड़ा नुकीला खोखला दाँत होता है जिसका संबंध ज़हर की एक थैली से होता है। काटने के समय यही दाँत शरीर में गड़ाकर ये विष का प्रवेश करते हैं। सब साँप मांसाहारी होते हैं और छोटे छोटे जीव जंतुओं को निगल जाते हैं। इनमें यह विशेषता होती है कि ये अपने शरीर की मोटाई से कहीं अधिक मोटे जंतुओं को निगल जाते हैं। प्रायः छोटी जाति के साँप पेड़ों पर और बड़ी जाति के जंगलों, पहाड़ों आदि में यों ही ज़मीन पर रहते हैं। इनकी उत्पत्ति अंडों से होती है; और मादा हर बार में बहुत अधिक अंडे देती है। साँपों के छोटे बच्चे प्रायः रक्षित रहने के लिये अपनी माता के मुँह में चले जाते हैं; इसी लिए लोगों में यह प्रवाद है कि साँपिन अपने बच्चों को आप ही खा जाती है। इस देश में साँपों के काटने की चिकित्सा प्रायः जंतर मंतर और झाड़ फूँक आदि से की जाती है। भारतवासियों में यह भी प्रवाद है कि पुराने साँपों के सिर में एक प्रकार की मणि होती है जिसे वे रात में अंधकार के समय बाहर निकाल कर अपने चारों ओर प्रकाश कर लेते हैं।

मुहा०—कलेजे पर साँप लोटना = बहुत अधिक व्याकुलता या पीड़ा होना। अत्यंत दुःख होना। (ईर्ष्या आदि के कारण) साँप सूँघ जाना = साँप का काट खाना। मर जाना। निर्जीव हो जाना। जैसे,—ऐसे सोए हैं मानों साँप सूँघ गया है। साँप खेलाना = मंत्र बल से या और किसी प्रकार साँप को पकड़ना और उससे क्रीड़ा करना। साँप की तरह केंचुली झाड़ना = पुराना भद्दा रूप रंग छोड़कर नया सुंदर रूप धारण करना। साँप की लहर = साँप काटने का कष्ट। साँप की लकीर = पृथ्वी पर का चिह्न जो साँप के निकल जाने पर होता है। साँप के मुँह में = बहुत जोखिम में। साँप छछूँदर की दशा = भारी असमंजस की दशा। दुबिधा। उ०—सकल सभा की भइ मति भोरी। भइ गति साँप छछूँदर केरी।—तुलसी।

विशेष—कहते हैं कि यदि साँप छछूँदर को पकड़ने पर खा जाय, तो वह तुरंत मर जाता है; और यदि न खाय और उसे उगल दे, तो अंधा हो जाता है।

पर्य्या०—भुजग। भुजंग। अहि। विषधर। व्याल। सरीसृप। कुंडली। चक्षुश्रवा। फणी। बिलेशय। उरग। पन्नग। पवनाशन। फणधर। व्याड़। दंष्ट्री। गोकर्ण। गूढ़पाद। हरि। द्विजिह्व।

(२) बहुत दुष्ट आदमी। (क्व०)

सांपत्तिक—वि० [सं० साम्पत्तिक] संपत्ति से संबंध रखनेवाला। आर्थिक। माली।

सांपद—वि० [सं० साम्पद] संपत्ति संबंधी। संपत्तिक का। आर्थिक। माली।

साँपधरन*—संज्ञा पुं० [हिं० साँप + धारण] सर्प धारण करनेवाले, शिव। महादेव।

सांपरायिक—वि० [सं० साम्परायिक] (१) परलोक संबंधी। पारलौकिक। (२) युद्ध में काम आनेवाला। (३) युद्ध संबंधी। युद्ध का।

संज्ञा पुं० युद्ध। समर।

साँपा—संज्ञा पुं० दे० "सियापा"।

सांपातिक—वि० [सं० साम्पातिक] संपात संबंधी। संपात का।

साँपिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० साँप + इन (प्रत्य०)] (१) साँप की मादा। (२) घोड़े के शरीर पर की एक प्रकार की भौंरी जो अशुभ समझी जाती है।

साँपिया—संज्ञा पुं० [हिं० साँप + इया (प्रत्य०)] एक प्रकार का काला रंग जो प्रायः साधारण साँप के रंग से मिलता जुलता होता है।

सांप्रत—अव्य० [सं० साम्प्रत] इसी समय। सद्यः। अभी। तत्काल।

वि० युक्त। मिला हुआ।

सांप्रतिक—वि० [सं० साम्प्रतिक] वर्तमान काल से संबंध रखनेवाला। वर्तमान कालिक। इस समय का। आधुनिक।

सांप्रदायिक—वि० [सं० साम्प्रदायिक] किसी संप्रदाय से संबंध रखनेवाला। संप्रदाय का।

सांबंधिक—वि० [सं० साम्बन्धिक] (१) संबंध का। (२) विवाह संबंधी।

संज्ञा पुं० स्त्री का भाई, साला।

सांब—संज्ञा पुं० [सं० साम्ब] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम जो जाम्बवती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। बाल्यावस्था में इन्होंने बलदेव से अस्त्र विद्या सीखी थी। बहुत अधिक बलवान् होने के कारण ये दूसरे बलदेव माने जाते थे। भविष्य पुराण में लिखा है कि ये बहुत सुंदर थे; और अपनी सुंदरता के अभिमान में किसी को कुछ न समझते थे। एक बार इन्होंने दुर्वासा ऋषि का शुष्क और कृश शरीर देखकर उनका कुछ परिहास किया था, जिससे दुर्वासा ने इन्हें शाप दिया था कि तुम कोढ़ी हो जाओगे। इसके उपरांत एक अवसर पर रुक्मिणी, सत्यभामा और जांबवती को छोड़कर श्रीकृष्ण की और सब रानियाँ आदि इनके रूप पर इतनी मुग्ध हुई थीं कि उनका रेत स्खलित हो गया था। इस पर श्रीकृष्ण ने भी इन्हें शाप दिया था कि तुम कोढ़ी

हो जाओ। इसी लिए ये कोढ़ी हो गए थे। अंत में इन्होंने नारद के परामर्श से सूर्य्य की मित्र नामक मूर्त्ति की उपासना आरंभ की जिससे अंत में इनका शरीर नीरोग हो गया। कहते हैं कि जिस स्थान पर इन्होंने मित्र की उपासना की थी, उस स्थान का नाम "मित्रवण" पड़ा। इन्होंने अपने नाम से सांबपुर नामक एक नगर भी, चंद्रभागा के तट पर, बसाया था। महाभारत के युद्ध में ये जरासंध और शाल्व आदि से बहुत वीरतापूर्वक लड़े थे।

सांबपुर–संज्ञा पुं० [सं० साम्बपुर] पंजाब के मुलतान नगर का प्राचीन नाम। यह नगर चंद्रभागा नदी के तट पर है। कहते हैं कि इसे श्रीकृष्ण के पुत्र सांब ने बसाया था।

सांबपुराण–संज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण का नाम।

सांबर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँभर हरिन। वि० दे० "साँभर"। (२) साँभर नमक।

संज्ञा पुं० [सं० संबल] पाथेय। संबल। राह खर्च।

सांबरी–संज्ञा स्त्री० [सं० साम्बरी] माया। जादूगरी।

विशेष—कहते हैं कि इस विद्या का आविष्कार श्रीकृष्ण के पुत्र संबर ने किया था; इसी से इसका यह नाम पड़ा।

साँभर–संज्ञा पुं० [सं० सम्भल या साम्भल] (१) राजपूताने की एक झील जहाँ का पानी बहुत खारा है। इसी झील के पानी से साँभर नमक बनाया जाता है। (२) उक्त झील के जल से बना हुआ नमक। (३) भारतीय मृगों की एक जाति।

विशेष—इस जाति का मृग बहुत बड़ा होता है। इसके कान लंबे होते हैं और सींग बारहसिंगों के सींगों के समान होते हैं। इसकी गरदन पर बड़े बड़े बाल होते हैं। अक्तूबर के महीने में यह जोड़ा खाता है।

सांभवी–संज्ञा स्त्री० [सं० साम्भवी] लाल लोध।

सांभाष्य–संज्ञा पुं० [सं० साम्भाष्य] संभाषण। बात-चीत।

साँमुहे–अव्य० [सं० सम्मुखे] सामने। सम्मुख।

साँयक–संज्ञा पुं० [देश०] वह ऋण जो हलवाहों को दिया जाता है और जिसके सूद के बदले में वे काम करते हैं।

संज्ञा पुं० [सं० श्यामक] साँवाँ नामक अन्न।

साँवत–संज्ञा पुं० [सं० सामन्त] सुभट। योद्धा। सामंत। वि० दे० "सामंत"।

संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का राग।

साँवती–संज्ञा स्त्री० [देश०] बैलगाड़ी या घोड़ा गाड़ी के नीचे लगी हुई जाली जिसमें घास आदि रखते हैं।

साँवरा–वि० दे० "साँवला"।

साँवलताई–संज्ञा स्त्री० [सं० श्यामल, हिं० साँवला] साँवला होने का भाव। श्यामता। श्यामलता।

साँवला–वि० [सं० श्यामल] [स्त्री० साँवली] जिसके शरीर का रंग कुछ कालापन लिये हुए हो। श्याम वर्ण का।

संज्ञा पुं० (१) श्रीकृष्ण का एक नाम। (२) पति या प्रेमी आदि का बोधक एक नाम। (इन अर्थों में इस शब्द का प्रयोग प्रायः गीतों आदि में होता है।)

साँवलापन–संज्ञा पुं० [हिं० साँवला + पन (प्रत्य०)] साँवला होने का भाव। वर्ण की श्यामता।

साँवाँ–संज्ञा पुं० [सं० श्यामक] कँगनी या चेना की जाति का एक अन्न जो प्रायः सारे भारत में बोया जाता है। यह प्रायः फागुन चैत में बोया जाता है और जेठ में तैयार होता है। यह अन्न बहुत सुपाच्य और बलवर्द्धक माना जाता है और प्रायः चावल की भाँति उबालकर खाया जाता है। कहीं कहीं रोटी के लिये इसका आटा भी तैयार किया जाता है। इसकी हरी पत्तियाँ और डंठल पशुओं के लिये चारे की भाँति काम में आती हैं; और पंजाब में कहीं कहीं केवल चारे के लिये भी इसकी खेती होती है। अनुमान है कि यह मिस्र या अरब से इस देश में आया है।

साँस–संज्ञा स्त्री० [सं० श्वास] (१) नाक या मुँह के द्वारा बाहर से हवा खींचकर अंदर फेफड़ों तक पहुँचाने और उसे फिर बाहर निकालने की क्रिया। श्वास। दम।

विशेष—यद्यपि यह शब्द संस्कृत "श्वास" (पुल्लिंग) से निकला है और इसलिये पुल्लिंग ही होना चाहिए, परंतु प्रायः लोग इसे स्त्रीलिंग ही बोलते हैं। परंतु कुछ अवसरों पर कुछ विशिष्ट क्रियाओं आदि के साथ यह केवल पुल्लिंग भी बोला जाता है। जैसे,—इतनी दूर से दौड़े हुए आए हैं, साँस फूलने लगा।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।—लेना।

मुहा०—**साँस अड़ना** = दे० "साँस रुकना"। **साँस उखड़ना** = मरने के समय रोगी का देर देर पर और बड़े कष्ट से साँस लेना। साँस टूटना। दम टूटना। **साँस ऊपर नीचे होना** = साँस का ठीक तरह से ऊपर नीचे न आना। साँस रुकना। **साँस खींचना** = (१) नाक के द्वारा वायु अंदर की ओर खींचना। साँस लेना। (२) वायु अंदर खींचकर उसे रोक रखना। दम साधना। जैसे,—हिरन साँस खींचकर पड़ गया। **साँस चढ़ना** = अधिक वेग से या बहुत परिश्रम का काम करने के कारण साँस का जल्दी जल्दी आना और जाना। **साँस चढ़ाना** = दे० "साँस खींचना"। **साँस छोड़ना** = नाक द्वारा अंदर खींची हुई वायु को बाहर निकालना। **साँस टूटना** = दे० "साँस उखड़ना"। **साँस तक न लेना** = बिलकुल चुपचाप रहना। कुछ न बोलना। जैसे,—उनके सामने तो यह लड़का साँस तक नहीं लेता। **साँस फूलना** = बार बार साँस आना और जाना। साँस चढ़ना। **साँस भरना** = दे० "ठंढी साँस लेना"। **साँस रहते** = जीते जी। जीवन पर्य्यंत। **साँस रुकना** = साँस के आने और जाने में बाधा होना। श्वास की क्रिया में बाधा होना। जैसे,—यहाँ हवा की इतनी कमी है

कि साँस रुकता है। साँस लेना = नाक के द्वारा वायु खींचकर अंदर लेना और फिर उसे बाहर निकालना। उलटी साँस लेना = (१) दे० "गहरी साँस लेना"। (२) मरने के समय रोगी का बड़े कष्ट से अंतिम साँस लेना। गहरी साँस भरना या लेना = बहुत अधिक दुःख आदि के आवेग के कारण बहुत देर तक अंदर की ओर वायु खींचे रहना और उसे कुछ देर तक रोक कर बाहर निकालना। ठंढी या लंबी साँस लेना = दे० "गहरी साँस लेना"। (२) अवकाश।

मुहा०—साँस लेना = थक जाने पर विश्राम लेना। ठहर जाना = जैसे,—(क) घंटों से काम कर रहे हो; ज़रा साँस ले लो। (ख) वह जब तक काम पूरा न कर लेगा, तब तक साँस न लेगा।

(३) गुंजाइश। दम। जैसे, अभी इस मामले में बहुत कुछ साँस है। (४) वह संधि या दरार जिसमें से होकर हवा जा या आ सकती है।

(किसी पदार्थ का) साँस लेना = किसी पदार्थ में संधि या दरार पड़ जाना। (किसी पदार्थ का) बीच में से फट या नीचे की ओर धँस जाना। जैसे,—(क) इस भूकंप में कई मकानों और दीवारों ने साँस ली है। (ख) इस आँधी में कहीं न कहीं साँस ज़रूर है; इसी से पूरी हवा नहीं जाती।

(५) किसी अवकाश के अंदर भरी हुई हवा।

मुहा०—साँस निकलना = किसी चीज़ के अंदर भरी हुई हवा का किसी प्रकार बाहर निकल जाना। जैसे,—टायर की साँस निकलना, फुटबाल की साँस निकलना। साँस भरना = किसी चीज़ के अंदर हवा भरना।

(६) वह रोग जिसमें मनुष्य बहुत ज़ोरों से, पर बहुत कठिनता से साँस लेता है। दम फूलने का रोग। श्वास। दमा।

क्रि० प्र०—फूलना।

साँसत-संज्ञा स्त्री० [हिं० साँस+त (प्रत्य०)] (१) दम घुटने का सा कष्ट। (२) बहुत अधिक कष्ट या पीड़ा। (३) झंझट। बखेड़ा। उ०—तब तात न मात न स्वामी सखा सुत बंधु बिसाल बिपत्ति बटैया। साँसति घोर पुकारत आरत कौन सुनै चहुँ ओर डटैया।—तुलसी।

यौ०—साँसतघर।

साँसतघर-संज्ञा पुं० [हिं० साँसत+घर] (१) कारागार में एक प्रकार की बहुत तंग और अँधेरी कोठरी जिसमें अपराधियों को विशेष दंड देने के लिये रखा जाता है। काल कोठरी। (२) बहुत तंग और छोटा मकान जिसमें हवा या रोशनी न आती हो।

साँसना†-क्रि० स० [सं० शासन] (१) शासन करना। दंड देना। (२) डाँटना। डपटना। (३) कष्ट देना। दुःख देना।

साँसल-संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का कंबल। (२) बीज बोने की क्रिया।

साँसा†-संज्ञा पुं० [सं० श्वास] (१) साँस। श्वास। जैसे,—जब तक साँसा, तब तक आसा। (कहा०) (२) जीवन। जिंदगी। (३) प्राण।

संज्ञा पुं० [हिं० साँसत] (१) घोर कष्ट। भारी पीड़ा। तकलीफ़। (२) चिंता। फ़िक्र। तरद्दुद।

मुहा०—साँसा चढ़ना = फ़िक्र होना। चिंता होना।

संज्ञा पुं० [सं० संशय] (१) संशय। संदेह। शक। (२) डर। भय। दहशत।

मुहा०—साँसा पड़ना = संशय होना। संदेह होना।

साँसारिक-वि० [सं०] संसार संबंधी। इस संसार का। लौकिक। ऐहिक। जैसे,—अब आप सब सांसारिक झगड़ों से अलग होकर भगवद् भजन में लीन रहते हैं।

सा-अव्य० [सं० सदृश, सह] (१) समान। तुल्य। सदृश। बराबर। जैसे,—उनका रंग तुम्हीं सा है। (२) एक प्रकार का मानसूचक शब्द। जैसे,—बहुत सा, थोड़ा सा, ज़रा सा।

साइक⊛-संज्ञा पुं० दे० "शायक"।

साइक्लोपीडिया-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) वह बड़ा ग्रंथ जिसमें किसी एक विषय के सब अंगों और उपांगों आदि का पूरा पूरा वर्णन हो। (२) वह बड़ा ग्रंथ जिसमें संसार भर के सब मुख्य मुख्य विषयों और विज्ञानों आदि का पूरा पूरा विवेचन हो। विश्वकोष। इन्साइक्लोपीडिया।

साइत-संज्ञा स्त्री० [अ० साअत] (१) एक घंटे या ढाई घड़ी का समय। (२) पल। लहमा। (३) मुहूर्त्त। शुभ लग्न।

क्रि० प्र०—देखना।—निकलना।—निकलवाना।

साइनबोर्ड-संज्ञा पुं० [अं०] वह तख्ता या टीन आदि का टुकड़ा जिस पर किसी व्यक्ति, दूकान या व्यवसाय आदि का नाम और पता आदि अथवा सर्वसाधारण के सूचनार्थ इसी प्रकार की और कोई सूचना बड़े बड़े अक्षरों में लिखी हो। ऐसा तख्ता मकान या दूकान आदि के आगे अथवा किसी ऐसी जगह लगाया जाता है, जहाँ सब लोगों की दृष्टि पड़े।

साइन्स-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) किसी विषय का विशेष ज्ञान। विज्ञान। शास्त्र। वि० दे० "विज्ञान"। (२) रासायनिक और भौतिक विज्ञान।

साइबड़ी-संज्ञा स्त्री० [?] वह धन जो किसान फसल के समय धार्मिक कार्यों के निमित्त देते हैं।

साइबान-संज्ञा पुं० दे० "सायबान"।

साइयाँ-संज्ञा पुं० दे० "साईं"। उ०—जाको राखे साइयाँ मारि न सकिहै कोइ। बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होइ।—कबीर।

साइर—संज्ञा पुं० [अ०] आमदनी के वह साधन जिन पर जमींदारों को लगान नहीं देना पड़ता।—जैसे,—जंगल, नदी, बाग, ताल आदि जो कहीं कहीं सरकारी कर से मुक्त रहते हैं। वि० दे० "सायर"।

साईं—संज्ञा पुं० [सं० स्वामी] (१) स्वामी। मालिक। प्रभु। (२) ईश्वर। परमात्मा। (३) पति। खाविंद। (४) एक प्रकार का पेड़।

साई—संज्ञा स्त्री० [हिं० साहत ?] वह धन जो गाने बजानेवाले या इसी प्रकार के और पेशेवरों को, किसी अवसर के लिये उनकी नियुक्ति पक्की करके, पेशगी दिया जाता है। पेशगी। बयाना।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

मुहा०—साई बजाना = जिससे साई ली हो, उसके यहाँ नियत समय पर जाकर गाना बजाना।

† संज्ञा स्त्री० [सं० सहाय] वह सहायता जो किसान एक दूसरे को दिया करते हैं।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार का कीड़ा जिसके घाव पर बीट कर देने से घाव में कीड़े पैदा हो जाते हैं। (२) वे छड़ जो गाड़ी के अगले हिस्से में वेंड़े बल में एक दूसरे को काटते हुए रखे जाते हैं और जिनके कारण उनकी मजबूती और भी बढ़ जाती है।

संज्ञा स्त्री० दे० "साईकाँटा"।

साईकाँटा—संज्ञा पुं० [हिं० साई (जंतु) + काँटा] एक प्रकार का वृक्ष जो बंगाल, दक्षिण भारत, गुजरात और मध्य प्रदेश में पाया जाता है। इसकी लकड़ी सफेद होती है और छाल चमड़ा सिझाने के काम में आती है। इसमें से एक प्रकार का कत्था भी निकलता है। साई। मोगली।

साईस—संज्ञा पुं० [हिं० रईस का अनु०] वह आदमी जो घोड़े की खबरदारी और सेवा करता है, उसे दाना घास आदि देता, मलता और टहलाता तथा इसी प्रकार के दूसरे काम करता है।

साईसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० साईस + ई (प्रत्य०)] साईस का काम, भाव या पद।

साकंभरी—संज्ञा पुं० [सं० शाकंभरी] साँभर झील या उसके आस पास का प्रांत जो राजपूताने में है।

साक—संज्ञा पुं० [सं० शाक] शाक। साग। सब्जी। तरकारी। भाजी। संज्ञा पुं० दे० (१) "सागौन"। (२) दे० "धाक"।

साकचेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० शाक + चेरी ?] मेहँदी। नखरंजन। हिना।

साकट—संज्ञा पुं० [सं० शाक्त] (१) शाक्त मत का अनुयायी। (२) वह जो मद्य मांस आदि खाता हो। (३) वह जिसने किसी गुरु से दीक्षा न ली हो। गुरु रहित। (४) दुष्ट। पाजी। शरीर।

साकरा—वि० [सं० संकीर्ण] संकीर्ण। सँकरा। तंग।

संज्ञा स्त्री० दे० "साँकल"।

† संज्ञा स्त्री० दे० "शक्कर"।

साकल—संज्ञा स्त्री० दे० "साँकल"।

साकल्य—संज्ञा पुं० दे० "शाकल्य"।

साकवरा—संज्ञा पुं० [?] बैल। वृषभ।

साका—संज्ञा पुं० [सं० शाका] (१) संवत्। शाका।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।

(२) ख्याति। प्रसिद्धि। शोहरत। (३) यश। कीर्ति। (४) कीर्ति का स्मारक। (५) धाक। रोब।

मुहा०—साका चलना = प्रभाव माना जाना। उ०—हृदय मुकुतामाल निरखत वारि अवलि बलाक। करज कर पर कमल धारत चलति जहँ तहँ साक।—सूर। साका चलाना = रोब जमाना। धाक जमाना। साका बाँधना = दे० "साका चलाना"।

(६) कोई ऐसा बड़ा काम जो सब लोग न कर सकें और जिसके कारण कर्त्ता की कीर्ति हो। उ०—गीध मानो गुरु, कपि भालु मानो मीन कै, पुनीत गीत साके सब साहब समत्थ के।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

साकार—वि० [सं०] (१) जिसका कोई आकार हो। जिसका स्वरूप हो। जो निराकार न हो। आकार या रूप से युक्त। (२) मूर्त्तिमान। साक्षात्। (३) स्थूल।

संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर का वह रूप जो साकार हो। ब्रह्म का मूर्त्तिमान रूप।

साकारता—संज्ञा स्त्री० [सं०] साकार होने का भाव। साकारपन।

साकारोपासना—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईश्वर की वह उपासना जो उसका कोई आकार या मूर्त्ति बनाकर की जाती है। ईश्वर की मूर्त्ति बनाकर उसकी उपासना करना।

साकिन—वि० [अ०] निवासी। रहनेवाला। बाशिंदा। जैसे,—रामलाल साकिन मौजा रामनगर।

साकी—संज्ञा पुं० [देश०] कपूर कचरी। गंध पलाशी।

साकी—संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह जो लोगों को मद्य पिलाता हो। शराब पिलानेवाला। (२) वह जिसके साथ प्रेम किया जाय। माशूक।

साकुच—संज्ञा पुं० [सं०] सकुची मछली। शकुल मत्स्य।

साकुरुंड—संज्ञा पुं० दे० "सकुरुंड"।

साकुश—संज्ञा पुं० [हिं०] घोड़ा। अश्व। वाजि।

साकेत—संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या नगरी। अवध पुरी।

साकेतक—संज्ञा पुं० [सं०] साकेत का निवासी। अयोध्या का रहनेवाला।

साकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] साकेत। अयोध्या।

साकोहा–संज्ञा पुं० [सं० शाल] साखू । शाल वृक्ष ।

साकुक–संज्ञा पुं० [सं०] जौ, जिससे सत्तू बनता है ।
वि० सत्तू संबंधी । सत्तू का ।

साक्षर–वि० [सं०] जिसे अक्षरों का बोध हो । जो पढ़ना लिखना जानता हो । शिक्षित ।

साक्षात्–अव्य० [सं०] सामने । सम्मुख । प्रत्यक्ष ।
वि० मूर्त्तिमान् । साकार । जैसे,—आप तो साक्षात् सत्य हैं।
संज्ञा पुं० भेंट । मुलाकात । देखा देखी ।

साक्षात्कार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भेंट । मुलाकात । मिलन । (२) पदार्थों का इंद्रियों द्वारा होनेवाला ज्ञान ।

साक्षात्कारी–संज्ञा पुं० [सं० साक्षात्कारिन्] (१) साक्षात् करनेवाला । (२) भेंट या मुलाकात करनेवाला ।

साक्षिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] साक्षी का काम । साक्षित्व । गवाही ।

साक्षिभूत–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम ।

साक्षी–संज्ञा पुं० [सं० साक्षिन्] [स्त्री० साक्षिणी] (१) वह मनुष्य जिसने किसी घटना को अपनी आँखों देखा हो । चश्मदीद गवाह । (२) वह जो किसी बात की प्रामाणिकता बतलाता हो । गवाह । (३) देखनेवाला । दर्शक ।
संज्ञा स्त्री० किसी बात को कहकर प्रमाणित करने की क्रिया । गवाही । शहादत ।

साक्ष्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साक्षी का काम । गवाही । शहादत । (२) दृश्य ।

साख–संज्ञा पुं० [हिं० साखी] (१) साक्षी । गवाह । (२) गवाही । प्रमाण । शहादत । उ०—(क) तुम मसीठ राजा की ओरा । साख होहु यह भीख निहोरा ।—जायसी । (ख) जैसी भुजा कलाई तेहि बिधि जाय न भाख । कंकन हाथ होव जेहि तेहि दरपन का साख ।—जायसी ।
संज्ञा पुं० [सं० शाखा, हिं० साका] (१) धाक । रोब । (२) मर्यादा । उ०—प्रीति बेल उरझाइ अब तब सुजान सुख साख ।—जायसी । (३) बाजार में वह मर्यादा या प्रतिष्ठा जिसके कारण आदमी लेन देन कर सकता हो । लेन देन का खरापन या प्रामाणिकता । जैसे,—जब तक बाजार में साख बनी थी, तब तक लोग लाखों रुपए का माल उन्हें उठा देते थे ।

क्रि० प्र०—बनना ।—बिगड़ना ।
संज्ञा स्त्री० दे० "साख" या "शाखा" ।

साखना‡–क्रि० स० [सं० साक्षि, हिं० साख + ना (प्रत्य०)] साक्षी देना । गवाही देना । शहादत देना । उ०—जन की और कौन पत राखै । जात पाँति कुल कानि न मानत बेद पुराननि साखै ।—सूर ।

साखर‡–वि० [सं० साक्षर] जिसे अक्षरों का ज्ञान हो । पढ़ा लिखा । साक्षर ।

साखा‡–संज्ञा स्त्री० [सं० शाखा] (१) वृक्ष की शाखा । डाली । टहनी । (२) वंश या जाति की शाखा । उपभेद । (३) दे० "शाखा" । (४) वह कीली जो चक्की के बीच में लगी होती है । चक्की का धुरा ।

साखी–संज्ञा पुं० [सं० साक्षि] साक्षी । गवाह ।
संज्ञा स्त्री० (१) साक्षी । गवाही ।

मुहा०—साखी पुकारना = साक्षी का कुछ कहना । साखी देना । गवाही देना । उ०—याते योग न आवै मन में तू नीके करि राखि । सूरदास स्वामी के आगे निगम पुकारत साखि ।—सूर ।

(२) ज्ञान संबंधी पद या दोहे । वह कविता जिसका विषय ज्ञान हो । जैसे,—कबीर की साखी ।

साखू–संज्ञा पुं० [सं० शाल] शाल वृक्ष । सखुआ । अश्वकर्ण वृक्ष ।

साखोच्चारन‡–संज्ञा पुं० [सं० शाखोच्चारण] विवाह के अवसर पर वर और वधू के वंश गोत्रादि का चिल्ला चिल्लाकर परिचय देने की क्रिया । गोत्रोच्चार ।

साखोट–संज्ञा पुं० [सं० शाखोट] सिहोर वृक्ष । सिहोरा । भूतावास ।
वि० दे० "सिहोर" ।

साग–संज्ञा पुं० [सं० शाक] (१) पौधों की खाने योग्य पत्तियाँ । शाक । भाजी । जैसे,—सोए, पालक, सरसों या बथुए आदि का साग । (२) पकाई हुई भाजी । तरकारी । जैसे,—आलू का साग । कुम्हड़े का साग । (वैष्णव)

यौ०—साग पात = कंद मूल । रूखा सूखा भोजन । जैसे,—जो कुछ साग पात बना है, कृपा करके भोजन कीजिए ।

मुहा०—साग पात समझना = बहुत तुच्छ समझना । कुछ न समझना ।

सागर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र । उदधि । जलधि । वि० दे० "समुद्र" । (२) बड़ा तालाब । झील । जलाशय । (३) संन्यासियों का एक भेद । (४) एक प्रकार का मृग ।

सागरगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नदी । दरिया । (२) गंगा ।

सागरज–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र लवण ।

सागरजमल–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन । अब्धिकफ ।

सागरधरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी । भूमि ।

सागरनेमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी ।

सागरमुद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] ध्यान या आराधना करने की एक प्रकार की मुद्रा ।

सागरमेखला–संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी ।

सागरलिपि–संज्ञा स्त्री० [सं०] ललित विस्तर के अनुसार एक प्राचीन लिपि ।

सागरवासी–संज्ञा पुं० [सं० सागरवासिन्] (१) वह जो समुद्र में रहता हो । समुद्र में रहनेवाला । (२) वह जो समुद्र के तट पर रहता हो । समुद्र के किनारे रहनेवाला ।

सागरव्यूहगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

सागरांबरा-संज्ञा स्त्री० [सं० सागराम्बरा] पृथ्वी।

सागरालय-संज्ञा पुं० [सं०] सागर में रहनेवाले, वरुण।

सागरेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ का नाम।

सागरोत्थ-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र लवण।

सागवन-संज्ञा पुं० दे० "सागौन"।

सागू-संज्ञा पुं० [अं० सैगो] (१) ताड़ की जाति का एक प्रकार का पेड़ जो जावा, सुमात्रा, बोर्निओ आदि में अधिकता से पाया जाता है और जो बंगाल तथा दक्षिण भारत में भी लगाया जाता है। इसके कई उपभेद हैं जिनमें से एक को माड़ भी कहते हैं। इसके पत्ते ताड़ के पत्तों की अपेक्षा कुछ लंबे होते हैं और फल सुडौल गोलाकार होते हैं। इसके रेशों से रस्से, टोकरे और बुरुश आदि बनते हैं। कहीं कहीं इसमें से पाछकर एक प्रकार का मादक रस भी निकाला जाता है; और उस रस से गुड़ भी बनाया जाता है। जब यह पंद्रह वर्ष का हो जाता है, तब इसमें फल लगते हैं और इसके मोटे तने में आटे की तरह का एक प्रकार का सफेद पदार्थ उत्पन्न होकर जम जाता है। यदि यह पदार्थ काटकर निकाल न लिया जाय, तो पेड़ सूख जाता है। यही पदार्थ निकालकर पीसते हैं और तब छोटे छोटे दानों के रूप में बनाकर सुखाते हैं। कुछ वृक्ष ऐसे भी होते हैं जिनके तने के टुकड़े टुकड़े करके उनमें से गूदा निकाला जाता है और पानी में कूटकर दानों के रूप में सुखा लिया जाता है। इन्हीं दानों को सागूदाना या साबूदाना कहते हैं। इस वृक्ष का तना पानी में जल्दी नहीं सड़ता; इसलिये उसे खोखला करके उससे नाली का काम लेते हैं। यह वृक्ष वर्षा ऋतु में बीजों से लगाया जाता है। (२) दे० "सागूदाना"।

सागूदाना-संज्ञा पुं० [हिं० सागू + दाना] सागू नामक वृक्ष के तने का गूदा जो पहले आटे के रूप में होता है और फिर कूटकर दानों के रूप में सुखा लिया जाता है। यह बहुत जल्दी पच जाता है, इसलिये यह दुर्बलों और रोगियों को पानी या दूध में उबाल कर, पथ्य के रूप में दिया जाता है। इसे साबूदाना भी कहते हैं। वि० दे० "सागू"।

सागो-संज्ञा पुं० दे० "सागू"।

सागौन-संज्ञा पुं० दे० "शाल" (१)।

साग्निक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके पास यज्ञ या हवन की अग्नि रहती हो। वह जो बराबर अग्निहोत्र आदि किया करता हो।

साग्र-वि० [सं०] समस्त। कुल। सब।

साचक-संज्ञा स्त्री० [तु०] मुसलमानों में विवाह की एक रस्म जिसमें विवाह से एक दिन पहले वर पक्षवाले अपने यहाँ से कन्या के लिये मेहँदी, मेवे, फल तथा कुछ सुगंधित द्रव्य आदि भेजते हैं।

साचरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो कुछ लोगों के मत से भैरव राग की पत्नी है।

साचिवारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद पुनर्नवा। गदहपूरना।

साचिव्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सचिव का भाव या धर्म। सचिवता। (२) सहायता। मदद।

साची कुम्हड़ा-संज्ञा पुं० [देश० साची + कुम्हड़ा] भतुआ कुम्हड़ा। सफेद कुम्हड़ा। पेठा।

साचीगुण-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक देश का नाम।

साज-संज्ञा पुं० [सं०] पूर्व भाद्रपद नक्षत्र।

साज़-संज्ञा पुं० [फा० मि०, सं० सज्जा] (१) सजावट का काम। तैयारी। ठाट बाट। (२) वह उपकरण जिसकी आवश्यकता सजावट आदि के लिये होती हो। वे चीजें जिनकी सहायता से सजावट की जाती है। सजावट का सामान। उपकरण। सामग्री। जैसे,—घोड़े का साज (जीन, लगाम, तंग, दुमची आदि), लहँगे का साज (गोटा, पट्ठा, किनारी आदि) नाव का साज (खंभे, पटरे, जँगले आदि) बरामदे का साज (खंभे, घुड़िया आदि)।

यौ०—साज सामान।

(३) वाद्य। बाजा। जैसे,—तबला, सारंगी, जोड़ी, सितार, हारमोनियम आदि।

मुहा०—साज छेड़ना = बाजा बजाना आरंभ करना। साज मिलाना = बाजा बजाने से पहले उसका सुर आदि ठीक करना।

(४) लड़ाई में काम आनेवाले हथियार। जैसे,—तलवार, बंदूक, ढाल, भाला आदि। (५) बढ़इयों का एक प्रकार का रंदा जिससे गोल गलता बनाया जाता है। (६) मेल जोल। घनिष्ठता।

यौ०—साज बाज = हेल मेल। घनिष्ठता।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

वि० बनानेवाला। मरम्मत या तैयार करनेवाला। काम करनेवाला।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार यौगिक शब्दों के अंत में होता है। जैसे,—घड़ीसाज, रंगसाज आदि।

साजक-संज्ञा पुं० [सं०] बाजरा। बजरा।

साजगिरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

साजड़-संज्ञा पुं० [देश०] गुल नामक वृक्ष जिससे कतीरा गोंद निकलता है। वि० दे० "गुल" (१)।

साजन-संज्ञा पुं० [सं० सज्जन] (१) पति। भर्ता। स्वामी। (२) प्रेमी। वल्लभ। (३) ईश्वर। (४) सज्जन। भला आदमी।

साजना⊛†–क्रि॰ स॰ [सं॰ सज्जा] (१) दे॰ "सजाना"। उ॰—चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा।—जायसी। (२) छोटे बड़े पानों को उनके आकार के अनुसार आगे पीछे या ऊपर नीचे रखना। (तमोली)

संज्ञा पुं॰ दे॰ "साजन"।

साज बाज–संज्ञा पुं॰ [सं॰ साज+बाज (अनु॰)] (१) तैयारी। (२) मेल जोल। घनिष्टता।

संयो॰ क्रि॰—करना।—रखाना।—रखना।—होना।

साजर–संज्ञा पुं॰ [देश॰] गुरुद नामक वृक्ष जिससे कतीरा गोंद निकलता है। वि॰ दे॰ "गुरुद" (१)।

साज सामान–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] (१) सामग्री। उपकरण। असबाब। जैसे,—बारात का सब साज सामान पहले से ही ठीक कर लेना चाहिए। (२) ठाठ बाट।

साजात्य–संज्ञा पुं॰ [सं॰] सजाति होने का भाव जो वस्तु के दो प्रकार के धर्मों में से एक है। (वस्तुओं का दूसरे प्रकार का धर्म वैजात्य कहलाता है।)

साजिंदा–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ साज़िन्दा] (१) वह जो कोई साज (बाजा) बजाता हो। साज या बाजा बजानेवाला। (२) वेश्याओं की परिभाषा में तबला, सारंगी या जोड़ी बजानेवाला। सपरदाई। समाजी।

साज़िश–संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] (१) मेल। मिलाप। (२) किसी के विरुद्ध कोई काम करने में सहायक होना। किसी को हानि पहुँचाने में किसी को सलाह या मदद देना। जैसे,—इतना बड़ा मामला बिना उनकी साज़िश के हो ही नहीं सकता।

साजुज्य⊛–संज्ञा पुं॰ दे॰ "सायुज्य"।

साझा–संज्ञा पुं॰ [सं॰ सहार्घ्य] (१) किसी वस्तु में भाग पाने का अधिकार। शराकत। हिस्सेदारी। जैसे,—बासी रोटी में किसी का क्या साझा ? (कहा॰)

क्रि॰ प्र॰—लगाना।

(२) हिस्सा। भाग। बाँट। जैसे,—उनके गल्ले के रोजगार में हमारा आधा साझा है।

क्रि॰ प्र॰—करना।—रखना।—होना।

साझी–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ साझा+ई (प्रत्य॰)] वह जिसका किसी काम या चीज़ में साझा हो। साझेदार। भागी। हिस्सेदार।

साझेदार–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ साझा+दार (प्रत्य॰)] शरीक होनेवाला। हिस्सेदार। साझी।

साझेदारी–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ साझेदार+ई (प्रत्य॰)] साझेदार होने का भाव। हिस्सेदारी। शराकत।

साट–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "साँट"।

साटक–संज्ञा पुं॰ [?] (१) भूसी। छिलका। (२) बिलकुल तुच्छ और निरर्थक वस्तु। निकम्मी चीज़। उ॰—गज-बाजि-घटा, भले भूरि भटा, बनिता सुत भौंह तकैं सब वै। धरनी धन धाम सरीर भलो, सुर लोकहु चाहि इहै सुख स्वै। सब फोकट साटक है तुलसी, अपनो न कछू सपनो दिन द्वै। जरि जाउ सो जीवन जानकीनाथ! जियै जग में तुम्हरो बिन ह्वै।—तुलसी। (३) एक प्रकार का छंद।

साटन–संज्ञा पुं॰ [अं॰ सैटिन] एक प्रकार का बढ़िया रेशमी कपड़ा जो प्रायः एकरुखा और कई रंगों का होता है।

साटना⊛†–क्रि॰ स॰ [हिं॰ सटाना] (१) दो चीज़ों का इस प्रकार मिलाना कि उनके तल आपस में मिल जायँ। सटाना। जोड़ना। मिलाना। (२) दे॰ "सटाना"।

साटनी–संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] कलंदरों की परिभाषा में भालू का नाच।

साटमार†–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ साँट+मारना] वह जो हाथियों को (साँटे मार मारकर) लड़ाता हो। हाथियों को लड़ानेवाला।

साटी–संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] (१) पुनर्नवा। गदहपूर्ना। (२) सामान। सामग्री। वि॰ दे॰ "साँठी"। (३) कमची। साँटी।

साटे‡–अव्य॰ [देश॰] बदले में। परिवर्त्तन में।

साठ–वि॰ [सं॰ षष्टि] पचास और दस। जो पचपन से पाँच ऊपर हो।

संज्ञा पुं॰ पचास और दस के योग की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—६०।

संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "साटी"।

साठनाठ–वि॰ [हिं॰ साँठि+नाठ (नष्ट)] (१) जिसकी पूँजी नष्ट हो गई हो। निर्धन। दरिद्र। उ॰—साठनाठ जग बात को पूँछा। बिन जिय फिरै मूँज तन छूँछा।—जायसी। (२) नीरस। रूखा। (३) इधर उधर। तितर बितर। उ॰—घेटक लाइ हरहिं मन जब लहि होइ गथ फेंट। साठनाठ उठि भए बटाऊ, ना पहिचान न भेंट।—जायसी।

साठसाती–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "साढ़ेसाती"।

साठा–संज्ञा पुं॰ [देश॰] (१) ईख। गन्ना। ऊख। (२) एक प्रकार का धान जिसे साठी कहते हैं। वि॰ दे॰ "साठी"। (३) वह खेत जो बहुत लंबा चौड़ा हो। (४) एक प्रकार की मधुमक्खी जिसे सठपुरिया भी कहते हैं।

वि॰ [हिं॰ साठ] जिसकी अवस्था साठ वर्ष की हो गई हो। साठ वर्ष की उम्रवाला। जैसे,—साठा सो पाठा। (कहा॰)

साठी–संज्ञा पुं॰ [सं॰ षष्टिक] एक प्रकार का धान। कहते हैं कि यह धान ६० दिन में तैयार हो जाता है, इसी से इसे साठी कहते हैं। इसके दाने दो प्रकार के होते हैं—काले और सफेद। काले की अपेक्षा सफेद दानेवाला अधिक अच्छा होता है। इसमें गुण अधिक होता है।

साड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) घोड़ों का एक प्राणघातक रोग। (२) बाँस का वह टुकड़ा, जो नाव में, मल्लाहों के बैठने के स्थान के नीचे, लगा रहता है।

साड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० शाटिका] स्त्रियों के पहनने की धोती जिसमें चौड़ा किनारा या बेल आदि बनी होती है। सारी।
संज्ञा स्त्री० दे० "साढ़ी"।

साढ़साती–संज्ञा स्त्री० दे० "साढ़ेसाती"। उ०—अवध साढ़-साती जनु बोली।—तुलसी।

साढ़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० असाढ़] वह फसल जो असाढ़ में बोई जाती है। असाढ़ी।
संज्ञा स्त्री० [सं० सार ?] दूध के ऊपर जमनेवाली बालाई। मलाई। उ०—सब हेरि धरीहै साढ़ी। लै ऊपर उपरते काढ़ी।—सूर।
संज्ञा स्त्री० [सं० शाल] शाल वृक्ष का गोंद।
संज्ञा स्त्री० दे० "साड़ी"।

साढ़ू–संज्ञा पुं० [सं० स्यालिवोढ़] साली का पति। पत्नी की बहन का पति।

साढ़ेचौहारा–संज्ञा पुं० [हिं० साढ़े + चौ (चार) + हारा (प्रत्य०)] एक प्रकार की बाँट जिसमें फसल का $\frac{2}{9}$ अंश जमींदार को मिलता है और शेष $\frac{7}{9}$ अंश काश्तकार को।

साढ़ेसाती–संज्ञा स्त्री० [हिं० साढ़े + सात + ई (प्रत्य०)] शनि ग्रह की साढ़े सात वर्ष, साढ़े सात मास या साढ़े सात दिन आदि की दशा, फलित ज्योतिष के अनुसार जिसका फल बहुत बुरा होता है।
मुहा०—साढ़ेसाती आना या चढ़ना = दुर्दशा या विपत्ति के दिन आना।

सात–वि० [सं० सप्त] पाँच और दो। छः से एक अधिक।
संज्ञा पुं० पाँच और दो के योग की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—७।
मुहा०—सात पाँच = चालाकी। मक्कारी। धूर्तता। जैसे,—वह बेचारा सात पाँच नहीं जानता; सीधा आदमी है। सात पाँच करना = (१) बहाना करना। (२) झगड़ा करना। उपद्रव करना। (३) चालबाजी करना। धूर्तता करना। सात परदे में रखना = (१) अच्छी तरह छिपाकर रखना। (२) बहुत सँभालकर रखना। सात समुद्र पार = बहुत दूर। सातों भूल जाना = होश हवास चला जाना। इंद्रियों का काम न करना। (पाँच इंद्रियाँ, मन और बुद्धि ये सब मिलकर सात हुए।) सात राजाओं की साक्षी देना = बहुत दृढ़तापूर्वक कोई बात कहना। किसी बात की सत्यता पर बहुत जोर देना। उ०—मनसि बचन अरु कर्मना कछु कहति नाहिन राखि। सूर प्रभु यह बोल हिरदय सात राजा साखि।—सूर। सात सींकें बनाना = शिशु जन्म के छठे दिन की एक रीति जिसमें सात सींकें रखी जाती हैं। उ०—साथिये बनाइकै देहिं द्वारे सात सींक बनाय। नव किसोरी मुदित ह्वै है गहति यसुदा जी के पाँय।—सूर।

सातपुती–संज्ञा स्त्री० दे० "सतपुतिया"।

सात फेरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० सात + फेरी] विवाह की भाँवर नामक रीति जिसमें वर और वधू अग्नि की सात बार परिक्रमा करते हैं।

सातभाई–संज्ञा स्त्री० दे० "सतभइया"।

सातला–संज्ञा पुं० [सं० सप्तला] एक प्रकार का थूहर जिसका दूध पीले रंग का होता है। सप्तला। भूरिफेना। स्वर्णपुष्पी।
विशेष—शालग्राम निघंटु में लिखा है कि यह एक प्रकार की बेल है जो जंगलों में पाई जाती है। इसके पत्ते खैर के पत्तों की भाँति और फूल पीले होते हैं। इसमें पतली चिपटी फली लगती है जिसे सीकाकाई कहते हैं। इसके बीज काले होते हैं जिनमें पीले रंग का दूध निकलता है। परंतु इंडियन मेडिकल प्लान्ट्स के मतानुसार यह क्षुप जाति की वनस्पति है। इसकी डाल एक से तीन फुट तक लंबी होती है जिसमें रोएँ होते हैं। इसके पत्ते एक इंच लंबे और चौथाई इंच चौड़े, अंडाकार, अनीदार होते हैं। डाल के अंत में बारीक फूलों के घने गुच्छे लगते हैं जो लाल रंग के होते हैं। फल चिकने और छोटे होते हैं। यह वनस्पति सुगंधयुक्त होती है। इसका तेल सुगंधित और उत्तेजक होता है जो मिरगी रोग में काम आता है।

साती–संज्ञा स्त्री० [देश०] साँप काटने की एक प्रकार की चिकित्सा जिसमें साँप काटे हुए स्थान को चीरकर उस पर नमक या बारूद मलते हैं।

सात्मक–वि० [सं०] आत्मा के सहित। आत्मायुक्त।

सात्म्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सारूप्य। सरूपता। (२) वैद्यक के अनुसार वह रस जिसके सेवन से शरीर का किसी प्रकार का उपकार होता हो और जिसके फलस्वरूप प्रकृति-विरुद्ध कोई कार्य्य करने पर भी शरीर का अनिष्ट न होता हो। (३) ऋतु, काल, देश आदि के अनुकूल पड़नेवाला आहार विहार आदि।

सात्यकि–संज्ञा पुं० [सं०] एक यादव जिसका दूसरा नाम युयुधान था। इसके पिता का नाम सत्यक था। महाभारत के युद्ध में इसने पांडवों का पक्ष लिया था। इसने कौरव भूरिश्रवा को मारा था। श्रीकृष्ण और अर्जुन से इसने अस्त्र विद्या सीखी थी।

सात्यकी–संज्ञा पुं० दे० "सात्यकि"।

सात्यदूत–संज्ञा पुं० [सं०] वह होम जो सरस्वती आदि देवियों या देवताओं के उद्देश से किया जाय।

सात्ययज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक आचार्य्य का नाम।

सात्यरथि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सत्यरथ के वंश में उत्पन्न हुआ हो।

सात्यवत, सात्यवतेय-संज्ञा पुं० [सं०] सत्यवती के पुत्र वेदव्यास।

सात्यहव्य-संज्ञा पुं० [सं०] वशिष्ठ के वंश के एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सात्रघ-संज्ञा पुं० [?] गंधक।

सात्राजित-संज्ञा पुं० [सं०] राजा शतानीक जो सत्राजित के वंशज थे।

सात्राजिती-संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्यभामा का एक नाम।

सात्व-वि० [सं०] सत्व गुण संबंधी। सात्विक।

सात्वत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बलराम। (२) श्रीकृष्ण। (३) विष्णु। (४) यदुवंशी। यादव। (५) मनुसंहिता के अनुसार एक वर्णसंकर जाति। (६) एक प्राचीन देश का नाम।

सात्वती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिशुपाल की माता का नाम। (२) सुभद्रा का एक नाम।

सात्वती वृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य के अनुसार एक प्रकार की वृत्ति जिसका व्यवहार वीर, रौद्र, अद्भुत और शांत रसों में होता है। यह वृत्ति उस समय मानी जाती है जब कि नायक द्वारा ऐसे सुंदर और आनंदवर्धक वाक्यों का प्रयोग होता है, जिनसे उसकी शूरता, दानशीलता, दाक्षिण्य आदि गुण प्रकट होते हैं।

सात्विक-वि० [सं०] (१) सत्वगुण से संबंध रखनेवाला। सतोगुणी। (२) जिसमें सत्वगुण की प्रधानता हो। (३) सत्वगुण से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० (१) सतोगुण से उत्पन्न होनेवाले निसर्गजात अंग विकार। ये आठ प्रकार के होते हैं—स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय। केशव के अनुसार आठवाँ प्रलय नहीं बल्कि प्रलाप होता है। (२) साहित्य के अनुसार एक प्रकार की वृत्ति जिसका व्यवहार अद्भुत, वीर, शृंगार और शांत रसों में होता है। सात्वती वृत्ति। (३) ब्रह्मा। (४) विष्णु।

सात्विकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

वि० स्त्री० सत्व गुण से संबंध रखनेवाली। सत्व गुण की।

साथ-संज्ञा पुं० [सं० सह या सहित] (१) मिलकर या संग रहने का भाव। संगत। सहचार।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—लगना।—होना।

मुहा०—साथ छूटना = संग छूटना। अलग होना। जुदा होना। साथ देना = किसी काम में संग रहना। सहानुभूति करना या सहायता देना। जैसे,—इस काम में हम तुम्हारा साथ देंगे। साथ लेना = अपने संग रखना या ले चलना। जैसे,—जब तुम चलने लगना, तो हमें भी साथ ले लेना। साथ सोना = समागम करना। संभोग करना। साथ सोकर मुँह छिपाना = बहुत अधिक घनिष्ठता होने पर भी संकोच या दुराव करना। साथ का या साथ को = तरकारी, भाजी आदि जो रोटी के साथ खाई जाती है। साथ का खेला = बाल्यावस्था का मित्र। बचपन का साथी।

(२) वह जो संग रहता हो। बराबर पास रहनेवाला। साथी। संगी। (३) मेल मिलाप। घनिष्ठता। जैसे,—आजकल उन दोनों का बहुत साथ है। (४) कबूतरों का झुंड या टुकड़ी। (लखनऊ)

अव्य० (१) एक संबंधसूचक अव्यय जिससे प्रायः सहचार का बोध होता है। सहित। से। जैसे,—(क) तुम भी साथ चले जाओ। (ख) वह बड़े आराम के साथ सब काम करता है।

मुहा०—साथ ही = सिवा। अतिरिक्त। जैसे,—साथ ही यह भी एक बात है कि आप वहाँ नहीं जा सकेंगे। साथ ही साथ = एक साथ। एक सिलसिले में। जैसे,—साथ ही साथ दोहराते भी चलो। एक साथ = एक सिलसिले में। जैसे,—(क) एक साथ दोनों काम हो जायँगे। (ख) जब एक साथ इतने आदमी पहुँचेंगे तो वे घबरा जायँगे।

(२) विरुद्ध। से। जैसे,—सब के साथ लड़ना ठीक नहीं। (३) प्रति। से। जैसे,—(क) उनके साथ हँसी मजाक मत किया करो। (ख) बड़ों के साथ शिष्टतापूर्वक व्यवहार किया करो। (४) द्वारा। उ०—नखन साथ तब उदर विदार्यो।—सूर।

साथरा†-संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० साथरी] (१) बिछौना। बिस्तर। (२) चटाई। (३) कुश की बनी चटाई। उ०—रघुपति चंद्र विचार कर्‍यो। नातो मानि सगर सागर सों कुश साथरे पर्‍यो।—सूर।

साथी-संज्ञा पुं० [हिं० साथ + ई (प्रत्य०)] [स्त्री० साथिन] (१) वह जो साथ रहता हो। साथ रहनेवाला। हमराही। संगी। (२) दोस्त। मित्र।

सादगी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) सादा होने का भाव। सादापन। सरलता। (२) सीधापन। निष्कपटता।

सादा-वि० [फ़ा० सादः] [स्त्री० सादी] (१) जिसकी बनावट आदि बहुत संक्षिप्त हो। जिसमें बहुत अधिक अंग, उपांग, पेच या बखेड़े आदि न हों। जैसे,—चरखा सूत कातने का सब से सादा यंत्र है। (२) जिसके ऊपर कोई अतिरिक्त काम न बना हो। जैसे,—सादा दुपट्टा, सादी जिल्द, सादा खिलौना। (३) जिसमें किसी विशेष प्रकार का मिश्रण न हो। बिना मिलावट का। खालिस। जैसे,—सादा पानी या सादी भाँग, (जिसमें चीनी आदि न मिली हो)। सादी पूरी (जिसमें पीठी आदि न भरी हो)। सादा भोजन (जिसमें अधिक मसाले या मेवे आदि न हों)। (४) जिसके ऊपर

कुछ अंकित न हो। जैसे,—सादा कागज, सादा किनारा (जिसमें बेल बूटे आदि न बने हों)। (५) जिसके ऊपर कोई रंग न हो। सफेद। जैसे,—सादे किनारे की धोती। (६) जो कुछ छल कपट न जानता हो। जिसमें किसी प्रकार का आडंबर या अभिमान आदि न हो। सरल हृदय। सीधा। जैसे,—वे बहुत ही सादे आदमी हैं।

यौ०—सीधा सादा = सरल हृदय।

(७) बेवकूफ। मूर्ख। (क्व०) जैसे,—(क) यह सादा क्या जाने कि दर्शन किसे कहते हैं। (ख) यहाँ ऐसा कौन सादा है जो तुम्हारी बातें मान ले।

सादापन-संज्ञा पुं० [फ़ा० सादा + पन (प्रत्य०)] सादा होने का भाव। सादगी। सरलता।

सादी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सादः] (१) लाल की जाति की एक प्रकार की छोटी चिड़िया जिसका शरीर भूरे रंग का होता है और जिसके शरीर पर चित्तियाँ नहीं होतीं। बिना चित्ती की मुनियाँ। सदिया। (२) वह पूरी जिसमें पीठी आदि नहीं भरी होती।

संज्ञा पुं० [?] (१) शिकारी। उ०—सहरुम सादी संग सिधारे। शूकर मृगा सघन बहु मारे।—रघुराज। (२) घोड़ा। (डिं०)

संज्ञा स्त्री० दे० "शादी"।

सादूर-संज्ञा पुं० [सं० शार्दूल] (१) शार्दूल। सिंह। उ०—चौथ दीन्ह सायक सादूरू। पाँचौ परस जो कंचन मुरू।—जायसी। (२) कोई हिंसक पशु।

सादृश्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सदृश होने का भाव। समानता। एक-रूपता। (२) बराबरी। तुलना। समान धर्म। (३) कुरंग। मृग।

सादृश्यता-संज्ञा स्त्री० दे० "सादृश्य"।

साध-संज्ञा पुं० [सं० साधु] (१) साधु। महात्मा। (२) योगी। (३) अच्छा आदमी। सज्जन।

संज्ञा स्त्री० [सं० उत्साह] (१) इच्छा। ख्वाहिश। कामना। उ०—जेहि अस साध होइ जिव खोवा। सो पतंग दीपक मस रोवा।—जायसी। (२) गर्भ धारण करने के सातवें मास में होनेवाला एक प्रकार का उत्सव। इस अवसर पर स्त्री के मायके से मिठाई आदि आती है।

संज्ञा पुं० फर्रुखाबाद और कन्नौज के आस पास पाई जानेवाली एक जाति। इस जाति के लोग मूर्त्तिपूजा आदि नहीं करते, किसी के सामने सिर नहीं झुकाते और केवल एक परमात्मा की अराधना करते हैं।

साधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साधना करनेवाला। साधनेवाला। सिद्ध करनेवाला। (२) योगी। तप करनेवाला। तपस्वी। (३) जिससे कोई कार्य्य सिद्ध हो। करण। वसीला। जरिया। (४) भूत प्रेत आदि को साधने या अपने वश में करनेवाला। ओझा। (५) वह जो किसी दूसरे के स्वार्थ-साधन में सहायक हो। जैसे,—दोनों सिद्ध साधक बनकर आए थे। (६) पुत्रजीव वृक्ष। (७) दौना। (८) पित्त।

साधका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम जिसे स्मरण करने से सब कार्य्यों की सिद्धि होती है।

साधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी काम को सिद्ध करने की क्रिया। सिद्धि। विधान। (२) वह जिसके द्वारा कोई उपाय सिद्ध हो। सामग्री। सामान। उपकरण। जैसे,—साधन के अभाव से मैं यह काम न कर सका। (३) उपाय। युक्ति। हिकमत। (४) उपासना। साधना। (५) सहायता। मदद। (६) धातुओं को शोधने की क्रिया। शोधन। (७) कारण। हेतु। सबब। (८) मथार। संधान। (९) मृतक का अग्नि संस्कार। दाह कर्म। (१०) जाना। गमन। (११) धन। दौलत। द्रव्य। (१२) पदार्थ। चीज़। (१३) घोड़े, हाथी और सैनिक आदि जिनकी सहायता से युद्ध होता है। (१४) उपाय। तरकीब। (१५) सिद्धि। (१६) प्रमाण। (१७) तपस्या आदि के द्वारा मंत्र सिद्ध करना। साधना।

साधनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साधन का भाव या धर्म। (२) साधन करने की क्रिया। साधना। उ०—कहि आचार मक्त विधभापी हंस धर्म प्रकटायो। कही विभूति सिद्ध साधनता आश्रम चार कहायो।—सूर।

साधनहार-संज्ञा पुं० [सं० साधन + हार (प्रत्य०)] (१) साधनेवाला। जो सिद्ध करता हो। (२) जो साधा जा सके। सिद्ध होने के योग्य।

साधना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कोई कार्य्य सिद्ध या संपन्न करने की क्रिया। सिद्धि। (२) किसी देवता या यंत्र आदि को सिद्ध करने के लिये उसकी आराधना या उपासना करना। (३) दे० "साधन"।

क्रि० स० [सं० साधन] (१) कोई कार्य्य सिद्ध करना। पूरा करना। (२) निशाना लगाना। संधान करना। (३) नापना। पैमाइश करना। जैसे,—लकड़ी साधना। कुरता साधना। जूता साधना। टोपी साधना। (४) अभ्यास करना। आदत डालना। स्वभाव डालना। जैसे,—योग साधना। तप साधना। उ०—जब लगि पीउ मिले तुहि साधि प्रेम की पीर। जैसे सीप स्वाति कहँ तपै समुँद मँझ नीर।—जायसी। (५) शोधना। शुद्ध करना। (६) सच्चा प्रमाणित करना। (७) पक्का करना। ठहराना। (८) एकत्र करना। इकट्ठा करना। उ०—वैदिक विधान अनेक लौकिक आचरन सुनि जान कै। बलिदान पूजा मूलि कामनि साधि राखी आनि कै।—तुलसी।

साधनी-संज्ञा स्त्री० [सं० साधन] लोहे या लकड़ी का एक प्रकार का लंबा औजार जिससे जमीन चौरस करते हैं।

साधनीय-वि० [सं०] (१) साधना करने के योग्य। साधने लायक। (२) जो हो सके। जो साधा जा सके।

साधयितव्य-वि० [सं०] साधन करने के योग्य। साधने या सिद्ध करने लायक।

साधयिता-संज्ञा पुं० [सं० साधयितृ] वह जो साधन करता हो। साधन करनेवाला। साधक।

साधर्म्य-संज्ञा पुं० [सं०] समान धर्म होने का भाव। एक धर्मता। समान धर्मता। तुल्य धर्मता। जैसे,—इन दोनों में कुछ भी साधर्म्य नहीं है।

साधारण-वि० [सं०] (१) जिसमें कोई विशेषता न हो। मामूली। सामान्य। जैसे,—साधारण बात, साधारण काम, साधारण उपाय। (२) आसान। सरल। सहज। (३) सार्वजनिक। आम। (४) समान। सदृश। तुल्य।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) भावप्रकाश के अनुसार वह प्रदेश जहाँ जंगल अधिक हों, पानी अधिक हो, रोग अधिक हों, और जाड़ा तथा गरमी भी अधिक पड़ती हो। (२) ऐसे देश का जल।

साधारण गांधार-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विकृत स्वर जो वज्रिका नामक श्रुति से आरंभ होता है। इसमें तीन श्रुतियाँ होती हैं।

साधारणतः-अव्य० [सं०] (१) मामूली तौर पर। आम तौर पर। सामान्यतः। (२) बहुधा। प्रायः।

साधारणता-संज्ञा स्त्री० [सं०] साधारण होने का भाव या धर्म। मामूली-पन।

साधारण देश-संज्ञा पुं० दे० "साधारण" (१)।

साधारण धर्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह धर्म जो सब के लिये हो। सार्वजनिक धर्म। (२) वह धर्म जो साधारणतः एक ही प्रकार के सब पदार्थों में पाया जाय। (३) चारों वर्णों के कर्त्तव्य कर्म।

साधारण-स्त्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

साधारणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक अप्सरा का नाम। उ०—ग्रहण कियो नहिं तिन्हें सुरासुर साधारण जिय जानी। ताते साधारणी नाम तिन लह्यो जगत उनिसानी।—रघुराज। (२) कुंजी। ताली। चाभी।

साधारण्य-संज्ञा पुं० [सं०] साधारण होने का भाव या धर्म। साधारणता। मामूलीपन।

साधिका-वि० स्त्री० [सं०] सिद्ध करनेवाली। जो सिद्ध करे।

संज्ञा स्त्री० गहरी नींद।

साधित-वि० [सं०] (१) सिद्ध किया हुआ। जो सिद्ध किया गया हो। जो साधा गया हो। (२) जिसे किसी प्रकार का दंड दिया गया हो। (३) शुद्ध किया हुआ। शोधित। (४) जिसका नाश किया गया हो। (५) (ऋण आदि) जो चुकाया गया हो।

साधु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसका जन्म उत्तम कुल में हुआ हो। कुलीन। आर्य्य। (२) वह धार्मिक, परोपकारी और सद्गुणी पुरुष जो सत्योपदेश द्वारा दूसरों का उपकार करे। धार्मिक पुरुष। परमार्थी। महात्मा। संत। (३) वह जो शांत, सुशील, सदाचारी वीतराग और परोपकारी हो। भला आदमी। सज्जन।

मुहा०—साधु साधु कहना = किसी के कोई अच्छा काम करने पर उसकी बहुत प्रशंसा करना।

(४) वह जिसकी साधना पूरी हो गई हो। (५) साधु धर्म का पालन करनेवाला। जैन साधु। (६) दौना नामक पौधा। दमनक। (७) वरुण वृक्ष। (८) जिन। (९) मुनि। (१०) वह जो सूद ब्याज से अपनी जीविका चलाता हो।

वि० (१) अच्छा। उत्तम। भला। (२) सच्चा। (३) प्रशंसनीय। (४) निपुण। होशियार। (५) योग्य। उपयुक्त। (६) उचित। मुनासिब।

साधुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कदम। कदंब वृक्ष। (२) वरुण वृक्ष।

साधुकारी-संज्ञा पुं० [सं० साधुकारिन्] वह जो उत्तम कार्य्य करता हो। अच्छा काम करनेवाला।

साधुज-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका जन्म उत्तम कुल में हुआ हो। कुलीन।

साधुजात-वि० [सं०] (१) सुंदर। खूबसूरत। (२) उज्वल। साफ। स्वच्छ।

साधुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साधु होने का भाव या धर्म। (२) साधुओं का धर्म। साधुओं का आचरण। (३) सज्जनता। भलमनसाहत। (४) भलाई। नेकी। (५) सीधापन। सिधाई।

साधुधर्म-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार साधुओं का धर्म। यति धर्म।

विशेष—यह दस प्रकार का कहा गया है—क्षांति, मार्दव, आर्जव, मुक्ति, तप, संयम, सत्य, शौच, अकिंचन और ब्रह्म।

साधुधी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी या पति की माता। सास।

साधुपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] स्थल कमल। स्थल पद्म।

साधुमयन-संज्ञा पुं० [सं०] साधुओं के रहने की जगह। कुटीर। कुटी।

साधुमती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तांत्रिकों की एक देवी का नाम। (२) बौद्धों के अनुसार दसवीं पृथ्वी का नाम।

साधुवाद-संज्ञा पुं० [सं०] किसी के कोई उत्तम कार्य्य करने पर "साधु साधु" कहकर उसकी प्रशंसा करने का काम।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—मिलना।

साधुवृंद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कदम का पेड़। कदंब। (२) वरुण वृक्ष।

साधुवृत्त—वि० [सं०] उत्तम स्वभाव और चरित्रवाला। साधु आचरण करनेवाला।

साधुवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तम और श्रेष्ठ वृत्ति।

साधु साधु—अव्य० [सं०] एक पद जिसका व्यवहार किसी के बहुत उत्तम कार्य्य करने पर किया जाता है। धन्य धन्य। वाह वाह। बहुत खूब। उ०—स्तुति सुनि मन हर्ष बढ़ायो। साधु साधु कहि सुरनि सुनायो।—सूर।

साधू—संज्ञा पुं० [सं० साधु] (१) धार्मिक पुरुष। साधु। संत। महात्मा। (२) सज्जन। भला आदमी। (३) सीधा आदमी। भोला भाला। (४) दे० "साधु"।

साधो—संज्ञा पुं० [सं० साधु] धार्मिक पुरुष। संत। साधु।

साध्य—वि० [सं०] (१) सिद्ध करने योग्य। साधनीय। (२) जो सिद्ध हो सके। पूरा हो सकने के योग्य। जैसे,—यह कार्य्य साध्य नहीं जान पड़ता। (३) सहज। सरल। आसान। (४) जो प्रमाणित करना हो। जिसे साबित करना हो। (५) प्रतिकार करने के योग्य। (६) जानने के योग्य।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार के गणदेवता जिनकी संख्या बारह है और जिनके नाम इस प्रकार हैं—मन, मंता, प्राण, नर, अपान, वीर्य्यवान्, विनिर्भय, नय, दंस, नारायण, वृष और प्रभुंच। शारदीय नवरात्र में इन गणों के पूजन का विधान है। (२) देवता। (३) ज्योतिष में विष्कंभ आदि सत्ताइस योगों में से इक्कीसवाँ योग जो बहुत शुभ माना जाता है। कहते हैं कि इस योग में जो काम किया जाता है, वह भली भाँति सिद्ध होता है। जो बालक इस योग में जन्म लेता है, वह असाध्य कार्य्य भी सहज में कर लेता है और बहुत वीर, धीर, बुद्धिमान् तथा विनयशील होता है। (४) तंत्र के अनुसार गुरु से लिए जानेवाले चार प्रकार के मंत्रों में से एक प्रकार का मंत्र। (५) न्याय में वह पदार्थ जिसका अनुमान किया जाय। जैसे,—पर्वत से धूआँ निकलता है; अतः वहाँ अग्नि है। इसमें "अग्नि" साध्य है। (६) कार्य्य करने की शक्ति। सामर्थ्य। जैसे,—यह काम हमारे साध्य के बाहर है। (बोल चाल)

साध्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] साध्य का भाव या धर्म्म। साध्यत्व।

साध्यवसानिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्यदर्पण के अनुसार एक प्रकार की लक्षणा।

साध्यसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में वह हेतु जिसका साधन साध्य की भाँति करना पड़े। जैसे,—पर्वत से धूआँ निकलता है; अतः वहाँ अग्नि है। इसमें "पर्वत" पक्ष है, "धूआँ" हेतु है और "अग्नि" साध्य है। धूएँ की सहायता से अग्नि का होना प्रमाणित किया जाता है। परंतु यदि पहले यही प्रमाणित करना पड़े कि धूआँ निकलता है, तो इसे साध्यसम कहेंगे।

साध्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

साध्वस—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भय। डर। (२) व्याकुलता। घबराहट। (३) प्रतिभा।

साध्वाचार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) साधुओं का सा आचार। (२) शिष्टाचार।

साध्वी—वि० स्त्री० [सं०] (१) पतिव्रता। पतिपरायणा। (स्त्री) (२) शुद्ध चरित्रवाली (स्त्री)। सच्चरित्रा।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुग्ध पाषाण। (२) मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

सानंद—संज्ञा पुं० (१) गुच्छ करंज। त्रिपधदल। (२) एक प्रकार की संप्रज्ञात समाधि। (३) संगीत में १६ प्रकार के ध्रुवकों में से एक प्रकार का ध्रुवक जिसका व्यवहार प्रायः वीर रस के वर्णन के लिये होता है।

वि० आनंद के साथ। आनंदपूर्वक।

सानंदनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

सानंदूरी—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।

सान—संज्ञा पुं० [सं० शाण] वह पत्थर की चक्की जिस पर अस्त्रादि तेज किए जाते हैं। शाण। कुरंड।

मुहा०—सान देना = धार तीक्ष्ण करना। धार तेज करना। सान धरना = अस्त्र तेज करना। चोखा करना।

संज्ञा स्त्री० दे० "शान"।

सानना†—क्रि० स० [हिं० सनना का सक०] (१) दो वस्तुओं को आपस में मिलाना; विशेषतः चूर्ण आदि को तरल पदार्थ में मिलाकर गीला करना। गूँधना। जैसे,—आटा सानना। (२) सम्मिलित करना। शामिल करना। उत्तरदायी बनाना। जैसे,—आप मुझे तो व्यर्थ ही इस मामले में सानते हैं। (३) मिलाना। लपेटना। मिश्रित करना। संयुक्त करना। जैसे,—तुमने अपने दोनों हाथ मिट्टी में सान लिए। उ०—यह सुनि धावत धरनि चरन की प्रतिमा खगी पंथ में पाई। नैन नीर रघुनाथ सानिकै शिव सों गात चढ़ाई।—सूर।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

†क्रि० स० [हिं० सान + ना (प्रत्य०)] सान पर चढ़ाकर धार तेज करना। (क्व०)

सानिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशी। मुरली।

सानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० सानना] (१) वह भोजन जो पानी में सानकर पशुओं को खिलाया जाता है।

विशेष—नाँद में भूसा भिगो देते हैं और उसमें खली, दाना,

नमक आदि छोड़कर उसे पशुओं को खिलाते हैं। इसी को सानी कहते हैं।

(२) अनुचित रीति से एक में मिलाए हुए कई प्रकार के खाद्य पदार्थ। (व्यंग्य) (३) गाड़ी के पहिए में लगाने की गिट्टक।

संज्ञा स्त्री० दे० "सनई"।

वि० [अ०] (१) दूसरा। द्वितीय। जैसे,—औरंगजेब सानी। (२) बराबरी का। समानता रखनेवाला। मुकाबले का। जैसे,—इन बातों में तो तुम्हारा सानी और कोई नहीं है।

यौ०—लासानी = जिसके समान और कोई न हो। अद्वितीय।

सानु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पर्वत की चोटी। शिखर। (२) अंत। सिरा। (३) समतल भूमि। चौरस जमीन। (४) वन। जंगल। विशेषतः पहाड़ी जंगल। (५) मार्ग। रास्ता। (६) पल्लव। पत्ता। (७) सूर्य्य। (८) विद्वान्। पंडित।

सानुज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रपौंड्रीक वृक्ष। पुंडेरी। (२) तुंबुरु नामक वृक्ष।

सानुनामक–संज्ञा पुं० [सं०] पुंडेरी। प्रपौंड्रीक।

सानुष्टि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

सानोका†–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास।

सान्तस–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

सान्नाय–संज्ञा पुं० [सं०] मंत्रों से पवित्र किया हुआ वह घी जिससे हवन किया जाता है।

सान्नाहिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सन्नाह पहने हो। कवचधारी।

सान्निध्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समीपता। सामीप्य। सन्निकटता। (२) एक प्रकार की मुक्ति जिसमें आत्मा का ईश्वर के समीप पहुँच जाना माना जाता है। मोक्ष।

सान्निध्यता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सान्निध्य का धर्म्म या भाव।

सान्निपातकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का योनि रोग जो त्रिदोष से उत्पन्न होता है।

सान्निपातिक–वि० [सं०] (१) सन्निपात संबंधी। सन्निपात का। (२) त्रिदोष संबंधी। त्रिदोष से उत्पन्न होनेवाला (रोग)।

सान्यासिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने संन्यास ग्रहण किया हो। संन्यासी।

सान्यपुत्र–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक वैदिक आचार्य्य।

सापॐ–संज्ञा पुं० दे० "शाप"।

सापत्न्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सपत्नी का भाव या धर्म्म। सौतपन। (२) सपत्नी का पुत्र। सौत का लड़का। (३) शत्रु। दुश्मन।

सापन–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का रोग जिसमें सिर के बाल गिर जाते हैं।

सापनाॐ†–क्रि० स० [सं० शाप, हिं० साप + ना (प्रत्य०)] (१) शाप देना। बद्दुआ देना। उ०—चहत महामुनि जाग जयो। नीच निसाचर देत दुसह दुख कृस तनु ताप तयो। सापे पाप नये निदरत खल तब यह मंत्र ठयो। विप्र साधु सुर-धेनु धरनि हित हरि अवतार लयो। (२) दुर्वचन कहना। गाली देना। कोसना।

सापिंड्य–संज्ञा पुं० [सं०] सपिंड होने का भाव या धर्म्म।

सात्ततंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक धार्मिक संप्रदाय।

साप्तपदीन–वि० [सं०] सप्तपदी संबंधी। सप्तपदी का। संज्ञा पुं० मित्रता। दोस्ती।

साप्तमिक–वि० [सं०] सप्तमी संबंधी। सप्तमी का।

साप्तरथवाहनि–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक प्राचीन ऋषि का नाम।

साफ़–वि० [अ०] (१) जिसमें किसी प्रकार की मैल या कूड़ा करकट आदि न हो। मैला या गँदला का उलटा। स्वच्छ। निर्मल। जैसे,—साफ कपड़ा, साफ कमरा, साफ रंग। (२) जिसमें किसी और चीज की मिलावट न हो। शुद्ध। खालिस। जैसे,—साफ पानी। (३) जिसकी रचना या संयोजक अंगों में किसी प्रकार की त्रुटि या दोष न हो। जैसे,—साफ लकड़ी। (४) जो स्पष्टतापूर्वक अंकित या चित्रित हो। जो देखने में स्पष्ट हो। जैसे,—साफ लिखाई, साफ छपाई, साफ तसवीर। (५) जिसका तल चमकीला और सफेदी लिए हो। उज्वल। जैसे,—साफ कपड़ा। (६) जिसमें किसी प्रकार का भद्दापन या गड़बड़ी आदि न हो। जिसे देखने में कोई दोष न दिखाई दे। जैसे,—साफ खेल (इंद्रजाल या व्यायाम आदि के), साफ कुंदान। (७) जिसमें किसी प्रकार का झगड़ा, पेंच या फेर फार न हो। जिसमें कोई बखेड़ा या झंझट न हो। जैसे,—साफ मामला, साफ बरताव। (८) जिसमें धुँधलापन न हो। स्वच्छ। चमकीला। जैसे,—साफ शीशा, साफ आसमान। (९) जिसमें किसी प्रकार का छल कपट न हो। निष्कपट। जैसे,—साफ दिल, साफ आदमी।

मुहा०—साफ साफ सुनाना = बिलकुल स्पष्ट और ठीक बात कहना। खरी बात कहना।

(१०) जो स्पष्ट सुनाई पड़े या समझ में आवे। जिसके समझने या सुनने में कोई कठिनता न हो। जैसे,—साफ आवाज, साफ लिखावट, साफ स्वर। (११) जिसका तल ऊबड़ खाबड़ न हो। समतल। हमवार। जैसे,—साफ जमीन, साफ मैदान। (१२) जिसमें किसी प्रकार की विघ-

बाधा आदि न हो। (१३) जिसके ऊपर कुछ अंकित न हो। सादा। कोरा। (१४) जिसमें किसी प्रकार का दोष न हो। बे-ऐब। (१५) जिसमें से अनावश्यक या रद्दी अंश निकाल दिया गया हो। (१६) जिसमें से सब चीजें निकाल ली गई हों। जिसमें कुछ तत्व न रह गया हो।

मुहा०—साफ करना = (१) मार डालना। वध करना। हत्या करना। (२) नष्ट करना। चौपट करना। बरबाद करना। न रहने देना। (३) खा जाना।

(११) लेन देन आदि का निपटना। चुकता होना। जैसे,—हिसाब साफ होना।

क्रि० वि० (१) बिना किसी प्रकार के दोष, कलंक या अपवाद आदि के। बिना दाग लगे। जैसे,—साफ छूटना। (२) बिना किसी प्रकार की हानि या कष्ट उठाए हुए। बिना किसी प्रकार की आँच सहे हुए। जैसे,—साफ बचना, साफ निकलना। (३) इस प्रकार जिसमें किसी को पता न लगे या कोई बाधक न हो। जैसे,—(माल या स्त्री आदि) साफ उड़ा लाना। (४) बिलकुल। नितांत। जैसे,—साफ इनकार करना, साफ बेवकूफ बनाना। (५) बिना अन्न जल के। निराहार।

साफल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफल होने का भाव। सफलता। कृतकार्य्यता। (२) सिद्धि। लाभ।

साफा-संज्ञा पुं० [अ० साफ़] (१) सिर पर बाँधने की पगड़ी। मुरेठा। मुडासा। (२) शिकारी जानवरों को शिकार के लिये या कबूतरों को दूर तक उड़ने के लिये तैयार करने के उद्देश्य से उपवास कराना।

मुहा०—साफा देना = उपवास कराना। भूखा रखना।

(३) नित्य के पहनने या ओढ़ने के वस्त्रों आदि को साबुन लगाकर साफ करना। कपड़े धोना।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

साफी-संज्ञा स्त्री० [अ० साफ़] (१) हाथ में रखने का रूमाल। दस्ती। (२) वह कपड़ा जो गाँजा पीनेवाले चिलम के नीचे लपेटते हैं। (३) भाँग छानने का कपड़ा। छनना। (४) एक प्रकार का रंदा जो लकड़ी को बिलकुल साफ कर देता है।

साबत-संज्ञा पुं० [सं० सामंत] सामंत। सरदार। (डिं०)

वि० दे० "साबूत"।

साबन-संज्ञा पुं० दे० "साबुन"।

साबर-संज्ञा पुं० [सं० शंबर] (१) दे० "साँभर"। (२) साँभर मृग का चमड़ा जो बहुत मुलायम होता है। (३) शबर जाति के लोग। (४) थूहर वृक्ष। (५) मिट्टी खोदने का एक औजार। सबरी। (६) एक प्रकार का सिद्ध मंत्र, जो शिव कृत माना जाता है। उ०—स्वारथ के साथी मेरे हाथ सो न लेवा देई काहू तो न पीर रघुबीर दीन जन की। साप सभा साबर लबार भये देव दिव्य दुसह साँसति कीजै आगे दै या तन की।—तुलसी।

साबल-संज्ञा पुं० [सं० शबल] बरछी। भाला।

साबस‡-संज्ञा पुं० [फ़ा० शाबास] वाह वाही देने की क्रिया। दाद। वि० दे० "शाबाश"।

अव्य० वाह वाह। धन्य। साधु साधु।

साबिक-वि० [अ० साबिक़] पूर्व का। पहले का। पुराने समय का। उ०—प्रभु जू मैं ऐसो अमल कमायो। साबिक जमा हुती जो जोरी मीजाँकुल तल लायो।—सूर।

यौ०—साबिक दस्तूर = जैसा पहले था, वैसा ही। पहले की तरह। जिसमें कुछ परिवर्तन न हुआ हो। जैसे,—उसका हाल वही साबिक दस्तूर है।

साबिका-संज्ञा पुं० [अ०] (१) जान पहचान। मुलाकात। भेंट। (२) संबंध। सरोकार। व्यवहार।

मुहा०—साबिका पड़ना = (१) काम पड़ना। वास्ता पड़ना। (२) लेन देन होना। (३) मेल मिलाप होना।

साबित-वि० [फ़ा०] जिसका सबूत दिया गया हो। प्रमाणित। सिद्ध।

संज्ञा पुं० वह नक्षत्र या तारा जो चलता न हो, एक ही स्थान पर सदा ठहरा रहता हो।

वि० [अ० सबूत] (१) साबूत। पूरा। (२) दुरुस्त। ठीक। उ०—द्वै लोचन साबित नहिं तेऊ।—सूर।

साबुत-वि० [फ़ा० सबूत] (१) जिसका कोई अंग कम न हो। साबूत। संपूर्ण। (२) दुरुस्त। (३) स्थिर। निश्चल।

साबुन-संज्ञा पुं० [अ०] रासायनिक क्रिया से प्रस्तुत एक प्रसिद्ध पदार्थ जिससे शरीर और वस्त्रादि साफ किए जाते हैं। यह सज्जी, चूने, सोडे, तेल और चर्बी आदि के संयोग से बनाया जाता है। देशी साबुन में चर्बी नहीं डाली जाती; पर विलायती साबुन में प्रायः चर्बी का मेल रहता है। शरीर में लगाने के विलायती साबुनों में अनेक प्रकार की सुगंधियाँ भी रहती हैं।

साबूदाना-संज्ञा पुं० दे० "सागूदाना"।

साब्दी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दाख। द्राक्षा।

सामंजस्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) औचित्य। (२) उपयुक्तता। (३) अनुकूलता। (४) वैषम्य या विरोध आदि का अभाव।

सामंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वीर। योद्धा। (२) किसी राज्य का कोई बड़ा जमींदार या सरदार। (३) पड़ोसी। (४) श्रेष्ठ प्रजा। (५) समीपता। सामीप्य। नजदीकी।

सामंत भारती-संज्ञा पुं० [सं०] राग मल्लार और सारंग के मेल से बना हुआ एक प्रकार का संकर राग।

सामंत सारंग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सारंग राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

सामंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रागिनी जो मेघ राग की प्रिया मानी जाती है।
संज्ञा स्त्री० [सं० सामंत + ई० (प्रत्य०)] (१) सामंत का भाव या धर्म्म। (२) सामंत का पद।

सामंतेय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सामंतेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] चक्रवर्त्ती सम्राट्। शाहंशाह।

साम-संज्ञा पुं० [सं० सामन्] (१) वे वेद मंत्र जो प्राचीन काल में यज्ञ आदि के समय गाए जाते थे। (२) चारों वेदों में से तीसरा वेद। वि० दे० "सामवेद"। (३) मीठी बातें करना। मधुर भाषण। (४) राजनीति के चार अंगों या उपायों में से एक। अपने वैरी या विरोधी को मीठी बातें करके प्रसन्न करना और अपनी ओर मिला लेना। (शेष तीन अंग या उपाय दाम, दंड और भेद हैं।)
संज्ञा पुं० दे० "श्याम" और "शाम" (देश)।
संज्ञा स्त्री० दे० "शाम" और "शामी"।

सामक-संज्ञा पुं० [सं० श्यामक] साँवाँ नामक अन्न। वि० दे० "साँवाँ"।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह मूल धन जो ऋण स्वरूप लिया या दिया गया हो। कर्ज का असल रुपया। (२) सान धरने का पत्थर। (३) वह जो साम-वेद का अच्छा ज्ञाता हो।

सामकपुंख-संज्ञा पुं० [सं०] सरफोंका घास।

सामकारी-संज्ञा पुं० [सं० सामकारिन्] (१) वह जो मीठे वचन कहकर किसी को ढारस देता हो। सांत्वना देनेवाला। (२) एक प्रकार का साम गान।

सामग-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सामगी] (१) वह जो सामवेद का अच्छा ज्ञाता हो। (२) विष्णु का एक नाम।

सामगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सामगान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का साम। (२) वह जो सामवेद का अच्छा ज्ञाता हो।

सामगाय-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सामगान का अच्छा ज्ञाता हो।

सामग्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वे पदार्थ जिनका किसी विशेष कार्य्य में उपयोग होता है। जैसे,—यज्ञ की सामग्री। (२) असबाब। सामान। (३) आवश्यक द्रव्य। जरूरी चीज। (४) किसी कार्य्य की पूर्ति के लिये आवश्यक वस्तु। साधन।

सामग्र्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अस्त्र-शस्त्र। हथियार। (२) भांडार। खजाना।

सामज-वि० [सं०] जो सामवेद से उत्पन्न हुआ हो।
संज्ञा पुं० हाथी (जिसकी उत्पत्ति ब्रह्मा के सामगान से मानी जाती है)।

सामत-संज्ञा पुं० दे० "सामंत"।
संज्ञा स्त्री० दे० "शामत"।

सामत्रय-संज्ञा पुं० [सं०] हर्रे, सोंठ और गिलोय इन तीनों का समूह।

सामत्व-संज्ञा पुं० [सं०] साम का भाव या धर्म्म। सामता।

सामना-संज्ञा पुं० [हिं० सामने, पु० हिं० सामुहें] (१) किसी के समक्ष होने की क्रिया या भाव। जैसे,—जब हमारा उनका सामना होगा, तब हम उनसे बातें करेंगे।
मुहा०—सामने आना = आगे आना। सम्मुख आना। जैसे,—अब तो वह कभी हमारे सामने ही नहीं आता। सामने का = (१) जो समक्ष हो। (२) जो अपने देखने में हुआ हो। जो अपनी उपस्थिति में हुआ हो। जैसे,—(क) यह तो हमारे सामने का लड़का है। (ख) यह तो हमारे सामने की बात है। सामने करना = किसी के समक्ष उपस्थित करना। आगे लाना। सामने की बात = आँखों देखी बात। वह बात जो अपनी उपस्थिति में हुई हो। सामने पड़ना = दृष्टि के आगे आना। सामने होना = (स्त्रियों का) परदा न करके समक्ष आना। जैसे,—उनके घर की स्त्रियाँ किसी के सामने नहीं होतीं।
(२) भेंट। मुलाकात। (३) किसी पदार्थ का अगला भाग। आगे की ओर का हिस्सा। आगा। जैसे,—उस मकान का सामना तालाब की ओर पड़ता है। (४) किसी के विरुद्ध या विपक्ष में खड़े होने की क्रिया या भाव। मुकाबला। जैसे,—(क) वह किसी बात में आपका सामना नहीं कर सकता। (ख) युद्ध-क्षेत्र में दोनों दलों का सामना हुआ।
मुहा०—सामना करना = धृष्टता करना। सामने होकर जवाब देना। गुस्ताखी करना। जैसे,—जरा सा लड़का, अभी से सब का सामना करता है।

सामने-क्रि० वि० [सं० सम्मुख, प्रा० सम्मुहे, पु० हिं० सामुहें] (१) सम्मुख। समक्ष। आगे। (२) उपस्थिति में। मौजूदगी में। जैसे,—तुम्हारे सामने उन्हें कौन पूछेगा। (३) सीधे। आगे। जैसे,—सामने जाने पर एक मोड़ मिलेगा। (४) मुकाबले में। विरुद्ध।

सामपुष्पि-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

सामयिक-वि० [सं०] (१) समय संबंधी। समय का। (२) वर्त्तमान समय से संबंध रखनेवाला।
यौ०—समसामयिक। सामयिकपत्र।
(३) समय की दृष्टि से उपयुक्त। समय के अनुसार।
यौ०—सामयिकपत्र = समाचारपत्र।

सामयोनि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) हाथी।

सामर–संज्ञा पुं० दे० "समर"।
वि० [सं०] समर संबंधी। समर का। युद्ध का।

सामरथ†–संज्ञा स्त्री० दे० "सामर्थ्य"।

सामराधिप–संज्ञा पुं० [सं०] सेना का प्रधान अधिकारी। सेनापति।

सामरिक–वि० [सं०] समर संबंधी। युद्ध का। जैसे,—सामरिक समाचार।

सामरेय–वि० [सं०] समर संबंधी। युद्ध का।

सामर्थ–संज्ञा स्त्री० दे० "सामर्थ्य"।

सामर्थी–संज्ञा पुं० [सं० सामर्थ्य+ई (प्रत्य०)] (१) सामर्थ्य रखनेवाला। जिसे सामर्थ्य हो। (२) जो किसी कार्य्य के करने की शक्ति रखता हो। (३) पराक्रमी। बलवान।

सामर्थ्य–संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० सामर्थ्य] (१) समर्थ होने का भाव। किसी कार्य्य के संपादन करने की शक्ति। बल। (२) शक्ति। ताकत। (३) योग्यता। (४) शब्द की व्यंजना शक्ति। शब्द की वह शक्ति जिससे वह भाव प्रकट करता है। (५) व्याकरण में शब्दों का परस्पर संबंध।

सामवायिक–वि० [सं०] समवाय संबंधी। (२) समूह या झुंड संबंधी।
संज्ञा पुं० मंत्री। वजीर।

सामविद्–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सामवेद का अच्छा ज्ञाता हो।

सामविप्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो अपने सब कर्म सामवेद के विधानों के अनुसार करता हो।

सामवेद–संज्ञा पुं० [सं० सामन्] भारतीय आर्य्यों के चार वेदों में से प्रसिद्ध तीसरा वेद। पुराणों में कहा है कि इस वेद की एक हजार संहिताएँ थीं; परंतु आजकल इनमें से केवल एक ही संहिता मिलती है। यह संहिता दो भागों में विभक्त है, जिनमें से एक "आर्चिक" और दूसरा "उत्तरार्चिक" कहलाता है। इन दोनों भागों में जो १८१० ऋचाएँ हैं, उनमें से अधिकांश ऋग्वेद में आई हुई हैं। ये सब ऋचाएँ प्रायः गायत्री छंद में ही हैं। यज्ञों के समय जो स्तोत्र आदि गाए जाते थे, उन्हीं स्तोत्रों का इस वेद में संग्रह है। भारतीय संगीतशास्त्र का आरंभ इन्हीं स्तोत्रों से होता है। इस वेद का उपवेद गांधर्ववेद है।

सामवेदिक, सामवेदीय–वि० [सं०] सामवेद संबंधी।
संज्ञा पुं० सामवेद का ज्ञाता या अनुयायी ब्राह्मण।

सामश्रवा–संज्ञा पुं० [सं० सामश्रवस्] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

सामसर–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गन्ना जो डुमरावँ में होता है।

सामसाली–संज्ञा पुं० [सं० साम+शाली] राजनीति के साम, दाम, दंड और भेद नामक अंगों को जाननेवाला। राजनीतिज्ञ।
उ०—जयति राज राजेंद्र राजीव-लोचन राम-नाम कलि कामतरु, सामसाली। अनय अंभोधि कुंभज निसाचर-निकर तिमिर घनघोर वर किरिनिमाली।—तुलसी।

सामसावित्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का सावित्री मंत्र।

सामसुर–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम गान।

सामस्तंबि–संज्ञा पुं० [सं० सामस्तम्बि] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

सामस्त–वि० दे० "समस्त"।

सामहिंꕯ–अव्य० [सं० सम्मुख] सामने। सम्मुख। समक्ष। उ०—(क) तिन सामहिं गोरा रन कोपा। अंगद सरिस पाउँ भुइँ रोपा।—जायसी। (ख) कोप सिंह सामहिं रन मेला। लाखन सौं ना मरै अकेला।—जायसी।

सामाँ–संज्ञा पुं० दे० "साँवाँ"।
संज्ञा पुं० दे० "सामान"।
संज्ञा स्त्री० दे० "श्यामा"।

सामाजिक–वि० [सं०] (१) समाज से संबंध रखनेवाला। समाज का। जैसे,—सामाजिक कुरीतियाँ, सामाजिक झगड़े, सामाजिक व्यवहार। (२) सभा से संबंध रखनेवाला। (३) सहृदय। रसज्ञ।
संज्ञा पुं० सभासद। सदस्य। सभ्य।

सामाजिकता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सामाजिक का भाव। लौकिकता।

सामाधान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शमन करने की क्रिया। शांति। (२) शंका का निवारण। (३) किसी कार्य को पूर्ण करने का व्यापार। संपादन।

सामान–संज्ञा पुं० [फा०] (१) किसी कार्य्य के लिये साधन स्वरूप आवश्यक वस्तुएँ। उपकरण। सामग्री। (२) माल। असबाब।
मुहा०—सामान बाँधना = माल असबाब बाँधकर चलने की तैयारी करना।
(३) औजार। (४) बंदोबस्त। इंतजाम।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

सामानग्रामिक–वि० [सं०] एक ही ग्राम में रहनेवाले। एक ही गाँव के निवासी।

सामान्य–वि० [सं०] जिसमें कोई विशेषता न हो। साधारण। मामूली। वि० दे० "समान"।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) समान होने का भाव। सादृश्य। समानता। बराबरी। (२) वह एक बात या गुण जो किसी जाति या वर्ग की सब चीजों में समान रूप से पाया जाय। जाति-साधर्म्य। जैसे,—मनुष्यों में मनुष्यत्व या गौओं में गोत्व। (वैशेषिक में जो छः पदार्थ माने गए हैं, सामान्य उनमें से एक है। इसी को जाति भी कहते हैं।) (३) साहित्य में एक प्रकार का अलंकार। यह उस समय

माना जाता है जब एक ही आकार की दो या अधिक ऐसी वस्तुओं का वर्णन होता है जिनमें देखने में कुछ भी अंतर नहीं जान पड़ता। जैसे,—(क) एक रूप तुम भ्राता दोऊ। (ख) नाहिं फरक श्रुतिकमल अरु हरिलोचन अभिसेव। (ग) जानी न जात मसाल और बाल गोपाल गुलाल चलावत चूकैं।

सामान्य छल—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय शास्त्र के अनुसार एक प्रकार का छल जिसमें संभावित अर्थ के स्थान में अति सामान्य के योग से असंभूत अर्थ की कल्पना की जाती है। जब वादी किसी संभूत अर्थ के विषय में कोई वचन कहे, तब सामान्य के संबंध से किसी असंभूत अर्थ के विषय में उस वचन की कल्पना करने की क्रिया। वि० दे० "छल" (६)।

सामान्य ज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] साधारण ज्वर। मामूली बुखार।

सामान्यतः—अव्य० [सं०] सामान्य रूप से। साधारण रीति से। साधारणतः। जैसे,—राजनीति में सामान्यतः अपना ही स्वार्थ देखा जाता है।

सामान्यतया—अव्य० [सं०] सामान्य रूप से। मामूली तौर से। सामान्यतः। साधारणतया।

सामान्यतोदृष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तर्क और न्याय शास्त्र के अनुसार अनुमान संबंधी एक प्रकार की भूल जो उस समय मानी जाती है जब किसी ऐसे पदार्थ के द्वारा अनुमान करते हैं जो न कार्य्य हो और न कारण। जैसे कोई आम को बौरते देख यह अनुमान करे कि अन्य वृक्ष भी बौरते होंगे। (२) दो वस्तुओं या बातों में ऐसा साधर्म्य जो कार्य्य कारण संबंध से भिन्न हो। जैसे बिना चले कोई दूसरे स्थान पर नहीं पहुँच सकता। इसी प्रकार दूसरे को भी किसी स्थान पर भेजना बिना उसके गमन के नहीं हो सकता।

सामान्य भविष्यत्—संज्ञा पुं० [सं०] भविष्य क्रिया का वह काल जो साधारण रूप बतलाता है। जैसे,—आवेगा, जायगा, खायगा।

सामान्य भूत—संज्ञा पुं० [सं०] भूत क्रिया का वह रूप जिसमें क्रिया की पूर्णता होती है और भूत काल की विशेषता नहीं पाई जाती। जैसे,—खाया, गया, उठा।

सामान्य लक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गुण जिसके अनुसार किसी एक सामान्य को देखकर उसी के अनुसार उस जाति के और सब पदार्थों का ज्ञान होता है। किसी पदार्थ को देखकर उस जाति के और सब पदार्थों का बोध करानेवाली शक्ति। जैसे,—किसी एक गौ या घड़े को देखकर समस्त गौओं या घड़ों का जो ज्ञान होता है, वह इसी सामान्य लक्षणा के अनुसार होता है।

सामान्य वर्तमान—संज्ञा पुं० [सं०] वर्तमान क्रिया का वह रूप जिसमें कर्त्ता का उसी समय कोई कार्य्य करते रहना सूचित होता है। जैसे,—खाता है, जाता है।

सामान्य विधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] साधारण विधि या आज्ञा। आम हुक्म। जैसे,—हिंसा मत करो, झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, किसी का अपकार मत करो आदि सामान्य विधि के अंतर्गत हैं। परंतु यदि यह कहा जाय कि यज्ञ में हिंसा की जा सकती है, अथवा ब्राह्मण की प्राण रक्षा के लिये झूठ बोल सकते हो, तो इस प्रकार की विधि विशेष विधि होगी और वह सामान्य विधि की अपेक्षा अधिक मान्य होगी।

सामान्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य के अनुसार वह नायिका जो धन लेकर किसी से प्रेम करती है। गणिका।

विशेष—इस नायिका के भी उतने ही भेद होते हैं जितने अन्य नायिकाओं के होते हैं।

सामायिक—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार एक प्रकार का व्रत या आचरण जिसमें सब जीवों पर सम भाव रखकर एकांत में बैठकर आत्मचिंतन किया जाता है।

वि० माया-युक्त। माया सहित।

सामाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] वह भवन या प्रासाद आदि जिसके पश्चिम और वीथिका या सड़क हो।

सामासिक—वि० [सं०] समास से संबंध रखनेवाला। समास का।

सामि—संज्ञा स्त्री० [सं०] निंदा। शिकायत।

सामिग्री—संज्ञा स्त्री० दे० "सामग्री"।

सामित्य—संज्ञा पुं० [सं०] समिति का भाव या धर्म।

वि० समिति का। समिति संबंधी।

सामिधेनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का ऋक् मंत्र जिसका पाठ होम की अग्नि प्रज्वलित करने के समय किया जाता है।

सामिधेन्य—संज्ञा पुं० दे० "सामिधेनी"।

सामियाना—संज्ञा पुं० दे० "शामियाना"।

सामिल—वि० दे० "शामिल"।

सामिष—वि० [सं०] आमिष सहित। मांस, मत्स्य आदि के सहित। निरामिष का उलटा। जैसे,—सामिष भोजन, सामिष श्राद्ध।

सामिष श्राद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] पितरों आदि के उद्देश्य से किया जानेवाला वह श्राद्ध जिसमें मांस, मत्स्य आदि का भी व्यवहार होता हो। जैसे,—मांसाष्टका आदि सामिष श्राद्ध हैं।

सामी‡—संज्ञा पुं० दे० "स्वामी"।

संज्ञा स्त्री० दे० "शामी"।

सामीची—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंदना। प्रार्थना। स्तुति।

सामीप्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) समीप होने का भाव। निकटता। (२) एक प्रकार की मुक्ति जिसमें मुक्त जीव का भगवान के समीप पहुँच जाना माना जाता है।

सामीर–संज्ञा पुं० [सं० समीर] समीर । पवन । (डिं०)

सामीर्य–वि० [सं०] समीर संबंधी । समीर का । हवा का ।

सामुँहि–संज्ञा स्त्री० दे० "समक्ष" ।

सामुदायिक–वि० [सं०] समुदाय संबंधी । समुदाय का ।

संज्ञा पुं० बालक के जन्म समय के नक्षत्र से आगे के अठारह नक्षत्र जो फलित ज्योतिष के अनुसार अशुभ माने जाते हैं और जिनमें किसी प्रकार का शुभ कार्य्य करने का निषेध है।

सामुद्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र से निकला हुआ नमक । वह नमक जो समुद्र के खारे पानी से निकाला जाता है । (२) समुद्रफेन । (३) वह व्यापारी जो समुद्र के द्वारा दूसरे देशों में जाकर व्यापार करता हो । (४) नारियल । (५) शरीर में होनेवाले चिह्न या लक्षण आदि जिन्हें देखकर शुभाशुभ का विचार किया जाता है । वि० दे० "सामुद्रिक" ।

वि० (१) समुद्र से उत्पन्न । समुद्र से निकला हुआ । (२) समुद्र संबंधी । समुद्र का ।

सामुद्रक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह ग्रंथ जिसमें मनुष्य के शरीर के चिह्नों या लक्षणों आदि के शुभाशुभ फलों का विवेचन हो । (२) दे० "सामुद्र" ।

वि० समुद्र संबंधी । समुद्र का ।

सामुद्रनिष्कुट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम । (२) इस जनपद का निवासी ।

सामुद्र मत्स्य–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र में होनेवाली बड़ी बड़ी मछलियाँ जिनका मांस सुश्रुत के अनुसार भारी, चिकना, मधुर, वातनाशक, कफवर्धक, उष्ण और वृष्य होता है ।

सामुद्रस्थलक–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र तट का प्रदेश । समुद्र के आस पास का देश ।

सामुद्राद्य चूर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का चूर्ण जो साँभर, सौंचर और सेंधा नमक, अजवायन, जवाखार, बायबिड़ंग, हींग, पीपल, चीतामूल और सोंठ को, बराबर मिलाने से बनता है । कहते हैं कि इस चूर्ण का घी के साथ सेवन करने से सब प्रकार के उदर रोग दूर होते हैं । यदि भोजन के आरंभ में इसका सेवन किया जाय तो यह बहुत पाचक होता है और इससे कोष्ठबद्धता दूर होती है ।

सामुद्रिक–वि० [सं०] समुद्र से संबंध रखनेवाला । समुंदरी । सागर संबंधी ।

संज्ञा पुं० (१) फलित ज्योतिष का एक अंग जिसके अनुसार हथेली की रेखाओं, शरीर पर के तिलों तथा अन्यान्य लक्षणों आदि को देखकर मनुष्य के जीवन की घटनाएँ तथा शुभाशुभ फल बतलाए जाते हैं; यहाँ तक कि कुछ लोग केवल हाथ की रेखाओं को देखकर जन्मकुंडली तक बनाते हैं । (२) वह जो इस शास्त्र का ज्ञाता हो । हाथ की रेखाओं तथा शरीर के तिलों और लक्षणों आदि को देखकर जीवन की घटनाएँ और शुभाशुभ फल बतलानेवाला पंडित ।

सामुहाँ–अव्य० [सं० सम्मुख] सामने । सम्मुख । उ०—जनु घुंघची वह तिल कर मुहाँ । बिरहबान साँधो सामुहाँ ।—जायसी ।

संज्ञा पुं० आगे का भाग या अंश । सामना । (क्व०)

सामुहिक–वि० [सं०] समूह संबंधी । समूह का ।

सामुहे–अव्य० [सं० सम्मुख] सामने । सन्मुख ।

सामृद्ध्य–संज्ञा पुं० [सं०] समृद्धि का भाव या धर्म । समृद्धता ।

सामोद्भव–संज्ञा पुं० [सं०] हाथी ।

सामोपनिषद्–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम ।

साम्नी अनुष्टुप–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें १६ वर्ण होते हैं ।

साम्नी उष्णिक्–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें १४ वर्ण होते हैं ।

साम्नी गायत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें १२ वर्ण होते हैं ।

साम्नी जगती–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें २४ संपूर्ण वर्ण होते हैं ।

साम्नी त्रिष्टुप–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें २२ संपूर्ण वर्ण होते हैं ।

साम्नी पंक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें २० संपूर्ण वर्ण होते हैं ।

साम्नी बृहती–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें १८ संपूर्ण वर्ण होते हैं ।

साम्मत्य–संज्ञा पुं० [सं०] सम्मति का भाव ।

साम्मुखी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जो सायंकाल तक रहती हो।

साम्मुख्य–संज्ञा पुं० [सं०] सम्मुख का भाव । सामना ।

साम्य–संज्ञा पुं० [सं०] समान होने का भाव । तुल्यता । समानता । जैसे,—इन दोनों पुस्तकों में बहुत कुछ साम्य है ।

साम्यता–संज्ञा स्त्री० दे० "साम्य" ।

साम्यवाद–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पाश्चात्य सामाजिक सिद्धांत जिसका आरंभ इधर सौ डेढ़ सौ वर्षों से हुआ है । इस सिद्धांत के प्रचारक समाज में बहुत अधिक साम्य स्थापित करना चाहते हैं और उसका वर्तमान वैषम्य दूर करना चाहते हैं । वे लोग चाहते हैं कि समाज से व्यक्तिगत प्रतियोगिता उठ जाय और भूमि तथा उत्पादन के समस्त साधनों पर किसी एक व्यक्ति का अधिकार न रह जाय, बल्कि सारे समाज का अधिकार हो जाय । इस प्रकार सब लोगों में धन आदि का बराबर बराबर वितरण हो; न तो कोई बहुत गरीब रह जाय और न कोई बहुत अमीर रह जाय । समष्टि-वाद ।

साम्यावस्था–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह अवस्था जिसमें सत्व, रज और तम तीनों गुण बराबर हों, उनमें किसी प्रकार का विकार या वैषम्य न हो। प्रकृति।

साम्राज्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह राज्य जिसके अधीन बहुत से देश हों और जिसमें किसी एक सम्राट् का शासन हो। सार्वभौम राज्य। सल्तनत। (२) आधिपत्य। पूर्ण अधिकार।

साम्राज्यलक्ष्मी–संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक देवी जो साम्राज्य की अधिष्ठात्री मानी जाती है।

साम्राणिकर्दम–संज्ञा पुं० [सं०] गंधमार्जार या गंध बिलाव का वीर्य्य जो गंध द्रव्यों में माना जाता है। जबादि नामक कस्तूरी।

साम्राणिज–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा पारेवत।

साम्हने–अव्य० दे० "सामने"।

साम्हर–संज्ञा पुं० (१) दे० "शाकंवर"। (२) दे० "साँभर"।

सायं–वि० [सं०] संध्या संबंधी। सायंकालीन। संध्याकालीन।
संज्ञा पुं० (१) दिन का अंतिम भाग। संध्या। शाम। (२) बाण। तीर।

सायंकाल–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० सायंकालीन] दिन का अंतिम भाग। दिन और रात की संधि। संध्याकाल। संध्या। शाम।

सायंकालीन–वि० [सं०] संध्या के समय का। शाम का।

सायंगृह–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो संध्या समय जहाँ पहुँचता हो, वहीं अपना घर बना लेता हो।

सायंतन–वि० [सं०] सायंकालीन। संध्या संबंधी। संध्या का।

सायंतनी–वि० दे० "सायंतन"।

सायंभव–वि० [सं०] संध्या का। शाम का।

सायंसंध्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह संध्या (उपासना) जो सायंकाल में की जाती है। (२) सरस्वती देवी जिसकी उपासना संध्या के समय की जाती है।

सायंसंध्या देवता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती का एक नाम।

सायंस–संज्ञा स्त्री० [अं० सायन्स] (१) विज्ञान। शास्त्र। (२) वह शास्त्र जिसमें भौतिक तथा रासायनिक पदार्थों के विषय में विवेचन हो। वि० दे० "विज्ञान"।

साय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संध्या का समय। शाम। (२) बाण। तीर।

सायक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाण। तीर। शर। (२) खड्ग। उ०—धीर सिरोमनि बीर बड़े बिजई बिनई रघुनाथ सोहाए। लायकहीं भृगुनायक से धनु सायक सौंपि सुभाय सिधाए।—तुलसी। (३) एक प्रकार का वृत्त जिसके प्रत्येक पाद में सगण, भगण, तगण, एक लघु और एक गुरु होता है। (।।ऽ, ऽ।।, ऽऽ।, ।, ऽ) (४) भद्रमुंज। रामसर। (५) पाँच की संख्या। (कामदेव के पाँच बाणों के कारण)

सायकपुंखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] शरपुंखा। सरफोंका।

सायका–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुंजदह। शार्ई।

सायण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध आचार्य जिन्होंने चारों वेदों के बहुत उत्तम और प्रसिद्ध भाष्य लिखे हैं। इनके पिता का नाम मायण था। पहले ये राजमंत्री थे, पर पीछे से संन्यासी होकर शृंगेरी मठ के अधिष्ठाता हुए थे। उस समय इनका नाम विद्यारण्य स्वामी हुआ था। इनका समय ईसवी चौदहवीं शताब्दी है। इनके नाम से और भी बहुत से संस्कृत ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

सायणवाद–संज्ञा पुं० [सं०] आचार्य्य सायण का मत या सिद्धांत।

सायणीय–वि० [सं०] सायण संबंधी। सायण का।

सायत–संज्ञा स्त्री० [अ० साअत] (१) एक घंटे या ढाई घड़ी का समय। (२) दंड। पल। लमहा। (३) शुभ मुहूर्त। अच्छा समय।
‡ अव्य० दे० "शायद"।

सायन–संज्ञा पुं० दे० "सायण"।
वि० [सं०] अयन युक्त। जिसमें अयन हो। (ग्रह आदि) उ०—(क) गोविंद ने मुहूर्त्तचिन्तामणि के संक्रांति प्रकरण में सायन संक्रांति के ऊपर लिखा है।—सुधाकर द्विवेदी। (ख) भारतवर्ष के ज्योतिषाचार्यों ने जब देखा कि सायन दूसरे नक्षत्र में गया......।—ठाकुरप्रसाद।
संज्ञा पुं० सूर्य्य की एक प्रकार की गति।

सायब–संज्ञा पुं० [अ० साहब] पति। स्वामी। (डिं०)

सायबान–संज्ञा पुं० [फ़ा० सायःबान] (१) मकान के सामने धूप से बचने के लिये लगाया हुआ ओसारा। बरामदा। (२) मकान के आगे की ओर बढ़ी या निकली हुई वह छाजन या छप्पर आदि जो छाया के लिये बनाई गई हो।

सायमाहुति–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह आहुति जो संध्या के समय दी जाय।

सायर–संज्ञा पुं० [सं० सागर] (१) सागर। समुद्र। उ०—(क) सायर उमट सिखिर की पाटी। चढ़ी पानि पाहन हिय फाटी। (ख) जँह लग चंदन मलय गिरि औ सायर सब नीर। सब मिलि आय बुझावहिं बुझै न आग सरीर।—जायसी। (२) ऊपरी भाग। शीर्ष।
संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह भूमि जिसकी आय पर कर नहीं लगता। (२) मुतफर्रकात। फुटकर।
† संज्ञा पुं० [देश०] (१) वह पटरा जिससे खेत की मिट्टी बराबर करते हैं। हेंगा। (२) एक देवता जो चौपायों का रक्षक माना जाता है।

सायल–संज्ञा पुं० [अ०] (१) सवाल करनेवाला। प्रश्नकर्ता। (२) माँगनेवाला। याचना करनेवाला। (३) भिखारी। फकीर। (४) दरख्वास्त करनेवाला। प्रार्थना करनेवाला। (५)

उम्मीदवार। आकांक्षी। (६) न्यायालय में फरियाद करने या किसी प्रकार की अरजी देनेवाला। प्रार्थी।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो सिलहट में होता है।

सायघस-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

साया-संज्ञा पुं० [फ़ा० सायः] (१) छाया। छाँह।

मुहा०—साये में रहना = शरण में रहना। संरक्षण में रहना।

(२) परछाईं।

मुहा०—साये से भागना = बहुत दूर रहना। बहुत बचना।

(३) जिन, भूत, प्रेत, परी आदि।

मुहा०—साये में आना = भूत, प्रेत आदि से प्रभावान्वित होना।

(४) असर। प्रभाव।

मुहा०—साया पड़ना = किसी की संगत का असर होना। साया डालना = (१) कृपा करना। (२) प्रभाव डालना।

संज्ञा पुं० [अं० शेमीज़] (१) घाँघरे की तरह का एक पहनावा जो प्रायः पाश्चात्य देशों की स्त्रियाँ पहनती हैं। (२) एक प्रकार का छोटा लहँगा जिसे स्त्रियाँ प्रायः महीन साड़ियों के नीचे पहनती हैं।

सायाबंदी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सायः बंदी] मुसलमानों में विवाह के अवसर पर मंडप बनाने की क्रिया।

सायाह्न-संज्ञा पुं० [सं०] दिन का अंतिम भाग। संध्या का समय। शाम।

सायी-संज्ञा पुं० [सं० सायिन्] घोड़े का सवार। अश्वारोही।

सायुज्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक में मिल जाना। ऐसा मिलना कि कोई भेद न रह जाय। (२) पाँच प्रकार की मुक्तियों में से एक प्रकार की मुक्ति जिसमें जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाता है। उ०—हरि मे कहत गरीयसि मेरी। भक्ति होइ सायुज्य बडेरी।—गर्ग संहिता।

सायुज्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सायुज्य का भाव या धर्म्म। सायुज्यत्व।

सायुज्यत्व-संज्ञा पुं० [सं०] सायुज्य का भाव या धर्म्म। सायुज्यता।

सारंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का मृग। (२) कोकिल। कोयल। उ०—बचन वर सारंग सम।—सूर। (३) श्येन। बाज़। (४) सूर्य्य। उ०—जलसुत दुखी दुखी है मधुकर द्वै पंछी दुख पावत। सूरदास सारँग केहि कारण सारँग कुलहि लजावत।—सूर। (५) सिंह। उ०—सारँग सम कटि हाथ माथ बिच सारँग राजत। सारँग लाये अंग देखि छबि सारँग लाजत। सारंग भूषण पीत पट सारँग पद सारँगधर। रघुनाथदास बंदन करत सीतापति रघुबंसवर।—विश्राम। (६) हंस पक्षी। (७) मयूर। मोर। (८) चातक। (९) हाथी। (१०) घोड़ा। अश्व। (११) छाता। छत्र। (१२) शंख। उ०—सारँग अधर सधर कर सारँग सारँग जाति सारँग मति भोरी। सारँग दसन बसन पुनि सारँग बसन पीतपट डोरी।—सूर। (१३) कमल। कंज। उ०—(क) सारँग बदन विलास विलोचन हरि सारंग जानि रति कीन्ही।

[illegible]

सोहत। सारँग ज्यों तनु श्यामबदन लखि सारँग मोहत।—विश्राम। (१५) आभूषण। गहना। (१६) सर। तालाब। उ०—मानहु उमँगि चल्यो चाहत है सारँग सुधा भरे।—सूर। (१७) भ्रमर। भौंरा। उ०—नचत हैं सारँग सुंदर करत शब्द अनेक।—सूर। (१८) एक प्रकार की मधुमक्खी। (१९) विष्णु का धनुष। उ०—(क) पकहू बाण आयो न हरि के निकट तब गह्यो धनुष सारँगधारी।—सूर। (ख) सर्य परयमा जोयन सोंहैं। नयन बान औ सारँग भौंहैं।—जायसी। (२०) कर्पूर। कपूर। उ०—सारँग लाये अंग देखि छबि सारँग लाजत।—विश्राम। (२१) लवा पक्षी। (२२) श्रीकृष्ण का एक नाम। उ०—गिरिधर ब्रजधर मुरलीधर धरनीधर पीतांबरधर मुकुटधर गोपधर उरगधर शंखधर सारँगधर चक्रधर गदाधर रस धरैं अधर सुधाधर।—सूर। (२३) चंद्रमा। शशि। उ०—तामहि सारँग सुत सोभित है ठाढ़ी सारँग सँभारि।—सूर। (२४) समुद्र। सागर। (२५) जल। पानी। (२६) बाण। शर। तीर। (२७) दीपक। दीया। (२८) पपीहा। (२९) शंभु। शिव। उ०—जनु पिनाक की आस लागि शशि सारँग शरन बसे।—सूर। (३०) सुगंधित द्रव्य। (३१) सर्प। साँप। उ०—सारँग चरन पीठ पर सारँग कनक खंभ अहि मनहुँ चढ़ोरी।—सूर। (३२) चंदन। (३३) भूमि। ज़मीन। (३४) केश। बाल। अलक। उ०—शीश गंग सारँग भस्म सर्वांग लगावत।—विश्राम। (३५) दीप्ति। ज्योति। चमक। (३६) शोभा। सुंदरता। (३७) स्त्री। नारी। उ०—सूरदास सारँग केहि कारण सारँग कुलहि लजावत।—सूर। (३८) रात्रि। रात। विभावरी। (३९) दिन। उ०—सारँग सुंदर को कहत रात दिवस बड़ भाग।—नंददास। (४०) तलवार। खड्ग। (डिं०) (४१) कपोत। कबूतर। (४२) एक प्रकार का छंद जिसमें चार तगण होते हैं। इसे मैनावली भी कहते हैं। (४३) छप्पय के २६ वें भेद का नाम।

विशेष—इसमें ४५ गुरु, ६२ लघु कुल १०७ वर्ण या १५२ मात्राएँ अथवा ४५ गुरु, ५८ लघु, कुल १०३ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं।

(४४) मृग। हिरन। उ०—(क) श्रवण सुयश सारँग नाद

विधि चातक विधि मुख नामं।—सूर। (ख) भरि थार आरति सजहिं सब सारँग सावकलोचना।—तुलसी। (४५) मेघ। बादल। घन। उ०—(क) कारी घटा देखि अँधियारी सारँग शब्द न भावै।—सूर। (ख) सारँग ज्यों तनु स्याम बदन लखि सारँग मोहत।—विश्राम। (४६) मोती। (डिं०) (४७) कुच। स्तन। (४८) हाथ। कर। (४९) वायस। कौआ। (५०) ग्रह। नक्षत्र। (५१) खंजन पक्षी। सोनचिड़ी। (५२) हल। (५३) मेंढक। (५४) गगन। आकाश। (५५) पक्षी। चिड़िया। (५६) वस्त्र। कपड़ा। (५७) सारंगी नामक वाद्य यंत्र। (५८) ईश्वर। भगवान। (५९) काजल। नयनांजन। (६०) कामदेव। मन्मथ। (६१) विद्युत्। बिजली। (६२) पुष्प। फूल। (६३) संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। शास्त्रों में यह मेघ राग का सहचर कहा गया है; पर कुछ लोग इसे संकर राग मानते और नट मल्लार तथा देवगिरि के संयोग से बना हुआ बतलाते हैं। इसकी स्वर-लिपि इस प्रकार कही गई है—स रे ग म प ध नि स। स नि ध प म ग रे स। स रे ग म प प ध प प म ग म प म ग म ग रे स। स रे ग रे स।

वि० (१) रँगा हुआ। रंजित। रंगीन। उ०—सारँग दसन बसन पुनि सारँग बसन पीतपट डोरी।—सूर। (२) सुंदर। सुहावना। उ०—सारँग बचन कहत सारँग सों सारँग रिपु है राखति सीनी।—सूर। (३) सरस। उ०—सारँग नैन बैन वर सारँग सारँग बदन कहै छवि कोरी।—सूर।

सारंगचर—संज्ञा पुं० [सं०] काँच। शीशा।

सारंग नट—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में सारंग और नट के संयोग से बना हुआ एक प्रकार का संकर राग।

सारंगनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] काशी के समीप स्थित एक स्थान जो सारनाथ कहलाता है। यही प्राचीन मृगदाव है। यह बौद्धों, जैनियों और हिंदुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है।

सारंगपाणि—संज्ञा पुं० [सं०] सारंग नामक धनुष धारण करनेवाले, विष्णु।

सारंगपानि—संज्ञा पुं० दे० "सारंगपाणि"। उ०—सुमिरत श्री सारंगपानि छन में सब सोचु गयो। चले मुदित कौसिक कोसलपुर सगुन निसाधु दयो।—तुलसी।

सारंगलोचना—वि० स्त्री० [सं०] जिसकी आँखें हिरन की सी हों। मृगनयनी।

सारंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० सारंग] (१) एक प्रकार की छोटी नाव जो एक ही लकड़ी की बनती है। (२) एक प्रकार की बड़ी नाव जिसमें ६००० मन माल लादा जा सकता है। (३) एक रागिनी का नाम जो कुछ लोगों के मत से मेघ राग की पत्नी है।

सारंगिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो पक्षियों को पकड़कर अपना निर्वाह करता हो। चिड़ीमार। बहेलिया। (२) एक प्रकार का वृत्त जिसके प्रत्येक पद में नगण, यगण और सगण (न य स) होते हैं। कवि भिखारीदास ने इसे मात्रिक छंद माना है।

सारंगिका—संज्ञा स्त्री० (१) दे० "सारंगिक"। (२) दे० "सारंगी"।

सारंगिया—संज्ञा पुं० [हिं० सारंगी + इया (प्रत्य०)] सारंगी बजानेवाला। सारिंदा।

सारंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० सारंग] एक प्रकार का बहुत प्रसिद्ध बाजा जिसका प्रचार इस देश में बहुत प्राचीन काल से है। यह काठ का बना हुआ होता है और इसकी लंबाई प्रायः डेढ़ हाथ होती है। इसका सामने का भाग, जो परदा कहलाता है, पाँच छः अंगुल चौड़ा होता है; और नीचे का सिरा अपेक्षाकृत कुछ अधिक चौड़ा और मोटा होता है। इसमें ऊपर की ओर प्रायः ४ या ५ खूँटियाँ होती हैं जिन्हें कान कहते हैं। उन्हीं खूँटियों से लगे हुए लोहे और पीतल के कई तार होते हैं जो बाजे की पूरी लंबाई में होते हुए नीचे की ओर बँधे रहते हैं। इसे बजाने के लिये लकड़ी का एक लंबा और दोनों ओर कुछ झुका हुआ एक टुकड़ा होता है जिसमें एक सिरे से दूसरे सिरे तक घोड़े की दुम के बाल बँधे होते हैं। इसे कमानी कहते हैं। बजाने के समय यह कमानी दाहिने हाथ में ले ली जाती है; और उसमें लगे हुए घोड़े के बाल से बाजे के तार रेते जाते हैं। उधर बाएँ हाथ की उँगलियाँ तारों पर रहती हैं जो बजाने के लिये स्वरों के अनुसार ऊपर नीचे और एक तार से दूसरे तार पर आती जाती रहती हैं। इस बाजे का स्वर बहुत ही मधुर और प्रिय होता है; इसलिये नाचने गाने का पेशा करनेवाले लोग अपने गाने के साथ प्रायः इसी का व्यवहार करते हैं। उ०—विविध पखावज आवज संचित बिच बिच मधुर उपंग। सुर सहनाई सरस सारँगी उपजत तान तरंग।—सूर।

सारंड—संज्ञा पुं० [सं०] साँप का अंडा।

सार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ में का मूल, मुख्य, काम का या असली भाग। तत्व। सत्त। (२) कथन आदि से निकलनेवाला मुख्य अभिप्राय। निष्कर्ष। (३) किसी पदार्थ में से निकला हुआ निर्यास या अर्क आदि। रस। (४) चरक के अनुसार शरीर के अंतर्गत आठ स्थिर पदार्थ जिनके नाम इस प्रकार हैं—त्वक्, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र और सत्व (मन)। (५) जल। पानी। (६) गूदा।

मग़ज़। (७) वह भूमि जिसमें दो फसलें होती हों। (८) गोशाला। बाड़ा। (९) खाद। (१०) दुहने के उपरांत तुरंत औंटाया हुआ दूध। (११) औंटाए हुए दूध पर की साढ़ी। मलाई। (१२) लकड़ी का हीर। (१३) परिणाम। फल। नतीजा। (१४) धन। दौलत। (१५) नवनीत। मक्खन। (१६) अमृत। (१७) लोहा। (१८) वन। जंगल। (१९) बल। शक्ति। ताकत। (२०) मज्जा। (२१) वज्र क्षार। (२२) वायु। हवा। (२३) रोग। बीमारी। (२४) जूआ खेलने का पासा। (२५) अनार का पेड़। (२६) पियाल वृक्ष। चिरौंजी का पेड़। (२७) मूँग। (२८) मुद्ग। मूँग। (२९) क्वाथ। काढ़ा। (३०) नीली वृक्ष। नील का पौधा। (३१) साल सार। (३२) पना। पतला शरबत। (३३) कपूर। (३४) तलवार। (डिं०) (३५) द्रव्य। (डिं०) (३६) हाड़। अस्थि। (डिं०) (३७) एक प्रकार का मात्रिक छंद जिसमें २८ मात्राएँ होती हैं और सोलहवीं मात्रा पर विराम होता है। इसके अंत में दो गुरु होते हैं। प्रभाती नामक गीत इसी छंद में होता है। (३८) एक प्रकार का वर्ण वृत्त जिसमें एक गुरु और एक लघु होता है। इसे "ग्वाल" और "शानु" भी कहते हैं। वि० दे० "ग्वाल"। (३९) एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमें उत्तरोत्तर वस्तुओं का उत्कर्ष या अपकर्ष वर्णित होता है। इसे "उदार" भी कहते हैं। उ०—(क) सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सब ते अधिक मनुज मोहि भाये। तिन महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी। तिन महँ निगम नीति अनुसारी। तिन महँ पुनि विरक्त पुनि ज्ञानी। ज्ञानिहु ते अति प्रिय विज्ञानी। तिनतें मोहि अति प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। (ख) करतार किनै सुनो 'दास' की लोकनि को अवतार कन्यो जनि। लोकनि को अवतार कन्यो तो मनुष्यन को तो सँवार कन्यो जनि। मानुष हू को सँवार कन्यो तो तिन्हें बिच प्रेम पसार कन्यो जनि। प्रेम पसार कन्यो तो दयानिधि कैहूँ वियोग विचार कन्यो जनि।

वि० (१) उत्तम। श्रेष्ठ। (२) दृढ़। मजबूत। (३) न्याय्य।

⊛ संज्ञा पुं० [सं० सारिका] सारिका। मैना। उ०—गहवर हिय शुक सों कहँ सारो।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [हिं० सारना] (१) पालन। पोषण। रक्षा। उ०—जड़ पंच मिलै जिहिं देह करी करनी देखु धौं धरनीधर की। जन को कछु क्यों करिहैं न सँभार जो सार करै सचराचर की।—तुलसी। (२) शय्या। पलंग। उ०—रची सार दोनों इक पासा। होय जुग जुग आवहिं कैलासा।—जायसी।

† संज्ञा पुं० [सं० श्याल, हिं० साला] पत्नी का भाई। साला।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः गाली के रूप में किया जाता है।

सारखदिर—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गंध खदिर। खुरी।

सारखा†—वि० [सं० सदृश, हिं० सरीखा] सदृश। समान। तुल्य।

सारगंध—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन। संदल।

सारगंधि—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन।

सारगर्भित—वि० [सं०] जिसमें तत्व भरा हो। सार-युक्त। तत्व-पूर्ण। जैसे,—सारगर्भित पुस्तक, सारगर्भित व्याख्यान।

सारघ—संज्ञा पुं० [सं०] वह मधु जो मधुमक्खी तरह तरह के फूलों से संग्रह करती है। वैद्यक में यह लघु, रूक्ष, शीतल, कमल और अर्श रोग का नाशक, दीपन, बलकारक, अतिसार, नेत्र रोग तथा घाव में हितकर कहा गया है।

सारजंट—संज्ञा पुं० [अं०] पुलिस के सिपाही का जमादार, विशेषतः गोरा या युरेशियन जमादार।

सारज—संज्ञा पुं० [सं०] नवनीत। मक्खन।

सारजासव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आसव जो धान, फल, फूल, मूल, सार, टहनी, पत्ते, छाल और चीनी इन नौ चीजों से बनता है। वैद्यक में यह आसव मन, शरीर और अग्नि को बल देनेवाला, अनिद्रा, शोक और अरुचि का नाश करनेवाला तथा आनंदवर्द्धक बतलाया गया है।

सारटिफिकट—संज्ञा पुं० [अं०] प्रशंसापत्र। सनद। सर्टिफिकेट।

सारण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का गंध द्रव्य। (२) आम्रातक वृक्ष। अमड़ा। (३) अतिसार। दस्त की बीमारी। (४) अदबला। (५) पारा आदि रसों का संस्कार। दोष-शुद्धि। (६) रावण के एक मंत्री का नाम जो रामचंद्र की सेना में उनका भेद लेने गया था। (७) आँवला। (८) गंधप्रसारिणी। (९) नवनीत। मक्खन। (१०) गंध। महक।

सारणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पारद आदि रसों का एक प्रकार का संस्कार। सारण।

सारणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंधप्रसारिणी। (२) पुनर्नवा। गदहपूरना। (३) छोटी नदी।

सारणिक—संज्ञा पुं० [सं०] पथिक। राहगीर। बटोही।

सारणिकघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] पथिकों का विनाश करनेवाला, डाकू।

सारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंधप्रसारिणी। (२) छोटी नदी। (३) दे० "सारिणी"।

सारणेश—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

सारतंडुल—संज्ञा पुं० [सं०] चावल।

सारतरु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) केले का पेड़। (२) खैर का पेड़।

सारता†—संज्ञा स्त्री० [सं०] सार का भाव या धर्म। सारत्व।

सारतैल—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार अशोक, अगर,

सरल, देवदारु आदि का तेल जिसका व्यवहार क्षुद्र रोगों में होता है।

सारथि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रथादि का चलानेवाला। सूत। रथवाहक। (२) समुद्र। सागर। उ०—आपने बाण को काटि ध्वज रुक्म के असुर औ सारथी तुरत मारयो।—सूर।

सारथित्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सारथि का कार्य। (२) सारथि का भाव या धर्म। (३) सारथि का पद।

सारथ्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रथ आदि का चलाना। गाड़ी आदि हाँकना। (२) सवारी। (३) सहायता।

सारद–संज्ञा स्त्री० [सं० शारदा] सरस्वती। शारदा। उ०—सुक से मुनी सारद से बकता चिरजीवन लोमस तें अधिकाने। ऐसे भए तो कहा तुलसी जो पै राजिवलोचन राम न जाने।—तुलसी।

वि० शारद। शरद संबंधी। उ०—सोहति धोती सेत में, कनक बरन तन बाल। सारद बारद बीजुरी, भा रद कीजत लाल।—बिहारी।

संज्ञा पुं० [सं० शरद] शरद ऋतु।

सारदा–संज्ञा स्त्री० दे० "शारदा"।

संज्ञा पुं० [सं० शरद ?] स्थल कमल।

वि० स्त्री० [सं०] सार देनेवाली। जो सार दे।

सारदातीर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ।

सारदारु–संज्ञा पुं० [सं०] वह लकड़ी जिसमें सार भाग अधिक हो।

सारदासुंदरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

सारदी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जल पीपल।

वि० दे० "शारदीय"।

सारदूल–संज्ञा पुं० दे० "शार्दूल"।

सारद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खैर का पेड़। (२) वह वृक्ष जिसकी लकड़ी में सार भाग अधिक हो।

सारधाता–संज्ञा पुं० [सं० सारधातृ] वह जो ज्ञान उत्पन्न करता हो। बोध करानेवाला।

सारधान्य–संज्ञा पुं० [सं०] उत्तम धान। बढ़िया चावल।

सारधू–संज्ञा स्त्री० [हिं०] पुत्री। बेटी। कन्या।

सारना–क्रि० स० [हिं० सरना का सक०] (१) पूर्ण करना। समाप्त करना। संपूर्ण रूप से करना। उ०—धनि हनुमंत सुग्रीव कहत है रावण को दल मार्यो। सूर सुनत रघुनाथ भयो सुख काज आपनो सार्यो।—सूर। (२) साधना। बनाना। दुरुस्त करना। (३) सुशोभित करना। सुंदर बनाना। (४) देख रेख करना। रक्षा करना। सँभालना। (५) आँखों में अंजन आदि लगाना।

सारनाथ–संज्ञा पुं० [सं० सारंगनाथ] बनारस से उत्तर पश्चिम चार मील पर एक प्रसिद्ध स्थान जो हिंदुओं, बौद्धों और जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थ है। यही प्राचीन मृगदाव है जहाँ से भगवान् बुद्ध ने अपना उपदेश आरंभ (धर्म-चक्र प्रवर्त्तन) किया था। यहाँ खुदाई होने पर कई बौद्ध स्तूप, बौद्ध मंदिरों का ध्वंसावशेष तथा कितनी ही हिंदू, बौद्ध और जैन मूर्त्तियाँ पाई गई हैं। इसके अतिरिक्त अशोक का एक स्तंभ भी यहाँ पाया गया है।

सारपद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का पक्षी जो चरक के अनुसार विष्किर जाति का है। (२) वह पत्ता जिसमें सार अर्थात् खाद हो।

सारपाक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विषैला फल जिसका उल्लेख सुश्रुत ने किया है।

सारपादप–संज्ञा पुं० [सं०] धन्वंग वृक्ष। धामिन।

सारफल–संज्ञा पुं० [सं०] जँबीरी नीबू।

सारबंधका–संज्ञा स्त्री० [सं०] मेथी।

सारभांड–संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यापार की बहुमूल्य वस्तु। (२) खजाना। (३) कस्तूरी।

सारभाटा–संज्ञा पुं० [हिं० ज्वार का अनु० + भाटा] ज्वारभाटा का उलटा। समुद्र की वह बाढ़ जिसमें पानी पहले बढ़कर समुद्र के तट से आगे निकल आता है और फिर कुछ देर बाद पीछे लौटता है।

सारभुक्–संज्ञा पुं० [सं०] लोहे को खानेवाली, अग्नि। आग।

सारभूत–वि० [सं०] (१) सारस्वरूप। (२) श्रेष्ठ। सर्वोत्तम।

सारभृत–वि० [सं०] सार ग्रहण करनेवाला। सारग्राही।

सारमंडूक–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का कीड़ा जो मेढक की तरह का होता है।

सारमहत्–वि० [सं०] अत्यंत मूल्यवान्। बहुत कीमती।

सारमिति–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रुति। वेद।

सारमूषिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदाली। घघर बेल। बंदाल।

सारमेय–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सारमेयी] (१) सरमा की संतान। (२) कुत्ता। (३) सफल्क के पुत्र और अक्रूर के एक भाई का नाम।

सारमेयादन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ते का भोजन। (२) भागवत के अनुसार एक नरक का नाम।

सारलोह–संज्ञा पुं० [सं०] लोहसार। इस्पात। लोहा।

विशेष—वैद्यक में यह ग्रहणी, अतिसार, अर्द्धांग, वात, परिणामशूल, सर्दी, पीनस, पित्त और श्वास का नाशक बताया गया है।

सारल्य–संज्ञा पुं० [सं०] सरल होने का भाव। सरलता।

सारवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छंद जिसमें तीन भगण और एक गुरु होता है।

सारवत्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सार ग्रहण करने का भाव। सारग्राहिता।

सारवर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] वे वृक्ष या वनस्पतियाँ आदि जिनमें

से किसी प्रकार का दूध या सफेद तरल पदार्थ निकलता हो। क्षीरवृक्ष।

सारवर्जित–वि० [सं०] जिसमें कुछ भी सार न हो। साररहित। निःसार।

सारवाला–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की जंगली घास जो तर जगहों में होती है। यह प्रायः बारह वर्ष तक सुरक्षित रहती है। मुलायम होने पर यह पशुओं को खिलाई जाती है।

सारवृक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] धामिन। धन्वंग वृक्ष।

सारशल्य–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद खैर का पेड़। श्वेत खदिर।

सारस–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सारसी] (१) एक प्रकार का प्रसिद्ध सुंदर पक्षी जो एशिया, अफ्रिका, आस्ट्रेलिया और युरोप के उत्तरी भाग में पाया जाता है। इसकी लंबाई पूँछ के आखिरी सिरे तक चार फुट होती है। पर भूरे होते हैं; सिर का ऊपरी भाग लाल और पैर काले होते हैं। यह एक स्थान पर नहीं रहता, बराबर घूमा करता है। किसानों के नए बीज बोने पर यह वहाँ पहुँच जाता है और बीजों को चट कर जाता है। यह मेंढक, घोंघा आदि भी खाता है। यह प्रायः घास फूस के ढेर में घोंसला बनाकर या खँडहरों में रहता है। यह अपने बच्चों का लालन पालन बड़े यत्न से करता है। कहीं कहीं लोग इसे पालते हैं। बाग बगीचों में छोड़ देने पर यह कीड़े-मकोड़ों को खाकर उनसे पेड़ पौधों की रक्षा करता है। कुछ लोग भ्रमवश हंस को ही सारस मानते हैं। वैद्यक में इसके मांस का गुण मधुर, अम्ल, कषाय तथा महातिसार, पित्त, ग्रहणी और अर्श रोगनाशक बताया गया है।

पर्य्या०—पुष्कराह्व। लक्ष्मण। सरसीक। सरोत्सव। रसिक। कामी।

(२) हंस। (३) गरुड़ पुत्र। (४) चंद्रमा। (५) स्त्रियों का एक प्रकार का कटिभूषण। (६) झील का जल। नदी का जल पहाड़ आदि के कारण रुक कर जहाँ जमा होता है, उसे सरस और उसके जल को सारस जल कहते हैं। ऐसा जल बलकारी, प्यास बुझानेवाला, लघु, रुचिकारक और मल मूत्र रोकनेवाला माना गया है। (७) कमल। जलज। उ०—(क) सारस रस अचवन को मानो तृषित मधुप जुग जोर। पान करत कहूँ तृप्ति न मानत पलक न देत अकोर।—सूर। (ख) मंजु अंजन सहित जलकन चुवत लोचन चारु। स्याम सारस मग मनो ससि स्रवत सुधा सिंगारु।—तुलसी। (८) छप्पय का २७ वाँ भेद। इसमें ४४ गुरु, ६४ लघु; कुल ११८ वर्ण या १५२ मात्राएँ अथवा ३४ गुरु, ८० लघु कुल ११४ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं।

सारसक–संज्ञा पुं० [सं०] सारस।

सारसन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्त्रियों का कमर में पहनने का मेखला नामक आभूषण। चंद्रहार। (२) तलवार की पेटी। कमरबंद।

सारसा–संज्ञा पुं० दे० "सालसा"।

सारसी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आर्य्या छंद का २३वाँ भेद जिसमें ५ गुरु और ४८ लघु मात्राएँ होती हैं। (२) सारस पक्षी की मादा।

सारसुता–संज्ञा स्त्री० [सं० सूर्यसुता] यमुना। उ०—निरखति बैठि नितंबिनि पिय सँग सारसुता की ओर।—सूर।

सारसुती‡–संज्ञा स्त्री० दे० "सरस्वती"।

सारसैंधव–संज्ञा पुं० [सं०] सेंधा नमक।

सारस्य–वि० [सं०] जिसमें बहुत अधिक रस हो। बहुत रसवाला।

संज्ञा पुं० रसदार होने का भाव। रसीलापन।

सारस्वत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिल्ली के उत्तर पश्चिम का वह भाग जो सरस्वती नदी के तट पर है और जिसमें पंजाब का कुछ भाग सम्मिलित है। प्राचीन आर्य्य पहले यहीं आकर बसे थे और इसे बहुत पवित्र समझते थे। (२) इस देश के निवासी ब्राह्मण। (३) सरस्वती नदी के पुत्र एक मुनि का नाम। (४) एक प्रसिद्ध व्याकरण। (५) बिल्वदंड। (६) वैद्यक में एक प्रकार का चूर्ण जिसके सेवन से उन्माद, वायु-जनित विकार तथा प्रमेह आदि रोगों का दूर होना माना जाता है। (७) वैद्यक में एक प्रकार का औषधयुक्त घृत जो पुष्टिकारक माना जाता है।

वि० (१) सरस्वती संबंधी। सरस्वती का। (२) सारस्वत देश का।

सारस्वत व्रत–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार का व्रत जो सरस्वती देवता के उद्देश्य से किया जाता है। कहते हैं कि इस व्रत का अनुष्ठान करने से मनुष्य बहुत बड़ा पंडित, भाग्यवान् और कुशल हो जाता है और उसे पत्नी तथा मित्रों आदि का प्रेम प्राप्त होता है। यह व्रत बराबर प्रति रविवार या पंचमी को किया जाता है और इसमें किसी अच्छे ब्राह्मण को पूजा करके उसे भोजन कराया जाता है।

सारस्वतीय–वि० [सं०] सरस्वती संबंधी। सरस्वती का।

सारस्वतोत्सव–संज्ञा पुं० [सं०] वह उत्सव जिसमें सरस्वती देवी का पूजन किया जाता है।

सारस्वत्य–वि० [सं०] सरस्वती संबंधी। सरस्वती का।

सारांमल–संज्ञा पुं० [सं०] नींबू का रस।

सारांश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खुलासा। संक्षेप। सार। निचोड़। (२) तात्पर्य्य। मतलब। अभिप्राय। (३) नतीजा। परिणाम। (४) उपसंहार। परिशिष्ट।

सारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काली निसोथ । कृष्णत्रिवृत्ता । (२) दूब । दूर्वा । (३) सातला । (४) थूहर । (५) केला । (६) तालिसपत्र ।
संज्ञा पुं० एक प्रकार का अलंकार जिसमें एक वस्तु दूसरी से बढ़कर कही जाती है । जैसे,—ऊखहु ते मधुर पियूषहु ते मधुर प्यारी तेरे ओठ मधुरता को सागर हैं ।
† संज्ञा पुं० दे० "साला" ।
वि० [स्त्री० सारी] समस्त । संपूर्ण । समूचा । पूरा ।

साराम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जँबीरी नींबू । (२) धामिन ।

साराल-संज्ञा पुं० [सं०] तिल ।

सारावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छंद जिसे सारावली भी कहते हैं ।

सारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पासा या चौपड़ खेलनेवाला । (२) जूआ खेलने का पासा । उ०—सारि पासा साधु संगति केरि रसना सारि । दाँव अब के परयो पूरो कुमति पिछली हारि ।—सूर । (३) गोटी ।

सारिक-संज्ञा पुं० दे० "सारिका" ।

सारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मैना नामक पक्षी । वि० दे० "मैना" । उ०—बन उपबन फल फूल सुभग सर सुक सारिका हंस पारावत ।—सूर ।

सारिकामुख-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का कीड़ा ।

सारिखा‡-वि० दे० "सरीखा" ।

सारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहदेई । सहदेवी । महाबला । पीतपुष्पा । (२) कपास । (३) धमासा । दुरालभा । कपिल शिंशपा । काला सीसो । (४) गंध प्रसारिणी । (५) रक्त पुनर्नवा ।
संज्ञा स्त्री० दे० "सारणी" ।

सारीफलक-संज्ञा पुं० [सं०] चौपड़ की गोटी या पासा ।

सारिव-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान ।

सारिवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनंतमूल ।
पर्य्या०—शारदा । गोपी । गोपकन्या । गोपवल्ली । प्रतानिका लता । आस्फोता । काष्ठ सारिवा । गोपा । उत्पल सारिवा । अनंता । शारिवा । श्यामा ।
(२) काला अनंतमूल ।
पर्य्या०—कृष्णमूली । कृष्णा । चंदन सारिवा । भद्रा । चंदन-गोपा । चंदना । कृष्णवल्ली ।

सारिवाद्वय—संज्ञा पुं० [सं०] अनंतमूल और श्यामा लता इन दोनों का समूह ।

सारिष्ट-वि० [सं०] (१) सब से सुंदर । (२) सब से श्रेष्ठ ।

सारिसृक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि जो ऋग्वेद के कुछ मंत्रों के द्रष्टा थे ।

सारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सारिका पक्षी । मैना । (२) पासा । गोटी । (३) सातला । सप्तला । थूहर ।
संज्ञा स्त्री० दे० "साड़ी" ।
संज्ञा पुं० [सं०, सारिन्] अनुकरण करनेवाला । जो अनुसरण करे ।

सारु‡-संज्ञा पुं० दे० "सार" ।

सारूप-संज्ञा पुं० [सं०] समान रूप होने का भाव । सरूपता ।

सारूप्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाँच प्रकार की मुक्तियों में से एक प्रकार की मुक्ति जिसमें उपासक अपने उपास्य देव के रूप में रहता है और अंत में उसी उपास्य देवता का रूप प्राप्त कर लेता है । (२) समान रूप होने का भाव । एकरूपता । सरूपता ।

सारूप्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सारूप्य का भाव या धर्म्म ।

सारो†-संज्ञा पुं० [सं० शालि] एक प्रकार का धान जो अगहन मास में तैयार हो जाता है ।
‡संज्ञा स्त्री० दे० "सारिका" ।

सारोदक-संज्ञा पुं० [सं०] अनंतमूल का रस ।

सारोपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में एक प्रकार की लक्षणा जो उस स्थान पर होती है जहाँ एक पदार्थ में दूसरे का आरोप होने पर कुछ विशिष्ट अर्थ निकलता है । जैसे,—गरमी के दिनों में पानी ही जान है । यहाँ "पानी" में "जान" का आरोप किया गया है, पर अभिप्राय यह निकलता है कि यदि थोड़ी देर भी पानी न मिले तो जान निकलने लगती है ।

सारोष्ट्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विष ।

सार्गिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सृष्टि करने में समर्थ हो ।

सार्जंट-संज्ञा पुं० दे० "सर्जंट" ।

सार्ज-संज्ञा पुं० [सं०] राल । धूना ।

सार्जनाक्षि-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम ।

सार्टिफिकेट-संज्ञा पुं० दे० "सर्टिफिकेट" ।

सार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंतुओं का समूह । (२) वणिकों का समूह । (३) समूह । गरोह । झुंड ।
वि० अर्थ सहित । जिसका कुछ अर्थ हो ।

सार्थक-वि० [सं०] (१) अर्थ सहित । (२) सफल । सिद्ध । पूर्ण मनोरथ । (३) उपकारी । गुणकारी । मुफीद ।

सार्थकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सार्थक होने का भाव । (२) सफलता । सिद्धि ।

सार्थपति-संज्ञा पुं० [सं०] व्यापार करनेवाला । वणिक । रोजगारी ।

सार्थवत्-वि० [सं०] (१) जिसका कुछ अर्थ हो । अर्थ युक्त । (२) यथार्थ । ठीक ।

सार्थिक-वि० [सं०] (१) सार्थक । (२) सफल ।

सार्थी-संज्ञा पुं० [सं० सारथिन्] रथ हाँकनेवाला। कोचवान।
सार्दूल-संज्ञा पुं० [सं० शार्दूल] सिंह। केसरी। वि० दे० "शार्दूल"।
सार्द्ध-वि० [सं०] (१) जिसमें पूरे के अतिरिक्त आधा भी मिला या लगा हो। अर्ध युक्त। (२) सहित।
सार्द्र-वि० [सं०] भींगा हुआ। आर्द्र। गीला।
सार्प्य-संज्ञा पुं० [सं०] अश्लेषा नक्षत्र।
वि० सर्प संबंधी। साँप का।
सार्व-संज्ञा पुं० [सं० सार्व] (१) बुद्ध। (२) जिन।
वि० सब से संबंध रखनेवाला। जैसे,—सार्वजनिक, सार्वकालीन, सार्व राष्ट्रीय।
सार्वकालिक-वि० [सं०] जो सब कालों में होता हो। सब समयों का।
सार्वगुण-वि० [सं०] सर्वगुण संबंधी।
संज्ञा पुं० खारी नमक।
सार्वजनिक-वि० [सं०] सब लोगों से संबंध रखनेवाला। सर्व साधारण संबंधी।
सार्वजनीन-वि० [सं०] सब लोगों से संबंध रखनेवाला। सब लोगों का।
सार्वजन्य-वि० [सं०] (१) सब लोगों से संबंध रखनेवाला। (२) जिससे सब लोगों को लाभ हो। लोक हितकर।
सार्वज्ञ्य-संज्ञा पुं० [सं०] सर्वज्ञ होने का भाव। सर्वज्ञता।
सार्वत्रिक-वि० [सं०] सब स्थानों में होनेवाला। सर्वत्रव्यापी।
सार्वदेशिक-वि० [सं०] संपूर्ण देशों का। सर्वदेश संबंधी।
सार्वभौतिक-वि० [सं०] सर्व भूत संबंधी। सब भूतों से संबंध रखनेवाला।
सार्वभौम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समस्त भूमि का राजा। चक्रवर्ती राजा। (२) पुरुवंशी अहंयाति का पुत्र (३) भागवत के अनुसार विदूरथ के पुत्र का नाम। (४) हाथी।
वि० समस्त भूमि संबंधी। संपूर्ण भूमि का। जैसे,—सार्वभौम राजा।
सार्वसह-संज्ञा पुं० [सं०] शोरा। मृत्तिकाक्षार। सूर्यक्षार।
सार्षप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरसों। (२) सरसों का तेल। (३) सरसों का साग।
वि० सरसों संबंधी। सरसों का।
सार्ष्टि-संज्ञा पुं० दे० "सार्ष्टि"।
सार्ष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँच प्रकार की मुक्तियों में से एक प्रकार की मुक्ति।
सालंक-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में तीन प्रकार के रागों में से एक प्रकार का राग। वह राग जो बिलकुल शुद्ध हो, जिसमें किसी और राग का मेल न हो; पर फिर भी किसी राग का आभास जान पड़ता हो।
साल-संज्ञा पुं० स्त्री० [हिं० सलना या सालना] (१) सालने या सलने की क्रिया या भाव। (२) छेद। सूराख। (३) चारपाई के पावों में किया हुआ वह चौकोर छेद जिसमें पाटी आदि बैठाई जाती है। (४) घाव। जख्म। (५) दुःख। पीड़ा। वेदना।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) जड़। मूल। (२) कूर्चवंदों की परिभाषा में खस की जड़ जिससे कूर्च बनती है। (३) राल। धूना। (४) वृक्ष। पेड़। (५) प्राकार। परकोटा। (६) दीवार। (७) एक प्रकार की मछली जो भारत, लंका और चीन में पाई जाती है। (८) सियार। (९) कोट। किला। (डिं०)
संज्ञा पुं० [फा०] वर्ष। बरस। बारह महीने।
संज्ञा पुं० दे० "शालि"।
संज्ञा स्त्री० दे० "शाला"।
संज्ञा पुं० दे० "शाल" (वृक्ष)।
साल अमोनिया-संज्ञा पुं० [अं०] नौसादर।
सालई†-संज्ञा स्त्री० दे० "सलई"।
सालक-वि० [हिं० सालना + क (प्रत्य०)] सालनेवाला। दुःख देनेवाला।
सालकि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।
सालगा†-संज्ञा पुं० दे० "सलई"।
सालगिरह-संज्ञा स्त्री० [फा०] बरस गाँठ। जन्म दिन।
सालग्राम-संज्ञा पुं० दे० "शालग्राम"।
सालग्रामी-संज्ञा स्त्री० [सं० शालग्राम] गंडक नदी। इसका यह नाम इसलिये पड़ा कि उसमें शालग्राम की शिलाएँ पाई जाती हैं।
सालज-संज्ञा पुं० [सं०] सर्जरस। राल। धूना।
सालजक-संज्ञा पुं० दे० "सालज"।
सालद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] साखौन।
सालन-संज्ञा पुं० [सं० सलवण] मांस, मछली या साग सब्जी की मसालेदार तरकारी।
संज्ञा पुं० [सं०] सर्जरस। धूना। राल।
सालना-क्रि० अ० [सं० शल] (१) दुःख देना। खटकना। कसकना। (२) चुभना। गड़ना।
संयो० क्रि०—जाना।
क्रि० स० (१) दुःख पहुँचाना। व्यथित करना। (२) चुभाना। गड़ाना।
सालनिर्यास-संज्ञा पुं० [सं०] राल। धूना। सर्जरस। करायल।
सालपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरिवन। शालपर्णी।
सालपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थल कमल। (२) पुंडेरी।
सालभंजिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुतला। मूर्त्ति।

सालम मिश्री-संज्ञा स्त्री० [अ० सालब + मिश्री = मिस्र देश का] सुधामूली। अमृतोत्था। वीरकंद।

विशेष—यह एक प्रकार का क्षुप है जिसकी ऊँचाई प्रायः डेढ़ फुट तक होती है। इसके पत्ते प्याज के पत्ते के समान और फैले हुए होते हैं। डंडी के अंत में फूलों का गुच्छा होता है। फूल पीले रंग के होते हैं। इसका कंद कसेरू के समान पर चिपटा, सफेद और पीले रंग का तथा कड़ा होता है। इसमें वीर्य के समान गंध आती है और यह खाने में लसीली और फीकी होती है। इसके पौधे भारत के कितने ही प्रांतों में होते हैं, पर काबुल, बलख, बुखारा आदि देशों की अच्छी होती है। यह अत्यंत पौष्टिक है। पुष्टिकर औषधियों में इसका विशेष प्रयोग होता है। वैद्यक के अनुसार यह स्निग्ध, उष्ण, वाजीकरण, शुक्रजनक, पुष्टिकर और अग्निप्रदीपक मानी जाती है।

सालर†-संज्ञा पुं० दे० "सलई"।

सालरस-संज्ञा पुं० [सं०] राल। धूना।

सालशृंग-संज्ञा पुं० [सं०] दीवार के आगे का हिस्सा।

सालस-संज्ञा पुं० [अ०] वह जो दो पक्षों के झगड़े का निपटारा करे। पंच।

सालसा-संज्ञा पुं० [अं०] खून साफ करने का एक प्रकार का अँगरेजी ढंग का काढ़ा जो अनंतमूल आदि से बनता है।

सालसी-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सालस होने की क्रिया या भाव। दूसरों का झगड़ा निपटाना। (२) पंचायत।

सालहज-संज्ञा स्त्री० दे० "सलहज"।

साला-संज्ञा पुं० [सं० श्यालक] [स्त्री० साली] (१) पत्नी का भाई। (२) एक प्रकार की गाली।

संज्ञा पुं० [सं० सारिका] सारिका। मैना। उ०—देखत हीगे सोइ कृपाला। लहि प्रभात बोला तब साला।—विश्राम।

संज्ञा स्त्री० दे० "शाला"।

सालाना-वि० [फ़ा०] साल का। वर्ष का। वार्षिक। जैसे,—सालाना मेला, सालाना चंदा।

सालावृक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ता। (२) गीदड़। सियार। (३) भेड़िया।

सालि-संज्ञा पुं० दे० "शालि"।

सालिग्राम-संज्ञा पुं० दे० "शालग्राम"।

सालिनी-संज्ञा स्त्री० दे० "शालिनी"।

सालिब मिश्री-संज्ञा स्त्री० दे० "सालम मिश्री"।

सालिम-वि० [अ०] जो कहीं से खंडित न हो। पूर्ण। संपूर्ण। पूरा।

सालियाना-वि० दे० "सालाना"।

सालिहोत्री-संज्ञा पुं० दे० "शालिहोत्री"।

साली-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० साल + ई (प्रत्य०)] (१) वह जमीन जो सालाना देन के हिसाब से ली जाती है। (२) खेती बारी के औजारों की मरम्मत के लिये बढ़ई को सालाना दी जानेवाली मजूरी।

संज्ञा पुं० दे० "शालि"।

सालु‡†-संज्ञा पुं० [हिं० सालना] (१) ईर्ष्या। (२) कष्ट।

सालू-संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का लाल कपड़ा जो मांगलिक कार्यों में उपयोग में आता है। (पश्चिम) (२) सारी। (डिं०)

सालेया-संज्ञा स्त्री० [सं०] सौंफ।

साले गुग्गुल-संज्ञा पुं० [फा० साले, सं० गुग्गुल] गुग्गुल का गोंद या राल। वि० दे० "गुग्गुल"।

सालोक्य-संज्ञा पुं० [सं०] पाँच प्रकार की मुक्ति में से एक जिसमें मुक्त जीव भगवान के साथ एक लोक में वास करता है। सलोकता।

साल्मली-संज्ञा पुं० दे० "शाल्मली"।

साल्व-संज्ञा पुं० दे० "शाल्व"।

साल्वेय-वि० [सं०] साल्व या शाल्व संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) एक प्राचीन देश का नाम। (२) इस देश का रहनेवाला।

सावँकरन-संज्ञा पुं० [सं० श्यामकर्ण] श्याम कर्ण घोड़ा, जिसके सब अंग श्वेत, पर कान काले होते हैं। (साईस)

सावंत-संज्ञा पुं० [सं० सामंत] (१) वह भूस्वामी या राजा जो किसी बड़े राजा के अधीन हो और उसे कर देता हो। करद राजा। (२) योद्धा। वीर। (३) अधिनायक। (४) उत्तम प्रजा।

साव संज्ञा पुं० [सं० शावक = शिशु] बालक। पुत्र। (डिं०)

संज्ञा पुं० दे० "साहु"।

सावक-संज्ञा पुं० (१) दे० "शावक"। (२) दे० "श्रावक"।

सावकाश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अवकाश। फुरसत। छुट्टी। (२) मौका। अवसर।

क्रि० वि० फुरसत से। सुभीते से।

सावगी-संज्ञा पुं० दे० "सरावगी"।

सावचेत‡†-[सं० स + हिं० चेत] सावधान। सतर्क। होशियार। चौकन्ना।

सावचेती-संज्ञा स्त्री० [हिं० सावचेत + ई (प्रत्य०)] सावधानी। सतर्कता। खबरदारी। चौकन्नापन।

सावणिक-संज्ञा पुं० [सं० श्रावण] श्रावण मास। सावन का महीना। (डिं०)

सावद्य-वि० [सं०] निंदनीय। दूषणीय। आपत्तिजनक।

संज्ञा पुं० तीन प्रकार की योग शक्तियों में से एक शक्ति जो योगियों को प्राप्त होती है। अन्य दो शक्तियों के नाम निरवद्य और सूक्ष्म हैं।

सावधान-वि० [सं०] सचेत। सतर्क। होशियार। खबरदार। सजग। चौकस।

सावधानता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सावधान होने का भाव। सतर्कता। होशियारी। खबरदारी।

सावन-संज्ञा पुं० [सं० श्रावण] (१) श्रावण का महीना। आषाढ़ के बाद का और भाद्रपद के पहले का महीना। श्रावण। (२) एक प्रकार का गीत जो श्रावण महीने में गाया जाता है। (पूरब) (३) कजली नामक गीत।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ कर्म का अंत। यज्ञ की समाप्ति। (२) यजमान। (३) वरुण। (४) पूरे एक दिन और एक रात का समय। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय। ६० दंड का समय।

विशेष—इस प्रकार के ३० दिनों का एक सावन मास होता है; और ऐसे बारह सावन मासों का एक सावन वर्ष होता है।

सावनी-संज्ञा पुं० [हिं० सावन + ई (प्रत्य०)] (१) एक प्रकार का धान जो भादों में काटा जाता है। (२) तंबाकू जो सावन भादों में बोया जाता है, कार्त्तिक में रोपा जाता है और फागुन में काटा जाता है। (३) एक प्रकार का फूल।

संज्ञा स्त्री० (१) वह बायन जो सावन महीने में वर-पक्ष से वधू के यहाँ भेजा जाता है। (२) दे० "श्रावणी"।

वि० सावन संबंधी। सावन का।

संज्ञा स्त्री० दे० "सावन" (२) और (३)।

सावर-संज्ञा पुं० [सं० शावर] (१) शिव कृत एक तंत्र का नाम। इसके संबंध में इस प्रकार की कथा है—एक बार जब शिव पार्वती किरात देश में वन में विचरण कर रहे थे, तब पार्वती जी ने प्रश्न किया कि प्रभो! अपने संपूर्ण मंत्र कील दिए हैं; परअब कलिकाल है, इस समय के जीवों का उपकार कैसे होगा। तब शिव जी ने उसी वेश में नए मंत्रों की रचना की जो शावर या सावर कहाते हैं। इन मंत्रों को जपने या सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं; ये स्वयं सिद्ध हैं। न इनके कुछ अर्थ ही हैं। (२) एक प्रकार का लोहे का लंबा औज़ार जिसका एक सिरा नुकीला और गुलमेख की तरह होता है। इस पर खुरपा रखकर हथौड़े से पीटा जाता है जिससे खुरपा पतला और तेज हो जाता है।

संज्ञा पुं० [सं० शावर] एक प्रकार का हिरन। उ०—चीते सुरोस सावर दबंग। गैंडा गलीनु डोलत अभंग।—सूदन।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोध। (२) पाप। अपराध। गुनाह। (३) एक प्रकार का मृग।

सावरक-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद लोध।

सावरणी-संज्ञा स्त्री० [सं० संमार्जनी] वह बुहारी जो जैन यति अपने साथ लिए रहते हैं।

सावरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बिना जहरवाली जोंक।

सावर्ण-वि० [सं०] सवर्ण संबंधी। समान वर्ण संबंधी।

संज्ञा पुं० दे० "सावर्णि"।

सावर्णक-संज्ञा पुं० दे० "सावर्णि"।

सावर्णलक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] चमड़ा।

सावर्णि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आठवें मनु जो सूर्य के पुत्र थे।

विशेष—कहते हैं कि सूर्य्य की पत्नी छाया अपने पति सूर्य्य का तेज सहन न कर सकने के कारण अपने वर्ण की (सवर्णा) एक छाया बनाकर और उसे पति के घर छोड़कर अपने पिता के घर चली गई थी। उसी के गर्भ से सावर्णि मनु की उत्पत्ति हुई थी।

(२) एक मन्वंतर का नाम। (३) एक गोत्र का नाम।

सावष्टंभ-संज्ञा पुं० [सं० सावष्टम्भ] वह मकान जिसके उत्तर-दक्षिण दिशा में सड़क हो। ऐसा मकान बहुत शुभ माना गया है।

वि० (१) दृढ़। मजबूत। (२) आत्मनिर्भर। स्वावलंबी।

सावाँ-संज्ञा पुं० दे० "साँवाँ"।

सावित्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) शिव। (३) वसु। (४) ब्राह्मण। (५) सूर्य के पुत्र। (६) कर्ण। (७) गर्भ। (८) यज्ञोपवीत। (९) उपनयन संस्कार। यज्ञोपवीत। (१०) एक प्रकार का अस्त्र।

वि० (१) सविता संबंधी। सविता का। जैसे,—सावित्र होम। (२) सूर्यवंशी।

सावित्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वेदमाता गायत्री। (२) सरस्वती। (३) ब्रह्मा की पत्नी जो सूर्य की पृश्नि नाम की पत्नी से उत्पन्न हुई थी। (४) वह संस्कार जो उपनयन के समय होता है और जिसके न होने से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य व्रात्य या पतित हो जाते हैं। (५) धर्म की पत्नी और दक्ष की कन्या। (६) कश्यप की पत्नी। (७) अष्टावक्र की कन्या। (८) मद्र देश के राजा अश्वपति की कन्या और सत्यवान की सती पत्नी।

विशेष—पुराणों में इसकी कथा यों है—मद्र देश के धर्मनिष्ठ प्रजाप्रिय राजा अश्वपति ने कोई संतान न होने के कारण ब्रह्मचर्यपूर्वक कठिन व्रत धारण किया। वह सावित्री मंत्र से प्रति दिन एक लाख आहुति देकर दिन के छठे भाग में भोजन करता था। इस प्रकार अठारह वर्ष बीतने पर सावित्री देवी ने प्रसन्न होकर राजा को दर्शन दिए और इच्छानुसार वर माँगने को कहा। राजा ने बहुत से पुत्रों की कामना की। देवी ने कहा कि ब्रह्मा की कृपा से तुम्हारे एक कन्या होगी जो बड़ी तेजस्विनी होगी। कुछ दिनों बाद बड़ी रानी के गर्भ से एक कन्या हुई। सावित्री की कृपा से यह कन्या हुई थी, इसलिये राजा ने इसका नाम भी सावित्री ही रखा। सावित्री अद्वितीय सुंदरी थी; पर किसी को इसका वर-प्रार्थी होते न देखकर अश्वपति ने सावित्री से स्वयं अपने इच्छानुसार वर ढूँढकर वरण करने को कहा। तदनुसार सावित्री वृद्ध मंत्रियों के साथ तपोवन में भ्रमण करने

लगी। कुछ दिनों बाद वह तीर्थों और तपोवनों का भ्रमण कर लौट आई और उसने अपने पिता से कहा—शाल्व देश में द्युमत्सेन नामक एक प्रसिद्ध धर्मात्मा क्षत्रिय राजा थे। वे अंधे हो गए हैं। उनका एक पुत्र है, जिसका नाम सत्यवान् है। एक शत्रु ने उनका राज्य हस्तगत कर लिया है। राजा अपनी पत्नी और पुत्र सहित वन में निवास कर रहे हैं। मैंने उन्हीं सत्यवान को अपने उपयुक्त वर समझकर उन्हीं को पति वरण किया है। नारदजी ने कहा—सत्यवान् में और सब गुण तो हैं, पर वह अल्पायु है। आज से एक वर्ष पूरा होते ही वह मर जायगा। इस पर भी सावित्री ने सत्यवान् से ही विवाह करना निश्चित किया। विवाह हो गया। एक वर्ष बीतने पर सत्यवान् की मृत्यु हो गई। यमराज जब उसका सूक्ष्म शरीर ले चला, तब सावित्री ने उसका पीछा किया। यमराज ने उसे बहुत समझा बुझाकर लौटाना चाहा, पर उसने उसका पीछा न छोड़ा। अंत को यमराज ने प्रसन्न होकर उसकी मनस्कामना पूर्ण की। मृत सत्यवान् जीवित होकर उठ बैठा। सावित्री ने मन ही मन जो कामनाएँ की थीं, वे पूरी हुईं। राजा द्युमत्सेन को पुनः दृष्टि प्राप्त हो गई। उसके शत्रुओं का विनाश हुआ और राज्य पुनः उसे प्राप्त हुआ। सावित्री के सौ पुत्र हुए। साथ ही उसके वृद्ध ससुर के भी सौ पुत्र हुए। उसने यह भी वर प्राप्त किया था कि पति के साथ ही मैं बैकुंठ जाऊँ। (९) यमुना नदी। (१०) सरस्वती नदी। (११) कुश द्वीप की एक नदी। (१२) धार के राजा भोज की स्त्री। (१३) सधवा स्त्री। (१४) आँवला।

सावित्री तीर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

सावित्री व्रत–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जो स्त्रियाँ पति की दीर्घायु की कामना से ज्येष्ठ कृष्ण १४ को करती हैं। कहते हैं कि यह व्रत करने से स्त्रियाँ विधवा नहीं होतीं।

सावित्री सूत्र–संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञोपवीत जो सावित्री दीक्षा के समय धारण किया जाता है।

साशिव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम। अर्जुन के दिग्विजय के प्रकरण में यह उत्तर दिशा में बतलाया गया है। इसे जीतकर अर्जुन वहाँ से आठ घोड़े लाया था। (२) ऋषीक। ऋषिपुत्र।

साश्रुधी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी या पति की माता। सास।

सादवत–वि० दे० "शादवत"।

साष्टांग–वि० [सं०] आठों अंग सहित।

यौ०—साष्टांग प्रणाम = मस्तक, हाथ, पैर, हृदय, आँख, जाँघ, वचन और मन से भूमि पर लेटकर प्रणाम करना।

मुहा०—साष्टांग प्रणाम करना = बहुत बचना। दूर रहना। (व्यंग्य) जैसे,—हम यहीं से उन्हें साष्टांग प्रणाम करते हैं।

साष्टांग योग–संज्ञा पुं० [सं०] वह योग जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठों अंग हों। वि० दे० "योग"।

साष्टी–संज्ञा पुं० [देश०] एक टापू जो बंबई प्रदेश के थाना जिले में है। वहाँवाले इसे फालसा और शास्तर तथा अँगरेज सालसेट कहते हैं। यह बंबई से बीस मील ईशान कोण में उत्तर को झुकता हुआ समुद्र के तट पर बसा है। यहाँ एक किला भी बना है।

सास–संज्ञा स्त्री० [सं० श्वश्रु] पति या पत्नी की माँ।

सासण–संज्ञा पुं० [डिं०] दे० "शासन"।

सासत–संज्ञा स्त्री० दे० "साँसत"।

सासनलेट–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का सफेद जालीदार कपड़ा।

सासरा–संज्ञा पु० दे० "ससुराल"।

सासा*–संज्ञा स्त्री [सं० संशय] संदेह। शक। उ०—भाई बतावन हीं तुम्हें राधिके कीजिये जानि न कीजिये सासा।—रसकुसुमाकर।

संज्ञा पुं० स्त्री० दे० "श्वास" या "साँस"।

सासु–वि० [सं०] प्राणयुक्त। जीवित।

†संज्ञा स्त्री० दे० "सास"।

सासुर†–संज्ञा पुं० [हिं० ससुर] (१) पति या पत्नी का पिता। ससुर। (२) ससुराल।

सास्ना–संज्ञा स्त्री० [सं०] गौओं आदि का गलकंबल।

सास्मित–संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध सत्व को विषय बनाकर की जानेवाली भावना।

साह–संज्ञा पुं० [सं० साधु] (१) साधु। सज्जन। भला आदमी। जैसे,—वह चोर है और तुम बड़े साह हो। (२) व्यापारी। साहूकार। (३) धनी। महाजन। सेठ। (४) लकड़ी या पत्थर का वह लंबा टुकड़ा जो दरवाजे के चौखटे में देहलीज के ऊपर दोनों पार्श्वों में लगा रहता है।

संज्ञा पुं० दे० "शाह"।

साहचर्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सहचर होने का भाव। साथ रहने का भाव। सहचरता। (२) संग। साथ।

साहना†–क्रि० स० [सं० साहित्य = मिलन] भैंसों का जोड़ा खिलाना। मुहाना।

साहनी–संज्ञा स्त्री० [सं० सेनानी ?] (१) सेना। फौज। उ०—(क) आयकै आपने आश्रम में कियो यज्ञ अरंभ प्रमोद प्रफुल्ला। आय निशाचर साहनी साजि मरीच सुबाहु सुने मन्य गुल्ला।—रघुराज। (ख) करत विहार द्विरद मतवारे। गिरि सम वपुप झलते कारे। कोटिन वाजि साहनी आवें। नीर पियाइ नदी अन्हवावें।—सबल। (२) साथी। संगी। उ०—(क) हम सैलत तव साथ, होइ नीच सब भाँति

जो। कह्यो बचन कुरुनाथ, शकुनी तो शिरमौर मम। (ख) धरहु भार निज शीश, वैठारहु किन साहनी। हमहिं न ओछि महीश में खेलव नृप सदसि महँ।—सबल। (३) पारिषद। उ०—भरत सकल साहनी बोलाए।—तुलसी।

साहब-संज्ञा पुं० [अ० साहिब] [स्त्री० साहिबा] (१) मित्र। दोस्त। साथी। (२) मालिक। स्वामी। (३) परमेश्वर। ईश्वर। (४) एक सम्मानसूचक शब्द जिसका व्यवहार नाम के साथ होता है। महाशय। जैसे,—मुं० कालिका प्रसाद साहब।

यौ०—साहबजादा। साहब सलामत।

(५) गोरी जाति का कोई व्यक्ति। फिरंगी।

वि० वाला।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार यौगिक शब्दों के अंत में होता है। जैसे,—साहब इकबाल, साहब तदबीर, साहब दिमाग।

साहबजादा-संज्ञा पुं० [अ० साहिब+फा० जादा] [स्त्री० साहबजादी] (१) भले आदमी का लड़का। (२) पुत्र। बेटा। जैसे,—आज आपके साहबजादा कहाँ है ?

साहब सलामत—संज्ञा स्त्री० [अ०] परस्पर मिलने के समय होनेवाला अभिवादन। बंदगी। सलाम। जैसे,—जब कभी वे रास्ते में मिल जाते हैं, तब साहब सलामत हो जाती है।

साहबी-वि० [अ० साहिब+ई० (प्रत्य०)] साहब का। साहब संबंधी। जैसे,—साहबी चाल, साहबी रंग ढंग।

संज्ञा स्त्री० (१) साहब होने का भाव। (२) प्रभुता। मालिकपन। (३) बड़ाई। बड़प्पन। महत्व।

साह बुलबुल-संज्ञा पुं० [अ० शाह+फा० बुलबुल] एक प्रकार का बुलबुल जिसका सिर काला, सारा शरीर सफेद और दुम एक हाथ लंबी होती है।

साहस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह मानसिक गुण या शक्ति जिसके द्वारा मनुष्य यथेष्ट बल के अभाव में भी कोई भारी काम कर बैठता है या दृढ़तापूर्वक विपत्तियों तथा कठिनाइयों आदि का सामना करता है। हिम्मत। हियाव। जैसे,—वह साहस करके डाकुओं पर टूट पड़ा।

क्रि० प्र०—करना।—दिखलाना।—होना।

(२) जबरदस्ती दूसरे का धन लेना। लूटना। (३) कोई बुरा काम। दुष्ट कर्म्म। (४) द्वेष। (५) अत्याचार। (६) क्रूरता। बेरहमी। (७) पर-स्त्री गमन। (८) बलात्कार। (९) दंड। सजा। (१०) जुर्माना। (११) वह अग्नि जिस पर यज्ञ के लिये चरु पकाया जाता है।

साहसिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसमें साहस हो। साहस करनेवाला। हिम्मतवर। पराक्रमी। (२) डाकू। चोर। (३) मिथ्यावादी। (४) कर्कश वचन बोलनेवाला। (५) परस्त्री गामी।

विशेष—शास्त्रों में डाका, चोरी, झूठ बोलना, कठोर वचन कहना और परस्त्री गमन ये पाँचों कर्म करनेवाले साहसिक कहे गए हैं और अत्यंत पापी बताए गए हैं। धर्मशास्त्रों में इन्हें यथोचित दंड देने का विधान है। स्मृतियों में लिखा है कि 'साहसिक व्यक्ति' की साक्षी नहीं माननी चाहिए, क्योंकि ये स्वयं ही पाप करनेवाले होते हैं।

(६) वह जो हठ करता हो। हठीला। (७) निर्भीक। निर्भय। निडर।

साहसी-वि० [सं० साहसिन्] (१) वह जो साहस करता हो। हिम्मती। दिलेर। (२) बलि का पुत्र जो शाप के कारण गधा हो गया था। इसे बलराम ने मारा था।

साहस्र-वि० [सं०] सहस्र संबंधी। हजार का।

संज्ञा पुं० सहस्र का समूह।

साहस्रवेधी-संज्ञा पुं० [सं० साहस्रवेधिन्] कस्तूरी।

साहस्रिक-वि० [सं०] सहस्र संबंधी। हजार का।

संज्ञा पुं० किसी पदार्थ के एक सहस्र भागों में से एक भाग। $\frac{1}{1000}$।

साहा-संज्ञा पुं० [सं० साहित्य] (१) वह वर्ष जो हिंदू ज्योतिष के अनुसार विवाह के लिये शुभ माना जाता है। (२) विवाह आदि शुभ कार्यों के लिये निश्चित लग्न या मुहूर्त।

साहाय्य-संज्ञा पुं० [सं०] सहायता। मदद।

साहि‡-संज्ञा पुं० [फा० शाह] (१) राजा। (२) दे० "साहु"।

साहिती-संज्ञा स्त्री० दे० "साहित्य"।

साहित्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एकत्र होना। मिलना। मिलन। (२) वाक्य में पदों का एक प्रकार का संबंध जिसमें वे परस्पर अपेक्षित होते हैं और उनका एक ही क्रिया से अन्वय होता है। (३) किसी एक स्थान पर एकत्र किए हुए लिखित उपदेश, परामर्श या विचार आदि। लिपिबद्ध विचार या ज्ञान। (४) गद्य और पद्य सब प्रकार के उन ग्रन्थों का समूह जिनमें सार्वजनीन हित संबंधी स्थायी विचार रक्षित रहते हैं। वे समस्त पुस्तकें जिनमें नैतिक सत्य और मानव भाव बुद्धिमत्ता तथा व्यापकता से प्रकट किए गए हों। वाङ्मय। इस अर्थ में यह शब्द बहुत अधिक व्यापक रूप में भी बोला जाता है (जैसे,—समस्त संसार का साहित्य) और देश, काल, भाषा, या विषय आदि के विचार से परिमित रूप में भी। (जैसे,—हिंदी साहित्य, वैज्ञानिक साहित्य, बिहारी का साहित्य आदि।)

साहिनी-संज्ञा स्त्री० दे० "साहनी"।

साहिब-संज्ञा पुं० दे० "साहब"।

साहिबी-संज्ञा स्त्री० दे० "साहबी"।

साहियाँ‡-संज्ञा पुं० दे० "साँई"।

साहिली-संज्ञा स्त्री० [अ० साहिल = समुद्र तट] (१) एक प्रकार का पक्षी जिसका रंग काला और लंबाई एक बालिश्त से अधिक होती है। यह प्रायः उत्तरी भारत और मध्य प्रदेश में पाया जाता है। यह पेड़ की टहनियों पर प्याले के आकार का घोंसला बनाता है। इसके अंडों का रंग भूरा होता है। (२) बुलबुल चश्म।

साही-संज्ञा स्त्री० [सं० शल्यकी] एक प्रसिद्ध जंतु जो प्रायः दो फुट लंबा होता है। इसका सिर छोटा, नथुने लंबे, कान और आँखें छोटी और जीभ बिल्ली के समान काँटेदार होती है। ऊपर नीचे के जबड़े में चार दाँतों के अतिरिक्त कुतरनेवाले दो दाँत ऐसे तीक्ष्ण होते हैं कि लकड़ी के मोटे तख्ते तक को काट डालते हैं। इसका रंग भूरा, सिर और पाँव पर काले काले सफेदी लिए छोटे छोटे बाल और गर्दन पर के बाल लंबे और भूरे रंग के होते हैं। पीठ पर लंबे नुकीले काँटे होते हैं। काँटे बहुधा सीधे और नोकें पूँछ की भाँति फिरी रहती हैं। जब यह क्रुद्ध होता है, तब काँटे सीधे खड़े हो जाते हैं। यह अपने शत्रुओं पर अपने काँटों से आक्रमण करता है। इसका किया हुआ घाव कठिनता से आराम होता है। इन काँटों से लिखने की कलम बनाई जाती है और घृणाकर्म्म में भी कहीं कहीं इनका व्यवहार होता है। ये जंतु आपस में बहुत लड़ते हैं; इसलिये लोगों का विश्वास है कि यदि इसके दो काँटे दो आदमियों के दरवाजों पर गाड़ दिए जायँ, तो दोनों में बहुत लड़ाई होती है। यह दिन में सोता और रात को जागता है। यह नरम पत्ती, साग, तरकारी और फल खाता है। शीत काल में यह बेसुध पड़ा रहता है। यह प्रायः उष्ण देशों में पाया जाता है। स्पेन, सिसिली आदि प्रायद्वीपों और अफ्रिका के उत्तरी भाग, एशिया के उत्तर, तातार, ईरान तथा हिंदुस्थान में बहुत मिलता है। इसे कहीं कहीं सेई भी कहते हैं।

वि० दे० "शाही"।

साहु-संज्ञा पुं० [सं० साधु] (१) सज्जन। भलामानस। (२) महाजन। धनी। साहूकार। चोर का उलटा।

विशेष—प्रायः वणिकों के नाम के आगे यह शब्द आता है। इसको कुछ लोग भ्रम से फारसी "शाह" का अपभ्रंश समझते हैं। पर यथार्थ में यह संस्कृत "साधु" का प्राकृत रूप है।

साहुल-संज्ञा पुं० [फा० शाकूल] दीवार की सीध नापने का एक प्रकार का यंत्र जिसका व्यवहार राज और मिस्त्री लोग मकान बनाने के समय करते हैं। यह पत्थर की एक गोली के आकार का होता है और इसमें एक लंबी डोरी लगी रहती है। इसी डोरी के सहारे से इसे लटकाकर दीवार की टेढ़ाई या सिधाई नापते हैं।

साहू-संज्ञा पुं० दे० "साहु"।

साहूकार-संज्ञा पुं० [हिं० साहु + कार (प्रत्य०)] बड़ा महाजन या व्यापारी। कोठीवाल। धनाढ्य।

साहूकारा-संज्ञा पुं० [हिं० साहूकार + आ (प्रत्य०)] (१) रुपयों का लेन देन। महाजनी। (२) वह बाजार जहाँ बहुत से साहूकार या महाजन कारबार करते हों।

वि० साहूकारों का। जैसे,—साहूकारा व्यवहार या ब्याज।

साहूकारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० साहूकार + ई (प्रत्य०)] साहूकार होने का भाव। साहूकारपन।

साहेब-संज्ञा पुं० दे० "साहब"।

साहैं‡-संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँह] भुजदंड। बाजू। उ०—सकल भुअन मंगल मंदिर के द्वार बिसाल सुहाई साहैं।—तुलसी।

अव्य० [हिं० सामुहें] सामने। सम्मुख।

सिउँ‡-प्रत्य० दे० "सों"। उ०—रतन जनम अपनो तैं हारयो गोविंद गत नहिं जानी। निमिष न लीन भयो चरनन सिउँ बिरथा अउध सिरानी।—तेग बहादुर।

सिकना-क्रि० अ० [सं० शृत = पका हुआ + करण; हिं० सेंकना] आँच पर गरम होना या पकना। सेंका जाना। जैसे,—रोटी सिंकना।

सिकोना-संज्ञा पुं० [अं०] कुनैन का पेड़।

सिंग-संज्ञा पुं० दे० "सींग"।

सिंगड़ा-संज्ञा पुं० [सं० शृंग + ड़ा (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० सिंगड़ी] सींग का बना हुआ बारूद रखने का एक प्रकार का बरतन।

सिंगरफ-संज्ञा पुं० [फा० शिंगरफ] ईंगुर।

सिंगरफी-वि० [फा० शिंगरफी] ईंगुर का। ईंगुर से बना।

सिंगरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सींग] एक प्रकार की मछली जिसके सिर पर सींग से निकले होते हैं।

सिंगरौर-संज्ञा पुं० [सं० शृंगवेर] प्रयाग के पश्चिमोत्तर नौ दस कोस पर एक स्थान जो प्राचीन शृंगवेरपुर माना जाता है। यहाँ निषादराज गुह की राजधानी थी।

सिंगल-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बड़ी मछली जो भारत और बरमा की नदियों में पाई जाती है। यह छः फुट तक लंबी होती है।

संज्ञा पुं० दे० "सिगनल"।

सिंगा-संज्ञा पुं० [हिं० सींग] फूँककर बजाया जानेवाला सींग या लोहे का बना एक बाजा। तुरही। रणसिंगा।

सिंगार-संज्ञा पुं० [सं० शृंगार] (१) सजावट। सज्जा। बनाव। (२) शोभा। (३) शृंगार रस। उ०—ताही ते सिंगार रस बरनि कह्यो कवि देव। जाको है हरि देवता सकल देव अधिदेव।—देव।

सिंगारदान-संज्ञा पुं० [हिं० सिंगार + सं० आधान या फ़ा० दान (प्रत्य०)] वह पात्र या छोटा संदूक जिसमें शीशा, कंघी आदि शृंगार की सामग्री रखी जाती है।

सिंगारना–क्रि० स० [हिं० सिंगार+ना (प्रत्य०)] वस्त्र, आभूषण, अंगराग आदि से शरीर सुसज्जित करना। सजाना। सँवारना। उ०—(क) सुरभी वृषभ सिंगारे बहु बिधि हरदी तेल लगाई।—सूर। (ख) कढे कुंड कुंडल सिंगारं गंड पुंडन पैं कटि में भुसुंड सुंड दंडन की मंडनी।—गि० दास।

सिंगारमेज–संज्ञा स्त्री० [सं० शृंगार+फा० मेज] एक प्रकार की मेज जिस पर दर्पण लगा रहता है और शृंगार की सामग्री सजी रहती है। इसके सामने बैठकर लोग बाल सँवारते और वस्त्र आभूषण आदि पहनते हैं।

सिंगारहार–संज्ञा पुं० [सं० हारशृंगार] हरसिंगार नामक फूल। परजाता। उ०—नागेसर सदवरग नेवारी। औ सिंगारहार फुलवारी।—जायसी।

सिंगारिया–वि० [सं० शृंगार+इया (प्रत्य०)] किसी देवमूर्त्ति का सिंगार करनेवाला, पुजारी।

सिंगारी–वि० पुं० [हिं० सिंगार+ई] शृंगार करनेवाला। सजानेवाला। उ०—समर बिहारी सुर सम बलधारी धरि मल-युद्धकारी औ सिंगारी भट भेद के।—गोपाल।

सिंगाल–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पहाड़ी बकरा जो कुमायूँ से नैपाल तक पाया जाता है।

सिंगाला–वि० [हिं० सींग+आला (प्रत्य०)] [स्त्री० सिंगाली] सींगवाला। जैसे गाय, बैल।

सिंगासन–संज्ञा पुं० दे० "सिंहासन"।

सिंगिया–संज्ञा पुं० [सं० शृंगिक] एक प्रसिद्ध स्थावर विष।

विशेष—इसका पौधा अदरक या हल्दी का सा होता है और सिकिम की ओर नदियों के किनारे की कीचड़वाली जमीन में उगता है। इसकी जड़ ही विष होती है जो सूखने पर सींग के आकार की दिखाई पड़ती है। लोगों का विश्वास है कि यह विष यदि गाय के सींग में बाँध दिया जाय, तो उसका दूध रक्त के समान लाल हो जाय।

सिंगी–संज्ञा पुं० [हिं० सींग] (१) सींग का बना बना हुआ फूँककर बजाया जानेवाला एक प्रकार का बाजा। तुरही।

विशेष—इसे शिकारी लोग कुत्तों को शिकार का पता देने के लिये बजाते हैं।

(२) सींग का बाजा जिसे योगी लोग फूँककर बजाते हैं। उ०—सिंगी नाद न बाजहीं किन गए सो जोगी।—दादू।

क्रि० प्र०—फूँकना।—बजाना।

(३) घोड़ों का एक बुरा लक्षण।

संज्ञा स्त्री० (१) एक प्रकार की मछली जो बरसाती पानी में अधिकता से होती है। इसके काटने या सींग गड़ाने से एक प्रकार का विष चढ़ता है। यह एक फुट के लगभग लंबी होती है और खाने के योग्य नहीं होती। (२) सींग की नली जिससे घूमनेवाले देहाती जर्राह शरीर का रक्त चूसकर निकालते हैं।

क्रि० प्र०—लगाना।

सिंगी मोहरा–संज्ञा पुं० [हिं० सिंगी+मुहरा] सिंगिया विष।

सिंगौटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० सींग+औटी (प्रत्य०)] (१) सींग का आकार। (२) बैल के सींग पर पहनाने का एक आभूषण। (३) सींग का बना हुआ घोंटना। (४) तेल आदि रखने के लिये सींग का पात्र। (५) जंगल में मरे हुए जानवरों के सींग।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सिंगार+औटी] सिंदूर, कंघी आदि रखने की स्त्रियों की पिटारी।

सिंघ‡–संज्ञा पुं० दे० "सिंह"।

सिंघल–संज्ञा पुं० दे० "सिंहल"।

सिंघली–वि० दे० "सिंहली"।

सिंघाड़ा–संज्ञा पुं० [सं० शृंगाटक] (१) पानी में फैलनेवाली एक लता जिसके तिकोने फल खाए जाते हैं। पानी फल।

विशेष—यह भारतवर्ष के प्रत्येक प्रांत में तालों और जलाशयों में रोप कर लगाया जाता है। इसकी जड़ें पानी के भीतर दूर तक फैलती हैं। इसके लिये पानी के भीतर कीचड़ का होना आवश्यक है, कँकरीली या बलुई जमीन में यह नहीं फैल सकता। इसके पत्ते तीन अँगुल चौड़े कटावदार होते हैं जिनके नीचे का भाग ललाई लिए होता है। फूल सफेद रंग के होते हैं। फल तिकोने होते हैं जिनकी दो नोकें काँटे या सींग की तरह निकली होती हैं। बीच का भाग खुरदुरा होता है। छिलका मोटा पर मुलायम होता है जिसके भीतर सफेद गूदा या गिरी होती है। ये फल हरे खाए जाते हैं। सूखे फलों की गिरी का आटा भी बनता है जो व्रत के दिन फलाहार के रूप में लोग खाते हैं। अबीर बनाने में भी यह आटा काम में आता है। वैद्यकमें सिंघाड़ा शीतल, भारी, कसैला, वीर्य्यवर्द्धक, मलरोधक, वातकारक तथा रुधिरविकार और त्रिदोष को दूर करनेवाला कहा गया है।

पर्य्या०—जलफल। वारिकंटक। त्रिकोणफल।

(२) सिंघाड़े के आकार की तिकोनी सिलाई या बेल बूटा। (३) सोनारों का एक औजार जिससे वे सोने की माला बनाते हैं। (४) एक प्रकार की मुनिया चिड़िया। (५) समोसा नाम का नमकीन पकवान जो सिंघाड़े के आकार का तिकोना होता है। (६) एक प्रकार की आतिशबाजी। (७) रहट की लाट में ठोंकी हुई लकड़ी जो लाट को पीछे की ओर घूमने से रोकती है।

सिंघाड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० सिंघाड़ा] वह तालाब जिसमें सिंघाड़ा रोपा जाता है।

सिंघाण–संज्ञा पुं० दे० "सिंहाण"।

सिंघासन–संज्ञा पुं० दे० "सिंहासन"। उ०—(क) दसरथ राउ सिंघासन बैठि बिराजहिं हो।—तुलसी। (ख) तहाँ

सिंघासन सुभग निहारा। दिव्य कनकमय मनि दुति-कारा।—मधुसूदन।

सिंघिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] नासिका। नाक।
संज्ञा स्त्री० दे० "सिंहिनी"

सिंघिया–संज्ञा पुं० दे० "सिंगिया"।

सिंघी–संज्ञा स्त्री० [हिं० सींग] (१) एक प्रकार की छोटी मछली जिसका रंग सुर्खी लिए हुए होता है। इसके गलफड़े के पास दोनों तरफ दो काँटे होते हैं। (२) सोंठ। सुंठी।

सिंघू–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जीरा जो कुस्तुद और बूशहर (फारस) से आता है और काले जीरे के स्थान पर बिकता है।

सिंचन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल छिड़कना। पानी के छींटे डालकर तर करना। (२) पेड़ों में पानी देना। सींचना।

सिंचना—क्रि० अ० [हिं० सींचना] सींचा जाना।

सिंचाई–संज्ञा स्त्री० [सं० सिंचन] (१) पानी छिड़कने का काम। जल के छींटों से तर करने की क्रिया। (२) सींचने का काम। वृक्षों में जल देने का काम। उ०—निज कर पुनि पत्रिका बनाई। कुंकुम मलयज बिंदु सिंचाई।—रघुराज। (३) सींचने का कर या मजदूरी।

सिंचाना–क्रि० स० [हिं० सींचना का प्रे०] (१) पानी छिड़काना। (२) सींचने का काम कराना।

सिंचित–वि० [सं०] (१) जल छिड़का हुआ। (२) पानी के छींटों से तर किया हुआ। सींचा हुआ।

सिंचिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] पिप्पली। पीपर।

सिंचौनी†–संज्ञा स्त्री० दे० "सिंचाई"।

सिंजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] अलंकार ध्वनि। वि० दे० "शिंजा"।

सिंजाल पारी–संज्ञा स्त्री० दे० "गावज़ीन"।

सिंजित–संज्ञा स्त्री० [सं० सिंजा] शब्द। ध्वनि। झनक। झंकार। उ०—घुटुरुन चलत घूँघुरू बाजै। सिंजित सुनत हंस हिय लाजै।—लाल कवि।

सिंदन‡†–संज्ञा पुं० दे० "स्यंदन"।

सिंदरवानी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की हलदी जिसकी जड़ से एक प्रकार का तीखुर निकलता है जो असली तीखुर में मिला दिया जाता है।

सिंदुक–संज्ञा पुं० [सं०] सिंदुवार वृक्ष। सँभालु।

सिंदुर रसना–संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरा। शराब। (अनेका०)

सिंदुरी–संज्ञा स्त्री० [सं० सिंदूर] बलूत की जाति का एक छोटा पेड़ जो हिमालय के नीचे के प्रदेश में चार साढ़े चार हजार फुट तक पाया जाता है।

सिंदुवार–संज्ञा पुं० [सं०] सँभालू वृक्ष। निर्गुंडी।

सिंदूर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईंगुर को पीसकर बनाया हुआ एक प्रकार का लाल रंग का चूर्ण जिसे सौभाग्यवती हिंदू स्त्रियाँ अपनी माँग में भरती हैं। यह सौभाग्य का चिह्न माना जाता है। गणेश और हनुमान की मूर्तियों पर भी यह घी में मिलाकर पोता जाता है।

विशेष—आयुर्वेद में यह भारी, गरम, टूटी हड्डी को जोड़नेवाला, घाव को शोधने और भरनेवाला तथा कोढ़, खुजली, और विष को दूर करनेवाला माना गया है। यह घातक और अभक्ष्य है।

पर्य्या०—नागरेणु। वीररज। गणेशभूषण। संध्याराग। श्रृंगारक। सौभाग्य। अरुण। मंगल्य।

(२) बलूत की जाति का एक पहाड़ी पेड़ जो हिमालय के निचले भागों में अधिक पाया जाता है।

सिंदूरकारण–संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु।

सिंदूरतिलक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंदूर का तिलक। (२) हाथी।

सिंदूरतिलका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सधवा स्त्री।

सिंदूरदान–संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के अवसर की एक प्रधान रीति। वर का कन्या की माँग में सिंदूर डालना।

सिंदूरपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जिसमें लाल रंग के फूल लगते हैं। वीरपुष्पी। सदा सुहागिन।

पर्य्या०—सिंदूरी। तृणपुष्पी। करच्छदा। शोणपुष्पी।

सिंदूरबंदन–संज्ञा पुं० [सं०] विवाह-संस्कार में एक प्रधान रीति जिसमें वर कन्या की माँग में सिंदूर डालता है। उ०—सिंदूरबंदन, होम लावा होन लागी भाँवरी। सिल पोहनी करि मोहनी मन हरयो मूरति साँवरी।—तुलसी।

सिंदूररस–संज्ञा पुं० [सं०] रस सिंदूर।

विशेष—यह पारे और गंधक को आँच पर उड़ाकर बनाया जाता है और चंद्रोदय या मकरध्वज के स्थान पर दिया जाता है।

सिंदूरिया–वि० [सं० सिंदूर+इया (प्रत्य०)] सिंदूर के रंग का। खूब लाल। जैसे,—सिंदूरिया आम।
संज्ञा स्त्री० [सं० सिंदूर (पुष्पी)] सिंदूरपुष्पी। सदा सुहागिन नाम का पौधा।

सिंदूरी–वि० [सं० सिंदूर+ई (प्रत्य०)] सिंदूर के रंग का। उ०—भरी सँजोयी मैल सिंदूरी छाये बादर।—अंबिकादत्त।
संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धातकी। धव। (२) रोचनी। हल्दी। लाल हल्दी। (३) सिंदूरपुष्पी। (४) कमीला। (५) लाल वस्त्र।

सिंधोरा–संज्ञा पुं० [हिं० सिंदूर] लकड़ी की एक डिबिया जिसमें स्त्रियाँ सिंदूर रखती हैं। (यह सौभाग्य की सामग्री मानी जाती है।)

सिंध–संज्ञा पुं० [सं० सिंधु] (१) भारत के पश्चिम प्रांत का एक प्रदेश जो आजकल बंबई प्रांत के अंतर्गत है। संज्ञा स्त्री० (२) पंजाब की एक प्रधान नदी। (३) भैरव राग की एक रागिनी।

सिंधव-संज्ञा पुं० दे० "सैंधव"। उ०—(क) सिंधव, फटिक पपान का, ऊपर एकहु रंग। पानी माहिं देखिये, न्यारा न्यारा अंग।—दादूदयाल। (ख) सिंधव श्रम आराम मधि मैं आश्र देरायो स्याम।—सूर।

सिंधवी-संज्ञा स्त्री० [सं० सिंधु] एक रागिनी जो आभीरी और आशावरी के मेल से बनी मानी जाती है। इसका स्वरूप कान पर कमल का फूल रखे, लाल वस्त्र पहने, क्रुद्ध और हाथ में त्रिशूल लिए कहा गया है। हनुमत के मत से इस रागिनी का स्वर ग्राम यह है—सा रे ग म प ध नि सा अथवा सा ग म प ध नि सा।

सिंधसागर-संज्ञा पुं० [सं०] पंजाब में एक दोआब। झेलम और सिंधु नदी के बीच का प्रदेश।

सिंधारा-संज्ञा पुं० [देश०] श्रावण मास के दोनों पक्षों की तृतीया को लड़की की ससुराल में भेजा हुआ पकवान आदि।

सिंधी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिंध + ई (प्रत्य०)] सिंध देश की बोली।

विशेष—यह समस्त सिंध प्रांत और उसके आस पास लास बेला, कच्छ और बहावलपुर आदि रियासतों के कुछ भागों में बोली जाती है। इसमें फारसी और अरबी भाषा के बहुत अधिक शब्द मिल गए हैं। यह लिखी भी एक प्रकार की अरबी फारसी लिपि में ही जाती है। इसमें सिरैकी, लारी और थरेली तीन मुख्य बोलियाँ हैं। पश्चिमी पंजाब की भाषा के समान इसमें भी दो स्वरों के बीच में कहीं कहीं 'ल' पाया जाता है।

वि० सिंध देश का। सिंध देश संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) सिंध देश का निवासी। (२) सिंध देश का घोड़ा जो बहुत तेज और मजबूत होता है। अत्यंत प्राचीन काल से सिंध घोड़े की नस्ल के लिये प्रसिद्ध है।

सिंधु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नद। नदी। (२) एक प्रसिद्ध नद जो पंजाब के पश्चिम भाग में है। (३) समुद्र। सागर। (४) चार की संख्या। (५) सात की संख्या। (६) वरुण देवता। (७) सिंध प्रदेश। (८) सिंध प्रदेश का निवासी। (९) ओठों का गीलापन। ओष्ठ की आर्द्रता। (१०) हाथी के सूँड़ से निकला हुआ पानी। (११) हाथी का मद। गजमद। (१२) श्वेत टंकण। खूब साफ सोहागा। (१३) सिंदुवार का पौधा। निर्गुंडी। (१४) संपूर्ण जाति का एक राग जो मालकोश का पुत्र माना जाता है। इसमें गांधार और निषाद दोनों स्वर कोमल लगते हैं। इसके गाने का समय दिन को १० दंड से १६ दंड तक है। (१५) गंधर्वों के एक राजा का नाम।

संज्ञा स्त्री० दक्षिण की एक छोटी नदी जो यमुना में मिलती है।

सिंधुक-संज्ञा पुं० [सं०] निर्गुंडी। सँभालू वृक्ष।

सिंधुकन्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी।

सिंधुकफ-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन।

सिंधुकर-संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत टंकण। सोहागा।

सिंधुकालक-संज्ञा पुं० [सं०] नैर्ऋत्य कोण के एक प्रदेश का प्राचीन नाम।

सिंधुखेल-संज्ञा पुं० [सं०] सिंध प्रदेश।

सिंधुज-वि० [सं०] (१) समुद्र में उत्पन्न। (२) सिंध देश में होनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) सेंधा नमक। (२) शंख। उ०—जाके क्रोध भूमि जल पटके कहा करैगो सिंधुज-पानी।—सूर। (३) पारा। (४) सोहागा।

सिंधुजन्मा-संज्ञा पुं० [सं० सिंधुजन्मन्] (१) चंद्रमा। (२) सेंधा नमक।

सिंधुजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) (समुद्र से उत्पन्न) लक्ष्मी। उ०—चौंर ढारत सिंधुजा जय शब्द बोलत सिद्ध। नारदादिक विप्र मान अशेष भाव प्रसिद्ध।—केशव। (२) सीप, जिसमें से मोती निकलता है।

सिंधुजात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंधी घोड़ा। (२) मोती।

सिंधुड़ा-संज्ञा स्त्री० [सं० सिन्धु] एक रागिनी जो मालव राग की भार्या मानी जाती है।

सिंधुनंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (समुद्र का पुत्र) चंद्रमा।

सिंधुपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंभारी वृक्ष।

सिंधुपिब-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य ऋषि (जो समुद्र पी गए थे)।

सिंधुपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) तिंदुक की जाति का एक पेड़।

सिंधुपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शंख। (२) कदंब। कर्दम। (३) मौलसिरी। बकुल।

सिंधुमंथज-संज्ञा पुं० [सं०] सेंधा नमक।

सिंधुमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० सिंधुमातृ] नदियों की माता, सरस्वती।

सिंधुर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सिंधुरा] (१) हस्ती। हाथी। उ०—चली संग बन राज के, रसे एक बन आहि। सिंधुर यूथप बहुत तहँ, निकसे तेहि बन माहिं।—सबलसिंह। (२) आठ की संख्या।

सिंधुरमणि-संज्ञा पुं० [सं०] गजमुक्ता। उ०—पीत बसन कटि कलित कंठ सुंदर सिंधुरमनि माल।—तुलसी।

सिंधुरवदन-संज्ञा पुं० [सं०] गजवदन। गणेश। उ०—गुरु सरसइ सिंधुरवदन, ससि सुरसरि सुरगाइ। सुमिरि चलहु मग मुदित मन होइहि सुकृत सहाइ।—तुलसी।

सिंधुरागामिनी-वि० स्त्री० [सं०] गजगामिनी। हाथी की सी चालवाली। उ०—गावत चलीं सिंधुरागामिनि।—तुलसी।

सिंधुराव-संज्ञा पुं० [सं०] निर्गुंडी। सँभालू।

सिंधुलताम-संज्ञा पुं० [सं०] मूँगा। प्रवाल।

सिंधुलवण-संज्ञा पुं० [सं०] सेंधा नमक।

सिंधुवार-संज्ञा पुं० [सं०] सिंदुवार। निर्गुंडी।

सिंधुविष—संज्ञा पुं० [सं०] हलाहल विष जो समुद्र मथने पर निकला था। उ०—आसीविष, सिंधुविष पावक सों तो कहु हुतो प्रह्लाद सों पिता को प्रेम छूट्यो है।—केशव।

सिंधुवृष—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

सिंधुवेषण—संज्ञा पुं० [सं०] गंभारी वृक्ष।

सिंधुशयन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सिंधुसंभवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] फिटकिरी।

सिंधुसर्ज—संज्ञा पुं० [सं०] शाल वृक्ष। साखू।

सिंधुसहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुंडी। सिंदुवार।

सिंधुसुत—संज्ञा पुं० [सं०] जलंधर नामक राक्षस जिसे शिव जी ने मारा था। उ०—सिंधुसुत गर्व गिरि वज्र गौरीस भव दक्ष मख अखिल विध्वंस-कर्त्ता।—तुलसी।

सिंधुसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लक्ष्मी। (२) सीप।

सिंधुसुतासुत—संज्ञा पुं० [सं०] सीप का पुत्र अर्थात् मोती। उ०—सिंधु सुतासुत ता रिपु गमनी सुन मेरी तू बात।—सूर।

सिंधूरा—संज्ञा पुं० [सं० सिंधुर] संपूर्ण जाति का एक राग जो हिंडोल राग का पुत्र माना जाता है। यह वीर रस का राग है। इसमें ऋषभ और निषाद स्वर कोमल लगते हैं। गाने का समय दिन में ११ दंड से १५ दंड तक है।

सिंधूरी—संज्ञा स्त्री० [सं० सिंधुर] एक रागिनी जो हिंडोल राग की पुत्र-वधू मानी जाती है।

सिंधोरा—संज्ञा पुं० [हिं० सिंदूर+ओरा (प्रत्य०)] सिंदूर रखने का लकड़ी का पात्र जो कई आकार का बनता है। उ०—गृहि ते निकरी सती होन को देखन को जग दौरा। अब तो जरे मरे बनि आई लीन्हा हाथ सिंधोरा।—कबीर।

सिंव—संज्ञा पुं० दे० "शिव"।

सिंबा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिंबी धान। शमी धान्य। (२) नखी नामक गंध द्रव्य। हट्टविलासिनी। (३) सोंठ।

सिंबी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छीमी। फली। (२) सेम। निष्पावी। (३) वन मूँग।

सिंभालु—संज्ञा पुं० [सं० संभालु] सिंदुवार। निर्गुंडी।

सिंसपा—संज्ञा स्त्री० दे० "शिंशपा"।

सिंह—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सिंहनी] (१) बिल्ली की जाति का सब से बलवान्, पराक्रमी और भव्य जंगली जंतु जिसके नरवर्ग की गरदन पर बड़े बड़े बाल या केसर होते हैं। शेर बबर।

विशेष—यह जंतु अब संसार में बहुत कम स्थानों में रह गया है। भारतवर्ष के जंगलों में किसी समय सर्वत्र सिंह पाए जाते थे, पर अब कहीं नहीं रह गए हैं। केवल गुजरात या काठियावाड़ की ओर कभी कभी दिखाई पड़ जाते हैं। उत्तरी भारत में अंतिम सिंह सन् १८३९ में दिखाई पड़ा था। आज कल सिंह केवल अफ्रिका के जंगलों में मिलते हैं। इस जंतु का पिछला भाग पतला होता है, पर सामने का भाग अत्यंत भव्य और विशाल होता है। इसकी आकृति से विलक्षण तेज टपकता है और इसकी गरज बादल की तरह गूँजती है, इसी से सिंह का गर्जन प्रसिद्ध है। देखने में यह बाघ की अपेक्षा शांत और गंभीर दिखाई पड़ता है और जल्दी क्रोध नहीं करता। रंग इसका ऊँट के रंग का सा और सादा होता है। इसके शरीर पर चित्तियाँ आदि नहीं होतीं। मुँह व्याघ्र की अपेक्षा कुछ लंबोतरा होता है, बिलकुल गोल नहीं होता। पूँछ का आकार भी कुछ भिन्न होता है। वह पतली होती है और उसके छोर पर बालों का गुच्छा सा होता है। सारे धड़ की अपेक्षा इसका सिर और चेहरा बहुत बड़ा होता है जो केसर या बालों के कारण और भी भव्य दिखाई पड़ता है। कवि लोग सदा से वीर या पराक्रमी पुरुष की उपमा सिंह से देते आए हैं। यह जंगल का राजा माना जाता है।

पर्य्या०—मृगराज। मृगेंद्र। केसरी। पंचानन। हरि।

(२) ज्योतिष में मेष आदि बारह राशियों में से पाँचवीं राशि।

विशेष—इस राशि के अंतर्गत मघा, पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा-फाल्गुनी के प्रथम पाद पड़ते हैं। इसका देवता सिंह और वर्ण पीत धूम्र माना गया है। फलित ज्योतिष में यह राशि पित्त प्रकृति की, पूर्व दिशा की स्वामिनी, क्रूर और शब्दवाली कही गई है। इस राशि में उत्पन्न होनेवाला मनुष्य क्रोधी, तेज चलनेवाला, बहुत बोलनेवाला, हँसमुख, चंचल और मत्स्यप्रिय बतलाया गया है।

(३) वीरता या श्रेष्ठता-वाचक शब्द। जैसे,—पुरुष-सिंह। (४) छप्पय छंद का सोलहवाँ भेद जिसमें ५५ गुरु, ४२ लघु कुल ९७ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। (५) वास्तु-विद्या में प्रासाद का एक भेद जिसमें सिंह की प्रतिमा से भूषित बारह कोने होते हैं। (६) रक्त शिग्रु। लाल सहिंजन। (७) एक राग का नाम। (८) वर्त्तमान अवसर्पिणी के २४वें अर्हत् का चिह्न जो जैन लोग रथयात्रा आदि के समय झंडों पर बनाते हैं। (९) एक आभूषण जो रथ के बैलों के माथे पर पहनाते हैं। (१०) एक कल्पित पक्षी। (११) वेंकट गिरि का एक नाम।

सिंहकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाण चलाने में दाहिने हाथ की एक मुद्रा।

सिंहकर्मा—संज्ञा पुं० [सं० सिंहकर्मन्] सिंह के समान वीरता से काम करनेवाला। वीर पुरुष।

सिंहकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

सिंहकेलि—संज्ञा पुं० [सं०] प्रसिद्ध बोधिसत्व मंजुश्री का एक नाम।

सिंहकेसर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंह की गरदन के बाल। (२) मौलसिरी। बकुल वृक्ष। (३) एक प्रकार की मिठाई। सूत फेनी। काता।

सिंहग—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

सिंहघोष—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

सिंहचित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मषवन। मापपर्णी।

सिंहच्छदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद दूब।

सिंहतुंड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेहुँड़। स्नुही। थूहर। (२) एक प्रकार की मछली।

सिंहदंष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का बाण। (२) शिव का एक नाम।

सिंहद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] सदर फाटक जहाँ सिंह की मूर्त्ति बनी हो। उ०—सिंहद्वार आरती उतारत यशुमति आनँद-कंद।—सूर।

सिंहध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

सिंहनंदन—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

सिंहनाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंह की गरज। (२) युद्ध में वीरों की ललकार। (३) सत्यता के निश्चय के कारण किसी बात का निःशंक कथन। ज़ोर देकर कहना। ललकार के कहना। (४) एक प्रकार का पक्षी। (५) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में सगण, जगण, सगण, सगण और एक गुरु होता है। कलहंस। नंदिनी। उ०—सजि सी सिंगार कलहंस गती सी। चलि आइ राम छवि मंडप दीसी। (६) *संगीत में एक ताल।* (७) *शिव का एक नाम।* (८) रावण के एक पुत्र का नाम।

सिंहनादक—संज्ञा पुं० [सं०] सिंघा नामक बाजा।

सिंहनाद गुग्गुल—संज्ञा पुं० [सं०] एक यौगिक औषध जिसमें प्रधान योग गुग्गुल का रहता है।

सिंहनादिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवासा। धमासा। दुरालभा। हिंगुआ।

सिंहनादी—वि० [सं० सिंहनादिन्] [स्त्री० सिंहनादिनी] सिंह के समान गरजनेवाला।

संज्ञा पुं० एक बोधिसत्व का नाम।

सिंहनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिंह की मादा। शेरनी। (२) एक छंद का नाम। इसके चारों पदों में क्रम से १२, १८, २० और २२ मात्राएँ होती हैं। अंत में एक गुरु और २०, २० मात्राओं पर १ जगण होता है। इसके उलटे को गाहिनी कहते हैं।

सिंहपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मापपर्णी।

सिंहपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मापपर्णी।

सिंहपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सैंहली।

सिंहपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] पिठवन। पृश्निपर्णी।

सिंहपुच्छी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रपर्णी। मापपर्णी।

सिंहपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के नौ वासुदेवों में से एक वासुदेव।

सिंहपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन। पृश्निपर्णी।

सिंहपौर—संज्ञा पुं० [सं० सिंह + हिं० पौर] सिंहद्वार। सदर फाटक जिस पर सिंह की मूर्त्ति बनी हो। उ०—भीर जानि सिंहपौर प्रियन की यशुमति भवन दुराई।—सूर।

सिंहमल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की धातु या पीतल। पंचलौह।

सिंहमुख—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक गण का नाम।

सिंहमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बाँस। (२) अडूसा। वासक। (३) वन उड़दी। (४) खारी मिट्टी। (५) कृष्ण निर्गुंडी। काला सँभालू।

सिंहयाना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (सिंह जिसका वाहन हो) दुर्गा।

सिंहल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक द्वीप जो भारतवर्ष के दक्षिण में है और जिसे लोग रामायणवाली लंका अनुमान करते हैं।

विशेष—जान पड़ता है कि प्राचीन काल में इस द्वीप में सिंह बहुत पाए जाते थे; इसी से यह नाम पड़ा। रामेश्वर के ठीक दक्षिण पड़ने के कारण लोग सिंहल को ही प्राचीन लंका अनुमान करते हैं। पर सिंहलवासियों के बीच न तो यह नाम ही प्रसिद्ध है और न रावण की कथा ही। सिंहल के दो इतिहास पाली भाषा में लिखे मिलते हैं—महावंसो और दीपवंसो, जिनसे वहाँ किसी समय यक्षों की *बस्ती होने का पता लगता है। रावण के संबंध में यह* प्रसिद्ध है कि उसने लंका से अपने भाई यक्षों को निकालकर राक्षसों का राज्य स्थापित किया था। बंग देश के विजय नामक एक राजकुमार का सिंहल विजय करना भी इतिहासों में मिलता है। ऐतिहासिक काल में यह द्वीप स्वर्णभूमि या स्वर्णद्वीप के नाम से प्रसिद्ध था, जहाँ दूर देशों के व्यापारी मोती और मसाले आदि के लिए आते थे। प्राचीन अरब स्वर्णद्वीप को "सरनदीप" कहते थे। रत्न-परीक्षा के ग्रंथों में सिंहल-मोती, मानिक और नीलम के लिए प्रसिद्ध पाया जाता है। भारतवर्ष के कलिंग, ताम्रलिप्ति आदि प्राचीन बंदरगाहों से भारतवासियों के जहाज़ बराबर सिंहल, सुमात्रा, जावा आदि द्वीपों की ओर जाते थे। गुप्तवंशीय चंद्रगुप्त (सन् ४०० ईसवी) के समय फ़ाहियान नामक जो चीनी यात्री भारतवर्ष में आया था, वह हिंदुओं के ही जहाज़ पर सिंहल होता हुआ चीन को लौटा था। उस समय भी यह द्वीप स्वर्णद्वीप या सिंहल ही कहलाता था, लंका नहीं। इधर की कहानियों में सिंहलद्वीप पद्मिनी स्त्रियों के लिए प्रसिद्ध है। यह प्रवाद विशेषतः गोरखपंथी साधुओं

में प्रसिद्ध है जो सिंहल को एक प्रसिद्ध पीठ मानते हैं। उनमें कथा चली आती है कि गोरखनाथ के गुरु मत्स्येंद्रनाथ (मछंदरनाथ) सिद्ध होने के लिए सिंहल गए, पर पद्मिनियों के जाल में फँस गए। जब गोरखनाथ गए तब उनका उद्धार हुआ। वास्तव में सिंहल के निवासी बिलकुल काले और भद्दे होते हैं। वहाँ इस समय दो जातियाँ बसती हैं—उत्तर की ओर तो तामिल जाति के लोग हैं और दक्षिण की ओर आदिम सिंहली निवास करते हैं।

(२) सिंहल द्वीप का निवासी।

सिंहलक–वि० [सं०] सिंहल संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) पीतल। (२) दारचीनी।

सिंहलद्वीप–संज्ञा पुं० [सं०] सिंहल नाम का टापू जो भारत के दक्षिण में है। वि० दे० "सिंहल"।

सिंहलद्वीपी–वि० [सं०] (१) सिंहल द्वीप में होनेवाला। (२) सिंहल द्वीप का निवासी। उ०—कनक हाट सब कुहकुह लीपी। बैठ महाजन सिंहलद्वीपी।—जायसी।

सिंहलस्था–संज्ञा स्त्री० [सं०] सैंहली। सिंहली पीपल।

सिंहलांगुली–संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन। पृश्निपर्णी।

सिंहला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिंहल द्वीप। लंका। (२) राँगा। (३) पीतल। (४) छाल। बकला। (५) दारचीनी।

सिंहलास्थान–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ताड़ जो दक्षिण में होता है।

सिंहली–वि० [हिं० सिंहल+ई (प्रत्य०)] (१) सिंहल द्वीप का। (२) सिंहल द्वीप का निवासी।

विशेष—सिंहली काले और भद्दे होते हैं। ये अधिकांश हीनयान शाखा के बौद्ध हैं। पर बहुत से सिंहली मुसलमान भी हो गए हैं।

संज्ञा स्त्री० सिंहली पीपल।

सिंहली पीपल–संज्ञा स्त्री० [सं० सिंहपिप्पली] एक लता जिसके बीज दवा के काम में आते हैं।

विशेष—यह सिंहल द्वीप के पहाड़ों पर उत्पन्न होती है। इसका रंग और रूप साँप के समान होता है और बीज लंबे होते हैं। यह चरपरी, गरम तथा कृमि रोग, कफ, श्वास और वात की पीड़ा को दूर करनेवाली कही गई है।

सिंहलील–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संगीत में एक ताल। (२) (२) काम शास्त्र में एक रतिबंध।

सिंहवदना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अड़ूसा। (२) माषपर्णी। वन उड़दी। (३) खारी मिट्टी।

सिंहवल्लभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] अड़ूसा।

सिंहवाहना–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा देवी।

सिंहवाहिनी–वि० स्त्री० [सं०] सिंह पर चढ़नेवाली।

संज्ञा स्त्री० दुर्गा देवी। उ०—रूप रस पगी महादेवी देव-देवन की सिंहासन बैठी सौंहैं सोहैं सिंहवाहिनी।—देव।

सिंहविक्रम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़ा। (२) संगीत में एक ताल।

सिंहविक्रांत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंह की चाल। (२) घोड़ा। (३) दो नगण और सात या सात से अधिक यगणों के दंडक का एक नाम।

सिंहविक्रांत-गामिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध के अस्सी अनु-व्यंजनों (छोटे लक्षणों) में से एक।

सिंहविक्रीड़–संज्ञा पुं० [सं०] दंडक का एक भेद जिसमें ९ से अधिक यगण होते हैं।

सिंहविक्रीड़ित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संगीत में एक ताल। (२) एक प्रकार की समाधि। (३) एक बोधिसत्व का नाम। (४) एक छंद का नाम।

सिंहविजृंभित–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की समाधि। (बौद्ध)

सिंहविन्ना–संज्ञा स्त्री० [सं०] माषपर्णी।

सिंहवृंता–संज्ञा स्त्री० [सं०] वन उड़दी। माषपर्णी।

सिंहस्थ–वि० [सं०] (१) सिंह राशि में स्थित (बृहस्पति)। (२) एक पर्व जो बृहस्पति के सिंह राशि में होने पर होता है।

विशेष—सिंहस्थ में विवाह आदि शुभ कार्य वर्जित हैं।

सिंहस्था–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

सिंहहनु–संज्ञा पुं० [सं०] सिंह के समान दाढ़ या दाढ़ की हड्डी जो कि बुद्ध के बत्तीस प्रधान लक्षणों में से एक है।

वि० जिसकी दाढ़ सिंह के समान हो।

संज्ञा पुं० गौतम बुद्ध के पितामह का नाम।

सिंहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाड़ी शाक। करेमू। (२) भटकटैया। कटाई। कंटकारी। (३) बृहती। वनभंटा।

संज्ञा पुं० (१) नाग देवता। (२) सिंह लग्न। (३) वह समय जब तक सूर्य इस लग्न में रहता है।

सिंहाण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाक का मल। नकटी। रेंट। (२) लोहे का मुरचा। जंग।

सिंहाणक–संज्ञा पुं० [सं०] नाक का मल। नकटी। रेंट।

सिंहान–संज्ञा पुं० दे० "सिंहाण"।

सिंहास्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कृष्ण निर्गुंडी। काला सँभालू। (२) वासक। अडूसा।

सिंहाली–संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंहली पीपल।

सिंहावलोकन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंह के समान पीछे देखते हुए आगे बढ़ना। (२) आगे बढ़ने के पहले पिछली बातों का संक्षेप में कथन। (३) पद्य-रचना की एक युक्ति जिसमें पिछले चरण के अंत के कुछ शब्द या वाक्य लेकर अगला चरण चलता है। उ०—गाय गोरी मोहनी सुराग

बाँसुरी के बीच कानन सुहाय मार-मंत्र को सुनायगो। नायगो री नेह डोरी मेरे गर में फँसाय हिरदै थल बीच चाय-वेलि को बँधायगो।—दीनदयाल।

सिंहावलोकित-संज्ञा पुं० दे० "सिंहावलोकन"।

सिंहासन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा या देवता के बैठने का आसन या चौकी।

विशेष—यह प्रायः काठ, सोने, चाँदी, पीतल आदि का बना होता है। इसके हत्थों पर सिंह का आकार बना होता है।

(२) कमल के पत्ते के आकार का बना हुआ देवताओं का आसन। (३) सोलह रतिबंधों के अंतर्गत चौदहवाँ बंध। (४) मंडूर। लौहकिट्ट। (५) दोनों भौंहों के बीच में बैठकी के आकार का चंदन या रोली का तिलक।

सिंहासनचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में मनुष्य के आकार का सत्ताइस कोठों का एक चक्र जिसमें नक्षत्रों के नाम भरे रहते हैं।

सिंहास्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वासक। अडूसा। (२) कोविदार। कचनार। (३) एक प्रकार की बड़ी मछली।

सिंहिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक राक्षसी जो राहु की माता थी।

विशेष—यह राक्षसी दक्षिण समुद्र में रहकर उड़ते हुए जीवों की परछाईं देखकर ही उनको खींचकर खाती थी। इसको लंका जाते समय हनुमान ने मारा था। उ०—जलधि लंघन सिंह, सिंहिका मद मथन, रजनिचर नगर उत्पात-केतू।—तुलसी। (२) शोभन छंद का एक नाम। इसके प्रत्येक पद में १४,१० के विराम से २४ मात्राएँ और अंत में जगण होता है। (३) दाक्षायणी देवी का एक रूप। (४) टेढ़े घुटनों की कन्या जो विवाह के अयोग्य कही गई है। (५) अडूसा। (६) वनभंटा। (७) कंटकारी।

सिंहिकासूनु-संज्ञा पुं० [सं०] सिंहिका का पुत्र, राहु। उ०—ललित श्री गोपाल लोचन स्याम सोभा दून। मनहु मयंकहि अंक दीन्ही सिंहिका के सून।—सूर।

सिंहिकेय-संज्ञा पुं० [सं०] (सिंहिका का पुत्र) राहु।

सिंहिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मादा सिंह। शेरनी। उ०—श्वान संग सिंहनी रति अजगुत वेद विरुद्ध असुर करै आइ। सूरदास प्रभु वेगि न आवहु प्राण गए कहा लैहौ आइ।—सूर।

सिंही-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिंह की मादा। शेरनी। (२) अडूसा। (३) स्नुही। थूहर। (४) मुद्गपर्णी। (५) चंद्रशेखर के मत से आर्या का पचीसवाँ भेद। इसमें ३ गुरु और ५१ लघु होते हैं। (६) बृहती लता। (७) सिंघा नाम का बाजा। (८) पीली कौड़ी। (९) नाड़ी शाक। करेमू। (१०) राहु की माता सिंहिका।

सिंहीलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बैंगन। भंटा।

सिंहेश्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

सिंहोड़-संज्ञा पुं० दे० "सेंहुड़" या "थूहर"।

सिंहोदरी-वि० स्त्री० [सं०] सिंह के समान पतली कमरवाली। उ०—सकल सिंगार करि सोहै आजु सिंहोदरी सिंहासन बैठी सिंहवाहिनी भवानी सी।—देव।

सिंहोन्नता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वसंततिलका वृत्त का दूसरा नाम।

सिअरा॥-वि० [सं० शीतल, प्रा० सीअड़] ठंढा। शीतल। उ०—सिअरे बदन सूखि गए कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे।—तुलसी।

संज्ञा पुं० छाया। छाहँ। उ०—सिरसि टेपारो लाल नीरज नयन विसाल सुंदर बदन ठाढ़े सुर तरु सिअरे।—तुलसी।

† संज्ञा पुं० दे० "सियार"।

सिआना-क्रि० स० दे० "सिलाना"।

सिआमंग-संज्ञा पुं० [?] सुमात्रा द्वीप में पाया जानेवाला एक प्रकार का बंदर।

सिआर-संज्ञा पुं० [सं० शृगाल] [स्त्री० सिआरी] शृगाल। गीदड़। उ०—भयो चलत असगुन अति भारी। रवि के आछत फेंकर सिआरी।—सबलसिंह।

सिउरना॥-क्रि० स० [देश०] छाजन के लिए सुट्टों को कड़ियों पर बिछाकर रस्सी से बाँधना।

सिकंजबीन-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सिरके या नीबू के रस में पका हुआ शरबत। (यह सफरा और बलगम के लिए हितकर है)

सिकंजा-संज्ञा पुं० दे० "शिकंजा"।

सिकंदरा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सिकंदर] रेल की लाइन के किनारे ऊँचे खंभे पर लगा हुआ हाथ या डंडा जो झुककर आती हुई गाड़ी की सूचना देता है। सिगनल।

विशेष—कथा प्रसिद्ध है कि सिकंदर बादशाह जब सारी दुनिया जीत कर समुद्र पर भ्रमण करने गया, तब बड़वानल के पास पहुँचा। वहाँ उसने जहाजियों को सावधान करने के लिये खंभे के ऊपर एक हिलता हुआ हाथ लगवा दिया जो उधर जाने से यात्रियों को बराबर मना करता रहता है और "सिकंदरी भुजा" कहलाता है। इसी कहानी के अनुसार लोग सिगनल को भी 'सिकंदरा' कहने लगे।

सिकटा-संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्पा० सिकटी] खपड़े या मिट्टी के टूटे बरतनों का छोटा टुकड़ा।

सिकड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० शृंखला] (१) किवाड़ की कुंडी। साँकल। जंजीर। (२) ज़ंजीर के आकार का सोने का गले में पहनने का गहना। (३) करधनी। तागड़ी। (४) चारपाई में

लगी हुई वह दावँनी जो एक दूसरी में गूँथ कर लगाई जाती है।

सिकड़ी पनवाँ-संज्ञा पुं० [हिं० सिकड़+पान] गले में पहनने की वह सिकड़ी जिसके बीच में पान सी चौकी होती है।

सिकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बालू। रेत। उ०—बारि मथे घृत होइ बरु सिकता तें बरु तेल। बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल।—तुलसी। बलुई जमीन। (३) प्रमेह का एक भेद। पथरी। (४) चीनी। शर्करा। (५) लोणिका शाक।

सिकतामेह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह जिसमें पेशाब के साथ बालू के से कण निकलते हैं।

सिकतावर्त्म-संज्ञा पुं० [सं० सिकतावर्त्मन्] आँख की पलक का एक रोग।

सिकतिल-संज्ञा स्त्री० [सं०] रेतीला।

सिकत्तर-संज्ञा पुं० [अं० सेक्रेटरी] किसी संस्था या सभा का मंत्री। सेक्रेटरी।

सिकरवार-संज्ञा पुं० [देश०] क्षत्रियों की एक शाखा। उ०—बीर बड़गूजर जसाउत सिकरवार, होत असवार जे करत निरवार हैं।—सूदन।

सिकरी-संज्ञा स्त्री० दे० "सिकड़ी"।

सिकली-संज्ञा स्त्री० [अ० सैक़ल] धारदार हथियारों को माँजने और उन पर सान चढ़ाने की क्रिया। उ०—सकल कबीरा बोलै बीरा अजहूँ हो हुसियारा। कह कबीर गुरु सिकली दरपन हरदम करौ पुकारा।—कबीर।

सिकलीगढ़-संज्ञा पुं० दे० "सिकलीगर"।—बढ़ई संगतरास बिसाती। सिकलीगढ़ कहार की पाती।—गिरधरदास।

सिकलीगर-संज्ञा पुं० [अ० सैक़ल+फ़ा० गर] तलवार और छुरी आदि पर बाढ़ रखनेवाला। सान धरनेवाला। चमक देनेवाला। उ०—यों छवि पावत है लखी अंजन आँजे नैन। सरस बाढ़ सैफन भरी जनु सिकलीगर मैन।—रसनिधि।

सिकसोनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] काकजंघा।

सिकहर-संज्ञा पुं० [सं० शिक्य+धर] छींका। सीका।

सिकहुली-संज्ञा स्त्री० [हिं० सींक+औली] मूँज, कास आदि की बनी छोटी डलिया।

सिकाकोल-संज्ञा स्त्री० [देश०] दक्षिण की एक नदी।

सिकार‡-संज्ञा पुं० दे० "शिकार"।

सिकारी-वि० संज्ञा पुं० दे० "शिकारी"।

सिकुड़न-संज्ञा स्त्री० [सं० संकुचन] (१) दूर तक फैली वस्तु का सिमटकर थोड़े स्थान में होना। संकोच। आकुंचन। (२) वस्तु के सिमटने से पड़ा हुआ चिह्न। आकुंचन का चिह्न। बल। शिकन। सिलवट।

सिकुड़ना-क्रि० अ० [सं० संकुचन] (१) दूर तक फैली वस्तु का सिमटकर थोड़े स्थान में होना। सुकड़ना। आकुंचित होना। बटुरना। (२) संकीर्ण होना। तंग होना। (३) बल पड़ना। शिकन पड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

सिकुरना‡-क्रि० अ० दे० "सिकुड़ना"।

सिकोड़ना-क्रि० स० [हिं० सिकुड़ना] (१) दूर तक फैली हुई वस्तु को समेटकर थोड़े स्थान में करना। संकुचित करना। (२) समेटना। बटोरना। (३) संकीर्ण करना। तंग करना।

संयो० क्रि०—देना।

सिकोरना‡-क्रि० स० दे० "सिकोड़ना"। उ०—सुनि अघ नरकहु नाक सिकोरी।—तुलसी।

सिकोरा-संज्ञा पुं० दे० "सकोरा" या "कसोरा"।

सिकोली-संज्ञा स्त्री० [देश०] बाँस के फट्टों, कास, मूँज, बेंत आदि की बनी डलिया। उ०—प्रसादी जल की मथनी में झारी ढलाय सिकोली में बीड़ा ढलाय, करसैंडी में चरणामृत ढलाय, पाछे पात्र सब धोय साजि के ठिकाने धरिये।—वल्लभपुष्टि मार्ग।

सिकोही-वि० [फ़ा० शिकोह=तड़क भड़क] (१) आनबानवाला। गर्वीला। दर्पवाला। (२) वीर। बहादुर। उ०—तरवार सिरोही सोहती। छात्र सिकोही कोहती।—गोपाल।

सिक्कक-संज्ञा पुं० [सं०] बाँसुरी में लगाने की जीभी या उसके स्वर को मधुर बनाने के लिए लगाया हुआ तार।

सिक्कड़-संज्ञा पुं० दे० "सीकड़"।

सिक्कर-संज्ञा पुं० दे० "सीकड़"। उ०—अकरि अकरि करि हकरि हकरि धर पकरि पकरि कर सिक्कर फिरावते।—गोपाल।

सिक्का-संज्ञा पुं० [अ० सिक्कः] (१) मुहर। मुद्रा। छाप। ठप्पा। (२) रुपए, पैसे आदि पर की राजकीय छाप। मुद्रित चिह्न। (३) राज्य के चिह्न आदि से अंकित धातु खंड जिसका व्यवहार देश के लेन देन में हो। टकसाल में ढला हुआ धातु का टुकड़ा जो निर्दिष्ट मूल्य का धन माना जाता है। रुपया, पैसा, अशरफी आदि। मुद्रा।

मुहा०—सिक्का बैठना या जमना=(१) अधिकार स्थापित होना। प्रभुत्व होना। (२) आतंक जमना। प्रधानता प्राप्त होना। रोब जमना। धाक जमना। सिक्का बैठाना या जमाना=(१) अधिकार स्थापित करना। प्रभुत्व जमाना। (२) आतंक जमाना। प्रधानता प्राप्त करना। रोब जमाना। सिक्का पड़ना=सिक्का ढलना।

(४) पदक। तमगा। (५) माल का वह दाम जिसमें दलाली न शामिल हो। (दलाल)। (६) मुहर पर अंक बनाने का ठप्पा। (७) नाव के मुँह पर लगी एक हाथ लंबी लकड़ी। (८) लोहे की गावदुम पतली नली जिससे जलती हुई मशाल पर तेल टपकाते हैं। (९) वह धन जो

लड़की का पिता लड़के के पिता के पास सगाई पक्की होने के लिए भेजता है।

सिक्की–संज्ञा स्त्री० [अ० सिक्कः] (१) छोटा सिक्का। (२) आठ का आने सिक्का। अठन्नी।

सिक्ख–संज्ञा पुं० दे० "सिख"।

सिक्त–वि० [सं०] (१) सिंचित। सींचा हुआ। (२) भीगा हुआ। तर। गीला।

सिक्थ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उबाले हुए चावल का दाना। भात का एक दाना। सीथ। (२) भात का ग्रास या पिंड। (३) मोम। (४) मोतियों का गुच्छा (जो तौल में एक धरण हो। ३२ रत्ती तौल का मोतियों का समूह। (५) नील।

सिक्थक–संज्ञा पुं० दे० "सिक्थ"।

सिखंडी–संज्ञा पुं० दे० "शिखंडी"।

सिख–संज्ञा स्त्री० [सं० शिक्षा] सीख। शिक्षा। उपदेश। उ०—(क) राधा जू सों कहा कहौं ऐसिन की सुनी सिख, साँपिनि सहित विष रहित फननि की।—केशव। (ख) किती न गोकुल कुल बधू, काहि न किहि सिख दीन। कौने तजी न कुल गली ह्वै मुरली सुर लीन—बिहारी।

🙞 संज्ञा स्त्री० [सं० शिखा] शिखा। चोटी। जैसे,—नख सिख।

संज्ञा पुं० [सं० शिष्य] (१) शिष्य। चेला। (२) गुरु नानक तथा गुरु गोविंदसिंह आदि दस गुरुओं का अनुयायी संप्रदाय। नानकपंथी।

विशेष—इस संप्रदाय के लोग अधिकतर पंजाब में हैं।

सिख हमलो–संज्ञा पुं० [हिं० सिख + अ० हल्म या हमला] भालू को नाचना सिखाने की रीति।

विशेष—कलंदर लोग पहले हाथ में एक लोहे की चूड़ी पहनते हैं और उसे एक लकड़ी से बजाते हैं। इसी के इशारे पर भालू को नाचना सिखाते हैं।

सिखना|🙞–क्रि० स० दे० "सीखना"।

सिखर–संज्ञा पुं० दे० "शिखर"।

संज्ञा पुं० दे० "सिकहर"।

सिखरन–संज्ञा स्त्री० [सं० श्रीखंड] दही मिला हुआ चीनी का शरबत जिसमें केसर, गरी आदि मसाले पड़े हों। उ०—(क) बासौंधी सिखरन अति सोंधी। मिले मिरच मेटत चकचौंधी।—सूर। (ख) सिखरन सौंध छनाई काढ़ी। जामा दही दूधि सों साढ़ी।—जायसी।

सिखलाना–क्रि० स० दे० "सिखाना"।

सिखा–संज्ञा स्त्री० दे० "शिखा"।

सिखाना–क्रि० स० [सं० शिक्षण] (१) शिक्षा देना। उपदेश देना। बतलाना। (२) पढ़ाना। (३) धमकाना। दंड देना। ताड़ना करना।

यौ०—सिखाना पढ़ाना=चालें बताना। चालाकी सिखाना। जैसे,—उसने गवाहों को सिखा पढ़ाकर खूब पक्का कर दिया है।

सिखापन–संज्ञा पुं० [सं० शिक्षा + हिं० पन] (१) शिक्षा। उपदेश। उ०—(क) साजिकै सिंगार ससिमुखी काज, सजनी पै ल्याई केलि मंदिर सिखापन निधानै सी।—प्रतापनारायण। (ख) सचिव सिखापन मधुर सुनायौ। मुदित सहूँ परनाम सुहायौ।—पद्माकर। (२) सिखाने का काम।

सिखावन–संज्ञा पुं० [सं० शिक्षण] सीख। शिक्षा। उपदेश। उ०—(क) का मैं मरम सिखावन सिखी। आयों मरै मीच हति लिखी।—जायसी। (ख) उनको यह मैं दीन्ह सिखावन। धाइहु मध्यम कोउ सुहावन।—विश्राम।

सिखावना🙞|–क्रि० स० दे० "सिखाना"।

सिखिर🙞–संज्ञा पुं० (१) दे० "शिखर"। (२) पारसनाथ पहाड़ जो जैनों का तीर्थ है।

सिखी–संज्ञा पुं० दे० "सिखी"। उ०—(क) सुनि सुनि उतै लिखी मारें, सिखी नाचें इतै, पी करें पपीहा उतै इतै प्यारी सी करें।—प्रतापनारायण। (ख) सिखी सिखिर तनु धातु विराजति सुमन सुगंध प्रवाल।—सूर।

सिगनल–संज्ञा पुं० दे० "सिकंदरा"।

सिगरा🙞|–वि० [सं० समग्र] [स्त्री० सिगरी] सब। संपूर्ण। सारा। उ०—(क) त्यों पद्माकर साँझही से सिगरी निसि केलि कला परगासी।—पद्माकर। (ख) सिगरे जग माँझ हँसावत हैं। रघुबंसिन्ह पाप नसावत हैं।—केशव।

सिगरेट–संज्ञा पुं० [अं०] तंबाकू भरी हुई कागज़ की बत्ती जिसका धुआँ लोग पीते हैं। छोटा सिगार।

सिगरो, सिगरौ🙞|–वि० दे० "सिगरा"। उ०—(क) सिगरोई दूध पियो मेरे मोहन बलहि न देयहु बाटी। सूरदास नँद लेहु दोहनी दुहहु लाल की नाटी।—सूर। (ख) कुल मंडन छत्रसाल बुँदेला। आपु गुरू सिगरौ जग चेला।—लाल कवि।

सिगा–संज्ञा स्त्री० [फा० सेहगाह] चौबीस शोभाओं में से एक। (संगीत)

सिगार–संज्ञा पुं० [अं०] चुरुट।

सिगोती–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

सिगोन–संज्ञा स्त्री० [सं० सिगता, सिकता] नालों के पास पाई जानेवाली लाल रेत मिली मिट्टी।

सिचान🙞–संज्ञा पुं० [सं० संचान] बाज पक्षी। उ०—निति संसौ हंसौ बचतु, मानौ इहि अनुमान। बिरह अगिनि लपटनि सकै, झपट न मीच सिचान।—बिहारी।

सिच्छा–संज्ञा स्त्री० दे० "शिक्षा"। उ०—सैन बैन सब साथ है मन में सिच्छा भाव। निज आपन शृंगार रस सकल रसन को राव।—मुबारक।

सिजदा–संज्ञा पुं० [अ०] प्रणाम। दंडवत। माथा टेकना। सिर झुकाना। (मुसल०)

सिजल–वि० [हिं० सजीला] जो देखने में अच्छा लगे। सुंदर।

सिजली–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पौधा जो दवा के काम में आता है।

सिजावर–संज्ञा पुं० [लश०] पाल के चौखूँटे किनारे से बँधा हुआ रस्सा, जिसके सहारे पाल चढ़ाया जाता है।

सिझना–क्रि० अ० [सं० सिद्ध] आँच पर पकना। सिझाया जाना।

सिझाना–क्रि० स० [सं० सिद्ध, प्रा० सिज्झ + आना (प्रत्य०)] (१) आँच पर गलाना। पकाकर गलाना। (२) पकाना। राँधना। उबालना। (३) मिट्टी को पानी देकर पैर से कुचल और साफ करके बरतन बनाने योग्य बनाना। (४) शरीर को तपाना या कष्ट देना। तपस्या करना। उ०—लेत घूँट भरि पानि सु-रस सुरदानि रिझाई। पपीहरगो तप साधि अपी तन तपन सिझाई।—सुधाकर।

सिटकिनी–संज्ञा स्त्री० [अनु०] किवाड़ों के बंद करने या अड़ाने के लिए लगी हुई लोहे या पीतल की छड़। अगरी। चटकनी। चटखनी।

सिटनल–संज्ञा पुं० दे० "सिगनल"।

सिटपिटाना–क्रि० अ० [अनु०] (१) दब जाना। मंद पड़ जाना। (२) किंकर्तव्य-विमूढ़ होना। स्तब्ध हो जाना। (३) सकुचाना। उ०—पहले तो पंच जी बहुत सिटपिटाये, किंतु सबों का बहुत कुछ आग्रह देख सभापति की कुर्सी पर आ डटे।—बालमुकुंद।

सिटी–संज्ञा स्त्री० [अं०] नगर। शहर।

सिट्टी–संज्ञा स्त्री० [हिं० सीटना] बहुत बढ़ बढ़कर बोलना। वाक्पटुता।

मुहा०—सिट्टी भूलना = घबरा जाना। सिटपिटा जाना।

सिट्ठी–संज्ञा स्त्री० दे० "सीठी"।

सिठनी–संज्ञा स्त्री० [सं० अशिष्ट] विवाह के अवसर पर गाई जानेवाली गाली। सीठना।

सिठाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० सीठी] (१) फीकापन। नीरसता। (२) मंदता।

सिड़–संज्ञा स्त्री० [हिं० सिड़ी] (१) पागलपन। उन्माद। बावलापन। (२) सनक। धुन।

क्रि० प्र०—चढ़ना।

मुहा०—सिड़ सवार होना = सनक होना। धुन होना।

सिड़पन, सिड़पना–संज्ञा पुं० [हिं० सिड़ + पन (प्रत्य०)] (१) पागलपन। बावलापन। (२) सनक। धुन।

सिड़बिल्ला–संज्ञा पुं० [हिं० सिड़ी + बिल्ला] [स्त्री० सिड़बिल्ली] (१) पागल। बावला। (२) बेवकूफ। भोंदू। बुद्धू।

सिड़िया–संज्ञा स्त्री० [हिं० साँटी] डेढ़ हाथ लंबी लकड़ी जिसमें बुनते समय बादला बँधा रहता है।

सिड़ी–वि० [सं० शृणीक] [स्त्री० सिड़िन] (१) पागल। दीवाना। बावला। उन्मत्त। (२) सनकी। धुनवाला। (३) मनमौजी। मनमाना काम करनेवाला।

सितंबर–संज्ञा पुं० [अं०] अँगरेजी नवाँ महीना। अक्तूबर से पहले और अगस्त के पीछे का महीना।

सित–वि० [सं०] (१) श्वेत। सफेद। उजला। शुक्ल। उ०—अरुण असित सित वपु उनहार। करत जगत में तुम अवतार।—सूर। (२) उज्ज्वल। शुभ्र। दीप्त। चमकीला। (३) स्वच्छ। साफ़। निर्मल।

संज्ञा पुं० (१) शुक्र ग्रह। (२) शुक्राचार्य। (३) शुक्ल पक्ष। उजाला पाख। (४) चीनी। शक्कर। (५) सफ़ेद कचनार। (६) स्कंद के एक अनुचर का नाम। (७) मूली। मूलक। (८) चंदन। (९) भोजपत्र। (१०) सफ़ेद तिल। (११) चाँदी।

सितकंगु–संज्ञा स्त्री० [सं०] शाल। सर्जनिर्यास।

सितकंठ–वि० [सं०] जिसकी गर्दन सफेद हो। सफेद गर्दनवाला।

संज्ञा पुं० मुर्गाबी। दात्यूह पक्षी।

संज्ञा पुं० [सं० शितिकंठ] महादेव। शिव। उ०—नीलकंठ सितकंठ शंभु हर। महाकाल कंकाल कृपाकर।—सबलसिंह।

सितकटभी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पेड़।

सितकर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भीमसेनी कपूर। (२) चंद्रमा।

सितकरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली दूब।

सितकर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] अडूसा। वासक।

सितकाच–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्फटिक शीशा। (२) बिल्लौर।

सितकारिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] बला या बरियारा नामक पौधा।

सितकुंजर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऐरावती हाथी। (२) (ऐरावत हाथीवाले) इंद्र।

सितकुंभी–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेत पाटल। सफेद पाँडर का पेड़।

सितक्षार–संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा।

सितक्षुद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद फूल की भटकटैया। श्वेत कंटकारी।

सितचिह्न–संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत मछली। चिंगुआ मछली।

सितच्छत्र–संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत राजछत्र।

सितच्छत्रा, सितच्छत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सौंफ। (२) सोवा।

सितच्छद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हंस। मराल। (२) लाल सहिंजन। रक्त शोभांजन।

सितच्छदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद दूब।
सितजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] मधुखंड। मधुशर्करा।
सितजफल–संज्ञा पुं० [सं०] मधु नारियल।
सितजाम्रक–संज्ञा पुं० [सं०] कलमी आम।
सितता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेदी। श्वेतता।
सिततुरग–संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन।
सितदर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत कुश।
सितदीधिति–संज्ञा पुं० [सं०] (सफेद किरनवाला) चंद्रमा।
सितदीप्य–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद जीरा।
सितद्रु–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की लता।
सितद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुक्लवर्ण वृक्ष। अर्जुन। (२) मोरट। क्षीर मोरट।
सितद्विज–संज्ञा पुं० [सं०] हंस।
सितधातु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुक्ल वर्ण की धातु। (२) खरी। खरिया मिट्टी। दुद्धी।
सितपक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] हंस।
सितपच्छ–संज्ञा पुं० दे० "सितपक्ष"।
सितपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] अर्कपुष्पी। अंधाहुली।
सितपुंखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा।
सितपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तगर का पेड़ या फूल। गुल चाँदनी। (२) एक प्रकार का गन्ना। (३) सिरिस का पेड़। श्वेत रोहित। (४) पिंड खजूर।
सितपुष्पा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बला। बरियारा। (२) कंघी का पौधा। (३) एक प्रकार की चमेली। मल्लिका।
सितपुष्पिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद दागवाला कोढ़। श्वेत कुष्ठ। फूल। चरक।
सितपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्वेत अपराजिता। (२) कैवर्त मुस्तक। केवटी मोथा नाम की घास। (३) काँस नामक तृण। (४) नागदंती। (५) नागवल्ली। पान।
सितप्रभ–संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी।
सितभानु–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा। उ०—सुखहि अलक की छूटियो अंबसि करै दुतिमान। बिन बिभावरी के नहीं जगमगात सितभान।—रामसहाय।
सितम–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) गजब। अनर्थ। आफत। (२) अनीति। जुल्म। अत्याचार।
सितमगर–संज्ञा पुं० [फ़ा०] ज़ालिम। अन्यायी। दुःखदायी।
सितमणि–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्फटिक। बिल्लौर।
सितमरिच–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफ़ेद मिर्च। (२) शिग्रु बीज। सहिंजन के बीज।
सितमाष–संज्ञा पुं० [सं०] राजमाष। लोबिया। बोड़ा।
सितरंज–संज्ञा पुं० [सं०] कपूर। कर्पूर।
सितरंजन–संज्ञा पुं० [सं०] पीत वर्ण। पीला रंग।
सितरश्मि–संज्ञा पुं० [सं०] (सफेद किरनोंवाला) चंद्रमा।
सितराग–संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी। रजत। रौप्य।
सितरुचि–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।
सितरुती–संज्ञा स्त्री० [देश०] गंध पलाशी। कपूर कचरी।
विशेष—पहाड़ी लोग इसकी पत्तियों की चटाइयाँ बनाते हैं।
सितलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] अमृतवल्ली नामक लता।
सितली–संज्ञा स्त्री० [सं० शीतल] वह पसीना जो बेहोशी या अधिक पीड़ा के समय शरीर से निकलता है।
क्रि० प्र०—छूटना।
सितवराह–संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत वराह।
सितवराहपत्नी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी। धरती। उ०—सित वराह-तिय ख्यात सुजस नरसिंह कोप धर। सँग भट बावन सहस सबै भृगुपति सम धनुधर।—गोपाल।
सितवर्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] खिरनी। क्षीरिणी।
सितवर्षाभू–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद पुनर्नवा।
सितवल्लरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जंगली जामुन। कठ जामुन।
सितवल्लीज–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद मिर्च।
सितवाजी–संज्ञा पुं० [सं० सितवाजिन्] अर्जुन।
सितवार, सितवारक–संज्ञा पुं० [सं०] शालिंच शाक। शांति शाक।
सितवारिक–संज्ञा पुं० [सं०] सैंहली। सिंहली पीपल।
सितशिंबिक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गेहूँ।
सितशिव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेंधा नमक। (२) शमी का पेड़।
सितशूक–संज्ञा पुं० [सं०] जौ। यव।
सितशूरण–संज्ञा पुं० [सं०] बन सूरण। सफेद जमीकंद।
सितशृंगी–संज्ञा स्त्री० [सं०] अतीस। अतिविषा।
सितसप्ति–संज्ञा पुं० [सं०] (सफेद घोड़ेवाले) अर्जुन।
सितसागर–संज्ञा पुं० [सं०] क्षीर सागर। उ०—सित सागर से छवि उज्जवल जा की। जनु पैठक सोहत है कमला की।—गुमान।
सितसार, सितसारक–संज्ञा पुं० [सं०] शालिंच शाक। शांति शाक। लोह मारक।
सितसिंधु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्षीर समुद्र। (२) गंगा।
सितसिंही–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफ़ेद भटकटैया। श्वेत कंटकारी।
सितसिद्धार्थ–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद या पीली सरसों जो मंत्र या झाड़ फूँक में काम आती है।
सितसूर्य्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर। आदित्यभक्ता।
सितहूण–संज्ञा पुं० [सं०] हूणों की एक शाखा।
सितांक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली। वालुकागड़ मत्स्य।

सितांग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्वेत रोहितक वृक्ष। रोहिड़ा सफेद। (२) बेला। वार्षिकी पुष्प वृक्ष।
सितांबर–वि० [सं०] श्वेत वस्त्र धारण करनेवाले।
संज्ञा पुं० जैनों का श्वेतांबर संप्रदाय।
सितांशु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।
सिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चीनी। शक्कर। शर्करा। उ०—दूध औटि तेहि सिता मिलाऊँ। मैं नारायण भोग लगाऊँ।—रघुराज। (२) शुक्ल पक्ष। उ०—चैत चारु नौमी सिता मध्य गगन गत भानु। नखत जोग ग्रह लगन भल दिन मंगल मोद निधानु।—तुलसी। (३) मल्लिका। मोतिया। (४) श्वेत कंटकारी। सफेद भटकटैया। (५) बकुची। सोमराजी। (६) विदारीकंद। (७) श्वेतदूर्वा। (८) चाँदनी। चंद्रिका। (९) कुटुंबिनी का पौधा। (१०) मद्य। शराब। (११) पिंगा। (१२) त्रायमाणा लता। (१३) अर्कपुष्पी। अंधाहुली। (१४) वच। (१५) सिंहली पीपल। (१६) आमड़ा। आम्रातक। (१७) गोरोचन। (१८) वृद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (१९) चाँदी। रजत। रूपा। (२०) श्वेत निसोथ। (२१) त्रिसंधि नामक पुष्प वृक्ष। (२२) पुनर्नवा। सफेद गदहपूरना। (२३) पहाड़ी अपराजिता। (२४) सफेद पाढर। पाढला वृक्ष। (२५) सफेद सेम। (२६) मूर्वा। गोकर्णी लता। मुरा।
सिताइश–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) तारीफ़। प्रशंसा। (२) धन्यवाद। शुक्रिया। (३) वाहवाही। शाबाशी।
सिताखंड–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मधु शर्करा। शहद से बनाई हुई शक्कर। (२) मिस्री।
सिताग्य–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद मिर्च।
सिताग्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद दूब।
सितांग–संज्ञा पुं० [सं०] काँटा। कंटक।
सितांजली–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद मिर्च।
सितादि–संज्ञा पुं० [सं०] शक्कर आदि का कारण या पूर्व रूप, गुड़।
सितानन–वि० [सं०] सफेद मुँहवाला।
संज्ञा पुं० (१) गरुड़। (२) बेल। बिल्व वृक्ष।
सितापांग–संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।
सिताब–क्रि० वि० [फ़ा० शिताब] जल्दी। तुरंत। झटपट। उ०—प्रीतम आवत आनि कै मिसरी नैन सिताब। हित मग मैं कर देत हैं अँसुवन को छिरकाव।—रसनिधि।
सिताभ–संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।
सिताभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] तकरा। तकाड़ा क्षुप।
सिताभ्र सिताभ्रक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद बादल। (२) कपूर। कर्पूर।
सिताम्भोधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद पाँडर। श्वेत पाटला।
सितायुध–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।
सितार–संज्ञा पुं० [सं० सप्त+तार, फ़ा० सेहतार] एक प्रकार का प्रसिद्ध बाजा जो लगे हुए तारों को उँगली से झनकारने से बजता है। एक प्रकार की वीणा।
विशेष—यह काठ की दो ढाई हाथ लंबी और ४–५ अंगुल चौड़ी पटरी के एक छोर पर गोल कद्दू की तूँबी जड़कर बनाया जाता है। इसका ऊपर का भाग समतल और चिपटा होता है और नीचे का गोल। समतल भाग पर तीन से लेकर सात तार लंबाई के बल में बँधे रहते हैं।
सितारबाज–संज्ञा पुं० [हिं० सितार+फ़ा० बाज] सितार बजानेवाला। सितारिया।
सितारा–संज्ञा पुं० [फ़ा० सितारः] (१) तारा। नक्षत्र। (२) भाग्य। प्रारब्ध। नसीब।
मुहा०—सितारा चमकना = भाग्योदय होना। अच्छी किस्मत होना। सितारा बलंद होना = दे० 'सितारा चमकना'। सितारा मिलना = (१) फलित ज्योतिष में ग्रह मैत्री मिलना। गणना बैठना। (२) मन मिलना। परस्पर प्रेम होना।
(३) चाँदी या सोने के पत्तर की बनी हुई छोटी गोल बिंदी के आकार की टिकिया जो कामदार टोपी, जूते आदि में टाँकी जाती है या शोभा के लिये चेहरे पर चिपकाई जाती है। चमकी।
संज्ञा पुं० दे० "सितार"। उ०—जलतरंग कानून अमृत कुंडली सुबीनर। सारंगी रु रबाब सितारा महुवर कीना।—सूदन।
सितारापेशानी–वि० [फ़ा०] (घोड़ा) जिसके माथे पर अँगूठे से छिप जाने योग्य सफेद टीका या बिंदी हो। (ऐसा घोड़ा बहुत ऐबी समझा जाता है।)
सितारिया–संज्ञा पुं० [फ़ा० सितार+इया] सितार बजानेवाला।
सितारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सितार] छोटा सितार। छोटा तंबूरा।
सितारेहिंद–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार की उपाधि जो सरकार की ओर से सम्मानार्थ दी जाती है।
विशेष—यह शब्द वास्तव में अँगरेजी वाक्य "स्टार ऑफ़ इंडिया" का अनुवाद है।
सितालक, सितालर्क–संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत अर्क। सफेद मदार।
सितालता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अमृतवल्ली। अमृतस्रवा। (२) सफेद दूब।
सितालि कटभी–संज्ञा स्त्री० [सं०] किंकिणी वृक्ष। सफेद कटभी।
सितालिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] ताल की सीपी। जल सीप। शुक्ति। सितुही।
सितावर–संज्ञा स्त्री० [देश०] बरसात में उगनेवाला एक पौधा जो दवा के काम में आता है। सर्पदंष्ट्रा। पीतपुष्पा। त्रिपाद। दूर्वपत्रा। त्रिकोणबीजा।

विशेष—यह पौधा हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा और झाड़दार होता है। इसकी पत्तियाँ दूब से मिलती जुलती होती हैं। इसके डंठल भी हरे रंग के होते हैं। इसका मूसला कत्थई रंग का और बहुत बारीक रेशों से युक्त होता है। इसमें अंगुल डेढ़ अंगुल घेरे के गोल पीले फूल लगते हैं। इसके फलों की नोक पर बैंगनी रंग का लंबा सूत सा निकला होता है। फलों के भीतर तिकोने कत्थई रंग के बीज होते हैं। यही बीज विशेषतः औषध के काम में आते हैं और सिताव के नाम से बिकते हैं। ये बहुत कड़वे और गंधयुक्त होते हैं। इस पौधे की जड़ और पत्तियाँ भी दवा के काम में आती हैं। वैद्यक में सिताव गरम, कड़वी, दस्तावर तथा वात कफ को नाश करनेवाली, रुधिर को शुद्ध करनेवाली, बल-वीर्य और दूध को बढ़ानेवाली तथा पित्त के रोगों में लाभकारी कही गई है।

सितावभेद—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पौधा जिसके सब अंग औषध के काम में आते हैं।

विशेष—इसकी पत्तियाँ लंबी, गँठीली और कटावदार होती हैं और उनमें से तेल की सी कटु गंध आती है। फूल पीला-पन लिए होते हैं। फलों में चार बीजकोश होते हैं जिनमें से प्रत्येक में ७ या ८ बीज होते हैं।

सितावर—संज्ञा पुं० [सं०] सिरियारी। सुनिष्णक शाक। सुसना का साग।

सितावरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची। सोमराजी।

सिताश्व—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अर्जुन का एक नाम। (२) चंद्रमा।

सितासित—संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्वेत और श्याम। सफेद और काला। उ०—कुच तें श्रम जलधार चलि मिलि रोमावलि रंग। मनो मेरु की तरहटी भयो सितासित संग।—मतिराम। (२) बलदेव। (३) शुक्र के सहित शनि। (४) जमुना के सहित गंगा।

सितासित रोग—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग।

सितासिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची। सोमराजी।

सिताह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुक्र ग्रह। (२) श्वेत रोहित वृक्ष। (३) सफेद फूलों का सहिंजन। (४) सफेद या हरे डंठल की तुलसी।

सिति—वि० दे० "शिति"।

सितिकंठ—संज्ञा पुं० [सं० शितिकंठ] नीलकंठ। शिव। महादेव।

सितिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेतता। सफेदी।

सितिवार, सितिवारक—संज्ञा पुं० [सं० शितिवार] (१) शिरियारी शाक। सुसना का साग। (२) कुड़ा। कुटज वृक्ष। कोरैया।

सितिवास—संज्ञा पुं० [सं० शितिवासस्] (नीले वस्त्रवाले) बलराम।

सितिसारक—संज्ञा पुं० [सं०] शालि शाक। शालिंच शाक।

सितुई—संज्ञा स्त्री० [सं० शुक्ति] ताल की सीपी। सुतुही। सितुही।

सितुही—संज्ञा स्त्री० [सं० शुक्तिका] ताल की सीपी। सुतुही।

सितून—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) स्तंभ। खंभा। थूनी। (२) लाट। मीनार।

सितेतर—वि० [सं०] (श्वेत से भिन्न) काला या नीला।

संज्ञा पुं० (१) कृष्ण धान्य। काला धान। (२) कुलथी। कुरथी।

सितेतरगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि। आग।

सितोत्पल—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कमल।

सितोदर—संज्ञा पुं० [सं०] (श्वेत उदरवाला) कुबेर।

सितोदरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (श्वेत उदरवाली) एक प्रकार की कौड़ी।

सितोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन। संदल।

वि० चीनी से उत्पन्न या बना हुआ।

सितोपल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कठिनी। खड़ी। खरिया मिट्टी। दुद्धी। (२) बिल्लौर। स्फटिक मणि।

सितोपला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मिस्री। (२) चीनी। शक्कर।

सिथिल—वि० दे० "शिथिल"।

सिद—संज्ञा पुं० [देश०] बाकली।

सिदका—संज्ञा पुं० दे० "सदका"।

सिदरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सेहदरी] तीन दरवाजोंवाला कमरा या बरामदा। तिदुवारी दालान। उ०—बहु बेलिन बूटन संयुत सोहैं। परदा सिदरीन लगे मन मोहैं।—गुमान।

सिदामा—संज्ञा पुं० दे० "श्रीदामा"।

सिदिक—वि० [अ० सिद्दक] सच्चा। सत्य। उ०—अबा बकर सिद्दीक सयाने। पहिले सिदिक दीन वै आने।—जायसी।

सिद्गुंड—संज्ञा पुं० [सं०] वह वर्णसंकर पुरुष जिसका पिता ब्राह्मण और माता रजकी हो।

सिद्ध—वि० [सं०] (१) जिसका साधन हो चुका हो। जो पूरा हो गया हो। जो किया जा चुका हो। संपन्न। संपादित। निबटा हुआ। अंजाम दिया हुआ। जैसे,—कार्य्य सिद्ध होना। (२) प्राप्त। सफल। हासिल। उपलब्ध। जैसे,—मनोरथ सिद्ध होना, प्रयत्न सिद्ध होना, उद्देश्य सिद्ध होना। (३) प्रयत्न में सफल। कृतकार्य्य। जिसका मतलब पूरा हो चुका हो। कामयाब। (४) जिसका तप या योग-साधन पूरा हो चुका हो। जिसने योग या तप द्वारा अलौकिक लाभ या सिद्धि प्राप्त की हो। पहुँचा हुआ। जैसे,—बाबा जी बड़े सिद्ध महात्मा हैं। (५) करामाती। योग की विभूतियाँ दिखानेवाला। (६) मोक्ष का अधिकारी। (७) लक्ष्य पर पहुँचा हुआ। निशाने पर बैठा हुआ। (८) जो ठीक घटा हो। जिस (कथन) के अनुसार कोई बात हुई हो। जैसे,—वचन सिद्ध होना, आशीर्वाद सिद्ध होना। (९) जो तर्क या प्रमाण द्वारा निश्चित हो।

प्रमाणित। साबित। निरूपित। जैसे,—अपराध सिद्ध करना। कथन को सत्य सिद्ध करना। व्याकरण का प्रयोग सिद्ध करना। (१०) जिसका फैसला या निबटारा हो गया हो। फैसल। निर्णीत। (११) शोधित। अदा किया हुआ। चुकता। (ऋण आदि) (१२) संघटित। अंतर्भूत। जैसे,—स्वभाव-सिद्ध बात। (१३) जो अनुकूल किया गया हो। कार्य्य-साधन के उपयुक्त बनाया हुआ। गौं पर चढ़ा हुआ। जैसे,—उसको हम कुछ रुपए देकर सिद्ध कर लेंगे। (१४) आँच पर मुलायम किया हुआ। सीझा हुआ। पका हुआ। उबला हुआ। जैसे,—सिद्ध अन्न। (१५) प्रसिद्ध। विख्यात। (१६) बना हुआ। तैयार। प्रस्तुत।

संज्ञा पुं० (१) वह जिसने योग या तप में सिद्धि प्राप्त की हो। योग या तप द्वारा अलौकिक शक्ति-प्राप्त पुरुष। जैसे,—यहाँ एक सिद्ध आए हैं। (२) कोई ज्ञानी या भक्त महात्मा। मोक्ष का अधिकारी पुरुष। (३) एक प्रकार के देवता। एक देवयोनि।

विशेष—सिद्धों का निवास स्थान भुवर्लोक कहा गया है। वायुपुराण के अनुसार उनकी संख्या अठासी हजार है और वे सूर्य्य के उत्तर और सप्तर्षि के दक्षिण अंतरिक्ष में वास करते हैं। वे अमर कहे गए हैं, पर केवल एक कल्प भर तक के लिये। कहीं कहीं सिद्धों का निवास गंधर्व, किन्नर आदि के समान हिमालय पर्वत भी कहा गया है।

(४) अर्हत। जिन। (५) ज्योतिष का एक योग। (६) व्यवहार। मुकदमा। मामला। (७) काला धतूरा। (८) गुड़। (९) ज्योतिष में विष्कंभ आदि २७ योगों में से इक्कीसवाँ योग। (१०) कृष्ण सिंदुवार। काली निर्गुंडी। (११) सफेद सरसों।

सिद्धक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सँभालू। सिंदुवार वृक्ष। (२) शाल वृक्ष। साखू।

सिद्धकाम-वि० [सं०] (१) जिसकी कामना पूरी हुई हो। जिसका प्रयोजन सिद्ध हो चुका हो। (२) सफल। कृतार्थ।

सिद्धकामेश्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कामाख्या अर्थात् दुर्गा की पंचमूर्ति के अंतर्गत प्रथम मूर्ति।

सिद्धकारी-संज्ञा पुं० [सं० सिद्धकारिन्] [स्त्री० सिद्धकारिणी] धर्मशास्त्र के अनुसार आचरण करनेवाला।

सिद्धक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ योग या तंत्र प्रयोग जल्दी सिद्ध हो। (२) दंडक वन के एक विशेष भाग का नाम।

सिद्धगंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मंदाकिनी। आकाश गंगा। स्वर्ग गंगा।

सिद्ध गति-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मतानुसार वे कर्म जिनसे मनुष्य सिद्ध हो।

सिद्धगुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह मंत्र-सिद्ध गोली जिसे मुँह में रख लेने से अदृश्य होने आदि की अद्भुत शक्ति आ जाती है।

सिद्धग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रेत जो उन्माद रोग उत्पन्न करता है।

सिद्धजल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काँजी। (२) औटा हुआ जल।

सिद्धता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिद्ध होने की अवस्था। (२) प्रमाणिकता। सिद्धि। (३) पूर्णता।

सिद्धत्व-संज्ञा पुं० [सं०] सिद्धता।

सिद्धदेव-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

सिद्धधातु-संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

सिद्धनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिद्धेश्वर। महादेव। (२) गुरुतुर्रा।

सिद्धनामक-संज्ञा पुं० [सं०] अश्मंतक वृक्ष। आपटा।

सिद्धपक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी प्रतिज्ञा या बात का वह अंश जो प्रमाणित हो चुका हो। (२) प्रमाणित बात। साबित बात।

सिद्धपथ-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश। अंतरिक्ष।

सिद्धपात्र-संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद के एक अनुचर का नाम।

सिद्धपीठ-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ योग, तप या तांत्रिक प्रयोग करने से शीघ्र सिद्धि प्राप्त हो। उ०—साहसी समीरसूनु नीरनिधि लंघि लखि लंक सिद्धपीठ निसि जागो है मसान सो।—तुलसी।

सिद्धपुर-संज्ञा पुं० [सं०] एक कल्पित नगर जो किसी के मत से पृथ्वी के उत्तरी छोर पर और किसी के मत से दक्षिण या पाताल में है। (ज्योतिष)

सिद्धपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] करवीर। कनेर का पेड़।

विशेष—यह सिद्ध लोगों को प्रिय और मंत्रसिद्धि में प्रयुक्त किया जाता है।

सिद्धप्रयोजन-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद सरसों। श्वेत सर्षप।

सिद्धभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिद्धपीठ। सिद्धक्षेत्र।

सिद्धमंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] सिद्ध किया हुआ मंत्र।

सिद्धमातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक देवी का नाम। (२) एक प्रकार की लिपि।

सिद्धमोदक-संज्ञा पुं० [सं०] सुरंजबीन की गोंद। तवराजखंड।

सिद्धयामल-संज्ञा पुं० [सं०] एक तंत्र का नाम।

सिद्धयोग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष का एक योग। (२) एक यौगिक रसौषध।

सिद्धयोगिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक योगिनी का नाम।

सिद्धयोगी-संज्ञा पुं० [सं० सिद्धयोगिन्] शिव। महादेव।

सिद्धर-संज्ञा पुं० [?] एक ब्राह्मण जो कंस की आज्ञा से कृष्ण

को मारने आया था। उ०—सिद्ध बाँभन करम कसाई। कह्यो कंस सों मचन सुनाई।—सूर।

सिद्धरस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारा। पारद। (२) रसेंद्र दर्शन के अनुसार वह योगी जिससे पारा सिद्ध हो गया हो। सिद्ध रसायनी।

सिद्धरसायन-संज्ञा पुं० [सं०] वह रसौषध जिससे दीर्घ जीवन और प्रभूत शक्ति प्राप्त हो।

सिद्धलक्ष-वि० [सं०] जिसका निशाना खूब सधा हो। जो कभी न चूके।

सिद्धवस्ति-संज्ञा पुं० [सं०] तेल आदि की वस्ति या पिचकारी। (आयुर्वेद)

सिद्धविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक महाविद्या का नाम।

सिद्धविनायक-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश की एक मूर्ति।

सिद्धशिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मत के अनुसार ऊर्ध्वलोक का एक स्थान।

विशेष—कहते हैं कि यह शिला स्वर्गपुरी के ऊपर ४५ लाख योजन लंबी, इतनी ही चौड़ी तथा ८ योजन मोटी है। मोती के श्वेतहार या गो-दुग्ध से भी उज्वल है; सोने के समान दमकती हुई और स्फटिक से भी निर्मल है। यह चौदहवें लोक की शिला पर है और इसके ऊपर शिवपुर धाम है। यहाँ मुक्त पुरुष रहते हैं। यहाँ किसी प्रकार का बंधन या दुःख नहीं है।

सिद्धसंकल्प-वि० [सं०] जिसकी सब कामनाएँ पूरी हों।

सिद्धसरित्-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आकाश गंगा। (२) गंगा।

सिद्धसलिल-संज्ञा पुं० [सं०] काँजी। सिद्धजल।

सिद्धसाधक-संज्ञा पुं० [सं०] सब मनोरथ पूर्ण करनेवाला, कल्प वृक्ष।

सिद्धसाधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिद्धि के लिये योग या तंत्र की क्रिया का अनुष्ठान। (२) सफेद सरसों। (३) प्रमाणित बात को फिर प्रमाणित करना।

सिद्धसाधित-वि० [सं०] जिसने व्यवहार द्वारा ही चिकित्सा का अनुभव प्राप्त किया हो, शास्त्र के अध्ययन द्वारा नहीं।

सिद्धसाध्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मंत्र।

वि० (१) जो किया जानेवाला काम पूरा कर चुका हो। (२) प्रमाणित। साबित।

सिद्धसिंधु-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश गंगा।

सिद्धसुसिद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मंत्र।

सिद्धसेन-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय।

सिद्धसेवित-संज्ञा पुं० [सं०] शिव या भैरव का एक रूप।

सिद्धस्थाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिद्ध योगियों की बटलोई जिसमें से आवश्यकतानुसार जितना चाहे उतना भोजन निकाला जा सकता है।

विशेष—कहते हैं कि इस प्रकार की एक बटलोई व्यास जी ने पांडवों के बनवास के समय द्रौपदी को दी थी।

सिद्धहस्त-वि० [सं०] (१) जिसका हाथ किसी काम में मँजा हो। (२) कार्य्य कुशल। प्रवीण। निपुण।

सिद्धांगना-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिद्ध नामक देवताओं की स्त्रियाँ।

सिद्धांजन-संज्ञा पुं० [सं०] वह अंजन जिसे आँख में लगा लेने से भूमि के नीचे की वस्तुएँ (गड़े खज़ाने आदि) भी दिखाई देने लगती हैं।

सिद्धांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भली भाँति सोच विचार कर स्थिर किया हुआ मत। वह बात जिसके सदा सत्य होने का निश्चय मन में हो। उसूल। (२) प्रधान लक्ष्य। मुख्य उद्देश्य या अभिप्राय। ठीक मतलब। (३) वह बात जो विद्वानों या उनके किसी वर्ग या संप्रदाय द्वारा सत्य मानी जाती हो। मत।

विशेष—न्याय शास्त्र में सिद्धांत चार प्रकार के कहे गए हैं—सर्वतंत्रसिद्धांत, प्रतितंत्रसिद्धांत, अधिकरणसिद्धांत और अभ्युपगम सिद्धांत। सर्वतंत्र वह सिद्धांत है जिसे विद्वानों के सब वर्ग या संप्रदाय मानते हों अर्थात् जो सर्वसम्मत हो। प्रतितंत्र वह सिद्धांत है जिसे किसी शाखा के दार्शनिक मानते हों और किसी शाखा के जिसका विरोध करते हों। जैसे,—पुरुष या आत्मा असंख्य हैं, यह सांख्य का मत है, जिसका वेदांत विरोध करता है। अधिकरण वह सिद्धांत है जिसे मान लेने पर कुछ और सिद्धांत भी साथ मानने ही पड़ते हों—जैसे, यह मान लेने पर कि आत्मा केवल द्रष्टा है, कर्त्ता नहीं, यह मानना ही पड़ता है कि आत्मा मन आदि इंद्रियों से पृथक् कोई सत्ता है। अभ्युपगम वह सिद्धांत है जो स्पष्ट रूप से कहा न गया हो, पर सब स्थलों को विचार करने से प्रकट होता हो। जैसे, न्यायसूत्रों में कहीं यह स्पष्ट नहीं कहा गया है कि मन भी एक इंद्रिय है, पर मन-संबंधी सूत्रों का विचार करने पर यह बात प्रकट हो जाती है।

(४) सम्मति। पक्की राय। (५) निर्णीत अर्थ या विषय। नतीजा। तत्व की बात।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।—पर पहुँचना।

(६) पूर्व पक्ष के खंडन के उपरांत स्थिर मत। (७) किसी शास्त्र (ज्योतिष, गणित आदि) पर लिखी हुई कोई विशेष पुस्तक। जैसे,—सूर्य्य सिद्धांत, ब्रह्म सिद्धांत।

सिद्धांतज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] सिद्धांत को जाननेवाला। तत्वज्ञ। विद्वान्।

सिद्धांताचार-संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों का आचार। एकाग्र चित्त से शक्ति की उपासना।

सिद्धांतित-वि० [सं०] तर्क द्वारा प्रमाणित। निर्णीत। निरूपित। साबित।

सिद्धांती–संज्ञा पुं० [सं० सिद्धान्तिन्] (१) तार्किक। (२) शास्त्र के तत्व को जाननेवाला।

सिद्धांतीय–वि० [सं०] सिद्धांत संबंधी।

सिद्धा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिद्ध की स्त्री। देवांगना। (२) एक योगिनी का नाम। (३) ऋद्धि नाम की जड़ी। (४) चंद्रशेखर के मत से आर्या छंद का १५वाँ भेद, जिसमें १३ गुरु और ३१ लघु होते हैं।

सिद्धाई–संज्ञा स्त्री० [सं० सिद्ध+हिं० आई] सिद्धपन। सिद्ध होने की अवस्था। उ०—झूठ-मूठ जटा बढ़ाकर सिद्धाई करते और जप पुरश्चरण आदि में फँसे रहते हैं।—दयानंद।

सिद्धापगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आकाश गंगा। (२) गंगा नदी।

सिद्धारि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मंत्र।

सिद्धार्थ–वि० [सं०] जिसकी कामनाएँ पूर्ण हो गई हों। सफल मनोरथ। पूर्णकाम।

संज्ञा पुं० (१) गौतम बुद्ध। (२) स्कंद के गणों में से एक। (३) राजा दशरथ का एक मंत्री। उ०—दृष्ट जयंतौ अरु विजय, सिद्धारथ मुनि नाम। तथा अर्थ साधक अपर, त्यों अशोक मतिधाम।—रघुराज। (४) साठ संवत्सरों में से एक। (५) जैनों के २४वें अर्हत् महावीर के पिता का नाम। (६) वह भवन जिसमें पश्चिम और दक्षिण ओर बड़ी शालाएँ (कमरे या हाल) हों।

सिद्धार्थक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्वेत सर्षप। सफ़ेद सरसों। (२) एक प्रकार का मरहम।

सिद्धार्थमति–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

सिद्धार्था–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जैनों के चौथे अर्हत की माता का नाम। (२) सफेद सरसों। (३) देशी अंजीर। (४) साठ संवत्सरों में से ५३वें संवत्सर का नाम।

सिद्धार्थी–संज्ञा पुं० [सं० सिद्धार्थिन्] साठ संवत्सरों में से ५३वें संवत्सर का नाम।

सिद्धासन–संज्ञा पुं० [सं०] हठ योग के ८४ आसनों में से एक प्रधान आसन।

विशेष—मलेंद्रिय और मूत्रेंद्रिय के बीच में बाएँ पैर का तलुआ तथा शिश्न के ऊपर दाहिना पैर और छाती के ऊपर चिबुक रखकर दोनों भौंहों के मध्य भाग को देखना 'सिद्धासन' कहलाता है।

सिद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काम का पूरा होना। पूर्णता। प्रयोजन निकलना। जैसे,—कार्य्य सिद्ध होना। (२) सफलता। कृतकार्य्यता। कामयाबी। (३) लक्ष्यवेध। निशाना मारना। (४) परिशोध। बेबाकी। चुकता होना। (ऋण का) (५) प्रमाणित होना। साबित होना। (६) किसी बात का ठहराया जाना। निश्चय। पक्का होना। (७) निर्णय। फैसला। निबटारा। (८) हल होना। (९) परिपक्वता। पकना। सीझना। (१०) वृद्धि। भाग्योदय। सुख-समृद्धि। (११) तप या योग के पूरे होने का अलौकिक फल। योग द्वारा प्राप्त अलौकिक शक्ति या संपन्नता। विभूति।

विशेष—योग की अष्टसिद्धियाँ प्रसिद्ध हैं—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। पुराणों में ये आठ सिद्धियाँ और बतलाई गई हैं—अंजन, गुटका, पादुका, धातुभेद, बेताल, वज्र, रसायन और योगिनी। सांख्य में सिद्धियाँ इस प्रकार कही गई हैं—तार, सुतार, तारतार, रम्यक, आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक।

(१२) मुक्ति। मोक्ष। (१३) अद्भुत प्रवीणता। कौशल। निपुणता। कमाल। दक्षता। (१४) प्रभाव। असर। (१५) नाटक के छत्तीस लक्षणों में से एक जिसमें अभिमत वस्तु की सिद्धि के लिये अनेक वस्तुओं का कथन होता है। जैसे,—कृष्ण में जो नीति थी, अर्जुन में जो विक्रम था, सब आपकी विजय के लिये आप में आ जाय। (१६) ऋद्धि या वृद्धि नाम की ओषधि। (१७) बुद्धि। (१८) संगीत में एक श्रुति। (१९) दुर्गा का एक नाम। (२०) दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो धर्म की पत्नी थी। (२१) गणेश की दो स्त्रियों में से एक। (२२) मेदासिंगी। (२३) भाँग। विजया। (२४) छप्पय छंद के ४१वें भेद का नाम जिसमें ३० गुरु और ९२ लघु कुल १२२ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। (२५) राजा जनक की पुत्रवधू। लक्ष्मीनिधि की पत्नी।

सिद्धिद–वि० [सं०] सिद्धि देनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) बटुक भैरव। (२) पुत्रजीव वृक्ष। (३) बड़ा शाल वृक्ष।

सिद्धिदाता–संज्ञा पुं० [सं० सिद्धिदातृ] [स्त्री० सिद्धिदात्री] (सिद्धि देनेवाले) गणेश।

सिद्धिप्रद–वि० [सं०] [स्त्री० सिद्धिप्रदा] सिद्धि देनेवाला।

सिद्धिभूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ योग या तप शीघ्र सिद्ध होता हो।

सिद्धियात्रिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह यात्री जो योग की सिद्धि प्राप्त करने के लिये यात्रा करता हो।

सिद्धियोग–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में एक प्रकार का शुभ योग।

सिद्धियोगिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक योगिनी का नाम।

सिद्धिरस–संज्ञा पुं० दे० "सिद्धरस"।

सिद्धिराज–संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

सिद्धिली–संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी पिपीलिका। छोटी चींटी।

सिद्धिसाधक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद सरसों। (२) दमनक। दौने का पौधा।

सिद्धिस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुण्य स्थान। तीर्थ। (२) आयुर्वेद के ग्रंथ में चिकित्सा का प्रकरण।

सिद्धीश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) एक पुण्य क्षेत्र का नाम।

सिद्धेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सिद्धेश्वरी] (१) बड़ा सिद्ध। महायोगी। उ०—सत्यनाथ आदिक सिद्धेश्वर। श्री दोलादि बसैं श्री शंकर।—शंकरदिग्विजय। (२) शिव। महादेव। (३) गुलतुर्रा। शंखोदरी।

सिद्धोदक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) काँजी। कांजिक। (२) एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

सिद्धौघ–संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के गुरुओं का एक वर्ग। मंत्र-शास्त्र के आचार्य।

विशेष—इस वर्ग के अंतर्गत ये पाँच योगी या ऋषि हैं—नारद, कश्यप, शंभु, भार्गव और कुलकौशिक।

सिध–वि० दे० "सिद्ध"।

संज्ञा स्त्री० चार हाथ की एक लंबी लकड़ी जिसमें साँड़ी बँधी रहती है।

सिधरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

सिधवाई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० सीधा, सिधवाना] गाड़ी के पहिए निकालने के समय गाड़ी को उठाए रखने के लिये लगाई हुई टेक।

सिधवाना†–क्रि० स० [हिं० सीधा] सीधा कराना।

सिधाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० सीधा] सीधापन। सरलता।

सिधाना⊛–क्रि० अ० [सं० सिद्ध = दूर किया हुआ, हटाया हुआ + आना (प्रत्य०)] सिधारना। जाना। गमन करना। प्रस्थान करना। चलना। उ०—(क) लायक है भृगुनायक सो धनु सायक सौंपि सुभाय सिधाए।—तुलसी। (ख) बाढ़ै न चंप कली की थली अलिनी नलिनी की निदान सिधावै।—केशव। (ग) उग्रसेन सब कुटुम लै ता वरि सिधायो।—सूर।

सिधारना–क्रि० अ० [हिं० सिधाना] (१) जाना। गमन करना। प्रस्थान करना। विदा होना। रवाना होना। उ०—(क) हरि बैकुंठ सिधारे पुनि ध्रुव आये अपने धाम। कीन्हों राज सीस पट वर्षन कीन्हे अकलन काम।—सूर। (ख) मुदित नयन फल पाइ गाइ गुन सुर सानंद सिधारे।—तुलसी। (ग) सूकर श्वान समेत सबै हरिचन्द्र के सत्य सदेह सिधारे।—केशव। (२) मरना। स्वर्गवास होना। जैसे,—ये तो कल रात्रि में ही सिधार गए।

संयो० क्रि०—जाना।

†⊛क्रि० स० दे० "सुधारना"। उ०—आँगन हीरन साँजि सँवारो। छजनि मैं करि दंत सिधारो।—गुमान।

सिधि⊛†–संज्ञा स्त्री० दे० "सिद्धि"।

सिधि गुटका–संज्ञा स्त्री० दे० "सिद्ध गुटिका"।

सिधु–संज्ञा पुं० दे० "सीधु"।

सिधोई†–संज्ञा स्त्री० दे० "सिधवाई"।

सिध्म–वि० [सं०] (१) सफेद दागवाला। (२) श्वेत कुष्टवाला।

सिध्मपुष्पिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सेंहुआ। छीप। किलास।

सिध्मल–वि० [सं०] छीपा रोगवाला। सेहुँएवाला।

सिध्मला–संज्ञा स्त्री० [सं०] सूखी मछली।

सिध्य–संज्ञा पुं० [सं०] पुष्य नक्षत्र।

सिध्र–वि० [सं०] (१) साधु। (२) सफल। असर करनेवाला।

संज्ञा पुं० वृक्ष। पेड़।

सिध्रक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष।

सिन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर। देह। (२) वस्त्र। पहनावा। (३) ग्रास। कौर। (४) कुंभी का पेड़ जो हिमालय की तराई में होता है और जिसकी छाल का काढ़ा आम और अतीसार में दिया जाता है।

वि० (१) काना। एक आँख का। (२) सित। श्वेत।

संज्ञा पुं० [अ०] उम्र। अवस्था। वयस।

सिनक–संज्ञा स्त्री० [सं० सिंघाणक] कपाल के क्लेदों आदि का मल जो नाक से निकलता हो। रेंट। नेटा।

सिनकना–क्रि० अ० [सं० सिंघाणक + ना] जोर से हवा निकालकर नाक का मल बाहर फेंकना। साँस के झोंके से नाक से रेंट निकालना।

संयो० क्रि०—देना।

सिनट–संज्ञा पुं० [अं० सेनेट] (१) शासन का समस्त अधिकार रखनेवाली सभा। (२) विश्व-विद्यालय का प्रबंध करनेवाली सभा।

सिनि–संज्ञा पुं० [सं० शिनि] (१) एक यादव का नाम जो सात्यकि का पिता था। उ०—सिनि स्यंदन चढ़ि चलेउ लाइ चंदन जदुनंदन।—गोपाल। (२) क्षत्रियों की एक प्राचीन शाखा।

सिनी–संज्ञा पुं० दे० "सिनि"। उ०—चलेउ सिनी-पति विदित धरि धरनीपति अति मति।—गोपाल।

संज्ञा स्त्री० [सं०] सिनीवाली।

सिनीत–संज्ञा स्त्री० [देश०] सात रस्सियों को बटकर बनाई गई चिपटी रस्सी। (लश्करी)

सिनीवाली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वैदिक देवी, मंत्रों में जिसका आह्वान सरस्वती आदि के साथ मिलता है।

विशेष—ऋग्वेद में यह चौड़ी कटिवाली, सुंदर भुजाओं और उँगलियोंवाली कही गई है और गर्भप्रसव की अधिष्ठात्री देवी मानी गई है। अथर्व वेद में सिनीवाली को विष्णु की पत्नी कहा है। पीछे की श्रुतियों में जिस प्रकार राका शुक्ल पक्ष की द्वितीया की अधिष्ठात्री देवी कही गई है, उसी प्रकार सिनीवाली शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा की, जब कि नया चंद्रमा प्रत्यक्ष निकला नहीं दिखाई देता, देवी बताई गई है।

(२) शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा। (३) अंगिरा की एक पुत्री का नाम। (४) दुर्गा। (५) एक नदी का नाम (मार्कंडेय

पुराण) उ०—सिनिवाली, रजनी, कुहू, मंदा, राका, जानु। सरस्वती अरु अनुमती सातो नदी बखानु।—केशव।

सिनो–संज्ञा पुं० [देश०] खेत की पहली जोताई।

सिन्नी†–संज्ञा स्त्री० [फा० शीरीनी] (१) मिठाई। (२) बताशे या मिठाई जो किसी खुशी में बाँटी जाय। (३) बताशे या मिठाई जो किसी पीर या देवता को चढ़ाकर प्रसाद की तरह बाँटी जाय।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—बाँटना।

सिपर–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वार रोकने का हथियार। ढाल। उ०—सूल हूल झांक तूल ख्याल खल्ल सूल नील ढील, सूल नील सैल माथ पै सिपर है।—गिरधर।

सिपरा–संज्ञा स्त्री० दे० "सिप्रा"।

सिपहगरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सिपाही का काम। युद्ध व्यवसाय।

सिपहसालार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] फौज का सब से बड़ा अफसर। सेनापति। सेनानायक।

सिपाई†–संज्ञा पुं० दे० "सिपाही"। उ०—कह्यो सिपाई अवहि बोराई। इतै भागि अब कह सिर नाई।—रघुराज।

सिपारस†–संज्ञा स्त्री० दे० "सिफ़ारिश"।

सिपारसी†–वि० दे० "सिफ़ारशी"।

सिपारा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] कुरान के तीस भागों में से कोई एक। (कुरान तीस भागों में विभक्त किया गया है जिनमें से प्रत्येक सिपारा कहलाता है।)

सिपाव–संज्ञा पुं० [फ़ा० सेहपाय] लकड़ी की एक प्रकार की टिकठी या तीन पायों का ढाँचा जो छकड़े आदि में आगे की ओर अड़ान के लिये दिया जाता है।

सिपावा भाथी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सेहपाव + हिं० भाथी] लोहारों की हाथ से चलाई जानेवाली धौंकनी।

सिपास–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) धन्यवाद। शुक्रिया। कृतज्ञता-प्रकाशन। (२) प्रशंसा। स्तुति।

सिपासनामा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] विदाई के समय या अभिनंदनपत्र।

सिपाह–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] फौज। सेना। कटक। लश्कर। उ०—भरि अंग चाह चले संगर उछाह रेल विविध सिपाह हमराह जदुनाह के।—गोपाल।

सिपाहगिरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सिपाही का काम या पेशा। अस्त्र व्यवसाय।

सिपाहियाना–वि० [फ़ा०] सिपाहियों का सा। सैनिकों का सा। जैसे,—सिपाहियाना ढंग, सिपाहियाना ठाठ।

सिपाही–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) सैनिक। लड़नेवाला। शूर। योद्धा। फौजी आदमी। (२) कांस्टेबिल। तिलंगा। (३) चपरासी। अरदली।

सिपुर्द†–संज्ञा पुं० दे० "सुपुर्द"।

सिप्पर–संज्ञा स्त्री० दे० "सिपर"। उ०—सम समर सिप्पर मेल साँगरु जिरह जग्गो दीसियं। मनु सहित उडुगन नव ग्रहनु मिल जुद्ध रवि बरीसियं।—सुजान।

सिप्पा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) निशाने पर किया हुआ वार। लक्ष्य वेध। (२) कार्य्य साधन का उपाय। डौल। युक्ति। तदबीर। टिप्पस।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

मुहा०—सिप्पा भिड़ना या लड़ना = (१) युक्ति या तदबीर होना। अभिसंधि होना। (२) युक्ति सफल होना। इधर उधर की कोशिश कामयाब होना। सिप्पा भिड़ाना या लड़ाना = युक्ति या तदबीर करना। लोगों से मिलकर उन्हें कार्य्य साधन में सहायक बनाना। इधर उधर कह सुनकर कोशिश करना। जैसे,—जगह के लिये उसने बहुत सिप्पा लड़ाया, पर न मिली।

(३) डौल। सूत्रपात। प्रारंभिक कार्रवाई।

मुहा०—सिप्पा जमाना = डौल खड़ा करना। किसी काम की नींव देना। किसी कार्य्य के अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करना। भूमिका बाँधना।

(४) रंग। प्रभाव। धाक।

क्रि० प्र०—जमना।—जमाना।

सिप्पी†–संज्ञा स्त्री० दे० "सीपी"।

सिप्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक सरोवर का नाम। (२) चंद्र। (३) पसीना। घर्म्म।

सिप्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महिषी। भैंस। (२) एक झील। (३) स्त्रियों का कटिबंध। (४) मालवा की एक नदी जिसके किनारे उज्जैन (प्राचीन उज्जयिनी) बसा है।

सिफ़त–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) विशेषता। गुण। (२) लक्षण। (३) स्वभाव। (४) सूरत। शक्ल।

सिफर–संज्ञा पुं० [अ० सफ़र] शून्य। सुन्ना। बिन्दी।

सिफलगी–संज्ञा स्त्री० [अ० + सिफ़ल:] ओछापन। कमीनापन।

सिफ़ला–वि० [अ०] (१) नीच। कमीना। (२) छिछोरा। ओछा।

सिफलापन–संज्ञा पुं० [अ० सिफल: + हिं० पन (प्रत्य०)] (१) छिछोरापन। ओछापन। (२) पाजीपन।

सिफा–संज्ञा स्त्री० दे० "शिफ़ा"।

सिफ़ारिश–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) किसी के दोष क्षमा करने के लिये किसी से कहना सुनना। (२) किसी के पक्ष में कुछ कहना सुनना। किसी का कार्य्य सिद्ध करने के लिये किसी से अनुरोध। (३) नौकरी देनेवाले से किसी नौकरी चाहनेवाले की तारीफ़। नौकरी दिलाने के लिये किसी की प्रशंसा। जैसे,—नौकरी तो सिफारिश से मिलती है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सिफ़ारिशी–वि० [फ़ा०] (१) सिफारशवाला। जिसमें सिफारिश हो। जैसे,—सिफारिशी चिट्ठी। (२) जिसकी सिफारिश की गई हो। जैसे,—सिफारिशी टट्टू।

सिफ़ारिशी टट्टू-संज्ञा पुं० [फ़ा० + सिफारिशी हिं० टट्टू] वह जो केवल सिफारिश या खुशामद से किसी पद पर पहुँचा हो।

सिबिका⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "शिविका"।

सिमंत-संज्ञा पुं० दे० "सीमंत"। उ०—स्याम के सीस सिमंत सराहि सनाल सरोज फिराइ कै मारे।—मन्नालाल।

सिमई-संज्ञा स्त्री० दे० "सिवँई", "सिवँयाँ"।

सिमट-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिमटना] सिमटने की क्रिया या भाव।

सिमटना-क्रि० अ० [सं० समित = एकत्र + ना] (१) दूर तक फैली हुई वस्तु का थोड़े स्थान में आ जाना। सुकड़ना। संकुचित होना। (२) सिकन पड़ना। सलवट पड़ना। (३) इधर उधर बिखरी हुई वस्तु का एक स्थान पर एकत्र होना। बटोरा जाना। बटुरना। इकट्ठा होना। उ०—(क) सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा।—तुलसी। (ख) गोपी ग्वाल सिमिटि सब सुंदर सज्यो सिंगार नमो।—सूर। (४) व्यवस्थित होना। तरतीब से लगना। (५) पूरा होना। निबटना। जैसे,—सारा काम सिमट गया। (६) संकुचित होना। लज्जित होना। (७) सहमना। सिटपिटा जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

सिमटी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कपड़ा जिसकी बुनावट खेस के समान होती है।

सिमरख‡-संज्ञा पुं० दे० "शिंगरफ़"।

सिमरगोला-संज्ञा पुं० [सिमर ? + गोला] एक प्रकार की मेहराब।

सिमरना‡-क्रि० स० दे० "सुमिरना"। उ०—(क) राम नाम का सिमरनु छोडिआ माजा हाथ बिकाना।—तेगबहादुर। (ख) सिमरे जो एक बार ताको राम बार बार बिसरे बिसारे नाहीं सो क्यों बिसराइये।—हृदयराम।

सिमरिख-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

सिमल-संज्ञा पुं० [सं० सीर = हल + माला] (१) हल का जूआ। (२) जूए में पड़ी हुई खूँटी।

सिमला आलू-संज्ञा पुं० [हिं० शिमला + आलू] एक प्रकार का पहाड़ी बड़ा आलू। मरबुली।

सिमाना‡-संज्ञा पुं० [सं० सीमान्त] सिवाना। हद।

⊛‡क्रि० स० दे० "सिराना"। उ०—लायो येगि याही छन मन की प्रवीन जानि लायो दुख मानि ब्यौंत लई सो सिमाइ कै।—नाभा।

सिमिटना‡⊛-क्रि० अ० दे० "सिमटना"। उ०—(क) यह सुनि जहाँ तहाँ ते सिमिटे आइ होइ इक ठौर।—सूर। (ख) जलचर वृंद जाल अंतरगत सिमिटि होत एक पास। एकहि एक खात लालच बस नहिं देखत निज नास।—तुलसी।

सिमृति⊛‡-संज्ञा स्त्री० दे० "स्मृति"। उ०—द्रुपद सुता की लज्जा राखी। बेद पुरान सिमृति सब साखी।—लाल कवि।

सिमेंट-संज्ञा पुं० [अं० सीमेन्ट] एक प्रकार का लसदार गारा जो सूखने पर बहुत कड़ा और मज़बूत हो जाता है।

सिमेटना⊛‡-क्रि० स० दे० "समेटना"।

सिय⊛-संज्ञा स्त्री० [सं० सीता] सीता। जानकी। उ०—उपदेस यह जेहि तात तुम तें राम सिय सुख पावहीं।—तुलसी।

सियना⊛-क्रि० अ० [सं० सृजन] उत्पन्न करना। रचना। उ०—जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी औ रामहिं ऐसो रूप दियो री। तुलसिदास तेहि चतुर बिधाता निज कर यह संजोग सियो री।—तुलसी।

† क्रि० अ० दे० "सीना"।

सियरा⊛-वि० [सं० शीतल, प्रा० सीअड़] [स्त्री० सियरी] (१) ठंढा। शीतल। उ०—(क) स्याम सुपेत कि राता पियरा। अवरण बरण कि ताता सियरा।—कबीर। (ख) सियरे बदन सूखि गए कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे।—तुलसी। (२) कच्चा।

सियराई⊛-संज्ञा स्त्री० [हिं० सियरा + ई (प्रत्य०)] शीतलता। ठंढक। उ०—मुकुलित कुसुम नयन निद्रा तजि रूप सुधा सियराई।—सूर।

सियराना⊛-क्रि० अ० [हिं० सियरा + ना] ठंढा होना। जुड़ाना। शीतल होना। उ०—(क) हारन सों हहरात हियो मुकुता सियरात सुवेसर ही को।—पद्माकर। (ख) पादप पुहुमि भव पल्लव से पूरि आये हरि आये सियराये आए हैं सुमारना।—रघुराज।

सियरी-वि० दे० "सियरा"। उ०—(क) लोचे परी सियरी पर्यंक पै बीती घरीन खरी खरी सोचे।—पद्माकर। (ख) खरे उपचार खरी सियरी सियरे तें खरोई खोरा तन छीजै।—केशव।

सिया-संज्ञा स्त्री० [सं० सीता] सीता। जानकी। उ०—सब अंगद इक बचन कह्यो। को करि सिंधु सिया सुधि लावै किहि बल इतो लह्यो।—सूर।

सियाना‡-वि० दे० "सयाना"।

क्रि० स० दे० "सिलाना"।

सियानोय-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

सियापा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सियाहपोश] मरे हुए मनुष्य के शोक में कुछ काल तक बहुत सी स्त्रियों के प्रति दिन इकट्ठा होकर रोने की रीति। (यह रिवाज पंजाब आदि पश्चिमी प्रांतों में पाया जाता है।)

सियार‡-संज्ञा पुं० [सं० शृगाल, प्रा० सिआड़] [स्त्री० सियारी सियारिन] गीदड़। जंबुक।

सियार लाठी-संज्ञा पुं० [देश०] अमलतास।

सियारा-संज्ञा पुं० [सं० सीता, प्रा० सीआ + रा] जुती हुई जमीन बराबर करने का लकड़ी का फावड़ा।
संज्ञा पुं० दे० "सियाला"।

सियारी-संज्ञा स्त्री० दे० "सियार"।

सियाल-संज्ञा पुं० [सं० शृगाल] शृगाल। गीदड़। उ०—चहुँ दिसि सूर सोर करि धावै ज्यों केहरिहि सियाल।—सूर।

सियाला-संज्ञा पुं० [सं० शीतकाल] शीतकाल। जाड़े का मौसिम।

सियाला पोका-संज्ञा पुं० [हिं० सीप + पोका = कीड़ा] एक बहुत छोटा कीड़ा जो सफेद चिपटे कोश के भीतर रहता है और पुरानी सीली मिट्टीवाली दीवारों पर मिलता है। सीना पोका।

सियाली-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार विदारीकंद।
वि० जाड़े के मौसिम की फसल। खरीफ।

सियावड़-संज्ञा पुं० दे० "सिआवड़ी"।

सियावड़ी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) अनाज का वह हिस्सा जो खेत कटने पर खलिहान में से साधुओं के निमित्त निकाला जाता है। (२) वह काली हाँडी जो खेतों में चिड़ियों को डराने और फसल को नज़र से बचाने के लिये रखी जाती है।

सियासत-संज्ञा स्त्री० [अ०] देश का शासन प्रबंध तथा व्यवस्था।
संज्ञा स्त्री० [सं० शासन] (१) दंड। पीड़न। (२) कष्ट। यंत्रणा।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

सियाह-वि० दे० "स्याह"।

सियाहगोश-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) काले कानवाला। (२) बिल्ली की जाति का एक जंगली जानवर। वनबिलाव।
विशेष—इसके अंग लंबे होते हैं। पूँछ पर बालों का गुच्छा होता है और रंग भूरा होता है। खोपड़ी छोटी और दाँत लंबे होते हैं। कान बाहर की ओर काले और भीतर की ओर सफेद होते हैं। इसकी लंबाई प्रायः ४० इंच होती है। यह घास की झाड़ियों में रहता और चिड़ियों को मारकर खाता है। इसकी कुदान ५ से ६ फुट तक की होती है। यह सारस और तीतर का शत्रु है। यह बड़ी सुगमता से पाला और चिड़ियों का शिकार करने के लिये सिखाया जा सकता है। इसे अमीर लोग शिकार के लिये रखते हैं। वनबिलाव।

सियाहा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) आय व्यय की बही। रोजनामचा। बही खाता। (२) सरकारी खजाने का वह रजिस्टर जिसमें जमींदारों से प्राप्त मालगुजारी लिखी जाती है। (३) वह सूची जिसमें काश्तकारों से प्राप्त लगान दर्ज होता है।
मुहा०—स्याहा करना = हिसाब की किताब में लिखना। टाँकना। चढ़ाना।

सियाहानवीस-संज्ञा पुं० [फ़ा०] सियाहा का लिखनेवाला। सरकारी खजाने में सियाहा लिखने के लिये नियुक्त कर्मचारी।

सियाही-संज्ञा स्त्री० दे० "स्याही"।

सिर-संज्ञा पुं० [सं० शिरस्] (१) शरीर के सब से अगले या ऊपरी भाग का गोल तल जिसके भीतर मस्तिष्क रहता है। कपाल। खोपड़ी। (२) शरीर का सब से अगला या ऊपर का गोल या लंबोतरा अंग जिसमें आँख, कान, नाक और मुँह ये प्रधान अवयव होते हैं और जो गरदन के द्वारा धड़ से जुड़ा रहता है।

मुहा०—सिर आँखों पर होना = सहर्ष स्वीकार होना। माननीय होना। जैसे,—आपकी आज्ञा सिर आँखों पर है। सिर आँखों पर बैठाना = बहुत आदर सत्कार करना। बड़ी आवभगत करना। (भूत प्रेत या देवी देवता का) सिर आना = आवेश होना। प्रभाव होना। खेलना। सिर उठाना = (१) ज्वर आदि से कुछ फुरसत पाना। जैसे,—जब से पड़ा पड़ा है, तब से सिर नहीं उठाया है। (२) विरोध में खड़ा होना। शत्रुता के लिये सन्नद्ध होना। मुकाबिले के लिये तैयार होना। जैसे,—बागियों ने फिर सिर उठाया। (३) ऊधम मचाना। दंगा फसाद करना। शरारत करना। उपद्रव करना। (४) इतराना। अकड़ दिखाना। घमंड करना। (५) सामने मुँह करना। बराबर ताकना। लज्जित न होना। जैसे,—ऊँची नीची सुनता रहा, पर सिर न उठाया। (६) प्रतिष्ठा के साथ खड़ा होना। इज्जत के साथ लोगों से मिलना। जैसे,—जब तक भारतवासियों की यह दशा है, तब तक सभ्य जातियों के बीच वे कैसे सिर उठा सकते हैं? सिर उठाने की फुरसत न होना = जरा सा काम छोड़ने की छुट्टी न मिलना। कार्य्य की अधिकता होना। सिर उठाकर चलना = इतरा कर चलना। घमंड दिखाना। अकड़ कर चलना। सिर उतरवाना = सिर कटाना। मरवा डालना। सिर उतारना = सिर काटना। मार डालना। (किसी का) सिर ऊँचा करना = सम्मान का पात्र बनाना। इज्जत देना। (अपना) सिर ऊँचा करना = प्रतिष्ठा के साथ लोगों के बीच खड़ा होना। दस आदमियों में इज्जत बनाए रखना। सिर औंधाकर पड़ना = चिंता और शोक के कारण सिर नीचा किए पड़ा या बैठा रहना। सिर काढ़ना = प्रसिद्ध होना। प्रसिद्धि प्राप्त करना। सिर करना = (स्त्रियों के) बाल सँवारना। चोटी गूँथना। (कोई वस्तु) सिर करना = जबरदस्ती देना। इच्छा के विरुद्ध सुपुर्द करना। गले मढ़ना। सिर काटना = सिर उतारना। मार डालना। सिर का बोझ टलना = निश्चिंतता होना। झंझट टलना। सिर का बोझ टालना = बेगार टालना। अच्छी तरह न करना। जी लगाकर न करना। सिर के बल चलना = बहुत अधिक आदरपूर्वक किसी के पास जाना। सिर खाली करना = (१) बकवाद करना। (२) माथा पच्ची करना। सोच विचार में हैरान होना। सिर खाना = बकवाद करके जी उबाना। व्यर्थ की बातें करके तंग करना। सिर खपाना = (१) सोचने विचारने में हैरान होना। (२) कार्य्य में

व्यग्र होना। **सिर खुजलाना**=मार खाने को जी चाहना। शामत आना। नटखटी सूझना। **सिर चकराना**=दे० "सिर घूमना"। **सिर चढ़ा**=मुँह लगा। लाड़ला। धृष्ट। **सिर चढ़ाना**=(१) माथे से लगाना। पूज्य भाव दिखाना। (२) बहुत बढ़ा देना। मुँह लगाना। गुस्ताख बनाना। (३) किसी देवी देवता के सामने सिर काटकर बलि चढ़ाना। **सिर घूमना**=(१) सिर में दर्द होना। (२) घबराहट या मोह होना। बेहोशी होना। **सिर चढ़कर बोलना**=(१) भूत प्रेत का सिर पर आकर बोलना। (२) स्वयं प्रकट हो जाना। छिपाए न छिपना। **सिर चढ़कर मरना**=किसी को अपने खून का उत्तरदायी ठहराना। किसी के ऊपर जान देना। **सिर चला जाना**=मृत्यु हो जाना। **सिर जोड़कर बैठना**=मिलकर बैठना। **सिर जोड़ना**=(१) एकत्र होना। पंचायत करना। (२) एका करना। षड्यंत्र रचना। **सिर झाड़ना**=बालों में कंघी करना। **सिर झुकाना**=(१) सिर नवाना। नमस्कार करना। (२) लज्जा से गरदन नीची करना। (३) सादर स्वीकार करना। चुप चाप मान लेना। **सिर टकराना**=सिर फोड़ना। अत्यंत परिश्रम करना। **(किसी के) सिर डालना**=सिर मढ़ना। दूसरे के ऊपर कार्य्य का भार देना। **सिर टूटना**=(१) सिर फटना। (२) लड़ाई झगड़ा होना। **सिर तोड़ना**=(१) सिर फोड़ना। (२) खूब मारना पीटना। (३) वश में करना। **सिर देना**=प्राण निछावर करना। जान देना। **सिर धरना**=सादर स्वीकार करना। मान लेना। अंगीकार करना। **(किसी के) सिर धरना**=आरोप करना। लगाना। मढ़ाना। उत्तरदायी बनाना। **सिर धुनना**=शोक या पछतावे से सिर पीटना। पछताना। हाथ मलना। शोक करना। **सिर नंगा करना**=(१) सिर खोलना। (२) बेइज्जत उतारना। **सिर नवाना**=(१) सिर झुकाना। नमस्कार करना। (२) विनीत बनना। दीन बनना। आजिजी करना। **सिर भिन्नाना**=सिर चकराना। **(अपना सिर) नीचा करना**=लज्जा से सिर झुकाना। शर्माना। **(दूसरे का) सिर नीचा करना**=प्रतिष्ठा खोना। मर्य्यादा नष्ट करना। **सिर नीचा होना**=(१) अप्रतिष्ठा होना। इज्जत बिगड़ना। मान भंग होना। (२) पराजय होना। हार होना। (३) लज्जा होना। **सिर पचाना**=(१) परिश्रम करना। उद्योग करना। (२) सोचने विचारने में हैरान होना। **सिर पटकना**=(१) सिर फोड़ना। सिर धुनना। (२) बहुत परिश्रम करना। (३) अफ़सोस करना। हाथ मलना। **सिर पर आ पड़ना**=अपने ऊपर घटित होना। ऊपर आ बनना। **सिर पर आ जाना**=बहुत समीप आ जाना। थोड़े ही दिन और रह जाना। **सिर पर उठा लेना**=ऊधम जोतना। धूम मचाना। **(अपने) सिर पर पाँव रखना**=बहुत जल्द भाग जाना। हवा होना। **(किसी के) सिर पर पाँव रखना**=किसी के साथ बहुत उद्दंडता का व्यवहार करना। **सिर पर पृथ्वी उठाना**=बहुत उत्पात करना। **सिर पर पड़ना**=(१) जिम्मे पड़ना। (२) अपने ऊपर घटित होना। गुजरना। **सिर पर खेलना**=जान को जोखों में डालना। **सिर पर खून चढ़ना या सवार होना**=(१) जान लेने पर उतारू होना। (२) हत्या के कारण आपे में न रहना। **सिर पर रखना**=प्रतिष्ठा करना। मान करना। **सिर पर छप्पर रखना**=बोझ से दबाना। दबाव डालना। **सिर पर मिट्टी डालना**=शोक करना। **सिर पर लेना**=ऊपर लेना। जिम्मे लेना। **सिर पर शैतान चढ़ना**=गुस्सा चढ़ना। **सिर पर जूँ न रेंगना**=ध्यान न होना। चेत न होना। होश न आना। **सिर रहना**=मान रहना। प्रतिष्ठा बनी रहना। **(किसी के) सिर डालना**=माथे मढ़ना। आरोपण करना। **सिर पर बीतना**=सिर पर पड़ना। **सिर पर होना**=थोड़े ही दिन रह जाना। बहुत निकट होना। **(किसी का किसी के) सिर पर होना**=संरक्षक होना। रक्षा करनेवाला होना। **सिर पर हाथ धरना या रखना**=(१) संरक्षक होना। सहायक होना। (२) शपथ खाना। **सिर पड़ना**=(१) जिम्मे पड़ना। भार ऊपर दिया जाना। (२) हिस्से में आना। **सिर पर हाथ फेरना**=प्यार करना। आश्वासन देना। ढारस बँधाना। **सिर फिरना**=(१) सिर घूमना। सिर चकराना। (२) पागल हो जाना। उन्माद होना। (३) बुद्धि नष्ट होना। **सिर फोड़ना**=(१) लड़ाई झगड़ा करना। (२) कपाल क्रिया करना। **सिर फेरना**=कहा न मानना। अवज्ञा करना। अस्वीकार करना। **सिर बाँधना**=(१) सिर पर आक्रमण करना। (पटेबाजी) (२) चोटी करना। सिर गूँथना। (३) घोड़े की लगाम इस प्रकार पकड़ना कि चलते समय घोड़े की गर्दन सीधी रहे। **सिर बेचना**=सिर देना। फौज की नौकरी करना। **सिर भारी होना**=सिर में पीड़ा होना। सिर घूमना। **सिर मारना**=(१) समझाते समझाते हैरान होना। (२) सोचने विचारने में हैरान होना। सिर खपाना। (३) चिल्लाना। पुकारना। (४) बहुत प्रयत्न करना। अत्यंत श्रम करना। **सिर मुँड़ाना**=(१) बाल बनवाना। (२) जोगी बनना। फकीरी लेना। संन्यासी होना। **सिर मुड़ाते ही ओले पड़ना**=प्रारंभ में ही कार्य्य बिगड़ना। कार्य्यारंभ होते ही विघ्न पड़ना। **सिर मढ़ना**=जिम्मे करना। इच्छा के विरुद्ध सपुर्द करना। **सिर रँगना**=सिर फोड़ना। सिर लोहू लोहान करना। **सिर रहना**=(१) किसी के पीछे पड़ना। (२) रात दिन परिश्रम करना। **सिर सफेद होना**=वृद्धावस्था आ जाना। **सिर पर सेहरा होना**=किसी कार्य्य का श्रेय प्राप्त होना। वाहवाही मिलना। **सिर सहलाना**=खुशामद करना। प्यार करना। **सिर से बला टालना**=बेगार टालना। जी लगाकर काम न करना। **सिर से बोझ उतरना**=(१) झंझट दूर होना। (२) निश्चिंतता होना। **सिर से पानी गुज़रना**=सहन की पराकाष्ठा होना। असह्य हो जाना। **सिर घोटाना**=सिर मुड़ाना। **सिर से पैर तक**=आरंभ से अंत

तक। चोटी से एड़ी तक। सर्वांग में। पूर्णतया। **सिर से पैर तक आग लगना** = अत्यंत क्रोध चढ़ना। **सिर से चलना** = बहुत सम्मान करना। सिर के बल चलना। **सिर से सिरवाहा है** = सिर के साथ पगड़ी है। सरदार के साथ फौज अवश्य रहेगी। मालिक के साथ उसके आश्रित अवश्य रहेंगे। **सिर से कफन बाँधना** = मरने के लिये उद्यत होना। **सिर से खेलना** = सिर पर भूत आना। **सिर से खेल जाना** = प्राण दे देना। **सिर पर सींग होना** = कोई विशेषता होना। सुर्खाब का पर होना। **सिर का पसीना पैर तक आना** = बहुत परिश्रम होना। **(किसी का किसी के) सिर होना** = (१) पीछे पड़ना। पीछा न छोड़ना। साथ साथ लगा रहना। (२) बार बार किसी बात का आग्रह करके तंग करना। (३) उलझ पड़ना। झगड़ा करना। **(किसी बात के) सिर होना** = ताड़ लेना। समझ लेना। **(दोष आदि किसी के) सिर होना** = जिम्मे होना। ऊपर पड़ना। जैसे,—यह अपराध तुम्हारे सिर है।

(२) ऊपर का छोर। सिरा। चोटी।

संज्ञा पुं० [सं० शिर] पिपरामूल। पिप्पलीमूल।

सिरई—संज्ञा स्त्री० [हि० सिर + ई (प्रत्य०)] चारपाई में सिरहाने की पट्टी।

सिरकटा—वि० [हि० सिर + कटना] [स्त्री० सिरकटी] (१) जिसका सिर कट गया हो। जैसे,—सिरकटी लाश। (२) दूसरों का सिर काटनेवाला। अनिष्ट करनेवाला। बुराई करनेवाला। अपकारी।

सिरका—संज्ञा पुं० [फ़ा०] धूप में पकाकर खट्टा किया हुआ ईख, अंगूर, जामुन आदि का रस।

विशेष—ईख, अंगूर, खजूर, जामुन आदि के रस को धूप में पकाकर सिरका बनाया जाता है। यह स्वाद में अत्यंत खट्टा होता है। वैद्यक में यह तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारी, पाचक, हलका, रूखा, दस्तावर, रक्त पित्तकारक तथा कफ, कृमि और पांडु रोग का नाश करनेवाला कहा गया है। यूनानी मतानुसार यह कुछ गरमी लिए ठंढा और रूखा, स्निग्धताशोषक, नसों और छिद्रों में शीघ्र ही प्रवेश करनेवाला, गाढ़े दोषों को छाँटनेवाला, पाचक, अत्यंत क्षुधाकारक तथा रोध का उद्घाटक है। यह बहुत से रोगों के लिये परम उपयोगी है। उ०—भई मिथौरी सिरका बरा। सौंठ लाय के खरसा धरा।—जायसी।

सिरकाकश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] अरक खींचने का एक प्रकार का यंत्र।

सिरकी—संज्ञा स्त्री० [हि० सरकंडा] (१) सरकंडा। सरई। सरहरी। (२) सरकंडे या सरई की पतली तीलियों की बनी हुई टट्टी जो प्रायः दीवार या गाड़ियों पर धूप और वर्षा से बचाव के लिये डालते हैं। उ०—विदित न सनमुख ह्वै सकैं अँखियाँ परीं लजोर। बरुनी सिरकिन ओट ह्वै हेरत मोहन ओर।—रसनिधि। (३) बाँस की पतली नली जिसमें बेल बूटे काढ़ने का कलाबत्तू भरा रहता है।

सिरखप—वि० [हि० सिर + खपना] (१) सिर खपानेवाला। (२) परिश्रमी। (३) निश्चय का पक्का।

सिरखपी—संज्ञा स्त्री० [हि० सिर + खपना] (१) परिश्रम। हैरानी। (२) जोखिम। साहसपूर्ण कार्य।

सिर खिली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जिसका संपूर्ण शरीर मटमैला, पर चोंच और पैर काले होते हैं।

सिरखिस्त—संज्ञा पुं० [फ़ा० शीरखिश्त] एक प्रसिद्ध पदार्थ जो कुछ पेड़ों की पत्तियों पर ओस की तरह जम जाता है और दवा के काम में आता है। यव शर्करा। यवास शर्करा।

सिरगा—संज्ञा स्त्री० [देश०] घोड़े की एक जाति। उ०—सिरगा समँदा स्याह सेलिया सूर सुरंगा। मुसकी पँचकल्यान कुमैता केहरि रंगा।—सूदन।

सिरगिरी—संज्ञा स्त्री० [हि० सिर + गिरि = चोटी] (१) कलगी। शिखा। (२) चिड़ियों के सिर की कलगी।

सिरगोला—संज्ञा पुं० [?] दुग्ध पाषाण।

सिरघुरई—संज्ञा स्त्री० [हि० सिर + घूरना = घूमना] ज्वरांकुश तृण।

सिरचंद—संज्ञा पुं० [हि० सिर + चंद] एक प्रकार का अर्द्ध चंद्राकार गहना जो हाथी के मस्तक पर पहनाया जाता है। उ०—सिरचंद चंद दुचंद दुति आनंद कर मनिमय बसी।—गोपाल।

सिरजकꣳ—संज्ञा पुं० [सं० सृज्, हि० सिरजना] बनानेवाला। रचनेवाला। सृष्टिकर्ता। उ०—अब बंदौं कर जोरि कै, जग सिरजक करतार। रामकृष्ण पद कमल युग, जाको सदा अधार।—रघुराज।

सिरजनहारꣳ—संज्ञा पुं० [सं० सृजन + हि० हार = वाला] (१) रचनेवाला। बनानेवाला। सृष्टिकर्त्ता। कर्त्तार। उ०—हे गुसाईं तू सिरजनहारू। तुइ सिरजा एहि समुँद अपारू।—जायसी। (२) परमेश्वर। उ०—माया सगी न मन सगा, सगा न यह संसार। परशुराम यह जीव को, सगा सो सिरजनहार।—रघुराज।

सिरजनाꣳ—क्रि० स० [सं० सर्जन] रचना। उत्पन्न करना। सृष्टि करना। उ०—जग सिरजत पालत संहरत पुनि क्यों बहुरि करयो।—सूर।

क्रि० स० [सं० संचय] संचय करना। हिफ़ाजत से रखना।

सिरजितꣳ—वि० [सं० सर्जित] सिरजा हुआ। रचा हुआ। उ०—तुम जदुनाथ अनन्य उपासी। नहिं मम सिरजित लोक विलासी।—रघुराज।

सिरताज—संज्ञा पुं० [सं० सिर + फ़ा० ताज] (१) मुकुट। (२) शिरोमणि। सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति या वस्तु। सब से उत्कृष्ट व्यक्ति या वस्तु। उ०—(क) राम को बिसारिबो निषेध-सिरताज रे। राम नाम महामनि, फनि जगजाल रे।—

तुलसी। (ख) कुंजन में क्रीड़ा करै मनु याही को राज। कंस सकुच नहिं मानई रहत भयो सिरताज।—सूर। (२) सरदार। अग्रगण्य। अगुआ। मुखिया। उ०—सूर सिरताज महाराजनि के महाराज, जाको नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो।—तुलसी।

सिरतान-संज्ञा पुं० [हिं० सीर + तान ?] (१) असामी। काश्तकार। (२) मालगुजार।

सिर ता पा-क्रि० वि० [फ़ा० सर + ता + पा = पैर] (१) सिर से पाँव तक। नख से लेकर शिख तक। उ०—केस मेघावरि सिर ता पाहिं।—जायसी। (२) आदि से अंत तक। संपूर्ण। बिलकुल। सरासर।

सिरती†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सीर] जमा जो असामी जमींदार को देता है। लगान।

सिरत्राण-संज्ञा पुं० दे० "शिरस्त्राण"।

सिरदारक्ष†-संज्ञा पुं० दे० "सरदार"। उ०—(क) ब्रज पर गन सिरदार महरि तू ताकी करत नन्हाई।—सूर। (ख) सिरदार जूझत खेत मैं। भजि गए बहुत अचेत मैं।—सूदन।

सिरदारीक्ष†-संज्ञा स्त्री० दे० "सरदारी"। उ०—साहिजहाँ यह चित्त विचारी। दारा कौं दीन्ही सिरदारी।—लाल कवि।

सिरदुआली-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिर + फ़ा० दुवाल] लगाम के कड़ों में लगा हुआ कानों के पीछे तक का घोड़ों का एक साज जो चमड़े या सूत का बना होता है।

सिरनामा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सर + नामः = पत्र] (१) लिफ़ाफ़े पर लिखा जानेवाला पता। (२) पत्र के आरंभ में पत्र पानेवाले का नाम, उपाधि, अभिवादन आदि। (३) किसी लेख के विषय का निर्देश करनेवाला शब्द या वाक्य जो ऊपर लिख दिया जाता है। शीर्षक। हेडिंग। सुर्खी।

सिरनेत-संज्ञा पुं० [हिं० सिर + सं० नेत्री = धज्जी या डोरी] (१) पगड़ी। पटा। चीरा। उ०—(क) रे नेही मत डगमगै बाँध प्रीति सिरनेत।—रसनिधि। (ख) अधम उधारन बिरद की तुम बाँधी सिरनेत।—रसनिधि। (२) क्षत्रियों की एक शाखा जो अपना मूल-स्थान श्रीनगर (गढ़वाल) बताती है। उ०—पुनि सिरनेतन्ह देस सिधारा। कीन्हो ब्याह, उछाह अपारा।—रघुराज।

सिरपाव-संज्ञा पुं० दे० "सिरोपाव"। उ०—कीरतसिंह भी घोड़े और सिरपाव पाकर अपने बाप के साथ रुखसत हुआ।—देवीप्रसाद।

सिरपेंच-संज्ञा पुं० [फ़ा० सर + पेच] (१) पगड़ी। (२) पगड़ी के ऊपर का छोटा कपड़ा। (३) पगड़ी पर बाँधने का एक आभूषण। उ०—कलगी, तुर्रा और जग सिरपेंच सुकुंडल—सूदन।

सिरपोश-संज्ञा पुं० [फ़ा० सरपोश] (१) सिर पर का आवरण। टोप। कुलाह। (२) बंदूक के ऊपर का कपड़ा। (लश्करी)

सिरफूल-संज्ञा पुं० [हिं० सिर + फूल] सिर पर पहना जानेवाला स्त्रियों का एक आभूषण। उ०—(क) छतियाँ पर लोल लुरैं अलकैं सिरफूल अरुझि सो यों दुति दै।—पन्नालाल। (ख) बेनी चुनी चमकै किरनैं सिर फूल लख्यो रवि तूल अनूपमै।—पन्नालाल।

सिरफेंटा-संज्ञा पुं० [हिं० सिर + फेंटा] साफ़ा। पगड़ी। मुरेठा। उ०—पीरो झगा पटुका बिन छोर छरी कर लाल जरी सिरफेंटा।—पन्नालाल।

सिरबंद-संज्ञा पुं० [हिं० सिर + फ़ा० बंद] साफ़ा।

सिरबंदी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिर + फ़ा० बंदी] माथे पर पहनने का स्त्रियों का एक आभूषण।

संज्ञा पुं० [हिं० सिर + बंद] रेशम के कीड़े का एक भेद।

सिरबोझी-संज्ञा पुं० [हिं० सिर + बोझ] एक प्रकार के पतले बाँस जो पाटन के काम में आते हैं।

सिरमनिक्ष-संज्ञा पुं० दे० "शिरोमणि"।

सिरमौर-संज्ञा पुं० [हिं० सिर + मौर] (१) सिर का मुकुट। (२) सिरताज। शिरोमणि। प्रधान या श्रेष्ठ व्यक्ति। उ०—सहज सलोने राम लखन ललित नाम जैसे सुने तैसेई कुँअर सिरमौर हैं।—तुलसी।

सिररुह-संज्ञा पुं० दे० "शिरोरुह"। उ०—बिथुरित सिररुह बरुथ कुंचित बिच सुमन जूथ, मनिजुत सिसु-फनि-अनीक ससि समीप आई।—तुलसी।

सिरवा-संज्ञा पुं० [हिं० सिर] वह कपड़ा जिससे खलियान में अनाज बरसाने के समय हवा करते हैं। ओसाने में हवा करने का कपड़ा।

मुहा०—सिरवा मारना = भूसा उड़ाने के लिये कपड़े आदि से हवा करना।

सिरवार-संज्ञा पुं० दे० "सिवार"।

संज्ञा पुं० [हिं० सीर + वार] जमींदार का वह कारिंदा जो उसकी खेती का प्रबंध करता है।

सिरस-संज्ञा पुं० [सं० शिरीष] शीशम की तरह का लंबा एक प्रकार का ऊँचा पेड़।

विशेष—इसका वृक्ष बड़ा किंतु अ-चिरस्थायी होता है। इसकी छाल भूरापन लिए हुए खाकी रंग की होती है। लकड़ी सफ़ेद या पीले रंग की होती है, जो टिकाऊ नहीं होती। हीर की लकड़ी कालापन लिए भूरी होती है। पत्तियाँ इमली की पत्तियों के समान परंतु उनसे लंबी चौड़ी होती हैं। चैत-बैसाख में यह वृक्ष फूलता फलता है। इसके फूल सफ़ेद, सुगंधित, अत्यंत कोमल तथा मनोहर होते हैं। कवियों ने इसके फूल की कोमलता का वर्णन किया है। इसके वृक्ष से बबूल के समान गोंद निकलता है। इसकी छाल, पत्ते, फूल और बीज औषध के काम में आते हैं। इसके

तीन भेद होते हैं—काला, पीला और लाल। आयुर्वेद के अनुसार यह चरपरा, शीतल, मधुर, कड़ुवा, कसैला, हलका तथा वात, पित्त, कफ, सूजन, विसर्प, खाँसी, घाव, विष-विकार, रुधिर-विकार, कोढ़, खुजली, बवासीर, पसीने और त्वचा के रोगों को हरण करनेवाला है। यूनानी मतानुसार यह ठंढा और रूखा है। उ०—(क) वाम विधि मेरो सुख सिरस सुमन ताको छल छुरी कोह कुलिस लै टेई है।—तुलसी। (ख) फूलों ही के काम-बाण हैं, यह सब कहते आते हैं। सिरस फूल से भी मृदुतर, हम उसके बाहु बताते हैं।—महावीरप्रसाद द्विवेदी।

सिरसा-संज्ञा पुं० दे० "सिरस"।

सिरसी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का तीतर।

सिरहाना-संज्ञा पुं० [सं० शिरस्+आधान] चारपाई में सिर की ओर का भाग। खाट का सिरा। मुँड़वारी। उ०—छूटी लटैं लटकैं सिरहाने ह्वै, फैलि रह्यो मुखस्वेद को पानी।

सिराँचा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पतला बाँस जिससे कुरसियाँ और मोढ़े बनते हैं।

सिरा-संज्ञा पुं० [हिं० सिर] (१) लंबाई का अंत। लंबाई के दो छोरों में से कोई एक। छोर। टोंक। जैसे,—एक सिरे से दूसरे सिरे तक। (२) ऊपर का भाग। शीर्ष भाग। (३) अंतिम भाग। आखिरी हिस्सा। (४) आरंभ का भाग। शुरू का हिस्सा। जैसे,—(क) सिरे से कहो, मैंने सुना नहीं। (ख) अब यह काम नए सिरे से करना पड़ेगा। (ग) सिरे से आखीर तक। (५) नोक। अनी। (६) अग्र भाग। अगला हिस्सा।

मुहा०—सिरे का = अव्वल दरजे का। पल्ले सिरे का। सिरे का रंग = सब से प्रधान रंग। जेठा रंग। (रँगरेज)

संज्ञा स्त्री० [सं० शिरा] (१) रक्त-नाड़ी। (२) सिंचाई की नाली। (३) खेत की सिंचाई। (४) पानी की पतली धारा। (५) गगरा। कलसा। डोल।

सिराना⊛†-क्रि० अ० [हिं० सीरा+ना] (१) ठंढा होना। शीतल होना। (२) मंद पड़ना। हतोत्साह होना। उमंग न रह जाना। हार जाना। उ०—बज्रायुध जल बरषि सिराने। परयो चरन तब प्रभु करि जाने—सूर। (३) समाप्त होना। खतम होना। अंत को पहुँचना। जैसे,—काम सिराना। (४) शांत होना। मिटना। दूर होना। उ०—अब रघुनाथ मिलाऊँ तुमको सुंदरि सोग सिराइ।—सूर। (५) व्यतीत होना। बीत जाना। गुजर जाना। उ०—चेहुं चिरजीवी अमर निधरक फिरौ कहाइ। छिन बिछुरे जिनके न इहि पावस आयु सिराइ।—बिहारी।

† (६) काम से छुट्टी मिलना। फुरसत मिलना।

क्रि० स० (१) ठंढा करना। शीतल करना। (२) समाप्त करना। खतम करना। (३) व्यतीत करना। बिताना।

सिरापत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्वत्थ वृक्ष। पीपल का वृक्ष। (२) एक प्रकार की खजूर।

सिरामूल-संज्ञा पुं० [सं०] नाभि।

सिरामोक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] फ़स्द खुलवाना। शरीर का दूषित रक्त निकलवाना।

सिरार-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिरा] वह लकड़ी जो पाई के सिरे पर लगाई जाती है। (जुलाहे)

सिराल-वि० [सं०] जिसमें बहुत नसें या रेशे हों।

सिरालक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अंगूर।

सिराला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का पौधा। (२) कमरख का फल। कर्मरंग फल।

सिराली-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिर] मयूर-शिखा। मोर की कलगी।

सिरावन-संज्ञा पु० [सं० सीर = हल] जुता हुआ खेत बराबर करने का पाटा। हेंगा।

सिरावना⊛-क्रि० स० दे० "सिराना"। उ०—जोइ जोइ भावे मेरे प्यारे। सोइ सोइ देहौं सु दुलारे। कहौ है सिरावन सीरा। कछु हठ न करौ बलबीरा।—सूर।

सिरावृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु।

सिराहर्ष-संज्ञा पु० [सं०] (१) पुलक। रोमांच। (२) आँख के डोरों की लाली।

सिरिन-संज्ञा पुं० [देश०] एक सिरीष वृक्ष। लाल सिरस।

सिरियारी-संज्ञा स्त्री० [सं० शिरियारी] सुनिष्णक शाक। सुसना का साग। हाथीसुंडी।

सिरिश्ता-संज्ञा पुं० [फ़ा० सरिश्तः] विभाग। मुहकमा।

सिरिश्तेदार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] अदालत का वह कर्मचारी जो मुकदमें के कागज़ पत्र रखता है।

सिरिश्तेदारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सरिश्तेदार का काम या पद।

सिरिस-संज्ञा पुं० दे० "सिरस"।

सिरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) करघा। (२) कलिहारी। लांगली।

⊛† संज्ञा स्त्री० [सं० श्री] (१) लक्ष्मी। (२) शोभा। कांति। (३) रोली। रोचना। उ०—(क) धधकी है गुलाल की धूँधुर में धारी गोरी लला मुख मींदि सिरी।—शंभु। (ख) सोन रूप भल भएउ पसारा। धवल सिरी पोतहिं घर बारा।—जायसी।

विशेष—'श्री' का लाल चिह्न तिलक में रोली से बनाते हैं; इसी से रोली को भी 'श्री' या 'सिरी' कहते हैं।

(४) माथे पर का एक गहना। उ०—सुंदर इंद्र लसै जैसो वैसो रद दरसाये सोहै सखी सीस भारी सिरी कुंभ पर है।—गोपाल।

सिरीज़-संज्ञा पुं० [अं०] मंगल और बृहस्पति के बीच का एक ग्रह जिसका पता आधुनिक पाश्चात्य ज्योतिषियों ने लगाया है।

विशेष—यह सूर्य से प्रायः साढ़े अट्ठाइस कोटि मील की दूरी पर है। इसका व्यास १७६० मील का है। इसे निज कक्षा में सूर्य के चारों तरफ फिरने में १६८० दिन लगते हैं। १९वीं शताब्दी में सिसली नामक उपद्वीप में यह ग्रह पहले देखा गया था। इसका वर्ण लाल है और यह आठवें परिमाण के तारों के समान दिखाई पड़ता है।

सिरी पंचमी-संज्ञा स्त्री० दे० "श्रीपंचमी"।

सिरीस-संज्ञा पुं० दे० "सिरस"।

सिरोना-संज्ञा पुं० [हिं० सिर+ओना] रस्सी का बना हुआ मेंड़रा जिस पर घड़ा रखते हैं। इँडुरी। बिंदवा।

सिरोपाव-संज्ञा पुं० [हिं० सिर+पाँव] सिर से पैर तक का पहनावा (अंगा, पगड़ी, पाजामा, पटका और दुपट्टा) जो राजदरबार से सम्मान के रूप में दिया जाता है। खिलअत।

सिरोमनि-संज्ञा पुं० दे० "शिरोमणि"।

सिरोरुह-संज्ञा पुं० दे० "शिरोरुह"।

सिरोही-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जिसकी चोंच और पैर लाल और शेष शरीर काला होता है।

संज्ञा पुं० (१) राजपूताने में एक स्थान जहाँ की बनी हुई तलवार बहुत ही लचीली और बढ़िया होती है। उ०—बरवारे सिरोही सोहती लाख सिकोही बोहती। जिमि सेना ग्रोही जोहती लाज आरोही ओहती।—गोपाल। (२) तलवार।

सिर्का-संज्ञा पुं० दे० "सिरका"।

सिर्फ़-क्रि० वि० [फ़ा०] केवल। मात्र।

वि० (१) एक मात्र। अकेला। (२) शुद्ध। खालिस।

सिर्री-वि० दे० "सिड़ी"।

सिल-संज्ञा स्त्री० [सं० शिला] (१) पत्थर। चट्टान। शिला। (२) पत्थर की चौकोर पटिया जिस पर बट्टे से मसाला आदि पीसते हैं।

यौ०—सिल बट्टा।

(३) पत्थर का गढ़ा हुआ चौकोर टुकड़ा जो इमारतों में लगता है। चौकोर पटिया। (४) काठ की पटरी जिस पर दबाकर रूई की पूनी बनाई जाती है।

संज्ञा पुं० [सं० शिल] कटे हुए खेत में गिरे अनाज चुनकर निर्वाह करने की वृत्ति।

वि० दे० "शिल", "शिलोंछ"।

संज्ञा पुं० [देश०] बलूत की जाति का एक पहाड़ी पेड़ जो हिमालय पर होता है। बंज। मारू।

संज्ञा पुं० [अ०] तपेदिक। राजयक्ष्मा। क्षय रोग।

सिलक-संज्ञा स्त्री० [हिं० सलगा = लगातार] (१) लड़ी। हार। (२) पंक्ति।

संज्ञा पुं० तागा। धागा।

सिलकी-संज्ञा पुं० [देश०] बैल। उ०—सुरभी सिलकी सुदाफल बैल साल मास्टर।—अनेकार्थ।

सिलखड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिल+खड़िया] (१) एक प्रकार का चिकना मुलायम पत्थर जो बरतन बनाने के काम में आता है।

विशेष—इसकी बुकनी चीज़ों को चमकाने के लिये पालिश व रोगन बनाने के भी काम में आती है।

(२) सेत खड़ी। खरिया मिट्टी। दुद्धी।

सिलखरी-संज्ञा स्त्री० दे० "सिलखड़ी"।

सिलगना-क्रि० अ० दे० "सुलगना"। उ०—(क) विरहिन पै आयी मनो मैन दैन सरयाइ। जुगनू नाहीं जानुगी सिलगत स्याहमि स्याइ।—रसनिधि। (ख) आग भी अतिशयता से सिलग रही है। हवा उस समय मंद चल रही थी।—शिवप्रसाद।

सिलप‡-संज्ञा पुं० दे० "शिल्प"। उ०—विश्वकर्मा सुतिहार श्रुति धरि सुलभ सिलप दिखायनो। तेहि देखे अय ताप नाहीं ब्रज-बधू मन भावनो।—सूर।

सिलपची-संज्ञा स्त्री० दे० "चिलमची"।

सिलपट-वि० [सं० शिलापट्ट] (१) साफ़। बराबर। चौरस।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) घिसा हुआ। मिटा हुआ। (३) चौपट। सत्यानाश।

संज्ञा पुं० [अं० स्लिपर] एड़ी की ओर खुली हुई जूती। चट्टी। चप्पल।

सिलपोहनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिल+पोहना] विवाह की एक रीति। उ०—सिंदूर बंदन होम लावा होन लागी भाँवरी। सिल पोहनी करि मोहनी मन हर्यो मूरति साँवरी।—तुलसी।

विशेष—विवाह में मातृकापूजन के समय वर और कन्या के माता पिता सिल पर थोड़ी सी भिगोई हुई उरद की दाल रखकर पीसते हैं। इसी को सिलपोहनी कहते हैं।

सिलफची-संज्ञा स्त्री० दे० "चिलमची"।

सिलफोड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० सिल+फोड़ना] पाषाण भेद। पत्थरचूर नाम का पौधा।

सिलबरुआ-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो पूरबी बंगाल की ओर होता है।

सिलमाकर-संज्ञा पुं० [अं० सेल-मेकर] पाल बनानेवाला। (लश्करी)

सिलवट-संज्ञा स्त्री० [देश०] सुकड़ने से पड़ी हुई लकीर। चुनट। बल। शिकन। सिकुड़न। वली।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

मनोरंजन पुस्तकमाला

अब तक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

(१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल।
(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(३) गुरु गोविन्दसिंह—लेखक वेणीप्रसाद।
(४, ५, ६,) आदर्श हिंदू, तीन भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्म्मा।
(७) राणा जंगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा।
(९) जीवन के आनंद—लेखक गणपति जानकीराम दुबे।
(१०) भौतिक विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद बी० एस-सी०।
(११) लालचीन—लेखक ब्रजनंदनसहाय।
(१२) कबीर-वचनावली—संग्रहकर्त्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय।
(१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी० ए०।
(१४) बुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(१६) सिक्खों का उत्थान और पतन—लेखक नंदकुमारदेव शर्म्मा।
(१७) वीरमणि—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०।
(१८) नेपोलियन बोनापार्ट—लेखक राधामोहन गोकुलजी।
(१९) शासनपद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार।
(२०, २१) हिंदुस्तान, दो खंड—लेखक दयाचंद्र गोयलीय बी० ए०।
(२२) महर्षि सुकरात—लेखक वेणीप्रसाद।
(२३) ज्योतिर्विनोद—लेखक संपूर्णानंद बी० एस०-सी०
(२४) आत्मशिक्षण—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०।
(२५) सुंदरसार—संग्रहकर्त्ता पुरोहित हरिनारायण शर्म्मा बी० ए०।
(२६, २७) जर्मनी का विकास, दो भाग—लेखक सूर्यकुमार वर्म्मा।
(२८) कृषिकौमुदी—लेखक दुर्गाप्रसादसिंह एल०ए-जी०
(२९) कर्तव्यशास्त्र—लेखक गुलाबराय एम० ए०।
(३०, ३१) मुसलमानी राज्य का इतिहास, दो भाग—लेखक मन्नन द्विवेदी बी० ए०।
(३२) महाराज रणजीतसिंह—लेखक वेणीप्रसाद।
(३३,३४) विश्वप्रपंच, दो भाग—लेखक रामचंद्र शुक्ल।
(३५) अहिल्याबाई—लेखक गोविंदराम केशवराम जोशी।
(३६) रामचंद्रिका—संकलनकर्त्ता लाला भगवानदीन।
(३७) ऐतिहासिक कहानियाँ—लेखक द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी।
(३८,३९) हिंदी निबंधमाला, दो भाग—संग्रहकर्त्ता श्यामसुन्दरदास बी० ए०।
(४०) सूरसुधा—संपादक गणेशविहारी मिश्र, श्यामविहारी मिश्र, शुकदेवविहारी मिश्र।
(४१) कर्त्तव्य—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(४२) संक्षिप्त रामस्वयंवर—संपादक ब्रजरत्नदास।
(४३) शिशु-पालन—लेखक मुकुन्दस्वरूप वर्म्मा।
(४४) शाही दृश्य—लेखक मक्खनलाल गुप्त 'गुप्त'।
(४५) पुरुषार्थ—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(४६,४७) तर्कशास्त्र, दो भाग—लेखक गुलाबराय एम० ए०।

माला की प्रत्येक पुस्तक या उसके किसी भाग का मूल्य १।) है, पर स्थायी ग्राहकों को सब पुस्तकें बारह आने में दी जाती हैं।

एक कार्ड भेजकर उत्तमोत्तम पुस्तकों का बड़ा और नया सूचीपत्र मँगवाइए।

इण्डियन प्रेस लिमिटेड,
बनारस ब्रांच।

आवश्यक निवेदन

हिन्दी शब्दसागर अब समाप्ति पर है। यह शब्द कोश प्रायः दो या तीन संख्याओं में समाप्त हो जायगा और इसकी समाप्ति में अधिक से अधिक ४–५ मास का समय लगेगा। विचार यह होता है कि इस शब्दसागर में जो शब्द छूट गए हैं, वे अन्त में परिशिष्ट रूप में दे दिए जायँ। कोश-कार्य्यालय में इस प्रकार के कुछ शब्दों का संग्रह प्रस्तुत है; परंतु यह संग्रह किसी प्रकार पूर्ण नहीं कहा जा सकता। अतः कोश के ग्राहकों तथा हिंदी के अन्यान्य समस्त विद्याप्रेमी पाठकों, समालोचकों, सम्पादकों तथा दूसरे विद्वानों से सभा का नम्र निवेदन है कि आप लोगों के देखने में जो शब्द इस शब्दसागर में छूटे हुए हों, वे सब यथासाध्य व्युत्पत्ति और अर्थ आदि के सहित सभा में लिख भेजने की कृपा करें। उन लोगों के थोड़ा थोड़ा कष्ट उठाने पर ही इस कोश के एक अभाव की बहुत बड़ी पूर्ति हो जायगी। जो लोग इस प्रकार सभा में शब्द संगृहीत करके भेजने की कृपा करेंगे, सभा उनकी अत्यन्त अनुगृहीत होगी। यदि इस कार्य्य के लिये पुरस्कार की आवश्यकता होगी, तो उस पर भी सभा विचार करेगी।

नागरीप्रचारिणी सभा
काशी।
१५-११-२७.

श्यामसुन्दरदास
सम्पादक
हिंदी शब्दसागर।

मुद्रक—गणपति कृष्ण गुर्जर श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, जतनवर काशी।

हिंदी-शब्दसागर

अर्थात्

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

सहायक संपादक

रामचंद्र शुक्ल रामचंद्र वर्म्मा

भगवानदीन

प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा

१९२७

मूल्य १)

डाक व्यय अतिरिक्त

संकेताक्षरों का विवरण

अँ० = अँगरेजी भाषा
अ० = अरबी भाषा
अनु० = अनुकरण शब्द
अने० = अनेकार्थनाममाला
अप० = अपभ्रंश
अयोध्या०=अयोध्यासिंह उपाध्याय
अर्द्धमा० = अर्द्ध मागधी
अल्पा० = अल्पार्थक प्रयोग
अव्य० = अव्यय
आनंदघन = कवि आनंदघन
इब० = इबरानी भाषा
उ० = उदाहरण
उत्तर चरित=उत्तररामचरित
उप० = उपसर्ग
उभ० = उभयलिंग
कठ० उप०=कठवल्ली उपनिषद्
कबीर = कबीरदास
केशव = केशवदास
कोंक०=कोंकण देश की भाषा
क्रि० = क्रिया
क्रि० अ० = क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र० = क्रियाप्रयोग
क्रि० वि०=क्रियाविशेषण
क्रि० स०=क्रिया सकर्मक
क्व०=क्वचित् अर्थात् इसका प्रयोग बहुत कम देखने में आया है।
खानखाना=अब्दुर्रहीम खानखाना
गि० दा० या गि० दास=गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर=गिरिधरराय (कुंडलियावाले)
गुज० = गुजराती भाषा

गुमान = गुमान मिश्र
गोपाल = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
चरण = चरणचंद्रिका
चिंतामणि = कवि चिंतामणि त्रिपाठी
छीत = छीतस्वामी
जायसी = मलिक मुहम्मद जायसी
जावा० = जावा द्वीप की भाषा
ज्यो० = ज्योतिष
डिं० = डिंगल भाषा
तु० = तुरकी भाषा
तुलसी = तुलसीदास
तोष = कवि तोष
दादू = दादूदयाल
दीनदयालु = दीनदयालु गिरि
दूलह = कवि दूलह
दे० = देखो
देव = देव कवि (मैनपुरीवाले)
देश० = देशज
द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी
नागरी = नागरीदास
नाभा = नाभादास
निश्चल = निश्चलदास
पं० = पंजाबी भाषा
पद्माकर = पद्माकर भट्ट
पर्या० = पर्याय
पा० = पाली भाषा
पुं० = पुलिंग
पु० हिं० = पुरानी हिन्दी
पुर्त० = पुर्तगाली भाषा
पू० हिं० = पूर्वी हिंदी

प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र
प्रत्य० = प्रत्यय
प्रा० = प्राकृत भाषा
प्रिया० = प्रियादास
प्रे० = प्रेरणार्थक
प्रे० सा० = प्रेमसागर
फ्र० = फरासीसी भाषा
फा० = फारसी भाषा
बँग० = बँगला भाषा
बरमी = बरमी भाषा
बहु० = बहुवचन
बिहारी = कवि बिहारीलाल
बुं० खं० = बुंदेलखंडी बोली
बेनी = कवि बेनी प्रवीन
भाव० = भाववाचक
भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी
मतिराम = कवि मतिराम त्रिपाठी
मला० = मलायलम भाषा
मलूक = मलूकदास
मि० = मिलाओ
मुहा० = मुहावरे
यू० = यूनानी भाषा
यौ० = यौगिक तथा दो या अधिक शब्दों के पद
रघु० दा० = रघुनाथदास
रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन
रघुराज = महाराज रघुराजसिंह रीवाँनरेश
रसखान = सैयद इब्राहीम

लल्लू = लल्लूलाल
लश० = लशकरी भाषा अर्थात् हिंदुस्तानी जहाजियों की बोली
लाल = लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)
लै० = लैटिन भाषा
वि० = विशेषण
विश्राम = विश्रामसागर
व्यंग्यार्थ = व्यंग्यार्थकौमुदी
व्या० = व्याकरण
व्यास = अंबिकादत्त व्यास
शं० दि० = शंकर दिग्विजय
शृं० सत० = शृंगार सतसई
सं० = संस्कृत
संयो० = संयोजक अव्यय
संयो० क्रि० = संयोज्य
स० = सकर्मक
सबल = सबलसिंह चौहान
सभा वि० = सभाविलास
सर्व० = सर्वनाम
सुधाकर = सुधाकर द्विवेदी
सूदन = सूदनकवि (
सूर = सूरदास
स्त्रि० = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री० = स्त्रीलिंग
स्पे० = स्पेनी भाषा
हिं० = हिंदी भाषा
हनुमान = हनुमन्नाटक
हरिदास = स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र = भारतेंदु

* यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त होता है।
† यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्रांतिक है।
‡ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप ग्राम्य है।

सिलवाना–क्रि० स० [हिं० सीना का प्रेर०] किसी को सीने में प्रवृत्त करना। सिलाना।

सिलसिला–संज्ञा पुं० [अ०] (१) बँधा हुआ तार। क्रम। परंपरा। (२) श्रेणी। पंक्ति। जैसे,—पहाड़ों का सिलसिला। (३) शृंखला। जंजीर। लड़ी। (४) व्यवस्था। तरतीब। जैसे,—कुरसियाँ को सिलसिले से रख दो। (५) कुल परंपरा। वंशानुक्रम।

वि० [सं० सिक्त] (१) भींगा हुआ। आर्द्र। गीला। (२) जिस पर पैर फिसले। रपटनवाला। (३) चिकना। उ०—बेंदी भाल तमोल मुख, सीस सिलसिले बार। दृग आँजे राजे खरी, येही सहज सिंगार।—बिहारी।

सिलसिलाबंदी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० + अ०] (१) क्रम का बंधान। तरतीब। (२) कतारबंदी। पंक्ति बँधाई।

सिलसिलेवार–वि० [अ० + फ़ा०] तरतीबवार। क्रमानुसार।

सिलह–संज्ञा पुं० [अ० सिलाह] हथियार। शस्त्र। उ०—न्हाय गुसल करि सिलह करि हुवै नगारे दोइ। देत नगारे तीसरे ह्वै सवार सब कोइ।—सूदन।

सिलहखाना–संज्ञा पुं० [अ० सिलाह + फ़ा० खानः] अस्त्रागार। हथियार रखने का स्थान।

सिलहट–संज्ञा पुं० [देश०] (१) आसाम का एक नगर। (२) एक प्रकार का अगहनी धान। (३) एक प्रकार की नारंगी जो सिलहट (आसाम) में होती है।

सिलहटिया–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की नाव जिसके आगे पीछे दोनों तरफ के सिरे लंबे होते हैं।

सिलहार, सिलहारा–संज्ञा पुं० [सं० शिलकार] खेत में गिरा हुआ अनाज बीननेवाला।

सिलहिला–वि० [हिं० सील, सीड़ + हीला = कीचड़] [स्त्री० सिलहिली] जिस पर पैर फिसले। रपटनवाला। कीचड़ से चिकना। उ०—घर कबीर का शिखर पर, जहाँ सिलहली गैल। पाँव न टिकै पिपीलिका, खलक न लादे बैल।—कबीर।

सिलही–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

सिला–संज्ञा स्त्री० दे० "शिला"। उ०—छुवत सिला सब चंद्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे। कीन्ही भली रघुनंदन जू करुना करि कानन को पग धारे।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं० शिल] (१) खेत से कटी फसल उठा ले जाने के पश्चात् गिरा हुआ अनाज। कटे खेत में से चुना हुआ दाना। उ०—कौं जो कछु धरौं सचि पचि सुकृत सिला बटोरि। पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अजोरि।—तुलसी।

क्रि० प्र०—चुनना।—बीनना।

(२) पछोड़ने या फटकने के लिये रखा हुआ अनाज का ढेर। (३) कटे हुए खेत में गिरे अनाज के दाने चुनने की क्रिया। शिलवृत्ति।

संज्ञा पुं० [अ० सिलह] बदला। एवज। पलटा। प्रतीकार।

मुहा०—सिले में = बदले में। उपलक्ष में।

सिलाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० सीना + आई (प्रत्य०)] (१) सीने का काम। सुई का काम। (२) सीने का ढंग। जैसे,—इस कोट की सिलाई अच्छी नहीं है। (३) सीने की मजदूरी। (४) टाँका। सीवन।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक कीड़ा जो प्रायः ऊख या ज्वार के खेतों में लग जाता है। इसका शरीर भूरापन लिए हुए गहरा लाल होता है।

सिलाजीत–संज्ञा पुं० [सं० शिलाजतु] पत्थर की चट्टानों का लसदार पसेव जो बड़ी भारी पुष्टई माना जाता है। वि० दे० "शिलाजतु"।

सिलाना–क्रि० स० [हिं० सीना का प्रे०] सीने का काम दूसरे से कराना। सिलवाना।

क्रि० स० दे० "सिराना"।

सिलापाक–संज्ञा पुं० [हिं० सिला + पाक] पथरफूल। छरीला। शैलज।

सिलाबी–वि० [हिं० सीड़, सील + फ़ा० आब = पानी] सीड़वाला। तर।

सिलारस–संज्ञा पुं० [सं० शिलारस] (१) सिल्हक वृक्ष। (२) सिल्हक वृक्ष का निर्यास या गोंद जो बहुत सुगंधित होता है।

विशेष—यह पेड़ एशियाई कोचक के दक्खिन के जंगलों में बहुत होता है। इसका निर्यास 'सिलारस' के नाम से बिकता है और औषध के काम में आता है।

सिलावट–संज्ञा पुं० [सं० शिला + पट्ट] पत्थर काटने और गढ़नेवाले। संगतराश। उ०—भली भरदात वाँ को लिखा कि खासी बेलदार और सिलावट भेज कर रस्ता चौड़ा करे।—देवीप्रसाद।

सिलासार–संज्ञा पुं० [सं० शिलासार] लोहा।

सिलाह–संज्ञा पुं० [अ०] (१) जिरह बकतर। कवच। उ०—आछी की आँगी कसी यों उरोजनि मानो सिपाही सिलाह किये हैं।—मन्नालाल। (२) अस्त्र-शस्त्र। हथियार।

सिलाहखाना–संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] हथियार रखने का स्थान। शस्त्रालय। अस्त्रागार।

सिलाहबंद–वि० [अ० + फ़ा०] सशस्त्र। हथियारबंद। शस्त्रों से सुसज्जित।

सिलाहर–संज्ञा पुं० [सं० शिल + हर] (१) खेत में से एक एक दाना अन्न बीनकर, निर्वाह करनेवाला मनुष्य। सिला बीननेवाला। (२) अकिंचन। दरिद्र।

सिलाहसाज़–संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] हथियार बनानेवाला।

सिलाही-संज्ञा पुं० [अ० सिलाह+ई (प्रत्य०)] शस्त्र धारण करनेवाला। सैनिक। सिपाही।

सिलिंगिया-संज्ञा स्त्री० [शिलांग] पूरबी हिमालय के शिलांग प्रदेश में पाई जानेवाली एक प्रकार की भेड़।

सिलिप‡🞵-संज्ञा पुं० दे० "शिल्प"। उ०—खेती, बनि, विद्या, बनिज, सेवा सिलिप सुकाज। तुलसी सुरतरु, सुरधेनु महि, अभिमत भोग विलास।—तुलसी।

सिलिया-संज्ञा स्त्री० [सं० शिला] एक प्रकार का पत्थर जो मकान बनाने के काम में आता है।

सिलियार, सिलियारा-संज्ञा पुं० दे० "सिलाहर"।

सिलिसिलिक-संज्ञा पुं० [सं०] गोंद। लासा।

सिलींध्र-संज्ञा पुं० दे० "शिलींध्र"।

सिलीमुख-संज्ञा पुं० दे० "शिलीमुख"।

सिलेट-संज्ञा स्त्री० दे० "स्लेट"।

सिलोंध-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बड़ी मछली जो भारत और बर्मा की नदियों में पाई जाती है। यह छः फुट तक लंबी होती है।

सिलोच्च-संज्ञा पुं० [सं० शिलोच्च] एक पर्वत जो गंगा तट पर विश्वामित्र के सिद्धाश्रम से मिथिला जाते समय राम को मार्ग में मिला था। उ०—यह हिमवंत सिलोच्चै नामा। श्रृंग गंग तट अति अभिरामा।—रघुराज।

सिलौआ-संज्ञा पुं० [देश०] सन के मोटे रेशे जिनसे टोकरी बनाई जाती है।

सिलौट, सिलौटा-संज्ञा पुं० [हिं० सिल+बट्टा] (१) सिल। (२) सिल तथा बट्टा।

सिलौटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिल+औटी (प्रत्य०)] भाँग, मसाला आदि पीसने की छोटी सिल।

सिल्क-संज्ञा पुं० [अं०] (१) रेशम। (२) रेशमी कपड़ा।

सिल्प-संज्ञा पुं० दे० "शिल्प"।

सिल्लकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शल्लकी वृक्ष। सलई का पेड़।

सिल्ला-संज्ञा पुं० [सं० शिल] (१) अनाज की बालियाँ या दाने जो फसल कट जाने पर खेत में पड़े रह जाते हैं और जिन्हें चुनकर कुछ लोग निर्वाह करते हैं।

मुहा०—सिल्ला बीनना या चुनना = खेत में गिरे अनाज के दाने चुनना। उ०—कविता खेती उन लई, सिल्ला बिनत मजूर। (२) खलियान में गिरा हुआ अनाज का दाना। (३) खलियान में बरसाने के स्थान पर लगा हुआ भूसे का ढेर जिसमें कुछ दाने भी चले जाते हैं।

सिल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं० शिला] (१) पत्थर का सात आठ अंगुल लंबा छोटा टुकड़ा जिस पर घिसकर नाई उस्तरे की धार तेज करते हैं। हथियार की धार चोखी करने का पत्थर। सान। (२) आरे से चीरकर पेड़ी से निकाला हुआ तख्ता। फलक। पटरी। (३) पत्थर की छोटी पतली पटिया। (४) नदी में वह स्थान जहाँ पानी कम और धारा बहुत तेज होती है। (मांझी)

संज्ञा स्त्री० [हिं० सिल्ला] फटकने के लिये लगाया हुआ अनाज का ढेर।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का जलपक्षी जिसका शिकार किया जाता है।

विशेष—यह हाथ भर के लगभग लंबा होता है और तालों के किनारे दलदलों के पास पाया जाता है। यह मछलियाँ पकड़ने के लिये पानी में गोता लगाता है।

सिल्ह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिलारस नामक गंध द्रव्य। (२) सिलारस का पेड़।

सिल्हक-संज्ञा पुं० [सं०] सिलारस नामक गंध द्रव्य। कपितैल। कपिचंचल।

सिल्हकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह पेड़ जिससे शिलारस निकलता है। (२) कुंदुरु। शल्लकी निर्यास।

सिव🞵‡-संज्ञा पुं० दे० "शिव"।

सिवई-संज्ञा स्त्री० [सं० समिता = गेहूँ का गुँधा हुआ आटा] गुँधे हुए आटे के सूत के से सूखे लच्छे जो दूध में पकाकर खाए जाते हैं। सिवैयाँ।

मुहा०—सिवैयाँ बटना या तोड़ना = गीले आटे को हथेलियों के बीच में रगड़ते हुए सूत के से लच्छे बनाना। सिवैयाँ बनाना। सिवई पूरना = दे० "सिवैयाँ बटना"।

सिवक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीनेवाला। (२) दरजी।

सिवर-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी। हस्ती। गज।

सिवलिंगी-संज्ञा स्त्री० दे० "शिवलिंगी"।

सिवस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वस्त्र। कपड़ा। (२) पथ। लोक।

सिवा-संज्ञा स्त्री० दे० "शिवा"।

अव्य० [अ०] अतिरिक्त। छोड़कर। अलावा। बाद देकर। जैसे,—तुम्हारे सिवा और यहाँ कोई नहीं आया।

वि० अधिक। ज्यादा। फालतू।

सिवाइ-अव्य० दे० "सिवाय", "सिवा"।

सिवाई-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मिट्टी।

† संज्ञा स्त्री० दे० "सिलाई"।

सिवान-संज्ञा पुं० [सं० सीमांत] (१) किसी प्रदेश का अंतिम भाग जिसके आगे दूसरा प्रदेश पड़ता हो। हद। सरहद। सीमा। (२) किसी गाँव के छोर पर की भूमि। गाँव की हद। सीमा। (३) गाँव के अंतर्गत भूमि। (४) फसल तैयार हो जाने पर ज़मींदार और किसान में अनाज का बँटवारा।

सिवाय-क्रि० वि० [अ० सिवा] अतिरिक्त। अलावा। छोड़कर। बाद देकर।

वि० (१) आवश्यकता से अधिक। जरूरत से ज्यादा। बेशी। (२) अधिक। ज्यादा। (३) ऊपरी। बालाई। मामूली से अतिरिक्त और।

संज्ञा पुं० वह आमदनी जो मुकर्रर वसूली के ऊपर हो।

सिवार-संज्ञा स्त्री० पुं० [सं० शैवाल] पानी में बालों के लच्छों की तरह फैलनेवाला एक तृण।

विशेष—यह नदियों में प्रायः होता है। इसका रंग हलका हरा होता है। यह चीनी साफ करने तथा दवा के काम में आता है। वैद्यक में यह कसैला, कड़ुवा, मधुर, शीतल, हलका, स्निग्ध, नमकीन, दस्तावर, घाव को भरनेवाला तथा त्रिदोष को नाश करनेवाला कहा गया है। उ०—(क) पग न इत उत धरत पावत उरझि मोह सिवार।—सूर। (ख) चलती लता सिवार की, जल तरंग के संग। वड़वानल को जनु धरयो, धूम धूमरो रंग।—तुलसी।

सिवाल-संज्ञा स्त्री० पुं० दे० "सिवार"। उ०—नीलाम्बर नील जाल बीच ही उरझि सिवाल छट जाल में लपटि परयो।—देव।

सिवाला-संज्ञा पुं० [सं० शिवालय] शिव का मंदिर।

सिवाली-संज्ञा पुं० [सं० शैवाल] एक प्रकार का मरकत या पन्ना जिसका रंग कुछ हलका होता है और जिसमें कभी कभी ललाई की भी कुछ आभा रहती है।

सिवि-संज्ञा पुं० दे० "शिवि"।

सिविका-संज्ञा स्त्री० दे० "शिविका"। उ०—राजा की रजाइ पाइ सचिव सहेली धाइ सतानंद ल्याए सिय सिविका चढ़ाइ कै।—तुलसी।

सिविर-संज्ञा पुं० दे० "शिविर"। उ०—बसत सिविर मधि मगध अंध सुत। जिमि उडगन मधि रवि ससि छवि जुत।—गि० दास।

सिविल-वि० [अं०] (१) नगर संबंधी। नागरिक। (२) नगर की शांति के समय देख रेख या चौकसी करनेवाला। जैसे,—सिविल पुलिस। (३) मुल्की। माली। (४) शालीन। सभ्य। मिलनसार।

सिविल सर्जन-संज्ञा पुं० [अं०] सरकारी बड़ा डाक्टर जिसे जिले भर के अस्पतालों, जेलखानों तथा पागलखानों को देखने का अधिकार होता है।

सिविल सर्विस-संज्ञा स्त्री० [अं०] अँगरेजी सरकार की एक विशेष परीक्षा जिसमें उत्तीर्ण व्यक्ति देश के प्रबंध और शासन में ऊँचे पद पर नियुक्त होते हैं।

सिवीलियन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) सिविल सर्विस-परीक्षा पास किया हुआ मनुष्य। (२) मुल्की अफसर। देश के शासन और प्रबंध विभाग का कर्मचारी।

सिवैयाँ-संज्ञा स्त्री० दे० "सिवई"।

सिष्ट-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० शिस्त] वंसी की डोरी। उ०—हस्ती लाय सिष्ट सब बीला। दौड़ आय इक चाल्हहिं लीला।—जायसी।

‡वि० दे० "शिष्ट"।

सिष्य‡-संज्ञा पुं० दे० "शिष्य"। उ०—राय रजायसु राय को ऋषिराज बोलाए। सिष्य सचिव सेवक सखा सादर सिर नाए।—तुलसी।

सिसकना-क्रि० अ० [अनु० या सं० सीत्+करण] (१) भीतर ही भीतर रोने में रुक रुककर निकलती हुई साँस छोड़ना। जैसे,—लड़का सिसक सिसककर रोता है। (२) रोक रोककर लंबी साँस छोड़ते हुए भीतर ही भीतर रोना। शब्द निकालकर न रोना। खुलकर न रोना।

मुहा०—सिसकती मिनकती=मैली कुचैली और रोनी सूरत का (स्त्री)।

(३) जी धड़कना। धकधकी होना। बहुत भय लगाना। जैसे,—वहाँ जाते हुए जी सिसकता है। (४) उलटी साँस लेना। हिचकियाँ भरना। मरने के निकट होना। (५) तरसना (प्राप्ति के लिये) रोना। (पाने के लिये) व्याकुल होना। उ०—प्रभुहिं बिलोकि मुनिगन पुलके कहत भूरि भाग भए सब नीच नारि नर हैं। तुलसी सो सुख लाहु लूटत किरात कोल जाको सिसकत सुर विधि हरि [illegible] हैं।—तुलसी।

सिसकारना-क्रि० अ० [अनु० सी सी+करना] (१) जीभ दबाते हुए वायु मुँह से छोड़ना। सीटी का सा शब्द मुँह से निकालना। सुसकारना। (२) इस प्रकार के शब्द से कुत्ते को किसी ओर लपकाना। लहकारना।

संयो० क्रि०—देना।

(३) जीभ दबाते हुए मुँह से साँस खींचकर सी सी शब्द निकालना। अत्यंत पीड़ा या आनंद के कारण मुँह से साँस खींचना। शीत्कार करना।

सिसकारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिसकारना] (१) सिसकारने का शब्द। जीभ दबाते हुए मुँह से वायु छोड़ने का शब्द। सीटी का सा शब्द। (२) कुत्ते को किसी ओर लपकाने के लिये सीटी का शब्द। (३) जीभ दबाते हुए मुँह से साँस खींचने का शब्द। अत्यंत पीड़ा या आनंद के कारण मुँह से निकला हुआ 'सी सी' शब्द। शीत्कार।

क्रि० प्र०—देना।—भरना।

सिसकी-संज्ञा स्त्री० [अनु० सी सी या सं० शीत्] (१) भीतर ही भीतर रोने में रुक रुककर निकलती हुई साँस का शब्द। खुलकर न रोने का शब्द। रुकती हुई लंबी साँस भरने का शब्द।

क्रि० प्र०—भरना।—लेना।

(२) सिसकारी। शीत्कार।

सिसियाँद-संज्ञा स्त्री० [?+गंध] मछली की सी गंध। बिसायँध।

सिसिरः-संज्ञा पुं० दे० "शिशिर"। उ०—(क) चलत चलत लौं ले चले, सब सुख संग लगाय। ग्रीषम बासर सिसिर निसि, पिय मो पास बसाय।—बिहारी। (ख) पावस परपि रहे उघरारे। सिसिर समै बसि नीर महारे।—पद्माकर।

सिसुः-संज्ञा पुं० दे० "शिशु"। उ०—(क) लोचनाभिराम घनस्याम राम रूप सिसु, सखी कहै सखी सों तू प्रेम पय पालि री।—तुलसी। (ख) देवर फूल हने जु सिसु उठी हरषि अँग फूल। हँसी करत औखध सखिनि देह ददोरनि भूल।—बिहारी।

सिसुताः-संज्ञा स्त्री० दे० "शिशुता"। उ०—(क) स्याम के संग सदा बिलसी सिसुता में सु ता में कछू नहीं जान्यो।—देव। (ख) छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यो जोबन अंग। दीपति देहि दुहून मिलि, दिपति ताफता रंग।—बिहारी।

सिसुपालः†-संज्ञा पुं० दे० "शिशुपाल"।

सिसुमारचक्र-संज्ञा पुं० दे० "शिशुमारचक्र"। उ०—एक एक भग देखि अनेकन उडगन वारिय। बसत मनहुँ सिसुमार-चक्र तन इमि निरधारिय।—गि० दास।

सिसृक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सृष्टि करने की इच्छा। रचने या बनाने की इच्छा।

सिसृक्षु-संज्ञा पुं० [सं०] सृष्ट करने की इच्छा रखनेवाला। रचना का इच्छुक। उ०—जाको मुमुक्षु जे प्रेम मुमुक्षु गुणै यह विश्व सिसृक्षु सदा ही। काल जिघृक्षु सरक्षु कृपा की स्वपानन स्वक्ष स्वपक्ष प्रिया ही।—रघुराज।

सिसोदिया-संज्ञा पुं० [सिसोद (स्थान)] गुहलौत राजपूतों की एक शाखा जिसकी प्रतिष्ठा क्षत्रिय कुलों में सब से अधिक है और जिसकी प्राचीन राजधानी चित्तौड़ और आधुनिक राजधानी उदयपुर है।

विशेष—क्षत्रियों में चित्तौड़ या उदयपुर का घराना सूर्य-वंशीय महाराज रामचन्द्र की वंश परंपरा में माना जाता है। इन क्षत्रियों का पहले गुजरात के वल्लभीपुर नामक स्थान में आना कहा जाता है। वहाँ से बाप्पारावल ने आकर चित्तौड़ को तत्कालीन मोरी शासक से लेकर अपनी राजधानी बनाया। मुसलमानों के आने पर भी चित्तौड़ स्वतंत्र रहा और हिन्दू शक्ति का प्रधान स्थान माना जाता था। चित्तौड़ में बड़े बड़े पराक्रमी राणा हो गए हैं। राणा समरसिंह, राणा कुंभा, राणा साँगा आदि मुसलमानों से बड़ी वीरता से लड़े थे। प्रसिद्ध वीर महाराणा प्रताप किस प्रकार अकबर से अपनी स्वाधीनता के लिये लड़े, यह प्रसिद्ध ही है। सिसोद नामक स्थान में कुछ दिन बसने के कारण गुहिलौतों की यह शाखा सिसोदिया कहलाई।

सिस्न-संज्ञा पुं० दे० "शिश्न"।

सिस्य-संज्ञा पुं० दे० "शिष्य"।

सिहद्दा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सेह+अ० हद] वह स्थान जहाँ तीन हदें मिलती हों।

सिहपर्णी-संज्ञा पुं० [सं०] अडूसा। वासक वृक्ष।

सिहरना†-क्रि० अ० [सं० शीत+ना] (१) ठंढ से काँपना। (२) काँपना। कंपित होना। (३) भयभीत होना। दहलना। उ०—इनक वियोग कु याद परे अतिसै हिय सिहरत।—व्यास। (४) रोंगटे खड़े होना।

सिहरा-संज्ञा पुं० दे० "सेहरा"।

सिहराना†-क्रि० स० [हिं० सिहरना] (१) सरदी से कँपाना। शीत से कंपित करना। (२) कँपाना। कंपित करना। (३) भयभीत करना। दहलाना।

क्रि० स०, क्रि० अ० दे० "सहलाना"।

सिहरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिहरना] (१) शीत-कंप। ठंढ के कारण कँपकँपी। (२) कंप। कँपकँपी। (३) भय। दहलना। (४) जूड़ी का बुखार। (५) रोंगटे खड़े होना। लोमहर्ष।

सिहरू-संज्ञा पुं० [देश०] संभालू। सिंदुवार।

सिहलना†-क्रि० अ० [सं० शीतल] (१) सिराना। ठंढा होना। (२) शीत खा जाना। सीड़ खाना। नम होना। (३) ठंढ पड़ना। सरदी पड़ना।

सिहलावन†-संज्ञा पुं० [हिं० सिहलाना] सरदी। ठंढ। जाड़ा।

सिहली-संज्ञा स्त्री० [सं० शीतली] शीतली जटा। शीतली लता।

सिहान-संज्ञा पुं० [सं० सिंहाण] मंडूर। लोहकिट्ट।

सिहाना†-क्रि० अ० [सं० ईर्ष्या] (१) ईर्ष्या करना। डाह करना। (२) किसी अच्छी वस्तु को देखकर इस बात से दुखी होना कि वैसी वस्तु हमारे पास नहीं है। स्पर्द्धा करना। उ०—द्वारिका की देखि छवि सुर असुर सकल सिहात।—सूर। (३) पाने के लिये ललचना। लुभाना। उ०—सूर प्रभु को निरखि गोपी मनहि मनहि सिहाति।—सूर। (४) मुग्ध होना। मोहित होना। उ०—(क) सूर स्याम मुख निरखि जसोदा मनही मनहि सिहाती।—सूर। (ख) लाल अलौकिक लरिकई लखि लखि सखी सिहाति।—बिहारी।

क्रि० स० (१) ईर्ष्या की दृष्टि से देखना। (२) अभिलाष की दृष्टि से देखना। ललचना। उ०—सुमठ समाज राज दसरथ को लोकप सकल सिहाहीं।—तुलसी।

सिहारनाः†-क्रि० स० [देश०] (१) तलाश करना। ढूँढना। (२) जुटाना। उ०—हम कन्यन को ब्याह विचारी। इनहि जोग वर तुमहु सिहारी।—पद्माकर।

सिहिकना-क्रि० अ० [सं० शुष्क] सूखना। (फ़सल का)

सिहुंड-संज्ञा पुं० [सं०] सेहुँड़ का पेड़। स्नुही। थूहर।

सिहोड़, सिहोर—संज्ञा पुं० [सं० सिहुंड] थूहर । सेहुँड़ । स्नुही । उ०—ऐंगि बोलि, बलि, बरजिए करतूति कठोरे । तुलसी दलि रूँध्यो चहै सठ साखि सिहोरे ।—तुलसी ।

सींक—संज्ञा स्त्री० [सं० इषीका] (१) मूँज या सरपत की जाति के एक पौधे के बीच का सीधा पतला कांड जिसमें फूल या घूआ लगता है । मूँज आदि की पतली तीली ।

विशेष—इस कांड का घेरा मोटी सूई के बराबर होता है और यह कई कामों में आता है । बहुत सी तीलियों को एक में बाँधकर झाड़ू बनाते हैं । उ०—सींक धनुष हित सिखन सकुचि प्रभु लीन । मुदित माँगि इक धनुही नृप हँसि दीन ।—तुलसी ।

(२) किसी तृण का सूक्ष्म कांड । किसी घास का महीन डंठल । (३) किसी घास फूस के महीन डंठल का टुकड़ा । तिनका । (४) शंकु । तीली । सूई की तरह पतला लंबा खंड । (५) नाक का एक गहना । लौंग । कील । उ०—अदित नीलमनि जगमगति सींक सुहाई नाक । मनो अली चंपक कली बसि रस लेत निसाँक ।—बिहारी । (६) कपड़े पर की खड़ी महीन धारी ।

सींकपार—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बनस्र ।

सींकर—संज्ञा पुं० [हिं० सींक] सींक में लगा फूल या घूआ ।

सींका—संज्ञा पुं० [हिं० सींक] पेड़ पौधों की बहुत पतली उपशाखा या टहनी जिसमें पत्तियाँ गुछी रहती या फूल लगते हैं । डाँड़ी । जैसे,—नीम का सींका ।

सींकिया—संज्ञा पुं० [हिं० सींक + इया (प्रत्य०)] एक प्रकार का रंगीन कपड़ा जिसमें सींक सी महीन सीधी धारियाँ बिलकुल पास पास होती हैं । जैसे,—सींकिये का पायजामा ।

वि० सींक सा पतला ।

मुहा०—सींकिया पहलवान = दुबला पतला आदमी जो अपने को बड़ा बली समझता हो ।

सींग—संज्ञा पुं० [सं० शृंग] (१) खुरवाले कुछ पशुओं के सिर के दोनों ओर शाखा के समान निकले हुए कड़े नुकीले अवयव जिनसे वे आक्रमण करते हैं । विषाण । जैसे,—गाय के सींग, हिरन के सींग ।

विशेष—सींग कई प्रकार के होते हैं और उनकी योजना भी भिन्न भिन्न उपादानों की होती है । गाय, भैंस आदि के पोले सींग ही असली सींग हैं जो अंडधातु और चूने आदि से संघटित तंतुओं के योग से बने होते हैं और बराबर रहते हैं । बारहसिंगों के सींग हड्डी के होते हैं और हर साल गिरते और नए निकलते हैं ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—मारना ।

मुहा०—(किसी के सिर पर) सींग होना = कोई विशेषता होना । कोई सुर्खाब का पर होना । औरों से बढ़कर कोई बात होना (व्यंग्य) । सींग कटाकर बछड़ों में मिलना = बूढ़े होकर बच्चों में मिलना । किसी सयाने का बच्चों का साथ देना । सींग दिखाना = अँगूठा दिखाना । कोई वस्तु न देना और चिढ़ाना । सींग निकलना = (१) चौपाए का जवान होना । (२) इतराना । पागलपन करना । सनकना । कहीं सींग समाना = कहीं ठिकाना मिलना । शरण मिलना । सींग पर मारना = कुछ न समझना । तुच्छ समझना । कुछ परवा न करना ।

(२) सींग का बना एक बाजा जो फूँक कर बजाया जाता है । सिंगी । उ०—सींग बजावत देखि सुकवि मेरे दृग अँटके ।—व्यास । (३) पुरुष की इन्द्रिय । (बाजारू)

सींगड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० सींग + डा (प्रत्य०)] (१) बारूद रखने का सींग का चोंगा । बारूददान । (२) एक प्रकार का बाजा जो मुँह से बजाया जाता है । सिंगी ।

सींगना—क्रि० स० [हिं० सींग] सींग देखकर चोरी के पशु पकड़ना । चोरी के चौपायों की शिनाख्त करना ।

सींगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का लोबिया या फली जिसकी तरकारी होती है । मोगरे की फली । सींगर । उ०—सूरन करि तरि सरस तोरई । सेमि सींगरी छमकि झोरई ।—सूर ।

सींगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० सींग] (१) हिरन के सींग का बना बाजा जो मुँह से बजाया जाता है । सिंगी । उ०—सींगी संख सेग डफ बाजे । बंसकार महुअर सुर साजे ।—जायसी । (२) वह पोला सींग जिससे जर्राह शरीर से दूषित रक्त खींचते हैं ।

मुहा०—सींगी लगाना या तोड़ना = (१) सींगी से रक्त खींचना । (२) चुंबन करना । (बाजारू)

(३) एक प्रकार की मछली जिसके मुँह के दोनों ओर सींग से निकले रहते हैं । तोमड़ी । उ०—सींगी, भाकुर बिनि सब धरी ।—जायसी ।

सींघन—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ों के माथे पर दो या अधिक भौंरीवाला टीका ।

सींच—संज्ञा स्त्री० [हिं० सींचना] (१) सींचने की क्रिया या भाव । सिंचाई । (२) छिड़काव ।

सींचना—क्रि० स० [सं० सिंचन] (१) पानी देना । पानी से भरना । आबपाशी करना । पटाना । जैसे,—खेत सींचना, बगीचा सींचना । उ०—अति अनुराग सुधाकर सींचत दाड़िम बीज समान ।—सूर । (२) पानी छिड़ककर तर करना । भिगोना । (३) छिड़कना । (पानी आदि) डालना या छितराना । उ०—(क) मार सुमार करी खरी अरी मरी हित मारि । सींच गुलाब घरी घरी अरी बरोहि न बारि ।—बिहारी । (ख) आँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ ।—तुलसी ।

सींचो-संज्ञा स्त्री० [हिं० सींचना] सींचने का समय।
सींवँ-संज्ञा पुं० [सं० सीमा] सीमा। हद। मर्यादा। उ०—(क) आवत देखि अतुल बल सींवाँ।—तुलसी। (ख) सुखनि की सींव सोहै सुजस समूह फैलो मानो अमरावती को देखि कै हँसतु है।—गुमान। (ग) सुख की सींव अवधि आनँद की अवध विलोकिहौं जाइहौं।—तुलसी।
मुहा०—सींव चरना या काँड़ना = अधिकार दिखाना। दबाना। जबरदस्ती करना। उ०—है काके द्वै सीस ईस के जो हठि जन की सींव चरै।—तुलसी।
सी-वि० स्त्री० [सं० सम, हिं० सा] सम। समान। तुल्य। सदृश। जैसे, वह भी बावली सी है। उ०—(क) मूरति की सूरति कही न परै तुलसी पै जानै सोई जाके उर कसकै करक सी।—तुलसी। (ख) दुरै न निघर घटौ दिए ए रावरी कुचाल। विष सी लागति है बुरी हँसी खिसी की लाल।—बिहारी। (ग) सरद चंद की चाँदनी मंद परति सी जाति।—पद्माकर।
मुहा०—अपनी सी = अपने भरसक जहाँ तक अपने से हो सके, वहाँ तक। उ०—मैं अपनी सी बहुत करी, री।—सूर।
संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह शब्द जो अत्यंत पीड़ा या आनंद-रसास्वाद के समय मुँह से निकलता है। सीत्कार। सिसकारी। उ०—'सी' करनवारी सेद-सीकरन-वारी रति सी करन वारी सो बसीकरनवारी है।—पद्माकर।
संज्ञा स्त्री० [सं० सीत] बीज की बोआई।
सीउ-संज्ञा पुं० [सं० शीत] शीत। ठंढ। उ०—(क) कीन्हेसि धूप सीउ औ छाहाँ।—जायसी। (ख) जहाँ भानु तहँ रहा न सीऊ।—जायसी।
सीकचा-संज्ञा पुं० [फा० सीख] लोहे की छड़।
सीकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल कण। पानी की बूँद। छींट। उ०—(क) श्रम स्वेद सीकर युंब मंडित रूप अंबुज कोर।—सूर। (ख) राम नाम रति स्वाति सुधा सुभ सीकर प्रेम पियासा।—तुलसी। (२) पसीना। स्वेद। श्रम। उ०—आनन सीकर सी कहिए धक सोवत ते अकुलाय उठी क्यों।—केशव।
संज्ञा स्त्री० [सं० शृंखला] जंजीर। सिकड़ी। उ०—भट धरे असी कर में पड़े सीकर-मुंडन में लसत।—गि० दास।
सीकल-संज्ञा पुं० [देश०] डाल का पका हुआ आम।
संज्ञा स्त्री० [अ० सैकल] हथियारों का मोरचा छुड़ाने की क्रिया। हथियार की सफाई।
सीकस-संज्ञा पुं० [देश०] ऊसर। उ०—सिंह शार्दूल एक हर जोतिनि सीकस बोइनि धाना।—कबीर।
सीका-संज्ञा पुं० [सं० शीर्षक] सोने का एक आभूषण जो ... पर पहना जाता है।
संज्ञा पुं० [सं० शिक्य] ऊपर टाँगने की सुतली आदि की जाली जिस पर दूध दही आदि का बरतन रखते हैं। छींका। सिकहर।
सीकाकाई-संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का वृक्ष जिसकी फलियाँ रीठे की भाँति सिर के बाल आदि मलने के काम में आती हैं। कुछ लोग इसे सातला भी मानते हैं।
सीकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सीका] छोटा सीका या छींका। छोटा सिकहर।
संज्ञा पुं० [देश०] (१) छेद। सूराख। (२) मुँह। मुहँड़ा।
सीकुर-संज्ञा पुं० [सं० शूक] गेहूँ, जौ आदि की बाल के ऊपर निकले हुए बाल के से कड़े सूत। शूक। उ०—गड़त पाँइ जब आइ, बड़ी बिथा सीकुर करत। क्यों न पीर सरसाइ याके हिय भूपति सुन्यो।—गुमान।
सीको-संज्ञा पुं० दे० "सीका"।
सीख-संज्ञा स्त्री० [सं० शिक्षा, प्रा० सिक्खा] (१) सिखाने की क्रिया या भाव। शिक्षा। तालीम। (२) वह बात जो सिखाई जाय। (३) परामर्श। सलाह। मंत्रणा। उपदेश। उ०—याकी सीख सुनै ब्रज कोरे।—सूर।
सीख-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) लोहे की लंबी पतली छड़। शलाका। तीली। (२) वह पतली छड़ जिसमें गोद कर मांस भूनते हैं। (३) बड़ी सूई। सूआ। शंकु। (४) लोहे की छड़ जिससे जहाज के पेंदे में आया हुआ पानी नापते हैं। (लश०)
सीखचा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) लोहे की सीख जिस पर मांस लपेटकर भूनते हैं। (२) लोहे की छड़।
सीखन-संज्ञा स्त्री० [हिं० सीखना] शिक्षा। सीख।
सीखना-क्रि० स० [सं० शिक्षण, प्रा० सिक्खण] (१) ज्ञान प्राप्त करना। जानकारी प्राप्त करना। किसी से कोई बात जानना। जैसे,—विद्या सीखना, कोई बात सीखना। (२) किसी कार्य्य के करने की प्रणाली आदि समझना। काम करने का ढंग आदि जानना। जैसे,—सितार सीखना, शतरंज सीखना।
संयो० क्रि०—जाना।—लेना।
सीगा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) साँचा। ढाँचा। (२) व्यापार। पेशा। (३) विभाग। महकमा।
यौ०—सीगेवार = ब्योरेवार।
(४) एक प्रकार के वाक्य जो मुसलमानों के विवाह के समय कहे जाते हैं।
संज्ञा पुं० दे० "सिंगार"।
सीगारा-संज्ञा पुं० [देश०] मोटा कपड़ा।
संज्ञा पुं० दे० "सिंगार"।
सीचन-संज्ञा पुं० [देश०] खारी पानी से मिट्टी निकालने का एक ढंग।
सीचापू-संज्ञा स्त्री० [सं०] यक्षिणी।
स्त्री० दे० "सीत"।

संज्ञा पुं० [देश०] थूहर । सेहुँड़ ।

सीजना–क्रि० अ० दे० "सीझना" ।

सीझ–संज्ञा स्त्री० [सं० सिद्धि, प्रा० सिज्झि] सीझने की क्रिया या भाव । गरमी से गलाव ।

सीझना–क्रि० अ० [सं० सिद्ध, प्रा० सिज्झ+ना] (१) आँच या गरमी पाकर गलना । पकना । चुरना । जैसे,—दाल सीझना, रसोई सीझना । (२) आँच या गरमी से मुलायम पड़ना । ताव खाकर नरम पड़ना । (३) सूखे हुए चमड़े का मसाले आदि में भीग कर मुलायम होना । (४) ताप या कष्ट सहना । क्लेश झेलना । (५) कायक्लेश सहना । तप करना । तपस्या करना । उ०—(क) एइ यहि लागि जनम भरि सीझा । चहै न औरहि, ओही रीझा ।—जायसी । (ख) गनिका गीध अजामिल आदिक ते कासी प्रयाग कब सीझे ।—तुलसी । (६) सरदी से गलना । बहुत ठंढ खाना । (७) ऋण का निपटारा होना ।

सीट–संज्ञा स्त्री० [अं०] बैठने का स्थान । आसन ।

संज्ञा स्त्री० सीटने की क्रिया या भाव । डींग ।

सीटना–क्रि० स० [अनु०] डींग मारना । शेखी मारना । बढ़ बढ़कर बातें करना ।

सीट पटाँग–संज्ञा स्त्री० [हिं० सीटना+(अड़) पटाँग] बढ़ बढ़कर की जानेवाली बातें । घमंड भरी बात ।

सीटी–संज्ञा स्त्री० [सं० शीत्] (१) वह पतला महीन शब्द जो ओठों को गोल सिकोड़कर नीचे की ओर आघात के साथ वायु निकालने से होता है ।

क्रि० प्र०—बजाना ।

मुहा०—सीटी देना = सीटी के शब्द से बुलाना या और कोई संकेत करना ।

(२) इसी प्रकार का शब्द जो किसी बाजे या यंत्र आदि के भीतर की हवा निकालने से होता है । जैसे,—रेल की सीटी ।

मुहा०—सीटी देना = (१) सीटी का शब्द निकालना । जैसे,—रेल सीटी दे रही है । (२) सीटी से सावधान करना ।

(३) वह बाजा या खिलौना जिसे फूँकने से उक्त प्रकार का शब्द निकले ।

सीठ–संज्ञा स्त्री० दे० "सीठी" ।

सीठना–संज्ञा पुं० [सं० अशिष्ट, प्रा० असिट्ठ+ना] अश्लील गीत जो स्त्रियाँ विवाहादि मांगलिक अवसरों पर गाती हैं । सीठनी । विवाह की गाली ।

सीठनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० सीठना] विवाह की गाली ।

सीठा–वि० [सं० शिष्ट, प्रा० सिट्ठ = बचा हुआ] नीरस । फीका । बिना स्वाद का । बेजायका ।

सीठापन–संज्ञा पुं० [हिं० सीठा+पन] नीरसता । फीकापन ।

सीठी–संज्ञा स्त्री० [सं० शिष्ट, प्रा० सिट्ठ = बचा हुआ] (१) किसी फल, फूल, पत्ते आदि का रस निकल जाने पर बचा हुआ निकम्मा अंश । वह वस्तु जिसका रस या सार निचुड़ गया हो । खूद । जैसे,—अनार की सीठी, भाँग की सीठी, पान की सीठी । (२) निस्सार वस्तु । सारहीन पदार्थ । (३) नीरस वस्तु । फीकी चीज ।

सीड़–संज्ञा स्त्री० [सं० शीत] सील । तरी । नमी ।

सीढ़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० श्रेणी] (१) किसी ऊँचे स्थान पर क्रम क्रम से चढ़ने के लिये एक के ऊपर एक बना हुआ पैर रखने का स्थान । निसेनी । जीना । पैड़ी । (२) बाँस के दो बल्लों का बना लंबा ढाँचा, जिसमें थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर रखने के लिये डंडे लगे रहते हैं और जिसे भिड़ाकर किसी ऊँचे स्थान तक चढ़ते हैं । बाँस की बनी पैड़ी ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

यौ०—सीढ़ी का डंडा = पैर रखने के लिये बाँस [redacted] सीढ़ी में जड़ा हुआ डंडा ।

मुहा०—सीढ़ी सीढ़ी चढ़ना = क्रम क्रम से ऊपर की ओर बढ़ना । धीरे धीरे उन्नति करना ।

(३) उत्तरोत्तर उन्नति का क्रम । धीरे धीरे आगे बढ़ने की परंपरा । (४) हैंड प्रेस का एक पुर्जा जिस पर टाइप रखकर छापने का ढेलन लगा रहता है । (५) घुड़िया के आकार का लकड़ी का पाया जो खँडसाल में चीनी साफ करने के काम में आता है । (६) एक गराड़ीदार लकड़ी जो गिरदानक की आड़ के लिये लपेटन के पास गड़ी रहती है । (जुलाहे)

सीत‡–संज्ञा पुं० दे० "शीत" ।

सीतपकड़–संज्ञा पुं० [हिं० शीत+पकड़ना] एक रोग जो हाथी को शीत से होता है ।

सीतल‡–वि० दे० "शीतल" ।

सीतलचीनी–संज्ञा स्त्री० दे० "शीतलचीनी" ।

सीतलपाटी–संज्ञा स्त्री० [सं० शीतल+हिं० पाटी] (१) एक प्रकार की बढ़िया चिकनी चटाई । (२) पूर्व बंगाल और आसाम के जंगलों में होनेवाली एक प्रकार की झाड़ी जिससे चटाई या सीतलपाटी बनती है । (३) एक प्रकार का धारीदार कपड़ा ।

सीतल बुकनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० शीतल+बुकनी] (१) सत्तू । सतुआ । (२) संतों की बानी । (साधु)

सीतला–संज्ञा स्त्री० दे० "शीतला" ।

सीता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह रेखा जो जमीन जोतते समय हल की फाल के धँसने से पड़ती जाती है । कूँड़ ।

विशेष—वेदों में सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी और कई मंत्रों की देवता है । तैत्तिरीय ब्राह्मण में सीता को सावित्री और पाराशर गृह्यसूत्र में इन्द्रपत्नी कहा गया है ।

(२) मिथिला के राजा सीरध्वज जनक की कन्या जो श्रीरामचंद्र जी की पत्नी थीं ।

विशेष—इनकी उत्पत्ति की कथा यों है कि राजा जनक ने संतति के लिये एक यज्ञ की विधि के अनुसार अपने हाथ से भूमि जोती। जुती हुई भूमि की कूँड़ (सीता) से सीता उत्पन्न हुई। सयानी होने पर सीता के विवाह के लिये जनक ने धनुर्यज्ञ किया, जिसमें यह प्रतिज्ञा थी कि जो कोई एक विशेष धनुष को चढ़ावे, उससे सीता का विवाह हो। अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र कुमार रामचंद्र ही उस धनुष को चढ़ा और तोड़ सके, इससे उन्हीं के साथ सीता का विवाह हुआ। जब विमाता की कुटिलता के कारण रामचंद्र जी ठीक अभिषेक के समय पिता द्वारा १४ वर्षों के लिये वन में भेज दिए गए, तब पतिपरायणा सती सीता उनके साथ वन में गई और वहाँ उनकी सेवा करती रहीं। वन में ही लंका का राजा रावण उन्हें हर ले गया, जिस पर राम ने बंदरों की बड़ी भारी सेना लेकर लंका पर चढ़ाई की और राक्षसराज रावण को मारकर वे सीता को लेकर १४ वर्ष पूरे होने पर फिर अयोध्या आए और राजसिंहासन पर बैठे।

जिस प्रकार महाराज रामचंद्र विष्णु के अवतार माने जाते हैं, उसी प्रकार सीता देवी भी लक्ष्मी का अवतार मानी जाती हैं और भक्त जन राम के साथ बराबर इनका नाम भी जपते हैं। भारतवर्ष में सीता देवी सतियों में शिरोमणि मानी जाती हैं। जब राम ने लोक मर्यादा के अनुसार सीता की अग्निपरीक्षा की थी, तब स्वयं अग्निदेव ने सीता को लेकर राम को सौंपा था।

पर्य्या०—वैदेही। जानकी। मैथिली। भूमिसंभवा। अयोनिजा।

यौ०—सीता की मचिया = एक प्रकार का गोदना जो स्त्रियाँ हाथ में गुदाती हैं। सीता की रसोई = (१) एक प्रकार का गोदना। (२) बच्चों के खेलने के लिए रसोई के छोटे छोटे बरतन। सीता की पँजीरी = कपूरवेली नाम की लता।

(३) वह भूमि जिस पर राजा की खेती होती हो। राजा की निज की भूमि। सीर। (४) दाक्षायणी देवी का एक रूप या नाम। (५) आकाश गंगा की उन चार धाराओं में से एक जो मेरु पर्वत पर गिरने के उपरांत हो जाती हैं।

विशेष—यह नदी या धारा भद्राश्व वर्ष या द्वीप में मानी गई है। (पुराण)

(६) मदिरा। (७) ककही का पौधा। (८) पाताल गारुड़ी लता। (९) एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में रगण, तगण, मगण, यगण और रगण होते हैं। उ०—राम सीता राम सीता राम सीता गाव रे।

सीताकुंड—संज्ञा पुं० [सं०] वह कुंड जो सीता देवी के संबंध से पवित्र तीर्थ माना जाता हो।

विशेष—इस नाम के अनेक कुंड और झरने भारतवर्ष में प्रसिद्ध हैं। जैसे,—(१) मुँगेर से ढाई कोस पर गरम पानी का एक कुंड है। इसके विषय में प्रसिद्ध है कि जब देवताओं ने सीता जी की पूजा नहीं स्वीकार की, तब वे फिर अग्निपरीक्षा के लिये अग्निकुंड में कूद पड़ीं। आग बुझ गई और उसी स्थान पर पानी का एक सोता निकल आया। (२) भागलपुर जिले में मंदार पर्वत पर एक कुंड। (३) चंपारन जिले में मोतिहारी से ६ कोस पूर्व एक कुंड। (४) चटगाँव जिले में एक पर्वत की चोटी पर एक कुंड। (५) मिरजापुर जिले में विंध्याचल के पास एक झरना और कुंड।

सीताजानि—संज्ञा पुं० [सं०] (वह जिसकी पत्नी सीता हैं) श्रीरामचंद्र।

सीतातीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ। (वायु पुराण)

सीताद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] खेती के उपादान। काश्तकारी का सामान।

सीताधर—संज्ञा पुं० [सं०] हलधर। बलराम जी।

सीताध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वह राजकर्मचारी जो राजा की निज की भूमि में खेती बारी आदि का प्रबंध करता हो।

सीतानवमीव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत।

सीतानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र।

सीतापति—संज्ञा पुं० [सं०] (सीता के स्वामी) श्रीरामचंद्र।

सीता पहाड़—संज्ञा पुं० [सं० सीता + हि० पहाड़] एक पर्वत जो बंगाल के चटगाँव जिले में है।

सीताफल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीफा। (२) कुम्हड़ा।

सीतायज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] हल जोतने के समय होनेवाला एक यज्ञ।

सीतारमण—संज्ञा पुं० [सं०] (सीता के पति) रामचंद्रजी।

सीतारवन, सीतारौन*‡—संज्ञा पुं० दे० "सीतारमण"।

सीतालोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] जुते हुए खेत का मिट्टी का ढेला। (गोभिल श्राद्धकल्प)

सीतावट—संज्ञा पुं० [सं०] प्रयाग और चित्रकूट के बीच एक स्थान जहाँ वट वृक्ष के नीचे राम और सीता दोनों ठहरे थे।

सीतावर—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र।

सीतावल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] सीतापति, रामचंद्र।

सीताहार—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा।

सीतीनक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मटर। (२) दाल।

सीतीलक—संज्ञा पुं० [सं०] मटर।

सीत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्द जो अत्यंत पीड़ा या आनंद के समय मुँह से साँस खींचने से निकलता है। सी सी शब्द। सिसकारी।

सीत्कार बाहुल्य—संज्ञा पुं० [सं०] वंशी के छः दोषों में से एक दोष।

विशेष—छः दोष ये हैं—सीत्कार, बाहुल्य, स्तब्ध, विस्तर, खंडित, लघु और अमधुर।

सीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धान्य। धान। (२) खेत।

सीथ—संज्ञा पुं० [सं० सिक्थ] पके हुए अन्न का दाना। भात का दाना। उ०—लहि संतन की सीथ प्रसादी। आयो मुक्ति मुक्ति मरयादी।—रघुराज।

सीदंतीय—संज्ञा पुं० [सं०] एक साम गान।

सीद—संज्ञा पुं० [सं०] ब्याज पर रुपया देना। सूदखोरी। कुसीद।

सीदना—क्रि० अ० [सं० सीदति] दुःख पाना। कष्ट झेलना। उ०—(क) जदपि नाथ उचित न होत, अस प्रभु सौं करौं दिठाई। तुलसिदास सीदत निसु दिन देखत तुम्हार निठुराई।—तुलसी। (ख) सीदत साधु, साधुता सोचति, बिलसत खल, हुलसति खलई है।—तुलसी।

सीदी—संज्ञा पुं० [देश०] हब्श जाति का मनुष्य।

सीद्य—संज्ञा पुं० [सं०] आलस्य। काहिली। सुस्ती।

सीध—संज्ञा स्त्री० [हिं० सीधा] (१) ठीक सामने की स्थिति। सम्मुख विस्तार या लंबाई। वह लंबाई जो बिना कुछ भी इधर उधर मुड़े एक तार चली गई हो। जैसे,—नाक की सीध में चले जाओ। (२) लक्ष्य। निशाना।

मुहा०—सीध बाँधना = (१) सड़क, इमारत आदि बनाने में पहले रेखा डालना। (२) निशाना साधना। लक्ष्य ठीक करना।

सीधा—वि० [सं० शुद्ध, प्रा० सुध्ध, सुधो] [स्त्री० सीधी] (१) जो बिना कुछ भी इधर उधर मुड़े लगातार किसी ओर चला गया हो। जो टेढ़ा न हो। जिसमें फेर या घुमाव न हो। अवक्र। सरल। ऋजु। जैसे,—सीधी लकड़ी, सीधा रास्ता। (२) जो किसी ओर ठीक अभिमुख हो। जो ठीक लक्ष्य की ओर हो।

मुहा०—सीधा करना = लक्ष्य की ओर लगाना। निशाना साधना (बंदूक आदि का)। सीधी राह = सुमार्ग। अच्छा आचरण। सीधी सुनाना = (१) साफ साफ कहना। खरा खरा कहना। लगी लिपटी न रखना। (२) भला बुरा कहना। दुर्वचन कहना। गालियाँ देना। सीधा आना = सामना करना। भिड़ जाना।

(३) जो कुटिल या कपटी न हो। जो चालबाज न हो। सरल प्रकृति का। निष्कपट। भोला भाला। (४) शांत और सुशील। शिष्ट। भला। जैसे,—सीधा आदमी।

मुहा०—सीधी तरह = शिष्ट व्यवहार से। नरमी से। जैसे,—(क) सीधी तरह बोलो। (ख) वह सीधी तरह न मानेगा।

(५) जो नटखट या उग्र न हो। जो बदमाश न हो। अनुकूल। शांत प्रकृति का। जैसे,—सीधा जानवर, सीधा लड़का।

यौ०—सीधा सादा = (१) भोला भाला। निष्कपट। (२) जिसमें बनावट या तड़क भड़क न हो।

मुहा०—(किसी को) सीधा करना = दंड देकर ठीक करना। शासन करना। रास्ते पर लाना। शिक्षा देना। सीधा दिन = अच्छा दिन। शुभ दिन या मुहूर्त्त। जैसे,—सीधा दिन देखकर यात्रा करना।

(६) जिसका करना कठिन न हो। सुकर। आसान। सहल। जैसे,—सीधा काम, सीधा सवाल, सीधा ढंग। (७) जो दुर्बोध न हो। जो जल्दी समझ में आवे। जैसे,—सीधी सी बात नहीं समझ में आती। (८) दहिना। बायाँ का उलटा। जैसे,—सीधा हाथ।

क्रि० वि० ठीक सामने की ओर। सम्मुख।

संज्ञा पुं० [सं० असिद्ध] (१) बिना पका हुआ अन्न। जैसे,—दाल, चावल, आटा। (२) वह बिना पका हुआ अनाज जो ब्राह्मण या पुरोहित आदि को दिया जाता है। जैसे,—एक सीधा इस ब्राह्मण को भी दे दो।

क्रि०प्र०—छूना।—देना।—निकालना।—मनसना।

सीधापन—संज्ञा पुं० [हिं० सीधा + पन(प्रत्य०)] सीधा होने का भाव। सिधाई। सरलता। भोलापन।

सीधु—संज्ञा पुं० [सं०] गुड़ या ईख के रस से बना मद्य। गुड़ की शराब।

सीधुगंध—संज्ञा पुं० [सं०] मौलसिरी। बकुल।

सीधुपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गँभारी। काश्मरी वृक्ष।

सीधुपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कदंब। कदम। (२) मौलसिरी। बकुल।

सीधुपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धातकी। धव। धौ।

सीधुरस—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।

सीधुराख—संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू। मातुलुंग वृक्ष।

सीधुराविक—संज्ञा पुं० [सं०] कसीस।

सीधुवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] थूहर। स्नुही वृक्ष।

सीधुसंज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] बकुल का पेड़। मौलसिरी।

सीधे—क्रि० वि० [हिं० सीधा] (१) सीध में। बराबर सामने की ओर। सम्मुख। (२) बिना कहीं मुड़े या रुके। जैसे,—सीधे यहीं आओ। (३) बिना और कहीं होते हुए। जैसे,—सीधे राजा साहब के पास जाकर कहो। (४) मुलायमियत से। नरमी से। शिष्ट व्यवहार से। जैसे,—वह सीधे रुपया न देगा। (५) शिष्टता के साथ। शांति के साथ। जैसे,—सीधे बैठो।

सीध्र—संज्ञा पुं० [सं०] गुदा। मलद्वार।

सीन—संज्ञा पुं० [अं०] (१) दृश्य। दृश्यपट। (२) थियेटर के रंगमंच का कोई परदा जिस पर नाटकगत कोई दृश्य चित्रित हो।

सीनरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] प्राकृतिक दृश्य।

सीना-क्रि० स० [सं० सीवन] (१) कपड़े, चमड़े आदि के दो टुकड़ों को सूई के द्वारा तागा पिरोकर जोड़ना। टाँकों से मिलाना या जोड़ना। टाँका मारना। जैसे,—कपड़े सीना, जूते सीना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

यौ०—सीना पिरोना = सिलाई तथा बेलबूटे आदि का काम करना।

संज्ञा पुं० [फ़ा० सीनः] छाती। वक्षस्थल।

यौ०—सीनाजोर। सीनाबंद। सीनातोड़।

मुहा०—सीने से लगाना = छाती से लगाना। आलिंगन करना।

संज्ञा पुं० [सं० सीमिक] (१) एक प्रकार का कीड़ा जो ऊनी कपड़ों को काट डालता है। सीवाँ।

क्रि० प्र०—लगना।

(२) एक प्रकार का रेशम का कीड़ा। छोटा पाट।

सीनातोड़-संज्ञा पुं० [फ़ा० सीनः + हिं० तोड़ना] कुश्ती का एक पेच।

विशेष—जब पहलवान अपने जोड़ की पीठ पर रहता है, तब एक हाथ से वह उसकी कमर पकड़ता है और दूसरे हाथ से उसके सामने का हाथ पकड़ और खींचकर झटके से गिराता है।

सीनापनाह-संज्ञा पुं० [फ़ा०] जहाज के निचले खंड में लंबाई के बल दोनों ओर का किनारा। (लश०)

सीनाबंद-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) अँगिया। चोली। (२) गरेबान का हिस्सा। (३) वह घोड़ा जो अगले पैरों से लँगड़ाता हो।

सीनाबाँह-संज्ञा पुं० [फ़ा० सीनः + हिं० बाँह] एक प्रकार की कसरत जिसमें छाती पर थाप देते हैं।

सीनियर-वि० [अं०] (१) बड़ा। वयस्क। (२) श्रेष्ठ। पद में ऊँचा। जैसे,—सीनियर मेंबर। सीनियर परीक्षा।

सीनी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] तश्तरी। थाली।

सीप-संज्ञा पुं० [सं० शुक्ति, प्रा० सुत्ति] (१) कड़े आवरण के भीतर बंद रहनेवाला शंख, घोंघे आदि की जाति का एक जलजंतु जो छोटे तालाबों और झीलों से लेकर बड़े बड़े समुद्रों तक में पाया जाता है। शुक्ति। मुक्तामाता। मुक्तागृह। सीपी। सितुही।

विशेष—तालों के सीप लंबोतरे होते हैं और समुद्र के चौखूँटे, विषम आकार के और बड़े बड़े होते हैं। इनके ऊपर दोहरे संपुट के आकार का बहुत कड़ा आवरण होता है जो खुलता और बंद होता है। इसी संपुट के भीतर सीप का कीड़ा (जो बिना अस्थि और रीढ़ का होता है) जमा रहता है। ताल के सीपों का आवरण ऊपर से कुछ काला या मैला तथा समतल होता है, यद्यपि ध्यान से देखने से उस पर महीन महीन धारियाँ दिखाई पड़ती हैं। इस पर आवरण का भीतर की ओर रहनेवाला पार्श्व बहुत ही उज्वल और चमकीला होता है, जिस पर प्रकाश पड़ने से कई रंगों की आभा भी दिखाई पड़ती है। समुद्र के सीपों के आवरण के ऊपर पानी की लहरों के समान टेढ़ी धारियाँ या लहरिया होती है। समुद्र के सीपों में ही मोती उत्पन्न होते हैं। जब इन सीपों की भीतरी खोली और कड़े आवरण के बीच कोई रोगोत्पादक बाहरी पदार्थ का कण पहुँच जाता है; तब जंतु की रक्षा के लिये उस कण के चारों ओर आवरण ही की शंख धातु का एक चमकीला उज्वल पदार्थ जमने लगता है जो धीरे धीरे कड़ा पड़ जाता है। यही मोती होता है। समुद्री सीप प्रायः छिछले पानी में चट्टानों में चिपके हुए पाए जाते हैं। ताल के सीपों के संपुट भी कीड़ों को साफ करके काम में लाए जाते हैं। बहुत से स्थानों में लोग छोटे बच्चों को इसी से दूध पिलाते हैं।

(२) सीप नामक समुद्री जलजंतु का सफेद कड़ा, चमकीला आवरण या संपुट जो बटन, चाकू के बेंट, आदि बनाने के काम में आता है। (३) ताल के सीप का संपुट जो चम्मच आदि के समान काम में लाया जाता है। (४) वह लंबोतरा पात्र जिसमें देवपूजा या तर्पण आदि के लिये जल रखा जाता है।

सीपर‡-संज्ञा पुं० [फ़ा० सिपर] ढाल। उ०—मेरे पन की लाज इहाँ लौं हठि प्रिय प्रान दये हैं। लागत साँगि बिभीषण ही पर सीपर आपु भये हैं।—तुलसी।

सीपसुत-संज्ञा पुं० [हिं० सीप + सं० सुत] मोती।

सीपिज-संज्ञा पुं० [हिं० सीपी + सं० ज] मोती। उ०—लाला हौं वारी तेरे मुख पर कुटिल अलक मोहन मन बिहँसत भृकुटी बिकट नैननि पर। दमकति हैं द्वै दँतुलियाँ बिहँसति मानौ सीपिज घर कियो बारिज पर।—सूर।

सीपी-संज्ञा स्त्री० दे० "सीप"।

सीबी-संज्ञा स्त्री० [अनु० सी सी] वह शब्द जो पीड़ा या अत्यंत आनंद के समय मुँह से साँस खींचने से उत्पन्न होता है। सी सी शब्द। सिसकारी। शीत्कार। उ०—नाक चढ़ै सीबी करै जितै छबीली छैल। फिरि फिरि भूलि वहै गहै पिय कँकरीली गैल।—बिहारी।

सीमा-संज्ञा पुं० [देश०] दहेज।

सीमंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्त्रियों की माँग। (२) अस्थि-संघात। हड्डियों का संधि स्थान। हड्डियों का जोड़। सुश्रुत के अनुसार इनकी संख्या १४ है। यथा—जाँघ में १; वंक्षण अर्थात् मूत्राशय तथा जंघा के संधिस्थान में १, पैर में ३, दोनों बाँहों में ३-३, त्रिक या रीढ़ के नीचे के भाग में १ और मस्तक में १। भावप्रकाश के अनुसार हड्डियों का संधिस्थान सीमा रहता है; इसलिये

इसे सीमंत कहते हैं। (३) हिन्दुओं में एक संस्कार जो प्रथम गर्भस्थिति के चौथे, छठे या आठवें महीने में किया जाता है। दे० "सीमंतोन्नयन"।

सीमंतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) माँग निकालने की क्रिया। (२) ईंगुर। सिंदूर (जो स्त्रियाँ माँग के बीच में लगाती हैं)। (३) जैनों के सात नरकों में से एक नरक का अधिपति। (४) नरकावास। (५) एक प्रकार का मानिक या रत्न।

सीमंतवान्-वि० [सं० सीमंतवत्] [स्त्री० सीमंतवती] जिसे माँग हो। जिसकी माँग निकली हो।

सीमंतित-वि० [सं०] माँग निकाला हुआ। जैसे,—सीमंतित केश।

सीमंतिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। नारी। (स्त्रियाँ माँग निकालती हैं, इससे उन्हें सीमंतिनी कहते हैं।)

सीमंतोन्नयन-संज्ञा पुं० [सं०] द्विजों के दस संस्कारों से तीसरा संस्कार।

विशेष—गर्भस्थिति के तीसरे महीने में पुंसवन संस्कार करने के पश्चात् चौथे, छठे या आठवें महीने में यह संस्कार करने का विधान है। इसमें वधू की माँग निकाली जाती है। कहते हैं कि इस संस्कार के द्वारा गर्भस्थ संतान के गर्भ में रहने के दोषों का निवारण होता है।

सीम-संज्ञा पुं० [सं० सीमा] सीमा। हद। पराकाष्ठा। सरहद। मर्यादा।

मुहा०—सीम चरना या चाँड़ना = अधिकार दबाना। दबाना। जबरदस्ती करना। उ०—है काके द्वै सीस ईस के जो हठि जन की सीम चरै।—तुलसी।

सीमल‡-संज्ञा पुं० दे० "सेमल"।

सीमलिंग-संज्ञा पुं० [सं०] सीमा का चिह्न। हद का निशान।

सीमांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीमा का अंत। वह स्थान जहाँ सीमा का अंत होता हो। जहाँ तक [redacted] पहुँचती हो। सरहद। (२) गाँव की सीमा। (३) गाँव के अंतर्गत दूर की जमीन। सिवाना।

सीमांतपूजन-संज्ञा पुं० [सं०] वर का पूजन या अगवानी जब वह बारात के साथ गाँव की सीमा के भीतर पहुँचता है।

सीमांतबंध-संज्ञा पुं० [सं०] आचरण का नियम या मर्य्यादा।

सीमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माँग। (२) किसी प्रदेश या वस्तु के विस्तार का अंतिम स्थान। हद। सरहद। मर्य्यादा।

मुहा०—सीमा से बाहर जाना = उचित से अधिक बढ़ जाना। मर्य्यादा का उल्लंघन करना। हद से ज्यादा बढ़ना।

सीमातिक्रमणोत्सव-संज्ञा पुं० [सं०] युद्धयात्रा में सीमा पार करने का उत्सव। विजय यात्रा। विजयोत्सव।

विशेष—प्राचीन काल में विजयादशमी को क्षत्रिय राजा अपने राज्य की सीमा लाँघते थे।

सीमापाल-संज्ञा पुं० [सं०] सीमा रक्षक। सीमा की रखवाली करनेवाला।

सीमाब-संज्ञा पुं० [फा०] पारा।

सीमाबद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] रेखा से घिरा हुआ। हद के भीतर किया हुआ।

सीमाविवाद-संज्ञा पुं० [सं०] सीमा संबंधी विवाद। सरहद का झगड़ा। अठारह प्रकार के व्यवहारों में या मुकदमों में से एक।

विशेष—स्मृतियों में लिखा है कि यदि दो गाँवों में सीमा संबंधी झगड़ा हो, तो राजा को सीमा निर्देश करके झगड़ा मिटा डालना चाहिए। इस काम के लिये जेठ का महीना श्रेष्ठ बताया गया है। सीमा स्थल पर बड़, पीपल, साल, पलास आदि बहुत दिन टिकनेवाले पेड़ लगाने चाहिएँ। साथ ही तालाब कूएँ आदि बनवा देना चाहिए; क्योंकि ये सब चिह्न शीघ्र मिटनेवाले नहीं हैं।

सीमावृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] वह वृक्ष जो सीमा पर लगा हो। हद बतानेवाला पेड़।

विशेष—मनुसंहिता [redacted] सीमा स्थान पर बहुत दिन टिकनेवाले पेड़ लगाने का विधान है। बहुधा सीमा विवाद सीमा पर का वृक्ष देखकर मिटाया जाता था।

सीमासंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] दो सीमाओं का एक जगह मिलान।

सीमासेतु-संज्ञा पुं० [सं०] वह पुश्ता या मेंड़ जो सीमा निर्देश करता है। हदबंदी।

सीमिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का वृक्ष। (२) दीमक। एक प्रकार का छोटा कीड़ा। (३) दीमकों का लगाया हुआ मिट्टी का ढेर।

सीमोल्लंघन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीमा का उल्लंघन करना। सीमा को लाँघना। [redacted] पार करना। (२) विजय यात्रा। वि० दे०—"सीमातिक्रमणोत्सव"। (३) मर्य्यादा के विरुद्ध कार्य करना।

सीय-संज्ञा स्त्री० [सं० सीता] सीता। जानकी।

सीयक-संज्ञा पुं० [सं०] मालवा के परमार राजवंश के दो प्राचीन राजाओं के नाम जिनमें से पहला दसवीं शताब्दी के आरंभ में और दूसरा ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभ में था। इसी दूसरे सीयक का पुत्र मुंज था जो प्रसिद्ध राजा भोज का चाचा था।

सीयन|-संज्ञा स्त्री० दे० "सीवन"।

सीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हल। (२) हल जोतनेवाले बैल। (३) सूर्य्य। (४) अर्क। आक का पौधा।

-संज्ञा स्त्री० [सं० सीर = हल] (१) वह जमीन जिसे भू-स्वामी या जमींदार स्वयं जोतता आ रहा हो, अर्थात् जिस पर उसकी

निज की खेती होती आ रही हो। (२) वह जमीन जिसकी उपज या आमदनी कई हिस्सेदारों में बँटती हो। (३) साझा। मेल।

मुहा०—सीर में = एक साथ मिलकर। इकट्ठा। एक में। जैसे,—भाइयों का सीर में रहना।

संज्ञा पुं० [सं० शिरा = रक्त नाड़ी] रक्त की नाड़ी। रक्त की नली।

मुहा०—सीर खुलवाना = नश्तर से शरीर का दूषित रक्त निकलवाना। फसद खुलवाना।

⊛† वि० [सं० शीतल, प्रा० सीअड़, हिं० सीड़, सीरा] ठंढा। शीतल। उ०—सीर समीर धीर अति सुरभित बहत सदा मन भायो।—रघुराज।

संज्ञा पुं० (१) चौपायों का एक संक्रामक रोग। (२) पानी की काट। (लश०)

सीरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हल। (२) शिशुमार। सूस। (३) सूर्य।

⊛ संज्ञा पुं० [हिं० सीरा] ठंढा करनेवाला। उ०—देखियत है करुणा की मूरति सुनियत है परपीरक। सोइ करौ जो मिटै हृदय को दाहु परै उर सीरक।—सूर।

सीरज⊛-संज्ञा पुं० दे० "शीर्ष"।

सीरधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हल धारण करनेवाला। (२) बलराम।

सीरध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा जनक का नाम। (२) बलराम का नाम।

सीरन-संज्ञा पुं० [देश०] बच्चों का पहनावा।

सीरनी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० शीरीनी] मिठाई।

सीरपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] हलधर। बलदेव।

सीरभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हलधर। बलदेव। (२) हल धारण करनेवाला।

सीरवाह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हल धारण करनेवाला। हलवाहा। (२) जमींदार की ओर से उसकी खेती का प्रबंध करनेवाला कारिंदा।

सीरवाहक-संज्ञा पुं० [सं०] हलवाहा। किसान।

सीरष⊛-संज्ञा पुं० दे० "शीर्ष"।

सीरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम।

संज्ञा पुं० [फ़ा० शीर] (१) पकाकर मधु के समान गाढ़ा किया हुआ चीनी का रस। चाशनी। (२) मोहनभोग। हलुआ।

संज्ञा पुं० [हिं० सिर] चारपाई का वह भाग जिधर लेटने में सिर रहता है। सिरहाना।

⊛† वि० [सं० शीतल, प्रा० सीअड़] [स्त्री० सीरी] (१) ठंढा। शीतल। उ०—सीरी पौन अगिनि सी दाहति, कोकिल अति दुखदाई।—सूर। (२) शांत। मौन। चुपचाप। उ०—दुर्जन हँसे न कोय आपु सीरे ह्वै रहिए।—गिरिधर।

सीरी-संज्ञा पुं० [सं० सीरिन्] (हल धारण करनेवाले) बलराम।

वि० स्त्री० दे० "सीरा"।

सीरोला-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मिठाई।

सीलंध-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मछली।

विशेष—वैद्यक में यह श्लेष्मावर्द्धक, वृष्य, पाक में मधुर और गुरु, वात पित्त हर, हृद्य और आमवातकारक कही गई है।

सील-संज्ञा स्त्री० [सं० शीतल, प्रा० सीअड़] भूमि में जल की आर्द्रता। सीड़। नमी। तरी।

संज्ञा पुं० [सं० शलाका] लकड़ी का एक हाथ लंबा औजार जिस पर चूड़ियाँ गोल और सुडौल की जाती हैं।

⊛† संज्ञा पुं० दे० "शील"।

संज्ञा पुं० [अं०] (१) मुहर। मुद्रा। ठप्पा। छाप। (२) एक प्रकार की समुद्री मछली जिसका चमड़ा और तेल बहुत काम आता है।

सीला-संज्ञा पुं० [सं० शिल] (१) अनाज के वे दाने जो फसल कटने पर खेत में पड़े रह जाते हैं और जिन्हें तपस्वी या गरीब लोग चुनते हैं। सिला। उ०—(क) कविता खेती उन लई, सीला बिनत मजूर। (ख) विष समान सब विषय विहाई। बसैं तहाँ सीला बिनि खाई।—रघुराज। (२) खेत में गिरे दानों को चुनकर निर्वाह करने की मुनियों की वृत्ति।

वि० [सं० शीतल] [स्त्री० सीली] गीला। आर्द्र। तर। नम।

सीवक-संज्ञा पुं० [सं०] सीनेवाला। सिलाई करनेवाला।

सीवड़ो-संज्ञा पुं० [सं० सीमांत] ग्राम का सीमांत। सिवाना। (डिं०)

सीवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीने का काम। सिलाई। (२) सीने से पड़ी हुई लकीर। कपड़े के दो टुकड़ों के बीच का सिलाई का जोड़। (३) दरार। दराज। संधि। (४) वह रेखा जो अंडकोश के बीचोबीच से लेकर मलद्वार तक जाती है।

सीवना-संज्ञा पुं० दे० "सिवाना"।

क्रि० स० दे० "सीना"।

सीवनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह रेखा जो लिंग के नीचे से गुदा तक जाती है।

विशेष—सुश्रुत में यह चार प्रकार की कही गई है—गोफणिका, तुन्नसीवनी, वेल्लित और ऋजुग्रंथि।

सीवी-संज्ञा स्त्री० दे० "सीबी"।

सीस-संज्ञा पुं० [सं० शीर्ष] (१) सिर। माथा। मस्तक। (२) कंधा। (डिं०) (३) अंतरीप। (लश०)

संज्ञा पुं० दे० "सीसा"।

सीसक-संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु।

सीसज–संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर।

सीसताज–संज्ञा पुं० [हिं० सीस+फा० ताज] वह टोपी या ढक्कन जो शिकार पकड़ने के लिये पाले हुए जानवरों के सिर चढ़ा रहता है और शिकार के समय खोला जाता है। कुल्हा। उ०—तुलसी निहारि कपि भालु किलकत ललकत लखि ज्यों कंगाल पातरी सुनाज की। राम-रुख निरखि हरष्यो हिय हनुमान मानो खेलवार खोली सीसताज बाज की।—तुलसी।

सीसताए–संज्ञा पुं० [सं०] अफगानिस्तान और फारस के बीच का प्रदेश। सीस्तान।

सीसत्रान–संज्ञा पुं० [सं० शिरस्त्राण] टोप। शिरस्त्राण। उ०—सीसत्रान अवतंसजुत मनिहारक मम नाह। लेहु हरषि दरसजहु सिर यहु सोभा जिहिं माह।—रामाश्वमेध।

सीसपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] सीसा धातु।

सीसपत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] सीसा धातु।

सीसफूल–संज्ञा पुं० [हिं० सीस+फूल] सिर पर पहनने का फूल के आकार का एक गहना।

सीसम–संज्ञा पुं० दे० "शीशम"।

सीसमहल–संज्ञा पुं० [फा० शीशा+अ० महल] वह मकान जिसकी दीवारों में चारो ओर शीशे जड़े हों।

सीसर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरमा नाम की देवताओं की कुतिया का पति। (पारस्कर गृह्य०) (२) एक बालग्रह जिसका रूप कुत्ते का माना गया है।

सीसल–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जो केवड़े या केतकी की तरह का होता है और जिसका रेशा बहुत काम आता है। रामबाँस।

सीसा–संज्ञा पुं० [सं० सीसक] एक मूल धातु जो बहुत भारी और नीलापन लिये काले रंग की होती है।

विशेष—आधुनिक रसायन में यह मूल द्रव्यों में माना गया है। यह पीटने से फैल सकता है और तार के रूप में भी हो सकता है, पर कुछ कठिनता से। इसका रंग भी जल्दी बदला जा सकता है। इसकी चद्दरें, नलियाँ और बंदूक की गोलियाँ आदि बनती हैं। इसका घनत्व ११·३७ और परमाणु मान २०६·४ है। सीसा दूसरी धातुओं के साथ बहुत जल्दी मिल जाता और कई प्रकार की मिश्र धातुएँ बनाने में काम आता है। छापे के टाइप की धातु इसी के योग से बनती है।

आयुर्वेद में सीसा सप्त धातुओं में है और अन्य धातुओं के समान यह भी रसौषध के रूप में व्यवहृत होता है। इसका भस्म कई रोगों में दिया जाता है। वैद्यक में सीसा आयु, वीर्य और कांति को बढ़ानेवाला, मेहनाशक, उष्ण तथा कफ और वात को दूर करनेवाला माना जाता है। इसकी उत्पत्ति की कथा भावप्रकाश में इस प्रकार है। वासुकि एक नागकन्या देखकर मोहित हुए। उन्हीं के स्खलित वीर्य से इस धातु की उत्पत्ति हुई।

पर्य्या०—सीस। सीसक। नागपद्मज। सिंदूरकारण। वर्द्ध। स्वर्णारि। यवनेष्ट। सुवर्णक। वध्रक। चिपट। जड़। भुजंगम। उरग। कुरंग। परिपिष्टक। बहुमल। चीनपिष्ट। त्रपु। महाबल। मृदु कृष्णायस। पद्म। तारशुद्धिकर। शिरावृत्त। वयोवंग।

†संज्ञा पुं० दे० "शीशा"।

सीसी–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) पीड़ा या अत्यंत आनंद के समय मुँह से साँस खींचने से निकला हुआ शब्द। शीत्कार। सिसकारी। उ०—सीसी किए तें सुधा सीसी सी ढरकि जाति।

क्रि० प्र०—करना।

(२) शीत के कष्ट के कारण निकला हुआ शब्द।

†संज्ञा स्त्री० दे० "शीशी"।

सीसौं–संज्ञा पुं० दे० "शीशम"।

सीसोपधातु–संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर। ईंगुर।

सीसौदिया–संज्ञा पुं० दे० "सिसोदिया"।

सीह–संज्ञा स्त्री० [सं० सीधु = मद्य] महक। गंध।

संज्ञा पुं० [देश०] साही नामक जंतु। सेही।

†संज्ञा पुं० दे० "सिंह"।

सीहगोस–संज्ञा पुं० [फा० सियहगोश] एक प्रकार का जंतु जिसके कान काले होते हैं। उ०—केसव सरभसिंह सीहगोस रोस गति कूकरनि पास ससा सूकर गहाए हैं।—केशव।

सीहुंड–संज्ञा पुं० [सं०] सेहुँड़ का पेड़। स्नुही। थूहर।

सुंं†–प्रत्य० दे० "सों"।

सुंगड़–संज्ञा पुं० [देश०] साधुओं का एक संप्रदाय।

सुंग वंश–संज्ञा पुं० [सं०] मौर्य्य वंश के अंतिम सम्राट् बृहद्रथ के प्रधान सेनापति पुष्यमित्र द्वारा प्रतिष्ठित एक प्राचीन राजवंश।

विशेष—ईसा से १८४ वर्ष पूर्व पुष्यमित्र ने बृहद्रथ को मारकर मौर्य्य साम्राज्य पर अपना अधिकार जमाया। यह राजा वैदिक या ब्राह्मण धर्म्म का पक्का अनुयायी था। जिस समय पुष्यमित्र मगध के सिंहासन पर बैठा, उस समय साम्राज्य नर्मदा के किनारे तक था और उसके अंतर्गत आधुनिक बिहार, संयुक्त प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि थे। कलिंग के राजा खारवेल तथा पंजाब और काबुल के यवन (यूनानी) राजा मिनांडर (बौद्ध मिलिंद) ने सुंग राज्य पर कई बार चढ़ाइयाँ की, पर वे हटा दिए गए। यवनों का जो प्रसिद्ध आक्रमण साकेत (अयोध्या) पर हुआ था, वह पुष्यमित्र के ही राजत्व काल में। पुष्यमित्र के समय का इसी के किसी

सामंत या कर्मचारी का एक शिलालेख अभी हाल में अयोध्या में मिला है जो अशोक लिपि में होने पर भी संस्कृत में है। यह लेख नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित हो चुका है। इसी प्रकार के एक और पुराने लेख का पता मिला है, पर वह अभी प्राप्त नहीं हुआ है। इससे जान पड़ता है कि पुष्यमित्र कभी कभी साकेत (अयोध्या) में भी रहता था और यह उस समय एक समृद्धिशाली नगर था।

पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र ने विदर्भ के राजा को परास्त करके दक्षिण में वरदा नदी तक अपने पिता के राज्य का विस्तार बढ़ाया। जैसा कि कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक से प्रकट है, अग्निमित्र ने विदिशा को अपनी राजधानी बनाया था जो वेत्रवती और विदिशा नदी के संगम पर एक अत्यंत सुंदर पुरी थी। इस पुरी के खँडहर भिलसा (ग्वालियर राज्य में) से थोड़ी दूर पर दूर तक फैले हुए हैं। चक्रवर्ती सम्राट् बनने की कामना से पुष्यमित्र ने इसी समय बड़ी धूमधाम से अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया। इस यज्ञ के समय महाभाष्यकार पतंजलि जी विद्यमान थे। अश्व-रक्षा का भार पुष्यमित्र के पौत्र (अग्निमित्र के पुत्र) वसुमित्र को सौंपा गया जिसने सिंधु नदी के किनारे यवनों को परास्त किया। पुष्यमित्र के समय में वैदिक या ब्राह्मण धर्म का फिर से उत्थान हुआ और बौद्ध धर्म्म दबने लगा। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार पुष्यमित्र ने बौद्धों पर बड़ा अत्याचार किया और वे राज्य छोड़कर भागने लगे। ईसा से १४८ वर्ष पहले पुष्यमित्र की मृत्यु हुई और उसका पुत्र अग्निमित्र सिंहासन पर बैठा। उसके पीछे पुष्यमित्र का भाई सुज्येष्ठ और फिर अग्निमित्र का पुत्र वसुमित्र गद्दी पर बैठा। फिर धीरे धीरे इस वंश का प्रताप घटता गया और वसुदेव ने विश्वासघात करके कण्व नामक ब्राह्मण राजवंश की प्रतिष्ठा की।

सुँघनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० सूँघना] तंबाकू के पत्ते की खूब बारीक बुकनी जो सूँघी जाती है। हुलास। नस्य। नसवार।

क्रि० प्र०—सूँघना।

सुँघाना–क्रि० स० [हिं० सूँघना का प्रे०] आघ्राण कराना। सूँघने की क्रिया कराना।

सुंठि–संज्ञा स्त्री० दे० "शुंठि", "सोंठ"।

सुंड–संज्ञा पुं० दे० "शुंड", "सूँड"।

सुंडदंड–संज्ञा पुं० "शुंडादंड"।

सुंडभुसुंड–संज्ञा पुं० [सं० शुंडभुशुंडि] हाथी जिसका अस्त्र सूँड़ है। उ०—चंदि चित्रित सुंडभुसुंड नि, सोभित कंचन कुंड पै। नृप सजेउ चलत जदु झुंड पै, जिमि गज मृग सिर पुंड पै।—गोपाल।

सुंडस–संज्ञा पुं० [देश०] लदुए गधे की पीठ पर रखने की गद्दी।

सुंडा–संज्ञा स्त्री० [हिं० सूँड़] सूँड़। शुंड।

संज्ञा पुं० [देश०] लदुए गधे की पीठ पर रखने की गद्दी या गद्दा।

सुंडाल–संज्ञा पुं० [सं०] हाथी। हस्ती। उ०—सुंडाल चलत सुंडनि उठाइ। जिनकें जँजीर झनझनत पाइ।—सूदन।

सुंडाली–संज्ञा स्त्री० [सं० शुंडाल = सूँड़वाला] एक प्रकार की मछली।

सुंडी बेंत–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बेंत जो बंगाल, आसाम और खसिया की पहाड़ी पर पाया जाता है।

सुंद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वानर का नाम। (२) एक राक्षस का नाम। (३) विष्णु। (४) संह्राद का पुत्र। (५) एक असुर जो निसुंद का पुत्र और उपसुंद का भाई था।

विशेष—सुंद और उपसुंद दोनों बड़े बलवान असुर थे। इन्हें कोई हरा नहीं सकता था। तिलोत्तमा नाम की अप्सरा के लिये दोनों आपस में ही लड़कर मर गए थे।

सुंदर–वि० [सं०] [स्त्री० सुंदरी] (१) जो देखने में अच्छा लगे। प्रियदर्शन। रूपवान्। शोभन। रुचिर। खूबसूरत। मनोहर। मनोज्ञ। (२) अच्छा। भला। बढ़िया। (३) श्रेष्ठ। शुभ। जैसे,—सुंदर मुहूर्त्त।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का पेड़। (२) कामदेव। (३) एक नाग का नाम। (४) लंका का एक पर्वत।

सुंदरक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक तीर्थ का नाम। (२) एक ह्रद का नाम।

सुंदर कांड–संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के पाँचवें कांड का नाम जो लंका के सुंदर-पर्वत के नाम पर रखा गया है।

सुंदरता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदर होने का भाव। सौंदर्य। खूबसूरती। रूपलावण्य।

सुंदरताई॥–संज्ञा स्त्री० दे० "सुंदरता"। उ०—अंग विलोकि त्रिलोक में ऐसी को नारि निहारिन मार नचाई। मूरतिवंत शृंगार समीप शृंगार किये आनो सुंदरताई।—केशव।

सुंदरत्व–संज्ञा पुं० [सं०] सुंदरता। सौंदर्य्य।

सुंदरम्मन्य–संज्ञा पुं० [सं०] जो अपने को सुंदर मानता या समझता हो।

सुंदरवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

सुंदरापा–संज्ञा पुं० [सं० सुंदर + हिं० आपा (प्रत्य०)] सुंदरता।

सुंदरी–वि० स्त्री० [सं०] रूपवती। खूबसूरत।

संज्ञा स्त्री० (१) सुंदर स्त्री। (२) हलदी। हरिद्रा। (३) एक प्रकार का बड़ा जंगली पेड़।

विशेष—यह पेड़ सुंदर बन में बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मज़बूत होती है और नाव, संदूक, मेज़, कुरसी आदि सामान बनाने के काम में आती और इमारतों में भी लगती है। खारी पानी के पास ही यह पेड़ उग सकता है; मीठा पानी पाने से सूख जाता है।

(४) त्रिपुर सुंदरी देवी। (५) एक योगिनी का नाम। (६) सवैया नामक छंद का एक भेद जिसमें आठ सगण और एक गुरु होता है। उ०—सब सों गहि पानि मिले रघुनंदन भेंटि कियो सब को सुखभागी। (७) बारह अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसमें एक नगण, दो भगण और एक रगण होता है। द्रुतविलंबित। (८) तेईस अक्षरों की एक वर्णवृत्ति। (९) एक प्रकार की मछली। (१०) माल्यवान राक्षस की पत्नी जो नर्मदा नामक गंधर्वी की कन्या थी।

सुंदरेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] शिवजी की एक मूर्त्ति।

सुंदरौदन—संज्ञा पुं० [सं० सुंदर+ओदन] अच्छा भात। अच्छी तरह पका हुआ चावल।

सुँधावट—संज्ञा स्त्री० [सं० सुगंध, हिं० सोंधा+आवट (प्रत्य०)] सोंधे होने का भाव। सोंधापन। सोंधी महक।

सुँधिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० सोंधा+इया (प्रत्य०)] (१) एक प्रकार की ज्वार। (२) गुजरात में होनेवाली एक प्रकार की वनस्पति जो पशुओं के चारे के काम में आती है।

सुंपसुंठ—संज्ञा पुं० [सं०] कर्पूरक। कपूर कचरी।

सुंबा—संज्ञा पुं० [देश०] (१) इस्पंज। (२) दागी हुई तोप या बंदूक की गरम नली को ठंढा करने के लिये उस पर डाला हुआ गीला कपड़ा। पुचारा। (लश०) (३) तोप की नली साफ करने का गज। (लश०) (४) लोहे का एक औजार जिससे लुहार लोहे में सूराख करते हैं।

सुंबी—संज्ञा स्त्री० [देश०] छेनी जिससे लोहे में छेद किया जाता है।

सुंबुल—संज्ञा पुं० दे० "संबुल"।

सुंभ—संज्ञा पुं० (१) दे० "शुंभ"। (२) दे० "सुम"।

सुंभा—संज्ञा पुं० दे० "सुंबा"।

सुंभी—संज्ञा स्त्री० [देश०] लोहा छेदने का एक औजार जिसमें नोक नहीं होती।

सुंसारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का लंबा काला कीड़ा जो अनाज के लिये हानिकारक होता है।

सु—उप० [सं०] एक उपसर्ग जो संज्ञा के साथ लगकर विशेषण का काम देता है। जिस शब्द के साथ यह उपसर्ग लगता है, उसमें श्रेष्ठ, सुंदर, अच्छा, बढ़िया आदि का भाव आ जाता है। जैसे,—सुनाम, सुपंथ, सुशील, सुवास आदि।

वि० (१) सुंदर। अच्छा। (२) उत्तम। श्रेष्ठ। (३) शुभ। भला।

संज्ञा पुं० (१) उत्कर्ष। उन्नति। (२) सुंदरता। खूबसूरती। (३) हर्ष। आनंद। प्रसन्नता। (४) पूजा। (५) समृद्धि। (६) अनुमति। आज्ञा। (७) कष्ट। तकलीफ।

🞵 अव्य० [सं० सह] तृतीया, पंचमी और षष्ठि विभक्ति का चिह्न।

सर्व० [सं० स] सो। वह।

सुअटा—संज्ञा पुं० [सं० शुक, प्रा० सुअ, हिं० सुआ] सुग्गा। शुक। तोता। उ०—सुअटा रहै खुरुक जिउ अबहिं काल सो भाव। सत्रु अहै जो करिया कबहुँ सो बोरै नाव।

सुअन🞵—संज्ञा पुं० [सं० सुत, प्रा० सुअ] आत्मज। पुत्र। बेटा। लड़का। उ०—बहु दिन धौं कब आइहै हैहै सुअन विवाह। निज नयनन हम देखिहैं है विधि यह उत्साह।—स्वामी रामकृष्ण।

सुअनजर्द—संज्ञा पुं० दे० "सोनजर्द"। उ०—कोई सुअनजर्द ज्यों केसर। कोई सिंगारहार नागेसर।—जायसी।

सुअना🞵—क्रि० अ० [हिं० उगना = जगना या हिं० सुअन] उत्पन्न होना। उगना। उदय होना। उ०—जैसो साँचो ग्यान प्रकाशत पाप दोष सब सुअत। धर्म विराग आदि सतगुन से तनमन के सुख सुअत।—देव स्वामी।

संज्ञा पुं० दे० "सुअटा"।

सुअर—संज्ञा पुं० दे० "सूअर"।

सुअरदंता—वि० [हिं० सुअर+दंता = दाँतवाला] सूअर के से दाँतोंवाला।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का हाथी जिसके दाँत पृथ्वी की ओर झुके रहते हैं। ऐसा हाथी ऐबी समझा जाता है।

सुअर्गपताली—संज्ञा पुं० [सं० स्वर्ग+पाताल] वह बैल जिसका एक सींग स्वर्ग की ओर और दूसरा पाताल की ओर अर्थात् एक आकाश की ओर और दूसरा जमीन की ओर रहता है।

सुअवसर—संज्ञा पुं० [सं०] अच्छा अवसर। अच्छा मौका।

सुआ—संज्ञा पुं० दे० "सूआ"।

सुआद—संज्ञा पुं० [हिं०] स्मरण। याद।

सुआन🞵—संज्ञा पुं० दे० "श्वान"। उ०—सुआन पूछ जिंद भयो न सूधउ बहुत जतन मैं कीनेउ।—तेग बहादुर।

सुआना—क्रि० स० [हिं० सूना का प्रेरणा०] उत्पन्न कराना। पैदा कराना। सूने में प्रवृत्त करना।

सुआमी🞵—संज्ञा पुं० दे० "स्वामी"। उ०—भुगत मुकति का कारन सुआमी मूढ़ ताहि बिसरावै। जन नानक कोटन मैं कोऊ भजन राम को पावै।—तेग बहादुर।

सुआर—संज्ञा पुं० [सं० सूपकार] रसोइया। भोजन बनानेवाला। पाककार। उ०—परुसन लगे सुआर विबुध जन जेवहिं। देहिं गारि बरनारि मोद मन भेवहिं।—तुलसी।

सुआरव—वि० [सं०] उत्तम शब्द करनेवाला। मीठे स्वर से बोलने या बजनेवाला। उ०—नाना सुआरव जंतरी नट चेटकी ज्वारी जिते। तेली तमोली रजक सूची चित्रकारक पुर तिते।—रामाश्वमेध।

सुआसन—संज्ञा पुं० [सं०] बैठने का सुंदर आसन या पीढ़ा।

सुआसिन—संज्ञा स्त्री० दे० "सुआसिनी"।

सुआसिनी॥–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ सुवासिनी ?] स्त्री, विशेषतः आस पास में रहनेवाली स्त्री। उ॰—(क) विप्र वधू सनमानि सुआसिनि जन पुरजन पहिराइ। सनमाने अवनीस असीसत ईसुर में समनाइ।—तुलसी। (ख) देव पितर गुर विप्र पूजि नृप दिए दान रुचि जानी। मुनि बनिता पुरनारि सुआसिनि सहस भाँति सनमानी। अघाइ असीसत निकसत जाचक जन भये दानी।—तुलसी।

सुआहित–संज्ञा पुं॰ [सं॰ सु + आहत ?] तलवार के ३२ हाथों में से एक हाथ। उ॰—तिमि सव्य जानु विजानु संकोचित सुआहित चित्र को। घन लवन कुद्रव छिन्न संव्येतर तथा उत्तरत को।—रघुराज।

सुइया|–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ सूआ] एक प्रकार की चिड़िया।

सुई–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "सूई"।

सुकंकवत्–संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक पर्वत का नाम जो मार्कंडेय पुराण के अनुसार मेरु के दक्षिण में है।

सुकंटका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) घृत कुमारी। घी कुआर। गुआर पाठा। (२) पिंड खजूर।

सुकंठ–वि॰ [सं॰] (१) जिसका कंठ सुंदर हो। (२) जिसका स्वर मीठा हो। सुरीला।

संज्ञा पुं॰ [सं॰] रामचंद्र के सखा, सुग्रीव। उ॰—बालि से बीर विदारि सुकंठ थप्यो हरषे सुर बाजन बाजे। पल में दल्यो दासरथी दसकंधर लंक विभीषण राज विराजे।—तुलसी।

सुकंद–संज्ञा पुं॰ [सं॰] कसेरू।

सुकंदक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) वाराही कंद। गिर्वोली कंद। गेंठी। (२) प्याज। (३) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम। (४) इस देश का निवासी।

सुकंदकरण–संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्याज। श्वेत पलांडु।

सुकंदन–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) वैजयंती तुलसी। (२) बर्बरक। बबई तुलसी।

सुकंदा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) लक्ष्मणाकंद। पुत्रदा। (२) बंध्या-कर्कोटकी। बाँझककोड़ा।

सुकंदी–संज्ञा पुं॰ [सं॰ सुकंदिन्] सूरन। जमींकंद।

सुक–संज्ञा पुं॰ [सं॰ शुक] (१) तोता। शुक। कीर। सुग्गा। (२) व्यास पुत्र। शुकदेव मुनि। (३) एक राक्षस जो रावण का दूत था।

संज्ञा पुं॰ [सं॰ सुकट्ठ] शिरीष वृक्ष। सिरस का पेड़।

सुकक्ष–संज्ञा पुं॰ [सं॰] अंगिरा वंश में उत्पन्न एक ऋषि जो ऋग्वेद के कई मंत्रों के द्रष्टा थे।

सुकचण–संज्ञा पुं॰ [सं॰ संकोच] लज्जा। संकोच। (डिं॰)

सुकचाना॥–क्रि॰ अ॰ दे॰ "सकुचाना"।

सुकटि–वि॰ [सं॰] अच्छी कमरवाली। जिसकी कमर सुन्दर हो।

सुकटु–संज्ञा पुं॰ [सं॰] शिरीष वृक्ष।

वि॰ सिरस का पेड़। अत्यंत कटु। बहुत कड़ुआ।

सुकड़ना–क्रि॰ अ॰ दे॰ "सिकुड़ना"।

सुकदेव–संज्ञा पुं॰ दे॰ "शुकदेव"।

सुकना|–संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का धान जो भादों महीने के अंत और आश्विन के आरंभ में होता है।

सुकनासा॥–वि॰ [सं॰ शुक + नासिका] जिसकी नाक शुक पक्षी की ठोर के समान हो। सुन्दर नाकवाला।

सुकन्या–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] शर्याति राजा की कन्या और च्यवन ऋषि की पत्नी।

सुकपर्दा–वि॰ [सं॰] (वह स्त्री) जिसने उत्तमता से केश बाँधे हों। जिसने उत्तमता से चोटी की हो।

सुकपिच्छक–संज्ञा पुं॰ [डिं॰] गंधक।

सुकमार|–वि॰ दे॰ "सुकुमार"।

सुकमारता|–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "सुकुमारता"।

सुकर–वि॰ [सं॰] जो अनायास किया जा सके। सहज में होनेवाला। सुसाध्य।

सुकरता–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) सुकर का भाव। सहज में होने का भाव। सुकरत्व। सौकर्य। (२) सुन्दरता। उ॰—जहाँ क्रिया की सुकरता बरणत काज विरोध। तहाँ कहत व्याघात हैं औरौ बुद्धि विबोध।—मतिराम।

सुकरा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सुशील गाय। अच्छी और सीधी गौ।

सुकराना–संज्ञा पुं॰ दे॰ "शुकराना"। उ॰—अरज अन्यारे जे मरे अति ही मदन मजेज। देखे सुख दग वारये रव सुकराना भेज।—रतन हजारा।

सुकरित॥–वि॰ [सं॰ सुकृत] शुभ। सत्। अच्छा। भला। उ॰—सुकरित मारग चालतां बुरा न कबहूँ होइ। अमित सात पराजियाँ सुभा न सुनिवा कोइ।—दादू।

सुकरीहार–संज्ञा पुं॰ [सुकरी ? + हिं॰ हार] गले में पहनने का एक प्रकार का हार।

सुकर्णक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] हस्तीकंद। हाथीकंद।

वि॰ जिसके कान सुन्दर हों। अच्छे कानोंवाला।

सुकर्णिका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) मूषाकर्णी। मूसाकानी नाम की लता। (२) महाबला।

सुकर्णी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] इंद्रवारुणी। इंद्रायन।

सुकर्म–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) अच्छा काम। सत्कर्म। (२) देवताओं की एक श्रेणि या कोटि।

सुकर्मा–संज्ञा पुं॰ [सं॰ सुकर्मन्] (१) विषकंभ आदि सताईस योगों में से सातवाँ योग। ज्योतिष में यह योग सब प्रकार के कार्यों के लिये शुभ माना गया है और कहा गया है कि जो बालक इस योग में जन्म लेता है, वह परोपकारी, कला-कुशल, यशस्वी, सत्कर्म करनेवाला और सदा प्रसंन्न रहनेवाला

होता है। (२) उत्तम कर्म करनेवाला मनुष्य। (३) विश्वकर्मा। (४) विश्वामित्र।

सुकर्मी-वि० [सं० सुकर्मिन्] (१) अच्छा काम करनेवाला। (२) धार्मिक पुण्यवान्। (३) सदाचारी।

सुकल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो अपनी संपत्ति का उपयोग दान और भोग में करता है। दाता और भोक्ता। (२) मधुर, पर अस्फुट शब्द करनेवाला।

संज्ञा पुं० दे० "शुक्ल"। उ०—दिन दिन बढ़े बढ़ाइ अनंदा। जैसे सुकल पच्छ को चंदा।—लाल कवि।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो सावन के अंत में होता है।

सुकचाना-क्रि० अ० [?] अचंभे में आना। आश्चर्यान्वित होना। उ०—परदे पालावर हरौ, पेरु दाय नहिं पाय। गिरवानहु अमि सीन लखि रीझहुगे सुकचाय।—रामसहाय।

सुकवि-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छा कवि। उत्तम काव्यकर्त्ता।

सुकांड-संज्ञा पुं० [सं०] करेले की लता।

वि० सुंदर डालवाला।

सुकांडिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] करेले की लता।

सुकांडी-संज्ञा पुं० [सं० सुकांडिन्] भ्रमर। भौंरा।

वि० सुंदर डालवाला।

सुकाज-संज्ञा पुं० [सं० सु+हिं० काज] उत्तम कार्य। अच्छा काम। सुकार्य।

सुकातिज-संज्ञा पुं० [सं० शुक्तिज] मोती। (डिं०)

सुकानाॐ-क्रि० स० दे० "सुखाना"।

सुकामव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] वह व्रत जो किसी उत्तम कामना से किया जाता है। काम्यव्रत।

सुकामा-संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमाणा लता। त्रायमान।

सुकार-वि० [सं०] [स्त्री० सुकारा] (१) सहज साध्य। सहज में होनेवाला। (२) सहज में वश में आनेवाला (घोड़ा या गाय आदि)। (३) सहज में प्राप्त होनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) अच्छे स्वभाव का घोड़ा। (२) कुंकुम शालि।

सुकाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुसमय। उत्तम समय। (२) वह समय जो अन्न आदि की उपज के विचार से अच्छा हो। अकाल का उलटा।

सुकालिन-संज्ञा पुं० [सं०] पितरों का एक गण। मनु के अनुसार ये शूद्रों के पितर माने जाते हैं।

सुकालुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] भटकटैया।

सुकावनाॐ-क्रि० स० दे० "सुखाना"। उ०—भूमि भार दीबे को कि सुर दोप लीबे को, समुद्र कीच कीबे को कि पान कै सुकावनो।—हनुमन्नाटक।

सुकाशन-वि० [सं०] अत्यंत दीप्तिमान्। बहुत प्रकाशमान्। बहुत चमकीला।

सुकाष्ठक-संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु।

सुकाष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुटकी। (२) काष्ठ कदली। वनकदली। कठकेला।

सुकिजॐ-संज्ञा पुं० [सं०] शुभ कर्म। उत्तम कार्य। उ०—सोचत हानि मानि मन गुनि गुनि गये निघटि फल सकल सुकिज के।—तुलसी।

सुकियाॐ-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वकीया] वह स्त्री जो अपने ही पति में अनुराग रखती हो। स्वकीया नायिका। उ०—सो नायक की नायका बरनति तीनि बखान। सुकिया परकीया अवर सामान्या सुभमान।—केशव।

सुकी-संज्ञा स्त्री० [सं० शुक] तोते की मादा। सुग्गी। सारिका। तोती। उ०—कूजत हैं कलहंस कपोत सुकी सुक सोर करैं सुनि ताहू। नैकहू क्यों न उठा सकुचौं जिय जागत हैं गुरु लोग लजाहू।—देव।

सुकीउॐ-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वकीया] अपने ही पति में अनुराग रखनेवाली स्त्री। स्वकीया नायिका। उ०—याही के निहोरे झूँठे साँचे राम मांरे वाली लोग कहत तीय लै दई सुकीउ है। सुन्यो जाको गाँव मेरो देश देश गाँव सब कालकूट राउर चिमूरति सुकीउ है।—हनुमन्नाटक।

सुकुंतल-संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

सुकुंद-संज्ञा पुं० [सं०] राल। धूना।

सुकुंदक-संज्ञा पुं० [सं०] प्याज।

सुकुंदन-संज्ञा पुं० [सं०] बर्वरी। बबुई तुलसी।

सुकुआर-वि० [स्त्री० सुकुआरी] दे० "सुकुमार"। उ०—इह न होइ जैसे माखन चोरी। तब वह मुख पहचानि मानि सुख देती जान हानि हुति थोरी। उन दिननि सुकुमार हते हरि हौं जानत अपनो मन भोरी।—सूर।

सुकुट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।

सुकुड़ना-क्रि० अ० दे० "सिकुड़ना"।

सुकुतिॐ†-संज्ञा स्त्री० [सं० शुक्ति] सीप। शुक्ति। उ०—पूरन परमानंद यही अहिवदन हलाहल। कदलीगत घनसार सुकुति महँ मुक्ता कोलाहल।—सुधाकर।

सुकुमार-वि० [सं०] [स्त्री० सुकुमारी] जिसके अंग बहुत कोमल हों। अति कोमल। नाजुक।

संज्ञा पुं० (१) कोमलांग बालक। नाजुक लड़का। (२) ऊख। ईख। (३) वनचंपा। (४) अपामार्ग। लटजीरा। (५) साँवाँ धान। (६) कँगनी। (७) एक दैत्य का नाम। (८) एक नाग का नाम। (९) काव्य का एक गुण। (जो काव्य कोमल अक्षरों या शब्दों से युक्त होता है, वह सुकुमार गुण विशिष्ट कहलाता है।) (१०) तंबाकू का पत्ता। (११) वैद्यक में एक प्रकार का मोदक जो निसोथ, चीनी, शहद, इलायची

और काली मिर्च के योग से बनता है और जो विरेचक तथा रक्त पित्त और वायु रोगों का नाशक माना जाता है।

सुकुमारक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तंबाकू का पत्ता। (२) तेजपत्र। तेजपत्ता। (३) साँवाँ धान। (४) सुंदर बालक।

सुकुमारता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुकुमार होने का भाव या धर्म्म। कोमलता। सौकुमार्य्य। नजाकत।

सुकुमारवन–संज्ञा पुं० [सं०] एक कल्पित वन जो भागवत के अनुसार मेरु के नीचे है। कहते हैं कि इसमें भगवान् शंकर भगवती पार्वती के साथ क्रीड़ा किया करते हैं।

सुकुमारा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जूही। (२) नवमल्लिका। (३) कदली। केला। (४) स्पृक्का। (५) मालती।

सुकुमारिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] केले का पेड़।

सुकुमारी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नवमल्लिका। चमेली। (२) शंखिनी नाम की ओषधि। (३) वन मल्लिका। (४) एक प्रकार की फली। जैसे मूँग आदि की। (५) बड़ा करेला। (६) ऊख। (७) कदली वृक्ष। केले का पेड़। (८) त्रिसंधि नामक फूलदार पेड़। (९) स्पृक्का नामक गंध द्रव्य। (१०) कन्या। (११) लड़की। बेटी।

वि० कोमल अंगोंवाली। कोमलांगी।

सुकुरना‡–क्रि० अ० दे० "सिकुड़ना"। उ०—सुकुर बिलोको लाल रहे क्यों सुकुर सुकुर है। सरमाने हो कहा रहे क्यों अंग सुकुर कै।—अंबिकादत्त व्यास।

सुकुकुंदर–संज्ञा पुं० [सं०] बालकों का एक प्रकार का रोग जिसकी गणना बालग्रहों में होती है।

सुकुल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम कुल। श्रेष्ठ वंश। (२) वह जो उत्तम कुल में उत्पन्न हो। कुलीन।

संज्ञा पुं० दे० "शुक्ल"।

सुकुलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुकुल का भाव। कुलीनता।

सुकुलवेद–संज्ञा पुं० [सं० शुक्ल+हिं० बेत] एक प्रकार का वृक्ष।

सुकुवाँर, सुकुवार–वि० दे० "सुकुमार"। उ०—औचक ही घर माँझ साँझ ही अगिनि लागी बड़ो अनुरागी रहि गई सोउ हारिये। कही आयो नाथ सब कीजिये जू अंगीकार हँसे सुकुवार हरि मोहि को निहारिये।—भक्तमाल।

सुकुसुमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्कंद की एक मातृका का नाम।

सुकृत्–वि० [सं०] (१) उत्तम और शुभ कार्य्य करनेवाला। (२) धार्मिक। पुण्यवान्।

सुकृत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुण्य। सत्कार्य। भला काम। (२) दान। (३) पुरस्कार। (४) दया। मेहरबानी।

वि० (१) भाग्यवान्। किस्मतवर। (२) धर्म्मशील। पुण्यवान्। (३) जो उत्तम रूप से किया गया हो।

सुकृतकर्म–संज्ञा पुं० [सं० सुकृतकर्म्मन्] पुण्य कर्म। सत्कार्य। शुभ कार्य्य।

वि० पुण्यात्मा। धर्मात्मा।

सुकृतव्रत–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जो प्रायः द्वादशी के दिन किया जाता है।

सुकृतात्मा–वि० [सं० सुकृतात्मन्] वह जो सुकृत करता हो। धर्मात्मा। पुण्यात्मा।

सुकृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] शुभ कार्य्य। अच्छा काम। पुण्य। सत्कर्म।

सुकृतित्व–संज्ञा पुं० [सं०] सुकृति का भाव या धर्म्म।

सुकृती–वि० [सं० सुकृतिन्] (१) धार्मिक। पुण्यवान्। सत्कर्म करनेवाला। (२) भाग्यवान्। तकदीरवर। (३) बुद्धिमान्। अक्लमंद।

संज्ञा पुं० दसवें मन्वंतर के एक ऋषि का नाम।

सुकृत्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम कार्य्य। पुण्य। धर्मकार्य। (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सुकेत–संज्ञा पुं० [सं०] आदित्य। सूर्य्य।

सुकेतन–संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार सुनीथ राजा के पुत्र का नाम। कहीं कहीं इनका नाम निकेतन भी मिलता है।

सुकेतु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चित्रकेतु राजा का नाम। (२) ताड़का राक्षसी के पिता का नाम। (३) सागर के पुत्र का नाम। (४) नंदिवर्द्धन का पुत्र। (५) केतुमंत के पुत्र का नाम। (६) सुनीथ राजा के पुत्र का पुत्र। (७) वह जो मनुष्यों और पक्षियों की बोली समझता हो।

वि० उत्तम केशोंवाला।

सुकेश–संज्ञा पुं० दे० "सुकेशि"।

वि० [स्त्री० सुकेशा] उत्तम केशोंवाला। जिसके बाल सुंदर हों।

सुकेशि–संज्ञा पुं० [सं०] विद्युत्केश राक्षस का पुत्र तथा माल्यवान्, सुमाली और माली नामक राक्षसों का पिता। कहते हैं कि जब इसका जन्म हुआ था, तब इसकी माता इसे मंदर पर्वत पर छोड़कर अपने पति के साथ विहार करने चली गई थी। उस समय पार्वती के कहने पर महादेव जी ने इसे चिरजीवी होने और आकाश में गमन करने का वरदान दिया था। पीछे से इसने एक गंधर्व कन्या के साथ विवाह किया था, जिससे उक्त तीनों पुत्र हुए थे। इन्हीं पुत्रों से राक्षसों का वंश चला था।

सुकेशी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्तम केशोंवाली स्त्री। वह स्त्री जिसके बाल बहुत सुंदर हों। (२) महाभारत के अनुसार एक अप्सरा का नाम।

संज्ञा पुं० [सं० सुकेशिन्] [स्त्री० सुकेशिनी] वह जिसके बाल बहुत सुंदर हों।

सुकेसर–संज्ञा पुं० [सं०] सिंह। शेर।

सुकोली-संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीर काकोली नामक कंद। पयस्का। पयस्विनी।
सुकोशला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नगरी का नाम।
सुकोशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कोशातकी। तुरई। तरोई।
सुक्कड़ि-संज्ञा पुं० [सं० ?] एक प्रकार का सूखा चंदन जो वैद्यक में मूत्रकृच्छ्र, पित्तरक्त और दाह को दूर करनेवाला तथा शीतल और सुगंधिदायक बताया गया है।
सुक्कान-संज्ञा पुं० [?] पतवार। (जहाज की) (लश०)
मुहा०—सुक्कान पकड़ना या मारना = जहाज चलाना। (लश०)
सुक्कानी-संज्ञा पुं० [?] मल्लाह। माझी। (लश०)
सुक्ख-संज्ञा पुं० दे० "सुख"। उ०—जे जन भीजे रामरस विकसित कबहुँ न रुक्ख। अनुभव भाव न दरसै ते नर सुक्ख न दुक्ख।—कबीर।
सुक्त-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की काँजी जो पानी में घी या तेल, नमक और कंद या फल आदि गलाकर बनाई जाती थी। वैद्यक में इसे रक्तपित्त और कफनाशक, बहुत उष्ण, तीक्ष्ण, रुचिकर, दीपन और कृमिनाशक माना है।
सुक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।
सुक्ति-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन पर्वत का नाम।
संज्ञा स्त्री० दे० "शुक्ति"।
सुक्र-संज्ञा पुं० दे० "शुक्र"।
संज्ञा पुं० अग्नि। (डिं०)
सुक्रतु-वि० [सं०] उत्तम कर्म करनेवाला। सत्कर्म करनेवाला।
सुक्रतूया-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुभ कर्म करने की इच्छा।
सुक्रित-संज्ञा पुं० दे० "सुकृत"। उ०—कहहिं सुमति सब कोय सुमित सत जनम क जाती। सौ सुरतहि मिलि जायँ सात रिखि सों सत भागी।—सुधाकर।
सुक्रीड़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।
सुक्ल-वि० दे० "शुक्ल"। उ०—उनइस तैंतालीस को संवत माघ सुमास। सुक्ल पंचमी को भयो सुकवि लेख परकास।—अंबिकादत्त व्यास।
सुक्षत्र-वि० [सं०] (१) अत्यंत धनशाली। (२) सुराज्यशाली। (३) शक्तिशाली। बलवान्। दृढ़।
संज्ञा पुं० निरमित्र के पुत्र का नाम।
सुक्षद-संज्ञा पुं० [सं०] सुंदर यज्ञशाला। बढ़िया यज्ञ-मंडप।
सुक्षमअ-वि० दे० "सूक्ष्म"। उ०—कारण सुक्षम तीन देह धरि भक्ति हेत तृण तोरी। धर्मनि निरखि परखि गुरु मूरति ताहि के काज बनोरी।—कबीर।
सुक्षिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुंदर निवासस्थान। (२) वह जो सुंदर स्थान में रहता हो। (३) वह जिसे यथेष्ट पुत्र पौत्रादि हों। धन धान्य और संतान आदि से सुखी।
सुक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार्कंडेय पुराण के अनुसार दसवें मनु के पुत्र का नाम। (२) वह घर जिसके दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की ओर दीवारें या मकान आदि हों। पूर्व ओर से खुला हुआ मकान जो बहुत शुभ माना जाता है।
सुखंकर-वि० [सं०] सुखकर। सुकर। सहज।
सुखंकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती। डोडी। वि० दे० "जीवंती"।
सुखंडरा-संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।
सुखंडी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूखना] एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर सूखकर काँटा हो जाता है। यह रोग बच्चों को बहुत होता है।
वि० बहुत दुबला पतला।
सुखंद-वि० [सं० सुखद] सुखदायी। आनंददायक। उ०—धनगन बेली बनबदन सुमन सुरति मकरंद। सुंदर नायक श्रीरवन दच्छिन पवन सुखंद।—रामसहाय।
सुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मन की वह उत्तम तथा प्रिय अनुभूति जिसके द्वारा अनुभव करनेवाले का विशेष समाधान और संतोष होता है और जिसके बराबर बने रहने की वह कामना करता है। वह अनुकूल और प्रिय वेदना जिसकी सब को अभिलाषा रहती है। दुःख का उलटा। आराम। जैसे,—(क) वे अपने बाल-बच्चों में बड़े सुख से रहते हैं। (ख) जहाँ तक हो सके, सब को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए।
विशेष—कुछ लोग सुख को हर्ष का पर्य्यायवाची समझते हैं; पर दोनों में अंतर है। कोई उत्तम समाचार सुनने अथवा कोई उत्तम पदार्थ प्राप्त करने पर मन में सहसा जो वृत्ति उत्पन्न होती है, वह हर्ष है। परंतु सुख इस प्रकार आकस्मिक नहीं होता; और वह हर्ष की अपेक्षा अधिक स्थायी होता है। अनेक प्रकार की चिंताओं, कष्टों आदि से निरंतर बचे रहने पर और अनेक प्रकार की वासनाओं आदि की तृप्ति होने पर मन में जो प्रिय अनुभूति होती है, वह सुख है। हमारे यहाँ कुछ लोगों ने सुख को मन का और कुछ लोगों ने आत्मा का धर्म्म माना है। न्याय और वैशेषिक के अनुसार सुख आत्मा का एक गुण है। यह सुख दो प्रकार का कहा गया है—(१) नित्य सुख जो परमात्मा के विशेष सुख के अंतर्गत है और (२) जन्य सुख जो जीवात्मा के विशेष सुख के अंतर्गत है। यह धन या मित्र की प्राप्ति, आरोग्य और भोग आदि से उत्पन्न होता है। सांख्य और पातंजल के मत से सुख प्रकृति का धर्म है और इसकी उत्पत्ति सत्व से होती है। गीता में सुख तीन प्रकार का कहा गया है—(१) सात्विक, जो ज्ञान, वैराग्य और ध्यान आदि के द्वारा प्राप्त होता है। (२) राजसिक, जो विषय तथा इंद्रियों के संयोग से उत्पन्न होता है। (जैसे संगीत सुनने, सुंदर रूप देखने, स्वादिष्ट भोजन करने और संभोग

आदि से होता है।) और (३) तामस, जो आलस्य और उन्माद आदि के कारण उत्पन्न होता है।

पर्य्या०—प्रीति। मोद। आमोद। प्रमोद। आनंद। हर्ष। सौख्य।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—भोगना।—मिलना।

मुहा०—सुख मानना = परिस्थिति आदि की अनुकूलता के कारण ठीक अवस्था में रहना। जैसे,—यह पेड़ सभी प्रकार की जमीनों में सुख मानता है। सुख लूटना = यथेष्ट सुख का भोग करना। मौज करना। आनंद करना। सुख की नींद सोना = निश्चिंत होकर आनंद से सोना या रहना। खूब मजे में समय बिताना।

(२) एक प्रकार का वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में ८ सगण और २ लघु होते हैं। (३) आरोग्य। तंदुरुस्ती। (४) स्वर्ग। (५) जल। पानी। (६) वृद्धि नाम की अष्टवर्गीय औषधि।

सुखआसन-संज्ञा पुं० [सं० सुख + आसन] सुखपाल। पालकी। डोली। उ०—यदि सुखआसन नृपति सिधायो। तहाँ कहार एक दुख पायो।—सूर।

सुखकंद-वि० [सं० सुख + कंद] सुखमूल। सुख देनेवाला। आनंद देनेवाला। उ०—अहो पवित्र प्रभाव यह रूप नयन सुखकंद। रामायन रवि मुनि दियो वानिहि परम अनंद।—सीताराम।

सुखकंदन-वि० दे० "सुखकंद"। उ०—श्रीवृषभानु सुता दुलही दिन जोरी बनी विधना सुखकंदन। रसखानि न आवत मो पै कह्यो कछु दोऊ फँदे छबि प्रेम के फंदन।—रसखान।

सुखकंदर-वि० [सं० सुख + कंदरा] सुख का घर। सुख का आकर। उ०—सुंदर नंद-महर के मंदिर प्रगट्यो पूत सकल सुखकंदर।—सूर।

सुखक[॰]-वि० [हिं० सूखा] सूखा। शुष्क। उ०—सुखक वृक्ष एक जक्त उपाया। समुझि न परी विषय कछु माया।—कबीर।

सुखकर-वि० [सं०] (१) सुख देनेवाला। सुखद। (२) जो सहज में सुख से किया जाय। सुकर। (३) हलके हाथवाला। उ०—परम निपुण सुखकर वर नापित लीन्हो तुरत बुलाई। क्रम सों चारि कुमारन को नृप दिय मुंडन करवाई।—रघुराज।

सुखकरण-वि० [सं० सुख + करण] सुख उत्पन्न करनेवाला। आनंद देनेवाला। उ०—सब सुखकरण हरण दुख भारी। जपैं जाहि शिव शैलकुमारी।—विश्राम।

सुखकरन-वि० दे० "सुखकरण"। उ०—सुखकरन सब से परम करपर वेनु धरकर धरत हैं। सुर मधुर तान बधान तें प्रभु मनहुँ को मन हरत हैं।—गिरधरदास।

सुखकारक-वि० [सं०] सुखदायक। सुख देनेवाला। आनंददायक।

सुखकारी-वि० [सं० सुखकारिन्] सुख देनेवाला। आनंददायक।

सुखकृत-वि० [सं०] जो सुख या आराम से किया जाय। सुकर। सहज।

सुखक्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुख से किया जानेवाला काम। सहज काम। (२) वह काम जिसे करने से सुख हो। आराम देनेवाला काम।

सुखगंध-वि० [सं०] जिसकी गंध आनंद देनेवाली हो। सुगंधित।

सुखग-वि० [सं०] सुख से जानेवाला। आराम से चलने या जानेवाला।

सुखगम-वि० [सं०] सरल। सुगम। सहज।

सुखगम्य-वि० [सं०] (१) सुख से जाने योग्य। आराम से जाने योग्य। (२) जिसमें सुखपूर्वक गमन किया जा सके।

सुखग्राह्य-वि० [सं०] सुख से ग्रहण योग्य। जो सहज में लिया जा सके।

सुखचर-वि० [सं०] सुख से चलनेवाला। आराम से चलनेवाला।

सुखचार-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तम घोड़ा। बढ़िया घोड़ा।

सुखजनक-वि० [सं०] सुखदायक। आनंददायक। सुखद।

सुखजननी-वि० [सं०] सुख उपजानेवाली। सुख देनेवाली। उ०—मदन जीविका सुखजननि, मनमोहनी विलास। निपट कृपाणी कपट की रति शोभा सुखवास।—केशव।

सुखजात-वि० [सं०] सुखी। प्रसन्न।

सुखज्ञ-वि० [सं० सुख + ज्ञ] सुख का जाननेवाला। सुख का ज्ञाता। उ०—जागरत भाखि सुख सुखमा मिलाप जे सुखज्ञ सुखभापो है तुरीयमय माने हैं। गुणत्रय भेद के अवस्था त्रय खेदहू के छल्छन के लच्छ से बिलच्छन बखाने हैं।—चरणचंद्रिका।

सुखड़ैना[॰]-संज्ञा पुं० [हिं० सूखना + ऐनां (प्रत्य०)] बैलों का एक प्रकार का रोग जो उनका तालू खुल या फूट जाने से होता है। इसमें बैल खाना पीना छोड़ देता है जिससे वह बहुत दुबला हो जाता है।

सुखढरन-वि० [सं० सुख + हिं० ढलना] सुख देनेवाला। सुखदायक। उ०—सज्जन सुखढरन भक्तजन कंठाभरन।—सरस्वती।

सुखता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुख का भाव या धर्म। सुखत्व।

सुखथर[॰]-संज्ञा पुं० [सं० सुख + स्थल] सुख का स्थल। सुख देनेवाला स्थान। उ०—निपट मित्र या सम सों जो पहले हो सुखथर। विविध त्रास सों पूरित हैं वे भूमि भयंकर।—श्रीधर पाठक।

सुखद–वि० [सं०] [स्त्री० सुखदा] सुख देनेवाला। आनंद देनेवाला। सुखदायी। आरामदेह।
संज्ञा पुं० (१) विष्णु का स्थान। विष्णु का आसन। (२) विष्णु। (३) एक प्रकार का ताल। (संगीत)

सुखदनियाँ*–वि० दे० "सुखदानी"। उ०—सुंदर स्याम सरोज बरन तन सब अँग सुभग सकल सुखदनियाँ।—तुलसी।

सुखदा–वि० स्त्री० [सं०] सुखदेनेवाली। आनंद देनेवाली। सुखदायिनी।
संज्ञा स्त्री० (१) गंगा का एक नाम। (२) अप्सरा। (३) शमी वृक्ष। (४) एक प्रकार का छंद।

सुखदाइन*–वि० दे० "सुखदायिनी"। उ०—आइ दुती अन्हवावन नाइनि, सौंधो लिये कर सूधे सुभाइनि। कंचुकि छोरि उतै उपटैबे को ईंगुर से अँग की सुखदाइनि।—देव।

सुखदाई–वि० दे० "सुखदायी"।

सुखदात–वि० दे० "सुखदाता"। उ०—जो सब देव को देव अहै, द्विजभक्ति में जाकी घनी निपुणाई। दासन को सिगरो सुखदात प्रशांत स्वरूप मनोहरताई।—रघुराज।

सुखदाता–वि० [सं० सुखदातृ] सुख देनेवाला। आनंद देनेवाला। आराम देनेवाला। सुखद।

सुखदान–वि० [सं० सुख+देना] [स्त्री० सुखदानी] सुख देनेवाला। आनंद देनेवाला। उ०—(क) खेलति है गुड़ियान को खेल लये संग में सजनी सुखदान री।—सुंदरीसर्वस्व। (ख) जब तुम फूलन के दिवस आवत हैं सुखदान। फूली अंग समाति नहिं उत्सव करति महान।—लक्ष्मणसिंह।

सुखदानी–वि० स्त्री० [हिं० सुखदान] सुख देनेवाली। आनंद देनेवाली।
संज्ञा स्त्री० एक प्रकार का वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में ८ सगण और १ गुरु होता है। इसे सुंदरी, मल्ली और चंद्रकला भी कहते हैं।

सुखदाय–वि० दे० सुखदायक"।

सुखदायक–वि० [सं०] सुख देनेवाला। आराम देनेवाला। सुखद।
संज्ञा पुं० एक प्रकार का छंद।

सुखदायिनी–वि० स्त्री० [सं०] सुख देनेवाली। सुखदा।
संज्ञा स्त्री० मांसरोहिणी नाम की लता। रोहिणी।

सुखदायी–वि० [सं० सुखदायिन्] [स्त्री० सुखदायिनी] सुख देनेवाला। आनंद देनेवाला। सुखद।

सुखदायो*–वि० दे० "सुखदायी"। उ०—देखि स्याम मन हरष बढ़ायो। तैसिय शरद चाँदिनी निर्मल तैसोइ रास रंग उपजायो। तैसिय कनकबरन सब सुंदरि यह सोभा पर मन ललचायो। तैसी हंस-सुता पवित्र तट तैसोइ कल्पवृक्ष सुखदायो।—सूर।

सुखदाव*–वि० दे० "सुखदायी"। उ०—अज दल चंदन चकंदर घंटशिला हरि ताव। अष्ट वस्तु मिलि होत है चरणामृत सुखदाव।—विश्राम।

सुखदास–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन महीने में तैयार होता है और जिसका चावल बरसों तक रह सकता है।

सुखदेनी–वि० दे० "सुखदायिनी"। उ०—राजत रोमन की बन राजिव है रसबीज नदी सुखदेनी। आगे भई प्रतिबिंबित पाछे विलंबित ओं मृगनैनी कि बेनी।—सुंदरीसर्वस्व।

सुखदैन–वि० दे० "सुखदायी"। उ०—सिय के मनमंजु मनोरथ आनि कहै हनुमान जगे पै जगी। सुखदैन सरोज कली से भले उभरे ये उरोज लगे पै लगी।—सुंदरीसर्वस्व।

सुखदैनी–वि० [सं० सुखदायिनी] सुख देनेवाली। आनंद देनेवाली। सुखद। उ०—भाल गुही गुन लाल लटैं लपटी लर मोतिन की सुखदैनी।—केशव।

सुखदोहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जिसको दुहने में किसी प्रकार का कष्ट न हो। बहुत सहज में दूही जा सकनेवाली गौ।

सुखधाम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुख का घर। आनंद सदन। (२) वह जो स्वयं सुखमय हो; या जो बहुत अधिक सुख देनेवाला हो। (३) बैकुंठ। स्वर्ग।

सुखना*–क्रि० अ० दे० "सूखना"।

सुखपर–वि० [सं०] सुखी। खुश। प्रसन्न।

सुखपाल–संज्ञा पुं० [सं० सुख+पाल (की)] एक प्रकार की पालकी जिसका ऊपरी भाग शिवाले के शिखर का सा होता है। उ०—(क) सुखपाल और चंडोलों पर और रथों पर जितनी रानियाँ और महारानी लक्ष्मीदास पीछे चली आती थीं।—शिवप्रसाद। (ख) चंदन के रथ छोड़ दिये अरवाप सजी सुखपाल सुहाई।—रघुनाथ। (ग) हम सुखपाल लिये खड़े हाजिर लगन कहार। पहुँचावौं मन मंजिल तरु तुहिं छै प्रान अधार।—रतनहजारा।

सुखपूर्वक–क्रि० वि० [सं०] सुख से। आनंद से। आराम के साथ। मजे में। जैसे,—आप यदि उनके यहाँ पहुँच जायँगे तो बहुत सुखपूर्वक रहेंगे।

सुखपेय–वि० [सं०] जिसके पीने में सुख हो। जिसके पान करने से आनंद मिले। सुपेय।

सुखप्रद–वि० [सं०] सुख देनेवाला। सुखदायक। सुखद।

सुखप्रसवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुख से प्रसव करनेवाली स्त्री। आराम से संतान जननेवाली स्त्री।

सुखभंज–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद मिर्च।

सुखभक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद सहिंजन। श्वेतशिग्रु।

सुखमन*–संज्ञा स्त्री० [सं० सुषुम्ना] सुषुम्ना नाम की नाड़ी। मध्यनाड़ी। वि० दे० "सुषुम्ना"। उ०—कहाँ पिंगला

सुखमन नारी। मुनि समाधि लागि गइ तारी।—जायसी।

सुखमा–संज्ञा स्त्री० [सं० सुषमा] (१) शोभा। छवि। उ०—तिय मुख सुखमा सो दगनि बाँध्यो प्रेम अपार। रही अलक ह्वै लगी मनुं चदुरी पुतरी तार।—मुबारक अली। (२) एक प्रकार का वृत्त जिसमें एक तगण, एक यगण, एक भगण और एक गुरु होता है। इसे वामा भी कहते हैं।

सुखमानी–वि० [सं० सुखमानिन्] सुख माननेवाला। हर अवस्था में सुखी रहनेवाला।

सुखमुख–संज्ञा पुं० [सं०] यक्ष।

सुखमोद–संज्ञा पुं० [सं०] लाल सहिंजन। शोभांजन वृक्ष।

सुखमोदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] शल्लकी का वृक्ष। सलई।

सुखरात्रि–संज्ञा स्त्री० [सं०] दिवाली की रात। कार्तिक महीने की अमावस्या की रात।

सुखरासॐ–वि० [सं० सुख+राशि] जो सर्वथा सुखमय हो। सुख की राशि। उ०—मंदिर के द्वार रूप सुंदर निहारो करें लाग्यो शीत गात सकलात दई दास है। सोचे संग जाइवे की रीति को प्रमान यहै वैसे सब जानो माधवदास सुखरास है।—भक्तमाल।

सुखरासीॐ–वि० दे० "सुखरास"।

सुखलाना–क्रि० स० दे० "सुखाना"।

सुखवंत–वि० [सं० सुखवत्] (१) सुखी। प्रसन्न। खुश। (२) सुखदायक। आनंद देनेवाला। उ०—इसके कुंद कली से दंत। वचनं तोतले हैं सुखवंत।—संगीत शाकुंतल।

सुखवत्–वि० [सं०] सुखयुक्त। सुखी। प्रसन्न।

सुखवत्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुख का भाव या धर्म। सुख। आनंद।

सुखवन†–संज्ञा पुं० [हिं० सूखना] (१) वह फसल जो सूखने के लिये धूप में डाली जाती है। (२) वह कमी जो किसी चीज में उसके सूखने के कारण होती है।

संज्ञा पुं० [हिं० सूखना] वह बालू जिसे लिखे हुए अक्षरों आदि पर डालकर उनकी स्याही सुखाते हैं। उ०—किलक रूख ह्वै जाइ मसीहू होत सुधा सी। खाजा के परतन की सी छवि पत्र प्रकासी। सुखवन की बालहु तहाँ चीनी सी दरकी। सुकवि करै किमि कविता मधुरे वधू अपर की।—अंबिकादत्त व्यास।

सुखवर्चक–संज्ञा पुं० [सं०] सज्जी मिट्टी। सर्जिका क्षार।

सुखवर्च्चस्–संज्ञा पुं० [सं०] सज्जी मिट्टी।

सुखवा†–संज्ञा पुं० [सं० सुख] सुख। आनंद। मोद। उ०—सुखवा सकल बलपिरवा के घर, दुख नैहर गवन नाहिं देत।—रामकृष्ण वर्म्मा।

सुखवादी–संज्ञा पुं० [सं० सुख+वादिन्] वह जो इंद्रिय सुख को ही सब कुछ समझता या मानता हो। वह जो भोग विलास आदि को ही जीवन का मुख्य उद्देश्य समझता हो। विलासी।

सुखवार–वि० [सं० सुख+हिं० वार (प्रत्य०)] [स्त्री० सुखवारी] सुखी। प्रसन्न। खुश। उ०—जहाँ दीन, घरहीन परी ठिठुरत मुद नारी। रही कदाचित कबहुँ गाम में सो सुखवारी। रोय चुकी पै निरदोषिन की सुनि सुनि ख्वारी।—श्रीधर पाठक।

सुखवास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तरबूज। शीर्णवृन्त। (२) वह स्थान जहाँ का निवास सुखकर हो। आनंद का स्थान। सुख की जगह।

सुखसंदूह्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] जो गाय सुख से दूही जाय। जिस गाय को दूहने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो।

सुखसंदोह्या–संज्ञा स्त्री० दे० "सुखसंदूह्या"।

सुखसलिल–संज्ञा पुं० [सं०] उष्ण जल। गरम पानी।

विशेष—पानी गरम करने से उसमें कोई दोष नहीं रह जाता। वैद्यक में ऐसा जल बहुत उपकारी बताया गया है, और इसी लिये "सुखसलिल" कहा गया है।

सुखसाध्य–वि० [सं०] जिसका साधन सुकर हो। जिसके साधन में कोई कठिनाई न हो। सुख से या सहज में होनेवाला। सुकर। सहज।

सुखांत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसका अंत सुखमय हो। सुखद परिणामवाला। जिसका परिणाम सुखकर हो। (२) पाश्चात्य नाटकों के दो भेदों में से एक वह नाटक जिसके अंत में कोई सुखपूर्ण घटना (जैसे संयोग, अभीष्ट सिद्धि, राज्य-प्राप्ति आदि) हो। दुःखांत का उलटा।

सुखांबु–संज्ञा पुं० [सं०] गरम जल। उष्ण जल।

सुखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वरुण की पुरी का नाम।

सुखाधार–संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

वि० सुख का आधार। जिस पर सुख अवलंबित हो। जैसे,—हमारे तो आप ही सुखाधार हैं।

सुखाना–क्रि० स० [हिं० सूखना का प्रे०] (१) किसी गीली या नम चीज को धूप या हवा में अथवा आँच पर इस प्रकार रखना या ऐसी ही और कोई क्रिया करना जिससे उसकी आर्द्रता या नमी दूर हो या पानी सूख जाय। जैसे,—धोती सुखाना, दाल सुखाना, मिर्च सुखाना, जल सुखाना। (२) कोई ऐसी क्रिया करना जिससे आर्द्रता दूर हो। जैसे,—इस चिंता ने तो मेरा सारा खून सुखा दिया।

†क्रि० अ० दे० "सूखना"।

सुखानी–संज्ञा पुं० [?] माँझी। मल्लाह। (लश०)

सुखायत–संज्ञा पुं० [सं०] सहज में वश में आनेवाला घोड़ा। सीधा और सधा हुआ घोड़ा।

सुखारा᪥†–वि० [सं० सुख + हिं० आर (प्रत्य०)] (१) जिसे यथेष्ट सुख हो। सुखी। आनंदित। प्रसन्न। उ०—(क) इहि विधान निसि रहहिं सुखारे। करहिं कूँच उठि बड़े सकारे।—गिरधरदास। (ख) नित ये मंगल मोद अवध सब विधि सब लोग सुखारे।—तुलसी। (२) सुख देनेवाला। सुखद। उ०—जे भगवान प्रधान अजान समान दरिद्रन ते अन सारा। हेतु विचार हिये जग के अग त्यागि लहैं निज रूप सुखारा।

सुखारि–वि० [सं०] उत्तम हवि भक्षण करनेवाले (देवता आदि)।

सुखारी–वि० दे० "सुखारा"। उ०—(क) भयो असुर सुर भये सुखारी।—सूर। (ख) चौरासी लख के अधकारी। भक्त भये सुनि नाद सुखारी।—गिरधरदास।

सुखारो᪥–वि० दे० "सुखारा"।

सुखार्थी–वि० [सं० सुखार्थिन्] [स्त्री० सुखार्थिनी] सुख चाहनेवाला। सुख की इच्छा करनेवाला। सुखकामी।

सुखाला–वि० [सं० सुख + हिं० आला (प्रत्य०)] [स्त्री० सुखाली] सुखदायक। आनंददायक। उ०—लगैं सुखाली साँझ दिवस की तरुनाई से ताप नसी।—सरस्वती।

सुखालुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जीवंती। डोडी। वि० दे० "जीवंती"।

सुखावत्–वि० दे० "सुखवत्"।

सुखावती–संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक स्वर्ग का नाम।

सुखावतीदेव–संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव जो सुखावती नामक स्वर्ग के अधिष्ठाता माने जाते हैं। (बौद्ध)

सुखावतीश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुद्ध देव। (२) बौद्धों के एक देवता।

सुखावल–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार नृचक्षु राजा के एक पुत्र का नाम।

सुखावह–वि० [सं०] सुख देनेवाला। आराम देनेवाला। सुखद।

सुखाश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो खाने में बहुत अच्छा जान पड़े। (२) तरबूज। (३) वरुण देवता का एक नाम।

वि० जिसे सुख की आशा हो।

सुखाशक–संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज।

सुखाशा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुख की आशा। आराम की उम्मीद।

सुखाश्रय–वि० [सं०] जिस पर सुख अवलंबित हो। सुखाधार।

सुखासन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह आसन जिस पर बैठने से सुख हो। सुखद आसन। (२) नाव पर बैठने का उत्तम आसन। (३) पालकी। डोली। उ०—चढ़ि सुख आसन नृपति सिधायो। तहाँ कहार एक दुख पायो।—सूर।

सुखासिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वास्थ्य। तंदुरुस्ती। (२) आराम। सुख।

सुखिआ–वि० दे० "सुखिया"। उ०—कहु नानक सोई नर सुखिआ राम नाम गुन गावै। अउर सकल जगु माया मोहिआ निरभै पद नहिं पावै।—तेगबहादुर।

सुखित–वि० [हिं० सूखना] सूखा हुआ। शुष्क। उ०—पंथ थकित मद मुकित सुखित सरसिंदुर जोवत। काकोदर कर-कोश उदर तर केहरि सोवत।—केशव। वि० दे० "सुखी"। वि० [हिं० सुखी] सुखी। आनंदित। प्रसन्न। खुश। उ०—(क) औरनि के औगुननि तजि कविजन राव होत हैं सुखित तेरो किरतिवर न्हाय कै।—मतिराम। (ख) दृग थिर कौंहैं अधखुले देह थकौंहैं ढार। सुरत सुखित सी देखियत, दुखित गरभ के भार।—बिहारी।

सुखिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुखी होने का भाव। सुख। आनंद।

सुखित्व–संज्ञा पुं० [सं०] सुखी होने का भाव। सुख। सुखिता। आनंद। प्रसन्नता।

सुखिया–वि० [हिं० सुख + इया (प्रत्य०)] जिसे सब प्रकार का सुख हो। सुखी। प्रसन्न। उ०—लखि के सुंदर वस्तु अरु मधुर गीत सुनि कोइ। सुखिया जनहू के हिये उत्कंठा एहि होइ।—लक्ष्मणसिंह।

सुखिर–संज्ञा पुं० [देश०] साँप के रहने का बिल। बाँबी। उ०—याकी असि साँपिनि कहत ग्यान सुखिर सों लहलही श्याम महा चपल निहारी है।—गुमान।

सुखी–वि० [सं० सुखिन्] सुख से युक्त। जिसे किसी प्रकार का कष्ट न हो, सब प्रकार का सुख हो। आनंदित। खुश। जैसे,—जो लोग सुखी हैं, वे दीन दुखियों का हाल क्या जानें।

सुखीन–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसकी पीठ लाल, छाती और गर्दन सफेद तथा चोंच चिपटी होती है।

सुखीनल–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार राजा नृचक्षु के एक पुत्र का नाम।

सुखेतर–संज्ञा पुं० [सं०] सुख से भिन्न अर्थात् दुःख। क्लेश। कष्ट।

सुखेन–संज्ञा पुं० दे० "सुषेण"। उ०—(क) सुग्रीव विभीषण जामवंत। अंगद केदार सुखेन संत।—सूर। (ख) बहन सुखेन सरस परजन्यहु मारुत हनुमानहिं उतपन्यहु।—पद्माकर।

सुखेलक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में न, ज, भ, ज, र आता है। इसे प्रभद्रिका और प्रभद्रक भी कहते हैं।

सुखेश–संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

सुखैना᪥†–वि० [सं० सुख + अयन] सुख देनेवाला। उ०—तो मुंमुद मावै मुनिजन ध्यावै कागभुशुंडि सुखैना।—विश्राम।

सुखोरस्य-संज्ञा पुं० [सं०] पति । स्वामी ।

सुखोदक-संज्ञा पुं० [सं०] गरम जल । सुखसलिल ।

सुखोद्य-वि० [सं०] सुख से उच्चारण योग्य । जिसके उच्चारण में कोई कठिनाई न हो (शब्द, नाम आदि) ।

सुखोर्जिक-संज्ञा पुं० [सं०] सज्जी मिट्टी । सर्जिका क्षार ।

सुख्ख-संज्ञा पुं० दे० "सुख" ।

सुख्याति-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसिद्धि । शोहरत । कीर्ति । यश । बड़ाई ।

सुगंध-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अच्छी और प्रिय महक । सुवास । सौरभ । खुशबू । वि० दे० "गंध" ।

क्रि० प्र०—आना ।—उड़ना ।—निकलना ।—फैलना ।

(२) वह पदार्थ जिससे अच्छी महक निकलती हो ।

क्रि० प्र०—मलना ।—लगाना ।

(३) गंध तृण । गंधेज घास । रुसघास । अगिया घास । (४) श्रीखंड चंदन । (५) शबर चंदन । (६) गंधराज । (७) नीला कमल । (८) राल । धूना । (९) काला जीरा । (१०) गँठेला । ग्रन्थिपर्ण । गठिवन । (११) एलुआ । एलवालुक । (१२) बृहद् गंधतृण । (१३) भूतृण । (१४) चना । (१५) भूपलाश । (१६) लाल सहिंजन । रक्तशिग्रु । (१७) शालिधान्य । बासमती चावल । (१८) मरुआ । मरुवक । (१९) माधवी लता । (२०) कसेरू । (२१) सफेद ज्वार । (२२) शिलारस । (२३) कुंदुरु । (२४) केवड़ा । श्वेत केतकी । (२५) रूसा घास जिससे तेल निकलता है । (२६) एक प्रकार का कीड़ा ।

वि० सुगंधित । सुवासित । महकदार । खुशबूदार । उ०—(क) शीतल मंद सुगंध समीर से मन की कली मानों फूल सी खिल जाती थी ।—शिवप्रसाद । (ख) अंजलिगत शुभ सुमन, जिमि सम सुगंध कर दोउ ।—तुलसी ।

सुगंधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्रोणपुष्पी । गूमा । गोमा । (२) रक्त शालिधान्य । साठी धान्य । (३) धरणी कंद । कंदालु । (४) गंधतुलसी । रक्त तुलसी । (५) गंधक । (६) बृहद् गंधतृण । (७) नारंगी । (८) कर्कोटक । ककोड़ा ।

सुगंधकेसर-संज्ञा पुं० [सं०] लाल सहिंजन । रक्तशिग्रु ।

सुगंधकोकिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का गंध द्रव्य । गंधकोकिला ।

विशेष—भावप्रकाश में इसका गुण गंधमालती के समान अर्थात् तीक्ष्ण, उष्ण और कफनाशक बताया गया है ।

सुगंधगंधक-संज्ञा पुं० [सं०] गंधक ।

सुगंधगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दारु हलदी । दारु हरिद्रा ।

सुगंधगण-संज्ञा पुं० [सं०] सुगंधित द्रव्यों का एक गण या वर्ग जिसमें कपूर, कस्तूरी, लता कस्तूरी, गंध मार्जारवीर्य, चोरक, श्रीखंडचंदन, पीला चंदन, शिलाजतु, लाल चंदन, अगर, काला अगर, देवदारु, पतंग, सरल, तगर, पद्माक, गूगल सरल का गोंद, राल, कुंदुरु, शिलारस, लोबान, लौंग जावित्री, जायफल, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेसर, सुगंधवाला, खस, बालछड़ केसर, गोरोचन, नख सुगंध, बीरन, नेत्रबाला, जटामाँसी नागरमोथा, मुलेठी, आँबाहलदी, कचूर, कपूरकचरी आदि सुगंधित पदार्थ कहे गए हैं ।

सुगंधचंद्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधेज घास । गँधारण । गंधपलाशी । कपूर कचरी ।

सुगंधतृण-संज्ञा पुं० [सं०] गंधतृण । रूसा घास ।

सुगंधत्रय-संज्ञा पुं० [सं०] चंदन, बला और नागकेसर इन तीनों का समूह ।

सुगंधत्रिफला संज्ञा स्त्री० [सं०] जायफल, लौंग और इलायची अथवा जायफल, सुपारी तथा लौंग इन तीनों का समूह ।

सुगंधन-संज्ञा पुं० [सं०] जीरा ।

सुगंधनाकुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रासना ।

सुगंधपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सतावर । शतावरी । शतमूली । (२) कठजामुन । क्षुद्रजंबू । (३) वनभंटा । कटाई । बृहती । (४) छोटी धमासा । क्षुद्र दुरालभा । (५) अपराजिता । (६) लाल अपराजिता । रक्तापराजिता । (७) जीरा । (८) बरियारा । बला । (९) विधारा । वृद्धदारु । (१०) रुद्र जटा । रुद्रलता । ईश्वरी ।

सुगंधपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जावित्री । (२) रुद्रजटा ।

सुगंधप्रियंगु-संज्ञा स्त्री० [सं०] फूलफेन । फूलप्रियंगु । गंध प्रियंगु ।

विशेष—वैद्यक में इसे कसैला, कटु, शीतल और वीर्यजनक तथा वमन, दाह, रक्तविकार, ज्वर, प्रमेह, मेद रोग आदि को नाश करनेवाला बताया है ।

सुगंधफल-संज्ञा पुं० [सं०] कंकोल । कक्कोल ।

सुगंधबाला-*संज्ञा स्त्री० [सं० सुगंध+हिं० बाला] क्षुप जाति की* एक प्रकार की बनौषधि जो पश्चिमोत्तर प्रदेश, सिंध, पश्चिमी भारतद्वीप, लंका आदि में अधिकता से होती है । सुगंधि के लिये लोग इसे बगीचों में भी लगाते हैं । इसका पौधा सीधा, गाँठ और रोएँदार होता है तथा पत्ते ककड़ी के पत्तों के समान २॥-३ इंच के घेरे में गोलाकार, कटे किनारेवाले तथा ३ से ५ नोकवाले होते हैं । पत्र-दंड लंबा होता है और शाखाओं के अंत में लंबे सींकों पर गुलाबी रंग के फूल होते हैं । बीजकोष कुछ लंबाई लिये गोलाकार होता है । वैद्यक में इसका गुण शीतल, रूखा, हलका, दीपक तथा केशों को सुंदर करनेवाला और कफ, पित्त, हृल्लास, ज्वर, अतिसार, घाव, विसर्प, हृद्रोग, आमातिसार, रक्तस्राव, रक्तपित्त, रक्तविकार, खुजली और दाह को नाश करनेवाला बताया गया है ।

पर्या०—बालक। वारिद। ह्रीवेर। कुंतल। केश्य। वारि। तोय।

सुगंधभूतृण—संज्ञा पुं० [सं०] रूसा घास। अगिया घास। वि० दे० "भूतृण"।

सुगंधमय—वि० [सं०] जो सुगंध से भरा हो। सुगंधित। सुवासित। खुशबूदार।

सुगंधमुख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी। कस्तूरिका। मृगनाभि।

सुगंधमूत्रपतन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बिलाव जिसका मूत्र गंधयुक्त होता है। मुश्क बिलाव। सुगंध मार्जार।

सुगंधमूल—संज्ञा पुं० [सं०] हरफारेवड़ी। लवलीफल।

विशेष—वैद्यक में इसे रुधिर-विकार, बवासीर, कफ पित्तनाशक तथा हृदय को हितकारी बताया गया है।

पर्या०—पांडु। कोमलवल्कला। घना। स्निग्धा।

सुगंधमूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्थल कमल। स्थल पद्म। (२) रासना। रासन। (३) आँवला। (४) गंधपलाशी। कपूर कचरी। (५) हरफारेवड़ी। लवली वृक्ष।

सुगंधमूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधपलाशी। गंधशटी। कपूर कचरी।

सुगंधमूषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छछूँदर।

सुगंधरा—संज्ञा पुं० [सं० सुगंध + हिं० रा] एक प्रकार का फूल।

सुगंधरोहिष—संज्ञा पुं० [सं०] रोहिष घास। गंधेज घास। मिरचिया गंध। अगिया घास।

सुगंधवल्कल—संज्ञा पुं० [सं०] दालचीनी। गुडत्वक।

सुगंधवीरजात्य—संज्ञा पुं० [सं०] गंधेज घास। रोहिष घास। हरद्वारी तुला।

सुगंधशालि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बढ़िया शालिधान। बासमती चावल।

विशेष—वैद्यक में यह चावल बलकारक तथा कफ, पित्त और ज्वरनाशक बताया गया है।

सुगंधषट्क—संज्ञा पुं० [सं०] छः सुगंधि द्रव्य, यथा जायफल, कंकोल (शीतल चीनी) लौंग, इलायची, कपूर और सुपारी।

सुगंधसार—संज्ञा पुं० [सं०] सागौन। शाल वृक्ष।

सुगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रासन। रासना। (२) काला जीरा। कृष्ण जीरक। (३) गंधपलाशी। गंधशटी। कपूर कचरी। (४) रुद्रजटा। शंकरजटा। (५) शतपुष्पी। सौंफ। (६) बाँझ ककोड़ा। बन ककोड़ा। बंध्या कर्कोटकी। (७) नेवारी। नवमल्लिका। (८) पीली जूही। स्वर्णयूथिका। (९) नकुलकंद। नाकुली। (१०) असबरग। स्पृक्का। (११) गंगापत्री। (१२) सलई। शल्लकी वृक्ष। (१३) माधवीलता। अतिमुक्तक। (१४) काली अनंतमूल। (१५) सफेद अनंतमूल। (१६) बिजौरा नीबू। मातुलुंगा। (१७) तुलसी। (१८) गंध कोकिला। (१९) निर्गुंडी। नील सिंधुवार। (२०) एलुआ। एलवालुक। (२१) बन-मल्लिका। सेवती। (२२) बकुची। सोमराजी। (२३) २२ पीठ स्थानों में से एक पीठ स्थान में स्थित देवी का नाम। देवी भागवत के अनुसार इस देवी का स्थान माधव-वन में है।

सुगंधाढ्य—वि० [सं०] सुगंधित। सुवासित। सुगंधयुक्त। खुशबूदार।

सुगंधाढ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) त्रिपुरमाली। त्रिपुरमल्लिका। वृत्त मल्लिका। (२) बासमती चावल। सुगंधित शालिधान्य।

सुगंधि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी महक। सौरभ। सुगंध। सुवास। खुशबू।

विशेष—यद्यपि यह शब्द संस्कृत में पुल्लिंग है, पर हिंदी में इस अर्थ में स्त्रीलिंग ही बोला जाता है।

(२) परमात्मा। (३) आम। (४) कसेरू। (५) गंधतृण। अगिया घास। (६) पीपलामूल। पिप्पलीमूल। (७) धनिया। (८) मोथा। मुस्तक। (९) एलुवा। एलवालुक। (१०) कूट। कचरिया। गोरख ककड़ी। अकुर। गुरुमींहूँ। चिर्मिटा। (११) बबई। बर्बरिका। बन तुलसी। (१२) बरबर चंदन। बर्बर चंदन। (१३) तुंबरू। तुंबुरू। (१४) अनंतमूल।

वि० दे० "सुगंधित"।

सुगंधिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाँडर की जड़। खस। बीरन। उशीर। (२) कुँई। कुमुदिनी। लाल कमल। (३) पुष्कर मूल। पुहकर मूल। (४) गौरसुवर्ण शाक। वि० दे० "गौर सुवर्ण"। (५) काला जीरा। कृष्ण जीरक। (६) मोथा। मुस्तक। (७) एलुआ। एलवालुक। (८) माचीपत्र। सुरपर्ण। (९) शिलारस। सिल्हक। (१०) बासमती चावल। महाशालि। (११) कैथ। कपित्थ। (१२) गंधक। गंध पाषाण। (१३) सुलतान चंपक। पुन्नाग।

सुगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कस्तूरी। मृगनाभि। (२) केवड़ा। पीली केतकी। (३) सफेद अनंत मूल। श्वेत सारिवा। (४) कृष्ण निर्गुंडी। (५) सिंह। केसरी।

सुगंधिकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीला कनेर। पीत करवीर। (२) असबरग। स्पृक्का। (३) वह फूल जिसमें किसी प्रकार की सुगंध हो। सुगंधित फूल।

सुगंधिफल—संज्ञा पुं० [सं०] शिलारस। सिल्हक।

सुगंधित—वि० [सं० सुगंधि] जिसमें अच्छी गंध हो। सुगंधयुक्त। खुशबूदार। सुवासित।

सुगंधिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुगंधि। अच्छी महक। खुशबू।

सुगंधितेजन—संज्ञा पुं० [सं०] रूसा या गंधेज नाम की घास। अगिया घास। रोहिष तृण।

सुगंधित्रिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जायफल, सुपारी और लौंग इन तीनों का समूह।

सुगंधिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आरामशीतला नाम का शाक जिसे सुनंदिनी भी कहते हैं। (२) पीली केतकी।

सुगंधिपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धारा कदंब। केलिकदंब। (२) वह फूल जिसमें सुगंधि हो। खुशबूदार फूल।

सुगंधिफल-संज्ञा पुं० [सं०] शीतलचीनी। कबाब चीनी। कंकोल।

सुगंधिमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० सुगंधिमातृ] पृथिवी।

सुगंधिमूल-संज्ञा पुं० [सं०] खस। उशीर।

सुगंधिमूषिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] छछूँदर।

सुगंधी-वि० [सं० सुगंधिन्] जिसमें अच्छी गंध हो। सुवासित। सुगंध युक्त। खुशबूदार।

संज्ञा पुं० परुआ। परवालुक।

संज्ञा स्त्री० [सं० सुगंधि] अच्छी महक। खुशबू। सुगंधि।

सुगत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुद्ध देव का एक नाम। (२) बुद्ध भगवान् के धर्म को माननेवाला। बौद्ध।

सुगतदेव-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध भगवान्।

सुगति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मरने के उपरांत होनेवाली उत्तम गति। मोक्ष। उ०—सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ। नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ।—तुलसी। (२) एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में सात मात्राएँ और अंत में एक गुरु होता है। इसे शुभगति भी कहते हैं।

सुगन-संज्ञा पुं० [देश०] छकड़े में गाड़ीवान के बैठने की जगह के सामने आड़ी लगी हुई दो लकड़ियाँ, जिनकी सहायता से बैल खोल लेने पर भी गाड़ी खड़ी रहती है।

सुगना†-संज्ञा पुं० [सं० शुक, हिं० सुग्गा] सुग्गा। तोता। सूआ।

संज्ञा पुं० दे० "सहिंजन"।

सुगभस्ति-वि० [सं०] दीप्तिमान्। प्रकाशमान। चमकीला।

सुगम-वि० [सं०] (१) जो सहज में जाने योग्य हो। जिसमें गमन करने में कठिनता न हो। (२) जो सहज में जाना, किया या पाया जा सके। आसानी से होने या मिलनेवाला। सरल। सहज। आसान।

सुगमता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुगम होने का भाव। सरलता। आसानी। जैसे,—यदि आप उनकी सम्मति मानेंगे, तो आपके कार्य में बहुत सुगमता हो जायगी।

सुगम्य-वि० [सं०] जिसमें सहज में प्रवेश हो सके। सरलता से जाने योग्य। जैसे,—जंगली और पहाड़ी प्रदेश उतने सुगम्य नहीं होते, जितने खुले मैदान होते हैं।

सुगर-संज्ञा पुं० [सं०] शिंगरफ। हिंगुल।

सुगरूप-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की सवारी जो प्रायः रेतीले देशों में काम आती है।

सुगर्भक-संज्ञा पुं० [सं०] खीरा। त्रपुष।

सुगल-संज्ञा पुं० [सं० सु+हिं० गल=गला] बालि का भाई सुग्रीव। उ०—पुनि पावस महँ बसे प्रवर्षण वर्षा वर्णन कीन्ह्यो। सरद सराहि सकोप सुगल पहँ लषन पठै भिमि दीन्ह्यो।—रघुराज।

सुगवि-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णुपुराण के अनुसार प्रसुश्रुत के एक पुत्र का नाम।

सुगहनावृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह घेरा या बाद जो यज्ञस्थल में अस्पृश्यों आदि को रोकने के लिये लगाई जाती है। कुंभा।

सुगाध-वि० [सं०] (नदी) जिसमें सुख से स्नान किया जा सके; अथवा जिसे सहज में पार किया जा सके।

सुगानाꕯ-क्रि० अ० [सं० शोक] (१) दुःखित होना। (२) बिगड़ना। नाराज होना। उ०—भाजुहि ते कहुँ जान न दैहौं मा सेरी कछु अकथ कहानी। सूर स्याम के सँग ना जैहौं जा कारण तू मोहिं सुगानी।—सूर।

क्रि० अ० [?] संदेह करना। शक करना। उ०—जो पावँरू अपनी जड़ताई। तुम्हहिं सुगाइ मातु कुटिलाई।—तुलसी।

सुगीत-संज्ञा पुं० दे० "सुगीतिका"।

सुगीतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १५+१० के विराम से २५ मात्राएँ और आदि में लघु और अंत में गुरु लघु होते हैं।

सुगुंडा-संज्ञा स्त्री० [सं० सुगुण्डा] गुंडासिनी तृण। गुंडाला। तृणपत्री।

सुगुप्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] किवाँच। कौंछ। कपिकच्छु। वि० दे० "कौंछ"।

सुगुरा-संज्ञा पुं० [सं० सुगुरु] वह जिसने अच्छे गुरु से मंत्र लिया हो।

सुगृह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मराल या हंस।

सुगृही-वि० [सं० सुगृहिन्] (१) सुंदर घरवाला। जिसका घर बढ़िया हो। (२) सुंदर स्त्रीवाला। जिसकी पत्नी सुंदर हो।

संज्ञा पुं० सुश्रुत के अनुसार प्रतुद जाति का एक पक्षी। सुगृह।

सुगैया†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुग्गा] अँगिया। चोली। उ०—मोहिं लखि सोवत बिथोरिगो सुबेनी बनी, तोरिगो हिये को हरा, छोरिगो सुगैया को।—रसकुसुमाकर।

सुगोतम-संज्ञा पुं० [सं०] शाक्य मुनि। गौतम।

सुग्गा†-संज्ञा पुं० [सं० शुक] [स्त्री० सुग्गी] तोता। सूआ। शुक।

सुग्गापंखी-संज्ञा पुं० [हिं० सुग्गा+पंख] एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में होता है और जिसका चावल बरसों तक रह सकता है।

सुग्गा साँप-संज्ञा पुं० [हिं० सुग्गा+साँप] एक प्रकार का साँप।

सुग्रंथि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोरक नाम गंध द्रव्य। (२) पीपलामूल। पिप्पलीमूल।

सुग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार शुभ या अच्छे ग्रह। जैसे,—बृहस्पति, शुक्र आदि।

सुग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बालि का भाई, वानरों का राजा और श्रीरामचंद्र का सखा।

विशेष—जिस समय श्रीरामचंद्र सीता को ढूँढ़ते हुए किष्किंधा पहुँचे थे, उस समय मतंग आश्रम में सुग्रीव से उनकी भेंट हुई थी। हनुमानजी ने श्रीरामचंद्रजी से सुग्रीव की मित्रता करा दी। बालि ने सुग्रीव को राज्य से भगा दिया था। उसके कहने से श्रीरामचंद्र ने बालि का वध किया, सुग्रीव को किष्किंधा का राज्य दिलाया और बालि के पुत्र अंगद को युवराज बनाया। रावण को जीतने में सुग्रीव ने श्रीरामचंद्र की बहुत सहायता की थी। सुग्रीव सूर्य के पुत्र माने जाते हैं। वि० दे० "बालि"।

(२) विष्णु या कृष्ण के चार घोड़ों में से एक। (३) शुंभ और निशुंभ का दूत जो भगवती चंडी के पास उन दोनों का विवाह संबंधी सँदेसा लेकर गया था। (४) वर्तमान अवसर्पिणी के नवें अर्हत के पिता का नाम। (५) इंद्र। (६) शिव। (७) पाताल का एक नाग। (८) एक प्रकार का अस्त्र। (९) शंख। (१०) राजहंस। (११) एक पर्वत का नाम। (१२) एक प्रकार का मंडप। (१३) नायक।

वि० जिसकी ग्रीवा सुंदर हो। सुंदर गरदनवाला।

सुग्रीवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

सुग्रीवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष की एक पुत्री और कश्यप की पत्नी जो घोड़ों, ऊँटों तथा गधों की जननी कही जाती है।

सुग्रीवेश-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र।

सुघट-वि० [सं०] (१) अच्छा बना हुआ। सुंदर। सुडौल। उ०—भृकुटि भ्रमर चंचल कपोल मृदु बोल अमृत सम। सुघट ग्रीव रस सींव कंठ मुकता विघटत तम।—हनुमन्नाटक।

(२) जो सहज में हो या बन सकता हो।

सुघटित-वि० [सं० सुघट] जिसका निर्माण सुंदर हो। अच्छी तरह से बना हुआ। उ०—धवल धाम मनि-पुरट-पट-सुघटित नाना भाँति। सियनिवास सुंदर सदन सोभा किमि कहि जाति।—तुलसी।

सुघड़-वि० [सं० सुघट] (१) सुंदर। सुडौल। उ०—नील परेव कंठ के रंगा। वृष से कंध सुघड़ सब अंगा।—उत्तर रामचरित। (२) निपुण। कुशल। दक्ष। प्रवीण। जैसे,—सुघड़ बाहू।

सुघड़ई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुघड़+ई (प्रत्य०)] (१) सुंदरता। सुडौलपन। अच्छी बनावट। उ०—विषय के भोगों में तृप्त हुए बिना ही उस (राजा) को, अधिक सुघड़ई के कारण विलासिनियों के भोगने योग्य को, वृथा ईर्ष्या करनेवाली जरा ने स्त्री व्यवहार में असमर्थ होकर भी हरा दिया।—लक्ष्मणसिंह। (२) चतुरता। निपुणता। कुशलता। उ०—इसमें बड़ी बुद्धि और सुघड़ई का काम है।—ठाकुरप्रसाद।

सुघड़ता-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुघड़+सं० ता (प्रत्य०)] (१) सुघड़ होने का भाव। सुंदरता। मनोहरता। (२) निपुणता। कुशलता। दक्षता। सुघड़पन।

सुघड़पन-संज्ञा पुं० [हिं० सुघड़+पन (प्रत्य०)] (१) सुघड़ होने का भाव। सुघड़ाई। सुंदरता। (२) निपुणता। दक्षता। कुशलता।

सुघड़ाई-संज्ञा स्त्री० दे० "सुघड़ई"।

सुघड़ापा-संज्ञा पुं० [हिं० सुघड़+आपा (प्रत्य०)] (१) सुघड़ाई। सुंदरता। सुडौलपन। (२) दक्षता। निपुणता। कुशलता।

सुघर-वि० दे० "सुघड़"। उ०—(क) संयुत सुमन सुबेलि सी सेली सी गुणग्राम। लसत हवेली सी सुघर निरखि नवेली बाम।—पद्माकर। (ख) सुघर सौति बस पिय सुनत दुलहिनि दुगुन हुलास। लखी सखी तन दीठि करि सगरब सलज सहास।—अंबिकादत्त।

सुघरता-संज्ञा स्त्री० दे० "सुघड़ता"।

सुघरपन-संज्ञा पुं० दे० "सुघड़पन"। उ०—छन में जैहै सुघरपनो पीरो परिहै तन। परकर परि कै सुकवि फेर फिरि आवत नहिं मन।—अंबिकादत्त।

सुघराई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुघड़+आई (प्रत्य०)] (१) दे० "सुघड़ई"। उ०—(क) काम नाश करने के कारण जिन्हें न मोहे सुघराई। ऐसे शिव को किया चाहती है अपना पति सुखदाई।—महावीरप्रसाद द्विवेदी। (ख) सुघराई सुकाम बिरंचिकी है, तिय तेरे नितंबनि की छबि मैं।—सुंदरीसर्वस्व। (२) संपूर्ण जाति की एक रागिनी। इसके गाने का समय दिन में १० से १६ दंड तक है।

सुघराई कान्हड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० सुघराई+कान्हड़ा] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

सुघराई टोड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुघराई+टोड़ी] संपूर्ण जाति की एक रागिनी।

सुघरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सु+घड़ी] अच्छी घड़ी। शुभ समय। उ०—आनँद की सुघरी उघरी सिगरे मनवांछित काज भए हैं।—रसिकार्थकौमुदी।

वि० स्त्री० [हिं० सुघड़] सुंदर। सुडौल। उ०—(क) भाग सोहाग भरी सुघरी पति प्रेम पगाली कथा अपनेना।—सुंदरीसर्वस्व। (ख) सुंदरि हौ सुघरी हौ सलौनी हौ सील भरी रस रूप सनाई।—देव।

सुघोष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चौथे पांडव नकुल के शंख का नाम। (२) एक बुद्ध का नाम। (३) एक प्रकार का यंत्र।
वि० जिसका स्वर सुंदर हो। अच्छे गले या आवाजवाला।

सुचंग-संज्ञा पुं० [हिं०] घोड़ा।

सुचंचुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा चंचुक शाक। महाचंचु। दीर्घपत्री।

सुचंदन-संज्ञा पुं० [सं०] पतंग या बक्कम नाम की लकड़ी जिसका व्यवहार औषध और रंग आदि में होता है। रक्तसार। सुरंग।

सुचंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देवगंधर्व का नाम। (२) सिंहिका के पुत्र का नाम। (३) इक्ष्वाकुवंशी राजा हेमचंद्र का पुत्र और धूम्राश्व का पिता।

सुचंद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक प्रकार की समाधि।

सुच#-वि० दे० "शुचि"।

सुचक्षु-संज्ञा पुं० [सं० सुचक्षुस्] (१) गूलर। उदुंबर। (२) शिव का एक नाम। (३) विद्वान् व्यक्ति। पंडित।
वि० जिसके नेत्र सुंदर हों। सुंदर आँखोंवाला।
संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

सुचना-क्रि० स० [सं० संचय] संचय करना। एकत्र करना। इकट्ठा करना। उ०—तरुवर फल नहिं खात हैं सरवर पियहिं न पानि। कहि रहीम परकाज हित संपति सुचहिं सुजान।—रहीम।

सुचरित, सुचरित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका चरित्र शुद्ध हो। उत्तम आचरणवाला। नेकचलन।

सुचरित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पति परायणा स्त्री। साध्वी। सती।

सुचर्मा-संज्ञा पुं० [सं० सुचर्मन्] भोजपत्र।

सुचा-वि० दे० शुचि"। उ०—सील सुचा ध्यान धोवती काया कलस प्रेम जल।—दादू।

सुचाना-क्रि० स० [हिं० सोचना का प्रे०] (१) किसी को सोचने या समझने में प्रवृत्त करना। सोचने का काम दूसरे से कराना। (२) दिखलाना। (३) किसी का ध्यान किसी बात की ओर आकृष्ट कराना।

सुचार#-संज्ञा स्त्री० [सं० सु + हिं० चाल] सुचाल। अच्छी चाल। उ०—थाई भाव थिर ह्वै विभाव अनुभावनि सों सातुकनि संतत ह्वै संचरि सुचार है।—देव।
वि० [सं० सुचारु] सुचारु। सुंदर। मनोहर। उ०—अजहूँ लौं राजत नीरधि तट करत सांख्य विस्तार। सांख्यायन से बहुत महामुनि सेवत चरण सुचार।—सूर।

सुचारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] यदुवंशी श्वफल्क की पुत्री जो अक्रूर की सास थी।

सुचारु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण का एक पुत्र। (२) विश्वक्सेन का पुत्र। (३) प्रतीर्थ। (४) बाहु का पुत्र।
वि० अत्यंत सुंदर। अतिशय मनोहर। बहुत खूबसूरत। जैसे वहाँ के सब कार्य्य बहुत ही सुचारु रूप से संपन्न हो गए।

सुचाल-संज्ञा स्त्री० [सं० सु + हिं० चाल] उत्तम आचरण। अच्छी चाल। सदाचार। उ०—कह गिरिधर कविराय मदन की याही बानी। चलिये चाल सुचाल राखिये अपनो पानी।—गिरधर।

सुचाली-वि० [सं० सु + हिं० चाल + ई (प्रत्य०)] जिसके आचरण उत्तम हों। अच्छे चाल चलनवाला। सदाचारी।
संज्ञा स्त्री० पृथ्वी। (डिं०)

सुचिंतितार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार मार के पुत्र का नाम।

सुचि-वि० दे० "शुचि"। उ०—(क) सहज सचिक्कन स्याम रुचि सुचि सुगंध सुकुमार। गनत न मन पथ अपथ लखि बिथुरे सुथरे बार।—बिहारी। (ख) तुलसी कहत बिचारि गुरु राम सरिस नहिं आन। जासु कृपा सुचि होत रुचि बिसद बिबेक अमान।—तुलसी।
संज्ञा स्त्री० [सं० सूची] सूई। उ०—सुचिबेध ते नाको सकीर्न तहाँ परतीत को टाँडो लदावनो है।—हरिश्चंद्र।

सुचिकरमा-वि० दे० "शुचिकर्मा"। उ०—चलेउ सुभेस नरेस धरमधरमा सुचिकरमा। बिसुकरमा कृत सुरथ बैठि रथ कंचन बरमा।—गोपाल।

सुचित-वि० [सं० शुचित] (१) जो (किसी काम से) निवृत्त हो गया हो। उ०—(क) ऐसी आज्ञा कर यमराज जब सुचित भए, तब नारद मुनि ने फिर उनसे पूछा कि किस कारण से तुम यहाँ से भाग गए सो मुझ से कहो।—सदल मिश्र। (ख) अतिथि साधु पति सबनि खवाई। मैं हूँ सुचित भई पुनि खाई।—रघुराज। (२) निश्चित। चिंता रहित। बेफिक्र। (३) एकाग्र। स्थिर। सावधान। उ०—(क) सुचित सुनहु हरि सुजस कह बहुरि भई जो बात।—गिरिधरदास। (ख) इहि बिधान एकादशी करै सुचित चित होइ।—गिरिधरदास।
वि० [सं० शुचि] पवित्र। शुद्ध। (क०)

सुचितई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुचित + ई (प्रत्य०)] (१) सुचित होने का भाव। निश्चिंतता। बेफिक्री। उ०—(क) इमि देव दुंदुभी हरषि बरसत फूल सुफल मनोरथ भो सुख सुचितई है।—तुलसी। (ख) सुकवि सुचितई पैहैं सब हंदै करै भरन।—अंबिकादत्त। (२) एकाग्रता। स्थिरता। शांति। (३) छुट्टी। फुरसत। उ०—सुचित न आयो सुचितई कहो कहाँ ते होइ।—अंबिकादत्त।

सुचिती-वि० [हिं० सुचित + ई (प्रत्य०)] (१) जिसका चित्त किसी बात पर स्थिर हो। जो दुविधा में न हो। स्थिरचित्त। शांत। उ०—(क) सुचिती ह्वै औरै सबै ससिहि बिलोकैं आय।

(ख) सखिहिं बिलोकि धाय सब करि करि मन सुचितो।—अंबिकादत्त। (२) निश्चिंत। चिंता रहित। बे-फिक्र। उ०—धाय सों आय के धाय कह्यो कहूँ धाय के पूछिये कानें ठई है। बैठि रही सुचि ती सों कहा सुनि मेरो सबै सुधि भूलि गई है।—सुंदरीसर्वस्व।

सुचित्त-वि० [सं०] (१) जिसका चित्त स्थिर हो। स्थिर चित्त। शांत। (२) जो (किसी काम से) निवृत्त हो गया हो। जो छुट्टी पा गया हो। निश्चिंत। उ०—(क) ब्राह्मणों को नाना प्रकार के दान दे नित्य कर्म से सुचित्त हो।—लल्लू। (ख) कन्या तो पराया धन है ही, उसको पति के घर भेज दिया; सुचित्त हो गए।—संगीत शाकुंतल।

क्रि० प्र०—होना।

सुचित्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुगंधी। मत्स्यरंग पक्षी। (२) चित्रसर्प। चितला साँप।

सुचित्रबीजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वायविडंग। विडंग।

सुचित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] चिचिंडा या फूट नामक फल।

सुचिमंत-वि० [सं० शुचि+मत] शुद्ध आचरणवाला। सदाचारी। शुद्धाचारी। पवित्र। उ०—सो सुकृती सुचिमंत सुसंत सुसील सयान सिरोमनि स्वै। सुरतीरथता सुमनावन आवत पावन होत है तात न छवै।—तुलसी।

सुचिर-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक समय। दीर्घ काल।

वि० (१) बहुत दिनों तक रहनेवाला। (२) पुराना। प्राचीन।

सुचिरायु-संज्ञा पुं० [सं० सुचिरायुस्] देवता।

सुची-संज्ञा स्त्री० दे० "शची"। उ०—सोइ सुरपति जाकि नारि सुची सी। जिस दिन ही रँगराती, काम हेतु गौतम गहि गयऊ निगम देत है साखी—कबीर।

सुचीरा-संज्ञा स्त्री० दे० "सुचारा"।

सुचीर्णध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] कुंभांडों के एक राजा का नाम। (बौद्ध)

सुचुक्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

सुचुटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चिमटा। (२) सँड़सी।

सुचेत-वि० [सं० सुचेतस्] चौकन्ना। सावधान। सतर्क। होशियार। उ०—(क) कोई नशे में मस्त हो कोई सुचेत हो। दिलबर गले से लिपटा हो सरसों का खेत हो।—नजीर। (ख) भाई तुम सुचेत रहो, केरो की दृष्टि बड़ी पैनी है।—सीताराम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—रहना।

सुचेतन-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु। (डिं०)

वि० दे० "सुचेत"।

सुचेता-वि० दे० "सुचेत"। उ०—सुंदरता सौभाग्य निकेता। पंकजलोचन अहहिं सुचेता।—शं० दि०।

सुचेलक-संज्ञा पुं० [सं०] सुंदर और महीन कपड़ा। पट।

वि० जिसका वस्त्र उत्तम हो।

सुचेष्टरूप-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

सुच्छंद*†-वि० दे० "स्वच्छंद"। उ०—(क) बैठि इकंत होय सुच्छंदा। अहिए मगन परमानंदा।—निश्चल। (ख) निपट लागत अगम ज्यों जलचरहि गमन सुछंद।—तुलसी। (ग) सकै सताइ न पल इन्हें बिरहा अनिल सुछंद। न जरैं नैं न जरैं रहैं प्रीतम मुख मुखचंद।—रतनहजारा।

सुच्छ*†-वि० दे० "स्वच्छ"। उ०—(क) सुच्छ पर हाथ तन सुच्छ अंबर धरे तुच्छ नहिं वीर रस रंग रत्ते।—सूदन। (ख) कहीं मैं तो नूत तुच्छ बोले हमहूँ ते सुच्छ जाने कोऊ नाहिं तुम्हें मेरी मति भीजिए।—नाभादास।

सुच्छत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] शतद्रु या सतलज नदी का एक नाम।

सुच्छम*-वि० दे० "सूक्ष्म"।

संज्ञा पुं० [?] घोड़ा। (डिं०)

सुजंगो†-संज्ञा पुं० [गढ़वाली] भाँग के वे पौधे जिनमें बीज होते हैं। गढ़वाल में इन्हें सुजंगो या कलंगो कहते हैं।

सुजड़-संज्ञा पुं० [डिं०] तलवार।

सुजड़ी-संज्ञा स्त्री० [डिं०] कटारी।

सुजन-संज्ञा पुं० [सं०] सज्जन। सत्पुरुष। भलामानस। भला आदमी। शरीफ।

संज्ञा पुं० [सं० स्वजन] परिवार के लोग। आत्मीय जन। उ०—(क) माँगत भीख फिरत घर घर ही सुजन कुटुंब वियोगी।—सूर। (ख) हरषित सुजन सखा प्रिय बालक कृष्ण मिलन जिय भाए।—सूर। (ग) रामराज नहिं कोऊ रोगी। नहिं दुरभिक्ष न सुजन वियोगी।—पद्माकर।

सुजनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुजन का भाव। सौजन्य। भद्रता। भलमनसत।

सुजनी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सोज़नी] एक प्रकार की बड़ी चादर जो कई परत की होती और बिछाने के काम आती है। यह बीच बीच में बहुत जगहों में सी हुई रहती है।

सुजन्मा-वि० [सं० सुजन्मन्] (१) जिसका उत्तम रूप से जन्म हुआ हो। उत्तम रूप से जन्मा हुआ। सुजातक। (२) विवाहित स्त्री पुरुष का औरस पुत्र। (३) अच्छे कुल में उत्पन्न। उ०—सूतक घर के आस पास फैले हुए उस सुजन्मा के स्वाभाविक तेज से आधी रात के दीपक सहज ही मंद ज्योति हो गये।—लक्ष्मणसिंह।

सुजल-संज्ञा पुं० [सं०] कमल। पद्म।

सुजल्प-संज्ञा पुं० [सं०] वह भाषण जो सहृदयता, उत्साह, उत्कंठा तथा भावपूर्ण हो। उत्तम भाषण।

सुजस-संज्ञा पुं० दे० "सुयश"। उ०—सुजस बखानत बाद

वि० (१) पार्थिव । (२) उत्पन्न । जात ।

† संज्ञा पुं० [?] बीस की संख्या । कोड़ी ।

सुतकरी|-संज्ञा स्त्री० [देश०] स्त्रियों के पहनने की सूती ।

सुतजीवक-संज्ञा पुं० [सं०] पुत्रजीव वृक्ष । पितयंजिया । वि० दे० "पुत्रजीव" ।

सुतत्व-संज्ञा पुं० [सं०] सुत का भाव या धर्म्म ।

सुतदा-वि० स्त्री० [सं०] सुत या पुत्र देनेवाली ।

संज्ञा स्त्री० दे० "पुत्रदा" (लता) ।

सुतना-संज्ञा पुं० दे० "सूथन" ।

क्रि० अ० दे० "सूतना" ।

सुतनु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक गंधर्व का नाम । (२) उग्रसेन के एक पुत्र का नाम । (३) एक बंदर का नाम ।

वि० सुंदर शरीरवाला ।

संज्ञा स्त्री० (१) सुंदर शरीरवाली स्त्री । कृशांगी । (२) आहुक की पुत्री और अक्रूर की पत्नी का नाम । (३) उग्रसेन की एक कन्या का नाम । (४) वसुदेव की एक उप-पत्नी का नाम ।

सुतनुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुतनु होने का भाव । (२) शरीर की सुंदरता ।

सुतप-वि० [सं०] सोम पान करनेवाला ।

सुतपस्वी-वि० [सं० सुतपस्विन्] अत्यंत तपस्या करनेवाला । बहुत अच्छा और बड़ा तपस्वी ।

सुतपा-संज्ञा पुं० [सं० सुतपस्] (१) सूर्य । (२) एक मुनि का नाम । (३) रौच्य मनु के एक पुत्र का नाम । (४) विष्णु ।

सुतपादिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी जाति की एक प्रकार की हंसपदी लता ।

सुतपेय-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में सोम पीने की क्रिया । सोमपान ।

सुतयाग-संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ जो पुत्र की इच्छा से किया जाता है । पुत्रेष्टि यज्ञ ।

सुतर‡-संज्ञा पुं० दे० "शुतुर" । उ०—(क) सम के आगे सुतर सवार अपार शृंगार बनाये । धरे अमूरक तिन पीठिन पर सहित निसान सुहाये ।—रघुराज । (ख) सँग सवालाख सवार । गज त्योंहि अमित तयार । बहु सुतर प्यारे यूह । कवि को कहै करि ऊह ।—कबीर ।

वि० [सं०] सुख से तैरने या पार करने योग्य । जो सुख या आराम से पार किया जा सके । (नदी आदि)

सुतरनाल-संज्ञा स्त्री० दे० "शुतुरनाल" । उ०—तिमि घरनाल और करनालैं सुतरनाल जंजालैं । गुर गुराब रहँकले भले तहँ लागे विपुल बयालैं ।—रघुराज ।

सुतरां-अव्य० [सं० सुतराम्] (१) अतः । इसलिये । निदान । (२) अपितु । और भी । किं बहुना । (३) अगत्या । लाचार । (४) अत्यंत । (५) अवश्य ।

सुतरी|-संज्ञा स्त्री० [हिं० तुरही] तुरही । तूर । उ०—नौबत झरत द्वार द्वारन में शंख सुतरि सहनाई । औरहु विविध मनोहर बाजे बजत मधुर सुर छाई ।—रघुराज ।

संज्ञा पुं० [देश०] वह बैल जिसका ऊँट का सा रंग हो । यह मध्यम श्रेणी का, मजबूत और तेज माना जाता है ।

संज्ञा स्त्री० वह लकड़ी जो पाई में साँथी अलग करने के लिये साँथी के दोनों तरफ लगी रहती है । इसे जुलाहों की परिभाषा में सुतरी कहते हैं ।

संज्ञा स्त्री० दे० "सुतारी" ।

संज्ञा स्त्री० दे० "सुतली" ।

सुतरेशाही-संज्ञा पुं० दे० "सुथरेशाही" ।

सुतर्कारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोनैया । घघरबेल । बंदाल । देवदाली । वि० दे० "देवदाली" ।

सुतर्दन-संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल पक्षी । कोयल ।

सुतल-संज्ञा पुं० [सं०] सात पातालों में से एक (किसी पुराण के मत से दूसरा और किसी के मत से छठा) लोक ।

विशेष—भागवत के अनुसार इस पाताल लोक के स्वामी विरोचन के पुत्र बलि हैं । देवी भागवत में लिखा है कि विष्णु भगवान् ने बलि को पाताल भेजकर संसार की सारी संपदा दी थी और स्वयं उसके द्वार पर पहरा देते थे । एक बार रावण ने इसमें प्रवेश करना चाहा था, पर विष्णु भगवान् ने उसे अपने पैर के अँगूठे से हजारों योजन दूर फेंक दिया । वि० दे० "लोक" ।

सुतली-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूत + ली (प्रत्य०)] रुई, सन या इसी प्रकार के और रेशों के सूतों या डोरों को एक में बटकर बनाया हुआ लंबा और कुछ मोटा खंड जिसका उपयोग चीजें बाँधने, कूँए से पानी खींचने, पलंग बुनने तथा इसी प्रकार के और कामों में होता है । रस्सी । डोरी । सुतरी ।

सुतवत्-वि० [सं०] पुत्रवाला । जिसके पुत्र हो ।

सुतवस्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सात पुत्र प्रसव करनेवाली स्त्री । वह स्त्री जिसके सात पुत्र हों ।

सुतवाना|-क्रि० स० दे० "सुलवाना" । उ०—फिर सेज चतुर को अच्छा बिछौना करवा पलंग पर सुतवाया ।—लल्लू ।

सुतश्रेणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूसाकानी । मूषिकपर्णी । वि० दे० "मूसाकानी" ।

सुतस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] जन्म-कुंडली में लग्न से पंचम स्थान ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार सुतस्थान पर जितने ग्रहों की दृष्टि रहती है, उतनी ही सन्तानें होती हैं । पुलिंग ग्रहों की दृष्टि से पुत्र और स्त्री ग्रहों की दृष्टि से कन्याएँ होती हैं ।

सुतहर|-संज्ञा पुं० दे० "सुतार" । उ०—सुघरि मुबारक तिय बदन परी अलक अभिराम । मनो सौम पर सूत है राखी सुतहर काम ।—मुबारक ।

सुतहा–संज्ञा पुं० [हिं० सूत+हा (प्रत्य०)] सूत का व्यापारी। सूत बेचनेवाला।
वि० सूत का। सूत संबंधी।
संज्ञा पुं० दे० "सुतुही"।
सुतहार–संज्ञा पुं० दे० "सुतार"। उ०—कनक रतनमय पालनो रच्यौ मनहुँ मार सुतहार। विविध खेलौना किंकिनी लागे मंजुल मुकुताहार।—तुलसी।
सुतहिबुक योग–संज्ञा पुं० [सं०] विवाह का एक योग।
विशेष—विवाह के समय लग्न में यदि कोई दोष हो और सुतहिबुक योग हो, तो सारे दोष दूर हो जाते हैं।
सुतही–संज्ञा स्त्री० दे० "सुतुही"।
सुतहौनिया–संज्ञा पुं० दे० "सुथौनिया"।
सुता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लड़की। कन्या। पुत्री। बेटी। (२) सखी। सहेली। (हिं०)
सुतात्मज–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सुतात्मजा] (१) लड़के का लड़का। पोता। (२) लड़की का लड़का। नाती।
सुताना–क्रि० स० दे० "सुलाना"।
सुतापति–संज्ञा पुं० [सं०] कन्या का पति। दामाद। जामाता।
सुतार–संज्ञा पुं० [सं० सूत्रकार] (१) बढ़ई। (२) शिल्पकार। कारीगर।
वि० [सं० सु+तार] अच्छा। उत्तम। उ०—कनक रतन मणि पालनौ अति गढ़नौ काम सुतार। विविध खेलौना भाँति भाँति के गजमुक्ता बहुधार।—सूर।
†संज्ञा पुं० सुभीता।
क्रि० प्र०—बैठना।
वि० [सं०] (१) अत्यंत उज्वल। (२) जिसकी आँख की पुतलियाँ सुंदर हों। (३) अत्यंत उच्च।
संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का सुगंधि द्रव्य। (२) एक आचार्य का नाम। (३) सांख्यदर्शन के अनुसार एक प्रकार की सिद्धि। गुरु से पढ़े हुए अध्यात्मशास्त्र का ठीक ठीक अर्थ समझना।
संज्ञा पुं० [देश०] हुदहुद नामक पक्षी।
सुतारका–संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों की चौबीस शासन देवियों में से एक देवी का नाम।
सुतारा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सांख्य के अनुसार नौ प्रकार की तुष्टियों में से एक। (२) सांख्य के अनुसार आठ प्रकार की सिद्धियों में से एक। वि० दे० "सुतार"।
सुतारी–संज्ञा स्त्री० [सं० सूत्रकार] (१) मोचियों का सूआ जिससे वे जूता सीते हैं। (२) सुतार या बढ़ई का काम।
संज्ञा पुं० [हिं० सुतार] शिल्पकार। कारीगर। उ०—हरिजन मणि की कोठरी आप सुतारी आहि। सुघड़ न त्यागत टेक निज तेहि ते छाँड्यो नाहि।—विश्राम।

सुतार्थी–वि० [सं० सुतार्थिन्] पुत्र की कामना करनेवाला। जिसे पुत्र की अभिलाषा हो। पुत्रार्थी।
सुताली–संज्ञा स्त्री० दे० "सुतारी"।
सुतासुत–संज्ञा पुं० [सं०] पुत्री का पुत्र। दौहित्र। नाती।
सुतिक्त–संज्ञा पुं० [सं०] पित्तपापड़ा। पर्पटक।
वि० जो बहुत तिक्त हो। अधिक तीता।
सुतिक्तक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिरायता। (२) फरहद। पारिभद्र। (३) पित्तपापड़ा।
सुतिक्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तोरई। कोशातकी। (२) सलई। शल्लकी।
सुतिन॥–संज्ञा स्त्री० [सं० सुतनु] सुंदर बाला। रूपवती स्त्री। (क०) उ०—जो नहिं देती अतन कहुँ दगन हरषती आय। मन मानस जे सुतिन के को सर करती जाय।—रतनहजारा।
सुतिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके पुत्र हो। पुत्रवती।
सुतिया–संज्ञा स्त्री० [देश०] सोने या चाँदी का एक गहना जो स्त्रियाँ गले में पहनती हैं। हँसली।
सुतिहार†–संज्ञा पुं० दे० "सुतार"। उ०—(क) मोतिन झालरि नाना भाँति खिलौना रचे विश्वकर्मा सुतिहार। देखि देखि किलकत दँतिया द्वौ राजत क्रीड़त विविध विहार।—सूर। (ख) विश्वकर्मा सुतिहार श्रुतिधरि सुलभ सिल्प दिखावनो। तेहि देते ग्रथ ताप मारी अजवधू मनभावनो।—सूर।
सुती–संज्ञा पुं० [सं० सुतिन्] (१) वह जो पुत्र की इच्छा करता हो। (२) वह जिसे पुत्र हो। पुत्रवाला।
सुतीक्षण–संज्ञा पुं० दे० "सुतीक्ष्ण"। उ०—दरशन दियो सुतीक्षण गौतम पंचवटी पगधारे। तहाँ दुष्ट सूर्पनखा नारी करि बिन नाक उधारे।—सूर।
सुतीक्ष्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगस्त्य मुनि के भाई जो वनवास के समय श्रीरामचंद्र से मिले थे। (२) सहिंजन। शोभांजन।
वि० अत्यंत तीक्ष्ण। बहुत तेज।
सुतीक्ष्णक–संज्ञा पुं० [सं०] मुष्कक या मोखा नामक वृक्ष। वि० दे० "मोखा"।
सुतीक्ष्णका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सरसों। सर्षप।
सुतीखन॥–संज्ञा पुं० दे० "सुतीक्ष्ण"। उ०—तीखन तन की कियो सुतीखन को द्विज तुलसी।—सुधाकर।
सुतीच्छन॥–संज्ञा पुं० दे० "सुतीक्ष्ण"।
सुतीर्थराज–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।
सुतुंग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारियल का पेड़। (२) ग्रहों का उच्चांश।
विशेष—ज्योतिष के अनुसार ग्रहों के सुतुंग स्थान पर रहने से शुभ फल होता है।

वि० अत्यंत उच्च। बहुत ऊँचा।

सुतुआ†–संज्ञा पुं० दे० "सुतुही"।

सुतुही†–संज्ञा स्त्री० [सं० शुक्ति] (१) सीपी, जिससे प्रायः छोटे बच्चों को दूध पिलाते हैं। (२) वह सीप जिसके द्वारा पोस्त से अफीम खुरची जाती है। सुतुआ। सुतहा। सूती। (३) वह सीप जिससे अचार के लिये कच्चा आम छीला जाता है। इसे बीच में घिसकर इसके तल में छेद कर लेते हैं; और उसी छेद के चारों ओर के तेज किनारों से आम छीलते हैं। सीपी।

सुतून–संज्ञा पुं० [फा०] खंभा। स्तंभ।

सुतेकर–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो यज्ञ करता हो। यज्ञकारी। ऋत्विक्।

सुतेजन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धामिन। धन्वन वृक्ष। (२) बहुत नुकीला तीर।

वि० (१) नुकीला। (२) तेज। धारदार।

सुतेजा–संज्ञा पुं० [सं० सुतेजस्] (१) जैनों के अनुसार गत उत्सर्पिणी के दसवें अर्हत का नाम। (२) गृत्समद का का पुत्र। (३) हुरहुर। आदित्यभक्ता।

वि० बहुत तेज या धारदार।

सुतेमन–संज्ञा पुं० [सं० सुतेमनस्] एक वैदिक आचार्य का नाम।

सुतैला–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी मालकंगनी। महाज्योतिष्मती लता।

सुतोष–संज्ञा पुं० [सं०] संतोष। सब्र।

वि० जिसका संतोष हो गया हो। संतुष्ट। प्रसन्न।

सुत्ता†–वि० [हिं० सोना] सोया हुआ। सुपुप्त। (पश्चिम)

सुत्तुर†–संज्ञा पुं० [हिं० सूत या फा० शुतुर ?] जुलाहों के करघे का एक बाँस जिसमें कंघी बँधी रहती है। फुलबाँसा।

सुत्थना–संज्ञा पुं० दे० "सूथन"।

सुत्य–संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ के लिये सोमरस निकालने का दिन।

सुत्रामा–संज्ञा पुं० [सं० सुत्रामन्] (१) इंद्र। (२) पुराणानुसार एक मनु का नाम। (३) वह जो उत्तम रूप से रक्षा करता हो।

सुथना–संज्ञा पुं० दे० "सूथन"।

सुथनिया†–संज्ञा स्त्री० दे० "सुथनी"।

सुथनी–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) स्त्रियों के पहनने का एक प्रकार का ढीला पायजामा। सूथन। (२) पिंडालु। रतालू।

सुथरा–वि० [सं० स्वच्छ या स्वस्थ] [स्त्री० सुथरी] स्वच्छ। निर्मल। साफ़।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः "साफ" शब्द के साथ होता है। जैसे,—साफ सुथरा मकान। उ०—(क) लरिकाई कहूँ नेक न छाँड़त सोई रहो सुथरी सेजरियाँ। आपु हरि यह बात सुनत ही धाइ लिये यशुमति महतरियाँ।—सूर। (ख) मोतिन माँग भरी सुथरी लगै कंठ सिरीगर सी अवगाही।—सुंदरीसर्वस्व।

सुथराई–संज्ञा स्त्री० [हिं० सुथरा+ई (प्रत्य०)] सुथरापन। स्वच्छता। निर्मलता। सफाई।

सुथरापन–संज्ञा पुं० [हिं० सुथरा+पन (प्रत्य०)] सुथराई। स्वच्छता। निर्मलता। सफाई।

सुथरेशाही–संज्ञा पुं० [सुथराशाह (महात्मा)] (१) गुरु नानक के शिष्य सुथराशाह का चलाया संप्रदाय। (२) इस संप्रदाय के अनुयायी या माननेवाले जो प्रायः सुथराशाह और गुरु नानक आदि के बनाए हुए भजन गाकर भिक्षा माँगते हैं।

सुथौनिया†–संज्ञा पुं० [देश०] मस्तूल के ऊपरी भाग में वह छेद या घर जिसमें पाल लगाने के समय उसकी रस्सी पहनाई जाती है। (लश०)

सुदंड–संज्ञा पुं० [सं०] बेंत। वेत्र।

सुदंडिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोरख इमली। गोरक्षी। महादंडी। अजदंडी।

सुदंत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो अभिनय करता हो। नट। (२) नर्तक। नाचनेवाला।

वि० सुंदर दाँतोंवाला।

सुदंता–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक अप्सरा का नाम।

सुदंती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हथनी। हस्तिनी। (२) एक दिग्गज की हथनी का नाम।

सुदंष्ट्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कृष्ण का पुत्र। (२) सँबर का एक पुत्र। (३) एक राक्षस का नाम।

वि० सुंदर दाँतोंवाला।

सुदंष्ट्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक किन्नरी का नाम।

सुदक्षिण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पौंड्रक राजा का पुत्र। (२) विदर्भ का एक राजा।

सुदक्षिणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजा दिलीप की पत्नी का नाम। (२) पुराणानुसार श्रीकृष्ण की एक पत्नी का नाम।

सुदग्धिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुरुह नामक वृक्ष। दग्धा।

सुदच्छिन–संज्ञा पुं० दे० "सुदक्षिण"। उ०—चलेउ सुदच्छिन। दच्छ समर जुध दच्छिन दच्छिन।—गिरधर।

सुदत्–वि० [सं०] [स्त्री० सुदती] सुंदर दाँतोंवाला।

सुदती–वि० [सं०] सुंदर दाँतोंवाली स्त्री। सुदंता। सुंदरी। उ०—(क) धीर धरो सोच न करो मोद भरो यदुराय। सुदति सँदेसे सुनि रही अधरनि में मुसुकाय।—शृं० सत०। (ख) मौन भरी सब संपति दंपति श्रीपति ज्यों सुख सिंधु में सोवै। देव सो देवर प्राण सो पूत सुकौन दसा सुदती जिहि रोवै।—केशव।

सुदमन–संज्ञा पुं० [सं०] आम। आम्रवृक्ष।

सुदरसन–संज्ञा पुं० दे० "सुदर्शन"। उ०—नकुल सुदरसनु दर-

सनु दरसनी क्षेम करौ चुपचाप। दस दिसि देखत सगुन सुभ पूजहिं मन अभिलाष।—तुलसी।

☆संज्ञा पुं० दे० "सुदर्शन"।

सुदरसनपानि-संज्ञा पुं० दे० "सुदर्शनपाणि"। उ०—ज्यों धाए गजराज उधारन सपदि सुदरसनपानि।—तुलसी।

सुदर्भा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तृण जिसे इक्षुदर्भा भी कहते हैं।

सुदर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णुभगवान् के चक्र का नाम। (२) शिव। (३) अग्नि का एक पुत्र। (४) एक विद्याधर। (५) मत्स्य। मछली। (६) जंबू वृक्ष। जामुन। (७) नौ बलदेवोंमें से एक। (जैन) (८) वर्त्तमान अवसर्पिणी के अठारहवें अर्हत के पिता का नाम। (जैन) (९) शंखन का पुत्र। (१०) ध्रुवसंधि का एक पुत्र। (११) अर्थसिद्धि का पुत्र। (१२) दधीचि का एक पुत्र। (१३) अजमीढ़ का एक पुत्र। (१४) भरत का एक पुत्र। (१५) एक नाग असुर। (१६) प्रतीक का जामाता। (१७) सुमेरु। (१८) एक द्वीप का नाम। (१९) गिद्ध। (२०) एक प्रकारकी संगीत रचना। (२१) संन्यासियों का एक दंड जिसमें छः गाँठें होती हैं। इसे वे भूत प्रेतों से अपना बचाव करने के लिये अपने पास रखते हैं। (२२) मदनमस्त। (२३) सोमवल्ली। वि० दे० "सुदर्शना"।

वि० जो देखने में सुंदर हो। प्रियदर्शन। सुखदर्शन। सुंदर। मनोरम।

सुदर्शन चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार ज्वर की एक प्रसिद्ध औषध।

विशेष—इसके बनाने की विधि यह है—त्रिफला, दारहल्दी, दोनों कटियाली, कनेर, काली मिर्च, पीपल, पीपलामूल, मूर्वा, गुरुच, धनियाँ, अडूसा, कुटकी, त्रायमान, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, कमलकंद, नीम की छाल, पोहकरमूल, मुँगने के बीज, मुलहठी, अजवायन, इंद्रजव, भारंगी, फिटकरी, बच, तज, कमलगट्टा, पद्मकाष्ठ, चंदन, अतीस, खरैटी, वायविडंग, चित्रक, देवदारु, चव्य, लवंग, वंशलोचन, पत्रज, सब चीजें बराबर बराबर और इन सब की तौल से आधा चिरायता लेकर सब को कूट पीसकर चूर्ण बनाते हैं। मात्रा एक टंक प्रति दिन सवेरे ठंढे जल के साथ है। कहते हैं कि इसके सेवन से सब प्रकार के ज्वर यहाँ तक कि विषम ज्वर भी दूर हो जाता है। इसके सिवा खाँसी, साँस, पांडु, हृद्रोग, बवासीर, गुल्म आदि रोग भी नष्ट होते हैं।

सुदर्शनखंड-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार ज्वर की एक औषध।

सुदर्शन द्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] जंबू द्वीप का एक नाम।

सुदर्शनपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] (हाथ में सुदर्शनचक्र धारण करनेवाले) श्रीविष्णु।

सुदर्शना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोमवल्ली। चक्रांगी। मधुपर्णिका।

विशेष—यह क्षुप जाति की वनस्पति है। यह रोएँदार होती होती है। पत्ते तीन से छः इंच के घेरे में गोलाकार तथा त्रिकोणकार से होते हैं। इसमें गोल फूलों के गुच्छे लगते हैं जिनका रंग नारंगी का सा होता है। वैद्यक के अनुसार इसका गुण मधुर, गरम और कफ, सूजन, तथा वातरक्त को दूर करनेवाला है।

(२) एक प्रकार की मदिरा। (३) एक गंधर्वी का नाम। (४) पद्म सरोवर। (५) जंबू वृक्ष। (६) इंद्रपुरी। अमरावती। (७) शुक्ल पक्ष की एक रात्रि। (८) आज्ञा। आदेश। हुक्म। (९) एक प्रकार की औषध।

वि० स्त्री० जो देखने में सुंदर हो। सुंदरी।

सुदर्शनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रपुरी। अमरावती।

सुदल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोरट या क्षीर मोरट नाम की लता। (२) मुचकुंद। (३) सेना। दल।

वि० अच्छे दलों या पत्तोंवाला।

सुदला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरिवन। शालपर्णी। (२) सेवती।

सुदशन-वि० [सं०] [स्त्री० सुदशना] सुंदर दाँतोंवाला। जिसके सुंदर दाँत हों। सुदंत।

सुदांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाक्यमुनि के एक शिष्य का नाम। (२) एक प्रकार की समाधि। (३) शतधन्वा का पुत्र।

वि० अति शांत। बहुत सीधा। (घोड़ा)

सुदाम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण के सखा एक गोप का नाम। (२) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद। (३) दे० "सुदामा"।

सुदामन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा जनक के एक मंत्री का नाम। (२) एक प्रकार का दैवास्त्र।

सुदामा-संज्ञा पुं० [सं० सुदामन्] (१) एक दरिद्र ब्राह्मण जो श्रीकृष्ण का सहपाठी और परम सखा था और जिसे पीछे श्रीकृष्ण ने ऐश्वर्यवान् बना दिया था। (२) श्रीकृष्ण का एक गोप सखा। (३) कंस का एक माली जो श्रीकृष्ण से उस समय मथुरा में मिला था, जब वे कंस के बुलाने से वहाँ गए थे। (४) एक पर्वत। (५) इंद्र का हाथी। ऐरावत। (६) समुद्र। सागर। (७) मेघ। बादल। (८) एक गंधर्व का नाम।

संज्ञा स्त्री० (१) स्कंद की एक मातृका। (२) रामायण के अनुसार उत्तर भारत की एक नदी का नाम।

वि० उत्तम रूप से दान करनेवाला। खूब देनेवाला।

सुदामिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार शमीक की पत्नी का नाम।

सुदाय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम दान। (२) यज्ञोपवीत-संस्कार के समय ब्रह्मचारी को दी जानेवाली भिक्षा। (३) विवाह के अवसर पर कन्या या जामाता को दिया जानेवाला दान। दहेज। (४) वह जो उक्त प्रकार के दान करे। (अर्थात् पिता माता आदि)

सुदारु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवदारु। देवदार। (२) धूप सरल। सरल वृक्ष। (३) विंध्य पर्वत का एक अंश। पारिपात्र पर्वत।

सुदारुण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दैवास्त्र।

वि० अत्यंत क्रूर या भयानक।

सुदावन–संज्ञा पुं० दे० "सुदामन"। उ०—जाय सुदावन कह्यो जनक सों आवत रघुकुल नाहा। देखन को धाए पुरवासी भरि उमाह मन माँहा।—रघुराज।

सुदास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिवोदास का पुत्र तथा त्रित्सु का राजा। (२) ऋतुपर्ण का पुत्र। (३) सर्वकाम का पुत्र। (४) च्यवन का पुत्र। (५) बृहद्रथ का एक पुत्र। (६) एक प्राचीन जनपद।

वि० ईश्वर की सम्यक् रूप से पूजा या आराधना करनेवाला।

सुदि–संज्ञा स्त्री० दे० "सुदी"।

सुदिन–संज्ञा पुं० [सं० सु+दिन] शुभ दिन। अच्छा दिन। मुबारक दिन। उ०—(क) सुनि तथास्तु कहि सुदिन विचारी। करवाई मख राज तयारी।—रघुराज। (ख) तहँ तुरंत सुमंत गणक गण ल्यायो ललकि लिवाई। गुरु वशिष्ठ आज्ञानुसार ते दीन्ह्यो सुदिन बनाई।—रघुराज। (ग) अस कहि कौशिक सुदिन बनायो। तहँ तुरंत प्रस्थान पठायो।—रघुराज।

सुदिनता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुदिन का भाव।

सुदिनाह–संज्ञा पुं० [सं०] पुण्य दिन। पुण्याह। शुभ दिन। प्रशस्त दिन।

सुदिव–वि० [सं०] बहुत दीप्तिमान्। उज्वल। चमकीला।

सुदिवातंडि–संज्ञा पुं० [सं० सुदिवातन्ति] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सुदिह–वि० [सं०] (१) सुतीक्ष्ण (जैसे दाँत)। (२) बहुत चिकना या उज्वल।

सुदी–संज्ञा स्त्री० [सं० शुक्ल या शुद्ध] किसी मास का उजाला पक्ष। शुक्ल पक्ष। जैसे,—सावन सुदी ६।

सुदीति–संज्ञा पुं० [सं०] आंगिरस गोत्र के एक ऋषि का नाम।

संज्ञा स्त्री० सुदीप्ति। उज्ज्वल दीप्ति।

वि० बहुत दीप्तिमान्। चमकीला।

सुदीपति–संज्ञा स्त्री० दे० "सुदीप्ति"। उ०—बाजत हैं मृदु हास मृदंग सुदीपति दीपनि को उजियारो।—केशव।

सुदीप्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत अधिक प्रकाश। खूब उजाला।

सुदीर्घ–संज्ञा पुं० [सं०] चिचड़ा। चिचिंडक।

वि० बहुत लंबा। अति विस्तृत।

सुदीर्घघर्मा–संज्ञा स्त्री० [सं०] अपराजिता। कोयल लता। असनपर्णी।

सुदीर्घफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी। कर्कटी।

सुदीर्घफलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बैंगन।

सुदीर्घराजीवफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी।

सुदीर्घा–संज्ञा स्त्री० [सं०] चीना ककड़ी।

वि० स्त्री० अति दीर्घ। बहुत लंबी।

सुदुघ–वि० [सं०] अच्छा दूध देनेवाली। खूब दूध देनेवाली। (गौ)

सुदुघा–संज्ञा स्त्री० [सं०] अच्छा और बहुत दूध देनेवाली गाय।

सुदूर–वि० [सं०] बहुत दूर। अति दूर। जैसे,—सुदूर पूर्व में।

सुदूरमूल–संज्ञा पुं० [सं०] धमासा। हिंगुआ।

सुदृढ़–वि० [सं०] बहुत दृढ़। खूब मजबूत। जैसे,—सुदृढ़ बंधन।

सुदृढ़त्वचा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गम्हार। गंभारी।

सुदृष्टि–संज्ञा पुं० [सं०] गिद्ध।

संज्ञा स्त्री० उत्तम दृष्टि।

वि० (१) दूरदर्शी। (२) दूरदृष्टि।

सुदेष्ण–संज्ञा पुं० [सं०] सुदेष्ण पर्वत का एक नाम। (महाभारत)

सुदेव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम देवता। (२) उत्तम क्रीड़ा करनेवाला। (३) एक काश्यप। (४) अक्रूर का एक पुत्र। (५) पौंड्र वासुदेव का एक पुत्र। (६) देवक का एक पुत्र। (७) विष्णु का एक पुत्र। (८) अंबरीष का एक सेनापति। (९) एक ब्राह्मण जिसने दमयंती के कहने से राजा नल का पता लगाया था। (१०) परावसु गंधर्व के नौ पुत्रों में से एक जो ब्रह्मा के शाप से हिरण्याक्ष दैत्य के घर उत्पन्न हुआ था। (११) हर्यश्व का पुत्र और काशी का राजा।

सुदेवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अरिह की पत्नी। (२) विकुंठन की पत्नी।

सुदेवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार नाभि की पत्नी और ऋषभ की माता।

सुदेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुंदर देश। उत्तम देश। अच्छा मुल्क। (२) उपयुक्त स्थान। उचित स्थान। उ०—टूटि जात लाज तहाँ भूषण सुदेश केश टूट जात हार सब मिटत श्रृंगार है।—भूषण।

वि० सुंदर। उ०—(क) अति सुदेस मृदु हरत चिकुर मन मोहन मुख बगराइ। मानो प्रगट कंज पर मंजुल अलि अवली फिरि आइ।—सूर। (ख) स्याम सुंदर सुदेस पीत-

पट शीश मुकुट उर माला। जनु घन दामिनि रवि तारागन उदित एक ही काला।—सूर। (ग) लटकन चारु भृकुटिया टेढ़ी मेढ़ी सुभग सुदेश सुभाए।—तुलसी। (घ) सीय स्वयंवर जनकपुर सुनि सुनि सकल नरेस। आए साज समाज सजि भूषन बसन सुदेस।—तुलसी।

सुदेष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण का एक पुत्र। (२) एक प्राचीन जनपद का नाम। (३) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

सुदेष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बलि की पत्नी। (२) विराट की पत्नी और कीचक की बहन।

सुदेष्णु—संज्ञा स्त्री० दे० "सुदेष्णा"।

सुदेस—संज्ञा पुं० दे० "सुदेश"।

सुदेह—संज्ञा पुं० [सं०] सुंदर देह। सुंदर शरीर।

वि० सुंदर। कमनीय। उ०—चले विदेह सुदेह हृदय हरि-नेह बसाए। जरासंध बल अंध मिल सम बंध मिलाए।—गिरधर।

सुदैव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौभाग्य। अच्छा भाग्य। अच्छी किस्मत। (२) अच्छा संयोग।

सुदोग्धी—वि० [सं०] अधिक दूध देनेवाली। (गौ आदि)

सुदोघ—वि० स्त्री० [सं०] बहुत दूध देनेवाली (गौ)।

वि० पुं० दानशील। उदार।

सुदोह—वि० [सं०] सुख या आराम से दुहने योग्य। जिसे दुहने में कोई कष्ट न हो।

सुद्दी—संज्ञा स्त्री० [अ० सुद्दः] वह पेट का जमा हुआ सूखा मल जो फुलाकर निकाला जाय।

सुद्ध—वि० दे० "शुद्ध"।

सुद्धाँ—अव्य० [सं० सह] सहित। समेत। मिलाकर। जैसे,—उसके सुद्धाँ सात आदमी थे।

सुद्धांत—संज्ञा स्त्री० [हि०] जनाना।

सुद्धा—अव्य० दे० "सुद्धाँ"।

सुद्धि—संज्ञा स्त्री० दे० "सुध"। उ०—(क) हिम्मति गई कबीर की देखी कीनी सुद्धि। होनहार जैसी कछू तैसी दै मन सुद्धि।—सूदन। (ख) जैसी हो भवितव्यता तैसी उपजै बुद्धि। होनहार हिरदे बसै बिसर जाय सब सुद्धि।—सदल।

संज्ञा स्त्री० दे० "शुद्धि"।

सुद्यु—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुवंशी राजा चारुपद के पुत्र का नाम।

सुद्युत—वि० [सं०] खूब प्रकाशमान्। सुदीप्त।

सुद्युम्न—संज्ञा पुं० [सं०] वैवस्वत मनु का पुत्र जो इल नाम से प्रसिद्ध है।

विशेष—मत्स्यपुराण में इसकी कथा इस प्रकार दी है—एक बार हिमालय में महादेवजी पार्वतीजी के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। उस समय वैवस्वत मनु का पुत्र इल शिकार के लिये वहाँ जा पहुँचा। महादेवजी ने उसे शाप दिया, जिससे वह स्त्री हो गया। एक बार सोम का पुत्र बुध उसे देख कामासक्त हो गया और उसके सहवास से उसके गर्भ से पुरूरवा का जन्म हुआ। अंत को बुध की आराधना करने पर महादेवजी ने उसे शापमुक्त कर दिया और वह फिर पुरुष हो गया।

सुद्रप—वि० [सं० सदय] दयावान्। कृपालु। (डिं०)

सुधंग—संज्ञा पुं० [हि० सीधा + अंग या सु + ढंग ?] अच्छा ढंग। उ०—(क) नृत्य करहिं नट नटी नारि नर अपने अपने रंग। मनहुँ मदनरति विविध वेष धरि नटत सुदेह सुधंग।—तुलसी। (ख) कबहुँ चलत सुधंग गति सों कबहुँ उघटत बैन। लोल कुंडल गंडमंडल चपल नैननि सैन।—सूर।

सुध—संज्ञा स्त्री० [सं० शुद्ध (बुद्धि)] (१) स्मृति। स्मरण। याद। चेत।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

मुहा०—सुध दिलाना = याद दिलाना। स्मरण कराना। सुध न रहना = विस्मृत हो जाना। भूल जाना। याद न रहना। जैसे,—तुम्हारी तो किसी को सुध ही नहीं रह गई थी। सुध बिसरना = विस्मृत होना। भूल जाना। सुध बिसराना या बिसारना = किसी को भूल जाना। किसी को स्मरण न रखना। उ०—तुम्हें कौन अनरीत सिखाई, सजन सुध बिसराई।—गीत। सुध भूलना = दे० "सुध बिसरना"। सुध भुलाना = दे० "सुध बिसराना।"

(२) चेतना। होश।

यौ०—सुध बुध = होश हवास।

मुहा०—सुध बिसरना = बेहोश होना। होश में न रहना। सुध बिसराना = बेहोश करना। होश में न रहने देना। उ०—कान्हा ने कैसी बाँसुरी बजाई, मोरी सुध बुध बिसराई।—गीत। सुध न रहना = होश न रहना। बेहोश हो जाना। उ०—सुध न रही देखतु रहे कछु न और बिनु तोहिं। हेरे अनहेरे हुते कठिन दुहुँ विधि मोहिं।—रसनिधि। सुध सँभालना = होश सँभालना। होश में आना।

(३) खबर। पता।

मुहा०—सुध लेना = पता लेना। हाल चाल जानना। सुध रखना = चौकसी रखना। उ०—(क) प्रसमन को विलंब भयो तब सत्राजित सुध लीन्हीं।—सूर। (ख) दरद हि दै जानत लला सुध लै जानत नाहिं। कहा विचारे नेहिया सुध पाछे फिर जाहिं।—रसनिधि।

वि० दे० "शुद्ध"। उ०—सुरत नीर में न्हाय ले प्रेम धार रहे सुध होय देह।—कबीर।

संज्ञा स्त्री० दे० "सुधा"। उ०—जाके रस का हँसहु मानुष सुधहु न पावत दौर।—देव स्वामी।

सुधन—संज्ञा पुं० [सं०] पराशर गंधर्व के नौ पुत्रों में से एक जो

ब्रह्मा के शाप से (कोलकल्प में) हिरण्याक्ष दैत्य के नौ पुत्रों में से एक हुआ था।

वि० बहुत धनी। बड़ा अमीर।

सुधनु–संज्ञा पुं० [सं० सुधनुस] (१) राजा कुरु का एक पुत्र जो सूर्य की पुत्री तपती के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। (२) गौतम बुद्ध के एक पूर्वज।

सुधन्वा–वि० [सं० सुधन्वन्] (१) उत्तम धनुष धारण करनेवाला। (२) अच्छा धनुर्धर।

संज्ञा पुं० (१) विष्णु। (२) विश्वकर्मा। (३) आंगिरस। (४) वैराज का एक पुत्र। (५) संभूत का एक पुत्र। (६) कुरु का एक पुत्र। (७) शाश्वत का एक पुत्र। (८) विदुर। (९) एक राजा जिसे मान्धाता ने परास्त किया था। (१०) व्रात्य वैश्य और सवर्णा स्त्री से उत्पन्न एक जाति।

सुधन्वाचार्य–संज्ञा पुं० [सं०] व्रात्य वैश्य और सवर्णा स्त्री से उत्पन्न एक संकर जाति।

सुध बुध–संज्ञा स्त्री० [सं० शुद्ध+बुद्धि] होश हवास। चेत। ज्ञान। वि० दे० "सुध"।

मुहा०—सुध बुध जाती रहना=होश हवास जाता रहना। सुध बुध ठिकाने न होना=बुद्धि ठिकाने न होना। होश हवास दुरुस्त न होना। सुध बुध मारी जाना=बुद्धि का लोप हो जाना। होश हवास न रहना।

सुधमना‡–वि० [हिं० सुध=होश+मन] [स्त्री० सुधमनी] जिसे होश हो। सचेत। उ०—जब कबहूँ के सुधमनी होति तब सुनौ यहो रघुनाथ गात तकि पाए परिकै। भावते की मूरति को ध्यान आए ल्यावति है आँखें मूँदि गावति है आँसुन सों भरिकै।—रघुनाथ।

सुधर–संज्ञा पुं० [सं०] एक अर्हत् का नाम। (जैन)

संज्ञा पुं० [हिं०] बया नामक पक्षी।

सुधरना–क्रि० अ० [सं० शोधन,हिं० सुधना] बिगड़े हुए का बनना। दोष या त्रुटियों का दूर होना। संशोधन होना। संस्कार होना। जैसे,—काम सुधरना, भाषा सुधरना, चाल सुधरना, घर सुधरना।

संयो० क्रि०—जाना।

सुधराई–संज्ञा स्त्री० [हिं० सुधरना+आई (प्रत्य०)] (१) सुधरने की क्रिया। सुधारने का काम। सुधार। (२) सुधारने की मजदूरी।

सुधाव–संज्ञा पुं० [हिं० सुधरना+आव (प्रत्य०)] सुधराई। बनाव। संशोधन।

सुधर्म–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम धर्म। पुण्य। कर्त्तव्य। (२) जैन तीर्थंकर महावीर के दस शिष्यों में से एक। (३) किन्नरों के एक राजा का नाम।

वि० धर्मपरायण। धर्मनिष्ठ।

सुधर्मनिष्ठ–वि० [सं०] अपने धर्म पर दृढ़ रहनेवाला। सुधर्मी।

सुधर्मा–वि० [सं० सुधर्मन्] अपने धर्म पर दृढ़ रहनेवाला। धर्मपरायण।

संज्ञा पुं० (१) गृहस्थ। कुटुंब पालक। कुटुंबी। (२) क्षत्रिय। (३) दशार्णों का एक राजा। (४) दृढ़नेमि का पुत्र। (५) जैनों के एक गणाधिप।

संज्ञा स्त्री० देवसभा।

सुधर्मी–वि० [सं० सुधर्मिन्] धर्मपरायण। धर्मनिष्ठ।

संज्ञा स्त्री० देवसभा।

सुधवाना–क्रि० स० [हिं० सुधरना का प्रेर० रूप] दोष या त्रुटि दूर कराना। शोधन कराना। ठीक कराना। दुरुस्त कराना।

सुधाँ–अव्य० दे० "सुद्धाँ"। उ०—हाथी सुधाँ सब हाथी परयो खेत। संग्राम में स्वामि के काम के हेत।—सूदन।

सुधांग–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

सुधांशु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

सुधांशु तैल–संज्ञा पुं० [सं०] कपूर का तेल।

सुधांशुरत्न–संज्ञा पुं० [सं०] मोती। मुक्ता।

सुधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अमृत। पीयूष। अमी। (२) मकरंद। (३) गंगा। (४) जल। (५) दूध। (६) रस। अर्क। (७) मूर्विका। मरोड़फली। (८) आँवला। आमलकी। (९) हर्रे। हरीतकी। (१०) सेहुँड़। थूहर। (११) सरिवन। शालपर्णी। (१२) बिजली। विद्युत्। (१३) पृथ्वी। धरती। जमीन। (१४) विष। जहर। हलाहल। (१५) चूना। (१६) ईंट। इष्टका। (१७) गिलोय। गुडुची। (१८) रुद्र की स्त्री। (१९) एक प्रकार का वृत्त। (२०) पुत्री। (२१) वधू। (२२) धाम। घर। (२३) मधु। शहद।

सुधाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० सूधा=सीधा] सीधापन। सिधाई। सरलता। उ०—(क) सूधी सुहाँसी सुधाकर सों मुख सोधि लई बसुधा की सुधाई। सूधे स्वभाव बसी सजनी बस कैसे किये अति टेढ़े कन्हाई।—केशव। (ख) सील सुधाई तीर तें तज गति कुटिल कमान। भावे छिला बैठ तू भावे बिच मैदान।—रसनिधि।

सुधाकंठ–संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल। कोयल।

सुधाकर–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

सुधाकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूना पोतनेवाला। सफेदी करनेवाला। (२) मिस्तरी। राज। मजूर।

सुधाक्षार–संज्ञा पुं० [सं०] चूने का क्षार।

सुधाक्षालित–वि० [सं०] सफेदी किया हुआ। जिस पर चूना पुता हुआ हो।

सुधाघट–संज्ञा पुं० [सं० सुधा+घट] चंद्रमा। उ०—मुक्ता

माळ नंदनंदन उर अर्ध सुधापट कांति। मनु श्रीकंठ मेघ उज्वल अति देखि महाबल भाँति।—सूर।

सुधाजीवी-संज्ञा पुं॰ [सं॰ सुधाजीविन्] वह जो चूना पोतकर जीविका निर्वाह करता हो। सफेदी करनेवाला मजदूर।

सुधातु-संज्ञा पुं॰ [सं॰] सोना।

सुधातुदक्षिण-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह जो यज्ञादि में सुवर्ण दक्षिणा देता हो।

सुधादीधिति-संज्ञा पुं॰ [सं॰] सुधांशु। चंद्रमा।

सुधाद्रव-संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार की चटनी।

सुधाधर-संज्ञा पुं॰ [सं॰ सुधा+धर=धारण करनेवाला] चंद्रमा। उ॰—(क) श्रीरघुबीर कह्यो सुन बीर यहू शशी कियों राहु हरायो। नाहँ सुधाधर है विष को घर ल्याई विरंचि कलंक लगायो।—हनुमन्नाटक। (ख) धार सुधार सुधाधर तें सु मनो बसुधा में सुधा दरकी परे।—सुंदरीसर्वस्व।

वि॰ [सं॰ सुधा+अधर] जिसके अधरों में अमृत हो। उ॰—वासो मृग अंक कहै तोसों मृगनैनी सबै वासो सुधाधर तोहूँ सुधाधर मानिये।—केशव।

सुधाधरण-संज्ञा पुं॰ [सं॰ सुधाधर] चंद्रमा। (डिं॰)

सुधाधवल-वि॰ [सं॰] (१) चूने के समान सफेद। (२) चूना पुता हुआ। सफेदी किया हुआ।

सुधाधवलित-वि॰ दे॰ "सुधाधवल"।

सुधाधाम-संज्ञा पुं॰ [सं॰ सुधा+धाम] चंद्रमा। उ॰—धूमपुर के निकेत मानों धूमकेतु की शिखा की धूमयोनि मध्यरेखा सुधाधाम की।—केशव।

सुधाधार-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) चंद्रमा। (२) सुधा का आधार। अमृतपात्र।

सुधाधी-वि॰ [सं॰ सुधा] सुधा के समान। अमृत के तुल्य। उ॰—या कहि कौशिल्यहि यह आधी। देत भये नृप खीर सुधाधी।—पद्माकर।

सुधाधौत-वि॰ [सं॰] चूना किया हुआ। सफेदी किया हुआ।

सुधानजर-वि॰ [सं॰ सुधा या हिं॰ सूधा=सीधा+नजर] दयावान्। कृपालु। (डिं॰)

सुधाना-क्रि॰ स॰ [हिं॰ सुध] सुध कराना। चेत कराना। स्मरण कराना। याद दिलाना।

क्रि॰ स॰ (१) शोधने का काम दूसरे से कराना। दुरुस्त कराना। ठीक कराना। (२) (लग्न या कुंडली आदि) ठीक कराना। उ॰—लिय तुरंत ज्योतिषी बुलाई। लग्न घरी सब भाँति सुधाई।—रघुराज।

सुधानिधि-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) चंद्रमा। उ॰—मनहुँ सुधानिधि पर्यंत घन पर अमृतधार चहुँ ओर।—सूर। (२) समुद्र। उ॰—श्रीरामानुज उदार सुधानिधि अवनि कल्पतरु।—नाभादास। (३) दंडक वृत्त का एक भेद। इसमें ३२ वर्ण होते हैं और १६ बार क्रम से गुरु लघु आते हैं।

सुधानिधि रस-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे, गंधक, सोना मक्खी और लोहे आदि के योग से बनता है। इसका व्यवहार रक्तपित्त में किया जाता है।

सुधापय-संज्ञा पुं॰ [सं॰ सुधापयस्] थूहर का दूध। स्नुही क्षीर।

सुधापाणि-संज्ञा पुं॰ [सं॰] धन्वंतरी। पीयूषपाणि।

विशेष—पुराणों के अनुसार समुद्रमंथन के समय धन्वंतरी जी हाथ में सुधा या अमृत लिए हुए निकले थे; इसी से उनका नाम सुधापाणि या पीयूषपाणि पड़ा।

सुधापाषाण-संज्ञा पुं॰ [सं॰] सफेद खली।

सुधाभवन-संज्ञा पुं॰ [सं॰] अस्तरकारी किया हुआ मकान।

सुधाभित्ति-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सफेदी की हुई दीवार।

सुधाभुज्-संज्ञा पुं॰ [सं॰] अमृत भोजन करनेवाले, देवता।

सुधाभृति-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) चंद्रमा। (२) यज्ञ।

सुधाभोजी-संज्ञा पुं॰ [सं॰ सुधाभोजिन्] अमृत भोजन करनेवाले, देवता।

सुधाम-संज्ञा पुं॰ [सं॰ सुधामन्] (१) चंद्रमा। (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम। (३) रैवतक मन्वंतर के देवताओं का एक गण। (४) पुराणानुसार क्रौंच द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष के राजा का नाम।

सुधामय-वि॰ [सं॰] [स्त्री॰ सुधामयी] (१) सुधा से भरा हुआ। अमृत स्वरूप। (२) चूने का बना।

संज्ञा पुं॰ राजभवन। राजप्रासाद।

सुधामयूख-संज्ञा पुं॰ [सं॰] चंद्रमा।

सुधामुखी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक अप्सरा का नाम।

सुधामूली-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सालम मिस्री। सालब मिस्री।

सुधामोदक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] यवास शर्करा। शीरखिश्त।

सुधामोदकज-संज्ञा पुं॰ [सं॰] तुरंजबीन की खाँड़। यवराज खंड।

सुधायोनि-संज्ञा पुं॰ [सं॰] चंद्रमा।

सुधार-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ सुधरना] सुधरने की क्रिया या भाव। दोष या त्रुटियों का दूर किया जाना। संशोधन। संस्कार। इसलाह।

क्रि॰ प्र॰—करना।—होना।

सुधारक-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ सुधार+क (प्रत्य॰)] (१) वह जो दोषों या त्रुटियों का संशोधन या सुधार करता हो। संस्कारक। संशोधक। (२) वह जो धार्मिक, सामाजिक या राजनीतिक सुधार या उन्नति के लिये प्रयत्न या आंदोलन करता हो।

सुधारना-क्रि॰ स॰ [हिं॰ सुधरना] दोष या बुराई दूर करना। बिगड़े हुए को बनाना। दुरुस्त करना। संशोधन करना। संस्कार करना। सँवारना।

वि० [स्त्री० सुधारनी] सुधारनेवाला। ठीक करनेवाला। (क) उ०—भगति गोपाल की सुधारनी है। नर देहैं, जगत अधारनी है जगत उधारनी है।—गिरधर।

सुधारश्मि–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

सुधारा–वि० [हिं० सूधा+आरा (प्रत्य०)] सीधा। सरल। निष्कपट। उ०—आयो घोष बड़ो ब्यापारी। लादि पेखि गुणगान योग की ब्रज में आनि उतारी। फाटक दै के हाटक माँगत भोरे निपट सुधारी। इनके कहे कौन डहकावै ऐसो कौन अजारी।—सूर।

सुधारू–संज्ञा पुं० [हिं० सुधारना+ऊ (प्रत्य०)] सुधारनेवाला। संशोधक।

सुधालता–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की गिलोय।

सुधावर्षी–वि० [सं० सुधावर्षिन्] अमृत बरसानेवाला।

संज्ञा पुं० (१) ब्रह्मा। (२) एक बुद्ध का नाम।

सुधावास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) खीरा। त्रपुषी।

सुधावासा–संज्ञा स्त्री० [सं०] खीरा। त्रपुषी।

सुधाशर्करा–संज्ञा स्त्री० [सं०] खली। खरी।

सुधाश्रवा–संज्ञा पुं० [सं० सुधा+स्रवण] अमृत बरसानेवाला। उ०—चल्यो सवा सो तहँ दवा दुति भूरि श्रवाभट। सुधा-श्रवा सिर छत्र हवा जब सुरथ नवा पट।—गोपालचंद्र।

सुधासदन–संज्ञा पुं० [सं० सुधा+सदन] चंद्रमा। उ०—सरद सुधा सदन छबिहि निंदै बदन अरुन आयत नव नलिन लोचन चारु।—तुलसी।

सुधासित–वि० [सं०] सफेदी किया हुआ। चूना पुता हुआ।

सुधासू–संज्ञा पुं० [सं०] अमृत उत्पन्न करनेवाला, चंद्रमा।

सुधासूति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) यज्ञ। (३) कमल।

सुधास्पर्धी–वि० [सं० सुधास्पर्धिन्] अमृत की बराबरी करनेवाला। अमृत के समान मधुर। (भाषण आदि)

सुधास्रवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गले के अंदर की घंटी। छोटी जीभ। कौवा। (२) रुद्रवंती। रुदंती।

सुधाहर–संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

सुधाहृत–संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

सुधि–संज्ञा स्त्री० दे० "सुध"। उ०—(क) यह सुधि आवत तोहिं सुदामा। जब हम तुम बन गये लकरियन पठए गुरु की भामा।—सूर। (ख) रामचंद्र विख्यात नाम यह सुर मुनि की सुधि लीनी।—सूर।

सुधित–वि० [सं०] (१) सुव्यवस्थित। (२) सुधा या अमृत के समान।

सुधिति–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुठार। कुल्हाड़ी।

सुधी–संज्ञा पुं० [सं०] विद्वान् व्यक्ति। पंडित। शिक्षक।

वि० (१) उत्तम बुद्धिवाला। बुद्धिमान्। चतुर। (२) धार्मिक।

सुधीर–वि० [सं०] जिसमें यथेष्ट धैर्य हो। धैर्यवान्।

सुधुम्नानी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार पुष्कर द्वीप के सात खंडों में से एक। उ०—एक सुधुम्नानी कहै और मनोजव जानु। चित्ररेफ है तीसरो चौथो गणि पयमानु। पंचम जानि पुरोजवहि छठो विमल बहु रूप। विश्वधातु है सात जो यह खंडनि को रूप।—केशव।

विशेष—यह शब्द संस्कृत के कोशों में नहीं मिलता।

सुधूपक–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीवेष्ट।

सुधूम्य–संज्ञा पुं० [सं०] स्वादु नामक गंध द्रव्य।

सुधूम्रवर्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक जिह्वा का नाम।

सुधृति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राजा का नाम जो मिथिला के महावीर का पुत्र था। (२) राज्यवर्द्धन का पुत्र।

सुधोद्भव–संज्ञा पुं० [सं०] धन्वंतरि।

विशेष—समुद्रमंथन के समय धन्वंतरि सुधा लिए हुए निकले थे; इसी से इन्हें सुधोद्भव कहते हैं।

सुधोद्भवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] हरीतकी। हर्रे। हड़।

सुनंद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देवपुत्र। (२) श्रीकृष्ण का एक पार्षद। (३) बलराम का मूसल। (४) कुरुभ दैत्य का मूसल जो विश्वकर्मा का बनाया हुआ माना जाता है। (५) बारह प्रकार के राजभवनों में से एक।

विशेष—यह सुनंद नामक राजप्रासाद राजाओं के लिये विशेष शुभकर माना गया है। कहते हैं कि इसमें रहनेवाले राजा को कोई परास्त नहीं कर सकता। युक्ति कल्पतरु के अनुसार इस भवन की लंबाई राजा के हाथ के परिमाण से २१ हाथ और चौड़ाई ४० हाथ होनी चाहिए।

(६) एक बौद्ध श्रावक।

वि० आनंददायक।

सुनंदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार कृष्ण के एक पुत्र का नाम। (२) पुरीष भीरु का एक पुत्र। (३) भूनंदन का भाई।

सुनंदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उमा। गौरी। (२) उमा की एक सखी। (३) कृष्ण की एक पत्नी। (४) बाहु और बालि की माता। (५) चेदि के राजा सुबाहु की बहन। (६) सार्वभौम की पत्नी। (७) भरत की पत्नी। (८) प्रतीप की पत्नी। (९) एक नदी का नाम। (१०) सर्वार्थसिद्धि नंद की बड़ी स्त्री। (११) सफेद गौ। (१२) गोरोचना। गोरोचन। (१३) अर्कपत्री। इसरौल। (१४) एक तिथि। (१५) नारी। स्त्री। औरत।

सुनंदिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आरामशीतला नामक पत्रशाक। (२) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में स ज स ज ग रहते हैं। इसे प्रबोधिता और मंजुभाषिणी भी कहते हैं।

सुन–वि० दे० "सुन्न"।

सुनका–संज्ञा पुं० [देश०] चौपायों का एक रोग जो उनके कंठ में होता है। गरारा। घुरकया।

सुनकातर–संज्ञा पुं० [हिं० सोन + कातर ?] एक प्रकार का साँप।

सुनकिरवा–संज्ञा पुं० [हिं० सोना + किरवा = कीड़ा] एक प्रकार का कीड़ा जिसके पर पन्ने के रंग के होते हैं। उ०—गोरी गदकारी परै हँसत कपोलनि गाड़। कैसी लसति गँवारि यह सुनकिरवा की आड़।—बिहारी।

सुनक्षत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम नक्षत्र। (२) एक राजा का नाम जो मरुदेव का पुत्र था। (३) निरमित्र का पुत्र।

वि० उत्तम नक्षत्रवाला।

सुनक्षत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कर्म मास का दूसरा नक्षत्र। (२) कार्त्तिकेय की एक मातृका।

सुनखर्चा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो आश्विन के अंत और कार्तिक के प्रारंभ में होता है।

सुनगुन–संज्ञा स्त्री० [हिं० सुनना + अनु० गुन] (१) किसी बात का भेद। टोह। सुराग।

क्रि० प्र०—मिलना।—लगना।

(२) कानाफूसी।

सुनजर–वि० [सं० सु + फ़ा० नजर] दयावान्। कृपालु। (हिं०)

सुनत–संज्ञा स्त्री० दे० "सुन्नत"।

सुनति‡–संज्ञा स्त्री० दे० "सुन्नत"। उ०—(क) जो तुरुक तुरुकिनी जाया। पेटै काहे न सुनति कराया।—कबीर। (ख) कासिहु ते कला जाती मथुरा मसीद होती सिवाजी न होते तो सुनति होत सब की।—भूषण।

सुनना–क्रि० स० [सं० श्रवण] (१) श्रवणेंद्रिय के द्वारा शब्द का ज्ञान प्राप्त करना। कानों के द्वारा उनका विषय ग्रहण करना। श्रवण करना। जैसे,—फिर आवाज दो; उन्होंने सुना न होगा।

संयो० क्रि०—पड़ना।—रखना।

मुहा०—सुनी अनसुनी कर देना = कोई बात सुनकर भी उस पर ध्यान न देना। किसी बात को टाल जाना।

(२) किसी के कथन पर ध्यान देना। किसी की उक्ति पर ध्यानपूर्वक विचार करना। कान देना। जैसे,—कथा सुनना, पाठ सुनना, मुकदमा सुनना। (३) भली बुरी या उलटी सीधी बातें श्रवण करना। जैसे,—(क) मालूम होता है, तुम भी कुछ सुनना चाहते हो। (ख) जो एक कहेगा, वह चार सुनेगा।

सुनफा–संज्ञा स्त्री० [?] ज्योतिष का एक योग।

सुनबहरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० सुन्न + बहरी ?] एक प्रकार का रोग जिसमें पैर फूल जाता है। श्लीपद। फीलपा।

सुनय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुनीति। उत्तम नीति। (२) परिप्लव राजा का पुत्र। (३) ऋत का एक पुत्र। (४) खनित्र का पुत्र।

सुनयन–संज्ञा पुं० [सं०] मृग। हरिन।

वि० [स्त्री० सुनयना] सुंदर आँखोंवाला। सुलोचन।

सुनयना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजा जनक की पत्नी। (२) नारी। स्त्री। औरत।

सुनर–संज्ञा पुं० [सं० सु + नर] अर्जुन। (डिं०)

सुनरिया‡–संज्ञा स्त्री० [सं० सुंदरी] सुंदर नारी। सुंदर स्त्री। उ०—प्यारे की पियरिया जगत से नियरिया, सुनरिया अनूठी तोरी चाल।—बलबीर।

सुनवाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० सुनना + वाई (प्रत्य०)] (१) सुनने की क्रिया या भाव। (२) मुकदमे आदि का पेश होकर सुना जाना। (३) किसी शिकायत या फरियाद आदि का सुना जाना। जैसे,—तुम लाख चिल्लाया करो; वहाँ कुछ सुनवाई ही नहीं होगी।

सुनवैया–वि० [हिं० सुनना + वैया (प्रत्य०)] (१) सुननेवाला। (२) सुनानेवाला। उ०—मंगल सदा ही करैं राम हैं प्रसन्न सदा राम रसिकावली सुनैया सुनवैया को।—रघुराज।

सुनस–वि० [सं०] सुंदर नाकवाला।

सुनसर–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गहना।

सुनसान–वि० [सं० शून्य + स्थान] (१) जहाँ कोई न हो। खाली। निर्जन। जनहीन। उ०—(क) ये तेरे वनपंथ परे सुनसान उजाड़।—श्रीधर पाठक। (ख) स्वामी हुए बिना सेवक के नगर मनुष्यों बिन सुनसान।—श्रीधर पाठक। (ग) सुनसान कहुँ गंभीर वन कहुँ सोर वनपशु करत हैं।—उत्तर रामचरित। (२) उजाड़। वीरान।

संज्ञा पुं० सन्नाटा। उ०—निशा काल अतिशय अँधियारा छाय रहा सुनसान।—श्रीधर पाठक।

सुनह–संज्ञा पुं० [सं०] जह्नु का एक पुत्र।

सुनहरा–वि० दे० "सुनहला"।

सुनहरी–वि० दे० "सुनहला"।

सुनहला–वि० [हिं० सोना + हला (प्रत्य०)] [स्त्री० सुनहली] सोने के रंग का। सोने का सा। जैसे,—सुनहला काम। सुनहला रंग।

सुनाई–संज्ञा स्त्री० दे० "सुनवाई"।

सुनाकृत–संज्ञा पुं० [सं०] काली हलदी। कचूर। कर्पूरक।

सुनाद–संज्ञा पुं० [सं०] शंख।

वि० सुंदर शब्दवाला।

सुनाना–क्रि० स० [हिं० सुनना का प्रे० रूप] (१) दूसरे को

सुनने में प्रवृत्त करना। कर्णगोचर कराना। श्रवण कराना। (२) खरी खोटी कहना। जैसे,—तुमने भी उसे खूब सुनाया।
संयो० क्रि०—डालना।—देना।

सुनानी—संज्ञा स्त्री० दे० "सुनावनी"।

सुनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुदर्शन चक्र। (२) मैनाक पर्वत। (३) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (४) वरुण का एक मंत्री। (५) गरुड़ का एक पुत्र। (६) एक प्रकार का मंत्र जिसका प्रयोग अस्त्रों पर किया जाता था।
वि० सुंदर नाभिवाला।

सुनाभक—संज्ञा पुं० दे० "सुनाभ"।

सुनामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटभी। करही। हरिमल।

सुनाभि—वि० [सं०] सुंदर नाभिवाला।

सुनाम—संज्ञा पुं० [सं०] यश। कीर्त्ति। ख्याति।

सुनाम द्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्रत जो वर्ष की बारहों शुक्ला द्वादशियों को किया जाता है। अगहन महीने की शुक्ला द्वादशी को इस व्रत का आरंभ होता है। अग्निपुराण में इसका बड़ा माहात्म्य लिखा है।

सुनामा—संज्ञा पुं० [सं० सुनामन्] (१) कंस के आठ भाइयों में से एक। (२) सुकेतु के एक पुत्र का नाम। (३) स्कंद का एक पार्षद। (४) वैनतेय का एक पुत्र।
वि० यशस्वी। कीर्त्तिशाली।

सुनामिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमाणा लता। त्रायमान।

सुनाम्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवक की पुत्री और वसुदेव की पत्नी।

सुनायक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम। (२) एक दैत्य का नाम। (३) वैनतेय के एक पुत्र का नाम।

सुनार—संज्ञा पुं० [सं० स्वर्णकार] [स्त्री० सुनारिन, सुनारी] सोने, चाँदी के गहने आदि बनानेवाली जाति। स्वर्णकार।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुतिया का दूध। (२) साँप का अंडा। (३) चटक पक्षी। गौरा। गौरैया।

सुनारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० सुनार+ई (प्रत्य०)] (१) सुनार का काम। (२) सुनार की स्त्री। उ०—धाइ जनी नायन नटी प्रकट परोसिन नारि। मालिन बरइन शिल्पिनी चुरहेरनी सुनारि।—केशव।

सुनाल—संज्ञा पुं० [सं०] रक्त कमल। लाल कमल। लामज्जक।

सुनालक—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त। वकपुष्प वृक्ष।

सुनावनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० सुनना+आवनी (प्रत्य०)] (१) कहीं विदेश से किसी संबंधी आदि की मृत्यु का समाचार आना।
क्रि० प्र०—आना।
(२) वह स्नान आदि कृत्य जो परदेस से किसी संबंधी की मृत्यु का समाचार आने पर होता है।
क्रि० प्र०—में जाना।

सुनासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौआ ठोठी। काकनासा।

सुनासिक—वि० [सं०] जिसकी नाक सुंदर हो। सुंदर नाकवाला। सुनास।

सुनासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौआठोंठी। काकनासा।

सुनासीर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) देवता।

सुनाहक‡—क्रि० वि० दे० "नाहक"।

सुनिद्र—वि० [सं०] जिसे अच्छी नींद आई हो। अच्छी तरह सोया हुआ। सुनिद्रित।

सुनिनद—वि० [सं०] सुंदर नाद या शब्द करनेवाला।

सुनियाना†—क्रि० अ० [हिं० सुन्न+इयाना (प्रत्य०)] (फसल का) रोग से सूख जाना या मारा जाना। (रुहेलखंड)

सुनिरूहन—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का वस्तिकर्म्म।

सुनिर्यास—संज्ञा पुं० [सं०] लिंगिनी नामक वृक्ष।

सुनिश्चित—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।
वि० दृढ़ता से निश्चय किया हुआ। भली भाँति निश्चित किया हुआ।

सुनिश्चितपुर—संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर का एक प्राचीन नगर।

सुनिषण्ण—संज्ञा पुं० [सं०] चौपतिया या सुसना नाम का साग। शिरियारी। उटंगन।
विशेष—कहते हैं कि यह साग खाने से अच्छी नींद आती है; इसी से इसका नाम सुनिषण्ण (जिससे अच्छी नींद आवे) पड़ा है।

सुनिषण्णक—संज्ञा पुं० दे० "सुनिषण्ण"।

सुनिस्त्रिंश—संज्ञा पुं० [सं०] तेज धारवाली तलवार।

सुनीच—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार किसी ग्रह का किसी राशि में किसी विशेष अंश का अवस्थान। जैसे,—रवि यदि मेष या तुला राशि में हो तो नीचस्थ कहलाता है; और इसी तुला राशि के किसी विशेष अंश में पहुँच जाने पर सुनीच कहलाता है।

सुनीत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुद्धिमत्ता। समझदारी। (२) नीतिमत्ता। (३) एक राजा का नाम जो सुबल का पुत्र था।

सुनीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्तम नीति। (२) राजा उत्तानपाद की पत्नी और ध्रुव की माता।
विशेष—विष्णुपुराण में लिखा है कि राजा उत्तानपाद की दो पत्नियाँ थीं—सुनीति और सुरुचि। सुरुचि को राजा बहुत चाहता था और सुनीति से बहुत घृणा करता था। सुनीति को ध्रुव नामक एक पुत्र हुआ जिसने तप द्वारा भगवान् को प्रसन्न कर राजसिंहासन प्राप्त किया। वि० दे० "ध्रुव"।
संज्ञा पुं० (१) शिव। (२) विदूरथ का एक पुत्र।

सुनीथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कृष्ण का एक पुत्र। (२) संतति

का पुत्र। (३) सुषेण का एक पुत्र। (४) सुबल का एक पुत्र। (५) शिशुपाल का एक नाम। (६) एक दानव का नाम। (७) एक प्रकार का वृक्ष।

वि० न्यायपरायण। नीतिमान्।

सुनीथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु की पुत्री और अंग की पत्नी।

सुनील-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनार का पेड़। दाड़िम वृक्ष। (२) लामज्जक। लाल कमल।

वि० अत्यंत नील वर्ण। बहुत नीला।

सुनीलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नील भृंगराज। काला भँगरा। (२) नीलकांति मणि। नीलम।

सुनीला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चणिका तृण। चनिका घास। (२) नीलापराजिता। नीली अपराजिता। नीली कोयल। (३) अतसी। तीसी।

सुनु-संज्ञा पुं० [सं०] जल।

सुनेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धृतराष्ट्र का एक पुत्र। (२) तेरहवें मनु का एक पुत्र। (३) बौद्धों के अनुसार मार का एक पुत्र। (४) चक्रवाक। चकवा।

वि० सुंदर नेत्रोंवाला। सुलोचन।

सुनेत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सांख्य के अनुसार नौ तुष्टियों में से एक।

सुनैया-वि० [हिं० सुनना+ऐया (प्रत्य०)] सुननेवाला। जो सुने। उ०—द्रौपदी विचारे रघुराज आज जाति लाज सब हैं धरैया पै न टेर को सुनैया है।—रघुराज।

सुनौखी-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—अरदा औ जाग जिरही से जग जाहर, जवाहर हुकुम सौं जवाहर झलक के। मंगसी मुजंनस सुनोखी स्यामकर्न स्याह, सिरगा सजाये जे न मंद्रि मलक के।—सूदन।

सुन्न-वि० [सं० शून्य] निर्जीव। स्पंदन-हीन। निस्तब्ध। जड़वत्। निश्चेष्ट। निश्चल। जैसे,—ठंढ के मारे उसके हाथ पैर सुन्न हो गये। उ०—(क) यह बात सुनकर भाग्यवती सुन्न सी हो गई।—श्रद्धाराम। (ख) तहाँ लगी विरहागि नाहिं क्यों चलि कै पेखत। सुकवि सुन्न ह्वै जाय न प्यारी देखत देखत।—अंबिकादत्त। (ग) निरखि कंस की छाती धड़की। सुन्न समान भई गति धड़ की।—गिरधरदास।

संज्ञा पुं० शून्य। सिफर। उ०—(क) यथा सुन्न दस गुन्न बिन अंक गने नहिं जात।—श्रद्धाराम। (ख) अगनित भवत उदोत लसत इक बेंदी दीने। कह्यो सुन्न को ऐसो गुन को गनित नवीने।—अंबिकादत्त।

वि० दे० "सुनसान"।

सुन्नत-संज्ञा स्त्री० [अ०] मुसलमानों की एक रस्म जिसमें लड़के की लिंगेंद्रिय के अगले भाग का बढ़ा हुआ चमड़ा काट दिया जाता है। खतना। मुसलमानी।

सुन्नसान-वि० दे० "सुनसान"।

सुन्ना-क्रि० स० दे० "सुनना"।

संज्ञा पुं० [सं० शून्य] बिंदी। सिफर। जैसे,—एक (१) पर सुन्ना (०) लगाने से दस (१०) होता है।

सुन्नी-संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों का एक भेद जो चारों खलीफाओं को प्रधान मानता है। चारयारी।

सुपंख-वि० [सं०] (१) सुंदर तीरों से युक्त। (२) सुंदर परों से युक्त।

सुपंथ-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तम मार्ग। सुमार्ग। सत्पथ। सन्मार्ग।

सुपक-वि० [सं० सुपक्व] अच्छी तरह पका हुआ। सुपक्व। उ०—गोपाल राइ दधि माँगत अरु रोटी। माखन सहित देहि मेरि जननी सुपक सुमंगल मोटी।—सूर।

सुपक्व-वि० [सं०] अच्छी तरह पका हुआ।

संज्ञा पुं० [सं०] सुगंधित आम।

सुपक्ष-वि० [सं०] जिसके सुंदर पंख हों। सुंदर पंखोंवाला।

सुपक्ष्मा-वि० [सं० सुपक्ष्मन्] जिसकी पलकें सुंदर हों। सुंदर पलकोंवाला।

सुपच-संज्ञा पुं० [सं० श्वपच] (१) चांडाल। डोम। उ०—तुलसी भगत सुपच भलो भजै रइनि दिन राम। ऊँचो कुल केहि काम को जहाँ न हरि को नाम।—तुलसी। (२) भंगी। (डिं०)

सुपट-वि० [सं०] सुंदर वस्त्रों से युक्त। अच्छे वस्त्रोंवाला।

संज्ञा पुं० सुंदर वस्त्र।

सुपड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] लंगर का अँकुड़ा जो जमीन में धँसता जाता है।

सुपत-वि० [सं० सु+हिं० पत=प्रतिष्ठा] प्रतिष्ठायुक्त। मानयुक्त। उ०—वह जूठो शशि आनि बदन विधु रच्यो विरंचि इहै री। सौंप्यो सुपत विचारि स्याम हित सु तूँ रही लटि कै री।—सूर।

सुपतिक-संज्ञा पुं० [डिं०] रात को पढ़नेवाला डाका।

सुपत्थ-संज्ञा पुं० दे० "सुपथ"। उ०—इत अवध में श्रीराम लछमन वृद्ध पितु दसरत्थ की। सेवा करत नित रहत भे गहि रीति निगम सुपत्थ की।—पद्माकर।

सुपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेजपत्र। तेजपत्ता। (२) आदित्यपत्र। हुरहुर का एक भेद। (३) पलिवाह नाम की घास। (४) इंगुदी। गोंदी। हिंगोट। (५) एक पौराणिक पक्षी।

वि० (१) सुंदर पत्तों से युक्त। (२) जिसके पंख सुंदर हों। सुंदर पंखोंवाला।

सुपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] सहिंजन। शिग्रु।

सुपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रुद्रजटा। (२) शतावरी। सतावर। (३) शालपर्णी। सरिवन। (४) शमी। छोंकर। सफेद कीकर। (५) पालक का साग।

सुपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका । पपंटी ।

सुपत्रित–वि० [सं०] पंखों या तीरों से युक्त । जिसमें पंख या तीर हों ।

सुपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा । गंगापत्री ।
वि० [सं० सुपत्रिन्] पंखों या तीरों से भली भाँति युक्त ।

सुपथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम पथ । अच्छा रास्ता । सन्मार्ग । सदाचरण । (२) एक वृत्त का नाम जो एक रगण, एक नगण, एक भगण और दो गुरु का होता है ।
वि० [सं० सु+पथ] समतल । हमवार । (जमीन) उ०—किधौं हरि मनोरथ रथ की सुपथ भूमि मीनरथ मनहूँ की गति न सकति छ्वै ।—केशव ।

सुपथ्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह आहार या भोजन जो रोगी के लिये हितकर हो । अच्छा पथ्य । (२) आम ।

सुपथ्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद बथुआ । बड़ा बथुआ । श्वेत चिल्ली । (२) लाल बथुआ । लघु वास्तूक ।

सुपद्–वि० [सं०] सुंदर पैरोंवाला ।

सुपद्–वि० [सं०] (१) सुंदर पैरोंवाला । (२) तेज चलनेवाला ।

सुपद्मा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वच । वचा ।

सुपन⊛–संज्ञा पुं० दे० "स्वप्न" । उ०—(क) चित के जागत मिटि गयो वा सँग सुपन मिलाप । चित्र दरशहू कों लख्यो आँखिन आँसू पाप ।—लक्ष्मणसिंह । (ख) आज मैं निहारे कारे कान्ह कों सुपन बीच उठि कै सकारे जमुना पै जलकों गई । तबही तें दीनदयाल ह्वै रही मनीखा लहू परी भट्ट मेरी भटभेटी मग मैं भई ।—दीनदयाल ।

सुपनक–वि० [सं० स्वप्न] स्वप्न देखनेवाला । जिसे स्वप्न दिखाई देता हो ।

सुपना–संज्ञा पुं० दे० "स्वप्न" । उ०—तहाँ भूप देख्यो अस सुपना । पकर्यो पैर गादरी अपना ।—निश्चल ।

सुपनाना⊛–क्रि० स० [हिं० सुपना] स्वप्न देना । स्वप्न दिखाना । (क्व०) उ०—विह्वल तन मन चकित भई सुनि सा प्रतच्छ सुपनाये । गद्गद कंठ सूर कोशलपुर सोर सुनत दुख पाये ।—सूर ।

सुपरकास–संज्ञा पुं० [सं० सुप्रकाश] ताप । गरमी । (डिं०)

सुपरडंट–संज्ञा पुं० दे० "सुपरिंटेंडेंट" ।

सुपरण–संज्ञा पुं० दे० "सुपर्ण" ।

सुपरन–संज्ञा पुं० दे० "सुपर्ण" ।

सुपरमतुरिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों की एक देवी का नाम ।

सुपर रायल–संज्ञा पुं० [अं०] छापेखाने में कागज आदि की एक नाप जो २२ इंच चौड़ी और २९ इंच लंबी होती है ।

सुपरस⊛–संज्ञा पुं० दे० "स्पर्श" । उ०—राम सुपरस मय कौतुक निरखि सखी सुख लूटै ।—सूर ।

सुपरिंटेंडेंट–संज्ञा पुं० [अं०] निरीक्षण करनेवाला । निगरानी करनेवाला । प्रधान निरीक्षक । जैसे,—पुलिस विभाग का सुपरिंटेंडेंट, तार विभाग का सुपरिंटेंडेंट ।

सुपर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़ । (२) मुरगा । (३) पक्षी । चिड़िया । (४) किरण । (५) विष्णु । (६) एक असुर का नाम । (७) देव गंधर्व । (८) एक पर्वत का नाम । (९) घोड़ा । अश्व । (१०) सोम । (११) १०३ वैदिक मंत्रों की एक शाखा का नाम । (१२) अंतरिक्ष का एक पुत्र । (१३) सेना की एक प्रकार की व्यूह रचना । (१४) नागकेसर । नागपुष्प । (१५) अमलतास । स्वर्णपुष्प । (१६) सुंदर पत्र या पत्ता ।
विशेष—सुंदर किरणों से युक्त होने के कारण इस शब्द का प्रयोग चंद्रमा और सूर्य के लिये भी होता है ।
वि० (१) सुंदर पत्तोंवाला । (२) सुंदर परोंवाला ।

सुपर्णक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़ या कोई दिव्य पक्षी । (२) अमलतास । स्वर्णपुष्प । आरग्वध । (३) सतवन । सतौना । सप्तपर्ण ।
वि० (१) सुंदर पत्तोंवाला । (२) सुंदर पंखोंवाला ।

सुपर्णकुमार–संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के एक देवता ।

सुपर्णकेतु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु ।
विशेष—विष्णु भगवान् की ध्वजा में केतु या गरुड़ जी विराजते हैं, इसी से विष्णु का नाम सुपर्णकेतु पड़ा ।
(२) श्रीकृष्ण ।

सुपर्णयातु–संज्ञा पुं० [सं०] एक दैत्य का नाम ।

सुपर्णराज–संज्ञा पुं० [सं०] पक्षिराज । गरुड़ ।

सुपर्णसद्–वि० [सं०] पक्षी पर चढ़नेवाला ।
संज्ञा पुं० विष्णु ।

सुपर्णांड–संज्ञा पुं० [सं०] शूद्रा माता और सूत पिता से उत्पन्न पुत्र ।

सुपर्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पद्मिनी । कमलिनी । (२) गरुड़ की माता का नाम । (३) एक नदी का नाम ।

सुपर्णाख्य–संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर । नागपुष्प ।

सुपर्णिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वर्ण जीवंती । पीली जीवंती । (२) रेणुका । रेणुका बीज । (३) पलाशी । (४) शालपर्णी । सरिवन । बाकुची । बकुची ।

सुपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गरुड़ की माता । सुपर्णा । (२) मादा चिड़िया । (३) कमलिनी । पद्मिनी । (४) एक देवी जिसका उल्लेख कद्रु के साथ मिलता है । इसे कुछ लोग छंदों की माता या वाग्देवी भी मानते हैं । (५) अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक । (६) रात्रि । रात । (७) पलासी । (८) रेणुका । रेणुक बीज ।
संज्ञा पुं० [सं० सुपर्णिन्] गरुड़ ।

सुपर्णीतनय–संज्ञा पुं० [सं०] सुपर्णी के पुत्र, गरुड़ ।

सुपर्णेय-संज्ञा पुं० [सं०] सुपर्णी के पुत्र, गरुड़ ।

सुपर्व्व-संज्ञा पुं० [सं० सुपर्वन्] (१) देवता । (२) पर्व । शुभ मुहूर्त । शुभ काल । (३) बाँस । वंश । (४) बाण । तीर । (५) धूम्र । धूआँ ।

वि० (१) सुंदर जोड़ोंवाला । जिसके जोड़ या गाँठें सुंदर हों । (२) सुंदर पर्व्व या अध्यायवाला (ग्रंथ) ।

सुपर्व्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेत दूर्वा । सफेद दूब ।

सुपह-संज्ञा पुं० [हिं०] राजा ।

सुपाकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] आम्रहरिद्रा । आँबा हलदी । अमिया हलदी ।

सुपाक्य-संज्ञा पुं० [सं०] विड्लवण । बिरिया या साँचर नोन । करीला नमक ।

सुपात्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी कार्य्य के लिये योग्य या उपयुक्त हो । अच्छा पात्र । जैसे,—सुपात्र को दान देना, सुपात्र को कन्या देना ।

सुपार-वि० [सं०] सहज में पार होने योग्य । जिसे पार करने में कोई कठिनता न हो ।

सुपारग-संज्ञा पुं० [सं०] शाक्य मुनि ।

वि० उत्तम रूप से पार करनेवाला । अत्यंत पारग ।

सुपारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सांख्य के अनुसार नौ तुष्टियों में से एक ।

सुपारी-संज्ञा स्त्री० [सं० सुप्रिय] (१) नारियल की जाति का एक पेड़ जो ४० से १०० फुट तक ऊँचा होता है । इसके पत्ते नारियल के समान ही झाड़दार और एक से दो फुट तक लंबे होते हैं । सींका ४-६ फुट लंबा होता है । इसमें छोटे छोटे फूल लगते हैं । फल १॥-२ इंच के घेरे में गोलाकार या अंडाकार होते हैं और उन पर नारियल के समान ही छिलके होते हैं । इसके पेड़ बंगाल, आसाम, मैसूर, कनाड़ा, मालाबार तथा दक्षिण भारत के अन्य स्थानों में होते हैं । सुपारी (फल) टुकड़े करके पान के साथ खाई जाती है । यों भी लोग खाते हैं । यह औषध के काम में भी आती है । वैद्यक के अनुसार यह भारी, शीतल, रूखी, कसैली, कफ पित्त नाशक, मोहकारक, रुचिकारक, दुर्गंध तथा मुँह की निरसता दूर करनेवाली है । छालिया । कसैली । डली ।

पर्य्या०—घोंटा । पूग । क्रमुक । गुवाक । खपुर । सुरंजन । पूगवृक्ष । दीर्घपादप । वल्कतरु । दृढवल्क । चिक्कण । पूगी । गोपदल । राजताल । छटाफल । क्रमु । क्रमुकी । अकोट । संयुसार ।

यौ०—चिकनी सुपारी ।

मुहा०—सुपारी लगना = सुपारी का कलेजे में अटकना । सुपारी खाते समय, कभी कभी पेट में उतरते समय अटक जाती है । इसी को सुपारी लगना कहते हैं । उ०—राधिका हाँ कि सरोखन ह्वै कवि केशव रीझि गिरे सुबिहारी । सोर भयो सकुचे समुझे हरवाहि कह्यो हरि लागि सुपारी ।—केशव । (२) लिंग का अग्र भाग जो प्रायः सुपारी (फल) के आकार का होता है । (बाजारू)

सुपारी का फूल-संज्ञा पुं० [हिं० सुपारी+फूल] मोचरस या सेमर का गोंद ।

सुपारीपाक-संज्ञा पुं० [हिं० सुपारी+सं० पाक] एक पौष्टिक औषध ।

विशेष—इसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पहले आठ टके भर चिकनी सुपारी का कपड़छान चूर्ण, आठ टके भर गौ के घी में मिलाकर उसे तीन बार गाय के दूध में डालकर धीमी आँच में खोवा बनाते हैं । फिर बंग, नागकेसर, नागरमोथा, चंदन, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, आँवला, कोयल के बीज, जायफल, धनिया, चिरौंजी, तज, पत्रज, इलायची, सिंघाड़ा, वंशलोचन, दोनों जीरे (प्रत्येक पाँच पाँच टंक) इन सब का महीन कपड़छान चूर्ण उक्त खोवे में मिलाकर ५० टंक भर मिस्री की चाशनी में डालकर एक टके भर की गोलियाँ बना ली जाती हैं । एक गोली सबेरे और एक गोली संध्या को खाई जाती है । इसके सेवन से शुक्रदोष, प्रमेह, प्रदर, जीर्णज्वर, अम्लपित्त, मंदाग्नि और अर्श का निवारण होकर शरीर पुष्ट होता है ।

सुपार्श्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पराश पीपल । गजदंड । गर्दभांड । (२) पाकर । प्लक्ष वृक्ष । (३) दशरथ का एक पुत्र । (४) श्रुतायु का पुत्र । (५) दृढनेमि का पुत्र । (६) एक पर्वत का नाम । (७) एक राक्षस का नाम । (८) संपाति (गिद्ध) का बेटा । (९) देवी भागवत के अनुसार एक पीठ स्थान । यहाँ की देवी का नाम नारायणी है । (१०) जैनियों के २४ जिनों या तीर्थंकरों में से सातवें तीर्थंकर ।

वि० सुंदर पार्श्ववाला ।

सुपास-संज्ञा पुं० [देश०] सुख । आराम । सुभीता । उ०—(क) चलौ बसौ वृन्दावन माहीं । सकल सुपास सहित सो आहीं ।—विश्राम । (ख) आया ताकी सघन निहारी । बैठो सिमिटि सुपास विचारी ।—विश्राम । (ग) यात्रियों के लिये सब तरह का सुपास और आराम है ।—गदाधरसिंह ।

सुपासी-वि० [हिं० सुपास+ई (प्रत्य०)] सुख देनेवाला । आनंददायक । उ०—(क) बालक सुभग देखि पुरवासी । होत भए सब, तासु सुपासी ।—रघुराज । (ख) षोडश भक्त अनन्य उपासी । पयहारी के शिष्य सुपासी ।—रघुराज ।

सुपिंगला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जीवंती । डोडी शाक । (२) ज्योतिष्मती । माल्कंगनी ।

सुपीत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाजर । गर्जर । (२) पीली कटसरैया ।

पीत सिटी। (३) पीतसार या चंदन। (४) ज्योतिष में पाँचवें मुहूर्त का नाम।

वि० (१) उत्तम रूप से पीया हुआ। (२) बिलकुल पीला। गहरा पीला।

सुपीन–वि० [सं०] बहुत मोटा या बड़ा।

सुपुंसी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति सुपुरुष हो।

सुपुट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोलकंद। चमार आलू। (२) विष्णुकंद।

सुपुटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवती। वनमल्लिका।

सुपुत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीवक वृक्ष। (२) उत्तम पुत्र।

वि० जिसका पुत्र सुंदर और उत्तम हो। अच्छे पुत्रवाला।

सुपुत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका लता। पपड़ी।

वि० सुंदर या उत्तम पुत्रवाली।

सुपुरुष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुंदर पुरुष। (२) सत्पुरुष। सज्जन। भला मानस।

सुपुर्द–संज्ञा पुं० दे० "सपुर्द"।

सुपुष्करा†–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थल कमलिनी। स्थल पद्मिनी।

सुपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लौंग। लवंग। (२) आहुल्य। तरवट। तरवड़। (३) प्रपौंडरीक। पुंडेरिया। पुंडेरी। (४) परिपार्श्व। परास पीपल। (५) मुचकुंद वृक्ष। (६) शहतूत। तूत। (७) महादारु। (८) पारिभद्र। फरहद। (९) शिरीष। सिरिस। (१०) हरिद्रु। हलदुआ। (११) बड़ी सेवती। राजतरुणी। (१२) श्वेतार्क। सफेद आक। (१३) देवदारु। देवदार।

वि० सुंदर पुष्पों या फूलोंवाला। जिसमें सुंदर फूल हों।

सुपुष्पक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिरीष वृक्ष। सिरिस। (२) मुचकुंद। (३) श्वेतार्क। सफेद आक। (४) हरिद्रु। हलदुआ। (५) गर्दभांड। परास पीपल। (६) राजतरुणी। बड़ी सेवती।

सुपुष्पा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कोशातकी। तरोई। तुरई (२) द्रोणपुष्पी। गूमा। (३) शतपुष्पा। सौंफ। (४) शतपत्री सेवती।

सुपुष्पिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का विधारा। जीर्णदारु। (२) शतपुष्पी। सौंफ। (३) मिश्रेया। सोआ। (४) पाटला। पाढ़र। (५) अहिपवल्ली। पाताल गारुड़ी। (६) शतपुष्पी। बनसनई।

सुपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्वेत अपराजिता। सफेद कोयल लता। (२) शतपुष्पी। सौंफ। (३) मिश्रेया। सोआ। (४) कदली। केला। (५) द्रोणपुष्पी। गूमा। (६) वृद्धदारु। विधारा।

सुपूत–वि० [सं०] अत्यंत पूत या पवित्र।

वि० [सं० सु+हिं० पूत] अच्छा पुत्र। सुपुत्र। सपूत।

सुपूती–संज्ञा स्त्री० [हिं० सुपूत+ई (प्रत्य०)] (१) सुपूत होने का भाव। सपूतपन। उ०—करै सुपूती सोइ सुत ठीको।—कबीर। (२) अच्छे पुत्रवाली स्त्री।

सुपूर–संज्ञा पुं० [सं०] बीजपूर। बिजौरा नीबू।

वि० सहज में पूर्ण होने योग्य।

सुपूरक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगस्त। वकवृक्ष। (२) बिजौरा नीबू।

सुपेतीꕫ†–संज्ञा स्त्री० दे० "सफेदी"।

सुपेद†–वि० दे० "सफेद"।

सुपेदी†–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सफेदी] (१) सफेदी। उज्ज्वलता। (२) ओढ़ने की रजाई। (३) बिछाने की तोशक। (४) बिछौना। बिस्तर।

सुपेली–संज्ञा स्त्री० [हिं० सूप+एली (प्रत्य०)] छोटा सूप।

सुपैदा–संज्ञा पुं० दे० "सफेदा"।

सुप्त–वि० [सं०] (१) सोया हुआ। निद्रित। शयित। (२) सोने के लिये लेटा हुआ। (३) ठिठुरा हुआ। (४) बंद। मुँदा हुआ। मुद्रित। (जैसे फूल) (५) अकर्मण्य। बेकार। (६) सुस्त।

सुप्तक–संज्ञा पुं० [सं०] निद्रा। नींद।

सुप्तघातक–वि० [सं०] (१) निद्रित अवस्था में हनन या वध करनेवाला। (२) हिंस्र। खूँखार।

सुप्तघ्न–संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।

वि० दे० "सुप्तघातक"।

सुप्तजन–संज्ञा पुं० [सं०] अर्द्धरात्रि। (इस समय प्रायः लोग सोए रहते हैं।)

सुप्तज्ञान–संज्ञा पुं० [सं०] स्वप्न।

विशेष—निद्रितावस्था में जो स्वप्न दिखाई देता है, वह जाग्रत अवस्था के समान ही जान पड़ता है; इसी से उसे सुप्तज्ञान कहते हैं।

सुप्तता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुप्त होने का भाव। (२) निद्रा। नींद।

सुप्तप्रबुद्ध–वि० [सं०] जो अभी सोकर उठा हो।

सुप्तप्रलपित–संज्ञा पुं० [सं०] निद्रितावस्था में होनेवाला प्रलाप। सोए सोए बकना।

सुप्तमाली–संज्ञा पुं० [सं० सुप्तमालिन्] पुराणानुसार तेईसवें कल्प का नाम।

सुप्तवाक्य–संज्ञा पुं० [सं०] निद्रित अवस्था में कहे हुए शब्द या वाक्य।

सुप्तविग्रह–वि० [सं०] निद्रित। सोया हुआ।

सुप्तविज्ञान–संज्ञा पुं० [सं०] स्वप्न। सुपना। ख्वाब।

सुप्तस्थ–वि० [सं०] निद्रित। सोया हुआ।

सुप्तांग–संज्ञा पुं० [सं०]. वह अंग जिसमें चेष्टा न हो। निश्चेष्ट अंग।

सुसांगता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुसांग का भाव । अंगों की निश्चेष्टता ।

सुप्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निद्रा । नींद । (२) निंदास । ऊँघाई । (३) अंग की निश्चेष्टता । सुसांगता । (४) प्रत्यय । विश्वास । एतबार ।

सुप्तोत्थित–वि० [सं०] निद्रा से जागरित । जो अभी सोकर उठा हो ।

सुप्रकेत–वि० [सं०] ज्ञानवान् । बुद्धिमान् ।

सुप्रचेता–वि० [सं० सुप्रचेतस्] बहुत बुद्धिमान् । बहुत समझदार ।

सुप्रज–वि० दे० "सुप्रजा" ।

सुप्रजा–वि० [सं० सुप्रजस्] उत्तम और बहुत संतान से युक्त । उत्तम और अधिक संतानवाला ।

संज्ञा स्त्री० (१) उत्तम संतान । अच्छी औलाद । (२) उत्तम प्रजा । अच्छी रिआया ।

सुप्रजात–वि० [सं०] बहुत सी संतानोंवाला । जिसके बहुत से बाल बच्चे हों ।

सुप्रज्ञ–वि० [सं०] बहुत बुद्धिमान् ।

सुप्रतर–वि० [सं०] सहज में पार होने योग्य (नदी आदि) ।

सुप्रतार–वि० दे० सुप्रतर" ।

सुप्रतिज्ञ–वि० [सं०] जो अपनी प्रतिज्ञा से न हटे । दृढ़प्रतिज्ञ ।

सुप्रतिभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरा । शराब ।

सुप्रतिम–संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम ।

सुप्रतिष्ठ–वि० [सं०] (१) उत्तम प्रतिष्ठावाला । जिसकी लोग खूब प्रतिष्ठा या आदर सम्मान करते हों । (२) बहुत प्रसिद्ध । सुविख्यात । मशहूर । (३) सुंदर टाँगोंवाला ।

संज्ञा पुं० (१) सेना की एक प्रकार की व्यूह रचना । (२) एक प्रकार की समाधि । (बौद्ध)

सुप्रतिष्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में पाँच वर्ण होते हैं । इनमें से तीसरा और पाँचवाँ गुरु तथा पहला, दूसरा और चौथा वर्ण लघु होता है । (२) मंदिर या प्रतिमा आदि की स्थापना । (३) स्कंद की एक मातृका का नाम । (४) अभिषेक । (५) उत्तम स्थिति । (६) सुनाम । प्रसिद्धि । शोहरत ।

सुप्रतिष्ठित–वि० [सं०] (१) उत्तम रूप से प्रतिष्ठित । (२) सुंदर टाँगोंवाला ।

संज्ञा पुं० (१) गूलर । उदुंबर । (२) एक प्रकार की समाधि ।

सुप्रतिष्ठितचरित्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम ।

सुप्रतिष्ठिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम ।

सुप्रतीक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । (२) कामदेव । (३) ईशान कोण का दिग्गज ।

वि० (१) सुरूप । सुंदर । खूबसूरत । (२) साधु । सज्जन ।

सुप्रतीकिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुप्रतीक नामक दिग्गज की स्त्री ।

सुप्रदाद्रि–वि० [सं०] बहुत उदार । बड़ा दानी । दाता ।

सुप्रदर्श–वि० [सं०] जो देखने में सुंदर हो । प्रियदर्शन । खूबसूरत ।

सुप्रदोहा–वि० [सं०] सहज में दूही जानेवाली (गाय) । जिस (गाय) को दूहने में कोई कठिनाई न हो ।

सुप्रधृष्य–वि० [सं०] जो सहज में अभिभूत या पराजित किया जा सके । आसानी से जीता जाने वाला ।

सुप्रबुद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] शाक्य बुद्ध ।

वि० जिसे यथेष्ट बोध या ज्ञान हो । अत्यंत बोधयुक्त ।

सुप्रभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक दानव का नाम । (२) जैनियों के नौ बलों (जिनों) में से एक । (३) पुराणानुसार शाल्मली द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष ।

वि० (१) सुंदर प्रभा या प्रकाशयुक्त । (२) सुंदर । सुरूप । खूबसूरत ।

सुप्रभदेव–संज्ञा पुं० [सं०] शिशुपाल-वध के प्रणेता महाकवि माघ के पितामह का नाम ।

सुप्रभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बागुची । सोमराजी । (२) अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक । (३) स्कंद की एक मातृका का नाम । (४) सात सरस्वतियों में से एक । (५) सुंदर प्रकाश ।

संज्ञा पुं० एक वर्ष का नाम जिसके देवता सुप्रभ माने जाते हैं ।

सुप्रभात–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुंदर प्रभात या प्रातःकाल । (२) मंगलसूचक प्रभात । (३) प्रातःकाल पढ़ा जानेवाला स्तोत्र ।

सुप्रभाता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुराणानुसार एक नदी का नाम । (२) वह रात जिसकी प्रभात सुंदर हो ।

सुप्रभाव–संज्ञा पुं० [सं०] जिसमें सब प्रकार की शक्तियाँ हों । सर्वशक्तिमान् ।

सुप्रयुक्तशर–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बाण चलाने में सिद्धहस्त हो । अच्छा धनुर्धर ।

सुप्रयोगविशिख–संज्ञा पुं० दे० "सुप्रयुक्तशर" ।

सुप्रयोगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वायुपुराण के अनुसार दाक्षिणात्य की एक नदी का नाम ।

सुप्रलंभ–वि० [सं०] जो अनायास प्राप्त किया जा सके । सहज में मिल सकनेवाला । सुलभ ।

सुप्रलाप–संज्ञा पुं० [सं०] सुवचन । सुंदर भाषण ।

सुप्रसन्न–संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर का एक नाम ।

वि० (१) अत्यंत प्रफुल्ल । (२) अत्यंत निर्मल । (३) हर्षित । बहुत प्रसन्न ।

सुप्रसन्नक–संज्ञा पुं० [सं०] जंगली बर्बरी । वन बर्बरिका । कृष्णार्जक ।

सुप्रसरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसारिणी लता । गंधप्रसारिणी । पसरन ।

सुप्रसाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । (२) विष्णु । (३) स्कंद का एक पार्षद । (४) एक असुर का नाम । (५) अत्यंत प्रसन्नता ।
वि० अत्यंत प्रसन्न या कृपालु ।

सुप्रसादा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

सुप्रसारा–संज्ञा स्त्री० दे० सुप्रसरा" ।

सुप्रसिद्ध–वि० [सं०] बहुत प्रसिद्ध । सुविख्यात । बहुत मशहूर ।

सुप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक गंधर्व का नाम ।
वि० अत्यंत प्रिय । बहुत प्यारा ।

सुप्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक अप्सरा का नाम । (२) सोलह मात्राओं का एक वृत्त जिसमें अंतिम वर्ण के अतिरिक्त शेष सब वर्ण लघु होते हैं । यह एक प्रकार की चौपाई है । यथा—तबहुँ न लखन उतार कछु दयऊ ।

सुप्रीम कोर्ट–संज्ञा पुं० [अं०] प्रधान या उच्च न्यायालय । सब से बड़ी कचहरी ।
विशेष—ईस्ट इंडिया कंपनी के राजत्व काल में कलकत्ते में सुप्रीम कोर्ट था, जिसमें तीन जज बैठते थे । अनन्तर महारानी विक्टोरिया के राजत्व काल में सुप्रीम कोर्ट तोड़ दिया गया और उसके स्थान पर हाई कोर्ट की स्थापना की गई ।

सुफरा–संज्ञा पुं० [देश०] देगुल पर बिछाने का कपड़ा ।

सुफल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटा अमलतास । कर्णिकार । (२) बादाम । (३) अनार । दाड़िम । (४) बेर । बदर । (५) मूँग । मुद्ग । (६) कैथ । कपित्थ । (७) बिजौरा नीबू । मातुलुंग । (८) सुंदर फल । (९) अच्छा परिणाम ।
वि० (१) सुंदर फलवाला । (अस्त्र) (२) सफल । कृतकार्य । कृतार्थ । कामयाब ।

सुफलक–संज्ञा पुं० [सं०] एक यादव जो अक्रूर का पिता था ।

सुफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रायण । इंद्रवारुणी । (२) पेठा । कुम्हड़ा । कुष्मांड । (३) गंभारी । कांस्मरी । (४) केला । कदली । (५) मुनक्का । कपिला द्राक्षा ।
वि० (१) सुंदर या बहुत फल देनेवाली । अधिक फलोंवाली । (२) सुंदर फलवाली । जैसे,—तलवार ।

सुफेद–वि० दे० "सफेद" ।

सुफेन संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन ।

सुबंध–संज्ञा पुं० [सं०] तिल ।
वि० अच्छी तरह बँधा हुआ ।

सुबंधु–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।
वि० उत्तम बंधुओंवाला । जिसके अच्छे बंधु या मित्र हों ।

सुबड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] टल्ही चाँदी । ताँबा मिली हुई चाँदी ।

सुबभ्रु–वि० [सं०] (१) धूसर । (२) चिकनी भौंहवाला ।

सुबरनी–संज्ञा स्त्री० [सं० सुवर्ण ?] छड़ी ।

सुबल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिवजी का एक नाम । (२) एक पक्षी (वैनतेय की संतान) । (३) सुमति के एक पुत्र का नाम । (४) गंधार का एक राजा जो शकुनि का पिता और धृतराष्ट्र का ससुर था । (५) पुराणानुसार भौत्य मनु के पुत्र का नाम । (६) श्रीकृष्ण का एक सखा ।
वि० अत्यंत बलवान् । बहुत मजबूत ।

सुबलपुर–संज्ञा पुं० [सं०] कीकट राज्य का एक प्राचीन नगर ।

सुबह–संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रातःकाल । सबेरा ।

सुबहान–संज्ञा पुं० दे० "सुभान" । उ०—आब आतश अर्श कुरसी सूरते सुबहान । सिरंः सिफत करदा बूदंद मारफत मुकाम ।—दादू ।

सुबहान अल्ला–अव्य० [अ०] अरबी का एक पद जिसका प्रयोग किसी बात पर हर्ष या आश्चर्य प्रकट करते हुए किया जाता है । वाह वाह ! क्यों न हो ! धन्य है ।

सुबाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देवता । (२) एक उपनिषद् का नाम । (३) उत्तम बालक ।
वि० निर्बोध । अबोध । अज्ञान ।

सुबास–संज्ञा स्त्री० [सं० सु+वास] अच्छी महक । सुगंध ।
संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का धान जो अगहन महीने में होता है और जिसका चावल वर्षों तक रह सकता है । (२) सुंदर निवासस्थान ।

सुबासना–संज्ञा स्त्री० [सं० सु+वास] सुगंध । खुशबू । अच्छी महक । उ०—कहि लहि कौन सकै दुरी सोनजुही मैं जाइ । तन की सहज सुबासना देती जो न बताइ ।—बिहारी ।
क्रि० स० सुबासित करना । सुगंधित करना । महकाना ।

सुबासिक–वि० [सं० सु+वास] सुबासित । सुगंधित । खुशबूदार ।
उ०—रहा जो कनक सुबासिक ठाऊँ । कस न होय हीरा मनि नाऊँ ।—जायसी ।

सुबासित–वि० दे० "सुवासित" ।

सुबाहु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक नागासुर । (२) स्कंद का एक पार्षद । (३) एक दानव का नाम । (४) एक राक्षस का नाम । (५) एक यक्ष का नाम । (६) धृतराष्ट्र का पुत्र और चेदि का राजा । (७) पुराणानुसार श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम । (८) शत्रुघ्न का एक पुत्र । (९) प्रतिबाहु का एक पुत्र । (१०) कुवलयाश्व का एक पुत्र । (११) एक बोधिसत्व का नाम । (१२) एक वानर का नाम ।
वि० दृढ़ या सुंदर बाहोंवाला । जिसकी बाहें अच्छी और मजबूत हों ।
संज्ञा स्त्री० [सं० सुबाहु] एक अप्सरा का नाम ।

सुबाहुक–संज्ञा पुं० [सं०] एक यक्ष का नाम ।

सुबाहुशत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र का एक नाम।
सुबिस्ता-संज्ञा पुं० दे० "सुभीता"।
सुबीज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) पोस्तदाना। खसखस। (३) उत्तम बीज।
वि० उत्तम बीजवाला। जिसके बीज उत्तम हों।
सुबीता-संज्ञा पुं० दे० "सुभीता"।
सुबुक-वि० [फा०] (१) हलका। कम बोझ का। भारी का उलटा। (२) सुंदर। खूबसूरत। उ०—बसन फटे उपटे सुबुक निबुक ददोरे हाथ।—रामसहाय।
यौ०—सुबुक रंग = सोना रंगने का एक प्रकार।
संज्ञा पुं० घोड़े की एक जाति। इस जाति के घोड़े मेहनती और हिम्मती होते हैं। इनका कद मझोला होता है। दौड़ने में ये बड़े तेज होते हैं। इन्हें दौड़ाक भी कहते हैं।
सुबुक रंदा-संज्ञा पुं० [फा० सुबुक + हिं० रंदा] लोहे का एक औजार जो बढ़इयों के पेचकश की तरह का होता है। इसकी धार तेज होती है। इससे बर्तनों की कोर आदि छीलते हैं।
सुबुद्धि-वि० [सं०] उत्तम बुद्धिवाला। बुद्धिमान्।
संज्ञा स्त्री० उत्तम बुद्धि। अच्छी अक्ल।
सुबुध-संज्ञा पुं० [सं० बुद्धि] बुद्धि। अक्ल। (हिं०)
वि० [सं०] (१) बुद्धिमान्। अक्लमंद। (२) सावधान। सतर्क।
सुबू-संज्ञा पुं० दे० "सुबह"। उ०—जो निसि दिवस न हरि भजि पैये। तदपि न साँस सुबू बिसरैये।—विश्राम।
सुबूत-संज्ञा पुं० दे० "सबूत"।
संज्ञा पुं० [अ०] वह जिससे कोई बात साबित हो। प्रमाण।
सुबोध-वि० [सं०] (१) अच्छी बुद्धिवाला। (२) जो कोई बात सहज में समझ सके। जिसे अनायास समझाया जा सके।
संज्ञा पुं० अच्छी बुद्धि। अच्छी समझ।
सुब्रह्मण्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) विष्णु। (३) कार्त्तिकेय। (४) उद्गाता पुरोहित या उसके तीन सहकारियों में से एक। (५) दक्षिण भारत का एक प्राचीन प्रांत।
वि० ब्रह्मण्ययुक्त। जिसमें ब्रह्मण्य हो।
सुब्रह्मण्य क्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ जो मद्रास प्रदेश के दक्षिण कनाड़ा जिले में है।
सुब्रह्मण्य तीर्थ-संज्ञा पुं० दे० "सुब्रह्मण्य क्षेत्र"।
सुब्रह्म वासुदेव-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।
सुभंग-संज्ञा पुं० [सं०] नारियल का पेड़। नारिकेल वृक्ष।
सुभ-वि० दे० "शुभ"।
सुभग-वि० [सं०] (१) सुंदर। मनोहर। मनोरम। (२) ऐश्वर्य-शाली। (३) भाग्यवान्। खुशकिस्मत। (४) प्रिय। प्रियतम। (५) सुखद। आनंददायक।
संज्ञा पुं० (१) शिव। (२) सोहागा। टंकण। (३) चंपा। चंपक। (४) अशोक वृक्ष। (५) पीली कटसरैया। पीतझिंटी। लाल कटसरैया। रक्तझिंटी। (७) भूरि छरीला। पत्थर का फूल। शैलेय। शैलाख्य। शिलापुष्प। (८) गंधक। गंध पाषाण। (९) सुबल के एक पुत्र का नाम। (१०) जैनों के अनुसार वह कर्म जिससे जीव सौभाग्यवान् होता है।
सुभगता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुभग होने का भाव। (२) सुंदरता। सौंदर्य। खूबसूरती। (३) प्रेम। (४) स्त्री के द्वारा होनेवाला सुख।
सुभगदत्त-संज्ञा पुं० [सं०] भौमासुर का पुत्र।
सुभगसेन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन राजा जो सिकंदर के आक्रमण के समय पश्चिम भारत के एक प्रांत में शासन करता था।
सुभगा-वि० [स्त्री०] (१) सुंदरी। खूबसूरत (स्त्री)। (२) (स्त्री) जिसका पति जीवित हो। सौभाग्यवती। सुहागिन।
संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जो अपने पति को प्रिय हो। प्रियतमा पत्नी। (२) स्कंद की एक मातृका का नाम। (३) पाँच वर्ष की कुमारी। (४) एक प्रकार की रागिनी। (५) केवटी मोथा। कैवर्त्ती मुस्तक। (६) नीली दूब। नील दूर्वा। (७) हलदी। हरिद्रा। (८) तुलसी। सुरसा। (९) दहिंगना। प्रियंगु। वनिता। (१०) कस्तूरी। मृगनाभि। (११) सोना केला। सुवर्ण कदली। (१२) बेला। मोतिया। वनमल्लिका। (१३) चमेली। जाती पुष्प।
सुभगानंदनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक भैरव का नाम। काली पूजा के समय इनकी पूजा का भी विधान है।
सुभगाह्वया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वैवर्तिका लता। (२) हलदी। (३) सरिवन। (४) तुलसी। (५) नीली दूब। (६) सोना केला।
सुभग्ग-वि० दे० "सुभग"। उ०—मालव भूप उदग्ग चलेउ कर खग्ग अग्ग जित। सम सुभग्ग आभरन मग्ग जगमग्ग नग्ग सित।—गि० दास।
सुभट-संज्ञा पुं० [सं०] महान् योद्धा। अच्छा सैनिक। उ०—रुक्म और कलिंग को राउ मारयो, प्रथम बहुरि तिनके बहुत सुभट मारे।—सूर।
सुभटवंत-वि० [सं० सुभट + वत्] अच्छा योद्धा। उ०—हलधर बलराम यह सुभटवंत है कोऊ हल मुसल शस्त्र अपना सँभारयो।—सूर।
सुभट वर्मा-संज्ञा पुं० एक हिंदू राजा जो ईस्वी १२वीं शताब्दी के अंत और १३वीं के आरंभ में विद्यमान था।
सुभट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत विद्वान् व्यक्ति। बहुत बड़ा पंडित।

सुभड़-संज्ञा पुं० [सं० सुभट] सुभट। शूरवीर। (डिं०)
सुभद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) सनत्कुमार का नाम। (३) वसुदेव का एक पुत्र जो पौरवी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। (४) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। (५) इध्मजिह्व के एक पुत्र का नाम। (६) प्लक्ष द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष का नाम। (७) सौभाग्य। (८) कल्याण। मंगल।
वि० (१) भाग्यवान्। (२) भला। सज्जन।
सुभद्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवरथ। (२) बेल। बिल्ववृक्ष।
सुभद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्रीकृष्ण की बहन और अर्जुन की पत्नी।
विशेष—एक बार अर्जुन रैवतक पर्वत पर सुभद्रा को देखकर मोहित हो गया। यह देख श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सुभद्रा को बलपूर्वक हरण कर उससे विवाह करने का आदेश दिया। तदनुसार अर्जुन सुभद्रा को द्वारका से हरण कर ले गया।
(२) दुर्गा का एक रूप। (३) पुराणानुसार एक गौ का नाम। (४) संगीत में एक श्रुति का नाम। (५) दुर्गम की पत्नी। (६) अनिरुद्ध की पत्नी। (७) एक चत्वर का नाम। (८) बलि की पुत्री और अवीक्षित की पत्नी। (९) एक नदी। (१०) सरिवन। अनंतमूल। श्यामलता। (११) गंभारी। काश्मरी। (१२) मकड़ा घास। घृतमंडा।
सुभद्राणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमान। त्रायमाण लता। त्रायंती।
सुभद्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्रीकृष्ण की छोटी बहन। (२) एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में न न र ल ग (।।।, ।।।, ऽ।ऽ, ।, ऽ) होता है।
सुभद्रेश-संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन।
सुभर॥-वि० दे० "शुभ्र"। उ०—सुभर समुँद अस नयन दुइ, मानिक भरे तरंग। आवहिं तीर फिरावहीं, काल भँवर तेहि संग।—जायसी।
सुभव-वि० [सं०] उत्तम रूप से उत्पन्न।
संज्ञा पुं० (१) एक इक्ष्वाकुवंशी राजा का नाम। (२) साठ संवत्सरों में से अंतिम संवत्सर का नाम।
सुभसत्तरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो पति को अत्यंत प्रिय हो। सुभगा स्त्री।
सुभांजन-संज्ञा पुं० [सं०] शुभांजन वृक्ष। सहिंजन।
सुभा-संज्ञा स्त्री० [सं० शुभा] (१) सुधा। (२) शोभा। (३) पर नारी। (४) हरीतकी। हड़। उ०—सुभा सुधा सोभा सुभा सुभा सिद्ध पर नारि। यहुरी सुभा हरीतकी हरिपद की रजधारि।—अनेकार्थ०।
सुभाइ॥†-संज्ञा पुं० दे० "स्वभाव"। उ०—कमलनाल सज्जन हियो दोनौं एक सुभाइ।—रसनिधि।
क्रि० वि० सहज भाव से। स्वभावतः। उ०—(क) कंटक सौं कंटक काढ्यो अपने हाथ सुभाइ।—सूर। (ख) अंग सुभाइ सुवास प्रकाशित लोपिहौ केशव क्यों करिकै।—केशव।
सुभाउ॥†-संज्ञा पुं० दे० "स्वभाव"। उ०—मुख प्रसन्न शीतल सुभाउ, निन देखत नैन सिराइ।—सूर।
सुभाग-वि० [सं०] भाग्यवान्। खुश किस्मत।
॥†संज्ञा पुं० दे० "सौभाग्य"।
सुभागा-संज्ञा स्त्री० [सं०] रौद्राश्व की एक पुत्री का नाम।
सुभागी-वि० [सं० सुभाग] भाग्यवान्। भाग्यशाली। खुश-किस्मत। उ०—कौन होगा जो न लेगा उस सुधा का स्वाद। छोड़ प्रांतिक गर्व अपना और व्यर्थ विवाद। जो सुभागी चख सकेंगे वह रसाल प्रसाद। वे कदापि नहीं करेंगे नागरी प्रतिवाद।—सरस्वती।
सुभागीन-संज्ञा पुं० [सं० सौभाग्य + ई० (प्रत्य०)] [स्त्री० सुभागिन] अच्छे भाग्यवाला। भाग्यवान्। सुभग। उ०—कोक कलान कै बेनी प्रवीन वही अबलानि मैं एक पद्मी है। आयु लखै विपरीत मैं आँगी, सुभागीन यों सुख ऐसी कढ़ी है।—सुंदरीसर्वस्व।
सुभाग्य-वि० [सं०] अत्यंत भाग्यशाली। बहुत बड़ा भाग्यवान्।
संज्ञा पुं० दे० "सौभाग्य"।
सुभान-अव्य० [अ० सुबहान] धन्य। वाह वाह। जैसे,—सुभान तेरी कुदरत।
यौ०—सुभान अल्ला = ईश्वर धन्य है। (प्रायः इस पद का व्यवहार कोई अद्भुत पदार्थ या अनोखी घटना देखकर किया जाता है।)
सुभाना॥†-क्रि० अ० [हिं० शोभना] शोभित होना। देखने में भला जान पड़ना। (क०) उ०—भो निकुंज सुखपुंज सुभाना। मंडप मंडन मंडित नाना।—गोपाल।
सुभानु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चतुर्थ हुतास नामक युग के दूसरे वर्ष का नाम। (२) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।
वि० सुंदर या उत्तम प्रकाश से युक्त। सुप्रकाशमान्।
सुभाय॥†-संज्ञा पुं० दे० "स्वभाव"। उ०—फल आए तरुवर झुके झुकत मेघ जल लाय। विभौ पाय सज्जन झुके यह परकाजि सुभाय।—लक्ष्मणसिंह।
सुभायक॥-वि० [सं० स्वाभाविक] स्वाभाविक। स्वभावतः। उ०—अभिराम सचिक्कण श्याम सुगंध के धामहु ते जे सुभायक के। प्रतिकूल भये दुखदायक सबै किधौं बाल शृंगार के घायक के।—केशव।
सुभाव॥†-संज्ञा पुं० दे० "स्वभाव"। उ०—(क) कहा सुभाव परयो सखि तेरो यह बिनवत हौं तोहिं।—सूर। (ख) और के हास विलास न भावत साधुन को यह सिद्ध सुभाव।—केशव।

सुभावित-वि० [सं०] उत्तम रूप से भावना की हुई (औषध)।
सुभाषण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) युयुधान के एक पुत्र का नाम। (२) सुंदर भाषण।
सुभाषित-संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।
वि० सुंदर रूप से कहा हुआ। अच्छी तरह कहा हुआ।
सुभाषी-वि० [सं० सुभाषिन्] उत्तम रूप से बोलनेवाला। मिष्टभाषी।
सुभास-संज्ञा पुं० [सं०] सुधन्वा के एक पुत्र का नाम।
वि० सुप्रकाशमान्। खूब चमकीला।
सुभिक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा काल या समय जिसमें भिक्षा या भोजन खूब मिले और अन्न खूब हो। सुकाल। उ०—सुनि पद परत जलद बहु बर्षें। भयो सुभिक्ष प्रजा सब हर्षें।—रघुराज।
सुभिक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] धौ के फूल। धातु पुष्पिका।
सुभिषज्-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तम चिकित्सा करनेवाला। अच्छा चिकित्सक।
सुभी-वि० स्त्री० [सं० शुभ] शुभकारक। मंगलकारक। उ०—है जलधार हार मुकुता मनों बक पंगति कुसुदमाल सुभी। गिरा गँभीर गरज मनु सुनि सखी स्वाति के श्रवन देखु भी।—सूर।
सुभीता-संज्ञा पुं० [देश०] (१) सुगमता। आसानी। सहूलियत। (२) सुअवसर। सुयोग। (३) आराम। चैन। (क्व०)
सुभीम-संज्ञा पुं० [सं०] एक दैत्य का नाम।
वि० अत्यंत भीषण। बहुत भयावना।
सुभीमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रीकृष्ण की एक पत्नी का नाम।
सुभीरक-संज्ञा पुं० [सं०] ढाक का पेड़। पलाश वृक्ष।
सुभुज-वि० [सं०] सुंदर भुजाओंवाला। सुबाहु।
सुभुजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।
सुभूता-संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा का नाम जिसमें प्राणी भले प्रकार स्थित होते हैं। (छांदोग्य)
सुभूति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुशल। क्षेम। मंगल। (२) उन्नति। तरक्की।
सुभूतिक-संज्ञा पुं० [सं०] बेल का पेड़। बिल्व वृक्ष।
सुभूम-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तवीर्य जो जैनियों के आठवें चक्रवर्ती थे।
सुभूमि-संज्ञा पुं० [सं०] उग्रसेन के एक पुत्र का नाम।
सुभूमिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम जो महाभारत के अनुसार सरस्वती नदी के किनारे था।
सुभूमिप-संज्ञा पुं० [सं०] उग्रसेन के एक पुत्र का नाम।
सुभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] उग्रसेन के एक पुत्र का नाम।
वि० सुंदर भूषणों से अलंकृत। जो अच्छे अलंकार पहने हो।
सुभूषित-वि० [सं०] उत्तम रूप से भूषित। भली भाँति अलंकृत।
सुभृश-वि० [सं०] अत्यंत। बहुत अधिक।
सुभोग्य-वि० [सं०] सुख से भोगने योग्य। अच्छी तरह भोगने के लायक।
सुभौटी॰‡-संज्ञा स्त्री० [सं० शोभा] शोभा। उ०—मौन तें कौन सुभौटी रहे, बिन बोले खुले घर को न किवारो।—हनुमान।
सुभौम-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के एक चक्रवर्ती राजा का नाम जो कार्त्तवीर्य्य का पुत्र था।
विशेष—जैन हरिवंश में लिखा है कि जब परशुराम ने कार्त्तवीर्यार्जुन का वध किया, तब कार्त्तवीर्य की पत्नी अपने बच्चे सुभौम को लेकर कुशिकाश्रम में चली गई और वहीं उसका लालन पालन तथा शिक्षा दीक्षा हुई। बड़े होने पर सुभौम ने अपने पिता के वध का बदला लेने के लिये बीस बार पृथ्वी को ब्राह्मण-शून्य किया और इस प्रकार क्षत्रियों का प्राधान्य स्थापित किया।
सुभ्र-वि० दे० "शुभ्र"
संज्ञा पुं० [डिं०] जमीन में का बिल।
सुभ्राज-संज्ञा पुं० [सं०] देवभ्राज के एक पुत्र का नाम।
सुभ्रु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नारी। स्त्री। औरत। (२) स्कंद की एक मातृका का नाम।
वि० सुंदर भौंहोंवाला। जिसकी भँवें सुंदर हों।
सुमंगल-वि० [सं०] अत्यंत शुभ। कल्याणकारी। (२) सदाचारी।
संज्ञा पुं० एक प्रकार का विष।
सुमंगला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मकड़ा नामक घास। (२) स्कंद की एक मातृका का नाम। (३) एक अप्सरा का नाम। (४) एक नदी जो कालिकापुराण के अनुसार हिमालय से निकलकर मणिकूट (कामाख्या) प्रदेश में बहती है।
सुमंगली-संज्ञा स्त्री० [सं० सुमंगल] विवाह में सप्तपदी पूजा के बाद पुरोहित को दी जानेवाली दक्षिणा।
विशेष—सप्तपदी पूजा के बाद कन्या-पक्ष का पुरोहित वर के हाथ में सेंदुर देता है और वर उसे वधू के मस्तक में लगा देता है। इसके उपलक्ष में पुरोहित को जो नेग दिया जाता है, उसे सुमंगली कहते हैं।
सुमंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।
सुमंत-संज्ञा पुं० [सं० सुमन्त्र] राजा दशरथ का मंत्री और सारथि। जब रामचंद्र वन को जाने लगे थे, तब यही सुमंत (सुमंत्र) उन्हें रथ पर बैठाकर कुछ दूर छोड़ आया था।
सुमंतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक मुनि का नाम जो वेदव्यास के शिष्य, अथर्ववेद के शाखाप्रचारक तथा एक स्मृति या धर्मशास्त्र के प्रणेता थे। (२) जह्नु के एक पुत्र का नाम।

सुमित्रानंदन–संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मण और शत्रुघ्न ।

सुमित्र्य–वि० [सं०] उत्तम मित्रोंवाला । जिसके अच्छे मित्र हों ।

सुमिरणꣻ–संज्ञा पुं० दे० "स्मरण" ।

सुमिरनाꣻ|–क्रि० स० दे० "सुमरना" । उ०—जेहि सुमिरत सिधि होइ गणनायक करिवर वदन ।—तुलसी ।

सुमिरनी–संज्ञा स्त्री० दे० "सुमरनी" । उ०—अपनी सुमिरनी डारि दीन्ह्यो तुरत ही धारा बढ़ी ।—रघुराज ।

सुमिरिनिया|–संज्ञा स्त्री० दे० "सुमरनी" । उ०—पीतम इक सुमिरिनिया मुहि देइ जाहु—रहीम ।

सुमुख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । (२) गणेश । (३) गरुड़ के एक पुत्र का नाम । (४) द्रोण के एक पुत्र का नाम । (५) एक नागासुर । (६) एक असुर । (७) किन्नरों का राजा । (८) एक ऋषि । (९) एक वानर । (१०) पंडित । आचार्य । (११) एक प्रकार का जल पक्षी । (१२) एक प्रकार का शाक । (१३) एक राजा का नाम । (१४) राई । राजिका । राजसर्षप । (१५) वनबर्बरी । जंगली बर्बरी । (१६) श्वेत तुलसी । (१७) सुंदर मुख ।

वि० (१) सुंदर मुखवाला । (२) सुंदर । मनोरम । मनोहर । (३) प्रसन्न । (४) अनुकूल । कृपालु ।

सुमुखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदरी स्त्री ।

सुमुखी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जिसका मुख सुंदर हो । सुंदर मुखवाली स्त्री । (२) दर्पण । आइना । (३) संगीत में एक प्रकार की मूर्छना । (४) एक अप्सरा का नाम । (५) एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में ११ अक्षर होते हैं । इनमें से पहला आठवाँ तथा ग्यारहवाँ लघु और अन्य अक्षर गुरु होते हैं । (६) नील अपराजिता । नीली कोयल । (७) शंखपुष्पी । शंखाहुली । कौडियाली ।

सुमुष्टि–संज्ञा पुं० [सं०] बकायन । विषमुष्टि । महानिंब ।

सुमूर्त्ति–संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक गण का नाम ।

सुमूल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद सहिंजन । श्वेत शिग्रु । (२) उत्तम मूल ।

वि० उत्तम मूलवाला । जिसकी जड़ अच्छी हो ।

सुमूलक–संज्ञा पुं० [सं०] गाजर ।

सुमूला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरिवन । शालपर्णी । (२) पिठवन । पृश्निपर्णी ।

सुमृग–संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि जहाँ बहुत से जंगली जानवर हों । शिकार खेलने के लिये अच्छा मैदान ।

सुमृतꣻ–संज्ञा स्त्री० दे० "स्मृति" । उ०—श्रुति-गुरु साधु-सुमृत-संमत यह दृश्य सदा दुखकारी ।—तुलसी ।

सुमृतिꣻ–संज्ञा स्त्री० दे० "स्मृति" । उ०—देव कवितान पुण्य कीरति वितान, तेरे *सुमृति पुराण गुण गान श्रुति भरिये* ।—देव ।

सुमेखल–संज्ञा पुं० [सं०] मूँज । मुंजतृण ।

सुमेड़ी|–संज्ञा स्त्री० [देश०] खाट बुनने का बाध ।

सुमेद–संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार एक पर्वत का नाम ।

सुमेध–वि० दे० "सुमेधा" । उ०—ताहि कहत आक्षेप हैं भूषन सुकवि सुमेध ।—भूषण ।

सुमेधा–वि० [सं० सुमेधस्] उत्तम बुद्धिवाला । सुबुद्धि । बुद्धिमान् ।

संज्ञा पुं० (१) चाक्षुष मन्वंतर के एक ऋषि का नाम । (२) वेदमित्र के एक पुत्र का नाम । (३) पाँचवें मन्वंतर के विशिष्ट देवता । (४) पितरों का एक गण या भेद ।

संज्ञा स्त्री० मालकंगनी । ज्योतिष्मती लता ।

सुमेध्य–वि० [सं०] अत्यंत पवित्र । बहुत पवित्र ।

सुमेर–संज्ञा पुं० [सं० सुमेरु] (१) सुमेरु पर्वत । उ०—(क) शोभित सुंदर केशव कामिनि जिमि सुमेर पर घन सह दामिनि ।—गिरिधर । (ख) संपति सुमेर की कुबेर की जु पावै ताहि, तुरत लुटावत बिलंब उर धारै ना ।—पद्माकर । (२) गंगाजल रखने का बड़ा पात्र ।

सुमेरु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पुराणोक्त पर्वत जो सोने का कहा गया है ।

विशेष—भागवत के अनुसार सुमेरु पर्वतों का राजा है । यह सोने का है । इस भूमंडल के सात द्वीपों में प्रथम द्वीप जंबू द्वीप के—जिसकी लंबाई ४० लाख कोस और चौड़ाई ४ लाख कोस है—नौ वर्षों में से इलावृत्त नामक अभ्यंतर वर्ष में यह स्थित है । यह ऊँचाई में उक्त द्वीप के विस्तार के समान है । इस पर्वत का शिरोभाग १२८ हजार कोस, मूल देश ६४ हजार कोस और मध्य भाग ४ हजार कोस का है । इसके चारों ओर मंदर, मेरु मंदर, सुपार्श्व और कुमुद नामक चार आश्रित पर्वत हैं । इनमें से प्रत्येक की ऊँचाई और फैलाव ४० हजार कोस है । इन चारों पर्वतों पर आम, जामुन, कदंब और बड़ के पेड़ हैं जिनमें से प्रत्येक की ऊँचाई चार सौ कोस है । इनके पास ही चार ह्रद भी हैं जिनमें पहला दूध का, दूसरा मधु का, तीसरा ऊख के रस का और चौथा शुद्ध जल का है । चार उद्यान भी हैं जिनके नाम नंदन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र हैं । देवता इन उद्यानों में सुरांगनाओं के साथ विहार करते हैं । मंदार पर्वत के देवच्युत वृक्ष और मेरु पर्वत के जंबू वृक्ष के फल, बहुत स्थूल और विराट्काय होते हैं । इनसे दो नदियाँ—अरुणोदा और जंबू नदी—बन गई हैं । जंबू नदी के किनारे की जमीन की मिट्टी तो रस से सिक्त होने के कारण सोना ही हो गई है । सुपार्श्व पर्वत के महाकदंब वृक्ष से जो मधुधारा प्रवाहित होती है, उसका पान करनेवाले के मुँह से निकली हुई सुगंध चार सौ कोस तक

जाती है। कुमुद पर्वत का वट वृक्ष तो कल्पतरु ही है। यहाँ के लोग आजीवन सुख भोगते हैं। सुमेरु के पूर्व जठर और देवकूट, पश्चिम में पवन और पारियात्र, दक्षिण में कैलास और करवीर गिरि तथा उत्तर में त्रिशृंग और मकर पर्वत स्थित हैं। इन सब की ऊँचाई कई हजार कोस है। सुमेरु पर्वत के ऊपर मध्य भाग में ब्रह्मा की पुरी है, जिसका विस्तार हजारों कोस है। यह पुरी भी सोने की है। नृसिंहपुराण के अनुसार सुमेरु के तीन प्रधान शृंग हैं जो स्फटिक, वैदूर्य और रत्नमय हैं। इन शृंगों पर २१ स्वर्ग हैं जिनमें देवता लोग निवास करते हैं।

(२) शिवजी का एक नाम। (३) जप माला के बीच का बड़ा दाना जो और सब दानों के ऊपर होता है। इसी से जप का आरंभ और इसी पर उसकी समाप्ति होती है। (४) उत्तर ध्रुव। वि० दे० "ध्रुव"। (५) एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में १२ + ५ के विश्राम से १७ मात्राएँ होती हैं, अंत में लघु गुरु नहीं होते, पर यगण अत्यंत श्रुतिमधुर होता है। इसकी १,८ और १५वीं मात्राएँ लघु होती हैं। किसी किसी ने इसके एक चरण में १९ और किसी ने २० मात्राएँ मानी हैं। पर यह सर्वसम्मत नहीं है।

वि० (१) बहुत ऊँचा। (२) बहुत सुंदर।

सुमेरुजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुमेरु पर्वत से निकली हुई नदी।

सुमेरुवृत्त–संज्ञा पुं० [सं०] वह रेखा जो उत्तर ध्रुव से २३॥ अक्षांश पर स्थित है।

सुमेरुसमुद्र–संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर महासागर।

सुम्नी–वि० [सं० सुम्निन्] (१) दयालु। कृपालु। मेहरबान। (२) अनुकूल।

सुम्मा–संज्ञा पुं० [देश०] बकरा। (बाजारू) (२) दे० "सुंबा"।

सुम्मी–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) सुनारों का एक औजार जिससे वे घुंडी और बरेखी की नोक उभाड़ते हैं। (२) दे० "सुंबी"।

सुम्मीदार सबरा–संज्ञा पुं० [हिं० सुम्मी + फा० दार (प्रत्य०) + सबरा (औजार)] वह सबरा जिससे कसेरे बरतन में बुँदकी निकालते हैं।

सुम्ह–संज्ञा पुं० [सं० सुम्भ] एक जाति का नाम।

संज्ञा पुं० दे० "सुम"।

सुम्हार–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो युक्तप्रदेश में होता है।

सुयंवर–संज्ञा पुं० दे० "स्वयंवर"।

सुयजु–संज्ञा पुं० [सं० सुयजुस्] महाभारत के अनुसार भूमंयु के पुत्र का नाम।

सुयज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुचि प्रजापति के एक पुत्र का नाम जो आकूति के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। (२) वसिष्ठ के एक पुत्र का नाम। (३) ध्रुव के एक पुत्र का नाम। (४) उशीनर के एक राजा का नाम। (५) उत्तम यज्ञ।

वि० उत्तमता या सफलता से यज्ञ करनेवाला। जिसने उत्तमता से यज्ञ किया हो।

सुयज्ञा–संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभौम की पत्नी का नाम।

सुयत–वि० [सं०] (१) उत्तम रूप से संयत। सुसंयत। (२) जितेंद्रिय।

सुयम–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार देवताओं का एक गण जिनका जन्म सुयज्ञ की पत्नी दक्षिणा के गर्भ से हुआ था।

सुयमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियंगु।

सुयश–संज्ञा पुं० [सं०] अच्छा यश। अच्छी कीर्ति। सुख्याति। सुकीर्ति। सुनाम। जैसे,—आजकल चारों ओर उनका सुयश फैल रहा है।

वि० [सं० सुयशस्] उत्तम यशवाला। यशस्वी। कीर्तिमान्।

संज्ञा पुं० भागवत के अनुसार अशोकवर्धन के पुत्र का नाम।

सुयशा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दिवोदास की पत्नी का नाम। (२) एक अर्हत् की माता का नाम। (३) परीक्षित की एक स्त्री का नाम। (४) एक अप्सरा का नाम। (५) अवसर्पिणी।

सुयष्टव्य–संज्ञा पुं० [सं०] रैवत मनु के पुत्र का नाम।

सुयाति–संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार नहुष के एक पुत्र का नाम।

सुयाम–संज्ञा पुं० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार एक देवपुत्र का नाम।

सुयामुन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) राजभवन। राजप्रासाद। (३) एक प्रकार का मेघ। (४) एक पर्वत का नाम।

सुयुद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] धर्मयुद्ध। न्यायसम्मत युद्ध।

सुयोग–संज्ञा पुं० [सं०] सुंदर योग। संयोग। सुअवसर। अच्छा मौका। जैसे,—बड़े भाग्य से यह सुयोग हाथ आया है।

सुयोग्य–वि० [सं०] बहुत योग्य। लायक। काबिल। जैसे,—उनके दोनों पुत्र सुयोग्य हैं।

सुयोधन–संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के बड़े पुत्र दुर्योधन का एक नाम।

सुरंग–वि० [सं०] (१) जिसका रंग सुंदर हो। सुंदर रंग का। (२) सुंदर। सुडौल। उ०—(क) सब पुर देखि धनुषपुर देख्यो देखे महल सुरंग।—सूर। (ख) अलकावलि मुक्तावलि गूँथी डोर सुरंग विराजै।—सूर। (ग) गति हेरि कुरंग कुरंग फिरैं चतुरंग सुरंग सुरंग बने।—गि० दास। (३) रसपूर्ण। उ०—रसनिधि सुंदर मीत के रंग सुधाहिं नैन। मन पट कौं कर देत हैं तुरत सुरँग ये नैन।—रसनिधि।

संज्ञा पुं० (१) सिंगरफ। हिंगुल। (२) पतंग। बक्कम। (३) नारंगी। नागरंग। (४) रंग के अनुसार घोड़ों का एक भेद।

संज्ञा स्त्री० [सं० सुरंगा] (१) जमीन या पहाड़ के नीचे खोदकर या बारूद से उड़ाकर बनाया हुआ रास्ता जो लोगों के आने जाने के काम में आता है। जैसे,—इस पहाड़ में रेल कई सुरंगें पार करके जाती है। (२) किले या दीवार आदि के नीचे जमीन के अंदर खोदकर बनाया हुआ वह तंग रास्ता जिसमें बारूद आदि भरकर और उसमें आग लगाकर किला या दीवार उड़ाते हैं। उ०—भरि बारूद सुरंग लगावैं। पुरी सहित जदु भटन उड़ावैं।—गोपाल।

क्रि० प्र०—उड़ाना।—लगाना।

(३) एक प्रकार का यंत्र जिसमें बारूद से भरा हुआ एक पीपा होता है और जिसके ऊपर एक तार निकला हुआ होता है। यह यंत्र समुद्र में डुबा दिया जाता है और इसका तार ऊपर की ओर उठा रहता है। जब किसी जहाज का पेंदा इस तार से छू जाता है, तो अपनी भीतरी विद्युत्-शक्ति की सहायता से बारूद में आग लग जाती है जिसके फूटने से ऊपर का जहाज फटकर डूब जाता है। इसका व्यवहार प्रायः शत्रुओं के जहाज नष्ट करने में होता है। (४) वह सूराख जो चोर लोग दीवार में बनाते हैं। सेंध।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—सेंध मारना = सेंध लगाकर चोरी करना।

सुरंगद—संज्ञा पुं० [सं०] पतंग। बक्कम। आल।

सुरंगधातु—संज्ञा पुं० [सं०] गेरू मिट्टी।

सुरंगयुक—संज्ञा पुं० [सं० सुरंगयुज्] सेंध लगानेवाला। चोर।

सुरंगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कैवर्तिका लता। (२) सेंध।

सुरंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूर्वा। मुर्हरी। चुरनहार। (२) उपोदिका। पोई का साग। (३) श्वेत काकमाची। सफेद मकोय।

सुरंगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकनासा। कौआठोठी। (२) पुन्नाग। सुलतान चंपा। (३) रक्त शोभांजन। लाल सहिंजन। (४) आल का पेड़ जिससे आल का रंग बनता है।

सुरंजन—संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी का पेड़।

सुरंधक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन जनपद का नाम। (२) इस जनपद का निवासी।

सुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवता। (२) सूर्य। (३) पंडित। विद्वान्। (४) मुनि। ऋषि। (५) पुराणानुसार एक प्राचीन नगर का नाम जो चंद्रप्रभा नदी के तट पर था। (६) अग्नि का एक विशिष्ट रूप।

संज्ञा पुं० [सं० स्वर] स्वर। ध्वनि। आवाज। वि० दे० "स्वर"।

यौ०—सुरतान। सुरदीप।

क्रि० प्र०—छेड़ना।—देना।—भरना।—मिलाना।

मुहा०—सुर में सुर मिलाना = हाँ में हाँ मिलाना। चापलूसी करना। सुर भरना = किसी गाने या बजानेवाले को सहारा देने के लिये उसके साथ कोई एक सुर अलापना या बाजे आदि से निकालना।

सुरकंत⊛—संज्ञा पुं० [सं० सुर + कान्त] इंद्र। उ०—मतिमंत महा छितिकंत मनि यदि द्विरंत सुरकंत सम।—गिर० दास।

सुरक—संज्ञा पुं० [सं० सुर] नाक पर का वह तिलक जो भाल की आकृति का होता है। उ०—खौरि-पनिच, भृकुटी-धनुषु बधिकु समरु, तजि कानि। हनतु तरुन मृग तिलकसरु सुरक-भाल, भरि तानि।—बिहारी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सुरकना] सुरकने की क्रिया या भाव।

सुरकना—क्रि० स० [अनु०] (१) किसी तरल पदार्थ को धीरे धीरे हवा के साथ खींचते हुए पीना। (२) हवा के साथ ऊपर की ओर धीरे धीरे खींचना।

सुरकरी—संज्ञा पुं० [सं० सुरकरिन्] देवताओं का हाथी। दिग्गज। सुरराज। उ०—जु तू इच्छा याके करि विमल पानी पियन की। झुके आधो लंबे तन गगन में ज्यों सुरकरी।—राजा लक्ष्मणसिंह।

सुरकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० सुर + कली] एक रागिनी का नाम।

सुरकानन—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के विहार करने का वन।

सुरकारु—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के शिल्पकार, विश्वकर्मा।

सुरकार्मुक—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

सुरकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु। देवकाष्ठ।

सुरकुदाव⊛—संज्ञा पुं० [सं० सुर = स्वर, सं० कु + हिं० दाँव = धोखा] स्वर के द्वारा धोखा देना। स्वर बदलकर बोलना, जिससे लोग धोखे में आ जायँ। उ०—चौक चारु करि कूप तारु परिवार बाँधि धर। मुक्ति मोल करि खड्ग खोलि सिंधिहि निचोल वर। हय कुदाय दे सुरकुदाव गुन गाव रंक को। जासु भाव शिवधाम धाव धन ल्याउ लंक को।—केशव।

सुरकुलक—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार ईशान कोण में स्थित एक देश का नाम।

सुरकुल—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का निवासस्थान।

सुरकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

सुरकृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गिलोय। गुडुची।

सुरकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं या इंद्र की ध्वजा। (२) इंद्र। उ०—द्वारपाल के वचन सुनत नृप उठे समाज समेतू। लेन चले मुनि को अगुवाई जिमि विधि कहँ सुरकेतू।—रघुराज।

सुरक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोशाम। कोशाम्र। (२) सोन गेरू। स्वर्णगैरिक।

सुरक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक मुनि का नाम। (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

वि० उत्तम रूप से रक्षित। जिसकी भली भाँति रक्षा की गई हो।

सुरक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तम रूप से रक्षा करने की क्रिया। रखवाली। हिफ़ाज़त।

सुरक्षित-वि० [सं०] जिसकी भली भाँति रक्षा की गई हो। उत्तम रूप से रक्षित। अच्छी तरह रक्षा किया हुआ।

सुरक्षी-संज्ञा पुं० [सं० सुरक्षिन्] उत्तम या विश्वस्त रक्षक। अच्छा अभिभावक या रक्षक।

सुरखंडनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वीणा जो सुरमंडलिका भी कहलाती है।

सुरख-वि० दे० "सुर्ख"। उ०—हरषि हिये पर निय धरयो सुरख सीप को हार।—पद्माकर।

सुरखा-वि० दे० "सुर्ख"। उ०—सुरखा अरु संजाब सुरमई अवलख भारी।—सूदन।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लंबा पौधा जिसमें पत्ते बहुत कम होते हैं।

सुरखाब-संज्ञा पुं० [फ़ा०] चकवा।

मुहा०—सुरख़ाब का पर लगना = विलक्षणता या विशेषता होना। अनोखापन होना। जैसे,—तुम में क्या कोई सुरख़ाब का पर लगा है, जो पहले तुम्हें दें।

संज्ञा स्त्री० एक नदी का नाम जो बलख में बहती है।

सुरखिया-संज्ञा पुं० [फ़ा० सुर्ख+इया (प्रत्य०)] एक प्रकार का पक्षी जो सिर से गरदन तक लाल होता है। इसकी पीठ भी लाल होती है, पर चोंच पीली और पैर काले होते हैं।

सुरखिया बगला-संज्ञा पुं० [हिं० सुर्ख+बगला] एक प्रकार का बगला जिसे गाय बगला भी कहते हैं।

सुरखी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सुर्ख] (१) ईंटों का बनाया हुआ महीन चूरा जो इमारत बनाने के काम में आता है। (२) दे० "सुर्खी"।

यौ०—सुरखी चूना।

सुरखुरू-वि० दे० "सुर्खरू"। उ०—अलहदाद भल तेहि कर गुरू। दीन दुनी रोसन सुरखुरू।—जायसी।

सुरगंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का फोड़ा।

सुरग॥†-संज्ञा पुं० दे० "स्वर्ग"। उ०—जीत्यौ सुरग जीति दिसि चारयौ।—लाल कवि।

सुरगज-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं या इंद्र का हाथी।

सुरगति-संज्ञा स्त्री० [सं०] दैवी गति। भावी।

सुरगवेसी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वर्गवेश्या] अप्सरा। (डिं०)

सुरगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] देव संतान।

सुरगाय-संज्ञा स्त्री० [सं० सुर+गो] कामधेनु।

सुरगायक-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के गायक, गंधर्व।

सुरगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के रहने का पर्वत, सुमेरु।

सुरगी-संज्ञा पुं० [सं० स्वर्गीय] देवता। (डिं०)

सुरगी नदी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वर्गीय+नदी] गंगा। (डिं०)

सुरगुरु-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के गुरु, बृहस्पति।

सुरगुरु दिवस-संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पतिवार।

सुरगृह-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का मंदिर। सुरकुल।

सुरगैया-संज्ञा स्त्री० [सं० सुर+गैया] कामधेनु।

सुरग्रामणी-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का नेता, इंद्र।

सुरचाप-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

सुरच्छन॥-संज्ञा पुं० दे० "सुरक्षण"। उ०—रन परम बिचच्छन गरम तर धरम सुरच्छन काम कर।—गि० दास।

सुरजःफल-संज्ञा पुं० [सं०] कटहल। पनस।

सुरज-वि० [सं० सुरजस्] (फूल) जिसमें उत्तम या प्रचुर पराग हो।

॥संज्ञा पुं० दे० "सूर्य"।

सुरजन-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का वर्ग। देवसमूह।

वि० (१) सज्जन। सुजन। (२) चतुर। चालाक। उ०—कहो नेक समुझाइ मुहिं सुरजन प्रीतम आप। बस मन मैं मन को हरौ क्यों न बिरह संताप।—रसनिधि।

सुरजनपन-संज्ञा पुं० [हिं० सुरजन+पन (प्रत्य०)] (१) सज्जनता। भलमनसत। (२) चालाकी। होशियारी। चतुराई।

सुरजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक अप्सरा का नाम। (२) पुराणानुसार एक नदी का नाम।

सुरजेठो-संज्ञा पुं० [सं० सुरज्येष्ठ] ब्रह्मा। (डिं०)

सुरज्येष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं में बड़े, ब्रह्मा।

सुरझन-संज्ञा स्त्री० दे० "सुलझन"। उ०—गरजन मैं पुनि आप ही बरसन मैं पुनि आप। सुरझन मैं पुनि आप त्यौं उरझन मैं पुनि आप।—रसनिधि।

सुरझना-क्रि० अ० दे० "सुलझना"। अरी करेजे नैन तुव सरसि करेजे वार। अजहूँ सुरझत नाहिं ते सुर हित करत पुकार।—रसनिधि।

सुरझाना-क्रि० स० दे० "सुलझाना"। उ०—क्यों सुरझाऊँ री नँदलाल सों अरुझि रह्यो मन मेरो।—सूर।

सुरझावना॥-क्रि० स० दे० "सुलझाना"। उ०—उरझ्यो काहू रूख में कहूँ न बल्कल चीर। सुरझावन के मिस तऊ ठिटकी भोरि शरीर।—लक्ष्मणसिंह।

सुरटीप-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुर+टीप] स्वर का आलाप। सुर की तान।

सुरत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रति क्रीड़ा। कामकेलि। संभोग। मैथुन। उ०—सुरत ही सब रैन बीती कोक पूरण रंग। जलद दामिनि संग सोहत भरे आलस अंग।—सूर। (२) एक बौद्ध भिक्षु का नाम।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्मृति] ध्यान। याद। सुध। उ०—(क) धीर मदत मन रुम नहीं फदत बदन तें बैन। तुरत सुरत की सुरत कै तुरत सुरत हँसि नैन।—शृंगार-सतसई।

(ख) करत महातरु विपिन वधि चलो गयो करतार। तहँ अरंड लागी सुरत यथा तैल की धार—रघुराज।

क्रि० प्र०—करना।—दिलाना।—होना।—लगना।

मुहा०—सुरत विसारना=भूल जाना। विस्मृत होना। सुरत सँभालना=होश सँभालना।

सुरतग्लानि-संज्ञा स्त्री० [सं०] रति या संभोग जनित ग्लानि या शिथिलता।

सुरतताली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दूती। (२) शिरोमाल्य। सेहरा।

सुरतबंध-संज्ञा पुं० [सं०] संभोग का एक प्रकार।

सुरतरंगिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

सुरतरु-संज्ञा पुं० [सं०] देवतरु। कल्पवृक्ष।

सुरतरुवर-संज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष।

सुरतांत-संज्ञा पुं० [सं०] रति या संभोग का अंत।

सुरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुर या देवता का भाव या कार्य। देवत्व। (२) सुर समूह। देव समूह। देव जाति। (३) संभोग का आनंद। (४) एक अप्सरा का नाम।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बाँस की नली जिसमें से दाना छोड़कर बोया जाता है।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्मृति, हिं० सुरत] (१) चिंता। ध्यान। (२) चेत। सुध। उ०—छाँड़ि वासना बोध की अहंत की ना मानि। सुरता छाँड़ि पिशाचता काहे को करि ग्लानि।

सुरतात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के पिता, कश्यप। (२) देवताओं के अधिपति, इंद्र।

सुरतान-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुर+तान] स्वर का आलाप। सुर टीप।

*संज्ञा पुं० दे० "सुलतान"।

सुरति-संज्ञा स्त्री० [सं० सु+रति] विहार। भोग-विलास। कामकेलि। संभोग। उ०—विरची सुरति रघुनाथ कुंजधाम बीच, काम बस बाम करे ऐसे भाव अपनो। जबनि सो मसकै सिकोरै नाक, ससकै मरोरै भौंह हंस कै संसीर टारै कपनो।—काव्यकलाधर।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्मृति] स्मरण। सुधि। चेत। उ०—छिन छिन सुरति करत यदुपति की परत न मन समुझायो। गोकुलनाथ हमारे हित लगि लिखिहू क्यों न पठायो।—सूर।

क्रि० प्र०—करना।—दिलाना।—लगना।—होना।

संज्ञा स्त्री० दे० "सूरत"। उ०—सोवत जागत सपनवस रस रिस चैन कुचैन। सुरति स्याम घन की सुरति विसरेहू बिसरै न।—बिहारी।

सुरतिगोपना-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जो रति-क्रीड़ा करके आई हो और अपनी सखियों आदि से यह बात छिपाती हो।

सुरति-रव-संज्ञा पुं० [सं०] रति-क्रीड़ा के समय होनेवाली भूषणों की ध्वनि।

सुरतिवंत-वि० [सं० सुरत+वान्] कामातुर। उ०—हरि हँसि भामिनी उर लाइ। सुरतिवंत गुपाल रीझे जानी अति सुखदाइ।—सूर।

सुरतिविचित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मध्या के चार भेदों में से एक। वह मध्या जिसकी रति-क्रिया विचित्र हो। उ०—मध्या आरूढ़ यौवना प्रगल्भवचना जान। प्रादुर्भूत मनोभवा सुरतिविचित्रा मान।—केशव।

सुरती-संज्ञा स्त्री० [सूरत (नगर)] खाने का तंबाकू के पत्तों का चूरा जो पान के साथ या यों ही चूना मिलाकर खाया जाता है। खैनी।

विशेष—अनुमान किया जाता है कि पुर्त्तगालवालों ने पहले पहल इसका प्रचार सूरत नगर में किया था, इसी से इसका यह नाम पड़ा।

सुरतुंग-संज्ञा पुं० [सं०] सुरपुन्नाग नामक वृक्ष।

सुरतोषक-संज्ञा पुं० [सं०] कौस्तुभ मणि।

सुरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना। स्वर्ण। (२) माणिक्य। लाल। वि० (१) सर्वश्रेष्ठ। (२) उत्तम रत्नों से युक्त।

सुरत्राण-संज्ञा पुं० दे० "सुरत्राता"। उ०—बाजत घोर निसान सान सुरत्रान लजावत।—गि० दास।

सुरत्राता-संज्ञा पुं० [सं० सुर+त्रातृ] (१) विष्णु। श्रीकृष्ण। (२) इंद्र।

सुरथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक चंद्रवंशी राजा जो पुराणों के अनुसार स्वारोचिष मन्वंतर में हुए थे और जिन्होंने पहले पहल दुर्गा की आराधना की थी। दुर्गा के वर से ये सावर्णि मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए। दुर्गा सप्तशती में इनका विस्तृत वृत्तांत है। (२) द्रुपद के एक पुत्र का नाम। (३) जयद्रथ के एक पुत्र का नाम। (४) सुदेव के एक पुत्र का नाम। (५) जनमेजय के एक पुत्र का नाम। (६) अधिरथ के एक पुत्र का नाम। (७) कुंडक के एक पुत्र का नाम। (८) रणक के एक पुत्र का नाम। (९) चंपकपुरी के राजा हंसध्वज का पुत्र। (१०) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

संज्ञा पुं० [सं० सुरथन्] कुश द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष।

सुरथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक अप्सरा का नाम। (२) पुराणानुसार एक नदी का नाम।

सुरथाकार-संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्ष का नाम।

सुरथान-संज्ञा पुं० [सं० सुर+स्थान] स्वर्ग। (डिं०)

सुरदार-वि० [हिं० सुर+फा० दार] जिसके गले का स्वर सुंदर हो। सुस्वर। सुरीला।

सुरदारु-संज्ञा पुं० [सं०] देवदार। देवदारु वृक्ष।

सुरदीर्घिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश गंगा।

सुरदुंदुभि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं का नगाड़ा। (२) तुलसी।

सुरदेवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] योगमाया जिसने यशोदा के गर्भ में अवतार लिया था और जिसे कंस पटकने चला था।

सुरदेश-संज्ञा पुं० [सं० सुर+देश] स्वर्ग। देवलोक।

सुरद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु। सुरद्रुम।

सुरद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कल्पवृक्ष। (२) देवनल। बड़ा नरकट। बड़ा नरसल।

सुरद्विप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का हाथी। देवहस्ती। (२) इंद्र का हाथी। ऐरावत।

सुरद्विष्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का शत्रु। असुर। दानव। राक्षस। (२) राहु।

सुरधनुष-संज्ञा पुं० [सं० सुरधनुस्] इंद्रधनुष।

सुरधाम-संज्ञा पुं० [सं० सुरधामन्] देवलोक। स्वर्ग।

मुहा०—सुरधाम सिधारना = मर जाना।

सुरधुनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

सुरधूप-संज्ञा पुं० [सं०] धूना। राल। सर्जरस।

सुरधेनु-संज्ञा स्त्री० [सं० सुर+धेनु] देवताओं की गाय, कामधेनु।

सुरध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] सुरकेतु। इंद्रध्वज।

सुरनंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

सुरनगर-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

सुरनदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंगा। (२) आकाश गंगा।

सुरनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

सुरनायक-संज्ञा पुं० [सं०] सुरपति। इंद्र।

सुरनारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवांगना। देवबाला। देववधू।

सुरनाल-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा नरसल। देवनल।

सुरनाह-संज्ञा पुं० [सं० सुरनाथ] देवराज इंद्र। उ०—परिधा कहँ जादव हेरि हयो। सुरनाह तबै गत चेत भयो।—गिरिधर।

सुरनिम्नगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

सुरनिर्गंध-संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता। तेजपत्र। पत्रज।

सुरनिर्झरिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश गंगा।

सुरनिलय-संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत, जहाँ देवता रहते हैं।

सुरपत-संज्ञा पुं० [सं० सुरपति] इंद्र। उ०—या कहि सुरप गयहु सुरधाम।—पद्माकर।

सुरपति-संज्ञा पुं० [सं०] देवराज इंद्र।

सुरपतिगुरु-संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।

सुरपतिचाप-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

सुरपति-तनय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र का पुत्र, जयंत। (२) अर्जुन।

सुरपतित्व-संज्ञा पुं० [सं०] सुरपति का भाव या पद।

सुरपथ-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश।

सुरपन-संज्ञा पुं० [सं० सुरपुन्नाग] पुन्नाग। सुरंगी। सुलतान चंपा।

सुरपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सुगंधित शाक।

पर्य्या०—देवपर्ण। सुगंधिक। माचीपत्र। गंधपत्रक।

विशेष—यह क्षुप जाति की सुगंधित वनस्पति है। वैद्यक के अनुसार यह कटु, उष्ण तथा कृमि, श्वास और कास को नाशक तथा दीपन है।

सुरपर्णिक-संज्ञा पुं० [सं०] पुन्नाग वृक्ष।

सुरपर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुन्नाग। सुलताना चंपा।

सुरपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पलासी। पलाशी। (२) पुन्नाग। पुलाक।

सुरपर्वत-संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु।

सुरपादप-संज्ञा पुं० [सं०] देवद्रुम। कल्पतरु।

सुरपाल-संज्ञा पुं० [सं० सुर+पालक] इंद्र। उ०—सुरन सहित तहँ आइ कै वज्र हन्यो सुरपाल।—गिरिधर।

सुरपालक-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

सुरपुन्नाग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पुन्नाग जिसके गुण पुन्नाग के समान ही होते हैं।

सुरपुर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सुरपुरी] देवताओं की पुरी, अमरावती।

मुहा०—सुरपुर सिधारना = मर जाना। गत हो जाना।

सुरपुरकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र। उ०—नृप केतु दल के केतु सुरपुरकेतु सम महँ मोहहीं।—शि० दास।

सुरपुरोधा-संज्ञा पुं० [सं० सुरपुरोधस्] देवताओं के पुरोहित, बृहस्पति।

सुरप्रतिष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवमूर्ति की स्थापना।

सुरप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) बृहस्पति। (३) एक प्रकार का पक्षी। (४) अगस्त्य। अगस्तिया। (५) एक पर्वत का नाम।

वि० जो देवताओं को प्रिय हो।

सुरप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक अप्सरा का नाम। (२) चमेली। जाती पुष्प। (३) सोना केला। स्वर्ण रंभा।

सुरफाँक ताल-संज्ञा पुं० [हिं० सुर+फाँक = खाली+ताल] मृदंग का एक ताल। इसमें तीन आघात और एक खाली होता है।

+ ० २ +
जैसे,—धा धेड़े, नाधत्, धेड़े नाग, गदी, घेड़े नाग। धा।

सुरबहार-संज्ञा पुं० [हिं० सुर+फा० बहार] सितार की तरह का एक प्रकार का बाजा।

सुरबाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता की स्त्री। देवांगना।

सुरबुली-संज्ञा स्त्री० [सं० सुरवल्ली ?] एक पौधा जो बंगाल और उड़ीसे से लेकर मद्रास और सिंहल तक होता है। इसकी जड़ की छाल से एक प्रकार का सुंदर लाल रंग निकलता है जिससे मछलीपट्टन, तंजोर आदि स्थानों में कपड़े रँगे जाते हैं। चिरवल।

सुरवृच्छ–*संज्ञा पुं० दे० "सुरवृक्ष"। उ०—मुख ससि सर गर अधिक बचन थी अमृत ऐसी। सुर सुरभी सुरवृच्छ देति करतल महँ वैसी।—गि० दास।

सुरवेल–संज्ञा स्त्री० [सं० सुर+वल्ली] कल्प लता।

सुरभंग–संज्ञा पुं० [सं० स्वर भंग] प्रेम, आनन्द, भय आदि में होनेवाला स्वर [redacted] विपर्य्यास जो सात्विक भावों के अंतर्गत है। उ०—(क) स्तंभ स्वेद रोमांच सुर-भंग कंप वैवर्ण। अश्रुप्रलाप बखानिए आठो नाम सुवर्ण।—केशव। (ख) निसि जागे पागे असल हित को दरसन पाइ। बोल पलटो होत जो सो सुरभंग बताइ।—काव्य कलाधर। (ग) क्रोध हरख मद भीत तें बचन और विधि होय। ताहि कहत सुरभंग हैं कवि कोविद सब कोय।—मतिराम।

सुरभवन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का निवासस्थान। मंदिर। (२) सुरपुरी। अमरावती।

सुरभान–संज्ञा पुं० [सं० सुर+भानु] (१) इंद्र। उ०—राधे सों रस बरनि न जाइ। जा रस को सुरभान सीश दियो, सो तैं पियो अकुलाइ।—सूर। (२) सूर्य। उ०—सुनि सजनी सुरभान है अति मलान मतिमंद। पूनो रजनी मैं जु मिलि देत उगिलि यह चंद।—शृंगार सतसई।

सुरभि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वसंत काल। (२) चैत्रमास। (३) सोना। स्वर्ण। (४) गंधक। (५) चंपक। चंपा। (६) जायफल। (७) कदंब। (८) बकुल। मौलसिरी। (९) शमी। सफेद कीकर। (१०) कण गुग्गुल। (११) गंध तृण। रोहिस घास। (१२) राल। धूना। (१३) गंधफल। (१४) बर्बर चंदन। (१५) वह अग्नि जो यज्ञयूप की स्थापना में प्रज्वलित की जाती है।

संज्ञा स्त्री० (१) पृथ्वी। (२) गौ। (३) गायों की अधिष्ठात्री देवी तथा गो जाति की आदि जननी। (४) कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम। (५) सुरा। शराब। (६) गंगापत्री। (७) वनमल्लिका। सेवती। (८) तुलसी। (९) शल्लकी। सलई। (१०) रुद्रजटा। (११) एलवालुक। एलुवा। (१२) सुगंधि। खुशबू।

वि० (१) सुगंधित। सुवासित। (२) मनोरम। सुंदर। प्रिय। (३) उत्तम। श्रेष्ठ। बढ़िया। (४) सदाचारी। गुणवान्।

सुरभिकांता–संज्ञा स्त्री० [सं०] वासंती पुष्प वृक्ष। नेवारी।

सुरभिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ण कदली। सोना केला।

सुरभिगंध–संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता।

वि० सुगंधित। सुवासित। खुशबूदार।

सुरभिगंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] चमेली।

सुरभिच्छद–संज्ञा पुं० [सं०] कैथ। कपित्थ।

सुरभित–वि० [सं०] सुगंधित। सुवासित।

सुरभितनय–संज्ञा पुं० [सं०] बैल। साँड़।

सुरभितनया–संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय।

सुरभिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुरभि का भाव। (२) सुगंधि। खुशबू।

सुरभित्रिफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] जायफल, सुपारी और लौंग इन तीनों का समूह।

सुरभित्वक्–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी इलायची।

सुरभिदारु–संज्ञा पुं० [सं०] धूप सरल।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह सरल, कटु, तिक्त, उष्ण तथा कफ, वात, त्वचा रोग, सूजन और व्रण का नाशक है। यह कोठे को भी साफ करता है।

सुरभिपत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] राजजंबू वृक्ष। गुलाब जामुन। वि० दे० "गुलाब जामुन"।

सुरभिपुत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँड़। (२) बैल।

सुरभिमंजरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेत तुलसी।

सुरभिमान–वि० [सं० सुरभिमत्] सुगंधित। सुवासित।

संज्ञा पुं० अग्नि।

सुरभिमास–संज्ञा पुं० [सं०] चैत्र मास। चैत का महीना।

सुरभिमुख–संज्ञा पुं० [सं०] वसंत ऋतु का आरंभ।

सुरभिवल्कल–संज्ञा पुं० [सं०] दालचीनी। गुडत्वक्।

सुरभिबाण–संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव का एक नाम।

सुरभिशाक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सुगंधित शाक।

सुरभिषक्–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के वैद्य, अश्विनीकुमार।

सुरभिसमय–संज्ञा पुं० [सं०] वसंत।

सुरभिस्रवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] शल्लकी। सलई।

सुरभी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुगंधि। खुशबू। (२)। गाय। (३) सलई। शल्लकी। (४) किवाँछ। कौंच। कपिकच्छु। (५) बबई तुलसी। वन तुलसी। (६) रुद्रजटा। शंकर जटा। (७) एलुवा। एलवालुक। (८) माचिका शाक। मोइया। (९) सुगंधित शालिधान्य। (१०) मुरामांसी। एकांगी। (११) रासन। रास्ना। (१२) चंदन।

सुरभीगोत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैल। (२) साँड़।

सुरभीपट्टन–संज्ञा [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नगर का नाम।

सुरभीपुर–संज्ञा पुं० [सं०] गोलोक। उ०—अज विष्णु अनादि मुकुंद प्रभो। सुरभीपुर नायक विश्वविभो।—गिरिधर।

सुरभीमूत्र–संज्ञा पुं० [सं०] गोमूत्र। गोमूत।

सुरभीरसा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सलई। शल्लकी।

सुरभूप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) विष्णु। उ०—सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।—तुलसी।

सुरभूषण–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के पहनने का मोतियों का हार जो चार हाथ लंबा होता है और जिसमें १००८ दाने होते हैं।

सुरभूरुह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवदार। देवदारु। (२) कल्पतरु।

सुरभोग–संज्ञा पुं० [सं०] अमृत। उ०—सोम सुधा पीयूष मधु अगदकार सुरभोग। अमी अमृत जहँ हरि कथा मते रहत सब लोग।—नंददास।

सुरभौनꣳ–संज्ञा पुं० दे० "सुरभवन"।

सुरमंडल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का मंडल। (२) एक प्रकार का बाजा। इसमें एक तख्ते में तार जड़े होते हैं। इसे जमीन पर रखकर मिजराब से बजाते हैं।

सुरमंडलिका–संज्ञा स्त्री० दे० "सुरलंडनिका"।

सुरमंत्री–संज्ञा पुं० [सं० सुरमंत्रिन्] बृहस्पति।

सुरमंदिर–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का स्थान। मंदिर। देवालय।

सुरमई–वि० [फ़ा०] सुरमे के रंग का। हलका नीला। सफेदी लिए नीला या काला।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का रंग जो सुरमे के रंग से मिलता जुलता या हलका नीला होता है। (२) इस रंग में रँगा हुआ एक प्रकार का कपड़ा जो प्रायः अस्तर आदि के काम में आता है। (३) इस रंग का कबूतर।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की चिड़िया जो बहुत काली होती है और जिसकी गरदन हरे रंग की और चमकदार होती है।

सुरमई कलम–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सुरमा लगाने की सलाई। सुरमचू।

सुरमचू–संज्ञा पुं० [फ़ा० सुरमः+चू (प्रत्य०)] सुरमा लगाने की सलाई।

सुरमणि–संज्ञा पुं० [सं०] चिंतामणि। उ०—लोचन नील सरोज से भ्रूपर मसि बिंदु बिराज। जनु बिधु मुख छवि अमिय को रच्छक राख्यो रसराज।—तुलसी।

सुरमण्य–वि० [सं०] बहुत अधिक रमणीय। बहुत सुंदर।

सुरमा–संज्ञा पुं० [फ़ा० सुरमः] एक प्रकार का प्रसिद्ध खनिज पदार्थ जो प्रायः नीले रंग का होता है और जिसका महीन चूर्ण स्त्रियाँ आँखों में लगाती हैं। यह फारस में लहौल, पंजाब में झेलम तथा बरमा में टेनासरिम नामक स्थान में पाया जाता है। यह बहुत भारी, चमकीला और भुरभुरा होता है। इसका व्यवहार कुछ औषधों में तथा कुछ धातुओं को दृढ़ करने में होता है। प्रायः छापे के सीसे के अक्षरों में उन्हें मजबूत करने के लिये इसका मेल दिया जाता है। आज कल बाजारों में जो सुरमा मिलता है, वह प्रायः काबुल और बुखारे के गलीना नामक धातु का चूर्ण होता है।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

यौ०—सफेद सुरमा=दे० "सुरमा सफेद"।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी। वि० दे० "सूरमा"।

संज्ञा स्त्री० एक नदी जो आसाम के सिलहट जिले में बहती है।

सुरमादानी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सुरमः+दान (प्रत्य०)] लकड़ी या धातु का शीशीनुमा पात्र जिसमें सुरमा रखा जाता है।

सुरमानी–वि० [सं० सुरमानिन्] अपने को देवता समझनेवाला।

सुरमा सफेद–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक प्रकार का खनिज पदार्थ जो 'जिप्सम' नाम से प्रसिद्ध है। इसका रंग पीलापन लिए सफेद होता है। इससे 'पेरिस प्लास्टर' बनाया जा सकता है जिससे एलक्ट्रो टाइप और रबड़ की मोहर के साँचे बनाए जाते हैं। यह मुख्यतः शीशे और धातु की चीजें जोड़ने के काम में आता है। (२) एक खनिज पदार्थ जो फिटकरी के समान होता है और काबुल के पहाड़ों पर पाया जाता है। आँखों की जलन, प्रमेह आदि रोगों में इसका प्रयोग होता है।

सुरमृत्तिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] गोपीचंदन। सौराष्ट्र मृत्तिका।

सुरमेदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] महामेदा।

सुरमैꣳ–वि० दे० "सुरमई"।

सुरमौर–संज्ञा पुं० [सं० सुर+हिं० मौर] विष्णु। उ०—जाके विलोकत लोकप होत विसोक लहैं सुरलोक सुठौरहि। सो कमला तजि चंचलता अरु कोटि कला रिझवै सुरमौरहि।—तुलसी।

सुरम्य–वि० [सं०] अत्यंत मनोरम। अत्यंत रमणीय। बहुत सुंदर।

सुरया–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की दराँती जो झाड़ी काटने के काम में आती है।

सुरयान–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की सवारी का रथ।

सुरयुवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

सुरयोषित्–संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

सुरराइꣳ–संज्ञा पुं० [सं० सुरराज] (१) इंद्र। (२) विष्णु। उ०—रानी ते बूझेउ सुरराई। माँगी जो कछु वाको भाई। रमानाथ नारी ते भाषा। माँगहु वर जो मन अभिलाषा।—विश्राम।

सुरराज्, सुरराज–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

सुरराजगुरु–संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।

सुरराजता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरराज का भाव या पद। इंद्रत्व। इंद्रपद।

सुरराजवस्ति–संज्ञा पुं० [सं०] पिंडली। इंद्रवस्ति।

सुरराज वृक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] पारिजात। परजाता।

सुरराजा–संज्ञा पुं० [सं० सुरराजन्] इंद्र।

सुररायꣳ–संज्ञा पुं० दे० "सुरराज"।

सुररावꣳ–संज्ञा पुं० दे० "सुरराज"। उ०—नल कृत पुल लखि सिंधु में भये चकित सुरराव।—पद्माकर।

सुररिपु–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के शत्रु, असुर। राक्षस।

सुररूख-संज्ञा पुं० [सं० सुर+हिं० रूख=वृक्ष] कल्पवृक्ष । उ०—राम नाम सज्जन सुररूखा । राम नाम कलि मृतक पियूषा ।—रघुराज ।

सुरर्षभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं में श्रेष्ठ, इंद्र । (२) शिव । महादेव ।

सुरर्षि-संज्ञा पुं० [सं० सुर+ऋषि] देवऋषि । देवर्षि ।

सुरलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी मालकंगनी । महाज्योतिषमती लता ।

सुरललना-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवबाला । देवांगना ।

सुरला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंगा । (२) एक नदी का नाम ।

सुरलासिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बंसी । (२) बंसी की ध्वनि ।

सुरली-संज्ञा स्त्री० [सं० सु+हिं० रली] सुंदर क्रीड़ा । उ० लखि सु उदर रोमावली अली चली यह बात । नाग लली सुरली करै मनु त्रिवली के पात ।—शृंगार सतसई ।

सुरलोक-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग । देवलोक ।

सुरवधू-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं की पत्नी । देवांगना ।

सुरवर-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं में श्रेष्ठ, इंद्र ।

सुरवर्त्म-संज्ञा पुं० [सं० सुरवर्त्मन्] देवताओं का मार्ग । आकाश ।

सुरवल्लभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेत दूर्वा । सफेद दूब ।

सुरवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी ।

सुरवस-संज्ञा पुं० [देश०] जुलाहों की वह पतली हलकी छड़ी, पतला बाँस या सरकंडा जिसका व्यवहार ताना तैयार करने में होता है ।

विशेष—ताना तैयार करने के लिए जो लकड़ियाँ जमीन में गाड़ी जाती हैं, उनमें से दोनों सिरों पर रहनेवाली लकड़ियाँ तो मोटी और मजबूत होती हैं जिन्हें परिया कहते हैं; और इनके बीच में थोड़ी थोड़ी दूर पर जो चार चार पतली लकड़ियाँ एक साथ गाड़ी जाती हैं, वे सुरवस या सुरस कहलाती हैं ।

सुरवा-संज्ञा पुं० [सं० श्रुवम्] छोटी करछी के आकार का लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का पात्र जिससे, हवन आदि में घी की आहुति देते हैं । श्रुवा ।

†संज्ञा पुं० दे० "शोरवा" ।

सुरवाड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूअर+वाड़ी (प्रत्य०)] सूअरों के रहने का स्थान । सुअरवाड़ा ।

सुरवाणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] देववाणी । संस्कृत भाषा ।

सुरवाल-संज्ञा पुं० [फ़ा० शलवार] पायजामा । पैजामा ।

संज्ञा पुं० [?] सेहरा ।

सुरवास-संज्ञा पुं० [सं०] देवस्थान । स्वर्ग ।

सुरवाहिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

सुरविटप-संज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष ।

सुरवीथी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों का मार्ग ।

सुरवीर-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र । उ०—गने पदाती वीर सब अरिघाती रनधीर । दोउ आँखें राती किये लखि मोहे सुरवीर ।—भि० दास ।

सुरवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] कल्पतरु ।

सुरवेला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम ।

सुरवेश्म-संज्ञा पुं० [सं० सुरवेश्मन्] स्वर्ग । देवलोक ।

सुरवैरी-संज्ञा पुं० [सं० सुरवैरिन्] देवताओं के शत्रु, असुर ।

सुरशत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] असुर ।

सुरशत्रुहन्-संज्ञा पुं० [सं०] असुरों का नाश करनेवाले, शिव ।

सुरशयनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी । विष्णुशयनी एकादशी ।

सुरशाखी-संज्ञा पुं० [सं० सुरशाखिन्] कल्पवृक्ष ।

सुरशिल्पी-संज्ञा पुं० [सं० सुरशिल्पिन्] विश्वकर्मा ।

सुरश्रेष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो देवताओं में श्रेष्ठ हो । (२) विष्णु । (३) शिव । (४) गणेश । (५) धर्म । (६) इंद्र ।

सुरश्रेष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी ।

सुरसंभवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर । आदित्यभक्ता ।

सुरस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बोल । हीरा बोल । बर्बर रस । (२) दालचीनी । गुड़त्वक् । (३) तेजपत्ता । तेजपत्र । (४) रूसा घास । गंधतृण । (५) तुलसी । (६) सँभालू । सिंधुवार । (७) शाल्मली वृक्ष का निर्यास । मोचरस । (८) पीतशाल ।

वि० (१) सरस । रसीला । (२) स्वादिष्ट । मधुर । (३) सुंदर । उ०—हरि श्याम घन तन परम सुंदर तड़ित वसन विराजई । अँग अंग भूषण सुरस शशि पूरणकला जनु भ्राजई ।—सूर ।

संज्ञा पुं० दे० "सुरवस" ।

सुरसख-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के सखा, इंद्र ।

सुरसत-संज्ञा स्त्री० [सं० सरस्वती] सरस्वती । (डिं०)

सुरसतजनक-संज्ञा पुं० [सं० सरस्वती+जनक] ब्रह्मा । (डिं०)

सुरसती⊛†-संज्ञा स्त्री० [सं० सरस्वती] (१) सरस्वती । उ०—उर उरबी सुरसरि सुरसती जमुना मिलहिं प्रयाग जिमि ।—भि० दास । (२) एक प्रकार की नाव जो तीस हाथ लंबी होती है और जिसका अगला तथा पीछा आठ आठ हाथ चौड़ा होता है । इस नाव के पेंदे में एक कुंड बना रहता है जिसमें उतर कर लोग स्नान कर सकते हैं ।

सुरसत्तम-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं में श्रेष्ठ, विष्णु ।

सुरसदन-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के रहने का स्थान, स्वर्ग ।

सुरसद्म-संज्ञा पुं० [सं० सुरसद्मन्] स्वर्ग ।

सुरसमिध्-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदारु ।

सुरसर-संज्ञा पुं० [सं० सुर+सर] मानसरोवर। उ०—सुर-सर सुभग बनज बन-चारी। डाबर जोग कि हंसकुमारी।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० दे० "सुरसरि"।

सुरसरसुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरयू नदी। उ०—तुलसी उर सुर-सर-सुता लसत सुथल अनुमानि।—तुलसी।

सुरसरि, सुरसरी-संज्ञा स्त्री० [सं० सुरसरित्] (१) गंगा। उ०—सुरसरि जब भुव ऊपर आवै। उनको अपनो जल परसावै।—सूर। (२) गोदावरी। उ०—सुरसरि तें आगे चले मिलिहैं कपि सुग्रीव। देहैं सीता की खबरि याते सुख अति जीव।—केशव।

संज्ञा स्त्री० (१) कावेरी नदी। (हिं०) (२) दे० "सुरसुरी"।

सुरसरित्-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

सुरसरिता-संज्ञा स्त्री० दे० "सुरसरित्"। उ०—मानहुँ सुरसरिता विमल, जल उछलत जुग मीन।—बिहारी।

सुरसर्षपक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सरसों। देवसर्षप।

सुरसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध नागमाता जो समुद्र में रहती थी और जिसने हनुमान् जी को समुद्र पार करने के समय रोका था।

विशेष—जिस समय हनुमान् जी सीता जी की खोज में लंका जा रहे थे, उस समय देवताओं ने सुरसा से, जो समुद्र में रहती थी, कहा कि तुम विकराल राक्षस का रूप धारण कर उनको रोको। इससे उनकी बुद्धि और बल का पता लग जायगा। तदनुसार सुरसा ने विकराल रूप धारण कर हनुमान् जी को रोक कर कहा कि मैं तुम्हें खाऊँगी। यह कहकर उसने मुँह फैलाया। हनुमान् जी ने उससे कहा कि जानकी जी की खबर राम जी को देकर मैं तुम्हारे पास आऊँगा। सुरसा ने कहा कि ऐसा नहीं हो सकता। पहले तुम्हें मेरे मुँह में प्रवेश करना होगा, क्योंकि मुझे ऐसा वर मिला है कि सब को मेरे मुँह में प्रवेश करना पड़ेगा। यह कह वह मुँह फैलाकर हनुमान् जी के सामने आई। हनुमान् जी ने अपना शरीर उससे भी अधिक बढ़ाया। ज्यों ज्यों सुरसा अपना मुँह बढ़ाती गई, त्यों त्यों हनुमान् जी भी अपना शरीर बढ़ाते गए। अंत में हनुमान् जी ने बहुत छोटा रूप धारण करके उसके मुँह में प्रवेश किया और बाहर निकलकर कहा—देवि, अब तो तुम्हारा वर सफल हो गया। इस पर सुरसा ने हनुमान् जी को आशीर्वाद दिया और उनकी सफलता की कामना की। (रामायण)

(२) एक अप्सरा का नाम। (३) एक राक्षसी का नाम। (४) तुलसी। (५) रासन। रास्ना। (६) सौंफ। मिश्रेया। (७) ब्राह्मी। (८) बड़ी शतावरी। सतावर। (९) जूही। श्वेत यूथिका। (१०) सफेद निसोथ। श्वेत त्रिवृत्ता। (११) सलई। शल्लकी। (१२) नील सिंधुवार। निर्गुंडी। (१३) कटाई। वनभंटा। बृहती। वार्ताकी। (१४) भटकटैया। कटेरी। कंटकारी। (१५) एक प्रकार की रागिनी। (१६) दुर्गा का एक नाम। (१७) रुद्राश्व की एक पुत्री का नाम। (१८) पुराणानुसार एक नदी का नाम। (१९) अंकुश के नीचे का नुकीला भाग। (२०) एक वृत्त का नाम।

सुरसाईं-संज्ञा पुं० [सं० सुर+ हिं० साईं = स्वामी] (१) इंद्र। उ०—आपु लसैं जैसे सुरसाईं। सब नरेश जनु सुर समुदाईं।—सबलसिंह। (२) शिव। उ०—सब विद्या के ईश गुसाईं। चरण वंदि विनवौं सुरसाईं।—शंकरदिग्विजय। (३) विष्णु। उ०—बोले मधुर बचन सुरसाईं। मुनि कहँ चले बिकल की नाईं।—तुलसी।

सुरसाम-संज्ञा पुं० [सं०] संभालू की मंजरी। सिंधुवार मंजरी।

सुरसाग्रज-संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत तुलसी।

सुरसाग्रणी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुरसाग्रज"।

सुरसादिवर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में कुछ विशिष्ट ओषधियों का एक वर्ग। यथा—तुलसी (सुरसा), श्वेत तुलसी, गंधतृण, गंधेज घास, (सुगंधक), काली तुलसी, कसौंधी (कासमर्द), लटजीरा (अपामार्ग), वायविडंग (विडंग), कायफल (कट्फल), सम्हालू (निर्गुंडी), भ्रमभेटी (भारंगी), मकोय (काकमाची), बकायन (विषमुष्टिक), मूसाकानी (मूषाकर्णी), नीला सम्हालू (नील सिंधुवार), भुईं कदंब (भूमि कदंब)। वैद्यक के अनुसार यह प्रयोग कफ, कृमि, सर्दी, अरुचि, श्वास, खाँसी आदि का नाश करनेवाला और व्रणशोधक है।

एक दूसरा वर्ग इस प्रकार है—सफेद तुलसी, काली तुलसी, छोटे पत्तोंवाली तुलसी, बबई (बबूरी), मूसाकानी, कायफल, कसौंधी, नकछिकनी (छिकनी), सम्हालू, भारंगी, भुईं कदंब, गंधतृण, नीला सम्हालू, मीठी नीम (कैडर्य) और अतिमुक्त लता (माधवी लता)।

सुरसारी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुरसरी"।

सुरसालु-वि० [सं० सुर+हिं० सालना] देवताओं को सतानेवाला। उ०—राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलि कालु। जापक जन प्रह्लाद जिमि पालिहि दलि सुरसालु।—तुलसी।

सुरसाह्व-संज्ञा पुं० [सं०] सम्हालू, तुलसी, ब्राह्मी, वनभंटा, कंटकारी और पुनर्नवा इन सब का समूह।

सुरसाहब-संज्ञा पुं० [सं० सुर+अ० साहब] देवताओं के स्वामी। उ०—ब्रह्म जो व्यापक वेद कहै गम नाहीं गिरा गुन ज्ञान गुनी को। जो करता भरता, हरता सुर साहिब साहिब दीन दुनी को।—तुलसी।

सुरसिंधु-संज्ञा पुं० [सं०] गंगा।

सुरसुंदर-संज्ञा पुं० [सं०] सुंदर देवता।
वि० देवता के समान सुंदर। अत्यंत सुंदर।
सुरसुंदरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अप्सरा। (२) दुर्गा। (३) देवकन्या। (४) एक योगिनी का नाम।
सुरसुंदरी गुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक के अनुसार वाजीकरण या बल वीर्य बढ़ाने की एक औषध जो अभ्रक, स्वर्णमाक्षिक, हीरा, स्वर्ण और पारे को सम भाग में लेकर हिज्जल (समुद्रफल) के रस में घोटकर पुटपाक के द्वारा प्रस्तुत की जाती है।
सुरसुत-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सुरसुता] देवपुत्र।
सुरसुरभी-संज्ञा स्त्री० [सं० सुर+सुरभी] देवताओं की गाय। कामधेनु। उ०—मुख ससि सर गर अधिक बचन श्री अमृत जैसी। सुर सुरभी सुरवृच्छ ऐनि करतल महँ वैसी।—गि० दास।
सुरसुराना-क्रि० अ० [अनु०] (१) कीड़ों आदि का रेंगना। (२) खुजली होना।
सुरसुराहट-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुरसुराना+आहट (प्रत्य०)] (१) सुरसर होने का भाव। (२) खुजलाहट। (३) गुदगुदी।
सुरसुरी-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) दे० "सुरसुराहट"। (२) एक प्रकार का कीड़ा जो चावल, गेहूँ आदि में होता है।
सुरसेनप-संज्ञा पुं० [सं० सुर+सेनापति] देवताओं के सेनापति, कार्त्तिकेय।
सुरसेना-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं की सेना।
सुरसैयाँ⊛-संज्ञा पुं० [सं० सुर+हिं० सैयाँ=स्वामी] इंद्र। उ०—तुलसी थाल केलि सुख निरखत बरषत सुमन सहित सुरसैयाँ।—तुलसी।
सुरसैनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुरशयनी"।
सुरस्कंध-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम।
सुरस्त्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।
सुरस्त्रीश-संज्ञा पुं० [सं०] अप्सराओं के स्वामी, इंद्र।
सुरस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के रहने का स्थान। स्वर्ग। सुरलोक।
सुरस्रवंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश गंगा।
सुरस्रोतस्विनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।
सुरस्वामी-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के स्वामी, इंद्र।
सुरहरा-वि० [अनु०] जिसमें सुरसुर शब्द हो। सुरसुर शब्द से युक्त। उ०—फेरि दृग फीके मुख लेति फुरहरी देव साँसैं सुरहरी भुज सुरी छहरैवै की।—देव।
सुरही-संज्ञा स्त्री० [हिं०-सोलह] (१) एक प्रकार की सोलह चित्ती कौड़ियाँ जिनसे जूआ खेलते हैं। (२) ... कौड़ियों से होनेवाला जूआ।
विशेष—इस जूए में कौड़ियाँ मुट्ठी में फेंकी जाती हैं और उनकी चित्त-पट की गिनती से हार जीत होती है। प्रायः बड़े जुआरी लोग इसी से जूआ खेलते हैं।
संज्ञा स्त्री० [सं० सुरभी] (१) चमरी गाय। (२) एक प्रकार की घास जो पड़ती जमीन में होती है।
सुरहोनी-संज्ञा पुं० [कर्णा० सुरहोनेय] पुंनाग जाति का एक पेड़ जो पश्चिमी घाट में होता है। यह प्रायः डेढ़ सौ फुट तक ऊँचा होता है।
सुरांगना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवपत्नी। देवांगना। (२) अप्सरा।
सुरांत-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।
सुरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मद्य। मदिरा। वारुणी। शराब। दारू। वि० दे० "मदिरा"। (२) जल। पानी। (३) पीने का पात्र। (४) सर्प।
सुराई⊛-संज्ञा स्त्री० [सं० शूर+आई (प्रत्य०)] शूरता। वीरता। बहादुरी। उ०—सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई।—तुलसी।
सुराकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भट्ठी जहाँ शराब चुआई जाती है। (२) नारियल का पेड़। नारिकेल वृक्ष।
सुराकर्म-संज्ञा पुं० [सं० सुराकर्मन्] वह यज्ञ कर्म जो सुरा द्वारा किया जाता है।
सुराकार-संज्ञा पुं० [सं०] शराब चुआनेवाला। शराब बनानेवाला। शौंडिक। कलवार।
सुराकुंभ-संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र या घड़ा जिसमें मद्य रखा जाता है। शराब रखने का घड़ा।
सुराख-संज्ञा पुं० [फा० सूराख] छेद। छिद्र।
संज्ञा पुं० दे० "सुराग"।
सुराग-संज्ञा पुं० [सं० सु+राग] (१) गाढ़ प्रेम। अत्यंत प्रेम। अत्यंत अनुराग। उ०—सुनि बाजति बीन प्रवीन नवीन सुराग हिये उपजावति सी।—केशव। (२) सुंदर राग। उ०—गाय गोरी मोहनी सुराग बसुरी के बीच कानन सुहाय मारमंत्र को सुनावतो।—दीनदयाल।
संज्ञा पुं० [अ० सुराग] सूत्र। टोह। पता।
क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लगना।—लगाना।
सुरागाय-संज्ञा स्त्री० [सं० सुर+गाय] एक प्रकार की दो नस्ली गाय जिसकी पूँछ गुप्फेदार होती है और जिससे चँवर बनता है। यह एक प्रकार के जंगली साँड़—जो तिब्बत और हिमालय में होते हैं और जिनके बाल लंबे और मुलायम होते हैं—और भारतीय गाय के संयोग से उत्पन्न है। यह प्रायः पहाड़ों पर ही रहती है। मैदान का जल-वायु इसके ... होता।
सुरा... [सं०] (१) वह स्थान जहाँ मद्य बिकता हो। ... (२) देवगृह।

सुराग्रह–संज्ञा पुं० दे० "सुरागार" (१)।

सुराग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] मद्य पीने का एक प्रकार का पात्र।

सुराग्य–संज्ञा पुं० [सं०] अमृत।

सुराघट–संज्ञा पुं० दे० "सुराकुंभ"।

सुराचार्य–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के आचार्य्य बृहस्पति।

सुराज–संज्ञा पुं० (१) दे० "सुराज्य"। (२) दे० "स्वराज्य"।

सुराजक–संज्ञा पुं० [सं०] भृंगराज। भँगरा।

सुराजा–संज्ञा पुं० [सं० सुराजन्] उत्तम राजा। अच्छा राजा।

संज्ञा पुं० दे० "सुराज्य"।

सुराजिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकली।

सुराजीव–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सुराजीवी–संज्ञा पुं० [सं० सुराजीविन्] शराब चुआने या बेचनेवाला। शौंडिक। कलवार।

सुराज्य–संज्ञा पुं० [सं०] वह राज्य जिसमें प्रधानतः शासितों के हित पर दृष्टि रखकर शासन कार्य किया जाता हो। वह राज्य या शासन जिसमें सुख और शांति विराजती हो। अच्छा और उत्तम राज्य।

संज्ञा पुं० दे० "स्वराज्य"।

सुराहत–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ मद्य बिकता हो। शराबखाना। कलवरिया।

सुराधी–संज्ञा स्त्री० [हिं० सु+रैतना] लकड़ी का वह डंडा या लपेटा जिससे अनाज के दाने निकालने के लिये बाल आदि पीटते हैं।

सुराद्रि–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का पर्वत, सुमेरु।

सुराधम–वि० [सं०] देवताओं में निकृष्ट।

सुराधा–वि० [सं० सुराधस्] (१) उत्तम दान देनेवाला। बहुत बड़ा दाता। उदार। (२) धनी। अमीर।

संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम।

सुराधानी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कुंभी या छोटा घड़ा जिसमें मदिरा रखी जाती है। शराब रखने की गगरी।

सुराधिप–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के स्वामी, इंद्र।

सुराधीश–संज्ञा पुं० दे० "सुराधिप"।

सुराध्यक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) श्रीकृष्ण। (३) शिव।

सुराध्वज–संज्ञा पुं० [सं०] मद्यपात्र का वह चिह्न जो प्राचीन काल में मद्य पान करनेवालों के मस्तक पर लोहे से दाग कर किया जाता था।

विशेष—मनु ने मद्य-पान की गणना चार महापातकों में की है, और कहा है कि राजा को उचित है कि मद्य पान करनेवाले के मस्तक पर मद्य-पात्र का चिह्न लोहे से दागकर अंकित करा दे। यही चिह्न सुराध्वज कहलाता था।

सुरानक–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का नगाड़ा।

सुरानीक–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की सेना।

सुराप–वि० [सं०] (१) सुरा या मद्य-पान करनेवाला। मद्यप। शराबी। (२) बुद्धिमान्। मनीषी।

सुरापगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं की नदी। गंगा।

सुरापाण, सुरापान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मद्य-पान करने की क्रिया। शराब पीना। (२) मद्य-पान करने के समय खाए जानेवाले चटपटे पदार्थ। चाट। अवदंश।

सुरापात्र–संज्ञा पुं० [सं०] मदिरा रखने या पीने का पात्र।

सुरापाना–संज्ञा पुं० [सं० सुरापाणाः] पूर्व देश के लोग। (सुरापान करने के कारण इस देश के लोगों का यह नाम पड़ा है।)

सुरापी–वि० दे० "सुराप"।

सुरापीथ–संज्ञा पुं० [सं०] सुरापान। मद्यपान। शराब पीना।

सुराब्धि–संज्ञा पुं० [सं०] सुरा का समुद्र।

विशेष—पुराणों के अनुसार यह सात समुद्रों में से तीसरा है। मार्कंडेयपुराण में लिखा है कि लवण समुद्र से दूना इक्षु समुद्र और इक्षु समुद्र से दूना सुरा समुद्र है।

सुराभाग–संज्ञा पुं० [सं०] शराब की माँड़।

सुरामंड–संज्ञा पुं० [सं०] शराब की माँड़।

सुरामत्त–वि० [सं०] शराब के नशे में चूर। मदोन्मत्त। मतवाला।

सुरामुख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके मुँह में शराब हो। (२) एक नागासुर का नाम।

सुरामेह–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार प्रमेह रोग का एक भेद।

विशेष—कहते हैं कि इस रोग में रोगी को शराब के रंग का पेशाब होता है। पेशाब शीशी में रखने से नीचे गाढ़ा और ऊपर पतला दिखलाई पड़ता है। पेशाब का रंग मटमैला या लाली लिए होता है।

सुरामेही–वि० [सं० सुरामेहिन्] सुरामेह रोग से पीड़ित। जिसे सुरामेह रोग हुआ हो।

सुरायुध–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का अस्त्र।

सुरारणि–संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं की माता, अदिति।

सुरारि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) असुर। राक्षस। (२) एक दैत्य का नाम।

सुरारिघ्न–संज्ञा पुं० [सं०] असुरों का नाश करनेवाले, विष्णु।

सुरारिहंता–संज्ञा पुं० [सं० सुरारिहंतृ] असुरों का नाश करनेवाले, विष्णु।

सुरारिहन्–संज्ञा पुं० [सं०] असुरों का नाश करनेवाले, शिव।

सुरारी–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बरसाती घास जो राजपूताने और बुंदेलखंड में होती है। यह चारे के लिये बहुत अच्छी समझी जाती है। इसे सर भी कहते हैं।

सुरार्दन–संज्ञा पुं० [सं०] सुरों या देवताओं को पीड़ा देनेवाले, असुर।

सुराई-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरिचंदन। (२) स्वर्ण। सोना। (३) कुंकुमागरु चंदन।

सुराईक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वर्वरक। बवई। (२) वैजयंती। तुलसी।

सुराल-संज्ञा पुं० [सं०] धूना। राल।

सुरालय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के रहने का स्थान। स्वर्ग। (२) सुमेरु। (३) देवमंदिर। (४) वह स्थान जहाँ सुरा मिलती हो। शराबखाना। कलवरिया।

सुरालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सातला या सतला नाम की बेल जो जंगलों में होती है। इसके पत्ते खैर के पत्तों के समान छोटे छोटे होते हैं। इसका फल पीला होता है और इसमें एक प्रकार की पतली चिपटी फली लगती है। फली में काले बीज होते हैं जिसमें से पीले रंग का दूध निकलता है। वैद्यक के अनुसार यह लघु, तिक्त, कटु तथा कफ, पित्त, विस्फोट, व्रण और शोथ को नाश करनेवाली है।

सुराव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का घोड़ा। (२) उत्तम ध्वनि।

सुरावती-संज्ञा स्त्री० [सं० सुरावनि] कश्यप की पत्नी और देवताओं की माता, अदिति। उ०—विनता सुत खगनाथ चंद्र सोमावति केरे। सुरावती के सूर्य रहत जग आंसु उजेरे।—विश्राम।

सुरावनि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं की माता, अदिति। (२) पृथिवी।

सुरावारि-संज्ञा पुं० [सं०] सुरा समुद्र। वि० दे० "सुराब्धि"।

सुरावास-संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु।

सुरावृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

सुराश्रय-संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु।

सुराष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम जो भारत के पश्चिम में था। किसी के मत से यह सूरत और किसी के मत से काठियावाड़ है। (२) राजा दशरथ के एक मंत्री का नाम।

वि० जिसका राज्य अच्छा हो।

सुराष्ट्रज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोपीचंदन। सौराष्ट्र मृत्तिका। (२) काली मूँग। कृष्ण मुद्ग। (३) लाल कुलथी। रक्त कुलत्थ। (४) एक प्रकार का विष।

वि० सुराष्ट्र देश में उत्पन्न।

सुराष्ट्रजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोपीचंदन।

सुराष्ट्रोद्भवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] फिटकरी।

सुरासंधान-संज्ञा पुं० [सं०] शराब चुआने की क्रिया।

सुरासमुद्र-संज्ञा पुं० दे० "सुराब्धि"।

सुरासव-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का आसव जो तीक्ष्ण, बलकारक, मूत्रवर्द्धक, कफ और वायुनाशक तथा मुखप्रिय कहा गया है।

सुरासार-संज्ञा पुं० [सं०] मद्य का सार जो अंगूर या माड़ी के खमीर से बनता है। इसके बिना शराब नहीं बनती। इसी में नशा होता है।

सुरासुर-संज्ञा पुं० [सं०] सुर और असुर। देवता और दानव।

सुरासुरगुरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) कश्यप।

सुरास्पद-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का घर। देवगृह। मंदिर।

सुराही-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) जल रखने का एक प्रकार का प्रसिद्ध पात्र जो प्रायः मिट्टी का और कभी कभी पीतल या जस्ते आदि धातुओं का भी बनता है। यह बिलकुल गोल हंडी के आकार का होता है, पर इसका मुँह ऊपर की ओर कुछ दूर तक निकला हुआ गोल नली के आकार का होता है। प्रायः गरमी के दिनों में पानी ठंढा करने के लिये इसका उपयोग होता है। इसे कहीं कहीं कुज्जा भी कहते हैं।

यौ०—सुराहीदार।

(२) बाजू, जोशन या बरेखी के लटकते हुए सूत में गुंबज के ऊपर लगनेवाला सोने या चाँदी का सुराही के आकार का बना हुआ छोटा लंबोतरा टुकड़ा। (३) कपड़े की एक प्रकार की काट जो पान के आकार की होती है। इसमें मछली की दुम की तरह कुछ कपड़ा तिकोना लगा रहता है। (दर्जी) (४) नैचे में खंभ से ऊपर की ओर वह भाग जो सुराही के आकार का होता है और जिस पर चिलम रखी जाती है।

सुराहीदार-वि० [अ० सुराही + फा० दार] सुराही के आकार का। सुराही की तरह का गोल और लंबोतरा। जैसे,—सुराहीदार गरदन। सुराहीदार मोती।

सुराह्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवदारु। (२) मरुआ। मरुवक। (३) हलदुवा। हरिद्रु।

सुराह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का पौधा। (२) देवदारु।

सुरि-वि० [सं०] बहुत धनी। बड़ा अमीर।

सुरिंद-संज्ञा पुं० [सं० सुर] इंद्र। (डिं०)

सुरियाखार†-संज्ञा पुं० [फ़ा० शोरा + हिं० खार] शोरा।

सुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवपत्नी। देवांगना।

सुरीला-वि० [हिं० सुर + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० सुरीली] मीठे सुरवाला। मधुर स्वरवाला। जिसका सुर मीठा हो। सुस्वर। सुकंठ। जैसे,—सुरीला गला, सुरीला बाजा, सुरीला गवैया, सुरीली तान।

सुरुंग-संज्ञा पुं० [सं०] सहिजन। शोभांजन वृक्ष।

सुरुंगयुज्-संज्ञा पुं० दे० "सुरंगयुज्"।

सुरुंगा-संज्ञा स्त्री० दे० "सुरंग"।

सुरुंगाहि-संज्ञा पुं० [सं०] सेंध लगानेवाला चोर। सेंधिया चोर।

सुरुंदला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम।
सुरुक्म-वि० [सं०] अच्छी तरह प्रकाशित। प्रदीप्त।
सुरुख-वि० [सं० सु+फ़ा० रुख़ = प्रवृत्ति] अनुकूल। सदय। प्रसन्न। उ०—सुरुख जानकी जानि कपि कहे सकल संकेत।—तुलसी।
वि० दे० "सुर्ख"। उ०—रंच न देरि करहु सुरुख अब हरि हेरि परै न। विनय वचन सो सुनि भये सुरुख तरुनि के नैन।—शृंगार सतसई।
सुरुखुरू-वि० [फ़ा० सुर्ख़रू] जिसे किसी काम में यश मिला हो। यशस्वी। उ०—अलहदाद भल तेहिकर गुरू। दीन दुनी रोसन सुरुखुरू।—जायसी।
सुरुच-संज्ञा पुं० [सं०] उज्ज्वल प्रकाश। अच्छी रोशनी।
वि० सुंदर प्रकाशवाला।
सुरुचि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजा उत्तानपाद की दो पत्नियों में से एक जो उत्तम की माता थी। ध्रुव की विमाता। (२) उत्तम रुचि। (३) अत्यंत प्रसन्नता।
वि० (१) उत्तम रुचिवाला। जिसकी रुचि उत्तम हो। (२) स्वाधीन। (डिं०)
संज्ञा पुं० (१) एक गंधर्व राजा का नाम। (२) एक यक्ष का नाम।
सुरुचिर-वि० [सं०] (१) सुंदर। दिव्य। मनोहर। (२) उज्ज्वल। प्रकाशमान्। दीप्तिशाली।
सुरुज-वि० [सं०] बहुत बीमार। अस्वस्थ। रुग्ण।
‡संज्ञा पुं० दे० "सूर्य्य"। उ०—तहँ ही ते सब ऊपजे चंद सुरुज आकास।—दादू।
सुरुजमुखी†-संज्ञा पुं० दे० "सूर्यमुखी"। उ०—विचरि चहूँ दिसि लखत हैं वर पूजै बृजराज। चंद्रमुखी को लखि सखी सुरुजमुखी सी आज।—शृंगार-सतसई।
सुरुद्रि-संज्ञा स्त्री० [सं०] शतद्रु या वर्त्तमान सतलज नदी का एक नाम।
सुरुल-संज्ञा पुं० [देश०] मूँगफली पौधे का एक रोग जिसमें कुछ कीड़ों के खाने के कारण उसके पत्ते और डंठल टेढ़े हो जाते हैं। इस पौधे में यह रोग प्रायः सभी जगहों में होता है और इससे बड़ी हानि होती है।
सुरुवा-संज्ञा पुं० दे० (१) "शोरबा"। (२) दे० "सुरवा"।
सुरूप-वि० [सं०] [स्त्री० सुरूपा] (१) सुंदर रूपवाला। रूपवान्। खूबसूरत। (२) विद्वान्। बुद्धिमान्।
संज्ञा पुं० (१) शिव का एक नाम। (२) एक असुर का नाम। (३) कपास। तूल। (४) पलास पीपल। परिपार्श्व। (५) कुछ विशिष्ट देवता और व्यक्ति।
विशेष—कामदेव, दोनों अश्विनीकुमार, नकुल, पुरुरवा, नलकूबर और शांब ये सुरूप कहलाते हैं।
‡संज्ञा पुं० दे० "स्वरूप"। उ०—रूप सवाई दिन दिन चढ़ा। विधि सुरूप जग ऊपर गढ़ा।—जायसी।
सुरूपक-वि० दे० "स्वरूप"।
सुरूपता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरूप होने का भाव। सुंदरता। खूबसूरती।
सुरूपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरिवन। शालपर्णी। (२) वमनेठी। भारंगी। (३) सेवती। वनमल्लिका। (४) बेला। वार्षिकी मल्लिका। (५) पुराणानुसार एक गौ का नाम।
वि० स्त्री० सुंदर रूपवाली। सुंदरी।
सुरूहक-संज्ञा पुं० [सं०] खच्चर। गर्दभाश्व।
सुरेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुरराज। इंद्र। (२) लोकपाल। राजा।
सुरेंद्रकंद-संज्ञा पुं० दे० "सुरेंद्रक"।
सुरेंद्रक-संज्ञा पुं० [सं०] कटु सूरण। काटनेवाला जमींकंद। जंगली ओल।
सुरेंद्रगोप-संज्ञा पुं० [सं०] बीर बहूटी। इंद्रगोप नामक कीड़ा।
सुरेंद्रचाप-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।
सुरेंद्रजित्-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र को जीतनेवाला, गरुड़।
सुरेंद्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरेंद्र होने का भाव या धर्म। इंद्रत्व।
सुरेंद्रपूज्य-संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।
सुरेंद्रमाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक किन्नरी का नाम।
सुरेंद्रलोक-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रलोक।
सुरेंद्रवज्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्ण वृत्त का नाम जिसमें दो तगण, एक जगण और दो गुरु होते हैं। इंद्रवज्रा।
सुरेंद्रवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] शची। इंद्राणी।
सुरेंद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक किन्नरी का नाम।
सुरेखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुंदर रेखा। (२) हाथ पाँव में होनेवाली वे रेखाएँ जिनका रहना शुभ समझा जाता है।
सुरेज्य-संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।
सुरेज्ययुग-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार बृहस्पति का युग जिसमें पाँच वर्ष हैं। इन पाँचों वर्षों के नाम ये हैं—अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा और धाता।
सुरेज्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तुलसी। (२) ब्राह्मी।
सुरेणु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्रसरेणु। (२) एक प्राचीन राजा का नाम।
संज्ञा स्त्री० (१) त्वाष्ट्री की पुत्री और विवस्वान् की पत्नी। (२) एक नदी का नाम जो सप्त सरस्वतियों में समझी जाती है।
सुरेणु पुष्पध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार किन्नरों के एक राजा का नाम।
सुरेतना†-क्रि० स० [?] खराब अनाज से अच्छे अनाज को अलग करना।

सुरेतर–संज्ञा पुं० [सं०] असुर।
सुरेता–वि० [सं० सुरेतस्] बहुत वीर्यवान्। अधिक सामर्थ्यवान्।
सुरेतोधा–वि० [सं० सुरेतोधस्] वीर्यवान्। पौरुष संपन्न।
सुरेध–संज्ञा पुं० [?] सूँस। शिशुमार। उ०—रथ सुरेध भुज मीन समाना। शिरकच्छप गजग्राह प्रमाना।—विश्राम।
सुरेनुका–संज्ञा स्त्री० दे० "सुरेणु"। उ०—सोमनाथ त्रिरंग है आल नाथ एकांग। हरिक्षेत्र नैमिष सदा अंशतीसु चित्रंग। प्रगट प्रभासु सुरेनुका हर्म्य जासु उज्जैनि। शंकर पूरनि पुष्कर अरु प्रयाग सुर्गनैनि।—केशव।
सुरेभ–संज्ञा पुं० [सं०] सुरहस्ती। देवहस्ती।
वि० सुस्वर। सुरीला।
सुरेपद–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सुपारी का पेड़। रामपूग।
सुरेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के स्वामी, इंद्र। (२) शिव। (३) विष्णु। (४) कृष्ण। (५) लोकपाल।
सुरेशलोक–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रलोक।
सुरेशी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।
सुरेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के स्वामी, इंद्र। (२) ब्रह्मा। (३) शिव। (४) रुद्र।
वि० देवताओं में श्रेष्ठ।
सुरेश्वरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं की स्वामिनी, दुर्गा। (२) लक्ष्मी। (३) राधा। (४) स्वर्ग गंगा।
सुरेष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद अगस्त का वृक्ष। (२) लाल अगस्त। (३) सुर पुन्नाग। (४) लिपमली। बड़ी मौलसिरी। (५) साल वृक्ष। साखू।
सुरेष्टक–संज्ञा पुं० [सं०] शाल। साखू। अश्वकर्ण।
सुरेष्टा–संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी।
सुरेस–संज्ञा पुं० दे० "सुरेश"।
सुरै–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की अनिष्टकारी घास जो गर्मी के मौसिम में पैदा होती है।
संज्ञा स्त्री० [सं० सुरभी] गाय। (डिं०)
सुरैत–संज्ञा स्त्री० [सं० सुरति] वह स्त्री जिससे विवाह संबंध न हुआ हो, बल्कि जो यों ही घर में रख ली गई हो। उपपत्नी। रखनी। रखेली। सुरैतिन।
सुरैतवाल–संज्ञा पुं० [हिं० सुरैत + वाल] सुरैत का लड़का।
सुरैतवाला–संज्ञा पुं० दे० "सुरैतवाल"।
सुरैतिन–संज्ञा स्त्री० दे० "सुरैत"।
सुरोचन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञवाहु के एक पुत्र का नाम। (२) एक वर्ष का नाम।
सुरोचना–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।
सुरोचि–वि० [सं० सुरुचि] सुंदर। उ०—गिरि जात न जानत पानन खात बिरी कर पंकज के दल की। बिहँसीं सब गोप-सुता हरि लोचन मूँदि सुरोचि दृगंचल की।—केशव।
सुरोची–संज्ञा पुं० [सं० सुरोचिस्] वशिष्ठ के एक पुत्र का नाम।
सुरोत्तम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं में श्रेष्ठ, विष्णु। (२) सूर्य।
सुरोत्तमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।
सुरोत्तर–संज्ञा पुं० [सं०] चंदन।
सुरोद–संज्ञा पुं० [सं०] सुरा समुद्र। मदिरा का समुद्र।
संज्ञा पुं० दे० "सरोद"।
सुरोदक–संज्ञा पुं० दे० "सुरोद"।
सुरोदय–संज्ञा पुं० दे० "स्वरोदय"।
सुरोध–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार तंसु के एक पुत्र का नाम।
सुरोधा–संज्ञा पुं० [सं० सुरोधस्] एक गोत्र प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।
सुरोमा–वि० [सं० सुरोमन्] सुंदर रोमोंवाला। जिसके रोम सुंदर हों।
संज्ञा पुं० एक यक्ष का नाम।
सुरौपम–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के एक सेनापति का नाम।
सुरौका–संज्ञा पुं० [सं० सुरौकस्] (१) स्वर्ग। (२) देवमंदिर।
सुर्ख–वि० [फा०] रक्त वर्ण का। लाल।
संज्ञा पुं० गहरा लाल रंग।
सुर्खरू–वि० [फा०] (१) जिसके मुख पर तेज हो। तेजस्वी। कांतिवान्। (२) प्रतिष्ठित। सम्मान्य। (३) किसी कार्य्य में सफलता प्राप्त करने के कारण जिसके मुँह की लाली रह गई हो।
सुर्खरूई–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) सुर्खरू होने का भाव। (२) यश। कीर्ति। (३) मान। प्रतिष्ठा।
सुर्खा–संज्ञा पुं० [फा० सुर्ख] एक प्रकार का कबूतर जो लाल रंग का होता है।
सुर्खाब–संज्ञा पुं० दे० "सुरखाब"।
सुर्खी–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) लाली। ललाई। अरुणता। (२) लेख आदि का शीर्षक, जो प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों में प्रायः लाल स्याही से लिखा जाता था। (३) रक्त। लहू। खून। (४) दे० "सुरखी"।
सुर्खीदार सुरमई–संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का सुरमई या बैंजनी रंग जो कुछ लाली लिए होता है।
सुर्जना–संज्ञा पुं० दे० "सहिंजन"।
सुर्ता–वि० [हिं० सुरति = स्मृति] समझदार। होशियार। बुद्धिमान्। उ०—हीरा लाल की कोठरी मोतियन भरे भँडार। सुर्ता सुर्ता चूनिया मूरख रहे झख मार।—कबीर।
सुर्ती–संज्ञा स्त्री० दे० "सुरती"।
सुर्मा–संज्ञा पुं० दे० "सुरमा"।
सुर्रा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार की मछली। (२) थैली। बटुआ।
† संज्ञा पुं० [सुर्र से अनु०] तेज हवा।
मि० प्र०—चलना।

सुलंक–संज्ञा पुं० दे० "सोलंक"। उ०—तासें सुलंक नृप आनँद पायो। द्वै सुत निज तिय मँह जनमायो।—रघुराज।

सुलंकी–संज्ञा पुं० दे० "सोलंकी"। उ०—पौरच पुंडीर परिहार औ पँवार बैंस, सेंगर सिसौदिया सुलंकी दिलवार हैं।—सूदन।

सुलक्ख–वि० दे० "सुलक्षण"।

सुलक्षण–वि० [सं०] (१) शुभ लक्षणों से युक्त। अच्छे लक्षणोंवाला। (२) भाग्यवान्। किस्मतवर।
संज्ञा पुं० (१) शुभ लक्षण। शुभ चिह्न। (२) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में १४ मात्राएँ होती हैं। सात मात्राओं के बाद एक गुरु, एक लघु और तब विराम होता है।

सुलक्षणत्व–संज्ञा पुं० [सं०] सुलक्षण का भाव। सुलक्षणता।

सुलक्षणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती की एक सखी का नाम।
वि० स्त्री० शुभ लक्षणों से युक्त। अच्छे लक्षणोंवाली।

सुलक्षणी–वि० स्त्री० दे० "सुलक्षणा"।

सुलगना–क्रि० अ० [सं० सु + हिं० लगना] (१) (लकड़ी, कोयले आदि का) जलना। प्रज्वलित होना। दहकना। (२) बहुत अधिक संताप होना।

सुलगाना–क्रि० स० [हिं० सुलगना का स० रूप] (१) जलाना। दहकाना। प्रज्वलित करना। जैसे,—लकड़ी सुलगाना, आग सुलगाना, कोयला सुलगाना।
संयो० क्रि०—डालना।—देना।—रखना।
(२) संतप्त करना। दुःखी करना।

सुलग्न–संज्ञा पुं० [सं०] शुभ मुहूर्त्त। शुभ लग्न। अच्छी सायत।
वि० [सं०] दृढ़ता से लगा हुआ।

सुलच्छन–वि० दे० "सुलक्षण"। उ०—(क) ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग। होइ कुवस्तु सुवस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग।—तुलसी। (ख) नृप लख्यो लतच्छन भरम हर। परम सुलच्छन परम धर।—गि० दास।

सुलच्छनी–वि० दे० "सुलक्षणा"। उ०—जाय सुहागिनि बसति जो अपने पीहर धाम। होत बुरी शंका करैं यदपि सती हू बाम। यातें चाहत बंधुजन रहै सदा पतिगेह। प्रमुदा नारि सुलच्छनी मिलहु पिया के नेह।—लक्ष्मणसिंह।

सुलच्छ–वि० [सं० सुलक्ष] सुंदर। उ०—सुलच्छ लोचन चारु नासा परम रुचिर बनाइ। युगल खंजन लरत अवनित बीच कियो बनाइ।—सूर।

सुलझन–संज्ञा स्त्री० [हिं० सुलझना] सुलझने की क्रिया या भाव। सुलझाव।

सुलझना–क्रि० अ० [हिं० उलझना] किसी उलझी हुई वस्तु की उलझन दूर होना या खुलना। उलझन का खुलना। गुत्थी का खुलना। जटिलताओं का निवारण होना।

सुलझाना–क्रि० स० [हिं० सुलझना का स० रूप] किसी उलझी हुई वस्तु की उलझन दूर करना। उलझन या गुत्थी खोलना। जटिलताओं को दूर करना।

सुलझाव–संज्ञा पुं० [हिं० सुलझना + आव (प्रत्य०)] सुलझने की क्रिया या भाव। सुलझन।

सुलटा–वि० [हिं० उलटा] [स्त्री० सुलटी] सीधा। उलटा का विपरीत।

सुलतान–संज्ञा पुं० [फ़ा०] बादशाह। सम्राट्।

सुलताना चंपा–संज्ञा पुं० [फ़ा० सुलतान + हिं० चंपा] एक प्रकार का पेड़ जो मद्रास प्रांत में अधिकता से होता है और कहीं कहीं संयुक्त प्रांत तथा पंजाब में भी पाया जाता है। इसके हीर की लकड़ी लाली लिए भूरे रंग की और बहुत मजबूत होती है। यह इमारत, मस्तूल आदि बनाने के काम में आती है। रेल की लाइन के नीचे पटरी की जगह रखने के भी काम में आती है। संस्कृत में इसे पुन्नाग कहते हैं।

सुलतानी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सुलतान] (१) बादशाही। बादशाहत। राज्य। उ०—चढ़ि धौराहर देखहिं रानी। धनि तुइँ अस जाकर सुलतानी।—जायसी। (२) एक प्रकार का बढ़िया महीन रेशमी कपड़ा।
वि० लाल रंग का। उ०—सोई हुती पलँगा पर बाल खुले अँचरानहिं जानत कोऊ। ऊँचे उरोजन कंचुकी ऊपर लालन के परचे हग दोऊ। सो छबि पीतम देखि छकै कवि तोष कहै उपमा यह होऊ। मानो मढ़ै सुलतानी बनात में साह मनोज के गुंबज दोऊ।—तोष।

सुलप–वि० (१) दे० "स्वल्प"। उ०—नृत्यति उघटति गति संगीत पद सुनत कोकिला लाजति। सूरश्याम नागर अरु नागरि ललना सुलप मंडली राजति।—सूर। (२) मंद। उ०—चलि सुलप गज हंस मोहति कोक कला प्रवीन।—सूर।
संज्ञा पुं० [सं० सु + आलाप] सुंदर आलाप। (क्व०)

सुलफ–वि० [सं० सु + हिं० लपना] (१) लचीला। लचनेवाला। (२) नाजुक। कोमल। मुलायम। उ०—(क) दीरघ उसास लै लै ससिमुखी सिसकति सुलफ सलौनो लंक लहकै लहकि लहकि।—देव। (ख) मोती सियरात हित जानि कै प्रभात हिय ढीले करि पीतम के गात सुलफनि के।—देव।

सुलफा–संज्ञा पुं० [फ़ा० सुल्फ़:] (१) वह तमाकू जो चिलम में बिना तवा रखे भर कर पिया जाता है। (२) सूखा तमाकू जिसे गाँजे की तरह पतली चिलम में भर कर पीते हैं। कंकड़। (३) चरस।
यौ०—सुलफेबाज।
क्रि० प्र०—भरना।—पीना।

सुलफेयाज–वि० [हिं० सुल्फा + फ़ा० बाज] गाँजा या चरस पीनेवाला। गँजेड़ी या चरसी।

सुलंब–संज्ञा पुं० [हिं०] गंधक।

सुलभ–वि० [सं०] (१) सुगमता से मिलने योग्य। सहज में मिलनेवाला। जिसके मिलने में कठिनाई न हो। (२) सहज। सरल। सुगम। आसान। (३) साधारण। मामूली। (४) उपयोगी। लाभकारी।
संज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्र की अग्नि।

सुलभता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुलभ का भाव। सुलभत्व। (२) सुगमता। आसानी।

सुलभत्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुलभ का भाव। सुलभता। (२) सुगमता। सरलता। आसानी।

सुलभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वैदिक काल की एक ब्रह्मवादिनी स्त्री का नाम। (गृह्यसूत्र) (२) तुलसी। (३) मषवन। जंगली उड़द। मांसपर्णी। (४) तमाकू। धूम्रपत्रा। (५) बेला। वार्षिकी मल्लिका।

सुलभेतर–वि० [सं०] (१) जो सहज में प्राप्त न हो सके। दुर्लभ। (२) कठिन। (३) महार्घ। महँगा।

सुलभ्य–वि० [सं०] सुगमता से मिलने योग्य। सहज में मिलनेवाला। जिसके मिलने में कठिनाई न हो।

सुललित–वि० [सं०] अति ललित। अत्यंत सुंदर।

सुलस–संज्ञा पुं० [?] स्वीडेन देश का एक प्रकार का लोहा।

सुलह–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) मेल। मिलाप। (२) वह मेल जो किसी प्रकार की लड़ाई या झगड़ा समाप्त होने पर हो। (३) दो राजाओं या राज्यों में होनेवाली संधि।
यौ०—सुलहनामा।

सुलहनामा–संज्ञा पुं० [अ० सुलह + फ़ा० नामः] (१) वह कागज जिस पर दो या अधिक परस्पर लड़नेवाले राजाओं या राष्ट्रों की ओर से मेल की शर्तें लिखी रहती हैं। संधिपत्र। (२) वह कागज जिस पर परस्पर लड़नेवाले दो व्यक्तियों या दलों की ओर से समझौते की शर्तें लिखी रहती हैं; अथवा यह लिखा रहता है कि अब हम लोगों में किसी प्रकार का झगड़ा नहीं है।

सुलाक–संज्ञा पुं० [फ़ा० सूराख] सूराख। छेद। (लश०)
संज्ञा स्त्री० दे० "सलाख"।

सुलाखना–क्रि० स० [सं० सु + हिं० लखना = देखना] सोने या चाँदी को तपाकर परखना।

सुलागना*–क्रि० अ० दे० "सुलगना"। उ०—अगिनि सुलागत मोरयो न अंग मन विकट बनावत बेहु। बकती कहा बाँसुरी कहि कहि करि करि तामस तेहु।—सूर।

सुलाना–क्रि० स० [हिं० सोना का प्रेर०] (१) सोने में प्रवृत्त करना। शयन कराना। निद्रित कराना। (२) लिटाना। डाल देना।

सुलाभ–वि० दे० "सुलभ"।

सुलाभी–संज्ञा पुं० [सं० सुलाभिन्] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सुलूक–संज्ञा पुं० दे० "सलूक"।

सुलेक–संज्ञा पुं० [सं०] एक आदित्य का नाम।

सुलेखक–संज्ञा पुं० [सं०] अच्छा लेख या निबंध लिखनेवाला। जिसकी रचना उत्तम हो। उत्तम ग्रंथकार या लेखक।

सुलेमाँ–संज्ञा पुं० दे० "सुलेमान"। उ०—हाथ सुलेमाँ केरि अँगूठी। जग कहँ दान दीन्ह भरि मूठी।—जायसी।

सुलेमान–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) यहूदियों का एक प्रसिद्ध बादशाह जो पैगंबर माना जाता है। कहते हैं कि इसने देवों और परियों को वश में कर लिया था और यह पशु-पक्षियों तक से काम लिया करता था। इसका जन्म ई० पू० १०३३ और मृत्यु ई० पू० ९७५ माना जाता है। (२) एक पहाड़ जो बलोचिस्तान और पंजाब के बीच में है।

सुलेमानी–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह घोड़ा जिसकी आँखें सफेद हों। (२) एक प्रकार का दोरंगा पत्थर जिसका कुछ अंश काला और कुछ सफेद होता है।
वि० सुलेमान का। सुलेमान संबंधी। जैसे,—सुलेमानी नमक।

सुलोक–संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

सुलोचन–वि० [सं०] [स्त्री० सुलोचना] सुंदर आँखोंवाला। जिसके नेत्र सुंदर हों। सुनेत्र। सुनयन।
संज्ञा पुं० (१) हरिन। (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (किसी किसी के मत से दुर्योधन का ही यह एक नाम था।) (३) एक दैत्य का नाम। (४) रुक्मिणी के पिता का नाम। (५) चकोर।

सुलोचना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक अप्सरा का नाम। (२) राजा माधव की पत्नी का नाम जो आदर्श पत्नी मानी जाती है। (३) वासुकी की पुत्री और मेघनाद की पत्नी का नाम।

सुलोचनी–वि० स्त्री० [सं० सुलोचना] सुंदर नेत्रोंवाली। जिसके नेत्र सुंदर हों। उ०—सुंदरि सुलोचनि सुवचनि सुदति, तैसे तेरे मुख आखर परुष रुख मानिये।—केशव।

सुलोम–वि० [सं०] [स्त्री० सुलोमा] सुंदर लोमों या रोमों से युक्त। जिसके रोएँ सुंदर हों।

सुलोमनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामांसी। बालछड़।

सुलोमश–वि० दे० "सुलोम"।

सुलोमशा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकजंघा। (२) जटामांसी।

सुलोमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ताम्रवल्ली। (२) मांस रोहिणी।
वि० दे० "सुलोम"।

सुलोह–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बढ़िया लोहा।

सुलोहक–संज्ञा पुं० [सं०] पीतल।

सुलोहित–संज्ञा पुं० [सं०] सुंदर रक्त वर्ण। अच्छा लाल रंग।

वि० सुंदर रक्त वर्ण से युक्त । सुंदर लाल रंगवाला ।

सुलोहिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक जिह्वा का नाम ।

सुलोही-संज्ञा पुं० [सं० सुलोहित] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

सुल्तान-संज्ञा पुं० दे० "सुलतान" ।

सुल्फ-संज्ञा पुं० [देश०] (१) बहुत चढ़ी या तेज हवा । (२) नाव । किश्ती । (लश०)

सुवंश-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार वसुदेव के एक पुत्र का नाम ।

सुवंशेक्षु-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद ईख या ऊख । श्वेतेक्षु ।

सुवंस-संज्ञा पुं० दे० "सुवंश" । उ०—गिरिधर अनुज सुवंस भयो जदुवंस बढ़ावन ।—गोपाल ।

सुव-संज्ञा पुं० दे० "सुअन" । उ०—हिंदुवान पुन्य गाहक बनिक तासु निबाहक साहि सुव । बरवार धान किरवान धरि जस जहाज सिवराज तुव ।—भूषण ।

सुवक्ता-वि० [सं० सु+वक्तृ] सुंदर बोलनेवाला । उत्तम व्याख्यान देनेवाला । वाक्पटु । व्याख्यान कुशल । वाग्मी ।

सुवक्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । (२) स्कंद के एक पारिषद का नाम । (३) दंतवक्त्र के एक पुत्र का नाम । (४) वन तुलसी । वन बर्बरी ।

वि० सुंदर मुँहवाला । सुमुख ।

सुवक्ष-वि० [सं० सुवक्षस्] सुंदर या विशाल वक्षवाला । जिसकी छाती सुंदर या चौड़ी हो ।

सुवक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मय दानव की पुत्री और त्रिजटा तथा विभीषण की माता का नाम ।

सुवच्य-वि० [सं०] सहज में कहा जानेवाला । जिसके उच्चारण में कोई कठिनता न हो ।

सुवचन-वि० [सं०] (१) सुंदर बोलनेवाला । सुवक्ता । वाग्मी । (२) मिष्टभाषी ।

सुवचनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम । (बंगाल की स्त्रियों में इस देवी की पूजा का अधिक प्रचार है ।)

वि० सुंदर वचन बोलनेवाली । मधुर भाषिणी । उ०—सुंदरि सुलोचनि सुवचनि सुदति तैसे तेरे मुख आखर परुष रुख मानिये ।—केशव ।

सुवचा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक गंधर्वी का नाम ।

सुवज्र-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम ।

सुवटा-संज्ञा पुं० दे० "सुअटा" । उ०—पिंजर पिंड सरीर का सुवटा सहज समाइ ।—दादू ।

सुवण-संज्ञा पुं० [सं० सुवर्ण] सोना । सुवर्ण । (डिं०)

सुवदन-वि० [सं०] [स्त्री० सुवदना] सुंदर मुखवाला । जिसका मुख सुंदर हो । सुमुख ।

संज्ञा पुं० वन तुलसी । बर्बरक ।

सुवदना-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदरी स्त्री ।

सुवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य । (२) अग्नि । (३) चंद्रमा ।

संज्ञा पुं० (१) दे० "सुअन" । उ०—सुरसरि-सुवन रणभूमि आये ।—सूर । (२) दे० "सुमन" । उ०—दामिनि दमक देखी दीप की दिपति देखि देखि शुभ सेज देखि सदन सुवन को ।—केशव ।

सुवनारा-संज्ञा पुं० दे० "सुअन" । उ०—एक दिना तौ धर्म भुवारा । द्रुपदी हेतु संग सुवनारा ।—सबलसिंह ।

सुवपु-संज्ञा स्त्री० [सं० सुवपुस्] एक अप्सरा का नाम ।

वि० सुंदर शरीरवाला । सुदेह ।

सुवया-संज्ञा स्त्री० [सं० सुवयस्] प्रौढ़ा स्त्री । मध्यमा स्त्री ।

सुवरकोआ-संज्ञा पुं० [सूअर ? + हिं० कोना] वह हवा जिसमें पाल नहीं उड़ता । (मल्लाह)

सुवरण-संज्ञा पुं० दे० "सुवर्ण" ।

सुवर्चक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सज्जी । स्वर्जिकाक्षार । (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

सुवर्चना-संज्ञा स्त्री० दे० "सुवर्चला" ।

सुवर्चल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम । (२) काला नमक । सौवर्चल लवण ।

सुवर्चला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य की पत्नी का नाम । (२) परमेष्ठी की पत्नी और प्रतीह की माता का नाम । (३) ब्राह्मी । (४) तीसी । अलसी । (५) हुरहुर । आदित्यभक्ता ।

सुवर्चसी-संज्ञा पुं० [सं० सुवर्चसिन्] शिव का एक नाम ।

सुवर्चा-संज्ञा पुं० [सं० सुवर्चस्] (१) गरुड़ के एक पुत्र का नाम । (२) स्कंद के एक पारिषद का नाम । (३) दसवें मनु के एक पुत्र का नाम । (४) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

वि० तेजस्वी । शक्तिवान् ।

सुवर्चिक-संज्ञा पुं० दे० "सुवर्चक" ।

सुवर्चिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सत्ती । स्वर्जिकाक्षार । (२) पहाड़ी लता । अनुका ।

सुवर्ची-संज्ञा पुं० दे० "सुवर्चक" ।

सुवर्जिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पहाड़ी लता । अनुका ।

सुवर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना । स्वर्ण । (२) धन । संपत्ति । दौलत । (३) प्राचीन काल की एक प्रकार की स्वर्ण-मुद्रा जो दस माशे की होती थी । (४) सोलह माशे का एक मान । (५) स्वर्ण गैरिक । (६) हरिचंदन । (७) नागकेसर । (८) हल्दी । हरिद्रा । (९) धतूरा । (१०) कणगुग्गुल । (११) पीला धतूरा । (१२) पीली सरसों । गौर सर्षप । (१३) एक प्रकार का यज्ञ । (१४) एक वृत्त का नाम । (१५) एक देव गंधर्व का नाम । (१६) दशरथ के

एक मंत्री का नाम। (१७) अंतरीक्ष के एक पुत्र का नाम। (१८) एक मुनि का नाम।

वि० (१) सुंदर वर्ण या रंग का। उज्वल। (२) सोने के रंग का। पीला।

सुवर्णक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना। (२) सोने की एक प्राचीन तौल जो सोलह माशे की होती थी। सुवर्ण कर्ष। (३) पीतल जो देखने में सोने के समान होता है। (४) अमलतास। आरग्वध वृक्ष। (५) सुवर्णक्षीरी।

वि० (१) सोने का। (२) सुंदर वर्ण या रंग का।

सुवर्ण कदली–संज्ञा स्त्री० [सं०] चंपा केला। चंपक रंभा।

सुवर्ण कमल–संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल। रक्त कमल।

सुवर्णकरणी–संज्ञा स्त्री० [सं० सुवर्ण+करण] एक प्रकार की जड़ी। इसका गुण यह बताया जाता है कि यह रोगजनित विवर्णता को दूर कर सुवर्ण अर्थात् सुंदर कर देती है। उ०—दक्षिण शिखर द्रोणगिरि माहीं। औषधि चारिहु अहैं तहाँ हीं। एक विशल्यकरनी सुखदाई। एक सुवर्णकरनी मनभाई। एक संजीवनकरनी जोई। एक संधानकरन सुदमोई।—रघुराज।

सुवर्णकर्त्ता–संज्ञा पुं० [सं० सुवर्णकर्तृ] सोने के गहने बनानेवाला। सुनार। स्वर्णकार।

सुवर्णकर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] सोने की एक प्राचीन तौल जो सोलह माशे की होती थी।

सुवर्णकार–संज्ञा पुं० [सं०] सोने के गहने बनानेवाला, सुनार।

सुवर्णकेतकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल केतकी। रक्त केतकी।

सुवर्णकेश–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक नागासुर का नाम।

सुवर्णक्षीरिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कटेरी। सत्यानासी। कटुपर्णी। स्वर्णक्षीरी।

सुवर्ण गणित–संज्ञा पुं० [सं०] बीजगणित का वह अंग जिसके अनुसार सोने की तौल आदि मानी जाती है और उसका हिसाब लगाया जाता है।

सुवर्णगर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

सुवर्णगिरि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजगृह के एक पर्वत का नाम। (२) अशोक की एक राजधानी जो किसी के मत से राजगृह में और किसी के मत से पश्चिमी घाट में थी।

सुवर्णगैरिक–संज्ञा पुं० [सं०] लाल गेरू।

पर्य्या०—स्वर्णधातु। सुरक्तक। संध्याभ्र। बभ्रुधातु। शिलाधातु।

सुवर्णगोत्र–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक प्राचीन राज्य का नाम।

सुवर्णघ्न–संज्ञा पुं० [सं०] राँगा। वंग।

सुवर्णचूड़–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़ के एक पुत्र का नाम। (२) एक प्रकार का पक्षी।

सुवर्णचूल–संज्ञा पुं० दे० "सुवर्णचूड़"।

सुवर्णजीविक–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति जो सोने का व्यापार करती थी।

सुवर्णता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुवर्ण का भाव या धर्म। सुवर्णत्व।

सुवर्णतिलका–संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकंगनी। ज्योतिष्मती लता।

सुवर्णदुग्धी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कटेरी। भटकटैया। स्वर्णक्षीरिणी।

सुवर्णद्वीप–संज्ञा पुं० [सं०] सुमात्रा टापू का प्राचीन नाम।

सुवर्णधेनु–संज्ञा स्त्री० [सं०] दान देने के लिये सोने की बनाई हुई गौ।

सुवर्णनकुली–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी मालकंगनी। महा-ज्योतिष्मती लता।

सुवर्णपक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

वि० सोने के पंखोंवाला। जिसके पर सोने के हों।

सुवर्णपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी।

सुवर्णपद्म–संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल। रक्त कमल।

सुवर्णपद्मा–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग गंगा।

सुवर्णपार्श्व–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम।

सुवर्णपालिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का सोने का बना हुआ पात्र।

सुवर्णपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी सेवती। राजतरुणी।

सुवर्णप्रभास–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक यक्ष का नाम।

सुवर्णप्रसर–संज्ञा पुं० [सं०] एलुआ। एलवालुक।

सुवर्णप्रसव–संज्ञा पुं० [सं०] एलुआ। एलवालुक।

सुवर्णफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] चंपा केला। सुवर्ण कदली।

सुवर्णबिंदु–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सुवर्णभू–संज्ञा पुं० [सं०] ईशान कोण में स्थित एक देश का नाम।

विशेष—बृहत्संहिता के अनुसार सुवर्णभू, वसुवन, दिविष्ठ, पौरव आदि देश रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्रों में अवस्थित हैं।

सुवर्णभूमि–संज्ञा पुं० [सं०] सुवर्ण द्वीप (सुमात्रा) का एक नाम।

सुवर्णमाक्षिक–संज्ञा पुं० [सं०] सोना मक्खी। स्वर्णमाक्षिक।

सुवर्णमाषक–संज्ञा पुं० [सं०] बारह धान का एक मान जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था।

सुवर्णमित्र–संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा, जिसकी सहायता से सोना जल्दी गल जाता है।

सुवर्ण वणिक्–संज्ञा पुं० [सं०] बंगाल की एक वणिक जाति। हिंदू राजत्व काल में इस जाति के लोग सोने का कारबार करते थे और अब भी बहुतेरे करते हैं। यह जाति निम्न और पतित समझी जाती है। ब्राह्मण और कायस्थ इनके यहाँ का जल नहीं ग्रहण करते। बंगाल में इन्हें "सोनार बेणे" कहते हैं।

सुवर्णमुखरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम ।
सुवर्णमेखली–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम ।
सुवर्णयूथिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोनजुही । पीली जुही । पीतयूथिका ।
सुवर्णरंभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] चंपा केला । सुवर्ण कदली ।
सुवर्णरूप्यक–संज्ञा पुं० [सं०] सुवर्ण द्वीप (सुमात्रा) का एक प्राचीन नाम ।
सुवर्णरेखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम जो बिहार के राँची जिले से निकलकर मानभूम, सिंहभूम और उड़ीसा होती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है । इसकी कई शाखाएँ हैं ।
सुवर्णरेतस–संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम ।
सुवर्णरेता–संज्ञा पुं० [सं० सुवर्णरेतस्] शिव का एक नाम ।
सुवर्णरोमा–संज्ञा पुं० [सं० सुवर्णरोमन्] (१) मेंढ़ । मेष । (२) महारोम के एक पुत्र का नाम ।
वि० सुनहरे रोएँ या बालोंवाला ।
सुवर्णलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकंगनी । ज्योतिष्मती लता ।
सुवर्णवर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम ।
वि० सोने के रंग का । सुनहरा ।
सुवर्णवर्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] हलदी । हरिद्रा ।
सुवर्णशिलेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।
सुवर्णश्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] आसाम की एक नदी जो ब्रह्मपुत्र की मुख्य शाखा है ।
सुवर्णष्ठीवी–संज्ञा पुं० [सं० सुवर्णष्ठीविन्] महाभारत के अनुसार संजय के एक पुत्र का नाम ।
सुवर्णसंख–संज्ञा पुं० दे० "सुवर्णकर्ष" ।
सुवर्णसिंदूर–संज्ञा पुं० दे० "स्वर्णसिंदूर" ।
सुवर्णसिद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो इंद्रजाल या जादू के बल से सोना बना या प्राप्त कर सकता हो ।
सुवर्णस्तेय–संज्ञा पुं० [सं०] सोने की चोरी (जो मनु के अनुसार पाँच महापातकों में से एक है) ।
सुवर्णस्तेयी–संज्ञा पुं० [सं० सुवर्णस्तेयिन्] सोना चुरानेवाला जो मनु के अनुसार महापातकी होता है ।
सुवर्णस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन जनपद का नाम । (२) सुमात्रा द्वीप का एक प्राचीन नाम ।
सुवर्णहलि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष ।
सुवर्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक का नाम । (२) इक्ष्वाकु की पुत्री और सुहोत्र की पत्नी का नाम । (३) हल्दी । हरिद्रा । (४) काला अगर । कृष्णागुरु । (५) पिरिंटी । बरियारा । बला । (६) कटेरी । सत्यानासी । स्वर्णक्षीरी । (७) इंद्रायन । इंद्रवारुणी ।

सुवर्णाकर–संज्ञा पुं० [सं०] सोने की खान, जिससे सोना निकलता है ।
सुवर्णाक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम ।
सुवर्णाख्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नागकेसर । (२) धतूरा । धुस्तूर । (३) एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।
सुवर्णाभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शंखपद के एक पुत्र का नाम । (२) रेवटी । राजावर्तमणि ।
सुवर्णार–संज्ञा पुं० [सं०] कचनार । रक्त कांचन वृक्ष ।
सुवर्णावभासा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक गंधर्वी का नाम ।
सुवर्णाह्वा संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली जूही । सोनजूही । स्वर्णयूथिका ।
सुवर्णिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली जीवंती । स्वर्ण जीवंती ।
सुवर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] मूसाकानी । आखुपर्णी ।
सुवर्तुल–संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज ।
सुवर्म्मा–संज्ञा पुं० [सं० सुवर्मन्] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।
वि० उत्तम कवच से युक्त । जिसके पास उत्तम कवच हो ।
सुवर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । (२) एक बौद्ध आचार्य का नाम ।
सुवर्षा–संज्ञा स्त्री० [सं०] मोतिया । मल्लिका ।
सुवल्लरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्रदात्री लता ।
सुवल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनुका नाम की लता । (२) सोमराजी ।
सुवल्लिज–संज्ञा पुं० [सं०] मूँगा । प्रवाल ।
सुवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बकुची । सोमराजी । (२) कुटकी । कटुकी । (३) पुत्रदात्री लता ।
सुवसंत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चैत्र पूर्णिमा । चैत्रावली । (२) मदनोत्सव जो चैत्र पूर्णिमा को होता था ।
सुवसंतक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मदनोत्सव जो प्राचीन काल में चैत्र पूर्णिमा को होता था । (२) वासंती । नेवारी ।
सुवसंता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माधवी लता । (२) चमेली । जातीपुष्प ।
सुवस#–वि० [सं० स्व+वश] जो अपने वश या अधिकार में हो ।
उ०—वरुण कुबेर अग्नि यम मारुत सुवस कियो क्षण मायँ ।—सूर ।
सुवस्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम ।
सुवह–वि० [सं०] (१) सहज में वहन करने या उठाने योग्य । जो सहज में उठाया जा सके । (२) धैर्यवान् । धीर ।
संज्ञा पुं० एक प्रकार की वायु ।
सुवहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वीणा । बीन । (२) शेफालिका । (३) रासन । रास्ना । (४) सँभालू । नील सिंधुवार । (५) रुद्रजटा । (६) हंसपदी । (७) मूसली । तालमूली । (८) सलई । शल्लकी । (९) गंधनाकुली । नकुलकंद । (१०) निसोथ । त्रिवृत्त ।

सुयाँग†-संज्ञा पुं० दे० "स्वाँग"।

सुयाँगी†-संज्ञा पुं० दे० "स्वाँगी"।

सुवा-संज्ञा पुं० दे० "सुआ"। उ०—सुवा चलि ता बन को रस पीजै। जा बन राम नाम अमृतरस श्रवणपात्र भरि लीजै।—सूर।

सुवाक्य-वि० [सं०] सुंदर वचन बोलनेवाला। मधुरभाषी। सुवाग्मी।

सुवाग्मी-वि० [सं० सुवाग्मिन्] बहुत सुंदर बोलनेवाला। व्याख्यान-पटु। सुवक्ता।

सुवाजी-वि० [सं० सुवाजिन्] सुंदर परों से युक्त (तीर)।

सुवाना‡†-क्रि० स० दे० "सुलाना"। उ०—पांडव न्योते अंधसुत घर के बीच सुवाय। अर्द्ध रात्रि चहुँ ओर ते दीनी आग लगाय।—लल्लूलाल।

सुवामा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्त्तमान रामगंगा नदी का प्राचीन नाम।

सुवार‡†-संज्ञा पुं० [सं० सूपकार] रसोइया। भोजन बनानेवाला। पाचक। उ०—सुनु नृप नाम जयंत हमारा। राज युधिष्ठिर केर सुवारा।—सबलसिंह।

संज्ञा पुं० [सं० सु+वार] उत्तम वार। अच्छा दिन। उ०—असाढ़ की अँधियारी अष्टमी मंगलवार सुवारो रामा।—हिंदी प्रदीप।

सुवार्त्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रीकृष्ण की एक पत्नी का नाम।

सुवाल‡†-संज्ञा पुं० दे० "सवाल"।

सुवालुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता।

सुवास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुगंध। अच्छी महक। खुशबू। (२) उत्तम निवास। सुंदर घर। (३) शिव जी का एक नाम। *(४) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में न, ज, ल (।।।, ।ऽ।, ।) होता है।*

वि० [सं० सुवासस्] [स्त्री० सुवासा] सुंदर वस्त्रों से युक्त।

संज्ञा पुं० [सं० श्वास] श्वास। साँस। (डिं०)

सुवासक-संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज।

सुवासन-संज्ञा पुं० [सं०] दसवें मनु के एक पुत्र का नाम।

सुवासरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हाली नाम [redacted] पौधा। चंसुर। चंद्रशूर।

सुवासिका-वि० [सं० सुवासिक] सुवास करनेवाली। सुगंध करनेवाली। उ०—केशव सुगंध श्वास सिद्धनिके गुहा किधौं परम प्रसिद्ध शुभ शोभत सुवासिका।—केशव।

सुवासित-वि० [सं०] सुवासयुक्त। सुगंधयुक्त। खुशबूदार।

सुवासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) युवावस्था में भी पिता के यहाँ रहनेवाली स्त्री। चिरंटी। (२) सधवा स्त्री।

सुवासी-वि० [सं० सुवासिन्] उत्तम या भव्य भवन में रहनेवाला।

सुवास्तु-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

संज्ञा पुं० (१) सुवास्तु नदी के निकटवर्ती देश का नाम। (२) इस देश के रहनेवाले।

सुवास्तुक-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम।

सुवाह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्कंद के एक पारिषद् का नाम। (२) अच्छा घोड़ा।

वि० (१) सहज में उठाने योग्य। (२) सुंदर घोड़ोंवाला।

सुवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन मुनि का नाम।

सुविक्रम-संज्ञा पुं० [सं०] वत्सप्री के एक पुत्र का नाम।

वि० अत्यंत साहसी, शक्तिशाली या वीर।

सुविक्रांत-वि० [सं०] अत्यंत विक्रमशाली। अतिशय पराक्रमी। अत्यंत साहसी या वीर।

संज्ञा पुं० (१) शूर। वीर। बहादुर। (२) वीरता। बहादुरी।

सुविक्लव-वि० [सं०] अतिशय विह्वल। बहुत बेचैन।

सुविख्यात-वि० [सं०] बहुत प्रसिद्ध। सुप्रसिद्ध। बहुत मशहूर।

सुविगुण-वि० [सं०] (१) जिसमें कोई गुण या योग्यता न हो। गुणहीन। योग्यता रहित। (२) अत्यंत दुष्ट। नीच। पाजी।

सुविग्रह-वि० [सं०] सुंदर शरीर या रूपवाला। सुदेह। सुरूप।

सुविचार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूक्ष्म या उत्तम विचार। (२) अच्छा फैसला। सुंदर न्याय। (३) रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न कृष्ण के एक पुत्र का नाम।

सुविचारित-वि० [सं०] सूक्ष्म या उत्तम रूप से विचार किया हुआ। अच्छी तरह सोचा हुआ।

सुविज्ञ-वि० [सं०] अतिशय विज्ञ या बुद्धिमान्। बहुत चतुर।

सुविज्ञान-वि० [सं०] (१) जो सहज में जाना जा सके। (२) अतिशय चतुर या बुद्धिमान्।

सुविज्ञेय-*वि० [सं०] जो सहज में जाना जा सके। सहज में जानने योग्य।*

संज्ञा पुं० शिव जी का एक नाम।

सुवित-वि० [सं०] सहज में पहुँचने योग्य। सहजमें पाने योग्य।

संज्ञा पुं० (१) अच्छा मार्ग। सुपथ। (२) कल्याण। (३) सौभाग्य।

सुवितत-वि० [सं०] अच्छी तरह फैला हुआ। सुविस्तृत।

सुवितल-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु की एक प्रकार की मूर्ति।

सुवित्त-वि० [सं०] बहुत धनी। बड़ा अमीर।

सुवित्ति-संज्ञा पुं० [सं०] एक देवता का नाम।

सुविद्-संज्ञा पुं० [सं०] पंडित। विद्वान्।

सुविद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंतःपुर या रनिवास का रक्षक। सौविद्। कंचुकी। (२) एक राजा का नाम। (३) तिलक। तिलकपुष्प वृक्ष।

सुविदग्ध-वि० [सं०] बहुत चतुर। बहुत चालाक।

सुविदत्-संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

सुविदत्र-वि० [सं०] (१) अतिशय सावधान। (२) सहृदय। (३) उदार। दयालु।

संज्ञा पुं० (१) कृपा। दया। (२) धन। संपत्ति।
(३) कुटुंब। (४) ज्ञान।

सुविदर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जाति का नाम।

सुविदला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका ब्याह हो गया हो। विवाहिता स्त्री।

सुविदल्ल-संज्ञा पुं० [सं०] अंतःपुर। जनानखाना। जनाना महल।

सुविदित-वि० [सं०] भली भाँति विदित। अच्छी तरह जाना हुआ।

सुविद्य-वि० [सं०] उत्तम विद्वान्। अच्छा पंडित।

सुविद्युत्-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम।

सुविध-वि० [सं०] अच्छे स्वभाव का। सुशील। नेक मिजाज।

सुविधा-संज्ञा स्त्री० दे० "सुभीता"।

सुविधि-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार वर्त्तमान अवसर्पिणी के नवें अर्हत् का नाम।

सुविनीत-वि० [सं०] (१) अतिशय नम्र। (२) अच्छी तरह सिखाया हुआ। सुशिक्षित (जैसे घोड़ा या और कोई पशु)।

सुविनीता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गौ जो सहज में दूही जा सके।

सुविभु-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम जो विभु का पुत्र था।

सुविशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।

सुविशुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक लोक का नाम।

सुविष्टंभी-संज्ञा पुं० [सं० सुविष्टम्भिन्] शिव का एक नाम।

सुवीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्कंद का एक नाम। (२) शिव जी का एक नाम। (३) शिवजी के एक पुत्र का नाम। (४) द्युतिमान् के एक पुत्र का नाम। (५) देवश्रवा के एक पुत्र का नाम। (६) क्षेम्य के एक पुत्र का नाम। (७) शिवि के एक पुत्र का नाम। (८) वीर। योद्धा। (९) एकवीर वृक्ष। (१०) झाड़ की रस्सी। (हिं०)
वि० अतिशय वीर। महान् योद्धा।

सुवीरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेर। बदरी। (२) एकवीर वृक्ष। (३) सुरमा।

सुवीरज-संज्ञा पुं० [सं०] सुरमा। सौवीरांजन।

सुवीराम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] काँजी। कांजिक।

सुवीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] बेर। बदरी फल।
वि० महान् शक्तिशाली। बहुत बड़ा बहादुर।

सुवीर्य्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वन कपास। वन कार्पासी। (२) बड़ी शतावरी। महा शतावरी। (३) कलपत्ती हींग। डिकामाली। नाड़ी हींग।

सुवृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] सूरन। जमींकंद। ओल।
वि० (१) सच्चरित्र। (२) गुणवान। (३) साधु। (४) सुंदर छंदोबद्ध (काव्य)।

सुवृत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक अप्सरा का नाम। (२) किशमिश। काकोली द्राक्षा। (३) सेवती। शतपत्री। (४) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १९ अक्षर होते हैं, जिनमें १,७,८,९,१०,११,१४ और १७वाँ अक्षर गुरु तथा अन्य अक्षर लघु होते हैं।

सुवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्तम वृत्ति। उत्तम जीविका। (२) सदाचार। पवित्र जीवन।
वि० (१) जिसकी वृत्ति या जीविका उत्तम या पवित्र हो। (२) सदाचारी। सच्चरित्र।

सुवृद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण दिशा के दिग्गज का नाम।
वि० (१) बहुत वृद्ध। (२) बहुत प्राचीन।

सुवेगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मालकंगनी। महाज्योतिष्मती लता। (२) एक गिद्धनी का नाम।

सुवेणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक नदी का नाम। महाभारत में भी इसका उल्लेख है।

सुवेद-वि० [सं०] आध्यात्मिक ज्ञान में पारंगत। अध्यात्मशास्त्र का अच्छा ज्ञाता।

सुवेदा-संज्ञा पुं० [सं० सुवेदस्] एक वैदिक ऋषि का नाम।

सुवेल-संज्ञा पुं० [सं०] त्रिकूट पर्वत का नाम, जो रामायण के अनुसार समुद्र के किनारे लंका में था और जहाँ रामचंद्र जी सेना सहित ठहरे थे। उ०—कौतुक ही वारिधि बँधाइ उतरे सुवेल तट जाइ। तुलसिदास गढ़ देखि फिरे कपि प्रभु आगमनु सुनाइ।—तुलसी।
वि० (१) बहुत झुका हुआ। प्रणत। (२) शांत। नम्र।

सुवेश-वि० [सं०] (१) भली भाँति या अच्छे कपड़े पहने हुआ। वस्त्रादि से सुसज्जित। सुंदर वेशयुक्त। (२) सुंदर। रूपवान।
संज्ञा पुं० सफेद ईख। श्वेतेक्षु।

सुवेशता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुवेश का भाव या धर्म।

सुवेशी-वि० दे० "सुवेश"।

सुवेष-वि० दे० "सुवेश"।

सुवेषित-वि० दे० "सुवेश"। उ०—गलीचे पर एक सुवेषित यवन बैठा पान खा रहा था।—गदाधरसिंह।

सुवेषी-वि० दे० "सुवेश"।

सुवेस-वि० दे० "सुवेश"।

सुवेसल-वि० [सं० सुवेश+हिं० ल (प्रत्य०)] सुंदर। मनोहर। उ०—सुभग सुसम बंधुर रुचिर कांत काम कमनीय। रम्य सुवेसल भव्य अरु दर्शनीय रमणीय।—अनेकार्थ।

सुवैन-संज्ञा पुं० [सं० सु+बैन (वचन)] मित्रता। दोस्ती। (हिं०)

सुवैया-वि० [हिं० सोना+ऐया (प्रत्य०)] सोनेवाला।

सुवो-संज्ञा पुं० [सं० शुक] शुक पक्षी। सुग्गा। तोता। (हिं०)

सुव्यक्त-वि० [सं०] उत्तम रूप से व्यक्त। बहुत स्पष्ट। सुप्रकाशित।

सुव्यवस्थित-वि० [सं०] उत्तम रूप से व्यवस्थित। जिसकी व्यवस्था भली भाँति की गई हो।

सुव्यूहमुखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम ।

सुव्यूहा–संज्ञा स्त्री० दे० "सुव्यूहमुखा" ।

सुव्रत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्कंद के एक अनुचर का नाम । (२) एक प्रजापति का नाम । (३) रौच्य मनु के एक पुत्र का नाम । (४) उशीनर के एक पुत्र का नाम । (५) प्रियव्रत के एक पुत्र का नाम । (६) ब्रह्मचारी । (७) वर्तमान अवसर्पिणी के २०वें अर्हत् का नाम । इन्हें मुनि सुव्रत भी कहते हैं । (८) भावी उत्सर्पिणी के ११वें अर्हत् का नाम ।

विं० (१) दृढ़ता से व्रत पालन करनेवाला । (२) धर्मनिष्ठ । (३) विनीत । नम्र (घोड़ा या गाय आदि पशुओं के लिये) ।

सुव्रता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंधपलाशी । कपूर कचरी । (२) सहज में दुही जानेवाली गाय । (३) गुणवती और पतिव्रता पत्नी । (४) एक अप्सरा का नाम । (५) दक्ष की एक पुत्री का नाम । (६) वर्तमान कल्प के १५वें अर्हत् की माता का नाम ।

सुशक–वि० [सं०] सहज में होने योग्य । सुकर । आसान ।

सुशक्त–वि० [सं०] अच्छी शक्तिवाला । शक्तिशाली । ताकतवर ।

सुशक्ति–वि० दे० "सुशक्त" ।

सुशब्द–वि० [सं०] अच्छा शब्द या ध्वनि करनेवाला । जिसकी आवाज अच्छी हो ।

सुशरण्य–संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

सुशरीर–वि० [सं०] जिसका शरीर सुंदर हो । सुडौल । सुदेह ।

सुशर्मा–संज्ञा पुं० [सं० सुशर्मन्] (१) एक मनु के एक पुत्र का नाम । (२) एक वैशालि का नाम । (३) एक काण्व का नाम । (४) निंदित ब्राह्मण ।

सुशल्य–संज्ञा पुं० [सं०] खैर । खदिर ।

सुशवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काला जीरा । कृष्ण जीरक । (२) करेला । कारवेल्ल । (३) काली जीरी । सूक्ष्म कृष्ण जीरक । (४) करंज ।

सुशांत–वि० [सं०] अत्यंत शांत । स्थिर । उ०—बहुत काल लौं विचरे जल में तब हरि भये सुशांति । बीस प्रलय विविध नानाकर सृष्टि रची बहु भाँति ।—सूर ।

सुशांता–संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा शशिध्वज की पत्नी का नाम ।

सुशांति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीसरे मन्वंतर के इंद्र का नाम । (२) अजमीढ़ के एक पुत्र का नाम । (३) शांति के एक पुत्र का नाम ।

सुशाक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अदरक । आर्द्रक । (२) चौलाई का साग । तंडुलीय शाक । (३) चंचु । चेंच । (४) भिंडी ।

सुशाकक–संज्ञा पुं० दे० "सुशाक" ।

सुशारद–संज्ञा पुं० [सं०] शालंकायन गोत्र के एक वैदिक आचार्य का नाम ।

सुशास्य–वि० [सं०] सहज में शासित या नियंत्रित होने योग्य ।

सुशिंबिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की शिंबी ।

सुशिक्षित–वि० [सं०] उत्तम रूप से शिक्षित । अच्छी तरह शिक्षा पाया हुआ । जिसने विशेष रूप से शिक्षा पाई हो ।

सुशिख–संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि का एक नाम ।

सुशिखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मोर की चोटी । मयूर शिखा । (२) मुर्गे की कलगी । कुक्कुटकेश ।

सुशिर–वि० [सं० सुशिरस्] सुंदर सिरवाला । जिसका सिर सुंदर हो ।

संज्ञा पुं० वह बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता हो । जैसे,—वंशी आदि । (संगीत)

सुशीत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीला चंदन । हरिचंदन । (२) पाकर । ह्रस्वप्लक्ष वृक्ष । (३) जलबेंत । जलवेतस ।

वि० अत्यंत शीतल । बहुत ठंढा ।

सुशीतल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधतृण । (२) सफेद चंदन । (३) नागदमनी । नागदवन ।

वि० अत्यंत शीतल । बहुत ठंढा ।

सुशीतला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खीरा । त्रपुष । (२) ककड़ी । कर्कटिका ।

सुशीता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेवती । शतपत्री । (२) स्थल कमल ।

सुशीम–संज्ञा पुं० दे० "सुषीम" ।

सुशील–वि० [सं०] [स्त्री० सुशीला] (१) उत्तम शीलवाला । (२) उत्तम स्वभाववाला । शीलवान् । (३) सच्चरित्र । साधु । (४) विनीत । नम्र । (५) सरल । सीधा ।

सुशीलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुशील का भाव । सुशीलत्व । (२) सच्चरित्रता । (३) नम्रता ।

सुशीला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्रीकृष्ण की एक पत्नी का नाम । (२) राधा की एक अनुचरी का नाम । (३) यम की पत्नी का नाम । (४) सुदामा की पत्नी का नाम ।

सुशीली–वि० [सं० सुशीलिन्] दे० "सुशील" ।

सुशीविका–संज्ञा स्त्री० [सं०] मेंढी । वाराहीकंद ।

सुश्रृंग–वि० [सं०] सुंदर श्रृंगयुक्त । सुंदर सींगोंवाला ।

संज्ञा पुं० श्रृंगी ऋषि । उ०—कश्यपसुत सुविभांडक हैं शिष्य सुश्रृंग । ब्रह्मचरजरत बनहि में बनचारिन के ढंग ।—पद्माकर ।

सुश्रृत–वि० [सं०] अत्यंत तप्त । बहुत गरम ।

सुशोभन–वि० [सं०] (१) अत्यंत शोभायुक्त । दिव्य । (२) जो देखने में बहुत भला मालूम हो । बहुत सुंदर । प्रियदर्शन ।

सुशोभित–वि० [सं०] उत्तम रूप से शोभित । अत्यंत शोभायमान ।

सुश्रम–संज्ञा पुं० [सं०] धर्म के एक पुत्र का नाम ।

सुश्रवा-संज्ञा पुं० [सं० सुश्रवस्] (१) एक प्रजापति का नाम। (२) एक ऋषि का नाम (३) एक नागासुर का नाम।
वि० (१) उत्तम कीर्ति से युक्त। (२) प्रसिद्ध। कीर्तिमान्।
संज्ञा स्त्री० एक वैदर्भी का नाम जो जयत्सेन की पत्नी थी।

सुश्राव्य-वि० [सं०] जो सुनने में अच्छा जान पड़े।

सुश्री-वि० [सं०] (१) बहुत सुंदर। शोभायुक्त। (२) बहुत धनी। बड़ा अमीर।

सुश्रीक-संज्ञा पुं० [सं०] सलई। शल्लकी।
वि० दे० "सुश्री"।

सुश्रुत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आयुर्वेदीय चिकित्सा शास्त्र के एक प्रसिद्ध आचार्य जिनका रचा हुआ "सुश्रुत संहिता" नामक ग्रंथ बहुत मान्य समझा जाता है। गरुड़ पुराण में लिखा है कि ये विश्वामित्र के पुत्र थे और इन्होंने काशी के राजा दिवोदास से, जो धन्वन्तरि के अवतार थे, शिक्षा पाई थी। आयुर्वेद के आचार्यों में इनका और इनके ग्रंथ का भी वही स्थान है, जो चरक और उनके ग्रंथ का है। (२) सुश्रुत का रचा हुआ सुश्रुत संहिता नामक ग्रंथ। (३) गोष्ठी श्राद्ध के अंत में ब्राह्मण से यह पूछना कि आप तृप्त हो गए न।
वि० (१) अच्छी तरह सुना हुआ। (२) प्रसिद्ध। मशहूर।

सुश्रुतसंहिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] आचार्य सुश्रुत का बनाया आयुर्वेद का एक प्रसिद्ध और सर्वमान्य ग्रंथ।

सुश्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार धर्म के एक पुत्र का नाम।

सुश्रूखा&-संज्ञा स्त्री० दे० "शुश्रूषा"।

सुश्रूषा-संज्ञा स्त्री० दे० "शुश्रूषा"।

सुश्रोणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक नदी का नाम।

सुश्रोणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।
वि० सुंदर नितंबवाली।

सुश्लोक-वि० [सं०] (१) पुण्यात्मा। पुण्यकीर्ति। (२) सुप्रसिद्ध। मशहूर।

सुषंधि-संज्ञा पुं० [सं० सुसन्धि] (१) रामायण के अनुसार मांधाता के एक पुत्र का नाम। (२) पुराणानुसार प्रसुश्रुत के एक पुत्र का नाम।

सुष&-संज्ञा पुं० दे० "सुख"।

सुषद्मा-संज्ञा पुं० [सं० सुषद्मन्] एक ऋषि का नाम।

सुषम-वि० [सं०] (१) बहुत सुंदर। शोभायुक्त। (२) सम। समान।

सुषमदुःषमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मतानुसार कालचक्र के दो आरे।

सुषमना&-संज्ञा स्त्री० दे० "सुषुम्ना"। उ०—(क) इंगला पिंगला सुषमना नारी। शून्य सहज में बसहिं मुरारी।—सूर। (ख) गंगजमुन दिराद एक सम राखिये। चढ़ो सुषमना घाट अमी रस चाखिये।—कबीर।

सुषमनि-संज्ञा स्त्री० दे० "सुषुम्ना"। उ०—इंगला पिंगला सुषमनि नारी बंक नाल की सुधि पावै।—कबीर।

सुषमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) परम शोभा। अत्यंत सुंदरता। (२) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक अक्षर में दस अक्षर रहते हैं जिनमें ३,४,८ और ९वाँ गुरु तथा अन्य अक्षर लघु होते हैं। (३) एक प्रकार का पौधा। (४) जैनों के अनुसार काल का एक नाम।

सुषमाशाली-वि० [सं०] जिसमें बहुत अधिक शोभा या सुंदरता हो।

सुषवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) करेला। कारवेल्ल। (२) करैली। क्षुद्र कारवेल्ल। (३) जीरा। जीरक।

सुषाढ़-संज्ञा पुं० [सं०] शिव जी का एक नाम।

सुषाना&-क्रि० अ० दे० "सुखाना"। उ०—स्यामघन सींचिए तुलसी सालि सफल सुषाति।—तुलसी।

सुषारा&-वि० दे० "सुखारा"। उ०—रावन वंश सहित संहारा। सुनत सकल जग भयउ सुषारा।—रामाश्वमेध।

सुषि-संज्ञा स्त्री० [सं०] छिद्र। छेद। सूराख। बिल।

सुषिक-संज्ञा पुं० [सं०] शीतलता। ठंढक।
वि० शीतल। ठंढा।

सुषिनंद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णुपुराण के अनुसार एक राजा का नाम।

सुषिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस। (२) बेंत। (३) अग्नि। आग। (४) चूहा। (५) संगीत में वह यंत्र जो वायु के जोर से बजता हो। (६) छेद। सूराख। (७) वायुमंडल। (८) लौंग। लवंग (९) काठ। लकड़ी।
वि० छिद्रयुक्त। छेदवाला। पोला।

सुषिरच्छेद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बंसी।

सुषिरविवर-संज्ञा पुं० [सं०] बिल, विशेषकर साँप का बिल।

सुषिरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कलिकार। विद्रुम लता। (२) नदी।

सुषिलीका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया।

सुषीम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का सर्प। (२) चंद्रकांत मणि।
वि० (१) शीतल। ठंढा। (२) मनोरम। मनोज्ञ। सुंदर।

सुषुप्सु-वि० [सं० सुषुप्सु] सोने की इच्छा करनेवाला। निद्रातुर।

सुषुप्त-वि० [सं०] गहरी नींद में सोया हुआ। अच्छी तरह सोया हुआ। घोर निद्रित।
संज्ञा स्त्री० दे० "सुषुप्ति"।

सुषुप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घोर निद्रा। गहरी नींद। (२) अज्ञान। (वेदांत) (३) पातंजलदर्शन के अनुसार चित्त की एक वृत्ति या अनुभूति। कहते हैं कि इस अवस्था में जीव नित्य ब्रह्म की प्राप्ति करता है, परन्तु उसे इस बात का ज्ञान नहीं होता कि मैंने ब्रह्म की प्राप्ति की है।

सुपुप्स-वि० [सं०] सोने की इच्छा करनेवाला। निद्रातुर।

सुपुप्सा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शयन की अभिलाषा। सोने की इच्छा।

सुपुम्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हठ योग और तंत्र के अनुसार शरीर के अंतर्गत तीन प्रधान नाड़ियों में से एक।

विशेष—दस नाड़ियों में इड़ा, पिंगला और सुपुम्ना ये तीन प्रधान नाड़ियाँ मानी गई हैं। कहते हैं कि इड़ा और पिंगला नाड़ियों के मध्य में सुपुम्ना है; अर्थात् नासिका के वाम भाग में इड़ा, दक्षिण भाग में पिंगला और मध्य भाग (ब्रह्मरंध्र) में सुपुम्ना नाड़ी स्थित है। सुपुम्ना त्रिगुणमयी और चंद्र, सूर्य तथा अग्नि स्वरूपिणी है।

(२) वैद्यक के अनुसार चौदह प्रधान नाड़ियों में से एक जो नाभि के मध्य में स्थित है और जिससे अन्य सब नाड़ियाँ लिपटी हुई हैं।

सुपेण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम। (२) एक गंधर्व का नाम। (३) एक यक्ष का नाम। (४) एक नागासुर का नाम। (५) दूसरे मनु के एक पुत्र का नाम। (६) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। (७) शूरसेन के एक राजा का नाम। (८) परीक्षित के एक पुत्र का नाम। (९) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (१०) वसुदेव के एक पुत्र का नाम। (११) विश्वगर्भ के एक पुत्र का नाम। (१२) शंबर के एक पुत्र का नाम। (१३) एक वानर का नाम। रामायण आदि के अनुसार यह वरुण का पुत्र, बाली का ससुर और सुग्रीव का वैद्य था। इसने राम-रावण के युद्ध में रामचंद्र की विशेष सहायता की थी। (१४) करौंदा। करमर्दक। (१५) बेंत। बेतस लता। मत्रक।

सुपेणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] काली निसोथ। कृष्ण त्रिवृता।

सुपेणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ। त्रिवृता।

सुपोपतिॐ-संज्ञा स्त्री० दे० "सुपुप्ति"। उ०—सूत्रातमा प्रकाशित भोपति। सत्य अवस्था आहि सुपोपति।—विश्राम।

सुपोपिॐ-संज्ञा स्त्री० दे० "सुपुप्ति"। उ०—जागृत नारी सुपोपि तुरिया, भौंर गोपा में घर छावै।—कबीर।

सुपोमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार एक नदी का नाम।

सुष्कंत-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार धर्मनेत्र के एक पुत्र का नाम।

सुष्ट-संज्ञा पुं० [सं० दुष्ट का अनु०] अच्छा। भला। दुष्ट का उलटा। जैसे,—बादशाह अपनी सेना लेकर सुष्ट अर्थात् तृणचर पशुओं की रक्षा के निमित्त दुष्ट अर्थात् मांसाहारी जीवों के नाश करने को चढ़ता था।—शिवप्रसाद।

सुष्ठु-अव्य० [सं०] (१) अतिशय। अत्यंत। (२) भली भाँति। अच्छी तरह। (३) यथायोग्य। ठीक ठीक।

संज्ञा पुं० (१) प्रशंसा। तारीफ। (२) सत्य।

सुष्ठुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मंगल। कल्याण। भलाई। (२) सौभाग्य। (३) सुंदरता। उ०—शब्दों की अनोखी सुष्ठुता द्वारा मन को चमत्कृत करने की शक्ति।—निबंधमालादर्श।

सुष्मंत-संज्ञा पुं० दे० "सुष्कंत"।

सुष्म-संज्ञा पुं० [सं०] रस्सी। रज्जु।

सुष्मनाॐ-संज्ञा स्त्री० दे० "सुपुम्ना"। उ०—चंद सूरहि चंद के मग सुष्मनागत दीश। प्राणरोधन को करैं जेहि हेत सर्व फणीश।—केशव।

सुसंकुल-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम।

सुसंक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

सुसंग-संज्ञा पुं० [सं० सु + हिं० संग] उत्तम संगति। सत्संग। अच्छी सोहबत।

सुसंगत-वि० [सं०] उत्तम रूप से संगत। बहुत युक्ति-युक्त। बहुत उचित।

सुसंगति-संज्ञा स्त्री० [सं० सु + हिं० संगत] अच्छी संगत। अच्छी सोहबत। सत्संग। साधुसंग।

सुसंधि-संज्ञा पुं० दे० "सुपंधि"।

सुसंभाव्य-संज्ञा पुं० [सं०] रैवत मनु के एक पुत्र का नाम।

सुस-संज्ञा स्त्री० दे० "सुसा"। उ०—परी कामवश ताकी सुस आके मुँह वश कीने हाव भाव चित्त चाव एक चंद सौं। दीप सुत सैन दै सुनैनन चलाय रही जानकी निहार मन रही न अनंद सौं।—हनुमन्नाटक।

सुसकना-क्रि० अ० दे० "सिसकना"। उ०—(क) पालने झूलो मेरे लाल पियारे। सुसकनि की हौं बलि बलि करौं तिल तिल हठ न करहु जे दुलारे।—सूर। (ख) कपिपति काम सँवार, बाली अघ सुसकत परयो। तब ताही की नार रघुपति सों बिनती करे।—हनुमन्नाटक। (ग) अति कठोर दोउ काल से भरम्यो अति झहरयो। जागि परयो सहँ कोउ नहीं जिय ही जिय सुसक्यो।—सूर। (घ) घूँघट में सुसकै भरै साँसे ससै मुखनाह के सौंहें न खोलै।—सुंदरीसर्वस्व।

सुसकल्यो-संज्ञा पुं० [सं० शश] खरगोश। खरहा। शशा। (डिं०)

सुसका-संज्ञा पुं० [अनु०] हुक्का। (सुनार)

सुसज्जित-वि० [सं०] भली भाँति सजा या सजाया हुआ। भली भाँति शृंगार किया हुआ। शोभायमान।

सुसताना-क्रि० अ० [फ़ा० सुस्त + आना (प्रत्य०)] श्रम मिटाना। थकावट दूर करना। विश्राम करना। आराम करना। जैसे,—इतनी दूर से आते आते थक गए हैं; ज़रा सुस्ता लें, तो आगे चलें।

सुसती-संज्ञा स्त्री० दे० "सुस्ती"।

सुसत्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] कालिका पुराण के अनुसार राजा जनक की एक पत्नी का नाम।

सुसबद-संज्ञा पुं० [सं० सुशब्द] कीर्ति। यश। (डिं०)

सुसमय-संज्ञा पुं० [सं०] वे दिन जिनमें अकाल न हो। अच्छा समय। सुकाल। सुभिक्ष।

सुसमा-संज्ञा स्त्री० [सं० ऊष्मा] अग्नि। (डिं०)

ॐ संज्ञा स्त्री० दे० "सुषमा"।

सुसमुझिॐ-वि० [सं० सु+हिं० समझ] अच्छी समझवाला। सुबुद्धि। समझदार। उ०—नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी।—तुलसी।

सुसर-संज्ञा पुं० दे० "ससुर"। उ०—वधू ने स्वर्गवासी सुसर की दोनों रानियों की समान भक्ति से वंदना की।—लक्ष्मणसिंह।

सुसरण-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

सुसरा-संज्ञा पुं० दे० "ससुर"। उ०—कोई कोई दुष्ट रजपूत अपनी लड़कियों को मार डालते हैं कि जिसमें किसी का सुसरा न बनना पड़े।—शिवप्रसाद।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः गाली में अधिक होता है। जैसे,—(क) सुसरे ने कम तौला है। (ख) सुसरा कहीं का।

सुसरार-संज्ञा स्त्री० दे० "सुसराल"।

सुसरारि-संज्ञा स्त्री० दे० "सुसराल"।

सुसराल-संज्ञा स्त्री० [सं० श्वशुरालय] ससुर का घर। ससुराल।

सुसरित-संज्ञा स्त्री० [सं० सु+सरित] नदियों में श्रेष्ठ, गंगा। उ०—जे मुनि अवध बिलोकि सुसरित नहाएउ। सतानंद दस कोटि नाम फल पाएउ।—तुलसी।

सुसरी-संज्ञा स्त्री० (१) दे० "ससुरी"। (२) दे० "सुरसुरी"।

सुसर्तु-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋग्वेद के अनुसार एक नदी का नाम।

सुसर्मा-संज्ञा पुं० दे० "सुशर्म्मा"।

सुसह-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

वि० सहज में उठाने या सहने योग्य। जो सहज में उठाया या सहन किया जा सके।

सुसाॐ-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वसृ] बहन। भगिनी। स्वसा। उ०—पंचवटी सुंदर अति रामा। मोहत भई सुपनखा वामा। रावन सुसा राम ते भाषा। पुनि सीता भोजन अभिलाषा।—गिरिधरदास।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी। उ०—जे हनत सुसा कुजर उतंग।—सूदन।

सुसाइटी-संज्ञा स्त्री० दे० "सोसाइटी"।

सुसाध्य-वि० [सं०] [संज्ञा सुसाधन] जिसका सहज में साधन किया जा सके। जो सहज में किया जा सके। सुखसाध्य। सहज साध्य।

सुसानाॐ-क्रि० अ० [हिं० साँस] सिसकना। उ०—रामहिं राज्य विदेस बसे सुन सोच कियो यह बात न संगी। एक उपाय करौं जु फिरे मत है वर बेलेउँ माँग सुरंगी। सूपण डारन अंबर डेत है जात सुसात सुपाइन मंगी। दौर चली पिय पै वर माँगत मानहु काल कराल भुजंगी।—हनुमन्नाटक।

सुसार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीलम। इंद्रनील मणि। (२) लाल खैर। रक्त खदिर वृक्ष।

सुसारवत्-संज्ञा पुं० [सं०] बिल्लौर। स्फटिक।

सुसिकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] चीनी। शर्करा।

सुसिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में एक प्रकार का अलंकार। जहाँ परिश्रम एक मनुष्य करता है, पर उसका फल दूसरा भोगता है, वहाँ यह अलंकार माना जाता है। उ०—साधि साधि औरै मरैं औरै भोगैं सिद्ध। तासों कहत सुसिद्धि। सब, जे हैं बुद्धि समृद्धि।—केशव।

सुसिर-संज्ञा पुं० [सं०] दाँत का एक रोग, जो वाग्भट के अनुसार, पित्त और रक्त के कुपित होने से होता है। दाँतों की जड़ फूल जाती है, उसमें बहुत दर्द होता है, खून निकलता है और मांस कटने या गिरने लगता है।

सुसीतलताईॐ-संज्ञा स्त्री० दे० "सुशीतलता"।

सुसीता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवती। शतपत्री।

सुसीम-वि० [?] शीतल। ठंढा। (डिं०)

सुसीमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार छठे अर्हत् की माता का नाम।

सुसुकना-क्रि० अ० दे० "सिसकना"।

सुसुड़ी-संज्ञा स्त्री० [सुर सुर से अनु०] एक प्रकार का कीड़ा जो जौ में लगता है और उसके सार भाग को खा जाता है। सुरसुरी।

सुसुनिया-संज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ जो बंगाल प्रदेश के बाँकुड़ा जिले में है। यहाँ चौथी शताब्दी का एक शिलालेख है जिससे जाना जाता है कि पुष्कर के राजा चंद्रवर्मा ने इस पहाड़ पर चक्र स्वामी की स्थापना की थी।

सुसुपिॐ-संज्ञा स्त्री० दे० "सुषुप्ति"। उ०—सुख दुख हैं मन के धरम नहीं आतमा माँहि। ज्यौं सुसुपि में द्वंदुख मन बिन भासैं नाँहि।—दीनदयाल।

सुसुरप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमेली। जाती पुष्प।

सुसूक्ष्म-संज्ञा पुं० [सं०] परमाणु।

वि० अत्यंत सूक्ष्म। बहुत बारीक या छोटा।

सुसूक्ष्मपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशमांसी। जटामांसी। बालछड़।

सुसूक्ष्मेश-संज्ञा पुं० [सं०] (परमाणुओं के प्रभु या स्वामी) विष्णु का एक नाम।

सुसेन-संज्ञा पुं० दे० "सुषेण"।

सुसैंधवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंध देश की अच्छी घोड़ी।

सुसो-संज्ञा पुं० [सं० शश] खरगोश। खरहा। (डिं०)

सुसौभग-संज्ञा पुं० [सं०] दांपत्य सुख। पति पत्नी संबंधी सुख।

सुस्कंदन–संज्ञा पुं० [सं०] बर्बर वृक्ष।

सुस्कंधमार–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक मार का नाम।

सुस्त–वि० [फ़ा०] (१) जिसके शरीर में बल न हो। दुर्बल। कमज़ोर। (२) चिंता या लज्जा आदि के कारण निस्तेज। उदास। हतप्रभ। जैसे,—उस दिन की बात का जिक्र आते ही वह सुस्त हो गया। (३) जिसका वेग, प्रबलता या गति आदि कम हो, अथवा घट गई हो।

क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

(४) जिसे कोई काम करने में आवश्यकता से अधिक समय लगता हो। जिसमें तत्परता का अभाव हो। आलसी। जैसे, तुम्हारा नौकर बहुत सुस्त है। (५) जिसकी गति मंद हो। धीमी चालवाला। जैसे,—(क) छोटी लाइन की गाड़ियाँ बहुत सुस्त होती हैं। (ख) तुम्हारी घड़ी कुछ सुस्त जान पड़ती है। (६) जिसकी बुद्धि तीव्र न हो। जो जल्दी कोई बात न समझता हो। जैसे,—यह लड़का दरजे भर में सब से ज्यादा सुस्त है। (७) अस्वस्थ। रोगी। बीमार। (लश०)

सुस्तना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुंदर छातियोंवाली स्त्री। सुंदर स्तनों से युक्त स्त्री। (२) वह स्त्री जो पहली बार रजस्वला हुई हो।

सुस्तनी–संज्ञा स्त्री० दे० "सुस्तना"।

सुस्तपाँव–संज्ञा पुं० [फ़ा० सुस्त + हिं० पाँव] स्लोथ नामक जंतु का एक भेद। इन जंतुओं के कँटीले दाँत नहीं होते, पर जो कुचलनेवाले दाँत होते हैं, वे छोटे छोटे और कुंद होते हैं। ऊपर और नीचे के जबड़ों में आठ आठ डाढ़ें होती हैं, पर उनमें ठोस हड्डी और दाँतों की जड़ नहीं होती।

सुस्त रीछ–संज्ञा पुं० [फ़ा० सुस्त + हिं० रीछ] एक प्रकार का रीछ जो पहाड़ों पर पाया जाता है। इसका शरीर खुरखुरा और बेडौल होता है। इसके हाथों में बहुत शक्ति होती है जिससे यह अपना आहार इकट्ठा कर सकता है। इसके पंजे लंबे और मजबूत होते हैं, जिनसे यह अपने रहने के लिये माँद भी खोद लेता है।

सुस्ताना–क्रि० अ० दे० "सुसताना"।

सुस्ती–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सुस्त] (१) सुस्त होने का भाव। (२) आलस्य। शिथिलता। काहिली। ढिलाई। (३) बीमारी। (लश०)

सुस्तुत–संज्ञा पुं० [सं०] सुपार्श्व के एक पुत्र का नाम।

सुस्तैन@–संज्ञा पुं० दे० "स्वस्त्ययन"। उ०—पढ़हिं विप्र सुस्तैन चैन भरि मंगल साजु सँवारे। कौशल्या कैकेयी सुमित्रा भूपति सँग बैठारे। बैठे भूपति कनकासन पै करन लगे कुल रीती। गौरि गणेश पूजि पृथिवीपति करी श्राद्ध जस नीती।—रघुराज।

सुस्थ–वि० [सं०] (१) भला चंगा। नीरोग। स्वस्थ। तंदुरुस्त। (२) सुखी। प्रसन्न। खुश। (३) भली भाँति स्थित। सुस्थित। सुस्थिर। (४) सुंदर।

सुस्थचित्त–वि० [सं०] जिसका चित्त सुखी या प्रसन्न हो।

सुस्थता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुस्थ होने का भाव या धर्म। (२) नीरोगता। आरोग्य। स्वास्थ्य। तंदुरुस्ती। (३) कुशल क्षेम। (४) प्रसन्नता। आनंद।

सुस्थत्व–संज्ञा पुं० दे० "सुस्थता"।

सुस्थमानस–वि० दे० "सुस्थचित्त"।

सुस्थल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम।

सुस्थावती–संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में एक प्रकार की रागिनी का नाम।

सुस्थित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वास्तु या भवन जिसके चारों ओर वीथिका या मार्ग हों। (२) घोड़े का एक ग्रह जिससे ग्रस्त होने पर वह बराबर हिनहिनाया और अपने आप को देखा करता है। (३) एक जैनाचार्य का नाम।

वि० [स्त्री० सुस्थिता] (१) उत्तम रूप से स्थित। दृढ़। अविचल। (२) स्वस्थ। (३) भाग्यवान्।

सुस्थितत्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुस्थित होने का भाव। (२) सुख। प्रसन्नता। (३) निवृत्ति।

सुस्थिति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्तम स्थिति। अच्छी अवस्था। (२) मंगल। कुशल क्षेम। (३) आनंद। प्रसन्नता।

सुस्थिर–वि० [सं०] [स्त्री० सुस्थिरा] अत्यंत स्थिर या दृढ़। अविचल।

सुस्थिरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] रक्तवाहिनी नस। लाल रग।

सुस्ना–संज्ञा स्त्री० [सं०] खेसारी। त्रिपुट।

सुस्नात–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने यज्ञ के उपरांत स्नान किया हो।

सुस्मित–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सुस्मिता] हँसमुख। हँसोड़।

सुस्रोता–संज्ञा स्त्री० [सं० सुस्रोतस्] हरिवंश के अनुसार एक नदी का नाम।

सुस्वध–संज्ञा पुं० [सं०] पितरों की एक श्रेणी या वर्ग।

सुस्वधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कल्याण। मंगल। (२) सौभाग्य। खुशकिस्मती।

सुस्वन–संज्ञा पुं० [सं०] शंख।

वि० (१) उत्तम शब्द या ध्वनियुक्त। (२) बहुत ऊँचा। बुलंद। (३) सुंदर।

सुस्वप्न–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुभ स्वप्न। अच्छा सपना। (२) शिव जी का एक नाम।

सुस्वर–वि० [सं०] [स्त्री० सुस्वरा] सुंदर या उत्तम स्वर युक्त। जिसका सुर या कंठध्वनि मधुर हो। सुकंठ। सुरीला।

संज्ञा पुं० (१) सुंदर या उत्तम स्वर। (२) गरुड़ के एक पुत्र का नाम। (३) शंख। (४) जैनों के अनुसार वह कर्म जिससे मनुष्य का स्वर मधुर और सुरीला होता है।

सुस्वरता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुस्वर का भाव या धर्म। (२) वंशी के पाँच गुणों में से एक।

सुस्वादु–वि० [सं०] अत्यंत स्वाद युक्त। बहुत स्वादिष्ट। बहुत जायकेदार। खुश जायका।

सुहंग⊛–वि० [हिं० महँगा का अनु०] कम मूल्य का। सस्ता। महँगा का उलटा।

सुहंगम⊛–वि० [सं० सुगम] सहज। आसान।

सुहँगा–वि० [हिं० महँगा का अनु०] सस्ता। जो महँगा न हो।

सुहटा⊛–वि० [हिं० सुहावना] [स्त्री० सुहटी] सुहावना। सुंदर। उ०—सुनु ए कपटी दसकंध हठी दोउ राम हटी न कछूक घटी। हर धूरजटी कमठी लपटी सम तारे टरी जनयाचकटी। न डटी रतिनाथ छटी तिनको नित नाचत मुक्त नटी सुहटी। —हनुमन्नाटक।

सुहड़–संज्ञा पुं० [सं० सुभट] सुभट। योद्धा। शूरवीर। (डिं०)

सुहनी⊛–संज्ञा स्त्री० दे० "सोहनी"।

सुहनु–संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

सुहबत–संज्ञा स्त्री० दे० "सोहबत"।

सुहर–संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम।

सुहराना†–क्रि० स० दे० "सहलाना"।

सुहव–संज्ञा पुं० दे० "सूहा" (राग)। उ०—सारंग गुंड मलार सोरठ सुहव सुघरनि बाजहीं। बहु भाँति तान तरंग सुनि गंधर्ब किंनर लाजहीं।—तुलसी।

सुहवि–संज्ञा पुं० [सं० सुहविस्] (१) एक आंगिरस का नाम। (२) सुमन्यु के एक पुत्र का नाम।

सुहवी⊛–संज्ञा स्त्री० दे० "सूहा" (राग)। उ०—राग रागी सँचि मिलाई गावैं सुघर मलार। सुहवी सारंग टोडी भैरवी केदार।—सूर।

सुहस्त–संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। वि० [सुहस्ता] सुंदर हाथोंवाला।

सुहस्ती–संज्ञा पुं० [सं० सुहस्तिन्] एक जैन आचार्य का नाम।

सुहस्त्य–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

सुहा–संज्ञा पुं० [हिं० सुग्गा] [स्त्री० सुही] लाल नामक पक्षी।

सुहाग–संज्ञा पुं० [सं० सौभाग्य] (१) स्त्री की सधवा रहने की अवस्था। अहिवात। सौभाग्य।

मुहा०—सुहाग मनाना = अखंड सौभाग्य की कामना करना। पति-सुख के अखंड रहने के लिये कामना करना। सुहाग भरना = माँग भरना।

(२) वह वस्त्र जो वर विवाह के समय पहनता है। जामा। (३) मांगलिक गीत जो वर पक्ष की स्त्रियाँ विवाह के अवसर पर गाती हैं।

संज्ञा पुं० दे० "सुहागा"।

सुहागन–संज्ञा स्त्री० दे० "सुहागिन"।

सुहागा–संज्ञा पुं० [सं० सुभग] एक प्रकार का क्षार जो गरम गंधकी सोतों से निकलता है। यह तिब्बत, लद्दाख और काश्मीर में बहुत मिलता है। यह छींट छापने, सोना गलाने तथा औषध के काम में आता है। इसे घाव पर छिड़कने से घाव भर जाता है। मीना इसी का किया जाता है और चीनी के बरतनों पर इसी से चमक दी जाती है। वैद्यक के अनुसार यह कटु, उष्ण तथा कफ, विष, खाँसी और श्वास को हरनेवाला है।

पर्य्या०—लोहद्रावी। टंकण। सुभग। स्वर्णपाचक। रस-शोधन। कनकक्षार आदि।

सुहागिन–संज्ञा स्त्री० [हिं० सुहाग + इन (प्रत्य०)] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। सधवा स्त्री। सौभाग्यवती। उ०—(क) मान कियो सपने में सुहागिन भौंहैं चढ़ी मति-राम रिसौंहैं।—मतिराम। (ख) तब मुरली नँदलाल पै भई सुहागिन आइ।—रसनिधि।

सुहागिनी–संज्ञा स्त्री० दे० "सुहागिन"। उ०—जाय सुहागिनि बसति जो अपने पीहर धाम। लोग बुरी शंका करैं यदपि सती [illegible] बाम—लछमणसिंह।

सुहागिल⊛–संज्ञा स्त्री० दे० "सुहागिन"। उ०—लोगों दुरावति हौं न कछू जिहि तें न सुहागिल सौति कहावै।—व्यंगार्थ-कौमुदी।

सुहाता–वि० [हिं० सहना] जो सहा जा सके। सहने योग्य। सह्य। उ०—(क) वही (वायु) मध्याह्नकालीन सूर्य की तीक्ष्ण तपन को सुहाता करती है।—गोलविनोद। (ख) तेल को तपाकर सुहाता सुहाता कान में डालो।—नूतनामृत-सागर।

सुहान–संज्ञा पुं० [सं० शोभन] (१) वैश्यों की एक जाति। (२) दे० "सोहान"।

सुहाना–क्रि० अ० [सं० शोभन] (१) शोभायमान होना। शोभा देना। उ०—(क) शंकर शैल शिलातल मध्य किधौं शुक की अवली फिरि आई। नारद बुद्धि विशारद हीय किधौं तुलसी-दल माल सुहाई।—केशव। (ख) यश नाम हरि तब चलि आए। कोटि अर्क सम तेज सुहाए।—गि० दास। (ग) कामदेव कहँ पूजती ऐसी रही सुहाय। नव पल्लव युत पेड़ जनु लता रही लपटाय।—बालमुकुंद गुप्त। (२) अच्छा लगना। भला मालूम होना। उ०—(क) भयो उदास सुहात न कछु ये छन सोवत छन जागे।—सूर। (ख) फूली लता द्रुम कुंज सुहान लगे।—सुंदरीसर्वस्व।

वि० दे० "सुहावना"। उ०—(क) सारी पृथ्वी इस वसंत

की वायु से कैसी सुहानी हो रही है।—हरिश्चंद्र। (ख) सौतिन दियो सुहाग ललन हू आजु सयानी। जामिनि कामिनि स्याम काम की समै सुहानी।—व्यास।

सुहायाछ–वि० [हिं० सुहाना] [स्त्री० सुहाई] जो देखने में भला जान पड़ता हो। सुहावना। सुंदर। उ०—(क) सबै सुहाये ही लगैं बसे सुहाये ठाम। गोरे मुँह बेंदी लगै अरुन पीत सित स्याम।—बिहारी। (ख) यमुना पुलिन मल्लिका मनोहर सरद सुहाई यामिनि। सुंदर ससि गुण रूप राग निधि अंग अंग अभिरामिनि।—सूर। (ग) भयहु बतावत राह सुहाई। तब तिहि सों बोले दुहु भाई।—पद्माकर। (घ) मेरे तो नाहिंने चंचल लोचन नाहिंने केशव बानि सुहाई। जानौं न भूषण भेद के भावन भूलहू नैनहिं भौंहँ चढ़ाई।—केशव।

सुहारी|–संज्ञा स्त्री० [सं० सु + आहार] सादी पूरी नाम का पकवान जिसमें पीठी आदि नहीं भरी रहती। उ०—(क) कान्ह कुँवर को कनछेदनो है हाथ सुहारी भेली गुर की।—सूर। (ख) घी न लगे, सुहारी होय। (कहा०)

सुहाल–संज्ञा पुं० [सं० सु + आहार] एक प्रकार का नमकीन पकवान जो मैदे का बनता है। यह बहुत मोयनदार होता है; और इसका आकार प्रायः तिकोना होता है।

सुहाली–संज्ञा स्त्री० दे० "सुहारी"।

सुहावछ–वि० [हिं० सुहाना] सुहावना। सुंदर। भला। अच्छा। उ०—(क) सरवर एक अनूप सुहावा। नाना जंतु कमल बहु छावा।—सबल। (ख) देखि मानसर रूप सुहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा।—जायसी।

संज्ञा पुं० [सं० सु + हाव] सुंदर हाव। उ०—किधौं यह केशव शृंगार की है सिद्धि किधौं भाग की सहेली कै सुहाग को सुहाव है।—केशव।

सुहावता|–वि० [हिं० सुहाना] [स्त्री० सुहावती] अच्छा लगनेवाला। सुहावना। भला। उ०—इस समय इसके मनभावती सुहावती बात कहूँ।—लल्लू।

सुहावनछ–वि० दे० "सुहावना"। उ०—जगमगात नृप गात परम बर परम सुहावन।—गिरिधर।

सुहावना–वि० [हिं० सुहाना] [स्त्री० सुहावनी] जो देखने में भला मालूम हो। सुंदर। प्रियदर्शन। मनोहर। जैसे,—सुहावना समय, सुहावना दृश्य, सुहावना रूप।

क्रि० अ० दे० "सुहाना"। उ०—कछु औरहु बात सुहावत है।—श्रीनिवास।

सुहावनापन–संज्ञा पुं० [हिं० सुहावना + पन (प्रत्य०)] सुहावना होने का भाव। सुंदरता। मनोहरता।

सुहावलाछ–वि० दे० "सुहावना"। उ०—पारसी पाँति की पीपर पत्र लिख्यौ किधौं मोहिनी मंत्र सुहावलो।—सुंदरी-सर्वस्व।

सुहास–वि० [सं०] [स्त्री० सुहासा] चारु या मधुर हास्ययुक्त। सुंदर या मधुर मुसकानवाला। उ०—उततें नेकु इतै चितै राति चितै तजि कोह। तेरो बदन सुहास सों ससि प्रकास सों सोह।—शृंगार सतसई।

सुहासी–वि० [सं० सुहासिन्] [स्त्री० सुहासिनी] सुंदर हँसनेवाला। मधुर मुसकानवाला। चारुहासी।

सुहित–वि० [सं०] (१) बहुत लाभकारी। उपयोगी। (२) किया हुआ। संपादित। (३) तृप्त। संतुष्ट। (४) उपयुक्त। ठीक।

सुहिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अग्नि की एक जिह्वा का नाम। (२) रुद्रजटा।

सुहिया|–संज्ञा स्त्री० दे० "सुहा"।

सुहु–संज्ञा पुं० [सं०] उग्रसेन के एक पुत्र का नाम।

सुहृत्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छे हृदयवाला। (२) मित्र। सखा। बंधु। दोस्त। (३) ज्योतिष के अनुसार लग्न से चौथा स्थान जिससे यह जाना जाता है कि मित्र आदि कैसे होंगे।

सुहृत्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुहृत् होने का भाव या धर्म। (२) मित्रता। दोस्ती।

सुहृद्–संज्ञा पुं० दे० "सुहृत्"।

सुहृद–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

सुहृदय–वि० [सं०] (१) अच्छे हृदयवाला। उन्नतमना। (२) सहृदय। स्नेहशील।

सुहेलराछ|–वि० दे० "सुहेला"। उ०—आज सुहेलरो सोहावन सतगुरू आये मोरे धाम।—कबीर।

सुहेला–वि० [सं० शुभ ?] (१) सुहावना। सुंदर। उ०—(क) बिछुरंता जब भेंटै सो जानै जेहि नेह। सुक्ख सुहेला उग्गवै दुःख झरै जिमि मेह।—जायसी। (ख) साँझ समै सब ललना मिलि आई खरो जहाँ नँदलाल अलबेलो। खेलन को निसि चाँदनी माहँ बनै न बसो मतिराम सुहेलो।—मतिराम। (२) सुखदायक। सुखद। उ०—मरना मीत सुहेला। बिछुरन खरा दुहेला।—दादू।

संज्ञा पुं० (१) मंगल गीत। (२) स्तुति। स्तव।

सुहेस|–वि० [सं० शुभ] अच्छा। सुंदर। भला।

सुहोता–संज्ञा पुं० [सं० सुहोतृ] (१) वह जो उत्तम रूप से हवन करता हो। अच्छा होता। (२) भुमन्यु के एक पुत्र का नाम। (३) वितथ के एक पुत्र का नाम।

सुहोत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वैदिक ऋषि का नाम। (२) एक बार्हस्पत्य का नाम। (३) एक आत्रेय का नाम। (४) एक कौरव का नाम। (५) सहदेव के एक पुत्र का नाम। (६) भुमन्यु के एक पुत्र का नाम। (७) बृहत्क्षत्र के एक पुत्र का नाम। (८) बृहदिषु के एक पुत्र का नाम। (९) सुधन्वा के एक पुत्र का नाम। (१०) एक दैत्य का नाम।

(११) एक सागर का नाम। (१२) वितथ के एक पुत्र का नाम। (१३) क्षत्रवृद्ध के एक पुत्र का नाम।

सुह्म–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन प्रदेश जो गौड़ देश के पश्चिम में था। (२) यवनों की एक जाति।

सुह्मक–संज्ञा पुं० दे० "सुह्म"।

सूँ‡–अव्य० [सं० सह] करण और अपादान का चिह्न। सों। से। उ०—(क) कह्यो द्विजन सूँ सुनहु पियारे।—रघुराज। (ख) कहत थकी ये धरन की नई अरुनई बाल। जाके रँग रँगि स्याम सूँ विदित कहावत लाल।—शृंगार सतसई।

सूँइस–संज्ञा स्त्री० दे० "सूँस"।

सूँघना–क्रि० स० [सं० सं+घ्राण] (१) घ्राणेंद्रिय या नाक द्वारा किसी प्रकार की गंध का ग्रहण या अनुभव करना। आघ्राण करना। बास लेना। महक लेना।

मुहा०—सिर सूँघना = बड़ों का मंगल-कामना के लिये छोटों का मस्तक सूँघना। बड़ों का गद्गद होकर छोटों का मस्तक सूँघना। जमीन सूँघना = पिनक लेना। ऊँघना।

(२) बहुत अल्प आहार करना। बहुत कम भोजन करना। (व्यंग्य) जैसे,—आप तो खाली सूँघकर उठ बैठे। (३) (साँप का) काटना। जैसे,—बोलता क्यों नहीं ? क्या साँप सूँघ गया है ?

सूँघा–संज्ञा पुं० [हिं० सूँघना] (१) वह जो नाक से केवल सूँघकर यह बतलाता हो कि अमुक स्थान पर जमीन के अंदर पानी या खजाना आदि है। (२) सूँघकर शिकार तक पहुँचनेवाला कुत्ता। (३) भेदिया। जासूस। मुखबिर।

सूँठ‡–संज्ञा स्त्री० दे० "सोंठ"।

सूँड़–संज्ञा स्त्री० [सं० शुण्ड] हाथी की नाक जो बहुत लंबी होती और नीचे की ओर प्रायः जमीन तक लटकती रहती है। यह लंबाई में प्रायः हाथी की ऊँचाई तक होती है। इसमें दो नथने होते हैं। हाथी इसी से हाथ का भी काम लेता है। यह इतनी मजबूत होती है कि हाथी इससे पेड़ उखाड़ सकता है और भारी से भारी चीज उठाकर फेंक सकता है। इसी से यह खाने के चीजें उठाकर मुँह में रखता और दमकल की तरह पानी फेंकता और पीता है। इससे यह जमीन पर से सूई तक उठा सकता है। शुंड। शुंडादंड।

सूँड़दंड–संज्ञा पुं० [हिं० सूँड़+सं० दंड] हाथी। (डिं०)

सूँड़हल–संज्ञा पुं० [सं० शुंड+हल (प्रत्य० ?)] हाथी। (डिं०)

सूँडा–संज्ञा पुं० [सं० शुंड] हाथी की सूँड़ या नाक। (डिं०)

सूँडाल–संज्ञा पुं० दे० "शुंडाल"।

सूँड़ि‡–संज्ञा स्त्री० दे० "सूँड़"।

सूँड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० शुंडी] एक प्रकार का सफेद कीड़ा जो कपास, अनाज, रेंड़ी, ऊख आदि के पौधों को हानि पहुँचाता है।

सूँघी‡–संज्ञा स्त्री० [सं० शोधन] सज्जी मिट्टी।

सूँस–संज्ञा स्त्री० [सं० शिशुमार] एक प्रसिद्ध बड़ा जल-जंतु जो लंबाई में ८ से १२ फुट तक होता है और जिसके हर एक जबड़े में तीस दाँत होते हैं। यह पानी के बहाव में पाया जाता है और एक जगह नहीं रहता। साँस लेने के लिये यह पानी के ऊपर आता है और पानी की सतह पर बहुत थोड़ी देर तक रहता है। शीत काल में कभी कभी यह जल के बाहर निकल आता है। इसकी आँखें बहुत कमजोर होती हैं और यह मटमैले पानी में नहीं देख सकता। इसका आहार मछलियाँ और झिंगवा है। यह जाल में फँसाकर या बर्छियों से मार मारकर पकड़ा जाता है। इसका तेल जलाने तथा कई दूसरे कामों में आता है। सूँस। सूस। सूसमार।

सूँह‡–अव्य० [सं० सम्मुख, पु० हिं० सौंहें] सम्मुख। सामने।

सूअर–संज्ञा पुं० [सं० शूकर, सूकर] [स्त्री० सूअरी] (१) एक प्रसिद्ध स्तन्यपायी वन्यजंतु जो मुख्यतः दो प्रकार का होता है—(१) वन्य या जंगली और (२) ग्राम्य या पालतू। ग्राम्य सूअर घास आदि के सिवा विष्ठा भी खाता है, पर जंगली सूअर घास और कंद मूल आदि ही खाता है। यह ग्राम्य शूकर की अपेक्षा बहुत बड़ा और बलवान् होता है। यह प्रायः मनुष्यों पर ही आक्रमण करता, और उन्हें मार डालता है। इसके कई भेद हैं। इसका लोग शिकार करते हैं और कुछ जातियाँ इसका मांस भी खाती हैं। राजपूतों में जंगली सूअरों के शिकार की प्रथा बहुत दिनों से प्रचलित है। इसके शिकार में बहुत अधिक वीरता और साहस की आवश्यकता होती है। कहीं कहीं इसकी चरबी में पूरियाँ पकाई जाती हैं; और इसका मांस पकाकर या अचार के रूप में खाया जाता है। वैद्यक के मत से जंगली सूअर का मांस मेद, बल और वीर्य्यवर्द्धक है।

पर्य्या०—शूकर। सूकर। दंष्ट्री। भूदार। स्थूलनासिक। दंतायुध। वक्रवक्त्र। दीर्घतर। आखनिक। भूक्षित। स्तब्धरोमा। मुखलांगूल आदि।

(२) एक प्रकार की गाली। जैसे,—सूअर कहीं का।

सूअरबियानी‡–संज्ञा स्त्री० [हिं० सूअर+बियाना = जनना] (१) वह स्त्री जो प्रति वर्ष बच्चा जनती हो। बरस-बियानी। बरसाइन। (२) हर साल अधिक बच्चे जनने की क्रिया।

सूअरमुखी–संज्ञा स्त्री० [हिं० सूअर+मुखी] एक प्रकार की बड़ी ज्वार।

सूआ‡–संज्ञा पुं० [सं० शुक, प्रा० सूअ] सुग्गा। तोता। शुक। कीर। उ०—सूआ सरस मिलत प्रीतम सुख सिंधुवीर रस मान्यो। जानि प्रभात प्रभाती गायो भोर भयो दोउ जान्यो।—सूर।
संज्ञा पुं० [हिं० सूई] (१) बड़ी सूई। (२) सींक। (लश०)

सूआन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो बरमा, चटगाँव और स्याम में होता है। इसके पत्ते प्रति वर्ष झड़ जाते हैं। इसकी लकड़ी इमारत और नाव के काम में आती है। इससे एक प्रकार का तेल भी निकलता है।

सूई-संज्ञा स्त्री० [सं० सूची] (१) पक्के लोहे का छोटा पतला तार जिसके एक छोर में बहुत बारीक छेद होता है और दूसरे छोर पर तेज नोक होती है। छेद में तागा पिरोकर इससे कपड़ा। सिया जाता है। सूची।

यौ०—सूई तागा। सूई डोरा।

क्रि० प्र०—पिरोना।—सीना।

मुहा०—सूई का भाला या फावड़ा बनाना = जरा सी बात को बहुत बड़ा बनाना। बात का बतंगड़ करना।

(२) पिन। (३) महीन तार का काँटा। तार या लोहे का काँटा जिससे कोई बात सूचित होती है। जैसे,—घड़ी की सूई, तराजू की सूई।

(४) अनाज, कपास आदि का अँखुआ। (५) सूई के आकार का एक पतला तार जिससे गोदना गोदा जाता है। (६) सूई के आकार का एक तार जिससे पगड़ी की चुनन बैठाते हैं।

सूई डोरा-संज्ञा पुं० [हिं० सूई + डोरा] मालखंभ की एक कसरत।

विशेष—पहले सीधी पकड़ के समान मालखंभ के ऊपर चढ़ने के समय एक बगल में से पाँव मालखंभ को लपेटते हुए बाहर निकालना और सिर को उठाना पड़ता है। उस समय हाथ छूटने का बड़ा डर रहता है। इसमें पीठ मालखंभ की तरफ और मुँह लोगों की तरफ होता है। जब पाँव नीचे आ चुकता है, तब ऊपर का उलटा हाथ छोड़कर मालखंभ को छाती से लगाए रहना पड़ता है। यह पकड़ बड़ी ही कठिन है।

सूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाण। (२) वायु। हवा। (३) कमल। (४) इंद्र के एक पुत्र का नाम।

‡संज्ञा पुं० दे० "शुक्र"। उ०—नासिक देखि लजानेउ सूआ। सूक आइ बेसरि होइ ऊआ।—जायसी।

सूकना‡-क्रि० अ० दे० "सूखना"। उ०—(क) माँगो घर कोटि चोट बदलो न चूकत है, सूकत है सुख सुधि आये यहाँ हाल है।—भक्तमाल। (ख) जैसे सूकत सलिल के बिकल मीन गति होय।—दीनदयाल।

सूकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूअर। शूकर। (२) एक प्रकार का हिरन। (३) कुम्हार। कुंभकार। (४) सफेद धान। (५) एक नरक का नाम।

सूकरकंद-संज्ञा पुं० [सं०] वाराहीकंद।

सूकरक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शालिधान्य।

सूकरक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम जो मथुरा जिले में है और जो अब "सोरों" नाम से प्रसिद्ध है।

सूकरखेत-संज्ञा पुं० दे० "सूकरक्षेत्र"।

सूकरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूअर होने का भाव। सूअर की अवस्था। सूअरपन।

सूकरदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गुदभ्रंश (काँच निकलने का) रोग जिसमें खुजली और दाह के साथ बहुत दर्द होता है और ज्वर भी हो जाता है।

सूकरनयन-संज्ञा पुं० [सं०] काठ में किया जानेवाला एक प्रकार का छेद।

सूकरपादिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किवाँच। कपिकच्छु। कौंछ। (२) सेम। कोलशिंबी।

सूकरमुख-संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

सूकराक्रांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वराहक्रांता।

सूकराक्षिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का नेत्र रोग।

सूकरास्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बौद्ध देवी का नाम जिसे वाराही भी कहते हैं।

सूकराह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] गठिवन। ग्रंथिपर्ण।

सूकरिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा।

सूकरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया।

सूकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुअरी। शूकरी। मादा सूअर। (२) वराहक्रांता। (३) वाराहीकंद। गेंठी। (४) एक देवी का नाम। वाराही। (५) एक प्रकार की चिड़िया।

सूकरेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कसेरू। (२) एक प्रकार का पक्षी।

सूका†-संज्ञा पुं० [सं० सपादक = चतुर्थांश सहित] [स्त्री० सूकी] चार आने के मूल्य का सिक्का। चवन्नी।

वि० दे० "सूखा"।

सूकी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूका = चवन्नी ?] रिश्वत। घूस।

सूक्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेदमंत्रों या ऋचाओं का समूह। वैदिक स्तुति या प्रार्थना। जैसे,—देवी सूक्त, अग्नि सूक्त, श्रीसूक्त आदि। (२) उत्तम कथन। उत्तम भाषण। (३) महद्वाक्य।

वि० उत्तम रूप से कथित। भली भाँति कहा हुआ।

सूक्तचारी-वि० [सं० सूक्तचारिन्] उत्तम वाक्य या परामर्श माननेवाला।

सूक्तदर्शी-संज्ञा पुं० [सं० सूक्तदर्शिन्] वह ऋषि जिसने वेदमंत्रों का अर्थ किया हो। मंत्रद्रष्टा।

सूक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] मैना। सारिका।

सूक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तम उक्ति या कथन। सुंदर पद या वाक्य आदि। बढ़िया कथन।

सूक्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का करताल या झाँझ। (संगीत)

सूक्षम॰–वि॰ दे॰ "सूक्ष्म"। उ॰—साँचे की सी ढारी अति सूक्षम सुधारि, कढ़ी केशोदास अंग अंग भाँइ के उतारी सी।—केशव।
संज्ञा पुं॰ दे॰ "सूक्ष्म"।

सूक्ष्म–वि॰ [सं॰] [स्त्री॰ सूक्ष्मा] (१) बहुत छोटा। जैसे,—सूक्ष्म जंतु। (२) बहुत बारीक या महीन। जैसे,—सूक्ष्म बात।
संज्ञा पुं॰ (१) परमाणु। अणु। (२) परब्रह्म। (३) लिंग शरीर। (४) शिव का एक नाम। (५) एक दानव का नाम। (६) एक काव्यालंकार जिसमें चित्तवृत्ति को सूक्ष्म चेष्टा से लक्षित कराने का वर्णन होता है। यथा—कौनहुँ भाव प्रभाव ते जानैं जिय की बात। इंगित ते आकार ते कहि सूक्षम अवदात।—केशव। (७) निर्मली। (८) जीरा। जीरक। (९) छल। कपट। (१०) रीठा। अरिष्टक। (११) सुपारी। पूग। (१२) वह ओषधि जो रोमकूप के मार्ग से शरीर में प्रविष्ट करे। जैसे,—नीम, शहद, रेंडी का तेल, सेंधा नमक आदि। (१३) बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम। (१४) जैनियों के अनुसार एक प्रकार का कर्म्म जिसके उदय से मनुष्य सूक्ष्म जीवों की योनि में जन्म लेता है।

सूक्ष्म कृष्णफला–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] कठ जामुन। छोटा जामुन। क्षुद्र जंबू।

सूक्ष्मकोण–संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह कोण जो समकोण से छोटा हो।

सूक्ष्मघंटिका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सनई। क्षुद्र शणपुष्पी।

सूक्ष्मचक्र–संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार का चक्र।

सूक्ष्मतंडुल–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) पोस्त दाना। खसखस। (२) सर्जरस। धूना।

सूक्ष्मतंडुला–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) पीपल। पिप्पली। (२) राल। सर्जरस।

सूक्ष्मता–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सूक्ष्म होने का भाव। बारीकी। महीनपन। सूक्ष्मत्व।

सूक्ष्मतुंड–संज्ञा पुं॰ [सं॰] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का कीड़ा।

सूक्ष्मदर्शक यंत्र–संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक यंत्र जिसके द्वारा देखने पर सूक्ष्म पदार्थ बड़े दिखाई देते हैं। अणुवीक्षण यंत्र। खुर्दबीन।

सूक्ष्मदर्शिता–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सूक्ष्मदर्शी होने का भाव। सूक्ष्म या बारीक बात सोचने समझने का गुण।

सूक्ष्मदर्शी–वि॰ [सं॰ सूक्ष्मदर्शिन्] (१) सूक्ष्म विषय को समझनेवाला। बारीक बात को सोचने-समझनेवाला। कुशाग्रबुद्धि। (२) अत्यंत बुद्धिमान्।

सूक्ष्मदल–संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार की सरसों। देवसर्षप।

सूक्ष्मदला–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] धमासा। दुरालभा।

सूक्ष्मदारु–संज्ञा पुं॰ [सं॰] काठ की पतली पटरी।

सूक्ष्मदृष्टि–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह दृष्टि जिससे बहुत ही सूक्ष्म बातें भी दिखाई दें या समझ में आ जायँ।
संज्ञा पुं॰ वह जो सूक्ष्म से सूक्ष्म बातें भी देख या समझ लेता हो।

सूक्ष्मदेही–संज्ञा पुं॰ [सं॰ सूक्ष्मदेहिन्] परमाणु जो बिना अनुवीक्षण यंत्र के दिखाई नहीं पड़ता।
वि॰ सूक्ष्म शरीरवाला। जिसका शरीर बहुत ही सूक्ष्म या छोटा हो।

सूक्ष्मनाभ–संज्ञा पुं॰ [सं॰] विष्णु का एक नाम।

सूक्ष्मपत्र–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) धनिया। धन्याक। (२) काली जीरी। वनजीरक। (३) देवसर्षप। (४) छोटा बेर। लघु बदरी। (५) माषीपत्र। सुरपर्ण। (६) जंगली बर्बरी। वन बर्बरी। (७) लाल ऊख। लोहितेक्षु। (८) कुकरौंदा। कुकुंदर। (९) कीकर। बबूल। (१०) धमासा। दुरालभा। (११) उड़द। माष। (१२) अर्कपत्र।

सूक्ष्मपत्रक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) पित्तपापड़ा। पर्पटक। (२) वन तुलसी। वन-बर्बरी।

सूक्ष्मपत्रा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) वन जामुन। (२) शतमूली। (३) बृहती। (४) धमासा। (५) अपराजिता या कोयल नाम की लता। (६) लाल अपराजिता। (७) जीरे का पौधा। (८) बला।

सूक्ष्मपत्रिका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) सौंफ। शतपुष्पा। (२) सतावर। शतावरी। (३) लघु ब्राह्मी। (४) पोई। क्षुद्रपोदकी।

सूक्ष्मपर्णी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) आकाश मांसी। (२) सतावर। शतावरी।

सूक्ष्मपर्णा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) विधारा। वृद्धदारु। (२) छोटी शणपुष्पी। छोटी सनई। (३) मनमंदा। बृहती।

सूक्ष्मपर्णी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] राम तुलसी। रामदूती।

सूक्ष्मपाद–वि॰ [सं॰] छोटे पैरोंवाला। जिसके पैर छोटे हों।

सूक्ष्मपिप्पली–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] जंगली पीपल। वनपिप्पली।

सूक्ष्मपुष्पा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सनई। शणपुष्पी।

सूक्ष्मपुष्पी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) शंखिनी। (२) यवतिक्ता नाम की लता।

सूक्ष्मफल–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) लिसोड़ा। भूकर्बुदार। (२) छोटा बेर। सूक्ष्म बदर।

सूक्ष्मफला–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) भुँई आँवला। भूम्यामलकी। (२) तालीसपत्र। (३) मालकंगनी। महाज्योतिष्मती लता।

सूक्ष्मबदरी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] झरबेर। भूबदरी।

सूक्ष्मबीज–संज्ञा पुं॰ [सं॰] पोस्तदाना। खसखस।

सूक्ष्मभूत–संज्ञा पुं॰ [सं॰] आकाशादि शुद्ध भूत जिनका पंचीकरण न हुआ हो।

विशेष—सांख्य के अनुसार पंच तन्मात्र अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध तन्मात्र ये अलग अलग सूक्ष्म भूत हैं। इन्हीं पंच तन्मात्र से पंच महाभूतों की उत्पत्ति हुई है। पंचीकृत होने पर आकाशादि भूत स्थूल भूत कहलाते हैं। वि० दे० "तन्मात्र"।

सूक्ष्ममक्षिक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सूक्ष्ममक्षिका] मच्छड़। मशक।

सूक्ष्ममति–वि० [सं०] तीक्ष्ण बुद्धि। जिसकी बुद्धि तेज हो।

सूक्ष्ममूला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जियंती। (२) ब्राह्मी।

सूक्ष्मलोमक–संज्ञा पुं० [सं०] जैन मतानुसार मुक्ति की चौदह अवस्थाओं में से दसवीं अवस्था।

सूक्ष्मवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ताम्रवल्ली। (२) जतुका नाम की लता। (३) करेली। लघु कारवेल्ल।

सूक्ष्म शरीर–संज्ञा पुं० [सं०] पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच सूक्ष्म भूत, मन और बुद्धि इन सत्रह तत्वों का समूह।

विशेष—सांख्य के अनुसार शरीर दो प्रकार का होता है—स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर। हाथ, पैर, मुँह, पेट आदि अंगों से युक्त शरीर स्थूल शरीर कहलाता है। परन्तु इस स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने पर इसी प्रकार का एक और शरीर बच रहता है, जो उक्त सत्रह अंगों और तत्वों का बना हुआ होता है। इसी को सूक्ष्म शरीर कहते हैं। यह भी माना जाता है कि जब तक मुक्ति नहीं होती, तब तक इस सूक्ष्म शरीर का आवागमन बराबर होता रहता है। स्वर्ग और नरक आदि का भोग भी इसी सूक्ष्म शरीर को करना पड़ता है।

सूक्ष्मशर्करा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बालू। बालुका।

सूक्ष्मशाक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बबुरी जिसे जल बबुरी कहते हैं।

सूक्ष्मशालि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महीन सुगंधित चावल जिसे सोरों कहते हैं।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह मधुर, लघु तथा पित्त, अर्श और दाहनाशक है।

सूक्ष्मषट्चरण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सूक्ष्म कीड़ा जो पलकों की जड़ में रहता है।

सूक्ष्मस्फोट–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कोढ़। विचर्चिका रोग।

सूक्ष्मा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जूही। यूथिका। (२) छोटी इलायची। (३) करुणी नाम का पौधा। (४) मूसली। तालमूली। (५) बालू। बालुका। (६) सूक्ष्म जटामासी। (७) विष्णु की नौ शक्तियों में से एक।

सूक्ष्माक्ष–वि० [सं०] सूक्ष्म दृष्टिवाला। तीव्रदृष्टि। तेज नजर।

सूक्ष्मात्मा–संज्ञा पुं० [सं० सूक्ष्मात्मन्] शिव। महादेव।

सूक्ष्माह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] महामेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

सूक्ष्मेक्षिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सूक्ष्म दृष्टि। तेज नजर।

सूक्ष्मैला–संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलाइची।

सूख‡–वि० दे० "सूखा"। उ०—(क) धन में रूख सूख हर हर ते। मनु नृप सूख वरूथ न करते।—गिरिधर। (ख) धर्मपाश अरु कालपाश पुनि दुव दारन दोउ फाँसी। सूख ओद लीजै असनी युग रघुनंदन सुखरासी।—रघुराज। (ग) सूख सरोवर निकट जिमि सारस बदन मलीन।—शंकर दिग्विजय।

सूखना–क्रि० अ० [सं० शुष्क, हिं० सूखा + ना (प्रत्य०)] (१) आर्द्रता या गीलापन न रहना। नमी या तरी का निकल जाना। रस-हीन होना। जैसे,—कपड़ा सूखना। पत्ता सूखना। फूल सूखना। (२) जल का बिलकुल न रहना या बहुत कम हो जाना। जैसे,—तालाब सूखना, नदी सूखना। (३) उदास होना। तेज नष्ट होना। जैसे,—चेहरा सूखना। (४) नष्ट होना। बरबाद होना। जैसे,—फसल सूखना। (५) डरना। सन्न होना। जैसे,—जान सूखना। (६) दुबला होना। कृश होना। जैसे,—लड़का सूख गया।

मुहा०—सूखकर काँटा होना = अत्यंत कृश होना। बहुत दुबला पतला होना। सूखे खेत लहलहाना = अच्छे दिन आना।

संयो० क्रि०—जाना।

सूखर–संज्ञा पुं० [?] एक शैव संप्रदाय।

सूखा–वि० [सं० शुष्क] [स्त्री० सूखी] (१) जिसमें जल न रह गया हो। जिसका पानी निकल, उड़ या जल गया हो। जैसे,—सूखा तालाब, सूखी नदी, सूखी धोती। (२) जिसका रस या आर्द्रता निकल गई हो। रस-हीन। जैसे,—सूखा पत्ता, सूखा फूल। (३) उदास। तेज-रहित। जैसे,—सूखा चेहरा। (४) हृदयहीन। कठोर। रूखा। जैसे,—वह बड़ा सूखा आदमी है। (५) कोरा। जैसे,—सूखा अन्न, सूखी तरकारी। (६) केवल। निरा। खाली। जैसे,—(क) वह सूखा शेखीबाज है। (ख) उसे सूखी तनखाह मिलती है।

मुहा०—सूखा टालना या टरकाना = भाकांक्षी या याचक आदि को बिना उसकी कामना पूरी किए लौटाना। सूखा जवाब देना = साफ इनकार करना।

संज्ञा पुं० (१) पानी न बरसना। वृष्टि का अभाव। अवर्षण। अनावृष्टि। उ०—बारह मासउ उपजई तहाँ किया परवेस। दादू सूखा ना पड़इ हम आये उस देस।—दादू।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(२) नदी के किनारे की जमीन। नदी का किनारा। जहाँ पानी न हो।

मुहा०—सूखे पर लगना = नाव आदि का किनारे लगना ।

(३) ऐसा स्थान जहाँ जल न हो । (४) सूखा हुआ तंबाकू का पत्ता जो चूना मिलाकर खाया जाता है । (५) एक प्रकार की खाँसी जो बच्चों को होती है, जिससे वे प्रायः मर जाते हैं । हब्बा डब्बा । (६) खाना अंग न लगने से या रोग आदि के कारण होनेवाला दुबलापन ।

मुहा०—सूखा लगना = ऐसा रोग लगना जिससे शरीर बिल्कुल सूख जाय ।

(७) भाँग ।

सूघर—वि० दे० "सुघड़" ।

सूच—संज्ञा पुं० [सं०] कुश का अंकुर ।

वि० [सं० शुचि] निर्मल । पवित्र । (डिं०)

सूचक—वि० [सं०] [स्त्री० सूचिका] सूचना देनेवाला । बतानेवाला । दिखानेवाला । ज्ञापक । बोधक ।

संज्ञा पुं० (१) सूई । सूची । (२) सीनेवाला । दरजी । (३) नाटककार । सूत्रधार । (४) कथक । (५) बुद्ध । (६) सिद्ध । (७) पिशाच । (८) कुत्ता । (९) बिल्ली । (१०) कौआ । (११) सियार । गीदड़ । (१२) कटहरा । जँगला । (१३) बरामदा । छज्जा । (१४) ऊँची दीवार । (१५) खल । विश्वासघातक । (१६) गुप्तचर । भेदिया । (१७) आयोगव माता और क्षत्रिय पिता से उत्पन्न पुत्र । (१८) एक प्रकार का महीन चावल । सूक्ष्म शालिधान्य । सोरों । (१९) चुगलखोर । पिशुन ।

सूचन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सूचनी] (१) बताने या जताने की क्रिया । ज्ञापन । (२) सुगंधि फैलाने की क्रिया ।

सूचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह बात जो किसी को बताने, जताने या सावधान करने के लिये कही जाय । प्रकट करने या जतलाने के लिये कही हुई बात । विज्ञापन । विज्ञप्ति ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—पाना ।—मिलना ।

(२) वह पत्र आदि जिस पर किसी को बताने या सूचित करने के लिये कोई बात लिखी हो । विज्ञापन । इश्तहार । (३) अभिनय । (४) दृष्टि । (५) बेधना । छेदना । (६) भेद लेना । (७) हिंसा ।

*क्रि० स० [सं० सूचन] बतलाना । जतलाना । प्रकट करना ।

उ०—हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा । सूचत किरन मनोहर हासा ।—तुलसी ।

सूचनापत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र या विज्ञप्ति जिसके द्वारा कोई बात लोगों को बताई जाय । वह पत्र जिसमें किसी प्रकार की सूचना हो । विज्ञापन । विज्ञप्ति । इश्तहार ।

सूचनीय—वि० [सं०] सूचना करने के योग्य । बताने लायक ।

सूचयितव्य—वि० दे० "सूचनीय" ।

सूचा—संज्ञा स्त्री० दे० "सूचना" ।

†संज्ञा स्त्री० [हिं० सूचित] जो होश में हो । सावधान ।

उ०—नागमती कहँ अगम जनाया । गई तपनि बरषा जनु आवा । रही जो मुइ नागिन जस तूचा । जिउ पाएँ तन कै भइ सूचा ।—जायसी ।

सूचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूई । (२) एक प्रकार का नृत्य । (३) केवड़ा । केतकी पुष्प । (४) सेना का एक प्रकार का व्यूह जिसमें थोड़े से बहुत तेज और कुशल सैनिक अग्र भाग में रखे जाते हैं और शेष पिछले भाग में होते हैं । (५) कटहरा । जँगला । (६) दरवाजे की सिटकनी । (७) निषाद पिता और वैश्या माता से उत्पन्न पुत्र । (८) एक प्रकार का मैथुन । (९) सूप बनानेवाला । शूर्पकार । (१०) करण । (११) कुत्ता । श्वेतदर्भ । (१२) दृष्टि । नजर । (१३) दे० "सूची" ।

वि० [सं० शुचि] पवित्र । शुद्ध । (डिं०)

सूचिक—संज्ञा पुं० [सं०] सिलाई के द्वारा जीविका निर्वाह करनेवाला, दरजी । सौचिक ।

सूचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूई । (२) हाथी की सूँड़ । हस्तिशुंड । (३) एक अप्सरा का नाम । (४) केवड़ा । केतकी ।

सूचिकाधर—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी । हस्ति ।

सूचिकाभरण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की औषध जो सन्निपात, विसूचिका आदि प्राणनाशक रोगों की अंतिम औषध मानी गई है । बिल्कुल अंतिम अवस्था में [redacted] इसका प्रयोग किया जाता है । यदि इससे फल न हुआ तो, कहते हैं, फिर रोगी नहीं बच सकता । इसके बनाने की कई विधियाँ हैं । एक विधि यह है कि रस, गंधक, सीसा, काष्ठविष और काले साँप का विष इन सब को खरल कर क्रम से रोहित मछली, भैंस, मोर, बकरे और सूअर के पित्त में भावना देकर सरसों के बराबर गोली बनाई जाती है जो अदरक के रस के साथ दी जाती है ।

दूसरी विधि यह है कि काष्ठ विष, सर्प विष, दारुमुच प्रत्येक एक एक भाग, हिंगुल तीन भाग, इन सब को रोहित मछली, भैंस, मोर, बकरे और सूअर के पित्त में एक एक दिन भावना देकर सरसों के बराबर गोली बनाते हैं जो नारियल के जल के साथ देते हैं । तीसरी विधि यह है कि विष एक पल और रस चार माशे, इन दोनों को एक साथ शराव पुट में बंद करके सुखाते हैं और बाद दो पहर तक बराबर आँच देते हैं । सन्निपात के रोगी को—चाहे वह अचेत हो या मृतप्राय—सिर पर उस्तुरे से क्षत कर सूई की नोक से यह रस लेकर उसमें भर देते हैं । साँप के काटने पर भी इसका प्रयोग किया जाता है । कहते हैं कि इन सब प्रयोगों के कारण रोगी के शरीर में बहुत अधिक

गरमी आने लगती है; इसी लिये इनके उपरांत अनेक प्रकार के शीतल उपचार किए जाते हैं।

सूचिकामुख-संज्ञा पुं० [सं०] शंख।

सूचित-वि० [सं०] (१) जिसकी सूचना दी गई हो। जताया हुआ। बताया हुआ। कहा हुआ। ज्ञापित। प्रकाशित। (२) बहुत उपयुक्त या योग्य। (३) जिसकी हिंसा की गई हो।

सूचिपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का ऊख। (२) शिरियारी। चौपतिया। सिनिवार शाक। (३) दे० "सूचीपत्र"।

सूचिपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का ऊख। (२) शिरियारी। चौपतिया। सिनिवार शाक।

सूचिपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] केवड़ा। केतकी वृक्ष।

सूचिभेद्य-वि० [सं०] (१) सूई से भेदन होने योग्य। (२) बहुत घना। जैसे,—सूचिभेद्य अंधकार।

सूचिमल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] नेवारी। नवमल्लिका।

सूचिरदन-संज्ञा पुं० [सं०] नेवला।

सूचिरोमा-संज्ञा पुं० [सं० सूचिरोमन्] सूअर। वराह।

सूचिवत्-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

सूचिवदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नेवला। नकुल। (२) मच्छर। मशक।

सूचिशालि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महीन चावल। सूक्ष्म शालिधान्य। सोरों।

सूचिशिखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूई की नोक।

सूचिसूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] सूई में पिरोने या सीने का धागा।

सूची-संज्ञा पुं० [सं० सूचिन्] (१) चर। भेदिया। (२) पिशुन। चुगलखोर। (३) खल। दुष्ट।

संज्ञा स्त्री० (१) कपड़ा सीने की सूई। (२) दृष्टि। नजर। (३) केतकी। केवड़ा। (४) सेना का एक प्रकार का व्यूह, जिसमें सैनिक सूई के आकार में रखे जाते हैं। (५) सफेद कुश। (६) एक ही प्रकार की बहुत सी चीजों या उनके अंगों, विषयों आदि की नामावली। तालिका। फेहरिस्त।

यौ०—सूचीपत्र।

(७) साक्षी के पाँच भेदों में से एक भेद। वह साक्षी जो बिना बुलाए स्वयं आकर किसी विषय में साक्ष्य दे। स्वयमुक्ति। (८) पिंगल के अनुसार एक रीति जिसके द्वारा मात्रिक छंदों की संख्या की शुद्धता और उनके भेदों में आदि-अंत लघु या आदि-अंत गुरु की संख्या जानी जाती है। (९) सुश्रुत के अनुसार सूई के आकार का एक प्रकार का यंत्र जिसके द्वारा शरीर के क्षतों में टाँके लगाए जाते थे।

सूचीक-संज्ञा पुं० [सं०] मच्छर आदि ऐसे जंतु जिनके डंक सूई के समान होते हैं।

सूचीकर्म-संज्ञा पुं० [सं० सूचीकर्मन्] सिलाई या सूई का काम जो ६४ कलाओं में से एक है।

सूचीदल-संज्ञा पुं० [सं०] सितावर या सुनिषण्णक नामक शाक। शिरियारी।

सूचीपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पत्र या पुस्तिका आदि जिसमें एक ही प्रकार की बहुत सी चीजों अथवा उनके अंगों की नामावली हो। तालिका। (२) व्यवसायियों का वह पत्र या पुस्तक आदि जिसमें उनके यहाँ मिलनेवाली सब चीजों के नाम, दाम और विवरण आदि दिए रहते हैं। तालिका। फेहरिस्त।

सूचीपत्रक-संज्ञा पुं० दे० "सूचीपत्र"।

सूचीपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँडर दूब। गंड दूर्वा।

सूचीपद्म-संज्ञा पुं० [सं०] सेना का एक प्रकार का व्यूह।

सूचीपाश-संज्ञा पुं० [सं०] सूई का छेद या नाका जिसमें धागा पिरोया जाता है।

सूचीपुष्प-संज्ञा पुं० दे० सूचिपुष्प"।

सूचीभेद-वि० दे० "सूचिभेद्य"।

सूचीमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूई की नोक या छेद जिसमें धागा पिरोया जाता है। (२) एक नरक का नाम। (३) हीरक। हीरा। (४) कुश।

सूचीरोमा-संज्ञा पुं० दे० "सूचिरोमा"।

सूचीवक्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्कंद के एक अनुचर का नाम। (२) एक असुर का नाम।

सूचीवक्त्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह योनि जिसका छेद इतना छोटा हो कि वह पुरुष के संसर्ग के योग्य न हो। वैद्यक के अनुसार यह बीस प्रकार के योनि रोगों में से एक है।

सूच्छमॐ-वि० दे० "सूक्ष्म"। उ०—ब्रह्म लौं सूच्छम है कटि राधे कि, देखी न काहू सुनी सुन राखी।—सुंदरीसर्वस्व।

सूच्य-वि० [सं०] सूचना के योग्य। जताने लायक।

सूच्यग्र-संज्ञा पुं० [सं०] सूई का अग्र भाग। सूई की नोक।

सूच्यग्रस्तंभ-संज्ञा पुं० [सं०] मीनार।

सूच्यग्रस्थूलक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण। ऊर्णा। ढलक। उलप।

सूच्याकार-वि० [सं० सूची+आकार] सूई के आकार का। लंबा और नुकीला।

सूच्यार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में किसी पद आदि का वह अर्थ जो शब्दों की व्यंजना शक्ति से जाना जाता हो।

सूच्यास्य-संज्ञा पुं० [सं०] चूहा। मूषिक।

सूच्याह्व-संज्ञा पुं० [सं०] शिरियारी। सितिवर। सुनिषण्णक शाक।

सूछमॐ-वि० दे० "सूक्ष्म"। उ०—किधौं वासुकी बंधु वासु कीनो रथ ऊपर। आदि शक्ति की शक्ति किधौं सोहति सूछमतर।—गिरिधर।

सूछिमठी–वि० दे० "सूक्ष्म"। उ०—जाके जैसी पीर है तैसी करइ पुकार। को सूछिम को सहज में को मिरतक तेहि यार।—दादू।

सूजंघ–संज्ञा स्त्री० [सं० सुगंध] सुगंध। सुवास। (डिं०)

सूजन–संज्ञा स्त्री० [हिं० सूजना] (१) सूजने की क्रिया या भाव। (२) सूजने की अवस्था। फुलाव। शोथ।

सूजना–क्रि० अ० [फा० सोजिश, मि० सं० शोथ] रोग, चोट या वात प्रकोप आदि के कारण शरीर के किसी अंग का फूलना। शोथ होना।

सूजनी–संज्ञा स्त्री० दे० "सुजनी"।

सूजा–संज्ञा पुं० [सं० सूची, हिं० सुई, सूजी] (१) बड़ी मोटी सूई। सूआ। (२) लोहे का एक औजार जिसका एक सिरा नुकीला और दूसरा चिपटा और छिदा हुआ होता है। इससे कूचबंद लोग कूँचे को छेदकर बाँधते हैं। (३) रेशम फेरनेवालों का सूजे के आकार का लोहे का एक औजार जो मसेरू में लगा रहता है। (४) खूँटा जो छकड़ा गाड़ी के पीछे की ओर उसे टिकाने के लिये लगाया जाता है।

सूजाक–संज्ञा पुं० [फ़ा०] मूत्रेंद्रिय का एक प्रदाहयुक्त रोग जो दूषित लिंग और योनि के संसर्ग से उत्पन्न होता है। इस रोग में लिंग का मुँह और छिद्र सूज जाता है; ऊपर की खाल सिमट जाती है तथा उसमें खुजली और पीड़ा होती है। मूत्रनाली में बहुत जलन होती है, और उसे दबाने से सफेद रंग का गाढ़ा और लसीला मवाद निकलता है। यह पहली अवस्था है। इसके बाद मूत्रनाली में घाव हो जाता है, जिससे मूत्रत्याग करने के समय अत्यंत कष्ट और पीड़ा होती है। इंद्रिय के छेद में से पीब के समान पीला गाढ़ा या कभी कभी पतला स्राव होने लगता है। शरीर के भिन्न भिन्न अंगों में पीड़ा होने लगती है। कभी कभी पेशाब बंद हो जाता है या रक्त स्राव होने लगता है। स्त्रियों को भी इससे बहुत कष्ट होता है, पर उतना नहीं जितना पुरुषों को होता है। इसका प्रभाव गर्भाशय पर भी पड़ता है जिससे स्त्रियाँ वंध्या हो जाती हैं। औपसर्गिक प्रमेह।

सूजी–संज्ञा स्त्री० [सं० शुचि = शुद्ध] गेहूँ का दरदरा आटा जो हलुआ, लड्डू तथा दूसरे पकवान बनाने के काम में आता है।

संज्ञा स्त्री० [सं० [सूची] (१) सूई। उ०—जादिन सों नेह भरे नित मेरे गेह आइ गूथन न देत कहै मैं ही देउँगो बनाय। वरज्यो न माने केहू ओहि लागे डर यही कमल से कर कहूँ सूजी मति गड़ि जाय।—काव्यकलाप (२) वह सूआ जिससे गड़ेरिए लोग कंबल की पट्टियाँ सीते हैं।

संज्ञा पुं० [सं० सूची] कपड़ा सीनेवाला। दरजी। सूचिक। उ०—एक सूजी ने आय दंडवत कर खड़े हो कर जोड़ के कहा, महराज !......दया कर कहिए तो वागे पहराऊँ।—लल्लू।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का सरेस जो माँड़ और चूने के मेल से बनता है और बाजों के पुर्जे जोड़ने के काम में आता है।

सूझ–संज्ञा स्त्री० [हिं० सूझना] (१) सूझने का भाव। (२) दृष्टि। नजर।

यौ०—सूझबूझ = समझ। ज्ञान।

(३) मन में उत्पन्न होनेवाली अनूठी कल्पना। उद्भावना। उपज। जैसे,—कवियों की सूझ।

सूझना–क्रि० अ० [सं० संज्ञान] (१) दिखाई देना। देख पड़ना। प्रत्यक्ष होना। नजर आना। जैसे,—हमें कुछ नहीं सूझ पड़ता। उ०—आँखि न जो सूझत न कानन तें सुनियत केसोराइ जैसे तुम लोकन में गाये हौ।—केशव। (२) ध्यान में आना। खयाल में आना। जैसे,—(क) इतने में उसे एक ऐसी बात सूझी जो मेरे लिये असंभव थी। (ख) उसे कोई बात ही नहीं सूझती। उ०—मदमंगल मन को मिटै सो उपाइ न सूझै।—तुलसी।

क्रि० प्र०—देना।—पड़ना।

(३) छुट्टी पाना। मुक्त होना। उ०—राजा लियो चोर सों गोला। गोला देत चोर अस बोला। जो महि जनम कियों मैं चोरी। दहै दहन तौ मोरि गदोरी। अस कहि सो गोला है सूझ्यो। साहु सिपाही सों दुत बूझ्यो।—रघुराज।

सूझबूझ–संज्ञा स्त्री० [हिं० सूझना + बूझना] देखने और समझने की शक्ति। समझ। अक्ल।

सूझा–संज्ञा पुं० [देश०] फारसी संगीत में एक मुकाम (राग) के पुत्र का नाम।

सूट–संज्ञा पुं० [अं०] पहनने के सब कपड़े, विशेषतः कोट और पतलून आदि।

यौ०—सूटकेस।

सूटकेस–संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का चिपटा बक्स जिसमें पहनने के कपड़े रखे जाते हैं।

सूटा–संज्ञा पुं० [अनु०] मुँह से तंबाकू, चरस या गाँजे का धूआँ जोर से खींचना।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

सूठरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] मूसा। सठुरी।

सूड़–संज्ञा स्त्री० दे० "सूँड़"।

सूड़ो–संज्ञा पुं० [सं० शुक] शुक पक्षी। तोता। (डिं०)

सूत–संज्ञा पुं० [सं० सूत्र] (१) रूई, रेशम आदि का महीन तार जिससे करघा बुना जाता है। तंतु। सूता।

क्रि० प्र०—कातना।

मुहा०—सूत सूत = जरा जरा। तनिक तनिक। सूत बराबर = बहुत सूक्ष्म। बहुत महीन।

(२) रुई का बटा हुआ तार जिससे कपड़ा आदि सीते हैं। तागा। धागा। डोरा। सूत्र। (३) बच्चों के गले में पहनने का गंडा। (४) करधनी। उ०—कुंजगृह मंजु मधु मधुप अमंद राजें तामें कान्हि स्यामैं विपरीत रति राची री। द्विजदेव कीर कलकंठ की धुनि जैसी तैसियै अभूत भाई सूत धुनि माची री।—रसकुसुमाकर।

क्रि० प्र०—पहनना।

(५) नापने का एक मान। (चार सूत की एक पट्टन, चार पट्टन का एक तसू और चौबीस तसू का एक इमारती गज होता है।) (६) पत्थर पर निशान डालने की डोरी। संगतराश लोग इसे कोयला मिले हुए तेल में डुबाकर इससे पत्थर पर निशान कर उसकी सीध में पत्थर काटते हैं। (७) लकड़ी चीरने के लिये उस पर निशान डालने की डोरी।

मुहा०—सूत धरना = निशान करना। रेखा खींचना। बढ़ई लोग जब किसी लकड़ी को चीरने लगते हैं, तब सीधी चिराई के लिये सूत को किसी रंग में डुबाकर उससे उस लकड़ी पर रेखा करते हैं। इसी को सूत धरना कहते हैं। उ०—मनहुँ भानु मंडलहि सवारत, धरयो सूत विधि सुत चिचित्र मति।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सूती] (१) एक वर्णसंकर जाति, मनु के अनुसार जिसकी उत्पत्ति क्षत्रिय के औरस और ब्राह्मणी के गर्भ से है और जिसकी जीविका रथ हाँकना था। (२) रथ हाँकनेवाला। सारथि। उ०—कर लगाम लै सूत धूत मजबूत बिराजत। देखि सूहदरथपूत सुरथ सूरज रथ लाजत।—गि० दास। (३) बंदी जिनका काम प्राचीन काल में राजाओं का यशोगान करना था। भाट। चारण। उ०—(क) मागध सूत और बंदीजन ठौर ठौर यश गायो।—सूर। (ख) बहु सूत मागध बंदिजन नृप वचन सुनि हरषित चले।—रामाश्वमेध। (४) पुराणवक्ता। पौराणिक। उ०—बाँचन लागे सूत पुराणा। मागध बंशावली बखाना।—रघुराज।

विशेष—सब से अधिक प्रसिद्ध सूत लोमहर्षण हुए हैं, जो वेदव्यास के शिष्य थे और जिन्होंने नैमिषारण्य में ऋषियों को सब पुराण सुनाए थे।

(५) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। (६) बढ़ई। सूत्रकार। सूत्रधार। (७) सूर्य। (८) पारा। पारद।

वि० [सं०] (१) प्रसूत। उत्पन्न। (२) प्रेरणा किया हुआ। प्रेरित।

संज्ञा पुं० [सं० सूत्र] थोड़े अक्षरों या शब्दों में ऐसा पद या वचन जो बहुत अर्थ प्रकाशित करता हो। उ०—केहि विधि करिय प्रबोध सकल दरसन अरुझाने। सूत सूत महँ सदस सूत किय फल न सुझाने।—सुधाकर।

वि० [सं० सूत्र = सूत] भला। अच्छा। उ०—करम हीन बाना भगवान। सूत कुसूत लियो पहिचान।—कबीर।

संज्ञा पुं० दे० "सुत"। उ०—उत्यो सोच कै मनहि मैं लख्यो आइ धौं भूत। यहै विचारत हूँ तदपि नृप न लहेहु सुख सूत।—पद्माकर।

सूतक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्म। (२) अशौच जो संतान होने पर परिवारवालों को होता है। जननाशौच। (३) मरणाशौच जो परिवार में किसी के मरने पर होता है। (४) सूर्य या चंद्रमा का ग्रहण। उपराग।

क्रि० प्र०—छूटना।—लगना।

संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

सूतक गेह—संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार"।

सूतका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसने अभी हाल में प्रसव किया हो। सद्यःप्रसूता। जच्चा।

सूतकागृह—संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार"।

सूतकादि लेप—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में फिरंग घात पर लगाने का लेप जिसमें पारा, हिंगुल, हीरा कसीस तथा आँवलासार गंधक पड़ती है। इसके बनाने की विधि यह है कि उक्त चीजें शुद्ध करके खरल की जाती हैं। अनंतर सूखी धुरनी या पानी आदि में भिगोकर फिरंग घात पर लगाई जाती है।

सूतकान्न—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह खाद्य पदार्थ जो संतान-जन्म के कारण अशुद्ध हो जाता है। (२) सूतकी के घर का भोजन।

सूतकाशौच—संज्ञा पुं० [सं०] वह अशौच जो संतान होने पर होता है। जननाशौच।

सूतकी—वि० [सं० सूतकिन्] (१) घर या परिवार में संतान-जन्म के कारण जिसे अशौच हो। (२) परिवार में किसी की मृत्यु होने के कारण जिसे सूतक लगा हो।

सूतग्रामणी—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव का मुखिया।

सूतज—संज्ञा पुं० [सं०] कर्ण।

सूततनय—संज्ञा पुं० [सं०] कर्ण।

विशेष—अधिरथ सारथि ने कर्ण को पाला था; इसी लिये कर्ण सूत-तनय या सूतपुत्र कहलाते हैं।

सूतता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूत का भाव, धर्म या कार्य। (२) सारथि का कार्य।

सूतधार पगरना—संज्ञा पुं० [हिं० सूतधार + पगरना] सोने या चाँदी के नक्काशों की एक छेनी जो तराशने के काम में आती है।

सूतधार—संज्ञा पुं० [सं० सूत्रधार] बढ़ई। उ०—अगर चंदन को पालनो गढ़ई गुर ढार सुढार। लै आयो गढ़ि डोलनी विश्वकर्मा सो सुतधार।—सूर।

सूतनंदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उग्रश्रवा। (२) कर्ण।

सूतना†–क्रि० अ० दे० "सोना"। उ०—(क) सूते सपने ही सहै संसृत संताप रे।—तुलसी। (ख) श्रीरघुनाथ वसिष्ठ तें कह्यो स्वप्न के माहिं। देखत हौं मैं दशमुखै भयवंत सूतत नाहिं।—विश्राम। (ग) मोर तोर में सबै बिगूता। जननी उदर गर्भ महँ सूता।—कबीर।

सूतपुत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सारथि का पुत्र। (२) सारथि। (३) कर्ण। (४) कीचक।

सूतपुत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] कर्ण।

सूतफूल–संज्ञा पुं० [हिं० सूत+फूल] महीन आटा। मैदा। (क्व०)

सूतराज–संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

सूतलड़–संज्ञा पुं० [हिं० सूत+लड़] अरहट। रहँट।

सूतवशा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय।

सूतसव–संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

सूता–संज्ञा पुं० [सं० सूत्र] (१) कपास, रेशम आदि का तार जिससे कपड़ा बुना जाता है। तंतु। सूत। (२) एक प्रकार का भूरे रंग का रेशम जो मालदह (बंगाल) से आता है। (३) जूते में वह बारीक चमड़ा जिसमें टूक का पिछला हिस्सा आकर मिलता है। (चमार)

संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसने बच्चा जना हो। प्रसूता।

संज्ञा पुं० [सं० शुक्ति] वह सीपी जिससे डोडे में की अफीम काछते हैं।

सूति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जन्म। (२) प्रसव। जनन। (३) उत्पत्ति का स्थान या कारण। उद्गम। (४) फल या फसल की उत्पत्ति। पैदावार। (५) वह स्थान जहाँ सोमरस निकाला जाता था। (६) सोमरस निकालने की क्रिया। (७) सीना। सीवन। (क्व०)

संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। (२) हंस।

सूतिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जिसने अभी हाल में बच्चा जना हो। सद्यःप्रसूता। जच्चा। (२) वह गाय जिसने हाल में बछड़ा जना हो। (३) दे० "सूतिका रोग"।

सूतिकागार–संज्ञा पुं० [सं०] वह कमरा या कोठरी जिसमें स्त्री बच्चा जने। सौरी। प्रसवगृह। अरिष्ट।

विशेष—वैद्यक के अनुसार सूतिकागार आठ हाथ लंबा और चार हाथ चौड़ा होना चाहिए तथा इसके उत्तर और पूर्व की ओर द्वार होने चाहिएँ।

सूतिकागृह–संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार"।

सूतिकागेह–संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार"।

सूतिकाभवन–संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार"।

सूतिका रोग–संज्ञा पुं० [सं०] प्रसूता को होनेवाले रोग जो वैद्यक के अनुसार अनुचित आहार विहार, क्लेश, विषमासन तथा अजीर्णावस्था में भोजन करने से होते हैं। प्रसूता के अंगों का टूटना, अग्निमांद्य, निर्बलता, शरीर का काँपना, सूजन, ग्रहणी, अतिसार, शूल, खाँसी, ज्वर, नाक मुँह से कफ निकलना आदि सूतिका रोग के लक्षण हैं।

सूतिकाल–संज्ञा पुं० [सं०] प्रसव करने या बच्चा जनने का समय।

सूतिकावल्लभ रस–संज्ञा पुं० [सं०] सूतिका रोग की एक औषध जो पारे, गंधक, सोने, चाँदी, स्वर्णमाक्षिक, कपूर, अभ्रक, हरताल, अफीम, जावित्री और जायफल के संयोग से बनती है। ये सब चीजें बराबर बराबर लेकर इनमें मोथे, खिरैंटी और सोमरस की भावना दी जाती है। अनंतर दो दो रत्ती की गोलियाँ बनाई जाती हैं। वैद्यक के अनुसार इसके सेवन से सूतिका रोग शीघ्र दूर हो जाता है।

सूतिकावास–संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार"।

सूतिका षष्ठी–संज्ञा स्त्री० [सं०] संतान के जन्म से छठे दिन होनेवाली पूजा तथा अन्य कृत्य। छठी।

सूतिकाहर रस–संज्ञा पुं० [सं०] सूतिका रोग की एक औषध जिसमें हिंगुल, हरताल, शंख-भस्म, लौह, खर्पर, धतूरे के बीज, यवक्षार और सुहागे का लावा बराबर बराबर पड़ता है। इन चीजों में बहेड़े के क्वाथ की भावना देकर मटर के बराबर गोली बनाते हैं। कहते हैं कि इसके सेवन से सूतिका रोग दूर हो जाता है।

सूतिगृह–संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार"।

सूतिमारुत–संज्ञा पुं० [सं०] प्रसव-पीड़ा। बच्चा जनने के समय की पीड़ा।

सूतिमास–संज्ञा पुं० [सं०] वह मास जिसमें किसी स्त्री को संतान उत्पन्न हो। प्रसवमास। वैजनन।

सूतिवात–संज्ञा पुं० दे० "सूतिमारुत"।

सूती–वि० [हिं० सूत+ई (प्रत्य०)] सूत का बना हुआ। जैसे,—सूती कपड़ा। सूती गलीचा।

संज्ञा स्त्री० [सं० शुक्ति] (१) सीपी। उ०—सूती में नहिं सिंधु समाई।—विश्राम। (२) वह सीपी जिससे डोडे में की अफीम काछते हैं।

संज्ञा स्त्री० [सं० सूत] सूत की पत्नी। भाटिन।

सूतीघर–संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार"।

सूत्कार–संज्ञा पुं० दे० "सीत्कार"।

सूत्तर–वि० [सं०] बहुत श्रेष्ठ। बहुत बढ़कर।

सूत्थान–वि० [सं०] चतुर। होशियार।

सूत्पर–संज्ञा पुं० [सं०] शराब चुवाने की क्रिया। सुरा-संधान।

सूत्पलावती–संज्ञा स्त्री० [सं०] मार्कंडेयपुराण के अनुसार एक नदी का नाम।

सूत्य–संज्ञा पुं० दे० "सुत्य"।

सूत्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यज्ञ के उपरांत होनेवाला स्नान।

अवभृत। (२) सोमरस निकालने की क्रिया। (३) सोमरस पीने की क्रिया।

सूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूत। तंतु। तार। तागा। डोरा। (२) यज्ञसूत्र। यज्ञोपवीत। जनेऊ। (३) प्राचीन काल का एक मान। (४) रेखा। लकीर। (५) करधनी। कटि-भूषण। (६) नियम। व्यवस्था। (७) थोड़े अक्षरों या शब्दों में कहा हुआ ऐसा पद या वचन जो बहुत अर्थ प्रकट करता हो। सारगर्भित संक्षिप्त पद या वचन। जैसे,—ब्रह्मसूत्र, व्याकरण सूत्र।

विशेष—हमारे यहाँ के दर्शन आदि शास्त्र तथा व्याकरण सूत्र रूप में ही ग्रथित हैं। ये सूत्र देखने में तो बहुत छोटे वाक्यों के रूप में होते हैं, पर उनमें बहुत गूढ़ अर्थ गर्भित होते हैं।

(८) कारण। निमित्त। मूल। (९) पता। सुराग। (१०) एक प्रकार का वृक्ष।

सूत्रकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्राह्मण। (सूत्र कंठस्थ रहने के कारण अथवा गले में यज्ञसूत्र पहनने के कारण ब्राह्मण सूत्रकंठ कहलाते हैं।) (२) कबूतर। कपोत। (३) खंजन। खंजरीट।

सूत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूत। तंतु। तार। (२) हार। (३) आटे या मैदे की बनी हुई सिवई।

सूत्रकर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० सूत्रकर्तृ] सूत्र ग्रंथ का रचयिता। सूत्र-प्रणेता।

सूत्रकर्म-संज्ञा पुं० [सं० सूत्रकर्मन्] (१) बढ़ई का काम। (२) मेमार या राज का काम।

सूत्रकर्मकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बढ़ई। (२) गृह-निर्माणकारी। वास्तुशिल्पी। मेमार। राज।

सूत्रकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने सूत्रों की रचना की हो। सूत्र-रचयिता। (२) बढ़ई। (३) जुलाहा। तंतुवाय। (४) मकड़ी।

सूत्रकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूत्र रचयिता। सूत्रकार। (२) बढ़ई। (३) मेमार। राज।

सूत्रकोण-संज्ञा पुं० [सं०] डमरू।

सूत्रकोणक-संज्ञा पुं० दे० "सूत्रकोण"।

सूत्रकोश-संज्ञा पुं० [सं०] सूत की अंटी। पेंचक। लच्छा।

सूत्रक्रीड़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का सूत का खेल, जो ६४ कलाओं में से एक है।

सूत्रगंडिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का लकड़ी का औजार जिसका उपयोग प्राचीन काल में तंतुवाय लोग कपड़ा बुनने में करते थे।

सूत्रग्रंथ-संज्ञा पुं० [सं०] सूत्र रूप में रचित ग्रंथ। वह ग्रंथ जो सूत्रों में हो। जैसे,—सांख्यसूत्र।

सूत्रग्रह-वि० [सं०] सूत धारण या ग्रहण करनेवाला।

सूत्रण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूत्र बनाने या रचने की क्रिया। (२) सूत बटने की क्रिया।

सूत्रतंतु-संज्ञा पुं० [सं०] सूत। तार।

सूत्रतर्कुटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तकला। टेकुआ।

सूत्रदरिद्र-वि० [सं०] (वस्त्र) जिसमें सूत कम हो। सूत्रहीन। झँझरा। झिलझ।

सूत्रधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सूत्रों का पंडित हो। (२) दे० "सूत्रधार" (१)। उ०—त्रिधि हरि वंदित पाप जग-नाटक के सूत्रधर।—शंकर दि०।

वि० सूत्र या सूत धारण करनेवाला।

सूत्रधार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाट्यशाला का व्यवस्थापक या प्रधान नट, जो, भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार, पूर्व रंग अर्थात् नांदी पाठ के उपरांत खेले जानेवाले नाटक की प्रस्तावना करता है। वि० दे० "नाटक"। (२) बढ़ई। सुतार। काष्ठशिल्पी। (३) इंद्र का एक नाम। (४) पुराणानुसार एक वर्णसंकर जाति जो लकड़ी आदि बनाने और चीरने या गढ़ने का काम करती है। ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति शूद्रा माता और विश्वकर्मा पिता से है।

सूत्रधारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूत्रधार अर्थात् नाट्यशाला के व्यवस्थापक की पत्नी। नटी।

संज्ञा पुं० [सं० सूत्रधारिन्] सूत्र धारण करनेवाला।

सूत्रधृक्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "सूत्रधार"। (२) वास्तुशिल्पी। मेमार। राज।

सूत्रपात-संज्ञा पुं० [सं०] आरंभ। शुरू। जैसे,—इस काम का सूत्रपात हो गया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सूत्रपिटक-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध सूत्रों का एक प्रसिद्ध संग्रह। वि० दे० "त्रिपिटक"।

सूत्रपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] कपास का पौधा।

सूत्रभिद्-संज्ञा पुं० [सं०] कपड़े सीनेवाला। दरजी।

सूत्रभृत्-संज्ञा पुं० दे० "सूत्रधार"।

सूत्रमध्यभू-संज्ञा पुं० [सं०] यक्षधूप। शलकी निर्यास। कुंदुरु। धूना।

सूत्रयंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) करघा। ढरकी। (२) सूत का बना जाल।

सूत्रयी-वि० [सं० सूत्र] सूत्र जानने या रचनेवाला। उ०—त्रिदेवः त्रिकालः त्रयी वेदकर्त्ता। त्रिश्रोता कृती सूत्रयी लोकभर्त्ता।—केशव।

सूत्रला-संज्ञा स्त्री० [सं०] तकला। टेकुवा।

सूत्रवाप-संज्ञा पुं० [सं०] सूत बुनने की क्रिया। वयन। बुनाई।

सूत्रविद्-संज्ञा पुं० [सं०] सूत्रों का ज्ञाता या पंडित।

सूत्रवीणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की वीणा जिसमें तार की जगह बजाने के लिये सूत्र लगे रहते थे ।

सूत्रवेष्टन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) करघा । ढरकी । (२) बुनने की क्रिया । वयन ।

सूत्रशाख-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर ।

सूत्रांग-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तम काँसा ।

सूत्रांत-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध सूत्र ।

सूत्रांतक-वि० [सं०] बौद्ध सूत्रों का ज्ञाता या पंडित ।

सूत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं० सूत्रकार] मकड़ी । (अनेकार्थ)

सूत्रात्मा-संज्ञा पुं० [सं० सूत्रात्मन्] (१) जीवात्मा । (२) एक प्रकार की परम सूक्ष्म वायु जो धनंजय से भी सूक्ष्म कही गई है ।

सूत्रामा-संज्ञा पुं० [सं० सूत्रामन्] इंद्र का एक नाम ।

सूत्राली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माला । हार (२) गले में पहनने की मेखला ।

सूत्री-संज्ञा पुं० [सं० सूत्रिन्] (१) कौआ । काक । (२) दे० "सूत्रधार" (१) ।

वि० सूत्रयुक्त । जिसमें सूत्र हो ।

सूत्रीय-वि० [सं०] सूत्र-संबंधी । सूत्र का ।

सूथन-संज्ञा स्त्री० [देश०] पायजामा । सुथना । उ०—बेनी सुभग नितंबनि डोलत मंदगामिनी नारी । सूथन जघन बाँधि नारावँद तिरनी पर छवि भारी ।—सूर ।

संज्ञा पुं० बरमा, स्याम और मणिपुर के जंगलों में होनेवाला एक प्रकार का पेड़ । इसकी लकड़ी बहुत अच्छी होती है और इसका रस वारनिश का काम देता है । इसे 'सेऊ' भी कहते हैं ।

सूथनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) स्त्रियों के पहनने का पायजामा । सुथना । (२) एक प्रकार का कंद ।

सूधार-संज्ञा पुं० [सं० सूत्रकार पु० हिं० सुतार] बढ़ई । सुतार । खाती ।

सूद-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) लाभ । फायदा । (२) ब्याज । वृद्धि ।

क्रि० प्र०—होना ।—पड़ना ।—पाना ।—लेना ।—देना ।—लगाना ।

मुहा०—सूद दर सूद = ब्याज पर ब्याज । चक्रवृद्धि । सूद पर लगाना = सूद लेकर रुपया उधार देना ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) रसोइया । सूपकार । पाचक । (२) पकी हुई दाल, रसा, तरकारी आदि । व्यंजन । (३) सारथि का काम । सारथ्य । (४) अपराध । पाप । (५) दोष । ऐब । (६) एक प्राचीन जनपद का नाम । (७) लोध । लोध्र ।

सूदक-वि० [सं०] विनाश करनेवाला ।

सूदकर्म-संज्ञा पुं० [सं० सूदकर्मन्] रसोइए का काम । रंधन । पाक क्रिया । भोजन बनाना ।

सूदकशाला-संज्ञा स्त्री० [सं० सूदशाला] रसोईघर । पाकशाला । (डिं०)

सूदखोर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो खूब सूद या ब्याज लेता हो ।

सूदता-संज्ञा स्त्री० दे० "सूदत्व" ।

सूदत्व-संज्ञा पुं० [सं०] सूद या रसोइए का पद या काम । रसोईदारी ।

सूदन-वि० [सं०] विनाश करनेवाला । जैसे,—मधुसूदन, रिपुसूदन । उ०—नमो नमस्ते बारंबार । मदन-सूदन गोविंद मुरार ।—सूर ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) वध या विनाश करने की क्रिया । हनन । (२) अंगीकार या स्वीकार करने की क्रिया । अंगीकरण । (३) फेंकने की क्रिया । (४) हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि का नाम जो मथुरा के रहनेवाले थे और जिनका लिखा "सुजानचरित्र" वीर रस का एक प्रसिद्ध काव्य है ।

सूदर-संज्ञा पुं० [सं० शूद्र] शूद्र । (डिं०)

सूदशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ भोजन बनता हो । रसोईघर । पाकशाला ।

सूदशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] भोजन बनाने की कला । पाकशास्त्र ।

सूदा-संज्ञा पुं० [देश०] ठगों के गरोह का वह आदमी जो यात्रियों को फुसलाकर अपने दल में ले आता है । (ठग०)

सूदाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] रसोइयों का मुखिया या सरदार । पाकशाला का अधिकारी ।

सूदित-वि० [सं०] (१) आहत । घायल । जख्मी । (२) जो नष्ट हो गया हो । विनष्ट । (३) जो मार डाला गया हो । निहत ।

सूदितृ-वि० [सं०] वध या विनाश करनेवाला ।

संज्ञा पुं० रसोइया । पाककर्त्ता । पाचक ।

सूदी-वि० [फ़ा० सूद] (१) (पूँजी या रकम) जो सूद या ब्याज पर हो । ब्याजू । (२) ब्याज पर लिया हुआ (रुपया) ।

सूद्र-संज्ञा पुं० दे० "शूद्र" ।

सूध*-वि० दे० "सूधा" । उ०—(क) नाथ करहु बालक पर छोहू । सूध दूध मुख करिय न कोहू ।—तुलसी । (ख) काह कहउँ सखि सूध सुभाऊ । दाहिन बाम न जानउँ काऊ ।—तुलसी ।

वि० दे० "शुद्ध" । उ०—माया सों मन बीगड़ा ज्यों काँजी करि दूध । है कोई संसार में मन करि देवइ सूध ।—दादू ।

क्रि० वि० सीधा । उ०—दूसरा मारग सुनु मन लाई । देश विदर्भ सूध यह जाई ।—सबलसिंह ।

सूधना*-क्रि० प्र० [सं० शुद्ध] सिद्ध होना । सत्य होना । ठीक होना । उ०—ऐसे सुनहि पिया जो सूधा । गुनि हरि तासु मनोरथ सूधा ।—गिरिधरदास ।

सूधरा⊛†–वि० दे० "सूधा"।

सूधा–वि० [सं० शुद्ध] [स्त्री० सूधी] (१) सीधा। सरल। भोला। निष्कपट। उ०—को अस दीन दयाल भयो दसरत्थ के लाल से सूधे सुभायन। दौरे गयंद उबारिबे को प्रभु बाहन छाँड़ि उबाहने पायन।—पद्माकर। (२) जो टेढ़ा न हो। सीधा। उ०—इमि कहि सवन सहित तब ऊधो। गए नंद गृह गहि मग सूधो।—गिरिधरदास। (३) इस प्रकार पड़ा हुआ कि मुँह, पेट आदि शरीर का अगला भाग ऊपर की ओर हो। चित। (४) सम्मुख का। सामने का। उ०—मुदित मन वर बदन सोभा उदित अधिक उछाहु। मनहुँ दूरि कलंक करि ससि समर सूधो राहु।—तुलसी। (५) जो उलटा न हो। जो ठीक और साधारण स्थिति में हो। (६) जो सीधी रेखा में चला गया हो। जिसमें वक्रता न हो। उ०—सूधी अँगुरि न निकसै घीउ।—जायसी।

मुहा०—सूधी सूधी सुनाना = खरी खरी कहना। सूधी सहना = खरी खरी सुनना। उ०—कबहूँ फिर पाँव न देहौं यहाँ भजि जैहौं तहाँ जहाँ सूधी सहौं।—पद्माकर।

विशेष—और अधिक अर्थों तथा मुहावरों के लिये दे० "सीधा"।

सूधे–क्रि० वि० [हिं० सूधा] सीधे से। उ०—(क) सूधे दान काहे न लेत।—सूर। (ख) हौं बड़ हौं बड़ बहुत कहावत सूधे कहत न बात। योग न युक्ति ध्यान नहिं पूजा वृद्ध भये अकुलात।—सूर। (ग) भावै सो तै करि वाको भामिनी भाग बड़े बस चौकड़ि पायो। काहू ज्यों सूधे जू चाहत नहिंने चाहति है अब चाह लगायो।—केशव।

मुहा०—सूधे सूध = कोरा। साफ साफ। उ०—सूधे सूध जबाब न दीजै।—विश्राम।

सून–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रसव। जनन। (२) कली। कलिका। (३) फूल। पुष्प। प्रसून। (४) फल। (५) पुत्र।

वि० [सं०] (१) खिला हुआ। विकसित (पुष्प)। (२) उत्पन्न। जात।

⊛†संज्ञा पुं० दे० "शून्य"। उ०—(क) तुलसी निज मन कामना चहत सून कहँ सेइ। बचन गाय सब के विविध कहहु पयस केहि देइ।—तुलसी। (ख) नाम राम को अंक है सब साधन है सून। अंक गये कछु हाथ नहिं अंक रहे दस गून।—तुलसी।

⊛†वि० [सं० शून्य] (१) निर्जन। जनशून्य। सूना। सुनसान। खाली। उ०—(क) इहाँ देखि घर सूनचोर मूसन मन लायो। हीरा हेम निकारि भवन बाहर धरि आयो।—विश्राम। (ख) इनहु साक हमको एहि काला। अब मोहिं लागत जगत जंजाला। नहिं फल बिना दीपपद देखे। बिन प्रभु जगत सून मम लेखे।—रघुराज। (ग) मँदिर सून पिउ अनतै बसा। सेज नागिनी फिर फिर डसा।—जायसी। (२) रहित। हीन। उ०—निरखि रावण भयावन अपावन महा जानकी हरण करि चलो दाठ जात है। भन्यो अति कोप करि हनन की चोप करि लोप करि धर्म अब क्यों न ठहरात है। जानि खल सून नृप सूत रमणी हरी करी करणी कठिन अब न बचि जात है।—रघुराज।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत बड़ा सदा बहार पेड़ जो शिमले के आस पास के पहाड़ों पर बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारतों में लगती है। इसे 'चिन' भी कहते हैं।

सूनशर–संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

सूनसान–वि० दे० "सुनसान"।

सूना–वि० [सं० शून्य] [स्त्री० सूनी] जिसमें या जिस पर कोई न हो। जनहीन। निर्जन। सुनसान। खाली। जैसे,—सूना घर, सूना रास्ता, सूना सिंहासन। उ०—(क) जात हुती निज गोकुल में हरि आये तहाँ लखि के मग सूना। तासों कही पद्माकर यों अरे साँवरो बावरे तैं हमैं छू ना।—पद्माकर। (ख) राम कहाँ गए री माता। सून भवन सिंहासन सूनो नाहीं दशरथ ताता।—सूर।

क्रि० प्र०—पड़ना।—करना।—होना।

मुहा०—सूना लगना या सूना सूना लगना = निर्जीव मालूम होना। उदास मालूम होना।

संज्ञा पुं० [सं० शून्य] एकांत। निर्जन स्थान।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुत्री। बेटी। (२) वह स्थान जहाँ पशु मारे जाते हैं। सूचड़खाना। कसाईखाना। (३) मांस विक्रय। मांस की बिक्री। (४) गृहस्थ के यहाँ ऐसा स्थान या चूल्हा, चक्की, ओखली, घड़ा, झाड़ू में से कोई चीज जिससे जीवहिंसा की संभावना रहती है। वि० दे० "पंचसूना"। (५) गलशुंडी। जीभी। (६) हाथी के अंकुश का दस्ता। (७) हत्या। घात।

सूनादोष–संज्ञा पुं० [सं०] चूल्हा, चक्की, ओखली, मूसल, झाड़ू और पानी के घड़े से होनेवाली जीवहिंसा का दोष या पाप। वि० दे० "पंचसूना"।

सूनापन–संज्ञा पुं० [हिं० सूना + पन (प्रत्य०)] (१) सूना होने का भाव। (२) सन्नाटा। एकांत।

सूनिक–संज्ञा पुं० [सं०] मांस बेचनेवाला। व्याध।

सूनी–संज्ञा पुं० [सं० सूनिन्] मांस बेचनेवाला। व्याध। सूचड़।

सूनु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुत्र। संतान। (२) छोटा भाई। अनुज। (३) नाती। दौहित्र। (४) एक वैदिक ऋषि का नाम। (५) सूर्य। (६) आक। अर्क वृक्ष। (७) वह जो सोम रस चुवाता हो।

सूनू–संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या। पुत्री। बेटी। लड़की।

सूनृत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सत्य और प्रिय भाषण (जो जैन

धर्मानुसार सदाचरण के पाँच गुणों में से एक है)। (२) आनंद। मंगल।

वि० (१) सत्य और प्रिय। (२) अनुकूल। दयालु।

सूनृता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सत्य और प्रिय भाषण। (२) सत्य। (३) धर्म की पत्नी का नाम। (४) उत्तानपाद की पत्नी का नाम। (५) एक अप्सरा का नाम।

सून्मद–वि० दे० "सून्माद"।

सून्माद–वि० [सं०] जिसे उन्माद रोग हुआ हो। पागल।

सूप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मूँग, मसूर, अरहर आदि की पकी हुई दाल। (२) दाल का जूस। रसा। (३) रसे की तरकारी आदि व्यंजन। (४) बरतन। भांडा। भाँड़। (५) रसोइया। पाचक। (६) बाण। तीर।

संज्ञा पुं० [सं० शूर्प] अनाज फटकने का बना हुआ पात्र। सरई या सींक का छाज। उ०—(क) देखो अद्भुत अविगति की गति कैसो रूप धरयो है हो। तीन लोक जाके उदर भवन सो सूप के कोन परयो है हो।—सूर। (ख) राजन दीन्हे हाथी रानिन्ह हार हो। भरिगे रतन पदारथ सूप हजार हो।—तुलसी।

क्रि० प्र०—फटकना।

मुहा०—सूप भर = बहुत सा। बहुत अधिक।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) कपड़े या सन का झाड़ू जिससे जहाज के डेक आदि साफ किए जाते हैं। (लश०) (२) एक प्रकार का काला कपड़ा।

सूपक–संज्ञा पुं० [सं० सूप] रसोइया। उ०—धीर सूर विद्वान् जो मिष्ट बनावै अन्न। सूपक कीजै ताहि जो शुभ्र पौत्र संपन्न।—सीताराम।

सूपकर्त्ता–संज्ञा पुं० दे० "सूपकार"।

सूपकार–संज्ञा पुं० [सं०] भोजन बनानेवाला। रसोइया। पाचक। उ०—तहाँ सूपकारन मुनिराई। मुनिन हेत किय पाक बनाई।—रामाश्वमेध।

सूपकारी–संज्ञा पुं० दे० "सूपकार"। उ०—आसन उचित सबहि नृप दीन्हे। बोलि सूपकारी सब लीन्हे।—तुलसी।

सूपकृत्–संज्ञा पुं० दे० "सूपकार"।

सूपच‡–संज्ञा पुं० दे० "श्वपच"। उ०—सूपच रस स्वादै का जानै।—विश्राम।

सूप छरना–संज्ञा पुं० [हिं० सूप+छरना] सूप की तरह का सरई का एक बरतन। सूप से इसमें अंतर इतना ही है कि हर दो सरइयों के बीच में एक सरई नहीं होती जिसके कारण सूप के बीच में ही छरना सा बन जाता है। इससे बारीक अनाज नीचे गिर जाता है और मोथा ऊपर रह जाता है।

सूपड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० सूप] सूप। छाज। (डिं०)

सूपधूपक–संज्ञा पुं० [सं०] हींग।

सूपधूपन–संज्ञा पुं० [सं०] हींग।

सूपनखा–संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पणखा"। उ०—सूपनखा रावन के बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जसि अहिनी।—तुलसी।

सूपपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वनमूँग। मुँगवन। मुद्गपर्णी।

सूपशास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] भोजन बनाने की कला। पाकशास्त्र।

सूपश्रेष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] मूँग। मुद्ग।

सूपस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] पाकशाला। रसोईघर।

सूपांग–संज्ञा पुं० [सं०] हींग। हिंगु।

सूपा‡–संज्ञा पुं० [हिं० सूप] सूप। छाज। शूर्प।

सूपिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पकी हुई दाल या रसा आदि। (२) सूपकार। रसोइया।

सूपिय–वि० दे० "सूप्य"।

सूपोदन–संज्ञा पुं० [सं० सूप+ओदन] दाल और भात।

सूप्य–वि० [सं०] (१) दाल या रसे के लायक। (२) सूप संबंधी।

संज्ञा पुं० रसेदार खाद्य-पदार्थ।

सूफ़–संज्ञा पुं० [अ०] (१) पश्म। ऊन। (२) वह लत्ता जो देसी काली स्याहीवाली दावात में डाला जाता है।

संज्ञा पुं० दे० "सूप"।

सूफ़ी–संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों का एक धार्मिक संप्रदाय। इस संप्रदाय के लोग एकेश्वरवादी होते हैं और साधारण मुसलमानों की अपेक्षा अधिक उदार विचार के होते हैं।

वि० (१) ऊनी वस्त्र पहननेवाला। (२) साफ। पवित्र। (३) निरपराध। निर्दोष।

सूब–संज्ञा पुं० [देश०] ताँबा। (सुनार)

सूबड़ा–संज्ञा पुं० [सं० शुल्व] वह चाँदी जिसमें ताँबे और जस्ते का मेल हो। (सुनार)

सूबड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] पैसे का आठवाँ भाग। दमड़ी। (सुनार)

सूबा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) किसी देश का कोई भाग या खंड। प्रांत। प्रदेश।

यौ०–सूबेदार।

(२) दे० "सूबेदार"। उ०—कीन्ह्यो समर वीर परिपाटी। लीन्ह्यो सूबा का सिर काटी।—रघुराज।

सूबेदार–संज्ञा पुं० [फ़ा० सूबा+दार (प्रत्य०)] (१) किसी सूबे या प्रांत का बड़ा अफसर या शासक। प्रादेशिक शासक। (२) एक छोटा फौजी ओहदा।

सूबेदार मेजर–संज्ञा पुं० [फ़ा० सूबेदार+अं० मेजर] फौज का एक छोटा अफसर।

सूबेदारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) सूबेदार का ओहदा या पद। (२) सूबेदार का काम। (३) सूबेदार होने की अवस्था।

सूभर‡–वि० [सं० शुभ्र] (१) सुंदर। दिव्य। (२) श्वेत।

सफ़ेद। उ०—हंस सरोवर तहाँ रमैं सूभर हरि जल नीर। प्रानी आप पखालिये निर्मल सदा हो सरीर।—दादू।

सूम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूध। (२) जल। (३) आकाश। (४) स्वर्ग।

संज्ञा पुं० फूल। पुष्प। (डिं०)

वि० [अ० शूम=अशुभ] कृपण। कंजूस। बखील। उ०—मरै सूम जजमान मरै कटखना टट्टू। मरै कर्कसा नारि मरै वो खसम निखट्टू।—गिरिधरदास।

सूमल्–संज्ञा पुं० [देश०] चिरा या चीता नामक पौधा।

सूमाँ†–संज्ञा स्त्री० [देश०] टूटी हुई चारपाई की रस्सी।

सूमी–संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत बड़ा पेड़ जो मध्य तथा दक्षिण भारत के जंगलों में होता है। इसकी लकड़ी इमारतों में लगती और मेज़, कुर्सी आदि बनाने के काम में आती है। इसे रोहन और सोहन भी कहते हैं।

सय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोम रस निकालने की क्रिया। (२) यज्ञ।

सूरंजान–संज्ञा पुं० [फ़ा०] केसर की जाति का एक पौधा जिसका कंद दवा के काम में आता है।

विशेष—यह पश्चिमी हिमालय के सम शीतोष्ण प्रदेशों में पहाड़ों की ढाल पर घासों के बीच उगता है और एक बालिश्त ऊँचा होता है। फ़ारस में भी यह बहुत होता है। इसमें बहुत कम पत्ते होते हैं और प्रायः फूलों के साथ निकलते हैं। फूल लंबे होते हैं और सींकों में लगते हैं। इसकी जड़ में लहसुन के समान, पर उससे बड़ा कंद होता है जो कड़वा और मीठा दो प्रकार का होता है। मीठा कंद फ़ारस से आता है और खाने की दवा में काम आता है। कड़वा कंद केवल तेल आदि में मिलाकर मालिश के काम आता है। इसके बीज विषैले होते हैं, इससे बड़ी सावधानी से थोड़ी मात्रा में दिए जाते हैं। यूनानी चिकित्सा के अनुसार सूरंजान रूखा, रुचिकर तथा वात, कफ, पांडुरोग, प्लीहा, संधिवात आदि को दूर करनेवाला माना जाता है।

सूर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सूरी] (१) सूर्य। उ०—सूर उदय आये रही दृगन साँझ सी फूलि।—बिहारी। (२) अर्क वृक्ष। आक। मदार। (३) पंडित। आचार्य्य। (४) वर्त्तमान अवसर्पिणी के सत्रहवें अर्हत् कुंथु के पिता का नाम। (जैन) (५) मसूर। (६) दे० "सूरदास"। उ०—अति संछेप सूर बरनत अब लघु मति दुर्बल बाल। (७) अंधा। (सूरदास अंधे थे, इससे 'अंधा' के अर्थ में यह शब्द प्रचलित हो गया।) (८) छप्पय छंद के ७१ भेदों में से ५५वें भेद का नाम जिसमें १६ गुरु, १२० लघु, कुल १३६ वर्ण और १५२ मात्राएँ होती हैं।

*संज्ञा पुं० [सं० शूर] शूरवीर। बहादुर। उ०—सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आप।—तुलसी।

*†संज्ञा पुं० [सं० शूकर, प्रा० सूअर] (१) सूअर। (२) ... रंग का घोड़ा।

संज्ञा पुं० दे० "शूल"। उ०—(क) कर बरछी विष सूरसुत सूर फिरावत।—गोपाल। (ख) दादू सिर सबके सुना सुमिरत लागा सूर।—दादू।

संज्ञा पुं० [देश०] पठानों की एक जाति। जैसे,—शेर शाह सूर। उ०—जाति सूर औ खाँडै सूरा।—जायसी।

सूरकंद–संज्ञा पुं० [सं०] जमींकंद। सूरन। ओल।

सूरकांत–संज्ञा पुं० दे० "सूर्यकांत"।

सूरकुमार–संज्ञा पुं० [सं० शूर=शूरसेन+कुमार=पुत्र] वसुदेव। उ०—तेज रूप भे सूर कुमारा। जिमि उदयस्थ सूर उजियारा।—गि० दास।

सूरकृत्–संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

सूरज–संज्ञा पुं० [सं० सूर्य] (१) सूर्य। वि० "सूर्य्य"।

क्रि० प्र०—अस्त होना।—उगना।—उदय होना। निकलना।—डूबना।—छिपना।

मुहा०—सूरज पर थूकना=किसी निर्दोष या साधु व्यक्ति पर लांछन लगाना जिसके कारण स्वयं लांछित होना पड़े। सूरज को दीपक दिखाना=(१) जो स्वयं अत्यंत गुणवान् हो, उसे गुण बतलाना। (२) जो स्वयं विख्यात हो उसका परिचय देना। सूरज पर धूल फेंकना=किसी निर्दोष या साधु व्यक्ति पर कलंक लगाना।

(२) एक प्रकार का गोदना जो स्त्रियाँ दाहिने हाथ में ... हैं। (३) दे० "सूरदास"।

संज्ञा पुं० [सं० सूर+ज] (१) शनि। (२) सुग्रीव। उ०—(क) सूरज मुसल नील पट्टिश परिघ नल जामवंत असि हनु तोमर प्रहारे हैं। परशा सुखेन कुंत केशरी गवय शूल विभीषण गदा गज भिंदिपाल तारे हैं।—रामचंद्रिका। (ख) करि आदित्य अदृष्ट नष्ट यम करौं अष्ट वसु। रुद्रनि बोरि समुद्र करौं गंधर्व सर्व पसु। बलित अबेर कुबेर बलिहि गहि देउँ इंद्र अब। विद्याधरनि अविद्य करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब। लै करौं अदिति की दासि दिति अनिल अनल मिलि जाहि जल। सुनि सूरज सूरज उगत ही करौं असुर संसार सब।—केशव।

सूरजतनी*–संज्ञा स्त्री० दे० "सूर्य्यतनया"। उ०—सुंदरि कथा कहै है अपनी। हौं कन्या हौं सूरजतनी। कालिंदी है मेरो नाम। पिता दियो जल में विश्राम।—लल्लूलाल।

सूरज भगत–संज्ञा पुं० [सं० सूर्य+भक्त] एक प्रकार की गिलहरी जो ... ऋतुओं के ... में पाई जाती ...

आवश्यक निवेदन

हिन्दी शब्दसागर अब समाप्ति पर है। यह शब्द-कोश प्रायः दो या तीन संख्याओं में समाप्त हो जायगा; और इसकी समाप्ति में अधिक से अधिक ४-५ मास का समय लगेगा। विचार यह होता है कि इस शब्दसागर में जो शब्द छूट गए हैं, वे अन्त में परिशिष्ट रूप में दे दिए जायँ। कोश-कार्यालय में इस प्रकार के कुछ शब्दों का संग्रह प्रस्तुत है; परंतु यह संग्रह किसी प्रकार पूर्ण नहीं कहा जा सकता। अतः कोश के ग्राहकों तथा हिंदी के अन्यान्य समस्त विद्याप्रेमी पाठकों, समालोचकों, सम्पादकों तथा दूसरे विद्वानों से सभा का नम्र निवेदन है कि आप लोगों के देखने में जो शब्द इस शब्दसागर में छूटे हुए हों, वे सब यथासाध्य व्युत्पत्ति और अर्थ आदि के सहित सभा में लिख भेजने की कृपा करें। उन लोगों के थोड़ा थोड़ा कष्ट उठाने पर ही इस कोश के एक अभाव की बहुत बड़ी पूर्त्ति हो जायगी। जो लोग इस प्रकार सभा में शब्द संगृहीत करके भेजने की कृपा करेंगे, सभा उनकी अत्यन्त अनुगृहीत होगी। यदि इस कार्य्य के लिये पुरस्कार की आवश्यकता होगी, तो उस पर भी सभा विचार करेगी।

नागरीप्रचारिणी सभा
काशी।
१५-११-२७.

श्यामसुन्दरदास
सम्पादक
हिंदी शब्दसागर।

मुद्रक—गणपति कृष्ण गुर्जर श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, जतनबर काशी।

संकेताक्षरों का विवरण

अं० = अंगरेजी भाषा
अ० = अरबी भाषा
अनु० = अनुकरण शब्द
अने० = अनेकार्थनाममाला
अप० = अपभ्रंश
अयोध्या = अयोध्यासिंह उपाध्याय
अर्धमा० = अर्धमागधी
अल्पा० = अल्पार्थक प्रयोग
अव्य० = अव्यय
आनंदघन = कवि आनंदघन
इब० = इबरानी भाषा
उ० = उदाहरण
उत्तरचरित = उत्तररामचरित
उप० = उपसर्ग
उभ० = उभयलिंग
कठ० उप० = कठवल्ली उपनिषद्
कबीर = कबीरदास
केशव = केशवदास
कोंक० = कोंकण देश की भाषा
क्रि० = क्रिया
क्रि० अ० = क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र० = क्रियाप्रयोग
क्रि० वि० = क्रियाविशेषण
क्रि० स० = क्रियासकर्मक
क्व० = क्वचित् अर्थात् इसका प्रयोग बहुत कम देखने में आया है।
खानखा० = अब्दुर्रहीम खानखाना
गि० दा० या गि० दास = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर = गिरिधरदास (कुंडलियावाले)
गुज० = गुजराती भाषा
गुमान = गुमान मिश्र
गोपाल = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
चरण = चरणचंद्रिका
चिंतामणि = कवि चिंतामणि त्रिपाठी
छीत = छीतस्वामी
जायसी = मलिक मुहम्मद जायसी
जावा० = जावा द्वीप की भाषा
ज्यो० = ज्योतिष
डिं० = डिंगल भाषा
तु० = तुरकी भाषा
तुलसी = तुलसीदास
तोष = कवि तोष
दादू = दादूदयाल
दीनदयालु = दीनदयालु गिरि
दूलह = कवि दूलह
दे० = देखो
देव = देव कवि (मैनपुरीवाले)
देशा० = देशज
द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी
नागरी = नागरीदास
नाभा = नाभादास
निश्चल = निश्चलदास
पं० = पंजाबी भाषा
पद्मा० = पद्माकर भट्ट
पर्या० = पर्याय
पा० = पाली भाषा
पुं० = पुंलिंग
पु० हिं० = पुरानी हिन्दी
पुर्त० = पुर्तगाली भाषा
पू० हिं० = पूरबी हिंदी
प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र
प्रत्य० = प्रत्यय
प्रा० = प्राकृत भाषा
प्रिया० = प्रियादास
प्रे० = प्रेरणार्थक
[illegible]
फा० = फारसी भाषा
बँग० = बँगला भाषा
बरमी० = बरमी भाषा
बहु० = बहुवचन
बिहारी = कवि बिहारीलाल
बुं० खं० = बुंदेलखंडी बोली
बेनी = कवि बेनी प्रवीन
भाव० = भाववाचक
भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी
मतिराम = कवि मतिराम त्रिपाठी
मला० = मलायलम भाषा
मलूक = मलूकदास
मि० = मिलाओ
मुहा० = मुहावरे
यू० = यूनानी भाषा
यौ० = यौगिक तथा दो या अधिक शब्दों के पद
रघु० दा० = रघुनाथदास
रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन
रघुराज = महाराज रघुराजसिंह रीवाँनरेश
रसखान = सैयद इब्राहीम
रसनिधि = राजा पृथ्वीसिंह
रहीम = अब्दुर्रहीम खानखानाँ
लक्ष्मणसिंह = राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लूलाल
लश० = लशकरी भाषा हिंदुस्तानी जहाजियों की बोली
लाल = लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)
वि० = विशेषण
विश्राम = विश्रामसागर
व्यंग्यार्थ = व्यंग्यार्थकौमुदी
व्या० = व्याकरण
व्यास = अंबिकादत्त व्यास
शं० दि० = शंकर दिग्विजय
शृं० सत० = शृंगार सतसई
सं० = संस्कृत
संयो० = संयोजक अव्यय
संयो० क्रि० = संयोज्य क्रिया
स० = सकर्मक
सबल = सबलसिंह चौहान
सभा वि० = सभाविलास
सर्व० = सर्वनाम
सुधाकर = सुधाकर द्विवेदी
सूदन = सूदनकवि (भरतपुरवाले)
सूर = सूरदास
स्त्रि० = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री० = स्त्रीलिंग
स्पे० = स्पेनी भाषा
हिं० = हिंदी भाषा
हनुमान = हनुमन्नाटक
हरिदास = स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र = भारतेंदु हरिश्चंद्र

---

* यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त होता है।
† यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्रांतिक है।
‡ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप ग्राम्य है।

सूरजमुखी–संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्यमुखी] (१) एक प्रकार का पौधा जिसमें पीले रंग का बहुत बड़ा फूल लगता है।

विशेष—यह ४–५ हाथ ऊँचा होता है। इसके पत्ते डंठल की ओर चौड़े और आगे की ओर पतले तथा कुछ खुरखुरे और रोएँदार होते हैं। फूल का मंडल एक बालिश्त के करीब होता है। बीच में एक स्थूल केंद्र होता है जिसके चारों ओर गोलाई में पीले पीले दल निकले होते हैं। सूर्य्यास्त के लगभग यह फूल नीचे की ओर झुक जाता है और सूर्य्योदय होने पर फिर ऊपर उठने लगता है। इसमें कुसुम के से बीज पड़ते हैं। इसके बीज हर ऋतु में बोए जा सकते हैं, पर गरमी और जाड़ा इसके लिये अच्छा है। यह पौधा दूषित वायु को शुद्ध करनेवाला माना जाता है। वैद्यक में यह उष्णवीर्य्य, अग्निदीपक, रसायन, चरपरा, कड़ुआ, कसैला, रूखा, दस्तावर, स्वर शुद्ध करनेवाला, तथा कफ, वात, रक्तविकार, खाँसी, ज्वर, विस्फोटक, कोढ़, प्रमेह, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म आदि का नाशक कहा गया है।

पर्य्या०—आदित्यभक्ता। वरदा। सुवर्चला। सूर्य्यलता। अर्ककांता। भास्करेष्टा। विकांता। सुतेजा। सौरि। अर्कहिता।

(२) एक प्रकार की आतिशबाजी। (३) एक प्रकार का छत्र या पंखा। (४) वह हलकी बदली जो संध्या सबेरे सूर्य्यमंडल के आसपास दिखाई पड़ती है।

सूरजसुत–संज्ञा पुं० [हिं० सूरज + सं० सुत] सुग्रीव। उ०—अंगद जौ तुम पै बल होतो। तौ वह सूरज को सुत को तो ?—केशव।

सूरजसुता–संज्ञा स्त्री० दे० "सूर्यसुता"।

सूरजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पुत्री यमुना।

सूरण–संज्ञा पुं० [सं०] सूरन। जमींकंद।

सूरत–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) रूप। आकृति। शक्ल। उ०—(क) इनकी सूरत तो राजकुमारी की सी है।—बालमुकुंद गुप्त। (ख) मन धन है दृग जौहरी, चले आत यह बाट। छवि मुक्ता मुकते मिलैं जिहि सूरत की हाट।—रसनिधि।

यौ०—सूरत शक्ल = चेहरा मोहरा। आकृति।

मुहा०—सूरत बिगड़ना = चेहरा बिगड़ना। चेहरे की रंगत फीकी पड़ना। सूरत बिगाड़ना = (१) चेहरा बिगाड़ना। कुरूप करना। बदसूरत बनाना। विद्रूप करना। (२) अपमानित करना। (३) दंड देना। सूरत बनाना = (१) रूप बनाना। (२) भेस बदलना। (३) मुँह बनाना। नाक भौं सिकोड़ना। अरुचि प्रकट करना। (४) चित्र बनाना। सूरत दिखाना = सामने आना।

(२) छवि। शोभा। सौंदर्य्य। उ०—मूरति की सूरति कही न परै तुलसी पै, जानै सोई जाके उर कसकै करक सी।—तुलसी। (३) उपाय। युक्ति। ढंग। तदबीर। ढब। जैसे,—(क) वह उनसे छुटकारा पाने की कोई सूरत नहीं देखता था। (ख) रुपया पैदा करने की कोई सूरत निकालो। उ०—जाड़े में उनके जीने की कौन सूरत थी।—शिवप्रसाद।

क्रि० प्र०—देखना।—निकालना।

(४) अवस्था। दशा। हालत। जैसे,—उस सूरत में तुम क्या करोगे ? उ०—आपको खयाल न गुजरे कि हमारी किसी सूरत में तहकीर हुई।—केशवराम।

संज्ञा पुं० [सं० सौराष्ट्र] बंबई प्रदेश के अंतर्गत एक नगर।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जहरीला पौधा जो दक्षिण हिमालय, आसाम, बरमा, लंका, पेराक और जावा में होता है। इसे चोरपट्टा भी कहते हैं। वि० दे० "चोरपट"।

संज्ञा स्त्री० [अ० सूरः] कुरान का कोई प्रकरण।

*संज्ञा स्त्री० [सं० स्मृति] सुध। स्मरण। ध्यान। याद। वि० दे० "सुरति"। जैसे,—सब आनंद में ऐसे मग्न थे कि कृष्ण की सूरत किसी को भी न थी।—लल्लू०।

वि० [सं० सुरत] अनुकूल। मेहरबान। कृपालु।

सूरता*–संज्ञा स्त्री० दे० "शूरता"। उ०—विश्वासी के ज्ञान में नहीं निपुनता होय। कहा सूरता तासु हनि रह्यो गोद जो सोय।—दीनदयाल।

संज्ञा स्त्री० [सं०] सीधी गाय।

सूरताई*–संज्ञा स्त्री० दे० "शूरता"। उ०—गरजत घोर जोर पवन चलत जैसो अंबर सों सोभित रहत मिलि कै अनेक। पुन्न जे धरत तिन्हें सोषत हैं भली भाँति सूर सूरताई लोप करत सहित टेक।—गोपाल।

सूरति*–संज्ञा स्त्री० दे० "सूरत"। उ०—(क) मूरति की सूरति कही न परै तुलसी पै, जानै सोई जाके उर कसकै करक सी।—तुलसी। (ख) चंद्र भलो मुखचंद सखी छबि सूरति काम की कान्ह की नीकी। कोमल पंकज के पदपंकज प्राणपियारे की मूरति पी की।—केशव।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्मृति] सुध। स्मरण। ध्यान। याद। उ०—तुलसिदास रघुबीर की सोभा सुमिरि भई है मगन नहिं तन की सूरति।—तुलसी।

सूरती खपरा–संज्ञा पुं० [सूरती = सूरत शहर का, सं० खर्पर] खपरिया।

सूरदास–संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर भारत के एक प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त महाकवि और महात्मा जो अंधे थे।

विशेष—ये हिंदी भाषा के दो सर्वश्रेष्ठ कवियों में से एक हैं। जिस प्रकार रामचरित का गान कर गोस्वामी तुलसीदास जी अमर हुए हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण की लीला कई सहस्र पदों में गाकर सूरदास जी भी। ये अकबर के काल में वर्त्तमान थे। ऐसा प्रसिद्ध है कि बादशाह अकबर ने इन्हें अपने दरबार में फतहपुर सीकरी में बुलाया, पर ये न गए। इन्होंने यह पद कहा—"मो को कहा सीकरी सों काम"।

इस पर तानसेन के साथ अकबर स्वयं इनके दर्शन को मथुरा गया। इनका जन्म संवत् १५४० के लगभग ठहरता है। ये वल्लभाचार्य्य की शिष्यपरंपरा थे और उनकी स्तुति इन्होंने कई पदों में की है; जैसे,—भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो। श्रीवल्लभ नखचंद्र छटा बिनु हो हिय माँझ अँधेरो॥ इनकी गणना 'अष्टछाप' अर्थात् ब्रज के आठ महाकवियों और भक्तों में थी। अष्टछाप में ये कवि गिने गए हैं—कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास, नंददास और सूरदास। इनमें से प्रथम चार कवि तो वल्लभाचार्य्य जी के शिष्य थे और शेष सूरदास आदि चार कवि उनके पुत्र विट्ठलनाथ जी के। अपने अष्टछाप में होने का उल्लेख सूरदास जी स्वयं करते हैं।—"थापि गोसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप"। श्री विट्ठलनाथ के पुत्र गोकुलनाथ जी ने अपनी "चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता" में सूरदास जी को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है और उनके पिता का नाम 'रामदास' बताया है। सूरसारावली में के एक पद में इनके वंश का जो परिचय है, उसके अनुसार ये महाकवि चंद बरदाई के वंशज थे और सात भाई थे। पर उक्त पद के असली होने में कुछ लोग संदेह करते हैं। इनका जन्म-स्थान भी अनिश्चित है। कुछ लोग इनका जन्म दिल्ली के पास सीही गाँव में बतलाते हैं। जनश्रुति इन्हें जन्मांध कहती है, पर ये जन्मांध न थे। ऐसी भी किंवदंती है कि किसी पर-स्त्री के सौंदर्य्य पर मोहित हो जाने पर इन्होंने नेत्रों का दोष समझ उन्हें फोड़ डाला था। भक्तमाल में लिखा है कि आठ वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत हुआ और ये एक बार अपने माता पिता के साथ मथुरा गए। वहाँ से ये घर लौट कर न गए; कहा कि यहीं कृष्ण की शरण में रहूँगा। चौरासी वार्त्ता के अनुसार ये गऊघाट में रहते थे जो आगरा और मथुरा के बीच में है। यहीं पर ये विट्ठलनाथ जी के शिष्य हुए और उन्हीं के साथ गोकुलस्थ श्रीनाथ जी के मंदिर में बहुत काल तक रहे। इसी मंदिर में रहकर ये पद बनाया करते थे। यों तो पद बनाने का इनका नित्य नियम था, पर मंदिर के उत्सवों पर उसी लीला के संबंध में बहुत से पद बनाकर गाया करते थे। ऐसा प्रसिद्ध है कि ये एक बार कूएँ में गिर पड़े और छः दिन तक उसी में पड़े रहे। सातवें दिन स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने हाथ पकड़कर इन्हें निकाला। निकलने पर इन्होंने यह दोहा पढ़ा—"बाँह छुड़ाए जात हौ निबल जानि कै मोहिं। हिरदै सों जब जायहौ, मरद बदौंगो तोहिं।"

इसमें संदेह नहीं कि ब्रज भाषा के ये सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, क्योंकि इन्होंने केवल ब्रज भाषा में ही कविता की है, अवधी में नहीं। गोस्वामी तुलसीदास जी का दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था और उन्होंने जीवन की नाना परिस्थितियों पर रसपूर्ण कविता की है। सूरदास में केवल शृंगार और वात्सल्य की पराकाष्ठा है। संवत् १६०७ के पूर्व इनका सूरसागर समाप्त हो गया था; क्योंकि उसके पीछे इन्होंने जो "साहित्य लहरी" लिखी है, उसमें संवत् १६०७ दिया हुआ है।

सूरन—संज्ञा पुं० [सं० सूरण] एक प्रकार का कंद जो सब शाकों में श्रेष्ठ माना गया है। जमींकंद। ओल। शूरण। सूरन।

विशेष—सूरन भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र होता है, पर बंगाल में अधिक होता है। इसके पौधे २ से ४ हाथ तक होते हैं। पत्तों में बहुत से कटाव होते हैं। इसके दो भेद हैं। सूरन जंगली भी होता है जो खाने योग्य नहीं होता और बेतरह कटैला होता है। खेत के सूरन की तरकारी, अचार आदि बनते हैं जिन्हें लोग बड़े चाव से खाते हैं। वैद्यक में यह अग्निदीपक, रूखा, कसैला, खुजली उत्पन्न करनेवाला, चरपरा, विष्टंभकारक, विशद, रुचिकारक, लघु, प्लीहा तथा गुल्मनाशक और अर्श (बवासीर) रोग के लिये विशेष उपकारी माना गया है। दाद, खाज, रक्तविकार और कोढ़वालों के लिये इसका खाना निषिद्ध है।

पर्य्या०—शूरण। सूरकंद। कंदल। अर्शोघ्न आदि।

सूरपनखा‡—संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पनखा"। उ०—सूरपनखहु तहँहि चलि आई। काटि श्रवन अरु नाक भगाई।—पद्माकर।

सूरपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (सूर्य के पुत्र) सुग्रीव। उ०—सूरपुत्र तब जीवन जान्यो। बालि जोर बहु भाँति बखान्यो।—केशव।

सूरवार—संज्ञा पुं० [?] पायजामा। सूथन।

सूरबीर—संज्ञा पुं० दे० "शूरवीर"।

सूरमस—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद और उसके निवासी।

सूरमा—संज्ञा पुं० [सं० शूरमानी] योद्धा। वीर। बहादुर। उ०—और बहुत उमड़े सुभट कहाँ कहाँ लगि गाउँ। उतै समद के सूरमा भिरे रोप रन पाउँ।—लाल कवि।

सूरमापन—संज्ञा पुं० [हिं० सूरमा+पन] वीरत्व। शूरता। बहादुरी।

सूरमुखी—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यमुखी शीशा। उ०—बहु साँग भलगन मधि लसत, सूरमुखी रथ छत्रवर। मनु चले जात मुनि दंड चढ़ि उडगन मैं ससि दिवसकर।—गोपाल।

सूरमुखी मनि—संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्यमुखी मणि] सूर्य्यकांत मणि। उ०—मुरछल चारहु ओर अमल बहु नृत्य फिरावहिं। सूरमुखी मनि जटित अनेकन सोभा पावहिं।—गिरिधरदास।

सूरवाँ‡—संज्ञा पुं० दे० "सूरमा"।

सूरस—संज्ञा पुं० [देश०] परिया की लकड़ी। (जुलाहा)

सूरसागर—संज्ञा पुं० हिंदी के महाकवि सूरदास कृत ग्रंथ का नाम जिसमें श्रीकृष्ण लीला अनेक राग रागिनियों में वर्णित है।

सूर-सावंत-संज्ञा पुं० [सं० शूर+सामंत] (१) युद्धमंत्री। (२) नायक। सरदार। उ०—मनु बिज्जुरी चमकाय बान जल बरपि अमोलो। गरजि जलद सम जलद सूर सावँत यह बोलो।—गिरिधरदास।

सूरसुत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनि ग्रह। (२) सुग्रीव।

सूरसुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (सूर्य की पुत्री) यमुना। उ०—ज्योति जगै जमुना सी लगै जग लोचन लालित पाप विपोहै। सूरसुता शुभ संगम तुंग तरंग तरंग तरंग सी सोहै।—केशव।

सूरसूत-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के सारथि अरुण।

सूरसेन-संज्ञा पुं० दे० "शूरसेन"।

सूरसेनपुर-संज्ञा पुं० [सं० शूरसेन+पुर] मथुरा। उ०—चित्रसेन नृप चल्यो सेन सह सूरसेनपुर। झपटि चलै जिमि सेन छेन जै देन चेन उर।—गोपाल।

सूरा-संज्ञा पुं० [हिं० सुंडी] एक प्रकार का कीड़ा जो अनाज के गोले में पाया जाता है। यह किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाता। अनाज के व्यापारी इसको शुभ समझते हैं।

संज्ञा पुं० [अ०] कुरान का कोई एक प्रकरण।

सूराख-संज्ञा पुं० [फा०] (१) छेद। छिद्र। (२) खाना। घर। (लश०)

सूरिंजान-संज्ञा पुं० दे० "सुरंजान"।

सूरि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ करानेवाला। ऋत्विज्। (२) पंडित। विद्वान्। आचार्य। (विशेषकर जैनाचार्यों के नामों के पीछे यह शब्द उपाधि स्वरूप प्रयुक्त होता है।) (३) बृहस्पति का एक नाम। (४) कृष्ण का नाम। (५) यादव। (६) सूर्य।

सूरी-संज्ञा पुं० [सं० सूरिन्] विद्वान्। पंडित। आचार्य।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विदुषी। पंडिता। (२) सूर्य की पत्नी। (३) कुंती। (४) राई। राजसर्षप।

संज्ञा स्त्री० दे० "सूली"। उ०—नृप कह देहु चोर कहँ सूरी। संतवेष यह चोर कसूरी। तुरत दूत पुर बाहिर लाई। सूरी महँ दिय मुनिहिं चढ़ाई।—रघुराज।

संज्ञा पुं० [सं० शूल] भाला। उ०—पटक्यौ कंस ताहि गति सूरी। धेनुक गिरयो तबै गहि सूरी।—गोपाल।

सूरुज-संज्ञा पुं० दे० "सूर्य"।

सूरवाँ-संज्ञा पुं० दे० "सूरमा"। उ०—जीवहिं का संसा पड़ा को काको तारहिं। दादू सोई सूरवाँ जो आप उबारहिं।—दादू।

सूरेठ-संज्ञा पुं० [देश०] बाँस की हाथ भर की एक लकड़ी जिसके पहले धागे में से कासा निकालते हैं।

सूर्क्षण-संज्ञा पुं० [सं०] अनादर।

सूर्दय-संज्ञा पुं० [सं०] उद्द। माष।

सूर्पनखा-संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पणखा"।

सूर्मि, सूर्मी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लोहे की बनी स्त्री की प्रतिमूर्त्ति।

विशेष—मनु ने लिखा है कि गुरुपत्नी से व्यभिचार करनेवाला अपने पाप को कहकर तपी हुई लोहे की शय्या पर शयन करे अथवा तपी हुई लोहे की स्त्री की प्रतिमूर्त्ति का आलिंगन करे। इस प्रकार मरने से उसका पाप नष्ट होता है।

(२) पानी का नल।

सूर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सूर्या, सूर्याणी] (१) अंतरिक्ष में पृथ्वी, मंगल, शनि आदि ग्रहों के बीच सब से बड़ा ज्वलंत पिंड जिसकी सब ग्रह परिक्रमा करते हैं। वह बड़ा गोला जिससे पृथ्वी आदि ग्रहों को गरमी और रोशनी मिलती है। सूरज। आफताब।

विशेष—सूर्य्य पृथ्वी से चार करोड़ पैंसठ लाख मील दूर है। उसका व्यास पृथ्वी के व्यास से १०८ गुना अर्थात् ४३२००० कोस है। घनफल के हिसाब से देखें तो जितना स्थान सूर्य्य घेरे हुए है, उतने में पृथ्वी के ऐसे ऐसे १२५०००० पिंड आवेंगे। सारांश यह कि सूर्य्य पृथ्वी से बहुत ही बड़ा है। परंतु सूर्य्य जितना बड़ा है, उसका गुरुत्व उतना नहीं है। उसका सापेक्ष गुरुत्व पृथ्वी का चौथाई है। अर्थात् यदि हम एक टुकड़ा पृथ्वी का और उतना ही बड़ा टुकड़ा सूर्य्य का लें तो पृथ्वी का टुकड़ा तौल में सूर्य्य के टुकड़े का चौगुना होगा। कारण यह है कि सूर्य्य पृथ्वी के समान ठोस नहीं है। वह तरल ज्वलंत द्रव्य के रूप में है। सूर्य्य के तल पर कितनी गरमी है, इसका जल्दी अनुमान ही नहीं हो सकता। वह २०००० डिग्री तक अनुमान की गई है। इसी ताप के अनुसार उसके अपरिमित प्रकाश का भी अनुमान करना चाहिए। प्रायः हम लोगों को सूर्य्य का तल बिलकुल स्वच्छ और निष्कलंक दिखाई पड़ता है, पर उसमें भी बहुत से काले धब्बे हैं। इनमें विचित्रता यह है कि एक निश्चित नियम के अनुसार ये घटते बढ़ते रहते हैं, अर्थात् कभी इनकी संख्या कम हो जाती है, कभी अधिक। जिस वर्ष इनकी संख्या अधिक होती है, उस वर्ष में पृथ्वी पर चुंबक शक्ति का क्षोभ बहुत बढ़ जाता है और विद्युत् की शक्ति के अनेक कांड दिखाई पड़ते हैं। कुछ वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इन लांछनों का वर्षा से भी संबंध है। जिस साल ये अधिक होते हैं, उस साल वर्षा भी अधिक होती है। भारतीय ग्रंथों में सूर्य्य की गणना नव ग्रहों में है। आधुनिक ज्योतिर्विज्ञान के अनुसार सूर्य्य ही मुख्य पिंड है जिसके पृथ्वी, शनि, मंगल आदि ग्रह अनुचर हैं और उसकी निरंतर परिक्रमा किया करते हैं। वि० दे० "खगोल"।

सूर्य्य की उपासना प्रायः सब सभ्य प्राचीन जातियों में प्रचलित थी। आर्य्यों के अतिरिक्त असीरिया के असुर भी 'शम्स' (सूर्य्य) की पूजा करते थे। अमेरिका के मेक्सिको प्रदेश में बसनेवाली प्राचीन सभ्य जनता के भी बहुत से सूर्य मंदिर थे। प्राचीन आर्य्य जातियों के तो सूर्य्य प्रधान देवता थे। भारतीय और पारसीक दोनों शाखाओं के आर्य्यों के बीच सूर्य्य को मुख्य स्थान प्राप्त था। वेदों में पहले प्रधान देवता सूर्य्य, अग्नि और इंद्र थे। सूर्य्य आकाश के देवता थे। इनका रथ सात घोड़ों का कहा गया है। आगे चलकर सूर्य्य और सविता एक माने गए और सूर्य्य की गणना द्वादश आदित्यों में हुई। ये आदित्य वर्ष के १२ महीनों के अनुसार सूर्य्य के ही रूप थे। इसी काल में सूर्य्य के सारथि अरुण (सूर्य्योदय की ललाई) कहे गए जो लँगड़े माने गए हैं। सूर्य्य ही का नाम विवस्वत् या विवस्वान् भी था जिनकी कई पत्नियाँ कही गई हैं, जिनमें संज्ञा प्रसिद्ध है।

पर्य्या०—भास्कर। भानु। प्रभाकर। दिनकर। दिनपति। मार्त्तंड। रवि। तरणि। सहस्रांशु। तिग्मदीधिति। मरीचिमाली। चंडकर। आदित्य। सविता। सूर। विवस्वान्।

(२) बारह की संख्या। (३) अर्क। आक। मंदार। (४) बलि के एक पुत्र का नाम।

सूर्य्यकमल—संज्ञा पुं० [सं०] सूरजमुखी फूल।

सूर्य्यकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य की किरण।

सूर्य्यकांत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का स्फटिक या बिल्लौर, सूर्य्य के सामने रखने से जिसमें से आँच निकलती है। सूर्य्यकांतमणि। यथा—चंद्रकांति अमृत उपजावै। सूर्य्यकांति में अग्नि प्रजावै।—रत्नपरीक्षा।

पर्य्या०—सूर्य्यमणि। तपनमणि। रविकांत। सूर्य्याश्मा। ज्वलनाश्मा। दहनोपम। दीप्तोपल। तापन। अर्कोपल। अग्निगर्भ।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह उष्ण, निर्म्मल, रसायन, वात और श्लेष्मा को हरनेवाला और बुद्धि बढ़ानेवाला है।

(२) सूरजमुखी शीशा। आतशी शीशा।

विशेष—यह विशेष बनावट का गहरे पेटे का गोल शीशा होता है जो सूर्य्य की किरनों को एक केंद्र पर एकत्र करता है, जिससे ताप उत्पन्न हो जाता है। इसके भीतर से देखने पर वस्तुएँ बड़े आकार की दिखाई पड़ती हैं।

(३) एक प्रकार का फूल। आदित्यपर्णी। (४) एक पर्वत का नाम। (मार्कंडेयपुराण)

सूर्य्यकांति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य्य की दीप्ति या प्रकाश। (२) एक प्रकार का पुष्प। (३) तिल का फूल।

सूर्य्यकाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिन का समय। (२) फलित ज्योतिष में शुभाशुभ निर्णय के लिये एक चक्र।

सूर्य्यकालानलचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक ज्योतिष-चक्र जिससे मनुष्य का शुभाशुभ जाना जाता है।

सूर्य्यक्रांत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का ताल। (संगीत) (२) एक प्राचीन जनपद।

सूर्य्यक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य मंडल।

सूर्य्यगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक बोधिसत्व का नाम। (२) एक बौद्ध सूत्र का नाम।

सूर्य्यग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नव ग्रहों में से प्रथम ग्रह सूर्य्य। (२) सूर्य्यग्रहण। (३) राहु और केतु। (४) जलपात्र या घड़े का पेंदा।

सूर्य्यग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य का ग्रहण। वि० दे० "ग्रहण"।

सूर्य्यचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्यचक्षुस्] रामायण के अनुसार एक राक्षस का नाम।

सूर्य्यज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनि ग्रह। (२) यम। (३) सावर्णि मनु। (४) रेवंत। (५) सुग्रीव। (६) कर्ण।

सूर्य्यजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना नदी।

सूर्य्यतनय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनि। (२) सावर्णि मनु। (३) रेवंत। (४) सुग्रीव। (५) कर्ण।

सूर्य्यतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना।

सूर्य्यतापिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

सूर्य्यतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ का नाम। (महाभारत)

सूर्य्यदास—संज्ञा पुं० [सं०] (१) संस्कृत के एक प्राचीन कवि का नाम। (२) हिंदी के प्रसिद्ध कवि सूरदास।

सूर्य्यदेव—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् सूर्य्य।

सूर्य्यध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

सूर्य्यनंदन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनि। (२) कर्ण।

सूर्य्यनगर—संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर के एक प्राचीन नगर का नाम।

सूर्य्यनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक दानव का नाम। (हरिवंश)

सूर्य्यनारायण—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य देवता।

सूर्य्यनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

सूर्य्यपति—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य देवता।

सूर्य्यपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] संज्ञा। छाया।

सूर्य्यपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हुरहुर। आदित्यभक्ता। (३) मदार का पौधा।

सूर्य्यपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इसरमूल। अर्कपत्री। (२) मखवन। बन उड़दी। माषपर्णी।

सूर्य्यपर्व्व—संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्यपर्व्वन्] वह काल जिसमें सूर्य्य किसी नई राशि में प्रवेश करता है।

सूर्य्यपाद—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य की किरन।

सूर्य्यपुत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनि। (२) यम। (३) वरुण। (४) अश्विनी कुमार। (५) सुग्रीव। (६) कर्ण।
सूर्य्यपुत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यमुना। (२) विद्युत्। बिजली। (क०)
सूर्य्यपुर–संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर के एक प्राचीन नगर का नाम।
सूर्य्यपुराण–संज्ञा पुं० [सं०] एक छोटा ग्रंथ जिसमें सूर्य्य माहात्म्य वर्णित है।
सूर्य्यप्रदीप–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ध्यान या समाधि। (बौद्ध)
सूर्य्यप्रभ–वि० [सं०] सूर्य्य के समान दीप्तिमान्।
संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार की समाधि। (२) श्रीकृष्ण की पत्नी। लक्ष्मणा के प्रासाद या भवन का नाम। (३) एक बोधिसत्व का नाम। (बुद्ध) (४) एक नाग का नाम।
सूर्य्यप्रभाव–वि० [सं०] सूर्य्य से उत्पन्न।
संज्ञा पुं० (१) शनि। (२) कर्ण।
सूर्य्यप्रशिष्य–संज्ञा पुं० [सं०] जनक का एक नाम।
सूर्य्यफणि चक्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक ज्योतिश्चक्र जिससे कोई कार्य प्रारंभ करते समय उसका शुभाशुभ निकालते हैं।
सूर्य्यबिंब–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य का मंडल।
सूर्य्यभक्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुपहरिया। बंधूक पुष्प वृक्ष। (२) सूर्य्य का उपासक।
सूर्य्यभक्तक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य की उपासना करनेवाला। (२) दुपहरिया। बंधूक।
सूर्य्यभक्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर। आदित्यभक्ता।
सूर्य्यभा–वि० [सं०] सूर्य्य के समान दीप्तिमान्।
सूर्य्यभागा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।
सूर्य्यभानु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामायण के अनुसार एक यक्ष का नाम। (२) एक राजा का नाम।
सूर्य्यभ्राता–संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्यभ्रातृ] ऐरावत हाथी का नाम।
सूर्य्यमंडल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य का घेरा।
पर्य्या०—परिधि। परिवेश। मंडल। उपसूर्य्यक।
(२) रामायण के अनुसार एक गंधर्व नाम।
सूर्य्यमणि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्यकांत मणि। (२) एक प्रकार का पुष्पवृक्ष।
सूर्य्यमाल–संज्ञा पुं० [सं०] (सूर्य्य की माला धारण करनेवाले) शिव। महादेव।
सूर्य्यमास–संज्ञा पुं० दे० "सौरमास"।
सूर्य्यमुखी–संज्ञा पुं० दे० "सूरजमुखी"।
सूर्य्यरश्मि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य की किरन। (२) सविता का एक नाम।
सूर्य्यर्क्ष–संज्ञा पुं० [सं०] वह नक्षत्र जिसमें सूर्य्य की स्थिति हो।
सूर्य्यलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर। हुलहुल। आदित्यभक्ता लता।
सूर्य्यलोक–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य का लोक।
विशेष—कहते हैं कि युद्ध में मरनेवाले और काशी-खंड के अनुसार सूर्य्य के भक्त भी इसी लोक को प्राप्त होते हैं।
सूर्य्यलोचना–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक गंधर्वी का नाम।
सूर्य्यवंश–संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियों के दो आदि और प्रधान कुलों में से एक जिसका आरंभ इक्ष्वाकु से माना जाता है।
विशेष—पुराणानुसार परमेश्वर के पुत्र ब्रह्मा, ब्रह्मा के मरीचि, मरीचि के कश्यप, कश्यप के सूर्य, सूर्य के वैवस्वत मनु और वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु थे। इक्ष्वाकु का नाम वैदिक ग्रंथों में भी आया है। ये इक्ष्वाकु त्रेतायुग में अयोध्या के राजा थे। त्रेता और द्वापर की संधि में इसी वंश में दशरथ के यहाँ श्रीरामचंद्र ने जन्म लिया था। द्वापर के प्रारंभ में श्रीरामचंद्र के पुत्र कुश हुए। कुश के वंश ने सुमित्र तक, कलियुग में एक हजार वर्ष राज्य किया। इसके बाद इस वंश की विश्रांति हुई।
सूर्य्यवंशी–वि० [सं० सूर्य्यवंशिन्] सूर्य्यवंश का। जो क्षत्रियों के सूर्यवंश में उत्पन्न हुआ हो।
सूर्य्यवंश्य–वि० [सं०] सूर्य्यवंश में उत्पन्न।
सूर्य्यवक्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ओषधि।
सूर्य्यवर–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ओषधि।
सूर्य्यवर्चस्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देवगंधर्व का नाम। (२) एक ऋषि का नाम।
वि० सूर्य्य के समान दीप्तिमान्।
सूर्य्यवर्म्मा–संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्यवर्म्मन्] त्रिगर्त्त के एक राजा का नाम। (महाभारत)
सूर्य्यवल्लभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हुरहुर। आदित्यभक्ता। (२) कमलिनी। पद्मिनी।
सूर्य्यवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दधियार। अंधाहुली। अर्कपुष्पी। (२) क्षीर काकोली।
सूर्य्यवान्–संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्यवत्] रामायण के अनुसार एक पर्वत का नाम।
सूर्य्यवार–संज्ञा पुं० [सं०] रविवार। आदित्यवार।
सूर्य्यविष्णु–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
सूर्य्यविलोकन–संज्ञा पुं० [सं०] एक मांगलिक कृत्य जिसमें बच्चे को सूर्य का दर्शन कराया जाता है। यह बच्चे के चार महीने के होने पर किया जाता है।
सूर्य्यवृक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आक। मदार। अर्कवृक्ष। (२) दधियार। अंधाहुली। अर्कपुष्पी।
सूर्य्यवेश्म–संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्यवेश्मन्] सूर्य्य मंडल।
सूर्य्यव्रत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक व्रत जो सूर्य्य भगवान् के प्रीत्यर्थ रविवार को किया जाता है। (२) ज्योतिष में एक चक्र।
सूर्य्यशत्रु–संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम। (रामायण)

सूर्य्यशिष्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) याज्ञवल्क्य का एक नाम। (२) जनक का एक नाम।

सूर्य्यशोभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य्य का प्रकाश। धूप। (२) एक प्रकार का फूल।

सूर्य्यश्री–संज्ञा पुं० [सं०] विश्वेदेवा में से एक।

सूर्य्यसंक्रमण–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश। सूर्य की संक्रांति। वि० दे० "संक्रांति"।

सूर्य्यसंक्रांति–संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश। वि० दे० "संक्रांति"।

सूर्य्यसंज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) आक। अर्क वृक्ष। (३) केसर। कुंकुम। (४) ताँबा। ताम्र। (५) एक प्रकार का मानिक या चुन्नी।

सूर्य्यसदृश–संज्ञा पुं० [सं०] लीलावज्र का एक नाम। (बौद्ध)

सूर्य्यसाम–संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्यसामन्] एक साम का नाम।

सूर्य्यसारथि–संज्ञा पुं० (सूर्य्य का सारथि) अरुण।

सूर्य्यसावर्णि–संज्ञा पुं० [सं०] मार्कंडेयपुराण के अनुसार आठवें मनु का नाम। (ये सूर्य के औरस हैं और संज्ञा के गर्भ से उत्पन्न माने जाते हैं।)

सूर्य्यसावित्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्वेदेवा में से एक। (२) प्रसिद्ध ग्रंथ का नाम।

विशेष—इसके तत्व का उपदेश पहले पहल सूर्य से प्राप्त कहा गया है।

सूर्य्यसुत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनि। (२) कर्ण। (३) सुग्रीव।

सूर्य्यसूक्त–संज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद के एक सूक्त का नाम जिसमें सूर्य की स्तुति की गई है।

सूर्य्यसूत–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का सारथि, अरुण।

सूर्य्यस्तुत्–संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

सूर्य्यांशु–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य की किरण।

सूर्य्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य्य की पत्नी संज्ञा।

विशेष—कई मंत्रों में यह सूर्य्य की कन्या भी कही गई हैं। कहीं ये सविता या प्रजापति की कन्या और अश्विनीकुमारों की स्त्री कही गई हैं और कहीं सोम की पत्नी। एक मंत्र में इनका नाम ऊर्जानी आया है और ये पूषा की भगिनी कही गई हैं। सूर्य्या सावित्री ऋग्वेद के सूर्य्यसूक्त की द्रष्टा मानी जाती हैं।

(२) नवोढ़ा। नवविवाहिता स्त्री। (३) इंद्रवारुणी।

सूर्य्याकर–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम। (रामायण)

सूर्य्याक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) एक राजा का नाम। (महाभारत) (३) एक बंदर का नाम। (रामायण)

वि० सूर्य्य के समान आँखोंवाला।

सूर्य्याणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य्य की पत्नी, संज्ञा।

सूर्य्यातप–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य की गरमी। धूप। घाम।

सूर्य्यात्मज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनि। (२) कर्ण। (३) सुग्रीव।

सूर्य्याद्रि–संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम। (मार्कंडेयपुराण)

सूर्य्यापीड़–संज्ञा पुं० [सं०] परीक्षित के एक पुत्र का नाम।

सूर्य्यायाम–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्यास्त का समय।

सूर्य्यालोक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य का प्रकाश। (२) गरमी। आतप।

सूर्य्यावर्त्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हुलहुल का पौधा। आदित्य-भक्ता। (२) सूरजमुखी। ब्रह्मसोंचली। (३) गज पिप्पली। गजपीपल। (४) एक प्रकार की सिर की पीड़ा। आधासीसी।

विशेष—यह रोग वातज कहा गया है। इसमें सूर्य्योदय के साथ ही मस्तक में दोनों भौंहों के बीच पीड़ा आरंभ होती है और सूर्य्य की गरमी बढ़ने के साथ साथ बढ़ती जाती है। सूरज ढलने के साथ ही पीड़ा घटने लगती है और शांत हो जाती है।

(५) एक प्रकार का ध्यान या समाधि। (बौद्ध) (६) एक प्रकार का जल-पात्र।

सूर्य्यावर्त्त रस–संज्ञा पुं० [सं०] श्वास रोग की एक रसौषध जो पारे, गंधक और ताँबे के संयोग से बनती है।

सूर्य्याश्म–संज्ञा पुं० [सं० सूर्य्याश्मन्] सूर्य्यकान्त मणि।

सूर्य्याश्व–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का घोड़ा। वाताट। हरित्।

सूर्य्यास्त–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का डूबना। सूर्य के छिपने का समय। सायंकाल।

क्रि० प्र०—होना।

सूर्य्याह्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताँबा। ताम्र। (२) आक। मदार। अर्कवृक्ष। (३) महेंद्रवारुणी। बड़ी इंद्रायन।

सूर्य्येंदुसंगम–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य और चंद्रमा का संगम या मिलन अर्थात् दोनों की एक राशि में स्थिति। अमावस्या।

सूर्योढ़–वि० [सं०] अतिथि (जो सूर्य्यास्त होने पर अर्थात् संध्या समय आता है)।

संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्यास्त का समय।

सूर्योत्थान–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्योदय। सूर्य्य का चढ़ना।

सूर्योदय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य का उदय या निकलना। (२) सूर्य्य के निकलने का समय। प्रातःकाल।

क्रि० प्र०—होना।

सूर्योदयगिरि–संज्ञा पुं० [सं०] वह कल्पित पर्व्वत जिसके पीछे से सूर्य्य का उदित होना माना जाता है। उदयाचल।

सूर्योद्यान–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्यवन नामक तीर्थ।

सूर्योपनिषद्–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

सूर्योपस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य की एक प्रकार की उपासना।

विशेष—प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल को संध्या करते समय

सूर्याभिमुख हो एक पैर से खड़े होकर सूर्य की उपासना करने का विधान है।

सूर्योपासक-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की उपासना करनेवाला। सूर्यपूजक। सौर।

सूर्योपासना-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की आराधना या पूजा।

सूल-संज्ञा पुं० [सं० शूल] (१) बरछा। भाला। साँग। उ०—(क) चर्म चर्म कर कृपान सूल सेल धनुषबान, धरनि दलनि दानव दल रन करालिका। (ख) देखि ज्वाला जाल हाहाकार दसकंध सुनि कह्यो धरो धरो धाए बीर बलवान हैं। लिए सूल सेल पास परिघ प्रचंड दंड भाजन सनीर धीर धरे धनुबान हैं।—तुलसी। (२) कोई चुभनेवाली नुकीली चीज। काँटा। उ०—(क) उर सों समीर लाग्यो सूल सों सहेली सब विष सों विनोद लाग्यो बन सों निवास री। —मतिराम। (ख) देती नचाइ नाच या रौंद को लाल रिझावन को फल पेती। सेती सदा रसखानि लिये कुबरी के करेजनि सूल सी भेती।

क्रि० प्र०—चुभना।—लगना।

(३) भाला चुभने की सी पीड़ा। कसक। उ०—(क) सूल उठ्यौ तन हूल गयो मन भूल गये सब खेल खिलौना।—सुंदरीसर्वस्व। (ख) बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।—हरिश्चंद्र। (ग) बसिहौं बन कलिहौं मुनिन भरिहौं फल दल मूल। भरत राज करिहैं अवधि मोहि न कछु अब सूल।—पद्माकर। (४) दर्द। पीड़ा। जैसे,—पेट में सूल।

क्रि० प्र०—उठना।—मिटना।

विशेष—इस शब्द का स्त्रीलिंग प्रयोग भी सूर आदि कवियों में मिलता है। जैसे,—मेरे मन इतनी सूल रही।—सूर।

(५) भाला का ऊपरी भाग। भाला के ऊपर का फुलरा। उ०—मनि फूल रचित मखतूल की झूल न जाके सूल कोड। सजि सोहे उघारि दुकूल वर सूल सबै अरि सूल सोड।—गोपाल।

सूलधर-संज्ञा पुं० दे० "शूलधर"।

सूलधारी-संज्ञा पुं० दे० "शूलधर"।

सूलना-क्रि० स० [हिं० सूल+ना (प्रत्य०)] भाले से छेदना। पीड़ित करना।

क्रि० प्र० भाले से छिदना। पीड़ित होना। व्यथित होना। दुखना। उ०—फूलि उठ्यौ वृंदावन, भूलि उठे खग मृग, सूलि उठ्यौ उर, बिरहागि बगराई है।—देव।

सूलपानिॐ-संज्ञा पुं० दे० "शूलपाणि"।

सूली-संज्ञा स्त्री० [सं० शूल] (१) प्राण दंड देने की एक प्राचीन प्रथा जिसमें दंडित मनुष्य एक नुकीले लोहे के डंडे पर बैठा दिया जाता था और उसके ऊपर मुँगरा मारा जाता था। (२) फाँसी।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—चढ़ाना।—देना।—पाना।—मिलना।

(३) एक प्रकार का नरम लोहा जिसकी छड़ें बनती हैं। (लुहार)

संज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण दिशा। (लश०)

ॐ संज्ञा पुं० [सं० शूलिन्] महादेव। शिव। उ०—चंदन की चर चौकी पै बैठि कै न्हाई जुन्हाई सी जोति समूली। अंबर के धर अंबर पूजि बरंबर देव दिगंबर सूली।—देव।

सूवनाॐ†-क्रि० अ० [सं० स्रवण] बहना। प्रवाहित होना। उ०—कहा कहौं अति सूवै नयना उमगि चलत पग पानी। सूर सुमेर समाइ कहाँ धौं बुद्धिवासना पुरानी।—सूर।

संज्ञा पुं० दे० "सूआ"। उ०—सेमर केरा सूवना सिहुले बैठा जाय। चोंच चहोरै सिर धुनै यह वाही को भाय। —कबीर।

सूवर-संज्ञा पुं० दे० "सूअर"।

सूवा-संज्ञा पुं० [?] फारसी संगीत के अनुसार २४ शोभाओं में से एक।

संज्ञा पुं० [सं० शुक] तोता। सुग्गा। सूआ।

सूस-संज्ञा पुं० [प्रा० मि० सं० शिशुमार] मगर की तरह का एक बड़ा जलजंतु जो गंगा में बहुत होता है। सूँस।

विशेष—इसका रंग काला होता है और यह प्रायः जल के ऊपर आया करता है, पर किनारे पर नहीं आता। यह घड़ियाल या मगर के समान जल के बाहर के जंतु नहीं पकड़ता। उ०—सिर बिनु कवच सहित उतराहीं। जहँ तहँ सुभट ग्राह अनु आहीं। बिनु सिर ते न जात पहिचाने। मनहुँ सूस जल में उतराने।—सबल।

सूसमार-संज्ञा पुं० [सं० शिशुमार] सूस।

सूसला†-संज्ञा पुं० [सं० शश] खरगोश।

सूसिॐ†-संज्ञा पुं० दे० "सूस"। उ०—फिरत चक्र आवर्त्त अनेका। उछरहिं मीन सूसि जिमि एका।—रघुनाथदास।

सूसी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का धारीदार या चारखाने-दार कपड़ा।

सूहा-संज्ञा पुं० [हिं० सोहना] (१) एक प्रकार का लाल रंग। (२) संपूर्ण जाति का एक संकर राग।

विशेष—किसी के मत से यह विभास और मालश्री के मेल से और किसी किसी के मत से विभास और वागीश्वरी के मेल से बना है। इसमें गांधार, धैवत और निषाद तीनों कोमल लगते हैं। इसके गाने का समय ६ दंड से १० दंड तक है। हनुमत् के मत से यह दीपक राग का और अन्य मतों से हिंडोल या भैरव राग का पुत्र है। कुछ लोगों ने इसे रागिनी कहा है और भैरव की पुत्रवधू बताया है।

वि० [स्त्री० सूही] विशेष प्रकार के लाल रंग का। लाल। उ०—सजि सूहे दुकूल सबै सुख साधा।—पद्माकर।

सूहा कान्हड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० सूहा+कान्हड़ा] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

सूहा टोड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूहा+टोड़ी] संपूर्ण जाति की एक संकर रागिणी जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

सूहाबिलावल-संज्ञा पुं० [हिं० सूहा+बिलावल] संपूर्ण जाति का एक संकर राग।

सूहा श्याम-संज्ञा पुं० [हिं० सूहा+श्याम] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

सूही-वि० स्त्री० दे० "सूहा"।

सृंखला॥-संज्ञा स्त्री० दे० "शृंखला"। उ०—तुलसिदास प्रभु मोह सृंखला छूटहि तुम्हरे छोरे।—तुलसी।

सृंग॥-संज्ञा पुं० दे० "शृंग"।

सृंगवेरपुर॥-संज्ञा पुं० दे० "शृंगवेरपुर"। उ०—सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगवेरपुर पहुँचे जाई।—तुलसी।

सृंगी॥-संज्ञा पुं० दे० "शृंगी"।

सृंजय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देववात के एक पुत्र का नाम। (ऋग्वेद) (२) मनु के एक पुत्र का नाम। (३) पुराणोक्त एक वंश जिसमें धृष्टद्युम्न हुए थे और जिस वंश के लोग भारत युद्ध में पांडवों की ओर से लड़े थे। (४) ययातिवंश के कालनर के एक पुत्र का नाम।

सृंजयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भजमान की दो पत्नियों का नाम। (हरि०)

सृंजरी-संज्ञा स्त्री० दे० "सृंजयी"।

सृकंडु-संज्ञा स्त्री० [सं०] खाज। खुजली। कंडु।

सृक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शूल। भाला। (२) बाण। तीर। (३) वायु। हवा। (४) कमल का फूल।

॥ संज्ञा पुं० [सं० स्रज्, स्रक्] माला। उ०—दरसन हू भासे जम-सैनिक जिमि नह बालक सेनी।......सूर परस्पर करत कुलाहल, गर सृक यह रावेनी।—सूर।

सृकाल-संज्ञा पुं० दे० "शृगाल"। उ०—तुलसिदास हरिनाम सुधा तजि सठ हठि पियत विषय विष मांगी। सूकर स्वान सृकाल सरिस जन जनमत जगत जननि दुख लागी।—तुलसी।

सृक्क-संज्ञा पुं० दे० "सृक्व"।

सृक्कणी-संज्ञा स्त्री० दे० "सृक्व"।

सृक्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

सृक्व-संज्ञा पुं० [सं०] ओठों का छोर। मुँह का कोना।

सृक्वणी-संज्ञा स्त्री० दे० "सृक्व"।

सृग॥-संज्ञा पुं० [सं० स्रक्] (१) बरछा। भाला। (२) बाण। तीर। संज्ञा पुं० [सं० स्रज्, स्रक्] माला। गजरा। हार। उ०—खेलत टूटि गए मुकता-सृग. मुकुतवृंद छहराने। मनु अपार सुख लेन तारकन द्वार द्वार दरसाने।—रघुराज।

सृगाल-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सृगाली] (१) सियार। शृगाल। (२) एक प्रकार का वृक्ष। (३) एक दैत्य का नाम। (४) करवीरपुर के राजा वासुदेव का नाम। (हरिवंश) (५) प्रतारक। धूर्त। धोखेबाज। (६) कायर। भीरु। डरपोक। (७) दुःशील मनुष्य। बदमिजाज आदमी।

सृगालकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] सत्यानासी का पौधा। कटेरी। स्वर्णक्षीरी। भड़भाँड़।

सृगालकोलि-संज्ञा पुं० [सं०] बेर का पेड़ या फल।

सृगालघंटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तालमखाना। कोकिलाक्ष।

सृगालजंबु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तरबूज। गोडुंब। (२) झड़बेरी। छोटा बेर।

सृगालरूप-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

सृगालवदन-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम। (हरिवंश)

सृगालवास्तुक-संज्ञा पुं० [सं०] बथुआ साग का एक भेद।

सृगालविन्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन। पृश्निपर्णी।

सृगालवृंता-संज्ञा स्त्री० दे० "सृगालविन्ना"।

सृगालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सियारिन। गीदड़ी। (२) लोमड़ी। (३) विदारीकंद। भूमिकुष्मांड। (४) पलायन। भगदड़। (५) दंगाफसाद। हंगामा।

सृगालिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सियारिन। गीदड़ी।

सृगाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सियारिन। गीदड़ी। (२) लोमड़ी। (३) पलायन। भगदड़। (४) उपद्रव। हंगामा। (५) तालमखाना। कोकिलाक्ष। (६) विदारीकंद।

सृग्विनी॥-संज्ञा स्त्री० दे० "स्रग्विणी"।

सृजक॥-संज्ञा पुं० [सं० सृज्] सृष्टि करनेवाला। उत्पन्न करनेवाला। सर्जक।

सृजन॥-संज्ञा पुं० [सं० सृज्, सर्जन] (१) सृष्टि करने की क्रिया। उत्पादन। (२) सृष्टि। उत्पत्ति। (३) छोड़ना। निकालना।

सृजनहार॥-संज्ञा पुं० [सं० सृज्, सर्जन+हिं० हार] सृष्टिकर्ता। सृष्टि रचनेवाला। उत्पन्न करनेवाला। बनानेवाला।

सृजना॥-क्रि० स० [सं० सृज्+हिं० ना (प्रत्य०)] सृष्टि करना। उत्पन्न करना। रचना करना। बनाना। उ०—(क) तपबल ते जग सृजइ बिधाता। तपबल बिष्णु भये परित्राता।—तुलसी। (ख) कत बिधि सृजी नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।—तुलसी। (ग) जाके अंश मोर अवतारा। पालत सृजत हरत संसारा—सबलसिंह। (घ) ए महि परहिं डासि कुसपाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता।—तुलसी।

सृजय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी।

सृजया-संज्ञा स्त्री० [सं०] नीलमक्षिका।

सृज्य-वि० [सं०] (१) जो उत्पन्न किया जानेवाला हो। (२) जो छोड़ा या निकाला जानेवाला हो।

सृणि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) चंद्रमा।

संज्ञा पुं० स्त्री० अंकुश।

सृणिक–संज्ञा पुं० [सं०] अंकुश।

संज्ञा स्त्री० थूक। निष्ठीवन। लार।

सृणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दाँती। हँसिया।

सृणीक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) अग्नि। (३) वज्र। (४) मदोन्मत्त या उन्मत्त व्यक्ति।

सृणीका–संज्ञा स्त्री० [सं०] थूक। लार।

सृत–वि० [सं०] (१) जो खिसक गया हो। सरका हुआ। (२) गत। जो चला गया हो।

सृता–संज्ञा स्त्री० [सं०] गमन। पलायन।

सृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मार्ग। रास्ता। (२) जन्म। (३) आवागमन। (४) निर्माण।

सृत्वन्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रजापति। (२) विसर्प। सरकना। (३) बुद्धि।

सृत्वरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] माता।

सृदर–संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप।

सृदाकु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) अग्नि। (३) वनाग्नि। दावानल। (४) वज्र। (५) गोध। गोह। (६) मृग। (७) नदी।

सृप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक असुर। (हरिवंश) (२) चंद्रमा।

सृपमन्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्प। (२) शिशु। (३) तपस्वी।

सृपाट–संज्ञा पुं० [सं०] फूल के नीचे की छोटी पत्ती।

सृपाटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] चोंच। चंचु।

सृपाटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] चोंच। चंचु।

सृप्र–वि० [सं०] (१) चिकना। स्निग्ध। (२) जिस पर हाथ या पैर फिसले।

संज्ञा पुं० (१) चंद्रमा। (२) मधु। शहद।

सृप्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम। सिप्रा नदी।

सृबिंद–संज्ञा पुं० [सं०] एक दानव जिसे इंद्र ने मारा था। (ऋग्वेद)

सृम–संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम।

सृमर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का पशु (किसी के मत से बाल मृग)। (२) एक असुर का नाम।

सृमल–संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम। (हरिवंश)

सृष्ट–वि० [सं०] (१) उत्पन्न। पैदा। (२) निर्मित। रचित। (३) युक्त। (४) छोड़ा हुआ। निकाला हुआ। (५) त्यागा हुआ। (६) निश्चित। संकल्प में दृढ़। तैयार। (७) बहुल। (८) अलंकृत। भूषित।

संज्ञा पुं० सेंदू। तिंदुक।

सृष्टमारुत–वि० [सं०] पेट की वायु को निकालनेवाला। (सुश्रुत)

सृष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्पत्ति। पैदाइश। बनने या पैदा होने की क्रिया या भाव। (२) निर्माण। रचना। बनावट। (३) संसार की उत्पत्ति। जगत् का आविर्भाव। दुनिया की पैदाइश। (४) उत्पन्न जगत्। संसार। दुनिया। चराचर पदार्थ। जैसे,—सृष्टि भर में ऐसा कोई न होगा। (५) प्रकृति। निसर्ग। कुदरत। (६) दानशीलता। उदारता। (७) गंभारी का पेड़। खंभारी। (८) एक प्रकार की ईंट जो यज्ञ की वेदी बनाने के काम में आती थी।

संज्ञा पुं० उग्रसेन के एक पुत्र का नाम।

सृष्टिकर्त्ता–संज्ञा पुं० [सं० सृष्टिकर्तृ] (१) सृष्टि या संसार की रचना करनेवाला, ब्रह्मा। (२) ईश्वर।

सृष्टिकृत्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सृष्टिकर्त्ता। (२) पित्तपापड़ा। पर्पटक।

सृष्टिदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

सृष्टिप्रत्तन–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मंत्रशक्ति।

सृष्टिप्रदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भदात्री क्षुप। श्वेत कंटकारी। सफेद भटकटैया।

सृष्टिविज्ञान–संज्ञा पुं० [सं०] वह विज्ञान या शास्त्र जिसमें सृष्टि की रचना आदि पर विचार किया गया हो।

सृष्टिशास्त्र–संज्ञा पुं० दे० "सृष्टिविज्ञान"।

सेंक–संज्ञा स्त्री० [हिं० सेंकना] (१) आँच के पास या दहकते अंगारे पर रखकर भूनने की क्रिया। (२) आँच के द्वारा गरमी पहुँचाने की क्रिया। जैसे,—दर्द में सेंक से बहुत लाभ होगा।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।

यौ०—सेंकसाँक।

संज्ञा स्त्री० लोहे की कमाची जिसका व्यवहार छीपी कपड़े छापने में करते हैं।

सेंकना–क्रि० स० [सं० श्रेपण = जलाना, तपाना] (१) आँच के पास या आग पर रखकर भूनना। जैसे,—रोटी सेंकना। (२) आँच के द्वारा गरमी पहुँचाना। आँच दिखाना। आग के पास ले जाकर गरम करना। जैसे,—हाथ पैर सेंकना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

मुहा०—आँख सेंकना = सुंदर रूप देखना। नजारा मारना। धूप सेंकना = धूप में रहकर शरीर में गरमी पहुँचाना। धूप खाना।

सेंकी–संज्ञा स्त्री० [प्रा० सीनी, हिं० सीनिकी, सनहकी] तश्तरी। रकाबी।

सेंगर–संज्ञा पुं० [सं० शृंगार] (१) एक पौधा जिसकी फलियों की तरकारी बनती है। (२) इस पौधे की फली। (३) बबूल की फली या छीमी जो भेंस, बकरी, ऊँट आदि को खाने को दी जाती है। (४) एक प्रकार का अगहनी धान जिसका चावल बहुत दिनों तक रहता है।

संज्ञा पुं० [सं० शृंगीवर] क्षत्रियों की एक जाति या शाखा। उ०—कूरप, राठौर, गौड़, हाड़ा, चहुवान, मौर, तोमर,

चँदेल, जादौ अंग जितवार हैं। पौरच, पुंडीर, परिहार औ पँवार बैस, सेंगर, सिसोदिया, सुलंकी दिसवार हैं।—सूदन।

सेंगरा—संज्ञा पुं० [देश०] वह डंडा जिसमें लटका कर भारी पत्थर या धरन एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं।

सेंजी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो पंजाब में को चौपायों खिलाई जाती है।

विशेष—यह कपास के साथ बोई जाती है।

सेंटर—संज्ञा पुं० [अं०] (१) गोलाई या वृत्त के बीच का विंदु। केंद्र। मध्यविंदु। (२) प्रधान स्थान। जैसे,—परीक्षा का सेंटर।

सेंठा—संज्ञा पुं० [देश०] (१) मूँज या सरकंडे के सींके का निचला मोटा मजबूत हिस्सा जो मोढ़े आदि बनाने के काम में आता है। कंडा। (२) एक प्रकार की घास जो छप्पर छाने के काम में आती है। (३) जुलाहों की वह पोली लकड़ी जिसमें ऊरी फँसाई जाती है। ढाँड़।

सेंढ़—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का खनिज पदार्थ जिसका व्यवहार सुनार करते हैं।

सेंत—संज्ञा स्त्री० [सं० संहति = (१) किफायत, (२) समूह, राशि] (१) कुछ व्यय का न होना। पास का कुछ न लगना। कुछ खर्च न होना।

यौ०—सेंतमेंत।

मुहा०—सेंत का = (१) जिसमें कुछ दाम न लगा हो। जो बिना मूल्य दिए मिले। जिसके मिलने में कुछ खर्च न हो। मुफ्त का। जैसे,—(क) सेंत का सौदा नहीं है। (ख) सेंत की चीज की कोई परवा नहीं करता। ꣸† (२) बहुत सा। ढेर का ढेर। बहुत ज्यादा। उ०—(क) चलहु जु मिलि उनहीं पै जैये, जिन्ह तुम टोकन पंथ पठाए। सखा संग लीने जु सेंति के फिरत रैनि दिन बन में धाए। नाहिंन राज कंस को जान्यो बाट रोकते फिरत पराए।—सूर। (ख) अपनो गाँव लेहु नँदरानी। बड़े बाप की बेटी तातें पूतहि भले पढ़ावति बानी।......सुनु मैया! याके गुन मोसों, इन मोहिं लियो बुलाई। दधि [illegible] परी सेंति की चींटी, सो पै सबै बढ़ाई।—सूर। (यह मुहावरा पूरबी अवधी का है और बस्ती, गोंडे, फैजाबाद आदि जिलों में बोला जाता है)। सेंत में = (१) बिना कुछ दाम दिए। बिना कुछ खर्च किए। बिना मूल्य के। मुफ्त में। जैसे,—यह घड़ी मुझे सेंत में मिल गई। (२) व्यर्थ। निष्प्रयोजन। फजूल। जैसे,—क्यों सेंत में झगड़ा लेते हो।

सेंतना꣸†—क्रि० स० दे० "सैंतना"।

सेंतमेंत—क्रि० वि० [हिं० सेंत + मेंत (अनु०)] (१) बिना दाम दिए। मुफ्त में। फोकट में। सेंत में। उ०—कलकी और मलीन बहुत में सेंतमेंत बिकाऊँ।—सूर। (२) वृथा। फजूल। निष्प्रयोजन। बेमतलब। जैसे,—क्यों सेंतमेंत झगड़ा मोल लेते हो?

सेंति, सेंती꣸†—संज्ञा स्त्री० दे० "सेंत"।

प्रत्य० [प्रा० सुंतो; पंचमी विभक्ति] पुरानी हिंदी की करण और अपादान की विभक्ति। से। उ०—(क) तोहि पीर जो प्रेम की पाका सेंती खेल।—कबीर। (ख) हिंदू व्रत एकादसि साधैं दूध सिंघाड़ा सेंती।—कबीर। (ग) राजा सेंति कुँवर सब कहहीं। अस अस मच्छ समुद महँ अहहीं।—जायसी। (घ) संजीवनि तब कपहि पढ़ाई। ता सेंती यों कह्यो समुझाई।—सूर।

सेंथा†—संज्ञा पुं० दे० "सेंठा"।

सेंथी†—संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] बरछी। भाला। शक्ति। शर्वला। उ०—इंद्रजीत लीनी जब सेंथी देवन हहा कर्यो। छूटी बिज्जु राशि वह मानो भूतल बंधु पर्यो।—सूर।

सेंद†—संज्ञा स्त्री० दे० "सेंध"।

सेंदुर꣸†—संज्ञा पुं० [सं० सिन्दूर] ईंगुर की बुकनी। सिंदूर। उ०—(क) माँग मैं सेंदुर सोहि रह्यो गिरधारन है उपमा न तिहूँ पुर। मानो मनोज की लागी कृपान, पर्यो कढ़ि बीच गै राहु बहादुर।—सुंदरीसर्वस्व। (ख) बिन सेंदुर जानउँ मैं दिया। उँजियर पंथ रहनि मँह किया।—जायसी।

विशेष—सौभाग्यवती हिंदू स्त्रियाँ इसे माँग में भरती हैं। यह सौभाग्य का चिह्न माना जाता है। विवाह के समय वर कन्या की माँग में सिंदूर डालता है और उसी घड़ी से वह उसकी स्त्री हो जाती है।

क्रि० प्र०—पहनना।—देना।—भरना।—लगाना।

मुहा०—सेंदुर चढ़ना = स्त्री का विवाह होना। सेंदुर देना = विवाह के समय पति का पत्नी की माँग भरना। उ०—राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जात बिधि केहीं।—तुलसी।

सेंदुरदानी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० सेंदुर + फा० दानी] सिंदूर रखने की डिबिया। सिंदूरा।

सेंदुरा—वि० [हिं० सेंदुर] [स्त्री० सेंदुरी] सिंदूर के रंग का। लाल। जैसे,—सेंदुरी गाय। सेंदुरा आम।

संज्ञा पुं० सिंदूर रखने का डिब्बा। सिंदूरा।

सेंदुरिया—संज्ञा पुं० [सं० सिंदूरिका, सिंदूरी] एक सदाबहार पौधा जिसमें सिंदूर के रंग के लाल फूल लगते हैं।

विशेष—इसके पत्ते ६-७ अंगुल लंबे और ४-५ अंगुल चौड़े नुकीले और अरवी के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं। फूल दो ढाई अंगुल के घेरे में पाँच दलों के और सिंदूर के रंग के लाल होते हैं। इस पौधे की गुलाबी, बैंगनी और सफेद फूलवाली जातियाँ भी होती हैं। गरमी के दिनों में यह फूलता है और बरसात के अंत में इसमें फल लगने लगते हैं। फल लंबोतरे, गोल, ललाई लिए भूरे तथा कोमल महीन महीन काँटों से युक्त होते हैं। गूदे का रंग लाल होता है। गूदों के भीतर जो बीज होते हैं, उन्हें पानी में

डालने से पानी लाल हो जाता है। बहुत स्थानों पर रंग के लिये ही इस पौधे की खेती होती है। शोभा के लिये यह बगीचों में भी लगाया जाता है। आयुर्वेद में यह कड़वा, चरपरा, कसैला, हलका, शीतल तथा विषदोष, वातपित्त, वमन, माथे की पीड़ा आदि को दूर करनेवाला माना गया है।

पर्य्या०—सिंदूरपुष्पी। सिंदूरी। तृणपुष्पी। रक्तबीजा। रक्तपुष्पी। वीरपुष्पा। करच्छदा। शोणपुष्पी।

वि० सिंदूर के रंग का। खूब लाल।

यौ०—सेंदुरिया आम = वह आम का फल जिसका छिलका लाल रंग का हो।

सेंदुरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० सेंदुर] लाल गाय। उ०—कजरी धुमरी सेंदुरी धौरी मेरी गैया। दुहि ल्याऊँ मैं तुरत ही तू करि दे छैया।—सूर।

सेंद्रिय–वि० [सं०] (१) इंद्रिय-संपन्न। जिसमें इंद्रियाँ हों। सजीव। जैसे,—सेंद्रिय द्रव्य। (२) पुरुषत्वयुक्त। जिसमें मरदानगी हो। पुंसत्वयुक्त।

सेंध–संज्ञा स्त्री० [सं० संधि] चोरी करने के लिये दीवार में किया हुआ बड़ा छेद जिसमें से होकर चोर किसी कमरे या कोठरी में घुसता है। संधि। सुरंग। सेन। नकब।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।—लगाना।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) खीरा ककड़ी। फूट। मृगेर्वारु। (२) पेहँटा। कचरी।

सेंधना–क्रि० स० [हिं० सेंध] सेंध या सुरंग लगाना।

सेंधा–संज्ञा पुं० [सं० सैंधव] एक प्रकार का नमक जो खान से निकलता है। सैंधव। लाहौरी नमक।

विशेष—इसकी खानें खेवड़ा, शाहपुर, कालाबाग और कोहाट में हैं। यह सब नमकों में श्रेष्ठ है। वैद्यक में यह स्वादु, दीपक, पाचक, हलका, स्निग्ध, रुचिकारक, शीतल, वीर्यवर्द्धक, सूक्ष्म, नेत्रों के लिये हितकारी तथा त्रिदोषनाशक माना गया है। इसे 'लाहौरी नमक' भी कहते हैं।

सेंधिया–वि० [हिं० सेंध] सेंध लगानेवाला। दीवार में छेद करके चोरी करनेवाला। जैसे,—सेंधिया चोर।

संज्ञा पुं० [सं० सेंड] (१) ककड़ी की जाति की एक बेल जिसमें तीन चार अंगुल के छोटे छोटे फल लगते हैं। कचरी। सेंध। पेहँटा। (२) फूट।

विशेष—यह खेतों में प्रायः आप से आप उपजता है।

(३) एक प्रकार का विष।

संज्ञा पुं० [मरा० शिंदे] ग्वालियर का प्रसिद्ध मराठा राजवंश जिसके संस्थापक राणजी शिंदे थे।

सेंधी–संज्ञा स्त्री० [सिंध (देश) जहाँ खजूर बहुत होता है। मरा० शिंदी] (१) खजूर। (२) खजूर की शराब। मीठी शराब।

संज्ञा स्त्री० [सं० सेंड] (१) खेत की ककड़ी। फूट। (२) कचरी। पेहँटा।

सेंधुर†–संज्ञा पुं० दे० "सेंदुर"।

सेंभा–संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ों का एक वात रोग।

सेंवई–संज्ञा स्त्री० [सं० सेविका] मैदे के सुखाए हुए सूत के से लच्छे जो घी में तल कर और दूध में पका कर खाए जाते हैं।

मुहा०—सेंवई पूरना या बटना = गुँधे हुए मैदे को हथेलियों से रगड़ रगड़ कर सूत के आकार में बढ़ाते जाना।

सेंवर⊛†–संज्ञा पुं० दे० "सेमल"। उ०—(क) बार बार निशि दिन अति आतुर फिरत दसो दिशि धाये। ज्यों शुक सेंवर फूल विलोकत जात नहीं विन खाये।—सूर। (ख) राजै कहा सत्य कहु सूआ। बिनु सत अस सेंवर कर भूआ।—जायसी।

सेंह†–संज्ञा स्त्री० दे० "सेंध"।

सेंहा–संज्ञा पुं० [हिं० सेंध] कूआँ खोदनेवाला। कुहरा।

संज्ञा स्त्री० दे० "सेंधि"।

सेंही†–संज्ञा स्त्री० दे० "सेंध"।

सेंहुआ–संज्ञा पुं० दे० "सेहुआँ"।

सेंहुड़–संज्ञा पुं० [सं० सेहुण्ड] थूहर। वि० दे० "थूहर"। उ०—छती नेह कागद हिये भई लखाइ न टाँक। बिरह तचें उघर्‍यो सु अब सेंहुड़ को सो आँक।—बिहारी।

से–प्रत्य० [प्रा० हिंतो, पु० हिं० सेंति] करण और अपादान कारक का चिह्न। तृतीया और पंचमी की विभक्ति। जैसे,—(क) मैं ने अपनी आँखों से देखा। (ख) पेड़ से फल गिरा। (ग) वह तुम से बढ़ जायगा।

वि० [हिं० 'सा' का बहुवचन] समान। सदृश। सम। जैसे,—इसमें अनार से फल लगते हैं। उ०—नासिका सरोज गंधवाह से सुगंधवाह, दारयों से दसन, कैसो बीजुरो सो हास है।—केशव।

⊛ सर्व० [हिं० 'सो' का बहुवचन] वे। उ०—अवलोकिहौं सोच विमोचन को ठगि सी रही, जो न ठगे धिक से।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेवा। खिदमत। (२) कामदेव की पत्नी का नाम।

सेई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० सेर] अनाज नापने का काठ का एक गहरा बरतन।

सेउ⊛†–संज्ञा पुं० दे० "सेव"। उ०—खिरिमिरि सेउ फरे नउ पाता। दारिउँ दाख देखि मन राता।—जायसी।

सेकंड–संज्ञा पुं० [अं०] एक मिनट का ६० वाँ भाग।

वि० दूसरा। जैसे,—सेकंड पार्ट।

सेक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल-सिंचन। सिंचाव। (२) जल प्रक्षेप। सेचन। छिड़काव। छींटा। मार्जन। तर करना।

(३) अभिषेक। (४) तैल-सेचन या मर्दन। तेल लगाना या मलना। (वैद्यक) (५) एक प्राचीन जाति का नाम।

सेकड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] वह चाबुक या छड़ी जिससे हलवाहे बैल हाँकते हैं। पैना।

सेकतव्य–वि० [सं०] (१) सींचने योग्य। (२) जिसे सींचना या तर करना हो।

सेकपात्र–संज्ञा पुं० [सं०] सींचने का बरतन। डोल। डोलची।

सेकभाजन–संज्ञा पुं० दे० "सेकपात्र"।

सेकमिथाम्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह खाद्य पदार्थ जिसमें दही पड़ा हो।

सेकिम–वि० [सं०] सींचा हुआ। तर किया हुआ। (२) ढाला हुआ (लोहा)।
संज्ञा पुं० [सं०] मूली। मूलक।

सेकुआ–संज्ञा पुं० [देश०] काठ के दस्ते का लंबा करछा या डौवा जिससे हलवाई दूध औटाते हैं।

सेकुरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] धान। (सुनार)

सेक्ता–वि० [सं० सेक्तृ] [स्त्री० सेक्त्री] (१) सींचनेवाला। (२) बरदानेवाला। जो गाय, घोड़ी आदि को बरदाता है।
संज्ञा पुं० पति। शौहर।

सेक्तृ–संज्ञा पुं० [सं०] सींचने का बरतन। जल उलीचने का बरतन। डोल। डोलची।

सेक्रेटरी–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह उच्च कर्मचारी या अफसर जिसके अधीन सरकार या शासन का कोई विभाग हो। मंत्री। सचिव। जैसे,—फारेन सेक्रेटरी। स्टेट सेक्रेटरी। (२) वह पदाधिकारी जिस पर किसी संस्था के कार्य संपादन का भार हो। जैसे,—कांग्रेस सेक्रेटरी। (३) वह व्यक्ति जो दूसरे की ओर से उसके आदेशानुसार पत्र व्यवहार आदि करे। मुंशी। जैसे,—महाराज के सेक्रेटरी।

सेक्रेटेरियट–संज्ञा पुं० [अं०] किसी सरकार के सेक्रेटरियों का का कार्यालय या दफ्तर। शासक या गवर्नर का दफ्तर।

सेक्शन–संज्ञा पुं० [अं०] विभाग। जैसे,—इस दरजे में दो सेक्शन हैं।

सेख–संज्ञा पुं० दे० "शेष" (८)। उ०—महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेख।—तुलसी।
संज्ञा पुं० दे० "शेष" (४)। उ०—पियत वात तन सेख कियो द्विज रात विहरि वन। मिटै वासना नाहिं बिना हरि पद रज के तन।—सुधाकर।
संज्ञा पुं० दे० "शेख"। उ०—इनमें इते बलवान हैं। उत सेख मुगल पठान हैं।—सूदन।

सेखर–संज्ञा पुं० दे० "शेखर"। उ०—मोर मुकुट की चंद्रिकन यौं राजत नँदनंद। मनु ससि-सेखर को अकस किये सेखर सतचंद।—बिहारी।

सेखावत–संज्ञा पुं० [फा० शेख] राजपूतों की एक जाति या शाखा। शेखावत।
विशेष—इनका स्थान राजपूताने का शेखावाटी नाम का कसबा है।

सेखी‡–संज्ञा स्त्री० दे० "शेखी"।

सेगव–संज्ञा पुं० [सं०] केकड़े का बच्चा।

सेगा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) विभाग। महकमा। (२) विषय। पढ़ाई या विद्या का कोई क्षेत्र। जैसे,—वह इम्तहान में दो सेगों में फेल हो गया।

सेगुन‡–संज्ञा पुं० दे० "सागोन"।

सेगोन, सेगौन–संज्ञा पुं० [देश०] मटमैले रंग की लाल मिट्टी जो नालों के पास पाई जाती है।

सेचक–वि० [सं०] सींचनेवाला। छिड़कनेवाला। तर करनेवाला।
संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

सेचन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० सेचनीय, सेचित, सेच्य] (१) जल सिंचन। सिंचाई। (२) मार्जन। छिड़काव। छींटे देना। (३) अभिषेक। (४) ढलाई (धातु की)। (५) (नाव से) जल उलीचने का बरतन। लोहँदी।

सेचनक–संज्ञा पुं० [सं०] अभिषेक।

सेचनघट–संज्ञा पुं० [सं०] वह बरतन जिससे जल सींचा जाता है।

सेचनीय–वि० [सं०] सींचने योग्य। छिड़कने योग्य।

सेचित–वि० [सं०] (१) जो सींचा गया हो। तर किया हुआ। (२) जिस पर छींटे दिए गए हों।

सेच्य–वि० [सं०] (१) सींचने योग्य। जल छिड़कने योग्य। (२) जिसे सींचना हो। जिसे तर करना हो।

सेछागुन–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पक्षी।

सेज–संज्ञा स्त्री० [सं० शय्या, प्रा० सज्जा] शय्या। पलंग और बिछौना। उ०—(क) सेज रुचिर रुचि राम उठाये। प्रेम समेत पलँग पौढ़ाये।—तुलसी। (ख) चाँदनी महल फैल्यो चाँदनी फरस सेज, चाँदनी बिछाय छबि चाँदनी रिते रही।—प्रतापसाहि।

सेजपाल–संज्ञा पुं० [सं० शय्यापाल, हिं० सेज+पाल] राजा की शय्या या सेज पर पहरा देनेवाला। शयन-गृह पर पहरा देनेवाला। शयनागार-रक्षक। शय्यापाल। उ०—राजा उस समय शय्या पर पौढ़े थे और सेजपाल लोग अस्त्र बाँधे पहरा दे रहे थे।—गदाधरसिंह।

सेजरिया‡–संज्ञा स्त्री० दे० "सेज"। उ०—रस रँग पगी है देखो लाल की सेजरिया।—कबीर।

सेजा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जो आसाम और बंगाल में होता है और जिस पर टसर के कीड़े पाले जाते हैं।

सेजिया‡–संज्ञा स्त्री० दे० "सेज"।

सेज्या–संज्ञा स्त्री० दे० "शय्या"। उ०—सूर स्याम सुख जानि मुदित मन सेज्या पर सँग लै पौढ़ावति।—सूर।

सेभ्रदादि%—संज्ञा पुं० दे० "सह्याद्रि"। उ०—सेभ्रदादि तें गिरि बहु रहई। गंगादिक सरिता बहु बहई।—रघुनाथदास।

सेभना—क्रि० अ० [सं० सेधन=दूर करना, हटाना] दूर होना। हटना। उ०—सो दारू किस काम की जानें दरद न जाइ। दादू काटइ रोग को सो दारू ले लाइ। अनुभव काटइ रोग को अनहद उपजइ आइ। सेभे कायर निर्मला पीवइ रुचि ल्व लाइ।—दादू।

सेर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तौल या मान।

संज्ञा पुं० [देश०] आँख, नाक, उपस्थ आदि के बाल या रोएँ।

संज्ञा पुं० [अं०] एक ही प्रकार या मेल की कई चीज़ों का समूह। जैसे,—किताबों का सेट, खाने के बरतनों का सेट।

सेटना%†—क्रि० अ० [सं० श्रत्=विश्वास करना] (१) समझना। मानना। उ०—जो कलिकाल भुजंग भय मेटत। शरणागत भवरुज लघु सेटत।—रघुराज। (२) कुछ समझना। महत्त्व स्वीकार करना। जैसे,—अपने आगे वह किसी को नहीं सेटता।

सेटु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) खेत की ककड़ी। फूट। (२) कचरी। पेहँटा।

सेठ—संज्ञा पुं० [सं० श्रेष्ठी] [स्त्री० सेठानी] (१) बड़ा साहूकार। महाजन। कोठीवाल। (२) बड़ा या थोक व्यापारी। (३) धनी मनुष्य। मालदार आदमी। लखपती। (४) धनी और प्रतिष्ठित वणिकों की उपाधि। (५) खत्रियों की एक जाति। (६) दलाल। (हिं०) †(७) सुनार।

सेठन—संज्ञा पुं० [देश०] झाड़ू। बुहारी।

सेठा—संज्ञा पुं० दे० "सेंठा"।

सेढ़ा†—संज्ञा पुं० [देश०] भादों में होनेवाला एक प्रकार का धान।

सेढ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० चेटि, प्रा० चेडि, हिं० चेरी] सहेली। सखी। (हिं०)

सेड़—संज्ञा पुं० [अं० सेल] बादबान। पाल। (लश०)

मुहा०—सेड़ करना=पाल लगाना। जहाज खोलना। सेड़ खोलना=पाल उतारना। (लश०) सेड़ बजाना=पाल में से हवा निकालना जिसमें वह लपेटा जा सके। (लश०) सेड़ सपटाना=रस्से को खींचकर पाल तानना।

सेड़खाना—संज्ञा पुं० [अं० सेल+फा० खाना] (१) जहाज में वह कमरा या कोठरी जिसमें पाल भरे रहते हैं। (२) वह कमरा या कोठरी जहाँ पाल काटे और बनाए जाते हैं। (लश०)

सेढ़ा†—संज्ञा पुं० दे० "मेढ़ा"।

सेत%—संज्ञा पुं० दे० "सेतु"। उ०—काज कियो नहिं सभै पर पछताने फिरि काह। सूखी सरिता सेत ज्यौं जोवन बिनै बियाह।—दीनदयाल।

%†वि० दे० "श्वेत"। उ०—पैन्हे सेत सारी बैठी फानुस के पास प्यारी, कहत बिहारी प्राण प्यारी धौं कितै गई।—दूलह।

सेतकुली—संज्ञा पुं० [सं० श्वेतकुलीय] सर्पों के अष्टकुल में से एक। सफ़ेद जाति के नाग। उ०—मोको तुम अब यज्ञ करावहु। तक्षक कुटुँब समेत जरावहु। विप्रन सेतकुली जब जारी। तब राजा तिनसों उचारी।—सूर।

सेतदीप%—संज्ञा पुं० दे० "श्वेतद्वीप"।

सेतद्युति%—संज्ञा पुं० [सं० श्वेतद्युति] चंद्रमा।

सेतना†—क्रि० स० दे० "सैंतना"।

सेतबंध‡—संज्ञा पुं० दे० "सेतुबंध"।

सेतवा—संज्ञा पुं० [सं० शुक्ति, हिं० सितुही] पतले लोहे की करछी जिससे अफ़ीम काछते हैं।

सेतवारी†—संज्ञा स्त्री० [सं० सिकता=बालू+वारी (प्रत्य०)] हरापन लिए हुए बलुई चिकनी मिट्टी।

सेतसाल—संज्ञा पुं० [देश०] थैरयों की एक जाति।

सेतवाह%—संज्ञा पुं० [सं० श्वेतवाहन] (१) अर्जुन। (२) चंद्रमा। (डिं०)

सेतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० साकेत ?] अयोध्या।

सेतु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंधन। बँधाव। (२) मिट्टी का ऊँचा पटाव जो कुछ दूर तक चला गया हो। बाँध। धुस्स। (३) मेंड़। डाँड़। (४) किसी नदी, जलाशय, गड्ढे, खाईं आदि के आरपार जाने का रास्ता जो लकड़ी, बाँस, लोहे आदि बिछाकर या पक्की जोड़ाई करके बना हो। पुल। उ०—आयसु जानि भानुकुल केतू। सरितन्ह जनक बँधाए सेतू।—तुलसी।

क्रि० प्र०—बनाना।—बाँधना।

(५) सीमा। हदबंदी। (६) मर्यादा। नियम या व्यवस्था। प्रतिबंध। उ०—असुर मारि थापहि सुरन्ह राखहिं निज श्रुतिसेतु। जग बिस्तारहिं बिसद जस, रामजनम कर हेतु।—तुलसी। (७) प्रणव। ओंकार। (८) टीका या व्याख्या। (९) वरुण वृक्ष। बरना। (१०) एक प्राचीन स्थान। (११) द्रुह्यु के एक पुत्र और बभ्रु के भाई का नाम।

%वि० दे० "श्वेत"।

सेतुक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुल। (२) बाँध। धुस्स। (३) वरुण वृक्ष। बरना।

सेतुकर—संज्ञा पुं० [सं०] सेतु-निर्माता। पुल बनानेवाला।

सेतुकर्म—संज्ञा पुं० [सं० सेतुकर्मन्] सेतु या पुल बनाने का काम।

सेतुज—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिणापथ के एक स्थान का नाम।

सेतुपति—संज्ञा पुं० [सं०] रामनद के (जो मद्रास प्रदेश के मदुरा ज़िले के अंतर्गत है) राजाओं की वंश परंपरागत उपाधि।

सेतुप्रद—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण का एक नाम।

सेतुबंध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुल की बँधाई। (२) वह पुल जो लंका पर चढ़ाई के समय रामचंद्र जी ने समुद्र पर बँधवाया था।

विशेष—नल नील ने बंदरों की सहायता से शिलाएँ पाटकर यह पुल बनाया था। वाल्मीकि ने यहाँ शिव की स्थापना का कोई उल्लेख नहीं किया है। केवल लंका से लौटते समय रामचंद्र ने सीता से कहा है—"यहाँ पर सेतु बाँधने के पहले शिव ने मेरे ऊपर अनुग्रह किया था।" (युद्धकांड १२५वाँ अध्याय।) पर अध्यात्म आदि पिछली रामायणों में शिव की स्थापना का वर्णन है। इस स्थान पर रामेश्वर महादेव का दर्शन करने के लिये लाखों यात्री जाया करते हैं। 'सेतुबंध रामेश्वर' हिंदुओं के चार मुख्य धामों में से एक है। आजकल कन्याकुमारी और सिंहल के बीच के छिछले समुद्र में स्थान स्थान पर जो चट्टानें निकली हैं, वे ही उस प्राचीन सेतु के चिह्न बतलाई जाती हैं।

सेतुबंधन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेतु निर्माण। पुल बाँधना। (२) पुल। (३) बाँध। मेड़।

सेतुबंध रामेश्वर–संज्ञा पुं० दे० "सेतुबंध"(२) और "रामेश्वर"।

सेतुभेद–संज्ञा पुं० [सं०] सेतु भंग। पुल का टूटना। बाँध का टूटना।

सेतुभेदी–संज्ञा पुं० [सं० सेतुभेदिन्] दंती। उदुंबरपर्णी। तिरीफल।

सेतुवा†–संज्ञा पुं० दे० "सूस"। उ०—सोइ भुजाइ सेतुवा बनवायो। तामें चारिउ भाग लगायो।—रघुनाथदास।

सेतुवृक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] वरुण वृक्ष। बरना।

सेतुशैल–संज्ञा पुं० [सं०] वह पहाड़ जो दो देशों के बीच में हो। सरहद का पहाड़।

सेतुषाम–संज्ञा पुं० [सं० सेतुषामन्] एक साम का नाम।

सेत्र–संज्ञा पुं० [सं०] बेड़ी। जंजीर। शृंखला।

सेथिया-संज्ञा पुं० [तेलगु० चेट्टि, चेट्टिया, हिं० सेठिया] नेत्रों की चिकित्सा करनेवाला। आँखों का इलाज करनेवाला।

सेद⊛–संज्ञा पुं० दे० "स्वेद"। उ०—कान में कामिनी के यह आनिकै बोल परयो जनु बज्र सो मायो। सूखि गयो अँग पीरो भयो रँग, सेद कपोलन में सँग धायो।—रघुनाथ बंदीजन।

सेदज⊛-वि० दे० "स्वेदज"। उ०—बिन सनेह दुख होय न कैसे। शुक मूषक सुत सेदज जैसे।—रघुनाथदास।

सेदरा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सेह = तीन + दर = दरवाजा] वह मकान जो तीन तरफ से खुला हो। तिदरी।

सेदुक-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम। (महाभारत)

सेद्धव्य-वि० [सं०] (१) निवारण योग्य। हटाने या दूर करने योग्य। (२) जिसे हटाना या दूर करना हो।

सेध-संज्ञा पुं० [सं०] निषेध। निवारण। मनाही।

सेधक-वि० [सं०] प्रतिरोधक। हटाने या रोकनेवाला।

सेधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] साही नाम का जानवर जिसकी पीठ पर काँटे होते हैं। खारपुश्त।

सेन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर। (२) जीवन। (३) बंगाल की वैद्य जाति की उपाधि। (४) एक भक्त नाई।

विशेष—इसकी कथा भक्तमाल में इस प्रकार है। यह रीवाँ के महाराज राजाराम की सेवा में था और बड़ा भारी भक्त था। एक दिन साधु-सेवा में लगे रहने के कारण वह समय पर राजसेवा के लिये न पहुँच सका। उस समय भगवान् ने इसका रूप धर कर राजभवन में जाकर इसका काम किया। यह वृत्तांत ज्ञात होने पर यह विरक्त हो गया और राजा भी परम भक्त हो गए।

(५) एक राक्षस का नाम।

वि० [सं०] (१) जिसके सिर पर कोई मालिक हो। सनाथ। (२) आश्रित। अधीन। ताबे।

संज्ञा पुं० [सं० श्येन] बाज पक्षी। उ०—ज्यों गच काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की। टूटत अति आतुर अहारबस, छति बिसारि आनन की।—तुलसी।

⊛ संज्ञा स्त्री० दे० "सेना"। उ०—हय गय सेन चले जग पूरी।—जायसी।

‡ संज्ञा स्त्री० दे० "सेंध"।

सेनक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शंबर के एक पुत्र का नाम। (हरिवंश) (२) एक वैयाकरण का नाम।

सेनजित्–वि० [सं०] सेना को जीतनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) एक राजा का नाम। (२) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। (३) विश्वजित् के एक पुत्र का नाम। (४) बृहत्कर्मा के एक पुत्र का नाम। (५) कृशाश्व के एक पुत्र का नाम। (६) विशद के एक पुत्र का नाम।

संज्ञा स्त्री० एक अप्सरा का नाम।

सेनप–संज्ञा पुं० [सं० सेना + प = पति] सेनापति। उ०—सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृप गृह सरिस सदन सब केरे।—तुलसी।

सेनपति⊛–संज्ञा पुं० दे० "सेनापति"। उ०—कपि पुनि उपवन बारिहु तोरी। पंच सेनपति सेन मरोरी।—पद्माकर।

सेनवंश–संज्ञा पुं० [सं०] बंगाल का एक हिंदू राजवंश जिसने ११वीं शताब्दी से १४वीं शताब्दी तक राज्य किया था।

सेनस्कंध–संज्ञा पुं० [सं०] शंबर के एक पुत्र का नाम। (हरिवंश)

सेनांग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेना का कोई एक अंग। जैसे,—पैदल, हाथी, घोड़े, रथ। (२) फौज का हिस्सा। सिपाहियों का दल या टुकड़ी।

सेना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) युद्ध की शिक्षा पाए हुए और अस्त्रशस्त्र से सजे मनुष्यों का बड़ा समूह। सिपाहियों का गरोह। फौज। पल्टन।

विशेष—भारतीय युद्धकला में सेना के चार अंग माने जाते थे—पदाति, अश्व, गज और रथ। इन अंगों से पूर्ण समूह

सेना कहलाता था। सैनिकों या सिपाहियों को समय पर वेतन देने की व्यवस्था आजकल के समान ही थी। यह वेतन कुछ तो भत्ते या अनाज के रूप में दिया जाता था और कुछ नक़द। महाभारत (सभापर्व) में नारद ने युधिष्ठिर को उपदेश दिया है कि "कच्चिद्बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम्। सम्प्राप्तकाले दातव्यं ददासि न विकर्षसि" ॥ चतुरंग दल के अतिरिक्त सेना के और चार विभाग होते थे—विष्टि, नौका, चर और देशिक। सब प्रकार के सामान लदाने और पहुँचाने का प्रबंध 'विष्टि' कहलाता था। 'नौका' का भी लड़ाई में काम पड़ता था। चरों के द्वारा प्रतिपक्ष के समाचार मिलते थे। 'देशिक' स्थानीय सहायक हुआ करते थे जो अपने स्थान पर पहुँचने पर सहायता पहुँचाया करते थे। सेना के छोटे छोटे दलों को 'गुल्म' कहते थे।

पर्या०—चतुरंग। बल। ध्वजिनी। वाहिनी। पृतना। अनीकिनी। चमू। सैन्य। वरूथिनी। अनीक। चक्र। वाहना। गुल्मिनी। परचक्षु।

(२) भाला। बरछी। शक्ति। साँग। (३) इंद्र का वज्र। (४) इंद्राणी। (५) वर्तमान अवसर्पिणी के तीसरे अर्हत् शंभव की माता का नाम। (जैन) (६) एक उपाधि जो पहले अधिकतर वेश्याओं के नामों में लगी रहती थी। जैसे, वसंत सेना।

क्रि० स० [सं० सेवन] (१) सेवा करना। खिदमत करना। किसी को आराम देना या उसका काम करना। नौकरी बजाना। टहल करना। उ०—सेइय ऐसे स्वामि को जो राखै निज मान।—कबीर।

मुहा०—चरण सेना = तुच्छ से तुच्छ चाकरी बजाना।

(२) आराधना करना। पूजना। उपासना करना। उ०—(क) तातें सेइय श्री जदुराई। (ख) सेवत सुलभ उदार कल्पतरु पारवतीपति परम सुजान।—तुलसी। (३) नियमपूर्वक व्यवहार करना। काम में लाना। इस्तेमाल करना। नियम के साथ खाना पीना या लगाना। उ०—(क) आसव सेइ सिखाए सखीन के सुंदरि मंदिर में सुख सोवै।—देव। (ख) निपट लजीली नवल तिय बहँकि बारुनी सेइ। त्यों त्यों अति मीठी लगै ज्यों ज्यों ढीठो देइ।—बिहारी। (४) किसी स्थान को लगातार न छोड़ना। पड़ा रहना। निरंतर वास करना। जैसे—चारपाई सेना, कोठरी सेना, तीर्थ सेना। उ०—(क) सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी।—तुलसी। (ख) उत्तम थल सेवैं सुजन, नीच नीच के वंस। सेवत गीध मसान को, मानसरोवर हंस।—दीनदयाल। (५) लिए बैठे रहना। दूर न करना। जैसे,—फोड़ा सेना। (६) मादा चिड़िया का गरमी पहुँचाने के लिये अपने अंडों पर बैठना।

सेनाकक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] सेना का पार्श्व। फौज का बाज़ू।

सेनाकर्म—संज्ञा पुं० [सं० सेनाकर्मन्] (१) सेना का संचालन या व्यवस्था। (२) सेना का काम।

सेनागोप—संज्ञा पुं० [सं०] सेना का संरक्षक। सेना का एक विशेष अधिकारी।

सेनाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] सेना का अग्र भाग। फ़ौज का अगला हिस्सा।

सेनाचर—संज्ञा पुं० [सं०] सेना के साथ जानेवाला सैनिक। योद्धा। सिपाही।

सेनाजीव—संज्ञा पुं० दे० "सेनाजीवी"।

सेनाजीवी—संज्ञा पुं० [सं० सेनाजीविन्] वह जो सेना में रहकर अपनी जीविका चलावे। सैनिक। सिपाही। योद्धा।

सेनादार—संज्ञा पुं० [सं० सेना + फा० दार] सेनानायक। फौजदार। उ०—मल्हारराव हुल्कर भाग्य के बल से पेशवा बहादुर की सेना का सेनादार हो गया।—शिवप्रसाद।

सेनाधिकारी—संज्ञा पुं० [सं०] सेनानायक। फौज का अफसर।

सेनाधिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति। फौज का अफसर। सिपहसालार।

सेनाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] फौज का अफसर। सेनापति।

सेनाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] फौज का अफसर। सेनापति।

सेनाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति।

सेनाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] फौज का अफसर। सेनापति।

सेनानायक—संज्ञा पुं० [सं०] सेना का अफसर। फौजदार।

सेनानी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेनापति। फौज का अफसर। (२) कार्त्तिकेय का एक नाम। (३) एक रुद्र का नाम। (४) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (५) शंबर के एक पुत्र का नाम। (६) एक विशेष प्रकार का पाँसा।

सेनापति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेना का नायक। फौज का अफसर। (२) कार्त्तिकेय का एक नाम। (३) शिव का नाम। (४) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का एक नाम। (५) हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि का नाम।

सेनापत्य—संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति का कार्य या पद। सेनापति का अधिकार।

सेनापाल—संज्ञा पुं० [सं० सेना + पाल] सेनापति। उ०—दूसरे बोल्यो भूप तब सेनापाल बुलाय। धाइ सुदर्सा वीर जै सुरभी लेहु छुड़ाय।—सबलसिंह।

सेनापृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] सेना का पिछला भाग।

सेनाप्रणेता—संज्ञा पुं० [सं० सेनाप्रणेतृ] सेनानायक। फौज का मुखिया।

सेनामेघ—संज्ञा पुं० [सं० सेना + मेघ] शूरवीर (डिं०)

सेनाभिगोप्ता—संज्ञा पुं० [सं० सेनाभिगोप्तृ] सेना-रक्षक। सेनापति।

सेनामुख—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेना का अग्रभाग। (२) सेना का एक खंड जिसमें ३ या ९ हाथी, ३ या ९ रथ, ९ या

विशेष—नल नील ने बंदरों की सहायता से शिलाएँ पाटकर यह पुल बनाया था। वाल्मीकि ने यहाँ शिव की स्थापना का कोई उल्लेख नहीं किया है। केवल लंका से लौटते समय रामचंद्र ने सीता से कहा है—"यहाँ पर सेतु बाँधने के पहले शिव ने मेरे ऊपर अनुग्रह किया था।" (युद्धकांड १२५वाँ अध्याय।) पर अध्यात्म आदि पिछली रामायणों में शिव की स्थापना का वर्णन है। इस स्थान पर रामेश्वर महादेव का दर्शन करने के लिये लाखों यात्री जाया करते हैं। 'सेतुबंध रामेश्वर' हिंदुओं के चार मुख्य धामों में से एक है। आजकल कन्याकुमारी और सिंहल के बीच के छिछले समुद्र में स्थान स्थान पर जो चट्टानें निकली हैं, वे ही उस प्राचीन सेतु के चिह्न बतलाई जाती हैं।

सेतुबंधन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेतु निर्माण। पुल बाँधना। (२) पुल। (३) बाँध। मेड़।

सेतुबंध रामेश्वर—संज्ञा पुं० दे० "सेतुबंध"(२) और "रामेश्वर"।

सेतुभेद—संज्ञा पुं० [सं०] सेतु भंग। पुल का टूटना। बाँध का टूटना।

सेतुभेदी—संज्ञा पुं० [सं० सेतुभेदिन्] दंती। उदुंबरपर्णी। तिरीफल।

सेतुवा†—संज्ञा पुं० दे० "सूस"। उ०—सोइ भुजाइ सेतुवा बनवायो। तामें घारिउ भाग लगायो।—रघुनाथदास।

सेतुवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण वृक्ष। बरना।

सेतुशैल—संज्ञा पुं० [सं०] वह पहाड़ जो दो देशों के बीच में हो। सर-हद का पहाड़।

सेतुषाम—संज्ञा पुं० [सं० सेतुषामन्] एक साम का नाम।

सेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] बेड़ी। जंजीर। शृंखला।

सेथिया—संज्ञा पुं० [तेलगू० चेट्टि, चेट्टिया, हिं० सेठिया] नेत्रों की चिकित्सा करनेवाला। आँखों का इलाज करनेवाला।

सेदꕥ—संज्ञा पुं० दे० "स्वेद"। उ०—कान में कामिनी के यह आनिकै बोल परयो जनु वज्र सो घायो। सूखि गयो अँग पीरो भयो रँग, सेद कपोलन में सँग धायो।—रघुनाथ बंदीजन।

सेदजꕥ—वि० दे० "स्वेदज"। उ०—बिन सनेह सुख होय न कैसे। शुक मूषक सुत सेदज जैसे।—रघुनाथदास।

सेदरा—संज्ञा पुं० [फ़ा० सेह=तीन+दर=दरवाजा] वह मकान जो तीन तरफ से खुला हो। तिदरी।

सेदुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम। (महाभारत)

सेद्धव्य—वि० [सं०] (१) निवारण योग्य। हटाने या दूर करने योग्य। (२) जिसे हटाना या दूर करना हो।

सेध—संज्ञा पुं० [सं०] निषेध। निवारण। मनाही।

सेधक—वि० [सं०] प्रतिरोधक। हटाने या रोकनेवाला।

सेधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] साही नाम का जानवर जिसकी पीठ पर काँटे होते हैं। खारपुश्त।

सेन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर। (२) जीवन। (३) बंगाल की वैद्य जाति की उपाधि। (४) एक भक्त नाई।

विशेष—इसकी कथा भक्तमाल में इस प्रकार है। यह रीवाँ के महाराज राजाराम की सेवा में था और बड़ा भारी भक्त था। एक दिन साधु-सेवा में लगे रहने के कारण यह समय पर राजसेवा के लिये न पहुँच सका। उस समय भगवान् ने इसका रूप धर कर राजभवन में जाकर इसका काम किया। यह वृत्तांत ज्ञात होने पर यह विरक्त हो गया और राजा भी परम भक्त हो गए।

(५) एक राक्षस का नाम।

वि० [सं०] (१) जिसके सिर पर कोई मालिक हो। सनाथ। (२) आश्रित। अधीन। ताबे।

संज्ञा पुं० [सं० श्येन] बाज पक्षी। उ०—ज्यों गच काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की। टूटत अति आतुर अहारवस, छति बिसारि आनन की।—तुलसी।

ꕥ संज्ञा स्त्री० दे० "सेना"। उ०—हय गय सेन चलै जग पूरी।—जायसी।

‡ संज्ञा स्त्री० दे० "सैन"।

सेनक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शंबर के एक पुत्र का नाम। (हरिवंश) (२) एक वैयाकरण का नाम।

सेनजित्—वि० [सं०] सेना को जीतनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) एक राजा का नाम। (२) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। (३) विश्वजित् के एक पुत्र का नाम। (४) बृहत्कर्मा के एक पुत्र का नाम। (५) कृशाश्व के एक पुत्र का नाम। (६) विशद के एक पुत्र का नाम।

संज्ञा स्त्री० एक अप्सरा का नाम।

सेनप—संज्ञा पुं० [सं० सेना+प=पति] सेनापति। उ०—सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृप गृह सरिस सदन सब केरे।—तुलसी।

सेनपतिꕥ—संज्ञा पुं० दे० "सेनापति"। उ०—कपि पुनि उपवन बारिहु तोरी। पंच सेनपति सेन मरोरी।—पद्माकर।

सेनवंश—संज्ञा पुं० [सं०] बंगाल का एक हिंदू राजवंश जिसने ११वीं शताब्दी से १४वीं शताब्दी तक राज्य किया था।

सेनस्कंध—संज्ञा पुं० [सं०] शंबर के एक पुत्र का नाम। (हरिवंश)

सेनांग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेना का कोई एक अंग। जैसे,—पैदल, हाथी, घोड़े, रथ। (२) फ़ौज का हिस्सा। सिपाहियों का दल या टुकड़ी।

सेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) युद्ध की शिक्षा पाए हुए और अस्त्रशस्त्र से सजे मनुष्यों का बड़ा समूह। सिपाहियों का गरोह। फौज। पलटन।

विशेष—भारतीय युद्धकला में सेना के चार अंग माने जाते थे—पदाति, अश्व, गज और रथ। इन अंगों से पूर्ण समूह

सेना कहलाता था। सैनिकों या सिपाहियों को समय पर वेतन देने की व्यवस्था आजकल के समान ही थी। यह वेतन कुछ तो भत्ते या अनाज के रूप में दिया जाता था और कुछ नकद। महाभारत (सभापर्व) में नारद ने युधिष्ठिर को उपदेश दिया है कि "कच्चिद्बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम्। सम्प्राप्तकाले दातव्यं ददासि न विकर्षसि"। चतुरंग दल के अतिरिक्त सेना के और चार विभाग होते थे—विष्टि, नौका, चर और देशिक। सब प्रकार के सामान लदाने और पहुँचाने का प्रबंध 'विष्टि' कहलाता था। 'नौका' का भी लड़ाई में काम पड़ता था। चरों के द्वारा प्रतिपक्ष के समाचार मिलते थे। 'देशिक' स्थानीय सहायक हुआ करते थे जो अपने स्थान पर पहुँचने पर सहायता पहुँचाया करते थे। सेना के छोटे छोटे दलों को 'गुल्म' कहते थे।

पर्या०—चतुरंग। बल। ध्वजिनी। वाहिनी। पृतना। अनीकिनी। चमू। सैन्य। वरूथिनी। अनीक। चक्र। वाहना। गुल्मिनी। वरचक्षु।

(२) भाला। बरछी। शक्ति। साँग। (३) इंद्र का वज्र। (४) इंद्राणी। (५) वर्त्तमान अवसर्पिणी के तीसरे अर्हत् शंभव की माता का नाम। (जैन) (६) एक उपाधि जो पहले अधिकतर वेश्याओं के नामों में लगी रहती थी। जैसे, वसंत सेना।

क्रि० स० [सं० सेवन] (१) सेवा करना। खिदमत करना। किसी को आराम देना या उसका काम करना। नौकरी बजाना। टहल करना। उ०—सेइय ऐसे स्वामि को जो राखै निज मान।—कबीर।

मुहा०—चरण सेना = तुच्छ से तुच्छ चाकरी बजाना।

(२) आराधना करना। पूजना। उपासना करना। उ०—(क) तातें सेइय श्री जदुराई। (ख) सेवत सुलभ उदार कल्पतरु पारवतीपति परम सुजान।—तुलसी। (३) नियमपूर्वक व्यवहार करना। काम में लाना। इस्तेमाल करना। नियम के साथ खाना पीना या लगाना। उ०—(क) आसव सेइ सिखाए सखीन के सुंदरि मंदिर में सुख सोवै।—देव। (ख) निपट लजीली नवल तिय बहकि बारुनी सेइ। त्यों त्यों अति मीठी लगै ज्यों ज्यों ढीठो देइ।—बिहारी। (४) किसी स्थान को लगातार न छोड़ना। पड़ा रहना। निरंतर वास करना। जैसे—चारपाई सेना, कोठरी सेना, तीर्थ सेना। उ०—(क) सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी।—तुलसी। (ख) उत्तम मध्य सेवैं सुजन, नीच नीच के वंस। सेवत गीध मसान को, मानसरोवर हंस।—दीनदयाल। (५) लिए बैठे रहना। दूर न करना। जैसे,—फोड़ा सेना। (६) मादा चिड़िया का गरमी पहुँचाने के लिये अपने अंडों पर बैठना।

सेनाकक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] सेना का पार्श्व। फौज का बाजू।

सेनाकर्म–संज्ञा पुं० [सं० सेनाकर्मन्] (१) सेना का संचालन या व्यवस्था। (२) सेना का काम।

सेनागोप–संज्ञा पुं० [सं०] सेना का संरक्षक। सेना का एक विशेष अधिकारी।

सेनाग्र–संज्ञा पुं० [सं०] सेना का अग्र भाग। फौज का अगला हिस्सा।

सेनाचर–संज्ञा पुं० [सं०] सेना के साथ जानेवाला सैनिक। योद्धा। सिपाही।

सेनाजीव–संज्ञा पुं० दे० "सेनाजीवी"।

सेनाजीवी–संज्ञा पुं० [सं० सेनाजीविन्] वह जो सेना में रहकर अपनी जीविका चलावे। सैनिक। सिपाही। योद्धा।

सेनादार–संज्ञा पुं० [सं० सेना + फा० दार] सेनानायक। फौजदार। उ०—मल्हारराव हुल्कर भाग्य के बल से पेशवा बहादुर की सेना का सेनादार हो गया।—शिवप्रसाद।

सेनाधिकारी–संज्ञा पुं० [सं०] सेनानायक। फौज का अफसर।

सेनाधिनाथ–संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति। फौज का अफसर। सिपहसालार।

सेनाधिप–संज्ञा पुं० [सं०] फौज का अफसर। सेनापति।

सेनाधिपति–संज्ञा पुं० [सं०] फौज का अफसर। सेनापति।

सेनाधीश–संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति।

सेनाध्यक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] फौज का अफसर। सेनापति।

सेनानायक–संज्ञा पुं० [सं०] सेना का अफसर। फौजदार।

सेनानी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेनापति। फौज का अफसर। (२) कार्त्तिकेय का एक नाम। (३) एक रुद्र का नाम। (४) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (५) शंबर के एक पुत्र का नाम। (६) एक विशेष प्रकार का पाँसा।

सेनापति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेना का नायक। फौज का अफसर। (२) कार्त्तिकेय का एक नाम। (३) शिव का नाम। (४) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का एक नाम। (५) हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि का नाम।

सेनापत्य–संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति का कार्य या पद। सेनापति का अधिकार।

सेनापाल–संज्ञा पुं० [सं० सेना + पाल] सेनापति। उ०—दूत्यै बोल्यो भूप तब सेनापाल बुलाय। धाइ सुशर्मा वीर जे सुरभी लेहु छुड़ाय।—सबलसिंह।

सेनापृष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] सेना का पिछला भाग।

सेनाप्रणेता–संज्ञा पुं० [सं० सेनाप्रणेतृ] सेनानायक। फौज का मुखिया।

सेनाबेध–संज्ञा पुं० [सं० सेना + वेध] शूरवीर (डिं०)

सेनाभिगोप्ता–संज्ञा पुं० [सं० सेनाभिगोप्तृ] सेना-रक्षक। सेनापति।

सेनामुख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेना का अग्रभाग। (२) सेना का एक खंड जिसमें ३ या ९ हाथी, ३ या ९ रथ, ९ या

२७ घोड़े और १५ या २५ पैदल होते थे। (३) नगर-द्वार के सामने का रास्ता।

सेनायोग-संज्ञा पुं० [सं०] सैन्य सज्जा। फौज की तैयारी।

सेनावास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ सेना रहती हो। छावनी।

विशेष—बृहत्संहिता के अनुसार जहाँ राख, कोयला, हड्डी, तुष, केश, गड्ढे न हों; जो स्थान ऊसर न हो; जहाँ केकड़े न हों; जहाँ हिंसक जंतुओं और चूहों के बिल और वल्मीक न हों तथा जिस स्थान की भूमि घनी, चिकनी, सुगंधित, मधुर और समतल हो, ऐसे स्थान पर राजा को सेनावास या छावनी बनानी चाहिए।

(२) डेरा। खेमा। शिविर। कैंप।

सेनावाह-संज्ञा पुं० [सं०] सेनानायक।

सेनाव्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध के समय भिन्न भिन्न स्थानों पर की हुई सेना के भिन्न भिन्न अंगों की स्थापना या नियुक्ति। सैन्य विन्यास।

वि० दे० "व्यूह"।

सेनासमुदय-संज्ञा पुं० [सं०] सम्मिलित सेना। एकत्र हुई सेना।

सेनास्थ-संज्ञा पुं० [सं०] सिपाही। फौजी आदमी।

सेनास्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छावनी। (२) शिविर। खेमा। डेरा।

सेनाहन-संज्ञा पुं० [सं०] शंबर के एक पुत्र का नाम। (हरिवंश)

सेनिःसंज्ञा स्त्री० दे० "श्रेणी"। उ०—अनु कलिंदनंदिनि मनि नील सिखर पर सिध सति लसति हंस सेनि संकुल अधिकौहैं।—तुलसी।

सेनिका-संज्ञा स्त्री० [सं० श्येनिका] (१) बाज पक्षी की मादा। मादा बाज पक्षी। उ०—श्यामदेह दुकूल दुति छवि लसत तुलसी माल। तड़ित घन संयोग मानो सेनिका शुक जाल।—सूर। (२) एक छंद। दे० "श्येनिका"। उ०—आठ और आठ दीठि दै रह्यो। लोकनाथ आश्चर्य वै रह्यो।—गुमान।

सेनी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सीनी] (१) तश्तरी। रकाबी। (२) नक्काशीदार छोटी छिछली थाली।

ःसंज्ञा स्त्री० [सं० श्येनी] (१) बाज की मादा। मादा बाज पक्षी। (२) दक्ष प्रजापति की कन्या और कश्यप की पत्नी ताम्रा से उत्पन्न पाँच कन्याओं में से एक।

ःसंज्ञा स्त्री० [सं० श्रेणी] (१) पंक्ति। कतार। उ०—जोवन फूल्यो बसंत लसै तेहि अंगलता अलि-सेनी।—बेनी। (२) सीढ़ी। जीना।

संज्ञा पुं० विराट् के यहाँ अज्ञातवास करते समय का सहदेव का रखा हुआ नाम। उ०—नाम धनंजय को कह्यो बृहन्नला ऋषि व्यास। सेनी सहदेवहि कह्यो सकल गुनन की रास।—सबल।

सेनेट-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) प्रधान व्यवस्थापिका सभा। कानून बनानेवाली सभा। (२) विश्वविद्यालय की प्रबंधकारिणी सभा।

सेफ-संज्ञा पुं० दे० "शेफ"।

संज्ञा पुं० [अं०] लोहे का बड़ा मजबूत बक्स जिसमें रोकड़ और बहुमूल्य पदार्थ रखे जाते हैं।

सेफालिका-संज्ञा स्त्री० दे० "शेफालिका"।

सेव-संज्ञा पुं० [फ़ा०] नाशपाती की जाति का मझोले आकार का एक पेड़ जिसका फल मेवों में गिना जाता है।

विशेष—यह पेड़ पश्चिम का है, पर बहुत दिनों से भारतवर्ष में भी हिमालय-प्रदेश (काश्मीर, कुमाऊँ, गढ़वाल, काँगड़ा आदि) और पंजाब आदि में लगाया जाता है; और अब सिंध, मध्यभारत और दक्षिण तक फैल गया है। काश्मीर में कहीं कहीं यह जंगली भी देखा जाता है। इसके पत्ते कुछ कुछ गोल और पीछे की ओर कुछ सफेदी लिए और रोईंदार होते हैं। फूल सफेद रंग के होते हैं, जिन पर लाल लाल छींटे से होते हैं। फल गोल और पकने पर हलके हरे रंग के होते हैं; पर किसी किसी का कुछ भाग बहुत सुंदर लाल रंग का होता है जिससे देखने में बड़ा सुंदर लगता है। गूदा इसका बहुत मुलायम और मीठा होता है। मध्यम श्रेणी के फलों में कुछ खटास भी होती है। सेव फागुन से वैशाख के अंत तक फूलता है और जेठ से फल लगने लगते हैं। भादों में फल अच्छी तरह पक जाते हैं। ये फल बड़े पाचक माने जाते हैं। भावप्रकाश के अनुसार सेव वातपित्तनाशक, पुष्टिकारक, कफकारक, भारी, पाक में मधुर, शीतल तथा शुक्रकारक है। भावप्रकाश के अतिरिक्त किसी प्राचीन ग्रंथ में सेव का उल्लेख नहीं मिलता। भावप्रकाश ने सेव, सिंचितिकाफल आदि इसके कुछ नाम दिए हैं।

सेभ्य-संज्ञा पुं० [सं०] शीतलता। शैत्य। ठंढक।

वि० शीतल। ठंढा।

सेमंतिका-संज्ञा स्त्री० दे० "सेमंती"।

सेमंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद गुलाब का फूल। सेवती।

सेम-संज्ञा स्त्री० [सं० शिंबी] एक प्रकार की फली जिसकी तरकारी खाई जाती है।

विशेष—इसकी लता लिपटती हुई बढ़ती है। पत्ते एक एक सींके पर तीन तीन रहते हैं और वे पान के आकार के होते हैं। सेम सफेद, हरी, मजेंटा आदि कई रंगों की होती है। फलियाँ लंबी, चिपटी और कुछ टेढ़ी होती हैं। यह हिंदुस्तान में प्रायः सर्वत्र बोई जाती है। वैद्यक में सेम मधुर, शीतल, भारी, कसैली, बलकारी, वातकारक, दाहजनक, दीपन तथा पित्त और कफ का नाश करनेवाली मानी गई है।

यौ०—सेम का गोंद = एक प्रकार के कचनार का गोंद जो देहरादून की ओर से आता है और इंद्रियजुलाब या रज खोलने के लिये दिया जाता है। वि० दे० "कचनार"।

सेमई-संज्ञा पुं० [हिं० सेम] हलका सब्ज रंग।

वि० हलके हरे रंग का।

‡संज्ञा स्त्री० दे० "सेंवई"। उ०—मोतीचूर मूर के मोदक ओदक की उजियारी जी। सेमई सेव सँजना सूरन सोवा सरस सोहारी जी।—विश्राम।

सेमर-संज्ञा पुं० [देश०] दलदली जमीन।

†संज्ञा पुं० दे० "सेमल"।

सेमल-संज्ञा पुं० [सं० शाल्मली] पत्ते झाड़नेवाला एक बहुत बड़ा पेड़ जिसमें बड़े आकार और मोटे दलों के लाल फूल लगते हैं, और जिसके फलों या डोडों में केवल रूई होती है, गूदा नहीं होता।

विशेष—इसके धड़ और डालों में दूर दूर पर काँटे होते हैं। पत्ते लंबे और नुकीले होते हैं; तथा एक एक डाँड़ी में पंजे की तरह पाँच पाँच छः छः लगे होते हैं। फूल मोटे दल के, बड़े बड़े और गहरे लाल रंग के होते हैं। फूलों में पाँच दल होते हैं और उनका घेरा बहुत बड़ा होता है। फागुन में जब इस पेड़ की पत्तियाँ बिलकुल झड़ जाती हैं और यह ठूंठा हो जाता है, तब यह इन्हीं लाल फूलों से गुछा हुआ दिखाई पड़ता है। दलों के झड़ जाने पर डोडा या फल रह जाता है जिसमें बहुत मुलायम और चमकीली रूई या घूए के भीतर बिनौले के से बीज बंद रहते हैं। सेमल के डोडे या फलों की निस्सारता भारतीय कविपरंपरा में बहुत काल से प्रसिद्ध है और यह अनेक अन्योक्तियों का विषय रहा है। "सेमर सेइ सुआ पछताने" यह एक कहावत सी हो गई है। सेमल की रूई रेशम सी मुलायम और चमकीली होती है और गद्दों तथा तकियों में भरने के काम में आती है, क्योंकि काती नहीं जा सकती। इसकी लकड़ी पानी में खूब ठहरती है और नाव बनाने के काम में आती है। आयुर्वेद में सेमल बहुत उपकारी ओषधि मानी गई है। यह मधुर, कसैला, शीतल, हलका, स्निग्ध, पिच्छिल तथा शुक्र और कफ को बढ़ानेवाला कहा गया है। सेमल की छाल कसैली और कफनाशक; फूल शीतल, कड़वा, भारी, कसैला, वातकारक, मलरोधक, रूखा तथा कफ, पित्त और रक्तविकार को शांत करनेवाला कहा गया है। फल के गुण फूल ही के समान हैं। सेमल के नए पौधे की जड़ को "सेमल का मूसला" कहते हैं, जो बहुत पुष्टिकारक, कामोद्दीपक और नपुंसकता को दूर करनेवाला माना जाता है। सेमल का गोंद मोचरस कहलाता है। यह अतीसार को दूर करनेवाला और बलकारक कहा गया है। इसके बीज स्निग्धताकारक और मदकारी होते हैं; और काँटों में फोड़े फुंसी, घाव, छीप आदि दूर करने का गुण होता है।

फूलों के रंग के भेद से सेमल तीन प्रकार का माना गया है—एक तो साधारण लाल फूलोंवाला, दूसरा सफेद फूलों का और तीसरा पीले फूलों का। इनमें से पीले फूलों का सेमल कहीं देखने में नहीं आता। सेमल भारतवर्ष के गरम जंगलों में तथा बरमा, सिंहल और मलाया में अधिकता से होता है।

पर्य्या०—शाल्मलि। शाल्मली। पिच्छला। मोचा। स्थिरायु। तूलिफला। दुरारोहा। शाल्मलिनी। शाल्मल। अपूरणी। पूरणी। निर्गंधपुष्पी। तुलनी। कुक्कुटी। रक्तपुष्पा। कंटकारी। मोचनी। सीमूल। कदला। चिरजीवी। पिच्छल। रक्तपुष्पक। तूलवृक्ष। मोचाख्य। कंटकद्रुम। कुक्कुटी। रक्तोत्पल। रम्यपुष्प। बहुवीर्य्य। यमद्रुम। दीर्घद्रुम। स्थूलफल। दीर्घायु। कंटकाढ्य। निस्सारा। दीर्घपादपा।

सेमलमूसला-संज्ञा पुं० [सं० शाल्मलि मूल] सेमल की जड़ जो वैद्यक में वीर्यवर्द्धक, कामोद्दीपक और नपुंसकता नष्ट करनेवाला मानी गई है।

सेमलसफेद-संज्ञा पुं० [सं० श्वेत शाल्मलि] सेमल का एक भेद जिसके फूल सफेद होते हैं।

विशेष—यह सेमल के समान ही विशाल होता है। इसका उत्पत्ति स्थान मलाया है। हिंदुस्तान के गरम जंगलों और सिंहल में पाया जाता है। नए वृक्ष की छाल हरे रंग की और पुराने की भूरे रंग की होती है। पत्ते सेमल के समान ही एक साथ पाँच पाँच सात सात रहते हैं। फूल सेमल के फूल से छोटे और मटमैले सफेद रंग के होते हैं। इसके फल कुछ बड़े, गोल, धुँधले और पाँच फाँकवाले होते हैं। फलों के अंदर बहुत कोमल रूई होती है और रूई के बीच में चिपटे बीज होते हैं। वैद्यक में सेमल के समान ही इसके भी गुण बताए गए हैं।

सेमा-संज्ञा पुं० [हिं० सेम] बड़ी सेम।

सेमिटिक-संज्ञा पुं० [अं० शाम (देश का नाम तथा हजरत नूह की संतति में से एक)] (१) मनुष्यों के आधुनिक वर्ग-विभाग में से वह वर्ग जिसके अंतर्गत यहूदी, अरब, सीरियन, मिस्री आदि लाल समुद्र के आस पास बसनेवाली नई पुरानी जातियाँ हैं। मूसा, ईसा और मुहम्मद इसी वर्ग के थे जिन्होंने पैगंबरी मत चलाए। यह वर्ग आर्य्य वर्ग से भिन्न है जिसमें हिंदू, पारसी, युरोपियन आदि हैं। (२) उक्त वर्ग के लोगों द्वारा बोली जानेवाली भाषाओं का वर्ग जिसके अंतर्गत इबरानी और अरबी तथा असीरियन, फिनीशियन आदि प्राचीन भाषाएँ हैं। यह वर्ग आर्य्यवर्ग से सर्वथा भिन्न है जिसके अंतर्गत संस्कृत, पारसी, लैटिन, ग्रीक आदि प्राचीन भाषाएँ

और हिंदी, मराठी, बँगाली, पंजाबी, पश्तो, गुजराती आदि उत्तर भारत की भाषाएँ तथा अँगरेजी, फरासीसी, जर्मन आदि योरप की आधुनिक भाषाएँ हैं।

सेमीकोलन-संज्ञा पुं० [अं०] एक विराम जिसका चिह्न इस प्रकार है—;

सेयम-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

सेर-संज्ञा पुं० [सं० सेटक] (१) एक मान या तौल जो सोलह छटाँक या अस्सी तोले की होती है। मन का चालीसवाँ भाग। (२) १०६ ढोली पान। (तंबोली)

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन महीने में तैयार हो जाता है और जिसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है।

संज्ञा पुं० दे० "शेर"। उ०—अरि भजा जूथ पै सेर हौं। —गोपाल।

वि० [फ़ा०] तृप्त। उ०—रे मन साहसी साहस राखु सुसाहस सों सब जेर फिरेंगे। ज्यों पदमाकर या सुख में दुख त्यों दुख में सुख सेर फिरेंगे।—पद्माकर।

सेरन-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक घास जो राजपूताने, बुंदेलखंड और मध्य भारत के पहाड़ी हिस्सों में होती है।

सेरवा-संज्ञा पुं० [सं० शट ?] वह कपड़ा जिससे हवा करके अन्न बरसाते समय भूसा उड़ाया जाता है। झूली। परती।

संज्ञा पुं० [हिं० सिर] चारपाई की वे पाटियाँ जो सिरहाने की ओर रहती हैं।

संज्ञा पुं० [हिं० सेराना = ठंढा करना, शांत करना] दीवाली के प्रातःकाल 'दरिद्दर' (दरिद्रता) भगाने की रस्म जो सूप बजाकर की जाती है।

सेरसाहि-संज्ञा पुं० [फ़ा० शेरशाह] दिल्ली का बादशाह शेरशाह। उ०—सेरसाहि देहली सुलतानू।—जायसी।

सेरही-संज्ञा स्त्री० [हिं० सेर] एक प्रकार का कर या लगान जो किसान को फसल की उपज के अपने हिस्से पर देना पड़ता था।

सेरा-संज्ञा पुं० [हिं० सिर] चारपाई की वे पाटियाँ जो सिरहाने की ओर रहती हैं।

संज्ञा पुं० [फ़ा० सेराब] आबपाशी की हुई ज़मीन। सींची हुई ज़मीन।

† संज्ञा पुं० दे० "सेद"।

सेराना†-क्रि० अ० [सं० शीतल, प्रा० सीअड़, हिं० सीयर, सीरा] (१) ठंढा होना। शीतल होना। उ०—नैन सेराने, भूखि गइ, देखे दरस तुम्हार।—जायसी। (२) तृप्त होना। तुष्ट होना। (३) जीवित न रहना। जीवन समाप्त होना। (४) समाप्त होना। खतम होना। उ०— उठ्यो अखारा नृत्य सेराना। अपने गृह सुर कियो पयाना।—सबल। (५) चुकना। तै होना। करने को न रह जाना। उ०—पंथी कहाँ कहाँ सुसताई। पंथ चले तब पंथ सेराई।—जायसी।

क्रि० स० (१) ठंढा करना। शीतल करना। (२) मूर्ति आदि जल में प्रवाह करना या भूमि में गाड़ना। जैसे,—ताजिया सेराना।

सेराब-वि० [फ़ा०] (१) पानी से भरा हुआ। (२) सिंचा हुआ। तराबोर।

सेराबी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) भराव। सिंचाई। (२) तरी।

सेराल-संज्ञा पुं० [सं०] हलका पीलापन।

वि० हलका पीला। पीताभ।

सेराह-संज्ञा पुं० [सं०] दूध के समान सफेद रंग का घोड़ा। दुग्ध वर्ण का अश्व।

सेरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) तृप्ति। संतोष। (२) मन का भरना। अघाने का भाव।

सेरीना-संज्ञा स्त्री० [हिं० सेर] अनाज या चारे का वह हिस्सा जो असामी जमींदार को देता है।

सेरु-वि० [सं०] बाँधनेवाला। जकड़नेवाला।

सेरुआ-संज्ञा पुं० [?] वैश्य। (सुनार)

†संज्ञा पुं० दे० "सेरवा"।

सेरुराह-संज्ञा पुं० [सं०] वह सफेद घोड़ा जिसके माथे पर दाग हो।

सेरुवा-संज्ञा पुं० [?] मुजरा सुननेवाला या वेश्यागामी। (वेश्या)

सेलु-संज्ञा पुं० [सं० शेलु] लिसोड़े का पेड़। लभेड़ा।

सेल-संज्ञा पुं० [सं० शल, प्रा० सेल] बरछा। भाला। साँग। उ०—(क) बरसहिं बान सेल घनघोरा।—जायसी। (ख) देखि ज्वालाजाल हाहाकार दसकंध सुनि, कह्यो धरो धरो धाय बीर बलवान हैं। लिये सूल सेल पास परिघ प्रचंड दंड, भाजन सनीर धीर धरे धनुबान हैं।—तुलसी।

विशेष—यद्यपि यह शब्द कादंबरी में आया है, पर प्राकृत ही जान पड़ता है, संस्कृत नहीं।

संज्ञा स्त्री० [देश०] बद्धी। माला। उ०—साँपों की सेल पहने मुंडमाल गले में डाले......कहने लगे।—लल्लू।

संज्ञा पुं० [देश०] नाव से पानी उलीचने का काठ का बरतन।

संज्ञा पुं० [सं० सिलना = एक पौधा जिसके रेशों से रस्से बनते थे] (१) एक प्रकार का सन का रस्सा जो पहाड़ों में पुल बनाने के काम में आता है। (२) हल में लगी हुई वह नली जिसमें से होकर कूँड में का बीज जमीन पर गिरता है।

संज्ञा पुं० [अं० शेल] तोप का वह गोला जिसमें गोलियाँ आदि भरी रहती हैं। (फौजी)

यौ०—सेल का गोला।

सेलखड़ी–संज्ञा स्त्री० दे० "सिलखड़ी", "खड़िया"।

सेलग-संज्ञा पुं० [सं०] लुटेरा। डाकू।

सेलना–क्रि० अ० [सं० शेल, सेल=भाला] मर जाना। चल बसना। जैसे,—वह सेल गया। (बाजारू)

सेला–संज्ञा पुं० [सं० शल्क, शल्क=छिलका; मछली का सेहरा] (१) रेशमी चादर या दुपट्टा। (२) साफा। रेशमी शिरोबंध। उ०—कोऊ कुंद बेला कोऊ भूखन नवेला धरै कोऊ पाग सेला कोऊ सजै साज छैला सो।—गोपाल।

संज्ञा पुं० [सं० शालि] वह धान जो भूसी छाँटने के पहले कुछ उबाल लिया गया हो। भुँजिया धान।

सेलिया–संज्ञा पुं० [देश०] घोड़े की एक जाति। उ०—सिरगा समँदा स्याह सेलिया सूर सुरंगा। मुसकी पँचकल्यान कुमेदा केहरि रँगा।—सूदन।

सेलिख-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सफेद हिरन।

सेली–संज्ञा स्त्री० [हिं० सेल] छोटा भाला। बरछी। उ०—लहलहे जोबन लुहारिनि लुहारी मैं हि सारसी लहलहाति लोहसार सेलि सी। भृकुटी कमान तरी देव दगन बान भरी, जोबन की सान धरी धार विष मेलि सी।—देव।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सेला] (१) छोटा दुपट्टा। (२) गाँती। (३) सूत, ऊन, रेशम या बालों की बद्धी या माला जिसे योगी यती लोग गले में डालते या सिर में लपेटते हैं। उ०—(क) ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे, मूँड के कमंडल खपर किए कोटि कै।—तुलसी। (ख) सीस सेली केस, मुद्रा कनक-बीरी, बीर। बिरह भस्म चढ़ाइ बैठी, सहज कंथा चीर।—सूर। (४) स्त्रियों का एक गहना। उ०—मनि इंद्रनील [illegible] पद्मराग कृत सेली भली।—रघुराज।

संज्ञा स्त्री० [सं० शल्क=मछली का सेहरा] एक प्रकार की मछली।

संज्ञा स्त्री० [देश०] दक्षिण भारत का एक छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी कड़ी और मजबूत होती है और खेती के औजार बनाने के काम में आती है।

सेलु–संज्ञा पुं० [सं०] लिसोड़ा। श्लेष्मांतक। लभेड़ा।

सेलून–संज्ञा पुं० [अं०] (१) जहाज का प्रधान कमरा। (२) बढ़िया कमरे के समान सजा हुआ रेल का बड़ा और लंबा डब्बा जिसमें राजा, महाराजा और बड़े बड़े अफसर सफर करते हैं। (३) सार्वजनिक आमोद प्रमोद का स्थान। (४) अँगरेजी ढंग के बाल बनानेवाले हज्जामों की दूकान। (५) जलपान का स्थान। (६) वह स्थान जहाँ अँगरेजी शराब बिकती है। (७) जहाज में कप्तान के खाने की जगह। (लश०)

सेलो†–संज्ञा पुं० [देश०] सायादार जमीन।

सेल्ल–संज्ञा पुं० [सं० शल्ल] एक प्रकार का अस्त्र। भाला। सेल।

सेल्ह–संज्ञा पुं० दे० "सेल"। उ०—गोलिन तीरन की झर लाई। मची सेल्ह समसेरन घाई। त्यों लच्छे रावत प्रभु आगे। सेल्हन मार करी रिस पागे।—लाल कवि।

सेल्हा–संज्ञा पुं० [सं० शालि] एक प्रकार का अगहनी धान जिसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है।

† संज्ञा पुं० दे० "सेला"।

सेल्ही–संज्ञा स्त्री० [हिं० सेला, सेल्हा] (१) छोटा दुपट्टा। (२) गाँती। (३) रेशम, सूत, बाल आदि की बद्धी या माला। उ०—ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे, मूँड के कमंडल, खपर किए कोरि कै। जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनीं तापसी सी तीर तीर बैठीं सो समर-सरि खोरि कै।—तुलसी। वि० दे० "सेली"।

सेवँ–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का ऊँचा पेड़ जिसकी लकड़ी कुछ पीलापन या ललाई लिए सफेद रंग की, नरम, चिकनी, चमकीली और मजबूत होती है। इसकी आलमारी, मेज, कुरसी और आरायशी चीजें बनती हैं। बरमा में इस पर खुदाई का काम अच्छा होता है। इसकी छाल और जड़ औषध के काम आती है और फल खाया जाता है। इसकी कलम भी लगती है और बीज भी बोया जाता है। यह वृक्ष पहाड़ों पर तीन हजार फुट की ऊँचाई तक मिलता है। यह बरमा, आसाम, अवध, बरार और मध्य प्रांत में बहुत होता है। कुमार।

सेवँई–संज्ञा स्त्री० [सं० सेविका] गुँधे हुए मैदे के सूत के से लच्छे जो घी में तलकर और दूध में पकाकर खाए जाते हैं।

संज्ञा स्त्री० [सं० श्यामक, हिं० साँवाँ] एक प्रकार की लंबी घास जिसमें साँवें की सी बालें लगती हैं जो चारे के काम में आती हैं।

सेवँढ़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का धान जो युक्त प्रदेश में होता है।

सेवंत–संज्ञा पुं० [सं० सामंत ?] एक राग जो हनुमत के अनुसार मेघ राग का पुत्र है।

सेवँरआ–संज्ञा पुं० दे० "सेमल"। उ०—राती कहा साथ कहु सूआ। बिनु सत जस सेंवर कर भूआ।—जायसी।

सेव–संज्ञा पुं० [सं० सेविका] सूत या डोरी के रूप में बेसन का एक पकवान।

विशेष—गुँधे हुए बेसन को छेददार चौकी या झरने में दबाते हैं जिससे उसके तार से बनकर खौलते घी या तेल की कड़ाई में गिरते और पकते जाते हैं। यह अधिकतर नमकीन होता है, पर गुड़ में पागकर मीठे सेव भी बनाते हैं।

⊛ संज्ञा स्त्री० दे० "सेवा"। उ०—करै जो सेव तुम्हारी सो सेइ भो विष्णु, शिव महा मम रूप सारे।—सूर।

संज्ञा पुं० दे० "सेब"।

सेवक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सेविका, सेवकी, सेवकनी, सेवकिन, सेवकिनी] (१) सेवा करनेवाला। खिदमत करनेवाला। भृत्य। परिचारक। नौकर। चाकर। उ०—(क) मंत्री, भृत्य, सखा मों सेवक यातें कहत सुजान।—सूर। (ख) सिसुपन तें पितु, मातु, बंधु, गुरु, सेवक, सचिव, सखाउ। कहत राम बिधु बदन रिसौहैं सपनेहु लखेउ न काउ।—तुलसी। (ग) ब्याहि कै आई है जा दिन सों रवि ता दिन सों लखी छाहँ न वाकी। हैं गुरु लोग सुखी रघुनाथ, निहाल हैं सेवकनी सुखदा की।—रघुनाथ। (घ) उन्होंने क्षीरोद नामक एक सेवकिन से कहला भेजा।—गदाधरसिंह। (च) अष्टसिद्धि नवनिद्धि देहुँ मथुरा घर घर को। रमा सेवकिनी देहुँ करि कर जोरे दिन जाम।—सूर। (छ) सेवकी सदा की धारवधू दस बीस आई पहो रघुनाथ छकीं वारुनी अमल सों।—रघुनाथ। (ज) दायज बसन मनि धेनु धन हय गय सुसेवक सेवकी।—तुलसी। (२) भक्त। आराधक। उपासक। पूजा करनेवाला। जैसे,—देवी का सेवक। उ०—मानिए कहै जो वारिधार पै दवारि औ अँगार बरसाइयो बतावै वारि दिन को। मानिए अनेक विपरीत की प्रतीति, पै न भीति आई मानिए भवानी-सेवकन को।—चरणचंद्रिका। (३) व्यवहार करनेवाला। काम में लानेवाला। इस्तेमाल करनेवाला। जैसे,—मद्य-सेवक। (४) पड़ा रहनेवाला। छोड़कर कहीं न जानेवाला। वास करनेवाला। जैसे,—तीर्थ-सेवक। (५) सीनेवाला। दरजी। (६) बोरा।

सेवकाई–संज्ञा स्त्री० [सं० सेवक+आई (प्रत्य०)] सेवक का काम। सेवा। टहल। खिदमत। उ०—(क) करि पूजा सब विधि सेवकाई। गयउ राउ गृह विदा कराई।—तुलसी। (ख) करहु सुफल आपन सेवकाई। करि हित हरहु चाप गरुआई।—तुलसी। (ग) नाना भाँति करहु सेवकाई। अस कहि अग्र चले अतुराई।—सबलसिंह।

सेवकालु–संज्ञा पुं० [सं०] दुग्धफेनी नामक पौधा। निशाभंग।

सेवड़ा–संज्ञा पुं० [?] (१) जैन साधुओं का एक भेद। (२) एक ग्राम देवता।

संज्ञा पुं० [हिं० सेव] मैदे का एक प्रकार का मोटा सेव या पकवान।

सेवति‡–संज्ञा स्त्री० दे० "स्वाति"। उ०—शशिहि चकोर रविहि अरविंदा। पपिहा कों सेवति करविंदा।—गोपाल।

सेवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] गुलाब का एक भेद जिसके फूल सफेद रंग के होते हैं। सफेद गुलाब। चैती गुलाब।

विशेष—वैद्यक में यह शीतल, तिक्त, कटु, लघु, ग्राहक, पाचक, वर्णप्रसादक, त्रिदोषनाशक तथा वीर्यवर्द्धक कही गई है।

पर्य्या०—शतपत्री। सेमंती। कर्णिका। चारुकेशरा। महाकुमारी। गंधाढ्या। लक्षपुष्पा। अतिमंजुला।

सेवधि–संज्ञा पुं० दे० "शेवधि"।

सेवन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० सेवनीय, सेवित, सेव्य, सेवितव्य] (१) परिचर्या। खिदमत। (२) उपासना। आराधना। पूजन। (३) प्रयोग। उपयोग। नियमित व्यवहार। इस्तेमाल। जैसे,—सुरा-सेवन, औषध-सेवन। (४) छोड़कर न जाना। वास करना। लगातार रहना। जैसे,—तीर्थ-सेवन, गंगतट-सेवन। (५) संभोग। उपभोग। जैसे,—स्त्री-सेवन। (६) सीना। गूँथना। (७) बोरा।

संज्ञा पुं० [हिं० सावाँ] सावाँ की तरह की एक घास जो चारे के काम में आती है और जिसके महीन दाने बाजरे में मिलाकर मरुस्थल में खाए भी जाते हैं। सेवँई। सवँई।

सेवना‡–क्रि० स० दे० "सेना"।

सेवनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूई। सूची। सिवनी। (२) सीवन। जोड़। टाँका। संधिस्थान। (३) शरीर के वे अंग जहाँ सीवन सी दिखाई देती हो। ऐसे स्थान सात हैं—पाँच मस्तक में एक जीभ में और एक लिंग में। (४) जुही। जूही।

संज्ञा स्त्री० [सं० सेवनी] दासी। उ०—निज सेविनी पहिचानि कै बढ़ई अनुग्रह आनि है। करिहैं पवित्र चरित्र मेरी जीभ अवगुण खानि है।—गुमान।

सेवनीय–वि० [सं०] (१) सेवा योग्य। (२) पूजा के योग्य। (३) व्यवहार योग्य। (४) सीने योग्य।

सेवर–संज्ञा पुं० दे० "शबर"। उ०—हरिजू तिनको दुखित देख। कियो तुरत सेवरि को भेष।

सेवरा‡–संज्ञा पुं० दे० "सेवड़ा"। उ०—सेवरा, खेवरा, वान पर सिध, साधक, अवधूत। आसन मारे बैठ सब जारि आतमा भूत।—जायसी।

सेवरी‡–संज्ञा स्त्री० दे० "शबरी"। उ०—बहुरि कबंधहि निरखि प्रभु गीध कीन्ह उद्धार। सेवरी भवन प्रवेस करि पंपासरहि निहार।—रामाश्वमेध।

सेवल–संज्ञा पुं० [देश०] ब्याह की एक रस्म।

विशेष—इसमें वर की कोई सधवा आत्मीया वर के हाथ में पीतल की एक थाली देती है जिस पर एक दीया रहता है; अनंतर उसके दुपट्टे के दोनों छोर पकड़कर पहले उस थाली से वर का माथा और फिर अपना माथा छूती है।

सेवांजलि–संज्ञा स्त्री० [सं०] भक्त या सेवक का दोनों हथेलियों के जुड़े हुए संपुट में स्वामी या उपास्य को कुछ अर्पण।

सेवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दूसरे को आराम पहुँचाने की क्रिया। खिदमत। टहल। परिचर्य्या। जैसे,—हमारी बीमारी में इसने बड़ी सेवा की।

यौ०—सेवा-शुश्रूषा। सेवा टहल।

(२) दूसरे का काम करना। नौकरी। चाकरी।

विशेष—राज्य की सेवा के अतिरिक्त और प्रकार की सेवा-वृत्ति अधम कही गई है।

(३) आराधना। उपासना। पूजा। जैसे,—ठाकुर की सेवा।

मुहा०—सेवा में = पास। समीप। सामने। जैसे,—(क) मैं कल आपकी सेवा में उपस्थित हूँगा। (ख) मैंने आपकी सेवा में एक पत्र भेजा था। (आदरार्थ, प्रायः बड़ों के लिये) (४) आश्रय। शरण। जैसे,—आप मुझे अपनी सेवा में ले लेते तो बहुत अच्छा था। (५) रक्षा। हिफ़ाजत। जैसे,—(क) सेवा बिना ये पौधे सूख गए। (ख) वे अपने शरीर की बड़ी सेवा करते हैं। उ०—वे अपने बालों की बड़ी सेवा करती हैं।—महावीरप्रसाद द्विवेदी। (६) संभोग। मैथुन। जैसे,—स्त्री-सेवा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सेवाकाकु—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवा काल में स्वर-परिवर्त्तन या आवाज बदलना (अर्थात् कभी जोर से बोलना, कभी मुलायमियत से, कभी क्रोध से और कभी दुःख भाव से।)

सेवाजन—संज्ञा पुं० [सं०] नौकर। सेवक। दास।

सेवा टहल—संज्ञा स्त्री० [सं० सेवा+हिं० टहल] परिचर्या। खिदमत। सेवा-शुश्रूषा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सेवाती—संज्ञा स्त्री० दे० "स्वाति"। उ०—(क) रातुरंग जिमि दीपक बाती। नैन लाउ होइ सीप सेवाती।—जायसी। (ख) गगन लागु तेहि भरन पदुमावति जेहि दीप। अहस सेवातिहि सेवई बन चातक जल सीप।—जायसी।

सेवाधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] सेवक का धर्म या कर्त्तव्य।

सेवापन—संज्ञा पुं० [सं० सेवा+हिं० पन (प्रत्य०)] दासत्व। सेवावृत्ति। नौकरी। टहल।

सेवाबंदगी—संज्ञा स्त्री० [सेवा+फा० बंदगी] आराधना। पूजा। उ०—यह मसीति यह देवहरा सतगुर दिया दिखाइ। भीतरि सेवा बंदगी बाहर काहे जाइ।—दादू।

सेवाय†—वि० [अ० सिवा] अधिक। ज्यादा।

अव्य० दे० "सिवा", "सिवाय"।

सेवार—संज्ञा स्त्री० [सं० शैवाल] (१) बालों के लच्छों की तरह पानी में फैलनेवाली एक घास। उ०—(क) संबुक, भेक, सेवार समाना। इहाँ न विषय-कथा रस नाना।—तुलसी। (ख) राम भी आहवन सुभट ताके इते रुधिर की नहर सरिता बहाई। मुण्ड मनो मकर भए केश सेवार ज्यौं, धनुष त्वच धर्म द्रुम बनाई।—सूर।

विशेष—यह अत्यंत निम्न कोटि का उद्भिद् है, जिसमें जड़ आदि अलग नहीं होतीं। यह तृण नदियों और तालों में होता है और चीनी साफ करने तथा औषध के काम में आता है। वैद्यक में सेवार कसैली, कड़वी, मधुर, शीतल, हलकी, स्निग्ध, दस्तावर, नमकीन, घाव भरनेवाली तथा त्रिदोषनाशक बताई गई है।

(२) मिट्टी की तहें जो किसी नदी के आस-पास जमी हों।

† संज्ञा पुं० पान। (सुनार)

सेवारा—संज्ञा पुं० दे० "सेवड़ा"।

सेवाल—संज्ञा स्त्री० पुं० दे० "सेवार"। उ०—सूत्र वंश कुवलय नलिन अनिल व्योम तृणवाल। मरकत मणि हय सूर के नील वर्ण सेवाल।—केशव।

सेवावृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नौकरी। दासत्व। चाकरी की जीविका।

सेविंग बैंक—संज्ञा पुं० [अं०] वह बैंक जो छोटी छोटी रकमें ब्याज पर ले। (ऐसे बैंक डाकखानों में होते हैं जहाँ गरीब और मध्य वित्त के लोग अपनी बचत के रुपए जमा करते हैं।)

सेवि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बदर फल। बेर। (२) सेब (इस अर्थ में पीछे प्रयुक्त हुआ है)।

संज्ञा पुं० 'सेवी' का वह रूप जो समास में होता है।

⊛ वि० दे० "सेव्य", "सेवित"। उ०—जय जय जगजननि देवि, सुरनर मुनि-असुर-सेवि, भुक्ति मुक्तिदायिनि दुखहरनि कालिका।—तुलसी।

सेविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेवा करनेवाली। दासी। परिचारिका। नौकरानी। (२) सेवईं नामक पकवान।

सेवित—वि० [सं०] (१) जिसकी सेवा या टहल की गई हो। परिचरित। उपचरित। (२) जिसकी पूजा की गई हो। पूजित। उपासित। आराधित। उ०—जराजूट रवि कोटि समाना। मुनिगन-सेवित ज्ञान निधाना।—गिरिधरदास। (३) जिसका प्रयोग या व्यवहार किया गया हो। व्यवहृत। (४) आश्रित। (५) उपभोग किया हुआ। उपभुक्त।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) बदर फल। बेर। (२) सेब।

सेवितव्य—वि० [सं०] (१) सेवा के योग्य। उपासना के योग्य। (२) आश्रय के योग्य। आश्रयणीय। (३) सीने के योग्य।

सेविता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेवक का कर्म। सेवा। दास वृत्ति। (२) उपासना। (३) आश्रय।

संज्ञा पुं० [सं० सेवितृ] सेवा करनेवाला। सेवक।

सेवी—वि० [सं० सेविन्] (१) सेवा करनेवाला। सेवारत। (२) पूजा करनेवाला। आराधना करनेवाला। (३) संभोग करनेवाला।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्द के अंत में हुआ करता है। जैसे,—साहित्यसेवी, स्वदेशसेवी, चरणसेवी, स्त्रीसेवी।

सेव्य—वि० [सं०] [स्त्री० सेव्या] (१) सेवा के योग्य जिसकी सेवा करना उचित हो। खिदमत के लायक। (जैसे,—गुरु,

स्वामी, पिता) उ०—नाते सबै राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।—तुलसी। (२) जिसकी सेवा करनी हो या जिसकी सेवा की जाय। जैसे,—वे तो हमारे हर प्रकार से सेव्य हैं। (३) पूजा के योग्य। आराधना योग्य। जिसकी पूजा या उपासना कर्त्तव्य हो। जैसे,—ईश्वर। (४) व्यवहार योग्य। काम में लाने लायक। इस्तेमाल करने लायक। (५) रक्षण के योग्य। जिसकी हिफ़ाजत मुनासिब हो। (६) संभोग के योग्य।

संज्ञा पुं० (१) स्वामी। मालिक।

यौ०—सेव्य-सेवक।

(२) खस। उशीर। (३) अश्वत्थ। पीपल का पेड़। (४) हिजल वृक्ष। (५) लामज्जक तृण। लामज घास। (६) गौरैया पक्षी। (७) एक प्रकार का मद्य। (८) सुगंधवाला। (९) लाल चंदन। (१०) समुद्री नमक। (११) दही का थक्का। (१२) जल। पानी।

सेव्य सेवक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वामी और सेवक।

यौ०—सेव्य सेवक भाव = स्वामी और सेवक के बीच जो भाव होना चाहिए, वह भाव। उपास्य को स्वामी या मालिक के रूप में समझना। (भक्ति मार्ग में उपासना जिन जिन भावों से की जाती है, यह उनमें से एक है।)

सेव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बंदा या बाँदा नामक पौधा जो दूसरे पेड़ों के ऊपर उगता है। बंदाक। (२) आँवला। आमलकी। (३) एक प्रकार का जंगली अनाज या धान।

सेशन—संज्ञा पुं० [अं०] (१) न्यायालय, पार्लमेंट, व्यवस्थापिका सभा आदि संस्थाओं का एक बार निरंतर कुछ दिनों तक होनेवाला अधिवेशन। लगातार कुछ दिन चलनेवाली बैठक। जैसे,—(क) हाई कोर्ट का सेशन शुरू हो गया। (ख) पार्लमेंट का सेशन अक्तूबर में शुरू होगा।

मुहा०—सेशन सपुर्द करना = दौरे सपुर्द करना। (अपराधी या मुकदमे को) विचार या फैसले के लिये सेशन-जज के पास भेजना। (डाकेजनी, खून आदि के मामले सेशन जज के पास भेजे जाते हैं।) सेशन सपुर्द होना = दौरे सपुर्द होना। सेशन जज के पास विचारार्थ भेजा जाना।

(२) स्कूल या कालेज की एक साथ निरंतर कुछ दिनों तक होनेवाली पढ़ाई। जैसे,—कालेज का सेशन जुलाई से शुरू होगा। (३) दौरा अदालत।

सेशन कोर्ट—संज्ञा पुं० [अं०] जिले की वह बड़ी अदालत जहाँ जूरी या असेसरों की सहायता से डाकेजनी, खून आदि फौजदारी के बड़े मामलों का विचार होता है। दौरा अदालत।

सेशन जज—संज्ञा पुं० [अं०] वह जज जो खून आदि के बड़े बड़े मामलों का फैसला करता है। दौरा जज।

सेश्वर—वि० [सं०] (१) ईश्वर युक्त। (२) जिसमें ईश्वर की सत्ता मानी गई हो। जैसे,—न्याय और योग सेश्वर दर्शन हैं।

सेषॐ—संज्ञा पुं० दे० "शेष" (८)। उ०—तपबल संभु करहिं संहारा। तपबल सेष धरइ महि भारा।—तुलसी।

संज्ञा पुं० दे० "शेष"।

सेसॐ—संज्ञा पुं० वि० दे० "शेष"। उ०—(क) सेस छबीहि न कहि सकै अगम कबीहि सुधीर। स्याम सखीहि बिलोकि कै चाम भई तसवीर।—शृंगार-सतसई। (ख) तर्यौं सेस रहि जात पार नहिं कोऊ पावत। या सों जग में सेस नाम सुर नर मुनि गावत।—गोपाल।

सेसनागॐ†—संज्ञा पुं० दे० "शेषनाग"।

सेसरंगॐ—संज्ञा पुं० [सं० शेष + रंग] सफेद रंग। (शेष का रंग श्वेत माना गया है।) उ०—गहि कर केस हमेस परहि दायक कलेस को। बेस सेस-रंग बसन तेज मोहन दिनेस को।—गोपाल।

सेसर—संज्ञा पुं० [फ़ा० सेह = तीन + सर = बाजी] (१) ताश का एक खेल जिसमें तीन तीन ताश हर एक आदमी को बाँटे जाते हैं और बिंदियों को जोड़कर हार जीत होती है। ९ आने पर 'सेसर' होता है। आठवाले को दाँव का दूना और नौवाले को तिगुना मिलता है। (२) जालसाजी। (३) जाल। उ०—मदमाती मनोज के आसव सों, अँग जासु मनो रँग केसरि को। सहजै नथ नाक तें खोलि धरी, करयौ कौन धौं फंद या सेसरि को।—सुंदरी-सर्वस्व।

सेसरिया—वि० [हिं० सेसर + इया (प्रत्य०)] छल कपट कर दूसरों का माल मारनेवाला। जालिया।

सेसी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़ जिसकी लकड़ी के सामान बनते हैं। बगूर।

विशेष—इसकी लकड़ी भीतर से काली निकलती है। यह आसाम और सिलहट की पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी पहाड़ियों में बहुत होता है। लकड़ी से कई तरह की सजावट की और कीमती चीजें तैयार की जाती हैं। इसे आग में जलाने से बहुत अच्छी गंध निकलती है।

सेह—संज्ञा पुं० दे० "सेहा"।

वि० [फ़ा०] तीन। (हिंदी में यह शब्द फ़ारसी के कुछ यौगिक शब्दों के साथ ही मिलता है।)

सेहखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० सेह = तीन + खाना = घर] तिमंजिला मकान।

सेहत—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सुख। चैन। राहत। (२) रोग से छुटकारा। रोगमुक्ति। बीमारी से आराम।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।—होना।

सेहतखाना—संज्ञा पुं० [अ० सेहत + फ़ा० खाना] पेशाब आदि

करने और नहाने-धोने के लिये जहाज पर बनी हुई एक छोटी सी कोठरी। (लश॰)

सेहथना†-क्रि॰ स॰ [सं॰ सह+हस्त=सहत्थ+ना (प्रत्य॰)] (१) हाथ से छीपकर साफ करना। सैंतना। (२) झाड़ना। बुहारना।

सेहरा-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ सिर+हरा, हार] (१) फूल की या तार और गोटों की बनी मालाओं की पंक्ति या जाल जो दूल्हे के मौर के नीचे लटकता रहता है। (२) विवाह का मुकुट। मौर। उ॰—(क) गजवर-गति आवनि पग धरनि धरत पाव, लटकत सिर सेहरो मनो शिखी शिखंड सुभाय।—सूर। (ख) मानिक सुपन्ना पदिक मोतिन जाल सोहत सेहरा।—रघुराज।

क्रि॰ प्र॰—बँधना।—बाँधना।

मुहा॰—किसी के सिर सेहरा बँधना=किसी का कृतकार्य होना। औरों से अधिक यश या कीर्ति होना। श्रेय मिलना। सेहरा बँधाई=वह नेग जो दूसरे को सेहरा बाँधने पर दिया जाता है। सेहरे जलवे की=जो विधिपूर्वक ब्याह कर आई हो। (मुसल॰)

(३) वे मांगलिक गीत जो विवाह के अवसर पर वर के यहाँ गाए जाते हैं।

सेहरी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ शफरी] छोटी मछली। सहरी।

सेहुवन-संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का रोग जो गेहूँ के छोटे पौधों को होता है।

सेहहजारी-संज्ञा पुं॰ [फा॰] एक उपाधि जो मुसलमान बादशाहों के समय में सरदारों और दरबारियों को मिलती थी। (ऐसे लोग या तो तीन हजार सवार या सैनिक रख सकते थे अथवा तीन हजार सैनिकों के नायक बनाए जाते थे।)

सेहा-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ सेंध] कूआँ खोदनेवाला।

सेहियान-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ सेहथना] वह बुहारी या कूचा जिससे खलियान साफ किया जाता है।

सेही-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ सेधा, सेधी] लोमड़ी के आकार का एक जंतु जिसकी पीठ पर कड़े और नुकीले काँटे होते हैं। साही। शल्यपुच्छ।

विशेष—क्रुद्ध होने पर यह जंतु काँटों को खड़े कर लेता है और इनसे चोट करता है। लंबाई में ये काँटे एक बालिश्त तक होते हैं।

सेहुँड़-संज्ञा पुं॰ [सं॰ सेहुण्ड] थूहर का पेड़। उ॰—उतो नेह कागद हिये भई लखाय न टाँक। बिरह तचे उघरयो सु अब सेहुँड़ को सो आँक।—बिहारी।

सेहुंडा-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] थूहर। सेहुँड़।

सेहुआँ-संज्ञा पुं॰ [?] एक प्रकार का चर्म रोग जिसमें शरीर पर भूरी भूरी महीन चित्तियाँ सी पड़ जाती हैं।

सेहुआन-संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का कमकल्ला जिसके बीज से तेल निकलता है।

सैंगर-संज्ञा पुं॰ दे॰ "सेंगर" (३)।

सैंणर-संज्ञा पुं॰ [सं॰ स्वामी+नर=सईंनर] पति। (डिं॰)

सैंतना-क्रि॰ स॰ [सं॰ संचय+हिं॰ ना (प्रत्य॰)] (१) संचित करना। एकत्र करना। बटोरना। इकट्ठा करना। उ॰—(क) सोई पुरुष दरब जेइ सैंती। दरबहि तें सुनु बातें एती।—जायसी। (ख) फागु खेलि पुनि दाहु बहोरी। सैंतब खेह, उड़ाउब झोरी। जायसी। (ग) कहा होत जल महा प्रलय को राख्यो सैंति सैंति है जेह। भुव पर एक बूँद नहिं पहुँची निझरि गए सब मेह।—सूर। (२) हाथों से समेटना। इधर उधर से सरका कर एक जगह करना। बटोरना। उ॰—सखि वचन सुनि कौसिला लखि सुढर पाँसे ढरनि। लेति भरि भरि अंक, सैंतति पैंत जनु दुहुँ करनि।—तुलसी। (३) सहेजना। सँभालकर रखना। सावधानी से अपनी रक्षा में करना। सवाधना। जैसे,—जो रुपए मैंने दिए हैं, सैंतकर रखना। (४) मार डालना। ठिकाने लगाना। (बाजारू) (५) धन मारना। चोट लगाना।

सैंतालिस-वि॰ दे॰ "सैंतालीस"।

सैंतालीस-वि॰ [सं॰ सप्तचत्वारिंशत्, पा॰ सत्तचत्तालीसति, प्रा॰ सत्तालीस] जो गिनती में चालीस से सात अधिक हो। चालीस और सात।

संज्ञा पुं॰ चालीस से सात अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४७।

सैंतालीसवाँ-वि॰ [हिं॰ सैंतालीस+वाँ (प्रत्य॰)] जो क्रम में छियालीस और वस्तुओं के उपरांत हो। क्रम में जिसका स्थान सैंतालिस पर हो।

सैंतिस-वि॰ दे॰ "सैंतीस"।

सैंतीस-वि॰ [सं॰ सप्तत्रिंशत्, पा॰ सत्ततिंसति, प्रा॰ सत्तिसइ] जो गिनती में तीस से सात अधिक हो। तीस और सात।

संज्ञा पुं॰ तीस से सात अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—३७।

सैंतीसवाँ-वि॰ [हिं॰ सैंतीस+वाँ (प्रत्य॰)] जो क्रम में छत्तीस और वस्तुओं के उपरांत हो। क्रम में जिसका स्थान सैंतीस पर हो।

सैंदूर-वि॰ [सं॰] सिंदूर से रँगा हुआ। सिंदूर के रंग का।

सैंधव-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) सेंधा नमक। वि॰ दे॰ "सेंधा"। (२) सिंध देश का घोड़ा। सिंधी घोड़ा। (३) सिंध के राजा जयद्रथ का नाम। (४) सिंध देश का निवासी।

वि॰ (१) सिंध देश में उत्पन्न। (२) सिंध देश का। सिंधु देशीय। (३) समुद्र संबंधी। समुद्रीय। (४) समुद्र में उत्पन्न

सैंधवक-वि० [सं०] सैंधव संबंधी।

सैंधवपति-संज्ञा पुं० [सं० सैंधव = सिंध निवासी + पति = राजा] सिंध-वासियों के राजा जयद्रथ। उ०—सोमदत्त शशिबिंदु सुवेशा। सैंधवपति अरु शल्य नरेशा।—सबलसिंह।

सैंधवादि चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक अग्निदीपक चूर्ण जिसमें सेंधा नमक, हर्रे, पीपल और चीतामूल बराबर पड़ता है।

सैंधवायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। (२) उनके वंशज।

सैंधवारण्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक वन का नाम। (महाभारत)

सैंधवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो भैरव राग की पुत्रवधू मानी गई है। यह दिन के दूसरे पहर की दूसरी घड़ी में गाई जाती है। इसकी स्वर-लिपि इस प्रकार है—धा सा रे म म प प ध ध। सा नि ध ध प प म ग ग ग ग रे सा। धा सा रे म म ग रे ग रे म प ग रे। नि नि ध म प म ग रे। प प म रे ग ग ग रे सा। किसी किसी के मत से यह षाडव है और इसमें गा वर्जित है।

सैंधी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मदिरा जो खजूर या ताड़ के रस से बनती है। ताड़ी।

विशेष—वैद्यक में यह शीतल, कषाय, अम्ल, पित्तदाहनाशक तथा वातवर्द्धक मानी गई है।

सैंधुक्षित-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम भेद का नाम।

सैंधू-संज्ञा स्त्री० दे० "सैंधवी"। उ०—करि आवदार दीरघ दवान। गहि तेल सौंन हुव सावधान। केतेक धीर सैंधी कमान। केतेन तेग राखी भुजान। गुन गाहक किय बीरनु बलान। सैंधू सुर पूरिय तिहीं थान।—सूदन।

सैंपुल-संज्ञा पुं० [अं०] नमूना। जैसे,—कपड़े का सैंपुल।

सैंयाँ-संज्ञा पुं० दे० "सैयाँ"।

सैंवर-संज्ञा पुं० दे० "साँभर"। उ०—सज्जी सौंचर सैंवर सोरा। साँआहूली सीप सिकोरा।—सूदन।

सैंह-वि० [सं०] (१) सिंह संबंधी। सिंह का। (२) सिंह के समान।

क्रि० वि० दे० "सौंह"।

सैंहल-वि० [सं०] [स्त्री० सैंहली] सिंहल द्वीप संबंधी। सिंहल द्वीप का। सिंहली। सिंहल में उत्पन्न।

सैंहली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की पीपल। सिंहली पीपल।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह कटु, उष्ण, दीपन, कोष्ठ-शोधक, कफ, श्वास और वायुनाशक है।

पर्या०—सर्पदंष्ट्रा। सर्पाक्षी। उत्कटा। पार्वती। शैलजा। महाभूमिजा। लंबबीजा। ताम्रा। अद्रिजा। सिंहलस्था। जीवला। लंबदंष्ट्रा। जीवनेत्री। जीवाला। कुरंगी।

सैंहाद्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जाति का नाम।

सैंहिक-संज्ञा पुं० (सिंहिका से उत्पन्न) राहु।

वि० सिंह के समान।

सैंहिकेय-संज्ञा पुं० [सं०] (सिंहिका के पुत्र) राहु।

सैंहुड़-संज्ञा पुं० दे० "सेहुँड़"।

सैंहूँ-संज्ञा पुं० [हिं० गेहूँ का अनु०] गेहूँ के वे दाने जो छोटे, काले और बेकार होते हैं।

सै†-वि०, संज्ञा पुं० [सं० शत, प्रा० सय] सौ। उ०—संवत सोरह सै इकतीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा।—तुलसी।

विशेष—इसका प्रयोग अधिकतर किसी संख्या के आगे होता है।

संज्ञा स्त्री० [सं० सत्व] (१) तत्व। सार। माद्दा। (२) वीर्य। शक्ति। ओज। उ०—बिनती सौं परसन्न सदा तीसों प्रसन्न मन। बिनमै देखत सत्रु अहै यह सै जाके तन।—गोपाल। (३) बढ़ती। बरकत। लाभ।

सैकंट-संज्ञा पुं० [सं० शतकंटक] बबूल की जाति का एक पेड़ जिसकी छाल सफेद होती है। धौला खैर। कुमतिया।

विशेष—यह बंगाल, बिहार, आसाम तथा दक्षिण और मध्य प्रदेश आदि में विंध्य की पहाड़ियों पर होता है।

सैकड़ा-संज्ञा पुं० [सं० शतकाण्ड, प्रा० सयकंड] (१) सौ का समूह। शत समष्टि। जैसे,—२ सैकड़े आम। (२) १०६ ढोली पान। (तंबोली)

सैकड़े-क्रि० वि० [हिं० सैकड़ा] प्रति सौ के हिसाब से। प्रति शत। फी सदी। जैसे,—५) सैकड़े ब्याज।

सैकड़ों-वि० [हिं० सैकड़ा] (१) कई सौ। (२) बहु संख्यक। गिनती में बहुत। जैसे,—सैकड़ों आदमी।

सैकत-वि० [सं०] [स्त्री० सैकती] (१) रेतीला। बलुआ। बालुकामय। (२) बालू का बना।

संज्ञा पुं० (१) बलुआ किनारा। रेतीला तट। (२) रेतीली मिट्टी। बलुई जमीन (३) एक ऋषिवंश।

सैकतिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साधु। संन्यासी। क्षपणक। (२) वह सूत्र या सूत जो मंगल के लिये कलाई या गले में धारण किया जाता है। मंगल सूत्र। गंडा या रक्षा।

वि० (१) सैकत संबंधी। (२) भ्रम या संदेह में रहनेवाला। संदेहजीवी। भ्रांतिजीवी।

सैकती-वि० [सं० सैकतिन्] सिकतायुक्त। रेतीला। बलुआ। (तट या किनारा)

सैकतेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] आर्द्रक। अदरक (जो बलुई जमीन में अधिक होता है)।

सैकयत-संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि के अनुसार एक प्राचीन जनपद या जाति का नाम।

सैकुल-संज्ञा पुं० [अ०] हथियारों को साफ करने और उन पर सान चढ़ाने का काम।

सैकलगर-संज्ञा पुं० [अ० सैकल+गर] तलवार, छुरी आदि पर बाढ़ रखनेवाला। सान धरनेवाला। चमक देनेवाला। सिकलीगर।

सैका-संज्ञा पुं० [सं० सेक (पात्र)] (१) घड़े की तरह का मिट्टी का एक बरतन जिससे कोल्हू से गन्ने का रस निकाल कर पकाने के लिये कड़ाहे में डालते हैं। (२) मिट्टी का छोटा बरतन जिससे रेशम रँगने का रंग डाला जाता है। (३) खेत से कट कर आई हुई रबी फसल का अटाला। राशि।
संज्ञा पुं० [हिं० सै=सौ] (१) दस टोके। (२) एक सौ पूले।

सैकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सैका] छोटा सैका।

सैक्य-वि० [सं०] (१) एकता युक्त। (२) सिंचन संबंधी।
संज्ञा पुं० सोन पीतल। शोण पित्तल।

सैक्षव-वि० [सं०] जिसमें चीनी हो। मीठा।

सैक्सन-संज्ञा पुं० [अं०] योरप की एक जाति जो पहले जर्मनी के उत्तरी भाग में रहती थी। फिर पाँचवीं और छठी शताब्दी में इसने इंगलैंड पर धावा किया और वहीं बस गई।

सैजन-संज्ञा पुं० दे० "सहिंजन"।

सैड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] गेहूँ की कटी हुई फसल जो दाँई गई हो, पर ओसाई न गई हो।

सैण-संज्ञा पुं० [सं० स्वजन] मित्र। (डिं०)

सैतव-वि० [सं०] सेतु संबंधी।

सैतवाहिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बाहुदा नदी का नाम।

सैथी-संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति, प्रा० सत्ति अथवा सहस्त, प्रा० सहत्थ, हिं० सैहथी] बरछी। साँग। छोटा भाला। उ०—पहर-रात भर भई लराई। गोलिन सर सैथिन झर लाई। खाह घाह सब खान अघाने। छोह मानि, तजि कोह पराने।—लाल कवि।

सैद‡-संज्ञा पुं० दे० "सैयद"। उ०—सुन्यो बहुरि सुरमी बलवाना। शेख सैद अरु मुगल पठाना।—रघुराजसिंह।

सैदपुरी-संज्ञा स्त्री० [सैदपुर स्थान] एक प्रकार की नाव जिसके आगे पीछे दोनों ओर के सिरे लंबे होते हैं।

सैद्धांतिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिद्धांत को जाननेवाला। सिद्धांतज्ञ। विद्वान्। तत्वज्ञ। (२) तांत्रिक।
वि० सिद्धांत संबंधी। तत्व संबंधी।

सैध्रक-वि० [सं०] सिध्रक वृक्ष की लकड़ी का बना हुआ।

सैध्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष।

सैन-संज्ञा स्त्री० [सं० संज्ञपन, प्रा० सण्णवण] (१) अपना भाव प्रकट करने के लिये आँख या उँगली से किया हुआ इंगित या इशारा। संकेत। इंगित। इशारा। उ०—(क) जदपि चवाइनि चीकनी, चलति चहूँ दिसि सैन। तदपि न छाँड़त दुहुनि के हँसी रसीले नैन।—बिहारी। (ख) सुनि प्रसंग दशवदन दशन अभिमान कर नैन की सैन अँगद बुलायो। देखि लंकेश कपिभेश हर हर हँस्यो सुन्यो भट कटक को पार पायो।—सूर। (ग) सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सैन बुझाई।—तुलसी।
संयो० क्रि०—करना।—देना।—मारना।
(२) चिह्न। निशान। सूचक वस्तु। लक्षण। उ०—यह चमकन नख रातन की सैन जुदी अँग मैन। नील निचोल चिते भये तरुनि चोल रँग नैन।—शृंगार-सतसई।
‡संज्ञा पुं० दे० "शयन"। उ०—(क) भटन विदा करि रैन सुख, जाइ कीन्ह गृह सैन।—गोपाल। (ख) साजि सैन भूषण बसन सब की नजर बचाय। रही पौढ़ि मिस नींद के दृग दुवार से लाय।—पद्माकर। (ग) जानि परेगी आज हो रात कहूँ करि सैन। लाल रसौहैं नैन लखि सुनि अलसौहैं बैन।—शृंगार-सतसई।
‡संज्ञा स्त्री० दे० "सेना"। उ०—(क) सात दीप के कपि दल आये जुरी सैन अति भारी। सीता की सुधि लेन चले कपि ढूँढ़त विपिन मँझारी।—सूर। (ख) सजी सैन छवि बरनि न जाई। मनु विधि करामाति सब आई।—गोपाल।
‡संज्ञा पुं० दे "श्येन"। उ०—चलो प्रसैन समीन सैन जिमि झपट खंगन पर।—गोपाल।

सैनक-संज्ञा पुं० [फा० सनी, सहनक] थाली। रिकाबी। तश्तरी।

सैनपति‡-संज्ञा पुं० दे० "सेनापति"। उ०—चहुँ सैनपतीनु बुलाइ लियं। तिन सौं यह आइसु आपु दियं।—सूदन।

सैनभोग-संज्ञा पुं० [सं० शयन+भोग] शयन समय का भोग। रात्रि का नैवेद्य जो मंदिरों में चढ़ता है। उ०—भये दिन तीनि ये तो भूख के अधीन नहिं, रहे हरि लीन प्रभु सोच परे उभारिये। दियो सैनभोग आप लक्ष्मी जू लै पधारी, हाटक की थारी झनझन पाँव धारिये।—भक्तमाल।

सैना‡-संज्ञा स्त्री० दे० "सेना"। उ०—मीत नीत की चाल पे चल जानतहू रैन। छवि सैना सजि धावहीं अबलन पै दुव नैन।—रसनिधि।

सैनानीक-वि० [सं०] सेना के अग्र भाग का।

सैनान्य-संज्ञा पुं० [सं०] सेनानी या सेनापति का कार्य। सैनापत्य। सेनापतित्व।

सैनापति‡-संज्ञा पुं० दे० "सेनापति"।

सैनापत्य-संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति का पद या कार्य। सेनापतित्व।
वि० सेनापति-संबंधी।

सैनिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेना या फौज का आदमी। सिपाही। लश्करी। तिलंगा। (२) सैन्यरक्षक। प्रहरी। संतरी। (३) समवेत सेना का भाग या दल। (४) वह जो किसी प्राणी का वध करने के लिये नियुक्त किया गया हो। (५) शंबर के एक पुत्र का नाम।

वि॰ सेना-संबंधी। सेना का।

सैनिका-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ श्येनिका] एक छंद का नाम। उ॰—सो सुजाननंद सोचि या घरी। आइयौ मजेस पास ता घरी। सीख माँगि श्रीमजेस सौं तबै। दै निसान कूँच कै चमू सबै।—सूदन।

सैनी-संज्ञा पुं॰ [सेना भगत नाई] नाई। हज्जाम। उ॰—दरशन हूँ नाशे यम सैनिक जिमि नह वालक सैनी। एक नाम लेत सब भाजै पीर सुभूमि रमैनी।—सूर।

*संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "सेना"। उ॰—जानि कठिन कलिकाल कुटिल नृप संग सजी अघ सैनी। जनु ता लगि मरवार त्रिविक्रम धरि करि कोप उपैनी।—सूर।

सैनू-संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का बूटेदार कपड़ा। मैनू।

सैनेय*-वि॰ [सं॰ सेना + इय (प्रत्य॰)] सेना के योग्य। लड़ने के योग्य। उ॰—कैतयेय नृप चल्यो श्रेय गुनि बल अमेय तन। सँग अजेय सैनेय सैन पर प्रान सेय रन।—गोपाल।

सैनेश, सैनेस-संज्ञा पुं॰ [सं॰ सैन्य + ईश = सैन्येश] सेनापति। उ॰—हँसि बोले सैनेश कुमारा। कहिये नाथ सहित विस्तारा।—सबलसिंह।

सैन्य-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) सैनिक। सिपाही। (२) सेना। फौज। (३) सेनादल। पलटन। (४) पहरी। संतरी। (५) शिविर। छावनी।

वि॰ सेनासंबंधी। फौज का।

सैन्यकक्ष-संज्ञा पुं॰ दे॰ "सेनाकक्ष"।

सैन्यक्षोभ-संज्ञा पुं॰ [सं॰] सेना का विद्रोह। फौज की बगावत।

सैन्यनायक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] सेना का अध्यक्ष। सेनापति।

सैन्यनिवेशभूमि-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह स्थान जहाँ सेना पड़ाव डाले। शिविर। पड़ाव। छावनी।

सैन्यपति-संज्ञा पुं॰ [सं॰] सेनापति।

सैन्यपाल-संज्ञा पुं॰ [सं॰] सेनापति।

सैन्यपृष्ठ-संज्ञा पुं॰ [सं॰] फौज का पिछला हिस्सा। सेना का पश्चाद् भाग। प्रतिग्रह। परिग्रह।

सैन्यवास-संज्ञा पुं॰ [सं॰] पड़ाव। छावनी।

सैन्यशिर-संज्ञा पुं॰ [सं॰ सैन्यशिरस्] सेना का अग्र भाग।

सैन्याधिपति-संज्ञा पुं॰ [सं॰] सेनापति।

सैन्याध्यक्ष-संज्ञा पुं॰ [सं॰] सेनापति।

सैन्योपवेशन-संज्ञा पुं॰ [सं॰] सेना का पड़ाव।

सैफ-संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ सैफ़] तलवार। उ॰—(क) यों छबि पावत हैं लखौ अंजन आँजे नैन। सरस धार सैफन धरी जनु सिकलीगर मैन।—रसनिधि। (ख) कोउ कहति भामिनि भ्रुकुटि विकट विलोकि श्रवण समीप लौं। ये साफ सैफ करैं कतल नहिं छमै जानि तिय सजनी चलौ।—रघुराज।

सैफग-संज्ञा पुं॰ [सं॰ शतफल ?] लाल देवदार।

विशेष—इसका सुंदर पेड़ घटगाँव से सिकिम तक और कोंकण और दक्षिण में मैसूर, मालाबार और लंका तक के जंगलों में पाया जाता है। इसकी लकड़ी पीलापन लिए भूरे रंग की होती है और मेज़, कुरसी, बाजों के संदूक आदि बनाने के काम में आती है।

सैफा-संज्ञा पुं॰ [अ॰ सैफ़] जिल्दसाजों का एक औजार जिससे वे किताबों का हाशिया काटते हैं।

सैफी-वि॰ [अ॰ सैफ़ = तलवार] तिरछा। उ॰—नेहनि डर आयत लखी जबहीं धीरज सैन। सैफी हेरन मैं पढ़े वैफी तेरे नैन।—रसनिधि।

सैमंतिक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] सिंदूर। सेंदुर। (सधवा स्त्रियों के सीमंत अर्थात् माँग [illegible] लगाने के कारण सिंदूर का यह नाम पड़ा।)

सैम-संज्ञा पुं॰ [देश॰] धीवरों के एक देवता या भूत।

सैयद-संज्ञा पुं॰ [अ॰] [स्त्री॰ सैयदानी, सैदानी] (१) मुहम्मद साहब के नाती हुसैन के वंश का आदमी। (२) मुसलमानों के चार वर्गों या जातियों में दूसरी जाति। उ॰—सैयद अशरफ पीर पियारा। जेइ मोहिं दीन्ह पंथ उजियारा।—जायसी।

सैयाँ*-संज्ञा पुं॰ [सं॰ स्वामी, हिं॰ साईं] स्वामी। पति। उ॰—(क) सैयाँ भये सिलंगवा बहुभर चली नहाय।—गिरिधर। (ख) अपने सैयाँ बाँधी पाट। [illegible] रे बेंची हाटे हाट।—कबीर।

सैया*-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "शय्या"। उ॰—सैया असन बसन सुख होई। कल्प वृक्ष नामक तरु सोई।—गोपाल।

सैरंध्र-संज्ञा पुं॰ [सं॰] [स्त्री॰ सैरंध्री] (१) गृहदास। घर का नौकर। (२) एक संकर जाति जो स्मृतियों में दस्यु और अयोगवी से उत्पन्न कही गई है।

सैरंध्रिका-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] परिचारिका। दासी।

सैरंध्री-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) सैरंध्र नामक संकर जाति की स्त्री। (२) अंतःपुर या जनाने में रहनेवाली दासी। अंतःपुर परिचारिका। महल्लिका। (३) स्त्री-कारीगर जो दूसरों के घरों में काम करे। स्वतंत्र शिल्पजीविनी। (४) द्रौपदी का एक नाम।

विशेष—जब पाँचों पांडवों ने छद्मवेश में राजा विराट् के यहाँ सेवा वृत्ति स्वीकार की थी, तब द्रौपदी ने भी उनके साथ ही, एक वर्ष तक सैरंध्री का काम किया था। इसी से द्रौपदी का नाम सैरंध्री पड़ा।

सैरिंध्र-संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्राचीन जनपद। (बृहत्संहिता)

संज्ञा पुं॰ दे॰ "सैरंध्र"।

सैरिंध्री-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "सैरंध्री"।

सैर-संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] (१) मन बहलाने के लिये घूमना फिरना।

मनोरंजन या वायुसेवन के लिये भ्रमण। उ०—शहर की सैर करते हुए राजा के महलों के नीचे आए।—लल्लू०।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
(२) बहार। मौज। आनंद। (३) मित्रमंडली का कहीं बगीचे आदि में खान पान और नाच रंग। (४) मनोरंजक दृश्य। कौतुक। तमाशा। उ०—मम बंधु को तैं हने शक्ति, विशेष हैहीं बैर। तव पुत्र पौत्र सँहारि मैं दिखरायहौं रन-सैर।—रघुराज।
यौ०—सैर सपाटा।
वि० [सं०] सीर या हल-संबंधी।
सैरगाह-संज्ञा पुं० [फ़ा०] सैर करने की जगह।
सैरि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्त्तिक महीना। (२) बृहत्संहिता के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।
सैरिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हलवाहा। हलधर। किसान। कृषक। (२) हल में जुतनेवाला बैल। (३) आकाश।
वि० सीर-संबंधी। हल-संबंधी।
सैरिभ-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सैरिभी] (१) भैंसा। महिष। (२) स्वर्ग। आकाश।
सैरिभी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भैंस। महिषी।
सैरिंध्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद। (मार्कंडेयपुराण)
सैरीय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद कटसरैया। श्वेत झिंटी। (२) नीली कटसरैया। नील झिंटी।
सैरीयक-संज्ञा पुं० दे० "सैरीय"।
सैरेय-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद फूलवाली कटसरैया। श्वेत झिंटी।
सैरेयक-संज्ञा पुं० दे० "सैरेय"।
सैर्य-संज्ञा पुं० [सं०] बलवाल नामक तृण।
सैल⊛†-संज्ञा स्त्री० दे० "सैर"। उ०—(क) गोप अथाइन तैं उठे गोरज छाई गैल। चलि बलि अलि अभिसार कों भली सँझोखी सैल।—बिहारी। (ख) मोहि मधुर मुसकान सों सबै गाँव के छैल। सकल रैन बनकुंज में तरुनि सुरति की सैल।—मतिराम।
संज्ञा पुं० दे० "शैल"।
संज्ञा स्त्री० दे० "सेल"।
संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सैलाब] (१) बाढ़। जलप्लावन। (२) स्रोत। बहाव।
सैलकुमारी-संज्ञा स्त्री० दे० "शैलकुमारी"।
सैलग-संज्ञा पुं० [सं०] लुटेरा। डाकू।
सैलजा⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "शैलजा"।
सैलसुता⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "शैलसुता"।
सैला-संज्ञा पुं० [सं० शल्य] [स्त्री० अल्पा० सैली] (१) लकड़ी की गुल्ली या पच्चड़ जो किसी छेद या संधि में ठोंका जाय। किसी छेद में डालने या फँसाने का टुकड़ा। मेख। (२) लकड़ी का छोटा डंडा या मेख। (३) लकड़ी का छोटा डंडा या मेख जो हल के जूए के दोनों सिरों के छेदों में इसलिये डालते हैं जिसमें जूआ बैलों के गले में फँसा रहे। (४) नाव की पतवार की मुठिया। (५) वह मुँगरी जिससे कटी हुई फसल के डंठल दाना झाड़ने के लिये पीटते हैं।
संज्ञा पुं० [सं० शाकल, प्रा० साकल] [स्त्री० अल्पा० सैली] चीरा हुआ टुकड़ा। चैला। जैसे,—लकड़ी का सैला।
सैलात्मजा⊛-संज्ञा स्त्री० [सं० शैलात्मजा] पार्वती।
सैलानी-वि० [फ़ा० सैर, हिं० सैल] (१) सैर करने में जिसे आनंद आवे। सैर करनेवाला। मनमाना घूमनेवाला। (२) आनंदी। मनमौजी।
सैलाब-संज्ञा पुं० [फ़ा०] बाढ़। जलप्लावन।
सैलाबा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सैलाब] वह फसल जो पानी में डूब गई हो।
सैलाबी-वि० [फ़ा०] जो बाढ़ आने पर डूब जाता हो। बाढ़वाला। जैसे,—सैलाबी ज़मीन।
संज्ञा स्त्री० तरी। सील। सीड़।
सैलि-संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।
सैली-संज्ञा स्त्री० [हिं० सैला] (१) छोटा सैला। (२) ढाक की जड़ के रेशों की बनी रस्सी।
संज्ञा स्त्री० [देश०] वह टोकरी जिसमें किसान तिन्नी का चावल इकट्ठा करते हैं।
सैलूष⊛-संज्ञा पुं० दे० "शैलूष"।
सैव⊛†-संज्ञा पुं० दे० "शैव"।
सैवल⊛-संज्ञा पुं० दे० "शैवल"। उ०—नाभि सरसि त्रिवली निसेनिका रोमराजि सैवल छवि पावति।—तुलसी।
सैवलिनी⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "शैवलिनी"।
सैवाल⊛-संज्ञा पुं० दे० "शैवाल"।
सैव्य⊛-संज्ञा पुं० दे० "शैव्य"।
सैस-वि० [सं०] (१) सीसे का बना हुआ। (२) सीसा-संबंधी।
सैसक-वि० दे० "सैस"।
सैसव⊛-संज्ञा पुं० दे० "शैशव"।
सैसवता⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "शैशव"। उ०—सैसवता में हे सखी जोवन कियो प्रवेस। कहा कहौं छवि रूप की नखसिख अंग सुरेस।—सूर।
सैसिकत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद। (महाभारत)
सैसिरिध्र-संज्ञा पुं० दे० "सैसिकत"।
सैह्थी-संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति, प्रा० सत्ति, अथवा सं० सहस्त, प्रा० सहत्थ] शक्ति। बरछी। साँग। उ०—(क) महामंत्र पढ़ि सैहथी रावन कर चमकाय। काल जलद में बीजुरी जनु मगटी है आय।—हनुमन्नाटक। (ख) कह्यो लंकपति मारों

सोहीं। दीन्ही करट सैहथी मोहीं।—हनुमन्नाटक। (ग) आपुस माँझ इसारत कीनी। कर उलारि सैहथी लीनी। —लाल कवि।

सैहा—संज्ञा पुं० [सं० सेक = सिचाई + हा (हिं० प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० सैही] पानी, रस आदि ढालने का मिट्टी का बरतन।

सैही—संज्ञा स्त्री० [हिं० सैहा] छोटा सैहा।

सों—प्रत्य० [प्रा० सुन्तो] करण और अपादान कारक का चिह्न। द्वारा। से। उ०—(क) बार बार करतल कहँ मलिहैं। निज कर पीठ रदन सों दलिहैं।—गोपाल। (ख) गिरत सिंदूर मतवारिन की माँगन सों, चहुँ ओर फैलि रही जासु अरुनाई है।—बालमुकुंद गुप्त।

वि० दे० "सा"। उ०—तीन सों धीर समीर लगै पद्माकर बूझिहू बोलत नाहीं।—पद्माकर।

अव्य० दे० "सौंह"। उ०—मथुरा में भेम चढे राम श्याम बल पाय मारयो कंस राय करे करम अलीके सों। ताको बैर लैहों मारि सत्रुन नसैहों महि जामे परै पापिन के मुख फेरि फीके सों। धर्ना धरनी के नीके आपुनी अनीके संग आवें जुर जीके मोन जी के गरजी के सों।—गोपाल।

क्रि० वि० संग। साथ। उ०—मन हरि सों तनु घरहि चलावति। ज्यों गजमत्त लाज अंकुश कर गुरुजन सुधि आवति।—सूर।

सर्व० दे० "सो"। उ०—राज समाज खबर सों बरनी। आगे नृपदल सों भरि धरनी।—गोपाल।

संज्ञा स्त्री० दे० "सौंह"। उ०—श्याम सुने ते बहुत हँसोगे चरण कमल की सों। मेरी देह छुटत यम पठये जितक दूत घर मों।—सूर।

सोंटा—संज्ञा पुं० [हिं० सटना ?] चिमटा। दस्तपनाह।

सोंच—संज्ञा पुं० दे० "सोच"।

सोंचर नमक—संज्ञा पुं० [सं० सौवर्चल + फ़ा० नमक] एक प्रकार का नमक जो मामूली नमक तथा हड़, बहेड़े और सज्जी के संयोग से बनाया जाता है। काला नमक। वैद्यक में यह उष्णवीर्य, कटु, रोचक, भेदक, दीपक, पाचक, स्नेहयुक्त, वातनाशक, अत्यंत पित्तजनक, विशद, हलका, डकार को शुद्ध करनेवाला, सूक्ष्म तथा विबंध, आनाह और शूल का नाश करनेवाला माना गया है।

पर्य्या०—अक्ष। सौवर्चल। रुच्य। दुर्गंध। शूलनाशन। रुचक। कृष्णलवण आदि।

सोंज—संज्ञा स्त्री० दे० "सौंज"।

सोंटा—संज्ञा पुं० दे० "सौंटा"।

सोंटा—संज्ञा पुं० [सं० शुण्ड या हिं० सटना] (१) मोटी लंबी सीधी लकड़ी या बाँस जिसे हाथ में ले सकें। मोटी छड़ी। डंडा। लाठी। लट्ठ।

क्रि० प्र०—चलाना।—जमाना।—बाँधना।—मारना।

मुहा०—सोंटा चलना = सोंटे से मारपीट होना। सोंटा चलाना = सोंटे से प्रहार करना। सोंटा जमाना = दे० "सोंटा चलाना"।

संज्ञा पुं० (१) भंग घोंटने का मोटा डंडा। भंग-घोटना। उ०—तन कर कूँडी मन कर सोंटा प्रेम की भँगिया रगरि पियावै।—कबीर। (२) लोबिया का पौधा। रवाँस। (३) मस्तूल बनाने लायक लकड़ी। (लश०)

सोंटाबरदार—संज्ञा पुं० [हिं० सोंटा + फ़ा० बरदार] सोंटा या आसा लेकर किसी राजा या अमीर की सवारी के साथ चलनेवाला। आसाबरदार। बल्लमदार।

सोंठ—संज्ञा स्त्री० [सं० शुण्ठी] सुखाया हुआ अदरक। शुंठि। शुंठी।

विशेष—वैद्यक के अनुसार सोंठ रुचिकर, पाचक, हलकी, स्निग्ध, उष्णवीर्य, पाक में मधुर, वीर्यवर्द्धक, सारक, कफ, वात, विबंध, हृद्रोग, श्लीपद, शोक, बवासीर, अफारा, उदर रोग तथा वात रोग नाशक है।

सोंठमिट्टी—संज्ञा स्त्री० [सोंठ ? + हिं० मिट्टी] एक प्रकार की पीले रंग की मिट्टी जो ताल या धान के खेत में पाई जाती है। यह कावित बनाने के काम में आती है।

सोंठराय—संज्ञा पुं० [हिं० सोंठ + राय = राजा] कंजूसों का सरदार। भारी मक्खीचूस। (व्यंग्य)

सोंठौरा—संज्ञा पुं० [हिं० सोंठ + औरा (प्रत्य०)] एक प्रकार का सूजी का लड्डू जिसमें मेवों के सिवा सोंठ भी पड़ती है। यह लड्डू प्रायः प्रसूती स्त्री को खिलाया जाता है।

सोंडकहा—संज्ञा पुं० [देश०] घी। (सुनार)

सोंध—अव्य० दे० "सौंह"। उ०—यह श्यामा है कौन की छवि धामा मुसकाय। सोंध चढ़ी चढ़ि कौंध सी चौंध गई चख छाय।—शृंगार-सतसई।

सोंधा—वि० [सं० सुगंध] [स्त्री० सोंधी] (१) सुगंधयुक्त। सुगंधित। खुशबूदार। महकनेवाला। उ०—(क) सोंधे समीरन को सरदार मलिंदन को मनसा फलदायक। किंसुक जालन को कल्पद्रुम मानिनी बालकहूँ को मनायक।—रसकुसुमाकर। (ख) लहर लहर सोंधी सीतल समीर डोलैं, घहर घहर घन घोरिकै घहरिया।—देव। (ग) सोंधे कैसी सोंधी देह सुधा सों सुधारी, पाउँ धारी देवलोक तें कि सिंधु ते उधारी सी।—केशव। (२) मिट्टी के नए बरतन या सूखी जमीन पर पानी पड़ने या चना, बेसन आदि भुनने से निकलनेवाली सुगंध के समान। जैसे,—सोंधी मिट्टी, सोंधा चना।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का सुगंधित मसाला जिससे स्त्रियाँ केश धोती हैं। उ०—(क) आइ हुती अन्हवावन नाइनि सोंधो लिये कर सूधे सुभाइनि। कंचुकि छोरि उतै उपटैबे को ईंगुर से अँग की सुखदाइनि। (ख) सोंधे की सुवास

आस पास भरि भवन, रह्यो भरत उसाँस बास बासन बसात है।—देव। (ग) देखी है गुपाल एक गोपिका मैं देवता सी, सोने सो शरीर सब सौंधे की सी बास है।—केशव। (घ) लेहु के फूल बैठि फुलहारी। पान अपूरब धरे सँवारी। सौंधा सबै बैठ ले गाँधी। फूल कपूर खिरौरी बाँधी।—जायसी। (२) एक प्रकार का सुगंधित मसाला जो बंगाल में स्त्रियाँ नारियल के तेल में उसे सुगंधित करने के लिये मिलाती हैं।

संज्ञा पुं० सुगंध। उ०—(क) सूरदास प्रभु की बानक देखे गोपी ग्वाल टारे न टरत निपट आवै सौंधे की लपट।—सूरदास। (ख) सौंधे को अधार किसमिस जिनको अहार चारि को सो अंक लंक चंद सरमाती हैं।—भूषण। (ग) गढ़ी सो सोने सौंधे भरी सो रूपे भाग। सुनत रूखि भइ रानी हिये लोन अस लाग।—जायसी।

सोंधिया-संज्ञा पुं० [हिं० सौंधा=सुगंधित+इया (प्रत्य०)] सुगंध तृण। रोहिष तृण। गंधेज घास।

सोंधी-संज्ञा पुं० [हिं० सौंधा] एक प्रकार का बढ़िया धान जो दलदली जमीन में होता है।

सोंधु⊛-वि० दे० "सौंधा"। उ०—सौंधु सुरद्रुम विद्रुम बिंब लै फली दल फूलन दारयो दरेरे।—देव।

सोंपना-क्रि० स० दे० "सौंपना"। उ०—राम को राजलक्ष्मी सौंपो।—लक्ष्मणसिंह।

सोंवनिया-संज्ञा पुं० [सं० स्वर्ण] एक प्रकार का आभूषण जो नाक में पहना जाता है। उ०—पहुँची करनी पदिक उर हरि नख कठुला कंठ मंजु गजमनिया। रुचि रुचि शुक द्विज अधर नासिका अति सुंदर राजत सोंवनिया।—सूर।

सोंह⊛†-संज्ञा स्त्री० दे० "सौंह"। उ०—प्यारे को प्यार परोसिनि सौंह कह्यो तुम सो सब साधु न लेखौं। ओही को झूठी कही सगरो करि सौंह करौं सब औरक लेखौं।—काव्यकलाधर।

अव्य० दे० "सौंह"। उ०—बाउर अंध प्रेम कर लागू। सौंह धसा कछु सूझ न आगू।—जायसी।

सोंहट†-वि० [?] सीधा सादा। सरल।

सोंहीं⊛-अव्य० दे० "सौंह"। उ०—(क) आनु रिसौंहीं न सौंहीं चितौति कितौ न सखी प्रति प्रीति बढ़ावै।—देव। (ख) इतने में सौंहीं आ एक बोली ब्रजनारी।—लल्लू।

सो-सर्व० [सं० स] वह। उ०—(क) ब्याही सो सुजान सील रूप वसुदेव जू कों विदित जहान जाकी अतिहि बड़ाई है।—गोपाल। (ख) सो मो सन कहि जात न कैसे। साक-बनिक मनि-गन-गुन जैसे।—तुलसी। (ग) अरे दया में जो मजा सो कुलफन मैं नाह।—रसनिधि।

⊛ वि० दे० "सा"। उ०—(क) बिधि-हरि-हर-मय बेद प्रमान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो।—तुलसी। (ख) नासिका सरोज गंधवाह से सुगंधवाह, दारयों से दसन कैसो बीजुरी सो हास है।—केशव।

अव्य० अतः। इसलिये। निदान। जैसे,—पराधीनता सब दुःखों का कारण है; सो, भाइयो, इससे मुक्त होने के उद्योग में लगे रहिए। उ०—सो अब हम तुम सों मिले जुद्ध। नव अंग लहहु मैं समर सुद्ध।—गोपाल।

संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती का एक नाम।

सोऽहम् [सं० सः+अहम्] वही मैं हूँ—अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ।

विशेष—वेदांत का सिद्धांत है कि जीव और ब्रह्म एक ही हैं; दोनों में कोई अंतर नहीं है। जीव और कुछ नहीं ब्रह्म ही है। इसी सिद्धांत का प्रतिपादन करने के लिये वेदांती लोग कहा करते हैं—सोऽहम्; अर्थात् मैं वही ब्रह्म हूँ। उपनिषदों में भी यह बात "अहं ब्रह्मास्मि" और "तत्वमसि" रूप में कही गई है।

सोऽहमस्मि [सं० सः+अहम्+अस्मि] वही मैं हूँ—अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ। वि० दे० "सोऽहम्"।

सोअना⊛-क्रि० अ० दे० "सोना"। उ०—(क) गोरे गात कपोल पर अलक अडोल सोहाय। सोभति है साँपिनि मनो पंकज पात बिछाय।—मुबारक। (ख) सुकुलीन जहाँ बसत जे जागत सोअत राम राम बके।—देवस्वामी।

सोअरी-संज्ञा स्त्री० दे० "सौरी"।

सोआ-संज्ञा पुं० [सं० मिश्रेया] एक प्रकार का साग जिसका क्षुप १ से ३ फुट तक ऊँचा होता है। इसकी पत्तियाँ बहुत सूक्ष्म और फूल पीले होते हैं। वैद्यक के अनुसार यह चरपरा, कड़ुआ, हलका, पित्तजनक, अग्निदीपक, गरम, मेधाजनक, बस्तिकर्म में प्रशस्त तथा कफ, वात, ज्वर, शूल, योनिशूल, आध्मान, नेत्ररोग, व्रण और कृमि का नाशक है।

पर्य्या०—शताह्वा। शतपुष्पा। शताक्षी। शतपुत्रिका। कारवी। तालपर्णी। माधवी। शोफघ्न। मिसी।

सोई-संज्ञा स्त्री० [सं० स्रोत, हिं० सोता] वह जमीन या गड्ढा जहाँ बाढ़ या नदी का पानी रुका रह जाता है जिसमें अगहनी धान की फसल रोपी जाती है। डाबर।

सर्व० दे० "वही"। उ०—(क) मेरी भवबाधा हरो राधा नागरि सोइ। जा तन की झाँई परे स्याम हरित दुति होइ।—बिहारी। (ख) सातों द्वीप कहे शुक मुनि ने सोइ कहत अब सूर।—सूर। (ग) सोइ रघुवर सोइ लछिमन सीता। देखि सती अति भईं सभीता।—तुलसी।

अव्य० दे० "सो"। सोई मैं ससुराल जाती थी।—प्रताप।

सोक-संज्ञा पुं० [देश०] चारपाई बुनने के समय बुनावट में का वह छेद जिसमें से रस्सी या निवार निकाल कर कसते हैं।

संज्ञा पुं० दे० "शोक"। उ०—समन पाप-संताप-सोक के। प्रिय पालक पर-लोक-लोक के।—तुलसी।

सोकन—संज्ञा पुं० दे० "सोखन"।

सोकनाꣳ—क्रि० स० [सं० शोक] शोक करना। दुःख करना। रंज करना। उ०—सुव पन पालि विपिन करि देहौं। पुनि सुच पद पंकज सिर नैहौं। यों सुनि नृपति मनहिं मन सोच्यौ। पुनि पुनि रामवदन अवलोक्यौ।—पद्माकर।

क्रि० स० दे० "सोखना"। उ०—(क) आठ मास जो सूर्य जल सोकता है, सोई चार महीने बरसता है।—दादू। (ख) बुंद सोकिगो कहा महा समुद्र छीजई।—केशव।

सोकनी|—वि० [?] कालापन लिये सफेद रंग का (बैल)।

सोकरहा|—संज्ञा पुं० [हिं० सोकार] वह आदमी जो कूँए पर खड़ा होकर पानी से भरे हुए चरसे या मोट को नाली में उलटकर खाली करता है। बारा।

सोकार|—संज्ञा पुं० [हिं० सोकना, सोखना] वह स्थान जहाँ खेत सींचनेवाले कूँए से मोट निकालकर गिराते हैं। सिंचाई के लिये पानी गिराने की कूँए पर की नाली। छिउलारा। चौंढ़ा।

सोकितꣳ—वि० [सं० शोक] शोकयुक्त। उ०—मुहिं स्वारथ ढीठ बनायो तुमकों जब सोकित देख्यों।—प्रताप।

सोकन—संज्ञा पुं० दे० "सोखन"।

सोखकꣳ—वि० [सं० शोषक] (१) शोषण करनेवाला। (२) नाश करनेवाला। उ०—चलि चलि चंद्रमुखी साँवरे सखा पै वेगि, सोखक सु केसोदास अरि सुख साज के। चढ़ि चढ़ि पवन तुरंगन गगन घन, चाहत फिरत चंद योधा यमराज के।—केशव।

सोखता—वि० दे० "सोख्ता"। उ०—मैं सोहदा तन सोखता विरहा दुख जारइ।—दादू।

संज्ञा पुं० दे० "सोख्ता"।

सोखन—संज्ञा पुं० [देश०] (१) स्याही लिये सफेद रंग का बैल। (२) एक प्रकार का जंगली धान जो नदी की घाटी में बलुई ज़मीन में बोया जाता है।

सोखना—क्रि० स० [सं० शोषण] (१) शोषण करना। रस खींच लेना। चूस लेना। सुखा डालना। उ०—(क) यह मिट्टी ......पानी को खूब सोखती है।—खेती विद्या। (ख) सेर भर चावल सेर ही भर घी सोखता है।—शिवप्रसाद। (ग) उदित अगस्त पंथजल सोखा। जिमि लोभहि सोखइ संतोषा।—तुलसी। (घ) उतै स्याई है घनी थोरो मो पै नेह। जाही अंग लगाइए सोई सोखै देह।—रसनिधि। (२) पीना। पान करना। (व्यंग्य)

संयो० क्रि०—जाना।—डालना।—लेना।

सोखरी|—संज्ञा स्त्री० [हिं० सोखना या सुखाना] पेड़ का सूखा हुआ महुआ।

सोखा|—संज्ञा पुं० [सं० सूक्ष्म या चोखा ?] (१) चतुर मनुष्य। होशियार आदमी। (२) जादूगर।

सोखाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० सोखा] जादू। टोना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सोखना] (१) सोखने की क्रिया या भाव। (२) सोखने या सोखाने की मजदूरी।

सोख्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का मोटा खुरदुरा कागज, जो स्याही सोख लेता है। स्याही-सोख। स्याही-चट। ब्लाटिंग पेपर।

वि० जला हुआ। उ०—मैं सोहदा तन सोखता, विरहा दुख जारइ।—दादू।

सोगंद—संज्ञा स्त्री० दे० "सौगंद"।

सोगꣳ—संज्ञा पुं० [सं० शोक] शोक। दुःख। रंज। उ०—(क) निसि दिन राम राम की भक्ती, भय रुज नहिं दुख सोग।—सूर। (ख) चित पितु-घातक जोग लखि भयौ भये सुत सोग। फिर हुलस्यौ जिय जोयसी समुझयो जारज जोग।—बिहारी। (ग) तंड लहि सोग बिछोह कर भोजन परा न पेट। पुनि बिसरा भा सँवरना जनु सपने भइ भेंट।—जायसी।

मुहा०—सोग मनाना=किसी प्रिय या संबंधी के मर जाने पर शोक-सूचक चिह्न धारण करना और किसी प्रकार के उत्सव या मनो-विनोद आदि में सम्मिलित न होना।

सोगन—संज्ञा स्त्री० [हिं० सौगंद] सौगंद। कसम। (डिं०)

सोगिनीꣳ—वि० स्त्री० [हिं० सोग] शोक करनेवाली। शोकार्त्त। शोकाकुला। शोकमग्ना। उ०—सुख कहन आजु बधि एह थरि तरपहुँ चौंसठ जोगिनी। बिललात फिरैं बन पात प्रति मगध सुंदरी सोगनी।—गोपाल।

सोगी—वि० [सं० शोक, हिं० सोग] [स्त्री० सोगिनी] शोक मनानेवाला। शोकार्त्त। शोकाकुल। दुःखित।

सोच—संज्ञा पुं० [सं० शोच] (१) सोचने की क्रिया या भाव। जैसे,—तुम अच्छी तरह सोच लो कि तुम्हारे इस काम का क्या फल होगा।

यौ०—सोच समझ। सोचविचार।

(२) चिंता। फिक्र। जैसे,—(क) तुम सोच मत करो, ईश्वर भला करेंगे। (ख) तुम किस सोच में बैठे हो? (३) शोक। दुःख। रंज। अफसोस। उ०—(क) तुलसी के दुहूँ हाथ मोदक हैं, ऐसी ठाउँ जाके मुए जिए सोच करिहै न लरिको।—तुलसी। (ख) नेह कै मोहिं बुलायो इतै अब बोरत मेह महीतल को है। आइ मझार महावत मैं तन मैं श्रम सीकर को झलको है। न मिले अब नौलकिसोर पिया हियो बेनी प्रबीन कहै कलको है। सोच नहीं धन पावन को सखि सोच यहै उनके छलको है।—बेनी प्रबीन। (४) पछतावा। पश्चात्ताप। उ०—देखिके उमा को रुद्र लज्जित

भए कह्यो मैं कौन यह काम कीनो। इंद्रीजित कहावत हौं तो आपुको समुझि मन माहिं है रह्यो लीनो। चतुर्भुज रूप हरि आइ दरशन दियो कह्यो शिव सोच दीजै बिहाई।—सूर।

सोचक-संज्ञा पुं० [सं० सौचिक] दरजी। (डिं०)

सोचना-क्रि० अ० [सं० शोचन] (१) किसी प्रकार का निर्णय करने, परिणाम निकालने या भवितव्य को जानने के लिये बुद्धि का उपयोग करना। मन में किसी बात पर विचार करना। गौर करना। जैसे,—(क) मैं यह सोचता हूँ कि तुम्हारा भविष्य क्या होगा। (ख) कोई बात कहने से पहले सोच लिया करो कि यह कहने लायक है या नहीं। (ग) इस बात का उत्तर मैं सोचकर दूँगा। (घ) तुम तो सोचते सोचते सारा समय बिता दोगे। उ०—सोचत है मन ही मन मैं अब कीजै कहा बतियाँ जगदाई। नीचो भयो ब्रज को सब सीस मलीन भई रसखानि दुहाई।—रसखान। (२) चिंता करना। फिक्र करना। उ०—(क) कौनहूँ हेतन आइयो प्रीतम आके धाम। ताको सोचति सोच हिय केशव उरधाम।—केशव। (ख) अब हरि आइहैं जिन सोचै। सुन विधुमुखी वारि नयनन ते अब तू काहे मोचै।—सूर। (३) खेद करना। दुःख करना। उ०—माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन।—तुलसी।

सोच विचार-संज्ञा पुं० [हिं० सोच + सं० विचार] समझ-बूझ। गौर। जैसे,—(क) सोच विचार कर काम करो। (ख) अच्छी तरह सोच विचार लो।

सोचाना-क्रि० स० दे० "सुचाना"। उ०—सुदिन सुनखत सुघरी सोचाई। बेगि बेदविधि लगन धराई।—तुलसी।

सोचु*-संज्ञा पुं० दे० "सोच"। उ०—सती सभीत महेस पहिं चली हृदय बड़ सोचु।—तुलसी।

सोज-संज्ञा स्त्री० [हिं० सूजना] (१) सूजने की क्रिया, भाव या अवस्था। सूजन। शोथ। (२) दे० "सौज"। उ०—तुलसी समिध सौज लंक-जग्य कुंड लखि जातुधान पुंग फल जव तिल धान हैं।—तुलसी।

सोज़न-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) सूई। उ०—अरे निरदई मालिया कहुँ जताय यह बात। केहि हित सुमनन सोरि तैं छेदत सोजन गात।—रसनिधि। (२) काँटा। (क्व०)

सोजनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुजनी"।

सोजाक-संज्ञा पुं० दे० "सूजाक"।

सोजिश-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सूजन। फुलाव। शोथ।

सोझ*-वि०, क्रि० वि० दे० "सोझा"। उ०—कहै कबीर नर चले न सोझ। भटकि मुये जस बन के रोझ।—कबीर।

सोझा-वि० [सं० सम्मुख, म० प्रा० सउज्झ] [स्त्री० सोझी] सीधा। सरल। उ०—दादू सोझा राम रस अम्रित काया कूप।—दादू।

सोझोवा-संज्ञा पुं० [?] जवान बछड़ा।

सोटा-संज्ञा पुं० दे० "सोंटा"।

संज्ञा पुं० दे० "सुआटा"। उ०—लै सँदेस सोटा गा तहाँ। सूली देहि रतन को जहाँ।—जायसी।

सोठ-संज्ञा स्त्री० दे० "सोंठ"।

सोठ मिट्टी-संज्ञा स्त्री० दे० "सोंठ मिट्टी"।

सोडा-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का क्षार पदार्थ जो सज्जी को रासायनिक क्रिया से साफ करके बनाते हैं। इसके कई भेद हैं। जिसे लोग सिर धोने के काम में लाते हैं, उसे अंगरेज़ी में "सोडा क्रिस्टल" कहते हैं। यह सज्जी को उबालकर बनाते हैं। ठंढा होने पर साफ़ सोडा नीचे बैठ जाता है। जो सोडा साबुन, कागज, काँच आदि बनाने के काम में आता है, उसे 'सोडा कास्टिक' कहते हैं। यह चूने और सज्जी के संयोग से बनता है। दोनों को पानी में घोल और उबालकर पानी उड़ा देते हैं। इसी प्रकार "बाइकारबोनेट आफ सोडियम" भी साबुन, काँच आदि बनाने के काम में आता है। यह नमक को अमोनिया में घोलकर कारबोनिक गैस की भाप का तरारा देने से निकलता है। इसे एकत्र करके तपाने से पानी और कारबोनिक गैस उड़ जाता है। जो सोडा खाने के काम में आता है, उसे "बाइकारबोनेट आफ सोडा" कहते हैं। यह सोडे पर कारबोनिक गैस का तरारा देने से बनता है।

सोडावाटर-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का पाचक पानी जो प्रायः मामूली पानी में कारबोनिक एसिड का संयोग करके बनाते हैं और बोतल में हवा के जोर से बंद करके रखते हैं। विलायती पानी। खारा पानी।

सोढ-वि० [सं०] (१) सहनशील। सहिष्णु। (२) जो सहन किया गया हो।

सोढर-वि० [देश०] भोंदू। बेवकूफ़। उ०—(क) गदहों में हम सोढर गदहा हैं।—बालकृष्ण भट्ट। (ख) भनति सुविम के हाथ सुमिरिनी सोढर टोढर। सोढर स्योढर मूढ़ उद्द द्विज सोंढर ओढर।—सुधाकर।

सोढव्य-वि० [सं०] जिसने सहन किया हो। सहनेवाला।

सोढव्य-वि० [सं०] सहन करने के योग्य। सह्य।

सोढी-वि० [सं० सोढिन्] जिसने सहन किया हो। सहनकारी।

सोणक-वि० [सं० शोण] लाल रंग का। रक्त।

सोणित-संज्ञा पुं० [सं० शोणित] खून। लोहू। रक्त। (डिं०)

सोत-संज्ञा पुं० दे० "स्रोत" या "सोता"। उ०—(क) लोल लोचनी कंठ छवि लसत समुद के सोत। अरु उदि कानन को गये केकी गोल कपोत।—शृंगार-सतसई। (ख) धन कुल की मरजाद कछु प्रेम पंथ नहिं होत। राव रंक सब एक से लगत प्रेम रस सोत।—हरिश्चंद्र। (ग) बैरि-बधु-

बरन कलानिधि मलीन भयो सकल सुखानो परपानिप को सोत है।—मतिराम।

सोता–संज्ञा पुं० [सं० स्रोत] (१) जल की बराबर बहनेवाली या निकलनेवाली छोटी धारा। झरना। चश्मा। जैसे,—पहाड़ का सोता, कूएँ का सोता। उ०—(क) भूख लगे सोता मिले उपरे अरु विन मैल। पी तिनको पानी तुरत लीजो अपनी गैल।—लक्ष्मणसिंह। (ख) दस दिसा निर्मल मुदित उड़गन भूमिमंडल सुख छयो। सागर सरित सोता सरोवर सघन उज्वल जल भयो।—गिरिधरदास। (२) नदी की शाखा। नहर। उ०—जिसका (जमना की नहर का) एक सोता पश्चिम में हरियाने तक पहुँचकर रेगिस्तान में खप जाता है।—शिवप्रसाद।

सोतिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० सोता+इया (प्रत्य०)] सोता। उ०—नौ दस नदिया अगम बहे सोतिया बिचे में पुरइन दहया लागल रे री।—कबीर।

सोतिहा†–संज्ञा पुं० [हिं० सोता+हा (प्रत्य०)] कूआँ जिसमें सोते का पानी आता है।

सोती–संज्ञा स्त्री० [हिं० सोता] स्रोत। धारा। सोता। उ०—तेहि पर पूरि धरी जो मोती। जमुना माँझ गाँग कइ सोती।—जायसी।

संज्ञा स्त्री० दे० "स्वाती"। उ०—एक वर्ष बरस्यो नहिं सोती। भयो न मान सरोवर मोती।—रघुराजसिंह।

संज्ञा पुं० दे० "श्रोत्रिय"।

सोतु–संज्ञा पुं० [सं०] सोम निकालने की क्रिया।

सोत्कंठ–वि० [सं०] उत्कंठायुक्त। उनमना।

सोत्क–वि० [सं०] जिसे उत्कंठा हो। उत्कंठापूर्ण।

सोत्कर्ष–वि० [सं०] उत्कर्षयुक्त। उत्तम। दिव्य।

सोत्प्रास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चाटु। प्रिय बात। (२) शब्दयुक्त हास्य। सशब्द हास्य। यथा—सोत्प्रास आच्छुरितकमवच्छुरितकं तथा अट्टहासो महाहासो हासः प्रहास इत्यपि।—शब्द रत्नावली।

वि० (१) बढ़ाकर कहा हुआ। अतिरंजित। (२) व्यंग्ययुक्त। जिसमें व्यंग्य हो।

सोत्प्रेक्ष–वि० [सं०] उपेक्षा के योग्य। उदासीनतापूर्वक।

सोत्संग–वि० [सं०] शोकाकुल। दुःखित।

सोत्सर्ग समिति–संज्ञा स्त्री० [सं०] मल मूत्र आदि का इस प्रकार यत्नपूर्वक त्याग करना जिसमें किसी व्यक्ति को कष्ट या जीव को आघात न पहुँचे। (जैन)

सोत्सव–वि० [सं०] (१) उत्सवयुक्त। उत्सव सहित। (२) प्रफुल्ल। प्रसन्न। खुश।

सोत्सुक–वि० [सं०] उत्सुकतायुक्त। उत्सुकता सहित। उत्कंठित।

सोत्सेक–वि० [सं०] अभिमानी। घमंडी। ऐंठू।

सोत्सेध–वि० [सं०] उच्च। ऊँचा।

सोथ–संज्ञा पुं० दे० "शोथ"।

सोदकुंभ–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कृत्य जो पितरों के उद्देश्य से किया जाता है।

सोदधिल–वि० [सं०] लघु। अल्प। थोड़ा। कम।

सोदन–संज्ञा पुं० [देश०] कशीदे के काम में कागज़ का एक टुकड़ा जिस पर सूई से छेद कर बेल बूटे बनाए होते हैं। जिस कपड़े पर बेल बूटा बनाना होता है, उस पर इसे रखकर बारीक राख बिछा देते हैं, जिससे कपड़े पर निशान बन जाता है।

सोदय–वि० [सं०] ब्याज या सूद समेत। वृद्धियुक्त।

सोदर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सोदरा, सोदरी] सहोदर भ्राता। सगा भाई।

वि० एक गर्भ से उत्पन्न।

सोदरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सहोदरा भगिनी। सगी बहिन।

सोदरी–संज्ञा स्त्री० दे० "सोदरा"। उ०—काम की दुहाई कै सुहाई सखी माधुरी की इंदिरा के मंदिर में छाई छवजति है। सुरनि की सुरी किधौं मोदहू की सोदरी कि चातुरी की माता ऐसी बातनि सिजति है।—केशव।

सोदरीय–वि० दे० "सोदर"।

सोदर्य–संज्ञा पुं० वि० दे० "सहोदर"।

सोद्योग–वि० [सं०] उद्योगी। कर्मशील।

सोद्वेग–वि० [सं०] विचलित। चिंतित।

सोधॐ†–संज्ञा पुं० [सं० शोध] (१) खोज। खबर। पता। टोह। उ०—(क) हम सीता कै सोध विहीना। नहिं जैहहिं युवराज प्रवीना।—तुलसी। (ख) मोही सों रूठि कै बैठि रहे किधौं कोई कहूँ कछु सोध न पावै।—देव। (२) संशोधन। सुधारना। उ०—प्रबल प्रबोध जग सोध मन को निरोध कुल सोध। करहिं ते फोकट पचि मरहिं सपनेहु सुख न सुबोध।—तुलसी। (३) चुकता होना। अदा होना। बेबाक होना। जैसे,—ऋण का सोध होना।

संज्ञा पुं० [सं० सौध] (१) महल। प्रासाद। (हिं०) (२) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।

सोधक–संज्ञा पुं० दे० "शोधक"।

सोधणी–संज्ञा स्त्री० [सं० शोधनी] झाड़ू। बुहारी। मार्जनी। (डिं०)

सोधन–संज्ञा पुं० [सं० शोधन] ढूँढ़। खोज। तलाश। उ०—अति क्रोधन रन सोधन सदा अरि बल रोधन पन किये। दुरजोधन प्रपितामह लसो सह सत जोधक सँग लिये।—गोपाल।

सोधनाॐ†–क्रि० स० [सं० शोधन] (१) शोधन करना। शुद्ध करना। साफ करना। उ०—(क) बसि सकोच दसबदन बस साँच दिखावति बाल। सिय लौं सोधति तिय तनहि लगनि अगनि की ज्वाल।—बिहारी। (ख) सोधि अवनि

लग्य लगि जोजन चारि प्रमान। अति विचित्र रचना रची मंडप विपुल बितान। (२) गलती या दोष दूर करना। (३) विचार कर देखना। ठीक करना। निश्चित करना। निर्णय करना। उ०—(क) ग्रह तिथि नखत जोगु बर वारू। लगन सोधि विधि कीन्ह बिचारू।—तुलसी। (ख) समुझि करम गति धीरज कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह करि दीन्हा।—तुलसी। (४) खोजना। ढूँढ़ना। उ०—(क) एहि कुरोग कर औषध नाहीं। सोधेउँ सकल विस्व मन माहीं।—तुलसी। (ख) प्यासे दुपहर जेठ के थके सबै जल सोधि। मरुधर पाय मतीरहू मारू कहत पयोधि।—बिहारी। (ग) मैं सोहि परजौं बार बार। मैं मन सोध्यो दाद डाद। सब फूलन में कियो है भोग। सुख न भयो तन बाढ़्यो रोग।—कबीर। (५) धातुओं का औषध रूप में व्यवहार करने के लिये संस्कार। जैसे,—पारा सोधना। (६) ठीक करना। दुरुस्त करना। सुधारना। (७) ऋण चुकाना। अदा करना। (८) प्रसंग करना। संभोग करना। (बाजारू)

सोधस—संज्ञा पुं० [?] जल का किनारा। (डिं०)

सोधाना†—क्रि० स० [हिं० सोधना का प्रे० रूप] (१) सोधने का काम दूसरे से कराना। (२) ठीक कराना। दुरुस्त कराना। उ०—(क) बाजत अवध गहागहे आनंद बधाये। नामकरन रघुबरनि के नृप सुदिन सोधाये।—तुलसी। (ख) सुख पाइ बात चलाइ सुदिनु सोधाइ गिरिहि सिखाइ कै।—तुलसी। (ग) सत गुरु विप्र बोलाय के लगन सोधावहीं। सजन कुटुम परिवार सुमंगल गावहीं।—कबीर।

सोधुॐ—संज्ञा पुं० दे० "सोध"।

सोन—संज्ञा पुं० [सं० शोण] एक प्रसिद्ध नद का नाम जो मध्य प्रदेश के अमरकंटक की अधित्यका भूमि से, नर्मदा के उद्गम स्थान से दो ढाई मील पूर्व से, निकला है और उत्तर में मध्य प्रदेश तथा बुंदेलखंड होता हुआ पूर्व की ओर प्रवाहित हुआ है और बिहार में दानापुर से १० मील ऊपर गंगा में मिला है। बिहार में इस नद का पाट कोई अढ़ाई तीन मील चौड़ा है। वर्षा ऋतु में समुद्र सा जान पड़ता है। इसमें कई शाखा-नदियाँ मिलती हैं जिनमें कोइल प्रधान है। गरमी में इस नद में पानी बहुत कम हो जाता है। वैद्यक के अनुसार इसका जल रुचिकर, संताप और शोषापह, पथ्य, अग्निवर्द्धक, बल और क्षीणांग को बढ़ानेवाला माना गया है। उ०—सानुज राम-समर-जस पावन। मिलेउ महानद सोन सुहावन।

पर्य्या०—शोणा। शोणभद्र। हिरण्यवाह।

संज्ञा पुं० दे० "सोना"। उ०—(क) परी नाथ कोइ छुवै न पारा। मारग मानुष सोन उछारा।—जायसी। (ख) दमयंती के वचन न भाये। नल राजा सब द्रव्य गँवाये। सोन रूप जो छाव भुवारा। धरत दाउँ पल मह सब हारा।—सबलसिंह।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जलपक्षी। उ०—कुररहिं सारस करहिं हुलासा। जीवन मरन सो एकहि पासा। बोलहिं सोन ढेक बगलेदी। रही अबोल मीन जल-भेदी।—जायसी।

वि० [सं० शोण] लाल। अरुण। रक्त। उ०—सुभग सोन सरसीरुह लोचन। बदन मयंक तापत्रय-मोचन।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सोना] एक प्रकार की बेल जो बारहो महीने बराबर हरी रहती है। इसके फूल पीले रंग के होते हैं।

संज्ञा पुं० [सं० रसोनक] लहसुन। (डिं०)

सोनकिरवा†—संज्ञा पुं० [हिं० सोना + किरवा = कीड़ा] (१) एक प्रकार का कीड़ा जिसके पर पत्ते के रंग के चमकीले होते हैं। (२) जुगनूँ।

सोनकीकर—संज्ञा पुं० [हिं० सोना + कीकर] एक प्रकार का बहुत बड़ा पेड़ जो उत्तर बंगाल, दक्षिण भारत तथा मध्य भारत में बहुत होता है। इसके हीर की लकड़ी मूसली सी, पर बहुत ही कड़ी और मजबूत होती है। यह इमारत और खेती के औजार बनाने के काम में आती है। इसका गोंद कीकर के गोंद के समान ही होता है और प्रायः औषध आदि में काम आता है।

सोनकेला—संज्ञा पुं० [हिं० सोना + केला] चंपा केला। सुवर्ण कदली। पीला केला। वैद्यक में यह शीतल, मधुर, अग्निदीपक, बलकारक, वीर्यवर्द्धक, भारी तथा तृषा, दाह, वात, पित्त और कफ-नाशक माना गया है।

सोनगढ़ी—संज्ञा पुं० [सोनगढ़ (स्थान)] एक प्रकार का गन्ना।

सोनगहरा—संज्ञा पुं० [हिं० सोना + गहरा] गहरा सुनहरा रंग।

सोनगेरू—संज्ञा पुं० दे० "सोनागेरू"।

सोनचंपा—संज्ञा पुं० [हिं० सोना + चंपा] पीला चंपा। सुवर्ण चंपक। स्वर्ण चंपक।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह चरपरा, कड़ुवा, कसैला, मधुर, शीतल तथा विष, कृमि, मूत्रकृच्छ्र, कफ, वात और रक्तपित्त को दूर करनेवाला है।

सोनचिरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० सोना + चिरी = चिड़िया] नटी। उ०—पातरे अंग उड़ै बिनु पाँखनु कोमल भायनि प्रेम सिरी की। जोबन रूप अनूप निहारि कै लाज मरै निधिराज सिरी की। कौल से नैन कलानिधि सो मुख को गनै कोटि कला गहिरी की। बाँस के सीस अकास में नाचत को न लखै छबि सोनचिरी की।—देव।

सोनजरद—संज्ञा स्त्री० दे० "सोनज़र्द"। उ०—कोइ गुलाल सुदरसन कूजा। कोइ सोनजरद पाव भल पूजा।—जायसी।

सोनज़र्द-संज्ञा स्त्री० [हिं० सोना+फ़ा० ज़र्द] पीली जूही। स्वर्ण यूथिका।

सोनजूही-संज्ञा स्त्री० [हिं० सोना+जूही] एक प्रकार की जूही जिसके फूल पीले रंग के होते हैं, पर जिसमें सफेद जूही से सुगंधि अधिक होती है। पीली जूही। स्वर्ण-यूथिका। उ०—(क) देखी सोनजुही फिरति सोनजुही से अंग। दुति लपटनि पट सेत हूँ करति बनौटी रंग।—बिहारी। (ख) हौं रीझी लखि रीझिहौ छबिहि छबीले लाल। सोनजुही सी होति दुति मिलत मालती माल।—बिहारी।

सोनपेडुकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सोना+पेडुकी] एक प्रकार का पक्षी जो सुनहलापन लिए हरे रंग का होता है। इसकी चोंच सफेद तथा पैर लाल होते हैं।

सोनभद्र-संज्ञा पुं० दे० "सोन"। उ०—सोनभद्र तट देश नवेला। तहाँ बसैं बहु अबुध बघेला—रघुराज।

सोनहला-संज्ञा पुं० [हिं० सोना+हला (प्रत्य०)] भटकटैया का काँटा। (कहार)

विशेष—पालकी ले जाते समय जब कहीं रास्ते में भटकटैया के काँटे पड़ते हैं, तब उनसे बचने के लिये आगे के कहार "सोनहुला है" कह कर पीछे के कहारों को सचेत करते हैं। वि० दे० "सुनहला"।

सोनहा-संज्ञा पुं० [सं० शुन=कुत्ता] कुत्ते की जाति का एक छोटा जंगली जानवर जो झुंड में रहता है और बड़ा हिंसक होता है। यह शेर को भी मार डालता है। कहते हैं कि जहाँ यह रहता है, वहाँ शेर नहीं रहते। इसे 'कोगी' भी कहते हैं। उ०—डाइन डारे सोनहा डोरे सिंह रहे बन घेरे। पाँच कुटुंब मिलि जूझन लागे बाजन बाज घनेरे।—कबीर।

सोना-संज्ञा पुं० [सं० स्वर्ण] (१) सुंदर उज्वल पीले रंग की एक प्रसिद्ध बहुमूल्य धातु जिसके सिक्के और गहने आदि बनते हैं। यह खानों में या स्लेट अथवा पहाड़ों की दरारों में पाया जाता है। यह प्रायः कंकड़ के रूप में मिलता है। कंकड़ को चूर कर और पानी का तरारा देकर धूल, मिट्टी आदि बहा दी जाती है और सोना अलग कर लिया जाता है। कभी कभी सोना विशुद्ध अवस्था में भी मिल जाता है। पर प्रायः लोहे, ताँबे तथा अन्य धातुओं से मिली हुई अवस्था में ही पाया जाता है। यह सीसे के समान नरम होता है, पर चाँदी, ताँबे आदि के मेल से यह कड़ा हो जाता है। यह बहुत वज़नी होता है। भारीपन में प्लैटिनम और इरिडियम धातुओं के बाद इसी का स्थान है। यह पीटकर इतना पतला किया जा सकता है कि पारदर्शक हो जाता है। इस प्रकार का इसका बहुत पतला तार भी बनाया जा सकता है। सोने पर जंग नहीं लगता। इस पर कोई खास तेजाब असर नहीं करता। हाँ, गंधक और शोरे के तेजाब में आँच देने से यह गल जाता है। हिंदुस्तान में प्रायः सभी प्रांतों में सोना पाया जाता है, पर मैसूर और हैदराबाद की खानों में अधिक मिलता है। पिछली शताब्दी में कैलिफोर्निया और आस्ट्रेलिया में भी इसकी बहुत बड़ी खानें मिली हैं।

सोना सब धातुओं में श्रेष्ठ माना गया है। हिंदू इसे बहुत पवित्र और लक्ष्मी का रूप मानते हैं। कमर और पैर में सोना पहनने का निषेध है। सोना कितनी ही रसौषधों में भी पड़ता है। वैद्यक में यह त्रिदोषनाशक तथा बलवीर्य, स्मरण शक्ति और कांतिवर्द्धक माना गया है।

पर्य्या०—स्वर्ण। कनक। कांचन। हेम। गांगेय। हिरण्य। तपनीय। चांपेय। शातकुंभ। हाटक। जातरूप। रुक्म। महारजत। भर्म्म। गैरिक। लोहवर। चामीकर। कार्त्तस्वर। मनोहर। तेज। दीप्तक। कर्बुर। कल्धूर। कल्बूर। अग्नि-वीर्य। मुख्यधातु। भद्र। उद्दसारुक। शातकौंभ। भूरि। कल्याण। स्पर्शमणि। प्रभव। अग्नि। अग्निशिख। भास्कर। मांगल्य। आग्नेय। भरु। चंद्र। उज्वल। शृंगार। कलधौत। पिंजान। जांबव। अग्निबीज। द्रविण। अग्निभ। दीप्त। अपिंजर। सौमेरुक। जांबुनद। निष्क। रुक्म। अष्टापद।

मुहा०—सोने का घर मिट्टी होना=खाक का घर खाक होना। सारा वैभव नष्ट होना। सोने में घुन लगना=असंभव बात होना। अनहोनी होना। उ०—काहू चींटी लागो पाँख, काहू यम मारे काल, सुनो है न देख्यो घुन लागो है कनक को।—हनुमन्नाटक। सोने में सुगंध=किसी बहुत बढ़िया चीज में और अधिक विशेषता होना।

क्रि० प्र०—गलना।—गलाना।—तपना।—तपाना।

(२) अत्यंत बहुमूल्य वस्तु। बहुत महँगी चीज़। (३) अत्यंत सुंदर वस्तु। उज्वल या कान्तिमान् पदार्थ। जैसे, शरीर सोना हो जाना। (४) एक प्रकार का हंस। राजहंस।

संज्ञा पुं० मझोले कद का एक वृक्ष जो बरार और दारजिलिंग की तराइयों में होता है। इसमें कलियाँ लगती हैं जिनका मुरब्बा बनता है। इसकी लकड़ी मजबूत होती है और इमारत तथा खेती के औज़ार बनाने के काम में आती है। चीरने के समय लकड़ी का रंग अंदर से गुलाबी निकलता है, पर हवा लगने से वह काला हो जाता है। कोलपार।

संज्ञा स्त्री० प्रायः एक हाथ लंबी एक प्रकार की मछली जो भारत और बरमा की नदियों में पाई जाती है।

क्रि० अ० [सं० शयन] (१) उस अवस्था में होना जिसमें चेतन क्रियाएँ रुक जाती हैं और मन तथा मस्तिष्क दोनों विश्राम करते हैं। नींद लेना। शयन करना। आँख लगना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—सोते जागते = हर घड़ी। हर समय।

(२) शरीर के किसी अंग का सुन्न होना। जैसे,—मेरे पैर सो गए। (यह क्रिया प्रायः एक अंग को एक ही अवस्था में कुछ अधिक समय तक रखने पर प्रायः हो जाती है।)

सोनागेरू—संज्ञा पुं० [हिं० सोना+गेरू] गेरू का एक भेद जो मामूली गेरू से अधिक लाल और मुलायम होता है। वैद्यक के अनुसार यह स्निग्ध, मधुर, कसैला, नेत्रों को हितकर, शीतल, बलकारक, व्रण-शोधक, विशद, कांतिजनक तथा दाह, पित्त, कफ, रक्त-विकार, ज्वर, विष, विस्फोटक, वमन, अग्निदग्धव्रण, बवासीर और रक्तपित्त को नाश करनेवाला है।

पर्य्या०—सुवर्णगैरिक। सुरक्त। स्वर्ण धातु। शिला धातु। संध्याभ्र। बभ्रुधातु। सुरक्तक।

सोनापाढ़ा—संज्ञा पुं० [सं० शोण+हिं० पाढ़ा] (१) एक प्रकार का ऊँचा वृक्ष जो भारत और लंका में सर्वत्र होता है। इसकी छाल चौथाई इंच तक मोटी, हरापन लिए पीले रंग की, चिकनी, हलकी और मुलायम होती है। काटने से इसमें से हरा रस निकलता है। लकड़ी पीलापन लिए सफेद रंग की, हलकी और खोखली होती है और जलाने के सिवा और किसी काम में नहीं आती। पेड़ की टहनियों पर तीन से पाँच फुट तक लंबी झुकी हुई सींकें होती हैं जो भीतर से पोली होती हैं। प्रत्येक प्रधान सींक पर पाँच पाँच गाँठें होती हैं और उन गाँठों के दोनों ओर एक एक और सींक होती है। पहली सींक की चार गाँठें सींकों सहित क्रम क्रम से छोटी रहती हैं। इनमें पहली गाँठ पर तीन जोड़े पत्ते, दूसरी और तीसरी गाँठ पर एक एक जोड़ा और चौथी गाँठ पर तीन पत्ते लगे रहते हैं। दूसरी और तीसरी सींकों पर भी इसी क्रम से पत्ते रहते हैं। चौथी गाँठवाली सींक पर पाँच पाँच पत्ते (दो जोड़े और एक छोर पर) होते हैं। पाँचवीं पर तीन पत्ते (एक जोड़ा और एक छोर पर) होते हैं। इसी प्रकार अंत में तीन पत्ते होते हैं। पत्ते करंज के पत्तों के समान २॥ से ४॥ इंच तक चौड़े, लंबोतरे और कुछ नुकीले होते हैं। फूल १-२ फुट लंबी डंडी पर २॥-३ इंच लंबोतरे और सिलसिलेवार आते हैं। फूलों के भीतर का रंग पीलापन लिए लाल और बाहर का रंग नीलापन लिए लाल होता है। फूलों में पाँच पंखड़ियाँ और भीतर पीले रंग के पाँच केसर होते हैं। फूल बहुधा गिर जाया करते हैं, इसलिये जितने फूल आते हैं, उतनी फलियाँ नहीं लगतीं। फलियाँ २-२॥ फुट लंबी और ३-४ इंच चौड़ी, चिपटी तथा तलवार [redacted] तरह कुछ मुड़ी हुई टेढ़ी, नोकवाली होती हैं। इनके अंदर भोजपत्र के समान तहदार पत्ते सटे रहते हैं और इन पत्तों के बीच में छोटे, गोल और हलके बीज होते हैं। कलियाँ और कोमल फलियाँ प्रायः कच्ची ही गिर जाया करती हैं। कार्तिक और अगहन के आरंभ तक इसके वृक्ष पर फूल फल आते रहते हैं और शीत काल के अंत और वसंत ऋतु में फलियाँ पक कर गिर जाती हैं और बीज हवा में उड़ जाते हैं। इन बीजों के गिरने से वर्षा ऋतु में पौधे उत्पन्न होते हैं।

वैद्यक के अनुसार यह कसैला, कड़ुआ, चरपरा, शीतल, रूक्ष, मलरोधक, बलकारी, वीर्यवर्धक, जठराग्नि को दीपन करनेवाला तथा वात, पित्त, कफ, त्रिदोष, ज्वर, सन्निपात, अरुचि, आमवात, कृमि रोग, वमन, खाँसी, अतिसार, तृषा, कोढ़, श्वास और वस्ति रोग का नाश करनेवाला है। इसकी छाल, फल और बीज औषध के काम में आते हैं, पर छाल का ही अधिक उपयोग होता है। इसका कच्चा फल कसैला, मधुर, हलका, हृदय और कंठ को हितकारी, रुचिकर, पाचक, अग्निदीपक, गरम, कटु, क्षार तथा वात, गुल्म, कफ बवासीर और कृमिरोग का नाश करनेवाला है।

पर्य्या०—श्योनाक। शुकनास। कट्वंग। कटंभर। मयूरजंघ। भल्लूक। प्रियजीवी। कुटसट।

(२) इसी वृक्ष का एक और भेद जो संयुक्त प्रदेश, पश्चिमोत्तर प्रदेश, बम्बई, कर्नाटक, कारमंडल के किनारे तथा बिहार में अधिकता से होता है और राजपूताने में भी कहीं कहीं पाया जाता है। यह पेड़ ६० से ८० फुट तक ऊँचा होता है और पत्तेवाली सींक प्रायः ८ इंच से १ फुट तक लंबी होती है और कहीं कहीं सींकों की लंबाई २-३ फुट तक होती है। सींकों पर आठ से चौदह जोड़े समवर्ती पत्ते होते हैं। इसके फूल बड़े और कुछ पीले होते हैं। फलियाँ ताँबे के रंग की दो इंच लंबी तथा चौथाई इंच चौड़ी, गोल, दोनों ओर नुकीली और जड़ की ओर ऐंठी सी रहती हैं। पेड़ की छाल सफेद रंग की होती है। इसका गुण भी नं० (1) के समान ही है।

पर्य्या०—टुंटुक। दीर्घवृंत। टिंटुक। कीरनाशन। पूतिवृक्ष। पूतिनाश। भूतिपुष्प। मुनिद्रुम आदि।

सोनापेट—संज्ञा पुं० [हिं० सोना+पेट = गर्भ] सोने की खान।

सोनाफूल—संज्ञा पुं० [हिं० सोना+फूल] एक झाड़ी जो आसाम और खासिया पहाड़ियों पर होती है और जिसकी पत्तियों से एक प्रकार का भूरा रंग निकलता है। इसकी छाल के रेशों से रस्सियाँ बनती हैं। इसे गुलाबजाम भी कहते हैं।

सोनामक्खी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्वर्णमाक्षिक] (१) एक खनिज पदार्थ जो भारत में कई स्थानों में पाया जाता है। आयुर्वेद में इसकी गणना उपधातुओं में है। इसमें सोने का कुछ अंश और गुण वर्तमान रहने के कारण इसका नाम स्वर्ण-माक्षिक पड़ा है। सोने के अभाव में, औषधियों में इसका उपयोग किया जाता है। सोने के सिवा अन्य धातुओं का

सन्निधान रहने से इसमें और भी गुण आ गए हैं। उपधातु होने के कारण, यथोचित रीति से शोधन कर इसका व्यवहार करना चाहिए, अन्यथा यह मंदाग्नि, बलहानि, विष्टंभिता, नेत्ररोग, कोढ़, गंडमाला, क्षय, आध्मान, कृमि आदि अनेक रोग उत्पन्न करती है। शोधितावस्था में यह वीर्यवर्द्धक, नेत्रों के लिये हितकर, स्वरशोधक, व्यवायी, कोढ़, सूजन, प्रमेह, बवासीर, बस्ति, पांडुरोग, उदर व्याधि, विषविकार, कंठरोग, खुजली, क्षय, भ्रम, हुल्लास, मूर्च्छा, खाँसी, श्वास आदि रोगों को नाश करनेवाली मानी गई है।

पर्या०—स्वर्णमाक्षिक। माक्षिक। हेममाक्षिक। धातुमाक्षिक। स्वर्णवर्ण। स्वर्णाह्वय। पीतमाक्षिक। माक्षिकधातु। तापींज। मधुमाक्षिक। तीक्ष्ण। मधु धातु।

(२) एक प्रकार का रेशम का कीड़ा।

सोनामाखी-संज्ञा स्त्री० दे० "सोनामक्खी"।

सोनार-संज्ञा पुं० दे० "सुनार"।

सोनिजरद-संज्ञा स्त्री० दे० "सोनजर्द"।

सोनित-संज्ञा पुं० दे० "शोणित"।

सोनी-संज्ञा पुं० [हिं० सोना] सुनार। स्वर्णकार। उ०—देव दिखावति कंचन सी तन औरन को मन तावै अगोनी। सुंदर साँचे में दै भरि काढ़ी सी आपने हाथ रची विधि सोनी।—देव।

संज्ञा पुं० [देश०] सुन की जाति का एक वृक्ष।

सोनेइया-संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

सोनैया-संज्ञा स्त्री० [देश०] देवदाली। घघरबेल। बंदाल। वि० दे० "देवदाली"।

सोप-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छपी हुई चादर।

संज्ञा पुं० [अं०] साबुन।

संज्ञा पुं० [अं० स्वाब] बुहारी। झाड़ू। (लश०)

सोपत-संज्ञा पुं० [सं० सुपर्याप्त] सुबीता। सुपास। आराम का प्रबंध। उ०—मग मग आवत बहुत छिनन ते कृश तनु हैं हैं प्यारे। करत रह्यो है है को सोपत दूध बदन दोउ बारे।—रघुराज।

क्रि० प्र०—बैंधना।—बाँधना।—बैठना।—बैठाना।—लगना।—लगाना।

सोपाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह व्यक्ति जो चंडाल पुरुष और पुक्कसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ हो। चंडाल। श्वपाक। (२) काष्ठौषधि बेचनेवाला। वनौषधि बेचनेवाला।

सोपान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीढ़ी। ज़ीना। (२) जैनों के अनुसार मोक्ष प्राप्ति का उपाय।

सोपानित-वि० [सं०] सोपान से युक्त। सीढ़ियों से युक्त। उ०—सरयू तीर हेम सोपानित सब थल करहिं प्रकासा।—रघुराज।

सोपारी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुपारी"।

सोपि-वि० [सं० सः+अपि] (१) वही। उ०—आकर चारि जीव जग अहहीं। कासी मरत परम पद लहहीं। सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेस करत करि दाया।—तुलसी। (२) वह भी। उ०—सब ते परम मनोहर गोपी। नंदनंदन के नेह मेह जिनि लोक लीक लोपी। मरि कुबजा के रंगहि राचे तदपि तजी सोपी। तदपि न तजी भजै निसि बासर नैकहु न कोपी।—सूर।

सोफता-संज्ञा पुं० [फ़ा० सुफ़्ता] (१) एकांत स्थान। निराली जगह। उ०—(क) इनका मन किसी और बात में लगा हुआ है, तुम कहों की बात फिर कभी सोफते में पूछ लेना।—भट्टाराम। (ख) वह उसे सोफते में ले गया। (२) रोग आदि में कुछ कमी होना।

सोफियाना-वि० [अ० सूफ़ी+याना (फ़ा० प्रत्य०)] (१) सूफ़ियों का। सूफ़ी संबंधी। (२) जो देखने में सादा पर बहुत भला लगे। जैसे,—सोफियाना कपड़ा, सोफियाना ढंग।

विशेष—सूफ़ी लोग प्रायः बहुत सादे, पर सुंदर ढंग से रहते थे, इसी से इस शब्द का इस अर्थ में व्यवहार होने लगा।

सोफी-संज्ञा पुं० दे० "सूफ़ी"। उ०—सोइ जोगी सोइ जंगमा सोइ सोफी सोइ सेख।

सोय-संज्ञा पुं० दे० "सोप" (१)।

सोबन-संज्ञा पुं० दे० "सुवर्ण"।

सोभ-संज्ञा स्त्री० दे० "शोभा"। उ०—अति सुंदर शीतल सोभ बसै। जहँ रूप अनेकन लोभ लसै।—केशव।

संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्वों के नगर का नाम।

सोभन-संज्ञा पुं० दे० "शोभन"।

सोभना-क्रि० अ० [सं० शोभन] सोहना। शोभित होना। उ०—(क) सिंधु में बड़वाग्नि की जनु ज्वालमाल विराजई। पद्मरागनि सों किधौं दिवि धूरि पूरित सोभई।—केशव। (ख) कुंडल सुंदर सोभिजै स्याम गात छबि दान।—केशव।

सोभर-संज्ञा पुं० [?] वह कोठरी या कमरा जिसमें स्त्रियाँ प्रसव करती हैं। सौरी। जच्चाखाना। सूतिकागार।

सोभरि-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि।

सोभांजन-संज्ञा पुं० दे० "शोभांजन"।

सोभाकारी-वि० [सं० शोभाकर] जो देखने में अच्छा हो। सुंदर। बढ़िया। उ०—शीश परच रे जटा मानो रूप कियो त्रिपुरारि। तिलक ललित ललाट केसरबिंदु सोभाकारि।—सूर।

सोभायमान-वि० दे० "शोभायमान"।

सोभित-वि० दे० "शोभित"।

सोम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल की एक लता का नाम जिसका रस पीले रंग का और मादक होता था और जिसे प्राचीन वैदिक ऋषि पान करते थे। इसे पत्थर से कुचल कर

रस निकालते थे और वह रस किसी ऊनी कपड़े में छान लेते थे। यह रस यज्ञ में देवताओं को चढ़ाया जाता था और अग्नि में इसकी आहुति भी दी जाती थी। इसमें दूध या मधु भी मिलाया जाता था। ऋक् संहिता के अनुसार इसका उत्पत्ति स्थान मुजवान् पर्वत है; इसी लिये इसे मौजवत भी कहते थे। इसी संहिता के एक दूसरे सूक्त में कहा गया है कि श्येन पक्षी ने इसे स्वर्ग से लाकर इंद्र को दिया था। ऋग्वेद में सोम की शक्ति और गुणों की बड़ी स्तुति है। यह यज्ञ की आत्मा और अमृत कहा गया है। देवताओं को यह परम प्रिय था। वेदों में सोम का जो वर्णन आया है, उससे ज्ञान पड़ता है कि यह बहुत अधिक बलवर्द्धक उत्साहवर्द्धक, पाचक और अनेक रोगों का नाशक था। वैदिक काल में यह अमृत के समान बहुत ही दिव्य पेय समझा जाता था, और यह माना जाता था कि इसके पान से हृदय से सब प्रकार के पापों का नाश तथा सत्य और धर्मभाव की वृद्धि होती है। यह सब लताओं का पति और राजा कहा गया है। आर्यों की ईरानी शाखा में भी इस लता के रस का बहुत प्रचार था। पर पीछे इस लता के पहचाननेवाले न रह गए। यहाँ तक कि आयुर्वेद के सुश्रुत आदि आचार्यों के समय में भी इसके संबंध में कल्पना ही कल्पना रह गई जो सोम (चंद्रमा) शब्द के आधार पर की गई। पारसी लोग भी आजकल जिस 'होम' का अपने कर्मकांड में व्यवहार करते हैं, वह असली सोम नहीं है। वैद्यक में सोमलता की गणना दिव्यौषधियों में है। यह परम रसायन मानी गई है और लिखा गया है कि इसके पंद्रह पत्ते होते हैं जो शुक्ल पक्ष में—प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक—एक एक करके उत्पन्न होते हैं और फिर कृष्णपक्ष में—प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक—पंद्रह दिनों में एक एक करके ये सब पत्ते गिर जाते हैं। इस प्रकार अमावस्या को यह लता पत्रहीन हो जाती है।

पर्य्या०—सोमवल्ली। सोमा। क्षीरी। द्विजप्रिया। शणा। यज्ञश्रेष्ठा। धनुर्लता। सोमार्हा। गुल्मवल्ली। यज्ञवल्ली। सोमक्षीरा। यज्ञाह्वा।

(२) एक प्रकार की लता जो वैदिक काल के सोम से भिन्न है। यह दूसरी सोमलता दक्षिण की सूखी पथरीली जमीन में होती है। इसका क्षुप झाड़दार और गाँठदार तथा पत्रहीन होता है। इसकी शाखा राजहंस के पर के समान मोटी और हरी होती है और दो गाँठों के बीच की शाखा ४ से ६ इंच तक लंबी होती है। इसके फूल सफ़ेद लिये बहुत हलके हरे रंग के होते हैं। फलियाँ ४-५ इंच लंबी और तिहाई इंच गोल होती हैं। बीज चिपटे और ½ से ¾ इंच तक लंबे होते हैं। (३) वैदिक काल के एक प्राचीन देवता जिनकी ऋग्वेद में बहुत स्तुति की गई है। इंद्र और वरुण की भाँति इन्हें मानवी रूप नहीं दिया गया है। ये सूर्य के समान प्रकाशमान्, बहुत अधिक वेगवान्, जेता, योद्धा और सब को संपत्ति, अन्न तथा गौ, बैल आदि देनेवाले माने जाते थे। ये इंद्र के साथ उसी के रथ पर बैठकर लड़ाई में जाते थे। कहीं कहीं ये इंद्र के सारथी भी कहे गए हैं। आर्यों की ईरानी शाखा में भी इनकी पूजा होती थी और अवस्ता में इनका नाम हओम या होम आया है। (४) चंद्रमा। (५) सोमवार। (६) सोमरस निकालने का दिन। (७) कुबेर। (८) यम। (९) वायु। (१०) अमृत। (११) जल। (१२) सोमयज्ञ। (१३) एक वानर का नाम। (१४) एक पर्वत का नाम। (१५) एक प्रकार की ओषधि। (१६) स्वर्ग। आकाश। (१७) अष्ट वसुओं में से एक। (१८) पितरों का एक वर्ग। (१९) माँड। (२०) काँजी। (२१) हनुमंत के अनुसार मालकोश राग के एक पुत्र का नाम। —संगीत। (२२) विवाहित पति।—सत्यार्थप्रकाश। (२३) एक बहुत बड़ा ऊँचा पेड़ जिसकी लकड़ी अंदर से बहुत मजबूत और चिकनी निकलती है। चीरने के बाद इसका रंग लाल हो जाता है। यह प्रायः इमारत के काम में आती है। आसाम में इसके पत्तों पर मूगा रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। (२४) एक प्रकार का क्षीरोग। सोमरोग। (२५) यज्ञद्रव्य। यज्ञ की सामग्री।

संज्ञा पुं० [सं० सोमन्] (१) वह जो सोम रस चुआता या बनाता हो। (२) सोमयज्ञ करनेवाला। (३) चंद्रमा।

सोमक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। (२) एक राजा का नाम। (३) भागवत के अनुसार कृष्ण के एक पुत्र का नाम। (४) द्रुपद वंश, या इस वंश का कोई राजा। (५) स्त्रियों का सोम नामक रोग। (६) सहदेव के एक पुत्र का नाम।

सोमकर—संज्ञा पुं० [सं० सोम+कर] चंद्रमा की किरण। उ०—मधुर मिथा घर सोमकर माखन दाख समान। बालक बातें तोतरी कविकुल उक्ति प्रमान।

सोमकर्म—संज्ञा पुं० [सं० सोमकर्मन्] सोम प्रस्तुत करने की क्रिया। सोम रस तैयार करना।

सोमकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार २१वें कल्प का नाम।

सोमकांत—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रकांत मणि।

वि० (१) चंद्रमा के समान प्रिय। (२) जिसे चंद्रमा प्रिय हो।

सोमकाम—वि० [सं०] सोमपान करने का इच्छुक। सोमकामी।

संज्ञा पुं० [सं०] सोमपान करने की इच्छा।

सोमकीर्त्ति—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

सोमकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक नदी का नाम।

सम्मिश्रण रहने से इसमें और भी गुण आ गए हैं। उपधातु होने के कारण, यथोचित रीति से शोधन कर इसका व्यवहार करना चाहिए, अन्यथा यह मंदाग्नि, बलहानि, विष्टंभिता, नेत्ररोग, कोढ़, गंडमाला, क्षय, आध्मान, कृमि आदि अनेक रोग उत्पन्न करती है। शोधितावस्था में यह वीर्यवर्द्धक, नेत्रों के लिये हितकर, स्वरशोधक, व्यवायी, कोढ़, सूजन, प्रमेह, बवासीर, बस्ति, पांडुरोग, उदर व्याधि, विषविकार, कंठरोग, खुजली, क्षय, भ्रम, हुल्लास, मूर्च्छा, खाँसी, श्वास आदि रोगों को नाश करनेवाली मानी गई है।

पर्य्या०—स्वर्णमाक्षिक। माक्षिक। हेममाक्षिक। धातुमाक्षिक। स्वर्णवर्ण। स्वर्णाह्वय। पीतमाक्षिक। माक्षिकधातु। तापीज। मधुमाक्षिक। तीक्ष्ण। मधु धातु।

(२) एक प्रकार का रेशम का कीड़ा।

सोनामाखी—संज्ञा स्त्री० दे० "सोनामक्खी"।

सोनार-संज्ञा पुं० दे० "सुनार"।

सोनिजरद॥—संज्ञा स्त्री० दे० "सोनजर्द"।

सोनित॥-संज्ञा पुं० दे० "शोणित"।

सोनी†-संज्ञा पुं० [हिं० सोना] सुनार। स्वर्णकार। उ०—देव दिखावति कंचन सी तन औरन को मन तावै अगोनी। सुंदरि साँचे में दै भरि काढ़ी सी आपने हाथ रची विधि सोनी।—देव।

संज्ञा पुं० [देश०] सुन की जाति का एक वृक्ष।

सोनेह्या-संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

सोनैया-संज्ञा स्त्री० [देश०] देवदाली। घघरबेल। बंदाल। वि० दे० "देवदाली"।

सोप-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छपी हुई चादर।

संज्ञा पुं० [अं०] साबुन।

संज्ञा पुं० [अं० स्वाब] बुहारी। झाड़ू। (लश०)

सोपत-संज्ञा पुं० [सं० सुपर्याप्त] सुबीता। सुपास। आराम का प्रबंध। उ०—मग मग यागत बहुत छिनन ते कृश तनु है है प्यारे। करत रहो हौं है को सोपत सूप मदन दोउ बारे।—रघुराज।

क्रि० प्र०—बँधना।—बाँधना।—बैठना।—बैठाना।—लगना।—लगाना।

सोपाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह व्यक्ति जो चंडाल पुरुष और पुक्कसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ हो। चंडाल। श्वपाक। (२) काष्ठौषधि बेचनेवाला। वनौषधि बेचनेवाला।

सोपान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीढ़ी। ज़ीना। (२) जैनों के अनुसार मोक्ष प्राप्ति का उपाय।

सोपानित-वि० [सं०] सोपान से युक्त। सीढ़ियों से युक्त। उ०—सरयू तीर हेम सोपानित सब थल करहिं प्रकासा।—रघुराज।

सोपारी†-संज्ञा स्त्री० दे० "सुपारी"।

सोपि-वि० [सं० सः + अपि] (१) वही। उ०—आकर चारि जीव जग अहहीं। कासी मरत परम पद लहहीं। सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेस करत करि दाया।—तुलसी। (२) वह भी। उ०—सब ते परम मनोहर गोपी। नंदनंदन के नेह मेह जिनि लोक लीक लोपी। यदि कुबजा के रंगहि राचे तदपि तजी सोपी। तदपि न तजै भजै निसि बासर नैकहु न कोपी।—सूर।

सोफता-संज्ञा पुं० [सिं० सुभीता] (१) एकांत स्थान। निराली जगह। उ०—(क) इनका मन किसी और बात में लगा हुआ है, तुम कहीं की बात फिर कभी सोफते में पूछ लेना।—श्रद्धाराम। (ख) वह उसे सोफते में ले गया। (२) रोग आदि में कुछ कमी होना।

सोफियाना-वि० [अ० सूफी + इयाना (फ़ा० प्रत्य०)] (१) सूफ़ियों का। सूफी संबंधी। (२) जो देखने में सादा पर बहुत भला लगे। जैसे,—सोफियाना कपड़ा, सोफियाना ढंग।

विशेष—सूफी लोग प्रायः बहुत सादे, पर सुंदर ढंग से रहते थे; इसी से इस शब्द का इस अर्थ में व्यवहार होने लगा।

सोफी-संज्ञा पुं० दे० "सूफी"। उ०—सोइ जोगी सोइ जंगमा सोइ सोफी सोइ सेख।

सोब-संज्ञा पुं० दे० "सोप" (१)।

सोबन†-संज्ञा पुं० दे० "सुवर्ण"।

सोभ॥-संज्ञा स्त्री० दे० "शोभा"। उ०—अति सुंदर शीतल सोभ बसै। जहँ रूप अनेकन लोभ लसै।—केशव।

संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्वों के नगर का नाम।

सोभन-संज्ञा पुं० दे० "शोभन"।

सोभना॥†-क्रि० अ० [सं० शोभन] सोहना। शोभित होना। उ०—(क) सिंधु में बड़वाग्नि की जनु ज्वालमाल विराजई। पद्मरागनि सों किधौं दिवि धूरि पूरित सोभई।—केशव। (ख) कुंडल सुंदर सोभिजै स्याम गात छवि दान।—केशव।

सोभर-संज्ञा पुं० [?] वह कोठरी या कमरा जिसमें स्त्रियाँ प्रसव करती हैं। सौरी। अंधारखाना। सूतिकागार।

सोभरि-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि।

सोभांजन-संज्ञा पुं० दे० "शोभांजन"।

सोभाकारी-वि० [सं० शोभाकर] जो देखने में अच्छा हो। सुंदर। बढ़िया। उ०—शीश परश रे लटा मानों रूप कियो त्रिपुरारि। तिलक ललित ललाट केसरबिंदु सोभाकारि।—सूर।

सोभायमान-वि० दे० "शोभायमान"।

सोभित॥-वि० दे० "शोभित"।

सोम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल की एक लता का नाम जिसका रस पीले रंग का और मादक होता था और जिसे प्राचीन वैदिक ऋषि पान करते थे। इसे पत्थर से कुचल कर

रस निकालते थे और यह रस किसी ऊनी कपड़े में छान लेते थे। यह रस यज्ञ में देवताओं को चढ़ाया जाता था और अग्नि में इसकी आहुति भी दी जाती थी। इसमें दूध या मधु भी मिलाया जाता था। ऋक् संहिता के अनुसार इसका उत्पत्ति स्थान मुजवान् पर्वत है; इसी लिये इसे मौजवत भी कहते थे। इसी संहिता के एक दूसरे सूक्त में कहा गया है कि श्येन पक्षी ने इसे स्वर्ग से लाकर इंद्र को दिया था। ऋग्वेद में सोम की शक्ति और गुणों की बड़ी स्तुति है। यह यज्ञ की आत्मा और अमृत कहा गया है। देवताओं को यह परम प्रिय था। वेदों में सोम का जो वर्णन आया है, उससे जान पड़ता है कि यह बहुत अधिक बलवर्द्धक उत्साहवर्द्धक, पाचक और अनेक रोगों का नाशक था। वैदिक काल में यह अमृत के समान बहुत ही दिव्य पेय समझा जाता था, और यह माना जाता था कि इसके पान से हृदय से सब प्रकार के पापों का नाश तथा सत्य और धर्मभाव की वृद्धि होती है। यह सब लताओं का पति और राजा कहा गया है। आर्यों की ईरानी शाखा में भी इस लता के रस का बहुत प्रचार था। पर पीछे इस लता के पहचाननेवाले न रह गए। यहाँ तक कि आयुर्वेद के सुश्रुत आदि आचार्यों के समय में भी इसके संबंध में कल्पना ही कल्पना रह गई जो सोम (चंद्रमा) शब्द के आधार पर की गई। पारसी लोग भी आजकल जिस 'होम' का अपने कर्मकांड में व्यवहार करते हैं, वह असली सोम नहीं है। वैद्यक में सोमलता की गणना दिव्यौषधियों में है। यह परम रसायन मानी गई है और लिखा गया है कि इसके पंद्रह पत्ते होते हैं जो शुक्ल पक्ष में—प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक—एक एक करके उत्पन्न होते हैं और फिर कृष्णपक्ष में—प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक—पंद्रह दिनों में एक एक करके ये सब पत्ते गिर जाते हैं। इस प्रकार अमावस्या को यह लता पत्रहीन हो जाती है।

पर्य्या०—सोमवल्ली। सोमा। क्षीरी। द्विजप्रिया। शणा। यज्ञश्रेष्ठा। धनुर्लता। सोमार्हा। गुल्मवल्ली। यज्ञवल्ली। सोमक्षीरा। यज्ञाह्वा।

(२) एक प्रकार की लता जो वैदिक काल के सोम से भिन्न है। यह दूसरी सोमलता दक्षिण की सूखी पथरीली जमीन में होती है। इसका क्षुप झाड़दार और गाँठदार तथा पत्र-हीन होता है। इसकी शाखा राजहंस के पर के समान मोटी और हरी होती है और दो गाँठों के बीच की शाखा ४ से ६ इंच तक लंबी होती है। इसके फूल लच्छे लिये बहुत हलके हरे रंग के होते हैं। फलियाँ ४-५ इंच लंबी और तिहाई इंच गोल होती हैं। बीज चिपटे और ½ से ¾ इंच तक लंबे होते हैं। (३) वैदिक काल के एक प्राचीन देवता जिनकी ऋग्वेद में बहुत स्तुति की गई है। इंद्र और वरुण की भाँति इन्हें मानवी रूप नहीं दिया गया है। ये सूर्य के समान प्रकाशमान्, बहुत अधिक वेगवान्, जेता, योद्धा और सब को संपत्ति, अन्न तथा गौ, बैल आदि देने-वाले माने जाते थे। ये इंद्र के साथ उसी के रथ पर बैठकर लड़ाई में जाते थे। कहीं कहीं ये इंद्र के सारथी भी कहे गए हैं। आर्यों की ईरानी शाखा में भी इनकी पूजा होती थी और आवस्ता में इनका नाम हओम या होम आया है। (४) चंद्रमा। (५) सोमवार। (६) सोमरस निकालने का दिन। (७) कुबेर। (८) यम। (९) वायु। (१०) अमृत। (११) जल। (१२) सोमयज्ञ। (१३) एक वानर का नाम। (१४) एक पर्वत का नाम। (१५) एक प्रकार की ओषधि। (१६) स्वर्ग। आकाश। (१७) अष्ट वसुओं में से एक। (१८) पितरों का एक वर्ग। (१९) माँड़। (२०) काँजी। (२१) हनुमंत के अनुसार मालकोश राग के एक पुत्र का नाम। —संगीत। (२२) विवाहित पति।—सत्यार्थप्रकाश। (२३) एक बहुत बड़ा ऊँचा पेड़ जिसकी लकड़ी अंदर से बहुत मजबूत और चिकनी निकलती है। चीरने के बाद इसका रंग लाल हो जाता है। यह प्रायः इमारत के काम में आती है। आसाम में इसके पत्तों पर मूगा रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। (२४) एक प्रकार का क्षीरोग। सोमरोग। (२५) यज्ञद्रव्य। यज्ञ की सामग्री।

संज्ञा पुं० [सं० सोमन्] (१) वह जो सोम रस चुआता या बनाता हो। (२) सोमयज्ञ करनेवाला। (३) चंद्रमा।

सोमक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। (२) एक राजा का नाम। (३) भागवत के अनुसार कृष्ण के एक पुत्र का नाम। (४) द्रुपद वंश, या इस वंश का कोई राजा। (५) स्त्रियों का सोम नामक रोग। (६) सहदेव के एक पुत्र का नाम।

सोमकर—संज्ञा पुं० [सं० सोम+कर] चंद्रमा की किरण।

उ०—मधुर प्रिया पर सोमकर माखन दाख समान। बालक बातें तोतरी कविकुल उक्ति प्रमान।

सोमकर्म—संज्ञा पुं० [सं० सोमकर्मन्] सोम प्रस्तुत करने की क्रिया। सोम रस तैयार करना।

सोमकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार २१वें कल्प का नाम।

सोमकांत—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रकांत मणि।

वि० (१) चंद्रमा के समान प्रिय। (२) जिसे चंद्रमा प्रिय हो।

सोमकाम—वि० [सं०] सोमपान करने का इच्छुक। सोमकामी।

संज्ञा पुं० [सं०] सोमपान करने की इच्छा।

सोमकीर्त्ति—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

सोमकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक नदी का नाम।

सोमकेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] वामन पुराण के अनुसार एक राजर्षि का नाम जो भरद्वाज के शिष्य थे।
सोमक्रतयीय–संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।
सोमक्रतु–संज्ञा पुं० [सं०] सोमयज्ञ।
सोमक्षय–संज्ञा पुं० [सं०] अमावस्या, जिसमें चंद्रमा के दर्शन नहीं होते।
सोमक्षीरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमवल्ली। सोमराजी। बकुची।
सोमक्षीरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची। सोमवल्ली।
सोमखंडा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची। सोमवल्ली।
सोमखड्डक–संज्ञा पुं० [सं०] नैपाल के एक प्रकार के शैव साधु।
सोमगंधक–संज्ञा पुं० [सं०] रक्त पद्म। लाल कमल।
सोमगर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।
सोमगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची। सोमराजी। सोमवल्ली।
सोमगिरि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक पर्वत का नाम। (२) मेरु-ज्योति। (३) एक आचार्य का नाम।
सोमगृष्टिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] पेठा। कुष्मांड लता।
सोमगोपा–संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।
सोमग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा का ग्रहण। (२) घोड़ों का एक ग्रह जिससे ग्रस्त होने पर वे काँपा करते हैं।
सोमग्रहण–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का ग्रहण।
सोमघृत–संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री-रोगों की एक औषध जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—सफेद सरसों, बच, ब्राह्मी, शंखाहुली, पुनर्नवा, दूधी (क्षीरकाकोली) सिरैंटी, कुटकी, खंभारी के फल (जरिदक), फालसा, दाख, अनन्तमूल, काला अनंतमूल, हलदी, पाठा, देवदारु, दालचीनी, मुलेठी, मजीठ, त्रिफला, फूल प्रियंगु, अड़ूसे के फूल, हुरहुर, सोंचर नमक और गेरु ये सब मिलाकर एक सेर घृतपाक विधि के अनुसार चार सेर गौ के घी में पाक करना चाहिए। गर्भवती स्त्री को दूसरे महीने से छः महीने तक इसका सेवन कराया जाता है। इससे गर्भ और योनि के समस्त दोषों का निवारण होता है, रज-वीर्य शुद्ध होता है और स्त्री बलिष्ठ तथा सुंदर संतान उत्पन्न करती है। पुरुषों को भी दूषित वीर्य की शुद्धि के लिये दिया जा सकता है।
सोमचमस–संज्ञा पुं० [सं०] सोमपान करने का पात्र।
सोमज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुध ग्रह। (२) दूध। वि० चंद्रमा से उत्पन्न।
सोमजाजी–संज्ञा पुं० दे० "सोमयाजी"। उ०—व्याध अपराध की साध राखी कौन ? पिंगला कौन मति भक्ति भेई। कौन धौं सोमजाजी अजामिल अधम ? कौन गजराज धौं बाजपेई।—तुलसी।
सोमतीर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।
सोमदर्शन–संज्ञा पुं० [सं०] एक यक्ष का नाम। (बौद्ध)
सोमदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक गंधर्वी का नाम। (रामा०) (२) गंधपलाशी। कपूर कचरी।
सोमदिन–संज्ञा पुं० [सं० सोम+दिन] सोमवार। चंद्रवार। उ०—रस गोरस खेती सकल विप्र काज सुभ साज। राम अनुग्रह सोम दिन प्रमुदित प्रजा सुराज।—तुलसी।
सोमदेव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोम देवता। (२) चंद्रमा देवता। (३) कथासरित्सागर के रचयिता का नाम जो काश्मीर में ११वीं शताब्दी में हुए थे।
सोमदेवत–वि० [सं०] जिसके देवता सोम हों।
सोमदैवत्य–वि० दे० "सोमदेवत"।
सोमदैवत–संज्ञा पुं० [सं०] मृगशिरा नक्षत्र।
सोमधान–वि० [सं०] जिसमें सोम हो। सोमयुक्त।
सोमधारा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आकाश। आसमान। (२) स्वर्ग।
सोमधेय–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद।
सोमनंदी–संज्ञा पुं० [सं० सोमनन्दिन्] (१) महादेव के एक अनुचर का नाम। (२) एक प्राचीन वैयाकरण का नाम।
सोमनंदीश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] शिव जी के एक लिंग का नाम।
सोमन–संज्ञा पुं० [सं० सौमन] एक प्रकार का अस्त्र। उ०—तथा पिशाच अस्त्र भरि मोहन लेहु राज दुलहेटे। तामस सोमन लेहु बार बहु शत्रुन को दरमेटे।—रघुराज।
सोमनस–संज्ञा पुं० दे० "सौमनस्य"। उ०—पारिभद्र सोमनस अरु अविज्ञात सुरवर्ष। रमणक अभ्यांजन सहित देउ सुरोवन हर्ष।—केशव।
सोमनाथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रसिद्ध द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक। (२) काठियावाड़ के पश्चिम तट पर स्थित एक प्राचीन नगर जहाँ उक्त ज्योतिर्लिंग का मंदिर है। मंदिर के विपुल धन-रत्न की प्रसिद्धि सुन सन् १०२४ ई० में महमूद गजनवी ने इस पर चढ़ाई की और यहाँ से करोड़ों की संपत्ति उसके हाथ लगी। मूर्ति तोड़ने पर उसमें से बहुमूल्य हीरे पन्ने आदि रत्न निकले थे। आसपास के लोगों ने महमूद के काम में बाधा दी थी, पर वे सफल नहीं हुए। अनंतर वह देवशर्मा नामक एक ब्राह्मण को यहाँ का शासक नियुक्त कर गजनी लौट गया। चौलुक्यराज दुर्लभराज ने उससे सोमनाथ का उद्धार किया। इसके बाद राठौरों ने उस पर अधिकार जमाया। पर सन् १३०० में यह फिर मुसल्मानों के अधिकार में आ गया। आज कल यह जूनागढ़ के नवाब वंश के शासनाधीन है। इसे सोमनाथपट्टन या सोमनाथपत्तन भी कहते हैं।
सोमनाथ रस–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक रसौषध जिसके

बनाने की विधि इस प्रकार है—फरहद (पारिभद्र) के रस में शोधा हुआ पारा दो तोले और मूसाकानी के रस में शोधी हुई गंधक दो तोले, दोनों की कजली कर उसमें आठ तोले लोहा मिलाकर घीकुआर के रस में घोंटते हैं। फिर अभ्रक, बंग, खपरिया, चाँदी, सोनामक्खी तथा सोना एक एक तोला मिलाकर घीकुआर के रस में भावना देते हैं। इसकी दो दो रत्ती की गोली बनाई जाती है जो शहद के साथ खाई जाती है। इसके सेवन से सब प्रकार के प्रमेह और सोमरोग का निवारण होता है।

सोमनेत्र–वि० [सं०] (१) सोम जिसका नेता या रक्षक हो। (२) सोम के समान नेत्रोंवाला।

सोमप–वि० [सं०] (१) जिसने यज्ञ में सोमरस पान किया हो। (२) सोमरस पीनेवाला। सोमपायी। सोमपा।
संज्ञा पुं० (१) सोमयज्ञ करनेवाला। (२) विश्वेदेवा में से एक का नाम। (३) स्कंद के एक पारिषद का नाम। (४) हरिवंश के अनुसार एक असुर का नाम। (५) एक ऋषि वंश का नाम। (६) पितरों की एक श्रेणी। (७) बृहत्संहिता के अनुसार एक जनपद का नाम।

सोमपति–संज्ञा पुं० [सं०] (सोम के स्वामी) इंद्र का एक नाम।

सोमपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] कुश जाति की एक घास। डाभ। दर्भ।

सोमपद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरिवंश के अनुसार एक लोक का नाम। (२) एक तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

सोमपर्व–संज्ञा पुं० [सं० सोमपर्वन्] सोम उत्सव का काल। सोमपान करने का उत्सव या पुण्य काल।

सोमपा–वि० [सं०] (१) जिसने यज्ञ में सोमपान किया हो। (२) सोमपान करनेवाला। सोमपायी।
संज्ञा पुं० (१) सोमयज्ञ करनेवाला। (२) पितरों की एक श्रेणी (विशेष कर ब्राह्मणों के पितृ पुरुष)। (३) ब्राह्मण।

सोमपात्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोम रखने का बरतन। (२) सोम पीने का बरतन।

सोमपान–संज्ञा पुं० [सं०] सोम पीने की क्रिया। सोम पीना।

सोमपायी–वि० [सं० सोमपायिन्] [स्त्री० सोमपायिनी] सोम पीनेवाला। सोमपान करनेवाला।

सोमपाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोम का रक्षक। (२) गंधर्व जो सोम की रक्षा करनेवाले माने गए हैं।

सोमपावन–वि० [सं०] सोमपान करनेवाला। जो सोम पान करता हो।

सोमपित्री–संज्ञा स्त्री० [सं० सोम+पात्री] रगड़ा हुआ चंदन रखने का बरतन।

सोमपीति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोमपान। (२) सोमयज्ञ।

सोमपीती–संज्ञा पुं० [सं० सोमपीतिन्] सोमपान करनेवाला। सोम पीनेवाला।

सोमपीथ–संज्ञा पुं० [सं०] सोमपान। सोम पीने की क्रिया।

सोमपीथी–वि० [सं० सोमपीथिन्] सोमपान करनेवाला। सोमपायी।

सोमपुत्र–संज्ञा पुं० [सं०] सोम या चंद्रमा के पुत्र, बुध।

सोमपुरुष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोम का रक्षक। (२) सोम का अनुचर या दास।

सोमपृष्ठ–वि० [सं०] (पर्वत) जिस पर सोम हो।

सोमपेय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक यज्ञ जिसमें सोमपान किया जाता था। (२) सोमपान। सोम पीने की क्रिया।

सोमप्रदोष–संज्ञा पुं० [सं०] सोमवार को किया जानेवाला एक व्रत जिसमें दिन भर उपवास करके संध्या को शिवजी की पूजा कर भोजन किया जाता है। स्कंदपुराण में लिखा है कि यह व्रत मनस्कामना पूर्ण करनेवाला है। आज कल लोग प्रायः श्रावण के सोमवारों को ही यह व्रत करते हैं। सोमव्रत।

सोमप्रभ–वि० [सं०] सोम या चंद्रमा के समान प्रभावाला। कांतिवान्।

सोमप्रवाक–संज्ञा पुं० [सं०] सोमयज्ञ में घोषणा करनेवाला।

सोमबंधु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुमुद। (२) सूर्य। (३) बुध।

सोमबेल–संज्ञा स्त्री० [सं० सोम+हिं० बेल] गुलचाँदनी या चाँदनी का पौधा।

सोमभक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] सोम का पीना। सोमपान।

सोमभवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नर्मदा नदी का एक नाम।

सोमभू–संज्ञा पुं० [सं०] (१) (चंद्रमा के पुत्र) बुध। (२) चौथे कृष्ण वासुदेव का नाम। (जैन)
वि० (१) सोम से उत्पन्न। (२) चंद्रवंशीय।

सोमभृत–वि० [सं०] सोम लानेवाला।

सोमभोजन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़ के एक पुत्र का नाम। (२) सोमपान।

सोममख–संज्ञा पुं० [सं०] सोमयज्ञ।

सोममद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोम का नशा। (२) सोम का रस जिसके पीने से नशा होता है।

सोमयज्ञ–संज्ञा पुं० दे० "सोमयाग"।

सोमयाग–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक त्रैवार्षिक यज्ञ जिसमें सोमरस पान किया जाता था।

सोमयाजी–संज्ञा पुं० [सं० सोमयाजिन्] वह जो सोमयाग करता हो। सोमयाग करनेवाला।

सोमयोनि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवता। (२) ब्राह्मण। (३) पीत चंदन। हरि चंदन।

सोमरक्ष–वि० [सं०] सोम का रक्षक।

सोमरक्षी–वि० दे० "सोमरक्ष"।

सोमरस–संज्ञा पुं० [सं०] सोमलता का रस। वि० दे० "सोम"।

सोमरा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) जुते हुए खेत का दुबारा जोता जाना। दो चरस। (२) समचतुर्भुज खेत का चौड़ाई में जोता जाना।

सोमराग–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का राग (संगीत)।

सोमराज–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

सोमराजसुत–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का पुत्र, बुध।

सोमराजिका–संज्ञा स्त्री० दे० "सोमराजी"। (१)

सोमराजी–संज्ञा पुं० [सं० सोमराजिन्] बाकुची। बकुची। वि० दे० "बकुची"।

संज्ञा स्त्री० (१) बकुची। (२) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में छः वर्ण होते हैं। यह दो यगण का वृत्त है। इसे शंखनारी भी कहते हैं। उ०—चमू चाल देखो। सुरंगी सुभेखो। धरै यादि आजी। कहै सोमराजी।—छंद प्रभाकर।

सोमराजी तैल–संज्ञा पुं० [सं०] कुष्ठादि चर्मरोगों की एक तैलौषध जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—बकुची का काढ़ा, हलदी, दारुहलदी, सफेद सरसों, कुट, करंज, पँवार के बीज, अमलतास के पत्ते, ये सब चीजें एक सेर लेकर चार सेर सरसों के तेल और सोलह सेर पानी में पकाते हैं। इस तेल के लगाने से अठारहों प्रकार के कोढ़, नासूर, दुष्ट व्रण, नीलिका, व्यंग, फुंसी, गंभीर संज्ञक वातरक्त, कंडु, कच्छु, दाद और खाज का निवारण होता है। इसका एक और भेद होता है जो महासोमराजी तैल कहलाता है। यह कुष्ट रोग के लिये परम उपकारी माना गया है। इसके बनाने की विधि इस प्रकार है। चित्रक, कलियारी, सोंठ, कुट, हलदी, करंज, हरताल, मैनसिल, विष्णुक्रांता, आक, कनैर, छतिवन, गाय का गोबर, खैर, नीम के पत्ते, मिर्च, कसौंदी, ये सब चीजें दो दो तोले लेकर इनका काढ़ा कर १२॥ सेर बकुची के काढ़े और ६४ सेर पानी और १६ सेर गोमूत्र में पकाते हैं।

सोमराज्य–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रलोक।

सोमराष्ट्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम।

सोम रोग–संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों का एक रोग, जिसमें वैद्यक के अनुसार अति मैथुन, शोक, परिश्रम आदि कारणों से शरीरस्थ जलीय धातु क्षुब्ध होकर योनि मार्ग से निकलने लगती है। यह पदार्थ श्वेत वर्ण, स्वच्छ और गंध-रहित होता है। इसमें कोई वेदना नहीं होती, पर वेग इतना प्रबल होता है कि सहा नहीं जाता। रोगिणी अत्यन्त कृश और दुर्बल हो जाती है। रंग पीला पड़ जाता है। शरीर शिथिल और अकर्मण्य हो जाता है। सिर में दर्द हुआ करता है। गला और तालू सूखा रहता है। प्यास बहुत लगती है। खाना पीना नहीं रुचता और मूर्च्छा आने लगती है। यह रोग पुरुषों के बहुमूत्र रोग के सदृश होता है।

सोमर्षि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सोमल–संज्ञा पुं० [देश०] संखिया का एक भेद जिसे सफेद संखल भी कहते हैं।

सोमलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गिलोय। गुडूची। (२) ब्राह्मी। संज्ञा स्त्री० दे० "सोम" (१)।

सोमलतिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गिलोय। गुडूची। (२) दे० "सोम" (१)।

सोमलदेवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] राजतरंगिणी के अनुसार एक राजपुत्री का नाम।

सोमलोक–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का लोक। चंद्रलोक।

सोमवंश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) युधिष्ठिर का एक नाम। (२) चंद्रवंश। उ०—सोमसुत भरि जोम चलेउ भट सोमवंश वर। पुलकि रोमवल सोम महत सुदरोम रोमधर।—गिरिधर।

सोमवंशीय–वि० [सं०] (१) चंद्रवंश में उत्पन्न। (२) चंद्रवंश संबंधी। चंद्रवंश का।

सोमवंश्य–वि० दे० "सोमवंशीय"।

सोमवत्–वि० [सं०] [स्त्री० सोमवती] (१) सोमयुक्त। चंद्रयुक्त। (२) चंद्रमा के समान।

सोमवती–संज्ञा स्त्री० दे० "सोमवती अमावस्या"।

सोमवती अमावस्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमवार को पड़नेवाली अमावस्या जो पुराणानुसार पुण्य तिथि मानी जाती है। प्रायः लोग इस दिन गंगा स्नान और दान-पुण्य करते हैं।

सोमवती तीर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

सोमवर्चस्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्वेदेवाओं में से एक का नाम। (२) एक गंधर्व का नाम। (हरिवंश)

वि० सोम के समान तेजयुक्त।

सोमवल्क–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद खैर। श्वेत खदिर। (२) कायफल। कटफल। (३) करंज। (४) रीठा करंज। गुच्छ पुष्पक। (५) बबूर। बबूर।

सोमवल्लरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ब्राह्मी। (२) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में रगण, जगण, रगण, जगण और रगण होते हैं। इसे 'चामर' और 'तूण' भी कहते हैं। उ०—रोज रोज राधिका सखीन संग आइकै। खेल रास कान्ह संग चित्त हर्ष लाइकै। बाँसुरी समान बोल सप्त ग्वाल गाइकै। कृष्णही रिझावहीं सु चामरै डुलाइ कै।—छंद: प्रभाकर। (३) दे० "सोम" (१)।

सोमवल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बकुची। सोमराजी। (२) दे० "सोम" (१)।

सोमवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गिलोय। गुड्ची। (२) बकुची। सोमराजी। (३) ब्रिंटी। पाताल गारुड़ी। (४) ब्राह्मी। (५) सुदर्शन। (६) लताकरंज। कटकरंजा। (७) गजपीपल। गजपिप्पली। (८) वन कपास। वनकापास। (९) दे० "सोम" (१)।

सोमवामी–वि० [सं० सोमवामिन्] सोम वमन करनेवाला।

संज्ञा पुं० वह ऋत्विज् जो खूब सोम पान करता हो।

सोमवायव्य–संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि-वंश का नाम।

सोमवार–संज्ञा पुं० [सं०] सात वारों में से एक वार जो सोम अर्थात् चंद्रमा का माना जाता है। यह रविवार के बाद और मंगलवार के पहले पड़ता है। चंद्रवार।

सोमवारी–संज्ञा स्त्री० दे० "सोमवती अमावस्या"।

वि० सोमवार संबंधी। सोमवार का। जैसे,—सोमवारी बाजार, सोमवारी अमावस्या।

सोमवासर–संज्ञा पुं० [सं०] सोमवार। चंद्रवार।

सोमविक्रयी–संज्ञा पुं० [सं० सोमविक्रयिन्] सोम रस बेचनेवाला।

विशेष—मनु में सोम रस बेचनेवाला दान के अयोग्य कहा गया है। उसे दान देने से दाता दूसरे जन्म में विष्ठा खानेवाली योनि में उत्पन्न होता है।

सोमवीथी–संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमंडल।

सोमवृक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कायफल। कटफल। (२) सफेद खैर। श्वेत खदिर।

सोमवृद्ध–वि० [सं०] जो खूब सोम पान करता हो। जिसकी उमर सोम पान करने में ही बीती हो।

सोमवेश–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन मुनि का नाम।

सोमव्रत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साम का नाम। (२) दे० "सोमप्रदोष"।

सोमशकला–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी।

सोमशुष्म–संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

सोमसंभवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधपलाशी। कपूर कचरी।

सोमसंस्था–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमयज्ञ का एक प्रारंभिक कृत्य।

सोमसंज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] कपूर। कर्पूर।

सोमसद्–संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार विराट् के पुत्र और साध्यगण के पितर।

सोमसलिल–संज्ञा पुं० [सं०] सोम का जल। सोमरस।

सोमसव–संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में किया जानेवाला एक प्रकार का कृत्य जिसमें सोम का रस निकाला जाता था।

सोमसाम–संज्ञा पुं० [सं० सोमसामन्] एक साम का नाम।

सोमसार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद खैर। श्वेत खदिर। (२) बबूल। कीकर। बर्बुर।

सोमसिंधु–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

सोमसिद्धांत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक बुद्ध का नाम। (२) वह शास्त्र जिससे भविष्य की बातें जानी जाती हैं। ज्योतिष-शास्त्र।

सोमसुंदर–वि० [सं०] चंद्रमा के समान सुंदर। बहुत सुंदर।

सोमसुत्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोम रस निकालनेवाला। (२) यज्ञ में सोम रस चढ़ानेवाला ऋत्विज्।

सोमसुत–संज्ञा पुं० [सं०] (चंद्रमा के पुत्र) बुध।

सोमसुता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (चंद्रमा की पुत्री) नर्मदा नदी।

सोमसुति–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोम का रस निकालने की क्रिया।

सोमसुत्या–संज्ञा स्त्री० दे० "सोमसुति"।

सोमसुत्वा–संज्ञा पुं० [सं० सोमसुत्वन्] वह जो यज्ञ में सोम रस चढ़ाता हो।

सोमसूक्ष्म–संज्ञा पुं० [सं० सोमसूक्ष्मन्] एक वैदिक ऋषि का नाम।

सोमसूत्र–संज्ञा पुं० [सं०] शिवलिंग की जलधरी से जल निकलने का स्थान या नाली।

सोमसेन–संज्ञा पुं० [सं०] शंबर के एक पुत्र का नाम।

सोमहुति–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सोमांग–संज्ञा पुं० [सं०] सोम याग का एक अंग।

सोमांशु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा की किरण। (२) सोम लता का अंकुर। (३) सोम याग का एक अंग।

सोमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोम लता। (२) महाभारत के अनुसार एक अप्सरा का नाम। (३) मारकंडेय पुराण के अनुसार एक नदी का नाम।

सोमाख्य–संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल।

सोमाद्–वि० [सं०] सोम भक्षण करनेवाला।

सोमाधार–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के पितर।

सोमापि–संज्ञा पुं० [सं०] सहदेव के एक पुत्र का नाम। (पुराण)

सोमापूषण–संज्ञा पुं० [सं०] सोम और पूषण नामक देवता।

सोमापौष्ण–संज्ञा पुं० [सं०] सोम और पूषण का। सोम और पूषण संबंधी।

सोमाभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा की किरणें। चंद्रावली।

सोमायन–संज्ञा पुं० [सं०] महीने भर का एक व्रत जिसमें २७ दिन दूध पीकर रहने और ३ दिन तक उपवास करने का विधान है।

विशेष—याज्ञवल्क्य के अनुसार यह व्रत करनेवाला पहले सप्ताह (सात रात) गौ के चार स्तनों का, दूसरे सप्ताह तीन स्तनों का, तीसरे सप्ताह दो स्तनों का और ६ रात एक स्तन का दूध पीए और तीन दिन उपवास करे।

सोमारुद्र–संज्ञा पुं० [सं०] सोम और रुद्र नामक देवता।

सोमारौद्र–वि० [सं०] सोम और रुद्र का। सोम और रुद्र संबंधी।

सोमार्च्ची–संज्ञा पुं० [सं० सोमार्चिस्] देवताओं के एक प्रासाद का नाम। (रामा०)

सोमार्द्धधारी–संज्ञा पुं० [सं० सोमार्द्धधारिन्] (मस्तक पर अर्द्ध चंद्र धारण करनेवाले) शिव।

सोमाल–वि० [सं०] कोमल। नरम। मुलायम।

सोमालक–संज्ञा पुं० [सं०] पुखराज। पुष्पराग मणि।

सोमावती–संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा की माता का नाम। उ०—विनता सुत खगनाथ चन्द्र सोमावति केरे। सुरावती के सूर्य रहत जग जासु उजेरे।—विश्राम।

सोमावर्त–संज्ञा पुं० [सं०] वायुपुराण के अनुसार एक स्थान का नाम।

सोमाश्रम–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

सोमाश्रयायण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम। (२) शिव जी का स्थान।

सोमाष्टमी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमवार को पड़नेवाली अष्टमी तिथि।

सोमाष्टमी व्रत–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जो सोमवार को पड़नेवाली अष्टमी को किया जाता है।

सोमास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अस्त्र जो चंद्रमा का अस्त्र माना जाता है। उ०—सोमास्त्रहु सौरास्त्र सुनिज निज रूपनि धारैं। रामहिं सों कर जोरि सबै बोलैं इक बारैं।—पद्माकर।

सोमाह–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का दिन, सोमवार।

सोमाहुत–वि० [सं०] जिसकी सोम रस द्वारा तृप्ति की गई हो।

सोमाहुति–संज्ञा पुं० [सं०] भार्गव ऋषि का नाम। ये मंत्रद्रष्टा थे। संज्ञा स्त्री० सोम की आहुति।

सोमाह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] महा सोमलता।

सोमित्रि–संज्ञा पुं० [सं० सौमित्र] लक्ष्मण। (डिं०)

सोमी–वि० [सं० सोमिन्] जिसमें सोम हो। सोमयुक्त। संज्ञा पुं० (१) सोम की आहुति देनेवाला। (२) सोम यज्ञ करनेवाला। सोमयाजक।

सोमीय–वि० [सं०] सोम संबंधी। सोम का।

सोमेंद्र–वि० [सं०] सोम और इंद्र का। सोम और इंद्र संबंधी।

सोमेज्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोम यज्ञ।

सोमेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक शिवलिंग जो काशी में स्थापित है। कहते हैं, भगवान सोम ने यह शिवलिंग प्रतिष्ठित किया था। (२) दे० "सोमनाथ" (१)। (३) श्रीकृष्ण का एक नाम। (४) एक देवता का नाम। (राज०) (५) संगीत शास्त्र के एक आचार्य का नाम।

सोमेश्वर रस–संज्ञा पुं० [सं०] एक रसौषधि जो "भैषज्य-रत्नावली" के अनुसार सब प्रकार के प्रमेह, मूत्रघात, सन्निपातिक ज्वर, भगंदर, यकृत, प्लीहा, उदर रोग तथा सोम रोग का शीघ्र शमन करनेवाली है। इसके बनाने की विधि इस प्रकार है—सेमल की छाल, कोह (अर्जुन) की छाल, लोध, अगर, गनियारी की छाल, रक्त चंदन, हलदी, दारुहलदी, आँवला, अनारदाना, गोखरू के बीज, जामुन की छाल, खस और गुग्गुल प्रत्येक चार चार तोले और पारा, गंधक, लोहा, धनिया, मोथा, इलायची, तेजपत्ता, पद्माक (पद्मकाठ), पाढ़ (पाठा), रसौत, वायबिडंग, सुहागा और जीरा आध आध तोला इन सब का खूब बारीक चूर्ण कर दो दो रत्ती की गोली बनाते हैं। बकरी के दूध या नारियल के जल के साथ इसका सेवन किया जाता है।

सोमोद्गीत–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

सोमोत्पत्ति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा का जन्म। (२) अमावस्या के उपरांत चंद्रमा का फिर से निकलना।

सोमोद्भव–संज्ञा पुं० [सं०] (चंद्रमा को उत्पन्न करनेवाले) श्री कृष्ण का एक नाम।

वि० चंद्रमा से उत्पन्न।

सोमोद्भवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नर्मदा नदी का एक नाम।

सोमौती–संज्ञा स्त्री० दे० "सोमवती अमावस्या"।

सोम्य–वि० [सं०] (१) सोमयुक्त। (२) सोम संबंधी। सोम का। (३) सोमपान के योग्य। (४) सोम की आहुति देनेवाला।

सोयः–सर्व० [हिं० सो+ही, ई] वही।

सर्व० दे० "सो"। उ०—कै लघु कै बड़ मीत भल, सम सनेह दुख सोय। तुलसी ज्यों घृत मधु सरिस, मिले महा विष होय।—तुलसी।

सोया–संज्ञा पुं० दे० "सोआ"।

सोरंजान–संज्ञा स्त्री० दे० "सूरंजान", "सुरंजान"।

सोर–संज्ञा पुं० [फा० शोर] (१) शोर। हल्ला। कोलाहल। उ०—(क) भयउ कोलाहल अवध अति सुनि नृपराउर सोर।—तुलसी। (ख) सोर भयौ घोर चारों ओर नभ मंडल मैं आए घन, आए घन आयकै उघरिगे। (२) प्रसिद्धि। नाम। उ०—तुम अनियारे दृगन को सुनियत जग में सोर।—रसनिधि।

संज्ञा स्त्री० [सं० शर, प्रा० सर] जड़। मूल।

संज्ञा पुं० [सं०] वक्र गति। टेढ़ी चाल।

संज्ञा पुं० [अं० शोर] तट। किनारा।

मुहा०—सोर पड़ना=(जहाज का) किनारे लगना।

सोरटु–संज्ञा पुं० दे० "सोरठ"।

सोरठ–संज्ञा पुं० [सं० सौराष्ट्र] (१) भारत का एक प्रदेश जो राजस्थान के दक्षिण-पश्चिम पड़ता है। गुजरात और दक्षिणी काठियावाड़ का प्राचीन नाम। (२) सोरठ देश की राजधानी, सूरत। उ०—नृप इक वीरभद्र अस नामा। सोरठ नगर माहिं तेहि धामा।—विश्राम।

संज्ञा पुं०, स्त्री० ओड़व जाति का एक राग जो हिंडोल का पुत्र कहा गया है।

विशेष—इसमें गांधार और धैवत स्वर वर्जित हैं। यह पंचम, भैरवी, गुर्जरी, गांधार और कल्याण के संयोग से बना माना जाता है। इसके गाने का समय रात १६ दंड से २० दंड तक है। बंगदेश के कई संगीताचार्य्य इसे संपूर्ण जाति का राग कहते हैं। कोई सोरठ को षाडव जाति की रागिनी मानते हैं।

मुहा०—खुली सोरठ कहना = खुले आम कहना। कहने में संकोच या भय न करना।

सोरठ मल्लार-संज्ञा पुं० [हिं० सोरठ + मल्लार] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

सोरठा-संज्ञा पुं० [सं० सौराष्ट्र, हिं० सोरठ (देश)] अड़तालीस मात्राओं का एक छंद जिसके पहले और तीसरे चरण में ग्यारह ग्यारह और दूसरे तथा चौथे चरण में तेरह तेरह मात्राएँ होती हैं। इसके सम चरणों में जगण का निषेध है। दोहे को उलट देने से सोरठा हो जाता है। उ०—जेहि सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिवर बदन। करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धिरासि सुभ गुन सदन।—तुलसी।

विशेष—जान पड़ता है कि इस छंद का प्रचार अपभ्रंश काल में पहले पहल सोरठ या सौराष्ट्र देश में हुआ था; इसी से यह नाम पड़ा।

सोरठी-संज्ञा स्त्री० [सोरठ (देश)] एक रागिनी जो सिंधूड़ा और बड़हंस के संयोग से बनी है। हनुमत के मत से यह मेघ राग की पत्नी है।

सोरण-वि० [सं०] कुछ कसैला, मीठा, खट्टा और नमकीन। चरपरा।

सोरन-संज्ञा पुं० [सं० शरण] जमींकंद। सूरन।

सोरनी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सँवरना + ई (प्रत्य०)] (१) झाड़ू। बुहारी। कूचा। (२) मृतक का एक संस्कार जो तीसरे दिन होता है और जिसमें उसकी चिता की राख बटोर कर नदी या जलाशय में फेंक दी जाती है। त्रिरात्रि।

सोरबा-संज्ञा पुं० दे० "शोरबा"।

सोरभणी-संज्ञा स्त्री० [सं० शरमयी] तोप या बंदूक। (डिं०)

सोरह‡छ-वि० संज्ञा पुं० दे० "सोलह"। उ०—संवत सोरह से इक्तीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा।—तुलसी।

सोरहिया-संज्ञा स्त्री० दे० "सोरही"।

सोरही†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सोलह] (१) जूआ खेलने के लिये सोलह चित्ती कौड़ियों का समूह। (२) वह जूआ जो सोलह कौड़ियों से खेला जाता है। (३) कटी हुई फ़सल की सोलह अँटियों या पूलों का बोझ (जिससे खेत की पैदावार का अंदाज लगाते हैं। जैसे,—फी बीघा सौ सोलही)

सोरा‡छ-संज्ञा पुं० दे० "शोरा"। उ०—सीतलताऍ सुगंध की घटै न महिमा मूर। पीनसवारे ज्यौं तजै सोरा जानि कपूर।—बिहारी।

सोरावास-संज्ञा पुं० [सं०] बिना नमक का मांस का रसा। बिना नमक का शोरबा।

सोराष्ट्रिक-संज्ञा पुं० दे० "सौराष्ट्रिक"।

सोरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्रवण = बहना या चूना] बरतन में महीन छेद जिसमें से होकर पानी आदि टपक कर बह जाता हो।

सोर्णभ्रू-वि० [सं०] जिसकी दोनों भँवों के बीच रोएँ की भँवरी सी हो।

सोलंकी-संज्ञा पुं० [देश०] क्षत्रियों का एक प्राचीन राजवंश जिसका अधिकार गुजरात पर बहुत दिनों तक था।

विशेष—ऐसा माना जाता है कि सोलंकियों का राज्य पहले अयोध्या में था जहाँ से वे दक्षिण की ओर गए और वहाँ से फिर गुजरात, काठियावाड़, राजपूताने और बघेलखंड में उनके राज्य स्थापित हुए। उत्तरी भारत में जिस समय थानेश्वर और कन्नौज के परम प्रतापी सम्राट् हर्षवर्द्धन का राज्य था, उस समय दक्षिण में सोलंकी सम्राट् द्वितीय पुलकेशी का राज्य था, जिससे हर्षवर्द्धन ने हार खाई थी। रीवाँ का बघेल वंश इसी सोलंकी वंश की एक शाखा है। इस समय सोलंकी और बघेल अपने को अग्नि-वंशी बतलाते हैं और अपने मूल पुरुष चालुक्य को वशिष्ठ ऋषि द्वारा आबू पर के यज्ञ-कुंड से उत्पन्न कहते हैं। पर यह बात पृथ्वीराज रासो आदि पीछे के ग्रंथों के आधार पर ही कल्पित जान पड़ती है, क्योंकि वि० सं० ६३५ से लेकर १६०० तक के अनेक शिलालेखों, दानपत्रों आदि में इनका चंद्रवंशी और पांडवों के वंशधर होना लिखा है। बहुत दिनों तक इनका मुख्य स्थान गुजरात था।

सोल-वि० [सं०] (१) शीतल। ठंढा। (२) कसैला, खट्टा और तीता।

संज्ञा पुं० (१) शीतलता। ठंढापन। (२) कसैलापन, खट्टापन, तीतापन, चरपरापन आदि। (३) स्वाद। जायका।

सोलपंणो-संज्ञा पुं० [?] केकड़ा। (डिं०)

सोलपोल-वि० [हिं० पोल + अनु० सोल] बेफायदा। व्यर्थ का।

सोलह-वि० [सं० षोडस, प्रा० सोलस, सोरह] जो गिनती में दस से छः अधिक हो। षोड़श।

संज्ञा पुं० दस और छः की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१६।

मुहा०—सोलहो आने = संपूर्ण। पूरा पूरा। जैसे,—तुम्हारी बात सोलहो आने सही है। सोलह सोलह गंडे सुनाना = खूब गालियाँ देना।

सोलह नहाँ-संज्ञा पुं० [हिं० सोलह + नहँ = नख] वह हाथी जिसके सोलह नख या नाखून हों। सोलह नाखूनवाला हाथी। (यह ऐबी समझा जाता है।)

सोलहवाँ-वि० [हिं० सोलह + वाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० सोलहवीं]

जिसका स्थान पंद्रहवें स्थान के बाद हो। जिसके पहले पंद्रह और हों।

सोलह सिंगार–संज्ञा पुं० [हिं० सोलह + सिंगार] पूरा सिंगार जिसके अंतर्गत अंग में उबटन लगाना, नहाना, स्वच्छ वस्त्र धारण करना, बाल सँवारना, काजल लगाना, सेंदुर से माँग भरना, महावर लगाना, भाल पर तिलक लगाना, चिबुक पर तिल बनाना, मेंहदी लगाना, सुगंध लगाना, आभूषण पहनना, फूलों की माला पहनना, मिस्सी लगाना, पान खाना और होठों को लाल करना ये सोलह बातें हैं।

सोलही–संज्ञा स्त्री० दे० "सोरही"।

सोलाना–क्रि० स० दे० "सुलाना"।

सोलाली–संज्ञा स्त्री० [?] पृथ्वी। (डिं०)

सोल्लास–वि० [सं०] उल्लासयुक्त। प्रसन्न। आनंदित।

क्रि० वि० उल्लास के साथ। आनंद-पूर्वक।

सोल्लुंठ–वि० [सं०] परिहास-युक्त। व्यंग्य हास्ययुक्त। चुटकी के साथ।

संज्ञा पुं० व्यंग्य। परिहास। चुटकी।

सोल्लुंठोक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] परिहास युक्त वचन। व्यंग्योक्ति। दिल्लगी। बोली ठोली। ठट्ठा। चुटकी।

सोवज–संज्ञा पुं० दे० "सावज"। "सौजा"। उ०—जब सोवज पिंजर पर पाया बाज रह्या बन माहीं।—दादू।

सोवड़–संज्ञा पुं० [सं० सूत का प्रा० सूअण] वह कोठरी जिसमें स्त्रियाँ बच्चा जनती हैं। सूतिकागार। सौरी।

सोवणी–संज्ञा स्त्री० [सं० शोधनी] बुहारी। झाड़ू। (डिं०)

सोवनॐ–संज्ञा पुं० [हिं० सोवना] सोने की क्रिया या भाव। उ०—सुरापान करि सोवन जानै। कबहुँ न जान्यो गहुन कमानै।—रघुराज।

सोवनाॐ–क्रि० अ० दे० "सोना"। उ०—(क) क्योंकरि झूठी मानिये सखि सपने की बात। जो हरि हरयो सोवत हियो सो न पाइयत प्रात।—पद्माकर। (ख) पंथ थकित मद मुकित सुखित सरसिंधुर जोवत। काकोदर कर-कोश उदर तर केहरि सोवत।—केशव।

सोवा–संज्ञा पुं० दे० "सोआ"। उ०—साग चना सँग सब चौराई। सोवा अरु सरसों सरसाई।—सूर।

सोवाक–संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा।

सोवाना–क्रि० स० दे० "सुलाना"। उ०—प्रभुहि सोवाय समाल उतारी। लियो आपने गल महँ धारी।—रघुराज।

सोवारी–संज्ञा पुं० [?] पंद्रह मात्राओं का एक ताल जिसमें पाँच आघात और तीन खाली होते हैं। इस का बोल यह

\+ +
है।—धिन धा धिन धा कत तागे दिनतो तेटे कता गदिघेन धा।

सोवाल–वि० [सं०] काले या धूँए के रंग का। धुँधला। धूमला।

सोवैयाॐ–संज्ञा पुं० [हिं० सोवना + ऐया (प्रत्य०)] सोनेवाला। उ०—धमकै कहु यों भ्रम कै उठि आवै छपाकति छाइ सोवैयन तें।

सोशल वि० [अं०] समाज संबंधी। सामाजिक। जैसे,—सोशल कानफरेंस।

सोशलिज़्म–संज्ञा पुं० दे० "साम्यवाद"।

सोशलिस्ट–संज्ञा पुं० दे० "साम्यवादी"।

सोष–वि० [सं०] खारी मिट्टी मिला हुआ। क्षार मृत्तिका मिश्रित।

सोषकॐ–संज्ञा पुं० दे० "शोषक"। उ०—सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद विधि कीन्ह। ससि सोषक पोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह।—तुलसी।

सोषणॐ–संज्ञा पुं० दे० "शोषण"। उ०—मोहन बसीकरन उच्चाटन। सोषन दीपन थंभन घातन।—गोपाल।

सोषनाॐ–क्रि० अ० दे० "सोखना"।

सोषु, सोसुॐ–वि० [हिं० सोखना] सोखनेवाला। उ०—दंभ हु कलि नाम कुंभज सोच सागर-सोषु।—तुलसी।

सोष्णीष–संज्ञा पुं० [सं०] वास्तु विद्या के अनुसार एक प्रकार का भवन जिसके पूर्व भाग में वीथिका हो। (बृहत्संहिता)।

सोष्यंती–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो प्रसव करनेवाली हो। आसन्न-प्रसवा।

सोष्यंतीकर्म–संज्ञा पुं० [सं० सोष्यंतीकर्मन्] आसन्न-प्रसवा स्त्री के संबंध में किया जानेवाला कृत्य या संस्कार।

सोष्यंती सवन–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का संस्कार।

सोष्यंती होम–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का होम जो आसन्न-प्रसवा स्त्री की ओर से किया जाता है।

सोसन–संज्ञा पुं० [फ़ा० सौसन] (१) फारस की ओर का एक प्रसिद्ध फूल का पौधा जो भारतवर्ष में हिमालय के पश्चिमोत्तर भाग अर्थात् काश्मीर आदि प्रदेशों में भी पाया जाता है।

विशेष—इसकी जड़ में से एक साथ ही कई डंठल निकलते हैं। पत्ते कोमल, रेशेदार, हाथ भर के लंबे, आध अंगुल चौड़े और नोकदार होते हैं। फूलों के दल नीलापन लिए लाल, छोर पर नुकीले और आध अंगुल चौड़े होते हैं। बीज-कोश ५ या ६ अंगुल लंबे, छ-पहले और चोंचदार होते हैं। हकीमी में फूल और पत्ते औषध के काम में आते हैं और गरम, रूखे तथा कफ और वातनाशक माने जाते हैं। इसके पत्तों का रस सिर दर्द और आँख के रोगों में दिया जाता है। इसे शोभा के लिये बगीचे में लगाते हैं। फ़ारसी के शायर जीभ की उपमा इसके दल से दिया करते हैं।

सोसनी–वि० [फ़ा० सौसन] सोसन के फूल के रंग का। लाली लिए नीला। उ०—(क) सोसनी दुकूलनि दुराये रूप रोसनी है बूटेदार घाँघरी की घूमनि घुमाय कै। कहै पदमा·

कर त्यों उरोजन पै तंग अँगिया है तनी तननि तनाय कै।
—पद्माकर। (ख) अंग अनंग की रोसनी में सुम सोसनी
चीर चुभ्यो चित चाइन। आनि चली ब्रज ठाकुर पै ठमका
ठमकी ठुमकी ठकुराइन।—पद्माकर।

सोसाइटी, सोसायटी—संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) समाज। गोष्ठी।
जैसे,—हिंदू सोसायटी। बंगाली सोसाइटी। (२) संगत।
सोहबत। जैसे,—उसकी सोसायटी अच्छी नहीं है।

सोस्मिॐ— दे० "सोऽहमस्मि"। उ०—लिंग शरीर नाम
सब पावै। जब नर अजपा में मन लावै। अजपा कि जो
सोस्मि उसासा। सुमिरै नाम सहित विश्वासा।—विश्राम।

सोहँॐ-क्रि० वि० दे० "सौंह"। उ०—सोहँहु मोहन ऐंठति
है कैसो तुम हिरदय। सुकवि लखी नहिं सुनी बात ऐसी
कहुँ निरदय।—व्यास।

सोहं- दे० "सोऽहम्"। उ०—मानन लगे ब्रह्म जिय
काहीं। सोहं रटन मची चहुँ घाहीं।—रघुराज।

सोहंग- दे० "सोऽहम्"। उ०—साधु सजे मिलि बैठे
आई। बहु विधि भक्ति करो चित लाई। कहैं कबीर सुनो
भइ साधो। सोहंग सोहंग शब्द अराधो।—कबीर।

सोहंगम- दे० "सोऽहम्"। उ०—सुरति सोहंगम
बेरि है, भ्रम सोहंगम नाम। सार शब्द टकसार है, कोइ
बिरले पावै नाम।—कबीर।

सोहंजि-संज्ञा पुं० [सं०] कुंतिभोज के एक पुत्र का नाम।
(भाग०)

सोहगी संज्ञा स्त्री० [हिं० सोहाग] (१) तिलक चढ़ने के बाद की
एक रस्म जिसमें लड़केवाले के यहाँ से लड़की के लिये
कपड़े, गहने, मिठाई, मेवे, फल, खिलौने आदि सजाकर
भेजे जाते हैं। उ०—अति उत्तम विचारि कै जोरी। अप
सुंदर संबंधहि जोरी। भेज्यो तिलक दाम भरि बहँगी।
सुमहु सुता हित साजहु सोहँगी। (२) सिंदूर, मेंहदी आदि
सुहाग की वस्तुएँ।

सोहगैला†-संज्ञा पुं० [हिं० सुहाग या सोहाग] [स्त्री० सोहगैली]
लकड़ी की कँगूरेदार डिबिया जिसमें विवाह के दिन
सिंदूर भर कर देते हैं। सिंदूरा।

सोहदा-संज्ञा पुं० दे० "शोहदा"।

सोहन-वि० [सं० शोभन, प्रा० सोहण] [स्त्री० सोहनी] अच्छा
लगनेवाला। सुंदर। सुहावना। मनभावना। मनोहर।
उ०—(क) तहँ मोहन सोहन राजत हैं। जिमि देखि
मनोभव लाजत हैं।—गोपाल। (ख) हीर जराऊ मुकुट
सीस कंचन को सोहन।—गोपाल।

संज्ञा पुं० सुंदर पुरुष। नायक। उ०—प्यारी की पीक कपोल
में पीके बिलोकि सखीन हँसी उमड़ी सी। सोहन सौंह न
लोचन होत सुलोचन सुंदरि जाति गड़ी सी।—देव।

संज्ञा स्त्री० एक बड़ी चिड़िया जिसका शिकार करते हैं।

विशेष—यह बिहार, उड़ीसा, छोटा नागपुर और बंगाल को
छोड़ हिंदुस्तान में सर्वत्र पाई जाती है। यह कीड़े, मकोड़े,
अनाज, फल, घास के अंकुर आदि सब कुछ खाती है। पूँछ
से लेकर चोंच तक इसकी लंबाई डेढ़ हाथ तक होती है और
वजन भी बहुत भारी प्रायः दस सेर तक होता है। इसका
मांस बहुत स्वादिष्ट कहा जाता है।

संज्ञा पुं० एक बड़ा पेड़ जो मध्य भारत तथा दक्षिण के जंगलों
में बहुत होता है।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी बहुत कड़ी, मज़बूत, चिकनी,
टिकाऊ तथा ललाई लिए काले रंग की होती है। यह
मकानों में लगती तथा मेज़, कुरसी आदि सजावट के
सामान बनाने के काम में आती है। सोहन शिशिर में पत्ते
झाड़नेवाला पेड़ है। इसे रोहन और सूमी भी कहते हैं।

संज्ञा पुं० [फ़ा० सोहान] एक प्रकार की बढ़इयों की रेती
या रंदा।

यौ०—तिकोनिया सोहन = तीन कोने की रेती।

सोहन चिड़िया-संज्ञा स्त्री० दे० "सोहन"।

सोहन पपड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सोहन + पपड़ी] एक प्रकार की
मिठाई जो जमे हुए कतरों के रूप में होती है।

सोहन हलवा-संज्ञा पुं० [हिं० सोहन + अ० हलवा] एक प्रकार
की स्वादिष्ट मिठाई जो जमे हुए कतरों के रूप में और घी
से तर होती है।

सोहना-क्रि० अ० [सं० शोभन, प्रा० सोहण] (१) शोभित होना।
सुंदरता के साथ होना। सजना। उ०—(क) नासिक
कीर, कँवलमुख सोहा। पदमिनि रूप देखि जग मोहा।—
जायसी। (ख) काक पच्छ सिर सोहत नीके।—तुलसी।
(ग) रत्न-जटित कंकन बाजूबंद नगन मुद्रिका सोहै।—सूर।
(घ) सोहत ओढ़े पीत पट स्याम सलोने गात।—बिहारी।
(२) अच्छा लगना। उपयुक्त होना। फबना। जैसे,—(क)
यह टोपी तुम्हारे सिर पर नहीं सोहती। (ख) ऐसी बातें
तुम्हें नहीं सोहतीं। उ०—(क) यह पाप क्या हम लोगों
को सोहता है।—प्रताप। (ख) ऐसी नीति तुम्हैं नहिं
सोहत।—गोपाल।

† वि० [स्त्री० सोहनी] सोहन। सुहावना। शोभायुक्त।
सुंदर। मनोहर। जैसे,—सोहनी लकड़ी। सोहना बगीचा।

क्रि० स० [सं० शोधन] खेत में उगी घास निकालकर अलग
करना। निराना।

संज्ञा पुं० [फ़ा० सोहान] कसेरों का एक नुकीला औज़ार
जिससे वे घरिया या कुठाली में, साँचे में गली धातु गिराने
के लिये, छेद करते हैं।

सोहनी-संज्ञा स्त्री० [सं० शोधनी] (१) झाड़ू। बुहारी। सरहट।

(२) खेत में से उगी घास खोदकर निकालने की क्रिया। निराई।
वि० स्त्री० [हिं० सोहना] सुंदर। सुहावनी। मनभावनी। उ०—साँवरी सी रही सोहनी सूरति हेरत को जुवती नहिं मोहैं?—सुंदरी-सर्वस्व।
संज्ञा स्त्री० सोहिनी रागिणी।

सोहबत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) संग साथ। संगत। (२) संभोग। स्त्री-प्रसंग।

सोहमस्मि दे० सोऽहमस्मि"। उ०—सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा।—तुलसी।

सोहर–संज्ञा पुं० [हिं० सोहना, सोहला] (१) एक प्रकार का मंगल गीत जो स्त्रियाँ घर में बच्चा पैदा होने पर गाती हैं। सोहला। उ०—रानि कौसिला ढोटा जायो रघुकुल-कुमुद जुन्हैया। सोहर सोर मनोहर मोहर माचि रह्यो चहुँ धैया।—रघुराज। (२) मांगलिक गीत। उ०—कौसिल्यै सीतै करि आगे। चलीं अवध मंदिर अनुरागे। सहसन संग सहचरी भावैं। महा मनोहर सोहर गावैं।—रघुराज।
संज्ञा स्त्री० [सं० सूतका] सूतिकागृह। सौंर। सौरी।
संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) नाव के भीतर की पाटन या फर्श। (२) नाव का पाल खींचने की रस्सी।

सोहराना–क्रि० स० दे० "सहलाना"। उ०—कुचन्ह लिये तरवा सोहराई। भा जोगी कोउ संग न लाई।—जायसी।

सोहला–संज्ञा पुं० [हिं० सोहना] (१) वह गीत जो घर में बच्चा पैदा होने पर स्त्रियाँ गाती हैं। उ०—गौरि गनेस मनाऊँ हो देवी सारद तोहि। गाऊँ हरि जू को सोहलो मन और न आवै मोहि।—सूर। (२) मांगलिक गीत। उ०—डोमनियों के रूप में सारंगियाँ छेड़ छेड़ सोहले गाओ।—इंशाअल्ला। (३) किसी देवी देवता की पूजा में गाने का गीत। जैसे,—माता के सोहले।

सोहावन॰–वि० दे० "सुहावना"। उ०—संग गाँउ को गोधन लै सिगरो रघुनाथ भरे मन चाइन मैं। नहिं जानि ये जात रहे कितको बन भीतर कुंज सोहाइन मैं।—रघुनाथ।

सोहाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० सोहना] (१) खेत में उगी घास निकालने का काम। निराई। (२) इस काम की मजदूरी।

सोहाग†–संज्ञा पुं० दे० "सुहाग"। उ०—(क) धाइ सों पूछति बातें बिने की सखीनि सों सीखे सोहाग की रीतहि।—देव। (ख) लागि लागि पग सबनि सिय भेंटति अति अनुराग। हृदय असीसहिं प्रेमबस रहिहहु भरी सोहाग।—तुलसी।
संज्ञा पुं० दे० "सुहागा"।

सोहागा–संज्ञा पुं० [सं० समभाग, प्रा० सवँहाग] जुते हुए खेत की मिट्टी बराबर करने का पाटा। मैड़ा। हेंगा।
संज्ञा पुं० दे० "सुहागा"।

सोहागिन†–संज्ञा स्त्री० दे० "सुहागिन"।

सोहागिनी–संज्ञा स्त्री० दे० "सुहागिन"। उ०—अति सप्रेम सिय पायँ परि बहु बिधि देहिं असीस। सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लग महि अहि-सीस।—तुलसी।

सोहागिल–संज्ञा स्त्री० दे० "सुहागिन"। उ०—सिय पद सुमिरि सुतीय पहि तस गुन मंगल जानु। हलसि सोहागिल भागु बड़ पुत्र काजु कल्यानु।—तुलसी।

सोहाता–वि० [हिं० सोहना] [स्त्री० सोहाती] सुहावना। शोभित। सुंदर। अच्छा। उ०—माधुरी मूरति देखे बिना पद्माकर लागै न भूमि सोहाती।—पद्माकर।

सोहाना–क्रि० अ० [सं० शोभन, प्रा० सोहण] (१) शोभित होना। शोभायमान होना। सुंदरता के साथ होना। सजना। उ०—(क) आवहिं झुंड सो पाँतिहि पाँती। गवन सोहाइ सो भाँतिहि भाँती।—जायसी। (ख) गोरे गात कपोल पर अलक अडोल सोहाय।—मुबारक। (ग) बन उपबन सर सरित सोहाए।—तुलसी। (२) रुचिकर होना। अच्छा लगना। प्रिय लगना। रुचना। जैसे,—तुम्हारी बातें हमें नहीं सोहातीं। उ०—(क) भएउ हुलास नवल ऋतु माहीं। खन न सोहाइ धूप औ छाहीं।—जायसी। (ख) पिय बिनु मनहिं अटरिया मोहिं न सोहाइ।—रहीम। (ग) राम सोहाती तोहि तौ तू सबहि सोहातो।—तुलसी।

सोहाया–वि० [हिं० सोहाना का कृदंत रूप] [स्त्री० सोहाई] शोभित। शोभायमान। सुंदर। उ०—(क) सरद सोहाई आई राति। दस दिसि फूलि रही बनजाति।—सूर। (ख) एहि प्रकार बल मनहिं देखाई। करिहउँ रघुपति-कथा सोहाई।—तुलसी।

सोहायो॰–वि० "सोहाया"।

सोहारद॰–संज्ञा पुं० दे० "सौहार्द"।

सोहारी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० सोहाना = रुचना] पूरी। उ०—मोती-चूर मूर के मोदक ओदक की उजियारी जी। सेमई सेव सँजनी सूरन सोवा सरस सोहारी जी।—विश्राम।

सोहाल–संज्ञा पुं० दे० "सुहाल"।

सोहाली–संज्ञा स्त्री० [?] ऊपर के दाँतों का मसूड़ा। ऊपरी दाँतों के निकलने की जगह।
† संज्ञा स्त्री० दे० "सुहारी"।

सोहावन॰–वि० दे० "सुहावना"। उ०—(क) दंडक बन प्रभु कीन्ह सोहावन। जनमन अमित नाम किय पावन।—तुलसी। (ख) कुहकहिं मोर सोहावन लागा। होइ कोराहर बोलहिं कागा।—जायसी।

सोहावना–वि० दे० "सुहावना"।
क्रि० अ० दे० "सोहाना"। उ०—(क) कज्जल सो रंग

माहिं सजल जलद जोहि उज्जल बरन बर रदन सोहावनें।
—गोपाल। (ख) बीर लै कमान हाथ मोद सों फिरावते।
गावते बजावते सोहावते देखावते।—गोपाल।

सोहासित‡ॐ-वि० [हिं० सोहाना = रुचना] (१) प्रिय लगने-वाला। रुचिकर। (२) ठकुर सोहाती। उ०—राजसूय ह्वै है महिं तेरी। मानहु हंस बात सति मेरी। वैसे कही सोहासित भाखैं। पै मन महँ संका हठि राखैं।—रघुराज।

सोहिं‡-क्रि० वि० दे० "सौंह"। उ०—वेदवती-दसशीश ते कही रहै मैं सोहिं। सब पुर पति विनासिहौं हेतु गई तेहि सोहिं।—विश्राम।

सोहिनी-वि० स्त्री० [हिं० सोहना] सुहावनी। शोभायमान। सुंदर। उ०—सँग लीन्हें बहु अच्छोहिनी। गज रथ तुरगन्ह सोहिनी।—गोपाल।

संज्ञा स्त्री० करुण रस की एक रागिनी।

विशेष—यह षाड़व जाति की है और इसमें पंचम वर्जित है। कोई इसे भैरव राग की और कोई मेघ राग की पुत्रवधू मानते हैं। हनुमत् के अनुसार यह मालकोस राग की पत्नी है। इसके गाने का समय रात्रि २१ दंड से २९ दंड तक है।

संज्ञा स्त्री० [सं० शोधनी] झाड़ू। बुहारी।

सोहिल-संज्ञा पुं० [अ० सुहैल] एक तारा जो चंद्रमा के पास दिखाई पड़ता है। अगस्त्य तारा। उ०—(क) हीर फूल पहिरे उजियारा। जनहु सरद ससि सोहिल तारा।—जायसी। (ख) सोहिल सरिस उवौं रन माहीं। कटक-घटा जेहि पाइ उड़ाहीं।—जायसी।

सोहिला-संज्ञा पुं० दे० "सोहला"। उ०—(क) आजु इंद्र अछरी सौं मिला। सब कैलास होहि सोहिला।—जायसी। (ख) सहेली सुनु सोहिलो रे।—तुलसी। (ग) सदन सदन शुभ सोहिलो सुहावनी तें गाइ उठीं आइ उठीं प्रण क्षिति छै गये।—रघुराज।

सोहीं‡ॐ-क्रि० वि० [सं० सम्मुख, प्रा० सम्मुह, हिं० सौंह] सामने। आगे। उ०—उग्रसेन का स्वरूप बन रानी के सोहीं आ बोला—तू मुझसे मिल।—लल्लू।

सोहैं‡ॐ-क्रि० वि० दे० "सौंहें", "सौंहँ"।

सोहैंॐ-क्रि० वि० [सं० सम्मुख, प्रा० सम्मुह, हिं० सौंहें] सामने। आगे। उ०—घूँघट में सुसकै भरे सासैं सखैं सुख नाहके सौंहैं न खोलि।—बेनी।

सोहौटी-संज्ञा स्त्री० [देश०] ६ या ७ इंच चौड़ी एक लकड़ी जो अपती के सामने डेवा के नीचे नाव की लंबाई में लगाई जाती है। (लश०)

सौंॐ-संज्ञा स्त्री० दे० "सौंह"। उ०—(क) सुंदर स्याम हँसत सजनी सों नंद बबा की सौं री।—सूर। (ख) बामन की सौं बबा की सौं मोहन मोह गऊ की सौं गोरस की सौं।—देव। (ग) मारे बात तोरे गात भंगे जात हा [illegible] सात कहूँ तुलसी सराषि राम की सौं टेरि कै।—तुलसी।

अव्य० दे० "सों" या "सा"। उ०—याही [illegible] यह आदरै जगत माहिं सब कोइ। बोलै जबै बुलाइये अनबोले चुप होइ। हुक्का सौं कहु कौन पै आत निबाहो साथ। याकी स्वासा रहत है लगी स्वास के साथ।—रसनिधि।

प्रत्य० दे० "सों" या "से"। उ०—लै बाम बाहुबल ताहि राक्षस कंठ सौं खसि खसि परे। तिमि धरे दक्षिन बाहु कोहूँ गोद में विष लै गिरे।—हरिश्चंद्र।

सौंकारा‡-संज्ञा पुं० [सं० सकाल] प्रातःकाल। सबेरा। तड़का।

सौंकेरे‡-क्रि० वि० [सं० सकाल, पु० हिं० सकारे] (१) तड़के। सबेरे। (२) समय से कुछ पहले। जल्दी।

सौंघाई-संज्ञा स्त्री० [?] अधिकता। बहुतायत। ज़्यादती। उ०—काक कंक लेइ भुजा उड़ाहीं। एक ते छीन एक लेइ खाहीं। एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई। सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई।—तुलसी।

सौंघी-वि० [?] (१) अच्छा। उ०—जौ चितवनि सौंधी लगै चितइये सबेरे। तुलसीदास अपनाइये कीजै न ढील अब जीवन अवधि नित नेरे।—तुलसी। (२) उचित। ठीक।

सौंचना‡-संज्ञा स्त्री० [सं० शौच] मलत्याग। शौच।

सौंचना‡-क्रि० स० [सं० शौच] (१) शौच करना। मल त्याग करना। (२) मल त्याग के उपरांत हाथ-पैर आदि धोना।

सौंचर-संज्ञा पुं० दे० "सौंचर नमक"। उ०—सज्जी सौंचर सेंधर सोरा। सोंखाहुली सीप सकोरा।—सूदन।

सौंचर नमक-संज्ञा पुं० दे० "सौंचर नमक"।

सौंचाना‡-क्रि० स० [हिं० सौंचना का प्रे०] शौच कराना। मल-त्याग कराना। हगाना। उ०—काची रोटी कुचकुची परती माछी बार। फूहर वही सराहिये परसत टपकै लार। परसत टपकै लार लपटि लरिका सौंचावे। चूतर पोंछै हाथ धोऊ कर सिर खजुवावै।—गिरिधर।

सौंजॐ-संज्ञा स्त्री० दे० "सौज"। उ०—(क) हरि को दर्सन करि सुख पायो पूजा बहु विधि कीन्हों। अति आनंद भये तन मन में सौंज बहुत विधि दीन्हीं।—सूर। (ख) आये नाथ द्वारका नीके रच्यो मँडवो छाय। ब्याह केलि विधि रची सकल सुख सौंज गनी नहिं जाय।—सूर। (ग) बिनती करत गोविंद गोसाईं। दै सब सौंज अनंत लोक-पति निपट रंक की नाईं।—सूर।

सौंड़; सौंड़ा‡-संज्ञा पुं० [हिं० सोना + ओढ़ना] ओढ़ने का भारी कपड़ा। जैसे,—रजाई, लिहाफ़ आदि।

सौंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीपल। पिप्पली। सोंठी।

सौंतुखॐ-संज्ञा पुं० [सं० सम्मुख] प्रत्यक्ष। सम्मुख। उ०—रा मौर से ह्वै कै चकोर भए जेहि ठौर पै पायो बड़ो सुख है।

सूकर या सूअर संबंधी। (२) सूअर सा। (३) वाराह-अवतार संबंधी।

संज्ञा पुं० दे० "सौकर तीर्थ"।

सौकरक–संज्ञा पुं० [सं०] सौकर तीर्थ।

वि० सूअर संबंधी। सूअर का। सौकर।

सौकर तीर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

सौकरायण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिकारी। शिकार करनेवाला। व्याध। अहेरी। (२) एक वैदिक आचार्य का नाम।

सौकरिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूअर का शिकार करनेवाला। (२) शिकारी। व्याध। (३) सूअर का व्यापार करनेवाला।

सौकरीय–वि० [सं०] सूअर संबंधी। सूअर का।

सौकर्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुकर का भाव। सुकरता। सुसाध्यता। (२) सुविधा। सुभीता। (३) सूकर का भाव या धर्म। सूकरता। सुअरपन।

सौकीन–संज्ञा पुं० दे० "शौकीन"।

सौकीनी–संज्ञा स्त्री० दे० "शौकीनी"।

सौकुमारक–संज्ञा पुं० [सं०] सुकुमार का भाव या धर्म। सुकुमारता।

सौकुमार्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुकुमार का भाव। सुकुमारता। कोमलता। नाजुकपन। (२) यौवन। जवानी। (३) काव्य का एक गुण जिसके लाने के लिये ग्राम्य और श्रुति कटु शब्दों का प्रयोग त्याज्य माना गया है।

वि० सुकुमार। कोमल। नाजुक।

सौकृति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम। (२) उक्त ऋषि के गोत्र का नाम।

सौकृत्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) याग, यज्ञादि पुण्यकर्म का सम्यक अनुष्ठान। (२) दे० "सौकर्म"।

सौकृत्यायन–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सुकृत्य के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो।

सौक्ति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक गोत्र का नाम। (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सौक्तिक–वि० [सं०] सूक्त संबंधी। सूक्त का।

संज्ञा पुं० वह जो सिरका आदि बनाता हो। शौक्तिक।

सौक्षम–संज्ञा पुं० दे० "सौक्ष्म्य"।

सौक्ष्मक–संज्ञा पुं० [सं०] बारीक कीड़ा। सूक्ष्म कीट।

सौक्ष्म्य–संज्ञा पुं० [सं०] सूक्ष्म का भाव। सूक्ष्मता। बारीकी।

सौख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुख का भाव या धर्म। सुखता। सुख। आराम। (२) सुख का अपत्य।

‡ संज्ञा पुं० दे० "शौक"।

सौखयानिक–संज्ञा पुं० [सं०] भाट। बंदी। स्तावक।

सौखरात्रिक–संज्ञा पुं० [सं०] बंदी। वैतालिक। स्तुतिपाठक। अर्थिक।

सौखशय्यिक–संज्ञा पुं० [सं०] वैतालिक। स्तुतिपाठक। बंदी। अर्थिक।

सौखशायनिक–संज्ञा पुं० [सं०] वैतालिक। स्तुतिपाठक। अर्थिक। बंदी।

सौखशायिक–संज्ञा पुं० [सं०] वैतालिक। स्तुतिपाठक। अर्थिक। बंदी।

सौखसुप्तिक–संज्ञा पुं० [सं०] वैतालिक। स्तुतिपाठक। बंदी।

सौखा‡–वि० [हिं० सुख] सहज। सरल।

सौखिक–वि० [सं०] सुख चाहनेवाला। सुखार्थी।

सौखी‡–संज्ञा पुं० [फ़ा० शौक या शौकीन] गुंडा। बदमाश।

सौखीन‡–संज्ञा पुं० दे० "शौकीन"।

सौख्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुख का भाव। सुखता। सुखत्व। (२) सुख। आराम। आनंद-मंगल।

सौख्यद–वि० [सं०] सुख देनेवाला। आनंद देनेवाला। सुखद।

सौख्यदायक–संज्ञा पुं० [सं०] मूँग। मुद्ग।

सौख्यदायी–वि० [सं० सौख्यदायिन्] सुख देनेवाला। सुखद।

सौगंद–संज्ञा स्त्री० [सं० सौगन्ध] शपथ। कसम। सौंह। उ०—नगर नारि को यार भूलि परतीति न कीजै। सौ सौ सौगंद खाय चित्त में एक न दीजै।—गिरिधर।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।

सौगंध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुगंधित तेल, इत्र आदि का व्यापार करनेवाला। गंधी। (२) सुगंध। सुवास। (३) अगिया घास। भूतृण। कतृण। (४) एक वर्ण संकर जाति जिसका उल्लेख महाभारत में है।

वि० सुगंध-युक्त। सुगंधित। खुशबूदार।

संज्ञा स्त्री० दे० "सौगंद"।

सौगंधक–संज्ञा पुं० [सं०] नीला कमल। नील कमल।

सौगंधिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नील कमल। नील पद्म। (२) लाल कमल। रक्त कमल। (३) सफेद कमल। श्वेत कमल। कह्लार। (४) गंध तृण। भूतृण। रामकपूर। (५) रूसा घास। रोहिष तृण। (६) गंधक। गंध पाषाण। (७) पुखराज। पद्मराग मणि। (८) एक प्रकार का कीड़ा जो श्लेष्मा से उत्पन्न होता है। (चरक) (९) सुगंधित तेल, इत्र आदि का व्यवसाय करनेवाला। गंधी। (१०) एक प्रकार का नपुंसक जिसे किसी पुरुष की इंद्री अथवा स्त्री की योनि सूँघने से उद्दीपन होता है। नासायोनि। (वैद्यक) (११) दालचीनी, इलायची और तेजपत्ता इन तीनों का समूह। त्रिसुगंधि। (१२) एक पर्वत का नाम। (भागवत)

वि० सुगंधित। सुवासित। खुशबूदार।

सौगंधिक वन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल का घना झुंड। कमल का वन या जंगल। (२) एक तीर्थ का नाम। (महाभारत)

सौगंधिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुबेर की नगरी की नदी का नाम। (वाल्मीकि रामायण)

सौगंधिपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद बर्बरी। श्वेतार्जका।

सौगंध्य-संज्ञा पुं० [सं०] सुगंधि का भाव या धर्म। सुगंधता। सुगंधत्व।

सौगत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुगत (बुद्ध) का अनुयायी। बौद्ध। (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

वि० (१) सुगत संबंधी। (२) सुगत मत का।

सौगतिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बौद्ध धर्म का अनुयायी। (२) बौद्ध भिक्षु। (३) नास्तिक। शून्यवादी। (४) अनीश्वरवादी।

सौगम्य-संज्ञा पुं० [सं०] सुगम का भाव। सुगमता। आसानी।

सौगरिया-संज्ञा पुं० [?] क्षत्रियों की एक जाति या वंश। उ०—गौर सुगोकुल रामसिंह परताप कमठ कुल। रामचंद्र कुल पांडु भेद चहुँवान खगग सुल। सूरतराम प्रसिद्ध कुसल तन अरु पाखरिया। पेमसिंह प्रथिसिंह अमरवाला सौगरिया।—सूदन।

सौगात-संज्ञा स्त्री० [तु०] वह वस्तु जो परदेश से इष्टमित्रों को देने के लिये लाई जाय। भेंट। उपहार। नजर। तोहफा। जैसे,—हमारे लिये बंबई से क्या सौगात लाए हो?

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।—लाना

सौगाती-वि० [हिं० सौगात] (१) सौगात के लायक। उपहार के योग्य। (२) उत्तम। बढ़िया। उमदा।

सौघा†-वि० [हिं० महँगा का अनु०] सस्ता। अल्प मूल्य का। कम दाम का। महँगा का उलटा। उ०—महँगे मनि कंचन किये सौघो जग जल नाज।—तुलसी।

सौचॐ-संज्ञा पुं० दे० "शौच"। उ०—सकल सौच करि जाइ नहाये। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाये।—तुलसी।

सौचि-संज्ञा पुं० दे० "सौचिक"।

सौचिक-संज्ञा पुं० [सं०] सूची कर्म या सिलाई द्वारा जीविका निर्वाह करनेवाला। दरजी। सूचिक। सूत्रभित्।

सौचिक्य-संज्ञा पुं० [सं०] सूचिक का कार्य। दरजी का काम। सीने का काम।

सौचित्ति-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सुचित्त के अपत्य हो।

सौचीक-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में एक प्रकार की अग्नि।

सौचुक-संज्ञा पुं० [सं०] भूतिराज के पिता का नाम।

सौचुक्य-संज्ञा पुं० [सं०] सूचक का भाव या कर्म। सूचकता।

सौज-संज्ञा स्त्री० [सं० शय्या, मि० फ़ा० साज] उपकरण। सामग्री। साज सामान। उ०—(क) कहाँ लगि समुझाऊँ सूर सुनि जाति मिलन की औधि टरी। लेहु सँभारि देहु पिय अपनी विन प्रमान सब सौज धरी।—सूर। (ख) जन पुकारे हरि पै जाइ। जिनकी यह सब सौज राधिका तेरे तनु सब लई छँड़ाइ।—सूर। (ग) जिन हरि सौज चोरि जग खाई। विगत दसन ते होंहि बनाई।—रामाश्वमेध। (घ) अलि सुगंध बस रहे लुभाई। भोग सौज सब सजी बनाई।—रामाश्वमेध।

वि० [सं० सौजस्] शक्तिशाली। बलवान्। ताकतवर।

सौजन्य-संज्ञा पुं० [सं०] सुजन का भाव। सुजनता। भलमनसत।

सौजन्यता-संज्ञा स्त्री० दे० "सौजन्य"। उ०—क्यों महाशय, यही सौजन्यता है।—अयोध्यासिंह।

विशेष—शुद्ध भाववाचक शब्द "सौजन्य" ही है। उसमें भी "ता" प्रत्यय लगाकर जो "सौजन्यता" रूप बनाया जाता है, वह अशुद्ध है।

सौजस्क-वि० दे० "सौज"।

सौजात-संज्ञा पुं० [सं०] सुजात के वंश में उत्पन्न व्यक्ति।

सौजामि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सौड़-संज्ञा पुं० दे० "सौंड़"।

सौडल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन आचार्य का नाम।

सौत-संज्ञा स्त्री० [सं० सपत्नी] किसी स्त्री के पति या प्रेमी की दूसरी स्त्री या प्रेमिका। किसी स्त्री की प्रेम-प्रतिद्वंद्विनी। सपत्नी। सौक। सवत। उ०—(क) देह दुलहिया की बढ़ै ज्यों ज्यों जोवन जोति। त्यों त्यों लखि सौतैं सबै बदन मलिन दुति होति।—बिहारी। (ख) काल ब्याही गई हौं तो धाम हू न गई पुनि आजहूते मेरे सीस सौत को बसाई है।—हनुमन्नाटक।

मुहा०—सौतिया डाह=(१) दो सौतों में होनेवाली डाह या ईर्ष्या। (२) द्वेष। जलन।

वि० [सं०] (१) सूत से उत्पन्न। (२) सूत संबंधी। सूत का।

सौतन-संज्ञा स्त्री० दे० "सौत"। उ०—कान्ह भये बस बाँसुरी के अब कौन सखी हमको चहिहै। निस द्यौस रहै सँग साथ लगी यह सौतन तापन क्यों सहिहै।—रसखान।

सौतनि-संज्ञा स्त्री० दे० "सौत"। उ०—बाँदृग सो उर उरज भर भरि तरुनई विकास। बोझनि सौतनि के हिये आवत रूँधि उसास।—बिहारी।

सौति-संज्ञा पुं० [सं०] सूत के अपत्य, कर्ण।

संज्ञा स्त्री० दे० "सौत"। उ०—(क) विधुरो जावक सौति पग निरखि हँसी गहि गाँस। सलज हँसौंहीं लखि लियो आधी हँसी उसास।—बिहारी। (ख) गुरु लोगनि के पग लागति प्यार सों प्यारी बहू लखि सौति जरी।—देव।

सौतिन-संज्ञा स्त्री० दे० "सौत"। उ०—(क) चौंकि चौंकि चकई सी सौतिन की दूती चली सो तें भई दीन अरविंद गति मंद ज्यों।—केशव। (ख) नायक के नैननि में नाइये सुधा सो सब सौतिन के लोचननि लौन सो लगाइये।—मतिराम।

सौतुक⊕-संज्ञा पुं० दे० "सौंतुख"। उ०—देखि वदन चकृत भई सौतुक की सपने।—सूर।

सौतुख⊕-संज्ञा पुं० दे० "सौंतुख"। उ०—पिय मिलाप को सुख सखी कह्यो न जाय अनूप। सौतुख सो सपनो भयो सपनो सौतुख रूप।—मतिराम।

सौतुप*-संज्ञा पुं० दे० "सौंतुख"। उ०—पुनि पुनि करैं प्रनामु न आवत कछु कहि। देखौं सपन कि सौतुप ससिसेपर सहि।—तुलसी।

सौतेला-वि० [हिं० सौत + एला (प्रत्य०)] [स्त्री० सौतेली] (१) सौत से उत्पन्न। सौत का। जैसे—सौतेला लड़का। (२) जिसका संबंध सौत के रिश्ते से हो। जैसे,—सौतेला भाई। (माँ की सौत का लड़का) सौतेली माँ (अर्थात् माँ की सौत) सौतेले मामा (अर्थात् नानी की सौत का लड़का या सौतेली माँ का भाई)।

सौत्य-संज्ञा पुं० [सं०] सूत या सारथि का काम।

वि० सूत या सारथि संबंधी। (२) सुत्य संबंधी। सोमाभिषव संबंधी।

सौत्र-संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण।

वि० (१) सूत का। (२) सूत्र संबंधी। सूत्र का (३) सूत्र में उल्लिखित या कथित।

सौत्रांतिक-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों का एक भेद। इनके मत से अनुमान प्रधान है। इनका कहना है कि बाहर कोई पदार्थ सांगोपांग प्रत्यक्ष नहीं होता; केवल एक देश के प्रत्यक्ष होने से शेष का ज्ञान अनुमान से होता है। ये कहते हैं कि सब पदार्थ अपने लक्षण से लक्षित होते हैं और लक्षण सदा लक्ष्य में वर्तमान रहता है।

सौत्रामण-वि० [सं०] [स्त्री० सौत्रामणी] इंद्र संबंधी। इंद्र का।

संज्ञा पुं० एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का याग। एकाह।

सौत्रामण धनु-संज्ञा पुं० [सं० सौत्रामण धनुस्] इंद्र धनुष।

सौत्रामणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र के प्रीत्यर्थ किया जानेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

सौत्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जुलाहा। तंतुवाय। (२) वह जो बुना जाय। बुनी हुई वस्तु।

सौत्वन-संज्ञा पुं० [सं०] सुत्वन के अपत्य या वंशज।

सौदंति-संज्ञा पुं० [सं०] सुदंत के अपत्य या वंशज।

सौदंतेय-संज्ञा पुं० [सं०] सुदंत के अपत्य।

सौदक्ष-वि० [सं०] (१) सुदक्ष संबंधी। सुदक्ष का। (२) सुदक्ष से उत्पन्न।

सौदक्षेय-संज्ञा पुं० [सं०] सुदक्ष के अपत्य या वंशज।

सौदत्त-वि० [सं०] (१) सुदत्त संबंधी। सुदत्त का। (२) सुदत्त से उत्पन्न।

सौदर्य-वि० [सं०] (१) सहोदर या सगे भाई संबंधी। (२) सोदर या भाई का सा।

संज्ञा पुं० भ्रातृत्व। भाईपन।

सौदर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] वाहीक जाति के एक गाँव का नाम।

सौदा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह चीज जो खरीदी या बेची जाती हो। क्रय-विक्रय की वस्तु। चीज। माल। जैसे,—(क) चलो बजार से कुछ सौदा ले आवें। (ख) तुम्हारा सौदा अच्छा नहीं है। (ग) आप क्या क्या सौदा लीजिएगा? उ०—(क) व्योपार तो याँ का बहुत किया, अब वाँ का भी कुछ सौदा लो।—नजीर। (ख) और बनिज मैं नाहीं लाहा होत मूल में हानि। सूर स्वामि को सौदो साँचो कह्यो हमारो मानि।—सूर। (२) लेन-देन। व्यवहार। उ०—(क) क्या खूब सौदा नकद है इस हाथ दे इस हाथ ले। (ख) दरजी को खुरपी दरकार नहीं, वह गेहूँ लेना चाहता है; अतः उन दोनों का सौदा नहीं हो सकता।—मिश्रबंधु। (ग) प्रायः सभी बैंकें एक दूसरे से हिसाब रखती हैं। इस प्रकार सौदे का काम कागजी घोड़ों (चेकों) द्वारा चलता है।—मिश्रबंधु। (घ) जरासुत सो भीर कोउ नहिं मिलै मोहि दलाल। जो करै सौदा समर को सहज इमि या काल।—गोपाल।

मुहा०—सौदा पटना = क्रय-विक्रय की बात चीत ठीक होना। जैसे,—तुमसे सौदा नहीं पटेगा। उ०—आखिर इसी बहाने मिलना यार से नजीर। कपड़े बला से फट गए सौदा तो पट गया।—नजीर।

(३) क्रय-विक्रय। खरीद-फरोख्त। व्यापार। उ०—और बनिज मैं नाहीं लाहा होत मूल में हानि। सूर स्वामि को सौदो साँचो कह्यो हमारो मानि।—सूर। (४) खरीदने या बेचने की बात चीत पक्की करना। जैसे,—उन्होंने पचास गाँठ का सौदा किया। उ०—राजा खुद तिजारत करता है, बिना उसकी आज्ञा के राँगा, हाथी दाँत, सीसा इत्यादि का कोई सौदा नहीं कर सकता।—शिवप्रसाद।

यौ०—सौदागर = व्यापारी। सौदा सुलुफ = खरीदने की चीज। वस्तु। सौदासूत = व्यवहार। उ०—सुहृद समाजु दगाबाजी ही को सौदासूत जब जाको काजु तब मिलैं पायँ परि सो।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।—पटना।—लेना।—होना।

संज्ञा पुं० [फा०] (१) पागलपन। बावलापन। दीवानापन। उन्माद। (२) उर्दू के एक प्रसिद्ध कवि का नाम।

†संज्ञा पुं० [देश०] वे काट छाँटकर साफ किए हुए पान जो ढोली में सड़ गए हों। (तंबोली)

सौदाई-संज्ञा पुं० [अ० सौदा + ई (प्रत्य०)] जिसे सौदा या पागलपन हुआ हो। पागल। बावला।

मुहा०—किसी का सौदाई होना = किसी पर बहुत अधिक आसक्त होना। सौदाई बनाना = अपने ऊपर किसी को आसक्त करना।

सौदागर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] व्यापारी। व्यवसायी। तिजारत करनेवाला। जैसे,—कपड़ों का सौदागर, घोड़ों का सौदागर।

सौदागर बच्चा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सौदागर + हिं० बच्चा] सौदागर अथवा सौदागर का लड़का।

सौदागरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सौदागर का काम। व्यापार। व्यवसाय। तिजारत। रोजगार।

सौदामनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बिजली। विद्युत्। (२) एक प्रकार की विद्युत् या बिजली। मालाकार विद्युत्। (३) कश्यप और विनता की एक पुत्री का नाम। (विष्णुपुराण) (४) एक अप्सरा का नाम। (बालरामायण) (५) एक रागिनी जो मेघ राग की सहचरी मानी जाती है।

सौदामनीय-वि० [सं०] सौदामनी या विद्युत् के समान। सौदमनी या विद्युत् सा।

सौदामिनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सौदामनी"। उ०—वर्षा बरनहुँ हंस बक दादुर चातक मोर। केतक कंज कदंब जल सौदामिनि घनघोर।—केशव।

सौदामिनीय-वि० दे० "सौदामनीय"।

सौदामेय-संज्ञा पुं० [सं०] सुदाम्रा के अपत्य या वंशज।

सौदाम्नी-संज्ञा स्त्री० "सौदामनी"।

सौदायिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह धन आदि जो स्त्री को उसके विवाह के अवसर पर उसके पिता-माता या पति के यहाँ से मिले। दाय भाग के अनुसार इस प्रकार मिला हुआ धन स्त्री का हो जाता है। उस पर उसी का सोलहों आने अधिकार होता है; और किसी का कोई अधिकार नहीं होता।

वि० दाय संबंधी। दाय का।

सौदास-संज्ञा पुं० [सं०] इक्ष्वाकु वंशी एक राजा का नाम। ये राजा सुदास के पुत्र और ऋतुपर्ण के पौत्र थे। इन्हें मित्र-सह और कल्मषपाद भी कहते हैं।

सौदासि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक गोत्र प्रवर्त्तक ऋषि का नाम। (२) इन ऋषि के गोत्र का नाम।

सौदेव-संज्ञा पुं० [सं०] सुदेव के पुत्र, दिवोदास।

सौद्युम्नि-संज्ञा पुं० [सं०] सुद्युम्न के अपत्य।

सौध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भवन। प्रासाद। अट्टालिका। महल। उ०—जहँ विमान वनितान के श्रमजल हरत अनूप। सौध-पताकनि के वसन होइ बिजन अनुरूप।—मतिराम। (२) चाँदी। रजत। (३) दुधिया पत्थर। दुग्ध पाषाण।

वि० सफेदी, पलस्तर या अस्तरकारी किया हुआ।

सौधक-संज्ञा पुं० [सं०] परावसु गंधर्व के नौ पुत्रों में से एक। उ०—ब्रह्म कल्प महँ हो गंधर्वा। नाम परावसु तेहि सुत सर्वा। मंदर मंवर मंदी सौधक। सुधन सुदेव महाबिल नामक।—गोपाल।

सौधकार-संज्ञा पुं० [सं०] सौध बनानेवाला। प्रासाद या भवन बनानेवाला। राज। मेमार।

सौधना&-क्रि० स० दे० "सोधना"। उ०—सातें लेनौ सौधौ याकौ। तब उपाय करिहौं मैं ताकौ।—सूदन।

सौधन्य-वि० [सं०] सुधन से उत्पन्न।

सौधन्वा-संज्ञा पुं० [सं० सौधन्वन्] (१) सुधन्वा के पुत्र, ऋभु। (२) एक वर्णसंकर जाति।

सौधर्म-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के देवताओं का निवास स्थान। कल्प-भवन।

सौधर्मज-संज्ञा पुं० [सं०] सौधर्म में उत्पन्न एक प्रकार के देवता। (जैन)

सौधर्म्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुधर्म का भाव। (२) साधुता। भलमनसत।

सौधाकार-वि० [सं०] सुधाकर या चंद्रमा संबंधी। चंद्रमा का।

सौधात-संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण और भृज्जकंठी से उत्पन्न संतान। (भृज्जकंठ एक वर्णसंकर जाति थी जो व्रात्य ब्राह्मण और ब्राह्मणी से उत्पन्न थी।)

सौधातकि-संज्ञा पुं० [सं०] सुधता के अपत्य।

सौधार-संज्ञा पुं० [सं०] नाट्य-शास्त्र के अनुसार नाटक के चौदह मार्गों में से एक का नाम।

सौधाल-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का मंदिर। शिवालय।

सौधावति-संज्ञा पुं० [सं०] सुधावति के अपत्य।

सौधृतेय-संज्ञा पुं० [सं०] सुधृति के अपत्य या वंशज।

सौधोतकि-संज्ञा पुं० दे० "सौधातकि"।

सौनंद-संज्ञा पुं० [सं०] बलराम के मूसल का नाम।

सौनंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वत्सप्री की पत्नी का नाम। (मार्कंडेय पुराण)

सौनंदी-संज्ञा पुं० [सं० सौनन्दिन्] बलराम का एक नाम जो अपने पास सौनंद नामक मूसल रखते थे।

सौन&-क्रि० वि० [सं० सम्मुख] सामने। प्रत्यक्ष। उ०—ब्याह कियो कुल इष्ट वसिष्ट अरिष्ट टरे घर को नृप धाये। लै सुत चार विवाहत ही घरी जानकी तात सबै समुदाये। सौन भये अपसौन सबै पथ काँप उठे जिय में दुख पाये।—हनुमन्नाटक।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) कसाई। चूचद। (२) वह ताजा मांस जो बिक्री के लिये रखा हो।

वि० पशुवध-शाला या कसाई खाने का। पशुवधशाला संबंधी।

सौनक-संज्ञा पुं० दे० "शौनक"। उ०—सौनक मुनि आसीन तहँ अति उदार तप रासि। मगन राम सिय ध्यान महँ, वेद रूप आभासि।—रामाश्वमेध।

सौनना†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सौंदना] कपड़ों को धोने से पहले उनमें रेह आदि लगाना। रेह की नाँद में कपड़े भिगोना। सौंदना। (धोबी) उ०—तन मन लाय कै सौनन कीन्हा धोबन जाय साधु की नगरी। कहहिं कबीर सुनो भाइ साधू, बिन सतसंग कबहूँ नहिं सुधरी।—कबीर।

सौनव्य-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सौनव्यायनी] सुनु के अपत्य।

सौनहोत्र-संज्ञा पुं० [सं० शौनहोत्र] (१) वह जो शुनहोत्र के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो। शुनहोत्र का अपत्य। (२) गृत्समद ऋषि।

सौना॰-संज्ञा पुं० दे० "सोना"। उ०—धरि सौने के पींजरा राखौ अमृत पियाइ। विष को कीरा रहत है विष ही में सुख पाइ।—रसनिधि।

†संज्ञा पुं० दे० "सौंदन"।

सौनाग-संज्ञा पुं० [सं०] वैयाकरणों की एक शाखा का नाम, जिसका उल्लेख पतंजलि के महाभाष्य में है।

सौनामि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सुनाम के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो।

सौनिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मांस बेचनेवाला। कसाई। वैतंसिक। मांसिक। (२) बहेलिया। व्याध। चीटिक।

सौनीतेय-संज्ञा पुं० [सं०] सुनीति के पुत्र, ध्रुव।

सौपथि-संज्ञा पुं० [सं०] सुपथ के अपत्य।

सौपना॰-क्रि० स० दे० "सौंपना"

सौपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पन्ना। मरकत। (२) सोंठ। सुंठी। (३) गरुड़ जी के अस्त्र का नाम। गरुड़ास्त्र। (४) ऋग्वेद का एक सूक्त। (५) गरुड़ पुराण।

वि० सुपर्ण अथवा गरुड़ संबंधी। गरुड़ का।

सौपर्णकेतव-वि० [सं०] विष्णु संबंधी। विष्णु का।

सौपर्ण व्रत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत। गरुड़ व्रत।

सौपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाताल-गारुड़ी लता। जल-जमनी।

सौपर्णेय-संज्ञा पुं० [सं०] सुपर्णी के पुत्र, गरुड़।

सपर्ण्य-संज्ञा पुं० [सं०] सुपर्ण पक्षी (बाज या चील) का स्वभाव या धर्म।

वि० दे० "सौपर्ण"।

सौपर्व-वि० [सं०] सुपर्व संबंधी। सुपर्व का।

सौपस्तंबि-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र प्रवर्तक ऋषि का नाम।

सौपाक-संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णसंकर जाति जिसका उल्लेख महाभारत में है।

सौपातव-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्तक ऋषि।

सौपामायनि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सुपामा के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो। सुपामा का गोत्रज।

सौपिक-वि० [सं०] (१) सूप या व्यंजन डाला हुआ। (२) सूप या व्यंजन संबंधी।

सौपिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सुपिष्ट के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो। सुपिष्ट का गोत्रज।

सौपिष्टी-संज्ञा पुं० दे० "सौपिष्ट"।

सौपुष्पि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सुपुष्प के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो। सुपुष्प का गोत्रज।

सौप्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रात को सोते हुए मनुष्यों पर आक्रमण। रात्रियुद्ध। निशा-रण। रात्रि-मारण। (२) महाभारत के दसवें पर्व का नाम, जिसमें सोते हुए पांडवों पर आक्रमण करने का वर्णन है।

वि० सुप्त संबंधी।

सौप्रजास्त्व-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी संतानों का होना। अच्छी औलाद होना।

सौप्रतीक-वि० [सं०] (१) सुप्रतीक दिग्गज संबंधी। (२) हाथी का। हाथी संबंधी।

सौफ-संज्ञा स्त्री० दे० "सौंफ"।

सौफिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० सौंफ] रूसा नाम की घास जब कि यह पुरानी और लाल हो जाती है।

सौफियाना-वि० दे० "सोफियाना"।

सौबल-संज्ञा पुं० [सं०] गांधार देश के राजा सुबल का पुत्र, शकुनि। उ०—(क) जात भयो ताही समय सभाभवन कुरुनाथ। विकरण दुश्शासन करण सौबल शकुनी साथ। (ख) गंधार धरापति सुत सुभग, मगध राज हित रस रसो। भट सौबल सौबल संग लै जंग रंग करिबे लसो।—गोपाल।

सौबलक-संज्ञा पुं० [सं०] (सुबल का पुत्र) शकुनि।

वि० सौबल (शकुनि) संबंधी। सौबल (शकुनि) का।

सौबली-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुबल की पुत्री, गांधारी। (धृतराष्ट्र की पत्नी)

वि० सौबल (शकुनी) संबंधी। सौबल।

सौबलेय-संज्ञा पुं० [सं०] (सुबल के पुत्र) शकुनि का एक नाम।

सौबलेयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (सुबल की पुत्री और धृतराष्ट्र की पत्नी) गांधारी का एक नाम।

सौबल्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम। (महाभारत)

सौबिगा-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बुलबुल जो पश्चिम भारत को छोड़कर प्रायः शेष समस्त भारत में पाई जाती और ऋतु के अनुसार रंग बदलती है। यह लंबाई में प्रायः एक बालिश्त से कुछ कम होती है। इसके ऊपर के पर सदा हरे रहते हैं। यह कीड़े मकोड़े खाती और एक बार में तीन अंडे देती है।

सौबीर-संज्ञा पुं० दे० "सौवीर"।

सौभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा हरिश्चंद्र की उस कल्पित नगरी का नाम जो आकाश में मानी गई है। कामचारिपुर।

(महाभारत)। (२) शाल्वों के एक नगर का नाम। (महाभारत)। (३) एक प्राचीन जनपद का नाम। (महाभारत) (४) उक्त जनपद के राजा। (महाभारत) उ०—अभिमान सहित रिपु प्रान हर घर कृपान चमकावतो। नृप सौभ लख्यो मगधेस हित सिंह समान दिसावतो।—गोपाल।

सौमकि-संज्ञा पुं० [सं०] द्रुपद का एक नाम।

सौभग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुभग होने का भाव। सौभाग्य। खुशकिस्मती। खुशनसीबी। (२) सुख। आनंद। मंगल। (३) ऐश्वर्य। संपदा। धन-दौलत। (४) सुंदरता। सौंदर्य। खूबसूरती। (५) वृहच्छ्लोक के एक पुत्र का नाम। (भागवत)

वि० सुभग वृक्ष से उत्पन्न या बना हुआ। (चरक)

सौभगत्व-संज्ञा पुं० [सं०] सुख। आनंद। मंगल।

सौभद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुभद्रा के पुत्र, अभिमन्यु। (२) एक तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है। (३) वह युद्ध जो सुभद्रा-हरण के कारण हुआ था।

वि० सुभद्रा संबंधी।

सौभद्रेय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुभद्रा के पुत्र, अभिमन्यु। (२) बहेड़ा। विभीतक वृक्ष।

सौभर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वैदिक ऋषि का नाम। (२) एक साम का नाम।

वि० सोभरि संबंधी। सोभरि का।

सौभरायण-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सौभर के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो। सौभर का गोत्रज।

सौभरि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम, जो बड़े तपस्वी थे। कहते हैं कि एक दिन यमुना में एक मत्स्य को मछलियों से भोग करते देखकर इनमें भी भोग-लालसा उत्पन्न हुई। ये सम्राट् मान्धाता के पास पहुँचे, जिनके पचास कन्याएँ थीं। ऋषि ने उनसे अपने लिए एक कन्या माँगी। मान्धाता ने उत्तर दिया कि यदि मेरी कन्याएँ स्वयंवर में आपको वरमाल्य पहना दें, तो आप उन्हें ग्रहण कर सकते हैं। सौभरि ने समझा कि मेरी बुढ़ौती देखकर सम्राट् ने टालमटोल की है। पर मैं अपने आपको ऐसा बनाऊँगा कि राजकन्याओं की तो बात ही क्या, देवांगनाएँ भी मुझे वरण करने को उत्सुक होंगी। तपोबल से ऋषि का वैसा [redacted] रूप हो गया। जब वे सम्राट् मान्धाता के अंतःपुर में पहुँचे, तब राजकन्याएँ उनका दिव्य रूप देख मोहित हो गईं और सब ने उनके गले में वरमाल्य डाल दिया। ऋषि ने अपनी मंत्र-शक्ति से उनके लिये अलग अलग पचास भवन बनवाए और उनमें बाग लगवाए। इस प्रकार ऋषि जी भोग-विलास में रत हो गए। पचास पत्नियों से उन्होंने पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किए। बह्वृचाचार्य नामक एक ऋषि ने उन्हें इस प्रकार भोग-रत देख एक दिन एकांत में बैठकर उन्हें समझाया कि यह आप क्या कर रहे हैं। इससे तो आप का तपोतेज नष्ट हो रहा है। ऋषि को आत्मग्लानि हुई। वे संसार त्याग भगवच्चिंतन के लिये वन में चले गए। उनकी पत्नियाँ उनके साथ ही गईं। कठोर तपस्या करने के उपरांत उन्होंने शरीर त्याग दिया और परब्रह्म में लीन हो गए। उनकी पत्नियों ने उनका सहगमन किया। (भागवत)

सौभव-संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत के एक वैयाकरण [redacted] नाम।

सौभांजन-संज्ञा पुं० दे० "शोभांजन"।

सौभागिनी-संज्ञा स्त्री० [सं० सौभाग्य] सधवा स्त्री। सोहागिन। उ०—सौभागिनी करै कम दोषा। तऊ ताहि पढ़ि पति की ओषा।—विश्राम।

सौभागिनेय-संज्ञा पुं० [सं०] उस स्त्री का पुत्र जो अपने पति को प्रिय हो। सुभगा या सुहागिन का पुत्र।

सौभाग्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा भाग्य। अच्छा प्रारब्ध। अच्छी किस्मत। खुशकिस्मती। खुशनसीबी। (२) सुख। आनंद। (३) कल्याण। कुशल-क्षेम। (४) स्त्री के सधवा रहने की अवस्था। पति के जीवित रहने की अवस्था। सुहाग। अहिवात। (५) अनुराग। (६) ऐश्वर्य। वैभव। (७) सुंदरता। सौंदर्य। खूबसूरती। (८) मनोहरता। (९) शुभकामना। मंगल कामना। (१०) सफलता। साफल्य। कामयाबी। (११) ज्योतिष में विष्कंभ आदि सत्ताइस योगों में से चौथा योग जो बहुत शुभ माना जाता है। (१२) सिंदूर। (१३) सुहागा। टंकण। (१४) एक प्रकार का पौधा। (१५) एक प्रकार का व्रत।

सौभाग्य चिंतामणि-संज्ञा पुं० [सं०] सन्निपात ज्वर की एक औषध।

विशेष—इसके बनाने की विधि इस प्रकार है। सुहागे का लावा, विष, जीरा, मिर्च, हड़, बहेड़ा, आँवला, सेंधा, कर्कच, विट, सौंचर और साँभर नमक, अभ्रक और गंधक—ये सब चीजें बराबर लेकर खरल करते हैं फिर संभालू (निर्गुंडी), शेफालिका, भँगरा (भृंगराज), अडूसा (वासक) और लटजीरा (अपामार्ग) के पत्तों के रस में अच्छी तरह भावना देने के उपरांत एक एक रत्ती की गोली बनाते हैं। सन्निपातिक ज्वर की यह उत्तम औषध मानी गई है।

सौभाग्य तृतीया-संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्र शुक्ल पक्ष की तृतीया जो बहुत पवित्र मानी गई है।

सौभाग्य व्रत-संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जिसके फागुन शुक्ल तृतीया को करने का विधान है।

विशेष—वाराह पुराण में इसका बड़ा माहात्म्य वर्णित है। यह व्रत स्त्री-पुरुष दोनों के लिये, सौभाग्यदायक बताया गया है।

मुक्ता। (१२) मृगशिरा नक्षत्र। (१३) मृगशिरा नक्षत्र पर रहनेवाले पाँच तारों का नाम। (१४) आर्या छंद का एक भेद।

सौम्यी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदनी। चंद्रिका।

सौयवस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कई सामों के नाम। (२) तृण या घास की प्रचुरता।

सौर-वि० [सं०] (१) सूर्य्य-संबंधी। सूर्य्य का। (२) सूर्य्य से उत्पन्न। (३) सूर्य्य का अनुसारी। जैसे,—सौर मास। (४) दिव्य सुर या देवता-संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) सूर्य्य के पुत्र, शनि। (२) सूर्य्य का उपासक। सूर्य्य का भक्त। (३) बीसवें कल्प का नाम। (४) तुंबुरु। (५) धनिया। (६) एक साम का नाम। (७) दाहिनी आँख।

संज्ञा स्त्री० [सं० शाट, हिं० सोड़] चादर। ओढ़ना। उ०—अपनी पहुँच विचारि कै करतब करिए दौर। तेतो पाँव पसारिए जेती लाँबी सौर।—रहीम।

संज्ञा स्त्री० [सं० शफरी] सौरी मछली।

विशेष—यह मझोले आकार की होती है और इसके शरीर में एक ही काँटा होता है।

सौरग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम। (बृहत्संहिता)

सौरठघाल-संज्ञा पुं० [सं० सौराष्ट्र, हिं० सोरठ+वाला] वैश्यों की एक जाति।

सौरज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुंबुरु। तुंबरू। (२) धनिया। धान्यक।

संज्ञा पुं० दे० "शौर्य"। उ०—सौरज धीर तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।—तुलसी।

सौरण-वि० [सं०] सूरन-संबंधी।

सौरत-संज्ञा पुं० [सं०] रतिक्रीड़ा। केलि। संभोग।

वि० सुरत-संबंधी। रतिक्रीड़ा-संबंधी।

सौरत्य-संज्ञा पुं० [सं०] रतिसुख। संभोग।

सौर दिवस-संज्ञा पुं० [सं०] एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय। ६० दंड का समय।

सौरध्रोणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी सलैया।

सौरध्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तँबूरा या सितार।

सौरनक-संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो रविवार को हस्त नक्षत्र होने पर सूर्य के प्रीत्यर्थ किया जाता है। (नरसिंह पुराण)

सौरपत-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्योपासक। सूर्य-पूजक।

सौरपरिकर-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के चारों ओर भ्रमण करनेवाले ग्रहों का मंडल। सौर जगत्।

सौरपि-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि।

सौरभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुरभि का भाव या धर्म। सुगंध। खुशबू। महक। उ०—त्रिविध समीर सुगन सौरभ मिलि मत्त मधुप गुंजार।—सूर। (२) केसर। कुंकुम। जाफरान। (३) तुंबुरु नामक गंध द्रव्य। तुंबरु। (४) धनिया। धान्यक। (५) बोल। हीराबोल। बीजाबोल। (६) एक प्रकार का मसाला। (७) आम। आम्र। उ०—सौरभ पल्लव मदन बिलोका। भयउ कोप कंपेउ त्रयलोका।—तुलसी। (८) एक साम का नाम।

वि० (१) सुगंधित। सुगंधयुक्त। खुशबूदार। (२) सुरभि (गाय) से उत्पन्न।

सौरभक-संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके पहले चरण में सगण, जगण, सगण और लघु, दूसरे में नगण, सगण, जगण और गुरु, तीसरे में रगण, नगण, भगण और गुरु तथा चौथे में सगण, जगण, सगण, जगण और गुरु होता है। उ०—सब त्यागिये असंत काम। शरण गहिये सदा हरी। दुःख भी जनित जायँ टरी। भजिये अहो निशि हरी हरी हरी।

सौरभमय-वि० [सं०] सौरभ-युक्त। सुगंध-युक्त। सुगंधित।

सौरभित-वि० [सं० सौरभ] सौरभ-युक्त। महकनेवाला। सुगंधित। खुशबूदार।

सौरभेय-संज्ञा पुं० [सं०] (सुरभि का पुत्र) साँड़। वृषभ।

वि० सुरभि-संबंधी। सुरभि का।

सौरभेयक-संज्ञा पुं० [सं०] साँड़। वृष।

सौरभेयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाय। गो। (२) एक अप्सरा का नाम। (महाभारत)

सौरभ्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुगंध। खुशबू। (२) मनोज्ञता। सुंदरता। खूबसूरती। (३) गुण-गौरव। कीर्त्ति। प्रसिद्धि। नेकनामी। (४) कुबेर का एक नाम।

सौर मास-संज्ञा पुं० [सं०] वह महीना जो सूर्य्य के किसी एक राशि में रहने तक माना जाता है। उतना काल जितने तक सूर्य किसी एक राशि में रहे। एक संक्रांति से दूसरी संक्रांति तक का समय।

विशेष—सूर्य एक वर्ष में क्रम से मेष, वृष आदि बारह राशियों को भोग करता है। एक राशि में वह प्रायः ३० दिन तक रहता है। प्रायः इतने दिन का ही एक सौरमास होता है।

सौर वर्ष-संज्ञा पुं० दे० "सौर संवत्सर"।

सौर संवत्सर-संज्ञा पुं० [सं०] उतना काल जितना सूर्य को मेष, वृष आदि बारह राशियों पर घूम आने में लगता है। एक मेष संक्रांति से दूसरी मेष संक्रांति तक का समय।

सौरस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुरसा नामक पौधे से निकला या बना हुआ। (२) सुरसा का अपत्य या पुत्र। (३) जूँ। (४) नमकीन रसा या शोरबा।

सौर सिद्धांत-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक सिद्धांत ग्रंथ।

सौर सूक्त-संज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद के एक सूक्त का नाम जिसमें सूर्य की स्तुति है। सूर्य-सूक्त।

सौरसेन-संज्ञा पुं० दे० "शूरसेन" और "शौरसेन"।
सौरसेय-संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद का एक नाम। कार्त्तिकेय।
सौर सैंधव-वि० [सं०] (१) गंगा का। गंगा-संबंधी। (२) गंगा से उत्पन्न। (जैसे, भीष्म)
संज्ञा पुं० सूर्य का घोड़ा।
सौरस्य-संज्ञा पुं० [सं०] सुरसता। रसीला होने का भाव।
सौराज्य-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छा राज्य। सुराज्य। सुशासन।
सौराटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी। (संगीत)
सौराव-संज्ञा पुं० [सं०] नमकीन रसा या शोरबा।
सौराष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुजरात-काठियावाड़ का प्राचीन नाम। सूरत के आस पास का प्रदेश। सोरठ देश। (२) उक्त प्रदेश का निवासी। (३) कुँदुरु नामक गंध-द्रव्य। शल्लकी-निर्यास। (४) काँसा। कांस्य। (५) एक वर्ण वृत्त का नाम।
वि० सोरठ प्रदेश का।
सौराष्ट्रक-संज्ञा पुं० [सं०] सौराष्ट्र या सोरठ प्रदेश का रहनेवाला। (२) पंचलौह। (३) एक प्रकार का विष।
वि० सौराष्ट्र या सोरठ प्रदेश-संबंधी। सोरठ देश में उत्पन्न।
सौराष्ट्र-मृत्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोपी चंदन।
सौराष्ट्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोपी-चंदन।
सौराष्ट्रिक-वि० [सं०] सौराष्ट्र या सोरठ देश-संबंधी। गुजरात काठियावाड़ संबंधी।
संज्ञा पुं० (१) सोरठ देश का निवासी। (२) काँसा नाम की धातु। (३) एक प्रकार का विषैला कंद।
विशेष—इसके पत्ते पलाश के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं। यह कंद काले अगर के समान काला और कछुए की तरह चिपटा और फैला हुआ होता है।
सौराष्ट्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोपी चंदन।
सौराष्ट्रेय-वि० [सं०] सोरठ प्रदेश का। गुजरात-काठियावाड़ का।
सौरास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दिव्यास्त्र। उ०—सोमास्त्रहु सौरास्त्र सु निज निज रूपनि धारैं। रामहिं सौं कर जोरि सबै बोले इक वारैं।—पद्माकर।
सौरिंध्र-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० सौरिंध्री] (१) ईशान कोण में स्थित एक प्राचीन जनपद। (बृहत्संहिता) (२) उक्त जनपद का निवासी।
सौरि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) (सूर्य के पुत्र) शनि। (२) विजैसार। असन वृक्ष। (३) हुलहुल का पौधा। आदित्यभक्ता। (४) एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि। (५) दक्षिण का एक प्राचीन जनपद। (बृहत्संहिता)
संज्ञा पुं० दे० "शौरि"। उ०—अंतःपुर में तुरत ही भयो सोर चहुँ ओर। पैढ़ायो पर्य्यंक में रंकहि सौरि किसोर।—रघुराज।
सौरिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनैश्चर ग्रह। (२) स्वर्ग।
वि० (१) स्वर्गीय। (२) सुरा या मद्य संबंधी (ऋण)। शराब के कारण होनेवाला (कर्ज)।
सौरिकीर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक प्राचीन जनपद। (बृहत्संहिता)
सौरिरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] नीलम नामक मणि।
सौरी-संज्ञा स्त्री० [सं० सूतिका] वह कोठरी या कमरा जिसमें स्त्री बच्चा जने। सूतिकागार। जापा। जच्चाखाना।
संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य्य की पत्नी। (२) सूर्य की पुत्री और कुरु की माता तापती। वैवस्वती। (३) गाय। गौ। (४) हुलहुल पौधा। आदित्यभक्ता।
संज्ञा स्त्री० [सं० शफरी] एक प्रकार की मछली। शफुकी मत्स्य।
विशेष—भाव-प्रकाश के अनुसार इसका मांस मधुर, कसैला और हृद्य है।
सौरीय-वि० [सं०] सूर्य-संबंधी। सूर्य का।
संज्ञा पुं० (१) एक वृक्ष जिसमें से विषैला गोंद निकलता है। (२) इस वृक्ष से निकला हुआ विष।
सौरेय, सौरेयक-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कटसरैया। श्वेत झिंटी।
सौर्य-वि० [सं०] सूर्य-संबंधी। सूर्य का।
संज्ञा पुं० (१) सूर्य का पुत्र, शनि। (२) एक संवत्सर का नाम। (३) हिमालय के दो शृंगों का नाम।
सौर्य्यपृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।
सौर्यभगवत्-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन वैयाकरण का नाम जिनका उल्लेख पतंजलि के महाभाष्य में है।
सौर्ययाम-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य और यम-संबंधी। सूर्य और यम का।
सौर्षी-संज्ञा पुं० [सं० सौविन्] हिमालय का एक नाम।
सौर्योदयिक-वि० [सं०] सूर्योदय-संबंधी।
सौलंकी-संज्ञा पुं० दे० "सोलंकी"।
सौलक्षण्य-संज्ञा पुं० [सं०] शुभ या अच्छे लक्षणों का होना। सुलक्षणता।
सौलभ्य-संज्ञा पुं० [सं०] सुलभता।
सौल, सौला-संज्ञा पुं० [हिं० साकुल] (१) राजगीरों का शाकुल। साहुल। (२) हल के जूए के ऊपर की गाँठ।
सौल्विक-संज्ञा पुं० [सं०] ठठेरा। ताम्र-कुट्टक।
सौव-संज्ञा पुं० [सं०] अनुशासन। आदेश।
वि० (१) अपने संबंध का। अपना। निज का। (२) स्वर्गीय।
सौवर-वि० [सं०] स्वर-संबंधी।
सौवर्चल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोंचर नमक। (२) सज्जी मिट्टी। सर्जिका क्षार।
वि० सुवर्चल-संबंधी।

सौचर्चला—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्र की पत्नी का नाम।

सौवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक कर्ष भर सोना। (२) सोने की बाली। (३) सोना। सुवर्ण।

वि० [स्त्री० सौवर्णी, सौवर्णी] (१) सोने का। सोने का बना। (२) तौल में कर्ष भर। १६ माशे भर।

सौवर्णभेदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] फूलफेन। फूलप्रियंगु। प्रियंगु।

सौवर्णिक—संज्ञा पुं० [सं०] सुनार। स्वर्णकार।

वि० एक सुवर्ण भर। एक कर्ष या १६ माशे भर।

सौवर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का विषैला कीड़ा। (सुश्रुत)

सौवश्य—संज्ञा पुं० [सं०] घुड़दौड़।

सौवस्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुरोहित। कुलपुरोहित। (२) दे० "स्वस्त्ययन"।

वि० स्वस्ति कहनेवाला। मंगल चाहनेवाला। मंगलाकांक्षी।

सौवाध्यायिक—वि० [सं०] जो स्वाध्याय करता हो। वेदपाठ करनेवाला। स्वाध्यायी।

सौवास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सुगंधित तुलसी।

सौवासिनी—संज्ञा स्त्री० दे० "सुवासिनी"।

सौवास्तव—वि० [सं०] (१) सुवास्तु-युक्त। भवन निर्माण की कुशलता से युक्त। अच्छी कारीगरी का (मकान)। (२) अच्छे स्थान पर बना हुआ (मकान)।

सौविद—संज्ञा पुं० [सं०] अंतःपुर या रनिवास का रक्षक। कंचुकी। सुविद।

सौविदल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का वह प्रधान कर्मचारी जिसके पास राजा की मुद्रा आदि रहती हो।

सौविदल्लक—संज्ञा पुं० दे० "सौविदल्ल"।

सौविष्टकृत्—वि० [सं०] स्विष्टकृत् नामक अग्नि-संबंधी। (गृह्यसूत्र)

सौवीर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंधु नद के आस-पास के एक प्राचीन प्रदेश का नाम। उ०—सिंधु और सौवीरहु सोरठ जे भूपति रनधीरा। न्योति पठावहु सकल महीपन, बाकी रहै न वीरा।—रघुराज। (२) उक्त प्रदेश का निवासी या राजा। (३) बेर का पेड़ या फल। बदर। (४) जौ को सड़ाकर बनाई हुई एक प्रकार की काँजी।

विशेष—वैद्यक में यह अग्निदीपक, विरेचक तथा कफ, ग्रहणी, अर्श, उदावर्त्त, अस्थि शूल आदि दोषों में उपकारी माना जाता है।

सौवीरक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "सौवीर"। (२) जयद्रथ का एक नाम।

सौवीरपाण—संज्ञा पुं० [सं०] वाह्लीक देशवासी। वाह्लीक।

विशेष—उक्त देशवासी जौ या गेहूँ की काँजी बहुत पिया करते थे, इसी से उनका यह नाम पड़ा है।

सौवीरसार—संज्ञा पुं० [सं०] सुरमा। स्रोतोऽञ्जन।

सौवीरांजन—संज्ञा पुं० [सं०] सुरमा।

सौवीरा—संज्ञा स्त्री० दे० "सौवीरी"।

सौवीराम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] जौ या गेहूँ की काँजी।

सौवीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेर का पेड़ या फल।

सौवीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संगीत में एक प्रकार की मूर्च्छना जिसका स्वरग्राम इस प्रकार है—म, प, ध, नि, स, रे, ग, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग, म। (२) सौवीर की राजकुमारी।

सौवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] सौवीर का राजा। (२) महान् वीरता। बहुत अधिक पराक्रम।

सौवीर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौवीर की राजपुत्री।

सौव्रत्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुव्रत का भाव। एकनिष्ठा। भक्ति। (२) आज्ञापालन।

सौशम्य—संज्ञा पुं० [सं०] सुशमता। सुशांति।

सौशल्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम। (महाभारत)

सौशील्य—संज्ञा पुं० [सं०] सुशीलता। सच्चरित्रता। साधुता।

सौश्रवस—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुश्रवा के अपत्य, उपगु। (२) सुयश। सुकीर्त्ति (३) दो सामों के नाम।

वि० जिसका अच्छा नाम या यश हो। कीर्त्तिमान्। यशस्वी।

सौश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] ऐश्वर्य। वैभव।

सौश्रुत—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सुश्रुत के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो। सुश्रुत-गोत्रज।

वि० (१) सुश्रुत का रचा हुआ। (२) सुश्रुत-संबंधी।

सौषाम—संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

सौषिर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मसूड़ों का एक रोग।

विशेष—इसमें कफ और पित्त के विकार से मसूड़े सूज आते हैं; उनमें दर्द होता है और लार गिरती है।

(२) वह यंत्र जो वायु के जोर से बजता हो। फूँककर या हवा भरकर बजाया जानेवाला बाजा। जैसे,—बंसी, तुरही, शहनाई आदि।

सौषिर्य—संज्ञा पुं० [सं०] पोलापन।

सौषुम्ण—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की किरणों में से एक।

सौष्ठव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुडौलपन। उपयुक्तता। (२) सुंदरता। सौंदर्य। (३) तेजी। फुरती। क्षिप्रता। लाघव। (४) शरीर की एक मुद्रा। (नृत्य) (५) नाटक का एक अंग।

सौसन—संज्ञा पुं० दे० "सोसन"।

सौसनी—संज्ञा पुं० दे० "सोसनी"। उ०—पहिरौ री वे हुनरी सुरँग चूनरी ल्याय। पहिरे सारी सौसनी कारी देह दिखाय।—श्रृंगार-सतसई।

सौसुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन स्थान का नाम जिसका उल्लेख महाभाष्य में है।

सौहुराद-संज्ञा पुं० [सं०] विष्ठा में होनेवाला एक प्रकार का कीड़ा।

सौस्थित्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी स्थिति। (२) ग्रहों का शुभ स्थान में होना।

विशेष—बृहत्संहिता में लिखा है कि ग्रहों का सौस्थित्य, अर्थात् शुभ स्थान में स्थिति, देखकर राजा यदि आक्रमण करे तो वह अल्प पौरुषवाला होने पर भी पराया धन पाता है।

सौस्नातिक-वि० [सं०] वह प्रश्न कि यज्ञ के उपरांत स्नान सफल हुआ या नहीं।

सौस्वर्य-संज्ञा पुं० [सं०] सुस्वर या उत्तम स्वर होने का भाव। सुस्वरता। सुरीलपन।

सौहँ-संज्ञा स्त्री० [सं० शपथ, प्रा० सवह] शपथ। कसम। उ०—हम रीझे मनभावते लखि तव सुंदर गात। दीठ रूप धर लाल सिर मैना सौहँ खात।—रसनिधि।

क्रि० प्र०—करना।—खाना।

क्रि० वि० [सं० सम्मुख, प्रा० सम्मुह] सामने। आगे। उ०—रंग भरे अंग भरसौहँ सरसौहँ सोहँ सौहँ करि भौहँ रस भावनि भरत है।—देव।

सौहन-संज्ञा पुं० [देश०] पैसे का चौथाई भाग। छदाम। टुकड़ा। (सुनार)

सौहर-संज्ञा पुं० दे० "शौहर"।

सौहरा-संज्ञा पुं० [हिं० ससुर] ससुर। (पश्चिम)

सौहविष-संज्ञा पुं० [सं०] कई सामों के नाम।

सौहाँग-संज्ञा पुं० [देश०] दो भर का बाट या बटखरा। (सुनार)

सौहार्द-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुहृद का भाव। मित्रता। मैत्री। सख्य। दोस्ती। (२) सुहृद या मित्र का पुत्र।

सौहार्दनिधि-संज्ञा पुं० [सं०] राम का एक नाम।

सौहार्द्य-संज्ञा पुं० [सं०] सौहार्द। मित्रता। बंधुत्व। दोस्ती।

सौहित्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तृप्ति। संतोष। (२) मनोरमता। मनोज्ञता। सुंदरता। (३) पूर्णता।

सौहीं-संज्ञा स्त्री० [फा० सोहन] (१) एक प्रकार की रेती। (२) एक प्रकार का हथियार।

क्रि० वि० [हिं० सौंह] सामने। आगे। उ०—कहि आवति है जु कहावत हौ तुम, नाहीं तो ताकि सके हम सौहीं। तेहि पैंडे कहा चलिये कबहूँ जिहि काँटो लगै पग पीर दुखौहीं।—केशव।

सौहृद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मित्रता। स्नेह संबंध। सख्य। दोस्ती। (२) सुहृद्। मित्र। दोस्त। (३) एक प्राचीन जनपद। (महाभारत)

वि० सुहृद या मित्र संबंधी।

सौहृदय, सौहृदय्य-संज्ञा पुं० [सं०] सौहार्द। मित्रता। दोस्ती।

सौहृद्य-संज्ञा पुं० [सं०] सौहार्द। मित्रता। बंधुता। दोस्ती।

सौहोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] सुहोत्र के अपत्य अजमीढ और पुरुमीढ नामक वैदिक ऋषि।

सौह्य-संज्ञा पुं० [सं०] सुह्म देश का राजा।

स्कंक-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का काले रंग का जानवर जो अमेरिका में पाया जाता है। इसका शरीर अठारह तसू और पूँछ बारह तसू लंबी होती है। गरदन से पूँछ तक दो सफेद धारियाँ होती हैं और माथे पर सफेद टीका होता है। नाक लंबी, पर पतली तथा कान छोटे और गोल होते हैं। बाल लंबे और मोटे होते हैं। इसके शरीर से ऐसी दुर्गंध आती है कि पास ठहरा नहीं जाता।

स्कंत्तृ-वि० [सं०] जो उछले। उछलनेवाला। छलाँग मारनेवाला।

स्कंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उछलनेवाली वस्तु। (२) निकलना। बहना। गिरना। (३) विनाश। ध्वंस। (४) पारा। पारद। (५) कार्तिकेय का एक नाम। देव-सेनापति।

विशेष—ये शिव के पुत्र, देवताओं के सेनापति और युद्ध के देवता माने जाते हैं। पुराणों में इनके जन्म के संबंध में अनेक कथाएँ दी हैं। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में लिखा है कि शिव जी एक बार पार्वती के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। उस समय उनका वीर्य्य पृथ्वी पर गिर पड़ा। पर पृथ्वी उसे सहन न कर सकी और उसने अग्नि को दे दिया जिससे इनकी उत्पत्ति हुई। एक और पुराण में लिखा है कि शिव और पार्वती के विहार के समय अग्नि-देवता ब्राह्मण का वेष धारण करके भिक्षा माँगने आए थे। शिव जी ने क्रोध में आकर अपना वीर्य्य उन्हें दे दिया। अग्नि-देवता वह वीर्य्य पी गए, पर सहन न कर सके; अतः उन्होंने उसे गंगा जी में वमन कर दिया। गंगा में वह वीर्य्य छः भागों में पड़ा था; पर पीछे से वे छः भाग मिलकर एक शरीर हो गए जिसमें छः मुख हुए। वहाँ से इन्हें छः कृत्तिकाएँ उठा लाईं और ये छः मुँहों से उन छः कृत्तिकाओं के स्तन-पान करने लगे। इसी लिए ये षडानन और कार्त्तिकेय कहलाए। इसी प्रकार और भी कई कथाएँ हैं। ये बहुत सुन्दर कहे गए हैं और इनका वाहन मोर माना जाता है। इनके अस्त्र का नाम शक्ति है और इनकी कांति तपाए हुए सोने के समान कही गई है। यह भी कथा है कि पार्वती जी ने एक बार कहा था कि जो कोई सब से पहले पृथ्वी की प्रदक्षिणा करके आवेगा, उसके साथ ऋद्धि-सिद्धि का विवाह होगा। तदनुसार स्कंद मोर पर चढ़कर पृथ्वी प्रदक्षिणा करने निकले। पर गणेश जी ने सोचा कि माता ही पृथ्वी का रूप है; अतः उन्होंने पार्वती जी की प्रदक्षिणा करके उन्हें प्रणाम किया। पार्वती ने उनके साथ ऋद्धि-सिद्धि का विवाह कर दिया। जब स्कंद लौटकर आए, तब उन्होंने देखा कि गणेश का विवाह हो गया है; अतः उन्होंने

सदा कुँआरे रहने का प्रण किया। पर तंत्रों में इनके विवाहित होने का भी उल्लेख मिलता है और इनकी पत्नी देवसेना कही गई हैं जो षष्ठी देवी के नाम से पूजी जाती हैं। इन देवसेना के अस्त्र और वाहन आदि भी कार्त्तिकेय के अस्त्रों और वाहन के समान ही कहे गए हैं। स्कंद ने तारक और क्रौंच आदि अनेक राक्षसों का वध किया था।

पर्य्या०—महासेन। षडानन। सेनानी। अग्निभू। विशाख। शिखिवाहन। षाण्मातुर। शक्तिधर। कुमार। आग्नेय। मयूरकेतु। भूतेश। कामजित्। कांत। शिशु। शुभानन। अमोघ। रौद्र। प्रिय। चंद्रानन। षष्ठीप्रिय। रेवतीसुत। प्रभु। नेता। सुमत। ललित। गांग। स्वामी। द्वादशलोचन। महाबाहु। युद्धरंग। रुद्रसूनु। गौरीपुत्र। गुह।

(६) शिवजी का एक नाम। (७) पंडित। विद्वान्। (८) राजा। (९) शरीर। देह। (१०) बालकों के नौ प्राणघातक ग्रहों या रोगों में से एक जिसमें बालक कभी घबराकर और कभी डरकर रोता, नाखूनों और दाँतों से अपना शरीर नोचता, जमीन खोदता, दाँत पीसता, होंठ चबाता और चिल्लाता है। इसकी दोनों भौंहें फड़का और एक आँख बहा करती है; मुँह टेढ़ा हो जाता है; दूध से अरुचि हो जाती है; शरीर दुर्बल और शिथिल हो जाता है; चेतना शक्ति नहीं रहती; नींद नहीं आती; दस्त हुआ करते हैं और शरीर से मछली तथा रक्त की दुर्गंध आती है। वि० दे० "बालग्रह"। (११) नदी का किनारा।

स्कंदक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो उछले। (२) सैनिक। सिपाही। (३) एक प्रकार का छंद।

स्कंदगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्त वंश के एक प्रसिद्ध सम्राट् का नाम जिनका समय ई० ४५० से ४६७ तक माना जाता है। ये गुप्तवंश के प्रतापी सम्राट् समुद्रगुप्त के प्रपौत्र थे। इन्होंने पुष्यमित्र, हूणों तथा नागवंशियों को हराया था। इनका दूसरा नाम क्रमादित्य था।

स्कंदगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

स्कंदग्रह—संज्ञा पुं० दे० "स्कंद" (१०)।

स्कंदजननी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (स्कंद या कार्त्तिकेय की माता) पार्वती।

स्कंदजित्—संज्ञा पुं० [सं०] (स्कंद को जीतनेवाले) विष्णु का एक नाम।

स्कंदता—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्कंद का भाव या धर्म।

स्कंदत्व—संज्ञा पुं० दे० "स्कंदता"।

स्कंदन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० स्कंदित, स्कंदनीय] (१) कोठा साफ होना। रेचन। (२) सोखना। शोषण। (३) जाना। गमन। (४) निकलना। बहना। गिरना। स्खलन। पतन। (५) खून का जमना।

स्कंधपुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर का नाम। (राजतरंगिणी)

स्कंदपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] अठारह पुराणों में से एक प्रसिद्ध पुराण का नाम; जिसके अंतर्गत सनत्कुमार संहिता, सूतसंहिता, शंकर-संहिता, वैष्णव-संहिता, ब्राह्म-संहिता और सौरसंहिता नामक छः संहिताएँ तथा माहेश्वर खंड, वैष्णव खंड, ब्रह्मखंड, काशीखंड, रेवाखंड, तापीखंड और प्रभास खंड नामक सात खंड तथा कितने ही माहात्म्य आदि माने जाते हैं। इनमें से काशीखंड ही सब से अधिक प्रचलित और प्रसिद्ध है।

स्कंदफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] खजूर। खर्जूर वृक्ष।

स्कंदमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्कंदमातृ] (स्कंद की माता) दुर्गा।

स्कंदरेश्वरतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

स्कंदविशाख—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

स्कंद षष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चैत सुदी ६ जो कार्त्तिकेय के देवसेनापति पद पर अभिषिक्त होने की तिथि मानी जाती है।

विशेष—वाराह पुराण में लिखा है कि इस दिन जो लोग व्रत रह कर स्कंद की पूजा करते हैं, उनकी मनस्कामना सिद्ध होती है।

(२) कार्त्तिक या अगहन सुदी छठ। गुहषष्ठी। (३) तंत्र के अनुसार एक देवी का नाम जो स्कंद की भार्य्या कही गई है।

स्कंदांशक—संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

विशेष—कहते हैं कि शिवजी के वीर्य से पारे की उत्पत्ति हुई है; इसी से इसे स्कंदांशक या शिवांशक कहते हैं।

स्कंदापस्मार—संज्ञा पुं० [सं०] एक बालग्रह या रोग जिसमें बालक अचेत हो जाता है और उसके मुँह से फेन निकला करता है। चैतन्य होने पर वह हाथ पैर पटकता और बार बार जँभाई लेता है। उसके शरीर से खून और पीब की सी दुर्गंध आती है।

स्कंदापस्मारी—वि० [सं० स्कंदापस्मारिन्] स्कंदापस्मार ग्रह या रोग से आक्रांत। जिस पर स्कंदापस्मार ग्रह का आक्रमण हुआ हो।

स्कंदित—वि० [सं०] निकला हुआ। गिरा हुआ। झड़ा हुआ। स्खलित। पतित। उ०—स्कंदित भव [illegible] धीरज धातें। स्कंद नाम देवन दिय तातें।—पद्माकर।

स्कंदी—वि० [सं० स्कंदिन्] (१) बहनेवाला। गिरनेवाला। पतनशील। (२) उछलनेवाला। कूदनेवाला।

स्कंदोपनिषद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

स्कंदोल—वि० [सं०] ठंढा। शीतल। सर्द।

संज्ञा पुं० ठंढक। शीतलता।

स्कंध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंधा। मोढ़ा। (२) वृक्ष की पेड़ी या तने का वह भाग जहाँ से ऊपर चलकर डालियाँ निकलती

हैं। कांड। प्रकांड। दंड। (३) डाल। शाखा। (४) समूह। गरोह। झुंड। (५) सेना का अंग। व्यूह। (६) ग्रंथ का विभाग जिसमें कोई पूरा प्रसंग हो। खंड। जैसे,—भागवत का दशम स्कंध। (७) मार्ग। पंथ। (८) शरीर। देह। (९) राजा। (१०) वह वस्तु जिसका राज्याभिषेक में उपयोग हो। जैसे,—जल, छत्र आदि। (११) मुनि। आचार्य। (१२) युद्ध। संग्राम। (१३) संधि। राजीनामा। (१४) कंकपक्षी। सफेद चील। (१५) एक नाग का नाम। (महाभारत) (१६) आर्या छंद का एक भेद। (१७) बौद्धों के अनुसार रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार ये पाँचो पदार्थ। बौद्ध लोग इन पाँचों स्कंधों के अतिरिक्त पृथक् आत्मा का स्वीकार नहीं करते। (१८) दर्शन-शास्त्र के अनुसार शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पाँच विषय।

स्कंधक–संज्ञा पुं० [सं०] आर्यागीत या खंधा नामक छंद का एक नाम।

स्कंधचाप–संज्ञा पुं० [सं०] बहँगी जिस पर कहार बोझ ढोते हैं। विहंगिका।

स्कंधज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सलई। शल्लकी वृक्ष। (२) बड़। वट वृक्ष।

स्कंधतरु–संज्ञा पुं० [सं०] नारियल का पेड़। नारिकेल वृक्ष।

स्कंधदेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंधा। मोढ़ा। (२) पेड़ का तना या धड़। (३) हाथी की गरदन जिस पर महावत बैठता है। आसन।

स्कंधपरिनिर्वाण–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार शरीर के पाँचो स्कंधों का नाश। मृत्यु।

स्कंधपाद–संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम। (मार्कंडेयपुराण)

स्कंधपीठ–संज्ञा पुं० [सं०] कंधे की हड्डी। मोढ़ा।

स्कंधप्रदेश–संज्ञा पुं० दे० "स्कंधदेश"।

स्कंधफल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारियल का पेड़। नारिकेल वृक्ष। (२) गूलर। उदुंबर वृक्ष।

स्कंधबंधन–संज्ञा पुं० [सं०] सौंफ। मधुरिका।

स्कंधबीज–संज्ञा पुं० [सं०] वह वनस्पति या वृक्ष जिसके स्कंध से ही शाखाएँ निकलकर जमीन तक पहुँचती और वृक्ष का रूप धारण करती हों। जैसे,—बड़, पाकर आदि।

स्कंधमणि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जंतर या तावीज।

स्कंधमल्लक–संज्ञा पुं० [सं०] कंक पक्षी। सफेद चील।

स्कंधमार–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के चार मारों में से एक।

स्कंधरुह–संज्ञा पुं० [सं०] बड़। वट वृक्ष।

स्कंधवह–संज्ञा पुं० दे० "स्कंधवाह"।

स्कंधवाह–संज्ञा पुं० [सं०] वह पशु जो कंधों के बल बोझ खींचता हो। जैसे,—बैल, घोड़ा आदि।

स्कंधवाहक–वि० [सं०] कंधे पर बोझ उठानेवाला। जो कंधे पर बोझ उठाता हो।

संज्ञा पुं० दे० "स्कंधवाह"।

स्कंधशाखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वृक्ष की मुख्य शाखा या डाल।

स्कंधशिर–संज्ञा पुं० [सं० स्कंधशिरस्] कंधे की हड्डी। मोढ़ा।

स्कंधशृंग–संज्ञा पुं० [सं०] भैंस। महिष।

स्कंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) डाल। शाखा। (२) लता। बेल।

स्कंधाक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय के अनुचर देवताओं का एक गण।

स्कंधाग्नि–संज्ञा स्त्री० [सं०] मोटे लकड़ों की आग।

स्कंधावार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा का डेरा या शिविर। कैंप। (२) छावनी। सेनानिवास। उ०—पिता से स्कंधावार में जाने की आज्ञा माँगी।—गदाधरसिंह। (३) राजा का निवासस्थान। राजधानी। (हेम) (४) सेना। फौज। (५) वह स्थान जहाँ बहुत से व्यापारी या यात्री आदि डेरा डालकर ठहरे हों।

स्कंधिक–संज्ञा पुं० [सं०] बैल। वृष।

स्कंधी–वि० [सं० स्कंधिन्] कांड से युक्त। तने से युक्त।

संज्ञा पुं० वृक्ष। पेड़।

स्कंधेमुख–वि० [सं०] जिसका मुख कंधे पर हो।

संज्ञा पुं० स्कंद के एक अनुचर का नाम।

स्कंधोग्रीवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बृहती नामक वर्णवृत्त का एक भेद।

स्कंधोपनेय–संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं में होनेवाली एक प्रकार की संधि।

स्कंध्य–वि० [सं०] (१) स्कंध या कंधे का। स्कंध संबंधी। (२) स्कंध के समान।

स्कंभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खंभा। स्तंभ। (२) विश्व को धारण करनेवाला, परमेश्वर।

स्कंभन–संज्ञा पुं० [सं०] खंभा। स्तंभ।

स्कंभसर्जन–संज्ञा पुं० दे० "स्कंभसर्जनी"।

स्कंभसर्जनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बैलगाड़ी के जूए की कील या खूँटी जिससे बैल इधर उधर नहीं हो सकते।

स्कन्न–वि० [सं०] (१) गिरा हुआ। पतित। च्युत। स्खलित। (जैसे, वीर्य) (२) गया हुआ। गत। (३) सूखा। शुष्क।

स्कभन–संज्ञा पुं० [सं०] शब्द। आवाज।

स्कांद–वि० [सं०] स्कंद-संबंधी। स्कंद का।

संज्ञा पुं० स्कंदपुराण।

स्कांदायन–संज्ञा पुं० दे० "स्कांदायन्य"।

स्कांदायन्य–संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद के गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति।

स्कांधी–संज्ञा पुं० [सं० स्कांधिन्] स्कंध के शिष्य या उनकी शाखा के अनुयायी।

स्कालर–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह जो स्कूल में पढ़ता हो। छात्र।

विद्यार्थी। (२) वह जिसने बहुत विद्याध्ययन किया हो। उच्च कोटि का विद्वान् व्यक्ति। पंडित। आलिम।

स्कालरशिप–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह वृत्ति या निर्धारित धन जो विद्यार्थी को किसी स्कूल या कालेज में शिक्षा प्राप्त करने के लिये नियमित रूप से सहायतार्थ दिया जाय। छात्रवृत्ति। वज़ीफ़ा। (२) विद्वत्ता। पांडित्य।

स्कीम–संज्ञा स्त्री० [अं०] किसी बड़े काम को करने का विचार या आयोजन। भावी कार्यों के संबंध में व्यवस्थित विचार। योजना।

स्कूल–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह विद्यालय जहाँ किसी भाषा, विषय या कला आदि की शिक्षा दी जाती हो। (२) वह विद्यालय जहाँ एंट्रेंस या मैट्रिकुलेशन तक की पढ़ाई होती हो। (३) विद्यालय। मदरसा।

मुहा०—स्कूल से निकलना = स्कूल की पढ़ाई समाप्त करके स्कूल छोड़ना। जैसे,—वह हाल में ही स्कूल से निकलकर कालेज में भर्त्ती हुआ है।

स्कूलमास्टर–संज्ञा पुं० [अं०] स्कूल या अँगरेजी विद्यालय में पढ़ानेवाला। शिक्षक।

स्कूली–वि० [अं० स्कूल + ई (प्रत्य०)] (१) स्कूल का। स्कूल संबंधी। जैसे,—स्कूली पढ़ाई, स्कूली किताबें। (२) स्कूल में पढ़नेवाला। जैसे,—स्कूली लड़का।

स्कोटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पक्षी।

स्क्रू–संज्ञा पुं० [अं०] वह कील या काँटा जिसके नुकीले आधे भाग पर चक्करदार गड़ारियाँ बनी होती हैं और जो ठोंक कर नहीं, बल्कि घुमाकर जड़ा जाता है। पेंच।

क्रि० प्र०—कसना।—खोलना।—जड़ना।—निकालना।

स्खदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) फाड़ना। चीरना। टुकड़े टुकड़े करना। विदारण। (२) हिंसा। हत्या। वध। (३) सताना। उत्पीड़न। (४) स्थिरता। स्थैर्य।

स्खलित–वि० [सं०] (१) गिरा हुआ। निकला हुआ। पतित। च्युत। (२) फिसला हुआ। सरका हुआ। (३) लड़खड़ाया हुआ। विचलित। (४) चूका हुआ। उ०—वे अपने को जितना भ्रांतिशील, स्खलितबुद्धि या सचूक समझते हैं।—महावीरप्रसाद।

संज्ञा पुं० (१) भूल। चूक। भ्रांति। (२) धर्मयुद्ध के नियमों को छोड़कर, युद्ध में छल कपट या घात करना।

स्टांप–संज्ञा पुं० [अं०] (१) एक प्रकार का सरकारी कागज जिस पर अर्जीदावा लिखकर अदालत में दाखिल किया जाता है या जिस पर किसी प्रकार की पक्की लिखा पढ़ी की जाती है। यह भिन्न भिन्न मूल्यों का होता है; और विशिष्ट कार्यों के लिये विशिष्ट मूल्य का व्यवहृत होता है। ऐसे कागज पर की हुई लिखा पढ़ी बिलकुल पक्की समझी जाती है। (२) डाक का टिकट। (३) मोहर। छाप।

स्टाइल–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) ढंग। तरीका। (२) शैली। पद्धति। (३) लेखन-शैली।

स्टाक–संज्ञा पुं० [अं०] (१) बिक्री या बेचने का माल। (दूकानदार) जैसे,—उसकी दूकान में स्टाक कम है। (२) वह धन या पूँजी जो व्यापारी लोग या उनका कोई समूह किसी काम में लगाता हो। किसी साझे के काम में लगाई हुई पूँजी। (३) सरकारी कागज़ में ब्याज पर लगाया हुआ धन। सरकारी कर्ज की हुंडी। (४) रसद। सामान। (५) वह स्थान जहाँ बिक्री का सामान जमा हो। भंडार। गुदाम।

स्टाक एक्सचेंज–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह मकान, स्थान या बाड़ा जहाँ स्टाक या शेयर खरीदे और बेचे जाते हों। (२) स्टाक का काम करनेवालों या दलालों की संघटित सभा।

स्टाक ब्रोकर–संज्ञा पुं० [अं०] वह दलाल जो दूसरों के लिये स्टाक या शेयरों की खरीद, बिक्री का काम करता हो।

स्टिचिंग मशीन–संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की किताब सीने की कल जिसमें लोहे के तारों से सिलाई होती है।

स्टीम–संज्ञा पुं० [अं०] भाप। जलवाष्प।

मुहा०—स्टीम भरना = जोश दिलाना। उत्साहित करना। उत्तेजन देना।

स्टीम इंजिन–संज्ञा पुं० [अं०] वह इंजिन जो खौलते हुए पानी में से निकलनेवाली भाप के जोर से चलता हो। जैसे,—रेल का इंजिन, जहाज का इंजिन।

स्टीमर–संज्ञा पुं० [अं०] स्टीम या भाप के जोर से चलनेवाला जहाज। धूम्रपोत।

स्टूल–संज्ञा पुं० [अं०] तीन या चार पायों की बिना ढासने की छोटी ऊँची चौकी जिस पर एक ही आदमी बैठ सकता है। तिपाई। टूल।

स्टेज–संज्ञा पुं० [अं०] (१) नाट्य-मंदिर या थिएटर के अंदर ज़मीन से कोई तीन हाथ ऊँचा बना हुआ मंच जिस पर नाटक खेला जाता है। रंगमंच। रंगभूमि। रंगपीठ। (२) मंच।

स्टेज मनेजर–संज्ञा पुं० [अं०] रंगमंच का प्रबंधक या व्यवस्थापक।

स्टेट–संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी देश की वह समस्त प्रजा या समाज जो अपना शासन आप ही करता हो। सभ्य या स्वतंत्र समाज या राष्ट्र। (२) वह शक्ति जिसके द्वारा कोई सरकार किसी देश का शासन करता हो। (३) ऐसे राष्ट्रों में से कोई एक जिनका कोई सम्मिलित संघ हो और जो व्यक्तिशः स्वतंत्र होने पर भी किसी एक केंद्रस्थ शक्ति या

सरकार से संबद्ध हों। जैसे,—अमेरिका के यूनाइटेड स्टेट्स। (४) आधुनिक भारत का कोई स्वतंत्र देशी राज्य। जैसे,—जयपुर एक बहुत बड़ा स्टेट है।

संज्ञा पुं० [अं० एस्टेट] (१) बड़ी जमींदारी। (२) स्थावर और जंगम संपत्ति। मनकूला और गैरमनकूला जायदाद। जैसे,—वे पाँच लाख रुपयों का स्टेट छोड़कर मरे थे।

स्टेशन–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह स्थान जहाँ निर्दिष्ट समय पर नियमित रूप से रेलगाड़ियाँ ठहरा करती हैं। रेलगाड़ियों के ठहरने और मुसाफिरों के उन पर उतरने चढ़ने के लिये बनी हुई जगह। (२) वह स्थान जहाँ कुछ लोगों की, रहने के लिये नियुक्ति हो। वह जगह जहाँ किसी विशिष्ट कार्य्य के लिये कुछ लोगों की नियुक्ति और निवास हो। जैसे,—पुलिस स्टेशन।

स्टोइक–संज्ञा पुं० [अं०] जीनो नामक एक यूनानी विद्वान् का चलाया हुआ संप्रदाय। इस संप्रदायवालों का सिद्धांत है कि मनुष्य को विषय-सुखों का त्याग करके बहुत संयम-पूर्वक रहना चाहिए।

स्ट्रेट–संज्ञा पुं० [अं०] जलडमरूमध्य।

स्तंकु–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था।

स्तंब–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऐसा पौधा जिसकी एक जड़ से कई पौधे निकलें और जिसमें कड़ी लकड़ी या डंठल न हो। गुल्म। (२) घास की आँटी। (३) रोहिड़ा। रोहतक वृक्ष। (४) एक पर्वत का नाम।

स्तंबक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुच्छा। (२) नकछिकनी। क्षवक वृक्ष। छिकनी।

स्तंबकरि–संज्ञा पुं० [सं०] धान।

स्तंबकार–वि० [सं०] गुच्छे बनानेवाला।

स्तंबघन–संज्ञा पुं० [सं०] दराँती जिससे घास आदि काटते हैं। हँसिया।

स्तंबघात–संज्ञा पुं० दे० "स्तंबघन"।

स्तंबघ्न–संज्ञा पुं० दे० "स्तंबघन"।

स्तंबपुर–संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रलिप्तपुर का एक नाम।

स्तंबमित्र–संज्ञा पुं० [सं०] जरिता के एक पुत्र का नाम। (महाभारत)

स्तंबहनन–संज्ञा पुं० [सं०] घास आदि खोदने की खुरपी।

स्तंबी–संज्ञा पुं० [सं० स्तंबिन्] घास खोदने की खुरपी।

स्तंबेरम–संज्ञा पुं० [सं०] हाथी। हस्ति।

स्तंबेरमासुर–संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम। गजासुर।

स्तंभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खंभा। थंभा। थूनी। (२) पेड़ का तना। तरुस्कंध। (३) साहित्यदर्पण के अनुसार एक प्रकार का सात्विक भाव। किसी कारण से संपूर्ण अंगों की गति का अवरोध। जड़ता। अचलता। उ०—देखा देखी भई, छूट तब तें सँकुच गई, मिटी कुल कानि, कैसो घूँघट को करिबो। लागी टकटकी, उर उठी धकधकी, गति थकी, मति छकी, ऐसो नेह को उघरिबो। चित्र कैसे लिखे दोऊ ठाढ़े रहे, "कासीराम" नाहीं परवाह लाख लाज करो करिबो। बंसी को बजैबो नटनागर बिसरि गयो, नागरि बिसरि गई गागरि को भरिबो।—रसकुसुमाकर। (४) प्रतिबंध। रुकावट। (५) एक प्रकार का तांत्रिक प्रयोग जिससे किसी की चेष्टा या शक्ति को रोकते हैं। (६) काव्य में सात्विक भावों में से एक। (७) एक ऋषि का नाम। (विष्णुपुराण) (८) अभिमान। दंभ। (९) रोग आदि के कारण होनेवाली बेहोशी।

स्तंभक–वि० [सं०] (१) रोकनेवाला। रोधक। (२) कब्ज करनेवाला। (३) वीर्य रोकनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) खंभा। थंभा। (२) शिव का एक नाम।

स्तंभकर–वि० [सं०] (१) रोकनेवाला। रोधक। (२) जड़ता करनेवाला।

संज्ञा पुं० घेरा। वेष्टन।

स्तंभकी–संज्ञा पुं० [सं० स्तंभकिन्] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था।

संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

स्तंभता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्तंभ का भाव। (२) जड़ता।

स्तंभतीर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन स्थान का नाम जो आज कल खंभात के नाम से प्रसिद्ध है। किसी समय यह एक प्रसिद्ध तीर्थ और व्यापार का बहुत बड़ा केंद्र था।

स्तंभन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुकावट। अवरोध। निवारण। (२) विशेषतः वीर्य आदि के स्खलन में बाधा या विलंब। (३) वह औषध जिससे वीर्य का स्खलन विलंब से हो। वीर्य्यपात रोकनेवाली दवा।

विशेष—इस अर्थ में लोग भ्रम से इस शब्द का, स्तंभक के स्थान पर प्रयोग करते हैं।

(३) सहारा। टेकान। टेक। (४) जड़ या निश्चेष्ट करना। जड़ीकरण। (५) रक्त के प्रवाह या गति का रोकना। (६) एक प्रकार का तांत्रिक प्रयोग जिससे किसी की चेष्टा या शक्ति को रोकते हैं। (७) वह औषध जो रूखी, ठंढी और कसैली हो, जिसमें पाचन-शक्ति कम हो और जो वायु करनेवाली हो। कब्ज। मलावरोधक। (९) कामदेव के पाँच बाणों में से एक। (शेष चार बाण ये हैं—उन्मादन, शोषण, तापन और सम्मोहन।)

स्तंभनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का इंद्रजाल या जादू।

स्तंभनीय–वि० [सं०] स्तंभन के योग्य।

स्तंभवृत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राण को जहाँ का तहाँ रोक देना, जो प्राणायाम का एक अंग है।

स्तंभि–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। सागर।

स्तंभिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चौकी या आसन का पाया। (२) छोटा खंभा। खँभिया।

स्तंभित–वि० [सं०] (१) जो जड़ या अचल हो गया हो। जड़ीभूत। निश्चल। निस्तब्ध। सुन्न। (२) ठहरा या ठहराया हुआ। स्थित। (३) रुका या रोका हुआ। अवरुद्ध। निवारित।

स्तंभिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] योग के अनुसार पाँच धारणाओं में से एक।

स्तंभी–वि० [सं० स्तम्भिन्] (१) स्तंभ या खंभों से युक्त। (२) रोकनेवाला। थांभिक।

संज्ञा पुं० समुद्र।

स्तनंधय–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० स्तनंधया, स्तनंधयी] (१) दूध पीता बच्चा। स्तनपायी शिशु। (२) बछड़ा। वत्स।

वि० दूधपीता। स्तनपान करनेवाला।

स्तन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्त्रियों या मादा पशुओं की छाती जिसमें दूध रहता है। जैसे,—गौ का स्तन।

मुहा०—स्तन पिलाना = स्तन मुँह में लगाकर उसका दूध पिलाना। स्तन पीना = स्तन मुँह में लगाकर उसका दूध पीना।

स्तनकील–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार स्त्रियों की छाती में होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा।

स्तनकुंड–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम। (महाभारत)

स्तनचूचुक–संज्ञा पुं० [सं०] स्तन का अग्र भाग। कुच के ऊपर की घुंडी। चूची। ढेपनी।

स्तनथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) (शेर की) दहाड़। गरज। गर्जन। (२) घोर या भीषण नाद। गड़गड़ाहट।

स्तनथु–संज्ञा पुं० [सं०] (शेर की) दहाड़। गरज।

स्तनदात्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] (छाती का) दूध पिलानेवाली।

स्तनन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ध्वनि। नाद। शब्द। आवाज। (२) बादलों की गड़गड़ाहट। मेघगर्जन। (३) कराह। आह। आर्त्तध्वनि।

स्तनप–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० स्तनपा, स्तनपायिका] दूध पीता बच्चा। शिशु।

वि० स्तन पीनेवाला।

स्तनपान–संज्ञा पुं० [सं०] स्तन में का दूध पीना। स्तन्यपान।

स्तनपायिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] दूध पीती बच्ची। बहुत छोटी लड़की। दुग्ध-पोष्या।

स्तनपायी–वि० [सं० स्तनपायिन्] जो माता के स्तन से दूध पीता हो।

स्तनपोषिक–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद जिसे स्तनपायिक, स्तनयोषिक और स्तनमोषिक भी कहते थे।

स्तनबाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन जनपद। (विष्णुपुराण) (२) इस देश का निवासी।

स्तनभर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थूल या पुष्ट स्तन। बड़ी और भरी छाती। (२) वह पुरुष जिसका स्तन या छाती स्त्री के समान हो।

स्तनभव–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रति बंध या संभोग आसन।

वि० स्तन से उत्पन्न।

स्तनमध्य–संज्ञा पुं० [सं०] दोनों स्तनों के बीच का स्थान।

स्तनमुख–संज्ञा पुं० [सं०] स्तन या कुच का अगला भाग। चूचुक। चूची।

स्तनयित्नु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ गर्जन। बादलों की गड़गड़ाहट। (२) मेघ। बादल। (३) विद्युत्। बिजली। (४) मोथा। मुस्तक। (५) मृत्यु। मौत। (६) रोग। बीमारी।

स्तनरोग–संज्ञा पुं० [सं०] गर्भवती और प्रसूता स्त्रियों के स्तनों में होनेवाला एक प्रकार का रोग।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह रोग वायु, पित्त और कफ के कुपित होने से होता है। इसमें स्तन का मांस और रक्त दूषित हो जाता है। इसके पाँच भेद हैं—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और आगंतुज।

स्तनरोहित–संज्ञा पुं० [सं०] स्तन या कुच के अग्र भाग के ऊपर दोनों ओर का अंग जो सुश्रुत के अनुसार परिमाण में दो अंगुल होता है।

स्तनविद्रधि–संज्ञा पुं० [सं०] स्तन में होनेवाला फोड़ा। थनैली।

स्तनवृंत–संज्ञा पुं० [सं०] स्तन या कुच का अग्र भाग। चूचुक। चूची।

स्तनशिखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्तन का अग्र भाग। चूचुक। ढेपनी। चूची।

स्तनशोष–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें स्तन सूख जाते हैं।

स्तनांतर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हृदय। दिल। (२) स्तन या छाती पर का एक चिह्न जो वैधव्यसूचक समझा जाता है।

स्तनाभुज–संज्ञा पुं० [सं०] वह प्राणी जो अपने बच्चों को स्तन से दूध पिलाता हो।

स्तनाभोग–संज्ञा पुं० [सं०] स्तन की पूर्णता या पुष्टता।

स्तनित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ गर्जन। बादलों की गरज। (२) ध्वनि। शब्द। आवाज। (३) करतल ध्वनि। ताली बजाने का शब्द।

वि० (१) ध्वनित। निनादित। शब्दित। (२) गर्जन किया हुआ। गर्जित।

स्तनितकुमार-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के देवताओं का एक वर्ग । इन्हें भुवनाधीश भी कहते हैं ।

स्तनिफल-संज्ञा पुं० [सं०] कँटाय का पेड़ । विकंकत वृक्ष ।

स्तनी-वि० [सं० स्तनिन्] जिसके स्तन हों । स्तनयुक्त । स्तनवाला ।

स्तन्य-संज्ञा पुं० [सं०] दूध । दुग्ध ।
वि० जो स्तन में हो ।

स्तन्यजनन-वि० [सं०] दूध उत्पन्न करने या बढ़ानेवाला ।

स्तन्यदा-वि० स्त्री० [सं०] जिसके स्तनों में से दूध निकलता हो । दूध देनेवाली ।

स्तन्यदान-संज्ञा पुं० [सं०] स्तन से दूध पिलाना ।

स्तन्यप-वि० [सं०] [स्त्री० स्तन्यपा] स्तन या दूध पीनेवाला ।
संज्ञा पुं० दूध पीता बच्चा । शिशु ।

स्तन्यपान-संज्ञा पुं० [सं०] स्तन में का दूध पीना ।

स्तन्यपायी-वि० [सं० स्तन्यपायिन्] जो स्तन से दूध पीता हो । स्तन पीनेवाला । दूध पीता ।

स्तन्यरोग-संज्ञा पुं० [सं०] अस्वस्थ माता का दूध पीने से होनेवाला रोग ।

स्तन्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] कलमी साग । कलंबी साग ।

स्तब्ध-वि० [सं०] (१) जो जड़ या अचल हो गया हो । जड़ीभूत । स्तंभित । स्पंदनहीन । निश्चेष्ट । सुन्न । (२) मजबूती से ठहराया हुआ । (३) दृढ़ । स्थिर । (४) मंद । धीमा । सुस्त । (५) दुराग्रही । हठी । (६) अभिमानी । घमंडी ।
संज्ञा पुं० बंसी के छः दोषों में से एक जिसमें उसका स्वर कुछ धीमा होता है ।

स्तब्धता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्तब्ध का भाव । जड़ता । स्पंदनहीनता । (२) स्थिरता । दृढ़ता । (३) बहरापन । बधिरता ।

स्तब्धपाद-वि० [सं०] जिसके पैर अकड़ गए हों । खंज । लँगड़ा । पंगु ।

स्तब्धपादता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्तब्धपाद का भाव । खंजता । पंगुता । लँगड़ापन ।

स्तब्धमति-वि० [सं०] मंद बुद्धि । कुंद ज़ेहन ।

स्तब्धमेढ़्-वि० [सं०] जिसकी पुरुषेंद्रिय में जड़ता आ गई हो । क्लीव । नपुंसक ।

स्तब्धरोमा-संज्ञा पुं० [सं० स्तब्धरोमन्] सूअर । शूकर ।
वि० जिसके रोम या रोंगटे खड़े हो गए हों । स्तंभित ।

स्तब्धसंभार-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम ।

स्तभ-संज्ञा पुं० [सं०] बकरा ।

स्तर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तह । परत । तबक । थर । (२) सेज । शय्या । तल्प । (३) भूगर्भ-शास्त्र के अनुसार भूमि आदि का एक प्रकार का विभाग जो उसकी भिन्न भिन्न कालों में बनी हुई तहों के आधार पर होता है ।

स्तरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फैलाने या बिखेरने की क्रिया । (२) अस्तरकारी । पलस्तर । (३) बिछौना । बिस्तर ।

स्तरणीय-वि० [सं०] (१) फैलाने या बिखेरने योग्य । (२) बिछाने के योग्य ।

स्तरिमा-संज्ञा पुं० [सं० स्तरिमन्] सेज । शय्या । तल्प ।

स्तरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] धूआँ । धूम्र ।

स्तरीमा-संज्ञा पुं० [सं० स्तरीमन्] सेज । शय्या ।

स्तरु-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु । वैरी ।

स्तर्य-वि० [सं०] (१) फैलाने या बिखेरने योग्य । (२) बिछाने योग्य । स्तरणीय ।

स्तव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी देवता का छंदोबद्ध स्वरूप-कथन या गुण-गान । स्तुति । स्तोत्र । जैसे,—शिवस्तव, दुर्गास्तव । (२) ईश-प्रार्थना ।

स्तवक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फूलों का गुच्छा । गुच्छक । गुलदस्ता । (२) समूह । ढेर । (३) पुस्तक का कोई अध्याय या परिच्छेद । जैसे,—प्रथम स्तवक, द्वितीय स्तवक । (४) मोर की पूँछ का पंख । (५) स्तव । स्तोत्र । (६) वह जो किसी की स्तुति या स्तव करता हो । गुणकीर्तन करनेवाला ।

स्तवथ-संज्ञा पुं० [सं०] स्तुति । स्तव । स्तोत्र ।

स्तवन-संज्ञा पुं० [सं०] स्तुति करने की क्रिया । गुण कीर्तन । स्तव । स्तुति ।

स्तवनीय-वि० [सं०] स्तव या स्तुति करने के योग्य । प्रशंसा के योग्य ।

स्तवरक-संज्ञा पुं० [सं०] घेरा । वेष्टन ।

स्तवि-संज्ञा पुं० [सं०] साम गान करनेवाला । साम गायक ।

स्तवितव्य-वि० [सं०] स्तव के योग्य । प्रशंसा के योग्य ।

स्तविता-संज्ञा पुं० [सं० स्तवितृ] स्तव या स्तुति करनेवाला । गुण गान करनेवाला ।

स्तवेय्य-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम ।

स्तव्य-वि० [सं०] स्तव या स्तुति के योग्य । स्तवनीय ।

स्तायु-संज्ञा पुं० [सं०] चोर ।

स्तारा-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पौधा ।

स्ताव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्तव । स्तुति । गुण गान । (२) स्तव करनेवाला । गुण गान करनेवाला ।

स्तावक-वि० [सं०] (१) स्तव या स्तुति करनेवाला । गुण-कीर्तन करनेवाला । प्रशंसक । (२) संबोधन ।

स्तावर-संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की बेल ।

स्ताया-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम । (वाजसनेयी-संहिता)

स्ताव्य-वि० [सं०] स्तव के योग्य । प्रशंसा के योग्य ।

स्तिगोमूरा–संज्ञा पुं० [?] जहाज का पाल और उसकी रस्सी। (लश०)

स्तिपा–संज्ञा पुं० [सं०] आश्रितों की रक्षा करनेवाला। गृह पालक।

स्तिभि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) फूलों का गुच्छा। गुच्छक। स्तवक। (२) समुद्र। (३) अवरोध। प्रतिबंध।

स्तिभिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गुच्छा। स्तवक।

स्तिमित–वि० [सं०] (१) भीगा हुआ। तर। नम। आर्द्र। (२) स्थिर। निश्चल। (३) शांत। (४) प्रसन्न। संतुष्ट।
संज्ञा पुं० (१) नमी। आर्द्रता। (२) स्थिरता। निश्चलता।

स्तिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थिर जल।

स्तीम–वि० [सं०] सुस्त। अलस। धीमा।

स्तीमित–वि० दे० "स्तिमित"।

स्तीर्ण–वि० [सं०] फैलाया हुआ। बिखेरा हुआ। छितराया हुआ। विस्तृत। विकीर्ण।
संज्ञा पुं० शिव के एक अनुचर का नाम। (शिवपुराण)

स्तीर्वि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अध्वर्यु। (२) आकाश। (३) जल। (४) रुधिर। (५) शरीर। (६) भय। (७) तृण। घासपात। (८) इंद्र।

स्तुक–संज्ञा पुं० [सं०] अपत्य। संतान।

स्तुटि–संज्ञा पुं० [सं०] भरतूल नामक पक्षी। भरद्वाज पक्षी।

स्तुत–वि० [सं०] (१) जिसकी स्तुति या प्रार्थना की गई हो। कीर्तित। प्रशंसित। (२) चूआ हुआ। बहा हुआ।
संज्ञा पुं० (१) शिव का एक नाम। (२) स्तव। स्तुति। प्रशंसा।

स्तुतस्तोम–वि० [सं०] जिसका गुण-गान या प्रार्थना की गई हो। कीर्तित। प्रशंसित।

स्तुति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुणकीर्तन। स्तव। प्रशंसा। तारीफ। बड़ाई।
क्रि० प्र०—करना।
(२) दुर्गा का एक नाम। (देवीपुराण) (३) प्रतिहर्ता की पत्नी का नाम। (भागवत)
संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम।

स्तुतिगीतक–संज्ञा पुं० [सं०] प्रशंसा का गीत।

स्तुतिपाठक–संज्ञा पुं० [सं०] बंदी जिसका काम प्राचीन काल में राजाओं की स्तुति या यशोगान करना था। स्तुतिपाठ करनेवाला। चारण। भाट। मागध। सूत।

स्तुतिवाद–संज्ञा पुं० [सं०] प्रशंसात्मक कथन। यशोगान। गुणगान।

स्तुतिवादक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्तुति या प्रशंसा करनेवाला। प्रशंसक। (२) खुशामदी। चाटुकार। उ०—धनेश्वर भी स्तुतिवादक को यथार्थवादक जानकर उसी से वार्तालाप करता है।—गदाधरसिंह।

स्तुतिव्रत–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो स्तुति करे। स्तुतिपाठक।

स्तुत्य–वि० [सं०] स्तुति या प्रशंसा के योग्य। प्रशंसनीय।

स्तुत्यव्रत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिरण्यरेता के एक पुत्र का नाम। (२) एक वर्ष का नाम जिसके अधिष्ठाता देवता स्तुत्यव्रत माने जाते हैं। (भागवत)

स्तुत्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नलिका नामक गंध द्रव्य। नली। पवारी। (२) गोपीचंदन। सौराष्ट्री।

स्तुनक–संज्ञा पुं० [सं०] बकरा।

स्तुभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की अग्नि। (२) बकरा।

स्तुभ्वन–वि० [सं०] स्तुति करनेवाला।

स्तुय–संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े के सिर का एक अंग।

स्तुवत्–वि० [सं०] स्तुति करनेवाला।
संज्ञा पुं० (१) स्तावक। स्तुति करनेवाला। (२) उपासक। पूजक।

स्तुवि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्तुति करनेवाला। स्तावक। (२) उपासक। पूजक। (३) यज्ञ।

स्तुवेय्य–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

स्तुषेय्य–वि० [सं०] (१) स्तुति करने योग्य। स्तुत्य। (२) श्रेष्ठ। उत्तम। अच्छा।

स्तूप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिट्टी आदि का ढेर। अटाला। राशि। (२) ऊँचा ढूह या टीला। (३) मिट्टी, ईंट, पत्थर आदि का बना ऊँचा ढूह या टीला जिसके नीचे भगवान् बुद्ध या किसी बौद्ध महात्मा की अस्थि, दाँत, केश या इसी प्रकार के अन्य स्मृति-चिह्न संरक्षित हों। (४) केशगुच्छ। लट। (५) मकान में का सब से बड़ा शहतीर। ओता।

स्तृत–वि० [सं०] (१) ढका हुआ। आच्छादित। (२) फैला हुआ। विस्तृत।

स्तृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] ढाँकने की क्रिया। आच्छादन।

स्तेन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोर। चौर। तस्कर। (२) एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य। चोर नामक गंध द्रव्य। (३) चोरी करना। चुराना।

स्तेम–संज्ञा पुं० [सं०] नमी। गीलापन। आर्द्रता।

स्तेय–संज्ञा पुं० [सं०] चोरी। चौर्य।
वि० जो चोरी गया हो या चुराया जा सके।

स्तेयकृत–वि० [सं०] चोरी करनेवाला। चोर।

स्तेयफल–संज्ञा पुं० [सं०] तेजबल का पेड़।

स्तेयी–संज्ञा पुं० [सं० स्तेयिन्] (१) चोर। चौर। (२) मूसा। वनमूषिका। चूहा। (३) सुनार।

स्तैन–संज्ञा पुं० दे० "स्तैन्य"।

स्तैन्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोर का काम। चोरी। (२) चोर। तस्कर।

स्तोक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बूँद। बिंदु। (२) पपीहा। चातक।

स्तोतक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पपीहा। चातक। (२) बछनाग विष। बत्सनाग विष।
स्तोतव्य–वि० [सं०] स्तव या स्तुति के योग्य। स्तुत्य।
स्तोता–वि० [सं० स्तोतृ] स्तुति करनेवाला। उपासना करनेवाला। प्रार्थना करनेवाला।
संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम।
स्तोत्र–संज्ञा पुं० [सं०] किसी देवता का छंदोबद्ध स्वरूप कथन या गुणकीर्तन। स्तव। स्तुति। जैसे,—महिम्न स्तोत्र।
स्तोत्रिय, स्तोत्रीय–वि० [सं०] स्तोत्र संबंधी। स्तोत्र का।
स्तोभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सामवेद का एक अंग। (२) जड़ या निश्चेष्ट करना। स्तंभन। (३) तिरस्कार करना। उपेक्षा करना। अवज्ञा करना।
स्तोभित–वि० [सं०] (१) जिसकी स्तुति की गई हो। स्तुति किया हुआ। (२) जिसका जय जयकार किया गया हो।
स्तोम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्तुति। प्रार्थना। (२) यज्ञ। (३) एक विशेष प्रकार का यज्ञ। (४) यज्ञकारी। यज्ञ करनेवाला। (५) समूह। राशि। (६) दस धन्वंतर अर्थात् चालीस हाथ की एक माप। (७) मस्तक। सिर। (८) धन। दौलत। (९) अनाज। नाज। (१०) एक प्रकार की ईंट। (११) लोहे की नोकवाला डंडा या सोंटा।
वि०। टेढ़ा। वक्र।
स्तोमायन–संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में बलि दिया जानेवाला पशु।
स्तोमीय–वि० [सं०] स्तोम संबंधी। स्तोम का।
स्तोम्य–वि० [सं०] स्तुति के योग्य। प्रार्थना के योग्य। स्तुत्य।
स्तौपिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अस्थि, नख, केश आदि स्मृति चिह्न जो स्तूप के नीचे संरक्षित हों। बुद्ध द्रव्य। (२) वह मार्जनी जो जैन यति अपने पास रखते हैं।
स्तौभ–वि० [सं०] स्तोभ संबंधी। स्तोभ का।
स्तौभिक–वि० [सं०] स्तोभ युक्त। जिसमें स्तोभ हो।
स्त्यान–वि० [सं०] (१) घना। कड़ा। कठोर। (२) चिकना। स्निग्ध। (३) शब्द या ध्वनि करनेवाला।
संज्ञा पुं० (१) घनापन। घनत्व। (२) प्रतिध्वनि। आवाज। (३) आलस्य। अकर्मण्यता। (४) सत्कर्म में चित्त का न लगाना। (५) अमृत।
स्त्यानर्द्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह निद्रा जिसमें वासुदेव का आधा बल होता है। जिसे यह निद्रा होती है, वह उठ कर कुछ काम करके फिर लेट जाता है और इस प्रकार वास्तव में वह सोता हुआ काम करता है, पर काम की उसे सुध नहीं रहती। (जैन)
स्त्यायन–संज्ञा पुं० [सं०] जन-समूह। भीड़। मजमा।
स्त्येन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोर। डाकू। (२) अमृत।
स्त्यैन–संज्ञा पुं० [सं०] चोर। डाकू।
वि० थोड़ा। कम। अल्प।
स्त्रियम्मन्य–वि० [सं०] जो अपने को स्त्री माने या समझे।
स्त्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नारी। औरत। जैसे,—क्षमाशीलता स्त्री जाति का आभूषण है। (२) पत्नी। जोरू। जैसे,—वह अपनी स्त्री और बाल-बच्चों के साथ आया है। (३) मादा। जैसे,—स्त्री-पशु। (४) सफेद च्यूँटी। (५) प्रियंगु लता। (६) एक वृत्त का नाम जिसमें दो गुरु होते हैं। उ०—गंगा धावो। कामा पावो। इसका दूसरा नाम कामा है।
संज्ञा स्त्री० दे० "इस्तिरी"।
स्त्रीकरण–संज्ञा पुं० [सं०] संभोग। मैथुन।
स्त्रीकाम–वि० [सं०] स्त्री की कामना या इच्छा करनेवाला। जिसे औरत की ख्वाहिश हो।
स्त्रीकोश–संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग। कटार।
स्त्रीक्षीर–संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री के स्तन का दूध।
स्त्रीगमन–संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री-संसर्ग। संभोग। मैथुन।
स्त्रीगुरु–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो दीक्षा या मंत्र देती हो। दीक्षा देनेवाली स्त्री।
विशेष—तंत्रों में सदाचारिणी और शास्त्र पारंगत स्त्रियों से दीक्षा या मंत्र लेने का विधान है।
स्त्रीग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार बुध, चंद्र और शुक्र ग्रह।
विशेष—ज्योतिष में पुरुष, स्त्री और क्लीव तीन प्रकार के ग्रह माने गए हैं जिनमें बुध, चंद्र और शुक्र स्त्री-ग्रह हैं। जातक के पंचम स्थान पर इन ग्रहों की स्थिति या दृष्टि रहने से स्त्री संतान होती है, और लग्न आदि में रहने से संतान स्त्री-स्वभाववाली होती है।
स्त्रीघोष–संज्ञा पुं० [सं०] प्रत्यूष। प्रभात। प्रातःकाल। तड़का।
स्त्रीघ्न–वि० [सं०] स्त्री या पत्नी की हत्या करनेवाला। स्त्री घातक।
स्त्रीचंचल–वि० [सं०] कामी। लंपट।
स्त्रीचित्तहारी–संज्ञा पुं० [सं० स्त्रीचित्तहारिन्] सहिंजन। शोभांजन।
वि० स्त्री का चित्त हरण करनेवाला।
स्त्रीचिह्न–संज्ञा पुं० [सं०] योनि। भग, स्तन आदि जो स्त्री होने के चिह्न हैं।
स्त्रीचौर–संज्ञा पुं० [सं०] कामी। लंपट। व्यभिचारी।
स्त्रीजननी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो केवल कन्या उत्पन्न करे। (मनु)
स्त्रीजित्–वि० [सं०] स्त्री या पत्नी के वश में रहनेवाला। जोरू का गुलाम।
स्त्रीता–संज्ञा स्त्री० दे० "स्त्रीत्व"।

है। यह बंगाल में बहुत होता है। वैद्यक में यह शीतल, कड़ुवा, कसैला, चरपरा, हलका, स्तनों को दृढ़ करनेवाला तथा कफ, पित्त, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, वात, शूल, वमन, दाह, मोह, प्रमेह, रक्तविकार, श्वास, अपस्मार, विष और कास का नाश करनेवाला माना गया है।

पर्य्या०—पद्मचारिणी। अतिचरा। पद्माह्वा। चारिटी। अव्यथा। पद्मा। शारदा। सुगंधमूला। अंबुरुहा। लक्ष्मी। श्रेष्ठा। सुपुष्करा। रम्या। पद्मावती। स्थलरुहा। पुष्करणी। पुष्करपर्णिका। पुष्करनाड़ी।

स्थलकमलिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थल कमल का पौधा।

स्थलकाली–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा की एक सहचरी का नाम।

स्थलकुमुद–संज्ञा पुं० [सं०] कनेर। करवीर।

स्थलग–वि० [सं०] स्थल या भूमि पर रहने या विचरण करनेवाला। स्थलचर।

स्थलगामी–वि० [सं० स्थलगामिन्] स्थल पर रहने या विचरण करनेवाला। स्थलग। स्थलचर।

स्थलचर–वि० [सं०] स्थल पर रहने या विचरण करनेवाला।

स्थलचारी–वि० [सं० स्थलचारिन्] स्थल पर रहने या विचरण करनेवाला। स्थलचर।

स्थलज–वि० [सं०] (१) स्थल या भूमि में उत्पन्न। स्थल में उत्पन्न होनेवाला। (२) स्थल मार्ग से जानेवाले माल पर लगनेवाला (कर, चुंगी या महसूल)।

स्थलजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] मुलेठी। मधुयष्टी।

स्थलनलिनी–संज्ञा स्त्री० दे० "स्थलकमलिनी"।

स्थलनीरज–संज्ञा पुं० [सं०] स्थलकमल।

स्थलपद्म–संज्ञा पुं० [सं०] स्थल कमल। (२) मानकच्चू। मानक। (३) सेवती गुलाब आदि। शतपत्र।

स्थलपद्मिनी–संज्ञा स्त्री० दे० "स्थलकमलिनी"।

स्थलपिंडा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंड खजूर। पिंडी। खर्जूरिका।

स्थलपुष्पा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गुल मखमली। संडूक नामक क्षुप।

स्थलभंटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वनभंटा। बृहती।

स्थलमंजरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] लटजीरा। अपामार्ग।

स्थलमर्कट–संज्ञा पुं० [सं०] करौंदा। करमर्दक।

स्थलयुद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्ध या संग्राम जो स्थल या भूभाग पर होता है। खुश्की की लड़ाई।

स्थलरुहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थलकमल।

स्थलविग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] वह लड़ाई या युद्ध जो स्थल या भूभाग पर होता है। खुश्की की लड़ाई।

स्थलविहंग–संज्ञा पुं० [सं०] स्थल पर विचरण करनेवाले मोर आदि पक्षी।

स्थलशृंगाट–संज्ञा पुं० [सं०] गोखरू। गोक्षुर।

स्थलशृंगाटक–संज्ञा पुं० दे० "स्थलशृंगाट"।

स्थलसीमा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्थलसीमन्] देश की सीमा। सरहद।

स्थला–संज्ञा स्त्री० [सं०] जलशून्य भूभाग। खुश्क जमीन।

स्थली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जलशून्य भू भाग। खुश्क जमीन। भूमि। (२) ऊँची सम भूमि। (३) स्थान। जगह। जैसे,—यहाँ एक सुंदर वनस्थली है।

स्थलीदेवता–संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम्य देवता।

स्थलीय–वि० [सं०] (१) स्थल या भूमि संबंधी। स्थल का। भूमि का। जमीन का। उ०—जिसे कभी स्थलीय अथवा जलीय संग्राम से भय उत्पन्न नहीं हुआ।—अयोध्यासिंह। (२) किसी स्थान का। स्थानीय।

स्थलेयु–संज्ञा पुं० [सं०] रौद्राश्व के एक पुत्र का नाम। (हरिवंश)

स्थलेरुहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घीकुआर। घृतकुमारी। (२) कुरुही। दुग्धावृक्ष।

स्थलेशय–संज्ञा पुं० [सं०] (स्थल अर्थात् भूमि पर सोनेवाले) कुरंग, कस्तूरी मृग आदि।

स्थलौक–संज्ञा पुं० [सं० स्थलौकस्] स्थल पर रहनेवाला पशु। स्थलचर जीव।

स्थवि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) थैला। थैली। (२) स्वर्ग। (३) जुलाहा। तंतुवाय। (४) अग्नि। आग। (५) कोढ़ी या उसका शरीर। (६) फल। (७) जंगम।

स्थविका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मक्खी।

स्थविर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृद्ध। बुड्ढा। उ०—उनका प्रभाव स्थविर और युवा सब पर समान हुआ।—अयोध्यासिंह। (२) ब्रह्मा। (३) वृद्ध और पूज्य बौद्ध भिक्षु। (४) छरीला। शैलेय। (५) विधारा। वृद्धदारक। (६) कदंब। (७) बौद्धों का एक संप्रदाय।

वि० वृद्ध और पूज्य।

स्थविरदारु–संज्ञा पुं० [सं०] विधारा। वृद्धदारक।

स्थविरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोरखमुंडी। महाश्रावणिका। (२) वृद्धा स्त्री। बूढ़ी औरत।

स्थविष्ठ–वि० [सं०] अत्यंत स्थूल। बहुत मोटा।

स्थांडिल–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो व्रत के कारण भूमि या यज्ञस्थल पर सोता है। स्थंडिलशायी।

वि० व्रत के कारण भूमि पर शयन करनेवाला।

स्थाई–वि० दे० "स्थायी"।

स्थाग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शव। लाश। (२) शिव के एक अनुचर का नाम।

स्थाणु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खंभा। थून। स्तंभ। (२) पेड़ का वह धड़ जिसके ऊपर की डालियाँ और पत्ते आदि न रह गए हों। ठूँठ। (३) शिव का एक नाम। (४) एक प्रकार का भाला या बरछी। (५) हल का एक भाग। (६) जीवक नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (७) धूपघड़ी का काँटा। (८)

सफेद च्यूँटियों का बिल। (१) वह वस्तु जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर न जा सके। स्थिर वस्तु। स्थावर पदार्थ। (११) ग्यारह रुद्रों में से एक का नाम। (१२) एक प्रजापति का नाम। (१३) एक नाग का नाम। (१४) एक राक्षस का नाम।

वि० स्थिर। अचल।

स्थाणवीय-वि० [सं०] स्थाणु या शिव संबंधी। शिव का।

स्थाणुकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी इंद्रायन। महेन्द्रवारुणी लता।

स्थाणुतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] कुरुक्षेत्र के थानेश्वर नामक स्थान का प्राचीन नाम जो किसी समय बहुत प्रसिद्ध तीर्थ माना जाता था।

स्थाणुदिश्-संज्ञा स्त्री० [सं०] (शिव की दिशा) उत्तर पूर्व दिशा। (बृहत्संहिता)

स्थाणुमती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी। (रामायण)

स्थाणु रोग-संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े को होनेवाला एक प्रकार का रोग जिसमें उसकी जाँघ में व्रण या फोड़ा निकलता है। यह दूषित रक्त के कारण होता है। यह प्रायः बरसात में ही होता है।

स्थाणुवट-संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ का नाम। (महाभारत)

स्थाण्वीश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] स्थाणुतीर्थ में स्थित एक प्रसिद्ध शिवलिंग। (वामन पुराण)

स्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठहराव। ठिकाव। स्थिति। (२) भूमि भाग। भूमि। जमीन। मैदान। जैसे,—सभा के सामनेवाला स्थान बड़ा रम्य है। (३) वह अवकाश जिसमें कोई चीज रह सके। जगह। ठाम। स्थल। जैसे,—सब सभासद अपने अपने स्थान पर बैठ गए। (४) डेरा। घर। आवास। जैसे,—मैं आप के स्थान पर गया था, आप मिले नहीं। (५) काम करने की जगह। पद। ओहदा। जैसे—उनके दफ्तर में कोई स्थान खाली है। (६) पद। दर्जा। जैसे,—काशीस्थ पंडितों में उनका स्थान बहुत ऊँचा है। (७) मुँह के अंदर का वह अंग या स्थल जहाँ से किसी वर्ण या शब्द का उच्चारण हो। जैसे,—कंठ, तालु, मूर्धा, दंत, ओष्ठ। (व्याकरण) (८) राज्य। देश। (९) मंदिर। देवालय। (१०) किसी राज्य का मुख्य आधार या बल जो चार माने गए हैं। यथा—सेना, कोश, नगर और देश। (मनु) (११) गढ़। दुर्ग। (१२) सेना का अपने बचाव के लिये डटे रहना। (मनु) (१३) आखेट में शरीर की एक प्रकार की मुद्रा। (१४) (माल का) जखीरा। गुदाम। (१५) अवसर। मौका। (१६) अवस्था। दशा। हालत। (१७) कारण। उद्देश्य। (१८) ग्रंथ संधि। परिच्छेद। (१९) नीतिविदों के त्रिवर्ग के अंतर्गत एक वर्ग। (२०) किसी अभिनेता का अभिनय या अभिनयगत चरित्र। (२१) वेदी। (२२) एक गंधर्व राजा का नाम। (रामायण)

स्थानक-संज्ञा पुं० [सं०] जगह। ठाम। (२) नगर। शहर। (३) पद। स्थिति। दर्जा। (४) नृत्य में एक प्रकार की मुद्रा। (५) आलवाल। वृक्ष का थाला। (६) फेन।

स्थानचंचला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वनतुलसी। बर्बरी।

स्थानचिंतक-संज्ञा पुं० [सं०] सेना का वह अधिकारी जो सेना के लिये छावनी की व्यवस्था करता हो।

स्थानच्युत-वि० [सं०] (१) जो अपने स्थान से गिर गया हो। अपनी जगह से गिरा हुआ। जैसे,—स्थानच्युत कमल। (२) जो अपने पद से हटा दिया गया हो। अपने ओहदे से हटाया हुआ। जैसे,—स्थानच्युत कर्मचारी।

स्थानतव्य-वि० [सं०] ठहरने के योग्य। रहने के योग्य। स्थिति के योग्य।

स्थानपाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थान या देश का रक्षक। (२) प्रधान निरीक्षक। (३) चौकीदार। पहरेदार।

स्थानभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] रहने की जगह। मकान।

स्थानभ्रष्ट-वि० दे० "स्थानच्युत"।

स्थानमृग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) केंकड़ा। कर्कट। (२) मछली। मत्स्य। (३) कछुआ। कच्छप। (४) मगर। मकर।

स्थानविद्-वि० [सं०] स्थानीय विषयों का ज्ञाता या जानकार।

स्थान वीरासन-संज्ञा पुं० [सं०] ध्यान करने की एक प्रकार की मुद्रा या आसन।

स्थानांग-संज्ञा पुं० [सं०] जैन धर्म-शास्त्र का तीसरा अंग।

स्थानांतर-संज्ञा पुं० [सं०] दूसरा स्थान। प्रकृत या प्रस्तुत से भिन्न स्थान।

स्थानांतरित-वि० [सं०] जो एक स्थान से हट या उठकर दूसरे स्थान पर गया हो। जो एक जगह से दूसरी जगह पर भेजा या पहुँचाया गया हो। जैसे,—(क) भारत कार्यालय चौक से दशाश्वमेध स्थानांतरित हो गया। (ख) मि० सिंह काशी से आजमगढ़ स्थानांतरित कर दिए गए हैं।

स्थानाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिस पर किसी स्थान की रक्षा का भार हो। स्थान-रक्षक।

स्थानापन्न-वि० [सं०] दूसरे के स्थान पर अस्थायी रूप से काम करनेवाला। कायम मुकाम। एवजी। जैसे,—स्थानापन्न मैजिस्ट्रेट।

स्थानिक-वि० [सं०] उस स्थान का जिसके विषय में कोई उल्लेख हो। उल्लिखित, वक्ता या लेखक के स्थान का। जैसे,—स्थानिक घटना, स्थानिक समाचार।

संज्ञा पुं० (१) वह जिस पर किसी स्थान की रक्षा का भार हो। स्थान रक्षक। (२) मंदिर का प्रबंधक।

स्थानी-वि० [सं० स्थानिन्] (१) स्थानयुक्त। पदयुक्त। (२) ठहरनेवाला। स्थायी। (३) उचित। उपयुक्त। ठीक।

स्थानीय-वि० [सं०] (१) उस स्थान या नगर का जिसके संबंध में कोई उल्लेख हो। उल्लिखित, वक्ता या लेखक के स्थान का। मुकामी। स्थानिक। जैसे,—स्थानीय पुलिस कर्मचारी। स्थानीय समाचार। (२) जो किसी स्थान पर स्थित हो।
संज्ञा पुं० नगर। शहर। कस्बा।

स्थानेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुरुक्षेत्र का थानेश्वर नामक स्थान जो किसी समय एक प्रसिद्ध तीर्थ था। (२) दे० "स्थानाध्यक्ष"।

स्थापक-वि० [सं०] रखने या खड़ा करनेवाला। कायम करनेवाला। स्थापनकर्त्ता।
संज्ञा पुं० (१) देव प्रतिमा या मूर्त्ति बनानेवाला। (२) सूत्रधार का सहकारी। सहकारी रंगमंचाध्यक्ष। (नाटक) (३) कोई संस्था खोलने या खड़ी करनेवाला। संस्थापक। प्रतिष्ठाता। (४) जो किसी के पास कोई चीज जमा करे। अमानत रखनेवाला।

स्थापत्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थपति का कार्य। भवन-निर्माण। राजगीरी। मेमारी। (२) वह विद्या जिसमें भवन-निर्माण संबंधी सिद्धांतों आदि का विवेचन हो। (३) अंतःपुर-रक्षक। रनिवास की रखवाली करनेवाला। (४) स्थानरक्षक का पद।

स्थापत्यवेद-संज्ञा पुं० [सं०] चार उपवेदों में से एक जिसमें वास्तुशिल्प या भवन-निर्माण कला का विषय वर्णित है। कहते हैं कि इसे विश्वकर्मा ने अथर्ववेद से निकाला था।

स्थापन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खड़ा करना। उठाना। (२) रखना। बैठाना। जमाना। (३) नया काम खोलना। नया काम जारी करना। (४) जकड़ना। पकड़ना। (५) (प्रमाणपूर्वक किसी विषय को) सिद्ध करना। साबित करना। प्रतिपादन। (६) (शरीर की) रक्षा या आयु-वृद्धि का उपाय। (७) (रक्त का स्राव) रोकने का उपाय। (८) समाधि। (९) पुंसवन। (१०) मकान। घर। आवास। (११) अन्न की राशि। (१२) निरूपण।

स्थापननिक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] अर्हत् की मूर्त्ति का पूजन। (जैन)

स्थापना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रतिष्ठित या स्थित करना। बैठाना। थापना। दृढ़तापूर्वक रखना। (२) रखना। जमा कर रखना। (३) (प्रमाणपूर्वक किसी विषय को) सिद्ध करना। साबित करना। प्रतिपादन। (४) व्यवस्थापन। निर्देश। (नाटक)

स्थापनासत्य-संज्ञा पुं० [सं०] किसी प्रतिमा या चित्र आदि में स्वयं उस वस्तु या व्यक्ति का आरोप करना जिसकी वह प्रतिमा या चित्र हो। जैसे,—पार्श्वनाथ की प्रतिमा को "पार्श्वनाथ की प्रतिमा" न कह कर "पार्श्वनाथ" कहना। (जैन)

स्थापनिक-वि० [सं०] जमा किया हुआ।

स्थापनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाढ़। पाठा।

स्थापनीय-वि० [सं०] स्थापित करने के योग्य। जो स्थापना करने के योग्य हो।

स्थापयिता-वि० [सं० स्थापयितृ] प्रतिष्ठा या स्थापन करनेवाला। संस्थापक। स्थापक।

स्थापित-वि० [सं०] (१) जिसकी स्थापना की गई हो। कायम किया हुआ। प्रतिष्ठित। (२) जो जमा किया गया हो। (३) जो जमा कर रखा गया हो। रक्षित। (४) व्यवस्थित। निर्दिष्ट। (५) निश्चित। (६) ठहरा हुआ। जमा हुआ। दृढ़। मज़बूत। (७) विवाहित।

स्थापी-संज्ञा पुं० [सं० स्थापिन्] प्रतिमा निर्माण करनेवाला। मूर्त्ति बनानेवाला।

स्थाप्य-वि० [सं०] स्थापित करने के योग्य। जिसकी स्थापना की जा सके अथवा जो स्थापित करने के योग्य हो।
संज्ञा पुं० (१) देव प्रतिमा। (२) धरोहर। अमानत।

स्थाम-संज्ञा पुं० [सं० स्थामन्] (१) सामर्थ्य। शक्ति। (२) घोड़े की हिनहिनाहट। अश्वघोष। (३) स्थान। जगह। मुकाम।

स्थाय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आधार। पात्र। (२) दे० "स्थान"।

स्थाया-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी। धरती।

स्थायिता-संज्ञा स्त्री० दे० "स्थायित्व"।

स्थायित्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थायी होने का भाव। टिकाव। ठहराव। (२) स्थिरता। दृढ़ता। मजबूती।

स्थायी-वि० [सं० स्थायिन्] (१) ठहरनेवाला। टिकनेवाला। जो स्थिर रहे। (२) बहुत दिन चलनेवाला। जो बहुत दिन चले। टिकाऊ। जैसे,—(क) अब यह मकान पहले की अपेक्षा अधिक स्थायी हो गया है। (ख) अब हमारे यहाँ धीरे धीरे स्थायी साहित्य की भी सृष्टि होने लगी है। (३) बना रहनेवाला। स्थितिशील। स्थिर। (४) विश्वास करने योग्य। विश्वस्त।

स्थायी भाव-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में तीन प्रकार के भावों में से एक जिसकी रस में सदा स्थिति रहती है। ये सदा चित्त में संस्कार रूप से वर्तमान रहते हैं और विभाव आदि में अभिव्यक्त होकर रसत्व को प्राप्त होते हैं। ये विरुद्ध अथवा अविरुद्ध भावों में नष्ट नहीं होते, बल्कि उन्हीं को अपने आप में समा लेते हैं। ये संख्या में नौ हैं; यथा—(१) रति। (२) हास्य। (३) शोक। (४) क्रोध। (५) उत्साह। (६) भय। (७) निंदा। (८) विस्मय और (९) निर्वेद।

स्थायुक-वि० [सं०] ठहरनेवाला। टिकनेवाला। रहनेवाला। स्थितिशील।
संज्ञा पुं० गाँव का अध्यक्ष या निरीक्षक।

स्थाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आधार। पात्र। बरतन। (२) थाल। परात। थाली। (३) देग। देगची। पतीला। बटलोही। (४) दाँतों के नीचे का और मसूड़ों का भीतरी भाग।

स्थालक-संज्ञा पुं० [सं०] पीठ की एक हड्डी।

स्थालिक-संज्ञा पुं० [सं०] मल की दुर्गंध।

स्थालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मक्खी।

स्थाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंडी। हँड़िया। (२) मिट्टी की रिकाबी। (३) एक प्रकार का बरतन जो सोम का रस बनाने के काम में आता था। (४) पाडर का पेड़। पाढ़ला वृक्ष।

स्थालीद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] पेलिया पीपल। नंदी वृक्ष।

स्थालीपर्णी-संज्ञा स्त्री० दे० "शालिपर्णी"।

स्थालीपाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आहुति के लिये दूध में पकाया हुआ चावल या जौ। एक प्रकार का चरु। (२) वैद्यक में लोहे की एक पाक विधि।

स्थालीपुलाक न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] जिस प्रकार हाँडी का एक चावल टोकर सब चावलों के पक जाने का अनुमान किया जाता है, उसी प्रकार किसी एक बात को देखकर उस संबंध की सब बातों का मालूम होना। जैसे,—मैंने उनका एक ही व्याख्यान सुनकर स्थालीपुलाक न्याय से सब विषयों में उनका मत जान लिया।

स्थालीबिल-संज्ञा पुं० [सं०] पाकपात्र (बटलोही या हाँडी आदि) का भीतरी भाग।

स्थालीबिलीय-वि० [सं०] पाकपात्र (देग, हाँडी आदि) में उबलने या पकने योग्य।

स्थालीवृक्ष-संज्ञा पुं० दे० "स्थालीद्रुम"।

स्थावर-वि० [सं०] (१) जो चले नहीं। सदा अपने स्थान पर रहनेवाला। अचल। स्थिर। (२) जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाया न जा सके। जंगम का उलटा। अचल। गैर-मनकूला। जैसे,—स्थावर संपत्ति (मकान, बाग, गाँव आदि) (३) स्थायी। स्थितिशील। (४) स्थावर संपत्ति संबंधी।
संज्ञा पुं० (१) पहाड़। पर्वत। (२) अचल संपत्ति। गैर-मनकूला जायदाद। (जैसे,—जमीन, घर आदि) (३) वह संपत्ति जो सदा परंपरा से परिवार में रक्षित हो और जो बेची न जा सके। (जैसे,—रत्न आदि) (५) धनुष की डोरी। प्रत्यंचा। चिल्ला। (६) जैन दर्शन के अनुसार एकेंद्रिय पदार्थ आदि जिनके पाँच भेद कहे गए हैं—(१) पृथ्वीकाय, (२) अपकाय, (३) तेजस्काय, (४) वायुकाय और (५) वनस्पतिकाय।

स्थावरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थावर होने का भाव। स्थिरता।

स्थावरतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

स्थावरनाम-संज्ञा पुं० [सं०] वह पाप कर्म जिसके उदय से जीव स्थावर काय में जन्म ग्रहण करते हैं। (जैन)

स्थावरराज-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय।

स्थावर विष-संज्ञा पुं० [सं०] वह विष जो सुश्रुत के अनुसार, वृक्षमूल, पत्तों, फल, फूल, छाल, दूध, सार, गोंद, धातु और कंद में होता है। स्थावर पदार्थों में होनेवाला जहर। वैद्यक में यह ज्वर, हिचकी, दंतहर्ष, गलवेदना, वमन, अरुचि, श्वास, मूर्छा और शोथ उत्पन्न करनेवाला बताया गया है।

स्थावरादि-संज्ञा पुं० [सं०] वत्सनाभ विष। बच्छनाग विष।

स्थाविर-संज्ञा पुं० [सं०] वृद्धावस्था। वार्धक्य। बुढ़ौती।
विशेष—७० से ९० वर्ष तक स्थाविरावस्था मानी गई है। ९० वर्ष के उपरांत मनुष्य 'वर्षीयस्' कहलाता है।

स्थासक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर को चंदन आदि से चर्चित या सुगंधित करना। (२) पानी का बुलबुला। जलबुद्बुद। (३) घोड़े के साज पर बुलबुल के आकार का एक गहना।

स्थिक-संज्ञा पुं० [सं०] नितंब। चूतड़।

स्थित-वि० [सं०] (१) अपने स्थान पर ठहरा हुआ। टिकाया हुआ। अवलंबित। जैसे,—इस भवन की छत खंभों पर स्थित है। (२) बैठा हुआ। आसीन। जैसे,—वे अपने आसन पर स्थित हो गए। (३) अपनी प्रतिज्ञा पर डटा हुआ। जैसे,—वह अपनी बात पर स्थित है। (४) विद्यमान। वर्तमान। मौजूद। जैसे,—परमात्मा सर्वत्र स्थित है। (५) रहनेवाला। निवासी। जैसे,—(क) स्वर्गस्थित देवता। (ख) दुर्गस्थित सेना। (६) बसा हुआ। अवस्थित। जैसे,—यह नगर गंगा के बाएँ किनारे पर स्थित है। (७) खड़ा हुआ। ऊर्ध्व। (८) अचल। स्थिर। (९) लगा हुआ। संलग्न। मशगूल।
संज्ञा पुं० (१) अवस्थान। निवास। (२) कुल मर्यादा।

स्थितता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थित होने का भाव। ठहराव। अवस्थान। स्थिति।

स्थितधी-वि० [सं०] (१) जिसका मन किसी बात से डाँवाँडोल न होता हो। जिसकी बुद्धि सदा स्थिर रहती हो। स्थिर-बुद्धि। (२) जिसका चित्त दुःख में विचलित न हो, सुख की जिसे चाह न हो और जिसमें राग, आसक्ति, भय या क्रोध न रह गया हो। महाबुद्धिसंपन्न।

स्थितप्रज्ञ-वि० [सं०] (१) जिसकी विवेक-बुद्धि स्थिर हो। (२)

जो समस्त मनोविकारों से रहित हो। आत्म द्वारा आत्मा में ही संतुष्ट रहनेवाला। आत्म-संतोषी।

स्थितबुद्धिदत्त-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध का एक नाम।

स्थिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रहना। ठहरना। टिकाव। ठहराव। जैसे,—इस छत की स्थिति इन्हीं खंभों पर है। (२) निवास। अवस्थान। जैसे,—यहाँ कब तक आपकी स्थिति रहेगी? (३) अवस्था। दशा। हालत। जैसे,—उनकी स्थिति बहुत शोचनीय है। (४) पद। दर्जा। जैसे,—वे उन्नति करते हुए इस स्थिति को पहुँच गए। (५) एक स्थान या अवस्था में रहना। अवस्थान। (६) निरंतर बना रहना। अस्तित्व। (७) पालन। (८) नियम। (९) निष्पत्ति। निर्णय। (१०) मर्यादा। (११) सीमा। हद। (१२) निवृत्ति। (१३) स्थिरता। (१४) ठहरने का स्थान। (१५) ढंग। तरीका। (१६) आकार। आकृति। रूप। सूरत। (१७) संयोग। मौका।

स्थितिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्थिति का भाव या धर्म। (२) स्थिरता।

स्थितिस्थापक-संज्ञा पुं० [सं०] वह गुण जिसके रहने से कोई वस्तु साधारण स्थिति में आने पर फिर अपनी पूर्व अवस्था को प्राप्त हो जाय। किसी वस्तु को अनुकूल परिस्थिति में फिर उसकी पूर्व अवस्था पर पहुँचानेवाला गुण। जैसे,—बेंत लचकाने से लचक जाता है और छोड़ देने से फिर (इसी गुण के कारण) ज्यों का त्यों हो जाता है।

वि० (१) किसी वस्तु को उसकी पूर्व अवस्था को प्राप्त करानेवाला। (२) जो सहज में लचक या झुक जाय और छोड़ देने पर फिर ज्यों का त्यों हो जाय। लचीला। लचकदार। लचलचा। (जैसे, बेंत)

स्थितिस्थापकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थितिस्थापक होने की अवस्था या गुण। अनुकूल परिस्थिति में फिर अपनी पूर्व अवस्था को पहुँच जाने का गुण या शक्ति। लचीलापन। लचक।

स्थिर-वि० [सं०] (१) जो चलता या हिलता डोलता न हो। निश्चल। ठहरा हुआ। जैसे,—(क) हम लोग देखते हैं कि पृथ्वी स्थिर है, पर वह एक घंटे में ५८ हजार मील चलती है। (ख) और लोग उठकर चले गए, पर वह अपने स्थान पर स्थिर रहा। (२) निश्चित। जैसे,—(क) उन्होंने कलकत्ते जाना स्थिर किया है। (ख) आप स्थिर जानिए कि वह कभी सफल न होगा। (३) शांत। जैसे,—आप बहुत उत्तेजित हो गए हैं, जरा स्थिर होइए। (४) दृढ़। अटल। जैसे,—वे अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर हैं। (५) स्थायी। सदा बना रहनेवाला। जैसे,—इस संसार में कीर्ति ही स्थिर रहती है। (६) नियत। मुकर्रर। जैसे,—यहाँ चलने का समय स्थिर हो गया। (७) विश्वस्त। विश्वसनीय।

संज्ञा पुं० (१) शिव का एक नाम। (२) स्कंद के एक अनुचर का नाम। (३) ज्योतिष में एक योग का नाम। (४) ज्योतिष में वृष, सिंह, वृश्चिक और कुंभ ये चारों राशियाँ जो स्थिर मानी गई हैं। कहते हैं कि इन राशियों में कोई काम करने से वह स्थिर या स्थायी होता है। जो बालक इनमें से किसी राशि में जन्म लेता है, वह स्थिर और गंभीर स्वभाववाला, क्षमाशील तथा दीर्घसूत्री होता है। (५) देवता। (६) साँड़। वृष। (७) मोक्ष। मुक्ति। (८) वृक्ष। पेड़। (९) धौ। धव वृक्ष। (१०) पहाड़। पर्वत। (११) शनि ग्रह। (१२) एक प्रकार का छंद। (१३) एक प्रकार का मंत्र जिससे शस्त्र अभिमंत्रित किए जाते थे। (१४) वह कर्म जिससे जीव को स्थिर अवयव प्राप्त होते हैं। (जैन)

स्थिरक-संज्ञा पुं० [सं०] सागौन। शाक वृक्ष।

स्थिरकर्मा-वि० [सं० स्थिरकर्मन्] स्थिरता या दृढ़ता से काम करनेवाला।

स्थिरकुसुम-संज्ञा पुं० [सं०] मौलसिरी। बकुल वृक्ष।

स्थिरगंध-संज्ञा पुं० [सं०] चंपा। चंपक वृक्ष।

वि० जिसकी सुगंध स्थिर रहती हो। स्थिर या स्थायी गंधयुक्त।

स्थिरगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केवड़ा। केतकी। (२) पाढ़र। पाटला।

स्थिरचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] मंजुघोष या मंजुश्री नामक प्रसिद्ध बोधिसत्व का एक नाम। वि० दे० "मंजुघोष"।

स्थिरचित्त-वि० [सं०] जिसका मन स्थिर या दृढ़ हो। जो जल्दी जल्दी अपने विचार न बदलता हो, अथवा घबराता न हो। दृढ़चित्त।

स्थिरचेता-वि० दे० "स्थिरचित्त"।

स्थिरच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र। भूर्जपत्र।

स्थिरच्छाय-संज्ञा पुं० [सं०] छाया देनेवाले पेड़। छायातरु।

स्थिरजिह्व-संज्ञा पुं० [सं०] मछली। मत्स्य।

स्थिरजीविता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमल का पेड़। शाल्मलि वृक्ष।

स्थिरजीवी-संज्ञा पुं० [सं० स्थिरजीविन्] कौआ, जिसका जीवन बहुत दीर्घ होता है।

स्थिरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्थिर होने का भाव। ठहराव। निश्चलता। (२) दृढ़ता। मजबूती। (३) स्थायित्व। (४) धीरता। धैर्य।

स्थिरत्व-संज्ञा पुं० दे० "स्थिरता"।

स्थिरदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप। सर्प। भुजंग। (२) वाराह रूपी विष्णु का नाम। (३) ध्वनि।

स्थिरधी–वि० [सं०] जिसकी बुद्धि या चित्त स्थिर हो। दृढ़ चित्त।

स्थिरपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताड़ से मिलता जुलता एक प्रकार का पेड़। श्रीताल। (२) एक प्रकार का खजूर का पेड़। हिंताल।

स्थिरपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंपे का पेड़। चंपक वृक्ष। (२) मौलसिरी का पेड़। बकुल वृक्ष। (३) तिलपुष्पी। तिलकपुष्प वृक्ष।

स्थिरपुष्पी–संज्ञा पुं० [सं० स्थिरपुष्पिन्] तिलपुष्पी। तिलकपुष्प वृक्ष।

स्थिरफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुम्हड़े या पेठे की लता। कुष्मांड लता।

स्थिरबुद्धि–वि० [सं०] जिसकी बुद्धि स्थिर हो। ठहरी हुई बुद्धिवाला। दृढ़चित्त।

स्थिरमति–वि० दे० "स्थिरबुद्धि"।

स्थिरमद–संज्ञा पुं० [सं०] मोर। मयूर।

स्थिरमना–वि० दे० "स्थिरचित्त"।

स्थिरमुद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल कुलथी। रक्त कुलत्थ।

स्थिरयोनि–संज्ञा पुं० [सं०] वह वृक्ष जो सदा छाया देता हो। छायावृक्ष।

स्थिरयौवन–संज्ञा पुं० [सं०] विद्याधर।
वि० जो सदा जवान रहे।

स्थिररंगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पौधा।

स्थिररांघ्रिप–संज्ञा पुं० [सं०] हिंताल वृक्ष।

स्थिररागा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहल्दी। दारुहरिद्रा।

स्थिरसाधनक–संज्ञा पुं० [सं०] सँभालू। सिंदुवार वृक्ष।

स्थिरसार–संज्ञा पुं० [सं०] सागौन। शाक वृक्ष।

स्थिरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दृढ़चित्तवाली स्त्री। (२) पृथ्वी। (३) सरिवन। शालपर्णी। (४) काकोली। (५) सेमल। शाल्मलि वृक्ष। (५) बनमूँग। बनमुद्ग। (६) मषवन। माषपर्णी। (७) मूसाकानी। मूषाकर्णी।

स्थिरायु–संज्ञा पुं० [सं० स्थिरायुस्] सेमल का पेड़। शाल्मलि वृक्ष।
वि० (१) जिसकी आयु बहुत अधिक हो। चिरजीवी। (२) जो कभी मरे नहीं। अमर।

स्थिरीकरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थिर करने की क्रिया। (२) दृढ़ करना। मजबूत करना। (३) पुष्टि। समर्थन।

स्थुल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लंबा तंबू। पट्टवास।

स्थूण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। (महाभारत)

स्थूणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घर का खंभा। थूनी। (२) पेड़ का तना या ठूँठ। (३) लोहे का पुतला। (४) निहाई। सूर्मि। (५) एक प्रकार का रोग।

स्थूणाकर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का व्यूह। (२) एक यक्ष का नाम। (महाभारत) (३) एक रोग-ग्रह का नाम। (हरिवंश) (४) एक प्रकार का बाण।

स्थूणापक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] सेना का एक प्रकार का व्यूह।

स्थूम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीप्ति। प्रकाश। (२) चंद्रमा।

स्थूर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनुष्य। आदमी। (२) साँड़। वृष।

स्थूरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँस गाय का मथना। धुरिका। सुरिका।

स्थूरी–संज्ञा पुं० [सं० स्थूरिन्] बोझ लादनेवाला पशु। लद्दू घोड़ा या बैल।

स्थूल–वि० [सं०] (१) जिसके अंग फूले हुए या भारी हों। मोटा। पीन। जैसे,—स्थूल देह। उ०—देख्यो भरत तरुण अति सुंदर। स्थूल शरीर-रहित सब द्वंदर।—सूर। (२) जो यथेष्ट स्पष्ट हो। जिसकी विशेष व्याख्या करने की आवश्यकता न हो। सहज में दिखाई देने या समझ में आने योग्य। सूक्ष्म का उलटा। जैसे,—स्थूल सिद्धांत, स्थूल खंडन। (३) मूर्ख। जड़। (४) जिसका तल सम न हो।
संज्ञा पुं० (१) वह पदार्थ जिसका साधारणतया इंद्रियों द्वारा ग्रहण हो सके। वह जो स्पर्श, घ्राण, दृष्टि आदि की सहायता से जाना जा सके। गोचर पिंड। उ०—जो स्थूल होने के प्रथम देखने में आकर फिर न देख पड़े, उसको हम विनाश कहते हैं।—दयानंद। (२) विष्णु। (३) समूह। राशि। ढेर। (४) कटहल। (५) प्रियंगु। कँगनी। (६) एक प्रकार का कदंब। (७) शिव के एक गण का नाम। (८) अन्नमय कोश। (९) वैद्यक के अनुसार शरीर की सातवीं त्वचा। (१०) तूद या तूत का वृक्ष। (११) ईख। उख।

स्थूलकंगु–संज्ञा पुं० [सं०] वरक धान्य। चेना।

स्थूलकंटक–संज्ञा पुं० [सं०] बबूल की जाति का एक प्रकार का पेड़ जिसे आल बबूरक या धारी भी कहते हैं।

स्थूलकंटकिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमल का वृक्ष। शाल्मलि।

स्थूलकंटफल–संज्ञा पुं० [सं०] पनस। कटहल।

स्थूलकंटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी कटाई। बनभंटा। बृहती।

स्थूलकंद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल लहसुन। (२) जमींकंद। सूरन। ओल। (३) जंगली सूरन। बनओल। (४) हाथीकंद। (५) मानकंद। (६) मंडपारोह। सुथालु।

स्थूलक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण। उलप। उलूक।

स्थूलकणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] मँगरैला।

स्थूलकर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम। (महाभारत)

स्थूलका–संज्ञा स्त्री० [सं०] आँबा हलदी।

स्थूलकुमुद–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कनेर।

स्थूलकेश-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम। (महाभारत)
स्थूलक्ष्वेड-संज्ञा पुं० [सं०] बाण। तीर।
स्थूलग्रंथि-संज्ञा पुं० [सं०] कुलंजन। महाभरी।
स्थूलचंचु-संज्ञा पुं० [सं०] महाचंचु नामक साग। बड़ा चेंच।
स्थूलचंपक-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद चंपा।
स्थूलचाप-संज्ञा पुं० [सं०] रूई धुनने की धुनकी।
स्थूलचूड़-संज्ञा पुं० [सं०] किरात।
स्थूलजंघा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नौ समिधाओं में से एक। (गृह्यसूत्र)
स्थूलजिह्व-वि० [सं०] जिसकी जीभ बहुत बड़ी हो।
संज्ञा पुं० एक प्रकार के भूत।
स्थूलजीरक-संज्ञा पुं० [सं०] मँगरैला।
स्थूलतंडुल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मोटा धान।
स्थूलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्थूल होने का भाव। स्थूलत्व। (२) मोटापन। मोटाई। (३) भारीपन।
स्थूलताल-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीताल। हिंताल।
स्थूलतिंदुक-संज्ञा पुं० [सं०] आबनूस। मकर तेंदुआ।
स्थूलतिक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहलदी।
स्थूलत्व-संज्ञा पुं० दे० "स्थूलता"।
स्थूलत्वचा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंभारी। काश्मरी वृक्ष।
स्थूलदंड-संज्ञा पुं० [सं०] महानल। बड़ा नरकट।
स्थूलदर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] मूँज नामक तृण।
स्थूलदर्भा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूँज नामक तृण। स्थूलदर्भ।
स्थूलदर्शक-संज्ञा पुं० [सं०] वह यंत्र जिसकी सहायता से सूक्ष्म वस्तु स्पष्ट और बड़ी दिखाई दे। सूक्ष्मदर्शक यंत्र।
स्थूलदला-संज्ञा स्त्री० [सं०] घीकुआर। ग्वारपाठा।
स्थूलनाल-संज्ञा पुं० [सं०] देवनल। बड़ा नरकट।
स्थूलनास, स्थूलनासिक-संज्ञा पुं० [सं०] सूअर। शूकर।
वि० जिसकी नाक बड़ी या लंबी हो।
स्थूलनिंबु-संज्ञा पुं० [सं०] महानिंबु। बड़ा नीबू।
स्थूलनील-संज्ञा पुं० [सं०] बाज नामक पक्षी।
स्थूलपट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] कपास।
स्थूलपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दमनक। दौना नामक क्षुप। (२) सप्तपर्ण। सतिवन।
स्थूलपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सप्तपर्ण। छतिवन।
स्थूलपाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी। (२) वह जिसे फीलपा रोग हो। श्लीपद रोग से युक्त व्यक्ति।
स्थूलपिंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंड खजूर।
स्थूलपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बक या अगस्त। (२) गुलमखमली। झंडुक।
स्थूलपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] आस्फोता। हापरमाल।
स्थूलपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखिनी। यवतिक्ता।
स्थूलप्रियंगु-संज्ञा स्त्री० [सं०] चरक धान्य। चेना।
स्थूलफल-संज्ञा पुं० [सं०] सेमल। शाल्मली। (२) बड़ा नींबू।
स्थूलफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शणपुष्पी। बन सनई। (२) सेमल। शाल्मली।
स्थूलबदरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बबूल का पेड़।
स्थूलबालुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।
स्थूलभंटा-संज्ञा पुं० दे० "बनभंटा"।
स्थूलभद्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के जैन जो श्रुतकेवलिक भी कहलाते हैं।
स्थूलमंजरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अपामार्ग। चिचड़ा।
स्थूलमरिच-संज्ञा पुं० [सं०] शीतलचीनी। कबाबचीनी। ककोल।
स्थूलमूल, स्थूलमूलक-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी मूली।
स्थूलरुहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थलपद्म।
स्थूलरोग-संज्ञा पुं० [सं०] मोटे होने का रोग। मोटाई की व्याधि।
स्थूललक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो बहुत अधिक दान करता हो। बहुत बड़ा दानी। (२) बड़ा पंडित। विद्वान्। (३) कृतज्ञ।
स्थूललक्षिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दानशीलता। (२) पांडित्य। विद्वत्ता। (३) कृतज्ञता।
स्थूललक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो बहुत अधिक दान करता हो। बहुत बड़ा दाता। (२) किसी विषय की ऊपरी या मोटी बातें बताना।
स्थूलवर्ल्मकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] भारंगी। बभनेटी।
स्थूलवल्कल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोध। लोध्र। (२) पठानी लोध। पट्टिका लोध्र।
स्थूलवृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] मौलसिरी का पेड़। बकुल।
स्थूलवृत्तफल-संज्ञा पुं० [सं०] मैनफल। मदनफल।
स्थूलवैदेही-संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपीपल। गजपीपल।
स्थूलशर-संज्ञा पुं० [सं०] रामशर। भद्रमुंज।
स्थूलशालि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मोटा चावल। स्थूलतंडुल।
स्थूलशिंबी-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेत निष्पावी। सफेद सेम। बरसेमा।
स्थूलशिरा-संज्ञा पुं० [सं० स्थूलशिरस्] एक प्राचीन ऋषि का नाम। (महाभारत)
स्थूलशीर्षिका-संज्ञा पुं० [सं०] छोटी च्यूँटी।
स्थूलशूरण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सूरन या जमींकंद।
[illegible] पुं० [सं०] रामशर। भद्रमुंज।
स्थूल[illegible] [सं०] बड़हर। लकुच।
[illegible] सं०] हाथी का सूँड़।

स्थूलांग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चावल।

स्थूलांत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी अँतड़ी।

स्थूलांशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधपत्र।

स्थूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बड़ी इलायची। (२) गजपीपल। (३) सोआ नामक साग। शतपुष्पा। (४) सौंफ। मिश्रेया। (५) कपिल द्राक्षा। मुनक्का। (६) कपास। (७) ककड़ी।

स्थूलाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम जो खर का साथी था। (रामायण)

स्थूलाजाजी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मँगरैला।

स्थूलाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम। (महाभारत) (२) एक राक्षस का नाम। (रामायण)

स्थूलाम्र-संज्ञा पुं० [सं०] कलमी आम।

स्थूलास्य-संज्ञा पुं० [सं०] साँप। सर्प।

स्थूली-संज्ञा पुं० [सं० स्थूलिन्] ऊँट।

स्थूलैरंड-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा एरंड।

स्थूलैला-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी इलायची।

स्थूलोच्चय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंडोपल। (२) हाथी की मध्यम चाल, जो न बहुत तेज हो और न बहुत सुस्त।

स्थेय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो किसी विवाद का निर्णय करता हो। निर्णायक। (२) पुरोहित।

वि० स्थापित करने योग्य।

स्थैर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थिर होने का भाव। स्थिरता। (२) दृढ़ता। मजबूती।

स्थोरी-संज्ञा पुं० [सं० स्थोरिन्] बोझ ढोनेवाला घोड़ा। लद्दू घोड़ा।

स्थौणेय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ओषधि। थुनेर।

स्थौर-संज्ञा पुं० [सं०] वह भार जो पीठ पर लादा जाय।

स्थौरी-संज्ञा पुं० [सं० स्थौरिन्] घोड़े, बैल, खच्चर आदि जिनकी पीठ पर भार लादा जाता हो।

स्थौलविंदि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो स्थूलविंद के वंश या गोत्र में उत्पन्न हुआ हो।

स्थौल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थूल का भाव। स्थूलता। (२) भारीपन। (३) शरीर की मेद वृद्धि जो वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग है। मोटापन।

स्नपन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० स्नपित] नहाने की क्रिया। स्नान।

स्नपित-वि० [सं०] जिसने स्नान किया हो। नहाया हुआ।

स्नसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्नायु।

स्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह चमड़ा जो गाय या बैल आदि के गले के नीचे लटकता है। लौ।

स्नात-वि० [सं०] जिसने स्नान किया हो। नहाया हुआ।

स्नातक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने ब्रह्मचर्य व्रत की समाप्ति पर स्नान करके गृहस्थ आश्रम में प्रवेश किया हो।

विशेष—प्राचीन काल में बालक गुरुकुलों में वेदों तथा अन्यान्य विद्याओं का अध्ययन समाप्त करके पचीस वर्ष की अवस्था में जब घर को लौटते थे, तब वे स्नातक कहलाते थे। ये स्नातक तीन प्रकार के होते थे। जो स्नातक २५ वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य्य का पालन करके बिना वेदों का पूरा अध्ययन किए ही घर लौटते थे, वे व्रत स्नातक कहलाते थे। जो लोग २५ वर्ष की अवस्था हो जाने पर भी गुरु के यहाँ ही रहकर वेदों का अध्ययन करते थे और गृहस्थ आश्रम में नहीं आते थे, वे विद्यास्नातक कहलाते थे। और जो लोग ब्रह्मचर्य्य का पूरा पूरा पालन करके गृहस्थ आश्रम में आते थे, वे उभयस्नातक या विद्याव्रत स्नातक कहलाते थे। इधर हाल में भारत में थोड़े से गुरुकुल और ऋषिकुल आदि स्थापित हुए हैं। उनकी अवधि और परीक्षाएँ समाप्त करके भी जो युवक निकलते हैं, वे भी स्नातक ही कहलाते हैं।

स्नान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर को स्वच्छ करने या उसकी शिथिलता दूर करने के लिये उसे जल से धोना; अथवा जल की बहती हुई धारा में प्रवेश करना। अवगाहन। नहाना। वि० दे० "नहाना" (१)। (२) शरीर के अंगों को धूप या वायु के सामने इस प्रकार करना कि जिसमें उनके ऊपर उसका पूरा प्रभाव पड़े। जैसे,—आतप स्नान, वायु स्नान।

स्नानकलश-संज्ञा पुं० [सं०] वह घड़ा जिसमें स्नान करने का पानी रहता है।

स्नानकुंभ-संज्ञा पुं० दे० "स्नानकलश"।

स्नानगृह-संज्ञा पुं० [सं०] वह कमरा, कोठरी या इसी प्रकार का और घिरा हुआ स्थान जिसमें स्नान किया जाता है।

स्नानतृण-संज्ञा पुं० [सं०] कुश जिसे हाथ में लेकर नहाने का शास्त्रों में विधान है।

स्नानयात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को होनेवाला एक उत्सव जिसमें विष्णु की मूर्त्ति को महास्नान कराया जाता है। इस दिन जगन्नाथ जी के दर्शन का बहुत माहात्म्य कहा गया है।

स्नानवस्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्त्र जिसे पहनकर स्नान किया जाता है।

स्नानशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] नहाने का कमरा या कोठरी। स्नानगृह। गुसलखाना।

स्नानीय-वि० [सं०] (१) जो नहाने के योग्य हो। (२) जिससे नहाया जा सके।

स्नायन-संज्ञा पुं० [सं०] स्नान। नहाना।

स्नायविक-वि० [सं०] स्नायु संबंधी। स्नायु का।

स्नायवीय-संज्ञा पुं० [सं०] कर्मेंद्रिय। जैसे,—हाथ, पैर, आँख आदि।

स्नायी–संज्ञा पुं० [सं० स्नायिन्] वह जो स्नान करता है। नहानेवाला।

स्नायु–संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर के अंदर की वह वायुवाहिनी नाड़ियाँ या नसें जिनसे स्पर्श का ज्ञान होता अथवा वेदना का ज्ञान एक स्थान से दूसरे स्थान या मस्तिष्क आदि तक पहुँचता है। ये सफेद, चिकनी, कड़ी और सन के गुच्छों के समान होती हैं और शरीर की मांस पेशियों में फैली रहती हैं। हमारे यहाँ वैद्यक में कहा गया है कि शरीर में से पसीना निकलने और लेप आदि को रोम छिद्र में से भीतर खींचने का व्यापार इन्हीं से होता है; और इनकी संख्या ९०० बतलाई गई है। इन्हें वात-रज्जु, नाड़ी या कंडरा भी कहते हैं।

स्नायुक–संज्ञा पुं० [सं०] नहरुआ नामक रोग।

स्नायुरोग–संज्ञा पुं० [सं०] नहरुआ या बाला नामक रोग।

स्नायुशूल–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें स्नायु में शूल के समान तीव्र वेदना होती है। यह वेदना चमड़े के नीचे के भाग में होती है और शरीर के किसी स्थान में हो सकती है। इसके, अर्द्धभेद ऊर्ध्वभेद और अधोभेद ये तीन भेद कहे गए हैं।

स्नायूघर्म–संज्ञा पुं० [सं० स्नायुवर्मन्] आँख का एक प्रकार का रोग जिसमें उसकी कौड़ी या सफेद भाग पर एक छोटी गाँठ सी निकल आती है।

स्निग्ध–वि० [सं०] जिसमें स्नेह या तेल लगा हो अथवा वर्त्तमान हो।

संज्ञा पुं० (१) लाल रेंड। (२) धूप सरल या सरल नामक वृक्ष। (३) मोम। (४) गंधा विरोजा। (५) दूध पर की मलाई।

स्निग्धकरंज–संज्ञा पुं० [सं०] गुच्छकरंज।

स्निग्धच्छद–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ का पेड़। वट वृक्ष।

स्निग्धच्छदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बेर का पेड़।

स्निग्धजीरक–संज्ञा पुं० [सं०] यशबगोल। ईसपगोल।

स्निग्धतंडुल–संज्ञा पुं० [सं०] साठी धान।

स्निग्धता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्निग्ध या चिकना होने का भाव। चिकनापन। चिकनाहट। (२) प्रिय होने का भाव। प्रियता।

स्निग्धत्व–संज्ञा पुं० दे० "स्निग्धता"।

स्निग्धदल–संज्ञा पुं० [सं०] गुच्छकरंज।

स्निग्धदारु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवदारु का पेड़। (२) धूप सरल। (३) अश्वकर्ण या शाल नामक वृक्ष।

स्निग्धनिर्म्मल–संज्ञा पुं० [सं०] काँसा नामक धातु।

स्निग्धपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घृतकरंज। घीरंज। (२) गुच्छ करंज। (३) भगवतवल्ली। आवर्तकी लता। (४) मज्जर या माजुर नाम की घास।

स्निग्धपत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बेर। बदरी। (२) पालक का साग। (३) लोनी का साग। (४) गंभारी। काश्मरी। खुमेर।

स्निग्धपत्री–संज्ञा स्त्री० दे० "स्निग्धपत्रा"।

स्निग्धपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृश्निपर्णी। पिठवन। (२) मूर्वा। मरोड़फली।

स्निग्धपिंडीतक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मैनफल का वृक्ष।

स्निग्धफल–संज्ञा पुं० [सं०] गुच्छकरंज।

स्निग्धफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) फूट नामक फल। (२) नकुलकंद। नाकुली।

स्निग्धबीज–संज्ञा पुं० [सं०] यशबगोल। ईसपगोल।

स्निग्धमज्जक–संज्ञा पुं० [सं०] बादाम।

स्निग्धराजि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप जिसकी उत्पत्ति, सुश्रुत के अनुसार, काले साँप और राजमती जाति की साँपिन से होती है।

स्निग्धा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (२) मज्जा। अस्थिसार। (३) विकंकत। बइँची।

वि० स्त्री० जिसमें स्नेह हो। स्नेह-युक्त।

स्नुक्–संज्ञा पुं० [सं०] स्नुही। थूहड़।

स्नुकच्छद–संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरकंचुकी, क्षीरी या क्षीरसागर नामक वृक्ष।

स्नुकच्छदोपम–संज्ञा पुं० [सं०] वाराही कंद। गेंठी।

स्नुग्दल–संज्ञा पुं० [सं०] स्नुही। थूहड़।

स्नुषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुत्रवधू। लड़के की स्त्री। (२) स्नुही। थूहड़।

स्नुहा, स्नुही–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्नुही थूहड़।

स्नुहीक्षीर–संज्ञा पुं० [सं०] थूहड़ का दूध।

स्नुहीबीज–संज्ञा पुं० [सं०] थूहड़ का बीज।

स्नुह्य–संज्ञा पुं० [सं०] उत्पल। कमल।

स्नेय–वि० [सं०] (१) स्नान करने के योग्य। नहाने लायक। (२) जो नहाने को हो।

स्नेह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रेम। प्रणय। प्यार। मुहब्बत। (२) चिकना पदार्थ। चिकनाहटवाली चीज। जैसे,—घी, तेल, चरबी आदि। विशेषतः तेल। (३) कोमलता। (४) एक प्रकार का राग जो हनुमत के मत से हिंडोल राग का पुत्र है। (५) सरसों। (६) सिर के अंदर का गूदा। भेजा। (७) दूध पर की साढ़ी। मलाई।

स्नेहकर–संज्ञा पुं० [सं०] अश्वकर्ण या शाल नामक वृक्ष।

स्नेहगर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] तिल।

स्नेहन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिकनाहट उत्पन्न करना। चिकनाई

लाना । (२) शरीर में तेल लगाना । (३) कफ । श्लेष्मा । बलगम । (४) मक्खन । नवनीत ।

स्नेहपात्र-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह जिसके साथ प्रेम किया जाय । प्रेमपात्र । प्यारा । प्रिय ।

स्नेहपान-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार की क्रिया जिसमें कुछ विशिष्ट रोगों में तेल, घी, चरबी आदि पीते हैं । इससे अग्नि दीप्त होती है, कोठा साफ होता है और शरीर कोमल तथा हलका होता है ।

विशेष—हमारे यहाँ स्नेह चार प्रकार के माने गए हैं—तेल, घी, वसा और मज्जा । खाली तेल पीने को साधारण पान कहते हैं । यदि तेल और घी मिलाकर पीया जाय तो उसे यमक; इन दोनों के साथ यदि वसा भी मिला दी जाय तो उसे त्रिवृत; और यदि चारों साथ मिलाकर पीए जायँ तो उसे महास्नेह कहते हैं ।

स्नेहविभीतक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] मैनफल ।

स्नेहपूर-संज्ञा पुं॰ [सं॰] तिल ।

स्नेहफल-संज्ञा पुं॰ [सं॰] तिल ।

स्नेहबीज-संज्ञा पुं॰ [सं॰] चिरौंजी ।

स्नेहभू-संज्ञा पुं॰ [सं॰] कफ । श्लेष्मा । बलगम ।

स्नेहसुवर्च-संज्ञा पुं॰ [सं॰] तेल । रोगन ।

स्नेहरंग-संज्ञा पुं॰ [सं॰] तिल ।

स्नेहवती-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] मेदा नामक की अष्टवर्गीय ओषधि ।

स्नेहवस्ति-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वैद्यक के अनुसार दो प्रकार की वस्ति या पिचकारी देने के क्रियाओं में से एक जिसमें पिचकारी में तेल भरकर गुदा के द्वारा रोगी के शरीर में प्रविष्ट किया जाता है । प्रायः अजीर्ण, उन्माद, शोक, मूर्च्छा, अरुचि, श्वास, कफ और क्षय आदि के लिये यह वस्ति उपयुक्त कही है । इसका व्यवहार प्रायः वायु का प्रकोप शांत करने और कोष्ठ शुद्धि के लिये किया जाता है ।

स्नेहविद्ध-संज्ञा पुं॰ [सं॰] देवदार ।

स्नेहवृक्ष-संज्ञा पुं॰ [सं॰] देवदार ।

स्नेहसार-संज्ञा पुं॰ [सं॰] मज्जा नामक धातु । अस्थिसार ।

स्नेहाश-संज्ञा पुं॰ [सं॰] दीपक । चिराग ।

स्नेहित-वि॰ [सं॰] (१) जिसमें स्नेह हो या लगाया गया हो । चिकना । (२) जिसके साथ स्नेह या प्रेम किया जाय । बंधु । मित्र ।

स्नेही-संज्ञा पुं॰ [सं॰ स्नेहिन्] वह जिसके साथ स्नेह या प्रेम किया जाय । प्रेमी । मित्र ।

वि॰ जिसमें स्नेह हो । स्नेहयुक्त । चिकना ।

स्नेहु-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) रोग । व्याधि । बीमारी । (२) चंद्रमा ।

स्नेहोत्तम-संज्ञा पुं॰ [सं॰] तिल का तेल ।

स्नेह्य-वि॰ [सं॰] जिसके साथ स्नेह किया जा सके । स्नेह या प्रेम करने के योग्य ।

स्पंज-संज्ञा पुं॰ [अं॰] झाँवें की तरह का एक प्रकार का बहुत मुलायम और रेशेदार पदार्थ जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं । इन्हीं छेदों से यह बहुत सा पानी सोख लेता है; और जब इसे दबाया जाता है, तब इसमें का सारा पानी बाहर निकल आता है । इसी लिए प्रायः लोग स्नान आदि के समय शरीर मलने के लिये अथवा कुछ विशिष्ट पदार्थों को धोने या भिगोने के लिए अथवा गीले तल पर का पानी सुखाने के लिये इसे काम में लाते हैं । यह वास्तव में एक प्रकार के निम्न कोटि के समुद्री जीवों का आवास या ढाँचा है जो भूमध्य सागर और अमेरिका के आस पास के समुद्रों में पाया जाता है । इसकी कई जातियाँ और प्रकार होते हैं । मुरदा बादल ।

स्पंद-संज्ञा पुं॰ दे॰ "स्पंदन" ।

स्पंदन-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) किसी चीज का धीरे धीरे हिलना । काँपना । (२) (अंगों आदि का) प्रस्फुरण । फड़कना ।

स्पंदिनी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) रजस्वला । रजोधर्मवाली स्त्री । (२) वह गौ जो बराबर दूध देती रहे । सदा दूध देनेवाली गौ । कामधेनु ।

स्पंदी-वि॰ [सं॰ स्पंदिन्] जिसमें स्पंदन हो । हिलने, काँपने या फड़कनेवाला ।

स्पर-संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक साम का नाम ।

स्परणी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वैदिक काल की एक प्रकार की लता का नाम ।

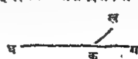
स्परांद्री-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "पृस्परांद्री" ।

स्पर्द्धनीय-वि॰ [सं॰] (१) संघर्षण के योग्य । (२) स्पर्द्धा के योग्य । जिसके साथ स्पर्द्धा की जा सके ।

स्पर्द्धा-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) संघर्ष । रगड़ । (२) किसी के मुकाबिले में आगे बढ़ने की इच्छा । होड़ । (३) साहस । हौसला । (४) साम्य । बराबरी । (५) ईर्ष्या । द्वेष ।

स्पर्द्धी-वि॰ [सं॰ स्पर्द्धिन्] जिसमें स्पर्द्धा हो । स्पर्द्धा करनेवाला ।

संज्ञा पुं॰ ज्यामिति में किसी कोण में की उतनी कमी जितनी की वृद्धि से वह कोण १८० अंश का अथवा अर्द्ध-वृत्त होता है । जैसे,—

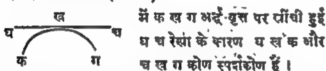


में घ क ख कोण ख क ग का स्पर्द्धी है ।

स्पर्श-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) दो वस्तुओं का आपस में इतना पास पहुँचना कि उनके तलों का कुछ कुछ अंश आपस में सट या लग जाय । छूना । (२) त्वगिंद्रिय का वह गुण जिसके कारण ऊपर पड़नेवाले दबाव या किसी चीज के सटने

का ज्ञान होता है। नैयायिकों के अनुसार यह २४ प्रकार के गुणों में से एक है। (३) त्वगिंद्रिय का विषय। (४) पीड़ा। कष्ट। (५) दान। (६) वायु। (७) एक प्रकार का रतिबंध या आसन। (८) व्याकरण में उच्चारण के आभ्यंतर प्रयत्न के चार भेदों में से "स्पष्ट" नामक भेद के अनुसार "क" से लेकर "म" तक के २५ व्यंजन जिनके उच्चारण में वागिंद्रिय का द्वार बंद रहता है। (९) ग्रहण या उपराग में सूर्य अथवा चंद्रमा पर छाया पड़ने का आरंभ।

स्पर्शकोण—संज्ञा पुं० [सं०] गणित में वह कोण जो किसी वृत्त पर खींची हुई स्पर्श रेखा के कारण उस वृत्त और स्पर्श रेखा के बीच में बनता है। जैसे,—



में क ख ग अर्द्ध वृत्त पर खींची हुई घ च रेखा के कारण घ ख क और च ख ग कोण स्पर्शकोण हैं।

स्पर्शजन्य—वि० [सं०] जो स्पर्श के कारण उत्पन्न हो। संक्रामक। छुतहा। जैसे,—कुष्ठ, शीतला, हैजा आदि स्पर्शजन्य रोग हैं।

स्पर्शतन्मात्र—संज्ञा पुं० [सं०] स्पर्श भूत का आदि, अमिश्र और सूक्ष्म रूप। वि० दे० "तन्मात्र"।

स्पर्शता—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्पर्श का भाव या धर्म्म। स्पर्शत्व।

स्पर्शदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह दिशा जिधर से सूर्य्य या चंद्रमा को ग्रहण लगा हो। चंद्रमा या सूर्य्य पर ग्रहण की छाया आने की दिशा।

स्पर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छूने की क्रिया। स्पर्श करना। (२) दान। देना। (३) संबंध। लगाव। ताल्लुक। (४) वायु। हवा।

स्पर्शना—संज्ञा स्त्री० [सं०] छूने की शक्ति या भाव।

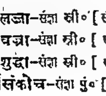
स्पर्शनीय—वि० [सं०] स्पर्श करने योग्य। छूने के लायक।

स्पर्शनेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह इंद्रिय जिससे स्पर्श किया जाता है। छूने की इंद्रिय। त्वगिंद्रिय। त्वचा।

स्पर्शमणि—संज्ञा पुं० [सं०] पारस पत्थर जिसके स्पर्श से लोहे का सोना होना माना जाता है।

स्पर्शरसिक—संज्ञा पुं० [सं०] कामुक। लंपट।

स्पर्शरेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित में वह सीधी रेखा जो किसी वृत्त की परिधि के किसी एक बिंदु को स्पर्श करती हुई खींची जाय। जैसे,—



में क ख ग अर्द्ध वृत्त है; और उसके ख बिंदु को स्पर्श करती हुई जो घ च रेखा है, वह स्पर्श रेखा है।

स्पर्शलज्जा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लजालू या लाजवंती नाम की लता।

स्पर्शवज्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों की एक देवी का नाम।

स्पर्शशुद्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जातावर।

स्पर्शसंकोच—संज्ञा पुं० [सं०] लजालू या लाजवंती नाम की लता।

स्पर्शसंकोच—संज्ञा पुं० [सं० स्पर्शसंकोचिन्] पिंडालू।

स्पर्शसंचारी—संज्ञा पुं० [सं० स्पर्शसंचारिन्] शूक रोग का एक भेद।

स्पर्शस्पंद—संज्ञा पुं० [सं०] मेढक।

स्पर्शहानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] शूक रोग में रुधिर के दूषित होने के कारण लिंग के चमड़े में स्पर्श-ज्ञान न रह जाना।

स्पर्शा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा। पुंश्चली। दुश्चरित्रा स्त्री। छिनाल।

स्पर्शाक्रामक—वि० [सं०] (रोग या दोष आदि) जो स्पर्श या संसर्ग के कारण उत्पन्न हो। संक्रामक। छुतहा।

स्पर्शाज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे स्पर्श ज्ञान हो।

स्पर्शास्पर्श—संज्ञा पुं० [सं० स्पर्श + अस्पर्श] छूने या न छूने का भाव या विचार। इस बात का विचार कि अमुक पदार्थ छूना चाहिए और अमुक पदार्थ न छूना चाहिए। छूतछात।

स्पर्शिक—वि० [सं०] स्पर्श करनेवाला।

संज्ञा पुं० वायु। हवा।

स्पर्शी—वि० [सं० स्पर्शिन्] छूनेवाला। स्पर्श करनेवाला। जैसे,—गगनस्पर्शी। मर्म्मस्पर्शी।

स्पर्शेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह इंद्रिय जिससे स्पर्श का ज्ञान होता है। त्वगिंद्रिय। त्वचा।

स्पर्शोपल—संज्ञा पुं० [सं०] पारस पत्थर। स्पर्शमणि।

स्पश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चर। दूत। (२) युद्ध। लड़ाई।

स्पष्ट—वि० [सं०] जिसके देखने या समझने आदि में कुछ भी कठिनता न हो। साफ दिखाई देने या समझ में आने- वाला। जैसे,—(क) इसके अक्षर दूर से भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। (ख) जिसमें किसी प्रकार की लगावट या दाँव- पेंच न हो। जैसे,—मैं तो स्पष्ट कहता हूँ, चाहे किसी को बुरा लगे और चाहे भला।

मुहा०—स्पष्ट कहना या सुनाना = बिलकुल साफ़ साफ़ कहना। बिना कुछ छिपाव अथवा किसी का कुछ ध्यान किए कहना।

संज्ञा पुं० (१) ज्योतिष में ग्रहों का स्फुट साधन जिससे यह जाना जाता है कि जन्म के समय अथवा किसी और विशिष्ट काल में कौन सा ग्रह किस राशि के कितने अंश, कितनी कला और कितनी विकला में था। इसकी आवश्यकता ग्रहों का ठीक ठीक फल जानने के लिये होती है। (२) व्याकरण में वर्णों के उच्चारण का एक प्रकार का प्रयत्न जिसमें दोनों होंठ एक दूसरे से छू जाते हैं। जैसे,—प या म के उच्चारण में स्पष्ट प्रयत्न होता है।

स्पष्ट कथन—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में कथन के दो प्रकारों में से एक जिसमें किसी दूसरे की कही हुई बात ठीक उसी रूप में कही जाती है, जिस रूप में वह उसके मुँह से निकली हुई होती है। जैसे,—कृष्ण ने साफ़ साफ़ कह दिया— "मैं उनसे किसी प्रकार का संबंध न रखूँगा।" इसमें लेखक

ने वक्ता कृष्ण का कथन वैसे रूप में रहने दिया है, जिस रूप में वह उसके मुँह से निकला था।

स्पष्टतया-क्रि० वि० [सं०] स्पष्ट रूप से। साफ साफ। उ०—(क) इससे यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि समालोचना के सामान्य रूप का अर्थ मूल ग्रंथ का दूषण या उसका खंडन है।—गंगाप्रसाद। (ख) उषा काल की श्वेतता समुद्र में स्पष्टतया दृष्टि पड़ती थी।

स्पष्टता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्पष्ट होने का भाव। सफाई। जैसे,—उसकी बातों की स्पष्टता मन पर विशेष रूप से प्रभाव डालती है।

स्पष्ट प्रयत्न-संज्ञा पुं० दे० "स्पष्ट"। (२)

स्पष्टवक्ता-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो साफ साफ बातें कहता हो। वह जो कहने में किसी का मुलाहजा या रिआयत न करता हो।

स्पष्टवादी-संज्ञा पुं० [सं० स्पष्टवादिन्] वह जो साफ साफ बातें कहता हो। स्पष्टवक्ता। उ०—ऐसी हालत में स्पष्टवादी, निडर, समदर्शी, कुशाग्रबुद्धि और सच्चे तार्किकों की उत्पत्ति ही बंद हो जाती है।—द्विवेदी।

स्पष्टस्थिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में राशियों के अंश, कला, विकला आदि में (बालक के जन्म की) दिखलाई हुई ग्रहों की ठीक ठीक स्थिति।

स्पष्टीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] स्पष्ट करने की क्रिया। किसी बात को स्पष्ट या साफ़ करना। उ०—ऐसी बातें बहुत ही थोड़ी हैं जिनका मतलब बिना विवेचना, टीका या स्पष्टीकरण के समझ में आ सकता है।—द्विवेदी।

स्पष्टीकृत-वि० [सं०] जिसका स्पष्टीकरण हुआ हो। साफ या खुलासा किया हुआ।

स्पष्टीक्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में वह क्रिया जिससे ग्रहों का किसी विशिष्ट समय में किसी राशि के अंश, कला, विकला आदि में अवस्थान जाना जाता है। उ०—पहले जब अयनांश का ज्ञान नहीं था, तब स्पष्टीक्रिया से जो ग्रह आता था, उसे लोग ग्रह ही के नाम से पुकारते थे।—सुधाकर।

स्पात-संज्ञा पुं० दे० "इस्पात"।

स्पिरिट-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) शरीर में रहनेवाली आत्मा। रूह। (२) वह कल्पित सूक्ष्म शरीर जिसका मृत्यु के समय शरीर से निकलना और आकाश में विचरण करना माना जाता है। सूक्ष्म शरीर। (३) जीवन-शक्ति। (४) एक प्रकार का बहुत तेज मादक द्रव पदार्थ जिसका व्यवहार अँगरेजी शराबों, दवाओं और सुगंधियों आदि में मिलाने अथवा लैंपों आदि के जलाने में होता है। फूल शराब। (५) किसी पदार्थ का सत या मूल तत्व। जैसे,—स्पिरिट एमोनिया अर्थात् अमोनिया का सत।

स्पीच-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) वह जो कुछ मुँह से बोला जाय। कथन। (२) वाक्‌शक्ति। बोलने की शक्ति। (३) किसी विषय की जबानी की हुई विस्तृत व्याख्या। वक्तृता। व्याख्यान। लेक्चर।

स्पीन किशमिशी-संज्ञा पुं० [पिशीन प्रांत ? + किशमिश] एक प्रकार का बढ़िया अंगूर जो क्वेटा-पिशीन प्रांत में होता है।

स्पृक्का-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) असबरग। (२) लजालू। लाजवंती। (३) ब्राह्मी बूटी। (४) मालती। (५) सेवती। शतपत्री। (६) गंगापत्री। पालीलता।

स्पृन्-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की ईंट जिसका व्यवहार यज्ञ की वेदी आदि बनाने में होता था।

स्पृश-वि० [सं०] स्पर्श करनेवाला। छूनेवाला।

स्पृशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सर्पिणी। सर्पकंकालिका। (२) कंटकारी। भँटाई। रेंगनी।

स्पृशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कंटकारी। भँटाई।

स्पृश्य-वि० [सं०] जो स्पर्श करने के योग्य हो। छूने के लायक।

स्पृष्ट-वि० [सं०] जिसने स्पर्श किया हो। छूआ हुआ।

स्पृष्टरोदनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] लजालू या लाजवंती नाम की लता।

स्पृष्टास्पृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] परस्पर एक दूसरे को छूने की क्रिया। छुआछूत।

स्पृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] छूने की क्रिया। स्पर्श।

स्पृहण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० स्पृहणीय] अभिलाषा। इच्छा।

स्पृहणीय-वि० [सं०] (१) जिसके लिये अभिलाषा या कामना की जा सके। वांछनीय। (२) गौरवशाली। गौरव या बड़ाई के योग्य।

स्पृहयालु-वि० [सं०] (१) जो स्पृहा या कामना करे। स्पृहा करनेवाला। (२) लोभी। लालची।

स्पृहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अभिलाषा। इच्छा। कामना। ख्वाहिश। (२) न्यायदर्शन के अनुसार किसी ऐसे पदार्थ की प्राप्ति की कामना जो धर्म्म के अनुकूल हो।

स्पृही-वि० [सं०] (१) कामना या इच्छा करनेवाला। (२) स्पर्श करनेवाला।

स्पृह्य-संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नींबू।

वि० जिसके लिये कामना या स्पृहा की जा सके। वांछनीय।

स्पेशल-वि० [अं०] (१) जिसमें औरों की अपेक्षा कोई विशेषता हो। विशिष्ट। खास। (२) जो विशेष रूप से किसी एक काम के लिये हो। जैसे,—स्पेशल गाड़ी।

संज्ञा स्त्री० वह रेलगाड़ी जो किसी विशिष्ट कार्य, उद्देश्य

या व्यक्ति के लिये चले। जैसे,—लाट साहब की स्पेशल, बारात की स्पेशल।

स्प्रिंग-संज्ञा स्त्री० [अं०] लोहे की तीली, पत्तर, तार या इसी प्रकार की और कोई लचीली वस्तु जो दाब पड़ने पर दब जाय और दाब हटने पर फिर अपने स्थान पर आ जाय। कमानी। वि० दे० "कमानी" (१)।

स्प्रिंगदार-वि० [अं० स्प्रिंग+फा० दार (प्रत्य०)] जिसमें स्प्रिंग या कमानी लगी हो। कमानीदार।

स्प्रिचुअलिज्म-संज्ञा पुं० [अं०] वह विद्या या क्रिया जिसके द्वारा किसी स्वर्गीय या मृत व्यक्ति की आत्मा बुलाई जाती है और उससे बात-चीत की जाती है। भूतविद्या। आत्मविद्या।

स्प्लिंट-संज्ञा पुं० [अं०] पाश्चात्य चिकित्सा में चिपटी लकड़ी का वह टुकड़ा जो शरीर की किसी टूटी हुई हड्डी आदि को फिर यथास्थान बैठाकर, उस अंग को सीधा या ठीक स्थिति में रखने के लिये उस पर बाँधा जाता है। पट्टी। पटरी।

स्फट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फट फट शब्द। (२) साँप का फन।

स्फटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] साँप का फन।

स्फटिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का सफेद बहुमूल्य पत्थर या रत्न जो काँच के समान पारदर्शी होता है और जिसका व्यवहार मालाएँ, मूर्त्तियाँ तथा दस्ते आदि बनाने में होता है। इसके कई भेद और रंग होते हैं। बिल्लौर। (२) सूर्य-कांत मणि। (३) शीशा। काँच। (४) कपूर। (५) फिटकिरी।

स्फटिकविष-संज्ञा पुं० [सं०] दारमोच नाम का विष।

स्फटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] फिटकरी।

स्फटिकाख्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] फिटकरी।

स्फटिकाचल-संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत जो दूर से देखने में स्फटिक के समान जान पड़ता है।

स्फटिकात्मा-संज्ञा पुं० [सं० स्फटिकात्मन्] बिल्लौर। स्फटिकमणि।

स्फटिकाभ्र-संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

स्फटिकारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] फिटकिरी।

स्फटिकोद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपूर। (२) जस्ता नाम की धातु। (३) चंद्रकांत मणि।

स्फटिकोपल-संज्ञा पुं० [सं०] बिल्लौर। स्फटिक।

स्फटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] फिटकरी।

स्फाटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्फटिक। बिल्लौर। (२) पानी की बूँद।

स्फाटिक-संज्ञा पुं० दे० "स्फटिक"।

वि० स्फटिक संबंधी। बिल्लौर का।

स्फाटिकोपल-संज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक। बिल्लौर।

स्फाटीक-संज्ञा पुं० दे० "स्फटिक"।

स्फार-वि० [सं०] (१) प्रचुर। विपुल। बहुत। (२) विकट।

स्फारण-संज्ञा पुं० दे० "स्फुरण"।

स्फाल-संज्ञा पुं० दे० "स्फूर्ति"।

स्फिक्-संज्ञा पुं० [सं०] चूतड़।

स्फिच्-संज्ञा पुं० [सं०] चूतड़।

स्फीत-वि० [सं०] (१) बढ़ा हुआ। वर्द्धित। (२) फूला हुआ। (३) समृद्ध।

स्फीतता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्फीत होने का भाव या धर्म। (२) वृद्धि। (३) मोटाई। (४) समृद्धि।

स्फीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वृद्धि। बढ़ती।

स्फुट-वि० [सं०] (१) जो सामने दिखाई देता हो। प्रकाशित। व्यक्त। (२) खिला हुआ। विकसित। जैसे,—स्फुटित कमल। (३) स्पष्ट हुआ। साफ। (४) शुक्ल। सफेद। (५) फुटकर। अलग अलग।

संज्ञा पुं० जन्मकुंडली में यह दिखाना कि कौन सा ग्रह किस राशि में कितने अंश, कितनी कला और कितनी विकला में है।

स्फुटक-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष्मती लता। मालकंगनी।

स्फुटता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्फुट होने का भाव या धर्म।

स्फुटत्व-संज्ञा पुं० [सं०] स्फुट का भाव या धर्म। स्फुटता।

स्फुटत्वचा-संज्ञा स्त्री० [सं०] महाज्योतिष्मती। मालकंगनी।

स्फुटध्वनि-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद पंडुक (पक्षी)।

स्फुटन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फटना या फूटना। (२) विकसित होना। खिलना।

स्फुटफल-संज्ञा पुं० [सं०] तुंबुरु।

स्फुटबंधनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकंगनी। ज्योतिष्मती।

स्फुटरंगिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसका व्यवहार औषध में होता है।

स्फुटवल्कली-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष्मती। मालकंगनी।

स्फुटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] साँप का फन।

स्फुटि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पादस्फोटक नाम का रोग। पैर की बिवाई फटना। (२) फूट नाम का फल।

स्फुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) फूट नामक फल। (२) फिटकिरी।

स्फुटित-वि० [सं०] (१) विकसित। खिला हुआ। (२) जो स्पष्ट किया गया हो। प्रकट किया हुआ। (३) हँसता हुआ।

स्फुटितकांडभग्न-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार हड्डी टूटने का एक भेद। हड्डी का टुकड़े टुकड़े होकर खिल जाना।

स्फुटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पादस्फोट नामक रोग। पैर की बिवाई फटना। (२) फूट नाम का फल।

स्फुटीकरण-संज्ञा पुं० [सं० स्फुट+करण] स्पष्ट करना। प्रकट या व्यक्त करना।

स्फुलकर-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

स्फुत्कार-संज्ञा पुं० [सं०] फुत्कार। फूत्कार।

स्फुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। हवा। (२) दे० "स्फुरण"।

स्फुरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ का जरा जरा हिलना। (२) अंग का फड़कना। (३) दे० "स्फूर्ति"।

स्फुरणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगों का फड़कना।

स्फुरति*-संज्ञा स्त्री० दे० "स्फूर्ति"।

स्फुरित-वि० [सं०] जिसमें स्फुरण हो। हिलने या फड़कनेवाला। संज्ञा पुं० दे० "स्फुरण"।

स्फुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्फूर्ति। (२) तंबू। खेमा।

स्फुलमंजरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] हुलहुल नामक पौधा।

स्फुलिंग-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि का छोटा कण। आग की चिनगारी।

स्फुलिंगिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक।

स्फूर्जक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिंदुक या तेंदू नाम का वृक्ष। (२) सोनापाठा।

स्फूर्जथु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिजली की कड़क। (२) चौलाई का साग।

स्फूर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिंदुक या तेंदू नाम का वृक्ष। (२) पलिया पीपल। नंदीवृक्ष।

स्फूर्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धीरे धीरे हिलना। फड़कना। स्फुरण। (२) कोई काम करने के लिये मन में उत्पन्न होनेवाली हलकी उत्तेजना। (३) फुरती। तेजी। जैसे,—स्नान करने से शरीर में स्फूर्ति आती है।

स्फोट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंदर भरे हुए किसी पदार्थ का अपने ऊपरी आवरण को तोड़ या भेदकर बाहर निकलना। फूटना। जैसे,—ज्वालामुखी का स्फोट। (२) शरीर में होनेवाला फोड़ा, फुंसी आदि। (३) मोती। मुक्ता। (४) सर्वदर्शन संग्रह के अनुसार नित्य शब्द जिससे वर्णात्मक शब्दों के अर्थ का ज्ञान होता है। जैसे,—कमल शब्द में क, म और ल ये तीन वर्ण हैं, और इन तीनों के अलग अलग उच्चारण से कुछ भी अभिप्राय नहीं निकलता। परंतु तीनों वर्णों का साथ साथ उच्चारण करने पर जो स्फोट होता है, उसी से कमल शब्द का अभिप्राय जाना जाता है। कुछ लोग इसी स्फोट (नित्य शब्द) को संसार का कारण मानते हैं।

स्फोटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फोड़ा। फुंसी। (२) भिलावाँ। भल्लातक। (जिसका तेल लगाने से शरीर में फोड़ा सा हो जाता है।)

स्फोटन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंदर से फोड़ना। (२) विदारण। फाड़ना। (३) प्रकट या प्रकाशित करना। (४) शब्द। आवाज। (५) सुश्रुत के अनुसार वायु के प्रकोप से होनेवाली व्रण की पीड़ा जिसमें व्रण फटता हुआ सा जान पड़ता है।

स्फोटलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] कनफोड़ा नाम की लता।

स्फोटवादी-संज्ञा पुं० [सं० स्फोटवादिन्] वह जो स्फोट या अनित्य शब्द को ही संसार का मूल हेतु या कारण मानता हो।

स्फोटबीजक-संज्ञा पुं० [सं०] भल्लातक। भिलावाँ।

स्फोटहेतु-संज्ञा पुं० [सं०] भल्लातक। भिलावाँ।

स्फोटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साँप का फन। (२) सफेद अनंतमूल।

स्फोटायन-संज्ञा पुं० [सं०] कक्षीवान् मुनि का एक नाम।

स्फोटिक-संज्ञा पुं० [सं०] पत्थर या जमीन आदि खोदने फोड़ने का काम।

स्फोटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटा फोड़ा। फुंसी। (२) हापुत्रिका नामक पक्षी।

स्फोटिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी।

स्फोता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनंतमूल। सारिवा। (२) सफेद आक। सफेद मदार।

स्मदिभ-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

स्मय-संज्ञा पुं० [सं०] गर्व। अभिमान। शेखी। वि० अद्भुत। विलक्षण।

स्मर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव। मदन। उ०—(क) मदन मनोभव मन मथन, पंचसर स्मर मार। मीनकेतु कंदर्प हरि व्यापक विरह विदार।—अनेकार्थ। (ख) स्मर अरवाको हित माल। ताको कहत विसाल।—गुमान। (२) स्मरण। स्मृति। याद। (३) शुद्ध राग का एक भेद। (संगीत)

स्मरकथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों के संबंध की या शृंगार रस की ऐसी बातें जिनसे काम उत्तेजित हो।

स्मरकार-वि० [सं०] जिससे काम का उद्दीपन हो। कामोद्दीपक।

स्मरकूप-संज्ञा पुं० [सं०] भग। योनि।

स्मरकूपिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] भग। योनि।

स्मरगुरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण का एक नाम। (२) वह जो काम कला की शिक्षा दे।

स्मरगृह-संज्ञा पुं० [सं०] भग। योनि।

स्मरचंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रतिबंध।

स्मरचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री संभोग के लिये एक प्रकार का रतिबंध।

स्मरच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] भग। योनि।

स्मरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी देखी, सुनी, बीती या अनुभव में आई हुई बात का फिर से मन में आना। याद आना। आध्यान। जैसे,—(क) मुझे स्मरण नहीं आता कि आपने उस दिन क्या कहा था। (ख) वे एक एक बात भली भाँति स्मरण रखते हैं।

मुहा०—स्मरण दिलाना = भूली हुई बात याद कराना। जैसे,—उनके स्मरण दिलाने पर मैं सब बातें समझ गया।

(२) नौ प्रकार की भक्तियों में से एक प्रकार की भक्ति जिसमें उपासक अपने उपास्यदेव को बराबर याद किया करता है। उ०—श्रवण, कीर्त्तन, स्मरणपाद, रत, अरचन वंदनदास। सख्य और आत्मा निवेदन, प्रेमलक्षणा जास।—सूर। (३) साहित्य में एक प्रकार का अलंकार जिसमें कोई बात या पदार्थ देखकर किसी विशिष्ट पदार्थ या बात का स्मरण हो आने का वर्णन होता है। जैसे,—कमल को देखकर किसी के सुंदर नेत्रों के स्मरण हो आने का वर्णन। उ०—(क) सूल होत नवनीत निहारी। मोहन के मुख जोग विचारी। (ख) लखि शशि मुख की होत सुधि तन सुधि घन को जोहि।

स्मरणपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जो किसी को कोई बात स्मरण दिलाने के लिये लिखा जाय।

स्मरणशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह मानसिक शक्ति जो अपने सामने होनेवाली घटनाओं और सुनी जानेवाली बातों को ग्रहण करके रख छोड़ती है; और आवश्यकता पड़ने, प्रसंग आने या मस्तिष्क पर जोर देने से वह घटना या बात फिर हमारे मन में, स्पष्ट कर देती है। याद रखने की शक्ति। याददाश्त। जैसे,—(क) आपकी स्मरणशक्ति बहुत तीव्र है। (ख) अभ्यास से किसी विशिष्ट विषय में स्मरणशक्ति बहुत बढ़ाई जा सकती है।

स्मरणासक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवान के स्मरण में होनेवाली आसक्ति जिसके कारण भक्त दिन रात भगवान या इष्टदेव का स्मरण करता है। उ०—(वह भक्ति) एक रूप ही होकर गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दासासक्ति, सख्यासक्ति, कांतासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति और परमविरहासक्ति रूप से एकादश प्रकार की होती है।—हरिश्चंद्र।

स्मरणीय—वि० [सं०] स्मरण रखने योग्य। याद रखने लायक। जो भूलने योग्य न हो। जैसे,—यह घटना भी स्मरणीय है।

स्मरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्मर या कामदेव का भाव या धर्म्म। (२) स्मरण का भाव या धर्म्म।

स्मरदशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह दशा जो प्रेमी या प्रेमिका के न मिलने पर उसके विरह में होती है। विरह की अवस्था।

स्मरदहन—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव को भस्म करनेवाले, शिव।

स्मरदीपन—वि० [सं०] जिससे काम उत्तेजित हो। कामोत्तेजक।

स्मरध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुरुष का लिंग। (२) स्त्री की योनि। भग। (३) वाद्य। बाजा।

स्मरध्वजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदनी रात।

स्मरना⊛—क्रि० स० [सं० स्मरण + ना (प्रत्य०)] स्मरण करना। याद करना। उ०—तुम्हें देखिये की महा चाह बाढ़ी, बिलापै, बिचारै, सराहै, स्मरै जू। रहै बैठि न्यारी, घटा देखि कारी, बिहारी, बिहारी, बिहारी, ररै जू॥ भई काल बौरी सि दौरी फिरी, आजु बाढ़ी दसा ईस का धौं करै जू। बिथा में ग्रसी सी, भुजंगै डसी सी, छरी सी, मरी सी, घरी सी, भरै जू।—रसकुसुमाकर।

स्मरप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामदेव की पत्नी, रति।

स्मरमंदिर—संज्ञा पुं० [सं०] योनि। भग।

स्मरलेखनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शारिका पक्षी। मैना।

स्मरवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामदेव की पत्नी, रति।

स्मरवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] अनिरुद्ध का एक नाम।

स्मरवीथिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

स्मरवृद्धि—संज्ञा पुं० [सं०] कामवृद्धि या कामज नामक क्षुप।

स्मरशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव का दहन करनेवाले, महादेव।

स्मरशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें काम कला का विवेचन हो। कामशास्त्र।

स्मरसख—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

वि० जिससे काम की उत्तेजना हो। कामोद्दीपक।

स्मरस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुष की इंद्रिय। लिंग।

स्मरस्मरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवती।

स्मरस्मर्य—संज्ञा पुं० [सं०] गधा।

स्मरहर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

स्मरागार—संज्ञा पुं० [सं०] भग। योनि।

स्मरांकुश—संज्ञा पुं० [सं०] लिंग।

स्मराधिवास—संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष।

स्मराम्र—संज्ञा पुं० [सं०] कलमी आम। राजाम्र।

स्मरारि—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव के शत्रु, महादेव। उ०—स्मरारि संसार निज रूपा। यथा दिखावहिं विमल स्वरूपा।—शंकरदिग्विजय।

स्मरासव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताड़ से निकलनेवाला ताड़ी नामक मादक द्रव्य। (२) थूक।

स्मर्ण⊛—संज्ञा पुं० दे० "स्मरण"।

स्मर्त्तव्य—वि० [सं०] स्मरण रखने योग्य। याद रखने लायक। स्मरणीय।

स्मर्त्ता—संज्ञा पुं० [सं० स्मर्तृ] वह जो स्मरण रखे। याद रखनेवाला।

स्मर्य—वि० [सं०] स्मरण रखने योग्य। याद रखने लायक। स्मरणीय।

स्मशान—संज्ञा पुं० दे० "श्मशान"।

विशेष—श्मशान के यौगिक शब्दों के लिये देखो "श्मशान" के यौगिक।

स्मारक—वि० [सं०] स्मरण करानेवाला। याद दिलानेवाला।

संज्ञा पुं० (१) वह कृत्य, पदार्थ या वस्तु आदि जो किसी की स्मृति बनाए रखने के लिये प्रस्तुत किया जाय।

यादगार। जैसे,—महाराज शिवा जी का स्मारक। महारानी विक्टोरिया का स्मारक। (२) वह चीज जो किसी को अपना स्मरण रखने के लिये दी जाय। यादगार। जैसे,—मेरे पास यही एक पुस्तक तो आपका स्मारक है।

स्मारण-संज्ञा पुं० [सं०] स्मरण कराने की क्रिया। याद दिलाना।

स्मारणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी या ब्रह्मी नाम की वनस्पति जिसके सेवन से स्मरण शक्ति का बढ़ना माना जाता है।

स्मारित-संज्ञा पुं० [सं०] कृतसाक्षी के पाँच भेदों में से एक। वह साक्षी जिसका नाम पत्र पर न लिखा हो, परंतु अर्थी अपने पक्ष के समर्थन के लिये स्मरण कराके बुलावे।

स्मार्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वे कृत्य आदि जो स्मृतियों में लिखे हुए हैं। (२) वह जो स्मृतियों में लिखे अनुसार सब कृत्य करता हो। (३) वह जो स्मृतियों आदि का अच्छा ज्ञाता हो। स्मृति शास्त्र का पंडित।

वि० स्मृति संबंधी। स्मृति का।

स्मार्त्तिक-वि० [सं०] स्मृति संबंधी। स्मृति का।

स्मित-संज्ञा पु० [सं०] मंद हास्य। धीमी हँसी। उ०—श्रम अभिलाष सगर्व स्मित, क्रोध हर्ष भय भाव। उपजत एकहि बार जहँ, तहँ किलकिंचित हाव।—केशव।

वि० खिला हुआ। विकसित। प्रस्फुटित।

स्मृत-वि० [सं०] याद किया हुआ। जो स्मरण में आया हो। उ०—(क) एक बात यह भी स्मृत रक्खो कि जहाँ संवित् होती है, वहाँ ये सात गुण और उसके साथ निवास करते हैं।—श्रद्धाराम। (ख)...जो अब तक स्मृत थे, अत्यंत प्रसन्नता प्राप्त होती थी।—अयोध्यासिंह।

स्मृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्मरण शक्ति के द्वारा संचित होनेवाला ज्ञान। (२) स्मरण। याद। (३) दक्ष की कन्या और अंगिरा की पत्नी के गर्भ से उत्पन्न एक कन्या। (४) हिंदुओं के धर्मशास्त्र जिनकी रचना ऋषियों और मुनियों आदि ने वेदों का स्मरण या चिंतन करके की थी और जिसमें धर्म, दर्शन, आचार व्यवहार, प्रायश्चित्त, शासन-नीति आदि के विवेचन हैं।

विशेष—हिंदुओं के धार्मिक ग्रंथ दो भागों में विभक्त हैं—श्रुति और स्मृति। इनमें से वेद, ब्राह्मण और उपनिषद् आदि "श्रुति" के अंतर्गत हैं (दे० "श्रुति") और शेष धर्मशास्त्रों को स्मृति कहते हैं। स्मृति के अंतर्गत नीचे लिखे ग्रंथ आते हैं—(क) छः वेदांग। (ख) गृह्य, आश्वलायन, सांख्यायन, गोभिल, पारस्कर, बौधायन, भारद्वाज और आपस्तंबादि सूत्र। (ग) मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, विष्णु, हारीत, उशनस्, अंगिरा, यम, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, दक्ष, गौतम, वशिष्ठ, नारद और भृगु आदि के रचे हुए धर्मशास्त्र। (घ) रामायण और महाभारत आदि इतिहास। (ङ) अठारहो पुराण और (च) सब प्रकार के नीति-शास्त्र के ग्रंथ।

(५) (अठारह धर्म-शास्त्रों के कारण) १८ की संख्या। (६) एक प्रकार का छंद। (७) इच्छा। कामना।

स्मृतिकार-संज्ञा पुं० [सं०] स्मृति या धर्मशास्त्र बनानेवाला।

स्मृतिकारक-संज्ञा पुं० [सं०] वह औषध जिसके सेवन से स्मरण शक्ति तीव्र होती है।

स्मृतिवर्द्धिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी नामक वनस्पति जिसके सेवन से स्मरण शक्ति तीव्र होती है।

स्मृतिशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्र। वि० दे० "स्मृति"।

स्मृतिहिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखपुष्पी नाम की लता।

स्यंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) टपकना। चूना। रसना। बहना। (२) गलना। पानी होना। (३) पसीना निकलना। स्वेदोद्गम। (४) एक प्रकार का चक्षुरोग। (५) चंद्रमा।

स्यंदक-संज्ञा पुं० [सं०] तेंदू। तिंदुक वृक्ष।

स्यंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूना। टपकना। रसना। क्षरण। (२) गलना। पानी हो जाना। (३) जाना। चलना। गमन। (४) रथ विशेषतः युद्ध में काम आनेवाला रथ। उ०—चढ़ि स्यंदन चंदन सीस दै बंदन करि द्विजवर पदहि। नँद नंदनपुर चलतो भयो सुभट सुखमा धरि मदहि।—गोपाल। (५) वायु। हवा। (६) गत उत्सर्पिणी के २३वें अर्हत् का नाम। (जैन) (७) तिनसुना। तिनिश वृक्ष। (८) जल। (९) चित्र। तसवीर। (१०) घोड़ा। तुरंग। (११) एक प्रकार का मंत्र जिससे अस्त्र मंत्रित किए जाते थे। (१२) तेंदू। तिंदुक वृक्ष।

स्यंदन तैल-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की तैलौषध जो भगंदर के लिये उपकारी मानी जाती है। इसके बनाने की विधि इस प्रकार है—चीता, आक, निसोत, पाठ, कठूमर, सफेद कनेर, थूहर, हरताल, कलिहारी, बच, सज्जी और मालकंगनी, इन सब का कल्क, जो कुल मिलाकर एक सेर हो, ४ सेर तिल के तेल में पकाया जाता है। इसके लगाने से भगंदर सूख जाता है। इसे निस्पंदन तैल भी कहते हैं।

स्यंदनद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिनसुना। तिनिश वृक्ष। (इसकी लकड़ी रथ के पहिए आदि बनाने के काम में आती थी, इसी से इसका नाम स्यंदनद्रुम पड़ा।) (२) तेंदू। तिंदुक।

स्यंदनारोह-संज्ञा पुं० [सं०] वह योद्धा जो रथ पर [illegible] युद्ध करता हो। रथी।

स्यंदनाह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिनसुना। तिनिश [illegible] (२) तेंदू। तिंदुक वृक्ष।

स्यंदनि-संज्ञा पुं० [सं०] तिनसुना। तिनिश [illegible]

स्यंदनिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी नदी । नहर । (२) लार की बूँद ।

स्यंदनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) थूक । लार । (२) मूत्र नाड़ी ।

स्यंद्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम । (रामायण)

स्यंदिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) थूक । लार । (२) वह गाय जिसने एक साथ दो बछड़ों को जन्म दिया हो ।

स्यमंतक–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणोक्त एक प्रसिद्ध मणि ।

विशेष—भागवत पुराण में इस मणि की कथा इस प्रकार है—यह मणि सत्राजित् नामक यादव ने अपनी तपस्या से सूर्य-नारायण को प्रसन्न कर प्राप्त की थी। यह सूर्य के समान प्रभा-विशिष्ट थी । यह प्रति दिन आठ भार (१ भार = २० तुला = २००० पल) सोना देती थी । जिस स्थान या नगर में यह रहती थी, वहाँ रोग, शोक, दुःख, दारिद्र्य आदि का नाम न रहता था । यादवों के कहने से श्रीकृष्ण ने राजा उग्रसेन के लिये यह मणि माँगी; पर सत्राजित् ने नहीं दी । सत्राजित् से उसके भाई प्रसेन ने यह ले ली और कंठ में धारण कर आखेट को गया । वहाँ एक सिंह ने उसे मार डाला । मणि लेकर सिंह एक गुफा में घुसा । गुफा में रीछों का राजा जांबवंत रहता था । मणि के प्रकाश से गुफा को प्रकाशमान् देखकर जांबवंत आ पहुँचा और उसने सिंह को मार कर मणि हस्तगत की । इधर श्रीकृष्ण पर यह कलंक लगा कि उन्होंने प्रसेन को मार कर मणि ले ली है । यह सुन श्रीकृष्ण जांबवंत की गुफा में पहुँचे और उसे परास्त कर उन्होंने मणि का उद्धार किया । जांबवंत ने श्रीकृष्ण को साक्षात् भगवान जान कर अपनी कन्या जांबवंती उनके अर्पण की । श्रीकृष्ण ने लौटकर वही मणि सत्राजित् को दे दी । सत्राजित् इसलिये बहुत लज्जित और दुखी हुआ कि मैंने श्रीकृष्ण पर झूठा कलंक लगाया था । उसने भक्ति भाव से अपनी कन्या सत्यभामा और मणि श्रीकृष्ण को भेंट की । सत्यभामा को तो श्रीकृष्ण ने अंगीकार कर लिया, पर मणि लौटा दी । अनंतर सत्राजित् को मार कर शतधन्वा ने मणि ले ली । अंत में शतधन्वा श्रीकृष्ण के हाथों मारा गया और मणि सत्यभामा को मिल गई । कहते हैं, श्रीकृष्ण ने भादों की चौथ का चंद्रमा देखा था, इसी से उन पर मणि-हरण का झूठा कलंक लगा था । इसी से भादों महीने की चौथ का चंद्रमा लोग नहीं देखते ।

स्यमंत पंचक–संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ का नाम जहाँ, भागवत के अनुसार, परशुराम ने पितरों का शोणित से तर्पण किया था ।

स्यमिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चींटियों या दीमकों का बनाया हुआ मिट्टी का घर । बाँबी । वल्मीक । (२) एक प्रकार का वृक्ष ।

स्यमीक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँबी । वल्मीक । (२) समय । काल । (३) बादल । मेघ । (४) जल । (५) एक प्राचीन राजवंश का नाम ।

स्यमीका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नील का पौधा । (२) एक प्रकार का कीड़ा ।

स्यात–अव्य० [सं०] कदाचित् । शायद ।

स्याद्वाद–संज्ञा पुं० [सं०] जैन दर्शन जिसमें एक वस्तु में नित्यत्व, अनित्यत्व, सदृशत्व, विरूपत्व, सत्त्व, असत्त्व आदि अनेक विरुद्ध धर्मों का सापेक्ष स्वीकार किया जाता है और कहा जाता है कि स्यात् यह भी है, स्यात् यह भी है आदि । अनेकांतवाद ।

स्यान‡–वि० दे० "स्याना" । उ०—(क) भे सुत सुता स्यान सुख पागे ।—रघुराज । (ख) विषम धार पैयत न स्यान के ।—देव ।

स्यानप–संज्ञा पुं० दे० "स्यानपन" ।

स्यानपत–संज्ञा स्त्री० [हिं० स्याना + पत (प्रत्य०)] (१) चतुरता । चतुराई । (२) चालाकी । धूर्तता ।

स्यानपन–संज्ञा पुं० [हिं० स्याना + पन (प्रत्य०)] (१) चतुरता । बुद्धिमानी । होशियारी । (२) चालाकी । धूर्तता ।

स्याना–वि० [सं० सज्ञान] [स्त्री० स्यानी] (१) चतुर । बुद्धिमान् । होशियार । जैसे,—(क) तुम स्याने होकर ऐसी बातें करते हो! (ख) वे बड़े स्याने हैं; उनके आगे तुम्हारी दाल नहीं गलने की । (२) चालाक । काइयाँ । धूर्त । जैसे,—उसे तुम कम मत समझो; वह बड़ा स्याना है । (३) जो अब बालक न हो । बड़ा । वयस्क । बालिग । जैसे,—(क) जब लड़का स्याना हो जाय, तब उसका ब्याह करना चाहिए । (ख) ज्यों ज्यों वह स्याना हो रहा है, त्यों त्यों बिगड़ रहा है ।

संज्ञा पुं० (१) बड़ा-बूढ़ा । वृद्ध पुरुष । जैसे,—(क) स्यानों का कहना मानना चाहिए । (ख) पहले घर के स्यानों से पूछ लो; फिर यह काम करो । (२) वह जो झाड़-फूँक करता हो । झाड़-फूँक करनेवाला । जंतर-मंतर करनेवाला । ओझा । (३) गाँव का मुखिया । नंबरदार । (४) चिकित्सक । हकीम ।

स्यानाचारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० स्याना + चार (प्रत्य०)] वह रसूम जो गाँव के मुखिया को मिलता है ।

स्यानापन–संज्ञा पुं० [हिं० स्याना + पन (प्रत्य०)] (१) स्याने होने की अवस्था । लड़कपन के बाद की अवस्था । बालिग होने की अवस्था । युवावस्था । जैसे,—उसका ब्याह स्यानेपन में हुआ था । (२) चतुराई । चातुरी । होशियारी । (३) चालाकी । धूर्तता ।

स्यापा–संज्ञा पुं० [फा० स्याहपोश] मरे हुए मनुष्य के शोक में

कुछ काल तक घर की तथा नाते रिश्ते की स्त्रियों के प्रति दिन एकत्र होकर रोने और शोक मनाने की रीति ।

विशेष—मुसलमानों तथा पंजाब के हिंदुओं में यह चाल है कि घर में किसी की, विशेषकर जवान मनुष्य की मृत्यु होने पर स्त्रियाँ एकत्र होकर रोती पीटती हैं। वे दिन रात में एक ही बार भोजन करती हैं और घर के बाहर नहीं निकलतीं। इसी को स्यापा कहते हैं।

मुहा०—स्यापा पड़ना=(१) रोना चिल्लाना मचना। (२) बिलकुल उजाड़ या सुनसान होना। जैसे,—इस बाजार में तो सरेशाम ही स्यापा पड़ जाता है।

स्याबास%-अव्य० दे० "शाबास"। उ०—बार बार कह सुर स्याबासू। कियो सत्य पितु विष्णु विश्वासू।—रघुराज।

स्याम%-संज्ञा पुं० दे० "श्याम"। उ०—विधु अति प्यारी रोहिनी तामैं अनमैं स्याम। अति सम्रिधि कै चंद्र के पूरन मन के काम।—व्यास।

वि० दे० "श्याम"। उ०—नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन वारिज नयन। करहु सो मम उर धाम सदा छीर सागर-सयन।—तुलसी।

संज्ञा पुं० भारतवर्ष के पूर्व के एक देश का नाम।

स्यामक-संज्ञा पुं० दे० "श्यामक"। उ०—स्यामक नामक वीर चलेउ वसुदेव अनुज वदि।—गोपाल।

स्यामकरन%-संज्ञा पुं० दे० "श्यामकर्ण"। उ०—स्यामकरन अगनित हय होते। ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते।—तुलसी।

स्यामकर्न%-संज्ञा पुं० दे० "श्यामकर्ण"। उ०—कहूँ अरुन तन तुरँग वरूथा। कितहूँ स्यामकर्न के जूथा।—रामाश्वमेध।

स्यामता%-संज्ञा स्त्री० दे० "श्यामता"। उ०—मारेउ राहु ससिहि कह कोई। उर महँ परी स्यामता सोई।—तुलसी।

स्यामल-वि० दे० "श्यामल"। उ०—लता ओट तब सखिन लखाये। स्यामल गौर किसोर सुहाये।—तुलसी।

स्यामलता-संज्ञा स्त्री० दे० "श्यामलता"। उ०—स्वच्छता सोहि रही इनमें उन अंक में स्यामलता सरसावत।—रसकुसुमाकर।

स्यामलिया-संज्ञा पुं० दे० "साँवला"। उ०—रँगी गयी मन पट अरी स्यामलिया के रंग। कारी कामर पैं चढ़ै अब क्यों दूजो रंग।—रसनिधि।

स्यामा%-संज्ञा स्त्री० दे० "श्यामा"।

स्यार-संज्ञा पुं० [हिं० सियार] [स्त्री० स्यारनी] सियार। गीदड़। शृगाल। उ०—स्यार कटकटै लगे सघन सों छटै लगे अंग खंड तटै लगे सोनित को घटै लगे।—गोपाल।

स्यारकाँटा-संज्ञा पुं० [स्यार ? + हिं० काँटा] सत्यानासी। स्वर्णक्षीरी।

स्यारपन-संज्ञा पुं० [हिं० सियार + पन (प्रत्य०)] सियार या गीदड़ का सा स्वभाव। शृगाल प्रकृति। उ०—आयो सुनि कान्ह भूल्यो सकल हुस्यारपन, स्यारपन कंस को न कहत सिरात है।—रसकुसुमाकर।

स्यारलाठी-संज्ञा स्त्री० [हिं० स्यार + लाठी] अमलतास।

स्यारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सियारी] सियार की मादा। सियारी। सियारिन। गीदड़ी। शृगाली। उ०—पोलहि मारजार अरु स्यारी। हारहुगे मनु कहत पुकारी।—गोपाल।

स्याल-संज्ञा पुं० [सं०] पत्नी का भाई। साला। स्यालक। स्यालक। उ०—सुनत स्याल के बचन महीपति पठै सुमंत तुरंता। भ्रातन सहित राम बुलवायो आये अति बिलसंता।—रघुराज।

संज्ञा पुं० दे० "सियार" या "स्यार"। उ०—सरमा से कुत्ते स्याल आदि उत्पन्न हो गए।—सत्यार्थ प्र०।

स्यालकाँटा-संज्ञा पुं० दे० "स्यारकाँटा"।

स्यालक-संज्ञा पुं० [सं०] पत्नी का भाई। साला।

स्याला-संज्ञा पुं० [देश०] बहुतायत। अधिकता। ज्यादती।

† संज्ञा पुं० [सं० शीतकाल] शीतकाल। जाड़े का मौसिम।

स्यालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी की छोटी बहन। साली।

स्यालिया†-संज्ञा पुं० [हिं० सियार] सियार। गीदड़। शृगाल। उ०—श्रीकृष्ण के पुत्र कंठण मुनि को स्यालिया हो गया।—सत्यार्थ प्र०।

स्याली-संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी की बहन। साली। श्यालिका।

स्यालू†-संज्ञा पुं० [हिं० सालू] स्त्रियों के ओढ़ने की चादर। ओढ़नी। उपरेनी।

स्यालो-संज्ञा पुं० [सं० स्याल, हिं० साला] पत्नी का भाई। साला। (डिं०)

स्याह-वि० [फ़ा०] काला। कृष्ण वर्ण का।

संज्ञा पुं० घोड़े की एक जाति। उ०—सिरगा समँदा स्याह सेलिया सूर सुरंगा। मुसकी पँचकल्यानि कुमेता केहरि रंगा।—सूदन।

स्याह करघा गुलकंद-संज्ञा पुं० [?] लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का ठप्पा जिससे कपड़ों पर बेल बूटे छापे जाते हैं।

स्याहगोसर-संज्ञा पुं० दे० "सियाहगोश"। उ०—चीते सुरोह सावर दुबंत। गैंडा बघीनु बोलत अभंत। अरु स्याहगोसर विभंग अंग। रिच्छादि सँरिहा छुटे संग।—सूदन।

स्याह जबान-संज्ञा पुं० [फ़ा० स्याह + ज़बान] वह हाथी या घोड़ा जिसकी जबान स्याह हो। (ऐसे हाथी घोड़े ऐबी समझे जाते हैं।)

स्याह जीरा-संज्ञा पुं० [फ़ा० स्याह + हिं० जीरा] काला जीरा। वि० दे० "काला जीरा"।

स्याह तालू-संज्ञा पुं० [फ़ा० स्याह + हिं० तालू] वह हाथी या घोड़ा जिसका तालू बिलकुल स्याह हो। (ऐसे हाथी घोड़े ऐबी समझे जाते हैं।)

स्याहदिल–वि० [फ़ा०] जो दिल का काला हो। खोटा। दुष्ट।

स्याहभूरा–वि० [फ़ा० स्याह + हिं० भूरा] काला। (रंग)

स्याहा–संज्ञा पुं० दे० "सियाहा"। उ०—प्रभु जू मैं ऐसो अमल कमायो। साविक जमा हुती जो जोरी मित जालिक तल ल्यायो। वासिलबाकी स्याहा मुजमिल सब अधर्म की बाकी। चित्रगुप्त होत मुस्तौफी शरण गहूँ मैं काकी।—सूर।

स्याही–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) एक प्रसिद्ध रंगीन तरल पदार्थ जो प्रायः काला होता है और जो लिखने, छापने आदि के काम में आता है। लिखने या छापने की रोशनाई। मसि। उ०—हरि जाय चेत चित सूखि स्याही झरि जाइ करि जाय कागद कलम टाँक जरि जाय।—काव्यकलाधर। (२) कालापन। कालिमा। उ०—स्याही बारन तें गई मन तें भई न दूर। समुझ चतुर चित बात यह रहत विसूर विसूर।—रसनिधि।

मुहा०—स्याही जाना = बालों का कालापन जाना। जवानी का बीतना। उ०—स्याही गई सफेदी आई दिल सफेद अजहूँ न हुआ।—कबीर। (३) कालिख। कालिमा। जैसे,—उसने अपने बाप दादों के नाम पर स्याही पोत दी।

क्रि० प्र०—पोतना।—लेपना।

(४) कडुवे तेल के दीए में पारा हुआ एक प्रकार का काजल जिससे गोदना गोदते हैं।

संज्ञा स्त्री० [सं० शल्यकी, हिं० स्याही] साही। शल्यकी। सेह। वि० दे० "साही"।

स्युधक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद। (विष्णुपुराण)

स्यू–संज्ञा स्त्री० [सं०] सूत। सूत्र।

स्यूत–वि० [सं०] बुना हुआ। सीया हुआ। सूत्रित।

संज्ञा पुं० मोटे कपड़े का थैला। थैली।

स्यूति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सीना। सीवन। (२) बुनना। वयन। (३) थैला। (४) संतति। संतान। औलाद।

स्यून–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किरण। रश्मि। (२) सूर्य। (३) थैला।

स्यूम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किरण। रश्मि। (२) जल।

स्यूमरश्मि–संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

स्यों, स्योँ–अव्य० [सं० सह] सह। सहित। उ०—(क) सुनि शिष कंतदंस, तृन धरिकै स्यो परिवार सिधारो।—सूर। (ख) राम कह्यो उठि बावरराई। राजसिरी सखि स्यो तिय पाई।—केशव। वि० दे० "सौं"।

स्योत–संज्ञा पुं० [सं०] मोटे कपड़े का थैला। थैली।

स्योती–संज्ञा स्त्री० दे० "सेवती"।

स्योन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किरण। रश्मि। (२) सूर्य। (३) थैला। (४) सुख। आनंद।

स्योनाक–संज्ञा पुं० [सं०] सोनापाढ़ा। श्योनाक वृक्ष।

स्योनाग–संज्ञा पुं० [सं० श्योनाक] सोनापाढ़ा। श्योनाक वृक्ष।

स्योहार–संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

स्रंग–संज्ञा पुं० दे० "शृंग"। उ०—अँगिया झुनकारी सरी सित जारी की सेद कसी कुच दूपर लौं। मनो सिंधु मथे सुधा फेन चढ्यो सो चढ्यो गिरि स्रंगनि ऊपर लौं।—सुंदरी-सर्वस्व।

स्रंसन–वि० [सं०] मलभेदक। दस्त लानेवाला। दस्तावर। विरेचक।

संज्ञा पुं० (१) वह औषध जो कोठे के वात आदि दोष तथा मल को नियत समय के पहले ही बलात् गुदा मार्ग से निकाल दे। मलभेदक औषध। दस्त लानेवाली दवा। विरेचन। (२) अधःपतन। भ्रंश। (३) कच्चे गर्भ का गिरना। गर्भपात। गर्भस्राव।

स्रंसिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भावप्रकाश के अनुसार एक प्रकार का योनि रोग जिसमें प्रसंग के समय रगड़ लगने पर योनि बाहर निकल आती है और गर्भ नहीं ठहरता। प्रस्रंसिनी।

स्रंसिनीफल–संज्ञा पुं० [सं०] सिरस। शिरीष वृक्ष।

स्रंसी–संज्ञा पुं० [सं० स्रंसिन्] (१) पीलू वृक्ष। (२) सुपारी का पेड़। पूग वृक्ष।

वि० (१) गिरनेवाला। पतनशील। (२) असमय में गिरनेवाला। (गर्भ)

स्रक्–संज्ञा स्त्री० पुं० [सं०] (१) फूलों की माला। (२) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में चार नगण और एक सगण होता है तथा ६ और ९ पर यति होती है। उ०—नचहु सुखद यसुमति सुत सहिता। लहहु जनम इह छवि सुख अमिता।—छंदःप्रभाकर। (३) एक प्रकार का वृक्ष। (४) ज्योतिष में एक प्रकार का योग।

स्रक–संज्ञा स्त्री० पुं० दे० "स्रक्"। (१) उ०—(क) स्रक चंदन वनितादिक भोगा। देखि हरख विसमयबस लोगा।—तुलसी। (ख) स्रक चंदन बनिता बिनोद सुख यह जर जरत बितायो।—सूर।

स्रग–संज्ञा स्त्री० पुं० दे० "स्रक्" (१)। उ०—औषद पान सब काहू पाये। स्रग चंद्रन-भूषित छवि छाये।—तुलसी।

स्रगाल–संज्ञा पुं० [सं० शृगाल] सियार। गीदड़। (डिं०)

स्रग्जीह्व–संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

स्रग्धरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में (म र भ न य य य) ऽऽऽ ऽ।ऽ ऽ।। ।।। ।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ होता है और ७,७,७, पर यति होती है। उ०—मोरे भौने यमू यों कहहु सुत कहाँ तें लिये आवते हो। मा का आनंद आजी तुम फिरि फिरि कै माथ जो नावते हो। बोले माता! विलोक्यो फिरत सह चमू बाग में स्रग्धरे ज्यों। काढ़ी माला हमारे विपुल रिपुदली भयलो जीति केत्यों!—छंदःप्रभाकर। (२) एक बौद्ध देवी का नाम।

स्रग्वान्-वि० [सं० स्रग्वत्] माला से युक्त। मालाधारी।
स्रग्विणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में चार रगण होते हैं। उ०—रार री राधिका स्याम सों क्यों करै। सीख मो मान ले मान काहे धरै। चित्त में सुंदरी क्रोध न आनिये। स्रग्विणी मूर्ति को कृष्ण की धारिये।—छंदःप्रभाकर। (२) एक देवी का नाम।
स्रग्वी-वि० [सं० स्रग्विन्] माला से युक्त। मालाधारी।
स्रज्-संज्ञा स्त्री०, पुं० दे० "स्रक्"।
स्रज-संज्ञा पुं० [सं०] एक विश्वेदेवा का नाम।
संज्ञा स्त्री० माला। उ०—स्वारथ सुमन स्रज पहिरी जैसें। समरथ राजरहित नृप तैसें।—पद्माकर।
स्रजना-क्रि० स० दे० "सृजना"। उ०—(क) विस्व स्रजहु पालहु पुनि हरहू। त्रिकालज्ञ संतत सुख करहू।—रामाश्वमेध। (ख) धरि सत रज तम रूप स्रजति पालति संघारति।—सूदन।
स्रज्वा-संज्ञा पुं० [सं० स्रज्वन्] (१) माला बनानेवाला। माली। मालाकार। (२) रस्सा। रज्जू। (३) प्रजापति।
स्रविका-वि० [सं० शोणित] लाल। (डिं०)
स्रद्धा-संज्ञा स्त्री० दे० "श्रद्धा"। उ०—स्रद्धा बिना धरम नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावइ कोई।—तुलसी।
स्रपाटी-संज्ञा स्त्री० [?] पक्षी की चोंच। (डिं०)
स्रम-संज्ञा पुं० दे० "श्रम"। उ०—(क) स्वारथ सुकृत न स्रम वृथा देखि विहंग विचार। बाज पराये पानि परि तू पंछीहि न मार।—विहारी। (ख) रामचरित-सर बिन अन्हवाये। सो स्रम जाइ न कोटि उपाये।—तुलसी।
स्रमित-वि० दे० "श्रमित"। उ०—ब्रह्म धाम सिवपुर सब लोका। फिरे स्रमित व्याकुल भय सोका।—तुलसी।
स्रवंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नदी। दरिया। (२) एक प्रकार की वनस्पति।
स्रव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहना। बहाव। प्रवाह। (२) झरना। निर्झर। प्रस्रवण। (३) मूत्र। प्रस्राव। पेशाव।
संज्ञा पुं० दे० "श्रवण"।
स्रवण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहना। बहाव। प्रवाह। (२) कच्चे गर्भ का गिरना। गर्भपात। गर्भस्राव। (३) मूत। मूत्र। पेशाव। (४) पसीना। प्रस्वेद। घर्मबिंदु।
स्रवत्तोया-संज्ञा स्त्री० [सं०] रुदंती। रुद्रवंती।
स्रवद्गर्भा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री या गाय जिसका गर्भ गिर गया हो।
स्रवद्रंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेला। प्रदर्शनी। नुमाइश। (२) बाजार। हाट।
स्रवन-संज्ञा पुं० दे० "श्रवण"। उ०—(क) रामचरित मानस एहि नामा। सुनत स्रवन पाइय बिसामा।—तुलसी। (ख) स्रवन नाहिं, पै सब किछु सुना। हिया नाहिं पै सब किछु गुना।—जायसी।
स्रवना-क्रि० अ० [सं० स्रवण] (१) बहना। चूना। टपकना। उ०—(क) कुछ काल के पीछे हम उस ढेर को टीला बना देखते हैं और वहाँ से जल स्रवने लगता है।—श्रद्धाराम। (ख) प्रेम बिबस जनु रामहिं पायो। स्रवत भयहु पय उर जन छायो।—पद्माकर। (ग) लज्जावश नहिं रहेउ सँभारा। स्रवत नयन मग ते जलधारा।—रघुराज। (२) गिरना। उ०—अति गर्व गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ तें।—तुलसी।
क्रि०स०(१) बहाना। टपकाना। उ०—(क) अमृत हू ते अमल अति गुण स्रवति निधि आनंद। सूर तीनों लोक परस्यो सुर असुर जस छंद।—सूर। (ख) गोद राखि पुनि हृदय लगाये। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाये।—तुलसी। (२) गिराना। उ०—चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहिं सुररवनी।—तुलसी।
स्रवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मरोड़ फली। मुरहरी। मूर्वा। (२) डोडी। जीवंती।
स्रष्टव्य-वि० [सं०] सृष्टि करने के योग्य। सृष्टि करने या रचने के लिए उपयुक्त। जिसकी सृष्टि की जा सके।
स्रष्टा-संज्ञा पुं० [सं० स्रष्ट] (१) सृष्टि या विश्व की रचना करनेवाले, ब्रह्मा। (२) विष्णु। (३) शिव।
वि० सृष्टि करनेवाला। निर्माता। रचयिता।
स्रष्टता-संज्ञा स्त्री० दे० "स्रष्टृत्व"।
स्रष्टृत्व-संज्ञा पुं० [सं०] स्रष्टा का कार्य। सृष्टि करने या रचने का काम।
स्रस्तर-संज्ञा पुं० [सं० स्रस्तर] घास पात का बिछावन। (डिं०)
स्रस्त-वि० [सं०] (१) गिरा हुआ। पतित। च्युत। (२) शिथिल। ढीला ढाला। (३) हिलता हुआ। (४) धँसा हुआ। जैसे,—स्रस्त नेत्र। (५) अलग किया हुआ।
स्रस्तर-संज्ञा पुं० [सं०] बैठने का आसन।
स्रा किशमिशी-संज्ञा स्त्री० [फा०] हलके बैंगनी रंग का एक प्रकार का छोटा अंगूर जो केंडा जिले में होता है और जिसको सुखाकर किशमिश बनाते हैं।
स्राप-संज्ञा पुं० दे० "शाप"। उ०—विप्र स्राप से दूनउँ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई।—तुलसी।
स्रापित-वि० दे० "शापित"। उ०—(क) नृप त्रिशंकु गुरु स्रापित ये है। कहहु जाइ किमि स्वर्ग सदेहै।—पद्माकर। (ख) तू सारे ढोर और वन के पशु से भी अधिक स्रापित होगा।—सत्यार्थ०।
स्राव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) (खून, मवाद आदि का) बहना। झरना। क्षरण। (२) कच्चे गर्भ का गिरना। गर्भपात।

गर्भस्राव। (२) वह जो वह, रस या चूकर निकला हो। (४) निर्यास। रस।

स्रावक-वि॰ [सं॰] बहाने, चुआने या टपकानेवाला। स्राव करानेवाला।

संज्ञा पुं॰ काली मिर्च। गोल मिर्च।

स्रावकत्व-संज्ञा पुं॰ [सं॰] पदार्थों का वह धर्म जिसके कारण कोई अन्य पदार्थ उनमें से होकर निकल या रस जाता है। जैसे,—चलुए पत्थर में से पानी जो रस रस कर निकल जाता है, वह उसके स्रावकत्व गुण के कारण ही।

स्रावण-वि॰ दे॰ "स्रावक"।

स्रावणी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय औषध।

संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "श्रावणी"।

स्रावित-वि॰ [सं॰] बहा, रसा या चुआकर निकाला हुआ। जिसका स्राव कराया गया हो।

स्रावी-वि॰ [सं॰ स्राविन्] बहानेवाला। चुआनेवाला। रसानेवाला। स्राव करानेवाला। क्षरण करानेवाला।

स्राव्य-वि॰ [सं॰] बहाने योग्य। क्षरण के योग्य।

स्रिंग॰-संज्ञा पुं॰ दे॰ "श्रृंग"। उ॰—सत सत सर मारे दस भाला। गिरि स्रिंगन्ह जनु प्रविसहिं ब्याला।—तुलसी।

स्रिजन॰-संज्ञा पुं॰ दे॰ "सृजन"। उ॰—विस्व स्रिजन आदिक तुम काहू। मोहि जन जानि दुसह दुख हरहू।—रामाश्वमेध।

स्रिय॰-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "श्रिय"। उ॰—सुख मकरंद भरे स्रिय मूला। निरखि राम-मन-भँवर न भूला।—तुलसी।

स्रुक्-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] लकड़ी की छोटी करछी जिससे हवनादि में घी की आहुति देते हैं। स्रुवा।

स्रुग्दारु-संज्ञा पुं॰ [सं॰] कंटाई। विकंकत वृक्ष।

स्रुघ्न-संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्राचीन नगर का नाम जो हस्तिनापुर के उत्तर में था। (बृहत्संहिता)

स्रुघ्नी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सज्जी मिट्टी। सर्जिका क्षार।

स्रुच्-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "स्रुक्"।

स्रुत-वि॰ [सं॰] बहा हुआ। चुआ हुआ। क्षरित।

॰ वि॰ दे॰ "श्रुत"। उ॰—तदपि अथा स्रुत कहउँ बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी।—तुलसी।

स्रुता-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] हिंगपत्री। हिंगुपत्री।

स्रुति-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] बहाव। क्षरण।

संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "श्रुति"। उ॰—एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान स्रुति सारा।—तुलसी।

स्रुतिकीर्त्ति॰-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "श्रुतिकीर्त्ति"। उ॰—मांडवी स्रुतिकीर्त्ति उर्मिला कुअँरि लई हँकारि कै।—तुलसी।

स्रुतिमाथ॰-संज्ञा पुं॰ [सं॰ श्रुति + मस्तक] विष्णु। उ॰—छीरसिंधु गवने मुनिनाथा। जहँ बस श्रीनिवास स्रुतिमाथा।—तुलसी।

स्रुध-संज्ञा पुं॰ दे॰ "स्रुवा"।

स्रुवतरु-संज्ञा पुं॰ [सं॰] विकंकत वृक्ष।

स्रुवा-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) लकड़ी की बनी हुई एक प्रकार की छोटी करछी जिससे हवनादि में घी की आहुति देते हैं। सुरवा। उ॰—चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू।—तुलसी।

विशेष—इस अर्थ में हिंदी में यह शब्द प्रायः पुंलिंग बोला जाता है।

(२) सलई। शल्लकी वृक्ष। (३) मरोड़फली। मूर्वा।

स्रू-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) लकड़ी की बनी हुई एक प्रकार की छोटी करछी जिससे हवनादि में घी की आहुति देते हैं। स्रुव। स्रुवा। सुरवा। (२) झरना। निर्झर।

स्रेनी॰-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "श्रेणी"। उ॰—देव दनुज किन्नर नर स्रेनी। सादर मज्जहिं सकल त्रिवेनी।—तुलसी।

स्रोत-संज्ञा पुं॰ [सं॰ स्रोतस्] (१) पानी का बहाव या झरना। जल-प्रवाह। धारा। (२) नदी। (३) वैद्यक के अनुसार शरीरस्थ छिद्र या मार्ग जो पुरुषों में प्रधानतः ९ और स्त्रियों में ११ माने गए हैं। इनके द्वारा प्राण, अन्न, जल, रस, रक्त, मांस, मेद, मल, मूत्र, शुक्र और आर्त्तव का शरीर में संचार होना माना जाता है। (४) वंशपरंपरा। कुलधारा।

स्रोत आपत्ति-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] बौद्ध-शास्त्र के अनुसार निर्वाण साधना की प्रथम अवस्था जिसमें सांसारिक बंधन शिथिल होने लगते हैं।

स्रोत आपन्न-वि॰ [सं॰] जो निर्वाण साधना की प्रथम अवस्था पर पहुँचा हो।

स्रोतईश-संज्ञा पुं॰ [सं॰] नदियों का स्वामी, समुद्र। सागर।

स्रोतपत-संज्ञा पुं॰ [सं॰ स्रोत + पति] समुद्र। (डिं॰)

स्रोतस्य-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) शिव का एक नाम। (२) चोर। चौर।

स्रोतस्वती-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] नदी।

स्रोतस्विनी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] नदी।

स्रोता॰-संज्ञा पुं॰ दे॰ "श्रोता"। उ॰—ते श्रोता बकता समसीला। समदरसी जानहिं हरिलीला।—तुलसी।

स्रोतोऽञ्जन-संज्ञा पुं॰ [सं॰] आँखों में लगाने का सुरमा।

स्रोतोऽनुगत-संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार की समाधि। (बौद्ध)

स्रोतोज-संज्ञा पुं॰ [सं॰] आँखों में लगाने का सुरमा।

स्रोतोद्भव-संज्ञा पुं॰ [सं॰] सुरमा।

स्रोतोवह-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] नदी।

स्रोतोवहा-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] नदी।

स्रोन॰-संज्ञा पुं॰ दे॰ "श्रवण"। उ॰—जोह कहै बतियाँई कियो करौं स्रोन कहै, उनहीं की सुमीजै।—रसकुसुमाकर।

स्रोनित॰-संज्ञा पुं॰ दे॰ "शोणित"। उ॰—मारि तरवारि माम

पर के निकारि लेत भलु डारि मेरे भूमि सोनित के सोप सौं।—गोपाल।

स्रौग्मत-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

स्रौघ्निका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जी। सज्जिका क्षार।

स्रौत-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

स्रौतिक-संज्ञा पुं० [सं०] सीप। शुक्ति।

स्लीपर-संज्ञा पुं० [अं० स्लिपर] एक प्रकार की जूती जो एड़ी की ओर से खुली होती है। चट्टी।

यौ०—फुल स्लीपर = स्लीपर के आकार का एक प्रकार का जूता जो पीछे एड़ी की ओर भी साधारण जूतों की भाँति बंद रहता है।

संज्ञा पुं० [अं०] लकड़ी का वह चौपहल लंबा टुकड़ा या धरन जो प्रायः रेल की पटरियों के नीचे बिछी रहती है।

स्लेज-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की बिना पहिए की गाड़ी जो बर्फ पर घसिटती हुई चलती है।

स्लेट-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की चिकने पत्थर की चौकोर चौरस पतली पटरी जिस पर आरंभिक श्रेणियों के विद्यार्थी अक्षर और अंक लिख कर अभ्यास करते हैं। इस पर लिखा हुआ हाथ से पोंछने अथवा पानी से धोने से मिट जाता है।

स्लेसम अंग-संज्ञा पुं० [सं० श्लेष्मा + अंग] लसूड़े का वृक्ष। (डिं०)

स्लो-वि० [अं०] (१) धीमी चाल से चलनेवाला। मंदगति। जैसे,—स्लो पैसेंजर। (२) सुस्त। काहिल।

संज्ञा पुं० घड़ी की चाल का मंद या धीमा होना।

स्लोथ-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का बहुत सुस्त जानवर जो दक्षिण अमेरिका के जंगलों में पाया जाता है। इसके दाँत बहुत कम होते हैं और प्रायः कटीले नहीं होते। किसी किसी के तो बिलकुल दाँत ही नहीं होते। यह पेड़ों की पत्तियाँ खाकर गुजारा करता है। जब तक पेड़ की सब पत्तियाँ नहीं खा लेता, तब तक उस पेड़ से नहीं उतरता। यह हिंसक जंतु नहीं है। पर यदि कोई इस पर आक्रमण करे तो वह अपने नाखूनों से अपनी रक्षा कर सकता है।

स्वः-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

स्वःपथ-संज्ञा पुं० [सं०] (स्वर्ग का मार्ग) मृत्यु।

स्वःपाल-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग का रक्षक।

स्वःपृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] कई सामों के नाम।

स्वःसरिता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वःसरित्] गंगा।

स्वःसुंदरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

स्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपना आप। निज। आत्म। (२) विष्णु का एक नाम। (३) भाई-बंधु। गोती। संबंधी। ज्ञाति। (४) धन। दौलत।

वि० अपना। निज का। जैसे,—स्वदेश, स्वराज्य, स्वजाति। उ०—इंद वृंद गोपिका चलीं स्वसाज साजिकर मंद मंद हास दै लजावैं हंस गति को।—रसकु०।

स्वकंपन-संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

स्वकंबला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम। (मार्कंडेयपुराण)

स्वकर्मी-वि० [सं० स्वकर्मिन्] केवल अपने ही काम से मतलब रखनेवाला। स्वार्थी। खुदगरज।

स्वकीया-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में नायिका के दो प्रधान भेदों में से एक। अपने ही पति में अनुराग रखनेवाली नायिका या स्त्री।

विशेष—स्वकीया दो प्रकार की कही गई हैं—(१) ज्येष्ठा और (२) कनिष्ठा। अवस्थानुसार इनके तीन और भेद किए गए हैं—मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा। (दे० ये शब्द)

स्वकुलक्षय-संज्ञा पुं० [सं०] मछली (जो अपने वंश का आप ही नाश करती है।)

स्वच्छ-वि० दे० "स्वच्छ"। उ०—अति स्वच्छ सुंदर हेम फटिक की शिला गसि कै गली।—गुमान।

स्वगत-संज्ञा पुं० दे० "स्वगत कथन"।

क्रि० वि० आप ही आप (कहना या बोलना)। इस प्रकार (कहना या बोलना) जिसमें और कोई न सुन सके। अपने आप से।

स्वगत-कथन-संज्ञा पुं० [सं०] नाटक में पात्र का आप ही आप बोलना।

विशेष—जिस समय रंगमंच पर कई पात्र होते हैं, उस समय यदि उनमें से कोई पात्र अन्य पात्रों से छिपाकर इस प्रकार कोई बात कहता है, मानों वह किसी को सुनाना नहीं चाहता और न कोई उसकी बात सुनता ही है, तो ऐसे कथन को स्वगत, अश्राव्य या आत्मगत कहते हैं।

स्वगुप्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कौंछ। केवाँछ। (२) लजालू। लजाधू।

स्वगृह-संज्ञा पुं० [सं०] कलिकार नामक पक्षी।

स्वग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] बालकों को होनेवाला एक प्रकार का रोग।

स्वच्छंद-वि० [सं०] (१) जो किसी दूसरे के नियंत्रण में न हो और अपनी ही इच्छा के अनुसार सब कार्य करे। स्वाधीन। स्वतंत्र। आजाद। उ०—(क) सबहि भाँति अधिकार लहि अभिमानी नृप चंद। नाहिं सहिहै अपमान सब, राजा होइ स्वच्छंद।—हरिश्चंद्र। (ख) सुख सौं ऐसो मोद रमै रीतैं मन माहीं। विघ्न, ईरषा, अवधि रहित स्वच्छंद सदाहीं।—श्रीधर। (ग)......कुतुबुद्दीन ऐबक के समय तक यह स्वच्छंद राज्य था।—बालकृष्ण। (२) अपने इच्छानुसार चलनेवाला। मनमाना काम करनेवाला। निरंकुश। (३) (जंगलों आदि में) अपने आप से होनेवाला (पौधा या वनस्पति)।

संज्ञा पुं० स्कंद का एक नाम।

क्रि० वि० मनमाना। बेधड़क। निर्द्वंद। स्वतंत्रतापूर्वक।

उ०—(क) बालक रूप हैं के दसरथ सुत करत केलि स्वच्छंद।—सूर। (ख) इस पर्वत की रम्य जटी में मैं स्वच्छंद विचरता हूँ।—श्रीधर।

स्वच्छंदचारिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

स्वच्छंदचारी–वि० [सं० स्वच्छंदचारिन्] [स्त्री० स्वच्छंदचारिणी] अपने इच्छानुसार चलनेवाला। स्वेच्छाचारी। मनमौजी।

स्वच्छंदता–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वच्छंद होने का भाव। स्वतंत्रता। आजादी।

स्वच्छंद नायक–संज्ञा पुं० [सं०] सन्निपात ज्वर की एक औषध जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पारा, गंधक, लोहा और चाँदी बराबर बराबर लेकर हुहुहुद, सम्हालू, तुलसी, सफेद चीता, लाल चीता, अदरक, भाँग, हर्रे, मकोय और पंचपित्त में भावना दे, मूषा में बंद कर बालुका यंत्र में पाक करते हैं। इसकी मात्रा एक माशे की कही गई है।

स्वच्छंद भैरव–संज्ञा पुं० [सं०] उग्र सन्निपात ज्वर की एक औषध, जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पारा १ तोला, गंधक १ तोला, दोनों की कजली कर, उसमें शोधित स्वर्णमाक्षिक १ तोला मिलाते हैं; फिर क्रम से रुद्रजटा, सम्हालू, हर्रे, आँवला और विषकंडाली के रस (एक एक तोला) में घोटते हैं। इसकी मूँग के बराबर गोली बनती है।

स्वच्छ–वि० [सं०] (१) जिसमें किसी प्रकार की मैल या गंदगी आदि न हो। निर्मल। साफ। (२) उज्ज्वल। शुभ्र। (३) स्पष्ट। साफ़। (४) स्वस्थ। नीरोग। (५) शुद्ध। पवित्र। (६) निष्कपट।

संज्ञा पुं० (१) बिल्लौर। स्फटिक। (२) बेर। बदरी वृक्ष। (३) मोती। मुक्ता। (४) अभ्रक। अबरक। (५) सोना-मक्खी। स्वर्णमाक्षिक। (६) रूपामाखी। रौप्य माक्षिक। (७) विमल नामक उपधातु। (८) सोने और चाँदी का मिश्रण।

स्वच्छता–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वच्छ होने का भाव। निर्मलता। विशुद्धता। सफाई।

स्वच्छना–क्रि० स० [सं० स्वच्छ] निर्मल करना। शुद्ध करना। पवित्र करना। साफ करना। उ०—दंडक मुनि जात भोगी सुनि दिय शाप तिन। गिरि बालू दिन सात जरेउ देश सो स्वच्छिये।—विश्राम।

स्वच्छपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] अबरक। अभ्रक।

स्वच्छमणि–संज्ञा पुं० [सं०] बिल्लौर। स्फटिक।

स्वच्छवालुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] विमल नामक उपधातु।

स्वच्छा–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेतदूर्वा। सफेद दूब।

स्वच्छी–वि० दे० "स्वच्छ"। उ०—एक वृक्ष में सम द्वै पक्षी। फल भोगी इक दूजो स्वच्छी।—विचार-सागर।

स्वज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुत्र। बेटा। (२) खून। रक्त। (३) पसीना। स्वेद।

वि० अपने से उत्पन्न।

स्वजन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपने परिवार के लोग। आत्मीय जन। (२) सगे संबंधी। रिश्तेदार।

स्वजनता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वजन होने का भाव। आत्मीयता। (२) नातेदारी। रिश्तेदारी।

स्वजन्मा–वि० [सं० स्वजन्मन्] जो अपने आप उत्पन्न हुआ हो। अपने आप से उत्पन्न (ईश्वर आदि)। उ०—तुम अज्ञात सर्वज्ञ हो, तुम स्वजन्मा सब के कर्त्ता हो, तुम अनीश सब के ईश हो, एक सर्वरूप हो।—लक्ष्मण।

स्वजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या। पुत्री। बेटी।

स्वजात–वि० [सं०] अपने से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० पुत्र। बेटा।

स्वजाति–संज्ञा स्त्री० [सं०] अपनी जाति। अपनी क़ौम। जैसे,—उन्होंने अपनी कन्या का विवाह स्वजाति में न करके दूसरी जाति में किया।

स्वजातिद्विष्–संज्ञा पुं० [सं०] (अपनी जाति से द्वेष करनेवाला) कुत्ता।

स्वजातीय–वि० [सं०] (१) अपनी जाति का। अपने वर्ग का। जैसे,—अपने स्वजातियों के साथ खान पान करने में कोई हानि नहीं है। (२) एक ही वर्ग या जाति का। जैसे,—ये दोनों पौधे स्वजातीय हैं।

स्वतंत्र–वि० [सं०] (१) जो किसी के अधीन न हो। स्वाधीन। मुक्त। आज़ाद। जैसे,—(क) आयरलैंड पहले अँगरेजों के अधीन था, पर अब स्वतंत्र हो गया। (ख) नैपाल राज्य ने सब गुलामों को स्वतंत्र कर दिया। (२) अपने इच्छानुसार चलनेवाला। मनमानी करनेवाला। स्वेच्छाचारी। निरंकुश। जैसे,—यहाँ के राज्याधिकारी परम स्वतंत्र हैं, खूब मनमानी कर रहे हैं। उ०—परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावहि मनहिं करहु तुम्ह सोई।—तुलसी। (३) अलग। जुदा। भिन्न। पृथक्। जैसे,—(क) राजनीति का विषय ही स्वतंत्र है। (ख) इस पर एक स्वतंत्र लेख होना चाहिए। (४) किसी प्रकार के बंधन या नियम आदि से रहित अथवा मुक्त। जैसे,—वे स्वतंत्र विचार के मनुष्य हैं। (५) वयस्क। साला। बालिग।

स्वतंत्रता–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वतंत्र होने का भाव। स्वाधीनता। आजादी।

स्वतंत्री–वि० [सं० स्वतंत्रिन्] स्वाधीन। मुक्त। आजाद।

स्वतः–अव्य० [सं० स्वतस्] अपने आप। आप ही। जैसे,—(क) उसने मुझसे कुछ माँगा नहीं, मैंने स्वतः उसे दस रुपए दे दिए। (ख) वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए, इससे वे स्वतः नित्य

स्वरूप हैं। (ग) वेद ईश्वर-कृत होने के कारण स्वतः प्रमाण हैं। (घ) पक्षी का उड़ना स्वतः सिद्ध है।

स्वतोविरोध–संज्ञा पुं० [सं० स्वतः+विरोध] आप ही अपना विरोध या खंडन करना।

स्वतोविरोधी–संज्ञा पुं० [सं० स्वतः+विरोधी] अपना ही विरोध या खंडन करनेवाला। उ०—नास्तिकों के विषय में ऐसा नियम बनाना स्वतोविरोधी है, यह खुद ही अपना खंडन करता है।—द्विवेदी।

स्वत्व–संज्ञा पुं० [सं०] किसी वस्तु को पाने, पास रखने या व्यवहार में लाने की योग्यता जो न्याय और लोकरीति के अनुसार किसी को प्राप्त हो। किसी वस्तु को अपने अधिकार में रखने, काम में लाने या लेने का अधिकार। अधिकार। हक। जैसे,—(क) इस संपत्ति पर हमारा स्वत्व है। (ख) उन्होंने अपनी पुस्तक का स्वत्व बेच दिया। (ग) भारतवासी अपने स्वत्वों के लिये आंदोलन कर रहे हैं।

संज्ञा पुं० "स्व" का भाव। अपना होने का भाव। उ०—तृतीय यह कि जो स्वत्व, परत्व, नीच ऊँच का विचार त्याग कर समस्त जीवों पर समान द्रवीभूत हो।—श्रद्धाराम।

स्वत्वाधिकारी–संज्ञा पुं० [सं० स्वत्वाधिकारिन्] (१) वह जिसके हाथ में किसी विषय का पूरा स्वत्व हो। (२) स्वामी। मालिक।

स्वदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वाद लेना। आस्वादन। खाना। भक्षण। (२) लोहा।

स्वदेश–संज्ञा पुं० [सं०] वह देश जिसमें किसी का जन्म और पालन-पोषण हुआ हो। अपना और अपने पूर्वजों का देश। मातृभूमि। वतन।

स्वदेशी–वि० [सं० स्वदेशीय] (१) अपने देश का। अपने देश-संबंधी। जैसे,—स्वदेशी भाई। स्वदेशी उद्योग धंधा। स्वदेशी रीति। (२) अपने देश में उत्पन्न या बना हुआ। जैसे,—स्वदेशी वस्त्र। स्वदेशी औषध।

स्वधर्म–संज्ञा पुं० [सं०] अपना धर्म। अपना कर्त्तव्य। कर्म।

स्वधा–अव्य० [सं०] एक शब्द या मंत्र जिसका उच्चारण देवताओं या पितरों को हवि देने के समय किया जाता है।

विशेष—मनु के अनुसार श्राद्ध के उपरांत स्वधा का उच्चारण श्राद्धकर्ता के लिये बड़ा आशीर्वाद है।

संज्ञा स्त्री० (१) पितरों को दिया जानेवाला अन्न या भोजन। पितृ अन्न। उ०—मेरे पीछे पिंड का लोप देख मेरे पुरखे स्वधा इकट्ठी करने में लगे हुए, श्राद्ध में इच्छापूर्वक भोजन नहीं करते।—लक्ष्मण। (२) दक्ष की एक कन्या जो पितरों की पत्नी कही गई है।

स्वधाकर, स्वधाकार–वि० [सं०] श्राद्ध करनेवाला। श्राद्धकर्त्ता।

स्वधाधिप–संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

स्वधाप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) काला तिल।

स्वधाभुक्–संज्ञा पुं० [सं० स्वधाभुज्] (१) पितर। (२) देवता।

स्वधाभोजी–संज्ञा पुं० [सं० स्वधाभोजिन्] पितर। पितृगण।

स्वधाशन–संज्ञा पुं० [सं०] पितर। पितृगण।

स्वधिति–संज्ञा पुं० स्त्री० [सं०] (१) कुल्हाड़ी। कुठार। (२) वज्र।

स्वधिष्ठान–वि० [सं०] अच्छी स्थिति या स्थान से युक्त।

स्वधीत–वि० [सं०] अच्छी तरह पढ़ा हुआ। सम्यक् रूप से अध्ययन किया हुआ।

स्वनंदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

स्वन–संज्ञा पुं० [सं०] शब्द। ध्वनि। आवाज। उ०—सुरगन मिलि जय जय स्वन कीन्हा। असुरहि कृष्ण परम पद दीन्हा।—गोपाल।

स्वनचक्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का संभोग आसन या रतिबंध।

स्वनामा–वि० [सं० स्वनामन्] जो अपने नाम के कारण प्रसिद्ध हो। अपने नाम से विख्यात होनेवाला।

स्वनामधन्य–वि० [सं०] अपने नाम के कारण धन्य होनेवाला। जो अपने नाम के कारण धन्य हो। जैसे,—स्वनामधन्य पं० बाल गंगाधर तिलक।

स्वनि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शब्द। आवाज। (२) अग्नि। आग।

स्वनित–वि० [सं०] ध्वनित। शब्दित।

संज्ञा पुं० (१) शब्द। ध्वनि। आवाज। (२) मेघ गर्जन। बादलों की गड़गड़ाहट। (३) गर्जन। गरज।

स्वनिताह्वय–संज्ञा पुं० [सं०] चौलाई का शाक। तंडुलीय शाक।

स्वनोत्साह–संज्ञा पुं० [सं०] गैंडा। गंडक।

स्वपच‡–संज्ञा पुं० दे० "श्वपच"। उ०—स्वपच सवर खस जमन जड़ पावँर कोल किरात। राम कहत पावन परम होत भुवन विख्यात।—तुलसी।

स्वपन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नींद। निद्रा। (२) सपना। स्वप्न। ख्वाब।

स्वपना‡–संज्ञा पुं० दे० "सपना" या "स्वप्न"। उ०—स्वपना में ताहि राज मिलो है हाकिम हुकुम दोहाई। जाति परै कहुँ लाव न लसकर पलक खुले सुधि पाई।—कबीर।

स्वपनीय–वि० [सं०] निद्रा के योग्य। सोने लायक।

स्वपिंडा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंड खजूर। पिंड खजूरी।

स्वप्तव्य–वि० [सं०] निद्रा के योग्य।

स्वप्न–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोने की क्रिया या अवस्था। निद्रा। नींद। (२) निद्रावस्था में कुछ मूर्तियों, चित्रों और विचारों आदि की संबद्ध या असंबद्ध श्रृंखला का मन में आना। निद्रावस्था में कुछ घटना आदि दिखाई देना। जैसे,—इधर

कई दिनों से मैं भीषण स्वप्न देखा करता हूँ। (३) वह घटना आदि जो इस प्रकार निद्रित अवस्था में दिखाई दे अथवा मन में आवे। जैसे,—उन्होंने अपना सारा स्वप्न कह सुनाया।

विशेष—प्रायः पूरी नींद न आने की दशा में मन में अनेक प्रकार के विचार उठा करते हैं जिनके कारण कुछ घटनाएँ मन के सामने उपस्थित हो जाती हैं। इसी को स्वप्न कहते हैं। यद्यपि वास्तव में उस समय नेत्र बंद रहते हैं और इन बातों का अनुभव केवल मन को होता है, तथापि बोल चाल में इसके साथ "देखना" क्रिया का प्रयोग होता है।

(४) मन में उठनेवाली ऊँची कल्पना या विचार, विशेषतः ऐसी कल्पना या विचार जो सहज में कार्य्य रूप में परिणत न हो सके। जैसे,—आप तो बहुत दिनों से इसी प्रकार के स्वप्न देखा करते हैं।

स्वप्नक्–वि० [सं० स्वप्नज्] सोनेवाला। निद्राशील।

स्वप्नकृत–संज्ञा पुं० [सं०] शिरियारी। सुनिषण्णक शाक।

विशेष—कहते हैं, इस शाक के खाने से नींद आती है; इसी से इसका नाम स्वप्नकृत (नींद लानेवाला) पड़ा।

स्वप्नगृह–संज्ञा पुं० [सं०] सोने का कमरा। शयनागार। शयनगृह।

स्वप्नदर्शी–वि० [सं० स्वप्नदर्शिन्] (१) स्वप्न देखनेवाला। (२) बड़ी बड़ी कल्पनाएँ करनेवाला। मनमोदक खानेवाला।

स्वप्नदोष–संज्ञा पुं० [सं०] निद्रावस्था में वीर्यपात होना जो एक प्रकार का रोग माना जाता है।

विशेष—स्वप्नावस्था में स्त्री-प्रसंग या कोई कामोद्दीपक दृश्य देखकर दुर्बलेंद्रिय लोगों का प्रायः वीर्यपात हो जाता है। यह एक भयंकर रोग है जो अधिक स्त्री-प्रसंग या अस्वाभाविक कर्म से धातुक्षीणता होने के कारण होता है। कभी कभी बहुत गरम चीज खाने और कोष्ठबद्धता से भी स्वप्नदोष हो जाता है।

स्वप्ननंशन–संज्ञा पुं० [सं०] (निद्रा का नाश करनेवाले) सूर्य।

स्वप्ननिकेतन–संज्ञा पुं० [सं०] सोने का कमरा। शयनगृह। शयनागार।

स्वप्नस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] सोने का कमरा। शयनगृह। शयनागार।

स्वप्नाना⊛–क्रि० स० [सं० स्वप्न+आना (प्रत्य०)] स्वप्न देना। स्वप्न दिखाना। उ०—हारि गयो हीरा नहिं पायो। तब अंगद को हरि स्वप्नायो।—रघुराज।

स्वप्नालु–वि० [सं०] सोनेवाला। निद्राशील। निद्रालु।

स्वप्रकाश–वि० [सं०] जो आप ही प्रकाशमान् हो। जो अपने ही तेज से प्रकाशमान् हो।

स्वप्राकृतिक–वि० [सं०] जो बिना किसी कारण के स्वयं अपनी प्रकृति से ही हो। प्राकृतिक रूप से होनेवाला।

स्वप्रमितिक–वि० [सं०] जो बिना किसी की सहायता के अपना सारा काम स्वयं करता हो। जैसे,—सूर्य जो आप ही प्रकाश देता है।

स्वबरन⊛–संज्ञा पुं० दे० "सुवर्ण"।

स्वबीज–संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा।

स्वभद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गंभारी। गँभारी वृक्ष।

स्वभाउ⊛–संज्ञा पुं० दे० "स्वभाव"। उ०—सूर को स्वभाउ बिना युद्ध न करे बखान कायर ज्यौं कहा घर बैठे शोच हरिये।—हनुमन्नाटक।

स्वभाव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सदा बना रहनेवाला मूल या प्रधान गुण। तासीर। जैसे,—जल का स्वभाव शीतल होता है। (२) मन की प्रवृत्ति। मिजाज। प्रकृति। जैसे,—(क) उसका स्वभाव बड़ा कठोर है। (ख) कवि स्वभाव से ही सौंदर्य-प्रिय होते हैं। (ग) आजकल उनका स्वभाव कुछ बदल गया है। (३) आदत। बान। जैसे,—उसे लड़ने का स्वभाव पड़ गया है।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

स्वभावकृपण–संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा का एक नाम।

स्वभावज–वि० [सं०] जो स्वभाव या प्रकृति से उत्पन्न हुआ हो। प्राकृतिक। स्वाभाविक। सहज।

स्वभावतः–अव्य० [सं० स्वभावतस्] स्वभाव से। प्राकृतिक रूप से। सहज ही। जैसे,—कोई अन्याय होता हुआ देखकर मनुष्य को स्वभावतः क्रोध आ जाता है।

स्वभावसिद्ध–वि० [सं०] स्वभाव से ही होनेवाला। सहज। प्राकृतिक। स्वाभाविक। उ०—भ्रमपूर्ण बातों का संशोधन करने की योग्यता मनुष्य में स्वभावसिद्ध है।—द्विवेदी।

स्वभाविक–वि० दे० "स्वाभाविक"।

स्वभावोक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमें किसी की जाति या अवस्था आदि के अनुसार यथावत् और प्राकृतिक स्वरूप का वर्णन किया जाय। इसके दो भेद कहे गए हैं—सहज और प्रतिज्ञाबद्ध। जहाँ किसी विषय का बिलकुल सहज और स्वाभाविक वर्णन होता है, वहाँ सहज स्वभावोक्ति अलंकार होता है; और जहाँ अपने सहज स्वभाव के अनुसार प्रतिज्ञा या शपथ आदि के साथ कोई बात कही जाती है, वहाँ प्रतिज्ञाबद्ध स्वभावोक्ति होती है। उ०—(क) सीस मकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल। यहि बानिक मो उर बसौ सदा बिहारीलाल। (सहज) (ख) तोरौं छत्रक दंड जिमि तुव प्रताप बलनाथ। जौ न करौं प्रभु-पद सपथ पुनि न धरौं धनु हाथ। (प्रतिज्ञाबद्ध)

[illegible]

सूचना

हिन्दी शब्दसागर की इस ४०वीं संख्या में "हैमवत" तक के शब्द आ चुके हैं। अब "ह" के बहुत थोड़े शब्द रह गए हैं जो छप भी चुके हैं। यह निश्चय किया गया है कि इस शब्दसागर में जो शब्द किसी कारण से छूट गए हैं, वे अन्त में दे दिए जायँ। कोश-विभाग में आजकल इसी प्रकार के छूटे शब्दों का संग्रह हो रहा है, जो सम्भवतः इसी जून मास के अन्त तक समाप्त हो जायगा। अतः कोश के ग्राहकों, अनुग्राहकों तथा हिन्दी के अन्यान्य प्रेमियों से निवेदन है कि उनके ध्यान में जो शब्द इस कोश में छूटे हुए हों, उनकी सूची, यथासाध्य अर्थ और उदाहरण सहित बहुत शीघ्र नीचे लिखे पते पर भेज कर सभा को अनुगृहीत करें। ऐसे शब्द उपयुक्त समझे जाने पर इसी के अन्त में दे दिए जायँगे। सभा चाहती है कि ये छूटे हुए शब्द और भूमिका आदि शीघ्र ही प्रकाशित हो जायँ। अतः शब्द भेजनेवाले महानुभावों को शीघ्रता करनी चाहिए। आशा है कि दो या अधिक से अधिक तीन संख्याओं में यह कोश समाप्त हो जायगा।

श्यामसुन्दरदास,
सम्पादक शब्दसागर
नागरीप्रचारिणी सभा,
बनारस सिटी।

मुद्रक—गणपति कृष्ण गुर्जर, श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, जतनबर बनारस सिटी।

संकेताक्षरों का विवरण

अं० = अंगरेजी भाषा
अ० = अरबी भाषा
अनु० = अनुकरण शब्द
अने० = अनेकार्थनाममाला
अप० = अपभ्रंश
अयोध्या = अयोध्यासिंह उपाध्याय
अर्द्धमा० = अर्द्ध मागधी
अल्पा० = अल्पार्थक प्रयोग
अव्य० = अव्यय
आनंदघन = कवि आनंदघन
इब० = इबरानी भाषा
उ० = उदाहरण
उत्तरचरित = उत्तररामचरित
उप० = उपसर्ग
उभ० = उभयलिंग
कठ० उप० = कठवल्ली उपनिषद्
कबीर = कबीरदास
केशव = केशवदास
कोंक० = कोंकण देश की भाषा
क्रि० = क्रिया
क्रि० अ० = क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र० = क्रियाप्रयोग
क्रि० वि० = क्रियाविशेषण
क्रि० स० = क्रिया सकर्मक
क्व० = क्वचित् अर्थात् इसका प्रयोग बहुत कम देखने में आया है।
खानखा० = अब्दुर्रहीम खानखाना
गि० दा० या गि० दास = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर = गिरिधरदास (कुंडलियावाले)

गुमान = गुमान मिश्र
गोपाल = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
चरण = चरणचंद्रिका
चिंतामणि = कवि चिंतामणि त्रिपाठी
छीत = छीतस्वामी
जायसी = मलिक मुहम्मद जायसी
जावा० = जावा द्वीप की भाषा
ज्यो० = ज्योतिष
डिं० = डिंगल भाषा
तु० = तुरकी भाषा
तुलसी = तुलसीदास
तोष = कवि तोष
दादू = दादूदयाल
दीनदयालु = दीनदयालु गिरि
दूलह = कवि दूलह
दे० = देखो
देव = देव कवि (मैनपुरीवाले)
देश० = देशज
द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी
नागरी = नागरीदास
नाभा = नाभादास
निश्चल = निश्चलदास
पं० = पंजाबी भाषा
पद्माकर = पद्माकर भट्ट
पर्या० = पर्याय
पा० = पाली भाषा
पुं० = पुंलिंग
पु० हिं० = पुरानी हिन्दी
पुर्त० = पुर्तगाली भाषा

प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र
प्रत्य० = प्रत्यय
प्रा० = प्राकृत भाषा
प्रिया० = प्रियादास
प्रे० = प्रेरणार्थक
प्रे० सा० = प्रेमसागर
फ्रां० = फ्रांसीसी भाषा
फ़ा० = फ़ारसी भाषा
बँग० = बँगला भाषा
बरमी० = बरमी भाषा
बहु० = बहुवचन
बिहारी = कवि बिहारीलाल
बु० खं० = बुंदेलखंडी बोली
बेनी = कवि बेनी प्रवीन
भाव० = भाववाचक

लल्लूलाल
लश० = लशकरी भाषा अर्थात् हिंदुस्तानी जहाजियों की बोली
लाल = लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)
लै० = लैटिन भाषा
वि० = विशेषण
विश्राम = विश्रामसागर
व्यंग्यार्थ = व्यंग्यार्थकौमुदी
व्या० = व्याकरण
व्यास = अंबिकादत्त व्यास
शं० दि० = शंकर दिग्विजय
शृं० सत० = शृंगार सतसई
सं० = संस्कृत

मलूक = मलूकदास
मि० = मिलाओ
मुहा० = मुहाविरे
यू० = यूनानी भाषा
यौ० = यौगिक तथा दो या अधिक शब्दों के पद
रघु० दा० = रघुनाथदास
रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन
रघुराज = महाराज रघुराजसिंह रीवाँनरेश
रसखान = सैयद इब्राहीम
रसनिधि = राजा पृथ्वीसिंह
रहीम = अब्दुर्रहीम खानखानाँ

सबल = सबलसिंह चौहान
सभा वि० = सभाविलास
सर्व० = सर्वनाम
सुधाकर = सुधाकर द्विवेदी
सूदन = सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर = सूरदास
स्त्रि० = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री० = स्त्रीलिंग
स्पे० = स्पेनी भाषा
हिं० = हिंदी भाषा
हनुमान = हनुमन्नाटक
हरिदास = स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र = भारतेंदु हरिश्चंद्र

† यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्रांतिक है।
‡ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप ग्राम्य है।

स्वभू–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा का एक नाम। (२) विष्णु का एक नाम। (३) शिव का एक नाम।
वि० जो अपने आप से उत्पन्न हुआ हो। आप से आप होनेवाला।

स्वभूमि–संज्ञा पुं० [सं०] उग्रसेन के एक पुत्र का नाम। (विष्णुपुराण)

स्वमेक–संज्ञा पुं० [सं०] संवत्सर। वर्ष।

स्वयं–अव्य० [सं० स्वयम्] (१) खुद। आप। उ०—(क) मैं स्वयं तुम्हारे साथ चलकर देखूँगा कि इस पहली परीक्षा में कैसे उतरते हो। अयोध्या०। (ख) आप स्वयं अपनी कृपा से सब जीवों में प्रकाशित हूजिए।—दयानंद। (२) आप से आप। अपने ही से। खुद बखुद। जैसे,—आप के सब काम तो स्वयं ही हो जाते हैं।

स्वयंगुप्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] कौंछ। केवाँच।

स्वयंज्योति–संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर। परमात्मा।

स्वयंदत्त–संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो अपने माता-पिता के मर जाने अथवा उनके द्वारा परित्यक्त होने पर अपने आप को किसी के हाथ सौंप दे और उसका पुत्र बन जाय।

स्वयंदूत–संज्ञा पुं० [सं०] वह नायक जो अपना दूतत्व आप ही करे। नायिका पर अपनी कामवासना स्वयं ही प्रकट करनेवाला नायक। उ०—भयत हूँ ता दिन तो रघुनाथ की दोहाई जो दिन सों सुन्यो है मैं प्यारी तेरे नाम को। साई भयो सिद्धि भाग औचक मिली हौ मोहि ऐसी दुपहरी में चली हौ काहू काम को। यह वर माँगत हौं मेरे पर कृपा करि मेरी कही कीजै सुख दीजै तन छाम को। यह सुख ठाम को अराम को निहारो नेक मेरे कहे घरिक निवारि लीजै घाम को।—रघुनाथ।

स्वयंदूती–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह परकीया नायिका जो अपना दूतत्व आप ही करती हो। नायक पर स्वयं ही वासना प्रकट करनेवाली नायिका। उ०—ऐसे बने रघुनाथ कहे हरि कामकलानिधि के मद गारे। झाँकि झरोखे सों आवत देखि खरी भई आइके आपने द्वारे। रीझि सरूप सों भीजी सनेह सों बोली हरें रस आखर भारे। ठाढ़े हो सोसों कहौंगी कछू अरे ग्वाल बड़ी बड़ी आँखिनवारे।—सुंदरी सर्वस्व।

स्वयंपतित–वि० [सं०] जो आप से आप गिरे। जैसे,—वृक्ष से पक कर (आप से आप) गिरा हुआ फल।

स्वयंप्रकाश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो आप ही आप बिना किसी दूसरे की सहायता के प्रकाशित हो। उ०—(क) जो आप स्वयंप्रकाश और सूर्यादि तेजस्वी लोकों का प्रकाश करनेवाला है, इससे उस ईश्वर का नाम "तैजस" है।—सत्यार्थ०। (ख)........सो उस परम शक्तिमान् सर्वज्ञ स्वयंप्रकाश परमात्मा के समीप जाते ही प्रभ शक्ति से रहित काष्ठवत् मौन होके खड़ा रहा।—केनोपनिषद्। (२) परमात्मा। परमेश्वर।

स्वयंप्रभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जैनियों के अनुसार भावी २४ अर्हतों में से चौथे अर्हत् का नाम। (२) दे० "स्वयं-प्रकाश"।

स्वयंप्रभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की एक अप्सरा का नाम जिसे मय दानव हर लाया था और जिसके गर्भ से उसने मंदोदरी नामक कन्या उत्पन्न की थी। जब हनुमान आदि वानर सीता को ढूंढने निकले थे, तब मार्ग में एक गुफा में इससे उनकी भेंट हुई थी।

स्वयंप्रमाण–वि० [सं०] जो आप ही प्रमाण हो और जिसके लिये किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता न हो। जैसे,—वेद आदि स्वयंप्रमाण हैं।

स्वयंफल–वि० [सं०] जो आप ही अपना फल हो और किसी दूसरे कारण से न उत्पन्न हुआ हो।

स्वयंभु–संज्ञा पुं० [सं० स्वयम्भु] (१) ब्रह्मा। (२) वेद। (३) महादेव। शिव। (४) अज। (५) जैनियों के नौ वासुदेवों में से एक। (६) बनमूँग।
वि० जो आप से आप उत्पन्न हो। अपने आप पैदा होनेवाला।

स्वयंभुवा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्वयम्भुवा] (१) तमाकू का पत्ता। (२) शिवलिंगी नाम की लता। माषपर्णी। मसवन।

स्वयंभू–संज्ञा पुं० [सं० स्वयम्भू] (१) ब्रह्मा। (२) काल। (३) कामदेव। (४) विष्णु। (५) शिव। (६) माषपर्णी। मसवन। (७) शिवलिंगी नाम की लता। (८) दे० "स्वायंभुव"। उ०—बहुरि स्वयंभू मनु तप कीनो। ताहू को हरिजू वर दीनो।—सूर।
वि० जो आप से आप उत्पन्न हुआ हो।

स्वयंभूत–वि० [सं० स्वयम्भूत] जो आप से आप उत्पन्न हुआ हो। अपने आप पैदा होनेवाला।

स्वयंभोज–संज्ञा पुं० [सं०] राजा शिनि के एक पुत्र का नाम (भागवत)

स्वयंवर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन भारत का एक प्रसिद्ध विधान जिसमें विवाह योग्य कन्या कुछ उपस्थित व्यक्तियों में से अपने लिये स्वयं वर चुनती थी। उ०—(क) सीय स्वयंवर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छवि छाई।—तुलसी। (ख) जनक विदेह कियो [illegible] स्वयंवर ब[illegible] नृप विप्र बोलाये। तोरन धनुष देव त्र्यंबक को काहू यत[illegible] न पाये।—सूर। (ग) मारि ताड़का यज्ञ कराय[illegible] विश्वामित्र आनंद भयो। सीय स्वयंवर जानि सूर प्रभु को ऋषि लै ता ठौर गयो।—सूर।

विशेष—प्राचीन काल में भारतीय आर्यों विशेषतः क्षत्रियों या राजाओं में यह प्रथा थी कि जब कन्या विवाह के

योग्य हो जाती थी, तब उसकी सूचना उपयुक्त व्यक्तियों के पास भेज दी जाती थी, जो एक निश्चित समय और स्थान पर आकर एकत्र होते थे। उस समय वह कन्या इन उपस्थित व्यक्तियों में से जिसे अपने लिये उपयुक्त समझती थी, उसके गले में वरमाल या जयमाल डाल देती थी; और तब उसी के साथ उसका विवाह होता था। कभी कभी कन्या के पिता की ओर से, बल-परीक्षा के लिये, कोई शर्त भी लगा दी जाती थी; और वह शर्त पूरी करनेवाला ही कन्या के लिये उपयुक्त पात्र समझा जाता था। सीता जी और द्रौपदी का विवाह इसी प्रथा के अनुसार हुआ था। (२) वह स्थान जहाँ इस प्रकार लोगों को एकत्र करके कन्या के लिये वर चुना जाय।

स्वयंवरण-संज्ञा पुं० [सं०] कन्या का अपने इच्छानुसार अपने लिये पति मनोनीत करना। स्वयंवर। वि० दे० "स्वयंवर"। (१)

स्वयंवरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो अपने लिये स्वयं ही उपयुक्त वर को वरण करे। अपने इच्छानुसार अपना पति नियत करनेवाली स्त्री। पतिंवरा। वर्या। उ०—ये हम लोगों के देश की प्राचीन स्वयंवरा थीं।—हिंदीप्रदीप।

स्वयंवह-संज्ञा पुं० [सं०] वह बाजा जो चाबी देने से आप से आप बजे। जैसे,—अरगन आदि।

वि० स्वयं अपने आपको धारण करनेवाला। जो आप ही अपने आप को वहन करे।

स्वयंविक्रीत-वि० [सं०] (दास आदि) जिसने स्वयं ही अपने आप को बेचा हो।

स्वयंश्रेष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

स्वयंसिद्ध-वि० [सं०] (१) (बात) जो आप ही आप सिद्ध हो। जिसकी सिद्धि के लिये और किसी तर्क, प्रमाण या उपकरण आदि की आवश्यकता न हो। जैसे,—आग से हाथ जलता है, यह तो स्वयंसिद्ध बात है। (२) जिसने आप ही सिद्धि प्राप्त की हो। जो बिना किसी की सहायता के सिद्ध या सफल हुआ हो।

स्वयंसेवक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० स्वयंसेविका] वह जो बिना किसी पुरस्कार या वेतन के किसी कार्य में अपनी इच्छा से योग दे। स्वेच्छासेवक।

स्वयंहारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दुःसह की पत्नी निर्माष्टि के गर्भ से उत्पन्न आठ कन्याओं में से एक। कहते हैं कि यह भोजनशाला में से अधपका अन्न, गौ के स्तन में से दूध, तिलों में से तेल, कपास में से सूत आदि हरण कर ले जाती है, इसी से इसका यह नाम पड़ा।

स्वयमर्जित-संज्ञा पुं० [सं०] वह धन-संपत्ति जो स्वयं उपार्जित की गई हो और जिसमें अपने किसी संबंधी या दायाद आदि को कोई हिस्सा न देना पड़े। खास अपनी कमाई हुई दौलत। (स्मृति)

स्वयमीश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर। परमात्मा।

स्वयमुक्ति-संज्ञा पुं० [सं०] पाँच प्रकार के साक्षियों में से एक प्रकार का साक्षी। वह साक्षी जो बिना वादी या प्रतिवादी के बुलाए स्वयं ही आकर किसी घटना या व्यवहार आदि के संबंध में कुछ कहे। (व्यवहार)

स्वयमेव-क्रि० वि० [सं०] आप ही आप। खुद ही। स्वयं ही।

स्वयोनि-वि० [सं०] जो अपना कारण अथवा अपनी उत्पत्ति का स्थान आप ही हो।

स्वर्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग। (२) परलोक। (३) आकाश।

स्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राणी के कंठ से अथवा किसी पदार्थ पर आघात पड़ने के कारण उत्पन्न होनेवाला शब्द, जिसमें कुछ कोमलता, तीव्रता, मृदुता, कटुता, उदात्तता, अनुदात्तता आदि गुण हों। जैसे,—(क) मैंने आप के स्वर से ही आप को पहचान लिया था। (ख) दूर से कोयल का स्वर सुनाई पड़ा। (ग) इस छड़ को ठोंकने पर कैसा अच्छा स्वर निकलता है। उ०—लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गावै।—तुलसी। (२) संगीत में वह शब्द जिसका कोई निश्चित रूप हो और जिसकी कोमलता या तीव्रता अथवा उतार चढ़ाव आदि का, सुनते ही, सहज में अनुमान हो सके। सुर। उ०—चारों भ्रातन श्रमित जानि कै जननी तब पौढ़ाये। चांपत चरण जननि अप अपनी कछुक मधुर स्वर गाये।—सूर।

विशेष—यों तो स्वरों की कोई संख्या बतलाई ही नहीं जा सकती, परंतु फिर भी सुभीते के लिये सभी देशों और सभी कालों में सात स्वर नियत किए गए हैं। हमारे यहाँ इन सातों स्वरों के नाम क्रम से षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद रखे गए हैं जिनके संक्षिप्त रूप सा, रे, ग, म, प, ध, और नि हैं। वैज्ञानिकों ने परीक्षा करके सिद्ध किया है कि किसी पदार्थ में २५६ बार कंप होने पर षड्ज, २९८$\frac{2}{3}$ बार होने पर ऋषभ, ३२० बार होने पर गांधार स्वर उत्पन्न होता है; और इसी प्रकार बढ़ते बढ़ते ४८० बार कंप होने पर निषाद स्वर निकलता है। तात्पर्य्य यह कि कंपन जितना ही अधिक और जल्दी जल्दी होता है, स्वर भी उतना ही ऊँचा चढ़ता जाता है। इस क्रम के अनुसार षड्ज से निषाद तक सातों स्वरों के समूह को सप्तक कहते हैं। एक सप्तक के उपरांत दूसरा सप्तक चलता है, जिसके स्वरों की कंपन-संख्या इस संख्या से दूनी होती है। इसी प्रकार तीसरा और चौथा सप्तक भी होता है। यदि प्रत्येक स्वर की कंपन-संख्या नियत से आधी हो, तो स्वर बराबर नीचे होते जायँगे और उन स्वरों

का समूह नीचे का सप्तक कहलावेगा। हमारे यहाँ यह भी माना गया है कि ये सातों स्वर क्रमशः मोर, गौ, बकरी, क्रौंच, कोयल, घोड़े और हाथी के स्वर से लिए गए हैं, अर्थात् ये सब प्राणी क्रमशः इन्हीं स्वरों में बोलते हैं; और इन्हीं के अनुकरण पर स्वरों की यह संख्या नियत की गई है। भिन्न भिन्न स्वरों के उच्चारण-स्थान भी भिन्न भिन्न कहे गए हैं। जैसे,—नासा, कंठ, उर, तालु, जीभ और दाँत इन छः स्थानों में उत्पन्न होने के कारण पहला स्वर षड्ज कहलाता है। जिस स्वर की गति नाभि से सिर तक पहुँचे, वह ऋषभ कहलाता है, आदि। ये सब स्वर गले से तो निकलते ही हैं, पर बाजों से भी उसी प्रकार निकलते हैं। इन सातों स्वरों में से सा और प तो शुद्ध स्वर कहलाते हैं, क्योंकि इनका कोई भेद नहीं होता; पर शेष पाँचों स्वर कोमल और तीव्र दो प्रकार के होते हैं। प्रत्येक स्वर दो दो तीन तीन भागों में बँटा रहता है, जिनमें से प्रत्येक भाग "श्रुति" कहलाता है।

मुहा०—स्वर उतारना = स्वर नीचा या धीमा करना। स्वर चढ़ाना = स्वर ऊँचा या तेज करना। स्वर निकालना = स्वर उत्पन्न करना। स्वर भरना = अभ्यास के लिये किसी एक ही स्वर का कुछ समय तक उच्चारण करना। स्वर मिलाना = किसी सुनाई पड़ते हुए स्वर के अनुसार स्वर उत्पन्न करना।

(३) व्याकरण में वह वर्णात्मक शब्द जिसका उच्चारण आप से आप स्वतंत्रतापूर्वक होता है और जो किसी व्यंजन के उच्चारण में सहायक होता है। हिंदी वर्णमाला में ११ स्वर हैं—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ और औ। (४) वेदपाठ में होनेवाले शब्दों का उतार चढ़ाव। (५) नासिका में से निकलनेवाली वायु या श्वास।

संज्ञा पुं० [सं० स्वर्] आकाश। उ०—परब्रह्म अरु जीव जो महानाद स्वरधारि। पंचम बिंदु पहरु अमर माया दिव्य निहारि।—विश्राम।

स्वरकर–संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिसके सेवन से गले का स्वर तीव्र और सुंदर होता है।

स्वरक्षय–संज्ञा पुं० दे० "स्वरभंग"।

स्वरक्षु–संज्ञा स्त्री० [सं०] वक्षु महानदी का एक नाम।

विशेष—मार्कंडेयपुराण में लिखा है कि जब भगीरथ गंगा को स्वर्ग से इस लोक में लाए, तब उसकी चार धाराएँ हो गईं। उन्हीं में से एक धारा मेरु पर्वत के पश्चिमी भाग में चली गई जो स्वरक्षु या वक्षु कहलाती है।

स्वरग–संज्ञा पुं० दे० "स्वर्ग"। उ०—धरती सेत स्वरग लहि बाढ़ा। सकल समुँद जानो भा ठाढ़ा।—जायसी।

स्वरघ्न–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार वायु के प्रकोप से होनेवाला गले का एक रोग जिसमें गला सूखता है, आवाज बैठ जाती है, खाए हुए पदार्थ जल्दी गले के नीचे नहीं उतरते और श्वासवाहिनी नाड़ी दूषित हो जाती है।

स्वरता–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर का भाव या धर्म। स्वरत्व।

स्वरनादी–संज्ञा पुं० [सं० स्वरनादिन्] वह बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता हो। (संगीत)

स्वरनाभि–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता था।

स्वरपत्तन–संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद।

स्वरप्रधान–संज्ञा पुं० [सं०] राग का एक प्रकार। वह राग जिसमें स्वर का ही आग्रह या प्रधानता हो, ताल की प्रधानता न हो।

स्वरभंग–संज्ञा पुं० [सं०] आवाज का बैठना जो वैद्यक के अनुसार एक रोग माना गया है। कहा गया है कि बहुत जोर जोर से बोलने या पढ़ने, विष पान करने, गले पर भारी आघात लगने या शीत आदि के कारण वायु कुपित होकर स्वर-नालों में प्रविष्ट हो जाती है, जिससे ठीक ठीक स्वर नहीं निकलता। इसी को स्वरभंग कहते हैं।

स्वरभंगी–संज्ञा पुं० [सं० स्वरभंगिन्] (१) वह जिसे स्वरभंग रोग हुआ हो। वह जिसका गला बैठ गया हो और मुँह से साफ आवाज न निकलती हो। (२) एक प्रकार का पक्षी।

स्वरभानु–संज्ञा पुं० [सं०] सत्यभामा के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के दस पुत्रों में से एक पुत्र का नाम।

स्वरभाव–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में भाव के चार भेदों में से एक। बिना अंग संचालन किए केवल स्वर से ही दुःख सुख आदि का भाव प्रकट करना।

स्वरभेद–संज्ञा पुं० [सं०] गला या आवाज बैठ जाना। स्वरभंग।

स्वरमंडल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वाद्य जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते हैं।

स्वरमंडलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की वीणा।

स्वरनासिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] बंसी या मुरली नाम का बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता है।

स्वरवाही–संज्ञा पुं० [सं० स्वरवाहिन्] वह बाजा जिसमें से केवल स्वर निकलता हो और जो ताल आदि का सूचक न हो।

स्वरवेधी–संज्ञा पुं० दे० "शब्दवेधी"। उ०—स्वरवेधी सब शास्त्र विशारद बेधक लक्ष विहीना। परमुख पेखि न पद्महु महारत कर लाघव लवलीना।—रामस्वयंवर।

स्वरशास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें स्वर संबंधी सब बातों का विवेचन हो। स्वर-विज्ञान।

स्वरसंक्रम–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में स्वरों का आरोह और अवरोह। स्वरों का उतार और चढ़ाव।

स्वरस–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार पत्ती आदि को भिगोकर और अच्छी तरह कूट, पीस और छानकर निकाला हुआ रस।

स्वरसमुद्र–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे।

स्वरसा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कपित्थ पत्रक नाम की ओषधि। (२) लाख। लाह।

स्वरसाद–संज्ञा पुं० [सं०] गला बैठ जाना। स्वरभंग।

स्वरसादि–संज्ञा पुं० [सं०] ओषधियों को पानी में औटाकर तैयार किया हुआ काढ़ा। कषाय।

स्वरसाम–संज्ञा पुं० [सं० स्वरसामन्] एक साम का नाम।

स्वरांत–वि० [सं०] (शब्द) जिसके अंत में कोई स्वर हो। जैसे,—माला, टोपी।

स्वरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्रह्मा की बड़ी पत्नी का नाम जो गायत्री की सपत्नी कही गई है।

स्वराज्य–संज्ञा पुं० [सं०] वह राज्य जिसमें कोई राष्ट्र या किसी देश के निवासी स्वयं ही अपना शासन और अपने देश का सब प्रबंध करते हों। अपना राज्य।

स्वराट्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) ईश्वर। (३) एक प्रकार का वैदिक छंद। (४) वह वैदिक छंद जिसके सब पादों में मिलकर नियमित वर्णों में दो वर्ण कम हों। (५) वह राजा जो किसी ऐसे राज्य का स्वामी हो, जिसमें स्वराज्य शासन प्रणाली प्रचलित हो। उ०—जो पिता के सदृश सब प्रकार से हमारा पालन करनेवाला स्वराट् .... ।—दयानंद।

वि० जो स्वयं प्रकाशमान हो और दूसरों को प्रकाशित करता हो। उ०—जो सर्वत्र व्याप्त अविनाशी (स्वराट्) स्वयं प्रकाश रूप और (कालाग्नि) प्रलय में सब का काल और काल का भी काल है, इसलिये परमेश्वर का नाम कालाग्नि है।—सत्यार्थप्र०।

स्वरापगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश गंगा। मंदाकिनी।

स्वरामक–संज्ञा पुं० [सं०] अखरोट का वृक्ष।

स्वरालु–संज्ञा पुं० [सं०] वचा या वच नाम की ओषधि।

स्वराष्टक–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार का संकर राग जो बंगाली, भैरव, गांधार, पंचम और गुर्जरी के मेल से बनता है।

स्वराष्ट्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपना राष्ट्र या राज्य। (२) प्राचीन सुराष्ट्र नामक देश का एक नाम। (३) तामस मनु के पिता का नाम जो पुराणानुसार एक सार्वभौम और प्रसिद्ध राजा थे और जिन्होंने बहुत से यज्ञादि किए थे।

स्वरित–संज्ञा पुं० [सं०] उच्चारण के अनुसार स्वर के तीन भेदों में से एक। वह स्वर जिसमें उदात्त और अनुदात्त दोनों गुण हों। वह स्वर जिसका उच्चारण न बहुत जोर से हो और न बहुत धीरे से। मध्यम रूप से उच्चरित स्वर।

वि० (१) जिसमें स्वर हो। स्वर से युक्त। (२) गूँजता हुआ।

स्वरित्व–संज्ञा पुं० [सं०] स्वरित का भाव या धर्म।

स्वरु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वज्र। (२) यज्ञ। (३) बाण। तीर। (४) सूर्य की किरण। (५) एक प्रकार का बिच्छू।

स्वरुचि–वि० [सं०] जो सब काम अपनी रुचि के अनुसार करे। स्वतंत्र। स्वाधीन। आज़ाद।

स्वरूप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकार। आकृति। शक्ल। उ०—

अपने अंश आप हरि प्रकटे पुरुषोत्तम निज रूप।
नारायण भुव भार हरो है अति आनंद स्वरूप।—सूर।

(२) मूर्ति या चित्र आदि। उ०—हिय में स्वरूप सेवा करि अनुराग भरे ढरे ओर जीवनि की जीवन को दीजिए।—नाभा। (३) देवताओं आदि का धारण किया हुआ रूप। (४) वह जो किसी देवता का रूप धारण किए हो। (५) पंडित। विद्वान्। (६) स्वभाव। (७) आत्मा।

वि० (१) सुंदर। खूबसूरत। (२) तुल्य। समान। उ०—इतनि रूप भइ कन्या जेहि स्वरूप नहिं कोय। धन्य सुदेस रुपवंता जहाँ जनम अस होय।—जायसी।

अव्य० रूप में। तौर पर। जैसे,—उन्होंने प्रमाण-स्वरूप महाभारत का एक श्लोक कह सुनाया।

विशेष—इस अर्थ में यह यौगिक शब्दों के अंत में ही आता है। जैसे,—आधार-स्वरूप।

संज्ञा पुं० दे० "सारूप्य"। उ०—हम सालोक्य स्वरूप सरोज्यो रहत समीप सहाई। सो तजि कहत और की औरै तुम अलि बड़े अदाई।—सूर।

स्वरूपज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो परमात्मा और आत्मा का स्वरूप पहचानता हो। तत्वज्ञ। उ०—...क्योंकि वह अपने स्वरूपज्ञों पर किस नाते दत्तचित्त होगा?—हरिश्चंद्र।

स्वरूपता–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वरूप का भाव या धर्म।

स्वरूपदया–संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार दया वह या जीव-रक्षा जो इहलोक और परलोक में सुख पाने के लिये लोगों की देखादेखी की जाय। यद्यपि यह ऊपर से देखने में दया ही जान पड़ती है, परंतु वास्तव में मन के भाव से नहीं बल्कि स्वार्थ के विचार से होती है।

स्वरूप प्रतिष्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जीव का अपनी स्वाभाविक शक्तियों और गुणों से युक्त होना।

स्वरूपमान–संज्ञा पुं० [सं० स्वरूपवत्] स्वरूपवान्। सुंदर। खूबसूरत। उ०—और स्वरूपमान लोगों के सहस्रों लघु लघु समूह उडुगणों की भाँति यत्र तत्र छिटके हुए थे।—अयोध्या०।

स्वरूपवान्–वि० [सं० स्वरूपवत्] [स्त्री० स्वरूपवती] जिसका स्वरूप

अच्छा हो। सुंदर। खूबसूरत। उ०—अर्थात् उस परम अद्भुत विशेष स्वरूपवान् परमात्मा के...।—केनोपनिषद्।

स्वरूप-संबंध-संज्ञा पुं० [सं०] वह संबंध जो किसी के परस्पर ठीक अनुरूप होने के कारण स्थापित होता है।

स्वरूपाभास-संज्ञा पुं० [सं०] कोई वास्तविक स्वरूप न होने पर भी उसका आभास दिखाई देना। जैसे,—गंधर्वनगर, जिसका वास्तव में कोई स्वरूप नहीं होता, पर फिर भी स्वरूपाभास होता है।

स्वरूपी-वि० [सं० स्वरूपिन्] (१) स्वरूपवाला। स्वरूपयुक्त। उ०—नमो नमो गुरुदेव जू, साधु स्वरूपी देव। आदि अंत गुण काल के, जाननहारे भेव।—कबीर। (२) जो किसी के स्वरूप के अनुसार हो, अथवा जिसने किसी का स्वरूप धारण किया हो। उ०—ज्योति स्वरूपी हाकिमा जिन अमल पसारा हो।—कबीर।

संज्ञा पुं० दे० "सारूप्य"।

स्वरूपोपनिषद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

स्वरेणु-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पत्नी संज्ञा का एक नाम।

स्वरोचिस्-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार स्वारोचिष् मनु के पिता का नाम जो कलि नामक गंधर्व के पुत्र थे और वरूथिनी नाम की अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

स्वरोद-संज्ञा पुं० [सं० स्वरोदय] एक प्रकार का बाजा जिसमें बजाने के लिए तार लगे होते हैं।

स्वरोदय-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसके द्वारा इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना आदि नाड़ियों के श्वासों के द्वारा सब प्रकार के शुभ और अशुभ फल जाने जाते हैं। दाहिने और बाएँ नथने से निकलते हुए श्वासों को देखकर शुभ और अशुभ फल कहने की विद्या।

स्वर्गंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की नदी, मंदाकिनी।

स्वर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिन्दुओं के सात लोकों में से तीसरा लोक जो ऊपर आकाश में सूर्यलोक से लेकर ध्रुवलोक तक माना जाता है। किसी किसी पुराण के अनुसार यह सुमेरु पर्वत पर है। देवताओं का निवासस्थान यही स्वर्गलोक माना गया है और कहा गया है कि जो लोग अनेक प्रकार के पुण्य और सत्कर्म करके मरते हैं, उनकी आत्माएँ इसी लोक में जाकर निवास करती हैं। यज्ञ, दान आदि जितने पुण्य कार्य्य किए जाते हैं, वे सब स्वर्ग की प्राप्ति के उद्देश्य से ही किए जाते हैं। कहते हैं कि इस लोक में केवल सुख ही सुख है; दुःख, शोक, रोग, मृत्यु आदि का नाम भी नहीं है। जो प्राणी जितने ही अधिक सत्कर्म करता है, वह उतने ही अधिक समय तक इस लोक में निवास करने का अधिकारी होता है। परंतु पुण्यों का क्षय हो जाने अथवा अवधि पूरी हो जाने पर जीव को फिर कर्म्मानुसार शरीर धारण करना पड़ता है; और यह क्रम तब तक चलता रहता है, जब तक उसकी मुक्ति नहीं हो जाती। यहाँ अच्छे अच्छे फलोंवाले वृक्षों, मनोहर वाटिकाओं और अप्सराओं आदि का निवास माना जाता है। स्वर्ग की कल्पना नरक की कल्पना के बिलकुल विरुद्ध है। उ०—(क) असन बसन पसु वस्तु विविधि विधि सब मनि महँ रहु जैसे। स्वर्ग नरक चर अचर लोक बहु बसत मध्य मन तैसे।—तुलसी। (ख) स्वर्ग-भूमि पाताल के, भोगहिं सर्व समाज। शुभ संतति निज तेजबल, करत राज के काज।—निश्चल। (ग)... देवकी के आठवें गर्भ में लड़का होगा, सो न हो लड़की हुई; वह भी हाथ से छूट स्वर्ग को गई।—लल्लू।

विशेष—प्रायः सभी धर्म्मों, देशों और जातियों में स्वर्ग और नरक की कल्पना की गई है। ईसाइयों के अनुसार स्वर्ग ईश्वर का निवास-स्थान है और वहाँ फरिश्ते तथा धर्मात्मा लोग अनंत सुख का भोग करते हैं। मुसलमानों का स्वर्ग बिहिश्त कहलाता है। मुसलमान लोग भी बिहिश्त को खुदा और फरिश्तों के रहने की जगह मानते हैं और कहते हैं कि दीनदार लोग मरने पर वहीं जायँगे। उनका बिहिश्त इंद्रिय-सुख की सब प्रकार की सामग्री से परिपूर्ण कहा गया है। वहाँ दूध और शहद की नदियाँ तथा समुद्र हैं, अंगूरों के वृक्ष हैं और कभी वृद्ध न होनेवाली अप्सराएँ हैं। यहूदियों के यहाँ तीन स्वर्गों की कल्पना की गई है।

पर्य्या०—स्वर्। नाक। त्रिदिव। त्रिदशालय। सुरलोक। द्यौ। मन्दर। देवलोक। ऊर्द्ध्वलोक। शक्रभुवन।

मुहा०—स्वर्ग के पंथ पर पैर देना=(१) मरना। (२) जान जोखिम में डालना। उ०—कहाँ सो तोहिं सिंहलगढ़ है खंड सात चढ़ाव। फेरि न कोई जीति जिय स्वर्ग पंथ दे पाव।—जायसी। स्वर्ग जाना या सिधारना=मरना। देहान्त होना। जैसे,—वे तीस ही वर्ष की अवस्था में स्वर्ग सिधारे। (किसी की मृत्यु पर उसके सम्मानार्थ उसका स्वर्ग जाना या सिधारना कहा जाता है।) उ०—बहुते भँवर बवंडर भये। पहुँच न सके स्वर्ग कहँ गये।—जायसी।

यौ०—स्वर्ग सुख=बहुत अधिक और उच्च कोटि का सुख। वैसा सुख जैसा स्वर्ग में मिलता है। जैसे,—मुझे तो केवल अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़ने में ही स्वर्ग सुख मिलता है।

यौ०—स्वर्ग की धार=आकाश गंगा। उ०—नासिक खीन स्वर्ग की धारा। खीन लंक जनु केहर हारा।—जायसी।

(२) ईश्वर। उ०—न जनौं स्वर्ग बात धौं काहा। कहूँ न आय कही फिर चाहा।—जायसी। (३) सुख। (४) वह स्थान जहाँ स्वर्ग का सुख मिले। बहुत अधिक आनंद का स्थान। (५) आकाश। उ०—(क) हाँ तेहि दीप पतंग होइ परा। जिव जिमि काढ़ स्वर्ग लै धरा।—जायसी। (ख)

लाक्षागृह पावक तब जारा। लागी जाय स्वर्ग सों धारा। —सबल। (६) प्रलय। (क०) उ०—भा परलै अस सबहीं जाना। काढ़ा स्वर्ग स्वर्ग नियराना।—जायसी।

स्वर्गकाम–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो स्वर्ग की कामना रखता हो। स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा रखनेवाला।

स्वर्गगति–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग जाना। मरना।

स्वर्गगमन–संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग सिधारना। मरना।

स्वर्गगामी–वि० [सं० स्वर्गगामिन्] (१) स्वर्ग की ओर गमन करनेवाला। स्वर्ग जानेवाला। (२) जो स्वर्ग की ओर गमन कर चुका हो। मरा हुआ। मृत। स्वर्गीय।

स्वर्गत–वि० [सं०] जो स्वर्ग चला गया हो। स्वर्गगत। मरा हुआ। स्वर्गीय।

स्वर्गतरंगिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की नदी मंदाकिनी।

स्वर्गतरु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कल्पतरु वृक्ष। (२) पारिजात। परजाता।

स्वर्गति–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की ओर जाने की क्रिया। स्वर्ग-गमन।

स्वर्गद–वि० [सं०] जो स्वर्ग पहुँचता हो। स्वर्ग देनेवाला। उ०—(क) सतगुण, रजगुण तमोगुण प्रयविधि के सुनिवाच। मोक्षद स्वर्गद सुखद हैं घरिहीं सुलमद साँच।—विश्राम। (ख) स्वर्गद नर्कद कर्म अनंता। साधन सकल कहाँ मतिवंता।—रघुराज।

स्वर्गदायक–वि० दे० "स्वर्गद"।

स्वर्गधेनु–संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु।

स्वर्गनदी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्वर्ग+नदी] आकाशगंगा। उ०—पद्मपाद सुनि गुरु आदेशा। स्वर्गनदी महँ कीन्ह प्रवेशा।—शंकरदिग्वि०।

स्वर्गपति–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

स्वर्गपुरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की पुरी अमरावती।

स्वर्गपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] लौंग।

स्वर्गभूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम जो वाराणसी के पश्चिम ओर था। कहते हैं कि इसी स्थान पर भगवती ने दुर्ग नामक राक्षस का नाश किया था जिसके कारण उनका नाम दुर्गा पड़ा था।

स्वर्गमंदाकिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्गगंगा। मंदाकिनी।

स्वर्गमन–संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग जाना। स्वर्ग-गमन। मरना।

स्वर्गयोनि–संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ, दान आदि वे शुभ कर्म जिनके कारण मनुष्य स्वर्ग जाता है।

स्वर्गलाभ–संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग की प्राप्ति। स्वर्ग पहुँचना। मरना।

स्वर्गलोक–संज्ञा पुं० दे० "स्वर्ग" (१)।

स्वर्गलोकेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग के स्वामी, इंद्र। (२) शरीर। तन।

स्वर्गवधू–संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

स्वर्गवाणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्वर्ग+वाणी] आकाशवाणी। उ०—वेद वचन से कन्या भयऊ। वेदन स्वर्गवाणि सो किअऊ। सबल।

स्वर्गवास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग में निवास करना। स्वर्ग में रहना। (२) स्वर्ग को प्रस्थान करना। मरना। जैसे,—परसों उनके पिता का स्वर्गवास हो गया।

स्वर्गवासी–वि० [सं० स्वर्गवासिन्] [स्त्री० स्वर्गवासिनी] (१) स्वर्ग में रहनेवाला। (२) जो मर गया हो। मृत। जैसे,—स्वर्गवासी राजा शिवप्रसाद जी।

स्वर्गसार–संज्ञा पुं० [सं०] चतुर्दश ताल के चौदह भेदों में से एक। (संगीत)

स्वर्गस्त्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

स्वर्गस्थ–वि० [सं०] (१) स्वर्ग में स्थित। स्वर्ग का। (२) जो मर गया हो। मृत। स्वर्गवासी।

स्वर्गापगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्गगा। मंदाकिनी।

स्वर्गामी–वि० [सं० स्वर्गामिन्] जो स्वर्ग चला गया हो। स्वर्गगामी।

स्वर्गारूढ़–वि० [सं०] स्वर्ग सिधारा हुआ। स्वर्ग पहुँचा हुआ। मृत। स्वर्गवासी।

स्वर्गारोहण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग की ओर जाना या चढ़ना। (२) स्वर्ग सिधारना। मरना।

स्वर्गावास–संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग में निवास करना। स्वर्गवास।

स्वर्गिगिरि–संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत, जिसके शृंग पर स्वर्ग की स्थिति मानी जाती है।

स्वर्गिवधू–संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

स्वर्गी–वि० [सं० स्वर्गिन्] (१) स्वर्ग का निवासी। स्वर्गवासी। (२) स्वर्गगामी।

संज्ञा पुं० देवता।

स्वर्गीय–वि० [सं०] [स्त्री० स्वर्गीया] (१) स्वर्ग-संबंधी। स्वर्ग का। जैसे,—मुझे एकांत-वास में स्वर्गीय सुख प्राप्त होता है। (२) जिसका स्वर्गवास हो गया हो। जो मर गया हो। जैसे,—स्वर्गीय भारतेंदु जी। उ०—श्रीमान्, स्मृतिमंदिर बनवाकर स्वर्गीया महारानी विक्टोरिया का ऐसा स्मारक बनवा देंगे।—शिवशंभु।

स्वर्चन–संज्ञा पुं० [सं०] वह अग्नि जिसमें से सुंदर ज्वाला निकलती हो।

स्वर्जक्षार–संज्ञा पुं० [सं०] सर्जिक्षार। सज्जी मिट्टी।

स्वर्जादि घृत–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का घृत जो गौ के घी में सज्जी, जवाखार, कसीला, मेंहदी, सुहागा और

सफेद कत्थे के चूर्ण को खरल करने से बनता है। कहते हैं कि इसे घाव पर लगाने से उसमें के कीड़े मर जाते हैं, सूजन कम हो जाती है और वह जल्दी भर जाता है।

स्वर्जि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सज्जी मिट्टी। (२) शोरा।

स्वर्जिक–संज्ञा पुं० [सं०] सज्जी मिट्टी।

स्वर्जिकाक्षार–संज्ञा पुं० [सं०] सज्जी मिट्टी।

स्वर्जिकाद्य तैल–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो तिल के तेल में सज्जी, मूली, हींग, पीपल और सोंठ आदि औटा कर बनाया जाता है। यह तेल कान के दर्द और बहरेपन आदि के लिये उपयोगी माना जाता है।

स्वर्जिकापाक्य–संज्ञा पुं० [सं०] सज्जी मिट्टी।

स्वर्जित्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने स्वर्ग पर विजय प्राप्त कर ली हो। स्वर्गजेता। (२) एक प्रकार का यज्ञ।

स्वर्जित–संज्ञा पुं० [सं० स्वर्जित्] एक प्रकार का यज्ञ।

स्वर्जी–संज्ञा पुं० [सं० स्वर्जिन्] सज्जी मिट्टी।

स्वर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुवर्ण या सोना नामक बहुमूल्य धातु। (२) धतूरा। (३) गौरसुवर्ण नाम का साग। (४) नागकेसर। (५) पुराणानुसार एक नदी का नाम। (६) कामरूप देश की एक नदी का नाम।

स्वर्णकंडु–संज्ञा पुं० [सं०] धूना। राल

स्वर्णकण–संज्ञा पुं० [सं०] कणगुग्गुल।

स्वर्णकदली–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोनकेला। सुवर्ण कदली।

स्वर्णकमल–संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल।

स्वर्णकाय–संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

वि० जिसका शरीर सोने का अथवा सोने का सा हो।

स्वर्णकार–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की जाति जो सोने चाँदी के आभूषण आदि बनाती है। सुनार।

स्वर्णकूट–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय की एक चोटी का नाम।

स्वर्णकृत्–संज्ञा पुं० दे० "स्वर्णकार"।

स्वर्णकेतकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली केतकी जिससे इत्र और तेल आदि बनाया जाता है।

स्वर्णक्षीरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] हेमपुष्पा। सत्यानासी। भरभाँड़।

स्वर्णकोश–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार पूर्व बंग के एक नद का नाम।

स्वर्णगर्भाचल–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय की एक चोटी का नाम।

स्वर्णगिरि–संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत।

स्वर्णगैरिक–संज्ञा पुं० [सं०] सोना गेरू।

स्वर्णग्रीव–संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

स्वर्णग्रीवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कालिका पुराण के अनुसार एक नदी का नाम जो नाटक शैल के पूर्वी भाग से निकली हुई और गंगा के समान पवित्र कही गई है।

स्वर्णचूड़, स्वर्णचूल–संज्ञा पुं० [सं०] नीलकंठ नामक पक्षी।

स्वर्णज–वि० [सं०] (१) सोने से उत्पन्न। (२) सोने से बना हुआ।

संज्ञा पुं० (१) वंग नाम की धातु। राँगा। (२) सोनामक्खी।

स्वर्णजातिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली चमेली।

स्वर्णजाती–संज्ञा स्त्री० दे० "स्वर्णजातिका"।

स्वर्णजीवंती–संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली जीवंती।

स्वर्णजीवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली जीवंती।

स्वर्णजीवी–संज्ञा पुं० [सं० स्वर्णजीविन्] वह जो सोने के आभूषण आदि बनाकर जीविका निर्वाह करता हो। सुनार।

स्वर्णजूही–संज्ञा स्त्री० [सं० स्वर्णयूथिका] पीली जूही।

स्वर्णतीर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

स्वर्णद–वि० [सं०] (१) स्वर्ण या सोना देनेवाला। (२) स्वर्ण या सोना दान करनेवाला।

संज्ञा पुं० वृश्चिकाली। बरहंटा।

स्वर्णदी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मंदाकिनी। स्वर्गंगा। (२) वृश्चिकाली। बरहंटा। (३) कामाख्या के पास की एक नदी का नाम।

स्वर्णदीधिति–संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

स्वर्णदुग्धा–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णक्षीरी। सत्यानाशी। भरभाँड़।

स्वर्णद्रु–संज्ञा पुं० [सं०] आरग्वध। अमलतास।

स्वर्णधातु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुवर्ण। सोना। (२) स्वर्णगैरिक। सोनागेरू।

स्वर्णनाभ–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के शालग्राम।

स्वर्णनिभ–संज्ञा पुं० [सं०] सोनागेरू। स्वर्णगैरिक।

स्वर्णपक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

स्वर्णपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] सोने का पत्तर या तबक।

स्वर्णपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णमुखी। सोनामुखी। सनाय।

स्वर्णपद्मा–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्गंगा। मंदाकिनी।

स्वर्णपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली जीवंती।

स्वर्णपर्पटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रसिद्ध औषध जो संग्रहणी रोग के लिये सब से अधिक गुणकारी मानी जाती है। इसके बनाने के लिये एक तोले सोने को पहले आठ तोले पारे में भली भाँति खरल करते हैं और तब उसमें आठ तोले गंधक मिलाकर उसकी कज्जली तैयार करते हैं। इसके सेवन के समय रोगी को उतना अधिक दूध पिलाया जाता है जितना वह पी सकता है।

स्वर्णपाटक–संज्ञा पुं० [सं०] सोहागा, जिसके मिलाने से सोना गल जाता है।

स्वर्णपारेवत–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा पारेवत।

स्वर्णपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आरग्वध। अमलतास। (२)

चंपा। चंपक। (३) बबूल। कीकर। (४) कपित्थ। कैथ। (५) सफेद कुम्हड़ा। पेठा।

स्वर्णपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कलिहारी। लांगली। (२) सातला नाम का थूहर। (३) मेढ़ासिंगी। (४) सोनुली। स्वर्णुली। आरग्वध। (५) स्वर्ण केतकी।

स्वर्णपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वर्ण केतकी। पीला केवड़ा। (२) सातला नाम का थूहड़। (३) अमलतास। आरग्वध।

स्वर्णप्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार जंबू द्वीप के एक उपद्वीप का नाम।

स्वर्णफल-संज्ञा पुं० [सं०] धतूरा।

स्वर्णफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णकदली। चंपा केला।

स्वर्णबीज-संज्ञा पुं० [सं०] धतूरे का बीज।

स्वर्णभाज्-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

स्वर्णभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ सब प्रकार के सुख हों। बहुत उत्तम भूमि। (२) दारचीनी। गुड़त्वक्।

स्वर्णभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आरग्वध। अमलतास। (२) सोनागेरू। स्वर्णगैरिक।

स्वर्णभृंगार-संज्ञा पुं० [सं०] पीला भँगरा।

स्वर्णमंडन-संज्ञा पुं० [सं०] सोना गेरू। स्वर्णगैरिक।

स्वर्णमय-वि० [सं०] जो बिलकुल सोने का हो। जैसे,—स्वर्णमय सिंहासन।

स्वर्णमाक्षिक-संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी नामक उपधातु। वि० दे० "सोनामक्खी"।

स्वर्णमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वर्णमातृ] (१) हिमालय की एक छोटी नदी का नाम। (२) जामुन।

स्वर्णमुखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णपत्री। सनाय।

स्वर्णमुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोने का सिक्का। अशरफी।

स्वर्णयूथिका, स्वर्णयूथी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली जूही।

स्वर्णरंभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ण कदली। चंपा केला।

स्वर्णरीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजपीतल। सोनापीतल।

स्वर्णरेखा-संज्ञा स्त्री० दे० "सुवर्णरेखा"।

स्वर्णरोमा-संज्ञा पुं० [सं० स्वर्णरोमन्] एक सूर्य्यवंशी राजा का नाम जो राजा महारोमा का पुत्र और ह्रस्वरोमा का पिता था।

स्वर्णलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मालकंगनी। ज्योतिष्मती। (२) पीली जीवंती। स्वर्णजीवंती।

स्वर्णली-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोनुली नामक क्षुप। स्वर्णपुष्पी।

स्वर्णवज्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लोहा।

स्वर्णवर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कणगुग्गुल। (२) हरताल। (३) सोनागेरू। स्वर्णगैरिक। (४) दारुहल्दी।

स्वर्णवर्णाक-संज्ञा पुं० [सं०] कंकुष्ठ। मुरदा संग।

स्वर्णवर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हल्दी। (२) दारुहल्दी।

स्वर्णवर्णाभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती।

स्वर्णवल्कल-संज्ञा पुं० [सं०] सोनापाठा। श्योनाक। अरलू।

स्वर्णवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोनावल्ली। रक्तफला। (२) स्वर्णुली नामक क्षुप। (३) पीली जीवंती।

स्वर्णविंदु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) प्राचीन काल के एक तीर्थ का नाम। (महाभारत)

स्वर्णशिख-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्णचूड़ या नीलकंठ नामक पक्षी।

स्वर्णशृंगी-संज्ञा पुं० [सं० स्वर्णशृंगिन्] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जो सुमेरु पर्वत के उत्तर ओर माना जाता है।

स्वर्णशेफालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आरग्वध। अमलतास। (२) सँभालू। पीला सिंधुआर।

स्वर्णसिंदूर-संज्ञा पुं० दे० "रससिंदूर"।

स्वर्णहालि-संज्ञा पुं० [सं०] आरग्वध। अमलतास।

स्वर्णांग-संज्ञा पुं० [सं०] आरग्वध। अमलतास।

स्वर्णाकर-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ सोना उत्पन्न होता हो। सोने की खान।

स्वर्णाद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] उड़ीसा प्रदेश का भुवनेश्वर नामक तीर्थ जो स्वर्णाचल भी कहलाता है।

स्वर्णाभ-संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

स्वर्णाभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली जूही।

स्वर्णारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधक। (२) सीसा नामक धातु।

स्वर्णालु-संज्ञा पुं० [सं०] सोनुली। स्वर्णुली।

स्वर्णाह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णक्षीरी। सत्यानासी। भरभाँड़।

स्वर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] धनिया।

स्वर्णुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप जो सोनुली कहलाता है। इसे हेमपुष्पी और स्वर्णपुष्पा भी कहते हैं। वैद्यक के अनुसार यह कटु, शीतल, कषाय और व्रणनाशक होता है।

स्वर्णोपधातु-संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी नामक उपधातु।

स्वर्धुनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

स्वर्नगरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की पुरी, अमरावती।

स्वर्नदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्गंगा।

स्वर्पति-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग के स्वामी, इंद्र।

स्वर्भानव-संज्ञा पुं० [सं०] गोमेद मणि। राहुरत्न।

स्वर्भानु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राहु। (२) सत्यभामा के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

स्वर्लीन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम।

स्वर्लोक-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

स्वर्वधू-संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

स्वर्वापी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

स्वर्विंदु-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो यज्ञ आदि करके स्वर्ग जाता हो।

स्वर्वेश्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

स्वर्वैद्य-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग के वैद्य, अश्विनी-कुमार।
स्वलीन-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दानव का नाम।
स्वल्प-वि० [सं०] बहुत थोड़ा। बहुत कम। जैसे,—स्वल्प मात्रा में मकरध्वज देने से भी बहुत लाभ होता है। उ०—(क) अतिथि ऋषीश्वर शाप न आए शोक भयो जिय भारी। स्वल्प शाक ते नृप किए सब कठिन आपदा टारी।—सूर। (ख) कदर वर्य भट चल्यो किए संकल्प विजय को। समुझि अल्प बल परन स्वल्पहू लेस न भय को।—गिरधरदास।
संज्ञा पुं० नखी या हट्टविलासिनी नामक गंधद्रव्य।
स्वल्पकंद-संज्ञा पुं० [सं०] कसेरू।
स्वल्पकाष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद आलू।
स्वल्पकेशर-संज्ञा पुं० [सं०] कचनार।
स्वल्पकेशी-संज्ञा पुं० [सं० स्वल्पकेशिन्] भूतकेश नामक पौधा।
स्वल्पघंटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बनसनई।
स्वल्पचटक-संज्ञा पुं० [सं०] गौरैया नामक पक्षी।
स्वल्पजंबुक-संज्ञा पुं० [सं०] लोमड़ी।
स्वल्पतरु-संज्ञा पुं० [सं०] केमुक। केमुआँ।
स्वल्पनख-संज्ञा पुं० [सं०] नखी या हट्टविलासिनी नामक गंधद्रव्य।
स्वल्पपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] गौरशाक। पहाड़ी महुआ।
स्वल्पपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मेदा नाम की अष्टवर्गीय ओषधि।
स्वल्पफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] हाऊबेर। हपुषा।
स्वल्पयव-संज्ञा पुं० [सं०] जौ नामक अन्न।
स्वल्परूपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शणपुष्पी। बनसनई।
स्वल्पवर्तुल-संज्ञा पुं० [सं०] मटर।
स्वल्पवल्कला-संज्ञा स्त्री० [सं०] तेजवल। तेजोवती।
स्वल्पविटप संज्ञा पुं० [सं०] केमुक। केमुआ।
स्वल्पविराम ज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] ठहर ठहर कर थोड़ी देर के लिये उतर कर फिर आनेवाला ज्वर।
स्वल्पशम्बा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बनसनई। शणपुष्पी।
स्वल्पशृगाल-संज्ञा पुं० [सं०] रोहित मृग। बनरोहा।
स्ववग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा का न होना। अनावृष्टि।
स्ववरन-संज्ञा पुं० दे० "सुवर्ण"।
स्ववर्णरेखा-संज्ञा स्त्री० [सं० सुवर्णरेखा] एक नदी जो छोटा नागपुर से निकलकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है।
स्ववश-वि० [सं०] (१) जो अपने वश में हो। (२) जिसका अपने आप पर अधिकार हो। जो अपनी इंद्रियों को वश में रखता हो। जितेंद्रिय।
स्ववशता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्ववश का भाव या धर्म।
स्ववशिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद।
स्ववश्य-वि० [सं०] जो अपने ही वश में हो। अपने आप पर अधिकार रखनेवाला।

स्ववहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ। त्रिवृत।
स्ववासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या अथवा विवाहिता स्त्री जो अपने पिता के घर रहती हो।
स्ववासी-संज्ञा पुं० [सं० स्ववासिन्] एक साम का नाम।
स्वबीज-वि० [सं०] जो अपना बीज या कारण आप ही हो।
संज्ञा पुं० आत्मा।
स्वशुर-संज्ञा पुं० दे० "श्वसुर"।
स्वसंभव-वि० [सं०] जो आत्मा से उत्पन्न हो। आत्मसंभव।
स्वसंभूत-वि० [सं०] जो आप से आप उत्पन्न हो।
स्वसंविद्-वि० [सं०] जिसका ज्ञान इंद्रियों से न हो सके। अगोचर।
स्वसंवेद्य-वि० [सं०] (ऐसी बात) जिसका अनुभव वही कर सकता हो जिस पर वह बीती हो। केवल अपने ही अनुभव होने योग्य।
स्वसर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर। मकान। (२) दिन।
स्वसा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वसृ] भगिनी। बहिन। उ०—तेहि अवसर रावण स्वसा सूपनखा तहँ आइ। रामस्वरूप मोहित बचन बोली गरब बढ़ाइ।—विश्राम। (२) तेजवल। तेजफल। तेजोवती।
स्वसुर-संज्ञा पुं० दे० "ससुर"।
स्वसुराल-संज्ञा स्त्री० दे० "ससुराल"।
स्वस्ति-अव्य० [सं०] कल्याण हो। मंगल हो। (आशीर्वाद) उ०—मंदराय घर ढोटा आयो महर महा सुख पायो। विप्र बुलाय वेद ध्वनि कीन्ही स्वस्ती बचन पढ़ायो।—सूर।
विशेष—प्रायः दान लेने पर ब्राह्मणलोग "स्वस्ति" कहते हैं, जिसका अभिप्राय होता है—दाता का कल्याण हो।
संज्ञा स्त्री० (१) कल्याण। मंगल। (२) पुराणानुसार ब्रह्मा की तीन स्त्रियों में से एक स्त्री का नाम। उ०—ब्रह्मा कहँ आनत संसारा। जिन सिरज्यो जग कर विस्तारा। तिनके भवन तीनि रहैं इस्त्री। संध्या स्वस्ति और सावित्री।—विश्राम। (३) सुख।
स्वस्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर जिसमें पश्चिम ओर एक दालान और पूर्व ओर दो दालान हों। कहते हैं कि ऐसे घर में रहने से गृहस्थ की स्वस्ति अर्थात् कल्याण होता है, इसी लिये इसे स्वस्तिक कहते हैं। (२) शिरियारी। सुसना नाम का साग। (३) लहसुन। (४) रतालू। रक्तालु। (५) मूली। (६) हठयोग में एक प्रकार का आसन। (७) एक प्रकार का मंगल द्रव्य जो विवाह आदि के समय चावल को पीसकर और पानी में मिलाकर तैयार किया जाता है और जिसमें देवताओं का निवास माना जाता है। (८) प्राचीन काल का एक प्रकार का यंत्र जो शरीर में गड़े हुए शल्य आदि को बाहर निकालने के काम में आता

था। यह अठारह अंगुल तक लंबा होता था और सिंह, शृगाल, मृग आदि के आकार के अनुसार १८ प्रकार का होता था। (९) वैद्यक में फोड़े आदि पर बाँधा जानेवाला बंधन या पट्टी जिसका आकार तिकोना होता था। (१०) चौराहा। चौमुहानी। (११) साँप के फन पर की नीली रेखा। (१२) प्राचीन काल का एक प्रकार का मंगल चिह्न जो शुभ अवसरों पर मांगलिक द्रव्यों से अंकित किया जाता था और जो कई आकार तथा प्रकार का होता था। आज कल इसका मुख्य आकार 卐 यह प्रचलित है। प्रायः किसी मंगल कार्य्य के समय गणेश पूजन करने से पहले यह चिह्न बनाया जाता है। आज कल लोग इसे भ्रम से गणेश ही कहा करते हैं। (१३) शरीर के विशिष्ट अंगों में होनेवाला उक्त आकार का एक चिह्न जो सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार बहुत शुभ माना जाता है। कहते हैं कि रामचंद्र जी के चरण में इस आकार का चिह्न था। जैनी लोग जिन देवता के २४ लक्षणों में से इसे भी एक मानते हैं। उ०—स्वस्तिक अष्टकोण श्री केरा। हलमूसल पराग दार हेरा।—विश्राम। (१४) प्राचीन काल की एक प्रकार की बढ़िया नाव जो प्रायः राजाओं की सवारी के काम में आती थी।

स्वस्तिक यंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का यंत्र जिसका व्यवहार शरीर में धँसे हुए शल्य को निकालने के लिये होता था। वि० दे० "स्वस्तिक"। (८)

स्वस्तिकर–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

स्वस्तिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] चमेली।

स्वस्तिकाह्वय–संज्ञा पुं० [सं०] चौलाई का साग।

स्वस्तिकृत्–संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।
वि० मंगल करनेवाला। कल्याणकारी।

स्वस्तिद–संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।
वि० मंगल या कल्याण देने अथवा करनेवाला।

स्वस्तिपुर–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

स्वस्तिमती–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।

स्वस्तिमुख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्राह्मण। (२) वह जो राजाओं की स्तुति करता हो। बंदी। स्तुतिपाठक।

स्वस्तिवाचक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो मंगलसूचक बात कहता हो। (२) वह जो आशीर्वाद देता हो।

स्वस्तिवाचन–संज्ञा पुं० [सं०] कर्मकांड के अनुसार मंगल कार्य्यों के आरंभ में किया जानेवाला एक प्रकार का धार्मिक कृत्य जिसमें गणेश का पूजन होता है, कलश स्थापित किया जाता है और कुछ मंगल-सूचक मंत्रों का पाठ किया जाता है। उ०—एक दिना हरि लई करोटी सुनि हरषी नँदरानी। विप्र बुलाय स्वस्तिवाचन करि रोहिणी नैन सिरानी।—सूर।

स्वस्तेन–संज्ञा पुं० दे० "स्वस्त्ययन"।

स्वस्त्ययन–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धार्मिक कृत्य जो किसी विशिष्ट कार्य्य की अशुभ बातों का नाश करके शुभ की स्थापना के विचार से किया जाता है। उ०—पढ़न लगे स्वस्त्ययन महाऋषि गाइ उठीं सब नारी। लै नरनाथ अंक रघुनाथहि रंगनाथ संभारी।—रघुराज।

स्वस्त्यात्रेय–संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

स्वस्थ–वि० [सं०] (१) जिसका स्वास्थ्य अच्छा हो। जिसे किसी प्रकार का रोग न हो। नीरोग। तंदुरुस्त। भला चंगा। जैसे,—इधर महीनों से वे बीमार थे; पर अब बिलकुल स्वस्थ हो गए हैं। (२) जिसका चित्त ठिकाने हो। सावधान। जैसे,—आप तो घबरा गए; ज़रा स्वस्थ होकर पहले सब बातें सुन तो लीजिए।

स्वस्थचित्त–वि० [सं०] जिसका चित्त ठिकाने हो। शान्तचित्त।

स्वस्थता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वस्थ का भाव या धर्म। नीरोगता। तंदुरुस्ती। (२) सावधानता।

स्वस्रीय–संज्ञा पुं० [सं०] (स्वसृ) बहिन का लड़का। भानजा।

स्वहानाॐ–क्रि० अ० दे० "सोहाना"। उ०—सब आचार्यन के मधि माहीं। रामानुज मुनि सरिस स्वहाहीं।—रघुराज।

स्वांकिक–संज्ञा पुं० [सं०] ढोल या मृदंग बजानेवाला।

स्वाँग–संज्ञा पुं० [सं० सु+अंग अथवा स्व+अंग] (१) कृत्रिम या बनावटी वेष जो अपना वास्तविक रूप छिपाने या दूसरे का रूप बनने के लिये धारण किया जाय। भेस। रूप। उ०—(क)...अब चलो अपने अपने स्वाँग सजें।—हरिश्चंद्र। (ख) कै इक स्वाँग बनाइ कै नाचौ बहु विधि नाच। रीझत नहिं रिझवार यह बिना हिये के साँच।—रसनिधि।
क्रि० प्र०—भरना।—बनना।—बनाना।—सजना।
(२) मज़ाक का खेल या तमाशा। नकल। उ०—(क) बहु बासना विविध कंचुकि भूषण लोभादि भरयौ। चर अरु अचर गगन जल थल में कौन स्वाँग न करयौ।—तुलसी। (ख) पै बहु विस्तृत ठाट बाट लिखि नाच स्वाँग सब। धन अधिकाई के अरु लंपटता करतब के।—श्रीधर। (३) धोखा देने को बनाया हुआ कोई रूप। जैसे,—वह बीमार नहीं है; उसने बीमारी का स्वाँग रचा है।
क्रि० प्र०—रचना।
मुहा०—स्वाँग लाना = धोखा देने या कोई कपट व्यवहार करने के लिये कोई रूप धारण करना।

स्वाँगनाॐ–क्रि० स० [हिं० स्वाँग] स्वाँग बनाना। बनावटी वेष

या रूप धारण करना। उ०—भीम अर्जुन सहित विप्र को रूप धरि हरि जरासंध सों युद्ध माँग्यो। दियो उनपै कह्यो तुम कोऊ क्षत्रिया कपट करि विप्र को स्वाँग स्वाँग्यो।—सूर।

स्वाँगी-संज्ञा पुं० [हिं० स्वाँग] (१) वह जो स्वाँग सजकर जीविका उपार्जन करता है। नकल करनेवाला। नक्काल। उ०—(क) जैसे कि डोम, भाँड़, नट, वेश्या, स्वाँगी, बहुरूपी या प्रशंसक को देना।—श्रद्धाराम। (ख) जिन प्रथमै करि पाछे छाँड़ा। तिन्हैं जानिये स्वाँगी भाड़ा।—विश्राम। (२) अनेक रूप धारण करनेवाला। बहुरूपिया। उ०—स्वाँगी से ए भए रहत हैं छिन ही छिन ए और।—सूर।

वि० रूप धारण करनेवाला। उ०—साँची सी यह बात है सुनियौ सज्जन संत। स्वाँगी तौ वह एक है या के स्वाँग अनंत।—रसनिधि।

स्वांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंतःकरण। मन। (२) अपना अंत या मृत्यु। (३) अपना राज्य या प्रदेश। (४) गुफा। गुहा।

स्वांतज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रेम। (२) मनोज। कामदेव।

स्वाँस-संज्ञा स्त्री० दे० "साँस"। उ०—पंकज सों मुख गो मुरझाइ लगी लपटैं बिस स्वाँस हिया की।—रसखान।

स्वाँसा-संज्ञा पुं० [देश०] वह सोना जिसमें ताँबे का खोट मिला हो। ताँबे का खोट मिला हुआ सोना।

संज्ञा पुं० दे० "साँस"। उ०—स्वाँसा सार रच्यो मेरो साहब।—कबीर।

स्वाक्षर-संज्ञा पुं० [सं०] हस्ताक्षर। दस्तखत। जैसे,—(क) उन्होंने उस पर स्वाक्षर कर दिए। (ख) उनके स्वाक्षर से एक सूचना निकली है।

स्वाक्षरित-वि० [सं०] अपने हस्ताक्षर से युक्त। अपना हस्ताक्षर किया हुआ। अपना दस्तखत किया हुआ। जैसे,—उनके स्वाक्षरित सूचनापत्र से सारी बातों का पता लगा है।

स्वागत-संज्ञा पुं० (१) किसी अतिथि या विशिष्ट पुरुष के पधारने पर उसका सादर अभिनंदन करना। सम्मानार्थ आगे बढ़कर लेना। अगवानी। अभ्यर्थना। पेशवाई। जैसे,—उनका स्वागत लोगों ने बड़े उत्साह और उमंग से किया। (२) एक बुद्ध का नाम।

स्वागतकारिणी-सभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थानीय लोगों की वह सभा जो उस स्थान में निमंत्रित किसी विराट् सभा या सम्मेलन आदि का प्रबंध करने और आनेवाले प्रतिनिधियों के स्वागत, निवासस्थान, भोजन आदि की व्यवस्था करने के लिये संघटित हो।

स्वागतकारी-वि० [सं० स्वागतकारिन्] स्वागत या अभ्यर्थना करनेवाला। पेशवाई करनेवाला।

स्वागतपतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] अवस्थानुसार नायिका के दस भेदों में से एक। वह नायिका जो अपने पति के परदेश से लौटने से प्रसन्न हो। आगत-पतिका।

स्वागतप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] वह नायक जो अपनी पत्नी के परदेश से लौटने से उत्साहपूर्ण और प्रसन्न हो।

स्वागता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में (र, न, भ, ग, ग) SIS + III + SII + SS होता है। यथा—रानि ! भोगि गहि नाथ कन्हाई। साथ गोपजन आवत धाई। स्वागतार्थ सुनि आतुर माता। धाइ देखि सुद सुंदर गाता।—छंदःप्रभाकर।

स्वागतिक-वि० [सं०] स्वागत करनेवाला। आनेवाले की अभ्यर्थना या सत्कार करनेवाला।

स्वागम-संज्ञा पुं० [सं०] स्वागत। अभिनंदन।

स्वाच्छंद्य-संज्ञा पुं० दे० "स्वच्छंदता"।

स्वाजन्य-संज्ञा पुं० दे० "स्वजनता"।

स्वाजीव, स्वाजीव्य-वि० [सं०] (वह स्थान या देश आदि) जहाँ कृषि वाणिज्य आदि जीविका का साधन सुलभ हो। जैसे,—स्वाजीव्य देश।

स्वातंत्र-संज्ञा पुं० दे० "स्वातंत्र्य"।

स्वातंत्र्य-संज्ञा पुं० [सं०] स्वतंत्र का भाव या धर्म। स्वतंत्रता। स्वाधीनता। आज़ादी। जैसे,—उस देश में भाषण और लेखन-स्वातंत्र्य नहीं है।

स्वात-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वाति"। उ०—स्वात बूँद चातक मुख परी। सीप समुँद मोती बहु भरी।—जायसी।

स्वाति-संज्ञा स्त्री० [सं०] पंद्रहवाँ नक्षत्र जो फलित ज्योतिष के अनुसार शुभ माना गया है। इस नक्षत्र में जन्मनेवाला कामदेव के समान रूपवान्, स्त्रियों का प्रिय और सुखी होता है।

विशेष—कहते हैं कि चातक इसी नक्षत्र में बरसनेवाला पानी पीता है और इसी नक्षत्र में वर्षा होने से सीप में मोती, बाँस में वंशलोचन और साँप में विष उत्पन्न होता है। उ०—(क) जेहि चाहत नर नारि सब अति आरत एहि भाँति। जिमि चातक चातकि तृषित वृष्टि सरद रितु स्वाति।—तुलसी। (ख) मेरु मुकता के जेते, स्वाति ही में होतु तेते रतनन हूँ को कहूँ भूलिहूँ न होत भ्रम।—रसकुसुमाकर।

संज्ञा स्त्री० उरु और आग्नेयी के एक पुत्र का नाम।

वि० स्वाति नक्षत्र में उत्पन्न।

स्वातिकारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कृषि की देवी। (पारस्कर गृह्यसूत्र)

स्वातिपंथ-संज्ञा पुं० [सं० स्वाति + पंथ] आकाश-गंगा। उ०—बंदी विदूषक पढ़त बहु विधि सुयश युक्ति समेत। यह भानुकुल कीरति उदय जो स्वाति पंथ सपेत।—रघुराज।

स्वातियोग-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार आषाढ़ के शुक्ल पक्ष में स्वाति नक्षत्र का चंद्रमा के साथ योग।

स्वातिसुत-संज्ञा पुं० [सं० स्वाति+सुत] मोती। मुक्ता। उ०—(क) स्वातिसुत माला विराजत स्याम तन यों भाइ। मनो गंगा गौरि उर हर लिये कंठ लगाइ।—सूर। (ख) बेनी छूटि लटैं बगरानी मुकुट लटकि लटकानो। फूल खसत सिर ते भए न्यारे सुभग स्वातिसुत मानो।—सूर।

स्वातिसुवन-संज्ञा पुं० [सं० स्वाति+हिं० सुवन] मोती। मुक्ता। उ०—अतसी कुसुम कलेवर बूँदैं प्रतिबिंबित निरधार। ज्योंति प्रकाश सुवन में खोलत स्वातिसुवन आकार।—सूर।

स्वाती-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वाति"। उ०—सीय सुखहि बरनिय केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जल स्वाती।—तुलसी।

स्वाद-संज्ञा पुं० [सं०] किसी पदार्थ के खाने या पीने से रसनेंद्रिय को होनेवाला अनुभव। जायका। जैसे,—(क) इसका स्वाद खट्टा है या मीठा, यह तुम क्या जानो। (ख) आज भोजन में बिलकुल स्वाद नहीं है। (२) रसानुभूति। आनंद। मजा। जैसे,—(क) उनकी कविता ऐसी सरस और सरल होती है कि सामान्य जन भी उसका स्वाद ले सकते हैं। (ख) जान पड़ता है, आप को लड़ाई झगड़े में बड़ा स्वाद मिलता है।

क्रि० प्र०—लेना।—मिलना।

मुहा०—स्वाद चखाना = किसी को उसके किए हुए अपराध का दंड देना। बदला लेना। जैसे,—मैं तुम्हें इसका स्वाद चखाऊँगा।

(३) चाह। इच्छा। कामना। उ०—(क) गंधमादरन स्वाद चख्यो घन सरिस नाद करि। लै द्विज आसिरवाद परम अह्लाद हृदय भरि।—गोपाल। (ख) द्विज अरपहि आसिरवाद पढ़ि। नमत तिन्हैं अह्लाद मढ़ि। नृप कलेस सुरथ जय स्वाद चढ़ि। करत सिंह सम नाद बढ़ि।—गोपाल। (४) मीठा रस। (डिं०)

स्वादक-संज्ञा पुं० [सं० स्वाद] वह जो भोज्य पदार्थ प्रस्तुत होने पर चखता है। स्वादुविवेकी। उ०—स्वादक चतुर बतावत जाहीं। सूपकार बहु विरचत ताँहीं।—रामाश्वमेध।

विशेष—राजा महाराजों की पाकशालाओं में प्रायः ऐसे कर्मचारी होते हैं जो भोज्य पदार्थ प्रस्तुत होने पर पहले चख लेते हैं कि पदार्थ उत्तम बना है या नहीं। ऐसे ही लोग स्वादक कहलाते हैं।

स्वादन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चखना। स्वाद लेना। (२) रस ग्रहण। मजा लेना। आनंद लेना।

स्वादनीय-वि० [सं०] (१) स्वाद लेने के योग्य। (२) रस लेने के योग्य। मजा लेने के योग्य। (३) जायकेदार। स्वादिष्ट।

स्वादित-वि० [सं०] (१) चखा हुआ। रस लिया हुआ। (२) स्वाद-युक्त। जायकेदार। (३) प्रीत। प्रसन्न।

स्वादित्व-संज्ञा पुं० [सं०] स्वाद का भाव। स्वादु।

स्वादिष्ट, स्वादिष्ठ-वि० [सं० स्वादिष्ठ] जो खाने में बहुत अच्छा जान पड़े। जिसका स्वाद अच्छा हो। जायकेदार। सुस्वादु। जैसे,—स्वादिष्ट भोजन।

स्वादी-वि० [सं० स्वादिन्] (१) स्वाद चखनेवाला। उ०—बहु सुत मागध बंदी जन नृप चवन मुनि हरषित चले। पुनि वैद्य पौराणिक सभाचातुर विपुल स्वादी भले।—रामाश्वमेध। (२) मजा लेनेवाला। रसिक।

स्वादीला†-वि० [सं० स्वाद+ईला (प्रत्य०)] स्वादयुक्त। स्वादिष्ट। उ०—घास के स्वादीले ग्रासों कर के........वह राजेश्वर उसकी (नंदिनी गाय की) सेवा में तत्पर हुआ।—लक्ष्मणसिंह।

स्वादु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मधुर रस। मीठा रस। मधुरता। (२) गुड़। (३) जीवक नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (४) अगर। अगुरुसार। (५) महुआ। मधूक वृक्ष। (६) चिरौंजी। पियाल। (७) ममला नींबू। (८) काँस। काशतृण। (९) बेर। बदर। (१०) सेंधा नमक। सैंधव लवण। (११) दूध। दुग्ध।

संज्ञा स्त्री० दाख। द्राक्षा।

वि० (१) मीठा। मधुर। मिष्ट। (२) जायकेदार। मजेदार। स्वादिष्ट। (३) मनोज्ञ। सुंदर।

स्वादुकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विकंकत वृक्ष। (२) गोखरू। गोक्षुर।

स्वादुकंद-संज्ञा पुं० [सं०] भूमि कुष्मांड। भुइँ कुम्हड़ा। (२) सफेद पिंडालू। (३) कोवी। केउँआ। केमुक।

स्वादुकंदक-संज्ञा पुं० [सं०] कोवी। केउँआ। केमुक।

स्वादुकंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] विदारी कंद।

स्वादुकर-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की वर्ण-संकर जाति जिसका उल्लेख महाभारत में है।

स्वादुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदंती।

स्वादुकोपातकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तोरई।

स्वादुखंड-संज्ञा पुं० [सं०] गुड़।

स्वादुगंध-संज्ञा पुं० [सं०] लाल सहिंजन। रक्त शोभांजन।

स्वादुगंधच्छदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] काली तुलसी। कृष्ण तुलसी।

स्वादुगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भुइँ कुम्हड़ा। भूमि कुष्मांड। (२) लाल सहिंजन। रक्त शोभांजन।

स्वादुगंधि-संज्ञा पुं० [सं०] लाल सहिंजन। रक्तशोभांजन।

स्वादुता-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वादु का भाव या धर्म। (२) मधुरता।

स्वादुतिक-संज्ञा पुं० [सं०] पीलू फल।

स्वादुतिकफल-संज्ञा पुं० [सं०] नींबू का पेड़।

स्वादुधन्वा-संज्ञा पुं० [सं० स्वादुधन्वन्] कामदेव।

स्वादुपटोलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] परवल की लता।
स्वादुपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] परवल की लता।
स्वादुपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दूधी। दुग्धिका।
स्वादुपाकफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] मकोय। काकमाची।
स्वादुपिंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंड खजूर। पिंडी खर्जूर।
स्वादुपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] काली कटभी।
स्वादुपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दूधी। दुग्धिका।
स्वादुपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कटभी का पेड़।
स्वादुफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेर। बदरी फल। (२) धामिन। धन्व वृक्ष।
स्वादुफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बेर। बदरी वृक्ष। (२) खजूर का पेड़। खर्जूर वृक्ष। (३) केले का पेड़। कदली वृक्ष। (४) मुनक्का। कपिल द्राक्षा।
स्वादुबीज-संज्ञा पुं० [सं०] पीपल। अश्वत्थ वृक्ष।
स्वादुमज्ज-संज्ञा पुं० [सं० स्वादुमज्जन्] पहाड़ी पीलू। अखरोट।
स्वादुमस्तका-संज्ञा स्त्री० [सं०] खजूर का पेड़। खर्जूरी वृक्ष।
स्वादुमांसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] काकोली नामक अष्टवर्गीय ओषधि।
स्वादुमाषी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मषवन। माषपर्णी।
स्वादुमूल-संज्ञा पुं० [सं०] गाजर। गर्जर।
स्वादुरसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकोली। (२) मद्य। मदिरा। शराब। (३) दाख। द्राक्षा। (४) सतावर। शतावरी। (५) अमड़ा। आम्रातक फल। (६) मरोड़फली। मूर्वा।
स्वादुल-संज्ञा पुं० [सं०] क्षीर मूर्वा।
स्वादुलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विदारी कंद।
स्वादुलुंगि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संतरा। (२) मीठा नीबू। स्वादुमाळुंग।
स्वादुशुंठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद कटभी।
स्वादुशुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्री नमक।
स्वाद्य-वि० [सं०] स्वाद लेने के योग्य। चखने के योग्य। उ०—पदार्थ वास्तव में रोचक और विस्तृत हैं; याने पहले ये स्पृश्य और दृश्य हैं और पीछे पेय, स्वाद्य और पेय।—चंद्रधर गुलेरी।
स्वाद्वगुरु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की अगर की लकड़ी।
स्वाद्वम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनार का पेड़। दाड़िम वृक्ष। (२) नारंगी का पेड़। नागरंग वृक्ष। (३) कदंब वृक्ष।
स्वाद्वी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दाख। द्राक्षा। (२) मुनक्का। कपिलद्राक्षा। (३) फूट। चिर्भटिका। (४) खजूर का पेड़। खर्जूर वृक्ष।
स्वाधिष्ठान-संज्ञा पुं० [सं०] हठ योग में माने हुए कुंडलिनी के ऊपर पड़नेवाले छः चक्रों में से दूसरा चक्र। इसका स्थान लिंग के मूल में, रंग पीला और देवता ब्रह्मा माने गए हैं। इसके दलों की संख्या छः और अक्षर ब से ल तक हैं।
स्वाधीन-वि० [सं०] (१) जो अपने सिवा और किसी के अधीन न हो। स्वतंत्र। आज़ाद। खुद मुख्तार। (२) किसी का बंधन न माननेवाला। अपने इच्छानुसार चलनेवाला। मनमाना काम करनेवाला। निरंकुश। अबाध्य। जैसे,—(क) वह लड़का आजकल स्वाधीन हो गया है, किसी की बात नहीं सुनता। (ख) उसका पति क्या मरा, वह बिलकुल स्वाधीन हो गई।
संज्ञा पुं० समर्पण। हवाला। सपुर्द। जैसे,—अंत में लाचार होकर १९ जून को तीसरे पहर अपने को नवाब के स्वाधीन कर दिया।—द्विवेदी।
स्वाधीनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वाधीन होने का भाव। स्वतंत्रता। आज़ादी। खुदमुख्तारी। जैसे,—स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।
स्वाधीनपतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जिसका पति उसके वश में हो। पति को वशीभूत करनेवाली नायिका। साहित्य में इसके चार भेद कहे गए हैं; यथा—मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा और परकीया।
स्वाधीनभर्तृका-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वाधीनपतिका"।
स्वाधीनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वाधीन] स्वाधीनता। स्वतंत्रता। आज़ादी। उ०—शिल्पकलाओं से जन्मे हैं, विविध सौख्य संपत्ति यथा। धन, वैभव, ब्यौपार, बड़प्पन, स्वाधीनी, संतोष तथा।—श्रीधर।
स्वाध्याय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेदों की निरंतर और नियमपूर्वक आवृत्ति या अभ्यास करना। वेदाध्ययन। धर्मग्रंथों का नियमपूर्वक अनुशीलन करना। (२) किसी विषय का अनुशीलन। अध्ययन। (३) वेद।
स्वान-संज्ञा पुं० [सं०] शब्द। आवाज़। घड़घड़ाहट।
संज्ञा पुं० दे० "श्वान"। उ०—खर स्वान सुअर सृगाल मुख गन वेष अगनित को गनै। बहु जिनिस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै।—तुलसी।
स्वानाॐ†-क्रि० स० दे० "सुलाना"। उ०—(क) सुख दै सलोन बीच दै कै सोंहैं खाय कै सवाद कछू स्वाय वश कीनी परबसु है।—केशव। (ख) आजु हौं सलोनी स्वाय उन्हैं रघुनाथ कृपा निधि मेरे करोगे। मैं उठि आउँगी छोड़ि कै पास जगाइ कै सेज पै पायँ धरोगे।—रघुनाथ।
स्वाप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नींद। निद्रा। (२) स्वप्न। ख्वाब। (३) अज्ञान। (४) निस्पंदता।
स्वापक-वि० [सं०] नींद लानेवाला। निद्राकारक।
स्वापन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जिससे शत्रु निद्रित किए जाते थे। उ०—वर विद्याधर

अस नाम नंदन जो ऐसौ। मोहन स्वापन समन सौम्यकर्पन पुनि तैसौ।—पद्माकर। (२) नींद लानेवाली औषध। वि० नींद लानेवाला। निद्राकारक।

स्वाप्न-वि० [सं०] स्वप्न-संबंधी। स्वप्न का।

स्वाब-संज्ञा पुं० [अं०] कपड़े या सन की बुहारी या झाड़ू जिससे जहाज के डेक आदि साफ किए जाते हैं। (लश०)

स्वाभाविक-वि० [सं०] (१) जो स्वभाव से उत्पन्न हुआ हो। जो आप ही आप हो। (२) स्वभावसिद्ध। प्राकृतिक। नैसर्गिक। सहज। कुदरती। जैसे,—(क) जल में शीतलता होना स्वाभाविक है। (ख) उसका दुष्ट आचरण देखकर उनका क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। (ग) उस कवि ने काश्मीर का क्या ही स्वाभाविक वर्णन किया है।

स्वाभाविकी-वि० [सं०] स्वभावसिद्ध। प्राकृतिक। जैसे,—हे जल! आप में शीतलता का होना तो सहज बात है; स्वच्छता भी आप में स्वाभाविकी है......।—द्विवेदी।

स्वाभाव्य-वि० [सं०] स्वयं उत्पन्न होनेवाला। आप ही आप होनेवाला।

संज्ञा पुं० स्वभावता। स्वभाव का भाव।

स्वामि*-संज्ञा पुं० दे० "स्वामी"। उ०—सेवक स्वामि सखा सिय पीके। हित निरुपधि सब विधि तुलसी के।—तुलसी।

स्वामिकार्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव के पुत्र कार्त्तिकेय। देव सेनापति। वि० दे० "स्कंद"। उ०—धरे चाप इषु हाथ स्वामि कार्तिक यल सोहत।—गोपाल। (२) छः आघात और दस मात्राओं का ताल जिसका बोल इस प्रकार

\+   १   १   १   १

है—धा धिं धा गे ना ग ति न तिरकिट तिं ना तिना तिना के त्ता धिं ना।

स्वामिकुमार-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के पुत्र कार्त्तिकेय का एक नाम। स्वामिकार्त्तिक।

स्वामिजंघी-संज्ञा पुं० [सं० स्वामिजङ्घिन्] परशुराम का एक नाम।

स्वामिता-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वामित्व"।

स्वामित्व-संज्ञा पुं० [सं०] स्वामी होने का भाव। प्रभुता। प्रभुत्व। मालिकपन।

स्वामिन-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वामिनी"।

स्वामिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मालिकिन। स्वत्वाधिकारिणी। (२) घर की मालिकिन। गृहिणी। (३) अपने स्वामी या प्रभु की पत्नी। (४) श्रीराधिका। (वल्लभ संप्रदाय)। उ०—× × × सहित स्वामिनी अंतरजामी।—गोपाल।

स्वामी-संज्ञा पुं० [सं० स्वामिन्] [स्त्री० स्वामिनी] (१) वह जिसके आश्रय में जीवन निर्वाह होता हो। वह जो जीविका चलाता हो। मालिक। प्रभु। अन्नदाता। जैसे,—वे मेरे स्वामी हैं। मैं उनका नमक खाता हूँ। उनकी आज्ञा का पालन करना मेरा परम धर्म्म है। (२) घर का कर्त्ताधर्त्ता। घर का प्रधान पुरुष। जैसे,—वे ही इस घर के स्वामी हैं, उनकी आज्ञा के बिना कोई काम नहीं हो सकता। (३) स्वत्वाधिकारी। मालिक। जैसे,—इस नाट्यशाला के स्वामी एक बंगाली सज्जन हैं। (४) पति। शौहर। (५) ईश्वर। भगवान। (६) राजा। नरपति। (७) कार्त्तिकेय। (८) साधु, संन्यासी और धर्म्माचार्यों की उपाधि। जैसे,—स्वामी शंकराचार्य, स्वामी दयानंद, तैलंग स्वामी, श्रीधर स्वामी। (९) सेना का नायक। (१०) शिव। (११) विष्णु। (१२) गरुड़। (१३) वात्स्यायन मुनि का एक नाम। (१४) गत उत्सर्पिणी के ११वें अर्हत् का नाम।

स्वाम्य-संज्ञा पुं० [सं०] स्वामी होने का भाव। स्वामित्व। प्रभुत्व। प्रभुता। मालिकपन।

स्वाम्युपकारक-संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ा। अश्व।

स्वायंभुव-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार चौदह मनुओं में से पहले मनु जो स्वयंभू ब्रह्मा से उत्पन्न माने जाते हैं।

विशेष—श्रीमद्भागवत में लिखा है कि ब्रह्मा ने इस संसार की सृष्टि करके अपने दाहिने अंग से स्वायंभुव मनु को और बाएँ अंग से शतरूपा नाम की स्त्री उत्पन्न की थी, और दोनों में पति-पत्नी का संबंध स्थापित किया था। इनसे प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम के दो पुत्र तथा आकूति, देवहूति और प्रसूति नाम की तीन कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं। इन्हीं से आगे और सृष्टि चली थी।

स्वायंभुवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी।

स्वायंभू-संज्ञा पुं० दे० "स्वायंभुव"।

स्वायत्त-वि० [सं०] जो अपने आयत्त या अधीन हो। जिस पर अपना ही अधिकार हो।

स्वायत्त शासन-संज्ञा पुं० [सं०] वह शासन या हुकूमत जो अपने आयत्त या अधिकार में हो। स्थानिक स्वराज्य। जैसे,—म्युनिसिपैलिटी और ज़िला बोर्ड स्वायत्तशासन या स्थानिक स्वराज्य के अंतर्गत हैं।

स्वार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़े के खर्राटे का शब्द। (२) बादल की गड़गड़ाहट। मेघध्वनि।

वि० स्वर संबंधी।

स्वारथ*-संज्ञा पुं० दे० "स्वार्थ"। उ०—स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट व्यौहारु।—तुलसी।

वि० [सं० सार्थ] सफल। सिद्ध। फलीभूत। सार्थक। उ०—सेवा सबै भई अब स्वारथ।—सूर।

स्वारथी-वि० दे० "स्वार्थी"। उ०—आये देव सदा स्वारथी। बचन कहहिं जनु परमारथी।—तुलसी।

स्वारस्य-वि०[सं०] (१) सरसता। रसीलापन। उ०—कथाओं का स्वारस्य कम हो गया है।—द्विवेदी। (२) स्वाभाविकता।

स्वाराज्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शासन प्रबंध जिसका संचालन-सूत्र अपने ही देश के लोगों के हाथों में हो। वह शासन या राज्य जिस पर किसी बाहरी शक्ति का नियंत्रण न हो। स्वाधीन राज्य। (२) स्वर्ग का राज्य। स्वर्ग लोक।

स्वाराट्-संज्ञा पुं० [सं० स्वाराज्] (स्वर्ग के राजा) इंद्र।

स्वारी‡†-संज्ञा स्त्री० दे० "सवारी"।

स्वारोचिष-संज्ञा पुं० [सं०] (स्वरोचिष के पुत्र) दूसरे मनु का नाम। मार्कंडेयपुराण में इनका नाम द्युतिमान कहा गया है, और श्रीमद्भागवत के अनुसार ये अग्नि के पुत्र हैं। वि० दे० "मनु"।

स्वार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपना उद्देश्य। अपना मतलब। अपना प्रयोजन। जैसे,—वह ऊपर से उनका मित्र बनकर भीतर ही भीतर स्वार्थ साधन कर रहा है। (२) अपना लाभ। अपनी भलाई। अपना हित। जैसे,—(क) इसमें उसका स्वार्थ है, इसी से वह इतनी दौड़-धूप कर रहा है। (ख) वह अपने स्वार्थ के लिये जो चाहे सो कर सकता है। (ग) वे जिस काम में अपने स्वार्थ की हानि देखते हैं, उसमें कभी नहीं पड़ते।

मुहा०—(किसी बात में) स्वार्थ लेना = दिलचस्पी लेना। अनुराग रखना। जैसे,—राजकीय बातों में स्वार्थ लेनेवाले जो लोग योरप में यह समझते हैं कि राजसत्ता की हद होनी चाहिए, वे बहुत थोड़े हैं।—द्विवेदी।

विशेष—यह मुहा० अँगरेजी मुहा० का अविकल अनुवाद है, अतः प्रशस्त नहीं है।

(३) अपना धन।

वि० [सं० सार्थक] सार्थक। सफल। जैसे,—आपका दर्शन पाय जन्म स्वार्थ किया।—लल्लू।

स्वार्थता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वार्थ का भाव या धर्म। खुदगर्जी। उ०—यह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है।—सत्यार्थप्रकाश।

स्वार्थत्याग-संज्ञा पुं० [सं०] (दूसरे के लिये कर्त्तव्यबुद्धि से) अपने स्वार्थ या हित को निछावर करना। किसी भले काम के लिये अपने हित या लाभ का विचार छोड़ना। जैसे,—देशबंधु दास ने देश के लिये बड़ा भारी स्वार्थ त्याग किया कि २॥ लाख वार्षिक आय की बैरिस्टरी छोड़ दी।

स्वार्थत्यागी-वि० [सं० स्वार्थत्यागिन्] जो (दूसरे के लिये कर्त्तव्य बुद्धि से) अपने स्वार्थ या हित को निछावर कर दे। दूसरे के भले के लिये अपने हित या लाभ का विचार न रखनेवाला। जैसे,—इस समय देश में स्वार्थत्यागी नेताओं की आवश्यकता है।

स्वार्थ पंडित-वि० [सं०] अपना मतलब साधने में चतुर। बड़ा भारी स्वार्थी या खुदगरज।

स्वार्थपर-वि० [सं०] जो केवल अपना ही स्वार्थ या मतलब देखे। अपना स्वार्थ या मतलब साधनेवाला। स्वार्थी। खुदगरज।

स्वार्थपरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वार्थपर होने का भाव। खुदगरजी।

स्वार्थपरायण-वि० [सं०] स्वार्थपर। स्वार्थी। खुदगरज।

स्वार्थपरायणता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वार्थपरायण होने का भाव। स्वार्थपरता। खुदगरजी।

स्वार्थसाधक-वि० [सं०] अपना मतलब साधनेवाला। अपना काम निकालनेवाला। खुदगरज।

स्वार्थसाधन-संज्ञा पुं० [सं०] अपना मतलब साधना। अपना प्रयोजन सिद्ध करना। अपना काम निकालना।

स्वार्थांध-वि० [सं०] जो अपने स्वार्थ के वश अंधा हो जाता हो। अपने हित या लाभ के सामने और किसी बात का विचार न करनेवाला।

स्वार्थी-वि० [सं० स्वार्थिन्] अपना ही मतलब देखनेवाला। मतलबी। खुदगरज।

स्वाल‡-संज्ञा पुं० दे० "सवाल"। उ०—नाथ कह्यो वकील करि दीजै। ज्वाब स्वाल तेहि मुख नृप कीजै।—रघुराज।

स्वास‡-संज्ञा पुं० [सं० श्वास] साँस। श्वास।

स्वासा-संज्ञा स्त्री० [सं० श्वास] साँस। श्वास। उ०—तुका सौं कहु कौन पै जात निबाही साथ। जाकी स्वासा रहत है तासी स्वास के साथ।—रसनिधि।

स्वास्थ्य-संज्ञा पुं० [सं०] नीरोग या स्वस्थ होने की अवस्था। नीरोगता। आरोग्य। तंदुरुस्ती। जैसे,—उनका स्वास्थ्य आजकल अच्छा नहीं है।

स्वास्थ्यकर-वि० [सं०] स्वस्थ करनेवाला। तंदुरुस्त करनेवाला। आरोग्यवर्द्धक। जैसे,—देवघर बड़ा स्वास्थ्यकर स्थान है।

स्वाहा-अव्य० [सं०] एक शब्द या मंत्र जिसका प्रयोग देवताओं को हवि देने के समय किया जाता है। जैसे,—इंद्राय स्वाहा।

मुहा०—स्वाहा करना = नष्ट करना। फूँक डालना। जैसे,—उसने बाप दादे की सारी संपत्ति दो ही बरस में स्वाहा कर डाली। स्वाहा होना = नष्ट होना। बरबाद होना। जैसे,—उनका सारा धन मामले मुकदमे में स्वाहा हो गया।

संज्ञा स्त्री० अग्नि की पत्नी का नाम।

स्वाहाकृत्-वि० [सं०] यज्ञ करनेवाला। यज्ञकर्त्ता।

स्वाहाग्रसन-संज्ञा पुं० [सं० स्वाहा+ग्रसन] देवता। (डिं०)

स्वाहापति-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

स्वाहाप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

स्वाहाभुक्-संज्ञा पुं० [सं० स्वाहाभुज्] देवता।

स्वाहार्ह-वि० [सं०] स्वाहा के योग्य। हवि पाने के योग्य।

स्वाहावल्लभ-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

स्वाहाशन-संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

स्वाहेय-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय का एक नाम।

स्विन्न-वि० [सं०] (१) पसीने से युक्त। स्वेद विशिष्ट। (२) सीझा हुआ। उबला हुआ। (जैसे अन्नादि)

स्विष्टकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

स्वीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपना करना। अपनाना। अंगीकार करना। कबूल करना। (२) पत्नी को ग्रहण करना। विवाह करना। (३) मानना। राजी होना। सम्मत होना। वचन देना। प्रतिज्ञा करना।

स्वीकरणीय-वि० [सं०] स्वीकार करने के योग्य। मानने के योग्य।

स्वीकर्त्तव्य-वि० [सं०] स्वीकार करने के योग्य। मानने के योग्य।

स्वीकर्त्ता-वि० [सं० स्वीकर्तृ] स्वीकार करनेवाला। मंजूर करनेवाला।

स्वीकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपनाने की क्रिया। अंगीकार। कबूल। मंजूर। (२) लेना। ग्रहण। परिग्रह। (३) प्रतिज्ञा। वचन। इकरार। कौल।

स्वीकार्य-वि० [सं०] स्वीकार करने के योग्य। मानने के योग्य।

स्वीकृत-वि० [सं०] स्वीकार किया हुआ। कबूल किया हुआ। माना हुआ। अंगीकृत। मंजूर।

स्वीकृति-स्त्री० [सं०] स्वीकार का भाव। मंजूरी। सम्मति। रजामंदी। जैसे,—(क) वायसराय ने उस 'बिल' पर अपनी स्वीकृति दे दी। (ख) उनकी स्वीकृति से यह नियुक्ति हुई है।

क्रि० प्र०—देना।—माँगना।—मिलना।—लेना।

स्वीय-वि० [सं०] अपना। निज का।

संज्ञा पुं० अपने आदमी। स्वजन। आत्मीय। संबंधी। नाते-रिश्तेदार।

स्वीया-संज्ञा स्त्री० [सं०] अपने ही पति में अनुराग रखनेवाली स्त्री। वि० दे० "स्वकीया"।

स्वेꣳ-वि० दे० "स्व"। उ०—जहँ अभेद करि दुहुन सों करत और स्वे काम। भनि भूषन सब कहत हैं तासु नाम परिनाम।—भूषण।

स्वेच्छा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अपनी इच्छा। अपनी मर्जी। ... वे सब काम स्वेच्छापूर्वक करते हैं।

स्वेच्छाचार-संज्ञा पुं० [सं०] मनमाना काम करना। ... आवे, वही करना। यथेच्छाचार।

स्वेच्छाचारिता-संज्ञा स्त्री० ... का भाव। निरंकुशता। उच्छृंख...

स्वेच्छाचारी-वि० [सं० ... वाला। मनमाना ... जैसे,—यहाँ के पुलिस ...

स्वेच्छामृत्यु-संज्ञा पुं० [सं०] भीष्म पितामह, जो अपने इच्छानुसार मरे थे।

वि० अपने इच्छानुसार मरनेवाला।

स्वेच्छासेवक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० स्वेच्छासेविका] वह जो बिना किसी पुरस्कार या वेतन के किसी कार्य में अपनी इच्छा से योग दे। स्वयंसेवक।

स्वेतꣳ-वि० दे० "श्वेत"।

स्वेतरंगी-संज्ञा स्त्री० [सं० श्वेत + हिं० रंगी] कीर्त्ति। यश। (डिं०)

स्वेद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पसीना। प्रस्वेद। (२) भाप। वाष्प। (३) ताप। गरमी। (४) पसीना लानेवाली औषध।

वि० पसीना लानेवाला।

स्वेदक-संज्ञा पुं० [सं०] कांति लौह।

वि० पसीना लानेवाला। घर्मदायक।

स्वेदचूषक-संज्ञा [सं०] ठंढी हवा। शीतल वायु।

स्वेदज-वि० [सं०] पसीने से उत्पन्न होनेवाला। गर्म भाप या उष्ण वाष्प से उत्पन्न होनेवाला। (जूँ, लीख, खटमल, मच्छर आदि कीड़े मकोड़े।)

स्वेदजल-संज्ञा पुं० [सं०] पसीना। प्रस्वेद।

स्वेदज शाक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शाक जो भूमि गोबर, पाँस, लकड़ी आदि में उत्पन्न होता है। भुईंफोड़। छतौना। भुइँछत्ता। छत्ता। छत्राक।

विशेष—वैद्यक में यह शीतल, दोषजनक, पिच्छिल, भारी तथा वमन, अतिसार ज्वर और कफ रोग को उत्पन्न करनेवाला माना गया है।

स्वेदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पसीना निकलना। (२) वैद्यों का एक यंत्र जिसकी सहायता से औषधियाँ शोधी जाती हैं।

विशेष—एक हँडिया में तरल पदार्थ (जल, स्वरस, काढ़ा आदि) भरकर उसका मुँह कपड़े से भली भाँति बाँध देते हैं। फिर उस कपड़े के ऊपर उस औषधि की, जिसका स्वेदन करना होता है, पोटली रखकर मुँह ढकने से अच्छी तरह ढँक देते हैं और बरतन को धीमी आँच पर चढ़ा देते हैं। इस क्रिया से भाप के द्वारा वह औषधि शोधी जाती है।

...नत्व...] स्वेदन का भाव।

...] हवा। वायु।

...] (१) तवा (२) रसोईघर। पाक-

... या भभका।

... का रस।

... से युक्त। (२) ... प्रकार......

अपने मुख की भाप से नेत्रों को स्वेदित कर लो।—नूतनामृतसागर।

स्वेदी–वि॰ [सं॰ स्वेदिन्] पसीना लानेवाला। घर्मकारक।

स्वेद्य–वि॰ [सं॰] स्वेद के योग्य। पसीने के योग्य।

स्वैँ⊛–वि॰ [सं॰ स्वीय] अपना। निज का। (डिं॰)

सर्व॰ दे॰ "सो"। उ॰—सो सुकृती सुचिमंत सुसंत सुसील सयान सिरोमनि स्वैं।—तुलसी।

स्वैर–वि॰ [सं॰] (१) अपने इच्छानुसार चलनेवाला। मनमाना काम करनेवाला। स्वच्छंद। स्वतंत्र। स्वाधीन। यथेच्छाचारी। (२) धीमा। मंद। (३) यथेच्छ। मनमाना। ऐच्छिक।

स्वैरचारिणी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) मनमाना काम करनेवाली स्त्री। (२) व्यभिचारिणी स्त्री।

स्वैरचारी–वि॰ [सं॰ स्वैरचारिन्] मनमाना काम करनेवाला। स्वेच्छाचारी। निरंकुश।

स्वैरता–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) यथेच्छाचारिता। स्वच्छंदता।

स्वैरथ–संज्ञा पुं॰ [सं॰] ज्योतिष्मत् के एक पुत्र का नाम। (२) एक वर्ष का नाम जिसके देवता स्वैरथ माने जाते हैं। (विष्णुपुराण)

स्वैरवर्त्ती–वि॰ [सं॰ स्वैरवर्तिन्] अपने इच्छानुसार चलने या काम करनेवाला। स्वेच्छाचारी।

स्वैरवृत्त–वि॰ [सं॰] अपने इच्छानुसार चलने या काम करनेवाला। स्वेच्छाचारी।

स्वैराचार–संज्ञा पुं॰ [सं॰] जो जी में आवे, वही करना। मनमाना काम करना। स्वेच्छाचार। यथेच्छाचार।

स्वैरिंध्री–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "सैरिंध्री"।

स्वैरिणी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] व्यभिचारिणी स्त्री।

स्वैरिता–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] यथेच्छाचारिता। स्वच्छंदता। स्वाधीनता।

स्वैरी–वि॰ [सं॰ स्वैरिन्] स्वेच्छाचारी। स्वतंत्र। निरंकुश। अबाध्य।

स्वोपार्जित–वि॰ [सं॰] अपना उपार्जन किया हुआ। अपना कमाया हुआ। जैसे,—उनकी सारी संपत्ति स्वोपार्जित है।

स्वोरस–संज्ञा पुं॰ दे॰ "स्वरस"।



ह

ह—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला का तेंतीसवाँ व्यंजन जो उच्चारण-विभाग के अनुसार ऊष्म वर्ण कहलाता है।

हँक–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "हाँक"।

हँकड़ना–क्रि॰ अ॰ [हिं॰ हाँक] ललकारते हुए जोर जोर से चिल्लाना। दर्प के साथ बोलना। ललकारना।

हँकरना–क्रि॰ अ॰ दे॰ "हँकड़ना"।

हँकारना⊛†–क्रि॰ स॰ [हिं॰ हाँक] (१) हाँक देकर बुलाना। जोर से आवाज लगाकर किसी दूर के मनुष्य को संबोधन करना। (२) बुलाना। पुकारना। उ॰—मोहन ग्वाल सखा हँकराए।—सूर। (३) पुकारने का काम दूसरे से कराना। बुलवाना। उ॰—राजा सब सेवक हँकराई। भाँति भाँति की वस्तु मँगाई।—विश्राम।

हँकरावा–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ हँकराना] (१) बुलाने की क्रिया या भाव। बुलाहट। पुकार। (२) बुलावा। न्योता। निमंत्रण।

हँकवा–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ हाँक] शेर के शिकार का एक ढंग जिसमें बहुत से लोग ढोल, ताशे आदि बजाते और शोर करते हुए, जिस स्थान पर शेर होता है, उस स्थान के चारों ओर से चलते हैं और इस प्रकार शेर को हाँक कर उस मचान की ओर ले जाते हैं जहाँ शिकारी उसे मारने के लिये बंदूक भरे बैठे रहते हैं।

हँकवाना–क्रि॰ स॰ [हिं॰ हाँकना का प्रे॰ रूप] (१) हाँक लगवाना। बुलवाना। दूसरे से पुकारने का काम कराना। (२) पशुओं या चौपायों को आवाज देकर हटवाना या किसी ओर भगाना।

संयो॰ क्रि॰—देना।

हँकवैया⊛†–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ हाँकना + वैया (प्रत्य॰)] हाँकनेवाला।

हंका–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ हाँक] ललकार। डपट। उ॰—संका दै दसानन को, हंका दै सुबंका बीर, डंका दै विजय को कपि कूदि परयो लंका में।—पद्माकर।

क्रि॰ प्र॰—देना।—मारना।

हँकाई–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ हाँकना] (१) हाँकने की क्रिया या भाव। (२) हाँकने की मजदूरी।

हँकाना–क्रि॰ स॰ [हिं॰ हाँक] (१) चौपायों या जानवरों को आवाज देकर हटाना या किसी ओर ले जाना। हाँकना। (२) पुकारना। बुलाना। (३) दूसरे से हाँकने का काम कराना। हँकवाना।

हँकार–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ हकार] (१) आवाज लगाकर बुलाने की क्रिया या भाव। पुकार। (२) वह ऊँचा शब्द जो किसी को बुलाने या संबोधन करने के लिये किया जाय। पुकार।

मुहा॰—हँकार पड़ना = बुलाने के लिये आवाज लगना। पुकार मचना।

स्वाहेय-संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय का एक नाम।
स्विन्न-वि० [सं०] (१) पसीने से युक्त। स्वेद विशिष्ट। (२) सीझा हुआ। उबला हुआ। (जैसे अन्नादि)
स्विष्टकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।
स्वीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपना करना। अपनाना। अंगीकार करना। कबूल करना। (२) पत्नी को ग्रहण करना। विवाह करना। (३) मानना। राजी होना। सम्मत होना। वचन देना। प्रतिज्ञा करना।
स्वीकरणीय-वि० [सं०] स्वीकार करने के योग्य। मानने के योग्य।
स्वीकर्त्तव्य-वि० [सं०] स्वीकार करने के योग्य। मानने के योग्य।
स्वीकर्त्ता-वि० [सं० स्वीकर्तृ] स्वीकार करनेवाला। मंजूर करनेवाला।
स्वीकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपनाने की क्रिया। अंगीकार। कबूल। मंजूर। (२) लेना। ग्रहण। परिग्रह। (३) प्रतिज्ञा। वचन। इकरार। कौल।
स्वीकार्य-वि० [सं०] स्वीकार करने के योग्य। मानने के योग्य।
स्वीकृत-वि० [सं०] स्वीकार किया हुआ। कबूल किया हुआ। माना हुआ। अंगीकृत। मंजूर।
स्वीकृति-वि० [सं०] स्वीकार का भाव। मंजूरी। सम्मति। रजामंदी। जैसे,—(क) वायसराय ने उस 'बिल' पर अपनी स्वीकृति दे दी। (ख) उनकी स्वीकृति से यह नियुक्ति हुई है।
क्रि० प्र०—देना।—माँगना।—मिलना।—लेना।
स्वीय-वि० [सं०] अपना। निज का।
संज्ञा पुं० अपने आदमी। स्वजन। आत्मीय। संबंधी। नातेरिश्तेदार।
स्वीया-संज्ञा स्त्री० [सं०] अपने ही पति में अनुराग रखनेवाली स्त्री। वि० दे० "स्वकीया"।
स्वै-वि० दे० "स्व"। उ०—जहँ अभेद करि दुहुन सों करत और स्वै काम। भनि भूषन सब कहत हैं तासु नाम परिनाम।—भूषण।
स्वेच्छा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अपनी इच्छा। अपनी मर्जी। जैसे,—वे सब काम स्वेच्छापूर्वक करते हैं।
स्वेच्छाचार-संज्ञा पुं० [सं०] मनमाना काम करना। जो जी में आवे, वही करना। यथेच्छाचार।
स्वेच्छाचारिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वेच्छाचार का भाव या धर्म। निरंकुशता। उच्छृंखलता।
स्वेच्छाचारी-वि० [सं० स्वेच्छाचारिन्] अपने इच्छानुसार चलनेवाला। मनमाना काम करनेवाला। निरंकुश। अबाध्य। जैसे,—यहाँ के पुलिस कर्मचारी बड़े स्वेच्छाचारी हैं।
स्वेच्छामृत्यु-संज्ञा पुं० [सं०] भीष्म पितामह, जो अपने इच्छानुसार मरे थे।
वि० अपने इच्छानुसार मरनेवाला।
स्वेच्छासेवक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० स्वेच्छासेविका] वह जो बिना किसी पुरस्कार या वेतन के किसी कार्य में अपनी इच्छा से योग दे। स्वयंसेवक।
स्वेत-वि० दे० "श्वेत"।
स्वेतरंगी-संज्ञा स्त्री० [सं० श्वेत + हिं० रंगी] कीर्ति। यश। (डिं०)
स्वेद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पसीना। प्रस्वेद। (२) भाप। वाष्प। (३) ताप। गरमी। (४) पसीना लानेवाली औषध।
वि० पसीना लानेवाला।
स्वेदक-संज्ञा पुं० [सं०] कांति लौह।
वि० पसीना लानेवाला। धर्मदायक।
स्वेदचूषक-संज्ञा [सं०] ठंढी हवा। शीतल वायु।
स्वेदज-वि० [सं०] पसीने से उत्पन्न होनेवाला। गर्म भाप या उष्ण वाष्प से उत्पन्न होनेवाला। (जूँ, लीख, खटमल, मच्छर आदि कीड़े मकोड़े।)
स्वेदजल-संज्ञा पुं० [सं०] पसीना। प्रस्वेद।
स्वेदज शाक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शाक जो भूमि गोबर, पाँस, लकड़ी आदि में उत्पन्न होता है। भुइँफोड़। छतौना। भुइँछत्ता। छत्ता। छत्राक।
विशेष—वैद्यक में यह शीतल, दोषजनक, पिच्छिल, भारी तथा वमन, अतिसार ज्वर और कफ रोग को उत्पन्न करनेवाला माना गया है।
स्वेदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पसीना निकलना। (२) वैद्यों का एक यंत्र जिसकी सहायता से ओषधियाँ शोधी जाती हैं।
विशेष—एक हँडिया में तरल पदार्थ (जल, स्वरस, काढ़ा आदि) भरकर उसका मुँह कपड़े से भली भाँति बाँध देते हैं। फिर उस कपड़े के ऊपर उस ओषधि को, जिसका स्वेदन करना होता है, पोटली रखकर मुँह ढकने से अच्छी तरह ढँक देते हैं और बरतन को धीमी आँच पर चढ़ा देते हैं। इस क्रिया से भाप के द्वारा वह ओषधि शोधी जाती है।
स्वेदनत्व-संज्ञा पुं० [सं०] स्वेदन का भाव।
स्वेदनाश-संज्ञा पुं० [सं०] हवा। वायु।
स्वेदनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तवा (२) रसोईघर। पाकशाला। (३) शराब चुआने का बरतन या भभका।
स्वेदनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तवा।
स्वेदमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्वेदमातृ] शरीर में का रस।
स्वेदायन-संज्ञा पुं० [सं०] रोम कूप। लोम छिद्र।
स्वेदित-वि० [सं०] (१) स्वेद से युक्त। पसीने से युक्त। (२) बफारा दिया हुआ। सेंका हुआ। उ०—इस प्रकार... ..

अपने मुख की भाप से मेघों को स्वेदित कर दो।—नूतनामृतसागर।

स्वेदी–वि० [सं० स्वेदिन्] पसीना लानेवाला। घर्मकारक।

स्वेद्य–वि० [सं०] स्वेद के योग्य। पसीने के योग्य।

स्वै–वि० [सं० स्वीय] अपना। निज का। (डिं०)

सर्व० दे० "सो"। उ०—सो सुकृती सुचिमंत सुसंत सुसील सयान सिरोमनि स्वै।—तुलसी।

स्वैर–वि० [सं०] (१) अपने इच्छानुसार चलनेवाला। मनमाना काम करनेवाला। स्वच्छंद। स्वतंत्र। स्वाधीन। यथेच्छाचारी। (२) धीमा। मंद। (३) यथेच्छ। मनमाना। पूर्णेच्छक।

स्वैरचारिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मनमाना काम करनेवाली स्त्री। (२) व्यभिचारिणी स्त्री।

स्वैरचारी–वि० [सं० स्वैरचारिन्] मनमाना काम करनेवाला। स्वेच्छाचारी। निरंकुश।

स्वैरता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यथेच्छाचारिता। स्वच्छंदता।

स्वैरथ–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष्मत् के एक पुत्र का नाम। (२) एक वर्ष का नाम जिसके देवता स्वैरथ माने जाते हैं। (विष्णुपुराण)

स्वैरवर्ती–वि० [सं० स्वैरवर्तिन्] अपने इच्छानुसार चलने या काम करनेवाला। स्वेच्छाचारी।

स्वैरवृत्त–वि० [सं०] अपने इच्छानुसार चलने या काम करनेवाला। स्वेच्छाचारी।

स्वैराचार–संज्ञा पुं० [सं०] जो जी में आवे, वही करना। मनमाना काम करना। स्वेच्छाचार। यथेच्छाचार।

स्वैरिंध्री–संज्ञा स्त्री० दे० "सैरिंध्री"।

स्वैरिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यभिचारिणी स्त्री।

स्वैरिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] यथेच्छाचारिता। स्वच्छंदता। स्वाधीनता।

स्वैरी–वि० [सं० स्वैरिन्] स्वेच्छाचारी। स्वतंत्र। निरंकुश। अबाध्य।

स्वोपार्जित–वि० [सं०] अपना उपार्जन किया हुआ। अपना कमाया हुआ। जैसे,—उनकी सारी संपत्ति स्वोपार्जित है।

स्वोरस–संज्ञा पुं० दे० "स्वरस"।



ह

ह—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला का तैंतीसवाँ व्यंजन जो उच्चारण-विभाग के अनुसार ऊष्म वर्ण कहलाता है।

हँक–संज्ञा स्त्री० दे० "हाँक"।

हँकड़ना–क्रि० अ० [हिं० हाँक] अकड़ते हुए जोर जोर से चिल्लाना। दर्प के साथ बोलना। ललकारना।

हँकरना–क्रि० अ० दे० "हँकड़ना"।

हँकारनाॐ†–क्रि० स० [हिं० हाँक] (१) हाँक देकर बुलाना। जोर से आवाज लगाकर किसी दूर के मनुष्य को संबोधन करना। (२) बुलाना। पुकारना। उ०—मोहन ग्वाल सखा हँकाए।—सूर। (३) पुकारने का काम दूसरे से कराना। बुलवाना। उ०—राजा सब सेवक हँकराई। भाँति भाँति की वस्तु मँगाई।—विश्राम।

हँकराया–संज्ञा पुं० [हिं० हँकराना] (१) बुलाने की क्रिया या भाव। बुलाहट। पुकार। (२) बुलावा। न्योता। निमंत्रण।

हँकवा–संज्ञा पुं० [हिं० हाँक] शेर के शिकार का एक ढंग जिसमें बहुत से लोग ढोल, तासे आदि बजाते और शोर करते हुए, जिस स्थान पर शेर होता है, उस स्थान के चारों ओर से चलते हैं और इस प्रकार शेर को हाँक कर उस मचान की ओर ले जाते हैं जहाँ शिकारी उसे मारने के लिये बंदूक भरे बैठे रहते हैं।

हँकवाना–क्रि० स० [हिं० हाँकना का प्रे० रूप] (१) हाँक लगवाना। बुलवाना। दूसरे से पुकारने का काम कराना। (२) पशुओं या चौपायों को आवाज देकर हटवाना या किसी ओर भगाना।

संयो० क्रि०—देना।

हँकवैयाॐ†–संज्ञा पुं० [हिं० हाँकना + वैया (प्रत्य०)] हाँकनेवाला।

हँका–संज्ञा स्त्री० [हिं० हाँक] ललकार। डपट। उ०—संका दै दसानन को, हंका दै सुबंका बीर, डंका दै विजय को कपि कूदि परयो लंका में।—पद्माकर।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।

हँकाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० हाँकना] (१) हाँकने की क्रिया या भाव। (२) हाँकने की मजदूरी।

हँकाना–क्रि० स० [हिं० हाँक] (१) चौपायों या जानवरों को आवाज देकर हटाना या किसी ओर ले जाना। हाँकना। (२) पुकारना। बुलाना। (३) दूसरे से हाँकने का काम कराना। हँकवाना।

हँकार–संज्ञा स्त्री० [सं० हकार] (१) आवाज लगाकर बुलाने की क्रिया या भाव। पुकार। (२) वह ऊँचा शब्द जो किसी को बुलाने या संबोधन करने के लिये किया जाय। पुकार।

मुहा०—हँकार पड़ना = बुलाने के लिये आवाज लगना। पुकार मचना।

हुंकारक्ष्†–संज्ञा पुं० दे० "अहंकार"।

संज्ञा पुं० [सं० हुंकार] वीरों का दर्पनाद। ललकार। दपट।

हुँकारना–क्रि० स० [हिं० हुँकार] (१) आवाज देकर किसी को संबोधन करना। जोर से पुकारना। ऊँचे स्वर से बुलाना। टेरना। नाम लेकर चिल्लाना। उ०—ऊँचे तरु चढ़ि स्याम सखन कों बारंबार हुँकारत।—सूर। (२) अपने पास आने को कहना। बुलाना। पुकारना। उ०—(क) धाय दामिनी-वेग हुँकारी। ओहि सौंपा होये रिस भारी।—जायसी। (ख) देखी जनक भीर भइ भारी। शुचि सेवक सब लिए हुँकारी।—तुलसी।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(३) युद्ध के लिये आह्वान करना। ललकारना। हाँक देना। उ०—देखत तहाँ जुरे भट भारी। एक एक सन भिरे हुँकारी।—रघुराज।

हुंकारना–क्रि० अ० [हिं० हुंकार] हुंकार शब्द करना। वीरनाद करना। दपटना।

हुँकारा–संज्ञा पुं० [हिं० हुँकारना] (१) पुकार। बुलाहट। (२) निमंत्रण। आह्वान। बुलौवा। न्योता। उ०—गुरु वसिष्ठ कहँ गयउ हुँकारा। आए द्विजन्ह सहित नृपद्वारा।—तुलसी।

क्रि० प्र०—जाना।—भेजना।

हुंगामा–संज्ञा पुं० [फ़ा० हंगामः] (१) उपद्रव। हलचल। दंगा। बलवा। मारपीट। लड़ाई झगड़ा।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—होना।

(२) शोरगुल। कलकल। हल्ला।

हुंगोरी–संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत बड़ा पेड़ जो दार्जिलिंग के पहाड़ों में होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और मेज, कुरसी, आलमारी आदि सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। पहाड़ी लोग इसका फल भी खाते हैं।

हुंजि–संज्ञा पुं० [सं०] छींक।

हुंटर–संज्ञा पुं० [अं० हंट ?] लंबी चाबुक। कोड़ा।

क्रि० प्र०—जमाना।—मारना।—लगाना।

हुंडना–क्रि० अ० [सं० अभ्यटन, प्रा० अहडन अथवा अंडन = नटखटी] (१) घूमना। फिरना। जैसे,—काशी हुंडे, प्रयाग मुंडे। (२) व्यर्थ, इधर उधर फिरना। आवारा घूमना। (३) इधर उधर ढूँढ़ना। छानबीन करना।

हुंडल–संज्ञा पुं० [अं० हैंडल] (१) बेंट। दस्ता। मुठिया। (२) किसी कल या पेंच का वह भाग जो हाथ से पकड़ कर घुमाया जाता है।

हुंडा–संज्ञा पुं० [सं० भांडक] पीतल या ताँबे का बहुत बड़ा बरतन जिसमें पानी भरकर रखा जाता है।

हुँड़िक–संज्ञा पुं० [देश०] तौलने का बाट। (सुनार)

हुँडिया–संज्ञा स्त्री० [सं० भांडिका] (१) बड़े लोटे के आकार का मिट्टी का बरतन जिसमें चावल दाल पकाते या कोई वस्तु रखते हैं। हाँडी।

मुहा०—हँडिया चढ़ाना = कोई वस्तु पकाने के लिये पानी रखकर हाँडी आँच पर रखना।

(२) इस आकार का शीशे का पात्र जो शोभा के लिये लटकाया जाता है और जिसमें मोमबत्ती जलाई जाती है।

(३) जौ, चावल आदि अनाज सड़ाकर बनाई हुई शराब।

हंडी–संज्ञा स्त्री० दे० "हँडिया", "हाँडी"।

हंत–अव्य० [सं०] खेद या शोकसूचक शब्द।

हंतकार–संज्ञा पुं० [सं०] अतिथि या संन्यासी आदि के लिये निकाला हुआ भोजन जो पुष्कल का चौगुना अर्थात् मोर के सोलह अंशों के बराबर होना चाहिए।

हंता–संज्ञा पुं० [सं० हंतृ] [स्त्री० हंत्री] मारनेवाला। वध करनेवाला। जैसे,—शत्रुहंता, पितृहंता।

हँथोरी–संज्ञा स्त्री० दे० "हथोरी"।

हँथोरा–संज्ञा पुं० दे० "हथौड़ा"।

हंदा–संज्ञा पुं० [सं० हंतकार] पुरोहित या ब्राह्मण के लिये निकाला हुआ भोजन।

विशेष—पंजाब के खत्री-ब्राह्मणों में यह प्रथा है कि सबेरे की रसोई में से कुछ अंश अपने पुरोहित के लिये अलग कर देते हैं। इसी को हंदा कहते हैं।

हँफनिक्ष–संज्ञा स्त्री० [हिं० हाँफना] हाँफने की क्रिया या भाव। अधिक परिश्रम के कारण जल्दी जल्दी और जोर जोर से चलती हुई साँस। हाँफ।

मुहा०—हँफनि मिटाना = दम लेना। दम मारना। सुस्ताना। थकावट दूर करना। उ०—बात कहिये में नंदलाल की उताल बड़ा, हाल तौ हरिननैनी हँफनि मिटाय लै।—शिव।

हंया–अव्य० [हिं० हाँ] सम्मति या स्वीकृति-सूचक अव्यय। हाँ। (राजपूताना)

हंभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय या बैल आदि के बोलने का शब्द। रँभाने का शब्द।

हंस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बत्तख के आकार का एक जलपक्षी जो बड़ी बड़ी झीलों में रहता है।

विशेष—इसकी गरदन बत्तख से लंबी होती है और कभी कभी उसमें बहुत सुंदर घुमाव दिखाई पड़ता है। यह पृथ्वी के प्रायः सब भागों में पाया जाता है और छोटे छोटे जलजंतुओं और उद्भिद पर निर्वाह करता है। यद्यपि हंस का रंग श्वेत ही प्रसिद्ध है, पर आस्ट्रेलिया में काले रंग के हंस भी पाए जाते हैं। योरप में इसकी दो जातियाँ होती हैं—एक 'मूक हंस'; दूसरी 'तूर्य्य हंस'। मूक हंस बोलते नहीं, पर तूर्य्य हंस की आवाज बड़ी कड़ी होती है। अमेरिका में भूरे और चितकबरे हंस भी होते हैं। चितकबरे हंस का सारा

शरीर सफेद होता है, केवल सिर और गरदन कालापन लिए लाखी रंग की होती है। भारतवर्ष में हंस सब दिन नहीं रहते। वर्षा काल में उनका मान सरोवर आदि तिब्बत की झीलों में चला जाना और शरत्काल में लौटना प्रसिद्ध है। यह पक्षी अपनी शुभ्रता और सुंदर चाल के लिये बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। कवियों में तथा जनसाधारण में इसके मोती चुँगने और नीरक्षीर विवेक करने (दूध में से पानी अलग करने) का प्रवाद चला आता है जो कल्पना मात्र है। युरोप के पुराने कवियों में भी ऐसा प्रवाद था कि यह पक्षी बहुत सुंदर राग गाता है, विशेषतः मरते समय। (किसी शब्द के आगे लगकर यह शब्द श्रेष्ठता का वाचक भी होता है, जैसे, कुल-हंस। उ०—विधि के समान हैं, विमानीकृत राजहंस विविध विबुधयुत मेरु सो अचल है। —केशव।)

(२) सूर्य्य। उ०—हंस-बंस, दसरथ जनक, रामलषन से भाई।—तुलसी।

यौ०—हंसवंश। हंससुता।

(३) ब्रह्म। परमात्मा। (४) शुद्ध आत्मा। माया से निर्लिप्त आत्मा। उ०—जे एहि छीर समुद महँ परे। जीउ गँवाइ हंस होइ तरे।—जायसी। (५) जीवात्मा। जीव। उ०—सिर धुनि हंसा चले हो रमैया राम।—कबीर। (६) विष्णु। (७) विष्णु का एक अवतार।

विशेष—एक बार सनकादिक ने ब्रह्मा से जाकर पूछा—"कृपा कर बताइए कि विषय को चित्त ग्रहण किए हुए है या विषय ही चित्त को ग्रहण किए है। ये दोनों ऐसे मिले हुए हैं कि इनसे अलग नहीं करते बनता।" जब ब्रह्मा उत्तर न दे सके, तब सनकादिक को अपने ज्ञान का बड़ा गर्व हो गया। इस पर ब्रह्मा ने भक्तिपूर्वक भगवान् का ध्यान किया। तब भगवान् हंस का रूप धारण करके सामने आए और सनकादिक से बोले—"तुम्हारा यह प्रश्न ही अज्ञानपूर्ण है। विषय और उनका चिंतन दोनों ही माया हैं, अर्थात् एक है"। इस प्रकार सनकादिक का ज्ञानगर्व दूर हो गया।

(८) उदार और संयमी राजा। श्रेष्ठ राजा। (९) संन्यासियों का एक भेद। उ०—कहि आचार भक्तिविधि भाखो हंस धर्म प्रगटायो।—सूर। (१०) एक मंत्र। (११) प्राणवायु। (१२) घोड़ा। (१३) शिव। महादेव। (१४) ईर्ष्या। द्वेष। (१५) दीक्षागुरु। आचार्य्य। (१६) पर्वत। (१७) कामदेव। (१८) भैंसा। (१९) दोहे के नवें भेद का नाम जिसमें १४ गुरु और २० लघु वर्ण होते हैं। (पिंगल) (२०) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक भगण और दो गुरु होते हैं। इसे 'पंक्ति' भी कहते हैं। उ०—राम ससारो। (२१) एक प्रकार का नृत्य। (२२) प्रासाद का एक भेद जो हंस के आकार का बनाया जाता था। यह बारह हाथ चौड़ा और एक खंड का होता था और इसके ऊपर एक शृंग बनाया जाता था। (वास्तु विद्या)

हंसक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हंस पक्षी। (२) पैर की उँगलियों में पहनने का एक गहना। बिछुआ। उ०—ते नगरी ना नागरी प्रतिपद हंसक हीन।—केशव।

हंसकूट–संज्ञा पुं० [सं०] बैल के कंधों के बीच उठा हुआ कूबड़। डिल्ला।

हंसगति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंस के समान सुंदर धीमी चाल (२) ब्रह्मत्व की प्राप्ति। सायुज्य मुक्ति। (३) बीस मात्राओं के एक छंद का नाम जिसमें ग्यारहवीं मात्रा पर विराम होता है। इसी छंद को बारहवीं मात्रा पर यति मानकर मंजुतिलका भी कहते हैं।

हंसगद्गदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियभाषिणी स्त्री।

हंसगर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] एक रत्न का नाम। (रत्नपरीक्षा)

हंसगामिनी–वि० स्त्री० [सं०] हंस के समान सुंदर मंद गति से चलनेवाली।

हंस चौपड़–संज्ञा पुं० [सं० हंस + हिं० चौपड़] एक प्रकार का पुराना चौपड़ का खेल जो पासों से खेला जाता था।

विशेष—इसकी तख्ती में ६२ घर होते थे। एक ६३वाँ घर केंद्र में होता था, जो जीत का घर होता था। तख्ती के प्रत्येक चौथे और पाँचवें घर में एक हंस का चिह्न होता था। खेलनेवाले का पाँसा जब हंस पर पड़ता था, तब वह दूनी चाल चल सकता था।

हंसजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (सूर्य्य की कन्या) यमुना।

हँसता-मुखी–संज्ञा पुं० [हिं० हँसना + मुख] हँसते चेहरेवाला। प्रसन्नमुख। उ०—जो देखा सो हँसतामुखी।—जायसी।

हंसदफरा–संज्ञा पुं० [?] वे रस्से जो छोटी नाव में उसकी मजबूती के लिये बँधे रहते हैं।

हंसदाहन–संज्ञा पुं० [सं०] धूप। गूगल।

हँसन–संज्ञा स्त्री० [हिं० हँसना] (१) हँसने की क्रिया या भाव। (२) हँसने का ढंग।

हँसना–क्रि० अ० [सं० हसन] (१) आनंद के वेग से कंठ से एक विशेष प्रकार का आघात-रूप स्वर निकालना। खुशी के मारे मुँह फैलाकर एक तरह की आवाज करना। खिलखिलाना। ठट्ठा मारना। हास करना। कहकहा लगाना।

संयो० क्रि०—देना।—पड़ना।

यौ०—हँसना बोलना = आनंद की बातचीत करना। जैसे,—चार दिन की जिंदगी में हँस बोल लो। हँसना खेलना = आनंद करना।

मुहा०—किसी व्यक्ति पर हँसना = विनोद की बात कहकर किसी को तुच्छ या मूर्ख ठहराना। उपहास करना। जैसे,—तुम दूसरों

पर तो बहुत हँसते हो, पर आप कुछ नहीं कर सकते। किसी वस्तु पर हँसना = विनोद की बात करकर किसी वस्तु को तुच्छ या बुरी ठहराना। उपहास करना। व्यंग्यपूर्ण निंदा करना। अनादर करना। उ०—(क) हँसिबे जोग, हँसे नहिं खोरी।—तुलसी। (ख) हँसहि मलिन खल बिमल बतकही।—तुलसी। हँसते हँसते = प्रसन्नता से। खुशी से। बिना किसी प्रकार का कष्ट या बाधा अनुभव किए। जैसे,—(क) राजपूतों ने हँसते हँसते युद्ध में प्राण दिए। (ख) मैं हँसते हँसते यह सब कष्ट सह लूँगा। हँसते हुए = दे० "हँसते हँसते"। हँसता मुँह या चेहरा = प्रसन्न मुख। ऐसा चेहरा जिससे प्रसन्नता का भाव प्रकट होता हो। ठठाकर हँसना = जोर से हँसना। अट्टहास करना। उ०—दोउ एक संग न होहिं भुआलू। हँसब ठठाइ, फुलाउब गालू।—तुलसी। बात हँसकर उड़ाना = ध्यान न देना। तुच्छ, साधारण या हलका समझकर विनोद में टाल देना। जैसे,—मैं काम की बात कहता हूँ, तुम हँसकर उड़ा देते हो।

(२) रमणीय लगना। मनोहर जान पड़ना। गुलजार या रौनक होना। जैसे,—यह जमीन कैसी हँस रही है। (३) केवल मनोरंजन के लिये कुछ कहना या करना। दिल्लगी करना। हँसी करना। मज़ाक करना। मसखरापन करना। जैसे,—मैं तो यों ही हँसता था, कुछ तुम्हारी छड़ी लिए नहीं लेता था। (४) आनंद मानना। प्रसन्न या सुखी होना। खुशी मनाना। जैसे,—यह तो दुनिया है; कोई हँसता है, कोई रोता है।

क्रि० स० किसी का उपहास करना। व्यंग्य या हँसी की बात कहकर किसी को तुच्छ या मूर्ख ठहराना। विनोद के रूप में किसी को हेठा, बुरा या मूर्ख प्रकट करना। अनादर करना। हँसी उड़ाना। जैसे,—तुम दूसरों को तो हँसते हो, पर अपना दोष नहीं देखते।

हंसनादिनी—वि० स्त्री० [सं०] सुंदर बोलनेवाली। मधुरभाषिणी।

हँसनिꕯ†—संज्ञा स्त्री० दे० "हँसन"।

हंसनी—संज्ञा स्त्री० दे० "हंसी"।

हंसपद—संज्ञा पुं० [सं०] एक तौल या मान। कर्ष।

हंसपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम।

हंसपाद—संज्ञा पुं० [सं०] हिंगुल। ईंगुर। शिंगरफ।

हंसपादी—संज्ञा स्त्री० दे० "हंसपदी"।

हंस-मंगला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो शंकराभरण, सोरठ और अड़ाने के मेल से बनी है।

हंसमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंसों की पंक्ति। (२) एक वर्ण वृत्त का नाम।

हँसमुख—वि० [हिं० हँसना+मुख] (१) प्रसन्नवदन। जिसके चेहरे से प्रसन्नता का भाव प्रकट होता हो। (२) विनोदशील। हास्यप्रिय। ठठोल। हँसी दिल्लगी करनेवाला। चुहलबाज।

हंसरथ—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा (जिनका वाहन हंस है)।

हंसराज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक बूटी जो पहाड़ों में चट्टानों से लगी हुई मिलती है। समलपत्ती।

विशेष—यह एक छोटी घास होती है जिसमें चारो ओर आठ दस अंगुल के सूत के से डंठल फैलते हैं। इन डंठलों के दोनों ओर बंद मुट्ठी के आकार की छोटी छोटी कटावदार पत्तियाँ गुछी होती हैं। यह बूटी देखने में बड़ी सुंदर होती है, इससे बगीचों में कंकड़ पत्थर के ढेर खड़े करके इसे लगाते हैं। वैद्यक में यह गरम मानी जाती है और ज्वर में दी जाती है। कहते हैं, इससे बवासीर से खून जाना भी बंद हो जाता है।

(२) एक प्रकार का अगहनी धान।

हँसली—संज्ञा स्त्री० [सं० अंसली] (१) गरदन के नीचे और छाती के ऊपर की धन्वाकार हड्डी। (२) गले में पहनने का स्त्रियों का एक गहना जो मंडलाकार और ठोस होता है। यह बीच में मोटा और छोरों पर पतला होता है।

हंसलोमश—संज्ञा पुं० [सं०] कसीस।

हंसवंश—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य वंश। उ०—हंस बंस, दसरथ जनक, राम लषन से भाइ।—तुलसी।

हंसवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम।

हंसवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा (जिनकी सवारी हंस है)।

हंसवाहनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती (जिनकी सवारी हंस है)।

हंससुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना नदी। उ०—हंससुता की सुंदर कगरी औ कुंजन की छाहीं।—सूर।

हंसांघ्रि—संज्ञा पुं० [सं०] हिंगुल। ईंगुर। सिंगरफ।

हँसाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० हँसना] (१) हँसने की क्रिया या भाव। (२) उपहास। लोगों में निंदा। बदनामी। उ०—सूरदास कूबरि रँग राते ब्रज में होति हँसाई।—सूर।

यौ०—जगत-हँसाई।

हँसाना—क्रि० स० [हिं० हँसना] दूसरे को हँसने में प्रवृत्त करना। कोई ऐसी बात करना जिससे दूसरा हँसे।

संयो० क्रि०—देना।

हंसाभिख्य—संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी।

हँसायꕯ†—संज्ञा स्त्री० दे० "हँसाई"।

हंसारूढ़—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा (जो हंस पर सवार होते हैं)।

हंसारूढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

हंसालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३७ मात्राओं का एक छंद जिसमें बीसवीं मात्रा पर यति और अंत में यगण होता है।

हंसिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंस की मादा। हंसी।

हंसिनी—संज्ञा स्त्री० दे० "हंसी"।

हँसिया—संज्ञा पुं० [सं० हंस] (१) लोहे का एक धारदार औजार जो अर्द्धचंद्राकार होता है और जिससे खेत की फ़सल या

तरकारी आदि काटी जाती है। (२) लोहे की धारदार अर्द्धचंद्राकार पट्टी जिससे कुम्हार गीली मिट्टी काटते हैं। (३) चमड़ा छीलकर चिकना करने का औजार। (४) हाथी के अंकुश का टेढ़ा भाग।

संज्ञा स्त्री० [सं० हनु] गरदन के नीचे की धन्वाकार हड्डी। हँसली।

हंसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंस की मादा। स्त्री हंस। (२) दूध देनेवाली गाय की एक अच्छी जाति। (पंजाब) (३) बाईस अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में दो मगण, एक तगण, तीन नगण, एक सगण और एक गुरु होता है (SSS, SSS, SSI, III, III, III, IIS, S)।

हँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० हँसना] (१) हँसने की क्रिया या भाव। हास। उ०—परजा पिते हँसी औ राजू।—जायसी।

क्रि० प्र०—आना।

यौ०—हँसी खुशी = प्रसन्नता। हँसी ठट्ठा = आनंद क्रीड़ा। मज़ाक़।

मुहा०—हँसी छूटना = हँसी आना। हास की मुद्रा प्रकट होना।

(२) हँसने हँसाने के लिये की हुई बात। मज़ाक़। दिल्लगी। मनोरंजन। विनोद। जैसे,—तुमतो हँसी हँसी में रोने लगते हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०हँ—सी खेल = (१) विनोद और क्रीड़ा। (२) साधारण बात। सहज बात। आसान बात। हँसी ठठोली = विनोद और हास। दिल्लगी।

मुहा०—हँसी समझना या हँसी खेल समझना = साधारण बात समझना। आसान बात समझना। कठिन न समझना। जैसे,—छोकर बनाना क्या हँसी खेल समझ रखा है? हँसी में उड़ाना = किसी बात को यों ही दिल्लगी समझकर ध्यान न देना। साधारण समझकर खयाल न करना। परिहास की बात कहकर टाल देना। हँसी में ले जाना = किसी बात को मज़ाक़ समझना। किसी बात [illegible] ऐसा अर्थ समझना मानो वह ध्यान देने की नहीं है, केवल मन बहलाव की है। जैसे,—तुम तो मेरी बात हँसी में ले जाते हो। हँसी में खाँसी = दिल्लगी की बातचीत होते होते झगड़ा या मारपीट की नौबत आना।

(३) किसी व्यक्ति को मूर्ख या वस्तु को तुच्छ ठहराने के लिये कही हुई विनोदपूर्ण उक्ति। अनादरसूचक हास। उपहास। व्यंग्यपूर्ण निंदा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—हँसी उड़ाना = व्यंग्यपूर्ण निंदा करना। उपहास करना। चतुराई की उक्ति द्वारा अनादर प्रकट करना।

(४) लोक निंदा। बदनामी। अनादर। जैसे,—ऐसा काम न करो जिसमें पीछे हँसी हो। उ०—(क) हाँसी होन लागी या ब्रज में कान्हहि जाइ सुनावौ।—सूर। (ख) रोज सरोजन के परै, हँसी ससी की होइ।—बिहारी।

क्रि० प्र०—होना।

हँसीला†—वि० [हिं० हँसना + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० हँसीली] हँसी मज़ाक़ करनेवाला। हँसोड़।

हँसुआ, हँसुवा†—संज्ञा पुं० दे० "हँसिया"।

हँसुली†—संज्ञा स्त्री० दे० "हँसली"।

हँसेला†—संज्ञा स्त्री० [देश०] नाव को किनारे पर से खींचने की रस्सी। गून।

हँसोड़—वि० [हिं० हँसना + ओड़ (प्रत्य०)] हँसी ठट्ठा करनेवाला। दिल्लगीबाज़। मसख़रा। चुहलबाज़। विनोदप्रिय।

हँसोर॥—वि० दे० हँसोड़"।

हँसोहाँ—वि० दे० "हँसौहाँ"।

हँसौहाँ॥—वि० [हिं० हँसना] [स्त्री० हँसौहीं] (१) ईषद् हास-युक्त। कुछ हँसी लिए। हासोन्मुख। उ०—(क) भयो हँसौहाँ बदन न्यारि को सुनत स्याम के बैन। (ख) लखत हँसौहैं नैन बदति राधा मुख मोरी। (२) हँसने का स्वभाव रखनेवाला। जल्दी हँस देनेवाला। उ०—(क) सहज हँसौहैं जानि कै सौहैं करति न नैन।—बिहारी। (ख) नेकु हँसौहीं बानि तजि, लख्यो परत मुख नीठि।—बिहारी। (३) परिहासयुक्त। दिल्लगी का। मज़ाक़ से भरा। उ०—नेकु न मोहिं सुहायँ भरी सुन बोल निहारे हँसौहैं अये।—शंभु।

ह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हास। हँसी। (२) शिव। महादेव। (३) जल। पानी। (४) शून्य। सिफ़र। (५) योग का एक आसन। विष्कंभ। (६) ध्यान। (७) शुभ। मंगल। (८) आकाश। (९) स्वर्ग। (१०) रक्त। खून। (११) भय। (१२) ज्ञान। (१३) चंद्रमा। (१४) विष्णु। (१५) युद्ध। लड़ाई। (१६) घोड़ा। अश्व। (१७) गर्व। घमंड। (१८) वैद्य। (१९) कारण। हेतु।

हई॥—संज्ञा पुं० [सं० हयिन्, हयी] घुड़सवार।

संज्ञा स्त्री० [हिं० ह ! आश्चर्य सूचक शब्द] आश्चर्य। अचरज। तअज्जुब। उ०—हौं हिय रहति हई [illegible]ई नई जुगुति जग जोय। आँखिन आँखि लगी खरी देह दूबरी होय।—बिहारी।

हउँ॥—क्रि० अ० दे० "हौं"।

सर्व० दे० "हौं"।

हक†—संज्ञा पुं० [अनु०] वह धक्का जो सहसा धकपका उठने या भयभीत उठने से हृदय में लगता है। धक। वि० दे० "धक"।

हक़—वि० [अ०] (१) जो झूठ न हो। सच। सत्य। (२) जो धर्म और नीति के अनुसार हो। वाजिब। ठीक। उचित। न्याय्य। जैसे,—हक़ बात।

यौ०—हक़ नाहक़।

संज्ञा पुं० (१) किसी वस्तु को पाने, पास रखने या व्यवहार में लाने की योग्यता जो न्याय या लोकरीति के अनुसार किसी

को प्राप्त हो। किसी वस्तु को अपने क़ब्ज़े में रखने, काम में लाने या लेने का अधिकार। स्वत्व। जैसे,—(क) इस ज़मीन पर हमारा हक़ है। (ख) तुम्हें इस ज़मीन पर पेड़ लगाने का क्या हक़ है?

यौ०—हक़दार। हक़शफ़ा।

(२) कोई काम करने या किसी से कराने का अधिकार जो किसी की आज्ञा, लोकरीति या न्याय के अनुसार प्राप्त हो। अधिकार। इख़्तियार। जैसे,—(क) तुम्हें दूसरे के लड़के को मारने का क्या हक़ है? (ख) तुम्हें हमारे आदमी से काम कराने का कोई हक़ नहीं है।

मुहा०—हक़ दबाना या मारना = किसी को उस वस्तु या बात से वंचित रखना जिसका उसे अधिकार प्राप्त हो। हक़ पर लड़ना = अपने न्याययुक्त अधिकार के लिये प्रयत्न करना। किसी ऐसी वस्तु को पाने, पास रखने, काम में लाने अथवा कोई ऐसी बात करने के लिये विरोधियों के विरुद्ध उद्योग करना जो न्याय या रीति के अनुसार कोई पा सकता हो, काम में ला सकता हो अथवा कर सकता हो। स्वत्व रक्षा के हेतु प्रयत्न करना। हक़ दबना या मारा जाना = उस वस्तु या बात से वंचित होना जिसका न्याय से अधिकार प्राप्त हो। वह वस्तु न पाना या वह काम न करने पाना जो न्यायतः वह पा सकता या कर सकता हो। स्वत्व की हानि होना। हक़ साबित करना = यह सिद्ध करना कि किसी वस्तु को पाने, रखने या काम में लाने अथवा कोई काम करने का हमें अधिकार है। स्वत्व प्रमाणित करना। हक़ में = हित के लिये। काम की दृष्टि से। पक्ष में। विषय में। जैसे,—(क) ऐसा करना तुम्हारे हक़ में अच्छा न होगा। (ख) हम तुम्हारे हक़ में दुआ करेंगे।

(३) कर्त्तव्य। फ़र्ज़।

मुहा०—हक़ अदा करना = वह बात करना जो न्याय, नीति आदि की दृष्टि से करणीय हो। कर्तव्य पालन करना। जैसे,—वे दोस्ती का हक़ अदा कर रहे हैं।

(४) वह वस्तु जिसे पाने, पास रखने या काम में लाने का अथवा वह बात जिसे करने का न्याय से अधिकार प्राप्त हो। जैसे,—(क) यह रुपया तो नौकरों का हक़ है। (ख) यहाँ टहलना हमारा हक़ है। (५) वह द्रव्य या धन जो किसी काम या व्यवहार में किसी को रीति के अनुसार मिलता हो। किसी मामले में दस्तूर के मुताबिक़ मिलनेवाली कुछ रक़म। दस्तूरी। जैसे,—(क) ५) सैकड़ा तो पुरोहित का हक़ है। (ख) हमारा हक़ देकर तब जाइए। (ग) अदालत में मुहर्रिरों का हक़ भी तो देना पड़ता है।

क्रि० प्र०—चाहना।—देना।—पाना।—माँगना।

मुहा०—हक़ दबाना या मारना = वह रक़म न देना जो किसी को रीति के अनुसार दी जाती हो। जैसे,—नौकरों का हक़ मारकर आप राजा न हो जायँगे।

(६) ठीक बात। वाजिब बात। उचित बात। (७) उचित पक्ष। न्याय्य पक्ष। जैसे,—मैं तो हक़ पर हूँ, मुझे किस बात का डर है।

मुहा०—हक़ पर होना = न्याय्य पक्ष का अवलंबन करना। उचित बात का आग्रह करना।

(८) ख़ुदा। ईश्वर। (मुसलमान)

हक़दार–संज्ञा पुं० [अ० हक़ + फ़ा० दार] वह जिसे हक़ हासिल हो। स्वत्व या अधिकार रखनेवाला। जैसे,—इस जायदाद के जितने हक़दार हैं, सब हाज़िर हों।

हक़ नाहक़–अव्य० [अ० + फ़ा०] (१) बिना उचित अनुचित के विचार के। ज़बरदस्ती। धींगा धींगी से। जैसे,—क्यों हक़-नाहक़ बेचारे की चीज़ ले रहे हो? (२) बिना कारण या प्रयोजन। निष्प्रयोजन। व्यर्थ। फ़ज़ूल। जैसे,—क्यों हक़ नाहक़ लड़ रहे हो।

हकबक–वि० दे० "हक्का बक्का"।

हकबकाना–क्रि० अ० [अनु० हक्का बक्का] किसी ऐसी बात पर, जिसका पहले से अनुमान तक न रहा हो अथवा जो अनहोनी या भयानक हो, स्तंभित हो जाना। ठक रह जाना। हक्का बक्का हो जाना। सहसा निश्चेष्ट और मौन होकर मुँह ताकने लगना। घबरा जाना।

हक़ मालिकाना–संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] किसी चीज़ या जायदाद के मालिक का हक़।

हक़ मौरूसी–संज्ञा पुं० [अ०] वह अधिकार जो पितृपरंपरा से प्राप्त हो। वह हक़ जो बाप दादों से चला आता हो।

हकला–वि० [हिं० हकलाना] रुक रुक कर बोलनेवाला। वाग्दोष के हकलानेवाला। कारण किसी वाक्य को एक साथ न बोल सकनेवाला।

हकलाना–क्रि० अ० [अनु० हक] स्वर-नाली के ठीक काम न करने या जीभ तेज़ी से न चलने के कारण बोलने में अटकना। रुक रुक कर बोलना।

हकलाहा–वि० दे० "हकला"।

हक़शफ़ा–संज्ञा पुं० [अ०] किसी ज़मीन को ख़रीदने का औरों से ऊपर या अधिक वह हक़ या स्वत्व जो गाँव के (जिसमें बेची हुई ज़मीन हो) हिस्सेदारों अथवा पड़ोसियों को प्राप्त हो। (यदि कोई इस प्रकार की ज़मीन बेच देता है, तो जिसे इस प्रकार का स्वत्व प्राप्त होता है, वह अदालत के द्वारा उतना ही—या जितना अदालत ठहरा दे—दाम देकर वह ज़मीन ले सकता है।)

हकार–संज्ञा पुं० [सं०] ह अक्षर या वर्ण।

हकारना–क्रि० स० [देश०] (१) पाल तानना या खड़ा करना। (२) झंडा या निशान उठाना। (लश्करी)

हक़ीक़त–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) तत्त्व। सचाई। असलियत।

सत्यता । (२) तथ्य । ठीक बात । असल असल बात । (३) ठीक ठीक वृत्तांत । असल हाल । सत्य वृत्त । जैसे,—उसकी हक़ीक़त यों है ।

मुहा०—हक़ीक़त में = वास्तव में । सचमुच । हक़ीक़त खुलना = असल बात का पता लग जाना । ठीक ठीक बात मालूम हो जाना ।

हक़ीक़ी–वि० [अ०] (१) सच्चा । ठीक । सत्य । (२) खास अपना । सगा । आत्मीय । जैसे,—हक़ीक़ी भाई । (३) ईश्वरोन्मुख । भगवत्संबंधी । जैसे,—इश्क़ हक़ीक़ी ।

हकीम–संज्ञा पुं० [अ०] (१) विद्वान् । आचार्य । जैसे,—हकीम अरस्तू । (२) यूनानी रीति से चिकित्सा करनेवाला । वैद्य । चिकित्सक ।

हकीमी–संज्ञा स्त्री० [अ० हकीम + ई (प्रत्य०)] (१) यूनानी आयुर्वेद । यूनानी चिकित्सा शास्त्र । (२) हकीम का पेशा या काम । वैद्गी । जैसे,—वे लखनऊ में हकीमी करते हैं ।

हक़ीयत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) स्वत्व । अधिकार । (२) वह वस्तु या जायदाद जिस पर हक़ हो । (३) अधिकार होने का भाव । जैसे,—तुम अपनी हक़ीयत साबित करो ।

हक़ीर–वि० [अ०] (१) जिसका कुछ महत्त्व न हो । बहुत छोटा । तुच्छ । नाचीज़ । (२) उपेक्षा के योग्य ।

हक़ूक़–संज्ञा पुं० [अ०] 'हक़' का बहुवचन । कई प्रकार के स्वत्व या अधिकार ।

हकूमत†–संज्ञा पुं० दे० "हुकूमत" ।

हक्क–संज्ञा पुं० [अनु०] हाथी को बुलाने का शब्द ।

‡संज्ञा पुं० दे० "हक़" ।

हक्का–संज्ञा पुं० [अ० हक़] वह नोट या पुरज़ा जो कोई गल्ले का व्यापारी किसी असामी के लगान की जमानत के रूप में ज़मींदार को देता है ।

हक्काक–संज्ञा पुं० [?] नग जड़नेवाला । नग को काटने, सान पर चढ़ाने, जड़ने आदि का काम करनेवाला । जड़िया ।

हक्का बक्का–वि० [अनु० हक, बक] किसी ऐसी बात पर स्तंभित जिसका पहले से अनुमान तक न रहा हो अथवा जो अनहोनी या भयानक हो । सहसा निश्चेष्ट और मौन होकर मुँह ताकता हुआ । भौचक । घबराया हुआ । चित्रलिखित सा । ठक । जैसे,—यह सुनते ही वह हक्का बक्का हो गया ।

हक्कार–संज्ञा पुं० [सं०] चिल्लाकर बुलाने का शब्द । पुकार ।

हगनहटी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० हगना] (१) मलत्याग की इंद्रिय । गुदा । (२) वह स्थान जहाँ लोग पाखाना फिरते हैं ।

हगना–क्रि० अ० [सं० हद ?] (१) मलोत्सर्ग करना । मल त्याग करना । झाड़ा फिरना । पाखाना फिरना ।

संयो० क्रि०—देना ।

मुहा०—हग भरना या मारना = (१) हग देना । मलोत्सर्ग कर देना । (२) अत्यंत भयभीत होना । बहुत डर जाना ।

(२) दबाव के मारे कोई वस्तु दे देना । झख मारकर अदा कर देना । जैसे,—दावा होगा तो सब रुपया हग दोगे ।

हगनेटी–संज्ञा स्त्री० दे० "हगनहटी" ।

हगाना–क्रि० स० [हिं० हगना का स०] (१) हगने की क्रिया कराना । पाखाना फिरने पर विवश करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

(२) पाखाना फिरने में सहायता देना । मलत्याग कराना । जैसे,—बच्चे को हगाना ।

हगास–संज्ञा स्त्री० [हिं० हगना + आस (प्रत्य०)] हगने की इच्छा । मलत्याग का वेग या इच्छा ।

क्रि० प्र०—लगना ।

हगोड़ा–वि० [हिं० हगना + ओड़ा (प्रत्य०)] [स्त्री० हगोड़ी] बहुत हगनेवाला । बहुत झाड़ा फिरनेवाला ।

हचकना†–क्रि० अ० [अनु० हच हच] चारपाई, गाड़ी आदि का झोंका खाना या बार बार हिलना । धक्के से हिलना डोलना ।

हचका†–संज्ञा पुं० [हिं० हचकना] धक्का । झोंका ।

क्रि० प्र०—देना ।—मारना ।

हचकाना–क्रि० स० [हिं० हचकना का स०] धक्के से हिलाना । झोंका देकर हिलाना ।

हचकोला–संज्ञा पुं० [हिं० हचकना] वह धक्का जो गाड़ी, चारपाई आदि पर उछाल या हिलने डोलने से लगे । धचका ।

हचना†‡–क्रि० अ० [अनु० हच] किसी काम के करने में संकोच या आगापीछा करना । हिचकना ।

हज–संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों का काबे के दर्शन के लिये मक्के जाना । मुसलमानों की मक्के की तीर्थ-यात्रा । जैसे,—सत्तर चूहे खा के बिल्ली हज को चली ।

हज़म–संज्ञा पुं० [अ०] पेट में पचने की क्रिया या भाव । पाचन ।

वि० (१) जो पाचन शक्ति द्वारा रस या धातु के रूप में हो गया हो । पेट में पचा हुआ । जैसे,—दूध हज़म होना, रोटी हज़म करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

(२) बेईमानी से दूसरे की वस्तु लेकर न दी हुई । बेईमानी से लिया हुआ । अनुचित रीति से अधिकार किया हुआ । उड़ाया हुआ । जैसे,—(क) दूसरे का माल या रुपया हज़म करना । (ख) दूसरे की चीज़ हज़म करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।—कर जाना ।—कर लेना ।

मुहा०—हज़म होना = बेईमानी से ली हुई वस्तु का अपने पास रहना । जैसे,—बेईमानी का माल हज़म न होना ।

हज़रत–संज्ञा पुं० [अ०] (१) महात्मा । महापुरुष । जैसे,—हज़रत मुहम्मद । (२) अत्यंत आदर का संबोधन । महाशय । (३) नटखट या खोटा आदमी । (व्यंग्य) जैसे,—आप बड़े हज़रत हैं, यों ही झगड़ा लगाया करते हैं ।

हज़रत सलामत-संज्ञा पुं० [अ०] (१) बादशाहों या नवाबों के लिये संबोधन का शब्द। (२) बादशाह।

हजाम-संज्ञा पुं० दे० "हज्जाम"।

हजामत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) हज्जाम का काम। बाल बनाने का काम। दाढ़ी के बाल मूँड़ने और सिर के बाल मूँड़ने या काटने का काम। क्षौर। (२) बाल बनाने की मज़दूरी। (३) सिर या दाढ़ी के बढ़े हुए बाल जिन्हें कटाना या मुँड़ाना हो।

मुहा०—हजामत बढ़ना = बालों का बढ़ना। हजामत बनाना = (१) दाढ़ी या सिर के बाल साफ़ करना या काटना। (२) लूटना। धन हरण करना। माल लेना। जैसे,—धूर्तों ने वहाँ उसकी खूब हजामत बनाई। (३) दंड देना। मारना पीटना। हजामत बनवाना = दाढ़ी के बाल साफ़ कराना या सिर के बाल कटाना। हजामत होना = (१) किसी के धन का धोखा देकर हरण होना। लूट होना। (२) दंड होना। शासन होना। मार पड़ना। जैसे,—बचा की वहाँ खूब हजामत हुई।

हज़ार-वि० [फ़ा०] (१) जो गिनती में दस सौ हो। सहस्र। (२) बहुत से। अनेक। जैसे,—उनमें हज़ार ऐब हों, पर वे हैं तो तुम्हारे भाई।

संज्ञा पुं० दस सौ की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१०००।

क्रि० वि० कितना ही। चाहे जितना अधिक। जैसे,—तुम हजार कहो, तुम्हारी बात मानता कौन है?

हज़ारहा-वि० [फ़ा०] (१) हज़ारों। सहस्रों। (२) बहुत से।

हज़ारा-वि० [फ़ा०] (फूल) जिसमें हजार या बहुत अधिक पँखड़ियाँ हों। सहस्रदल। जैसे,—हज़ारा गेंदा।

संज्ञा पुं० (१) फुहारा। फ़ौवारा। (२) एक प्रकार की आतिशबाज़ी।

हज़ारी-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक हज़ार सिपाहियों का सरदार। वह सरदार या नायक जिसके अधीन एक हज़ार फौज हो।

यौ०—पंज हजारी। दस हजारी।

विशेष—इस प्रकार के पद अकबर ने सरदारों और राजाओं महाराजाओं को दे रखे थे।

यौ०—हज़ारी बज़ारी = सरदारों से लेकर बनियों तक सब। अमीर गरीब सब। सर्वसाधारण।

(२) व्यभिचारिणी का पुत्र। दोगला। वर्ण संकर।

हज़ारों-वि० [फ़ा० हज़ार + ओं (प्रत्य०)] (१) सहस्रों। (२) बहुत से। अनेक। न जाने कितने। जैसे,—तुम्हारे ऐसे हज़ारों आते हैं।

हज़ूर-संज्ञा पुं० दे० "हुज़ूर"।

हज़ूरी-संज्ञा पुं० [अ० हज़ूर] [स्त्री० हज़ूरी] किसी बादशाह या राजा के सदा पास रहनेवाला सेवक।

हजो-संज्ञा स्त्री० [अ० हज्व] निंदा। बुराई। अपकीर्ति। बदनामी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हज्ज-संज्ञा पुं० दे० "हज"।

हज्जाम-संज्ञा पुं० [अ०] हजामत बनानेवाला। सिर और दाढ़ी के बाल मूँड़ने या काटनेवाला। नाई। नापित।

हट-संज्ञा स्त्री० दे० "हठ"।

हटक‡-संज्ञा स्त्री० [हिं० हटकना] (१) वारण। वर्जन।

मुहा०—हटक मानना = मना करने पर किसी काम से रुकना। निषेध का पालन करना। उ०—बंसी-धुनि मृदु कान परत ही गुरुजन-हटक न मानति।—सूर।

(२) गायों को हाँकने की क्रिया या भाव।

हटकन-संज्ञा स्त्री० [हिं० हटकना] (१) वारण। वर्जन। मना करना। (२) चौपायों को फेरने का काम। हाँकना। (३) चौपायों को हाँकने की छड़ी या लाठी।

हटकना-क्रि० स० [हिं० हट = दूर होना + करना] (१) मना करना। निषेध करना। वर्जन करना। किसी काम से हटाना या रोकना। उ०—(क) तुम्ह हटकहु जो चहहु उबारा। कहि प्रतापु, बल रोष हमारा।—तुलसी। (ख) जुरीं आय सिगरीं जमुना-तट हटक्यो कोउ न मान्यो।—सूर। (२) चौपायों को किसी ओर जाने से रोक कर दूसरी ओर फेरना। रोक कर दूसरी तरफ़ हाँकना। उ०—(क) पायँ परि बिनती करौं हौं हटकि लावो गाय।—सूर। (ख) माधव जू! नेकु हटको गाय।—सूर।

मुहा०—हटकि = (१) हठात्। ज़बरदस्ती। (२) बिना कारण।

हटका‡-संज्ञा पुं० [हिं० हटकना = रोकना] किवाड़ों को खुलने से रोकने के लिये लगाया हुआ काठ। किल्ली। अर्गल। ब्योंड़ा।

हटतार‡-संज्ञा पुं० दे० "हरताल"।

संज्ञा स्त्री० [हिं० हठतार] माला का सूत। उ०—प्रीत प्रीत हटतार में नेह जु सरसै आइ। हिय लागै कौं रसिकनिधि बेधि तुरत ही जाइ।

हटताल-संज्ञा स्त्री० [हिं० हट = दूकान + ताल = ताला] किसी कर या महसूल से अथवा और किसी बात से असंतोष प्रकट करने के लिये दूकानदारों का दूकान बंद कर देना अथवा काम करनेवालों का काम बंद कर देना। हड़ताल।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हटना-क्रि० अ० [सं० घट्टन] (१) किसी स्थान को त्याग कर दूसरे स्थान पर हो जाना। एक जगह से दूसरी जगह पर जा रहना। खिसकना। सरकना। टलना। जैसे,—(क) थोड़ा पीछे हटो। (ख) जरा हटकर बैठो। (ग) उन्होंने बहुत जोर लगाया, पर पत्थर जगह से न हटा।

संयो० क्रि०—हटना बढ़ना = ठीक स्थान से कुछ इधर उधर होना या सरकना।

(२) पीछे की ओर धीरे धीरे जाना। पीछे सरकना। जैसे,—भालों की मार से सेना हटने लगी। (३) विमुख होना। जी चुराना। करने से भागना। जैसे,—मैं काम से नहीं हटता।

मुहा०—(किसी बात से) पीछे न हटना = मुँह न मोड़ना। विमुख न होना। तत्पर या प्रस्तुत रहना। कोई काम करने को तैयार रहना। जैसे,—जो बात मैं कह चुका हूँ, उससे पीछे न हटूँगा।

(४) सामने से दूर होना। सामने से चला जाना। जैसे,—हमारे सामने से हट जाओ, नहीं तो मार खाओगे।

मुहा०—हटकर बढ़ = चल। दूर हो। (अत्यंत अवज्ञा)

(५) किसी बात का नियत समय पर न होकर और आगे किसी समय होना। टलना। जैसे,—विवाह की तिथि अब हट गई। (६) न रह जाना। दूर होना। मिटना या शांत होना। जैसे,—आपदा हटना, संकट हटना, सूजन हटना। (७) व्रत, प्रतिज्ञा आदि से विचलित होना। बात पर दृढ़ न रहना।

क्रि० स० [हिं० हटकना] मना करना। निषेध करना। वारण करना। वर्जित करना। रोकना। उ०—देत दुःख बार बार कोऊ नहिं हटत।—सूर।

हटनी उड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० हटना+उड़ना] मालखंभ की एक कसरत जिसमें पीठ के बल होकर ऊपर जाते हैं।

हटवया—संज्ञा पुं० [हिं० हाट+वया] [स्त्री० हटवै] हाट या बाजार में बैठकर सौदा बेचनेवाला। दूकानदार।

हटवाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० हाट+वाई (प्रत्य०)] सौदा लेना या बेचना। क्रय-विक्रय। खरीद फरोख्त। उ०—साधो! करो हटवाई हाट बढि आई।—कबीर।

हटवाना—क्रि० स० [हिं० हटाना का प्रेरणा०] हटाने का काम दूसरे से कराना। हटाने में प्रवृत्त करना। दूसरे से स्थानांतरित कराना।

हटवार†—संज्ञा पुं० [हिं० हाट+वार (वाला)] बाजार में बैठकर सौदा बेचनेवाला। दूकानदार।

हटाना—क्रि० स० [हिं० हटना का स०] (१) एक स्थान से दूसरे स्थान पर करना। एक जगह से दूसरी जगह पर ले जाना। सरकाना। खिसकाना। किसी ओर चलाना या बढ़ाना। जैसे,—चौकी बाईं ओर हटा दो।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(२) किसी स्थान पर न रहने देना। दूर करना। जैसे,—(क) चारपाई इस कोठरी में से हटा दो। (ख) इस आदमी को यहाँ से हटा दो। (३) आक्रमण द्वारा भगाना। स्थान छोड़ने पर विवश करना। जैसे,—थोड़े से वीरों ने शत्रु की सारी सेना हटा दी। (४) किसी काम का करना या किसी बात का विचार या प्रसंग छोड़ना। जाने देना। जैसे,—(क) खतम करके हटाओ, कब तक यह काम लिए बैठे रहोगे? (ख) बखेड़ा हटाओ। (५) किसी व्रत, प्रतिज्ञा आदि से विचलित करना। बात पर दृढ़ न रहने देना। डिगाना।

हटुवा†—संज्ञा पुं० [हिं० हाट+उवा (प्रत्य०)] (१) दूकानदार। (२) अनाज तौलनेवाला। बया।

हटौती—संज्ञा स्त्री० [हिं० हाड़+औती (प्रत्य०)] देह की गठन। शरीर का ढाँचा। जैसे,—उसकी हटौती बहुत अच्छी है।

हट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाजार। (२) दूकान।

यौ०—चौहट्ट = बाजार का चौक।

हट्टचौरक—संज्ञा पुं० [सं०] बाजार में घूमकर चोरी करने या माल उचकनेवाला। बाईं। गिरहकट।

हट्टा कट्टा—वि० [सं० हट+काय] [स्त्री० हट्टी कट्टी] हृष्ट पुष्ट। मोटा ताजा। मजबूत। दखोंग।

हठ—संज्ञा स्त्री० पुं० [सं०] [वि० हठी, हठीला] (१) किसी बात के लिये अड़ना। किसी बात पर जम जाना कि ऐसा ही हो। टेक। जिद। दुराग्रह। जैसे,—(क) नाक कटी, पर हठ न हटी। (ख) तुम तो हर बात के लिये हठ करने लगते हो। (ग) बच्चों का हठ ही तो है।

यौ०—हठधर्म। हठधर्मी।

मुहा०—हठ पकड़ना = किसी बात के लिये अड़ जाना। जिद करना। दुराग्रह करना। हठ रखना = जिस बात के लिये कोई अड़े, उसे पूरा करना। हठ में पड़ना = हठ करना। उ०—मन हठ परा न मान सिखावा।—तुलसी। हठ माँड़ना‡ = हठ ठानना। उ०—क्यों हठ माँड़ि रही री सजनी! टेरत स्याम सुजान।—सूर। हठ बाँधना = हठ पकड़ना।

(२) दृढ़ प्रतिज्ञा। अटल संकल्प। दृढ़तापूर्वक किसी बात का ग्रहण। उ०—(क) जो हठ राखै धर्म को, तेहि राखै करतार। (ख) तिरिया तेल, हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार।

मुहा०—हठ करना = हठ ठानना।

(३) बलात्कार। जबरदस्ती। (४) शत्रु पर पीछे से आक्रमण। (५) अवश्य होने की क्रिया या भाव। अवश्यंभाविता। अनिवार्यता।

हठधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] अपने मत पर उचित अनुचित या सत्य असत्य का विचार छोड़कर जमा रहना। दुराग्रह। कट्टरपन।

हठधर्मी—संज्ञा स्त्री० [सं० हठ+धर्म] (१) सत्य असत्य, उचित अनुचित का विचार छोड़कर अपनी बात पर जमे रहना। दूसरे की बात जरा भी न मानना। दुराग्रह। (२) अपने मत या संप्रदाय की बात लेकर अड़ने की क्रिया या प्रवृत्ति।

विचारों की संकीर्णता। कट्टरपन। जैसे,—यह मुसलमानों की हठधर्मी है कि वे व्यर्थ छेड़छाड़ करते हैं।

हठना—क्रि० अ० [हिं० हठ+ना (प्रत्य०)] (१) हठ करना। जिद पकड़ना। दुराग्रह करना। उ०—(क) बरज्यो नेकु न मानत क्योंहूँ सखि ये नैन हठे।—सूर। (ख) जो पै तुम या भाँति हठैहो।—सूर।

मुहा०—हठ कर=बलात्। जबरदस्ती। किसी का कहना न मानकर। उ०—सुनि हठि चला महा अभिमानी।—तुलसी। (२) प्रतिज्ञा करना। दृढ़ संकल्प करना।

हठ योग—संज्ञा पुं० [सं०] वह योग जिसमें चित्तवृत्ति हठात् बाह्य विषयों से हटाकर अंतर्मुख की जाती है और जिसमें शरीर को साधने के लिये बड़ी कठिन कठिन मुद्राओं और आसनों आदि का विधान है। नेती, धोती आदि क्रियाएँ इसी योग के अंतर्गत हैं। कायव्यूह का भी इसमें विशेष विस्तार किया गया है और शरीर के भीतर कुंडलिनी, अनेक प्रकार के चक्र तथा मणिपुर आदि स्थान माने गए हैं। स्वात्माराम की हठप्रदीपिका इसका प्रधान ग्रंथ माना जाता है। मत्स्येंद्रनाथ और गोरखनाथ इस योग के मुख्य आचार्य हो गए हैं। गोरखनाथ ने एक पंथ भी चलाया है जिसके अनुयायी कनफटे कहलाते हैं। पतंजलि के योग के दार्शनिक अंश को छोड़कर उसकी साधना के अंश को लेकर जो विस्तार किया गया है, वही हठ योग है।

हठविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] हठयोग।

हठशील—वि० [सं०] हठ करनेवाला। हठी। ज़िद्दी।

हठात्—अव्य० [सं०] (१) हठपूर्वक। दुराग्रह के साथ। लोगों के मना करने पर भी। (२) ज़बरदस्ती से। बलात्। (३) अवश्य। ज़रूर।

हठात्कार—संज्ञा पुं० [सं०] बलात्कार। ज़बरदस्ती।

हठिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोलाहल। शोर। हल्लागुल्ला।

हठी—वि० [सं० हठिन्] हठ करनेवाला। अपनी बात पर अड़नेवाला। ज़िद्दी। टेकी।

हठीला—वि० [सं० हठ+ईल (प्रत्य०)] [स्त्री० हठीली] (१) हठ करनेवाला। हठी। ज़िद्दी। उ०—तू अजहूँ तजि मान हठीली कहौं तोहि समुझाय।—सूर। (२) दृढ़-प्रतिज्ञ। बात का पक्का। अपने संकल्प या वचन को पूरा करनेवाला। (३) लड़ाई में जमा रहनेवाला। धीर। उ०—ऐसो तोहि न बूझिए हनुमान हठीले।—तुलसी।

हड़—संज्ञा स्त्री० [सं० हरीतकी] (१) एक बड़ा पेड़ जिसके पत्ते महुए के से चौड़े चौड़े होते हैं और शिशिर में झड़ जाते हैं। यह उत्तर भारत, मध्य प्रदेश, बंगाल और मद्रास के जंगलों में पाया जाता है। इसकी लकड़ी बहुत चिकनी, साफ, मजबूत और भूरे रंग की होती है जो इमारत में लगाने, और खेती तथा सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। इसका फल व्यापार की एक बड़ी प्रसिद्ध वस्तु है और अत्यंत प्राचीन काल से औषध के रूप में काम में लाया जाता है। वैद्यक में हड़ के बहुत अधिक गुण लिखे गए हैं। हड़ भेदक और कोष्ठ शुद्ध करनेवाली औषधों में प्रधान है और संकोचक होने पर भी पाचक चूर्णों में इसका योग रहा करता है। हड़ की कई जातियाँ होती हैं जिनमें से दो सर्वसाधारण में प्रसिद्ध हैं—छोटी हड़ और बड़ी हड़ या हर्रा। छोटी हड़ में भी जो छोटी जाति होती है, वह जौंगी हड़ कहलाती है। वैद्यक में हड़ शीतल, कसैली, मूत्र लानेवाली और रेचक मानी जाती है। पाचक, चूर्ण आदि में छोटी हड़ का ही अधिकतर व्यवहार होता है। त्रिफला में बड़ी हड़ (हर्रा) ली जाती है। बड़ी हड़ का व्यवहार चमड़ा सिझाने, कपड़ा रँगने आदि में बहुत अधिक होता है। हड़ में कषाय-सार बहुत अधिक होता है, इससे यह संकोचक होती है। वैद्यक में हड़ सात प्रकार की कही गई है—विजया, रोहिणी, पूतना, अमृता, अभया, जीवंती और चेतकी। (२) एक प्रकार का गहना जो हड़ के आकार का होता और नाक में पहना जाता है। लटकन।

हड़क—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) पागल कुत्ते के काटने पर पानी के लिये गहरी आकुलता।

क्रि० प्र०—उठना।

(२) किसी वस्तु को पाने की गहरी झक। पागल करनेवाली चाह। उत्कट इच्छा। रट। धुन। जैसे,—तुम्हें तो उस किताब की हड़क सी लग गई है।

क्रि० प्र०—लगना।

हड़कत—संज्ञा स्त्री० दे० "हड़फोड़"।

हड़कना—क्रि० अ० [हिं० हड़क] किसी वस्तु के अभाव से दुःखी होना। तरसना।

हड़काना—क्रि० स० [देश०] (१) आक्रमण करने, घेरने, तंग करने आदि के लिये पीछे लगा देना। लहकारना। पीछे छोड़ना। (२) किसी वस्तु के अभाव का दुःख देना। तरसाना। जैसे,—क्यों बच्चे को ज़रा ज़रा सी चीज़ के लिये हड़काते हो। (३) कोई वस्तु माँगनेवाले को न देकर भगा देना। नाहीं करके हटा देना। उ०—हड़काया भला, परकाया नहीं भला। (कहा०)

हड़काया—वि० [हिं० हड़काना] [स्त्री० हड़काई] (१) पागल। बावला। (कुत्ते के लिये) जैसे,—हड़काई कुतिया। (२) किसी वस्तु के लिये उतावला। घबराया हुआ।

हड़गिल्ल—संज्ञा पुं० दे० "हड़गीला"।

हड़गीला—संज्ञा पुं० [हिं० हाड़+गिलना ?] एक चिड़िया का

नाम। बगले की जाति का एक पक्षी जिसकी टाँगें और चोंच बहुत लंबी होती है। दूसा। चनियारी।

हड़जोड़-संज्ञा पुं० [हिं० हाड़+जोड़ना] एक प्रकार की लता जिसमें थोड़ी थोड़ी दूर पर गाँठें होती हैं। यह भीतरी चोट के स्थान पर लगाई जाती है। कहते हैं कि इससे टूटी हुई हड्डी भी जुड़ जाती है।

हड़ताल-संज्ञा स्त्री० [सं० हट्ट = दूकान या बाजार+ताला] किसी कर या महसूल से अथवा और किसी बात से असंतोष प्रकट करने के लिये दूकानदारों का दूकान बंद कर देना या काम करनेवालों का काम बंद कर देना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

संज्ञा स्त्री० दे० "हरताल"।

हड़ना-क्रि० अ० [हिं० घड़ा] तौल में जाँचा जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

हड़प-वि० [अनु०] (१) पेट में डाला हुआ। निगला हुआ। (२) गायब किया हुआ। अनुचित रीति से ले लिया हुआ। उड़ाया हुआ।

मुहा०—हड़प करना = गायब करना। बेईमानी से ले लेना। अनुचित रीति से अधिकार कर लेना। जैसे,—दूसरे का रुपया इसी तरह हड़प कर लोगे?

हड़पना-क्रि० स० [अनु० हड़प] (१) मुँह में डाल लेना। खा जाना। (२) दूसरे की वस्तु अनुचित रीति से ले लेना। गायब करना। उड़ा लेना। जैसे,—दूसरे का माल या रुपया हड़पना।

हड़फूटन-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाड़+फूटना] शरीर के भीतर का वह दर्द जो हड्डियों के भीतर तक जान पड़े। हड्डियों की पीड़ा।

हड़फूटनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हड़फूटन] चमगादड़। (लोग चमगादड़ की हड्डी की गुरिया पैर के दर्द में पहनते हैं।)

हड़फोड़-संज्ञा पुं० [हिं० हाड़+फोड़ना] एक प्रकार की चिड़िया।

हड़बड़-संज्ञा स्त्री० [अनु०] उतावलेपन की मुद्रा। जल्दबाजी प्रकट करनेवाली गति विधि।

मुहा०—हड़बड़ करना = जल्दी मचाना। जल्दबाजी करना।

हड़बड़ाना-क्रि० अ० [अनु०] जल्दी करना। उतावलापन करना। शीघ्रता के कारण कोई काम घबराहट से करना। आतुर होना। जैसे,—अभी हड़बड़ाओ मत, गाड़ी आने में देर है।

संयो० क्रि०—जाना।

क्रि० स० किसी को जल्दी करने के लिये कहना। जैसे,—तुम जाकर हड़बड़ाओगे तब वह घर से चलेगा।

संयो० क्रि०—देना।

हड़बड़िया-वि० [हिं० हड़बड़ी+इया० (प्रत्य०)] हड़बड़ी करनेवाला। जल्दी मचानेवाला। जल्दबाज। उतावला। आतुरता प्रकट करनेवाला।

हड़बड़ी-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) जल्दी। उतावली। शीघ्रता। (२) शीघ्रता के कारण आतुरता। जल्दी के कारण घबराहट। जैसे,—हड़बड़ी में काम ठीक नहीं होता।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—लगना।—होना।

मुहा०—हड़बड़ी में पड़ना = ऐसी स्थिति में पड़ना जिसमें काम बहुत जल्दी जल्दी करना पड़े। उतावली की दशा में होना।

हड़हड़ाना-क्रि० स० [अनु०] जल्दी करने के लिये उकसाना। शीघ्रता करने की प्रेरणा करना। जल्दी मचाकर दूसरे को घबराना। जैसे,—वह क्यों न चलेगा, जब जाकर हड़हड़ाओगे, तब उठेगा।

हड़हा-संज्ञा पुं० [देश०] जंगली बैल।

संज्ञा पुं० [हिं० हाड़] वह जिसने किसी के पुरखे की हत्या की हो।

वि० [हिं० हाड़] [स्त्री० हड़ही] जिसकी देह में हड्डियाँ ही रह गई हों। बहुत दुबला पतला।

हड़ा-संज्ञा पुं० [अनु०] (१) चिड़ियों को उड़ाने का शब्द जो खेत के रखवाले करते हैं।

मुहा०—हड़ा हड़ा करना = बोलकर चिड़िया उड़ाना।

(२) पथरकला बंदूक।

हड़ावरि-संज्ञा स्त्री० दे० "हड़ावल"।

हड़ावल-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाड़+सं० आवलि] (१) हड्डियों की पंक्ति या समूह। (२) हड्डियों का ढाँचा। ठठरी। उ०—राम सरासन तें चले तीर, रहे न शरीर हड़ावरि फूटी।—तुलसी। (३) हड्डियों की माला। उ०—कापरि कथा हड़ावरि बाँधे। मुंडमाल औ हत्या काँधे।—जायसी।

हड़ि-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की काठ की बेड़ी जो पैर में डाल दी जाती थी।

हड़ीला-वि० [हिं० हाड़+ईला (प्रत्य०)] (१) जिसमें हड्डी हो। (२) जिसकी देह में केवल हड्डियाँ रह गई हों। बहुत दुबला पतला।

हड़ुआ-संज्ञा स्त्री० [सं० हरिद्रा] एक प्रकार की हलदी जो कटक में होती है।

हड्डा-संज्ञा पुं० [सं० हड्डिका] पतंग जाति का एक कीट जो मधुमक्खियों के समान छत्ता बनाकर अंडे देता है। भिड़। बर्रे। ततैया।

हड्डी-संज्ञा स्त्री० [सं० अस्थि, प्रा० अत्थि, अट्ठि। (सं० कोशों का 'हड्ड' शब्द देशभाषा से ही लिया जान पड़ता है)] शरीर की तीन प्रकार की वस्तुओं—कठोर, कोमल और द्रव—में से कठोर वस्तु जो भीतर ढाँचे या आधार के रूप में होती है। अस्थि।

विशेष—शरीर के ढाँचे या ठठरी में अनेक आकार और प्रकार की हड्डियाँ होती हैं। यद्यपि ये खंड खंड होती हैं, पर एक दूसरी से जुड़ी होती हैं। मनुष्य के शरीर में दो सौ से अधिक हड्डियाँ होती हैं। हड्डियों के खंड खंड जुड़े रहने से अंगों में लचीलापन रहता है जिससे वे बिना किसी कठिनता के अच्छी तरह हिल डुल सकते हैं। शरीर में हड्डियों के होने से ही हम सीधे खड़े हो सकते हैं। बचपन में हड्डियाँ मुलायम और लचीली होती हैं; इसी से बच्चे वर्ष सवा वर्ष तक खड़े नहीं हो सकते। युवावस्था आने पर हड्डियाँ अच्छी तरह दृढ़ और कड़ी हो जाती हैं। बुढ़ापे में वे जीर्ण और कड़ी हो जाती हैं और सहज में टूट सकती हैं।

शरीर की और वस्तुओं के समान हड्डी भी एक सजीव वस्तु है; उसमें भी रक्त का संचार होता है। इसमें चूने का अंश कुछ विशेष होता है। किसी हड्डी के टुकड़े को लेकर कुछ देर तक गंधक के तेजाब में रखें तो उसका कड़ापन दूर हो जायगा।

मुहा०—हड्डी उखड़ना = हड्डी का जोड़ खुल जाना। हड्डी का जोड़ खुलना = हड्डी उखड़ना। हड्डी टूटना = हड्डी फूटना। हड्डियाँ गढ़ना या तोड़ना = खूब मारना। खूब पीटना। हड्डियाँ निकल आना = मांस न रहने के कारण हड्डियाँ दिखाई पड़ना। शरीर बहुत दुबला होना। पुरानी हड्डी = पुराने आदमी का दृढ़ शरीर। पुराने समय का मजबूत आदमी। जैसे,—यह पुरानी हड्डी है, बुढ़ापे में भी तुम्हें पछाड़ सकते हैं।

(२) कुल। वंश। खानदान। जैसे,—हड्डी देखकर विवाह करना।

हत–वि० [सं०] (१) वध किया हुआ। मारा हुआ। जो मारा गया हो। (२) जिस पर आघात किया गया हो। जिस पर चोट लगाई गई हो। पीटा हुआ। ताड़ित। (३) खोया हुआ। गँवाया हुआ। जो न रह गया हो। रहित। विहीन। जैसे,—श्रीहत, हतोत्साह। (४) जिसमें या जिस पर ठोकर लगी हो। जैसे,—हत रेणु। (५) नष्ट किया हुआ। बिगाड़ा हुआ। चौपट किया हुआ। खराब किया हुआ। (६) तंग किया हुआ। हैरान। (७) पीड़ित। ग्रस्त। (८) स्पर्श किया हुआ। लगा हुआ। जिससे छू गया हो। (ज्योतिष) (९) गया बीता। निकृष्ट। निकम्मा। (१०) गुणा किया हुआ। गुणित। (गणित)

हतक–संज्ञा स्त्री० [अ० हतक = फाड़ना] हेठी। बेइज्जती। अप्रतिष्ठा।

क्रि० प्र०—करना। होना।

यौ०—हतक इज्जत। हतक इज्जती।

हतक इज्ज़ती–संज्ञा स्त्री० [अ० हतक + इज्जत] अप्रतिष्ठा। मानहानि। बेइज्ज़ती। जैसे,—उसने उस अखबार पर हतक-इज्ज़ती का दावा किया है।

हतज्ञान–वि० [सं०] ज्ञान-शून्य। अचेत। बेहोश। संज्ञा-शून्य।

हतदैव–वि० [सं०] दई का मारा। अभागा।

हतना–क्रि० स० [सं० हत + ना (हिं० प्रत्य०)] (१) वध करना। मार डालना। उ०—कहाँ राम रन हतौं प्रचारी।—तुलसी। (२) मारना। पीटना। प्रहार करना। (३) अन्यथा करना। पालन न करना। भंग करना। न मानना। उ०—मदपान रत, खीजित होई। सन्निपात युत वातुल जोई। देखि देखि तिनको सब भाँगै। तासु बात हति पाप न लागै।—केशव।

हतप्रभ–वि० [सं०] जिसकी कांति या तेज नष्ट हो गया हो। प्रभा-रहित।

हतप्रभाव–वि० [सं०] (१) जिसका प्रभाव न रह गया हो। जिसका असर जाता रहा हो। (२) जिसका अधिकार न रह गया हो। जिसकी बात कोई न मानता हो।

हतबुद्धि–वि० [सं०] बुद्धि-शून्य। मूर्ख।

हतभागी॥–वि० [सं० हत + हिं० भाग्य] [स्त्री० हतभागिन, हतभागिनी] अभागा। भाग्यहीन।

हतभाग्य–वि० [सं०] भाग्यहीन। बदकिस्मत।

हतवाना–क्रि० स० [हिं० हतना का प्रेरणा०] वध कराना। मरवाना।

हतवीर्य्य–वि० [सं०] बल रहित। शक्तिहीन।

हता–वि० स्त्री० [सं०] नष्ट चरित्र की। व्यभिचारिणी।

॥†क्रि० स० [होना का भूतकाल] था।

हताना–क्रि० स० दे० "हतवाना"।

हताश–वि० [सं०] जिसे आशा न रह गई हो। निराश। नाउम्मीद।

हताहत–वि० [सं०] मारे गए और घायल। जैसे,—उस युद्ध में हताहतों की संख्या एक हजार थी।

हतोत्साह–वि० [सं०] जिसे कुछ करने का उत्साह न रह गया हो। जिसे कोई बात करने की उमंग न हो।

हत्थ॥–संज्ञा पुं० दे० "हाथ"।

हत्था–संज्ञा पुं० [हिं० हत्थ, हाथ] (१) किसी भारी औज़ार का वह भाग जो हाथ से पकड़ा जाता हो। दस्ता। मूठ। (२) रेशमी कपड़े बुननेवालों के करघे में लकड़ी का वह ढाँचा जो छत से लगाकर नीचे लटकाया रहता है और जो इधर उधर झूलता रहता है। (३) तीन हाथ के लगभग लंबा लकड़ी का बल्ला जो एक छोर पर हाथ की हथेली के समान चौड़ा और गहरा होता है और जिससे खेत की नालियों का पानी चारों ओर उलीचा जाता है। हाथा। हथेरा। (४) निवार बुनने में लकड़ी का एक औज़ार जो एक ओर कुछ पतला होता है और कंघी की भाँति सूत बैठाने के काम में आता है। (५) एक प्रकार का भद्दा रंग जो सुर्खी लिए पीला या मटमैला होता है। (६) पत्थर या ईंट जो दंड करते समय हाथ के नीचे रख लेते हैं। (७) केले के फलों का घौद

या गुच्छा। पंजा। (८) पेपन से बना हाथ के पंजे का चिह्न जो पूजन आदि के अवसर पर दीवार पर बनाया जाता है। हाथ का छापा। (९) गड़ेरियों का वह औज़ार जिससे वे कंबल बुनते समय पटिया ठोंकते हैं।

हत्था जड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथी+जड़ी] एक छोटा पौधा जिसकी पत्तियाँ सुगंधित होती हैं और जो भारतवर्ष के कई भागों में पाया जाता है। इसकी पत्तियों का रस घाव और फोड़े आदि पर रखा जाता है। बिच्छू और भिड़ के डंक मारे हुए स्थान पर भी यह लगाया जाता है। संस्कृत में इसे हस्तिशुंडा कहते हैं।

हत्थी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हत्था, हाथ] (१) किसी औज़ार या हथियार का वह भाग जो हाथ से पकड़ा जाय। दस्ता। मूँठ। (२) चमड़े का वह टुकड़ा जिसे छीपी रंग छापते समय हाथ में लगा लेते हैं। (३) वह लकड़ी जिससे कड़ाह में ईख का रस चलाते हैं। (४) गोमुखी की तरह का ऊनी थैला जिससे घोड़ों का बदन पोंछते हैं। (५) बारह गिरह लंबी लकड़ी जिसमें पीतल के छः दाँत लगे रहते हैं और जो कपड़ा बुनते समय उसे ताने रहने के लिये लगाई जाती है।

हत्थे-क्रि० वि० [हिं० हाथ, हत्थ] हाथ में।

मुहा०—हत्थे चढ़ना=(१) हाथ में आना। अधिकार में आना। प्राप्त होना। (२) वश में होना। प्रभाव के भीतर आना।

हत्थेदंड-संज्ञा पुं० [हिं० हत्था+दंड] वह दंड (कसरत) जो ऊँची ईंट या पत्थर पर हाथ रखकर किया जाता है।

हत्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मार डालने की क्रिया। वध। खून।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—हत्या लगना=हत्या का पाप लगना। किसी के वध का दोष ऊपर आना। जैसे,—गाय मारने से हत्या लगती है।

(२) हैरान करनेवाली बात। झंझट। बखेड़ा। जैसे,—(क) यहाँ की हत्या लाए, हटाओ। (ख) चलो, हत्या टली।

मुहा०—हत्या टलना=झंझट दूर होना। हत्या सिर लगाना=बखेड़े का काम देना। झंझट लादना।

हत्यारा-संज्ञा पुं० दे० "हत्यारा"।

हत्यारा-संज्ञा पुं० [सं० हत्या+कार] [स्त्री० हत्यारिन] हत्या करनेवाला। वध करनेवाला। प्राण लेनेवाला। हिंसा करनेवाला।

हत्यारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हत्यारा] (१) हत्या करनेवाली। प्राण लेनेवाली। (२) हत्या का पाप। प्राणवध का दोष। खून का अज़ाब।

क्रि० प्र०—लगना।

हथ-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ] 'हाथ' का संक्षिप्त रूप जिसका व्यवहार समस्त पदों में होता है। जैसे,—हथकंडा, हथलेवा।

हथ-उधार-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ+उधार] वह कर्ज जो थोड़े दिनों के लिये यों ही बिना किसी प्रकार की लिखा पढ़ी के लिया जाय। हथफेर। दस्तगर्दाँ।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

हथकंडा-संज्ञा पुं० [सं० हस्त, हिं० हाथ+सं० कांड] (१) हाथ को इस प्रकार जल्दी से और ढंग के साथ चलाने की क्रिया जिससे देखनेवालों को उसके द्वारा किए हुए काम का ठीक ठीक पता न लगे। हाथ की सफाई। हस्तलाघव। हस्त-कौशल। जैसे,—बाजीगरों के हथकंडे। (२) गुप्त चाल। चालाकी का ढंग। चतुराई की युक्ति। जैसे,—ये सब हथकंडे मैं खूब पहचानता हूँ।

हथकड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ+कड़ा] डोरी से बँधा हुआ लोहे का कड़ा जो कैदी के हाथ में पहना दिया जाता है (जिसमें वह भाग न सके)।

क्रि० प्र०—पड़ना।—डालना।

हथकरा-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ+करना] (१) धुनिये की कमान में बँधा हुआ कपड़े या रस्सी का टुकड़ा जिसे धुनिए हाथ से पकड़े रहते हैं। (२) चमड़े का दस्ताना जिसे चारे के लिये कँटीले झाड़ काटते समय पहन लेते हैं।

हथकरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ+कड़ा] दूकान के किवाड़ों में लगा हुआ एक प्रकार का ताला जो एक कड़ी से जुड़े हुए लोहे के दो कड़ों के रूप में होता है और दोनों ओर ताले के अँकुड़े की तरह खुला रहता है। इसी में हाथ डालकर कुंजी लगा दी जाती है।

हथकल-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ+कल] (१) पेंच कसने के लिये लुहारों का एक औज़ार। (२) करघे की दो डोरियाँ जिनका एक छोर तो हत्थे के ऊपर बँधा रहता है और दूसरा करघे में। (३) तार ऐंठने के लिये एक औज़ार जो आठ अंगुल का होता है और जिसमें पेचकश लगा होता है। (४) दे० "हथकरा"।

हथकोड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ+कोड़ा] कुश्ती का एक पेंच।

हथखंडा-संज्ञा पुं० दे० "हथकंडा"।

हथछुट-वि० [हिं० हाथ+छूटना] जिसका हाथ मारने के लिये बहुत जल्दी छूटता या उठता हो। जिसको मार बैठने की आदत हो।

हथधरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ+धरना] लकड़ी की पटरी जो नाव से लगाकर जमीन तक दो आदमी इसलिये पकड़े रहते हैं जिसमें उस पर से होकर लोग उतर जायँ।

हथनाल-संज्ञा पुं० [हिं० हाथी+नाल] वह तोप जो हाथियों पर चलती थी। गजनाल।

हथनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथी+नी (प्रत्य०)] हाथी की मादा।

हथफूल-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ+फूल] (१) एक प्रकार की आतशबाजी। (२) हथेली की पीठ पर पहनने का एक

विशेष—शरीर के ढाँचे या ठठरी में अनेक आकार और प्रकार की हड्डियाँ होती हैं। यद्यपि ये खंड खंड होती हैं, पर एक दूसरी से जुड़ी होती हैं। मनुष्य के शरीर में दो सौ से अधिक हड्डियाँ होती हैं। हड्डियों के खंड खंड जुड़े रहने से अंगों में लचीलापन रहता है जिससे वे बिना किसी कठिनता के अच्छी तरह हिल डुल सकते हैं। शरीर में हड्डियों के होने से ही हम सीधे खड़े हो सकते हैं। बचपन में हड्डियाँ मुलायम और लचीली होती हैं; इसी से बच्चे वर्ष सवा वर्ष तक खड़े नहीं हो सकते। युवावस्था आने पर हड्डियाँ अच्छी तरह दृढ़ और कड़ी हो जाती हैं। बुढ़ापे में वे जीर्ण और कड़ी हो जाती हैं और सहज में टूट सकती हैं।

शरीर की और वस्तुओं के समान हड्डी भी एक सजीव वस्तु है; उसमें भी रक्त का संचार होता है। इसमें चूने का अंश कुछ विशेष होता है। किसी हड्डी के टुकड़े को लेकर कुछ देर तक गंधक के तेजाब में रखें तो उसका कड़ापन दूर हो जायगा।

मुहा०—हड्डी उखड़ना = हड्डी का जोड़ खुल जाना। हड्डी का जोड़ खुलना = हड्डी उखड़ना। हड्डी टूटना = हड्डी फूटना। हड्डियाँ गढ़ना या तोड़ना = खूब मारना। खूब पीटना। हड्डियाँ निकल आना = मांस न रहने के कारण हड्डियाँ दिखाई पड़ना। शरीर बहुत दुबला होना। पुरानी हड्डी = पुराने आदमी का दृढ़ शरीर। पुराने समय का मजबूत आदमी। जैसे,—यह पुरानी हड्डी है, बुढ़ापे में भी तुम्हें पछाड़ सकते हैं।

(२) कुल। वंश। खानदान। जैसे,—हड्डी देखकर विवाह करना।

हत—वि० [सं०] (१) वध किया हुआ। मारा हुआ। जो मारा गया हो। (२) जिस पर आघात किया गया हो। जिस पर चोट लगाई गई हो। पीटा हुआ। ताड़ित। (३) खोया हुआ। गँवाया हुआ। जो न रह गया हो। रहित। विहीन। जैसे,—श्रीहत, हतोत्साह। (४) जिसमें या जिस पर ठोकर लगी हो। जैसे,—हत रेणु। (५) नष्ट किया हुआ। बिगाड़ा हुआ। चौपट किया हुआ। खराब किया हुआ। (६) तंग किया हुआ। हैरान। (७) पीड़ित। ग्रस्त। (८) स्पर्श किया हुआ। लगा हुआ। जिससे छू गया हो। (ज्योतिष) (९) गया बीता। निकृष्ट। निकम्मा। (१०) गुणा किया हुआ। गुणित। (गणित)

हतक—संज्ञा स्त्री० [अ० हतक = फाड़ना] हेठी। बेइज़्ज़ती। अप्रतिष्ठा।

क्रि० प्र०—करना। होना।

यौ०—हतक इज़्ज़त। हतक इज़्ज़ती।

हतक इज़्ज़ती—संज्ञा स्त्री० [अ० हतक + इज़्ज़त] अप्रतिष्ठा। मानहानि। बेइज़्ज़ती। जैसे,—उसने उस अखबार पर हतक-इज़्ज़ती का दावा किया है।

हतज्ञान—वि० [सं०] ज्ञान-शून्य। अचेत। बेहोश। संज्ञा-शून्य।

हतदैव—वि० [सं०] दई का मारा। अभागा।

हतना—क्रि० स० [सं० हत + ना (हिं० प्रत्य०)] (१) वध करना। मार डालना। उ०—कहँ राम रन हतौं प्रचारी।—तुलसी। (२) मारना। पीटना। प्रहार करना। (३) अन्यथा करना। पालन न करना। भंग करना। न मानना। उ०—मद्यपान रत, खीजित होई। सन्निपात युत वातुल जोई। देखि देखि तिनको सब भागै। तासु बात हति पाप न लागै।—केशव।

हतप्रभ—वि० [सं०] जिसकी कांति या तेज नष्ट हो गया हो। प्रभा-रहित।

हतप्रभाव—वि० [सं०] (१) जिसका प्रभाव न रह गया हो। जिसका असर जाता रहा हो। (२) जिसका अधिकार न रह गया हो। जिसकी बात कोई न मानता हो।

हतबुद्धि—वि० [सं०] बुद्धि-शून्य। मूर्ख।

हतभागी*—वि० [सं० हत + हिं० भाग्य] [स्त्री० हतभागिन, हतभागिनी] अभागा। भाग्यहीन।

हतभाग्य—वि० [सं०] भाग्यहीन। बदक़िस्मत।

हतवाना—क्रि० स० [हिं० हतना का प्रेरणा०] वध कराना। मरवाना।

हतवीर्य्य—वि० [सं०] बल रहित। शक्तिहीन।

हता—वि० स्त्री० [सं०] नष्ट चरित्र की। व्यभिचारिणी।

*†क्रि० स० [होना का भूतकाल] था।

हताना—क्रि० स० दे० "हतवाना"।

हताश—वि० [सं०] जिसे आशा न रह गई हो। निराश। नाउम्मीद।

हताहत—वि० [सं०] मारे गए और घायल। जैसे,—उस युद्ध में हताहतों की संख्या एक हजार थी।

हतोत्साह—वि० [सं०] जिसे कुछ करने का उत्साह न रह गया हो। जिसे कोई बात करने की उमंग न हो।

हत्थ*—संज्ञा पुं० दे० "हाथ"।

हत्था—संज्ञा पुं० [हिं० हत्थ, हाथ] (१) किसी भारी औजार का वह भाग जो हाथ से पकड़ा जाता हो। दस्ता। मूठ। (२) रेशमी कपड़े बुननेवालों के करघे में लकड़ी का वह ढाँचा जो छत से लगाकर नीचे लटकाया रहता है और जो इधर उधर झूलता रहता है। (३) तीन हाथ के लगभग लंबा लकड़ी का बल्ला जो एक छोर पर हाथ की हथेली के समान चौड़ा और गहरा होता है और जिससे खेत की नालियों का पानी चारों ओर उलीचा जाता है। हाथा। हथेरा। (४) निवार बुनने में लकड़ी का एक औजार जो एक ओर कुछ पतला होता है और कंघी की भाँति सूत बैठाने के काम में आता है। (५) एक प्रकार का भद्दा रंग जो सुर्खी लिए पीला या मटमैला होता है। (६) पत्थर या ईंट जो दंड करते समय हाथ के नीचे रख लेते हैं। (७) केले के फलों का घौद

या गुच्छा। पंजा। (८) ऐपन से बना हाथ के पंजे का चिह्न जो पूजन आदि के अवसर पर दीवार पर बनाया जाता है। हाथ का छापा। (९) गड़ेरियों का वह औज़ार जिससे वे कंबल बुनते समय पटिया ठोंकते हैं।

हत्था जड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथी+जड़ी] एक छोटा पौधा जिसकी पत्तियाँ सुगंधित होती हैं और जो भारतवर्ष के कई भागों में पाया जाता है। इसकी पत्तियों का रस घाव और फोड़े आदि पर रखा जाता है। बिच्छू और भिड़ के डंक मारे हुए स्थान पर भी यह लगाया जाता है। संस्कृत में इसे हस्तिशुंडा कहते हैं।

हत्थी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हत्था, हाथ] (१) किसी औज़ार या हथियार का वह भाग जो हाथ से पकड़ा जाय। दस्ता। मूँठ। (२) चमड़े का वह टुकड़ा जिसे छीपी रंग छापते समय हाथ में लगा लेते हैं। (३) वह लकड़ी जिससे कड़ाह में ईख का रस चलाते हैं। (४) गोमुखी की तरह का ऊनी थैला जिससे घोड़ों का बदन पोंछते हैं। (५) बारह गिरह लंबी लकड़ी जिसमें पीतल के छः दाँत लगे रहते हैं और जो कपड़ा बुनते समय उसे ताने रहने के लिये लगाई जाती है।

हत्थे–क्रि० वि० [हिं० हाथ, हत्थ] हाथ में।

मुहा०—हत्थे चढ़ना=(१) हाथ में आना। अधिकार में आना। प्राप्त होना। (२) वश में होना। प्रभाव के भीतर आना।

हत्थेदंड–संज्ञा पुं० [हिं० हत्था+दंड] वह दंड (कसरत) जो ऊँची ईंट या पत्थर पर हाथ रखकर किया जाता है।

हत्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मार डालने की क्रिया। वध। खून।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—हत्या लगना=हत्या का पाप लगना। किसी के वध का दोष ऊपर आना। जैसे—गाय मारने से हत्या लगती है।

(२) हैरान करनेवाली बात। झंझट। बखेड़ा। जैसे,—(क) कहाँ की हत्या लाए, हटाओ। (ख) चलो, हत्या टली।

मुहा०—हत्या टलना=झंझट दूर होना। हत्या सिर लगाना=बखेड़े का काम देना। झंझट लादना।

हत्यार–संज्ञा पुं० दे० "हत्यारा"।

हत्यारा–संज्ञा पुं० [सं० हत्या+कार] [स्त्री० हत्यारिन] हत्या करनेवाला। वध करनेवाला। जान लेनेवाला। हिंसा करनेवाला।

हत्यारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हत्यारा] (१) हत्या करनेवाली। प्राण लेनेवाली। (२) हत्या का पाप। प्राणवध का दोष। खून का अज़ाब।

क्रि० प्र०—लगना।

हथ–संज्ञा पुं० [हिं० हाथ] 'हाथ' का संक्षिप्त रूप जिसका व्यवहार समस्त पदों में होता है। जैसे,—हथकंडा, हथलेवा।

हथ-उधार–संज्ञा पुं० [हिं० हाथ+उधार] वह कर्ज जो थोड़े दिनों के लिये यों ही बिना किसी प्रकार की लिखा पढ़ी के लिया जाय। हथफेर। दस्तगर्दाँ।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

हथकंडा–संज्ञा पुं० [सं० हस्त, हिं० हाथ+सं० कांड] (१) हाथ को इस प्रकार जल्दी से और ढंग के साथ चलाने की क्रिया जिससे देखनेवालों को उसके द्वारा किए हुए काम का ठीक ठीक पता न लगे। हाथ की सफाई। हस्तलाघव। हस्त-कौशल। जैसे,—बाजीगरों के हथकंडे। (२) गुप्त चाल। चालाकी का ढंग। चतुराई की युक्ति। जैसे,—ये सब हथकंडे मैं खूब पहचानता हूँ।

हथकड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ+कड़ा] डोरी से बँधा हुआ लोहे का कड़ा जो कैदी के हाथ में पहना दिया जाता है (जिसमें वह भाग न सके)।

क्रि० प्र०—पहनाना।—डालना।

हथकरा–संज्ञा पुं० [हिं० हाथ+करना] (१) धुनिये की कमान में बँधा हुआ कपड़े या रस्सी का टुकड़ा जिसे धुनिए हाथ से पकड़े रहते हैं। (२) चमड़े का दस्ताना जिसे चारे के लिये कँटीले झाड़ काटते समय पहन लेते हैं।

हथकरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ+कड़ा] दूकान के किवाड़ों में लगा हुआ एक प्रकार का ताला जो एक कड़ी से जुड़े हुए लोहे के दो कड़ों के रूप में होता है और दोनों ओर ताले के अँकुड़े की तरह खुला रहता है। इसी में हाथ डालकर कुंजी लगा दी जाती है।

हथकल–संज्ञा पुं० [हिं० हाथ+कल] (१) पेंच कसने के लिये लुहारों का एक औज़ार। (२) करघे की दो डोरियाँ जिनका एक छोर तो हत्थे के ऊपर बँधा रहता है और दूसरा लत्ते में। (३) तार ऐंठने के लिये एक औज़ार जो आठ अंगुल का होता है और जिसमें पेचकश लगा होता है। (४) दे० "हथकरा"।

हथकोड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० हाथ+कोड़ा] कुश्ती का एक पेंच।

हथखंडा–संज्ञा पुं० दे० "हथकंडा"।

हथछुट–वि० [हिं० हाथ+छूटना] जिसका हाथ मारने के लिये बहुत जल्दी छूटता या उठता हो। जिसको मार बैठने की आदत हो।

हथधरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ+धरना] लकड़ी की पटरी जो नाव से लगाकर ज़मीन तक दो आदमी इसलिये पकड़े रहते हैं जिसमें उस पर से होकर लोग उतर जायँ।

हथनाल–संज्ञा पुं० [हिं० हाथी+नाल] वह तोप जो हाथियों पर चलती थी। गजनाल।

हथनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथी+नी (प्रत्य०)] हाथी की मादा।

हथफूल–संज्ञा पुं० [हिं० हाथ+फूल] (१) एक प्रकार की आतशबाज़ी। (२) हथेली की पीठ पर पहनने का एक

जड़ाऊ गहना जो सिकड़ियों के द्वारा एक ओर तो अँगूठियों में बँधा रहता है और दूसरी ओर कलाई से। हथसाँकर। हथसंकर।

हथफेर—संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + फेरना] (१) प्यार करते हुए शरीर पर हाथ फेरने की क्रिया। (२) रुपये पैसे के लेन देन के समय हाथ से कुछ चालाकी करना जिससे दूसरे के पास कम या खराब सिक्के जायँ। हाथ की चालाकी। (३) दूसरे के माल को चुपचाप ले लेना। किसी की वस्तु या धन को सफाई से उड़ा लेना।

क्रि० प्र०—करना।

(४) थोड़े दिनों के लिये बिना लिखा पढ़ी के लिया या दिया हुआ कर्ज। हाथ-उधार।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

हथबेंटा—संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + बेंट] एक प्रकार की कुदाली जो राढ़ें गन्ने काटने के काम में आती है।

हथरखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + रखना] चमड़े की थैली जो कोल्हू में गन्ने डालनेवाला हाथ में पहने रहता है।

हथली—संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ] चरखे की मुठिया जिसे पकड़ कर चरखा चलाते हैं।

हथलेवा—संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + लेना] विवाह में वर का कन्या का हाथ अपने हाथ में लेने की रीति। पाणिग्रहण। उ०—सेद सलिल, रोमांच कुस गहि दुलही अरु नाथ। हियो दियो सँग हाथ के हथलेवा ही हाथ।—बिहारी।

हथवाँस—संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + वाँस (प्रत्य०)] नाव चलाने के सामान। जैसे,—लग्गा, पतवार, डाँड़ा इत्यादि। उ०—अस बिचारि गुह ज्ञाति सन कहेउ सजग सब होहु। हथवाँसहु बोरहु तरनि कीजिय घाटारोहु।—तुलसी।

हथवाँसना†—क्रि० स० [हिं० हाथ + अवाँसना] किसी व्यवहार में लाई जानेवाली वस्तु में पहले पहल हाथ लगाना। काम में लाना। व्यवहार करना।

हथसंकर—संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + साँकर] हथेली की पीठ पर पहनने का एक गहना जो फूल के आकार का होता है और जिसमें पतली सिकड़ियाँ लगी होती हैं। हथफूल।

हथसाँकला—संज्ञा पुं० दे० "हथसंकर"।

हथसार—संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथी + सं० शाला, हिं० सार] वह घर जिसमें हाथी रखे जाते हैं। फीलखाना। गजशाला।

हथा—संज्ञा पुं० [हिं० हाथ] गीले पिसे हुए चावल और हल्दी पोत कर बनाया हुआ पंजे का चिह्न। ऐपन का छापा। (यह पूजन आदि में दीवार पर बनाया जाता है।)

हथाहथी‡†—अव्य० [हिं० हाथ] (१) एक के हाथ से दूसरे के हाथ में बराबर जाते हुए। हाथों हाथ। (२) शीघ्र। तुरंत।

हथिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० हस्तिनी, प्रा० हत्थिणी] हाथी की मादा।

हथिया—संज्ञा पुं० [सं० हस्त, प्रा० हत्थ (नक्षत्र)] हस्त नक्षत्र।

संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ] कंघी के ऊपर की लकड़ी। (जुलाहे)

हथियाना—क्रि० स० [हिं० हाथ + आना (प्रत्य०)] (१) हाथ में करना। अधिकार में करना। ले लेना। (२) दूसरे की वस्तु धोखा देकर ले लेना। उड़ा लेना। (३) हाथ में पकड़ना। हाथ से पकड़कर काम में लाना।

हथियार—संज्ञा पुं० [हिं० हथियाना = हाथ से पकड़ना] (१) हाथ से पकड़कर काम में लाने की साधन-वस्तु। वह वस्तु जिसकी सहायता से कोई काम किया जाय। औजार। (२) तलवार, भाला आदि आक्रमण करने या मारने का साधन। अस्त्र शस्त्र।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।

मुहा०—हथियार बाँधना या लगाना = अस्त्र शस्त्र धारण करना। हथियार उठाना = (१) मारने के लिये अस्त्र हाथ में लेना। (२) लड़ाई के लिये तैयार होना। हथियार करना = हथियार चलाना।

(३) लिंगेंद्रिय। (बाजारू)

हथियारबंद—वि० [हिं० हथियार + फा० बंद, सं० बंध] जो हथियार बाँधे हो। सशस्त्र। जैसे,—हथियारबंद सिपाही।

हथुई मिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + मिट्टी] गीली मिट्टी का वह लेप जो कच्ची दीवार का खुरदुरापन दूर करने के लिये लगाया जाता है।

हथुई रोटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + रोटी] वह रोटी जो गीले आटे को हाथ से गढ़कर बनाई गई हो।

हथेरा—संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + एरा (प्रत्य०)] तीन साढ़े तीन हाथ लंबा लकड़ी का वह बल्ला जिसका एक सिरा हथेली की तरह चौड़ा होता है और जिससे खेती की नाली का पानी चारों ओर सिंचाई के लिये उलीचते हैं। हाथा।

हथेरी‡†—संज्ञा स्त्री० दे० "हथेली"।

हथेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ] वह लचीली कमाची जिस पर बुना हुआ कपड़ा तानकर रखा जाता है। पनिक। पनखट। (जुलाहे)

हथेली—संज्ञा स्त्री० [सं० हस्ततल, प्रा० हत्थतल] (१) हाथ की कलाई का चौड़ा सिरा जिसमें उँगलियाँ लगी होती हैं। हाथ की गद्दी। हस्ततल। करतल।

मुहा०—हथेली में आना = (१) हाथ में आना। अधिकार में आना। मिलना। प्राप्त होना। (२) वश में होना। हथेली में करना = अपने अधिकार में करना। ले लेना। हथेली खुजलाना = द्रव्य मिलने का आगम सूचित होना। कुछ मिलने का शकुन होना। (यह प्रवाद है कि जब हथेली खुजलाती है, तब कुछ मिलता है।) हथेली का फफोला = अत्यंत सुकुमार वस्तु। बहुत नाजुक चीज जिसके टूटने फूटने का सदा डर रहे। हथेली देना या

लगाना = हाथ का सहारा देना। सहायता करना। मदद करके सँभालना। हथेली बजाना = ताली पीटना। किसकी हथेली में बाल जमे हैं? = कौन ऐसा संसार में है? जैसे,—किसकी हथेली में बाल जमे हैं जो उसे मार सकता है। हथेली सा = बिल्कुल चौरस या सपाट। समतल। हथेली पर जान होना = ऐसी स्थिति में पड़ना जिसमें प्राण जाने का भय हो। जान जोखों होना।

(२) चरखे की मुठिया जिसे पकड़कर चरखा चलाते हैं।

हथोरी‡—संज्ञा स्त्री० दे० "हथेली"। उ०—जानौ रकत हथोरी बूड़ी। रवि परभात तात, वै जूड़ी।—जायसी।

हथौटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + औटी (प्रत्य०)] (१) किसी काम में हाथ लगाने का ढंग। हाथ से करने का ढब। हस्तकौशल। जैसे,—अभी तुम्हें इसकी हथौटी नहीं मालूम है, इसी से देर लगती है। (२) किसी काम में लगा हुआ हाथ। किसी काम में हाथ डालने की क्रिया या भाव। जैसे,—उसकी हथौटी बड़ी मनहूस है; जिस काम में हाथ लगाता है, वह चौपट हो जाता है।

हथौड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + औड़ा (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० हथौड़ी] (१) किसी वस्तु को ठोंकने, पीटने या गढ़ने के लिये साधन वस्तु। लुहारों या सुनारों का वह औज़ार जिससे वे किसी धातुखंड को तोड़ते, पीटते या गढ़ते हैं। मारतौल। (२) कील ठोंकने, खूँटे गाड़ने आदि का औज़ार।

हथौड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० हथौड़ा] छोटा हथौड़ा।

हथौना—संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + औना (प्रत्य०)] दूल्हे और दुलहन के हाथ में मिठाई रखने की रीति।

हथ्यार‡—संज्ञा पुं० दे० "हथियार"।

हद—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) किसी वस्तु के विस्तार का अंतिम सिरा। किसी चीज़ की लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई या गहराई की सब से अधिक पहुँच। सीमा। मर्य्यादा। जैसे,—सड़क की हद, गाँव की हद।

यौ०—हदबंदी। हदसमाअत।

मुहा०—हद बँधना = सीमा निर्धारित होना। यह ठहराया जाना कि किसी चीज़ का घेरा अथवा लंबाई, चौड़ाई यहाँ तक है। हद बाँधना = सीमा निर्धारित करना। हद तोड़ना = सीमा के बाहर जाना या कुछ करना। सीमा का अतिक्रमण करना। हद से बाहर = ठहराई हुई सीमा के आगे। हद कायम करना = दे० "हद बाँधना"।

(२) किसी वस्तु या बात का सब से अधिक परिमाण जो ठहराया गया हो। अधिक से अधिक संख्या या परिमाण जो साधारणतः माना जाता हो या उचित हो। जैसे,—(क) उस मेले में हद से ज्यादा आदमी आए। (ख) उसने मिहनत की हद कर दी। उ०—कैला करी कोकिल, कुरंग बार कारे कारे, कुदि कुदि केहरी कलंक लंक हद की।—केशव।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—हद से ज्यादा = बहुत अधिक। अत्यंत। हद व हिसाब नहीं = बहुत ही ज्यादा। अत्यंत। अपार। अपरिमेय।

(३) किसी बात की उचित सीमा। कोई बात कहाँ तक करनी चाहिए, इसका नियत मान। कोई काम, व्यवहार या आचरण कहाँ तक ठीक है, इसका अंदाज़। मर्य्यादा। जैसे,—तुम तो हर एक बात में हद से बाहर चले जाते हो।

मुहा०—हद से गुजरना = मर्य्यादा का अतिक्रमण करना। जहाँ तक उचित हो, उससे किसी बात में आगे बढ़ना।

हद समाअत—संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी बात का दावा करने के लिये समय की नियत अवधि। वह मुकर्रर वक्त जिसके भीतर अदालत में दावा करना चाहिए। (कचहरी)

मुहा०—हद समाअत होना = हद समाअत पूरी होना। दावा करने की अवधि का बीत जाना।

हद सियासत—संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी न्यायालय के अधिकार की सीमा। उतना स्थान जितने के भीतर के मुकद्दमे कोई अदालत ले सके।

हदीस—संज्ञा स्त्री० [अ०] मुसलमानों का वह धर्मग्रंथ जिसमें मुहम्मद साहब के कार्य्यों के वृत्तांत और भिन्न भिन्न अवसरों पर कहे हुए वचनों का संग्रह है और जिसका व्यवहार बहुत कुछ स्मृति के रूप में होता है।

हनन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० हननीय, हनित] (१) मार डालना। वध करना। जान मारना। (२) आघात करना। चोट लगाना। पीटना। (३) गुणन। गुणा करना। ज़रब देना। (गणित)

हनना‡‡—क्रि० स० [सं० हनन] (१) मार डालना। वध करना। प्राण लेना। उ०—छन महँ हने निसाचर जेते।—तुलसी। (२) आघात करना। चोट मारना। प्रहार करना। कस कर मारना। उ०—(क) मुष्टिक एक ताहि कपि हनी। (ख) आवत ही उर-महँ हनेउ मुष्टि-प्रहार प्रघोर।—तुलसी। (३) पीटना। ठोंकना। (४) लकड़ी से पीट या ठोंक कर बजाना। उ०—जोगींद्र सिद्ध मुनीस देव बिलोकि प्रभु दुंदुभि हनी।—तुलसी।

हननीय—वि० [सं०] (१) हनन करने योग। मारने योग्य। (२) जिसे मारना हो।

हनफ़ी—संज्ञा पुं० [सं०] मुसलमानों में सुन्नियों का एक संप्रदाय।

हनवाना—क्रि० स० [हिं० हनना का प्रेरणा०] हनने का कार्य्य दूसरे से कराना। मरवाना।

‡क्रि० अ० दे० "नहवाना", "नहलाना"।

हनाना‡—क्रि० अ० दे० "नहाना"।

हुनितवंत⊛†–संज्ञा पुं० दे० "हनुमंत"।

हनु–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दाढ़ की हड्डी। जबड़ा। ⊛(२) ठुड्डी। चिबुक।

हनुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] दाढ़ की हड्डी। जबड़ा।

हनुग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें जबड़े बैठ जाते हैं और जल्दी खुलते नहीं। (यह किसी प्रकार की चोट लगने आदि से वायु कुपित होने के कारण होता है।)

हनुभेद–संज्ञा पुं० [सं०] जबड़े का खुलना।

हनुमंत–संज्ञा पुं० दे० "हनुमान्"।

हनुमंत चढ़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हनुमंत+चढ़ना] मालखंभ की एक कसरत जिसमें सिर नीचे और पैर ऊपर की ओर करके सामने लाते हैं और फिर ऊपर खसकते हैं।

हनुमंती–संज्ञा स्त्री० [हिं० हनुमंत] मालखंभ की एक कसरत जिसमें एक पाँव के अँगूठे से बेंत पकड़कर खूब तानते हैं और फिर दूसरे पाँव को अंटी देकर और उससे बेंत पकड़कर बैठते हैं।

हनुमत्कवच–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हनुमान को प्रसन्न करने का एक मंत्र जिसे लोग तावीज वगैरह में रखकर पहनते हैं। (२) हनुमान् जी को प्रसन्न करने की एक स्तुति।

हनुमान्–वि० [सं० हनुमत्] (१) दाढ़वाला। जबड़ेवाला। (२) भारी दाढ़ या जबड़ेवाला। महावीर।

संज्ञा पुं० पंपा के एक वीर बंदर जिन्होंने सीता-हरण के उपरांत रामचंद्र की बड़ी सेवा और सहायता की थी। ये लंका में जाकर सीता का समाचार भी लाए थे और रावण की सेना के साथ बड़ी वीरता के साथ लड़े थे। ये अपने अपार बल, वीरता और वेग के लिये प्रसिद्ध हैं। और बंदरों के समान इनकी उत्पत्ति भी विष्णु के अवतार राम की सहायता के लिये देवांश से हुई थी। इनकी माता का नाम अंजना था और ये वायु या मरुत् देवता के पुत्र कहे जाते हैं। कहीं कहीं इन्हें शिव के वीर्य्य या अंश से भी उत्पन्न कहा है। ये रामभक्तों में सब से आदि कहे जाते हैं और राम ही के समान इनकी पूजा भी भारत में सर्वत्र होती है। ये बलप्रदाता माने जाते हैं और हिंदू पहलवान या योद्धा इनका नाम लेते हैं और इनकी उपासना करते हैं।

हनुमान बैठक–संज्ञा स्त्री० [हिं० हनुमान्+बैठक] एक प्रकार की बैठक (कसरत) जिसमें एक पैर पैंतरे की तरह आगे बढ़ाते हुए बैठते उठते हैं।

हनुमोक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] दाढ़ का एक रोग जिसमें बहुत दर्द होता है और मुँह खोलते नहीं बनता।

हनुल–वि० [सं०] पुष्ट या दृढ़ दाढ़वाला। मजबूत जबड़ेवाला।

हनूफाल–संज्ञा पुं० [सं० हनु+हिं० फाल, फलाँग] एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में बारह मात्राएँ और अंत में गुरु लघु होते हैं।

हनूमान्–संज्ञा पुं० दे० "हनुमान्"।

हनोज़–अव्य० [फ़ा०] अभी। अभी तक। जैसे,—हनोज़ दिल्ली दूर है। उ०—कवि सेवक बूढ़े भए तौ कहा पै हनोज है मौज मनोज ही की।—सेवक।

हनोद–संज्ञा पुं० [देश०] हिंडोल राग के एक पुत्र का नाम।

हप–संज्ञा पुं० [अनु०] मुँह में झट से लेकर ओंठ बंद करने का शब्द। जैसे हप से खा गया।

मुहा०—हप कर जाना = झट से मुँह में डालकर खा जाना। चटपट उड़ा जाना। उ०—देखते देखते सारा भात हप कर गया।

हपटाना†–क्रि० अ० [हिं० हाँफना] हाँफना।

हफ़्तगाना–संज्ञा पुं० [फ़ा०] गाँव के पटवारी के सात कागज जिनमें वह जमीन, लगान आदि का लेखा रखता है—खसरा, बहीखाता, जमाबंदी, स्याहा, तुमारल, रोजनामचा और जिंसवार।

हफ़्ता–संज्ञा पुं० [फ़ा०] सात दिन का समय। सप्ताह।

हफ़्ती–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार की जूती।

हबकना†–क्रि० अ० [अनु० हप] मुँह बाना। खाने या दाँत काटने के लिये झट से मुँह खोलना।

क्रि० स० दाँत काटना। जैसे,—कुत्ते ने पीछे से आकर हबक लिया।

हबर दबर, हबर हबर–क्रि० वि० [अनु० हड़बड़] (१) जल्दी जल्दी। उतावली से। अल्दबाजी से। जैसे,—घर में तबला नहीं टिकता, हबर दबर आई, फिर बाहर जा झमकीं। (२) जल्दी के कारण ठीक तौर से नहीं। हड़बड़ी से। जैसे,—इस तरह हबर दबर करने से काम नहीं होता।

हबराना†⊛–क्रि० अ० दे० "हड़बड़ाना"।

हबश–संज्ञा पुं० [फ़ा० हब्श] अफ्रिका का एक प्रदेश जो मिस्र के दक्षिण पड़ता है और जहाँ के लोग बहुत काले होते हैं।

हबशी–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) हबश देश का निवासी जो बहुत काला होता है। उ०—तिल न होइ मुख मीत पर जानौ वाको हेत। रूप-खजाने की मनौ हबसी चौकी देत।—रसनिधि।

विशेष—हबशियों का रंग बहुत काला, कद नाटा, बाल घुँघराले और ओंठ बहुत मोटे होते हैं। पहले ये गुलाम बनाए जाते थे और बिकते थे।

(२) एक प्रकार का अंगूर जो जामुन की तरह काला होता है।

हबशी सनर–संज्ञा पुं० [फ़ा०] अफ्रिका का गैंडा जिसके दो सींग या खाँग होते हैं।

हबीब–संज्ञा पुं० [अ०] (१) दोस्त। मित्र। (२) प्रिय।

यौ०—खुदा का हबीब = पैगम्बर मुहम्मद साहब जो खुदा के परम प्रिय माने जाते हैं।

हबूब-संज्ञा पुं० [अ० हबाब या हुबाब] (१) पानी का बबूला। बुल्ला। (२) निस्सार बात। झूठ मूठ की बात। उ०—साधु जानैं महासाधु, खल जानैं महा खल, बानी झूठी साँची कोटि उठत हबूब हैं।—तुलसी।

हमेली-संज्ञा स्त्री० दे० "हवेली"।

हब्बा डब्बा-संज्ञा पुं० [हिं० हाँफ अनु० डब्बा] जोर जोर से साँस या पसली चलने की बीमारी जो बच्चों को होती है।

हब्बुल् आस-संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार की मेहँदी जो बगीचों में लगाई जाती है और दवा के काम में आती है। विलायती मेहँदी।

विशेष—इसकी पत्तियों से एक प्रकार का सुगंधित तेल निकाला जाता है जिसका लेप, कृमिघ्न होने के कारण, घाव पर किया जाता है। इस तेल से बाल भी बढ़ते हैं। इसके फल अतिसार और संग्रहणी में दिए जाते हैं और गठिया का दर्द दूर करने और खून रोकने के काम में आते हैं।

हब्स-संज्ञा पुं० [अ०] कैद। कारावास।

यौ०—हब्स बेजा।

हब्सबेजा-संज्ञा पुं० [अ०+फ़ा०] अनुचित रीति से बंदी करना। बेजा तौर पर कहीं कैद रखना। (कानून)

हम-सर्व० [सं० अहम्] उत्तम पुरुष बहुवचन सूचक सर्वनाम शब्द। "मैं" का बहुवचन।

संज्ञा पुं० अहंकार। 'हम' का भाव। उ०—जब 'हम' था तब गुरु नहीं, जब गुरु तब 'हम' नाहिं।—कबीर।

अव्य० [फ़ा०] (१) साथ। संग। (२) समान। तुल्य।

यौ०—हम असर। हमदर्दी। हमजिंस। हमजोली।

हम-असर-संज्ञा पुं० [फ़ा० + अ०] (१) वे जिन पर एक ही प्रकार का प्रभाव पड़ा हो। समान संस्कार या प्रवृत्तिवाले। (२) एक ही समय में होनेवाले। साथी। संगी।

हम-जिंस-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक ही वर्ग या जाति के प्राणी। एक ही प्रकार के व्यक्ति।

हमजोली-संज्ञा पुं० [फ़ा० + हिं० जोड़ी ?] साथी। संगी। सहयोगी। सखा।

हमता॰-संज्ञा स्त्री० [हिं० हम + ता (प्रत्य०)] अहंभाव। अहंकार।

हमदर्द-संज्ञा पुं० [फ़ा०] दुःख का साथी। दुःख में सहानुभूति रखनेवाला।

हमदर्दी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दूसरे के दुःख से दुखी होने का भाव। सहानुभूति। जैसे,—मुझे उसके साथ कुछ भी हमदर्दी नहीं है।

हमनिवाला-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक साथ बैठकर भोजन करनेवाले। आहार विहार के सखा। घनिष्ठ मित्र।

हम पंच॰-सर्व० [हिं० हम + पंच] हम लोग।

हमरा॰-सर्व० दे० "हमारा"।

हमराह-अव्य० [फ़ा०] (कहीं जाने में किसी के) साथ। संग में। जैसे,—लड़का उसके हमराह गया।

मुहा०—हमराह करना = साथ में करना। संग में लगाना। हमराह होना = साथ आना।

हमल-संज्ञा पुं० [अ०] स्त्री के पेट में बच्चे का होना। गर्भ। वि० दे० "गर्भ"।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—हमल गिरना = गर्भपात होना। पेट से बच्चे का पूरा हुए बिना निकल जाना। हमल गिराना = गर्भपात करना। पेट के बच्चे को बिना समय पूरा हुए निकाल देना। हमल रहना = गर्भ रहना। पेट में बच्चे का पैदा होना।

हमला-संज्ञा पुं० [अ०] (१) लड़ाई करने के लिये चल पड़ना। युद्ध यात्रा। चढ़ाई। धावा। जैसे,—मुगलों के कई हमले हिंदुस्तान पर हुए। (२) मारने के लिये झपटना। प्रहार करने के लिये वेग से बढ़ना। आक्रमण। (३) प्रहार। वार। (४) किसी को हानि पहुँचाने के लिये किया हुआ प्रयत्न। नुकसान पहुँचाने की कार्रवाई। (५) विरोध में कही हुई बात। शब्द द्वारा आक्षेप। कटु व्यंग्य। जैसे,—यह हमला हमारे ऊपर है, हम इसका जवाब देंगे।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हमवतन-संज्ञा पुं० [फ़ा० + अ०] एक ही प्रदेश के रहनेवाले। स्वदेशवासी। देश भाई।

हमवार-वि० [फ़ा०] जिसकी सतह बराबर हो। जो ऊँचा नीचा न हो। जो ऊबड़ खाबड़ न हो। समतल। सपाट। जैसे,—ज़मीन हमवार करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हम सबक-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक साथ पढ़नेवाले। सहपाठी।

हमसर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] दरजे में बराबर आदमी। गुण, बल या पद में समान व्यक्ति। जोड़ का आदमी। बराबरी का आदमी।

हमसरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] समानता का भाव। बराबरी। जैसे,—वह तुमसे हमसरी का दावा रखता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हमसाया-संज्ञा पुं० [फ़ा०] पड़ोसी।

हमहमी-संज्ञा स्त्री० दे० "हमाहमी"।

हमाम-संज्ञा पुं० [अ० हम्माम] नहाने का घर जहाँ गरम पानी रहता है। स्नानागार। उ०—मैं तवाय त्रय ताप सों राख्यो हियो हमाम। मकु कबहूँ आवै इहाँ पुलक पसीजे स्याम।—बिहारी।

हमारा-सर्व० [हिं० हम + आरा (प्रत्य०)] [स्त्री० हमारी] 'हम' का संबंधकारक रूप।

हमाल–संज्ञा पुं० [अ० हम्माल] (१) भार उठानेवाला। बोझ ऊपर लेनेवाला। (२) सँभालनेवाला। रक्षा करनेवाला। रक्षक। रखवाला। उ०—पैज प्रतिपाल, भूमिभार को हमाल, चहूँ चक्क को अमाल, भयो दंडक जहान को।—भूषण। (३) (बोझ उठानेवाला) मजदूर। कुली। उ०—पल पलौ भर हन लिया तेरा नाज उठाइ। नैन-हमालन दै अरे दरस-मजूरी आइ।—रसनिधि।

हमालल–संज्ञा पुं० [सं० हिमालय ?] सिंहल या सीलोन का सब से ऊँचा पहाड़ जिसे 'आदम की चोटी' कहते हैं।

हमाहमी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हम] (१) अपने अपने लाभ का आतुर प्रयत्न। बहुत से लोगों में से प्रत्येक का किसी वस्तु को पाने के लिये अपने को आगे करने की धुन। स्वार्थपरता। (२) अपने को ऊपर करने का प्रयत्न। अहंकार।

हमीर–संज्ञा पुं० दे० "हम्मीर"।

हमें–सर्व० [हिं० हम] 'हम' का कर्म और संप्रदान कारक का रूप। हमको। जैसे,—(क) हमें बताओ। (ख) हमें दो।

हमेल–संज्ञा स्त्री० [अ० हमायल] सिक्कों या सिक्के के आकार के धातु के गोल टुकड़ों की माला जो गले में पहनी जाती है। (यह प्रायः अशरफ़ियों या पुराने रुपयों को तागे में गूँथ कर बनती है।)

हमेवॐ†–संज्ञा पुं० [सं० अहम्+एव] अहंकार। अभिमान।

मुहा०—हमेव टूटना = गर्व चूर्ण होना। शेखी निकल जाना।

हमेशा–अव्य० [फ़ा०] सब दिन या सब समय। सदा। सर्वदा। सदैव। जैसे,—(क) वह हमेशा ऐसा ही कहता है। (ख) इस दवा को हमेशा पीना।

मुहा०—हमेशा के लिये = सब दिन के लिये।

हमेसॐ–अव्य० दे० "हमेशा"।

हमैंॐ–अव्य० दे० "हमें"।

हम्माम–संज्ञा पुं० [अ०] नहाने की कोठरी जिसमें गरम पानी रखा रहता है और जो आग या भाप से गरम रखी जाती है। स्नानागार।

हम्मीर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो शंकराभरण और मारू के मेल से बना है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं और इसके गाने का समय संध्या को एक से पाँच दंड तक है। यह राग धर्म संबंधी उत्सवों या हास्य रस के लिये अधिक उपयुक्त समझा जाता है। (२) रणथंभोरगढ़ का एक अत्यंत वीर चौहान राजा जो सन् १३०० ई० में अलाउद्दीन खिलजी से बड़ी वीरता के साथ लड़कर मारा गया था।

हम्मीर नट–संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो नट और हम्मीर के मेल से बना है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

हयंदॐ–संज्ञा पुं० [सं० हयेंद्र] बड़ा या अच्छा घोड़ा।

हय–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० हया, हयी] (१) घोड़ा। अश्व। (२) कविता में सात की मात्रा सूचित करने का शब्द (उच्चैःश्रवा के सात मुँह के कारण)। (३) चार मात्राओं का एक छंद। (४) इंद्र का एक नाम। (५) धनु राशि।

हयगंध–संज्ञा पुं० [सं०] काला नमक।

हयगृह–संज्ञा पुं० [सं०] अश्वशाला। घुड़साल।

हयग्रीव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक अवतार।

विशेष—मधु और कैटभ नाम के दो दैत्य जब वेद को उठा ले गए थे, तब वेद के उद्धार और उन राक्षसों के विनाश के लिये भगवान् ने यह अवतार लिया था।

(२) एक असुर या राक्षस जो कल्पांत में ब्रह्मा की निद्रा के समय वेद उठा ले गया था। विष्णु ने मत्स्य अवतार लेकर वेद का उद्धार और इस राक्षस का वध किया था। (३) एक और राक्षस का नाम। (रामायण) (४) तांत्रिक बौद्धों के एक देवता।

हयग्रीवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

हयन–संज्ञा पुं० [सं०] वर्ष। साल।

हयनाॐ–क्रि० स० [सं० हत, प्रा० हय+ना (हिं० प्रत्य०)] (१) वध करना। मार डालना। हनन करना। उ०—छन महँ सकल निशाचर हये। (२) मारना। पीटना। चोट लगाना। (३) पीटकर बजाना। ठोंककर बजाना। उ०—हेवन हये निसान।—तुलसी। (४) नष्ट करना। न रहने देना। उ०—प्रीति प्रतीति रीति परिमिति पति हेतुवाद हठि हेरि हई है।—तुलसी।

हयनाल–संज्ञा स्त्री० [सं० हय+हिं० नाल] वह तोप जिसे घोड़े खींचते हैं।

हयप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] जौ। यव।

हयप्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] जंगली खजूर। खजूरी।

हयमारक–संज्ञा पुं० [सं०] करवीर। कनेर।

हयमारण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कनेर। (२) अश्वत्थ। पीपल।

हयमुख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देश का नाम जिसके संबंध में प्रसिद्ध है कि वहाँ घोड़े के से मुँहवाले आदमी बसते हैं। (२) और्व ऋषि का क्रोध रूपी तेज जो समुद्र में स्थित होकर बड़वानल कहलाता है। (रामायण)

हयमेध–संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध यज्ञ।

हयशाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वशाला। घुड़सार। अस्तबल।

हयशिर–संज्ञा पुं० [सं० हयशिरस्] (१) एक ऋषि का नाम। (२) एक दिव्यास्त्र का नाम। (रामायण)

हयशीर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का हयग्रीव रूप।

हयांग–संज्ञा पुं० [सं०] धनु राशि।

हया–संज्ञा स्त्री० [अ०] लज्जा। लाज। शर्म।

यौ०—हयादार। हयादारी। बेहया। बेहयाई।

हयात-संज्ञा स्त्री० [अ०] ज़िंदगी। जीवन।

यौ०—हीन हयात = ज़िंदगी भर के लिये। किसी के जीवन काल तक। जैसे,—मुआफ़ी हीन हयात। हीन हयात में = ज़िंदगी में। जीते जी। जीवन काल में।

हयादार-संज्ञा पुं० [अ० हया + फ़ा० दार] वह जिसे हया हो। लज्जाशील। शर्मदार।

हयादारी-संज्ञा स्त्री० [अ० हया + फ़ा० दारी] हयादार होने का भाव। लज्जाशीलता।

हयानन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हयग्रीव। (२) हयग्रीव का स्थान। (वाल्मीकि)

हयायुर्वेद-संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ों की चिकित्सा का शास्त्र। शालिहोत्र।

हयारि-संज्ञा पुं० [सं०] करवीर। कनेर।

हयाशन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धूप का पौधा जो मध्य भारत तथा गया और शाहाबाद के पहाड़ों में बहुत होता है।

हयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़ी।

संज्ञा पुं० [सं० हयिन्] घुड़सवार।

हर-वि० [सं०] (१) हरण करनेवाला। ले लेनेवाला। छीनने या लूटनेवाला। जैसे,—धनहर, वस्त्रहर, पश्यतोहर। (२) दूर करनेवाला। मिटानेवाला। न रहने देनेवाला। जैसे,—रोगहर, पापहर। (३) वध करनेवाला। नाश करनेवाला। मारनेवाला। जैसे,—असुरहर। (४) ले जानेवाला। पहुँचानेवाला। वाहक। जैसे,—संदेशहर।

संज्ञा पुं० (१) शिव। महादेव। (२) एक राक्षस जो वसुदा के गर्भ से उत्पन्न माली नामक राक्षस के चार पुत्रों में से एक था और जो विभीषण का मंत्री था। (३) वह संख्या जिससे भाग दें। भाजक। (गणित) (४) भिन्न में नीचे की संख्या। (गणित) (५) अग्नि। आग। (६) गदहा। (७) छप्पय के दसवें भेद का नाम। (८) टगण के पहले भेद का नाम।

† संज्ञा पुं० [सं० हल] हल।

यौ०—हरवाहा। हरवल। हरौरी। हरहा।

वि० [फ़ा०] प्रत्येक। एक एक। जैसे,—(क) हर शख्स के पास एक एक बंदूक थी। (ख) वह हर रोज आता है।

यौ०—हरकारा। हरजाई।

मुहा०—हर एक = प्रत्येक। एक एक। हर कोई या हर किसी = प्रत्येक मनुष्य। सब कोई या सब किसी। सर्वसाधारण। जैसे,—(क) हर किसी के पास ऐसी चीज नहीं निकल सकती। (ख) हर कोई यह काम नहीं कर सकता। हर दफ़ा या हर बार = प्रत्येक अवसर पर। हर रोज़ = प्रति दिन। नित्य। हर हाल में = प्रत्येक दशा में। हर दम = प्रति क्षण। सदा। जैसे,—वह हर दम यहीं पड़ा रहता है। † हर हमेश = सदा। सर्वदा।

हरएँ‡-अव्य० [हिं० हरुआ] (१) धीरे धीरे। मंद गति से। आहिस्ते से। उ०—हेरत ही हरि को हरषाय हिये हठि कै हरएँ चलि आई।—बेनी। (२) तीव्रता से नहीं। जोर से नहीं।

हरकत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) गति। चाल। हिलना डोलना। (२) चेष्टा। क्रिया। (३) बुरी चाल। बेजा कार्रवाई। दुष्ट व्यवहार। नटखटी। उ०—(क) तुम्हारी सब हरकतें हम देख रहे हैं। (ख) यह सब उसी की हरकतें हैं। (ग) नाशाइस्ता हरकत, बेजा हरकत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हरकना‡-क्रि० स० दे० "हटकना"।

हरकारा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) चिट्ठी पत्री ले जानेवाला। सँदेसा ले जानेवाला। (२) चिट्ठीरसाँ। डाकिया।

हरकेस-संज्ञा पुं० [सं० हरिकेश] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

हरख‡-संज्ञा पुं० दे० "हर्ष"।

हरखना‡-क्रि० अ० [हिं० हरख + ना (प्रत्य०)] हर्षित होना। प्रसन्न होना। खुश होना। उ०—कौतुक देखि सकल सुर हरखे।—तुलसी।

हरखाना-क्रि० अ० दे० "हरखना"। उ०—तुरत उठे लछमन हरखाई।—तुलसी।

क्रि० स० [हिं० हरखना] प्रसन्न करना। खुश करना। आनंदित करना।

हरगिज़-अव्य० [फ़ा०] किसी दशा में। कदापि। कभी। जैसे,—वह वहाँ हरगिज़ न आयगा।

हरगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत।

हरगिला-संज्ञा पुं० दे० "हड़गीला"।

हरगौरी रस-संज्ञा पुं० [सं०] रस सिंदूर। (आयुर्वेद)

हरचंद-अव्य० [फ़ा०] (१) कितना ही। बहुत या बहुत बार। जैसे,—मैंने हरचंद मना किया, पर उसने न माना। (२) यद्यपि। अगरचे।

हरज-संज्ञा पुं० दे० "हर्ज"।

हरजा-संज्ञा पुं० [फ़ा० हर + जा (जगह)] संगतराशों की वह टाँकी जिससे वे सतह को हर जगह बराबर करते हैं। चौरस करने की छेनी। चौरसी।

संज्ञा पुं० दे० (१) "हरज", "हर्ज"। (२) "हरजाना"।

हरजाई-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) हर जगह घूमनेवाला। जिसका कोई ठीक ठिकाना न हो। (२) बदला। आवारा।

संज्ञा स्त्री० (१) व्यभिचारिणी स्त्री। कुलटा। (२) वेश्या। रंडी। बाजारी।

हरजाना-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) नुकसान पूरा करना। हानि का बदला। क्षतिपूर्त्ति। (२) वह धन या वस्तु जो किसी को उस नुक़सान के बदले में (उसके द्वारा जिससे या जिसके कारण नुक़सान पहुँचा हो) दी जाय, जो उसे उठाना पड़ा हो। हानि के बदले में दिया जानेवाला धन। क्षतिपूर्त्ति का द्रव्य। जैसे,—अगर तुमने वक्त पर चीज न दी तो १००) हरजाना देना होगा।

क्रि० प्र०—देना।—माँगना।—लेना।

हरट्टॐ-वि० [सं० दृढ़] हृष्ट पुष्ट। मोटा ताज़ा। मज़बूत। दृढ़ अंगोंवाला। उ०—हैवर हरट्ट साजि, गैवर गरट्ट सम पैदर के ठट्ट फौज जुरी तुरकाने की।—भूषण।

हरडिया-संज्ञा पुं० [हिं० रहँट] रहँट के बैल हाँकनेवाला।

हरड़ा-संज्ञा पुं० दे० "हड़", "हर्रा"।

हरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जिसकी वस्तु हो, उसकी इच्छा के विरुद्ध लेना। छीनना, लूटना या चुराना। जैसे,—धन हरण, वस्त्र हरण। (२) दूर करना। हटाना। न रहने देना। मिटाना। जैसे,—रोग हरण, संकट हरण, पाप हरण। (३) नाश। विनाश। संहार। (४) ले जाना। वहन। जैसे,—संदेश हरण। (५) भाग देना। तक़सीम करना। (गणित) (६) दायजा जो विवाह में दिया जाता है। (७) वह भिक्षा जो यज्ञोपवीत के समय ब्रह्मचारी को दी जाती है।

हरता-संज्ञा पुं० दे० "हर्त्ता"।

हरता धरता-संज्ञा पुं० [सं० हर्त्ता + धर्त्ता (वैदिक)] (१) रक्षा और नाश दोनों करनेवाला। वह जिसके हाथ में बनाना बिगाड़ना या रखना मारना दोनों हों। सब अधिकार रखनेवाला स्वामी। (२) सब बात का अधिकार रखनेवाला। सब कुछ करने की शक्ति या अधिकार रखनेवाला। पूर्ण अधिकारी। जैसे,—आज कल वही उनकी सारी जायदाद के हरता धरता हो रहे हैं।

हरताल-संज्ञा स्त्री० [सं० हरिताल] एक खनिज पदार्थ जिसमें सौ में ६१ भाग संखिया और ३९ भाग गंधक का योग रहता है। यह खानों में रोड़ों के रूप में स्वाभाविक मिलता है और बनाया भी जा सकता है। यह पीले रंग का और चमकीला होता है। इसमें गंधक और संखिया दोनों के सम्मिलित गुण होते हैं। वैद्य लोग इसको शोधकर गलित कुष्ट, वात रक्त आदि रोगों में देते हैं जिससे घाव भर जाते हैं। आयुर्वेद में हरताल की गणना उपधातुओं में है। इसमें स्याही या रंग उड़ाने का गुण होता है, इससे पुराने समय में पोथी लिखनेवाले किसी शब्द या अक्षर को उड़ाने के स्थान पर उस पर घुली हुई हरताल लगा देते थे जिससे कुछ दिनों में वे अक्षर उड़ जाते थे। रँगाई में भी इसका व्यवहार होता है और छींट छापनेवाले भी अपनी प्रक्रिया में इसका व्यवहार करते हैं।

पर्य्या०—पिंजर। ताल। गोदंत। विड़ालक। चित्रगंध।

मुहा०—(किसी बात पर) हरताल लगाना = मट करना। किया न किया बराबर करना। रद करना। जैसे,—तुमने तो मेरे सब कामों पर हरताल फेर दी।

हरताली-वि० [हिं० हरताल] हरताल के रंग का।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का गंधकी या पीला रंग।

हरतालेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक रसौषध जो हरताल के योग से बनती है।

विशेष—पुनर्नवा (गदहपूरना) के रस में हरताल को खरल करके टिकिया बनाते हैं। फिर उस टिकिया को पुनर्नवा की राख में रखकर मिट्टी के बरतन में डाल मंद आँच पर चढ़ा देते हैं। इस प्रकार पाँच दिन तक वह टिकिया पकती है; फिर ठंढी करके रख ली जाती है। इस भस्म की एक रत्ती गिलोय के काढ़े के साथ सेवन करने से वात रक्त, अठारह प्रकार के कुष्ठ, फिरंग वात, विसर्प और फोड़े आराम हो जाते हैं।

हरतेज-संज्ञा पुं० [सं० हरतेजस] पारा। पारद। (जो शिव का वीर्य्य समझा जाता है)

हरदॐ-संज्ञा स्त्री० दे० "हरदी"। उ०—कनक कलस तोरन मनि जाला। हरद, दूब, दधि, अच्छत, माला।—तुलसी।

हरदा-संज्ञा पुं० [हिं० हरदी] कीटाणुओं का समूह जो पीली या गेरू के रंग की बुकनी के रूप में फसल की पत्तियों पर जम जाता है और बड़ी हानि पहुँचाता है। गेरुई।

हरदिया-वि० [पुं० हिं० हरदी] हल्दी के रंग का। पीला।

संज्ञा पुं० पीले रंग का घोड़ा।

हरदिया देव-संज्ञा पुं० दे० "हरदौल"।

हरदी-संज्ञा स्त्री० दे० "हल्दी"।

हरदू-संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पेड़ जो हिमालय में जमुना के पूर्व तीन हजार फुट तक के ऊँचे लेकिन तर स्थानों में होता है। इसकी छाल अंगुल भर मोटी, बहुत मुलायम, खुरदुरी और सफेद होती है। भीतर की लकड़ी बहुत मजबूत और पीले रंग की होती है और साफ करने से बहुत चमकती है। इससे खेती के और सजावट के सामान, बंदूक के कुंदे, कंघियाँ और नावें बनती हैं।

हरदौल-संज्ञा पुं० [सं० हरदत्त] ओड़छा के राजा जुझारसिंह (सन् १६२६–३५ ई०) के छोटे भाई जो बड़े सच्चे और भ्रातृभक्त थे। एक बार जब महाराज जुझारसिंह दिल्ली के बादशाह के काम से गए थे, तब वे राज्य का प्रबंध अपने छोटे भाई हरदत्तसिंह या हरदौलसिंह के ऊपर छोड़ गए थे। इनके सुशासन में बेईमानों की नहीं चलने पाती थी।

इससे जब महाराज जुझारसिंह लौटकर आए, तब उन सब ने मिलकर राजा को यह सुझाया कि हरदौल के साथ महारानी (उनकी भावज) का अनुचित संबंध है। महारानी अपने देवर को बहुत प्यार करती थीं और हरदत्त भी उन्हें अपनी माता के समान मानते थे। राजा ने अपने संदेह की बात रानी से कही; और यह भी कहा कि हम तुम्हें सच्ची तभी मान सकते हैं जब तुम अपने हाथ से हरदौल को विष दो। रानी ने अपने सतीत्व की मर्य्यादा के विचार से स्वीकार किया और हरदौल को विष मिली मिठाई खिलाने को बुलाया। हरदौल के आने पर रानी ने सब व्यवस्था कही। सुनते ही हरदौल ने कहा कि माता, तुम्हारे सतीत्व की मर्य्यादा की रक्षा के लिये मैं सहर्ष इसे खाऊँगा। इतना कहकर वे भावज के हाथ से मिठाई लेकर झट से खा गए और थोड़ी देर में परलोक सिधारे। इस घटना का प्रजा पर बड़ा प्रभाव पड़ा और सब लोग हरदौल की देवता के समान पूजा करने लगे। धीरे धीरे इनकी पूजा का प्रचार बहुत बढ़ा और सारे बुंदेलखंड में ही नहीं बल्कि युक्त प्रांत और पंजाब तक ये पुजने लगे। इनकी चौरी या वेदी स्थान स्थान पर बनी मिलती है और बहुत से घरानों में ये कुल-देवता माने जाते हैं। इन्हें 'हरदिया देव' भी कहते हैं।

हरद्वार–संज्ञा पुं० दे० "हरिद्वार"।

हरना–क्रि० स० [सं० हरण] (१) जिसकी वस्तु हो, उसकी इच्छा के विरुद्ध लेना। छीनना, लूटना या चुराना। (२) दूर करना। हटाना। न रहने देना। (३) मिटाना। नाश करना। जैसे,—दुःख या पीड़ा हरना, संकट हरना। उ०—मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।—बिहारी। (४) ले जाना। उठाकर ले जाना। वहन करना।

मुहा०—मन हरना = मन खींचना। मन आकर्षित करना। मोहित करना। लुभाना। उ०—हरि दिखराय मोहनी मूरति मन हरि लियो हमारो।—सूर। प्राण हरना = (१) मार डालना। (२) बहुत संताप या दुःख देना। उ०—मिलत एक दारुन दुख देहीं। बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।—तुलसी।

†क्रि० अ० [हिं० हारना] (१) जूए आदि में हारना। (२) पराजित होना। परास्त होना। (३) थकना। शिथिल होना। हिम्मत हारना।

†संज्ञा पुं० दे० "हिरन"।

हरनाकस†–संज्ञा पुं० दे० "हिरण्यकशिपु"। उ०—हरनाकस औ कंस को गयो दुहुन को राज।—गिरिधर।

हरनाच्छ†–संज्ञा पुं० दे० "हिरण्याक्ष"।

हरनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हरिन] हिरन की मादा। मृगी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० हर] कपड़ों में हर्द (हरो) का रंग देने की क्रिया।

हर-परेवरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हर, हल+पड़ना] किसानों की औरतों का एक टोटका जो वे पानी न बरसने पर करती हैं।

हरपा–संज्ञा पुं० [देश०] सुनारों का तराजू रखने का डिब्बा।

हरपुजी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हर, हल+पूजा] कार्त्तिक में हल का पूजन जो किसान करते हैं। इस पूजन में किसान उत्सव करते और मिठाई आदि बाँटते हैं।

हरप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] करवीर। कनेर।

हरफ़–संज्ञा पुं० [अ०] मनुष्य के मुँह से निकलनेवाली ध्वनियों के संकेत जिनका व्यवहार लिखने में होता है। अक्षर। वर्ण।

मुहा०—किसी पर हरफ़ आना = दोष लगना। कसूर लगना। जैसे,—तुम बेफिक्र रहो, तुम पर ज़रा भी हरफ़ न आवेगा। हरफ़ उठाना = अक्षर पहचान कर पढ़ लेना। जैसे,—अब तो बच्चा हरफ़ उठा लेता है। हरफ़ बैठाना = छापे के अक्षर क्रम से रखना। टाइप जमाना। हरफ़ बनाना = (१) सुंदर अक्षर लिखना। (२) अक्षर लिखने का अभ्यास करना। (३) किसी दस्तावेज़ में जाल के लिये फेरफार करना। किसी पर हरफ़ लाना = दोष देना। इलज़ाम लगाना। लांछित करना।

हरफ़गीर–वि० [फ़ा०] (१) अक्षर अक्षर का गुण दोष दिखाने-वाला। बहुत बारीकी से दोष देखने या पकड़नेवाला। (२) बाल की खाल निकालनेवाला।

हरफ़गीरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बहुत बारीकी से गुण दोष देखना। बड़ी सूक्ष्म परीक्षा। बाल की खाल निकालना।

हरफा–संज्ञा पुं० [देश०] कड़ा चारा या भूसा रखने का घर जो लकड़ी के घेरे से बनाया जाता है।

हरफारेवड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० हरिपर्वरी] (१) कमरख की जाति का एक पेड़ जिसमें आँवलों के से छोटे छोटे फल लगते हैं जो खाने में कुछ खटमीठे होते हैं। इसे संस्कृत में 'लवली' कहते हैं। (२) उक्त पेड़ का फल।

हरबर–संज्ञा पुं० दे० "हड़बड़", "हड़बड़ी"।

हरबराना†–क्रि० अ० दे० "हड़बड़ाना"।

हरबा–संज्ञा पुं० [अ० हरबः] अस्त्र। हथियार।

यौ०—हरबा हथियार।

हरबीज–संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

हरबोंग–वि० [हिं० हर, हल+बोंग = लठ] (१) गँवार। लट्ठमार। अक्खड़। (२) मूर्ख। जड़।

संज्ञा पुं० अंधेर। कुशासन। गड़बड़ी।

क्रि० अ०—मचना।

हरभूली–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का धतूरा जिसके बीज फारस से बंबई में आते और बिकते हैं।

हरम–संज्ञा पुं० [अ०] अंतःपुर। जनानखाना।

संज्ञा स्त्री० (१) जनानखाने में दाखिल की हुई स्त्री। सुरैतिन। रखेली स्त्री। (२) दासी। (३) स्त्री। बेगम।

यौ०—हरमसरा = अंतःपुर। जनानखाना।

हरमज़दगी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० हरामज़ादः] शरारत। नटखटी। बदमाशी।

हरयें⊛-अव्य० दे० "हरएँ"।

हरवल-संज्ञा स्त्री० [हिं० हर + ओल (प्रत्य०)] वह रुपया जो हलवाहों को बिना ब्याज के पेशगी या उधार दिया जाता है।
⊛ संज्ञा पुं० दे० "हरावल"।

हरवली-संज्ञा स्त्री० [तु० हरावल] सेना की अध्यक्षता। फ़ौज की अफ़सरी। उ०—जो नहिं देतो भतम कहुँ दमन हरवली आय। मन ममास जे सुतिन के को सर करतो जाय।—रसनिधि।

हरवल्लभ-संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक। (संगीतदामोदर)।

हरवा‡-संज्ञा पुं० दे० "हार"। उ०—चंपक हरवा अँग मिलि अधिक सुहाइ। जानि परै सिय हियरे जब कुँभिलाइ।—तुलसी।
वि० दे० "हरुवा"।

हरवाना-क्रि० अ० [हिं० हड़बड़] जल्दी करना। शीघ्रता करना। उतावली करना। हड़बड़ी मचाना। उ०—हरवाइ जाय सिय पायँ परी। ऋषिनारि सूँघि सिर, गोद भरी।—केशव।

हरवाल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे 'सुरारी' भी कहते हैं।

हरवाह, हरवाहा-संज्ञा पुं० [हिं० हर, हल + सं० वाह] हल चलानेवाला मजदूर या नौकर। हलवाहा।

हरवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] (शिव की सवारी) बैल।

हरवाही-संज्ञा स्त्री० [हिं० हरवाह + ई (प्रत्य०)] (१) हलवाहे का काम। (२) हलवाहे की मजदूरी।

हरशंकरी-संज्ञा स्त्री० [सं० हरशंकर] पीपल और पाकड़ के एक साथ लगे हुए पेड़ जो बहुत पवित्र माने जाते हैं।

हरशेखरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा (जो शिव के सिर पर रहती हैं)।

हरष⊛‡-संज्ञा पुं० दे० "हर्ष"।

हरषना⊛-क्रि० अ० [हिं० हरष, हर्ष + ना (प्रत्य०)] (१) हर्षित होना। प्रसन्न होना। खुश होना। उ०—हरषे पुर नर-नारि सब मिटा मोहमय सूल।—तुलसी। (२) पुलकित होना। रोमांच से प्रफुल्ल होना। उ०—नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गात।—तुलसी।

हरषाना⊛-क्रि० अ० [हिं० हरष + आना (प्रत्य०)] (१) हर्षित होना। प्रसन्न होना। खुश होना। उ०—जे पर-भनित सुनत हरषाहीं।—तुलसी। (२) पुलकित होना। रोमांच से प्रफुल्ल होना।
क्रि० स० हर्षित करना। प्रसन्न करना।

हरषित⊛-वि० दे० "हर्षित"।

हरसना⊛-क्रि० अ० दे० "हरषना"।

हरसाना-क्रि० स० दे० "हरषाना"।

हरसिंगार-संज्ञा पुं० [सं० हार + सिंगार] मझोले कद का एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ चार पाँच अंगुल लंबी और ३-४ अंगुल चौड़ी और किनारों पर कुछ कटावदार होती हैं। पतली नोक कुछ दूर तक निकली होती है। यह पेड़ फूलों के लिये बगीचों में लगाया जाता है और विंध्य पर्वत के कई स्थानों पर जंगली होता है। यह शरद ऋतु में कुँआर से अगहन तक फूलता है। फूल में छोटे छोटे पाँच दल और नारंगी रंग की लंबी पोली डाँड़ी होती है। फूल पेड़ में बहुत काल तक लगे नहीं रहते, बराबर झड़ा करते हैं। डाँड़ियों को लोग पीला रंग निकालने के लिये सुखाकर रखते हैं। इसकी पत्ती ज्वर की बहुत अच्छी ओषधि समझी जाती है। इसे "परजाता" भी कहते हैं।

हरसौंधा‡-संज्ञा पुं० [हिं० हरिस] कोल्हू में वह स्थान या पाटा जिस पर बैठकर बैल हाँके जाते हैं।

हरहट‡-वि० [हिं० हरकना] नटखट (बैल)। जो बार बार खेत चरने दौड़े या इधर उधर भागता फिरे (चौपाया)। हरहाई। जैसे,—हरहट बैल।

हरहा-वि० दे० "हरहट"।
संज्ञा पुं० [देश०] भेड़िया। वृक।

हरहाई-वि० स्त्री० [हिं० हरहा] नटखट (गाय)। (गाय) जो बार बार खेत चरने दौड़े या इधर उधर भागती फिरे। हरहट। उ०—जिमि कपिलहि घालै हरहाई।—तुलसी।

हरहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) (शिव का हार) सर्प। साँप। उ०—हठि हित करि प्रीतम लियो कियो जु सौति सिंगार। अपने कर मोतिन गुह्यो भयो हरा हरहार।—बिहारी। (२) शेषनाग।

हरहोरवा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

हरांस‡-संज्ञा पुं० [अ० हर = गरम होना + सं० अंश] मंद ज्वर। हरारत।

हरा-वि० [सं० हरित, प्रा० हरिअ] [स्त्री० हरी] (१) घास या पत्ती के रंग का। हरित। सब्ज़। जैसे,—हरा कपड़ा। हरी पत्ती।

यौ०—हरा भरा।

(२) प्रफुल्ल। प्रसन्न। ताज़ा। जैसे,—(क) नहाने से जी हरा हो गया। (ख) माँ बेटे को देख हरी हो गई। (ग) हरा भरा चेहरा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(३) जो मुरझाया न हो। सजीव। ताजा। जैसे,—पानी देने से पौधे हरे हो गए। (४) (घाव) जो सूखा या भरा न हो। जैसे,—धक्का लगने से घाव फिर हरा हो गया।

(५) दाना या फल जो पका न हो। जैसे,—हरे अमरूद, हरे चने, हरे दाने।

मुहा०—हरा बाग = केवल अभी लुभानेवाली पर पीछे कुछ न ठहरनेवाली बात। व्यर्थ आशा बँधानेवाली बात। हरा भरा = (१) जो सूखा या मुरझाया न हो। (२) जो हरे पेड़ पौधों और घास आदि से भरा हो। जैसे,—तेरी गोद हरी भरी रहे। हरे में आँखें होना या फूटना = हरियाली सूझना। मन बढ़ा रहना और आगम का ध्यान न रहना।

संज्ञा पुं० (१) घास या पत्ती का सा रंग। हरित वर्ण। जैसे,—नीला और पीला मिलाने से हरा बन जाता है। (२) चौपायों को खिलाने का ताज़ा चारा।

‡संज्ञा पुं० [हिं० हार] हार। माला। उ०—(क) अपने कर मोतिन गुह्यो भयो हरा हरहार।—बिहारी। (ख) कुंच कुंदन को पहिराय हरा सुख सौंधी सुरा मढ़कावति हैं।—श्रीधर पाठक।

संज्ञा स्त्री० [सं०] हर या महादेव की स्त्री। पार्वती।

हराई‡–संज्ञा स्त्री० [हिं० हर, हल] खेत का उतना भाग जितना एक हल के एक चक्कर में जुत जाता है। बाह। जैसे,—४ हराई हो गई।

मुहा०—हराई फाँदना = जुताई की मूँड़ शुरू करना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० हारना] हारने की क्रिया या भाव। हार।

हरानत–संज्ञा पुं० [सं०] रावण का एक नाम।

हराना–क्रि० स० [हिं० हारना, का हरना] (१) युद्ध में प्रतिद्वंद्वी को हटाना। मारना या बेकाम करना। परास्त करना। पराजित करना। शिकस्त देना। जैसे,—लड़ाई में हराना। (२) शत्रु को विफल मनोरथ करना। दुश्मन को नाकामयाब करना। (३) प्रयत्न में शिथिल करना। और अधिक श्रम के योग्य न रखना। थकाना।

संयो० क्रि०—देना।

हरापन–संज्ञा पुं० [हिं० हरा + पन (प्रत्य०)] हरे होने का भाव। हरितता। सब्ज़ी।

हराम–वि० [अ०] निषिद्ध। विधिविरुद्ध। बुरा। अनुचित। दूषित। जैसे—मुसलमानों के लिये सूद खाना हराम है।

संज्ञा पुं० (१) वह वस्तु या बात जिसका धर्मशास्त्र में निषेध [redacted]। वर्जित बात या वस्तु। (२) सूअर। (जिसके खाने आदि का इसलाम में निषेध है)। उ०—आँधरो, अधम, जड़, जाजरो जरा जवन, सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग में। गिरो हिये हहरि, "हराम हो! हराम हन्यो" हाय हाय करत परीगो काल-फँग [redacted]।—तुलसी।

मुहा०—(कोई बात) हराम करना = किसी बात का करना मुश्किल कर देना। ऐसा करना कि कोई काम आराम से न कर सकें। जैसे,—तुमने तो काम के मारे खाना पीना हराम कर दिया। (कोई बात) हराम होना = किसी बात का करना मुश्किल हो जाना। कोई बात न करने पाना। जैसे,—रात भर इतना शोर हुआ कि नींद हराम हो गई।

(३) बेईमानी। अधर्म। बुराई। पाप। जैसे,—(क) हराम का रुपया हम नहीं लेते। (ख) हराम की कौड़ी। (ग) हराम की कमाई।

मुहा०—हराम का = (१) जो बेईमानी से प्राप्त हो। जो पाप या अधर्म से कमाया गया हो। (२) मुफ़्त का। जो बिना मिहनत या काम के मिले। जैसे,—हराम का खाना।

यौ०—हरामखोर।

(४) स्त्री पुरुष का अनुचित संबंध। व्यभिचार। जैसे,—हराम का लड़का।

यौ०—हरामज़ादा।

मुहा०—हराम का पिल्ला = (१) दोगला। वर्णसंकर। (२) दुष्ट। पाजी। बदमाश। (गाली) हराम का पेट = व्यभिचार से रहा हुआ गर्भ।

हरामकार–संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] (१) निषिद्ध कर्म करनेवाला। बुरे काम करनेवाला। (२) व्यभिचारी।

हरामकारी–संज्ञा स्त्री० [अ० + फ़ा०] (१) निषिद्ध कर्म। पाप। बुराई। (२) व्यभिचार। परस्त्रीगमन।

हरामखोर–संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] (१) पाप की कमाई खानेवाला। अनुचित रूप से धन पैदा करनेवाला। (२) बिना मिहनत मजदूरी किए यों ही किसी का धन लेनेवाला। मुफ़्तखोर। (३) अपना काम न करनेवाला। आलसी। निकम्मा।

हरामज़ादा–संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] [स्त्री० हरामज़ादी] (१) व्यभिचार से उत्पन्न पुरुष। दोगला। वर्णसंकर। (२) दुष्ट। पाजी। बदमाश। खल। (गाली)

हरामी–वि० [अ० हराम + ई (प्रत्य०)] (१) व्यभिचार से उत्पन्न। (२) दुष्ट। पाजी। नटखट। (गाली)

हरारत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) गर्मी। ताप। (२) हलका ज्वर। ज्वरांश। मंद ज्वर।

हरावरि*–संज्ञा स्त्री० दे० "हड़ावरि"।

संज्ञा पुं० दे० "हरावल"।

हरावल–संज्ञा पुं० [तु०] (१) सेना का अगला भाग। सिपाहियों का वह दल जो फौज में सब के आगे रहता है। (२) ठगों या डाकुओं का सरदार जो आगे चलता है।

हरास–संज्ञा पुं० [फ़ा० हिरास] (१) भय। डर। (२) आशंका। खटका। अंदेशा। उ०—भंजहु उचित नृपहि धनवासू। वय बिलोकि हिय होइ हरासू।—तुलसी। (३) विषाद। दुःख। रंज। उ०—राज सुनाइ दीन्ह बनवासू। सुनि मन भएउ न हरष हरासू।—तुलसी। (४) नैराश्य। नाउम्मेदी।

हराहरꕤ–संज्ञा पुं० दे० "हलाहल"।

हरि–वि० [सं०] (१) पिंगल वर्ण। भूरा या बादामी। (२) पीला। (३) हरे रंग का। हरा। हरित्।

संज्ञा पुं० (१) विष्णु। भगवान्। (२) इंद्र। (३) घोड़ा। (४) बंदर। (५) सिंह। (६) सिंह राशि। (७) सूर्य्य। (८) किरन। (९) चंद्रमा। (१०) गीदड़। (११) शुक। सूआ। तोता। (१२) मोर। मयूर। (१३) कोकिल। कोयल। (१४) हंस। (१५) मेढक। मंडूक। (१६) सर्प। साँप। (१७) अग्नि। आग। (१८) वायु। (१९) विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण। (२०) श्रीराम। उ०—हरि हित हरहु चाप गरुआई।—तुलसी। (२१) शिव। (२२) यम। (२३) शुक्र। (२४) गरुड़ के एक पुत्र का नाम। (२५) एक पर्वत का नाम। (२६) एक वर्ष या भूभाग का नाम। (२७) अठारह वर्णों का एक छंद या वृत्त। उ०—वानर गन बानन सन केशव जबहीं मुरयो। रावन दुखदावन जगपावन समुहँ जुरयो। (२८) बौद्धशास्त्रों में एक बड़ी संख्या का नाम।

हरिअरꕤ†–वि० [सं० हरित्] पेड़ की पत्ती के रंग का। हरा। सब्ज़। उ०—हरिअरि भूमि कुसुंभी चोला।—जायसी।

संज्ञा पुं० एक रंग का नाम जो पेड़ की पत्तियों के समान होता है। उ०—अजगव खंडेउ ऊख जिमि मुनिहि हरिअर सूझ।—तुलसी।

हरिअराना†–क्रि० अ० दे० "हरिआना"।

हरिअरीꕤ†–संज्ञा स्त्री० [हिं० हरिअर + ई (प्रत्य०)] (१) हरे रंग का विस्तार। (२) घास और पेड़ पौधों का समूह। हरियाली।

हरिआना†–क्रि० अ० [हिं० हरिअर] हरा होना। सब्ज़ होना। मुरझाया न रहना। ताज़ा होना।

संयो० क्रि०—आना।—उठना।

हरिआली–संज्ञा स्त्री० [सं० हरित + आलि] (१) हरेपन का विस्तार। (२) घास और पेड़ पौधों का फैला हुआ समूह। जैसे,—सड़क के दोनों ओर बड़ी सुंदर हरिआली है।

हरिक–संज्ञा पुं० [सं०] लाल या भूरे रंग का घोड़ा।

हरिकथा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भगवान् या उनके अवतारों का चरित्र-वर्णन।

हरिकर्म–संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ।

हरिकारा†–संज्ञा पुं० दे० "हरकारा"।

हरिकीर्त्तन–संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् या उनके अवतारों की स्तुति का गान। भगवान् का भजन।

हरिकेलीय–संज्ञा पुं० [सं०] बंग देश का एक नाम।

हरिकेश–वि० [सं०] भूरे बालोंवाला।

संज्ञा पुं० (१) सूर्य्य की सात प्रधान कलाओं में से एक। (२) शिव का एक नाम। (३) एक यक्ष का नाम जो शिव को प्रसन्न करके गणों का एक नायक हुआ था। दंडपाणि। (४) श्यामक नामक यादव का पुत्र जो वसुदेव का भतीजा लगता था।

हरिक्रांता–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता।

हरिक्षेत्र–संज्ञा पुं० [सं०] पटने के पास एक तीर्थ का नाम।

हरिगंध–संज्ञा पुं० [सं०] पीला चंदन।

हरिगीता–संज्ञा स्त्री० दे० "हरिगीतिका"।

हरिगीतिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोलह और बारह के विराम से अट्ठाईस मात्राओं का एक छंद जिसकी पाँचवीं, बारहवीं, उन्नीसवीं और छब्बीसवीं मात्रा लघु होनी चाहिए। अंत में लघु गुरु होता है। उ०—निज दास ज्यों रघुबंस-भूषन कबहुँ मम सुमिरन करयो।

हरिचंद–संज्ञा पुं० "हरिश्चंद्र"।

हरिचंदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चंदन। (२) स्वर्ग के पाँच वृक्षों में से एक।

विशेष—शेष चार वृक्षों के नाम ये हैं—पारिजात, मंदार, संतान और कल्प वृक्ष।

(३) कमल का पराग। (४) केसर। (५) चंद्रिका। चाँदनी।

हरिचर्म–संज्ञा पुं० [सं०] व्याघ्रचर्म। बाघंबर।

हरिचाप–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

हरिजटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जिसे रावण ने सीता को समझाने के लिये नियत किया था। (वाल्मीकि०)

हरिजन–संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् का दास। ईश्वर का भक्त।

हरिजानꕤ–संज्ञा पुं० दे० "हरियान"।

हरिण–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० हरिणी] (१) मृग। हिरन। (२) हिरन की एक जाति।

विशेष—शेष चार जातियों के नाम ये हैं—ऋष्य, रुरु, पृषत और मृग।

(३) हंस। (४) सूर्य्य। (५) एक लोक का नाम। (६) विष्णु का एक नाम। (७) शिव का एक नाम। (८) एक नाग का नाम।

वि० भूरे या बादामी रंग का।

हरिणकलंक–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

हरिणनयना, हरिणनयनी–वि० स्त्री० [सं०] हिरन की आँखों के समान सुंदर आँखोंवाली। सुंदरी।

हरिणप्लुता–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णार्द्धसम वृत्त का नाम जिसके विषम चरणों में ३ सगण, एक लघु और एक गुरु होता है तथा सम में एक नगण, दो भगण और एक रगण होता है।

हरिणलक्षण, हरिणलांछन–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

हरिणहृदय–वि० [सं०] (हिरन सा) डरपोक। बुज़दिल।

हरिणाक्षी–वि० स्त्री० [सं०] हिरन की आँखों के समान सुंदर आँखोंवाली। सुंदरी।

हरिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मादा हिरन। हिरन की मादा। (२) मँजीठ। (३) ज़र्द चमेली। (४) कामशास्त्र के अनुसार स्त्रियों की चार जातियों या भेदों में से एक जिसे चित्रिणी भी कहते हैं।

विशेष—दो अच्छी जाति की स्त्रियों में यह मध्यम है। 'पद्मिनी' से इसका स्थान दूसरा है। यह पद्मिनी की अपेक्षा कम सुकुमार तथा चंचल और क्रीड़ाशील प्रकृति की होती है।

(५) एक वर्णवृत्त का नाम जिसमें सत्रह वर्ण होते हैं। इसका स्वरूप इस प्रकार है—न स म र स ल० गु० (॥। ॥S SSS S.S ॥S ।S)। (६) दस वर्णों का एक वृत्त। उ०—कृष्ण की सुभ गेंद गई। मूँदि सखी अनु डारि दई।—केशव।

हरित्–वि० [सं०] (१) भूरे या बादामी रंग का। कपिश। (२) हरे रंग का। हरा। सब्ज़।

संज्ञा पुं० (१) सूर्य्य के घोड़े का नाम। (२) मरकत। पन्ना। (३) सिंह। (४) सूर्य्य। (५) विष्णु। (६) एक प्रकार का तृण। (७) हलदी।

हरित–वि० [सं०] (१) भूरे या बादामी रंग का। (२) पीला। ज़र्द। (३) हरे रंग का। हरा। सब्ज़।

संज्ञा पुं० (१) सिंह। (२) कश्यप के एक पुत्र का नाम। (३) यदु के एक पुत्र का नाम। (४) युवनाश्व के एक पुत्र का नाम। (५) द्वादश मन्वंतर का एक देवगण। (६) सेना। (७) सब्ज़ी। हरियाली। (८) सब्ज़ी। शाक भाजी।

हरित कपिश–वि० [सं०] पीलापन या हरापन लिए भूरा। सोंठ के रंग का।

हरित गोमय–संज्ञा पुं० [सं०] ताज़ा गोबर। (गोभिल गृह्य०)

हरित मणि–संज्ञा पुं० [सं०] मरकत। पन्ना। उ०—हरित-मणिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल। रचना देखि विचित्र अति मन विरंचि कर भूल।—तुलसी।

हरिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दूर्वा। दूब। नील दूर्वा। (२) हलदी। (३) हरे या भूरे रंग का अंगूर। (४) भूरे रंग की गाय। (५) स्वर-भक्ति का एक भेद। (६) हरि या विष्णु का भाव। विष्णुपन।

हरिताल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरताल नाम की धातु। वि० दे० "हरताल"। (२) एक प्रकार का कबूतर जिसका रंग कुछ पीलापन या हरापन लिए होता है।

हरितालक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "हरताल"। (२) नाटक के अभिनय में शरीर में रंग आदि पोतने का कर्म।

हरिताली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मालकंगनी। (२) तलवार का वह भाग जो धारदार होता है। (३) भादों की शुक्ल तृतीया। वि० दे० "हरितालिका"। (४) आकाश में मेघ आदि की पतली धारी या रेखा। (५) वायु।

हरितालिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों के शुक्ल पक्ष की तृतीया। तीज।

विशेष—इस दिन स्त्रियाँ निर्जल व्रत रखतीं और नए वस्त्र पहनकर शिव-पार्वती का पूजन करती हैं।

हरिदर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा घोड़ा। (२) सूर्य्य (जिनका घोड़ा हरित् माना गया है)।

हरिदास–संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् का सेवक या भक्त।

हरिदिन, हरिदिवस–संज्ञा पुं० [सं०] एकादशी।

हरिदिशा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्व दिशा (जिसके लोकपाल या अधिष्ठाता इंद्र हैं)।

हरिदेव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) श्रवण नक्षत्र (जिसके अधिष्ठाता विष्णु हैं)।

हरिद्गर्भ–संज्ञा पुं० दे० "हरिदर्भ"।

हरिद्र–संज्ञा पुं० [सं०] पीला चंदन।

हरिद्रक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीला चंदन। (२) एक नाग का नाम।

हरिद्रखंड–संज्ञा पुं० [सं०] एक औषध जिसके सेवन से दाद, खुजली, फोड़े फुंसी और कुष्ठ रोग दूर होता है।

विशेष—सोंठ, काली-मिर्च, पिप्पली, तज, पत्रज, वायविडंग, नागकेसर, निसोथ, त्रिफला, केसर और नागरमोथा सब टके टके भर लेकर चूर्ण करे और गाय के घी में सान डाले और ४ टके भर हलदी का चूर्ण ४ सेर दूध में मिलाकर खोया बना ले। फिर मिस्री की चाशनी में सबको मिलाकर टके टके भर की गोलियाँ बाँध ले।

हरिद्राग–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कबूतर।

हरिद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हलदी। (२) एक नदी का नाम। (३) वन। जंगल। (अनेकार्थ०) (४) मंगल। (अनेकार्थ०) (५) सीसा धातु। (अनेकार्थ०)

हरिद्रा गणपति–संज्ञा पुं० [सं०] गणपति या गणेश जी की एक मूर्त्ति जिस पर मंत्र पढ़कर हलदी चढ़ाई जाती है।

हरिद्राद्वय–संज्ञा पुं० [सं०] हलदी और दारु हलदी।

हरिद्रा प्रमेह–संज्ञा पुं० [सं०] प्रमेह का एक भेद जिसमें पेशाब हलदी के समान पीला आता है और जलन होती है।

हरिद्रामेह–संज्ञा पुं० दे० "हरिद्राप्रमेह"।

हरिद्रा राग–संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में पूर्व राग का एक भेद। वह प्रेम जो हलदी के रंग के समान कच्चा हो, स्थायी या पक्का न हो।

विशेष—पूर्व राग के कुसुंभ राग, मंजिष्ठा राग आदि कई भेद किए गए हैं।

हरिद्वार–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध तीर्थ जहाँ से गंगा पहाड़ों

हराहरꣳ–संज्ञा पुं० दे० "हलाहल"।

हरि–वि० [सं०] (१) पिंगल वर्ण। भूरा या बादामी। (२) पीला। (३) हरे रंग का। हरा। हरित्।

संज्ञा पुं० (१) विष्णु। भगवान्। (२) इंद्र। (३) घोड़ा। (४) बंदर। (५) सिंह। (६) सिंह राशि। (७) सूर्य्य। (८) किरन। (९) चंद्रमा। (१०) गीदड़। (११) शुक। सूआ। तोता। (१२) मोर। मयूर। (१३) कोकिल। कोयल। (१४) हंस। (१५) मेढक। मंडूक। (१६) सर्प। साँप। (१७) अग्नि। आग। (१८) वायु। (१९) विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण। (२०) श्रीराम। उ०—हरि हित हरहु चाप गरुआई।—तुलसी। (२१) शिव। (२२) यम। (२३) शुक्र। (२४) गरुड़ के एक पुत्र का नाम। (२५) एक पर्वत का नाम। (२६) एक वर्ष या भूभाग का नाम। (२७) अठारह वर्णों का एक छंद या वृत्त। उ०—वानर गन बानन सन केशव जबहीं मुरयो। रावन दुखदावन जगपावन सम्मुहैं जुरयो। (२८) बौद्धशास्त्रों में एक बड़ी संख्या का नाम।

हरिअरꣳ†–वि० [सं० हरित्] पेड़ की पत्ती के रंग का। हरा। सब्ज़। उ०—हरिअरि भूमि कुसुंभी चोला।—जायसी।

संज्ञा पुं० एक रंग का नाम जो पेड़ की पत्तियों के समान होता है। उ०—अजगव खंडेउ ऊख जिमि मुनिहि हरिअरइ सूझ।—तुलसी।

हरिअराना†–क्रि० अ० दे० "हरिआना"।

हरिअरीꣳ†–संज्ञा स्त्री० [हिं० हरिअर + ई (प्रत्य०)] (१) हरे रंग का विस्तार। (२) घास और पेड़ पौधों का समूह। हरियाली।

हरिआना†–क्रि० अ० [हिं० हरिअर] हरा होना। सब्ज़ होना। मुरझाया न रहना। ताज़ा होना।

संयो० क्रि०—आना।—उठना।

हरिआली–संज्ञा स्त्री० [सं० हरित् + आलि] (१) हरेपन का विस्तार। (२) घास और पेड़ पौधों का फैला हुआ समूह। जैसे,—सड़क के दोनों ओर बड़ी सुंदर हरिआली है।

हरिक–संज्ञा पुं० [सं०] लाल या भूरे रंग का घोड़ा।

हरिकथा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भगवान् या उनके अवतारों का चरित्र-वर्णन।

हरिकर्म–संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ।

हरिकारा†–संज्ञा पुं० दे० "हरकारा"।

हरिकीर्त्तन–संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् या उनके अवतारों की स्तुति का गान। भगवान् का भजन।

हरिकेलीय–संज्ञा पुं० [सं०] बंग देश का एक नाम।

हरिकेश–वि० [सं०] भूरे बालोंवाला।

संज्ञा पुं० (१) सूर्य्य की सात प्रधान कलाओं में से एक। (२) शिव का एक नाम। (३) एक यक्ष का नाम जो शिव को प्रसन्न करके गणों का एक नायक हुआ था। दंडपाणि। (४) श्यामक नामक यादव का पुत्र जो वसुदेव का भतीजा लगता था।

हरिक्रांता–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता।

हरिक्षेत्र–संज्ञा पुं० [सं०] पटने के पास एक तीर्थ का नाम।

हरिगंध–संज्ञा पुं० [सं०] पीला चंदन।

हरिगीता–संज्ञा स्त्री० दे० "हरिगीतिका"।

हरिगीतिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोलह और बारह के विराम से अट्ठाईस मात्राओं का एक छंद जिसकी पाँचवीं, बारहवीं, उन्नीसवीं और छब्बीसवीं मात्रा लघु होनी चाहिए। अंत में लघु गुरु होता है। उ०—निज दास ज्यों रघुबंस-भूषन कबहुँ मम सुमिरन करयो।

हरिचंद–संज्ञा पुं० "हरिश्चंद्र"।

हरिचंदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चंदन। (२) स्वर्ग के पाँच वृक्षों में से एक।

विशेष—शेष चार वृक्षों के नाम ये हैं—पारिजात, मंदार, संतान और कल्प वृक्ष।

(३) कमल का पराग। (४) केसर। (५) चंद्रिका। चाँदनी।

हरिचर्म–संज्ञा पुं० [सं०] व्याघ्रचर्म। बाघंबर।

हरिचाप–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

हरिजटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जिसे रावण ने सीता को समझाने के लिये नियत किया था। (वाल्मीकि०)

हरिजन–संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् का दास। ईश्वर का भक्त।

हरिजानꣳ–संज्ञा पुं० दे० "हरियान"।

हरिण–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० हरिणी] (१) मृग। हिरन। (२) हिरन की एक जाति।

विशेष—शेष चार जातियों के नाम ये हैं—ऋष्य, रुरु, पृषत और मृग।

(३) हंस। (४) सूर्य्य। (५) एक लोक का नाम। (६) विष्णु का एक नाम। (७) शिव का एक नाम। (८) एक नाग का नाम।

वि० भूरे या बादामी रंग का।

हरिणकलंक–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

हरिणनयना, हरिणनयनी–वि० स्त्री० [सं०] हिरन की आँखों के समान सुंदर आँखोंवाली। सुंदरी।

हरिणप्लुता–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णार्द्धसम वृत्त का नाम जिसके विषम चरणों में ३ सगण, एक लघु और एक गुरु होता है तथा सम में एक नगण, दो भगण और एक रगण होता है।

हरिणलक्षण, हरिणलांछन–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

हरिणहृदय–वि० [सं०] (हिरन सा) डरपोक। बुज़दिल।

हरिणाक्षी–वि० स्त्री० [सं०] हिरन की आँखों के समान सुंदर आँखोंवाली । सुंदरी ।

हरिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मादा हिरन । हिरन की मादा । (२) मँजीठ । (३) ज़र्द चमेली । (४) कामशास्त्र के अनुसार स्त्रियों की चार जातियों या भेदों में से एक जिसे चित्रिणी भी कहते हैं ।

विशेष—दो अच्छी जाति की स्त्रियों में यह मध्यम है । 'पद्मिनी' से इसका स्थान दूसरा है । यह पद्मिनी की अपेक्षा कम सुकुमार तथा चंचल और क्रीड़ाशील प्रकृति की होती है ।

(५) एक वर्णवृत्त का नाम जिसमें सत्रह वर्ण होते हैं। इसका स्वरूप इस प्रकार है—न, स, म, र, स, ल, गु० (।।। ।।ऽ ऽऽऽ ऽ।ऽ ।।ऽ ।ऽ) । (६) दस वर्णों का एक वृत्त । उ०—फूलन की सुभ गेंद नई । सूँघि सची जनु डारि दई ।—केशव ।

हरित्–वि० [सं०] (१) भूरे या बादामी रंग का । कपिश । (२) हरे रंग का । हरा । सब्ज़ ।

संज्ञा पुं० (१) सूर्य्य के घोड़े का नाम । (२) मरकत । पन्ना । (३) सिंह । (४) सूर्य्य । (५) विष्णु । (६) एक प्रकार का तृण । (७) हलदी ।

हरित–वि० [सं०] (१) भूरे या बादामी रंग का । (२) पीला । ज़र्द । (३) हरे रंग का । हरा । सब्ज़ ।

संज्ञा पुं० (१) सिंह । (२) कश्यप के एक पुत्र का नाम । (३) यदु के एक पुत्र का नाम । (४) युवनाश्व के एक पुत्र का नाम । (५) द्वादश मन्वंतर का एक देवगण । (६) सेना । (७) सब्ज़ी । हरियाली । (८) सब्ज़ी । शाक भाजी ।

हरित कपिश–वि० [सं०] पीलापन या हरापन लिए भूरा । कीट के रंग का ।

हरित गोमय–संज्ञा पुं० [सं०] ताज़ा गोबर । (गोभिल गृह्य०)

हरित मणि–संज्ञा पुं० [सं०] मरकत । पन्ना । उ०—हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल । रचना देखि विचित्र अति मन विरंचि कर भूल ।—तुलसी ।

हरिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दूर्वा । [redacted] । नील दूर्वा । (२) हलदी । (३) हरे या भूरे रंग का अंगूर । (४) भूरे रंग की गाय । (५) स्वर-भक्ति का एक भेद । (६) हरि या विष्णु का भाव । विष्णुपन ।

हरिताल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरताल नाम की धातु । वि० दे० "हरताल" । (२) एक प्रकार का कबूतर जिसका रंग कुछ पीलापन या हरापन लिए होता है ।

हरितालक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "हरताल" । (२) नाटक के अभिनय में शरीर में रंग आदि पोतने का कर्म ।

हरितालो–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आकाशगंगा । (२) तलवार का वह भाग जो धारदार होता है । (३) भादों की शुक्ल तृतीया । वि० दे० "हरितालिका" । (४) आकाश में मेघ आदि की पतली धारी या रेखा । (५) वायु ।

हरितालिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों के शुक्ल पक्ष की तृतीया । तीज ।

विशेष—इस दिन स्त्रियाँ निर्जल व्रत रखतीं और नए वस्त्र पहनकर शिव-पार्वती का पूजन करती हैं ।

हरिदर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब्ज़ा घोड़ा । (२) सूर्य्य (जिनका घोड़ा हरित् माना गया है) ।

हरिदास–संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् का सेवक या भक्त ।

हरिदिन, हरिदिवस–संज्ञा पुं० [सं०] एकादशी ।

हरिदिशा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्व दिशा (जिसके लोकपाल या अधिष्ठाता इंद्र हैं) ।

हरिदेव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) श्रवण नक्षत्र (जिसके अधिष्ठाता विष्णु हैं) ।

हरिद्गर्भ–संज्ञा पुं० दे० "हरिदर्भ" ।

हरिद्रु–संज्ञा पुं० [सं०] पीला चंदन ।

हरिद्रक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीला चंदन । (२) एक नाग का नाम ।

हरिद्राखंड–संज्ञा पुं० [सं०] एक औषध जिसके सेवन से दाद, खुजली, फोड़े फुंसी और कुष्ठ रोग दूर होता है ।

विशेष—सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, तज, पत्रज, वायविड़ंग, नागकेसर, निसोथ, त्रिफला, केसर और नागरमोथा सब टके टके भर लेकर चूर्ण करे और गाय के घी में सान डाले और ४ टके भर हलदी का चूर्ण ४ सेर दूध में मिलाकर खोया बना ले । फिर मिस्री की चाशनी में सबको मिलाकर टके टके भर की गोलियाँ बाँध ले ।

हरिद्रांग–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कबूतर ।

हरिद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हलदी । (२) एक नदी का नाम । (३) वन । जंगल । (अनेकार्थ०) (४) मंगल । (अनेकार्थ०) (५) सीसा धातु । (अनेकार्थ०)

हरिद्रा गणपति–संज्ञा पुं० [सं०] गणपति या गणेश जी की एक मूर्त्ति जिस पर मंत्र पढ़कर हलदी चढ़ाई जाती है ।

हरिद्राद्वय–संज्ञा पुं० [सं०] हलदी और दारु हलदी ।

हरिद्रा प्रमेह–संज्ञा पुं० [सं०] प्रमेह का एक भेद जिसमें पेशाब हलदी के समान पीला आता है और जलन होती है ।

हरिद्रामेह–संज्ञा पुं० दे० "हरिद्राप्रमेह" ।

हरिद्रा राग–संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में पूर्व राग का एक भेद । वह प्रेम जो हलदी के रंग के समान कच्चा हो, स्थायी या पक्का न हो ।

विशेष—पूर्व राग के कुसुंभ राग, मंजिष्ठा राग आदि कई भेद किए गए हैं ।

हरिद्वार–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध तीर्थ जहाँ से गंगा पहाड़ों

हरियारी—संज्ञा स्त्री० दे० "हरियाली"।

हरियाली—संज्ञा स्त्री० [सं० हरित+आलि=पंक्ति, समूह] (१) हरेपन का विस्तार। हरे रंग का फैलाव। (२) हरे हरे पेड़-पौधों या घास का समूह या विस्तार। जैसे,—बरसात में चारो ओर हरियाली छा जाती है।

मुहा०—हरियाली सूझना = चारो ओर आनंद ही आनंद दिखाई पड़ना। मौज की बातों की ओर ही ध्यान रहना। आनंद में मग्न रहना। जैसे,—अभी तो हरियाली सूझ रही है; जब रुपए देने पड़ेंगे, तब मालूम होगा।

(३) हरा चारा जो चौपायों के सामने डाला जाता है।

हरियाली तीज—संज्ञा स्त्री० [हिं० हरियाली+तीज] सावन बदी तीज।

हरियावँ—संज्ञा पुं० [देश०] फसल की एक बँटाई जिसमें ९ भाग असामी और ७ भाग जमींदार लेता है।

हरिल—संज्ञा पुं० दे० "हारिल"।

हरिलीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौदह अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसका स्वरूप इस प्रकार है—"साँची कही भरत बात सबै सुजान"।—केशव।

विशेष—यदि अंतिम वर्ण लघु लें तब तो इसे अलग छंद कह सकते हैं; पर यदि अंतिम लघु वर्ण को गुरु के स्थान पर मानें तो यह प्रसिद्ध वसंततिलका वृत्त ही है। केशव ने ही इसको यह नाम दिया है।

हरिलोक—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु लोक। बैकुंठ।

हरिलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) केकड़ा। (२) उल्लू।

हरिवंश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कृष्ण का कुल। (२) एक ग्रंथ जो 'महाभारत का परिशिष्ट' माना जाता है और जिसमें कृष्ण तथा उनके कुल के यादवों का सविस्तर वृत्तांत दिया गया है।

हरिवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] जंबू द्वीप के नौ खंडों में से एक।

हरिवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लक्ष्मी। (२) तुलसी। (३) अधिक मास की कृष्ण एकादशी।

हरिवास—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थ। पीपल।

हरिवासर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य का दिन। रविवार। (२) विष्णु का दिन। एकादशी।

हरिवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़। (२) सूर्य्य का एक नाम। (३) इंद्र का एक नाम।

हरिशंकर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु और शिव। (२) एक रसौषध जो पारे और अभ्रक के योग से बनती है और प्रमेह में दी जाती है।

विशेष—शुद्ध पारे और अभ्रक को लेकर सात दिन तक आँवले के रस में घोंटते हैं; फिर सुखाकर एक रत्ती की मात्रा में देते हैं।

हरिशयनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आषाढ़ शुक्ल एकादशी। (पुराणों के अनुसार इस दिन विष्णु भगवान शेष की शय्या पर सोते हैं और फिर कार्त्तिक की प्रबोधिनी एकादशी को उठते हैं।)

हरिशर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

विशेष—त्रिपुर विनाश के समय शिव ने विष्णु भगवान् को अपने धनुष का बाण बनाया था; इसी से इनका यह नाम पड़ा है।

हरिश्चंद्र—वि० [सं०] सोने की सी चमकवाला। स्वर्णाभ। (वैदिक)

संज्ञा पुं० सूर्य्य वंश का अट्ठाईसवाँ राजा जो त्रिशंकु का पुत्र था। पुराणों में यह बड़ा ही दानी और सत्यव्रती प्रसिद्ध है। मार्कंडेयपुराण में इसकी कथा विस्तार से आई है। इंद्र ने ईर्ष्यावश विश्वामित्र को इनकी परीक्षा के लिये भेजा। विश्वामित्र ने इनसे सारी पृथ्वी दान में ली और फिर ऊपर से दक्षिणा माँगने लगे। अंत में राजा ने रानी सहित अपने को बेचकर ऋषि की दक्षिणा चुकाई। ये काशी में डोम के सेवक होकर श्मशान पर मुर्दा लानेवालों से कर वसूल करने लगे। एक दिन उनकी रानी ही अपने मृत पुत्र को श्मशान में लाई। उसके पास कर देने के लिये कुछ भी द्रव्य नहीं था। राजा ने उससे भी कर नहीं छोड़ा और आधा कफन फड़वाया। इस पर भगवान ने प्रकट होकर पुत्र को जिला दिया और अंत में अयोध्या की प्रजा सहित सबको बैकुंठ भेज दिया। महाभारत में राजसूय यज्ञ करके राजा हरिश्चंद्र का स्वर्ग प्राप्त करना लिखा है। ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःशेफ की गाथा के प्रसंग में हरिश्चंद्र का नाम आया है; पर वहाँ कथा दूसरे ढंग की है। उसमें हरिश्चंद्र इक्ष्वाकु वंश के राजा वेधस के पुत्र कहे गए हैं। गाथा इस प्रकार है—नारद के उपदेश से राजा ने पुत्र की कामना करके वरुण से यह प्रतिज्ञा की कि जो पुत्र होगा, उसे वरुण को भेंट करूँगा। वरुण के वर से जब राजा को पुत्र हुआ, तब उसका नाम उन्होंने रोहित रखा। जब वरुण पुत्र माँगने लगे, तब राजा बराबर टालते गए। जब रोहित बड़ा होकर शस्त्र धारण के योग्य हुआ, तब वह मरना स्वीकार न कर जंगल में निकल गया और इंद्र के उपदेशानुसार इधर उधर फिरता रहा। अंत में वह अजीगर्त्त नामक एक ऋषि के आश्रम पर पहुँचा और उनसे सौ गायों के बदले में शुनःशेफ नामक उनके मझले पुत्र को लेकर अपने पिता के पास आया जिन्हें वरुण के कोप से जलोदर रोग हो गया था। शुनःशेफ को यज्ञ में बलि देने के लिये जब सब तैयारियाँ हो चुकीं, तब शुनःशेफ अपने छुटकारे के लिये सब देवताओं की स्तुति करने लगा। अंत में इंद्र के उपदेश से उसने

मूँदि दिए नैन।—सूर। (ख) आपहि तें तजि मान तिया हरुए हरुए गरवै लगि जैहै।—पद्माकर।

हरुण–संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत बड़ी संख्या। (बौद्ध)

हरुवा†–वि० दे० "हरुआ"।

हरू†*–वि० दे० "हरुअ"।

हरूफ़–संज्ञा पुं० [अ० हरफ़ का बहु०] अक्षर। हरफ़।

हरे–संज्ञा पुं० [सं०] 'हरि' शब्द का संबोधन का रूप।

* क्रि० वि० [हि० हरुए] (१) धीरे से। आहिस्ता से। तेज़ी के साथ नहीं। मंद। उ०—लाज के साज धरेई रहे तब नैनन लै मन ही सों मिलाए। कैसी करौं अब क्यों निकसैं री हरे ही हरे हिय में हरि आए।—केशव। (२) जो ऊँचा या ज़ोर का न हो। जो तीव्र न हो। (शब्द) उ०—दूरि तें दौरत, देव, गए सुनि के धुनि रोस महा चित चीन्हो। संग की औरैं उठी हँसि कै तब हेरि हरे हरि जू हँसि दीन्हों।—देव। (३) जो कठोर या तीव्र न हो। हलका। कोमल। (आघात, स्पर्श आदि)

यौ०—हरे हरे = धीरे धीरे। उ०—रोस दरसाय बाल हरि तन हेरि हेरि फूल की छरी सों खरी मारती हरे हरे।

हरेणु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मटर। (२) बाढ़ जो [redacted] बाँधने के लिये लगाई जाय।

हरेना†–संज्ञा पुं० [हि० हरा] वह विशेष प्रकार का चारा जो ब्यानेवाली गाय को दिया जाता है।

हरेरा†–वि० दे० "हरा", "हरियरा"।

हरेव–संज्ञा पुं० [देश०] (१) मंगोलों का देश। (२) मंगोल जाति। उ०—पछिउँ हरेव दीन्हि जो पीठी। सो पुनि फिरा सौंह कै दीठी।—जायसी।

हरेवा–संज्ञा पुं० [हि० हरा] हरे रंग की एक चिड़िया जिसकी चोंच काली, पैर पीले और लंबाई १४ या १५ अंगुल होती है। यह युक्त प्रांत, मध्य-भारत और बंगाल में पाई जाती है। यह पेड़ की जड़ और रेशों से कटोरे के आकार का घोंसला बनाती और दो अंडे देती है। यह बहुत अच्छा बोलती है, इससे इसे "हरी बुलबुल" भी कहते हैं।

हरैं*–क्रि० वि० दे० "हरे"।

हरैना–संज्ञा पुं० [हि० हर (हल)+ऐना (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० हरैनी] (१) वह टेढ़ी गावदुम लकड़ी जो हल के लट्ठे (हरिस) के एक छोर पर आड़े बल में लगी रहती है और जिसमें लोहे का फाल ठोंका रहता है। (२) बैल गाड़ी के सामने की ओर निकली हुई लकड़ी।

हरैनी–संज्ञा स्त्री० दे० "हरैना"।

हरैया†*–संज्ञा पुं० [हि० हरना] हरनेवाला। दूर करनेवाला। उ०—दसरथ के नंद हैं दुःख-हरैया।—तुलसी।

हरोना–संज्ञा पुं० [हि० हरा] एक प्रकार की अरहर जो रायपुर जिले में बहुत होती है।

हरोल–संज्ञा पुं० दे० "हरावल"।

हरौल–संज्ञा पुं० दे० "हरावल"। उ०—जुरे दुहुन के दृग झमकि रुके न झीने चीर। हलकी फौज हरौल ज्यों परत गोल पर भीर।—बिहारी।

हर्ज–संज्ञा पुं० [अ०] (१) काम में रुकावट। बाधा। अड़चन। जैसे,—नौकर के न रहने से बड़ा हर्ज हो रहा है। (२) हानि। नुकसान। जैसे,—इनके यहाँ रहने से आपका क्या हर्ज है ?

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हर्त्ता–संज्ञा पुं० [सं० हर्तृ] [स्त्री० हर्त्री] (१) हरण करनेवाला। दूर करनेवाला। (२) नाश करनेवाला।

हर्त्तार–संज्ञा पुं० [सं०] हरण करनेवाला। हर्त्ता।

हर्दी†–संज्ञा पुं० दे० "हलदी"।

हर्दी†–संज्ञा स्त्री० दे० "हलदी"।

हर्फ़–संज्ञा पुं० दे० "हरफ़"।

हर्या–संज्ञा पुं० दे० "हरया"।

हर्म्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजभवन। महल। प्रासाद। (२) बड़ा भारी मकान। हवेली। (३) नरक।

हर्म्यपृष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] मकान की पाटन या छत।

हर्रे–संज्ञा स्त्री० दे० "हर्रे", "हड़"।

हर्रा–संज्ञा पुं० [सं० हरीतकी] बड़ी जाति की हड़ जिसका उपयोग त्रिफला में होता है और जो रँगाई के काम में आती है। वि० दे० "हर्रे", "हड़"।

मुहा०—हर्रा कदम [redacted] = रास्ते में मैला या गोबर है। (पालकी के कहार)

हर्रे–संज्ञा स्त्री० दे० "हड़"।

हर्रैया–संज्ञा स्त्री० [हि० हर्रे] (१) हाथ में पहनने का एक गहना जिसमें हड़ के से सोने या चाँदी के दाने पाट में गुछे रहते हैं। (२) माला या कंठे के दोनों छोरों पर का चिपटा दाना जिसके आगे सुराही होती है।

हर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रफुल्लता या भय के कारण रोंगटों का खड़ा होना। (२) प्रफुल्लता। आनंद। खुशी। मोद। चित्त प्रसादन।

क्रि० प्र०—करना।—मनाना—।—होना।

विशेष—साहित्य में हर्ष की गिनती संचारी भावों में है।

(३) धर्म के पुत्रों में से एक। (४) कृष्ण के एक पुत्र का नाम। (भागवत)

यौ०—हर्ष विषाद = खुशी और रंज।

हर्षक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हर्ष करनेवाले। आनंददायक। (२)

चित्रगुप्त के एक पुत्र का नाम। (३) मगध के शिशुनाक वंश का एक प्राचीन राजा।

हर्षकर-संज्ञा पुं० [सं०] सुख करनेवाला। आनंद देनेवाला। हर्षकारक।

हर्षकीलक-संज्ञा पुं० [सं०] कामशास्त्र में एक प्रकार के आसन का नाम।

हर्षचरित-संज्ञा पुं० [सं०] बाण कवि का रचित एक प्रसिद्ध गद्य काव्य जिसमें उनके आश्रयदाता सम्राट् हर्षवर्द्धन का वृत्तांत है।

हर्षण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रफुल्लता या भय से रोंगटों का खड़ा होना। जैसे,—लोमहर्षण। (२) प्रफुल्लित करना या होना। (३) कामदेव के पाँच बाणों में से एक। (४) आँख का एक रोग। (५) एक प्रकार का श्राद्ध। (६) फलित ज्योतिष में एक योग। (७) काम के वेग से इंद्रिय का तनाव। (८) अस्त्र का एक संहार।

हर्षधारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चौदह प्रकार के तालों में से एक। (संगीत)

हर्षना-क्रि० अ० [सं० हर्षण] प्रफुल्लित होना। खुश होना। प्रसन्न होना।

हर्षनिस्वनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रागिनी का नाम। (संगीत)

हर्षवर्धन-संज्ञा पुं० [सं०] भारत का बैस क्षत्रिय-वंशी एक सम्राट् जिसकी सभा में बाण कवि रहते थे। यह बौद्ध था और इसका राज्य विक्रम की सातवीं शताब्दी में था। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन्त्सांग इसी के समय में भारतवर्ष में आया था।

हर्षाना⊛-क्रि० अ० [सं० हर्ष+आना (हिं० प्रत्य०)] आनंदित होना। प्रसन्न होना। प्रफुल्ल होना।

क्रि० स० हर्षित करना। आनंदित करना।

हर्षित-वि० [सं०] आनंदित। प्रसन्न। प्रफुल्ल। खुश।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हर्षुल-वि० [सं०] हर्षित रहनेवाला। खुशमिज़ाज।

संज्ञा पुं० (१) प्रेमी। नायक। प्रियतम। (२) हिरन। मृग। (३) एक बुद्ध का नाम।

हर्षुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जिसकी ठुड्डी में बाल या दाढ़ी हो। शास्त्रों में ऐसी कन्या विवाह के अयोग्य कही गई है।

हर्षोत्फुल्ल-वि० [सं०] खुशी से फूला हुआ।

हर्ला†-संज्ञा पुं० [सं० हलीषा] हल का लंबा लट्ठा। हरिस। हलीषा।

हल्-संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध व्यंजन जिसमें स्वर न मिला हो।

विशेष—लिखने में अक्षर के नीचे एक छोटी तिरछी लकीर बना देने से यह सूचित होता है। जैसे,—'पृथक्' शब्द में 'क' के नीचे ्।

हलंत-संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध व्यंजन जिसके उच्चारण में स्वर न मिला हो। वि० दे० "हल्"।

विशेष—व्यंजन दो रूपों में आते हैं—सस्वर और हलंत।

हल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह यंत्र या औजार जिससे बीज बोने के लिये जमीन जोती जाती है। यह औजार जिसे खेत में सब जगह फिरा कर जमीन को खोदते और भुरभुरी करते हैं। सीर। लांगल।

विशेष—यह खेती का मुख्य औजार है और सात आठ हाथ लंबे लट्ठे के रूप में होता है, जिसके एक छोर पर दो ढाई हाथ का लकड़ी का टेढ़ा टुकड़ा आड़े बल में जड़ा रहता है। इसी आड़ी लकड़ी में जमीन खोदनेवाला लोहे का फाल ठोंका रहता है। लंबे लट्ठे को 'हरिस' या 'हर्सा' और आड़ी जड़ी लकड़ी को 'हरैना' कहते हैं।

क्रि० प्र०—चलाना।

मुहा०—हल जोतना = (१) खेत में हल चलाना। (२) खेती करना।

(२) एक अस्त्र का नाम। (३) जमीन नापने का लट्ठा। (४) उत्तर के एक देश का नाम। (बृहत्संहिता) (५) पैर की एक रेखा या चिह्न। (सामुद्रिक)

संज्ञा पुं० [अ०] (१) हिसाब लगाना। गणित करना। (२) किसी कठिन बात का निर्णय। किसी समस्या का समाधान या उत्तर निकालना। जैसे,—यह मुश्किल किसी तरह हल होती दिखाई नहीं देती।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हलकंप-संज्ञा पुं० [हिं० हलना (हिलना)+कंप] (१) भारी हलचल या उथल पुथल। हलचल। आंदोलन। हड़कंप। उ०—जब अहेर सों आयो नाहीं। तब हलकंप परयो पुर माँहीं।—रघुराज।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

(२) चारों ओर फैली हुई घबराहट। लोगों के बीच फैला हुआ आवेग या आकुलता। उ०—सगुन के दल में हलकंप परयो सुनि कै नृप केरि भलाई।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

हलक-संज्ञा पुं० [अ०] गले की नली। कंठ।

मुहा०—हलक के नीचे उतरना = (१) मुँह में डाली हुई वस्तु का पेट में से आनेवाले स्रोत में जाना। पेट में जाना। (२) (किसी बात का) मन में बैठना। असर होना।

हलकई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० हलका+ई (प्रत्य०)] (१) हलकापन। (२) ओछापन। तुच्छता। (३) हेठी। अप्रतिष्ठा। जैसे,—वहाँ जाने से कोई हलकई न होगी।—बालकृष्ण भट्ट।

हलककुद्-संज्ञा पुं० [सं०] हल की वह लकड़ी जो लट्ठे के एक

छोर पर आड़े बल में जड़ी रहती है और जिसमें फाल ठोंका रहता है। हरैना।

हलकना†॥—क्रि॰ अ॰ [सं॰ हल्लन = हिलना अथवा 'हल हल' अनु॰] (१) किसी वस्तु में भरे जल का हिलाने से हिलना डोलना या शब्द करना। जैसे,—दौड़ने से पेट में पानी हलकता है। (२) हिलोरें लेना। तरंग मारना। लहराना। (३) बत्ती की लौ का झिलमिलाना। (४) हिलना। डोलना। उ॰—पानिप के भारन सँभारत न गात, लंक लचि लचि जाति कचभारन के हलकें।—द्विजदेव।

हलका—वि॰ [सं॰ लघुक, प्रा॰ लहुक, विपर्यय 'हलुक'] [स्त्री॰ हलकी] (१) जो तौल में भारी न हो। जिसमें वजन या गुरुत्व न हो। 'भारी' का उलटा। जैसे,—यह पत्थर हलका है, तुम उठा लोगे। (२) जो गाढ़ा न हो। पतला। जैसे,—हलका शरबत। (३) जो गहरा या चटकीला न हो। जो शोख न हो। जैसे,—हलका रंग, हलका हरा। (४) जो गहरा न हो। उथला। जैसे,—किनारे पर पानी हलका है। (५) जो उपजाऊ न हो। जो उर्वरा न हो। जैसे,—यहाँ की जमीन हलकी है, पैदावार कम होती है। (६) जो अधिक न हो। कम। थोड़ा। जैसे,—(क) हलका भोजन। (ख) हमें हलके दामों का एक घोड़ा चाहिए। (७) जो जोर का न हो। मंद। थोड़ा थोड़ा। जैसे,—हलका दर्द, हलका ज्वर। (८) जो कठोर या प्रचंड न हो। जो जोर से न पड़ा या बैठा हो। जैसे,—हलका चपत, हलकी चोट। (९) जिसमें गंभीरता या बड़प्पन न हो। ओछा। तुच्छ। क्षुद्र। जैसे,—हलका आदमी, हलकी बात। (१०) जो करने में सहज हो। जिसमें कम परिश्रम हो। आसान। सुख-साध्य। जैसे,—हलका काम। (११) जिसके ऊपर किसी कार्य या कर्त्तव्य का भार न हो। जिसे किसी बात के करने की फिक्र न रह गई हो। निश्चिंत। जैसे,—कन्या का विवाह करके अब वे हलके हो गए। (१२) प्रफुल्ल। ताजा। (१३) जो मोटा न हो। झीना। पतला। महीन। जैसे,—(क) हलका कपड़ा। (ख) नहाने से बदन हलका हो जाता है। (१४) कम अच्छा। घटिया। जैसे,—यह माल उससे कुछ हलका पड़ता है। (१५) जिसमें कुछ भरा न हो। खाली। छूँछा। उ॰—सखि! बात सुनो इक मोहन की, निकसे मटकी सिर लै हलकें। पुनि बाँधि लई सुनिए नत नार कहूँ कहुँ सुंदरकी छलकें।—केशव।

मुहा॰—हलका करना = अपमानित करना। तुच्छ ठहराना। लोगों की दृष्टि में प्रतिष्ठा कम करना। जैसे,—तुमने दस आदमियों के बीच में हलका किया। हलकी बात = (१) ओछी या तुच्छ बात। (२) बुरी बात। हलके भारी होना = (१) कष्ट। भार अनुभव करना। बोझ सा समझना। जैसे,—चार दिन में तुम्हारे यहाँ से चले जायँगे; क्यों हलके भारी हो रहे हो। (२) तुच्छता प्रकट करना। लोगों की नजर में ओछा बनना। हलकी भारी बोलना = खोटे वचन कहना। खरी खोटी सुनाना। बुरे शब्द मुँह से निकालना। लोगों की दृष्टि में हलका होना = ओछा या तुच्छ समझा जाना। प्रतिष्ठा खोना। बुरा समझा जाना। हलके हलके = धीरे धीरे। मंद गति से। आहिस्ता आहिस्ता। हलका सोना = हलका सुनहरी रंग। (रँगरेज)

†संज्ञा पुं॰ [अनु॰ हल हल] पानी की हिलोर। तरंग। लहर।

हलका—संज्ञा पुं॰ [अ॰] (१) वृत्त। मंडल। गोलाई। (२) घेरा। परिधि। (३) मंडली। झुंड। दल। (४) हाथियों का झुंड। उ॰—सत्ता के सपूत भाऊ तेरे दिए हलकनि बरनी ऊँचाई कविराजन की मति मैं। मधुकर कुल करटीन के कपोलन तेँ उड़ि उड़ि पियत अमृत उडुपति मैं।—मतिराम। (५) कई गाँवों या कसबों का समूह जो किसी काम के लिये नियत हो। जैसे,—थाने का हलका, पटवारियों का का हलका। (६) गले का पट्टा। (७) लोहे का बंद जो पहिए के घेरे में जड़ा रहता है। हाल।

हलकाई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ हलका + ई (प्रत्य॰)] (१) हलकापन। लघुता। (२) ओछापन। नीचता। (३) अप्रतिष्ठा। हेठी।

हलकान†—वि॰ दे॰ "हैरान"।

हलकाना†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ हलका + ना (प्रत्य॰)] हलका होना। बोझ कम होना।

क्रि॰ स॰ [हिं॰ हलकना] (१) किसी वस्तु में भरे हुए पानी को हिलाना या हिलाकर डुलाना। (२) हिलोरा देना।

क्रि॰ स॰ दे॰ "हिलगाना"।

हलकापन—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ हलका + पन (प्रत्य॰)] (१) हलके होने का भाव। भार का अभाव। लघुता। (२) ओछापन। नीचता। तुच्छबुद्धि। खोटाई। (३) अप्रतिष्ठा। हेठी। इज्जत की कमी।

हलकारा†—संज्ञा पुं॰ दे॰ "हरकारा"।

हलकारी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ हल + कारी] कपड़ा रँगने के पहले उसमें फिटकरी, हड़ या तेजाब आदि का पुट देना जिसमें रंग पक्का हो।

संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ हलका = घेरा] हलदी के योग से बने हुए रंग के द्वारा कपड़ों के किनारे पर की छपाई।

हलकोरा—संज्ञा पुं॰ [अनु॰ हल हल] हिलोरा। तरंग। लहर।

हल-गोलक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार का कीड़ा।

हलग्राही—वि॰ [सं॰ हलग्राहिन्] हल पकड़नेवाला। हल की मूँठ पकड़कर खेत जोतनेवाला।

विशेष—हल पकड़ना बहुत स्थानों में ब्राह्मणों और क्षत्रियों के लिये निषिद्ध समझा जाता है।

संज्ञा पुं० खेती करनेवाला । किसान ।

हलचल—संज्ञा स्त्री० [हिं० हलना + चलना] (१) लोगों के बीच फैली हुई अधीरता, घबराहट, दौड़ धूप, शोर गुल आदि । खलबली । धूम । जैसे,—सिपाहियों के शहर में घुसते ही हलचल मच गई । (ख) शिवाजी ने मुगलों की सेना में हलचल डाल दी ।

क्रि० प्र०—डालना ।—पड़ना ।—मचना ।—मचाना ।

(२) उपद्रव । दंगा । (३) हिलना डोलना । कंप । विचलन ।

वि० इधर उधर हिलता डोलता हुआ । डगमगाता हुआ । कंपायमान ।

हलजीवी—वि० [सं० हलजीविन्] हल चलाकर अर्थात् खेती करके निर्वाह करनेवाला । किसान ।

हलजुता—संज्ञा पुं० [हिं० हल + जोतना] (१) तुच्छ कृषक । मामूली किसान । (२) गँवार ।

हलड़ा—संज्ञा पुं० दे० "हलरा" ।

हलदंड—संज्ञा पुं० [सं०] हल का लंबा लट्ठा । हरिस ।

हलद†—संज्ञा स्त्री० दे० "हलदी" ।

हलद-हाथ—संज्ञा स्त्री० [हिं० हलदी + हाथ] विवाह के तीन या पाँच दिन पहले वर और कन्या के शरीर में हलदी और तेल लगाने की रस्म । हलदी चढ़ना ।

हलदी—संज्ञा स्त्री० [सं० हरिद्रा] (१) डेढ़ दो हाथ ऊँचा एक पौधा जिसमें चारों ओर टहनियाँ नहीं निकलतीं, कांड के चारों हाथ पौन हाथ लंबे और तीन चार अंगुल चौड़े पत्ते निकलते हैं । इसकी जड़, जो गाँठ के रूप में होती है, व्यापार की एक प्रसिद्ध वस्तु है; क्योंकि वह मसाले के रूप में नित्य के व्यवहार की भी वस्तु है और रँगाई तथा औषध के काम में भी आती है । गाँठ पीसने पर बिलकुल पीली हो जाती है । इससे दाल, तरकारी आदि में भी यह डाली जाती है और इसका रंग भी बनता है । इसकी खेती हिंदुस्तान में प्रायः सब जगह होती है । हलदी की कई जातियाँ होती हैं । साधारणतः दो प्रकार की हलदी देखने में आती है—एक बिलकुल पीली, दूसरी लाल या ललाई लिए जिसे रोचनी हलदी कहते हैं । वैद्यक में यह गरम, पाचन, अग्निवर्द्धक और कृमिघ्न मानी जाती है । रँगाई में काम आनेवाली हलदी की जातियाँ ये हैं । लोकहाँडी हलदी, सोयला हलदी, ज्वाला हलदी और आँबा हलदी ।

(२) उक्त पौधे की गाँठ जो मसाले आदि के रूप में व्यवहार में लाई जाती है ।

मुहा०—हलदी उठना या चढ़ना = विवाह के तीन या पाँच दिन पहले दूल्हे और दुलहिन के शरीर में हलदी और तेल लगाने की रस्म होना । हलदी लगना = विवाह होना । हलदी लगा के बैठना = (१) कोई काम धाम न करना, एक जगह बैठे रहना । (२) घमंड में फूला रहना । अपने को बहुत लगाना । हलदी लगी न फिटकिरी = बिना कुछ खर्च किए । मुफ्त में ।

हलदू—संज्ञा पुं० [हिं० हलद (हलदी)] एक बहुत बड़ा और ऊँचा पेड़ जिसकी छेद अंगुल मोटी, सफेद और खुरदुरी छाल होती है । भीतर की लकड़ी पीली और बहुत मजबूत होती है । यह पेड़ सब जगहों में—जैसे, हिमालय की तलहटी में—होता है । लकड़ी बहुत वज़नी होती है तथा साफ करने से चमकती है । इससे खेती और सजावट के सामान जैसे, मेज, कुरसी, आलमारी, कंघियाँ, बंदूक के कुंदे इत्यादि बनते हैं । इस पेड़ को करम भी कहते हैं ।

हलधर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हल को धारण करनेवाला । (२) बलराम जी (जो हल नामक अस्त्र धारण करते थे) ।

हलना†*—क्रि० अ० [सं० हलन = डोलना, करवट लेना] (१) हिलना डोलना । उ०—(क) अंगनि-उमंग जंग जैतवार जोर जिन्हैं बिकरल दिकरि हलत कलकत हैं ।—मतिराम । (२) घुसना । प्रवेश करना । पैठना । जैसे,—पानी में हलना, घर में हलना ।

हलपत†—संज्ञा पुं० [हिं० हल + पट्, पाटा] हल की आड़ी लगी हुई लकड़ी जो बीच में चौड़ी होती है । परिहत ।

हलपाणि—संज्ञा पुं० [सं०] बलराम (जो हाथ में हल लिए रहते थे) ।

हलफ़—संज्ञा पुं० [अ०] वह बात जो ईश्वर को साक्षी मानकर कही जाय । किसी पवित्र वस्तु की शपथ । कसम । सौगंध ।

मुहा०—हलफ़ उठवाना या देना = शपथ दिलाना या खाने को कहना । हलफ़ उठाना या लेना = शपथपूर्वक कहना । कसम खाना । ईश्वर को साक्षी देकर कहना ।

हलफ़नामा—संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] वह कागज जिस पर कोई बात ईश्वर को साक्षी मानकर अथवा शपथपूर्वक लिखी गई हो ।

हलफा—संज्ञा पुं० [अनु० हल हल] हिलोर । लहर । तरंग ।

क्रि० प्र०—उठना ।

मुहा०—हलफा मारना = लहरें लेना । लहराना ।

हलब—संज्ञा पुं० [देश०] [वि० हलबी] फारस की ओर के एक देश का नाम जहाँ का शीशा प्रसिद्ध था ।

हलबल*—संज्ञा पुं० [हिं० हल + बल] खलबली । हलचल । धूम ।

हलबी, हलब्बी—वि० [हलब देश] हलब देश का (शीशा) । बढ़िया (शीशा) । उ०—नैन सनेहन के मनो हलबी सीसा आय । सुधन प्रगट तिन मैं मीत सुमुख दरसाय ।—रसनिधि ।

हलभल†—संज्ञा पुं० दे० "हलबल" ।

हलभली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० हलबल, हलभल] खलबली । हलचल । घबराहट ।

संज्ञा स्त्री० [अ० हलक्रम] त्वरा । जल्दी । हड़बड़ी ।
हलभूति-संज्ञा पुं० [सं०] शंकराचार्य्य का एक नाम ।
हलभृत-संज्ञा पुं० [सं०] बलराम ।
हलमरिया-संज्ञा स्त्री० [पुर्त० भालमारी] जहाज के नीचे का खाना । (लश०)
हलमिल लैला-संज्ञा पुं० [सिंहली] एक प्रकार का बड़ा पेड़ जो सिंहल या सीलोन में होता है और जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और खेती के सामान आदि बनाने के काम में आती है । मैसूर में भी यह पेड़ पाया जाता है ।
हलमुख-संज्ञा पुं० [सं०] हल का फाल ।
हलमुखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में क्रम से रगण, नगण और सगण आते हैं ।
हलराना-क्रि० स० [हिं० हिलोरा] (बच्चों को) हाथ पर लेकर इधर उधर हिलाना डुलाना । प्यार से हाथ पर झुलाना । उ०—(क) जसुदा हरि पालने झुलावै । हलरावै मल्हरावै जोइ सोई कछु गावै ।—सूर । (ख) लै उछंग कबहुँक हलरावै । कबहुँ पालने घालि झुलावै ।—तुलसी ।
हलवत-संज्ञा स्त्री० [हिं० हल + औत (प्रत्य०)] वर्ष में पहले पहल खेत में हल ले जाने की रीति या कृत्य । हरौती ।
हलवा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) एक प्रकार का मीठा भोजन या मिठाई जो मैदे या सूजी को घी में खूब भून कर उसे शरबत या चाशनी में पकाने से बनती है । मोहनभोग । (२) गीली और मुलायम चीज ।
यौ०—सोहन हलवा ।
मुहा०—हलवे माँडे से काम = केवल स्वार्थसाधन से ही प्रयोजन । काम ही से मतलब । जैसे,—तुम्हें तो अपने हलवे माँडे से काम, किसी का चाहे कुछ हो । हलवा निकालना = बहुत पीटना । खूब मारना । जैसे,— मारते मारते हलवा निकाल देंगे ।
हलवाइन-संज्ञा स्त्री० [हिं० हलवाई] (१) हलवाई की स्त्री । (२) वह स्त्री जो मिठाई बनाने का काम करती हो ।
हलवाई-संज्ञा पुं० [अ० हलवा + ई (प्रत्य०)] [स्त्री० हलवाइन] मिठाई बनाने और बेचनेवाला । मिठाई बनाकर या बेचकर जीविका चलानेवाला ।
हलवाह-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो दूसरे के यहाँ हल जोतने का काम करता हो । हल चलाने का काम करनेवाला मजदूर या नौकर ।
विशेष—हल चलाने के लिये गाँवों में चमार आदि नीची जाति के लोग ही रखे जाते हैं ।
हलवाहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जमीन की एक नाप जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था ।
‡ संज्ञा पुं० दे० "हलवाह" ।
हलहल-संज्ञा पुं० [सं०] हल चलाना ।

संज्ञा पुं० [अनु०] किसी वस्तु में भरे जल के हिलने डोलने का शब्द ।
हलहला†-संज्ञा स्त्री० [सं०] आनंदसूचक ध्वनि । किलकार ।
हलहलाना†-क्रि० स० [हिं० हलना या अनु० हलहल] (१) ऐसी वस्तु को हिलाना जिसके भीतर पानी भरा हो । (२) खूब ज़ोर से हिलाना डुलाना । झकझोरना ।
क्रि० अ० काँपना । थरथराना । कंपित होना । जैसे,—मारे बुखार के हलहला रहा है ।
हलाक-वि० [अ० हलाकत] मारा हुआ । वध किया हुआ ।
मुहा०—हलाक करना = मार डालना । वध करना ।
हलाकत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) हत्या । वध । मार डालना । (२) मृत्यु । विनाश ।
हलाकान†-वि० [अ० हलाकत या हैरान] परेशान । हैरान । तंग ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।
हलाकानी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हलाकान] तंग होने की क्रिया या भाव । परेशानी । हैरानी ।
हलाकी-वि० [अ० हलाक + ई (हिं० प्रत्य०)] हलाक करनेवाला । मार डालनेवाला । मारू । घातक । उ०—जोगकथा पठई ब्रज को, सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी । ऊधो जू ! क्यों न कहै कुबरी जो वरी नटनागर हेरि हलाकी ।—तुलसी ।
हलाकू-वि० [अ० हलाक + ऊ (प्रत्य०)] हलाक करनेवाला ।
संज्ञा पुं० एक तुर्क सरदार या बादशाह जो चंगेज़ खाँ का पोता था और उसी के समान क्रूर तथा हत्याकारी था ।
हलाना†-क्रि० स० दे० "हिलाना" ।
हलाभ-संज्ञा पुं० [सं०] वह घोड़ा जिसकी पीठ पर काले या गहरे रंग के रोएँ बराबर कुछ दूर तक चले गए हों ।
हला भला-संज्ञा पुं० [हिं० भला + हला अनु०] (१) निबटारा । निर्णय । जैसे,—बहुत दिनों से यह पीछे लगा है, इसका भी कुछ हला भला कर दो । (२) परिणाम । फल । उ०—भले ही भले नियहे जो भली यह देखिये ही की हला हु भला । मिल्यो मन तौ मिलिजोइ कहूँ, मिलियो न अलौकिक मंदकला ।—केशव ।
हलाभियोग-संज्ञा पुं० [सं०] वर्ष में पहले पहल खेत में हल ले जाने की रीति या कृत्य । हलवत । हरौती ।
हलायुध-संज्ञा पुं० [सं०] बलराम ।
हलाल-वि० [अ०] जो धर्मशास्त्र के अनुसार उचित हो । जिसकी आज्ञा धर्मशास्त्र में हो । जो शरअ या मुसलमानी धर्मपुस्तक के अनुकूल हो । जो हराम न हो । विधि-विहित । जायज़ ।
यौ०—हलालखोर । नमकहलाल ।
संज्ञा पुं० वह पशु जिसका मांस खाने की मुसलमानी धर्मपुस्तक में आज्ञा हो । वह जानवर जिसके खाने का निषेध न हो ।

मुहा०—हलाल करना=(१) ईमानदारी के साथ व्यवहार करना। बदले में पूरा काम करना। उ०—जिसका खाना, उसका हलाल करके खाना। (२) खाने के लिये पशुओं को मुसल्मानी शरअ के मुताबिक़ (धीरे धीरे गला रेत कर) मारना। ज़बह करना। हलाल का=धर्मशास्त्र के अनुकूल। ईमानदारी से पाया हुआ। जैसे,—हलाल का रुपया।

हलालख़ोर-संज्ञा पुं० [अ०+फ़ा] [स्त्री० हलालख़ोरी, हलालख़ोरिन] (१) हलाल की कमाई खानेवाला। मिहनत करके जीविका करनेवाला। (२) मैला या कूड़ा करकट साफ करने का काम करनेवाला। मेहतर। भंगी।

हलालख़ोरी-संज्ञा स्त्री० [अ० हलाल+फ़ा० ख़ोर] (१) हलालख़ोर की स्त्री। (२) पाखाना उठाने या कूड़ा करकट साफ करने का काम करनेवाली स्त्री। (३) हलालख़ोर का काम। (४) हलालख़ोर का भाव या धर्म्म।

हलाहल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह प्रचंड विष जो समुद्र मथन के समय निकला था और जिसके प्रभाव से सारे देवता और असुर व्याकुल हो गए थे। इसे अंत में शिव जी ने धारण किया था। (२) महा विष। भारी ज़हर। उ०—धिक तो कहँ जो अजहूँ तु जिये। खल, जाय हलाहल क्यों न पिये?—केशव। (३) एक ज़हरीला पौधा जिसके पत्ते ताड़ के से, कुछ नीलापन लिए तथा फल गाय के थन के आकार के सफेद सफेद लिखे गए हैं। इसका कंद या जड़ की गाँठें भी गाय के थन के आकार की कही गई हैं। लिखा है कि इसके आस पास घास या पेड़ पौधे नहीं उगते और मनुष्य केवल इसकी महक से मर जाता है। (भावप्रकाश)।

हलिदण्-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सिंह।

हलिप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मद्य। मदिरा। (२) ताड़ी (जो बलरामजी को प्रिय थी)।

हलिमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्कंद या कुमार की मातृकाओं में से एक।

हली-संज्ञा पुं० [सं० हलिन्] (१) (हल नाम का अस्त्र धारण करनेवाले) बलराम। (२) किसान।

हलीम-संज्ञा पुं० [सं०] केतकी।

संज्ञा पुं० [देश०] मटर के डंठल जो बंबई की ओर काटकर चौपायों को खिलाए जाते हैं।

वि० [अ०] सीधा। शांत।

संज्ञा पुं०, एक प्रकार का खाना जो मुहर्रम में बनता है। (मुसलमान)।

हलीमक-संज्ञा पुं० [सं०] पांडु रोग का एक भेद।

विशेष—यह वात पित्त के कोप से उत्पन्न कहा गया है। इसमें रोगी के चमड़े का रंग कुछ हरापन, कालापन या धूमिलपन लिए पीला हो जाता है। इसे तंद्रा, मंदाग्नि, जीर्ण ज्वर, अरुचि और भ्रांति तथा उसके अंगों में पीड़ा रहती है।

हलीसा-संज्ञा पुं० [सं० हलीषा] नाव खेने का छोटा डाँड़ा जिसका एक जोड़ा लेकर एक ही आदमी नाव चला सकता है। चप्पू। (लश०)

मुहा०—हलीसा तानना=डाँड़ चलाना।

हलुक-वि० दे० "हलका"।

हलुकई-संज्ञा स्त्री० दे० "हलकाई"।

हलुवा-संज्ञा पुं० दे० "हलवा"।

हलुवाई-संज्ञा पुं० दे० "हलवाई"।

हलुहार-संज्ञा पुं० [सं०] वह घोड़ा जिसके अंडकोश काले हों और जिसके माथे पर दाग हो।

हलेरा-संज्ञा पुं० दे० "हिलोर"।

हलेसा-संज्ञा पुं० दे० "हलीसा"।

हलोर-संज्ञा स्त्री० [हिं० हलना या अनु० हलहल]. हिलोरा। तरंग। लहर।

हलोरना-क्रि० स० [हिं० हिलोर+ना (प्रत्य०)] (१) पानी में हाथ डालकर उसे हिलाना डुलाना। जल को हाथ के आघात से तरंगित करना। (२) मथना। (३) अनाज फटकना। (४) दोनों हाथों से या बहुत अधिक मान में किसी पदार्थ का विशेषतः द्रव्य का संग्रह करना। जैसे,—आज कल वह रंग के व्यापार में खूब रुपए हलोर रहे हैं।

हलोरा-संज्ञा पुं० [हिं० हलना या अनु० हलहल] हिलोरा। तरंग। लहर। उ०—सोहै सितासित को मिलिबो, तुलसी हुलसै हिय हेरि हलोरे। मानौं हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे।—तुलसी।

हलका-वि० दे० "हलका"।

हलद-संज्ञा स्त्री० दे० "हलद"।

हल्दहात-संज्ञा स्त्री० [हिं० हल्दी+हाथ] विवाह के तीन या पाँच दिन पहले वर और कन्या के शरीर में हल्दी लगाने की रीति। हल्दी चढ़ना।

हल्दी-संज्ञा स्त्री० दे० "हलदी"।

हल्लक-संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल।

हल्लन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) करवट बदलना। (२) इधर से उधर हिलना डोलना।

हल्ला-संज्ञा पुं० [अनु०] (१) एक या अधिक मनुष्यों का ऊँचे स्वर से बोलना। चिल्लाहट। शोरगुल। कोलाहल।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

यौ०—हल्ला गुल्ला=शोर गुल।

(२) लड़ाई के समय की ललकार। धावे के समय किया हुआ शोर। हाँक। (३) सेना का वेग से किया हुआ

आक्रमण। धावा। हमला। जैसे,—राजपूतों ने एक ही हल्ले में किला ले लिया।

हल्लीश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाट्यशास्त्र में अठारह उपरूपकों में से एक।

विशेष—इसमें एक ही अंक होता है और नृत्य की प्रधानता रहती है। इसमें एक पुरुष पात्र और सात, आठ या दस स्त्रियाँ पात्री होती हैं।

(२) मंडल बाँधकर होनेवाला एक प्रकार का नाच जिसमें एक पुरुष के आदेश पर कई स्त्रियाँ नाचती हैं।

हव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी देवता के निमित्त अग्नि में दी हुई आहुति। बलि। (२) अग्नि। आग।

हवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी देवता के निमित्त मंत्र पढ़कर घी, जौ, तिल आदि अग्नि में डालने का कृत्य। होम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) अग्नि। आग। (३) अग्निकुंड। (४) अग्नि में आहुति देने का यज्ञपात्र। हवन करने का चमचा। स्रुवा।

हवनीय-वि० [सं०] जो हवन के योग्य हो या जिसे आहुति के रूप में अग्नि में डालना हो।

संज्ञा पुं० वह पदार्थ जो हवन करने के समय अग्नि में डाला जाता है। जैसे,—घी, जौ आदि।

हवलदार-संज्ञा पुं० [अ० हवाल: = सुपुर्दगी + फ़ा० दार = रखनेवाला] (१) बादशाही जमाने का वह अफसर जो राजकर की ठीक ठीक वसूली और फ़सल की निगरानी के लिये तैनात रहता था। (२) फौज में वह सब से छोटा अफसर जिसके मातहत थोड़े से सिपाही रहते हैं।

हवस-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) लालसा। कामना। चाह। जैसे,—हमें अब किसी बात की हवस नहीं है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—हवस पकाना = व्यर्थ कामना करते रहना। केवल मन में ही किसी कामना की पूर्ति का अनुमान किया करना। मनमोदक खाना। हवस पूरी करना = इच्छा पूर्ण करना। हवस पूरी होना = इच्छा पूर्ण होना।

(२) तृष्णा। जैसे,—बुड्ढे हुए पर हवस न गई।

हवा-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वह सूक्ष्म प्रवाह रूप पदार्थ जो भूमंडल को चारों ओर से घेरे हुए है और जो प्राणियों के जीवन के लिये सब से अधिक आवश्यक है। वायु। पवन। वि० दे० "वायु"।

क्रि० प्र०—आना।—चलना।—बहना।

यौ०—हवाख़ोरी। हवाचक्की।

मुहा०—हवा उड़ना = खबर फैलना। बात फैलना या प्रसिद्ध होना। हवा उड़ाना = (१) अधोवायु छोड़ना। पादना। (२) किंवदन्ती उड़ाना। अफवाह फैलाना। हवा करना = पंखे से हवा का झोंका लाना। पंखा हाँकना। हवा के रुख जाना = जिस ओर को हवा बहती हो, उसी ओर जाना। हवा के मुँह पर जाना = दे० "हवा के रुख जाना"। (लश०) हवा के घोड़े पर सवार = बहुत उतावली में। बहुत जल्दी में। हवा गिरना = हवा थमना। तेज हवा का चलना बंद होना। हवा खाना = (१) शुद्ध वायु के लिये बाहर निकलना। बाहर घूमना। टहलना। (२) प्रयोजन सिद्धि तक न पहुँचना। बिना सफलता प्राप्त किए यों ही रह जाना। अकृतकार्य होना। जैसे,—वक्त पर तो आए नहीं, अब जाओ, हवा खाओ। हवा गाँठ में बाँधना = असंभव बात के लिये प्रयत्न करना। अनहोनी बात के पीछे हैरान होना। हवा फाँक कर रहना या हवा पीकर रहना = बिना आहार के रहना। (व्यंग्य) जैसे,—कुछ खाने को नहीं पाते तो क्या हवा पीकर रहते हो? हवा पकड़ना = पाल में हवा भरना। (लश०) हवा बताना = किसी वस्तु से वंचित रखना। टाल देना। इधर उधर की बात कह कर हटा देना। जैसे,—वह अपना काम निकाल कर तुम्हें हवा बता देगा। हवा बाँधकर जाना = हवा को नाव से उलटा जाना। जिस ओर से हवा आती हो, उस ओर जाना (विशेषतः नाव के लिये)। हवा बाँधना = (१) लंबी चौड़ी बातें कहना। शेखी हाँकना। बढ़ बढ़कर बोलना। (२) बिना जड़ की बात कहना। गप हाँकना। झूठी बातें जोड़ जोड़ कर कहना। हवा पलटना, फिरना या बदलना = (१) दूसरी ओर को हवा चलने लगना। (२) दशांतर होना। दूसरी स्थिति या अवस्था होना। हालत बदलना। हवा भर जाना = खुशी या घमंड से फूल जाना। हवा बिगड़ना = (१) संक्रामक रोग फैलना। वबा या मरी फैलना। (२) रीति या चाल बिगड़ना। बुरे विचार फैलना। दिमाग में हवा भर जाना = सिर फिरना। उन्माद होना। बुद्धि ठीक न रहना। हवा देना = (१) मुँह से हवा छोड़कर दहकाना। फूँकना। (आग के लिये)। (२) बाहर हवा में रखना। ऐसे स्थान में लाना जहाँ खूब हवा लगे। जैसे,—इन कपड़ों को कभी कभी हवा दे दिया करो। (३) झगड़े को बढ़ाना। झगड़ा उकसाना। हवा सा = बिल्कुल महीन या हलका। हवा से लड़ना = किसी से अकारण लड़ना। हवा से बातें करना = (१) बहुत तेज दौड़ना या चलना। (२) आप ही आप या व्यर्थ बहुत बोलना। हवा लगना = (१) हवा का झोंका बदन पर पड़ना। वायु का स्पर्श होना। (२) वात रोग से ग्रस्त होना। (३) उन्माद होना। सिर फिर जाना। बुद्धि ठीक न रहना। किसी की हवा लगना = किसी की संगत का प्रभाव पड़ना। सुहबत का असर होना। किसी के दोषों का किसी में आना। जैसे,—तुम्हें भी उसी की हवा लगी। हवा हो जाना = (१) सरपट चल देना। भाग जाना। (२) बहुत तेज दौड़ना या चलना। जैसे,—चाबुक पड़ते ही यह घोड़ा हवा हो जाता है। (३) न रह जाना। एक बारगी गायब हो जाना। अभाव हो जाना। जैसे,—बहुत आशा लगाए

थे, पर सारी बातें हवा हो गईं। कहीं की हवा खाना = कहीं जाना। कहीं की हवा खिलाना = कहीं भेजना। जैसे,—तुम्हें जेलखाने की हवा खिलावेंगे।

(२) भूत। प्रेत। (जिनका शरीर वायव्य माना जाता है) (३) अच्छा नाम। प्रसिद्धि। ख्याति। (४) व्यापारियों या महाजनों में धाक। बड़प्पन या उत्तम व्यवहार का विश्वास। साख।

मुहा०—हवा उखड़ना = (१) नाम न रह जाना। प्रसिद्धि न रहना। (२) साख न रह जाना। बाजार में विश्वास उठ जाना। हवा बँधना = (१) अच्छा नाम हो जाना। लोगों के बीच प्रसिद्धि हो जाना। (२) बाजार में साख होना। व्यवहार में लोगों के बीच अच्छी धारणा होना।

(५) किसी बात की सनक। धुन।

हवाई—वि० [अ० हवा + ई (हिं० प्रत्य०)] (१) हवा का। वायु-संबंधी। (२) हवा में चलनेवाला। जैसे,—हवाई जहाज। (३) बिना जड़ का। जिसमें सत्य का आधार न हो। कल्पित या झूठ। निर्मूल। जैसे,—हवाई खबर, हवाई बात।

संज्ञा स्त्री० हवा में कुछ दूर तक बड़े झोंक से जाकर छूट जानेवाली एक प्रकार की आतशबाजी। बान। आसमानी।

मुहा०—(मुँह पर) हवाइयाँ उड़ना = चेहरे का रंग फीका पड़ जाना। आकृति से भय, लज्जा या उदासी प्रकट होना। विवर्णता होना।

हवागीर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] आतशबाज़ी के बान बनानेवाला।

हवाचक्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० हवा + चक्की] आटा पीसने की वह चक्की जो हवा के जोर से चलती हो।

हवादार—वि० [फ़ा०] जिसमें हवा आती जाती हो। जिसमें हवा आने जाने के लिये काफी छेद, खिड़कियाँ या दरवाजे हों। जैसे,—हवादार कमरा, हवादार मकान, हवादार पिंजरा।

संज्ञा पुं० वह हलका तख्त जिस पर बैठाकर बादशाह को महल या क़िले के भीतर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे।

हवान—संज्ञा पुं० [अ० हवा, हवाई] एक प्रकार की छोटी तोप जो जहाजों पर रहती है। कोठी तोप। (लश०)

हवाना—संज्ञा पुं० [हवाना द्वीप] तंबाकू का एक भेद। अमेरिका के हवाना नामक स्थान का तंबाकू।

हवाल—संज्ञा पुं० [अ० अहवाल] (१) हाल। दशा। अवस्था। (२) गति। परिणाम। उ०—बकरी पाती खाति है ताकी काढ़ी खाल। जो नर बकरी खात हैं तिनका कौन हवाल?—कबीर। (३) संवाद। समाचार। वृत्तांत।

यौ०—हाल हवाल।

हवालदार—संज्ञा पुं० दे० "हवलदार"।

हवाला—संज्ञा पुं० [अ०] (१) किसी बात की पुष्टि के लिये किसी के वचन या किसी घटना की ओर संकेत। प्रमाण का उल्लेख। (२) उदाहरण। दृष्टांत। मिसाल। नज़ीर।

क्रि० प्र०—देना।

(३) अधिकार या कब्ज़ा। सुपुर्दगी। जिम्मेदारी।

मुहा०—(किसी के) हवाले करना = किसी को दे देना। किसी के सुपुर्द करना। सौंपना। जैसे,—जिसकी चीज है, उसके हवाले करो। (किसी के) हवाले पड़ना = वश में आ जाना। हाथ में आ जाना। चंगुल में आना। उ०—भय हूँहै कहा अरविंद सो आनन इंदु के आय हवाले परयो।—पद्माकर।

हवालात—संज्ञा पुं० स्त्री० [अ०] (१) पहरे के भीतर रखे जाने की क्रिया या भाव। नज़रबंदी। (२) अभियुक्त की वह साधारण क़ैद जो मुक़दमे के फ़ैसले के पहले उसे भागने से रोकने के लिये की जाती है। हाजत। (३) वह मकान जिसमें ऐसे अभियुक्त रखे जाते हैं।

क्रि० प्र०—में देना।

मुहा०—हवालात करना = पहरे के भीतर बंद करना।

हवास—संज्ञा पुं० [अ०] (१) इंद्रियाँ। (२) संवेदन। (३) चेतना। संज्ञा। होश। सुध।

यौ०—होश हवास।

मुहा०—हवास गुम होना = होश ठिकाने न रहना। भय आदि से स्तंभित होना। ठक रह जाना।

हवि—संज्ञा पुं० [सं० हविस्] देवता के निमित्त अग्नि में दिया जानेवाला घी, जौ या इसी प्रकार की सामग्री। वह द्रव्य जिसकी आहुति दी जाय। हवन की वस्तु।

हविर्धी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हवन-कुंड।

हविर्धानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरभी। कामधेनु।

हविर्भुज्—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

हविर्भू—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हवन की भूमि। (२) कर्दम की पुत्री जो पुलस्त्य की पत्नी थी।

हविष्मती—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु।

हविष्मान्—वि० [सं० हविष्मत्] [स्त्री० हविष्मती] हवन करनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) अंगिरा के एक पुत्र का नाम। (२) छठे मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक। (३) पितरों का एक गण।

हविष्यंद—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

हविष्य—वि० [सं०] (१) हवन करने योग्य। (२) जिसकी आहुति दी जानेवाली हो।

संज्ञा पुं० वह वस्तु जो किसी देवता के निमित्त अग्नि में डाली जाय। बलि। हवि।

हविष्यान्न—संज्ञा पुं० [सं०] वह अन्न या आहार जो यज्ञ के समय किया जाय। खाने की पवित्र वस्तुएँ। जैसे,—जौ, तिल, मूँग, चावल इत्यादि।

हविस-संज्ञा स्त्री० दे० "हवस"।

हवीत संज्ञा पुं० [..?] लकड़ियों का बना हुआ एक यंत्र जिसमें लंगर डालने के समय जहाज़ की रस्सियाँ बाँधी या लपेटी जाती हैं। (लश०)

हवेली-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) पक्का बड़ा मकान। प्रासाद। हर्म्य। (२) पत्नी। स्त्री। जोरू।

हव्य-संज्ञा पुं० [सं०] हवन की सामग्री। वह वस्तु जिसकी किसी देवता के अर्थ अग्नि में आहुति दी जाय। जैसे,—घी, जौ, तिल आदि।

विशेष—देवताओं के अर्थ जो सामग्री हवन की जाती है, वह हव्य कहलाती है; और पितरों को जो अर्पित की जाती है, वह कव्य कहलाती है।

यौ०—हव्य कव्य।

हव्यभुज्-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

हव्ययोनि-संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

हव्यवाट्-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि देवता।

हव्यवाह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) अश्वत्थ वृक्ष। पीपल (जिसकी लकड़ी की अरणी बनती है)।

हव्याशन-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

हशमत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) गौरव। बड़ाई। (२) वैभव। ऐश्वर्य।

हसंतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] अँगीठी। गोरसी।

हसद-संज्ञा पुं० [अ०] ईर्ष्या। डाह।

हसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हँसना। (२) परिहास। दिल्लगी। (३) विनोद। (४) स्कंद के एक अनुचर का नाम।

संज्ञा पुं० [अ०] अली के दो बेटों में से एक जो यज़ीद के साथ लड़ाई करने में मारे गए थे और जिनका शोक शीया मुसलमान मुहर्रम में मनाते हैं।

हसब-अव्य० [अ०] अनुसार। रू से। मुताबिक़। जैसे,—हसब हैसियत, हसब कानून।

हसरत-संज्ञा स्त्री० [अ०] रंज। अफ़सोस। शोक।

हसावर-संज्ञा पुं० [हिं० हंस] ख़ाकी रंग की एक बड़ी चिड़िया जिसकी गरदन एक हाथ लंबी और चोंच केले के फल के समान होती है। इसके बगल के कुछ पर और पैर लाल होते हैं।

हसिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हँसने की क्रिया या भाव। हँसी। (२) उपहास। ठट्ठा।

हसित-वि० [सं०] (१) जो हँसा गया हो। जिस पर लोग हँसते हों। (२) जो हँसा हो।

संज्ञा पुं० (१) हास। हँसना। (२) हँसी ठट्ठा। उपहास। (३) कामदेव का धनुष।

हसिर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चूहा।

हसीन-वि० [अ०] सुंदर। ख़ूबसूरत।

हस्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ। (२) हाथी की सूँड़। (३) कुहनी से लेकर उँगली के छोर तक की लंबाई या माप। एक नाप जो २४ अंगुल की होती है। हाथ। (४) हाथ का लिखा हुआ लेख। लिखावट। (५) एक नक्षत्र जिसमें पाँच तारे होते हैं और जिसका आकार हाथ का सा माना गया है। वि० दे० "नक्षत्र"। (६) संगीत या नृत्य में हाथ हिलाकर भाव बताना।

विशेष—यह संगीत का सातवाँ भेद कहा गया है और दो प्रकार का होता है—रूपाश्रित और भावाश्रित।

(७) वासुदेव के एक पुत्र का नाम। (८) छंद का एक चरण। (९) गुच्छा। समूह। जैसे,—केशहस्त।

हस्तक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ। (२) संगीत का ताल। (३) प्राचीन काल का एक बाजा जो हाथ में लेकर बजाया जाता था। करताल। (४) हाथ से बजाई हुई ताली।

हस्तकार्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ का काम। (२) दस्तकारी।

हस्तकोहली-संज्ञा स्त्री० [सं०] वर और कन्या की कलाई में मंगल सूत्र बाँधने की क्रिया या रीति।

हस्तकौशल-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ की सफ़ाई। किसी काम में हाथ चलाने की निपुणता।

हस्तक्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हाथ का काम। (२) दस्तकारी। (३) हाथ से इंद्रिय-संचालन। सरका कूटना।

हस्तक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] किसी काम में हाथ डालना। किसी होते हुए काम में कुछ कार्रवाई कर बैठना या बात भिड़ाना। दख़ल देना। जैसे,—हमारे काम में तुम हस्तक्षेप क्यों करते हो? हम जैसे चाहेंगे वैसे करेंगे।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हस्तगत-वि० [सं०] हाथ में आया हुआ। प्राप्त। लब्ध। हासिल। जैसे,—वह पुस्तक किसी प्रकार हस्तगत करो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हस्तग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ पकड़ना। (२) पाणिग्रहण। विवाह।

हस्तचापल्य-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ की फुरती। हाथ की सफाई।

हस्ततल-संज्ञा पुं० [सं०] हथेली।

हस्तत्राण-संज्ञा पुं० [सं०] अस्त्रों के आघात से रक्षा के लिये हाथ में पहना जानेवाला दस्ताना।

हस्तधारण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ पकड़ना। (२) हाथ का सहारा देना। (३) पाणिग्रहण करना। विवाह करना। (४) वार को हाथ पर रोकना।

हस्तपर्णी-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ताड़।

हस्तपृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] हथेली का पिछला या उलटा भाग।

हस्तविंय–संज्ञा पुं० [सं०] शरीर में सुगंधित द्रव्यों का लेपन करना।

हस्तमणि–संज्ञा पुं० [सं०] कलाई में पहनने का रत्न।

हस्तमैथुन–संज्ञा पुं० [सं०] हाथ के द्वारा इंद्रिय संचालन। सरका कूटना।

हस्तरेखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] हथेली में पड़ी हुई लकीरें।

विशेष—इन रेखाओं के विचार से सामुद्रिक में शुभाशुभ फल का निर्णय होता है।

हस्तरोधी–संज्ञा पुं० [सं० हस्तरोधिन्] शिव का एक नाम।

हस्तलक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हथेली की रेखाओं द्वारा शुभाशुभ सूचना। (२) अथर्ववेद का एक प्रकरण।

हस्तलाघव–संज्ञा पुं० [सं०] हाथ की फुरती। हाथ की सफ़ाई। किसी काम में हाथ चलाने की निपुणता।

हस्तलिखित–वि० [सं०] हाथ का लिखा हुआ। (ग्रन्थ आदि)

हस्तलिपि–संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथ की लिखावट। लेख।

हस्त-पात रक्त–संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें हथेलियों में छोटी छोटी फुंसियाँ निकलती हैं और धीरे धीरे सारे शरीर में फैल जाती हैं।

हस्त-वारण–संज्ञा पुं० [सं०] वार या आघात को हाथ पर रोकना।

हस्त-सूत्र–संज्ञा पुं० [सं०] सूत का कंगन जिसमें कपड़े की पोटली बँधी होती है और जो विवाह के समय वर और कन्या की कलाई में पहनाया जाता है।

हस्ताक्षर–संज्ञा पुं० [सं०] अपने हाथ से लिखा हुआ अपना नाम जो किसी लेख आदि के नीचे लिखा जाय। दस्तख़त।

हस्तामलक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ में लिया हुआ आँवला। (२) वह वस्तु या विषय जिसका अंग प्रत्यंग हाथ में लिए हुए आँवले के समान, अच्छी तरह समझ में आ गया हो। वह चीज या बात जिसका हर एक पहलू साफ़ साफ़ जाहिर हो गया हो। जैसे,—यह पुस्तक पढ़ जाइए; सारा विषय हस्तामलक हो जायगा।

हस्ताहस्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथा बाँहीं। हाथा पाई। मुठभेड़। थप्पड़ या घूँसे की लड़ाई।

हस्ति–संज्ञा पुं० दे० "हस्ती"।

हस्तिकंद–संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा जिसका कंद खाया जाता है। हाथी कंद।

हस्तिकक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जहरीला कीड़ा। (सुश्रुत)

हस्तिकक्ष्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंह। (२) व्याघ्र। बाघ।

हस्तिकरंज–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी जाति का करंज या कंजा। वि० दे० "करंज"।

हस्तिकर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंडी का पेड़। एरंड। रेंड। (२) पलाश। टेसू का पेड़। (३) कच्चू। बंडा। (४) शिव के गणों में से एक। (५) गण देवताओं में से एक।

हस्तिकर्णिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] हठयोग का एक आसन।

हस्तिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगा रहता था।

हस्तिजिह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हाथी की जीभ। (२) दाहिनी आँख की एक नस।

हस्तिदंत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी दाँत। (२) दीवार में गड़ी हुई कपड़े आदि टाँगने की खूँटी। (३) मूली।

हस्तिदंती–संज्ञा पुं० [सं०] मूली।

हस्तिनख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी के नाखून। (२) वह बुर्ज या टीला जो गढ़ की दीवार के पास उन स्थानों पर बना होता है जहाँ चढ़ाव होता है।

हस्तिनापुर–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रवंशियों या कौरवों की राजधानी जो वर्तमान दिल्ली नगर से कुछ दूर पर थी।

पर्य्या०—गजाह्वय। नाग-साह्वय। नागाह्व।

विशेष—यह नगर हस्तिन् नामक राजा का बसाया हुआ था। इसका स्थान दिल्ली से उत्तर-पूर्व २८ कोस पर निश्चित किया गया है।

हस्तिनासा–संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी की सूँड़।

हस्तिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मादा हाथी। हथिनी। (२) एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य। हट्टविलासिनी। (३) कामशास्त्र के अनुसार स्त्री के चार भेदों में से सब से निकृष्ट भेद।

विशेष—इसका शरीर स्थूल, ओंठ और उँगलियाँ मोटी और आहार तथा कामवासना अन्य प्रकार की सब स्त्रियों से अधिक कही गई है।

हस्तिपक–संज्ञा पुं० [सं०] महावत। फीलवान।

हस्तिपर्णिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] तुरई। तरोई। कोषातकी।

हस्तिपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी।

हस्तिपिप्पली–संज्ञा स्त्री० [सं०] गज पिप्पली।

हस्तिपृष्ठक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर, जिसके पास कुटिका नाम की नदी बहती थी।

हस्तिप्रमेह–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह जिसमें मूत्र के साथ हाथी के मद का सा पदार्थ बिना वेग के तार सा निकलता है और पेशाब ठहर ठहर कर होता है।

हस्तिमल्ल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऐरावत। (२) गणेश। (३) पाताल का एक नाग जिसे शंख भी कहते हैं। (४) राख का ढेर। (५) धूल की वर्षा। (६) पाला।

हस्तिमुख–संज्ञा पुं० [सं०] गजानन। गणेश।

हस्तिश्यामक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) काला सावाँ। (२) बाजरा।

हस्ती–संज्ञा पुं० [सं० हस्तिन्] [स्त्री० हस्तिनी] (१) हाथी।

(हस्ती चार प्रकार के कहे गए हैं—भद्र, मंद्र, मृग और मिश्र।) (२) अजमोदा। (३) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (४) चंद्रवंशी राजा सुहोत्र के एक पुत्र जिन्होंने हस्तिनापुर बसाया था।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अस्तित्व। होने का भाव। जैसे,—इसमें तो उनकी हस्ती ही मिट जायगी।

मुहा०—(किसी की) क्या हस्ती है = क्या गिनती है। कोई महत्व नहीं। तुच्छ है।

हस्ते-अव्य० [सं०] हाथ से। मारफ़त। जैसे,—१००) उसके हस्ते मिले।

हस्तयशान-संज्ञा पुं० [सं०] लोबान का पौधा।

हहर-संज्ञा स्त्री० [हिं० हहरना] (१) थर्राहट। कँपकँपी। (२) भय। डर।

हहरना-क्रि० अ० [अनु०] (१) काँपना। थरथराना। उ०—पहल पहल जो रूई झाँपै। हहरि हहरि अधिको हिय काँपै।—जायसी। (२) डर के मारे काँप उठना। दहलना। बहुत डर जाना। थर्राना। उ०—नाथ! भलो रघुनाथ मिले रजनीचर-सेन हिये हहरी। (३) दंग रह जाना। चकित रह जाना। आश्चर्य से ठक रह जाना। (४) कोई बात बहुत अधिक देखकर क्षुब्ध होना। डाह करना। सिहाना। उ०—काम बाग अंदम की उपमा न देत बनै, देखि के विभव जाको सुरतरु हहरत।—कोई कवि। (५) कोई वस्तु बहुत अधिक देखकर दंग होना। अधिकता देखकर चकपकाना। उ०—हहर हहर परे बहरि कहरि उठै, हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरिकै।—तुलसी।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

हहराना-क्रि० अ० [अनु०] (१) काँपना। थरथराना। (२) डर के मारे काँपना। दहलना। थर्राना। उ०—घंघट चपेट चरन चपेट चाहैं, हहराती फौजें भहरानी जातुधान की।—तुलसी। (३) डरना। भयभीत होना। (४) दे० "हहराना"।

क्रि० स० दहलाना। भयभीत करना।

हहलाना-क्रि० अ० दे० "हहरना"।

हहलाना-क्रि० अ०, क्रि० स० दे० "हहराना"।

हहा-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) हँसने का शब्द। ठट्ठा। जैसे,—क्यों 'हहा हहा' करते हो? (२) दीनतासूचक शब्द। गिड़गिड़ाने का शब्द। अत्यंत अनुनय विनय का शब्द। (३) विनती। चिरौरी। गिड़गिड़ाहट।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—हहा खाना = हाहा खाना। बहुत गिड़गिड़ाना। बहुत विनती करना।

(४) हाहाकार।

हाँ-अव्य० [सं० आम्] (१) स्वीकृति-सूचक शब्द। सम्मति-सूचक शब्द। वह शब्द जिसके द्वारा यह प्रकट किया जाता है कि हम यह बात करने को तैयार हैं। जैसे,—प्रश्न—तुम वहाँ जाओगे? उत्तर—"हाँ"। (२) एक शब्द जिसके द्वारा यह प्रकट किया जाता है कि वह बात जो पूछी जा रही है, ठीक है। जैसे,—प्रश्न तुम वहाँ गए थे? उत्तर—हाँ।

मुहा०—हाँ करना = (१) स्वीकार होना। सम्मत होना। राजी होना। (२) ठीक मान लेना। यह मानना कि कोई बात ऐसी ही है। हाँ न करना = इधर उधर की बात कहकर जल्दी स्वीकार न करना। न मानना। न राजी होना। हाँ हाँ करना = (१) स्वीकार-सूचक शब्द कहना। मान लेना। जैसे,—अभी तो हाँ हाँ कर रहा है, पीछे धोखा देगा। (२) बात न काटना। 'ठीक है', 'ठीक है' कहना। (३) खुशामद करना। हाँ जी हाँ जी करना = खुशामद करना। चापलूसी करना। हाँ में हाँ मिलाना = (१) बिना विचार किए बात का समर्थन करना। प्रसन्न करने के लिये किसी के मन की बात कहना। (२) खुशामद करना। चापलूसी करना।

(३) कोई बात स्वीकार न करने पर भी दूसरे रूप में स्वीकार सूचित करनेवाला शब्द। वह शब्द जिसके द्वारा किसी बात का दूसरे रूप में, या अंशतः माना जाना प्रकट किया जाता है। (यह बात तो नहीं है या ऐसा तो मैं नहीं कर सकता) पर इतना हो सकता है, या इतनी बात मानी जा सकती है। जैसे,—(क) तुम्हें हम अपने साथ तो न ले चलेंगे, हाँ, पीछे से आ सकते हो। (ख) हमारे सामने तो वह कुछ नहीं कहता; हाँ औरों से कहता हो तो नहीं जानते। ⊛ (४) दे० "यहाँ"।

हाँक-संज्ञा स्त्री० [सं० हुंकार] (१) किसी को बुलाने के लिये ज़ोर से निकला हुआ शब्द। ज़ोर की पुकार। उच्च स्वर से किया हुआ संबोधन।

यौ०—हाँक पुकार।

मुहा०—हाँक देना या हाँक लगाना = ज़ोर से पुकारना। हाँक मारना = दे० "हाँक लगाना"। हाँक पुकार कर कहना = डंके की चोट कहना। सबके सामने निर्भय और निस्संकोच कहना। सबको सुनाकर कहना।

(२) लड़ाई में धावा या आक्रमण करते समय गर्वसूचक चिल्लाहट। डाँट। दपट। ललकार। हुंकार। गर्जन। उ०—रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत सुनत हनुमान की हाँक बाँकी। (३) बढ़ावे का शब्द। उत्साह दिलाने का शब्द। बढ़ावा। उ०—तुलसी उत्र हाँक दसानन देत, अचेत भे बीर को धीर धरै।—तुलसी। (४)

सहायता के लिये की हुई पुकार। उ०—बसंत श्री सहित वैकुंठ के बीच गजराज की हाँक पै दौरि आए।—सूर।

हाँकना–क्रि० स० [हिं० हाँक+ना (प्रत्य०)] (१) जोर से पुकारना। चिल्लाकर बुलाना। (२) ललकारना। लड़ाई में धावे के समय गर्व से चिल्लाना। हुंकार करना। उ०—भूमि परे भट घूमि कराहत, हाँकि हने हनुमान हठीलें।—तुलसी। (३) बढ़ बढ़ कर बोलना। लंबी चौड़ी बातें कहना। सीटना। जैसे,–(क) हमारे सामने वह इतना नहीं हाँकता। (ख) शेखी हाँकना। डींग हाँकना। (ग) वह दूकानदार बहुत दाम हाँकता है। (४) मुँह से बोलकर या चाबुक आदि मारकर जानवरों (घोड़े, बैल आदि) को आगे बढ़ाना। जानवरों को चलाना। जैसे,—बैल हाँकना। (५) खींचनेवाले जानवर को चलाकर गाड़ी, रथ आदि चलाना। गाड़ी चलाना। उ०—खोज मारि रथ हाँकहु ताता।—तुलसी। (६) मारकर या बोलकर चौपायों को भगाना। चौपायों को किसी स्थान से हटाना। जैसे,—खेत में गाएँ पड़ी हैं, हाँक दो।

संयो० क्रि०—देना।

(७) पंखा हिलाना। बीजन डुलाना। झलना। (८) पंखे से हवा पहुँचाना। हवा करना। जैसे,—मुझे मत हाँको, उन लोगों को हाँको।

हाँगर–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बड़ी मछली।

हाँगा–संज्ञा पुं० [सं० अंग] (१) शरीर का बल। बूता। ताक़त।

मुहा०—हाँगा छूटना=बल काम न करना। साहस छूटना। हिम्मत न रहना।

(२) ज़बरदस्ती। अत्याचार। धींगाधींगी। जैसे,—पुलिस-वाले सबके साथ हाँगा करते हैं।

हाँगी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हाँ] हामी। स्वीकृति।

मुहा०—हाँगी भरना=हामी भरना। स्वीकार करना। मानना या अंगीकार करना। उ०—हारि हारी पुलक, प्रसेद हू निवारि हारी, नेक रसना हू तें भरी न कछु हाँगी री। एते पै रह्यो न प्रान मोहन लट्टू पै भट्टू, टूक टूक ह्वै कै जो लटूक भई आँगी री।—पद्माकर।

हाँड़ना–क्रि० अ० [सं० अवडन] व्यर्थ इधर उधर फिरना। आवारा घूमना।

वि० [स्त्री० हाँड़नी] हाँड़नेवाला। व्यर्थ इधर उधर घूमनेवाला। आवारा फिरनेवाला। जैसे,—हाँड़नी नारि।

हाँड़ी–संज्ञा पुं० [सं० भांड, हिं० हंडा ('हंडिका' प्राकृत से लिया प्रतीत होता है)] (१) मिट्टी का मझोला बरतन जो बटलोई के आकार का हो। हँड़िया।

मुहा०—हाँड़ी उबलना=(१) हाँड़ी में पकाई जानेवाली चीज़ का गरम होकर ऊपर आना। (२) खुशी से फूलना। इतराना। हाँड़ी पकना=(१) हाँड़ी में पकाई जानेवाली चीज़ का पकना। (२) षड्यंत्र होना। मुँह से बहुत बातें निकलना। (३) भीतर ही भीतर कोई युक्ति खड़ी होना। कोई षट्चक्र रचा जाना। कोई मामला तैयार किया जाना। जैसे,—भीतर ही भीतर खूब हाँड़ी पक रही है। किसी के नाम पर हाँड़ी फोड़ना=किसी के चले जाने पर प्रसन्न होना। हाँड़ी चढ़ना=कोई चीज़ पकाने के लिये हाँड़ी का आग पर रखा जाना। उ०—जैसे हाँड़ी काठ की चढ़ै न दूजी बार। बावली हाँड़ी=वह भोजन जिसमें बहुत सी चीज़ें एक में मिल गई हों।

(२) इसी आकार का शीशे का पात्र जो सजावट के लिये कमरे में टाँगा जाता है और जिसमें मोमबत्ती जलाई जाती है।

हाँता⊛–वि० [सं० हान=छोड़ा हुआ] [स्त्री० हाँती] (१) अलग किया हुआ। त्याग किया हुआ। छोड़ा हुआ। (२) दूर किया हुआ। हटाया हुआ। उ०—(क) प्रिया, बचन कस कहसि कुभाँती। भीरु प्रतीति प्रीति करि हाँती।—तुलसी। (ख) जानत प्रीति रीति रघुराई। नाते सब हाँते करि राखत राम-सनेह सगाई।—तुलसी। (ग) कंत, सुनु मंत, कुल अंत किए अंत हानि, हाँतो कीजै हीय तें भरोसो भुज बीस को।—तुलसी।

हाँपना–क्रि० अ० दे० "हाँफना"।

हाँफना–क्रि० अ० [अनु० हँफ हँफ या सं० हाफिक] कड़ी मिहनत करने, दौड़ने या रोग आदि के कारण ज़ोर ज़ोर से और जल्दी जल्दी साँस लेना। तीव्र श्वास लेना। जैसे,—वह चार क़दम चलता है तो हाँफने लगता है।

हाँफा–संज्ञा पुं० [हिं० हाँफना] हाँफने की क्रिया या भाव। तीव्र और क्षिप्र श्वास। जल्दी जल्दी चलती हुई साँस।

क्रि० प्र०—छूटना।

हाँफी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हाँफना] हाँफने की क्रिया या भाव। तीव्र और क्षिप्र श्वास। जल्दी जल्दी चलती हुई साँस।

हाँबीरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रागिनी।

हाँमेला–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

हांस–वि० [सं०] हंस-संबंधी।

हाँसा†–संज्ञा स्त्री० दे० "हँसी"।

हाँसना†⊛–क्रि० अ० दे० "हँसना"।

हाँसल–संज्ञा पुं० [हिं० हाँस] घोड़ों का एक भेद। वह घोड़ा जिसका रंग मेंहदी सा लाल और चारो पैर कुछ काले हों। कुम्मैत हिनाई। उ०—हाँसल गौर गियाह बखाने।—जायसी।

हाँसली†–संज्ञा स्त्री० दे० "हँसली"।

हाँसिल–संज्ञा स्त्री० [अं० हाजर] (१) रस्सा लपेटने की गराड़ी। (२) लंगर की रस्सी। पाग़र। (लश्करी)

क्रि० प्र०—तानना।

हाँसी–संज्ञा स्त्री० [सं० हास] (१) हँसी। हँसने की क्रिया या भाव। (२) परिहास। हँसी ठट्ठा। दिल्लगी। मज़ाक़। ठठोली। उ०—(क) निर्गुन कौन देस को बासी। ऊधो! नेकु हमहिं समुझावहु, पूछति साँच न हाँसी।—सूर। (ख) हमरे प्रान अघात होत हैं, तुम जानत हौ हाँसी।—सूर। (३) उपहास। निंदा। उ०—(क) ऊधो, कही सो बहुरि न कहियो। हाँसी होन लगी या ब्रज में, अनबोले ही रहियो।—सूर। (ख) जेते पैंड़दार दरबार सरदार सब ऊपर प्रताप दिल्लीपति को अभंग भो। मतिराम कहै करवाल के कसैया केते गाडर से मूँड़, जग हाँसी को प्रसंग भो।—मतिराम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हाँसुल–संज्ञा पुं० दे० "हाँसल"।

हाँ हाँ–अव्य० [हिं० नहीं = नहीं] निषेध या वारण करने का शब्द। वह शब्द जिसे बोलकर किसी को कोई काम करने से चटपट रोकते हैं। जैसे,—हाँ हाँ! यह क्या कर रहे हो?

हा–अव्य० [सं०] (१) शोक या दुःखसूचक शब्द। (२) आश्चर्य या आह्लादसूचक शब्द। (३) भयसूचक शब्द।

यौ०—हा हा।

संज्ञा पुं० हनन करनेवाला। मारनेवाला। वध या नाश करनेवाला। उ०—कौन शत्रु तैं हत्यो कि नाम शत्रुहा लिया?—केशव।

हाइ–अव्य० दे० "हाय"।

हाइफन–संज्ञा पुं० [अं०] एक विरामचिह्न जो एक में समस्त दो या अधिक शब्दों के बीच में लगाया जाता है। जैसे,—रघुकुल-कमल-दिवाकर।

हाई–संज्ञा स्त्री० [सं० घात] (१) दशा। हालत। अवस्था। जैसे,—अपनी हाई और पर हाई। (२) ढंग। घात। तौर। ढब। उ०—ऊधो, दीनी प्रीति दिखाई। बातनि सुहृद, करम कपटी के, चले चोर की हाई।—सूर।

हाई कोर्ट–संज्ञा पुं० [अं०] हिंदुस्तान में किसी प्रांत की दीवानी और फौजदारी की सबसे बड़ी अदालत। सबसे बड़ा न्यायालय।

विशेष—हिंदुस्तान के प्रत्येक बड़े सूबे में एक हाई कोर्ट है। जैसे,—कलकत्ता हाई कोर्ट। इलाहाबाद हाई कोर्ट।

हाइड्रोफोबिया–संज्ञा पुं० [अं०] शरीर के भीतर एक प्रकार का उपद्रव या व्याधि जो पागल कुत्ते, गीदड़ आदि के काटने से होता है। इसमें मनुष्य प्यास के मारे व्याकुल रहता है, पर पानी सामने आने से चिल्लाकर भागता है। जलातंक।

हाईस्कूल–संज्ञा पुं० [अं०] अँगरेज़ी की बड़ी पाठशाला जिसमें कालेज की पढ़ाई के पहले की पूरी पढ़ाई होती है।

हाउस–संज्ञा पुं० [अं०] (१) घर। मकान। जैसे,—बोर्डिंग हाउस, कानी हाउस। (२) कोठी। बड़ी दूकान। जैसे,—हाउस की दलाली। (३) सभा। मंडली। जैसे,—हाउस आफ़ लार्ड्स।

हाऊ–संज्ञा पुं० [अनु०] एक कल्पित भयानक जंतु जिसका नाम बच्चों को डराने के लिये लिया जाता है। हौवा। भकाऊँ। जूजू। उ०—खेलन दूरि जात कित कान्हा। आजु सुन्यो बन हाऊ आयो तुम नहिं जानत नान्हा।—सूर।

हाकल–संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ और अंत में एक गुरु होता है। इसके पहले और दूसरे चरण में ११ और तीसरे और चौथे चरण में १० अक्षर होते हैं।

हाकलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] पंद्रह अक्षरों का एक वर्णवृत्त। उ०—नीरज तें निकसीं तिय सबै। सोहति हैं बिनु भूषन सबै।

हाकली–संज्ञा स्त्री० [सं०] दस अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में तीन भगण और एक गुरु होता है।

हाकिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घोर देवी। (तंत्र)

हाकिम–संज्ञा पुं० [अ०] (१) हुकूमत करनेवाला। शासक। गवर्नर। प्रधान अधिकारी (२) बड़ा अफ़सर।

हाकिमी–संज्ञा स्त्री० [अ० हाकिम + ई (प्रत्य०)] हाकिम का काम। हुकूमत। प्रभुत्व। शासन। उ०—कहूँ हाकिमी करत है, कहुँ बंदगी भाय। हाकिम बंदा आप ही दूजा नहीं देखाय।—रसनिधि।

वि० हाकिम का। हाकिम-संबंधी।

हॉकी–संज्ञा पुं० [अं०] एक खेल जिसमें एक टेढ़ी लकड़ी या डंडे से गेंद मारते हैं। चौगान की तरह का एक अँगरेजी खेल।

हाजत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) ज़रूरत। आवश्यकता। (२) चाह। (३) पहरे के भीतर रखा जाना। हिरासत। हवालात।

मुहा०—हाजत में देना = पहरे के भीतर देना। हवालात में डालना। हाजत में रखना = हवालात में रखना।

हाज़मा–संज्ञा पुं० [अ०] पाचन क्रिया। पाचन-शक्ति। भोजन पचने की क्रिया।

मुहा०—हाज़मा बिगड़ना = अन्न न पचना।

हाज़िम–वि० [अ०] हज़म करनेवाला। भोजन पचानेवाला। पाचक।

हाज़िर–वि० [अ०] (१) सम्मुख उपस्थित। सामने आया हुआ। मौजूद। विद्यमान। जैसे,—(क) तुम उस दिन हाज़िर नहीं थे। (ख) जो कुछ मेरे पास है, हाज़िर है। (२) कोई काम करने के लिये सन्नद्ध। प्रस्तुत। तैयार। जैसे,—मेरे लिये जो हुक्म होगा, मैं हाज़िर हूँ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—हाज़िर आना = हाज़िर होना।

हाज़िर-जवाब–वि० [अ०] उत्तर देने में निपुण। जोड़ की तोड़ बात कहने में चतुर। बात का चटपट अच्छा जवाब देने में होशियार। उपस्थित बुद्धि का। प्रत्युत्पन्न-मति। जैसे,—बीरबल बड़े हाज़िर-जवाब थे।

हाज़िर-जवाबी–संज्ञा स्त्री० [अ० हाज़िरजवाब + ई (हिं० प्रत्य०)] चटपट उत्तर देने की निपुणता। उपस्थित बुद्धि। प्रत्युत्पन्न-मतित्व। जैसे,—बीरबल की हाज़िरजवाबी से अकबर बहुत खुश रहता था।

हाज़िरबाश–वि० [अ० + फ़ा०] (१) सामने मौजूद रहनेवाला। बराबर सेवा में रहनेवाला। (२) लोगों के पास आकर बराबर मिलने जुलनेवाला।

हाज़िरबाशी–संज्ञा स्त्री० [अ० + फ़ा०] (१) सेवा में निरंतर उपस्थिति। (२) लोगों से जाकर मिलना जुलना। खुशामद।

हाज़िरात–संज्ञा पुं० [अ० हाज़िर + आत (हिं० प्रत्य०)] (१) भूतप्रेत बुलाने या दूर करनेवाला। ओझा। सयाना। (२) जादूगर।

हाज़िरात–संज्ञा स्त्री० [अ०] मंत्रना या पूजा आदि के द्वारा किसी के ऊपर कोई आत्मा बुलाना जिससे वह झूमने और अनेक प्रकार की बातें कहने लगता है।

हाजी–संज्ञा पुं० [अ०] (१) हज करनेवाला। तीर्थाटन के लिये मक्के मदीने जानेवाला। (२) वह जो हज कर आया हो। (मुसल०)

हाट–संज्ञा स्त्री० [सं० हट्ट] (१) वह स्थान जहाँ कोई व्यवसायी बेचने के लिये चीज़ें रखकर बैठता है। दूकान। (२) वह स्थान जहाँ बिक्री की सब प्रकार की वस्तुएँ रहती हों। बाजार।

यौ०—हाटबाट।

मुहा०—हाट करना = (१) दूकान रखकर बैठना। (२) सौदा लेने के लिये बाज़ार जाना। जैसे,—वह भी हाट बाजार करती है। हाट बाजार करना = सौदा लेने बाज़ार जाना। हाट खोलना = (१) दूकान रखना। रोज़गार करना। (२) दूकान पर आकर बिक्री की चीजें निकाल कर रखना। हाट लगना = दूकान या बाजार में बिक्री की चीज़ें रखी जाना। हाट चढ़ना = बाजार में बिकने के लिये आना। उ०—पंडित होइ सो हाट न चढ़ा।—जायसी। (३) बाजार लगने का दिन।

हाटक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देश का नाम। (महाभारत) (२) सोना। स्वर्ण। उ०—फाटक दै कर हाटक माँगत भोरी निपट बिचारी।—सूर।

हाटकपुर–संज्ञा पुं० [सं०] (सोने की बनी हुई) लंका।

हाटकलोचन–संज्ञा पुं० [सं०] हिरण्याक्ष दैत्य। उ०—कनककसिपु अरु हाटकलोचन। जगत बिदित सुरपति-पद-मोचन।—तुलसी।

हाटकीय–वि० [सं०] (१) सोने का। सोना संबंधी। (२) सोने का बना हुआ।

हाटकेश–संज्ञा पुं० [सं०] शिव की एक मूर्ति या रूप का नाम जिसकी उपासना गोदावरी के तट पर होती है।

हाड़‡–संज्ञा पुं० [सं० हड्ड] (१) हड्डी। अस्थि। उ०—चरग-चंगु-गत चातकहि नेम प्रेम की पीर। तुलसी परबस हाड़ परि परिहै पुहुमी नीर।—तुलसी। (२) वंश या जाति की मर्यादा। कुलीनता।

हाड़ना†–क्रि० स० [सं० हरण] तौलने में बरतन आदि के कारण किसी पलड़े के भारी पड़ने पर दूसरे पलड़े पर पत्थर आदि रखकर दोनों पलड़े ठीक बराबर करना। अहँडा करना। धड़ा करना।

क्रि० स० दे० "हाँड़ना"।

हाड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० आर, आड़ = डंक] लाल रंग की बड़ी भिड़। लाल ततैया।

संज्ञा पुं० क्षत्रियों की एक शाखा।

हाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० हाडिक] (१) ज़मीन में पत्थर गाड़कर बनाया हुआ गड्ढा जिसमें अनाज रखकर साफ़ करने के लिये मूसल से कूटते हैं। (२) वह गड्ढेदार पत्थर जिस पर रखकर पीटने से पीतल आदि की चद्दर कटोरेनुमा बन जाती है।

संज्ञा पुं० [सं० आडि] (१) एक प्रकार का बगला। (२) कौआ।

हात–वि० [सं०] छोड़ा हुआ। त्यागा हुआ।

हातव्य–वि० [सं०] छोड़ने योग्य। त्याज्य।

हाता–संज्ञा पुं० [अ० इहातः] (१) घेरा हुआ स्थान। वह जगह जिसके चारो ओर दीवार खिंची हो। बाड़ा। (२) देश-विभाग। मंडल। इलाका या सूबा। प्रांत। जैसे,—बंगाल हाता। बंबई हाता। (३) सेक। हद। सीमा।

वि० [सं० हात] [स्त्री० हाती] (१) अलग। दूर किया हुआ। हटाया हुआ। उ०—(क) कंत सुनु मंत, कुल अंत किए अंत हानि हातो कीजै हीय तें भरोसो भुज बीस को।—तुलसी। (ख) आनत प्रीति रीति रघुराई। नाते सब हाते करि राखत राम-सनेह सगाई।—तुलसी। (ग) मधुकर! रह्यो जोग लौं नातो। कतहिं बकत बेकाम काज बिनु, होय न ह्याँ ते हातो।—सूर। (घ) हरि से हितू सों भ्रमि भूलि हू न कीजै मान हातो किए हिय हू सों होत हित हानिये।—केशव। (२) नष्ट। बरबाद।

संज्ञा पुं० [सं० हंता] मारनेवाला। वध करनेवाला। (समास में)

हातिम–संज्ञा पुं० [अ०] (१) निपुण। चतुर। कुशल। (२) किसी काम में पक्का आदमी। उस्ताद। जैसे,—वह कहने

में बड़े हातिम हैं। (३) एक प्राचीन अरब सरदार जो बड़ा दानी, परोपकारी और उदार प्रसिद्ध है।

मुहा०—हातिम की कबर पर लात मारना = बहुत अधिक उदारता या परोपकार करना। (व्यंग्य)

(४) अत्यंत दानी मनुष्य। अत्यंत उदार मनुष्य।

हातु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मृत्यु। मौत। (२) सड़क।

हाथ-संज्ञा पुं०, [सं० हस्त, प्रा० हत्थ] (१) मनुष्य, बंदर आदि प्राणियों का वह दंडाकार अवयव जिससे वे वस्तुओं को पकड़ते या छूते हैं। बाहु से लेकर पंजे तक का अंग विशेषतः कलाई और हथेली या पंजा। कर। हस्त।

मुहा०—हाथ आना, हाथ पड़ना, हाथ चढ़ना = दे० "हाथ में आना या पड़ना"। हाथ में आना, पड़ना = अधिकार या वश में आना। कब्जे या काबू में आना। मिलना या अख्तियार में हो जाना। जैसे,—(क) सब वही ले लेगा, तुम्हारे हाथ में कुछ भी न आवेगा। (ख) अब तो वह हमारे हाथ में है, जैसा कहेंगे वैसा करेगा। (किसी को) हाथ उठाना = सलाम करना। प्रणाम करना। (किसी पर) हाथ उठाना = किसी को मारने के लिये थप्पड़ या घूँसा तानना। मारना। जैसे,—बच्चे पर हाथ उठाना अच्छी बात नहीं। हाथ उठाकर देना = अपनी खुशी से देना। जैसे,—कभी हाथ उठाकर एक पैसा भी तो नहीं दिया है। हाथ उठाकर कोसना = शाप देना। किसी के अनिष्ट की ईश्वर से प्रार्थना करना। हाथ उतरना = हाथ की हड्डी उखड़ जाना। हाथ ऊँचा होना = (१) दान देने में प्रवृत्त होना। (२) देने लायक होना। खर्च करने लायक होना। संपन्न होना। हाथ कट जाना = (१) कुछ करने लायक न रह जाना। साधन या सहायक का अभाव हो जाना। (२) प्रतिज्ञा आदि से बद्ध हो जाना। इच्छानुसार कुछ करने के लिये स्वच्छंद न रह जाना। हाथ कटा देना = (१) अपने को कुछ करने योग्य न रखना। साधन या सहायक खो देना। (२) अपने को प्रतिज्ञा आदि से बद्ध कर देना। कोई ऐसा काम करना जिससे इच्छानुसार कुछ करने की स्वतंत्रता न रह जाय। बँध जाना। हाथ करना = हाथ चलाना। वार करना। प्रहार करना। हाथ का झूठा = अविश्वसनीय। जिस पर एतबार न किया जा सके। धोखेबाज। बेईमान। हाथ का दिया = दान दिया हुआ। प्रदत्त। जैसे,—(क) तुम्हारे हाथ का दिया हम कुछ भी नहीं जानते। (ख) हाथ दिया साथ जाता है। हाथ का सच्चा = (१) ईमानदार। (२) अचूक वार करनेवाला। ऐसा वार करनेवाला जो खाली न जाय। (३) ऐसा सटीक काम करनेवाला जिसमें भूल चूक न हो। हाथ की मैल = बराबर हाथ में आता जाता रहनेवाला। साधारण वस्तु। तुच्छ वस्तु। जैसे,—रुपया पैसा हाथ की मैल है। (किसी के) हाथ की चिट्ठी या पुरजा = किसी की लिखी हुई चिट्ठी या पुरजा। हस्तलेख। हाथ की लकीर = (१) हथेली में पड़ी हुई लकीरें। हस्तरेखा जिनसे शुभाशुभ फल कहा जाता है। (२) भाग्य। किस्मत। हाथ के नीचे आना या हाथ तले आना = काबू में आना। वश में होना। ऐसी स्थिति में पड़ना कि जो बात चाहें कराई जा सके। हाथ खाली जाना = (१) वार चूकना। प्रहार न बैठना। (२) युक्ति सफल न होना। चाल चूक जाना। हाथ खाली होना = पास में कुछ द्रव्य न रह जाना। रुपया पैसा न रहना। हाथ खाली न होना = काम में फँसा रहना। फुरसत न होना। हाथ खुजलाना = (१) मारने को जी करना। थप्पड़ लगाने की इच्छा होना। (२) मिलने का आगम होना। प्राप्ति के लक्षण दिखाई पड़ना। (ऐसा विश्वास है कि जब हथेली में खुजलाहट होती है, तब कुछ मिलता है। हाथ खींचना = (१) किसी काम से अलग हो जाना। योग न देना। (२) खर्च बंद कर देना। देना बंद कर देना। हाथ खुलना = (१) दान में प्रवृत्ति होना। (२) खर्च करना। जैसे,—कृपण के मारे उनका हाथ नहीं खुलता है। हाथ खोलना = (१) खूब दान देना। खैरात करना। (२) खूब खर्च करना। हाथ गरम होना = दे० "मुट्ठी गरम होना"। हाथ चलना = (१) किसी काम में हाथ का हिलना डोलना। जैसे,—अभ्यास न होने से उसका हाथ जल्दी जल्दी नहीं चलता। (२) मारने के लिये हाथ उठना। थप्पड़ या घूँसा तनना। जैसे,—तुम्हारा हाथ बड़ी जल्दी चल जाता है। हाथ चलाना = (१) किसी काम में हाथ हिलाना डुलाना। (२) मारने के लिये थप्पड़ तानना। मारना। (३) किसी वस्तु को छूने या लेने के लिये हाथ बढ़ाना। जैसे,—छाती पर हाथ चलाना। हाथ चूमना = किसी की कला-निपुणता पर मुग्ध होकर उसके हाथों को प्यार करना। किसी की कारीगरी पर इतना खुश होना कि उसके हाथों को प्रेम की दृष्टि से देखना। जैसे,—(क) इस चित्र को देखकर जी चाहता है कि चित्रकार के हाथ चूम लूँ। (ख) यह काम कर डालो तो हाथ चूम लूँ। हाथ चालाक या हाथ-चला = (१) फुरती से दूसरे की चीज उड़ा लेनेवाला। दूसरे की वस्तु लेने में हाथ की सफाई दिखानेवाला। (२) किसी काम में हाथ की सफाई दिखानेवाला। हस्तलाघव दिखानेवाला। हाथ चालाकी = हाथ की सफाई या फुरती। हस्तकौशल। हस्तलाघव। हाथ चाटना = सामने रखा भोजन कुछ भी न छोड़ना, सब खा जाना। सब खाकर भी न तृप्त होना। हाथ छूटना = मारने के लिये हाथ उठना। (किसी पर) हाथ छोड़ना = मारना। प्रहार करना। हाथ जड़ना = थप्पड़ मारना। प्रहार करना। हाथ जोड़ना = (१) प्रणाम करना। नमस्कार करना। (२) अनुनय विनय करना। (३) प्रार्थना करना। (दूर से) हाथ जोड़ना = संसर्ग या संबंध न रखना। किनारे रहना। पीछा छुड़ाना। जैसे,—ऐसे आदमियों को हम दूर ही से हाथ जोड़ते हैं। हाथ जूठा होना = हाथ में खाने पीने की चीज लगी रहना या हाथ का कुछ में पड़ जाना। (ऐसा हाथ

अशुद्ध माना जाता है।) (किसी काम में) हाथ जमना = दे० "हाथ बैठना"। हाथ झाड़ना = (१) लड़ाई में खूब शस्त्र चलाना। खूब हथियार चलाना। (२) वार करना। प्रहार करना। खूब मारना। हाथ झुलाते या हिलाते आना = कुछ भी लेकर न आना। खाली हाथ लौटना। हाथ झाड़ देना = खाली हाथ हो जाना। कह देना कि मेरे पास कुछ नहीं है। हाथ झाड़कर खड़े हो जाना = खाली हाथ दिखा देना। कह देना कि मेरे पास कुछ नहीं है। जैसे,—तुम्हारा क्या ? तुम तो हाथ झाड़कर खड़े हो जाओगे, सारा खर्च हमारे ऊपर पड़ेगा। हाथ टेकना = सहारा देना। हाथ डालना = (१) किसी काम में हाथ लगाना। योग देना। (२) दखल देना। (३) स्त्री को हाथ लगाना। (४) लूटना। माल मारना। हाथ तकना = दूसरे के देने के आसरे रहना। दूसरे के आश्रित रहना। हाथ तंग होना = खर्च करने के लिये रुपया पैसा न रहना। निर्धन होना। हाथ थिरकाना या नचाना = नाचने या बोलने में हाथ मटकाना या हिलाना। हाथ दिखाना = नजर झड़वाना। भूत प्रेत की बाधा शांत करने के लिये सयाने को दिखाना। हाथ दिखाना = (१) भविष्य शुभाशुभ जानने के लिये सामुद्रिक-जाननेवाले से हाथ की रेखाओं का विचार कराना। (२) वैद्य को नाड़ी दिखाना। हाथ देखना = (१) नाड़ी देखना। (२) सामुद्रिक का विचार करना। हाथ देना = (१) सहारा देना। (२) बाजी लगाना। (३) गुप्त रूप से सौदा तै करना। (४) दीया बुझाना। (५) भूत प्रेत की बाधा का विचार करना। (६) रोकना। मना करना। (किसी का) हाथ धरना = (१) कोई काम करने से रोकना। जैसे,—जिसको जो चाहें दें, कोई हाथ धर सकता है। (२) किसी को सहारा देना। अपनी रक्षा में लेना। (३) पाणिग्रहण करना। विवाह करना। (किसी पर) हाथ धरना = किसी को आशीर्वाद देना। (किसी वस्तु या बात से) हाथ धोना = खो देना। प्राप्ति की संभावना न रखना। नष्ट करना। जैसे,—(क) जान से हाथ धोना। (ख) मकान से हाथ धोना। हाथ धोकर पीछे पड़ना = (१) किसी काम में जी जान से लग जाना। सब कुछ छोड़कर प्रवृत्त हो जाना। किसी को हानि पहुँचाने में सब काम धंधा छोड़कर लग जाना। जैसे,—न जाने क्यों यह आज कल हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ा है। हाथ न रखने देना या पुट्ठे पर हाथ न धरने देना = (१) बहुत तेजी दिखाना। हाथ रखते ही चमकने कूदने या दौड़ने लगना। (घोड़े के लिये) (२) जरा भी बातों में न आना। थोड़ी सी बात भी मानने के लिये तैयार न होना। दूर रहना। जैसे,—उसे कैसे राजी करें, हाथ तो रखने ही नहीं देता। हाथ पकड़ना = (१) किसी काम से रोकना। (२) सहारा देना। (३) आश्रय देना। शरण में लेना। रक्षक होना। (४) पाणिग्रहण करना। विवाह करना। हाथ पड़ना = (१) हाथ लगना। हाथ छू जाना। (२) धावा पड़ना। डाका पड़ना। लूट होना। जैसे,—आज बाजार में हाथ पड़ गया। हाथ पत्थर तले दबना = (१) मुश्किल में फँसना। संकट या कठिनता की स्थिति में पड़ना। (२) कुछ कर धर न सकना। कुछ करने की शक्ति या अवकाश न रहना। (३) लाचार होना। विवश होना। (४) किसी चलते हुए काम को बंद करने के लिये विवश होना। हाथ पर गंगाजली रखना = गंगा की शपथ देना। कसम खिलाना। हाथ पर नाग खेलाना = अपनी जान जोखों में डालना। प्राण संकट में डालना। हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना = खाली बैठे रहना। कुछ काम धंधा न करना। हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाना = निराश हो जाना। हाथ पर हाथ मारना = (१) प्रतिज्ञा करना। किसी बात को दृढ़ करना। किसी बात को पक्का करना। (२) बाजी लगाना। हाथ पसारना या फैलाना = कुछ माँगना। याचना करना। (किसी के आगे) हाथ पसारना या फैलाना = (किसी से) कुछ माँगना। याचना करना। जैसे,—हम गरीब हैं तो किसी के आगे हाथ फैलाने तो नहीं जाते। हाथ पसारे जाना = इस संसार से खाली हाथ जाना। परलोक में कुछ साथ न ले जाना। हाथ पाँव चलना = काम धंधे के लिये सामर्थ्य होना। कार्य्य करने की योग्यता होना। जैसे,—इतने बड़े हुए, तुम्हारे हाथ पाँव नहीं चलते हैं। हाथ पाँव चलाना = काम धंधा करना। हाथ पाँव टूटना = (१) अंग भंग होना। (२) शरीर में पीड़ा होना। हाथ पाँव ठंढे होना = (१) शरीर में गरमी न रह जाना। मरणासन्न होना। (२) भय या आशंका से स्तब्ध हो जाना। ठक हो जाना। हाथ पाँव तोड़ना = (१) अंग भंग करना। (२) हाथ पाँव थराना। डर के मारे बेकैसी होना। हाथ पाँव निकालना = (१) शरीर हृष्ट-पुष्ट होना। मोटा ताजा होना। (२) सीमा का अतिक्रमण करना। हद से गुजरना। (३) नटखटी करना। शरारत करना। (४) छेड़छाड़ करना। हाथ पाँव फूलना = भय से स्तब्ध होना। डर या शोक से घबरा जाना। हाथ पाँव बचाना = अपने शरीर की रक्षा करना। जैसे,—हाथ पाँव बचाकर काम करना। हाथ पाँव पटकना = छटपटाना। हाथ पाँव मारना या हिलाना = (१) तैरने में हाथ पैर चलाना। (२) शोक, दुःख या पीड़ा से छटपटाना। तड़पना। (३) घोर प्रयत्न करना। बहुत कोशिश करना। जैसे, उसने बहुत हाथ पाँव मारे पर उसे ले न सका। (४) बहुत परिश्रम करना। खूब मिहनत करना। हाथ पाँव से छूटना = अच्छी तरह बच्चा पैदा होना। सहज में कुशल-पूर्वक प्रसव होना। (स्त्रि०) हाथ पाँव हारना = (१) साहस छोड़ना। हिम्मत हारना। (२) निराश होना। हाथ पीले करना = (१) किसी प्रकार विवाह कर देना। (२) विवाह करना। (हिंदुओं में विवाह के समय शरीर में हल्दी लगाने की रीति है।) हाथ पैर जोड़ना = बहुत विनती करना। अनुनय विनय करना। हाथ फेंकना = हाथ चलाना। वार करना। हथियार चलाना। (किसी पर) हाथ फेरना = प्यार से शरीर सहलाना। प्यार

करना। (किसी वस्तु पर) हाथ फेरना = किसी वस्तु को उड़ा लेना। ले लेना। हाथ बंद होना = दे० "हाथ तंग होना"। हाथ बढ़ाना = (१) कोई वस्तु लेने के लिये हाथ फैलाना। (२) हद से बाहर जाना। सीमा का अतिक्रमण करना। (किसी काम में) हाथ बँटाना = शामिल होना। शरीक होना। योग देना। हाथ बाँधकर खड़ा होना = हाथ जोड़कर खड़ा होना। हाथ बाँधे खड़ा रहना = सेवा में बराबर उपस्थित रहना। खिदमत में हाज़िर रहना। (किसी के) हाथ बिकना = किसी को मोल दिया जाना। (किसी व्यक्ति का) किसी के हाथ बिकना = किसी का मोल दास होना। किसी का खरीदा गुलाम होना। किसी के बिल्कुल अधीन होना। (किसी काम में) हाथ बैठना या जमना = अभ्यास होना। मश्क़ होना। ऐसा अभ्यास होना कि हाथ बराबर ठीक चला करे। (किसी पर) हाथ बैठना या जमना = किसी पर ठीक और भरपूर थप्पड़ या वार पड़ना। वार खाली न जाना। हाथ भर आना = काम करते करते हाथ थक जाना। हाथ भरना = हाथ में रंग या महावर लगाना। हाथ मँजना = अभ्यास होना। मश्क़ होना। हाथ माँजना = अभ्यास करना। हाथ मलना = (१) भूल चूक का बुरा परिणाम होने पर अत्यंत पश्चात्ताप करना। बहुत पछताना। (२) निराश और दुःखी होना। हाथ मारना = (१) बात पक्की करना। दृढ़ प्रतिज्ञा करना। (२) बाज़ी लगाना। (किसी वस्तु पर) हाथ मारना = उड़ा लेना। गायब कर लेना। बेईमानी से ले लेना। (भोजन पर) हाथ मारना = (१) खूब खाना। (२) बड़े बड़े कौर मुँह में डालना। हाथ मारकर भागना = दौड़ने और पकड़ने का खेल खेलना। हाथ मिलाना = (१) भेंट होने पर प्रेमपूर्वक एक दूसरे का हाथ पकड़ना। (२) लड़ना। पंजा लड़ाना। (३) सौदा पटाकर लेना। हाथ मींजना = दे० "हाथ मलना"। हाथ में करना = (१) वश में करना। काबू में करना। (२) अधिकार में करना। ले लेना। प्राप्त करना। (मन) हाथ में करना = मोहित करना। लुभाना। प्रेम में फँसाना। हाथ में ठीकरा लेना = भिक्षावृत्ति का अवलंबन करना। भीख माँगना। कंगाल हो जाना। हाथ में पड़ना = (१) अधिकार में आना। (२) वश में होना। काबू में आना। हाथ में लाना = दे० "हाथ में करना"। हाथ में लेना = (१) करने का भार ऊपर लेना। जिम्मे लेना। (२) अधिकार में करना। हाथ में हाथ देना = पाणिग्रहण कराना। (कन्या को) ब्याह देना। हाथ में होना = (१) अधिकार में होना। पास में होना। (२) वश में होना। अधीन होना। उ०—हानि लाभ जीवन मरन जस अपजस विधि हाथ।—तुलसी। हाथ में गुन या हुनर होना = किसी कला में निपुणता होना। हाथ रँगना = (१) हाथ में मेंहदी लगाना। (२) किसी बुरे काम में पड़कर अपने को कलंकित करना। कलंक माथे पर लेना। (३) रिशवत लेना। घूस लेना। (किसी का) हाथ रोकना = कोई काम न करने देना। कुछ करते समय हाथ थाम लेना। कुछ करने से मना करना। (अपना) हाथ रोकना = (१) किसी काम का करना बंद कर देना। किसी काम से अलग हो जाना। विरत हो जाना। (२) मारने के लिये हाथ उठाकर रह जाना। (३) खर्च करते समय आगा पीछा सोचना। सँभालकर खर्च करना। जैसे,—आमदनी घट गई है तो हाथ रोककर खर्च किया करो। हाथ रोपना या ओड़ना = हाथ फैलाना। माँगना। (कोई वस्तु) हाथ लगना = (१) हाथ में आना। मिलना। प्राप्त होना। जैसे,—तुम्हारे हाथ तो कुछ भी न लगा। (२) गणित करते समय वह संख्या जो अंतिम संख्या ले लेने पर बच रहती है। जैसे,—१२ के २ रखे, हाथ लगा १। (किसी काम में) हाथ लगना = (१) आरंभ होना। शुरू किया जाना। जैसे,—अब काम में हाथ लग गया तय हुआ समझो। (२) किसी के द्वारा किया जाना। किसी का लगाव होना। जैसे,—जिस काम में तुम्हारा हाथ लगता है, वह चौपट हो जाता है। (किसी वस्तु में) हाथ लगना = छू जाना। स्पर्श होना। (किसी काम में) हाथ लगाना = (१) आरंभ करना। शुरू करना। (२) करने में प्रवृत्त होना। योग देना। जैसे,—जिस काम में तुम हाथ लगाओगे, वह क्यों न अच्छा होगा (किसी वस्तु में) हाथ लगाना = छूना। स्पर्श करना। हाथ लगे मैला होना = इतना स्वच्छ और पवित्र होना कि हाथ से छूने से मैला होना। हाथ साधना = (१) यह देखने के लिये कोई काम करना कि उसे आगे अच्छी तरह कर सकते हैं या नहीं। (२) अभ्यास करना। मश्क़ करना। (३) दे० "हाथ साफ़ करना"। (किसी पर) हाथ साफ़ करना = किसी को मारना। (किसी वस्तु पर) हाथ साफ़ करना = बेईमानी से ले लेना। अन्याय से हरण करना। उड़ा लेना। (भोजन पर) हाथ साफ़ करना = खूब खाना। हाथ किसी के सिर पर रखना = किसी की रक्षा का भार ग्रहण करना। शरण या आश्रय में लेना। मुरब्बी होना। (अपने या किसी के सिर पर) हाथ रखना = सिर की कसम खाना। शपथ उठाना। हाथ से = द्वारा। मारफ़त। जैसे,—(क) तुम्हारे हाथ से यह काम हो जाता तो अच्छा था। (ख) तुमने किस के हाथ से रुपया पाया? हाथ से जाना या निकल जाना = (१) अधिकार में न रहना। कब्जे में न रह जाना। (२) वश में न रह जाना। काबू में न रह जाना। जैसे,—चीज़ हाथ से निकल जाना, अवसर हाथ से जाना। हाथ से हाथ मिलाना = दान देना। उत्सर्ग करना। अपने हाथ से दूसरे के हाथ पर कुछ रखना। जैसे,—आज एकादशी है, कुछ हाथ मिलाओ। हाथ हिलाते आना = (१) खाली हाथ लौटना। कुछ प्राप्त करके न आना। (२) बिना कार्य्य सिद्ध हुए लौटना आना। हाथों में चाँद आना = (१) पुत्र उत्पन्न होना। लड़का पैदा होना। (क्रि०) मन चाही वस्तु मिलना। हाथों में रखना = बड़े लाड़ प्यार से आदर सम्मान

से रखना। हाथों हाथ = एक के हाथ से दूसरे के हाथ में होते हुए। जैसे,—चीज हाथों हाथ वहाँ पहुँच गई। हाथों हाथ बिक जाना या उड़ जाना = खूब बिक्री होना। बड़ी गहरी माँग होना। जैसे,—ऐसी उपयोगी पुस्तक हाथों हाथ बिक जायगी। हाथों हाथ लेना = बड़े आदर और सम्मान से स्वागत करना। (किसी के) हाथ बेचना = किसी को मूल्य लेकर देना। (किसी के) हाथ भेजना = किसी के हाथ में देकर भेजना। किसी के द्वारा प्रेषित करना। (किसी के) हाथों = किसी के द्वारा।

(२) लंबाई की एक माप जो मनुष्य की कुहनी से लेकर पंजे के छोर तक की मानी जाती है। चौबीस अंगुल का मान। जैसे,—दस हाथ की धोती। बीस हाथ जमीन।

मुहा०—हाथों कलेजा उछलना = (१) बहुत जी धड़कना। (२) बहुत खुशी होना। हाथ भर कलेजा होना = (१) बहुत सुखी होना। आनंद से फूलना। (२) उत्साह होना। साहस बँधना।

(३) ताश, जूए आदि के खेल में एक एक आदमी के खेलने की बारी। दावँ। जैसे,—अभी चार ही हाथ तो हमने खेला है।

मुहा०—हाथ मारना = दावँ जीतना।

(४) किसी कार्य्यालय के कार्यकर्ता। कारखाने में काम करनेवाले आदमी। जैसे,—आज कल हाथ कम हो गए हैं; इसी से देर हो रही है। (५) किसी औज़ार या हथियार का वह भाग जो हाथ से पकड़ा जाय। दस्ता। मुठिया।

हाथकंडा-संज्ञा पुं० दे० "हथकंडा"।

हाथड़-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ] जाँते या चक्की की मुठिया।

हाथतोड़-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + तोड़ना] कुश्ती का एक पेच जिसमें जोड़ का पंजा उलटा पकड़ कर मरोड़ते हैं और उसी मरोड़े हुए हाथ के ऊपर से अपनी उसी बगल की टाँगें जोड़ की टाँगों में फँसाकर उसे चित करते हैं।

हाथ-धुलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + धुलाई] वह बँधी रकम जो चमारों को मरे हुए चौपायों के फेंकने के लिये दी जाती है।

हाथपान-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + पान] हाथफूल के समान हथेली की पीठ पर पहनने का एक गहना जो पान के आकार का होता है और जंजीरों के द्वारा अँगूठियों और कलाई से लगाकर बँधा रहता है।

हाथफूल-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + फूल] हथेली की पीठ पर पहनने का फूल के आकार का एक गहना जो सिकड़ियों के द्वारा अँगूठियों और कलाई से लगाकर बाँधा जाता है।

हाथबाँह-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + बाँह] बाँह करने (कसरत) का एक ढंग।

हाथा-संज्ञा पुं० [हिं० हाथ] (१) किसी औजार या हथियार का वह भाग जो मुट्ठी में पकड़ा जाता है। दस्ता। (२) दो तीन हाथ लंबा लकड़ी का एक औज़ार जिससे सिंचाई करते समय खेत में आया हुआ पानी उलीच कर चारो ओर पहुँचाते हैं। (३) पंजे की छाप या चिह्न जो गीले पिसे चावल और हल्दी आदि पोत कर दीवार पर छापने से बनता है। छापा। (उत्सव, पूजन आदि में स्त्रियाँ ऐसा छापा बनाती हैं।)

हाथा-छाँटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + छाँटना] (१) व्यवहार में कपट या बेईमानी। चालाकी। धूर्त्तता। चालबाज़ी। (२) चालबाज़ी या बेईमानी से रुपया पैसा उड़ाना। माल हज़म करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हाथाजोड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + जोड़ना] (१) एक पौधा जो औषध के काम में आता है। (२) सरकंडे की वह जड़ जो दो मिले हुए पंजों के आकार की बन जाती है। (इसका रखना लोग बहुत फलदायक मानते हैं।)

हाथापाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + पाँव] ऐसी लड़ाई जिसमें हाथ पैर चलाए जायँ। मुठभेड़। भिड़ंत। धौलधप्पड़।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हाथाबाँही-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ + बाँह] हाथापाई।

हाथाहाथी-अव्य० [हिं० हाथ + हाथ] (१) हाथोंहाथ। (२) तुरंत। जल्दी।

हाथी-संज्ञा पुं० [सं० हस्तिन्, हस्ती, प्रा० हत्थी] [स्त्री० हथिनी] एक बहुत बड़ा स्तनपायी जंतु जो सूँड़ के रूप में बढ़ी हुई नाक के कारण और सब जानवरों से विलक्षण दिखाई पड़ता है।

विशेष—यह ज़मीन से ७-८ हाथ ऊँचा होता है और इसका धड़ बहुत चौड़ा और मोटा होता है। धड़ के हिसाब से टाँगें छोटी और खंभे की तरह मोटी होती हैं। पैर के पंजे गोल चक्राकार होते हैं। आँखें डीलडौल के हिसाब से छोटी और कुछ ललाई लिये होती हैं। जीभ लंबी होती है। पूछ के छोर पर बालों का गुच्छा होता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है नाक जो एक गावदुम नली के समान ज़मीन तक लटकती रहती है और सूँड़ कहलाती है। यह सूँड़ हाथ का भी काम देती है। इससे हाथी छोटी से छोटी वस्तु ज़मीन पर से उठा सकता है और पेड़ की बड़ी बड़ी डालों को तोड़कर मुँह में डाल लेता है। इससे वह अपने शत्रुओं को लपेट कर पटक देता या चीर डालता है। सूँड़ में पानी भर कर वह अपने ऊपर डालता भी है। नर के मुख-विवर के दोनों छोरों पर हाथ डेढ़ हाथ लंबे और ५-६ अंगुल चौड़े गोल डंडे की तरह के सफेद चमकीले दाँत निकले होते हैं जो केवल दिखावटी होते हैं। इन दाँतों का वज़न बहुत अधिक—७५ से १७५ सेर तक—होता है। इसके कान गोल सूप की तरह के होते हैं। मस्तक चौड़ा और बीच में कुछ

विभक्त दिखाई पड़ता है। सिर की हड्डियाँ जालीदार होती हैं। पसलियाँ बीस जोड़ी होती हैं। हाथी पृथ्वी के गरम भागों में—विशेषतः हिंदुस्तान और अफ्रिका में—पाए जाते हैं। अफ्रिका और हिंदुस्तान के हाथियों में कुछ भेद होता है। अफ्रिका के हाथी के दो निकले हुए दाँतों के सिवा चार दाढ़ें होती हैं और हिंदुस्तानी के दो ही। अफ्रिका के हाथी का मस्तक गोल और कान इतने बड़े होते हैं कि सारे कंधे को ढाँके रहते हैं। बरमा और स्याम की ओर सफेद हाथी भी पाए जाते हैं जिनका बहुत अधिक आदर और मोल होता है। हिंदुस्तान के हाथियों के भी अनेक भेद होते हैं जैसे,—दँतैला, मकना (बिना दाँत का), पतँगदाँत, गनेसा, सुअरदंता, पथरदंता, सँकरिया, अंकुसदंता या गुंडा इत्यादि। कोई कोई हिंदुस्तानी हाथी के दो प्रधान भेद करते हैं—एक कमरिया, दूसरा मिरगी या सिकारी। कमरिया का शरीर भारी और सूँड़ लंबी होती है। मिरगी कुछ अधिक ऊँचा और फुरतीला होता है और उसकी सूँड़ भी कुछ छोटी होती है। सवारी के लिये कमरिया हाथी अधिक पसंद किया जाता है और शिकार के लिये मिरगी। हाथी गहरे जंगलों में झुंड बाँधकर रहते हैं और मनुष्य की तरह एक बार में एक बच्चा देते हैं। हाथी की बाढ़ १८ से २४वें वर्ष तक जारी रहती है। पाले हुए हाथी सौ वर्ष से अधिक जीते हैं। जंगली और भी अधिक जीते होंगे। हिंदुस्तान में हाथी रखने की रीति अत्यंत प्राचीन काल से है। प्राचीन समय में राजाओं के पास हाथियों की भी बड़ी बड़ी सेनाएँ रहती थीं जो शत्रु के दल में घुसकर भयंकर संहार करती थीं। हाथी रखना अमीरी का बड़ा भारी चिह्न समझा जाता है। अफ्रिका के जंगली इसका मांस भी खाते हैं। हाथी पकड़ने के कई उपाय हैं। अधिकतर गड्ढा खोदकर हाथी फँसाए जाते हैं।

यौ०—हाथीनाल, हाथीपाँव, हाथीनशीन, हाथीख़ाना, हाथीदाँत।

मुहा०—हाथी सा = बहुत मोटा। अत्यंत स्थूलकाय। हाथी की राह = आकाश गंगा। कहर। हाथी पर चढ़ना = बहुत अमीर होना। हाथी बाँधना = बहुत अमीर होना। जैसे,—तुम्हीं बेईमानी करके हाथी बाँध लोगे? निशान का हाथी = सेना या जुलूस में वह हाथी जिसपर झंडा और डंका रहता है। हाथी के संग गाँड़े खाना = बलवान की बराबरी करना।

ॐ संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथ] हाथ का सहारा। करावलंब। उ०—दस्तगीर गाढ़े कर साथी। बह अवगाह दीन्ह तेहि हाथी।—जायसी।

हाथीख़ाना—संज्ञा पुं० [हिं० हाथी+फ़ा० ख़ानः] वह घर जिसमें हाथी रखा जाय। फ़ीलख़ाना।

हाथीचक—संज्ञा पुं० [हिं० हाथी+चक] एक प्रकार का पौधा जो औषध के काम में आता है।

हाथीदाँत—संज्ञा पुं० [हिं० हाथी+दाँत] हाथी के मुँह के दोनों छोरों पर हाथ डेढ़ हाथ निकले हुए सफेद दाँत जो केवल दिखावटी होते हैं।

विशेष—यह बहुत ठोस, मज़बूत और चमकीला होता है और अधिक मूल्य पर बिकता है। इससे अनेक प्रकार के सजावट के सामान बनते हैं। जैसे,—चाकू के बेंट, कंघियाँ, कुरसियाँ, शीशे के फ्रेम इत्यादि। इस पर नक्काशी भी बड़ी ही सुंदर होती है।

हाथीनाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथी+नाल] वह पुरानी तोप जिसे हाथियों की पीठ पर रखकर ले जाते थे। हथनाल। गजनाल।

हाथीपाँव—संज्ञा पुं० [हिं० हाथी+पाँव] (१) एक रोग जिसमें टाँगें फूलकर हाथी के पैर की तरह मोटी और बेडौल हो जाती हैं। फ़ीलपाँव। (२) एक प्रकार का बढ़िया सफेद कपड़ा।

हाथीपीच—संज्ञा पुं० [हिं० हाथी+पीच] एक प्रकार का हाथीचक जो शाम और रूम की ओर से आता है और औषध के काम का होता है।

हाथीबच—संज्ञा स्त्री० [हिं० हाथी+बच] एक पौधा जिसकी तरकारी बनाई जाती है।

हाथीवान—संज्ञा पुं० [हिं० हाथी+वान (प्रत्य०)] हाथी की रक्षा करने और उसे चलाने के लिये नियुक्त पुरुष। फीलवान। महावत।

हादसा—संज्ञा पुं० [अ०] बुरी घटना। दुर्घटना। आपत्ति।

हानॐ†—संज्ञा स्त्री० दे० "हानि"।

हानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) न रह जाने का भाव। नाश। अभाव। क्षय। जैसे,—प्राणहानि, तिथिहानि। (२) नुकसान। क्षति। लाभ का उलटा। पास के द्रव्य आदि में त्रुटि या कमी। घाटा। टोटा। जैसे,—इस व्यापार में बड़ी हानि हुई। (३) स्वास्थ्य में बाधा। तंदुरुस्ती में ख़राबी। जैसे,—जिस वस्तु से हानि पहुँचती है, उसे क्यों खाते हो? (४) अनिष्ट। अपकार। बुराई।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—हानि उठाना = नुकसान सहना। हानि पहुँचना = नुकसान होना। हानि पहुँचाना = नुकसान करना।

हानिकर—वि० [सं०] हानि करनेवाला। जिससे नुकसान पहुँचे। (२) अनिष्ट करनेवाला। बुरा परिणाम उपस्थित करनेवाला। (३) स्वास्थ्य में त्रुटि या बाधा पहुँचानेवाला। तंदुरुस्ती बिगाड़नेवाला। रोगी बनानेवाला।

हानिकारक—वि० दे० "हानिकर"।

हानिकारी—वि० दे० "हानिकर"।

हाफ़िज़–संज्ञा पुं० [अ०] वह धार्मिक मुसलमान जिसे कुरान कंठ हो।

हाबिस–संज्ञा पुं० [देश०] जहाज़ का लंगर उखाड़ने या खींचने की क्रिया।

हामी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हाँ] 'हाँ' करने की क्रिया या भाव। स्वीकृति। स्वीकार।

मुहा०—हामी भरना = किसी बात के उत्तर में 'हाँ' कहना। स्वीकार करना। मंजूर करना। मानना।

हाय–प्रत्य० [सं० हा] (१) शोक और दुःख सूचित करनेवाला एक शब्द। घोर दुःख या शोक में मुँह से निकलनेवाला एक शब्द। आह। (२) कष्ट और पीड़ा सूचित करनेवाला शब्द। शारीरिक व्यथा के समय मुँह से निकलनेवाला शब्द।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—हाय मारना = (१) शोक से हाय हाय करना। कराहना। (२) दहल जाना। स्तंभित हो जाना।

संज्ञा स्त्री० कष्ट। पीड़ा। दुःख। जैसे,—गरीब की हाय का फल तुम्हारे लिये अच्छा नहीं। उ०—तुलसी हाय गरीब की हरि सों सही न जाय। (चलित)

मुहा०—(किसी की) हाय पड़ना = पहुँचाए हुए दुःख या कष्ट का बुरा फल मिलना। जैसे,—इसने गरीबों की हाय पड़ रही है, उसका कभी भला न होगा।

हायन–संज्ञा पुं० [सं०] वर्ष। संवत्सर। साल।

हायनक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मोटा चावल जो लाल होता है।

हायल–वि० [सं० हान = खोया हुआ, प्रा० हाय, अथवा हिं० घायल] घायल। शिथिल। मूर्छित। बेकाम। उ०—किय हायल चित चाय लगि बजि पायल तुव पाँय। पुनि सुनि सुनि मुख मधुर धुनि, क्यों न लाल ललचाय।—बिहारी।

वि० [अ०] दो वस्तुओं के बीच में पड़नेवाला। व्यवधान रूप से स्थित। रोकनेवाला। अंतरवर्ती।

हाय हाय–अव्य० [सं० हा हा] शोक दुःख या शारीरिक कष्ट-सूचक शब्द। दे० 'हाय'।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—होना।

संज्ञा स्त्री० (१) कष्ट। दुःख। शोक। (२) व्याकुलता। घबराहट। आकुलता। परेशानी। झंझट। जैसे,—(क) तुम्हें तो रुपए के लिये सदा हाय हाय रहती है। (ख) जिंदगी भर यह हाय हाय न मिटेगी।

हार–संज्ञा स्त्री० [सं० हारि] (१) युद्ध, क्रीड़ा, प्रतिद्वंद्विता आदि में शत्रु के सम्मुख असफलता। लड़ाई, खेल, बाजी या बदा ऊपरी में जोड़ या प्रतिद्वंद्वी के सामने न जीत सकने का भाव। पराजय। शिकस्त। जैसे,—लड़ाई में हार, खेल में हार इत्यादि।

क्रि० प्र०—मानना।—होना।

यौ०—हारजीत।

मुहा०—हार खाना = हारना। हार देना = पराजित करना। हराना।

(२) शिथिलता। श्रांति। थकावट। (३) हानि। क्षति। हरण। (४) ज़ब्ती। राज्य द्वारा हरण। (५) युद्ध। (६) विरह। वियोग।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोने, चाँदी या मोतियों आदि की माला जो गले में पहनी जाय।

विशेष—किसी के मत से इसमें ६४ और किसी के मत से १०८ दाने होने चाहिएँ।

(२) ले आनेवाले। वहन करनेवाला। (३) मनोहर। मन हरनेवाला। सुंदर। (४) अंकगणित में भाजक। (५) पिंगल या छंदःशास्त्र में गुरु मात्रा। (६) नाश करनेवाला।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) वन। जंगल। (२) नाव के बाहरी तख्ते। (३) चरने का मैदान। चरागाह। गोचारण-भूमि। (४) खेत।

प्रत्य० दे० "हारा"।

हारक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरण करनेवाला। लेनेवाला। (२) आनेवाला। (३) मन हरनेवाला। मनोहर। सुंदर। (४) चोर। लुटेरा। (५) धूर्त। खल। (६) गणित में भाजक। (७) हार। माला।

हारगुटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] हार की गुरिया। माला के दाने।

हारद॥–वि० दे० "हार्दिक"।

हारना–क्रि० अ० [सं० हार + ना (हिं० प्रत्य०)] (१) युद्ध, क्रीड़ा, प्रतिद्वंद्विता आदि में शत्रु के सामने असफल होना। लड़ाई, खेल, बाजी या लाग-डाँट में दूसरे पक्ष के मुकाबिले में न जीत सकना। पराभूत होना। पराजित होना। शिकस्त खाना। जैसे,—लड़ाई में हारना, खेल या बाजी में हारना।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) व्यवहार या अभियोग में दूसरे पक्ष के मुकाबिले में कृतकार्य्य न होना। मुकदमा न जीतना। जैसे,—मुकदमे में हारना। (३) श्रांत होना। शिथिल होना। थक जाना। प्रयत्न में निराश होना। असमर्थ होना। जैसे,—जब वह उसे न ले सका, तब हारकर बैठ गया।

यौ०—हारा माँदा।

मुहा०—हारे दर्जे = (१) सब उपायों से निराश होकर और कुछ बस न चलने पर। (२) लाचार होकर। विवश होकर। हारकर = (१) असमर्थ होकर। (२) लाचार होकर।

क्रि० स० (१) लड़ाई, बाजी आदि को सफलता के साथ न पूरा करना। जैसे,—बाजी हारना, दाँव हारना। (२)

नष्ट करना या न प्राप्त करना। गवाँना। खोना। जैसे,—प्राण हारना, धन हारना। (३) छोड़ देना। न रख सकना। जैसे,—हिम्मत हारना। (४) दे देना। जैसे,—वचन हारना।
हारफलक-संज्ञा पुं० [सं०] पाँच लड़ियों का हार।
हारबंध-संज्ञा पुं० [सं०] एक चित्र-काव्य जिसमें पद्य हार के आकार में रखे जाते हैं।
हारभूरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] द्राक्षा। दाख। अंगूर।
हारमोनियम-संज्ञा पुं० [अं०] संदूक के आकार का एक अँगरेजी बाजा जिसपर उँगली रखने से अनेक प्रकार के स्वर निकलते हैं।
हारयष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] हार या माला की लड़ी।
हारल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जो प्रायः अपने चंगुल में कोई लकड़ी या तिनका लिए रहती है। हारिल।
हारवार‡—संज्ञा स्त्री० दे० "हड़बड़ी"।
हारसिंगार-संज्ञा पुं० [हिं० हार+सिंगार] हारसिंगार का पेड़ या फूल। परजाता।
हारहारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का अंगूर।
हारहूण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम। (२) उक्त देश के निवासी।
हारहूर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मद्य।
हारहूरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का अंगूर।
हारहूरिका-संज्ञा स्त्री० दे० "हारहूरा"।
हारहौर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम। (२) उक्त देश का निवासी।
हारा†-प्रत्य० [सं० धार=रखनेवाला] [स्त्री० हारी] एक पुराना प्रत्यय जो किसी शब्द के आगे लगकर कर्त्तव्य, धारण या संयोग आदि सूचित करता है। वाला। जैसे,—करनेहारा, देनेहारा, लकड़हारा इत्यादि।
संज्ञा स्त्री० [देश०] दक्षिण-पश्चिम के कोने की हवा।
हारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हार। पराभव। पराजय। शिकस्त। (२) पथिकों का दल। कारवाँ। (३) हरण करनेवाला। (४) मन हरनेवाला।
संज्ञा स्त्री० दे० "हार"।
हारित-वि० [सं०] (१) हरण कराया हुआ। (२) लाया हुआ। जिसे ले आए हों। (३) छीना हुआ। (४) खोया हुआ। छोड़ा हुआ। गँवाया हुआ। (५) वंचित। (६) हारा हुआ। (७) मोहित। मुग्ध।
संज्ञा पुं० (१) तोता। सूआ। (२) एक वर्णवृत्त जिसमें एक तगण और दो गुरु होते हैं।
हारिद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का विष जिसका पौधा हल्दी के समान होता है और जो हल्दी के खेतों में ही उगता है। इसकी गाँठ बहुत जहरीली होती है। (२) एक प्रकार का प्रमेह जिसमें हल्दी के समान पीला पेशाब आता है।
हारिनाश्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में एक मूर्च्छना जिसका स्वरग्राम इस प्रकार है—ग, म, प, ध, नि, स, रे। स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प।
हारिल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जो प्रायः अपने चंगुल में कोई लकड़ी या तिनका लिए रहती है। इसका रंग हरा, पैर पीले और चोंच कासनी रंग की होती है। हरियल। उ०—हमारे हरि हारिल की लकरी।—सूर।
हारी-वि० [सं० हारिन्] [स्त्री० हारिणी] (१) हरण करनेवाला। छीननेवाला। (२) ले जानेवाला। पहुँचानेवाला। लेकर चलनेवाला। (३) चुरानेवाला। लूटनेवाला। (४) दूर करनेवाला। हटानेवाला। (५) नाश करनेवाला। ध्वंस करनेवाला। (६) वसूल करनेवाला। उगाहनेवाला। (कर या महसूल) (७) जीतनेवाला। (८) मन हरनेवाला। मोहित करनेवाला। (९) हार पहननेवाला।
संज्ञा पुं० एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण और दो गुरु होते हैं।
हारीत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोर। लुटेरा। डाकू। धाई। (२) चोरी। लुटेरापन। धाईपन। (३) कण्व ऋषि के एक शिष्य का नाम। (४) आबाल ऋषि के पुत्र का नाम। (५) परेवा। कबूतर।
हारुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरण करनेवाला। छीननेवाला। (२) ले जानेवाला।
हारौल-संज्ञा पुं० दे० "हरावल"।
हार्द-संज्ञा पुं० [सं०] स्नेह।
वि० हृदय संबंधी। हृदय का।
हार्दिक-वि० [सं०] (१) हृदय-संबंधी। हृदय का। (२) हृदय से निकला हुआ। सच्चा। जैसे,—हार्दिक सहानुभूति। हार्दिक प्रेम।
हार्दिक्य-संज्ञा पुं० [सं०] मित्रभाव। मित्रता। सुहृदभाव।
हार्य-वि० [सं०] (१) हरण करने योग्य। छीनने या लेने योग्य। (२) जो हरण किया जानेवाला हो। जो लिया या छीना जानेवाला हो। (३) जो हिलाया या इधर उधर किया जानेवाला हो। (४) जिसका अभिनय किया जानेवाला हो। (नाटक) (५) जो भाग दिया जानेवाला हो। भाज्य। (गणित)
हार्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का चंदन।
हाल-संज्ञा पु० [अ०] (१) दशा। अवस्था। जैसे,—अब उनका क्या हाल है? (२) परिस्थिति। मामला। (३) संवाद। समाचार। वृत्तांत। जैसे,—बहुत दिनों से उनका कुछ हाल

नहीं मिला। (४) जो बात हुई हो, उसका ठीक ठीक उल्लेख। इतिवृत्त। ब्योरा। विवरण। कैफ़ियत। (५) कथा। आख्यान। चरित्र। जैसे,—इस किताब में हातिम का सारा हाल है। (६) ईश्वर के भक्तों या साधकों की वह अवस्था जिसमें वे अपने को बिलकुल भूल कर ईश्वर के प्रेम में लीन हो जाते हैं। तन्मयता। लीनता। (मुसल०)

मुहा०—(किसी पर) हाल आना = ईश्वर-प्रेम का उद्रेक होना। प्रेम की बेहोशी होना।

वि० वर्तमान। चलता। उपस्थित। जैसे,—ज़माना हाल।

मुहा०—हाल में = थोड़े ही दिन हुए। जैसे,—वे अभी हाल में आए हैं। हाल का = थोड़े दिनों का। नया। ताज़ा।

अव्य० (१) इस समय। अभी। उ०—बात कहिये में नंदलाल की उताल कहा? हाल यौ हरिनैनी! हँकनि मिटाय ले।—शिव। (२) तुरंत। शीघ्र। उ०—संग हित हाल करि जाचक निहाल करि, नृपता बहाल करि कीरति बिसाल की।—गुलाब।

संज्ञा स्त्री० [हिं० हालना] (१) हिलने की क्रिया या भाव। कंप। (२) झटका। झोंका। धक्का।

क्रि० प्र०—लगना।

(३) लोहे का बंद जो पहिए के चारों ओर घेरे में चढ़ाया जाता है।

संज्ञा पुं० [अं०] बहुत बड़ा कमरा। खूब लंबा चौड़ा कमरा।

हालक—संज्ञा पुं० [सं०] पीलापन लिए भूरे रंग का घोड़ा।

हालगोला संज्ञा पुं० [हिं० हाल+गोला] गेंद। उ०—किधौं चित्त चौगान के मूल सोहैं। हिये हेम के हालगोला बिमोहैं।—केशव।

हालडाल—संज्ञा पुं० [हिं० हालना+डोलना] (१) हिलने की क्रिया या भाव। गति। (२) कंप। (३) हलकंप। हलचल।

हालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) दशा। अवस्था। जैसे,—अब उस बीमार की क्या हालत है? (२) आर्थिक दशा। सांपत्तिक स्थिति। जीवन-निर्वाह की गति। जैसे,—अब उनकी हालत ऐसी नहीं है कि कुछ अधिक दे सकें। (३) चारों ओर की वस्तुओं और व्यापारों की स्थिति। संयोग। परिस्थिति। जैसे,—ऐसी हालत में हम सिवा हट जाने के और क्या कर सकते थे?

हालना—क्रि० अ० [सं० हल्लन] (१) हिलना। डोलना। गतिवान् होना। हरकत करना। (२) काँपना। (३) झूमना। उ०—(क) भुव हालति जानि अकास हिये। जनु थंभित ठौरनि ठौर किये।—केशव। (ख) भूतल भूधर हाले अचानक आप भरत्थ के दुंदुभि बाजे।—केशव। (ग) हालति नं चंप-लता डोलत समीरन के, पानी कल कोकिल कलित कंठ परिगो।

हालरा—संज्ञा पुं० [हिं० हालना] (१) बच्चों को हाथ में लेकर हिलाने की क्रिया। बच्चों को लेकर हिलाना डुलाना। (२) झोंका। (३) लहर। हिलोर।

हालहूल—संज्ञा स्त्री० [हिं० हल्ला] (१) हल्ला गुल्ला। कोलाहल। शोरगुल। (२) हलकंप। हलचल। आंदोलन।

हालाँकि—अव्य० [फ़ा०] यद्यपि। गो कि। ऐसी बात है, फिर भी। जैसे,—वह ज्यादः हिम्मत रखता है, हालाँकि तुमसे कमज़ोर है।

हाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरा। मद्य। शराब।

हालाहल—संज्ञा पुं० दे० "हलाहल"।

हालिक—वि० [सं०] हल संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) कृषक। किसान। खेतिहर। (२) एक प्रकार का छंद। (३) पशुओं का वध करनेवाला। कसाई।

हालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की छिपकली।

हालिम—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जिसके बीज औषध के काम में आते हैं। चंसुर। चंद्रसुर। हालों।

विशेष—यह सारे एशिया में लगाया जाता है। इसके बीजों से एक प्रकार का सुगंधित तेल निकलता है। बीज बाजार में बिकते हैं और पुष्ट माने जाते हैं। ग्रहणी और चर्म रोग में भी इनका व्यवहार होता है।

हाली—अव्य० [अ० हाल] जल्दी। शीघ्र।

यौ०—हाली हाली = जल्दी जल्दी। शीघ्रता से।

हालु—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत।

हालूक—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की भेड़ जो तिब्बत के पूरबी भाग में होती है और जिसका ऊन बहुत अच्छा होता है।

हालों—संज्ञा पुं० दे० "हालिम"।

हाल्ट—संज्ञा पुं० [अं०] दल या सेना का चलते हुए ठहर जाना। ठहराव।

विशेष—मार्च करती हुई या चलती हुई सेना को ठहराने के लिये यह शब्द ज़ोर से बोला जाता है।

हाव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पास बुलाने की क्रिया या भाव। पुकार। बुलाहट। (२) संयोग समय में नायिका की स्वाभाविक चेष्टाएँ जो पुरुष को आकर्षित करती हैं।

विशेष—साहित्य में ग्यारह हाव गिनाए गए हैं—लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, बिब्बोक, विहृत, कुट्टमित, ललित और हेला। भाव-विधान में "हाव" अनुभाव के ही अंतर्गत है।

यौ०—हावभाव।

हावक—संज्ञा पुं० [सं०] हवन या यज्ञ करानेवाला।

हावनदस्ता-संज्ञा पुं० [फ़ा०] खरल और बट्टा । खल लोढ़ा ।

हावनीय-वि० [सं०] हवन कराने योग्य ।

हावभाव-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों की वह चेष्टा जिससे पुरुषों का चित्त आकर्षित होता है । नाज़ नख़रा ।

क्रि० प्र०—करना ।—दिखाना ।

हावर-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जो अवध, राजपूताने, मध्यदेश और मद्रास में बहुत होता है । इसकी लकड़ी मज़बूत, वज़नी और भूरे रंग की होती है और खेती के सामान (हल, पाटे आदि) बनाने के काम में आती है ।

हावला बावला-वि० [हिं० बावला] [स्त्री० हावली बावली] पागल । सनकी ।

हाशिया-संज्ञा पुं० [अ० हाशिय:] (१) किसी फैली हुई वस्तु का किनारा । कोर । पाड़ । बारी । जैसे,—किताब का हाशिया कपड़े का हाशिया । (२) गोट । मगजी ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।—लगाना ।

(३) हाशिए या किनारे पर का लेख । नोट ।

मुहा०—हाशिए का गवाह = वह गवाह या साक्षी जिसका नाम किसी दस्तावेज़ के किनारे दर्ज हो । हाशिया चढ़ाना = किसी बात में मनोरंजन आदि के लिये कुछ और बात जोड़ना । नमक मिर्च लगाना ।

हास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हँसने की क्रिया या भाव । हँसी । (२) परिहास । दिल्लगी । ठट्ठा । मज़ाक । (३) निंदा का भाव लिए हुए हँसी । उपहास ।

यौ०—हास परिहास, हास विलास ।

वि० श्वेत वर्ण । उज्वल ।

हासक-संज्ञा पुं० [सं०] हँसानेवाला ।

हासकर-वि० [सं०] हँसानेवाला । जिसमें हँसी आवे ।

हासन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हँसाना । (२) हँसानेवाला ।

हासनिक-संज्ञा पुं० [सं०] विनोद या क्रीड़ा का साथी ।

हासवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिक बौद्धों की एक देवी ।

हासशील-वि० [सं०] हँसानेवाला । हँसोड़ा । विनोदी ।

हासिद-वि० [अ०] हसद करनेवाला । डाह करनेवाला । ईर्ष्यालु ।

हासिल-वि० [अ०] प्राप्त । लब्ध । पाया हुआ । मिला हुआ ।

मुहा०—हासिल करना = प्राप्त करना । लाभ करना । जैसे,—दौलत हासिल करना, इल्म हासिल करना । हासिल होना = प्राप्त होना । मिलना ।

संज्ञा पुं० (१) गणित करने में किसी संख्या का वह भाग या अंक जो शेष भाग के कहीं रखे जाने पर बच रहे ।

क्रि० प्र०—आना ।

(२) उपज । पैदावार । (३) लाभ । नफ़ा । (४) गणित की क्रिया का फल । जैसे,—हासिल जरब, हासिल तकसीम । (५) जमा । लगान । वसूली ।

हासी-वि० [सं० हासिन्] [स्त्री० हासिनी] (१) हँसनेवाला । जैसे,—चारु हासिनी । (२) श्वेत । सफ़ेद ।

हास्य-वि० [सं०] (१) हँसने योग्य । जिस पर लोग हँसें । (२) उपहास के योग्य ।

संज्ञा पुं० (१) हँसने की क्रिया या भाव । हँसी । (२) नौ स्थायी भावों और रसों में से एक । (३) उपहास । निंदापूर्ण हँसी । (४) ठट्ठा । ठठोली । दिल्लगी । मज़ाक ।

हास्य कथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हँसी की बात ।

हास्यकर-वि० [सं०] (१) हँसानेवाला । (२) जिसमें हँसी आवे ।

हास्यास्पद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हास्य का स्थान या विषय । वह जिसे देखकर लोग हँसें । (२) उपहास का विषय । वह जिसके बेढंगेपन पर लोग हँसी उड़ावें ।

हास्योत्पादक-वि० [सं०] जिससे लोगों को हँसी आवे । उपहास के योग्य ।

हा हंत-अव्य० [सं०] अत्यंत शोकसूचक शब्द ।

हाहा-संज्ञा पुं० [अनु०] (१) हँसने का शब्द । वह आवाज जो ज़ोर से हँसने पर आदमी के मुँह से निकलती है ।

यौ०—हाहा हीही, हाहा ठीठी = हँसी ठट्ठा । विनोद ।

मुहा०—हाहा हीही करना = (१) हँसना । (२) हँसी ठट्ठा करना । विनोद क्रीड़ा करना । हाहा हीही होना या मचना = हँसी होना ।

(२) गिड़गिड़ाने का शब्द । अनुनय विनय का शब्द । दीनता या बहुत विनती की पुकार । दुहाई ।

मुहा०—हाहा करना = गिड़गिड़ाना । बहुत विनती करना । दुहाई देना । उ०—हाहा कै हारि रहे मोहन पाँय परे जिन्ह लातनि मारे ।—केशव । हाहा खाना = बहुत गिड़गिड़ाना । अत्यंत दीनता और नम्रता से पुकारना । बहुत विनती करना । उ०—सौंटी लै जसुमति अति तरजति हरि बसि हाहा खात ।—सूर ।

संज्ञा पुं० [सं०] एक गंधर्व का नाम ।

हाहाकार-संज्ञा पुं० [सं०] भय के कारण बहुत आदमियों के मुँह से निकला हुआ हाहा शब्द । घबराहट की चिल्लाहट । भय, दुःख या पीड़ा सूचित करनेवाली जन-समूह की पुकार । कुहराम ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचना ।—पड़ना ।—होना ।

हाहाठीठी-संज्ञा स्त्री० [अनु० हाहा + हिं० ठट्ठा] हँसी ठट्ठा । विनोद क्रीड़ा । जैसे,—तुम्हारा सारा दिन हाहा ठीठी में जाता है ।

हाहाहूत⊛-संज्ञा पुं० [अनु०] हाहाकार । भय का कोलाहल ।

हाहू ऊ†-संज्ञा पुं० [अनु०] (१) हल्लागुल्ला। कोलाहल। (२) हलचल। धूम।

हाहूबेर-संज्ञा पुं० [देश० हाहू + हिं० बेर] जंगली बेर। झड़बेरी।

हिंकरना-क्रि० अ० [अनु० हिन हिन] हिनहिनाना। घोड़ों का बोलना। हींसना।

हिंकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रँभाने का वह शब्द जो गाय अपने बछड़े को बुलाते समय करती है। (२) बाघ के बोलने का शब्द। (३) सामगान का एक अंग जिसमें उद्गाता गीत के बीच बीच में 'हिं' का उच्चारण करता है। (४) व्याघ्र। बाघ।

हिंग-संज्ञा पुं० दे० "हींग"।

संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम। (मार्क० पु०)

हिंगन बेर-संज्ञा पुं० [हिं० हिंगोट + बेर] इंगुदी वृक्ष। हिंगोट। हिंगुआ। गोंदी।

हिंगलाची-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक यक्षिणी का नाम। (बौद्ध)

हिंगलाज-संज्ञा स्त्री० [सं० हिंगुलाजा] दुर्गा या देवी की एक मूर्त्ति या भेद जो सिंध और बिलूचिस्तान के बीच की पहाड़ियों में है। यहाँ अँधेरी गुफा में ज्योति के उसी प्रकार दर्शन होते हैं जिस प्रकार काँगड़े की ज्वालामुखी में। कराची बंदर से उत्तर की ओर समुद्र के किनारे किनारे ४५ कोस चलकर लोग यहाँ पहुँचते हैं।

हिंगली-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का तंबाकू।

हिंगाष्टकचूर्ण-संज्ञा पुं० [हिं० हिंग + सं० अष्टक] वैद्यक में प्रसिद्ध एक अजीर्णनाशक और पाचक चूर्ण।

विशेष—सोंठ, पीपल, काली मिर्च, अजमोदा, सफेद जीरा, स्याह जीरा, भुनी हींग और सेंधा नमक इन सबको एक साथ चूर्ण कर डाले। सेवन की मात्रा १ या २ टंक।

हिंगु-संज्ञा पुं० [सं०] हींग।

हिंगुपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] इंगुदी। हिंगोट।

हिंगुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईंगुर। सिंगरफ। (२) एक नदी का नाम।

हिंगुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रदेश का नाम जो सिंध और बिलूचिस्तान के बीच में है और जहाँ 'हिंगुलाजा' या हिंगलाज देवी का स्थान है।

हिंगुलाजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा या देवी का एक रूप। हिंगलाज देवी।

हिंगुलेश्वर रस-संज्ञा पुं० [सं०] ईंगुर से बनी हुई एक रसौषध जिसका व्यवहार वात ज्वर की चिकित्सा में होता है।

हिंगूल-संज्ञा पुं० [सं०] हिज्जल नाम का पौधा।

हिंगोट-संज्ञा पुं० [सं० हिंगुपत्र, प्रा० हिंगुवत्त] एक झाड़दार कँटीला जंगली पेड़ जो मझोले आकार का होता है और जिसकी इधर उधर सीधी निकली हुई टहनियाँ गोल गोल और छोटी तथा श्यामता लिये गहरे हरे रंग की पत्तियों से गुछी होती हैं। इसमें बादाम की तरह के गोल छोटे फल लगते हैं जिनकी गुठलियों से बहुत अधिक तेल निकलता है। छाल और पत्तियों में कसाव होता है। प्राचीन काल में जंगल में रहकर तपस्या करनेवाले मुनियों और तपस्वियों के लिये यह पेड़ बड़े काम का होता था; इसी से इसे 'तापस-तरु' भी कहते थे। इंगुदी।

पर्य्या०—इंगुदी। हिंगुपत्र। जंगली बादाम।

हिंग्वादि गुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] हींग के योग से बनी हुई एक विशेष प्रकार की गोली जिसके सेवन से पेट का दर्द दूर होता है।

विशेष—भुनी हींग, अमलबेत, काली मिर्च, पीपल, अजवायन, काला नमक, साँभर नमक, सेंधा नमक इन सबको पीसकर बिजौरे नीबू के रस में गोलियाँ बनाते हैं जो गरम पानी के साथ खाई जाती हैं।

हिंग्वादि चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] हींग के योग से बनी हुई एक बुकनी जो गुल्म, अनाह, अर्श, संग्रहणी, उदावर्त्त, शूल और उन्माद आदि रोगों में दी जाती है।

विशेष—भुनी हींग, पिपलामूल, धनिया, जीरा, बच, चव्य, चीता, पाठा, कचूर, अमलबेत, साँभर नमक, काला नमक, सेंधा नमक, जवाखार सज्जी, अनारदाना, हड़ का छिलका, पुष्करमूल, डाँसरा, झाऊ की जड़, इन सब का चूर्ण कर डाले और अदरक तथा बिजौरे के रस के सात सात पुट देकर सुखा डाले।

हिंच-संज्ञा पुं० [सं० हिंव] झटका। आघात। चोट। (लश०)

हिंछना†-क्रि० अ० [सं० इच्छन] इच्छा करना। चाहना।

हिंछाऊ†-संज्ञा स्त्री० दे० "इच्छा"।

हिंजीर-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी के पैर में बाँधने की रस्सी या जंजीर।

हिंडन-संज्ञा पुं० [सं०] घूमना। फिरना।

हिंडिक-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिषी।

हिंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

हिंडी बदाम-संज्ञा पुं० [देश० हिंद + फ़ा० बादाम] अंडमन टापू में होनेवाला एक प्रकार का बड़ा पेड़ जिसमें एक प्रकार का गोंद निकलता है और जिसके बीजों में बहुत सा तेल होता है।

हिंडीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की समुद्री मछली की हड्डी जो 'समुद्रफेन' के नाम से प्रसिद्ध है। (२) मर्द। नर। पुरुष। (३) अनार का पेड़।

हिंडुक-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

हिंडोरा-संज्ञा पुं० दे० "हिंडोला"। उ०—प्रेम रँग बोरी गोरी

मचल किसोरी भोरी झूलति हिंडोरे सों सुहाई सखियान ले।—पद्माकर।

हिंडोरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हिंडोरा] छोटा हिंडोला।

हिंडोल-संज्ञा पुं० [सं० हिन्दोल] (१) हिंडोला। (२) एक राग जो गांधार स्वर की संतान कहा गया है। एक मत से यह औड़व जाति का है और इसमें पंचम तथा गांधार वर्जित हैं। इसकी ऋतु वसंत और वार मंगल है। गाने का समय रात को २१ या २८ दंड से लेकर २९ दंड तक। ऐसा प्रसिद्ध है कि यह राग यदि शुद्ध गाया जाय तो हिंडोला आप से आप चलने लगता है। हनुमत् के मत से इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—सा ग म प नि सा नि प म ग सा। बिलावली, भूपाली, मालश्री, पटमंजरी और ललिता इसकी स्त्रियाँ तथा पंचम, वसंत, बिहाग, सिंधुड़ा और सोरठ इसके पुत्र माने गए हैं। पुत्रवधू—सिंधुरई, गांधारी, मालिनी और त्रिवेणी।

हिंडोलना‡-संज्ञा पुं० दे० "हिंडोला"।

हिंडोला-संज्ञा पुं० [सं० हिन्दोल] (१) नीचे ऊपर घूमनेवाला एक चक्कर जिसमें लोगों के बैठने के लिये छोटे छोटे मंच बने रहते हैं। विनोद या मन बहलाव के लिये लोग इसमें बैठकर नीचे ऊपर घूमते हैं। सावन के महीने में इस पर झूलने की विशेष चाल है। (२) पालना। (३) झूला।

हिंडोली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो हनुमत् के मत से हिंडोल राग की प्रिया है।

हिंताल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जंगली खजूर जिसके पेड़ छोटे छोटे—ज़मीन से दो तीन हाथ ऊँचे—होते हैं। यह पेड़ देखने में बहुत सुंदर होता है और दक्षिण के जंगलों में दलदलों के किनारे और गीली ज़मीन में बहुत पाया जाता है। अमरकंटक के आस पास यह बहुत होता है। संस्कृत के पुराने कवियों ने इसका बहुत वर्णन किया है।

हिंद-संज्ञा पुं० [फ़ा०] हिंदोस्तान। भारतवर्ष।

विशेष—यह शब्द वास्तव में 'सिंधु' शब्द का फ़ारसी उच्चारण है। प्राचीन काल में भारतीय आर्यों और पारसीक आर्यों के बीच बहुत कुछ संबंध था। यज्ञ करानेवाले याजक बराबर एक देश से दूसरे देश में आते जाते थे। शाकद्वीप के मग ब्राह्मण फ़ारस के पूर्वोत्तर भाग से ही आए हुए हैं। ईसा से ५०० वर्ष पहले दारा (दारयवहु) प्रथम के समय में सिंधु नद के आसपास के प्रदेश पर पारसियों का अधिकार हो गया था। प्राचीन पारसी भाषा में संस्कृत के 'स' का उच्चारण 'ह' होता था। जैसे,—संस्कृत 'सप्त', फ़ारसी 'हफ्त'। इसी नियम के अनुसार 'सिंधु' का उच्चारण प्राचीन पारस देश में 'हिंदु' या 'हिंद' होता था। पारसियों के धर्म-ग्रंथ 'अवस्ता' में 'हप्तहिंद' का उल्लेख है जो वेदों में भी 'सप्तसिंधु' के नाम से आया है। धीरे धीरे 'हिंद' शब्द सारे देश के लिये प्रयुक्त होने लगा। प्राचीन यूनानी जब फ़ारस आए, तब उन्हें इस देश का परिचय हुआ और वे अपने उच्चारण के अनुसार फारसी 'हिंद' को 'इंड' या 'इंडिका' कहने लगे, जिससे आजकल 'इंडिया' शब्द बना है।

हिंदवाना‡-संज्ञा पुं० [फ़ा० हिंद+वान] तरबूज़। कलींदा।

हिंदवी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] हिंद या हिंदोस्तान की भाषा। हिंदी भाषा जो उत्तरीय भारत के अधिकतर भाग में बोली जाती है।

हिंदी-वि० [फ़ा०] हिंद का। हिंदुस्तान का। भारतीय।

संज्ञा पुं० हिंद का रहनेवाला। हिंदुस्तान या भारतवर्ष का निवासी। भारतवासी।

संज्ञा स्त्री० (१) हिंदुस्तान की भाषा। भारतवर्ष की बोली। (२) हिंदुस्तान के उत्तरी या प्रधान भाग की भाषा जिसके अंतर्गत कई बोलियाँ हैं और जो बहुत से अंशों में सारे देश की एक सामान्य भाषा मानी जाती है।

विशेष—मुसलमान पहले पहल उत्तरी भारत में ही आकर जमे और दिल्ली, आगरा और जौनपुर आदि उनकी राजधानियाँ हुईं। इसी से उत्तरी भारत में प्रचलित भाषा को ही उन्होंने 'हिंदवी' या 'हिंदी' कहा। काव्यभाषा के रूप में शौरसेनी या नागर अपभ्रंश से विकसित भाषा का प्रचार तो मुसलमानों के आने के पहले ही से सारे उत्तरी भारत में था। मुसलमानों ने आकर दिल्ली और मेरठ के आस पास की भाषा को अपनाया और उसका प्रचार बढ़ाया। इस प्रकार वह भी देश के एक बड़े भाग की शिष्ट बोलचाल की भाषा हो चली। खुसरो ने उसमें कुछ पद्य रचना भी आरंभ की जिसमें पुरानी काव्यभाषा या ब्रजभाषा का बहुत कुछ आभास था। इससे स्पष्ट है कि दिल्ली और मेरठ के आसपास की भाषा (खड़ी बोली) को, जो पहले केवल एक प्रांतिक बोली थी, साहित्य के लिये पहले पहल मुसलमानों ने ही लिया। मुसलमानों के अपनाने से खड़ी बोली शिष्ट बोलचाल की भाषा तो मानी गई, पर देश के साहित्य की सामान्य काव्यभाषा वही ब्रज (जिसके अंतर्गत राजस्थानी भी आ जाती है) और अवधी रही। इस बीच में मुसलमान खड़ी बोली को अरबी, फ़ारसी द्वारा थोड़ा बहुत बराबर अलंकृत करते रहे; यहाँ तक कि धीरे धीरे उन्होंने अपने लिये एक साहित्यिक भाषा और साहित्य अलग कर लिया जिसमें विदेशी भावों और संस्कारों की प्रधानता रही। ध्यान देने की बात यह है कि यह साहित्य तो पद्यमय ही रहा, पर शिष्ट बोल-चाल की भाषा के रूप में खड़ी बोली का प्रचार उत्तरी भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक हो गया। जब अँगरेज़ भारत में आए, तब उन्होंने इसी बोली को लिए

जनता में प्रचलित पाया। अतः उनका ध्यान अपने सुबीते के लिये स्वभावतः इसी खड़ी बोली की ओर गया और उन्होंने इसमें गद्य साहित्य के आविर्भाव का प्रयत्न किया। पर जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मुसलमानों ने अपने लिये एक साहित्यिक भाषा उर्दू के नाम से अलग कर ली थी। इसी से गद्य-साहित्य के लिये एक ही भाषा का व्यवहार असंभव प्रतीत हुआ। इससे कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज के प्रोत्साहन से खड़ी बोली के दो रूपों में गद्य साहित्य का निर्माण आरंभ हुआ—उर्दू में अलग और हिंदी में अलग। इस प्रकार 'खड़ी बोली' का ग्रहण हिंदी के गद्य-साहित्य में तो हो गया, पर पद्य की भाषा बहुत दिनों तक एक ही—वही व्रजभाषा—रही। भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय तक यही अवस्था रही। पीछे हिंदी साहित्य-सेवियों का ध्यान गद्य और पद्य की एक भाषा करने की ओर गया और बहुत से लोग 'खड़ी बोली' के पद्य की ओर ज़ोर देने लगे। यह बात बहुत दिनों तक एक आंदोलन के रूप में रही; फिर क्रमशः खड़ी बोली में भी बराबर हिंदी की कविताएँ लिखी जाने लगीं। इस प्रकार हिंदी साहित्य के भीतर अब तीन बोलियाँ आ गईं—खड़ी बोली, व्रजभाषा और अवधी। हिंदी साहित्य की जानकारी के लिये अब इन तीनों बोलियों का जानना आवश्यक है। साहित्यिक खड़ी बोली की हिंदी और उर्दू दो शाखाएँ हो जाने से साधारण बोल-चाल की मिली जुली भाषा को अँगरेज़ हिंदुस्तानी कहने लगे हैं।

हिंदी रेंवद-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का पौधा जो हिमालय में ११००० से १२००० फुट की ऊँचाई तक उगता है। यह काश्मीर, लद्दाख, नैपाल, सिक्किम और भूटान में पाया जाता है। इसकी जड़ औषध के काम में आती है और चीनी रेंवद या रेवंदचीनी कहलाती है। इसका रंग भी मैला होता है और सुगंध भी कम होती है, पर चीनी रेवंद की जगह यह बाज़ारों में बराबर बिकती है। चीनी जाति का पौधा तिब्बत के दक्षिण-पूर्व भाग में तथा चीन के पश्चिमोत्तर भाग में होता है और उसकी जड़ क्राइसोफेनिक एसिड के अंश के कारण पीसने पर खूब पीली निकलती है। रेवंद की जड़ दवा के काम में आती है और पुष्ट, उदरशूलनाशक तथा कुछ रेचक होती है। यह आमातिसार में उपकारी होती है, पर ग्रहणी में नहीं।

हिंदुस्तान-संज्ञा पुं० [फ़ा० हिंदोस्तान] (१) भारतवर्ष। वि० दे० "हिंद"। (२) भारतवर्ष का उत्तरीय मध्य भाग जो दिल्ली से लेकर पटने तक और दक्षिण में नर्मदा के किनारे तक माना जाता है। यह ख़ास हिंदुस्तान कहा जाता है। पंजाब, बंगाल, महाराष्ट्र आदि के निवासी इस भू-भाग को प्रायः हिंदुस्तान और यहाँ के निवासियों को हिंदुस्तानी कहा करते हैं।

हिंदुस्तानी-वि० [फ़ा०] हिंदुस्तान का। हिंदुस्तान संबंधी। संज्ञा पुं० (१) हिंदुस्तान का निवासी। भारतवासी। (२) उत्तरीय भारत के मध्यभाग का निवासी। भारतवासी। (पंजाबी, बंगाली आदि से भेद सूचित करने के लिये।) संज्ञा स्त्री० (१) हिंदुस्तान की भाषा। (२) बोलचाल या व्यवहार की वह हिंदी जिसमें न तो बहुत अरबी फारसी के शब्द हों, न संस्कृत के।

हिंदुस्थान-संज्ञा पुं० [फ़ा० हिंदू + सं० स्थान] हिंदुस्तान। भारतवर्ष।

हिंदू-संज्ञा पुं० [फ़ा०] भारतवर्ष में बसनेवाली आर्य्य जाति के वंशज जो भारत में प्रवर्तित या पल्लवित आर्य्य धर्म, संस्कार और समाज-व्यवस्था को मानते चले आ रहे हों। वेद, स्मृति, पुराण आदि अथवा इनमें से किसी एक के अनुसार चलनेवाला। भारतीय आर्य्य-धर्म का अनुयायी।

विशेष—यह नाम प्राचीन पारसियों का दिया हुआ है जो उनके द्वारा संसार में सर्वत्र प्रचलित हुआ। प्राचीन भारतीय आर्य्य अपनी धर्म-व्यवस्था को "वर्णाश्रम-धर्म" के नाम से पुकारते थे। प्राचीन अनार्य्य द्रविड़ जातियों को उन्होंने अपने समाज में मिलाया, पर उन्हें अपनी वर्णव्यवस्था के भीतर करके अर्थात् सिद्धांत रूप में किसी आर्य्य ऋषि, राजा इत्यादि की संतति मानकर। पीछे शक, हूण और यवन आदि भी जो मिले, वे या तो वसिष्ठ ऋषि द्वारा उत्पन्न (गाय से सही) वीरों के वंशज माने जाकर अथवा ब्राह्मणों के दर्शन से पतित क्षत्रिय माने जाकर। सारांश यह कि भारतीय आर्य्य अपनी धर्मव्यवस्था को मज़हब की तरह फैलाते नहीं थे; आसपास की या आई हुई जातियाँ उसे सभ्यता के संस्कार के रूप में आपसे आप ग्रहण करती थीं। प्राचीन काल में आर्य्य-सभ्यता के दो केंद्र थे—भारत और पारस। इन दोनों में भेद बहुत कम था। हूणों ने पहले पारसी सभ्यता ग्रहण की, फिर भारत में आकर वे भारतीय आर्य्यों में मिले। शक जाति तो आर्य्य जाति की ही एक शाखा थी। पीछे जब पारस-निवासी मुसलमान हो गए तब उन्होंने 'हिंदू' शब्द के साथ 'काफ़िर', 'काला', 'लुटेरा' आदि कुत्सित अर्थों की योजना की। जब तक वे आर्य्य-धर्म के अनुयायी रहे, तब तक 'हिंदू' शब्द का प्रयोग आदर के साथ "हिंद के निवासी" के अर्थ में ही करते थे। यह शब्द इसलाम के प्रचार के बहुत पहले का है (दे० 'हिंद')। अतः पीछे से मुसलमानों के बुरे अर्थ की योजना करने से यह शब्द बुरा नहीं हो सकता। मेरुतंत्र आदि कुछ आधुनिक ग्रंथों में इस शब्द को संस्कृत सिद्ध करने का जो

प्रयत्न किया गया है, उसे कल्पना मात्र ही समझना चाहिए।

हिंदूकुश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक पर्वत-श्रेणी जो अफ़गानिस्तान के उत्तर में है और हिमालय से मिली हुई है।

हिंदूपन–संज्ञा पुं० [फ़ा० हिंदू+पन (प्रत्य०)] हिंदू होने का भाव या गुण।

हिंदोरना–क्रि० स० [सं० हिंदोल+ना (हिं० प्रत्य०)] पानी के समान पतली चीज़ में हाथ या कोई चीज डालकर इधर उधर घुमाना। घँघोलना। फेंटना।

हिंदोल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंडोला। झूला। (२) हिंदोल नाम का राग।

हिंदोस्तान–संज्ञा पुं० दे० "हिंदुस्तान"।

हिंदोस्तानी–वि०, संज्ञा पुं०, संज्ञा स्त्री० दे० "हिंदुस्तानी"।

हिंयाँ†⊛–अव्य० दे० "यहाँ"।

हिंव–संज्ञा पुं० दे० "हिम"।

हिंवार–संज्ञा पुं० [सं० हिमालि] हिम। बर्फ। पाला।

मुहा०–हिंवार पड़ना=(१) बर्फ गिरना। (२) बहुत सर्दी पड़ना। बहुत जाड़ा होना।

हिंस–संज्ञा स्त्री० [सं० हेष या अनु० हिं हिं] घोड़ों के बोलने का शब्द। हींस। हिनहिनाहट। उ०—गरजहिं गज, घंटाधुनि घोरा। रथ रव बाजि-हिंस चहुँ ओरा।—तुलसी।

हिंसक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंसा करनेवाला। हत्यारा। घातक। मारने या पीड़ित करनेवाला। वध करने या कष्ट पहुँचानेवाला। (२) बुराई करनेवाला। हानि करनेवाला। (३) जीवों को मारनेवाला पशु। खूँखार जानवर। (४) शत्रु। दुश्मन। (५) मारण, उच्चाटन आदि प्रयोग करनेवाला ब्राह्मण। तांत्रिक ब्राह्मण।

हिंसन–संज्ञा पुं० [सं०] [हिंसनीय, हिंसित, हिंस्य] (१) जीवों का वध करना। जान मारना। घात करना। (२) जीवों को पीड़ा पहुँचाना। कष्ट देना। सताना। पीड़न। (३) बुराई करना। अनिष्ट करना या चाहना।

हिंसनीय–वि० [सं०] (१) हिंसा करने योग्य। (२) जिसकी हिंसा की जानेवाली हो।

हिंसा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वध या पीड़ा। जीवों को मारना या सताना। प्राण मारना या कष्ट देना। (२) हानि पहुँचाना। अनिष्ट करना।

विशेष—हिंसा तीन प्रकार से हो सकती है—मनसा, वाचा और कर्मणा। पुराणों में हिंसा लोभ की कन्या और अधर्म की भार्या कही गई है। जैन शास्त्रानुसार हिंसा चार प्रकार की होती है—आकुट्टी हिंसा, दर्प हिंसा, प्रमाद हिंसा और कल्प हिंसा।

हिंसाकर्म–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वध व पीड़ा पहुँचाने का कर्म। मारने या सताने का काम। (२) दूसरे का अनिष्ट करने के लिये मारण, उच्चाटन, पुरश्चरण आदि तांत्रिक प्रयोग।

हिंसात्मक–वि० [सं०] जिसमें हिंसा हो। हिंसा से युक्त।

हिंसारु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंस्र पशु। खूँखार जानवर। (२) बाघ। शेर।

हिंसालु–वि० [सं०] (१) हिंसा करनेवाला। मारने या सतानेवाला। (२) हिंसा की प्रवृत्तिवाला।

हिंसितव्य–वि० [सं०] हिंसा करने योग्य या जिसकी हिंसा करनी हो।

हिंसीर–वि० [सं०] हिंसा करनेवाला। सतानेवाला।

संज्ञा पुं० बाघ।

हिंस्य–वि० [सं०] (१) हिंसा के योग्य। (२) जिसकी हिंसा होनेवाली हो।

हिंस्र–वि० [सं०] हिंसा करनेवाला। खूँखार। जैसे,—हिंस्र पशु।

हि–एक पुरानी विभक्ति जिसका प्रयोग पहले तो सब कारकों में होता था, पर पीछे कर्म और संप्रदान में ही ('को' के अर्थ में) रह गया। जैसे,—रामहि प्रेम समेत लखि।

विशेष—पाली में तृतीया और पंचमी की विभक्ति के रूप में 'हि' का व्यवहार मिलता है। पीछे प्राकृतों में संबंध के लिये भी विकल्प से अपादान की विभक्ति आने लगी और सब कारकों का काम कभी कभी संबंध की विभक्ति से ही चलाया जाने लगा। 'रासो' आदि की पुरानी हिंदी में 'ह' रूप में भी यह विभक्ति मिलती है। अपभ्रंश में 'हो' और 'हे' रूप संबंध विभक्ति के मिलते हैं। यह 'हि' या 'ह' विभक्ति संस्कृत के 'भिस्' या 'भ्यस्' से निकली जान पड़ती है।

†⊛अव्य० दे० "ही"।

हिअऊ–संज्ञा पुं० [प्रा०] (१) हृदय। (२) छाती।

हिआ–संज्ञा पुं० [प्रा० हिअ] (१) हृदय। (२) छाती। उ०—हिआ थार कुच कंचन लाडू।—जायसी।

हिआउ‡–संज्ञा पुं० दे० "हियाव"।

हिआव–संज्ञा पुं० [हिं० हिय+आव (भाव प्रत्य०)] साहस। जिगरा। हिम्मत। वि० दे० "हियाव"। उ०—भँवर जो मनसा मानसर लीन्ह कँवलरस आइ। घुन जो हिआव न कै सका झूर काठ तस खाइ।—जायसी।

हिकड़ा–संज्ञा पुं० [फ़ा० से:=तीन+कोरी] तीन कोड़ी कपड़ों का समूह। (कोरी)

हिकमत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) विद्या। तत्वज्ञान। (२) कला कौशल। निर्माण की युक्ति। कोई चीज़ बनाने या निकालने की अक्ल। जैसे,—हिकमते चीन, हुज्जते बंगाल। (३) कार्य सिद्ध करने की युक्ति। तदबीर। उपाय। जैसे,—इसके हाथ से रुपया निकालने की तुम्हीं कोई हिकमत सोचो।

क्रि० प्र०—करना।—निकालना।—लगाना।

(४) चतुराई का ढंग। चाल। पालिसी। जैसे,—ऐसे मौके पर हिकमत से काम लेना चाहिए। (५) किफ़ायत। (६) हकीम का काम या पेशा। हकीमी। वैद्यक। (७) मल्लाही। (लश्क०)

हिकमती-वि० [अ० हिकमत] (१) कार्य-साधन की युक्ति निकालनेवाला। तदबीर सोचनेवाला। उपाय निकालनेवाला। कार्य्यपटु। (२) चतुर। चालाक। (३) किफ़ायती।

हिकलाना-क्रि० अ० दे० "हकलाना"।

हिकायत-संज्ञा स्त्री० [अ०] कथा। कहानी। प्रसंग।

हिक्कल-संज्ञा पुं० [?] बौद्ध सन्यासियों या भिक्षुओं का दंड।

हिक्का-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिचकी। (२) बहुत हिचकी आने का रोग।

विशेष—वायु का पसलियों और अँतड़ियों को पीड़ित करते हुए ऊपर चढ़कर गले से झटके से निकलना ही हिक्का या हिचकी है। वैद्यक में वायु और कफ के मेल से पाँच प्रकार की हिक्का कही गई है—अन्नजा, यमला, क्षुद्रा, गंभीरा और महती। पेट में अफरा, पसलियों में तनाव, कंठ और हृदय का भारी होना, मुँह कसैला होना हिक्का होने के पूर्व लक्षण हैं। गरम, बादी, गरिष्ठ, रूखी और बासी चीज़ें खाना, मुँह में धूल जाना, थकावट, मलमूत्र का वेग रोकना हिक्का के कारण कहे गए हैं। जिस हिक्का में रोगी को कंप हो, ऊपर की ओर दृष्टि चढ़ जाय, आँख के सामने अँधेरा छा जाय, शरीर दुबला होता जाय, छींक बहुत आवे और भोजन में अरुचि हो जाय, वह असाध्य कही गई है।

(३) रोने या सिसकने का वह शब्द जो रुक रुककर आवे।

हिक्किका-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिक्का। हिचकी।

हिक्की-वि० [सं० हिक्किन्] जिसे हिक्का रोग हो। हिचकी का रोगी।

हिचक-संज्ञा स्त्री० [हिं० हिचकना] किसी काम के करने में वह रुकावट जो मन में मालूम हो। आगा पीछा।

हिचकना-क्रि० अ० [सं० हिक्का या अनु० हिच+ना (प्रत्य०)] (१) हिचकी लेना। वायु का उठा हुआ झोंका कंठ से निकालना। (२) किसी काम के करने में कुछ अनिच्छा, भय या संकोच के कारण प्रवृत्त न होना। आगा पीछा करना। जैसे,—वहाँ जाने से तुम हिचकते क्यों हो?

हिचकिचाना-क्रि० अ० दे० "हिचकना"।

हिचकिचाहट-संज्ञा स्त्री० दे० "हिचक"।

हिचकिची-संज्ञा स्त्री० दे० "हिचक"।

हिचकी-संज्ञा स्त्री० [अनु० हिच या सं० हिक्का] (१) पेट की वायु का झोंके के साथ ऊपर चढ़कर कंठ में धक्का देते हुए निकलना। उदरस्थ वायु के कंठ में आघात या शब्द के साथ निकलने की क्रिया।

क्रि० प्र०—आना।—लेना।

मुहा०—हिचकियाँ लगना = मरने के समय वायु का कंठ में से रह रहकर आघात करते हुए निकलना। मरणासन्न अवस्था होना। मरने के निकट होना।

(२) रह रहकर सिसकने का शब्द। रोने में रह रहकर कंठ से साँस छोड़ना।

क्रि० प्र०—बँधना।

हिचर मिचर-संज्ञा पुं० [हिं० हिचक] (१) किसी काम के करने में भय, संकोच या कुछ अनिच्छा के कारण रुकना [redacted] देर करना। आगा-पीछा। सोच-विचार। (२) किसी काम को न करना पड़े, इसलिये देर करना या इधर उधर की बात कहना। टालमटूल।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हिजड़ा-संज्ञा पुं० दे० "हीजड़ा"।

हिजरा‡-संज्ञा पुं० दे० "हीजड़ा"।

हिजरी-संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानी सन् या संवत् जो मुहम्मद साहब के मक्के से मदीने भागने की तारीख़ (१५ जुलाई सन् ६२२ ई० अर्थात् विक्रम संवत् ६७९ श्रावण शुक्ल २ का सायंकाल) से चला है।

विशेष—ख़लीफ़ा उमर ने विद्वानों की सम्मति से यह हिजरी सन् स्थिर किया था। हिजरी सन् का वर्ष शुद्ध चांद्र वर्ष है। इसका प्रत्येक मास चंद्रदर्शन (शुक्ल द्वितीया) से आरंभ होता है और दूसरे चंद्रदर्शन तक माना जाता है। [redacted] एक तारीख़ सायंकाल से आरंभ होकर दूसरे दिन सायंकाल तक मानी जाती है। इस सन् के बारह महीनों के नाम इस प्रकार हैं—मुहर्रम, सफ़र, रबीउल् अव्वल, रबीउस्सानी, जमादिउल् अव्वल, जमादिउल् आख़िर, रजब, शाबान, रमज़ान, शव्वाल, ज़िल्काद और ज़िलहिज। चांद्रमास २९ दिन, ३१ घड़ी, ५० पल और ७ विपल का होता है; इससे चांद्रवर्ष सौरवर्ष से १० दिन, ५३ घड़ी, ३० पल और ६ विपल के क़रीब कम होता है। इस हिसाब से सौ वर्ष में ३ चांद्रवर्ष २४ दिन और ९ घड़ियाँ बढ़ जाती हैं। अतः ईसवी सन् या विक्रम संवत् से हिजरी सन् का कोई निश्चित अंतर नहीं रहता, जिससे दिए हुए हिजरी सन् में कोई निश्चित संख्या जोड़कर ईसवी सन् या विक्रम निकाल लें। इसके लिये गणित करना पड़ता है।

हिजाज़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) अरब के एक भाग का नाम जिसमें मक्का और मदीना नामक नगर हैं। (२) फ़ारसी संगीत के १२ मुक़ामों में से एक।

हिजाब-संज्ञा पुं० [अ०] (१) परदा। (२) शर्म। हया। लज्जा।

हिज्र-संज्ञा पुं० दे० "हिज्रान"।

‡ संज्ञा पुं० दे० "हीजड़ा"।

हिज्जल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़।

हिज्जे–संज्ञा पुं० [अ० हिज्जः] किसी शब्द में आए हुए अक्षरों को मात्रा सहित कहना।

क्रि० प्र०—करना।

हिज्र–संज्ञा पुं० [अ०] जुदाई। वियोग। बिछोह।

हिटकना‡–क्रि० स० दे० "हटकना"।

हिडंब–संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० हिडंबी] भैंसा। (डिं०)

हिडिंब–संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम जिसे भीम ने पांडवों के वनवास के समय मारा था।

हिडिंबा–संज्ञा स्त्री० [सं०] हिडिंब राक्षस की बहिन जो पांडवों के वनवास के समय भीम को देखकर मोहित हो गई थी और जिसके साथ, हिडिंब को मार चुकने पर, भीम ने विवाह किया था। इस विवाह से भीम को घटोत्कच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

हिडोर, हिडोला–संज्ञा पुं० दे० "हिंडोला"।

हित–वि० [सं०] (१) लाभदायक। उपकारी। फायदेमंद। (२) अनुकूल। मुवाफिक। (३) अच्छा व्यवहार करनेवाला। भलाई करने या चाहनेवाला। सद्भाव रखनेवाला। खैरख्वाह।

संज्ञा पुं० (१) लाभ। फ़ायदा। (२) कल्याण। मंगल। भलाई। उपकार। बेहतरी। उ०—राम-विमुख सुत तें हित-हानी।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—हितकर। हितकारी।

(३) अनुकूलता। मुवाफिक़त। (४) स्वास्थ्य के लिये लाभ। तंदुरुस्ती को फायदा। (५) प्रेम। स्नेह। अनुराग। उ०—हित करि स्याम सों कह पायो?—सूर। (६) मित्रता। खैरख्वाही। (७) भला चाहनेवाला आदमी। मित्र। (८) संबंध। नाता। रिश्ता। (९) संबंधी। नातेदार। रिश्तेदार।

अव्य० (१) (किसी के) लाभ के हेतु। खातिर। प्रसन्नता के लिये। (२) निमित्त। हेतु। कारण। लिये। वास्ते। उ०—हरि हित हरहु चाप गरुवाई।—तुलसी।

हितक–संज्ञा पुं० [सं०] किसी जानवर का बच्चा।

हितकर–वि० [सं०] (१) भलाई करनेवाला। उपकार या कल्याण करनेवाला। (२) लाभ पहुँचानेवाला। उपयोगी। फायदेमंद। (३) शरीर को आराम या आरोग्यता देनेवाला। स्वास्थ्यकर।

हितकर्त्ता–संज्ञा पुं० [सं०] भलाई करनेवाला।

हितकाम–संज्ञा पुं० [सं०] भलाई की कामना या इच्छा। खैरख्वाही।

वि० भलाई चाहनेवाला।

हितकारक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भलाई करनेवाला। उपकार या कल्याण करनेवाला। (२) लाभ पहुँचानेवाला। फायदेमंद। (३) स्वास्थ्यकर।

हितकारी–वि० [सं० हितकारिन्] [स्त्री० हितकारिणी] (१) हित या भलाई करनेवाला। उपकार या कल्याण करनेवाला। (२) लाभ पहुँचानेवाला। फायदेमंद। (३) स्वास्थ्यकर।

हितचिंतक–संज्ञा पुं० [सं०] भला चाहनेवाला। खैरख्वाह।

हितचिंतन–संज्ञा पुं० [सं०] किसी की भलाई की कामना या इच्छा। उपकार की इच्छा। खैरख्वाही।

हितताॐ–संज्ञा स्त्री० [सं० हित+ता] भलाई। उपकार।

हितवचन–संज्ञा पुं० [सं०] भलाई का वचन। कल्याण का उपदेश। बेहतरी की सलाह।

हितवनाॐ†–क्रि० अ० दे० "हिताना"।

हितवादी–वि० [सं० हितवादिन्] [स्त्री० हितवादिनी] हित की बात कहनेवाला। बेहतरी की सलाह देनेवाला।

हिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाली। बरहा। (२) एक विशेष प्रकार की रक्तवाहिनी नस या शिरा।

हिताई–संज्ञा स्त्री० [सं० हित+आई (हिं० प्रत्य०)] नाता। रिश्ता। संबंध।

हितानाॐ–क्रि० अ० [सं० हित+आना (प्रत्य०)] (१) हितकारी होना। अनुकूल होना। (२) प्रेमयुक्त होना। उ०—बाँध्यो देखि स्याम को परबस गोपी परम हितानी।—सूर। (३) प्यारा लगना। अच्छा लगना। भाना। रुचिकर होना। उ०—ऐसे करम नाहिं प्रभु मेरे जाते तुमहिं हितैहौं।—सूर।

हितावह–वि० [सं०] जिससे भलाई हो। हितकारी। कल्याणकारी।

हिताहित–संज्ञा पुं० [सं०] भलाई बुराई। लाभ हानि। नफ़ा नुकसान। उपकार और अपकार। जैसे,—जिसे अपने हिताहित का ध्यान नहीं, वह बावला है।

हिती–वि० [सं० हित+ई (हिं० प्रत्य०)] (१) हितू। भलाई चाहनेवाला। खैरख्वाह। (२) मित्र। दोस्त।

हितु–संज्ञा पुं० दे० "हित"; "हितू"।

हितुआ, हितुवा‡–संज्ञा पुं० दे० "हितू"।

हितू–संज्ञा पुं० [सं० हित] (१) भलाई करने या चाहनेवाला। खैरख्वाह। दोस्त। उ०—चलि सब कौतुक देखनहारे। जेइ कहावत हितू हमारे।—तुलसी। (२) संबंधी। नातेदार। (३) सुहृद। स्नेही।

हितेच्छा–संज्ञा स्त्री० [सं०] भलाई की चाह। खैरख्वाही। उपकार का ध्यान।

हितेच्छु–वि० [सं०] भला चाहनेवाला। खैरख्वाह। कल्याण मनानेवाला।

हितैषिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] भलाई चाहने की वृत्ति। खैरख्वाही।

क्रि० प्र०—करना।—निकालना।—लगाना।

(४) चतुराई का ढंग। चाल। पालिसी। जैसे,—ऐसे मौके पर हिकमत से काम लेना चाहिए। (५) किफ़ायत। (६) हकीम का काम या पेशा। हकीमी। वैद्यक। (७) मल्लाही। (लश्क०)

हिकमती–वि० [अ० हिकमत] (१) कार्य-साधन की युक्ति निकालनेवाला। तदबीर सोचनेवाला। उपाय निकालनेवाला। कार्य्यपटु। (२) चतुर। चालाक। (३) किफ़ायती।

हिकलाना–क्रि० अ० दे० "हकलाना"।

हिकायत–संज्ञा स्त्री० [अ०] कथा। कहानी। प्रसंग।

हिकल–संज्ञा पुं० [?] बौद्ध सन्यासियों या भिक्षुओं का दंड।

हिक्का–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिचकी। (२) बहुत हिचकी आने का रोग।

विशेष—वायु का पसलियों और अँतड़ियों को पीड़ित करते हुए ऊपर चढ़कर गले से झटके से निकलना ही हिक्का या हिचकी है। वैद्यक में वायु और कफ़ के मेल से पाँच प्रकार की हिक्का कही गई है—अन्नजा, यमला, क्षुद्रा, गंभीरा और महती। पेट में अफरा, पसलियों में तनाव, कंठ और हृदय का भारी होना, मुँह कसैला होना हिक्का होने के पूर्व लक्षण हैं। गरम, खट्टी, गरिष्ठ, रूखी और बासी चीज़ें खाना, मुँह में धूल जाना, थकावट, मलमूत्र का वेग रोकना हिक्का के कारण कहे गए हैं। जिस हिक्का में रोगी को कंप हो, ऊपर की ओर दृष्टि चढ़ जाय, आँख के सामने अँधेरा छा जाय, शरीर दुबला होता जाय, छींक बहुत आवे और भोजन में अरुचि हो जाय, वह असाध्य कही गई है।

(२) रोने या सिसकने का वह शब्द जो रुक रुककर आवे।

हिक्किका–संज्ञा स्त्री० [सं०] हिक्का। हिचकी।

हिक्की–वि० [सं० हिक्किन्] जिसे हिक्का रोग हो। हिचकी का रोगी।

हिचक–संज्ञा स्त्री० [हिं० हिचकना] किसी काम के करने में वह रुकावट जो मन में मालूम हो। आगा पीछा।

हिचकना–क्रि० अ० [सं० हिक्का या अनु० हिच+ना (प्रत्य०)] (१) हिचकी लेना। वायु का उठा हुआ झोंका कंठ से निकालना। (२) किसी काम के करने में कुछ अनिच्छा, भय या संकोच के कारण प्रवृत्त न होना। आगा पीछा करना। जैसे,—वहाँ जाने से तुम हिचकते क्यों हो?

हिचकिचाना–क्रि० अ० दे० "हिचकना"।

हिचकिचाहट–संज्ञा स्त्री० दे० "हिचक"।

हिचकिची–संज्ञा स्त्री० दे० "हिचक"।

हिचकी–संज्ञा स्त्री० [अनु० हिच या सं० हिक्का] (१) पेट की वायु का झोंक के साथ ऊपर चढ़कर कंठ में धक्का देते हुए निकलना। उदरस्थ वायु के कंठ में आघात या शब्द के साथ निकलने की क्रिया।

क्रि० प्र०—आना।—लेना।

मुहा०—हिचकियाँ लगना = मरने के समय वायु का कंठ में से रह रहकर आघात करते हुए निकलना। मरणासन्न अवस्था होना। मरने के निकट होना।

(२) रह रहकर सिसकने का शब्द। रोने में रह रहकर कंठ से साँस छोड़ना।

क्रि० प्र०—बँधना।

हिचर मिचर–संज्ञा पुं० [हिं० हिचक] (१) किसी काम के करने में भय, संकोच या कुछ अनिच्छा के कारण रुकना या देर करना। आगा-पीछा। सोच-विचार। (२) किसी काम को न करना पड़े, इसलिये देर करना या इधर उधर की बात कहना। टालमटूल।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हिजड़ा–संज्ञा पुं० दे० "हीजड़ा"।

हिजरा†–संज्ञा पुं० दे० "हीजड़ा"।

हिजरी–संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानी सन् या संवत् जो मुहम्मद साहब के मक्के से मदीने भागने की तारीख़ (१५ जुलाई सन् ६२२ ई० अर्थात् विक्रम संवत् ६७९ श्रावण शुक्ल २ का सायंकाल) से चला है।

विशेष—ख़लीफ़ा उमर ने विद्वानों की सम्मति से यह हिजरी सन् स्थिर किया था। हिजरी सन् का वर्ष शुद्ध चांद्र वर्ष है। इसका प्रत्येक मास चंद्रदर्शन (शुक्ल द्वितीया) से आरंभ होता है और दूसरे चंद्रदर्शन तक माना जाता है। हर एक तारीख़ सायंकाल से आरंभ होकर दूसरे दिन सायंकाल तक मानी जाती है। इस सन् के बारह महीनों के नाम इस प्रकार हैं—मुहर्रम, सफ़र, रबीउल् अव्वल, रबीउस्सानी, जमादिउल् अव्वल, जमादिउल् आख़िर, रजब, शाबान, रमज़ान, शव्वाल, ज़िलकाद और ज़िलहिज। चांद्रमास २९ दिन, ३१ घड़ी, ५० पल और ७ विपल का होता है; इससे चांद्रवर्ष सौरवर्ष से १० दिन, ५३ घड़ी, ३० पल और ६ विपल के क़रीब कम होता है। इस हिसाब से सौ वर्ष में ३ चांद्रवर्ष २४ दिन और ९ घड़ियाँ बढ़ जाती हैं। अतः ईसवी सन् या विक्रम संवत् से हिजरी सन् का कोई निश्चित अंतर नहीं रहता, जिससे दिए हुए हिजरी सन् में कोई निश्चित संख्या जोड़कर ईसवी सन् या विक्रम निकाल लें। इसके लिये गणित करना पड़ता है।

हिजाज़–संज्ञा पुं० [अ०] (१) अरब के एक भाग का नाम जिसमें मक्का और मदीना नामक नगर हैं। (२) फारसी संगीत के १२ मुकामों में से एक।

हिजाब–संज्ञा पुं० [अ०] (१) परदा। (२) शर्म। हया। लज्जा।

हिज्र–संज्ञा पुं० दे० "हिज्रान"।

‡ संज्ञा पुं० दे० "हीजड़ा"।

हिज्जल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़।

हिज्जे-संज्ञा पुं० [अ० हिज्जः] किसी शब्द में आए हुए अक्षरों को मात्रा सहित कहना।

क्रि० प्र०—करना।

हिज्र-संज्ञा पुं० [अ०] जुदाई। वियोग। बिछोह।

हिटकना†-क्रि० स० दे० "हटकना"।

हिडंब-संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० हिडंबी] भैंसा। (डिं०)

हिडिंब-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम जिसे भीम ने पांडवों के वनवास के समय मारा था।

हिडिंबा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिडिंब राक्षस की बहिन जो पांडवों के वनवास के समय भीम को देखकर मोहित हो गई थी और जिसके साथ, हिडिंब को मार चुकने पर, भीम ने विवाह किया था। इस विवाह से भीम को घटोत्कच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

हिडोर, हिडोला-संज्ञा पुं० दे० "हिंडोला"।

हित-वि० [सं०] (१) लाभदायक। उपकारी। फायदेमंद। (२) अनुकूल। मुवाफ़िक़। (३) अच्छा व्यवहार करनेवाला। भलाई करने या चाहनेवाला। सद्भाव रखनेवाला। खैरख़ाह।

संज्ञा पुं० (१) लाभ। फ़ायदा। (२) कल्याण। मंगल। भलाई। उपकार। बेहतरी। उ०—राम-विमुख सुत तें हित-हानी।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—हितकर। हितकारी।

(३) अनुकूलता। मुवाफ़िक़त। (४) स्वास्थ्य के लिये लाभ। तंदुरुस्ती को फायदा। (५) प्रेम। स्नेह। अनुराग। उ०—हित करि स्याम सों कह पायो ?—सूर। (६) मित्रता। खैरख़ाही। (७) भला चाहनेवाला आदमी। मित्र। (८) संबंध। नाता। रिश्ता। (९) संबंधी। नातेदार। रिश्तेदार।

अव्य० (१) (किसी के) लाभ के हेतु। ख़ातिर। प्रसन्नता के लिये। (२) निमित्त। हेतु। कारण। लिये। वास्ते। उ०—हरि हित हरहु चाप गरुआई।—तुलसी।

हितक-संज्ञा पुं० [सं०] किसी जानवर का बच्चा।

हितकर-वि० [सं०] (१) भलाई करनेवाला। उपकार या कल्याण करनेवाला। (२) लाभ पहुँचानेवाला। उपयोगी। फायदेमंद। (३) शरीर को आराम या आरोग्यता देनेवाला। स्वास्थ्यकर।

हितकर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं०] भलाई करनेवाला।

हितकाम-संज्ञा पुं० [सं०] भलाई की कामना या इच्छा। खैरख़ाही।

वि० भलाई चाहनेवाला।

हितकारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भलाई करनेवाला। उपकार या कल्याण करनेवाला। (२) लाभ पहुँचानेवाला। फायदेमंद। (३) स्वास्थ्यकर।

हितकारी-वि० [सं० हितकारिन्] [स्त्री० हितकारिणी] (१) हित या भलाई करनेवाला। उपकार या कल्याण करनेवाला। (२) लाभ पहुँचानेवाला। फायदेमंद। (३) स्वास्थ्यकर।

हितचिंतक-संज्ञा पुं० [सं०] भला चाहनेवाला। खैरख़ाह।

हितचिंतन-संज्ञा पुं० [सं०] किसी की भलाई की कामना या इच्छा। उपकार की इच्छा। खैरख़ाही।

हितता॥-संज्ञा स्त्री० [सं० हित+ता] भलाई। उपकार।

हितवचन-संज्ञा पुं० [सं०] भलाई का वचन। कल्याण का उपदेश। बेहतरी की सलाह।

हितवना॥†-क्रि० अ० दे० "हिताना"।

हितवादी-वि० [सं० हितवादिन्] [स्त्री० हितवादिनी] हित की बात कहनेवाला। बेहतरी की सलाह देनेवाला।

हिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाली। बरहा। (२) एक विशेष प्रकार की रक्तवाहिनी नस या शिरा।

हिताई-संज्ञा स्त्री० [सं० हित+आई (हिं० प्रत्य०)] नाता। रिश्ता। संबंध।

हिताना॥-क्रि० अ० [सं० हित+आना (प्रत्य०)] (१) हितकारी होना। अनुकूल होना। (२) प्रेमयुक्त होना। उ०—बाँच्यो देखि स्याम को परबस गोपी परम हितानी।—सूर। (३) प्यारा लगना। अच्छा लगना। भाना। रुचिकर होना। उ०—ऐसे करम नाहिं प्रभु मेरे जाते तुमहिं हितैहौं।—सूर।

हितावह-वि० [सं०] जिससे भलाई हो। हितकारी। कल्याणकारी।

हिताहित-संज्ञा पुं० [सं०] भलाई बुराई। लाभ हानि। नफ़ा नुकसान। उपकार और अपकार। जैसे,—जिसे अपने हिताहित का ध्यान नहीं, वह बालक है।

हिती-वि० [सं० हित+ई (हिं० प्रत्य०)] (१) हितू। भलाई चाहनेवाला। खैरख़ाह। (२) मित्र। दोस्त।

हितु-संज्ञा पुं० दे० "हित"; "हितू"।

हितुआ, हितुवा†-संज्ञा पुं० दे० "हितू"।

हितू-संज्ञा पुं० [सं० हित] (१) भलाई करने या चाहनेवाला। खैरख़ाह। दोस्त। उ०—सखि सब कौतुक देखनहारे। जेइ कहावत हितू हमारे।—तुलसी। (२) संबंधी। नातेदार। (३) सुहृद। स्नेही।

हितेच्छा-संज्ञा स्त्री० [सं०] भलाई की चाह। खैरख़ाही। उपकार का ध्यान।

हितेच्छु-वि० [सं०] भला चाहनेवाला। खैरख़ाह। कल्याण मनानेवाला।

हितैषिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] भलाई चाहने की वृत्ति। खैरख़ाही।

हितैषी–वि० [सं० हितैषिन्] [स्त्री० हितैषिणी] भला चाहनेवाला। खैरख्वाह। कल्याण मनानेवाला।
संज्ञा पुं० दोस्त। मित्र। सुहृद।

हितोक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] हित के वचन। भलाई का उपदेश। कल्याणकारी उपदेश। नेक सलाह।

हितोपदेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भलाई का उपदेश। नेक सलाह। (२) विष्णुशर्म्मा रचित संस्कृत का एक प्रसिद्ध ग्रंथ जिसमें व्यवहार-नीति की शिक्षा को लिए हुए उपदेश और कहानियाँ हैं।

हितौना†⊛–क्रि० अ० दे० "हिताना"।

हिदायत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) पथ प्रदर्शन। रास्ता दिखाना। (२) अधिकारी की शिक्षा। आदेश। निर्देश।

हिनकाना–क्रि० अ० [अनु० हिन हिन + करना] घोड़े का बोलना। हिनहिनाना।

हिनती⊛†–संज्ञा स्त्री० [सं० हीनता] हीनता। तुच्छता। छोटापन।

हिनवाना–संज्ञा पुं० दे० "हिंदवाना"।

हिनहिनाना–क्रि० अ० [अनु० हिन हिन] घोड़े का बोलना। हींसना।

हिनहिनाहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० हिनहिनाना] घोड़े की बोली।

हिना–संज्ञा स्त्री० [अ०] मेंहदी।

हिफ़ाज़त–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) किसी की वस्तु को इस प्रकार रखना कि वह नष्ट होने या बिगड़ने न पावे। रक्षा। जैसे,—इस चीज को हिफ़ाज़त से रखना। (२) बचाव। देख-रेख। खबरदारी। सावधानी। जैसे,—यहाँ लड़कों की हिफ़ाज़त कौन करेगा?
क्रि० प्र०—करना।—रखना।

हिब्बा–संज्ञा पुं० [अ० हिब्बः] (१) दाना। (२) दो जौ की एक तौल।
मुहा०—हिब्बा भर = जरा सा। थोड़ा।
(३) दान।
यौ०—हिब्बानामा।

हिब्बानामा–संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] दानपत्र।

हिमंचल†⊛–संज्ञा पुं० दे० "हिमाचल"।

हिमंत†⊛–संज्ञा पुं० दे० "हेमंत"।

हिम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाला। बर्फ़। जल का वह ठोस रूप जो सरदी से जमने के कारण होता है। तुषार। (२) जाड़ा। ठंढ। (३) जाड़े की ऋतु। (४) चंद्रमा। (५) चंदन। (६) कपूर। (७) राँगा। (८) मोती। (९) ताजा मक्खन। (१०) कमल। (११) पृथ्वी के विभागों या वर्षों में से एक। (१२) वह दवा जो रातभर ठंढे पानी में भिगोकर सबेरे मलकर छान ली जाय। ठंढा काथ या काढ़ा। खेसाँदा।
वि० ठंढा। सर्द।

हिम-उपल–संज्ञा पुं० [सं०] ओला। पत्थर। जमा हुआ मेह।
उ०—जिमि हिम-उपल कृषी दलि गरहीं।—तुलसी।

हिम ऋतु–संज्ञा स्त्री० [सं०] जाड़े का मौसिम। हेमंत ऋतु।

हिमक–संज्ञा पुं० [सं०] तालीशपत्र।

हिमकण–संज्ञा पुं० [सं०] बर्फ़ या पाले के महीन टुकड़े।

हिमकर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

हिमकिरण–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

हिमखंड–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पहाड़।

हिमगु–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

हिमगृह–संज्ञा पुं० [सं०] वह घर या कोठरी जो बहुत ठंढी हो और जिसमें ठंढक के सामान इकट्ठे हों। सर्दखाना।

हिमज–वि० [सं०] (१) बर्फ़ में होनेवाला। (२) हिमालय में होनेवाला। (३) हिमालय से उत्पन्न।
संज्ञा पुं० मैनाक पर्वत।

हिमजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खिरनी का पेड़। (२) यवनाल से निकली हुई चीनी। (३) पार्वती।

हिमतैल–संज्ञा पुं० [सं०] कपूर देकर बनाया हुआ तेल।

हिमदीधिति–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

हिमदुग्धा–संज्ञा स्त्री० [सं०] खिरनी। क्षीरिणी।

हिमद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] बकायन का पेड़।

हिमपात–संज्ञा पुं० [सं०] पाला पड़ना। बर्फ़ गिरना।

हिमप्रस्थ–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पहाड़।

हिमभानु–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

हिममयूख–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

हिमयुक्त–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कपूर।

हिमरश्मि–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

हिमरुचि–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

हिमर्तु–संज्ञा स्त्री० [सं०] हिम ऋतु। जाड़े का मौसिम।

हिमवत्–संज्ञा पुं० "हिमवान्"।

हिमवत्खंड–संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद पुराण के एक खंड या विभाग का नाम।

हिमवत्सुत–संज्ञा पुं० [सं०] मैनाक पर्वत।

हिमवत्सुता–संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती।

हिमवल–संज्ञा पुं० [सं०] मोती।

हिमवान–वि० [सं० हिमवत्] [स्त्री० हिमवती] बर्फ़वाला। जिसमें बर्फ़ या पाला हो।
संज्ञा पुं० (१) हिमालय पहाड़। (२) कैलाश पर्वत।

हिमवालुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] कपूर।

हिमशर्करा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चीनी जो यवनाल से निकाली जाती है।

हिमशैल–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पहाड़।

हिमशैलजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती ।

हिमसुत–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

हिमहासक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खजूर ।

हिमांक–संज्ञा पुं० [सं०] कपूर ।

हिमांशु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) कपूर ।

हिमाक़त–संज्ञा स्त्री० [अ०] बेवकूफ़ी । मूर्खता ।

हिमाचल–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पहाड़ ।

हिमानी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बर्फ़ का ढेर । पाले का समूह ।

हिमाद्रि–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पहाड़ ।

हिमाब्ज–संज्ञा पुं० [सं०] नील कमल ।

हिमाभ्र–संज्ञा पुं० [सं०] कपूर ।

हिमामदस्ता–संज्ञा पुं० [फ़ा० हावनदस्तः] खरल और बट्टा ।

हिमायत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) रक्षा । अभिभावकता । संरक्षा । (२) पक्षपात । (३) मंडन । समर्थन ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

हिमायती–वि० [फ़ा०] (१) पक्ष करनेवाला । पक्ष लेनेवाला । समर्थन करनेवाला । मंडन करनेवाला । (२) तरफ़दार । सहायता करनेवाला । मददगार ।

हिमाराति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि । आग । (२) सूर्य । (३) चित्रक वृक्ष । चीता । (४) आक । मदार ।

हिमाल–संज्ञा पुं० दे० "हिमालय" ।

हिमालय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भारतवर्ष की उत्तरी सीमा पर बराबर फैला हुआ एक बहुत बड़ा और ऊँचा पहाड़ जो संसार के सब पर्वतों से बड़ा है । इसकी ऊँची चोटियाँ सदा बर्फ से ढकी रहती हैं और सबसे ऊँची चोटी २९००२ फुट ऊँची है । यह संसार की सबसे ऊँची चोटी मानी गई है । उत्तर भारत की सबसे बड़ी नदियाँ इसी पर्वत-राज से निकली हैं । पुराणों में यह पर्वत मेना या मेनका का पति और पार्वती का पिता माना गया है । गंगा भी इसकी बड़ी पुत्री कही गई हैं । (२) सफेद खैर का पेड़ ।

हिमाह्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपूर । (२) जंबू द्वीप के एक वर्ष या खंड का नाम ।

हिमाह्वय–संज्ञा पुं० [सं०] कपूर ।

हिमिछ–संज्ञा पुं० दे० "हिम" ।

हिमेश–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय ।

हिमोत्तरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की दाख । अंगूर ।

हिम्न–संज्ञा पुं० [सं०] बुध ग्रह ।

हिम्मत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) कोई कठिन या कष्टसाध्य कर्म करने की मानसिक दृढ़ता या बल । साहस । जिगरा । (२) बहादुरी । पराक्रम ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—हिम्मत हारना = साहस छोड़ना । उत्साह न रहना । हिम्मत पड़ना = साहस होना ।

हिम्मती–वि० [फ़ा०] (१) हिम्मतवाला । साहसी । दृढ़ । (२) पराक्रमी । बहादुर ।

हिय–संज्ञा पुं० [सं० हृदय, प्रा० हिम] (१) हृदय । मन । उ०—चले भाँति, हिय हरष न थोरा । (२) छाती । वक्षस्थल । विशेष दे० "हिया" ।

मुहा०—हिय हारना = हिम्मत छोड़ना । साहस न रहना । उ०—तेहि कारन आवत हिय हारे । कामी-काक-बलाक बेचारे ।—तुलसी ।

हियरा–संज्ञा पुं० [हिं० हिय + रा (स्वार्थ प्रत्य०)] (१) हृदय । मन । उ०—(क) आँसु बरषि हियरे हरषि, सीता सुखद सुभाय । निरखि निरखि पिय मुद्रिकहि बरनति हैं बहु भाय ।—केशव । (ख) नैसुक हेरि हरयो हियरा मनमोहन मेरो अचानक ही । (२) छाती । वक्षस्थल । उ०—हियरा लगि भामिनि सोइ रही ।—लक्ष्मण० ।

हियाँ–अव्य० दे० "यहाँ" ।

हिया–संज्ञा पुं० [सं० हृदय, प्रा० हिम अ] (१) हृदय । मन । उ०—अब धौं बिनु प्रानप्रिया रहिहैं कहि कौन हितू अवलंब हिये ।—केशव । (२) छाती । वक्षस्थल । उ०—(क) बनमाल हिये अरु विप्रलात ।—केशव । (ख) हिया थार, कुच कंचन लाडू ।—जायसी ।

मुहा०—हिये का अंधा = अज्ञान । मूर्ख । हिये की फूटना = ज्ञान न रहना । अज्ञान रहना । बुद्धि न होना । हिया शीतल या ठंढा होना = मन में सुख शांति होना । मन तृप्त और आनंदित होना । हिया जलना = अत्यंत क्रोध में होना । उ०—क्रूर कुठार निहारि तजै फल ताकि यहै जो हियो जरई ।—केशव । हिये लगाना = गले से लगाना । छाती से लगाना । आलिंगन करना । उ०—क्यों हठि मान गहै सजनी उठि बेगि गोपाल हिये किन लागै ?—शंकर । हिये में लोन सा लगना = बहुत बुरा लगना । अत्यंत अरुचिकर होना । उ०—सुनत हरषि मइ रानी, हिये लोन अस लाग ।—जायसी । हिये पर पाथर धरना = दे० "कलेजे पर पत्थर धरना" । हिया फटना = कलेजा फटना । अत्यंत शोक या दुःख होना । हिया भर आना = कलेजा भर आना । शोक या दुःख का हृदय में अत्यंत वेग होना । हिया भर लेना = दुःख से लंबी साँस लेना । विशेष—मुहा० दे० "जी" और "कलेजा" ।

हियाव–संज्ञा पुं० [हिं० हिय + आव (भाव प्रत्य०)] कोई कठिन काम करने की मानसिक दृढ़ता । साहस । हिम्मत । जीवट । उ०—भौंर जो मनसा मानसर लीन्ह कँवलरस जाय । घुन जो हियाउ न कै सका झूर काठ तस खाय ।—जायसी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—हियाव खुलना = (१) मानसिक दृढ़ता आना। साहस हो जाना। हिम्मत बँधना। (२) संकोच, हिचक या भय न रहना। धड़क खुलना। हियाव पड़ना = हिम्मत होना। साहस होना।

हिरंगु—संज्ञा पुं० [सं०] राहु ग्रह।

हिर—संज्ञा पुं० [सं०] कपड़े आदि की पट्टी।

हिरकना†ॐ—क्रि० अ० [सं० हिरुक् = समीप] (१) पास होना। निकट आना। (२) इतने समीप होना कि स्पर्श हो। सटना। भिड़ना। जैसे,—हिरक कर बैठना।

संयो० क्रि०—जाना।

हिरकाना†ॐ—क्रि० स० [हिं० हिरकना] (१) पास करना। नज़दीक ले आना। (२) इतने समीप ले जाना कि स्पर्श हो जाय। सटाना। भिड़ाना।

संयो० क्रि०—देना।

हिरगुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० हीरा + गुन = सूत] एक प्रकार की बढ़िया कपास जो सिंध में होती है।

हिरण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना। स्वर्ण। (२) वीर्य्य। (३) कौड़ी।

ॐ†संज्ञा पुं० दे० "हिरन", "हरिण"।

हिरण्मय—वि० [सं०] सुनहरा। सोने का।

संज्ञा पुं० (१) हिरण्यगर्भ। ब्रह्मा। (२) एक ऋषि। (३) जंबू द्वीप के नौ खंडों या वर्षों में से एक जो श्वेत और शृंगवान् पर्वतों के बीच कहा गया है। (४) उक्त वर्ष का शासक, अग्नीध्र का पुत्र। (भागवत)

हिरण्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना। स्वर्ण। (२) वीर्य्य। शुक्र। (३) कौड़ी। (४) एक मान या तौल। (५) धतूरा। (६) हिरण्मय वर्ष या खंड। (७) एक दैत्य। (८) नित्य। सत्य। (९) ज्ञान। (१०) ज्योति। तेज। प्रकाश। (११) अमृत।

हिरण्य-कशिपु—वि० [सं०] सोने के तकिए या गद्दीवाला।

संज्ञा पुं० एक प्रसिद्ध विष्णु-विरोधी दैत्य-राजा का नाम जो प्रह्लाद का पिता था।

विशेष—यह कश्यप और दिति का पुत्र था और भगवान् का बड़ा भारी विरोधी था। इसे ब्रह्मा से यह वर मिला था कि मनुष्य, देवता या और किसी प्राणी से तुम्हारा वध नहीं हो सकता। इससे यह अत्यंत प्रबल और अजेय हो गया। जब इसने अपने पुत्र प्रह्लाद को भगवान् की भक्ति करने के कारण बहुत सताया और एक दिन उसे खंभे से बाँध और तलवार खींचकर बार बार कहने लगा कि "बता! अब तेरा भगवान् कहाँ है? आकर तुझे बचावे।" तब भगवान् नृसिंह (आधा सिंह आधा मनुष्य) का रूप धारण करके खंभा फाड़कर प्रकट हुए और उसे फाड़ डाला। भगवान् का चौथा अवतार नृसिंह इसी दैत्य को मारने के लिये हुआ था।

हिरण्य-कश्यप—संज्ञा पुं० दे० "हिरण्य-कशिपु"।

हिरण्य-कामधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान देने के निमित्त बनी हुई सोने की कामधेनु गाय। (ऐसी गाय का दान १६ महादानों में है।)

हिरण्यकार—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्णकार। सुनार।

हिरण्यकेश—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

हिरण्यगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह ज्योतिर्मय अंड जिससे ब्रह्मा और सारी सृष्टि की उत्पत्ति हुई। (२) ब्रह्मा।

विशेष—ब्रह्म ने जल या समुद्र की सृष्टि करके उसमें अपना बीज डाला, जिससे एक अत्यंत देदीप्यमान ज्योतिर्मय या स्वर्णमय अंड की उत्पत्ति हुई। यह अंड सूर्य्य से भी अधिक प्रकाशवान् था। इसी अंड से सृष्टि-निर्माता ब्रह्मा प्रकट हुए जो ब्रह्म के व्यक्त या सगुण रूप हुए। वेदांत की व्याख्या के अनुसार ब्रह्म की शक्ति या प्रकृति पहले रजोगुण की प्रवृत्ति से दो रूपों में विभक्त होती है—सत्वप्रधान और तमःप्रधान। सत्वप्रधान के भी दो रूप हो जाते हैं—शुद्ध सत्व (जिसमें सत्वगुण पूर्ण होता है) और अशुद्ध सत्व (जिसमें सत्व अंशतः रहता है)। प्रकृति के इन्हीं भेदों में प्रतिबिंबित होने के कारण ब्रह्म कभी ईश्वर या हिरण्यगर्भ और कभी जीव कहलाता है। जब शक्ति या प्रकृति के तीन गुणों में से शुद्ध सत्व का उत्कर्ष होता है तब उसे माया कहते हैं; और उस माया में प्रतिबिंबित होनेवाले ब्रह्म को सगुण या व्यक्त ईश्वर, हिरण्यगर्भ आदि कहते हैं। अशुद्ध सत्व की प्रधानता को अविद्या कहते हैं और उसमें प्रतिबिंबित होनेवाले ब्रह्म को जीव या प्राज्ञ कहते हैं।

(३) सूक्ष्म शरीर से युक्त आत्मा। (४) एक मंत्रकार ऋषि। (५) विष्णु।

हिरण्यनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) मैनाक पर्वत। (३) वह मकान जिसमें तीन बड़ी शालाएँ (कमरे) पूर्व, पश्चिम और उत्तर की ओर हों और दक्षिण की ओर कोई शाला न हो। (बृहत्संहिता)

हिरण्यपुर—संज्ञा पुं० [सं०] असुरों का एक नगर जो समुद्र के पार वायु-मंडल में स्थित कहा गया है। (हरिवंश)

हिरण्यपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार पौधा।

हिरण्यबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव का एक नाम। (२) सोन नद। (३) एक नाग का नाम।

हिरण्यबिंदु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। आग। (२) एक पर्वत। (३) एक तीर्थ।

हिरण्यरेता—संज्ञा पुं० [सं० हिरण्यरेतस्] (१) अग्नि। आग। (२) सूर्य्य। (३) शिव। (४) बारह आदित्यों में से एक। (५) चित्रक वृक्ष। चीता।

हिरण्यरोम-संज्ञा पुं० [सं० हिरण्यरोमन्] (१) लोकपाल जो मरीचि के पुत्र हैं। (२) भीष्मक का नाम (महाभारत)

हिरण्यय-संज्ञा पुं० [सं०] किसी देवता या मंदिर पर चढ़ा हुआ धन। देवस्व। देवोत्तर संपत्ति।

हिरण्यवान-वि० [सं० हिरण्यवत्] [स्त्री० हिरण्यवती] सोनेवाला। जिसमें या जिसके पास सोना हो।
संज्ञा पुं० अग्नि।

हिरण्यवाह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) सोन नद।

हिरण्यवीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) सूर्य्य।

हिरण्यसर-संज्ञा पुं० [सं० हिरण्यसरस्] एक तीर्थ (महाभारत)।

हिरण्याक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध दैत्य जो हिरण्यकशिपु का भाई था। यह कश्यप और दिति से उत्पन्न हुआ था। इसने पृथ्वी को लेकर पाताल में रख छोड़ा था। ब्रह्मा आदि देवताओं की प्रार्थना पर विष्णु ने वाराह अवतार धारण करके इसे मारा और पृथ्वी का उद्धार किया। (२) वसुदेव के छोटे भाई श्यामक के एक पुत्र का नाम।

हिरण्याश्व-संज्ञा पुं० [सं०] दान देने के लिये बनाई सोने के घोड़े की मूर्त्ति। इसका दान १६ महादानों में है।

हिरदय‡ॐ-संज्ञा पुं० दे० "हृदय"।

हिरदावल-संज्ञा पुं० [सं० हृदावर्त्त] घोड़े की छाती की भौंरी (घूमे हुए रोएँ) जो बड़ा भारी दोष मानी जाती है।

हिरन-संज्ञा पुं० [सं० हरिण] [स्त्री० हिरनी] हरिन। मृग। वि० दे० "हरिन"।
मुहा०—हिरन हो जाना = भाग जाना। बहुत तेजी से भागना।

हिरनखुरी-संज्ञा स्त्री० [सं० हिरन+खुर] एक प्रकार की लता या बेल जो बरसात में उगती है और जिसके पत्ते हिरन के खुर से मिलते जुलते होते हैं।

हिरनाकुस-संज्ञा पुं० दे० "हिरण्यकशिपु"। उ०—हिरनाकुस और कंस को गयो दुहुन को राज।—गिरधर।

हिरनौटा-संज्ञा पुं० [सं० हरिणपोत] हिरन का बच्चा। मृग शावक।

हिरफ़त-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) व्यवसाय। पेशा। व्यापार। (२) हाथ की कारीगरी। दस्तकारी। (३) हुनर। कला-कौशल। (४) चतुराई। चालाकी। (५) चालबाज़ी। धूर्त्तता।

हिरफ़तबाज़-वि० [अ० + फ़ा०] चालबाज़। धूर्त्त।

हिरमज़ी-संज्ञा स्त्री० [अ०] लाल रंग की एक प्रकार की मिट्टी, जिससे कपड़े, दीवार आदि रँगते हैं।

हिरमिज़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "हिरमज़ी"।

हिरवा-‡संज्ञा पुं० दे० "हीरा"।

हिरवा घास-संज्ञा स्त्री० [हिं० हीरा+घास] एक प्रकार की सुगंधित घास जिसकी जड़ में से नीबू की सी सुगंध आती है और जिससे सुगंधित तेल बनता है।

हिरस‡-संज्ञा स्त्री० दे० "हिर्स"।

हिरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] रक्तनाड़ी या सिरा।

हिराती-वि० [देश० हिरात] हिरात नामक स्थान जो अफ़गानिस्तान के उत्तर में है।
संज्ञा पुं० एक जाति का घोड़ा जिसका डील डौल औसत दर्जे का और हाथ पैर दोहरे होते हैं। यह गरमी में नहीं थकता।

हिराना‡-क्रि० अ० [सं० हरण] (१) खो जाना। गायब होना। गुम होना। (२) न रह जाना। अभाव होना। उ०—गुन ना हिरानो गुनगाहक हिरानो है।
संयो० क्रि०—जाना।
(३) मिटना। दूर होना। उ०—लखि गोपिन को प्रेम भुलायो। ऊधो को सब ज्ञान हिरायो।—सूर। (४) आश्चर्य से अपने को भूल जाना। हक्का-बक्का होना। दंग रह जाना। अत्यंत चकित होना। उ०—शोभा-कोश धनन न मेरो घनश्याम नित नई नई रुचि सन हेरत हिराइए।—केशव। (५) अपने को भूल जाना। आपा खोना। उ०—जो कहि आप हिराइ न कोई। तौ कहि हेरत पाव न सोई।—जायसी।
क्रि० स० भूल जाना। ध्यान में न रहना। उ०—विकल भई तन दसा हिरानी।—सूर।
क्रि० अ० [हिं० हिलाना = प्रवेश करना] खेतों में भेंड़ बकरी गाय आदि चौपाए रखना जिसमें उनकी लेंडी या गोबर से खेत में खाद हो जाय।

हिरावल-संज्ञा पुं० दे० "हरावल"।

हिरास-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) भय। त्रास। (२) नैराश्य। नाउम्मेदी। (३) रंज। खेद। खिन्नता।
वि० [फ़ा० हिरासाँ] (१) निराश। नाउम्मेद। हताश। (२) खिन्न। उदासीन।

हिरासत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) पहरा। चौकी। ऐसी स्थिति जिसमें कोई मनुष्य इधर उधर भाग न सके। (२) क़ैद। नज़रबंदी।
मुहा०—हिरासत में करना = क़ैद करना। पहरे के अंदर करना। सिपाहियों के पहरे में देना।

हिरासाँ-वि० [फ़ा०] (१) निराश। नाउम्मेद। (२) हिम्मत हारा हुआ। पस्त। (३) उदासीन। खिन्न।

हिरौंजी‡-संज्ञा स्त्री० दे० "हिरमज़ी"।

हिरौलॐ-संज्ञा पुं० दे० "हरावल"।

हिर्स-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) लालच। तृष्णा। लोभ। (२) इच्छा का वेग। कामना की उमंग।
मुहा०—हिर्स छूटना = मन में लालच होना। तृष्णा होना। हिर्स दिलाना = (१) प्रबल इच्छा उत्पन्न करना। लालसा जगाना। कामना उत्तेजित करना। (२) लालच दिलाना। हिर्स मिटना =

(१) इच्छा का वेग शांत होना। (२) काम का वेग शांत होना।
हिर्स मिटाना = (१) इच्छा पूरी करना। लालसा पूरी करना। (२) काम का वेग शांत करना।

(३) किसी की देखादेखी कुछ काम करने की इच्छा। टीस। स्पर्द्धा।

यौ०—हिर्साहिर्सी।

हिलंदा-संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० हिलंदी] मोटा ताज़ा आदमी। तगड़ा आदमी।

हिलकना†-क्रि० अ० [अनु० या सं० हिक्का] (१) हिचकियाँ लेना। हिचकना। (२) सिसकना।
क्रि० स० [देश०] सुकोड़ना। (मुँह) ऐंठना।
क्रि० अ० दे० "हिरकना"।

हिलकी†*-संज्ञा स्त्री० [अनु० या सं० हिक्का] (१) हिचकी। (२) भीतर ही भीतर रोने से रह रहकर वायु के निकलने का झोंका या आघात। सिसकने का शब्द। सिसक। उ०—(क) उर लाय लई अकुलाय तऊ अधिरातिक लौं हिलकीन रहीं।—केशव। (ख) कमल-नयन हरि हिलकि न रोवै बंधन छोरि जसोवै।—सूर।

क्रि० प्र०—लेना।—भरना।

हिलकोर, हिलकोरा-संज्ञा पुं० [सं० हिल्लोल] हिलोर। लहर। तरंग।

मुहा०—हिलकोरे लेना = लहराना। तरंगित होना।

हिलकोरना-क्रि० स० [हिं० हिलकोर + ना (प्रत्य०)] पानी को हिलाकर तरंगें उठाना। जल को क्षुब्ध करना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

हिलग-संज्ञा स्त्री० [हिं० हिलगना] (१) लगाव। संबंध। (२) लगन। प्रेम। (३) परिचय। हेलमेल। हिलने मिलने या परचने का भाव।

हिलगत-संज्ञा स्त्री० [हिं० हिलगना] (१) परचने का भाव। (२) टेव। आदत। बान।

हिलगना-क्रि० अ० [सं० अधिलग्न, प्रा० अहिलग्ग] (१) अटकना। टँगना। किसी वस्तु से लगकर ठहरना। (२) फँसना। बझना। (३) हिलमिल जाना। (४) परचना।
क्रि० अ० [सं० हिरुक् = पास] पास होना। इतने समीप होना कि स्पर्श हो। सटना। भिड़ना। वि० दे० "हिरकना"।

हिलगाना-क्रि० स० [हिं० हिलगना] (१) अटकाना। टाँगना। किसी वस्तु से लगाकर ठहराना। (२) फँसाना। बझाना। (३) मेल जोल में करना। घनिष्ठता स्थापित करना। (४) परचाना। परिचित और अनुरक्त करना। जैसे,—बच्चे को हिलगाना।
क्रि० स० [सं० हिरुक् = पास] सटाना। भिड़ाना। वि० दे० "हिरकाना"।

हिलना—क्रि० अ० [सं० हल्लन = इधर उधर लुढ़कना] (१) डोलना। चलायमान होना। स्थिर न रहना। हरकत करना। जैसे,—पेड़ की पत्तियाँ हिलना। घड़ी का लंगर हिलना।

संयो० क्रि०—जाना।—उठना।

मुहा०—हिलना डोलना = (१) चलायमान होना। (२) चलना। फिरना। घूमना। टहलना। जैसे,—शाम को कुछ हिला डोला करो। (३) श्रम करना। काम धंधा करना। (४) प्रयत्न करना। उद्योग करना। जैसे,—बिना हिले डोले कोई काम नहीं हो सकता।

(२) अपने स्थान से टलना। सरकना। चलना। जैसे,—जो लड़का अपनी जगह से हिलेगा, वह मार खायगा। (३) काँपना। कंपित होना। थरथराना। जैसे,—लिखने में हाथ हिलना, जाड़े से बदन हिलना। (४) खूब जमकर बैठा न रहना। अपने स्थान पर ऐसा कसा, जमा, या लगा न रहना कि छूने से इधर उधर न करे। ढीला होना। जैसे,—दाँत हिलना। (५) झूमना। लहराना। नीचे ऊपर या इधर उधर डोलना। जैसे,—(क) बहुत से लड़के हिल हिलकर पढ़ते हैं। (ख) बुड्ढों का सिर हिलना। (६) घुसना। पैठना। प्रवेश करना। (विशेषतः पानी में)
क्रि० अ० [हिं० हिलगना] (१) परिचित और अनुरक्त होना। परचना। मेल जोल में होना। घनिष्ठता का अनुभव करना। जैसे,—(क) यह बच्चा तुमसे बहुत हिल गया है। (ख) बिल्ली उससे खूब हिल गई है।

यौ०—हिलना मिलना = (१) मेल जोल के साथ होना। घनिष्ठ संबंध रखना। (२) मेल जोल से होना। एकत्र साथ रहना। (३) एक जी होना। परस्पर गहरे मित्र होना। जैसे,—दोनों खूब हिल मिल गए हैं।

मुहा०—हिल मिलकर = (१) मेल जोल के साथ। घनिष्ठता और मैत्री के साथ। एक जी होकर। सुलह के साथ। (२) सम्मिलित होकर। इकट्ठा होकर। एकत्र होकर। उ०—हिल मिल फाग परस्पर खेलहिं, सोभा बरनि न जाई।—गीत। हिला मिला या हिला जुला = (१) मेल जोल में आया हुआ। घनिष्ठ संबंध रखता हुआ। सुहृद भाव रखता हुआ। (२) परचा हुआ। परिचित और अनुरक्त। जैसे,—यह बच्चा तुमसे खूब हिला जुला है।
क्रि० अ० [देश०] प्रवेश करना। घुसना। (विशेषतः पानी में)

हिलसा-संज्ञा स्त्री० [सं० इल्लिश] एक प्रकार की मछली जो चिपटी और बहुत काँटेदार होती है।

हिलाना-क्रि० स० [हिं० हिलना] (१) डुलाना। चलायमान करना। हरकत देना। जैसे,—बैठे बैठे पैर हिलाना। (ख) छड़ी हिलाना। (२) स्थान से हटाना। टालना।

हटाना। जैसे,—(क) जब हम बैठ गए, तब कौन हिला सकता है। (ख) इस भारी पत्थर को जगह से हिलाना मुश्किल है। (३) कँपाना। कंपित करना। (४) नीचे ऊपर या इधर उधर डुलाना। झुलाना। जैसे,—मुगदर हिलाना, सिर हिलाना।

संयो॰ क्रि॰—डालना।—देना।

क्रि॰ स॰ [हिं॰ हिलगाना] (१) परिचित और अनुरक्त करना। परचाना। घनिष्ठता स्थापित करना। जैसे,—छोटे बच्चे को हिलाना, जानवरों को हिलाना।

क्रि॰ स॰ [देश॰] प्रवेश कराना। घुसाना। पैठाना। (विशेषतः पानी में)

हिलोर, हिलोरा-संज्ञा पुं॰ [सं॰ हिल्लोल] हवा के झोंके आदि से जल का उठना और गिरना। तरंग। लहर। मौज। उ॰—सोहै सितासित को मिलिबो, तुलसी हुलसै हिय हेरि हिलोरे।—तुलसी।

क्रि॰ प्र॰—उठना।

मुहा॰—हिलोरे लेना = तरंगित होना। लहराना।

हिलोरना-क्रि॰ स॰ [हिं॰ हिलोर + ना (प्रत्य॰)] (१) जल को क्षुब्ध और तरंगित करना। पानी को इस प्रकार हिलाना कि लहरें उठें। (२) लहराना। इधर उधर हिलाना डुलाना।

हिलोल-संज्ञा पुं॰ दे॰ "हिल्लोल"। "हिलोर"।

हिल्लोर-संज्ञा पुं॰ दे॰ "हिलोर"।

हिल्लोल-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) हिलोरा। तरंग। लहर। (२) आनंद की तरंग। मौज। (३) एक रतिबंध या आसन। (कामशास्त्र) (४) एक राग का नाम। हिंडोल।

हिल्लोलन-संज्ञा पुं॰ [सं॰] [वि॰ हिल्लोलित] (१) तरंग उठना। लहराना। (२) दोलन। झूलना।

हिवँ-संज्ञा पुं॰ [सं॰ हिम] बर्फ। पाला।

हिवाँर-संज्ञा पुं॰ [सं॰ हिम + आलि] बर्फ। पाला। तुषार।

मुहा॰—हिवाँर होना = बहुत ठंढा होना। बहुत सर्द होना।

हिस-संज्ञा पुं॰ [अ॰] (१) अनुभव। ज्ञान। (२) संज्ञा। होश। चेतना।

मुहा॰—बेहिस व हरकत = निश्चेष्ट और निःसंज्ञ। बेहोश और सुन।

हिसका-संज्ञा पुं॰ [सं॰ ईर्ष्या, हिं॰ रीस] (१) ईर्ष्या। डाह। (२) स्पर्द्धा। देखादेखी किसी बात की इच्छा। (३) किसी की बराबरी करने की हवस।

यौ॰—हिसका हिसकी = परस्पर स्पर्द्धा। एक दूसरे के बराबर होने की धुन।

हिसाब-संज्ञा पुं॰ [अ॰] (१) गिनती। गणित। लेखा। कोई संख्या, वस्तु परिमाण आदि में कितनी ठहरेगी, इसके निर्णय की प्रक्रिया। जैसे,—(क) अपने रुपये का हिसाब करो। कितना होगा। (ख) यह हिसाब लगाओ कि वह चार घंटे में कितनी दूर जायगा।

क्रि॰ प्र॰—करना।—लगाना।

यौ॰—हिसाब किताब, हिसाब बही, हिसाबचोर।

(२) लेन देन या आमदनी, खर्च आदि का लिखा हुआ ब्योरा। लेखा। उचापत।

मुहा॰—हिसाब चलना = (१) लेन देन का लेखा रहना। (२) उधार लिखा जाना। हिसाब चुकाना या चुकता करना = जो कुछ जिम्मे निकलता हो उसे दे देना। देना साफ़ करना। हिसाब जाँचना = लेखा देखना कि ठीक है या नहीं। हिसाब जोड़ना = अलग अलग कई रकमों की मीजान लगाना। कई अलग अलग अंकों का योगफल निकालना। हिसाब करना = जो जिम्मे आता हो उसे दे देना। तनखाह, दाम या मजदूरी के मद्दे जो कुछ रुपया निकलता हो, उसे चुकाना। जैसे—हमारा हिसाब कर दीजिए, अब हम नौकरी न करेंगे। हिसाब देना = लेखा समझाना। जमा खर्च का ब्योरा बताना। हिसाब पर चढ़ना = बही में लिखा जाना। लेखे में टँकना। हिसाब बराबर करना = (१) कुछ दे या लेकर लेना और देना बराबर करना। लेन देन का हिसाब साफ़ करना। (२) अपना काम पूरा करना। हिसाब बेबाक करना = दे॰ "हिसाब चुकाना"। हिसाब बंद करना = लेखा आगे न चलाना। लेनदेन बंद करना। हिसाब में जमा होना = (१) किसी से पाई हुई रकम का लिखा जाना। (२) लेन देन के लेखे में पावने से ऊपर आई हुई रकम का अलग लिखा जाना। हिसाब में लगाना = उधार या लेन देन में शामिल करना। हिसाब लेना = यह पूछना कि कितनी रकम कहाँ खर्च हुई। (किसी से) हिसाब समझना = (किसी से) आमदनी और खर्च का ब्योरा पूछना। हिसाब समझाना = आमदनी खर्च आदि का ब्योरा बताना। बेहिसाब = (१) बहुत अधिक। अत्यंत। इतना कि गिनती या नाप आदि न हो सके। हिसाब रखना = आमदनी, खर्च आदि का ब्योरा लिखकर रखना। आय व्यय आदि का लेखबद्ध विवरण रखना। हिसाब लड़ना या लगना = मेल मिलना। तरीक़त मिलना। हिसाब बैठना = (१) ठीक ठीक जैसा चाहिए वैसा प्रबंध हो जाना। इच्छानुसार सब बातों की व्यवस्था होना। (२) सुबीता होना। सुपास होना। आवश्यकता पूरी होना। जैसे,—इतने से हमारा हिसाब नहीं बैठेगा। हिसाब से = (१) अंदाज से। संयम से। परिमित। जैसे,—हिसाब से खर्च किया करो। (२) लेखे के अनुसार। लिखे हुए ब्योरे के मुताबिक। जैसे,—हिसाब से तुम्हारा जितना निकले उतना लो। टेढ़ा या टेढ़ा हिसाब = (१) कठिन कार्य। मुश्किल काम। (२) अव्यवस्था। गड़बड़ व्यवहार या रीति। पक्का हिसाब = ठीक ठीक हिसाब। पूरा हिसाब। सूक्ष्म विवरण। कच्चा हिसाब = स्थूल विवरण। मोटा ब्योरा। ऐसा ब्योरा जो

अधूरा हो। चलता हिसाब = लेन देन या लेखा जो जारी हो। लेन देन या उधार बिक्री का जारी सिलसिला।

(२) गणित विद्या। वह विद्या जिसके द्वारा संख्या, मान आदि निर्धारित हो। जैसे,—यह लड़का हिसाब में कमज़ोर है। (३) गणित विद्या का प्रश्न। गणित की समस्या। जैसे,—चार में से मैंने दो हिसाब किए हैं।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

(४) प्रत्येक वस्तु या निर्दिष्ट संख्या या परिमाण का मूल्य जिसके अनुसार कोई वस्तु बेची जाय। भाव। दर। रेट। जैसे,—नारंगियाँ किस हिसाब से लाए हो?

मुहा०—हिसाब से = (१) परिमाण, क्रम या गति के अनुसार। अनुसार। मुताबिक। जैसे,—जिस हिसाब से दर्द बढ़ेगा उसी हिसाब से बुखार भी। (२) विचार से। ध्यान से। अपेक्षा से। जैसे,—कद के हिसाब से हाथी की आँखें छोटी होती हैं।

(५) नियम। क़ायदा। व्यवस्था। बँधी हुई रीति या ढंग। जैसे,—तुम्हारे जाने आने का कोई हिसाब भी है, या यों ही जब चाहते हो चल देते हो? (६) निर्णय। निश्चय। धारणा। समझ। मत। विचार। राय। जैसे,—(क) हमारे हिसाब से जैसे तुम वैसे वे। (ख) हमारे हिसाब से तो दोनों बराबर हैं।

मुहा०—अपने हिसाब या अपने हिसाब से = अपनी समझ के अनुसार। अपनी जान में। अपने विचार में। लेखे में। जैसे,—अपने हिसाब तो हम अच्छा ही करते हैं, तुम जैसा समझो।

(७) हाल। दशा। अवस्था। स्थिति। जैसे,—उनका हिसाब न पूछो, खूब मनमानी कर रहे हैं। (८) चाल। व्यवहार। रहन। जैसे,—उनका यही हिसाब है, कुछ सुधर नहीं रहे हैं। (९) ढंग रीति। तरीक़ा। जैसे,—(क) तुम्हें ऐसे हिसाब से चलना चाहिए कि कोई बुरा न कह सके। (ख) उनका हिसाब ही कुछ और है। (१०) किफ़ायत। मितव्यय। जैसे,—वह बड़े हिसाब से रहता है, तब रुपया बचाता है। (११) हृदय या प्रकृति की परस्पर अनुकूलता। मेल।

मुहा०—हिसाब बैठना = पटरी बैठना। मेल मिलना। प्रकृति की समानता होना।

हिसाब किताब—संज्ञा पुं० [अ०] आमदनी, खर्च आदि का ब्यौरा जो लिखा हो। वस्तु या धन की संख्या, आय, व्यय आदि का लेखबद्ध विवरण। लेखा। जैसे,—कहीं कुछ हिसाब भी रखते हो कि यों ही मनमाना खर्च करते हो।

मुहा०—हिसाब किताब देखना = लेखा जाँचना।

(२) ढंग। चाल। रीति। क़ायदा। जैसे,—उनका हिसाब किताब ही कुछ और है।

हिसाब चोर—संज्ञा पुं० [अ० हिसाब + हिं० चोर] वह जो व्यवहार या लेखे में कुछ रक़म दबा लेता हो।

हिसाब बही—संज्ञा स्त्री० [अ० हिसाब + हिं० बही] वह पुस्तक जिसमें आय व्यय या लेन देन आदि का ब्यौरा लिखा जाता हो।

हिसार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] फारसी संगीत की २४ शोभाओं में से एक।

हिसिषा‡—संज्ञा स्त्री० [सं० ईर्ष्या] (१) दूसरे की देखादेखी कुछ करने की प्रबल इच्छा। स्पर्द्धा। बराबरी करने का भाव। होड़। (२) समता। तुल्य भावना। पटतर। उ०—जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़ विवेक अभिमान। परहिं कलपु भरि नरक महुँ, जीव कि ईस समान।—तुलसी।

हिस्सा—संज्ञा पुं० [अ० हिस्सः] (१) उतनी वस्तु जितनी कुछ अधिक वस्तु में से अलग की जाय। भाग। अंश। जैसे,—१००) के २५–२५ के चार हिस्से करो। (ख) ज़मीन चार हिस्सों में बँट गई।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—लगाना।

(२) टुकड़ा। खंड। जैसे,—इस गन्ने के चार हिस्से करो। (३) उतना अंश जितना प्रत्येक को विभाग करने पर मिले। अधिक में से उतनी वस्तु जितनी बाँटे जाने पर किसी को प्राप्त हो। बखरा। जैसे,—तुम अपने हिस्से में से कुछ ज़मीन इसको दे दो। (४) बाँटने की क्रिया या भाव। विभाग। तक़सीम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—लगाना।

(५) किसी विस्तृत वस्तु (जैसे,—खेत, घर आदि) का विशेष अंश जो और अंशों से किसी प्रकार की सीमा द्वारा अलग हो। विभाग। खंड। जैसे,—(क) इस मकान के पिछले हिस्से में किराएदार हैं। (ख) कोठी का अच्छा हिस्सा उसके अधिकार में है। (६) किसी बड़ी या विस्तृत वस्तु के अंतर्गत कुछ वस्तु या अंश। अधिक के भीतर का कोई खंड या टुकड़ा। जैसे,—यह पेड़ दुनिया के हर हिस्से में पाया जाता है। (७) अंग। अवयव। अंतर्भूत वस्तु। जैसे,—बदन के किस हिस्से में दर्द है? (८) किसी वस्तु के कुछ अंश के भोग का अधिकार। किसी व्यवसाय के हानि-लाभ में योग। साझा। शिरकत। जैसे,—कंपनी में हिस्सा, दूकान में हिस्सा, मकान में हिस्सा।

हिस्सेदार—संज्ञा पुं० [अ० हिस्सः + फ़ा० दार (प्रत्य०)] (१) किसी वस्तु के किसी भाग पर अधिकार रखनेवाला। वह जिसे किसी वस्तु कुछ अंश के भोग का अधिकार हो। वह जिसे कुछ हिस्सा मिला हो। जैसे,—इस मकान के चार हिस्सेदार हैं। (२) किसी व्यवसाय के हानि लाभ में औरों के साथ सम्मिलित रहनेवाला। रोज़गार में शरीक। साझेदार।

जैसे,—कंपनी के हिस्सेदार, बंक के हिस्सेदार। (२) भागी। शरीक।

हिहिनाना–क्रि० अ० [अनु० हिं हिं] घोड़ों का बोलना। हिनहिनाना। हींसना। उ०—देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं।—तुलसी।

हींग–संज्ञा स्त्री० [सं० हिंगु] (१) एक छोटा पौधा जो अफ़गानिस्तान और फ़ारस में आप से आप और बहुत होता है। (२) इस पौधे का जमाया हुआ दूध या गोंद जिसमें बड़ी तीक्ष्ण गंध होती है और जिसका व्यवहार दवा और नित्य के मसाले में बघार के लिये होता है।

विशेष—हींग का पौधा दो ढाई हाथ ऊँचा होता है और इसकी पत्तियों का समूह एक गोल राशि के रूप में होता है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। कुछ के पौधे तो साल ही दो साल रहते हैं और कुछ की पेड़ी बहुत दिनों तक रहती है, जिसमें से समय समय पर नई नई टहनियाँ और पत्तियाँ निकला करती हैं। पिछले प्रकार के पौधों की हींग घटिया होती है और 'हींगड़ा' कहलाती है। हींग के पौधे अफ़गानिस्तान, फ़ारस के पूर्वी हिस्से (खुरासान, यज़्द) तथा तुर्किस्तान के दक्षिणी भाग में बहुतायत से होते हैं। पर भारत में जो हींग आती है, वह कंधारी हींग (अफ़गानिस्तान की) है। हींग का व्यवहार बघार के अतिरिक्त औषध में भी होता है। यह शूलनाशक, वायु-नाशक, कफ निकालनेवाली, कुछ रेचक और उत्तेजक होती है। पेट के दर्द, वायगोला और हिस्टीरिया (मूर्छा रोग) में यह बहुत उपकारी होती है। आयुर्वेद में इसके योग से कई पाचक चूर्ण और गोलियाँ बनती हैं। हींग में व्यापारी अनेक प्रकार की मिलावट करते हैं। शुद्ध खालिस हींग 'तलाब हींग' कहलाती है।

हींगड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० हींग + ड़ा (प्रत्य०)] एक प्रकार की घटिया हींग।

हींछा‡–संज्ञा स्त्री० दे० "इच्छा"।

हींठी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की जोंक।

हींस—संज्ञा स्त्री० [सं० हेष] घोड़े या गधे के बोलने का शब्द। रेंक या हिनहिनाहट।

हींसना–क्रि० अ० [हिं० हींस + ना] (१) घोड़े का बोलना। हिनहिनाना। उ०—हींसत हय, बहु बारन गाजैं। जहँ तहँ दीरघ दुंदुभि बाजैं।—केशव। (२) गदहे का बोलना। रेंकना।

हींसा‡–संज्ञा पुं० दे० "हिस्सा"।

हींहीं–संज्ञा स्त्री० [अनु०] हँसने का शब्द।

ही–अव्य० [सं० हि (निश्चयार्थक)] एक अव्यय जिसका व्यवहार ज़ोर देने के लिये या निश्चय, अनन्यता, अल्पता, परिमिति तथा स्वीकृति आदि सूचित करने के लिये होता है। जैसे,—(क) आज हम रुपया लेही लेंगे। (ख) यह गोपाल ही का काम है। (ग) मेरे पास दस ही रुपये हैं। (घ) अभी वह प्रयाग ही तक पहुँचा होगा। (ङ) अच्छा भाई हम न जायँगे, गोपाल ही जायँ। इसके अतिरिक्त और प्रकार के भी प्रयोग इस शब्द के होते हैं। कभी इस शब्द से यह ध्वनि निकलती है कि "औरों की बात जाने दीजिए" जैसे,—तुम्हीं बताओ, इसमें हमारा क्या दोष?

संज्ञा पुं० दे० "हिय", "हृदय"।

क्रि० अ० ब्रजभाषा के 'होनो' (=होना) क्रिया के भूतकाल 'हो' (=था) का स्त्री० रूप। थी। उ०—एक दिवस मेरे गृह आए, मैं ही मथति दही।—सूर।

हीअ–संज्ञा पुं० दे० "हिय"।

हीक–संज्ञा स्त्री० [सं० हिक्का] (१) हिचकी।

क्रि० प्र०—आना।

(२) हलकी अरुचिकर गंध। जैसे,—बकरी के दूध में से एक प्रकार की हीक आती है।

क्रि० प्र०—आना।

मुहा०—हीक मारना = बसाना। रह रह दुर्गंध करना।

हीचना⊛†–क्रि० अ० [अनु० हिच्] हिचकना। आगापीछा करना। जल्दी प्रवृत्त न होना। उ०—कहत सारदहु कै मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे।—तुलसी।

हीछना‡–क्रि० अ० [हिं० हींछ + ना] इच्छा करना। चाहना।

हीछा‡–संज्ञा स्त्री० दे० "इच्छा"।

हीज–वि० [देश०] आलसी। सुस्त। काहिल।

हीठना–क्रि० अ० [सं० अधिष्ठ, प्रा० अहिट्ठ] (१) पास जाना। समीप होना। फटकना। जैसे,—उसे अपने यहाँ हीठने न देना। उ०—(क) ता ता अदसि सदसि किस जानत। हीठत ढूँढ़त आइ पराना।—कबीर। (ख) बहुत दिवस में हीठिया शून्य समाधि लगाय। करहा परिगा गाँड़ में, दूरि परे पछिताय।—कबीर। (२) आना। पहुँचना। उ०—(क) जेहि बन सिंह न संचरै, पंछी नहीं उड़ाय। सो बन कबिरा हीठिया, शून्य समाधि लगाय।—कबीर। (ख) मन तो कहे कब जाइए, चित्त कहे कब जाउँ। छै मासे के हीठ से आध कोस पर गाउँ।—कबीर।

हीन–वि० [सं०] (१) परित्यक्त। छोड़ा हुआ। (२) रहित। जिसमें न हो। शून्य। वंचित। खाली। बिना। बगैर। जैसे,—शक्तिहीन, धनहीन, बलहीन, श्रीहीन। (३) निम्न कोटि का। नीचे दर्जे का। निकृष्ट। घटिया। जैसे,—हीन जाति। (४) ओछा। नीच। बुरा। असत्। खराब। कुत्सित। जैसे,— हीन कर्म। (५) सुस्त। नाचीज़।

जिसमें कुछ भी महत्व न हो। (५) सुख समृद्धि रहित। दीन। जैसे,—हीन दशा। (६) पथभ्रष्ट। भटका हुआ। साथ या रास्ते से अलग जा पड़ा हुआ। जैसे,—पथहीन। (७) अल्प। कम। थोड़ा।

संज्ञा पुं० प्रमाण के अयोग्य साक्षी। बुरा गवाह।

विशेष—हीन साक्षी स्मृतियों में पाँच प्रकार के कहे गए हैं—अन्यवादी, क्रियाद्वेषी, नोपस्थायी, निरुत्तर और आहूतप्रपलायी।

(१) अधम नायक। (साहित्य)

हीनकर्मा–वि० [सं०] (१) यज्ञादि विधेय कर्म से रहित। अपना निर्दिष्ट कर्म या आचार न करनेवाला। जैसे,—हीनकर्मा ब्राह्मणः। (२) निकृष्ट कर्म करनेवाले। बुरा काम करनेवाला।

हीनकुल वि० [सं०] बुरे या नीच कुल का। बदख़ानदान का।

हीनक्रम संज्ञा पुं० [सं०] काव्य में एक दोष जो उस स्थान पर माना जाता है जहाँ जिस क्रम से गुण गिनाए गए हों, उसी क्रम से गुणी न गिनाए जायँ। जैसे,—जग की रचना कहि कौन करी। केहि राखन कीजिय पैजधरी। अति कोपि कै कौन सँहार करै। हरिजू, हर जू, विधि बुद्धि ररै। यहाँ प्रश्नों के क्रम से उत्तर इस प्रकार होना चाहिए था—"विधि जू, हरि जू, हर बुद्धि ररै"। पर वैसा न होकर क्रम का भंग कर दिया गया है।

हीनचरित–वि० [सं०] जिसका आचरण बुरा हो।

हीनता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अभाव। राहित्य। कमी। (२) क्षुद्रता। तुच्छता। (३) ओछापन। (४) निकृष्टता।

हीनत्व–संज्ञा पुं० [सं०] हीनता।

हीनपक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गिरा हुआ पक्ष। तर्क में किसी की ऐसी बात जो प्रमाण द्वारा सिद्ध न हो सके। ऐसी बात जो दलीलों से साबित न हो सके। (२) कमज़ोर मुकदमा।

हीनबल–वि० [सं०] बल रहित या जिसका बल घट गया हो। शक्तिरहित। कमज़ोर।

हीनबाहु–संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक गण का नाम।

हीनबुद्धि–वि० [सं०] बुद्धि-शून्य। दुर्बुद्धि। जड़। मूर्ख।

हीनमति–वि० [सं०] बुद्धिशून्य। जड़। मूर्ख।

हीनमूल्य–संज्ञा पुं० [सं०] कम दाम। (याज्ञवल्क्य)

हीनयान–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध सिद्धांत की आदि और प्राचीन शाखा जिसके ग्रंथ पाली भाषा में हैं।

विशेष—इस शाखा का प्रचार एशिया के दक्षिण भागों में—सिंहल, बरमा और स्याम आदि देशों में—है; इसी से यह दक्षिण शाखा के नाम से भी प्रसिद्ध है। 'यान' का अर्थ है निर्वाण या मोक्ष की ओर ले जानेवाला रथ। हीनयान के सिद्धांत सीधे सादे रूप में अर्थात् उसी रूप में जिस रूप में गौतम बुद्ध ने उनका उपदेश किया था, हैं। पीछे 'महायान' शाखा में न्याय, योग, तंत्र आदि बहुत से विषयों के सम्मिलित होने से जटिलता आ गई। वैदिक धर्मानुयायी नैयायिकों के साथ खंडन मंडन में प्रवृत्त होनेवाले बौद्ध महायान शाखा के थे जो क्षणिकवाद आदि सिद्धांतों पर बहुत ज़ोर देते थे। हीनयान आराधना और उपासना का तत्व न रहने से जनसाधारण के लिये रूखा था; इससे 'महायान शाखा' के बहुत अनुयायी हुए। जो बुद्ध, बोधिसत्वों, बुद्धि की शक्तियों (जो तांत्रिकों) की महाविद्याएँ हैं, आदि के अनुग्रह के लिये पूजा और उपासना में प्रवृत्त रहने लगे। 'हीनयान' का यह अर्थ लिया गया कि उसमें बहुत कम लोगों के लिये जगह है।

हीनयोग–वि० [सं०] योग-भ्रष्ट।

संज्ञा पुं० उचित परिमाण से कम ओषधि मिलाना। (आयुर्वेद)

हीनयोनि–वि० [सं०] नीच जाति का। जिसकी उत्पत्ति अच्छे कुल में न हो।

हीनरस–संज्ञा पुं० [सं०] काव्य में एक दोष जो किसी रस का वर्णन करते समय उस रस के विरुद्ध प्रसंग लाने से होता है। यह वास्तव में रस-विरोध ही है, जैसा कि केशव के इस उदाहरण से प्रकट होता है—'दै दधि', 'दीनो उधार हो केशव', 'दानी कहा जब मोल लै खैहैं'। 'दीन्हे बिना तो गई जु गई, न गई, न गई घर ही फिरि जैहैं'। 'तो हित बैर कियो', 'हित को कब ? बैर किए बद नीकेइ रैहैं'। इस प्रश्नोत्तर में जो रोष भरी कहा सुनी है, वह शृंगार रस का पोषक नहीं है।

हीनवर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] नीच जाति या वर्ण। शूद्र वर्ण।

हीनवाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिथ्या तर्क। फ़ज़ूल की बहस। कमज़ोर दलील। (२) मिथ्या साक्ष्य। झूठी गवाही जिसमें पूर्वापर विरोध हो।

हीनवादी–संज्ञा पुं० [सं० हीनवादिन्] [स्त्री० हीनवादिनी] (१) वह जिसका लाया हुआ अभियोग गिर गया हो। वह जिसका दावा खारिज हो गया हो। वह जो मुकदमा हार जाय। (२) परस्पर विरोधी कथन करनेवाला। खिलाफ़ बयान करनेवाला गवाह।

हीनवीर्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] हीनबल। कमज़ोर।

हीन-हयात–संज्ञा पुं० [अ०] (१) जीवन काल। वह समय जिसमें कोई जीता रहा हो।

मुहा०—हीन-हयात में = जीवन काल में। ज़िंदगी में। जीते जी।

अव्य० जब तक जीवन रहे, तब तक। जब तक कोई जीता

रहे तब तक। जिंदगी भर तक के लिये। जैसे,—हीन-हयात मुआफ़ी।

हीनांग-वि० [सं०] (१) जिसका कोई अंग न हो। खंडित अंगवाला। जैसे,—लूला, लँगड़ा इत्यादि। (२) जो सर्वांग-पूर्ण न हो। अधूरा। नामुकम्मल।

हीनार्थ-वि० [सं०] (१) जिसका कार्य्य सिद्ध न हुआ हो। विफल। (२) जिसे लाभ न हुआ हो।

हीनोपमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] काव्य में वह उपमा जिसमें बड़े उपमेय के लिये छोटा उपमान लाया जाय। बड़े की छोटे से उपमा।

हीय⊛-संज्ञा पुं० दे० "हिय"।

हीयरा⊛-संज्ञा पुं० दे० "हियरा"।

हीया⊛-संज्ञा पुं० दे० "हिया"।

हीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हीरा नामक रत्न। (२) वज्र। बिजली। (३) सर्प। साँप। (४) सिंह। (५) मोती की माला। (६) शिव का एक नाम। (७) छप्पय के ४२वें भेद का नाम। (८) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भगण, सगण, नगण, जगण, नगण और रगण होते हैं। (९) एक मात्रिक छंद जिसमें ६,६ और ११ के विराम से २३ मात्राएँ होती हैं।

संज्ञा पुं० [हिं० हीरा] (१) किसी वस्तु के भीतर का सार भाग। गूदा या सत। सार। जैसे,—जौ का हीर, गेहूँ का हीर, सौंफ का हीर। (२) लकड़ी के भीतर का सार भाग जो छाल के नीचे होता है। जैसे,—इसके हीर की लकड़ी मज़बूत होती है। (३) शरीर की सार वस्तु। धातु। वीर्य्य। जैसे,—उसकी देह का हीर तो निकल गया। (४) शक्ति। बल।

हीरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हीरा नामक रत्न। (२) हीर छंद।

हीरा-संज्ञा पुं० [सं० हीरक] (१) एक रत्न या बहुमूल्य पत्थर जो अपनी चमक और कड़ाई के लिये प्रसिद्ध है। वज्रमणि।

विशेष—आधुनिक रसायन-शास्त्र के अनुसार हीरा कारबन या कोयले का ही विशेष रूप है जो प्राकृतिक दशा में पाया जाता है। यह संसार के सब पदार्थों से कड़ा होता है; इसी से कवि लोग कठोरता के उदाहरण के लिये इसका नाम लाया करते हैं, जैसा कि तुलसीदास जी ने कहा है—"सिरिस सुमन किमि बेधै हीरा।" यह अधिकतर तो सफ़ेद अर्थात् बिना रंग का होता है; पर पीले, हरे, नीले और कभी कभी काले हीरे भी मिल जाते हैं। यह रत्न सबसे बहुमूल्य माना जाता है और भिन्न भिन्न रंगों की आभा या छाया देता है। रत्नपरीक्षा की पुस्तकों में हीरे की पाँच छायाएँ कही गई हैं—लाल, पीली, काली, हरी और श्वेत। व्यवहार के लिये हीरा कई रूपों में काटा जाता है जिससे प्रकाश छोड़ने के पहलों के बढ़ जाने से इसकी आभा बढ़ जाती है। इसके पहल काटने में भी बड़ी तारीफ़ है। बहुत अच्छे हीरे को 'पहले पानी' का हीरा कहते हैं। रत्न-परीक्षा में हीरे के पाँच गुण कहे गए हैं—अठपहल, छकोना होना, लघु, उज्वल और नुकीला होना। मुख्य दोष है—मलदोष। यदि बीच में मल (मैल) दिखाई दे तो बहुत अशुभ कहा गया है। आज कल हीरा दक्षिण अफ़्रिका में बहुत पाया जाता है। भारतवर्ष की खानें अब प्रायः खाली हो गई हैं। 'पन्ना' आदि कुछ स्थानों में अब भी थोड़ा बहुत निकलता है। किसी समय दक्षिण भारत हीरे के लिये प्रसिद्ध था। जगत्प्रसिद्ध 'कोहेनूर' नाम का हीरा गोलकुंडे की खान का कहा जाता है।

यौ०—हीरा कट = कई पहलों का कटाव। डायमंड कट। डंबल काट।

मुहा०—हीरा खाना या हीरे की कनी चाटना = हीरे का चूर खाकर आत्म-हत्या करना।

(२) बहुत ही अच्छा आदमी। नररत्न। (लाक्षणिक) जैसे,—वह हीरा आदमी था। (३) बहुत उत्तम वस्तु। बहुत बढ़िया या चोखी चीज़। (लाक्षणिक) (४) दुंबे मेढ़े की एक जाति।

हीरा कसीस-संज्ञा पुं० [हिं० हीरा+सं० कसीस] लोहे का वह विकार जो गंधक के रासायनिक योग से होता है और जो देखने में कुछ हरापन लिए मटमैले रंग का होता है।

विशेष—लोहे को गंधक के तेज़ाब में गलाने से हीरा कसीस निकल सकता है, पर इस क्रिया में लागत अधिक पड़ती है। खान के मैले लोहे को हवा और सीड़ में छोड़ देने से भी कसीस निकलता है। हवा और सीड़ के प्रभाव से एक प्रकार का रस निकलता है जिसमें कसीस और गंधक का तेज़ाब दोनों रहते हैं। लोहचूर का थोड़ा योग कर देने से सब का हीरा कसीस हो जाता है। इसका व्यवहार स्याही, रंग आदि बनाने में तथा औषध के लिये भी होता है।

हीरादोखी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हीरा+दोख] विजयसाल का गोंद जो दवा के काम में आता है।

हीरानखी-संज्ञा पुं० [हिं० हीरा+नख] एक प्रकार का बढ़िया धान जो अगहन में तैयार होता है और जिसका चावल बहुत महीन और सफ़ेद होता है।

हीराना‡-क्रि० स० [हिं० हिलाना = घुसाना] खाद के लिये खेत में गाय, भेंड़, बकरी आदि रखना।

हीरामन-संज्ञा पुं० [हिं० हीरा+मणि] सुए या तोते की एक कल्पित जाति जिसका रंग सोने का सा माना जाता है। इस प्रकार के तोते का वर्णन कहानियों में बहुत आता है।

हील-संज्ञा पुं० [देश०] भारत के पश्चिमी किनारे पर और सिंहल में पाया जानेवाला एक सदाबहार पेड़ जिससे एक प्रकार

का लसीला गोंद निकलता है। यह गोंद बाहर भेजा जाता है। इस पेड़ को 'अरदल' और 'गोरक' भी कहते हैं।

† संज्ञा स्त्री० [हिं० गोला] पनाले आदि का गंदा कीचड़। गलीज़।

हीलना†ॐ–क्रि० अ० दे० "हिलना"।

हीला–संज्ञा पुं० [अ० हीलः] (१) बहाना। मिस। किसी बात के लिये गढ़ा हुआ कारण।

क्रि० प्र०—करना।—ढूँढ़ना।—होना।

यौ०—हीला हवाला = इधर उधर का बहाना।

(२) किसी बात की सिद्धि के लिये निकला हुआ मार्ग। निमित्त। द्वार। वसीला। व्याज। जैसे,—इसी हीले से उसे चार पैसे मिल जायँगे।

मुहा०—हीला निकलना = रास्ता निकलना। ढंग निकलना।

†संज्ञा पुं० [हिं० गीला] कीचड़।

हुँ–अव्य० दे० "हूँ"।

अव्य० (१) एक शब्द जो किसी बात को सुननेवाला यह सूचित करने के लिये बोलता है कि हम सुन रहे हैं। (२) स्वीकृति-सूचक शब्द। हाँ।

हुंकना–क्रि० अ० दे० "हुंकारना"।

हुँकरना–क्रि० अ० दे० "हुंकारना"।

हुंकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ललकार। दपट। डाँटने का शब्द। (२) घोर शब्द। गर्जन। गरज। (३) चीत्कार। चिग्घाड़। चिल्लाहट।

हुंकारना–क्रि० अ० [सं० हुंकार+ना (प्रत्य०)] (१) ललकारना। दपटना। डाँटना। घोर शब्द करना। गर्जन करना। गर्जना। गरजना। (२) चिग्घाड़ना। चिल्लाना।

हुँकारी–संज्ञा स्त्री० [अनु० हुँहुँ+करना] (१) 'हूँ' करने की क्रिया। वक्ता की बात सुनना सूचित करने का शब्द जो श्रोता बीच बीच में बोलता जाता है। (२) स्वीकृति-सूचक शब्द। मानना या कबूल करना प्रकट करने का शब्द। हामी।

संज्ञा स्त्री० [सं० हुंडि = राशि+कारी] घुमाव के साथ झुकी लकीर जो अंक के आगे रुपया या रक़म सूचित करने के लिये लगा दी जाती है। बिकारी। जैसे,—१), ॥)।

हुंड–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेढ़ा। मेष। (२) बाघ। व्याघ्र। (३) सूअर। ग्राम शूकर। (४) जड़बुद्धि। मूर्ख। (५) राक्षस। (६) अनाज की बाल। (७) एक बर्बर जाति। (महाभारत)

हुंडन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव के एक गण का नाम। (काशी खंड) (२) सुन या स्तब्ध हो जाना। मारा जाना। (अंग का)

हुंडा–संज्ञा पुं० [सं०] आग के धधकने का शब्द।

संज्ञा पुं० [हिं० हुंडी] वह रुपया जो किसी किसी जाति में वर पक्ष से कन्या के पिता को ब्याह के लिये दिया जाता है।

हुंडा भाड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० हुंडी+भाड़ा] महसूल, भाड़ा आदि सब कुछ देकर कहीं पर माल पहुँचाने का ठेका।

हुँडार–संज्ञा पुं० [सं० हुंड = मेढ़+अरि = शत्रु] भेड़िया। वीग।

हुंडावन–संज्ञा स्त्री० [हिं० हुंडी] (१) वह रकम जो हुंडी लिखने के समय दस्तूर की तरह पर काटी जाती है। (२) हुंडी की दर।

हुंडी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह पत्र या कागज़ जिस पर एक महाजन दूसरे महाजन को, जिससे लेन-देन का व्यवहार होता है, कुछ रुपया देने के लिये लिखकर किसी को रुपए के बदले में देता है। निधिपत्र। लोटपत्र। चेक।

क्रि० प्र०—बेचना।—लिखना।—लेना।

यौ०—हुंडी-पुरजा, हुंडी-बही।

मुहा०—(किसी पर) हुंडी करना = किसी के नाम हुंडी लिखना। हुंडी का व्यवहार = हुंडी के द्वारा लेन-देन का व्यवहार। हुंडी पटना = हुंडी के रुपए का चुकता होना। हुंडी भेजना = हुंडी के द्वारा कोई रकम अदा करना। हुंडी का न पटना = हुंडी के रुपए का चुकता न होना। हुंडी सकारना = हुंडी के रुपए का देना स्वीकार करना। दर्शनी हुंडी = वह हुंडी जिसके रुपए को दिखाते ही चुकता कर देने का नियम हो। मियादी हुंडी = वह हुंडी जिसके रुपये को मिति के बाद देने का नियम हो।

(२) उधार रुपया देने की एक रीति जिसके अनुसार लेनेवाले को साल भर में २०) का २५) या १५) का २०) देना पड़ता है।

हुंडी बही–संज्ञा स्त्री० [हिं० हुंडी+बही] वह किताब या बही जिसमें सब तरह की हुंडियों की नकल रहती है।

हुंडी बेंत–संज्ञा पुं० [देश० हुंडी+हिं० बेंत] एक प्रकार का बेंत जिसे मयूरी बेंत भी कहते हैं।

हुँत–प्रत्य० [प्रा० विभक्ति 'हिंतो'] (१) पुरानी हिंदी की पंचमी और तृतीया की विभक्ति। से। उ०—(क) तेहि बंदि हुँत छुटै जो पावा। (ख) जब हुँत कहिगा पंखि सँदेसी। (ग) तब हुँत तुम बिनु रहै न जीऊ।—जायसी। (२) लिये। निमित्त। वास्ते। खातिर। उ०—तुम हुँत मँडप गइउँ परदेसी।—जायसी। (३) द्वारा। ज़रिये से। उ०—उन्ह हुँत देखै पायँउ दरस गोसाईं केर।—जायसी।

हुंभा–संज्ञा पुं० [देश०] समुद्र की चढ़ती लहर। ज्वार। (लश०)

हुंभी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय के रँभाने का शब्द।

हुॐ†–अ० [वैदिक सं० उप = और, आगे; प्रा० उअ, हिं० ऊ] अतिरेक-सूचक शब्द। कथित के अतिरिक्त और भी। जैसे,—रामहु = राम भी। हमहु = हम भी। उ०—हमहु कहब अब ठकुरसुहाती।—तुलसी।

हुआँ-अव्य० दे० "वहाँ"।

संज्ञा पुं० [अनु०] गीदड़ों के बोलने का शब्द।

हुआना-क्रि० अ० [अनु० हुआँ] 'हुआँ हुआँ' करना। (गीदड़ों का) बोलना। उ०—जंबुक-निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं, हुआहिं, अघाहिं दपट्टहिं।—तुलसी।

हुक-संज्ञा पुं० [अं०] (१) कँटिया। टेढ़ी कील। (२) दो वस्तुओं को एक में जोड़ने का झुका हुआ काँटा। अँकुसी। अँकुड़ी। (३) नाव में वह लकड़ी जिसमें डाँड़े को ठहरा या फँसाकर चलाते हैं।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का दर्द जो प्रायः पीठ में किसी स्थान की नस पर होता है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

हुकना-संज्ञा पुं० [देश०] एक पक्षी जो 'सोहन-चिड़िया' के नाम से प्रसिद्ध है।

क्रि० अ० [देश०] भूल जाना। विस्मृत होना।

क्रि० स० वार या निशाना चूकना। लक्ष्य भ्रष्ट होना। खाली जाना।

हुकरना-क्रि० अ० दे० "हुँकरना", "हुँकारना"।

हुकर पुकर-संज्ञा स्त्री० [अनु०] कलेजे की धड़कन। दिल की कँपकँपी। हृत्कंप। घबराहट। अधीरता।

मुहा०—कलेजा हुकर पुकर करना=(१) भय या आशंका से हृदय में कँपकँपी या अशांति होना। डर या घबराहट से दिल धड़कना। (२) भय या घबराहट होना। चित्त अधीर होना।

हुकारना-क्रि० अ० दे० "हुँकारना"।

हुकुम‡-संज्ञा पुं० दे० "हुक्म"।

हुकुर हुकुर-संज्ञा स्त्री० [अनु०] दुर्बलता, रोग आदि में श्वास का स्पंदन। जल्दी जल्दी साँस चलने की धड़कन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हुकूमत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) अधीनता में रखने की अवस्था, क्रिया या भाव। आज्ञा में रखने का भाव। प्रभुत्व। शासन। आधिपत्य। अधिकार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—हुकूमत चलना=प्रभुत्व माना जाना। अधिकार माना जाना। हुकूमत चलाना=प्रभुत्व या अधिकार से काम लेना। दूसरों को आज्ञा देना। जैसे,—उठो कुछ करो, बैठे बैठे हुकूमत चलाने से काम न होगा। हुकूमत जताना=अधिकार या बड़प्पन प्रकट करना। प्रभुत्व प्रदर्शित करना। रोब दिखाना।

(२) राज्य। शासन। राजनीतिक आधिपत्य। जैसे,—यहाँ भी अँगरेजों की हुकूमत है।

हुक्का-संज्ञा पुं० [अ०] (१) तंबाकू का धूआँ खींचने के लिये विशेष रूप से बना हुआ एक नल यंत्र जिसमें दो नलियाँ होती हैं—एक पानी भरे गेंड़े से ऊपर की ओर खड़ी जाती है जिस पर तंबाकू सुलगाने की चिलम बैठाई जाती है और दूसरी उसी गेंड़े से बगल की ओर आड़ी या तिरछी जाती है जिसका छोर मुँह में लगाकर पानी में होकर आता हुआ तंबाकू का धूआँ खींचते हैं। गड़गड़ा। फ़रशी।

यौ०—हुक्का पानी।

मुहा०—हुक्का पीना=हुक्के की नली से तंबाकू का धूआँ मुँह में खींचना। हुक्का गुड़गुड़ाना=हुक्का पीना। हुक्का ताजा करना=हुक्के का पानी बदलना। हुक्का भरना=चिलम पर आग तंबाकू वगैरह रखकर हुक्का पीने के लिये तैयार करना।

(२) दिशा जानने का यंत्र। कंपास। (लश०)

हुक्का पानी-संज्ञा पुं० [अ० हुक्का+हिं० पानी] एक दूसरे के हाथ से हुक्का तंबाकू पीने और पानी पीने का व्यवहार। बिरादरी की राहरस्म। आने जाने और खाने पीने आदि का सामाजिक व्यवहार।

विशेष—जिस प्रकार एक दूसरे के साथ खाना-पीना एक जाति या बिरादरी में होने का चिह्न समझा जाता है, उसी प्रकार कुछ जातियों में एक दूसरे के हाथ का हुक्का पीना भी। ऐसी जातियाँ जब किसी को समाज या बिरादरी से अलग करती हैं, तब उसके हाथ का पानी और हुक्का दोनों पीना बंद कर देती हैं।

मुहा०—हुक्का पानी बंद करना=बिरादरी से अलग करना। समाज से बाहर करना। (दंडस्वरूप) हुक्का पानी बंद होना=बिरादरी से अलग किया जाना। समाज से बाहर होना।

हुक्काम-संज्ञा पुं० [अ० 'हाकिम' का बहुवचन रूप] हाकिम लोग। अधिकारीवर्ग। बड़े अफ़सर।

हुक्कू-संज्ञा पुं० [देश०] एक जाति का बंदर।

हुक्म-संज्ञा पुं० [अ०] (१) बड़े का वचन जिसका पालन कर्त्तव्य हो। कुछ करने के लिये अधिकार के साथ कहना। आज्ञा। आदेश।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—हुक्म बजाना=(१) हुक्म [illegible] करना। आज्ञा फैलाना। हुक्म जारी [illegible] रखना। (२) आज्ञा पालन करना। सेवा करना। अधीनता में रहना। हुक्म उलटाना=आज्ञा का तिरस्कार करना। एक आज्ञा के विरुद्ध दूसरी आज्ञा जारी करना। हुक्म की तामील=आज्ञा का पालन। हुक्म के मुताबिक कार्रवाई। हुक्म चलाना=(१) आज्ञा प्रचलित करना। (२) आज्ञा देना। अधिकारपूर्वक दूसरे को कुछ करने के लिये कहना। बड़प्पन दिखाते हुए दूसरे को काम में लगाना। जैसे,—बैठे बैठे हुक्म चलाते हो, खुद जाकर क्यों नहीं करते? हुक्म जारी करना=आज्ञा का प्रचार करना। हुक्म तोड़ना=आज्ञा भंग करना। आदेश के विरुद्ध कार्य करना। बड़े के वचन का पालन न करना। हुक्म देना=आज्ञा करना। हुक्म बजाना या बजा लाना=(१) आज्ञा पालन करना। बड़े

के कहे अनुसार करना। (२) सेवा करना। हुक्म मानना = आज्ञा पालन करना। बड़े के कहे अनुसार चलना। हुक्म मिलना = आज्ञा दिया जाना। आदेश होना। जैसे,—मुझे क्या हुक्म मिलता है? जो हुक्म = जो हुक्म होता है, उसे मैं करूँगा। (नौकर)

(२) कुछ करने की स्वीकृति। अनुमति। इजाज़त। जैसे,—(क) सवारी निकालने का हुक्म हो गया। (ख) घर जाने का हुक्म मिल गया।

मुहा०—हुक्म लेना = आज्ञा प्राप्त करना। अनुमति लेना। जैसे,—तुम्हें हुक्म लेकर जाना चाहिए था।

(३) अधिकार। प्रभुत्व। शासन। इख्तियार। जैसे,—हुक्म बना रहे। (आशीर्वाद)

मुहा०—हुक्म में होना = अधिकार में होना। अधीन होना। शासन में होना। जैसे,—(क) मैं तो हर घड़ी हुक्म में हाज़िर रहता हूँ। (ख) वह किसी के हुक्म में नहीं है, मनमानी करता है।

(४) किसी क़ानून या धर्मशास्त्र की आज्ञा। विधि। नियम। शिक्षा। उपदेश। (५) ताश का एक रंग जिसमें काले रंग का पान बना रहता है।

हुक्मचील–संज्ञा स्त्री० [?] खजूर का गोंद।

हुक्मनामा–संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] वह कागज जिस पर कोई हुक्म लिखा गया हो। आज्ञा-पत्र।

क्रि० प्र०—देना।—लिखना।—भेजना।

हुक्मबरदार–संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] (१) आज्ञानुवर्ती। आज्ञा के अनुसार चलनेवाला। आज्ञाकारी। सेवक। अधीन।

हुक्म बरदारी संज्ञा स्त्री० [अ० + फ़ा०] (१) आज्ञा पालन। आज्ञाकारिता। (२) सेवा।

हुक्मी वि० [अ० हुक्म] (१) दूसरे की आज्ञा के अनुसार ही काम करनेवाला। दूसरे के कहे मुताबिक़ चलनेवाला। पराधीन। जैसे,—मैं तो हुक्मी बंदा हूँ; मेरा क्या क़ुसूर? (२) न चूकनेवाला। ज़रूर असर करनेवाला। अचूक। अव्यर्थ। जैसे,—हुक्मी दवा। (३) न खाली जानेवाला। अवश्य लक्ष्य पर पहुँचनेवाला। जैसे,—वह हुक्मी तीर चलाता है। (४) अवश्य कर्त्तव्य। न टालने योग्य। लाज़िमी। ज़रूरी।

हुचकी–संज्ञा स्त्री० दे० "हिचकी"।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की सुंदर लता या बेल जिसके फूल ललाई लिए सफ़ेद और सुगंधित होते हैं।

हुजूम–संज्ञा पुं० [अ०] भीड़। जमावड़ा।

हुजूर–संज्ञा पुं० [अ०] (१) किसी बड़े का सामीप्य। नज़र का सामना। सम्मुख स्थिति। समक्षता।

मुहा०—(किसी के) हुजूर में = (बड़े के) सामने। आगे। जैसे,—यह सब बादशाह के हुजूर में लाए गए।

(२) बादशाह या हाकिम का दरबार। कचहरी।

मुहा०—हुजूर तहसील = सदर तहसील। वह तहसील जो जिले के प्रधान नगर में हो। हुजूर महाल = वह महाल जिसकी मालगुजारी सीधे सरकार के यहाँ दाखिल हो, लगान के रूप में किसी जमींदार को न दी जाती हो। वह ज़मीन जिसकी ज़मींदार सरकार हो।

(३) बहुत बड़े लोगों के संबोधन का शब्द। (४) एक शब्द जिसके द्वारा अधीन कर्मचारी अपने बड़े अफ़सर को या नौकर अपने मालिक को संबोधन करते हैं।

हुजूरी–संज्ञा स्त्री० [अ० हुजूर + ई० (हिं० प्रत्य०)] बड़े का सामीप्य या समक्षता। नज़र का सामना।

संज्ञा पुं० (१) ख़ास सेवा में रहनेवाला नौकर। (२) दरबारी। मुसाहब।

वि० हुजूर का। सरकारी।

हुज्जत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) व्यर्थ का तर्क। फ़जूल की दलील। (२) विवाद। झगड़ा। तकरार। कहासुनी। वाग्युद्ध।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

हुड़–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेढ़ा। (२) एक प्रकार का अस्त्र।

हुड़कना–क्रि० अ० [देश०] बच्चे का रो रोकर उसके लिये व्याकुलता प्रकट करना जिससे वह बहुत हिला हो।

हुड़दंगा–संज्ञा पुं० [अनु० हुड़ + हिं० दंगा] हल्लागुल्ला और उछलकूद। धमाचौकड़ी। उपद्रव। उत्पात।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

हुडुक–संज्ञा पुं० [सं० हुडुक] एक प्रकार का बहुत छोटा ढोल जिसे प्रायः कहार या धीमर बजाते हैं।

हुडुक्क–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का बहुत छोटा ढोल। हुडुक नाम का बाजा। (२) दात्यूह पक्षी। (३) मतवाला आदमी। मदोन्मत्त पुरुष। (४) लोहे की साम जड़ा हुआ डंडा। लोहबंद। (५) अर्गल। बेंवड़ा।

हुढ़क†–संज्ञा पुं० दे० "हुडुक"।

हुत–वि० [सं०] हवन किया हुआ। आहुति दिया हुआ। हवन करते समय अग्नि में डाला हुआ।

संज्ञा पुं० (१) हवन की वस्तु। हवन की सामग्री। (२) शिव का एक नाम।

क्रि० अ० 'होना' क्रिया का प्राचीन भूतकालिक रूप। था।

उ०—हुत पहिले औ अब है सोई।—जायसी।

हुतभक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

हुतभुक्, हुतभुज्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। आग। (२) चित्रक। चीते का पेड़।

हुतवह–संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

हुतशेष-संज्ञा पुं० [सं०] हवन करने से बची हुई सामग्री।

हुता†ॐ-क्रि० अ० [हिं० हुत] 'होना' क्रिया का पुरानी अवधी हिंदी का भूतकालिक रूप। था। उ०—गगन हुता, नहिं महि हुती, हुते चंद नहिं सूर।—जायसी।

हुताग्नि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने हवन किया हो। (२) अग्निहोत्री। (३) यज्ञ या हवन की आग।

हुताश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) (आहुति खानेवाला) अग्नि। आग। (२) तीन की संख्या। (३) चित्रक। चीते का पेड़।

हुताशन-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

हुतिॐ-अव्य० [प्रा० हिंतो] (१) अपादान और करण कारक का चिह्न। से। द्वारा। (२) ओर से। तरफ़ से। वि० दे० "हुँति"।

संज्ञा स्त्री० [सं०] हवन। यज्ञ।

हुतियन-संज्ञा पुं० [देश०] सेमल का पेड़।

हुँते-अव्य० [प्रा० हिंतो] (१) से। द्वारा। (२) ओर से। तरफ से।

हुतोॐ-क्रि० अ० ['होना' क्रि० का ब्रज भूतकालिक रूप] था।

हुदकच-संज्ञा पुं० [सं०] एक दैत्य का नाम।

हुदकाना†ॐ-क्रि० स० [देश०] उसकाना। उभारना।

हुदना†ॐ-क्रि० अ० [सं० हुंडन] स्तब्ध होना। रुकना।

हुदहुद-संज्ञा पुं० [अ०] एक चिड़िया जो हिंदुस्तान और बरमा में प्रायः सब जगह पाई जाती है। इसकी छाती और गरदन खैरे रंग की तथा चोटी और डैने काले और सफेद होते हैं। चोंच एक अंगुल लंबी होती है।

हुदारना-क्रि० स० [देश०] रस्सी पर लटकाना। टाँगना। (लश०)

हुद्दा-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

‡ संज्ञा पुं० [अ० ओहदा] ओहदा। पद।

हुन-संज्ञा पुं० [सं० हूण, हून=सोने का एक सिक्का] (१) मोहर। अशरफ़ी। स्वर्णमुद्रा। (२) सोना। सुवर्ण।

मुहा०—हुन बरसना=धन की बहुत अधिकता होना।

हुनना-क्रि० स० [सं० हु, हुन्+हिं० प्रत्य०—ना] (१) अग्नि में डालना। आहुति देना। (२) हवन करना।

हुनर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) कला। कारीगरी। (२) गुण। करतब। (३) कौशल। युक्ति। चतुराई।

हुनरमंद-वि० [फ़ा०] कला-कुशल। निपुण।

हुनरा-वि० [फ़ा० हुनर] वह बंदर या भालू जो नाचना और खेल दिखाना सीख गया हो। (कलंदर)

हुनिया-संज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़ों की एक जाति जिसका ऊन अच्छा होता है।

हुन्न-संज्ञा पुं० दे० "हुन"।

हुब, हुब्ब-संज्ञा पुं० [अ०] (१) अनुराग। प्रेम। (२) श्रद्धा। (३) हौसला। उमंग। उत्साह।

हुमकना-क्रि० अ० [अनु० हुँ (प्रयत्न का शब्द)] (१) उछलना कूदना। (२) जमे हुए पैर से ठेलना या धक्का पहुँचाना। पैरों से ज़ोर लगाना। (३) पैरों को आघात के लिये ज़ोर से उठाना। कसकर पैर तानना। उ०—हुमकि लात कूबर पर मारा।—तुलसी। (४) चलने का प्रयत्न करना। चलने के येलि ज़ोर लगाकर पैर रखना। ठुमकना। (बच्चों का)

हुमगना-क्रि० अ० दे० "हुमकना"।

हुमा-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक कल्पित पक्षी जिसके संबंध में प्रसिद्ध है कि वह हड्डियाँ ही खाता है और जिसके ऊपर उसकी छाया पड़ जाय वह बादशाह हो जाता है।

हुमेल-संज्ञा स्त्री० [अ० हमायल] (१) अशरफ़ियों या रुपयों को गूँथकर बनी हुई एक प्रकार की माला जिसे स्त्रियाँ पहनती हैं। (२) घोड़ों के गले का एक गहना।

हुम्मा-संज्ञा पुं० [हिं० उमंग] लहरों का उठना। ज्वार। (लश०)

हुरदंग, हुरदंगा-संज्ञा पुं० दे० "हुड़दंग"।

हुरमत-संज्ञा स्त्री० [अ०] आबरू। इज़्ज़त। मान। मर्यादा।

हुरहुर-संज्ञा पुं० दे० "हुलहुल"।

हुरहुरिया-संज्ञा स्त्री० [अनु० सं० हुड्हुली] एक प्रकार की चिड़िया।

हुरिजक-संज्ञा पुं० [सं०] निषाद और कबरी स्त्री से उत्पन्न एक संकर जाति।

हुरुट्टक-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का अंकुश।

हुरुमयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का नृत्य। उ०—उकथा, टेकी, आलमस, दिंड। पलटि हुरुमयी निःशंक चिंड।—केशव।

हुर्रा-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की हर्षध्वनि।

हुल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दो-धारा छुरा।

हुलकना-क्रि० अ० [अनु० हुकहुक] कै करना। वमन करना।

हुलकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हुलकना] (१) कै। वमन। उलटी। (२) हैजे की बीमारी।

हुलना-क्रि० अ० [हिं० हूलना] लाठी आदि को ठेलना। रेलना। पेलना।

हुलसना-क्रि० अ० [हिं० हुलास+ना (प्रत्य०)] (१) उल्लास में होना। आनंद से फूलना। उमगना। खुशी से भरना। (२) उभरना। उठना। (३) उमड़ना। बढ़ना। उ०—संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरित मानस कवि तुलसी।—तुलसी।

ॐ क्रि० स० आनंदित करना। प्रफुल्लित करना।

हुलसाना-क्रि० स० [हिं० हुलसना] उल्लासित करना। आनंदपूर्ण करना। हर्ष की उमंग उत्पन्न करना।

क्रि० अ० दे० "हुलसना"। उ०—राम अनुज-मन की गति जानी। भगतबछलता हिय हुलसानी।—तुलसी।

हुलसी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हुलसना] (१) हुलास। उल्लास। आनंद

की उमंग। उ०—रामहिं प्रिय पावन तुलसी सी। तुलसिदास हित हिय हुलसी सी।—तुलसी। (२) किसी किसी मत से तुलसीदास जी की माता का नाम।

हुलहुल-संज्ञा पुं० [?] एक छोटा बरसाती पौधा जिसके कई भेद होते हैं। साधारण जाति के पौधे में सफेद फूल और मूँग की सी लंबी फलियाँ लगती हैं। पीले, लाल और बैंगनी फूलवाले पौधे भी पाए जाते हैं। पत्तियाँ गोल और फाँकदार होती हैं जो दर्द दूर करने की दवा मानी जाती हैं। कान के दर्द में प्रायः इन पत्तियों का रस डाला जाता है। पत्तियों का साग भी खाते हैं। अर्कपुष्पिका। सूरजवर्त्त।

हुला-संज्ञा पुं० [हिं० हूलना] लाठी का छोर या नोक।

हुलाना†-क्रि० स० [हिं० हूलना] लाठी, भाले आदि को ज़ोर से ठेलना। पेलना।

हुलाल-संज्ञा स्त्री० [हिं० हुलसना] तरंग। लहर।

हुलास-संज्ञा पुं० [सं० उल्लास] (१) आनंद की उमंग। उल्लास। हर्ष की प्रेरणा। खुशी का उमड़ना। आह्लाद। (२) उत्साह। हौसला। तबीयत का बढ़ना। उ०—सुतहि राज, रामहि बनवासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू।—तुलसी। (३) उमगना। बढ़ना।

संज्ञा स्त्री० सुँघनी। नासगोशन।

हुलासदानी-संज्ञा स्त्री० [हिं० हुलास+दान] सुँघनीदानी।

हुलासी-वि० [हिं० हुलास] (१) आनंदी। (२) उत्साही। हौसलेवाला।

हुलिंग-संज्ञा पुं० [सं०] मध्यदेश के अंतर्गत एक प्रदेश का नाम।

हुलिया-संज्ञा पुं० [अ० हुलियः] (१) शकल। आकृति। रूप रंग। (२) किसी मनुष्य के रूप रंग आदि का विवरण। शकल सूरत और बदन पर के निशान वगैरह का ब्योरा।

मुहा०—हुलिया लिखाना = किसी भागे हुए, खोए हुए या लापता आदमी का पता लगाने के लिये उसकी शकल सूरत आदि पुलिस में दर्ज कराना।

हुलु-संज्ञा पुं० [सं०] मेढ़ा।

हुलूक-संज्ञा पुं० [देश०] एक जाति का बंदर।

विशेष—इसकी लंबाई बीस इक्कीस इंच और रंग प्रायः सफेद होता है। यह आसाम के जंगलों में झुंड में रहता है और जल्दी पालतू हो जाता है।

हुलैया-संज्ञा स्त्री० [हिं० हूलना] डूबने के पहले नाव का डगमगाना।

हुल्ल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य।

हुल्लड़-संज्ञा पुं० [अनु० सं० हुलहुल] (१) शोरगुल। हल्ला। कोलाहल। (२) उपद्रव। ऊधम। धूम। (३) हलचल। आंदोलन। (४) दंगा। बलवा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—मचना।—मचाना।

हुल्लास-संज्ञा पुं० [सं० उल्लास] चौपाई और त्रिभंगी के मेल से बना हुआ एक छंद।

हुश-अव्य० [अनु०] एक निषेधवाचक शब्द। अनुचित बात मुँह से निकालने पर रोकने का शब्द।

हुसियार⊛†-वि० दे० "होशियार"।

हुसैन-संज्ञा पुं० [अ०] मुहम्मद साहब के दामाद अली के बेटे जो करबला के मैदान में मारे गए थे और शीया मुसलमानों के पूज्य हैं। मुहर्रम इन्हीं के शोक में मनाया जाता है।

हुसैनी-संज्ञा पुं० [अ० हुसैन] (१) अंगूर की एक जाति। (२) फ़ारस संगीत के बारह मुकामों में से एक।

हुसैनी कान्हड़ा-संज्ञा पुं० [फ़ा० हुसैनी+हिं० कान्हड़ा] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

हुस्न-संज्ञा पुं० [अ०] (१) सौंदर्य। सुंदरता। लावण्य।

यौ०—हुस्नपरस्त।

(२) तारीफ की बात। खूबी। उत्कर्ष। जैसे,—हुस्न इंतज़ाम। (३) अनूठापन। विचित्रता। जैसे,—हुस्न इत्तफ़ाक़।

हुस्नदान-संज्ञा पुं० [अ० हुस्न+हिं० दान] पानदान। खासदान।

हुस्नपरस्त-संज्ञा पुं० [अ०+फ़ा०] सौंदर्योपासक। सुंदर रूप का प्रेमी। रूप का लोभी।

हुस्नपरस्ती-संज्ञा स्त्री० [अ०+फ़ा०] सौंदर्योपासना। सुंदर रूप का प्रेम। रूप का लोभ।

हुस्यार⊛†-वि० दे० "होशियार"।

हुहुव-संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

हुहू-संज्ञा पुं० [सं०] एक गंधर्व का नाम। हूहू।

हुँ-अव्य० [अनु०] (१) किसी प्रश्न के उत्तर में स्वीकार सूचक शब्द। (२) समर्थन-सूचक शब्द। (३) एक शब्द जिसके द्वारा सुननेवाला यह सूचित करता है कि मैं कही जाती हुई बात या प्रसंग ध्यान से सुन रहा हूँ।

अव्य० दे० "हूँ"।

सर्व० वर्तमान-कालिक क्रिया "है" का उत्तम पुरुष एक वचन का रूप। जैसे,—"मैं हूँ"।

हुँकना-क्रि० अ० [अनु०] (१) गाय का बछड़े की याद में या और कोई दुःख सूचित करने के लिये धीरे धीरे बोलना। हुँड़कना। उ०—ऊधो! इतनी कहियो जाय। अति कृशगात भई हैं तुम बिनु बहुत दुखारी गाय। जल समूह बरसत अँखियन तें हुँकति लीन्हें नावँ। जहाँ जहाँ गो-दोहन करते ढूँढति सोइ सोइ ठावँ।—सूर। (२) हुंकार शब्द करना। वीरों का ललकारना या दपटना। (३) सिसक कर रोना। कोई बात याद कर करके रोना।

हूँठ-वि० [सं० अर्द्धचतुर्थ, प्रा० अद्धुट्ठ । (सं० 'अध्युष्ठ' कल्पित जान पड़ता है)] साढ़े तीन।

हूँठा-संज्ञा पुं० [हिं० हूँठ] साढ़े तीन का पहाड़ा।

हूँड़-संज्ञा स्त्री० [हिं० होड़] खेतों की सिंचाई में किसानों की एक दूसरे को सहायता देने की रीति।

हूँस-संज्ञा स्त्री० [सं० हिंस] (१) दूसरे की बढ़ती देख कर जलना। ईर्ष्या। डाह। (२) दूसरे की कोई वस्तु देख कर उसे पाने के लिये दुखी रहना। आँख गड़ाना। (३) बुरी नज़र। टोक। जैसे,—बच्चे को हूँस लगी है।

क्रि० प्र०—लगना।

(४) बुरा भला कहते रहने की क्रिया। कोसना। फटकार। जैसे,—दिन रात तुम्हारी हूँस कौन सहा करे ?

हूँसना-क्रि० स० [हिं० हूँस] नज़र लगाना।

क्रि० अ० (१) ईर्ष्या से जलाना। (२) किसी वस्तु पर आँख गड़ाना। ललचाना। (४) भला बुरा कहना। कोसना। (५) रह रहकर चिढ़ना।

हू|-अव्य० [वैदिक सं० उप = आगे, और। प्रा० उव, हिं० ऊ] एक अतिरेक-बोधक शब्द। भी। उ०—तुमहू कान्ह मनो भए आजु काल्हि के दानि।—बिहारी।

संज्ञा पुं० गीदड़ के बोलने का शब्द।

हूक-संज्ञा स्त्री० [सं० हिक्का] (१) हृदय की पीड़ा। छाती या कलेजे का दर्द जो रह रहकर उठता है। साल।

क्रि० प्र०—उठना।—मारना।

(२) दर्द। पीड़ा। कसक। (३) मानसिक वेदना। संताप। दुःख। उ०—भूलि हू चूक परी जो कहूँ तिहि चूक की हूक न जाति हिये तें।—पद्माकर। (४) धड़क। आशंका। खटका।

हूकना-क्रि० अ० [हिं० हूक + —ना (प्रत्य०)] (१) सालना। दुखना। दर्द करना। कसकना। (२) पीड़ा से चौंक उठना। उ०—(क) कुच-तूँबी अब पीठि गड़ोऊँ। गहे जो हूकि गाढ़ रस धोऊँ।—जायसी। (ख) त्यों पद्माकर पेखौ पलासन, पावक सी मनो फूँकन लागी। वै ब्रजवारी बेचारी बधू बन बावरी लौं हिये हूकन लागीं।—पद्माकर।

हूचक-संज्ञा पुं० [देश०] युद्ध। (डिं०)

हूटना‡|-क्रि० अ० [सं० हुड् = चलना] (१) हटना। टलना। (२) मुड़ना। पीठ फेरना।

हूठा-संज्ञा पुं० [हिं० अँगूठा] (१) किसी को चाही वस्तु न देकर उसे चिढ़ाने के लिये अँगूठा दिखाने की अशिष्ट मुद्रा। ठेंगा। (२) अशिष्टों या गँवारों का बातचीत या विवाद में ऐंठ दिखाते हुए हाथ मटकाने की मुद्रा। भद्दी या गँवारू चेष्टा।

मुहा०—हूठा देना = ठेंगा दिखाना। अशिष्टता से हाथ मटकाना। भद्दी चेष्टा करना। उ०—(क) नागरि विविध विलास तजि बसी गँवेलिन माहिं। मूढ़नि में गनिबी कितौ, हूठ्यौ दै अठिलाहि।—बिहारी। (ख) गदराने तन गोरटी, ऐपन आड़ लिलार। हूठ्यौ दै अठिलाय दृग, करै गँवारि सु मार।—बिहारी।

हूड़-वि० [हूण (जाति)] (१) हुड्ड। उजड्ड। अनगढ़। (२) असावधान। बेखबर। ध्यान न रखनेवाला। (३) गावदी। अनाड़ी। (४) हठी। ज़िद्दी।

हूड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो पश्चिमी घाट (मलय पर्वत) के पहाड़ों से लेकर कन्याकुमारी तक होता है।

हूण-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्राचीन मंगोल जाति जो पहले चीन की पूरबी सीमा पर लूटमार किया करती थी, पर पीछे अत्यंत प्रबल होकर एशिया और योरप के सभ्य देशों पर आक्रमण करती हुई फैली।

विशेष—हूणों का इतना भारी दल चलता था कि उस समय के बड़े बड़े सभ्य साम्राज्य उनका अवरोध नहीं कर सकते थे। चीन की ओर से हटाए जाकर हूण लोग तुर्किस्तान पर अधिकार करके सन् ४०० ई० से पहले वक्षु नद (आक्सस नदी) के किनारे आ बसे। यहाँ से उनकी एक शाखा ने तो योरप के रोम साम्राज्य की जड़ हिलाई और शेष पारस साम्राज्य में घुसकर लूट-पाट करने लगे। पारसवाले इन्हें 'हैताल' कहते थे। कालिदास के समय में हूण वक्षु के ही किनारे तक आए थे, भारतवर्ष के भीतर नहीं घुसे थे; क्योंकि रघु के दिग्विजय के वर्णन में कालिदास ने हूणों का उल्लेख वहीं पर किया है। कुछ आधुनिक प्रतियों में 'वक्षु' के स्थान पर 'सिंधु' पाठ कर दिया गया है, पर वह ठीक नहीं। प्राचीन मिली हुई रघुवंश की प्रतियों में 'वंक्षु' ही पाठ पाया जाता है। वंक्षु नद के किनारे से जब हूण लोग फारस में बहुत उपद्रव करने लगे, तब फ़ारस के प्रसिद्ध बादशाह बहराम गोर ने सन् ४२५ ई० में उन्हें पूर्ण रूप से परास्त करके वंक्षु नद के उस पार भगा दिया। पर बहराम गोर के पौत्र फ़ीरोज़ के समय में हूणों का प्रभाव फारस में बढ़ा। वे धीरे धीरे फारसी सभ्यता ग्रहण कर चुके थे और अपने नाम आदि फारसी ढंग के रखने लगे थे। फ़ीरोज़ को हरानेवाले हूण बादशाह का नाम खुशनेवाज था। जब फ़ारस में हूण साम्राज्य स्थापित न हो सका, तब हूणों ने भारतवर्ष की ओर रुख किया। पहले उन्होंने सीमांत प्रदेश कपिशा और गांधार पर अधिकार किया। फिर मध्य-देश की ओर चढ़ाई पर चढ़ाई करने लगे। गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त इन्हीं चढ़ाइयों में मारा गया। इन चढ़ाइयों से तत्कालीन गुप्त साम्राज्य निर्बल पड़ने लगा। कुमारगुप्त के पुत्र महाराज स्कंदगुप्त बड़ी योग्यता और वीरता से जीवन भर हूणों से लड़ते रहे। सन् ४५७ ई० अंतर्वेद, मगध आदि पर स्कंद-

गुप्त का अधिकार बराबर पाया जाता है। सन् ४६५ के उपरांत हूण प्रबल पड़ने लगे और अंत में स्कंदगुप्त हूणों के साथ युद्ध करने में मारे गए। सन् ४९९ ई० में हूणों के प्रतापी राजा तुरमान शाह (सं० तोरमाण) ने गुप्त साम्राज्य के पश्चिमी भाग पर पूर्ण अधिकार कर लिया। इस प्रकार गांधार, काश्मीर, पंजाब, राजपूताना, मालवा और काठियावाड़ उसके शासन में आए। तुरमान शाह या तोरमाण का पुत्र मिहिरगुल (सं० मिहिरकुल) बड़ा ही अत्याचारी और निर्दय हुआ। पहले वह बौद्ध था, पर पीछे कट्टर शैव हुआ। गुप्तवंशीय नरसिंहगुप्त और मालव के राजा यशोधर्मन् से उसने सन् ५३२ में गहरी हार खाई और अपना इधर का सारा राज्य छोड़ वह काश्मीर भाग गया। हूणों में ये ही दो सम्राट् उल्लेख योग्य हुए। कहने की आवश्यकता नहीं कि हूण लोग कुछ और प्राचीन जातियों के समान धीरे धीरे भारतीय सभ्यता में मिल गए। राजपूतों में एक शाखा हूण भी है। कुछ लोग अनुमान करते हैं कि राजपूताने और गुजरात के कुनबी भी हूणों के वंशज हैं।

हूदा–संज्ञा पुं० दे० "हूक", "हूळा"।

हूनिया–संज्ञा स्त्री० [हूण (देश०)] एक प्रकार की भेंड़ जो तिब्बत के पश्चिम भाग में पाई जाती है।

हूब–संज्ञा स्त्री० दे० "हूब्ब"।

हूबहू–वि० [अ०] ज्यों का त्यों। ठीक वैसा ही। बिलकुल समान।

हूय–संज्ञा पुं० [सं०] आह्वान। आवाहन। जैसे,—देव-हूय, पितृ-हूय।

हूर–संज्ञा स्त्री० [अ०] मुसलमानों के स्वर्ग की अप्सरा।

हूरहूण–संज्ञा पुं० [सं०] हूणों की एक शाखा जिसने योरप में जाकर हलचल मचाई थी। श्वेतहूण।

हूरा–संज्ञा पुं० दे० "हूळा"।

हूराहूरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक त्योहार या उत्सव जो दीवाली के तीसरे दिन होता है।

हूल–संज्ञा स्त्री० [सं० शूल] (१) भाले, डंडे, छुरे आदि की नोक या सिरे को ज़ोर से ठेलने अथवा भोंकने की क्रिया। (२) लासा लगाकर चिड़िया फँसाने का बाँस। (३) हूक। शूल। पीड़ा। (छाती या हृदय की) उ०—कोकिल केकी कोलाहल हूल उठी उठी उर में मति की गति लाली।—केशव।

क्रि० प्र०—उठना।

संज्ञा स्त्री० [अनु सं० हुलहुल] (१) कोलाहल। हल्ला। धूम। (२) हर्षध्वनि। आनंद का शब्द। (३) ललकार। (४) खुशी। आनंद।

यौ०—हूलफूल।

हूलना–क्रि० स० [हिं० हूल+ना (प्रत्य०)] (१) छड़ी, भाले, छुरे आदि की नोक या सिरे को ज़ोर से ठेलना या घुसाना। सिरे या फल को जोर से ठेलना या धँसाना। गोदना। गड़ाना। उ०—हूलै इतै पर मैन महावत, लाज के आँदू परे गथि पायँन।—पद्माकर। (२) शूल उत्पन्न करना।

हूश–वि० [हिं० हूक] (१) असभ्य। जंगली। उजड्ड। (२) अशिष्ट। बेहूदा।

हूसड़–वि० दे० "हूश"।

हूह–संज्ञा स्त्री० [अनु०] हुंकार। कोलाहल। शुरगमाद। उ०—(क) चले हूह करि यूथप बंदर।—तुलसी। (ख) जय जय जय रघुबंस-मनि धाए कपि दइ हूह।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

हूहू–संज्ञा पुं० [अनु०] अग्नि के जलने का शब्द। लपट के उठने या लहराने का शब्द। धायँ धायँ। जैसे,—हूहू करके जलना।

संज्ञा पुं० [सं०] एक गंधर्व का नाम।

हृत–वि० [सं०] (१) जिसे ले गए हों। पहुँचाया हुआ। (२) हरण किया हुआ। लिया हुआ।

हृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ले जाना। हरण। (२) नाश। (३) लूट।

हृत्कंप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हृदय की कँपकँपी। दिल की धड़कन। (२) जी का दहलना। अत्यंत भय। दहशत।

हृत्पिंड–संज्ञा पुं० [सं०] हृदय का कोश या थैली। कलेजा।

हृद्–संज्ञा पुं० [सं०] हृदय। दिल।

हृदयंगम–वि० [सं०] मन में आया हुआ। मन में बैठा हुआ। समझ में आया हुआ। जिसका सम्यक् बोध हो गया हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हृदय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छाती के भीतर बाईं ओर स्थित मांसकोश या थैली के आकार का एक भीतरी अवयव जिसमें स्पंदन होता है और जिसमें से होकर शुद्ध लाल रक्त नाड़ियों के द्वारा सारे शरीर में संचार करता है। दिल। कलेजा। वि० दे० "कलेजा"।

मुहा०—हृदय धड़कना = (१) हृदय का स्पंदन करना या कूदना। (२) भय या आशंका होना।

(२) छाती। वक्षस्थल।

मुहा०—हृदय से लगाना = आलिंगन करना। भेंटना। हृदय विदीर्ण होना = अत्यंत शोक होना। वि० दे० "छाती"।

(३) अंतःकरण का रागात्मक अंग। प्रेम, हर्ष, शोक, करुणा, क्रोध आदि मनोविकारों का स्थान। जैसे,—उसे हृदय नहीं है, तभी ऐसा निष्ठुर कर्म करता है।

मुहा०—हृदय उमड़ना = मन में प्रेम, शोक या करुणा का वेग

उमड़ना होना। हृदय भर आना=दे० "हृदय उमड़ना"। वि० दे० "जी", "कलेजा"।

(४) अंतःकरण। मन। जैसे,—वह अपने हृदय की बात किसी से नहीं कहता।

मुहा०—हृदय की गाँठ=(१) मन का दुर्भाव। (२) कपट। कुटिलता। वि० दे० "जी", "मन"।

(५) अंतरात्मा। विवेक-बुद्धि। जैसे,—हमारा हृदय गवाही नहीं देता। (६) किसी वस्तु का सार भाग। (७) तत्व। सारांश। (८) गुह्य बात। गूढ़ रहस्य। (९) अत्यंत प्रिय व्यक्ति। प्राणाधार।

हृदयग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] कलेजा पकड़ने का रोग। कलेजे का शूल या ऐंठन।

हृदयग्राही-संज्ञा पुं० [सं० हृदयग्राहिन्] [स्त्री० हृदयग्राहिणी] (१) मन को मोहित करनेवाला। (२) रुचिकर। भानेवाला।

हृदयचोर-संज्ञा पुं० [सं०] मन को मोहनेवाला।

हृदयनिकेत-संज्ञा पुं० [सं०] मनसिज। कामदेव। उ०—सकल कला करि कोटि विधि हारेउ सेन समेत। चली न अचल समाधि सिव, कोपेउ हृदय-निकेत।—तुलसी।

हृदय-पुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] हृदय की धड़कन या स्पंदन।

हृदय-प्रमाथी-वि० [सं० हृदय-प्रमाथिन्] [स्त्री० हृदय-प्रमाथिनी] (१) मन को क्षुब्ध या चंचल करनेवाला। (२) मन मोहनेवाला।

हृदयवल्लभ-संज्ञा पुं० [सं०] प्रेमपात्र। प्रियतम।

हृदयवान्-वि० [सं० हृदयवत्] [स्त्री० हृदयवती] (१) जिसके मन में प्रेम, करुणा आदि कोमल भाव उत्पन्न हों। सहृदय। (२) भावुक। रसिक।

हृदय-विदारक-वि० [सं०] (१) अत्यंत शोक उत्पन्न करनेवाला। (२) अत्यंत करुणा या दया उत्पन्न करनेवाला। जैसे,—हृदय-विदारक घटना।

हृदयवेधी-वि० [सं० हृदय-वेधिन्] [स्त्री० हृदय-वेधिनी] (१) मन को अत्यंत मोहित करनेवाला। जैसे,—हृदय-वेधी कटाक्ष। (२) अत्यंत शोक उत्पन्न करनेवाला। (३) बहुत अप्रिय या बुरा लगनेवाला। अत्यंत कटु। जैसे,—हृदय-वेधी वचन।

हृदय-संघट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] हृदय की गति का रुक जाना। दिल एकबारगी बेकाम हो जाना।

हृदयस्पर्शी-वि० [सं० हृदयस्पर्शिन्] [स्त्री० हृदयस्पर्शिणी] (१) हृदय पर प्रभाव डालनेवाला। दिल पर असर करनेवाला। (२) चित्त को द्रवीभूत करनेवाला। जिससे मन में दया या करुणा हो।

हृदयहारी-वि० [सं० हृदयहारिन्] [स्त्री० हृदयहारिणी] मन मोहनेवाला। जी को लुभानेवाला।

हृदयालु-वि० [सं०] (१) सहृदय। भावुक। (२) सुशील।

हृदयेश, हृदयेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० हृदयेश्वरी] (१) प्रेमपात्र। प्यारा। प्रियतम। (२) पति।

हृदयोन्मादिनी-वि० स्त्री० [सं०] (१) हृदय को उन्मत्त या पागल करनेवाली। (२) मन को मोहनेवाली।

संज्ञा स्त्री० संगीत में एक श्रुति।

हृदि-संज्ञा पुं० [सं० हृद का अधिकरण रूप] हृदय में। उ०—द्वंद विपति भवफंद विभंजय। हृदि बसि राम काममद गंजय।—तुलसी।

हृद्गत-वि० [सं०] (१) हृदय का। मन का। आंतरिक। भीतरी। जैसे,—हृद्गत भाव। (२) मन में बैठा या जमा हुआ। समझ या ध्यान में आया हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(३) मनचाहा। प्रिय। रुचिकर।

हृद्गोल-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

हृद्य-वि० [सं०] (१) हृदय का। भीतरी। (२) हृदय को रुचनेवाला। अच्छा लगनेवाला। (३) सुंदर। लुभावना। (४) हृदय को शीतल करनेवाला। हृदय को हितकारी। (५) खाने में अच्छा। सुस्वादु। स्वादिष्ट। जायकेदार।

संज्ञा पुं० (१) कपित्थ। कैथ। (२) शत्रु को वशीभूत करने का एक मंत्र। (३) सफेद जीरा। (४) दही। (५) मधु। महुए की शराब।

हृद्यगंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेल का पेड़ या फल। (२) सोंचर नमक।

हृद्यांशु-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

हृद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वृद्धि नाम की ओषधि या जड़ी। (२) बकरी।

हृषि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हर्ष। आनंद। (२) कांति। चमक। दमक। (३) झूठा आदमी।

हृषीक-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रिय।

यौ०—हृषीकेश।

हृषीकेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम। (२) श्रीकृष्ण। (३) पूस का महीना। (४) हरिद्वार के पास एक तीर्थस्थान।

हृषु-वि० [सं०] (१) हर्षित होनेवाला। प्रसन्न। (२) झूठ बोलनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) अग्नि। (२) सूर्य। (३) चंद्र।

हृष्ट-वि० [सं०] (१) हर्षित। अत्यंत प्रसन्न। आनंदयुक्त।

यौ०—हृष्टपुष्ट। हृष्टतुष्ट।

(२) खड़ा। उठा हुआ। (रोयाँ) (३) अकड़ा हुआ। कड़ा पड़ा हुआ।

हृष्टपुष्ट-वि० [सं०] मोटा ताज़ा। तैयार। तगड़ा।

हृष्टवृक–संज्ञा पुं० [सं०] हिरण्याक्ष दैत्य के नौ पुत्रों में से एक। (गर्गसंहिता)

हृष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हर्ष। प्रसन्नता। (२) इतराना। गर्व से फूलना।

हृष्टयोनि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नपुंसक। ईर्ष्यक नपुंसक।

हृष्यका-संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में एक मूर्च्छना जिसका स्वर ग्राम इस प्रकार है—प ध नि स रे ग म। ध नि स रे ग म प ध नि स रे ग।

हेंहें-संज्ञा पुं० [अनु०] (१) धीरे से हँसने का शब्द। (२) दीनता-सूचक शब्द। गिड़गिड़ाने का शब्द।

मुहा०—हेंहें करना = गिड़गिड़ाना। दीनता दिखाना।

हेंगा†-संज्ञा पुं० [सं० अभ्यञ्ज = पोतना] जुते हुए खेत की मिट्टी बराबर करने का पाटा। मैड़ा। पहटा।

हे–अव्य० [सं०] संबोधन का शब्द। पुकारने में नाम लेने के पहले कहा जानेवाला शब्द।

क्रि० अ० ब्रज 'हो' (= था) का बहुवचन। थे।

हेउँती–संज्ञा स्त्री० [देश०] देसावरी रूई। (धुनिया)

हेकड़–वि० [हिं० हिया + कड़ा] (१) हृष्ट-पुष्ट। मज़बूत। कड़े बदन का। मोटा ताजा। (२) ज़बरदस्त। प्रबल। प्रचंड। बली। (३) अक्खड़। उजड्ड। (४) तौल में पूरा। जो वज़न में दबता न हो। जैसे,—उसकी तौल हेकड़ है।

हेकड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हेकड़] (१) अधिकार या बल दिखाने की क्रिया या भाव। अक्खड़पन। उग्रता। जैसे,—हेकड़ी मत दिखाओ, सीधे से बात करो। (२) ज़बरदस्ती। बलात्कार। जैसे,—अपनी हेकड़ी से वह दूसरों की चीज़ें ले लेता है।

हेच–वि० [फ़ा०] (१) तुच्छ। नाचीज़। किसी गिनती में नहीं। (२) जिसमें कुछ तत्व न हो। निःसार। पोच।

हेठा–वि० [सं० अधस्थः, प्रा० अहट्ठ] (१) नीचा। जो नीचे हो। (२) घट कर। कम।

क्रि० वि० नीचे।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) विघ्न। बाधा। (२) हानि। (३) आघात। चोट।

हेठा–वि० [हिं० हेठ] (१) नीचा। जो नीचे हो। (२) प्रतिष्ठा या बड़ाई में घटकर। कम। (३) तुच्छ। नीच।

हेठापन–संज्ञा पुं० [हिं० हेठा + पन (प्रत्य०)] तुच्छता। नीचता। क्षुद्रता।

हेठी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हेठा] (१) प्रतिष्ठा में कमी। मानहानि। गौरव का नाश। हीनता। तौहीन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) जहाज़ में पाल का पाया। (लश०)

हेड–संज्ञा पुं० [अं०] ऊँचा अफ़सर। प्रधान। जैसे,—हेड मास्टर हेड कानस्टेबुल।

हेड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] मांस। गोश्त।

हेड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० लेहँड़ा] चौपायों का समूह जिसे बनजारे बिक्री के लिये लेकर चलते हैं।

संज्ञा पुं० [हिं० अहेरी] शिकारी। व्याध।

हेतक–संज्ञा पुं० दे० "हेतु"।

हेति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शस्त्र। भाला। (२) अस्त्र। (३) घाव। चोट। (४) आग की लपट। लौ। (५) सूर्य की किरन। (६) धनुष की टंकार। (७) औज़ार। यंत्र। (८) अंकुर। अँखुवा।

संज्ञा पुं० (१) प्रथम राक्षस राजा जो मधुमास या चैत्र में सूर्य के रथ पर रहता है। यह प्रहेति का भाई और विद्युत्केश का पिता कहा गया है। (वैदिक) (२) एक असुर का नाम। (भागवत)

हेतु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह बात जिसे ध्यान में रखकर कोई दूसरी बात की जाय। प्रेरक भाव। अभिप्राय। उद्देश्य। जैसे,—उसके आने का हेतु क्या है? तुम किस हेतु यहाँ आते हो? (२) वह बात जिसके होने से ही कोई दूसरी बात हो। कारक या उत्पादक विषय। कारण। वजह। सबब। जैसे,—दूध बिगड़ने का यही हेतु है। उ०—(क) कौन हेतु बन बिचरहु स्वामी?—तुलसी। (ख) केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि निवारई।—तुलसी। (३) वह व्यक्ति या वस्तु जिसके होने से कोई बात हो। कारक व्यक्ति या वस्तु। उत्पन्न करनेवाला व्यक्ति या वस्तु। उ०—महीं सकल अनरथ कर हेतू।—तुलसी। (४) वह बात जिसके होने से कोई दूसरी बात सिद्ध हो। प्रमाणित करनेवाली बात। ज्ञापक विषय। जैसे,—जो हेतु तुमने दिया, उससे यह सिद्ध नहीं होता।

विशेष—न्याय में तर्क के पाँच अवयवों में से 'हेतु' दूसरा अवयव है जिसका लक्षण है—"उदाहरण के साधर्म्य या वैधर्म्य से साध्य के धर्म का साधन"। जैसे,—प्रतिज्ञा—पर्वत वह्निमान् है। हेतु—क्योंकि यह धूमवान् है। उ०—जो धूमवान् होता है, वह वह्निमान् होता है, जैसे,—रसोईघर।

(५) तर्क। दलील।

यौ०—हेतुविद्या, हेतुशास्त्र, हेतुवाद।

(६) मूल कारण। (बौद्ध)

विशेष—बौद्धदर्शन में मूल कारण को 'हेतु' तथा अन्य कारणों को 'प्रत्यय' कहते हैं।

(७) एक अर्थालंकार जिसमें हेतु और हेतुमान् का अभेद से कथन होता है, अर्थात् कारण ही कार्य कह दिया जाता

है। जैसे,—धूम ही यह है। उ०—मो संपति जदुपति सदा बिपति-बिदारनहार।

विशेष—ऊपर दिया हुआ लक्षण रुद्रट का है जिसे साहित्य-दर्पणकार ने भी माना है। कुछ आचार्यों ने किसी चमत्कार-पूर्ण हेतु के कथन को ही 'हेतु' अलंकार माना है और किसी किसी ने उसे काव्य लिंग ही कहा है।

संज्ञा पुं० [सं० हित] (१) लगाव। प्रेम-संबंध। (२) प्रेम। प्रीति। अनुराग। उ०—पति हिय हेतु अधिक अनुमानी। बिहँसि उमा बोली प्रिय बानी।—तुलसी।

हेतुभेद–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में ग्रहयुद्ध का एक भेद। (बृहत्संहिता)

हेतुमान्–वि० [सं० हेतुमत्] [स्त्री० हेतुमती] जिसका कुछ हेतु या कारण हो।

संज्ञा पुं० वह जिसका कुछ कारण हो। कार्य्य।

हेतुवाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब बातों का हेतु ढूँढ़ना या उसके विषय में तर्क करना। तर्कविद्या। (२) कुतर्क। नास्तिकता। उ०—राज-समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है। नीति प्रतीति प्रीति परिमिति पति हेतुवाद हठि हेरि हई है।—तुलसी।

हेतुवादी–वि० [सं० हेतुवादिन्] [स्त्री० हेतुवादिनी] (१) तार्किक। दलील करनेवाला। (२) कुतर्की। नास्तिक।

हेतुविद्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] तर्कशास्त्र।

हेतुशास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] तर्कशास्त्र।

हेतुहिल–संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत बड़ी संख्या। (बौद्ध)

हेतुहेतुमद्भाव–संज्ञा पुं० [सं०] कार्य्य-कारण भाव। कारण और कार्य्य का संबंध।

हेतुहेतुमद्भूत काल–संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में क्रिया के भूतकाल का वह भेद जिसमें ऐसी दो बातों का न होना सूचित होता है जिनमें दूसरी पहली पर निर्भर होती है। जैसे,—यदि तुम मुझसे माँगते तो मैं अवश्य देता।

हेतूपमा–संज्ञा स्त्री० दे० "उत्प्रेक्षा" (२)।

हेत्वपह्नुति–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह अपह्नुति अलंकार जिस में प्रकृत के निषेध का कुछ कारण भी दिया जाय। वि० दे० "अपह्नुति"।

हेत्वाभास–संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में किसी बात को सिद्ध करने के लिये उपस्थित किया हुआ वह कारण जो कारण सा प्रतीत होता हुआ भी ठीक कारण न हो। असत्हेतु।

विशेष—हेत्वाभास पाँच प्रकार का कहा गया है—सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरणसम, साध्यसम और कालातीत। (१) जो हेतु और दूसरी बात भी उसी प्रकार सिद्ध करे अर्थात् ऐकांतिक न हो वह 'सव्यभिचार' कहलाता है। जैसे, शब्द नित्य है क्योंकि वह अमूर्त है; जैसे—परमाणु। यहाँ अमूर्त होना जो भेद दिया गया है, वह बुद्धि का उदाहरण लेने से शब्द को अनित्य भी सिद्ध करता है। (२) जो हेतु प्रतिज्ञा के ही विरुद्ध पड़े, वह विरुद्ध कहलाता है। जैसे,—घट उत्पत्ति धर्मवाला है, क्योंकि वह नित्य है। (३) जिस हेतु में जिज्ञास्य विषय (प्रश्न) ज्यों का त्यों बना रहता है, वह 'प्रकरण सम' कहलाता है। जैसे,—शब्द अनित्य है, उसमें नित्यता नहीं है। (४) जिस हेतु को साध्य के समान ही सिद्ध करने की आवश्यकता हो, उसे 'साध्यसम' कहते हैं। जैसे,—छाया द्रव्य है क्योंकि उसमें गति है। यहाँ छाया में स्वतः गति है, इसे साबित करने की आवश्यकता है। (५) यदि हेतु ऐसा दिया जाय जो कालक्रम के विचार से साध्य पर न घटे, तो वह कालातीत कहलाता है। जैसे,—शब्द नित्य है, क्योंकि उसकी अभिव्यक्ति संयोग से होती है। जैसे—घट के रूप की। यहाँ घट का रूप दीपक के संयोग के पहले भी था, पर ढोल का शब्द लकड़ी के संयोग के पहले नहीं था।

हेमंत–संज्ञा पुं० [सं०] छः ऋतुओं में से पाँचवीं ऋतु जिसमें अगहन और पूस के महीने पड़ते हैं। जाड़े का मौसिम। शीतकाल।

हेमंतनाथ–संज्ञा पुं० [सं०] कपित्थ। कैथ।

हेम–संज्ञा पुं० [सं० हेमन्] (१) हिम। पाला। बर्फ। उ०—ऊधो! अब यह समुझ भई। नँदनंदन के अंग अंग प्रति उपमा न्याय दई। आनन इंदु बरन सम्मुख तजि करखे तें न भई। निरमोही नहिं नेह, कुमुदिनी अंतहि हेम हई।—सूर। (२) स्वर्णखंड। सोने का टुकड़ा। (३) सोना। सुवर्ण। स्वर्ण। (४) कपित्थ। कैथ। (५) नाग केसर। (६) एक माशे की तौल। (७) बादामी रंग का घोड़ा। (८) बुद्ध का एक नाम।

हेमकंदल–संज्ञा पुं० [सं०] मूँगा।

हेमकांति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वन-हलदी। (२) आँबा-हलदी।

हेमकूट–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय के उत्तर का एक पर्वत जो पुराणानुसार किंपुरुष वर्ष और भारतवर्ष की सीमा पर स्थित है।

हेमकेश–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

हेमगंधिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] रेणुका नामक गंध-द्रव्य।

हेमगर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर दिशा का एक पर्वत। (वाल्मीकि०)

हेमगिरि–संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत (जो सोने का कहा गया है)।

हेमगौर–संज्ञा पुं० [सं०] किंकिरात वृक्ष।

हेमघ्न–संज्ञा पुं० [सं०] सीसा धातु।

हेमघ्ना–संज्ञा स्त्री० [सं०] हलदी।

हेमचंद्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इक्ष्वाकुवंशी एक राजा जो विशाल का पुत्र था। (२) एक प्रसिद्ध जैन आचार्य जो ईसवी

सन् १०८९ और ११७३ के बीच हुए थे और गुजरात के राजा कुमारपाल के गुरु थे। इन्होंने व्याकरण और कोश के कई ग्रंथ लिखे हैं। जैसे,—अनेकार्थकोश, अभिधान चिंतामणि, संस्कृत और प्राकृत का व्याकरण, देशीनाममाला, उणादिसूत्र वृत्ति इत्यादि।

हेमज—संज्ञा पुं० [सं०] राँगा।

हेमतरु—संज्ञा पुं० [सं०] धतूरा।

हेमतार—संज्ञा पुं० [सं०] नीला थोथा। तूतिया।

हेमताल—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तराखंड का एक पहाड़ी देश।

हेमतुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] तौल में किसी के बराबर सोने का दान। सोने का तुलादान।

हेमदंता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा। (हरिवंश)

हेमदुग्ध—संज्ञा पुं० [सं०] गूलर। ऊमर।

हेमधन्वा—संज्ञा पुं० [सं० हेमधन्वन्] ११वें मनु के एक पुत्र का नाम।

हेमपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुमेरु पर्वत। (२) दान के लिये सोने की राशि। (यह महादानों में है।)

हेमपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंपा। (२) अशोक। (३) नागकेसर। (४) अमलतास। गिरमाला।

हेमपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोनजुही। (२) गुड़हर।

हेमपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मजीठ। (२) मूसली कंद। (३) कंटकारी।

हेमफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का केला।

हेममय—वि० [सं०] सुनहरा।

हेममाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] यम की पत्नी का नाम।

हेममाली—संज्ञा पुं० [सं० हेममालिन्] (१) सूर्य। (२) एक राक्षस जो खर का सेनापति था।

हेमयूथिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोनजुही।

हेमरागिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हल्दी।

हेमरेणु—संज्ञा पुं० [सं०] त्रसरेणु।

हेमलंब, हेमलंबक—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति के साठ संवत्सरों में से ३१वाँ संवत्सर।

हेमल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोनार। (२) कसौटी। (३) गिरगिट। (४) छिपकली।

हेमवल—संज्ञा पुं० [सं०] मोती। मुक्ता।

हेमशिखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णक्षीरी का पौधा।

हेमसागर—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा जो बगीचों में लगाया जाता है और पंजाब के पहाड़ों में आप से आप उगता है। इसे 'ज़ख्म हयात' भी कहते हैं।

हेमसार—संज्ञा पुं० [सं०] नीलाथोथा। तूतिया।

हेमसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती। दुर्गा।

हेमांग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंपा। (२) सिंह। (३) मेरुपर्वत। (४) ब्रह्मा। (५) विष्णु। (६) गरुड़।

हेमांगद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोने का बिजायठ। (२) वह जो सोने का बिजायठ पहने हो। (३) वसुदेव के एक पुत्र का नाम। (४) कलिंग देश के एक राजा का नाम।

हेमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माधवी लता। (२) पृथ्वी। (३) सुंदरी स्त्री। (४) एक अप्सरा जिससे मंदोदरी उत्पन्न हुई थी।

हेमाचल—संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत।

हेमाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुमेरु पर्वत। (२) एक प्रसिद्ध ग्रंथकार जो ईसा की १३वीं शताब्दी में विद्यमान था और जिसने पाँच खंडों (दान, व्रत, तीर्थ, मोक्ष और परिशेष) में 'चतुर्वर्ग चिंतामणि' नाम का एक बड़ा ग्रंथ लिखा है।

हेमाद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णक्षीरी नाम का पौधा।

हेमाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो दीपक का पुत्र कहा जाता है।

हेमियानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रुपया पैसा रखने की जालीदार लंबी थैली जो कमर में बाँधी जाती है।

हेम्न—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह।

हेम्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] संकीर्ण राग का एक भेद।

हेय—वि० [सं०] (१) छोड़ने योग्य। न ग्रहण करने योग्य। त्याज्य। (२) बुरा। ख़राब। निकृष्ट। उपादेय का उलटा। (३) जानेवाला। जाने योग्य।

हेरंब—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गणेश। (२) भैंसा। (३) धीरोद्धत नायक। (४) एक बुद्ध का नाम।

हेर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किरीट। (२) हलदी। (३) आसुरी माया।

†संज्ञा स्त्री० [हिं० हेरना] ढूँढ़। तकाश। खोज।

संज्ञा पुं० दे० "अहेर"।

हेरक—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक गण का नाम।

हेरना—क्रि० स० [सं० आखेट, हिं० अहेर] (१) ढूँढ़ना। खोजना। तलाश। करना। पता लगाना। उ०—(क) लागीं सब मिलि हेरै, बूड़ि बूड़ि एक साथ। कोइ उठी मोती लेइ, काहू घोंघा हाथ।—जायसी। (ख) बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं। कोउ मुनि मिलै ताहि सब घेरहिं।—तुलसी। (२) देखना। ताकना। अवलोकन करना। उ०—(क) जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु, जिन्ह प्रभु हेरे। ते सब भए परमपद जोगू।—तुलसी। (ख) अलि! एकंत पाय पायँन परे ह्वै आय, हौं न तब हेरी या गुमान यखमारे सौं।—पद्माकर। (ग) क्यों हँसि हेरि हर्यो हियरा?—घनानंद। (३) जाँचना। परखना।

विचारना। उ०—हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तियभूषन तिय को।—तुलसी।

हेरना फेरना–क्रि० स० [हेरना अनु० + हिं० फेरना] (१) इधर का उधर करना। (२) अदल बदल करना। बदलना। परिवर्तन करना।

मुहा०—हेर फेर कर = घूम फिर कर। इधर उधर होते हुए।

हेर फेर–संज्ञा पुं० [हिं० हेरना + फेरना] (१) घुमाव। चक्कर। (२) वचन की वक्रता। बात का आडंबर। जैसे, हमें हेर फेर की बात नहीं भाती। (३) कुटिल युक्ति। दाँव पेंच। चाल। (४) अदल-बदल। उलट पलट। इधर का उधर और उधर का इधर होना। क्रम विपर्यय। जैसे,—अक्षरों का हेर फेर हो गया। (५) अंतर। फ़र्क़। जैसे—दोनों के दाम में ५) का हेर फेर है। (६) अदला बदला। विनिमय। लेन-देन या ख़रीद-फ़रोख़्त का व्यवहार। जैसे,—वहाँ नित्य लाखों का हेर फेर होता है।

हेरवा†–संज्ञा पुं० [हिं० हेरना] तलाश। ढूँढ़। खोज।

क्रि० प्र०—पड़ना।

हेरवाना†–क्रि० स० [हिं० हेराना] खोना। गँवाना।

क्रि० स० [हिं० हेरना का प्रे०] ढुँढ़वाना। तलाश कराना।

हेराना†–क्रि० अ० [सं० हरण] (१) खो जाना। असावधानी के कारण पास से निकल जाना। न जाने क्या होना। न जाने कहाँ चला जाना या न रह जाना। उ०—हेरि रही कब तें यहि ठाँ मुँदरी को हेरानो कहूँ नग मेरो।—शंभु।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) न रह जाना। कहीं न मिलना। अभाव हो जाना। उ०—गुन न हेरानो, गुन-गाहक हेरानो है। (३) लुप्त हो जाना। नष्ट हो जाना। तिरोहित हो जाना। लापता होना। उ०—[illegible] जो रावन केर बसेरा। गा हेराय, कहुँ मिलै न हेरा।—जायसी। (४) फीका पड़ जाना। मंद पड़ जाना। कांतिहीन होना। उ०—आनन के ढिग होत सखी अरविंद की दुति हू है हेरानी। (५) आत्म-विस्मृत होना। अपनी सुध-बुध भूलना। लीन होना। तन्मय होना। उ०—सो छवि हेरि हेराय रहे हरि, कौन को रूसिबो काको मनावन।

क्रि० स० [हिं० हेरना का प्रे०] खोजवाना। ढुँढ़वाना। तलाश कराना। उ०—हार गँवाइ सो ऐसे रोवा। हेरि हेराइ लेइ जौ खोवा।—जायसी।

हेराफेरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हेरना + फेरना] (१) हेरफेर। अदल-बदल। (२) यहाँ की चीज़ वहाँ और वहाँ की चीज़ यहाँ होना। इधर का उधर होना या करना। जैसे,—चोर चोरी से गया तो क्या हेराफेरी से भी गया ?

हेरिक–संज्ञा पुं० [सं०] भेद लेनेवाला दूत। गुप्तचर।

हेरियाना–क्रि० अ० [देश०] जहाज़ के अगले पालों की रस्सियाँ तानकर बाँधना। हेरिया मारना। (लश०)

हेरी‡–संज्ञा स्त्री० [संबोधन हे + री] पुकार। टेर।

मुहा०—हेरी देना = चिल्लाकर नाम लेना। पुकारना। आवाज़ देना। टेरना। उ०—हेरी देत सखा सब आए चले चरावन गैयाँ।—सूर।

हेरुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गणेश का एक नाम। (२) महाकाल शिव का एक गण। (३) एक बोधिसत्व का नाम। (४) एक प्रकार के नास्तिक।

हेल–संज्ञा पुं० [हिं० हिलना] घनिष्ठता। मेलजोल। (यह शब्द अकेले नहीं आता, 'मेल' के साथ आता है।)

यौ०—हेलमेल।

संज्ञा पुं० [हिं० हील] (१) कीचड़, गोबर इत्यादि। (२) गोबर का लेप। जैसे,—दो हेल गोबर डाल आ। (३) मैला। ग़लीज़। (४) घृणा। घिन।

हेलन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुच्छ समझना। परवा न करना। तिरस्कार करना। अवज्ञा करना। (२) क्रीड़ा करना। केलि करना। किलोल करना। (३) अपराध। क़सूर।

हेलना‡–क्रि० अ० [सं० हेलन] (१) क्रीड़ा करना। केलि करना। (२) विनोद करना। हँसी ठट्ठा करना। ठिठोली करना। उ०—मोहिं न भावत ऐसी हँसी 'द्विजदेव' सबै तुम नाहक हेलति।—द्विजदेव। (३) खेल समझना। परवा न करना। उ०—को तुम अस बन फिरहु अकेले सुंदर युवा जीव पर हेले।—तुलसी।

क्रि० स० (१) तुच्छ समझना। अवज्ञा करना। तिरस्कार करना। (२) ध्यान न देना। परवा न करना।

† क्रि० अ० [हिं० हिलना, हलना] (१) प्रवेश करना। पैठना। घुसना। दाख़िल होना। (विशेषतः पानी में) (२) तैरना।

हेल मेल–संज्ञा पुं० [हिं० हेलमेल] (१) मिलने जुलने, आने जाने, साथ उठने बैठने आदि का संबंध। घनिष्ठता। मित्रता। रब्त ज़ब्त। जैसे,—इस बड़े आदमियों से उनका हेलमेल है। (२) संग। साथ। सुहबत। (३) परिचय।

क्रि० प्र०—करना।—बढ़ाना।—होना।

हेलया–क्रि० वि० [सं०] (१) खेल [illegible] खेल में। (२) सहज में।

हेला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तुच्छ समझना। अवज्ञा। तिरस्कार। (२) ध्यान न देना। बेपरवाही। (३) खेल। खेलवाड़। क्रीड़ा। (४) बहुत सहज बात। बहुत आसान काम। (५) शृंगारचेष्टा। प्रेम की क्रीड़ा। केलि। (६) साहित्य में अनुभावांतर्गत एक प्रकार का 'हाव' अर्थात् संयोग-समय में स्त्रियों की मनोहर चेष्टा। नायक से मिलने के समय नायिका की विविध विलास या विनोद-सूचक मुद्रा।

सूचना

हिन्दी शब्दसागर की इस ४०वीं संख्या में "हैमवत" तक के शब्द आ चुके हैं। अब "ह" के बहुत थोड़े शब्द रह गए हैं, जो छप भी चुके हैं। यह निश्चय किया गया है कि इस शब्दसागर में जो शब्द किसी कारण से छूट गए हैं, वे अन्त में दे दिए जायँ। कोश-विभाग में आजकल इसी प्रकार के छूटे शब्दों का संग्रह हो रहा है, जो सम्भवतः इसी जून मास के अन्त तक समाप्त हो जायगा। अतः कोश के ग्राहकों, अनुग्राहकों तथा हिन्दी के अन्यान्य प्रेमियों से निवेदन है कि उनके ध्यान में जो शब्द इस कोश में छूटे हुए हों, उनकी सूची, यथासाध्य अर्थ और उदाहरण सहित बहुत शीघ्र नीचे लिखे पते पर भेज कर सभा को अनुगृहीत करें। ऐसे शब्द उपयुक्त समझे जाने पर इसी के अन्त में दे दिए जायँगे। सभा चाहती है कि ये छूटे हुए शब्द और भूमिका आदि शीघ्र ही प्रकाशित हो जायँ। अतः शब्द भेजनेवाले महानुभावों को शीघ्रता करनी चाहिए। आशा है कि दो या अधिक से अधिक तीन संख्याओं में यह कोश समाप्त हो जायगा।

श्यामसुन्दरदास,
सम्पादक शब्दसागर,
नागरीप्रचारिणी सभा,
बनारस सिटी।

संकेताक्षरों का विवरण

अं० = अंगरेज़ी भाषा
अ० = अरबी भाषा
अनु० = अनुकरण शब्द
अने० = अनेकार्थनाममाला
अप० = अपभ्रंश
अयोध्या = अयोध्यासिंह उपाध्याय
अर्द्धमा० = अर्द्धमागधी
अल्पा० = अल्पार्थक प्रयोग
अव्य० = अव्यय
आनंदघन = कवि आनंदघन
इब० = इबरानी भाषा
उ० = उदाहरण
उत्तरचरित = उत्तररामचरित
उप० = उपसर्ग
उभ० = उभयलिंग
कठ० उप० = कठवल्ली उपनिषद्
कबीर = कबीरदास
केशव = केशवदास
कोंक० = कोंकण देश की भाषा
क्रि० = क्रिया
क्रि० अ० = क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र० = क्रियाप्रयोग
क्रि० वि० = क्रियाविशेषण
क्रि० स० = क्रिया सकर्मक
क्व० = क्वचित्, अर्थात् इस का प्रयोग बहुत कम देखने में आया है
[illegible]
... गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर = गिरिधरराय (कुंडलियावाले)

गुज० = गुजराती भाषा
गुमान = गुमान मिश्र
गोपाल = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
चरण = चरणचंद्रिका
चिंतामणि = कवि चिंतामणि त्रिपाठी
छीत = छीतस्वामी
जायसी = मलिक मुहम्मद जायसी
जावा० = जावा द्वीप की भाषा
ज्यो० = ज्योतिष
डिं० = डिंगल भाषा
तु० = तुरकी भाषा
तुलसी = तुलसीदास
तोष = कवि तोष
दादू = दादूदयाल
दीनदयालु = कवि दीनदयालु गिरि
दूलह = कवि दूलह
दे० = देखो
देव = देव कवि (मैनपुरीवाले)
देश० = देशज
द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी
नागरी = नागरीदास
नाभा = नाभादास
[illegible]
पा० = पाली भाषा
पुं० = पुंलिंग
पु० हिं० = पुरानी हिंदी

पुर्त्त० = पुर्त्तगाली भाषा
पू० हिं० = पूर्वी हिंदी
प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र
[illegible]
बेनी = कवि बेनी प्रवीन
भाव = भाववाचक
[illegible]
मुहा० = मुहावरा
यू० = यूनानी भाषा
यौ० = यौगिक तथा दो या अधिक शब्दों के पद
[illegible]
रघुराज = महाराज रघुराजसिंह रीवाँनरेश
रसखान = सैयद इब्राहीम
[illegible]
रहीम = अब्दुर्रहीम खानखानाँ

लक्ष्मणसिंह = राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू = लल्लूलाल
[illegible]
शृं० सत० = शृंगार सतसई
सं० = संस्कृत
[illegible] = संयोजक अव्यय
[illegible] क्रि० = संयोज्य क्रिया
स० = सकर्मक
सबल = सबलसिंह चौहान
सभा० वि० = सभाविलास
सर्व० = सर्वनाम
[illegible]
सूदन = सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर = सूरदास
स्त्रि० = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री० = स्त्रीलिंग
स्पे० = स्पेनी भाषा
हिं० = हिंदी भाषा
हनुमान = हनुमन्नाटक
[illegible]
हरिश्चंद्र = भारतेंदु हरिश्चंद्र

हैमवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उमा । पार्वती । (२) गंगा । (३) सफेद फूल की बच । (४) हरीतकी । हड़ । (५) अलसी । अतसी । तीसी । (६) रेणुका नामक गंधद्रव्य ।

हैमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोनजुही । (२) ज़र्द चमेली ।

हैमी-वि० स्त्री० [सं०] सोने की । सोने की बनी ।
संज्ञा स्त्री० (१) केतकी । (२) सोनजुही ।

हैयंगवीन-संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन पहले के दूध के मक्खन से बनाया हुआ घी । ताजे मक्खन का घी ।

हैरंब-वि० [सं०] गणेश-संबंधी ।
संज्ञा पुं० गणेश का उपासक संप्रदाय । गाणपत्य ।

हैरण्य-वि० [सं०] (१) हिरण्य संबंधी । सोने का । सोने का बना हुआ । (२) सोना उत्पन्न करनेवाला ।

हैरण्यक-संज्ञा पुं० [सं०] सोनार ।

हैरत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) आश्चर्य । अचरज । अचंभा । तअज्जुब । (२) एक मुकाम या फारसी राग का पुत्र ।

हैरान-वि० [अ०] (१) आश्चर्य से । स्तब्ध । चकित । दंग । भौचक्का । जैसे,—(क) मैं उसे एकबारगी वहाँ देखकर हैरान हो गया । (ख) नाच की कारीगरी देख लोग हैरान हो जाते हैं । श्रम, कष्ट या संकट से व्याकुल । विकल । (२) परेशान । व्यग्र । तंग । जैसे,—तुमने मुझे नाहक धूप में हैरान किया ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

हैवान-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पशु । जानवर । 'इंसान' का उलटा । (२) जड़ मनुष्य । बेवकूफ या गँवार आदमी । उजड्ड आदमी ।

हैवानी-वि० [अ० हैवान] (१) पशु का । (२) पशु के करने योग्य । जैसे,—हैवानी काम ।

हैसियत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) योग्यता । सामर्थ्य । शक्ति । (२) वित्त । धनबल । समाई । बिसात । आर्थिक दशा । जैसे,—उसकी हैसियत ऐसी नहीं है कि गाड़ी घोड़ा रख सके । (३) मूल्य । (४) श्रेणी । दरजा । जैसे,—इस मकान की हैसियत के हिसाब से ४०००) दाम बहुत है । (५) मान-मर्य्यादा । प्रतिष्ठा । (६) धन । दौलत । जायदाद । जैसे,—उसने अच्छी हैसियत पैदा की है ।

हैहय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक क्षत्रिय वंश जो यदु से उत्पन्न कहा गया है । पुराणों में इस वंश की पाँच शाखाएँ कही गई हैं—तालजंघ, वीतिहोत्र, आवंत्य, तुंडिकेर और जात । लिखा है कि हैहयों ने शकों के साथ साथ भारत के अनेक देशों को जीता था । प्राचीन काल का इस वंश का सब से प्रसिद्ध राजा कार्त्तवीर्य्य सहस्रार्जुन हुआ था जिसे परशुराम ने मारा था ।

विशेष—इतिहास में हैहय वंश कलचुरि के नाम से प्रसिद्ध है । विक्रम संवत् ५५० और ७९० के बीच हैहयों का राज्य चेदि देश और गुजरात में था । हैहयों ने एक संवत् भी चलाया था जो कलचुरि संवत् कहलाता था और विक्रम संवत् ३०६ से आरंभ होकर १४वीं शताब्दी तक इधर उधर चलता रहा । हैहयों का शृंखलाबद्ध इतिहास विक्रम संवत् ९२० के आसपास से मिलता है इसके पूर्व चौलुक्यों आदि के प्रसंग में इधर उधर उल्लेख मिलता है । कोकल्लदेव (वि० सं० ९२०–९६०), मुग्धतुंग, बालहर्ष केयूरवर्ष (संवत् ९९० के लगभग), शंकरगण, युवराजदेव (वि० १०५० के लगभग) गांगेयदेव, कर्णदेव आदि बहुत से नाम शिलालेखों में हैहय राजाओं के मिलते हैं ।
(२) हैहयवंशी कार्त्तवीर्य्य सहस्रार्जुन । (३) पश्चिम दिशा का एक पर्वत । (बृहत्संहिता)

हैहयराज-संज्ञा पुं० [सं०] हैहयवंशी कार्त्तवीर्य्य सहस्रार्जुन । उ०—जब हन्यौ हैहयराज इन बिनु छत्र छितिमंडल करयो । —केशव ।

है है-अव्य० [हा हा !] शोक, खेद या दुःख-सूचक शब्द । हाय । अफ़सोस । हा हंत !

हों-क्रि० अ० सत्तार्थक क्रिया 'होना' का बहुवचन संभाव्य काल का रूप । जैसे,—(क) शायद वे वहाँ हों । (ख) यदि वे वहाँ हों तो यह कह देना ।

होंठ-संज्ञा पुं० [सं० ओष्ठ, पु० हिं० ओठ] प्राणियों के मुख विवर का उभरा हुआ किनारा जिससे दाँत ढँके रहते हैं । ओष्ठ । रदच्छद ।
मुहा०—होंठ काटना या चबाना = भीतरी क्रोध या क्षोभ प्रकट करना । होंठ चाटना = किसी बहुत स्वादिष्ट वस्तु को खाकर तृप्ति प्रकट करना । और खाने की इच्छा या लालच करना । जैसे,—हलवा ऐसा बना था कि लोग होंठ चाटते रह गए । होंठ चिपकना = मीठी वस्तु का नाम सुनकर लालच होना । होंठ चूसना = होंठों का चुंबन करना । होंठ हिलाना = बोलने के लिये मुँह खोलना । बोलना ।

होंठल-वि० [हिं० होंठ + ल (प्रत्य०)] मोटे होंठोंवाला ।

होंठी-संज्ञा स्त्री० [हिं० होंठ] (१) बारी । किनारा । औंठ । (२) छोटा टुकड़ा ।

हो-संज्ञा पुं० [सं०] पुकारने का शब्द या संबोधन ।
क्रि० अ० (१) सत्तार्थक क्रिया 'होना' के अन्यपुरुष संभाव्य काल तथा मध्यमपुरुष बहुवचन के वर्त्तमान काल का रूप । जैसे,—(क) शायद वह हो । (ख) तुम वहाँ हो ।
(२) ब्रज की वर्त्तमान कालिक क्रिया 'है' का सामान्य भूत का रूप । था ।

होई–संज्ञा स्त्री० [हिं० होना] एक पूजन या त्योहार जो दीवाली के आठ दिन पहले होता है। इसमें ऐसी दो स्त्रियों की कथा कही जाती है जिनमें से एक को संतान होती ही नहीं थी और दूसरी की संतान हो होकर मर जाती थी।

होगला–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नरसल या नरकट।

होजन–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का हाशिया या किनारा जो कपड़ों में बनाया जाता है।

होटल–संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ मूल्य लेकर लोगों के भोजन और ठहरने का प्रबंध रहता है।

होड़–संज्ञा स्त्री० [सं० हार = लड़ाई, विवाद] (१) दूसरे के साथ ऐसी प्रतिज्ञा कि कोई बात हमारे कथन के अनुसार न हो तो हम हार मानें और कुछ दें। शर्त। बाज़ी।

क्रि० प्र०—बदना।—लगाना।

(२) एक दूसरे से बढ़ जाने का प्रयत्न। किसी बात में दूसरे से अधिक होने का प्रयास। स्पर्द्धा। (३) वह प्रयत्न कि जो दूसरा करता है, हम भी करेंगे। समान होने का प्रयास। बराबरी। उ०—होड़ सी परी है मानो घन घनश्याम जू सों दामिनी को कामिनी को दोऊ अंक में भरैं।—तोष।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(४) अड़। हठ। जिद।

संज्ञा पुं० [सं०] तरेंदा। नाव।

होड़ाबादी–संज्ञा स्त्री० [हिं० होड़ + बदना] होड़ाहोड़ी।

होड़ाहोड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० होड़] (१) दूसरे के बराबर होने या दूसरे से बढ़ जाने का प्रयत्न। लाग डाँट। चढ़ा ऊपरी। (२) शर्त्त। बाज़ी।

होढ–वि० [सं०] चुराया हुआ। चोरी का।

होत–संज्ञा स्त्री० [हिं० होना या सं० भूति] (१) पास में धन होने की दशा। आढ्यता। संपन्नता। उ०—(क) होत की जोत है। (ख) होत का बाप, अनहोत की माँ। (२) वित्त। सामर्थ्य। धन की योग्यता। मक़दूर। समाई।

होतव, होतव्य–संज्ञा पुं० [सं० भवितव्य] होनेवाला। वह जो होने को हो। होनहार।

होतव्यता–संज्ञा स्त्री० [सं० भवितव्यता] होनेवाली बात। वह बात जिसका होना ध्रुव हो। होनहार। उ०—जैसी हो होतव्यता, वैसी उपजै बुद्धि।

होता–संज्ञा पुं० [सं० होतृ] [स्त्री० होत्री] यज्ञ में आहुति देनेवाला। मंत्र पढ़कर अग्निकुंड में हवन की सामग्री डालनेवाला।

विशेष—यह चार प्रधान ऋत्विजों में है जो ऋग्वेद के मंत्र पढ़ता और देवताओं का आह्वान करता है। इसके तीन पुरुष या सहायक होते हैं—मैत्रावरुण, अच्छावाक और ग्रावस्तुत्।

होनहार–वि० [हिं० होना + -हार (प्रत्य०)] (१) जो होनेवाला है। जो अवश्य होगा। जो होने को है। भावी। (२) जिसके बढ़ने या श्रेष्ठ होने की आशा हो। अच्छे लक्षणोंवाला। जिसमें भावी उन्नति के चिह्न हों। जैसे,—होनहार लड़का। उ०—होनहार बिरवान के होत चीकने पात।

संज्ञा पुं०-वह बात जो होने को हो। वह बात जो अवश्य हो। वह बात जिसका होना दैवी विधान में निश्चित हो। होनी। भवितव्यता। उ०—हम पर कौशल रोष कालगति आनि न जाई। होनहार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटाई। होनहार ह्वै रहै मोह मद सब को छूटै। होय तिनूका बज्र, बज्र तिनका ह्वै टूटै।—केशव।

होना–क्रि० अ० [सं० भवन; प्रा० होन] (१) प्रधान सत्तार्थक क्रिया। अस्तित्व रखना। कहीं विद्यमान रहना। उपस्थित या मौजूद रहना। जैसे,—उसका होना और न होना बराबर है। (ख) संसार में ऐसा कोई नहीं है। उ०—गगन हुता, नहिं महि हुती, हुते चंद नहीं सूर।—जायसी।

विशेष—शुद्ध सत्ता के अर्थ में इस क्रिया का प्रयोग साधारण रूप 'होना' के अतिरिक्त केवल सामान्य कालों में ही होता है। जैसे,—वह है, मैं था, वे होंगे। और कालों में प्रयुक्त होने पर यह क्रिया विकार, निर्माण, घटना, अनुष्ठान आदि का अर्थ देती है। हिंदी में यह क्रिया बड़े महत्व की है, क्योंकि खड़ी बोली में सब क्रियाओं के अधिकतर 'काल' इसी क्रिया की सहायता से बनते हैं। काल-निर्माण में यह सहायक क्रिया का काम देती है। जैसे,—वह चलता है, वह चलता था, वह चलता होगा, वह चला है, इत्यादि, इत्यादि। इस क्रिया के काल-सूचक रूप अनियमित या रूढ़ होते हैं जैसे,—है, था, होगा। सामान्य वर्तमान के दो रूप होते हैं—एक तो 'है' जो शुद्ध सत्ता बोधक है; दूसरा "होता है" जो प्रसंग के अनुसार सत्ता और विकार दोनों सूचित करता है; जैसे,—(क) जो क्रूर होता है, वह दया नहीं करता। (ख) देखो अभी यह काले से सफ़ेद होता है।

मुहा०—किसी का होना = (१) किसी के अधिकार में, अधीन या आज्ञावर्ती होना। दास होना। सेवक होना। उ०—तुलसी तिहारो, तुम ही तें तुलसी को हित, राखि कहौ औ पै तौ ह्वैहौं माखी घीय की।—तुलसी। (२) किसी का प्रेमी या प्रेमपात्र होना। उ०—(क) सब भाँति सों कान्ह तिहारे भए सखि औ तुम ह्वै भई कान्हर केरी।—कोई कवि। (ख) अब तौ कान्ह भए कुब्जा के क्यों करिहैं ब्रज फेरो।—सूर। (३) किसी का आत्मीय, कुटुंबी या संबंधी होना। सगा होना। जैसे,—जो तुम्हारा हो, उससे कहो सुनो, मुझसे मतलब। उ०—देस में रहैंगे, परदेस में रहैंगे, काहू भेस में रहैंगे तऊ रावरे कहावैंगे—अनीस। कहीं का हो रहना = (कहीं से) न लौटना। कहीं रह जाना। अधिक विलंब लगा देना। बहुत रुक या ठहर जाना। जैसे,—यह बड़ा सुस्त है; जहाँ

आता है, वहीं का हो रहता है। (कहीं से) होकर या होते हुए = (१) गुज़रते हुए। बीच से। मध्य से। जैसे,—इस रास्ते या महल्ले से होकर मत जाना। (२) बीच में ठहरते हुए। बीच में रुक कर कुछ बातचीत या काम करते हुए। जैसे,—चौक जा रहे हो तो उनके यहाँ से होते जाना। (३) पहुँचना। जाना। मिलना। जैसे,—जब उधर जा ही रहे हो तो उनके यहाँ भी होते आना। हो आना = भेंट करने के लिये जाना। मिल आना। जैसे,—बहुत दिनों से वहीं गए हो, ज़रा उनके यहाँ हो आओ। होते पर = पास में धन होने की दशा में। संपन्नता में। जैसे—ये सब होते पर की बातें हैं। होता सोता = जो अपना होता हो। आत्मीय। कुटुंबी। संबंधी। जैसे,—अपने होते सोतों को कोसो। (क्रि०) कौन होता है ? = संबंध में क्या है। कौन संबंधी है। कौन लगता है। जैसे,—वे तुम्हारे कौन होते हैं ?

(२) विकार-सूचक क्रिया। एक रूप से दूसरे रूप में आना। अन्य दशा, स्वरूप या गुण प्राप्त करना। सूरत या हालत बदलना। जैसे,—(क) तुम क्या से क्या हो गए ? (ख) कुसंग में पड़कर यह लड़का ख़राब हो गया। (ग) तुम्हारे कहने से पीतल सोना हो जायगा !

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—हो बैठना = (१) बन जाना। अपने को समझने लगना या प्रकट करने लगना। कहाने लगना। जैसे,—देखते देखते वह कवि हो बैठा। (२) मासिक धर्म से होना। रजस्वला होना।

(३) किया जाना। साधित किया जाना। कार्य्य का संपन्न किया जाना। भुगतना। सरना। जैसे,—(क) काम हो रहा है। (ख) छपाई कब होगी ?

संयो० क्रि०—जाना।

यौ०—होता जाना, होता रहना। जैसे,—यह सब होता जाता रहेगा, तुम उधर का काम देखो।

मुहा०—हो जाना या चुकना = समाप्ति पर पहुँचना। पूरा होना। ख़तम होना। करने को न रह जाना। सिद्ध होना। हो चुकना = (१) मर जाना। जैसे,—वैद्य के पहुँचते पहुँचते तो वह हो चुका। (२) न रह जाना। लुप्त होना। जैसे,—यदि ऐसे ही उपदेशक हैं तो हिंदू धर्म हो चुका। बस हो चुका = कुछ न होगा। कुछ भी काम न बनेगा। काम न पूरा होगा। (नैराश्य सूचक) तो फिर क्या है ? = फिर तो कुछ करने को रह ही न जायगा। तब तो सब काम सिद्ध समझो।

(४) बनना। निर्माण किया जाना। तैयार होने की हालत में रहना। प्रस्तुत किया जाना। जैसे,—(क) खाना होना, रसोई होना, दाल होना। (ख) अभी कोट हो रहा है, कुरते में पीछे हाथ लगेगा।

विशेष—मकान आदि बड़ी वस्तुओं के बनने के अर्थ में इस क्रिया का व्यवहार नहीं होता।

(५) घटना-सूचक क्रिया। किसी घटना या व्यवहार का प्रस्तुत रूप में आना। घटित किया जाना। कोई बात या संयोग आ पड़ना। जैसे,—(क) अंधेर होना, ग़ज़ब होना, वाक़या होना। (ख) कोई ऐसी वैसी बात हो जायगी तो कौन ज़िम्मेदार होगा ?

मुहा०—होकर रहना = अवश्य घटित होना। न टलना। ज़रूर होना। जैसे,—जो होनेवाला रहता है, वह होकर रहता है। तो क्या हुआ ? = तो कोई हर्ज नहीं। तो कुछ बुराई या दोष नहीं। जैसे,—टूटा है तो क्या हुआ, काम तो देगा। हुआ हुआ = (१) बस रहने दो, तुमसे न करते बनेगा या न पूरा होगा। (२) बहुत कह चुके, अब चुप रहो। और बोलने की ज़रूरत नहीं। हो न हो = अवश्य। निश्चय। ज़रूर। निस्संदेह। जैसे,—हो न हो, यह उसी की कारंवाई है। जो हुआ सो हुआ = (१) बीती बात जाने दो। गुज़री बात की ओर ध्यान न दो या परवा न करो। (२) जो हुआ वह अब और न होगा। उ०—आहु लला ! जो भई सो भई अब नेह की बात चलाइए ना।—कोई कवि। हो पड़ना = बन पड़ना। जान या अनजान में कोई दोष या भूल हो जाना।

(६) किसी रोग, व्याधि, अस्वस्था, प्रेतबाधा आदि का आना। किसी मर्ज़ या बीमारी का घेरना। जैसे,—(क) उसको क्या हुआ है ? (ख) फोड़ा होना, रोग होना इत्यादि। (७) बीतना। गुज़रना। जैसे,—दस दिन हो गए, वह न लौटा। (८) परिणाम निकलना। किसी कारण से कार्य्य का विकास पाना। फल देखने में आना। जैसे,—(क) समझाने से क्या होगा ? (ख) मारने पीटने से कुछ न होगा।

मुहा०—होता रहेगा = फल मिलता जायगा। परिणाम अच्छा न होगा। (शाप)

(९) असर देखने में आना। प्रभाव या गुण दिखाई पड़ना। जैसे,—इस दवा से कुछ न होगा। (१०) जनमना। जन्म लेना। उद्भव पाना। जैसे,—उस स्त्री को एक लड़की हुई है। (११) काम निकलना। प्रयोजन या कार्य्य सधना। जैसे,—१०) से क्या होगा ? और लाओ।

यौ०—होना। जाना।

(२) काम बिगड़ना। हानि पहुँचना। क्षति आना। जैसे,—तुम्हारे नाराज़ होने से हमारा क्या हो जायगा ?

यौ०—होना जाना।

होनिहार—संज्ञा पुं० दे० "होनहार"।

होनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० होना] (१) उत्पत्ति। पैदाइश। (२) वह बात जो हो गई हो। हाल। वृत्तांत। (३) होनेवाली बात

या घटना। वह बात जिसका होना ध्रुव हो। वह बात जिसका होना दैवी विधान में निश्चित हो। भावी। भवितव्यता। उ०—ह्वै रहै होनी प्रयास बिना, अनहोनी न ह्वै सकै कोटि उपाई।—पद्माकर। (४) हो सकनेवाली बात। वह बात जिसका होना संभव हो।

होयार-संज्ञा पुं० [देश०] सोहन चिड़िया का एक भेद। तिलूर।
संज्ञा पुं० घोड़ा। (डिं०)

होम-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के उद्देश्य से अग्नि में घृत, जौ आदि डालना। हवन। यज्ञ। आहुति देने का कर्म।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
मुहा०—होम कर देना = (१) जला डालना। भस्म कर देना। (२) नष्ट करना। बरबाद करना। (३) उत्सर्ग करना। छोड़ देना।

होमकाष्ठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ की अग्नि दहकाने की फुँकनी।

होमकुंड-संज्ञा पुं० [सं०] होम की अग्नि रखने का गड्ढा।

होमना-क्रि० स० [सं० होम + ना (प्रत्य०)] (१) देवता के उद्देश्य से अग्नि में डालना। हवन करना। आहुति देना।
संयो० क्रि०—देना।
(२) उत्सर्ग करना। छोड़ देना। उ०—नंदलाल के हेतु आपुनो सुख वै होमति।—सुकवि।
(३) नष्ट करना। बरबाद करना।

होमि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) घृत। (३) जल।

होमियोपैथिक-वि० [अं०] (१) चिकित्सा की होमियोपैथी नामक पद्धति के अनुसार। (२) होमियोपैथी के अनुसार चिकित्सा करनेवाला।

होमियोपैथी-संज्ञा स्त्री० [अं०] थोड़े दिनों से निकला हुआ पाश्चात्य चिकित्सा का एक सिद्धांत या विधान जिसमें विषों की अल्प से अल्प मात्रा द्वारा रोग दूर किए जाते हैं। रोग के समान लक्षण उत्पन्न करनेवाले द्रव्यों द्वारा रोगनिवारण की पद्धति।
विशेष—इस सिद्धांत के अनुसार कोई रोग उसी द्रव्य से दूर होता है जिसके खाने से स्वस्थ मनुष्य में उस रोग के समान लक्षण प्रकट होते हैं। इसमें संखिया, कुचला आदि अनेक विषों को स्पिरिट में डालकर उनकी मात्रा को निरंतर हलकी करते जाते हैं।

होमीय-वि० [सं०] होम-संबंधी। होम का। जैसे,—होमीय द्रव्य।

होम्य-वि० [सं०] होम-संबंधी। होम का।
संज्ञा पुं० घृत। घी।

होर-वि० [अनु०] ठहरा हुआ। चलने से रुका हुआ।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

होरमा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास या चारा। साँवक।

होरसा-संज्ञा पुं० [सं० घर्ष = घिसना] पत्थर की गोल छोटी चौकी जिस पर चंदन घिसते या रोटी बेलते हैं। चौका।

होरा-संज्ञा पुं० दे० "होला"।
संज्ञा स्त्री० [सं०, यूनानी भाषा से गृहीत] (१) एक अहोरात्र का २४वाँ भाग। घंटा। ढाई घड़ी का समय। (२) एक राशि या लग्न का आधा भाग। (३) जन्मकुंडली। (४) जन्मकुंडली के अनुसार फलाफल-निर्णय की विद्या। जातक शास्त्र।

होरिल-संज्ञा पुं० [देश०] नवजात बालक। नया पैदा लड़का। (गीत)

होरिहार†-संज्ञा पुं० [हिं० होरी] होली खेलनेवाला। उ०—होन लग्यो मजगलिन में होरिहारन को घोष।—पद्माकर।

होरी-संज्ञा स्त्री० दे० "होली"।
संज्ञा स्त्री० [हिं० होर = ठहरा हुआ] एक प्रकार की बड़ी नाव जो जहाज़ों पर का माल लादने और उतारने के काम में आती है।

होल-संज्ञा पुं० [देश०] पश्चिमी एशिया से आया हुआ एक पौधा जो घोड़ों और चौपायों के चारे के लिये लगाया जाता है।

होलक-संज्ञा पुं० [सं०] आग में भुनी हुई चने, मटर आदि की हरी फलियाँ। होला। होरा। होरहा।

होला-संज्ञा स्त्री० [सं०] होली का त्योहार।
संज्ञा पुं० सिखों की होली जो होली के दूसरे दिन होती है।
संज्ञा पुं० [सं० होलक] (१) आग में भूनी हुई हरे चने या मटर की फलियाँ। (२) चने का हरा दाना। होरा। होरहा।

होलाक-संज्ञा पुं० [सं०] आग की गरमी पहुँचा कर पसीना लाने की एक क्रिया। एक प्रकार की स्वेदन-विधि। (आयुर्वेद)

होलाका-संज्ञा स्त्री० [सं०] होली का त्योहार।

होलाष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] होली के पहले के आठ दिन जिनमें विवाह-कृत्य नहीं किया जाता। उरता बरता।

होलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) होली का त्योहार। (२) लकड़ी, घास फूस आदि का वह ढेर जो होली के दिन जलाया जाता है।
यौ०—होलिका दहन।
(३) एक राक्षसी का नाम।

होली-संज्ञा स्त्री० [सं० होलिका] (१) हिंदुओं का एक बड़ा त्योहार जो फाल्गुन के अंत में वसंत ऋतु के आरंभ पर मनाया जाता है और जिसमें लोग एक दूसरे पर रंग अबीर आदि डालते तथा अनेक प्रकार के विनोद करते हैं।
विशेष—प्राचीन काल में जो मदनोत्सव या वसंतोत्सव होता था, उसी की यह परंपरा है। इसके साथ होलिका राक्षसी की शांति का कृत्य भी मिला हुआ है। वसंत

पंचमी के दिन से लकड़ियाँ आदि का ढेर एक मैदान में इकट्ठा किया जाता है जो वर्ष के अंतिम दिन जलाया जाता है। इसी को होली जलाना या संवत् जलाना कहते हैं। बीते हुए वर्ष का अंतिम दिन और आनेवाले वर्ष का प्रथम दिन दोनों इस उत्सव में सम्मिलित रहते हैं।

मुहा०—होली खेलना = होली का उत्सव मनाना। एक दूसरे पर रंग अबीर आदि डालना। उ०—नैन नचाय कही मुसकाय "लला फिर आइयो खेलन होरी"।—पद्माकर। **होली का भँड़वा** = बेढंगा पुतला जो विनोद के लिये खड़ा किया जाता है।

(२) लकड़ी, घास फूस आदि का ढेर जो होली के दिन जलाया जाता है। (३) एक प्रकार का गीत जो होली के उत्सव में गाया जाता है।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक कँटीला झाड़ या पौधा।

होल्डर–संज्ञा पुं० [अं०] अँगरेजी कलम का वह हिस्सा जो हाथ से पकड़ा जाता है और जिसमें लिखने की निब या जीभ खोंसी जाती है।

होल्हना-क्रि० स० [देश०] धान के खेत में घास पात दूर करने के लिये हल चलाना। (पंजाब)

होश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) बोध या ज्ञान की वृत्ति। संज्ञा। चेतना। चेत। जैसे,—वह होश में नहीं है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—होश व हवास = चेतना और बुद्धि।

मुहा०—होश उड़ना या जाता रहना = भय या आशंका से चित्त व्याकुल होना। चित्त स्तब्ध होना। सुध बुध भूल जाना। तन मन की सँभाल न रहना। जैसे,—बंदूक देखते ही उसके होश उड़ गए। **होश करना** = सचेत होना। बुद्धि ठीक करना। **होश दंग होना** = चित्त चकित होना। आश्चर्य से स्तब्ध होना। मन में अत्यंत आश्चर्य उत्पन्न होना। **होश पकड़ना** = आपे में होना। चेतना प्राप्त करना। **होश सँभालना** = अवस्था बढ़ने पर सब बातें समझने बूझने लगना। सयाना होना। अनजान बालक न रहना। जैसे,—मैंने तो जब से होश सँभाला, तब से इसे ऐसा ही देखता हूँ। **होश में आना** = चेतना प्राप्त करना। बोध या ज्ञान की वृत्ति फिर लाभ करना। बेसुध न रहना। मूर्छित या संज्ञाशून्य न रहना। **होश की दवा करो** = बुद्धि ठीक करो। समझ बूझ कर बोलो। **होश ठिकाने होना** = (१) बुद्धि ठीक होना। भ्रांति या मोह दूर होना। (२) चित्त स्वस्थ होना। थकावट, घबराहट, डर या व्याकुलता दूर होना। चित्त की अधीरता या व्याकुलता मिटना। (३) अहंकार या गर्व मिटना। दंड पाकर भूल का पछतावा होना। जैसे,—वह मार खायगा तब उसके होश ठिकाने होंगे।

(२) स्मरण। सुध। याद।

क्रि० प्र०—करना होना।

मुहा०—होश दिलाना = सुध कराना। स्मरण कराना। याद दिलाना।

(३) बुद्धि। समझ। अक्ल।

यौ०—होशमंद।

होशमंद–वि० [फ़ा०] समझदार। बुद्धिमान्।

होशियार–वि० [फ़ा०] (१) चतुर। समझदार। बुद्धिमान्। (२) दक्ष। निपुण। कुशल। जैसे,—वह इस काम में बड़ा होशियार है। (३) सचेत। सावधान। खबरदार। जैसे,—इतना खोकर अब से होशियार हो जाओ।

मुहा०—होशियार रहना = चौकसी करते रहना। किसी अनिष्ट से बचने का बराबर ध्यान रखना।

(४) जिसने होश सँभाला हो। जो अनजान बालक न हो। सयाना। (५) चालाक। धूर्त।

होशियारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) समझदारी। बुद्धिमानी। चतुराई। (२) दक्षता। निपुणता। (३) कौशल। युक्ति। सावधानी। जैसे,—इसे होशियारी से पकड़ना, नहीं तो टूट जायगा।

होस‡–संज्ञा पुं० दे० "होश"।

संज्ञा पुं० दे० "हौस"।

हौं‡–सर्व० [सं० अहम्] ब्रज भाषा का उत्तम पुरुष एक वचन सर्वनाम। मैं।

क्रि० अ० 'होना' क्रिया का वर्तमान कालिक उत्तम पुरुष एक वचन रूप। हूँ।

हौंकना†‡–क्रि० अ० [हिं० हुंकार] (१) गरजना। हुंकार करना। (२) हाँफना।

हौंस–संज्ञा स्त्री० दे० "हौस"।

हौ‡–अव्य० [हिं० हाँ] स्वीकृति सूचक शब्द। हाँ। (मध्यप्रदेश)

क्रि० अ० (१) होना क्रिया का मध्यम पुरुष एक वचन का वर्तमान कालिक रूप। हो। (२) होना का भूत काल। था। वि० दे० "हो"।

हौआ–संज्ञा पुं० [अनु० हौ] लड़कों को डराने के लिये एक कल्पित भयानक वस्तु का नाम। हाऊ। मकाऊँ।

संज्ञा स्त्री० दे० "हौवा"।

हौका–संज्ञा पुं० [अनु० हाव = मुँह बाने का शब्द] (१) अरभुक्खापन। खाने का गहरा लालच। (२) प्रबल लोभ। तृष्णा।

हौज़–संज्ञा पुं० [अ०] (१) पानी जमा रहने का चहबच्चा। कुंड। (२) कटोरे के आकार का मिट्टी का बहुत बड़ा बरतन। नाँद।

हौद–संज्ञा पुं० [अ० हौज़] (१) बँधा हुआ बहुत छोटा जलाशय। कुंड। (२) कटोरे के आकार का मिट्टी का बहुत बड़ा बरतन जिसमें चौपाए खाते पीते हैं तथा रँगरेज़, धोबी आदि कपड़े डुबाते हैं। नाँद।

हौदा–संज्ञा पुं० [फ़ा० हौज़ः] हाथी की पीठ पर कसा जानेवाला आसन जिसके चारों ओर रोक रहती है और पीठ टिकाने के लिये गद्दी रहती है।

क्रि० प्र०—कसना।

संज्ञा पुं० [अ० हौज़, हिं० हौद] [स्त्री० हौदी] कटोरे के आकार का मिट्टी, पत्थर आदि का बहुत बड़ा बरतन जिसमें चौपायों को चारा दिया जाता है। नाँद।

हौरा–संज्ञा पुं० [अनु० हाव, हाव] शोर। गुल। हल्ला। कोलाहल।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचना—होना।

हौल–संज्ञा पुं० [अ०] डर। भय। दहशत।

यौ०—हौलनाक, हौलदिल।

मुहा०—हौल पैठना या बैठना = जी में डर समाना। हृदय में भय उत्पन्न होना।

हौलदिल–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) कलेजा धड़कना। दिल की धड़कन। (२) दिल धड़कने का रोग।

वि० (१) जिसका दिल धड़कता हो। (२) दहशत में पड़ा हुआ। डरा हुआ। (३) घबराया हुआ। व्याकुल। जिसका जी ठिकाने न हो।

हौलदिला–वि० [फ़ा० हौलदिल] [स्त्री० हौलदिली] डरपोक। बुज़दिल।

हौलनाक–वि० [अ० + फ़ा०] डरावना। भयानक।

हौली–संज्ञा स्त्री० [सं० हाला = मद्य] वह स्थान जहाँ मद्य उतरता और बिकता है। आबकारी। कलवरिया।

हौले–क्रि० वि० [हिं० हलका] (१) धीरे। आहिस्ता। मंद गति से। क्षिप्रता के साथ नहीं। जैसे,—हौले हौले चलना। (२) हलके हाथ से। ज़ोर से नहीं। जैसे,—हौले हौले मारना।

हौवा–संज्ञा स्त्री० [अ०] पैगंबरी मतों के अनुसार सब से पहली स्त्री जो पृथ्वी पर आदम के साथ उत्पन्न की गई और जो मनुष्य-जाति की आदि माता मानी जाती है।

संज्ञा पुं० दे० "हौआ"।

हौस–संज्ञा स्त्री० [अ० हवस] (१) चाह। प्रबल इच्छा। लालसा। कामना। उ०—(क) सजै विभूषन बसन सब पिया मिलन की हौस।—पद्माकर। (ख) हौस भरें सिगरी सजनी कबहूँ हरि सों हँसि बात कहौगी।—केशव। (२) उमंग। हर्षोत्कंठा। उ०—रति विपरीत की पुनीत परिपाटी मनो हौसन हिंडोरे की सुपारी में पढ़ति है।—पद्माकर। (३) हौसला। उत्साह। साहसपूर्ण इच्छा।

हौसला–संज्ञा पुं० [अ०] (१) किसी काम को करने की आनंदपूर्ण इच्छा। उत्कंठा। लालसा। जैसे,—उसे अपने बेटे का ब्याह देखने का हौसला है।

मुहा०—हौसला निकलना = इच्छा पूरी होना। अरमान निकलना।

(२) उत्साह। आनंदपूर्ण साहस। जोश और हिम्मत। जैसे,—फिर कभी मुझसे लड़ने का हौसला न करना।

मुहा०—हौसला पस्त होना = उत्साह न रह जाना। जोश ठंढा पड़ना। हिम्मत न रहना।

(३) प्रफुल्लता। उमंग। बढ़ी हुई तबीयत। जैसे,—उसने बड़े हौसले से बेटे का ब्याह किया है।

हौसलामंद–वि० [फ़ा०] (१) लालसा रखनेवाला। (२) बढ़ी हुई तबीयत का। उमंगवाला। (३) उत्साही। साहसी।

ह्याँ*–अव्य० दे० "यहाँ"।

ह्यो*–संज्ञा पुं० दे० "हियो", "हिया"। उ०—(क) लक्ष्मण के पुरिखान कियो पुरुषारथ सो न कह्यो परई। बेष बनाय कियो बनितान को देखत केशव ह्यो हरई।—केशव। (ख) कहै पदमाकर त्यों बाँधन बसनवारी, वा ब्रज बसनवारी ह्यो हरनहारी है।—पद्माकर।

ह्रद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ा ताल। झील। (२) सरोवर। तालाब। (३) नाद। ध्वनि। आवाज़। (४) किरण। (५) मेढ़ा।

ह्रदिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

ह्रसित–वि० [सं०] छोटा किया हुआ। कम किया हुआ। घटा हुआ। जिसका ह्रास हुआ हो।

ह्रस्व–वि० [सं०] (१) छोटा। जो बड़ा न हो। (२) नाटा। छोटे आकार का। (३) कम। थोड़ा। (४) नीचा। जैसे,—ह्रस्व द्वार। (५) तुच्छ। नाचीज़।

विशेष—वर्णमाला में दीर्घ की अपेक्षा कम खींचकर बोले जानेवाले स्वर अथवा सस्वर व्यंजन 'ह्रस्व' कहलाते हैं। जैसे,—अ, इ, क, कि, कु ह्रस्व वर्ण हैं और आ, ई, ऊ, का, की, कू दीर्घ।

संज्ञा पुं०—(१) वामन। बौना। (२) दीर्घ की अपेक्षा कम खींच कर बोला जानेवाला स्वर। एक मात्रा का स्वर। जैसे,—अ, इ, उ।

ह्रस्वजात रोग–संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें दिन के समय वस्तुएँ बहुत छोटी दिखाई पड़ती हैं।

ह्रस्वता–संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटाई। छोटापन। अल्पता। लघुता।

ह्रस्वपत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महुआ।

ह्रस्वपर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] पकड़। पाकर का पेड़।

ह्रस्वफल–संज्ञा पुं० [सं०] खजूर या छुहारा।

ह्रस्वफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] भूमिजंबू। छोटी जाति की जामुन जो नदियों के किनारे होती है।

ह्रस्वमूल–संज्ञा पुं० [सं०] लाल गन्ना।

ह्रस्वांग–वि० [सं०] नाटा। ठेंगना। बौना।

संज्ञा पुं० जीवक नाम का पौधा।

ह्रस्वाग्नि-संज्ञा पुं० [सं०] आक का पौधा । मदार । अर्क ।
ह्राद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ध्वनि । शब्द । आवाज़ । (२) बादल की गरज । मेघ गर्जन । (३) शब्दस्फोट । (४) एक नाग का नाम । (५) हिरण्यकशिपु के एक पुत्र का नाम ।
ह्रादिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नदी । (२) एक नदी का नाम जिसे 'ह्लादिनी' और 'दूरपारा' भी कहते थे । (वाल्मीकि०) (३) बिजली । वज्र ।
ह्रादी-वि० [सं० ह्रादिन्] [स्त्री० ह्रादिनी] शब्द करनेवाला । गर्जन करनेवाला ।
ह्रास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहले से छोटा या कम हो जाने की क्रिया या भाव । कमी । घटती । घटाव । छीज । क्षीणता । अवनति । घटती । (२) शक्ति, वैभव, गुण आदि की कमी । (३) ध्वनि । आवाज़ ।
ह्रासन-संज्ञा पुं० [सं०] कम करना । घटाना ।
ह्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लज्जा । व्रीड़ा । शर्म । हया । संकोच । (२) दक्ष प्रजापति की कन्या जो धर्म की पत्नी मानी जाती है ।
ह्रीक-संज्ञा पुं० [सं०] नेवला ।
ह्रीका-संज्ञा स्त्री० [सं०] लज्जा । लज्जाशीलता । हया ।
ह्रीकु-वि० [सं०] लजीला । लज्जाशील । शर्मीला ।
संज्ञा पुं० (१) बिल्ली । (२) लाख । (३) राँगा ।
ह्रीण-वि० [सं०] लज्जित । शरमिंदा । जैसे,—ह्रीण मुख ।
ह्रीत-वि० [सं०] लज्जित । लजाया हुआ ।
ह्रीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] लज्जा । शर्म । हया । संकोच ।
ह्रीमान-वि० [सं० ह्रीमत्] [स्त्री० ह्रीमती] लज्जाशील । हयादार । शर्मदार ।
संज्ञा पुं० विश्वेदेवा में से एक ।
ह्रीमूढ़-वि० [सं०] लज्जा से घबराया हुआ । लज्जा के कारण निश्चेष्ट । लाज से दबा हुआ ।
ह्रीबेर-संज्ञा पुं० [सं०] सुगंधबाला ।
ह्लाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आनंद । खुशी । प्रफुल्लता । (२) हिरण्यकशिपु के एक पुत्र का नाम ।
ह्लादन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ह्लादनीय, ह्लादित] आनंदित करना । खुश करना ।
ह्लादिनी-वि० स्त्री० [सं०] आनंदित करनेवाली ।
संज्ञा स्त्री० (१) बिजली । वज्र । (२) धूप का पौधा । (३) एक शक्ति या देवी का नाम । (४) एक नदी का नाम । दे० "ह्रादिनी" ।
ह्वलन-संज्ञा पुं० [सं०] इधर उधर झुकना या गिरना पड़ना । लड़खड़ाना । थहराना ।
ह्वाँ-क्रि०-अव्य० दे० "वहाँ" ।
ह्विस्की-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की अँगरेजी शराब ।
ह्वेल-संज्ञा पुं० [अं०] एक बहुत बड़ा समुद्री जंतु जो आज कल पाए जानेवाले पृथ्वी पर के सब जीवों से बड़ा होता है ।
विशेष—ह्वेल ८० या ९० फुट तक लंबे होते हैं । इसकी खाल के नीचे चरबी की एक बड़ी मोटी तह होती है । आगे की ओर दो पर होते हैं जिनसे वह पानी ठेलता और अपनी रक्षा करता है । किसी किसी जाति के ह्वेल की दुम के पास भी एक पर सा होता है । पूँछ के बल ये जंतु पानी के बाहर कूद आते हैं । मछली के समान ह्वेल अंडज जीव नहीं है, पिंडज है । मादा बच्चे देती है और अपने थनों से दूध पिलाती है । बहुत छोटे छोटे कान भी ह्वेल को होते हैं । यह जंतु छोटी छोटी मछलियाँ खा कर रहता है । यह बहुत देर तक पानी में डूबा नहीं रह सकता । फेफड़े या गलफड़े के अतिरिक्त दो छेद इसके सिर में होते हैं जिनसे यह साँस भी लेता है और पानी का फुहारा भी छोड़ता है । आँखें बहुत छोटी होती हैं । पृथ्वी के उत्तरी भाग के समुद्रों में ह्वेल बहुत पाए जाते हैं और उनका शिकार होता है । ह्वेल की हड्डियों से हाथीदाँत की तरह अनेक प्रकार के सामान बनते हैं । इसकी अँतड़ियों में एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य जमा हुआ मिलता है जो 'अंबर' के नाम से प्रसिद्ध है और जो भारतवर्ष, अफ्रिका और दक्षिण अमेरिका के समुद्रतट पर बहता हुआ पाया जाता है ।
प्राणी-विज्ञानवेत्ताओं का कहना है कि ह्वेल पूर्व कल्प में स्थलचारी जंतु था और पानी के किनारे दलदलों में रहा करता था । क्रमशः पृथ्वी पर ऐसी अवस्था आती गई जिससे उसका ज़मीन पर रहना कठिन होता गया और स्थिति परिवर्तन के अनुसार इसके अवयवों में फेरफार होता गया । यहाँ तक कि लाखों वर्ष के अनंतर ह्वेलों में जल में रहने के उपयुक्त अवयवों का विधान हो गया । जैसे, उनके अगले पैर मछली के डैने के रूप में हो गए, यद्यपि उनमें हड्डियाँ वे ही बनी रहीं जो घोड़े, गधे आदि के अगले पैरों में होती हैं । हमारे यहाँ के प्राचीन ग्रंथों में 'तिमिंगिल' नामक एक बड़े भारी मत्स्य या जलजंतु का उल्लेख मिलता है जो संभव है, ह्वेल ही हो ।

छूटे हुए शब्द और अर्थ



अंकम‡-संज्ञा पुं० [सं० अंक] गोद। क्रोड़। उ०—मिलहिं जो बिछुरे साजन, अंकम भेंटि गहंत।—जायसी।

अंकूर‡-संज्ञा पुं० दे० "अंकुर"। उ०—तब भा पुनि अंकूर सिरजा दीपक निरमला।—जायसी।

अंगड़-खंगड़-संज्ञा पुं० [अनु०] लकड़ियों का टूटा फूटा सामान। काठ कबाड़।

अंगसंधि-संज्ञा स्त्री० दे० "संध्यंग"।

अंगारवर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] चित्ररथ गंधर्व का एक नाम। वि० दे० "चित्ररथ"।

अंगुलित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह तत या तारोंवाला बाजा जो कमानी से नहीं बल्कि उँगली में मिजराब पहन कर बजाया जाता है। जैसे,—सितार, बीन, एकतारा आदि।

अंजल‡-संज्ञा पुं० [सं० अन्न + जल] अन्नजल। दानापानी। उ०—जब अंजल मुँह सोवा, समुद न सँवरा जागि। अब धरि काढ़ मच्छ जिमि, पानी माँगत आगि।—जायसी।

अँजोरा‡-संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] प्रकाश। रोशनी। उ०—दिया मँदिर निसि करै अँजोरा। दिया नाहिं घर मूसहिं चोरा।—जायसी।

अंडर सेक्रेटरी-संज्ञा पुं० [अं०] वह मंत्री जो मुख्य मंत्री के अधीन हो। सहकारी सचिव। सहायक मंत्री। जैसे,—अंडर सेक्रेटरी फार इंडिया (सहकारी भारत सचिव)।

अंडा‡-संज्ञा पुं० [सं० अंड या पिंड] शरीर। देह। पिंड। उ०—आसन, बासन, मानुस अंडा। भए चौखंड जो ऐस पखंडा।—जायसी।

अंतःकलह-संज्ञा० पुं० दे० "गृहकलह"।

अंतःराष्ट्रीय-वि० दे० "सार्वराष्ट्रीय"।

अंतःशल्य-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु के वश में पड़ी हुई सेना।

अंतपाल-संज्ञा पुं० [सं०] (२) सीमारक्षक। सरहद का पहरेदार।

अंतर्भेदी-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्यूह। मध्यभेदी व्यूह का विपरीत।

अंतरपतित आय-संज्ञा स्त्री० [सं०] सौदा पटाने की दस्तूरी। दलाली।

अंतर प्रादेशिक-वि० [सं०] जिसका संबंध अपने प्रांत या प्रदेश से हो। अपने प्रदेश या प्रांत में होनेवाला। जैसे,—अंतर प्रादेशिक अपराध।

अंतरराष्ट्रीय-वि० दे० "सार्वराष्ट्रीय"।

अंतरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दो मकानों के बीच की गली।

अंतर्धि-संज्ञा पुं० [सं०] दो लड़नेवाले राज्यों के बीच में पड़नेवाला राज्य।

अंधर‡-वि० [सं० अन्धकार] अँधेरा। अंधकारमय। प्रकाशरहित। उ०—नखत चहूँ दिसि रोवहिं, अंधर धरति अकास।—जायसी।

अंधराजा-संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्र और नीति आदि से अनभिज्ञ अविवेकी राजा।

विशेष—चाणक्य ने अर्थशास्त्र में राजा के दो भेद किए हैं—एक अंधराजा, दूसरा चलितशास्त्र राजा। चलितशास्त्र वह है जो जान बूझ कर शास्त्र की मर्यादा का उल्लंघन करता हो। इन दोनों में चाणक्य ने अंधराजा को ही अच्छा कहा है जो योग्य मंत्रियों के होने पर अच्छा शासन कर सकता है।

अंधसैन्य-संज्ञा पुं० [सं०] अशिक्षित सेना। वि० दे० "मित्रकूट"।

अंधाहुली-संज्ञा स्त्री० [सं० अधःपुष्पी] चोरपुष्पी नामक क्षुप। वि० दे० "चोरपुष्पी"।

अंधियारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधेरा] (१) अंधकार। अँधेरा। (२) वह पट्टी जो उपद्रवी घोड़ों, शिकारी पक्षियों और चीतों आदि की आँखों पर इसलिये बँधी रहती है कि किसी को देख कर उपद्रव न करें।

अँधेरा उजाला-संज्ञा पुं० [हिं० अँधेरा + उजाला] कागज को एक विशेष प्रकार से कई तहों में लपेट कर बनाया हुआ एक प्रकार का खिलौना जिसके भीतरी दो भाग सादे और दो भाग रंगीन होते हैं और जो हाथ की चारों उँगलियों की

सहायता से खोला और मूँदा जाता है। इससे कभी तो उसका सादा अंश दिखाई पड़ता है और कभी रंगीन।

अँधेरा गुप-संज्ञा पुं० [हिं० अँधेरा+कूप] इतना अधिक अंधकार कि कुछ दिखाई न दे। घोर अंधकार। जैसे,—इस कोठरी में तो बिलकुल अँधेरा गुप है।

अंधेरी-संज्ञा स्त्री० [?] दक्षिण भारत का एक स्थान। उ०—गढ़ गुवालियर परी मथानी। औ अंधियार मथा भा पानी।—जायसी।

अँधौरी†-संज्ञा स्त्री० दे० "अम्हौरी"।

अंबर डंबर†-संज्ञा पुं० [सं० अंबर=आकाश] वह लाली जो सूर्य के अस्त होने के समय पश्चिम दिशा में दिखाई देती है। उ०—बिन सतसार न लागई, ओछे जन की प्रीत। अंबर डंबर साँझ के, ज्यों बारू की भीत।

क्रि० प्र०—फूलना।

अंबा⊛†-संज्ञा पुं० [सं० आम्र, हिं० आम] उ०—बसैं मीन जल धरती अंबा बसै अकास।—जायसी।

अंबारी-संज्ञा स्त्री० [देश०] पटसन। (दक्षिण)

अँमौरी-संज्ञा स्त्री० दे० "अम्हौरी"।

अंश-संज्ञा पुं० [सं] (८) किसी कारबार का हिस्सा। (९) फायदे का हिस्सा।

अंस-संज्ञा पुं० [सं० अंश] कन्धा। उ०—अंसनि धनु सर-कर-कमलनि कटि कसे हैं निखंग बनाई।—तुलसी।

अँहड़ा†-संज्ञा पुं० [देश०] तौलने का बाट। बटखरा।

अंहस्पात-संज्ञा पुं० [सं०] क्षय मास।

अकरथ⊛-वि० [सं० अकथनीय] जो कहा न जा सके। न कहने योग्य। अकथनीय। उ०—मसि नैना लिखनी बरुनि, रोइ रोइ लिखा अकाथ।—जायसी।

अकना†-क्रि० अ० [सं० आकुल] ऊबना। उकताना। घबराना। उ०—दौड़ दौड़ आने से जुरअत के अको मत क्या करे। उस बिचारे की तबीयत तुम पे है आई हुई।—जुरअत।

संज्ञा पुं० [सं० अंकुर] ज्वार की वह बाल जिसके दाने निकाल लिए गए हों। ज्वार की खुखड़ी।

अकरास†-वि० स्त्री० [सं० अकर=आलस्य] गर्भवती। जो हमल से हो।

अकवन†-संज्ञा पुं० [हिं० आक] आक का पेड़। मदार।

अकासी†-संज्ञा स्त्री० [सं० आकाश] चील नामक पक्षी।

यौ०—धौरी अकासी या सफेद अकासी=एक प्रकार की चील जिसे क्षेमकरी चील भी कहते हैं। इसका सिर सफेद और शेष सारे अंग लाल रंग के होते हैं। उ०—बाएँ अकासी धौरी आई।—जायसी।

अकिल दाढ़-संज्ञा स्त्री० [अ० अक्ल+हिं० दाढ़] वह दाँत जो मनुष्यों के वयस्क होने पर बत्तीस दाँतों के अतिरिक्त निकलता है। कहते हैं कि इस दाँत के निकलने पर मनुष्य का लड़कपन जाता रहता है और वह समझदार हो जाता है।

अकृतचिकीर्षा-(संधि) संज्ञा स्त्री० [सं०] सामादि उपायों से नई संधि करना तथा उसमें छोटे बड़े तथा समान राजाओं के अधिकारों का उचित ध्यान रखना।

अकृतशुल्क-वि० [सं०] (१) जिसने महसूल या चुंगी न दी हो। (२) जिस पर महसूल न लगा हो। (माल)

अकोप्या पण्ययात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिक्के का चलन। सिक्के के चलने में किसी प्रकार की रुकावट न होना।

अखजख⊛-वि० [सं० अखाद्य] (१) न खाने योग्य। अभक्ष्य। उ०—सख भारत ततकाल ध्यान मुनिवर सों धारत। बिहरत पंख फुलाय नहीं खज अखज बिचारत।—दीनदयाल। (२) निकृष्ट। बुरा। खराब।

अखबारनवीस-संज्ञा पुं० दे० "पत्रकार"।

अगनिउ⊛-संज्ञा पुं० [सं० आग्नेय] आग्नेय कोण। उत्तर पूर्व का कोना। उ०—तीज एकादसि अगनिउ मौर। चौथ दुवादसि नैऋत बौर।—जायसी।

अगमन-क्रि० वि० [सं० अग्र, हिं० आगे] आगे। उ०—(क) नैन भिखारि न मानहिं सीखा। अगमन दौरि लेहिं पै भीखा।—जायसी। (ख) रतनसेन आवै जेहि घाटा। अगमन होइ बैठि तेहि बाटा।—जायसी।

अगरे†-क्रि० वि० [सं० अग्र] सामने। आगे। उ०—चेला पूछै गुरू कहँ तेहि कस अगरे होइ।—जायसी।

अगवना†-क्रि० अ० [हिं० आगे+ना (प्रत्य०)] कोई काम करने के लिये उद्यत होना। आगे बढ़ना।

अगसार⊛-क्रि० वि० [सं० अग्र] आगे। उ०—हस्ति ॥ जूह आय अगसारी। हनुवँत मवै लँगूर पसारी।—जायसी।

अगान⊛†-वि० [सं० अज्ञान] अज्ञान। अनजान। नासमझ। उ०—बालक अगाने हठी और को न मानें बात बिना, दिये मातु हाथ भोजन न पाइए।—हनुमन्नाटक।

अगाह⊛-क्रि० वि० [हिं० आगे] आगे से। पहले से। उ०—चाँदक गहन अगाह जनावा।—जायसी।

अगिदधा†-वि० [सं० अग्नि+दाह] आग से जला हुआ। दग्ध। उ०—तेहि सौंपा राजा अगिदधा।—जायसी।

अगिदाह⊛-संज्ञा पुं० दे० "अग्निदाह"। उ०—जस तुम कया कीन्ह अगिदाहू।—जायसी।

अगिया-संज्ञा पुं० [हिं० आग] एक प्रकार एक छोटा कीड़ा जिसके शरीर में लगने से पीले पीले छाले पड़ जाते हैं।

अगिया बैताल-संज्ञा पुं० [हिं० आग+बैताल] (१) एक कल्पित बैताल जिसके संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं। कहते हैं कि यह बड़ा दुष्ट था और बड़े आश्चर्यजनक कृत्य

करता था। (२) वह जिसका स्वभाव बहुत क्रोधी और चिड़चिड़ा हो।

अगियार†-वि० [हिं० आग+इयार (प्रत्य०)] (लकड़ी, कोयला आदि) जिसकी आग बहुत देर तक ठहरे या तेज हो।
संज्ञा पुं० दे० "अगियारी"।

अगियारी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० आग+इयारी (प्रत्य०)] वह पदार्थ जो अग्नि में वायु को सुगंधित करने के लिये डाला जाय। धूप देने की वस्तु।

अगीठा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जिसके पत्ते पान के आकार के पर उससे कुछ बड़े होते हैं। इसमें कैथ की तरह का एक प्रकार का कुछ चिपटा फल लगता है जिसकी सतह पर छोटे छोटे दाने रहते हैं।

अगुसरना*†-क्रि० अ० [सं० अग्रसर+ना (प्रत्य०)] अग्रसर होना। आगे बढ़ना। उ०—एको परग न सो अगुसरई।—जायसी।

अगूठना*-क्रि० स० [सं० अगूढ़] चारों ओर से घेरना।

अगूठा-संज्ञा पुं० [सं० अगूढ़] घेरा। महासिरा। उ०—ओहि कारन गढ़ कीन्ह अगूठा।—जायसी।

अगूता*-संज्ञा पुं० [हिं० आगे] आगे। सामने। उ०—बाजन बाजहिं होइ अगूता।—जायसी।

अगोटना†-क्रि० स० [सं० अगूढ़] चारों ओर से घेरना। उ०—सबु कोट जो आइ अगोटी। मीठी खाँड़ जेंवायहु रोटी।—जायसी।

अगोरा†-संज्ञा पुं० [हिं० अगोरना] (१) अगोरने या रखवाली करने की क्रिया। चौकसी। निगरानी। (२) खेत की कटाई या फसल की दँवाई के समय की वह निगरानी जो जमींदार लोग कास्तकार से उपज का भाग लेने के लिये अपनी ओर से कराते हैं।

अगौरी†-संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र+औरी (प्रत्य०)] ऊख या गन्ने का वह ऊपरी भाग जिसमें गाँठें बहुत पास पास होती हैं। कौंचा।

अग्गई-संज्ञा स्त्री० [देश०] अवध में अधिकता से होनेवाला एक प्रकार का मझोले आकार का वृक्ष जिसकी पत्तियाँ प्रायः हाथ भर लंबी होती हैं। यह नेपाल, भूटान, बरमा और जावा में भी पाया जाता है। इसमें पीले रंग के २-३ इंच चौड़े फूल और छोटे अमरूत के आकार के फल लगते हैं।

अग्निकार्य-संज्ञा पुं० दे० "प्रतिसारण"।

अग्निजीवी-संज्ञा पुं० [सं० अग्निजीविन्] आग के सहारे काम करनेवाले। जैसे, लुहार, सुनार।

अग्निदंड-संज्ञा पुं० [सं०] आग में जलाने का दंड।

अग्निद-संज्ञा पुं० [सं०] आग लगानेवाला।

अग्निदमनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप, जिसे दमनी भी कहते हैं। गनियारी।

अघमर्षण कृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कठिन व्रत जो प्रायश्चित्त रूप में किया जाता था। (स्मृति)
विशेष—इसमें तीन दिन तक कुछ न खाने, त्रिकाल स्नान करने और पानी में डूब कर अघमर्षण मंत्र जपने का विधान है।

अच्-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर वर्ण।

अचल व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] असंहत व्यूह का एक भेद जिसमें हाथी, घोड़े और रथ एक दूसरे के आगे पीछे रखे जाते थे।

अचित्-संज्ञा पुं० [सं०] रामानुजाचार्य्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक जो भोग्य, दृश्य, अचेतन स्वरूप, जड़ात्मक और भोग्यत्व के विकार से युक्त माना जाता है। इसके भोग्य, भोगोपकरण और भोगायन ये तीन प्रकार माने गए हैं।

अछूत-वि० [सं० अ=नहीं+हिं० छूना] (१) जो छूने योग्य न हो। न छूने योग्य। नीच जाति का। अंत्यज जाति का। अस्पृश्य। जैसे,—मेहतर, डोम, चमार आदि अछूत जातियाँ भी अपना अपना संघटन कर रही हैं।
संज्ञा पुं० (१) वह जो छूने योग्य न हो। अछूत या अस्पृश्य जाति का मनुष्य। अंत्यज जाति का मनुष्य। जैसे,—(क) अछूत उद्धार। (ख) आर्य समाज ने तीन सौ अछूतों को शुद्ध कर अपने में मिला लिया।

अज़ान-संज्ञा स्त्री० [अ०] वह पुकार जो प्रायः मसजिदों के मीनारों पर मुसलमानों को नमाज के समय की सूचना देने और उन्हें मसजिद में बुलाने के लिये की जाती है। बाँग।

अज्ञुगति-संज्ञा स्त्री० दे० "अजगुत"।

अज्ञा*†-संज्ञा स्त्री० दे० "आज्ञा"। उ०—होइ अज्ञा बनवास तौ आऊँ।—जायसी।

अज्ञातस्वामिक(धन)-संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जिसके मालिक का पता न हो। जैसे,—मार्ग में पड़ा हुआ या जमीन में गड़ा धन।

अट-संज्ञा स्त्री० [हिं० अटक] प्रतिबंध। शर्त्त। कैद। जैसे,—तुम तो हर बात में एक अट लगा देते हो।

अटवाटी खटवाटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० खाट+पाटी] खाट खटोला। बोरिया बँधना। साज सामान।
मुहा०—अटवाटी खटवाटी लेकर पड़ना=खिन्न और उदासीन होकर अलग पड़ रहना। रूठ कर अलग बैठना।

अटवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जंगल। वन। (२) लंबा चौड़ा साफ मैदान।

अटवीबल-संज्ञा पुं० [सं०] जंगलियों की सेना।

अट्टसट्ट-वि० [अनु०] (१) अटपटाँग। अंड बंड। जैसे,—तुम तो सदा यों ही अट्टसट्ट बका करते हो। (२) बहुत ही साधारण या निम्न कोटि का। इधर उधर का। जैसे,—उस कोठरी में बहुत सा अट्ट सट्ट सामान पड़ा है।

अट्टालक-संज्ञा पुं० [सं०] किले का बुर्ज।

अठई∗†-संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टमी] अष्टमी तिथि। उ०—सतमी पूनिउँ या सब आछी। अठई अमावस ईसन लाछी।—जायसी।

अठाई∗†-वि० [सं० अस्थायी] उपद्रवी। उत्पाती। शरीर। उ०—हैं हरि आठहु गाँठ अठाई।—केशव।

अड़गड़ा-संज्ञा पुं० [अनु०] (१) बैल गाड़ियों और सग्गड़ों आदि के ठहरने का स्थान। (२) वह स्थान जहाँ बिक्री के लिये घोड़े, बैल आदि रहते हों।

अड़ार∗-वि० [सं० अराल] टेढ़ा। तिरछा। उ०—जग डोलै डोलत नैनाहाँ। उलटि अड़ार जाहिं पल माहाँ।—जायसी।

अड़ारना∗-क्रि० स० [हिं० डालना] डालना। देना। उ०—पीउ सुनत धनि आपु बिसारे। चित्त लखै, तनु खाइ अड़ारै।—जायसी।

अढ़वायक†-संज्ञा पुं० [?] वह जो दूसरों को काम में लगाता हो। दूसरों से काम लेनेवाला। उ०—पहिलेइ रचे चारि अढ़वायक। भए सब अढ़वैयन के नायक।—जायसी।

अढ़वैया†-संज्ञा पुं० दे० "अढ़वायक"।

अतिचार-संज्ञा पुं० [सं०] (३) तमाशबीनी का जुर्म। नाच रंग के समाजों में अधिक सम्मिलित होने का अपराध।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में जो रसिक और रँगीले बार बार निषेध करने पर भी नाचरंग के समाजों में सम्मिलित होते थे, उन पर तीन पण जुरमाना होता था। रात में ऐसे अपराध करने पर दंड और अधिक होता था। ब्राह्मण को जूठी या अपवित्र वस्तु खिला देने या दूसरे के घर में घुसने पर भी अतिचार दंड होता था।

अतिरिक्त पत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह विज्ञापन, समाचार या सूचना आदि जो अलग छाप कर किसी समाचार पत्र के साथ बाँटी जाय। क्रोड़पत्र। विशेषपत्र।

अतिव्यय कर्म-संज्ञा पुं० [सं०] फजूलखर्ची का काम।

अतिसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सामर्थ्य से अधिक सहायता देने की शर्त। (२) एक मित्र की सहायता से दूसरे मित्र या सहायक की प्राप्ति।

अतुल-संज्ञा पुं० [सं०] (४) तिलक। तिलपुष्पी। (५) कफ। श्लेष्मा। बलगम।

अत्यम्ल-संज्ञा पुं० [सं] (२) वृक्षाम्ल। विषाबिल। (३) बिजौरा नीबू।

वि० बहुत अधिक खट्टा।

अत्यय-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का जुरमाना या अर्थ दंड।

अत्यापाय-संज्ञा पुं० [सं०] राजविद्रोहियों की अधिकता।

अत्याहित कर्मा-संज्ञा पुं० [सं० अत्याहित कर्म्मन्] गुंडा। बदमाश।

अथना∗-क्रि० अ० [सं० अस्त + ना (प्रत्य०)] अस्त होना। डूबना। उ०—(क) मिलि चलि, चलि मिलि, मिलि चलत आँगन अथयो भानु। भयो मुहूरत भौर को पौरिहिं प्रथम मिलानु।—बिहारी। (ख) केइ यह बसन बसंत उँगारा। गा सो चाँद अथवा लेइ तारा।—जायसी। (ग) सूरज उवै बिहानहिं आई। पुनि सो अथै कहाँ कहँ जाई?—जायसी।

अथैया-संज्ञा स्त्री० दे० "अथाई"।

अदत्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जिसके दिए जाने पर भी लेनेवाले को उसके रखने का अधिकार न हो।

विशेष—नारद ने अदत्त के ये सोलह भेद किये हैं—१. भय—जो वस्तु डर के मारे दी गई हो। २. क्रोध—लड़के आदि पर क्रोध निकालने के लिये। ३. शोकावेग में। ४. रुक्—असाध्य रोग से घबरा कर। ५. उत्कोच—घूस के रूप में। ६. परिहास—हँसी हँसी में। ७. व्यत्यास—बढ़ावे में आकर अथवा देखा देखी। ८. छल—जो धोखे में उचित से अधिक दे दिया गया हो। ९. बाल—देनेवाला यदि बालक अर्थात् नाबालिग हो। १०. मूढ़—जो धोखे में आकर बेवकूफी से दिया गया हो। ११. अस्वतंत्र—जो दास के द्वारा या ऐसे के द्वारा दिया गया हो जिसे देने का अधिकार न हो। १२. आर्त—जो बेचैनी या दुःख से घबरा कर दिया गया हो। १३. मत्त—जो नशे की झोंक में दिया गया हो। १४. उन्मत्त—जो पागल होने पर दिया गया हो। १५. कार्य्य—जो लाभ की झूठी आशा दिखा कर प्राप्त किया गया हो और १६. अधर्म कार्य्य—धर्म के नाम पर जो अधर्म के लिये लिया गया हो।

अदिव्य-संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार के नायकों में से एक। वह नायक जो लौकिक हो। मनुष्य नायक। जैसे,—मालती माधव नाटक में माधव।

अदिव्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] तीन प्रकार की नायिकाओं में से एक। वह नायिका जो लौकिक हो। जैसे,—मालती-माधव में मालती।

अदृष्ट नर संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि या इकरार जो दूसरे के साथ इस आशय से किया जाय कि वह किसी तीसरे से कोई काम सिद्ध करा देगा।

अदेय-वि० [सं०] (२) (वह पदार्थ) जिसे देने को कोई बाध्य न किया जा सके।

विशेष—नारद के अनुसार अन्वाहित, याचितक, रोग में प्रतिज्ञात, सामान्य पदार्थ, स्त्री, पुत्र, परिवार होने पर सर्वस्व, तथा निक्षेप ये आठ पदार्थ नहीं देने चाहिएँ। इनको प्रतिज्ञा कर चुकने पर भी न दे। ऐसा करने पर वह राज्यापराधी न समझा जायगा। (नारद-स्मृ० ४।४-५) दक्ष के मत से स्त्री की संपत्ति को भी अदेय समझना चाहिए।

'मनु ने लिखा है कि 'जो लोग अदेय को ग्रहण करते हैं या दूसरे व्यक्ति को देते हैं, उनको चोर के सदृश ही समझना चाहिए।' यही बात नारद ने पुष्ट की है (ना. स्मृ० ४-१२) याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि स्त्री पुत्र को छोड़कर अन्य पदार्थों को कुटुम्ब की आज्ञा से दे सकता है (या० स्मृति २-१७५)। इसी के सदृश वसिष्ठ का मत है कि 'इकलौते पुत्र को न कोई ले सकता है और न दे सकता है' (व० स्मृ० १५. ३-४)। वसिष्ठ को ही कात्यायन भी पुष्ट करता है। वह लिखता है कि स्त्रीपुत्र पर मिल्कीयत शासन के मामले में है, न कि दान के मामले में।

अद्रिजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) सिंहली पीपल।

अद्वैध्य मित्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र (व्यक्ति या राष्ट्र) जिसकी मित्रता में किसी प्रकार का संदेह न हो।

विशेष—वह जिसकी मैत्री स्वार्थवश न हो, जो स्थिरचित्त, सुशील और उपकारी हो तथा विपत्ति पड़ने पर जिसके साथ छोड़ने की आशंका न हो अद्वैध्य मित्र है।

अधः–संज्ञा स्त्री० [सं०] दस दिशाओं में से एक। पैर के ठीक नीचे की दिशा।

अधकहा–वि० [हिं० आधा + कहना] आधा कहा हुआ। अस्पष्ट रूप से या आधा उच्चारण किया हुआ। उ०—गहकि गाँसु औरै गहै, रहैं अधकहैं बैन। देखि खिसौंहैं पिय-नयन किए रिसौंहैं नैन।—बिहारी।

अधचना†–संज्ञा पुं० [हिं० आधा + चना] गेहूँ और चने का मिश्रण। वह मिश्रण जिसमें आधा चना और आधा गेहूँ हो।

अधनियाँ–वि० [हिं० आधा + आना + इया (प्रत्य०)] आध आने का। आध आनेवाला। जैसे—अधनियाँ टिकट।

अधन्नी–संज्ञा स्त्री० दे० "अंधन्ना"।

अधर–संज्ञा पुं० [सं०] (३) भग या योनि के दोनों पार्श्व।

अधर्म मंत्र युद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्ध जो दोनों ओर के लोगों को नष्ट करने के लिये ही छेड़ा गया हो।

अधवाना†–संज्ञा पुं० [हिं० हिदवाना] तरबूज।

अधस्स्वस्तिक–संज्ञा पुं० [सं०] नीचे की ओर का वह स्थान या बिन्दु जो पृथ्वी पर के किसी स्थान या बिन्दु के ठीक नीचे हो। शीर्ष बिन्दु से ठीक वपरीत दिशा का बिन्दु जो क्षितिज का दक्षिणी ध्रुव है।

अधान्यवाप–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान या उपनिवेश जिसमें धान न पैदा होता हो।

विशेष—चाणक्य के अनुसार जलयुक्त उपनिवेश में भी वही उपनिवेश या प्रदेश उत्तम है जिसमें धान पैदा होता हो। परन्तु यदि धान पैदा करनेवाला उपनिवेश छोटा हो और धान न पैदा करनेवाला उपनिवेश बहुत बड़ा हो, तो दूसरा ही ठीक है।

अधार–संज्ञा पुं० दे० "आधार"।

अधिकार–संज्ञा पुं० [सं०] (७) नाट्य-शास्त्र के अनुसार रूपक के प्रधान फल का स्वामित्व या उसकी प्राप्ति की योग्यता।

अधिकारी–संज्ञा पुं० [सं०] (४) नाट्य-शास्त्र के अनुसार नाटक का वह पात्र जिसे रूपक का प्रधान फल प्राप्त होता है।

अधिबल–संज्ञा पुं० [सं०] गर्भसंधि के तेरह अंगों में से एक। वह धोखा जो किसी को वेष बदले हुए देख कर होता है। (नाट्य-शास्त्र)

अधियान–संज्ञा पुं० [हिं० आधा] (२) छोटी माला। सुमिरनी।

अधियारिन†–संज्ञा स्त्री० [हिं० आधा + इयारिन (प्रत्य०)] (१) सौत। सपत्नी। (२) बराबरी का दावा रखने और आधे हिस्से की हिस्सेदार स्त्री।

अधीननाॐ–क्रि० अ० [सं० अधीन + ना (प्रत्य०)] अधीन होना। वश में होना। उ०—यह सुनि कंस खड्ग लै धायो तब देवै आधीनी हो। यह कन्या जो बकसु बन्धु मोहिं दासी जानि कर दीन्ही हो—सूर।

अधीसारक–संज्ञा पुं० [सं०] वेश्याओं के पास बारंबार जानेवाला।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में इनको कठोर दंड दिया जाता था।

अधेली–संज्ञा स्त्री० [हिं० आधा + एला (प्रत्य०)] आधा रुपया। आठ आने का सिक्का। अठन्नी।

अधौरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो हिमालय की तराई में जम्मू से आसाम तक और दक्षिण भारत तथा बरमा के जंगलों में अधिकता से पाया जाता है। इसकी छाल चिकनी और खाकी रंग की होती है। इसकी छाल और पत्तियाँ चमड़ा सिझाने के काम में आती हैं और लकड़ी से हल तथा नावें बनती हैं। इसकी लकड़ी का कोयला भी अच्छा होता है। यह चैत से जेठ तक फूलता और वर्षा ऋतु में फलता है। फल बहुत समय तक वृक्ष पर रहते हैं। इसकी छाल से एक प्रकार का मीठा और खाने योग्य गोंद निकलता है। बकली। धौरा। धोज।

अध्वग–संज्ञा पुं० [सं०] (४) सफेद मदार। श्वेतार्क। (५) क्षीरिका। खिरनी।

अध्वग–संज्ञा पुं० [सं०] (२) ऊँट।

अध्वनिवेश–संज्ञा पुं० [सं०] पड़ाव।

अनकाढ़ा–वि० [हिं० अन (प्रत्य०) + काढ़ना = निकालना] बिना निकाला हुआ। उ०—साकहिं मरे चढ़े अनकाढ़े।—जायसी।

अनखाहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० अनखना + आहट (प्रत्य०)] अनखने या क्रोध दिखलाने की क्रिया या भाव। अनख। उ०—मारयौ मनुहारिनु भरी गारयौ खरी मिठाहिं। वाकौ अति अनखाहटौ मुसकाहट बिनु नाहिं।—बिहारी।

अनखुला-वि० [हिं० अन (प्रत्य०) + खुलना] (१) जो खुला न हो। बंद। (२) जिसका कारण प्रकट न हो। उ०—केसरि केसरि-कुसुम के रहे अंग लपटाइ। लगे आनि नख अनखुली कत बोलत अनखाइ।—बिहारी।

अनगवनाॐ-क्रि० अ० [हिं० अन + अगवना = आगे होना] जान बूझ कर देर करना। विलंब करना। उ०—मुँहु धोवति एड़ी घसति हसति अनगवति तीर। धसति न इंदीवर नयनि कालिंदी कैं नीर।—बिहारी।

अनगानाॐ†-क्रि० अ० [हिं० अन + अगवना = आगे बढ़ना] (१) विलंब करना। देर करना। (२) टाल मटोल करना।

अनचाखा-वि० [हिं० अन + चखना] बिना चखा या खाया हुआ। उ०—दारिउँ दाख फुटे अनचाखे।—जायसी।

अनध्यास-वि० [?] भूला हुआ। विस्मृत।

अनन्याधिकार-संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिसके बेचने या बनाने का किसी एक व्यक्ति या कंपनी को ही अधिकार हो। पेटेंट। इजारा।

अनपाकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा के काम न करना। इकरार के मुताबिक तनखाह या मजदूरी न देना। जैसे—मजदूरी न देना, दी हुई वस्तु लौटा लेना।

विशेष—स्मृतियों तथा कौटिलीय अर्थशास्त्र में इसका प्रयोग इसी अर्थ में है। अनपाकर्म संबंधी झगड़ा दो प्रकार का है। एक तो वेतन संबंधी और दूसरा दान संबंधी। पराशर ने लिखा है कि श्रमी या भृत्य को उसके काम के बदले वेतन न देना या वेतन देकर लौटा लेने का नाम वेतनस्यानपाकर्म है। इसी प्रकार दिए हुए माल को लौटाना और ग्रहण किए हुए माल को देना दत्तस्यानपाकर्म है।

अनपाकर्म विवाद-संज्ञा पुं० [सं०] मजदूरों और काम करानेवाले पूँजीपतियों के बीच वेतन संबंधी झगड़ा।

विशेष—नारद ने लिखा है कि कर्मस्वामी अर्थात् पूँजीपति भृत्यों को निश्चित की हुई भृति दे। (ना० स्मृ० ६०२)

अनफाँस-संज्ञा पुं० [हिं० अन + फाँस = पाश] मोक्ष। मुक्ति। उ०—जेकर पास अनफाँस, कहु हिय फिकिर सँभारि के।—जायसी।

अनमायाॐ-वि० [हिं० अन (प्रत्य०) + मापना = मापना] जिसकी माप न हो सकती हो। न नापा जाने योग्य। उ०—भेंटी मातु भरत भरतानुज क्यों कहौं प्रेम अमित अनमायो।—तुलसी।

अनरसौं†-क्रि० वि० दे० "अतरसौं"।

अनरुच-वि० [हिं० अन + रुचि] जो पसंद न हो। न रुचनेवाला। अरुचिकर। उ०—दसन गए कै पचा कपोला। बैन गए अनरुच देइ बोला।—जायसी।

अनर्घ क्रय-संज्ञा पुं० [सं०] बाजारी कीमत से अधिक या कम कीमत पर खरीदना।

अनर्घ विक्रय-संज्ञा पुं० [सं०] बाजारी कीमत से अधिक कीमत या कम कीमत पर बेचना। (चाणक्य ने इस अपराध में १००० पण दंड लिखा है।)

अनर्जित आय-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह आय या लाभ जो वस्तु के एकाएक महँगे हो जाने पर उसके उत्पन्न करने या बेचनेवाले को हो जाय अर्थात् जिसकी संभावना पहले न रही हो।

अनर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (४) भय की प्राप्ति।

अनर्थ-अनर्थानुबंध-संज्ञा पुं० [सं०] किसी शक्तिशाली राजा को लड़ने के लिये उभाड़ कर आप अलग हो जाना। यह अर्थ के भेदों में से है।

अनर्थ-अर्थानुबंध-संज्ञा पुं० [सं०] अपने लाभ के लिये शत्रु या पड़ोसी को धन तथा सैन्य (कोश-दण्ड) द्वारा सहायता पहुँचाना।

अनर्थ निरनुबंध-संज्ञा पुं० [सं०] किसी हीन शक्तिवाले राजा को उभाड़ कर तथा लड़ने के लिये प्रोत्साहित कर स्वयं पृथक् हो जाना। यह अर्थ के भेदों में से है।

अनर्थसंशयापद्-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रुओं के साथ मित्रों की लड़ाई का अवसर।

अनर्थसिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] चल मित्र तथा आक्रंद (वह मित्र जो शत्रु या विजिगीषु के आश्रय में हो) का मेल या संधि।

अनर्थानुबन्ध-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु का इस प्रकार नाश न होना कि अनर्थ की आशंका मिट जाय।

अनर्थापद्-संज्ञा पुं० [सं०] चारो ओर से शत्रुओं का भय।

अनर्थार्थसंशय-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी स्थिति जिसमें एक ओर तो अर्थ प्राप्ति की संभावना हो और दूसरी ओर अनर्थ की आशंका।

अनवसित संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] औपनिवेशिक संधि। जंगल या ऊसर जमीन बसाने के संबंध में दो पुरुषों या राष्ट्रों की संधि।

विशेष—औपनिवेशिक संधि के विषय में चाणक्य ने लिखा है कि यह प्रायः विवादग्रस्त विषय है कि स्थलीय या जलप्राय भूमि में उपनिवेश की दृष्टि से कौन सी भूमि उत्तम है। साधारणतः जलप्रायः भूमि ही उत्तम है।

अनामेल-संज्ञा पुं० दे० "एनामेल"।

अनार-संज्ञा पुं० [फा०] (३) वह रस्सी जिसमें दो छप्पर एक साथ मिला कर बाँधे जाते हैं।

अनारकिस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो राज्य में विद्रोह को उत्तेजन दे या अशांति उत्पन्न करे। वह जो राज्य या राज्य-व्यवस्था अथवा सामाजिक व्यवस्था उलट देना चाहता हो। अराजक। विप्लवपंथी।

अनार्की-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) राज्य या राजा न रहने की

अवस्था। शासन या राज्य व्यवस्था का अभाव। शांति और व्यवस्था का अभाव। राजनीतिक उथल पुथल। अराजकता। विप्लव। (२) एक मतवाद जिसके अनुसार समाज तभी पूर्णता को प्राप्त होगा जब राज्य या शासन व्यवस्था न रहेगी और पूर्ण व्यक्ति-स्वातंत्र्य हो जायगा। अराजकवाद।

अनिदिष्ट सैन्य-संज्ञा पुं० [सं०] तोड़ी या सेना से अलग की हुई सेना। अपसृत सैन्य।

अनित्यसम-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक। यदि कोई कहे कि घट का सादृश्य शब्द में है, इससे घट की भाँति शब्द भी अनित्य होगा। तो इस पर यह कहना कि किसी न किसी बात में घट का सादृश्य सभी वस्तुओं में होगा। तो क्या फिर सभी वस्तुएँ अनित्य होंगी? इसी प्रकार का उत्तर अनित्यसम कहलाता है।

अनिभृत संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] यदि कोई राजा किसी दूसरे राजा की बहुत ही अधिक उपजाऊ भूमि को खरीदना चाहता हो और दूसरा राजा उस भूमि को उसको देकर संधि कर ले तो ऐसी संधि को अनिभृत संधि कहते हैं।

अनियाउ*-संज्ञा पुं० दे० "अन्याय"। उ०—सत्य कहहु तुम मोसौं दहूँ काकर अनियाउ।—जायसी।

अनिर्दिष्ट भोग-संज्ञा पुं० [सं०] दूसरे के पशु, भूमि या और पदार्थों को मालिक की आज्ञा के बिना काम में लाना।

विशेष—इस प्रकार दूसरे की वस्तु का व्यवहार करनेवाला चोर के तुल्य ही कहा गया है। स्मृतियों में इस दोष के करनेवाले के लिये भिन्न भिन्न अर्थदंड हैं।

अनिर्वाह्य पण्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ या माल जिसका राज्य या नगर के भीतर लाया जाना बंद किया गया हो।

अनिल-संज्ञा पुं० [सं०] (२) सागौन का वृक्ष।

अनिष्कासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्देनशीन औरत।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में यह नियम था कि पर्देनशीन औरतों से घरों के भीतर ही काम लिया जाता था और उनको वहीं पर वेतन पहुँचा दिया जाता था।

अनिष्टप्रवृत्तिक-वि० [सं०] राष्ट्र या राज्य के अनिष्ट-साधन में तत्पर। बागी।

विशेष—चाणक्य के समय में इन्हें अग्नि में जलाने का दण्ड मिलता था।

अनिसृष्ट-वि० [सं०] (१) जिसने आज्ञा या अधिकार न प्राप्त किया हो। (२) जिसके व्यवहार या उपयोग की आज्ञा न ले ली गई हो।

अनिसृष्टोपभोक्ता-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बिना मालिक की आज्ञा के धरोहर रखी हुई वस्तु काम में लावे।

अनीस-वि० [?] जिसका कोई रक्षक न हो। अनाथ। उ०—बाल-दसा जैते दुख पाए। अति अनीस नहिं जाए गनाए।—तुलसी।

अनु-अव्य० [?] हाँ। ठीक है। उ०—(क) तुम अनु गुपुत मते तस सेऊ। ऐसन भेउ न जानै केऊ।—जायसी। (ख) अनु तुम कही नीक यह सोभा। पै फुल सोइ भँवर जेहि लोभा।—जायसी।

अनुकूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) दंती वृक्ष।

अनुग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] (३) राज्य या राजा की कृपा से प्राप्त सहायता। सरकारी रिआयत।

अनुज्ञातक्रय-संज्ञा पुं० [सं०] सरकार की ओर से दिया हुआ कुछ वस्तुओं को बेचने का ठेका।

अनुताप-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार दस क्लेशों में से एक।

अनुत्पत्तिसम-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक। यदि किसी वस्तु के प्रसंग में कोई हेतु कहा जाय और उत्तर में उसी वस्तु के प्रसंग में यह कहा जाय कि जब तक उस वस्तु की उत्पत्ति ही नहीं हुई, तब यह कहा हुआ हेतु कहाँ रहेगा? तो ऐसे उत्तर को अनुत्पत्तिसम कहेंगे। जैसे—यदि वादी कहे—"शब्द अनित्य है; क्योंकि प्रयत्न से उत्पन्न होता है।" इस पर प्रतिवादी कहे—"यदि शब्द प्रयत्न से उत्पन्न होता है, तो प्रयत्न से पहले इसकी उत्पत्ति नहीं होगी। और जब शब्द उत्पन्न ही नहीं हुआ, तब प्रयत्न से उत्पन्न होने का गुण कहाँ पर रहेगा? जब इस गुण का आधार भी नहीं रहा, तब वह अनित्यत्व का साधन कैसे कर सकता है?" इसी प्रकार का उत्तर अनुत्पत्तिसम कहलाता है।

अनुद्रुत-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ताल का एक भेद।

अनुपकारी मित्र-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु राजा का मित्र।

अनुपलब्धि सम-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक। यदि वादी किसी बात के न पाए जाने के आधार पर कोई बात सिद्ध करना चाहता है, और उसके उत्तर में प्रतिवादी किसी और बात के न पाए जाने के आधार पर उसके विपरीत बात सिद्ध करने का प्रयत्न करता है, तो ऐसे उत्तर को अनुपलब्धिसम कहते हैं।

अनुपाश्रया भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जो बसनेवालों के अतिरिक्त और दूसरों को आश्रय देने में असमर्थ हो अर्थात् जिसमें और लोगों के बसने की गुंजाइश न हो।

अनुरक्त-प्रकृति-वि० [सं०] (राजा) जिसकी प्रजा उसमें अनुरक्त हो। प्रजा-प्रिय।

अनुरूपा सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्रों, भाई, बंधुओं आदि को साम दान आदि द्वारा वश में करना।

अनुलोमा सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पौर जानपद तथा सेनापतियों को दान तथा भेद से अपने अनुकूल करना।

अनखुला-वि० [हिं० अन (प्रत्य०)+खुलना] (१) जो खुला न हो। बंद। (२) जिसका कारण प्रकट न हो। उ०—केसरि केसरि-कुसुम के रहे अंग लपटाइ। लगे जानि नख अनखुली कत बोलत अनखाइ।—बिहारी।

अनगवनाॐ-क्रि० अ० [हिं० अन+अगवना = आगे होना] जान बूझ कर देर करना। विलंब करना। उ०—मुँह धोवति एड़ी घसति हसति अनगवति तीर। धसति न इंदीवर नयनि कालिंदी कैं नीर।—बिहारी।

अनगानाॐ†-क्रि० अ० [हिं० अन+अगवना = आगे बढ़ना] (१) विलंब करना। देर करना। (२) टाल मटोल करना।

अनचाखा-वि० [हिं० अन+चखना] बिना चखा या खाया हुआ। उ०—दारिउँ दाख फुटे अनचाखे।—जायसी।

अनध्यास-वि० [?] भूला हुआ। विस्मृत।

अनन्याधिकार-संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिसके बेचने या बनाने का किसी एक व्यक्ति या कंपनी को ही अधिकार हो। पेटेंट। इजारा।

अनपाकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा के काम न करना। इकरार के मुताबिक तनखाह या मजदूरी न देना। जैसे—मजदूरी न देना, दी हुई वस्तु लौटा लेना।

विशेष—स्मृतियों तथा कौटिलीय अर्थशास्त्र में इसका प्रयोग इसी अर्थ में है। अनपाकर्म संबंधी झगड़ा दो प्रकार का है। एक तो वेतन संबंधी और दूसरा दान संबंधी। पराशर ने लिखा है कि धर्मा या भृत्य को उसके काम के बदले वेतन न देना या वेतन देकर लौटा लेने का नाम वेतनस्यानपाकर्म है। इसी प्रकार दिए हुए माल को लौटाना और ग्रहण किए हुए माल को देना दत्तस्यानपाकर्म है।

अनपाकर्म विवाद-संज्ञा पुं० [सं०] मजदूरों और काम करानेवाले पूँजीपतियों के बीच वेतन संबंधी झगड़ा।

विशेष—नारद ने लिखा है कि कर्मस्वामी अर्थात् पूँजीपति भृत्यों को निश्चित की हुई भृति दे। (ना० स्मृ० ६०२)

अनफाँस-संज्ञा पुं० [हिं० अन+फाँस = पाश] मोक्ष। मुक्ति। उ०—जेकर पास अनफाँस, कहु हिय फिकिर सँभारि के।—जायसी।

अनमायाॐ-वि० [हिं० अन (प्रत्य०)+मापना = मापना] जिसकी माप न हो सकती हो। न नापा जाने योग्य। उ०—भेंटी मातु भरत भरतानुज क्यों कहौं प्रेम अमित अनमायो।—तुलसी।

अनरसौं†-क्रि० वि० दे० "अतरसों"।

अनरुच-वि० [हिं० अन+रुचि] जो पसंद न हो। न रुचनेवाला। अरुचिकर। उ०—दसन गए कै पचा कपोला। बैन गए अनरुच देइ बोला।—जायसी।

अनर्घ क्रय-संज्ञा पुं० [सं०] बाजारी कीमत से अधिक या कम कीमत पर खरीदना।

अनर्घ विक्रय-संज्ञा पुं० [सं०] बाजारी कीमत से अधिक कीमत या कम कीमत पर बेचना। (चाणक्य ने इस अपराध में १००० पण दंड लिखा है।)

अनर्जित आय-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह आय या लाभ जो वस्तु के एकाएक महँगे हो जाने पर उसके उत्पन्न करने या बेचनेवाले को हो जाय अर्थात् जिसकी संभावना पहले न रही हो।

अनर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (४) भय की प्राप्ति।

अनर्थ-अनर्थानुबंध-संज्ञा पुं० [सं०] किसी शक्तिशाली राजा को लड़ने के लिये उभाड़ कर आप अलग हो जाना। यह अर्थ के भेदों में से है।

अनर्थ-अर्थानुबंध-संज्ञा पुं० [सं०] अपने लाभ के लिये शत्रु या पड़ोसी को धन तथा सैन्य (कोश-दण्ड) द्वारा सहायता पहुँचाना।

अनर्थ निरनुबंध-संज्ञा पुं० [सं०] किसी हीन शक्तिवाले राजा को उभाड़ कर तथा लड़ने के लिये प्रोत्साहित कर स्वयं पृथक् हो जाना। यह अर्थ के भेदों में से है।

अनर्थसंशयापद्-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रुओं के साथ मित्रों की लड़ाई का अवसर।

अनर्थसिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] चल मित्र तथा आक्रंद (वह मित्र जो शत्रु या विजिगीषु के आश्रय में हो) का मेल या संधि।

अनर्थानुबन्ध-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु का इस प्रकार नाश न होना कि अनर्थ की आशंका मिट जाय।

अनर्थापद्-संज्ञा पुं० [सं०] चारो ओर से शत्रुओं का भय।

अनर्थार्थसंशय-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी स्थिति जिसमें एक ओर तो अर्थ प्राप्ति की संभावना हो और दूसरी ओर अनर्थ की आशंका।

अनवसित संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] औपनिवेशिक संधि। जंगल या ऊसर जमीन बसाने के संबंध में दो पुरुषों या राष्ट्रों की संधि।

विशेष—औपनिवेशिक संधि के विषय में चाणक्य ने लिखा है कि यह प्रायः विवादग्रस्त विषय है कि स्थलीय या जलप्राय भूमि में उपनिवेश की दृष्टि से कौन सी भूमि उत्तम है। साधारणतः जलप्रायः भूमि ही उत्तम है।

अनामेल-संज्ञा पुं० दे० "एनामेल"।

अनार-संज्ञा पुं० [फा०] (२) वह रस्सी जिसमें दो छप्पर एक साथ मिला कर बाँधे जाते हैं।

अनारकिस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो राज्य में विद्रोह को उत्तेजन दे या अशांति उत्पन्न करे। वह जो राज्य या राज्य-व्यवस्था अथवा सामाजिक व्यवस्था उलट देना चाहता हो। अराजक। विप्लवपंथी।

अनार्की-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) राज्य या राजा न रहने की

अवस्था। शासन या राज्य व्यवस्था का अभाव। शांति और व्यवस्था का अभाव। राजनीतिक उथलपुथल। अराजकता। विप्लव। (२) एक मतवाद जिसके अनुसार समाज तभी पूर्णता को प्राप्त होगा जब राज्य या शासन व्यवस्था न रहेगी और पूर्ण व्यक्ति-स्वातंत्र्य हो जायगा। अराजकवाद।

अनिक्षिप्त सैन्य-संज्ञा पुं० [सं०] तोड़ी या सेवा से अलग की हुई सेना। अपसृत सैन्य।

अनित्यसम-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक। यदि कोई कहे कि घट का सादृश्य शब्द में है, इससे घट की भाँति शब्द भी अनित्य होगा। तो इस पर यह कहना कि किसी न किसी बात में घट का सादृश्य सभी वस्तुओं में होगा। तो क्या फिर सभी वस्तुएँ अनित्य होंगी ? इसी प्रकार का उत्तर अनित्यसम कहलाता है।

अनिभृत संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] यदि कोई राजा किसी दूसरे राजा की बहुत ही अधिक उपजाऊ भूमि को खरीदना चाहता हो और दूसरा राजा उस भूमि को उसको देकर संधि कर ले तो ऐसी संधि को अनिभृत संधि कहते हैं।

अनियाउ*-संज्ञा पुं० दे० "अन्याय"। उ०—सत्य कहहु तुम मोसौं दहूँ काकर अनियाउ।—जायसी।

अनिर्दिष्ट भोग-संज्ञा पुं० [सं०] दूसरे के पशु, भूमि या और पदार्थों को मालिक की आज्ञा के बिना काम में लाना।

विशेष—इस प्रकार दूसरे की वस्तु का व्यवहार करनेवाला चोर के तुल्य ही कहा गया है। स्मृतियों में इस दोष के करनेवाले के लिये भिन्न भिन्न अर्थदंड हैं।

अनिर्वाह्य पण्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ या माल जिसका राज्य या नगर के भीतर लाया जाना बंद किया गया हो।

अनिल-संज्ञा पुं० [सं०] (२) साखीन का वृक्ष।

अनिष्कासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्देनशीन औरत।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में यह नियम था कि पर्देनशीन औरतों से घरों के भीतर ही काम लिया जाता था और उनको वहीं पर वेतन पहुँचा दिया जाता था।

अनिष्टप्रवृत्तिक-वि० [सं०] राष्ट्र या राज्य के अनिष्ट-साधन में तत्पर। बागी।

विशेष—चाणक्य के समय में इन्हें अग्नि में जलाने का दण्ड मिलता था।

अनिसृष्ट-वि० [सं०] (१) जिसने आज्ञा या अधिकार न प्राप्त किया हो। (२) जिसके व्यवहार या उपयोग की आज्ञा न ले ली गई हो।

अनिसृष्टोपभोक्ता-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बिना मालिक की आज्ञा के धरोहर रखी हुई वस्तु काम में लावे।

अनीस-वि० [?] जिसका कोई रक्षक न हो। अनाथ। उ०—बालदसा जेते दुख पाए। अति अनीस नहिं जाए गनाए।—तुलसी।

अनु-अव्य० [?] हाँ। ठीक है। उ०—(क) तुम अनु गुपुत मते तस सेऊ। ऐसन सेउ न जानै केऊ।—जायसी। (ख) अनु तुम कही नीक यह सोभा। पै फुल सोइ भँवर जेहि लोभा।—जायसी।

अनुकूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) दंती वृक्ष।

अनुग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] (३) राज्य या राजा की कृपा से प्राप्त सहायता। सरकारी रिआयत।

अनुज्ञातक्रय-संज्ञा पुं० [सं०] सरकार की ओर से दिया हुआ कुछ वस्तुओं को बेचने का ठेका।

अनुत्ताप-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार दस क्लेशों में से एक।

अनुत्पत्तिसम-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक। यदि किसी वस्तु के प्रसंग में कोई हेतु कहा जाय और उत्तर में उसी वस्तु के प्रसंग में यह कहा जाय कि जब तक उस वस्तु की उत्पत्ति ही नहीं हुई, तब वह कहा हुआ हेतु कहाँ रहेगा ? तो ऐसे उत्तर को अनुत्पत्तिसम कहेंगे। जैसे—यदि वादी कहे—"शब्द अनित्य है, क्योंकि प्रयत्न से उत्पन्न होता है।" इस पर प्रतिवादी कहे—"यदि शब्द प्रयत्न से उत्पन्न होता है, तो प्रयत्न से पहले इसकी उत्पत्ति नहीं होगी। और जब शब्द उत्पन्न ही नहीं हुआ, तब प्रयत्न से उत्पन्न होने का गुण कहाँ पर रहेगा ? जब इस गुण का आधार भी नहीं रहा, तब वह अनित्यत्व का साधन कैसे कर सकता है ?" इसी प्रकार का उत्तर अनुत्पत्तिसम कहलाता है।

अनुद्रुत-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ताल का एक भेद।

अनुपकारी मित्र-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु राजा का मित्र।

अनुपलब्धि सम-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक। यदि वादी किसी बात के न पाए जाने के आधार पर कोई बात सिद्ध करना चाहता है, और उसके उत्तर में प्रतिवादी किसी और बात के न पाए जाने के आधार पर उसके विपरीत बात सिद्ध करने का प्रयत्न करता है, तो ऐसे उत्तर को अनुपलब्धिसम कहते हैं।

अनुपाश्रया भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जो बसनेवालों के अतिरिक्त और दूसरों को आश्रय देने में असमर्थ हो अर्थात् जिसमें और लोगों के बसने की गुंजाइश न हो।

अनुरक्त-प्रकृति-वि० [सं०] (राजा) जिसकी प्रजा उसमें अनुरक्त हो। प्रजा-प्रिय।

अनुरूपा सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्रों, भाई, बंधुओं आदि को साम दान आदि द्वारा पक्ष में करना।

अनुलोमा सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पौर जानपद तथा सेनापतियों को दान तथा भेद से अपने अनुकूल करना।

अनुशतिक–संज्ञा पुं० [सं०] सौ से अधिक सैनिकों का नायक। सौ से ज्यादा सिपाहियों का अफसर।

विशेष—इसका स्थान शतानीकों के ऊपर होता था जिन्हें यह सैनिक शिक्षा देता था।

अनुशय–संज्ञा पुं० [सं०] काम से ली हुई छुट्टी। रुखसत।

विशेष—चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में इसके संबंध में बहुत से नियम दिए हैं।

अनुशय–संज्ञा पुं० [सं०] (२) दान-संबंधी झगड़ों का निर्णय, फल या फैसला। (अर्थशास्त्र)

अनुशयी–संज्ञा पु० [सं० अनुशयिन्] वह राजकर्मचारी जो दान संबंधी झगड़ों का निर्णय करता था। (अर्थशास्त्र)

अनूदर्या–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव जो ४८ हाथ लम्बी, २४ हाथ चौड़ी और २४ ही हाथ ऊँची होती थी।

अनूपग्राम–संज्ञा पुं० [सं०] नदी के किनारे का गाँव।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में यह राजनियम था कि बरसात के दिनों में ऐसे गाँव के लोगों को नदी का किनारा छोड़ कर किसी दूसरे दूरवर्त्ती स्थान पर बसना पड़ता था।

अनृतुप्राप्त सैन्य–संज्ञा पुं० [सं] वह सेना जिसके अनुकूल ऋतु न पड़ती हो।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार ऐसी सेना ऋतु के अनुकूल वस्त्र, अस्त्र, कवच आदि का प्रबंध हो जाने पर युद्ध कर सकती है, पर अभूमि प्राप्त (अनुपयुक्त भूमि में फँसी) सैन्य युद्ध करने में असमर्थ हो जाती है।

अनेता–संज्ञा पुं० [देश०] मालती नाम की लता। (देहरादून)

अनौधि–क्रि० वि० [हिं० अन + अवधि] शीघ्र। जल्दी।

अन्यक्रीत–वि० [सं०] दूसरे का खरीदा हुआ।

अन्यजात–वि० [सं०] खोई हुई या नष्ट (वस्तु)।

अन्यथावादी–संज्ञा पुं० [सं० अन्यथावादिन्] बिना चुंगी या महसूल दिए ही माल ले जानेवाला। (अर्थशास्त्र)

अन्यसंभूय क्रय–संज्ञा पुं० [सं०] थोक का दूसरा दाम जो पहले दाम पर न बिकने पर लगाया जाय।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में बहुत से पदार्थ ऐसे थे जिनकी बिक्री राज्य की ओर से ही होती थी।

अन्याय–संज्ञा पुं० [सं०] सेना के किसी एक अंग की अधिकता। (अर्थशास्त्र)

अन्वायन–संज्ञा पुं० [सं०] वह सामान जो वधू अपने पिता के घर से लाई हो।

अन्वाहित–संज्ञा पुं० [सं०] (२) निक्षेप या न्यास के धन को एक महाजन के यहाँ से उठा कर दूसरे के यहाँ रखने का विधान।

अन्हरा–संज्ञा पुं० [सं० अंध] अंधा। नेत्रहीन।

अपःप्रवेशन–संज्ञा पुं० [सं०] पानी में डुबा कर मारने का दंड जो राज-विद्रोही ब्राह्मणों को दिया जाता था। (कौ०)

अपकर्ष सम–संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक। दृष्टांत में जो न्यूनताएँ हों, उनका साध्य में आरोप करना। जैसे,—यह कहना—"यदि घट का सादृश्य शब्द में है, तो जिस प्रकार घट का प्रत्यक्ष श्रवणेंद्रिय से नहीं होता, उसी प्रकार शब्द का भी श्रवणेंद्रिय से प्रत्यक्ष नहीं होता।"

अपक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो राज्य के पक्ष में न हो। (२) जिससे राज्य को कोई लाभ न हो। (३) वह जिसका किसी से हेल मेल न हो। वह जो किसी के साथ मिल जुल कर न रह सकता हो।

विशेष—चाणक्य ने ऐसे मनुष्यों के लिये लिखा है कि उन्हें कहीं अलग अपना उपनिवेश बसाने के लिये भेज देना चाहिए।

अपचरित प्रकृति–संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जिसकी प्रजा अत्याचार से तंग हो।

अपती–संज्ञा स्त्री० [देश०] प्रायः एक बालिश्त चौड़ा एक तख्ता जो नाव की लंबाई में मरिया के दोनों सिरों पर लगाया जाता है। (मल्लाह)

अपना–सर्व० [हिं० अपना] हम। (मध्यप्रदेश)

अपनय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनीति। (२) संधि आदि उचित रीति पर न करने का व्यवहार जिससे विपत्ति की संभावना हो जाती है। (अर्थशास्त्र)

अपनर्मक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हार।

अपना–सर्व० [सं० आत्मनो] (२) आप। निज। जैसे,—अपने को, अपने में, अपने पर।

अपनाइयत–संज्ञा स्त्री० दे० "अपनायत"।

अपनायत–संज्ञा स्त्री० [हिं० अपना + यत (प्रत्य०)] (१) अपना होने का भाव। अपनापन। आत्मीयता। (२) आपसदारी का संबंध। बहुत पास का रिश्ता।

अपराधी-साक्षी–संज्ञा पुं० [सं०] किसी अपराध के मामले का वह अभियुक्त जो अपना अपराध स्वीकार करता है और अपने साथी या साथियों के विरुद्ध गवाही देता है। वह अभियुक्त या अपराधी जो सरकारी गवाह हो जाता है। इकबाली गवाह। मुनजरिम इकरारी। सरकारी गवाह।

अपरिपणित संधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की कपट-संधि जो केवल धोखे में रखने के लिये की जाय।

विशेष—ढंग यह है कि किसी अभिमानी, मूर्ख, आलसी या दुर्व्यसनी राजा को यदि नीचा दिखाना हो तो उससे यों ही कहता रहे कि "हम तुम तो एक हैं" पर किसी प्रयोजन की बात न करे। इस प्रकार उसे संधि के विश्वास में रख उसकी कमजोरियों का पता लगाता रहे और मौका पड़ने

पर उस पर आक्रमण कर दे। इस कपट संधि का उपयोग दो सामंत राजाओं को लड़ा कर उनके राज्य को हड़प करने के लिये भी हो सकता है। (कौ०)

अपरेटस–संज्ञा पुं० [अं०] वह यंत्र जो किसी विशेष कार्य या परीक्षा-कार्य के लिये बना हो। यंत्र। औजार। परीक्षा-यंत्र।

अपसृत–वि० [सं०] युद्ध से भागा हुआ। भगोड़ा।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार अपसृत और अनिक्षिप्त (सेवा से अलग किए हुए या देश से निकाले हुए) सैनिकों में अपसृत अच्छे हैं। इनसे युद्ध में फिर काम लिया जा सकता है।

अपसौना†–क्रि० अ० [?] जाना। पहुँचना। प्राप्त होना।
उ०—(क) जीव काढ़ि लै तुम्ह अपसई। वह भा कया जीव तुम भई।—जायसी। (ख) जनु जमकात करहिं सब भवाँ। जिउ लेइ चहहिं सरग अपसवाँ।—जायसी।

अपहरण–संज्ञा पुं० [सं०] (४) महसूली माल को दूसरी वस्तुओं में छिपा कर महसूल से बचाना। (कौ०)

अपेक्षाकृत–क्रि० वि० [सं० अपेक्षा + कृत] मुकाबले में। तुलना में। जैसे,—गरमी में दिन अपेक्षाकृत बड़ा होता है।

अपेलेट साइड–संज्ञा पुं० [अं०] प्रेसिडेंसी हाईकोर्ट का वह विभाग जहाँ जज अपनी निर्द्धारित सीमा के अंतर्गत सब दीवानी और फौजदारी अदालतों का नियंत्रण करते हैं और अपीलें सुनते हैं। इसे अपेलेट जूरिसडिक्शन भी कहते हैं।

अप्रतिसंबद्धा भूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जो एक दूसरी से पृथक् हो। (कौ०)

अप्रतिहत–संज्ञा पुं० [सं०] अंकुश।

अप्रतिहत व्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] वह असंहत व्यूह जिसमें हाथी घोड़े रथ तथा प्यादे एक दूसरे के पीछे हों। (कौ०)

अप्रवृत्तवध–वि० [सं०] जिसकी ओर से आक्रमण न हुआ हो।

अप्राप्तिसम–संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक। यदि किसी के उत्तर में कहा जाय—"तुम्हारा हेतु और साध्य दोनों एक आधार में वर्त्तमान हैं या नहीं? यदि वर्त्तमान हैं, तो दोनों बराबर हैं। फिर तुम किसे हेतु कहोगे और किसे साध्य?" तो इसे प्राप्तिसम कहेंगे। और यदि साथ ही इतना और कहा जाय—"यदि दोनों एक आधार में नहीं रहते, तो तुम्हारा हेतु साध्य का साधन कैसे कर सकता है?" तो इसे अप्राप्तिसम कहेंगे।

अप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] (२) बेंत। बेतस।

अप्सु प्रवेशन–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दंड जिसमें अपराधी जल में डुबाकर मारा जाता था। (कौ०)

अबंध–वि० [सं० अ + बंधन] जो किसी के बंधन में न हो। अबद्ध। बंधनहीन। निरंकुश।

अबध–वि० [सं० अबाध्य] जो रोका न जा सके। अबाध्य।
उ०—भरे भाग अनुराग लोग कहैं राम अवध चितवनि चितई है।—तुलसी।

अबरा–संज्ञा पुं० [फा०] (२) न खुलनेवाली गाँठ। उलझन।

अबरू–संज्ञा स्त्री० [फा०] भौंह। भ्रू।

अबास*–संज्ञा पुं० [सं० आवास] रहने का स्थान। घर। मकान।
उ०—ऊँचे अवास, बहु ध्वज प्रकास। सोभा बिलास, सोभै प्रकास।—केशव।

अभंग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संगीत में एक प्रकार का ताल जिसमें एक लघु, एक गुरु और दो प्लुत मात्राएँ होती हैं। (२) एक प्रकार के पद या भजन जिनका व्यवहार मराठी में होता है। जैसे,—तुकाराम के अभंग।

अभय–संज्ञा पुं० [सं०] उशीर। खस।

अभयचारी–संज्ञा पुं० [सं०] वे जंगली पशु जिनके मारने की आज्ञा न हो।

अभयवन–संज्ञा पुं० [सं०] वह जंगल जिसे काटने की आज्ञा न हो। रक्षित वन।

अभयवन परिग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] रक्षित वन संबंधी राजनियम का भंग। जैसे,—उसमें घुसना, पेड़ काटना, लकड़ी तोड़ना इत्यादि।

अभिज्ञान–संज्ञा पुं० [सं०] (४) मुद्रा की छाप। मुहर।

अभिधर्म पिटक–संज्ञा पुं० दे० "त्रिपिटक"।

अभिनंदन–संज्ञा पुं० [सं०] (६) आम।

अभिप्लव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उपद्रव। उत्पात। फसाद। (२) गवामयन यज्ञ में प्रति मास का पंचमांश जो छः छः दिनों का होता था और जिनमें से प्रत्येक का अलग अलग नाम होता था। (३) स्तोम आदि का पाठ जो एक अभिप्लव में होता था।

अभिषव–संज्ञा पुं० [सं०] (६) काँजी।

अभिहित संधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जिसकी लिखा पढ़ी न हुई हो। (कौटिल्य)

अभूताहरण–संज्ञा पुं० [सं०] नाट्यशास्त्र के अनुसार किसी प्रकार का कपटयुक्त या व्यंग्यपूर्ण वचन कहना। यह गर्भसंधि के तेरह अंगों में से एक है।

अभूमिप्राप्त सैन्य–संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जो अनुपयुक्त भूमि में पड़ गई हो। ऐसी जगह पड़ी हुई फौज जहाँ से लड़ना असंभव हो। (कौटिल्य)

अभृत सैन्य–संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जिसे वेतन या भत्ता न मिला हो।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार यह व्याधित (बीमार) सैन्य से उपयोगी है, क्योंकि वेतन पा जाने पर जी लगाकर लड़ सकती है। (कौ०)

अभेद्य–संज्ञा पुं० [सं०] हीरा। हीरक।

अर्द्धाली-संज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धालि] वह चौपाई जिसमें दो ही चरण हों। आधी चौपाई। जैसे,—राम भजन बिनु सुनहु खगेसा। मिटै न जीवन केर कलेसा।

अर्धमाणव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शीर्षक हार जिसके बीच में मणि हो। (कौ०) (२) दस मोतियों की माला।

अर्धमासभृत-संज्ञा पुं० [सं०] वह मजदूर या नौकर जिसे अर्ध-मासिक (१५ दिन पर) वेतन मिलता हो।

अर्धहार-संज्ञा पुं० [सं०] ६४ मोतियों की माला।

अर्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसे २५ मोतियों का गुच्छा जिसकी तौल ३२ रत्ती हो।

विशेष-वराहमिहिर के समय में एक अर्धा का दाम १३० कार्षापण था। उस समय कार्षापण में दस माशे चाँदी होती थी और वह सोलह मोटे (गोरखपुरी) पैसों के बराबर होता था।

अर्पण प्रतिभू-संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रतिभू (जामिन) जो किसी की इस प्रकार जमानत करे कि यदि वह ऋण का धन न देगा, तो मैं दूँगा।

अर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (५) नेत्रबाला। (६) कुशा।

अर्भक-संज्ञा पुं० [सं०] (२) नेत्रबाला। (३) कुशा।

अर्ल-संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० कौंटेस] इँगलैंड के सामंतों और बड़े बड़े भूम्यधिकारियों को वंशपरंपरा के लिये दी जानेवाली एक प्रतिष्ठासूचक उपाधि जिसका दर्जा मार्किस के नीचे और वाइकौंट के ऊपर है।

विशेष-दे० "ड्यूक"।

अर्श-संज्ञा पुं० [अ०] (३) चरखी जिस पर ऊन काता जाता है।

अर्शोघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] (२) भिलावाँ। (३) सज्जीखार। (४) तेजबल। (५) सफेद सरसों।

अलंकार-संज्ञा पुं० [सं०] (३) वह हाव भाव या क्रिया आदि जिससे स्त्रियों का सौंदर्य बढ़े।

अलई-संज्ञा स्त्री० [देश०] ऐल नाम की कँटीली लता जिसकी प्रायः खेतों में बाढ़ लगाई जाती है। ऊरू।

अलक-संज्ञा पुं० [सं०] (२) हरताल। (३) सफेद आक। श्वेत मंदार।

अलता-संज्ञा पुं० [सं० अलक्तक] (१) वह लाल रंग जो स्त्रियाँ पैरों में लगाती हैं। (२) खसी की मूत्रेंद्रिय। जैसे,—अलते की बोटी।

अलबी तलबी-संज्ञा स्त्री० [अ० अरबी] अरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाएँ अथवा बहुत कठिन उर्दू। जैसे,-आप अपनी अलबी तलबी छोड़कर सीधी तरह से हिंदी में बातें कीजिए।

अलबेला-संज्ञा पुं० [सं० अलभ्य] नारियल का बना हुआ हुक्का। उ०—खाय कै पान बिदोरत होंठ हैं बैठि सभा में पिएँ अलबेला।—चंद्र गोपाल।

अलभ्य व्यायामभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी भूमि जिसमें सैन्य संग्रह न हो सके। (कौ०)

अलसानॐ-संज्ञा स्त्री० [सं० आलस्य] आलस। सुस्ती। उ०—आँखिन मैं अलसानि, चितौन में मंजु विलासन की सरसाई।—मतिराम।

अलहदी-संज्ञा पुं० दे० "अहदी"।

अलहदियाँ†-संज्ञा पुं० [अ० अहदी] जो कोई काम न कर सकता हो। अकर्मण्य। अहदी।

अलुक्-संज्ञा पुं० [सं०] आलू बुखारा।

अल्टिमेटम-संज्ञा पुं० [अं०] (किसी देश या राज्य का दूसरे देश या राज्य से) अंतिम प्रस्ताव, सूचना, पत्र या शर्तें जिनके अस्वीकृत होने पर युद्ध के सिवा उपायांतर नहीं रहता। अंतिम पत्र। अंतिम सूचना। जैसे,—जापान ने चीन को अल्टिमेटम दिया है कि २४ घंटे के अंदर टिनसिन खाली कर दो।

अल्पप्रसार-संज्ञा पुं० [सं०] छोटी सी जांगलिक सेना या जांगलिक सहायता। (कौ०)

अल्पभृत-संज्ञा पुं० [सं०] वार्षिक वृत्ति (भत्ता या वेतन) पानेवाला कर्मचारी।

अल्पव्यय-संज्ञा पुं० [सं०] जो काम केवल कुछ भत्ता (खाने पीने का खर्च) मात्र देने से हो जाय।

अल्पव्ययारंभ-वि० [सं०] बहुत कम खर्च में बननेवाला। (कौ०)

अल्पस्वाप-संज्ञा पुं० [सं०] आराम करने के स्थान या अवसर का बहुत कम मिलना। (कौ०)

अवकाश-संज्ञा पुं० [सं०] जगह। जमीन।

विशेष—चाणक्य ने अनवसित संधि प्रकरण में इस शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है।

अवक्रीतक-वि० [सं०] माँग कर लिया हुआ। मँगनी लिया हुआ।

विशेष—अवक्रीतक वस्तु न लौटानेवाले के लिये याचितक के समान ही दंड का विधान था।

संज्ञा पुं० [सं०] किराये या भाड़े पर लिया हुआ माल।

अवघोषक-संज्ञा पुं० [सं०] झूठी खबरें उड़ानेवाला। (इनको चंद्रगुप्त मौर्य के समय में फाँसी पर चढ़ाने का दंड दिया जाता था।)

अवडेर†-संज्ञा पुं० [अव+रार या राड़] झमेला। झंझट। बखेड़ा।

अवडेरनाॐ†-क्रि० स० [सं० उद्वास ?] न बसने देना। न रहने देना। उ०—भोरानाथ भोरे हो सरोष होत थोरे दोष पोषि तोषि थापि आपने न अवडेरिये।—तुलसी।

† क्रि० स० [हिं० अवडेर+ना (प्रत्य०)] चक्कर में डालना। फेर में डालना। फँसाना। उ०—(क) पंच कहे सिव सती बियाही। पुनि अवडेरि मरायन्हि ताही।—तुलसी। (ख)

मोरानाथ भोरे ही सरोष होत थोरे दोष पोषि तोषि थापी अपनी न अवडेरिये।—तुलसी।

अवडेरा†-वि० [?] (१) घुमाव फिरायवाला। चक्करदार। (२) बेढब। कुढब। उ०—जननी जनक तज्यो जनमि करम बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे।—तुलसी।

अवनीप-संज्ञा पुं० [सं० अवनि+प=पति] राजा। उ०—दीप दीप हू के अवनीपन के अवनीप।—केशव।

अवमर्श संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाट्यशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार की संधियों में से एक।

अवरवर्णाभिनिवेश-संज्ञा पुं० [सं०] छोटी जातियों से बसाया हुआ उपनिवेश।

अवरोहक-संज्ञा पुं० [सं०] असगंध। असगंध।

अवशीर्ण क्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] विरक्त मित्र या राज्यापराध के कारण बहिष्कृत व्यक्ति के साथ फिर संधि करना।

अवश्य सैन्य-वि० [सं०] (राजा या राष्ट्र) जिसकी सेना वश में न हो।

विशेष—पुराने नीतिज्ञ इसकी अपेक्षा अव्यवस्थित-सैन्य अच्छा समझते थे। पर कौटिल्य के मत में अवश्य सेना साम आदि उपायों से वश में की जा सकती है, अतः वही अच्छी है।

अवसर-प्राप्त-वि० [सं०] जिसने अपने काम से सदा के लिये अवसर ग्रहण कर लिया हो। जिसने पेन्शन ले ली हो। जैसे,—अवसर-प्राप्त मैजिस्ट्रेट।

अवस्कंदक-संज्ञा पुं० [सं०] जो रास्ते चलते लोगों को मारे पीटे। गुंडा।

अवस्कंदित-भर्मी-संज्ञा पुं० [सं०] मजदूरी या तनख्वाह लेकर भाग जानेवाला मजदूर।

अवस्कर स्रम-संज्ञा पुं० [सं०] वह नल जिससे पाखाना बह कर बाहर आता हो। ड्रेन।

अवस्था परिणाम-संज्ञा पुं० दे० "परिणाम"। (योग)

अवारना-क्रि० स० [सं० अवारण] (१) रोकना। मना करना। (२) दे० "वारना"।

अवासा-संज्ञा पुं० [सं० अवासस्] एक प्रकार के दिगंबर जैन जो "नग्न" के अंतर्गत हैं।

अविज्ञात क्रय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुप्त स्थान से या मालिक के अनजान में कोई पदार्थ मोल लेना। (२) व्यवहार में आधा माल नष्ट हो जाना।

अविदुग्ध-संज्ञा पुं० [सं०] भेंड़ी का दूध।

अविभाज्य-संज्ञा पुं० [सं०] गणित में वह राशि जिसको किसी गुणक के द्वारा भाग न किया जा सके। निरछेद।

अविशेष सम-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक। यदि वादी किसी वस्तु के सादृश्य के आधार पर कोई बात सिद्ध करे—उदाहरणार्थ घट के सादृश्य से शब्द को अनित्य सिद्ध करे; और उसके उत्तर में प्रतिवादी कहे कि यदि प्रयत्न के उत्पन्न होने के कारण ही घट के समान शब्द भी अनित्य हो, तो इतना अल्प सादृश्य तो सभी वस्तुओं में होता है; और ऐसे सादृश्य के कारण सभी चीजों के धर्म्म एक मानने पड़ेंगे, तो ऐसा उत्तर अविशेष सम कहा जायगा।

अविसह्य-वि० [सं०] रोग उत्पन्न करनेवाला या गुण-रहित (पदार्थ)।

विशेष—ऐसे पदार्थ बेचनेवाला दंड का भागी होता था।

अविसह्य दुर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] वह दुर्ग जिसमें शत्रु प्रवेश न कर सकता हो। (कौ०)

अवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) वन तुलसी।

अवृद्धिक-वि० [सं०] जिस पर ब्याज न लगता हो।

अव्यथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) स्थल कमल। स्थलपद्म। (४) गोरखमुंडी। (५) आँवला।

अशन-संज्ञा पुं० [सं०] (३) चीता। चित्रक लकड़ी। (४) भिलावाँ। (५) असन वृक्ष।

अशुश्रूषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसकी आज्ञा में रहना चाहिए, उसकी आज्ञा में न रहने का अपराध।

विशेष—पारिवारिक व्यवस्था की दृष्टि से इस अपराध का राज्य की ओर से दंड होता था। जैसे,—यदि पुत्र पिता की आज्ञा न माने तो वह दंडनीय कहा गया है। (स्मृति०)

अश्मंतक-संज्ञा पुं० [सं०] (४) पाषाणभेद। (५) लिसोढ़ा। (६) कचनार।

अश्म-संज्ञा पुं० [सं०] (४) सोनामक्खी। (५) लोहा।

अश्वव्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें कवचधारी (लोहे की पाखरवाले) घोड़े सामने और साधारण घोड़े पक्ष और कक्ष में हों।

अश्वमेध-संज्ञा पुं० [सं०] (२) एक प्रकार की तान जिसमें षड्ज स्वर को छोड़कर शेष छः स्वर लगते हैं।

अश्वारि-संज्ञा पुं० [सं०] (२) करवीर। कनेर।

अश्विनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) जटामासी। बालछड़।

अश्वियुगल-संज्ञा पुं० [सं०] दो कल्पित देवता जो प्रभात के समय घोड़ों या पक्षियों से जुते हुए सोने के रथ पर चढ़कर आकाश में निकलते हैं। कहते हैं कि यह लोगों को सुख-सौभाग्य प्रदान करते हैं और उनके दुःख तथा दरिद्रता आदि हरते हैं। कहीं कहीं यही अश्विनीकुमार भी माने गए हैं। कहते हैं कि दधीचि से मधु-विद्या सीखने के लिये इन्होंने उनका सिर काटकर अलग रख दिया था, और उनके धड़ पर घोड़े का सिर रख दिया था; और तब उनसे मधु-विद्या सीखी थी। वि० दे० "दधीचि"।

अष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] (६) आठ ऋषियों का एक गण।

अष्टधाती–वि० [सं० अष्ट+धातु] (४) वह जिसके माता-पिता का ठीक ठिकाना न हो। दोगला। वर्णसंकर।

अष्टपदी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) बेला नाम का फूल या उसका पौधा।

अष्ट प्रकृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्रनीति के अनुसार राज्य के ये आठ प्रधान कर्मचारी—सुमंत्र, पंडित, मंत्री, प्रधान, सचिव, अमात्य, प्राड्विवाक् और प्रतिनिधि। किसी किसी के अनुसार—राजा, राष्ट्र, अमात्य, दुर्ग, बल, कोष, सामंत और प्रजा राज्य के ये आठ अंग।

विशेष—महाभारत, मनुस्मृति आदि में पहले सात ही अंग कहे गये हैं।

अष्टमी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) क्षीर काकोली। पयस्वा।

अष्टवर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] (३) नीति शास्त्र के अनुसार किसी राज्य के कृषि, बस्ती (बाजार आदि), दुर्ग, सेतु, हस्तिबंधन, खान, कर-ग्रहण और सैन्य-संस्थापन का समूह।

अष्टावक्र–संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह मनुष्य जिसके हाथ पैर आदि कई अंग टेढ़े मेढ़े हों।

असंहत व्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] सेना को छोटे छोटे समूहों में अलग अलग खड़ा करना।

असकारंभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह भूमि जिसमें बहुत थोड़े श्रम से अन्न पैदा हो। (२) कम मेहनत और थोड़ी वर्षा से हो जानेवाली फसल। (कौ०)

असगुनियाँ†–संज्ञा पुं० [हिं० असगुन+इयां (प्रत्य०)] वह मनुष्य जिसका मुँह देखना लोग अशुभ समझते हों। मनहूस।

असद्भाव–संज्ञा पुं० [सं०] नव्य न्याय के अनुसार एक दोष जो तर्क के अवयवों के प्रयोग में होता है।

असमेधक्ष–संज्ञा पुं० दे० "अश्वमेध" उ०—दस असमेध जगत जेइ कीन्हा।—जायसी

असन–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लंबा झाड़ जो मध्य प्रदेश, संयुक्त प्रांत, दक्षिण भारत और राजपूताने में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ तीन चार इंच लंबी होती हैं और डालियाँ नीचे की ओर झुकी हुई होती हैं। इसकी छाल से चमड़ा सिझाया जाता है, और बीज, छाल तथा पत्तियों का औषध में व्यवहार होता है। अकाल पड़ने पर इसकी पत्तियाँ खाई भी जाती हैं। इसकी टहनियों की दातुन बहुत अच्छी होती है। जब जाड़े के दिनों में यह फूलता है, तब बहुत सुंदर जान पड़ता है।

संज्ञा पुं० [अ०] (३) लोहा नामक धातु।

असहयोग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साथ मिलकर काम न करने का भाव। (२) आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में सरकार के साथ मिलकर काम न करने, उसकी संस्थाओं में सम्मिलित न होने और उसके पद आदि ग्रहण न करने का सिद्धांत। तर्क मवालात। नान-कोआपरेशन।

असहयोग वाद–संज्ञा पुं० [सं०] राजनीतिक क्षेत्र में सरकार से असहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिलकर काम न करने का सिद्धांत।

असहयोगवादी–संज्ञा पुं० [सं०] राजनीतिक क्षेत्र में सरकार से असहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिलकर काम न करने के सिद्धांत को माननेवाला मनुष्य।

असही–संज्ञा स्त्री० [?] ककही या कंघी नाम का पौधा।

असह्य व्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] वह 'दंडव्यूह' जिसके दोनों पक्ष फैला दिए गए हों। (कौ०)

असाईक्ष–संज्ञा पुं० [सं० अज्ञानीय] वह जिसे कुछ भी ज्ञान न हो। अज्ञानी। उ०—बोला गंध्रबसेन रिसाई। कस जोगी कस भौंर असाई।—जायसी।

असाधक्ष†–वि० दे० "असाध्य"।

असारभांड–संज्ञा पुं० [सं०] घटिया माल। (कौ०)

असित–संज्ञा पुं० [सं०] (५) धौ का पेड़।

असिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली नाम का पौधा।

असिद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बड़ा और ऊँचा वृक्ष जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और प्रायः इमारत के काम में आती है। इसकी छाल से चमड़ा भी सिझाया जाता है।

असीन–संज्ञा पुं० [देश०] सज नाम का वृक्ष। वि० दे० "सज"।

असुक्ष–संज्ञा पुं० [सं० अश्व] घोड़ा। अश्व। उ०—असु-दल गज-दल दूनौ साजे। औ घन तबल जुझाऊ बाजे।—जायसी।

असुर–संज्ञा पुं० [सं०] (६) समुद्री लवण। (७) देवदार।

असुरविजयी–संज्ञा पुं० [सं० असुरविजयिन्] वह राजा जो पराजित की भूमि, धन, स्त्री, पुत्र आदि के अतिरिक्त उसकी जाति भी लेना चाहे।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि दुर्बल राजा ऐसे शत्रु को भूमि आदि देकर जहाँ तक दूर रख सके, अच्छा है।

असेसमेंट–संज्ञा पुं० [अं०] (१) मालगुजारी या लगान लगाने के लिये जमीन का मोल ठहराने का काम। बंदोबस्त। (२) कर या टैक्स लगाने के लिये बही खाते की जाँच का काम।

असेसर–संज्ञा पुं० [अं०] (२) वह जो बही खाता जाँचकर कर या महसूल की रकम निश्चित करता है। (३) वह जो जमीन का मोल ठहरा कर लगान या मालगुजारी की रकम निश्चित करता है। कर लगानेवाला।

अस्तनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके स्तन बहुत ही छोटे और नहीं के समान हों।

अस्ताचल–संज्ञा पुं० [सं०] एक कल्पित पर्वत जिसके संबंध में

लोगों का यह विश्वास है कि अस्त होने के समय सूर्य इसी की आड़ में छिप जाता है। पश्चिमाचल।

अस्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (५) केसर। (६) थाल।

अस्रप-संज्ञा पुं० [सं०] (३) जोंक जो लहू (अस्र) पीती है।

अस्वामिक द्रव्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जिस पर किसी की मिलकियत न हो। (पराशर)

अस्वामि-विक्रीत-संज्ञा पुं० [सं०] मालिक की चोरी से बेचा हुआ।

विशेष—नारद ने कहा है कि ऐसी वस्तु का पता लगने पर मालिक उसका हकदार होता है। पर मालिक को इस बात की सूचना राज्य को कर देनी चाहिए।

अस्वामि-संहत (सेना)-वि० [सं०] (सेना) जिसका सेनानायक न मारा गया हो।

अहकना⊛-क्रि० स० [हिं० अहक + ना (प्रत्य०)] इच्छा करना। लालसा करना।

अहथिर⊛†-वि० दे० "स्थिर"। उ०—सबै नास्ति वह अहथिर ऐस साज जेहि केर।—जायसी।

अहना⊛-क्रि० अ० [सं० अस्ति] वर्त्तमान रहना। होना। उ०—(क) राजा सेंति कुँअर सब कहहीं। अस अस मच्छ समुद महँ अहहीं।—जायसी। (ख) जब लगि गुरु हौं अहा न चीन्हा। कोटि अँतरपट बीचहिं दीन्हा।—जायसी।

अहनिसि⊛-क्रि० वि० दे० "अहर्निश"। उ०—मुयों मुयों अहनिसि चिल्लाई। ओही रोस नागन्ह धै खाई।—जायसी।

अहर-संज्ञा पुं० [देश०] छीपियों का रंग रखने का मिट्टी का बरतन। तैना।

अहिंसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (५) कंटकवाली या हंस नाम की घास।

अहीक-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध शास्त्रानुसार दस क्लेशों में से एक।

अहुड़ी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] घीए के महीन टुकड़ों को मिलाकर पकाया हुआ चावल।

अहेतुसम-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक। यदि वादी कोई हेतु उपस्थित करे और उसके उत्तर में यह कहा जाय कि तुम्हारा यह हेतुभूत, भविष्य या वर्त्तमान किसी काल में हेतु नहीं हो सकता, तो ऐसा उत्तर अहेतु सम कहलावेगा।

आईना-संज्ञा पुं० [फा०] (२) किवाड़े का दिलहा। त्रि० दे० "दिलहा"।

यौ०—आईनेदार = वह किवाड़ा जिसमें आइना या दिलहा हो।

आकर-संज्ञा पुं० [सं०] (५) तलवार चलाने के बत्तीस हाथों या तरकीबों में से एक।

आकरी-संज्ञा पुं० दे० "आकरिक"।

संज्ञा स्त्री० [सं० आकर] खान खोदने का काम। उ०—चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख जानत न कूर कछु किसब कबारु है।—तुलसी।

आकली-संज्ञा स्त्री० [देश०] चटक पक्षी। गौरैया।

आकाश-संज्ञा पुं० [सं०] (४) अबरक। अभ्रक।

आकाशयोधी-संज्ञा पुं० [सं० आकाशयोधिन्] वह लोग जो ऊँची जमीन या टीले पर से लड़ाई कर रहे हों। (कौ०)

आकिलखानी-संज्ञा पुं० [आकिलखाँ (नाम)] एक प्रकार का रंग जो कालापन लिए लाल होता है। एक प्रकार का मैला या काकरेजी रंग।

आकुल-संज्ञा पुं० [सं०] सघर। अघतर।

आक्रंद-संज्ञा पुं० [सं०] (८) प्रधान शत्रु के पीछे रह कर सहायता करनेवाला शत्रु राजा या राष्ट्र।

आक्षिक ऋण-संज्ञा पुं० [सं०] जूआ खेलने में किया हुआ ऋण।

आखु-संज्ञा पुं० [सं०] (३) सूअर। शूकर।

आखुपाषाण-संज्ञा पुं० [सं०] (२) संखिया नामक विष।

आग⊛†-क्रि० वि० दे० "आगे"। उ०—चित डोलै नहिं खूँटी टरई। पल पल पेलि आग अनुसरई।—जायसी।

संज्ञा पुं० दे० "आगा"। उ०—तू रिस भरी न देखेसि आगू। रिस महँ काकर भयउ सोहागू।—जायसी।

आगत-संज्ञा पुं० दे० "आयत"। जैसे,—आगत-कर।

आगम-संज्ञा पुं० [सं०] (१२) तंत्रशास्त्र का वह अंग जिसमें सृष्टि, प्रलय, देवताओं की पूजा, उनका साधन, पुरश्चरण और चार प्रकार का ध्यान योग होता है।

आघाट-संज्ञा पुं० [सं०] गाँव की सीमा। गाँव की हद। सिवान।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्राचीन शिलालेखों में मिलता है। 'आघाटक' या 'आघाटन' शब्द भी इसी अर्थ में आए हैं।

आचमन-संज्ञा पुं० [सं०] (४) सुगंधवाला। नेत्रवाला।

आचरित दापन-संज्ञा पुं० [सं०] ऋण का वह चुकता जो स्त्री पुत्र को बाँधने या दरवाजे पर धरना देने से हो।

आघारी-संज्ञा स्त्री० [?] हुरहुर। हिलमोचिका।

आछे⊛†-क्रि० वि० [हिं० अच्छा] भले प्रकार से। अच्छी तरह से। भली भाँति। उ०—तिनके लच्छन लच्छ अब, आछे कहौं बखानि—मतिराम।

आजीव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उचित लाभ या आय। वाजिब आमदनी।

विशेष—जो लोग कारीगरों तथा श्रमियों की आमदनी को घटाने का यत्न करते थे, उनके ऊपर चाणक्य ने १००० पण जुरमाना करना लिखा है।

(२) राज्य कर। सरकारी टैक्स या महसूल।

विशेष—यह भिन्न भिन्न पदार्थों पर लगता था।

आशाधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गिरवी जो राजा की आज्ञा से रखी या रखाई गई हो।

आशापत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह पत्र जिसके द्वारा राजा सामंत, भृत्य, राष्ट्रपाल आदमियों को आज्ञा दे।

आटोक्रैट–संज्ञा पुं० [अं०] (१) निरंकुश या स्वेच्छाचारी राजा या सम्राट्। वह राजा या शासक जो दूसरों पर अपनी शक्ति का अबाध रूप से प्रयोग या मनमानी करना अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानता हो। (२) वह जिसे किसी विषय में अमर्यादित अधिकार प्राप्त हों या जो किसी विषय में अपना अमर्यादित अधिकार मानता हो। मनमानी करनेवाला। स्वेच्छाचारी। निरंकुश।

आटोक्रैसी–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) दूसरों पर अनियंत्रित या अमर्यादित अधिकार जो किसी एक ही व्यक्ति को हो। दूसरों पर मनमाना करने का अधिकार। स्वेच्छाचारिता। निरंकुशता। (२) किसी निरंकुश स्वेच्छाचारी राजा या सम्राट् की शक्ति। एक-तंत्रता।

आडिटर–संज्ञा पुं० [अं०] आय व्यय का चिट्ठा जाँचनेवाला। आय व्यय परीक्षक।

आढ़की–संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) सौराष्ट्र मृत्तिका। गोपीचंदन।

आढ़तदार–संज्ञा पुं० [हिं० आढ़त + फा० दार (प्रत्य०)] वह जो व्यापारियों का माल अपने यहाँ रखकर दूकानदारों के हाथ बेचता हो। आढ़त का काम करनेवाला। अढ़तिया।

आत्त प्रतिदान–संज्ञा पुं० [सं०] जो मिला हो, उसको लौटाना। (कौ०)

आत्मगुप्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) शतावर।

आत्मधारण्य भूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह अधीन राज्य या भूमि जिसका शासन-प्रबंध वहीं की सेना और संपत्ति से हो जाय, साम्राज्य को उसके शासन का कुछ खर्च न उठाना पड़े। (कौ०)

आत्मरत–संज्ञा पुं० [सं०] महेंद्रवारुणी। बड़ी इन्द्रायन।

आत्मविक्रेता–संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जो अपने आपको बेचकर दास हुआ हो।

आत्मविचय–संज्ञा पुं० [सं०] अपनी तलाशी या नंगा झोली देना।

आत्मशासन–संज्ञा पुं० दे० "स्वराज्य"। (क०)

आत्मामिष संधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो स्वयं सेना के साथ शत्रु के पास जाकर की जाय। (कामंदकीय)

आथी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्थातृ, हिं० थाती] पूँजी। धन। उ०—साथी आथि निआथि जो सकै साथ निरबाहि।—जायसी।

✽ संज्ञा स्त्री० [सं० अर्थ] अर्थ-संपन्नता। अमीरी। खुश-हाली।

आदि–संज्ञा पुं० [सं०] परमात्मा। परमेश्वर। उ०—आदि किएउ आदेस सुन्नहिं से अस्थूल भए।—जायसी।

आदिष्टसंधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो प्रबल शत्रु को कोई भूमिखंड देने की प्रतिज्ञा करके की जाय। (कामंद०)

आदी†–क्रि० वि० [सं० आदि] बिलकुल। नितान्त। जरा भी। उ०—भानु न जानसि बालक आदी। हौं बावसा सिंधु रत-वादी।—जायसी।

आदेय–संज्ञा पुं० [सं०] वह लाभ जो सुगमता से प्राप्त हो, सुरक्षित रखा जा सके तथा शत्रु द्वारा न लिया जा सके। (कौ०)

आधाता–संज्ञा पुं० [सं० आधातृ] गिरवी रखनेवाला। बंधक रखनेवाला।

आधान–संज्ञा पुं० [सं०] (३) गिरवी या बंधक रखना। (कौ०)

आधिकारिक–संज्ञा पुं० [सं०] दृश्यकाव्य की वस्तु के दो भेदों में से एक। मूल कथावस्तु। वि० दे० "वस्तु" (५)।

आधिपाल–संज्ञा पुं० [सं०] वह राज-कर्मचारी जो जमा की हुई धरोहर की रक्षा का प्रबंध करता था।

आधिमोचन–संज्ञा पुं० [सं०] गिरवी या बंधक छुड़ाना।

आनंद–संज्ञा पुं० [सं०] (२) मद्य। शराब।

आनर–संज्ञा पुं० [अं०] (१) सम्मान-चिह्न। उपाधि। (२) सम्मान।

आनुग्राहिक कर नीति–संज्ञा स्त्री० [सं०] राज्य की वह नीति जिसके अनुसार कुछ विशेष मालों पर रिआयत की जाती है।

आनुग्रहिक दारोदय शुल्क–संज्ञा पुं० [सं०] वह चुंगी जो कुछ खास खास पदार्थों पर कम ली जाय।

आनुवंशिक–संज्ञा पुं० [सं०] वंश-परंपरा से चला आया हुआ। वंशानुक्रमिक।

आनुवेश्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पड़ोसी। प्रतिवेशी। (२) वह पड़ोसी जिसका घर अपने मकान से दाहिने या बाएँ हो। प्रतिवेश्य का उल्टा।

आपत्कृत ऋण–संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो कोई आपत्ति पड़ने पर लिया जाये।

आपदर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] वह धन या संपत्ति जिसके प्राप्त करने पर आगे चल कर अपना अनिष्ट हो।

विशेष–जिस संपत्ति के लेने पर शत्रुओं की संख्या बढ़े, व्यय या क्षय बढ़े अथवा दूसरों को बहुत कुछ देना पड़े, वह आपदर्थ है। कौटिल्य ने आपदर्थ के अनेक दृष्टांत दिए हैं, जैसे वह संपत्ति जो कुछ दिनों पीछे मिलनेवाली हो, जिसे पीछे से कुपित होकर पार्ष्णिग्राह छीन ले, जो मित्र के नाश या संधिभंग द्वारा हो, जिसके ग्रहण के विरुद्ध सारा मंडल हो इत्यादि। (कौ०)

आपीड़–संज्ञा पुं० [सं०] (३) एक प्रकार का विषम वृत्त जिसके प्रथम चरण में ८, दूसरे में १२, तीसरे में १६ और चौथे में २० अक्षर होते हैं। इसमें समस्त चरणों के समस्त वर्ण लघु होते हैं; केवल अंत के दो वर्ण गुरु होते हैं।

आपुन–सर्व० [हिं० आप] (२) खुद। स्वयं। उ०—कछु आपुन

अध अधगति चरति । फल पतितन कहँ उरध फलंति ।—केशव ।

आपोज़ीशन-संज्ञा पुं० [अं०] पार्लमेंट या व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों का वह समूह या दल जो मंत्रि-मंडल या शासन का विरोधी हो । जैसे,—पार्लमेंट की कामन्स सभा में आपोज़ीशन के लीडर ने होम मेंबर पर वोट आफ़ सेन्सर या निंदात्मक प्रस्ताव उपस्थित किया ।

आबदार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह आदमी जो तोप में सुंबा और पानी का पुचारा देता है । उ०—केतेक जालदार आबदार लाबदार हो ।—सूदन ।

विशेष—पुरानी चाल की तोपों में जब एक बार गोला छूट जाता था, तब नल को ठंढा करने के लिये एक छड़ में लपेटे हुए चीथड़ों को भिगोकर उस पर पुचारा दिया जाता था, जिसमें नल के गरम होने के कारण वह गोला आप ही आप न छूट जाय ।

आभय-संज्ञा पुं० [सं०] (२) काला अगर । (३) कुट नाम की ओषधि ।

आभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) बबूल का पेड़ ।

आभीरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) भारतवर्ष की एक प्राचीन भाषा जो ईसवी दूसरी या तीसरी शताब्दी में सिंध, मुलतान तथा उत्तरी पंजाब में बोली जाती थी । आगे चलकर ईसवी छठी शताब्दी में यह भाषा "अपभ्रंश" के नाम से प्रसिद्ध हुई थी । उस समय इस भाषा में साहित्य का भी निर्माण होने लगा था ।

आभ्यंतर आतिथ्य-संज्ञा पुं० [सं०] देश के भीतर आया हुआ विदेशी माल ।

आभ्यंतर कोप-संज्ञा पुं० [सं०] मंत्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज आदि का विद्रोह । (कौ०)

आमिश्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि या राज्य जिसमें राजभक्त और राजद्रोही दोनों समान रूप से हों ।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि राजभक्त जनता के सहारे ही आमिश्रा भूमि पर शासन किया जाय । (कौ०)

आमिर⊛-संज्ञा पुं० [अ० आमिल] हाकिम । आमिल । अधिकारी । उ०—नव-नागरि तन मुलुक लहि जोबन-आमिर जोर । घटि बढ़ि तें बढ़ि घटि रकम करीं और की और ।—बिहारी ।

आमिल⊛-वि० [सं० अम्ल] खट्टा । अम्ल । उ०—अहै सो कडुआ अहै सो मीठा । अहै सो आमिल अहै सो सीठा ।—जायसी ।

आमोद-संज्ञा पुं० [सं०] (४) दानावर ।

आयति-संज्ञा स्त्री० [सं०] भावी आय । आगे होनेवाली आमदनी । (कौ०)

आयव्यय-संज्ञा पुं० [सं०] जमाखर्च । आमदनी और खर्च । (कौ०)

आयस-संज्ञा पुं० [सं०] (३) अगर नामक लकड़ी । (४) रत्न । मणि ।

आयात-संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु या माल जो व्यापार के लिये विदेश से अपने देश में लाया या मँगाया गया हो । आगत । जैसे,—आयात कर । आयात व्यापार ।

आयुतिक-संज्ञा पुं० [सं०] दस हजार सिपाहियों का अध्यक्ष ।

आयुधीय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फौजी सिपाही । (२) सैनिक या रंगरूट देनेवाला गाँव । (कौ०)

आयुधीय काय-संज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र जिसमें फौज में काम करनेवाले लोगों की संख्या अधिक हो । (कौ०)

आरंभ निष्पत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उपलब्धि । माल की माँग पूरी करना । (२) माल पैदा करने या बनाने की लागत । (कौ०)

आर-संज्ञा पुं० [सं०] (५) हरताल ।

आरक्त-संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन ।

आरचेस्ट्रा-संज्ञा पुं० [अं०] (१) थियेटर आदि में सामने बैठकर बाजा बजानेवालों का दल । (२) थियेटर में वह स्थान जहाँ बाजा बजानेवाले एक साथ बैठकर बाजा बजाते हैं । (३) थियेटर में सब से आगे की सीटें या आसन ।

आरफ़नेज-संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ अनाथ बच्चों की रक्षा या पालन होता है । अनाथालय । यतीमख़ाना । जैसे,—हिन्दू आरफ़नेज ।

आराम कुरसी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार की लंबी कुरसी जिसमें पीछे की ओर कुछ लंबोतरा आसन होता है और दोनों ओर हाथ या पैर रखने के लिये लंबी पटरियाँ लगी होती हैं । इस पर आदमी बैठा हुआ आराम से लेट भी सकता है ।

आरामाधिपति-संज्ञा पुं० [सं०] बगीचों का अफ़सर ।

विशेष—शुक्र नीति के अनुसार फल फूल के पौधे बोने में निपुण खाद तथा पानी देने का समय जाननेवाला, जड़ी बूटियों को पहचाननेवाला आरामाधिपति होना चाहिए ।

आरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) बबूल की जाति का एक प्रकार का पेड़ जिसे आलबर्बुरक या स्थूलकंटक भी कहते हैं । (२) दुर्गंध खैर । बबुरी ।

आरुक-संज्ञा पुं० [सं०] (२) आलू बुखारा ।

आरोह-संज्ञा पुं० [सं०] (८) चूतड़ । नितंब । (९) ग्रहण के दस भेदों में से एक जिसमें ग्रस्त ग्रह को आवृत करनेवाला ग्रह (राहु) वर्तुलाकार ग्रहमंडल को आवृत करके पुनः दिखाई पड़ता है । फलित ज्योतिष के अनुसार इस प्रकार के ग्रहण के फल स्वरूप राजाओं में परस्पर संदेह और विरोध उत्पन्न होता है ।

आर्ट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) कौशल । कृतित्व । कारीगरी । (२)

कला। विद्या। शिल्प। हुनर। जैसे,—चित्रकारी। (३) चित्रकार या भास्कर का काम या व्यवसाय। (४) विश्वविद्यालय का वह विभाग जिसमें चिकित्सा, विज्ञान और व्यवहारशास्त्र (वकालत) को छोड़ अन्य सब विषयों, विद्याओं और भाषाओं की उच्च शिक्षा दी जाती हो। जैसे,—आर्टस् कालेज।

आर्टिकिल्स आफ एसोसियेशन–संज्ञा पुं० [अं०] किसी संस्था या ज्वायंट स्टाक कंपनी या सम्मिलित पूँजी से खुलनेवाली कंपनी की नियमावली।

आर्टिलरी–संज्ञा स्त्री० [अं०] तोपखाना।

आर्टिस्ट–संज्ञा पुं० [अं०] वह जो किसी कला में, विशेषकर ललित कला (चित्रकारी, तक्षण कला, संगीत, नृत्य आदि) में कुशल हो।

आर्डर–संज्ञा पुं० [अं०] (२) कोई वस्तु भेजने, पहुँचाने या मुहैया करने के लिये मौखिक या लिखित आदेश। माँग। जैसे,—(क) ये बादामी कागज की एक गाँठ का आर्डर दे गए हैं। (ख) आजकल बाहर से बहुत कम आर्डर आते हैं। (ग) आर्डर के साथ चौथाई दाम भेजना चाहिए।

क्रि० प्र०—आना।—देना।—मिलना।

यौ०—आर्डर-सप्लाई। आर्डर-सप्लायर।

(३) स्थिरता। शांति। जैसे,—सभा में बड़ा हो हल्ला मचा, लोग 'आर्डर' 'आर्डर' कहने लगे। (४) क्रम। सिलसिला।

आर्डरी–वि० [अं० आर्डर+ई (प्रत्य०)] आर्डर संबंधी। आर्डर का।

आर्डिनरी–वि० [अं०] साधारण। मामूली। जैसे,—आर्डिनरी मेंबर, आर्डिनरी शेयर।

आर्डिनेंस–संज्ञा पुं० [अं०] वह आदेश या हुक्म जो किसी देश के अधिकारी (भारत में वाइसराय) विशेष अवसरों पर जारी करते हैं और जो कुछ काल के लिये कानून माना जाता है। अस्थायी व्यवस्था या कानून। जैसे,—नये आर्डिनेंस के अनुसार बंगाल में कितने ही युवक गिरफ्तार किए गए।

विशेष—भारत में वाइसराय अपने अधिकार से, बिना कौन्सिल की सम्मति लिए, आर्डिनेंस जारी कर सकते हैं। ऐसे आर्डिनेंस का काल छः महीने का होता है। पर आवश्यकता पड़ने पर वह बढ़ाया भी जा सकता है।

आर्थी–संज्ञा स्त्री० दे० "कैतवापह्नुति"।

आर्थोडाक्स–वि० [अं०] जो अपने धार्मिक मत या सिद्धांत पर अटल हो। अपने धार्मिक मत या सिद्धांत से टस से मस न होनेवाला। कट्टर। सनातनी। जैसे,—परिषद् के आर्थोडाक्स हिंदू मेम्बरों ने शारदा विवाह बिल का घोर विरोध किया।

आर्द्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) अदरक। आदी। (५) अतीस।

आर्म–संज्ञा पुं० [अं०] हथियार। अस्त्र शस्त्र। जैसे,—आर्म्स ऐक्ट।

आर्म पुलिस–संज्ञा स्त्री० [अं० आर्म्ड पोलिस] हथियारबंद पुलिस। सशस्त्र पुलिस।

आर्मर्ड कार–संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की गाड़ी जिस पर गोलियों से बचाव के लिए लोहा मढ़ा रहता है। बख्तरदार गाड़ी।

विशेष—ऐसी गाड़ियाँ सेना के साथ रहती हैं।

आर्मी–संज्ञा स्त्री० [अं०] सेना। फौज। जैसे,—इंडियन आर्मी।

विशेष—आर्मी शब्द देश की समूची स्थल सेना का बोधक है।

आल–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कँटीला पौधा। स्याह काँटा। किंगरई। वि० दे० "किंगरई"।

आलू दम–संज्ञा पुं० दे० "दम आलू"।

आवर्तक–संज्ञा पुं० [सं०] योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विघ्नों में से एक प्रकार का विघ्न या उपसर्ग जिसमें उनका ज्ञान आकुल हो जाता है और उनका चित्त नष्ट हो जाता है। (मार्कंडेय पु०)

आवर्तकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसे चर्मण और भगवतवल्ली भी कहते हैं।

आवाप–संज्ञा पुं० [सं०] व्यूह बाँधने से बची हुई सेना। (कौ०)

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि परवाप तथा प्रत्यावाप से जो सेना तीन गुनी से आठ गुनी तक हो, उसका आवाप बना देना चाहिए।

आवेशनिक–संज्ञा पुं० [सं०] मित्रों को दिया जानेवाला भोज। (कौ०)

आशय–संज्ञा पुं० [सं०] (५) कटहल। पनस।

आशानिर्वेदि सेना–संज्ञा स्त्री० [सं०] विजय से हताश सेना।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि आशानिर्वेदि तथा परिसृप्त (भगोड़े) सेना में आशानिर्वेदि उत्तम है; क्योंकि वह अपना स्वार्थ देखकर युद्ध के लिये तैयार हो जाती है।

आषाढ़–संज्ञा पुं० [सं०] (६) पलाश। ढाक।

आसन–संज्ञा पुं० [सं०] (८) उपेक्षा की नीति से काम करना। यह प्रकट करना कि हमें कुछ परवा नहीं है।

विशेष—इस नीति के अनुसार शत्रु के चढ़ आने या घेरने पर *भी राजा लोग नाच-रंग का सामान करते हैं।*

(९) उदासीन या तटस्थ रहने की नीति। आक्रमण को रोके रहने की नीति। (कौ०) (१०) एक दूसरे की शक्ति नष्ट करने में असमर्थ होकर दो राजाओं का संधि करके चुपचाप रह जाना।

विशेष—यह पाँच प्रकार का कहा गया है—विगृह्यासन, संधायासन, संभूयासन, प्रसंगासन और उपेक्षासन।

संज्ञा पुं० [सं०] जीवक नाम की अष्टवर्गीय ओषधि। (९) जीरक। जीरा।

आसामुखी–वि० [सं० आशा+मुख] किसी के मुँह का

आसरा देखनेवाला। मुखापेक्षी। उ०—जो आकर अस आसामुखी। दुख महँ ऐसन मारै दुखी।—जायसी।

आसार-संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई में मित्र आदि से मिलनेवाली सहायता। (कौ०)

आसीन पाठ्य-संज्ञा पुं० [सं०] नाट्यशास्त्र के अनुसार लास्य के दस अंगों में से एक। शोक और चिंता से युक्त किसी अभूषितांगी नायिका का बिना किसी बाजे या साज के यों ही गाना।

आसुर-संज्ञा पुं० [सं० असुर] असुर। राक्षस। उ०—काहू कहूँ सुर आसुर मारयौ।—केशव।

आसुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) राजिका। राई। (४) सरसों।

आसुरी सृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] दैवी आपत्ति। जैसे, आग लगना, पानी की बाढ़, दुर्भिक्ष आदि।

आहार्य-संज्ञा पुं० [सं०] (२) अभिनय के चार प्रकारों में से एक। वेष-भूषा आदि धारण करके अभिनय करना।

आहार्योदक सेतु-संज्ञा पुं० [सं०] वह नहर जिसमें किसी स्थान से खींच कर पानी लाया गया हो। वि० दे० "सेतुबंध"।

आहितक-संज्ञा पुं० [सं०] गिरवी या बंधक रखा हुआ माल।

आहितदास-संज्ञा पुं० [सं०] ऋण के बदले में अपने को गिरवी रखकर बना हुआ दास। कर्जा पटाने के लिये बना हुआ गुलाम।

इंजर-संज्ञा पुं० दे० "समुंदर फल"।

इंडस्ट्रियल-वि० [अं०] उद्योग धंधा संबंधी। शिल्प संबंधी। औद्योगिक। जैसे,—इंडस्ट्रियल कानफरेन्स।

इंडस्ट्री-संज्ञा स्त्री० [अं०] उद्योग धंधा। शिल्प।

इंडेक्स-संज्ञा पुं० [अं०] (पुस्तक के) विषयों की अक्षरक्रम से बनी हुई सूची। विषयानुक्रमणिका।

इंडेण्ट-संज्ञा पुं० [अं०] माल मँगाने के समय भेजी जानेवाली माल की वह सूची जो किसी व्यापारी के पास माल की माँग के साथ भेजी जाती है।

इंडोर्स-क्रि० स० [अं० एण्डोर्स] बैंक या हुंडी आदि पर रुपये देने या पाने के संबंध में हस्ताक्षर करना।

इंद्रच्छंद-संज्ञा पुं० [सं०] एक हजार आठ मोतियों की माला जो चार हाथ लंबी होती थी।

इकसी-संज्ञा स्त्री० दे० "एकसी"।

इक्षुरस-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण।

इच्छा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) माल की माँग।

विशेष—आधुनिक अर्थशास्त्र में माँग या Demand शब्द का व्यवहार जिस अर्थ में होता है, उसी अर्थ में कौटिल्य ने 'इच्छा' शब्द का प्रयोग किया है। उसने 'आयुधागाराध्यक्ष' अधिकरण में लिखा है कि आयुधेश्वर अस्त्रों की 'इच्छा' और बनाने के व्यय को सदा समझता रहे। (३) गणित में त्रैराशिक की दूसरी राशि।

इनफार्मर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो गुप्त रूप से किसी बात का भेद लगाकर पुलिस को बताता है। गोइन्दा। भेदिया। जैसे,—वह पुलिस का इनफार्मर है।

इन्स्टिट्यूशन-संज्ञा पुं० [अं०] संस्था। समाज। मंडल।

इन्टरनैशनल-वि० दे० "सार्वराष्ट्रीय"। जैसे,—इन्टरनैशनल एग्जिबिशन।

इन्टरमीडियट-वि० [अं०] बीच का। मध्य का। मध्यम। जैसे—इन्टरमीडियट क्लास।

इन्टरव्यू-संज्ञा पुं० [अं०] (१) व्यक्तियों का आपस में मिलना। एक दूसरे का मिलाप। भेंट। मुलाकात। जैसे,—प्रयाग के एक संवाददाता ने उस दिन स्वराज्य पार्टी की स्थिति जानने के लिये उसके नेता पं० मोतीलाल नेहरू से इन्टरव्यू किया था।

क्रि० प्र०—करना।—लेना।

(२) आपस में विचारों का आदान प्रदान। वार्तालाप। जैसे,—समाचारपत्रों में एक संवाददाता और मालवीय जी का जो इन्टरव्यू छपा है, उसमें मालवीय जी ने देश की वर्त्तमान राजनीतिक स्थिति पर अपने विचार प्रकट किए हैं।

इन्वायस-संज्ञा पुं० [अं०] (१) व्यापारी द्वारा भेजे हुए माल की सूची जिसमें उस माल के दाम आदि का ब्योरा रहता है। बीजक। रवन्ना। (२) चलान का कागज।

इनश्योरेंस-संज्ञा पुं० दे० "बीमा"। जैसे,—लाइफ इन्श्योरेंस।

इम्पीरियल-वि० [अं०] साम्राज्य या सम्राट् संबंधी। राजकीय। शाही। जैसे,—इम्पीरियल सर्विस।

इम्पीरियल गवर्नमेंट-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) साम्राज्य सरकार। (२) बड़ी सरकार।

विशेष—भारत सरकार को भी इम्पीरियल गवर्नमेंट अर्थात् बड़ी सरकार कहते हैं।

इम्पीरियल प्रेफरेन्स-संज्ञा पुं० [अं०] साम्राज्य की वस्तुओं पर उसके अधीनस्थ देश में इस प्रकार आयात-निर्यात कर बैठाने की नीति जिससे वह दूसरे देशों के मुकाबले में सस्ता माल बेच सके। साम्राज्य की बनी वस्तुओं को प्रधानता देना।

इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह सेना जो भारत के देशी रजवाड़े भारत सरकार के सहायतार्थ अपने यहाँ रखते हैं और जिसकी देखभाल ब्रिटिश अफसर करते हैं।

विशेष—आपत्काल में सरकार इस सेना से काम लेती है।

इम्पोर्ट-संज्ञा पुं० दे० "आयात"। जैसे,—इम्पोर्ट ड्यूटी।

इरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (६) मदिरा। शराब।

इलता-संज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का बाँस जो दक्षिण भारत के मैदानों और पहाड़ों में होता है। इसमें

—बहुत बड़े बड़े फूल और फल लगते हैं। इसके छोटे छोटे फलों से बहुत अच्छा कागज बनता है।

इलेक्ट्रो- वि० [अं०] बिजली द्वारा तैयार किया हुआ। इलेक्ट्रिक का। जैसे,—इलेक्ट्रो टाइप, इलेक्ट्रो प्लेट।

संज्ञा पुं० तस्वीर आदि का वह ठप्पा या ब्लाक जो बिजली की सहायता से तैयार किया गया हो।

इल्ली-संज्ञा स्त्री० [?] च्यूँटी आदि के बच्चों का वह पहला रूप जो अंडे से निकलने के उपरांत तुरंत होता है।

इसारत—†-संज्ञा स्त्री० [फा० इशारा] इशारा। संकेत। उ०—मुख सों न कह्यो कछु हाथ की इसारत सों गारी दै दै आपनी केयारी दोऊ दै गई।—रघुनाथ।

इहलौकिक-वि० [सं०] इहलोक संबंधी। इस लोक का। सांसारिक। (२) इस लोक में सुख देनेवाला।

ईंडरी†-संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडली] कपड़े की बनी हुई कुंडलाकार गद्दी जिसे घड़ा या और कोई बोझ उठाते समय सिर पर रख लेते हैं। उ०—आई संग आलिन के ननद पठाई नीठ सोहत सुहाई सही ईंडरी सुपट की। कहै पदमाकर गभीर जमुना के तीर लागी घट भरन नवेली नेह अटकी।—पद्माकर।

ईठना*-क्रि० प्र० [सं० इष्ट] चाह करना। इच्छा करना।

ईर्ष्यक-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार के नपुंसक जिन्हें उस समय कामोत्तेजना होती है जिस समय वे किसी दूसरे को मैथुन करते हुए देखते हैं।

ईश-संज्ञा पुं० [सं०] (८) पारद। पारा।

ईश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (४) पारद। पारा। (५) पीतल। (६) रामानुजाचार्य्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक जो संसार का कर्त्ता, अपादान, अंतर्यामी और ऐश्वर्य तथा वीर्य्य आदि संपन्न माना जाता है। (शेष दो पदार्थ चित् और अचित् हैं।)

ईसन*-संज्ञा पुं० [सं० ईशान] ईशान कोण। पूरब और उत्तर के बीच का कोना। उ०—सतमी पूनिउँ वायव आछी। अठइँ अमावस ईसन लाछी।—जायसी।

ईसर*-संज्ञा पुं० [सं० ऐश्वर्य] धन-संपत्ति। ऐश्वर्य। वैभव। उ०—कहेन्हि न रोव बहुत तैं रोवा। अब ईसर भा दारिद खोवा।—जायसी।

ईस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] पूर्व दिशा।

उंघाई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँघना] (१) ऊँघने की क्रिया या भाव। (२) निद्रागम। झपकी।

क्रि० प्र०—आना।—लगना।

उकौना†-संज्ञा पुं० [हिं० ओकाई ?] गर्भवती स्त्री में होनेवाली अनेक प्रकार की प्रबल इच्छाएँ। दोहद।

क्रि० प्र०—उठना।

उक्त-प्रत्युक्त-संज्ञा पुं० [सं०] लास्य के दस अंगों में से एक। उक्ति प्रतियुक्ति से युक्त, उपालंभ के सहित, अलीक (अप्रिय या मिथ्या) सा प्रतीत होनेवाला और विलासपूर्ण अर्थ से सुसंपन्न गान। (नाट्यशास्त्र)

उक्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (४) ऋषभक नाम की अष्टवर्गीय ओषधि।

उगरना†-क्रि० प्र० [सं० अग्र] सामने आना। निकलना। उ०—सावन करै कहँ उगरै कोई। सनमुख सोम लाभ बहुत होई।—जायसी।

उघटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास।

उच्छिन्न संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो उपजाऊ या खनिज पदार्थों से परिपूर्ण भूमि का दान करके की जाय।

उच्छुल्क-वि० [सं०] बिना चुंगी या महसूल का।

क्रि० वि० बिना चुंगी या महसूल दिए। (कौ०)

उझरना*-क्रि० स० [सं० उद् + सरण] ऊपर की ओर उठाना। ऊपर खिसकाना। उ०—कर उठाइ घूँघट करत उझरत पट-गुँझरौट। सुख-मोटैं लूटीं ललन लखि ललना की लौट।—बिहारी।

उट्टी-संज्ञा स्त्री० [देश०] लाग डाँट में बुरी तरह अपनी हार मानना।

क्रि० प्र०—बुलवाना।—बोलना।

उडकट-संज्ञा पुं० [अं०] छपाई के काम में आनेवाला एक प्रकार का ठप्पा जो कुछ विशिष्ट प्रकार की मुलायम लकड़ियों पर खोद कर तैयार किया जाता है।

विशेष—पहले चित्र आदि किसी मुलायम लकड़ी पर उलटा खोद देते हैं; और या तो उसी को प्रेस पर छापते हैं अथवा उससे इलेक्ट्रो आदि ब्लाक तैयार करते हैं।

उड़सना†-क्रि० प्र० [सं० विनष्ट ?] भंग होना। नष्ट होना। उ०—उड़सा नाच नचनियाँ मारा। रहसे तुरुक बजाइ के तारा।—जायसी।

उड़ाइक*-संज्ञा पुं० [सं० उड्डायक] वह जो (गुड्डी आदि) उड़ाता हो। उड़ानेवाला। उ०—कहा भयो जौ बीछुरे मो मन तो मन साथ। उड़ी जाहु कितहूँ तऊ गुड़ी उड़ाइक हाथ।—बिहारी।

उड़ाका-संज्ञा पुं० [हिं० उड़ना + आका (प्रत्य०)] (१) वह जो उड़ सकता हो। उड़नेवाला। (२) वह जो वायुयान आदि पर उड़ता हो। हवाई जहाज पर उड़नेवाला।

उड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० उड़ना] (२) कलैया। कलाबाजी।

उडु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) पानी। जल।

उडुपति-संज्ञा पुं० [सं०] (२) सोम लता।

उतराई-संज्ञा स्त्री० [हिं० उतरना] (३) नाव आदि पर से उतरने का स्थान। (४) नीचे की ओर ढलती हुई जमीन। उतार। ढाल।

उत्कट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मूँज। (२) ईख। गन्ना। (३) दालचीनी। (४) तज। (५) तेजपत्ता।

उत्तम मित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो राष्ट्र या राजा के लिये सब से उत्तम मित्र हो। उत्तम मित्र के कौटिल्य ने छः भेद दिए हैं—(१) नित्यमित्र, (२) वश्यमित्र (३) लघूत्थान मित्र (४) पितृपैतामह मित्र (५) महत मित्र (६) अद्वैध्य मित्र।

उत्तमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) दूधी। दुग्धिका। (४) इंदीवरा। युग्मफल। उत्तरन।

उत्तमोत्तमक-संज्ञा पुं० [सं०] लास्य के दस अंगों में से एक। कोप अथवा प्रसन्नताजनक, आक्षेपयुक्त, रसपूर्ण, हाव और भाव से संयुक्त विचित्र पद्य-रचना युक्त गान। (नाट्यशास्त्र)

उत्तरीय-संज्ञा पुं० [सं०] (२) एक प्रकार का बहुत बढ़ा सन जो बहुत मजबूत होता और सहज में काता जा सकता है। यह बहुत मुलायम और चमकीला होता है और सब सनों से अच्छा समझा जाता है।

उत्पथिक-संज्ञा पु० [सं०] वे लोग जो नगर में इधर उधर आ जा रहे हों।

उत्संग-संज्ञा पुं० [सं०] राजकुमार के जन्म पर प्रजा तथा करद राजाओं से नजराने या उपहार के रूप में प्राप्त धन।

उत्साह शक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] चढ़ाई तथा युद्ध करने की शक्ति।

उत्साह-सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कार्य्य जो कि उत्साहशक्ति (लड़ने भिड़ने के साहस) से सिद्ध हो।

उदंजर स्थान-संज्ञा पुं० [सं०] पानी रखने का स्थान या गुसलखाना।

उदकचरण-संज्ञा पुं० [सं०] वह चोर या घातक जो स्नान करते हुए मनुष्य को पानी के भीतर ही भीतर खींच ले जाय। पनडुब्बा। बुड्डुआ। (कौ०)

उदपान-संज्ञा पुं० [सं०] (२) तालाब के आस-पास की भूमि या टीला।

उदरदास-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो जन्म से ही दास हो या दास का पुत्र हो।

विशेष—ऐसे मनुष्य को छोड़ दूसरे किसी मनुष्य को बेचना अपराध माना जाता था।

उदार-संज्ञा पुं० [देश०] गुर्ढ़ नाम का वृक्ष। (अवध)

संज्ञा पुं० [सं०] योग में अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन चारों क्लेशों का एक भेद या अवस्था जिसमें कोई क्लेश अपने पूर्ण रूप में वर्तमान रहता हुआ अपने विषय का ग्रहण करता रहता है।

उदासीन-संज्ञा पुं० [सं०] (४) वह दूरवर्ती राष्ट्र का राजा जो शक्ति-शाली तथा निग्रह अनुग्रह में समर्थ हो। (कौ०)

उदासीन मित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र राजा जिसके संबंध में यह निश्चय न हो कि यह सहायता में कुछ करने का कष्ट उठावेगा।

विशेष—जिस राजा के पास बहुत अधिक उपजाऊ जमीन होगी, जो बलवान, संतुष्ट तथा आलसी होगा और कष्ट से दूर भागनेवाला होगा, उसे सहायता के लिये कुछ करने की कम परवा होगी। (कौ०)

उदाहृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाट्यशास्त्र के अनुसार किसी प्रकार का उत्कर्षयुक्त वचन कहना, जो गर्भसंधि के तेरह अंगों में से एक है। जैसे,—रत्नावली में विदूषक का यह कथन—(हर्ष से) आज मेरी बात सुनकर प्रिय मित्र को जैसा हर्ष होगा, वैसा तो कौशांबी का राज्य पाने से भी न हुआ होगा। अच्छा अब चलकर यह शुभ संवाद सुनाऊँ।

उद्गतार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ या धरोहर जिसका पड़े पड़े ही भोग आदि के बढ़ने से दाम चढ़ गया हो।

उद्ग्रंथ-संज्ञा पुं० [सं०] कर के रूप में एकत्र किया हुआ धान्य।

उद्ग्राह-संज्ञा पुं० [सं०] कर के रूप में एकत्र किया हुआ अन्न।

उद्दिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] किसी वस्तु का वह भोग जो मालिक से आज्ञा प्राप्त करके किया जाय। (पराशर)

उद्धव्य-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध शास्त्रानुसार दस क्लेशों में से एक क्लेश।

उद्धृत-संज्ञा पुं० [सं०] गाँव के वे वृद्ध जन जो गाँव संबंधी पुरानी घटनाओं से परिचित तथा समय पड़ने पर उनको प्रकाशित करनेवाले हों।

विशेष—मध्य काल में सीमा संबंधी झगड़ों का इन्हीं लोगों के साक्ष्य के अनुसार निर्णय किया जाता था। आज कल पटवारी ही इन लोगों का स्थानापन्न है।

उद्यानक व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] वह असंहत व्यूह जिसके चारों अंग असंहत हों।

उद्रंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सारस्वत कोष के अनुसार उद्ग्रंथ तथा उद्ग्राह। (२) डाक्टर बुहलर के मत से वह अन्न जो राजा के अंश के रूप में गाँवों से इकट्ठा किया गया हो।

उद्रेक-संज्ञा पुं० [सं०] (३) बकायन। महानिंब।

उद्वह-संज्ञा पुं० [सं०] (३) उदान वायु जिसका स्थान कंठ में माना गया है। वि० दे० "उदान"।

उद्वाप-संज्ञा पुं० [सं०] खेती। फसल।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में राज्य का यह नियम था कि यदि कृषक खेती न करें तो उनको राज्य कर इकट्ठा करनेवाले समाहर्ता के कारिंदे बाध्य करते थे कि वह गरमी की फसल तैयार करें।

उनंत-वि० [सं० अनुन्नत या नत] झुका हुआ। नत। उ०—उठी कोंप जस दारिउँ दाखा। भई उनंत प्रेम कै साखा।—जायसी।

उनदौहाँ*-वि० [सं० उन्निद्र, हिं० उनींदा] नींद से भरा हुआ। ऊँघता हुआ। उनींदा। उ०—पारयो सोर सुहाग को इतु बिनु ही पिय-नेह। उनदौहीं अँखियाँ ककै कै अलसौहीं देह।—बिहारी।

उन्नतोदर-संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह पदार्थ जिसका वृत्तखंड ऊपर की ओर उठा हुआ हो। जैसे,—उन्नतोदर शीशा।

उन्नैनाॐ-क्रि० अ० [सं० उन्नयन] झुकना। नत होना। उ०—लागि सुहाई हरफा रयोरी। उन्नै रही केरा की घौरी।—जायसी।

उपग्रह संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो सब कुछ देकर अपनी प्राणरक्षा के लिये की जाय। (कौ०)

उपचारच्छल-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में विकल्प या विरुद्ध अर्थ के निदर्शन द्वारा सज्ञाय या अभिप्रेत अर्थ का निषेध करना। जैसे,—वादी ने कहा कि "गद्दी से हुकुम हुआ", इस पर प्रतिवादी कहे कि "गद्दी तो जड़ है; वह कैसे हुकुम दे सकती है ?" तो यह उसका उपचारच्छल है।

उपदंश-संज्ञा पुं० [सं०] (२) वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें पुरुष की लिंगेंद्रिय पर नाखून या दाँत लगने के कारण घाव हो जाता है।

उपदाग्राहक-वि० [सं०] घूस लेनेवाला। रिशवत लेनेवाला। रिशवती।

विशेष—चाणक्य ने लिखा है कि न्यायाधीश के चरित्र की परीक्षा के लिये खुफिया पुलिस का कोई आदमी उससे आकर कहे कि एक मेरा मित्र राज्यापराध में फँस गया है। आप कृपा कर उसको छोड़ दीजिए और यह धन ग्रहण कीजिए। यदि वह धन ग्रहण कर ले तो राज्य उसको "उपदाग्राहक" समझ कर राज्य के बाहर निकाल दे। (कौ०)

उपदेसनाॐ-क्रि० स० [सं० उपदेश + ना (प्रत्य०)] उपदेश करना। शिक्षा देना। नसीहत करना। उ०—द्विरदहिं बहुरि बुलाइ नरेसा। सौंपि गयंद यूथ उपदेसा।—सबल।

उपधियुक्त-संज्ञा पुं० [सं०] मिलावटी। जो असली या खालिस न हो (माल)। (कौ०)

उपनाॐ-क्रि० अ० [सं० उत्पन्न] उत्पन्न होना। पैदा होना। उ०—कुधर सहित यहाँ विसिष बेगि पठयों सुनि हरि हिय गरब गूढ़ उपयो है।—तुलसी।

उपनिधि-भोक्ता-संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जिसने दूसरे की रखी धरोहर का स्वयं प्रयोग किया हो। (चंद्रगुप्त के समय में ऐसे लोग देश काल के अनुसार उसका बदला या भोग-वेतन देने के लिए बाध्य किए जाते थे।)

उपनिपात-संज्ञा पुं० [सं०] राजा, चोर, आग और पानी आदि से माल का खराब या नष्ट होना। वि० दे० "दोष"। (कौ०)

उपनिविष्ट (सैन्य)-वि० [सं०] सुशिक्षित और अनुभवी।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि उपनिविष्ट तथा समाप्त (एक ही ढंग की लड़ाई जाननेवाली) सैन्य में उपनिविष्ट सैन्य ही उत्तम है, क्योंकि उपनिविष्ट को भिन्न भिन्न स्थानों में लड़ना आता है और वह छावनी के अतिरिक्त भी लड़ाई कर सकती है। (कौ०)

उपन्यास संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो किसी कल्याणकारी शुभ कर्म की इच्छा से की जाय। (कामंद०)

उपमाता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दूध पिलानेवाली स्त्री। दाई। धाय।

उपराजॐ†-संज्ञा स्त्री० [हिं० उपज] उपज। पैदावार।

उपराहनाॐ- क्रि० स० [?] प्रशंसा करना। सराहना। उ०—आम जो फरि कै नवै तराहीं। फल अमृत भा सब उपराहीं।—जायसी।

उपरिकर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कर जो उन किसानों से लिया जाता था जिनका जमीन पर मौरूसी या अन्य किसी प्रकार का हक नहीं होता था।

उपरिचर-संज्ञा पुं० [सं०] एक वसु का नाम। वि० दे० "चेदिराज" (२)।

उपरुद्ध सैन्य-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु के द्वारा रोकी हुई सेना।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि उपरुद्ध तथा परिक्षिप्त (सब ओर से घिरी हुई) सेना में उपरुद्ध अच्छी है, क्योंकि वह किसी एक ओर से निकल कर युद्ध कर सकती है। परिक्षिप्त सब ओर से घिर जाने के कारण ऐसा नहीं कर सकती। (कौ०)

उपवनॐ-क्रि० अ० [सं० उदय] उदय होना। उगना। उ०—मोद भरी गोद लिये लालति सुमित्रा देखि देव कहैं सबको सुकृत उपवियो है।—तुलसी।

उपवास या उपवासी-संज्ञा पुं० [सं०] वे नीच जाति के लोग जिनको गाँव के मामलों में विशेष अधिकार न हो। वि० दे० "ग्रामिक"।

उपविक्रय-संज्ञा पुं० [सं०] चोरी से या संदेह की अवस्था में किसी माल का खरीदा या बेचा जाना।

विशेष—बृहस्पति के अनुसार घर के भीतर, गाँव के बाहर या रात में किसी नीच जाति के आदमी से कम दाम में कोई वस्तु खरीदना उपविक्रय के अंतर्गत है। ऐसा माल खरीदनेवाला अपराधी होता था। पर यदि वह खरीदने के पहले राज्य को सूचना दे देता था तो अपराधी नहीं होता था। (नारद)

उपविष प्रणिधि-संज्ञा पुं० [सं०] विष या यंत्र मंत्र आदि द्वारा मनुष्यों को गुप्त रूप से मारनेवाला।

विशेष—कौटिल्य के समय में ऐसे गुप्तचर उन लोगों के वध के लिये नियुक्त किए जाते थे जिनसे राजा असंतुष्ट होता था या जो बागी समझे जाते थे।

उपवेधक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो रास्ते चलते लोगों को तंग करे या लूटे। गुंडा। बदमाश।

उपशाल-संज्ञा पुं० [सं०] गाँव का चौपाल जहाँ बैठ कर पंचायत होती थी या गाँव भर के लोग उत्सव आदि मनाते थे। आए हुए साधु संन्यासी इसी में बैठ कर उपदेश देते तथा व्यास लोग कथा पुराण सुनाते थे। (कौ०)

उपसर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (४) योगियों के योग में होनेवाला

विघ्न जो पाँच प्रकार का कहा गया है—प्रतिम, धार्त्रण, दैव, भ्रम और आवर्त्तक। (मार्कंडेय पु०)

उपस्कर-संज्ञा पुं० [सं०] (५) जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक पदार्थ। रसद या सामान। (कौ०)

उपस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (६) प्रस्तुत राज्य-कर इकट्ठा करना और पुराना बाकी वसूल करना।

उपस्थापक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विषय को विचार और स्वीकृति के लिये किसी सभा में उपस्थित करे। उपस्थित करनेवाला।

उपहार संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जिसमें संधि करने से पूर्व एक पक्ष को दूसरे को कुछ उपहार में देना पड़े। (कामंद०)

उपाड़ा†-संज्ञा पुं० [हिं० उपड़ना = उभरना] किसी तीव्र औषध आदि के कारण शरीर की खाल का उड़ने लगना।

मुहा०—उपाड़ करना = किसी दवा का शरीर या दाने जलाना या वहाँ की खाल उड़ाना।

उपाती⊛-संज्ञा स्त्री० [सं० उत्पत्ति] उत्पत्ति। पैदाइश। उ०—सुरहिं ते है सुख उपाती। सुरहि तें उपजे बहु भाँती।—जायसी।

उपाध्य-संज्ञा पुं० [सं०] खेतों में आनेवाली पगडंडी। डाँड़। मेंड़।

उपेक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] (३) आसन नीति का एक भेद। अवज्ञा प्रदर्शित करते हुए आक्रमण न करना।

उपेक्षायान-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु से छुट्टी पाकर उसके सहायक मित्रों पर चढ़ाई। (कामंद०)

उपेक्षासन-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु की उपेक्षा करते हुए चुपचाप बैठे रहना, उस पर चढ़ाई आदि न करना। (कामंद०)

उपैना⊛†-क्रि० अ० [?] उड़ना। लुप्त हो जाना। उ०—देखत उड़ै कपूर ज्यौं उपै जाइ जनि लाल। छिन छिन जाति परी खरी छीन छबीली बाल।—बिहारी।

उफनना†-क्रि० अ० (1) दे० "उगना"। (२) दे० "उफना"।

उबहना⊛-क्रि० अ० [सं० उद्वहन] ऊपर की ओर उठना। उभरना। उ०—जावन सबै उरेह उरेहे। भाँति भाँति नग लाग उबेहे।—जायसी।

उभटना†-क्रि० अ० [हिं० उभड़ना] अहंकार करना। अभिमान करना। शेखी करना।

उभयतोऽर्थापद-संज्ञा पुं० [सं०] जिधर से लाभ की संभावना दिखाई पड़ती हो, उधर ही शत्रु की बाधा। ऐसा करते हैं तो भी बाधा और वैसा करते हैं तब भी। (कौ०)

उभयतोऽनर्थापद-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी स्थिति जिसमें दो ही मार्ग हों और दोनों अनिष्टकर हों। (कौ०)

उभयतोभागी-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो अमित्र तथा आसार (साथी) दोनों का साथ ही उपकार करे। (कौ०)

उभयाविमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो दो लड़नेवाले पक्षों में से किसी के प्रति उदासीनता न प्रकट करे अर्थात् दोनों का मित्र बना रहे।

उमरौंहाँ-वि० [हिं० उभार + औहाँ (प्रत्य०)] उभार पर आया हुआ। उभरा हुआ। उ०—भावुक उभरौंहौं भयौ, कछुक पर्‌यौ भरुआइ। सीपहरा कैं मिस हियौ निसि दिन हेरत जाइ।—बिहारी।

उमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (८) चंद्रकांत मणि।

उम्मेदवार-संज्ञा पुं० [फा०] (४) वह जो किसी स्थान या पद के लिये अपने को उपस्थित करता या किसी के द्वारा किया जाता है। पदप्रार्थी। जैसे,—(क) वे व्यवस्थापिका परिषद् की मेंबरी के लिये उम्मेदवार हैं। (ख) वे बनारस डिवीजन से कौन्सिल के लिये उम्मेदवार खड़े किए गए हैं।

उरंग-संज्ञा पुं० [सं०] (२) नागकेसर।

उरगना⊛-क्रि० स० [सं० उरीकरण] स्वीकार करना। अंगीकार करना। अँगेजना। उ०—आय भरथ कह धौं करै जिय माँहि गुनौ। जो दुख देइ तो लै उरगो यह बात सुनौ।—केशव।

उरण-संज्ञा पुं० [सं०] (२) युरेनस नामक ग्रह जो पृथ्वी से बहुत अधिक दूर होने के कारण एक धूमिल स्थिर तारे या नक्षत्र के समान जान पड़ता है। पृथ्वी से सूर्य जितनी दूरी पर है, उसकी अपेक्षा यह प्रायः १९ गुनी अधिक दूरी पर है। यद्यपि प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों को बहुत दिनों पहले से इसका ज्ञान था, पर पाश्चात्य ज्योतिषियों में से हर्शेल ने १७८१ ई० में इसका पता लगाया था। इसकी परिधि ३१,००० मील है। प्रायः ८४ वर्ष और १ सप्ताह में इसका एक परिक्रमण होता है। इसके चार उपग्रह हैं, जिनमें से दो इतने छोटे हैं कि बिना बहुत अच्छी दूरबीन के दिखाई नहीं देते। युरेनस।

उरस्य संज्ञा पुं० [सं०] सेना का अग्र भाग।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि पक्ष, कक्ष तथा उरस्य में पाँच धनुष का अंतर होना चाहिए। व्यूह रचना के प्रसंग में पक्ष, कक्ष तथा उरस्य में भिन्न भिन्न प्रकार की सेनाओं के रखने के नियम बताए गए हैं। (कौ०)

उराना⊛†-क्रि० अ० [हिं० ओर + आना (प्रत्य०)] समाप्त होना। खतम होना। वि० दे० "ओराना"। उ०—देखत उड़ै कपूर ज्यौं उपै जाइ जनि लाल। छिन छिन जाति परी खरी छीन छबीली बाल।—बिहारी।

उलझा†-संज्ञा पुं० दे० "उलझन"। उ०—बीर वियोग के ये उलझा निकसैं जिन रे जियरा हियरा तें।—ठाकुर।

उसरना⊛-क्रि० अ० [सं० विस्मरण] विस्मृत होना। भूलना। याद न रहना।

उसारना†–क्रि० स० [सं० उद्+सरण] मकान, दीवार आदि बनाकर खड़ी करना।

ऊखल–वि० [सं० उष्ण] तपा हुआ। गरम। उ०—उष्ण काल अरु देह खिन मगपंथी तन ऊख। चातक बतियाँ ना रुचीं अनजल सींचे रूख।—तुलसी।

ऊखड़–संज्ञा पुं० [सं० ऊषर] पहाड़ के नीचे की सूखी जमीन। भाभर। (कुमाऊँ)

ऊखल–संज्ञा पुं० [सं० उलबल] एक प्रकार का तृण या घास।

ऊटक नाटक–संज्ञा पुं० [सं० उत्कट+नाटक] इधर उधर का काम। वह काम जिसका कुछ निश्चय न हो। जैसे,—(क) बैठने से तो काम चलेगा नहीं, कुछ ऊटक नाटक करना ही होगा। (ख) वह ऊटक नाटक करके किसी प्रकार गुजर करता है।

ऊढ़ना॰–क्रि० स० [सं० ऊढ़] विवाह करना। शादी करना। उ०—बिरिध खाइ नव जोबन सौं तिरिया सों ऊढ़।—जायसी।

ऊतर॰–संज्ञा पुं० [?] (२) बहाना। मिस। उ०—ऊतर कौन हू के पद्माकर दै फिरि कुंजगलीन में फेरी।—पद्माकर।

ऊप॰–संज्ञा स्त्री० दे० "ओप"। उ०—तौ निरमल मुख देखे जोग होइ तेहि ऊप।—जायसी।

ऊरू–संज्ञा स्त्री० [देश०] ऐल नाम की कँटीली लता। अलई। वि० दे० "ऐल"।

ऊर्द्ध्व–संज्ञा स्त्री० [सं०] दस दिशाओं में से एक। सिर के ठीक ऊपर की ओर की दिशा।

ऊर्ध्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक विशेष प्रकार की प्राचीन नौका जो ३२ हाथ लंबी, १६ हाथ चौड़ी और १६ हाथ ऊँची होती थी।

ऊह–संज्ञा स्त्री० [सं०] किंवदंती। अफवाह।

ऋण-मोक्षित दास–संज्ञा पुं० [सं०] दे० "ऋणमोक्षित"।

ऋणलेख्य-पत्र–संज्ञा पुं० वह लेन देन के व्यवहार का पत्र जो साक्षियों के सामने लिखा गया हो। दस्तावेज।

एकडेमी–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) शिक्षालय। विद्यालय। स्कूल। (२) वह सभा या समाज जो शिल्पकला या विज्ञान की उन्नति के लिये स्थापित हुआ हो। विज्ञान समाज।

एकतोभोगी मित्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह वश्य मित्र जो एक साथ एक ही को लाभ पहुँचा सके; अर्थात् अमित्र को नहीं। उभयतोभोगी का उलटा। (कौ०)

एकन्नी–संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+आना] ब्रिटिश भारत का निकल धातु का एक छोटा सिक्का जो एक आने या चार पैसे मूल्य का होता है।

एकपत्नी व्रत–संज्ञा पुं० [सं०] (२) केवल एक विवाहिता पत्नी को छोड़कर और किसी स्त्री से विवाह या प्रेम-संबंध न करने का व्रत।

एकपाद वध–संज्ञा पुं० [सं०] एक पैर काट देने का दंड। (जो लोग साधारण द्रव्य की चोरी करते थे, उनको एक पैर काट देने का दंड मिलता था। प्रायः ३०० पण देकर वे इस दंड से मुक्त भी हो सकते थे।)

एकमुख विक्रय–संज्ञा पुं० [सं०] सब के हाथ एक दाम पर बेचना। बँधी कीमत पर बेचना।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में पण्यबाहुल्य (माल की पूरी आमदनी) होने पर व्यापारियों को माल बँधी कीमत पर बेचना पड़ता था। वे भाव घटा बढ़ा नहीं सकते थे। (कौ०)

एकलेखा संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का फूल या उसका पौधा।

एकवासा–संज्ञा पुं० [सं० एकवासस्] एक प्रकार के दिगंबर जैन जो नग्न के अंतर्गत हैं।

एकसिद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] केवल एक ही उपाय से होनेवाली सिद्धि। (कौ०)

एकहत्था–संज्ञा पुं० [हिं० एक+हाथ] किसी विषय, विशेष कर व्यापार या रोजगार को अपने हाथ में करना, दूसरे को न करने देना। किसी व्यापार या बाजार पर अपना एक मात्र अधिकार जमाना। एकाधिकार जैसे,—रूई के व्यापार को उन्होंने एकहत्था कर लिया।

क्रि० प्र०—करना।

एकहस्तपाद वध–संज्ञा पुं० [सं०] एक हाथ और एक पैर काटने का दंड।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में जो लोग ऊँचे वर्ण के लोगों तथा गुरुओं के हाथ पैर मरोड़ देते थे या सरकारी घोड़े गाड़ियों पर बिना आज्ञा के चढ़ते थे, उनको यह दंड दिया जाता था। प्रायः ७०० पण देकर लोग इस दंड से मुक्त हो जाते थे।

एक-हस्त वध–संज्ञा पुं० [सं०] एक हाथ काटने का दंड।

विशेष—जो लोग नकली कौड़ी पासा आदि बना कर खेलते थे या हाथ की सफाई से बाजी जीतते थे, उनको यह दंड दिया जाता था। जो लोग इस दंड से बचना चाहते थे, उनको ४०० पण देना पड़ता था। (कौ०)

एकांग वध–संज्ञा पुं० [सं०] एक अंग काटने का दंड। (कौ०)

एकाग्र–संज्ञा पुं० [सं०] योग में चित्त की पाँच वृत्तियों या अवस्थाओं में से एक जिसमें चित्त निरंतर किसी एक ही विषय की ओर लगा रहता है। ऐसी अवस्था योग साधना के लिये अनुकूल और उपयुक्त कही गई है। वि० दे० "चित्तभूमि"।

एकाग्रता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) योगदर्शन के अनुसार चित्त की एक भूमि जिसमें किसी प्रकार की चंचलता या अस्थिरता नहीं रह जाती और योगी का मन बिलकुल शांत रहता है।

एकार्गल–संज्ञा पुं० [सं०] खर्जूरवेध नाम का योग।

एकावली–संज्ञा स्त्री० [सं०] मोतियों की एक हाथ लंबी माला जिसमें मोतियों की संख्या नियत न हो। (कौ०। वराह०)

विशेष—यदि इस माला के बीच में मणि होती थी तो इसकी "यष्टी" संज्ञा थी।

एक्सपर्ट-संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसे किसी विषय का विशेष ज्ञान हो। किसी विषय में पारंगत। विशेषज्ञ।

एक्सपोर्ट-संज्ञा पुं० दे० "निर्गत"। जैसे,—एक्सपोर्ट ड्यूटी।

एक्सप्लोसिव-संज्ञा पुं० [अं०] भभक उठनेवाला पदार्थ। विस्फोटक पदार्थ। गंधक, बारूद आदि। जैसे,—एक्सप्लोसिव ऐक्ट।

एक्साइज-संज्ञा पुं० [अं०] वह टैक्स या कर जो नमक और आबकारी की चीजों पर लगता है। नमक और आबकारी की चीजों पर लगनेवाला टैक्स या कर। महसूल। चुंगी।

एक्जामिनेशन-संज्ञा पुं० [अं०] परीक्षा। इम्तिहान।

एग्जिबिट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) प्रदर्शनी आदि में दिखाई जानेवाली वस्तु। (२) वह वस्तु जो अदालत में किसी मामले में प्रमाण स्वरूप दिखाई जाय। अदालत में किसी मामले के संबंध में प्रमाण स्वरूप उपस्थित की जानेवाली वस्तु। जैसे,—नं० १० एग्जिबिट एक तेज छुरा था।

एग्जिबिशन-संज्ञा पुं० [अं०] प्रदर्शनी। नुमाइश। जैसे,—एग्पायर एग्जिबिशन।

एजुकेशन-संज्ञा पुं० [अं०] शिक्षा। तालीम। जैसे,—प्राइमरी एजुकेशन।

एजुकेशनल-वि० [अं०] शिक्षा संबंधी। जैसे,—एजुकेशनल सोसाइटी।

एजेंट-संज्ञा पुं० [अं०] (३) वह राजपुरुष या अफसर जो अँगरेज सरकार या बड़े लाट के प्रतिनिधि रूप से किसी देशी राज्य में रहता हो। (४) दे० "एजेंट-गवर्नर-जनरल।"

एजेंट-गवर्नर-जनरल-संज्ञा पुं० [अं०] वह राजपुरुष या अफसर जो बड़े लाट के एजेंट या प्रतिनिधि रूप से कई देशी राज्यों की राजनीतिक दृष्टि से देख भाल करता हो।

एजेंडा-संज्ञा पुं० [अं०] किसी सभा का कार्यक्रम।

एजेंसी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (३) वह स्थान जहाँ सरकार या गवर्नर जनरल (बड़े लाट) का एजेंट या प्रतिनिधि रहता हो या जहाँ उसका कार्यालय हो। (४) वह प्रांत जो राजनीतिक दृष्टि से एजेंट के अधिकार-भुक्त हो। जैसे,—राजपूताना एजेंसी, मध्य-भारत एजेंसी।

विशेष—हिंदुस्थान में पाँच रेजिडेंसियाँ (हैदराबाद, मैसूर, बड़ोदा, काश्मीर और सिकम में) और चार एजेंसियाँ (राजपूताना, मध्य-भारत, बिलोचिस्तान तथा पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत में) हैं। एक एक एजेंसी के अंतर्गत कई राज्य हैं। इन एजेंसियों में सब मिलाकर कोई १७५ राज्य या रियासतें हैं। प्रत्येक एजेंसी में गवर्नर जनरल या बड़े लाट का एजेंट या प्रतिनिधि रहता है। इन एजेंटों के सहायतार्थ रियासतों में पोलिटिकल अफसर रहते हैं। जिस स्थान पर ये लोग रहते हैं, वहाँ प्रायः अँगरेज सरकार की छावनी होती है और कुछ फौज रहती है।

एडवोकेट-संज्ञा पुं० [अं०] वह वकील जो साधारण वकीलों से पद में बड़ा हो और जो पुलिस कोर्ट से लेकर हाई कोर्ट तक में बहस कर सके।

एडवोकेट जनरल-संज्ञा पुं० [अं०] सरकार का प्रधान कानूनी परामर्शदाता और उसकी ओर से मामलों की पैरवी करनेवाला।

विशेष—भारत में बंगाल, मद्रास और बंबई में एडवोकेट जनरल होते हैं। इन तीनों में बंगाल के एडवोकेट जनरल का पद बड़ा है। बंगाल सरकार के सिवा भारत सरकार भी (कौंसिल के बाहर) कानूनी मामलों में इनसे सलाह लेती है। जजों की भाँति इन्हें भी सम्राट् नियुक्त करते हैं।

एनडोर्स-संज्ञा पुं० [अं०] (१) हुंडी आदि की पीठ पर हस्ताक्षर करना। (२) हुंडी या चेक की पीठ पर हस्ताक्षर करके उसे हस्तांतरित करना। (३) सकारना।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।

एनामेल-संज्ञा पुं० [अं०] कुछ विशिष्ट क्रियाओं से प्रस्तुत किया हुआ एक प्रकार का लेप जो चीनी मिट्टी या लोहे आदि के बरतनों तथा धातु के और अनेक पदार्थों पर लगाया जाता है। यह कई रंगों का होता है और सूखने पर बहुत अधिक कड़ा तथा चमकीला हो जाता है। कभी कभी यह पारदर्शी भी बनाया जाता है।

एप्रूवर-संज्ञा पुं० [अं०] किसी फौजदारी के मामले का वह अभियुक्त जो अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और अपने साथी या साथियों के विरुद्ध गवाही देता है। वह अभियुक्त या अपराधी जो सरकारी गवाह हो जाता है। अपराधी-साक्षी। मुजरिम-इकरारी। इकबाली गवाह। सरकारी गवाह।

विशेष—एप्रूवर मामला हो जाने पर छोड़ दिया जाता है।

एफिडेविट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) शपथ। हलफ। (२) हलफनामा।

एमिग्रेशन-संज्ञा पुं० [अं०] एक देश से दूसरे देश या राज्य में बसने के लिये जाना। देशांतराधिवास।

एम्बुलेंस-संज्ञा पुं० [अं०] (१) युद्ध क्षेत्र का अस्पताल जिसमें घायलों की मरहम-पट्टी आदि की जाती है। मैदानी अस्पताल। (२) एक प्रकार की गाड़ी जिसमें घायलों या बीमारों को आराम से लेटाकर अस्पताल आदि में पहुँचाते हैं।

एम्बुलेंस कार-संज्ञा पुं० दे० "एम्बुलेंस" (२)।

एरोप्लेन-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की उड़ने की मशीन। वायुयान। हवाई जहाज।

एलकोहल-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रसिद्ध मादक तरल पदार्थ जो कई चीजों का खमीर उठाकर बनाया जाता है। इसका कोई रंग नहीं होता। इसमें स्पिरिट की सी महक आती है। यह पानी में भली भाँति घुल जाता है और स्वाद में बहुत तीक्ष्ण होता है। इसमें गोंद, तेल तथा इसी प्रकार के और अनेक पदार्थ बहुत सहज में घुल जाते हैं; इसलिये रंग आदि बनाने तथा औषधों में इसका बहुत अधिक व्यवहार होता है। शराब इसी से बनती है। जिस शराब में इसकी मात्रा जितनी ही अधिक होती है, वह शराब उतनी ही तेज होती है। फूल-शराब।

एला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वनरीठा।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की कँटीली लता जिसकी पत्तियों की चटनी बनाई जाती है। वि० दे० "रसौद"।

एलार्म-संज्ञा पुं० [अं०] विपद् या खतरे का सूचक शब्द या संकेत।

एलार्म चेन-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह जंजीर जो रेल गाड़ियों के अंदर लगी रहती है और किसी प्रकार की विपद् की आशंका होने पर, जिसे खींचने से ट्रेन खड़ी कर दी जाती है। खतरे की जंजीर। विपद्-सूचक शृंखला।

एलार्म बेल-संज्ञा पुं० [अं०] वह घंटा जो विपद् या खतरे की सूचना देने के लिये बजाया जाता है। विपद्-सूचक घंटा। खतरे का घंटा।

एलेक्टर-संज्ञा पुं० दे० "निर्वाचक"।

एलेक्टरेट-संज्ञा पुं० दे "निर्वाचक संघ"।

एलेक्टेड-वि० दे० "निर्वाचित"।

एलेक्शन-संज्ञा पुं० दे० "निर्वाचन"।

एल्डरमैन-संज्ञा पुं० [अं०] म्युनिसिपल कारपोरेशन का सदस्य जिसका दर्जा मेयर या प्रधान के बाद और साधारण कौन्सलर या सदस्य से ऊँचा होता है। जैसे,—कलकत्ता कारपोरेशन के एल्डरमैन।

विशेष—इङ्गलैण्ड आदि देशों में एल्डरमैन को, म्युनिसिपैलिटी के सदस्य होने के सिवा, स्थानिक पुलिस मैजिस्ट्रेट के भी अधिकार प्राप्त होते हैं। सन् १७२६ ई० में बम्बई, मद्रास और कलकत्ते आदि में जो मेयर-कोर्ट स्थापित किए गए थे, उनमें भी एल्डरमैन थे।

एवेन्यू-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह स्थान जो वृक्ष लता आदि से आच्छादित हो। कुंज। (२) रास्ता। मार्ग। जैसे,—चित्तरंजन एवेन्यू।

एसेम्ब्ली-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) सभा। परिषद्। मंडल। मजलिस। जैसे,—लेजिस्लेटिव एसेम्ब्ली। (२) समूह। जमाव। मजमा।

एसेंस-संज्ञा पुं० [अं०] (१) रासायनिक प्रक्रिया से खींचा हुआ फूलों की सुगंधि का सार। पुष्पसार। अतर। (२) वनस्पति आदि का खींचा हुआ सार। अर्क। (३) सुगंधि।

एस्टिमेट-संज्ञा पुं० [अं०] अंदाज। तखमीना। अनुमान। जैसे,—इसमें कितना खर्च पड़ेगा, इसका एस्टिमेट दीजिए।

क्रि० प्र०-देना।—बताना।—लगाना।

ऐंद्रजालिक कर्म-संज्ञा पुं० [सं०] जादू के काम। माया के काम। ऐसे कर्म जिनसे लोग धोखा खायँ।

विशेष-अर्थशास्त्र के औपनिषदिक खंड के दूसरे प्रकरण में इस प्रकार के अनेक उपाय बताए हैं, जिनसे मनुष्य कुरूप हो जाता था, बाल सफेद हो जाते थे, वह कोढ़ी की तरह या काला हो जाता था, आग से जलता नहीं था, अंतर्द्धान हो सकता था और उसकी छाया नहीं पड़ती थी। (कौ०)

ऐक्ट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी राजा, राजसभा, व्यवस्थापिका सभा या न्यायालय द्वारा स्वीकृत सर्वसाधारण संबंधी कोई विधान। राजविधि। कानून। आईन। जैसे,—प्रेस ऐक्ट, पुलिस ऐक्ट, म्युनिसिपल ऐक्ट। (२) नाटक का एक अंश या विभाग। अंक।

ऐक्टिंग-संज्ञा स्त्री० [अं०] नाटक में किसी पार्ट या भूमिका का अभिनय करना। रूपाभिनय। चरित्राभिनय। जैसे,—महाभारत नाटक में वह दुर्योधन रूप में बहुत ही सुंदर और स्वाभाविक ऐक्टिंग करता है।

क्रि० प्र०-करना।

ऐक्ट्रेस-संज्ञा स्त्री० [अं०] रंगमंच पर अभिनय करनेवाली स्त्री। अभिनेत्री।

ऐच्छिक-वि० [सं०] जो अपनी इच्छा या पसंद पर निर्भर हो। अपनी इच्छा या पसंद से लिया या दिया जानेवाला। वैकल्पिक। जैसे,—उन्होंने संस्कृत ऐच्छिक विषय लिया है।

ऐटेस्टिंग अफसर-संज्ञा पुं० [अं०] वह अफसर जिसके सामने निर्वाचन संबंधी 'वोट' लिखे जाते हैं और जो साक्षी स्वरूप रहता है। वोट लिखे जाने के समय साक्षी स्वरूप उपस्थित रहनेवाला अफसर।

ऐडमिनिस्ट्रेटर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसके अधीन किसी राज्य या रियासत या बड़ी ज़मींदारी का प्रबंध हो।

ऐडमिनिस्ट्रेशन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) प्रबंध। व्यवस्था। बंदोबस्त। (२) शासन। हुकूमत। (३) राज्य। सरकार।

विशेष-गवर्नरी प्राविन्शल गवर्नमेंट या प्रादेशिक सरकार कहलाती है; और चीफ कमिश्नरी लोकल ऐडमिनिस्ट्रेशन या स्थानीय सरकार कहलाती है।

ऐडवाइज़र–संज्ञा पुं० [अं०] वह जो परामर्श या सलाह देता हो। परामर्शदाता। सलाहकार। सलाह देनेवाला। जैसे,–लीगल ऐडवाइज़र।

ऐडवाइज़री–वि० [अं०] सलाह या परामर्श देनेवाली। जैसे,–ऐडवाइज़री कौंसिल।

ऐडिशनल–वि० [अं०] अतिरिक्त। जैसे,–ऐडिशनल मैजिस्ट्रेट।

ऐतइ†–वि० दे० "इतना"। उ०–तुम सुखिया अपने घर राजा। जोखिउँ ऐत सहहु केहि काजा।–जायसी।

ऐमेचर–संज्ञा पुं० [अं०] वह जो कला विशेष पर विशेष रुचि और अनुराग के कारण शौकिया तौर से उसका अभ्यास करता और अपनी कलाभिज्ञता दिखाकर धन उपार्जन नहीं करता। शौकीन। जैसे,—(क) ऐमेचर ड्रामेटिक क्लब। (ख) वह ऐमेचर होने पर भी बड़े बड़े पेंटरों के कान काटता है।

ऐरिस्टोक्रैसी–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) एक प्रकार की सरकार जिसमें राजसत्ता या शासन सूत्र बड़े बड़े भूम्यधिकारियों (सरदारों) या ऐश्वर्य-संपन्न नागरिकों के हाथों में रहती है। सरदार-तंत्र। कुलीन तंत्र। अभिजात तंत्र। (२) ऐसे लोगों की समष्टि या समाज। अभिजात समाज। कुलीन समाज।

ऐल–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की कँटीली लता जिसकी पत्तियाँ प्रायः एक फुट लंबी होती हैं। यह देहरादून, रुहेलखंड, अवध और गोरखपुर की नम जमीन में पाई जाती है। प्रायः खेतों आदि के चारों ओर इसकी बाढ़ लगाई जाती है। कहीं कहीं इसकी पत्तियाँ चमड़ा सिझाने के काम में भी आती हैं। अलई। करू।

ऐसा†–वि० दे० "ऐसा"। उ०—आम न पास न मानस अंडा। भए पौखँड जो प्रेम पखंडा।—जायसी।

ऐसन†–वि० दे० "ऐसा"।

क्रि० वि० दे० "ऐसे"।

ओक–संज्ञा पुं० [सं०] (४) समूह। ढेर। उ०—घर घर नर नारी लसैं, दिव्य रूप के ओकें।—मतिराम।

ओट–संज्ञा स्त्री० [सं० उट] (४) वह छोटी सी दीवार जो प्रायः राजमहलों या बड़े बड़े जनाने मकानों के मुख्य-द्वार के ठीक आगे, अंदर की ओर, परदे के लिये बनी रहती है। घूँघट की दीवार। गुलाम गर्दिश।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसमें बरसात के दिनों में सफेद और पीले सुगंधित फूल तथा ताड़ की तरह के फल लगते हैं। इन फलों के अंदर चिकना गूदा होता है, और इनका व्यवहार खटाई के रूप में होता है। वैद्यक में यह फल रुचिकर, श्रम शूलनाशक, मलरोधक और विषघ्न कहा गया है।

पर्य्या०—भव्य। भव्य। भविष्य। भावन। वक्रशोधन। लोमक। संपुटांग। कुसुमोदर।

ओड़–संज्ञा पुं० [?] वह जो गदहों पर ईंट, चूना, मिट्टी आदि ढोता हो। गदहों पर माल ढोनेवाला व्यक्ति। उ०—चल्यौ जाइ ह्याँ को करै हाथिन को व्यापार। नहिं जानतु इहिं पुर बसैं धोबी ओड़ कुम्हार।—बिहारी।

ओरती†–संज्ञा स्त्री० दे० "ओलती"। उ०—रोवति भई न साँस सँभारा। नैन चुवहिं जस ओरति धारा।—जायसी।

ओरहा†–संज्ञा पुं० दे० "होरहा"।

ओरिजिनल साइड–संज्ञा पुं० [अं०] प्रेसिडेंसी हाई कोर्ट का वह विभाग जहाँ प्रेसिडेंसी नगर के दीवानी मामले दायर किए जाते तथा उन मामलों का विचार होता है जिन्हें प्रेसिडेंसी मैजिस्ट्रेट दौरा सपुर्द करते हैं। इन फौजदारी मामलों का विचार करने के लिये प्रायः प्रति मास एक दौरा अदालत बैठती है। इसे ओरिजिनल जुरिस्डिक्शन भी कहते हैं।

ओलिगार्की–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) वह सरकार जिसमें राजसत्ता या शासन सूत्र इने गिने लोगों के हाथों में हो। कुछ लोगों का राज्य या शासन। स्वल्प व्यक्ति-तंत्र। (२) ऐसे लोगों का समाज।

ओलियाना†–क्रि० स० [हिं० ओल] ओली में भरना। गोद में भरना।

क्रि० स० [हिं० हूलना] प्रविष्ट करना। घुसेड़ना। घुसाना। जैसे,—पेट में सींग ओलियाना।

ओषध†–संज्ञा स्त्री० [सं० ओषध] औषध। दवा। उ०—कीन्हेसि पान फूल बहु भोगू। कीन्हेसि बहु ओषध बहु रोगू।—जायसी।

ओहना†–क्रि० स० [सं० अवधारण] डंठलों आदि को ऊपर उठा कर हिलाते हुए उनके दानों का ढेर लगाने के लिये नीचे गिराना। खरही करना।

औंगा†–वि० [सं० अवाक् या मुंग] [स्त्री० औंगी] (१) मूक। गूँगा। (२) न बोलनेवाला चुप्पा। उ०—सुनि खग कहत अंब औंगी रहि समुझि प्रेम-पथ न्यारो। गए ते प्रभु पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम गुन गारो।—तुलसी।

औंजना†–क्रि० स० [?] एक बरतन में से दूसरे बरतन में डालना। उँडेलना। उलटना।

औठपाय†–संज्ञा पुं० [देश०] नटखटी। शरारत। उत्पात। उ०—अनगने औठपाय रावरे गने न जाहिं वेऊ आहिं समकि करैया अति मान की। तुम जोई सोई कही, वेऊ जोई सोई सुनैं तुम बीम पानरे वे पातरी हैं कान की।—केशव।

औत्तमर्णिक–वि० [सं०] दूसरे से सूद पर लिया हुआ (धन)। (शुक्र०)

औदक–संज्ञा पुं० [सं०] वह उपनिवेश जिसमें जल की बहुतायत हो। (कौ०)

औदनिक-संज्ञा पुं०. [सं०] प्रकार चावल अर्थात् भात-दाल बेचनेवाला। (कौ०)

औदर्य-वि० [सं०] उदर संबंधी। पेट का। औदरिक।

औपनिधिक-वि० [सं०] (२) विश्वास पर किसी के यहाँ धरोहर रखा हुआ (धन)। (शुक्र०)

औपनिवेशिक-संज्ञा पुं० [सं०] उपनिवेश में रहनेवाला। जैसे,—दक्षिण अफ्रिका के भारतीय औपनिवेशिक।
वि० उपनिवेश का। उपनिवेश संबंधी। जैसे,—औपनिवेशिक सचिव।

औपनिषदिक कर्म-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु का नाश करनेवाले कर्म। नाशक काम। (कौ०)

औपन्यासिक-संज्ञा पुं० [सं०] उपन्यास लिखनेवाला। उपन्यास लेखक। जैसे,—शरत् बाबू बँगला के प्रसिद्ध औपन्यासिक हैं।
विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग बहुत हाल में बंगालियों की देखादेखी होने लगा है।

औपायनिक-वि० [सं०] उपहार या नजराने में मिला हुआ या दिया जानेवाला (पदार्थ)। (कौ०)

औला दौला-वि० [देश०] जिसे किसी बात का ध्यान या चिंता न हो। ला-परवाह। जैसे,—बाबू साहब औला दौला आदमी ठहरे; जिस पर प्रसन्न हुए, उसे निहाल कर दिया।

औली-संज्ञा स्त्री० दे० "औली"।

कंकट कर्मांत-संज्ञा पुं० [सं०] तारों से कवच (बख्तर) बनाने का कारखाना।

कंकण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का षाड्व राग जो गांधार से आरंभ होता है और जिसमें पंचम स्वर वर्जित है। इसमें प्रायः मध्यम स्वर का अधिक प्रयोग होता है। इसके गाने का समय दोपहर के उपरांत संध्या तक है।

कंकुष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की पहाड़ी मिट्टी जो भावप्रकाश के अनुसार हिमालय के शिखर पर उत्पन्न होती है। कहते हैं कि यह सफेद और पीली दो प्रकार की होती है। सफेद को नालिक और पीली को रेणुक कहते हैं। रेणुक ही अधिक गुणवाली समझी जाती है। वैद्यक के अनुसार यह गुरु, स्निग्ध, विरेचक, तिक्त, कटु, उष्ण, वर्णकारक और कृमि, शोथ, गुल्म तथा कफ की नाशक होती है।
पर्य्या०—कालकुष्ठ। विरंग। रंगदायक। रेचक। पुलक। शोधक। कालपालक।

कंचुक-संज्ञा पुं० [सं०] (६) कंचुक के आकार का कवच जो घुटने तक होता था। (कौ०)

कँटाय-संज्ञा स्त्री० [सं० किंकिणी] एक प्रकार का कँटीला पेड़ जिसकी लकड़ी के यज्ञ-पात्र बनते हैं। इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी और फल बेर के समान गोल होते हैं, जो दवा के काम में आते हैं।

कँटिया-संज्ञा स्त्री० [हिं काँटी] (६) इमली की वे छोटी फलियाँ जिनमें बीज न पड़े हों। कतुली।

कँटियारी-संज्ञा स्त्री० दे० "खारेजा"।

कँटेरी-संज्ञा स्त्री० [सं० कंटकी] भटकटैया।

कंट्रोल-संज्ञा पुं० [अं०] नियंत्रण। काबू। जैसे,—इतनी बड़ी सेना पर कंट्रोल करना हँसी खेल नहीं है।

कंठत्राण-संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई में गले की रक्षा के लिये बनी हुई लोहे की जाली या पट्टी। (कौ०)

कंथारी-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष।

कंथी-संज्ञा पुं० [सं० कंथा = गुदड़ी] गुदड़ी पहननेवाला। फकीर।
उ०—जोगि जती अरु आवहिं कंथी। पूछै पियहि जान कोइ पंथी।—जायसी।

कंदर्प-संज्ञा पुं० [सं०] (३) संगीत में एक प्रकार का ताल जिसमें क्रम से दो द्रुत, एक लघु और दो गुरु होते हैं। इसके पखावज के बोल इस प्रकार हैं—तक जग धिमि तक धाकृत धीकृत धिधिगिन थों थोंऽ।

कंधरावध-संज्ञा पुं० [सं०] कंधा काटने का दंड। (कौ०)
विशेष—किले में घुसने या सेंध लगाने आदि के लिये चंद्रगुप्त मौर्य्य के समय में यह दंड प्रचलित था। प्रायः लोग २०० पण देकर इस दंड से बच जाते थे।

क-संज्ञा पुं० [सं०] (२०) जल उ०—ति न नगरि ना नागरी प्रति पद हंस क हीन।—केशव।

ककनू-संज्ञा पुं० दे० "कुकनू" (पक्षी)।

ककमारी-संज्ञा स्त्री० [सं० काक = कौवा + मारना] एक प्रकार की बड़ी लता जो अवध, बंगाल और दक्षिणी भारत में पाई जाती है। इसकी पत्तियाँ चार से आठ इंच तक लंबी होती हैं, और फूल नीलापन लिए पीले रंग के और बहुत सुगंधित होते हैं। इसमें छोटे छोटे तीक्ष्ण फल लगते हैं जो मछलियों और कौवों के लिये मादक होते हैं। विलायत में जौ की शराब में इसका मेल दिया जाता है।

ककरेजा-संज्ञा पुं० दे० "काकरेजा"।

ककरेजी-संज्ञा पुं० दे० "काकरेजी"।

ककरोल-संज्ञा पुं० [सं० कर्कोटक, प्रा० कक्कोडक] ककोड़ा। खेखसा।

ककड़-संज्ञा पुं० दे० "काकड़"।

कक्री-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जिसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। वि० दे० "कठसेमल"।

कक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१८) सेना के अगल बगल का भाग। (कौ०)

कगिरी-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसके दूध से रबड़ बनता है। वि० दे० "रबड़" (२)।

कघुती-संज्ञा स्त्री० [हिं० कागज] मध्य और पूर्वी हिमालय में होनेवाली एक प्रकार की झाड़ी जो नेपाल, भूटान, बरमा,

चीन और जापान में बहुत अधिकता से होती है। नैपाली कागज इसी के डंठलों से बनता है और नैपाल में इसी लिये यह झाड़ी बहुत लगाई जाती है। अँरली।

कचारना†–क्रि० स० [अनु०] धोती दुपट्टे आदि कपड़ों को पटक पटक कर धोना। कपड़ा धोना।

कचिया–संज्ञा पुं० [सं० काच] एक प्रकार का नमक जो काँच से बनाया जाता है। काच लवण।

कच्ची कुर्की–संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा + तु० कुर्क] वह कुर्की जो प्रायः महाजन लोग अपने मुकदमे का फैसला होने से पहले ही इस आशंका से जारी कराते हैं जिसमें मुकदमे के फैसले तक मुद्दालेह अपना माल असबाब इधर उधर न कर दे। वि० दे० "कुर्की"।

कच्छ–संज्ञा पुं० [?] तुन का पेड़। उ०—राम प्रताप हुतासन कच्छ विपच्छ समीर समीर दुलारो।—तुलसी।

कच्छशेप–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के दिगंबर जैन जो "नग्न" के अन्तर्गत हैं।

कच्छा–संज्ञा पुं० [सं० कच्छ] (२) कई बड़ी बड़ी नावों, विशेषतः पटैलों को एक में मिला कर तैयार किया हुआ बड़ा बेड़ा या नाव।

कछियाना–संज्ञा पुं० [हिं० काछी] (१) वह स्थान जहाँ काछी लोग रहते हों। काछियों की बस्ती। (२) वह स्थान जहाँ काछी लोग साग भाजी आदि बोते हों।

कछौहा†–संज्ञा पुं० दे० "कछार"।

कजली–संज्ञा स्त्री० [हिं० काजल] (१०) एक प्रकार की मछली।

कटकरंज–संज्ञा पुं० [सं० करंज] कंजा नाम का पौधा। वि० दे० "कंजा" (१)।

कटघरा–संज्ञा पुं० [हिं० काठ + घर] (३) अदालत में वह स्थान जहाँ विचार के समय अभियुक्त और अपराधी खड़े किए जाते हैं।

कटनंसा–संज्ञा पुं० [हिं० काटना + नाश] काटने और नष्ट करने की क्रिया। उ०—पेड़ तिलौरी और जल हंसा। हिरदय पैठि बिरह कटनंसा।—जायसी।

कटभी–संज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसके पत्ते कुछ गोलाई लिए लंबे होते हैं; और फल अंड खरबूजे के समान छोटे होते हैं। इसका व्यवहार औषध में होता है। वैद्यक में यह प्रमेह, बवासीर, नाड़ीव्रण, विष, कृमि, कुष्ठ और कफ का नाशक कहा गया है। करभी। हरिसल।

कटाइक–वि० [हिं० काटना] काटनेवाला। उ०—साँकरे के सेइबे सराहिबे सुमिरबे को राम सो न साहिब न कुमति कटाइको।—तुलसी।

कटान–संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना + आन (प्रत्य०)] कटने की क्रिया या भाव। कटाई।

कटुआ†–वि० [हिं० कटना] कई खंडों में कटा हुआ। टुकड़े टुकड़े। उ०—कटुआ बटुआ मिला सुबासू। सीझा अनवन भाँति गरासू।—जायसी।

कटुपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भड़भाँड़। सत्यानाशी।

कटुभंग–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जंगली भाँग जिसकी पत्तियाँ खाने में बहुत कड़वी होती हैं।

कटोरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कटोरा] (५) फूल में बाहर की ओर हरी पत्तियों का वह कटोरी के आकार का अंश जिसके अंदर पुष्पदल रहते हैं।

कट्ठा–संज्ञा पुं० [हिं० काठ] लाल गेहूँ जो प्रायः मध्यम श्रेणी का होता है।

कठघोड़ा–संज्ञा पुं० दे० "घुड़चढ़ा"।

कठबेर–संज्ञा पुं० [हिं० काठ + बेर] घूँट नाम का पेड़ या झाड़ जिसकी छाल चमड़ा रँगने के काम में आती है। वि० दे० "घूँट"।

कठसेमल–संज्ञा पुं० [हिं० काठ + सेमल] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो प्रायः सारे उत्तरी भारत और बरमा में पाया जाता है। यह वर्षा ऋतु में फूलता और जाड़े में फलता है। इसकी पत्तियाँ प्रायः चारे के काम में आती हैं। ककी। फिरसन।

कठसेमल–संज्ञा पुं० [हिं० काठ + सेमल] सेमल की जाति का एक प्रकार का वृक्ष।

कठसोला–संज्ञा पुं० [हिं० काठ + सोला] सोला की जाति की एक प्रकार की झाड़ी या छोटा पौधा जो प्रायः सारे भारत, स्याम और जापान में होता है। वर्षा ऋतु में इसमें सुंदर फूल लगते हैं।

कड़कड़ाना–क्रि० स० [अनु०] घी को साफ और सोंधा करने के लिये थोड़ी देर तक हलकी आँच पर तपाना।

कड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़ा] (४) लगाम। उ०—हरि घोड़ा ब्रह्मा कड़ी, बासुकि पीठि पलान। चाँद सुरज दोउ पाँवड़ा चढ़सी संत सुजान।—कबीर।

कडूला†–संज्ञा पुं० [हिं० कड़ा + ऊला (प्रत्य०)] हाथ या पैर में पहनने का, बच्चों का, छोटा कड़ा।

कढ़नी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० काढ़ना = निकालना] बरसात में जमीन की वह अंतिम जुताई जिसके बाद अनाज बोया जाता है।

क्रि० प्र०—काढ़ना (जोतना)।

कतई–क्रि० वि० [अ०] नितांत। निपट। बिलकुल। जैसे,—मैं उनसे कतई कोई तअल्लुक नहीं रखना चाहता।

कतरधाना–क्रि० स० [हिं० कतरना] कतरने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को कतरने में प्रवृत्त करना।

कतरा रसाज-संज्ञा पुं० [हिं० कतरना + रसा ?] खँडरा नाम का पकवान जो बेसन से बनता है।

कतरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] वह यंत्र जिसकी सहायता से जहाज पर नावें रखी जाती हैं। (लश०)

कतली-संज्ञा स्त्री० [हिं० कतरना] (१) मिठाई या पकवान आदि के चौकोर काटे हुए छोटे टुकड़े। (२) चीनी की चाशनी में पागे हुए खरबूजे या पोस्त आदि के बीज।

कतवारखाना-संज्ञा पुं० [हिं० कतवार + फा० खाना] वह स्थान जहाँ कूड़ा करकट फेंका जाता हो। कूड़ाखाना।

कतान-संज्ञा पुं० [?] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का बहुत बढ़िया कपड़ा जो अलसी की छाल से बनता था। कहते हैं कि यह कपड़ा इतना कोमल होता था कि चंद्रमा की चाँदनी पड़ने से फट जाता था। (२) एक प्रकार का बढ़िया रेशमी कपड़ा जो प्रायः बनारसी साड़ियों और दुपट्टों में होता है।

कतौनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कातना] (१) कातने की क्रिया या भाव। (२) कातने की मजदूरी। (३) किसी काम में अनावश्यक रूप से बहुत अधिक विलंब करना। (४) निरर्थक और तुच्छ काम।

कत्तारी-संज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का सदा-बहार वृक्ष जो हिमालय में हजारा से कुमाऊँ तक, ५००० फुट की ऊँचाई तक, और कहीं कहीं छोटा नागपुर और आसाम में भी पाया जाता है। इसकी टहनियाँ बहुत लंबी और कोमल होती हैं और इसके पत्ते प्रायः एक बालिश्त लंबे होते हैं। इसके फूल, जो जाड़े में फूलते हैं, मधुमक्खियों के लिये बहुत आकर्षक होते हैं। कत्तावा।

कत्तावा-संज्ञा पुं० दे० "कत्तारी"।

कत्ल-संज्ञा पुं० दे० "कतल"।

कत्ल-आम-संज्ञा पुं० [अ०] सब लोगों की वह हत्या जो बिना किसी छोटे बड़े या अपराधी निरपराध का विचार किए की जाय।

कथ-कीकर-संज्ञा पुं० [हिं० कत्था + कीकर] कीकर की जाति का वह वृक्ष जिसकी छाल से कत्था या खैर निकलता है। खैर का पेड़।

कथावस्तु-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक या आख्यान आदि का कथन या कहानी। वि० दे० "वस्तु" (५)।

कदंबपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंडी।

कदर्थना-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्दशा। दुर्गति। उ०—हा हा करै तुलसी दयानिधान राम ऐसी कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की।—तुलसी।

कदर्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह कंजूस राजा जो कोश इकट्ठा करने के पीछे प्रजा पर अत्याचार करे और राज्य की आमदनी को राज्य की भलाई में न खर्च करे। (कौ०)

कदीमी-वि० [अ०] प्राचीन काल का। पुराने समय का।

कनकनंदी-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक प्रकार के गण।

कनकुटकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कुटकी] रेवंद चीनी की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जो खासिया की पहाड़ी, पूर्वी बंगाल और लंका आदि में होता है। इसमें से एक प्रकार की राल निकलती है जो दवा और रँगाई के काम में आती है।

कनकूट-संज्ञा पुं० दे० "कुरकुंड"।

कनकौवा—संज्ञा पुं० [हिं० कन्ना + कौवा] एक प्रकार की घास जो प्रायः मध्य भारत और बुंदेलखंड में होती है।

कनखा-संज्ञा पुं० [सं० काण्ड = शाखा] (१) कोंपल। (२) शाखा। डाल।

कनखोदनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कान + खोदना] लोहे, ताँबे आदि के कड़े तार का बना हुआ एक उपकरण जिसका एक सिरा कुछ चिपटा करके मोड़ा हुआ होता है और जिससे कान में की मैल निकाली जाती है। प्रायः हज्जाम लोग अपनी नहरनी का दूसरा सिरा भी इसी आकार का रखते हैं।

कनतूतुर-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा मेंढक जो बहुत जहरीला होता है और बहुत ऊँचा उछलता है।

कनमनाना-क्रि०अ० [अनु०] (१) सोने की अवस्था में व्याकुलता के कारण कुछ हिलना डुलना। (२) किसी प्रकार की गति करना; विशेषतः कोई काम होता देखकर उसके विरुद्ध बहुत ही साधारण या थोड़ी चेष्टा करना। जैसे,—तुम्हारे सामने इतना बड़ा अनर्थ हो गया, और तुम कनमनाए तक नहीं।

कनमैलिया-संज्ञा पुं० [हिं कान + मैल + इया (प्रत्य०)] वह जो लोगों के कान की मैल निकालता हो।

कनय⊛-संज्ञा पुं० [सं० कनक] सोना। सुवर्ण। उ०—यह जो मेघ, गढ़ लाग अकासा। बिजुरी कनय-कोट चहुँ पासा।—जायसी।

कनवासर, कनवेसर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो कनवैसिंग करता हो। वह जो 'वोट' 'आर्डर' आदि माँगता या संग्रह करता हो। कनवैसिंग करनेवाला।

कनवासिंग, कनवैसिंग-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) वोटरों या मत-दाताओं से वोट माँगना। वोट पाने के लिये उद्योग करना। लोगों को पक्ष में करने के लिए समझाना बुझाना। लोकमत को पक्ष में करने का उद्योग करना। जैसे,—(क) उनके आदमी जिले भर में उनके लिये बड़े जोरों से कनवैसिंग कर रहे हैं; उन्हीं को अधिक 'वोट' मिलने की पूरी संभावना है। (ख) उन्हें सभापति पद पर बैठाने के लिये खूब कनवैसिंग हो रही है। (२) किसी कंपनी या फर्म के लिये माल आदि का 'आर्डर' प्राप्त करने का उद्योग करना। जैसे,—मिस्टर शर्मा गंगा आयर्न फैक्टरी के लिये

याहर कनवेंसिंग कर रहे हैं; पिछले महीने उन्होंने बीस हजार रुपए के आर्डर भेजे हैं।

कनसीरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] झावर नामक पेड़। वि० दे० "झावर"।

कनैरी-संज्ञा स्त्री० [अं० कैनरी (टापू)] प्रायः तोते के आकार की एक प्रकार की बहुत सुंदर चिड़िया जिसका स्वर बहुत कोमल और मधुर होता है और जो इसी लिए पाली जाती है। इसकी कई जातियाँ और रंग हैं; पर प्रायः पीले रंग की कनैरी बहुत सुंदर होती है।

कन्सरवेंसी-संज्ञा स्त्री० [अं०] सरकारी निरीक्षण या देख रेख। जैसे,—कन्सरवेंसी इन्स्पेक्टर।

कन्सरवेटर-संज्ञा पुं० [अं०] देख रेख करनेवाला। निरीक्षक। जैसे,—जंगल विभाग का कान्सरवेटर।

कन्सरवेटिव-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह जो राज्य या शासन प्रणाली में क्रांतिकारी या चरम प्रकार के परिवर्तन का विरोधी हो। वह जो प्रजा-सत्तात्मक शासन प्रणाली का विरोधी हो। टोरी। (२) वह जो प्राचीनता का, पुरानी बातों का, पक्षपाती और नवीनता का, नई बातों का, किसी प्रकार के सुधार या परिवर्तन का विरोधी हो। वह जो परंपरा से चली आई हुई धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं और रीति रवाज का समर्थक और पक्षपाती हो। वह जो कुसंस्कार या अदूरदर्शिता से सची उन्नति का विरोधी हो।

वि० जो देश की नागरिक और धार्मिक संस्थाओं में क्रांतिकारी परिवर्तन या प्रजासत्ता के प्रवर्तन का विरोधी हो। जो परंपरा से चली आई हुई सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं या रीति रवाज का समर्थक और पक्षपाती हो। परिवर्तन-विमुख। सुधार-विरोधी। सनातनी। पुराणप्रिय। लकीर का फकीर। जैसे,—बाल विवाह जैसी नाशकारी प्रथा का समर्थन उन्हीं लोगों ने किया जो कनसरवेटिव थे—लकीर के फकीर थे।

कप-संज्ञा पुं० [अं०] प्याला।

कपालसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी संधि जिसमें किसी पक्ष को दबना न पड़े। समान संधि।

कपाल-संश्रय-संज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र या राज्य जो दो शक्तिशाली राष्ट्रों के बीच में हो और दोनों का मित्र बना रहे।

कपासी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (२) एक प्रकार का झाड़ या छोटा वृक्ष जो प्रायः सारे भारत, मलय द्वीप, जावा और आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। यह गरमी और बरसात में फूलता और जाड़े में फलता है। इसी का फल मरोड़फली कहलाता है जो पेट के मरोड़ दूर करने के लिये बहुत उपयोगी माना जाता है।

कपिकेल-संज्ञा स्त्री० [सं० कपिकच्छु] केवाँच। कौंछ। उ०—द्रोन सो पहार लियो ख्याल ही उखारि कर कंदुक ज्यों कपिखेल बेल कैसो फल भो।—तुलसी।

कफली-संज्ञा पुं० [हिं० खपेली] एक प्रकार का गेहूँ जिसे खपली भी कहते हैं। वि० दे० "खपली"।

कबरा-संज्ञा पुं० [हिं० कौर] करील की जाति की एक प्रकार की फैलनेवाली झाड़ी जो उत्तरी भारत में अधिकता से पाई जाती है। इसके फल खाए जाते हैं और उनसे एक प्रकार का तेल भी निकाला जाता है। इसका व्यवहार ओषधि के रूप में भी होता है। कौर।

कबल-क्रि० वि० [अ० क़ब्ल] पहले। पूर्व में। पेश्तर। जैसे,—मैं आपके पहुँचने के कबल ही यहाँ से चला जाऊँगा।

कबारना†-क्रि० स० [?] उखाड़ना। उत्पाटन करना।

कबीला-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (अफगानिस्तान और भारत की पश्चिमी सीमा में) एक ही पूर्व-पुरुष के वंशजों का जत्था या टोली जो प्रायः एक साथ रहती है। खेल।

कबूतरखाना-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह स्थान जहाँ पाले हुए बहुत से कबूतर रखे जाते हों। कबूतरों का बड़ा दरबा।

कब्ल-क्रि० वि० दे० "कबल"।

कमची-संज्ञा स्त्री० [तु०] (३) पंजा लड़ाने में हाथ का झटका जिससे उँगलियाँ टूट जाती हैं।

कमर्शल-वि० [अं०] व्यापार संबंधी। व्यापारिक।

कमलपाणि-वि० [सं०] जिसके हाथ कमल के समान हों। उ०—पिनाकपाणि एक हू पै आवे ना पिनाक ताहि, कोमल कमलपाणि राम कैसे ल्यावई।—केशव।

कमाइच†-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कमान] (१) छोटी कमान। कमानचा। (२) सारंगी बजाने की कमानी। उ०—बीना बेनु कमाइच गहे। बाजे तहँ अमृत गहगहे।—जायसी।

कमाच-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। उ०—काम जो आवै कामरी का लै करिय कमाच।—तुलसी।

कमानिया-वि० [हिं० कमान+इया (प्रत्य०)] (१) जिसमें किसी प्रकार की कमानी लगी हो। (२) जिसमें किसी प्रकार की मेहराब या अर्द्धवृत्त हो। मेहराबदार।

कमिटी-संज्ञा स्त्री० [अं०] सभा। समिति।

कमिश्नरी-संज्ञा स्त्री० [अं० कमिश्नर] (१) वह भूभाग जो किसी कमिश्नर के प्रबंधाधीन हो। डिवीज़न। जैसे,—बनारस एक कमिश्नरी है। (२) कमिश्नर की कचहरी। जैसे,—कमिश्नरी में मामला चल रहा है। (३) कमिश्नर का काम या पद। जैसे,—उन्होंने कई वर्ष तक कमिश्नरी की थी।

कमोड-संज्ञा पुं० [अं०] लोहे या चीनी मिट्टी आदि का बना हुआ, कड़ाही के आकार का एक प्रकार का अँगरेजी ढंग का पात्र जिसमें पाखाना फिरते हैं। गमला।

कम्युनिक-संज्ञा पुं० [फ्रां०] सरकारी विज्ञप्ति या सूचना। यह

कतरा रसाज-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कतरना + रस ?] खँडरा नाम का पकवान जो बेसन से बनता है।

कतरी-संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] वह यंत्र जिसकी सहायता से जहाज पर नावें रखी जाती हैं। (लश॰)

कतली-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कतरना] (१) मिठाई या पकवान आदि के चौकोर काटे हुए छोटे टुकड़े। (२) चीनी की चाशनी में पागे हुए खरबूजे या पोस्त आदि के बीज।

कतवारखाना-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कतवार + फा॰ खाना] वह स्थान जहाँ कूड़ा करकट फेंका जाता हो। कूड़ाखाना।

कतान-संज्ञा पुं॰ [?] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का बहुत बढ़िया कपड़ा जो अलसी की छाल से बनता था। कहते हैं कि यह कपड़ा इतना कोमल होता था कि चंद्रमा की चाँदनी पड़ने से फट जाता था। (२) एक प्रकार का बढ़िया रेशमी कपड़ा जो प्रायः बनारसी साड़ियों और दुपट्टों में होता है।

कतौनी-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कातना] (१) कातने की क्रिया या भाव। (२) कातने की मजदूरी। (३) किसी काम में अनावश्यक रूप से बहुत अधिक विलंब करना। (४) निरर्थक और तुच्छ काम।

कत्तारी-संज्ञा पुं॰ [देश॰] मझोले आकार का एक प्रकार का सदा-बहार वृक्ष जो हिमालय में हजारा से कुमाऊँ तक, ५००० फुट की ऊँचाई तक, और कहीं कहीं छोटा नागपुर और आसाम में भी पाया जाता है। इसकी टहनियाँ बहुत लंबी और कोमल होती हैं और इसके पत्ते प्रायः एक बालिश्त लंबे होते हैं। इसके फूल, जो जाड़े में फूलते हैं, मधुमक्खियों के लिये बहुत आकर्षक होते हैं। कत्तावा।

कत्तावा-संज्ञा पुं॰ दे॰ "कत्तारी"।

कत्ल-संज्ञा पुं॰ दे॰ "कतल"।

कत्ल-आम-संज्ञा पुं॰ [अ॰] सब लोगों की वह हत्या जो बिना किसी छोटे बड़े या अपराधी निरपराध का विचार किए की जाय।

कथ-कीकर-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कत्था + कीकर] कीकर की जाति का वह वृक्ष जिसकी छाल से कत्था या खैर निकलता है। खैर का पेड़।

कथावस्तु-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] नाटक या आख्यान आदि का कथन या कहानी। वि॰ दे॰ "वस्तु" (५)।

कदंबपुष्पी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] गोरखमुंडी।

कदर्थना-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दुर्दशा। दुर्गति। उ॰—हा हा करै तुलसी दयानिधान राम ऐसी कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की।—तुलसी।

कदर्य-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह कंजूस राजा जो कोश इकट्ठा करने के पीछे प्रजा पर अत्याचार करे और राज्य की आमदनी को राज्य की भलाई में न खर्च करे। (कौ॰)

कदीमी-वि॰ [अ॰] प्राचीन काल का। पुराने समय का।

कननंदी-संज्ञा पुं॰ [सं॰] शिव के एक प्रकार के गण।

कनकुटकी-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कुटकी] रेवंद चीनी की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जो खासिया की पहाड़ी, पूर्वी बंगाल और लंका आदि में होता है। इसमें से एक प्रकार की राल निकलती है जो दवा और रँगाई के काम में आती है।

कनकूट-संज्ञा पुं॰ दे॰ "कुतकुंड"।

कनकौवा-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कना + कौवा] एक प्रकार की घास जो प्रायः मध्य भारत और बुंदेलखंड में होती है।

कनखा-संज्ञा पुं॰ [सं॰ काण्ड = शाखा] (१) कोंपल। (२) शाखा। डाल।

कनखोदनी-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कान + खोदना] लोहे, ताँबे आदि के कड़े तार का बना हुआ एक उपकरण जिसका एक सिरा कुछ चिपटा करके मोड़ा हुआ होता है और जिससे कान में की मैल निकाली जाती है। प्रायः हज्जाम लोग अपनी नहरनी का दूसरा सिरा भी इसी आकार का रखते हैं।

कनतुतुर-संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का बड़ा मेंढक जो बहुत जहरीला होता है और बहुत ऊँचा उछलता है।

कनमनाना-क्रि॰अ॰ [अनु॰] (१) सोने की अवस्था में व्याकुलता के कारण कुछ हिलना डुलना। (२) किसी प्रकार की गति करना; विशेषतः कोई काम होता देखकर उसके विरुद्ध बहुत ही साधारण या थोड़ी चेष्टा करना। जैसे,—तुम्हारे सामने इतना बड़ा अनर्थ हो गया, और तुम कनमनाए तक नहीं।

कनमैलिया-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कान + मैल + इया (प्रत्य॰)] वह जो लोगों के कान की मैल निकालता हो।

कनयछ-संज्ञा पुं॰ [सं॰ कनक] सोना। सुवर्ण। उ॰—वह जो मेघ, गढ़ लाग अकासा। बिजुरी कनय-कोट चहुँ पासा।—जायसी।

कनवासर, कनवेसर-संज्ञा पुं॰ [अं॰] वह जो कनवैसिंग करता हो। वह जो 'वोट' 'आर्डर' आदि माँगता या संग्रह करता हो। कनवैसिंग करनेवाला।

कनवासिंग, कनवैसिंग-संज्ञा स्त्री॰ [अं॰] (१) वोटरों या मत-दाताओं से वोट माँगना। वोट पाने के लिये उद्योग करना। लोगों को पक्ष में करने के लिए समझाना बुझाना। लोकमत को पक्ष में करने का उद्योग करना। जैसे,—(क) उनके आदमी जिले भर में उनके लिये बड़े जोरों से कनवैसिंग कर रहे हैं; उन्हीं को अधिक 'वोट' मिलने की पूरी संभावना है। (ख) उन्हें सभापति पद पर बैठाने के लिये खूब कनवैसिंग हो रही है। (२) किसी कंपनी या फर्म के लिये माल आदि का 'आर्डर' प्राप्त करने का उद्योग करना। जैसे,—मिस्टर शर्मा गंगा आयर्न फैक्टरी के लिये

बाहर कनवैसिंग कर रहे हैं; पिछले महीने उन्होंने बीस हजार रपट के आर्डर भेजे हैं।

कनसीरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] हावर नामक पेड़। वि० दे० "हावर"।

कनेरी–संज्ञा स्त्री० [अं० कैनरी (द्वीप)] प्रायः तोते के आकार की एक प्रकार की बहुत सुंदर चिड़िया जिसका स्वर बहुत कोमल और मधुर होता है और जो इसी लिए पाली जाती है। इसकी कई जातियाँ और रंग हैं; पर प्रायः पीले रंग की कनेरी बहुत सुंदर होती है।

कन्सरवेंसी–संज्ञा स्त्री० [अं०] सरकारी निरीक्षण या देख रेख। जैसे,—कन्सरवेंसी इन्स्पेक्टर।

कन्सरवेटर–संज्ञा पुं० [अं०] देख रेख करनेवाला। निरीक्षक। जैसे,—जंगल विभाग का कान्सरवेटर।

कन्सरवेटिव–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह जो राज्य या शासन प्रणाली में क्रांतिकारी या चरम प्रकार के परिवर्त्तन का विरोधी हो। वह जो प्रजा-सत्तात्मक शासन प्रणाली का विरोधी हो। टोरी। (२) वह जो प्राचीनता का, पुरानी बातों का, पक्षपाती और नवीनता का, नई बातों का, किसी प्रकार के सुधार या परिवर्त्तन का विरोधी हो। वह जो परंपरा से चली आई हुई धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं और रीति रवाज का समर्थक और पक्षपाती हो। वह जो कुसंस्कार या अदूरदर्शिता से सच्ची उन्नति का विरोधी हो।

वि० जो देश की नागरिक और धार्मिक संस्थाओं में क्रांतिकारी परिवर्त्तन या प्रजासत्ता के प्रवर्त्तन का विरोधी हो। जो परंपरा से चली आई हुई सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं या रीति रवाज का समर्थक और पक्षपाती हो। परिवर्त्तन-विमुख। सुधार-विरोधी। सनातनी। पुरातनप्रिय। लकीर का फकीर। जैसे,—बाल विवाह जैसी नाशकारी प्रथा का समर्थन उन्हीं लोगों ने किया जो कनसरवेटिव थे—लकीर के फकीर थे।

कप–संज्ञा पुं० [अं०] प्याला।

कपालसंधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी संधि जिसमें किसी पक्ष को दबना न पड़े। समान संधि।

कपाल-संश्रय–संज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र या राज्य जो दो शक्तिशाली राष्ट्रों के बीच में हो और दोनों का मित्र बना रहे।

कपासी–संज्ञा स्त्री० [देश०] (२) एक प्रकार का झाड़ या छोटा वृक्ष जो प्रायः सारे भारत, मलय द्वीप, जावा और आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। यह गरमी और बरसात में फूलता और जाड़े में फलता है। इसी का फल मरोड़फली कहलाता है जो पेट के मरोड़ दूर करने के लिये बहुत उपयोगी माना जाता है।

कपिखेल–संज्ञा स्त्री० [सं० कपिकच्छ] केवाँच। कौंछ। उ०—द्रोन सो पहार लियो ख्याल ही उखारि कर कंदुक ज्यों कपिखेल बेल कैसो फल भो।—तुलसी।

कफली–संज्ञा पुं० [हिं० खपली] एक प्रकार का गेहूँ जिसे खपली भी कहते हैं। वि० दे० "खपली"।

कबरा–संज्ञा पुं० [हिं० कौर] करील की जाति की एक प्रकार की फैलनेवाली झाड़ी जो उत्तरी भारत में अधिकता से पाई जाती है। इसके फल खाए जाते हैं और उनसे एक प्रकार का तेल भी निकाला जाता है। इसका व्यवहार औषधि के रूप में भी होता है। कौर।

कबल–क्रि० वि० [अ० क़ब्ल] पहले। पूर्व में। पेश्तर। जैसे,—मैं आपके पहुँचने के कबल ही यहाँ से चला जाऊँगा।

कबारना†–क्रि० स० [?] उखाड़ना। उत्पाटन करना।

कबीला–संज्ञा पुं० [फा०] (अफगानिस्तान और भारत की पश्चिमी सीमा में) एक ही पूर्व-पुरुष के वंशजों का जत्था या टोली जो प्रायः एक साथ रहती है। खेल।

कबूतरखाना–संज्ञा पुं० [फा०] वह स्थान जहाँ पाले हुए बहुत से कबूतर रखे जाते हों। कबूतरों का बड़ा दरबा।

कब्ल–क्रि० वि० दे० "कबल"।

कमची–संज्ञा स्त्री० [तु०] (३) पंजा लड़ाने में हाथ का झटका जिससे उँगलियाँ टूट जाती हैं।

कमर्शल–वि० [अं०] व्यापार संबंधी। व्यापारिक।

कमलपाणि–वि० [सं०] जिसके हाथ कमल के समान हों। उ०—विनायक एक हू पै आवै ना पिनाक ताहि, कोमल कमलपाणि राम कैसे ल्यावई।—केशव।

कमाइच†–संज्ञा स्त्री० [फा० कमान] (१) छोटी कमान। कमानचा। (२) सारंगी बजाने की कमानी। उ०—बीना बेनु कमाइच गहे। बाजे सबै अमृत गहगहे।—जायसी।

कमाच–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। उ०—काम लौं आवै कामरी का लै करिय कमाच।—तुलसी।

कमानिया–वि० [हिं० कमान + इया (प्रत्य०)] (१) जिसमें किसी प्रकार की कमानी लगी हो। (२) जिसमें किसी प्रकार की मेहराब या अर्द्धवृत्त हो। मेहराबदार।

कमिटी–संज्ञा स्त्री० [अं०] सभा। समिति।

कमिश्नरी–संज्ञा स्त्री० [अं० कमिश्नर] (१) वह भूभाग जो किसी कमिश्नर के प्रबंधाधीन हो। डिवीजन। जैसे,—बनारस एक कमिश्नरी है। (२) कमिश्नर की कचहरी। जैसे,—कमिश्नरी में मामला चल रहा है। (३) कमिश्नर का काम या पद। जैसे,—उन्होंने कई वर्ष तक कमिश्नरी की थी।

कमोड–संज्ञा पुं० [अं०] लोहे या चीनी मिट्टी आदि का बना हुआ, कड़ाही के आकार का एक प्रकार का अँगरेजी ढंग का पात्र जिसमें पाखाना फिरते हैं। गमला।

कम्युनिक–संज्ञा पुं० [फ्रां०] सरकारी विज्ञप्ति या सूचना। यह

सरकारी वक्तव्य जो समाचार पत्रों को छापने के लिये दिया जाता है। जैसे,—सरकार ने एक कम्युनिक निकाल कर इस समाचार का खंडन किया।

कम्युनिज्म-संज्ञा पुं॰ [अं॰] वह मतवाद या सिद्धांत जिसमें संपत्ति का अधिकार समष्टि या समाज का माना जाता है; व्यक्ति विशेष या व्यष्टि का स्वत्व नहीं माना जाता। समष्टिवाद।

कम्युनिस्ट-संज्ञा पुं॰ [अं॰] वह जो कम्युनिज्म या समष्टिवाद के सिद्धांत को मानता हो। कम्युनिज्म के सिद्धांत को माननेवाला।

करंज-संज्ञा पुं॰ [सं॰ कलिंग, फा॰ कुलंग] मुरगा।

यौ॰—करंजखाना।

करंजखाना-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ करंज + फा॰ खाना (घर)] वह स्थान जहाँ बहुत से मुरगे पले हों। पालतू मुरगों के रहने का स्थान। उ॰—हिरन हरमखाने, स्याही हैं सुतुरखाने, पाढ़े पीलखाने औ करंजखाने कीस हैं।—भूषण।

करंतीना-संज्ञा पु॰ दे॰ "क्वारंटाइन"।

करकचहा†-संज्ञा पु॰ दे॰ "अमलतास"।

करजोड़ी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ कर + हिं॰ जोड़ना] एक प्रकार की ओषधि जो पारा बाँधने के काम में आती है। हस्तजोड़ी। हत्था जड़ी। वि॰ दे॰ "हत्था जड़ी"।

करण-संज्ञा पुं॰ [सं॰ कर्ण] कान। उ॰—संभु सरासन गुण करौं करणालंबित आज।—केशव।

करतारी-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ करतार] ईश्वर की लीला। उ॰—केशव और की और भई गति, जानि न जाय कछू करतारी।—केशव।

करद-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) मालगुजारी देनेवाला किसान।

विशेष—चाणक्य ने लिखा है कि जो किसान मालगुजारी देते हों, उनको हलके सुधरे हुए खेत खेती करने के लिये दिए जायँ। बिना सुधरे खेत उनको न दिए जायँ। जो खेती न करें, उनके खेत छीन लिए जायँ। गाँव के नौकर या बनिए उस पर खेती करें। खेती न करनेवाले सरकारी नुकसान दें। जो लोग सुगमता से कर दे दें, राजा उनको धान्य, पशु, हल आदि की सहायता दे। (कौ॰)

(२) कर देनेवाला राजा या राज्य। (३) वह घर जिसका राज्य को कर मिले। (कौ॰)

करन†-संज्ञा पुं॰ [सं॰ कर्ण] राजा कर्ण। उ॰—करन पास लीन्हेउ कै छंदू। विप्र रूप धरि झिलमिल इंदू।—जायसी।

यौ॰—करन का पहरा = प्रभात या प्रातःकाल का समय, जो राजा कर्ण के पहरा देने का समय माना जाता है।

करपिचकी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ कर = हाथ + पिचकी (पिचकारी)] दोनों हाथों के योग से बनाई हुई पिचकारी। (प्रायः लोग दोनों हाथों के बीच में, कई प्रकार से जल भर कर इस प्रकार जोर से दबाते हैं कि उसमें से पिचकारी सी छूटती है। इसी को करपिचकी कहते हैं।) उ॰—छिड़के नाह नवोढ़ दृग, कर-पिचकी जल जोर। रोचन रँग लाली भई बिय तिय लोचन कोर।—बिहारी।

करवरना‡†-क्रि॰ अ॰ [सं॰ कलरव] पक्षियों आदि का कलरव करना। उ॰—सारौं सुआ जो रहचह करहीं। कुरहिं परेवा औ करवरहीं।—जायसी।

करमा-संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का जंगली गाना जो प्रायः कोल, भील आदि गाते हैं।

करमैल-संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का तोता जो साधारण तोते से कुछ बड़ा होता है। इसके परों पर लाल दाग होते हैं।

करशी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ कुशी] बटेर की जाति की एक प्रकार की चिड़िया जो साधारण बटेर से कुछ बड़ी और बहुत सुंदर होती है। यह हिमालय में प्रायः सभी जगह पाई जाती है। इसकी खाल का बहुत बड़ा व्यापार होता है।

करवट-संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसका गोंद जहरीला होता है और जिसमें तीर जहरीले करने के लिए बुझाए जाते हैं। जसूँद। नताडल।

करवानक-संज्ञा पुं॰ [सं॰ कलविंक] चटक पक्षी। गौरैया। उ॰—सारस से सूबा करवानक से साहजादे मोर से मुगुल मीर धीर ही धचै नहीं।—भूषण।

करही-संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] (२) शीशम की तरह का एक प्रकार का वृक्ष जिसके पत्ते शीशम के पत्तों से दूने बड़े होते हैं। इसकी लकड़ी बहुत भारी होती है और प्रायः इमारत के काम में आती है।

कराई-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ करना] (१) करने या कराने का भाव। (२) करने या कराने की मजदूरी।

करात-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "कैरट" (२)।

करिकट-संज्ञा पुं॰ [देश॰] किलकिला नाम का पक्षी जो मछलियाँ पकड़ कर खाता है।

करित-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह पदार्थ जो आर्डर या आज्ञा देकर बनवाया गया हो। (कौ॰)

करिल-‡संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कोंपल] कोंपल। नया कल्ला। उ॰—ओहि भाँति पलुही सुखवारी। उठी करिल नइ कोंप सँवारी।—जायसी।

वि॰ दे॰ "काला" उ॰—करिल केस विसहर बिस भरे। लहरैं लहि कँवल मुख धरे।—जायसी।

करी—† संज्ञा स्त्री॰ [?] सौरी या सवरी नाम की मछली जिसका मांस खाया जाता है।

करीश-संज्ञा पुं॰ [सं॰] हाथियों में श्रेष्ठ। गजराज।

करुणामय-वि० [सं०] जिसमें बहुत अधिक करुणा हो। दया-वान। उ०—यहु शुभ मनसा कर करुणामय अरु शुभ तरंगिनी शोभ सनी।—केशव।

करवेल-संज्ञा स्त्री० [सं० कारवेल्ल] इंद्रायण की बेल या लता। उ०—कीन्हेसि ऊख मीठ रस-भरी। कीन्हेसि करुबेल बहु फरी।—जायसी।

करहल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बड़ी चिड़िया जो जल के किनारे रहती है और घोंघे आदि फोड़ कर खाया करती है। इसके डैने काले और छाती सफेद होती है। इसकी चोंच बहुत लंबी और नुकीली होती है। लोग इसका शिकार भी करते हैं।

करेणुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी। मादा हाथी। उ०—केशवदास प्रबल करेणुका गमनहार मुकुत सुहंस कंस बहु सुखदासी है।—केशव।

करेणुवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] चेदिराज की कन्या का नाम जो नकुल को ब्याही गई थी।

कर्कटक शृंगी-संज्ञा पुं० [सं०] वह असंहत व्यूह जिसमें तीन भाग अर्द्ध-चंद्राकार असंहत हों। (कौ०)

क़र्ज़ख़्वाह-संज्ञा पुं० [अ० कर्ज़+फ़ा० ख़्वाह = चाहनेवाला] वह जो किसी से कर्ज लेना चाहता हो। ऋण लेने की इच्छा रखनेवाला।

कर्द्दमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र मास की पूर्णिमा तिथि।

कर्पूरक-संज्ञा पुं० [सं०] कर्पूरक। कपूर कचरी।

कर्मकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रमी। मजदूर। (२) प्राचीन काल की एक जाति जो सेवा कर्म करती थी। आजकल इसे कमकर कहते हैं।

कर्मगुण-संज्ञा पुं० [सं०] काम की अच्छाई बुराई। कार्य-क्षमता। (कौ०)

कर्मगुणापकर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] काम अच्छा न होना। श्रमियों की कार्य-क्षमता का घटना।

कर्मनिष्पत्ति वेतन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काम की अच्छाई बुराई के अनुसार वेतन। (कौ०) (२) वह वेतन जो काम पूरा होने पर दिया जाय।

कर्म निष्पाक-संज्ञा पुं० [सं०] मेहनती मजदूरों से काम को अंत तक पूरा करवाना।

कर्ममास-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महीना जो ३० सावन दिनों का होता है। सावन मास।

कर्मवध-संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा में असावधानी जिससे रोगी को हानि पहुँच जाय। (कौ०)

कर्मवध वैगुण्यकरण-संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा में असावधानी के कारण बीमारी का बढ़ जाना। (कौ०)

कर्मसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्ग बनाने के संबंध में दो राज्यों के बीच संधि। (कौ०)

कर्मस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ कारीगर काम करते हों। कारखाना। (कौ०)

कर्मांत-संज्ञा पुं० [सं०] (३) कार्यालय। कारखाना। (कौ०)

कर्मापरोध-संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा में असावधानी। बीमार का इलाज ठीक ढंग पर न करना। (कौ०)

कर्माश्रयाभृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] काम के अच्छे या बुरे अथवा कम या अधिक होने के अनुसार मजदूरी। कार्य के अनु-सार वेतन।

कर्मोपघाती-वि० [सं० कर्मोपघातिन्] काम बिगाड़नेवाला। (कौ०)

कर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (६) प्राचीन काल का एक प्रकार का सिक्का जो आजकल के हिसाब से लगभग ४।) मूल्य का होता था। यह चाँदी के १६ कार्षापण के बराबर था। इसे "हूण" भी कहते थे।

कर्षना⊛-क्रि० स० [सं० कर्षण] खींचना। उ०—कोउ आजु राज समाज में बल शंभु को धनु कर्षिहै।—केशव।

कर्षिता भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिसको शत्रु ने पूर्ण रूप से निचोड़ लिया हो।

कलंक-संज्ञा पुं० [सं०] (३) वह कजली जो पारा सिद्ध होने पर बैठ जाती है। उ०—करत न समुझत झूठ गुन सुनत होत मतिरंक। पारद प्रगट प्रपंचमय सिद्धिउँ नाउ कलंक।—तुलसी। (४) पारे और गंधक की कजली। उ०—औ लहि धरी कलंक न परा। काँच होहि नहिं कंचन करा।—जायसी।

कलंगो-संज्ञा स्त्री० [हिं० कलँगी] पहाड़ों में होनेवाली जंगली भाँग का वह पौधा जिसमें बीज लगते हैं। फुलंगों का उलटा।

कलची-संज्ञा स्त्री० [हिं० कंजा] कंजा नाम की कँटीली झाड़ी। वि० दे० "कंजा" (१)।

कलछी-संज्ञा स्त्री० [सं० कर+रक्षा] चम्मच के आकार का लंबी डंडी का एक प्रकार का पात्र जिसका अगला भाग गोल कटोरी के आकार का होता है और जिससे पकाते समय चावल, दाल, तरकारी आदि चलाते या परोसते हैं।

कलत्रगर्हि सैन्य-संज्ञा पुं० [सं०] परिवार के वशीभूत सेना। वह सेना जो परिवार (पुत्र कलत्र) की चिंता में डूबी रहे।

विशेष—कौटिल्य ने यद्यपि ऐसी सेना को ठीक नहीं कहा है, पर अंतः शल्य (शत्रु से भीतर भीतर मिली हुई) सेना से अच्छी कहा है।

कलथरा-संज्ञा पुं० [देश०] करघे की चक नामक लकड़ी। वि० दे० "चक"।

कलपना⊛†-क्रि० स० [सं० कर्तन ?] काटना। कतरना। उ०—हौं रनथंभ उरनाह हमीरू। कलपि माथ जेइ दीन्ह सरीरू।—जायसी।

कलशभव-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य ऋषि जिनकी उत्पत्ति घट से कही गई है। उ०—अकनि कटु बानी कुटिल की क्रोध-

कामनवेल्थ–संज्ञा पुं० [अं०] लोक-सत्तात्मक शासन प्रणाली।

कामन सभा–संज्ञा स्त्री० [अं० हाउस आफ कामन्स] ब्रिटिश पार्लमेण्ट की वह शाला या सभा जिसमें जन साधारण के निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। आजकल इनकी संख्या ७०७ होती है। हाउस आफ कामन्स।

कामर्स–संज्ञा पुं० [अं०] व्यापार। वाणिज्य। कारोबार। लेन देन। जैसे,—चेंबर आफ कामर्स। कामर्स डिपार्टमेंट।

कामवन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वन जहाँ बैठकर महादेव जी ने कामदेव का दहन किया था। (२) मथुरा के पास का एक प्रसिद्ध वन जो तीर्थ माना जाता है।

कॉमेडियन–संज्ञा पुं० [अं०] (१) आदि रस या हास्य रस का अभिनेता। (२) सुखांत नाटक लिखनेवाला।

कॉमेडी–संज्ञा स्त्री० [अं०] वह नाटक जिसका अंत आनंद या सुखमय हो। सुखांत नाटक। संयोगांत नाटक। मिलनांत नाटक।

काम्रेड–संज्ञा पुं० [अं०] सहयोगी। साथी।

विशेष—कम्युनिस्ट या साम्यवादी अपने दलवालों और अपने से सहानुभूति रखनेवालों को 'काम्रेड' शब्द से संबोधित करते हैं। जैसे,—काम्रेड सकलातवाला।

कारंधमी–संज्ञा पुं० [सं०] रसायनी। कीमियागर।

कार‡–वि० [हिं० काला] काला। कृष्ण। उ०—रावन पाव जो जिउ धरा दुवौ जगत महँ कार।—जायसी।

संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) गाड़ी। (२) मोटर गाड़ी। मोटर कार।

कारगाह–संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह स्थान जहाँ बहुत से मजदूर आदि काम करते हों। कारखाना। (२) जुलाहों का कपड़ा बुनने का स्थान। करगह।

कारट्रिज–संज्ञा पुं० [अं०] दफती, टीन, ताँबे आदि का बना हुआ वह आवरण जिसके अंदर बंदूक में भरकर चलाई जानेवाली गोली या छर्रा आदि रहता है। कारतूस।

कारणिक–संज्ञा पुं० [सं०] मुकदमे संबंधी कागज लिखनेवाला। मुहर्रिर। अर्जीनवीस।

कारपोरल–संज्ञा पुं० [अं०] पल्टन का छोटा अफसर। जमादार। जैसे,—कारपोरल मिल्टन।

कारितावृद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सूद जो ऋण लिया हुआ धन दूसरे को देकर लिया जाय।

विशेष—आधुनिक बैंक इसी नियम पर चलते हैं।

कारुशासिता–संज्ञा पुं० [सं० कारुशासितृ] शिल्पियों या कारीगरों का निरीक्षक या उन्हें काम में लगानेवाला। (कौ०)

कारेस्पांडेंट–संज्ञा पुं० [अं०] वह जो किसी समाचार पत्र में अपने स्थान की घटनाएँ आदि लिखकर भेजता हो। समाचारपत्रों में संवाद आदि भेजनेवाला। संवाददाता।

कारेस्पांडेंस–संज्ञा पुं० [अं०] पत्र आदि का भेजा जाना और आना। पत्र-व्यवहार।

कारोनर–संज्ञा पुं० [अं०] वह अफसर जिसका काम जूरी की सहायता से आकस्मिक या संदिग्ध मृत्यु, आत्महत्या तथा उन लोगों की मृत्यु की जाँच करना है जो दंगे फसाद में या किसी दुर्घटना के कारण मरे हों।

विशेष—हिंदुस्तान में प्रेसिडेंसी नगरों अर्थात् कलकत्ते, बंबई और मद्रास में कारोनर होते हैं। ये प्रायः छोटी अदालत के जज या मैजिस्ट्रेट होते हैं। इनके साथ जूरी बैठते हैं। ऐसी मौत के मामले इस अदालत में आते हैं जो गिरने, पड़ने, जलने, अस्त्रशस्त्र के लगने या आत्महत्या से हुई हो। उदाहरणार्थ किसी युवती की मृत्यु जलने से हुई है। उसने स्वयं आत्महत्या की या वह जलाकर मार डाली गई, साक्ष्य और प्रमाणों पर यही निर्णय करना इस अदालत का काम है। और किसी प्रकार की कानूनी कार्रवाई करने या दंड का इसे अधिकार नहीं है। इसका निर्णय हो जाने पर साधारण अदालत में किसी पर मामला चलता है।

कार्य्यकरण–संज्ञा पुं० [सं०] कार्यालय। दफ्तर। (कौ०)

कार्य्यचिंतक–संज्ञा पुं० [सं०] शासक। स्थानीय प्रबंध-कर्त्ता। (स्मृति०)

कालखंड–संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर। उ०—मानो कौन्हीं काल ही की कालखंड खंडना।—केशव।

कालदंड–संज्ञा पुं० [सं०] यमराज का दंड। उ०—वज्र ते कठोर है कैलास ते विशाल, कालदंड ते कराल सब काल गावई।—केशव।

कालरा–संज्ञा पुं० [अं०] हैजा या विसूचिका नामक रोग।

कालांतरित पण्य–संज्ञा पुं० [सं०] बहुत काल पहले का बना माल।

विशेष—ऐसे माल का दाम बनने के समय की उसकी लागत का विचार करके निश्चित किया जाता था। (कौ०)

कालादेव–संज्ञा पुं० [हिं० काला + फा० देव] (१) एक कल्पित देव या विशालकाय व्यक्ति जिसका रंग बिलकुल काला माना गया है। (२) वह व्यक्ति जिसका शरीर हृष्ट पुष्ट और रंग बहुत काला हो।

काला धतूरा–संज्ञा पुं० [हिं० काला + धतूरा] एक प्रकार का बहुत विषैला धतूरा जिसके पत्ते हरे, पर फल और बीज काले होते हैं। लोग प्रायः बहुत अधिक नशे या स्तंभन के लिये इसका व्यवहार करते हैं।

काला नमक–संज्ञा पुं० [हिं० काला + नमक] एक प्रकार का बनावटी नमक जिसका रंग काला होता है और जो साधारण नमक तथा हड़, बहेड़े और सज्जी के संयोग से बनाया जाता है। वैद्यक में यह हलका, उष्णवीर्य, रोचक, भेदन, दीपन, पाचक, वातनाशक, अत्यंत पित्तजनक और विबंध, शूल, गुल्म और आनाह का नाशक माना गया है। सोंचर नमक।

कालिका वृद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह ब्याज जो महीने महीने लिया जाय। मासिक ब्याज।
कालीय-संज्ञा पुं० [सं०] काला चंदन।
कालीयक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीला चंदन। (२) काली अगर। (३) काला चंदन। (४) दारुहल्दी।
कालोनियल-वि० [अं०] कालोनी या उपनिवेश संबंधी। औपनिवेशिक। जैसे,—कालोनियल सेक्रेटरी।
कालोनी-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक देश के लोगों की दूसरे देश में बस्ती या आबादी। उपनिवेश।
काव्य व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] (३) शरीरों का बनाया हुआ मोरचा या व्यूह। उ०—प्रतिबिंबित जयसाहि दुति दीपति दरपन धाम। सबु जगु जीतनु कौं कयौ काय व्यूह मनु काम।—बिहारी।
काश्मरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसके पत्ते पीपल के पत्तों से चौड़े होते हैं और जिसके कई अंगों का व्यवहार ओषधि के रूप में होता है। वि० दे० "गंभारी"।
काष्ठ संघात-संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ियों का बेड़ा। (कौ०)
कासा-संज्ञा पुं० [फा०] (२) दरियाई नारियल का वह भिक्षा-पात्र जो प्रायः मुसलमान फकीरों के पास रहता है। कचकोल।
कासालु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कंद या आलू।
कासृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पगडंडी। (२) पतला रास्ता। (गृह्यसूत्र)
कास्केट-संज्ञा पुं० [अं०] पेटी। संदूकची। डिब्बा। जैसे,—अभिनंदनपत्र चाँदी के एक सुंदर कास्केट में रखकर उनके अर्पण किया गया।
कास्टिंग वोट-संज्ञा पुं० [अं०] किसी सभा या परिषद् के अध्यक्ष या सभापति का वोट जिसका उपयोग किसी विषय या प्रश्न का निर्णय करने के लिये उस समय किया जाता है जब सभासद दो समान भागों में बँट जाते हैं; अर्थात् जब आधे सदस्य पक्ष में और आधे विपक्ष में होते हैं, तब सभापति किसी पक्ष को अपना 'कास्टिंग वोट' देता है। इस प्रकार एक अधिक वोट से उस पक्ष की बात मान ली जाती है। निर्णायक वोट। जैसे,—अमुक प्रस्ताव के पक्ष में २० और विपक्ष में भी २० ही वोट आए। सभापति ने पक्ष में अपना कास्टिंग वोट देकर प्रस्ताव पास कर दिया।
विशेष—यदि सभापति उस सभा या संस्था का सदस्य हो तो वह कास्टिंग वोट दे सकता है; सदस्य रूप से वह सदस्यों के साथ पहले ही वोट दे चुका है।
किटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़े या बाँस का बना कवच। (कौ०)
कित⊛†-क्रि० वि० [सं० कुत्र] (३) ओर। तरफ। उ०—मानहु पुंडरीक महँ चहुँ कित भँवर [illegible] मग मोहैं।—रघुराज।
वि० दे० "कितना"। उ०—दहि दहि लेइ कित होइ होइ गए। कै कै गरब खेल मिलि गए।—जायसी।
किते⊛†-क्रि० वि० [सं० कुत्र] कहाँ। किस जगह। उ०—शंभु को दै राजपुत्री किते।—केशव।
किनयानी‡-संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी छोटी बूँदों की वर्षा। फुहार। झड़ी।
किनारे-क्रि० वि० [हिं० किनारा] (१) किनारे पर। तट पर। (२) अलग। दूर।
किम्मत†-संज्ञा स्त्री० [अ० हिकमत] (१) चतुराई। होशियारी। उ०—हारिए न हिम्मत सुकीजै कोटि किम्मत को आपति में पति राखि धीरज को धरिए। (२) वीरता। बहादुरी।
किरकिरा-संज्ञा पुं० [सं० कर्कट] लोहारों का एक औजार जिससे बड़े और मोटे लोहे में छेद किया जाता है।
किरणकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। उ०—जयति जय सत्रु करि केसरी सत्रुहन सत्रुतम तुहिन हर किरनकेतू।—तुलसी।
किरसुन⊛†-संज्ञा पुं० दे० "कृष्ण"। उ०—उहै धनुक किरसुन पहँ अहा। उहै धनुक राघौ कर गहा।—जायसी।
किरीरा⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "क्रीड़ा"। उ०—हँसहिं हंस औ करहिं किरीरा। चुनहिं रतन मुकुताहल हीरा।—जायसी।
किरोध⊛†-संज्ञा पुं० दे० "क्रोध"। उ०—तुम यारी पिउ [illegible] जग राजा। गरब किरोध ओहि पै छाजा।—जायसी।
किल⊛-क्रि० वि० [?] निश्चय ही। अवश्य। उ०—कै शोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।—केशव।
किलचिया-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत छोटा बगला जो सारे भारत और बरमा में पाया जाता है।
किलवारी-संज्ञा स्त्री० [सं० कर्ण] वह डाँड़ा जिससे छोटी नावों में पतवार का काम लेते हैं।
किलविषी-वि० [सं० किल्बिष] पापी। अपराधी। उ०—मन मलीन कलि किलविषी होत सुनत जासु कृत काज। सो तुलसी कियो आपुनो रघुबीर गरीब निवाज।—तुलसी।
किलहँटा-संज्ञा पुं० [फा० किलाह या हिं० कलह ?] [स्त्री० किलहँटी] एक प्रकार की चिड़िया जो आपस में बहुत लड़ती है। सिरोही।
किलोमीटर-संज्ञा पुं० [अं०] दूरी की एक माप जो मील के प्रायः पंच-अष्टमांश के बराबर होती है।
किसब-संज्ञा पुं० [अ० कस्ब] (१) रोजगार। व्यवसाय। (२) कारीगरी। कला-कौशल। उ०—चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख जानत न कूर कछु किसब कबारु है।—तुलसी।
की-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह पुस्तक जिसमें किसी ग्रंथ या पुस्तक के कठिन शब्दों के अर्थ या उनकी व्याख्या की गई हो। कुंजी।
कीकान†-संज्ञा पुं० [सं० केकाण (देश)] (१) केकाण देश जो

किसी समय घोड़ों के लिये प्रसिद्ध था। (२) इस देश का घोड़ा। (३) घोड़ा। अश्व।

कीलना-क्रि० स० [सं० कीलन] (५) तोप की नली में आगे की ओर से कसकर लकड़ी का कुन्दा ठोंकना जिसमें तोप चलाई न जा सके।

कीलाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। पानी। (२) रक्त। लहू। (३) अमृत। (४) मधु। शहद। (५) पशु। जानवर।

वि० बंधन हटाने या दूर करनेवाला।

कुंभी-संज्ञा स्त्री० [सं० कुंभी] (५) एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो बहुत जल्दी बढ़ता और प्रायः सारे भारत में पाया जाता है। इसकी छाल से चमड़ा सिझाया जाता है और रेशों से रस्से आदि बनते हैं। कहीं कहीं अकाल के दिनों में इसकी छाल आटे की तरह पीस कर खाई भी जाती है। लकड़ी से खेती के औजार, छाजन की बल्लियाँ, गाड़ियों के धुरे और बंदूक के कुंदे बनाए जाते हैं। यह पानी में जल्दी सड़ता नहीं। जंगली सूअर इसकी छाल बहुत मजे में खाते हैं, इसलिये शिकारी लोग उनका शिकार करने के लिये प्रायः इसका उपयोग करते हैं। अरजम।

कुंभसंभव-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि।

कुटज-संज्ञा पुं० [सं०] (४) इंद्रजौ। (५) पद्म। कमल।

कुटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) सफेद कुड़ा। श्वेत कुटज। (४) मरुआ नामक पौधा।

कुट्टा-संज्ञा पुं० [हिं० कटना] (२) वह पक्षी जिसके पैर बाँधकर जाल में इसलिये छोड़ देते हैं कि उसे देख कर और पक्षी आकर जाल में फँसें। मुल्लह।

कुथना-क्रि० अ० [हिं० कूथना] बहुत मार खाना। पीटा जाना।

कुपंथी-वि० [हिं० कुपंथ + ई (प्रत्य०)] जिसका आचरण निषिद्ध हो। बुरे मार्ग पर चलनेवाला। उ०—पंडित सुमति देइ पथ लावा। जो कुपंथि तेहि पंडित न भावा।—जायसी।

कुप-संज्ञा पुं० [देश०] घास, भूसे या पुआल आदि का ढेर जो खलिहान में लगाया जाता है।

कुपक-संज्ञा पुं० [फा० कुबक] एक प्रकार का गानेवाला पक्षी जो प्रायः पाला जाता है।

कुपित मूल (सैन्य)-संज्ञा पुं० [सं०] भड़की हुई सेना।

विशेष—कौटिल्य के मत में कुपितमूल और भिन्नगर्भ (तितर बितर हुई) सेनाओं में से कुपितमूल सामादि उपायों से शांत किया जाकर उपयोग में लाई जा सकती है।

कुब-संज्ञा पुं० दे० "कूबड़"।

कुबड़ापन-संज्ञा पुं० [हिं० कुबड़ा + पन (प्रत्य०)] 'कुबड़ा' होने का भाव।

कुबानी-संज्ञा स्त्री० [सं० कु + बानी (वाणिज्य)] बुरा व्यवसाय। खराब वाणिज्य। उ०—अपने चलन से कीन्ह कुबानी। लाभ न देख मूर भइ हानी।—जायसी।

कुमइत†-संज्ञा पुं० दे० "कुम्मैत"। उ०—कारे कुमइत लील सुपेते। खिंग कुरंग बोज दुर केते।—जायसी।

कुमारबाज-संज्ञा पुं० [अ० किमार + फा० बाज (प्रत्य०)] वह जो जूआ खेलता हो। जुआरी।

कुमारबाजी-संज्ञा स्त्री० [अ० क़िमार = जूआ + फा० बाजी (प्रत्य०)] जूआ खेलने का भाव। जुआरीपन।

कुम्हरौटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कुम्हार + औटी (प्रत्य०)] एक प्रकार की काली मिट्टी जिससे कुम्हार लोग घड़े और हँड़ियाँ आदि बनाते हैं। जटाव।

कुरसा-संज्ञा पुं० [देश०] (२) जंगली गोभी।

कुरसी-संज्ञा स्त्री० [अ०] (७) नदियों में चलनेवाली छोटी नाव की लंबाई में दोनों ओर लकड़ी की पट्टियों का बना हुआ वह ऊँचा और चौरस स्थान जिस पर आरोही बैठते हैं। पादारक।

कुरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) धुस। टीला। उ०—हाल सो करै गोइ लेइ बाढ़ा। कुरी दुवौ पैज कै काढ़ा।—जायसी। (२) ढेर। समूह। उ०—तेइ सन बोहित कुरी चलाए। तेइ सन पवन पंख जनु लाए।—जायसी।

कुरुम‡-संज्ञा पुं० [सं० कूर्म] कूर्म। कच्छप। उ०—कुरुम टुटै भुइँ फाटै तिन्ह हस्तिन्ह के चालि।—जायसी।

कुल-संज्ञा पुं० [सं०] (८) व्यापारियों या कारीगरों का संघ। श्रेणी। कंपनी। (स्मृति०) (९) शासन करनेवाले उच्च कुल के लोगों का मंडल। कुलीनतंत्र राज्य। (कौ०)

कुलज-संज्ञा पुं० [सं०] औरस के अतिरिक्त और किसी प्रकार का पुत्र। क्षेत्रज, गोलक, दत्तक या क्रीत पुत्र।

कुलधर्म-संज्ञा पुं० [सं०] किसी परिवार में प्रचलित नियम या परंपरा। कुल की रीति।

विशेष—अभियोगों के निर्णय में इसका भी विचार किया जाता था।

कुलनीवी-ग्राहक-संज्ञा पुं० [सं०] किसी समाज या संघ की आमदनी को अपने पास जमा रखनेवाला।

विशेष—कौटिल्य ने ऐसे धन का अपव्यय या दुरुपयोग करनेवाले के लिये १०० पण जुरमाना लिखा है।

कुलफत-संज्ञा स्त्री० [अ० कुल्फत] मानसिक चिंता या दुःख।

क्रि० प्र०—मिटना।—होना।

कुलराज्य-संज्ञा पुं० [सं०] किसी एक वंश के सरदारों का राज्य। किसी एक कुल के नायकों द्वारा चलनेवाला शासन। सरदारतंत्र।

विशेष—चाणक्य के अनुसार ऐसे राज्य में स्थिरता रहती है, अराजकता का भय नहीं रहता और ऐसे राज्य को शत्रु भी जल्दी नहीं जीत सकता।

कुलशताधर-ग्राम-संज्ञा पुं० [सं०] वह गाँव जिसकी आबादी सौ से अधिक हो। (कौ०)

कुलसंघ-संज्ञा पुं० [सं०] कुलीन तंत्रराज्य का शासक मंडल। वि० दे० "कुलराज्य"।

कुहर-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसका मांस खाया जाता है।

कुहौं†-संज्ञा स्त्री० [सं० कुहू] मोर या कोयल की कूक। कुहू। उ०—बन-बाटन पिक बटपरा लखि बिरहिनु मत मैं न। कुहौं कुहौं कहि कहि उठें करि करि राते नैन।—बिहारी।

कूँड-संज्ञा स्त्री० [सं० कुंड] (४) मिट्टी, ताँबे या पीतल आदि का बना हुआ वह गहरा पात्र जिसके ऊपर चमड़ा मढ़कर "बायाँ" या "ठेका" बनाते हैं।

कूटकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] (२) जूआ खेलते समय बेईमानी करना या हाथ की चतुराई या सफाई से पासे पलटना। (कौ०)

कूटन-संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना] (१) कूटने की क्रिया या भाव। (२) मारना। पीटना। कुटाई। उ०—फेरत नैन चेरि सौं छूटीं। भइ कूटन कुटनी तस कूटीं।—जायसी।

कूटपण कारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जाली सिक्का या माल तैयार करनेवाला। (२) जाली दस्तावेज़ बनानेवाला। जालसाज। (कौ०)

कूटमुद्र-संज्ञा पुं० [सं०] जाली मुहर या सिक्का बनानेवाला। (कौ०)

कूटमुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जाली मुहर या परवाना। (कौ०)

कूटरूप—संज्ञा पुं० [सं०] जाली रुपया या सिक्का। (कौ०)

कूटरूप कारक-संज्ञा पुं० [सं०] जाली सिक्का तैयार करनेवाला।

विशेष—चाणक्य ने लिखा है कि जो लोग भिन्न भिन्न प्रकार के लोहे के औजार खरीदते हों तथा जिनके पास सैकड़ों प्रकार के रासायनिक द्रव्य हों और जो धूएँ में सने हों, उनको जाली सिक्का तैयार करनेवाला समझना चाहिए। इनको गुप्त दूत लगाकर पकड़ना और देश से निकाल देना चाहिए।

कूटरूप निर्यापण-संज्ञा पुं० [सं०] जाली सिक्का निकालना या चलाना। (कौ०)

कूटरूप प्रतिग्रहण-संज्ञा पुं० [सं०] जाली सिक्का ग्रहण करना। (कौ०)

कूटागार-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार वह मंदिर जो मानुषी बुद्धों के लिये बना हो।

कूटावपात-संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर से छिपा हुआ गड्ढा जो जंगली जानवरों को फँसाने के लिये बनाया जाता है।

कूथना-क्रि० स० [सं० कुंथन] बहुत मारना। पीटना। क्रि० अ० दे० "कूँथना"।

कूर्पास-संज्ञा पुं० [सं०] अंग की रक्षा के लिये लोहे की जालियों का छोटा कवच। (कौ०)

कूर्मखंड-संज्ञा पुं० [सं०] पौराणिक भूगोल के अनुसार एक खंड या वर्ष का नाम।

कूर्ममुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की उपासना में एक प्रकार की मुद्रा जिसमें एक हथेली दूसरी हथेली पर इस प्रकार रखते हैं कि कछुए की आकृति बन जाती है।

कृकाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कंधे और गले का जोड़। घाँटी। उ०—सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका कंबु कंठ सोभा मन मानति।—तुलसी।

कृच्छ्रपराक-संज्ञा पुं० [सं०] १२ दिन तक निराहार रहने का व्रत।

कृच्छ्रातिकृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] २१ दिन तक दूध पर निर्वाह करने का व्रत।

विशेष—गौतम के मत से दूध के स्थान पर पानी पी कर ही रहना चाहिए।

कृतकाल दास-संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जिसने कुछ ही समय के लिये अपने को दास बनाया हो।

कृतविदूषण संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] शत्रु के साथियों या अपने गुप्तचरों द्वारा यह सिद्ध करके कि शत्रु ने संधि भंग किया है, संधि भंग करना। (कौ०)

कृतशुल्क-वि० [सं०] (माल) जिस पर चुंगी दी जा चुकी हो। (कौ०)

कृतश्लेषण संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पक्की संधि जो मित्रों को बीच में डालकर की जाय और जिससे युद्ध या विग्रह की संभावना न रह जाय। (कौ०)

कृत्रिम-अरि-प्रकृति-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो किसी दूसरे को विजेता के विरुद्ध भड़काता हो।

कृत्रिम-मित्र-प्रकृति-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो धन तथा जीवन के हेतु मित्र बन गया हो।

कृशोदरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अनंतमूल।

केतकर†-संज्ञा स्त्री० दे० "केतकी"। उ०—तुहु जौ प्रीति निबाहै आँटा। भौंर न देख केतकर काँटा।—जायसी।

केमा†-संज्ञा पुं० [सं० कदम्ब] कदंब। कदम। उ०—अब तजि नाउँ उपाय कौ आए पावस मास। खेलु न रहिबौ खेम सौं केम-कुसुम की बास।—बिहारी।

केल-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का वृक्ष जो सिंध की पहाड़ियों और पश्चिमी हिमालय में होता है। इसकी लकड़ी भूरे रंग की और भारी होती है; तथा सजावट के सामान और खिलौने आदि बनाने के काम में आती है। इसके फल खाए जाते हैं और बीजों से तेल निकलता है। इसके पौधे पर विलायती जैतून की कलम लग जाती है।

कैटलग-संज्ञा पुं० [अं०] सूचीपत्र। फेहरिस्त। फर्द।

कैप-संज्ञा स्त्री० [अं०] टोपी।

कैपिटल-संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी व्यक्ति या समुदाय का ऐसा समस्त धन जिसे वह किसी व्यवसाय या काम में लगा

संके। धन। संपत्ति। पूँजी। (२) वह धन जो किसी व्यापार या व्यवसाय में लगाया गया हो या जिससे कोई कारोबार आरंभ किया गया हो। किसी दूकान, कोठी, कारखाने, बैंक आदि की निज की चर या अचर संपत्ति। पूँजी। मूलधन। (३) किसी देश का मुख्य या प्रधान नगर जिसमें राजा या राज-प्रतिनिधि या प्रधान सरकार हो।

कैपिटलिस्ट–संज्ञा पुं० दे० "पूँजीपति"।

कैरट–संज्ञा पुं० [अं०, मि० अ० किरात] (१) दे० "करात"। (२) एक प्रकार का मान जिससे सोने की शुद्धता और उसमें दिए हुए मेल का हिसाब जाना जाता है।

विशेष—युरोप और अमेरिका में बिलकुल खालिस सोने का व्यवहार प्रायः नहीं होता और उसमें अपेक्षाकृत अधिक मेल दिया जाता है। इसी लिए जो सोना बिलकुल शुद्ध होता है, वह २४ कैरट का कहा जाता है। यदि आधा सोना और आधा दूसरी धातु का मेल हो तो वह सोना १२ कैरट का, और यदि तीन चौथाई सोना और एक चौथाई मेल हो तो वह सोना १८ कैरट का कहा जाता है। इसी प्रकार १४, १६, २० और २२ कैरट का भी सोना होता है, जिनमें से अंतिम सब से अच्छा समझा जाता है।

कैलेंडर–संज्ञा पुं० [अं०] (१) अँगरेजी तिथि पत्र या पंचांग जिसमें महीना, वार और तारीख छपी रहती है। (२) सूची। फेहरिस्त। रजिस्टर।

कैवा†–क्रि० वि० [हिं० कै=कई+वा=वार] कई बार। कई दफा। उ०—(क) मैं तो सौं कैवा कह्यो तू जनि इन्हैं पत्याइ। लगा लगी करि लोइननु उर में लाई लाइ।—बिहारी। (ख) कैवा आवत इहिं गली रहौं चलाइ चलै न। दरसन की साधै रहै सूधै रहैं न नैन।—बिहारी।

कैश–संज्ञा पुं० [अं०] रुपया पैसा। सिक्का। नगदी।
वि० जिसका दाम नगद दिया गया हो। सिक्का देकर लिया हुआ।

कैशियर–संज्ञा पुं० [अं०] वह कर्मचारी जिसके पास रुपया पैसा जमा रहता हो और जो उसे खर्च करता हो। आमदनी लेने और खर्च करनेवाला आदमी। खजानची।

कैसा–क्रि० वि० [हिं० का+सा] के समान। का सा। की तरह का। उ०—सिसिया कैसी घट भयौ, दिन ही मैं वन-कुंज।—मतिराम।

कोटिक–वि० [सं० कोटि+क] बहुत अधिक। अनंत। उ०—(क) कीनै हूँ कोटिक जतन अब कहि काढ़ै कौनु। भो मन-मोहन रूपु मिलि पानी मैं की लौनु।—बिहारी। (ख) कोऊ कोटिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार। मो संपति जदुपति सदा बिपति बिदारनहार।—बिहारी।

कोठी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कोठा] (९) कोल्हू के बीच का वह स्थान या घेरा जिसमें पेरने के लिये ऊख या गन्ने के टुकड़े डाले जाते हैं।

कोड–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह पुस्तक जिसमें किसी प्रकार के संकेत और उनके प्रयोग के नियम लिखे हों। संकेत पद्धति। संकेत विधान। (२) किसी विषय के प्रयोग के नियम आदि का संग्रह।

कोपक–संज्ञा पुं० [सं०] वह लाभ जो मंत्रियों के उपदेश से अथवा राजद्रोही मंत्रियों के अनादर से प्राप्त हुआ हो।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है पहली अवस्था में मंत्री यह समझने लगते हैं कि हम न होते तो राज्य की बहुत हानि हो जाती; और दूसरी अवस्था में शेष मंत्री यह समझते हैं कि जहाँ हमसे लाभ न पहुँचेगा, वहाँ हमारा नाश होगा।

कोप्यापण यात्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जाली सिक्कों का चलना (जिनका रोकना जरूरी हो)। (कौ०)

कोर–संज्ञा पुं० [अं०] पलटन। सैन्यदल। जैसे,—वालंटियर कोर।

कोरना–क्रि० स० [हिं० कोर+ना (प्रत्य०)] (१) लकड़ी आदि में कोर निकालना। (२) छील छाल कर ठीक करना। दुरुस्त करना। उ०—बनबासी पुर लोग महामुनि किए हैं काठ से कोरि।—तुलसी।

कोरम–संज्ञा पुं० [अं०] किसी सभा या समिति के उतने सदस्य जितने की उपस्थिति सभा के कार्य-निर्वाह के लिये आवश्यक होती है। किसी सभा या समिति के उतने सदस्य जितने के उपस्थित होने पर सभा का कार्य प्रारंभ होता है। कार्य निर्वाहक सदस्य संख्या। जैसे,—साधारण सभा का कोरम ९ सदस्यों का है; पर ६ ही उपस्थित थे, कोरम पूरा न होने के कारण अधिवेशन न हो सका।

कोरहन†–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का धान। उ०—कोरहन बड़हन जड़हन मिला। औ संसार-तिलक खँडविला।—जायसी।

कोर्स–संज्ञा पुं० [अं०] उन विषयों का क्रम जो किसी विश्वविद्यालय, स्कूल, कालेज आदि में पढ़ाए जाते हों। पाठ्यक्रम। जैसे,—इस बार बी० ए० के कोर्स में शकुंतला के स्थान पर भवभूति कृत 'उत्तर रामचरित' नाटक रखा गया है।

कोशसंधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] कोश देकर संधि करना। धन देकर किया जानेवाला मेल।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि यदि शत्रु कोशसंधि करना चाहे तो उसको ऐसे बहुमूल्य पदार्थ दे जिनका कोई खरीदनेवाला न हो या जो युद्ध के लिये अनुपयोगी हों या जो जांगलिक पदार्थ हों।

कोशाभिसंहरण–संज्ञा पुं० [सं०] खज़ाने की कमी पूरी करना।

विशेष—चाणक्य ने इसके कई ढंग बताए हैं; जैसे,—(१) बाकी रकम को एक दम वसूल करना। (२) धान्य का

तृतीय तथा चतुर्थ अंश टैक्स में लेना। (३) सोने चाँदी के उत्पादकों, व्यापारियों, व्यवसायियों तथा पशुपालकों से भिन्न भिन्न ढंग पर रखकर लेना। (४) मंदिरों की आमदनी में से कर लेना। (५) धनियों के घरों से धन गुप्त दूतों के द्वारा चोरी कराके प्राप्त करना।

कोरवस-संज्ञा पुं० [देश०] मदरास के आस पास रहनेवाली एक जाति। इस जाति के लोग प्रायः टोकरियाँ आदि बनाते और सारे भारत में घूम घूम कर अनेक प्रकार के पक्षियों के पर एकत्र करते हैं।

कोषाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोष का अध्यक्ष या स्वामी। वह जिसके पास कोष रहता हो। (२) वह जिसके पास किसी व्यक्ति या संस्था का आयव्यय और रोकड़ आदि रहती हो। रोकड़िया। खजानची।

कोष्ठागार-संज्ञा पुं० [सं०] भांडार। भंडारखाना। (कौ०)

कोसा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गाढ़ा रस या अवलेह जो चिकनी सुपारी बनाने के समय सुपारियों को उबालने पर तैयार होता है और जिसकी सहायता से घटिया दरजे की सुपारियाँ रँगी और स्वादिष्ट बनाई जाती हैं।

कौंचा†-संज्ञा पुं० [?] ऊख के ऊपर का पतला और नीरस भाग जिसमें गाँठें बहुत पास पास होती हैं। अगौरा।

कौंछ-संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छु] केवाँच। कौंच। दि० दे० "कौंच"।

कौंट-संज्ञा पुं० [अं० काउन्ट] [स्त्री० कौंटेस] युरोप के कई देशों के सामंतों तथा बड़े बड़े जमींदारों की उपाधि जिसका दर्जा ब्रिटिश उपाधि 'अर्ल' के बराबर का है।

कौंसल-संज्ञा पुं० [अं०] बैरिस्टर। एडवोकेट।

कौंसली-संज्ञा पुं० [अं० कौंसल] बैरिस्टर। एडवोकेट। जैसे,—हाई कोर्ट में उसकी ओर से बड़े बड़े कौंसली पैरवी कर रहे हैं। (प्रांतिक)

कौड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] (२) घूई नाम का पौधा जिसे जलाकर सज्जीखार निकालते हैं। वि० दे० "घूई"।

कौड़िया-संज्ञा पुं० [हिं० कौड़िल्ल] कौड़िल्ला या किलकिला नाम का पक्षी। उ०—नयन कौड़िया हिय समुद्र गुरु सो तेहि जोति। मन मरजिया न होइ परे हाथ न आवै मोति। —जायसी।

कौणप-संज्ञा पुं० [सं०] (३) पातकी। अधर्मी। उ०—केवट कुटिल भालु कपि कौनप कियो सकल सँग भाई।—तुलसी।

कौतिग†-संज्ञा पुं० [सं० कौतुक] विलक्षण और अद्भुत बात। कौतुक। उ०—देखत कछु कौतिगु इतै देखी नैक निहारि। कब की इकटक डटि रही टटिया अँगुरिन फारि।—बिहारी।

कौमियत-संज्ञा स्त्री० [अ०] कौम या जाति का भाव। जातीयता। जैसे,—वल्दियत और कौमियत सब लिखा दो।

कौमी-वि० [अ०] किसी कौम या जाति संबंधी। जातीय। जैसे,—कौमी जोश। कौमी मजलिस।

कौलक-संज्ञा पुं० दे० "कोर"। उ०—लाल बिलोचनि-कौलन सौं, मुसकाइ इतै अरझाइ चितैगो।—मतिराम।

कौवा-संज्ञा पुं० [सं० काक] (६) कनकुटकी नाम का पेड़ जिसकी राल दवा और रँगाई के काम में आती है। (७) एक प्रकार की मछली जिसका मुँह बगले के मुँह की तरह होता है। कंकचोंट। जलव्यथ।

कौशेय-वि० [सं०] रेशम से संबंध रखनेवाला। रेशम का। रेशमी।
संज्ञा पुं० रेशम का बना हुआ वस्त्र। रेशमी कपड़ा।

कौष्ठेयक-संज्ञा पुं० [सं०] वे कर या टैक्स जो खजाने तथा वस्तु-भांडार को पूर्ण करने के लिये जनता से समय समय पर लिये जायँ।

क्रमॐ†-संज्ञा पुं० [सं० कर्म] कर्म्म। कार्य्य। कृत्य। उ०—मन, बच, क्रम तुम सेवहु जाई।

क्रयलेख्यपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] पदार्थ के क्रय विक्रय संबंधी पत्र। (शुक्रनीति)

क्रयिम-संज्ञा पुं० [सं०] वह कर या टैक्स जो माल की खरीद या बिक्री पर लिया जाय। (कौ०)

क्रयोपघात-संज्ञा पुं० [सं०] पदार्थ के खरीदने को रोकना। पदार्थ के क्रय में रुकावटें डालना। (कौ०)

क्राउन-संज्ञा पुं० [अं०] (३) राजा। सम्राट्। शाह। सुलतान। (४) राज्य।

क्राउन कालोनी-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह कालोनी या उपनिवेश जो किसी राज्य या साम्राज्य के अधीन हो। राज्य या साम्राज्यांतर्गत उपनिवेश।

क्राउन प्रिंस-संज्ञा पुं० [अं०] किसी स्वतंत्र राज्य का राज-सिंहासन का उत्तराधिकारी। युवराज। जैसे,—रूमानिया के क्राउन प्रिंस।

क्रिमिनल इनवेस्टिगेशन डिपार्टमेंट-संज्ञा पुं० [अं०] [संक्षिप्त रूप सी० आई० डी०] सरकार का वह विभाग या महकमा जो अपराधों, विशेष कर राजनीतिक अपराधों का गुप्त रूप से अनुसंधान करता है। भेदिया विभाग। खुफिया महकमा। भेदिया पुलिस। खुफिया पुलिस। सी० आई० डी०।

क्रिमिनल प्रोसीजर कोड-संज्ञा पुं० [अं०] अपराध और दंड संबंधी विधानों का संग्रह। दंडविधान। जाब्ता फौजदारी।

क्रूजर-संज्ञा पुं० [अं०] तेज चलनेवाला सशस्त्र या हथियारबंद जहाज जिसका काम अपने देश के जहाजों की रक्षा करना और शत्रु के जहाजों को नष्ट करना या लूटना है। रक्षक जहाज।

क्रेडिट-संज्ञा पुं० [अं०] बाजार में वह मानमर्यादा जिसके कारण मनुष्य लेन देन कर सकता हो। साख। जैसे,—बाजार में

लकड़ी नाव आदि बनाने के काम में आती है। वि० दे० "धव" (१)।

खरबिरई†-संज्ञा स्त्री० [हि० खर+बिरई=बूटी] घास-पात या जड़ी बूटी की दवा जो प्रायः देहाती लोग करते हैं।

खरायँध-संज्ञा स्त्री० [हि० खार+गंध] (१) मूत्र की दुर्गंध। पेशाब की बदबू। (२) क्षार आदि की दुर्गंध।

खरिया-संज्ञा स्त्री० [हि० खर+इया प्रत्य०] (२) झोली। थैली।

खरियाना†-क्रि० स० [हि० खरिया=झोली] (१) झोली में डालना। थैली में भरना। (२) हस्तगत करना। ले लेना। (३) झोली में से गिराना।

खलना-क्रि० स० [हि० खल या खरल] (१) खरल में डालकर घोंटना। (२) नष्ट करना। पीस डालना। उ०—रावन सो रसराज सुभट रस सहित लंक खल खलतो।—तुलसी।

खलादीपिक-संज्ञा पुं० [सं०] खलिहान में आग लगानेवाला।

विशेष—ऐसे अपराधी को आग में जलाने का दंड मिलता था।

खसखसी-वि० [हि० खसखस] खसखस की तरह का। बहुत छोटा। जैसे,—खसखसी दाढ़ी।

खसखासी-संज्ञा पुं० [हि० खसखस] पोस्ते के फूल का रंग। हलका आसमानी रंग।

वि० पोस्ते के फूल के रंग का। हलका आसमानी।

खसिया-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक पहाड़ी का नाम जो आसाम में है। (२) इस पहाड़ी के आस पास का प्रदेश। उ०—चला परबती लेइ कुमाऊँ। खसिया मगर जहाँ लगि नाऊँ।—जायसी।

खाँड़ना†-क्रि० स० [सं० खंड=टुकड़ा] कुचल कुचल कर खाना। चबाना। उ०—काढ़े अधर डाभ जनु चीरा। रुहिर चुवै जौ खाँड़ै बीरा।—जायसी।

खाजी⊛-संज्ञा स्त्री० [सं० खाद्य] खाद्य पदार्थ।

मुहा०—खाजी खाना=मुँह की खाना। बुरी तरह परास्त और लज्जित होना। उ०—सानुज सगन ससचिव सुजोधन भए मुख मलिन खाइ खल खाजी।—तुलसी।

खिझ⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "खीज"। उ०—मनु न मनावन कौं करै देतु रुठाइ रुठाइ। कौतुक लाग्यौ प्यौ प्रिया खिझहूँ रिझवति जाइ।—बिहारी।

खिरौरा†-संज्ञा पुं० [हि० खैर=कत्था+औरा (प्रत्य०)] कत्थे की टिकिया। उ०—पुहुप पंक रस अमृत साँधे। कोइ यह सुरँग खिरौरा बाँधे।—जायसी।

खिसलन†-संज्ञा स्त्री० दे० "फिसलन"।

खिसाना-वि० [हि० खिसियाना] खिसिआया हुआ। लज्जित और संकुचित।

खिसौहाँ⊛-वि० [हि० खिसियाना+औहाँ (प्रत्य०)] खिसिआया हुआ। लज्जित और संकुचित। उ०—गहकि गाँसु औरै गहे रहे अध-कहे बैन। देखि खिसौंहैं पिय-नयन किए खिसौंहैं नैन।—बिहारी।

खीरी†-संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीरिणी] खिरनी नाम का फल। उ०—कोइ दारिउँ, कोइ दाख औ खीरी। कोइ सदाफर तुरँग गँभीरी।—जायसी।

खुँटैया-संज्ञा स्त्री० [हि० खूँटी] एक प्रकार की दूब या घास जिसे चटटू भी कहते हैं।

खुब्बाजी-संज्ञा स्त्री० [अ०] चंगेल नामक पौधे का फल जो दवा के काम में आता है। वि० दे० "चंगेल"।

खुमान⊛†-वि० [सं० आयुष्मान्] बड़ी आयुवाला। दीर्घजीवी। (आशीर्वाद)

खुरुक-संज्ञा पुं० [हि० खुटका] खुटका। खटका। आशंका। उ०—मोट बईं सोइ टोइ टोइ धरे। ऊबर दूबर खुरुकन धरे।—जायसी।

खुसिया-संज्ञा पुं० [अ० खुसिय:] अंड कोश।

यौ०—खुसिया बरदारी=बहुत अधिक खुशामद।

खूँट†-संज्ञा पुं० [सं० खंड] (७) कान में पहनने का एक प्रकार का गहना। उ०—कानन्ह कुंडल खूँट औ खूँटी। जानहुँ परी कचपची टूटी।—जायसी।

खेरौरा†-संज्ञा पुं० [हि० खाँड+औरा (प्रत्य०)] खँड़ौरा या ओला नाम की मिठाई। मिसरी का लड्डू। उ०—पूरी बहुत पकावन साधे। मोति-लाडू औ खेरौरा बाँधे।—जायसी।

खैला†-संज्ञा पुं० [सं० खेल] मथानी। उ०—मन माठा सम अस कै धोवै। तन खैला तेहि माहि बिलोवै।—जायसी।

खोई-संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुद] (४) एक प्रकार की घास जिसे "भूर" भी कहते हैं। वि० दे० "भूर"।

खोड़-संज्ञा पुं० [सं० कोटर] वह छेद जो वृक्ष की लकड़ी के सड़ जाने से हो जाता है। उ०—मानहु आयो है राज कछू चढ़ि बैठे हो ऐसे पलास के खोड़े।—मतिराम।

खोर⊛-संज्ञा स्त्री० [सं० क्षालन, हि० खोरना] नहाने की क्रिया। स्नान।

खोली-संज्ञा स्त्री० [फा० खोल] तकिए आदि के ऊपर चढ़ाने की थैली। गिलाफ।

खौं†-संज्ञा स्त्री० [सं० खन्] (३) वृक्ष में वह स्थान जहाँ डाल से टहनी या टहनी से पत्ती निकलती है।

खौंट†-संज्ञा स्त्री० [हि० खोंटना] (१) खोंटने की क्रिया या भाव। (२) खोंटने या नोचने के कारण (शरीर आदि पर) पड़ा हुआ चिह्न। खरोंट। उ०—तियनिय हिय [illegible] लगी चलत पिय नख रेख खरौंट। सूखन देति न सरसई खोंटि खोंटि खत खौंट।—बिहारी।

गंगा-गति-संज्ञा स्त्री० [सं० गंगा+गति] मोक्ष। मुक्ति। उ०—मरै जो चलै गंग-गति लेई। तेहि दिन कहाँ घरी को देई।—जायसी।

गंगेय–संज्ञा पुं० [सं० गांगेय] गंगा के पुत्र भीष्म-पितामह । उ०—तुम्ह ही द्रोन और गंगेऊ । तुम्ह लेखौं जैसे सहदेऊ । —जायसी ।

गंगोखक–संज्ञा पुं० [सं० गंगोदक] गंगा का जल । गंगोदक । उ०—तुलसी रामहिं परिहरे निपट हानि सुनि ओझ । सुरसरि-गत सोई सलिल सुरा सरिस गंगोझ ।—तुलसी ।

गंजन–संज्ञा पुं० [सं०] (२) दुःख । कष्ट । तकलीफ । उ०—जेहि मिलि बिछुरनि औ तरनि अंत होइ जो निंत । तेहि मिलि गंजन को सहै वरु बिनु मिले निचिंत ।—जायसी ।

गँठछोर†–संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ+छोरना] गाँठ का माल छीन लेनेवाला । गिरहकट ।

गँड़झप–संज्ञा पुं० [हिं० गाँड़+झेंपना] बुरी तरह झेंपने की क्रिया । (बाजारू)

मुहा०—गँडझप खाना=बुरी तरह झेंपना । बहुत बेतरह लज्जित होना ।

गँड़दार–संज्ञा पुं० [सं० गंड या गँड़ासा+फ़ा० दार (प्रत्य०)] महावत । फीलवान । उ०—ज्यों मतंग अँड़दार को, लिए जात गँड़दार ।—रसराज ।

गँड़सल–वि० [हिं० गाँड़] (१) गुदा भंजन करानेवाला । (२) डरपोक । कायर ।

गंडिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] गेंडे के चमड़े से बनी हुई एक प्रकार की छोटी नाव ।

गँड़ियल–वि० [हिं० गाँड़+इयल (प्रत्य०)] (१) गुदा भंजन करानेवाला । (२) डरपोक । कायर ।

गंधतृण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सुगंधित घास जो वैद्यक में कुछ तिक्त, सुगंधित, रसायन, स्निग्ध, मधुर, शीतल और कफ तथा पित्त की नाशक कही गई है ।

पर्य्या०—सुगंधि । भूतृण । सुरस । सुरभि । सुखवास ।

गइनाही†—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञान] ज्ञान । जानकारी । उ०—डसी री माई स्याम भुअंगम कारे । मोहन मुख मुसुकान मनहु विष जाते मरे सो मारे । फुरै न मंत्र जंत्र गइनाही चले गुनी गुण डारे ।—सूर ।

गगनगढ़–संज्ञा पुं० [सं० गगन+गढ़] गगन-स्पर्शी प्रासाद । बहुत ऊँचा महल । उ०—देखा साह गगनगढ़ इन्द्रलोक कर साज । कहिय राज फुर ताकर सरग करै अस राज । —जायसी ।

गज–संज्ञा पुं० [सं०] (६) ज्योतिष में नक्षत्रों की वीथियों में से एक ।

गजदंड–संज्ञा पुं० [सं० गजदण्ड] पारिस पीपल का पेड़ । पारीश पिप्पल ।

गड़गड़–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) गड़ गड़ शब्द जो हुक्का पीने के समय या सुराही से पानी उलटने के समय होता है । (२) पेट में होनेवाला गड़ गड़ शब्द ।

गड़ुरी–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का पक्षी जिसे गेंडुरी भी कहते हैं । उ०—पीव पीव कर लाग पपीहा । तुही तुही कर गडुरी जीहा ।—जायसी ।

गड़्डा–संज्ञा पुं० [हिं० गाड़ा या गाड़ी] (१) बैल गाड़ी । छकड़ा । (२) लकड़ी आदि का बड़ा पूला या गट्ठा । (३) रेशम या सूत आदि का गट्ठा ।

गढ़ना–क्रि० स० [सं० घटन] प्रस्तुत करना । उपस्थित करना । उ०—आइ सँजोग गोसाईं गढ़े ।—जायसी ।

गढ़वनाक्ष–क्रि० अ० [सं० गढ़=किला] (१) किले में जाना । (२) रक्षित स्थान में पहुँचना । उ०—रहि न सकी सब जगत में सिसिर सीत कैं त्रास । गरम भाजि गढ़वै भई तिय-कुच अचल मवास ।—बिहारी ।

गण–संज्ञा पुं० [सं०] (१४) किसी विशेष कार्य के लिये संघटित समाज या संघ । जैसे,—व्यापारियों का गण, भिक्षुक संन्यासियों का गण । (१५) शासन करनेवाली जाति के मुखियों का मंडल । जैसे,—मालवों का गण ।

विशेष—प्राचीन काल में कहीं कहीं इस प्रकार के गणराज्य होते थे । मालवा में पहले मालवों का गणराज्य था जिनका संवत् पीछे विक्रम संवत् कहलाया ।

गणतंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह राज्य या राष्ट्र जिसमें समस्त राजसत्ता जनसाधारण के हाथ में हो और वे सामूहिक रूप से या अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा शासन और न्याय का विधान करते हों । प्रजातंत्र । जनतंत्र ।

गणिकाध्यक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] वेश्याओं का निरीक्षक राजकर्मचारी या चौधरी ।

विशेष—कौटिल्य के समय में इस प्रकार के कर्मचारी नियत करने की व्यवस्था थी ।

गणित विक्रय–संज्ञा पुं० [सं०] गिनती के हिसाब से पदार्थ बेचना । (कौ०)

गण्य पण्य–संज्ञा पुं० [सं०] गिनती के हिसाब से बिकनेवाली वस्तुएँ । (कौ०)

गथनाक्ष†–क्रि० स० [सं० ग्रथन] बातें बना बना कर कहना । गढ़ गढ़ कर कहना ।

गदरानाक्ष†–वि० [हिं० गदराना] गदराया हुआ । उ०—गदराने तन गोरटी ऐपन आड़ लिलार । हूट्यौ दै इठलाइ दृग करै गँवारि सुवार ।—बिहारी ।

गदा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] भिक्षुक । भिखमंगा । फकीर ।

यौ०—गदागरी=भिक्षुकी । भिखमंगापन । फकीरी ।

गधेड़ी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० गधी+एड़ी (प्रत्य०)] अयोग्य या फूहड़ स्त्री ।

गनगनाना–क्रि० अ० [अनु०] (रोएँ) खड़ा होना । रोमांच होना ।

गनरा भाँग–संज्ञा स्त्री० [गनरा ? + हिं० भाँग] जंगली भाँग जिसमें

नशा बिलकुल नहीं होता। कहीं कहीं इसकी टहनियों से रेशे निकाले जाते हैं।

गनाना-क्रि० स० दे० "गिनाना"।

क्रि० अ०—गिना जाना। गिनती में आना। उ०—बारह ओनइस चारि सताइस। जोगिनि पच्छिउँ दिसा गनाइस।—जायसी।

गनी-संज्ञा पु० [अं०] पाट या सन की रस्सियों का बुना हुआ मोटा खुरदुरा कपड़ा जो बोरा या थैला बनाने के काम में आता है। जैसे,—गनी मार्केट। गनी ब्रोकर।

गप्पा-संज्ञा पु० [अनु० गप] (१) धोखा।

मुहा०—गप्पा खाना=धोखे में आना। चूकना।

(२) पुरुष की इन्द्रिय। (बाजारू)

गभस्तल-संज्ञा पुं० [सं० गभस्तिमान्] गभस्तिमान् द्वीप।

गमकना-क्रि० अ० [हिं० गमक + ना (प्रत्य०)] सुगन्धि देना। महकना।

ग़मगुसार-संज्ञा पुं० [फा०] वह जो किसी को कष्ट में देखकर दुःखी होता हो। सहानुभूति रखने या दिखलानेवाला। हमदर्द।

गमना-क्रि० अ० [अ० ग़म = रंज + ना (प्रत्य०)] (१) ग़म करना। शोक करना। (२) परवाह करना। ध्यान देना। उ०—मेरे तो न डर रघुबीर सुनौ साँची कहौं खल अनखैहैं तुम्हैं सज्जन न गमिहैं।—तुलसी।

गया-संज्ञा स्त्री० [सं० गया (तीर्थ)] गया में होनेवाली पिंडोदक आदि क्रियाएँ।

मुहा०—*गया करना = गया में जाकर पिंडदान आदि करना।* जैसे,—वह बाप की गया करने गए हैं।

गरजना†-वि० [हिं० गरजना] गरजनेवाला। ज़ोर से बोलनेवाला। उ०—राजपंखि पेखा गरजना।—जायसी।

गरना-क्रि० अ० [हिं० गारना] (१) गारा जाना। निचोड़ा जाना। (२) किसी चीज में से किसी पदार्थ का बूँद बूँद होकर गिरना। निचुड़ना। उ०—चुंबक-लोहँड़ा औटा खोवा। भा हलुवा घिउ गरत निचोवा।—जायसी।

गरब†-संज्ञा पुं० [सं० गर्व] हाथी का मद। उ०—गरब गयंदन्ह गगन पसीजा। रुहिर चुवैं धरती सब भीजा।—जायसी।

गरब-गहेला†-वि० [हिं० गर्व + गहना (ग्रहण करना)] [स्त्री० *गरब-गहेली*] जिसने गर्व धारण किया हो। गर्वीला। उ०—तू गज-गामिनि गरब-गहेली। अब कस आस छाँड़ु तू बेली।—जायसी।

गरबनाक्ष-क्रि० अ० [सं० गर्व] *गर्व करना। अभिमान करना।* शेखी करना। उ०—इहिं द्वैहीं मोती सुगथ तूँ नथ गरबि निसाँक। जिहिं पहिरे जग-दृग ग्रसति लसति हँसति सी नाँक।—बिहारी।

गरसना†-क्रि० स० दे० "ग्रसना"।

गरान-संज्ञा पुं० [अं० मैनग्रोव] चौरी नाम का वृक्ष जिसकी छाल से रंग निकाला और चमड़ा सिझाया जाता है।

गरासना†-क्रि० स० दे० "ग्रसना"। उ०—रेनु रैनि होइ रबिहि गरासा।—जायसी।

गरियल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का किलकिला पक्षी जिसका सिर भूरे रंग का होता है।

गरुअ†-वि० [सं० गुरु] (१) भारी। वजनी। (२) जिसका स्वभाव गंभीर हो। शांत।

गरुआ†-वि० [सं० गुरु] [स्त्री० गरुई] (२) गौरव युक्त। गौरवशाली। उ०—बैठहु पाट छत्र नव फेरी। तुम्हरे गरब गरुइ मैं चेरी।—जायसी।

गरुवा†-वि० [सं० गुरु = भारी] (१) भारी। बोझवाला। (२) गंभीर। धीर। उ०—बड़े कहायत आप सौं गरुवे गोपीनाथ। तौ बदिहौं जौ राखिहौ हाथनु लखि मनु हाथ।—बिहारी।

गरू†-वि० [सं० गुरु] (१) भारी। वजनी। उ०—गरू गयंद न टारे टरहीं।—जायसी।

गरेरा†-वि० [हिं० घेर] चक्करदार। घुमावदार।

गर्बनाक्ष-*क्रि० अ० [सं० गर्व] गर्व करना। अभिमान करना।*

गर्भसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाट्यशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार की संधियों में से एक।

गर्ल-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) लड़की। बालिका। (२) युवती। जवान स्त्री।

गर्ल्स स्कूल-संज्ञा पुं० [अं०] वह विद्यालय जिसमें केवल लड़कियाँ पढ़ती हों। कन्या विद्यालय।

गलगाजना†-क्रि० अ० [हिं० गल + गाजना] ज़ोर से आवाज़ करना। भारी शब्द करना। उ०—बीस सहस घहराहिं निसाना। गलगाजहिं भेरी असमाना।—जायसी।

गलझंप-संज्ञा पुं० [हिं० गला + झंप] एक प्रकार की लोहे की झूल जो युद्ध के समय हाथियों के गले में पहनाई जाती थी। उ०—तैसे चँवर बनाए और घाले गलझंप। बँधे सेन गजगाह तहँ जो देखे सो कंप।—जायसी।

ग़लत-फ़हमी-संज्ञा स्त्री० [अ० + फा०] किसी ठीक बात को ग़लत समझना। भूल से कुछ का कुछ समझना। भ्रम।

क्रि० प्र०—पैदा होना।—होना।

गवनचार†-संज्ञा पुं० [सं० गमन + आचार] वधू का वर के घर आना। गौना। उ०—गवनचार पदमावति सुना। उठा धसकि जिय औ सिर धुना।—जायसी।

गवाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रायन। (२) एक प्रकार की ककड़ी। (३) सहोरा नाम का पेड़। (४) अपराजिता लता। *विष्णुक्रांता।*

गयामयन-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का यज्ञ जो एक वर्ष में समाप्त होता था।

गवेजा†-संज्ञा पुं० [?] बातचीत। वार्तालाप। उ०—केवट हँसे सो सुनत गवेजा। समुद न जानु कुआँ कर मेजा।—जायसी।

गवेसी*†-वि० [सं० गवेषणा] गवेषणा करनेवाला। ढूँढनेवाला। उ०—कहाँ सो गुरु पावौं उपदेसी। अगम पंथ जो कहै गवेसी।—जायसी।

गह-संज्ञा स्त्री० [हिं० गहना] (१) हथियार आदि के पकड़ने की जगह। मूठ। दस्ता। कब्जा।

मुहा०—गह बैठना=मूठ पर अच्छी तरह हाथ बैठना।

(२) किसी कमरे या कोठरी की ऊँचाई। (३) मकान का खंड। मंजिल।

गहडोरना†-क्रि० स० [अनु०] मथकर गँदला करना। उ०—दूरि कीजै द्वार तें लवार लालची प्रपंची सुधा सों सलिल सूकरी ज्यों गहडोरिहैं।—तुलसी।

गहबरना-* क्रि० अ० [सं० गह्वर] (१) घबराना। व्याकुल होना। उ०—सत खन रतनसेन गहबरा। रोउब छाँड़ि पाँव लेइ परा।—जायसी। (२) करुणा आदि के कारण (जी) भर आना। उ०—(क) कपि के चलत सिय को मनु गहबरि आयो।—तुलसी। (ख) बिजुली चमकैं हैं, चलन लिय लखि गवन बराइ। पिय गहबरि आएँ गरैं राखी गरैं लगाइ।—बिहारी।

गहबराना*†-क्रि० अ० दे० "गहबरना"।

क्रि० स० व्याकुल करना। विकल करना। घबराहट में डालना।

गहीरा*-वि० दे० "गहरा"।

गाँधी-संज्ञा पुं० [सं० गांधिक] (१) वह जो इत्र और सुगंधित तेल आदि बेचता हो। गंधी। (२) गुजराती वैश्यों की एक जाति।

गाछ मरिच-संज्ञा स्त्री० [हिं० गाछ+मिर्च] मिर्च की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष।

गाजरघोट-संज्ञा पुं० [?] कंजा नाम की कँटीली झाड़ी। वि० दे० "कंजा" (१)।

गाजीमर्द-संज्ञा पुं० [अ० + फा०] (१) वह जो बहुत बड़ा वीर हो। (२) घोड़ा। अश्व। (बोलचाल)

गाथ-संज्ञा स्त्री० [सं०] यश। प्रशंसा। उ०—उत्तम गाथ सनाथ जबै धनु श्री रघुनाथ जी हाथ कै लीनो।—केशव।

गालू*-वि० [हिं० गाल+ऊ (प्रत्य०)] (१) व्यर्थ बढ़ बढ़कर बातें करनेवाला। गाल बजानेवाला। बकवादी। (२) डींग हाँकनेवाला। शेखीबाज।

गिजाई†-संज्ञा स्त्री० [सं० गुंजन] गिजाई या कनसलाई नाम का बरसाती कीड़ा। (पूरब) वि० दे० "गिंजाई"।

गिनी-संज्ञा स्त्री० [अं० गिनी ग्रास] एक प्रकार की विलायती बारहमासी घास जो पशुओं के लिये बहुत बलवर्धक और आरोग्यकारक होती है। इसे गौओं और भैंसों को खिलाने से उनका दूध बहुत बढ़ जाता है; और घोड़ों को खिलाने से उनका बल बहुत बढ़ जाता है। यह घास सभी प्रकार की जमीनों में भली भाँति हो सकती है, पर क्षार या सीड़वाली जमीन में अच्छी नहीं होती। यद्यपि यह बीजों से भी बोई जा सकती है, पर जड़ों से बोना अधिक उत्तम समझा जाता है। यदि वर्षा ऋतु के आरंभ में यह थोड़ी सी भी बो दी जाय तो बहुत दूर तक फैल जाती है। इसके लिये घोड़े की सड़ी हुई लीद की खाद बहुत अच्छी होती है। यदि इस पर उचित ध्यान दिया जाय तो साल में इसकी छः फसलें काटी जा सकती हैं।

गिराव-संज्ञा पुं० [हिं० गिरना + आव (प्रत्य०)] गिरने की क्रिया या भाव। पतन।

गिरावट-संज्ञा स्त्री० दे० "गिराव"।

गिरिनंदी-संज्ञा पुं० [सं० गिरिनन्दिन्] शिव के एक प्रकार के गण।

गिरिबूटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वनस्पति जो औषध के काम में आती है। संग बूटी। अंगूरशेफा। वि० दे० "अंगूरशेफा"।

गीउ*†-संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] गरदन। उ०—दीरघ नैन तीख तहँ देखा। दीरघ गीउ कंठ तिनि रेखा।—जायसी।

गीवा*†-संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] ग्रीवा। गरदन। उ०—राते स्याम कंठ दुइ गीवा। तेहि दुइ फंद डरौं सुठि जीवा।—जायसी।

गुंडासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तृण जो वैद्यक में कटु, तिक्त, उष्ण और पित्त, दाह, शोष तथा मद्य-दोष का नाशक कहा गया है।

पर्य्या०—गुण्डाला। गुंडाला। गुच्छमूलिका। चिपिटा। तृणापत्री। यवासा। पृथुला। विष्टरा।

गुजरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गूजर] (२) वह भेंड़ जिसके कान न हों या कटे हुए हों। बूची।

गुझा†-वि० [सं० गुप्त] गुप्त। छिपा हुआ। (पश्चिम)

गुझाना-क्रि० स० [सं० गुप्त] छिपाना। गुप्त करना।

गुट्टी-संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रंथि, हिं० गाँठ] (१) कोई छोटी गोल या लंबोतरी गाँठ। (२) दे० "बल्य" (१)।

गुड ईवनिंग-संज्ञा स्त्री० [अं०] संध्या के समय का अँगरेजी अभिवादन [redacted] वचन जो किसी से मिलने अथवा अलग होने के समय कहा जाता है और जिसका अभिप्राय है—यह संध्या आपके लिये शुभ हो।

गुड नाइट-संज्ञा स्त्री० [अं०] रात के समय किसी से मिलने या विदा होने पर कहा जानेवाला एक अँगरेजी अभिवादन वचन जिसका अभिप्राय है—यह रात आपके लिये शुभ हो।

गुड बाई-संज्ञा स्त्री० [अं०] किसी से विदा होने के समय कहा

जानेवाला अँगरेजी अभिवादन-वचन जिसका वास्तविक अभिप्राय है—ईश्वर तुम्हारे साथ रहे या तुम्हारा रक्षक हो।

गुड मार्निंग-संज्ञा पुं० [अं०] किसी से मिलने या विदा होने के समय कहा जानेवाला एक अँगरेजी अभिवादन-वचन।

गुडरू†-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार की चिड़िया जिसे गडुरी भी कहते हैं। उ०—धरे परेवा पंडुक हेरी। खेहा गुडरू और बगेरी।—जायसी।

गुड़िला†-संज्ञा पुं० [हिं० गुड़िया] (१) बड़ी गुड़िया। (२) किसी की बनी हुई आकृति। मूर्ति। पुतला।

गुड़ीला†-वि० [हिं० गुड़ + ईला (प्रत्य०)] (१) गुड़ का सा मीठा। (२) उत्तम। बढ़िया। (क०)

गुढ़⊛-संज्ञा पुं० [सं० गूढ़] छिप कर रहने का स्थान। बच कर रहने की जगह।

गुढ़ना⊛-क्रि० अ० [सं० गूढ़] आड़ में होना। छिपना। लुकना। उ०—लखि दारत पिय-कर-कटकु बास छुड़ावन काज। बरुनिन मन गाँढ़ै डगतु रही गुढ़ौ करि लाज।—बिहारी।

गुणशिक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक में वह अनुष्ठान जो नट लोग अभिनय आरंभ करने से पहले विघ्नों की शांति के लिये करते हैं। पूर्व रंग।

गुदना†-संज्ञा स्त्री० [हिं० गोदना] वह स्त्री जिसके शरीर पर गोदना गुदा हुआ हो। (पश्चिम)

गुदरना⊛†-क्रि० अ० [फा० गुजर + ना (प्रत्य०)] (१) व्यतीत होना। बीतना। गुजरना। उ०—अंतर लेहु होहु सँग लागू। गुदर जाइ सब होइहि आगू।—जायसी। (२) उपस्थित किया जाना। पेश होना।

गुनना⊛†-क्रि० अ० [सं० गुणन] (१) मनन करना। विचार करना। जैसे,—पढ़ना गुनना। (२) समझना। सोचना। उ०—(क) सुनि चितउर राजा मन गुना। बिधि-सँदेस मैं कासों सुना।—जायसी। (ख) सुमति महामुनि सुनिये। तन, धन के मन गुनिये।—केशव।

गुनाहगार-वि० [फा०] (१) गुनाह करनेवाला। पाप करनेवाला। (२) अपराध करनेवाला। कसूर करनेवाला। दोषी।

गुनाहगारी-संज्ञा स्त्री० [फा०] गुनाहगार का भाव। अपराधी या दोषी होने का भाव।

गुप-वि० दे० "घुप"।

संज्ञा पुं० [अनु०] संनुसान होने का भाव। सन्नाटा।

गुपुत⊛†-वि० दे० "गुप्त"।

गुमान-संज्ञा पुं० [फा०] (३) लोगों की बुरी धारणा। बदगुमानी। लोकापवाद। उ०—तुलसी जुपै गुमान को होतो कछू उपाउ। तौ कि जानिकिहि जानि जिय परिहरते रघुराउ।—तुलसी।

गुम्मर-संज्ञा पुं० [हिं० गुम्मट] चेहरे या और किसी अंग पर निकला हुआ बहुत बड़ा गोल मसा या मांस का लोथड़ा।

गुरिंदा-संज्ञा पुं० [फा० गोइंदा] गुप्तचर। भेदिया। गोइंदा। जैसे,—कोतवाल तथा उनके गुरिंदों ने छेदालाल जी का जीवन भार-भूत कर दिया।—प्रताप।

गुरीरा⊛†-वि० [हिं० गुड़ + ईरा (प्रत्य०)] (१) गुड़ का सा मीठा। (२) सुंदर। बढ़िया। उत्तम। उ०—मूर पास सों भयो गुरीरा।—जायसी।

गुरुज†-संज्ञा पुं० दे० "गुर्ज"। उ०—तीसर खड्ग कूँड़ पर लावा। काँध गुरुज हुत घाव न आवा।—जायसी।

गुरु समुत्थ-वि० [सं०] (राष्ट्र या राजा) जो लड़ाई के लिये बड़ी मुश्किल से तैयार हो।

गुलंच-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कंद।

गुल अफ़ीक़-संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का फूलदार पौधा जिसके बीसियों भेद पाए जाते हैं। यह प्रायः फागुन चैत या सावन भादों में लगाया जाता है।

गुलफाम-वि० [फा०] जिसके शरीर का रंग फूल के समान हो। सुन्दर। खूबसूरत।

गुल मखमल-संज्ञा पुं० [फा०] (१) एक प्रकार का पौधा जिसके बीजों से पहले पनीरी तैयार करके तब पौधे लगाए जाते हैं। (२) इस पौधे का फूल जो देखने में मखमल की घुंडियों के समान जान पड़ता है। यह सफेद, लाल और पीला कई रंगों का तथा बहुत मुलायम और चिकना होता है।

गुलरू-वि० [फा०] फूल के समान आकृतिवाला। सुन्दर। खूबसूरत।

गुलाम चोर-संज्ञा पुं० [अ० गुलाम + हिं० चोर] ताश का एक प्रकार का खेल जो दो से सात आठ आदमियों तक में खेला जाता है। इसमें एक गुलाम या और कोई पत्ता गड्डी से अलग कर दिया जाता है; और तब सब खेलनेवालों में बराबर पत्ते बाँट दिए जाते हैं। हर एक खेलाड़ी अपने अपने पत्तों के जोड़ (जैसे,—दुक्की दुक्की, छक्का छक्का, दहला दहला) निकाल कर अलग रख देता है और सब एक दूसरे से एक एक पत्ता लेते हुए इसी प्रकार जोड़ मिलाकर निकालते हैं। अंत में जिसके पास अकेला गुलाम या निकाले हुए पत्ते का जोड़ बच रहता है, वही चोर और हारा हुआ समझा जाता है।

गुलिस्ताँ-संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह स्थान जहाँ फूलों के बहुत से पौधे आदि लगे हों। बाग। उपवन। वाटिका। (२) फारसी के प्रसिद्ध कवि शेख सादी शीराजी का बनाया हुआ नीति सम्बन्धी एक प्रसिद्ध ग्रंथ।

गुल्मप-संज्ञा पुं० [सं०] एक गुल्म का नायक। भौल्मिक।

गुवा†-संज्ञा पुं० [सं० गुवाक] सुपारी। उ०—कोइ जायफर लौंग सुपारी। कोइ नरियर कोइ गुवा छुहारी।—जायसी।

गुहाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० गुहना] (१) गुहने की क्रिया या भाव। (२) गुहने की मजदूरी।

गूँगी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गूँगा] (२) दोमुहाँ साँप।

गूढ़जीवी–संज्ञा पुं० [सं० गूढ़जीविन्] (१) वह जिसकी जीविका का पता न चलता हो। वह जिसके संबंध में यह न पता हो कि वह किस प्रकार अपना निर्वाह करता है। (२) गुप्त रूप से चोरी, डकैती आदि के द्वारा जीवन निर्वाह करनेवाला व्यक्ति।

गून सराई–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो पूर्वी हिमालय और विशेषतः दारजिलिंग तथा आसाम में पाया जाता है। रोहू।

गूल भाँग–संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल या अनु० गूल + भाँग] हिमालय में होनेवाली एक प्रकार की भाँग का मादा पेड़ जिसकी टहनियों से रेशे निकाले जाते हैं।

गृहजात (दास)–संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जो घर की दासी से पैदा हुआ हो।

गृहपातक व्यंजन–संज्ञा पुं० [सं०] सामान्य गृहस्थ के रूप में रहनेवाले गुप्तचर जो लोगों के रहन सहन, आमदनी आदि की खबर रखते थे। ये समाहर्त्ता के अधीन रहते थे। (कौ०)

गृहमंत्री–संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र सचिव"।

गृहयुद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्ध जो एक ही देश या राज्य के निवासियों में आपस में हो। अंतः कलह। गृहकलह।

गृहसचिव–संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र सचिव"।

गृहाधिपति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकान का मालिक। मकानदार। (२) राजभवन का प्रधान अधिकारी।

विशेष—वह राज-कर्मचारी जिसका काम राजभवन की देखभाल रखना होता था, गृहाधिपति कहलाता था। (शुक्र नीति)

गृहीतानुवर्त्तन–संज्ञा पुं० [सं०] देने के बाद कुछ और दे देना। (कौ०)

गेठा–संज्ञा पुं० [देश०] मोका नाम का वृक्ष जिसकी लकड़ी सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। मोका। वि० दे० "मोका"।

गेयपद–संज्ञा पुं० [सं०] नाट्य शास्त्र के अनुसार लास्य के दस अंगों में से एक। वीणा या तानपूरा आदि यंत्र लेकर आसन पर बैठे हुए केवल गाना।

गैजेटियर–संज्ञा पुं० [अं०] वह पुस्तक जिसमें कहीं का भौगोलिक वृत्त वर्णानुक्रम से हो। भौगोलिक कोश। जैसे,—डिस्ट्रिक्ट गैजेटियर, इम्पीरियल गैजेटियर।

गैजेटेड अफसर–संज्ञा पुं० [अं०] वह सरकारी कर्मचारी जिसकी नियुक्ति की सूचना सरकारी गैजेट में प्रकाशित होती है।

विशेष—सरकारी गैजेट में उन्हीं कर्मचारियों की नियुक्ति की सूचना प्रकाशित होती है जिनका पद बड़ा और महत्व का समझा जाता है। इस प्रकार गवर्नर तक की नियुक्ति की सूचना गैजेट में निकलती है। सब इन्सपेक्टर, जमादार, आदि छोटे कर्मचारियों की नियुक्ति गैजेट में नहीं निकलती।

गैन॥–संज्ञा पुं० [सं० गगन] गगन। आकाश। आसमान। उ०—ओछे बड़े न ह्वै सकैं लगौ सतर ह्वै गैन। दीरघ होहिं न नैकहूँ फारि निहारैं नैन।—बिहारी।

गैर-सरकारी–वि० [अ० गैर + फा० सरकारी] जो सरकारी न हो। जो किसी सरकार या राज्य का (आदमी या नौकर) न हो। जिसका किसी सरकार या राज्य से संबंध न हो। जैसे,—गैर सरकारी सदस्य।

गोंद पटेर–संज्ञा स्त्री० [सं० गुंद + पर्य्या० पटेर] पानी में होनेवाली एक प्रकार की वनस्पति जिसके पत्ते मोटे और प्रायः एक इंच चौड़े और चार पाँच फुट लंबे होते हैं। इसके पत्तों में से नए पत्ते निकलते हैं। इसमें ऊपर की ओर बाजरे की बाल के समान बाल भी लगती है जिसके ऊपर सींकें होती हैं। इन सींकों से चटाइयाँ आदि बनती हैं। वैद्यक में यह कसैली, मधुर, शीतल, रक्तपित्त नाशक और स्तन का दूध, शुक्र, रज तथा मूत्र को शुद्ध करनेवाली कही गई है।

गो–संज्ञा स्त्री० [सं०] (९) ज्योतिष में नक्षत्रों की नौ वीथियों में से एक।

गोइ†–संज्ञा पुं० दे० "गोय"।

गोइन–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का मृग। उ०—हरिन रोझ लगना बन बसे। चीतर गोइन झाँख औ ससे।—जायसी।

गोई†–संज्ञा स्त्री० दे० "गोइयाँ"। उ०—सुनि निरखैं मैंदर कै गोई। गरे लागि पदमावत रोई।—जायसी।

गोट–संज्ञा पुं० [हिं० गोल] तोप का गोला। उ०—जिन्हके गोट कोट पर जाहीं। जेहि ताकहिं चूकहिं तेहि नाहीं।—जायसी।

गोटा†–संज्ञा पुं० [सं० गुटिका] (९) चौपड़ का मोहरा। गोट। गोटी। उ०—अलक भुअंगिनि तेहि पर लोटा। हिय-घर एक खेल दुइ गोटा।—जायसी। (२) तोप का गोला। उ०—औ जौं छुटहिं बज्र कर गोटा। बिसरहि भुगुति होइ सब रोटा।—जायसी।

गोट्टू–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घटिया चिकनी सुपारी।

गोड़ाँगी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़ + अंग] (२) जूता।

गोड़ापाही†–संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़ = पाँव + पाई = ताने के सूत फैलाने का ढाँचा] (१) किसी मंडल में घूमने की क्रिया। पाई। मंडल देना। (२) किसी स्थान पर बार बार आने की क्रिया। ताना पाई।

गोड़ाली†–संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँडर] गाँडर दूब।

गोदंती–संज्ञा स्त्री० [सं० गोदन्त] एक प्रकार का मणि या बहुमूल्य पत्थर।

गोप–संज्ञा पुं० [सं०] (८) गाँव का मुखिया या पटवारी जो गाँव

के हिस्सों और लोगों के स्वत्व आदि का लेखा रखता था।

गोप्‌†-वि० [सं० गुप्त] छिपा हुआ। गुप्त। उ०—छाछाया जस बुन्द अलोपू। ओठइँ सो आनि रहा करि गोपू।—जायसी।

गोपीता-संज्ञा स्त्री० [सं० गोपी] गोप-कन्या। गोपी। (क्व०) उ०—उन्ह भौंहनि सरि केउ न जीता। अछरी छपीं छपीं गोपीता।—जायसी।

गोप्याधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह धन जो घर में छिपा कर रखने के लिये गिरवी रखा जाय।

गोमूत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) सर्पसारी नामक व्यूह। (कौ०)

गोरान-संज्ञा पुं० [अं० मैनग्रोव] घौरी नाम का वृक्ष जिसकी छाल से रंग निकाला और चमड़ा सिझाया जाता है।

गोल मेज कान्फरेन्स-संज्ञा स्त्री० दे० "राउंड टेबुल कान्फरेन्स"।

गोलिंग-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की गाड़ी। (कौ०)

गोल्फ-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का अँगरेजी खेल जो डंडे और गेंदों से खेला जाता है।

गौं-संज्ञा स्त्री० [सं० गम] (३) ढब। चाल। ढंग। उ०—कल कुंडल चौतनी चारु अति चलत मत्त गज गौं हैं।—तुलसी।

गौनहर-संज्ञा स्त्री० दे० "गौनहारी"।

गौनहारिन-संज्ञा स्त्री० दे० "गौनहारी"।

गौनहारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गाना + हारी (वाली)] एक प्रकार की गानेवाली स्त्रियाँ जो कई एक साथ मिलकर ढोलक पर या शहनाई आदि के साथ गाती हैं। इनकी कोई विशेष जाति नहीं होती। प्रायः घर से निकली हुई छोटी जाति की स्त्रियाँ ही आकर इनमें सम्मिलित हो जाती हैं और गाने बजाने तथा कसब कमाने लगती हैं।

गौरा†-संज्ञा पुं० [सं० गोरोचन] गोरोचन नामक सुगंधित द्रव्य। उ०—रचि रचि साजे चंदन चौरा। पोते अगर मेद औ गौरा।—जायसी।

गौरीपट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] शिव जी की जलहरी, जिसे जलधरी या अरघा भी कहते हैं।

गौरूपटी-संज्ञा स्त्री० [देश०] करमई या अमली नाम का झाड़ीदार पौधा। वि० दे० "करमई"।

गौल्मिक-संज्ञा पुं० [सं०] ३. सिपाहियों का नायक या अफसर।

गौहरा-संज्ञा पुं० [हिं० गौ + हरा] गायों के रहने का स्थान। गोंड़ा।

ग्रंथिभेद-संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह चोरी जो द्रव्य के साथ बँधी गाँठ काटकर की जाय। गाँठ काटना। गिरहकटी।

ग्रंस†-संज्ञा पुं० [सं० ग्रंथि = कुटिलता] (२) वह जो छल कपट करता हो। कुटिल। (३) दुष्ट। उपद्रवी।

ग्रामकंटक-संज्ञा पुं० दे० "ग्रामद्रोही"।

ग्रामकूट-संज्ञा पुं० [सं०] (२) गाँव का मुखिया या चौधरी।

विशेष—कौटिल्य के समय में इनके पीछे भी गुप्तचर रहते थे, जो इनकी ईमानदारी की जाँच करते रहते थे।

ग्रामद्रोही-संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम की मर्यादा या नियम का भंग करनेवाला। ग्रामकंटक।

विशेष—प्राचीन काल में ग्राम के प्रबंध और झगड़े आदि निपटाने का भार गाँव की पंचायत पर ही रहता था। जो लोग उक्त पंचायत के निर्णय के विरुद्ध काम करते या उसका नियम तोड़ते थे, वे ग्रामद्रोही कहलाते और दंड के भागी होते थे।

ग्रामर-संज्ञा स्त्री० [अं०] व्याकरण।

ग्रामहट्टार-संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम का मुखिया या चौधरी। ग्रामकूट।

ग्रेट ब्रिटेन-संज्ञा पुं० [अं०] इंगलैंड, वेल्स और स्काटलैंड।

ग्लास-संज्ञा पुं० [अं०] (१) शीशा। (२) दे० "गिलास"।

ग्वारफली-संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्वार + फली] ग्वार नामक पौधे की फली जिसकी तरकारी बनती है। वि० दे० "ग्वार"।

ग्वैंठा†-वि० [हिं० ऐंठा का अनु०] ऐंठा हुआ। टेढ़ा मेढ़ा। उ०—सौंहैं हूँ हेर्‌यो न तैं केती धाई सौंह। एहो, क्यों बैठी किए ऐंठी ग्वैंठी भौंह।—बिहारी।

घँसना-क्रि० स० दे० "घिसना"।

घट-संज्ञा पुं० [सं०] (५) नौ प्रकार के दिव्यों में से एक जिसे तुला भी कहते हैं। वि० दे० "तुला परीक्षा"।

घटकर्ण-संज्ञा पुं० दे० "कुंभकर्ण"। उ०—जयति दसकंठ घटकरन बारिदनाद कदन कारन कालनेमि हंता।—तुलसी।

घटना-क्रि० अ० [सं० घटन] (३) उपयोग में आना। काम आना। उ०—लाभ कहा मानुष तन पाए। काय बचन मन सपनेहु कबहुँक घटत न काज पराए।—तुलसी।

घटस्थापन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी मंगल कार्य्य या पूजन आदि के समय, विशेषतः नवरात्र में, घड़े में जल भरकर रखना जो कल्याणकारक समझा जाता है। (२) नवरात्र का आरंभ, या पहला दिन जिसमें घट की स्थापना होती है।

घटिकास्थान-संज्ञा पुं० [सं०] यात्रियों के ठहरने का स्थान। पथिकशाला। चट्टी। सराय।

घटेरुआ†-संज्ञा पुं० [हिं० घाटी = गला] पशुओं का एक प्रकार का रोग जिसमें उनका गला फूल आता है।

घड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० घट] घड़ा का स्त्रीलिंग और अल्पार्थक रूप। छोटा घड़ा।

घन-संज्ञा पुं० [सं०] (१५) शरीर। उ०—कंप छुट्यो घन स्वेद बढ़्यो, तनु रोम उठ्यो, अँखियाँ भरि आई।—मतिराम।

घनदार-वि० [सं० घन + फा० दार (प्रत्य०)] घना। गुंजान।

घनवेल-संज्ञा स्त्री० [सं० घन + हिं० बेल] एक प्रकार का बेला। उ०—बहुत फूल फूलीं घनबेली। केवड़ा चंपा कुंद चमेली।—जायसी।

घनश्याम-संज्ञा पुं० [सं०] (३) रामचन्द्र जी। उ०—गोरु की

आग लगी परिपूरण आइ गये घनश्याम बिहाने ।—केशव ।

घनसार-संज्ञा पुं० [सं०] कपूर । उ०—गारि राख्यो चंदन बगारि राख्यो घनसार ।—मतिराम ।

घरजाया-संज्ञा पुं० [हिं० घर + जाया = उत्पन्न] दास । गुलाम । उ०—राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै बलि, तुलसी तिहारो घर-जायउ है घर को ।—तुलसी ।

घरी*†-संज्ञा स्त्री० दे० "घड़िया" ।

घाएँ†-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) ओर । तरफ । (२) अवसर । बार । दफा ।

क्रि० वि० ओर से । तरफ से ।

घाघस-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बढ़िया और बड़ी मुरगी ।

घाता-संज्ञा पुं० [हिं० घात या घाल] वह थोड़ी सी चीज जो सौदा खरीदने के बाद ऊपर से ली या दी जाती है । घाल । घलुआ ।

घावपत्ता-संज्ञा पुं० [हिं० घाव + पत्ता] एक प्रकार की लता जिसके पत्ते पान के आकार के, प्रायः एक बालिश्त लंबे और ८-१० अंगुल चौड़े होते हैं और नीचे की ओर कुछ सफेदी लिए होते हैं । यह घावों पर उनको सुखाने और फोड़ों पर उनको पकाने के लिये बाँधा जाता है । ऐसा प्रसिद्ध है कि यदि यह सीधा बाँधा जाय तो कच्चा फोड़ा पककर फूट जाता है, और यदि उलटा बाँधा जाय तो बहता हुआ फोड़ा सूख जाता है । मालवा में इसे साँवसर कहते हैं ।

घिरितঞ्ज†-संज्ञा पुं० [सं० घृत] घृत । घी । उ०—अपने हाथ देव नहवावा । कलस सहस इक घिरित भरावा ।—जायसी ।

घिरिन परेवा†-संज्ञा पुं० [हिं० घिरनी = चक्कर + परेवा] (१) गिरहबाज कबूतर । (२) कौड़ियाला पक्षी जो मछली के लिये पानी के ऊपर मँडराता रहता है । उ०—(क) कहँ वह भौंर कँवल-रस-लेवा । आइ परे होइ घिरिन परेवा ।—जायसी । (ख) घिरिन परेवा गीउ उठावा । चहै बोल तमचूर सुनावा ।—जायसी ।

घीकुआर-संज्ञा पुं० [सं० घृतकुमारी] एक प्रसिद्ध क्षुप जो खारी रेतीली जमीन पर अथवा नदियों के किनारे अधिकता से होता है । इसके पत्ते ३-४ अंगुल चौड़े, हाथ डेढ़ हाथ लंबे, दोनों किनारों पर अनीदार, बहुत मोटे और गूदेदार होते हैं जिनके अंदर हरे रंग का और लसीला गूदा होता है । यह गूदा बहुत पुष्टिकारक समझा जाता और कई रोगों में व्यवहृत होता है । एलुवा इसी के रस से बनाया जाता है । वैद्यक में यह शीतल, कड़ुवा, कफनाशक और विष, खाँसी, विष, श्वास तथा कुष्ठ आदि को दूर करनेवाला माना गया है । पत्तों के बीच से एक मोटा डंडा या मूसला निकलता है जो मधुर और कृमि तथा पित्तनाशक कहा गया है । इसी डंडे में लाल फूल निकलता है जो भारी और वात, पित्त तथा कृमि का नाशक बतलाया गया है ।

घीसाঞ्ज†-संज्ञा पुं० [हिं० घिसना] घिसने या रगड़ने की क्रिया । रगड़ । माँजा । उ०—खरिका लाइ करै तन घीसू । नियर न होइ करै इबलीसू ।—जायसी ।

घुटना†-क्रि० स० [अनु० मि० पं० घुट्टना] जोर से पकड़ना या कसना । उ०—फिरहिं दुऔ सन फेर घुटै कै । सातहु फेर गाँठि सो एकै ।—जायसी ।

घुरघुरा†-संज्ञा पुं० [घुरघुर से अनु०] झींगुर नाम का कीड़ा ।

घूँटा†-संज्ञा पुं० [सं० घुटक, हिं० घुटना] टाँग और जाँघ के बीच का जोड़ । घुटना । उ०—मुँह पखारि मुड़हरु भिजै सीस सजल कर छुवाइ । मौरु उचै घूँटेनु तें नारि सरोवर न्हाइ ।—बिहारी ।

घेंटी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० घाँटी या सं० कृकाटिका] गले और कंधे का जोड़ ।

घेरुआ†-संज्ञा पुं० [हिं० घेरना] वह छोटा गड्ढा जो नाली आदि में पानी रोकने के लिये बनाया जाता है । झिर्री ।

घेसी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का देवदार जो हिमालय में होता है । इसकी लकड़ी भूरे रंग की होती है । परधर ।

घोड़ानस-संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा या गोड़ा ? + नस] वह मोटी नस जो पैर में एड़ी से ऊपर की ओर गई होती है । कहते हैं कि यह नस कट जाने पर आदमी या पशु मर जाता है (क्योंकि शरीर का प्रायः सारा रक्त इसी के मार्ग से निकल जाता है) ।

घाणक-संज्ञा पुं० [देश०] उतना तेलहन जितना एक बार में पेरने के लिये कोल्हू में डाला जाय । घानी ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग संवत् १००२ के एक शिलालेख में आया है जिसमें लिखा है कि हर घाणक पीछे नारायण देव आदि ने एक एक पली तेल मंदिर के लिये दिया । इस शब्द की व्युत्पत्ति का संस्कृत में पता नहीं लगता, यद्यपि 'घानी' या 'घान' शब्द अब तक इसी अर्थ में बोला जाता है ।

चंद्र-पाषाण-संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्थर जिसमें से चंद्र-किरणों का स्पर्श होने से जल की बूँदें टपकने लगती हैं । चंद्रकांत । उ०—चंद की चाँदनी के परसें मनौं, चंदपखान पहार चले च्वै ।—मतिराम ।

चका†-संज्ञा पुं० [हिं० चकवा] [स्त्री० चकी] चक्रवाक । चकवा । उ०—नेकु निमेष न लावत नैन चकी चितवै तिय देवतिया सी ।—मतिराम ।

चक्रधर-संज्ञा पुं० [सं०] (३) गाड़ीवान ।

चक्रपथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाड़ी की लीक । (२) गाड़ी चलने का मार्ग ।

चट्टू-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की दूब जिसे लुरैया भी कहते हैं ।

चतरोई-संज्ञा स्त्री० [देश०] पाँच छः हाथ ऊँची एक प्रकार की

झाड़ी जो हिमालय में हजारा से नैपाल तक ९००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। इसकी छाल सफेद रंग की होती है और फागुन चैत में इसमें पीले रंग के छोटे फूल लगते हैं। इसकी लकड़ी के रस से एक प्रकार की रसौत बनाते हैं।

चतुःशाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह मकान जिसमें चार बड़े बड़े कमरे हों। (२) चौपाल। बैठक। दीवानखाना।

चपरनाꕤ–क्रि० अ० [सं० चपल] तेजी करना। जल्दी करना। उ०—सरल वक्रगति पंचग्रह चपरि न चितवत काहु। तुलसी सूधे सूर ससि समय बिडंबत राहु।—तुलसी।

चभना†–क्रि० अ० [?] कुचला जाना। दरेरा खाना। उ०—रह्यौ ढीठु ढारसु गहैं ससहरि गयौ न सूरु। मुरयौ न मनु मुरवानु चुभि भौ चूरनु चपि चूरु।—बिहारी।

चरचनाꕤ–क्रि०स० [सं० चर्चन] (४) पहचानना। उ०—चेला चरचन गुरु-गुन गावा। खोजत पूछि परम रस पावा।—जायसी।

चरित्रबंधक कृत–संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जो किसी के पास किसी शर्त पर गिरवी रक्खा जाय।

चरींद–संज्ञा पुं० [फा० चरिन्द या हिं चरना] वह जानवर जो चरने के लिये निकला हो। (शिकारी)

चर्मकरण्ड–संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े का बड़ा कुप्पा जिसके सहारे नदी के पार उतरा जाय। (कौ०)

चलचा–संज्ञा पुं० [देश०] ढाक। पलास।

चलमित्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र (राजा) जो सदा साथ न दे सके। वि० दे० "अनर्थ सिद्धि" (कौ०)

चहचहाहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० चहचहाना + हट (प्रत्य०)] चहचहाने की क्रिया या भाव।

चाँचर–संज्ञा पुं० [देश०] सालपान नाम का क्षुप। वि० दे० "सालपान"।

चाँप–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपना] (१) दबाव। (२) रेल पेल। धक्का। उ०—कोइ काहू न सँभारे होत आप तस चाँप। धरति आपु कहँ काँपै सरग आपु कहँ काँप।—जायसी।

चाइꕤ–संज्ञा पुं० [हिं० चाव] चाव। उमंग। उ०—किय हाइलु चित-चाइ लगि बजि पाइल तुव पाइ। पुनि सुनि सुनि मुँह मधुर-धुनि क्यों न लालु ललचाइ।—बिहारी।

चाकलेट–संज्ञा पुं० [अं० चॉक्लेट = एक प्रकार की मिठाई] सुंदर लड़का जिसके साथ प्रकृति-विरुद्ध कर्म्म किया जाय। लौंडा।

चाकसू–संज्ञा पुं० [सं० चक्षुष्या (१) निर्मली का वृक्ष या बीज।

चाटुकार–संज्ञा पुं० [सं०] (२) सोने के तार में पिरोए मोतियों की वह माला जिसके बीच में एक तरलक मणि हो। (बृहत्संहिता)

चारक–संज्ञा पुं० [सं०] वह कैद जिसमें न्यायाधीश विचार-काल में किसी को रखे। हवालात।

चार-प्रचार–संज्ञा पुं० [सं०] गुप्तचर छोड़ना। खुफ़िया पुलिस पीछे लगाना। (कौ०)

चारितꕤ–संज्ञा पुं० [हिं० चारा] पशुओं के चरने का चारा। उ०—चरनि-धेनु चारितु चरत प्रजा सुवच्छ पेन्हाइ। हाथ कछू नहिं लागिहै किए गोड़ की गाय।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं०] (चलाया जानेवाला) आरा। उ०—चारितु चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी।—तुलसी।

चार्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की सड़क जो ६ हाथ चौड़ी होती थी।

चार्ज–संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी काम का भार। कार्यभार। जैसे,—(क) उन्होंने ३ तारीख को आफिस का चार्ज ले लिया। (ख) लार्ड रीडिंग ने २ तारीख को बंबई में, जहाज पर, नये वायसराय को चार्ज दिया।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

(२) संरक्षण। सपुर्दगी। देखरेख। अधिकार। जैसे,—सरकारी अस्पताल सिविल सर्जन के चार्ज में है। (३) अभियोग। आरोप। इलजाम। जैसे,—मालूम नहीं, अदालत ने उन पर क्या चार्ज लगाया है।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

(४) दाम। मूल्य। जैसे,—(क) आपके प्रेस में छपाई का चार्ज अन्य प्रेसों की अपेक्षा अधिक है। (ख) इतना चार्ज मत कीजिये।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पड़ना।

(५) किराया। भाड़ा। जैसे,—अगर आप डाकगाड़ी से आयेंगे तो आपको ज्योदा चार्ज देना पड़ेगा।

क्रि० प्र०—देना।—लगना।

चार्टर–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह लेख जिसमें किसी सरकार की ओर से किसी को कोई स्वत्व या अधिकार देने की बात लिखी रहती है। सनद। अधिकारपत्र। जैसे,—चार्टर ऐक्ट। (२) किसी शर्त पर जहाज को किराये पर लेना या देना। जैसे,—चीनी व्यापारियों ने माल लादने के लिये हाल में दो जापानी जहाज चार्टर किए हैं।

वि० [अं० चार्टर्ड] जो राजा की सनद से स्थापित हुआ हो। जैसे,—महारानी के लेटर्स पेटेंट्स से स्थापित होने के कारण कलकत्ते, मद्रास, बंबई और इलाहाबाद के हाइकोर्ट चार्टर्ड हाइकोर्ट कहाते हैं।

चाला–संज्ञा पुं० [हिं० चालना = छानना] एक प्रकार का कृत्य जो किसी व्यक्ति के मर जाने पर उसकी षोड़शी आदि की क्रिया की समाप्ति पर रात के समय किया जाता है। इसमें एक चलनी में राख या बालू आदि डाल कर उसे छानते हैं; और जमीन पर गिरी हुई राख या बालू में बननेवाली आकृतियों से इस बात का अनुमान करते हैं कि मृत व्यक्ति अगले

जन्म में किस योनि में जायगा। यह कृत्य प्रायः घर की कोई बड़ी बूढ़ी स्त्री एकांत में करती है, और उस समय किसी को, विशेषतः बालकों को, वहाँ नहीं आने देती।

चिकया-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रेशमी या टसर का कपड़ा। चिकट। उ०—चिकवा चीर मघौना लोने। मोति लाग औ छापे सोने।—जायसी।

चित्-संज्ञा पुं० [सं०] (३) रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक जो जीव-पद-वाच्य, भोक्ता, अपरिच्छिन्न, निर्मल ज्ञान स्वरूप और नित्य कहा गया है। (शेष दो पदार्थ अचित् और ईश्वर हैं।)

चिताप्रताप-संज्ञा पुं० [सं०] जीते ही चिता पर जला देने का दंड।

विशेष—जो स्त्री पुरुष का खून कर देती थी, उसको चंद्रगुप्त के समय में जीते जी जला दिया जाता था। (कौ०)

चित्तभंग-संज्ञा पुं० [सं०] बदरिकाश्रम के एक पर्वत का नाम।

चित्ती-संज्ञा स्त्री० [हिं० चित्त=सफेद दाग] (२) एक ओर कुछ रगड़ा हुआ इमली का चिआँ जिससे छोटे लड़के जूआ खेलते हैं।

विशेष—इमली के चिएँ को लड़के एक ओर इतना रगड़ते हैं हैं कि उसके ऊपर का काला छिलका बिलकुल निकल जाता है और उसके अंदर से सफेद भाग निकल आता है। दो तीन लड़के मिल कर अपनी अपनी चित्ती एक में मिलाकर फेंकते हैं और दाँव पर चिएँ लगाते हैं। फेंकने पर जिस लड़के के चिएँ का सफेद भाग ऊपर पड़ता है, वह और लड़कों के दाँव पर लगाए हुए चिएँ जीत लेता है।

चित्र-वि० [सं०] चित्र के समान ठीक। दुरुस्त। उ०—बाँके पर सुठि बाँक करेहीं। रातिहि कोट चित्र कै लेहीं।—जायसी।

चित्रनाॐ-क्रि० स० [सं० चित्र+ना (प्रत्य०)] (१) चित्रित करना। चित्र बनाना। चितरना। उ०—चित्री बहु चित्रनि परम विचित्रनि केशवदास निहारि। जनु विश्वरूप को अमल आरसी रची विरंचि विचारि।—केशव। (२) रंग भरना। चित्रित करना।

चित्रभोग-संज्ञा पुं० [सं०] राजा का वह सहायक या खैरख्वाह जो ग्राम, बाजार, वन आदि में मिलनेवाले पदार्थों तथा गाड़ी, घोड़े आदि से समय पर सहायता करे। (कौ०)

चित्रमति-वि० [सं० चित्र+मति] विचित्र बुद्धिवाला। जिसकी बुद्धि विलक्षण हो। उ०—विश्वामित्र पवित्र चित्रमति वामदेव पुनि।—केशव।

चिरम-संज्ञा स्त्री० [देश०] गुंजा। घुँघची। उ०—गाढ़ ठाढ़ कुच ढकि पद चिरम ठाढ़ी सब गाउँ। छुटे ठौर रहिहै वहै जु हो मालु छबि माउँ।—बिहारी।

चिरला-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो पंजाब, अफगानिस्तान, बलोचिस्तान और फारस में होती है। यह महीनों तक बिना पत्तियों के ही रहती है। इसमें काले रंग के मीठे फल लगते हैं जिनका व्यवहार औषध में होता है।

चिरिहारॐ-संज्ञा पुं० [हिं० चिड़िया+हार=वाला (प्रत्य०)] पक्षी फँसानेवाला। बहेलिया। उ०—जौं न होत चारा कै आसा। किन चिरिहार ढुकत लेइ लासा।—जायसी।

चिल्ली†-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिची?] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जिसकी छाल गहरे खाकी रंग की होती है और जिस पर सफेद चित्तियाँ होती हैं। यह देहरादून, रुहेलखंड, अवध और गोरखपुर के जंगलों में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ एक बालिश्त से कुछ कम लंबी होती हैं और गरमी के दिनों में यह फलता है। इसके फल मछलियों के लिये जहर होते हैं।

चीना-संज्ञा पुं० [सं० चीनाक] चीनी कपूर।

चीनी-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पौधा जो पंजाब और पश्चिम हिमालय में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ प्रायः चारे के काम में आती हैं।

चीफ जस्टिस-संज्ञा पुं० [अं०] हाईकोर्ट का प्रधान न्यायाधीश। प्रधान विचारपति।

चुनवट-संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनना+वट (प्रत्य०)] चुनने की क्रिया या भाव। चुनट।

चुनौती-संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनना] (३) वह आह्वान जो किसी को वादविवाद करके अथवा और किसी प्रकार किसी विषय का निर्णय या अपना पक्ष प्रमाणित करने के लिये दिया जाता है। ललकार।

चुन्नी-संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण] (५) चमकी या सितारे जो स्त्रियाँ अपना सौंदर्य बढ़ाने के लिये माथे और कपोलों पर चिपकाती हैं। उ०—तिलक सँवारि जो चुन्नी रची। दुइज माँझ आनहुँ कचपची।—जायसी।

मुहा०—चुन्नी रचना=मस्तक और कपोलों पर सितारे या चमकी लगाना।

चुपाॐ-संज्ञा पुं० [हिं० चौपा=चार पैरों वाला] पशु। चौपाया। उ०—चारु चुवा चहुँ ओर चलैं लपटैं झपटैं सो तमीचर तौंकी।—तुलसी।

चुहुटना† क्रि० अ० [हिं० चिमटना] चिमटना। चिपकना। पकड़ना।

वि० चिमटनेवाला। चिपकने या पकड़नेवाला। उ०—हँसि उतारि हिय तें दई तुम जु तिहिं दिना लाल। राखति प्रान कपूर ज्यौं वहै चुहुटनी-माल।—बिहारी।

विशेष—यहाँ चुहुटनी शब्द श्लिष्ट है। इसका एक अर्थ घुँघची या गुंजा और दूसरा अर्थ चिपकने या पकड़नेवाली है।

चुहुटनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] गुंजा। घुँघची। उ०—हँसि उतारि हिय तें दई तुम जु तिहिं दिना लाल। राखति प्रान कपूर ज्यौं वहै चुहुटनी माल।—बिहारी।

चूक-संज्ञा स्त्री० [हिं० चूकना] (२) छल। कपट। फरेब। दगा।

धोखा। उ०—(क) अहो हरि बलि सों चूक करी।—परमानंददास। (ख) धरमराज सों चूक करि दुरयोधन लीन्ह। राज-पाट अरु वित्त सब बनोबास दै दीन्ह।—लल्लू।

चूड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चूड़ा] वे छोटी छोटी मेहरावें जिनमें कोई बड़ी मेहराब विभक्त रहती है।

चूना-क्रि० अ० [सं० च्यवन] (४) गर्भपात होना। गर्भ गिरना। (क०) उ०—दिकपालन की भुवपालन की, लोकपालन की किन मातु गई च्वै।—केशव।

चूर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (७) तोल में ३२ रत्ती मोतियों की संख्या के हिसाब से भिन्न भिन्न लड़ियाँ।

चेंज-संज्ञा पुं० [अं०] (१) (एक स्थान से दूसरे स्थान को) वायु-परिवर्त्तन के लिये जाना। वायु-परिवर्त्तन। हवा बदलना। जैसे,—डाक्टरों की सलाह से वे चेंज में गए हैं। (२) (किसी जंक्शन पर) एक गाड़ी से उतर कर दूसरी पर चढ़ना। बदलना। जैसे,—मुगलसराय में चेंज करना पड़ेगा। (३) बड़े सिक्कों का छोटे सिक्कों में बदलना। विनिमय। जैसे,—(क) आपके पास नोट का चेंज होगा? (ख) टिकट बाबू को नोट दिया है, चेंज ले लूँ तो चलता हूँ।

चेता †-संज्ञा पुं० [सं० चित्] (१) संज्ञा। होश। बुद्धि। (२) स्मृति। याद। (पश्चिम)

मुहा०—चेता भूलना=याद न रहना। स्मरण न रहना।

चोंटना-क्रि० स० [हिं० चिकोटी या अनु०] नोचना। तोड़ना। उ०—बदत निकसि कुच कोर रुचि कढ़त गौर भुजमूल। मनु लुटिगौ लोटनु चढ़त चोंटत ऊँचे फूल।—बिहारी।

चोका †-संज्ञा पुं० [सं० चूषण] चूसने की क्रिया। चूसना।

मुहा०—चोका लगाना=मुँह लगा कर चूसना। उ०—ते छकि रस नव केलि करेहीं। चोका लाइ अधर रस लेहीं।—जायसी।

चोद †-संज्ञा पुं० [?] उत्साह। उमंग। उ०—गूँज गरे सिर मोरपखा मतिराम हों गाय चरावत चोदे।—मतिराम।

चोभा-संज्ञा पुं० [हिं० चोभना] (२) एक प्रकार का औजार जिसमें लकड़ी के दस्ते या लट्टू में आगे की ओर चार पाँच मोटी सूइयाँ लगी रहती हैं और जिससे आँवले या पेठे आदि का मुरब्बा बनाने के पहले उसे इसलिये कोंचते हैं कि उसके अंदर तक रस या शीरा चला जाय।

चोभाकारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चोभना+फा० कारी] बहुमूल्य पत्थरों पर रत्नों या सोने आदि का ऐसा जड़ाव जो कुछ उभरा हुआ हो।

चौंकड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] करील का पौधा।

चौक-संज्ञा पुं० [हिं० चार या सं० चतुष्क] (१०) चार का समूह। उ०—पुनि सोरहो सिंगार जस चारिहु चौक कुलीन। दीरघ चारि चारि लघु चारि सुभट चौ लीन।—जायसी।

चौगून-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौगुना] (१) चौगुना होने का भाव। (२) आरंभ में गाने या बजाने में जितना समय लगाया जाय, आगे चल कर उसके चौथाई समय में गाना या बजाना। दून से भी आधे समय में गाना या बजाना।

विशेष—प्रायः किसी चीज के गाने या बजाने का आरंभ धीरे धीरे होता है, पर आगे चलकर उसकी लय बढ़ा दी जाती है और वही गाना या बजाना जल्दी जल्दी होने लगता है। जब गाना या बजाना साधारण समय से आधे समय में हो, तब उसे दून, जब तिहाई समय में हो, तब उसे तिगून और जब चौथाई समय में हो, तब उसे चौगून कहते हैं।

चौघड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० चौ+घर] (६) एक प्रकार का बाजा। चौढोल। उ०—सौ तुषार तेइस गज पावा। दुंदुभि औ चौघड़ा दियावा।—जायसी।

चौघड़िया-वि० [हिं० चौ=चार+घड़ी+इया (प्रत्य०)] चार घड़ियों का। चार घड़ी संबंधी। जैसे,—चौघड़िया मुहूर्त।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ=चार+गोड़ा=पाया] एक प्रकार की छोटी ऊँची चौकी जिसमें चार पाये होते हैं। तिरपाई। स्टूल।

चौघड़िया मुहूर्त-संज्ञा पुं० [हिं० चौघड़िया+सं० मुहूर्त] एक प्रकार का मुहूर्त जो प्रायः किसी जल्दी के काम के लिये, एक दो दिन के अंदर ही निकाला जाता है।

विशेष—जब कोई शुभ मुहूर्त दूर होता है और यात्रा या इसी प्रकार का और कोई काम जल्दी करना होता है, तो इस प्रकार मुहूर्त निकलवाया जाता है। ऐसा मुहूर्त दिन के दिन या एक दो दिन के अंदर ही निकल आता है। ऐसा मुहूर्त घड़ी, दो घड़ी या चार घड़ी का होता है; और उतने ही समय में उस कार्य्य का आरंभ कर दिया जाता है।

चौढोल-संज्ञा पुं० [हिं० चौ+ढोल ?] एक प्रकार का बाजा जिसे चौघड़ा भी कहते हैं। उ०—आस पास बाजत चौढोला। दुंदुभि झाँझ तूर डफ ढोला।—जायसी।

चौधारी⊛†-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ=चार+धारा] वह कपड़ा जिसमें आड़ी और बेड़ी धारियाँ बनी हों। चारखाना। उ०—पेमचा डोरिया औ चौधारी। साम, सेत, पीयर हरियारी।—जायसी।

चौभी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० चोभना] नाँगर या नगरा से मिला हुआ हल का वह भाग जिसमें फाल लगा होता है और जुताई के समय जिसका कुछ भाग फाल के साथ जमीन के अंदर रहता है।

छंदवासिनी-वि० स्त्री० [सं०] स्वतन्त्र जीविकावाली। (स्त्री) जो किसी दूसरे पर निर्भर न करती हो। (कौ०)

छतगीर-संज्ञा स्त्री० दे० "छतगीरी"।

छतगीरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० छत+फा० गीर] (१) वह कपड़ा या चाँदनी जो किसी कमरे में ऊपर की ओर शोभा के लिये छत

मे सटी हुई टँगी रहती है। (२) वह कपड़ा जो रात को सोने के समय ओस आदि से रक्षित रहने के लिये पलंग के ऊपरी भाग में (उसके पायों के ऊपर चारो ओर चार डंडे लगाकर) तान दिया जाता है।

छुचि–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] चमड़े का कुप्पा आदि जिसके सहारे नदी पार उतरते थे। (कौ॰)

छन᪥–संज्ञा पुं॰ [सं॰ क्षण] पर्व का समय। पुण्यकाल। उ॰—सागर उजागर की बहु बाहिनी को पति छन दान प्रिय किधौं सूरज अमल है।—केशव।

छनदा᪥–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ क्षणदा] (२) बिजली। विद्युत्। उ॰—नभ मंडल ह्वै छिति मंडल ह्वै, छनदा की छटा छहरान लगी।—मतिराम।

छरना†–क्रि॰ स॰ [सं॰ क्षरण] कना अलग करने के लिये चावल को फटक कर साफ करना।

क्रि॰ अ॰ (१) चावल का फटक कर साफ किया जाना। (२) छँट कर अलग होना। दूर होना। उ॰—जेहि जेहि मग सिय राम लषन गए तहँ तहँ नर नारि बिनु छर छरिगे।—तुलसी।

छिकुड़ी–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ छिलका] लिंगेंद्रिय के ऊपर का वह अगला आवरण जो बाहर की ओर कुछ बढ़ा हुआ होता है और जो मुसलमानों में खतने या मुसलमानी के समय काट दिया जाता है।

छिन्नधान्य (सैन्य)–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (वह सेना) जिसके पास धान्य न पहुँच सकता हो।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि छिन्नधान्य तथा छिन्नपुरुष-वीवध (जिसकी मनुष्य तथा पदार्थ संबंधी सहायता रुक गई हो) सैन्य में छिन्नधान्य उत्तम है; क्योंकि वह दूसरे स्थान से धान्य लाकर या स्थावर तथा जंगम (तरकारी तथा मांस) आहार कर लड़ाई लड़ सकता है। सहायता न मिलने के कारण छिन्नपुरुष वीवध यह नहीं कर सकता। (कौ॰)

छिन्नपुरुष वीवध (सैन्य)–संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह सेना जिसकी मनुष्य तथा पदार्थ संबंधी सहायता रुक गई हो।

छिरना᪥–क्रि॰ अ॰ दे॰ "छिलना"। उ॰—मकरि क तार तेहि कर चीरू। सो पहिरे छिरि जाइ सरीरू।—जायसी।

छींटा–संज्ञा पुं॰ [सं॰ क्षिप्त, हिं॰ छींटना] (६) किसी चीज पर पड़ा हुआ कोई छोटा दाग। जैसे,—इस नग पर कुछ छींटे हैं।

छुछमछली–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ सूक्ष्म, पु॰ हिं॰ सूछम + मछली] मेंढक के बच्चे का एक आरंभिक रूप जो लंबी पूँछवाले कीड़े या मछली के बच्चे का सा होता है। इसके उपरांत कई रूपांतर होने पर तब वह अपने असली चतुष्पद रूप में आता है।

छुड़ैया–वि॰ [हिं॰ छुड़ाना + ऐया (प्रत्य॰)] छुड़ानेवाला। बचानेवाला। रक्षक।

संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ छोड़ना + ऐया (प्रत्य॰)] किसी दूसरे के हाथ की गुड्डी या पतंग को उड़ाने के लिये कुछ दूर पर जाकर, दोनों हाथों से पकड़ कर ऊपर आकाश की ओर छोड़ना या हवा में उड़ाना।

क्रि॰ प्र॰—देना।

विशेष—जिस समय हवा कम होती है और गुड्डी या पतंग आदि के उड़ने में कुछ कठिनता होती है, उस समय एक दूसरा आदमी पतंग या गुड्डी को पकड़ कर कुछ दूर ले जाता है; और तब वहाँ से उसे ऊपर की ओर छोड़ता या उड़ाता है, जिससे वह सहज में और जल्दी उड़ने लगती है।

छुद्रावली᪥–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "क्षुद्रघंटिका"। उ॰—कटि छुद्रावलि अभरन पूरा। पायन्ह पहिरे पायल चूरा।—जायसी।

छेपना᪥–क्रि॰ स॰ [सं॰ क्षेपण] (२) ऊपर डालना।

मुहा॰—जी पर छेपना = अपने ऊपर विपत्ति डालना। जी पर खेलना। उ॰—(क) जो अस कोई जिय पर छेवा। देवता आइ करहिं नित सेवा।—जायसी। (ख) भौंर खोजि अस पावै केवा। तुम्ह कारन मैं जिय पर छेवा।—जायसी।

छोहना†–क्रि॰ अ॰ [हिं॰ छोह = प्रेम + ना (प्रत्य॰)] प्रेम करना। अनुराग करना।

छौंड़ा†–संज्ञा पुं॰ [सं॰ शंकरा, हिं॰ छोकरा] [स्त्री॰ छौंड़ी] लड़का। बालक। उ॰—छलिन की छौंड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति पाँति कीन्ही लीन आपु में सुनारी भोंड़े भील की।—तुलसी।

छ्वाना᪥–क्रि॰ स॰ [हिं॰ छुआना] छुलाना। स्पर्श कराना। उ॰—है कपूर मनिमय रही मिलि तन-दुति मुकतालि। छिन छिन खरी बिचच्छिनी लखति छ्वाइ तिनु आलि।—बिहारी।

जंकशन–संज्ञा पुं॰ [अं॰] (१) वह स्थान जहाँ दो या अधिक रेलवे लाइनें मिली हों। जैसे,—मुगलसराय जंकशन। (२) वह स्थान जहाँ दो रास्ते मिले हों। संगम। जैसे,—कालेज स्ट्रीट और हैरिसन रोड के जंकशन पर गहरा दंगा हो गया।

जंगेला–संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का वृक्ष जिसे चौरी, सामरी और रुही भी कहते हैं। वि॰ दे॰ "रुही"।

जंघाला–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १२८ हाथ लम्बी, १६ हाथ चौड़ी और १२ॾ हाथ ऊँची नाव।

जंपना†–क्रि॰ अ॰ [सं॰ जल्पन] कहना। कथन करना। उ॰—यों कवि भूषण जंपत है लखि संपति को अलकापति लाजै।—भूषण।

जंबुरक᪥†–संज्ञा पुं॰ दे॰ "जंबूर"। उ॰—हाथन मीर बहादुर जंगी। जंबुर कमीने तीर खदंगी।—जायसी।

जगबंद᪥–वि॰ [सं॰ जगत् + वंद्य] जिसकी वंदना संसार करे।

धोखा। उ०—(क) अहो हरि बलि सों चूक करी।—परमानंददास। (ख) धरमराज सों चूक करि दुरयोधन लै लीन्ह। राज-पाट अरु बित्त सब बनौबास दै दीन्ह।—लल्लू।

चूड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चूड़] वे छोटी छोटी मेहराबें जिनमें कोई बड़ी मेहराब विभक्त रहती है।

चूना-क्रि० अ० [सं० च्यवन] (४) गर्भपात होना। गर्भ गिरना। (क्व०) उ०—दिकपालन की भुवपालन की, लोकपालन की किन मातु गई च्वै।—केशव।

चूर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (७) तोल में ३२ रत्ती मोतियों की संख्या के हिसाब से भिन्न भिन्न लड़ियाँ।

चेंज-संज्ञा पुं० [अं०] (१) (एक स्थान से दूसरे स्थान को) वायु-परिवर्त्तन के लिये जाना। वायु-परिवर्त्तन। हवा बदलना। जैसे,—डाक्टरों की सलाह से वे चेंज में गए हैं। (२) (किसी जंकशन पर) एक गाड़ी से उतर कर दूसरी पर चढ़ना। बदलना। जैसे,—मुगलसराय में चेंज करना पड़ेगा। (३) बड़े सिक्कों का छोटे सिक्कों में बदलना। विनिमय। जैसे,—(क) आपके पास नोट का चेंज होगा? (ख) टिकट बाबू को नोट दिया है, चेंज ले लूँ तो चलता हूँ।

चेता †-संज्ञा पुं० [सं० चित्] (१) संज्ञा। होश। बुद्धि। (२) स्मृति। याद। (पश्चिम)

मुहा०—चेता भूलना=याद न रहना। स्मरण न रहना।

चोंटना-क्रि० स० [हिं० चिकोटी या अनु०] नोचना। तोड़ना। उ०—चढ़त निकसि कुच कोर रुचि कढ़त गौर भुजमूल। मनु लुटिगो लोटनु चढ़त चोंटत ऊँचे फूल।—बिहारी।

चोका †-संज्ञा पुं० [सं० चूषण] चूसने की क्रिया। चूसना।

मुहा०—चोका लगाना=मुँह लगा कर चूसना। उ०—ते छकि रस नव केलि करेहीं। चोका लाइ अधर रस लेहीं।—जायसी।

चोढ़ †-संज्ञा पुं० [?] उत्साह। उमंग। उ०—गूँज गरे सिर मोर-पखा मतिराम हों गाय चरावत चोढ़े।—मतिराम।

चोभा-संज्ञा पुं० [हिं० चोभना] (२) एक प्रकार का औजार जिसमें लकड़ी के दस्ते या लट्टू में आगे की ओर चार पाँच मोटी सूइयाँ लगी रहती हैं और जिससे आँवले या पेठे आदि का मुरब्बा बनाने के पहले उसे इसलिये कोंचते हैं कि उसके अंदर तक रस या शीरा चला जाय।

चोभाकारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चोभना+फा० कारी] बहुमूल्य पत्थरों पर रत्नों या सोने आदि का ऐसा जड़ाव जो कुछ उभरा हुआ हो।

चौंकड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] करील का पौधा।

चौक-संज्ञा पुं० [हिं० चार या सं० चतुष्क] (१०) चार का समूह। उ०—पुनि सोरहो सिंगार जस चारिहु चौक कुलीन। दीरघ चारि चारि लघु चारि सुभट चौ लीन।—जायसी।

चौगून-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौगुना] (१) चौगुना होने का भाव। (२) आरंभ में गाने या बजाने में जितना समय लगाया जाय, आगे चल कर उसके चौथाई समय में गाना या बजाना। दून से भी आधे समय में गाना या बजाना।

विशेष—प्रायः किसी चीज़ के गाने या बजाने का आरंभ धीरे धीरे होता है, पर आगे चलकर उसकी लय बढ़ा दी जाती है और वही गाना या बजाना जल्दी जल्दी होने लगता है। जब गाना या बजाना साधारण समय से आधे समय में हो, तब उसे दून, जब तिहाई समय में हो, तब उसे तिगून और जब चौथाई समय में हो, तब उसे चौगून कहते हैं।

चौघड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० चौ+घर] (६) एक प्रकार का बाजा। चौढोल। उ०—सौ तुषार तेइस गज पावा। दुंदुभि औ चौघड़ा दियावा।—जायसी।

चौघड़िया-वि० [हिं० चौ=चार+घड़ी+इया (प्रत्य०)] चार घड़ियों का। चार घड़ी संबंधी। जैसे,—चौघड़िया मुहूर्त।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ=चार+गोड़ा=पावा] एक प्रकार की छोटी ऊँची चौकी जिसमें चार पाये होते हैं। तिरपाई। स्टूल।

चौघड़िया मुहूर्त्त-संज्ञा पुं० [हिं० चौघड़िया+सं० मुहूर्त] एक प्रकार का मुहूर्त जो प्रायः किसी जल्दी के काम के लिये, एक दो दिन के अंदर ही निकाला जाता है।

विशेष—जब कोई शुभ मुहूर्त्त दूर होता है और यात्रा या इसी प्रकार का और कोई काम जल्दी करना होता है, तो इस प्रकार मुहूर्त निकलवाया जाता है। ऐसा मुहूर्त्त दिन के दिन या एक दो दिन के अंदर ही निकल आता है। ऐसा मुहूर्त घड़ी, दो घड़ी या चार घड़ी का होता है; और उतने ही समय में उस कार्य्य का आरंभ कर दिया जाता है।

चौढोल-संज्ञा पुं० [हिं० चौ+ढोल ?] एक प्रकार का बाजा जिसे चौघड़ा भी कहते हैं। उ०—आस पास बाजत चौढोला। दुंदुभि झाँझ तूर डफ ढोला।—जायसी।

चौधारी*†-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ=चार+धारा] वह कपड़ा जिसमें आड़ी और बेड़ी धारियाँ बनी हों। चारखाना। उ०—पेमचा डोरिया औ चौधारी। साम, सेत, पीयर हरियारी।—जायसी।

चौभी‡-संज्ञा स्त्री० [हिं० चोभना] नाँगर या नगरा से मिला हुआ हल का वह भाग जिसमें फाल लगा होता है और जुताई के समय जिसका कुछ भाग फाल के साथ जमीन के अंदर रहता है।

छंदवासिनी-वि० स्त्री० [सं०] स्वतन्त्र जीविकावाली। (स्त्री) जो किसी दूसरे पर निर्भर न करती हो। (कौ०)

छतगीर-संज्ञा स्त्री० दे० "छतगीरी"।

छतगीरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० छत+फा० गीर] (१) वह कपड़ा या चाँदनी जो किसी कमरे में ऊपर की ओर शोभा के लिये छत

से सटी हुई टँगी रहती है। (२) वह कपड़ा जो रात को सोने के समय ओस आदि से रक्षित रहने के लिये पलंग के ऊपरी भाग में (उसके पायों के ऊपर चारों ओर चार डंडे लगाकर) तान दिया जाता है।

छत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़े का कुप्पा आदि जिसके सहारे नदी पार उतरते थे। (कौ०)

छन॥–संज्ञा पुं० [सं० क्षण] पर्व का समय। पुण्यकाल। उ०—सागर उजागर की बहु बाहिनी को पति छन दान प्रिय किधौं सूरज अमल है।—केशव।

छनदा॥–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षणदा] (२) बिजली। विद्युत्। उ०—नभ मंडल है छिति मंडल है, छनदा की छटा छहरान लगी।—मतिराम।

छरना†–क्रि० स० [सं० क्षरण] कना अलग करने के लिये चावल को फटक कर साफ करना।

क्रि० अ० (१) चावल का फटक कर साफ किया जाना। (२) छँट कर अलग होना। दूर होना। उ०—जेहि जेहि मग सिय राम लपन गए तहँ तहँ नर नारि बिनु छर छरिगे।—तुलसी।

छिकुड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० छिकड़ा] लिंगेंद्रिय के ऊपर का वह अगला आवरण जो बाहर की ओर कुछ बढ़ा हुआ होता है और जो मुसलमानों में खतने या मुसलमानी के समय काट दिया जाता है।

छिन्नधान्य (सैन्य)–संज्ञा पुं० [सं०] (वह सेना) जिसके पास धान्य न पहुँच सकता हो।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि छिन्नधान्य तथा छिन्नपुरुषवीवध (जिसकी मनुष्य तथा पदार्थ संबंधी सहायता रुक गई हो) सैन्य में छिन्नधान्य उत्तम है; क्योंकि वह दूसरे स्थान से धान्य लाकर या स्थावर तथा जंगम (तरकारी तथा मांस) आहार कर लड़ाई लड़ सकता है। सहायता न मिलने के कारण छिन्नपुरुष वीवध यह नहीं कर सकता। (कौ०)

छिन्नपुरुष वीवध (सैन्य)–संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जिसकी मनुष्य तथा पदार्थ संबंधी सहायता रुक गई हो।

छिरना॥–क्रि० अ० दे० "छिलना"। उ०—मकरि क तार तेहि कर चीरू। सो पहिरे छिरि जाइ सरीरू।—जायसी।

छींटा–संज्ञा पुं० [सं० क्षिप्त, हिं० छींटना] (६) किसी चीज पर पड़ा हुआ कोई छोटा दाग। जैसे,—इस नग पर कुछ छींटे हैं।

छुछमछली–संज्ञा स्त्री० [सं० सूक्ष्म, पु० हिं० छूछम + मछली] मेंढक के बच्चे का एक आरंभिक रूप जो लंबी पूँछवाले कीड़े या मछली के बच्चे का सा होता है। इसके उपरांत कई रूपांतर होने पर तब यह अपने असली अनुभव रूप में आता है।

छुड़ैया–वि० [हिं० छुड़ाना + ऐया (प्रत्य०)] छुड़ानेवाला। बचानेवाला। रक्षक।

संज्ञा स्त्री० [हिं० छोड़ना + ऐया (प्रत्य०)] किसी दूसरे के हाथ की गुड्डी या पतंग को उड़ाने के लिये कुछ दूर पर जाकर, दोनों हाथों से पकड़ कर ऊपर आकाश की ओर छोड़ना या हवा में उड़ाना।

क्रि० प्र०—देना।

विशेष—जिस समय हवा कम होती है और गुड्डी या पतंग आदि के उड़ने में कुछ कठिनता होती है, उस समय एक दूसरा आदमी पतंग या गुड्डी को, पकड़ कर कुछ दूर ले जाता है; और तब वहाँ से उसे ऊपर की ओर छोड़ता या उड़ाता है, जिससे वह सहज में और जल्दी उड़ने लगती है।

छुद्रावली॥–संज्ञा स्त्री० दे० "क्षुद्रघंटिका"। उ०—कटि छुद्रावलि अभरन पूरा। पायन्ह पहिरे पायल चूरा।—जायसी।

छेवना॥–क्रि० स० [सं० क्षेपण] (२) ऊपर डालना।

मुहा०—जी पर छेवना = अपने ऊपर विपत्ति डालना। जी पर खेलना। उ०—(क) जो अस कोई जिय पर छेवा। देवता आइ करहिं नित सेवा।—जायसी। (ख) भौंर खोजि जस पावै केवा। तुम्ह कारन मैं जिय पर छेवा।—जायसी।

छोहना†–क्रि० अ० [हिं० छोह = प्रेम + ना (प्रत्य०)] प्रेम करना। अनुराग करना।

छौंड़ा‡–संज्ञा पुं० [सं० शावक, हिं० छोकरा] [स्त्री० छौंड़ी] लड़का। बालक। उ०—छलिन की छौंड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति पाँति कीन्ही लीन आपु में सुनारी भोंड़े भील की।—तुलसी।

छ्वाना॥–क्रि० स० [हिं० छुलाना] छुलाना। स्पर्श कराना। उ०—है कपूर मनिमय रही मिलि तन-दुति मुकतालि। छिन छिन खरी बिचच्छिनी लखति छ्वाइ तिनु आलि।—बिहारी।

जंकशन–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह स्थान जहाँ दो या अधिक रेलवे लाइनें मिली हों। जैसे,—मुगलसराय जंकशन। (२) वह स्थान जहाँ दो रास्ते मिले हों। संगम। जैसे,—कालेज स्ट्रीट और हैरिसन रोड के जंकशन पर गहरा दंगा हो गया।

जंगेला–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे भीरी, सामरी और रूही भी कहते हैं। वि० दे० "रूही"।

जंघाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] १२८ हाथ लंबी, १६ हाथ चौड़ी और १२८ हाथ ऊँची नाव।

जंपना†–क्रि० अ० [सं० जल्पन] कहना। [illegible] करना। उ०—यों कवि भूषण जंपत है लखि [illegible]ति को अलकापति लाजै।—भूषण।

जंबुरक॥–संज्ञा पुं० दे० "जंबूर"। [illegible]—लावन मीर बहादुर जंगी। जंबुर कमीने तीर खदंगी।—जायसी।

जगवंद॥–वि० [सं० जगत् + वंद्य] जिसकी वंदना संसार करे।

संसार द्वारा पूजित। उ०—आपनपौ जु तज्यो जगवंद है।—केशव।

जगरन(छ)†-संज्ञा पुं० दे० "जागरण"। उ०—जगन्नाथ जगरन कै आई। पुनि दुवारिका जाइ नहाई।—जायसी।

जगसूर*-संज्ञा पुं० [सं० जगत् + सूर] राजा। (क्व०) उ०—बिनती कीन्ह घालि गिउ पागा। ए जगसूर! सीउ मोहिं लागा।—जायसी।

जजमेंट-संज्ञा पुं० [अं०] फैसला। निर्णय। जैसे,—मामले की सुनवाई हो चुकी; अभी जजमेंट नहीं सुनाया गया।

जग्य*†-संज्ञा पुं० दे० "यज्ञ"। उ०—केन बारि समुझावै भँवर न काटै बेध। कहै मरौं तै चितउर जग्य करौं असुमेध।—जायसी।

जन-संख्या-संज्ञा स्त्री० [सं० जन + संख्या] किसी स्थान पर बसने या रहनेवाले लोगों की गिनती। आबादी। जैसे,—(क) काशी की जन संख्या दो लाख के लगभग है। (ख) कलकत्ते की जन संख्या में बंबई की अपेक्षा इस बार कम वृद्धि हुई है।

जनी-संज्ञा स्त्री० [सं० जननी] एक प्रकार की ओषधि जिसे पर्पटी या पानड़ी भी कहते हैं। यह शीतल, वर्णकारक, कसैली, कड़वी, हलकी, अग्निदीपक, रुचिकारक तथा रक्तपित्त, कफ, रुधिर-विकार, कोढ़, दाह, वमन, तृषा, विष, खुजली और व्रण का नाश करनेवाली कही गई है।

जनौं(छ)†-क्रि० वि० [हिं० जानना] मानो। उ०—जब भा चेत उठा बैरागा। बाउर जनौं सोइ उठ जागा।—जायसी।

जपना(छ)-क्रि० स० [सं० यजन] यजन करना। यज्ञ करना। उ०—बहुत महा मुनि जाग जपो। नीच निसाचर देत दुसह दुख कृस तनु ताप तपो।—तुलसी।

जपा(छ)†-संज्ञा पुं० [सं० जप] वह जो जप करता हो। जप करनेवाला। उ०—मठ मंडप चहुँ पास सँवारे। तपा जपा सब आसन मारे।—जायसी।

जमकात(छ)-संज्ञा पुं० दे० "जमकातर"। उ०—बिजुरी चक्र फिरै चहुँ फेरी। औ जमकात फिरै जम केरी।—जायसी।

जमकातर-संज्ञा स्त्री० [सं० यम + कर्तरी] (२) एक प्रकार की छोटी तलवार।

जम-दिसा(छ)-संज्ञा स्त्री० [सं० यम + दिशा] दक्षिण दिशा जिसमें यम का निवास माना जाता है। उ०—मेष सिंह धन पूरुब बसै। बिरिख मकर कन्या जम-दिसै।—जायसी।

जम-रस्सी-संज्ञा स्त्री० [सं० यम + रस्सी ?] चौरी नाम का वृक्ष जिसकी जड़ साँप के काटने की बहुत अच्छी ओषधि समझी जाती है।

जमवार(छ)-संज्ञा पुं० [सं० यमद्वार] यम का द्वार। उ०—सिंहल द्वीप भए औतारू। जंबूदीप जाइ जमवारू।—जायसी।

जयफर(छ)†-संज्ञा पुं० दे० "जायफल"। उ०—जयफर लौंग सुपारि छोहारा। मिरिच होइ जो सहै न झारा।—जायसी।

जया-वि० [सं०] जय दिलानेवाली। विजय करानेवाली। उ०—तीज अष्टमी तेरसि जया। चौथि चतुरदसि नवमी रखया।—जायसी।

जरद अंछी-संज्ञा स्त्री० [फा० जरद + अंछी] काली अंछी की तरह की एक प्रकार की बड़ी झाड़ी जिसकी लंबी टहनियों के सिरों पर काँटे होते हैं। यह देहरादून से भूटान और खासिया की पहाड़ी तक, ७००० फुट की ऊँचाई तक, पाई जाती है। दक्षिण में कनाडा और लंका तक भी होती है। इसमें फागुन चैत में फूल लगते हैं और बैसाख जेठ में फल पकते हैं जो कच्चे भी खाए जाते हैं और अचार डालने के भी काम में आते हैं।

जरनलिस्ट-संज्ञा पुं० दे० "पत्रकार"।

जरना(छ)-क्रि० अ० दे० "जड़ना"।

जराऊ*-वि० दे० "जड़ाऊ"। उ०—पाँवरि कनक जराउ पाऊँ। दीन्हि असीस आइ तेहि ठाऊँ।—जायसी।

ज़राफ़त-संज्ञा स्त्री० [अ०] ज़रीफ़ होने का भाव। मसखरा-पन।

जरी*-संज्ञा स्त्री० [सं० जटी] जड़ी। बूटी। उ०—तब सो जरी अमृत लेइ आवा। जो मरे हुत तिन्ह छिरिकि जियावा।—जायसी।

ज़रीफ़-संज्ञा पुं० [अ०] परिहास करनेवाला। मसखरा। ठट्ठेबाज। मखौलिया।

जल-संज्ञा पुं० [सं०] (६) धर्म्मशास्त्र के अनुसार एक प्रकार की परीक्षा या दिव्य। वि० दे० "दिव्य"।

जल-चादर-संज्ञा स्त्री० [सं० जल + हिं० चादर] किसी ऊँचे स्थान से होनेवाला जल का झीना और विस्तृत प्रवाह। उ०—सहज सेत पँचतोरिया पहरत अति छवि होति। जल-चादर के दीप लौं जगमगाति तन-जोति।—बिहारी।

विशेष-प्रायः धनवानों और राजाओं आदि के उद्यानों में शोभा के लिये इस प्रकार जल का प्रवाह कराया जाता है, जिसे जल-चादर कहते हैं। कभी कभी इसके पीछे आले बनाकर उनमें दीपकों की पंक्ति भी जलाई जाती है जिससे रात के समय जलचादर के पीछे जगमगाती हुई दीपावली बहुत शोभा देती है।

जल-डमरूमध्य-संज्ञा पुं० [सं०] भूगोल में जल की वह पतली प्रणाली जो दो बड़े समुद्रों या जलों के मध्य में हो और दोनों को मिलाती हो।

जलथंभ-संज्ञा पुं० [सं० जल-स्तंभन] मंत्रों आदि से जल का स्तंभन करने या उसे रोकने की क्रिया। जल-स्तंभन। उ०—बिरह बिथा जल परस बिन बसियतु मो मन ताल। कछु जानत जलथंभ बिधि दुर्जोधन लौं लाल।—बिहारी।

जलसेना-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना जो जहाजों पर चढ़कर

समुद्र में युद्ध करती हो। जहाजी बेड़ों पर रहनेवाली फौज। नौ-सेना। समुद्री सेना।

जल-सेनापति-संज्ञा पुं० [सं०] वह सेनापति जिसकी अधीनता में जल-सेना हो। समुद्री सेना का प्रधान अधिकारी जिसकी अधीनता में बहुत से लड़ाई के जहाज और जल-सैनिक हों। जल या नौ-सेना का प्रधान या अध्यक्ष। नौसेनापति।

जलेबी-संज्ञा स्त्री० [हिं० जलाब] (४) एक प्रकार की आतिशबाजी जो मिट्टी के कसोरे में कुछ मसाले आदि रखकर और ऊपर कागज चिपका कर बनाई जाती है।

जवाहरात-संज्ञा पुं० [अ०] जवाहर का बहुवचन रूप। बहुत से या अनेक प्रकार के रत्न और मणि आदि। जैसे,—अब उन्होंने कपड़े का काम छोड़ कर जवाहरात का काम शुरू किया है।

जसूँद-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसके रेशों से रस्से आदि बनते हैं। इसकी लकड़ी मुलायम होती है और मेज कुरसी आदि बनाने के काम में आती है। इसे मताउल भी कहते हैं। वि० दे० "मताउल"।

जसोवा⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "यशोदा"। उ०—सो तुम मातु जसोवै, मोहिं न जानहु बार। जहँ राजा बलि बाँधा छोरौं पैठि पतार।—जायसी।

जस्टिफाई-संज्ञा पुं० [अं०] कंपोज किए हुए मैटर को इस सहूलियत से बैठाना या कसना कि कोई लाइन या पंक्ति ऊँची नीची या कोई अक्षर इधर उधर न होने पावे। जैसे,—इस पेज का जस्टिफाई ठीक नहीं हुआ है।

क्रि०प्र०—करना।—होना।

जस्टिस-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो न्याय करने के लिये नियुक्त हो। न्यायाधीश। विचारपति। न्यायमूर्ति। जैसे,—जस्टिस सुंदरलाल।

विशेष—हिंदुस्थान में हाईकोर्ट के जज 'जस्टिस' कहलाते हैं।

जस्टिस आफ दि पीस-संज्ञा पुं० [अं०] [संक्षिप्त रूप जे० पी०] स्थानीय छोटे मैजिस्ट्रेट जो शांति रक्षा, छोटे मोटे मामलों आदि का विचार करने के लिये नियुक्त किए जाते हैं। शांतिरक्षक।

विशेष—बंबई में कितने ही प्रतिष्ठित भारतीय जस्टिस आफ दि पीस हैं। इन्हें वेतन नहीं मिलता। इन्हें आनरेरी मैजिस्ट्रेट ही समझना चाहिए। जज, मैजिस्ट्रेट आदि भी जस्टिस आफ दि पीस कहलाते हैं। अपने महल्ले या आसपास में दंगा फसाद होने पर ये जस्टिस आफ दि पीस या शांतिरक्षक की हैसियत से शांति-रक्षा की व्यवस्था करते हैं।

जाँगर-संज्ञा पुं० [देश०] खाली डंठल जिसमें से अन्न झाड़ लिया गया हो। उ०—तुलसी त्रिलोक की समृद्धि सौज संपदा अकेलि चाकि राखी रासि जाँगर जहान भो।—तुलसी।

जाखिनी⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "यक्षिणी"। उ०—रावण करै जाखिनी-पूजा। चहै सो भाव देखावै दूजा।—जायसी।

जागना-क्रि० अ० [सं० जागरण] (९) प्रसिद्ध होना। मशहूर होना। उ०—सायो खोंचि माँगि मैं तेरो नाम लिया रे। तेरे बल बलि आजु लौं जग जागि जिया रे।—तुलसी।

जाटू-संज्ञा स्त्री० [हिं० जाट] हिसार, करनाल और रोहतक के जाटों की बोली जिसे बाँगड़ू या हरियानी भी कहते हैं।

जाति-चरित्र-संज्ञा पुं० [सं०] जातीय रहन सहन तथा प्रथा। (कौ०)

जाति-धर्म-संज्ञा पुं० [सं०] (३) जिस जाति में मनुष्य उत्पन्न हुआ हो, उसका विशेष आचार या कर्त्तव्य।

विशेष—प्राचीन काल में अभियोगों का निर्णय करते हुए जाति-धर्म का आदर किया जाता था।

जाप†-संज्ञा स्त्री० [सं० जप] मंत्र या नाम आदि जपने की माला। जप माला। उ०—बिरह भभूत जटा बैरागी। छाला काँध जाप कँठ लागी।—जायसी।

जायँ†-वि० [फा० जा = ठीक] ठीक। उचित। वाजिब। मुनासिब। जैसे,—तुम्हारा कहना जायँ है।

जायंट-वि० [अं०] साथ में काम करनेवाला। सहयोगी। संयुक्त। जैसे,—जायंट सेक्रेटरी। जायंट एडीटर।

जायंट मैजिस्ट्रेट-संज्ञा पुं० [अं०] फौजदारी का वह मैजिस्ट्रेट या हाकिम जिसका दर्जा जिला मैजिस्ट्रेट के नीचे होता है और जो प्रायः नया सिवीलियन होता है। जंट।

जाय-संज्ञा स्त्री० [देश०] चने और उड़द की भून कर पकाई हुई दाल।

जायरी-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो बुंदेलखंड और राजपूताने की पथरीली भूमि में नदियों के पास होती है।

जालरंध्र-संज्ञा पुं० [सं०] घर में प्रकाश आने के लिये झरोखे में लगी हुई जाली या उसके छेद। उ०—जालरंध्र मग अँगनु को कछु उजास सी पाइ। पीठि दिए जगत्यौ रह्यौ डीठि झरोखैं लाइ।—बिहारी।

जालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (७) समूह। उ०—प्रनतजन कुमुद-बन इन्दुकर जालिका। जलसि अभिमान महिषेस बहु कालिका।—तुलसी।

जावा-संज्ञा पुं० [हिं० जामन या जमना] वह मसाला जिससे शराब चुआई जाती है। वेसवार। जाया।

जिनि†-अव्य० [हिं० जनि] मत। नहीं। उ०—जिनि कटार गर लावसि समुझि देखु मन आप। सकति जीउ जौं काढ़ै महा दोष औ पाप।—जायसी।

जियबधा⊛-संज्ञा पुं० [सं० जीव + बध] जल्लाद।

जिला बोर्ड-संज्ञा पुं० [अ० जिला + अं० बोर्ड] किसी जिले के करदाताओं के प्रति-निधियों की वह सभा जिसका काम अपने अधीनस्थ ग्राम बोर्डों की सहायता से गाँवों की सड़कों की

संसार द्वारा पूजित'। उ०—आपनपौ जु तज्यो जगवंद है।—केशव।

जगरनॐ†–संज्ञा पुं० दे० "जागरण"। उ०—जगन्नाथ जगरन कै आई। पुनि दुवारिका जाइ नहाई।—जायसी।

जगसूरॐ–संज्ञा पुं० [सं० जगत् + सूर] राजा। (क्व०) उ०—विनती कीन्ह घालि गिउ पागा। ए जगसूर! सीउ मोहिं लागा।—जायसी।

जजमेंट–संज्ञा पुं० [अं०] फैसला। निर्णय। जैसे,—मामले की सुनवाई हो चुकी; अभी जजमेंट नहीं सुनाया गया।

जझॐ†–संज्ञा पुं० दे० "यज्ञ"। उ०—फेन वारि समुझावै भँवर न छाँटपेथ। कहे मरौं तै चितउर जझ करौं असुमेध।—जायसी।

जन-संख्या–संज्ञा स्त्री० [सं० जन + संख्या] किसी स्थान पर बसने या रहनेवाले लोगों की गिनती। आबादी। जैसे,—(क) काशी की जन संख्या दो लाख के लगभग है। (ख) कलकत्ते की जन संख्या में बंबई की अपेक्षा इस बार कम वृद्धि हुई है।

जनी–संज्ञा स्त्री० [सं० जननी] एक प्रकार की ओषधि जिसे पर्पटी या पानड़ी भी कहते हैं। यह शीतल, वर्णकारक, कसैली, कड़वी, हलकी, अग्निदीपक, रुचिकारक तथा रक्तपित्त, कफ, रुधिर-विकार, कोढ़, दाह, वमन, तृषा, विष, खुजली और व्रण का नाश करनेवाली कही गई है।

जनौंॐ†–क्रि० वि० [हिं० जानना] मानो। उ०—अब भा चेत उठा बैरागा। बाउर जनौं सोइ उठ जागा।—जायसी।

जपनाॐ–क्रि० स० [सं० यजन] यजन करना। यज्ञ करना। उ०—बहुत महा मुनि जाग जपो। नीच निसाचर देत दुसह दुख कृस तनु ताप तपो।—तुलसी।

जपाॐ†–संज्ञा पुं० [सं० जप] वह जो जप करता हो। जप करनेवाला। उ०—मठ मंडप चहुँ पास सँवारे। तपा जपा सब आसन मारे।—जायसी।

जमकातॐ–संज्ञा पुं० दे० "जमकातर"। उ०—बिजुरी चक्र फिरै चहुँ फेरी। औ जमकात फिरै जम केरी।—जायसी।

जमकातर–संज्ञा स्त्री० [सं० यम + कर्तरी] (२) एक प्रकार की छोटी तलवार।

जम-दिसाॐ–संज्ञा स्त्री० [सं० यम + दिशा] दक्षिण दिशा जिसमें यम का निवास माना जाता है। उ०—मेष सिंह धन पूरब बसै। मिरिख मकर कन्या जम-दिसै।—जायसी।

जम-रस्सी–संज्ञा स्त्री० [सं० यम + रस्सी ?] चौरी नाम का वृक्ष जिसकी जड़ साँप के काटने की बहुत अच्छी ओषधि समझी जाती है।

जमवारॐ–संज्ञा पुं० [सं० यमद्वार] यम का द्वार। उ०—सिंहल द्वीप भए औतारू। जंबूदीप जाइ जमवारू।—जायसी।

जयफरॐ†–संज्ञा पुं० दे० "जायफल"। उ०—जयफर लौंग सुपारि छोहारा। मिरिच होइ जो सहै न सारा।—जायसी।

जया–वि० [सं०] जय दिलानेवाली। विजय करानेवाली। उ०—तीज अष्टमी तेरसि जया। चौथि चतुरदसि नवमी रखया।—जायसी।

जरद चंडी–संज्ञा स्त्री० [फा० जरद + चंडी] काली चंडी की तरह की एक प्रकार की बड़ी झाड़ी जिसकी लंबी टहनियों के सिरों पर काँटे होते हैं। यह देहरादून से भूटान और खासिया की पहाड़ी तक, ७००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। दक्षिण में कनाड़ा और लंका तक भी होती है। इसमें फागुन चैत में फल लगते हैं और बैसाख जेठ में फल पकते हैं जो कच्चे भी खाए जाते हैं और अचार डालने के भी काम में आते हैं।

जरनलिस्ट–संज्ञा पुं० दे० "पत्रकार"।

जरनाॐ–क्रि० प्र० दे० "जड़ना"।

जराऊॐ–वि० दे० "जड़ाऊ"। उ०—पाँवरि कनक जराऊ पाऊँ। दीन्हि असीस आइ तेहि ठाऊँ।—जायसी।

ज़राफ़त–संज्ञा स्त्री० [अ०] ज़रीफ़ होने का भाव। मसखरापन।

जरीॐ–संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ी] जड़ी। बूटी। उ०—तब सो जरी अमृत लेइ आवा। जो मरे हुत तिन्ह छिरिकि जियावा।—जायसी।

ज़रीफ़–संज्ञा पुं० [अ०] परिहास करनेवाला। मसखरा। ठट्ठेबाज। मखौलिया।

जल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म्मशास्त्र के अनुसार एक प्रकार की परीक्षा या दिव्य। वि० दे० "दिव्य"।

जल-चादर–संज्ञा स्त्री० [सं० जल + हिं० चादर] किसी ऊँचे स्थान से होनेवाला जल का झीना और विस्तृत प्रवाह। उ०—सहज सेज पँचतोरिया यह रस अति छवि होति। जल-चादर के दीप लौं जगमगाति तन-जोति।—बिहारी।

विशेष–प्रायः धनवानों और राजाओं आदि के उद्यानों में शोभा के लिये इस प्रकार जल का प्रवाह कराया जाता है, जिसे जल-चादर कहते हैं। कभी कभी इसके पीछे आले बनाकर उनमें दीपकों की पंक्ति भी जलाई जाती है जिससे रात के समय जलचादर के पीछे जगमगाती हुई दीपावली बहुत शोभा देती है।

जल-डमरूमध्य–संज्ञा पुं० [सं०] भूगोल में जल की वह पतली प्रणाली जो दो बड़े समुद्रों या जलों के मध्य में हो और दोनों को मिलाती हो।

जलथंभ–संज्ञा पुं० [सं० जल-स्तंभन] मंत्रों आदि से जल का स्तंभन करने या उसे रोकने की क्रिया। जल-स्तंभन। उ०—बिरह बिथा जल परस बिन बसियतु मो मन ताल। कछु जानत जलथंभ विधि दुर्जोधन लौं लाल।—बिहारी।

जलसेना–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना जो जहाजों पर चढ़कर

समुद्र में युद्ध करती हो। जहाजी बेड़ों पर रहनेवाली फौज। नौ-सेना। समुद्री सेना।

जल-सेनापति-संज्ञा पुं० [सं०] वह सेनापति जिसकी अधीनता में जल-सेना हो। समुद्री सेना का प्रधान अधिकारी जिसकी अधीनता में बहुत से लड़ाई के जहाज और जल-सैनिक हों। जल या नौ-सेना का प्रधान या अध्यक्ष। नौसेनापति।

जलेबी-संज्ञा स्त्री० [हिं० जलाब] (४) एक प्रकार की आतिशबाजी जो मिट्टी के कसोरे में कुछ मसाले आदि रखकर और ऊपर कागज चिपका कर बनाई जाती है।

जवाहरात-संज्ञा पुं० [अ०] जवाहर का बहुवचन रूप। बहुत से या अनेक प्रकार के रत्न और मणि आदि। जैसे,—अब उन्होंने कपड़े का काम छोड़ कर जवाहरात का काम शुरू किया है।

जसूँद-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसके रेशों से रस्से आदि बनते हैं। इसकी लकड़ी मुलायम होती है और मेज कुरसी आदि बनाने के काम में आती है। इसे नताउल भी कहते हैं। वि० दे० "नताउल"।

जसौवा॥-संज्ञा स्त्री० दे० "यशोदा"। उ०—सो तुम मातु जसोवै, मोहिं न जानहु बार। जहँ राजा बलि बाँधा छोरौं पैठि पतार।—जायसी।

जस्टिफाई-संज्ञा पुं० [अं०] कंपोज किए हुए मैटर को इस सहूलियत से बैठाना या कसना कि कोई लाइन या पंक्ति ऊँची नीची या कोई अक्षर इधर उधर न होने पावे। जैसे,—इस पेज का जस्टिफाई ठीक नहीं हुआ है।

क्रि०प्र०—करना।—होना।

जस्टिस-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो न्याय करने के लिये नियुक्त हो। न्यायाधीश। विचारपति। न्यायमूर्त्ति। जैसे,—जस्टिस सुंदरलाल।

विशेष—हिंदुस्थान में हाईकोर्ट के जज 'जस्टिस' कहलाते हैं।

जस्टिस आफ दि पीस-संज्ञा पुं० [अं०] [संक्षिप्त रूप जे० पी०] स्थानीय छोटे मैजिस्ट्रेट जो शांति रक्षा, छोटे मोटे मामलों आदि का विचार करने के लिये नियुक्त किए जाते हैं। शांतिरक्षक।

विशेष—बंबई में कितने ही प्रतिष्ठित भारतीय जस्टिस आफ दि पीस हैं। इन्हें वेतन नहीं मिलता। इन्हें आनरेरी मैजिस्ट्रेट ही समझना चाहिए। जज, मैजिस्ट्रेट आदि भी जस्टिस आफ दि पीस कहलाते हैं। अपने महल्ले या आसपास में दंगा फसाद होने पर ये जस्टिस आफ दि पीस या शांतिरक्षक की हैसियत से शांति-रक्षा की व्यवस्था करते हैं।

जाँगर-संज्ञा पुं० [देश०] खाली डंठल जिसमें से अन्न झाड़ लिया गया हो। उ०—तुलसी त्रिलोक की समृद्धि सौंज संपदा अकेलि चाकि राखी रासि जाँगर जहान भो।—तुलसी।

जाखिनी॥-संज्ञा स्त्री० दे० "यक्षिणी"। उ०—राघव करैं जाखिनी-पूजा। चहै सो भाव देखावै दूजा।—जायसी।

जागना-क्रि० अ० [सं० जागरण] (९) प्रसिद्ध होना। मशहूर होना। उ०—खायो खोंचि माँगि मैं तेरो नाम लिया रे। तेरे बल बलि आजु लौं जग जागि जिया रे।—तुलसी।

जाटू-संज्ञा स्त्री० [हिं० जाट] हिसार, करनाल और रोहतक के जाटों की बोली जिसे बाँगडू या हरियानी भी कहते हैं।

जाति-चरित्र-संज्ञा पुं० [सं०] जातीय रहन सहन तथा प्रथा। (कौ०)

जाति-धर्म-संज्ञा पुं० [सं०] (३) जिस जाति में मनुष्य उत्पन्न हुआ हो, उसका विशेष आचार या कर्त्तव्य।

विशेष—प्राचीन काल में अभियोगों का निर्णय करते हुए जाति-धर्म का आदर किया जाता था।

जाप†संज्ञा स्त्री० [सं० जप] मंत्र या नाम आदि जपने की माला। जप माला। उ०—विरह भभूत जटा बैरागी। छाला काँध जाप कँठ लागी।—जायसी।

जायँ†-वि० [फा० जा = ठीक] ठीक। उचित। वाजिब। मुनासिब। जैसे,—तुम्हारा कहना जायँ है।

जायंट-वि० [अं०] साथ में काम करनेवाला। सहयोगी। संयुक्त। जैसे,—जायंट सेक्रेटरी। जायंट एडीटर।

जायंट मैजिस्ट्रेट-संज्ञा पुं० [अं०] फौजदारी का वह मैजिस्ट्रेट या हाकिम जिसका दर्जा जिला मैजिस्ट्रेट के नीचे होता है और जो प्रायः नया सिवीलियन होता है। जंट।

जाय-संज्ञा स्त्री० [देश०] चने और उड़द की भून कर पकाई हुई दाल।

जायरी-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो बुंदेलखंड और राजपूताने की पथरीली भूमि में नदियों के पास होती है।

जालरंध्र-संज्ञा पुं० [सं०] घर में प्रकाश आने के लिये झरोखे में लगी हुई जाली या उसके छेद। उ०—जालरंध्र मग अँगनु को कछु उजास सो पाइ। पीठि दिए जगत्यों रह्यौ डीठि झरोखैं लाइ।—बिहारी।

जालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (७) समूह। उ०—प्रनतजन कुमुद-बन इन्दुकर जालिका। जलसि अभिमान महिपेस बहु कालिका।—तुलसी।

जावा-संज्ञा पुं० [हिं० जामन या जमना] वह मसाला जिससे शराब चुआई जाती है। वेसवार। जाया।

जिनि†-अव्य० [हिं० जनि] मत। नहीं। उ०—जिनि कटार गर लावसि समुझि देखु मन आप। सकति जीउ जौं काढ़ै महा दोष औ पाप।—जायसी।

जियवधा॥-संज्ञा पुं० [सं० जीव+वध] जल्लाद।

जिला बोर्ड-संज्ञा पुं० [अ० जिला+अं० बोर्ड] किसी जिले के करदाताओं के प्रति-निधियों की वह सभा जिसका काम अपने अधीनस्थ ग्राम बोर्डों की सहायता से गाँवों की सड़कों की

मरम्मत कराना, स्कूल और चिकित्सालय चलाना, चेचक के टीके और स्वास्थ्योन्नति का प्रबंध आदि करना है।

विशेष—म्युनिसिपैलिटी के समान ही जिला बोर्ड के सदस्यों का भी हर तीसरे साल चुनाव होता है।

जिला मैजिस्ट्रेट-संज्ञा पुं० [अ + अं०] जिले का बड़ा हाकिम जो फौजदारी मामलों का फैसला करता है। जिला हाकिम।

विशेष—हिंदुस्थान में जिले का कलक्टर और मैजिस्ट्रेट एक ही मनुष्य होता है जो अपने दो पदों के कारण दो नामों से पुकारा जाता है। मालगुजारी वसूल करने, जमींदार और सरकार का संबंध ठीक रखने आदि के कारण वह कलक्टर और फौजदारी मामलों का फैसला करने के कारण मैजिस्ट्रेट कहलाता है।

जिवाना‡†-क्रि० स० [हिं० जीव = जीवन] जीवित करना। जिलाना। उ०—इहि काँटे मो पाइ गड़ि, लीनी मरति जियाइ। प्रीति जनावति भीति सौं मीत जु काढ्यौ आइ।—बिहारी।

जिह्वाच्छेद-संज्ञा पुं० [सं०] जीभ काटने का दंड।

विशेष—जो लोग माता, पिता, पुत्र, भाई, आचार्य या तपस्वियों आदि को गाली देते थे, उनको यही दंड दिया जाता था।

जीगन†-संज्ञा पुं० दे० "जुगनू"। उ०—विरह जरी लखि जीगननु कह्यो न डहि कै बार। अरी आउ भजि भीतरी बरसतु आज अँगार।—बिहारी।

जुझार‡-संज्ञा पुं० [हिं० जुज्झ=युद्ध + आर (प्रत्य०)] युद्ध। समर। लड़ाई। (क्व०) उ०— बादल राय ! मोर तुइ बारा। का जानसि कस होइ जुझारा।—जायसी।

जुत‡-वि० दे० "युक्त"। उ०—जानी जाति नारिन दवारि जुत बन में।—मतिराम।

जुनूनी-वि० [अ०] जिसे जुनून हो। पागल। उन्मत्त।

जुलकरन‡-संज्ञा पुं० दे० "जुलकरनैन"। उ०—तहँ लगि राज खड्ग करि लीन्हा। इसकंदर जुलकरन जो कीन्हा।—जायसी।

जुलकरनैन-संज्ञा पुं० [अ०] सुप्रसिद्ध यूनानी बादशाह सिकंदर की एक उपाधि जिसका अर्थ लोग भिन्न भिन्न प्रकार से करते हैं। कुछ लोगों के मत से इसका अर्थ "दो सींगोंवाला" है। वे कहते हैं कि सिकंदर अपने देश की प्रथा के अनुसार दो सींगोंवाली टोपी पहनता था। इसी प्रकार कुछ लोग "पूर्व और पश्चिम दोनों कोनों को जीतनेवाला" कुछ लोग "बीस वर्ष राज्य करनेवाला" और कुछ लोग "दो उच्च ग्रहों से युक्त" अर्थात् "भाग्यवान्" अर्थ करते हैं।

जूना-संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का पौधा जो प्रायः बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है। (२) इस पौधे का फूल जो गहरे पीले रंग का और देखने में बहुत सुंदर होता है।

जूरर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो जूरी में बैठता हो। जूरी का काम करनेवाला। पंच। सालिस। जैसे,—९ जूररों में ७ ने उसे अपराधी बताया। जज ने बहुमत मानकर अभियुक्त को पाँच वर्ष की सख्त कैद की सजा दी।

जूरिस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] वह व्यक्ति जो कानून में, विशेष कर दीवानी कानून में, पारंगत हो। व्यवहार शास्त्र निष्णात। जैसे—डाक्टर सर रासबिहारी घोष संसार के बहुत बड़े जूरिस्टों में थे।

जूरिस्डिक्शन-संज्ञा पुं० [अं०] वह सीमा या विभाग जिसके अंदर शक्ति या अधिकार का उपयोग किया जा सके। अधिकार-सीमा। जैसे,—वह स्थान इस हाई कोर्ट के जूरिस्डिक्शन के बाहर है।

जूरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] वे कुछ व्यक्ति जो अदालत में जज के साथ बैठकर खून, डाकाजनी, राजद्रोह, षड्यंत्र आदि के संगीन मामलों को सुनते और अंत में अभियुक्त या अभियुक्तों के अपराधी या निरपराध होने के संबंध में अपना मत देते हैं। पंच। सालिस। जैसे,—जूरी ने एक मत होकर उसे निर्दोष बताया; तदनुसार जज ने उसे छोड़ दिया।

विशेष—जूरी के लोग नागरिकों में से चुने जाते हैं। इन्हें वेतन नहीं मिलता, खर्च भर मिलता है। इन्हें निष्पक्ष रह कर न्याय करने की शपथ करनी पड़ती है। जब तक किसी मामले की सुनवाई नहीं हो लेती, इन्हें बराबर पेशी वाले दिन अदालत में उपस्थित रहना पड़ता है। और देशों में जज इनका बहुमत मानने को बाध्य है और तदनुसार ही अपना फैसला देता है। पर हिंदुस्थान में यह बात नहीं है। हाई कोर्ट और चीफ कोर्ट को छोड़कर जिले के दौरा जज जूरी का मत मानने के लिये बाध्य नहीं हैं। जूरी से मतैक्य न होने की अवस्था में वे मामला हाई कोर्ट या चीफ कोर्ट भेज सकते हैं।

जूरीमैन-संज्ञा पुं० दे० "जूरर"।

जेंटू-संज्ञा पुं० [?] (१) हिंदु। (२) हिंदुओं की भाषा।

विशेष—पहले पहल पुर्तगालियों ने भारत के मूर्त्तिपूजकों के लिये इस शब्द का प्रयोग किया था। बाद ईस्ट इंडिया कंपनी के समय अँगरेज लोग उक्त अर्थ में इस शब्द का प्रयोग करने लगे थे।

जेंवन†-संज्ञा पुं० [हिं० जेंवना] खाने की चीजें। भोजन की सामग्री। खाद्य पदार्थ। उ०—कोइ आगे पनवार बिछावहिं। कोई जेंवन लेइ लेइ आवहिं।—जायसी।

जेउँ‡-क्रि० वि० [सं० यः + इव] ज्यों। जिस प्रकार। जैसे। उ०—आदि किएउ आदेस सुन्नहिं ते अस्थूल भए। आपु करै सब भेस मुहमद चादर-ओट जेउँ।—जायसी।

जेटी-संज्ञा स्त्री० [अं०] नदी या समुद्र के किनारे ईंट, पत्थर विशेषकर शहतीरों या लट्ठों का बना प्लैटफार्म या चबूतरा जहाँ जहाज पर से यात्री या माल उतरता या चढ़ता है।

जेता॥-वि० [हिं० जिस + तना (प्रत्य०)] जिस मात्रा का। जिस परिमाण का। जितना। उ०—सकल दीप महँ जेती रानी। तिन्ह महँ दीपक बारह बानी।—जायसी।

क्रि० वि० जिस मात्रा में। जिस परिमाण में। जितना।

जेनरल स्टाफ-संज्ञा पुं० [अं०] जेनरलों या सेनाध्यक्षों का वर्ग या समूह।

जेप्लिन-संज्ञा पुं० [जर्मन] जर्मनी की एक प्रकार की उड़नेवाली मशीन या वायुयान जिसका निर्माता इसी नाम का एक जर्मन था।

जेहि॥-सर्व० [सं० यत्] (२) जिससे। उ०—कहि अब सोई, जेहि यश होई।—केशव।

जैस॥†-वि० दे० "जैसा"। उ०—बरसिहि जैस गगन सों मेहा। पलटि आव बरषा ऋतु मेहा।—जायसी।

जो॥-अव्य० [सं० यद्] (२) यद्यपि। अगरचे। (क्व०) उ०—पाँरि पाँरि कोतवार जो बैठा। पेमक लुबुध सुरँग होइ पैठा।—जायसी।

जोइसी†-संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिषी"। उ०—चित पितु-मारक जोग गनि भयौ भयें सुत सोगु। फिरि हुलस्यौ जिय जोइसी समुझें जारज-जोग।—बिहारी।

जोखना†-क्रि० अ० [सं० जुष = जाँचना] विचार करना। सोचना। उ०—काहू साथ न तन गा, सकति मुए सब पोखि। ओछ पूर तेहि जानब जो थिर आवत जोखि।—जायसी।

जोखिउँ†-संज्ञा स्त्री० दे० "जोखिम"। उ०—तुम सुखिया अपने घर राजा। जोखिउँ एत सहहु केहि काजा।—जायसी।

जोग-अव्य० [सं० योग्य] के लिये। वास्ते। (पु० हिं०) उ०—अपने जोग लागि अस खेला। गुरु भएउँ आपु कीन्ह तुम्ह चेला।—जायसी।

जोत-संज्ञा स्त्री० [हिं० जोतना] (३) वह छोटी रस्सी या पगही जिसमें बैल बाँधे जाते हैं और जो उन्हें जोतते समय जुआठे में बाँध दी जाती है।

जोतिवंत॥-वि० [सं० ज्योति + वंत] ज्योति युक्त। चमकदार। उ०—पावक पवन मणि पन्नग पतंग पितृ जेते जोतिवंत जग ज्योतिषिन गाये हैं।—केशव।

जोती-संज्ञा स्त्री० [हिं० जोतना] (३) चक्की में की वह रस्सी जो बीच की कीली और हत्थे में बँधी रहती है। इसे कसने या ढीली करने से चक्की हलकी या भारी चलती है और चीज मोटी या महीन पिसती है। (४) वह रस्सियाँ जिनमें खेत में पानी सींचने की दौरी बँधी रहती है।

ज्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (७) किसी वृत्त का व्यास।

ज्यलिनी सीमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दो गाँवों के बीच की वह सीमा जो ऊँचे पेड़ लगाकर बनाई गई हो।

विशेष—मनु ने लिखा है कि पीपल, बड़, साल, ताड़ तथा ढाक के वृक्ष गाँव की सीमा पर लगावे।

झँकोरा-संज्ञा पुं० [देश०] कचनार का पेड़।

झँवकार॥†-वि० [हिं० झाँवला + काला] कृष्ण वर्ण का। साँवले रंग का। काला। उ०—गैंड गयंद जरे भए कारे। औ बन मिरिग रोझ झँवकारे।—जायसी।

झँसना-क्रि० स० [अनु०] (१) सिर या तलुए आदि में तेल या और कोई चिकना पदार्थ लगाकर हथेली से उसे बार बार रगड़ना जिसमें वह उस अंग के अंदर समा जाय। जैसे,—सिर में कद्दू का तेल झँसने से तुम्हारा सिर दर्द दूर होगा।

संयो० क्रि०—देना।

(२) किसी को बहका कर या अनुचित रूप से उसका धन आदि आदि ले लेना। जैसे,—उस ओझा ने भूत के बहाने उससे दस रुपए झँस लिए।

झकुराना†-क्रि० अ० [हिं० झकोरा] झकोरा लेना। झूमना। उ०—रुख्यौ साँकरैं कुंज-मग करतु झाँकि झकुरातु। मंद मंद मारुत तुरँग खूँदतु आवतु जातु।—बिहारी।

क्रि० स० झकोरा देना। झूमने में प्रवृत्त करना।

झखिया-संज्ञा स्त्री० दे० "झखी"।

झरर-संज्ञा पुं० [सं०] झाड़ू देनेवाला। स्थान झाड़नेवाला।

विशेष—झाड़ू देनेवाले को जब कोई पड़ी हुई चीज मिलती थी तो उसका ⅓ भाग चन्द्रगुप्त का राज्य लेता था और ⅔ भाग उसको मिलता था। (कौ०)

झलरा†-संज्ञा पुं० [हिं० झालर] एक प्रकार का पकवान जिसे झालर भी कहते हैं।

झलाना-क्रि० अ० [अनु० झन झन] हड्डी, जोड़ या नस आदि पर एक बारगी चोट लगने के कारण एक विशेष प्रकार की संवेदना होना। सुन सा हो जाना। जैसे,—ऐसी ठोकर लगी कि पैर झला गया।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

क्रि० स० दूसरे से झालने का काम कराना। झालने में किसी को प्रवृत्त करना।

झसना-क्रि० स० दे० "झँसना"।

झाँपना-क्रि० स० [सं० उत्थापन] (३) पकड़ कर दबा लेना। छोप लेना। उ०—नीची मैं नीची निपट दीठि कुही लौं दौरि। उठि ऊँचै नीचौ दियौ मनु कुलिंगु झँपि झौरि।—बिहारी।

झाड़ना-क्रि० स० [सं० क्षरण या शाटन] (८) निकालना। दूर करना। हटाना। छुड़ाना। जैसे,—तुम्हारी सारी बदमाशी झाड़ दूँगा। उ०—मोहूँ लै ये चतुर कहावति। ये मन ही मन मोको नारति। ऐसे बचन कहूँगी इन तें चतुराई इनकी मैं

मरम्मत कराना, स्कूल और चिकित्सालय चलाना, चेचक के टीके और स्वास्थ्योन्नति का प्रबंध आदि करना है।

विशेष—म्युनिसिपैलिटी के समान ही जिला बोर्ड के सदस्यों का भी हर तीसरे साल चुनाव होता है।

जिला मैजिस्ट्रेट-संज्ञा पुं० [अ + अं०] जिले का बड़ा हाकिम जो फौजदारी मामलों का फैसला करता है। जिला हाकिम।

विशेष—हिंदुस्थान में जिले का कलक्टर और मैजिस्ट्रेट एक ही मनुष्य होता है जो अपने दो पदों के कारण दो नामों से पुकारा जाता है। मालगुजारी वसूल करने, जमींदार और सरकार का संबंध ठीक रखने आदि के कारण वह कलक्टर और फौजदारी मामलों का फैसला करने के कारण मैजिस्ट्रेट कहलाता है।

जियाना‡-क्रि० स० [हिं० जीव=जीवन] जीवित करना। जिलाना। उ०—इहि काँटें मो पाइ गड़ि, लीनी मरति जियाइ। प्रीति जनावति भीति सौं मीत जु काढ्यौ आइ।—बिहारी।

जिह्वाच्छेद-संज्ञा पुं० [सं०] जीभ काटने का दंड।

विशेष—जो लोग माता, पिता, गुरु, भाई, आचार्य या तपस्वियों आदि को गाली देते थे, उनको यही दंड दिया जाता था।

जीगन‡-संज्ञा पुं० दे० "जुगनू"। उ०—विरह जरी लखि जीगनतु कह्यौ न डहि कै बार। अरी आउ भजि भीतरी बरसतु आज अँगार।—बिहारी।

जुझार‡-संज्ञा पुं० [हिं० जुज्झ=युद्ध + आर (प्रत्य०)] युद्ध। समर। लड़ाई। (क्व०) उ०— बादल राय ! मोर तुइ बारा। का जानसि कस होइ जुझारा।—जायसी।

जुत‡-वि० दे० "युक्त"। उ०—जानी जाति नारिन दवारि जुत बन में।—मतिराम।

जुनूनी-वि० [अ०] जिसे जुनून हो। पागल। उन्मत्त।

जुलकरन‡-संज्ञा पुं० दे० "जुलकरनैन"। उ०—तहँ लगि राज खड़ग करि लीन्हा। इसकंदर जुलकरन जो कीन्हा।—जायसी।

जुलकरनैन-संज्ञा पुं० [अ०] सुप्रसिद्ध यूनानी बादशाह सिकंदर की एक उपाधि जिसका अर्थ लोग भिन्न भिन्न प्रकार से करते हैं। कुछ लोगों के मत से इसका अर्थ "दो सींगोंवाला" है। ये कहते हैं कि सिकंदर अपने देश की प्रथा के अनुसार दो सींगोंवाली टोपी पहनता था। इसी प्रकार कुछ लोग "पूर्व और पश्चिम दोनों कोनों को जीतनेवाला" कुछ लोग "बीस वर्ष राज्य करनेवाला" और कुछ लोग "दो उच्च ग्रहों से युक्त" अर्थात् "भाग्यवान्" अर्थ करते हैं।

जूना-संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का पौधा जो प्रायः बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है। (२) इस पौधे का फूल जो गहरे पीले रंग का और देखने में बहुत सुंदर होता है।

जूरर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो जूरी में बैठता हो। जूरी का काम करनेवाला। पंच। सालिस। जैसे,—९ जूररों में ७ ने उसे अपराधी बताया। जज ने बहुमत मानकर अभियुक्त को पाँच वर्ष की सख्त कैद की सजा दी।

जूरिस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] वह व्यक्ति जो कानून में, विशेष कर दीवानी कानून में, पारंगत हो। व्यवहार शास्त्र निष्णात। जैसे—डाक्टर सर रासबिहारी घोष संसार के बहुत बड़े जूरिस्टों में थे।

जूरिस्डिक्शन-संज्ञा पुं० [अं०] वह सीमा या विभाग जिसके अंदर शक्ति या अधिकार का उपयोग किया जा सके। अधिकार-सीमा। जैसे,—यह स्थान इस हाई कोर्ट के जूरिस्डिक्शन के बाहर है।

जूरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] वे कुछ व्यक्ति जो अदालत में जज के साथ बैठकर खून, डाकाजनी, राजद्रोह, षड्यंत्र आदि के संगीन मामलों को सुनते और अंत में अभियुक्त या अभियुक्तों के अपराधी या निरपराध होने के संबंध में अपना मत देते हैं। पंच। सालिस। जैसे,—जूरी ने एक मत होकर उसे निर्दोष बताया, तदनुसार जज ने उसे छोड़ दिया।

विशेष—जूरी के लोग नागरिकों में से चुने जाते हैं। इन्हें वेतन नहीं मिलता, खर्च भर मिलता है। इन्हें निष्पक्ष रह कर न्याय करने की शपथ करनी पड़ती है। जब तक किसी मामले की सुनवाई नहीं हो लेती, इन्हें बराबर पेशी वाले दिन अदालत में उपस्थित रहना पड़ता है। और देशों में जज इनका बहुमत मानने को बाध्य है और तदनुसार ही अपना फैसला देता है। पर हिंदुस्थान में यह बात नहीं है। हाई कोर्ट और चीफ कोर्ट को छोड़कर जिले के दौरा जज जूरी का मत मानने के लिये बाध्य नहीं हैं। जूरी से मतैक्य न होने की अवस्था में वे मामला हाई कोर्ट या चीफ कोर्ट भेज सकते हैं।

जूरीमैन-संज्ञा पुं० दे० "जूरर"।

जेंटू-संज्ञा पुं० [?] (१) हिंदु। (२) हिंदुओं की भाषा।

विशेष—पहले पहल पुर्तगालियों ने भारत के मूर्त्तिपूजकों के लिये इस शब्द का प्रयोग किया था। बाद ईस्ट इंडिया कंपनी के समय अँगरेज लोग उक्त अर्थ में इस शब्द का प्रयोग करने लगे थे।

जेंवन‡-संज्ञा पुं० [हिं० जेंवना] खाने की चीजें। भोजन की सामग्री। खाद्य पदार्थ। उ०—कोइ आगे पनवार बिछावहिं। कोई जेंवन लेइ लेइ आवहिं।—जायसी।

जेउँ‡-क्रि० वि० [सं० यः + इव] ज्यों। जिस प्रकार। जैसे। उ०—आदि किएउ आदेस सुन्नहिं ते अस्थूल भए। आपु करै सब भेस मुहमद चादर-ओट जेउँ।—जायसी।

जेटी–संज्ञा स्त्री० [अं०] नदी या समुद्र के किनारे ईंट, पत्थर विशेषकर शहतीरों या लट्ठों का बना प्लैटफार्म या चबूतरा जहाँ जहाज पर से यात्री या माल उतरता या चढ़ता है।

जेता&–वि० [हिं० जिस+तना (प्रत्य०)] जिस मात्रा का। जिस परिमाण का। जितना। उ०—सकल दीप महँ जेती रानी। तिन्ह महँ दीपक बारह बानी।—जायसी।

क्रि० वि० जिस मात्रा में। जिस परिमाण में। जितना।

जेनरल स्टाफ–संज्ञा पुं० [अं०] जेनरलों या सेनाध्यक्षों का वर्ग या समूह।

जेप्लिन–संज्ञा पुं० [जर्मन] जर्मनी की एक प्रकार की उड़नेवाली मशीन या वायुयान जिसका निर्माता इसी नाम का एक जर्मन था।

जेहि&–सर्व० [सं० यत्] (२) जिससे। उ०—कहि अब सोई, जेहि बश होई।—केशव।

जैस&|–वि० दे० "जैसा"। उ०—बरसहि जैस गगन सों मेहा। पलटि आव बरषा ऋतु मेहा।—जायसी।

जो&–अव्य० [सं० यद्] (२) यद्यपि। अगरचे। (क्व०) उ०—पौरि पौरि कोतवार जो बैठा। पेमक लुबुध सुरँग होइ पैठा।—जायसी।

जोइसी|–संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिषी"। उ०—चित पितु-मारक जोग गनि भयौ भयें सुत सोगु। फिरि हुलस्यौ जिय जोइसी समुझें जारज-जोग।—बिहारी।

जोखना|–क्रि०अ० [सं० जुष = जाँचना] विचार करना। सोचना। उ०—काहू साथ न तन गा, सकति मुए सब पोखि। ओछ पूर तेहि जानब जो थिर आवत जोखि।—जायसी।

जोखिउँ|–संज्ञा स्त्री० दे० "जोखिम"। उ०—तुम सुखिया अपने घर राजा। जोखिउँ एत सहहु केहि काजा।—जायसी।

जोग–अव्य० [सं० योग्य] के लिये। वास्ते। (पु० हिं०) उ०—अपने जोग लागि अस खेला। गुरु भएउँ आपु कीन्ह तुम्ह चेला।—जायसी।

जोत–संज्ञा स्त्री० [हिं० जोतना] (२) वह छोटी रस्सी या पगही जिसमें बैल बाँधे जाते हैं और जो उन्हें जोतते समय जुआठे में बाँध दी जाती है।

जोतिवंत&–वि० [सं० ज्योति+वंत] ज्योति युक्त। चमकदार। उ०—पावक पवन मणि पन्नग पतंग पितृ जेते जोतिवंत जग ज्योतिषिन गाये हैं।—केशव।

जोती–संज्ञा स्त्री० [हिं० जोतना] (३) चक्की में की वह रस्सी जो बीच की कीली और हत्थे में बँधी रहती है। इसे कसने या ढीली करने से चक्की हलकी या भारी चलती है और चीज मोटी या महीन पिसती है। (४) वह रस्सियाँ जिनमें खेत में पानी सींचने की दौरी बँधी रहती है।

ज्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (७) किसी वृत्त का व्यास।

ज्वलिनी सीमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दो गाँवों के बीच की वह सीमा जो ऊँचे पेड़ लगाकर बनाई गई हो।

विशेष—मनु ने लिखा है कि पीपल, बड़, साल, ताड़ तथा ढाक के वृक्ष गाँव की सीमा पर लगावे।

झँझोरा–संज्ञा पुं० [देश०] कचनार का पेड़।

झँवकार&|–वि० [हिं० झाँवला+काला] कृष्ण वर्ण का। झाँवरे रंग का। काला। उ०—गैंड गयंद जरे भए कारे। औ बन मिरिग रोझ झँवकारे।—जायसी।

झँसना–क्रि० स० [अनु०] (१) सिर या तलुए आदि में तेल या और कोई चिकना पदार्थ लगाकर हथेली से उसे बार बार रगड़ना जिसमें वह उस अंग के अंदर समा जाय। जैसे,—सिर में कद्दू का तेल झँसने से तुम्हारा सिर दर्द दूर होगा।

संयो० क्रि०—देना।

(२) किसी को बहका कर या अनुचित रूप से उसका धन आदि आदि ले लेना। जैसे,—उस ओझा ने भूत के बहाने उससे दस रुपए झँस लिए।

झकुराना|–क्रि० अ० [हिं० झकोरा] झकोरा लेना। झूमना। उ०—रनथौ साँकरै कुंज-मग करतु झाँकि झँकुरातु। मंद मंद मारुत तुरँग खूँदतु आवतु जातु।—बिहारी।

क्रि० स० झकोरा देना। झूमने में प्रवृत्त करना।

झखिया–संज्ञा स्त्री० दे० "झखी"।

झरर–संज्ञा पुं० [सं०] झाड़ू देनेवाला। स्थान झाड़नेवाला।

विशेष—झाड़ू देनेवाले को जब कोई पड़ी हुई चीज मिलती थी तो उसका $\frac{1}{6}$ भाग चन्द्रगुप्त का राज्य लेता था और $\frac{5}{6}$ भाग उसको मिलता था। (कौ०)

झलरा|–संज्ञा पुं० [हिं० झालर] एक प्रकार का पकवान जिसे झालर भी कहते हैं।

झलाना–क्रि० अ० [अनु० झन झन] हड्डी, जोड़ या नस आदि पर एक बारगी चोट लगने के कारण एक विशेष प्रकार की संवेदना होना। सुन सा हो जाना। जैसे,—ऐसी ठोकर लगी कि पैर झला गया।

संयो० क्रि०—उठना।—आना।

क्रि० स० दूसरे से झालने का काम कराना। झालने में किसी को प्रवृत्त करना।

झसना–क्रि० स० दे० "झँसना"।

झाँपना–क्रि० स० [सं० उत्थापन] (३) पकड़ कर दबा लेना। छोप लेना। उ०—नीची मैं नीची निपट दीठि कुही लौं दौरि। उठि ऊँचै नीचौ दियौ मनु कुलिंगु झँपि झौरि।—बिहारी।

झाड़ना–क्रि० स० [सं० क्षरण या शाटन] (८) निकालना। दूर करना। हटाना। छुड़ाना। जैसे,—तुम्हारी सारी बदमाशी झाड़ देंगे। उ०—भौंहूँ ते ये चतुर कहावति। ये मन ही मन मोको नारति। ऐसे वचन कहूँगी इन तें चतुराई इनकी मैं

झारति।—सूर। (९) अपनी योग्यता दिखलाने के लिये गढ़ गढ़ कर बातें करना। जैसे,—वह आते ही अँगरेजी झाड़ने लगा।

झालर†—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पकवान जिसे झलरा भी कहते हैं। उ०—झालर माँडे आए पोई। देखत उजर पाग जस धोई।—जायसी।

झिराना—क्रि० अ० दे० "झुराना"।

झिलमिल—संज्ञा स्त्री० [अनु०] युद्ध में पहनने का लोहे का कवच। झिलम। उ०—करन पास लीन्हेउ कै छंदू। बिप्र रूप धरि झिलमिल इंदू।—जायसी।

झींगन—संज्ञा पुं० [देश०] मँझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसका तना मोटा होता है और जिसमें डालियाँ अपेक्षाकृत बहुत कम होती हैं। यह सारे उत्तरी भारत, आसाम, बरमा और लंका में पाया जाता है। इसमें से पीलापन लिए सफेद रंग का एक प्रकार का गोंद निकलता है जिसका व्यवहार छींटों की छपाई और ओषधि के रूप में होता है। इसकी छाल से टस्सर रँगा और चमड़ा सिझाया जाता है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं और हीर की लकड़ी से कई तरह के सामान बनते हैं।

झींका—संज्ञा पुं० [सं० शिक्य] रस्सी का लटकता हुआ जालदार फंदा जिस पर बिल्ली आदि के डर से दूध या खाने की दूसरी वस्तुएँ रखते हैं। छींका। सिकहर।

झीलर—संज्ञा पुं० [हिं० झील] छोटी झील। छोटा तालाब।

झुँकाक्ष†—संज्ञा पुं० दे० "झोंका"। उ०—यह गढ़ छार होइ इक झूँके।—जायसी।

झूँसना—क्रि० स० [अनु०] किसी को बहका कर या दम-पट्टी देकर उसका धन आदि लेना। हँसना।

झूला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बरसाती घास जो उत्तरी भारत के मैदानों में अधिकता से होती है और जिसे घोड़े तथा गाय बैल आदि बड़े चाव से खाते हैं। गुलगुला। पलंजी। बड़ा मुरमुरा।

झेलना—क्रि० स० [सं० क्षेत्र] ग्रहण करना। मानना। उ०—पाँयन थानि परे तो परे रहे केती करी मनुहारि न झेली।—मतिराम।

झोला†—संज्ञा पुं० [हिं० झूलना] झोंका। झकोरा। हिलोर। उ०—कोई खाहि पवन कर झोला। कोई करहिं पात अस डोला।—जायसी।

झौंरानाक्ष—क्रि० अ० [हिं० झूमना] इधर उधर हिलना। झूमना। उ०—झाँठिहि रंक चलै झौंराई। निसँठ राव सब कह बौराई।—जायसी।

टरकुल—वि० [हिं० टरकाना] (१) बहुत साधारण। बिलकुल मामूली। (२) घटिया। खराब।

टाँक—संज्ञा स्त्री० [सं० टंक] (५) एक प्रकार का छोटा कटोरा। उ०—घीउ टाँक महँ सोध सेरावा। लौंग मिरिच तेहि ऊपर नावा।—जायसी।

टानिक—संज्ञा पुं० [अं०] वह औषध जो शरीर का बल बढ़ाती हो। बलवीर्य-वर्द्धक औषध। पुष्टिकारक औषध। ताकत की दवा। जैसे,—डाक्टर ने उन्हें कोई टानिक दिया है।

टारपीडो—संज्ञा पुं० [अं०] एक विध्वंसकारी यंत्र जिसमें भीषण विस्फोटक पदार्थ भरा रहता है और जो बड़े समुद्री मत्स्य के आकार का होता है। यह जल के अंदर छिपाया रहता है। युद्ध के समय शत्रु के जहाज पर इसे चलाते हैं। इसके लगने से जहाज में बड़ा सा छेद हो जाता है और वह वहीं डूब जाता है। विस्फोटक यन्त्र।

टारपीडो कैचर—संज्ञा पुं० [अं०] तेज चलनेवाला एक शक्तिशाली रणपोत या जंगी जहाज जो टारपीडो बोट के प्रयत्न को विफल करने और उसे नष्ट करने के काम में लाया जाता है।

टारपीडो बोट—संज्ञा स्त्री० [अं०] तेज चलनेवाली एक छोटी स्टीम बोट जो युद्ध के समय शत्रु के जहाज को नष्ट करने के लिये उस पर टारपीडो या विस्फोटक यन्त्र चलाती है। नाशक जहाज।

टालना—क्रि० स० [हिं० टलना] (१२) हिलाना। इधर उधर गति देना। उ०—टारहिं पूँछ पसारहिं जीहा। कुंजर डरहिं कि गुंजरि लीहा।—जायसी।

टावर—संज्ञा पुं० [अं०] (१) लाट। मीनार। बुर्ज। (२) किला। कोट।

टिकटी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिकाष्ठ] (५) रथी जिस पर शव को अंत्येष्टि क्रिया के लिये ले जाते हैं।

टिका साहब—संज्ञा पुं० [हिं० टीका = तिलक + साहब] राजा का वह बड़ा लड़का जिसका यौवराज्याभिषेक होने को हो। युवराज। (पंजाब)

टिक्की—संज्ञा स्त्री० [देश०] काली सरसों।

टी—संज्ञा स्त्री० [अं०] चाय।

टी गार्डन—संज्ञा पुं० [अं०] वह जमीन जहाँ चाय की खेती होती है। चाय बगीचा। जैसे,—आसाम के टी-गार्डनों के कुलियों की दशा बड़ी ही शोचनीय और करुणाजनक है।

टूट†—संज्ञा पुं० [सं० त्रुटि] त्रुटि। भूल। गलती। उ०—औ बिनती पँडितन मन भजा। टूट सँवारहु मेटवहु सजा।—जायसी।

टूल—संज्ञा पुं० [अं०] औजार जिसकी सहायता से कोई काम किया जाय।

संज्ञा पुं० [अं० स्टूल] ऊँचे पायों की छोटी चौकी जिस पर लड़के बैठते या कोई चीज रखी जाती है। तिपाई।

टेंपरेचर—संज्ञा पुं० [अं०] शरीर या देश के किसी स्थान की उष्णता या गर्मी का मान जो थर्मामीटर से जाना जाता है। तापमान। जैसे,—(क) सबेरे उसका टेम्परेचर लिया था;

१०२ डिग्री बुखार था। (ख) इस बार इलाहाबाद में ११८ डिग्री टेम्परेचर हो गया था।

क्रि० प्र०—लेना।—होना।

टॅटिहा†–वि० दे० "टेंटी"।

संज्ञा पुं० एक प्रकार के क्षत्रिय जो प्रायः बिहार के शाहाबाद जिले में पाए जाते हैं।

टेंटी†–वि० [अनु० टेंटें] बात बात में बिगड़नेवाला। व्यर्थ झगड़ा करनेवाला।

टेकना†–क्रि० स० [हिं० टेक] (६) किसी को कोई काम करते हुए बीच में रोकना। पकड़ना। उ०—(क) रोवहिं मातु पिता औ भाई। कोउ न टेक जौ कंत चलाई।—जायसी। (ख) जनहुँ औटि कै मिलि गए तस दूनौ भए एक। कंचन कसत कसौटी हाथ न कोऊ टेक।—जायसी।

टेनेंट–संज्ञा पुं० [अं०] (१) किराएदार। (२) असामी। पट्टेदार। रैयत।

टेबुल–संज्ञा पुं० [अं०] (१) मेज़। (२) वह जिसमें बहुत से खाने या कोष्ठक बने हों। नकशा।

टेरिटोरियल फोर्स–संज्ञा स्त्री० [अं०] वह सैन्यदल जिसका संबंध अपने स्थान से हो। नागरिक सेना। देशरक्षिणी सेना।

विशेष—इन्हें साधारणतः देश के बाहर लड़ने को नहीं जाना पड़ता।

टैक्सी–संज्ञा स्त्री० [अं०] किराए पर चलनेवाली मोटर गाड़ी।

टैबलेट–संज्ञा पुं० [अं०] (१) छोटी टिकिया। जैसे, विवनाइन टैबलेट। (२) पत्थर, काँसे आदि का फलक जिस पर किसी की स्मृति में कुछ लिखा या खुदा रहता है। जैसे,—किसान सभा ने उनके स्मारक स्वरूप एक टैबलेट लगाना निश्चित किया है।

टोरी–संज्ञा पुं० दे० "कनसरवेटिव" (१)।

टोरना†–क्रि० स० [हिं० टेरना ?] (१) भली बुरी बात की जाँच करना। (२) किसी व्यक्ति या बात की थाह लेना। पता लगाना।

ट्रस्ट–संज्ञा पुं० [अं०] संपत्ति या दान-संपत्ति को इस विचार या विश्वास से दूसरे व्यक्तियों के सपुर्द करना कि वे संपत्ति का प्रबंध या उपयोग उसके स्वामी या अधिकारी की लिखा-पढ़ी या दान-पत्र के अनुसार करेंगे।

ट्रस्टी–संज्ञा पुं० [अं०] वह व्यक्ति जिसके सपुर्द कोई संपत्ति इस विचार और विश्वास से की गई हो कि वह उस संपत्ति का प्रबंध या उपयोग उसके स्वामी या अधिकारी की लिखा-पढ़ी या दान-पत्र के अनुसार करेगा। अभिभावक।

ट्रान्सपोर्ट–संज्ञा पुं० [अं०] (१) माल असबाब एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना। बारबरदारी। (२) वह जहाज जिस पर सैनिक या युद्ध का सामान आदि एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाता है। (३) सवारी। गाड़ी।

ट्रान्सलेटर–संज्ञा पुं० [अं०] वह जो एक भाषा का दूसरी भाषा में उल्था करता है। भाषांतरकार। अनुवादक। जैसे,—गवर्नमेंट ट्रान्सलेटर।

ट्रान्सलेशन–संज्ञा पुं० [अं०] एक भाषा में प्रदर्शित भावों या विचारों को दूसरी भाषा के शब्दों में प्रकट करना। एक भाषा को दूसरी में उल्था करना। भाषांतर। अनुवाद। उल्था। तर्जुमा।

ट्रूप–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) पलटन। सैन्यदल। जैसे,—ब्रिटिश ट्रूप। नेटिव ट्रूप। (२) घुड़सवारों का एक दल जिसमें एक कप्तान की अधीनता में प्रायः साठ जवान होते हैं।

ट्रूस–संज्ञा स्त्री० [अं०] दो लड़नेवाली सेनाओं के नायकों की स्वीकृति से लड़ाई का स्थगित होना। कुछ काल के लिये लड़ाई बंद होना। क्षणिक संधि।

ट्रेज़रर–संज्ञा पुं० [अं०] खजानची। कोषाध्यक्ष।

ट्रेजेडियन–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह अभिनेता जो विषाद, शोक और गंभीर भाव व्यंजक अभिनय करता हो। (२) वियोगांत नाटक लिखनेवाला। वियोगांत नाटक लेखक।

ट्रैजेडी–संज्ञा स्त्री० [अं०] नाटक का एक भेद जिसमें किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के जीवन की महत्वपूर्ण घटना का वर्णन हो, मनोविकारों का खूब संघर्ष और द्वंद्व दिखाया गया हो और जिसका अंत शोक-दुःखमय हो। वह नाटक जिसका अंत करुणोत्पादक और विषादमय हो। दुःखांत नाटक। वियोगांत नाटक।

ठाह–संज्ञा स्त्री० [हिं० ठहरना] धीरे धीरे और अपेक्षाकृत कुछ अधिक समय लगा कर गाने या बजाने की क्रिया।

विशेष—जब गाने या बजानेवाले लोग कोई चीज़ गाना या बजाना आरंभ करते हैं, तब पहले धीरे धीरे और अधिक समय लगाकर गाते या बजाते हैं। इसी को "ठार" या "ठाह" में गाना बजाना कहते हैं। आगे चलकर यह चीज़ क्रमशः जल्दी जल्दी गाने या बजाने लगते हैं जिसे दून, तिगून और चौगून कहते हैं। वि० दे० "चौगून"।

ठूठी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] राजजामुन नाम का वृक्ष। वि० दे० "राज-जामुन"।

डऊ†–वि० [हिं० डील] डील डौलवाला। बड़ा। वयस्क। जैसे,—इतने बड़े डऊ हुए, अक्ल नहीं आई।

डक–संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी बंदर या नदी के किनारे एक घिरा हुआ स्थान जहाँ जहाज आकर ठहरते हैं और जिसका फाटक, जो पानी में बना होता है, आवश्यकता पड़ने पर खुलता और बंद होता है। (२) अदालत में वह स्थान जहाँ अभियुक्त खड़े किए जाते हैं। कटघरा।

डकूरा†–संज्ञा पुं० [देश०] चक्र की तरह घूमती हुई वायु। बवंडर। चक्रवात। बगूला।

डगना–क्रि० अ० [हिं० डिगना या डग] (३) डगमगाना। लड़खड़ाना। उ०—डगकु डगनि सी चलि ठठुकि चितई चली निहारि। लिए जाति चितु चोरटी वहै गोरटी नारि।—बिहारी।

डभकना–क्रि० अ० [अनु०] (१) (आँखों का) डबडबाना। (नेत्रों में) जल भर आना। उ०—बदन पियर जल डभकहिं नैना। परगट दुवौ पेम के बैना।—जायसी।

डला–संज्ञा पुं० [सं० दल] (२) लिंगेंद्रिय। (बाजारू)

डहार†–वि० [हिं० डाहना] डाहनेवाला। तंग करनेवाला। कष्ट पहुँचानेवाला। उ०—फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागे अढुक पहार। कायर कूर कुपूत कलि घर घर सहस डहार।—तुलसी।

डाँक–संज्ञा पुं० दे० "डंका"। उ०—दान डाँक बाजे दरबारा। कीरति गई समुन्दर पारा।—जायसी।

संज्ञा पुं० [हिं० डंक] विषैले जंतुओं के काटने का डंक। आर। उ०—जे तब होत दिखा दिखी भई अमी इक आँक। दगै तिरीछी डीठि अब ह्वै बीछी को डाँक।—बिहारी।

डाइबीटी–संज्ञा पुं० [अं० डाइबिटीज़] बहुमूत्र रोग। मधुमेह।

डाक्टरी–संज्ञा स्त्री० [अं० डाक्टर] (३) डाक्टर का पेशा या काम। (४) वह परीक्षा जिसे पास करने पर आदमी डाक्टर होता है।

डामल–संज्ञा पुं० दे० "डायमंड कट"।

डायट–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) व्यवस्थापिका सभा। राज्य सभा। जैसे,—जापान की इम्पीरियल डायट। (२) पथ्य। (३) भोजन। खाद्य पदार्थ।

डायरिया–संज्ञा पुं० [अं०] दस्त की बीमारी। अतिसार।

डायार्की–संज्ञा स्त्री० [अं०] वह शासन-प्रणाली या सरकार जिसमें शासन-अधिकार दो व्यक्तियों के हाथों में हो। द्वैध शासन। दुहत्था शासन।

विशेष—भारत में १९१९ के गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट के अनुसार प्रादेशिक शासन-प्रणाली इसी प्रकार की कर दी गई है। शासन के सुभीते के लिये प्रदेशों से संबंध रखनेवाले विषय दो भागों में बाँट दिए गए हैं—एक रिजर्व्ड या रक्षित विषय जो गवर्नर और उनकी शासन सभा के अधिकार में है; और दूसरा ट्रान्सफर्ड या हस्तांतरित विषय जो मिनिस्टरों या मंत्रियों के अधिकार में (जो निर्वाचित सदस्यों में से चुने जाते हैं) है। "रक्षित विषयों" की सुव्यवस्था के लिये गवर्नर और उनकी शासन सभा भारत सरकार और भारत सचिव द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से पार्लमेंट अथवा ब्रिटिश मतदाताओं के सामने उत्तरदाता है और हस्तान्तरित विषयों के लिये गवर्नर के मंत्री अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय मतदाताओं के सामने उत्तरदायी हैं। यद्यपि विशेष अवस्थाओं में इनके मत के विरुद्ध कार्य करने का गवर्नर को अधिकार है, परंतु शासन सभा के बहुमत के विरुद्ध गवर्नर आचरण नहीं कर सकता। शासन सभा के सदस्यों और मंत्रियों में एक अंतर यह भी है कि वे सम्राट् के आज्ञा-पत्र द्वारा नियुक्त होते हैं, परंतु मंत्री को नियुक्त करने और हटाने का अधिकार गवर्नर को ही है। मंत्री का वेतन निर्दिष्ट करने का अधिकार व्यवस्थापिका सभा को है।—भारतीय शासन पद्धति।

डालना–क्रि० स० [सं० तलन] (१४) किसी के अंतर्गत करना। किसी विषय या वस्तु के भीतर लेना। जैसे,—यह रुपया ब्याह के खर्च में डाल दो। (१५) अव्यवस्था आदि उपस्थित करना। बुरी बात घटित करना। मचाना। जैसे,—गड़बड़ डालना, आपत्ति डालना, विपत्ति डालना। (१६) बिछाना। जैसे,—खटिया डालना। पलंग डालना। धारा डालना।

डाही–वि० [हिं० डाह] डाह करनेवाला। ईर्ष्या करनेवाला। ईर्ष्यालु।

डिंभ–संज्ञा पुं० [सं०] (३) एक प्रकार का उदर रोग जो धीरे धीरे बढ़ता हुआ अंत में बहुत भयानक हो जाता है।

डिक्टेटर–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह मनुष्य जिसे कोई काम करने का पूरा अधिकार प्राप्त हो। प्रधान नेता या पथ-प्रदर्शक। शास्ता। (२) वह मनुष्य जिसे शासन की अबाधित सत्ता प्राप्त हो। निरंकुश शासक।

विशेष—डिक्टेटर दो प्रकार के होते हैं—(१) राष्ट्रपक्ष का और (२) राज्य या शासन पक्ष का। जब देश में संकट उपस्थित होता है, तब देश या राष्ट्र उस मनुष्य को, जिस पर उसका पूरा विश्वास होता है, पूर्ण अधिकार दे देता है कि वह जो चाहे सो करे। यह व्यवस्था संकट काल के लिये है। जैसे,—सं० १९८०–८१ में महात्मा गांधी राष्ट्र के डिक्टेटर या शास्ता थे। पर राज्य या शासन पक्ष का डिक्टेटर वही होता है जो बड़ा जबर्दस्त होता है, जिसका सब लोगों पर आतंक छाया रहता है। जैसे,—इस समय इटली का डिक्टेटर मुसोलोनी है।

डिक्लेरेशन–संज्ञा पुं० [अं०] वह लिखा हुआ कागज़ जिसमें, किसी मैजिस्ट्रेट के सामने कोई प्रेस खोलने, रखने या कोई समाचार पत्र या पत्रिका छापने और निकालने की ज़िम्मेवारी ली या घोषित की जाती है। जैसे,—(क) उन्होंने अपने नाम से प्रेस खोलने का डिक्लेरेशन दिया है। (ख) वे अग्रदूत के मुद्रक और प्रकाशक होने का डिक्लेरेशन देनेवाले हैं।

डिगलाना, डिगुलाना⊛–क्रि० अ० [हिं० डग] डगमगाना। लड़खड़ाना। उ०—डिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब ब्रज बेहाल। कंपि किसोरी दरसि कै खरैं लजाने लाल।—बिहारी।

डिप्लोमेसी–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) वह चातुरी या कौशल जो

कार्य-साधन के लिये, विशेष कर राजनीतिक कार्यसाधन के लिये, किया जाय। कूटनीति। (२) स्वतंत्र राष्ट्रों में आपस का व्यवहार संबंध। राजनीतिक संबंध।

डिप्लोमैट-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो डिप्लोमेसी या कूटनीति में निपुण हो। कूटनीतिज्ञ।

डिफेमेशन-संज्ञा पुं० [अं०] किसी की अप्रतिष्ठा या अपमान करने के लिये गर्हित शब्दों का प्रयोग। ऐसे गंदे शब्दों का प्रयोग जिनसे किसी की मानहानि या बेइज्जती होती हो। मानहानि। अप्रतिष्ठा। अपमान। बेइज्जती। हतक इज्जत। जैसे,–इधर महीनों से उनपर डिफेमेशन केस चल रहा है।

डिलेवरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (२) किसी चीज का बाँटा या दिया जाना। (३) प्रसव होना।

डिविजनल-वि० [अं०] डिवीजन का। उस भूभाग कमिश्नरी या किस्मत का जिसके अंतर्गत कई जिले हों। जैसे,—डिविजनल कमिश्नर।

डिविडेंड-संज्ञा पुं० [अं०] वह लाभ या मुनाफा जो जायंट स्टाक कंपनी या सम्मिलित पूँजी से चलनेवाली कंपनी को होता है और जो हिस्सेदारों में, उनके हिस्से के मुताबिक, बँट जाता है। जैसे,—कृष्ण काटन मिल ने इस बार अपने हिस्सेदारों को पाँच सैंकड़े डिविडेंट बाँटा।

डिवीजन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह भूभाग जिसके अंतर्गत कई जिले हों। कमिश्नरी। जैसे,—बनारस डिवीजन। (२) विभाग। जैसे,—वह मैट्रिक्युलेशन परीक्षा में फर्स्ट डिवीजन में पास हुआ।

डिसकाउंट-संज्ञा पुं० [अं०] वह कमी जो व्यवहार या लेनदेन में किसी वस्तु के मूल्य में की जाती है। बट्टा। दस्तूरी। कमीशन।

डिसिप्लिन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) नियम या कायदे के अनुसार चलने की शिक्षा या भाव। अनुशासन। (२) आज्ञानुवर्त्तित्व। नियमानुवर्त्तित्व। फरमाँबरदारी। (३) व्यवस्था। पद्धति। (४) शिक्षा। तालीम। (५) दंड। सजा।

डिस्ट्रायर-संज्ञा पुं० [अं०] नाशक जहाज। वि० दे० "टारपीडो बोट"।

डिस्ट्रिक्ट-संज्ञा पुं० [अं०] किसी प्रदेश या सूबे का वह भाग जो एक कलेक्टर या डिप्टी कमिश्नर के प्रबंधाधीन हो। जिला।

यौ०—डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड-संज्ञा पुं० दे० "जिला बोर्ड"।

डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट-संज्ञा पुं० दे० "जिला मैजिस्ट्रेट।"

डिस्पेप्सिया-संज्ञा पुं० [अं०] मंदाग्नि। अग्निमांद्य। पाचन-शक्ति की कमी।

डीठनाॐ|-क्रि० स० [हिं० डीठ+ना (प्रत्य०)] (१) देखना। दृष्टि डालना। उ०—रूप गुरू कर चेलै डीठा। चित समाइ होइ चित्र पईठा।—जायसी। (२) बुरी दृष्टि लगाना। नजर लगाना। जैसे,—कल से बच्चे को बुखार आ गया; किसी ने डीठ दिया है।

डुडला-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे दूदला भी कहते हैं।

डूँगा|-संज्ञा पुं० [सं० तुंग] छोटी पहाड़ी। टीला।

डेक|-संज्ञा पुं० [देश०] महानिंब। बकायन।

संज्ञा पुं० [अं०] जहाज पर का लकड़ी से पटा हुआ फर्श या छत।

डेमोक्रेसी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) वह सरकार या शासन-प्रणाली जिसमें राजसत्ता जन-साधारण के हाथ में हो और उस सत्ता या शक्ति का प्रयोग वे स्वयं या उनके निर्वाचित प्रतिनिधि करें। वह सरकार जो जन-साधारण के अधीन हो। सर्वसाधारण द्वारा परिचालित सरकार। लोक-सत्ताक राज्य। प्रजा सत्तात्मक राज्य। (२) वह राष्ट्र जिसमें समस्त राजसत्ता जन-साधारण के हाथ में हो और वे सामूहिक रूप से या अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा शासन और न्याय का विधान करते हों। प्रजातंत्र। (३) राजनीतिक और सामाजिक समानता। समाज की वह अवस्था जिसमें कुलीन-अकुलीन, धनी-दरिद्र, ऊँच-नीच या इसी प्रकार का और भेद नहीं माना जाता।

डेमोक्रेट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह जो डेमोक्रेसी या प्रजासत्ता या लोकसत्ता के सिद्धांत का पक्षपाती हो। वह जो सरकार को प्रजासत्ताक या लोकसत्ताक बनाने के सिद्धांत का पक्षपाती हो। (२) वह जो राजनीतिक और प्राकृतिक समानता का पक्षपाती हो। वह जो कुलीनता-अकुलीनता या ऊँच-नीच का भेद न मानता हो।

डेरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह स्थान जहाँ गौएँ भैंसें रखी और दूध, मक्खन आदि बेचा जाता हो।

यौ०—डेरी फार्म।

डेरी फार्म-संज्ञा पुं० दे० "डेरी"।

डेल|-संज्ञा पुं० [हिं० डला] वह डला जिसमें बहेलिए पक्षी आदि बंद करके रखते हैं। उ०—कित नैहर पुनि आउब कित ससुरे यह खेल। आपु आपु कहँ होइहि परब पंखि जस डेल।—जायसी।

डेल आयरियन-संज्ञा स्त्री० [आयरिश] आयर्लैंड की पार्लमेंट या व्यवस्थापिका परिषद् जिसमें उस देश के लिये कानून कायदे आदि बनते हैं।

डेली-संज्ञा स्त्री० दे० "डेल"। उ०—बंधिगा सुआ करत सुखकेली। चूरि पाँख मेलेसि धरि डेली।—जायसी।

डोम साल-संज्ञा पुं० [हिं० डोम+साल] मँझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसे गीदड़ रूख भी कहते हैं। वि० दे० "गीदड़ रूख"।

डोमीनियन–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) स्वतंत्र शासन या सरकार। (२) स्वतंत्र शासनवाला देश या साम्राज्य। जैसे,—ब्रिटिश डोमीनियन।

डोल†–वि० [हिं० डोलना] डोलनेवाला। चंचल। उ०—तुम बिनु काँपै धनि हिया, तन तिनउर भा डोल। तेहि पर बिरह जराइ कै चहै उड़ावा झोल।—जायसी।
संज्ञा पुं० हलचल। उ०—बादसाह कहँ ऐस न बोलू। चढ़े तौ परै जगत महँ डोलू।—जायसी।
क्रि० प्र०—पड़ना।

डोलढाक–संज्ञा पुं० [हिं० ढाक ?] पँगरा नाम का वृक्ष जिसकी लकड़ी के तख्ते बनते हैं। वि० दे० "पँगरा"।

ड्यूक–संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० डचेज] (१) इँगलैंड, फ्रान्स, इटली आदि देशों के सामंतों और भूम्यधिकारियों की वंश परंपरागत उपाधि। इँगलैंड के सामंतों और भूम्यधिकारियों को दी जानेवाली सर्वोच्च उपाधि जिसका दर्जा प्रिंस के नीचे है। जैसे,—कनाट के ड्यूक।
विशेष—जैसे हमारे देश में सामंत राजाओं तथा बड़े बड़े जमींदारों को सरकार से महाराजाधिराज, महाराजा, राजा बहादुर, राजा आदि उपाधियाँ मिलती हैं, वसी प्रकार इँगलैंड में सामंतों तथा बड़े बड़े जमींदारों को ड्यूक, मार्किस, अर्ल, वाइकौंट, बैरन आदि की उपाधियाँ मिलती हैं। ये उपाधियाँ वंश-परंपरा के लिये होती हैं। उपाधि पानेवाले के मरने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र या उत्तराधिकारी उपाधि का भी अधिकारी होता है। इस प्रकार अधिकारी क्रम से उस वंश में उपाधि बनी रहती है। मार्किस, अर्ल, वाइकौंट और बैरन-उपाधिधारी लार्ड कहलाते हैं। मार्किस, बैरन आदि उपाधियाँ जापान में भी प्रचलित हो गई हैं।
(२) सामंत। सरदार। (३) राजा।

ड्यूटी–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) करने योग्य कार्य। कर्त्तव्य। धर्म्म। फर्ज। जैसे,—स्वयंसेवकों ने बड़ी तत्परता से अपनी ड्यूटी पूरी की। (२) वह काम जो सपुर्द किया गया हो। सेवा। खिदमत। पहरा। जैसे,—(क) स्वयंसेवक अपनी ड्यूटी पर थे। (ख) कल सबेरे वहाँ उसकी ड्यूटी थी। (३) नौकरी का काम। जैसे,—वह अपनी ड्यूटी पर चला गया। (४) कर। चुंगी। महसूल। जैसे,—सरकार ने नमक पर ड्यूटी कम नहीं की।

ड्राप–संज्ञा पुं० [अं०] (१) बूँद। बिंदु। (२) दे० "ड्रापसीन"।

ड्राप सीन–संज्ञा पुं० [अं०] नाट्यशाला या थियेटर के रंगमंच के आगे का परदा जो नाटक का एक अंक पूरा होने पर गिराया जाता है। यवनिका।

ड्राफ्ट–संज्ञा पुं० [अं०] मसविदा। मसौदा। खर्रा। जैसे,—अपील का ड्राफ्ट तैयार कर के कमिटी में भेज दिया गया।

ड्रामा–संज्ञा पुं० [अं०] (१) रंगमंच पर नटों का आकृति, हाव भाव, वचन आदि द्वारा किसी घटना या दृश्य का प्रदर्शन। रंगमंच पर किसी घटना या घटनाओं का प्रदर्शन। अभिनय। (२) वह रचना जिसमें मानव-जीवन का चित्र अंकों और गर्भांकों आदि में चित्रित हो। नाटक।

ड्रेटनाट–संज्ञा पुं० [अं०] जंगी जहाज का एक भेद जो साधारण जंगी जहाजों से बहुत अधिक बड़ा, शक्तिशाली और भीषण होता है।

ड्रेन–संज्ञा पुं० [अं०] नगर के गंदे पानी के निकास का परनाला। मोरी।

ढकपन्ना†–संज्ञा पुं० [हिं० ढाक + पन्ना = पत्ता] पलास पापड़ा।

ढपना–क्रि० अ० [हिं० ढकना] ढका होना। उ०—लसतु सेत सारी ढप्यौ तरल तरौना कान। पर्‌यौ मनौ सुरसरि सलिल रवि प्रतिबिंबु बिहान।—बिहारी।
क्रि० स० ढाकना। ऊपर से ओढ़ाना।

ढसक–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) ठन ठन शब्द जो सूखी खाँसी में गले से निकलता है। (२) सूखी खाँसी जिसमें गले से ठन ठन शब्द निकलता है।

ढार–संज्ञा स्त्री० [अनु०] रोने का घोर शब्द। आर्त्तनाद। चिल्लाकर रोने की ध्वनि।
मुहा०—ढार मारना या ढार मारकर रोना=चिल्ला चिल्लाकर रोना।

ढारना–क्रि० स० [सं० धार] (३) चारों ओर घुमाना। डुलाना। (चँवर के लिये) उ०—रवि बिवान सो साजि सँवारा। चहुँ दिसि चँवर करहिं सब ढारा।—जायसी।

ढाल–संज्ञा पुं० [सं०] (२) एक प्रकार का बड़ा झंडा जो बहुत नीचे तक लटकता रहता है और जो राजाओं की सवारी के साथ चलता है। उ०—बैरख ढाल गगन गा छाई। चला कटक धरा न समाई।—जायसी।

ढीलना–क्रि० स० [हिं० ढीलना] (५) संभोग करना। प्रसंग करना। (बाजारू)

ढुलाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुलना] (१) ढुलने की क्रिया। (२) ढोए जाने की क्रिया। जैसे,—आजकल सामान की ढुलाई हो रही है। (३) ढोने की मजदूरी।

ढूँढी–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) किसी चीज का गोल पिंड या लोंदा। (२) भुने हुए आटे आदि का बड़ा गोल लड्डू जो प्रायः देहाती लोग खाते हैं।

ढेंटी–संज्ञा स्त्री० [देश०] धव का पेड़।

ढेबरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे धौरी, मामरी और रूही भी कहते हैं। वि० दे० "रूही"।

ढेरा–वि० [देश०] जिसकी आँखों की पुतलियाँ देखने में बराबर न रहती हों। भेंगा। अंदर तक्कू।

ढोवा†–संज्ञा पुं० [हिं० ढोना] (१) ढोए जाने की क्रिया। ढोवाई।

(२) लद्द। उ०—सूतहि सून सँवरि गा ढोवा। कस होइहि जौ होइहि ढोवा।—जायसी।

ढोवाई–संज्ञा स्त्री० दे० "ढुलाई"।

तकरारी–वि० [अ० तकरार] तकरार करनेवाला। झगड़ालू। लड़ाका।

तकोली–संज्ञा पुं० [देश०] शीशम की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसे परसी भी कहते हैं। वि० दे० "परसी"।

तज्ञात पुरुष–संज्ञा पुं० [सं०] निपुण शर्मी। होशियार कारीगर।

ततक्ष–वि० [सं० तत्] उस। जैसे,—ततखन=तत्क्षण।

ततखन–क्रि० वि० दे० "तत्क्षण"। उ०—ततखन आइ बिवाँन पहूँचा। मन तें अधिक गगन तें ऊँचा।—जायसी।

ततछन–क्रि० वि० दे० "तत्क्षण"।

तति–वि० [सं०] लंबा चौड़ा। विस्तृत। उ०—यज्ञोपवीत पुनीत बिराजत गूढ़ जत्रु बनि पीन अंस तति।—तुलसी।

तन तनहा–क्रि० वि० [हिं० तन+फ़ा० तनहा] बिलकुल अकेला। जिसके साथ और कोई न हो। जैसे,—वह तन तनहा दुश्मन की छावनी में चला गया।

तनुतप–संज्ञा पुं० [सं०] वह लाभ जो मंत्र मात्र से साध्य हो। (कौ०)

तपा–संज्ञा पुं० [सं० तप] तप करनेवाला। तपस्वी। उ०—मठ मँडप चहुँ पास सँवारे। तपा जपा सब आसन मारे।—जायसी।

तफरका–संज्ञा पुं० [अ०] विरोध। वैमनस्य।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

तबेला–संज्ञा पुं० [अ० तवेलः] वह स्थान जहाँ घोड़े बाँधे जाते और गाड़ी, एक्के आदि सवारियाँ रखी जाती हों। अस्तबल। घुड़साल।

तमन्ना–संज्ञा स्त्री० [अ०] आकांक्षा। इच्छा। ख्वाहिश।

तमान–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का घेरदार पाजामा जिसकी मोहरी नीचे से तंग होती है।

तमालिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] काले खैर का वृक्ष। कृष्ण खदिर।

तरतराता–वि० [हिं० तर] घी में अच्छी तरह डूबा हुआ (पकवान)। जिसमें से घी निकलता या बहता हो। (खाद्य पदार्थ)

तरमिरा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जो प्रायः डेढ़ दो हाथ ऊँचा होता है और पश्चिमी भारत में जौ या चने के साथ बोया जाता है। इसके बीजों से तेल निकलता है जो प्रायः जलाने के काम में आता है। तिरा।

तरसौंहाँ–वि० [हिं० तरसना+औहाँ (प्रत्य०)] तरसनेवाला। उ०—तिय तरसौंहैं मुनि किए करि सरसौंहैं नेह। घरपरसौंहैं ह्वै रहे झर-बरसौंहैं मेह।—बिहारी।

तरात्यय–संज्ञा पुं० [सं०] बिना आज्ञा लिये नदी पार करने का जुरमाना। (कौ०)

तरासना–क्रि० स० [सं० त्रास+ना (प्रत्य०)] भय दिखलाना। डराना। त्रस्त करना। उ०—चमक बीजु घन गरजि तरासा। बिरह काल होइ जीव गरासा।—जायसी।

तरैंदा–संज्ञा पुं० [हिं० तरना+एंदा (प्रत्य०)] तैरनेवाला काठ। बेड़ा। उ०—सिंध तरैंदा जेहि गहा पार भये तेहि साथ। ते ते बूड़े बाउरे भेंड़-पूँछि जिन्ह हाथ।—जायसी।

तवेला–संज्ञा पुं० दे० "तबेला"।

तहना–क्रि० अ० [हिं० तेह+ना (प्रत्य०)] क्रोध से जलना। क्रुद्ध होना। उ०—सदा चतुराई फबती नाहीं अति ही निठुरि तही हो।—सूर।

ताज–संज्ञा पुं० [फ़ा० ताज़ियाना] घोड़े को मारने की चाबुक। उ०—तीख तुखार चाँड़ औ बाँके। सँचरहिं पौरि ताज बिनु हाँके।—जायसी।

ताजीरात–संज्ञा पुं० [अ०] अपराध और दंड संबंधी व्यवस्थाओं या कानूनों का संग्रह। दंडविधि। जैसे,—ताजीरात हिंद।

ताड़ू–वि० [हिं० ताड़ना] ताड़नेवाला। भाँपने या अनुमान करनेवाला।

तादात्विक (राजा)–संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जिसका खजाना खाली रहता हो। जितना धन राज-कर आदि में मिले, उसको खर्च कर डालनेवाला। (कौ०)

विशेष—आजकल के राज्य बहुधा इसी प्रकार के होते हैं। ये प्रबंध में व्यय करने के लिये ही धन एकत्र करते हैं।

तानापाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० ताना+पाई=ताने का सूत फैलाने का ढाँचा] बार बार किसी स्थान पर आना जाना। उसी प्रकार लगातार फेरे लगाना जिस प्रकार जुलाहे ताने का सूत पाई पर फैलाने के लिये लगाते हैं।

तानी–संज्ञा स्त्री० [हिं० तानना] अँगरखे या चोली आदि की तनी। बंद। उ०—कंचुकि चूर, चूर भइ तानी। टूटे हार मोति छहरानी।—जायसी।

ताप-व्यंजन–संज्ञा पुं० [सं०] वे गुप्तचर या खुफिया पुलिस के आदमी जो तपस्वियों या साधुओं के वेश में रहते थे।

विशेष—कौटिल्य के समय में ये समाहर्त्ता के अधीन होते थे। ये किसानों, गोपों, व्यापारियों तथा भिन्न भिन्न अध्यक्षों के ऊपर दृष्टि रखते थे तथा शत्रु राजा के गुप्तचरों और चोर डाकुओं का पता भी लगाया करते थे।

तार–संज्ञा पुं० [सं० ताड़] (२) ताड़ नामक वृक्ष। उ०—कीन्हेसि बनखँड औ जरि मूरी। कीन्हेसि तरिवर तार खजूरी।—जायसी।

संज्ञा पुं० [सं०] (२१) तौल। उ०—तुलसी नृपहि ऐसो कहि न बुझावै कोउ पन और कुँअर दोउ प्रेम की तुला धौं तार।—तुलसी।

तारना–क्रि० स० [सं० तारण] (३) पानी की धारा देना। तरेरा

देना। उ०—मनहुँ विरह के सद्य घाव हिये लखि तकि तकि धरि धीरज तारति।—तुलसी।

तारामंडल—संज्ञा पुं० [सं०] (३) एक प्रकार का कपड़ा।

तारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) ४८ हाथ लंबी, ५ हाथ चौड़ी, और ४ 4/5 हाथ ऊँची नाव।

तालमूल—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी की डाल। (कौ०)

ति—वि० [सं० तद् या त] वह। उ०—ति न नागरि ना नागरी, प्रति पद हंस क हीन।—केशव।

तिआह—संज्ञा पुं० [सं० त्रि+पक्ष] वह श्राद्ध जो किसी की मृत्यु के पैंतालीसवें दिन किया जाता है।

तिउहार†—संज्ञा पुं० दे० "त्यौहार"। उ०—सखि मानैं तिउहार सब, गाइ देवारी खेलि। हौं का गावौं कंत बिनु, रही छार सिर मेलि।—जायसी।

तिगून—संज्ञा पुं० [हिं० तिगुना] (१) तिगुना होने का भाव। (२) आरंभ में जितना समय किसी चीज के गाने या बजाने में लगाया जाय, आगे चलकर वह चीज उसके तिहाई समय में गाना। साधारण से तिगुना जल्दी गाना या बजाना। वि० दे० "चौगून"।

तितरात—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ औषध के काम में आती है।

तिनवर†—संज्ञा पुं० [सं० तृण+वर या और (प्रत्य०)] तिनकों का ढेर। तृण-समूह। उ०—तन तिनउर भा, झूरौं खरी। भइ बरखा, दुख आगरि जरी।—जायसी।

तियागॐ†—संज्ञा पुं० दे० "त्याग"।

तियागनाॐ†—क्रि० स० [सं० त्याग+ना (प्रत्य०)] त्याग करना। छोड़ना।

तियागीॐ†—वि० [सं० त्यागी] (१) त्याग करनेवाला। छोड़नेवाला। उ०—बलि बिक्रम दानी बड़ कहे। हातिम करन तियागी अहे।—जायसी।

तिरोजनपद—संज्ञा पुं० [सं०] अन्य राष्ट्र का मनुष्य। विदेशी। (कौ०)

तिलफरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा सुंदर सदाबहार वृक्ष जो हिमालय में ५-६ हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ गहरे हरे रंग की और चमकीली होती हैं।

तिलिस्मात—संज्ञा पुं० [यू० टेलिस्मन] (१) अद्भुत या अलौकिक कार्य। चमत्कार। करामात। (२) जादू। इंद्रजाल।

तिल्हारी—संज्ञा स्त्री० [?] झालर की तरह का वह परदा जो घोड़ों के माथे पर उनकी आँखों को मक्खियों से बचाने के लिये बाँधा जाता है। मुकता।

तीयॐ†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री। औरत। उ०—तीयइ कँवल सुगंध सरीरू। समुद लहरि सोहै तन चीरू।—जायसी।

तुंगला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो पश्चिमी हिमालय में ५००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। गढ़वाल में लोग इसकी पत्तियों का तमाकू या सुरती के स्थान पर व्यवहार करते हैं। इसके फल खट्टे होते हैं और इमली की तरह काम में लाए जाते हैं।

तुखार—संज्ञा पुं० [सं० ?] (४) घोड़ा। अश्व। उ०—आना काटर एक तुखारू। कहा सो फेरौ भा असवारू।—जायसी।

तुलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुलाना] गाड़ी के पहियों को औंगाने या धुरी में चिकना दिलवाने की क्रिया।

तुलामानांतर—संज्ञा पुं० [सं०] तौल में अंतर डालना। कम तौल के बटखरे रखना। हलके बाट रखना।

विशेष—कौटिल्य ने इस अपराध के लिये २०० पण दंड लिखा है।

तुलाहीन—संज्ञा पुं० [सं०] कम तौलना। डाँड़ी मारना।

विशेष—चाणक्य ने तौल की कमी में कमी का चार गुना जुरमाना लिखा है।

तूतिया—संज्ञा पुं० [सं० तुत्थ] नीला थोथा।

तूरा—संज्ञा पुं० [सं० तूर] तुरही नाम का बाजा। उ०—निसि दिन बाजहिं मादर तूरा। रहस कूद सब भरे सेंदूरा।—जायसी।

तूल—संज्ञा पुं० [अ०] लंबेपन का विस्तार। लंबाई।

यौ०—तूल अर्ज=लंबाई और चौड़ाई।

मुहा०—तूल खींचना=किसी बात या कार्य का आवश्यकता से बहुत बढ़ना। जैसे,—(क) ब्याह का काम बहुत तूल खींच रहा है। (ख) उन लोगों का झगड़ा बहुत तूल खींच रहा है। तूल देना=किसी बात को आवश्यकता से बहुत बढ़ाना। जैसे,—[redacted] एक बात को तूल देने की तुम्हारी आदत है। तूल पकड़ना=दे० "तूल खींचना"।

तूलम तूल—क्रि० वि० [सं० तुल्य या अ० तूल=लंबाई] आमने सामने। बराबरी पर। उ०—कंत पियारे भेंट देखौं तूलम तूल होइ। भए बयस दुइ हंठ मुहम्मद निति सरवरि करै।—जायसी।

तूष्णी युद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्ध जिसमें षड्यंत्र के द्वारा शत्रु के मुख्य मुख्य व्यक्तियों को अपने पक्ष में कर लिया जाय। (कौ०)

तृणमणि—संज्ञा पुं० [सं०] तृण को आकर्षित करनेवाला मणि। कहरुवा।

तृणाढ्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण जो औषध के काम में आता है। पर्वतृण।

तेंदुस—संज्ञा पुं० [सं० टिंडिश] डेंडसी नाम की तरकारी।

तेल चलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेल+चलाना] देसी छींट की छपाई में मिंडाई नाम की क्रिया। वि० दे० "मिंडाई"।

तेवानॐ†—संज्ञा पुं० [देश०] सोच। चिंता। फिकर। उ०—

मन सेवान के राघव हूरा। नाहिं उबार जीउ डर-पूरा।—जायसी।

तोरकी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की वनस्पति जो भारत के गरम प्रदेशों और लंका में प्रायः घास के साथ होती है। पश्चिमी भारत में अकाल के दिनों में गरीब लोग इसके दानों आदि की रोटियाँ बनाकर खाते हैं।

तोरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] काली सरसों।

तोपपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसमें राज्य की ओर से जागीर मिलने का उल्लेख रहता है। बख्शिशनामा।

त्यों*-संज्ञा स्त्री० [सं० तन] ओर। तरफ। उ०—सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं। पूछति ग्रामबधू सिय सों कहौ साँवरे से सखि रावरे को हैं।—तुलसी।

त्रासमान*-वि० [सं० त्रास + मान (प्रत्य०)] डरा हुआ। भयभीत। उ०—जोगी जती आव जो कोई। सुनतहि त्रासमान भा सोई।—जायसी।

त्रिभुवननाथ-संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवन + नाथ] जगदीश। परमेश्वर। उ०—त्यौं अब त्रिभुवननाथ ताड़का मारो सह सुत।—केशव।

त्र्यवरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] तीन सदस्यों की शासक-सभा। वि० दे० "दशावरा"।

विशेष-मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक ने तीन सभ्यों से ऋग्वेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी का तात्पर्य लिया है।

थलपति-संज्ञा पुं० [सं० स्थल + पति] राजा। उ०—अवन नयन मन लगे सब थलपति तायो।—तुलसी।

थाक-संज्ञा पुं० [सं० स्था] (२) सीमा। हद। उ०—मेरे कहाँ थाकु गोरस को नवनिधि मंदिर यामहिं।—तुलसी।

थाकना-क्रि० अ० [हिं० थकना] (२) रुकना। ठहरना। उ०—जग जल बूड़ तहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी।—जायसी।

थालिका-संज्ञा स्त्री० [हिं० थाला] वृक्ष का थाला। आलबाल। उ०—पुरजन पूजोपहार सोभित ससि धवल धार भजन भवभार भक्ति कल्प थालिका।—तुलसी।

थियेटर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह मकान जहाँ नाटक का अभिनय दिखाया जाता है। नाट्यशाला। नाटक घर। (२) अभिनय। नाटक।

थियोसोफिस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] थियोसोफी के सिद्धान्तों को माननेवाला।

थियोसोफी-संज्ञा स्त्री० [अं०] ईश्वरीय ज्ञान जो किसी दैवी शक्ति अथवा आत्मा के प्रकाश से हुआ हो। ब्रह्मविद्या।

थिरकौहाँ-वि० [हिं० थिरकना + औहाँ (प्रत्य०)] थिरकनेवाला। थिरकता हुआ।

वि० [हिं० स्थिर] ठहरा हुआ। स्थिर। उ०—दृग थिरकौंहैं अधखुले देह थकौंहैं ढार। सुरत सुखित सी देखियति दुखित गरभ के भार।—बिहारी।

थिरथानी*-संज्ञा पुं० [सं० स्थिर + स्थान] स्थिर स्थानवाले, लोकपाल आदि। उ०—सुकृत सुमन तिल-मोद बासि विधि जतन जंत्र भरि आनी। सुख सनेह सब दियो दसरथहिं खरि खेलेल थिरथानी।—तुलसी।

थीती*-संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिति] (१) स्थिरता। (२) धैर्य। धीरज। इतमीनान। उ०—पपिहै स्वाती सों जस प्रीती। टेकु पियास, बाँधु मन थीती।—जायसी।

थीर*-वि० [सं० स्थिर] स्थिर। ठहरा हुआ। उ०—डलथहि मानिक मोती हीरा। दरब देखि मन होइ न थीरा।—जायसी।

थूर-संज्ञा पुं० [सं० तुवरा] अरहर। तूर।

दंड-ऋण-संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो सरकारी जुरमाना देने के लिये लिया गया हो।

दंडखेदी-संज्ञा पुं० [सं० दंडखेदिन्] वह मनुष्य जो राज्य से दंड पाने के कारण कष्ट में हो। दंड से दुखी व्यक्ति।

विशेष—प्राचीन काल में भिन्न भिन्न अपराधों के लिये हाथ पैर काटने, अंग जलाने आदि का दंड दिया जाता था जिसके कारण दंडित व्यक्ति बहुत दिनों तक कष्ट में रहते थे। कौटिल्य ने ऐसे व्यक्तियों के कष्ट का उपाय करने की व्यवस्था की थी।

दंडचारी-संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति। (कौ०)

दंडधारणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि या प्रदेश जहाँ प्रबंध और शासन के लिये सेना रखनी पड़े। (कौ०)

दंडमान-वि० [सं० दंड + मान (प्रत्य०)] दंड पाने योग्य। दंडनीय। उ०—अदंडमान दीन गर्व दंडमान भेदवै।—केशव।

दंडव्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] (२) पक्ष, कक्ष तथा उरस्य में सेना की समान स्थिति। (कौ०)

दंडसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो सेना या लड़ाई का सामान लेकर की जाय। (कौ०)

दंडस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह जनपद या राष्ट्र जिसका शासन सैन्य द्वारा होता हो। (कौ०)

दंडाकरन*-संज्ञा पुं० दे० "दंडकारण्य"। उ०—परे आह बन परबत माहाँ। दंडाकरन बीझ-बन जाहाँ।—जायसी।

दंडित-वि० [सं०] (२) जिसका शासन किया गया हो। शासित। उ०—पंडित गण मंडित गुण दंडित मति देखिये।—केशव।

दंडोपनत-वि० [सं०] पराजित और अधीन (राजा)। (कौ०)

दईत*-संज्ञा पुं० दे० "दैत्य"। उ०—कीन्हेसि राकस भूत परीना। कीन्हेसि भोकस देव दईता।—जायसी।

दच्छ दिशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा।

देना। उ०—मनहुँ विरह के सद्य घाव हिये लखि तकि तकि धरि धीरज तारति।—तुलसी।

तारामंडल-संज्ञा पुं० [सं०] (६) एक प्रकार का कपड़ा।

तारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) ४८ हाथ लंबी, ५ हाथ चौड़ी, और ४¾ हाथ ऊँची नाव।

तालमूल-संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी की टाल। (कौ०)

ति-वि० [सं० तद् या त] वह। उ०—ति न नगरि ना नागरी, प्रति पद हंस क हीन।—केशव।

तिआद्द-संज्ञा पुं० [सं० त्रि+पक्ष] वह श्राद्ध जो किसी की मृत्यु के पैंतालीसवें दिन किया जाता है।

तिउहार†-संज्ञा पुं० दे० "त्यौहार"। उ०—सखि मानैं तिउहार सब, गाइ देवारी खेलि। हौं का गावौं कंत बिनु, रही छार सिर मेलि।—जायसी।

तिगून-संज्ञा पुं० [हिं० तिगुना] (१) तिगुना होने का भाव। (२) आरंभ में जितना समय किसी चीज के गाने या बजाने में लगाया जाय, आगे चलकर वह चीज उसके तिहाई समय में गाना। साधारण से तिगुना जल्दी गाना या बजाना। वि० दे० "चौगून"।

तितरास-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ औषध के काम में आती है।

तिनउर‡-संज्ञा पुं० [सं० तृण+उर या औरं (प्रत्य०)] तिनकों का ढेर। तृण-समूह। उ०—तन तिनउर भा, झूरौं खरी। भइ बरखा, दुख आगरि जरी।—जायसी।

तियागं‡-संज्ञा पुं० दे० "त्याग"।

तियागना‡-क्रि० स० [सं० त्याग+ना (प्रत्य०)] त्याग करना। छोड़ना।

तियागी*‡-वि० [सं० त्यागी] (१) त्याग करनेवाला। छोड़नेवाला। उ०—बलि विक्रम दानी बड़ कहे। हातिम करन तियागी अहे।—जायसी।

तिरोजनपद-संज्ञा पुं० [सं०] अन्य राष्ट्र का मनुष्य। विदेशी।(कौ०)

तिलपत्रा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा सुंदर सदाबहार वृक्ष जो हिमालय में ५-६ हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ गहरे हरे रंग की और चमकीली होती हैं।

तिलिस्मात-संज्ञा पुं० [यू० टेलिस्मा] (१) अद्भुत या अलौकिक कार्य। चमत्कार। करामात। (२) जादू। इंद्रजाल।

तिलहारी-संज्ञा स्त्री० [?] झालर की तरह का वह परदा जो घोड़ों के माथे पर उनकी आँखों को मक्खियों से बचाने के लिये बाँधा जाता है। मुकता।

तीवइ*‡-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री। औरत। उ०—तीवइ कँवल सुगंध सरीरू। समुद लहरि सोहै तन चीरू।—जायसी।

तुंगला-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो पश्चिमी हिमालय में ५००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। गढ़वाल में लोग इसकी पत्तियों का तमाकू या सुरती के स्थान पर व्यवहार करते हैं। इसके फल खट्टे होते हैं और इमली की तरह काम में लाए जाते हैं।

तुखार-संज्ञा पुं० [सं० ?] (४) घोड़ा। अश्व। उ०—आना काटर एक तुखारू। कहा सो फेरौ भा असवारू।—जायसी।

तुलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० तुलाना] गाड़ी के पहियों को ओंगाने या धुरी में चिकना दिलवाने की क्रिया।

तुलामानांतर-संज्ञा पुं० [सं०] तौल में अंतर डालना। कम तौल के बटखरे रखना। हलके बाट रखना।

विशेष—कौटिल्य ने इस अपराध के लिये २०० पण दंड लिखा है।

तुलाहीन—संज्ञा पुं० [सं०] कम तौलना। डाँड़ी मारना।

विशेष—चाणक्य ने तौल की कमी में कमी का चार गुना जुरमाना लिखा है।

तूतिया-संज्ञा पुं० [सं० तुत्थ] नीला थोथा।

तूरा-संज्ञा पुं० [सं० तूर] तुरही नाम का बाजा। उ०—निसि दिन बाजहिं मादर तूरा। रहस कूद सब भरे सेंदूरा।—जायसी।

तूल-संज्ञा पुं० [अ०] लंबेपन का विस्तार। लंबाई।

यौ०—तूल अर्ज=लंबाई और चौड़ाई।

मुहा०—तूल खींचना=किसी बात या कार्य्य का आवश्यकता से बहुत बढ़ना। जैसे,—(क) ब्याह का काम बहुत तूल खींच रहा है। (ख) उन लोगों का झगड़ा बहुत तूल खींच रहा है। तूल देना=किसी बात को आवश्यकता से बहुत बढ़ाना। जैसे,—हर एक बात को तूल देने की तुम्हारी आदत है। तूल पकड़ना=दे० "तूल खींचना"।

तूलम तूल-क्रि० वि० [सं० तुल्य या अ० तूल=लंबाई] आमने सामने। बराबरी पर। उ०—कंत पियारे भेंट देखौ तूलम तूल होइ। भए बयस दुइ हेंठ मुहमद निति सरवरि करै।—जायसी।

तूष्णी युद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्ध जिसमें षडयंत्र के द्वारा शत्रु के मुख्य मुख्य व्यक्तियों को अपने पक्ष में कर लिया जाय। (कौ०)

तृणमणि-संज्ञा पुं० [सं०] तृण को आकर्षित करनेवाला मणि। कहरुवा।

तृणाढ्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण जो औषध के काम में आता है। पर्वतृण।

तेंदुस-संज्ञा पुं० [सं० टिंडिश] टेंडसी नाम की तरकारी।

तेल चलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० तेल+चलाना] देशी छींट की छपाई में मिंडाई नाम की क्रिया। वि० दे० "मिंडाई"।

तेघान*‡-संज्ञा पुं० [देश०] सोच। चिंता। फिकर। उ०—

मन सेवान के राघव हरा। नाहिं उबार जीउ डर-पूरा।—जायसी।

तोरकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की वनस्पति जो भारत के गरम प्रदेशों और लंका में प्रायः घास के साथ होती है। पश्चिमी भारत में अकाल के दिनों में गरीब लोग इसके दानों आदि की रोटियाँ बनाकर खाते हैं।

तोरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] काली सरसों।

तोषपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसमें राज्य की ओर से जागीर मिलने का उल्लेख रहता है। बख्शिशनामा।

त्यौं—संज्ञा स्त्री० [सं० तन] ओर। तरफ। उ०—सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं। पूछति ग्रामवधू सिय सों कहौ साँवरे से सखि रावरे को हैं।—तुलसी।

त्रासमान—वि० [सं० त्रास + मान (प्रत्य०)] डरा हुआ। भयभीत। उ०—जोगी जती आव जो कोई। सुनतहि त्रासमान भा सोई।—जायसी।

त्रिभुवननाथ—संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवन + नाथ] जगदीश। परमेश्वर। उ०—यौं अब त्रिभुवननाथ ताड़का मारो सह सुत।—केशव।

त्र्यवरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीन सदस्यों की शासक-सभा। वि० दे० "दशावरा"।

विशेष—मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक ने तीन सभ्यों से ऋग्वेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी का तात्पर्य लिया है।

थलपति—संज्ञा पुं० [सं० स्थल + पति] राजा। उ०—सयन नयन मन लगे सब थलपति सायो।—तुलसी।

थाक—संज्ञा पुं० [सं० स्था] (२) सीमा। हद। उ०—मेरे कहाँ थाकु गोरस को नवनिधि मंदिर यामहिं।—तुलसी।

थाकना—क्रि० अ० [हिं० थकना] (२) रुकना। ठहरना। उ०—जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी।—जायसी।

थालिका—संज्ञा स्त्री० [हिं० थाला] वृक्ष का थाला। आलवाल। उ०—पुरजन पूजोपहार सोभित ससि धवल धार भजन भवभार भक्ति कल्प थालिका।—तुलसी।

थियेटर—संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह मकान जहाँ नाटक का अभिनय दिखाया जाता है। नाट्यशाला। नाटक घर। (२) अभिनय। नाटक।

थियोसोफिस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] थियोसोफी के सिद्धान्तों को माननेवाला।

थियोसोफी—संज्ञा स्त्री० [अं०] ईश्वरीय ज्ञान जो किसी दैवी शक्ति अथवा आत्मा के प्रकाश से हुआ हो। ब्रह्मविद्या।

थिरकौहाँ—वि० [हिं० थिरकना + औहाँ (प्रत्य०)] थिरकनेवाला। थिरकता हुआ।

वि० [हिं० थिर] ठहरा हुआ। स्थिर। उ०—दृग थिरकौंहें अधखुले देह थकौंहें ढार। सुरत सुखित सी देखियति दुखित गरभ के भार।—बिहारी।

थिरथानी—संज्ञा पुं० [सं० स्थिर + स्थान] स्थिर स्थानवाले, लोकपाल आदि। उ०—सुकृत-सुमन तिल-मोद बासि विधि जतन जंत्र भरि कानी। सुख सनेह सब दियो दसरथहिं खरि खेलेल थिरथानी।—तुलसी।

थीथी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिति] (१) स्थिरता। (२) धैर्य। धीरज। इतमीनान। उ०—पपिहै स्वाती सौं अस प्रीती। टेकु पियास, बाँधु मन थीती।—जायसी।

थीर—वि० [सं० स्थिर] स्थिर। ठहरा हुआ। उ०—उलथहिं मानिक मोती हीरा। दरब देखि मन होइ न थीरा।—जायसी।

थूर—संज्ञा पुं० [सं० तुवरी] अरहर। तूर।

दंड-ऋण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो सरकारी जुरमाना देने के लिये लिया गया हो।

दंडखेदी—संज्ञा पुं० [सं० दंडखेदिन्] वह मनुष्य जो राज्य से दंड पाने के कारण कष्ट में हो। दंड से दुखी व्यक्ति।

विशेष—प्राचीन काल में भिन्न भिन्न अपराधों के लिये हाथ पैर काटने, अंग जलाने आदि का दंड दिया जाता था जिसके कारण दंडित व्यक्ति बहुत दिनों तक कष्ट में रहते थे। कौटिल्य ने ऐसे व्यक्तियों के कष्ट का उपाय करने की व्यवस्था की थी।

दंडचारी—संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति। (कौ०)

दंडधारण—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि या प्रदेश जहाँ प्रबंध और शासन के लिये सेना रखनी पड़े। (कौ०)

दंडमान—वि० [सं० दंड + मान (प्रत्य०)] दंड पाने योग्य। दंडनीय। उ०—अदंडमान दीन गर्व दंडमान भेदवै।—केशव।

दंडव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] (२) पक्ष, कक्ष तथा उरस्य में सेना की समान स्थिति। (कौ०)

दंडसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो सेना या लड़ाई का सामान लेकर की जाय। (कौ०)

दंडस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह जनपद या राष्ट्र जिसका शासन सैन्य द्वारा होता हो। (कौ०)

दंडाकरन—संज्ञा पुं० दे० "दंडकारण्य"। उ०—परे आइ बन परबत माहाँ। दंडाकरन बीझ-बन जाहाँ।—जायसी।

दंडित—वि० [सं०] (२) जिसका शासन किया गया हो। शासित। उ०—पंडित गन मंडित गुन दंडित मति देखिये।—केशव।

दंडोपनत—वि० [सं०] पराजित और अधीन (राजा)। (कौ०)

दइत—संज्ञा पुं० दे० "दैत्य"। उ०—कीन्हेसि राकस भूत परीता। कीन्हेसि भोकस देव दईता।—जायसी।

दछ दिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा।

दगना-क्रि० अ० [अ० दाग] (१) दागा जाना। अंकित होना। चिह्नित होना। (२) प्रसिद्ध होना। मशहूर होना। उ०—लोक वेद हूँ लौं दगौ नाम भले को पोच। धर्मराज जम गाज पवि कहत सकोच न सोच।—तुलसी।

दगला-संज्ञा पुं० दे० "दगला"। उ०—सौंर सुपेती मंदिर राती। दगल चीर पहिरहिं बहु भाँती।—जायसी।

दत्तस्यानपा कर्म-संज्ञा पुं० [सं०] कोई चीज किसी को देकर फिर लौटाना। एक बार दान करके फिर वापस माँगना या लेना। (कौ०)

दमनि*-संज्ञा स्त्री० दे० "दमयंती"। उ०—दमनहिं नलहिं जो हंस मेरावा। तुम्ह हीरामन नावँ कहावा।—जायसी।

दरबंदी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) किसी चीज की दर या भाव निश्चित करने की क्रिया। (२) लगान आदि की निश्चित की हुई दर। (३) अलग अलग दर या विभाग आदि निश्चित करने की क्रिया।

दरसनी*-संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] दर्पण। शीशा। आइना। उ०—नकुल सुदरसन दरसनी छेमकरी चक चाप। दस दिसि देखत सगुन सुभ पूजहि मन अभिलाष।—तुलसी।

दर्पमद क्रीड़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] रसिकता या रँगीलेपन के खेल। नाच रंग आदि।

दर्शनप्रातिभाव्य ऋण-संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो दर्शन-प्रतिभू की साख पर लिया गया हो।

दलकन-संज्ञा स्त्री० [हिं० दलकना] (१) दलकने की क्रिया या भाव। दलक। (२) झटका। आघात। उ०—मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे।—तुलसी।

दलित-वि० [सं०] (५) जो दबा रखा गया हो। दबाया हुआ। जैसे,—भारत की दलित जातियाँ भी अब उठ रही हैं।

दवँगरा‡-संज्ञा पुं० [सं० दव + अंगार ?] वर्षा ऋतु के आरंभ में होनेवाली झड़ी। उ०—विहरत हिया करहु पिउ टेका। दीठि-दवँगरा मेरवहु एका।—जायसी।

दशमूली संग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] वे दस चीजें जो आग से बचने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को घर में रखनी चाहिएँ।

विशेष- चंद्रगुप्त मौर्य के समय में निम्नलिखित दस चीजों को घर में रखने के लिये प्रत्येक व्यक्ति राजनियम के द्वारा बाध्य था। (१) पानी से भरे हुए पाँच घड़े, (२) पानी से भरा हुआ एक मटका, (३) सीढ़ी, (४) पानी से भरा हुआ बाँस का बरतन, (५) फरसा या कुल्हाड़ी, (६) सूप, (७) अंकुश, (८) खूँटा आदि उखाड़ने का औजार, (९) मशक और (१०) इत्यादि। इन दसों चीजों का नाम दशमूली संग्रह था। जो लोग इनके रखने में प्रमाद करते थे, उनको ¼ पण जुरमाना देना पड़ता था। (कौ०)

दशावरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दस सभ्यों की शासक-सभा। दस पंचों की राज-सभा।

विशेष—ऐसी सभा जो व्यवस्था दे, उसका पालन मनु ने आवश्यक लिखा है। गौतम ने दशावरा के दस सभ्यों का विभाग इस प्रकार बताया है कि चार तो भिन्न भिन्न वेदों के, तीन भिन्न भिन्न आश्रमों के और तीन भिन्न भिन्न धर्मों के प्रतिनिधि हों। बौधायन ने धर्मों के तीन ज्ञाताओं के स्थान पर मीमांसक, धर्मपाठक और ज्योतिषी रखे हैं।

दसन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो पंजाब, सिंध, राजपूताने और मैसूर में पाई जाती है। इसकी छाल चमड़ा सिझाने के काम में आती है। दसरनी।

दसरनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की झाड़ी। वि० दे० "दसन"।

दहन-संज्ञा पुं० [देश०] कंजा नाम की कँटीली झाड़ी। वि० दे० "कंजा"।

दाउँ*-संज्ञा पुं० [हिं० दाँव] दाँव। दफा। बार। उ०—ऐस जो ठाकुर किय एक दाऊँ। पहिले रचा मुहम्मद नाऊँ।—जायसी।

दाख*-वि० दे० "दक्ष"। उ०—ताकौं विहित बखानहीं, जिनकी कविता दाख।—मतिराम।

दाख निरबिसी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दाख + निर्बिषी ?] हर जेवड़ी नाम की झाड़ी जिसकी पत्तियों और जड़ का औषध रूप में व्यवहार होता है। पुरही।

दान-प्रतिभू-संज्ञा पुं० [सं०] वह जामिन जो यह कहे कि "यदि इसने ब्याज सहित धन न लौटाया तो मैं ही धन दे दूँगा।"

दायोपगत दास-संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जो बरासत में मिला हो।

दार-प्रत्य० [फा०] रखनेवाला। वाला। जैसे,—मालदार, दूकानदार।

दिआना‡-क्रि० स० दे० "दिलाना"। उ०—सब दिन राजा दान दिआवा। भइ निसि नागमती पहँ आवा।—जायसी।

दिखादिखी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना] देखादेखी। सामना। उ०—जे सब होत दिखादिखी भई अमी इक आँक। दगै तिरीछी डीठि अब ह्वै बीछी को डाँक।—बिहारी।

दिगपाल-संज्ञा पुं० दे० "दिक्पाल"। उ०—(क) चालि अचल अचल घालि दिगपाल बल पालि ऋषिराज के बचन परचण्ड को।—केशव। (ख) दिगपालन की भुवपालन की लोकपालन की किन मातु गई च्वै।—केशव।

दिठादिठी*-संज्ञा स्त्री० [हिं० डीठ] देखा देखी। सामना। उ०—लखि सूनैं घर कर गहत दिठादिठी की ईठि। गड़ी सुचित नाहीं करति करि ललचौंहीं डीठि।—बिहारी।

दिठाना†–क्रि॰ स॰ [हिं॰ दीठ+आना (प्रत्य॰)] नजर लगाना। दृष्टि लगाना।
क्रि॰ अ॰ नजर लगना।

दिनअरꙮ–संज्ञा पुं॰ [सं॰ दिनकर] सूर्य्य। उ॰—गहन छूट दिनअर कर ससि सौं भएउ मेराव। मँदिर सिंघासन साजा बाजा नगर बधाव।—जायसी।

दिनभृति–संज्ञा पुं॰ [सं॰] रोज की मजदूरी पर काम करनेवाला मज़दूर।

दिपाना†–क्रि॰ अ॰ दे॰ "दिपना"। उ॰—कनक कलस मुखचन्द दिपाहीं। रहस केलि सन आवहिं जाहीं।—जायसी।
क्रि॰ स॰ [हिं॰ दिपना] दीप्त करना। चमकाना।

दियनाꙮ–क्रि॰ अ॰ [सं॰ दीप्त] दीप्त होना। चमकना। उ॰—बालकेलि बातबस झलकि झलमलत सोभा की दीयटि मानों रूप दीप दियो है।—तुलसी।

दियरा–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ दिया] (२) वह घड़ा सा लुक जो शिकारी हिरनों को आकर्षित करने के लिये जलाते हैं। उ॰—सुभग सकल अंग अनुज बालक संग देखि नर नारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे।—तुलसी।

दिवस-संजात–संज्ञा पुं॰ [सं॰] दिन भर का काम।
विशेष—मजदूर दिन भर में जितना काम करता था, उसी के अनुसार चंद्रगुप्त के समय में उसको रोजाना मजदूरी दी जाती थी।

दिस्टिꙮ†–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ दृष्टि] दृष्टि। नजर। उ॰—जहाँ जो दाँव दिस्टि मँह आवा। दरपन भाव दरस देखरावा।—जायसी।

दिस्टि-बंधꙮ–संज्ञा पुं॰ [सं॰ दृष्टिबंधन] इंद्रजाल। जादू। उ॰—रायव दिष्टिबंध कल्हि खेला। सभा माँझ चेटक अस मेला।—जायसी।

दीठवंतꙮ–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ दीठ+वंत (प्रत्य॰)] (१) वह जिसे दिखाई देता हो। सुझाखा। (२) ज्ञानी। उ॰—ना वह मिला न बेहरा ऐस रहा भरिपूर। दीठिवंत कहँ नीयरे अंध मूरखहिं दूर।—जायसी।

दीर्घा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (२) ८८ हाथ लंबी, ४४ हाथ चौड़ी और ४४ हाथ ऊँची नाव।

दीर्घिका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] ३२ हाथ लंबी, ४ हाथ चौड़ी और ३½ हाथ ऊँची नाव। (युक्ति कल्पतरु)

दुऊ–वि॰ दे॰ "दोनों"। उ॰—देखि दुऊ भये पायन लीने।—केशव।

दुखदानिꙮ–वि॰ [सं॰ दुःख+दान] दुःख देनेवाली। तकलीफ पहुँचानेवाली। उ॰—यह सुनि गुरु बानी धनु गुन तानी जानी द्विज दुखदानि।—केशव।

दुखहाया†–वि॰ [हिं॰ दुख+हाया (प्रत्य॰)] [स्त्री॰ दुखहाई] दुःख से भरा हुआ। दुखित। उ॰—दुखहाइनु चरचा नहीं आनन आनन आन। लगी फिरै ढूका दिए कानन कानन कान।—विहारी।

दुज्जन–वि॰ दे॰ "दुर्ज्जन"। उ॰—दुज्जन को दाह कर दसहू दिसान में।—मतिराम।

दुड़ी–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ दो+ड़ी (प्रत्य॰)] ताश का वह पत्ता जिसमें दो बूटियाँ होती हैं। दुक्की।

दुभिच्छ†–संज्ञा पुं॰ दे॰ "दुर्भिक्ष"।

दुभुज–वि॰ दे॰ "द्विभुज"।

दुर्गकोपक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] किले में बगावत फैलानेवाला विद्रोही।
विशेष—चंद्रगुप्त के समय में इसको कपड़े में लपेट कर जीता जला दिया जाता था।

दुर्गतकर्म–संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह काम जो अकाल पड़ने पर पीड़ितों की सहायता के लिये राज्य की ओर से खोला जाय। (कौ॰)

दुर्गतसेतु कर्म–संज्ञा पुं॰ [सं॰] टूटे हुए मकानों की मरम्मत का काम जो दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सहायता के लिये राज्य की ओर से खोला जाय। (कौ॰)

दुर्गति–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ दुः+गति] दुर्गम होने का भाव। दुर्गमता। उ॰—दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही में।—केशव।

दुर्गापाश्रया भूमि–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह भूमि जिसमें किले हों, अर्थात् जो सेना रखने के उपयोगी हो।
विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि राज्य करने के लिये यदि एक ओर अच्छे किलेवाली जमीन हो और दूसरी ओर घनी आबादीवाली जमीन, तो घनी आबादीवाली जमीन को ही पसंद करना चाहिए; क्योंकि मनुष्यों पर ही राज्य होता है, न कि जमीन पर। जनशून्य भूमि से राज्य को आमदनी नहीं हो सकती। घनी आबादीवाली भूमि को चाणक्य ने पुरुषापाश्रया भूमि लिखा है।

दुर्जय व्यूह–संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह व्यूह जिसमें सेना चार पंक्तियों में खड़ी की जाय। (कौ॰)

दुष्टपार्ष्णिग्राह–वि॰ [सं॰] (सेना) जिसके पीछे की सेना दुष्ट हो।

दुसंतꙮ–संज्ञा पुं॰ दे॰ "दुष्यन्त"। उ॰—जैस दुसंतहि साकुन्तला। मधवानलहि कामकंदला।—जायसी।

दुहत्था शासन–संज्ञा पुं॰ दे॰ "द्विदल शासन प्रणाली"।

दुहूँ–वि॰ [हिं॰ दो+हूँ (प्रत्य॰)] दोनों। उ॰—दुहूँ भाँति असमंजसै, बाण चले सुखपाय।—केशव।

दुहेल†–संज्ञा पुं॰ [सं॰ दुर्हेल] दुःख। विपत्ति। मुसीबत उ॰—पदमावति नगरूपमनि कहँ लगि कहौं दुहेल। सेहि समुद महँ खोएउँ हौं का जिऔं अकेल।—जायसी।

दूतावास–संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह स्थान जो किसी दूसरे राज्य या देश में रहनेवाले किसी सरे राज्य या देश के राजदूत या

—वाणिज्य दूत के अधिकारांतर्गत हो। राजदूत या वाणिज्य दूत का कार्यालय। राजदूत या वाणिज्यदूत का निवास-स्थान। कान्स्युलेट। जैसे—(क) शंघाई में रूसी दूतावास पर स्थानीय पुलिस ने चढ़ाई की और कितने ही आदमियों को गिरिफ्तार किया। (ख) महाराज जार्ज के पधारने पर रोमस्थित ब्रिटिश दूतावास में बड़ा आनन्द मनाया गया।

दूधफेनी–संज्ञा स्त्री० [सं० दुग्धफेनी] एक प्रकार का पौधा जो दवा के काम में आता है।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + फेनी] फेनी नाम का पकवान जो मैदे का बना हुआ और सूत के लच्छों के रूप में होता है और जो दूध में भिगो कर खाया जाता है।

दूरपात–वि० [सं०] दूर से आने के कारण थकी। (सेना) वि० दे० "नवागत"।

दूषण–वि० [सं०] विनाशक। संहारक। मारनेवाला। उ०—लक्ष्मण अरु शत्रुघ्न वीर दानव-दल दूषण।—केशव।

दूष्य महामात्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह न्यायाधीश या महामात्र नायक राजकर्मचारी जो भीतर भीतर राज्य का शत्रु हो या शत्रु का साथी हो।

दूष्ययुक्त–वि० [सं०] राजविद्रोहियों से युक्त (सेना)।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि दूष्ययुक्त तथा दुष्टपार्ष्णिग्राह (जिसके पीछे की सेना दुष्ट हो) सेना में दूष्ययुक्त सेना उत्तम है, क्योंकि आप्त पुरुषों के आधिपत्य में वह लड़ सकती है; पर पीछे के आक्रमण से घबराई हुई दुष्टपार्ष्णिग्राह सेना नहीं लड़ सकती। (कौ०)

दृढ़कव्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें पक्ष तथा कक्ष कुछ कुछ पीछे हटे हों। (कौ०)

दृताग्रवेग–वि० [सं०] (सेना) जिसका अग्र भाग नष्ट हो गया हो। वि० दे० "प्रतिहत"।

देय धर्म–संज्ञा पुं० [सं०] दान धर्म।

विशेष—शिलालेखों में इस शब्द का विशेष रूप से प्रयोग मिलता है।

देय विसर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] देने योग्य वस्तु किसी को दे देना। (कौ०)

देवकृच्छ्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमें लपसी, शाक, दूध, दही, घी इनमें से क्रमशः एक एक वस्तु तीन तीन दिन तक खाते थे और उसके बाद तीन दिन तक वायु ही पर रहते थे।

देवतुष्टिपति–संज्ञा पुं० [सं०] पुजारी। (शुक्रनीति)

देवदेव–संज्ञा पुं० [सं०] (५) इन्द्र। उ०—तहँ राजा दशरथ लसैं देवदेव अनुरूप।—केशव।

देवपथ–संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह मार्ग जो किसी देव-मंदिर की ओर जाता हो।

देवल–संज्ञा पुं० [सं० देव ?] एक प्रकार का चावल। उ०—धनिया देवल और अजाना। कहँ लगि बरनत जावौं धाना।—जायसी।

देवारी‡–संज्ञा स्त्री० [सं० दीपावली] दीपावली। दीवाली। उ०—अबहूँ निठुर आउ एहि बारा। परब देवारी होइ संसारा।—जायसी।

देशचरित्र–संज्ञा पुं० [सं०] देश की प्रथा। रवाज। (कौ०)

देश-धर्म–संज्ञा पुं० [सं०] देश का आचार व्यवहार।

विशेष—मनु का मत है कि राजा देश के धर्म का आदर करे और उसी के अनुसार शासन करे।

देशपीड़न–संज्ञा पुं० [सं०] प्रजा पर अत्याचार। राष्ट्र को हानि पहुँचाना। (कौ०)

देशांतरित पण्य–संज्ञा पुं० [सं०] देसावरी माल। विदेशी माल। दूर देश का माल। (कौ०)

दैउ–छ‡–संज्ञा पुं० दे० "दैव"। उ०—सुनि अस लिखा उठा जरि राजा। जानौ दैव तड़पि घन गाजा।—जायसी।

दैनंदिन–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार का प्रलय जो ब्रह्मा के पचास वर्ष बीतने पर होता है। मोहरात्रि।

दैव–संज्ञा पुं० [सं०] (४) योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विघ्नों में से एक प्रकार का विघ्न या उपसर्ग जिसमें योगी उन्मत्तों की तरह आँखें बंद करके चारों ओर देखता है। (मार्कंडेय पु०)

दैवकृत दुर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जो प्राकृतिक रूप में ही दुर्ग के समान दृढ़ और चारों ओर से रक्षित हो। (कौ०)

दैवत-संयोग-ख्यापन–संज्ञा पुं० [सं०] किसी देवी देवता के साथ संबंध प्रसिद्ध करना। यह बात फैलाना कि हमें अमुक देवता का इष्ट है या अमुक देवता ने हमें विजय प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया है, या युद्ध में अमुक देवता हमारी सहायता पर है।

विशेष—कौटिल्य ने अपने पक्ष की सेना को उत्साहित और शत्रु-सेना को उद्विग्न तथा हतोत्साह करने के लिये यह नीति या ढंग बताया है। उस ने कई प्रयोग कहे हैं, सुरंग के द्वारा देवमूर्त्ति के नीचे पहुँचकर कुछ बोलना, रात में सहसा प्रकाश दिखाना, पानी के ऊपर रात को रस्सी में बँधी कोई मूर्ति तैराकर फिर उसे गायब कर देना।

दैवप्रमाण–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो भाग्य पर विश्वास रखकर हाथ पर हाथ धरे बैठा रहे।

विशेष—चाणक्य के मत से ऐसे व्यक्तियों को उपनिवेश बसाने के लिये भेज देना चाहिए। निर्जन स्थान में पहुँचकर वे अपने आप कर्म करेंगे, अन्यथा कष्ट देंगे। (कौ०)

दो-अरबा–वि० [फा०] दो बार अभके में खींचा या चुआया

हुआ । दो-आतशा । जैसे,—दो-जरबा शराब । दो-जरबा अरक ।

दोहना॰-क्रि॰ स॰ [सं॰ दोष+ना] (१) दोष लगाना । दूषित ठहराना । (२) तुच्छ ठहराना । उ॰—बेनी नवमाला की बनाय गुही बलभद्र कुसुम असन पाउ मन मोहियत है । कारी सटकारी नीकी राजत नितंब नीचे पन्नग की नारिन की देह दोहियत है ।—बलभद्र ।

द्याना॰†-क्रि॰ स॰ [हि॰ दिलाना] देना का प्रेरणार्थक रूप । दिलवाना । दिलाना । उ॰—फिरि सुधि दै सुधि द्याइयौ इहिं निरदई निरास । नई नई बहुरयौ दई दई उसासि उसास ।—बिहारी ।

द्यूताध्यक्ष-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह राजकीय अधिकारी जो जूए का निरीक्षण करता था और जुआरियों से राजकीय भाग ग्रहण करता था । स्थान स्थान पर बने हुए जूए के सरकारी अड्डे इसी के निरीक्षण में रहते थे । जो कोई किसी दूसरे स्थान पर जूआ खेलता था, उसको १२ पण जुरमाना देना पड़ता था । (कौ॰)

द्यूताभियोग-संज्ञा पुं॰ [सं॰] जूए संबंधी मुकदमा । (कौ॰)

द्यूतावास-संज्ञा पुं॰ [सं॰] जूआ खाना । (कौ॰)

द्रम्म-संज्ञा पुं॰ [सं॰ मि॰ फा॰ दिरम] १६ पण के मूल्य का चाँदी का एक प्राचीन सिक्का ।

विशेष—मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व भारत में इसका व्यवहार विशेष रूप से था । लीलावती में प्रश्न आदि निकालने में इसी का प्रयोग किया गया है । उसमें लिखा है कि २० कौड़ी बराबर एक काकिणी के, ४ काकिणी बराबर १ पण के, १६ पण बराबर १ द्रम्म के तथा १६ द्रम्म बराबर १ निष्क के होता है ।

द्रव्यवन-संज्ञा पुं॰ [सं॰] लकड़ियों के लिये रक्षित वन । वह जंगल जहाँ से लकड़ी आती हो । (कौ॰)

द्रव्यवन भोग-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह जागीर या उपनिवेश जिसमें लकड़ी तथा और जांगलिक पदार्थों की बहुतायत हो ।

विशेष—प्राचीन आचार्य्य ऐसे उपनिवेश को ही पसंद करते थे जिसमें जांगलिक पदार्थ बहुतायत से हों । परंतु चाणक्य का मत है कि लकड़ियाँ तथा जांगलिक पदार्थ सभी स्थानों में पैदा किए जा सकते हैं; इसलिये उत्तम उपनिवेश वही है जिसमें हाथीवाले जंगल हों ।

द्रव्यवनादीपिक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] लकड़ी आदि के लिये रक्षित जंगल में आग लगानेवाला । (कौ॰)

द्रव्यसार-संज्ञा पुं॰ [सं॰] बहुमूल्य पदार्थ । उपयोगी पदार्थ ।

द्रूणा-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (२) लकड़ी का धनुष । (कौ॰)

द्रोणमुख-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (२) चार सौ गाँवों के बीच का किला ।

द्वादसबानी-वि॰ दे॰ "बारहबानी" । उ॰—वह पदुमिनि चितउर जो आनी । काया कुंदन द्वादस-बानी ।—जायसी ।

द्वारादेय शुल्क-संज्ञा पुं॰ [सं॰] द्वार पर देय कर । दरवाजे पर लिया जानेवाला महसूल । चुंगी । (कौ॰)

द्विगूढ़-संज्ञा पुं॰ [सं॰] लास्य के दस अंगों में से एक । वह गीत जिसमें सब पद सम और सुंदर हों, संधियाँ वर्त्तमान हों तथा रस और भाव सुसंपन्न हों । (नाट्य शास्त्र)

द्विदल शासन-प्रणाली-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक प्रकार की शासन प्रणाली या सरकार जिसमें शासन-अधिकार दो भिन्न व्यक्तियों के हाथ में रहता है । द्वैध शासन प्रणाली । दुहत्था शासन । वि॰ दे॰ "डायार्की" ।

द्विनेत्रभेदी-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह मनुष्य जिसने किसी की दोनों आँखें फोड़ दी हों ।

विशेष—जो लोग यह अपराध करते थे, उनकी दोनों आँखें 'योगांजन' लगाकर फोड़ दी जाती थीं । ८०० पण देकर लोग इस दंड से बच सकते थे । (कौ॰)

द्विपटवान-संज्ञा पुं॰ [सं॰] दोहरे अर्ज का कपड़ा । ज्यादा अर्ज का कपड़ा । (कौ॰)

द्विपादवध-संज्ञा पुं॰ [सं॰] दोनों पैर काटने का दंड ।

विशेष-जो लोग मृत पुरुष की जायदाद, पशु या दासी आदि की चोरी करते थे, उनको यह दंड दिया जाता था । (कौ॰)

द्वैधशासन प्रणाली-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "द्विदल शासन प्रणाली" ।

द्वैधीभाव-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) एक से लड़ना तथा दूसरे के साथ संधि करना । (२) दोनों ओर मिलकर रहना ।

विशेष—कामंदक ने लिखा है कि जो राजा सबल न हो और जिसके इधर उधर बलवान राज्य हों, वह द्वैधीभाव से काम चलावे अर्थात् अपने आप को दोनों पक्षों का मित्र प्रकट करता रहे ।

द्वैराज्य-संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक ही देश पर दो राजाओं का राज्य ।

विशेष-इसी को वैराज्य भी कहते थे । कौटिल्य ने इसे असंभव कहा है । परन्तु कहीं कहीं इस प्रकार के राज्य होने का प्रमाण मिलता है ।

धनवल विभाग-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह व्यूह जिसके पक्ष में सैनिक, पार्श्व में हाथी, पीछे रथ और आगे शत्रु के व्यूह के अनुसार व्यूह बना हो । (कौ॰)

धँधार-संज्ञा स्त्री॰ [हि॰ धूआँ] ज्वाला । लपट । उ॰—कँथा जरै आगि जनु लाई । विरह-धँधार जरत न बुझाई ।—जायसी ।

धका पेल-संज्ञा स्त्री॰ [हि॰ धका+पेलना] धक्कमधुक्का । भीड़भाड़ में होनेवाली धक्केबाजी ।

धनधारी-संज्ञा पुं॰ [सं॰ धन+धारी] (१) कुबेर । उ॰—राम निछावरि लेन को हठि होत भिखारी । बहुरियत तेहि देखिए मानहुँ धनधारी ।—तुलसी । (२) बहुत बड़ा अमीर । परम धनवान ।

धनुक-संज्ञा पुं० [सं० धनुस्] इन्द्रधनुष । उ०—भौंहैं धनुक धनुक पै हारा । नैननिह साथ बान-विष मारा ।—जायसी ।

धन्न॥†-वि० [सं० धन्य] धन्य । उ०—धन्नि पुरुष अस नवै न नाए । औ सु-पुरुख होइ देस पराए ।—जायसी ।

धमनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] तूर । तुरही बाजा । (कौ०)

धर-संज्ञा स्त्री० [सं० धरा] पृथ्वी । धरती । उ०—(क) मानहु शेष अशेषधर धरनहार बरिबंड ।—केशव । (ख) सरजू सरिता तट नगर बसै वर । अवध नाम यशधाम धर ।—केशव ।

धरक-संज्ञा पुं० [सं०] अनाज की मंडी में अनाज तौलने का काम करनेवाला । बया ।

धरधर-संज्ञा पुं० दे० "धरहर" ।

धरनहार-वि० [हिं० धारना + हार (प्रत्य०)] धारण करनेवाला । उ०—मानहु शेष अशेषधर धरनहार बरिबंड ।—केशव ।

धरनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धारना या सं० धारण] किसी बात पर दृढ़तापूर्वक अड़े रहना । टेक । उ०—तुलसी अब राम को दास कहाइ हिये धरु चातक की धरनी ।—तुलसी ।

धरमसार†-संज्ञा स्त्री० [सं० धर्मशाला] (१) धर्मशाला । (२) सदावर्त । खैरात खाना । उ०—रानी धरमसार पुनि साजा । बंदि मोख जेहि पावहिं राजा ।—जायसी ।

धरहर-संज्ञा पुं० [सं० धैर्य ?] दृढ़ विश्वास । निश्चय । उ०—जम करि मुँह तरहरि पर्‌यो इहिं धरहरि चित लाउ । विषय-तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ ।—बिहारी ।

धर्म्मदापन (ऋण)-संज्ञा पुं० [सं०] (२) समझाने बुझाने से ले या अपने आप जब ऋणी ऋण का धन लौटावे, तो उसको धर्म्मदापन कहते हैं ।

धर्म्मपरिषद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्म्म सभा । न्याय करनेवाली सभा । न्यायाध्यक्षों का मंडल ।

धर्म्मराज-संज्ञा पुं० [सं०] (५) न्यायकर्ता । न्यायाधीश । उ०—सेनापति बुधजन, मंगल गुरु गण, धर्मराज मन बुद्धि घनी ।—केशव ।

धर्मविजयी-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो नम्रता या विनय ही से संतुष्ट हो जाय ।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार दुर्बल राजा को पहले धर्मविजयी राजा का सहारा लेना चाहिए ।

धर्म्मसभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) वह स्थान जहाँ धार्म्मिक विषयों की चर्चा या उपदेश हो ।

धर्मस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] धर्माध्यक्ष । न्यायाधीश ।

विशेष—भारतीय आर्य्यों में लोक को व्यवस्थित रखनेवाले नियम, जिनका पालन राज्य कराता था, धर्म ही कहलाते थे । कानून भी धर्म ही कहलाते थे । कानून धर्म से अलग नहीं माना जाता था ।

धर्मस्थीय-संज्ञा पुं० [सं०] न्यायालय ।

धर्मांशु-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । उ०—जयति धर्मांसु संदग्ध संपाति नवपच्छ लोचन दिव्य देह-दाता ।—तुलसी ।

धर्मावसथि, धर्मावस्थायी-संज्ञा पुं० [सं०] पुण्य विभाग का अधिकारी ।

विशेष—चाणक्य के समय में इसका कार्य यात्रियों तथा वैरागियों को शहर में ठहरने के लिये स्थान देना था । कारीगर तथा शिल्पी अपनी जिम्मेवारी पर रिश्तेदारों, साधुओं, संन्यासियों तथा श्रोत्रियों को अपने मकान में बसाते थे । यही बात व्यापारियों को करनी पड़ती थी ।

धसक-संज्ञा स्त्री० [हिं० धसकना] (१) धसकने की क्रिया या भाव । (२) डर । भय । दहशत । जैसे,—उनके मन में कुछ धसक बैठ गई है ।

धसकन-संज्ञा स्त्री० दे० "धसक" ।

धसकना-क्रि० अ० [हिं० धँसना] मन में भय उत्पन्न होना । जी दहलना । उ०—गवनचार पदमावति सुना । उठा धसकि जिउ औ सिर धुना ।—जायसी ।

धाकना॥-क्रि० अ० [हिं० धाक + ना (प्रत्य०)] धाक जमाना । रोब जमाना । उ०—दास तुलसी के बिरुद बरनत बिदुष बीर बिरुदैत बर बैरि धाके ।—तुलसी ।

धान्यभोग-संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि या जागीर जिसमें अन्न बहुत होता हो ।

धान्यवाप-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जिसमें अन्न बहुतायत से पैदा होता हो । (कौ०)

धाम-संज्ञा पुं० [देश०] फालसे की जाति का एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो मध्य और दक्षिण भारत में पाया जाता है । इसकी पत्तियाँ तीन से छः इंच तक लंबी और गोलाई लिए होती हैं ।

धामन-संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की घास जो नरम और रेतीली भूमि में बहुत अधिकता से होती है । यह प्रायः वर्षा ऋतु में बहुत से होती है और पशुओं के लिये बहुत अच्छी समझी जाती है ।

धामा-संज्ञा पुं० [सं० धाम] (२) अनाज आदि रखने का बड़ा टोकरा । (पश्चिम)

धारणिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऋणी । धरता । कर्जदार । (२) वह आदमी या कोठी जिसके पास धन जमा किया गया हो ।

धारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (६) १६० हाथ लंबी, २० हाथ चौड़ी और १६ हाथ ऊँची नाव । (युक्ति कल्पतरु)

धूकना॥†-क्रि० अ० [हिं० झुकना] किसी ओर बढ़ना या झुकना । उ०—हस्ती घोड़ धाइ जो धूका । ताहि कीन्ह सो रुहिर भभूका ।—जायसी ।

धूप–संज्ञा पुं० [सं०] (४) चीड़ या धूप सरल नाम का वृक्ष जिससे गंधाविरोजा निकलता है। वि० दे० "चीड़"।

धूपसरल–संज्ञा पुं० [सं० सरल] चीड़ का वृक्ष जिससे गंधाविरोजा निकलता है। वि० दे० "चीड़"।

धूत-विक्रय–संज्ञा पुं० [सं०] तौल कर कोई पदार्थ बेचना। (कौ०)

धृष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] (२) साहित्य के अनुसार वह नायक जो बार बार अपराध करता है, अनेक प्रकार के अपमान सहता है, पर फिर भी किसी न किसी प्रकार बातें बनाकर नायिका के साथ लगा रहता है। उ०—लाज धरै मन मैं नहीं, नायक धृष्ट निदान।—मतिराम।

धेयना॥–क्रि० अ० [सं० ध्यान] ध्यान करना। उ०—सेइ न धेइ न सुमिरि कै पद प्रीति सुधारी। पाइ सुसाहिब राम सो भरि पेट बिगारी।—तुलसी।

धोवना॥†–क्रि० स० [हिं० धोना] जल की सहायता से साफ करना। धोना। उ०—मुँह धोवति एड़ी घसति हँसति अनगवति तीर। धँसति न इंदीवर नयनि कालिंदी के नीर।—बिहारी।

धोविन–संज्ञा स्त्री० [देश०] शीशम की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसकी लकड़ी इमारत के काम में आती है। इसकी लकड़ी परतदार होती है। अर्थात् इसमें एक मोटी तह सफेद लकड़ी की होती है और तब उस पर काले रंग की बहुत पतली एक और तह होती है। इसी तह पर से इस लकड़ी के तख्ते बहुत सहज में चीरे जा सकते हैं।

धौकरा–संज्ञा पुं० [सं० धव] बाकली की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जो अवध, बुंदेलखंड और मध्य प्रदेश में पाया जाता है। इसकी लकड़ी खेती के सामान बनाने के काम में आती है।

धौरा–संज्ञा पुं० दे० "बाकली"।

धौरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० धौरा] (२) एक प्रकार की चिड़िया। उ०—धौरी पंडुक कहु पिउ नाऊँ। जौं चित रोख न दूसर ठाऊँ।—जायसी।

संज्ञा स्त्री० दे० "बाकली।

ध्वज–संज्ञा पुं० [सं०] (८) हदबंदी का निशान।

ध्वजमूल–संज्ञा पुं० [सं०] चुंगीघर की सीमा। (कौ०)

नंदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आनंद देनेवाली। (२) शुभ। उत्तम। उ०—परिवा, छट्टि, एकादसि नंदा। दुइज, सत्तमी द्वादसि मंदा।—जायसी।

नंस॥–वि० [सं० नाश] जिसका नाश हुआ हो। नष्ट। उ०—कौतुक केलि करहिं दुख नंसा। खूँदहिं कुरलहिं जनु सर हंसा।—जायसी।

संज्ञा पुं० नाश। बरबादी।

नकवा†–संज्ञा पुं० [हिं० नाक या नाका] (१) सुई का वह छेद जिसमें तागा पिरोया जाता है। नाका। (२) नया निकला हुआ अंकुर। कल्ला। (३) तराजू की डंडी में का वह छेद जिसमें पलड़े की रस्सियाँ पिरोकर बाँधी जाती हैं।

नक्की†–वि० [हिं० एक] (१) ठीक। दुरुस्त। (२) पक्का। (३) पूरा। (४) चुकाया हुआ। चुकता। साफ। (हिसाब)

नखथान॥–संज्ञा पुं० [सं० नख] नख। नाखून। उ०—सेज मिलत सामी कहँ लावै उर नखथान। जेहि गुन सबै सिंघ के सो सँखिनि, सुलतान।—जायसी।

नखरेख॥–संज्ञा स्त्री० [सं० नख + रेखा] शरीर में लगा हुआ नखों का चिह्न जो संभोग का चिह्न माना जाता है। नखरौट। उ०—मरकत भाजन सलिल गत इंदुकला के वेख। झीन झगा मैं झलमले स्याम गात नखरेख।—बिहारी।

नग-फँग†–वि० [?] नटखट। शरीर। उ०—ही भले नग-फँग परे गढ़िये अब ए गढ़न महरि मुख जोए।—तुलसी।

नगपास–संज्ञा पुं० [सं० नागपाश] शत्रु को बाँधने या फँसाने के लिये एक प्रकार का फंदा। नागपाश। उ०—जान पुछार जो भा बनवासी। रौंव रौंव परे फंद नगवासी।—जायसी।

नजरबाज–वि० [अ० नजर + फा० बाज (प्रत्य०)] आँखें लड़ानेवाला। प्रेम की दृष्टि से देखनेवाला।

नजरबाजी–संज्ञा स्त्री० [अ० नजर + फा० बाजी] (१) नजरबाज होने की क्रिया या भाव। (२) आँखें लड़ाना।

नटराज–संज्ञा पुं० [सं०] (२) निपुण नट। नटों में प्रधान या श्रेष्ठ नट। उ०—लरत कहूँ पायक सुभट कहूँ नर्तत नटराज।—केशव।

संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

नदीदुर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] नदी के बीच में या द्वीप में बना हुआ दुर्ग। ऐसा दुर्ग स्थलदुर्ग से उत्तम तथा पर्वत दुर्ग से निकृष्ट गया है। (कौ०)

नरहा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली वृक्ष। वि० दे० "चिल्ली"।

नर्त्तना॥–क्रि० अ० [सं० नर्त्तन] नृत्य करना। नाचना। उ०—लरत कहूँ पायक सुभट कहूँ नर्तत नटराज।—केशव।

नर्मद्युति–संज्ञा स्त्री० [सं०] नाट्य शास्त्र के अनुसार प्रतिमुख संधि के तेरह अंगों में से एक। वह परिहास जो किसी पहले परिहास से उत्पन्न आनंद तथा दोष छिपाने के लिये किया जाय। जैसे,—रत्नावली में सुसंगता के यह कहने पर कि "प्यारी सखी, तू बड़ी निठुर है। महाराज तेरी इतनी खातिर करते हैं, तो भी तू प्रसन्न नहीं होती।" सागरिका भौंह चढ़ाकर कहती है—"अब भी तू चुप नहीं रहती, सुसंगता।"

नलबाँस–संज्ञा पुं० [हिं० नल + बाँस] हिमालय की तराई में होने-

वाला एक प्रकार का बाँस जिसे विपुली और देवबाँस भी कहते हैं। वि० दे० "देवबाँस"।

नवागत (सैन्य)–संज्ञा पुं० [सं०] नई भरती की हुई फौज। रंगरूटों की सेना।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि नवागत तथा दूरयात (दूर से आने के कारण थके) सैन्य में से नवागत सैन्य दूसरे देश से आकर पुरानों के साथ मिलकर युद्ध कर सकता है। दूरयात सैन्य के संबंध में यह बात नहीं है; क्योंकि वह थकावट के कारण लड़ाई के अयोग्य होता है। (कौ०)

नसेनी†–संज्ञा स्त्री० [सं० श्रेणी] सीढ़ी। जीना।

नाँदना–क्रि० अ० [सं० नंदन] (२) दीपक का बुझने के पहले कुछ भभक कर जलना।

नाँह⊛–संज्ञा पुं० [सं० नाथ] स्वामी। पति।

ना-कदर–वि० [फा० ना + अ० कद्र] (१) जिसकी कोई कदर न हो। जिसकी कोई प्रतिष्ठा न हो। (२) जो किसी की कदर करना न जानता हो। जिसमें गुण-ग्राहकता न हो।

ना-कदरी–संज्ञा स्त्री० [फा० ना + अ० कद्र] ना-कदर होने के क्रिया या भाव।

नाकना⊛†–क्रि० स० [सं० लंघन या हिं० नाका] (३) चारों ओर से घेरना।

ना-काम–वि० [फा०] जिसका अभीष्ट सिद्ध न हुआ हो। विफल मनोरथ।

नाकू–संज्ञा पुं० [सं० नक्र] घड़ियाल या मगर नामक जल-जंतु।

नागरक–संज्ञा पुं० [सं०] नगर का शासनकर्त्ता। (कौ०)

नागरिकता–संज्ञा स्त्री० [अं०] नागरिक होने का भाव। नागरिक के स्वत्व और अधिकारों से युक्त होने की अवस्था। नागरिक जीवन।

नागोदरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध में हाथ की रक्षा के लिये पहना जानेवाला दस्ताना। (कौ०)

नाचाकी–संज्ञा स्त्री० [फा० नाचाक़] बिगाड़। अनबन। लड़ाई। वैमनस्य।

नाजिर–संज्ञा पुं० [अ०] (४) वह दलाल जो वेश्याओं को गाने बजाने के लिये ठीक करता और लाता हो।

नाजिरात–संज्ञा स्त्री० [हिं० नाजिर + आत (प्रत्य०)] वह दलाली जो नाजिर को नाचने गानेवाली वेश्या आदि से मिलती है।

नाटकिया–संज्ञा पुं० [सं० नाटक + इया (प्रत्य०)] (१) नाटक में अभिनय करनेवाला। (२) स्वाँग भरनेवाला। बहुरूपिया।

ना-ताकती–संज्ञा स्त्री० [फा० ना + अ० ताकत + ई (प्रत्य०)] नाताकत होने का भाव। दुर्बलता। कमजोरी।

नाथ–संज्ञा स्त्री० [हिं० नाथना] (१) नाथने की क्रिया या भाव। (२) जानवरों की नाक की नकेल या रस्सी। उ०—रंग नाथ हौं जा कर हाथ ओहि के नाथ। गहे नाथ सो खींचै फेरे फिरै ना माथ।—जायसी।

नानकोआपरेशन–संज्ञा पुं० दे० "असहयोग" (२)।

नापास–वि० [हिं० ना + अं० पास] जो पास या मंजूर न हो। जो स्वीकृत न हो। नामंजूर। अस्वीकृत। जैसे,—कौन्सिल से उनका बिल नापास हुआ। (क्व०)

नापैद–वि० [फा० ना + पैद] (१) जो पैदा न होता हो। (२) न मिलनेवाला। अप्राप्य।

नामकृत–संज्ञा पुं० [सं०] असली चीज का नाम छिपाना और उसका दूसरा नाम बताना। कल्पित नाम बतलाना। (कौ०)

नामिनेटेड–वि० [अं०] जो किसी पद के लिये चुना गया हो। जो किसी स्थान के लिये पसंद किया गया हो। मनोनीत। नामजद। जैसे,—नामिनेटेड मेंबर।

नामुराद–वि० [फा०] जिसका अभीष्ट सिद्ध न हुआ हो। विफल मनोरथ।

विशेष—पश्चिम में इस शब्द का प्रयोग प्रायः गाली के रूप में होता है।

नामुवाफ़िक़–वि० [फा० ना + अ० मुवाफ़िक़] जो मुवाफ़िक या अनुकूल न हो। प्रतिकूल। विरुद्ध।

नायक–संज्ञा पुं० [सं०] (९) दस सेनापतियों के ऊपर का अधिकारी। (१०) बीस हाथियों तथा घोड़ों का अध्यक्ष। (कौ०)

नायाब–वि० [फा०] जो न मिलता हो। अप्राप्य।

नारद–[सं०] (७) वह व्यक्ति जो लोगों में परस्पर झगड़ा लगाता हो। लड़ाई करनेवाला।

नार्थ–संज्ञा पुं० [अं०] उत्तर दिशा।

नालायकी–संज्ञा स्त्री० [फा० ना + अ० लायक] नालायक का भाव। अयोग्यता।

नावाज–संज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह।

नावाजिब–वि० [फा० ना + अ० वाजिब] जो वाजिब या ठीक न हो। अनुचित।

नाशन–वि० [सं०] नाश करनेवाला। विध्वंस करनेवाला। नाशक। उ०—जानत है किधौं जानत नाहिन तू अपने मदनाशन को।—केशव।

नाष्टिक धन–संज्ञा पुं० [सं०] खोया हुआ धन। (स्मृति)

ना-हमवार–वि० [फा०] जो हमवार या समतल न हो। ऊबड़ खाबड़। ऊँचा नीचा।

निबकौरी–संज्ञा स्त्री० दे० "निबकौरी"।

निंबर–संज्ञा पुं० दे० "अरिंज"।

निआथी⊛–संज्ञा स्त्री० [सं० निः + अर्थ] धन-हीनता। दरिद्रता। गरीबी। उ०—साथी आथि निआथि जो सकै साथ निरबाहि। जो जिउ जोरे पिउ मिले, भेंटु रे जिउ! जरि जाहि।—जायसी।

निभाना‡-क्रि० वि० [हिं० न्यारा] न्यारा । अलग । उ०—भनु-राजा सो जरै निभाना । बादसाह कै सेव न माना ।—जायसी ।

निक्षेपक-संज्ञा पुं० [सं०] धरोहर में रखा हुआ पदार्थ । (कौ०)

निकर-संज्ञा पुं० [अं० निकरबाकर्स] एक प्रकार का घुटने तक का खुला पायजामा ।

निगरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ५५ मोतियों की लड़ी जो तौल में ३२ रत्ती हो ।

निगुन, निगुना⊛-वि० दे० "निर्गुण" उ०—मरै सोइ जो होइ निगुना । पीर न जानै विरह बिहूना ।—जायसी ।

निग्राहक-संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो अपराधियों को अनुचित तथा अन्याय-युक्त दंड दे ।

निघटना-क्रि० स० [हिं० नि + घटना] मिटाना । नष्ट करना । उ०—चलत पंथ पंथनि धरम मुनि करम निघटन ।—मतिराम ।

निज़ामत-[अ०] (१) नाज़िम का पद या कार्य्य । (२) वह कार्य्यालय जिसमें नाज़िम और उसके सहायक कर्मचारी रहते हों ।

नित्यमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र जो निःस्वार्थ भाव से प्रीति या बदे हुए पुराने संबंधों की रक्षा करे ।

नित्यामित्रा भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जहाँ के लोग सदा दुश्मनी करते हों या जिसमें शत्रु की प्रबलता हो । (कौ०)

निपात⊛-वि० [हिं० नि + पत = पत्ता] बिना पत्तों का । जिसमें पत्ते न हों । उ०—(क) जेहि पंखी के निअर होइ कहै बिरह कै बात । सोइ पंखी के निअर होइ कहै बिरह कै बात । सोई पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात ।—जायसी । (ख) सौंहिहि दई, साधि तन, निर्मोहहि आधारि भूल । बिनु गथ बिरिछ निपात जिमि ठाढ़ ठाढ़ पै सूख ।—जायसी ।

संज्ञा पुं० [सं०] नहाने का स्थान । (कौ०)

निबंध-संज्ञा पुं० [सं०] सरकारी आज्ञा । (कौ०)

निबह⊛-संज्ञा पुं० [?] समूह । झुंड । उ०—मनहु उडगन निवह आए मिलन तम तजि द्वेषु ।—तुलसी ।

निबहुर†-संज्ञा पुं० [हिं० नि + बहुरना] वह स्थान जहाँ से जाकर कोई न लौटे । यमद्वार ।

निबहुरा†-वि० [हिं० नि + बहुरना] जो चला जाय और न लौटे । सदा के लिये चला जानेवाला । (गाली)

निमय-संज्ञा पुं० [सं०] वस्तु-विनिमय । पदार्थों का अदलबदल ।

विशेष—गौतम धर्मसूत्र में लिखा है कि ब्राह्मण गौ, तिल, दूध, दही, फल, मूल, फूल, ओषधि, मधु, मांस, वस्त्र, सन, रेशम आदि पदार्थों का मूल्य लेकर विक्रय न करें । यदि उनको ऐसा करने की जरूरत ही पड़े तो वे विनिमय कर लें । अन्नादि का अन्नादि से और पशुओं का पशुओं से ही बदला किया जाय । नमक तथा पकान्न के लिये यह नियम नहीं है । कच्चा पदार्थ देकर पक्वान्न लिया जाय । तिलों के क्रय विक्रय में धान्य के सदृश ही नियम हैं ।

निमूँद⊛-वि० [हिं० मुँदना] मुँदा हुआ । मुद्रित । बंद । उ०—कौड़ा आँसू मूँदि, कसि साँकर बरुनी सजल । कीने बदन निमूँद, दृग-मलिंग डारे रहत ।—बिहारी ।

वि० [हिं० नि = नहीं + मुँदना] जो मुँदा न हो । खुला ।

निमेट⊛†-वि० [हिं० नि + मिटना] न मिटनेवाला । बना रहनेवाला । उ०—काह कहीं हौं ओहि सौं जेइ दुख कीन्ह निमेट । तेहि दिन आगि करै वह जेहि दिन होइ सो भेंट ।—जायसी ।

निम्नयोधी-वि० [सं० निम्नयोधिन्] किले के नीचे से या नीची जमीन पर से लड़नेवाला । वि० दे० "स्थलयोधी" ।

निम्नारण्य-संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ों की घाटी । (कौ०)

नियंत्रण-संज्ञा पुं० [सं०] नियम या इसी प्रकार के और किसी बंधन में बाँधना । कायदे का पाबंद करना । व्यवस्थित करना ।

नियोग-संज्ञा पुं० [सं०] (७) वह आपत्ति जिसमें यह निश्चय हो कि इसी एक उपाय से यह आपत्ति दूर होगी, दूसरे से नहीं । (कौ०)

निरदोषी-वि० दे० "निर्दोष" । उ०—भृगुनंदन सुनिये मन महँ गुनिये रघुनंदन निरदोषी ।—केशव ।

निरनुबंध-संज्ञा पुं० [सं०] 'अर्थ' का एक भेद । वह सिद्धि या सफलता जिससे अपना लाभ आवश्यक न हो । दंड या अनुग्रह द्वारा किसी उदासीन का अर्थ सिद्ध करना । (कौ०)

निरबाहना⊛-क्रि० स० [सं० निर्वाह] निर्वाह करना । निभाना । चलाए चलना । उ०—देह लग्यौ ढिग गेहपति तऊ नेह निरबाहि । नीची अँखियनु ही इतै गई कनखियनु चाहि ।—बिहारी ।

निरमर⊛-वि० दे० "निर्मल" । उ०—पदमिनि चाहि घाटि दुइ करा । और सबै गुन ओहि निरमरा ।—जायसी ।

निरुपकार आधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह थाती या धरोहर जो किसी आमदनीवाले काम में न लगी हो ।

निरुपजीव्या भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिस पर किसी का गुजर न हो सकता हो । (कौ०)

निर्गत-संज्ञा पुं० दे० "निर्यात" । जैसे—निर्गत कर ।

निर्गुण भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिस पर कुछ भी पैदा न होता हो । ऊसर जमीन । (कौ०)

निर्मान⊛-वि० [हिं० नि + मान] जिसका मान न हो । बेहद । अपार । उ०—नित्य निर्मय नित्य मुक्त निर्मान हरि ज्ञान घन सच्चिदानंद मूलं ।—तुलसी ।

निर्यात-संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु या माल जो बेचने के लिये

विदेश भेजा गया हो। आयात का उलटा। रफ्तनी। निर्गत। जैसे,—निर्यात कर। निर्यात व्यापार।

निर्वाचक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे किसी प्रतिनिधिक संस्था के सदस्य या प्रतिनिधि निर्वाचन में वोट या मत देने का अधिकार प्राप्त हो। वह जिसे किसी कार्यकर्ता या प्रतिनिधि को वोट या मत देने का अधिकार प्राप्त हो। मताधिकार प्राप्त मनुष्य। निर्वाचन करनेवाला।

निर्वाचक संघ-संज्ञा पुं० [सं०] उन लोगों का समूह या समाज जिन्हें मताधिकार अर्थात् वोट देने का अधिकार प्राप्त हो। एलेक्टरेट।

निर्वाचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुतों में से एक या अधिक को चुनने या पसंद करने का काम। चुनाव। जैसे,—कविताओं का निर्वाचन सुंदर हुआ है। (२) किसी को किसी पद या स्थान के लिये, उसके पक्ष में 'वोट' देकर, हाथ उठाकर या चिट्ठी डाल कर, चुनने या पसंद करने का काम। जैसे,—व्यवस्थापिका सभा के इस बार के निर्वाचन में अच्छे आदमी निर्वाचित हुए हैं।

निर्वाचनी संस्था-संज्ञा स्त्री० दे० "निर्वाचक संघ"।

निर्वाचित-वि० [सं०] (१) निर्वाचन किया हुआ। चुना हुआ। जैसे,—इस पुस्तक में उनके निर्वाचित लेखों का संग्रह है। (२) जिसका (किसी स्थान या पद के लिये लोगों द्वारा) निर्वाचन हुआ हो। जो (किसी पद या स्थान के लिये लोगों द्वारा) चुना गया हो। जैसे,—वे बनारस डिवीजन से व्यवस्थापिका परिषद् के सदस्य निर्वाचित हुए हैं।

निर्वाहण-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसे पदार्थों का नगर में ले जाना जिनके ले जाने का निषेध हो। (कौ०)

निर्वेश-संज्ञा पुं० [सं०] भृति।

निलहा-वि० [सं० नील + हा (प्रत्य०)] नील से संबंध रखनेवाला। नीलवाला।

यौ०—निलहा गोरा। निलहा साहब।

निविशमान-संज्ञा पुं० [सं०] वे लोग जिनसे उपनिवेश बसाए जायँ।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में राज्य ऐसे लोगों को अन्न, पशु तथा संपत्ति से सहायता पहुँचाता था।

निषिद्धपण्य-संज्ञा पुं० [सं०] चोरों में भरा हुआ माल। (कौ०)

निवृत्तवृद्धिक आधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह धन जो बिना ब्याज पर किसी के यहाँ जमा हो।

निष्क्रय-संज्ञा पुं० [सं०] (७) वह धन जो छुटकारे के लिये दिया जाय। (कौ०)

निष्काम्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) माल का बाहर भेजा जाना। बाहर भेजी जानेवाली चलान। (२) रफ्तनी माल। (कौ०)

निष्काम्य शुल्क-संज्ञा पुं० [सं०] बाहर भेजे जानेवाले माल पर का महसूल।

निसँठॐ†-वि० [हिं० नि + सँठ = पूँजी] जिसके पास धन या पूँजी न हो। निर्धन। गरीब। उ०—साँठि होइ जेहि तेहि सब बोला। निसँठ जो पुरुष पात जिमि डोला।—जायसी।

निसंसॐ-वि० [हिं० नि + साँस] जिसे साँस न आता हो। मृतप्राय। मुरदा सा। उ०—निसँस ऊभि भरि लीन्हेसि साँसा। भा अधार जीवन कै आसा।—जायसी।

निसतारनाॐ-क्रि० स० [सं० निस्तार + ना (प्रत्य०)] निस्तार करना। छुटकारा देना।

निसयानाॐ†-वि० [हिं० नि + सयाना ?] जिसकी सुध बुध खो गई हो। जिसके होश हवास ठिकाने न हों। उ०—जनहु मानि निसियानी बसी। अति बेसँभार फूलि जनु अरसी।—जायसी।

निसाँसा†-वि० [हिं० नि + साँस] जिसका श्वास न चलता हो। श्वास प्रश्वास रहित। उ०—अब हौं मरौं निसाँसी हिये न आवै साँस। रोगिया की को चालै बैदहि जहाँ उपास।—जायसी।

निसियरॐ-संज्ञा पुं० [सं० निशाकर] चंद्रमा। उ०—प्रभु धनि तू निसियर निसि माहाँ। हौं दिनिअर जेहि कै तू छाँहाँ।—जायसी।

निसुकाॐ†-वि० [सं० निस्वक] निर्धन। दरिद्र। गरीब। उ०—रहैं निगोड़े नैन डिगि गहैं न चेत अचेत। हौं कसु कै रिस के करौं ये निसुके हँसि देत।—बिहारी।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग स्त्रियाँ प्रायः "निगोड़ा" शब्द की भाँति करती हैं।

निसृष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] दैनिक भृति। रोजाना दी जानेवाली मजदूरी। (कौ०)

निस्तर-संज्ञा पुं० [सं० निस्तार] छुटकारा। निस्तार। उ०—जौं देहु दुख जरौं अपारा। निस्तर पाइ आउँ एक बारा।—जायसी।

नीवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (५) वह धन जिसके ब्याज आदि की आय किसी काम में खर्च की जाय और जो सदा रक्षित रहे। स्थायी कोश। (६) खर्च करने के बाद बची हुई पूँजी। (कौ०)

नीवी-ग्राहक-संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जिसके पास चंदा या किस दूसरे व्यक्ति का धन जमा हो और जो उस धन का प्रबंध करता हो। खजानची।

नुमाइंदा-संज्ञा पुं० [फा०] प्रतिनिधि।

नुसखा-संज्ञा पुं० [अ०] (२) रोगी के लिये लिखी हुई ओषधियाँ और उनकी सेवन विधि आदि।

नृदेवता-संज्ञा पुं० [सं०] राजा। उ०—देवता अदेवता नृदेवता जिते जहान।—केशव।

नेगेटिव-संज्ञा पुं० [अं०] फोटोग्राफी में वह शीशा जिस पर उस चीज की उलटी प्रतिकृति आ जाती है जिसका चित्र लिया

आता है। इसी पर मसालेदार कागज रखकर छापा जाता है जो चित्र रूप में दिखाई देता है।

नेचर–संज्ञा पुं० [अं०] प्रकृति। कुदरत। जैसे,—वे नेचर को माननेवाले हैं।

नेचरिया–वि० [अं० नेचर+इया (प्रत्य०)] जो केवल प्रकृति को सृष्टि का कर्त्ता मानता हो। प्रकृतिवादी। नास्तिक।

नेजा–संज्ञा पुं० [फा०] (२) चिलगोजा नाम की सूखी फली या मेवा।

नेटिव–वि० [अं०] देश का। देशी। मुल्क का। मुल्की। जैसे,—नेटिव आदमी।

संज्ञा पुं० वह जो अपने देश में उत्पन्न हुआ हो और जो विदेशी या बाहर का न हो। आदिम निवासी।

नेत†–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की रेशमी चादर। उ०—(क) पुनि गजमत्त चढ़ावा नेत बिछाई खाट। बाजत गाजत राजा आइ बैठ सुख-पाट।—जायसी। (ख) पालँग पाँव कि आछै पाटा। नेत बिछाव चलै जो बाटा।—जायसी।

नेबुला–संज्ञा पुं० [अं०] आकाश में धूएँ या कुहरे की तरह फैला हुआ क्षीण प्रकाशपुंज। नीहारिका। वि० दे० "नीहारिका।"

नेवना⊛–क्रि० अ० [सं० नमन] नमन होना। झुकना।

नेवरना⊛–क्रि० अ० [सं० निवारण] (१) निवारण होना। दूर होना। उ०—सुनि जोगी कै अमर जो करनी। नेवरी बिथा बिरह कै मरनी।—जायसी। (२) समाप्त होना। खतम होना। (३) निपटना।

नेवाना⊛†–क्रि० स० [सं० नमन] नमन करना। झुकाना।

नेवारना⊛†–क्रि० स० [सं० निवारण] निवारण करना। दूर करना। हटाना।

नेवी–संज्ञा स्त्री० [अं०] एक राष्ट्र या देश के समस्त लड़ाऊ जहाज। नौ-सेना। जलसेना।

नेशन–संज्ञा पुं० [अं०] लोक-समुदाय जो एक ही देश में बसता हो या जो एक ही राज्य या शासन में रहता हुआ एकताबद्ध हो। एक देश में रहने और सम-भाषा बोलनेवाला जन-समूह। राष्ट्र।

नैधानी सीमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सीमा या हदबंदी जो भूसी, कोयले आदि से भरे घड़े गाड़ कर बनाई जाय।

विशेष—बृहस्पति ने इस प्रकार सीमा बनाने का विधान बताया है। पराशर ने कहा है कि ग्राम के वृद्ध लोगों का कर्त्तव्य है कि वे बच्चों को सीमा के चिह्नों से परिचित करते रहें।

नैशनल–वि० [अं०] राष्ट्र संबंधीय। राष्ट्र का। राष्ट्रीय। सार्वजनिक। जैसे,—नैशनल कांग्रेस।

नैशनलिस्ट–संज्ञा पुं० [अं०] वह जो राष्ट्र पक्ष का पक्षपाती हो। राष्ट्रवादी।

नैषेचनिक–संज्ञा पुं० [सं०] राज्याभिषेक के उत्सव पर दी हुई वस्तुओं का उपहार। (कौ०)

नौ–संज्ञा पुं० [सं०] पोत। जहाज।

नौकरशाही–संज्ञा स्त्री० [फा० नौकर+शाही] वह सरकार या शासन प्रणाली जिसमें राजसत्ता या शासन सूत्र उच्च राजकर्मचारियों या बड़े बड़े सरकारी अफसरों के हाथों में रहे। वि० दे० "ब्यूरोक्रेसी"।

नौकराना–संज्ञा पुं० [फा० नौकर+आना (प्रत्य०)] (१) वेतन के अतिरिक्त नौकर को दिया जानेवाला धन। नौकर का हक। (२) वह धन जो दूकानदार माल खरीदनेवाले के नौकर को देता है। दस्तूरी।

नौकर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] जहाज की पतवार।

नौकर्म–संज्ञा पुं० [सं० नौकर्मन्] मल्लाह का पेशा या काम।

नौक्रम–संज्ञा पुं० [सं०] नावों का पुल।

नौचर–संज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह।

वि० जहाज पर जानेवाला।

नौजीवक–संज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह। खलासी।

नौता⊛–वि० [सं० नव या नूतन] नया। हाल का। ताजा। उ०—करहिं जो किंगरी लेइ बैरागी। नौती होइ बिरह कै आगी।—जायसी।

नौनेता–संज्ञा पुं० [सं० नौनेतृ] जहाज की पतवार पकड़नेवाला। पतवारिया।

नौबंधन–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय के सर्वोच्च श्रृंग का नाम। कहते हैं कि महाप्लावन के समय मनु ने इसी से अपना जहाज बाँधा था। (महाभारत)

नौयायी–वि० [सं० नौयायिन्] नाव पर जानेवाला (यात्री या माल)।

नौवाह–संज्ञा पुं० दे० "नौनेता"।

नौसेना–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना या फौज जो लड़ाऊ जहाजों पर चढ़ कर युद्ध करती है। लड़ाऊ जहाजों पर से युद्ध करनेवाली सेना या फौज। जलसेना।

नौसेनापति–संज्ञा पुं० [सं०] नौ सेना का प्रधान या अध्यक्ष। जल सेनाध्यक्ष।

न्याना+वि० [सं० अज्ञान] (१) जो कुछ न जानता हो। अनजान। निर्बोध। (२) छोटी उमर का। अल्प अवस्था का। अल्पवयस्क।

न्यूज–संज्ञा स्त्री० [अं०] समाचार। संवाद। वृत्तांत। वृत्त। खबर।

न्यूजपेपर–संज्ञा पुं० [अं०] समाचार पत्र। अखबार।

न्योजी+संज्ञा स्त्री० [हिं० लीची ?] (१) लीची नामक फल। उ०—कोइ नारँग कोइ झाड़ चिरौंजी। कोइ कटहर बड़हर कोइ न्योजी।—जायसी। (२) नेजा। चिलगोजा।

पंखीसेढ़–संज्ञा पुं० [हिं० पंखी + अं० सेल] चौकोर पाल जो मस्तूल से तिरछे एक तिहाई निकला रहे ।

पंगई–संज्ञा स्त्री० [?] नाव खेने का छोटा डाँडा जिसका एक जोड़ा लेकर एक ही आदमी नाव चला सकता है । हाथ हलेसा । चमचा । बैठा । चप्पू । (लश०)

पँगरा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) मझोले आकार का एक प्रकार का कँटीला वृक्ष जो प्रायः सारे भारत में पाया जाता है । शीत ऋतु में इसकी पत्तियाँ झड़ जाती हैं । इसकी लकड़ी बहुत मुलायम, पर चिमड़ी होती है और तलवार की म्यान या तख्ते आदि बनाने के काम में आती है । ढोलढाक । ढाक । मदार ।

पंचक–संज्ञा पुं० [सं०] (७) पाँच प्रतिनिधियों की सभा । पंचायत ।

पंचमंडली–संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँच भलेमानसों की सभा । पंचायत ।

विशेष—चंद्रगुप्त द्वितीय के साँचीवाले शिलालेख में यह शब्द आया है ।

पंचवान–संज्ञा पुं० [सं० पंचबाण ?] राजपूतों की एक जाति । उ०—पर्त्ता औ पँचवान, बघेले । अगर पार, चौहान, चँदेले ।—जायसी ।

पंचारकोप–संज्ञा पुं० [सं०] राजा के विजय के लिये आगे बढ़ने पर राज्य में विद्रोह फैलाना । (कौ०)

पंचालिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) नटी । नर्तकी । उ०—नाचति मंच पँचालिका कर संकलित अपार ।—केशव ।

पंडाल–संज्ञा पुं० [अं०] किसी भारी समारोह के लिये बनाया हुआ विस्तृत मंडप । जैसे,—सम्मेलन का पंडाल । कांग्रेस का पंडाल ।

पंडुर+संज्ञा पुं० [देश०] पानी में रहनेवाला साँप । डेड़हा । उ०—ऐसे हरि सों जगत लरतु है । पंडुर कतहूँ गरुड़ धरतु है ।—कबीर ।

पँतीजना+क्रि० स० [सं० पिंजन = धुनकी] रूई से बिनौले निकाल कर अलग करना । रूई ओटना । पींजना ।

पँतीजी–संज्ञा स्त्री० [सं० पिंजन = धुनकी] रूई धुनने की धुनकी । उ०—चरख पंतीजी चरख चढ़ि ज्यों डाँकत अग सूत ।—वृंद ।

पँवर–संज्ञा पुं० [?] सामान । सामग्री । उ०—भसम गंग लोचन अहि डमरू, पंचतत्व सूचक अस भौंरू, हर के बस पाँचउ यह पँवरू, जिनसे पिंड उरेह ।—देवस्वामी ।

पकावन॰–संज्ञा पुं०—दे० "पकवान" । उ०—दूती बहुत पकावन साधे । मोतिलाडू औ खेरौरा बाँधे ।—जायसी ।

पक्षिराज–संज्ञा पुं० [सं०] (२) जटायु । (३) एक प्रकार का धान ।

पखंडी–संज्ञा पुं० [हिं० पाखंडी] वह जो कठपुतलियाँ नचाता हो । कठपुतली का नाच दिखानेवाला । उ०—कतहुँ चिरहँटा पंखी लावा । कतहुँ पखंडी काठ नचावा ।—जायसी ।

पंगारना–क्रि० स० [?] फैलाना ।

पगेरना–संज्ञा पुं० [देश०] कसेरों की एक प्रकार की छेनी जो बरतनों पर नक्काशी करने के काम में आती है ।

पचतोरिया–संज्ञा पुं० [सं० पंच + तार या सं० पट + तार] एक प्रकार का कपड़ा ।—उ०—नीरे पचतोरिया लसित अनलस लाल लाल रद छद मुखचंद ज्यों शरद को ।—देव । (ख) सेत जरतारी की उज्यारी कंचुकी की कसि अनियारी डीठि प्यारी उठि पैन्ही पचतोरिया ।—देव ।

पचर–संज्ञा पुं० [हिं० पची] (२) लकड़ी की बड़ी मेख या खूँटा । (लश०)

पच्छिराज–संज्ञा पुं० [सं० पक्षिराज] गरुड़ । उ०—पच्छिराज जच्छिराज प्रेतराज जातुधान—केशव ।

पछना–संज्ञा पुं० [हिं० पाछना] (७) वह अस्त्र आदि जिससे कोई चीज पाछी जाय । पाछने का औजार । (२) वह उस्तरा जो सिंगी लगाने से पहले शरीर में घाव करने के काम आता है । (३) शरीर में से रक्त निकालने की क्रिया । फसद ।

क्रि० अ० पाछा जाना । पाछने की क्रिया होना ।

पछलगा॰–संज्ञा पुं० दे० "पिछलगा" । उ०—हौं पंडितन केर पछलगा । किछु कहि चला तबल देइ डगा ।—जायसी ।

पछाड़–संज्ञा पुं० [हिं० पछाड़ना] कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—जब शत्रु सामने रहता है, तब एक हाथ उसकी आँखों के नीचे से निकाल कर पीछे की ओर से उसका लँगोट पकड़ते हैं, और दूसरा हाथ उसकी पीठ पर से घुमा कर उसकी बगल में अड़ाते हैं और इस प्रकार उसे उठाकर चित्त फेंक देते हैं । इसमें अधिक बल की आवश्यकता होती है ।

पछियावर॰–संज्ञा स्त्री० [हिं० पीछे] (१) एक प्रकार का शिखरन या शरबत ।—उ०—पुनि जाउरी पछियाउरि आई । घिरित खाँड़ की बनी मिठाई ।—जायसी । (२) छाछ से बना हुआ एक प्रकार का पेय पदार्थ जो भोजनान्त में परोसा जाता है । इससे भोजन शीघ्र पचता है । उ०—मोद सों तारकनंद को मेद, पछ्यावरी पान सिरायो हियो रे ।—केशव ।

पटलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (७) पटल का काम । (२) अधिकता । उ०—अजहूँ लौं अवलोकिये, पुलक पटलता ताह ।—मतिराम ।

पटला–संज्ञा स्त्री० [सं०] भीमा के आकार की नौका । ६४ हाथ लंबी ३२ हाथ चौड़ी और ३२ हाथ ऊँची नाव । (युक्ति कल्पतरु)

पटवा–संज्ञा पुं० [सं० पाट] पटसन की जाति का एक प्रकार का पौधा जो बंगाल में अधिकता से बोया जाता है । यह कहीं

कहीं बागों में शोभा के लिये भी लगाया जाता है। इसमें एक प्रकार की कलियाँ लगती हैं जो खाई जाती हैं। इसके तनों से एक प्रकार का रेशा निकलता है और इसके फल तथा बीज कहीं कहीं ओषधि रूप में काम में आते हैं। लाल अंबारी।

पटिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० पटना + इया (प्रत्य०)] (३) चिपटे तले की बड़ी और ऊपर से पटी हुई नाव जो बन्दरगाहों में जहाज से बोझ उतारने और चढ़ाने के काम में आती है। (लश०)

पट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (२) लड़ाई का वह पहनावा या कवच जिससे केवल धड़ ढका रहे और दोनों बाँहें खुली रहें। (कौ०)

पठवना†-क्रि० स० [सं० प्रस्थान] भेजना। रवाना करना।

पठान-संज्ञा पुं० [?] (२) जहाज या नाव का पेंदा। (लश०)

पठावनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० पठाना = भेजना] (३) भेजने या पहुँचाने की मजदूरी। उ०—तेहूँ पायँ पाइकै चढ़ाइ नाव धोए बिनु ख्वैहौं न पठावनी कै ह्वैहौं न हँसाइ कै।—तुलसी।

पठ्य-वि० दे० "पाठ्य"।

पठ्यमान-वि० [सं० पाठ्य + मान (प्रत्य०)] पढ़ा जाने के योग्य। सुपाठ्य। उ०—अपठ्यमान पाप ग्रन्थ पठ्यमान वेदवै।—केशव।

पड़वा-संज्ञा पुं० [देश०] घाट पर रहनेवाली वह नाव जो यात्रियों को इस पार से उस पार ले जाती है। घटहा। (लश०)

पड़ाव-संज्ञा पुं० [हिं० पटना + आव (प्रत्य०)] (३) चिपटे तले की बड़ी और खुली नाव जो जहाज से बोझ उतारने और चढ़ाने के काम में आती है। (बंबई) (लश०)

पडुवा-संज्ञा पुं० [देश०] ऊख का खेत।

पढ़ंत-संज्ञा स्त्री० [हिं० पढ़ना] निरंतर पढ़ने की क्रिया। बराबर पढ़ना। जैसे—पढ़ंत कवि-सम्मेलन।

पढ़ंता-वि० [हिं० पढ़ना] पढ़नेवाला। पाठ करनेवाला। उ०—वेद पढ़ंता पाँड़े मारे पूजा करते स्वामी हो।—कबीर।

पणच्छेदन-संज्ञा पुं० [सं०] अँगूठा काटने का दंड।

विशेष—चन्द्रगुप्त के समय में दूसरी बार गाँठ कतरने के अपराध में जो राजकर्मचारी पकड़े जाते थे, उनका अँगूठा काट दिया जाता था।

पण-जित दास-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अपने को जूए के दाँव पर रखकर हारा और दास हुआ हो।

पणबंध-संज्ञा पुं० [सं०] संधि।

पणयात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिक्के का चलाना। (कौटि०)

पणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पण। (कौटि०)

पण्यनिचय-संज्ञा पुं० [सं०] बिक्री का माल इकट्ठा करना।

विशेष—इसमें भी चन्द्रगुप्त के समय में धान्य के एकत्र करने के सदृश ही नियम प्रचलित था।

पण्य-निर्वाहण-संज्ञा पुं० [सं०] बिना चुंगी या महसूल दिए चोरी से माल निकाल ले जाना। (कौ०)

पण्यपत्तन-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार के माल आकर बिकते हों। मंडी। (कौ०)

पण्यपत्तन चारित्र-संज्ञा पुं० [सं०] मंडी में प्रचलित नियम। (कौ०)

पण्यपत्तन चारित्रोपघातिका-वि० स्त्री० [सं०] (वह नाव) जिसने बन्दरगाह के नियमों का पालन न किया हो। (कौ०)

पण्य संस्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] माल रखनेका गोदाम। (कौ०)

पण्य समवाय-संज्ञा पुं० [सं०] थोक बेचा जानेवाला माल।

पण्योपघात-संज्ञा पुं० [सं०] बिक्री के माल का नुकसान।

विशेष—व्यापारियों को चन्द्रगुप्त के राज्य से सहायता मिलती थी। जब उनके माल का नुकसान हो जाता था, तब उन्हें राज्य की ओर से सहायता मिलती थी। (कौ०)

पतंगसुत-संज्ञा पुं० [सं० पतंग = सूर्य + सुत] सूर्य के पुत्र अश्विनी कुमार।

पतनी-संज्ञा पुं० [देश०] वह आदमी जो घाट पर की नाव इस पार से उस पार ले जाता और उस पार से इस पार ले आता हो। घाट पर से पार उतारनेवाला या घटहा का माझी। (लश०)

पताका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (८) नाट्य शास्त्र के अनुसार प्रासंगिक कथावस्तु के दो भेद में से एक। वह कथावस्तु जो सानुबंध हो और बराबर चलती रहे। (प्रासंगिक कथावस्तु का दूसरा भेद "प्रकरी" है।)

पतिंग-संज्ञा पुं० [सं० पतंग] पतंग। फतिंगा। भुनगा। उ०—इहाँ देवता अस गए हारी। तुम्ह पतिंग को अहौ भिखारी।—जायसी।

पतियार†-वि० [हिं० पतियाना] विश्वास करने के योग्य। विश्वसनीय। उ०—तीन लोक भरि पूरि रहो है नाँही है पतियार।—कबीर।

संज्ञा पुं० दे० "पतियारा"।

पत्तनाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] बन्दरगाह का अध्यक्ष या प्रधान अधिकारी। (कौटि०)

पत्ता-संज्ञा पुं० [सं० पत्र] (५) नाव के डाँड़े का वह अगला भाग जिसमें तख्ती जड़ी रहती है और जिसकी सहायता से पानी काटा जाता है। फन। (लश०)

पत्तिप-संज्ञा पुं० [सं०] पत्तिपाल।

पत्तिपाल-संज्ञा पुं० [सं०] पाँच या छः सिपाहियों के ऊपर का अफसर।

विशेष—प्राचीन काल में सिपाहियों का पहरा बदलना इसी का काम होता था।

पत्तिव्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें आगे कवचधारी सैनिक और पीछे धनुर्धर हों। (कौटि०)

पत्ती–संज्ञा पुं० [?] राजपूतों की एक जाति। उ०–पत्ती औ पँचवान बघेले। अगरयार चौहान चँदेले।—जायसी।

पत्थरफोड़–संज्ञा पुं० [हिं० पत्थर+फोड़ना] बहुत छोटी जाति की एक प्रकार की वनस्पति जो प्रायः वर्षा ऋतु में दीवारों या पत्थर के जोड़ों के बीच से निकलती है। इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी होती हैं जो प्रायः फोड़ों को पकाने के लिये उन पर बाँधी जाती हैं। इसमें सफेद रंग के बहुत छोटे छोटे फूल भी लगते हैं।

पत्रकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो किसी सार्वजनिक समाचारपत्र या पत्रिका का संचालन करता हो। वह जो किसी अखबार को चलाता हो। पत्र संचालक। पत्र संपादक। अखबार नवीस। एडीटर। जरनलिस्ट। (२) वह जो किसी समाचारपत्र या अखबार में नियमित रूप से लिखता हो। रिपोर्टर।

पत्रपुटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] ९६ हाथ लंबी, ४८ हाथ चौड़ी और ४८ हाथ ऊँची नाव। (युक्तिकल्पतरु)

पद्मिनि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (५) लक्ष्मी। उ०—पद्म ऊपर पद्मिनि मानहु। रूपन ऊपर दीपति जानहु।—केशव।

पद्र, पद्रक–संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि जो सारे समाज या समुदाय की हो। पंचायती जमीन।

विशेष—महानदी के किनारे राजीव नगर के राजा तिवरदेव के ताम्रपत्र में यह शब्द आया है। कोशों में पद्र का अर्थ ग्राम मिलता है। डा० बूलर ने इस शब्द से 'चरागाह' का अभिप्राय लिया है। विल्सन ने अपने कोश में इसका अर्थ समाज या समुदाय दिया है।

पनडब्बा–संज्ञा पुं० [हिं० पान+डब्बा] वह डब्बा जिसमें पान और उसके लगाने का सामान चूना, सुपारी, कत्था आदि रहता हो। पानदान।

पनपथू†–संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी+पाथना] वह रोटी जो बिना परथन के केवल पानी लगाकर बेली जाती है।

पनिच⊛–संज्ञा स्त्री० [सं० पतंचिका] धनुष की ज्या। उ०–खैंचि पनिच भृकुटी धनुष वधिक समरु तजि कानि। हनत तरुन मृग तिलक-सर सुरक भाल भरि तानि।—बिहारी।

पनिहा†–संज्ञा पुं० [सं० प्रणिधि] वह जो चोरी आदि का पता लगाता हो। जासूस। भेदिया। उ०—लालन लहि पाएँ दुरै चोरी सौंह करै न। सीस-चढ़े पनिहा प्रगट कहैं पुकारैं नैन।—बिहारी।

पनुआँ–वि० [हिं० पानी] जिसमें अधिक पानी मिल गया हो। फीका। उ० पनुवाँ रंगन भेजि नियौरै। गाढ़ो रंग अछत जिमि चोरै। रंग देह तुरतै न निचोरै। रस रसरी पर टाँग दरैरे।—देवस्वामी।

पन्नगपति–संज्ञा पुं० [सं०] शेषनाग। उ०—पन्नग प्रचंड पति प्रभु की पनच पीन पर्वतारि पर्वत प्रभा न मान पावई।—केशव।

पपड़ा–संज्ञा पुं० [सं० पर्पट] (१) एक प्रकार का पकवान जो मीठा और नमकीन दोनों होता है। मीठा पपड़ा मैदे को शरबत में घोलकर और नमकीन पपड़ा बेसन को पानी में घोलकर घी या तेल में तलकर बनाते हैं।

पब्लिक प्रासिक्यूटर–संज्ञा पुं० [अं०] पुलिस का वह अफसर या वकील जो सरकार की ओर से फौजदारी मुकदमों की पैरवी करता है।

पब्लिशर–संज्ञा पुं० [अं०] वह जो पुस्तकादि छपवा कर प्रकट या प्रकाशित करे। प्रकट करनेवाला। (कोई चीज प्रकाशित करने के अभियोग पर प्रिंटर और पब्लिशर दोनों गिरिफ्तार किये जाते हैं।)

परकर्षण–संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु की संपत्ति आदि लूटना।

परकारना†–क्रि० स० [हिं० परकार] (१) परकार से वृत्त आदि बनाना। (२) चारों ओर घेरना। आवेष्टित करना। उ०–दसहूँ दिसनि गई परकारी। देख्यौ समै भयानक भारी।—छत्र प्रकाश।

परचाना⊛–क्रि० स० [सं० प्रज्वलन] प्रज्वलित करना। जलाना। उ०—चिनगि जोति करसी तें भागै। परम तंतु परचावै लागै।—जायसी।

परछालना⊛–क्रि० स० [सं० प्रक्षालन] जल से धोना। पखालना।

परजन–संज्ञा पुं० [देश०] डेढ़ दो हाथ ऊँचा एक प्रकार का पौधा जो राजपूताने, पंजाब और अफगानिस्तान की जोती बोई हुई भूमि में प्रायः पाया जाता है। इसमें पीले रंग के बहुत छोटे छोटे फूल लगते हैं।

परतंत्र-द्वैधी भाव–संज्ञा पुं० [सं०] दो प्रबल और परस्पर विरोधी राज्यों के बीच में रह कर और किसी एक राज्य से कुछ धन या वार्षिक वृत्ति पाकर दोनों से मेल बनाए रखना। (कामंदक) जैसे,—युरोपीय महायुद्ध के पहले अफगानिस्तान की स्थिति परतंत्र-द्वैधी भाव की थी; पर युद्ध के पीछे अब स्वतंत्रद्वैधी भाव की स्थिति है।

परदूषण संधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] संपूर्ण राज्य की उत्पत्ति तथा फल देने की प्रतिज्ञा कर संधि करना। (कामंदक)

परदेशापवाहन–संज्ञा पुं० [सं०] विदेशियों को बुलाकर उपनिवेश बसाना। (कौटिल्य)

परनाल–संज्ञा पुं० [हिं० परनाला] जहाज में पेशाब करने की मोरी। (लश०)

परमट-संज्ञा पुं० [अं० परमिट] (२) वह कर या महसूल जो विदेश से आने जानेवाले माल पर लगता है। कर। महसूल। चुंगी।

परमट हाउस-संज्ञा पुं० दे० "कस्टम हाउस"।

परमदेवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] महा-सामंत की स्त्री की उपाधि।

विशेष—सतलज नदी तटस्थ निर्मन्द ग्राम में महासामंत शब्द तथा महाराज समुद्रसेन के लेख में महासामन्त की स्त्री के लिये परमदेवी शब्द का प्रयोग किया गया है।

परमनेंट-वि० [अं०] स्थायी। स्थिर। कायम। जैसे,—परमनेंट अंडर सेक्रेटरी।

परम भट्टारक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के महाराजाधिराजों की उपाधि।

परम भट्टारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की सम्राज्ञी की उपाधि।

परमिश्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भुक्ति या राज्य जिसमें मित्र और शत्रु दोनों समान रूप से हों। (कौटि०)

परयक्तव्य पण्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह माल जिसका सौदा दूसरे के साथ हो चुका हो।

विशेष—ऐसा सौदा किसी दूसरे ग्राहक के हाथ बेचनेवालों के लिये कौटिल्य और स्मृतिकारों ने दंड का विधान किया है।

परयान-संज्ञा पुं० [हिं० पाल, फा० बादबान] जहाज का पाल। बादबान।

परवानना⊛-क्रि० अ० [सं० प्रमाण] प्रमाण मानना। ठीक समझना। उ०—हमरे कहत न जो तुम्ह मानहु। जो वह कहै सोइ परवानहु।—जायसी।

परवास-संज्ञा पुं० दे० "प्रवास"।

संज्ञा पुं० [सं० वास] आच्छादन। उ०—कपटसार सूची सहस बाँधि बचन परवास। किय दुराव यह चातुरी सो सठ तुलसीदास।—तुलसी।

परवी †-संज्ञा स्त्री० [सं० पर्विणी] पर्व काल। पुण्य काल। पर्विणी। उ०—परवी परे भरत या होई। तेहि दिन-मैथुन करै जो कोई।—विश्राम।

परस-पखान⊛-संज्ञा पुं० [सं० स्पर्श+पाषाण] पारस पत्थर। स्पर्शमणि। उ०—रूपवंत धनवंत सभागे। परस-पखान पौरि तिन्ह लागे।—जायसी।

परसौंहाँ⊛†-वि० [सं० स्पर्श, हिं० परस+औंहाँ (प्रत्य०)] स्पर्श करनेवाला। छूनेवाला। उ०—तिय तरसौंहैं मुनि किए करि सरसौंहें नेह। घर परसौंहैं ह्वै रहे झर बरसौंहैं मेह।—बिहारी।

परहरना⊛-क्रि० स० [सं० परि+हरण] परित्याग करना। छोड़ना। उ०—भक्ति छुड़ावै निगुरा करई। कहै कहावै जो परहरई।—विश्राम।

पराँचा-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार की कम चौड़ी और लंबी नाव। (ल०)

परावन-संज्ञा पुं० [सं० पर्व] पर्व। पुण्यकाल। उ०—पूरे पूरब पुण्यतें परयो परावन आज।—मतिराम।

परावा⊛-वि० दे० "पराया" उ०—बिरह बिवस ब्याकुल महतारी। निज पराव नहिं हृदय सम्हारी।—रामाश्वमेध।

परिक्रय संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो जंगली पदार्थ, धन या कोश का कुछ भाग या संपूर्ण कोश देकर की जाय। (कामंदक)

परिक्षिप्त-वि० [सं०] सब ओर से घिरी हुई (सेना)। वि दे० "उपरुद्ध"।

परिहीण-वि० [सं०] (२) दुर्बल और अशक्त। (सेना)

परिखन⊛-वि० [हिं० परखना] निगहबानी करनेवाला। देख रेख करनेवाला। अगोरिया। उ०—गरभ माहिं रक्षा करी जहाँ हितू नहिं कोइ। अब का परिखन पालिहैं बिपिन गए महँ सोइ।—विश्राम।

परिच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] प्रांत। प्रदेश।

विशेष—नागौद रियासत के खोह नामक गाँव में जो ताम्रपत्र मिला है, उस में इस शब्द का प्रयोग पाया गया है। वहाँ लिखा है—दक्षिणेन वल्लवर्मा परिच्छदः।

परिपणित काल संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] "आप इतने समय तक लड़िये और मैं इतने समय तक लड़ूँगा" इस प्रकार की समय सम्बन्धी संधि।

परिपणित देश संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] "आप इस देश पर चढ़ाई करिये और हम इस देश पर चढ़ाई करते हैं" इस ढंग की देश विषयक संधि।

परिपणित संधि-संज्ञा स्त्री० [सं] कुछ शर्तों के साथ की गई संधि। इसके तीन भेद हैं—(१) परिपणित देश संधि, (२) परिपणित काल संधि और (३) परिपणितार्थ संधि।

परिपणितार्थ संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] "आप इतना काम करें और मैं इतना काम करूँगा" ऐसी कार्य्य विषयक संधि।

परिपारी⊛-संज्ञा स्त्री० [सं० पालि या परिपाटी] मर्य्यादा। उ०—अरे परेखो को करै तुँही बिलोकि बिचारि। किहिं नर किहिं सर राखियै खरैं बढ़ैं परिपारि।—बिहारी।

परिभाव-संज्ञा पुं० [सं०] (नाटक में) कोई आश्चर्यजनक दृश्य देखकर कुतूहलपूर्ण बातें कहना।

परिवर्त्तक-संज्ञा पुं० [सं०] (७) अनाज आदि देकर दूसरी वस्तुएँ बदले में लेना। विनिमय।

परिसून-संज्ञा पुं० [सं०] बूचड़खाने के बाहर मारा हुआ पशु। (कौ०)

परिसृप्त–वि० [सं०] लड़ाई से भागा हुआ (सैनिक)।

परिहँस†–संज्ञा पुं० [सं० परिहास ?] ईर्ष्या। डाह। जलन। उ०—(क) परिहँस पियर भए तेहि बसा।–जायसी। (ख) परिहँस मरसि कि कौनिउ लाजा। आपन जीउ देसि केहि काजा।—जायसी।

परिहा–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छंद। उ०—सुनत दूत के बचन चतुर चित में हँसे। लोहिताक्ष ढूँकरन बात में हम फँसे। बल ते सबै उपाय और तब कीजिये। नहिं देहीं भेंट कुठार प्राण को लीजिये।—हनुमन्नाटक।

परिहारक ग्राम–संज्ञा पुं० [सं०] राज-कर से मुक्त ग्राम। सुआफी गाँव। लाखिराज गाँव।

विशेष–समाहर्त्ता के खेवट में ग्रामों या भूमि का जो वर्गीकरण है, उसमें 'परिहारक' भी है। (कौ०)

परिहारना‡–क्रि० स० [सं० प्रहार+ना (प्रत्य०)] (शस्त्र आदि) प्रहार करना। चलाना। उ०—पारथ देखि बाण परिहारा। पंख काटि पावक महँ टारा।—सबल।

परीछित‡–वि० संज्ञा पुं० दे० "परीक्षित"।

क्रि० वि० [सं० परीक्षित] अवश्य ही। निश्चित रूप से। उ०—संकर कोप सों पाप को दाम परीच्छित जाहिगो जारि कै हीयो।—तुलसी।

परीत‡–संज्ञा पुं० दे० "प्रेत"। उ०—कीन्हेसि राकस भूत परीता। कीन्हेसि भोकस देव दईता।—जायसी।

परुआ†–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की भूमि। (बुंदेलखंड)

परेरा–संज्ञा पुं० [हिं० फरहरा] छोटी झंडी जो किसी किसी जहाज के मस्तूल के सिरे पर लगी रहती है। फरेरा। फरहरा। (लश०)

परेह–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार की कढ़ी जो बेसन को खूब पतला घोलकर और घी या तेल में पका कर बनाई जाती है।

परोक्त दोष–संज्ञा पुं० [सं०] अदालत के सामने ठीक रीति से बयान न करने का अपराध।

विशेष–जो प्रकरण में आई हुई बात छोड़कर दूसरी बात कहने लगे, पहले कुछ कहे पीछे कुछ, प्रश्न किए जाने पर उत्तर न दे या दूसरे से पूछने को कहे, प्रश्न कुछ किया जाय और उत्तर कुछ दे, पहले कोई बात कहकर फिर निकल जाय, साक्षियों के द्वारा कही बात स्वीकार न करे तथा अनुचित स्थान में साक्षियों के साथ कानाफूसी करे, वह इस अपराध का दोषी कहा गया है।

पर्णकृच्छ्र–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का व्रत जो गूलर, बेल, कुशा आदि के पत्ते खाकर या इनके काढ़े पीकर रहने से होता था।

पर्युपासन–संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिमुख संधि के तेरह अंगों में से एक। किसी को क्रुद्ध देखकर उसे प्रसन्न करने के लिये अनुनय विनय करना। (नाट्य शास्त्र)

पर्वत दुर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ी किला।

विशेष–चाणक्य के मत से पर्वत दुर्ग सब दुर्गों से उत्तम होता है। (कौ०)

पर्वतनंदिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती। उ०—सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यो पर्वतनंदिनी।—केशव।

पर्वतृण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण जो औषध के काम में आता है। तृणाढ्य।

पलंजी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बरसाती घास जो उत्तरी भारत के मैदानों में अधिकता से होती है। भूसा। गुलगुला। बड़ा गुरमुरा। वि० दे० "भूसा"।

पलटनिया–संज्ञा पुं० [हिं० पलटन+इया (प्रत्य०)] वह जो पलटन में काम करता हो। सेना का सिपाही। सैनिक। जैसे—नगर में गोरे पलटनियों का पहरा था।

वि० पलटन में काम करनेवाला। पलटन का। जैसे—१८९३ के पहले सुपरिंटेंडेंट और असिस्टेंट पलटनिये अफसर होते थे।

पला†–संज्ञा पुं० [सं० पटल] (३) पार्श्व। किनारा। उ०—नासिक पुल सरात पथ चला। तेहि कर भौंहैं हैं दुइ पला।—जायसी।

पलाय–संज्ञा पुं० [हिं० पूला] पूला नामक वृक्ष जिसके रेशों से रस्से बनते हैं। वि० दे० "पूला"।

पलास–संज्ञा पुं० [?] कनवास नाम का मोटा कपड़ा। वि० दे० "कनवास"।

पलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] तेल निकालने की डाँड़ीदार बेलिया। पली।

विशेष–संवत् १००३ के सियादानी शिलालेख में यह शब्द आया है। वि० दे० "प्राणक"।

पवंगा–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छंद। उ०—दूजे दिन दरबार सुजान सुभाइकै। देखत ही मनसूर महा सुख पाइकै। खिलवति करी नवाब जनाइ वकील सौं। मसलति पूछन काज सुजान सुसील सौं।—सूदन।

पवन‡–संज्ञा स्त्री० दे० "पावन"। उ०—सुवन सुख करनि भव सरिता तरनि गावत तुलसिदास कीरति पवनि।—तुलसी।

पवारी–संज्ञा स्त्री० [?] नलिका नामक गंधद्रव्य।

पस्सी–संज्ञा पुं० [देश०] शीशम की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो प्रायः सारे उत्तरी भारत, नैपाल और आसाम में पाया जाता है। यह प्रायः सड़कों के किनारे लगाया जाता है। यह नीची और बलुई जमीन में बहुत जल्दी बढ़ता है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। इसकी लकड़ी

बहुत बढ़िया होती है और शीशम की भाँति ही काम में आती है। बिधुआ। अकोली।

पहँ॥-अव्य० [सं० पार्श्व, प्रा० पाह] (१) निकट। समीप। उ०—राजा यदि जेहि के सौंपना। गा गोरा तेहि पहँ अगमना।—जायसी। (२) से। उ०—दूतन्ह बात न हिये समानी। पदमावति पहँ कहा सो आनी।—जायसी।

पहाड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० पहाड़ या सं० पर्पटी] एक प्रकार की ओषधि जिसे पर्पटी या अनी भी कहते हैं। वि० दे० "अनी"।

पहाड़ी इन्द्रायन-संज्ञा पुं० [हिं० पहाड़+इन्द्रायन] एक प्रकार का खीरा जिसे येरालू भी कहते हैं। वि० दे० "येरालू"।

पहाड़ुआ†-संज्ञा पुं० [देश०] बच्चों का एक प्रकार का खेल जिसे आनी पानी भी कहते हैं।

वि० [हिं० पहाड़] पहाड़ संबंधी। पहाड़ का। पहाड़ी।

पहारू†-संज्ञा पुं० [हिं० पहरा] पहरेदार। रक्षक। पाहरू। उ०—जेहि जिउ महँ होइ सत्त पहारू। परै पहार न बाँकै बारू।—जायसी।

पहुँची-संज्ञा स्त्री० [हिं० पहुँचा] (२) युद्ध-काल में कलाई पर, उसकी रक्षा के लिये, पहनने का लोहे का एक प्रकार का आवरण। उ०—सजे सनाहट पहुँची टोपा। लोहसार पहिरे सब ओपा।—जायसी।

पहुला†-संज्ञा पुं० [सं० प्रफुल्ल] कुमुदिनी। कोईं। उ०—पहुला हार हियैं लसै सन की बेंदी भाल। राखनि खेत खरे खरे उरोजनु बाल।—बिहारी।

पाँजरा-संज्ञा पुं० [?] वह मल्लाह जो मल्लाही में अनाड़ी हो। टंडी। फूली। (ऐसे अनाड़ियों को मल्लाह लोग पाँजरा कहते हैं।)

पाँडु-वि० स्त्री० [देश०] (१) (स्त्री) जिसके स्तन बिलकुल न हों या बहुत ही छोटे हों। (२) (स्त्री) जिसकी योनि बहुत छोटी हो और जो संभोग के योग्य न हो।

पाँसासार†-संज्ञा पुं० [हिं० पाँसा] चौपड़। उ०—पाँसासारि कुँवर सब खेलहिं गीतन सुवन ओनाहिं। चैन चाव तस देखा जनु गढ़ छेंका नाहिं।—जायसी।

पांसुधावक-संज्ञा पुं० [सं०] धूल साफ करनेवाला। सड़क या गली झाड़नेवाला। (कौ०)

पाइंट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) पानी, दूध आदि द्रव पदार्थ नापने का एक अँगरेजी मान जो डेढ़ पाव का होता है। डेढ़ पाव का एक पैमाना। (२) आधी या छोटी बोतल जिसमें प्रायः डेढ़ पाव जल या मदिरा आती है। अद्धा।

पाकनाॐ†-क्रि० अ० दे० "पकना"। उ०—कटहर डार पींड सन पाके। बड़हर सो अनूप अति ताके।—जायसी।

पाकसी-संज्ञा स्त्री० [अं० फॉक्स] लोमड़ी। (लश०)।

पाकाॐ†-वि० दे० "पक्का"।

पाकेट-संज्ञा पुं० [अं० पैकेट] (२) नियमित दिन को डाक, माल और यात्री लेकर रवाना होनेवाला जहाज। (लश०)

पाख†-संज्ञा पुं० [सं० पक्ष] पक्षी का पंख। डैना। पर।

पागर-संज्ञा पुं० [?] वह रस्सा जिससे मल्लाह नाव को खींच कर नदी के किनारे बाँधते हैं। गून। (लश०)

पाज-संज्ञा पुं० [?] पंक्ति। पाँती। कतार। (लश०)

पाट-संज्ञा पुं० [सं० पट] (१६) वस्त्र। कपड़ा।

पाटक संज्ञा पुं० [सं०] (१५) हल में का मठोतर जिसकी सहायता से हरिस में हल जुड़ा रहता है। यह मछली के आकार का होता है।

पाटा-संज्ञा पुं० [हिं० पाट] (३) वह हाथ डेढ़ हाथ ऊँची दीवार जो रसोई-घर में चौके के सामने और बगल में इसलिये बनाई जाती है कि बाहर बैठकर खानेवालों का पकानेवाली स्त्री से सामना न हो।

पाढ़तॐ-संज्ञा स्त्री० [हिं० पढ़ना] (२) पढ़ने की क्रिया या भाव।

पातरॐ†-वि० [हिं० पतला] [स्त्री० पातरी] जिसका शरीर दुर्बल हो। पतला। उ०—अंग अंग छबि की लपट उपटति जाति अछेह। खरी पातरीऊ तऊ लगै भरी सी देह।—बिहारी।

पादगोप-संज्ञा पुं० [सं०] पदाति, रथी, हस्ती तथा अश्वारोही सेना के संरक्षक। (कौ०)

पादपथ-संज्ञा पुं० [सं०] पगडंडी।

पादानुध्यात, पादानुध्यान-संज्ञा पुं० [सं०] छोटे की ओर से बड़े को पत्र लिखने में एक नम्रतासूचक शब्द जिसका व्यवहार लिखनेवाला अपने लिये करता था।

विशेष—प्रायः सामंत या जागीरदार महाराज को पत्र लिखने में इस शब्द का व्यवहार करते थे (गुप्तों के शिलालेख)। इसी प्रकार पुत्र पिता को पत्र लिखने में या कोई व्यक्ति अपने पूर्वज का उल्लेख करते समय अपने लिये इस शब्द का व्यवहार करता था।

पादिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चौथाई पण। (कौ०)

पानन-संज्ञा पुं० [देश०] साँदन नाम का मँझोले आकार का एक वृक्ष जिसकी लकड़ी से सजावट के सामान बनते हैं। वि० दे० "साँदन"।

पानीबेल-संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी+बेल] एक प्रकार की बड़ी लता जिसकी पत्तियाँ तीन से सात इंच तक लंबी होती हैं। गरमी के दिनों में इसमें ललाई लिए भूरे रंग के छोटे फूल लगते हैं और वर्षा ऋतु में यह फलती है। इसके फल खाए जाते हैं और जड़ का ओषधि के रूप में व्यवहार होता है। यह बुंदेलखंड, अवध और ग्वालियर के आस पास और विशेषतः साल के जंगलों में पाई जाती है। मूसल।

पानूसॐ-संज्ञा पुं० दे० "फानूस"। उ०—बाल छबीली तियनु

में बैठी आपु छिपाइ। अगट ही पानूस सी परगट होति छपाइ।—जायसी।

पापर—संज्ञा पुं० [अं० पॉपर] (१) मुफलिस आदमी। निर्धन व्यक्ति। (२) वह व्यक्ति जो मुफलिसी या निर्धनता के कारण दीवानी में बिना किसी प्रकार के अदालती रसूम या खर्च के किसी पर दावा दायर करने या मामला लड़ने की स्वीकृति पाता है।

विशेष—ऐसे व्यक्ति को पहले प्रमाणित करना पड़ता है कि मैं मुफलिस हूँ; दावा दायर करने या मामला लड़ने के लिये मेरे पास पैसा नहीं है। अदालत को विश्वास हो जाने पर वह उसे अदालती रसूम या खर्च से बरी कर देती है। पर हाँ, मामला जीतने पर उसे खर्च देना पड़ता है।

पायंटमैन—संज्ञा पुं० [अं० प्वायंट्समैन] वह आदमी जिसके जिम्मे रेलवे लाइन इधर से उधर करने या बदलने की कल रहती है।

पायकः†—संज्ञा पुं० [सं० पाद] पैर। पाँव। उ०—बादल केरि जसोवै माया। आइ गहेसि बादल कर पाया।—जायसी।

पायतख्त—संज्ञा पुं० [फा० पायः तख्त] राजनगर। राजधानी।

पारई†—संज्ञा स्त्री० [सं० पार] मिट्टी का बड़ा कसोरा। परई। उ०—मनि भाजन मधु पारई पूरन अमी निहारि। का छाँड़िय का संग्रहिय कहहु बिवेक बिचारि।—तुलसी।

पारतल्पिक—वि० [सं०] जो पराई स्त्री के साथ गमन करे। व्यभिचारी।

पारविषयिक—वि० [सं०] दूसरे राज्य का। विदेशी। (कौ०)

पारस—वि० [सं० स्पर्श] (२) जो किसी दूसरे को भी अपने ही समान कर ले। दूसरों को अपने जैसा बनानेवाला। उ०—पारस जोति लिलाटहि ओती। दिस्टि जो करै होइ तेहि जोती।—जायसी।

पारियातिक रथ—संज्ञा पुं० [सं०] वह रथ जो इधर उधर सैर करने के काम का होता था।

पारिहीणिक—संज्ञा पुं० [सं०] क्षतिपूर्ति। नुकसानी। हरजाने की रकम।

पारी—संज्ञा स्त्री० [फा० पा० ?] जहाज के मस्तूल के नीचे का भाग। (लश०)

पार्ट—संज्ञा पुं० [अं०] (१) नाटकांतर्गत कोई भूमिका या चरित्र जो किसी अभिनेता को अभिनय करने को दिया जाय। भूमिका। जैसे—उसने प्रतापसिंह का पार्ट बड़ी उत्तमता से किया। (२) हिस्सा। भाग। जैसे—आजकल वे सभा सोसाइटियों में पार्ट नहीं लेते। (३) (पुस्तक का) खंड। भाग। हिस्सा।

पार्टिशन संज्ञा पुं० [अं०] बाँटने या विभाग करने की क्रिया। किसी चीज के दो या अधिक भाग या हिस्से करना। विभाग। बँटवारा। जैसे—बङ्गाल पार्टिशन। पार्टिशन सूट।

पार्थिव आय—संज्ञा स्त्री० [सं०] जमीन की आमदनी। मालगुजारी। लगान।

पार्श्वकर—संज्ञा पुं० [सं०] बकाया मालगुजारी। पिछले साल की बाकी जमा।

पार्ष्णिग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] सेना को पीछे से दबोचनेवाला (शत्रु) या सहायता पहुँचानेवाला (मित्र)।

पार्ष्णि प्रति-विधान—संज्ञा पुं० [सं०] सेना के पिछले भाग की कमजोर पड़ने पर पुष्ट करना।

पालंग†—संज्ञा पुं० दे० "पलंग"। उ०—पालँग पाँव कि आछै पाटा। नेत बिछाव चलै जौ बाटा।—जायसी।

पाल—संज्ञा पुं० [?] तोप, बंदूक या तमंचे की नाल का घेरा या चक्कर। (लश०)

संज्ञा पुं० [सं०] (५) गोपाल। ग्वाला।

पालकः—संज्ञा पुं० [हिं० पलंग] पलंग। पर्यंक। उ०—औ पालक पौढ़े को माड़ी। सोवनहार परा बँदि गाड़ी।—जायसी।

पालिटिक्स—संज्ञा पुं० [अं०] (१) नीति शास्त्र का वह अंग जिसमें राष्ट्र या राज्य की शांति, सुव्यवस्था और सुखसमृद्धि के लिये नियम, कायदे और शासन-विधियाँ हों। राजनीति शास्त्र। (२) वह सब बातें जिनका राजनीति से सम्बन्ध हो। (३) अधिकार प्राप्ति के लिये राजनीतिक दलों की प्रतिद्वंद्विता।

पालिसी—संज्ञा स्त्री० [अं०] (२) वह प्रमाण या प्रतिज्ञापत्र जो बीमा करनेवाली कंपनी की ओर से बीमा करानेवाले को मिलता है, जिसमें लिखा रहता है कि अमुक शर्तें पूरी होने या बीच में अमुक दुर्घटना संघटित होने पर बीमा करानेवाले या उसके उत्तराधिकारी को इतना रुपया मिलेगा। वि० दे० "बीमा"।

यौ०—पालिसी-होल्डर।

पालिसी-होल्डर—संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसके पास किसी बीमा कंपनी की पालिसी हो। बीमा करानेवाला।

पासंजर—संज्ञा पुं० [अं० पैसेंजर] यात्री। मुसाफिर। (लश०)

पासपोर्ट—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का अधिकारपत्र या परवाना जो, एक देश से दूसरे देश को जाते समय, सरकार से प्राप्त करना पड़ता है और जिससे एक देश का मनुष्य दूसरे देश में संरक्षण प्राप्त कर सकता है। अधिकारपत्र। छूट पत्र।

विशेष—अनेक देशों में ऐसा नियम है कि उन देशों की सरकारों से पासपोर्ट या अधिकारपत्र प्राप्त किए बिना कोई विदेश नहीं जाने पाता। पासपोर्ट देना या न देना सरकार की इच्छा पर निर्भर है। अवांछनीय व्यक्तियों या राजनीतिक संदिग्धों को पासपोर्ट नहीं मिलता; क्योंकि इनसे अधिकारियों को आशंका रहती है कि ये विदेशों में जाकर सर-

कार के विरुद्ध काम करेंगे। हिंदुस्तान से बाहर जानेवालों को भी पासपोर्ट लेना पड़ता है।

(२) वह अधिकारपत्र या परवाना जो युद्ध के समय विरोधी देश के लोगों को अपने देश में निरापद पहुँचने के लिये दिया जाता है। (३) बिना नियमित कर या महसूल के विदेश से माल मँगाने या भेजने का प्रमाणपत्र या लाइसेंस।

पासवान–वि० [फा०] रक्षा करनेवाला। रक्षक।

संज्ञा स्त्री० रखेली स्त्री। रखनी। (राजपूता०)

पाहँ*–अव्य० [सं० पार्श्व] पास। समीप। निकट। उ०—मैं जानेउ तुम्ह मोहीं माहाँ। देखौं ताकि तौ हौ सब पाहाँ।—जायसी।

पिंडकर–संज्ञा पुं० [सं०] मुकर्रर मालगुजारी। स्थिर या नियत कर जैसा कि आजकल दवामी बंदोबस्तवाले प्रदेशों में है।

पिंडा–संज्ञा पुं० [देश०] करघे में पीछे की ओर लगी हुई एक खूँटी। वि० दे० "महतवान"।

पिअरवा†–संज्ञा स्त्री० [हिं० पिअरा = पीला] बरतन बनाने की पीले रंग की मिट्टी। (कुम्हार)

पिकेट–संज्ञा पुं० [अं०] (१) पल्टनियों का पहरा जो कहीं उपद्रव होने या उसकी आशंका होने पर उसे रोकने के लिये बैठाया जाता है। (२) किसी काम को रोकने के लिये दिया जानेवाला पहरा। धरना।

पिकेटिंग–संज्ञा स्त्री० [अं०] किसी बात को रोकने के लिये पहरा देना। धरना। जैसे,—स्वयंसेवक विदेशी वस्त्र की दूकानों के सामने पिकेटिंग कर रहे थे, इससे कोई ग्राहक नहीं आया।

पिक्चर–संज्ञा स्त्री० [अं०] चित्र। तस्वीर।

पिछाल–संज्ञा पुं० [हिं० पिछला] जहाज का पिछला भाग। (लश०)

पिट–संज्ञा पुं० [अं०] थियेटर में गैलरी के आगे की सीटें या आसन।

पिटपिटाना–क्रि० अ० [अनु०] असमर्थता आदि के कारण हाथ-पैर पटककर रह जाना। विवश होकर रह जाना।

पिटमान–संज्ञा पुं० [?] पाल। (लश०)

पिटौरा–संज्ञा पुं० [हिं० पीटना] वह डंडा या लाठी जिससे फसल की बालों आदि को पीटकर उसके दाने निकालते हैं। पिटना।

पिट्टन–संज्ञा स्त्री० [हिं० पीटना] रोने पीटने की क्रिया या भाव। पिटन।

क्रि० प्र०—पड़ना।

पिठमिल्ला–संज्ञा पुं० [हिं० पीठ + मिलना] अँगरखे या कोट आदि का वह भाग जो पीठ पर रहता है। पीठ।

पिठौरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० पिट्ठी + औरी (प्रत्य०)] (२) गुँधे हुए आटे का वह छोटा पेड़ा जो पकती हुई दाल में छोड़ दिया जाता है और उसी में उबलकर पक जाता है।

पिड़िया–संज्ञा स्त्री० [सं० पिंडक या हिं० पेड़ा] चावल का गुँधा हुआ आटा जो लंबोतरे पेड़े के आकार का बनाकर अदहन में छोड़ दिया जाता है और उबल जाने पर खाया जाता है।

पितिजिया–संज्ञा स्त्री० [सं पुत्रजीवक] इंगुदी की तरह का एक प्रकार का पेड़ जिसके पत्ते और फल भी इंगुदी के पत्तों और फलों से मिलते जुलते होते हैं। इसके बीजों की, रुद्राक्ष की तरह, माला बनती है। वैद्यक में इसे शीतल, वीर्यवर्द्धक, कफकारक, गर्भ और जीवदायक, नेत्रों को हितकारी, पित्त को शांत करनेवाला और दाह तथा तृषा को हरनेवाला कहा है। पितौंजिया। जियापोता।

पितौंजिया–संज्ञा स्त्री० [सं० पुत्रजीवक] पुत्रजीवक नामक वृक्ष। वि० दे० "पितिजिया"।

पित्ती–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की बेल जिसे रक्तवल्ली भी कहते हैं।

पिदारा†–संज्ञा पुं० [हिं पिदा] पिद्दी पक्षी का नर। पिद्दा। उ०—चकई चकवा और पिदारे। नकटा लेदी सोन सलारे।—जायसी।

पिपास–संज्ञा स्त्री० दे० "पिपासा"। उ०—छूटै सब सवनि के सुख क्षुत्पिपास।—केशव।

पिपियाना–क्रि० अ० [हिं पीब + इयाना (प्रत्य०)] पीब पड़ना। मवाद आना। जैसे,—फोड़े का पिपियाना।

क्रि० स० पीब उत्पन्न करना। मवाद पैदा करना। जैसे,—यह दवा फोड़े को पिपिया देगी।

पियामन–संज्ञा पुं० [देश०] राजजामुन नामक वृक्ष। वि० दे० "राजजामुन"।

पियाव बड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मिठाई जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पहले चावल को पकाकर सिल पर पीसते हैं, फिर गुलाब का अतर और पाँचों मेवे मिलाकर बड़े की तरह बनाते हैं। अनंतर घी में तलकर चाशनी में डाल देते हैं।

पिल–संज्ञा स्त्री० [अं०] (दवा की) गोली। बटी। जैसे,—क्विनाइन पिल। टानिक पिल।

पीक–संज्ञा पुं० [अं०] (२) कोना। (लश०)

वि० खड़ा। कायम। (लश०)

पीच–संज्ञा स्त्री० [अ० पिच] एक प्रकार की राल जो जहाज आदि में दरार भरने के काम में आती है। डामर। गीर। कील। (लश०)

पीठ–संज्ञा स्त्री० [सं० पृष्ठ] (२) रोटी का ऊपर का भाग। (३) जहाज का फर्श। (लश०)

पीठना†–क्रि० स० दे० "पीसना"। उ०—एक न आदी मरिच सों पीठा। दूसर दूध खाँड सों मीठा।—जायसी।

में बैठी आपु छिपाइ। अगट ही पानूस सी परगट होति लपाइ।—जायसी।

पॉपर—संज्ञा पुं० [अं० पॉपर] (१) मुफलिस आदमी। निर्धन व्यक्ति। (२) वह व्यक्ति जो मुफलिसी या निर्धनता के कारण दीवानी में बिना किसी प्रकार के अदालती रसूम या खर्च के किसी पर दावा दायर करने या मामला लड़ने की स्वीकृति पाता है।

विशेष—ऐसे व्यक्ति को पहले प्रमाणित करना पड़ता है कि मैं मुफलिस हूँ; दावा दायर करने या मामला लड़ने के लिये मेरे पास पैसा नहीं है। अदालत को विश्वास हो जाने पर वह उसे अदालती रसूम या खर्च से बरी कर देती है। पर हाँ, मामला जीतने पर उसे खर्च देना पड़ता है।

पायंटमैन-संज्ञा पुं० [अं० प्वाइंट्समैन] वह आदमी जिसके जिम्मे रेलवे लाइन इधर से उधर करने या बदलने की कल रहती है।

पायक्ष†—संज्ञा पुं० [सं० पाद] पैर। पाँव। उ०—बादल केरि जसोवै माथा। आइ गहेसि बादल कर पाया।—जायसी।

पायतख्त—संज्ञा पुं० [फा० पायः तख्त] राजनगर। राजधानी।

पारई†—संज्ञा स्त्री० [सं० पार] मिट्टी का बड़ा कसोरा। परई। उ०—मनि भाजन मधु पारई पूरन अमी निहारि। का छाँड़िय का संग्रहिय कहहु बिबेक बिचारि।—तुलसी।

पारतल्पिक—वि० [सं०] जो पराई स्त्री के साथ गमन करे। व्यभिचारी।

पारविषयिक—वि० [सं०] दूसरे राज्य का। विदेशी। (कौ०)

पारस—वि० [सं० स्पर्श] (२) जो किसी दूसरे को भी अपने ही समान कर ले। दूसरों को अपने जैसा बनानेवाला। उ०—पारस-जोति लिलारहि ओती। दिस्टि जो करै होइ तेहि जोती।—जायसी।

पारिपात्रिक रथ-संज्ञा पुं० [सं०] वह रथ जो इधर उधर सैर करने के काम का होता था।

पारिहीणिक-संज्ञा पुं० [सं०] क्षतिपूर्ति। नुकसानी। हरजाने की रकम।

पारी—संज्ञा स्त्री० [फा० पा० ?] जहाज के मस्तूल के नीचे का भाग। (लश०)

पार्ट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) नाटकांतर्गत कोई भूमिका या चरित्र जो किसी अभिनेता को अभिनय करने को दिया जाय। भूमिका। जैसे—उसने प्रतापसिंह का पार्ट बड़ी उत्तमता से किया। (२) हिस्सा। भाग। जैसे—आजकल वे सभा सोसाइटियों में पार्ट नहीं लेते। (३) (पुस्तक का) खंड। भाग। हिस्सा।

पार्टिशन संज्ञा पुं० [अं०] बाँटने या विभाग करने की क्रिया। किसी चीज के दो या अधिक भाग या हिस्से करना। विभाग। बँटवारा। जैसे—बंगाल पार्टिशन। पार्टिशन सूट।

पार्थिव आय-संज्ञा स्त्री० [सं०] जमीन की आमदनी। मालगुजारी। लगान।

पार्श्वकर-संज्ञा पुं० [सं०] बकाया मालगुजारी। पिछले साल की बाकी जमा।

पार्ष्णिग्राह-संज्ञा पुं० [सं०] सेना को पीछे से दबोचनेवाला (शत्रु) या सहायता पहुँचानेवाला (मित्र)।

पार्ष्णि प्रति-विधान-संज्ञा पुं० [सं०] सेना के पिछले भाग को कमजोर पड़ने पर पुष्ट करना।

पालंग†—संज्ञा पुं० दे० "पलंग"। उ०—पालँग पाँव कि आछै पाटा। नेत बिछाव चलै जौं बाटा।—जायसी।

पाल-संज्ञा पुं० [?] तोप, बंदूक या तमंचे की नाल का घेरा या चक्कर। (लश०)

संज्ञा पुं० [सं०] (५) गोपाल। ग्वाला।

पालकक्ष-संज्ञा पुं० [हिं० पलंग] पलंग। पर्यंक। उ०—औ पालक पौढ़ै को माढ़ी। सोवनहार परा बँदि गाढ़ी।—जायसी।

पालिटिक्स-संज्ञा पुं० [अं०] (१) नीति शास्त्र का वह अंग जिसमें राष्ट्र या राज्य की शांति, सुव्यवस्था और सुखसमृद्धि के लिये नियम, कायदे और शासन-विधियाँ हों। राजनीति शास्त्र। (२) वह सब बातें जिनका राजनीति से सम्बन्ध हो। (३) अधिकार-प्राप्ति के लिये राजनीतिक दलों की प्रतिद्वंद्विता।

पालिसी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (२) वह प्रमाण या प्रतिज्ञापत्र जो बीमा करनेवाली कंपनी की ओर से बीमा करानेवाले को मिलता है, जिसमें लिखा रहता है कि अमुक शर्तें पूरी होने या बीच में अमुक दुर्घटना संघटित होने पर बीमा करानेवाले या उसके उत्तराधिकारी को इतना रुपया मिलेगा। वि० दे० "बीमा"।

यौ०—पालिसी-होल्डर।

पालिसी-होल्डर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसके पास किसी बीमा कंपनी की पालिसी हो। बीमा करानेवाला।

पासंजर-संज्ञा पुं० [अं० पैसेंजर] यात्री। मुसाफिर। (लश०)

पासपोर्ट-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का अधिकारपत्र या परवाना जो, एक देश से दूसरे देश को जाते समय, सरकार से प्राप्त करना पड़ता है और जिससे एक देश का मनुष्य दूसरे देश में संरक्षण प्राप्त कर सकता है। अधिकार-पत्र। छूट पत्र।

विशेष—अनेक देशों में ऐसा नियम है कि उन देशों की सरकारों से पासपोर्ट या अधिकारपत्र प्राप्त किए बिना कोई विदेश नहीं जाने पाता। पासपोर्ट देना या न देना सरकार की इच्छा पर निर्भर है। अवांछनीय व्यक्तियों या राजनीतिक संदिग्धों को पासपोर्ट नहीं मिलता; क्योंकि इनसे अधिकारियों को आशंका रहती है कि ये विदेशों में जाकर सर-

कार के विरुद्ध काम करेंगे। हिंदुस्तान से बाहर जानेवालों को भी पासपोर्ट लेना पड़ता है। (२) वह अधिकारपत्र या परवाना जो युद्ध के समय विरोधी देश के लोगों को अपने देश में निरापद पहुँचने के लिये दिया जाता है। (३) बिना नियमित कर या महसूल के विदेश से माल मँगाने या भेजने का प्रमाणपत्र या लाइसेंस।

पासबान–वि० [फा०] रक्षा करनेवाला। रक्षक।

संज्ञा स्त्री० रखेली स्त्री। रखनी। (राजपूता०)

पाहूँ*–अव्य० [सं० पार्श्व] पास। समीप। निकट। उ०—मैं जानेउ तुम्ह मोहीं माहाँ। देखौं ताकि तौ हौं सब पाहाँ।—जायसी।

पिंडकर–संज्ञा पुं० [सं०] मुकर्रर मालगुजारी। स्थिर या नियत कर जैसा कि आजकल दवामी बंदोबस्तवाले प्रदेशों में है।

पिंडा–संज्ञा पुं० [देश०] करघे में पीछे की ओर लगी हुई एक खूँटी। वि० दे० "महतवान"।

पिअरवा†–संज्ञा स्त्री० [हिं० पिअरा = पीला] बरतन बनाने की पीले रंग की मिट्टी। (कुम्हार)

पिकेट–संज्ञा पुं० [अं०] (१) पल्टनियों का पहरा जो कहीं उपद्रव होने या उसकी आशंका होने पर उसे रोकने के लिये बैठाया जाता है। (२) किसी काम को रोकने के लिये दिया जानेवाला पहरा। धरना।

पिकेटिंग–संज्ञा स्त्री० [अं०] किसी बात को रोकने के लिये पहरा देना। धरना। जैसे,—स्वयंसेवक विदेशी वस्त्र की दूकानों के सामने पिकेटिंग कर रहे थे; इससे कोई ग्राहक नहीं आया।

पिक्चर–संज्ञा स्त्री० [अं०] चित्र। तस्वीर।

पिच्छल–संज्ञा पुं० [हिं० पिछला] जहाज का पिछला भाग। (लश०)

पिट–संज्ञा पुं० [अं०] थियेटर में गैलरी के आगे की सीटें या आसन।

पिटपिटाना–क्रि० अ० [अनु०] असमर्थता आदि के कारण हाथ-पैर पटककर रह जाना। विवश होकर रह जाना।

पिटमाम–संज्ञा पुं० [?] पाल। (लश०)

पिटौर†–संज्ञा पुं० [हिं० पीटना] वह डंडा या लाठी जिससे फसल की बालों आदि को पीटकर उसके दाने निकालते हैं। पिटना।

पिट्टन–संज्ञा स्त्री० [हिं० पीटना] रोने पीटने की क्रिया या भाव। पिटस।

क्रि० अ०—पड़ना।

पिठमिल्ला–संज्ञा पुं० [हिं० पीठ + मिलना] अँगरखे या कोट आदि का वह भाग जो पीठ पर रहता है। पीठ।

पिठौरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० पिट्ठी + औरी (प्रत्य०)] (२) गुँधे हुए आटे का वह छोटा पेड़ा जो पकती हुई दाल में छोड़ दिया जाता है और उसी में उबलकर पक जाता है।

पिड़िया–संज्ञा स्त्री० [सं० पिष्टक या हिं० पेड़ा] चावल का गुँधा हुआ आटा जो लंबोतरे पेड़े के आकार का बनाकर अदहन में छोड़ दिया जाता है और उबल जाने पर खाया जाता है।

पितिजिया–संज्ञा स्त्री० [सं पुत्रजीवक] इंगुदी की तरह का एक प्रकार का पेड़ जिसके पत्ते और फल भी इंगुदी के पत्तों और फलों से मिलते जुलते होते हैं। इसके बीजों की, रुद्राक्ष की तरह, माला बनती है। वैद्यक में इसे शीतल, वीर्यवर्द्धक, कफकारक, गर्भ और जीवदायक, नेत्रों को हितकारी, पित्त को शांत करनेवाला और दाह तथा तृषा को हरनेवाला कहा है। पितौजिया। जियापोता।

पितौंजिया–संज्ञा स्त्री० [सं० पुत्रजीवक] पुत्रजीवक नामक वृक्ष। वि० दे० "पितिजिया"।

पित्ती–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की बेल जिसे रक्त मल्ली भी कहते हैं।

पिदारा†–संज्ञा पुं० [हि पिदा] पिद्दी पक्षी का नर। पिद्दा। उ०—चकई चकवा और पिदारे। नकटा लेदी सोन सलारे।—जायसी।

पिपास–संज्ञा स्त्री० दे० "पिपासा"। उ०—छूटे सब सबनि के सुख क्षुत्पिपास।—केशव।

पिपियाना–क्रि० अ० [हि पीप + इयाना (प्रत्य०)] पीप पड़ना। मवाद आना। जैसे,—फोड़े का पिपियाना।

क्रि० स० पीप उत्पन्न करना। मवाद पैदा करना। जैसे,—यह दवा फोड़े को पिपिया देगी।

पियामन–संज्ञा पुं० [देश०] राजजामुन नामक वृक्ष। वि० दे० "राजजामुन"।

पियाव बड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मिठाई जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पहले चावल को पकाकर सिल पर पीसते हैं, फिर गुलाब का अतर और पाँचों मेवे मिलाकर बड़े की तरह बनाते हैं। अनंतर घी में तलकर चाशनी में डाल देते हैं।

पिल–संज्ञा स्त्री० [अं०] (दवा की) गोली। बटी। जैसे,—विचनाइन पिल। टानिक पिल।

पीक संज्ञा पुं० [अं०] (३) कोना। (लश०)

वि० खड़ा। कायम। (लश०)

पीछ–संज्ञा स्त्री० [अं० पिच] एक प्रकार की राल जो जहाज आदि में दरार भरने के काम में आती है। डामर। गीर। कील। (लश०)

पीठ–संज्ञा स्त्री० [सं० पृष्ठ] (२) रोटी का ऊपर का भाग। (३) जहाज का फर्श। (लश०)

पींठना†–क्रि० स० दे० "पीसना"। उ०—एक न आदि मरिच सों पींठा। दूसर दूध खाँड़ सों मीठा।—जायसी।

पीठिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) तामदान। डाँड़ी। (कौ०)
पीनल कोड-संज्ञा पुं० [अं० पेनल कोड] अपराध और दंड संबंधी व्यवस्थाओं या कानूनों का संग्रह। दंडविधि। ताजीरात। जैसे,—इंडियन पीनल कोड।
पीयूषभानु-संज्ञा पुं० [सं० पीयूष + भानु] चंद्रमा। उ०—बीछन जुन्हाई भई ग्रीषम को धामु, भयो मौसम पीयूषभानु, भानु दुपहर को।—मतिराम।
पीलसोज़-संज्ञा पुं० [फा० पतीलसोज़] दीया जलाने की दीवट। चिरागदान। उ०—पीलसोज फानूस कुप्पी निखटी सुमसालैं।—सूदन।
पीय-संज्ञा पुं० [हिं० पिय] पिय। पति। स्वामी। उ०—हरि मोर पिव मैं राम की बहुरिया।—कबीर।
पीसगुड-संज्ञा पुं० [अं० पीसगुड्ज़] (कपड़े का) थान। रेजा। जैसे,—पीस गुड्ज के व्यापारी।
पुंदल-संज्ञा पुं० [?] जहाज के मस्तूल का पिछला भाग। (लश०)
पुखर-संज्ञा पुं० [सं० पुष्कर, प्रा० पुक्खर] तालाब। पोखरा। उ०—भरहिं पुखर औ ताल तलावा।—जायसी।
पुख्य-संज्ञा पुं० दे० "पुष्य"।
पुगना-क्रि० अ० दे० "पुगना"।
पुट-संज्ञा पुं० [सं०] (१०) पोटली या पैकेट जिस पर मुहर की जाती थी। (कौ०)
पुठवार-क्रि० वि० [हिं० पुट्ठा] पीछे। बगल में। उ०—तुम सैन सजै पुठवार रहौ अब आयसु देहु न और सहौ। हम जाय जुरैं पहले उन सौं तुम गौर करौ लखि लोह बहौ।—सूदन।
पुतला-संज्ञा पुं० [सं० पुत्तल] (२) जहाज के आगे का पुतला या तस्वीर। (लश०)
पुनी⊛-क्रि० वि० [सं० पुनः] पुनः। फिर। उ०—मानस वचन काय किए पाप सति भाय राम को कहाय दास दगाबाज पुनी सो।—तुलसी।
पुर-संज्ञा पुं० [देश०] कूएँ से पानी निकालने का चमड़े का डोल। चरसा।
पुरस्ताल्लाभ-संज्ञा पुं० [सं०] वह लाभ जो चढ़ाई करने पर प्राप्त हो। (कौ०)
पुरहा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की लता जिसकी पत्तियाँ गोलाकार और ५-६ इंच चौड़ी होती हैं। यह हिमालय में सब जगह ७००० फुट तक की ऊँचाई पर पाई जाती है। कहीं कहीं इसकी जड़ का व्यवहार ओषधि रूप में भी होता है।
पुरही-संज्ञा स्त्री० [देश०] हरजेवड़ी नाम की झाड़ी जिसकी पत्तियाँ और जड़ औषध रूप में काम में आती हैं। दाख-निरबिसी।
पुराण-चौर-व्यंजन-संज्ञा पुं० [सं०] वे गुप्तचर जो पुराने चोर डाकुओं के वेष में रहते थे। (कौ०)
विशेष-ये लोग चोरों बदमाशों के अड्डों और शत्रु के पक्षवालों की मण्डली आदि का पता रखते थे और समाहर्त्ता के अधीन काम करते थे।
पुराणपण्य-संज्ञा पुं० [सं०] पुराना माल। (कौ०)
पुराणभांड-संज्ञा पुं० [सं०] अंगड़ खंगड़। पुराना माल असबाब। (कौ०)
पुरिया-संज्ञा पुं० दे० "पुरखा"। उ०—(क) लक्ष्मण के पुरिखान कियो पुरुषारथ सो न कह्यो परई।—केशव। (ख) जिनके पुरिखा भुव गंगहि लाये। नगरी शुभ स्वर्ग सदेह सिधाये।—केशव।
पुरुष संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो शत्रु कुछ योग्य पुरुषों को अपनी सेवा के लिये लेकर करे।
विशेष-कौटिल्य ने लिखा है कि यदि ऐसी अवस्था आ पड़े तो राजा शत्रु को इस प्रकार के लोग दे—राजद्रोही, जंगली, अपने यहाँ के अपमानित सामंत आदि। इससे राजा का इनसे पीछा भी छूट जायगा और ये शत्रु के यहाँ जाकर मौका पाकर उसकी हानि भी करेंगे।
पुरुषांतर संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] इस शर्त पर की हुई संधि कि आपका सेनापति मेरा अमुक काम करे और मेरा सेनापति आपका अमुक काम कर देगा। (कामंदक)
पुरुषापाश्रया-संज्ञा स्त्री० [सं०] घनी आबादीवाली भूमि। वि० दे० "दुर्गापाश्रया"।
पुरुषोपस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] अपने स्थान पर किसी दूसरे व्यक्ति को काम करने के लिये देना। एवज देना।
पुरुष-प्रेक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मरदाना मेला तमाशा। वह खेल तमाशे जिनमें पुरुष ही जा सकते हों।
पुरुषभोग-वि० [सं०] (वह राष्ट्र या राजा) जिसके पास सेना या आदमी बहुत हों।
पुरुषायित बंध-संज्ञा पुं० [सं०] कामशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का बंध या स्त्री-संभोग का एक प्रकार जिसमें पुरुष नीचे चित्त लेटता है और स्त्री उसके ऊपर पट लेट कर संभोग करती है। इसके कई भेद कहे गए हैं। साहित्य में इसी को विपरीत रति कहा है।
पुरोग-संज्ञा पुं० [सं०] वह (राष्ट्र या राजा) जो बिना किसी प्रकार की बाधा या शर्त के अपने पक्ष में आकर मिले। (कौ०)
पुल सरात-संज्ञा पुं० [फा० पुल + अ० सरात] मुसलमानों के अनुसार (हिन्दुओं की वैतरणी की भाँति) एक नदी का पुल जिसे मरने के उपरांत जीवों को पार करना पड़ता है। कहते हैं कि पापियों के लिये यह पुल बाल के समान पतला और पुण्यात्माओं के लिये खासी सड़क के समान चौड़ा हो

जाना है। उ०—नासिक पुल-सरात पथ चला। तेहि कर भौंहैं हैं दुइ पला।—जायसी।

पुलहनाॐ–क्रि० अ० दे० "पलुहना"। उ०—तोहि देखे, पिउ! पलुहै कया। उमरा चित्त, बहुरि कइ मया।—जायसी।

पुलाग–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसके पत्ते फरेंदे के पत्ते की तरह और फल गोल होते हैं जिनमें से गिरी निकलती है। इससे तेल निकलता है। यह वृक्ष उड़ीसे में होता है।

पुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१२) नाटक में कोई ऐसी बात कहना जो विशेष रूप से प्रेम या अनुराग उत्पन्न करनेवाली हो। जैसे,—"यह साक्षात् लक्ष्मी है। इसकी हथेली पारिजात के नवदल हैं, नहीं तो पसीने के बहाने इसमें से अमृत कहाँ से टपकता।"

पुष्पगंडिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] लास्य के दस अंगों में से एक। बाजे के साथ अनेक छंदों में स्त्रियों द्वारा पुरुषों का और पुरुषों द्वारा स्त्रियों का अभिनय और गान। (नाट्यशास्त्र)

पुहपॐ–संज्ञा पुं० [सं० पुष्प] पुष्प। फूल। उ०—सुरपुर नय हरये, पुहपनि बरपे दुंदुभि दीह बजाये।—केशव।

पूँजीदार–संज्ञा पुं० दे० "पूँजीपति"।

पूँजीपति–संज्ञा पुं० [हिं पूँजी + सं० पति] वह मनुष्य जिसके पास धन हो। वह जिसके पास अधिक धन हो, जिसने उसे किसी काम में लगाया हो अथवा जिसे वह किसी काम में लगावे। पूँजीदार।

पूखन-संज्ञा पुं० दे० "पोषण" उ०—भजे न दूखन कोय छिनहिं दिन पूखन होइ।—सुधाकर।

पूग–संज्ञा पुं० [सं०] (९) किसी विशेष कार्य्य के लिये बना हुआ संघ। कंपनी।

विशेष–काशिका में कहा गया है कि भिन्न जातियों के लोग आर्थिक उद्देश्य से जिस संघ में काम करें, वह पूग कहलाता है। जैसे शिल्पियों या व्यापारियों का पूग। याज्ञवल्क्य ने इस शब्द को एक स्थान पर बसनेवाले भिन्न भिन्न जाति के लोगों की सभा के अर्थ में लिया है।

पूगना–क्रि० अ० [हिं० पूजना] पूरा होना। पूजना। जैसे,—मिती पूगना। उ०—संकट समाज असमंजस में रामराज काज जुग पूगनि को करतल पल भो।—तुलसी।

पूर–संज्ञा पुं० [हिं० पूला] (१) घास आदि का बँधा हुआ मुट्ठा। पूला। पूलक। (२) फसल की उपज की तीन बराबर बराबर राशियाँ जिनमें से एक जमींदार और दो तिहाई काश्तकार लेता है। तिकुर। तीकुर। (३) बैलगाड़ी के अगल बगल का रस्सा।

पूर्णकाल आधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गिरवी जिसके रखने का समय पूरा हो गया हो।

पूला–संज्ञा पुं० [सं० पूलक] (२) एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो देहरादून और सहारनपुर के आस पास के जंगलों में पाया जाता है। वसंत ऋतु में इसकी सब पत्तियाँ झड़ जाती हैं। इसकी छाल के भीतरी भाग के रेशों से रस्से बनाए जाते हैं। इसकी पत्तियों का व्यवहार ओषधि रूप में होता है और इसकी छाल से चीनी साफ की जाती है।

पूली–संज्ञा स्त्री० [हिं० पूला] पूला नामक वृक्ष जिसके रेशों से रस्से बनते हैं। वि० दे० "पूला"।

पेंच का घाट–संज्ञा पुं० [हिं० पेंच + घाट] जहाजों के ठहरने का पक्का घाट। (लश०)

पेंटर–संज्ञा पुं० [अं०] (१) चित्रकार। मुसव्विर। (२) रंग भरनेवाला। रंग-साज।

पेंटिंग–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) चित्रकारी। मुसव्वरी। (२) रंग भरने का काम। रंगसाजी।

पेंडुलम–संज्ञा पुं० [अं०] दीवार में लगानेवाली घड़ी में हिलने-वाला टुकड़ा जो उसकी गति का नियंत्रण करता है। घड़ी का लटकन। लंगर।

पेंहटुला–संज्ञा पुं० [हिं० पेठा] (१) कचरी या पेठा नामक लता। (२) इस लता का फल जो कुँदरू के आकार का होता है और जिसकी तरकारी तथा कचरी बनती है। वि० दे० "कचरी" (१)।

पे–संज्ञा स्त्री० [अं०] तनख्वाह। वेतन। महीना। जैसे,–इस महीने की पे तुम्हें मिल गई?

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।

पेग–संज्ञा पुं० [अं०] उतनी शराब जितनी एक बार में सोडा-वाटर डालकर पीते हैं। शराब का गिलास। शराब का प्याला। जैसे,–एक ओर साहब लोग बैठे हुए पेग पर पेग उड़ा रहे थे।

पेज–संज्ञा पुं० [अं०] (२) सेवक। अनुचर। विशेषकर बालक अनुचर जो किसी पद मर्यादावाले या ऐश्वर्यशाली व्यक्ति की सेवा में रहता है। जैसे,—दिल्ली दरबार के अवसर पर दो देशी नरेशों के पुत्रों को महाराज जार्ज के 'पेज' बनने का सम्मान प्रदान किया गया था जो महाराज का जामा पीछे से उठाए हुए चलते थे। (३) वह बालक या युवा व्यक्ति जो किसी व्यवस्थापिका परिषद् के अधिवेशन में सदस्यों और अधिकारियों की सेवा में रहता है।

पेट–संज्ञा पुं० [हिं० पेट] रोटी का वह पार्श्व जो पहले तवे पर डाला जाता है।

पेट्रन–संज्ञा पुं० [अं०] संरक्षक। पृष्ठ-पोषक। सरपरस्त। जैसे,–वे सभा के पेट्रन हैं।

पेनशनिया–संज्ञा पुं० [अं० पेन्शन] वह जिसे पेन्शन मिलती हो। पेन्शन पानेवाला। पेन्शनर।

पेन्स–संज्ञा पुं० [अं०] 'पेनी' का बहुवचन। वि० दे० "पेनी"।
पेपर–संज्ञा पुं० [अं०] (४) वह छपा हुआ पत्र या पर्चा जिसमें परीक्षार्थियों से एक या अधिक प्रश्न किए गए हों। प्रश्नपत्र। जैसे,—इस बार मैट्रिक्युलेशन का अँगरेजी का पेपर बहुत कठिन था। (५) प्रामेसरी नोट। सरकारी कागज। जैसे,—गवर्नमेंट पेपर। (६) लेख। निबंध। प्रबंध।
पेमा–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो ब्रह्मपुत्र, गंगा और इरावदी (बरमा) तथा बंबई के जलाशयों में पाई जाती है। इसकी लंबाई ८ इंच होती है।
पेमेंट–संज्ञा पुं० [अं०] मूल्य या देना चुकाना। बेबाकी। भुगतान। जैसे,—(क) तीन तारीख हो गई, अभी तक पेमेंट नहीं हुआ। (ख) बैंक ने पेमेंट बन्द कर दिया।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
पेश–संज्ञा पुं० [सं० पेशस्] वैदिक काल का लहँगे की तरह का एक प्रकार का पहनावा जो नाचने के समय पहना जाता था और जिसमें मुनहला काम बना होता था।
पैंत–संज्ञा स्त्री० [सं० पणकृत] (२) जूआ खेलने का पाँसा। उ०—प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु विधि बस सुढर ढरे हैं।—तुलसी।
पैंफलेट–संज्ञा पुं० [अं०] कुछ पन्नों की छोटी सी पुस्तक, जिसमें किसी सामयिक विषय पर विचार किया गया हो। पुस्तिका। पर्चा।
पैक्ट–संज्ञा पुं० [अं०] दो पक्षों में किसी विषय पर होनेवाला कौल करार। प्रण। शर्त। जैसे,—बंगाल का हिंदू-मुसलिम पैक्ट।
पैगोडा–संज्ञा पुं० [बरमी] बौद्ध मंदिर।
पैड–संज्ञा पुं० [अं०] (१) सोख्ता या स्याही-सोख कागज की गद्दी। (२) छोटी मुलायम गद्दी। जैसे इंक पैड।
पैरा–संज्ञा पुं० [अं० पैराग्राफ] (२) टिप्पणी। छोटा नोट। जैसे,—संपादक ने इस विषय पर एक पैरा लिखा है।
पैराऊ–संज्ञा पुं० दे० "पैराव"। उ०—धरती बरसे बादल भीजै भीट भया पैराऊ। हंस उड़ाने ताल सुखाने चहले बीधा पाऊ।—कबीर।
पोंट–संज्ञा पुं० [अं० प्वाइंट] अंतरीप। (लश०)
पोंटा–संज्ञा पुं० [अं० प्वाइंट] रस्से का सिरा या छोर। (लश०)
पोपो†–संज्ञा स्त्री० [अनु०] मलत्याग करने की इन्द्रिय। गुदा।
पोर–संज्ञा पुं० [?] जहाज की रखवाली या चौकसी करनेवाले कर्मचारी या मल्लाह। (लश०)
पोर्ट–संज्ञा पुं० [अं०] (२) समुद्र या नदी के किनारे वह स्थान जहाँ जहाज माल उतारने या लादने या मुसाफिर उतारने या चढ़ाने के लिये बराबर आकर ठहरते हैं। बन्दर। बंदरगाह। जैसे,—कलकत्ता पोर्ट। (३) समुद्र के किनारे, खाड़ी या नदी के मुहाने पर बना हुआ या प्राकृत स्थान जहाँ जहाज तूफान से अपनी रक्षा कर सकते हैं।
पोर्टर–संज्ञा पुं० [अं०] वह जो बोझ ढोता हो। विशेषकर रेलवे स्टेशन और जहाज के डक पर मुसाफिरों का माल असबाब ढोनेवाला। रेलवे कुली। डक-कुली। जैसे—उस दिन बम्बई के विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन के पोर्टरों में गहरी मारपीट हो गई।
पोल–संज्ञा पुं० [अं०] (१) लकड़ी या लोहे आदि का बड़ा लट्ठा या खंभा। (२) जमीन की एक नाप जो ५॥ गज की होती है। (३) ५॥ गज की जरीब जिससे जमीन नापते हैं। (४) ध्रुव।
पोलिंग बूथ–संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ कौन्सिल आदि के निर्वाचन या चुनाव के अवसर पर वोट लिए जाते हैं।
पोलिंग स्टेशन–संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ कौन्सिल म्युनिसिपल निर्वाचन के अवसर पर लोगों के वोट लिए और दर्ज किए जाते हैं।
पोवना–क्रि० स० दे० "पोना"। उ०—अपने हग कोरनि डोरनि में मन को मनुका मनु पोवतु है।—अनुरागबाग।
पोसपोन–वि० दे० "पोस्टपोन"।
पोस्टपोन–वि० [अं० पोस्टपोन्ड] जो कुछ समय के लिये रोक दिया गया हो। जिसका समय बढ़ा दिया गया हो। मुलतवी। स्थगित। जैसे—मामला पोस्टपोन हो गया।
पोस्टर–संज्ञा पुं० [अं०] छपी हुई बड़ी नोटिस या विज्ञापन जो दीवारों पर चिपकाया जाता है। प्लैकर्ड। जैसे,—सेवा समिति ने शहर भर में पोस्टर लगवा दिए थे जिसमें यात्रियों को धूर्तों से सावधान रहने को कहा गया था।
क्रि० प्र० चिपकना।—चिपकाना।—लगाना।—लगाना।
पौतव–संज्ञा पुं० [सं०] बिक्री का माल तौलनेवाला। बया। डंडीदार। (कौ०)
पौतवाध्यक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] माल की तौल की निगरानी रखनेवाला अधिकारी। (कौ०)
पौतवापचार–संज्ञा पुं० [सं०] उचित से कम तौलना। डंडी मारना। (कौ०)
पौरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० पैर] सीढ़ी। पैड़ी। उ०—का बरनौं अस ऊँच तुखारा। दुइ पौरी पहुँचे असवारा।—जायसी।
† संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँवरि] खड़ाऊँ। उ०—पाँयन लेहु सम पौरी। काँट धँसे न गड़े अँकरौरी।—जायसी।
पौर्वापौरुषिक–वि० [सं०] वंशपरंपरागत। पुश्तैनी।
पौधा–संज्ञा पुं० [हिं० पात] (३) २६२ ढोली पान। (तंबोली)
पौसरा–संज्ञा पुं० [हिं० पय + शाला] वह स्थान जहाँ सर्व साधारण को धर्मार्थ जल पिलाया जाता है। प्याऊ। सबील।
प्वाजी–संज्ञा पुं० [देश०] काले रंग का एक प्रकार का दाना जो

हिंदी-शब्दसागर

अर्थात्

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

सहायक संपादक

रामचंद्र शुक्ल   रामचंद्र वर्मा

भगवानदीन

प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा

[illegible]

प्रायः गेहूँ के साथ उत्पन्न होता और उसी के दानों के साथ मिल जाता है। भुनभुना। वि० दे० "भुनभुना"।

प्युनिटिव पुलिस—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह अतिरिक्त पुलिस दल जो किसी नगर या गाँव में, वहाँवालों के दुष्ट आचरण अर्थात् नित्य उपद्रव आदि करने के कारण, निर्दिष्ट अवधि के लिये तैनात किया जाता है और जिसका खर्च गाँव-वालों से ही दंड स्वरूप लिया जाता है।

प्यौरड़—संज्ञा पुं० [हिं० पिय] (१) पति। स्वामी। (२) प्रियतम। उ०—इम हारी कै कै हहा पाइनु पार्यौ प्यौरु। लेहु कहा अजहूँ किए तेह तरेर्यौ त्यौरु।—बिहारी।

प्रकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रासंगिक कथावस्तु के दो भेदों में से एक। वह कथावस्तु जो थोड़े काल तक चल कर रुक जाती या समाप्त हो जाती है। (प्रासंगिक कथावस्तु का दूसरा भेद "पताका" है।)

प्रकासना—क्रि० स० [सं० प्रकाश] प्रकाश करना। प्रकट करना। जाहिर करना। उ०—सुनि उदय सब बात प्रकासी। तुम बिन दुखित रहत ब्रजवासी।—विश्राम।

प्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) राजा, अमात्य जनपद, दुर्ग, कोश, दंड और मित्र इन सात अंगों से युक्त राष्ट्र या राज्य।

विशेष—इसी को शुक्रनीति में 'सप्तांग राज्य' कहा है। उसमें राजा को सिर से, अमात्य को आँख से, मित्र को कान से, कोश को मुख से, दंड या सेना को भुजा से, दुर्ग को हाथ से और जनपद को पैर से उपमा दी गई है।

(५) राज्य के अधिकारी कार्यकर्त्ता जो आठ कहे गए हैं। वि० दे० "अष्ट-प्रकृति"।

प्रकोपक—संज्ञा पुं० [सं०] किसी भूमि या धन का धर्मात्मा के हाथ से अधर्मी के हाथ में जाना। अधर्मी का लाभ (जिससे जनता को खेद या रोष हो)।

प्रच्छ—वि० [सं० पृच्छक] पूछनेवाला। प्रश्नकर्त्ता। उ०—करत कलहंस कोकिल क्षीरनिधि छवि प्रच्छ हिमगिरि प्रभा प्रभु प्रगट पुनीत है।—केशव।

प्रघात—संज्ञा पुं० [सं०] (३) पानी बहने का नल।

प्रचार कार्य—संज्ञा पुं० [सं०] व्याख्यानों, उपदेशों, पुस्तिकाओं, और विज्ञापनों आदि के द्वारा किसी मत या सिद्धांत के प्रचार करने का ढंग या काम। प्रोपेगंडा। जैसे,—हिंदू महासभा की ओर से हरिहर क्षेत्र के मेले में बहुत अच्छा प्रचार कार्य हुआ।

प्रच्छालन—संज्ञा पुं० दे० "प्रक्षालन"।

प्रच्छेदक—संज्ञा पुं० [सं०] लास्य के दस अंगों में से एक। प्रियतम को अन्य नायिका में आसक्त जानकर प्रेम-विच्छेद के अनुताप से मद-हृदया नायिका का वीणा के साथ गाना। (नाट्यशास्त्र)

प्रजातंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शासन-व्यवस्था जिसमें कोई राजा न होता हो, बल्कि राज्य-परिचालन के लिये कोई एक व्यक्ति चुन लिया जाता हो। ऐसी व्यवस्था में उस चुने हुए व्यक्ति को प्रायः राजा के समान अधिकार प्राप्त होते हैं, और वह प्रजा की चुनी हुई किसी सभा या समिति आदि की सहायता से कुछ निश्चित समय तक शासन का सब प्रबंध करता है। गणतंत्र।

प्रजासत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शासन व्यवस्था जिसमें किसी देश के निवासियों या प्रजा के चुने हुए प्रतिनिधि ही शासन और न्याय आदि का सारा प्रबंध करते हैं। प्रजा द्वारा संचालित राज्य-प्रबंध।

प्रज्ञापनपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जो प्राचीन काल में राजा की ओर से याज्ञिकों या ऋत्विजों को बुलाने के लिये भेजा जाता था। (शुक्रनीति)

प्रतिपात—संज्ञा पुं० [सं०] किसी क्षति की पूर्ण पूर्ति। नुकसान का पूरा बदला या हरजाना। (कौ०)

प्रतिपादन मान—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक वेतन या जागीर आदि देकर प्रतिष्ठा बढ़ाना। (कौ०)

प्रतिबल—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु सेना के भिन्न भिन्न अंगों का सामना करने की शक्ति या सामान।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि हस्तिसेना का मुकाबला करनेवाली हस्तियंत्र, शकट गर्भ, कुंत, प्रास, शल्य आदि से युक्त सेना है। जिस सेना में पाषाण, लगुड़ (लाठियाँ), कवच, कचग्रहणी आदि अधिक हों, वह रथ-सेना के मुकाबले के लिये ठीक है; इत्यादि।

प्रतिलोम—संज्ञा पुं० [सं०] (२) 'उपाय' में बताई हुई युक्तियों से उलटी युक्ति जिसके कौटिल्य ने १५ भेद बतलाए हैं। (कौ०)

प्रतिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१६) वह उपहार जो वर का बड़ा भाई वधू को देता है।

प्रतिहत—वि० [सं०] (६) अपने शत्रु के द्वारा पीछे हटाया हुआ (सैन्य)।

विशेष—कौटिल्य ने प्रतिहत सेना को हताप्रवेग सेना से अच्छा कहा है, क्योंकि यह छिन्न भिन्न भाग को फिर से जोड़ कर युद्ध के योग्य हो सकती है।

प्रतिहारक—संज्ञा पुं० [सं०] (३) बुलावा देनेवाला या आमंत्रण करनेवाला राज्याधिकारी।

विशेष—शुक्रनीति में लिखा है कि जो मनुष्य शस्त्र-अस्त्र चलाने में कुशल हो, दृढ़ांग हो, आलसी न हो और जो नम्र होकर दूसरों को बुला सके, वह इस पद के योग्य होता है।

प्रतीकार संधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो उपकार के बदले में उपकार करने की शर्त करके की जाय; जैसी राम और सुग्रीव के बीच हुई थी। (कामन्दकीय)

प्रतोली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (६) किले के नीचे होकर जानेवाला रास्ता ।

प्रत्यभियोग-संज्ञा पुं० [सं०] वह अभियोग जो अभियुक्त अभियोग चलानेवाले पर चलावे । मुद्दालेह का मुद्दई पर भी दावा करना । (कौ०)

प्रत्ययाधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गिरवी या रेहन जो रुपया वसूल होने के इतमीनान या साख के लिये रखा जाय ।

प्रत्यय प्रतिभू-संज्ञा पुं० [सं०] वह जमानतदार जो किसी को महाजन से यह कह कर कर्ज दिलावे कि "मैं इसे जानता हूँ; यह बड़ा ईमानदार, साधु और विश्वास करने के योग्य है" ।

प्रत्यादेय-संज्ञा पुं० [सं०] 'आदेय' से उलटा लाभ । वह लाभ जो पीछे लौटाना पड़े ।

विशेष-कौटिल्य ने इसे बुरा कहा है; केवल कुछ विशेष अवस्थाओं में ही ठीक बताया है ।

प्रत्यादेया भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिसको लौटा देना पड़े । (कौ०)

प्रत्युत्पन्नार्थ कृच्छ्र-वि० [सं०] (राज्य या राष्ट्र) जो अर्थ संकट में पड़ गया हो, अर्थात् जिसके शासन का खर्च आमदनी से न सधता हो ।

प्रदिष्टाभय-वि० [सं०] जिसे राज्य की ओर से रक्षा का वचन मिला हो । राज्य द्वारा संरक्षित ।

प्रदेष्टा-संज्ञा पुं० [सं०] प्रदेश विशेष के कर की वसूली का प्रबंध करनेवाला और चोर डाकुओं आदि को दंड देकर शांति रखनेवाला अधिकारी ।

विशेष-इसका कार्य्य आजकल के कलक्टर के कार्य से मिलता जुलता होता था ।

प्रभुशक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] कोश और सेना का बल ।

प्रभु-सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कार्य्य जो प्रभुशक्ति से सिद्ध हो ।

प्रयोजक-संज्ञा पुं० [सं०] (४) वह जिसके सामने किसी के पास धन जमा किया जाय या जो अपने सामने किसी से किसी के यहाँ धन जमा करावे । (५) कार्य रूप में कर के दिखानेवाला । प्रदर्शन करनेवाला । (नाटक)

प्रवेश्य-संज्ञा पुं० [सं०] देश के भीतर आनेवाला माल । आयात । (कौ०)

प्रवेश्य शुल्क-संज्ञा पुं० [सं०] देश के भीतर आनेवाले माल का महसूल । आयात कर ।

प्रवेसना-क्रि० स० [सं० प्रवेश] प्रवेश करना । घुसना । पैठना । उ०—सो सिय मम हित लागि दिनेसा । घोर वननि महँ कीन्ह प्रवेसा ।—रामाश्वमेध ।

क्रि० स० प्रविष्ट करना । घुसाना ।

प्रसंग यान-संज्ञा पुं० [सं०] किसी स्थान पर चढ़ाई करने की बात प्रसिद्ध कर किसी दूसरे स्थान पर चढ़ाई कर देना । (कामंदक)

प्रसंगासन-संज्ञा पुं० [सं०] किसी दूसरे पर चढ़ाई करने के गुप्त उद्देश्य से प्राप्त शत्रु के साथ संधि करके चुपचाप बैठना । (कामंदकीय)

प्रसादक-संज्ञा पुं० [सं०] (४) देश या धन आदि का अधार्मिक के हाथ से निकल कर किसी धार्मिक के पास जाना । धार्मिक पुरुष का लाभ (जिससे जनता को प्रसन्नता होती है) । (कौ०)

प्रसार-संज्ञा पुं० [सं०] (६) युद्ध के समय वह सहायता जो जंगल आदि पड़ने से प्राप्त हो जाय । (कौ०)

प्रसुप्त-संज्ञा पुं० [सं०] योग में अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन चारों क्लेशों का एक भेद या अवस्था जिसमें किसी क्लेश की चित्त में सूक्ष्म रूप से अवस्थिति तो रहती है, पर उसमें कोई कार्य करने की शक्ति नहीं रहती ।

प्रस्तावक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी विषय को किसी सभा में सम्मति या स्वीकृति के लिये उपस्थित करे । प्रस्ताव उपस्थित करनेवाला । जैसे—प्रस्तावक ने ही अपना प्रस्ताव उठा लिया ।

प्रस्रंसिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का योनि रोग जिसमें प्रसंग के समय रगड़ से योनि बाहर निकल आती है और गर्भ नहीं ठहरता ।

प्राइम मिनिस्टर-संज्ञा पुं० [अं०] किसी राज्य या देश का प्रधान मन्त्री । वजीर आजम ।

प्राइमरी-वि० [अं०] प्रारंभिक । प्राथमिक । जैसे,—प्राइमरी एजुकेशन ।

प्राइवेट-संज्ञा पुं० [अं०] पल्टन का सिपाही । सैनिक । जैसे,—प्राइवेट जेम्स ।

प्रातिनिधिक-वि० [सं० प्रतिनिधि] प्रतिनिधित्व से युक्त । जैसे,—प्रातिनिधिक संस्था ।

प्रातिभाव्य-संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह धन जो प्रतिभू या जामिन को देना पड़े ।

प्रातिभाव्य ऋण-संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो किसी की जमानत पर लिया गया हो ।

प्रादीपिक-संज्ञा पुं० [सं०] घर या खेत आदि में आग लगानेवाला ।

विशेष-जो लोग इस अपराध में पकड़े जाते थे, उनको जीते जी जलाने का दंड दिया जाता था । (कौ०)

प्रानेस-* संज्ञा पुं० [सं० प्राणेश] पति । स्वामी । उ०—बामा भामा कामिनी कहि बोलौ प्रानेस । प्यारी कहत खिसात नहिं पावस चलत विदेस ।—बिहारी ।

प्रासंगिक-संज्ञा पुं० [सं०] कथावस्तु के दो भेदों में से एक । गौण कथावस्तु जिससे आधिकारिक या मूल कथावस्तु का सौंदर्य्य बढ़ता है और मूल कार्य्य या व्यापार के विकास में

सहायता मिलती है। इसके दो भेद कहे गए हैं—पताका और प्रकरी।

प्रिंस–संज्ञा पुं० [अं०] (१) राजा। नरेश। (२) युवराज। राजकुमार। शाहजादा। (३) राज परिवार का कोई व्यक्ति। (४) सरदार। सामंत।

प्रिथिमी‡–संज्ञा स्त्री० [सं० पृथ्वी] पृथ्वी। जमीन। उ०—जो नहिं सीस पेम-पथ लावा। सो प्रिथिमी महँ काहे क आवा।—जायसी।

प्रिविलेज लीव–संज्ञा स्त्री० [अं०] वह छुट्टी जो, सरकारी तथा किसी गैर-सरकारी संस्था या कंपनी के नौकर, कुछ निर्दिष्ट अवधि तक काम कर चुकने के बाद, पाने के अधिकारी या हकदार होते हैं।

प्रीमियम–संज्ञा पुं० [अं०] वह रकम जो जीवन या दुर्घटना आदि का बीमा कराने पर उस कंपनी को, जिसके यहाँ बीमा कराया गया हो, निश्चित समयों पर दी जाती है। वि० दे० "बीमा"।

प्रीमियर–संज्ञा पुं० [अं०] प्रधान मंत्री। वजीर आजम।

प्रेक्षागृह–संज्ञा पुं० [सं०] थियेटर या नाट्य मंदिर में वह स्थान जहाँ दर्शक लोग बैठ कर अभिनय देखते हैं। नाट्यशाला में दर्शकों के बैठने का स्थान।

प्रेक्षावेतन–संज्ञा पुं० [सं०] लैसंस लेने का महसूल या फीस। (कौ०)।

प्रेरना‡–क्रि० स० [सं० प्रेरणा] (१) प्रेरणा करना। चलाना। (२) भेजना। पठाना। उ०—(क) तब उस शुद्ध आचारवाले काकुत्स्थ ने दुष्टों का प्रेरा हुआ दूषण न सहा।—लक्ष्मणसिंह। (ख) भूतल जान प्रेरि रघुबीरा। बिरह बिबस भा सिथिल सरीरा।—रामाश्वमेध।

प्रेस कम्युनिक–संज्ञा पुं० [अं० प्रेस + फ्रेंच कम्युनिक] किसी विषय के सम्बन्ध में वह सरकारी विज्ञप्ति या वक्तव्य जो अखबारों को छापने के लिये दिया जाता है। जैसे,—सरकार ने प्रेस कम्युनिक निकाला है कि लोग अफसरों को डालियाँ आदि नजर न करें।

प्रेस-रिपोर्टर–संज्ञा पुं० दे० "रिपोर्टर" (१)।

प्रेस्क्रिपशन–संज्ञा पुं० [अं०] डाक्टर की लिखी हुई रोगी के लिये औषध और उसकी सेवन-विधि। दवा का पुरजा। नुसखा। व्यवस्थापत्र।

प्रोक्लेमेशन–संज्ञा पुं० [अं०] (१) राजाज्ञा या सरकारी सूचनाओं का प्रचार। घोषणा। एलान। (२) ढिंढोरा। डुग्गी।

प्रोपैगैंडा–संज्ञा पुं० [अं०] (१) व्याख्यान, उपदेश, विज्ञापन, पुस्तिका, समाचारपत्र आदि के द्वारा किसी मत या सिद्धांत के प्रचार करने का ढंग या काम। प्रचार कार्य। जैसे,—(क) आजकल कांग्रेस की ओर से विदेशों में अच्छा प्रोपैगैंडा हो रहा है। (ख) आर्य समाजियों ने वहाँ मिशनरियों के विरुद्ध प्रोपैगैंडा किया।

प्रोसीडिंग–संज्ञा स्त्री० [अं०] किसी सभा या समिति के अधिवेशन में संपन्न हुए कार्यों का लेखा या विवरण। कार्य विवरण। जैसे,—गत अधिवेशन की प्रोसीडिंग पढ़ी गई।

प्रोसीडिंग बुक–संज्ञा स्त्री० [अं०] वह बही या किताब जिसमें किसी सभा या समिति के अधिवेशनों में संपन्न हुए कार्यों का विवरण लिखा जाता है। कार्यविवरणपुस्तक। जैसे,—प्रोसीडिंग बुक में यह बात लिखी जानी चाहिए।

प्रोसेशन–संज्ञा पुं० [अं०] धूमधाम की सवारी। जुलूस। शोभा-यात्रा। जैसे,—महासभा के प्रेसिडेंट का प्रोसेशन बड़ी धूम धाम से निकला।

प्लान–संज्ञा पुं० दे० "प्लैन"।

प्लाविनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] १४४ हाथ लंबी, १८ हाथ चौड़ी और १४½ हाथ ऊँची नाव या जहाज। (युक्ति कल्पतरु)

प्लैंट–संज्ञा पुं० [अं०] वह आवेदनपत्र जो किसी दीवानी अदालत में किसी पर नालिश या दावा दायर करते समय दिया जाता है और जिसमें दावे के संबंध में अपना सब वक्तव्य रहता है। अर्जीदावा।

प्लैंटर–संज्ञा पुं० [अं०] वह जो विदेश में जमीन लेकर (चाय, गन्ने, नील आदि की) खेती करता हो। बड़े पैमाने में खेती करनेवाला।

विशेष—हिंदुस्तान में "प्लैंटर" शब्द से गोरे प्लैंटरों का ही बोध होता है; जैसे—टी प्लैंटर (चाय बगान का साहब), इण्डिगो प्लैंटर (निलहा गोरा या साहब) आदि।

प्लैकर्ड–संज्ञा पुं० [अं०] छपा हुआ बड़ा नोटिस या विज्ञापन जो प्रायः दीवारों आदि पर चिपकाया जाता है। पोस्टर। जैसे—दीवारों पर थियेटर, सिनेमा आदि के रंग बिरंगे प्लैकर्ड लगे हुए थे।

क्रि० प्र०—चिपकना।—चिपकाना।—छगना।—लगाना।

प्लैन–संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी बननेवाली इमारत का रेखा-चित्र। नक्शा। ढाँचा। खाका। जैसे—मकान का प्लैन म्युनिसिपैलिटी में दाखिल कर दिया है। मंजूरी मिलते ही काम में हाथ लग जायगा। (२) किसी काम को करने का विचार या आयोजन। बंदिश। मनसूबा। तजवीज। योजना। स्कीम। जैसे—तुमने यहाँ आकर मेरा सारा प्लैन बिगाड़ दिया।

प्लैन्चट–संज्ञा पुं० दे० "प्लांचट"।

फँकनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० फाँकना] वह दवा आदि जो फाँक कर खाई जाय। चूर्ण। फंकी।

क्रि० प्र०—फाँकना।

फँदैत†–संज्ञा पुं० [हिं० फंदा + ऐत (प्रत्य०)] वह सिखाया हुआ पशु या पक्षी जो किसी प्रकार अपनी जाति के अन्य पशुओं या पक्षियों आदि को मालिक के जाल या फंदे में फँसाता हो।

फँसौरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० फँसना + औरी (प्रत्य०)] फंदा। पाश। उ०—नाच काँच लखि मन नाच सिखि जनु पाँचसर सु फँसौरि।—तुलसी।

फक्कड़–संज्ञा पुं० [सं० फक्किका] गाली गलौज। कुवाच्य।

क्रि० प्र०—बकना।

मुहा०—फक्कड़ तौलना = गाली गुफ्ता बकना। कुवाच्य कहना।

वि० (१) जो अपने पास कुछ भी न रखता हो, सब उड़ा डालता हो। (२) फकीर। भिखमंगा।

फटकारना– क्रि० अ० [हिं० फटकारना] फटकारा जाना।

क्रि० स० [हिं० फटकना] फटकना। उ०—खोट रतन सोई फटकरै। केहि घर रतन जो दारिद हरै।—जायसी।

फड़बाज–संज्ञा पुं० [हिं० फड़ + फा० बाज (प्रत्य०)] वह जिसके यहाँ जुए का फड़ बिछता हो। अपने यहाँ लोगों को जुआ खेलानेवाला व्यक्ति।

फड़बाजी–संज्ञा स्त्री० [हिं० फड़बाज + ई (प्रत्य०)] (१) फड़बाज का भाव। (२) अपने यहाँ दूसरों को जुआ खेलाने की क्रिया।

फदफदाना–क्रि० अ० [अनु०] (१) शरीर में बहुत सी फुन्सियाँ या गरमी के दाने निकल आना। (२) वृक्षों में बहुत सी शाखाएँ निकलना।

फन–संज्ञा पुं० [सं० फण] (४) नाव के डाँड का वह अगला और चौड़ा भाग जिससे पानी काटा जाता है। पत्ता। (लश०)

फना–संज्ञा स्त्री० [अ०] विनाश। नाश। बरबादी।

मुहा०—दम फना होना = मारे भय के जान सूखना। बहुत अधिक भयभीत होना। जैसे—तुम्हें देखते ही लड़के का दम फना हो जाता है।

फनिग–संज्ञा पुं० [हिं० फतिंगा] फतिंगा। फनगा। उ०—सबद एक उन्ह कहा अकेला। गुरु जस भिंग, फनिग जस चेला।—जायसी।

फप्फस–वि० [अनु०] जिसका शरीर बादी के कारण बहुत फूल गया हो। मोटा और भद्दा।

फफका†–संज्ञा पुं० [अनु०] फफोला। छाला।

फफसा–वि० [अनु०] (१) फूला हुआ और अंदर से पोला। (२) (फल) जिसका स्वाद बिगड़ गया हो। बुरे स्वादवाला।

फरफंदी–वि० [अनु० फर + हिं० फंदा] (१) फरफंद करनेवाला। छल कपट या दाँव पेंच करनेवाला। धूर्त। चालबाज। (२) नखरेबाज।

फराश– संज्ञा पुं० [?] झाऊ की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो पंजाब, सिंध, अफगानिस्तान और फारस में अधिकता से पाया जाता है। यह गरमी के दिनों में फूलता है। खारी भूमि में यह अच्छी तरह बढ़ता है।

फरीकैन–संज्ञा पुं० [अ०] फरीक का बहुवचन। दोनों या सब फरीक या पक्ष। जैसे—उस मुकदमे में फरीकैन में सुलह हो गई।

फरेफ्ता–वि० [फा०] लुभाया हुआ। आसक्त। आशिक।

फरेबिया–वि० दे० "फरेबी"।

फरेबी–वि० [फा० फरेब] फरेब या छल कपट करनेवाला। धोखेबाज। कपटी।

फर्म–संज्ञा पुं० [अं०] (१) व्यापारी या महाजनी कोठी। साझे का कारबार। जैसे—कलकत्ते में व्यापारियों के कितने ही फर्म हैं। (२) वह नाम जिससे कोई कंपनी या कोठी कारबार करती है। जैसे—बलदेवदास युगुलकिशोर; व्हाइटवे लेडला एंड कंपनी।

फर्शी–संज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार का बड़ा हुक्का जिसमें तमाकू पीने के लिये बड़ी लचीली नली लगी होती है।

वि० फर्श संबंधी। फर्श का।

यौ०—फर्शी सलाम = बहुत झुक कर, या फर्श तक झुक कर किया जानेवाला सलाम।

फर्स्ट–वि० [अं०] गिनती में सब से आरंभ में पड़नेवाला। पहला। अव्वल। जैसे—फर्स्ट क्लास का दरजा। फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट।

फलड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० फल] (हथियार आदि के) फल का अल्पार्थक रूप। जैसे—चाकू का फलड़ा।

फलत†–संज्ञा स्त्री० [हिं० फलना] फलने की क्रिया या भाव। जैसे—इस साल सभी जगह आम की फलत बहुत अच्छी हुई है।

फलसा†–संज्ञा पुं० [देश०] (१) दरवाजा। द्वार। (२) गाँव की सीमा।

फसकना–क्रि० अ० [अनु०] (१) अंदर को बैठना। धँसना। (२) फटना। तड़कना। जैसे—अधिक दूर देने के कारण पेंदा फसक गया।

फसली कौवा–संज्ञा पुं० [अ० फस्ल + हिं० कौवा] (१) पहाड़ी कौवा जो शीत ऋतु में पहाड़ से उतर कर मैदान में चला आता है। (२) वह जो केवल अच्छे समय में अपना स्वार्थ साधन करने के लिये किसी के साथ रहे और उसकी विपत्ति के समय काम न आवे। स्वार्थी। मतलबी।

फसली बुखार–संज्ञा पुं० [अ० फस्ल + बुखार] (१) वह ज्वर जो किसी एक ऋतु की समाप्ति और दूसरी ऋतु के आरंभ के समय होता है। (२) जाड़ा देकर आनेवाला वह बुखार जो प्रायः बरसात में होता है। जूड़ी। मलेरिया।

फाइन–संज्ञा पुं० [अं०] जुर्माना। अर्थदंड। जैसे—उस पर १००) फाइन हुआ।

फाइनल-वि० [अं०] आखिरी । अंतिम । जैसे,—फाइनल परीक्षा ।

फाइनांस-संज्ञा पुं० [अं०] सार्वजनिक राजस्व और उसके आय व्यय की पद्धति । अर्थ व्यवस्था ।

फाइनानशल-वि० [अं०] (१) सार्वजनिक राजस्व या अर्थ व्यवस्था संबंधी । मालगुजारी के मुताल्लिक । माली । जैसे,—फाइनानशल कमिश्नर । (२) आर्थिक । अर्थ सम्बन्धी । माली ।

फाइनानशल कमिश्नर-संज्ञा पुं० [अं०] वह सरकारी अफसर जिसके अधीन किसी प्रदेश का राजस्व विभाग या माल का महकमा हो ।

फाउंड्री-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह कल या कारखाना जहाँ धातु की चीजें ढाली जाती हों । ढालने का कारखाना । जैसे,—टाइप फाउंड्री ।

फाजिल बाकी-संज्ञा स्त्री० [अ०] हिसाब की कमी या बेशी । हिसाब में का लेना या देना ।

क्रि० प्र०-निकालना ।

वि०-हिसाब में बाकी निकला हुआ । बचा हुआ । अवशिष्ट । जैसे,—तुम्हारे जिम्मे १००) फाजिल बाकी है ।

फादर-संज्ञा पुं० [अं०] पादरियों की सम्मानसूचक उपाधि । जैसे,—फादर ब्रोन्स ।

फायर एंजिन-संज्ञा पुं० [अं०] आग बुझाने की दमकल । वि० दे० "दमकल" ।

फायर ब्रिगेड-संज्ञा पुं० [अं०] आग बुझानेवाले कर्मचारियों का दल ।

फारमूला-संज्ञा पुं० [अं०] (१) संकेत । सिद्धांत । सूत्र । (२) विधि । कायदा । (३) नुसखा ।

फारिग़-वि० [अ०] (१) काम से छुट्टी पाया हुआ । जो अपना काम कर चुका हो । जैसे,—अब वह शास्त्री के काम से फारिग हो गए । (२) निश्चिन्त । बेफिक्र । (३) छूटा हुआ । मुक्त ।

फारिग़-उल् बाल-वि० [अ०] (१) जिसके पास निर्वाह के लिये यथेष्ट धन संपत्ति हो । संपन्न । (२) जो सब प्रकार से निश्चिंत हो । जिसे किसी बात की चिंता न हो । निश्चिन्त ।

फारिग-उल्-बाली-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) संपन्नता । अमीरी । (२) निश्चिन्तता । बेफिक्री ।

फारेन-वि० [अं०] दूसरे राष्ट्र या देश का । विदेश या पर-राष्ट्र संबंधी । वैदेशिक । पर-राष्ट्रीय । जैसे,—फारेन डिपार्टमेंट, फारेन सेक्रेटरी ।

फ़िकरा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) शब्दों का सार्थक समूह । वाक्य । जुमला । (२) झाँसापट्टी । दमबुत्ता ।

यौ०-फिकरेबाज़ ।

मुहा०-फिकरा चलाना = धोखा देने के लिये कोई बात बनाकर कहना । जैसे,—आप भी बैठे बैठे फिकरा चलाया करते हैं । फिकरा चलना = धोखा देने के लिये कही हुई बात का अभीष्ट फल होना । जैसे,—अगर आप का फिकरा चल गया तो रुपये मिल ही जायँगे । फिकरा देना या बताना = झाँसा देना । दम बुत्ता देना । फ़िकरा बनाना या तराशना = धोखा देने के लिये कोई बात गढ़कर कहना । फिकरे सुनाना, डालना या कहना = व्यंग्यपूर्ण बात कहना । बोली बोलना । आवाजा कसना ।

फ़िक़रेबाज़-संज्ञा पुं० [अ० फिकरा + फा० बाज] वह जो लोगों को धोखा देने के लिये बातें गढ़ गढ़ कर कहता हो । झाँसा पट्टी देनेवाला ।

फ़िक़रेबाजी-संज्ञा स्त्री० [अ० फिकरा + फा० बाजी] धोखा देने के लिये तरह तरह की बातें कहना । झाँसा पट्टी देना । दमबाजी ।

फिकैत-संज्ञा पुं० [हिं० फेंकना + ऐत (प्रत्य०)] वह जो फरीगदका या पटा-बनेठी चलाता हो ।

फिकैती-संज्ञा स्त्री० [हिं० फिकैत + ई (प्रत्य०)] पटा बनेठी चलाने का काम या विद्या ।

फ़िट-वि० [अं० फिट्] (१) उपयुक्त । ठीक । (२) जिसके कल पुरजे आदि ठीक हों । जैसे,—यह मशीन बिलकुल फिट है ।

मुहा०-फिट करना = मशीन के पुरजे आदि यथास्थान बैठा कर उसे चलने के योग्य बनाना ।

(३) जो अपने स्थान पर ठीक बैठता हो । जैसे,—(क) यह कोट बिलकुल फिट है । (ख) यह अलमारी यहाँ बिलकुल फिट है ।

संज्ञा पुं० मिरगी आदि रोगों का वह दौरा जिसमें आदमी बेहोश हो जाता है और उसके मुँह से झाग आदि निकलने लगती है ।

फिटसन-संज्ञा पुं० [देश०] कठसेमल नाम का छोटा वृक्ष जिसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं । वि० दे० "कठसेमल" ।

फिरंगिस्तान-संज्ञा पुं० [अं० फ्रांक + फा० स्तान] फिरंगियों के रहने का देश । गोरों का देश । युरोप । फिरंग । वि० दे० "फिरंग" (१) ।

फ़िरनी-संज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार का खाद्य पदार्थ जो चावलों को पीस कर और दूध में पका कर तैयार किया जाता है । इसका व्यवहार प्रायः पश्चिम में और विशेषतः मुसलमानों में होता है ।

फिराक़-वि० [हिं० फिरना] (१) फिरता हुआ । वापस लौटता हुआ । (२) (माल) जो फेरा जा सके । नाकद ।

फिरारी-संज्ञा स्त्री० [देश०] ताश के खेल में उतनी जीत जितनी एक हाथ चलने में होती है । एक चाल की जीत ।

फ़िरोदी-संज्ञा स्त्री० [देश०] वह धन जो दूकानदार माल खरीदने-वाले के नौकर को देता है। दस्तूरी। नौकराना।

फिलासफी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) दर्शन शास्त्र। (२) सिद्धांत या तत्व की बात। गूढ़ बात। जैसे,—कहने सुनने को तो यह साधारण सी बात है, पर इसमें बड़ी भारी फिलासफी है।

फील्ड एम्बुलेन्स-संज्ञा पुं० दे० "एम्बुलेन्स" (१)।

फीवर-संज्ञा पुं० [अं०] ज्वर। बुखार।

फुँदना-संज्ञा पुं० [देश०] सूत आदि का बँधा हुआ गुच्छा या फूल जो शोभा के लिये डोरियों आदि में लटकता रहता है। झब्बा।

फुँदिया† संज्ञा स्त्री० [हिं० फुँदना] झब्बा। फुलरा। फुँदना। वि० दे० "फुँदना"। उ०—फुँदिया और कसनिया राती। छायल बँद लाए गुजराती।—जायसी।

फुँदी-संज्ञा स्त्री० [हिं० बिंदी] बिंदी। टीका। उ०—सारी लटकति पाट की, बिलसति फुँदी लिलाट।—मतिराम।

फुरकत-संज्ञा स्त्री० [अ०] बिछुड़ने का भाव। वियोग।

फुलंगो-संज्ञा स्त्री० [हिं० फुल ?] पहाड़ों में होनेवाली जंगली भाँग का वह पौधा जिसमें बीज बिलकुल नहीं लगते। कलंगो का उलटा।

फुलकारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल + कारी (प्रत्य०)] एक प्रकार का कपड़ा जिसमें मामूली मलमल आदि पर रंगीन रेशम से बूटियाँ आदि काढ़ी हुई होती हैं।

फुलवार®† वि० [सं० फुल्ल] प्रफुल्ल। प्रसन्न। उ०—जानहुँ जरत आगि जल परा। होइ फुलवार रहस हिय भरा।—जायसी।

फुलायल®-संज्ञा पुं० दे० "फुलेल"। उ०—(क) मुहमद बाजी पेम कै ज्यौं भावै त्यौं खेल। तिल फूलहिं के संग ज्यों होइ फुलायल तेल।—जायसी। (ख) छोरहु जटा, फुलायल लेहू। झारहु केस, मकुट सिर देहू।—जायसी।

फुल्ला†-संज्ञा पुं० [हिं० फूलना] (१) मक्के या चावल आदि की भुनी हुई खील। लावा। (२) दे० "फूली" (१)।

फुसकी-संज्ञा स्त्री० [फुस् से अनु०] अपान वायु। पाद। गोज।

फूल-संज्ञा पुं० [सं० फुल्ल] (१८) मथानी के आगे का हिस्सा जो फूल के आकार का होता है।

फूल-पान-वि० [हिं० फूल + पान] (फूल या पान के समान) बहुत ही कोमल। नाज़ुक।

फूल भाँग-संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल + भाँग] हिमालय में होनेवाली एक प्रकार की भाँग का नर पेड़ जिसकी टहनियों से रेशे निकाले जाते हैं।

फेल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे बेपार भी कहते हैं। वि० दे० "बेपार"।

फैकल्टी-संज्ञा स्त्री० [अं०] विश्वविद्यालय के अंतर्गत किसी विद्या या शास्त्र के पंडितों और आचार्यों का समाज या मंडल। विद्वत्समिति। विद्वन्मंडल। जैसे,—फैकल्टी आफ लॉ, फैकल्टी आफ मेडिसिन, फैकल्टी आफ सायन्स।

फैन-संज्ञा पुं० [अं०] पंखा। जैसे,—इलेक्ट्रिक फैन।

फैयाज़-वि० [अ०] खुले दिल का। उदार।

फैयाज़ी-संज्ञा स्त्री० [अ० फैयाज़] फैयाज़ का काम या भाव। उदारता।

फोर्ट-संज्ञा पुं० [अं०] किला। दुर्ग।

फ़ौती-वि० [अ० फौत] (१) मृत्यु संबंधी। मृत्यु का। जैसे,—फौती रजिस्टर। (२) मरा हुआ। मृत।
संज्ञा स्त्री० (१) मरने की क्रिया। मृत्यु। (२) किसी के मरने की सूचना जो म्युनिसिपैल्टी आदि की चौकी पर लिखाई जाती है।

फौतीनामा-संज्ञा पुं० [अ० फौत + फा० नामा] (१) मृत व्यक्तियों के नाम और पते की सूची जो म्युनिसिपैल्टियों आदि की चौकी पर तैयार की जाती है और म्युनिसिपैल्टी के प्रधान कार्यालय में भेजी जाती है। (२) मृत सिपाही की मृत्यु की वह सूचना जो सेना विभाग की ओर से उसके घर के लोगों के पास भेजी जाती है।

फ्युडेटरी चीफ-संज्ञा पुं० [अं०] वह राजा जो किसी बड़े राजा या राज्य के अधीन हो और उसे कर देता हो। करद राजा। सामंत राजा। मांडलिक।

फ्युडेटरी स्टेट-संज्ञा पुं० [अं०] वह छोटा राज्य जो किसी बड़े राज्य के अधीन हो और उसे कर देता हो। करद राज्य।

फ्रांक-संज्ञा पुं० [अं०] फ्रांस का एक चाँदी का सिक्का जो प्रायः अँगरेजी ९॥ पेनी मूल्य का होता है। (एक पेनी प्रायः तीन पैसों के बराबर मूल्य की होती है।)

फ्रांटियर-संज्ञा पुं० [अं०] सरहद। सीमांत। जैसे,—फ्रांटियर प्राविन्स।

फ्लैग-संज्ञा पुं० [अं०] झंडा। पताका।

बंगाला-संज्ञा पुं० [सं० बंग] बंगाल देश।
संज्ञा स्त्री० बंगालिका नाम की रागिनी। उ०—परभाती होइ उठै बँगाला। आसावरी राग गुनमाला।—जायसी।

बँचुई-संज्ञा स्त्री० [देश०] सालपान नाम की झाड़ी जो भारत के प्रायः सभी गरम देशों में होती है। यह वर्षा ऋतु में फूलती है।

बँटवारा-संज्ञा पुं० [हिं० बाँटना] बाँटने या भाग करने की क्रिया। किसी वस्तु के दो या अधिक भाग या हिस्से करना। विभाग। तकसीम।

बंद-संज्ञा पुं० [फा०] (८) चौसर में के वे घर जिनमें पहुँचने पर गोटियाँ मारी नहीं जातीं।

बंदा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ बंदी] बंदी । कैदी । बँधुवा । उ॰—छंदहि छंद भएउ सो बंदा । छन एक माँहि हँसी रोवँदा ।—जायसी ।

बंदी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ बंदी = कैदी] बंदी होने की दशा । कैद । उ॰—आजु परे पंडव बँदि माँहाँ । आजु दुसासन उतरी बाहाँ ।—जायसी ।

बँदेरा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ बंदी] [स्त्री॰ बँदेरी] बंदी । कैदी । बँधुआ । उ॰—धरा हाथ दसकंदर घेरी । सो कित छाँड़ि कै भई बँदेरी ।—जायसी ।

बंध—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (११) गिरवी रखा हुआ धन ।

बंधक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ बंध] कामशास्त्र के अनुसार स्त्री-संभोग का कोई आसन । बंध । उ॰—चौरासी आसन पर जोगी । खट रस बंधक चतुर सो भोगी ।—जायसी ।

बंधकिपोषक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] रंडियों का दलाल ।

विशेष—चाणक्य के समय में इन पर भी भिन्न भिन्न कर लगते थे ।

बइठना—क्रि॰ अ॰ दे॰ "बैठना" । उ॰—सखी सरेखी साथ बईठी । तपै सूर ससि आव न दीठी ।—जायसी ।

बकबक—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ बकना] बकने की क्रिया या भाव । व्यर्थ की बहुत अधिक बातें । जैसे—तुम जहाँ बैठते हो, वहीं बक बक करते हो ।

बकली—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] अघौरी नाम का वृक्ष जिसकी लकड़ी से हल और नावें बनती हैं । वि॰ दे॰ "अघौरी" ।

बकावर—संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "गुल बकावली" । उ॰—तुम जो बकावरि तुम्ह सों भर ना । बकुचन गहै चहै जो करना ।—जायसी ।

बकुचन—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ विकुंचन या हिं॰ बकुचा] (१) हाथ जोड़ने की अवस्था । बद्धांजलि । उ॰—बकुचन बिनवौं रोस न मोही । सुनु बकाउ तजि चाहु न जूही ।—जायसी । (२) हाथ या मुट्ठी से पकड़ने की क्रिया । उ॰—तुम्ह जो बकावरि तुम्ह सों भर ना । बकुचन गहै चहै जो करना ।—जायसी । (३) गुच्छा ।

बकौरी—संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "गुल बकावली" । उ॰—सुरँग गुलाल कदम औ कूजा । सुगँध बकौरी गंध्रब पूजा ।—जायसी ।

बक्स—संज्ञा पुं॰ [अं॰] (२) थियेटर, सिनेमा आदि में सब से आगे अलग घिरा हुआ स्थान जिसमें तीन चार व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था रहती है ।

बखारी—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक प्रकार की रागिनी जिसे कुछ लोग मालकोस राग की रागिनी मानते हैं ।

बगरूरा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ बाउ + गोला] बवंडर । बगूला । उ॰—चित्र की सी पुत्रिका कै रूरे बगरूरे माँहि, शंबर छड़ाइ लई कामिनी कै काम की ।—केशव ।

बचका—संज्ञा पुं॰ [देश॰] (१) एक प्रकार का पकवान जो किसी प्रकार के साग या पत्तों आदि को बेसन में लपेट कर और घी या तेल में छान कर बनाया जाता है । (२) एक प्रकार का पकवान जो बेसन और मैदे को एक में मिलाकर और जलेबी की तरह टपका कर घी में छाना जाता है और तब दूध में भिगोकर खाया जाता है । उ॰—खँडरा बचका औ डुभकौरी । बरी एकोतर सौ कोंहड़ौरी ।—जायसी ।

बचीता—संज्ञा पुं॰ [देश॰] दो तीन हाथ ऊँची एक प्रकार की झाड़ी जिसके तने और टहनियों पर बहुत अधिक रोएँ होते हैं । यह गरम प्रदेशों की पड़ती भूमि में अधिकता से पाई जाती है । इसमें चमकीले पीले रंग के छोटे छोटे फूल लगते हैं जो बीच में काले होते हैं । इसके तने से एक प्रकार का मजबूत रेशा निकलता है ।

बजंत्री—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ बाजा] (२) मुसलमानी राज्यकाल का एक प्रकार का कर जो गाने बजाने का पेशा करनेवालों से लिया जाता था ।

बजरागि, बजरागी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ वज्राग्नि] वज्र की अग्नि, बिजली । उ॰—पानी माँस उठै बजरागी । कहाँ से लौकि बीजु भुइँ लागी ।—जायसी ।

बजुज़—अव्य॰ [फ़ा॰] सिवा । अतिरिक्त । जैसे,—बजुज़ आपके और कोई वहाँ न जा सकेगा ।

बटाऊ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ बाँटना] बँटानेवाला । भाग लेनेवाला । हिस्सा लेनेवाला ।

बटालियन—संज्ञा स्त्री॰ [अं॰] पैदल सेना का एक दल जिसमें १००० जवान होते हैं ।

बटुआ—वि॰ [हिं॰ बटना] बटा हुआ । जैसे—बटुआ सूत, बटुआ रस्सा ।

वि॰ [हिं॰ बाँटना] सिल आदि पर पीसा हुआ । उ॰—कटुआ बटुआ मिला सुबासू । सीका अनबन भाँति गरासू ।—जायसी ।

बड़कंघी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ बड़ी + कंघी ?] दो तीन हाथ ऊँचा एक प्रकार का पौधा जो प्रायः सारे भारत में पाया जाता है । इसकी टहनियों पर सफेद रंग के लंबे रोएँ होते हैं । इसके पौधे में से कड़ी दुर्गंध आती है । इसके तने से एक प्रकार का रेशा निकलता है और जड़, पत्तियाँ तथा बीज ओषधि रूप में काम में आते हैं ।

बड़बेरी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ बड़ी + बेरी] जंगली बेर । झड़ बेरी । उ॰—औ कटहर बड़हर बड़बेरी । तोहि अस नाहीं कोका बेरी ।—जायसी ।

बड़लाई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ राई] राई नाम का पौधा या उसके बीज ।

बड़्वागि—संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "बड़वाग्नि" । उ॰—चै ठाढ़े उमदाइ

उरा, जलन चुसे धड़वागि। जाही सौं लाग्यो हियो ताही कैं हिय लागि।—बिहारी।

बड़हन–संज्ञा पुं० [हिं० बड़ + धान] एक प्रकार का धान। उ०—कोरहन बड़हन जड़हन मिला। औ संसार-तिलक खँड़-विला।—जायसी।

बणी–संज्ञा स्त्री० [?] रूई का झाड़। कपास।

बतौरी–संज्ञा स्त्री० [सं० वात + औरी (प्रत्य०)] एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर के ऊपर गोलाकार उभार हो आता है। इस रोग में प्रायः चमड़े के नीचे एक गाँठ सी हो जाती है जिसमें प्रायः मज्जा भरी रहती है। यह गाँठ बढ़ती रहती है, पर इसमें पीड़ा नहीं होती।

बदलधाई–संज्ञा स्त्री० दे० "बदलाई"।

बदा–संज्ञा पुं० [हिं० बदना] वह जो कुछ भाग्य में लिखा हो। नियत। विपाक। जैसे,—वह तो अपना अपना बदा है।

बन-कपास–संज्ञा स्त्री० [हिं० बन + कपास] पटसन की जाति का एक प्रकार का लंबा पौधा जिसमें बहुत अधिक टहनियाँ होती हैं। कहीं कहीं इसमें काँटे भी पाए जाते हैं। यह बुंदेलखंड, अवध और राजपूताने में अधिकता से होता है। इससे सफेद रंग का मजबूत रेशा निकलता है।

बनकपासी–संज्ञा स्त्री० [हिं० बन + कपास] एक प्रकार का पौधा जो साल के जंगलों में अधिकता से पाया जाता है। इसके रेशों से लकड़ी के गट्ठे बाँधने की रस्सियाँ बनती हैं।

बन नींबू–संज्ञा पुं० [हिं० बन + नीबू] एक प्रकार का सदा बहार क्षुप जो प्रायः सारे भारत में और हिमालय में ७००० फुट तक की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसकी टहनियाँ दतुअन के काम में आती हैं और इसके फल खाए जाते हैं।

बनमूँग–संज्ञा पुं० [हिं० बन + मूँग, सं० मुद्ग] मुँगवन या मोठ नाम का कदन्न।

बनर–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का अस्त्र। उ०—तिमि विभूति अरु बनर कह्यो युग सैसहि धन करवीरा। कामरूप मोहन आवरणहु लईं काम रुचि धीरा।—रघुराज।

बन-रखना–संज्ञा पुं० [हिं० बन + रखना] वन का रक्षक। बनरखा।

बनवध–संज्ञा पुं० [हिं० बनना] एक प्रांत जिसमें जौनपुर, आजमगढ़, बनारस और अवध का पश्चिमी भाग सम्मिलित था। कुछ लोग इसका विस्तार बैसवाड़े से विजयपुर तक और गोरखपुर से भोजपुर तक भी मानते हैं। इस प्रांत के बारह राजाओं अर्थात् (१) विजयपुर के गहरवार, (२) बड़गोती के खानजादे, (३) बैसवाड़े के बिसेन, (४) गोरखपुर के श्रीनेत, (५) हरदी के हैहय वंशी, (६) डुमराँव के उजैनी, (७) स्योरी भगवानपुर के राजकुमार, (८) अँगोरी के चँदेल, (९) सरवार के कलहंस, (१०) नगर के गौतम, (११) कुड़वार के हिंदू बड़गोती और (१२) मझौली के बिसेन ने मिलकर एक संघ बनाया था और निश्चय किया था कि हम लोग सदा परस्पर सहायता करते रहेंगे। ये लोग "बारहो बनवध" कहलाते थे।

बनावन–संज्ञा पुं० दे० "बनवध"।

बनावलि–संज्ञा स्त्री० [सं० बाणावलि] बाणों की अवली। तीरों की पंक्ति।

बनौधा–संज्ञा पुं० दे० "बनवध"।

बपुख–संज्ञा पुं० [सं० वपुस्] शरीर। देह। उ०—दूरि कै कलंक अंक-भव-सीस ससि सम राखत है केशौदास दास के बपुख को।—केशव।

बफर स्टेट–संज्ञा पुं० [अं०] वह मध्यवर्ती छोटा राज्य जो दो बड़े राज्यों को एक दूसरे पर आक्रमण करने से रोकने का काम करे। संघर्ष-निवारक राज्य। अंतर्धि।

विशेष–दो बड़े राज्यों के एक दूसरे पर आक्रमण करने के मार्ग में जो छोटा सा राज्य होता है, उसे "बफर स्टेट" कहते हैं, जैसे,—हिंदुस्थान और रूस के बीच में अफगानिस्तान और फ्रांस तथा जर्मनी के बीच में बेलजियम है। यदि ये छोटे राज्य तटस्थ या निरपेक्ष रहें, तो इनमें से होकर कोई राज्य दूसरे राज्य पर आक्रमण नहीं कर सकता। इस प्रकार ये संघर्ष रोकने का कारण होते हैं। ऐसे छोटे राज्यों का बड़ा महत्व है। संधि न होने की अवस्था में इधर उधर के प्रतिद्वंद्वी राज्य इनसे सदा सशंक रहते हैं कि न जाने ये कब किसके पक्ष में हो जायँ और उसके आक्रमण का मार्ग प्रशस्त कर दें। गत महासमर में जर्मनी ने बेलजियम की तटस्थता भंग कर उसमें से होकर फ्रांस पर चढ़ाई की थी। साथ ही यह भी होता है जब कि दो प्रतिद्वंद्वी राज्य बफर स्टेट की तटस्थता भंग करके भिड़ जाते हैं, तब बफर स्टेट को, बीच में होने के कारण, भीषण हानि होती है।

बफुली–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का सदाबहार छोटा पौधा जो प्रायः सभी गरम देशों और विशेषतः रेतीली जमीनों में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ ऊँटों के चारे के काम में आती हैं।

बमकना–क्रि० अ० [अनु०] आवेश में आकर लंबी चौड़ी बातें करना। शेखी बघारना। डींग हाँकना।

बमकाना–क्रि० स० [हिं० बमकना] किसी को बमकने में प्रवृत्त करना। बढ़ बढ़ कर बोलने के लिये आवेश दिलाना।

बमपुलिस–संज्ञा पुं० [अं० बम = धड़ाका + प्लेस = स्थान] राह चलतों और मुसाफिरों के लिये बस्ती से दूर बना हुआ पायखाना।

विशेष—इस शब्द के प्रचार के संबंध में एक मनोरंजक बात सुनने में आई है। कहते हैं, हिंदुस्थान में पलटन के अशिक्षित गोरे पायखाने को "बम-प्लेस" अर्थात् धड़ाका करने का

स्थान कहा करते थे। इसी 'बमलेस' से बिगड़ कर 'बमपुलिस' बन गया।

बमोलन-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कँटीली लता जो उत्तर भारत में पंजाब से आसाम तक और दक्षिण में लंका तक पाई जाती है। यह गरमी के दिनों में फूलती और बरसात में फलती है। इसके फल खाए जाते हैं। मकोह।

बयाँग†-संज्ञा पुं० [?] झूला।

बर&-संज्ञा पुं० दे० "बल"। उ०—देख्यौ मैं राजकुमारन के बर।—केशव।

संज्ञा पुं० [फा०] फल।

यौ०—बरे अंबा=आम की फसल की आय या मालगुजारी।

संज्ञा पुं० [हिं० बल=सिकुड़न] रेखा। लकीर।

मुहा०—बर खाँचना या खींचना=(१) किसी बात के संबंध में दृढ़ता सूचित करने के लिये लकीर खींचना। (प्रायः लोग दृढ़ता दिखाने के लिये कहते हैं कि मैं बर (लकीर) खींचकर यह बात कहता हूँ।) उ०—तेहि ऊपर राघव बर खाँचा। दुइज भानु सौं पंडित साँचा।—जायसी। (२) हठ दिखलाना। अड़ना। जिद करना। उ०—हिन्दू देव काह बर खाँचा। सरगहु अब न सूर सौं बाँचा।—जायसी। बर बाँधना=प्रतिज्ञा करना। उ०—हँधउर धरा देख अस आदी। और को बर बाँधै, को बादी ?—जायसी।

बरणना-क्रि० स० दे० "बरनना"। उ०—अजर अमर अज अंगी और अनंगी सब बरणि सुनावैं ऐसे कौने गुण पाए हैं।—केशव।

बरतराई†-संज्ञा स्त्री० [फा० बातर ?] वह कर जो जमींदार की ओर से बाजार में बैठनेवाले बनियों और दूकानदारों आदि से लिया जाता है। बैठकी।

बरतुस†-संज्ञा पुं० [?] वह खेत जिसमें पहले धान बोया गया हो और फिर जोत कर ईख बोई जाय।

बरदिया†-संज्ञा पुं० दे० "बलदिया"।

बरदी†-संज्ञा स्त्री० दे० "बलदी"।

बरन-संज्ञा पुं० दे० "वर्ण"। उ०—सुबरन बरन सुबास जुत, सरस दलनि सुकुमारि।—मतिराम।

बरना&†क्रि० स० [सं० वारण] मना करना। रोकना। (क्व०)

संज्ञा पुं० [सं० वरण] एक प्रकार का वृक्ष।

बरबट&†-क्रि० वि० [सं० बलवत्] (१) बलपूर्वक। जबरदस्ती। बरबस। उ०—बेधक अनियारे नयन बेधत करि न निषेधु। बरबट बेधतु मो हियो तो नासा को बेधु।—बिहारी। (२) दे० "बरबस"। उ०—नैन मीन ऐ नागरनि, बरबट बाँधत आइ।—मतिराम।

बरमा†-संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मदेश] (२) एक प्रकार का धान जो बहुत दिनों तक रखा जा सकता है।

बरहांड-संज्ञा पुं० दे० "ब्रह्मांड"। उ०—कीन्हेसि सस मही बरहंडा। कीन्हेसि भुवन चौदहो खंडा।—जायसी।

बरहा-संज्ञा पुं० दे० "ब्रह्म"।

बरहावना&-क्रि० स० [सं० ब्रह्म+भावना (प्रत्य०)] आशीर्वाद देना। असीस देना। उ०—जाति भाँट कित औगुन लावसि। बायें हाथ राज बरह्मावसि।—जायसी।

बरसौंहा†-वि० [हिं० बरसना+औंहाँ (प्रत्य०)] बरसनेवाला। उ०—तिय सरसौंहैं मुनि किए करि सरसौंहैं नेह। घर-परसौंहैं ह्वै रहे झर-बरसौंहैं मेह।—बिहारी।

बरहन-संज्ञा पुं० दे० "बड़हन"।

बरहा†-संज्ञा पु० [सं० बर्हि] मयूर। मोर। उ०—गाँई बरहा निरखत बचन मुख दुति अलि चकोर बिहंग। बलि भार सहित गोपाल झूलत राधिका अरधंग।—सूर।

बराट-संज्ञा स्त्री० [सं० वराटिका] कौड़ी। कपर्दिका। उ०—भयो करतार बड़े कूर को कृपालु पायो नाम प्रेम पारस हौं लालची बराट को।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [सं० वराटी] एक प्रकार की रागिनी जिसके गाने का समय दिन में २५ से २८ दंड तक है। हनुमत के मत से यह भैरव राग की रागिनी मानी गई है।

बराडू-संज्ञा स्त्री० दे० "बराट"।

बरियंड-वि० दे० "बरबंड"। उ०—क्रोध उपजाय भृगुनंद बरियंड को।—केशव।

बरिया&†-वि० [सं० बलिन्] बलवान। ताकतवर। उ०—तुलसिदास को प्रभु कोमलपति सब प्रकार बरियो।—तुलसी।

बरियाई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० बरियार] (१) बलवान होने का भाव। बलशालिता। ताकतवरी। (२) बल-प्रयोग। जबरदस्ती।

बरीसना&-क्रि० अ० दे० "बरसना"। उ०—सघन मेघ होइ साम बरीसहिं।—जायसी।

बरु-संज्ञा पुं० दे० "बर"। उ०—लिख लाई सिय को बरु ऐसो। राजकुमारहि देखिय ऐसो।—केशव।

बरोक†-क्रि० वि० [सं० बलौकः] बलपूर्वक। जबरदस्ती। उ०—भावत जहाँ पठावहु देहिं लाख दस रोक। होइ सो बेलि जेहि बारी आनहिं सबै बरोक।—जायसी।

बलकट-संज्ञा पुं० [हिं० बाल+काटना] पौधे की बाल को बिना काटे तोड़ लेना।

वि० [?] पेशगी। अगाऊ। अगौढ़ी।

बलकटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० बलकट] मुसलमानी राज्य-काल की एक प्रकार की किस्त जो फसल कटने के समय वसूल की जाती थी।

बलदिया-संज्ञा पुं० [हिं० बलद=बैल] गौओं, भैंसों आदि का चरवाहा।

बलदिहाई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० बलद=बैल] वह कर जो गौओं, भैंसों

आदि को चराने के बदले में दिया या लिया जाय। चराई।

बलदी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० बलद = बैल] बैलों का झुंड या समूह।

बलात्कार दापन–संज्ञा पुं० [सं०] ऋणी को मार पीट कर रुपया चुकता कराना। (स्मृति)

बलाह–संज्ञा पुं० [सं० वोल्लाह] वह घोड़ा जिसकी गरदन और दुम के बाल पीले हों। बुलाह।

बलाहक–संज्ञा पुं० [सं०] (९) एक प्रकार का बगला।

बलाहर†–संज्ञा पुं० [हिं० बुलाना] गाँव में होनेवाले वह कर्म-चारी जो दूसरे गाँवों में सँदेसा ले जाता, गाँव में आए हुए लोगों की सेवा शुश्रूषा करता और उन्हें मार्ग दिखलाता हुआ दूसरे गाँवों तक ले जाता है।

बलिया†–वि० [हिं० बल + इया (प्रत्य०)] बलवान्। ताकतवर। जैसे,—किस्मत के बलिया। पकाई खीर, हो गया दलिया। (कहा०)

बलुॐ–अव्य० दे० "बरु"। उ०—प्यास न एक बुझाइ बुझै त्रैताप बलु।—केशव।

बल्ब–संज्ञा पुं० [अं०] (१) एक प्रकार की वनस्पति जिसमें बहुत सी पत्तियों के योग से प्रायः कमल के आकार की बहुत बड़ी कली या गुट्ठी सी बन जाती है। इसके नीचे के भाग से जड़ें निकलती हैं जो जमीन के अंदर फैलती हैं और ऊपरी मध्य भाग में से पतला तना निकल कर ऊपर की ओर बढ़ता है जिसमें सुंदर सुगंधित फूल लगते हैं। इसके कई भेद होते हैं। गुट्ठी। (२) शीशे का वह खोखला लट्टू जो प्रायः कमल के आकार का होता है और जिसके अंदर बिजली की रोशनी के तार लगे रहते हैं।

बल्लमटेर–संज्ञा पुं० [अं० वालंटीयर] (१) वह मनुष्य जो बिना वेतन के स्वेच्छा से फौज में सिपाही या अफसर का काम करे। स्वेच्छा सैनिक। वालंटीयर। (२) अपनी इच्छा से सार्वजनिक सेवा का कोई काम करनेवाला। स्वयंसेवक।

बसंत–संज्ञा पुं० [सं० वसंत] दो हाथ ऊँचा एक प्रकार का पौधा जो प्रायः सारे भारत में और हिमालय में सात हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ चार पाँच अंगुल लंबी, पर गोलाकार होती हैं। फूल के विचार से इसके कई भेद होते हैं।

बसना–संज्ञा पुं० [देश०] जयंती की जाति का एक प्रकार का मझोला वृक्ष जो देखने में बहुत सुंदर होता है और प्रायः शोभा के लिये बागों में लगाया जाता है। इसके पत्ते एक बालिश्त लंबे होते हैं। प्रायः पान के भीटों में भी यह लगाया जाता है। इसकी पत्तियों, कलियों और फूलों की तरकारी बनती है और औषधि रूप में भी उनका उपयोग होता है।

बसवार†–संज्ञा पुं० [हिं० बास = सुगंध + वार (प्रत्य०)] छौंक। बघार।

वि० सोंधा। सुगंधित। उ०—कढ़ए तेल कीन्ह बसवारू। मेथी कर तब दीन्ह बघारू।—जायसी।

बसाना–क्रि० अ० [हिं० बास] (२) दुर्गंध देना। बदबू करना। उ०—मंद जस मंद बसाइ पसेऊ। औ बिसवासि छरै सब केऊ।—जायसी।

बस्ट–संज्ञा पुं० [अं०] किसी व्यक्ति की ऐसी मूर्ति या चित्र जिसमें केवल धड़ और सिर हो।

बस्साना–क्रि० अ० [हिं० बास = गंध] दुर्गंध देना। बदबू करना।

बहकावट–संज्ञा स्त्री० [हिं० बहकाना + आवट (प्रत्य०)] बहकाने की क्रिया या भाव।

बहन–संज्ञा पुं० [सं० वहन] बहने की क्रिया या भाव। उ०—वायु को बहन दिन दावा को दहन, बड़ी बड़वा अनल ज्वाल जाल में रह्यो परे।—केशव।

बहना–क्रि० अ० [सं० वहन] (१९) निर्वाह करना। निबाहना। उ०—चाहे भली उबारे अनुचित बनि आए बहिबेहीं।—तुलसी।

बहनेली–संज्ञा स्त्री० [हिं० बहन + एली (प्रत्यय०)] वह जिसके साथ बहनापा या बहन का संबंध स्थापित किया गया हो। मुँहबोली बहन। (स्त्रियाँ)

बहबूदी–संज्ञा स्त्री० [फा०] लाभ। भलाई। फायदा।

बहुलानुरक्त (सैन्य)–वि० [सं०] प्रजा से प्रेम रखनेवाली (सेना)। सर्वप्रिय। (कौ०)

बाँगड़–संज्ञा पुं० [देश०] हिसार, रोहतक और करनाल का प्रांत।

बाँगडू–संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँगर (प्रदेश)] हिसार, रोहतक और करनाल के जाटों की बोली जिसे जाटू या हरियानी भी कहते हैं।

बाँचनाॐ–क्रि० स० [?] रखना। उ०—लोक कहै राम को गुलाम हौं कहावौं। एतो बड़ो अपराध भो न मन बाँचौं।—तुलसी।

बाँवली–संज्ञा स्त्री० [हिं० बबूल] बबूल की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जो सिंध, पंजाब और मारवाड़ में सूखे तालों के तलों में होता है। इसकी छाल चमड़ा सिझाने के काम में आती है और इसमें से एक प्रकार का गोंद भी निकलता है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं।

बाइप्लेन–संज्ञा पुं० [अं०] एरोप्लेन या वायुयान का एक भेद।

बाउंटी–संज्ञा स्त्री० [अं०] वह सहायता या मदद जो व्यापार या उद्योग धंधे को उत्तेजन देने के लिये दी जाय। सहायता। मदद।

बाकलॐ–संज्ञा पुं० दे० "वल्कल"। उ०—सिरसि जटा बाकल बपु धारी।—केशव।

बाक्सो–क्रि० वि० [?] पृष्ठ भाग में। पीछे। (लश०)

बाजर–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो रूहेलखंड में अधिकता से होती है।

बाजीदार–संज्ञा पुं० [हिं० बाजी=बाल+फा० दार] वह हलवाहा जिसे वेतन के स्थान में उपज का अंश मिलता हो। बालीदार।

बाड़वानल–संज्ञा पुं० दे० "बड़वानल"। उ०—मम बाड़वानल कोप। अब कियो चाहत लोप।—केशव।

बाडी–संज्ञा स्त्री० [अं० बाडिस] एक प्रकार की अँगिया या कुरती जो मेमें पहनती हैं (और आज कल बहुतेरी भारतीय स्त्रियाँ भी पहनने लगी हैं)।

बाण–संज्ञा पुं० [सं०] (१२) स्वर्ग। (१३) निर्वाण। मोक्ष।

बाणिजक–संज्ञा पुं० [सं०] बाणिज्य करनेवाला। व्यापारी।

बात–संज्ञा पुं० [सं० वात] वायु। हवा। उ०—त्रिदेव बड़े बहु बात बहे।—केशव।

बाथ⊛–संज्ञा पुं० [?] गोद। अंक। अँकवार। उ०—रस सिहयत मृगलोचनी भरयो उलटि भुज बाथ। जानि गई तिय नाथ के हाथ परस ही हाथ।—बिहारी।

बान–संज्ञा पुं० [सं० बाण] (५) बाना नाम का हथियार जो फेंक कर मारा जाता है। उ०—गोली बान सुमंत्र सर समुझि उलटि मन देखु। उत्तम मध्यम नीच प्रभु बचन बिचारि बिसेखु।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [?] गोला। उ०—तिलक पलीता माथे दसन बज्र के बान। जेहि हेरहिं तेहि मारहिं चुरकुस करहिं निदान।—जायसी।

बानरेंद्र–संज्ञा पुं० [सं० वानर+इन्द्र] (१) सुग्रीव। उ०—बानरेंद्र तब ही हँसि बोल्यो।—केशव। (२) हनुमान।

बानी⊛–संज्ञा स्त्री० दे० "बाणिज्य"। उ०—अपने चलन सो कीन्ह कुबानी। लाभ न देख मूर भइ हानी।—जायसी।

बामकी–संज्ञा स्त्री० [सं० वामकी] एक देवी जिसकी पूजा प्रायः जादूगर आदि करते हैं।

बाय–संज्ञा पुं० [अं०] (१) एक प्रकार का लोहे का पीपा जो समुद्र में या उन नदियों में जिनमें जहाज चलते हैं, स्थान स्थान पर लंगर द्वारा बाँध दिए जाते हैं और सिगनल का काम देते हैं। तरिंदा। (२) दे० "लाइफ बाय"।

बाय स्काउट–संज्ञा पुं० [अं०] (१) विद्यार्थियों का एक प्रकार का सैनिक ढंग से संघटन जिसका प्रधान उद्देश्य विविध प्रकार से समाज की सेवा करना है। जैसे,—कहीं आग लगने पर तुरन्त वहाँ पहुँच कर आग बुझाना, मेले ठेले और पर्वों पर यात्रियों को आराम पहुँचाना, चोर उचक्कों को गिरिफ्तार करना, आहत या अनाथ रोगियों को यथास्थान पहुँचाना, उनके दवा-दारू और सेवा शुश्रूषा की समुचित व्यवस्था करना आदि। बालचर-चमू। (२) उक्त चमू या सेना का सदस्य।

बारदाना–संज्ञा पुं० [फा०] (४) वह अस्तर जो बँधी हुई पगड़ी के नीचे लगा रहता है।

बारना–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसके फलों का गूदा इमारत की ईंटों में मिलाया जाता है। वि० दे० "बिलासी"।

बारहा–क्रि० वि० [फा० बार+हा (प्रत्य०)] अनेक बार। कई बार। अक्सर। जैसे,—मैं बारहा उनके यहाँ गया, पर वे नहीं मिले।

बारूद–संज्ञा पुं० [तु० बारुत = बारूद] एक प्रकार का धान।

बारोठा–संज्ञा पुं० [सं० द्वार+स्थ (प्रत्य०)] वह रस्म जो विवाह के समय वर के द्वार पर आने के समय की जाती है। उ०—बारोठे को चार करि कहि केशव अनुरूप। द्विज दूलह पहिराइयो पहिराए सब भूप।—केशव। (२) द्वार। दरवाजा।

बार्डर–संज्ञा पुं० [अं०] किसी चीज के किनारों पर बना हुआ बेल बूटा। हाशिया।

बालकता–संज्ञा स्त्री० [सं०] बालक का भाव। लड़कपन। उ०—अति कोमल केशव बालकता।—केशव।

बालचर–संज्ञा पुं० दे० "बाय स्काउट"।

बालतोड़–संज्ञा पुं० [हिं० बाल+तोड़ना] एक प्रकार का फोड़ा जो शरीर में का कोई बाल झटके के साथ टूट जाने के कारण उस स्थान पर हो जाता है। इसमें बहुत पीड़ा होती है; और यह कभी कभी पक भी जाता है।

बालम खीरा–संज्ञा पुं० [हिं० बालम+खीरा] एक प्रकार का बहुत बड़ा खीरा। इसकी तरकारी बनती है और बीज धूनाती दवा के काम में आते हैं। उ०—नारँग दारिउँ तुरँज जँभीरा। औ हिंदवाना बालमखीरा।—जायसी।

बालमातृका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वेणी, पेणी, कुक्कुर, रक्तसारी, प्रमूता, स्वरिता और रजनी नाम की सात मातृकाएँ जिनके विषय में प्रसिद्ध है कि ये बालकों को पकड़ती और उन्हें रोगी बनाती हैं।

बाल सौंगड़ा–संज्ञा पुं० [?] कुश्ती में एक प्रकार का पेंच या दाँव। इसमें विपक्षी की कमर पर पहुँच कर उसकी एक टाँग उठाई जाती है और उस पर अपना एक पैर रख कर और अपनी जाँघों में से खींचते और मरोड़ते हुए उसे जमीन पर गिरा देते हैं।

बाली–संज्ञा स्त्री० [हिं० बाल] (२) वह अन्न जो हलवाहों आदि को उनके परिश्रम के बदले में, धन की जगह, दिया जाता है।

यौ०—बालीदार।

बालीदार–संज्ञा पुं० [हिं० बाली = अन्न + फा० दार] वह हलवाहा जो नगद पारिश्रमिक न लेकर उपज का कुछ भाग ले। बाजीदार।

बावरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बारहमासी घास जो उत्तरी भारत के रेतीले और पथरीले मैदानों में पाई जाती

और पशुओं के चारे के लिये अच्छी समझी जाती है। सरदाला।

बास-संज्ञा पुं० [सं० वसन] छोटा वस्त्र। उ०—दासि दास बासि बास रोम पाट को किनो। दाय जो विदेहराज भाँति भाँति को कियो।—केशव।

बासा-संज्ञा पुं० [सं० वास] (३) वह स्थान जहाँ मूल्य लेकर भोजन का प्रबंध हो। भोजनालय।

विशेष—कलकत्ते, बंबई आदि बड़े बड़े व्यापार-प्रधान नगरों में भिन्न भिन्न जातियों के ऐसे बासे हैं, जहाँ वे लोग जो बिना गृहस्थी के होते हैं, भोजन करते हैं।

बाह्यकोप-संज्ञा पुं० [सं०] राष्ट्र के मुखियों, अंतपाल (सीमा-रक्षक), आटविक (जंगलों के अफसर) और दंडोपनत (पराजित राजा) का विद्रोह। (कौ०)

बिंदू-संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी।

बिकार⊛†-वि० [सं० विकार या विकराल] (१) जिसकी दशा विकृत हो। (२) विकराल। विकट। भीषण। उ०—तुम जाहु बालक छाँड़ि जमुना स्याम मेरो जागिहै। अंग कारो मुख बिकारो दृष्टि पर तोहिं लागिहै।—सूर।

बिगासना⊛-क्रि० स० [सं० विकास] विकसित करना। खिलाना। उ०—अमी अधर अस राजा सब जग आस करेइ। केहि कहँ कँवल बिगासा को मधुकर रस लेइ।—जायसी।

बिगुर⊛-वि० [सं० वि+गुरु] जिसने किसी गुरु से शिक्षा या दीक्षा न ली हो। निगुरा। उ०—हरि बिनु मर्म बिगुर बिन फंदा। जहँ जहँ गये अपन पौ खोये तेहि फंदे बहु फंदा।—कबीर।

बिचहुत⊛†-संज्ञा पुं० [हिं० बीच=अंतर] (१) अंतर। फरक। (२) दुबधा। संदेह। उ०—अब हँसि के शशि सूरहिं भेंटा। अहा जो शीत बिचहुत मेटा।—जायसी।

बिचारमान-वि० [सं० विचारवान्] (१) विचार करनेवाला। बुद्धिमान्। (२) विचारने के योग्य। विचारणीय। उ०—बिचारमान ब्रह्म, देव अर्चमान मानिये।—केशव।

बिछुआ-संज्ञा पुं० [हिं० बिच्छू] (५) कमर में पहनने का एक गहना। एक प्रकार की करधनी।

बिजई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० बीज] बीज का अवशिष्ट अंश जो नीच जाति के लोग खेतों से लाते हैं। बिजवार।

बिजन-संज्ञा पुं० [सं० विजन] निर्जन स्थान। सुनसान जगह। क्रि० वि० जिसके साथ कोई न हो। अकेला। उ०—कैसे यह बाल लाल बाहिर बिजन आवै, बिजन बयारि लागैं लचकत लंक है।—मतिराम।

बिजरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] अलसी या तीसी का पौधा। (बुंदेल०)

बिजवार†-संज्ञा पुं० दे० "बिजई"

बिट-संज्ञा पुं० [सं० विट] नीच। खल। उ०—बीर-करि-केसरी कुठार पानि मानी हारि तेरी कहा चली बिड़ तो सो गनै घालि को।—तुलसी।

बिढारना-क्रि० अ० [सं० विट्] (३) नष्ट होना। बरबाद होना।

बिढारना-क्रि० अ० [हिं० बिडरना का स० रूप] (२) नष्ट करना। बरबाद करना। न रहने देना। उ०—सेतु बंध जेइ धनुष बिढारा। उही धनुष भौंहन्ह सो हारा।—जायसी।

बित्ती-संज्ञा स्त्री० [सं० वृत्ति] वह धन जो दूकानदार लोग गोशाला या और किसी धर्म्म कार्य्य के लिये, माल का दाम चुकाने के समय, काट कर अलग रखते हैं।

बिधुआ†-संज्ञा पुं० [देश०] शीशम की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसे पस्सी भी कहते हैं। वि० दे० "पस्सी"।

बिनवट-संज्ञा स्त्री० [हिं० बनेठी] बनेठी चलाने की क्रिया या विद्या।

बिनानी⊛-संज्ञा पुं० [सं० विज्ञान] विज्ञानी। उ०—तहाँ पवन न चालइ पानी। तहाँ आपइ एक बिनानी।—दादू।

बिबाक†-वि० दे० "बेबाक"। उ०—स्वारथ रहित परमारथी कहावत हैं भे सनेह बिबस बिदेहता बिबाके हैं।—तुलसी।

बिबुधेश-संज्ञा पुं० [सं०] इन्द्र। उ०—जयति बिबुधेश धनदादि दुर्लभ महाराज सम्राज सुखप्रद बिरागी।—तुलसी।

बिमानी-वि० [सं० वि+मान] मान रहित। निरभिमान। उ०—बिधि के समान हैं बिमानी-कृत राग हंस बिबिध बिबुध युत मेरु सो अचल है।—केशव।

बिमोहना-क्रि० अ० [सं० विमोहन] मोहित होना। आसक्त होना। उ०—सरवर रूप बिमोहा हिये हिलोरहि लेइ। पाँव छुवै मनु पावौं एहि मिसि लहरहि देइ।—जायसी।

बियत⊛-संज्ञा पुं० [सं० वियत्] आकाश। उ०—जहँ जहँ जेहि जोनि जनम महि पताल बियत।—तुलसी।

बिरमाना⊛-क्रि० अ० [सं० विराम] विराम करना। सुस्ताना। उ०—चुवत स्वेत मकरंद कन तरु तरु तर बिरमाइ। आवतु दच्छिन देस तें थक्यौ बटोही बाइ।—बिहारी।

बिरसना⊛†-क्रि० अ० [सं० विलास] विलास करना। भोगना। उ०—नीर घटे पुनि पूछ न कोई। बिरसि जो लीज हाथ रह सोई।—जायसी।

बिरहा-संज्ञा पुं० [सं० विरह] एक प्रकार का गीत जो प्रायः अहीर लोग गाते हैं। इसका अंतिम शब्द प्रायः बहुत खींच कर कहा जाता है। उ०—बैद हकीम बुलाओ कोइ गोइयाँ कोई लेओ री खबरिया मोर। खिरकी से खिरकी ज्यों फिरकी फिरति दुओ पिरकी उठत बड़ जोर।—बलबीर।

मुहा०—हार बिरहा गाना= बढ़ बढ़ कर ऐसी बातें करना जो प्रायः कार्य्य रूप में परिणत न हो सकती हों।

बिरासी⊛-संज्ञा पुं० [सं० विलासिन्] वह जो विलास करता हो। विलासी। उ०—जौ लगि कालिंदि होहि बिरासी। पुनि सुरसरि होइ समुद परासी।—जायसी।

बिलंजा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जो प्रायः सारे भारत में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ साग के रूप में खाई जाती हैं और ओषधि रूप में भी उनका व्यवहार होता है।

बिलंद-वि० [फा० बुलंद] (१) ऊँचा। उच्च। उ०(क)—मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे।—तुलसी। (ख)—प्रबल बिलंद बर बारनि के दंतनि सों, बैरनि के बाँके बाँके दुरग बिदारे हैं।—केशव। (२) विफल। नाकामयाब। जैसे,—अगर अच्छी तरह न पढ़ोगे तो इस बार इम्तहान में बिलंद हो जाओगे।

बिलगर-संज्ञा पुं० [देश०] गिरगिटी नामक वृक्ष जो प्रायः बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है। वि० दे० "गिरगिटी"।

बिलगाना-क्रि० अ० [हिं० बिलग+आना (प्रत्य०)] (२) पृथक या स्पष्ट रूप से दिखाई देना।

बिलल्ला-वि० [देश०] [स्त्री० बिलल्ली] जिसे किसी बात का कुछ भी शऊर या ढंग न हो। गावदी। मूर्ख।

बिलावलꣳ-संज्ञा स्त्री० [सं० वल्लभा] (१) प्रेमिका। प्रियतमा। (२) स्त्री। पत्नी। जैसे,—राज-बिलावल।

बिलासी-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का वृक्ष जो मलाबार और कनाड़ा में आप से आप होता और दूसरे स्थानों में लगाया जाता है। इसकी पत्तियाँ अंडाकार और ३ से ६ इंच तक लंबी होती हैं। इसकी छाल और पत्तियों का ओषधि के रूप में व्यवहार होता है; और इसके फल का गूदा राज लोग इमारत की लेई में मिलाते हैं जिससे उसकी जुड़ाई बहुत मजबूत हो जाती है। बारला।

वि० [सं० विलासिन्] विलास करनेवाला। भोग करनेवाला। उ०—देरि फिरीं तब हीं तब रावण सातो रसातल के गे बिलासी।—केशव।

बिलुरगात-संज्ञा पुं० [तिब्बती] तिब्बत के एक पर्वत का नाम।

विशेष—यह शब्द चीनियों के वैताढ्य (पर्वत) का अपभ्रंश जान पड़ता है।

बिलोगो-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास।

बिलोना†-संज्ञा पुं० [हिं० बिलोना] वह वस्तु जो बिलोकर निकाली जाय। नवनीत। मक्खन। उ०—सत के बिलोना बिलोय मोर माई। ऐसा बिलोय जामें तत्त न जाई।—कबीर।

बिलौरा-संज्ञा पुं० [हिं० बिल्ली या बिलाई+औरा (प्रत्य०)] बिल्ली का बच्चा।

बिवाई-संज्ञा स्त्री० [सं० विपादिका] पैर में होनेवाला एक प्रकार का रोग जिसमें पैर की उँगलियों के बीच का मांस या तलुए का चमड़ा फट जाता है। उ०—जाके पैर न फटी बिवाई। सो का जानै पीर पराई।—कहावत।

क्रि० प्र०—फटना।

बिवाय†-संज्ञा स्त्री० दे० "बिवाई"।

संज्ञा पुं० [?] विघ्न। बाधा (डिं०)

बिसमौ†-संज्ञा पुं० [सं० विस्मय ?] विषाद। दुःख। रंज। (अवध) उ०—नाग-फाँस उन्ह मेला गीवा। हरष न बिसमौ एकौ जीवा।—जायसी।

क्रि० वि० [सं० वि+समय] बिना समय के। असमय या कुसमय। उ०—बिरह अगस्त जो बिसमौ उएऊ। सरवर हरष सूखि सब गयऊ।—जायसी।

बिसरामीꣳ-वि० [सं० विश्राम] विश्राम देनेवाला। सुख देनेवाला। सुखद। उ०—सुआ सो राजा कर बिसरामी। मारि न जाइ चहै जेहि स्वामी।—जायसी।

बिसयल†-संज्ञा पुं० [देश०] बबूल की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जिसे उँदरू भी कहते हैं। वि० दे० "उँदरू"।

बिसा†-संज्ञा पुं० दे० "बिस्वा"। उ०—बीस बिसे व्रत भंग भयो सु कही अब केशव को धनु ताने।—केशव।

बिसायँध-संज्ञा स्त्री० [सं० विष+गंध] (१) दुर्गंध। बदबू। (२) मांस की दुर्गंध। गोश्त की बदबू। उ०—मोटि माँसु रुचि भोजन तासू। औ मुख आव बिसायँध बासू।—जायसी।

बिसैंधा†-वि० [हिं० बिसायँध] (१) जिसमें दुर्गंध आती हो। बदबूदार। (२) मांस, मछली आदि की गंधवाला। उ०—तजि नागेसर फूल सोहावा। कँवल बिसैंधहिं सौं मन लावा।—जायसी।

बिह्वलꣳ-वि० [सं० विह्वल] (२) शिथिल। उ०—ह्वै गई बिहवल अंग पृथु फिरि सजे सकल सिंगार जू।—केशव।

बिहारी-वि० [सं० विहार] विहार करनेवाला। उ०—एक दुहाँ दुख देखत केशव होत उहाँ सुरलोक बिहारी।—केशव।

संज्ञा पुं० श्रीकृष्ण का एक नाम।

बींदनाꣳ†-क्रि० अ० [?] अनुमान करना। अंदाज से जानना। उ०—झुकि झुकि झपकौंहैं पलनु फिरि फिरि जुरि जमुहाइ। बींदि पियागम नींद मिसि दीं सब अली उठाइ।—बिहारी।

बीचि-संज्ञा स्त्री० [सं० वीचि] लहर। तरंग। उ०—बीचिन के सोर सौं जगावत पुकार कै।—मतिराम।

बीझा†-वि० [सं० विजन ?] (२) सघन। घना। (जंगल)

बीना-संज्ञा स्त्री० दे० "बीन"। उ०—कहूँ सुंदरी बेनु बीना बजावैं।—केशव।

बीरन-संज्ञा स्त्री० दे० "गाँडर" (१)।

बीरौ-संज्ञा पुं० [हिं० बिरवा] वृक्ष। पेड़। उ०—आपुहि खोइ ओहि जो पावा। सो बीरौ मनु लाइ जमावा।—जायसी।

बीस-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो गोरखपुर और बरमा के जंगलों तथा कोंकण देश में पाया जाता है। इसकी लकड़ी बहुत अच्छी होती है और प्रायः बंदूक के कुंदे बनाने के काम में आती है।

बुकसेलर-संज्ञा पुं० [अं०] पुस्तकें बेचनेवाला। पुस्तक-विक्रेता।

बुताम-संज्ञा पुं० [अं० बटन] पहनने के कपड़ों में लगाई जानेवाली कड़ी चिपटी घुंडी। बटन।

बुत्ता-संज्ञा पुं० [देश०] (१) धोखा। झाँसा। पट्टी।

मुहा०-बुत्ता देना = झाँसा देना। दम देना।

यौ०—दम बुत्ता।

(२) बहाना। हीला।

मुहा०-बुत्ता बताना = बहाना करना। हीला करना।

बुद्ध द्रव्य-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध भगवान् की अस्थि, केश, नख, आदि स्मृति-चिह्न जो किसी स्तूप के नीचे संरक्षित हों।

बुल्ला-संज्ञा पुं० [हिं० बुलबुला] पानी का बुलबुला। बुदबुदा। उ०—पानी महँ जस बुल्ला तस यह जग उतराइ। एकहि आवत देखिए एक है जात बिलाइ।—जायसी।

बूचा-वि० [सं० बुस=विभाग करना] (३) जिसके साथ कोई सौंदर्य बढ़ानेवाला उपकरण न हो। नंगा। खाली।

बुलेटिन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी सार्वजनिक विषय पर सरकारी या किसी अधिकारी व्यक्ति का वक्तव्य या विवरण। जैसे,—सत्याग्रह कमिटी के प्रचार मंत्री ने एक बुलेटिन निकाला है जिसमें लोगों से कहा गया है कि वे ऐसे समाचारों पर विश्वास न करें। (२) किसी राजा, महाराज, राजपुरुष या देश के प्रमुख नेता के स्वास्थ्य के संबंध में सरकारी या किसी अधिकारी व्यक्ति की रिपोर्ट या विवरण। जैसे,—राज्य के प्रधान डाक्टर के हस्ताक्षर से सबेरे ७ बजे एक बुलेटिन निकला जिसमें लिखा था कि महाराज का स्वास्थ्य सुधर रहा है।

बेंच-संज्ञा स्त्री० [अं०] (३) वह आसन जिस पर न्यायकर्त्ता बैठता हो। न्यायासन। (४) न्यायालय। अदालत।

बैंयत-संज्ञा स्त्री० दे० "ब्योंत"।

बेक़दरा-वि० [फा० बे+क़द्र] (१) जिसकी कोई कदर न हो। अप्रतिष्ठित। (२) जो कदर करना न जानता हो।

बेकसूर-वि० [फा० बे+अ० कसूर] जिसका कोई कसूर न हो। निरपराध।

बेखतर-वि० [फा० बे+अ० खतर] जिसे किसी प्रकार का खतर या भय न हो। निर्भय। निडर। जैसे,—आप बेखतर वहाँ चले जायँ।

बेगर-संज्ञा पुं० [?] उड़द या मूँग का कुछ मोटा और रवेदार आटा जिससे प्रायः मगदल या बड़ा आदि बनाते हैं। यह कच्चा और पक्का दो प्रकार का होता है। कच्चा वह कहलाता है जो कच्चे मूँग या उड़द को पीस कर बनाया जाता है, और पक्का वह कहलाता है जो भुने हुए मूँग या उड़द को पीसने से बनता है।

बेझना(क्ष)†-क्रि० स० [सं० वेध+ना (प्रत्य०)] निशाना लगाना। बेधना।

बेट-संज्ञा पुं० [अं०] बाजी। दाँव। शर्त। बदान। जैसे—बतराओ, कुछ बेट लगाते हो?

क्रि० प्र०—लगाना।

बेधिया†-संज्ञा पुं० [हिं० बेधना] अंकुश। आँकुस। उ०—केहरि लंक कुंभस्थल हिया। गीउ मयूर अलक बेधिया।—जायसी।

बेनसीब-वि० [हिं० बे+अ० नसीब] जिसका नसीब अच्छा न हो। अभागा। बदकिस्मत। जैसे—बा अदब बानसीब। बेअदब बेनसीब।

बेनियन-संज्ञा पुं० [हिं० बनिया] वह व्यापारी या महाजन जो युरोपियन कोठीवालों (हाउसवालों) को आवश्यकतानुसार रुपए की सहायता देता है।

विशेष—"बेनियन" धनी बंगाली और मारवाड़ी होते हैं। हाउसवालों से इनकी लिखा पढ़ी रहती है कि जब जितने रुपए की आवश्यकता होगी, देना पड़ेगा। एक हाउस या कोठी का एक ही बेनियन होता है। लाभ होने पर बेनियन को भी हिस्सा मिलता है और घाटा होने पर उसे हानि भी सहनी पड़ती है।

बेपरदगी-संज्ञा स्त्री० [फा०] परदे का अभाव। परदा न होना।

बेफिकरा-वि० [हिं० बे+फा० फ़िक्र] जिसे किसी बात की फिक्र या परवाह न हो। निश्चिन्त।

बेमज़ा-वि० [फा०] जिसमें कोई मज़ा न हो। जिसमें कोई आनंद न हो।

बेमौसिम-वि० [फा० बे+अ० मौसिम] उपयुक्त मौसिम या ऋतु न होने पर भी होनेवाला। जैसे,—जाड़े में पानी बरसना या आम मिलना बेमौसिम होता है।

बेलकुन-संज्ञा पुं० [देश०] अर्क-छिकनी की जाति की एक प्रकार की लता जो पंजाब की पहाड़ियों और पश्चिमी हिमालय में ५००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। यह लंका और मलाया द्वीप में भी होती है। वर्षा ऋतु के अंत में इसमें पीलापन लिये सफेद रंग के बहुत छोटे छोटे फूल लगते हैं।

बेलिफ-संज्ञा पुं० [अं०] दीवानी अदालत का वह कर्मचारी जिसका काम अदालत में हाजिर न होनेवालों को गिरिफ्तार करना और माल कुर्क करना आदि है।

बेली-संज्ञा पुं० [सं० बल] साथी। संगी। जैसे,—गरीबों का अल्लाह बेली है। (कहा०) उ०—सोरह सै सँग चलीं सहेली। कँवल न रहा और को बेली।—जायसी।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा कँटीला वृक्ष जो हिमालय में ४००० फुट तक की ऊँचाई पर और दक्षिण भारत में भी पाया जाता है। यह गरमी के दिनों में फूलता

और जाड़े में फलता है। इसके भिन्न भिन्न अंगों का व्यवहार ओषधि के रूप में होता है। इसकी लकड़ी पीले रंग की और बहुत कड़ी होती है। जावा में इसके फल कपड़ा धोने के काम में आते हैं।

बेवसाय†-संज्ञा पुं० [सं० व्यवसाय] व्यवसाय। काम। उ०—विविध बैस जो बाँधे पाऊ। कहाँ सो जोबन किन बेवसाऊ।—जायसी।

बेसर†-संज्ञा पुं० [?] खच्चर। उ०—हस्ति घोड़ औ दर पुरुष जावन बेसरा ऊँट। जहँ तहँ लीन्ह पलानै कटक सरह अस छूट।—जायसी।

संज्ञा स्त्री० नाक में पहनने की छोटी नथ।

बेसाहनी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० बेसाहना] मोल लेने की क्रिया। उ०—कोई करै बेसाहनी काहू केर बिसाह। कोई चलै लाभ सन कोई मूर गँवाइ।—जायसी।

बेहराना†-क्रि० अ० [हिं० बेहर] फटना। विदीर्ण होना। उ०—उठा फूलि हिरदय न समाना। कंथा टूक टूक बेहराना।—जायसी।

क्रि० स० फाड़ना। विदीर्ण करना।

बेहुनर-वि० [फा०] जिसे कोई हुनर न आता हो। जिसमें कोई कला या गुण न हो।

बैंकर-संज्ञा पुं० [अं०] महाजन। साहूकार। कोठीवाल।

बैट-संज्ञा पुं० [अं०] क्रिकेट के खेल में गेंद मारने का डंडा जो आगे की ओर चौड़ा और चिपटा होता है। बल्ला।

बैठकी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० बैठना] वह कर जो जमींदार की ओर से बाजार में बैठनेवाले बनियों और दूकानदारों आदि पर लगाया जाता है। बरसाई।

बैतड़ा†-वि० [हिं० बैतला] (१) जो व्यर्थ इधर उधर घूमता रहता हो। आवारा। (२) लुच्चा। शोहदा।

बैतला-वि० [अं० बैतउल्ला] (१) (माल) जिसका कोई मालिक न हो। लावारिस।

संज्ञा पुं० चोरी का माल। (जुआरी)

बैरन-संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० बैरोनेस] इंगलैंड के सामंतों तथा बड़े बड़े सूर्याधिकारियों को वंश परंपरा के लिये दी जानेवाली उपाधि जिसका दर्जा "वाइकौंट" के नीचे है। वि० दे० "ड्यूक"।

बैरोमीटर-संज्ञा पुं० [अं०] मौसिम की सरदी गरमी नापने का यंत्र जो थर्मामीटर की तरह का, पर उससे बड़ा होता है।

बैसाना*†-क्रि० स० [हिं० बैसना] स्थित करना। बैठाना। उ०—सिधि गुटका जो द्रिस्टि समाई। पारहि मेल रूप बैसाई।—जायसी।

बोदार-संज्ञा पुं० दे० "बाकली"।

बोदुला-संज्ञा पुं० [देश०] मँझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जो अवध, बुंदेलखंड और बंगाल में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ टहनियों के सिरों पर गुच्छों के रूप में होती हैं और पशुओं के चारे के काम में आती हैं। इसकी लकड़ी बहुत मुलायम होती है।

बोनस-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह धन या रकम जो किसी को उसके प्राप्य के अतिरिक्त दी जाय। (२) वह धन जो किसी कर्मचारी को उसके पारिश्रमिक या वेतन के अतिरिक्त दिया जाय। पुरस्कार। पारितोषिक। बखशिश। (३) वह अतिरिक्त लाभ या मुनाफा जो सम्मिलित पूँजी से चलनेवाली कंपनी के शेयर-होल्डरों या हिस्सेदारों को दिया जाय।

बोना-संज्ञा पुं० [सं० बुहा] एक प्रकार की वनस्पति। वि० दे० "धूसरच्छदा"।

बोयला†-संज्ञा पुं० [देश०] (१) बाजरे का भूसा। (२) रेत। बालू।

बोर्डर-संज्ञा पुं० [अं०] वह विद्यार्थी जो बोर्डिंग हाउस में रहता हो।

बोलनहारा†-संज्ञा पुं० [हिं० बोलना + हार = वाला (प्रत्य०)] शुद्ध आत्मा। बोलता। उ०—पराधीन देव दीन हौं स्वाधीन गुसाईं। बोलनिहारे सों करै बलि बिनय कि झाईं।—तुलसी।

बोलसर-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—किरमिज नुकरा जरदे भले। रूपकरान बोलसर चले।—जायसी।

बोलाचाली-संज्ञा स्त्री० [हिं० बोलना + अनु० चालना] बातचीत या आलाप का व्यवहार। जैसे,—तुम्हारी उनकी बोलाचाली क्यों बन्द हो गई?

बौंडी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० दमड़ी] दमड़ी। छदाम। उ०—जाँचे को नरेस देस देस को कलेस करै देहैं तौ प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौंडिये।—तुलसी।

बौलसिरी-संज्ञा स्त्री० [सं० बकुलश्री] बकुल। मौलसिरी। उ०—अपनें कर गुहि आपु हठि पहिराई गर लाल। मौल सिरी औरै चढ़ी बौलसिरी की माल।—बिहारी।

ब्याजू-वि० [हिं० ब्याज] ब्याज पर दिया या लगाया हुआ (धन)। जैसे,—हमारे पास १००) थे, सो हमने ब्याजू दे दिए।

ब्याहुला†-वि० [हिं० ब्याह + उला (प्रत्य०)] विवाह संबंधी। विवाह का। जैसे,—ब्याहुले गीत।

ब्योरन†-संज्ञा स्त्री० [सं० विवरण, हिं० ब्योरा] बालों को सँवारने की क्रिया या ढंग। उ०—बेई कर ब्यौरनि वहै ब्यौरो कौन बिचार। जिनहीं उरझ्यौ मो हियो तिनहीं सुरझे बार।—बिहारी।

ब्योरा-संज्ञा पुं० [सं० विवरण] (४) अंतर। भेद। फरक। उ०—बेई कर ब्यौरनि वहै ब्यौरो कौन बिचार। जिनहीं उरझ्यौ मो हियो तिनहीं सुरझे बार।—बिहारी।

ब्रह्मंड-संज्ञा पुं० दे० "ब्रह्मांड"। उ०—धनु भंग को शब्द गयो भेदि ब्रह्मण्ड को।—केशव।

ब्रह्मदेय-संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण को दान में दी हुई वस्तु। (शिलालेख)

ब्रह्मभट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेदों का ज्ञाता। (२) ब्रह्म या ईश्वर को जाननेवाला। ब्रह्मविद्। (३) सृष्टि के आदि में ब्रह्मयज्ञ से उत्पन्न कवि नामक ऋषि की उपाधि। (४) एक प्रकार के ब्राह्मणों की उपाधि।

ब्रिज-संज्ञा पुं० [अं०] पुल। सेतु। जैसे,—सोन ब्रिज। हवड़ा ब्रिज।

ब्रिटेन-संज्ञा पुं० [अं०] इंगलैंड और वेल्स।

ब्रोकर-संज्ञा पुं० [अं०] वह व्यक्ति जो दूसरे के लिये सौदा खरीदता और बेचता है और जिसे सौदे पर सैंकड़े पीछे कुछ बँधी हुई दलाली मिलती है। दलाल। जैसे,—शेयर ब्रोकर। पीस गुड्स ब्रोकर।

भंकार-संज्ञा पुं० [अनु० भं + कार (प्रत्य०)] विकट शब्द। भीषण नाद। उ०—कहूँ भीम भंकार कर्नाल साजैं।—केशव।

भँड़तिल्ला-संज्ञा पुं० [हिं० भाँड़ + तिल्ला] (१) भँड़ताल नाम का गाना। (२) कोई ऐसा गाना जो व्यवस्थित रूप से या साज सामान के साथ न हो।

भँडेर-संज्ञा पुं० [देश०] धूँट नाम का झाड़ या वृक्ष जिसकी छाल चमड़ा रँगने के काम में आती है। वि० दे० "धूँट"।

भँवनॐ-संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रमण] भ्रमण। घूमना। फिरना। उ०—देखत लगत निकट मृग खगनिहं जुत थकित बिसारि जहँ तहँ की भँवनि।—तुलसी।

भगन-वि० दे० "भग्न"। उ०—भगन कियो भव धनुष, साल तुमको अब सालौं।—केशव।

भगा-संज्ञा पुं० [हिं० भागना] लड़ाई से भागा हुआ पशु या पक्षी।

भगी-संज्ञा स्त्री० [हिं० भागना] बहुत से लोगों के साथ मिलकर भागने की क्रिया। भगदड़।

क्रि० प्र०—पड़ना।—मचना।

भग्नोत्सृष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] वे गोप जो साझीदार के समान अनुपयोगी गायों का पालन करते थे।

विशेष—कौटिल्य के समय में ऐसे लोगों के अधीन बीमार, लँगड़ी, लूली, दूध दुहने में बहुत तंग करनेवाली या किसी विशेष आदमी के हाथ से ही लगनेवाली और बछड़े को मार डालनेवाली गौएँ रखी जाती थीं।

भड़साईं-संज्ञा स्त्री० [हिं० भाड़] भड़भूँजों की भट्ठी जिसमें वे अनाज भूनते हैं। वि० दे० "भाड़"।

मुहा०—भड़साईं धिकना = कारबार का खूब चलना। अच्छी आय होना। (व्यंग्य)

भड़ास-संज्ञा स्त्री० [हिं० भरना] मन में पैठा हुआ दुःख या सोच।

मुहा०—भड़ास निकालना = कुछ कह सुन कर या और किसी प्रकार मन में बैठा हुआ दुःख दूर करना। जैसे—तुम भी बक झक कर अपने मन की भड़ास निकाल लो।

भद्र अवज्ञा-संज्ञा स्त्री० दे० "सविनय कानून भंग"।

भया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) ६२ हाथ लम्बी, ५६ हाथ चौड़ी और ३६ हाथ ऊँची नाव। (युक्ति कल्पतरु)

भरत-संज्ञा पुं० [सं०] (११) जैनों के अनुसार प्रथम तीर्थंकर ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र का नाम।

भरना-क्रि० स० [सं० भरण] भेंटना। मिलना। उ०—भरी सखी सब भेंटत फेरा। अंत कंत सौं भएउ गुरेरा।—जायसी।

भरनी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० भरना] (१) खेतों में बीज आदि बोने की क्रिया। (२) खेतों में पानी देने की क्रिया। सिंचाई।

भरभराहट-संज्ञा स्त्री० [अनु०] सूजन। वरम।

भरा महीना-संज्ञा पुं० [हिं० भरना + महीना] बरसात के दिन जिनमें खेतों में बीज बोए जाते हैं। उ०—लेइ किछु स्वाद आगि नहिं पावा। भरा मास तेइ सोइ गँवावा।—जायसी।

भरुआना†-क्रि० अ० [हिं० भारी + आना (प्रत्य०)] भारी होना। उ०—भावकु उभरौंहौं भयौ कछुक पर्‍यौ भरुआइ। सीप हरा कैं मिसि हियौ निसि दिन हेरत जाइ।—बिहारी।

भरोटा†-संज्ञा पुं० [हिं० भार + ओटा (प्रत्य०)] घास या लकड़ियों आदि का गट्ठा। बोझ।

भर्य-संज्ञा पुं० [सं०] भरण पोषण का व्यय। खर्चा। गुजारा।

विशेष—विशेष अवस्थाओं में राज्य की ओर से पत्नी को पति से 'भर्य' दिलाया जाता था। (कौ०)

भर्रा-संज्ञा पुं० [भर से अनु०] (३) झाँसा। पट्टी। दम। चकमा। जैसे—एक ही भर्रे में तो वह सारा रुपया चुका देंगे।

क्रि० प्र०—देना।

भवनवासी-संज्ञा पुं० [सं० भवनवासिन्] जैनों के अनुसार आत्माओं के चार भेदों में से एक।

भवाँॐ†-संज्ञा पुं० [सं० भ्रमण] फेरा। चक्कर। उ०—राते कँवल करहिं अलि भवाँ। घूमहिं माति चहहिं अपसवाँ।—जायसी।

भविॐ-वि० दे० "भव्य"। उ०—केशव की भवि भूषण की भवि भूषण भू-तन में तनया उपजाई।—केशव।

भसाकू-संज्ञा पुं० [हिं० तमाकू का अनु०] पीने का वह तमाकू जो बहुत कडुआ या कड़ा न हो। हलका और मीठा तमाकू।

भस्सड़-वि० [अनु० भस्स] बहुत मोटा और भद्दा (विशेषतः आदमी)।

भाँड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० भाँड़] (१) भाँड़पन। (२) भाँड़ का काम। उ०—कहूँ भाँड़ भाँड़्यो करैं मान पावैं।—केशव।

भौंति-संज्ञा स्त्री० [सं० भेद] मर्यादा। चाल। उ०—रतन रतन लख्यो जाति पाँति भौंति। घंटरो जड़नि को लालची चाहौं न दूध नह्यो हौं।—तुलसी।

भाँपू-संज्ञा पुं० [हिं० भाँपना] भाँपने या ताड़नेवाला । दूर से ही देखकर अनुमान कर लेनेवाला ।

भागानुप्रविष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] गायों की रक्षा करनेवाला वह कर्मचारी जो गाय के मालिकों से दूध आदि की आमदनी का दसवाँ भाग लेता था । (कौ०)

भाग्य-लेख्य-पत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बँटवारे का कागज । वह कागज जिसमें किसी जायदाद के हिस्सेदारों के हिस्से लिखे हों । (शुक्र-नीति)

भार-संज्ञा पुं० [सं०] (८) प्राचीन काल का सोने का एक मान जो २० तुला या २००० पल के बराबर होता था ।

भारत-संज्ञा पुं० [सं०] (७) घोर युद्ध । घमासान लड़ाई । उ०—भरी एक भारत भा भा असवारन्ह मेल । जूझि कुँवर सब निबरे गोरा रहा अकेल ।—जायसी ।

भारतीकरण-संज्ञा पुं० [सं० भारतीय + करण] किसी वस्तु या संस्था को भारतीय बनाना अर्थात् उसमें भारतीय तत्वों या भारतवासियों का आधिक्य करना । जैसे—सेना का भारतीकरण ।

भार्गवेश-संज्ञा पुं० [सं० भार्गव + ईश] परशुराम । उ०—अमेय तेज भर्ग भक्त भार्गवेश देखिये ।—केशव ।

भाव निक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार किसी पदार्थ का वह नाम जो उसके केवल वर्त्तमान स्वरूप को देख कर रखा गया हो ।

भावप्राण-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार आत्मा की चेतना शक्ति ।

भावबंध-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार भावना या विचार जिनके द्वारा कर्म तत्व से आत्मा बंधन में पड़ता है ।

भावलिंग-संज्ञा पुं० [सं०] काम-वासना के संबंध में होनेवाली मानसिक क्रिया । संभोग संबंधी भाव या विचार । (जैन)

भावलेश्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार आत्मा पर रहनेवाला भावों का आवरण । विचारों की रंगत जो आत्मा पर चढ़ी रहती है ।

भावसंवर-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार वह शक्ति या क्रिया जिससे मन में नए भावों का ग्रहण रुक जाता है ।

भावाभाव-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार भाव का अभाव में अथवा वर्त्तमान का भूत में होनेवाला परिवर्त्तन ।

भावै-अव्य० [हिं० भाना] चाहे । उ०—भावै चारिहु जुग सति पूरी । भावै आगि बाउ जल धूरी ।—जायसी ।

भाषापत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (११) वह पत्र जिसमें कष्टों का निवेदन किया गया हो । (शुक्र नीति)

भिच्छु-संज्ञा पुं० दे० "भिक्षु" । उ०—भिच्छु जानि जानकी सु भीख को बुलाइयो ।—केशव ।

भिनभिनाहट-संज्ञा स्त्री० [अनु० भिनभिनाना + आहट (प्रत्य०)] भिनभिनाने की क्रिया या भाव ।

भिन्नकूट-(सैन्य) वि० [सं०] बिना सेनापति की (सेना) ।

विशेष—कौटिल्य ने भिन्नकूट और अंध (अशिक्षित) सेनाओं में से भिन्नकूट को अच्छा कहा है, क्योंकि वह सेनापति का प्रबंध हो जाने पर लड़ सकती है ।

भिन्नगर्भ-(सैन्य) वि० [सं०] तितर बितर की हुई (सेना) ।

भिन्न मनुष्या-वि० स्त्री० [सं०] (भूमि) जिसमें भिन्न भिन्न जातियों, स्वभावों और पेशों के लोग बसते हों ।

विशेष—कौटिल्य ने प्रचलित राज-शासन की रक्षा के विचार से ऐसे देश को अच्छा कहा है, क्योंकि उसमें जनता शासन को नष्ट करने के लिये एक नहीं हो सकती ।

भिन्न-मुद्र-वि० [सं०] जिसकी मुद्रा या मोहर टूट गई हो ।

भीमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (५) ४० हाथ लंबी, २० हाथ चौड़ी और २० हाथ ऊँची नाव । (युक्ति-कल्पतरु)

भुँइचाल-संज्ञा पुं० [हिं० भुइँ=भूमि + चाल=चलना, हिलना] भूकंप । भूडोल । उ०—जनु भुँइचाल चलत महि परा । टूटी कमठ-पीठि हिय डरा ।—जायसी ।

भुँइहरा-संज्ञा पुं० [हिं० भूमि + हरा (प्रत्य०)] जमीन के नीचे बना हुआ कमरा आदि । तहखाना । (बुंदेल०)

भुकड़ी-संज्ञा स्त्री० [?] सफेद रंग की एक प्रकार की वनस्पति जो प्रायः बरसात के दिनों में अनाज, फल या अचार आदि पर उसके सड़ जाने के कारण उत्पन्न होती है ।

क्रि० प्र०—छाना ।

भुकराँद-संज्ञा स्त्री० दे० "भुकरायँध" ।

भुकराँधा-वि० [हिं० भुकरायँध] जिसमें से भुकरायँध आवे । सड़ी हुई दुर्गंधवाला । (विशेषतः अनाज)

भुकरायँध-संज्ञा स्त्री० [हिं० भुकड़ी + गंध] वह दुर्गंध जो किसी पदार्थ के सड़ जाने और उसमें भुकड़ी लग जाने के कारण उत्पन्न होती है ।

भुक्तकांस्य-संज्ञा पुं० [सं०] फूल या काँसे का बरतन जिसमें खाद्य पदार्थ रख कर खाया जाता हो । (कौ०)

भुखमुआ-वि० दे० "भुखमरा" ।

भुग्गा-वि० [देश०] मूर्ख । बेवकूफ ।

संज्ञा पुं० तिल आदि का एक प्रकार का तैयार किया हुआ मीठा चूरा ।

क्रि० प्र०—कूटना ।

भुजइला-संज्ञा पुं० [सं० भुजंग] भुजंगा नामक पक्षी ।

भुजिया-संज्ञा पुं० [हिं० भूँजना=भूनना] (२) वह तरकारी जो सूखी ही भूनकर बनाई जाती है और जिसमें रसा या शोरबा नहीं होता । सूखी तरकारी । जैसे,—आलू का भुजिया । परवल का भुजिया ।

भुनवाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० भुनवाना] (१) भुनवाने की क्रिया या

भाव। (२) वह धन जो भुनवाने के बदले में दिया जाय। भुनाई। भाँज।

भुनाई-संज्ञा स्त्री० दे० "भुनवाई"।

भुन्नास-संज्ञा पुं० [देश०] पुरुष की इंद्रिय। लिंग। (बाजारू)

भुन्नासी-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा देशी ताला जो प्रायः दूकानों आदि में बंद किया जाता है।

भुरभुरा-संज्ञा पुं० [देश०] उत्तरी भारत में होनेवाली एक प्रकार की बरसाती घास जिसे गौएँ, बैल और घोड़े बहुत पसंद करते हैं। इसका मेल देने से कड़े चारे नरम हो जाते हैं। पलंजी। इसा। गलगला।

भुरभुराहट-संज्ञा स्त्री० [हिं० भुरभुरा + आहट (प्रत्य०)] भुरभुरे होने की क्रिया या भाव। भुरभुरापन।

भुर्रा-वि० [हिं० भूरा या भँवरा ?] बहुत अधिक काला। घोर कृष्ण। जैसे,—बिलकुल काला भुर्रा सा आदमी तुम्हें ढूँढ़ने आया था।

भुलक्कड़-वि० [हिं० भूलना + अक्कड़ (प्रत्य०)] जिसका स्वभाव भूलने का हो। बातों को भूल जानेवाला।

भुवपति-संज्ञा पुं० [सं०] भूपति। राजा। उ०—भूपर भाऊ भुवप्पति को मन सो कर औ कर सो मन ऊँचो।—मतिराम।

भूँइ-संज्ञा स्त्री० [सं० भूमि] भूमि। पृथ्वी।

भूआ-संज्ञा स्त्री० दे० "धूआ"।

भूई-संज्ञा स्त्री० [हिं० घूआ या भूआ] रूई के समान मुलायम वस्तु का बहुत छोटा टुकड़ा। उ०—रुइँ पै मरहि होइ जरि भूई। अबहुँ बघेल कान कै रूई।—जायसी।

भूजी-संज्ञा स्त्री० दे० "भुजिया"।

भूमि-भोग-संज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र या राजा जिसके पास भूमि बहुत हो।

विशेष—पुराने आचार्य्य भूमिभोग की अपेक्षा हिरण्य-भोग (जिसके पास सोना या धन बहुत हो) को अच्छा मानते थे, क्योंकि उसे प्रबंध का व्यय भी कम उठाना पड़ता है और व्यय के लिये धन भी उसके पास पर्याप्त रहता है। पर कौटिल्य ने भूमि को ही सब प्रकार के धन का आधार मानकर भूमिभोग को ही अच्छा बताया है।

भूमि-संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह संधि जो परस्पर मिलकर कोई भूमि प्राप्त करने के लिये की जाय। (२) शत्रु के साथ वह संधि जो कुछ भूमि देकर की जाय।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि इस संधि में शत्रु को ऐसी ही भूमि देनी चाहिए जो प्रत्यादेया हो या जिस पर शत्रु या असमर्थ और असक्त बसे हों अथवा जिसके सँभालने में धन जन का व्यय अधिक होता हो।

भृगु-मुख्य-संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम। उ०—पंचमुख छमुख भृगुमुख्य भट असुर सुर सर्व सरि समर समरत्थ सूरो।—तुलसी।

भृतक बल-संज्ञा पुं० [सं०] तनखाह लेकर लड़नेवाली सेना। नौकर फौज।

भेंगा-वि० [देश०] जिसकी आँखों की दोनों पुतलियाँ देखने में बराबर न रहती हों, टेढ़ी तिरछी रहती हों। ढेरा। भंवर-तक्कू।

भेप-संज्ञा पुं० [सं० भेष] किसी विशिष्ट संप्रदाय का साधु या संत। (साधुओं की परि०)

भैंसवाली-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बेल जिसकी पत्तियाँ पाँच से आठ इंच तक लम्बी होती हैं। यह उत्तरी और दक्षिणी भारत में पाई जाती है। यह वर्षा ऋतु में फूलती और जाड़े में फलती है।

भैंसिया गूगल-संज्ञा पुं० [हिं० भैंसिया + गूगल] एक प्रकार का गूगल जिसका व्यवहार औषधि के रूप में होता है।

भैंसिया लहसुन-संज्ञा पुं० [हिं० भैंसिया + लहसुन] एक प्रकार का लाल दाग या निशान जो प्रायः गाल या गरदन आदि पर होता है। लच्छन।

भैक्ष्य-शुद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] भिक्षा संबंधी शुद्धि। भिक्षा माँगने और ग्रहण करने के संबंध की शुद्धि। (जैन)

भैरव झोली-संज्ञा स्त्री० [सं० भैरव + झोली] एक प्रकार की लंबी झोली जो प्रायः साधुओं आदि के पास रहती है।

भोकस-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार के राक्षस। उ०—कीन्हेसि राकस भूत परीता। कीन्हेसि भोकस देव दईता।—जायसी।

भोग-संज्ञा पुं० [सं०] (२१) आय। आमदनी। (कौ०) (२२) भूमि या संपत्ति का व्यवहार।

भोगपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जो राजा को डाली या उपहार भेजने के संबंध में लिखा जाय। (शुक्रनीति)

भोग-भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार वह लोक जिसमें किसी प्रकार का कर्म्म नहीं करना पड़ता, और सब प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्त्ति केवल कल्पवृक्ष के द्वारा हो जाती है।

भोगलाभ-संज्ञा पुं० [सं०] दिए हुए अन्न के बदले में ब्याज के रूप में कुछ अधिक अन्न जो फसल तैयार होने पर लिया जाय।

भोगवेतन-संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जो किसी धरोहर रखी हुई वस्तु के व्यवहार के बदले में स्वामी को दिया जाय।

भोग-व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें सैनिक एक दूसरे के पीछे खड़े किए गए हों। (कौ०)

भोग्याधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] धरोहर की वह रकम या वस्तु जो कागज पर लिख ली गई हो।

भोथार-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—मुश्की औ हिरमिजी एराकी। तुरकी कहे भोथार बलाकी।—जायसी।

भौंर-संज्ञा पुं० [?] मुश्की घोड़ा। उ०—लील समंद चाल जग जाने। हाँसल भौंर गियाह बखाने।—जायसी।

भ्रम-संज्ञा पुं० [सं० सम्भ्रम] मान । प्रतिष्ठा । इज्जत । उ०—जस अति संकट पंडवन्ह भएउ भीव बँदि छोर । तस परवस पिउ काढ़हु राखि लेहु भ्रम मोर ।—जायसी ।

संज्ञा पुं० [सं०] (९) योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विघ्नों में से एक प्रकार का विघ्न या उपसर्ग जिसमें योगी सब प्रकार के आचार आदि का परित्याग कर देता है और उसका मन निरवलंब की भाँति इधर उधर भटकता रहता है । (मार्कंडेय पु०)

मंग-संज्ञा स्त्री० दे० "माँग" । उ०—कुसुम फूल जस मरदै निरँग देख सब अँग । चंपावति मइ बारी, चूम केस औ मंग ।—जायसी ।

संज्ञा पुं० [देश०] आठ की संख्या । (दलाल)

मंगल कलश-संज्ञा पुं०[सं०] जल से भरा हुआ वह घड़ा या कलश जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर पूजा के लिये रखा जाता है ।

मंगल घट-संज्ञा पुं० दे० "मंगल कलश" । उ०—परिपूरण सिंदूर पूर कैधौं मंगल घट ।—केशव ।

मँगलाय-संज्ञा पुं० [दलाली मंग = आठ + भाय (प्रत्य०)] अठारह की संख्या । (दलाल)

मंजन-संज्ञा पुं० [सं० मज्जन] (३) वह चूर्ण जिसकी सहायता से मल कर दाँत साफ किए जाते हैं । (२) स्नान । नहाना । उ०—मंजन दै निकसै नित नैनन मंजन कै अति अंग सँवारे ।—मतिराम ।

मँजना-क्रि० अ० [सं० मज्जन] (१) रगड़ कर साफ किया जाना । माँजा जाना । (२) किसी कार्य को ठीक तरह से करने की योग्यता या शक्ति आना । अभ्यास होना । मश्क होना । जैसे,—लिखने में हाथ मँजना ।

मँजाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० माँजना] (१) माँजने की क्रिया या भाव । (२) माँजने की मजदूरी ।

मँजाना-क्रि० स० [हिं० माँजना का प्रे०] माँजने का काम दूसरे से कराना । किसी को माँजने में प्रवृत्त करना ।

* क्रि० स० माँजना । मल कर साफ करना । उ०—सूत सूत सो कया मँजाई । सीझा काय बिनत सिधि पाई ।—जायसी ।

मंजारी-संज्ञा स्त्री० [सं० मार्जार] बिल्ली । बिडाल । उ०—कहति न देवर की कुबत कुल-तिय कलह डराति । पंजरगत मंजार ढिग सुक ज्यौं सूकति जाति ।—बिहारी ।

मँजावट-संज्ञा स्त्री० [हिं० मँजना] (१) माँजने या मँजने का भाव । (२) माँजने या मँजने की क्रिया । (३) किसी काम में हाथ का मँजना । हाथ की सफाई ।

मंजिल-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) यात्रा के मार्ग में ठहरने का स्थान । पड़ाव । (२) वह स्थान जहाँ तक पहुँचना हो । (३) मकान का खंड । मरातिब ।

मंजूषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) पिंजड़ा । उ०—आजु नरायन फिरि जग खूँदा । आजु सो सिंह मँजूषा मूँदा ।—जायसी ।

मँझारी-क्रि० वि० [सं० मध्य] मध्य में । बीच में ।

मँझियार*†-वि० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ] मध्य का । बीच का । उ०—नव द्वारा राखे मँझियारा । दसवें मूँदि कै दिएउ किवारा ।—जायसी ।

मंडना-क्रि० स० [सं० मंडन] (३) परिपूरित करना । भरना । छाना । उ०—चंड कोदंड रह्यो मण्डि नवखंड को ।—केशव ।

मंडल-संज्ञा पुं० [सं०] (२) राजा के प्रधान कर्मचारियों का समूह । वि० दे० "अष्टप्रकृति" ।

मंडल व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें सैनिक चारों ओर एक घेरा सा बना कर खड़े किए जायँ । (कौ०)

मँडारा-संज्ञा पुं० [सं० मंडल] (२) झाबा । डलिया । उ०—सुमहिं को एक ? पतंग-मँडारे । चल न देख आछे मन मारे ।—जायसी ।

मंत्र-भेदक-संज्ञा पुं० [सं०] सरकारी गुप्त सलाह को प्रकाशित करनेवाला । (चंद्रगुप्त के समय में इस अपराध में जीभ उखाड़ लेना दंड था ।)

मंत्र युद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] केवल बात चीत या बहस के द्वारा शत्रु को वश में करने का प्रयत्न ।

विशेष-कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में इस विषय का एक अलग प्रकरण (१६३ वाँ) ही दिया है ।

मंत्र शक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध में चतुराई या चालाकी । ज्ञानबल ।

मंथरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) १२० हाथ लंबी, ६० हाथ चौड़ी और ६० हाथ ऊँची नाव । (युक्ति कल्पतरु)

मंशा-संज्ञा स्त्री० [अ०] कामना । इच्छा । इरादा । जैसे,—मेरी मंशा तो यही थी कि सब लोग वहाँ चलते ।

मँसा-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो बहुत शीघ्रता से बढ़ती और पशुओं के लिये बहुत पुष्टिकारक समझी जाती है । मकड़ा । वि० दे० "मकड़ा" ।

मकबरा-संज्ञा पुं० [अ०] वह मकान जिसके अंदर कोई कबर हो । कबर के ऊपर बनी हुई इमारत । समाधि-मंदिर ।

मकर-कुंडल-संज्ञा पुं० [सं० मकर + कुंडल] मकर के आकार का कुंडल । उ०—श्रवण मकर कुंडल लसत मुख सुखमा एकत्र ।—केशव ।

मकर तेंदुआ-संज्ञा पुं० [? मकर ? + सं० तिंदुक] आबनूस । काकतिंदुक ।

मकोह-संज्ञा स्त्री० दे० "बमोलन" ।

मकड़–संज्ञा पुं० [हिं० मकड़ी] बड़ा मकड़ा । नर मकड़ी ।

मखीर†–संज्ञा पुं० [हिं० मक्खी] शहद । मधु ।

मखौल–संज्ञा पुं० [देश०] हँसी ठट्ठा । मजाक । परिहास ।

मखौलिया–संज्ञा पुं० [हिं० मखौल+इया (प्रत्य०)] वह जो सदा मखौल करता हो । हँसी ठट्ठा करनेवाला । मसखरा । दिल्लगीबाज ।

मुहा०–मखौल उड़ाना = किसी की हँसी उड़ाना । परिहास करना ।

मगर–संज्ञा पुं० [सं० मग] अराकान प्रदेश जहाँ मग नाम की जाति बसती है । उ०—चला परबती लेइ कुमाऊँ । खसिया मगर जहाँ लगि नाऊँ ।—जायसी ।

मगरा†–वि० [अ० मगरूर] (१) अभिमानी । घमंडी । (२) सुस्त । अकर्मण्य । काहिल । (३) ढीठ । ढीठ । (४) हठी । जिद्दी । (५) उद्दंड ।

मगरी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] ढालुए छप्पर का बीच का या सब से ऊँचा भाग । जैसे,—ओलती का पानी मगरी चढ़ा है । (कहा०)

मघौना–संज्ञा पुं० [सं० मेघ+वर्ण] नीले रंग का कपड़ा । उ०—चिकवा चीर मघौना लोने । मोति लाग औ छापे सोने । —जायसी ।

† संज्ञा पुं० दे० "मघवा" ।

मचकाना–क्रि० स० [अनु०] मचकने में प्रवृत्त करना । झुकाना ।

मचमचाना–क्रि० अ० [अनु०] काम के बहुत अधिक आवेश में होना । बहुत अधिक कामातुर होना ।

मचमचाहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० मचमचाना+आहट (प्रत्य०)] मचमचाने की क्रिया या भाव । बहुत अधिक काम का आवेश ।

मचला–वि० [हिं० मचलना] (२) मचलनेवाला । हठ करनेवाला । हठी । उ०—हौं मचला लै छाँड़िहौं जेहि लगि अर्यो हौं । —तुलसी ।

मचलापन–संज्ञा पुं० [हिं० मचला+पन (प्रत्य०)] मचला होने का भाव । कुछ जानते हुए भी चुप रहने का भाव ।

मचाना†–क्रि० स० [?] मैला करना । गंदा करना ।

मचुला–संज्ञा पुं० [देश०] गिरगिट्टी नामक वृक्ष जो प्रायः बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है । वि० दे० "गिरगिट्टी" ।

मछरंगा–संज्ञा पुं० [हिं० मच्छ = मछली] एक प्रकार का जल-पक्षी जो मछलियाँ पकड़ कर खाता है । राम-चिड़िया ।

मजारी*–संज्ञा स्त्री० [सं० मार्जार] बिल्ली । बिडाल । उ०—(क) बिरह मयूर नाग वह नारी । तू मजारि करु बेगि गोहारी । —जायसी । (ख) सतु सुआ के नाऊ बारी । सुनि धाए जस धाव मजारी ।—जायसी ।

मजीठी–वि० [हिं० मजीठ] मजीठ के रंग का । लाल । सुर्ख । उ०—ओहि के रँग भा हाथ मजीठी । मुकुता लेउँ तौ घुँघची दीठी ।—जायसी ।

मझ*–वि० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ] मध्य । उ०—लागीं केलि करै मझ नीरा । हंस लजाइ बैठ ओहि तीरा ।—जायसी ।

मझका†–संज्ञा पुं० [हिं० माथा+झाँकना] विवाह के दूसरे या तीसरे दिन होनेवाली एक प्रकार की रस्म जिसमें वर-पक्ष के लोग कन्या के घर जाकर उसका मुख देखते और उसे कुछ नगद तथा आभूषण आदि देते हैं । मुँह-देखनी । (पूरब) ।

मटिया फूस–वि० [हिं० मिट्टी+फूस] बहुत अधिक दुर्बल और वृद्ध । जर्जर ।

मट्ठर–संज्ञा पुं० [देश०] सुस्त । काहिल ।

मठारना–क्रि० स० [हिं० मठरना] (१) बरतन में गोलाई या सुडौलपन लाने के लिये उसे "मठरना" नामक हथौड़े से धीरे धीरे पीटना । (२) गूँधे हुए आटे में लेस उत्पन्न करने के लिये उसे मुक्कियों से बार बार दबाना । मुक्की देना । (३) किसी बात को बहुत धीरे धीरे या बना बना कर कहना । बात को बहुत विस्तार देना ।

मड़क–संज्ञा स्त्री० [अनु०] किसी बात के अंदर छिपा हुआ हेतु । भीतरी रहस्य । जैसे—तुम उसकी बात की मड़क नहीं समझते ।

मड़ा†–संज्ञा पुं० [हिं० मढ़ी] बड़ी कोठरी । कमरा ।

मढ़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० मठ] (६) नाथ संप्रदाय के संन्यासी की समाधि जहाँ प्रायः कुछ साधु लोग रहते हैं ।

मणि सोपानक–संज्ञा पुं० [सं०] सोने के तार में पिरोए हुए मोतियों की माला जिसके बीच में कोई रत्न हो । (कौ०)

मतली–संज्ञा स्त्री० [हिं० मिचली] जी मिचलाने की क्रिया या भाव । कै होने की इच्छा ।

मताधिकार–संज्ञा पुं० [सं०] वोट या मत देने का अधिकार जो राजा या सरकार से प्राप्त हो । व्यवस्थापिका परिषद्, व्यवस्थापिका सभा आदि प्रतिनिधिक कहलानेवाली संस्थाओं के सदस्य या प्रतिनिधि निर्वाचित करने में वोट या मत देने का अधिकार ।

मति*–अव्य० [सं० मत् या वत्] सदृश । समान । उ०—घन समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की । —तुलसी ।

मतिन†–अव्य० [सं० मत् या वत् ?] सदृश । समान । (पूरब)

मतिमाह*–वि० [सं० मतिमत्] मतिमान् । बुद्धिमान् । समझदार । उ०—पुनि सलार कादिम मतिमाहाँ । खाँड़ दान उभै निति बाँहा ।—जायसी ।

मत्स्यनी सीमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दो गाँवों के बीच में पड़नेवाली नदी जो सीमा के रूप में हो । (स्मृति)

मद्दगार-संज्ञा पुं० [फा० मदद + फा० गार (प्रत्य०)] मदद करनेवाला। सहायता करनेवाला। सहायक।

मदन-कदन-संज्ञा पुं० [सं० मदन + कदन] शिव। महादेव। उ०—भयही यह कहि देख्यो मदन-कदन को दंड।—केशव।

मदन-मल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) मल्लिका छंद का एक नाम। उ०—अष्ट चरण शुभ सहित क्रम गुरु लघु केशवदास। मदन-मल्लिका नाम यह कीजै छंद प्रकास।—केशव।

मदफन-संज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान जहाँ मुरदे गाड़े जाते हैं। कब्रिस्तान।

मदमत्त-वि० [सं०] (१) (हाथी) जो मद बहने के कारण मत्त हो। उ०—जिन हाथन हठि हरषि हनत हरिणी-रिपु नंदन। तिन न करत संहार कहा मदमत्त गयंदन।—केशव। (२) मस्त। मतवाला।

मदानिक-वि० [?] कल्याण करनेवाला। मंगलकारक। उ०—तुलसी संगति पोच की सुजनहिं होति मदानि। ज्यों हरि रूप सुताहि तें कीन्ह गुहारी आनि।—तुलसी।

मदिया-संज्ञा स्त्री० [फा० मादा] पशुओं में स्त्री जाति। स्त्री-जाति का जानवर। जैसे,—मदिया कबूतर। मदिया कौवा।

मधाना-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो पशुओं के लिये बहुत पुष्टिकारक समझी जाती है। मकड़ा। मधाना। वि० दे० "मकड़ा"।

मधुप-संज्ञा पुं० [सं०] (३) उद्धव। उ०—पागी प्रेम नँदलाल के, हमैं न भावत जोग। मधुप राजपद पाय के, भीख न माँगत लोग।—मतिराम।

मधुराम्न-संज्ञा पुं० [सं०] मिठाई। मिष्टान्न। उ०—खायँ मधुराम्न, नहिं पाय पनही धरैं।—केशव।

मध्यम राजा-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो कई परस्पर विरुद्ध राजाओं के मध्य में हो।

विशेष—इसमें इतनी शक्ति का होना आवश्यक है कि शांति तथा युद्ध काल में दोनों पक्षों के निग्रह तथा अनुग्रह में समर्थ हो।

मध्यमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (७) २४ हाथ लंबी, १२ हाथ चौड़ी और ८ हाथ ऊँची नाव। (युक्ति-कल्पतरु)

मध्यलोक-संज्ञा पुं० [सं०] (२) जैनों के अनुसार वह मध्यवर्ती लोक जो मेरु पर्वत पर १०००४० योजन की ऊँचाई पर है।

मनभंग-संज्ञा पुं० [सं० मन + भंग] बदरिकाश्रम के एक पर्वत का नाम।

मनरोचन-वि० [सं० मन + रोचन] मन को खुश करनेवाला। सुंदर। उ०—तापर भौंर भलो मनरोचन लोक विलोचन की रुचिरी है।—केशव।

मनसा-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो बहुत शीघ्रता से बढ़ती और पशुओं के लिये बहुत पुष्टिकारक समझी जाती है। मकड़ा। मधाना। खमकरा। वि० दे० "मकड़ा"।

मनसाकर-वि० [हिं० मनसा + सं० कर (प्रत्य०)] मनोवांछित फल देनेवाला। मनोकामना पूर्ण करनेवाला। उ०—मृदु शुभ मनसाकर कल्पतरु अरु शुभ तरंगिनी शोभ सनी।—केशव।

मनसा देवी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मनसा + देवी] एक देवी जो साँपों के कुल की अधिष्ठात्री मानी जाती है। प्रायः लोग साँप के काटने पर इसकी मन्नत मानते हैं।

मनीबैग-संज्ञा पुं० [अं०] चमड़े आदि का बना हुआ एक प्रकार का छोटा बटुआ जिसके अंदर कई खाने होते हैं जिनमें रुपए, रेजगी आदि रखते हैं।

मनुष्य-गणना-संज्ञा स्त्री० दे० "मर्दुम-शुमारी"।

मनुहार-संज्ञा स्त्री० [हिं० मन + हरना] शांति। तृप्ति। उ०—कुरला काम केरि मनुहारी। कुरला जेहि नहिं सो न सुनारी।—जायसी।

मनोगत-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

मनोवर्गणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार वे सूक्ष्म तत्व जिनसे मन की रचना हुई है।

ममोला-संज्ञा पुं० [देश०] (१) खंजन नाम का छोटा पक्षी जिसके पेट पर काली धारियाँ होती हैं। (२) छोटा और प्यारा बच्चा।

मम्मा-संज्ञा पुं० [अनु०] (१) स्तन। छाती। (२) जल। पानी। (बालक)

संज्ञा पुं० दे० "मामा"।

मयसुता-संज्ञा स्त्री० [सं० मय + सुता] मय दानव की कन्या, मन्दोदरी। उ०—मय की सुता धौं को है, मोहनी है मोह मन, आशु लौं न सुनी सु तौ नैनन निहारिये।—केशव।

मरकज़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वृत्त का मध्य बिंदु। (२) प्रधान या मध्य स्थान। केंद्र।

मरणाशंसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शीघ्र मरने की इच्छा। जल्दी मरने की कामना। (जैन)

मरियम-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वह बालिका जिसका विवाह न हुआ हो। कुमारी। कन्या। (२) ईसा मसीह की माता का नाम। (कहते हैं कि इन्हें कौमार अवस्था में ही बिना किसी पुरुष के संयोग के, ईश्वरी माया से, गर्भ रह गया था जिससे महात्मा मसीह का जन्म हुआ था।) (३) पतिव्रता और साध्वी स्त्री।

मरियम का पंजा-संज्ञा पुं० [अ० मरियम + हिं० पंजा] एक प्रकार की सुगंधित वनस्पति जिसका आकार हाथ के पंजे का सा होता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि ईसा मसीह की माता मरियम ने प्रसव के समय इस वनस्पति पर हाथ

रखा था, जिससे इसका आकार पंजे का सा हो गया। इसी कारण इसके संबंध में यह भी प्रसिद्ध हो गया है कि प्रसव पीड़ा के समय गर्भवती स्त्री के सामने इसे रख देने से पीड़ा शांत हो जाती है और सहज में तथा शीघ्र प्रसव हो जाता है।

मरियल-वि० [हिं० मरना + इयल (प्रत्य०)] बहुत दुर्बल। दुबला और कमजोर।

यौ०—मरियल टट्टू = बहुत सुस्त या कमजोर आदमी।

मर्चेंट-संज्ञा पुं० [अं०] व्यापार वाणिज्य करनेवाला। व्यापारी। सौदागर।

मर्दल-संज्ञा पुं० [सं०] पखावज के ढंग का एक प्रकार का बाजा जिसका व्यवहार प्रायः बंगाल में कीर्त्तन आदि के समय होता है। मादल।

मलका-संज्ञा स्त्री० [अ० मलिकः], बादशाह या महाराज की पटरानी। महारानी।

मलकुल मौत-संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों के अनुसार वह फरिश्ता जो अंत समय में प्राण लेने के लिये आता है।

मलता-वि० [हिं० मलना] मला या घिसा हुआ (सिक्का)। जैसे—मलता पैसा, मलती अठन्नी।

मलमलाना-क्रि० अ० [अनु०] पश्चात्ताप करना। अफसोस करना। पछताना।

मलमलाहट-संज्ञा स्त्री० [अनु०] मलमलाने की क्रिया या भाव। पश्चात्ताप। अफसोस।

मलयुग-संज्ञा पुं० दे० "कलियुग"। उ०—नाम ओट अब लगि बच्यो मलजुग जग जेरो। अब गरीब जन पोषिए पायबो न हेरो।—तुलसी।

मलेपंज-संज्ञा पुं० [देश०] अधिक अवस्था का घोड़ा। बुड्ढा घोड़ा।

मल्हा बेल-संज्ञा स्त्री० [देश०] मौला नामकी बेल जो प्रायः वृक्षों पर चढ़कर उन्हें बहुत अधिक हानि पहुँचाती है। वि० दे० "मौला"।

मसानिया-संज्ञा पुं० [हिं० मसान (श्मशान) + इया (प्रत्य०)] (१) श्मशान पर रहनेवाला डोम। (२) वह जो श्मशान पर रह कर किसी प्रकार की साधना करता हो। (३) वह जो झाड़ फूँक कर भूत-प्रेत आदि उतारता हो। सयाना। ओझा।

मसियर-*संज्ञा स्त्री० दे० "मशाल"। उ०—चहुँ दिसि मसियर नखत तहाईं। सूरुज चढ़ा चाँद कै ताईं।—जायसी।

मसियार-*संज्ञा स्त्री० दे० "मशाल"।

मसियारा-*संज्ञा पुं० दे० "मशालची"।

मसीना-संज्ञा पुं० [देश०] मोटा अन्न। कदन्न।

मसीहा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) ईसाई धर्म्म के प्रवर्त्तक ईसा मसीह। (२) वह जो मृतकों को जीवित करता हो।

विशेष—प्रायः उर्दू और फारसी काव्यों में प्रेमी या प्रेमिका के लिये इस शब्द का व्यवहार होता है।

मसीहाई-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) मसीहा का भाव। मसीहापन। (२) मृतक को जीवित करने की शक्ति। मरे हुए को जिलाने की ताकत।

मसेवरा-संज्ञा पुं० [हिं० मांस + वरा (प्रत्य०)] मांस की बनी चीजें। जैसे,—कोफता, कबाब आदि। उ०—कीन्ह मसेवरा सीझि रसोईं। जो किछु सबै माँसु सौं होई।—जायसी।

मसोसा-संज्ञा पुं० [हिं० मसोसना] (१) मानसिक दुःख। मन में होनेवाला रंज। (२) पश्चात्ताप। पछतावा।

महंता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महत्त्व। विज्ञान शक्ति। (२) महाभारत के अनुसार एक नदी का नाम।

महना-क्रि० स० [सं० मथन] (२) किसी बात या विषय का आवश्यकता से बहुत अधिक विवेचन करना। बहुत पिष्ट-पेषण करना।

यौ०—महना मथना = व्यर्थ का बहुत अधिक वाद-विवाद करना।

महरा-संज्ञा पुं० [हिं० महता] (३) सरदार। नायक। उ०—दसवँ दाँव कै गा जो दसहरा। पलटा सोइ नाव लेइ महरा।—जायसी।

महसूली-वि० [अ०] जिस पर किसी प्रकार का महसूल हो या लग सकता हो। महसूल के योग्य।

महा-संज्ञा पुं० [हिं० महना] मट्ठा। छाछ। उ०—रीझि बूझी सब की प्रतीति प्रीति एही द्वार दूध को जर्‌यो पियत फूँकि फूँकि मह्यो हौं।—तुलसी।

महात्यय-निवेश-संज्ञा पुं० [सं०] वह उपनिवेश या भूमि जिसके रखने में धन का बहुत खर्च हो।

विशेष—कौटिल्य का मत है कि ऐसे प्रदेश को या तो बेच देना चाहिए अथवा उसमें अपराधियों, राजद्रोहियों, प्रमादियों आदि को भेज देना चाहिए।

महानसावलेही-संज्ञा पुं० [सं०] चौका खराब करनेवाला। (चंद्रगुप्त मौर्य के समय में जो लोग ब्राह्मण के चौके को छू कर अथवा और किसी प्रकार खराब कर देते थे, उनकी जीभ उखाड़ ली जाती थी।)

महापद्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१०) जैनों के अनुसार महा हिमवान् पर्वत पर के जलाशय का नाम।

महापुंडरीक-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार रुक्मि पर्वत पर के बड़े जलाशय या झील का नाम।

महाप्रतिहार-संज्ञा पुं० [सं०] (२) नगर में शांति रखनेवाला अधिकारी। कोतवाल।

महामरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलंजन। पान की जड़।

महामंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब से बड़ा मंत्र जिसकी

सहायता से किसी काम का होना निश्चित हो। (२) उत्कृष्ट मंत्र। अच्छी और बढ़िया सलाह। उ०—राजा राजपुरोहितादि सुहृदो मंत्री महामंत्र-दा।—केशव।

महामत्स्य-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार वह बहुत बड़ी मछली जो स्वयंभूरमण सागर में थी।

महाशुक्र-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार दसवें स्वर्ग का नाम।

महासत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार वह विश्व-व्यापिनी सत्ता जिसमें विश्व के समस्त जीवों और पदार्थों की सत्ता अंतर्मुक्त है। सबसे बड़ी और प्रधान सत्ता जो सब प्रकार की सत्ताओं का मूल आधार है।

महा हिमवान्-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार दूसरा पर्वत जो हैमवत और हरि नाम के दो खंडों में विभक्त है।

महियाउर†-संज्ञा पुं० [हिं० मही = मठा + चाउर = चावल] मठे में पका हुआ चावल। उ० माठा माहिं महियाउर नावा। भीज बरा नैनू जनु खावा।—जायसी।

महेरा-संज्ञा पुं० [हिं० मही + एरा (प्रत्य०)] मही। मठा। उ०—जस विउ होइ जराइ के तस जिउ निरमल होइ। महै महेरा दूरि करि भोग करै सुख सोइ।—जायसी।

महेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० महेश्वरी] महेश्वरी। पार्वती। उ०—हिय महेस जौं कहँ महेसी। कित सिर नावहिं ए परदेसी।—जायसी।

महेसुर#-संज्ञा पुं० [सं० महेश्वर] (१) महेश्वर। (२) माहेश्वर नामक शैव संप्रदाय। उ०—कोइ सु महेसुर जंगम जती। कोइ एक परखै देवी सती।—जायसी।

महोछा†-संज्ञा पुं० [सं० महोत्सव] खत्रियों में होनेवाला उनके एक प्रसिद्ध महात्मा (बाबा लाल् जसराय) का पूजन जो श्रावण मास के कृष्ण पक्ष में होता है।

महोली-संज्ञा स्त्री० [देश०] पापड़ी नामक वृक्ष जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती और इमारत के काम में आती है। वि० दे० "पापड़ी"।

माँज-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) दलदली भूमि। (२) तराई। कछार। (३) वह भूमि जो किसी नदी के पीछे हट जाने के कारण निकल आती है। गंगबरार।

माँ-जाया-संज्ञा पुं० [हिं० माँ + जाया = जात] [स्त्री० माँजाई] माँ से उत्पन्न, सगा भाई।

माइका-संज्ञा पुं० [अं०] अबरक। अभ्रक।

माइन-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) खान। (२) बारूद की सुरंग।

माइनारिटी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) अल्प संख्या। आधे से कम संख्या। (२) वह पार्टी या दल जिसके वोट कम हों।

माईं-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसका फल माजू से मिलता जुलता होता है और जिसका व्यवहार प्रायः हकीम लोग ओषधि के रूप में करते हैं।

माई लार्ड-संज्ञा पुं० [अं०] लार्डों तथा हाइकोर्ट के जजों को संबोधन करने का शब्द। जैसे,—माई लार्ड, आपको इस बात का बड़ा अभिमान है कि अँगरेजों में आपकी भाँति भारतवर्ष के विषय में शासन-नीति समझनेवाला और शासन करनेवाला नहीं है।—बालमुकुंद गुप्त।

माउंट पुलिस-संज्ञा स्त्री० [अं० माउंटेड पुलिस] घुड़सवार पुलिस।

माकल-संज्ञा स्त्री० [देश०] इंद्रायन नाम की लता।

माखो-संज्ञा स्त्री० [हिं० मक्खी] शहद की मक्खी। (पश्चिम) संज्ञा स्त्री० [हिं० मुखं ?] लोगों में फैलनेवाली चर्चा। जनरव।

माट-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की वनस्पति जिसका व्यवहार तरकारी के रूप में होता है।

माठू-संज्ञा पुं० [देश०] (१) बंदर। वानर। (२) मूर्ख। (पश्चिम)

माड़ा-वि० [सं० मंद] (१) खराब। निकम्मा। (२) दुबला। दुर्बल। (पश्चिम) (३) बीमार। रोगी। (पश्चिम)

माढ़ी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मँड़ी] मड़ा। मचिया। उ०—को पालक पौढ़े को माढ़ी। सोवनहार परा बँद गाढ़ी।—जायसी।

माणव विद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] जादू टोना। जंत्र मन्त्र की विद्या। (बौ०)

माथना#-क्रि० स० दे० "मथना"। उ०—नीर होइ तर ऊपर सोई। माथे रंग समुद जस होई।—जायसी।

मादर-संज्ञा पुं० दे० "मादल"। उ०—पुन्ह पिउ साहस बाँधा मैं पिय माँग सेंदूर। दोउ सँभारे होइ सँग बाजै मादर तूर।—जायसी।

मादरी-वि० [फा०] माता संबंधी। माता का।

यौ०—मादरी जबान = मातृभाषा।

मादल-संज्ञा पुं० [सं० मर्दल] पखावज के ढंग का एक प्रकार का बाजा जो प्रायः बंगाल में कीर्तन आदि के समय बजाया जाता है।

मानवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जो अपने पति या प्रेमी से मान करती हो। मानिनी। उ०—करै हरषा सौं सु तिय मन-भावन सों मान। मानवती तासों कहत, कवि मतिराम सुजान।—मतिराम।

मानवदेव-संज्ञा पुं० [सं० मानव + देव] राजा। उ०—बलि मिस देखे देवता कर मिस मानव देव। मुए मार सुविचार हत स्वारथ साधन एव।—तुलसी।

मानाथ-संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मी के पति, विष्णु। उ०—मदन मर्दन मयातीत माया रहित मंजु मानाथ पाथोज पानी।—तुलसी।

मानिटर-संज्ञा पुं० [अं०] स्कूल की किसी कक्षा का वह प्रधान विद्यार्थी जो अपने अन्य सहपाठियों की पढ़ने-लिखने आदि के संबंध में देख भाल रखता हो।

रखा था, जिससे इसका आकार पंजे का सा हो गया। इसी कारण इसके संबंध में यह भी प्रसिद्ध हो गया है कि प्रसव पीड़ा के समय गर्भवती स्त्री के सामने इसे रख देने से पीड़ा शांत हो जाती है और सहज में तथा शीघ्र प्रसव हो जाता है।

मरियल-वि० [हिं० मरना+इयल (प्रत्य०)] बहुत दुर्बल। दुबला और कमजोर।

यौ०—मरियल टट्टू = बहुत सुस्त या कमजोर आदमी।

मर्चेंट-संज्ञा पुं० [अं०] व्यापार वाणिज्य करनेवाला। व्यापारी। सौदागर।

मर्दल-संज्ञा पुं० [सं०] पखावज के ढंग का एक प्रकार का बाजा जिसका व्यवहार प्रायः बंगाल में कीर्त्तन आदि के समय होता है। मादल।

मलका-संज्ञा स्त्री० [अ० मलिकः] बादशाह या महाराज की पटरानी। महारानी।

मलकुल मौत-संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों के अनुसार वह फरिश्ता जो अंत समय में प्राण लेने के लिये आता है।

मलता-वि० [हिं० मलना] मला या घिसा हुआ (सिक्का)। जैसे—मलता पैसा, मलती अठन्नी।

मलमलाना-क्रि० अ० [अनु०] पश्चात्ताप करना। अफसोस करना। पछताना।

मलमलाहट-संज्ञा स्त्री० [अनु०] मलमलाने की क्रिया या भाव। पश्चात्ताप। अफसोस।

मलयुग-संज्ञा पुं० दे० "कलियुग"। उ०—नाम ओट अब लगि बच्यो मलजुग जग जेरो। अब गरीब जन पोषिए पायबो न हेरो।—तुलसी।

मलेपंज-संज्ञा पुं० [देश०] अधिक अवस्था का घोड़ा। बुड्ढा घोड़ा।

मल्हा बेल-संज्ञा स्त्री० [देश०] मौला नाम की बेल जो प्रायः वृक्षों पर चढ़कर उन्हें बहुत अधिक हानि पहुँचाती है। वि० दे० "मौला"।

मसानिया-संज्ञा पुं० [हिं० मसान (श्मशान) + इया (प्रत्य०)] (१) श्मशान पर रहनेवाला, डोम। (२) वह जो श्मशान पर रह कर किसी प्रकार की साधना करता हो। (३) वह जो झाड़ फूँक कर भूत-प्रेत आदि उतारता हो। सयाना। ओझा।

मसियर-संज्ञा स्त्री० दे० "मशाल"। उ०—चहुँ दिसि मसियर नखत तहाँई। सूरुज चढ़ा चाँद के ताईं।—जायसी।

मसियार-संज्ञा स्त्री० दे० "मशाल"।

मसियारा-संज्ञा पुं० दे० "मशालची"।

मसीना-संज्ञा पुं० [देश०] मोटा अन्न। कदन्न।

मसीहा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) ईसाई धर्म के प्रवर्त्तक ईसा मसीह। (२) वह जो मृतकों को जीवित करता हो।

विशेष—प्रायः उर्दू और फारसी काव्यों में प्रेमी या प्रेमिका के लिये इस शब्द का व्यवहार होता है।

मसीहाई-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) मसीहा का भाव। मसीहापन। (२) मृतक को जीवित करने की शक्ति। मरे हुए को जिलाने की ताकत।

मसेवरा-संज्ञा पुं० [हिं० मांस+वरा (प्रत्य०)] मांस की बनी चीज़ें। जैसे,—कोफता, कबाब आदि। उ०—कीन्ह मसेवरा सीझि रसोई। जो किछु सबै माँसु सौं होई।—जायसी।

मसोसा-संज्ञा पुं० [हिं० मसोसना] (१) मानसिक दुःख। मन में होनेवाला रंज। (२) पश्चात्ताप। पछतावा।

महता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महत्तत्व। विज्ञान शक्ति। (२) महाभारत के अनुसार एक नदी का नाम।

महना-क्रि० स० [सं० मन्थन] (२) किसी बात या विषय का आवश्यकता से बहुत अधिक विवेचन करना। बहुत पिष्ट-पेषण करना।

यौ०—महना मथना = व्यर्थ का बहुत अधिक वाद-विवाद करना।

महरा-संज्ञा पुं० [हिं० महता] (३) सरदार। नायक। उ०—दसवँ दाँव कै गा जो दसहरा। पलटा सोइ नाव लेइ महरा।—जायसी।

महसूली-वि० [अ०] जिस पर किसी प्रकार का महसूल हो या लग सकता हो। महसूल के योग्य।

महा-संज्ञा पुं० [हिं० महना] मट्ठा। छाछ। उ०—रीझि बूझी सब की प्रतीति प्रीति एही द्वार दूध को जरयो पियत फूँकि फूँकि महो हौं।—तुलसी।

महात्यय-व्यय-निवेश-संज्ञा पुं० [सं०] वह उपनिवेश या भूमि जिसके रखने में धन का बहुत खर्च हो।

विशेष—कौटिल्य का मत है कि ऐसे प्रदेश को या तो बेच देना चाहिए अथवा उसमें अपराधियों, राजद्रोहियों, प्रमादियों आदि को भेज देना चाहिए।

महानसावलेही-संज्ञा पुं० [सं०] चौका खराब करनेवाला। (चंद्रगुप्त मौर्य के समय में जो लोग ब्राह्मण के चौके को छू कर अथवा और किसी प्रकार खराब कर देते थे, उनकी जीभ उखाड़ ली जाती थी।)

महापद्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१०) जैनों के अनुसार महा हिमवान् पर्वत पर के जलाशय का नाम।

महापुंडरीक-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार रुक्मि पर्वत पर के बड़े जलाशय या झील का नाम।

महाप्रतिहार-संज्ञा पुं० [सं०] (२) नगर में शांति रखनेवाला अधिकारी। कोतवाल।

महामरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलंजन। पान की जड़।

महामंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब से बड़ा मंत्र जिसकी

सहायता से किसी काम का होना निश्चित हो। (२) उत्कृष्ट मंत्र। अच्छी और बढ़िया सलाह। उ०—राजा राजपुरोहितादि सुहृदो मंत्री महामंत्र-दा।—केशव।

महामत्स्य-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार वह बहुत बड़ी मछली जो स्वयंभूरमण सागर में थी।

महाशुक्र-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार दसवें स्वर्ग का नाम।

महासत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार वह विश्व-व्यापिनी सत्ता जिसमें विश्व के समस्त जीवों और पदार्थों की सत्ता अंतर्मुक्त है। सबसे बड़ी और प्रधान सत्ता जो सब प्रकार की सत्ताओं का मूल आधार है।

महा हिमवान्-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार दूसरा पर्वत जो हैमवत और हरि नाम के दो खंडों में विभक्त है।

महियाउर†-संज्ञा पुं० [हिं० मही = मठा + चाउर = चावल] मठे में पका हुआ चावल। उ० माठा महि महियाउर नावा। भीज भरा नैनू जनु खावा।—जायसी।

महेरा-संज्ञा पुं० [हिं० मही + एरा (प्रत्य०)] मही। मठा। उ०—जस पिउ होइ जराइ के तस जिउ निरमल होइ। महै महेरा दूरि करि भोग करै सुख सोइ।—जायसी।

महेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० महेश्वरी] महेश्वरी। पार्वती। उ०—हिय महेस जौं कहै महेसी। कित सिर नावहिं ए परदेसी।—जायसी।

महेसुर⊛-संज्ञा पुं० [सं० महेश्वर] (१) महेश्वर। (२) माहेश्वर नामक शैव संप्रदाय। उ०—कोइ सु महेसुर जंगम जती। कोइ एक परखै देवी सती।—जायसी।

महोछा†-संज्ञा पुं० [सं० महोत्सव] खत्रियों में होनेवाला उनके एक प्रसिद्ध महात्मा (बाबा लाल जसराय) का पूजन जो श्रावण मास के कृष्ण पक्ष में होता है।

महोली-संज्ञा स्त्री० [देश०] पापड़ी नामक वृक्ष जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती और इमारत के काम में आती है। वि० दे० "पापड़ी"।

माँज-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) दलदली भूमि। (२) तराई। कछार। (३) वह भूमि जो किसी नदी के पीछे हट जाने के कारण निकल आती है। गंगबरार।

माँ-जाया-संज्ञा पुं० [हिं० माँ + जाया = जात] [स्त्री० माँजाई] माँ से उत्पन्न, सगा भाई।

माइका-संज्ञा पुं० [अं०] अबरक। अभ्रक।

माइन-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) खान। (२) बारूद की सुरंग।

माइनारिटी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) अल्प संख्या। आधे से कम संख्या। (२) वह पार्टी या दल जिसके वोट कम हों।

माई-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसका फल माजू से मिलता जुलता होता है और जिसका व्यवहार प्रायः हकीम लोग ओषधि के रूप में करते हैं।

माई लार्ड-संज्ञा पुं० [अं०] लार्डों तथा हाइकोर्ट के जजों को संबोधन करने का शब्द। जैसे,—माई लार्ड, आपको इस बात का बड़ा अभिमान है कि अँगरेजों में आपकी भाँति भारतवर्ष के विषय में शासन-नीति समझनेवाला और शासन करनेवाला नहीं है।—बालमुकुंद गुप्त।

माउंट पुलिस-संज्ञा स्त्री० [अं० माउंटेड पुलिस] घुड़सवार पुलिस।

माकल-संज्ञा स्त्री० [देश०] इंद्रायन नाम की लता।

माखो-संज्ञा स्त्री० [हिं० माखी] शहद की मक्खी। (पश्चिम) संज्ञा स्त्री० [हिं० मुख ?] लोगों में फैलनेवाली चर्चा। जनरव।

माट-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की वनस्पति जिसका व्यवहार तरकारी के रूप में होता है।

माठू-संज्ञा पुं० [देश०] (१) बंदर। वानर। (२) मूर्ख। (पश्चिम)

माड़ा-वि० [सं० मंद] (१) खराब। निकम्मा। (२) दुबला। दुर्बल। (पश्चिम) (३) बीमार। रोगी। (पश्चिम)

माढ़ी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मँढ़ी] मच। मचिया। उ०—कौं पालक पौढ़े को माढ़ी। सोवनहार पड़ा बँद गाढ़ी।—जायसी।

माणव विद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] जादू टोना। जंत्र मन्त्र की विद्या। (कौ०)

माथना⊛-क्रि० स० दे० "मथना"। उ०—नीर होइ तर ऊपर सोई। माथे रंग समुद जस होई।—जायसी।

मादर-संज्ञा पुं० दे० "मादल"। उ०—गुन्ह पिउ साहस बाँधा मैं पिय माँग सेंदूर। दोउ सँभारे होइ सँग बाजै मादर तूर।—जायसी।

मादरी-वि० [फा०] माता संबंधी। माता का।

यौ०—मादरी ज़बान = मातृभाषा।

मादल-संज्ञा पुं० [सं० मर्दल] पखावज के ढंग का एक प्रकार का बाजा जो प्रायः बंगाल में कीर्तन आदि के समय बजाया जाता है।

मानवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जो अपने पति या प्रेमी से मान करती हो। मानिनी। उ०—करै इरषा सौं जु तिय मन-भावन सौं मान। मानवती तासौं कहत, कवि मतिराम सुजान।—मतिराम।

मानवदेव-संज्ञा पुं० [सं० मानव + देव] राजा। उ०—बलि मिस देखे देवता कर मिस मानव देव। मुए मार सुविचार हत स्वारथ साधन एव।—तुलसी।

मानाथ-संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मी के पति, विष्णु। उ०—मदन मर्दन मयातीत माया रहित मंजु मानाथ पाथोज पानी।—तुलसी।

मानिटर-संज्ञा पुं० [अं०] स्कूल की किसी कक्षा का वह प्रधान विद्यार्थी जो अपने अन्य सहपाठियों की पढ़ने-लिखने आदि के संबंध में देख भाल रखता हो।

मानुषोत्तर–संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार एक पर्वत का नाम जो पुष्कर द्वीप को दो समान भागों में विभक्त करता है।

मापक–संज्ञा पुं० [सं०] अन्न मापने का काम करनेवाला। बया।

विशेष–प्राचीन काल में भारत में अन्न तुला से नहीं तौला जाता था। भिन्न भिन्न तौलों के बरतन रहते थे, उन्हीं में अनाज भर भर कर बेचा जाता था। माप में भेद आने पर २०० पण जुरमाना किया जाता था। (कौ०)

मामूर–वि० [अ०] भरा हुआ। पूर्ण।

मायापति–संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर। परमेश्वर।

मायापात्र–संज्ञा पुं० [सं० माया = धन + पात्र] वह जिसके पास बहुत धन हो। धनवान। अमीर।

मारकेश–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म-कुंडली में पड़नेवाले कुछ विशिष्ट ग्रहों का योग, जिसके परिणाम स्वरूप उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है अथवा वह मरणासन्न हो जाता है।

मार पीट–संज्ञा स्त्री० [हिं० मारना + पीटना] मारने और पीटने की क्रिया। ऐसी लड़ाई जिसमें आघात किया जाय।

मारफत–संज्ञा स्त्री० [अ०] ईश्वर संबंधी ज्ञान। ईश्वरीय ज्ञान। उ०—राह हकीकत परै न चूकी। पैठि मारफत मार बुड़की।—जायसी।

मार्क–संज्ञा पुं० [अं०] जर्मनी में चलनेवाला चाँदी का एक सिक्का जो प्रायः एक शिलिंग या बारह आने मूल्य का होता है।

मार्किस–संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० मार्शनेस] इंगलैंड के सामंतों और बड़े बड़े भूम्यधिकारियों को वंश परंपरा के लिये दी जानेवाली एक प्रतिष्ठासूचक उपाधि जिसका दर्जा ड्यूक के बाद है। वि० दे० "ड्यूक"।

मार्गनिरोध–संज्ञा पुं० [सं०] चलते रास्ते को खराब करना या रोकना।

विशेष—कौटिल्य के समय में इसके लिये भिन्न भिन्न दंड नियत थे।

मार्जारासक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रस। (कौ०)

मार्बल–संज्ञा पुं० [अं०] संगमरमर।

मार्शल–संज्ञा पुं० [अं०] सेना का एक बहुत बड़ा अफसर जो प्रधान सेनापति या समर-सचिव के अधीन होता है।

मार्शल लॉ–संज्ञा पुं० [अं०] सैनिक व्यवस्था या शासन। फौजी कानून या हुकूमत।

विशेष—समर, विद्रोह या इसी प्रकार के आपत्काल में साधारण कानून या दंड-विधान से काम चलता न देखकर देश का शासनसूत्र सैनिक अधिकारियों के हाथ में दे दिया जाता है और इसकी घोषणा कर दी जाती है। सैनिक अधिकारी इस संकट-काल में, विद्रोह आदि दमन करने में, कठोर से कठोर उपायों का अवलंबन करते हैं।

मालू–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बेल जो बागों में शोभा के लिये लगाई जाती है और प्रायः सारे भारत में जंगली दशा में पाई जाती है। साल के जंगलों में यह बहुत अधिकता से होती है। यदि इसे छाँटा और रोका न जाय तो यह बहुत जल्दी बढ़ जाती और वृक्षों को बहुत हानि पहुँचाती है। इसकी शाखाएँ सैंकड़ों फुट तक पहुँचती हैं। इसकी छाल से रेशा निकाला जाता है और उससे रस्से आदि बनाए जाते हैं। इसकी पत्तियाँ और बीज औषध में काम आते हैं और बीज भून कर खाए भी जाते हैं। इसकी पत्तियों के छाते भी बनाए जाते हैं।

मालूम–संज्ञा पुं० [अ०] जहाज का अफसर। (लश०)

माशाअल्लाह–पद [अ०] एक प्रशंसासूचक पद। बहुत अच्छा है। क्या कहना है।

विशेष—इस पद का प्रयोग दो प्रकार से होता है। एक तो किसी अच्छी चीज को देखकर उसकी प्रशंसा करने के लिये; और दूसरे किसी अच्छी चीज का जिक्र करते हुए यह भाव प्रकट करने के लिये कि ईश्वर करे, इसे नजर न लगे।

मासभृत–संज्ञा पुं० [सं०] वह मजदूर जिसको मासिक वेतन मिलता हो।

मासिक धर्म्म–संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों को प्रति मास होनेवाला स्राव। स्त्रियों का रजस्वला होना।

मासूम–वि० [अ०] जिसने कोई अपराध या दोष न किया हो। निरपराध। बेगुनाह। जैसे,—मासूम बच्चा।

माहू–संज्ञा पुं० [देश०] कन-सलाई नाम का बरसाती कीड़ा जो प्रायः कान में घुस जाता है। गिंजाई।

माहेंद्र–संज्ञा पुं० [सं०] (५) जैनों के अनुसार चौथे स्वर्ग का नाम।

मितऊ–संज्ञा पुं० दे० "मित्र"। उ०—(क) आली औरे मित को मेरो मित्यो मिलाप।—मतिराम। (ख) तू हेरै भौवर सौ मिता। सोइ करै जेहि लहै न चिंता।—जायसी।

मिक्सचर–संज्ञा पुं० [अं०] ऐसी तरल औषध जिसमें कई औषधियाँ मिली हों। मिश्रित औषध। जैसे,—किनाइन मिक्सचर।

मिचली–संज्ञा स्त्री० [हिं० मिचलाना] जी मिचलाने की क्रिया या भाव। कै होने की इच्छा।

मिजबानी–संज्ञा स्त्री० दे० "मेजबानी"।

मिठाना–क्रि० अ० [हिं० मीठा + आना (प्रत्य०)] मीठा होना। मधुर होना। उ०—मारयौ मनुहारिनु भरी, गारयौ खरी मिठाहिं। वाको अति अनखाहटौ मुसुकाहट बिनु नाहिं।—बिहारी।

मिज़ाजी–वि० [अ० मिज़ाज + ई (प्रत्य०)] बहुत अधिक मिजाज करने या रखनेवाला। अभिमानी। घमंडी।

मितविक्रय–संज्ञा पुं० [सं०] माप कर पदार्थ बेचना। (कौ०)

मिती-काटा-संज्ञा पुं० [हिं० मिती + काटना] (१) वह हिसाब जिसके अनुसार सराफ लोग हुंडी की मुद्दत तथा ब्याज लेते हैं। (२) सूद लगाने का वह ढंग जिसमें प्रत्येक रकम का सूद उसकी अलग अलग मिती से जोड़ा जाता है।

मित्रप्रकृति–संज्ञा पुं० [सं०] विजेता के चारों ओर रहनेवाले मित्र राष्ट्र या राजा।

मित्र-विक्षिप्त–वि० [सं०] मित्र के देश में पड़ी हुई (सेना)।

मिनट–संज्ञा पुं० [अं०] एक घंटे का साठवाँ भाग। साठ सेकंड का समय।

मुहा०—मिनटों में = बात की बात में। जैसे,—वह यह काम मिनटों में कर डालेगा।

मिनिट बुक–संज्ञा स्त्री० [अं०] वह बही या किताब जिसमें किसी सभा, समिति के अधिवेशनों में सम्पन्न हुए कार्यों का विवरण लिखा जाता है।

मिनिस्टर–संज्ञा पुं० [अं०] (१) मन्त्री। सचिव। दीवान। वज़ीर। (२) राजदूत। एलची। (३) धर्मोपदेष्टा। धर्माचार्य। पादरी। (ईसाई)

मिरवना‡–क्रि० स० दे० "मिलाना"।

मिरियास‡–संज्ञा स्त्री० [अ० मीरास] किसी के मरने पर उसके उत्तराधिकारी को मिलनेवाली संपत्ति। मीरास।

मिल–संज्ञा स्त्री० [अं० मिल] कपड़ा आदि बुनने की कल या कारखाना। पुतलीघर।

मिलवना‡–क्रि० स० दे० "मिलाना" उ०—उन हटकी हँसि कै इतै इन सौंपी मुसकाइ। नैन मिलें मन मिलि गए दोऊ मिलवत गाइ।—बिहारी।

मिलिंद–संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमर। भौंरा। उ०—मधुरस मत्त मिलिंद गन, गान मुदित गननाथ।—मतिराम।

मिलिटरी–वि० [अं०] (१) सेना या सैनिक संबंधी। फौजी। जैसे,—मिलिटरी डिपार्टमेंट। (२) युद्ध संबंधी। सामरिक। जंगी। (३) लड़ाका। योद्धा। जैसे,—वह मिलिटरी आदमी है।

संज्ञा स्त्री० [अं०] सैन्यदल। पल्टन। फौज। जैसे—दंगे के दिनों में नगर में मिलिटरी का पहरा था।

मिलिशा–संज्ञा स्त्री० [अं०] ऐसे जवानों का दल जिन्हें किसी सीमा या स्थान की रक्षा करने के लिये शिक्षा दी गई हो और जिनसे समय समय पर रक्षा का काम लिया जाता हो। लड़ी पलटन। (इसका संघटन स्थायी नहीं होता।) जैसे,—वज़ीरिस्तान मिलिशा।

मिलीशिया–संज्ञा स्त्री० दे० "मिलिशा"।

मिसहा–वि० [हिं० मिस = बहाना + हा (प्रत्य०)] बहाना करनेवाला। छल करनेवाला। उ०—मैं मिसहा सोयौ समुझि मुँहु चूम्यौ ढिग जाइ। हँस्यौ खिसानी गल गह्यौ रही गरैं लपटाइ।—बिहारी।

मिस्सा‡–संज्ञा पुं० [देश०] किसी प्रकार की दाल को पीस कर तैयार किया हुआ मोटा आटा जिसकी रोटी बना कर गरीब लोग खाते हैं।

यौ०—मिस्सा कुस्सा = मोटा अन्न। कदन्न।

मिहचना‡–क्रि० स० दे० "मीचना"। उ०—प्रीतम दृग मिहचत प्रिया पानि-परस सुखु पाइ। जानि पिछानि अजान लौं नैकुँ न होति जनाइ।—बिहारी।

मिहीं–वि० दे० "महीन"। उ०—जैसे मिहीं पट मैं चटकीलो, चढ़ै रँग तीसरी बार के बोरैं।—मनिराम।

मींजना‡–क्रि० स० [हिं० मूँदना] मूँदना। बंद करना। (आँखों के लिये) उ०—दूध माँझ जस घीउ है समुद माँह जस मोति। नैन मींजि जो देखहु चमक उठै तस जोति।—जायसी।

मीचꣳ–संज्ञा स्त्री० [सं० मृत्यु] मृत्यु। मौत। उ०—मीच गई अब बीच ही, बिरहानल की झार।—मतिराम।

मीत‡–संज्ञा पुं० [सं० मित्र] मित्र। दोस्त। उ०—(क) मीन मैं माँगा बेगि बिवानू। चला सूर सँवरा अस्थानू।—जायसी। (ख) हम हीं नर के मीत सदा साँचे हितकारी। इक हमहीं सँग जात तजत जब पितु सुत नारी।—भारतेन्दु।

मीन-मेख–संज्ञा पुं० [सं० मीन + मेष] सोच विचार। आगा पीछा। असमंजस। उ०—भामिनि मेख नारि के लेखे। कस पिउ पीठि दीन्हि मोहिं देखे।—जायसी।

मुँगवन–संज्ञा पुं० [सं० मुद्ग] मोठ या वनमूँग नाम का कदन्न।

मुँगौछी‡–संज्ञा स्त्री० [हिं० मूँग + औछी (प्रत्य०)] मूँग की बनी हुई बरी। मुँगौरी। उ०—भई मुँगौछी मिरचैं परी। कीन्ह मुँगौरा औ बहु बरी।—जायसी।

मुँचना‡–क्रि० स० [सं० मुक्त] मुक्त करना। छोड़ना।

मुँहचंग–संज्ञा पुं० दे० "मुरचंग"।

मुकतईꣳ–संज्ञा स्त्री० [सं० मुक्त] मुक्ति। छुटकारा। उ०—तूँ मति मानै मुकतई कियैं कपट चित कोटि। जौ गुनही तौ राखियै आँखिनु माँझ अगोटि।—बिहारी।

मुकतालि–संज्ञा स्त्री० [सं० मुक्तावली] मोतियों की लड़ी। मुक्तावली। उ०—हूै कपूर मनिमय रही मिलि तन-दुति मुकतालि। छिन छिन खरी बिचच्छिनी लखति छ्वाइ तिनु आलि।—बिहारी।

मुकरनाꣳ–क्रि० अ० [सं० मुक्त] मुक्त होना। छूटना।

मुकरानाꣳ–क्रि० स० [हिं० मुकरना] मुक्त कराना। छुड़ाना। उ०—प्रिय जेहि बंदि जोगिनि होइ धावौं। हौं बंदि लेउँ पियहि मुकरावौं।—जायसी।

मुकलाना⊛–क्रि० स० [सं० मुक्त या मुकलित ?] खोलना। छोड़ना। उ०—सरवर तीर पद्मिनी आई। खोंपा छोरि केस मुकलाई।—जायसी।

मुकाया–संज्ञा पुं० [देश०] वह छोटा संदूक जिसमें सुरमा, मिस्सी, कंघी और शीशा आदि रख कर वधू को देते हैं। संदूक के आकार का छोटा सिंगारदान। (मुसल०)

मुकुता–संज्ञा पुं० दे० "मुक्ता"। उ०—बहुत बाहिनी संग मुकुतामाल बिशाल कर।—केशव।

मुक⊛–संज्ञा पुं० दे० "मुक्ता"। उ०—हेम हीर हार मुक चीर चारु साजि के।—केशव।

मुक्तक ऋण–संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जिसकी लिखापढ़ी न हुई हो। जबानी बात चीत पर दिया हुआ ऋण।

मुकाहल⊛–संज्ञा पुं० [सं० मुक्ता + फल]; मुक्ताफल। मोती। उ०—सहजहिं जामहु मेंहदी रची। मुकताहल लीन्हें जनु घुँघची।—जायसी।

मुक्ति फौज–संज्ञा स्त्री० दे० "सल्वेशन आर्मी"।

मुजमिल|–क्रि० वि० [अ० मिन् जुम्ला] सब मिलाकर। कुल मिलाकर।

संज्ञा पुं० दो या अधिक संख्याओं का योग। जोड़।

मुज़ाहिम–वि० [अ०] (१) रोकने या बाधा डालनेवाला। बाधक। (२) आपत्ति करनेवाला।

मुज़ाहिमत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) रोकने या बाधा देने की क्रिया या भाव। (२) आपत्ति करने की क्रिया या भाव।

मुतफरकात–संज्ञा स्त्री० [अ० मुतफ़र्रिकात] (१) भिन्न भिन्न पदार्थ। फुटकर चीजें। (२) फुटकर व्यय की मद। (३) ज़मीन के वे अलग अलग टुकड़े जो किसी एक ही गाँव के अंतर्गत हों।

मुतवज्जह–वि० [अ०] जिसने किसी ओर तवज्जह की हो। जिसने ध्यान दिया हो। प्रवृत्त।

मुतास–संज्ञा स्त्री० [हिं० मूतना + आस (प्रत्य०)] मूतने की इच्छा। पेशाब करने की ख्वाहिश।

मुत्ती–संज्ञा स्त्री० [सं० मूत्र] मूत्र। पेशाब। (बालक)

संज्ञा पुं० दे० "मोती"। उ०—चलत पाइ निगुनी गुनी धनु मनि मुत्तिय-माल। भेंट होत जयसाहि सौं भागु चाहियतु भाल।—बिहारी।

मुदर्रिसी–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मुदर्रिस का काम। पढ़ाने का काम। अध्यापन। (२) मुदर्रिस का पद। जैसे,—बड़ी कठिनता से उन्हें म्युनिसिपल स्कूल में मुदर्रिसी मिली है।

मुद्गरांक–संज्ञा पुं० [सं०] मुद्गर (मुँगरे) का चिह्न जो धोबियों के वस्त्र पर पहचान के लिये चंद्रगुप्त के समय में रहता था।

विशेष—यदि धोबी इस प्रकार के चिह्न से रहित वस्त्र पहन कर निकलते थे तो उन पर ३ पण जुरमाना होता था।

मुद्दी–संज्ञा स्त्री० [देश०] रस्सी आदि की खिसकनेवाली गाँठ।

मुद्रक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी छापेखाने में रह कर छापने का काम करता या देखता हो और जो छपनेवाली चीजों की छपाई का जिम्मेदार हो। छापनेवाला। मुद्रणकर्त्ता। जैसे,—"चंद्रोदय" के संपादक और मुद्रक राजविद्रोहात्मक लेख लिखने और छापने के अभियोग पर भारतीय दंडविधान की १२४ ए धारा के अनुसार गिरिफ्तार किए गए हैं।

मुद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१५) कहीं जाने का परवाना या आज्ञापत्र। परवाना राहदारी।

मुद्राध्यक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] कहीं जाने का परवाना देनेवाला अधिकारी। (कौ०)

मुनमुना–संज्ञा पुं० [देश०] खसखस की तरह का पर उससे बड़ा एक प्रकार का काला दाना जो गेहूँ के खेत में उत्पन्न होता और प्रायः उसके दानों के साथ मिला रहता है। इसके मिले रहने के कारण आटे का रंग कुछ काला पड़ जाता और स्वाद कुछ कड़वा हो जाता है। स्याजी।

वि० बहुत छोटा या थोड़ा।

मुनाल–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत सुंदर पहाड़ी पक्षी जिसकी हरी गरदन पर सुंदर कंठा सा दिखाई देता है और जिसके सिर पर कलगी होती है। इसके पर बहुत अधिक मूल्य पर बिकते हैं।

मुबलिग़–वि० [अ०] (रुपए आदि की) संख्या। गिनती। जैसे,—मुबलिग़ दो सौ रुपए वसूल हुए।

मुमानियत–संज्ञा स्त्री० [अ०] मना करने या होने का भाव। मनाही।

मुरमुरा–संज्ञा पुं० [अनु०] एक प्रकार का भुना हुआ चावल जो अंदर से पोला होता है। फरवी। लाई।

मुर्गबाज–संज्ञा पुं० [फा०] वह जो मुरगे लड़ाता हो। मुरगों का खेलाड़ी।

मुर्गबाज़ी–संज्ञा स्त्री० [फा०] मुरगे लड़ाने का काम या भाव।

मुल|–अव्य० [देश०] (१) मगर। लेकिन। पर। (पश्चिम) (२) तात्पर्य यह कि। मतलब यह कि।

मुलकित⊛–वि० [सं० पुलकित ?] मन्द मन्द हँसता हुआ। मुस्कराता हुआ। उ०—ऊँचे चितै सराहियतु गिरह कबूतर लेतु। झलकति दृग मुलकित बदनु तनु पुलकित किहिं हेतु।—बिहारी।

मुलहा–संज्ञा पुं० [देश०] वह पक्षी जो पैर बाँध कर जाल में इसलिये छोड़ दिया जाता है कि उसे देखकर और पक्षी आकर जाल में फँसें। कुट्टा।

|–वि [देश०] बहुत अधिक सीधा सादा। बेवकूफ। मूर्ख।

मुवक्किल–संज्ञा पुं० [अ०] वह जो किसी को मुकदमा आदि

लड़ने के लिये अपना वकील नियुक्त करता हो। वकील करने या रखनेवाला।

मुश्तबहा–वि० [अ०] जिसमें किसी प्रकार का शुबहा हो। संदेह के योग्य। संदिग्ध।

मुश्तरका–वि० [अ०] जिसमें कई आदमी शरीक हों। जिसमें और लोग भी सम्मिलित हों। जैसे,—मुश्तरका जायदाद।

मुसुकाना–क्रि० अ० दे० "मुसकराना"। उ०—सान स्यात मुसुकात मृदु को यह केशवदास।—केशव।

मुहताजी–संज्ञा स्त्री० [अ० मुहताज + ई (प्रत्य०)] (१) मुहताज होने की क्रिया या भाव। (२) दरिद्रता। गरीबी। (३) परमुखापेक्षी होने का भाव। परवशता।

मूआ–संज्ञा पुं० [हिं० मरना] मृत। मरा हुआ। (इसका प्रयोग स्त्रियाँ प्रायः गाली के रूप में करती हैं।)

मूज़ी–वि० [फा०] कष्ट पहुँचाने या सतानेवाला। तकलीफ देने या दिक करनेवाला।

मूढ़–संज्ञा पुं० [सं०] योग में चित्त की पाँच वृत्तियों या अवस्थाओं में से एक जिसमें चित्त तमोगुण के कारण निद्रायुक्त या स्तब्ध रहता है। कहा गया है कि यह अवस्था योग के लिये अनुकूल या उपयुक्त नहीं होती। वि० दे० "चित्तभूमि"।

मूढ़वाताहत–वि० [सं०] तूफान में पड़ा हुआ (जहाज या नाव)। (कौ०)

मूर–संज्ञा पुं० [सं० मूल] मूल नामक नक्षत्र। उ०—काहे चंद घटत है काहे सूरज पूर। काहे होइ अमावस काहे लागै मूर।—जायसी।

मूरी†–संज्ञा स्त्री० [सं० मूल] मूल। जड़। (विशेषतः किसी ओषधि की) उ०—कीन्हेसि बनखँड औ जरि मूरी। कीन्हेसि तरिवर तार खजूरी।—जायसी।

मूर्तत्व–संज्ञा पुं० [सं०] मूर्त होने की क्रिया या भाव। मूर्त्तता।

मूलरक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] राजधानी या शासन के केंद्रस्थान की रक्षा।

मूलस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजधानी। शासन का मुख्य केंद्र। (कौ०)

मूलहर–संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो फजूल खर्च हो। वह जिसने अपना संपूर्ण धन नष्ट कर दिया हो। (कौ०)

मूला–संज्ञा स्त्री० [देश०] मौला नाम की बेल जो वृक्षों पर चढ़ कर उन्हें बहुत हानि पहुँचाती है। वि० दे० "मौला"।

मूलाबाधक–संज्ञा पुं० [सं०] राष्ट्रशक्ति के केंद्र को घेरनेवाला। (कौ०)

मूलोदय–संज्ञा पुं० [सं०] ब्याज का मूल धन के बराबर हो जाना।

मूवमेंट–संज्ञा पुं० [अं०] वह प्रयत्न या आंदोलन जो किसी उद्देश्य की सिद्धि या अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिये एक या अधिक व्यक्ति करते हैं। आंदोलन। जैसे,—स्वदेशी मूवमेंट। नानकोआपरेशन मूवमेंट।

मृगनैनी–वि० स्त्री० [सं० मृग + नयन] जिसकी आँखें हिरन की आँखों के समान सुंदर हों। बहुत सुंदर नेत्रोंवाली। उ०—वासों मृग अंक कहैं तो सों मृगनैनी सब, वह सुधाधर तुहूँ सुधाधर मानिये।—केशव।

मृगमद–संज्ञा पुं० [सं० मृग + मद] कस्तूरी। उ०—अवलोकने विलोकिये मृगमदमय घनसार।—केशव।

मेंड़–संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँड़ का अनु० या सं० मंडल] (१) ऊँची उठी हुई तंग जमीन जो दूर तक लकीर के रूप में चली गई हो। (२) दो खेतों के बीच की कुछ ऊँची उठी हुई सँकरी जमीन जिस पर से लोग आते जाते हैं। डाँड़। पगडंडी।

यौ०—डाँड़ मेंड़ = कूल किनारा। वार पार। उ०—पवनहुँ ते मन चाँड़ मन तें आसु उतावला। कतहुँ मेंड़ न डाँड़ मुहमद बहु विस्तार सो।—जायसी।

मेंडरा†–संज्ञा पुं० [सं० मंडल] (१) घेर कर बनाया हुआ कोई गोल चक्कर। (२) इँडुआ। गेंडुरी।

मेंडराना†–क्रि० अ० दे० "मँडराना"। उ०—राजपंखि तेहि पर मेंडराहीं। सहस कोस तिन्ह कै परछाहीं।—जायसी।

क्रि० स० घेर कर गोल चक्कर बनाना। मेंडरा बनाना।

मेजबानी–संज्ञा स्त्री० [फा० मेजबान] (१) मेजबान का भाव या धर्म। (२) वे खाद्य पदार्थ जो बरात आने पर पहले पहल कन्या-पक्ष से बरातियों के लिये भेजे जाते हैं।

मेजर-जनरल–संज्ञा पुं० [अं०] फौज का एक अफसर जिसका दर्जा लेफ्टेनेंट जनरल के बाद ही है।

मेजा†–संज्ञा पुं० दे० "मेंढक"। उ०—केवट हँसे सो सुनत गवेजा। समुद न जान कुआँ कर मेजा।—जायसी।

मेजारिटी–संज्ञा स्त्री० [अं०] बहु संख्या। आधे से अधिक पक्ष। अधिकांश। जैसे,—मेजारिटी रिपोर्ट।

मेट–संज्ञा पुं० [अं०] (२) जहाज का एक कर्मचारी जिसका काम जहाज के अफसर की सहायता करना है। (३) संगी। साथी। जैसे,—क्लास-मेट।

मेडिकल–वि० [अं०] पाश्चात्य औषध और चिकित्सा से संबंध रखनेवाला। डाक्टरी संबंधी। जैसे,—मेडिकल कालेज, मेडिकल डिपार्टमेंट।

मेडिसिन–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) औषध। दवा। जैसे,—डाक्टर ने बहुत तेज मेडिसिन दी है। (२) चिकित्सा विज्ञान।

मेद्र–संज्ञा स्त्री० [सं० मेदा] मेदा नामक सुगंधित जड़। उ०—रचि रचि साजे चंदन चौरा। पोतें अगर मेद औ गौरा।—जायसी।

मेदनी–संज्ञा स्त्री० [सं० मेदिनी ?] यात्रियों का गोल जो झंडा लेकर किसी तीर्थ स्थान या देवस्थान को जाय।

मेना†–क्रि० स० [हिं० मोयन] पकवान आदि में मोयन देना

मोयन डालना। उ०—लुचुई पोइ पोइ घिउ मेई। पाछे छानि खाँड रस भेई।—जायसी।

मेमोरेंडम—संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह पत्र जिसमें कोई बात स्मरण दिलाने के लिये लिखी गई हो। याददाश्त। स्मरण-पत्रक। (२) वक्तव्य। अभिमत।

मेमोरेंडम आफ एसोसियेशन—संज्ञा पुं० [अं०] किसी ज्वाइंट स्टाक कंपनी या सम्मिलित पूँजी से खुलनेवाली कंपनी की उद्देश्य-पत्रिका जिसमें उस कंपनी का नाम और उद्देश्य आदि लिखे होते हैं और अंत में हिस्सेदारों के हस्ताक्षर होते हैं। सरकार में इसकी रजिस्टरी हो जाने पर कंपनी का कानूनी अस्तित्व हो जाता है। उद्देश्य-पत्रिका।

मेयना‡—क्रि० स० [हिं० मेवन] पकवान आदि में मोयन डालना। मोयन देना।

मेयर—संज्ञा पुं० [अं०] म्युनिसिपल कारपोरेशन का प्रधान। जैसे,—कलकत्ता कारपोरेशन के मेयर।

विशेष—इंगलैंड में म्युनिसिपलटियों के प्रधान मेयर कहलाते हैं। ये अपने नगरों की म्युनिसिपलटियों के प्रधान होने के सिवा वहाँ के प्रधान मैजिस्ट्रेट भी होते हैं। लंदन तथा और कई नगरों की म्युनिसिपलटियों के प्रधान लार्ड मेयर कहलाते हैं। हिंदुस्तान में केवल कलकत्ता कारपोरेशन के प्रधान मेयर कहलाते हैं। इनका केवल म्युनिसिपल प्रबंध से ही संबंध है। ईस्ट इंडिया कंपनी के समय सन् १७२६ ई० में भारत में, कलकत्ते, बंबई और मद्रास में विचारकार्य के लिये मेयर कोर्ट स्थापित किए गए थे।

मेरवन*—संज्ञा स्त्री० [हिं० मेरवना] मिलाने की क्रिया या भाव। मिलान। उ०—सुंदर स्यामल अंग बसन पीत सुरंग कटि निषंग परिकर मेरवनि।—तुलसी।

मेराना*—क्रि० स० दे० "मिलाना"। उ०—सो बसीठ सरजा लेइ आवा। बादसाह कहँ आनि मेरावा।—जायसी।

मेल—संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) वे सब चिट्ठियाँ और पारसल आदि जो डाक से भेजी जायँ। (२) डाकगाड़ी। मेल ट्रेन।

यौ०—मेल ट्रेन

मेल ट्रेन—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह बहुत तेज चलनेवाली गाड़ी जो केवल बड़े बड़े स्टेशनों पर ठहरती है, छोटे स्टेशनों पर नहीं ठहरती और जिसके द्वारा दूर की डाक भेजी जाती है।

मेस—संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ मूल्य लेकर विद्यार्थियों के लिये भोजन का प्रबंध किया जाय। छात्र भोजनालय। विद्यार्थी-वासा।

मेस्मराइज़र—संज्ञा पुं० [अं० मेज्मराइजर] वह जो किसी को अपनी इच्छाशक्ति से अचेत कर देता हो। मेस्मरिज्म करनेवाला। सम्मोहक।

मेस्मरिज्म—संज्ञा पुं० [अं० मेज्मरिज्म] (मेज्मर नामक जर्मन डाक्टर का निकाला हुआ) वह सिद्धांत कि मनुष्य किसी गुप्त शक्ति या केवल इच्छाशक्ति से दूसरे की इच्छाशक्ति को प्रभावान्वित या वशीभूत कर सकता है। वह विद्या या शक्ति जिससे कोई मनुष्य अचेत कर वश में किया और अपने इच्छानुसार परिचालित किया जा सके; अर्थात् उससे जो कुछ कहलाया जाय, वह करे या जो कुछ पूछा जाय, उसका उत्तर दे। सम्मोहिनी विद्या। सम्मोहन।

विशेष—जिस पर मेस्मरिज्म किया जाता है, वह अचेत सा हो जाता है; और उस अवस्था में उससे जो कुछ कहलाना होता है, वह कहता है या जो कुछ पूछा जाता है, उसका उत्तर देता है।

मेहल—संज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जो हिमालय में काश्मीर से भूटान तक ८००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ पाँच छः अंगुल लंबी होती हैं और पुरानी होने पर काली हो जाती हैं। जाड़े में इसके फल पकते हैं जो खाए जाते हैं। इसकी लकड़ी की छड़ियाँ और हुक्के की निगालियाँ बनती हैं; और पत्तियाँ पशुओं के लिये चारे के काम में आती हैं।

मैगना कार्टा—संज्ञा पुं० [अं०] वह राजकीय आज्ञापत्र जिसमें राजा की ओर से प्रजाजनों को कोई स्वत्व या अधिकार देने की बात हो। शाही फरमान।

मैजिक—संज्ञा पुं० [अं०] वह अद्भुत खेल या कृत्य जो दर्शकों की दृष्टि और बुद्धि को धोखा देकर किया जाय। जादू का खेल।

मैजिक लालटेन—संज्ञा स्त्री० [अं० मैजिक लैन्टर्न] एक प्रकार की लालटेन जिसके आगे शीशे पर बने हुए चित्र इस प्रकार रखे जाते हैं कि उनकी परछाईं सामने के कपड़े पर पड़ती है, और वे चित्र दर्शकों को उस परदे पर दिखाई देते हैं।

मैटर—संज्ञा पुं० [अं०] (१) कागज पर लिखा हुआ कोई विषय जो कंपोज करने के लिये दिया जाय। वह लिखी हुई कापी जो कंपोज करने के लिये दी जाय। जैसे,—पहले फर्मे के लिये एक कालम का मैटर और चाहिए। (कंपोजिटर) (२) कंपोज किए हुए टाइप या अक्षर जो छपने के लिये तैयार हों। जैसे,—प्रेस पर फर्मा कसते हुए एक पेज का मैटर टूट गया। (कंपोजिटर)

मैडम—संज्ञा स्त्री० [अं०] विवाहिता तथा वृद्धा स्त्री के नाम के आगे लगाया जानेवाला आदरसूचक शब्द। श्रीमती। महाशया। जैसे,—मैडम ब्लेड्वैस्की।

मैन-आफ-वार—संज्ञा पुं० [अं०] लड़ाऊ जहाज। युद्ध पोत।

मैनकामिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मैन=मदन+कामिनी] कामदेव की स्त्री, रति। उ०—मैन-कामिनी के मैनकाहू के न रूप रीझे, मैं न काहू के सिखायें मानों मन मान री।—मतिराम।

मैनडेट-संज्ञा पुं० [अं०] आदेश। हुक्म। जैसे,—कांग्रेस से ऐसा करने का मैनडेट मिला है।

मैनडेटरी-वि० [अं०] जिसमें आदेश हो। आदेशात्मक। जैसे,—कांग्रेस का वह प्रस्ताव मैनडेटरी है।

मैनमय-वि० [हिं० मैन = मदन + मय] कामातुर। कामेच्छा से युक्त। उ०-मैन सुख दैन, मन मैनमय लेखियो।—केशव।

मैनस्क्रिप्ट-संज्ञा पुं० [अं०] वह पुस्तक या कागज जो हाथ या कलम से लिखा हुआ हो, छपा हुआ न हो। हस्तलिखित प्रति।

मैनिफेस्टो-संज्ञा पुं० [अं०] किसी व्यक्ति, संस्था या सरकार का किसी सार्वजनिक विषय, नीति अथवा कार्य पर अभिमत, वक्तव्य या घोषणा। वक्तव्य। जैसे,—देश के कितने ही प्रमुख नेताओं ने एक मैनिफेस्टो निकाला है, जिसमें सरकार की वर्तमान दमन-नीति की निंदा की गई है और लोगों से कहा गया है कि वे इसके विरुद्ध जोरों का आन्दोलन करें।

मैरीन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह सैनिक जो लड़ाकू जहाज पर काम करता हो। (२) किसी देश या राष्ट्र की समस्त नौ सेना। नौ सेना। जल सेना। जैसे,—रायल मैरीन। (३) किसी देश के समस्त जहाज।

वि० समुद्र संबंधी। जल संबंधी। नौ सेना संबंधी। जैसे,—मैरीन कोर्ट।

मैशिनरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) किसी यंत्र या कल के पुरजे। (२) यंत्र। कल। मशीन।

मोड़तोड़-संज्ञा पुं० [हिं० मोड़ + अनु० तोड़] मार्गों में पड़नेवाला घुमाव फिराव। चक्कर।

मोती लड्डू-संज्ञा पुं० [हिं० मोती = लड्डू] मोतीचूर का लड्डू। उ०—दूनी बहुत पकावन साधे। मोतिलाडू औ खैरौरा बाँधे।—जायसी।

मोनशेनयर-संज्ञा पुं० [फ्रें०] फ्रांस में प्रिंस, पादरी तथा प्रतिष्ठित लोगों के नाम के आगे लगनेवाला सम्मानसूचक शब्द। श्रीमान्।

मोनोप्लेन-संज्ञा पुं० [अं०] एरोप्लेन या वायुयान का एक भेद।

मोल्ड-संज्ञा पुं० [अं०] साँचा।

मोशिये-संज्ञा पुं० [फ्रें०] [संक्षिप्त रूप मोन्स, म्म०] [हिंदी संक्षिप्त रूप मो०] फ्रांस में नाम के आगे लगाया जानेवाला आदरसूचक शब्द। अंगरेजी 'मिस्टर' शब्द का समानार्थवाची शब्द। महाशय। साहब। जैसे,—मोशिये प्रायंद।

मौंगी†-वि० [सं० मौन] मौन। चुप। उ०—सुनि सत कहत अंत मौंगी रहि समुझि प्रेमपथ न्यारो।—तुलसी।

मौजूँ-वि० [अ०] जो किसी स्थान पर ठीक बैठता या मालूम होता हो। उपयुक्त।

मौल-संज्ञा पुं० [सं०] (२) बड़ा जमींदार। तअल्लुकेदार। भूस्वामी।

विशेष—मनु ने लिखा है कि ग्राम के सीमा-संबंधी विवाद को सामन्त और यदि सामन्त न हों तो मौल निपटावें।

मौलबल-संज्ञा पुं० [सं०] बड़े जमींदारों की अथवा उनके द्वारा एकत्र की हुई सेना। (कौ०)

मौला-संज्ञा पुं० [देश०] उत्तरी भारत में होनेवाली एक प्रकार की बेल जिसकी पत्तियाँ एक बालिश्त तक लंबी होती हैं। जाड़े के दिनों में इसमें आध इंच लंबे फूल लगते हैं। इसके तने से एक प्रकार का लाल रंग का गोंद निकलता है। यह बेल जिस वृक्ष पर चढ़ती है, उसे बहुत हानि पहुँचाती है। मूला। मलहा बेल।

यथाकामी वध-संज्ञा पुं० [सं०] किसी व्यक्ति को यह घोषित करके छोड़ देना कि इसे जो चाहे, मार डाले।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में जो राजकर्मचारी बार बार चोरी या गाँठ कतरने के अपराध में पकड़े जाते थे, उनको यह दंड दिया जाता था।

यद्यपि-अव्य० [सं०] अगरचे। हरचंद। बावजूदेकि। उ०—यद्यपि ईंधन जरि गये अरिगण केशवदास। तदपि प्रतापानलन को पल पल बढ़त प्रकाश।—केशव।

याचितक-संज्ञा पुं० [सं०] किसी से कुछ दिन के लिये माँगी हुई वस्तु। मँगनी की चीज।

विशेष—चाणक्य ने लिखा है कि माँगे हुए पदार्थ को जो न लौटावे, उस पर १२ पण जुरमाना किया जाय। (कौ०)

यातव्य-वि० [सं०] (२) जिस पर चढ़ाई की जानेवाली हो।

यात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (७) युद्धयात्रा। चढ़ाई। (कौ०)

यादगारी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) वह पदार्थ जो किसी की स्मृति में हो। स्मृति चिह्न। (२) दे० "यादगार"।

यादृच्छिक आधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] गिरवी रखी हुई वह चीज जो बिना ऋण चुकाए न लौटाई जा सके।

यारबाश-वि० [फा०] यार दोस्तों में रहकर आनन्दपूर्वक समय बितानेवाला। रसिक।

यूनाइटेड किंगडम-संज्ञा पुं० [अं०] इंगलैंड, स्काटलैंड और आयरलैंड के संयुक्त राज्य।

यूनाइटेड स्टेट्स-संज्ञा पुं० [अं०] अनेक छोटे छोटे राज्यों का एक बड़ा संयुक्त राज्य। जैसे,—यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका।

यूनियन-संज्ञा पुं० [अं०] संघ। सभा। समाज। मण्डल। जैसे,—लेबर यूनियन। ट्रेड्स यूनियन।

यूनियन जैक-संज्ञा पुं० दे० "यूनियन फ्लैग"।

यूनियन फ्लैग-संज्ञा पुं० [अं०] ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड के संयुक्त राज्यों की राष्ट्रीय पताका।

यूनीफार्म-संज्ञा पुं० [अं०] एक ही प्रकार की पोशाक या पहनावा जो किसी विशेष विभाग के कर्मचारियों या नौकरों के लिये नियत हो। वरदी। जैसे,—पुलिस के पचास जवान जो यूनीफार्म में नहीं थे, वहाँ सबेरे से आ डटे थे।

योग-संज्ञा पुं० [सं०] (२८) शत्रु के लिये की जानेवाली यंत्र, मन्त्र, पूजा, छल, कपट आदि की युक्ति।

योगपुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] मतलब निकालने के लिये साधा हुआ आदमी। (कौ०)

योगोपनिषद्-संज्ञा पुं० [सं०] (२) छल कपट तथा गुप्त रीति से शत्रु को मारने की युक्ति। (कौ०)

योजना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (८) किसी बड़े काम को करने का विचार या आयोजन। भावी कार्यों के संबंध में व्यवस्थित विचार। स्कीम। जैसे,—म्युनिसिपैलिटी की नगर-सुधार की योजना सरकार ने स्वीकृत कर ली।

रँगराता-वि० [सं० रंग + रत] [स्त्री० रँगराती] (१) भोग विलास में लगा हुआ। ऐश आराम में मस्त। (२) प्रेमयुक्त। अनुरागपूर्ण। उ०—रँगराती रातें हियें प्रियतम लिखी बनाइ। पाती काती बिरह की छाती रही लगाइ।—बिहारी।

रंभन-संज्ञा पुं० [सं० रंभण] आलिंगन। परिरंभण।

रक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार ऐरावत खंड की एक नदी का नाम।

रक्षातिक्रम-संज्ञा पुं० [सं०] नियम भंग। कायदा-कानून तोड़ना। (कौ०)

रखया-वि० स्त्री० [सं० रक्षा] रक्षा करनेवाली। उ०—तीज अष्टमी तेरस जया। चौथि चतुरदसि नवमी रखया।—जायसी।

रजिष्ट्रार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह अफसर जिसका काम लोगों के लिखित प्रतिज्ञापत्रों या दस्तावेजों को कानून के मुताबिक रजिस्ट्री करना अर्थात् उन्हें सरकारी रजिस्टर में दर्ज करना हो। (२) वह उच्च कर्मचारी या अफसर जो किसी विश्वविद्यालय में मन्त्री का काम करता हो। जैसे,—हिंदू विश्वविद्यालय के रजिष्ट्रार।

रजोभक-संज्ञा पुं० [सं०] बुरी बात से रोकनेवाला। निषिद्ध कर्म करने पर सावधान करनेवाला। (स्मृति)

रज्जु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) जैनियों के अनुसार समस्त विश्व की ऊँचाई का $\frac{१}{१४}$ वाँ भाग। राजू।

रतगिरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० रत्ती] गुंजा। घुँघची।

रतनपुरुष-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो दिल्ली, आगरे, बुंदेलखंड और बंगाल में पाई जाती है। इसकी जड़ और पत्तियाँ ओषधि के रूप में काम में आती हैं।

रतवा-संज्ञा पुं० [देश०] शर नाम की घास जो घोड़ों के लिये बहुत अच्छी समझी जाती है।

रती-संज्ञा स्त्री० [सं० रति] (५) तेज। कान्ति। उ०—बेद लोक सब साखी काहू की रति न राखी रावन की बंदि लागे अमर मरन।—तुलसी।

रत्नगृह-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के स्तूप के मध्य की कोठरी जिसमें धातु आदि रक्षित रहती थी।

रत्नावली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) एक प्रकार का हार।

रथ-संज्ञा पुं० [सं०] (६) शतरंज का वह मोहरा जिसे आज कल ऊँट कहते हैं।—उ०—राज कील देइ शह माँगा। शह देइ शाह भरे रथ खाँगा।—जायसी

विशेष—जब चतुरंग का पुराना खेल भारत से फारस और अरब गया, तब वहाँ रथ के स्थान पर ऊँट हो गया।

रथचर्य्यासंचार-संज्ञा पुं० [सं०] रथों के चलने की पक्की सड़क। (यह खजूर की लकड़ी या पत्थर की बनाई जाती थी। चन्द्रगुप्त के समय में इसका विशेष रूप से प्रचार था।)

रथ्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (६) सड़कों का एक भेद जिसकी चौड़ाई २० या २१ हाथ होती थी।

रवना-क्रि० अ० [सं० रव] उच्चरित करना। रव करना। बोलना। उ०—आकाश विमान अमान छये। हा हा सब ही यह शब्द रयें।—केशव।

रर-संज्ञा स्त्री० [देश०] वह दीवार जो एक पर एक योंही बड़े बड़े पत्थर रख कर उठाई गई हो और जिसके पत्थर चूने गारे आदि से न जोड़े गए हों। (बुंदेल०)

रवक-संज्ञा पुं० [सं०] (२) तीस मोतियों का लच्छा जो तौल में बत्तीस रत्ती हो।

रवादक-संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जिसने गिरवी रखे हुए धन को हजम कर लिया हो।

रस-परित्याग-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार दूध, दही, चीनी, नमक या इसी प्रकार का और कोई पदार्थ बिलकुल छोड़ देना और कभी ग्रहण न करना।

रसार॰-संज्ञा पुं० दे० "रसाल"।

रसाल-वि० [सं०] (६) रसिक। रसिया। उ०—तासों मुदिता कहत हैं, कवि मतिराम रसाल।—मतिराम।

रसेस॰-संज्ञा पुं० [सं० रसेश] नमक। लवण।—उ०—रुचिर रूप जलसों रसेस है मिलि न फिरन की बात चलाई।—तुलसी।

रसौल-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बड़ी कँटीली लता जो खीरी और बहराइच के जंगलों में बहुत अधिकता से होती है और दक्षिण भारत, बंगाल तथा बरमा में भी पाई जाती है। यह गरमी के दिनों में फूलती और जाड़े में फलती है। इसकी पत्तियाँ और कलियाँ ओषधि रूप से भी काम आती हैं और उनसे चमड़ा भी सिझाया जाता है। इसकी पत्तियाँ खट्टी होती हैं, इसलिये उनकी चटनी भी बनाई जाती है। ऐला।

रहस॰-संज्ञा पुं० [सं० रहस् = क्रीड़ा] आनंद। आमोद प्रमोद।

उ०—मिले रहस भा चाहिय दूना। कित रोइस जौं मिलै बिछूना।—जायसी।

रांकव-संज्ञा पुं० [सं०] (२) पशम। नरम ऊन।

राई-संज्ञा पुं० [सं० राजा] (१) राजा। (२) वह जो सब में श्रेष्ठ हो। उ०—सुनु मुनिराई, जगसुखदाई। कहिं अब सोई, जेहि यश होई।—केशव।

राउंड टेबुल कान्फरेंस-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह सभा या सम्मेलन जिसमें एक गोल मेज के चारो ओर राजपक्ष तथा देश के भिन्न भिन्न मतों और दलों के लोग बिना किसी भेदभाव के बैठकर किसी महत्व के विषय पर विचार करें। गोल मेज कान्फरेंस।

राक्षसपति-संज्ञा पुं० [सं० राक्षस + पति] रावण। उ०—सिगरे नरनायक, असुर विनायक, राक्षसपति हिय हारि गये।—केशव।

रागविवाद-संज्ञा पुं० [सं०] गाली गलौज।

राजकरण-संज्ञा पुं० [सं०] न्यायालय। अदालत। (२) राजनीति। जैसे—राजकरण की बहुत सी महत्वपूर्ण बातें परदे के अंदर हुआ करती हैं; और जबतक वे कार्य में परिणत नहीं होतीं, तब तक वे बड़े यत्न से दबा रखी जाती हैं।—श्रीकृष्णसंदेश।

राजकुल-संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं का खानदान। राजवंश। उ०—मृगराज-राजकुल-कलस कहँ बालक बृद्ध न जानिये।—केशव।

राज-जामुन-संज्ञा पुं० [सं० राजा + हिं० जामुन] जामुन की जाति का एक प्रकार का मझोले आकार का वृक्ष जो देहरादून, अवध और गोरखपुर के जंगलों में पाया जाता है। इसकी छाल पीलापन लिए भूरे रंग की और खुरदुरी होती है। यह गरमी में फूलता और बरसात में फलता है। इसकी पत्तियों का व्यवहार औषध में होता है और फल खाए जाते हैं। इसकी लकड़ी इमारत के सामान और खेती के औजार बनाने के काम में आती है। पियामन। टूठी।

राजपंखी-संज्ञा पुं० [सं० राज + हिं० पंखी] राजहंस। उ०—पाँचवें नग सों तहाँ लागना। राजपंखि पेखा गरजना।—जायसी।

राजपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (५) राज्य की ओर से मिला हुआ एक पद या उपाधि। सरदार। नायक।

विशेष-गुप्तों के समय में यह पद घुड़सवारों के नायक को दिया जाता था। हिन्दी का 'रावत' या 'राउत' शब्द इसी से बना है।

राजवंत-वि० [सं० राज + वंत (प्रत्य०)] राजकर्म से संयुक्त। उ०—जन राजवंत, जग योगवंत। तिनको उदोत, केहि भाँति होत।—केशव।

राजवार-संज्ञा पुं० [सं० राज + द्वार] राजद्वार। उ०—माँगत राजवार चलि आई। भीतर चेरिन्ह बात जनाई।—जायसी।

राजशब्दोपजीवी गण-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का गण या प्रजातंत्र।

विशेष-कौटिल्य ने लिखा है कि लिच्छवि, वृजिक, मद्रक, कुरुपांचाल आदि गण राजशब्दोपजीवी हैं। (कौटि०)

राजस्थानिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक उच्च राजकीय पद। हाकिम। वाइसराय।

विशेष-गुप्तों के समय में इस शब्द का विशेष प्रचार था।

राजस्थानीय-संज्ञा पुं० दे० "राजस्थानिक"।

राजस्व-संज्ञा पुं० [सं०] (२) किसी राजा या राज्य की वार्षिक आय जो मालगुजारी, आबकारी, इन्कम टैक्स, कस्टम्स, ड्यूटी आदि करों से होती है। आमदेमुल्क। मालगुजारी।

राजाक्रोशक-संज्ञा पुं० [सं०] राजा को गाली देने या कोसनेवाला। राजा की अनुचित शब्दों में आलोचना करनेवाला।

विशेष-कौटिल्य ने इसके लिये जीभ उखाड़ने का दंड लिखा है।

राजू-संज्ञा स्त्री० दे० "रज्जु"।

राज्यसभा-संज्ञा स्त्री० [सं० राज्य + सभा] भारतीय व्यवस्थापक मंडल का वह भाग जिसमें प्रायः बड़े आदमियों के प्रतिनिधि होते हैं। स्टेट कौन्सिल। अपर चेंबर। अपर हाउस।

विशेष-जिस प्रकार ब्रिटिश पार्लमेंट के किंग (महाराज), लार्ड्स और कामन्स ये तीन भाग हैं, उसी प्रकार भारतीय व्यवस्थापक मंडल के गवर्नर-जनरल, व्यवस्थापिका परिषद् (लेजिस्लेटिव एसेम्ब्ली) और राज्य-सभा (स्टेट कौंसिल) ये तीन अंग हैं। राज्य-सभा और व्यवस्थापिका परिषद् दोनों इंगलैंड की लार्ड सभा और कामन्स सभा के ढंग पर बनाई गई हैं। राज्यसभा को अपर चेंबर या अपर हाउस और परिषद् को लोअर चेंबर या लोअर हाउस भी कहते हैं। यद्यपि सभासदों की संख्या की दृष्टि से परिषद् बड़ी सभा और राज्यसभा छोटी सभा है, पर सदस्यों और उनके निर्वाचकों की योग्यता, पद और मर्यादा की दृष्टि से राज्य-सभा बड़ी सभा और परिषद् छोटी सभा कहलाती है, क्योंकि उसके निर्वाचकों और सदस्यों की योग्यता इससे अधिक रखी गई है। कोई विषय या बिल दोनों सभाओं में स्वीकृत होना चाहिए। एक सभा से स्वीकृत होने पर कोई विषय या बिल स्वीकारार्थ दूसरी सभा में जाता है। वहाँ से स्वीकृत होने पर वह गवर्नर जनरल के पास स्वीकारार्थ जाता है। गवर्नर जनरल को उसे स्वीकार करने या न करने का पूरा पूरा अधिकार है। यदि गवर्नर जनरल ने दोनों सभाओं से स्वीकृत बिल पर स्वीकृति दे दी तो वह कानून बन जाता है। राज्यसभा में ३३ निर्वाचित और

यूनीफार्म-संज्ञा पुं० [अं०] एक ही प्रकार की पोशाक या पहनावा जो किसी विशेष विभाग के कर्मचारियों या नौकरों के लिये नियत हो। वरदी। जैसे,—पुलिस के पचास जवान जो यूनीफार्म में नहीं थे, वहाँ सबेरे से आ डटे थे।

योग-संज्ञा पुं० [सं०] (३८) शत्रु के लिये की जानेवाली यंत्र, मन्त्र, पूजा, छल, कपट आदि की युक्ति।

योगपुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] मतलब निकालने के लिये साधा हुआ आदमी। (कौ०)

योगोपनिषद्-संज्ञा पुं० [सं०] (२) छल कपट तथा गुप्त रीति से शत्रु को मारने की युक्ति। (कौ०)

योजना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (८) किसी बड़े काम को करने का विचार या आयोजन। भावी कार्यों के संबंध में व्यवस्थित विचार। स्कीम। जैसे,—म्युनिसिपैलिटी की नगर-सुधार की योजना सरकार ने स्वीकृत कर ली।

रँगराता-वि० [सं० रंग + रत] [स्त्री० रँगराती] (१) भोग विलास में लगा हुआ। ऐश आराम में मस्त। (२) प्रेमयुक्त। अनुरागपूर्ण। उ०—रँगराती रातें हियें प्रियतम लिखी बनाइ। पाती काती बिरह की छाती रही लगाइ।—बिहारी।

रंभन-संज्ञा पुं० [सं० रंभण] आलिंगन। परिरंभण।

रक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार ऐरावत खंड की एक नदी का नाम।

रक्षातिक्रम-संज्ञा पुं० [सं०] नियम भंग। कायदा-कानून तोड़ना। (कौ०)

रखया-वि० स्त्री० [सं० रक्षा] रक्षा करनेवाली। उ०—तीज अष्टमी तेरस जया। चौथि चतुरदसि नवमी रखया।—जायसी।

रजिष्ट्रार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह अफसर जिसका काम लोगों के लिखित प्रतिज्ञापत्रों या दस्तावेजों को कानून के मुताबिक रजिष्ट्री करना अर्थात् उन्हें सरकारी रजिस्टर में दर्ज करना हो। (२) वह उच्च कर्मचारी या अफसर जो किसी विश्वविद्यालय में मन्त्री का काम करता हो। जैसे,—हिंदू विश्वविद्यालय के रजिष्ट्रार।

रजोभक-संज्ञा पुं० [सं०] बुरी बात से रोकनेवाला। निषिद्ध कर्म करने पर सावधान करनेवाला। (स्मृति)

रज्जु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) जैनियों के अनुसार समस्त विश्व की ऊँचाई का १४ वाँ भाग। राजू।

रतगिरी-संज्ञा स्त्री० [हि० रत्ती] गुंजा। घुँघची।

रतनपुरुष-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो दिल्ली, आगरे, बुँदेलखंड और बंगाल में पाई जाती है। इसकी जड़ और पत्तियाँ ओषधि के रूप में काम में आती हैं।

रतवा-संज्ञा पुं० [देश०] खर नाम की घास जो घोड़ों के लिये बहुत अच्छी समझी जाती है।

रती-संज्ञा स्त्री० [सं० रति] (५) तेज। कान्ति। उ०—बंद लोक सब राखी काहू की रति न राखी रावन की बंदि लागे अमर मरन।—तुलसी।

रत्नगृह-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के स्तूप के मध्य की कोठरी जिसमें धातु आदि रक्षित रहती थी।

रत्नावली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (४) एक प्रकार का हार।

रथ-संज्ञा पुं० [सं०] (६) शतरंज का वह मोहरा जिसे आज कल ऊँट कहते हैं।—उ०—राज कील देइ शह माँगा। शह देइ शाह मरे रथ खाँगा।—जायसी

विशेष-जब चतुरंग का पुराना खेल भारत से फारस और अरब गया, तब वहाँ रथ के स्थान पर ऊँट हो गया।

रथचर्यासंचार-संज्ञा पुं० [सं०] रथों के चलने की पक्की सड़क। (यह खजूर की लकड़ी या पत्थर की बनाई जाती थी। चन्द्रगुप्त के समय में इसका विशेष रूप से प्रचार था।)

रथ्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (६) सड़कों का एक भेद जिसकी चौड़ाई २० या २१ हाथ होती थी।

रवना-क्रि० अ० [सं० रव] उच्चरित करना। रव करना। बोलना। उ०—आकाश विमान अमान छये। हा हा सब ही यह शब्द रयें।—केशव।

रर-संज्ञा स्त्री० [देश०] वह दीवार जो एक पर एक यों ही बड़े बड़े पत्थर रख कर उठाई गई हो और जिसके पत्थर चूने गारे आदि से न जोड़े गए हों। (बुंदेल०)

रवक-संज्ञा पुं० [सं०] (२) तीस मोतियों का लच्छा जो तौल में बत्तीस रत्ती हो।

रवादक-संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जिसने गिरवी रखे हुए धन को हजम कर लिया हो।

रस-परित्याग-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार दूध, दही, चीनी, नमक या इसी प्रकार का और कोई पदार्थ बिलकुल छोड़ देना और कभी ग्रहण न करना।

रसार॥-संज्ञा पुं० दे० "रसाल"।

रसाल-वि० [सं०] (६) रसिक। रसिया। उ०—तासों मुदिता कहत हैं, कवि मतिराम रसाल।—मतिराम।

रसेस॥-संज्ञा पुं० [सं० रसेश] नमक। लवण।—उ०—रुचिर रूप जलसों रसेस ह्वै मिलि न फिरन की बात चलाई।—तुलसी।

रसौल-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बड़ी कँटीली लता जो खीरी और बहराइच के जंगलों में बहुत अधिकता से होती है और दक्षिण भारत, बंगाल तथा बरमा में भी पाई जाती है। यह गरमी के दिनों में फूलती और जाड़े में फलती है। इसकी पत्तियाँ और कलियाँ ओषधि रूप में भी काम आती हैं और उनसे चमड़ा भी सिझाया जाता है। इसकी पत्तियाँ खट्टी होती हैं, इसलिये उनकी चटनी भी बनाई जाती है। ऐला।

रहस॥-संज्ञा पुं० [सं० रहस् = क्रीड़ा] आनंद। आमोद-प्रमोद।

उ०—मिले रहस भा चाहिय दूना। कित रोइस जौं मिलै बिछूना।—जायसी।

रांकव-संज्ञा पुं० [सं०] (२) पशम। नरम ऊन।

राईॐ-संज्ञा पुं० [सं० राजा] (१) राजा। (२) वह जो सब में श्रेष्ठ हो। उ०—सुनु मुनिराई, जगसुखदाई। कहि अब सोई, जेहि यश होई।—केशव।

राउंड टेबुल कान्फरेंस-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह सभा या सम्मेलन जिसमें एक गोल मेज के चारो ओर राजपक्ष तथा देश के भिन्न भिन्न मतों और दलों के लोग बिना किसी भेदभाव के बैठकर किसी महत्व के विषय पर विचार करें। गोल मेज कान्फरेंस।

रावसपति-संज्ञा पुं० [सं० राक्षस + पति] रावण। उ०—सिगरे नरनायक, असुर विनायक, राक्षसपति हिय हारि गये।—केशव।

रागविवाद-संज्ञा पुं० [सं०] गाली गलौज।

राजकरण-संज्ञा पुं० [सं०] न्यायालय। अदालत।

(२) राजनीति। जैसे—राजकाज की बहुत सी महत्वपूर्ण बातें परदे के अंदर हुआ करती हैं; और जबतक वे कार्य्य में परिणत नहीं होतीं, तब तक वे बड़े यत्न से दबा रखी जाती हैं।—श्रीकृष्णसंदेश।

राजकुल-संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं का खानदान। राजवंश। उ०—मृगराज-राजकुल-कलस कहँ बालक वृद्ध न जानिये।—केशव।

राज-जामुन-संज्ञा पुं० [सं० राज + हिं० जामुन] जामुन की जाति का एक प्रकार का मझोले आकार का वृक्ष जो देहरादून, अवध और गोरखपुर के जंगलों में पाया जाता है। इसकी छाल पीलापन लिए भूरे रंग की और खुरदुरी होती है। यह गरमी में फूलता और बरसात में फलता है। इसकी पत्तियों का व्यवहार औषध में होता है और फल खाए जाते हैं। इसकी लकड़ी इमारत के सामान और खेती के औजार बनाने के काम में आती है। पियामन। दूधी।

राजपंखी-संज्ञा पुं० [सं० राज + हिं० पंखी] राजहंस। उ०—पाँचवँ नग सो तहाँ लागना। राजपंखि पेखा गरजना।—जायसी।

राजपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (५) राज्य की ओर से मिला हुआ एक पद या उपाधि। सरदार। नायक।

विशेष-गुप्तों के समय में यह पद घुड़सवारों के नायक को दिया जाता था। हिन्दी का 'रावत' या 'राउत' शब्द इसी से बना है।

राजवंत-वि० [सं० राज + वंत (प्रत्य०)] राजकर्म से संयुक्त। उ०—जन राजवंत, जग योगवंत। तिनको उदोत, केहि भाँति होत।—केशव।

राजवारॐ-संज्ञा पुं० [सं० राज + द्वार] राजद्वार। उ०—माँगत राजवार चलि आई। भीतर चेरिन्ह बात जनाई।—जायसी।

राजशब्दोपजीवी गण-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का गण या प्रजातंत्र।

विशेष-कौटिल्य ने लिखा है कि लिच्छवि, वज्जिक, मद्रक, कुरुपांचाल आदि गण राजशब्दोपजीवी हैं। (कौटि०)

राजस्थानिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक उच्च राजकीय पद। हाकिम। वाइसराय।

विशेष-गुप्तों के समय में इस शब्द का विशेष प्रचार था।

राजस्थानीय-संज्ञा पुं० दे० "राजस्थानिक"।

राजस्व-संज्ञा पुं० [सं०] (२) किसी राजा या राज्य की वार्षिक आय जो मालगुजारी, आबकारी, इन्कम टैक्स, कस्टम्स, ड्यूटी आदि करों से होती हो। आमदनीमुल्क। मालगुजारी।

राजाक्रोशक-संज्ञा पुं० [सं०] राजा को गाली देने या कोसनेवाला। राजा की अनुचित शब्दों में आलोचना करनेवाला।

विशेष-कौटिल्य ने इसके लिये जीभ उखाड़ने का दंड लिखा है।

राजू-संज्ञा स्त्री० दे० "रज्जु"।

राज्यसभा-संज्ञा स्त्री० [सं० राज्य + सभा] भारतीय व्यवस्थापक मंडल का वह भाग जिसमें प्रायः बड़े आदमियों के प्रतिनिधि होते हैं। स्टेट कौन्सिल। अपर चैंबर। अपर हाउस।

विशेष-जिस प्रकार ब्रिटिश पार्लमेंट के किंग (महाराज), लार्डस् और कामन्स ये तीन भाग हैं, उसी प्रकार भारतीय व्यवस्थापक मंडल के गवर्नर-जनरल, व्यवस्थापिका परिषद् (लेजिस्लेटिव असेम्बली) और राज्य-सभा (स्टेट कौंसिल) ये तीन अंग हैं। राज्य-सभा और व्यवस्थापिका परिषद् दोनों इंगलैंड की लार्ड सभा और कामन्स सभा के ढंग पर बनाई गई हैं। राज्यसभा को अपर चैंबर या अपर हाउस और परिषद् को लोअर चैंबर या लोअर हाउस भी कहते हैं। यद्यपि सभासदों की संख्या की दृष्टि से परिषद् बड़ी सभा और राज्यसभा छोटी सभा है, पर सदस्यों और उनके निर्वाचकों की योग्यता, पद और मर्य्यादा की दृष्टि से राज्य-सभा बड़ी सभा और परिषद् छोटी सभा कहलाती है, क्योंकि उसके निर्वाचकों और सदस्यों की योग्यता इससे अधिक रखी गई है। कोई विषय या बिल दोनों सभाओं में स्वीकृत होना चाहिए। एक सभा से स्वीकृत होने पर कोई विषय या बिल स्वीकारार्थ दूसरी सभा में जाता है। वहाँ से स्वीकृत होने पर वह गवर्नर जनरल के पास स्वीकारार्थ जाता है। गवर्नर जनरल को उसे स्वीकार करने या न करने का पूरा पूरा अधिकार है। यदि गवर्नर जनरल ने दोनों सभाओं से स्वीकृत बिल पर स्वीकृति दे दी तो वह कानून बन जाता है। राज्यसभा में ३३ निर्वाचित और

प्रेसिडेंट समेत २७ मनोनीत सदस्य होते हैं, जिनमें से प्रेसिडेंट को छोड़ कर १९ से अधिक सरकारी अफसर नहीं होते। (भारतीय शासन पद्धति।)

रात्रिदोष–संज्ञा पुं० [सं०] रात में होनेवाले अपराध। जैसे, चोरी। (कौटि०)

रात्रिभुक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार छठी प्रतिमा जो रात्रि के समय किसी प्रकार का भोजन आदि नहीं ग्रहण करती।

राधारमण–संज्ञा पुं० [सं०] राधा में रमण करनेवाले, श्रीकृष्ण। उ०—लीला राधारमन की, सुंदर जस अभिराम।—मतिराम।

राना३–क्रि० अ० [हिं० राचना] अनुरक्त होना। उ०—कौन कली जो भौंर न राई। डार न टूट पुहुप गरुआई।—जायसी।

रामचना–संज्ञा पुं० [हिं० राम + चना] खटुआ बेल। अम्बष्ठपर्णी।

रामचिड़िया–संज्ञा स्त्री० [हिं० राम + चिड़िया] एक प्रकार का जल-पक्षी जो मछलियाँ पकड़ कर खाता है। मछरंगा।

राष्ट्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह लोक समुदाय जो एक ही देश में बसता हो या जो एक ही राज्य या शासन में रहता हुआ एकताबद्ध हो। एक या सम भाषा-भाषी जन समूह। नेशन। जैसे, भारतीय राष्ट्र।

राष्ट्रपति–संज्ञा पुं० [सं०] (२) किसी मण्डल का शासक। हाकिम।

विशेष–गुप्तों के समय में एक प्रदेश (जैसे, कुरु पांचाल) के शासक राष्ट्रपति कहलाते थे।

रास–वि० [फा० रास्त = दाहिना] अनुकूल। ठीक। मुआफिक। उ०—फाँसे बारह परा जो पाँसा। पाके पैंत परी तनु रासा।—जायसी।

रिजर्विस्ट–संज्ञा पुं० [अं०] वे सैनिक जो आपत्काल के लिये रक्षित रखे जाते हैं। रक्षित सैनिक।

विशेष—रिजर्विस्ट सैनिक कम से कम तीन वर्ष तक लड़ाई पर रह चुकने पर छुट्टी पा जाते हैं। जिस पल्टन में ये भर्ती होते हैं, रिजर्विस्टों या रक्षित सैनिकों में नाम रहने पर भी ये उस पल्टन के ही बने रहते हैं। केवल दो दो वर्ष पर इन्हें दो दो महीने के लिये सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के वास्ते अपनी पल्टन में जाना पड़ता है। २५ वर्ष की सैनिक सेवा के बाद इन्हें पेंशन मिल जाती है।

रिजल्ट–संज्ञा पुं० [अं०] परीक्षा फल। इम्तहान का नतीजा। जैसे—*इस बार बी० ए० का रिजल्ट बहुत अच्छा हुआ है।*

क्रि० प्र०—निकलना।—होना।

मुहा०—रिजल्ट आउट होना = परीक्षा फल का प्रकाशित होना। इम्तहान का नतीजा निकलना।

रिटर्निंग अफसर–संज्ञा पुं० [अं०] वह अफसर जो निर्वाचन के समय वोटों या मतों को गिनता है और कौन अधिक वोट मिलने से नियमानुसार निर्वाचित हुआ, इसकी घोषणा करता है।

रिटायर–वि० [अं० रिटायर्ड] जिसने काम से अवसर ग्रहण कर लिया हो। जिसने पेन्शन ले ली हो। अवसर-प्राप्त।

रिपोर्टर–संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी समाचारपत्र के सम्पादकीय विभाग का वह कार्यकर्ता जिसका काम सब प्रकार के स्थानीय समाचारों और घटनाओं का संग्रह कर उन्हें लिख कर सम्पादक को देना और अपने पत्र के लिये सार्वजनिक सभा, समिति, उत्सव आदि का विवरण लिख कर लाना, स्थानान्तर में होनेवाली सभा, सम्मेलन, उत्सव, मेले आदि के अवसर पर जाकर वहाँ का ब्योरा लिख कर भेजना और प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्तियों से मिल कर महत्व के सार्वजनिक प्रश्नों पर उनका मत जानना होता है। (२) वह जो किसी सभा या समिति का विवरण और व्याख्यान लिखता हो। जैसे—कांग्रेस रिपोर्टर। (३) वह जो सरकार की ओर से अदालत या किसी सभा, समिति या कौन्सिल की काररवाई और व्याख्यान लिखता हो। जैसे—कौन्सिल रिपोर्टर, सी० आई० डी० रिपोर्टर।

रिफार्म–संज्ञा पुं० [अं०] दोषों या त्रुटियों का दूर किया जाना। किसी संस्था या विभाग में परिवर्त्तन किया जाना। सुधार। संस्कार। परिवर्तन।

रिफार्मर–संज्ञा पुं० [अं०] वह जो धार्मिक, सामाजिक या राजनीतिक सुधार या उन्नति के लिये प्रयत्न या आन्दोलन करता हो। सुधारक। संस्कारक।

रिफार्मेटरी–संज्ञा स्त्री० [अं०] वह संस्था या स्थान जहाँ बालक कैदी रखे जाते हैं और उन्हें औद्योगिक शिक्षा दी जाती है जिसमें वे वहाँ से बाहर निकल कर जीविका निर्वाह कर सकें और भलेमानस बन कर रहें। चरित्र-संशोधनालय।

रिफार्मेटरी स्कूल–संज्ञा पुं० दे० "रिफार्मेटरी"।

रिरना–क्रि० अ० [अनु०] बहुत दीनता प्रकट करना। गिड़गिड़ाना।

रिरिहा–संज्ञा पुं० [हिं० रिरना = गिड़गिड़ाना] वह जो गिड़गिड़ा कर और रट लगा कर कुछ माँगता हो। उ०—द्वार हौं भोर ही को आज। रटत रिरिहा आदि और न कौर ही ते काज।—तुलसी।

रिवाल्वर–संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का तमंचा जिसमें एक साथ कई गोलियाँ भरने की जगह होती है और गोलियाँ लगातार एक के बाद दूसरी छोड़ी जा सकती हैं।

रिव्यू–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) किसी नवीन प्रकाशित पुस्तक की परीक्षा कर उसके गुण-दोषों को प्रकट करना। आलो

चना। समालोचना। जैसे—आपने अपने पत्र में अभी मेरी पुस्तक की रिव्यू नहीं की।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) वह लेख या निबंध जिसमें इस प्रकार किसी पुस्तक की आलोचना की गई हो। समालोचना। जैसे—'संदेश' में 'समाज' की जो रिव्यू निकली है, वह सद्भावपूर्ण नहीं कही जा सकती। (३) वे सामयिक पत्र पत्रिकाएँ जिनमें राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक आदि विषयों पर आलोचनात्मक लेखों का संग्रह रहने के साथ ही नवीन प्रकाशित पुस्तकों की भी आलोचना रहती हो। जैसे—"माडर्न रिव्यू","सेंट्रल रिव्यू"। (४) किसी निर्णय या फैसले का पुनर्विचार। नजर सानी। जैसे—नीचे की अदालत का फैसला रिव्यू के लिये हाईकोर्ट भेजा गया है।

रिलीफ-संज्ञा पुं० [अं०] वह सहायता जो आर्त्त, पीड़ित या दीन दुःखी जनों को दी जाय। सहायता। साहाय्य। मदद। जैसे—मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी। रिलीफ वर्क।

रिस्क-संज्ञा स्त्री० [अं०] झोंका। जवाबदेही। भार। बोझ। जैसे—रेलवे रिस्क। उ०—(ख) यदि तुम गाँठ न उठाओगे तो ये तुम्हारी रिस्क पर पेश की जायँगी।

क्रि० प्र०—उठाना।

रिस्टवाच-संज्ञा स्त्री० [अं०] कलाई पर बाँधने की घड़ी।

रीजेंट-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो किसी राजा की नाबालिगी, अनुपस्थिति या अयोग्यता की अवस्था में राज्य का प्रबंध या शासन करता हो। राज-प्रतिनिधि। अस्थायी शासक। मंत्री। जैसे—स्वर्गीय महाराज सरदारसिंह जी की नाबालिगी में ईडर के महाराज सर प्रतापसिंह कई वर्ष तक जोधपुर के रीजेंट रहे।

रीजेंसी-संज्ञा स्त्री० [अं०] रीजेंट का शासन या अधिकार। जैसे—जोधपुर में कई वर्ष तक रीजेंसी रही।

रीडर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह जो पढ़े। पढ़नेवाला। पाठक। (२) कालेज या विश्व विद्यालय का अध्यापक या व्याख्याता। (३) वह जो लेख या पुस्तकों के प्रूफ पढ़ता या संशोधन करता है। संशोधक।

संज्ञा स्त्री० पाठ्य पुस्तक। जैसे,—पहली रीडर।

रीडिंग रूम-संज्ञा पुं० दे० "वाचनालय"।

रीहा-संज्ञा स्त्री० दे० "रीसा"।

रुक्मि-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार पाँचवें वर्ष का नाम जो रम्यक और हैरण्यवत वर्ष के मध्य में स्थित है।

रुठाना-क्रि० स० [हिं० रूठना का प्रे०] किसी को रूठने में प्रवृत्त करना। नाराज करना। उ०—मनु न मनावन कौं करै देत रुठाइ रुठाइ। कौतुक लाग्यौ प्यौ प्रिया-खिझहूँ रिझवति जाइ।—बिहारी।

रुद्र-कमल-संज्ञा पुं० [सं० रुद्र + कमल] रुद्राक्ष। उ०—पहुँची रुद्र-कवँल कै गटा। ससि माथे औ सुरसरि जटा।—जायसी।

रूपकरण-संज्ञा पुं० [सं० रूप + करण] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—किरमिज नुकरा जरदे भले। रूपकरन, बोलसर चले।—जायसी।

रूपघात-संज्ञा पुं० [सं०] सूरत बिगाड़ना। कुरूप करने का अपराध। (कौ०)

रूपदर्शक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का सिक्कों का निरीक्षण करनेवाला राज कर्मचारी। (२) सराफ। (कौ०)

रूप्यकूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार हैरण्यवत वर्ष की एक नदी का नाम।

रूबल-संज्ञा पुं० [रूसी रूबल] रूस का चाँदी का सिक्का जो प्रायः दो शिलिंग डेढ़ पेनी के बराबर मूल्य का होता है। (एक शिलिंग = प्रायः बारह आने। एक पेनी = प्रायः तीन पैसे)

रूरा-वि० [सं० रूढ़] (२) बहुत बड़ा। उ०—चित्र की सी पुत्रिका के रूरे बगरूरे माँहि संबर छड़ाय लई कामिनी कै काम की।—केशव। (३) सुन्दर। मनोहर। उ०—मेघ मन्दाकिनी, चारुसौदामिनी, रूप रूरे लसैं देहधारी मनो।—केशव।

रेकार्ड-संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी सरकारी या सार्वजनिक संस्था के कागज पत्र। (२) अदालत की मिसिल। (३) कुछ विशिष्ट मसालों से बना तवे के आकार का गोल टुकड़ा जिसमें वैज्ञानिक क्रिया से किसी का गाना बजाना या कही हुई बातें भरी रहती हैं। फोनोग्राफ के संदूक के बीच में निकली हुई कील पर इसे लगा कर कुंजी देने पर यह घूमने लगता है और इसमें से शब्द निकलने लगते हैं। चूड़ी।

विशेष—दे० "फोनोग्राफ"।

रेक्टर-संज्ञा पुं० [अं०] किसी संस्था का, विशेष कर शिक्षा संस्था का प्रधान। जैसे—यूनिवर्सिटी का रेक्टर।

रेगुलेशन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वे नियम या कायदे जो राजपुरुष अपने अधीन देश के सुशासन के लिये बनाते हैं। विधि। विधान। कानून। जैसे—बंगाल के तीसरे रेगुलेशन के अनुसार कितने ही युवक निर्वासित किए गए। (२) वे नियम या कायदे जो किसी विभाग या संस्था के सुसंचालन और नियन्त्रण के लिये बनाए जाते हैं। नियम। कायदे।

रेग्यूलेटर-संज्ञा पुं० [अं०] किसी मशीन या कल का वह हिस्सा या पुर्जा जो उसकी गति का नियन्त्रण करता है। यंत्रनियामक।

रेज़ोल्यूशन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह नियमित बाकायदा प्रस्ताव जो किसी व्यवस्थापिका सभा या अन्य किसी सभा संस्था के अधिवेशन में विचार और स्वीकृति के लिये उप-

स्थित किया जाय। प्रस्ताव। तजवीज। जैसे—वे परिषद् के आगामी अधिवेशन में राजनीतिक कैदियों को छोड़ देने के संबंध में एक रेजोल्यूशन उपस्थित करनेवाले हैं। (२) किसी व्यवस्थापिका सभा या अन्य किसी सभा-संस्था का किसी विषय पर निश्चय जो एकमत या बहुमत से हुआ हो। निर्णय। मन्तव्य। जैसे—इस संबंध में कांग्रेस और मुसलिम लीग के रेजोल्यूशनों में विरोध नहीं है। (ग) पुलिस की शासन रिपोर्ट पर जो सरकारी रेजोल्यूशन निकला है, उसमें पुलिस की प्रशंसा की गई है और कहा गया है कि गत वर्ष जो राजनीतिक अपराध नहीं हुए, उसका कारण पुलिस की तत्परता और सावधानता है।

रेट-पेयर्स–संज्ञा पुं० [अं०] वह जो किसी म्युनिसिपैलिटी को टैक्स या कर देता हो। करदाता। जैसे—रेट-पेयर्स एसोसिएशन।

रेफरी-संज्ञा पुं० [अं०] वह जिससे कोई झगड़ा निपटाने को कहा जाय। पंच। जैसे—इस बार फुटबाल मैच में कप्तान स्वीडन रेफरी थे।

रेफ्यूज–संज्ञा पुं० [अं०] वह संस्था जिसमें अनाथों और निराश्रयों को अस्थायी रूप से आश्रय मिलता है। जैसे—इण्डियन रेफ्यूज।

रेवरेंड–संज्ञा पुं० [अं०] पादरियों की सम्मानसूचक उपाधि। जैसे—रेवरेंड कोलमैन।

रेवेन्यू–संज्ञा पुं० [अं०] किसी राजा या राज्य की वार्षिक आय जो मालगुजारी, आबकारी, इनकम टैक्स, कस्टम ड्युटी आदि करों से होती है। आमदे मुल्क। मालगुजारी। जैसे—रेवेन्यू मेम्बर, रेवेन्यू अफसर, रेवेन्यू बोर्ड।

रेवेन्यू बोर्ड–संज्ञा पुं० [अं०] कई बड़े बड़े अफसरों का वह बोर्ड या समिति जिसके अधीन किसी प्रदेश के राजस्व का प्रबंध और नियन्त्रण हो।

रेवोल्यूशन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) समाज में ऐसा उलटफेर या परिवर्तन जिससे पुराने संस्कार, आचार विचार, राजनीति, रूढ़ियों आदि का अस्तित्व न रहे। आमूल परिवर्तन। फेरफार। उलट फेर। क्रांति। विप्लव। (२) देश या राज्य की शासन प्रणाली या सरकार में आकस्मिक और भीषण परिवर्तन। प्रचलित शासन प्रणाली या सरकार को उलट देना। राज्यक्रांति। राज्यविप्लव।

रेवोल्यूशनरी– वि० [अं०] राज्यक्रांतिकारी। विप्लवपंथी। जैसे,–रेवोल्यूशनरी लीग।

वि० रेवोल्यूशन संबंधी। जैसे,—रेवोल्यूशनरी साहित्य।

रेस-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) बाजी बद कर दौड़ना। दौड़ में प्रतियोगिता करना। (२) घुड़दौड़।

यौ०—रेस-कोर्स। रेस ग्राउंड।

रेस कोर्स-संज्ञा पुं० [अं०] दौड़ या घुड़दौड़ का रास्ता या मैदान।

रेस ग्राउंड-संज्ञा पुं० [अं०] दौड़ या घुड़दौड़ का मैदान।

रैक–संज्ञा पुं० [अं०] लकड़ी का खुला हुआ ढाँचा जिसमें पुस्तकें आदि रखने के लिये दर या खाने बने रहते हैं। यह आलमारी के ढंग का होता है, पर भेद इतना ही होता है कि आलमारी के चारों ओर तख्ते जड़े होते हैं और यह कम से कम आगे से खुला रहता है।

रैकेट–संज्ञा पुं० [अं०] टेनिस के खेल में गेंद मारने का डंडा जिसका अग्र भाग प्रायः वर्तुलाकार और ताँत से बुना हुआ होता है।

रैनिचर⊗–संज्ञा पुं० [हिं० रैन + चर] निशाचर। राक्षस। उ०—हेम मृग होहिं नहिं रैनिचर जानियो।—केशव।

रोगदई–संज्ञा स्त्री० [हिं० रोना ?] (१) अन्याय। (२) बेईमानी।

रोगदैया–संज्ञा स्त्री० दे० "रोगदई"। उ०—खेलत खात परसपर डहकत छीनत कहत करत रोग-दैया।—तुलसी।

रोचन–वि० [सं०] (४) लाल। उ०—वारि भरित भये वारिद रोचन।—केशव।

रोचित–वि० [सं० रोचन] शोभित। उ०—तन रोचित रोचन लई, रंचन कंचन गोतु।—केशव।

रोटा⊗–वि० [हिं० रोटी] पिसा हुआ। चूर किया हुआ। उ०—औ जौं जुरहिं वज्र कर गोटा। बिसरहि भुगुति होइ सब रोटा।—जायसी।

रोड–संज्ञा स्त्री० [अं०] सड़क। रास्ता। राजपथ। जैसे,–हैरिसन रोड।

रोपना⊗–क्रि० स० दे० "रोकना"। उ०—रामहिं तहाँ गयउ लेइ काल्हू। होइ सामुहँ रोपा देवपाल्हू।—जायसी।

रोम–संज्ञा पुं० [सं० रोमन्] (४) ऊन। उ०—दासी दास बासि बास रोम पाट को कियो। दायजो विदेहराज भाँति भाँति को कियो।—केशव।

रोल–संज्ञा पुं० [अं०] नामों की तालिका या फेहरिस्त।

रोल नंबर–संज्ञा पुं० [अं०] नामों की तालिका या सूची का क्रम।

रोहिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार हैमवत की एक नदी का नाम।

रोहितास्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार हैमवत की एक नदी का नाम।

रौंग–संज्ञा पुं० [देश०] सफेद कीकर।

लँगोचा–संज्ञा पुं० [देश०] जानवर की आँत जो मसालेदार कीमे से भर कर और तलकर खाई जाती है। कुलमा। गुलमा।

लंबू–वि० [हिं० लंबा] लंबा। (आदमी के लिये, व्यंग्य)

लंबोतरा–वि० [हिं० लंबा + ओतरा (प्रत्य०)] जो आकार में कुछ लंबा हो। लंबापन लिए हुए। जैसे,—आम के फल लंबोतरे होते हैं।

लंदराज–संज्ञा पुं० [अं० लांगक्लाथ] एक प्रकार की मोटी चादर।

लउटी⊛–संज्ञा स्त्री० [सं० लगुड] लकुटी। लकड़ी। उ०—बारे खेल तरुन वह सोवा। लउटी चूड़ छेह पुनि रोवा।—जायसी।

लक़ दक़–वि० [अ० लक़ दक़] (मैदान) जिसमें वृक्ष या वनस्पति आदि कुछ भी न हो।

लखना⊛–क्रि० स०[सं० लक्ष + ना (प्रत्य०)]लखना। देखना। उ०—पक्ष हू संधि संध्या संधी हैं मनोल लखिये स्वच्छ प्रत्यक्ष ही देखिये।—केशव।

लखघर, लखाघर⊛–संज्ञा पुं० [सं० लाक्षागृह] लाख का वह घर जो पांडवों को जलाने के लिये दुर्योधन ने बनवाया था। लाक्षागृह। उ०—जैसे जारत लखाघर साहस कीन्हों भीउ। जारत खंभ तस काढ़हु कै पुरुषारथ जीउ।—जायसी।

लखपेड़ा–वि० [हिं० लाख + पेड़] (बाग आदि) जिसमें बहुत अधिक वृक्ष हों।

लखलुट⊛–वि० [हिं० लाख + लुटाना] जो लाखों रुपए लुटा दे। बहुत बड़ा अपव्ययी।

लखी–संज्ञा पुं० [हिं० लाखी] लाख के रंग का घोड़ा। लाखी। उ०—अबलक अरबी लखी सिराजी। चौधर चाल, समँद भल ताजी।—जायसी।

लगनवट⊛†–संज्ञा स्त्री० [हिं० लगन + वट (प्रत्य०)] लगन। प्रेम। मुहब्बत। उ०—याही खेती लगनवट अहन कुव्याज मग खेत। बैर बढ़े सों आपने किये पाँच दुख-हेत।—तुलसी।

लगना–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का जंगली मृग। उ०—हरिन रोझ लगना बन बसे। चीतर गोंइन झाँख औ ससे।—जायसी।

लगमी–संज्ञा स्त्री० [फा० लगन = थाली] (१) छोटी थाली। रिकाबी। (२) पानदान में की वह तश्तरी जिसमें पान रखे जाते हैं। (३) परात।

लग्गू†–वि० [हिं० लगना = संभोग करना] (१) संभोग करनेवाला (२) उपपति। जार। यार। (बाजारू)

लघु-समुत्थ (राजा)–संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा या राज्य जो लड़ाई के लिये जल्दी तैयार किया जा सके।

विशेष—गुरु-समुत्थ और लघु-समुत्थ इन दो प्रकार के मित्रों में कौटिल्य ने दूसरे को ही अच्छा कहा है; क्योंकि यद्यपि उसकी शक्ति बहुत नहीं होती, पर वह समय पर खड़ा तो हो सकता है। पर प्राचीन आचार्य्य गुरु-समुत्थ को ही अच्छा मानते थे, क्योंकि यद्यपि वह जल्दी नहीं उठ सकता, पर जब उठता है, तब कार्य्य पूरा करके ही छोड़ता है।

लच्छना⊛–क्रि० स० [सं० लक्ष] भली भाँति देखना। उ०—तिनके लच्छन-लच्छ अब, आछे कहे बखानि।—मतिराम।

लटपटा†–वि० [अनु०] (१) (व्यंजन) जो न बहुत गाढ़ा हो और न बहुत पतला। लटपटा। (२) जिसमें पौरुष का अभाव हो। नपुंसक।

लड़बावला†–वि० [हिं० लड + बावला] मूर्ख। बेवकूफ।

लपटौआँ–संज्ञा पुं० [हिं० लपटना] एक प्रकार का जंगली तृण जिस की बाल कपड़े में लिपट या फँस जाती है और कठिनता से छूटती है।

वि० (१) लिपटनेवाला। चिमटनेवाला। (२) सटा या लिपटा हुआ।

लपना†–क्रि० अ० [अनु०] (४) हैरान होना। परेशान होना।

मुहा०—लपना झपना = हैरान होना। उ०—प्रादि बरस औ लपई झपई। छन एक गुपुत जाय जो जपई।—जायसी।

लब्धदास–संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जो दूसरे से मिला हो।

लम–प्रत्य० [हिं० लंबा] लंबा का संक्षिप्त रूप जो प्रायः यौगिक शब्दों के आरंभ में लगाया जाता है। जैसे,—लमतड़ंग।

लमछुआ– वि० दे० "लंबोतरा"।

ललित कला–संज्ञा स्त्री० [सं० ललित + कला] वे कलाएँ या विद्याएँ जिनके व्यक्त करने में किसी प्रकार के सौन्दर्य की अपेक्षा हो। जैसे,—संगीत, चित्रकला, वास्तुकला, मूर्त्तिकला इत्यादि। वि० दे० "कला"।

लवंगलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) प्रायः समोसे के आकार की एक बँगला मिठाई जिसमें ऊपर से एक लौंग खोंसा हुआ होता है और जिसके अन्दर कुछ मेवे और मसाले आदि भरे होते हैं।

लवनी†–संज्ञा स्त्री० [सं० नवनीत] नवनीत। मक्खन।

लवाज़मात–संज्ञा पुं० [अ०] लवाजिम का बहुवचन। सामग्री। उपकरण।

लवारा–संज्ञा पुं० [हिं० लवारे] गौ का बच्चा। बछड़ा।

लसरका†–संज्ञा पुं० [हिं० लगना या लसना] सम्बन्ध। लगाव। ताल्लुक। (लखनऊ)

लसलसाना–क्रि० अ० [अनु०] गोंद या लसदार चीज की तरह चिपकना। चिपचिपाना।

लस्सी–संज्ञा स्त्री० [हिं० लस] (१) लस। चिपचिपाहट। वि० दे० 'लसी'। (२) छाछ। मठा। तक्र। (पश्चिम)

यौ०—कच्ची लस्सी=अधिक पानी मिला हुआ दूध।

लहक–संज्ञा स्त्री० [हिं० लहकना] (१) लहकने की क्रिया या भाव। (२) आग की लपट। (३) चमक। द्युति। (४) शोभा। छवि।

लहका†–संज्ञा पुं० [हिं० लहक] पतला गोटा। लचका।

लहकारना–क्रि० स० [हिं० ललकारना] (१) किसी के विरुद्ध कुछ करने के लिये बहकाना। ताव दिलाना। (२) उत्साहित करके आगे बढ़ाना। (३) कुत्ते को उत्साहित या क्रुद्ध करके किसी के पीछे लगाना।

रित किया जाय। प्रस्ताव। तजवीज। जैसे—वे परिषद् के आगामी अधिवेशन में राजनीतिक कैदियों को छोड़ देने के संबंध में एक रेजोल्यूशन उपस्थित करनेवाले हैं। (२) किसी व्यवस्थापिका सभा या अन्य किसी सभा-संस्था का किसी विषय पर निश्चय जो एकमत या बहुमत से हुआ हो। निर्णय। मन्तव्य। जैसे—इस संबंध में कांग्रेस और मुसलिम लीग के रेजोल्यूशनों में विरोध नहीं है। (ग) पुलिस की शासन रिपोर्ट पर जो सरकारी रेजोल्यूशन निकला है, उसमें पुलिस की प्रशंसा की गई है और कहा गया है कि गत वर्ष जो राजनीतिक अपराध नहीं हुए, उसका कारण पुलिस की तत्परता और सावधानता है।

रेट-पेयर्स–संज्ञा पुं० [अं०] वह जो किसी म्युनिसिपैलिटी को टैक्स या कर देता हो। करदाता। जैसे—रेट-पेयर्स एसोसिएशन।

रेफरी-संज्ञा पुं० [अं०] वह जिससे कोई झगड़ा निपटाने को कहा जाय। पंच। जैसे—इस बार फुटबाल मैच में कप्तान स्वीटन रेफरी थे।

रेफ्यूज–संज्ञा पुं० [अं०] वह संस्था जिसमें अनाथों और निराश्रयों को अस्थायी रूप से आश्रय मिलता है। जैसे—इण्डियन रेफ्यूज।

रेवरेंड–संज्ञा पुं० [अं०] पादरियों की सम्मानसूचक उपाधि। जैसे—रेवरेंड कोलमैन।

रेवेन्यू–संज्ञा पुं० [अं०] किसी राजा या राज्य की वार्षिक आय जो मालगुजारी, आबकारी, इनकम टैक्स, कस्टम ड्यूटी आदि करों से होती है। आमदे मुल्क। मालगुजारी। जैसे—रेवेन्यू मेम्बर, रेवेन्यू अफसर, रेवेन्यू बोर्ड।

रेवेन्यू बोर्ड–संज्ञा पुं० [अं०] कई बड़े बड़े अफसरों का वह बोर्ड या समिति जिसके अधीन किसी प्रदेश के राजस्व का प्रबंध और नियन्त्रण हो।

रेवोल्यूशन-संज्ञा पुं० [अं०] (१) समाज में ऐसा उलटफेर या परिवर्तन जिससे पुराने संस्कार, आचार विचार, राजनीति, रूढ़ियों आदि का अस्तित्व न रहे। आमूल परिवर्तन। फेरफार। उलट फेर। क्रांति। विप्लव। (२) देश या राज्य की शासन प्रणाली या सरकार में आकस्मिक और भीषण परिवर्तन। प्रचलित शासन प्रणाली या सरकार को उलट देना। राज्यक्रांति। राज्यविप्लव।

रेवोल्यूशनरी– वि० [अं०] राज्यक्रांतिकारी। विप्लवपंथी। जैसे,–रेवोल्यूशनरी लीग।

वि० रेवोल्यूशन संबंधी। जैसे,—रेवोल्यूशनरी साहित्य।

रेस-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) बाजी बद कर दौड़ना। दौड़ में प्रतियोगिता करना। (२) घुड़दौड़।

यौ०—रेस-कोर्स। रेस ग्राउंड।

रेस कोर्स–संज्ञा पुं० [अं०] दौड़ या घुड़दौड़ का रास्ता या मैदान।

रेस ग्राउंड-संज्ञा पुं० [अं०] दौड़ या घुड़दौड़ का मैदान।

रैक–संज्ञा पुं० [अं०] लकड़ी का खुला हुआ ढाँचा जिसमें पुस्तकें आदि रखने के लिये दर या खाने बने रहते हैं। यह आलमारी के ढंग का होता है, पर भेद इतना ही होता है कि आलमारी के चारों ओर तख्ते जड़े होते हैं और यह कम से कम आगे से खुला रहता है।

रैकेट–संज्ञा पुं० [अं०] टेनिस के खेल में गेंद मारने का डंडा जिसका अग्र भाग प्रायः वर्तुलाकार और ताँत से बुना हुआ होता है।

रैनिचर⊛–संज्ञा पुं० [हिं० रैन + चर] निशाचर। राक्षस। उ०—हेम मृग होहिं नहिं रैनिचर जानियो।—केशव।

रोगदई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० रोना ?] (१) अन्याय। (२) बेईमानी।

रोगदैया–संज्ञा स्त्री० दे० "रोगदई"। उ०—खेलत जात परस पर उहकत छीनत कहत करत रोग-दैया।—तुलसी।

रोचन–वि० [सं०] (४) लाल। उ०—वारि भरित भये वारिद रोचन।—केशव।

रोचित–वि० [सं० रोचन] शोभित। उ०—तन रोचित रोचन लहै, रंचन कंचन तोतु।—केशव।

रोटा⊛–वि० [हिं० रोटी] पिसा हुआ। चूर किया हुआ। उ०—औ जौं छुटहिं वज्र कर गोटा। बिसरहिं भुगुति होइ सब रोटा।—जायसी।

रोड–संज्ञा स्त्री० [अं०] सड़क। रास्ता। राजपथ। जैसे,–हैरिसन रोड।

रोपना⊛–क्रि० स० दे० "रोकना"। उ०—राजहि तहाँ गयउ लेइ कालू। होइ सामुहँ रोपा देवपालू।—जायसी।

रोम–संज्ञा पुं० [सं० रोमन्] (४) ऊन। उ०—दासी दास बासि बास रोम पाट को कियो। दायजो विदेहराज भाँति भाँति को दियो।—केशव।

रोल–संज्ञा पुं० [अं०] नामों की तालिका या फेहरिस्त।

रोल नंबर–संज्ञा पुं० [अं०] नामों की तालिका या सूची का क्रम।

रोहिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार हैमवत की एक नदी का नाम।

रोहितास्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार हैमवत की एक नदी का नाम।

रौंग–संज्ञा पुं० [देश०] सफेद कीकर।

लँगोचा–संज्ञा पुं० [देश०] जानवर की आँत जो मसालेदार कीमे से भर कर और तलकर खाई जाती है। कुलमा। गुलमा।

लंबू–वि० [हिं० लंबा] लंबा। (आदमी के लिये, व्यंग्य)

लँबोतरा–वि० [हिं० लंबा + ओतरा (प्रत्य०)] जो आकार में कुछ लंबा हो। लंबापन लिए हुए। जैसे,—आम के फल लंबोतरे होते हैं।

लंदराज–संज्ञा पुं० [अ० लांगक्लाथ] एक प्रकार की मोटी चादर।
लकटी॰–संज्ञा स्त्री० [सं० लगुड़] लकुटी। लकड़ी। उ०—बारे खेल तरुन वह सोवा। लउटी बूढ़ लेइ पुनि रोवा।—जायसी।
लक् दक्–वि० [अ० लक दक] (मैदान) जिसमें वृक्ष या वनस्पति आदि कुछ भी न हो।
लखना॰–क्रि० स० [सं० लक्ष + ना (प्रत्य०)] लखना। देखना। उ०—पक्ष हू संधि संध्या संधी हैं मनोल लखिये स्वच्छ प्रत्यक्ष ही देखिये।—केशव।
लखघर, लखाघर॰–संज्ञा पुं० [सं० लाक्षागृह] लाख का वह घर जो पांडवों को जलाने के लिये दुर्योधन ने बनवाया था। लाक्षागृह। उ०—जैसे आरत लाखाघर साहस कीन्हों भीउ। आरत खंभ तस काढ़हु कै पुरुषारथ जीउ।—जायसी।
लखपेड़ा–वि० [हि० लाख + पेड़] (बाग आदि) जिसमें बहुत अधिक वृक्ष हों।
लखलुटा॰–वि० [हि० लाख + लुटाना] जो लाखों रुपए लुटा दे। बहुत बड़ा अपव्ययी।
लखी–संज्ञा पुं० [हि० लाखी] लाख के रंग का घोड़ा। लाखी। उ०—अबलक अरबी लखी सिराजी। चौधर चाल, समँद भल ताजी।—जायसी।
लगनवट॰†–संज्ञा स्त्री० [हि० लगन + वट (प्रत्य०)] लगन। प्रेम। मुहब्बत। उ०—राही सेती लगनवट जग कुव्याज मग खेत। बैर बढ़े सौं आपने किये पाँच दुख-देत।—तुलसी।
लगना–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का जंगली मृग। उ०—हरिन रोझ लगना बन बसे। चीतर गोंइन झाँख औ ससे।—जायसी।
लगनी–संज्ञा स्त्री० [फा० लगन = थाली] (१) छोटी थाली। रिकाबी। (२) पानदान में की वह तश्तरी जिसमें पान रखे जाते हैं। (३) परात।
लग्गू†–वि० [हि० लगना = संभोग करना] (१) संभोग करनेवाला (२) उपपति। जार। यार। (बाजारू)
लघु-समुत्थ (राजा)–संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा या राज्य जो लड़ाई के लिये जल्दी तैयार किया जा सके।
विशेष—गुरु-समुत्थ और लघु-समुत्थ इन दो प्रकार के मित्रों में कौटिल्य ने दूसरे को ही अच्छा कहा है; क्योंकि यद्यपि उसकी शक्ति बहुत नहीं होती, पर वह समय पर खड़ा तो हो सकता है। पर प्राचीन आचार्य गुरु-समुत्थ को ही अच्छा मानते थे; क्योंकि यद्यपि वह जल्दी नहीं उठ सकता, पर जब उठता है, तब कार्य्य पूरा करके ही छोड़ता है।
लच्छना॰–क्रि० स० [सं० लक्ष] भली भाँति देखना। उ०—तिनके लच्छन-लच्छ अब, आछे कहे बखानि।—मतिराम।
लड़बड़ा†–वि० [अनु०] (१) (व्यंजन) जो न बहुत गाढ़ा हो और न बहुत पतला। लटपटा। (२) जिसमें पौरुष का अभाव हो। नपुंसक।
लड़बावला†–वि० [हि० लड़ + बावला] मूर्ख। बेवकूफ।
लपटौआँ–संज्ञा पुं० [हि० लपटना] एक प्रकार का जंगली तृण जिस की बाल कपड़े में लिपट या फँस जाती है और कठिनता से छूटती है।
वि० (१) लिपटनेवाला। चिमटनेवाला। (२) सटा या लिपटा हुआ।
लपना†–क्रि० अ० [अनु०] (४) हैरान होना। परेशान होना।
मुहा०—लपना झपना = हैरान होना। उ०—प्रीति परस जो लपई झपई। छन एक गुपुत जाय जो जपई।—जायसी।
लब्धदास–संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जो दूसरे से मिला हो।
लम–प्रत्य० [हि० लंबा] लंबा का संक्षिप्त रूप जो प्रायः यौगिक शब्दों के आरंभ में लगाया जाता है। जैसे,—लमतड़ंग।
लमछुआ– वि० दे० "लंबोतरा"।
ललित कला–संज्ञा स्त्री० [सं० ललित + कला] वे कलाएँ या विद्याएँ जिनके व्यक्त करने में किसी प्रकार के सौन्दर्य की अपेक्षा हो। जैसे,—संगीत, चित्रकला, वास्तुकला, मूर्त्तिकला इत्यादि। वि० दे० "कला"।
लवंगलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) प्रायः समोसे के आकार की एक बँगला मिठाई जिसमें ऊपर से एक लौंग खोंसा हुआ होता है और जिसके अन्दर कुछ मेवे और मसाले आदि भरे होते हैं।
लवनी†–संज्ञा स्त्री० [सं० नवनीत] नवनीत। मक्खन।
लवाज़मात–संज्ञा पुं० [अ०] लवाज़िम का बहुवचन। सामग्री। उपकरण।
लवारा†–संज्ञा पुं० [हि० लवाई] गौ का बच्चा। बछड़ा।
लसरका†–संज्ञा पुं० [हि० लगना या लसना] सम्बन्ध। लगाव। ताल्लुक। (लखनऊ)
लसलसाना–क्रि० अ० [अनु०] गोंद या लसदार चीज की तरह चिपकना। चिपचिपाना।
लस्सी–संज्ञा स्त्री० [हि० लस] (१) लस। चिपचिपाहट। वि० दे० 'लसी'। (२) छाछ। मठा। तक्र। (पश्चिम)
यौ०—कची लस्सी=अधिक पानी मिला हुआ दूध।
लहक–संज्ञा स्त्री० [हि० लहकना] (१) लहकने की क्रिया या भाव। (२) आग की लपट। (३) चमक। द्युति। (४) शोभा। छवि।
लहका†–संज्ञा पुं० [हि० लहक] पतला गोटा। लचका।
लहकारना–क्रि० स० [हि० ललकारना] (१) किसी के विरुद्ध कुछ करने के लिये बहकाना। साथ दिलाना। (२) उत्साहित करके आगे बढ़ाना। (३) कुत्ते को उत्साहित या क्रुद्ध करके किसी के पीछे लगाना।

लुबुधा—वि० [सं० लुब्ध] (१) लोभी। लालची। (२) चाहनेवाला। इच्छुक। प्रेमी। उ०—पालि नैन ओहि राखिय, पल नहिं कीजिय ओट। पेम क लुबुधा पाव ओहि, काह सो बड़ का छोट।—जायसी।

लूँबरी|—संज्ञा स्त्री० दे० "लोमड़ी"।

लूत—संज्ञा स्त्री० [सं० लूता] मकड़ी। ऊर्णनाभ। उ०—लागे लूत के जाल पै, लख्यो लसत इहि भौन।—मतिराम।

लेंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लेंड] छः हाथ लम्बी रस्सी जिसके एक सिरे पर मुद्धी और दूसरे सिरे पर घुण्डी होती है। यह घोड़े की दुम में चूतड़ों पर से लगाई जाती है। (घोड़े का साज)

लेंढ़ोरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (चौपायों को) दाना या चारा खिलाने का बर्तन।

लेंहड़—संज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़ों या दूसरे चौपायों का झुंड।

लेक्चरर—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो लेक्चर देता हो। व्याख्यान देनेवाला। व्याख्याता।

लेख—संज्ञा स्त्री० [हिं० लीक] लकीर। पक्की बात। उ०—विश्वंभर श्रीपति त्रिभुवन-पति वेद-विदित यह लेख।—तुलसी।

लेख्यारूढ़—वि० [सं०] जिसके संबंध में लिखा पढ़ी हो गई हो। दस्तावेज़ी। जैसे—लेख्यारूढ़ आधि।

लेजिस्लेटिव—वि० [अं०] व्यवस्था सम्बन्धी। कानून सम्बन्धी। जैसे—लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट।

लेजिस्लेटिव असेंब्ली—संज्ञा स्त्री० [अं०] दे० "व्यवस्थापिका परिषद्"।

लेजिस्लेटिव कौंसिल—संज्ञा स्त्री० दे० "व्यवस्थापिका सभा"।

लेट—वि० [अं०] जो निश्चित या ठीक समय के उपरान्त आवे, रहे या हो। जिसे देर हुई हो। जैसे—यह गाड़ी प्रायः लेट रहती है।

यौ०—लेट फी।

लेट फी—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह फीस जो निश्चित समय के बाद डाकखाने में कोई चीज दाखिल करने पर देनी पड़ती हो।

विशेष—डाकखाने में प्रायः सभी कामों के लिये समय निश्चित रहता है। उस निश्चित समय के उपरांत यदि कोई व्यक्ति कोई चीज रजिस्टरी कराना या चिट्ठी रवाना करना चाहे, तो उसे कुछ फीस देनी पड़ती है जो लेट फी कहलाती है।

लेटर्स पेटेंट—संज्ञा पुं० [अं०] वह राजकीय आज्ञापत्र जिसमें किसी को कोई पद या स्वत्व आदि देने या कोई संस्था स्थापित करने की बात लिखी रहती है। राजकीय आज्ञापत्र। शाही फरमान। जैसे,—१८६१ में पार्लमेंट ने कानून बना कर महारानी को अधिकार दे दिया था कि अपने लेटर्स पेटेंट से कलकत्ते, बम्बई, मद्रास और आगरा प्रदेशों में हाईकोर्ट स्थापित करें।

लेटा—संज्ञा पुं० [देश०] गल्ले का बाजार। मंडी।

लेन|—संज्ञा स्त्री० [अं०] गली। कूचा। जैसे—प्यारीचरण सरकार लेन, कलकत्ता।

लेनहार—वि० [हिं० लेना + हार (प्रत्य०)] लेनेवाला। लेनदार। लहनेदार। उ०—जनु लेनिहार न लेहिं जिउ हरहिं तरासहिं ताहि। एतनै बोल आय मुख करैं तराहि तराहि।—जायसी।

लेफ्टेनेंट-कर्नल—संज्ञा पुं० [अं०] सेना का एक अफसर जिसका दर्जा कर्नल के बाद ही है।

लेफ्टेनेंट-जेनरल—संज्ञा पुं० [अं०] सेना का एक अफसर जिसका दर्जा जेनरल के बाद ही है। सहायक सैन्याध्यक्ष।

लेबरर—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो शारीरिक परिश्रम द्वारा जीविका निर्वाह करता हो। मेहनत मजूरी करके गुजर करनेवाला। श्रमजीवी। मजूर।

लेला—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० लेली] (१) बकरी या भेंड़ का बच्चा। (२) वह जो साथ लगा रहता हो। पिछलग्गू।

लेवी—संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) एक प्रकार का दरबार जो विलायत में राजा लोग और हिंदुस्तान में वायसराय करते हैं। (२) उद्देश्य विशेष से खड़ी की हुई पलटन। जैसे,—मकरान लेवी कोर। वि० दे० "मिलिशा"।

लेहू—संज्ञा पुं० [?] (१) लोध नामक वृक्ष। वि० दे० "लोध"।

लैंसर—संज्ञा पुं० [अं०] रिसाले के सवारों के तीन भेदों में से एक जो भाला लिए रहते हैं और जिनके घोड़े भारी होते हैं।

लोअर कोर्ट—संज्ञा पुं० [अं०] नीचे की अदालत। निम्न विचारालय।

लोकपाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नरेश। राजा। नृपति। उ०—दिगपालन की भुवपालन की लोकपालन की किन मातु गई च्वै।—केशव।

लोकल—वि० [अं०] किसी स्थान विशेष, जिले या प्रदेश का। स्थानीय। प्रादेशिक। जैसे,—लोकल बोर्ड। लोकल गवर्नमेंट।

लोकहार—वि० [सं० लोक + हरण] लोक को हरण करनेवाला। संसार को नष्ट करनेवाला। उ०—वियोग सीय को न, काल लोकहार जानिये।—केशव।

लोकाकाश—संज्ञा पुं० [सं०] विश्व जिसमें सब प्रकार के जीव और तत्व रहते हैं। (जैन)

लोना—संज्ञा पुं० [हिं० अमलोनी] (६) अमलोनी नाम की घास जिसे रसायनी धातु सिद्ध करने के काम में लाते हैं। उ०—(क) कहाँ सो खोएहु बिरवा लोना। जेहि तें होइ रूप औ सोना।—जायसी। (ख) जहँ लोना बिरवा कै जाती। कहि कै सँदेस आन को पाती।—जायसी।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक कल्पित स्त्री जो जाति की चमार और जादू टोने में बहुत प्रवीण कही जाती है। उ०—तू काँवरू परा बस टोना। भूला जोग छरा तोहि लोना।—जायसी।

लोनार|—संज्ञा पुं० [हिं० लून = नमक + आर (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ नमक बनता हो अथवा जहाँ से नमक आता हो। जैसे,—नमक की खान, झील या क्यारी।

लोवा|—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोमड़ी] लोमड़ी। उ०—कीन्हेसि लोवा इंदुर चाँटी। कीन्हेसि बहुत रहहिं खनि माटी।—जायसी।

लोभ-विजयी—संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो असल में लड़ाई न करना चाहता हो, कुछ धन आदि चाहता हो।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि ऐसे को कुछ धन देकर मित्र बना लेना चाहिए।

लोला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (९) ४४ हाथ लंबी ८ हाथ चौड़ी और ४४/३ हाथ ऊँची नाव। (युक्तिकल्पतरु)

लोलिनी—वि० स्त्री० [सं० लोल] चंचल प्रकृतिवाली। उ०—कहूँ लोलिनी बेड़िनी गीत गावैं।—केशव।

लोहजालिका—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बकतर जिससे सारा शरीर ढका रहता था। (कौ०)

लोहसार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) फौलाद। (२) फौलाद की बनी जंजीर। उ०—लोहसार हस्ती पहिराए। मेघ साम जनु गरजत आए।—जायसी।

लौकना|—क्रि० अ० [हिं० लौ] दूर से दिखाई देना। उ०—मनि कुंडल झलकैं अति लोने। जनु कौंधा लौकहि दुहु कोने।—जायसी।

लौकांतिक—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार वे स्वर्गस्थ जीव जो पाँचवें स्वर्ग ब्रह्मलोक में रहते हैं। ऐसे जीवों का जो दूसरा अवतार होता है, वह अंतिम होता है और उसके उपरांत फिर उन्हें अवतार धारण करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

लौट—संज्ञा स्त्री० [हिं० लौटना] लौटने की क्रिया, भाव या ढंग। उ०—कर उठाइ घूँघुट करत उझरत पट-गुझरौट। सुख मोटैं लूटीं ललन लखि ललना की लौट।—बिहारी।

ल्यावना®—क्रि० स० दे० "लाना" उ०—पितहि भुव ल्यावते, जगत यश पावते।—केशव।

वकुश—संज्ञा पुं० [सं०] वह त्यागी यती या साधु जिसे अपने ग्रंथों, शरीर और भक्तों या शिष्यों की कुछ कुछ चिंता रहती हो। (जैन)

वत्—अव्य० [सं०] समान। तुल्य। सदृश। जैसे,—पुत्रवत्। मित्रवत्।

वत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) खेद। (२) अनुकंपा। (३) संतोष। (४) विस्मय। (५) आमन्त्रण।

वर्किंग कमिटी—संज्ञा स्त्री० [अं०] कार्यकारिणी समिति। जैसे,—कांग्रेस वर्किंग कमिटी।

वर्चःस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] पाखाना। (पारा० स्मृति)

वज्रव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह असंहत व्यूह जिसमें सेना के पाँच भाग असंहत हों। (कौ०)

वर्णधातु—संज्ञा पुं० [सं०] गेरू, ईंगुर आदि रंग के काम में आनेवाली धातु।

वर्ण संहार—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिमुख सन्धि के तेरह अंगों में से एक। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारो वर्णों के लोगों का एक स्थान पर सम्मेलन। पर अभिनय गुप्ताचार्य्य का मत है कि नाटक के भिन्न भिन्न पात्रों के एक स्थान पर सम्मेलन को वर्णसंहार कहना चाहिए। (नाट्यशास्त्र)

वर्तिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सड़क का महसूल। (कौ०)

वरकसाज़—संज्ञा पुं० [अ० वर्क + फा० साज़] वह जो चाँदी या सोने आदि को कूटकर उनके वरक बनाता हो। तबकगर। तबकिया।

वरज़िश—संज्ञा स्त्री० [फा०] कसरत। व्यायाम।

वरे|—क्रि० वि० [हिं० परे] (१) उधर। उस ओर। (२) दूर। परे।

वलय—संज्ञा पुं० [सं०] (७) सैनिकों की दो दो पंक्तियों में स्थिति। (कौ०)

वलि—संज्ञा पुं० [सं०] (८) धार्मिक कर। धर्म्मकार्य्य के लिये लगाया हुआ कर। (कौ०)

वश्यमित्र (राष्ट्र या राजा)—संज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र जिसका बहुत प्रकार से उपयोग किया जा सके। यह तीन प्रकार का होता है—(१) एकतोभोगी, (२) उभयतोभोगी और (३) सर्वतो भोगी।

वर्षधर—संज्ञा पुं० [सं०] (३) जैनों के अनुसार वे पर्वत जो पृथ्वी के विभागों या वर्षों को विभक्त करते हैं।

वस्त्रप—संज्ञा पुं० [सं०] (२) रेशम, ऊन तथा सब प्रकार के वस्त्रों को पहचानने और उनके भाव आदि का पता रखनेवाला राजकर्मचारी। (शुक्रनीति)

वस्त्र-भवन—संज्ञा पुं० [सं० वस्त्र + भवन] कपड़े का बना हुआ घर। जैसे—रावटी, खेमा आदि। उ०—वस्त्र भौन स्यौं वितान आसने बिछावने दायजो विदेहराज भाँति भाँति को दियो।—केशव।

वस्ल—संज्ञा पुं० [अ०] (१) दो चीजों का आपस में मिलना। मिलन। (२) संयोग। मिलाप। विशेषतः प्रेमी और प्रेमिका का मिलाप।

वह्नि—संज्ञा पुं० [सं०] (९) जैनों के अनुसार लौकांतिक जीवों का तीसरा वर्ग।

वाइन—संज्ञा स्त्री० [अं०] शराब। मद्य। सुरा।

वहित्र—संज्ञा पुं० [सं० बोहित्थ] बड़ी नाव। जहाज। उ०—सोह राम कामादि-प्रिय अवधपति सर्वदा दास तुलसी त्रासनिधि वहित्र।—तुलसी।

वाइकौंट—संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० वाइकौंटिस] इंगलैंड के सामंतों

और बड़े बड़े भूम्यधिकारियों को वंश परंपरा के लिये दी जानेवाली एक प्रतिष्ठासूचक उपाधि जिसका दर्जा 'अर्ल' के नीचे और 'बैरन' के ऊपर है। वि० दे० "ड्यूक"।

वाइस चेयरमैन-संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसका दर्जा चेयरमैन या सभाध्यक्ष के बाद ही होता है और जो उसकी अनुपस्थिति में उसका काम करता है। उपाध्यक्ष। उपसभापति। जैसे—म्युनिसिपैलिटी के वाइस-चेयरमैन।

वाइस प्रेसिडेंट-संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसका दर्जा प्रेसिडेंट या सभापति के बाद ही होता है और जो उसकी अनुपस्थिति में सभा का संचालन करता है। उपसभापति। जैसे,—कौंसिल के वाइस प्रेसिडेंट।

वाउचर-संज्ञा पुं० [अं०] वह कागज या बही जिसमें किसी प्रकार के हिसाब का ब्योरा हो।

वाकफियत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वाकिफ होने का भाव। जानकारी। (२) जान पहचान। परिचय।

वाच-संज्ञा स्त्री० दे० "वाच्"। उ०—काय मन वाच सब धर्म करिबो करैं।—केशव।

वाचनालय-संज्ञा पुं० [सं०] वह कमरा या भवन जहाँ पुस्तकें और समाचार पत्र आदि पढ़ने को मिलते हों। रीडिंग रूम।

वाणिज्य दूत-संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो किसी स्वाधीन राज्य या देश के प्रतिनिधि रूप से दूसरे देश में रहता और अपने देश के व्यापारिक स्वार्थों की रक्षा करता हो। कान्सल।

वातजात-संज्ञा पुं० [सं० वात + जात] पवन-सुत। हनुमान। उ०—सहमि सुखात वातजात की सुरति करि लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के।—तुलसी।

वामकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी जिसकी पूजा प्रायः जादूगर आदि करते हैं।

वार-संज्ञा पुं० [अं०] युद्ध। समर। जंग। जैसे,—जर्मन वार।

वारनिश-संज्ञा स्त्री० [अं० वार्निश] एक प्रकार का यौगिक तरल पदार्थ जो लकड़ियों आदि पर उनमें चमक लाने के लिये लगाया जाता है।

वारबाण-संज्ञा पुं० [सं०] एड़ी तक लंबा अंगा। (कौ०)

वारशिप-संज्ञा पुं० [अं०] जंगी जहाज। लड़ाऊ जहाज। युद्ध पोत।

वारुणीवर-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार चौथे द्वीप और उसके समुद्र का नाम।

वारुण कृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जिसमें महीने भर तक पानी में घुला सत्तू खाकर रहते थे। (स्मृति)

वार्ताशस्त्रोपजीवी-संज्ञा पुं० [सं०] केवल वाणिज्य या युद्ध-व्यवसाय में लगे रहनेवाले।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि कांबोज और सौराष्ट्रवाले अधिकतर ऐसे ही हैं।

वार्धुषिक-संज्ञा पुं० [सं०] कम दाम पर वस्तु खरीद कर अधिक पर बेचने का व्यवसाय करनेवाला। खरीद फरोख्त का रोजगारी। बनिया। (स्मृति)

वास्कट-संज्ञा स्त्री० [अं० वेस्ट कोट] फतुही।

वाह्य आतिथ्य-संज्ञा पुं० [सं०] बाहर से आया हुआ विदेशी माल।

विकल्प आपत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह आपत्ति जो दूसरे मार्ग के अवलंबन से बचाई जा सकती हो। (कौ०)

विक्रय प्रतिक्रोष्टा-संज्ञा पुं० [सं०] बोली बोलकर बेचनेवाला। नीलाम करनेवाला।

विक्षिप्त-संज्ञा पुं० [सं०] योग में चित्त की वृत्तियों या अवस्थाओं में से एक जिसमें चित्त प्रायः अस्थिर रहता है, पर बीच बीच में कुछ स्थिर भी हो जाता है। कहा गया है कि ऐसी अवस्था योग की साधना के लिये अनुकूल या उपयुक्त नहीं होती। वि० दे० "चित्तभूमि"।

विगृह्य गमन-संज्ञा पुं० [सं०] चारों ओर से मित्रों तथा शत्रुओं से घिर कर पानी में से भागना। (कामंदक)

विगृह्यास-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु की शक्ति आदि की कुछ भी परवा न कर की आनेवाली अंधाधुंध चढ़ाई। (कामंदक)

विगृह्यासन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुश्मन को छेड़कर या उसकी जमीन आदि छीनकर चुपचाप बैठना। (२) शत्रु-स्थित दुर्ग को जीतने में असमर्थ होकर घेरा डालकर बैठना।

विग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] (१४) दूसरे के प्रति हानिकारक उपायों का प्रत्यक्ष प्रयोग।

विच्छिन्न-संज्ञा पुं० [सं०] योग में अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन चारों क्लेशों की वह अवस्था जिसमें बीच में उनका विच्छेद हो जाता है। वह बीच की अवस्था जिसमें कोई क्लेश वर्तमान नहीं रहता, पर जिससे कुछ पहले और कुछ बाद वह वर्तमान रहता है।

विंजन-संज्ञा पुं० दे० "व्यंजन"। उ०—भाँति भाँति के विंजन और पकवान थाल भर उसके सन्मुख रखे।—लल्लू।

विजय-संज्ञा पुं० [सं०] (४) जैनों के अनुसार पाँच अनुत्तरों में से पहला अनुत्तर या सब से ऊपर का स्वर्ग। (५) विष्णु के एक पार्षद का नाम। (६) अर्जुन का एक नाम। (७) यम का नाम। (८) जैनियों के एक जिन देव का नाम। (९) कल्कि के एक पुत्र का नाम। (१०) कालिका पुराण के अनुसार भैरववंशी कल्पराज के पुत्र का नाम जो काशिराज नाम से प्रसिद्ध थे। (११) विमान। (१२) संजय के एक पुत्र का नाम। (१३) जयद्रथ के एक पुत्र का नाम। (१४) एक प्रकार का शुभ मुहूर्त।

विज्ञानना-क्रि० स० [सं० उपसर्ग वि + हिं० जानना] जानना। भली भाँति जानना। विशेष रूप से जानना। उ०—आतम कथन अनातम को है। याको तत्व विजानत जो है।—पद्माकर।

विट-संज्ञा पुं० [सं०] (१०) विष्ठा। गुह। मल। उ०—(क) कवि भस्म विट परिनाम तन तेहि लागि जगु वैरी भयो।—तुलसी। (ख) पाछे तें शूकर सुत धावा। विट ऊपर मुख मारि गिरावा।—विश्राम।

वितत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मृदंग या ढोल आदि आनद्ध बाजों से उत्पन्न होनेवाला शब्द।

विथक-संज्ञा पुं० [हिं० विथकना ?] पवन।

विद्रारण-संज्ञा पुं० [सं०] (७) जैनों के अनुसार दूसरों के पापों या दोषों की घोषणा करना।

विदिश-संज्ञा स्त्री० दे० "विदिश्"। उ०—धायो घर द्वार दौल विदिश दिसि जहाँ चमकूँ चाहि लयो।—सूर।

विदेह-वि० [सं०] ज्ञानशून्य। संज्ञा रहित। बेसुध। अचेत। उ०—(क) मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ विदेहु विदेहु बिसेखी।—तुलसी। (ख) देखि भरत कर सोचु सनेहू। भा निषाद तेहि समय विदेहू।—तुलसी। (ग) कौन से भाई कौने चरन चलाई, कौने बहियाँ गही सोयो कोही री। सूरदास प्रभु देखे सुधि रही नहिं, अति विदेह भई अब मैं मूरति सोही री।—सूर।

विदेह-कुमारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (राजा जनक की पुत्री) जानकी। सीता। उ०—कही धौं तात क्यों जीति सकल नृप बरी है विदेहकुमारी।—तुलसी।

विदेही-संज्ञा पुं० [सं० विदेहिन्] ब्रह्म। उ०—कुल मर्यादा खोइकै खोजिनि पद्‌निर्वान। अंकुर बीज नसाइ कै भये विदेही थान।—कबीर।

विद्ध व्रण-संज्ञा पुं० [सं०] वह सूजन जो शरीर के किसी अंग में काँटे की नोक के चुभने या टूटकर रह जाने से होती है।

विद्याधर-संज्ञा पुं० [सं०] (४) एक प्रकार का अस्त्र। उ०—(क) वर विद्याधर अस्त्र नाम नंदन जो ऐसो। मोहन स्वापन सयन सौम्य कर्षन पुनि तैसो।—पद्माकर। (ख) महा अस्त्र विद्याधर लीजै पुनि नंदन जेहि नाऊँ।—रघुराज। (५) विद्वान्। पंडित। उ०—कविकुल विद्याधर सकल कलाधर राज राज वर वेश बने।—केशव।

विद्यामार्ग-संज्ञा पुं० [सं०] वह मार्ग जो मनुष्य को मोक्ष की ओर ले जाय। श्रेयः मार्ग। (कठवल्ली उपनिषद्)

विद्यावान-संज्ञा पुं० [सं० विद्वान्] पंडित। विद्वान्। उ०—जीवत जग में काहि पिछानी। विद्यावान होइ जो मानी।—विश्राम।

विपरीत रति-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य के अनुसार संभोग का एक प्रकार जिसमें पुरुष नीचे की ओर चित लेटा रहता है और स्त्री उसके ऊपर पट लेट कर संभोग करती है। कामशास्त्र में इसे पुरुषायित बंध कहा है। इसके कई भेद कहे गए हैं।)

विप्रमोक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] मोक्ष। मुक्ति। (जैन)

विभंग-वि० [सं०] उथल। उ०—विमल विपुल बहसि बारि सीतल भय ताप हारि भँवर वर विभंगतर तरंग-मालिका।—तुलसी।

विमर्श संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाट्यशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार की संधियों में से एक। वि० दे० "अवमर्श संधि"।

विमलापति-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा। उ०—जानत हौं प्रिय सोदर दोऊ। कै कमला विमलापति कोऊ।—केशव।

विमोचिताबास-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार ऐसे स्थान में निवास करना जिसे किसी ने रहने के अयोग्य समझकर छोड़ दिया हो।

विलायती मेंहदी-संज्ञा स्त्री० [हिं० विलायती + मेंहदी] मेंहदी की जाति का एक प्रकार का पौधा जो प्रायः बाढ़ के रूप में लगाया जाता है। यह भारत, बलोचिस्तान, अफगानिस्तान, अरब, अफ्रिका आदि सभी स्थानों में होता है। यह वर्षा और शीत काल में फूलता है। इसकी लकड़ी बहुत कड़ी होती है और इस पर खुदाई का काम बहुत अच्छा होता है। सनद्दा।

विलोपभृत-संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जो केवल लूटमार का लालच देकर इकट्ठी की गई हो। (कौ०)

विलोभन-संज्ञा पुं० [सं०] मुख-संधि के बारह अंगों में से एक। नायक का मन नायिका की ओर अथवा नायिका का मन नायक की ओर आकृष्ट करने के लिये उसके गुणों का कथन। जैसे,—रत्नावली में वैतालिक का सागरिका को लुभाने के लिये राजा उदयन के गुणों का वर्णन। (नाट्यशास्त्र)

विविक्त शय्यासन-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार वह आचार जिसमें त्यागी सदा किसी एकांत स्थान में रहता और सोता है।

विवीताध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] चरागाहों का निरीक्षक कर्मचारी। (कौ०)

विवेक-संज्ञा पुं० [सं०] (७) बहुत ही प्रिय पदार्थों का त्याग। (जैन)

विशिखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] राज्य की वह बड़ी सड़क जिस पर बड़े बड़े जौहरियों तथा सुनारों की दुकानें हों। (कौ०)

विशेषना&-क्रि० अ० [सं० विशेष + ना (प्रत्य०)] (1) निश्चित करना। निर्णय करना। उ०—अनंत गुण गावें, विशेषहि न पावें।—केशव। (२) विशेष रूप देना। उ०—ताहि पूजत योलि कै। यदपि भाँति भाँति विशेष कै।—केशव।

विश्वरूप-संज्ञा पुं० [सं०] (६) देवता। उ०—भूपन को रूप धरि विश्वरूप आए हैं।—केशव।

विषदंड-संज्ञा पुं० [सं० विष = कमल की नाल] कमल की नाल। उ०—केशव कोदंड विषदंड ऐसो खंडें अब मेरे भुजदंडन की बड़ी है विडंबना।—केशव।

विषम व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] समव्यूह का उलटा व्यूह। वि० दे० "समव्यूह"।

विषम संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जिसमें शक्ति के अनुसार तत्काल सहायता न दी जाय। सम संधि का उलटा। 'तुम आगे से हमारे मित्र रहोगे' इस प्रकार की संधि।

विषय-संज्ञा पुं० [सं०] वह बड़ा प्रदेश जिस पर कोई शासन-व्यवस्था हो।

विशेष—ग्राम से बड़ा राष्ट्र और राष्ट्र से बड़ा विषय माना जाता था। कितने बड़े भू-भाग को विषय कह सकते थे, इसका कोई निर्दिष्ट मान नहीं था।

विषय-निर्धारिणी समिति-संज्ञा स्त्री० दे० "विषय निर्वाचनी समिति"।

विषय-निर्वाचनी समिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुछ विशिष्ट सदस्यों की वह सभा जो किसी महासभा या सम्मेलन में उपस्थित किए जानेवाले विषय या प्रस्ताव आदि निश्चित या प्रस्तुत करती है। सबजेक्ट कमिटी।

विसा-सर्व० दे० "उस"।

विसाल-संज्ञा पुं० [अ०] (१) संयोग। मिलाप। (२) आत्मा का ईश्वर में मिलना। मृत्यु। मौत। (३) प्रेमी और प्रेमिका का मिलाप।

विहायगति-संज्ञा स्त्री० [सं] आकाश में चलने की क्रिया या शक्ति। (जैन)

वीटो-संज्ञा पुं० [अं०] किसी व्यवस्थापिका सभा के स्वीकृत प्रस्ताव या मंतव्य को अस्वीकृत करने का अधिकार। वह अधिकार जिससे व्यवस्थापक मंडल की एक शाखा दूसरी शाखा के स्वीकृत प्रस्ताव या मंतव्य को अस्वीकृत कर सकती है। अस्वीकृति। नामंजूरी। मनाही। रोक।

वृथादान-(ऋण) संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो चालबाज, धूर्त आदि लोगों को दिया गया हो।

वृद्धयुदय-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी प्राप्तिसे लाभ ही लाभ हो।

वे-सर्व० [हिं० वह] वह का बहुवचन या सम्मानवाचक रूप। जैसे,—(क) वे लोग चले गए। (ख) वे आज न आवेंगे।

वेगिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] १७६ हाथ लंबी, २२ हाथ ऊँची और १७$\frac{3}{5}$ हाथ चौड़ी नाव। (युक्ति कल्पतरु)

वेटेरिनरी-वि० [अं०] बैल, घोड़े आदि पालतू पशुओं की चिकित्सा संबंधी। शालिहोत्र संबंधी। जैसे, वेटेरिनरी अस्पताल।

वेटेरिनरी अस्पताल-संज्ञा पुं० [अं० वेटेरिनरी हास्पिटल] वह स्थान या चिकित्सालय जहाँ घोड़े आदि पालतू पशुओं की चिकित्सा की जाती है। पशु चिकित्सालय।

वेणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] नरसल का बना बेड़ा। (कौ०)

वेतन कल्पना-संज्ञा स्त्री० [सं०] तनखाह नियत करना।

वेतनकालातिपातन-संज्ञा पुं० [सं०] तनखाह देने में देर करना।

वेतन नाश-संज्ञा पुं० [सं०] तनख़ाह या मज़दूरी ज़ब्त हो जाना।

विशेष—चाणक्य के समय में यह राज-नियम था कि जो कारीगर ठीक ढंग से काम नहीं करते थे या कहा कुछ जाय और करते कुछ थे, उनका वेतन ज़ब्त हो जाता था।

वेदत्रयी-संज्ञा स्त्री०[सं०] ऋक्, यजु तथा साम ये तीनों वेद। उ०—वेदत्रयी अरु राज-सिरी परिपूरणता शुभ योग मयी है।—केशव।

वेरि-संज्ञा स्त्री० [सं०] बेंत आदि से बुन कर बना हुआ पहनावा या बकतर। (कौ०)

वेश्म-पुरोधक-संज्ञा पुं० [सं०] दूसरे के मकान को तोड़ कर या उसमें सेंध लगाकर चोरी करनेवाला। (कौ०)

वेश्मादीपिक-संज्ञा पुं० [सं०] मकान में आग देनेवाला। (कौ०)

वेस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] पश्चिम दिशा।

वेस्ट कोट-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की अँगरेजी कुरती या फतुही जिसमें बाँहें नहीं होतीं और जो कमीज के ऊपर तथा कोट के नीचे पहनी जाती है।

वै-अव्य०[?] निश्चयसूचक चिह्न। उ०—अर्द्धमात हीन, सर्व रंडमात भेद वै।—केशव।

वैगनेट-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की हलकी बग्गी या घोड़ा गाड़ी जिसमें पीछे की ओर दाहिने बाएँ बैठने की लंबी जगह होती है।

वैजयंत-संज्ञा पुं० [सं०] (५) जैनों के अनुसार एक लोक जो सातों स्वर्गों से भी ऊपर है।

वैदेश्यसार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] विदेशी माल। (कौ०)

वैदेहक व्यंजन-संज्ञा पुं० [सं०] व्यापारी के वेश में गुप्तचर। (कौ०)

विशेष—ये समाहर्त्ता के अधीन काम करते थे और व्यापारियों में मिलकर उनकी कार्रवाइयों की सूचना दिया करते थे।

वैधावृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] फुटकर। थोक का उलटा। जैसे,— वैधावृत्य विक्रय।

वैनयिक रथ-संज्ञा पुं० [सं०] (४) लड़ाई सिखाने के लिये बने हुए रथ।

वैमानिक-संज्ञा पुं० [सं०] (४) जैनों के अनुसार वे जीव जो स्वर्ग लोक में रहते हैं।

वैयावृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] यतियों और साधुओं आदि की सेवा। (जैन)

वैराज्य-संज्ञा पुं० [सं०] (३) विदेशियों का राज्य। विदेशियों का शासन।

विशेष—वैराज्य और द्वैराज्य के गुण दोष का विचार करते हुए कहा गया है कि द्वैराज्य में अशांति रहती है और वैराज्य में देश का धन धान्य निचोड़ लिया जाता है। दूसरी बात यह कही गई है कि विदेशी राजा अपनी अधिकृत भूमि कभी कभी बेच भी देता है और आपत्ति के समय असहाय अवस्था में छोड़ भी देता है।

वैसा—क्रि० वि० [हिं वह + ऐसा] उस प्रकार का। उस तरह का। जैसे,—जैसा दुपट्टा तुमने पहले भेजा था, वैसा ही एक और भेज दो।

वोट आफ सेंशर-संज्ञा पुं० [अं०] निंदा का प्रस्ताव। निंदात्मक प्रस्ताव। जैसे, परिषद् ने बहुमत से सरकार के विरुद्ध वोट आफ सेंशर पास किया।

व्यंजन-संज्ञा पुं० [सं०] (११) गुप्तचर या गुप्तचरों का मंडल।

व्यपदेश-संज्ञा पुं० [सं०] (२) व्याख्या। विवरण। (जैन)

व्यपरोपण-संज्ञा पुं० [सं०] (५) आघात पहुँचाना। पीड़ा पहुँचाना। (जैन)

व्यलीक-संज्ञा पुं० [सं०] (७) कपट। छल। उ०—भोर भयो जागहु रघुनन्दन। गत व्यलीक भगतनि उर चंदन। —तुलसी।

व्यवस्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] (५) कानून। जैसे,—भारत सरकार के व्यवस्था सदस्य।

व्यवस्थापक मंडल-संज्ञा पुं० [सं०] वह समाज या समूह जिसे कानून कायदे बनाने और रद्द करने का अधिकार प्राप्त हो।

व्यवस्थापिका परिषद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सभा या परिषद् जिसमें देश के लिये कानून कायदे आदि बनते हैं। देश के लिये कानून कायदे बनानेवाली सभा। बड़ी व्यवस्थापिका सभा। लेजिस्लेटिव एसेंबली। लोअर चेंबर। लोअर हाउस।

विशेष—ब्रिटिश भारत भर के लिये कानून कायदे बनानेवाली सभा व्यवस्थापिका परिषद् या लेजिस्लेटिव ऐसेंबली कहलाती है। आजकल इसके सदस्यों की संख्या १४३ है जिनमें से १०३ लोक-निर्वाचित और ४० सरकार द्वारा मनोनीत (२५ सरकारी और १५ गैरसरकारी) सदस्य हैं।

व्यवस्थापिका सभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सभा जिसमें किसी प्रदेश विशेष के लिये कानून कायदे आदि बनते हैं। कानून कायदे बनानेवाली सभा। लेजिस्लेटिव कौंसिल।

व्यवहारस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] लेन देन, इकरारनामे आदि के सम्बन्ध में यह निर्णय कि वे उचित रूप में हुए हैं या नहीं। (कौ०)

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में तीन धर्मस्थ और तीन अमात्य व्यवहारों की निगरानी करते थे।

व्याजी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बिक्री में माप या तौल के ऊपर कुछ थोड़ा सा और देना। घाल। घलुवा।

व्यामिश्र व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] मिला जुला व्यूह। वह व्यूह जिसमें पैदल के अतिरिक्त हाथी, घोड़े और रथ भी सम्मिलित हों।

विशेष—कौटिल्य ने इसके दो भेद कहे हैं—मध्यभेदी और अंतभेदी। मध्यभेदी वह है जिसके अंत में हाथी, इधर उधर घोड़े, मुख्य भाग या केंद्र में रथ तथा उरस्य में हाथी और रथ हों। इससे भिन्न अंतभेदी है।

व्यामिश्रासिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] शत्रु और मित्र दोनों की स्थिति का अपने अनुकूल होना। (कौ०)

व्यायाम-संज्ञा पुं० [सं०] (५) युद्ध की तैयारी। (६) सेना की कवायद आदि।

व्यायाम युद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] आमने सामने की लड़ाई।

विशेष—चाणक्य का मत है कि व्यायाम युद्ध अर्थात् आमने सामने की लड़ाई में दोनों ही पक्षों को बहुत हानि पहुँचती है। जो राजा जीत भी जाता है, वह भी इतना कमजोर हो जाता है कि उसको एक प्रकार से पराजित ही समझना चाहिए। (कौ०)

व्याल-सूदन-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़। उ०—जयति भीमार्जुन व्यालसूदन गर्वहर धनंजय रथत्रानकेतू।—तुलसी।

व्यावहारिक ऋण-संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो किसी कार-बार के संबंध में लिया गया हो।

व्युत्सर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार शरीर के मोह या चिन्ता का परित्याग।

व्रज-संज्ञा पुं० [सं०] (४) अहीरों का टोला या बाड़ा। उ०—नयनि को फल लेति निरखि खग मृग सुरभी व्रजवधू अहीर। —तुलसी।

व्रजपर्यग्र-संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं की गणना।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में अध्यक्ष को राजकीय पशुओं की पूरे निशान आदि के साथ बही में गिनती रखनी पड़ती थी।

व्रात-संज्ञा पुं० [सं०] (४) वह जिसकी कोई निश्चित वृत्ति न हो या जो चोरी डाके से निर्वाह करता हो। जरायम पेशा। दुर्जीवी।

शकटव्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह भोग व्यूह जिसके अंदर उरस्य में दोहरी पंक्तियाँ हों और पक्ष स्थिर हों। (कौ०)

शंकर शैल-संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत। उ०—शंकर शैल चढ़ी मन मोहति। सिद्धन की तनया जनु सोहति।—केशव।

शक्त्यपेक्ष-दापन-संज्ञा पुं० [सं०] ऋणी की सामर्थ्य के अनुसार ऋण थोड़ा थोड़ा करके चुकता कराना।

शतानीक-संज्ञा पुं० [सं०] (८) सौ सिपाहियों का नायक।

शत्रुसाल-वि० [सं० शत्रु + हिं० सालना] शत्रु के हृदय में शूल उत्पन्न करनेवाला। उ०—नृप शत्रुसाल नंदन सबल भावसिंह भूपालमनि।—मतिराम।

शमिता-संज्ञा पुं० [सं० शमितृ] वह जो यज्ञ में पशु का बलिदान करता हो।

शरापना-क्रि० स० [सं० शाप+ना (प्रत्य०)] किसी को शाप देना। सरापना।

शाद्वल-संज्ञा पुं० [सं०] (२) रेगिस्तान के बीच की वह थोड़ी सी हरियाली जहाँ कुछ हलकी बस्ती भी हो।

शासक-संज्ञा पुं० [सं०] (३) जहाज़ का कप्तान। (कौ०)

शासनपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (२) राजाज्ञा का वह पत्र जिस पर राजा का हस्ताक्षर हो। फ़रमान। (शुक्रनीति)

शास्ता-संज्ञा पुं० [सं० शास्तृ] (४) वह मनुष्य जिसे कोई काम करने का पूरा अधिकार हो। प्रधान नेता या पथप्रदर्शक। डिक्टेटर। (५) वह मनुष्य जिसे शासन की अबाधित सत्ता प्राप्त हो। निरंकुश शासक। वि० दे० "डिक्टेटर"।

शिखावृद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) वह ब्याज जो रोजाने के हिसाब से नित्य वसूल किया जाता हो। रोजही। (परा० स्मृति)

शिफा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (११) कोड़ा। बेंत।

यौ०—शिफादंड = कोड़े मारने का दंड।

शिला प्रमोक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई में पत्थर फेंकना या लुढ़काना। (कौ०)

शिलिंग-संज्ञा पुं० [अं०] इंगलैंड में चलनेवाला चाँदी का एक सिक्का जो प्रायः बारह आने मूल्य का होता है।

शिल्प-समाह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] कारीगरी का मुकाबला।

शुद्ध व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें उरस्य में हाथी, मध्य में तेज़ घोड़े और पक्ष में व्याल (मतवाले हाथी) हों। (कौ०)

शुद्धहार-संज्ञा पुं० [सं०] वह हार जिसमें एक शीर्षक मोती का हो। (कौ०)

शुद्धिपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (२) वह व्यवस्थापत्र जो प्रायश्चित्त के पीछे शुद्धि के प्रमाण में पंडितों की ओर से दिया जाता था। (शुक्रनीति)

शुभ्र-वि० [सं०] श्वेत। सफेद उ०—शोभजति दंतरुचि शुभ्र उर आनिये।—केशव।

शुल्काध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] चुंगी का अध्यक्ष। (कौ०)

शून्यमूल-वि० [सं०] (सेना) जिसका वह केंद्र नष्ट हो गया हो जहाँ से सिपाही आते रहे हों। (कौ०)

शेज-संज्ञा पुं० [देश०] अघौरी नामक वृक्ष। (बुंदेल०)।

शेयर होल्डर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसके पास सम्मिलित मूल धन या पूँजी से चलनेवाले किसी कारबार या कंपनी के 'शेयर' या हिस्से हों। हिस्सेदार। अंशी। जैसे—बैंक के शेयर होल्डर, कंपनी के शेयर होल्डर।

श्येनव्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] वह दंडव्यूह जिसमें पक्ष और कक्ष को स्थिर रख कर उरस्य को आगे बढ़ाया जाय। (कौ०)

श्रावण-संज्ञा पुं० [सं०] (६) योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विघ्नों में से एक प्रकार का विघ्न या उपसर्ग जिसमें योगी हजार योजन तक के शब्द ग्रहण करके उनके अर्थ हृदयंगम करता है। (मार्कंडेय पुराण)

श्रीकृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जिसमें केवल श्रीफल (बेल) खाकर रहते हैं।

श्रीफल-संज्ञा पुं० [सं०] (६) द्रव्य। धन। उ०—श्रीफल को अभिलाष प्रगट कवि कुल के जी में।—केशव।

श्रीमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (४) सूर्य। उ०—व्योम में मुनि देखिये अति लाल श्रीमुख साजहीं।—केशव।

श्रुवा-संज्ञा पुं० दे० "सुवा"। उ०—कुश मुद्रिका समिधैं श्रुवा कुश औ कमंडल को लिये।—केशव।

श्रेणीपाद-संज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र या जनपद जिसमें श्रेणियों या पंचायतों की प्रधानता हो। (कौ०)

श्रेणी प्रमाण-संज्ञा पुं० [सं०] वह शिल्पी या व्यापारी जो किसी श्रेणी के अन्तर्गत हो और उसके मंतव्यों के अनुसार काम करता हो। (कौ०)

षट्मुख-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय। उ०—गिरि बेध षट्मुख जीति तारकनंद को जब ज्यों हयो।—केशव।

संकाश-संज्ञा पुं० [?] प्रकाश। चमक। उ०—स्वर्नसैल-संकास कोटि रवि तरुन तेज घन। उर बिसाल भुजदंड चंड नख बज्र बज्रतन।—तुलसी।

संख्येय-वि० [सं०] जिसकी संख्या की जा सके। गिना जाने के योग्य। गण्य।

संगत संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] अच्छे के साथ संधि जो अच्छे और बुरे दिनों में एक सी बनी रहती है। कांचन संधि। (कामंदक)

संग्रहण-संज्ञा पुं० [सं०] (७) स्त्री के स्तन, कपोल, केश, जंघा आदि वर्ज्य स्थानों का स्पर्श।

विशेष—स्मृतियों में इस अपराध के लिये कठोर दंड लिखा गया है।

संघट-संज्ञा पुं० [सं० संघटन] (३) समूह। राशि। ढेर। उ०—सुभट मर्कट भालु कटक संघट सजत नमत पद रावनानुज निवाजा।—तुलसी।

संघती†-संज्ञा पुं० [सं० संघ, हि० संग] साथी। सहचर। उ०—सुरुइ अस हित संघती पियारी। जियत जीउ नहिं करौं निनारी।—जायसी।

संघरना-क्रि० स० [सं० संहार+ना (प्रत्य०)] (१) संहार करना। नाश करना। (२) मार डालना। उ०—गगन चूर चूर होइ परहीं। हस्ति घोर मानुष संघरहीं।—जायसी।

संचारना-क्रि० स० [सं० संचार+ना (प्रत्य०)] (१) उत्पन्न

करना। जन्म देना। उ०—नूर मुहम्मद देखि तौ भा हुलास मन सोइ। पुनि इबलीस सँचरेउ डरत रहै सब कोइ।—जायसी।

संजुतऌ—वि० [सं० संयुक्त] संयुक्त। मिश्रित। मिला हुआ। उ०—उहई कीन्हेउ पिंड उरेहा। भई सँजुत आदम कै देहा।—जायसी।

सँजोऊऌ—संज्ञा पुं० [हिं० सँजोना] (१) तैयारी। उपक्रम। उ०—मयहीं बेगिहि करौ सँजोऊ। तस मारहु हत्या नहिं होऊ।—जायसी। (२) साज सामान। सामग्री। (३) संयोग। उ०—ओहि आगे थिर रहा न कोऊ। दहुँ का कहँ अस जुरै सँजोऊ।—जायसी।

संझी—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसमें संज्ञा हो। जीव। चेतन। (जैन)

संत—संज्ञा पुं० [सं० सत्] वह संप्रदाय-मुक्त साधु या संत जो विवाह करके गृहस्त बन गया हो। (साधुओं की परि०)

संतान-संधि संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो अपना लड़का या लड़की देकर की जाय। (कामंदक)

संतीऌ—अव्य० [प्रा० सुन्तो] से। द्वारा। उ०—सो न डोल देखा गजपती। राजा सत्तदत्त दुहुँ संती।—जायसी।

संदिग्ध—संज्ञा पुं० [सं०] (३) वह जिस पर किसी अपराध का संदेह किया जाय। जैसे—राजनीतिक संदिग्ध।

सँदेसी†—संज्ञा पुं० [हिं० सँदेसा + ई (प्रत्य०)] वह जो सँदेसा ले जाता हो। बसीठ। उ०—राजा आइ तहाँ चढ़ि लागा। जहाँ न कोइ सँदेसी कागा।—जायसी।

संधनाऌ—क्रि० अ० [सं० संधि] संयुक्त होना। मिलना। उ०—पक्ष सू संधि संध्या सँधी है मनो।—केशव।

संधापगमन—संज्ञा पुं० [सं०] समीपवर्ती शत्रु से संधि कर दूसरे शत्रु पर चढ़ाई करना। (कामंदक)

संधिकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] संधि करना। सुलह करना।

विशेष—संधि के मुख्य दो भेद हैं—चालसंधि और स्थावर संधि। चालसंधि वह है जिसे दोनों पक्ष शपथ करके करते हैं, और स्थावर संधि वह है जो कुछ दे लेकर की जाती है। कौटिल्य ने चालसंधि को बहुत ही स्थायी कहा है, क्योंकि शपथ खाकर की हुई संधि राजा लोग कभी नहीं तोड़ते थे। कामंदक ने १६ प्रकार की संधियाँ कही हैं।

संधि मोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पुरानी संधि तोड़ना। संधिभंग। वि० दे० "समाधि मोक्ष"।

संधि-विग्रहिक—संज्ञा पुं० [सं०] पर राष्ट्रों के साथ युद्ध या संधि का निर्णय करनेवाला मंत्री या अधिकारी।

संधि-विग्रही—संज्ञा पुं० दे० "संधि-विग्रहिक"।

संध्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] आपस में लड़कर शत्रुओं का कमजोर होकर बैठ जाना। (कामंदक)

संनिधाता—संज्ञा पुं० [सं०] श्रेणी या संघ के धन को रखनेवाला। खजानची। (कौटि०)

संपति—संज्ञा स्त्री० दे० "संपत्ति"। उ०—(क) जगत विदित बूँदी नगर सुख संपति को धाम।—मतिराम। (ख) तहाँ कियो भगवंत बिन संपति शोभा साज।—केशव।

संभाराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] राजकीय पदार्थों का अध्यक्ष। तोशा-खाने का अफसर। (शुक्रनीति)

संभूयकारी—संज्ञा पुं० [सं०] संघ में मिलकर व्यापार करनेवाला। कंपनी का हिस्सेदार। (स्मृति)

विशेष—बृहस्पति के अनुसार यदि संघ को दैवी कारण से या राजा के कारण हानि पहुँचे तो उसके भागी सब हिस्सेदार हैं; पर यदि किसी हिस्सेदार की भूल या गलती से हानि पहुँचे तो उसका जिम्मेदार अकेला वही है।

संभूयक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] थोक माल बेचना या खरीदना। (कौ०)

संभूयगमन—संज्ञा पुं० [सं०] पूरी चढ़ाई जिसमें सामंत और मौल (तअल्लुकेदार) सब अपने दलबल के साथ हों। (कामंदक)

संभूयसमुत्थापन—संज्ञा पुं० [सं०] कंपनी खोलना।

संभूयासन—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु से मेल करके और उसे उदासीन समझ कर चुपचाप बैठ जाना। (कामंदक)

संयोग संधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जो किसी उद्देश्य से चढ़ाई करने के उपरांत उसके संबंध में कुछ तै हो जाने पर की जाय। (कामंदक)

संवनन—संज्ञा पुं० [सं०] (२) यंत्र मंत्र आदि के द्वारा स्त्रियों को फँसाना।

सँवरऌ†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्मरण] (१) याद। स्मृति। (२) खबर। हाल।

सँवार ऌ †—संज्ञा स्त्री० [सं० संवाद या स्मरण] हाल। समाचार। उ०—पुनि रे सँवार कहेसि अरु दूजी। जो बलि दीन्ह देवतन्ह पूजी—जायसी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सँवारना] (१) सँवारने की क्रिया या भाव। (२) एक प्रकार का शाप या गाली।

विशेष—कभी कभी लोग यह न कह कर कि "तुम पर खुदा की मार या फिटकार" प्रायः "तुम पर खुदा की सँवार" कह दिया करते हैं।

संविरपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसमें दो ग्रामों या प्रदेशों के बीच किसी बात के लिये मेल की प्रतिज्ञा या शर्तें लिखी हों। (शुक्रनीति)

संसक सामंत—संज्ञा पुं० [सं०] वह सामंत जिसकी थोड़ी बहुत ज़मीन चारों ओर हो और कहीं परे गाँव भी हों। (परा० स्मृति)

संसरण—संज्ञा पुं० [सं०] (८) वह मार्ग जिससे हो कर बहुत दिनों से लोग या पशु आते जाते हों।

विशेष—बृहस्पति ने लिखा है कि ऐसे मार्ग पर चलने से कोई (जमींदार भी) किसी को नहीं रोक सकता।

संस्थाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] व्यापार का निरीक्षक। व्यापाराध्यक्ष।

विशेष—इसका मुख्य काम गिरवी रखे जानेवाले माल का तथा पुरानी चीजों का विक्रय करवाना था। तौल माप का निरीक्षण भी यही करता था। चन्द्रगुप्त के समय में तुला द्वारा तौलने में यदि दो तोले का भी फरक पड़ जाता तो बनिए पर ६ पण जुर्माना किया जाता था। क्रय विक्रय सम्बन्धी राज-नियमों को जो लोग तोड़ते थे, उनको भी दण्ड यही देता था। भिन्न भिन्न पदार्थों पर कितनी चुंगी लगे, कौन कौन सा माल बिना चुंगी दिए शहर में जाय, इन सम्पूर्ण बातों का प्रबन्ध भी यही करता था। पदार्थों की कीमतें भी यही नियत करता था और सरकारी पदार्थों का विक्रय भी यही करवाता था। उनके विक्रय के लिये नौकर भी रखता था, इत्यादि।

संहत बल-संज्ञा पुं० [सं०] संघटित सेना। (कौटि०)

संहरना&-क्रि० अ० [सं० संहार] नष्ट होना। संहार होना। उ०—हैहय मारो नृपजन सँहरे। सो यश लै किन युग युग जीजै।—केशव।

क्रि० स० [सं० संहरण] संहार करना। ध्वंस करना। उ०—सुरनायक सो संहरी परम पापिनी वाम।—केशव।

सई&-संज्ञा स्त्री० [?] वृद्धि। बरकत। उ०—लाग मृग सबर निसाचर सब की पूँजी बिनु बाढ़ी सई।—तुलसी।

सक&-संज्ञा पुं० [सं० शाका] साका। धाक।

मुहा०—सक बाँधना = (१) धाक बाँधना। उ०—हौं सो रतनसेन सक बाँधी। राहु बेधि जीता सैरंधी।—जायसी। (२) मर्य्यादा स्थापित करना।

सकत&-क्रि० वि० [सं० शक्ति] जहाँ तक हो सके। भरसक। उ०—का तोहिं जीव मरावौं सकत आन के दोस। जो नहिं बुझै समुद-जल सो बुझाइ किन ओस।—जायसी।

सकपकाना-क्रि० अ० [अनु०] (५) हिलना डोलना। लहराना। उ०—सकपकाहिं विष भरे पसारे। लहरि भरे लहकाहिं अति कारे।—जायसी।

सकुचाना-क्रि० अ० [सं० संकोच, हिं० सकुच + आना (प्रत्य०)] संकोच करना। जैसे,—वह आपके पास आने में सकुचाता है।

क्रि० स० [सं० संकुचन] सिकोड़ना। उ०—श्रवण शरण ध्वनि सुनत लियो प्रभु तनु सकुचाई।—सूर।

क्रि० स० [हिं० सकुचना का प्रेर०] किसी को संकोच करने में प्रवृत्त करना। लज्जित करना। उ०—निज करनी सकुचेहि कत सकुचावत इहिं चाल। मोहूँ से नित विमुख त्यों सनमुख रहि गोपाल।—बिहारी।

सकुचौहाँ&-वि० [सं० संकोच + औहाँ (प्रत्य०)] संकोच करनेवाला। लजीला। उ०—बहो अबोलो बोलि प्यौ आपुहिं पठै बसीठि। दीठि चुराई दुहुन की लखि सकुचौंहीं दीठि।—बिहारी।

सकोचना&-क्रि० स० [सं० संकोच + ना (प्रत्य०)] संकुचित करना। उ०—सोच पोच मोचि कै सकोच भीम वेष को।—केशव।

सक्र चक्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र जो चारों ओर शक्तिशाली राष्ट्रों से घिरा हो। राष्ट्र चक्र।

सक्र सामंत-संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम समूह का जमींदार जो उसका सामंत होता था।

विशेष—किसी ग्राम के पास का जो ताल्लुकेदार होता था, वही उस ग्राम का सक्र सामंत होता था। सीमा संबंधी झगड़ों में सबसे पहले इसी की गवाही ली जाती थी। (परा० स्मृति)

सजना-क्रि० स० [हिं० सजना] (२) सम्पादित करना। पूरा करना। उ०—बहु कुंड शोनित सों भरे पितु तर्पणादि क्रिया सजी।—केशव।

सच्छत&-वि० [सं० स + क्षत] जिसे क्षत लगा हो। घायल। जख्मी। उ०—जिनको जग अच्छत सीस धरै। तिन को जग सच्छत कौन करै।—केशव।

सजना-क्रि० अ० [सं० सज्जा] (३) शस्त्रास्त्र से सुसज्जित होना। रण के लिये तैयार होना। उ०—हमहीं चलिहैं ऋषि संग अबै। सजि सैन चलै चतुरंग सबै।—केशव।

सजवना&†-संज्ञा पुं० [हिं० सजना] सजने की क्रिया या भाव। तैयारी। उ०—बहुतन्ह अस गढ़ कीन्ह सजवना। अंत भई लंका जस रवना।—जायसी।

सतर्पना&-क्रि० स० [सं० संतर्पण] भली भाँति तृप्त करना। संतुष्ट करना।

सतार-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार ग्यारहवें स्वर्ग का नाम।

सत्याग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] सत्य के लिये आग्रह या हठ। सत्य या न्याय पक्ष पर प्रतिज्ञापूर्वक अड़ना और उसकी सिद्धि के उद्योग में मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों और कष्टों को धीरतापूर्वक सहना और किसी प्रकार का उपद्रव या बल प्रयोग न करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सत्र-संज्ञा पुं० [सं०] विकट स्थान या समय।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि रेगिस्तान, संकटमय स्थान, दलदल, पहाड़, नदी, घाटी, ऊँची नीची भूमि, नाव, गौ, शकट, व्यूह, धुंध तथा रात ये सब सत्र कहे जाते हैं। (कौ०)

सदई-अव्य० [सं० सदैव] सदैव । सदा । उ०—उथपे थपन उजार बसावन गई बहोर विरद सदई है ।—तुलसी ।

सदर-संज्ञा पुं० [देश०] सज नाम का वृक्ष । वि० दे० "सज" । (बुन्देल०) ।

सदूर-संज्ञा पुं० [सं० शार्दूल] शार्दूल । सिंह । उ०—बिरह हस्ति तन साले घाय करै चित चूर । बेगि आइ पिउ बाजहु गाजहु होइ सदूर ।—जायसी ।

सदेह-क्रि० वि० [सं०] (२) मूर्तिमान । सशरीर । उ०—सब श्रृंगार सदेह मनोरति मन्मथ मोहै ।—केशव ।

सनट्टा-संज्ञा पुं० [देश०] विलायती मेंहदी नाम का पौधा जो बागों में बाढ़ के रूप में लगाया जाता है । वि० दे० "विलायती मेंहदी" ।

सनत्कुमार-संज्ञा पुं० [सं०] (३) जैनों के अनुसार तीसरे स्वर्ग का नाम ।

सनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सन] सन की जाति का एक प्रकार का छोटा पौधा जो प्रायः सारे भारत और बरमा में पाया जाता है । इसके डंठलों से भी एक प्रकार का मजबूत रेशा निकलता है; पर लोग उसका व्यवहार कम करते हैं । यह देखने में बहुत सुन्दर होता है; अतः कहीं कहीं लोग इसे बागों में शोभा के लिये भी लगाते हैं ।

सप्लाई-संज्ञा स्त्री० [अं०] (व्यवहार या उपयोग के लिये कोई वस्तु) उपस्थित करना । पहुँचाना । मुहैया करना । जैसे—वे ७ नं० घुड़सवार पल्टन के घोड़ों के लिये घास दाना सप्लाई किया करते हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।

सप्लायर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो किसी को चीजें पहुँचाने का काम करता है । कोई वस्तु या माल पहुँचाने या मुहैया करनेवाला ।

सप्लीमेंट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह पत्र जो किसी समाचार पत्र में अधिक विषय देने के लिये अतिरिक्त रूप से लगाया जाय । अतिरिक्त पत्र । क्रोड़पत्र । (२) किसी वस्तु का अतिरिक्त अंश ।

सब-जज-संज्ञा पुं० [अं०] छोटा जज । सदराला ।

सब-डिविजनल-वि० [अं०] सब-डिवीजन का । उस भू-भाग का जिसके अन्तर्गत बहुत से गाँव और कसबे हों । सब-डिवीजन संबंधी । जैसे—सब-डिविजनल अफसर ।

सब-डिवीजन-संज्ञा पुं० [अं०] किसी जिले का वह छोटा भू-भाग जिसके अंतर्गत बहुत से गाँव और कसबे हों । परगना । जैसे—चाँदपुर सब-डिवीजन ।

विशेष—कई सब-डिवीजनों का एक जिला होता है अर्थात् हर जिला कई सब-डिवीजनों में बँटा हुआ होता है ।

सबद-संज्ञा पुं० [सं० शब्द] (१) शब्द । आवाज । उ०—हुता जो सुन्नम-सुन्न नाँव ठाँव ना सुर सबद । तहाँ पाप महँ पुन्न महमद आपुहि आपु महँ ।—जायसी ।

(२) किसी महात्मा की वाणी या भजन आदि । जैसे—कबीर जी के सबद, दादू दयाल के सबद ।

सब-मरीन-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का छोटा बोट जो जल के अंदर चलता है और युद्ध के समय शत्रु के जहाजों को नष्ट करने के काम में आता है । यह घंटों जल के अंदर रह सकता है और ऊपर से दिखाई नहीं देता । हवा पानी लेने लिये इसे ऊपर आना पड़ता है । यह "टारपीडो" नामक भीषण विस्फोटक यंत्र साथ लिए रहता है और घात लगाते ही शत्रु के जहाज पर टारपीडो चलाता है । यदि टारपीडो ठिकाने पर लगा तो जहाज में बड़ा सा छेद हो जाता है । गोताखोर ।

सबसिडियरी जेल-संज्ञा स्त्री० [अं०] हवालात ।

सबार-क्रि० वि० [हिं० सबेरा] जल्दी । शीघ्र । उ०—होइ भगीरथ करु तहँ फेरा । जाहि सबार मरन कै बेरा ।—जायसी ।

सबार्डिनेट जज-संज्ञा पुं० [अं०] दीवानी अदालत का वह हाकिम जो जज के नीचे हो । छोटा जज । सदराला ।

सब्जेक्ट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) प्रजा । रैयत । जैसे—ब्रिटिश सब्जेक्ट । (२) विषय । मजमून ।

सब्जेक्ट कमिटी-संज्ञा स्त्री० दे० "विषयनिर्वाचनी समिति" ।

सभागा-वि० [सं० स + भाग्य] [स्त्री० सभागी] (१) भाग्यवान् । खुश किस्मत । तकदीरवर । उ०—ओहि छुइ पवन बिरिछ जेहि लागा । सोइ मलयगिरि भयउ सभागा ।—जायसी । (२) सुंदर । रूपवान् । उ०—आए गुपुत होइ देखन लागी । यह मूरति कस सती सभागी ।—जायसी ।

समंद-संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह बादामी रंग का घोड़ा जिसकी अयाल, दुम और पुट्ठे काले हों । उ०—लील समंद चाल जग जाने । हाँसल भौंर गियाह बखाने ।—जायसी ।

(२) घोड़ा । अश्व ।

समचर-वि० [सं०] समान आचरण करनेवाला । एक सा व्यवहार करनेवाला । उ०—नाम निठुर समचर सिखी सलिल सनेह न दूर । ससि सरोग दिनकर बड़े पयद प्रेमपथ कूर । —तुलसी ।

समझ-संज्ञा स्त्री० [सं० सज्ञान] (१) समझने की शक्ति । बुद्धि । अक्ल । जैसे,—तुम्हारी समझ की बलिहारी है । मुहा०—समझ पर पत्थर पड़ना = बुद्धि नष्ट होना । अक्ल का मारा जाना । जैसे—उसकी समझ पर तो पत्थर पड़ गये हैं, वह हिताहित ज्ञान-शून्य हो गया है । (२) ख्याल । ध्यान । जैसे,—(क) मेरी समझ में उसने ऐसा कोई काम नहीं किया कि जिसके लिये उसकी निन्दा की जाय ।

विशेष—बृहस्पति ने लिखा है कि ऐसे मार्ग पर चलने से कोई (जमींदार भी) किसी को नहीं रोक सकता।

संस्थाध्यक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] व्यापार का निरीक्षक। व्यापाराध्यक्ष।

विशेष—इसका मुख्य काम गिरवी रखे जानेवाले माल का तथा पुरानी चीजों का विक्रय करवाना था। तौल माप का निरीक्षण भी यही करता था। चन्द्रगुप्त के समय में तुला द्वारा तौलने में यदि दो तोले का भी फरक पड़ जाता तो बनिए पर ६ पण जुर्माना किया जाता था। क्रय विक्रय सम्बन्धी राज-नियमों को जो लोग तोड़ते थे, उनको भी दण्ड यही देता था। भिन्न भिन्न पदार्थों पर कितनी चुंगी लगे, कौन कौन सा माल बिना चुंगी दिए शहर में जाय, इन सम्पूर्ण बातों का प्रबन्ध भी यही करता था। पदार्थों की कीमतें भी यही नियत करता था और सरकारी पदार्थों का विक्रय भी यही करवाता था। उनके विक्रय के लिये नौकर भी रखता था, इत्यादि।

संहत बल–संज्ञा पुं० [सं०] संघटित सेना। (कौटि०)

संहरना–क्रि० अ० [सं० संहार] नष्ट होना। संहार होना। उ०—हैहय मारो नृपजन सँहरे। सो यश लै किन युग युग जीजै।—केशव।

क्रि० स० [सं० संहरण] संहार करना। ध्वंस करना। उ०—सुरनायक सो संहरी परम पापिनी बाम।—केशव।

सई–संज्ञा स्त्री० [?] वृद्धि। बरकत। उ०—खग मृग सबर निसाचर सब की पूँजी बिनु बाढ़ी सई।—तुलसी।

सक–संज्ञा पुं० [सं० शाका] साका। धाक।

मुहा०—सक बाँधना = (१) धाक बाँधना। उ०—हौं सो रतनसेन सक-बँधी। राहु बेधि जीता सैरंधी।—जायसी। (२) मर्यादा स्थापित करना।

सकत–क्रि० वि० [सं० शक्ति] जहाँ तक हो सके। भरसक। उ०—का तोहिं जीव मरावौं सकत आन के दोस। जो नहिं बुझै समुद-जल सो बुझाइ कित ओस।—जायसी।

सकपकाना–क्रि० अ० [अनु०] (५) हिलना डोलना। लहराना। उ०—सकपकाहिं विष भरे पसारे। लहरि भरे लहकहिं अति कारे।—जायसी।

सकुचाना–क्रि० अ० [सं० संकोच, हिं० सकुच + आना (प्रत्य०)] संकोच करना। जैसे,—वह आपके पास आने में सकुचाता है।

क्रि० स० [सं० संकुचन] सिकोड़ना। उ०—श्रवण शरण ध्वनि सुनत लियो प्रभु तनु सकुचाई।—सूर।

क्रि० स० [हिं० सकुचना का प्रे०] किसी को संकोच करने में प्रवृत्त करना। लज्जित करना। उ०—निज करनी सकुचेहि कत सकुचावत इहि चाल। मोहूँ से नित विमुख त्यों सनमुख रहि गोपाल।—बिहारी।

सकुचौहाँ–वि० [सं० संकोच + औहाँ (प्रत्य०)] संकोच करनेवाला। लजीला। उ०—गह्यो अबोलो बोलि प्यौ आपुहि पठै बसीठि। दीठि चुराई दुहुन की लखि सकुचौहीं दीठि।—बिहारी।

सकोचना–क्रि० स० [सं० संकोच + ना (प्रत्य०)] संकुचित करना। उ०—सोच पोच मोचि कै सकोच भीम भेष को।—केशव।

सक्र चक्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र जो चारों ओर शक्तिशाली राष्ट्रों से घिरा हो। राष्ट्र चक्र।

सक्र सामंत–संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम समूह का जमींदार जो उसका सामंत होता था।

विशेष—किसी ग्राम के पास का जो ताल्लुकेदार होता था, वही उस ग्राम का सक्र सामंत होता था। सीमा संबंधी झगड़ों में सबसे पहले इसी की गवाही ली जाती थी। (परा० स्मृति)

सचना–क्रि० स० [हिं० सजना] (२) सम्पादित करना। पूरा करना। उ०—मधु कुंड सोनित सों भरे पितु तर्पणादि किया सची।—केशव।

सच्छत–वि० [सं० स + क्षत] जिसे क्षत लगा हो। घायल। जख्मी। उ०—जिनको जग अच्छत सीस धरै। तिन को जग सच्छत कौन करै।—केशव।

सजना–क्रि० अ० [सं० सज्ज] (३) शस्त्रास्त्र से सुसज्जित होना। रण के लिये तैयार होना। उ०—हमहीं चलिहैं ऋषि संग अबै। सजि सैन चलै चतुरंग सबै।—केशव।

सजवना–संज्ञा पुं० [हिं० सजना] सजने की क्रिया या भाव। तैयारी। उ०—बहुतन्ह अस गढ़ कीन्ह सजवना। अंत भई लंका जस रवना।—जायसी।

सतर्पना–क्रि० स० [सं० संतर्पण] भली भाँति तृप्त करना। संतुष्ट करना।

सतार–संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार ग्यारहवें स्वर्ग का नाम।

सत्याग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] सत्य के लिये आग्रह या हठ। सत्य या न्याय पक्ष पर प्रतिज्ञापूर्वक अड़ना और उसकी सिद्धि के उद्योग में मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों और कष्टों को धीरतापूर्वक सहना और किसी प्रकार का उपद्रव या बल प्रयोग न करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सत्र–संज्ञा पुं० [सं०] विकट स्थान या समय।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि रेगिस्तान, संकटमय स्थान, दलदल, पहाड़, नदी, घाटी, ऊँची नीची भूमि, नाव, गौ, शकट, व्यूह, धुंध तथा रात ये सब सत्र कहे जाते हैं। (कौ०)

सदई&-अव्य० [सं० सदैव] सदैव । सदा । उ०—उथपे थपन उजार बसावन गई बहोर बिरद सदई है ।—तुलसी ।

सदर-संज्ञा पुं० [देश०] सज नाम का वृक्ष । वि० दे० "सज" । (बुन्देल०) ।

सदूर&-संज्ञा पुं० [सं० शार्दूल] शार्दूल । सिंह । उ०—बिरह हस्ति तन सालै घाय करै चिन चूर । वेगि आइ पिउ बाजहु गाजहु होइ सदूर ।—जायसी ।

सदेह-क्रि० वि० [सं०] (२) मूर्तिमान । सशरीर । उ०—सब शृंगार सदेह मनोरति मन्मथ मोहै ।—केशव ।

सनट्टा-संज्ञा पुं० [देश०] विलायती मेंहदी नाम का पौधा जो बागों में बाढ़ के रूप में लगाया जाता है । वि० दे० "विलायती मेंहदी" ।

सनत्कुमार-संज्ञा पुं० [सं०] (३) जैनों के अनुसार तीसरे स्वर्ग का नाम ।

सन्नी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सन] सन की जाति का एक प्रकार का छोटा पौधा जो प्रायः सारे भारत और बरमा में पाया जाता है । इसके डंठलों से भी एक प्रकार का मजबूत रेशा निकलता है; पर लोग उसका व्यवहार कम करते हैं । यह देखने में बहुत सुन्दर होता है; अतः कहीं-कहीं लोग इसे बागों में शोभा के लिये भी लगाते हैं ।

सप्लाई-संज्ञा स्त्री० [अं०] (व्यवहार या उपयोग के लिये कोई वस्तु) उपस्थित करना । पहुँचाना । मुहैया करना । जैसे—वे ७ नं० घुड़सवार पल्टन के घोड़ों के लिये घास दाना सप्लाई किया करते हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।

सप्लायर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो किसी को चीजें पहुँचाने का काम करता है । कोई वस्तु या माल पहुँचाने या मुहैया करनेवाला ।

सप्लीमेंट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह पत्र जो किसी समाचार पत्र में अधिक विषय देने के लिये अतिरिक्त रूप से लगाया जाय । अतिरिक्त पत्र । क्रोड़पत्र । (२) किसी वस्तु का अतिरिक्त अंश ।

सब-जज-संज्ञा पुं० [अं०] छोटा जज । सदराला ।

सब-डिविज़नल-वि० [अं०] सब-डिवीजन का । उस भू-भाग का जिसके अन्तर्गत बहुत से गाँव और कसबे हों । सब-डिवीजन संबंधी । जैसे—सब-डिविज़नल अफसर ।

सब-डिवीज़न-संज्ञा पुं० [अं०] किसी जिले का वह छोटा भू-भाग जिसके अंतर्गत बहुत से गाँव और कसबे हों । परगना । जैसे—चाँदपुर सब-डिवीजन ।

विशेष—कई सब-डिवीजनों का एक जिला होता है अर्थात् हर जिला कई सब-डिवीजनों में बँटा हुआ होता है ।

सबद&†-संज्ञा पुं० [सं० शब्द] (१) शब्द । आवाज । उ०—हुता जो सुन्नम-सुन्न नाँव ठाँव ना सुर सबद । तहाँ पाप नहिं पुन्न महमद आपुहि आपु महँ ।—जायसी ।

(२) किसी महात्मा की वाणी या भजन आदि । जैसे—कबीर जी के सबद, दादू दयाल के सबद ।

सब-मरीन-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का छोटा बोट जो जल के अंदर चलता है और युद्ध के समय शत्रु के जहाजों को नष्ट करने के काम में आता है । यह घंटों जल के अंदर रह सकता है और ऊपर से दिखाई नहीं देता । हवा पानी लेने लिये इसे ऊपर आना पड़ता है । यह "टारपीडो" नामक भीषण विस्फोटक वस्त्र साथ लिए रहता है और घात लगते ही शत्रु के जहाज पर टारपीडो चलाता है । यदि टारपीडो ठिकाने पर लगा तो जहाज में बड़ा सा छेद हो जाता है । गोताखोर ।

सबसिडियरी जेल-संज्ञा स्त्री० [अं०] हवालात ।

सबार†-क्रि० वि० [हिं० सबेरा] जल्दी । शीघ्र । उ०—होइ भगीरथ कर तहँ फेरा । जाहि सबार मरन कै बेरा ।—जायसी ।

सबार्डिनेट जज-संज्ञा पुं० [अं०] दीवानी अदालत का वह हाकिम जो जज के नीचे हो । छोटा जज । सदराला ।

सब्जेक्ट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) प्रजा । रैयत । जैसे—ब्रिटिश सब्जेक्ट । (२) विषय । मजमून ।

सब्जेक्ट कमिटी-संज्ञा स्त्री० दे० "विषयनिर्वाचनी समिति" ।

सभागा-वि० [सं० स + भाग्य] [स्त्री० सभागी] (१) भाग्यवान् । खुश किस्मत । तकदीरवर । उ०—ओहि छुइ पवन बिरिछ जेहि लागा । सोइ मलयगिरि भएउ सभागा ।—जायसी ।

(२) सुंदर । रूपवान् । उ०—आए गुपुत होइ देखन लागी । वह मूरति कस सती सभागी ।—जायसी ।

समंद-संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह बादामी रंग का घोड़ा जिसकी अयाल, दुम और पुट्ठे काले हों । उ०—लील समंद चाल जग जाने । हाँसल भौंर गियाह बखाने ।—जायसी ।

(२) घोड़ा । अश्व ।

समचर-वि० [सं०] समान आचरण करनेवाला । एक सा व्यवहार करनेवाला । उ०—नाम निठुर समचर सिखी सलिल सनेह न दूर । ससि सरोग दिनकर बड़े पयद प्रेमपथ क्रूर ।—तुलसी ।

समझ-संज्ञा स्त्री० [सं० सज्ञान] (१) समझने की शक्ति । बुद्धि । अक्ल । जैसे—तुम्हारी समझ की बलिहारी है ।

मुहा०—समझ पर पत्थर पड़ना = बुद्धि नष्ट होना । अक्ल का मारा जाना । जैसे—उसकी समझ पर तो पत्थर पड़ गये हैं, वह हिताहित ज्ञान-शून्य हो गया है । (२) खयाल । ध्यान । जैसे—(क) मेरी समझ में उसने ऐसा कोई काम नहीं किया कि जिसके लिये उसकी निन्दा की जाय ।

(ख) मेरी समझ में उन्होंने तुमको जो उत्तर दिया, वह बहुत ठीक था।

समझदार-वि० [हिं० समझ + फा० दार] बुद्धिमान। अक्लमन्द।

समझना-क्रि० अ० [सं० सम्यक् ज्ञान] किसी बात को अच्छी तरह जान लेना। अच्छी तरह मन में बैठाना। भली भाँति हृदयङ्गम करना। अच्छी तरह ध्यान में लाना। ज्ञान प्राप्त करना। बोध होना। बूझना। जैसे,—मैंने जो कुछ कहा, वह तुम समझ गए होगे। (२) खयाल में आना। ध्यान में आना। विचार में आना। जैसे-(क) मैं समझता हूँ कि अब तुम्हारी समझ में यह बात आ गई होगी। (ख) तुम समझे न हो तो फिर समझ लो।

सं० क्रि०—जाना।—पड़ना।—रखना।—लेना।

मुहा०—समझ बूझकर = अच्छी तरह ध्यान कर। ज्ञानपूर्वक। जैसे—तुमने बहुत समझ बूझ कर यह काम किया है। समझ रखना = अच्छी तरह जान रखना। भली भाँति हृदयंगम करना। जैसे—तुम समझ रखो कि अपने किए का फल तुम्हें अवश्य भोगना पड़ेगा। समझ लेना=(१) बदला लेना। प्रतिशोध लेना। जैसे—कल तुम चौक में आना; तुमसे समझ लेंगे। (२) समझौता करना। निपटारा। जैसे,—आप रुपए दे दीजिए; हम दोनों आपस में समझ लेंगे।

समझाना-क्रि० स० [हिं० समझना का स०] कोई बात अच्छी तरह किसी के मन में बैठाना। हृदयंगम कराना। ज्ञान प्राप्त कराना। ध्यान में जमाना। बोध कराना।

यौ०—समझाना बुझाना।

समझौता-संज्ञा पुं० [हिं० समझना] आपस का वह निपटारा जिसमें दोनों पक्षों को कुछ न कुछ दबना या स्वार्थ त्याग करना पड़े। राजी-नामा।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—होना।

समदन⊛-संज्ञा स्त्री० [?] भेंट। उपहार। नजर। उ०—आपन देस खाहु सब औ चँदेरी लेहु। समुद जो समदन कीन्ह तोहि ते पाँचौ नग देहु।—जायसी।

समदना⊛-क्रि० अ० [?] प्रेमपूर्वक मिलना। भेंटना। उ०—समदि लोग पुनि चढ़ी बिवाना। जेहि दिन डरी सो आइ तुलाना।—जायसी।

क्रि० स०—(१) भेंट करना। उपहार देना। नजर करना। (२) विवाह करना। उ०—दुहिता समदौ सुख पाय अबै।—केशव।

समधियाना-संज्ञा पुं० [हिं० समधी + इयाना (प्रत्य०)] वह घर जहाँ अपनी कन्या या पुत्र का विवाह हुआ हो। समधी का घर।

समधी-संज्ञा पुं० [सं० सम्बन्धी] [स्त्री० समधिन] पुत्र या पुत्री का ससुर। वह जिसकी कन्या से अपने पुत्र का अथवा जिसके पुत्र से अपनी कन्या का विवाह हुआ हो।

समय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वक्त। काल। जैसे—समय परिवर्तनशील है।

मुहा०—समय पर = ठीक वक्त पर।

(२) अवसर। मौका। जैसे,—समय चूकि पुनि का पछिताने। (३) अवकाश। फुरसत। जैसे—तुम्हें इस काम के लिये थोड़ा सा समय निकालना चाहिए।

क्रि० प्र०—निकालना।

(४) अंतिम काल। जैसे—उनका समय आ गया था, उन्हें बचाने का सब प्रयत्न व्यर्थ गया।

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।

(५) शपथ। प्रतिज्ञा। (६) आकार। (७) सिद्धांत। (८) संविद। (९) निर्देश। (१०) भाषा। (११) संकेत। (१२) व्यवहार। (१३) संपद्। (१४) कर्त्तव्य पालन। (१५) व्याख्यान। प्रचार। घोषणा। (१६) उपदेश। (१७) दुःख का अवसान। (१८) नियम। (१९) धर्म। (२०) संन्यासियों, वैदिकों, व्यापारियों आदि के संघों में प्रचलित नियम। (स्मृति)

समय क्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिल्पियों या व्यापारियों का परस्पर व्यवहार के लिये नियम स्थिर करना। (बृहस्पति)

समरत्थ⊛-वि० दे० "समर्थ"। उ० (क) लोकन की रचना रुचिर रचिबे को समरत्थ।—केशव। (ख) तुलसी या जग आइ के कौन भयो समरत्थ।—तुलसी।

समरथ-वि० दे० "समर्थ" उ०—(क) सब विधि समरथ राजै राजा दशरथ भगीरथ पथगामी गंगा कैसो जल है।—केशव। (ख) समरथ के नहिं दोस गुसाईं।—तुलसी।

समवर्णोपधान-संज्ञा पुं० [सं०] बढ़िया और कीमती माल में घटिया माल मिलाना।

विशेष—चन्द्रगुप्त के समय में धान्य, घी, क्षार, नमक, औषध आदि में इस प्रकार की मिलावट करने पर १२ पण जुरमाना होता था। (कौ०)

समवेत-संज्ञा पुं० दे० "संभूयकारी" (२)।

समव्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जिसमें २२५ सवार, ६७५ सिपाही तथा इतने ही घोड़े और रथ आदि के पादगोप हों।

समसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संधि जिसमें संधि करनेवाला राजा या राष्ट्र अपनी पूरी शक्ति के साथ सहायता करने को तैयार हो। (कौ०)

समादान-संज्ञा पुं० [सं०] (२) ग्रहण किए हुए व्रतों या आचारों की उपेक्षा। (जैन)

समाधि-संज्ञा स्त्री० दे० "समाधान"। (व्र०) उ०—व्याधि भूतजनित उपाधि काहू खल की समाधि कीजै तुलसी को जानि जन फुर कै।—तुलसी।

समाधि मोक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] पुरानी संधि तोड़ना। संधिभंग। (कौ०)

विशेष—चाणक्य ने इसके अनेक नियम दिए हैं। संधि के समय किसी पक्ष को दूसरे पक्ष से जो वस्तुएँ मिली हों, उन्हें किस प्रकार लौटाना चाहिए, किस प्रकार सूचना देनी चाहिए आदि बातों का उसने पूर्ण वर्णन किया है।

समानतोऽर्थापद्-संज्ञा पुं० [सं०] एक साथ ही चारों ओर से अर्थ सिद्धि। (कौ०)

समाना-क्रि० अ० [सं० समाविष्ट] अंदर आना। भरना। अटना। जैसे-यह समाचार सुनते ही सब के हृदय में आनन्द समा गया। क्रि० स० किसी के अन्दर रखना। भरना। अटाना। जैसे-ये सब चीजें इसी बक्स के अन्दर समा दो।

समानिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वर्णवृत्त जिसमें रगण, जगण और एक गुरु होता है। समानी। उ०—देखि देखि कै सभा। विप्र मोहियो प्रभा। राज मंडली लसै। देव लोक को हँसै।—केशव।

समानी-संज्ञा स्त्री० दे० "समानिका"।

समान सैन्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जो एक ही ढंग की लड़ाई करना जानती हो। वि० दे० "उपनिविष्ट"।

समाहर्ता-संज्ञा पुं० [सं०] (४) प्राचीन काल का राजकर एकत्र करनेवाला प्रधान कर्मचारी। (कौ०)

विशेष—चन्द्रगुप्त के समय में इसका मासिक वेतन २००० पण था। यह जनपद को चार भागों में विभक्त करके और ग्रामों का ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ के नाम से विभाग करके करों के रजिस्टर में निम्नलिखित वर्गीकरण करता था—परिहारक, आयुधिक, धान्यकर, पशुकर, हिरण्यकर, कुप्यकर, विष्टिकर, और प्रतिकर। इनमें से प्रत्येक के लिये वह 'गोप' नियुक्त करता था जिनके अधिकार में पाँच से दस गाँवों तक रहते थे। इन गोपों के ऊपर स्थानिक होते थे।

समाहर्तृपुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] समाहर्ता का कारिंदा। (कौ०)

समाह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] पशु पक्षियों (तीतर, बटेर, हाथी, शेर, भैंसे आदि) को लड़ाने और बाज़ी लगाने का खेल।

विशेष—इसके संबंध में अर्थशास्त्र तथा स्मृतियों में अनेक नियम हैं।

समिधा, समिधि-संज्ञा स्त्री० [सं० समिध्] लकड़ी, विशेषतः यज्ञकुंड में जलाने की लकड़ी। उ०—प्रेम बारि तर्पन भलो घृत सहज सनेह। संसय समिधि अगिनि छमा ममता बलि देह।—तुलसी।

समीति-संज्ञा स्त्री० दे० "समिति" उ०—राग दोष इरषा विमोह बस रुची न साधु समीति।—तुलसी।

समीर-संज्ञा पुं० [सं०] (३) प्राणवायु जिसे योगी वश में रखते हैं। उ०—कछु न साधन सिधि जानौं न निगम बिधि नहिं जप तप बस मन न समीर।—तुलसी।

समुंदर-फल-संज्ञा पुं० [हिं० समुंदर+फल] मझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जो रुहेलखंड और अवध के जंगलों में झरनों के किनारे और नम ज़मीन पर होता है। बंगाल में भी यह अधिकता से होता है और दक्षिण भारत में लंका तक पाया जाता है। कहीं कहीं लोग इसे शोभा के लिये बागों में भी लगाते हैं। इसकी लकड़ी से प्रायः नावें बनती हैं। औषध में भी इसकी पत्तियों और छाल आदि का व्यवहार होता है। ईजर।

समुच्चय-संज्ञा पुं० [सं०] (४) वह आपत्ति जिसमें यह निश्चय हो कि इस उपाय के अतिरिक्त और उपायों से भी काम हो सकता है। (कौ०)

समुत्परिवर्त्तिम-संज्ञा पुं० [सं०] बेचे हुए पदार्थों में चालाकी से दूसरा पदार्थ मिला देना। (कौ०)

समुदाव⊛-संज्ञा पुं० दे० "समुदाय"। उ०—रच्यौ एक सब गुनिन को, बर बिरंचि समुदाव।—केशव।

समुहां‡-वि० [सं० संमुख, प्रा० हिं० सामुहँ] (१) सामने का। आगे का। (२) सामना। सीधा।

क्रि० वि०-सामने। आगे। उ०—मरिबे को साहसु करै बढ़ै बिरह की पीर। दौरति ह्वै समुही ससी सरसिज सुरभि समीर।—बिहारी।

समुहाना‡-क्रि० अ० [सं० सम्मुख, प्रा० हिं० सामुहँ] सामने आना। सम्मुख होना। उ०—सबही त्यौं समुहाति छिनु चलति सबनु दै पीठि। वाही त्यौं ठहराति यह कबिल-नवी लौं दीठि।—बिहारी।

समूह-हितवादी-संज्ञा पुं० [सं०] जनता के हित साधन में तत्पर रहनेवाला। जनता का प्रतिनिधि। (स्मृति)

विशेष—याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि किसी स्थान का शासन धर्मज्ञ, निर्लोभ और पवित्र समूह-हितवादियों के हाथ में देना चाहिए।

समौरिया‡-वि० [हिं० सम+उमरिया] बराबर उम्रवाला। समवयस्क।

सम्मन-संज्ञा पुं० [अं० समन्स] अदालत का वह सूचनापत्र या आदेशपत्र जिसमें किसी को निर्दिष्ट समय पर अदालत में उपस्थित या हाजिर होने की सूचना या आदेश लिखा रहता है। तलबीनामा। इत्तिलानामा। आह्वानपत्र।

क्रि० प्र०—आना।—देना।—निकलना।—निकलवाना।—जारी कराना।—जारी होना।—तामील होना।—तामील कराना।

सयन⊛-संज्ञा पुं० [सं० शयन] शयन करने का आसन। बिस्तर।

उ०—निज कर राजीवनयन पल्लव-दल रचित सयन प्यास परसपर पियूष प्रेम-पानकी।—तुलसी।

सयान-संज्ञा पुं० दे० "सयानपन"। उ०—आई गौने कालि ही, सीखी कहा सयान। अब ही तें रूसन लगी, अबही तें पछितान।—मतिराम।

सयानपत-संज्ञा स्त्री० [हिं० सयाना + पत (प्रत्य०)] चालाकी। धूर्तता।

सयानपन-संज्ञा पुं० [हिं० सयान + पन (प्रत्य०)] (१) सयाना होने का भाव। (२) चतुरता। बुद्धिमानी। होशियारी। (३) चालाकी। धूर्तता।

सयाना-वि० [सं० सज्ञान] (१) अधिक अवस्थावाला। वयस्क। जैसे,—अब तुम लड़के नहीं हो; सयाने हुए। (२) बुद्धिमान्। चतुर। होशियार। (३) चालाक। धूर्त।
संज्ञा पुं० (१) बड़ा बूढ़ा। वृद्ध पुरुष। (२) वह जो झाड़ फूँक करता हो। जंतर मंतर करनेवाला। ओझा। (३) चिकित्सक। हकीम। (४) गाँव का मुखिया। नंबरदार।

सयानाचारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सयाना + चार (प्रत्य०)] वह रसूम जो गाँव के मुखिया को मिलता है।

सयोनीयपथ-संज्ञा पुं० [सं०] खेतों में जानेवाला मार्ग।

सरंडर-वि० [अं० सरेंडर] जिसने अपने को दूसरे के हवाले किया हो। जिसने दूसरे के सम्मुख आत्मसमर्पण किया हो। उपस्थित। हाजिर। जैसे,—उन पर गिरिफ्तारी का वारंट था; सोमवार को वे अदालत में सरंडर हो गए।
क्रि० प्र०—होना।

सर-संज्ञा स्त्री० [सं० शर] चिता। उ०—पाएउँ नहिं होइ जोगी जती। अब सर चढ़ौं जरौं जस सती।—जायसी।

सरक-संज्ञा पुं० [?] (६) शराब का खुमार। उ०—वय अनुहरत विभूषन विचित्र अंग जोहे जिय अति सनेह की सरक सी।—तुलसी।

सरखत-संज्ञा पुं० [फा०] (३) आज्ञापत्र। परवाना। उ०—आयसु भो लोकनि सिधारे लोकपाल सबै तुलसी निहाल कै कै दियो सरखतु है।—तुलसी।

सरग⊛†-संज्ञा पुं० दे० "स्वर्ग"। उ०—मूल पताल सरग ओहि साखा। अमर बेलि को पाव को चाखा।—जायसी।

सर-घर-संज्ञा पुं० [सं० शर + हिं० घर] वह खाना जिसमें तीर रखे जाते हैं। तरकश। तूणीर। उ०—लोने लोने धनुष विशिष कर छयलनि लोने मुनिपट कटि लोने सर-घर हैं।—तुलसी।

सरजना⊛-क्रि० स० [सं० सृजन] (१) सृष्टि करना। (२) रचना। बनाना।

सरदार-तंत्र-संज्ञा पुं० [फा० सरदार + सं० तंत्र] एक प्रकार की सरकार जिसमें राजसत्ता या शासनसूत्र सरदारों, बड़े बड़े ताल्लुकेदारों या ऐश्वर्यशाली नागरिकों के हाथ में रहता है। कुलीनतंत्र। अभिजाततंत्र। कुलतंत्र। वि० दे० "एरिस्टोक्रेसी"।

सरदाला-संज्ञा स्त्री० [देश०] उत्तरी भारत की रेतीली भूमि में होनेवाली एक प्रकार की बारहमासी घास जो चारे के लिये अच्छी समझी जाती है। बादरी।

सरचौंकी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पौधा जो प्रायः रेतीली भूमि में होता है। यह वर्षा और शरद ऋतु में फूलता है। इसका व्यवहार ओषधि के रूप में होता है।

सरनदीप-संज्ञा पुं० [सं० स्वर्ण द्वीप या सिंहल द्वीप] लंका का एक प्राचीन नाम जो अरबवालों में प्रसिद्ध था। उ०—दिया दीप नहिं तम उँजियारा। सरनदीप सरि होइ न पारा।—जायसी।

सरवान†-संज्ञा पुं० [?] तंबू। खेमा। उ०—उठि सरवान गगन लगि छाए। जानहु राते मेघ देखाए।—जायसी।

सरवाला-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की लता जिसे घोड़ा-बेल भी कहते हैं। बिलाई कंद इसी की जड़ होती है। वि० दे० "घोड़ा बेल"।

सरस-वि० [सं०] (९) बढ़ कर। उत्तम। उ०—ब्रह्मानंद हृदय दरस सुख लोचननि अनुभए उभय सरस राम जागे हैं।—तुलसी।

सरसौंहाँ†-वि० [हिं० सरस + औंहाँ (प्रत्य०)] रस युक्त किया हुआ। सरस बनाया हुआ। उ०—सिय-सरसौंहैं मुनि किए करि सरसौंहैं नेह। घर-परसौंहैं ह्वै रहे झर बरसौंहैं मेह।—बिहारी।

सराई†-संज्ञा स्त्री० [?] पाजामा।

सरार-संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ा-बेल नाम की लता जिसकी जड़ बिलाई-कंद कहलाती है। वि० दे० "घोड़ा बेल"।

सरित-संज्ञा स्त्री० [सं० सरित्] सरिता। नदी। उ०—दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही में।—केशव।

सरुहाना⊛-क्रि० स० [?] चंगा करना। अच्छा करना। उ०—समुझि रहनि सुनि कहनि विरह व्रत अनय अमिय औषध सरुहाए।—तुलसी।

सरोजना⊛-क्रि० स० [?] पाना। उ०—हम सालोक्य स्वरूप सरोज्यो रहत समीप सहाई। सो तजि कहत और की औरै तुम अलि बड़े अदाई।—सूर।

सर्किल-संज्ञा पुं० [अं०] कई महल्लों, गाँवों या कसबों आदि का समूह जो किसी काम के लिये नियत हो। हलका जैसे,—सर्किल अफसर, सर्किल इन्सपेक्टर।

सक्युट हाउस-संज्ञा पुं० [अं०] जिले के प्रधान नगर में वह

सरकारी मकान या कोठी जहाँ, दौरा करते हुए उच्च राजकर्मचारी या बड़े अफसर लोग ठहरते हैं। सरकारी कोठी।

सर्क्युँलर-संज्ञा पुं० [अं०] वह पत्र, विज्ञप्ति या सूचना जो बहुत से व्यक्तियों के नाम भेजी जाय। गश्ती चिट्ठी।

सर्च-लाइट-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की बहुत तेज बिजली की रोशनी जिसका प्रकाश रिफ्लेक्टर या प्रकाश-परावर्त्तक के द्वारा लंबाई में बहुत दूर तक जाता है। प्रकाश इतना तेज होता है कि, आँखें सामने नहीं ठहरतीं और दूर तक की चीजें साफ दिखाई देती हैं। दुर्घटना के बचाव के लिये पहले प्रायः जहाजों पर ही इसका उपयोग होता था; पर आजकल मेल, एक्सप्रेस आदि ट्रेनों के एंजिनों के आगे भी यह लगी रहती है। अन्वेषक प्रकाश। प्रकाश-प्रक्षेपक।

सर्पसारी व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] वह भोगव्यूह जिसमें पक्ष, कक्ष तथा उरस्य विषम हों। (कौ०)

सर्वतोभोगी-संज्ञा पुं० [सं०] वह वश्य मित्र जो अमित्रों, आसारों (संगी साथियों) पड़ोसियों तथा जांगलिकों से रक्षा करे। (कौ०)

सर्वेण्ड नायक-संज्ञा पुं० [सं०] सेना या पुलिस का एक ऊँचा अधिकारी।

सर्वभोग-संज्ञा पुं० [सं०] वह वश्य मित्र जो सेना, कोश तथा भूमि से सहायता करे। (कौ०)

सर्वभोग सह-संज्ञा पुं० [सं०] सब प्रकार से उपयोगी। सब प्रकार के कामों में समर्थ। (कौ०)

सर्वस्व संधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] सर्वस्व देकर शत्रु से की हुई संधि।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि शत्रु के साथ यदि ऐसी संधि करनी पड़े तो राजधानी को छोड़ कर शेष सब उसको सपुर्द कर देना चाहिए।

सर्वहित कर्म-संज्ञा पुं० [सं०] सामाजिक समारोह, उत्सव या जलसा आदि।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि जो नाटक आदि सामाजिक जलसों में योग न दे, उसे उसमें सम्मिलित होने या उसे देखने का अधिकार नहीं है; उसे हटा देना चाहिए। यदि न हटे तो वह दण्ड का भागी हो।

सर्वार्थसिद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार सब से ऊपर का अनुत्तर या स्वर्गों के ऊपर का लोक।

सर्वेयर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो सर्वे अर्थात् जमीन की नाप जोख करता हो। पैमाइश करनेवाला। अमीन।

सलपन-संज्ञा पुं० [देश०] दो तीन हाथ ऊँची एक प्रकार की झाड़ी जिसकी टहनियों पर सफेद रोएँ होते हैं। यह प्रायः सारे भारत, लंका, बरमा, चीन और मलाया में पाई जाती है। यह वर्षा ऋतु में फूलती है। इसका व्यवहार ओषधि रूप में होता है।

सलाक⊛-संज्ञा स्त्री० [फा० सलाख] बाण। तीर। उ०—शुद्ध सलाक समान लसी अति रोषमयी दग दीठि तिहारी।—केशव।

सलार†-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया। उ०—चकई चकवा और पिदारे। नकटा लेदी सोन सलारे।—जायसी।

सलाही-संज्ञा पुं० [अ० सलाह] सलाहकार। परामर्शदाता। जैसे,—कानूनी सलाही। (भारतीय शासन पद्धति।) (क्व०)

सविनय कानून भंग-संज्ञा पुं० [सं० सविनय + फा० कानून + सं० भंग] नम्रता या भद्रतापूर्वक राज्य की किसी ऐसी व्यवस्था या कानून अथवा आज्ञा को न मानना जो अपमानजनक और अन्यायमूलक प्रतीत हो और ऐसी अवस्था में राज्य की ओर से होनेवाले पीड़न तथा कारादंड आदि को धीरता-पूर्वक सहन करना। भद्र अवज्ञा। सिविल डिस-ओबीडियेंस।

ससा⊛-संज्ञा पुं० [सं० शस्य] (१) खेती बारी। उ०—सपने कैं सौतुख सुख सस सुर सींचत देत निराइ कै।—तुलसी।

ससहर⊛-संज्ञा पुं० [सं० शशिधर] चंद्रमा। उ०—सोइ सूर तुम ससहर आनि मिलावौं सोइ। तस दुख महँ सुख उपजै रैनि माँह दिन होइ।—जायसी।

ससुरा-संज्ञा पुं० [सं० श्वसुर] (१) श्वसुर। ससुर। (२) एक प्रकार की गाली। जैसे,—वह ससुरा हमारा क्या कर सकता है। (३) दे० "ससुराल"। उ०—कित यह रहसि जो आउब करना। ससुरेइ अंत जनम दुख भरना।—जायसी।

सस्पेंड-वि० [अं०] जो किसी काम से, किसी अभियोग के संबंध में, जाँच पूरी न होने तक, अलग कर दिया गया हो। जो किसी काम से किसी अपराध पर, कुछ समय के लिये छुड़ा दिया गया हो। मुअत्तल। जैसे,—उस पर घूस लेने का अभियोग है; इसलिये वह सस्पेंड कर दिया गया है।

क्रि० प्र०—करना।

सह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल की एक प्रकार की वनस्पति या बूटी जिसका व्यवहार यज्ञों आदि में होता था।

सहगवन⊛ संज्ञा पुं० दे० "सहगमन"।

सहजअरि प्रकृति-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो विजेता का पड़ोसी और स्वभावतः शत्रुता रखनेवाला हो।

सहजमित्र प्रकृति-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो विजेता का पड़ोसी, कुलीन तथा स्वभाव से ही मित्र हो।

सहयोगवाद-संज्ञा पुं० [सं०] राजनीतिक क्षेत्र में सरकार से

सहयोग अर्थात् उसके साथ मिल कर काम करने का सिद्धांत।

सहयोगवादी-संज्ञा पुं० [सं० सहयोग+वादिन्] राजनीतिक क्षेत्र में सरकार से सहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिल कर काम करने के सिद्धांत को माननेवाला।

सहस्रार-संज्ञा पुं० [सं०] (२) जैनों के अनुसार बारहवें स्वर्ग का नाम।

सहुँ‡-अव्य० [सं० सम्मुख] (१) सम्मुख। सामने। (२) ओर। तरफ। उ०—जा सहुँ हेर जाइ सो मारा। गिरिधर टरहिं भौंह जो टारा।—जायसी।

सहेट-संज्ञा पुं० दे० "सहेत"। उ०—भौन तें निकसि वृषभानु की कुमारी देख्यो सा समै सहेट को निकुंज तिरयो तीर को।—मतिराम।

साँकर-संज्ञा पुं० [सं० संकीर्ण] कष्ट। संकट। उ०—(क) साँकरे की साँकरन सनमुख हो न तोरे।—केशव। (ख) मुकती साँठि गाँठि जो करै। साँकर परे सोइ उपकरै।—जायसी।

साँटिया‡-संज्ञा पुं० [हिं० साँटी] डौंडी पीटनेवाला। डुग्गीवाला। उ०—चहुँ दिसि आन साँटिया फेरी। भै कटकाई राजा केरी।—जायसी।

साँठ गाँठ-संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँठ+अनु० साँठ] (१) मेल मिलाप। (२) छिपा और दूषित संबंध। गुप्त संबंध या लगाव। जैसे,—उस स्त्री से उसकी साँठ गाँठ थी। (३) षड्यंत्र। साजिश। जैसे,—उन दोनों ने साँठ गाँठ कर उसे यहाँ से निकलवा दिया।

साँठना‡-क्रि० स० [हिं० साँठ] पकड़े रहना। उ०—नाथ सुनी ! भृगुनाथ कथा बलि बालि गए चलि बात के साँठे।—तुलसी।

साँभर‡-संज्ञा पुं० [सं० संबल या संभार] मार्ग के लिये साथ में लिया हुआ जलपान या भोजन। संबल। पाथेय। उ०—आवत अहहिं सकल अरकाना। साँभर लेहु दूरि है जाना।—जायसी।

साँदन-संज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसका तना प्रायः झुका हुआ होता है। इसकी छाल पतली और भूरे रंग की होती है। यह देहरादून, अवध, बुंदेलखंड और हिमालय में ४००० फुट तक की ऊंचाई पर पाया जाता है। फागुन-चैत में पुरानी पत्तियों के झड़ने और नई पत्तियों के निकलने पर इसमें फूल लगते हैं। इसमें से एक प्रकार का गोंद निकलता है जो ओषधि रूप में काम आता और मछलियों के लिये विष होता है। इसके हीर की लकड़ी मजबूत और कड़ी होती है और सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। पशु इसकी पत्तियाँ बड़े चाव से खाते हैं।

सांव्यावहारिक-संज्ञा पुं० [सं०] कंपनी के हिस्सेदार होकर काम या व्यापार करनेवाला व्यापारी।

साउथ-संज्ञा पुं० [अं०] दक्षिण दिशा।

साका-संज्ञा पुं० [सं० शाका] (७) समय। अवसर। मौका। उ०—जो हम मरन-दिवस मन ताका। आजु आइ पूजी वह साका।—जायसी।

साक्षिमान् आधि-संज्ञा पुं० [सं०] साक्षियों के सामने गिरवी रखा हुआ धन जिसकी लिखा पढ़ी न की गई हो।

साखी‡-संज्ञा पुं० [सं० शाखिन्] (शाखाओं वाला) वृक्ष। पेड़। उ०—(क) तुलसीदल रूँध्यो चहैं सठ साखि सिहारे। —तुलसी। (ख) अरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ़ देहिं सब साखी।—जायसी।

सात्विक-संज्ञा पुं० [सं०] (५) चार प्रकार के अभिनयों में से एक। सात्विक भावों को प्रदर्शित करके, हँसने, रोने, स्तंभ और रोमांच आदि के द्वारा अभिनय करना।

साध-वि० [सं० साधु] उत्तम। अच्छा। उ०—अशेष शास्त्र विचार के जिन जानियो मत साध।—केशव।

साधना-क्रि० स० [सं०] (९) अपनी ओर मिलाना या काबू में करना। वश में करना। उ०—गाधिराज को पुत्र साधि सब मित्र शत्रु बल।—केशव।

साम‡-संज्ञा पुं० दे० "सामान"। उ०—बालमीकि अजामिल के कछु हुतो न साधन सामो।—तुलसी।

सामक-संज्ञा पुं० [सं०] (४) समान धन।

सामयिक पत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह इकरारनामा या दस्तावेज जिसमें बहुत से लोग अपना अपना धन लगा कर किसी मुकदमे की पैरवी करने के लिये लिखा पढ़ी करते हैं। (शुक्रनीति) (२) समाचार-पत्र। अखबार। सामयिक पत्र।

सामरिकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] समर या समर संबंधी कार्यों में लिप्त रहना। युद्ध। लड़ाई भिड़ाई।

सामरिक वाद-संज्ञा पुं० [सं० सामरिक+वाद] वह सिद्धान्त जिसके अनुसार राष्ट्र सामरिक कार्यों—सेना बढ़ाने, नित्य नए नए भयंकर और घातक युद्धोपकरण बनवाने आदि की ओर अधिकाधिक ध्यान दे। विराट् सेना रखने का सिद्धान्त।

सामवायिक राज्य-संज्ञा पुं० [सं०] (२) वे राज्य जो किसी युद्ध के निमित्त मिल गए हों।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि सामवायिक शत्रु राज्यों से कभी अकेला न लड़े।

साम्राज्य वाद-संज्ञा पुं० [सं० साम्राज्य+वाद] साम्राज्य के देशों की रक्षा और वृद्धि या विस्तार का सिद्धान्त।

साम्राज्यवादी-संज्ञा पुं० [सं० साम्राज्य+वादिन्] वह जो साम्रा-

ज्य शासन-प्रणाली का पक्षपाती और अनुरागी हो। वह जो साम्राज्य की स्थापना और उसकी विस्तार-वृद्धि का पक्षपाती हो।

सार-संज्ञा स्त्री० [हिं० सारना] (३) खबरदारी। सँभाल। हिफाजत। उ०—भरत सौगुनी सार करत हैं अति प्रिय जानि तिहारे।—तुलसी।

सारना-क्रि० स० [हिं० सरना का सक० रू०] (६) (अस्त्र आदि) चलाना। संचालित करना। उ०—ससि पर करवत सारा राहू। नखतन्ह भरा दीन्ह बड़ दाहू।—जायसी।

सारभांड-संज्ञा पुं० [सं०] (४) चोखा माल। असली माल।

सार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (४) व्यापारी माल। (कौ०) (५) कारबार करनेवाला। व्यापारी। रोजगारी।

सार्थातिवाह-संज्ञा पुं० [सं०] माल की चलान। (कौ०)

सार्वराष्ट्रीय-वि० [सं०] जिसका दो या अधिक राष्ट्रों से संबंध हो। भिन्न भिन्न राष्ट्र संबंधी। जैसे, सार्वराष्ट्रीय प्रश्न। सार्वराष्ट्रीय राजनीति।

सालपान-संज्ञा पुं० [सं० शालिपर्णी ?] एक प्रकार का क्षुप जो देहरादून, अवध और गोरखपुर की नम भूमि में पाया जाता है। यह वर्षा ऋतु के अंत में फूलता है। इसकी जड़ का ओषधि के रूप में व्यवहार होता है। कसरवा। चाँचर।

सालिसिटर-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का वकील जो कलकत्ते और बंबई के हाइकोर्टों में होनेवाले मुकदमे लेता और उनके कागज पत्र तैयार करके बैरिस्टर को देता है। एटर्नी। एडवोकेट।

विशेष—ये हाइकोर्टों में बहस नहीं कर सकते, पर अन्य अदालतों में इन्हें बहस करने का पूरा अधिकार है। इनका दर्जा एडवोकेट के समान ही है।

सावज-संज्ञा पुं० [?] जंगली जानवर जिनका शिकार किया जाता है।

सावतꣳ-संज्ञा पुं० [हिं० सौत] (१) सौतों में होनेवाला पारस्परिक द्वेष। सौतिया डाह। (२) ईर्ष्या। डाह। उ०—तहँ गए मद मोह लोभ अति सरगहुँ मिटति न सावत।—तुलसी।

सावधि आधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गिरवी जो इस शर्त पर रखी जाय कि इतने दिनों के अंदर अवश्य छुड़ाली जायगी।

सासन-संज्ञा पुं० दे० "शासन"। उ०—पुत्र श्री दसरत्थ के वनराज सासन आइयो।—केशव।

सासनाꣳ-संज्ञा स्त्री० दे० "शासन"। उ०—सासना न मानई जो कोटि जन्म नर्क जाय।—केशव।

साहजिक धन-संज्ञा पुं० [सं०] पारितोषिक, वेतन, विजय आदि में मिला हुआ धन। (शुक्रनीति)

साहित्यिक-वि० [सं० साहित्य] साहित्य-संबंधी। जैसे,—साहित्यिक चर्चा।

संज्ञा पुं० वह जो साहित्य सेवा में संलग्न हो। साहित्यसेवी। जैसे,—वहाँ कितने ही प्रसिद्ध साहित्यिक उपस्थित थे।

सिंगार हाट-संज्ञा स्त्री० [हिं० सिंगार + हाट = बाजार वेश्याओं] के रहने का स्थान। चकला।

सिंघेला-संज्ञा पुं० [सं० सिंह + एल (प्रत्य०)] शेर का बच्चा। उ०—तौ लगि गाज न गाज सिंघेला। सौंह साह सौं जुरौं अकेला।—जायसी।

सिंडिकेट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) सिनेट या विश्वविद्यालय की प्रबंध-सभा के सदस्यों या प्रतिनिधियों की समिति। (२) धनी, व्यापारियों या जानकार लोगों की ऐसी मंडली जो किसी कार्य्य को, विशेष कर अर्थ संबंधी उद्योग या योजना को अग्रसर करने के लिये बनी हो।

सिंह-संज्ञा पुं० [सं०] (१२) दिगंबर जैन साधुओं के चार भेदों में से एक।

सिखंड-संज्ञा पुं० [सं० शिखंड] मोर की पूँछ। मयूरपंख। उ०—सिरनि सिखंड सुमन दल मंडन बाल सुभाय बनाए।—तुलसी।

सिद्धि गुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गुटिका जिसकी सहायता से रसायन बनाया या इसी प्रकार की और कोई सिद्धि की जाती हो। उ०—सिधि गुटिका अब मो सँग कहा। भएउँ राँग सन हिय न रहा।—जायसी।

सिनेमा-संज्ञा पुं० [अं०] वह मकान जहाँ बायस्कोप दिखाया जाता है।

यौ०—सिनेमा हाउस।

सिराजी-संज्ञा पुं० [फा० शीराज (नगर)] शीराज का घोड़ा। उ०—अबलक अरबी लखी सिराजी। चौधर चाल समँद भल ताजी।—जायसी।

सिलेक्ट कमिटी-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह कमिटी जिसमें कुछ चुने हुए मेंबर या सदस्य होते हैं और जो किसी महत्व के विषय पर विचार कर अपना निर्णय साधारण सभा में उपस्थित करती है।

सिविल डिस-ओबीडिएंस-संज्ञा पुं० दे० "सविनय कानून भंग"।

सिविल प्रोसीजर कोड-संज्ञा पुं० [अं०] न्याय-विधान। जाब्ता दीवानी।

सिविल वार-संज्ञा पुं० दे० "गृहयुद्ध"।

सी० आई० डी०-संज्ञा पुं० दे० "क्रिमिनल इनवेस्टिगेशन डिपार्ट-

मेंट"। जैसे,—सी० आई० डी० ने संदेह पर एक आदमी को गिरिफ्तार किया।

सीक्रेट-वि० [अं०] छिपा हुआ। गुप्त। पोशीदा। जैसे,—सीक्रेट पुलिस। सीक्रेट कमिटी।

संज्ञा पुं० गुप्त बात। जैसे,—गवर्नमेंट सीक्रेट बिल।

सीझना-क्रि० अ० [सं० सिद्ध] (८) मिलने के योग्य होना। प्राप्तव्य होना। जैसे,—(क) बयाना हुआ और तुम्हारी दलाली सीझी। (ख) यह मकान रेहन रख लोगे तो १) सैकड़े का ब्याज सीझेगा।

सीता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१०) सीताध्यक्ष के द्वारा एकत्र किया हुआ अनाज। (११) जैनों के अनुसार विदेह की एक नदी का नाम।

सीतात्यय-संज्ञा पुं० [सं०] किसानों पर होनेवाला जुरमाना। खेती के संबंध का जुरमाना। (कौ०)

सीतोदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार विदेह की एक नदी का नाम।

सीपति-संज्ञा पुं० (सं० श्रीपति] विष्णु।

सीमाकर्षक-संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम की सीमा पर हल जोतने या खेती करनेवाला। (परा० स्मृति)

सीमावरोध-संज्ञा पुं० [सं०] सीमा स्थिर होना। हदबंदी। (कौ०)

सीरियल-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह लंबी कहानी या दूसरा लेख जो कई बार और कई हिस्सों में निकले। (२) वह कहानी या किस्सा जो बायस्कोप में कई बार और हिस्सों में दिखाया जाय।

सीरीज़-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक ही वस्तु का लगातार क्रम। सिलसिला। श्रेणी। लड़ी। माला। जैसे,—बाल साहित्य सीरीज की पुस्तकें अच्छी होती हैं।

सीस्मोग्राफ-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का यंत्र जिससे भूकंप होने का पता लगता है। (इस यंत्र से यह मालूम हो जाता है कि भूकंप किस दिशा में, कितनी दूर पर हुआ है, और उसका वेग हलका था या जोर का।)

सुआउ-वि० [सं० सु + आयु] जिसकी आयु बड़ी हो। दीर्घायु। उ०—सुधन न सुमन सुआउ सो।—तुलसी।

सुआसिनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुहागिन] (२) वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। सौभाग्यवती स्त्री।

सुख-वि० [सं०] (१) स्वाभाविक। सहज। उ०—जाके सुख मुखवास ते बासित होत दिगंत।—केशव। (२) सुख देनेवाला। सुखद।

क्रि० वि० (१) स्वाभाविक रीति से। साधारण रीति से। उ०—कहुँ द्विज गण मिलि सुख श्रुति पढ़हीं।—केशव। (२) सुखपूर्वक। आराम से।

सुखदगीत-वि० [सं० सुखद + गीत] जिसकी बहुत अधिक प्रशंसा हो। प्रशंसनीय। उ०—जनक सुखदगीता पुत्रिका पाया सीता।—केशव।

सुखसार-संज्ञा पुं० [सं० सुख + सार] मुक्ति। मोक्ष। उ०—केशव तिनसों यों कह्यो क्यों पाऊँ सुखसारु।—केशव।

सुचा-संज्ञा स्त्री० [सं० सूचना] ज्ञान। चेतना। सुध। उ०—रही जो मुइ नागिनि जसि सुचा। जिउ पाएँ तन कै भइ सुचा।—जायसी।

सुटुकना-क्रि० अ० [अनु०] चुपके या धीरे से भाग जाना। सरकना।

सुठि-अव्य० [सं० सुष्ठु] पूरा पूरा। बिलकुल। उ०—हिये जो आखर तुम लिखे ते सुठि लीन्ह परान।—जायसी।

सुतंत्र-क्रि० वि० [सं० स्वतंत्र] स्वतंत्रतापूर्वक। स्वच्छंदतापूर्वक। (कौ०) उ०—विधि लिख्यो शोधि सुतंत्र। जनु जयाजय के मंत्र।—केशव।

सुधागेह-संज्ञा पुं० [सं० सुधा + गेह = घर] चंद्रमा। उ०—देह सुधागेह ताहि मृगहु मलीन कियो ताहु पर बाहु बिनु राहु गहियतु है।—तुलसी।

सुपरवाइजर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जो किसी काम की देख भाल या निगरानी करता हो। निरीक्षण करनेवाला। निगरानी करनेवाला।

सुबाहु-संज्ञा स्त्री० [सं० सु + बाहु] सेना। फौज। उ०—रैयत राज समाज कर तन धन धरम सुबाहु। शांत सुसचिवन सौंपि सुख बिलसहि नित नरनाहु।—तुलसी।

सुमंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (४) आय-व्यय का प्रबंध करनेवाला मंत्री। अर्थ-सचिव।

विशेष—सुमन्त्र का कर्तव्य यह बतलाया गया है कि वह राजा को सूचित करे कि इस वर्ष इतना द्रव्य संचित हुआ है, इतना व्यय हुआ है, इतना शेष है, इतनी स्थावर सम्पत्ति है और इतनी जंगम सम्पत्ति है।

सुरंग-वि० [सं०] (४) लाल रंग का। रक्त वर्ण। उ०—पहिरे बसन सुरंग पावक युत स्वाहा मनो।—केशव। (५) निर्मल। स्वच्छ। साफ। उ०—अति बदन शोभ सरसी सुरंग। तहँ कमल नयन नासा तरंग।—केशव।

सुरता-वि० [हिं० सुरत] समझदार। होशियार। सयाना। चालाक।

सुरपति-संज्ञा पुं० [सं०] (२) विष्णु का एक नाम। उ०—सुरपति गति मानी, सासन मानी, भृगुपति को सुख भारी।—केशव।

सुरपालक– संज्ञा पुं० [सं०] इन्द्र। उ०—आनंद के कन्द, सुरपालक के बालक ये।—केशव।

सुरायॐ–संज्ञा पुं० [सं० सु + राय = राजा] श्रेष्ठ नृपति। अच्छा राजा। उ०—बहु भाँति पूजि सुराय। कर जोरि के परि पाय।—केशव।

सुराल–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की लता जिसकी जड़ बिलाई कंद कहलाती है। वि० दे० "घोड़ाबेल"।

सुलग–अव्य० [हिं० सु + लगना] पास। समीप। निकट। उ०—मुनि भेष धरे धनु सायक सुलग हैं। तुलसी हिये लसत लोने लोने डग हैं।—तुलसी।

सुषिर–संज्ञा पुं० [सं०] (१०) बंसी आदि मुँह से फूँक कर बजाए जानेवाले बाजों में से निकलनेवाली ध्वनि।

सुस्ताईॐ–संज्ञा स्त्री० दे० "सुस्ती"। उ०—पंथी कहाँ कहाँ सुस्ताई। पंथ चलै तब पंथ सेराई।—जायसी।

सुहेल–संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रसिद्ध चमकीला सितारा जो फारसी तथा अरबी के कवियों के अनुसार यमन देश में उगता है। कहते हैं कि इसके उदय होने पर सब कीड़े मकोड़े मर जाते हैं और चमड़े में सुगंध उत्पन्न हो जाती है। यह शुभ और सौभाग्य का सूचक माना जाता है। उ०—बिसुरंता जब भेंटै सो जानै जेहि नेह। सुक्ख सुहेला उग्गवै दुःख झरे जिमि मेह।—जायसी।

सूकॐ–संज्ञा पुं० [सं० शुक्र] शुक्र नक्षत्र। उ०—अस सूआ एकै मँझ नाहीं। उभा सूक जस नखतन्ह माहीं।—जायसी।

सूचीव्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें सैनिक एक दूसरे के पीछे खड़े किए गए हों। (कौ०)

सूट–संज्ञा पुं० [अं०] दावा। नालिश। जैसे,—उसने हाईकोर्ट में तुम पर सूट दायर किया है।

सूत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] (६) लोहे के तारों का बना हुआ कवच। (कौ०)

सूत्रध्यान कर्मांत–संज्ञा पुं० [सं०] कपड़ा बुनने का कारखाना।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में राज्य अपनी ओर से इस ढंग के कारखाने खड़े करता था और लोगों को मजदूरी देकर उनसे काम लेता था।

सूत्रशाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] सूत कातने या इकट्ठा करने का कारखाना।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में नियम था कि जो स्त्रियाँ बड़े तड़के अपना काता हुआ सूत सूत्रशाला में ले आती थीं, उनको उसी समय उसका मूल्य मिल जाता था। इस प्रकार स्त्रियों की जीविका का उपयुक्त प्रबन्ध हो जाता था।

सूत्राध्यक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] कपड़ों के व्यापार का अध्यक्ष।

सूदनाॐ–क्रि० स० [सं० सूदन] नाश करना। उ०—मुदित मन बर बदन सोभा उदित अधिक उछाहु। मनहुँ दूरि कलंक करि ससि समर सूदो राहु।—तुलसी।

सूरज–संज्ञा पुं० (सं० शूर + ज (प्रत्य०)) शूर या वीर का पुत्र। बहादुर का लड़का। उ०—डारि डारि हथ्यार सूरज जीव लै लै भज्जहीं।—केशव।

सेंट्रल–वि० [अं०] जो केंद्र या मध्य में हो। केंद्रीय। प्रधान। मुख्य। जैसे,—सेंट्रल गवर्नमेंट। सेंट्रल कमेटी। सेंट्रल जेल।

सेंशर–संज्ञा पुं० [अं०] दोष। इल्जाम। निंदा। तिरस्कार। भर्त्सना।

सेंसर–संज्ञा पुं० [अं०] वह सरकारी अफसर जिसे पुस्तक पुस्तिकाएँ विशेष कर समाचार पत्र छपने या प्रकाशित होने, नाटक खेले जाने, फिल्म दिखाए जाने या तार कहीं भेजे जाने के पूर्व देखने या जाँचने का अधिकार होता है। यह जाँच इसलिये होती है कि कहीं उनमें कोई आपत्तिजनक या भड़कानेवाली बात तो नहीं है।

विशेष—बायस्कोप के फिल्मों या नाटकों की जाँच और काट छाँट करने के लिये तो सेंसर बराबर रहता है, पर समाचारपत्रों और तार-घरों में उसी समय सेंसर बैठाए जाते हैं जब देश में विद्रोह या किसी प्रकार की उत्तेजना फैली होती है अथवा किसी देश से युद्ध छिड़ा होता है। सेंसर ऐसी बातों को प्रकाशित नहीं होने देता जिनसे देश में और भी उत्तेजना फैल सकती हो अथवा शत्रु या विरोधी को किसी प्रकार का लाभ पहुँचता हो।

सेंसस–संज्ञा पुं० दे० "मर्दुमशुमारी"।

सेटिल–वि० [अं० सेटिल्ड] जो निपट गया हो। जो तै हो गया हो। जैसे,—उन दोनों का मामला आपस में सेटिल हो गया।

सेटिलमेंट–संज्ञा पुं० [अं०] (१) खेती के लिये भूमि को नाप कर उसका राज-कर निर्धारित करने का काम। जमीन नाप कर उसका लगान नियत करने का काम। बंदोबस्त। (२) एक देश के लोगों की दूसरे देश में बसी हुई बस्ती। उपनिवेश।

सेतु–संज्ञा पुं० [सं०] (१२) वह मकान जिसमें धरन छत के साथ लोहे की कीलों से जड़ी हों।

सेतुपथ–संज्ञा पुं० (सं०) दुर्गम स्थानों में जानेवाली सड़क। ऊँची नीची पहाड़ी घाटियों में जानेवाली सड़क।

सेतुबंध–संज्ञा पुं० (सं०) (३) नहर।

विशेष—कौटिल्य ने नहरें दो प्रकार की कही हैं—आहार्योदक और सहोदक। आहार्योदक वह है जिसमें पानी नदी, ताल आदि से खींच कर लाया जाता है। सहोदक में झरने से

स्थानीय-संज्ञा पुं० [सं०] आठ सौ गाँवों के बीच में बना हुआ किला।

स्थायी समिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी सभा सम्मेलन के कुछ निर्वाचित सदस्यों की वह समिति जिसका काम उस सभा या सम्मेलन के दो महाधिवेशनों के बीच की अवधि में उपस्थित होनेवाले कामों की व्यवस्था करना है।

स्थाली-पुलाक न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] जिस प्रकार हाँड़ी के एक चावल को देखकर शेष सब चावलों के कच्चे होने या पक जाने का अनुमान होता है, उसी प्रकार किसी एक बात को देखकर उसके सम्बन्ध की और सब बातों का अनुमान होना।

स्थालय-संज्ञा पुं० [सं०] सूखी जमीन में होनेवाले अनाज, ओषधि आदि। (कौ०)

स्थित-पाठ्य-संज्ञा पुं० [सं०] नाट्य शास्त्र के अनुसार लास्य के दस अंगों में से एक। काम से संतप्त नायिका का बैठकर स्वाभाविक पाठ करना। कुछ लोगों के मत से क्रुद्ध या भ्रांत स्त्री-पुरुषों का प्राकृत पाठ भी यही है।

स्पाई-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह जो छिपकर किसी का भेद ले। भेदिया। गुप्तचर। गोयंदा। जैसे,—पुलिस-स्पाई। (२) वह दूत जो शत्रु की छावनी या राज्य में भेद लेने के लिये भेजा जाय। गुप्त दूत। भेदिया। जैसे,—पेशावर के पास कई बोल्शेविक स्पाई पकड़े गए हैं।

स्पिरिट-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) किसी वस्तु का सार। अर्क। (२) मदिरा का सार। सुरासार। (३) उत्साह। जोश। तत्परता। जैसे,—इस नगर के नवयुवकों में स्पिरिट नहीं है। (४) स्वभाव। मिजाज। (५) प्रेतात्मा। रूह।

स्पिलेचा-संज्ञा पुं० [?] हिमालय की एक झाड़ी जिसकी टहनियों से बोझ बाँधते और टोकरे आदि बनाते हैं।

स्पीकर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह जो सभा समिति या सर्वसाधारण में खड़े होकर किसी विषय पर धड़ल्ले से बोलता या भाषण करता है। वक्ता। व्याख्यानदाता। जैसे,—वे बड़े अच्छे स्पीकर हैं; लोगों पर उनके व्याख्यान का खूब प्रभाव पड़ता है। (२) ब्रिटिश पार्लमेंट की कामन्स सभा, अमेरिका के संयुक्त राज्यों की प्रतिनिधि सभा तथा व्यवस्थापिका सभाओं के अध्यक्ष। सभापति। (३) ब्रिटिश हाउस आफ लार्ड्स या लार्ड सभा के अध्यक्ष जो लार्ड चान्सेलर हुआ करते हैं।

विशेष—ब्रिटिश हाउस आफ कामन्स या कामन्स सभा का स्पीकर या अध्यक्ष पार्लमेंट के सदस्यों में से ही, बिना किसी राजनीतिक भेदभाव के, चुना जाता है। इसका काम सभा में शांति बनाए रखना और नियमानुसार कार्य संचालन करना है। किसी विषय पर सभा के दो समान भागों में विभक्त होने पर (अर्थात् आधे सदस्य एक पक्ष में और आधे दूसरे पक्ष में होने पर) वह अपना कास्टिंग वोट या निर्णायक मत किसी के पक्ष में दे सकता है। अमेरिका की प्रतिनिधि सभा या व्यवस्थापिका सभाओं के स्पीकर या अध्यक्ष साधारणतः उस पक्ष के नेता या मुखिया होते हैं जिसका सभा में बहुमत होता है। ब्रिटिश पार्लमेंट के स्पीकर के समान इन्हें भी सभा संचालन और नियंत्रण का अधिकार तो है ही, इसके सिवा ये महत्व के अवसरों पर दूसरे को अध्यक्ष के आसन पर बैठाकर सदस्य की हैसियत से साधारण सभा में भी बहस कर सकते हैं और वोट दे सकते हैं।

स्पेशलिस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसे किसी विषय का विशेष ज्ञान हो। वह जो किसी विषय में पारंगत हो। विशेषज्ञ। जैसे,—वे आँख के इलाज के स्पेशलिस्ट हैं।

स्मरणपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पत्र जो किसी को किसी विषय का स्मरण दिलाने के लिये लिखा या भेजा जाय। (२) वह पत्र जिसमें कोई बात याद रखने के लिये लिखी जाय। याददाश्त।

स्माल काज कोर्ट-संज्ञा पुं० [अं० स्माल काजेज कोर्ट] वह दीवानी अदालत जहाँ छोटे छोटे मामले होते हैं। छोटी अदालत। अदालत खफ़ीफ़ा।

विशेष—हिंदुस्तान में कलकत्ता, बंबई आदि बड़े शहरों में स्माल काज कोर्ट हैं।

स्याह काँटा-संज्ञा पुं० [फा० स्याह + हि० काँटा] किंगरई नाम का कँटीला पौधा। भाल। वि० दे० "किंगरई"।

स्यो⁂-अव्य० [सं० सह] (२) पास। समीप। उ०—बिनती करै आइ हौं दिल्ली। चितउर कै मोहिं स्यो है किल्ली।—जायसी।

स्लिप-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) परचा। चिट। (२) कागज का लंबा टुकड़ा जिस पर कंपोज करने के लिये कुछ लिखा जाय। जैसे,—उनकी तीन स्लिपों में एक पेज का मैटर निकलता है। (कंपोज़िटर)

स्वकरण-संज्ञा पुं० [सं०] अपना स्वत्व जताना। दावा करना। (कौ०)

स्वकरण भाव-संज्ञा पुं० [सं०] किसी वस्तु पर बिना अपना स्वत्व सिद्ध किए अधिकार करना। बिना हक साबित किए कब्जा करना।

स्वकरण विशुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिस पर किसी व्यक्ति का स्वत्व न हो।

स्वचित्तकार-संज्ञा पुं० [सं०] वह शिल्पी जो किसी श्रेणी के

अन्तर्गत होते हुए भी स्वतंत्र रूप से काम करता हो। स्वतंत्र कारीगर। (कौ०)

स्वतंत्रद्वैधी भाव–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो स्वतंत्र रूप से अपना हित समझकर दो शत्रुओं से मेलजोल रखता हो।

स्वदेशाभिष्यंदन–संज्ञा पुं० [सं०] स्वराष्ट्र में जहाँ आबादी बहुत अधिक हो गई हो, वहाँ से कुछ जनता को दूसरे प्रदेश में बसाना। (कौ०)

स्वयंग्राह दान–संज्ञा पुं० [सं०] सेना आदि के द्वारा आप से आप सहायता पहुँचाना। (कौ०)

स्वयंभूरमण–संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार अंतिम महाद्वीप और समुद्र का नाम।

स्वयंवादिदोष–संज्ञा पुं० [सं०] न्यायालय में झूठ बात को बार बार दुहराने का अपराध।

स्वयंवादी–संज्ञा पुं० [सं०] मुकदमे में जिरह के समय किसी झूठ बात को बार बार दुहरानेवाला।

स्वयमुपगत–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अपनी इच्छा से किसी का दास हो गया हो।

स्वराजिस्ट–संज्ञा पुं० दे० "स्वराजी"।

स्वराजी–संज्ञा पुं० [सं० स्वराज्य] वह मनुष्य जो "स्वराज्य" नामक राजनीतिक पक्ष या दल का हो। स्वराज्य-प्राप्ति के लिये आन्दोलन करनेवाले राजनीतिक दल का मनुष्य।

स्वराष्ट्र मंत्री–संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र सचिव"।

स्वराष्ट्र सचिव–संज्ञा पुं० [सं०] किसी देश की सरकार या मंत्रिमंडल का वह सदस्य जिसके अधीन पुलिस, जेलखाने, फौजदारी शासन प्रबन्ध आदि हों। होम मेंबर। होम मिनिस्टर। होम सेक्रेटरी।

स्वराष्ट्र सदस्य–संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र सचिव"।

स्वरूपासिद्ध–वि० [सं०] जो स्वयं अपने स्वरूप से ही असिद्ध जान पड़ता हो। कभी सिद्ध न हो सकनेवाला।

स्वर्णमुखी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ४४ हाथ लम्बी, २२ हाथ ऊँची और २२ हाथ चौड़ी नाव।

स्वल्प-व्यक्ति तंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह सरकार जिसमें राजसत्ता इने गिने लोगों के हाथों में हो। कुछ लोगों का राज्य या शासन। वि० दे० "ओलिगार्की"।

स्वविक्षिप्त सैन्य–संज्ञा पुं० [सं०] अपने ही देश में विद्यमान सेना।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि स्वविक्षिप्त और मित्र विक्षिप्त (मित्र के देश में स्थित) सेना में स्वविक्षिप्त उत्तम है, क्योंकि समय पड़ने पर वह तुरंत काम दे सकती है।

स्वसमुत्थ–वि० [सं०] अपने ही देश में उत्पन्न, स्थित या एकत्र होनेवाला। जैसे,—स्वसमुत्थ कोश। स्वसमुत्थ बल या दंड।

स्वापतेय–संज्ञा पुं० [सं०] स्वकीय संपत्ति। निज की वस्तु। (कौ०)

स्वार्थाभिप्रयात–संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जिसे अपना अर्थ साधने के लिये कोई दूसरा लाया हो। आवुर्दा। (कौ०)

स्वीकारोक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कथन या बयान जिसमें अपना अपराध स्वीकार किया जाय। अपराध की स्वीकृति। इकबाले जुर्म। जैसे,—अभियुक्तों में से दो ने मैजिस्ट्रेट के सामने स्वीकारोक्ति की।

स्वीकृच्छ्र–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक व्रत जिसमें तीन तीन दिन तक क्रमशः गोमूत्र, गोबर तथा जौ की लप्सी खा कर रहते थे।

स्वेच्छासैनिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो बिना वेतन के अपनी इच्छा से फौज में सिपाही या अफसर का काम करे। वालंटीयर। वलमटेर।

विशेष–हिंदुस्तान में स्वेच्छा-सैनिक या वालंटीयर अधिकतर युरोपियन और युरेशियन होते हैं। इनसे संकट काल में बंदरों, रेलों, छावनियों और नगरों की रक्षा करने का काम लिया जाता है।

हँकारी†–संज्ञा पुं० [हिं० हँकार + ई (प्रत्य०)] (१) वह जो लोगों को बुलाकर लाने के काम पर नियुक्त हो। (२) प्रतिहारी। सेवक।

हँड़कुलिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० हँड़िया + कुलिया] बच्चों के खेलने के लिये रसोई के बहुत छोटे बरतनों का समूह।

हँडना–क्रि० अ० [सं० अभ्यटन] (४) (वस्त्र आदि का) व्यवहार में आना। पहना या ओढ़ा जाना।

हंडर–संज्ञा पुं० दे० "हंडरवेट"।

हंडरवेट–संज्ञा पुं० [अं०] एक अंगरेजी तौल जो ११२ पाउंड या प्रायः १ मन १४॥ सेर की होती है।

हँडाना–क्रि० स० [सं० अभ्यटन] (१) घुमाना। फिराना। (२) व्यवहार में लाना। काम में लाना।

हक बक–वि० [अनु०] हक्का बक्का। स्तंभित। चकित। क्रि० प्र०—रहना।—होना।

हकलापन–संज्ञा पुं० [हिं० हकला + पन (प्रत्य०)] हकला होने की क्रिया या भाव। हकलाने का भाव।

हक्का–संज्ञा पुं० [देश०] लकड़ी का एक प्रकार का आघात या प्रहार। (लखनऊ)

हटवा†–संज्ञा पुं० [हिं० हाट] वह जो हाट पर बैठकर सौदा बेचता हो। हाटवाला। दूकानदार।

हट्टी–संज्ञा स्त्री० [सं० हट्ट] चीजों के बिकने की जगह। दूकान। (पश्चिम)

हड़कंप–संज्ञा पुं० [देश०] भारी हलचल या उथल पुथल। तहलका। जैसे,—शत्रु की सेना के पहुँचते ही किले में हड़कंप मच गया।
क्रि० प्र०—मचना।

हड़काया–वि० [हिं० हड़क] [स्त्री० हड़काई] पागल। (कुत्ता)

हथरस–संज्ञा पुं० [हिं० हाथ + रस ?] हस्त-मैथुन। हस्तक्रिया।

हथेव–संज्ञा पुं० [हिं० हाथ] हथौड़ा। घन। उ०—हनि हथेव हिय दरपन साजै। छोलनी जाप लिहे तन माँजै।—जायसी।

हनिवँत*–संज्ञा पुं० दे० "हनुमान"। उ०—नाहिं सो राम, हनिवँत बड़ि दूरी। को लेइ आव सजीवन मूरी।—जायसी।

हनुवँ–संज्ञा पुं० दे० "हनुमान्"। उ०—जनहुँ लंक सब लूटी हनुवँ बिधंसी बारि। जागि उठिउँ अस देखत, सखि! कहु सपन बिचारि।—जायसी।

हबड़ा–वि० [देश०] (१) जिसके बहुत बड़े बड़े दाँत हों। बड़दंता। (२) भद्दा। कुरूप। बद-शकल।

हमउम्र–वि० [फा० हम + अ० उम्र] अवस्था में समान। बराबर उम्र का।

हमक़ौम–वि० [फा० हम + अ० क़ौम] एक ही जाति के। सजातीय।

हमपेशा–वि० [फा०] एक ही तरह का पेशा करनेवाले। जो व्यवसाय एक करता हो, वही व्यवसाय करनेवाला दूसरा। सह-व्यवसायी।

हमबिस्तर–वि० [फा०] एक ही बिछौने पर साथ में सोया हुआ।
क्रि० प्र०—होना।

हमबिस्तरी–संज्ञा स्त्री० [फा०] एक ही बिछौने पर साथ में सोने की क्रिया। संभोग। प्रसंग।

हममज़हब–वि० [फा० हम + अ० मज़हब] समान धर्म के अनुयायी। एक ही मज़हब को माननेवाले। सह-धर्मी।

हर–संज्ञा पुं० [जरमन] अंगरेजी 'मिस्टर' शब्द का जर्मन समानार्थवाची शब्द। महाशय। जैसे,—हर स्ट्रेसमैन।

हरजेवड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो प्रायः सारे भारत और सभी गरम प्रदेशों में पाई जाती है। इसकी डालियों और पत्तियों पर बहुत से रोएँ होते हैं। इसकी जड़ और पत्तियों का व्यवहार ओषधि के रूप में होता है। दाख निरबिसी। पुरही।

हरतार*–संज्ञा स्त्री० दे० "हरताल"। उ०—का हरतार पार नहिं पावा। गंधक काहे कुरकुटा खावा।—जायसी।

हरद्वान–संज्ञा पुं० [?] एक स्थान का नाम जहाँ की तलवार प्रसिद्ध थी। उ०—हाथन्ह गहे खड्ग हरद्वानी। चमकहिं सेल बीजु कै बानी।—जायसी।

हरद्वानी–वि० [हिं० हरद्वान] हरद्वान का बना हुआ। उ०—हाथन्ह गहे खड्ग हरद्वानी। चमकहिं सेल बीजु कै बानी। —जायसी।

हरनौटा–संज्ञा पुं० [हिं० हिरन + औटा (प्रत्य०)] हिरन का बच्चा। छोटा हिरन।

हरबोंग–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) उपद्रव। उत्पात। (२) अव्यवस्था। बद-अमली। गड़बड़ी।
क्रि० प्र०—मचाना।

हरमल–संज्ञा पुं० [देश०] डेढ़ दो हाथ ऊँची एक प्रकार की झाड़ी जो सिंध, पंजाब, काश्मीर और दक्षिण भारत में पाई जाती है। इसकी पत्तियाँ ओषधि के रूप में काम आती हैं और इसके बीजों से एक प्रकार का लाल रंग निकलता है।

हरा–संज्ञा पुं० [सं० हरित] हरे रंग का घोड़ा। सब्जा। उ०—हरे कुरंग महुअ बहु भाँती। गरर कोकाह बुलाह सुपाँती। —जायसी।

हरिऊ*–अव्य० [हिं० हरए] धीरे। आहिस्ते। उ०—सूखा हिया हार भा भारी। हरि हरि प्रान तजहिं सब नारी।—जायसी।

हरित्–संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार हरिक्षेत्र की एक नदी का नाम।

हरिन हर्रा–संज्ञा पुं० [देश०] सोहाग नामक बड़ा सदाबहार वृक्ष जिसके बीजों से जलाने का तेल निकलता है। वि० दे० "सोहाग"।

हरियानी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हरियाना प्रांत] हिसार, रोहतक और करनाल प्रांत की बोली जिसे जाटू या बाँगडू भी कहते हैं।

हरियाली–संज्ञा स्त्री० दे० "दूब"।

हरी-चुगा–संज्ञा पुं० [हिं० हरी (हरियाली) + चुगना] वह जो केवल अच्छे समय में साथ दे। संपन्न अवस्था में साथ देनेवाला।

हलकंप–संज्ञा पुं० दे० "हड़कंप"।

हलबलाना–क्रि० अ० [अनु०] भय या शीघ्रता आदि के कारण घबराना।
क्रि० स० दूसरे को घबराने में प्रवृत्त करना।

हलबलाहट–संज्ञा स्त्री० [अनु०] हलबलाने की क्रिया या भाव। खलबली। घबराहट।

हलाचली–संज्ञा स्त्री० दे० "हलचल"।

हलूक–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) उतना पदार्थ जितना एक बार वमन में मुँह से निकले। (२) वमन। कै। जैसे,—दो हलूकों में उसकी जान निकल गई।

हसर–संज्ञा पुं० [अं० हसर] रिसाले के सवारों के तीन भेदों में

से एक जो हलके होते हैं और जिनके अस्त्र तथा घोड़े भी हलके होते हैं। (अन्य दो भेद लैंसर और ड्रैगून हैं।)

हस्तदोष-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ से कौड़ी मारने या नाप में फ़र्क डालने का अपराध। (कौ०)

हस्तक्षिप्रकारी-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ की सफाई से बाज़ी जीतनेवाला।

हस्तिकर्णक-संज्ञा पुं० [सं०] हथियारों का वार रोकने का एक प्रकार का पटल या ढाल। (कौ०)

हस्ति-व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों का वह व्यूह जिसमें आक्रमण करनेवाले हाथी उरस्य में, तेज भागनेवाले (अपवाह्य) मध्य में और व्याल (मतवाले) पक्ष में हों। (कौ०)

हाइड्रोसील-संज्ञा पुं० [अं०] अंडकोश या फोते में शरीर के विकृत जल का जमा होना। अंडवृद्धि। फोते का बढ़ना।

हाउस आफ कामन्स-संज्ञा पुं० दे० "कामन सभा"।

हाउस आफ लार्ड्स-संज्ञा पुं० दे० "लार्ड सभा"।

हाटक-संज्ञा पुं० [सं०] (५) भाड़ा। किराया। जैसे,—नौका हाटक।

हाड़ी-संज्ञा पुं० [पं० हाड़=मलार ?] एक प्रकार का पहाड़ी राग।

हायुस-संज्ञा पुं० [सं० हविष्य] जौ की कच्ची बाल जो प्रायः भून कर और नमक मिर्च मिलाकर खाई जाती है।

हाबूड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी जाति जिसका काम लूट मार और चोरी आदि करना है।

हामी-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह जो हिमायत करता हो। (२) सहायता करनेवाला। मददगार।

हारबर-संज्ञा पुं० [अं०] समुद्र के किनारे, नदी के मुहाने या खाड़ी में बना हुआ वह स्थान जहाँ जहाज आकर ठहरते हैं। बंदर। बंदरगाह। जैसे,—डायमण्ड हारबर। बंबई हारबर।

हाय हाय-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाय] किसी पदार्थ को प्राप्त करने की बहुत अधिक और अनुचित इच्छा। हाय हाय। जैसे,—तुम्हें तो हर दम रुपयों की हाय हाय पड़ी रहती है।

हा हा हू हू-संज्ञा पुं० [अनु०] हा हा करके हँसने की क्रिया। हँसी ठट्ठा। विनोद। हा हा ठीठी।

हाही-संज्ञा स्त्री० [हिं० हाय] किसी वस्तु को प्राप्त करने की अनुचित और बहुत अधिक विकलता। कुछ पाने के लिये 'हाय हाय' करते रहना। जैसे,—(क) तुम्हें तो सदा रुपयों की हाही पड़ी रहती है। (ख) इतनी हाही क्यों करते हो? जब सब को मिलेगा, तब तुम्हें भी मिल जायगा।

हिंस्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुश्मनों या डाकुओं की नाव।

हिज़ ऑनर-संज्ञा पुं० [अं०] छोटे लाट आदि के पद के आगे लगनेवाला सम्मानसूचक शब्द। जैसे,—हिज़ आनर लेफ्टेनेंट गवर्नर।

हिज़ एक्सेलेंसी-संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० हर एक्सेलेंसी] वाइसराय, प्रधान सेनापति, गवर्नर, स्वतंत्र देशों के मन्त्री आदि कुछ विशिष्ट उच्च अधिकारियों के नाम के आगे लगनेवाली प्रतिष्ठासूचक उपाधि। श्रीमान्। जैसे,—हिज़ एक्सेलेंसी वाइसराय, हिज़ एक्सेलेंसी कमांडर-इन-चीफ़, हिज़ एक्सेलेंसी प्राइम मिनिस्टर नैपाल।

हिज़ मैजेस्टी-संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० हर मैजेस्टी] सम्राट् और स्वाधीन देशों के राजाओं के नाम के आगे लगनेवाली गौरव-सूचक उपाधि। महामहिमान्वित। मलिक मोअज़्ज़म। जैसे,—हिज़ मैजेस्टी किंग जार्ज। हिज़ मैजेस्टी अमानुल्ला।

हिज़ रायल हाइनेस-संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० हर रायल हाइनेस] स्वाधीन राज्यों या देशों के युवराजों तथा राजपरिवारों के व्यक्तियों के नाम के आगे लगनेवाली गौरवसूचक उपाधि। जैसे,—हिज़ रायल हाइनेस प्रिंस आफ़ वेल्स।

हिजली बदाम-संज्ञा पुं० [हिजली ?+ हिं० बादाम] काजू नामक वृक्ष के फल जो प्रायः बादाम के समान होते हैं और जिनसे एक प्रकार का तेल निकलता है जो प्रायः बादाम के तेल के समान होता है। यह फल भून कर खाया जाता है और इसका मुरब्बा भी पड़ता है। वि० दे० "काजू"।

हिज़ हाइनेस-संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० हर हाइनेस] राजा महाराजाओं के नाम के आगे लगनेवाली गौरवसूचक उपाधि। जैसे—हिज़ हाइनेस महाराज सर सयाजी राव गायकवाड़।

हिज़ होलीनेस-संज्ञा पुं० [अं०] पोप तथा ईसाई मत के प्रधान आचार्यों के नाम के आगे लगनेवाली उपाधि।

विशेष—भारत में भी लोग धर्माचार्यों के नाम के आगे यह उपाधि लगाने लग गए हैं। जैसे,—हिज़ होलीनेस स्वामी शंकराचार्य।

हिपोक्रिट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) कपटी। मक्कार। (२) पाखंडी।

हिपोक्रिसी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) छल। कपट। फरेब। मकर। (२) पाखंड।

हिमवान-संज्ञा पुं० [सं० हिमवत्] (२) चंद्रमा। उ०—पावक पवन पानी भानु हिमवान जम, काल लोकपाल मेरे डर डावाँडोल हैं।—तुलसी।

हिरकना-क्रि० अ० [सं० हिरुक्] (३) (बच्चों या पशुओं आदि का) परचना।

हिरिस-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो अवध, राजपूताने, पंजाब और सिंध में पाया जाता है। इसकी छाल भूरे रंग की होती है। इसकी पत्तियाँ पाँच छः अंगुल लंबी और जड़ की ओर गोलाकार होती हैं। यह फागुन चैत में

फलता है। इसके फल खट-मीठे होते हैं और कहीं कहीं खाए जाते हैं।

हिल्ला–संज्ञा पुं० दे० "हीला"।

हिवंचल–संज्ञा पुं० [सं० हिम] हिम। पाला। बरफ़। उ०—बरखा रुदन गरज अति कोहू। बिजुरी हँसी हिवंचल छोहू।—जायसी।

संज्ञा पुं० दे० "हिमाचल"। उ०—को ओहि लागि हिवंचल सीझा। का कहूँ लिखी ऐस को रीझा।—जायसी।

हिस्टीरिया–संज्ञा पुं० [अं०] मूर्छा रोग जो प्रधानतः स्त्रियों को होता है।

विशेष—इस रोग के प्रधान लक्षण ये हैं—आक्षेप या मूर्छा के पहले ऐसा मालूम होना मानों पेट में कोई गोला ऊपर को जा रहा है, रोना, चिल्लाना, बकना, हाथ पैर ठंढे होना, बार बार प्यास लगना आदि।

हीन–संज्ञा पुं० [सं०] (८) दीन। नम्र। उ०—रहे जो पिय के आयसु बरते होइ हीन। सोइ चांद अस निरमल जनम न होइ मलीन।—जायसी।

हीनच्छिद्रिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह संघ या श्रेणी जो कुल, मान-मर्यादा, शक्ति आदि में बहुत घटकर हो। (कौ०)

हीनापहीन–संज्ञा पुं० [सं०] जुरमाने के साथ हरजाना। अर्थ-दंड सहित हानि की पूर्ति।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में यदि राजकीय कारखाने में जुलाहे कम सूत या कपड़े बनाते थे तो उन्हें 'हीनापहीन' देना पड़ता था। (कौ०)

हीर–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की लता जो प्रायः सारे भारत में पाई जाती है और जिसकी टहनियों और पत्तियों पर भूरे रंग के रोएँ होते हैं। यह चैत बैसाख में फूलती है। इसकी जड़ और पत्तियों का व्यवहार ओषधि रूप में होता है। इसके पके फलों के रस से बैंगनी रंग की स्याही बनती है जो बहुत टिकाऊ होती है।

हीरा–संज्ञा पुं० [सं० हीरक] (५) रुद्राक्ष या इसी प्रकार का और कोई एक अकेला मनका जो प्रायः साधु लोग गले में पहनते हैं। (साधुओं की परि०)

हीस–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की कँटीली लता जो प्रायः सारे भारत में बहुत बड़े बड़े पेड़ों पर चढ़ी हुई पाई जाती है। यह गरमी में फूलती और बरसात में फलती है। इसकी पत्तियाँ और टहनियाँ हाथी बड़े चाव से खाते हैं।

हीही–संज्ञा स्त्री० [अनु०] ही ही शब्द करके हँसने की क्रिया। तुच्छतापूर्वक हँसना।

यौ०—ही ही ठी ठी करना = (१) व्यर्थ और तुच्छतापूर्वक हँसना। (२) हँसी मजाक करना।

हुज्जती–वि० [अ० हुज्जत + ई (प्रत्य०)] बात बात में लड़नेवाला। हुज्जत करनेवाला। झगड़ालू।

हुड़का–संज्ञा पुं० [देश०] वह जो घोर मानसिक व्यथा, विशेषतः बच्चों को होनेवाली मानसिक व्यथा जो प्रायः अचानक किसी प्रिय व्यक्ति का वियोग हो जाने पर उत्पन्न होती है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

हुड़काना–क्रि० स० [हिं० हुड़क + आना (प्रत्य०)] (१) बहुत अधिक भयभीत और दुःखी करना। (२) तरसाना। ललचाना।

हुनरमंदी–संज्ञा स्त्री० [फा०] हुनरमंद होने की क्रिया या भाव। कला-कुशलता। निपुणता।

हुमकना– क्रि० अ० [अनु०] (५) दबाने या इसी प्रकार का और कोई काम करने के लिये ज़ोर लगाना। उ०—मारेसि साँग पेट महँ धँसी। काढ़ेसि हुमकि आँति भुइँ खसी।—जायसी।

हुलहुला–संज्ञा पुं० [देश०] (१) विलक्षण बात। अद्भुत बात। (२) उपद्रव। उत्पात। (३) शोक। उमंग। (४) मिथ्या अभियोग।

हुश्कारना–क्रि० स० [हुश से अनु०] हुश हुश शब्द करके कुत्ते को किसी की ओर काटने आदि के लिये बढ़ाना।

हूला–संज्ञा पुं० [हिं० हूलना] शस्त्र आदि हूलने की क्रिया या भाव।

हेड क्वार्टर–संज्ञा पुं० [अं० हेडक्वार्टर्स] (१) वह स्थान या मुकाम जहाँ सेना का प्रधान रहता हो। जैसे,—सेना का हेड क्वार्टर शिमले में है। (२) किसी सरकार या अधिकारी का प्रधान स्थान। जैसे,—जाड़े में भारत सरकार का हेड क्वार्टर दिल्ली में रहता है। (३) वह स्थान जहाँ कोई मुख्यतः रहता या कारोबार करता हो। सदर। सदर मुकाम। केंद्र। जैसे,—वे अभी हेड क्वार्टर से लौटे नहीं हैं।

हेडिंग–संज्ञा स्त्री० [अं०] वह शब्द या वाक्य जो विषय के परिचय के लिये किसी समाचार, लेख या प्रबन्ध के ऊपर दिया जाय। शीर्षक। जैसे,—अखबारों में महत्व के समाचार बड़ी बड़ी हेडिंगें देकर छापे जाते हैं।

हेल्थ–संज्ञा पुं० [अं०] स्वास्थ्य। तंदुरुस्ती। जैसे,—हेल्थ अफ़सर। हेल्थ डिपार्टमेंट।

हैंड बिल–संज्ञा पुं० [अं०] छपा हुआ कागज़ का टुकड़ा जिसमें किसी चीज़ का विज्ञापन या नाच तमाशे, सभा समिति आदि की सूचना दी जाती है। जैसे,—अभी एक हैंड बिल से मुझे मालूम हुआ कि टाउन हाल के मैदान में एक सार्वजनिक सभा होनेवाली है।

हैया–संज्ञा पुं० दे० "हौआ"।

हैरण्यवत-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार जंबू द्वीप के छठे खंड का नाम।

हैहयाधिराज-संज्ञा पुं० [सं०] सहस्रार्जुन। उ०-प्रचंड हैहयाधिराज दण्डमान जानिये।—केशव।

होम डिपार्टमेंट-संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र विभाग"।

होम मिनिस्टर-संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र सचिव"।

होम मेंबर-संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र सचिव"।

होम सेक्रेटरी-संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र सचिव"।

होरहा‡-संज्ञा पुं० [सं० होलक] चने का छोटा पौधा जो प्रायः जड़ से उखाड़ कर बाजारों में बेचा जाता है और जिसमें से चने के भुने हुए साबे दाने निकलते हैं।

होलुआ-संज्ञा पुं० [हिं० होला] भुने या उबाले हुए चने। (लाँवेवाला)

होस्टेल-संज्ञा पुं० [अं०] (१) स्कूल या कालेज से संबद्ध छात्रों के रहने का स्थान। छात्रावास। (२) रहने का स्थान।

हौल जौल-संज्ञा स्त्री० [अ० हौल+जौल (अनु०)] (१) जल्दी। शीघ्रता। (२) जल्दी के कारण होनेवाली घबराहट।

क्रि० प्र०—मचाना।

हौला जौली-संज्ञा स्त्री० दे० "हौल जौल"।

हौलुआ‡-वि० [हिं० हौल] जिसके मन में जल्दी हौल होता हो। शीघ्र भयभीत होने या घबरानेवाला।

ह्रस्वकाल-संज्ञा पुं० [सं०] आक्रमण करते ही प्राप्त होनेवाला लाभ। (कौ०)

ह्रस्व-प्रवासी-संज्ञा पुं० [सं०] थोड़े समय के लिये बाहर गया हुआ मनुष्य। वह जो कुछ ही काल के लिये परदेश गया हो। (कौ०)

विशेष—ऐसे प्रवासियों की स्त्रियों के लिये कुछ अवधि नियत थी कि वे कितने दिनों तक पति की प्रतीक्षा करें। उस काल के पहले वे दूसरा विवाह नहीं कर सकती थीं।

ह्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (३) जैनों के अनुसार महापद्म नामक सरोवर की देवी का नाम।

ह्विप-संज्ञा पुं० [अं०] (१) पार्लमेंट या व्यवस्थापिका सभा का वह सदस्य जो अपनी पार्टी या दल के सदस्यों को किसी महत्व के प्रश्न पर वोट या मत लिए जाने के समय, सभा में अधिकाधिक संख्या में उपस्थित कराता है। दलदूत। जैसे,—इस बार परिषद् के स्वराजी दल के ह्विप के उद्योग से दल के समस्त सदस्य १२ ता० के अधिवेशन में उपस्थित हुए थे।

विशेष—ह्विप का काम है अपने दल के प्रत्येक सदस्य को सूचित करना कि अमुक समय पर अमुक महत्व के विषय पर वोट या मत लिए जायँगे, और इस बात का ध्यान रखना कि वोट लिए जाने के पहले सभा से दल का कोई सदस्य बाहर न जाने पावे (अर्थात् उन सब को सभा में रोक रखना), अपने दल के सदस्यों को बताना कि किस प्रकार वोट देना चाहिए, वोट लिए जाने के समय प्रत्येक दल के सदस्यों की गणना करना, अपने दल के सदस्यों से मिलते जुलते रहना और किसी विषय पर उनका क्या निश्चित मत है, यह अपने दल के नेता को विदित करना जिसमें वह निश्चय कर सके कि कहाँ तक हमें इस विषय में अपने दल का सहारा मिलेगा। सारांश यह कि ह्विप का काम अपने दल के स्वार्थ या हित को देखना है।

(२) चाबुक। (३) कोचवान।

संख्या ३७-४२ ["समागत" से "हेल"] शब्द १४७१०-

हिंदी-शब्दसागर

अर्थात्

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

[सातवाँ खंड]

संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

सहायक संपादक

रामचंद्र शुक्ल रामचंद्र वर्म्मा

भगवानदीन

प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारणी सभा

१९२८

गणपति कृष्ण गुर्जर द्वारा श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी में मुद्रित।

मूल्य ६) डाकव्यय अतिरिक्त

संकेताक्षरों का विवरण

अं० = अंगरेज़ी भाषा
अ० = अरबी भाषा
अनु० = अनुकरण शब्द
अने० = अनेकार्थनाममाला
अप० = अपभ्रंश
अयोध्या = अयोध्यासिंह उपाध्याय
अर्द्धमा० = अर्द्धमागधी
अल्पा० = अल्पार्थक प्रयोग
अव्य० = अव्यय
आनंदघन= कवि आनंदघन
इब० = इबरानी भाषा
उ० = उदाहरण
उत्तरचरित=उत्तररामचरित
उप०=उपसर्ग
उभ०=उभयलिंग
कठ० उप० = कठवल्ली उपनिषद्
कबीर = कबीरदास
केशव = केशवदास
कोंक०=कोंकण देश की भाषा
क्रि० = क्रिया
क्रि०अ० = क्रिया अकर्मक
क्रि०प्र० = क्रियाप्रयोग
क्रि० वि० = क्रियाविशेषण
क्रि० स० = क्रिया सकर्मक
क्व० = क्वचित्, अर्थात् इस का प्रयोग बहुत कम देखने में आया है
खानखाना = अब्दुर्रहीम खानखाना
गि० दा० या गि० दास = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर = गिरिधरराय (कुंडलियावाले)
गुज० = गुजराती भाषा
गुमान = गुमान मिश्र
गोपाल = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
चरण = चरणचंद्रिका
चिंतामणि=कवि चिंतामणि त्रिपाठी
छीत = छीतस्वामी
जायसी = मलिक मुहम्मद जायसी
जावा०=जावा द्वीप की भाषा
ज्यो० = ज्योतिष
डिं० = डिंगल भाषा
तु० = तुरकी भाषा
तुलसी = तुलसीदास
तोष = कवि तोष
दादू = दादूदयाल
दीनदयालु = कवि दीनदयालु गिरि
दूलह = कवि दूलह
दे० = देखो
देव = देव कवि (मैनपुरीवाले)
देश० = देशज
द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी
नागरी = नागरीदास
नाभा = नाभादास
निश्चल = निश्चलदास
पं० = पंजाबी भाषा
पद्माकर = पद्माकर भट्ट
पर्या० = पर्याय
पा० = पाली भाषा
पुं० = पुंलिंग
पु० हिं० = पुरानी हिंदी
पुर्त्त० = पुर्त्तगाली भाषा
पू० हिं० = पूर्वी हिंदी
प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र
प्रत्य० = प्रत्यय
प्रा० = प्राकृत भाषा
प्रिया = प्रियादास
प्रे० = प्रेरणार्थक
प्रे० सा० = प्रेमसागर
फ़० = फ़रासीसी भाषा
फ़ा० = फ़ारसी भाषा
बँग० = बँगला भाषा
बरमी० = बरमी भाषा
बहु० = बहुवचन
बिहारी = कवि बिहारीलाल
बुं० खं० = बुंदेलखंड बोली
बेनी = कवि बेनी प्रवीन
भाव = भाववाचक
भूषण=कवि भूषण त्रिपाठी
मतिराम = कवि मतिराम त्रिपाठी
मला० = मलायम भाषा
मलूक = मलूकदास
मि० = मिलाओ
मुहा० = मुहाविरा
यू० = यूनानी भाषा
यौ० = यौगिक तथा दो या अधिक शब्दों के पद
रघु० दा० = रघुनाथदास
रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन
रघुराज = महाराज रघुराजसिंह रीवाँनरेश
रसखान = सैयद इब्राहीम
रसनिधि=राजा पृथ्वीसिंह
रहीम = अब्दुर्रहीम खानखाना
लक्ष्मणसिंह = राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू = लल्लूलाल
लश० = लशकरी भाषा; अर्थात् हिंदुस्तानी जहाजियों की बोली
लाल = लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)
लै० = लैटिन भाषा
वि० = विशेषण
विश्राम = विश्रामसागर
व्यंग्यार्थ = व्यंग्यार्थकौमुदी
व्या० = व्याकरण
व्यास = अंबिकादत्त व्यास
शं० दि = शंकर दिग्विजय
शृं० सत०=शृंगार सतसई
सं० = संस्कृत
संयो० = संयोजक अव्यय
संयो० क्रि० = संयोज्य क्रिया
स० = सकर्मक
सबल = सबलसिंह चौहान
सभा० वि० = सभाविलास
सर्व० = सर्वनाम
सुधाकर=सुधाकर द्विवेदी
सूदन = सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर = सूरदास
स्त्रि० = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री० = स्त्रीलिंग
स्पे० = स्पेनी भाषा
हिं० = हिंदी भाषा
हनुमान = हनुमन्नाटक
हरिदास =स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र = भारतेंदु हरिश्चंद्र

---

* यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त है।
† यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्रांतिक है।
‡ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप ग्राम्य है।